

आयुर्वेदीय विश्वकोश

चौथा खण्ड
(कृत्तञ्ज से गिरिकाण तक)

वैद्य रामजीत सिंह
वैद्यराज हकीम दत्तजीत सिंह

4167

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. _____

Book No. _____

२२५
का२

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आयुर्वेदीय विश्वकोश

[हिन्दी का सर्वप्रथम अर्थप्रधान, सर्वांगपूर्ण शब्दकोश]

चौथा खण्ड

(काअ से गिरिकाण तक)

सम्पादक

वैद्य रामजीत सिंह

वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह



१९६६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक

श्री मौलिचन्द्र शर्मा

सचिव, प्रथम शासन निकाय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण

शकाब्द १८६१ सन् १९६६

मूल्य : ३०.०० रुपये



4167

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

प्रयाग

प्रकाशकीय

आयुर्वेदीय विश्वकोश का यह चतुर्थ खण्ड अन्य खण्डों से पहले विशेष परिस्थिति में प्रकाशित हुआ है। इस विश्वकोश का विषय क्षेत्र आयुर्वेदशास्त्र की व्यापकता के अनुसार विस्तृत है। आयुर्वेद से संसार की सभी चिकित्सा पद्धतियों का बोध व्यापक अर्थ में सम्पादकों ने स्वीकार कर आयुर्वेद की वेदोक्त प्राचीन निदान-पद्धति एवं चिकित्सा-प्रणाली के साथ ही यूनानी और एलोपैथी चिकित्सा पद्धति का समावेश इस विश्वकोश में किया है।

विश्वकोश का निर्माण बहुत दुष्कर और कालापेक्ष कार्य है। पचास वर्ष तक निरन्तर शब्द-सेवा करते हुए दोनों सम्पादकों ने जो ऐतिहासिक कार्य किया है, वह अभिनन्द्य है। अभी तक किसी भारतीय भाषा में ऐसा विश्वकोश प्रकाशित नहीं हुआ है। हिन्दी में अपने ढंग का अनवद्य और प्रथम यह विश्वकोश प्रकाशित कर हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और दोनों विद्वान् सम्पादकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

प्रथम शासन निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

—मौलिचन्द्र शर्मा
सचिव

प्रस्तावना

निघण्टु संज्ञा मूल में तो वेदार्थ-बोधनार्थ आचार्यों द्वारा वेदचतुष्टय से विशिष्ट पदों का संग्रह कर बनाये कोशग्रन्थों की है अर्थात् निघण्टु नाम मूलतः उन वैदिक कोशों का है जिनमें चारों वेदों से एकार्थक कठिन पदों का संग्रह किया गया है। इनकी निरुक्ति (निर्वचन, व्युत्पत्ति, प्रकृति-प्रत्यय के निर्देश द्वारा अर्थावबोधन) जिन ग्रन्थों में बतायी जाती है उन्हें निरुक्त कहते हैं। संप्रति यास्क कृत निरुक्त उपलब्ध है। इस पर दुर्गाचार्य की व्याख्या प्रसिद्ध है।

पश्चात्काल में चरक-सुश्रुत आदि प्राचीन आयुर्वेदीय संहिताओं से भी औषधीय द्रव्यों का संग्रह उनके संहितोक्त तथा स्वानुभूत गुण-कर्मों का प्रतिपादन करनेवाले जो ग्रन्थ रचे गये, उनके लिए भी निघण्टु संज्ञा का व्यवहार होने लगा। सुतरां औषधद्रव्यों के गुणधर्म प्रतिपादक तन्त्रों की निघण्टु यह विशेष संज्ञा आयुर्वेद-प्रसिद्ध है।

इस प्रकार यद्यपि आयुर्वेदीय कोष लिखने का प्रयत्न सर्वथा नवीन नहीं है। इससे बहुत पूर्व आयुर्वेद के द्रव्यगुणांश के अर्थपरिचायक कोष, यथा—धन्वन्तरि निघण्टु, राजनिघण्टु, मदनपाल निघण्टु, कैयदेव निघण्टु और भावप्रकाश निघण्टु आदि प्राचीन और शालिग्राम निघण्टु आदि नवीन ग्रन्थ विद्यमान थे, जिससे आज दिन भी वैद्यसमाज बहुत लाभ उठा रहा है; किन्तु एक तो इनका क्षेत्र एक प्रकार से परिमित है, दूसरे इनमें शब्दों का संग्रह जैसा कि आजकल के कोशग्रन्थों में होता है, अकारादि वर्ण-क्रमानुसार नहीं किया गया है जिससे वे अकारादिवर्णक्रम विरहित केवल शब्दसंग्रह ग्रन्थ अर्थात् शब्दकोष मात्र हैं। अतः इनका व्यवहार हम एक सर्वव्यापक आयुर्वेदीय विश्वकोष के रूप में नहीं कर सकते।

आयुर्वेद का कलेवर आज कितना विशाल एवं इसके प्रकाश में आज अपना क्षेत्र कितना विस्तृत दिखलाई पड़ रहा है, यह वैद्यसमाज के प्रत्यक्ष है।

अति प्राचीनकाल—चिकित्सा के आदिकाल में भारतवर्ष में प्रत्यनीक चिकित्सा की केवल एक ही पद्धति आयुर्वेदिक पद्धति थी। उसके स्थान में आज कालक्रम से प्रत्यनीक चिकित्सा की यूनानी और एलोपैथी यह दो अन्य पद्धतियाँ भी प्रचलित हैं। इनमें यूनानी पद्धति तो आयुर्वेद की ही भाँति प्राचीन उसी से प्रादुर्भूत एवं परिपोषित तथा उसके अत्यधिक समीप है। परन्तु एलोपैथी जो आधुनिक वर्धमान विज्ञान से अनुमोदित, परिपोषित एवं परिवर्धित हुई है; यद्यपि अनेक अंशों में पूर्वोक्त उभय पद्धतियों से दूर होती गई है तथापि यह उनसे सर्वथा पृथक् पद्धति हो, ऐसी बात नहीं है। अतः साम्प्रत जो आयुर्वेद के कोशग्रन्थ प्रस्तुत हों उनमें इन सभी का सहकार, प्राप्त न हो तथा अपेक्षित समावेश एवं समन्वयात्मक विवेचन न हो तो वह आयुर्वेदीय कोशग्रन्थ समय की माँग की पूर्ति करनेवाला नहीं कहा जा सकता।

अस्तु, हम कह सकते हैं कि हमारे संदेहमात्र को दूर करने के लिए अभी पर्याप्त सामग्री नहीं प्राप्त हुई है। साम्प्रत हमें एक ऐसे आयुर्वेदीय विश्वकोष की आवश्यकता है जो सर्वथा हमारी शंकाओं का समाधान, हमारी जिज्ञासाओं का संतोषजनक उत्तर देने एवं संदिग्ध स्थलों पर मार्गदर्शन करने में समर्थ हो। हमारी इसी माँग की पूर्ति करने के लिए कविराज श्री उमेशचन्द्र विद्यारत्न महोदय ने सन् १८६४ ई० में विशाल वैद्यक शब्द सिन्धु कोष का प्रणयन कर प्रकाशित किया था। इसमें संदेह नहीं कि वैद्यसमाज ने उससे पर्याप्त लाभ उठाया है, तथापि जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, अकारादि वर्णक्रमानुसार लिखा होने पर भी हमारी वर्तमान आवश्यकताओं की सम्यक्तया पूर्ति करने की पूर्ण क्षमता उसमें भी नहीं है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर हमने प्रस्तुत आयुर्वेदीय विश्व-कोष के प्रणयन का संकल्प किया था। परिणाम स्वरूप आज वह प्रकाशित होकर आपके करकमलों में जा रहा है।

आयुर्वेद के उद्भूत विद्वानों एवं अनेक शास्त्र-पारंगत पण्डितों को भी यथावसर जिसकी सहायता लेनी पड़े, विविध क्रियाकुशल वैद्यों को भी आवश्यकता पड़ने पर जिसका आश्रय लेना पड़े तथा अनेक अकुशल एवं स्वल्पमति वैद्य और छात्र समुदाय को भी जिसके भांडार से अपने को पूर्ण बनाने के लिए ज्ञान-याचना करनी पड़े, ऐसे आयुर्वेदीय विश्वकोश को कितना सारगर्भित, कितना महान् एवं सर्वांगपूर्ण होने की आवश्यकता है, इसकी कल्पना प्रायः सभी विज्ञ वैद्य कर सकते हैं।

कोषनिर्माण की दुरुहता एवं बाधाएँ

यूरोप, अमेरिका आदि विदेशों में जब भी ऐसे महान् कार्य उपस्थित होते हैं, उस समय उस देश के अनेक उच्चकोटि एवं चोटी के विद्वान् जो कि अपने-अपने विषयों के पारंगत एवं विशेषज्ञ होते हैं, परस्पर सहयोग द्वारा, वर्षों तक अनवरत एवं अथक परिश्रम एवं प्रभूत धन-राशि व्यय करके उसे सर्वांगपूर्ण बनाने की यथाशक्ति चेष्टा करते हैं; इतना ही नहीं, वरन् नवीन-नवीन खोज और सुधार पर विशेष ध्यान रखते हुए उसमें अपेक्षित परिवर्तन एवं सुधार करने के लिए जीवन भर सतर्क रहते हैं और सुधार करते जाते हैं। वास्तव में यह कार्य कितना उत्तरदायित्वपूर्ण, दुःसाध्य एवं दुरुह है, इसे विज्ञान स्वयं समझ सकते हैं। इस विषय में लेखकों को कितनी गंभीर गवेषणा एवं पाण्डित्य की अपेक्षा होती है, कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कितनी बाधाओं का अतिक्रमण करना पड़ता है, इसका अनुमान एक ग्रन्थकार ही कर सकता है। दुर्भाग्यवश, भारतवर्ष के विद्वानों ने इस प्रकार की सामूहिक सहयोगिता पर अभी तक ध्यान नहीं दिया है। फलतः सच्चे उत्साही लेखकों को एकमात्र अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय पर निर्भर रहना पड़ता है। एतदतिरिक्त, भारतवर्ष में प्रेस के लिए प्रतिलिपि करना, मुद्रण एवं संशोधनादि की कठिनाइयों के साथ ही आर्थिक क्लिष्टता भी प्रायः रहती ही है।

अतः इन सब परिस्थितियों के होते हुए भी इस महान् 'आयुर्वेदीय विश्वकोष' के प्रणयन कार्यको अपने दुर्बल कंधों पर लेकर हमने अपने एकाकी प्रयास से जिस लगन, साहस, उत्साह एवं अथक परिश्रमपूर्वक पूरा किया है, वह विद्वज्जन के समक्ष है।

एक आयुर्वेदीय कोष के प्रस्तुत करने में जो सब से बड़ी एवं विचारणीय बाधा है—वह है पारिभाषिक शब्दों का अर्थ निर्णय। कितने ही शब्द ऐसे हैं जिनके अर्थ संदिग्ध होते हैं और संस्कृत भाषा में नानार्थक शब्द भी अनेक हैं। यह बाधा, आयुर्वेद की प्रायः सभी शाखाओं में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है और खेद के साथ लिखना पड़ता है कि विषय के एक सर्वमान्य निर्णय पर वैद्यसमाज आज तक भी नहीं पहुँच पाया है। इनमें भी विशेषतः शरीरविषयक एवं नानार्थप्रकाशक भेषजों की परिभाषा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

यहाँ शरीरशास्त्रसंबंधी जो कार्य महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन महोदय लिखित प्रत्यक्षशारीरम्, श्री वारियर महोदय द्वारा प्रणीत अष्टांगशारीरम् तथा हाल में ही श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के विद्वान् आयुर्वेद प्रेमी संचालकों के तत्त्वावधान में आयोजित शारीरशास्त्र चर्चापरिषद् द्वारा प्रतिपादित हुआ है, उससे एतद्विषयक समस्या का समाधान बहुत अंशों में हुआ है। किंतु भेषजनिर्णय का काम अब भी बहुत पीछे है। उदाहरणार्थ अष्टवर्ग की ओषधियों को ही ले लीजिये। यद्यपि इनके निश्चय के लिए एकाकी प्रयत्न हुए हैं, तथापि कोई सर्वमान्य विश्वसनीय निर्णय अभी तक सुप्रसिद्ध नहीं हो पाया है। रास्ना एवं नगर आदि जैसी सामान्य ओषधियों के परिचय में भी मतभेद है, क्योंकि देश-देश में भिन्न-भिन्न प्रकार की ओषधियाँ एक ही नाम से तथा एक ही द्रव्य अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं। अतः इन सब समस्याओं के समाधान करने के लिए सच्ची लगन के साथ गवेषणा (Research) करने की नितान्त आवश्यकता है। आयुर्वेद की सेवा में तन-मन-धन अर्पण कर के ही इसका पुनरुत्थान करना है। इसी कार्य की पूर्ति पर आयुर्वेदीय विश्वकोष की सर्वांगपूर्णता निर्भर करती है।

किंवदुना इस कोष को सभी दृष्टियों से उपयोगी, सर्वांगीण एवं प्रामाणिक बनाने में हमने कोई बात उठा नहीं रखी है। इस हेतु विविध विषयों के मर्मज्ञों एवं विशेषज्ञों से हम तत्तद्विषयक गवेषणासिद्ध परामर्श सदैव लेते रह कर इसमें समय-समय पर यथोचित आवश्यक परिवर्तन एवं परिष्कारादि करते रहे हैं। आगे भी इसी प्रकार करते रहने का दृढ़ विचार है।

आयुर्वेद की शास्त्रोक्त परिभाषा जितनी व्यापक हो सकती है, उक्त कोष का विषयक्षेत्र उतना ही व्यापक रखा गया है। यद्यपि आयुर्वेद शब्द में इस व्यापक अर्थ का समावेश होता है अर्थात् यहाँ आयुर्वेद से यद्यपि संसार की सर्व-चिकित्सा प्रणालियों का बोध व्यापक अर्थ में होता है, तथापि वह आयुर्वेद की वेदोक्त प्राचीन निदान एवं चिकित्सा प्रणाली के अर्थ में रूढ़ हो गया है अर्थात् आधुनिक काल में यह शब्द एक प्रकार से योगरूढ़ अर्थ का ही बोध कराता है।

आयुर्वेदीय विश्व-कोष नामकरण हेतु

इसके विपरीत प्रस्तुत कोष में केवल प्राचीन वैद्यक—भारतीय आयुर्वेद के ही नहीं, अपितु उसके अतिरिक्त यूनानी और आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक (एलोपैथी) अर्थात् पद्धतित्रय तथा उनकी सभी शाखाओं से संबंध

रखने वाले शब्दों एवं विषयों का संग्रह अकारादि वर्णक्रमानुसार नागरी लिपि में एवं हिंदी भाषा में किया गया है और शब्दों को केवल अर्थ ही नहीं, वरन् संपूर्ण सर्वमतानुसार विस्तृत व्याख्या—विवेचन किया गया है। आशय यह कि इसकी रचना विश्वकोष के ढंग पर की गई है। अतएव इसे केवल आयुर्वेदीय कोष नहीं, अपितु आयुर्वेदीय विश्वकोष कहना चाहिए और कोष की भाँति ही नहीं, साहित्यग्रन्थों की भाँति अध्ययन करना चाहिए।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इसमें केवल आयुर्वेद ही नहीं, यूनानी और एलोपैथी की सभी शाखाओं, यथा—शल्य-शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरण तन्त्र अर्थात् अष्टांगायुर्वेद तथा शारीर-क्रियाशारीर एवं उसके साहाय्यभूत द्रव्य-गुण, रसायन, भौतिकविज्ञान आदि (प्राचीन-अर्वाचीन, प्राच्य-प्रतीच्य) एवं आयुर्वेदोपनीत वेद, वेदांग, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, व्याकरण, साहित्य आदि में आये आयुर्वेद विषयक सभी प्रकार के शब्दों को भी अर्थसहित संगृहीत किया गया है। प्रत्येक शब्द की निरुक्ति (व्युत्पत्ति आदि) देने के

शब्द संचयन तथा
विषय सामग्री

बाद उसका क्या भाव है, अच्छी तरह समझा कर लिखने के उपरांत उसके अन्य भाषा वा चिकित्सात्रय के पर्याय दिये हैं। पुनः प्रत्येक शब्द के जितने अर्थ होते हैं, वे सब प्रमाण एवं स्थलनिर्देश सहित अलग-अलग संख्याक्रम से दे दिए हैं। प्रमाण में भावों को स्पष्ट करने के लिए आवश्यकतानुसार ग्रन्थान्तरों, कोषों और प्राचीन-अर्वाचीन टीकाकारों के वचन भी यथास्थान उद्धृत किए हैं। प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन एक शब्द भी छूटने न पाये। व्याख्या में आवश्यकतानुसार अष्टांग आयुर्वेद के पारिभाषिक शब्दों की प्राचीन-अर्वाचीन एवं चिकित्सात्रय के मतानुसार तुलनात्मक-समन्वयात्मक विशद विवेचना की गई है और संस्कृत के साथ-साथ उनके अन्य भाषा के यथार्थ पर्याय दिये गए हैं।

इस प्रकार इसमें ओषधि और परिभाषा आदि वाचक संस्कृत, हिंदी, यूनानी, अरबी, फारसी, उर्दू, लेटिन, अंग्रेजी, प्रादेशिक एवं प्रांतीय (बंगला, गुजराती, मराठी आदि) स्थानीय जंगली आदि प्रायः डेढ़-दो सौ भाषा के शब्दों का, अर्थसहित अकारादिवर्णक्रमानुसार एवं वर्णनावसर पर भी अपूर्व संग्रह हो गया है। सम्पूर्ण कोष भर में सम्भवतः कुल एक लक्ष शब्दों, लगभग २५००-३००० से अधिक उद्भिज्जों, समग्र खनिज एवं चिकित्सोपयोगी जांगम एवं रासायनिक असंशुद्ध द्रव्यों के वेदकाल से लेकर अद्यावधि सभी प्राच्य-प्रतीच्य, प्राचीन-अर्वाचीन शोधों का सर्वांगीण, सुंदर, सुबोध एवं प्रामाणिक, अपूर्व संग्रह हो गया है। क्योंकि प्राचीन अर्वाचीन, एतद्देशीय, परदेशीय प्रायः सभी उपलब्ध संस्कृत, हिंदी, यूनानी, अरबी-फारसी-उर्दू, लेटिन-आंग्ल, बंगीय, गुजराती, मराठी प्रभृति भाषा-ग्रन्थों का परिशीलन कर इसकी विषय-सामग्री का आकलन एवं संग्रह किया गया है।

यद्यपि इस कोष में आयुर्वेद के सकलांगों का विशद वर्णन किया गया है, तथापि द्रव्यगुण अर्थात् निघण्टु विषय का तो इतना संपूर्ण विवरण किया गया है कि अलग से केवल इस एक विषय में लिखे अन्य किसी भाषा के निघण्टु ग्रन्थ में भी देखने को नहीं मिल सकता। इस ग्रन्थ में यथास्थान बूटियों के संबंध में प्राप्त लेखकों के उस विस्तृत ज्ञान का पूरा-पूरा उपयोग किया गया है जो उन्होंने इस विषय के विद्वानों से परामर्श कर एवं स्वयं देश-देशान्तर, जंगल-पर्वतों की संकटपूर्ण यात्राएँ कर प्राप्त किये हैं।

इसमें संदिग्ध द्रव्यों पर निर्णयात्मक बुद्धि से विचार करने तथा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है और संदिग्ध ओषधियों के संदिग्धता-निवारण का अंतिम प्रयास किया गया है। इसके सिवाय इसमें सभी प्राचीन-अर्वाचीन रोगों की विस्तृत निदान-चिकित्सादि भी प्रणालीत्रय के मतानुसार दी गई है। आयुर्वेद-यूनानी-एलोपैथी के योगों का भी ऐसा प्रामाणिक संग्रह इसमें मिलेगा जो अन्य किसी एक ग्रन्थ में नहीं मिल सकता।

संक्षेप में इस कोष को पास रखने पर आपको आयुर्वेदीय, यूनानी और एलोपैथी में आये रोग-निदान और उनकी चिकित्सा, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योग, शारीर, रसायन, उद्भिज्ज आदि शास्त्रों का पूर्ण विवेचन अकारादि वर्णक्रम से मिलेगा अर्थात् चिकित्साप्रणालीत्रय विषयक जो वर्णन आज तक की प्रकाशित पुस्तकों में इतस्ततः विकीर्ण—बिखरा हुआ है, उनका प्रामाणिक संग्रह एक स्थान में इस प्रकार से किया हुआ है कि देखनेवाला उस विषय का तत्क्षण अभिज्ञ हो जा सकता है।

इसे देखकर आप स्वयं कह उठेंगे कि जो चिकित्सा संसार में है वह इसमें अवश्य है और जो इसमें नहीं है वह और कहीं स्वप्न में भी नहीं है। आयुर्वेद का ऐसा सर्वांगपूर्ण कोष हिन्दी में तो क्या, अभी तक किसी देशी भाषा में नहीं निकला है।

यह आयुर्वेद का बृहत् ज्ञानकोष है। अस्तु, इसे केवल कोष अर्थात् शब्दार्थ ग्रन्थ ही न समझना चाहिए, अपितु

(८)

आयुर्वेद के अखिलांगों की पूर्ण जानकारी के लिए इसका अध्ययन किया जाना चाहिए, प्रत्येक वैद्य, हकीम और डाक्टर एवं आयुर्वेद प्रेमी जनता के लिये अभूतपूर्व एवं अवश्य संग्रहणीय है।

लिङ्ग-निर्धारण

हिंदी में प्रयोगार्थ इस कोष में आये प्रत्येक देशी-विदेशी भाषा के शब्द के लिङ्ग-निर्धारण का यावच्छक्य प्रयास किया गया है।

देवनागरी वर्णमाला और लिपि अन्य किसी भी भाषा की वर्णमाला एवं लिपि की अपेक्षया अधिक वैज्ञानिक, पूर्ण एवं स्वाभाविक है तथा इसमें इतनी पर्याप्त ध्वनियों का समावेश है कि अन्य किसी भी भाषा की ध्वनियों को नागरी वर्ण

वर्णक्रम

के द्वारा अभिव्यक्त करने में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। अन्य भाषा में जो विशेष ध्वनियाँ आई हैं वे या तो एक ही ध्वनि के भेदोपभेद मात्र हैं अथवा वे इतनी आवश्यक नहीं और उनका समावेश अपनी मूल ध्वनि में ही हो सकता है। अतः देवनागरी वर्णक्रम में कोई परिवर्तन करना हमें समीचीन नहीं जान पड़ा।

वैद्यक शब्दसिंधु एवं कतिपय अन्य कोशों में क्ष, त्र, ज्ञ को अन्त्य वर्णाक्षर के रूप में मान कर इन वर्णों से आरंभ होने वाले शब्दों को अंत में ह के बाद स्थान दिया है। इसी के अनुकरण में हमने भी प्रथम अपने कोष के इससे पूर्ण प्रकाशित होने वाले खंडों में यह वर्णक्रम रखा था। परंतु कोश-कला का परिशीलन करने पर यह वर्णक्रम उससे विपरीत ज्ञात हुआ। कारण वर्णमाला 'ह' अक्षर में समाप्त हो जाती है। वर्ण क्ष, त्र, ज्ञ वर्णमाला में नहीं हैं, संयुक्ताक्षर हैं।

अतएव वर्णमाला के अकारादि क्रम के अनुसार कोश में 'क्ष' वर्ण को संयुक्त क्+ष के साथ, 'त्र' वर्ण को संयुक्त त्+र के साथ और 'ज्ञ' वर्ण को संयुक्त ज्+ञ के साथ होना चाहिये। अतः अब से हमने आयुर्वेदीय विश्वकोश में इस वर्णक्रम को स्वीकार किया है। कारण यही वर्णक्रम सभी कोशकारों ने स्वीकार किया है और सांप्रत इसी का प्रचलन है।

एदतिरिक्त औ के बाद अनुस्वार न दे कर अन्य कोशों की भाँति प्रत्येक वर्ण के आदि में और : को औ के पश्चात् दिया है।

इस कोश में समस्त भाषा के शब्द देवनागरी वर्णमाला के क्रमानुसार दिये गए हैं। अरबी, फारसी आदि अन्य भाषा के एक ही वर्ण के समानोच्चारण वाले कई-कई वर्ण, यथा—हिन्दी के केवल एक 'ज' के स्थान में फारसी के जीम जाल, जे, ज़े, जाद और जो तथा 'स' के स्थान में फारसी के से, सीन स्वाद, 'श' और 'ष' के स्थान में शीन आदि के लिए क्रम में कोई भेद स्थिर नहीं किया गया है, वरन् क्रमशः ज, स और श वा ष मान कर ही उन्हें नागरी वर्णक्रम में स्थान दिया गया है। शेष अन्य समस्त वर्णों के लिए भी इसी भाँति समझ लेना चाहिए।

हाँ! जो एक-एक वर्ण के स्थान में कई-कई वर्ण आये हैं, उन्हें अथवा उनके किसी विशेष उच्चारण को स्पष्ट करने के लिए कुछ चिह्न मान लिये गए हैं, जिसके लिए वर्ण (लिपि तथा उच्चारण) निर्णायकी निम्न तालिका व अवलोकन करें।

वर्ण-निर्णयकी तालिका

स्वर

नागरी	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
फ़ारसी	آ	ع	آ	ا	اِي	اُ	اُ	اِ	اِ	او	اُ	ان
	व्यञ्जन											
नागरी	क	ख	ग	घ	ङ							
फ़ारसी	ک	ق	ک	خ	گ	غ	ک	ن				
नागरी	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ
फ़ारसी	ل	چ	ج	ج	ج	ج	ج	ج	ج	ج	ج	ج
नागरी	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द				
फ़ारसी	ط	ث	د	د	ن	ت	ت	د	ن			
नागरी	ध	न	प	फ	ब	भ	म					
फ़ारसी	د	ن	پ	ف	ب	ب	م					
नागरी	य	र	ल	व	श	ष	स	ह				
फ़ारसी	ی	ر	ل	و	ش	س	س	ه	ن			
नागरी	ह	ह	ऽ									
फ़ारसी	ه	ح	ء									

उपसंहार एवं कृतज्ञता-प्रकाशन

इस कोश के लेखन-संपादन में सैकड़ों संस्कृत, अरबी-फारसी-उर्दू, अंग्रेजी, बँगला, मराठी, गुजराती, हिंदी आदि अनेक भाषा के कोश-ग्रन्थों तथा आयुर्वेदीय, यूनानी और पाश्चात्य वैद्यक के विविध भाषा के ग्रन्थों से मुझे अमूल्य सहायता मिली है। अतः उन ग्रन्थकारों के प्रति तथा ज्ञात-अज्ञात रूप में जिनसे मुझे किंचिन्मात्र सहायता मिली है, उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

सर्वज्ञ एवं पूर्ण तो केवल एक ईश्वर है, मनुष्य उसका अंश होने से अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है। उक्त अवस्था में लेखक इसका अपवाद कैसे हो सकता है। सुतरां यह कदापि संभव नहीं कि मानवकृत इस कोश में त्रुटियाँ न हों। यही कारण है कि अंत में मैं विद्वान् चिकित्सकों और सहृदय पाठकों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि आप लोग कृपा कर हंसक्षीरन्यायेन दोषों की ओर दृष्टि न दे कर गुणों को ग्रहण करें और लेखक का साहस बढ़ावें।

संत-हंस गुण गहर्हि पय, परिहरि वारि विकार।

ग्रन्थ के प्रकाशक, मुद्रक एवं मुद्राकर सर्व-महानुभावों का सौजन्य स्वीकार करता हूँ, कि उन्होंने अनेक कठिनाइयाँ उठा कर भी मेरी अनियमितताओं को सहन किया।

आयुर्वेदानुसंधान प्रासाद
चुनार, मीरजापुर
श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबंधन)
संवत् २०२६ वि०

—वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह



श्री धन्वन्तरये नमः

आयुर्वेदीय विश्वकोश

[का]

काअ—[अ०] मणिबन्धास्थि। कलाई की हड्डी का सिरा जो अँगूठे की ओर से कुरसूग (कलाई की हड्डी का उभाड़) के विरुद्ध स्थित है।

काअ—[अ०] (१) समतल भूमि। (२) किसी अंग का चौड़ा, सपाट एवं विस्तृत भाग।

काइद्—[अ०] वह स्त्री जिसका मासिक-धर्म एवं सन्तानोत्पादन की क्रिया बंद हो गई हो। वह स्त्री जो मासिक-धर्म एवं सन्तानोत्पत्ति से निराश हो गई हो। स्त्रियों में यह अवस्था प्रायः चालीस और पचास वर्ष की आयु के मध्य में हुआ करती है।

काइद्—[अ०, बहुव० क्वाइद्] धात्वर्थ विधि (कानून), रीति, परंतु यूनानी शारीर की परिभाषा में किसी अंग-विशेष का तल (पेंदा), इस अर्थ में उक्त शब्द का प्रयोग होता है। (अ०) बेस (Base)।

वक्तव्य—द्रव्यगुणशास्त्र में अँगरेजी 'बेस' शब्द का प्रयोग उस औषधद्रव्य के अर्थ में भी होता है जो किसी योग का प्रधान व मूल उपादान व अवयव हो। किसी वस्तु का स्थूल एवं विस्तृत भाग।

काइदतुहिमाग—[अ०] मस्तिष्क वा करोटि का तल भाग (पेंदा) जिसके ऊपर मस्तुलुंग (मस्तिष्क वा भेजा) स्थित होता है। इसमें तीन खात (गड्ढे) होते हैं। पेंदे का मध्य भाग अज्म वतदी (जतूकास्थि—स्फोनाइड) से बनता है। अतः यूनानी वैद्यक की प्राचीन परिभाषा में अज्मवतदी (जतूकास्थि) को भी काइदतुहिमाग कहते हैं। काइदतुरासि। (अ०) बेस ऑफ दी स्कल (Base of the skull)।

काइदतुरासि—[अ०] शिरःतल। सिर (खोपड़ी) का तल वा पेंदा।

काइदतुलकल्ब—[अ०] हृदयतल, हृदयमूल। यह हृदय का अधिक स्थूल, बृहद् एवं ऊर्ध्व भाग है जो वक्ष के भीतर पृष्ठ के पाँचवें और आठवें कशेरुका के मध्य में स्थित है। (अ०) बेस ऑफ दी हार्ट (Base of the Heart)।

वक्तव्य—प्रायः प्रत्येक वस्तु का तलभाग (पेंदा) नीचे की ओर और शीर्ष (चोटी) ऊपर की ओर स्थित होता है। परंतु हृदय में इसके विपरीत होता है। अतः अरबी में इस अंग को कल्ब (अर्थात् मक्लूब वा लौटा हुआ, उलटा) कहते हैं।

काइनो—संज्ञा पुं० [अ०] विजयसाल का गोंद।

काइल—[अ० Chyle] पोषक रस। क्लूस। दे० 'रस'।

काई—संज्ञा स्त्री० [सं० कावारम्] (१) जल वा सीढ़ में होनेवाली एक प्रकार की महीन घास वा सूक्ष्म वनस्पति-जाल। काई भिन्न-भिन्न आकारों और रंगों की होती है। चट्टान वा मिट्टी पर जो काई जमती है, वह महीन सूत के रूप में और गहरे वा हलके हरे रंग की होती है। पानी के ऊपर जो काई फैलती है, वह हलके हरे रंग की होती है और उसमें गोल गोल महीन पत्तियाँ होती हैं। एक काई लंबी जटा के रूप में होती है जिसे सेवार कहते हैं (वि० दे० 'सेवार')।

शैवालादि वर्ग (N. O. Algæ)

पर्याय—[सं०] कावारम्; [हिं०, बं०] रोउला, काई; (द०) दरिया की पाची, मोस (अ०); तुहल (लु) ब; (फा०) चग्जाब; पश्म वज्ज, जामे गोक, जुल्ले वज्जा; (ले०) ग्रेसिलेरिया (Gracilaria, SP.); (अ०) माँस (Moss)।

भेद—यूनानी निघंटु ग्रन्थों में इसके यह तीन भेद लिखे हैं—(१) यह वृत्ताकार और परस्पर पृथक् होती है। अरबी में इसको तुहलुबलीफी और हिजाजुल्मास कहते हैं। यह काई है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। (२) यह परस्पर मिली हुई तंतु वा डोरी की तरह नहरों और नदी के कूलों पर प्रचुरता से पैदा होती है। इसको अरबी में गिजलुल्मास (मख्जन) वा राजालुल्मास (मुहीत) कहते हैं। यह सेवार जान पड़ती है। सेवार को लेटिन में वैलिसनेरिया स्पाइरेलिस (Vallisneria spiralis, Linn) कहते हैं। (३) इसके अवयव परस्पर खूब मिले हुये और गठे हुये

नमदे की भाँति होते हैं। इसे अरबी में खिरवउल् जफादअ (मण्डूकविष्ठा), मख्जन के अनुसार खिरवउल् जफादअ (मण्डूकैरण्ड) कहते हैं। यह स्थिर वा खड़े जल के ऊपर पैदा होती है। सीठे पानी पर जमी हुई उत्तम होती है। समुंदर के पानी के ऊपर भी काई उत्पन्न होती है। [यू० द्र० गु० वि०]

प्रकृति (वीर्य)—संग्राही वीर्य सहित दूसरे दर्जे में शीत एवं तर है। **गुण-कर्मे**—बाहरी प्रयोग से काई शीतजनन, दोष विलोम कर्ता, संशमन तथा रक्तस्तंभन है। आंतरिक उपयोग से यह कब्ज पैदा करती है।

उपयोग—विसर्प एवं अन्य उष्ण शोथों में दाह प्रशमन के लिये और दोषों को विलोम करने के लिये इसका प्रलेप करते हैं। रक्तसाव बंद करने के लिये जौ के आटा के साथ इसका लेप लगाते हैं। यदि कंठ के भीतर जोंक चिपटी हुई हो, तो उसको निकालने के लिए काई खिलाकर वमन कराते हैं। सूखी काई का चूर्ण बनाकर दस्त बंद करने के लिये खिलाते हैं। नमनाक (आर्द्र) पत्थर आदि पर उत्पन्न हुई काई बहुत संग्राही बतलाई जाती है। रक्तसाव बंद करने के लिये इसका पतला लेप करते हैं। **अहितकर**—कफ प्रकृति के लिये। **निवारण**—जौ का आटा और कालीमिर्च। **प्रतिनिधि**—जलकुंभी जो तालावों में पुष्कल पाई जाती है। **सात्रा**—५ से ७ मासे तक। (यू० द्र० गु० वि०) (४) एक प्रकार का हरा मुर्चा जो ताँवे, पीतल इत्यादि धातुओं के बरतनों पर जम जाता है।

काउरठइयाँ—[आसाम काउर=काक+ठइयाँ=जंघा] बंगीय काकजंघा। दे० मसी।

काउरिह—[अ०] गर्भाशयका चौड़ा एवं विस्तृत भाग। (अ०) फण्डस युटराई (Fundus Uteri)।

काऊ—संज्ञा पुं० [सं० काक] कौआ।

काओरुन्थ—[ता०] कसरानी बूटी। पटेर।

काक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (स्त्री० काकी) (१) कौआ। वायस। (ध० नि०; रा० नि०)। (२) कोकिल। (ध० नि०)। (३) प्रतुद वा प्रसह पक्षी का एक भेद। (रा० नि०)। (४) शालि धान्यभेद (ध० नि०)। संज्ञा पुं० (अ० कार्क) एक प्रकार की नर्म लकड़ी जिसकी डाट बोटलों में लगाई जाती है। काग। दे० 'काग'।—(काक फारसी से अरबीकृत) मैदे की सूखी और छोटी रोटी (मख्जन)।

काक—[अ०] (१) एक प्रकार का पक्षी जिसकी ग्रीवा लंबी होती है। (२) काक, कौआ।

काककड्डा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चेना। कँगनी। काकुन। (हे० च०)। (२) सर्जरस। (वै० निघ०)।

काककण्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का जल-

पक्षी। (बं०) पान कौड़ि। (वै० निघ०)।

काककर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खजूर, खजूरी वृक्ष। (भा०)।

काककला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकजंघा नाम की ओषधि। दे० 'मसी'।

काककुडमल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नीलकमल। नील-पद्म। (वै० निघ०)।

काककुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंकुष्ठ।

काकघनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाकरञ्ज वृक्ष। (रा० नि० बं० ९)। (२) काकमारो 'काकनासा'।

काकचलवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काच नमक।

काकचिञ्चा (ञिच, ञ्ची)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुञ्जा। घुँघची। (त्रिका०)। रक्त गुञ्जा। लाल घुँघची। (भा० १ भ० गु० व०)।

काकचिञ्चिका—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काकचिञ्चा अर्थात् घुँघची की बेल।

काकच्छदः (च्छदि०, च्छदिः)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खञ्जन पक्षी, खिड़हिच। (श० र०)। (२) नीलकंठ पक्षी। (त्रिका०)। (३) कौए का पर।

काकजङ्घा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुञ्जा। घुँघची। (र० मा०)। (२) मुगौन वा मुगवन नाम की लता। मुद्गपर्णी। दे० मूँग के अन्तर्गत (३) चकसेनी। मसी। दे० 'मसी'। वायसजंघा। (वै० निघ० २ भ० जीर्णज्व० चि० भैष० क्षुद्ररी० चि०)।

काकजङ्घादि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकजंघा और कपास की जड़ को पीसकर चावल के धोवन के साथ सेवन करने से पांडु और प्रदर रोग का नाश होता है। (वृ० नि० र० स्त्री रोग—चि०)।

काकजङ्घादिचटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक वटी योग—काकजंघा, वच, कुट और पीपल के चूर्ण को मधु में मिलाकर गोलियाँ बनावें। **उपयोग**—इसे मुख में रखकर चूसने से स्वर मधुर हो जाता है। (वृ० नि० र० स्वरभेद—चि०)।

काकजम्बु [म्बूः]—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] वृक्ष विशेष—पर्याय—(सं०) काकजानु, काकनीला, काकफला, काक-वल्लभा, घनप्रिया, ध्यांगजम्बु, नादेयी, भृङ्गेष्टा, जलजम्बुका, सूक्ष्म कृष्णफला, सूक्ष्मपत्रा। (हिं०)—जंगली जामुन, नदी की जामुन, जमता, छोटी जामुन। (बं०)—छोटे जामगाछ, बोन जाम, भुँइजाम, क्षुद्रे-जाम, (म०) नदी तीर जाम्बु, (कना०) तीरे-नेरिलु, (ता०) कुलिनावल, (गु०) क्षुद्रजम्बु।

वर्ग—जम्बुवादि (myrtaceae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के वनों में प्रायः नदी कूलों पर इसके वृक्ष प्रायः होते हैं।

परिचय—यह जामुन का ही एक भेद है। नदी-कूलों पर होने के कारण इसका जल-जम्बु, नादेई इत्यादि नामकरण किए गए हैं। इसकी पत्तियाँ लम्बी कनेर की पत्तियों की-सी; किन्तु उनकी अपेक्षा कुछ कम चौड़ी होती हैं। इसके फल बहुत छोटे-छोटे, गोल, पकने पर कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं। इसके फल अन्य साधारण जामुन के फलों के पकने से बहुत पीछे पकते हैं। स्वाद, अम्ल तथा कषाय होता है।

रासायनिक संगठन—इसके वृक्ष की छाल में कषायित नामक सार की मात्रा विशेष होती है। फलों में शर्करा तथा अम्लता (Acidity) होती है।

गुणकर्म—संग्राही, रुक्ष, कफ, पित्त, रक्त विकार तथा दाह नाशक है। (भा० पू० आम्ना० व०)। कषाय, अम्ल, दीर्घवाकी, मधुरतायुक्त, दाह, श्रम, अतिसार नाशक, बलप्रद तथा वीर्य पुष्टिकारक है। (रा० नि० व० ११)। (२) नारंगी, नागरंग वृक्ष।

काकजात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल।

काकजानु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काकजंघा। (चक्र०)।

काकजानुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकजंघा, (रस र० प्रदर; भैष० स्त्री-रोग—चि०)।

काकचिञ्ची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुंजा। धुँवची।

काकजंबू—[?] (१) लोखंडी। (२) काकजम्बू।

काकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, प्रा० कक्कड़] एक बड़ा पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा हिमालय पर कुमाऊँ आदि स्थानों में होता है। जाड़े में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसमें सींग के आकार के पोलें बाँदे लगते हैं जिन्हें 'काकड़ासींगी' कहते हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का हिरन जिसे साँभर व साबर भी कहते हैं।

काकड़ासिंगी—संज्ञा स्त्री [म०, गु०] काकड़ासींगी।

काकड़ासिंगी—संज्ञा स्त्री० दे० 'काकड़ासींगी'।

काकड़ासींगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृङ्गी] हिमालय के उत्तर-पश्चिम भाग में काकड़ा नामक पेड़ में लगा हुआ एक प्रकार का टेढ़ा तथा पोला बाँदा जिसका प्रयोग औषधों में होता है।

पर्याय—(सं०)—कर्कटशृङ्गिका, कर्कटशृङ्गी, कर्कट, कर्कटी, कास विनाशिनी, कुलिङ्गी, कुलीर शृङ्गी, कर्कटाख्या, कौलिरा, कुलीरविषाणिका, अज-शृङ्गी, घोषा, चक्रा, चन्द्रास्पदा, चक्राङ्गी, नताङ्गी, नवाङ्गी, महाघोषा, वक्ता, वक्ता, शिखरी, शृङ्गी, वन-मूर्द्धजा, विषाणिका, कर्कटाह्वा, चन्द्रास्पदा।

(म०, गु०, हि०)—काकड़ासिंगी, (वं०) काकड़ा शृं (स्त्रि) गी; (कना०) कर्कटी शृंगी; (ता०)

काक्कटसिंगी, (ते०)—कर्कटाशृंगी; (अं०) दी गाल्स (The Galls); (ला०) र्हूस-सक्सीडेनिआ (Rhus succedanea)

वर्ग—वातादि (Anacardiaceae)

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वत के उत्तर-पश्चिम, विन्ध्यपर्वत, सुलेमान पर्वत, पुष्कलपुर (पेशावर) की घाटी तथा सिन्ध नदी से कुमायूँ आदि स्थानों में केकड़ के वृक्षों की पत्तियों पर गुल्म की भाँति उत्पन्न होती है। उक्त वृक्षों की पत्तियों पर प्रायः वसंत ऋतु में उत्पन्न होती है। अर्बुदाकार होकर शृंगवत् रूप धारण कर लेती है। भारतीय नगरों में प्राप्त काकड़ासिंगी भीतर से खोखली, कठोर, लघु, १ से ४ इंच लम्बी, अनियत आकार की तथा छाग ऋंगवत्, कृष्णभ, लालिमा-युक्त, नोकयुक्त, स्वाद में किंचित् कटु तथा कषैली होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें ७५ प्रतिशत एक प्रकार का कषाय सत्व (Tannin) होता है।

गुण-कर्म—उष्ण, कषाय, तिक्त, कफ, वात, क्षय, ज्वर, कास, श्वास, हिक्का, अरुचि, ऊर्ध्ववात, तृष्णा तथा वमन नाशक है। (भा० पू० हरी० व०)।

उष्ण, तिक्त, कषाय, गुरुपाकी, वात, रक्तपित्त, कास, श्वास, तथा हिक्का नाशक (रा० नि० व० ६), कषाय, वृष्य, वमन, क्षय, कास, ऊर्ध्ववात तथा ज्वर नाशक है। (मद० व० १)।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण, तथा द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। **गुण-कर्म**—लेप्प उत्सारक, उपशोषण, दीपन, ज्वर तथा कास श्वास नाशक है। **उपयोग**—सूक्ष्म चूर्ण निर्माण कर मधु तथा अन्य उपयोगी द्रव्यों के संयुक्त क्वाथ, लेह वा चूर्ण के रूप में सेवन करने से कफजन्य कृच्छ्रश्वास का नाश होता है। बालकास तथा फुफुस कास में मधु के साथ सेवन कराने से विशेष उपकार होता है।

हानिकारक—यकृत में विकारकर्ता तथा उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को। **प्रतिकार**—कतीरा, गोंद बबूल, मिस्री।

प्रतिनिधि—यष्टिमधु (पुष्कर-मूल)। मात्रा—१-२ माशा। यह नकली भी होती है।

काकड़ी—संज्ञा स्त्री० [गु०, म०]—खीरा, ककड़ी।

काकडुमुर—संज्ञा पुं० [गु०, द्रा०]—काली गूलर।

कृष्णडुम्बर।

काकडुम्बुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्ण डुम्बुर। काली गूलर। यह छोटा होता है।

काकण, काकणक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का कोड़। महाकुष्ठ रोग का एक भेद।

लक्षण—इसमें—ओष-चोष, परिदाह, स्फुटन, पाक,

धूमायन (गंध) तथा शीघ्र कृमि भी उत्पन्न होते हैं।
(सु० नि० ५ अ०)।

काकणचनवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकण कुष्ठ नाशक इस नाम का एक योगौषध।

द्रव्य तथा निर्माण विधि—लोहभस्म, शुद्ध वच्छनाग, चीते की जड़, भिलावाँ, कुटकी, त्रिफला, त्रिकुटा, त्रिमद (वायविडंग, चीता, मोथा) प्रत्येक समभाग में लेकर यथाविधि चूर्ण बनावें। पुनः इस चूर्ण को हड़, नीम की छाल, अडूसे की जड़ की छाल, वायविडंग, खैर और गुरुच के स्वरस अथवा अष्टावशेष क्वाथ में एक दिन घोटकर मटर प्रमाण की गोलियाँ बनावें।

गुण तथा उपयोग—एक मास तक मधु के साथ इसे सेवन करने से काकण कुष्ठ का नाश होता है।

(२० २० कुष्ठ—चि०)।

काकणन्तिका, काकणन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) रक्त गुञ्जा। लाल घुँघची। (सु० चि० १८ अ०; प० मु०)। (२) रक्त कमल पुष्प। (वै० निघ०)। लाल बघोले का पौधा।

काकणान्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिन्दूर। (वै० निघ०)।

काकणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुंजा। घुँघची। (२) एक प्रकार का कोढ़। दे० 'काकण'।

काकण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकनासा।

(२) क्षुद्रश्वेत गुञ्जा। सफेद घुँघची। (रा० नि० व० ३)।

काकतिक्तका, काकतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) लता करञ्ज। (वै० निघ०)। (वा० सू० १५ अ०)। (२) काकजंघा। (भा० पू० १ भ०)।

(३) श्वेत गुञ्जा। सफेद घुँघची। (२० मा०)।

काकतिन्दु, काकतिन्दुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'मकर तन्दुआ'।

काकतुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काली अगर।

कृष्णागुरु। (हे० च०) (२) जल वा जलचर पक्षी

विशेष, पानी की एक चिड़िया। (वै० निघ०; च०

सू० २७ अ०)। (३) ग्रीवोर्धगत काकतुण्डाकार

सन्धि, हनुद्रव्य की सन्धि।

काकतुण्डफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकनासा।

काकनासिका। (२) लघु श्वेत गुञ्जा। सफेद घुँघची।

(३) रक्त कमल, (४) बृहत् श्वेत गुड़ काँवली।

(भा० पू० १ भ०)।

काकतुण्डा, काकतुण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) सफेद घुँघची (गुञ्जा)। (२) महाश्वेत काक-

माची। (वै० निघ०)। (३) काकचिञ्चा। (वं०

कुँच गाछ। (हला०)।

काकतुण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुञ्जा।

घुँघची। (वै० निघ०)। (२) पीतल। राजरीति।

(रा० नि० व० १३)। (३) लघु रक्त काकमाची।

छोटी लाल मकोय। (वै० निघ०), (४) इस नाम की

एक प्रसिद्ध लता। दे० 'काकनासा'।

काकदन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकादनी।

कौआ ठोंठी। (२) दन्ती क्षुप। (३) रक्त काकमाची।

लाल मकोय। (वै० निघ०)। दे० 'काकनासा'।

काकदुम्बर—[ते०] कठगूलर। जंगली गूलर। अंजीर दशती।

काकद्रुस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली] वृक्ष विशेष।

काकद्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] डोम कौआ। द्रोण

काक। (ध० नि०)।

काकध्वज—संज्ञा पुं० [सं० पुं] बड़वानल, बड़वाग्नि।

काक (कु) न—संज्ञा स्त्री० काँक। कँगनी। दे० 'कँगनी'।

काकनज—संज्ञा पुं० [फा०] क्षुप विशेष।

पर्याय—(अ०) काकनज, काकिनज, (फा०) काकन;

(हिं०) पटकोआँ (अँ०)—विटर चेरी (Winter-

Cherry), अल्केकञ्जी (Alkekenje), (ला०)—

फायसेलिस-अल्केकेंजी (Physalis-Alkekenje,

Linn.)। फल—(हिं०) रसभरी, गुजबरी, (फा०)—

काकन; अरुसक पसेपदः। (अ०)—हव्व-काकनज।

जौजुल्मर्ज, हव्वुल्लहू।

वर्ग—काकमाच्यादि (Solanaceae)।

उद्भवस्थान—संयुक्त राज्य अमरीका, दक्षिण-यूरोप,

फारस। इसका आयात फारसादि देशों से बम्बई में

होता है।

परिचय—मकोय वर्गीय एक प्रकार का क्षुप है, जिसकी

कृषि की जाती है, इसमें पटकोआ सदाश कोषयुक्त फल

लगते हैं। कच्चा फल हरा और सुपक्वावस्था में झुरमुट

युक्त हो जाते हैं। उनके भीतर गोल-गोल रसीले

बीज होते हैं। रसभरी के नाम से नगरों में बिकते हैं।

अब इसकी कृषि भारतवर्ष में भी होने लगी है।

इसके अन्तरीय बीज वृक्काकार, चपटे-चपटे होते

हैं, भेद (२) देशी काकनज (पुनीर)। (ला०)—

विथेनिया काँग्युलेंस (Withania Coagulans) (३)

चिरपोटन, चिरपोटा, गुजबरी। (ला०) फायसेलिस

मिनिमा (Physalis Minima) देशी भारतीय ग्रन्थों

में इसका उल्लेख नहीं किया गया है।

उपयोगी अवयव—सुपक्व फल।

रासायनिक संगठन—इसके सुपक्व फल में सेवाम्ल,

निम्बम्ल, एक प्रकार का उत्पत पदार्थ, शर्करा, पिच्छिल

रस, पेक्टिन तथा काष्ठ तन्तु इत्यादि होते हैं। इसके

अतिरिक्त पत्र एवं पुष्प बाह्यावरण (कैलक्स) में

काकनजीन (फायसेलीन) नाम का तिक्त सत्व भी

होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—मूत्रल, स्थापजनक, सूत्र एवं ब्रध्नाकार किमि निःसारक, पित्त रेचक, वस्ति-वृक्क गत रोगों में हितकर, यकृतसंशोधन तथा मद्य की मादकता वर्धक है।

उपयोग—इसके उपयोग से वृक्क, वस्ति विकार, अश्मरी, वस्ति-वृक्कस्थ व्रण तथा मूत्र प्रणाली प्रदाहादि तथा तद्वत व्रण में हितकर होने से उक्त रोगों का नाश होता है। पित्तज कामला, पित्त संचय जन्य यकृतविकार तथा यकृत शोथ में उपयोगी है। इसकी हरी पत्तियों को पीस कर लेप करने से प्रारम्भिक शोथ विलीन होता है। विद्रधि तथा ग्रन्थि में भी इसका लेप उपयोगी है। कुर्स काकनज इसका सुप्रसिद्ध योग है। इसके उपयोग से पूयमेह जो वृक्क वस्तिगत व्रण के कारण होता है नष्ट हो जाता है।

उपयोग—इसका पका हुआ फल जो ग्रीष्मारम्भ में भारतीय बाजारों में विक्रय होता है, अत्यन्त रुचिप्रद एवं बाल सेवनीय है। इसका जाम, चटनी आदि भी अग्निदीपक एवं अत्यन्त रुचिप्रद है।

हानिकारक—अंग शैथिल्य कारक है। **प्रतिकार**—गुलकंद, **प्रतिनिधि**—काली वा लाल मकोय, (काक-माची) मात्रा—५ से ७ माशा।

काकनजुलमुनग्विम—[अ०] दे० अश्वगन्धा।

काकनजे हिन्दी—संज्ञा पुं० [अ०] पुनीर। देशी अश्वगन्धा।

काकतुण्ड [पडी]—संज्ञा पुं० स्त्री० (सं० पुं० स्त्री०) दे० काकनासा (सु०)।

काकनः—[फा०] काकनज।

काकनन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकणन्तिका। घुँघची।

काकनामा—[सं०] वक वृक्ष। अगस्तिया या अगस्त का पेड़। दे० 'काकशीर्ष'।

काकनासः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकण्टक वृक्ष। गोखुरी का पेड़। (रा० नि० व० ११)।

काकनासा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वकवृक्ष। अगस्त। (२० मा०)। (२) काकजंघा। (जटा०)। (३) उक्त नाम की प्रसिद्ध लता। **पर्याय**—(सं०) काक नासिका, काकफल, काकादनी, काकदन्ती, काक-शिमबी, काकपीलु, वायय तुण्ड, वायस तुण्डी, वायसी, वायसादनी, दुम्मीही, ध्याङ्गानदी, ध्याङ्गानखी, ध्याङ्कदन्ती, रक्तला, वक्रशल्या। (४) हिं० काकमारी—[संज्ञा स्त्री०] पर्याय—काकघ्नी (बं० द०, ते०, हिं०)—काकमारी, (म०)—करवी, (पं०)—हयुबेर, नेत्रमल, (कों०)—गर्दफल, (ता०)—काक कुल्लि, पेन कोट्टे (कना०)—कागमारी, (मल०)—मीनाणु, नाजिङ्कुरु, पेल्लक्काय, (सि०)—तित्तवल

(वम्ब०)—वातोली, (अँ०)—इण्डियन बेरी (Indian Berry), फिशबेरी (Fish Berry) (ले०—कॉकुलस इण्डिकस (Cocculus-Indicus), कॉकुलस स्युबेरोसस (Cocculus-Suberosus)। (फा०)—जहरेमाही, माहींजहरज (गु०)—काकफल (फ्रांस)—Coque-de-Levant.

परिचय—एक प्रकार की लता है जिसमें काकतुण्डवत् फल लगते हैं सुपक्वावस्था में रक्तवर्ण के हो जाते हैं। प्रायः नेपाल में होती है। भाषा में इसको काकमारी कहते हैं।

उद्भवस्थान—दक्षिण-पूर्वीय भारतवर्ष, बरमा, तथा बंगाल के पूर्व भाग में, मलयद्वीप इत्यादि में इसकी लता होती है।

उपयोगी अवयव—ताजा फल और इसका क्षार।

रासायनिक संगठन—इसके नवीन शुष्क फल में ५० प्रतिशत तैल व एक प्रकार का स्फटिकवत् श्वेतवर्ण का सत्व (Picrotoxin) प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इसमें मेनिसपरमीन (Menispermine) और पैरामेनिसपरमीन (Paramenispermine) नामक सत्व भी प्राप्त होता है। विक्रोटाक्सीन शोथ जल विलेय है और इससे तीव्र प्रभाव होता है। इसके जलीय घोल पर किसी कषायीन (Tannin) व धातुज लवण (Metalic salt) का कोई प्रभाव नहीं होता। इसके क्षार पर भी किसी अम्ल (Iodic acid) इत्यादि का कोई भी नष्टकारक प्रभाव नहीं होता।

गुण-कर्म—उष्ण, कटु, तिक्त, रसायन, रुचिप्रद, पलित तथा वातदोष नाशक है। (रा० नि० व० ३, २० का० धे०, २० सा० सं०)। काकमारी वामक, उत्क्लेशक, कृमिघ्न, विष-नाशक तथा इसका सत्व (पिक्रोटाक्सिन) मृत्युकारक विष है। अतः इसका आन्तरिक उपयोग वर्जित है। मतान्तर से गुणः

(१) उत्क्लेश, (२) भ्रम, (३) पक्षाघात, (४) अनिद्रा, (५) शूल, (६) योषापस्मार, (७) आन्त्रवृद्धि, (८) सविरामज्वर, (९) स्वेदावस्था, (१०) टायफाइड ज्वर में हितकर है।

उपयोग—इसके नूतन फल का स्वरस लगाने से तर खुजली (Scabies) का नाश होता है।

पिक्रोटाक्सीन (Picrotoxin)—इसके उपयोग से वात व्याधि, अपस्मार, रात्रिस्वेद, यक्ष्मा में अत्यल्प मात्रा में सेवन कराने से लाभ होता है। मात्रा ३० से ६० ग्रेन। प्रातः दोपहर और सायंकाल। इसकी गुटिका रूप में निम्नमात्रा से प्रारम्भ कर ६० ग्रेन तक वृद्धि करना उचित है। यह अहिफेन सत्व (मार्फिया)

की उत्तम प्रतिविष है और क्लोरल-जन्य विषाक्तता में भी उपयोगी है।

मरहम (Ointment)—१ वा १० ग्रेन पिक्कोटाक्सिन ग्रहण कर १ ड्राम वेसलीन वा घृत में मिश्रित करें।

गुण—इसके उपयोग से दद्रु, चर्मरोग, कण्डू इत्यादि का नाश होता है। **विषाक्तता**—

नोट—जहाँ की त्वचा छिल कर रक्त-स्राव होता हो वा अन्य प्रकार के क्षतों पर स्पर्श कराने से विषवत् प्रभाव होता है। अतः विचारपूर्वक इसका उपयोग कराना उचित है। देखो—‘माहीजहरज’।

काकमारी (काँकुलस) के चरित्रगत लक्षण—
(१) जहाज (नौका) झूला, गाड़ी के देखने व चढ़ने से वमन होता है। (२) गर्भाविस्था के सदृश उत्क्लेश (मिचली), (३) शिर के पश्चात् भाग में वेदना जो कन्धा व गर्दन से आरम्भ होकर नीचे मेरुदण्ड तक जाता और उसके साथ उत्क्लेश होता है, (४) निद्रा-भंग होने पर शिर में चक्कर आना, शिर में चक्कर आकर गिर जाना, (५) निर्बलता, भ्रम प्रतीत होना, कठिनतापूर्वक खड़ा होना, उच्च भाषण में कठिनता, (६) मानसिक उत्तेजना, रात्रि-जागरण वा अन्य कारण से उत्पन्न अनिद्रा-जन्य रोग, (७) प्रतिवार हिलने-डोलने पर उदर में कतरने की-सी पीड़ा।

(८) **सेरिब्रो - स्पाइनल - मेनिन्जाइटिस**—कंधे के निकट ग्रीवा में उग्र वेदना, रोग की अचैतन्यता में शिशु का शिर पीठ की ओर मुड़ जाना और किंचित् चैतन्यता प्राप्त होते ही पीछे की ओर ग्रीवा पर हाथ फेरना।

(९) **धनुस्तम्भ (Convulsion)**—अकड़न के दौरों के समय नेत्र बन्द होना; किन्तु उस अवस्था में भी आँखों की पुतली एक वार इधर और एक वार उधर घूमती रहना।

(१०) अधिक पढ़ने, लिखने, परिश्रम करने व किसी उच्च-आकांक्षा में निराश-जन्य रोग, (११) ऋतुस्नान काल में निम्नांग में निर्बलता के कारण खड़ा होने में असमर्थता, (१२) ऋतुस्राव न होकर श्वेत प्रदर का स्राव, (१३) दो ऋतुकाल के मध्य में मांस-शोषण का-सा रक्तस्राव, (१४) किंचित् वादविवाद में अपने को दोषी स्वीकार करना, प्रतिवाद की असहिष्णुता, शीघ्र-शीघ्र भाषण, वात-चीत करने पर चिढ़ जाना, (१५) अम्बिलाइकल हर्सिया के लक्षण उत्पन्न होना इत्यादि लक्षण होते हैं।

उक्त लक्षणों के अतिरिक्त इसके उपयोग से शिर में चक्कर और शिरोवेदना के साथ ही उत्क्लेश होता है। काकमारी (काकुलस) की वेदना विशेषतः शिर के पश्चात् भाग में होती है और पुनः पृष्ठवंश में व्याप्त

हो जाती है। **शूल**—खाने-पीने से, शीतल वायु से, दवाने से और निद्रा उत्पन्न होने के पश्चात् होता है और साथ ही साथ उत्क्लेश भी होता है।

इसके फल द्वारा प्रस्तुत अरिष्ट (टिंचर) के उपयोग से निम्न व्याधियों में लाभ होता है—

(१) **उत्क्लेश (मिचली)**—नाव, गाड़ी, झूला, इत्यादि पर चढ़ने से उत्पन्न उत्क्लेश की अवस्था में काँकुलस द्वारा प्रस्तुत टिंचर देने से लाभ होता है। सर्गर्भाविस्था में जब वमन व उत्क्लेश (मिचली) उत्पन्न होती है तब काकुलस से अधिक लाभ होता है।

(२) **भ्रम (शिर में चक्कर)** तथा वेदना—जब शिरोशूल के साथ मिचली, वमन, शिरोभ्रम, मद (नशा) सा प्रतीत होना, शयनकर उठते ही शिर में चक्कर प्रतीत होना, मस्तिष्क स्तम्भित सा हो जाना इत्यादि लक्षणों में काकुलस से लाभ होता है।

(३) **पक्षाघात**—लकवा यदि कटि-प्रदेश में हो और साथ ही निर्बलता प्रतीत हो, पैर की शक्ति जाती रहे, पाँव के तलवे सुन्न, घुटने टूटे-से, जाँघ सुन्नसी, प्रथम एक हाथ पुनः दूसरा हाथ, सुन्न हो, उक्त अवस्था में रोग की प्रारम्भिक अवस्था में यदि काकुलस का उपयोग कराया जाय तो फल की आशा होती है। यदि उक्त अवस्था में शिर में चक्कर, वमन, मिचली इत्यादि हों तो लाभ की अधिक आशा होती है।

(४) **अनिद्रा**—अधिक दिनों तक जागरण के कारण जब नींद नहीं आती तब काँकुलस के उपयोग से लाभ होता है। जिन धात्रियों (नर्सों) को रात्रि में जागरण के कारण अनिद्रा हो तो इससे शीघ्र लाभ होता है।

(५) **शूल**—(कालिक)—उदर शूल में जब आध्मान होता है, आमाशय की नाड़ियों में उद्वेष्टन हो तो इससे लाभ होता है। मरोड़, उग्रशूल, अधोवायु के उत्सर्ग के पश्चात् लाभ प्रतीत होता है वा वेदना की शान्ति अर्ध-रात्रि के पश्चात् कम होना, वमन होना, मिचली होना, गर्भाविस्था में वातजन्य शूल होना, ऋतुस्राव-अवरोध जन्य उक्त प्रकार के शूल में भी इससे लाभ होता है।

(६) **योषापस्मार (हिस्टीरिया)**—ऋतु की गड़बड़ी के कारण उत्पन्न मूर्च्छा, रोगिणी को अपने अंग-प्रत्यंग निर्बल और सुन्न-सा प्रतीत होना। इसमें दौरा के समय अधिक श्वास-कष्ट होता है जैसे—गला, छाती और पाकस्थली किसी ने दबा रखी हो। ऋतुस्राव बन्द होकर मानसिक विकार प्रकट होने पर भी काकुलस के उपयोग से लाभ होता है।

(७) **आन्त्रवृद्धि (हर्निया)** अम्बिलकल हर्निया (Umbilical Hernia) अर्थात् नाभिदेशीय आन्त्र-वृद्धि में भी काकमारी (काँकुलस) लाभ होता है।

(क० मे० मे०)।

(८) सविराम ज्वर—शीतावस्था में—उदर में वायु भर कर शूल होना, उत्क्लेश, आहार-पान आदि से घृणा प्रतीत होना, प्रथम शीत उत्पन्न होकर पुनः ताप प्रतीत होना, शरीर के सम्पूर्ण भाग में शीत का अभाव, मस्तक उष्ण और निम्न अंग शीतल होना। उत्तापावस्था—जब इस अवस्था में शीत हो, ताप स्पष्ट न हो, उष्णता से भी शीत का अभाव न हो, और पुनः उत्ताप में—उष्ण व शीतल वायु का कुछ भी सहन नहीं होती।

(९) स्वेदावस्था में—जब मुख शीतल रहता है और रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है तो काँकुलस से लाभ होता है।

(१०) टायफाइड ज्वर—उठकर बैठते ही शिर में चक्कर आना, मिचली होना, मूर्च्छा होना, मन और मस्तिष्क में जड़ता, वात-चित करने में असमर्थता, आध्मान, उदरशूल इत्यादि लक्षणों में काँकुलस से लाभ होता है। प्रतिनिधि—संख्या, कुचला, गन्धक, बेल।

प्रतिकार—कर्पूर, केम्फर, ताम्र, (कूप्रम), कुचला (नक्स)।

क्रिया का स्थिति काल—३० दिन।

क्रम—काँकुलस ३ × से २०० शक्ति। सगर्भावस्था में इसकी उच्च शक्ति का उपयोग करना उचित है। इसकी '३०' शक्ति का उपयोग अधिक लाभप्रद है।

काकनासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रक्त निशोथ। (रा० नि० व० ६)। (२) काकजंघा। (अम०; रा० नि० व० ६)। (३) दे० 'काकनासा'।

काकनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अल्पनिद्रा। नींद कम आना। कौए की निद्रा-जैसी अतिसतर्क निद्रा।

काकनीला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जमता। जंगली जामुन। दे० काकजम्बू।

काकनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला। कारस्कर।

काकन्ती—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] कृष्ण शिम्बी। काली सेम। (र० मा०)।

काकन्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इमली, अम्लिका, चिञ्चा।

काकपद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कपालोपरि शिरपर्यन्त केश मुण्डन। (सु० कल्प० २ अ०)।

संज्ञा पुं० (सं० पुं०) रतिबन्ध विशेष। (रति मञ्जरी)।

काकपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकतिक्ता।

काकपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन मूँग; मुग्दपर्णी। (भा०)।

काकपलम्—[मल०] महाकाल, लाल इन्द्रायन, महर। (डी०)। दे० महाकाल

काकपक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिखण्डक। 'वालानान्तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः।' (अम०)।

काकपाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकजङ्घा (ध० नि०)

काकपादा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

काकजंघा। (ध० नि०)।

काकपीलु, काकपीलुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाल मकोय। (२) सफेद घुँघची, काकादनीलता। (ध० नि०, रा० नि० व० ३)। (३) काकतिन्दुका, कुचिला। (४) रक्त गुंजा। (भा० पू० १ भ०)। (५) छोटा तेन। काकतिन्दुक। (६) कुचला। (भा०; अम०) (७) श्वेत काम्भोजी। (ध० नि०)।

काकपु—[मलय०] टेरिनिआ एसियाटिका (Terenia Asiatica)

काकपुच्छ, काकपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल। (श० र०; हे० च०)।

काकपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गठिवन। ग्रन्थिपर्णी। सुगन्धतृण। (वै० निघ०)।

काकप्राणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकनासा, (२) महाश्वेत काकमाची। (रा० नि० व० ३)।

काकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरचा। लाल मिर्च।

काकफल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़। (२) नीम का फल। (३) काकजम्बू। जमता। कठजामुन। (रा० नि० व० ९, २१)। (३) दे० 'काकनासा'।

काकफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का जामुन। वन जामुन। काक जम्बू। (रा० नि० व० ११)।

काकफुल्लि—[ता०] काकमारी। दे० 'काकनासा'।

काकबन्ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह स्त्री जिसे एक संतति के उपरांत दूसरी संतति न हुई हो। एक बाँझ, १ सकृत् प्रसवा।

काकबीजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तेन। तिन्दुक। (ध० नि०)।

काकबेला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का रसायन द्रव्य। (र० का० धे०)।

काकभञ्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकमारी। (२) गुंजा। घुँघची। दे० 'काकनासा'।

काकभाण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अङ्गारवल्ली। (ध० नि०)।

काकभण्डी—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०) श्वेत गुञ्जा, सफेद घुँघची। (वै० निघ०)।

काकभाण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाकरञ्ज। (रा० नि० व० ९)। (२) लाल मकोय। लघु रक्त माचिका। (वै० निघ०)।

काकभीरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलूक। उल्लू। (रमा त्रिका०)।

काकभेदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मनःशिला, मैनसिल।
 काकमुद्गु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दात्यूह नामक पक्षी।
 पानी की मुर्गी या कुकड़ी।
 काकमर्द्द (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल इन्द्रायन।
 महाकाल।
 काकमर्द्दन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काकनाड़ी। (२)
 काकमाची। (सं०)।
 काकमर्द्दनिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] कर्णस्फोटा,
 कनफोडा।
 काकमाकी—संज्ञा स्त्री० [मं०] विशाला, जंगली इन्द्रायन।
 काकमाच—[पुं०] मकोय, काकमाची।
 काकमाचिका, काकमाची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 काली मकोय। दे० 'मकोय'।
 काकमाची तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का औषध
 सिद्ध तेल जिसका प्रयोग अरुणिका रोग में होता है।
 द्रव्य तथा निर्माण विधि—मैनसिल, वकुची, सिन्दूर और
 गंधक प्रत्येक १ शाण (४ माशा), काली मकोय का
 स्वरस ४ पल—सबको एक में पीसकर कल्क बनाकर
 सरसों के तेल में यथाविधि पाककर सुरक्षित रखें। गुण
 तथा उपयोग—इसे सिर में लगाने से अरुणिका (रूसी)
 दूर होती है। (२० रत्नाकर)।
 काकमाञ्ची—[ते०, कना०] संज्ञा स्त्री (सं-काकमाची)
 मकोय।
 काकमाञ्ची चेदू—संज्ञा पुं० [ते०] मकोय का फल।
 काकमाञ्ची—संज्ञा स्त्री० [वं०] मकोय।
 काकमाता—काकमात्रिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०]
 मकोय, काकमाची।
 काकमारि—संज्ञा स्त्री० [ते०] काकमारी। दे० 'काकनासा'
 काकमारी—संज्ञा स्त्री० दे० काकनासा तथा 'माहीजहरज'।
 काकमारी के बीज—संज्ञा पुं० [दं० हि०] काकमारी के बीज।
 काकमारी बीजा—[कना०] दे० "काकनासा"।
 काकमाला, काकमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 काली तुलसी। चन्द्रोदय अगद में इसका प्रयोग आया
 है। (वा०)।
 काकमांस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौए का मांस। दे०
 "कौआ"।
 काकमुखयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का
 यन्त्र जो काकतुण्ड सदृश होता है। सँडसी। (भा०)
 काकमुद्ग—संज्ञा पुं० [सं० काकमुद्ग] मुद्गपर्णी। वनमूँग।
 काकमुद्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वनमूँग, मुद्गपर्णी।
 काकमुल्लू—[मल०] बृहद् गोक्षुर। बड़ा गोखरू।
 काकमूँग—संज्ञा पुं० [सं० काकमुद्ग] वनमूँग।
 काकमूँग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौआ और हिरन।
 काकम्मल—संज्ञा पुं० [पं०] गूलर। (चो०)।

काकम्बीर—संज्ञा पुं० [वै० पे०] एक पेड़ का नाम।
 काकयव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़जई। शस्यहीन
 धान्य। खोखला धान। इसमें चावल नहीं होता।
 (महाभारत)।
 काकयान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हासा नाम का एक
 वृक्ष जो कोंकण देश में प्रसिद्ध है।
 काकयून—[यू०] लवलाव कबीर।
 काकर—संज्ञा पुं० [ते०] करैला। कारवेल्ल।
 काकरः—[फा०] अकरकरा।
 काकरकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं० कारस्कर] कुचिला।
 काकरचेदु—संज्ञा पुं० [ते०] करैला।
 काकरतीन—[यू०] शबरम का दूध। (लु० क०)।
 काकरा—संज्ञा पुं० [ते०] (१) करैली। जंगली करैला।
 (२) कंकरा (B. Gymnorrhiza)।
 काकराशृङ्गी—संज्ञा स्त्री० [वर०] काकड़ासींगी।
 काकरा (सि, सी)गी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृङ्गी]
 काकड़ा सींगी। केकड़—(म०)।
 काकरिपु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौए का शत्रु, उल्लू।
 पेचक पक्षी।
 काकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटी] ककड़ी।
 काकरजा—[कुमार्य] रतनजोत।
 काकरहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाँदा। वृन्दाक।
 काकरू—संज्ञा पुं० [पं०] इन्द्रायन। इन्द्रवारुणी।
 काकरूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उल्लू पक्षी।
 (२) नीम का पेड़। (त्रिका०)।
 काकरोल—संज्ञा पुं० [हि०, वं०] खेखसा। कर्कोटक।
 काकल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गले में सामने की ओर
 निकली हुई हड्डी। कौआ। घंटी। दे० "काकलक"।
 चरक और चक्रपाणिदत्त के अनुसार 'तालुमूल'-त्रस्य
 श्लेष्मा प्रकुपितः काकले व्यवतिष्ठते। आशु संजन
 येच्छोकं करोति गलशुण्डिकाम्॥ (च० सू० १८)। तालु
 मूलम (चक्रपा०)
 काकल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] डोम कौआ। काला कौआ।
 द्रोण काक।
 (फा०) (१) काकिल्ला। (२) शावानक।
 काकलक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक छोटी-सी
 लटकती कोणाकार कला जो गलद्वार (Palatine
 arch) में ऊपर की ओर मध्य में स्थित है। देखिये—
 सु० शा० ५।२६ की टीका—काकलकं गलमणिः, घण्टिके
 विलोके—डह्लन। चरक ने इसका नाम 'गलशुण्डिका'
 दिया है; देखिये—च० शा० ७।११। सु० नि० १६।४१
 में इसके शोथ को 'कण्ठशुण्डी' कहा है (डॉ० घाणेकर)।
 (२) कांकतुल्य एक धान्य। षण्टिक धान्य का एक
 भेद। सु० सू० ४६।७।

काकलहरी—संज्ञा स्त्री० [म०] प्रसिद्ध जड़ है। काकजंघा।
 'दे० मसौ'।
 काकला—संज्ञा पुं० [हि०, वं०] कवावचीनी। शीतल
 चीनी। कंकोल—वं०। दे० 'कवावचीनी'।
 काकली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) साठी धान।
 (२) घुंघची। गुंजा। (३) रत्नविशेष।
 काकली—संज्ञा स्त्री० [अ] वनस्पति विशेष (ख० अ०)
 काकली द्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटा
 अंगूर जिसमें बीज नहीं होते और जिसे सुखाकर किशमिश
 बनाते हैं। देखिये—रा० नि० ११ व०—काकली
 द्राक्षा जम्बुका च फलोत्तमा। लघुद्राक्षा च निर्बीजा
 सुवृत्ता रुचिकारिणी। (२) किशमिश।
 काकलीमृग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूमिशय मृगविशेष।
 काकलीरव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल पक्षी। (ध० नि०;
 रा० नि० व० ११)।
 काकवन्ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह स्त्री जिसको एक
 बार गर्भधारण हुआ है और पश्चात् वन्ध्या हो गई है।
 काकीवदेक मात्रापत्यजननेन वन्ध्यात्व प्राप्ता। काक-
 वन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्। बह्व-
 पत्या जीववत्सा सा भवेन्नात्र संशयः ॥ (पद्मपुराण)।
 दे० 'वन्ध्या'।
 काकवन्ध्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक बार गर्भ
 धारण होने के पश्चात् होनेवाली वन्ध्यता। (One
 child sterility)
 काकवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] 'काकजम्बु'
 जमता। (रा० नि० व० ११)।
 काकवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 (१) स्वर्णवल्ली। सोनवेल। (भा० पू० १ भ०)।
 (२) पीला कचनार। पीत काञ्चन। (वै० निघ०)।
 काकवलिन—संज्ञा स्त्री० [ता०, मल०] विष्णुकांता,
 अपराजिता। कौआ ठोंठी। (मो० श०)।
 काकवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वर्णवल्ली। सोनवेल।
 काकवाक्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सारस पक्षी। (ध० नि०)।
 काकवाच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकड। (रा० नि०)।
 काकवित्त—संज्ञा पुं० [मल०] अपराजित। (मो० श०)।
 काकविष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकमल। कौवे
 की बीट।
 काकवी—(?) काननित। [मो० श०]। संज्ञा स्त्री०
 (सं०) फाणित। राव, (सु० घा० टी०)। चाशनी।
 काकवीजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कार्कतिदुक। छोटा तेन।
 काकवृन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल कुलथी।
 रक्त कुलथ।
 काकशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलूक। उल्लू। पेचक
 पक्षी। (ध० नि०)।

काकशान्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घुंघची, गुंजा।
 काकशालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कृष्णशालि धान्य।
 दिहुला धान।
 काकशिम्बी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रक्त
 गुंजा। लाल घुंघची। (२) रक्त काकमाची। लाल
 मकोय। (रा० नि० व० ३)। दे० 'काकनासा'।
 काकशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अगस्त वा हथिया का
 पेड़ वा फूल। वक वृक्ष-पुष्प। (प० मु०)।
 काकस्ता—(?) तेन। तिदुक। गाव।
 काँकस—[ले० Coccus] किमिजदाना। बीरवहूटी।
 काँकस कैवटाई—[ले० Coccus cacti] कृमि। किमिज
 दाना।
 काकसनून—संज्ञा पुं० [यू०] कवावचीनी
 काकसबून—संज्ञा पुं० [यू०] (१) जंगली जीरा। (२)
 जंगली पित्तपापड़ा (शाहतरा)।
 काकसस्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक पक्षी।
 काकसादी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का अशुभ
 लक्षणयुक्त घोड़ा। (२) आग्नेय।
 काकसाह्वया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली घुंघची।
 चूड़ामणि। (ध० नि० ४ व०)।
 काकस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अगस्त का पेड़।
 काकस्फूर्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काक तिदुक। छोटा
 तेन। मकरतेनुआ।
 काका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सफेद निसोथ।
 श्वेत त्रिवृत। (२) कठूमर। कठगूलर। काको-
 दुम्बरिका। (३) काकोली। काकला गाछ। (४) काक-
 जंघा। (५) घुंघची। गुंजा लता। (६) निर्मली।
 मलयू वृक्ष। (७) मकोय। (मे० कदिक)।
 काका—संज्ञा पुं० (?) इन्द्रायन। [लु० क०]
 काकाउबटर—[अं०] काकाव बटर।
 काकाओ—[तु०] कोको। थियोब्रोमा।
 काका कौआ [वा]—संज्ञा पुं० दे० 'काकातूआ'।
 काकाङ्गा, काकाङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)
 सफेद मकोय। (२) काकनासा। (३) काकजंघा। (वै०
 निघ०। भा० पू० १ भ०)।
 काकाजातुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकजङ्घा।
 काकाञ्ची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकजङ्घा।
 काकाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काकतिन्दुक।
 छोटा तेन। (रा० नि० ११ व०)। (२) महानिम्ब।
 बकाइन। (रा० नि० ९ व०)। (३) सूकरशिम्बी।
 (ध० नि०)। दे० 'काकाण्डफल' (४) कुचिला।
 संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) काकपक्षी।
 काकाण्डफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काकतिन्दुक।
 फल। छोटा तेन। (२) बड़ी शिम्बी (सेम) के बीज।

(सु० सू० ४६ अ०) । शूकरशिबी—डहलण—काकाण्ड-फलं अश्वेकः कपिकच्छुसदृश शिम्बः काकाण्डः 'शूकर-शिबी' इति लोके । चरक सूत्रस्थान अ० २७ की टीका में शिवदास कहते हैं—'शूकशिम्बसदृश शिबः काकाण्डः शूकरशिबीति लोके ।'

काकाण्डा संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की असाध्य लूता (मकड़ी) । (सु० कल्प० ८ अ० ।)
काकाण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तेजस्विनी, तेजवती । (रा० नि० ३ व० ।) (२) कपि कच्छु विशेष । (२) दधि पुष्पी । (ध० नि० १ व० ।) (३) सूअरा सेम । कोलशिबी । (४) महा ज्योतिष्मती लता । बड़ी मालकैंगनी ।

काकाण्डोला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कोलशिम्बी । सूअरा सेम । (रा० नि० व० ७ ।)

काकातू (तु) आ (वा)—संज्ञा पुं० [मला०] एक प्रकार का बड़ा तोता । कोकातू Cockatoo (अं०) ।

काकातून—[?] नीलफर । नीलोत्पल ।

काकादनक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'काकनासा' ।

काकादनी—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] दे० 'काकनासा' ।

काकादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इन्द्रवाष्णी । दे० 'काकनासा' ।

काकानन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रक्तगुंजा । घुंघची लाल । काकणन्ती । दे० 'घुंघची' ।

काकापु—[म०] वनस्पति पुष्प भेद ।

काकापुर्वर—[?] टेरेनिया एसियाटिका ।

काकाम्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समष्टिल नाम का एक क्षुप । नद्याम्र । (रा० नि०) ।

काकायु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वर्णवल्ली । स्वर्णलता । सोनवेल । (भा० पू० १ भ० ।)

काकारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उलूक पक्षी । उल्लू (हे० च० । रा० नि० १९ व० ।)

काकाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) द्रोण काक । डोम कौआ । (श० र० ।) (२) वत्सनाभ विष । बलनाग । (हे० च० ।)

काकालिया—[यू०] वकलतुल् औजाअ । (म० अ०, मो० आ० ।)

काकालीस—[यू०] जंगली गाजर का बीज, कामराज बीज ।

काकालुस—[यू०] चाकसू । वन-कुलथी । वनकुलथ ।

काकाव—संज्ञा पुं० [अं०] कोकाफल ।

काकावबटर—संज्ञा पुं० [अं०] फलमज्जा विशेष । दे० 'कोका' ।

काकास्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाश्वेत काकमाची । काकनज का देशी भेद । (वै० निघ० ।)

काकाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकमाची । मकोय । (ध० नि० ।) (२) काकजंघा । (रा० नि० ४

व० ।) (३) वन मूंग । (वै० निघ० ।)

काकाह्वानोदुम्बरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काक-संज्ञोदुम्बरिका । काकोदुम्बरिका । कठगूलर । (सु० चि० ९ अ० ।)

काकाक्षः—संज्ञा, पुं० [सं० पुं०] काकनासा । (ध० नि० ।)

काकाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकनासा । (रा० नि० ३ व० ।) (२) श्यामा विशेष । शुक्रभाण्डी । (ध० नि० ।)

काकिचम्प—संज्ञा पुं० [ते०] काकमारी । दे० 'काक नासा' ।

काकिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पण-का चतुर्थांश । (पांच गंडा कौड़ी ।)

काकिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुंजा । घुंघची ।

(२) एक वराटिका । एक कौड़ी । (३) पण का चतुर्थांश जो पांच गंडे कौड़ियों का होता है । (४) माशे का चौथाई भाग । (५) मानदण्ड ।

काकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकोली । (ध० नि० ।) (२) दे० 'काकिणी' ।

काकिनीलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक लता जिसके द्वारा पारद का बंधन होता है तथा जिसके सेवन से वृद्धता तथा मृत्यु का नाश होता है—स्थूलकण्टक पर्णाह्वय प्रोक्ता सा काकिनी लता । रसबन्धनकरी सैषा जरामृत्यु विनाशिनी । (र० काम० धे० ।)

काकिन्दुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकतिन्दुक ।

काकिया—संज्ञा पुं० [यू०] अकाकिया । (लु० क०) ।

काकियून—संज्ञा पुं० [यू०] लबलाव कवीर । (लु० क०) ।

काकिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्ठमणि । दे० 'काकल' ।

काकिल्लः—संज्ञा पुं० [अ०] इलायची । एला । (लु० क०) ।

काकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कौए की मादा । वायसी । (२) काकोली । (रा० नि० व० ३ ।) (३) श्वेत काकमाची । (वै० निघ० ।)

काकीचम्प—संज्ञा पुं० [ते०] काकमारी 'दे० काकनासा' ।

काकीडा—संज्ञा पुं० । करकट । केंकड़ा । कर्क । खरचंग ।

काकीडोंड—संज्ञा पुं० [ता०, ते०] महेन्द्रवाष्णी । महर । महाकाल । कोंवर ।

काकीदेकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ?] जीलक । (लु० क०)

काकीलक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकिलाक्षक्षुप । ताल मखाना ।

काकु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जिह्वा । जीभ । (त्रिका०)

काकुड़—संज्ञा पुं० [व०] ककड़ी । कर्कटी ।

काकुडुमुर—संज्ञा पुं० [व०] जंगली गूलर । कठगूलर ।

काकुद, काकुद्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तालु । (रा० नि० व० १८)

काकुदी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकुदी भौरीयुक्त घोड़ा

महादोषपूर्ण घोड़ा। (ज० द० ३ अ०।)
 काकुन—संज्ञा पुं० [अं०] काँक, अईधा, कङ्गु (उ० प्र०)।
 दे० 'कँगनी'।
 काकुपाल—संज्ञा पुं० [ते०] वातदला (सं०)। (इं० हें० गा०)।
 काकुभ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोहा। (भा० म० कास-चि०।)
 काकुम—संज्ञा पुं० [तु० = काकुम] (१) तातार देश के ठंडे भागों में होनेवाला एक प्रकार का नेवला जिसका चमड़ा बहुत सफेद, मुलायम और गरम होता है। (२) उक्त प्राणीका चमड़ा (खाल) जो संजाव और समूरतुल्य तथा इनसे मूल्यवान होता है।
 काकुर—संज्ञा पुं० [वं०] ककड़ी। ककटी।
 काकुरजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [हिं०, वं०] करकनी (म०)।
 कुरुरजिह्वा (चो०)।
 काकुस्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विकृत शब्द।
 काकुलतैन—संज्ञा पुं० [अ०] छोटी और बड़ी दोनों इलायची।
 एलाद्वय।
 काकुलस—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'काँक्युलस'।
 काकुलह—संज्ञा पुं० [अ०] इलायची। एला।
 काकुलहे कबीर, काकुलहे कुबार } संज्ञा पुं० [अ०] बड़ी
 काकुलहे जकर, काकुलहे जञ्जी } इलायची।
 काकुलहे सगीर, काकुलहे सिगार—संज्ञा पुं० [अ०] छोटी
 इलायची। सफेद इलायची
 काकुलीमृग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चतुर्विध विलेशय मृग।
 (वै० निघ०)।
 काकुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [मल०] काकवल्ली लता (*Mucuna pruriens*)
 काकूनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] सातर। (लु० क०)
 काकूपाल—संज्ञा पुं० (ते०) [सं०] वातदला। (ता०)
 कारूकूवा। *Zizyphus Glabrata*.
 काकूर—संज्ञा पुं० [अ०] छुहारे का शिगूफा।
 काकूलक—संज्ञा पुं० [अ०] मुछनी। (*L. Temulutum*)।
 काकूश—[फा०] वनफशा।
 काकूस, काकूसस्त—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार की काई।
 अदमुल्मास।
 काके—संज्ञा पुं० [का०] काकमाची। मकोय।
 काकेगिडा—संज्ञा पुं० [का०] वनस्पति भेद मकोय।
 काकेडा—संज्ञा पुं० केकड़ा। कर्कट।
 काकेन्दु, काकेन्दुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकतिन्दुक।
 काकेन्दुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]। (१) काकतिन्दुक।
 छोटा तेन। (अम०। ध० नि०) (२) कुचिला। कटु-
 तिन्दुक (प० मु०)।
 काकेमन्दलि—संज्ञा स्त्री० [कना०] लाल इन्द्रायन। महर।
 महेन्द्रवारणी।

काकेवुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारका वृक्ष।
 (सु०।)
 काकेशपु—संज्ञा पुं० [को०] कमूनी। दे० पान जोली।
 काकेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नीम का पेड़। निम्ब वृक्ष।
 (रा० नि० व० ९)।
 काकेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रेणुका। (२)
 काकमाची (वै० निघ०)।
 काकेसपु—संज्ञा पुं० [को०] } दे० पानजोली।
 काकेसोपु—[तु०] } कमूनी।
 काकेक्षि, काकेक्षिक, काकेक्षु (क)—संज्ञा पुं०
 [सं० पुं०] (१) इक्षुगन्ध तृण। खागडा। (२० मा०।)
 (त्रिका०।) (२) कास। कासा। (रा० नि०)
 (३) तालमखाना। (भा० पू० १ भ०।)
 काकेक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काश तृण। दे० 'काशक'।
 काकोचिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } काउच
 काकोची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } मत्स्य विशेष।
 (वं०) काउच माछ। (हा० रा०।)
 काकोडिल न्यु—[ला०] डाक्टरी औषध का एक भेद।
 काकोडिलस पोरोसस—[ला०] वनस्पति भेद।
 काकोडुम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकोदुम्बरिका।
 (प० मु०।)
 काकोडुम्बरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकोदुम्ब-
 रिका। कठगूलर। दे० 'गूलर'।
 काकोड्यम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमलबीज। कमल
 गट्टा।
 काकोदर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साँप। सर्प। (अम०।)
 काकोदुम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कठूमर। कठगूलर।
 जंगली गूलर। दे० 'गूलर'
 काकोदुम्बरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कठूमर।
 (घ० नि०।) रा० नि०। दे० 'गूलर'।
 काकोदुम्बरिका फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अञ्जीर।
 वै० श०। कठ गूलर का फल। कठूमर। दे० 'गूलर'।
 काकोदुम्बरिका स्वरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कठूमर के
 फल का स्वरस। इसके फल के स्वरस को मिश्री मिले
 दूध के साथ पीने से रक्तप्रदर का नाश होता है। (वृ०
 नि० २० स्त्री रोग चि०।) लेखक के अनुभव में देशी
 गूलर के रस के सेवन से भी यह लाभ होता है।
 काकोदुम्बरी—संज्ञा स्त्री [सं० काक + उदुम्बर] (१)
 गमहार। (२) कठगूलर।
 काकोनालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्लवजातीय एक पक्षी।
 जोड़े के साथ रहनेवाला पक्षी। चक्रवाक।
 काकोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) बछनाग।
 (२) कालविष। काले रंग का एक स्थावर विष विशेष।
 (रत्ना०।) संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काकोली।

(*Lavanga scandens*)) । (ओ० सं०) ।

(२) द्रोण काक । डोम कौआ । (रा० नि० । हला० ।)

(३) महाविष । (वै० निघ० ।) (४) सर्प । साँप ।

(५) जंगली सुअर । वन शूकर । (श० र० ।)

काकोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आयुर्वेद के मत से 'अष्टवर्ग' नाम के आठ संदिग्ध द्रव्यों में से एक । जो क्षीर काकोली का ही अन्य भेद है और कोली तुल्य होती है । यह प्रायः नेपाल तथा मोरंगादि के पर्वतों में होती है । वर्ण में यह किञ्चित् काली होती है, मेदा और महामेदा जहाँ होती है वहाँ ही यह भी होती है । 'क्षीर काकोली महामेदोद्भवस्थले । यत्र स्यात्क्षीरकाकोली 'काकोली तत्र जायते' । (भा०) ।

पर्याय—(सं०)—काकोली, वायसोली, कायस्थिका, वीरा, वयसा, वायसोलिका, वयस्या, शालपाकी, वयस्था, जीवन्ती, स्वादुमांसी, ध्वाक्षिका, मेदुरा, जीवनीया, धीरा, (ला०)—झिझाइफस इण्डिका (*Zizyphus Indica*) । (२) कालक्युलस इण्डिकस (*Calculus Indicus*), भेद—

(३) श्वेत काकोली—पर्याय—(सं०)—अष्टमी, जीवल्ली, जीवशुक्ला, कथिता, क्षीर काकोली, क्षीरवल्लिका, क्षीर शुक्ला, क्षीरिणीधारा, क्षीर पिषार्याणका, क्षीरा, क्षीरवल्ली, क्षीरमधुरा, दुग्धाद्या, पयस्था, पयस्विनी, वयस्था, महावीरा, सुकोली, क्षीरपुष्पी, (हिं०, म०) दूध काकोली, क्षीर काकोली, (कना०) (वं०) क्षीर काँकला । (म०) दूध कावली ।

परिचय—एक प्रकार की लता है । इसकी जड़ शतावरी तुल्य होती है । इसमें श्वेत वर्ण के पुष्प लगते हैं और फल झाड़वेरी तुल्य होते हैं । और प्रिय गन्ध-युक्त होती है—पीवरी सदृशः कन्दः सक्षीर प्रिय गन्धवान् । सा प्रोक्ता क्षीर काकोली । **प्रतिनिधि**—अश्वगन्धा, शतावरी ।

(सु० सू० ३८ अ० काकोल्यादिगण), भा० पू० १ भ०; (रा० नि० व० ३)

गुण-कर्म—उभय काकोली, शीतल, मधुर, दीर्घपाकी, धातुवर्धक, वात, पित्त, ज्वर, रुधिर विकार नाशक, वीर्य वर्धक तथा शोष (क्षय रोग) नाशक है । (भा० पू० १ भ० हरीतक्यादि व०) ।

रुचिप्रद, कफ, पित्त, रक्त विकार, हृदयरोग नाशक, श्वास, कास, क्षय रोगघ्न, वृष्य एवं वस्ति विशोधक (मूत्रल) है—एवं रस वीर्य तथा विपाक में काकोली तुल्य है ।

रुचिप्या कफ पित्तास्र हृद्रोग शमनीयता ।

श्वास कास क्षयहरा वृष्या वस्ति विशोधनी ॥

रस वीर्य विपाकेषु काकोल्या सदृशी च सा ।

(रा० नि० गुडूच्यादि व० ध० निघ०) ।

(वा० १५ अ० जीवनीयगण) ।

योग—च्यवनप्राश अवलेह, अमृतप्राश अवलेह, जीवनीय घृत इत्यादि इसके प्रमाणिक सुप्रसिद्ध आयुर्वेदीय योग हैं ।

(२) मोटे फल और बीजवाला रोमविशिष्ट कपिकच्छू अर्थात् केवाँच (काकांडोला) दधिपुष्पी । (रा० नि०) ।

(३) लोमशा । (रा० नि०) । (४) अश्वगोधुरक ।

गोखरू । (रा० नि०) । (५) काली मूसली । (६)

बंगाल के बाजारों में (बंगाल में होनेवाली) लवंगलता (*Luvanga scandens*) का मूल । इसके मूल और फल कलकत्ते में मिलते हैं । फल को बंगाल में

'काकल' कहते हैं । ओ० सं० । सं० नि० व० शा० ।

(७) यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थों के मत से 'शकाकुल मिसरी' ।

काकोली क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बालातिसार में प्रयुक्त एक क्वाथ योग—काकोली, गजपीपल और लोध समान भाग लेकर काढ़ा करके शहद डालकर पिलाने से बालकों का अतिसार नष्ट होता है । (वृ० नि० र० बाल र० चि०) ।

काकोलीद्वय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दोनों काकोली अर्थात् काकोली और क्षीर काकोली ।

काकोल्यादि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'काकोल्यादिगण' ।

काकोल्यादि कषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इस नाम का एक कषाय योग—काकोली वन मंटा मोथा कूट, देवदारु (वा दारुहलदी) अडूसा, गुरुच और सोंठ के काढ़े में मिश्री मिलाकर पीने से वातज्वर नष्ट होता है । वृ० नि० र० ज्वर चि० ।

काकोल्यादिगण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकोली आदि निम्न अठारह औषधियों का एक समाहार—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी (वन मूँग), माषपर्णी (वन उड़द) मेदा, महामेदा, गुरुच (छिन्न-रुहा), कर्कटशृंगी (काकड़ासींगी), तुगाक्षीरी (वंश-लोचन), पद्मक (पद्मकाष्ठ), प्रपण्डरीक (पुण्डरिया), ऋद्धि, वृद्धि, मृद्वीका (द्राक्षा), जीवन्ती, मधुक (मुलेठी) इन अठारह औषधियों का काकोल्यादिगण होता है ।

गुणकर्म—यह काकोल्यादि गण पित्त, रक्त और वायु का नाश करता है, जीवन के लिये हितकर है, शरीर की पुष्टि करता है, वीर्यवर्धक है और दुग्ध तथा कफ को बढ़ाता है । (सु० सू० ३८ अ० । भा० ।)

[वक्तव्य]—इस गण की काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, और ऋद्धि तथा वृद्धि ये आठ औषधियाँ अष्टवर्ग कहलाती हैं ।]

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ।

ऋद्धि वृद्धिश्च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः ॥

इस वर्ग की प्रथम आठ और अन्तिम दो औषधियों का चरकोक्त जीवनीयगण बनता है । यह काकोल्यादिगण अष्टांग हृदय में नहीं है । इसके स्थान में जीवनीयगण मिलता है । इस गण की काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, मुग्दपर्णी और माषपर्णी जीवन्ती तथा मधुक ये दश औषधियाँ चरकोक्त दशमानी जीवनीयगण की हैं । इस वर्ग का मुख्य गुण इन दश औषधियों पर निर्भर है ।

काकोल्यादि घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इस नाम का एक घृत योग । **द्रव्य तथा निर्माण विधि**—काकोली, क्षीर काकोली, मुलेठी, हलदी, आमला, जीवन्ती, मेदा, महामेदा, पिठवन, द्राक्षा, कमल, वंशलोचन, काकड़ा-सींगी, सफेद जीरा, काला जीरा प्रत्येक ६—६ पल लेकर चूर्ण करें । पुनः इसे १ प्रस्थ गोघृत और ४ प्रस्थ गुरुच के स्वरस में मिलाकर मंदाग्नि से घृतपाक करें । जब घी-मात्र शेष रह जाय, तब छानकर सुरक्षित रखें । **गुणकर्म तथा उपयोग**—इसके सेवन से वातरक्तका नाश होता है । यह कुष्ठ में भी उपयोगी है । **मात्रा**—१ से ४ तोला । (रस० र० ।)

काकोष्ठ [क] (कौ)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णबन्धाकृति अर्थात् कर्ण संधान के (मुख्य-मुख्य) पंद्रह प्रकारों में से असाध्य कर्णबन्ध का एक भेद । जब पाली मांस रहित हो, उसके अग्र भाग अत्यंत अल्प हों और उसमें रक्त की कमी प्रतीत हो तब काकोष्ठक बन्ध का प्रयोग करना चाहिये । (सु० सू० १६ अ० ।)

काक्काशिगी—[ता०] काकड़ासींगी ।

काक्कडम् कोटि—[मल] अपराजिता के बीज ।

काक्कडमर—संज्ञा पुं० [मल०=सं० काकोदुम्बर]
कठुमर हि० गूलर

काक्कणम् वित्त—[मल०] अपराजिता के बीज ।

काक्कनड कोडिविरै—[ता०] अपराजित के बीज ।

काक्कनन कोडि—[मल०] अपराजिता ।

काक्कण [न] म्—[मल०] अपराजिता ।

काक्कनाड—[ता०] अपराजिता ।

काक्कनाड कोडि—[ता०] अपराजिता ।

काक्कस—[ले० Coccus] जीवाणु विशेष । बीर बहूटी ।

काक्कस केवटाइ—[ले० Coccus Cacti] केवटस गत जीवाणु भेद । दे० कोक्कस केवटाई ।

काक्काय कोल्लिविरै—[ता०] काकमारी । दे० 'काकनासा' ।

काक्केटाइ—[ले० Coccati] केवटस का जीवाणु बीर बहूटी ।

काक्केमार—संज्ञा पुं० [द०] काकमारी दे० 'काकनासा' ।

काक्कोल—संज्ञा पुं० [हि०] काकोली ।

काँकिकोडीनिआ (Coccydynia)—[संज्ञा स्त्री०]
(अं०) अनुत्रिकास्थि वेदना, दुमची की हड्डी का दर्द ।

काँकिकक्स [Coccyx]—दुमची की हड्डी । अनुत्रिका । अनुत्रिकास्थि ।

काँकिकजिअल कानुआ—[Coccygeal cornua]—अनुत्रिकास्थि । दुम की हड्डी ।

काँक्युलस इन्डिकस—(ले० Coccus Indicus) काकमारी । दे० 'काकनासा' ।

काँक्युलस कॉर्डिफोलिअस—[ले० Coccus cordifolius] लता विशेष । (१) सोम वल्लो तथा (२) निर्विषी ।

काँक्युलस मैक्रोकार्पस—[ले० C. Macrocarpus] वनस्पति भेद । एक प्रकार की लता ।

काँक्युलस लॉरिफोलिअस—[ले० C. Laurifolius] लता विशेष । काकोली का एक भेद ।

काँक्युलस वाइलोसस—[ले० C. Vilosus] जलजमनी । पताल गरुडी ।

काँक्युलस स्युबरोसस—[ले० C. Suberosus] दे० काकनासा, काकफल ।

काक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटी] ककड़ी ।

काक्कोल—संज्ञा पुं० ककरोल । खेखसा ।

काक्कोल के बीज—संज्ञा पुं० ककरोल के बीज ।

काँक्लिआ—संज्ञा पुं० [अं० Cochlea] अन्तःकर्ण के दोनों अवयवों—अस्थिमय और कलामय—के उपाङ्ग त्रय में से प्रथम जिसको 'शम्बूक' कहते हैं । यह घोंघे की भाँति आवर्तमय होता है । शब्द के ग्रहण में यह अनिवार्य और प्रधान है ।

काँक्लोस्पर्मम् गाँसीपिअम्—[ले० Cochlospermum gossypium] पीली कपास । गलगल (मिर्जापुर) ।

काँक्सिनेल्ला—[ले० Coccinella] गुबरीला । (Ladybug)

काखण—[म०] संज्ञा पुं० पीलू । झाल ।

काखन—री—[?] काकफल दे० 'काकनासा' ।

काखम—संज्ञा पुं० [बम्ब०] पीलू । झाल ।

काखस—[पं०] (१) लुंगर । ककेइ (मे० मो०) ।

(Pteris aquilina) । (२) हाऊबेर ।

काखेला—[मल०] तिलवन ।

काखोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजमोदा ।

काग—संज्ञा पुं० [सं० काक] कौआ । वायस । (जटा०), संज्ञा पुं० (अं० कार्क)—दे० 'काक' ।

बलूत जातिका एक वृक्ष जो स्पेन, पुर्तगाल तथा अफ्रिका के उत्तरी भागों में होता है । इसकी छाल दो इंच तक मोटी होती है और अत्यन्त हलकी तथा लचकदार अर्थात् दाब पड़ने से दब जाती है, बोटल, शीशी आदि के डाट जो काग (कार्क) के नाम से प्रसिद्ध है इसी छाल की बनती है । (२) बोटल व शीशी की डाट

जो काग के नाम के वृक्ष की छाल से बनता है।

काग—[फा०] अग्नि। आग।

कागचंगी—संज्ञा स्त्री० आतरीलाल। (लु० क०)।

कागज—संज्ञा पुं० [अ०] सन, रूई, पटुए आदि को सड़ाकर बनाया हुआ महीन पत्र जिस पर अक्षर लिखे या छापे जाते हैं।

कागज—[फा०] पर्याय—(सं०) पत्र, (हिं०)—

कागद, (अ०)—कृतसि। (अं०)—पेपर (Paper)

इतिहास—कागज का सर्व प्रथम निर्माण सन् १०५ ई० में हुआ था। उस समय चीनी बाँस द्वारा इसका निर्माण किया जाता था। किसी के अनुसार इसके निर्माण का प्रथम प्रारम्भ मछली पकड़ने के पुराने जाल, जीर्णवस्त्र तथा सन के रेशों द्वारा होता था। किन्तु अंग्रेजी पर्याय 'पेपर' का उद्गम यूनानी शब्द द्वारा हुआ है। जिसको उक्त भाषा में 'पेपाइरस' कहते हैं। यूनानी लोग इसको नील नदी में उत्पन्न होनेवाली पेपाइरस नामक तृण से प्रस्तुत करते थे। पेपाइरस का शुद्ध शब्द 'पैपीरस' है। यह हिन्दी का 'पटेरा' और फारसी का दोख तथा लौख है। ख्रीष्ट के तृतीय तथा चतुर्थ शताब्दी तक इसका निर्माण उक्त 'पेपाइरस' द्वारा होता था। भारतवर्ष में कागज की प्रथा सर्व-प्रथम लिखने की भूज पत्र, ताल पत्रादि द्वारा थी। इससे अधिक अज्ञात है; किन्तु भारतवर्ष में यमनागमन के पूर्व से ही इसका अधिक प्रचार हो चुका था।

भारतवर्ष में सर्वप्रथम गुजरात प्रान्त से एक दस्तावेज हस्तगत हुआ था। १२६० ई० में कागद का प्रथम व्यापार सियाल कोट में प्रारम्भ किया गया था। चिकित्सा शास्त्र में जब कागद का शब्द आता है तब उसी पटेरा द्वारा निर्मित 'कागद' अभिप्रेत होता है जो मिस्र देश में प्रस्तुत किया जाता था। पटेरा एक जल में उत्पन्न होनेवाला तृण है जिसको भाषा में 'होगला' भी कहते हैं। इसके द्वारा आजकल भी चटाइयाँ निर्माण की जाती हैं। कागज सोखत जहाँ आता है वह इसी पटेरा द्वारा निर्मित कागज के लिए।

भारतवर्ष में 'कागज' प्रायः बाँस द्वारा प्रस्तुत किया जाता था और अब भी होता है।

गुण, कर्म तथा उपयोग—प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल एवं द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। किसी के अनुसार प्रथम-कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। किसी के अनुसार—द्वितीय कक्षा में उष्ण-रुक्ष से भी अधिक उष्ण होता है।

वक्षक्षत नाशक, आमाशय प्रदाहघ्न, आन्त्र क्षोभ-शामक तथा प्रदाह नाशक है। इसके उपयोग से रक्त-प्लीवन तथा अतिसार नष्ट होता है। दग्ध कागद में

मक्खन मिश्रित कर लगाने से व्रण भर जाता है। नाड़ीव्रण में उपयोगी है। इसका दग्ध किया हुआ भस्म ग्रहण कर आघ्राण करने से नासास्र (नकसीर) नष्ट होता है। इसका धूम्र पान करने से प्रतिश्याय शमन होता है। इसका भस्म ग्रहण कर मज्जन करने से दन्तगत रुधिर-स्राव बंद होता है और मसूढ़े दृढ़ रहते हैं। इसका लेप करने से कैंसर (कर्कट) तथा इन्द्र लुप्त नष्ट होता है। इसका अज्जन करने से नेत्र-गत जाला कट जाता है तथा नेत्रगत क्षत नष्ट होता है। अश्रुस्रावाधिक्य बंद होता है। इसको सिरका और जल-मिश्रित कर पान करने से रक्तप्लीवन बंद होता है। इसका भस्म क्षत पर अवचूर्णन करने से शीघ्र लाभ होता है।

वक्तव्य—कागज जिस वस्तु द्वारा बना होता है, उसमें तद्वत् गुण होते हैं। डाकटरी में इसके द्वारा निर्मित तेल को आयल चार्टा कहते हैं।

कागजंगा [घा]—संज्ञा पुं० [सं० काकजङ्घा]। काक-जंघा।

कागजंगी—संज्ञा स्त्री० हिं० सं० काकजङ्घा आतरीलाल। दे० 'काकजंघा'। तथा 'मसी'।

कागजशोर—संज्ञा पुं० [फा०] पत्र विशेष। दे० 'कागज'।

कागजी नीबू—संज्ञा पुं० [उर्दू] पत्ती नीबू। दे० 'नीबू'।

कागजी नेम्बू—संज्ञा पुं० [वं०] कागजी नीबू। दे० 'नीबू'।

कागजी बादाम—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बढ़िया बादाम जिसका ऊपरी छिलका अपेक्षाकृत बहुत पतला होता है।

कागजी बेल—[संज्ञा पुं०] (हिं० उ०) पतले छिलके का बेल।

कागजी वोजून—संज्ञा पुं० [?] द्रव्य विशेष।

कागडा [डो] केरी—[गु०] वरुण। वरना।

कागडीय कुंढेर—संज्ञा पुं० [गु०] अनन्तमूल। कपूरीलता।

कागडोलीया (यो)—[गु०] } कर्णस्फोटा।

कागोलीओ—संज्ञा पुं० [गु०] } कनफोडा।

कागद—संज्ञा पुं० [अ० कागज] कागज। पत्रक दे० 'कागज'।

कागदी एलची—संज्ञा स्त्री० [गु०] छोटी इलायची।

कागदी लिबू—संज्ञा पुं० [गु०] } कागजी नीबू।

कागदी लौबू—संज्ञा पुं० [गु०] }

कागन—संज्ञा पुं० [फा०] वीर बहूटी। इन्द्रगोप।

कागनू—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (ख० अ०)।

कागपक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] भटूरा पक्षी।

कागपित्तभेद—संज्ञा पुं० [कौ०] इक्षुदर्भ। कासा।

कागफल—संज्ञा पुं० संज्ञा पं० [सं० पुं०] क्ली०

(१) काकनासा। (२) काकफल। काकमारी।

कागफल—संज्ञा पुं० [पुं०] कुचिला देखो।

कागभञ्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकभञ्जी] काकमारी दे० 'काकनासा'।

कागभाञ्जी—संज्ञा स्त्री [वं०] मकोय। काकमाची।

कागमारी—संज्ञा स्त्री [कना०] काकमारी। काकफल दे० 'काकनासा'।

कागरा—संज्ञा स्त्री० [म०] काशतृण। कासा।

कागलहर—संज्ञा पुं० काकजंघा।

कागलहरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'मसी'।

कागला—संज्ञा पुं० [हिं०] कौआ। काक।

कागली—संज्ञा स्त्री० [कना०] जंगली वादाम।

कागली मर—संज्ञा पुं० [कना०] जंगली वादाम का वृक्ष (Cannarium Commune) दे० वादाम के अन्तर्गत।

कागस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला। पाढ़ल।

कागा—संज्ञा पुं० [हिं०] कौआ। काक।

कागारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू। पेचक।

कागारोटी—संज्ञा स्त्री० कामराज भेद।

कागिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] तिब्बत देश की एक प्रकार की भेड़। भेष भेद।

संज्ञा पुं० [हिं० काग] काले रंग का एक कीड़ा।

कागिल—[फा०] मिट्टी। मृत्तिका।

कागुल—[फा०] उश्तान। गन्दुमरुमी।

कागमारी—संज्ञा स्त्री० [कना०] कुचिला। काकफल। दे० 'काकनासा'।

काङ्का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकजंघा। (२) काकोली।

काङ्कायन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वैद्य मुनि, जिन्होंने चरकसंहिता प्रणेता अग्निवेश ऋषि के साथ भरद्वाज-पुनर्वसु से आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की थी। चरक-संहिता अवलोकन करने से इनकी प्रणीत संहिता का भी पता लगता है, किन्तु वह देखने में नहीं आती। इन्हें वाल्मीकि भिषज भी लिखा है।

काङ्कायन गुटि (डि) का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इस नाम के कतिपय बटीयोग।

(१) द्रव्य तथा निर्माण विधि—अम्लवेत, कचूर, दन्ती-मूल, कूट, चीते की जड़, सोंठ, बच, निसोथ, अरहर प्रत्येक ४-४ तोला, भुनी हुई हींग १२ तोला, जवाखार और अम्लवेत ८-८ तोला, अजवाइन, जीरा, मिर्च, धनियाँ प्रत्येक १ तोला, कलौंजी, अजमोद ४-४ तोला—इनका सूक्ष्म चूर्ण कर नीबू के रस में मर्दनकर बेरके बीजतुल्य गोलियाँ बनायें।

सेवन-विधि तथा गुण और उपयोग—दूध के साथ सेवन करने से पुरातन कफज गुल्म, पित्तज गुल्म, अम्लरस से वातज गुल्म और स्त्री तथा ऊँटनी के दूध से रक्तज गुल्म का नाश होता है। (भैष० र०)।

(२) द्रव्य तथा निर्माण विधि—बीज निकाली हुई हड़ ५ पल, काली मिर्च तथा जीरा १-१ पल, पीपल १ पल, पीपलामूल २ पल, चव्व ३ पल, चित्रक ४ पल, सोंठ ५ पल, भिलावाँ ८ पल, सूरन १६ पल, जवाखार २ पल, पुराना गुड़ सबकी तौल से दूना लेकर यथाविधि बटिका बनाएँ। गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से क्षार, शस्त्र तथा अग्नि दग्ध आदि से आराम न हो सकने-वाला अत्यन्त दुःसाध्य ववासीर भी नष्ट हो जाती है। (यो० र० अर्श-चि०।)

(३) द्रव्य तथा निर्माण विधि—कपूर कचरी (शटी), पुष्करमूल, दन्ती, चित्रक, अरहर, अदरक, बच और निसोथ प्रत्येक १-१ पल, हींग ३ पल, जवाखार २ पल, अम्लवेत २ पल, अजवायन, जीरा, कालीमिर्च और धनियाँ प्रत्येक १-१ कर्ष, कलौंजी और अजमोद २-२ कर्ष—सबका चूर्ण बनाकर बिजौरे नीबू के रस में घोटकर गोलियाँ बनाएँ। मात्रा और सेवनविधि—इनमें से १-२ या ३ गोली प्रति दिन, कुनकुना गरम पानी, काँजी, मद्य, यूष, घी या दूध के साथ सेवन करने से गुल्म, ववासीर, हृद्रोग और कृमि नष्ट होते हैं। गोमूत्र के साथ सेवन करने से पुरातन कफजन्य गुल्म, दूध से पित्तजन्य गुल्म और मद्य तथा काँजी के साथ सेवन करने से वातज गुल्म नष्ट होता है। त्रिफला के क्वाथ या गोमूत्र के साथ सेवन करने से सन्निपातज गुल्म और ऊँटनी के दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों का रक्तगुल्म नष्ट होता है। (च० द गुल्म०।) (४)

द्रव्य तथा निर्माणविधि—अजवाइन, जीरा, धनियाँ, मिर्च, सफेद अपराजिता, अजमोद और कलौंजी प्रत्येक ४-४ टंक, जवाखार, भुना सुहागा, पाँचों नमक और निसोथ प्रत्येक ८-८ टंक, दन्ती, कपूरकचरी, पुष्करमूल, वायविडंग, अनारदाना, हड़, चित्रक, सोंठ और अम्लवेत प्रत्येक १६-१६ टंक—समस्त द्रव्यों का चूर्ण बनाकर बिजौरे नीबू के रस में घोटकर गोलियाँ बनायें। गुण तथा सेवन विधि—इसे घी, दूध, मद्य, काँजी या गरम पानी से सेवन करने से गुल्मरोग का नाश होता है तथा मद्य के साथ सेवन करने से वातज गुल्म, गाय के दूध के साथ पित्तज गुल्म, गोमूत्र के साथ कफज, दशमूल के क्वाथ के साथ त्रिदोषज और ऊँटनी के दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों का रक्तज गुल्म नष्ट होता है। यह गोलियाँ हृद्रोग, ग्रहणी, शूल, कृमि और अर्श का भी नाश करती हैं। (शाङ्ग० खं० २ अ० ७)।

काङ्कायनमोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्शरोग में प्रयुक्त इस नाम का एक मोदक योग।

द्रव्य तथा निर्माणविधि—हड़ ५ पल, जीरा १ पल, कालो मिर्च १ पल, पीपल १ पल, पीपलामूल २ पल, चव्य ३ पल, चित्रकमूल ४ पल, सोंठ ५ पल, जवाखार २ पल, शुद्ध भल्लातक बीज ८ पल, गुड़ (खाँड) १६ पल—सब चूर्ण से दुगुना गुड़ मिलाकर यथाविधि मोदक प्रस्तुत करें। **गुण तथा उपयोग**—इसके सेवन से अर्श का शीघ्र नाश होता है। मात्रा—१-४ तोला। (चक्र० द० अर्श-चि०)।

काङ्कायन योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (पारद) पूर्ण रस।

द्रव्य तथा निर्माणविधि—शुद्ध पारद, अन्नक भस्म, पीपल, लौंग, त्रिफला का छिलका, असगंध, सतावर, सोंठ, कसेरू, जावित्री, मुसली, भाँगरा, मुलेठी, वंशलोचन, दालचीनी, छोटी इलायची, धुरक (गोखरू वा ताल-मखाना), गुरुच का सत्व, रेणुका—इनको समभाग लेवें तथा इसमें पारद से दुगुना पुनर्नवा, कमलगट्टा और केवाँच के बीज मिलायें। पुनः इन सबका यथा-विधि चूर्ण बनाकर समस्त द्रव्यों से दूनी मिश्री की चाशनी करके, इस चाशनी में उबत चूर्ण मिलायें और सब औषधियों के प्रमाण में घी डालें। इस प्रकार करने से यह योग सिद्ध होता है। **मात्रा**—१ तोला या अग्नि के बलानुसार खाकर ऊपर से गाय का दूध पियें। **गुणकर्म तथा उपयोग**—यह बल तथा मांस को बढ़ाता है; कास, श्वास, क्षत की क्षीणता और प्रतिश्याय को नष्ट करता है। यह स्त्री-पुरुष के अंगों को दृढ़ करता है। इसको खाकर विषय करने से मनुष्य का शुक्रक्षय नहीं होता है। (रससार संग्रह)।

काङ्काक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भोजन करने की इच्छा।

काङ्काक्षीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कडक पक्षी। काँक पक्षी।

काङ्काक्षेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छी के आकार की एक लता जिसके तोड़ने से दूध निकलता है। इसकी जड़ में एक कंद होता है। यह पारे का बंधन करती है। इसके संबंध में 'रसेन्द्र चूड़ामणि' में लिखा है—काङ्काक्षेत्री यथा नामा औषधि परमं शुभः। तस्य स्पर्शस्य मात्रेण वध्यते सूतराजकः॥

काङ्कान्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौञ्च पक्षी। (वै० निघ०)।

काङ्कानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] काँक। कँगनी।

काङ्कानीदाना—[व०] कँगनी। काँक।

काङ्का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वच। वचा। (श० च०)।

काङ्काचेवड़े—संज्ञा पुं० [म०] काकजंवा। दे० 'मसी'।

काङ्कुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सं० पुं०, क्ली० एक प्रकार का षष्टिक (साठी) धान्य। कंगुक। कँगनी। (सू० सु० ४६ अ०।)

काच—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काच लवण। (ध० नि०)। (२) मोम। (रा० नि० व० २३)। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नेत्र दृष्टि भाग गत रोग। तिमिर रोग की प्रथम अवस्था में जब केवल चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, विद्युत् और उज्ज्वल रत्न आदि ही दिखाई देते हैं, उस अवस्था का नाम 'काच' (तिमिर) 'लिङ्गनाश' या 'नीलिकावा काच' का रोग है। इस रोग को लोक में **मोतियाबिंद** कहते हैं—स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका-काच संज्ञितः॥ (सु० उ० ७।१८।) (२) काच भस्म। मतांतर से काच लवण। (च० चि० १७ अ० १२४)। (३) मणि विशेष। (४) कञ्चट भेद। (श० च०) (५) मृत्तिका विशेष। इसका दूसरा संस्कृत नाम क्षार है। (हे० च०।) राजवल्लभकेमत से इसका गुण—क्षाररस, उष्णवीर्य और अञ्जन द्वारा दृष्टि प्रसाद कर्ता है। (६) एक मिश्र धातु जो बालू और रेह या खारी मिट्टी को आग में गलाने से बनती है और पारदर्शक होती है। दे० 'काँच'।

काचक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) काँच। शीशा। (२) काच लवण। (३) स्फटिक, बिल्लौर। (वै० निघ०।)

काचकुरि—[व०] सैरेयक। कटसैया।

(द०) केवाँच। काँच।

काचकूहिली—(द०) केवाँच। काचनिर्मित कूपी।

काचकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

शीशी। बोटल।

काचकौडी—संज्ञा स्त्री० केवाँच। काँच।

काचक्रु—संज्ञा पुं० कछुआ। [Turtle] (इ. मे. मे.)।

काचघटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काचनिर्मित घटी। काँच का गिलास।

काचज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काचलवण। काचिया नोन। (वै० निघ०।)

काचड़ा—संज्ञा पुं० [गु०] लताकरंज।

(वस्व०) कसेरू।

काचड़ादाम—संज्ञा पुं० [व०] काँचड़ा दाम। काँचड़ा (Pontoderia Dillata)। (डीमक।)

काचडी—संज्ञा स्त्री० एक पौधा।

काचतित्तिडी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कच्ची इमली। (भा० पू० १ भ० फल-व०)।

काचतिलक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का लवण। नीलकाचोद्भव। काचलवण। (रा० नि० व० ६।)।

काचन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कक्षा।

काचनार—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनार] कचनार।

काचनी—संज्ञा स्त्री० कचनार [म०] कासनी।

काचबो—संज्ञा पुं० [गु०] कछुआ। कच्छप।

काचभव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काचलवण।
 काच भाजन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचनिर्मित पात्र।
 शीशे का वर्तन।
 काचमणि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काँच। शीशा।
 (च० शा० ८ अ०।) (२) काँच की भाँति अल्प
 उज्ज्वल मणि। बिल्लौर। दे० 'काचा'।
 काचमल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचलवण। (रा०
 नि० व० ६)।
 काचमाच—संज्ञा पुं०—[पं०] मकोय। काकमाची।
 काचमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मद्य। शराव।
 (त्रिका०।)
 काचमिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं०] लाल मिर्च। मरचा।
 सुर्ख मिर्च।
 काचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) काँचली। केंचुली।
 (२) पेहटा। चिर्भटी।
 काचलवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचिया नोन।
 काला नोन। सोंचर नोन। (रा० नि० व० ६)।
 काचलोन—संज्ञा पुं० [सं० काचलवण] काचलवण।
 काचव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य विशेष।
 काचवकयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शीशे का बना
 हुआ एक टोटीदार वस्तु जो अर्क आदि उतारने
 (चुआने, खींचने) के काम में आता है।
 काचबिन्दु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक नेत्ररोग। मोतिया-
 बिन्द। काचरोग। दे० 'काच'।
 काचसंभव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचलवण। (रा०-
 नि० व० ६)।
 काचसौवर्चल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचलवण।
 सोंचर नोन। (रा० नि० व० ६)।
 काचस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पाटला
 वृक्ष। पाटल। अधकपारी का पेड़। (अम०। प० मु०)।
 (२) श्वेत पाटला। सफेद पाटल। (वै० निघ०)।
 (३) काचपात्र।
 काचा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काचमणि।
 काँच। गुण—सारक, लघु, नेत्रव्रणनाशक, लेखनीय
 तथा शूलनाशक है। (वै० निघ०)। (२) सर्पपाकार
 (सरसों की तरह) शुभ्र रेखा जो अश्व (घोड़े) के
 दाँत में पन्द्रह से सत्रह वर्ष की अवस्था में उत्पन्न हो जाती
 है। इसके द्वारा घोड़े की अवस्था का ज्ञान प्राप्त होता
 है। (ज० द० ४ अ०)।
 काचा नारिल—संज्ञा पुं० [म०] कच्चा नारियल। अपक्व
 नारिकेल।
 काचालोन—संज्ञा पुं० [सं० काच लवण] काचलवण
 (नमक)। काला नमक।
 काचाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हलदी। हरिद्रा।

(वै० निघ० २ भ० अप० चि०)।
 काचाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बृहद्वक। बड़ा
 बकुला (बगला)। गुण—प्लववत्। (२) कमल की
 जड़। कमल कंद। भसीड। (वै० निघ०)।
 काचिध, काजिध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काञ्चन।
 कचनार। (२) मूषिक। चूहा, (मे० धत्रिक)। (३)
 शिम्बी धान्य विशेष। (वै० निघ०)।
 काचिञ्चिक (लिन्दि)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काक-
 चिञ्चा। घुँघची। गुंजा।
 काचित—वि० [सं० त्रि०] शिक्यारोपित। सिकहर में
 रखा हुआ।
 काचिम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देव कुलोद्भव वृक्ष।
 पवित्र पेड़।
 काचिलिन्दि—दे० 'काचिञ्चिक'।
 काचिया नोन—संज्ञा पुं० काचलवण। सोंचर नोन।
 काचिल—संज्ञा पुं० [म०] रतालू। गाँठालू का लाल भेद।
 लाल गेंठी।
 काची—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] (१) जीरा। (२)
 तीखुर, सिंघाड़े या कुम्हड़े आदि का हलुआ।
 (ते०) मकोय। (चो०।) (फा०) एक प्रकार का
 हरीरा। आकूला। काबूला।
 काचु—संज्ञा पुं० [कना०] खदिर। कत्था। खैर।
 काचूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुक्कुट। मुर्गा।
 (२) चक्रवाक। चकवा।
 काचूर—संज्ञा पुं० [गु०] कचूर। शटी।
 काचोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचलवण, काचिया
 नोन। (रा० नि० व० ६)।
 काचोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काच लवण।
 काचिया—नोन। (रा० नि० व० ६)।
 काच्छ—वि० [सं० त्रि०] कच्छ (जलप्राय देश) स्थानीय।
 नदी के किनारे का।
 काच्छप—वि० [सं० त्रि०] कच्छप संबंधीय। कछुए का।
 काछू—संज्ञा पुं० दे० 'कछुआ'।
 काज—[फा०] (१) शरीफा। सीताफल। (२) इमली।
 चिञ्चा। (३) सनोबर का पेड़। संज्ञा पुं० (हि०)
 ऐकवीर वृक्ष (Bridelia rotusa)।
 काज—[अ०] एक प्रकार की जलकुक्कुटी। बड़ी मुर्गावी।
 (फा०) गाज।
 नोट—मुहीत के अनुसार यह अरबी भाषा का शब्द है।
 परन्तु सिराजुल्लुगात, नफाइमुल्लुगात, मूइदुल् फ़जला
 और कञ्जुल्लुगात तुर्की में इसे तुर्की लिखा है। फरहंग
 रशीदी में लिखा है कि काजनाज वस्तुतः गाज था।
 मुहीत में गाज को फ़ारसी लिखा है।
 वर्णन—वत्तल की किस्म का एक पखेरू है। कोष-ग्रंथों

में ऐसा ही लिखा है। परन्तु चिकित्सकों के लेखानुसार एक प्रकार की मुरसाबी है। यह वत्तख से बड़ा होता है। अरबी में इसको इव्वज भी कहते हैं। परन्तु कञ्जुल्लुगात तुर्की में इव्वज की जगह वज्ज उल्लिखित है।

प्रकृति—इसका मांस उष्ण एवं तर है।

गुणधर्म और प्रयोग—गुणधर्म में इसका मांस वत्तख के मांस के समान, परन्तु उसकी अपेक्षा अधिक उष्ण एवं तर और भारी (गलीज) है। यद्यपि इसके मांस से अधिक रक्त घनता है, तथापि कुक्कुट मांस से उत्तम नहीं होता। इसकी चरबी सृजन उतारती और कड़ाई को दूर करके मृदुता उत्पन्न करती है। इसका तेल अतिशय विलीनकर्ता और अवरोधोद्घाटनकर्ता है। यह उदरस्थ वायु को अनुलोमन करता है।

मल्लजनुल् मुफरिदात में लिखा है—यह आँख की मैल और नजला को खूब छाँटता है तथा नेत्र और दृष्टि को शक्ति प्रदान करता अर्थात् चक्षुष्य है। अग्निदग्ध में गोंद के साथ इसका उपयोग लाभकारी होता है। इसके रक्त से रंगा हुआ कपड़ा सूर्य के प्रकाश को अभिशोषित करता है।

वुस्तानुल् मुफरिदात में यह अधिक लिखा है—प्रत्येक चीज का काजल गुणमें अपने जनक द्रव्य के समीप होता है। उदाहरणतः वादाम तैल से निर्मित नेत्र को शक्तिप्रद और काहू तैल द्वारा निर्मित क्षोभहर वा शामक और मिश्र द्रव्यों से निर्मित उनके गुणधर्मयुक्त होता है। (दलजीतसिंह)।

काजः—[अ०] (१) चड्डे का मांस। (२) योनि के कूलों (किनारों) का मांस।

काजाचिलगोजा—संज्ञा पुं० चिलगोजे का भेद।

काजपुटी—संज्ञा पुं० [ब०, वम्ब०] कैपूती। कायपुटी।

काजर—संज्ञा पुं० दे० “काजल”।

काजरवेल—[म०] पानलता। कुचिलालता।

काजरवेल—संज्ञा स्त्री, (हि०) लता विशेष।

पर्याय—(ब०)—पान लता, (म०) कुचिला लता, किरतन (कृमिघ्न), (ला०)—डेरिस-युलिगाइनोसा (Derris Uliginosa)।

वर्ग—शिम्ब्यादि (Leguminosae)।

उद्भवस्थान—उंका, हिमवती पर्वत के पूर्वी भाग, पश्चिमी प्रायद्वीप इत्यादि।

उपयोगी अंग—त्वचा (छाल)।

रासायनिक संगठन—इसकी त्वचा में एक प्रकार का स्वतन्त्र स्फटिकाभ पदार्थ, सिक्थ, दो प्रकार के निर्यास, दो प्रकार के रज्जक द्रव्य, क्षारोद द्राक्षौज (Glucose) तथा एकतीक्ष्ण (acid) ग्लुकोसाइड (Glucoside) जिसमें सेपोनीन, गोंद और ८ प्र० श० खनिज पदार्थ का मिश्रण होता है।

गुण-कर्म—कृमिघ्न तथा परिवर्तक (Alternative) है।

योग (कल्प)—क्वाथ—१ भाग १० भाग जल में की मात्रा—२ से ८ ड्राम तक। ओषधीय घृत तथा तेल के स्वरूप में भी व्यवहृत है।

उपयोग—इसके क्वाथ के उपयोग से मत्स्य विष (Fish poison), कृमिरोग जो पुष्पादि की पत्तियों को नष्ट कर देते हैं, तथा उग्र (Chronic) वात व्याधि, आमवात और रजःकष्ट (Dysmenorrhoea) जो रसोन, हिंगु, चित्रकमूलयुक्त घृतपाक कर देने से शीघ्र शान्त होता है।

काजरा—संज्ञा पुं० [म०] कुचला। कारस्कर।

काजर्या—संज्ञा स्त्री [ब०] (१) कुचिला के मोलंग। (२) (म०) एक प्रकार का सर्प।

काजरीवर चें बांडगुल } संज्ञा पुं० [म०] कुचिला का काजरीवरील बांडगुल } मोलंग। कुचला के वृक्ष का वन्दाक (वांदा) (म० श०)

काजल—संज्ञा पुं० [स० काज्जल] वह कालिख जो दीपक के धुएँ के जमने से किसी ठीकरे आदि पर जम जाती है और आँखों में लगाई जाती है। दे० ‘काज्जल’।

काजी अजीमखां—संज्ञा पुं० [अ०] एक मुसलमान चिकित्सक जो उमराव भी थे। सन् १५५१ ई० में आगरा नगर में यमुना के तट पर इन्होंने एक सुन्दर उद्यान बनवाया था। इसके अवशेष को आज भी “हकीम का बाग” कहते हैं।

काजलमावु—[का०] भंगरा। भंगराज

काजला—[फा०] दे० परिशिष्ट में।

काजला आक—दे० परिशिष्ट में।

काजली—[म०] अपराजिता। विष्णुकान्ता।

काजलु—[क०] कासतृण। कासा। कांस।

काजिफ—काजिफुर्रहम, कनातुल् मव्यज, कनातफीलोबियूस [अ०] डिम्ब प्रणाली। डिम्बनलिका। स्त्री बीजवाहिनी।

काजिब—[अ०] मिथ्या। झूठा।

गैरहकीकी। (अ०) फाल्स False, बैस्टर्ड Bastard.

काजिया—[सुर०] नेवला। रासू (लु० क०)।

काजी—[अ०] केतकी। केवड़ा। (अ०) कादी।

काजी दस्तार—संज्ञा पुं० [फा०, पं०]

एक प्रकार की बड़ी दुद्धी जिसकी पत्तियों तथा सर्वांग से तोड़ने पर प्रचुर सफेद दूध निकलता है। इसका क्षुप खड़ा होता है। पत्तियाँ अंडाकार और डंडी के चतुर्दिक् छत्राकार और सफेदी लिये हरे रंग की होती हैं। इसके द्वारा धातुओं की भस्म बनाई जाती है।

काजीरन, काजीर—[फा०] कुसुम्भ। कड़। वरें।

काजीसितारा—दे० परिशिष्ट में।

काजू—संज्ञा पुं० [गु०] काजू।

काजुकुली—[मेवाड़] काजू।

काजुतलन—[लेप०] गुनाच। तुलौच। मे० मो०।

काजुपुट्टे—[बं०] कैपुती। कायापुटी।

काजुबा—[म०] लहसुन। रसोन।

काजू—संज्ञा पुं० [कॉक० काज्जु] फल विशेष।

पर्याय—काजूतः, काजूतकः, वृत्तारुष्करः—सं०। काजू—हिं०, मरा०, गु०, सिंह०। काजूगुली—मारवाड़। काजुकुली—मेवाड़। हिजली बादाम—बं०। बादामे फरंगी—फ्रा०। *Anacardium Occidentale*, *Linn.*—ले०। *Cashewnut*—अं०।

नोट—वृक्ष, वृक्ष का फल एवं फल की गुठली के भीतर की गिरी तीनों काजू संज्ञा द्वारा अभिधानित होते हैं। यूनानी निधंतुओं में से केवल अर्वाचीन मुहीत और खजाइन में काजू नाम से इसका वर्णन मिलता है। मुहीत के अनुसार यह काजूफल नाम से भी प्रसिद्ध है।

वर्णन—एक पेड़ जो मदरास, चटगांव और टनासरिम आदि स्थानों अर्थात् भारतवर्ष के दक्षिणी भागों के जंगलों में होता है। पेड़ की ऊँचाई ३० से ४० फुट तक होती है। इसके पत्ते कटहल और खिरनी के पत्तों की तरह होते हैं। इससे पीला वा ललाई लिये एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह जल में पूर्णतया नहीं घुलता। प्रथम पेड़ की डाली में से चार अंगुल की टोपी निकलती है। उसके बाद उसमें गावदुमी फल लगता है जिसकी पेंदी चौड़ी और नतोदर होती है और सिर पतला एवं बेनोक का होता है। फलत्वक् अत्यंत पतला वा नाजुक होता है। उनमें किसी का रंग श्यामता लिये रक्त और किसी का ललाई लिये पीत होता है। गंध तीव्र होती है और हीक मारती है। गिरी तन्तुशून्य होती है और स्वाद में किंचित् कषाय और अम्लतायुक्त मधुर होता है और उससे मुख एवं जिह्वा में खराश पड़ जाती है। फल ग्रीष्म ऋतु में पकता है। फल के तले से दो रंगें दो रेखाओं की भाँति पैदा होती हैं। उक्त दोनों के मध्य में दो बीज बँधते हैं जिनकी आकृति वृक्क की तरह होती है। अत्यंत महीन छिलकों के भीतर सफ़ेद मींगी होती है। यही काजू है। यह चिकना, सुस्वादु और स्वाद में मीठा होता है। यह स्वादिष्ट होता है और स्वाद में बादाम से कम नहीं होता है। किंतु थोड़ी सी हीक अवश्य मारता है। मींगी को आग में भूनकर खाते हैं। काजूफल, काजू, गुली और काजू आदि संज्ञाओं का व्यवहार इसी के लिये होता है। इसे ही काजू के फल का बीज समझना चाहिये। इसकी गिरी को दवाने से हलका पीला तेल निकलता है जो प्रत्येक भाँति बादाम तैलवत् होता है। इसके २॥ सेरज मा में से सेर भर तेल निकलता है। इसके छिलकों में से

भी एक प्रकार का तेल निकलता है। यह रंग में काला और स्वाद में कड़ुआ होता है। इसे शरीर पर लगाने से फफोला उठ आता है। इसे लकड़ी आदि में चुपड़ देने से वा पुस्तकों की जिल्दों में लगा देने से दीमकों का डर नहीं रहता। सौ तोले छिलकों में से २९ तो० ६ मा० तेल निकलता है। यह तेजाब की तरह तेज है।

प्रकृति—उष्ण एवं तर। **हानिकर्ता**—उष्ण प्रकृति वालों के रक्त में दाह उत्पन्न करता है और पित्तकारक है।

दर्पण—खट्टा अनार और सिकंजीबीन।

गुणधर्म तथा प्रयोग—काजू (गिरी) वृंहण, शरीर स्थौल्यकर, हृद्य, मनोल्लासकारी, शुक्रल और कामोद्दीपक है। यह वृक्क, स्मृति और मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता और मेधाजनक एवं बुद्धिवर्द्धक है। इसे नीहार खाकर ऊपर से थोड़ा शहद चाटने से विस्मृति रोग का नाश होता है। शीतल एवं तर प्रकृति के लिये भिलावे से कम नहीं है। (मुहीत)

अनुभूत चिकित्सा-सागर—में लिखा है—कदर (गट्टा) और शरीर पर के मस्से एवं फोड़ों को जलाने के लिये छिलकों का तेल लगाते हैं। इसका तेल लगाने से उक्त स्थल लाल पड़ जाता है या वहाँ छाला पड़ जाता है। इसकी गिरी खाने से दंतमूलगत शूल आराम हो जाता है। इसके फल का शुद्ध रस शोथजन्य वेदना को निवारण करता है। तेल लगाने से कुष्ठजनित त्वक्-शून्यता मिटती है। इसके छिलकों को सिरके में भिगोकर उनका तेल निकालकर बिवाई पर लगाना चाहिये। फिरंगजनित कुष्ठ वा लाल चट्टों को मिटाने के लिये यह तेल लगाया जाता है। इसकी मींगी का मुरब्बा भी बनाते हैं।

यद्यपि काशूनट अंगरेजी में काजू को ही कहते हैं जिसका ऊपर वर्णन किया गया है, तथापि खजाइन में उक्त नाम से इसका पृथक् उल्लेख किया गया है। उसमें लिखा है—एक अमरीकन वृक्ष है। इसका फल नारंगी के बराबर होता है जिससे एक प्रकार का प्रदाहजनक अर्क निकलता है जिससे शराब भी बनती है। फल को खाते भी हैं। फल के सिरे पर एक टोपी सी होती है। इसके ऊपर का छिलका कड़ा होता है। छिलके और बीज के मध्य से एक प्रकार का तेल निकलता है। यह प्रदाहकारी होता है। डॉक्टर स्टयुवर्ट ने कलकत्ते के कुष्ठ-चिकित्सालय में इसके तेल को शिवत्र के घबों पर लगाया, इससे धीरे-धीरे उनकी रंगत बदलकर त्वचा पूर्व अवस्था पर आ गई। डाक्टर साहब ने पथ्यादि और शरीर की स्वच्छता आदि की पूरी व्यवस्था की थी। वक्तव्य—इसका स्वाद किञ्चित् कषाययुक्त होता है। काली मिर्च नमकयुक्त घृत के साथ मर्जित कर खाने से अत्यन्त सुस्वादिष्ट हो जाता है।

काजूकी गुठली—[द०] काजू के बीज । दे० 'काजू' ।

कजूगुली—[म०] काजू । दे० 'काजू' ।

काजूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक क्षुप जिसे महाराष्ट्र आदि देश में "जावी" कहते हैं । (२) इसका फल । काजूफल । दे० "काजू" ।

काजूतक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काजूफल । दे० "काजू" ।

काजूथाई तुम्बड़—[म०] छोटी कुलफा ।

(*Trichodesma indicum*, Br.)

काजून—[अ०] अपस्मार । मृगी ।

काजूफल—संज्ञा पुं० दे० "काजू" ।

काजूरी—[गोवा] खेतपापड़ा, पित्तपापड़ा ।

काजनीस—[मल०] भांगरा । भुंगराज ।

काञ्जकु—दे० परिशिष्ट में ।

काञ्जोलीन—दे० परिशिष्ट में ।

काञ्जोस्टिमारेलीमोसम—[ले० *Cosmostigma racemosum*] गारफूल (बम्ब०) ।

काञ्जा—[बम्ब०] कुचला ।

काञ्जन—दे० परिशिष्ट में ।

काञ्चज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचलवण । काचिया नोन । (वै० निघ०) ।

काञ्चन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सुवर्ण । सोना । (सु० शा० १० अ० ६८) । (२) नागपुष्प । नागकेसर । (रा० नि०) । (३) पद्मकेसर । कमल केशर (मे० नत्रिक) । (४) चंपक । चंपा । (ध० नि०) । (५) पुष्पागपुष्प । सुलताना चंपा । (६) गूलर । (७) धतूरा । (८) कचनार । (९) हरिताल । (१०) रत्न । संज्ञा पुं० [बम्ब०] (१) कचनार । (२) दहन । (मेमो०) । (३) कञ्ज (हि०) । (मेमो०) । दे० 'काञ्चनफल' ।

काञ्चनक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हरिताल, हड़ताल । (२) पद्मकेसर । (रा० नि०) । (३) धान्य विशेष एक धान । (४) कचनार ।

काञ्चन कदली—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] सुवर्ण कदली । सोनकेला । चंपा केला । (रा० नि०) ।

काञ्चनकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शतमूली । सतावर ।

काञ्चन गुड़ि (टि) का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गलगण्ड अधिकारोक्त इस नामका एक योग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—त्रिफला ३ तोला, त्रिकुटा ६ तोला, रक्त काञ्चन (लाल कचनार) की छाल १२ तोला और सबके बराबर गुग्गुलु डालकर गोली बनाने से यह औषध प्रस्तुत होता है । गुण—इसके सेवन से गण्डमाला और गलगण्ड रोग आराम हो जाता है । (रसरत्नाकर) । भ्रैषज्य रत्नावली के श्लोपद एवं गलगण्ड चिकित्सा प्रकरण में भी कुछ भेद से यह योग दिया है ।

काञ्चनगैरिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुवर्ण-गैरिक । सोना-गेरु । (च० चि० अ० २०, ३२; सु० उ० तं० ४४, २१; सि० यो० हिवका-श्वास चि० 'तिक्ता काञ्चन गैरिकम्') ।

काञ्चनद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचनार ।

काञ्चन द्वंद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दोनों कचनार (श्वेत और पीत) । (ध० नि०) ।

काञ्चन पत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण मुषली ।

काञ्चन पुष्पक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आहुल्य नामक क्षुप । (रा० नि० व० ४) । दे० 'तरवड़' ।

काञ्चन पुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीत जाती । पीली चमेली ।

काञ्चन पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गणिकारी । गनियार । (रा० नि० व० १०) ।

काञ्चनफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जंगली काली मिर्च । दहन । अन्य पर्याय—(बं०) काड टोडली, (बम्ब०)—लिमडी, (नैपा०) मेइङ्गार, (ते०) कोण्ड-काशिन्दा, (ता०) मिलकर नै, (कना०) काडहाकुरै, (मल०) काड़ (र), (को०)—गलायि, (सि०) कडुर-मिरिस । (ला०) टोडेलिआ एक्जुलेटा (*Toddalia-Aculata*) टोडेलिआ एसिआटिका (*T. Aciatica*) टोडेलिआ रुबिकेलिस (*T. Rubicaulis*) टोडेलिआ-नाइटिडा (*T. Nitida*) वर्ग—नाग रंगदि (*Rutaceae*) ।

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वत के निम्न भागों में, भूटान तथा दक्षिण-पश्चिम भारत इत्यादि ।

परिचय—एक प्रकार की लता है जो वृक्षों पर फैला करती है ।

उपयोगी अंग—छाल, निर्यास, पत्र, मूल, फल ।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में निर्यास, उत्पत तैल तथा तिक्त सत्व जिस को 'बर्वरीन' (*Berberine*) कहते हैं प्राप्त होता है । वाष्पयंत्र द्वारा परिष्कृत करने से इसके पत्तियों से एक प्रकार का प्रियगन्धी निम्बूक तैलवत् तैल निकलता है । तथा उक्त तेल में सिट्रोनेल्ला ऐल्दीहाइड (*Citronella-aldehyde*) होता है । नूतन मूल त्वचा तथा पञ्चांग में तीक्ष्णगन्धी तैल होता है ।

गुण-कर्म—उत्तेजक, बलवर्धक, वातघ्न, स्वेदन तथा, पर्याय ज्वर नाशक है । उपयोग—इसके उपयोग से—अतिसार, निर्बलता, ज्वर पश्चात् की दुर्बलता तथा अन्य रोग जन्य दुर्बलता का नाश होता है । इसके अतिरिक्त पर्वती ज्वरों में जो जलवायु तथा मशकादि के विषों से उत्पन्न होते हैं हितकर हैं । मलेरिया ज्वर में इसकी त्वचा का क्वाथ अत्यन्त उपकारी है । इसकी परीक्षा अनेक मलेरिया पीड़ित रोगियों पर की गई है (मद्रास सार्वजनिक सरकारी चिकित्सालय) (*Indian Drugs Report Madras*) क्विनीन से भी अधिक प्रभावात्मक औषध है । पत्र—

इसकी पत्तियों का क्वाथ भी विषम ज्वरों में हितकर है। हरी पत्तियों का शाक सेवन करने से यकृत शूल का नाश होता है। **फल**—अपक्वफल तथा मूल त्वचा को ग्रहण कर तेल में पकाकर अभ्यंग करने से सन्धिवात का शीघ्र नाश होता है।

मात्रा—छाल १ भाग, जल २० भाग। ३ से १० तो०। **अरिष्ट**—२ में १० भा० १ से २ ड्राम। **फल सत्व**—३ से १ ड्राम उक्त रोगों में। (इ० मे० मे०)।

काञ्चनफूलरगाछ—[वं०] कचनार का पेड़। काञ्चनवृक्ष। **काञ्चनभू**—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] स्वर्ण रेणु। सोने का बुरादा।

काञ्चनभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वर्ण गैरिक, सोन गेरू। (वै० निघ०)।

काञ्चन माक्षिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वर्ण माक्षिक। सोनामाखी।

काञ्चनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कचनार के पेड़ की पंक्ति।

काञ्चनमिर्व—संज्ञा स्त्री० (हि०) दे 'काञ्चन-फल'।

काञ्चनमु—संज्ञा पुं० [ते०] कनकचंपा। स्वर्ण चंपा।

काञ्चनमोहनरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुल्मरोगाधिकारोक्त एक रसयोग।

द्रव्य तथा निर्माण विधि—रससिन्दूर, ताम्रभस्म और स्वर्णभस्म समभाग लेकर दिन भर मदार एवं थूहर के दूध में घोट कर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर रखें। इसके सेवन से गुल्मरोग का नाश होता है। (रसरत्नाकर)।

काञ्चनरस—संज्ञा पुं० [संज्ञा क्ली०] एक प्रकार का हरिताल (हड़ताल)। दे० "गोदन्त"।

काञ्चनलोहरस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक रसयोग विशेष। इसका दूसरा नाम "काञ्चनमोहनरस" है। (२० यो० सा०)। दे० "काञ्चनमोहनरस"।

काञ्चनसूप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काञ्चन नामक द्विदल धान्यसाधित सूप। एक दाल। यह सरसों के तेल में कलहारकर बनाया जाता है। (वै० निघ०)।

काञ्चनक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (पर्याय) स्वर्णक्षीरी (रा० नि० व० ५)। (२) बृहत् यवतिक्ता। (सु० चि० ९ अ०), (३) कंकुष्ठ, (च० द० गुल्म० चि० 'त्रिफला काञ्चनक्षीरी')।

काञ्चनाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचनार। काञ्चनवृक्ष।

काञ्चनादि क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक क्वाथयोग। कचनार की छाल के काढ़े में सोनामक्खी का चूर्ण (भस्म) डालकर पिलाने से छिपी हुई मसूरिका (चेचक) बाहर निकल आती है। (यो० र० मसूरिका-चि०)।

काञ्चनाभ्ररस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यक्ष्माधिकारोक्त इस नाम का एक रसयोग।

द्रव्य तथा निर्माणविधि—सोने और चाँदी की भस्म, रससिन्दूर, मोती की भस्म, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म, हरीतकी (हड़), कस्तूरी और शुद्ध मैनसिल प्रत्येक २-२ तोला सब को जल में मर्दन कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनावें।

गुण तथा उपयोग—दोषानुसार अनुपान से इसके सेवन करने से अय, कास, कफपित्तरोग, विविध प्रमेह, त्रिदोष-जनित रोग तथा कफ एवं वात रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। वल एवं वीर्य की वृद्धि तथा लिंग की दृढ़ता होती है। नाना प्रकार के रोगों को नष्ट कर यह श्री एवं पुष्टि की वृद्धि करता है। इसके निर्माता श्री गहनानन्दजी हैं। (२० सा० सं०। भैष०। २० सं० यक्ष्मणि)।

काञ्चनारात्र रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

द्रव्य तथा निर्माणविधि—सोना, चाँदी, मोती, लोहा, अभ्रक, मूंगा (प्रवाल), ताँवा, वैक्रांत और वंग इनकी भस्में, रससिन्दूर, कस्तूरी, लौंग, जावित्री और इलायची (मतांतर से एलवालुक-कपित्थ) प्रत्येक २ तोला (१ कर्ष) लेकर चूर्ण बना घीकुमार, भाँगरा तथा बकरी का दूध, इनमें से प्रत्येक की तीन-तीन भावना (तीन दिन घोटकर) देकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनायें। यह रस भी दोषानुसार अनुपान से सर्व रोगों को दूर करता है। इसके सेवन से कास-श्वास, यक्ष्मा, सर्वत्रिदोषकृत रोग, सर्व प्रमेह तथा अन्यान्य विविध व्याधियों का नाश होता है। (२० सा० सं०। भैष०)।

काञ्चनायन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रसयोग। इसे काञ्चायन रस भी कहते हैं। **द्रव्य तथा निर्माणविधि**—रससिन्दूर (मृतपारद) और गंधक (शुद्ध) बराबर-बराबर लेकर एकदिन मकोय के रस में घोटकर (मर्दन कर) गोला बनाकर अंधमूषा में रखकर एक दिन रात जंगली उपलों की अग्नि में पकायें। स्वांग शीतल होने पर इसे निकाल कर एक दिन दिव्य ओषधि (सोमलता) की पत्तियों (मतांतर से ६४ प्रकार की दिव्यौषधियों) के रस में घोट वा मर्दन कर सुखाकर अंधमूषा में रख कर पुनः उक्त विधि से पकायें। तदुपरांत उसमें समानांश स्वर्ण की उत्तम भस्म मिलाकर खरल कर रख लें। **मात्रा**—१ माशा। **व्यावहारिक मात्रा**—२-२ रत्ती। **गुण तथा उपयोग**—इसे १ वर्ष पर्यन्त घी के साथ चाटने से जरा (वृद्धता) और मृत्यु (अकाल) का नाश होता है। इसके ऊपर मकोय के रस से भावना दिया हुआ आँवले का चूर्ण १ तोला मधु के साथ खाने से इस रसका शरीर में भली भाँति कामण होता है। (२० यो० सा०; २० र०; २० खे० २३ उप०)।

काञ्चनायस रस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक रस योग—हेमायसम्। **द्रव्य तथा निर्माणविधि**—द्राक्षा, अर्जुन की

छाल, कौंच के बीज, पीपल, बला, कचूर, राजयक्ष्मनाशक गणों से भस्म किया हुआ लोह और सुवर्ण भस्म—इन्हें समान भाग लेकर प्रत्येक के बराबर चीनी मिलाकर यह उसी प्रकार समय और बल को देखकर उचित मात्रा में देने से उपद्रव सहित राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। जैसे अपनी सेवा करने वालों के पापों को ईश्वर नष्ट करता है। (२० यो० सा०)।

काञ्चनार (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रक्तकाञ्चन-वृक्ष। कोविदार। काञ्चनार। लाल कचनार। (ध० नि०)। (२) पीतकाञ्चनवृक्ष। कोविदार, काञ्चनारक। पीला कचनार। (रा० नि०)। (३) श्वेत काञ्चन। सफेद कचनार। दे० “कचनार”। (४) दहन (Toddalia aculeata)। (डी० १ भ० २६० पृ०)। दे० काञ्चन फल।

काञ्चनार क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक क्वाथ योग। कचनार और खैरकी छाल का काढ़ा प्रातःकाल मुख में धारण करने से यदि जिह्वा फट गई हो तो उसमें लाभ होता है। (वृ० नि० २० मुख-रोगचि०)।

काञ्चनार गुग्गुलु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कचनार का एक गुग्गुलु योग। द्रव्य तथा निर्माण विधि—कचनार की छाल १० पल, त्रिफला ६ पल, त्रिकुटा ३ पल, बरना की छाल १ पल, इलायची, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक १-१ कर्ष सब को एकत्र चूर्ण करें और सब चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुलु मिला कर कूट कर १-१ टंक (४—४ मा०) की गोलियाँ बनायें। गुण तथा उपयोग—इसे मुण्डी, खैरसार या हड़ के काढ़े अथवा गर्म पानी के साथ सेवन करने से भयंकर गण्डमाला, अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, घाव, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर का नाश होता है। (वृ० नि० २० गण्ड मा०)। (२) गण्डमाला में प्रयुक्त इस नाम का एक गुग्गुलु योग। द्रव्य तथा निर्माण विधि—कचनार की छाल ५ पल, सोंठ, मिर्च, पीपर (त्रिकटु) प्रत्येक १ पल, हड़, बहेड़ा, आमला (त्रिफला) चूर्ण प्रत्येक आध-आध पल, बरना की छाल का चूर्ण १० माशा, तज, तेजपात और इलायची का चूर्ण प्रत्येक १ तोला, समस्त चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुलु—सब को एकत्र मर्दन कर रखें। मात्रा—६ माशा। गुण तथा उपयोग—इसे प्रातःकाल सेवन करने से उग्र गलगण्ड, अपची, अर्बुद, ग्रन्थि व्रण, कुष्ठ, प्रमेह और भगन्दर का नाश होता है। अनुपान—गोरखमुण्डी, खदिरसार वा हड़ का काढ़ा। (भा० म० खं० गलगण्ड चि०)।

काञ्चनारदिक्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक क्वाथ योग। कचनार की छाल के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर अथवा बरना की छाल के काढ़े में मधु मिला कर पीने से गण्डमाला का नाश होता है। (शार्ङ्ग० खं० २ अ० २)।

काञ्चनार्करस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रस योग—

जावित्री, अकरकरा, लौंग और पीपल प्रत्येक १-१ शाण, उड़ाया हुआ कपूर १ तोला, मिर्च १ शाण, सोंठ २ पल—इन सब के बराबर ताम्र और सुवर्ण की भस्म, सब को भली भाँति मिलाकर रख लेवें। मात्रा—२ माशा। गुण तथा उपयोग—इसे २ माशा चीनी अथवा मधु और दूध के साथ सेवन करने से कास, अर्श, अग्निमान्द्य, श्वास, गुल्म, अरुचि, क्षय, ज्वर, प्लीहा, उदर रोग, अतिसार, उलटी (वमन) और संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। (२० यो० सा०)।

काञ्चनाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोविदार। श्वेत काञ्चन। सफेद कचनार। (वै० निघ०)। (२) आरम्बध वृक्ष। अमलतास।

काञ्चनाह्वय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नागकेशर वृक्ष। (अम०)। (२) पद्मकेशर। कमलकेशर (वै० निघ०)।

काञ्चनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गणिकारी-पुष्प वृक्ष। यह कोंकण में प्रसिद्ध है। (सं० नि० व० शा०)।

काञ्चनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हरिद्रा। हल्दी। (मे०; वै० निघ० अर्श-चि०)। (२) गोरोचन, गोलोचन। (रा० नि० व० १२)। (३) एक प्रकार की क्षीरिणी। सर्वक्षीरी। (ध० नि०)। स्वर्णक्षीरी। (रा० नि० व० ५, २३। २० का० धे०)।

काञ्चनीया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हरिताल। (वृ० चि०)। (२) गोरोचन। (रा० नि० व० १२)।

काञ्चल वृक्ष } —संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सज्जी बूटी (सं० काञ्च वृक्ष } नि० शा० व०)।

काञ्चायन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “काञ्चनायन रस”।

काञ्चि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रसना। करधनी। (उणा०)।

काञ्चिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काञ्जिक। काँजी। (हे० च०)।

काञ्चिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कचनार। (२) हरिद्रा। हल्दी।

काञ्ची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मेखला। करधनी। क्षुद्र घंटिका। काञ्ची कल्प। (अम०)। (२) गुञ्जा, घुंघची। (हे० च०)। दे० “कांची”।

काञ्चीपद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करधनी बाँधने की जगह। कमर। जघनदेश। काञ्ची, गुह्यस्थान।

काञ्जल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सज्जी बूटी। (सं० नि० व० शा०)। दे० “सज्जी”।

काञ्जिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धान्याम्ल। काँजी। (ध० नि०। रा० नि० १५ अ०)। दे० “काँजी”। (२) चावल का माँड़ जो बहुत दिन रहने से अम्ल हो गया हो। पचुई।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलमाष। काँजी। (रा० नि०)।

काञ्जिक वटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का खाद्य द्रव्य। काँजी का बड़ा। द्रव्य तथा निर्वाण विधि—मिट्टी का एक नया घड़ा कड़वा तेल लगा निर्मल जल से भरते हैं। पुनः उसमें राई, सरसों, जीरा, नमक, भुनी हींग, सोंठ और हलदी इनका यथाप्रमाण चूर्ण मिला कर और साथ ही कुछ बड़े भिगो तीन दिन तक मुख बाँध रख छोड़ते हैं। यह बड़े जव खट्टे पड़ जाते हैं, तब “काञ्जिक वटक” कहलाते हैं। यह रुचिकारक, कफकारक, तथा शूल, अजीर्ण, दाह एवं वायुनाशक है। नेत्र रोगियों को इसका सेवन वर्जित है। (भा० पू० कृतान्न व०)।

काञ्जिक षट्पदलघुत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का औषधि सिद्ध घी। यथा—गाय का घी ४ शरावक (१ प्रस्थ) और काँजी १६ शरावक (सेर) में हींग, सोंठ, पीपल, मिर्च, चव्य तथा सेंधा नमक प्रत्येक १ पल—इनका कल्क एकत्र पका कर घीमात्र शेष रहने पर उतार कर घी छान कर रखें। यह आमवात में लाभकारी है। (चक्रपाणिदत्त)।

काञ्जिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) काञ्जिक। काँजी। (रा० नि० १५ व०)। (२) जीवन्ती। (रा० नि० ३ व०)। (३) पलाशी। (रा० नि० ३ व०)।

काञ्जितैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की काँजी। राई का तेल मिली काँजी, इसे मलने से वात की वृद्धि होती, दाह उठता, गात्र शिथिल पड़ता और केश पकने लगता है। किंतु खाने में कोई दोष नहीं। (राज० नि० व० १५)।

काञ्जिपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णदन्ती क्षुप। काली दन्ती। (रा० मा०)।

काञ्जिबार—संज्ञा पुं० [कना०] कुचला। कारस्कर।

काञ्जिरक-कुरु—संज्ञा पुं० [मल०] कुचला। कारस्कर।

काञ्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाद्रोण पुष्पी।

कोबर। (२) काञ्जिक। काँजी। (३) भार्गी।

काञ्जीक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काञ्जिक। काँजी। (अ० टी० भ०)।

काट—संज्ञा पुं० [सन्ताल] कुरुरबीचा।

काट अरली—[म०] वनस्पति विशेष।

काट आँवला—संज्ञा पुं० [म०] लवली। हरफारेवडी।

काटक रोहिणी—[ते०] कुटकी।

काट कला—संज्ञा पुं० [व०] जंगली केला। काठ कदली।

काट कुम्बल—संज्ञा पुं० [कना०] पिण्डार। पिंडार। भिलौस।

काट केला—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठकदली] काठकेला।

काँटन—पुं० [अं०] कपास।

काँटन प्लाण्ट—संज्ञा पुं० [अं०] कपास। कपास का क्षुप।

काँटन रुट—संज्ञा पुं० [अं०] कपास की जड़।

काँटन रुट-वार्क—संज्ञा पुं० [अं०] कपास की जड़ की छाल।

काँटन वूल—संज्ञा [अं०] धुनी हुई कपास की रूई जो व्रण बंधन आदि में प्रयुक्त होती है।

काँटन सीड—संज्ञा पुं० [अं०] विनीला।

काट प्लास्टर—संज्ञा पुं० प्रस्तर भेद।

काटमण्डू—संज्ञा पुं० [पं०] छोटा कुलफा। गावजवाँ (सिंध) *Trichodesma Indicus*.

काटमरा—संज्ञा पुं० [ता०] चिरौंजी का वृक्ष। चार। प्रियाल।

काटशोरंगी—संज्ञा पुं० [ता०] वन मूँग। अडवी मूँग (ते०) *Armocarpus sennoides*.

काँटरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] अग्नि दग्ध कर्म।

काटला—दे० परिशिष्ट में।

काटविष—संज्ञा पुं० [पं०] मीठा जहर।

काटसानूर—संज्ञा पुं० [द०] सेमल। काँटा सेमर। शात्मलि वृक्ष।

काट सिरिस—संज्ञा पुं० [अवध] (हि०) धोबिन।

काटि—[मल०] सिरका। शुक्त।

काटिकारम्—[मल०] काडीखार।

काटि खण्ड—संज्ञा पुं० [सं०] सिरका की जवारिश।

काटुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कटुता।

काटु अलण्डु—संज्ञा पुं० [ता०] माषपर्णी। वन माष। वन उड़द।

काटु तिप्पिलि—संज्ञा स्त्री० [मल०] पीपलामूल।

काटु नीरुरी—संज्ञा स्त्री० [मल०] (१) पानजोली, (२) कमूनी। (इ० मे० मे०)।

काटुपटल कायि—संज्ञा पुं० [मल०, तु०] (१) जंगली चिंचिडा। (२) कड़ुआ परवल। कटु पटोल।

काटु मल्लिक—संज्ञा पुं० [मल०] मालती। वन मल्लिका। प्रिया। इ० मे० मे०।

काटुमल्लिगे—संज्ञा पुं० [ता०] मालती। वनमल्लिका। (इ० मे० मे०)।

काटुमा—संज्ञा पुं० [ता०] अमड़ा। अम्वाड़ा। आम्नातक।

काटुरम्—संज्ञा पुं० [मल०] कंधी।

काटेचुबक—संज्ञा पुं० [मल०] ऊँटकटारा। उष्ट्रकण्टक।

काटेडेभुर्णी—संज्ञा पुं० [को०] तेन। तिनदुक।

काटे पुबण—[को०] एक छोटा सा झाड़ीदार वृक्ष जिसके पत्तों के इधर-उधर गाँठों पर दो-दो काँटे होते हैं इसके पत्ते काजरया (सर्प विशेष) के जहर को उतार देते हैं। इसके टुकड़े दातून करने के काम में आते हैं। पर्या०—(हि०) दल्ये; (हिमालय) रिथौल; (काठे-डाड) टुमरी; (गु०) शीणवी; (गोवा) परयो; (ता०) वरफुलु; (ते०) तेल्ल पुल्लुडु; (क०) करिय हुली मल

पेरिकलाबु; (ले०) फ्लुगिया माइक्रोकार्पा (*Flueggia micro-carpa*) । (सं० नि० व० शा०) ।
 काटे मगौरो—संज्ञा पुं० [म०] बेला । मोगरा । जसमिन,
 काटे माट—संज्ञा पुं० [द०] काँटादार चौलाई । खारदार
 चौलाई । जंगली चौलाई ।
 काँटोनिआस्टरनुमुलेरिया—[ले० *Cotoneaster num-
 mularia*] शीरखिस्त । सियाह चोव ।
 काट्टु एलुमिच्चै—संज्ञा पुं० [ता०] अरण्य जम्भीर, जंगली
 जम्भीरी ।
 काट्टु कस्तूरी—संज्ञा पुं० [म०] मुस्कदाना । कर्पूर भिण्डी ।
 काट्टु बोग्गु—संज्ञा पुं० [ते०] लकड़ी का कोयला ।
 काट्टा मणक्कु—संज्ञा पुं० [ता०] बाघ रेंड । बाघ भेरंड ।
 व्याघ्रैरण्ड ।
 इसका बीज प्रवल वामक तथा रेचक है । (डीमक) ।
 काट्टा वणक्कु—संज्ञा पुं० [म०] जंगली एरण्ड । (मो० श०) ।
 काट्टु रिप्प—संज्ञा पुं० [म०] जंगली महुआ । वन मधुक ।
 (मो० श०) ।
 काट्टीन्त—संज्ञा पुं० [म०] जंगली खजूर ।
 काट्टु अलन्द—संज्ञा पुं० [ता०] माषपर्णी । वन उड़द ।
 (डीमक) ।
 काट्टु इरकी—संज्ञा स्त्री० [सि०] दे० परिशिष्ट में ।
 काट्टु ईरुप्पै—संज्ञा पुं० ता० जंगली महुआ । वन मधुक ।
 काट्टु इलुप्पै—[ता०] जंगली महुआ । डी० । बहेड़ा (इ०
 मे० मे०) ।
 काट्टु एलुमिच्चम-भरम्—संज्ञा पुं० [म०] वन जम्भीर ।
 काट्टु कटुक—संज्ञा पुं० [म०] जंगली हुरहुर ।
 कटुक कस्तूरी—संज्ञा पुं० [ता०] अटवी जम्बीर ।
 मुस्कदाना । मो० श० ।
 काट्टु कडलै—संज्ञा पुं० [ता०] खुवाजी ।
 काट्टु कडुगु—संज्ञा पुं० [ता०] जंगली हुरहुर ।
 काट्टु कडुगु तौलि—संज्ञा पुं० [म०] दालचीनी ।
 काट्टु करुवा पट्टे—संज्ञा पुं० [ता०] दालचीनी ।
 काट्टु करुवाय पट्टे—संज्ञा पुं० जंगली दारचीनी ।
 काट्टु कस्तूरी—संज्ञा पुं० [म०] मुस्कदाना । लताकस्तूरी ।
 काट्टु कूरक्करु—संज्ञा पुं० [म०] सीताकी पंजीरी ।
 (मो० श०) ।
 काट्टुक कोडि—संज्ञा पुं० [ता०] जलजमनी । छिरेटा । पानी
 जमा । गरुडवेल । (मो० श०; डी०) ।
 काट्टुक कोल—संज्ञा पुं० [ता०] चाकसू । (मो० श०; डी०) ।
 काट्टु जातिक्काय—संज्ञा पुं० [म०] जायफल । जातिफल ।
 (मो० श०) ।
 काट्टु जादिक्काय—संज्ञा पुं० [ता०] जायफल । जाति-
 फल । (मो० श०) ।
 काट्टु जीरकम्—संज्ञा पुं० [म०] जीरा । जीरक । (मो०

श०) ।
 काट्टु तुम्ब्री—संज्ञा स्त्री [म०] कडुई तुम्ब्री ।
 काट्टु तुत्तवरे—संज्ञा पुं० [म०] दौना । रामतुलसी
 (*Ocimum gratissimum*)
 काट्टु तुमट्टि—संज्ञा स्त्री० [ता०] जंगली इन्द्रायन ।
 काट्टु थिप्पली—संज्ञा स्त्री० [ता०] पिप्पली ।
 काट्टु-निम्ब्रेगिडा—संज्ञा पुं० [म०] जंगली जम्भीरी । वन
 जम्भीर ।
 काट्टु निरुरी—संज्ञा स्त्री० [म०] पानजोली (डीमक) ।
 काट्टु नेरिञ्जल—संज्ञा पुं० [म०] बड़ा गोखरू ।
 (डीमक) ।
 काट्टु नेरिञ्जिल—संज्ञा पुं० [म०] बड़ा गोखरू । (मो०
 श०) ।
 काट्टु पटोलम्—[म०] जंगली चिचिडा ।
 काट्टु पायरन—संज्ञा पुं० [म०] दे० परिशिष्ट मे० ।
 काट्टु पुगैयिलै—संज्ञा पुं० [कना०] }
 काट्टु पुगयिल—[म०] } देवनल ।
 (*Lobelia nicotianæfolia*)
 काट्टु पैपुडल—संज्ञा पुं० [ता०] जंगली चिचिडा । (मो०
 श०) ।
 वन पटोल । जंगली पटोल ।
 काट्टु-पोपिल्लय—संज्ञा पुं० [ता०] धवला (म० बम्ब०) ।
 (*Lobelia nicotianæ Folia*) ।
 काट्टु मञ्जल—[म०] वन हरिद्रा । जंगली हलदी ।
 काट्टु-मणक्कु—संज्ञा पुं० (ता०) बाघ भेरण्ड ।
 कटु-मञ्जल—संज्ञा पुं० [म०] अम्बा हलदी ।
 काट्टु-मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [म०] वन मालती ।
 काट्टु-मुलंगि—संज्ञा स्त्री० [ता०] कुकरौंधा । (डीमक) ।
 दीवारी मूली ।
 काट्टुयैलक्काय—संज्ञा पुं० [ता०] बड़ी इलायची । (मो०
 श०) ।
 काट्टु-राञ्जि—संज्ञा पुं० [म०] सिरिस भेद ।
 (*Albizia Stipulata*) (चो०) ।
 काट्टु-रामतुलसी—संज्ञा स्त्री० [म०] ग्राम्य तुलसी
 भरभरी (सन्ताल) । दे० तुलसी (इं० मे० मे०) ।
 काट्टु रोहिणी—संज्ञा स्त्री० [ता०] कुटकी ।
 काट्टुल्लि—संज्ञा स्त्री० [म०] काँदा । कनरी । जंगली
 प्याज । (मो० श०) । वनपलाण्डु ।
 काट्टु-वण्डैक्काय—संज्ञा पुं० [ता०] मुस्कदाना । लता
 कस्तूरी ।
 काट्टु-वल्लि—संज्ञा स्त्री० [म०] कलगु (चो०) ।
 काट्टु-वलरी—संज्ञा स्त्री० [म०] कटुवल्ली ।
 (*Canavalia ensiformis, Dc.*) (चो०) ।
 काट्टु-वागै—संज्ञा पुं० [ता०] सिरिस का वृक्ष । बाँसा ।

काट्टु-वेन्तियम्—संज्ञा पुं० [मल०] गुलशकरी। दे० 'गंगेरु'।
 काट्टु-वेल-वंगायम्—संज्ञा पुं० [ता०] काँदा। जंगली प्याज।
 काट्टेल्लु—संज्ञा पुं० [म०] रामतिल। परवतिया तिल्ली
 (Guizotia abyssynica, Cass) (चौ०)।
 काठ—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ] (१) लकड़ी।
 काष्ठ। (२) आमला। (३) गंगेरुआ। (४) आलू,
 काठालू। (५) केला, कठकेला।
 [सं०] पत्थर। पाषाण। प्रस्तर। (त्रिका०)।
 काठ आमला—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठात्मलक] प्राचीन
 आमलक।
 काठ गिधरो—संज्ञा पुं० [गु० सि०] वनस्पति विशेष।
 काठ गूलर—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठोदुम्बर] (१) कठ-
 गूलर। कठूमर। (२) भुईं गूलर। दे० 'गूलर'।
 काठ ठोकरा—संज्ञा पुं० (हि०) कठवडई, काठफोरा पक्षी।
 काठनीम—संज्ञा पुं० [हि० काठ+नीम] गंधेल वृक्ष।
 काठबेर—संज्ञा पुं० "घूँट" (वृक्ष)। दे० 'ककोर'।
 काठबेल—संज्ञा स्त्री० [हि० काठ+बेल] इन्द्रायन की तरह
 की एक बेल। कारित।
 काठमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ+मल्लिका] जंगली
 मालती। काष्ठमल्लिका लता। (प० मु०)।
 काठमाण्ड—संज्ञा पुं०। छोटा कुलफा। गावजुवाँ (सिंध)।
 काठसेली—संज्ञा पुं० [म०] कटसरैया। सैरेयक। पियावाँसा।
 काठिक प्रन्त्य सरितका—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०) उक्त
 नाम का सलकस (Sulcus) विशेष। (अ० शा०)।
 काठिक लम्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।
 (अ० शा०)।
 काठिन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खजूर। खज्जूर वृक्ष।
 काठिन्यज प्रकोप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काठिन्य अर्थात्
 दोषों के संचय या घनत्व से उत्पन्न हुआ दोषप्रकोप।
 चय-प्रकोप।
 काठिन्य फल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ, कपित्थ। (रा०
 नि० व० ११)।
 काठी—संज्ञा स्त्री० [कश०] गोरकटरी।
 काठी कस्तूरी—संज्ञा पुं० [बं०] मुश्कदाना। कपूर भिण्डी।
 मुश्क भिंडी।
 काठू—संज्ञा पुं० [हि० काठ] कूट की तरह का एक पौधा
 तथा उसका दाना।
 काठू अरिथिना—संज्ञा पुं० [कुमा०] अम्बाहलदी। अरण्य
 हरिद्रा। (डी०)।
 काठोदुम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगली गूलर। कठ-
 गूलर। कठूमर। दे० 'गूलर' के अन्तर्गत।
 काठोदुम्बरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कठगूलर।
 कठूमर। काक डुमुर। (र० सा० सं० कुष्ठ-चि०)।
 काड—संज्ञा स्त्री० [अ० काँड cod fish] एक प्रकार की

मछली जिससे काँड लिह्वर ऑयल (मत्स्य तैल विशेष)
 प्राप्त होता है।
 काड-उद्ध (उड्द)—संज्ञा पुं० [कना०] माषवर्णी। वन
 उड्दी। (डी०)।
 काड-एरडी—संज्ञा स्त्री० [को०] जंगली एरंड।
 काड-एल्लु—संज्ञा पुं० [कना०] काला तिल। राम तिल।
 परवतिया तिल्ली। (इ० मे० मे०)।
 काडकचाल—संज्ञा पुं० [तु०] ककोड़ा। खेखसा।
 काड-काय—संज्ञा पुं० [ता०]। दे० परिशिष्ट में।
 काड-गरुगनी—संज्ञा स्त्री० [ता०] काली कुटकी।
 काड-जेमुडु—संज्ञा पुं० [ते०] सेहुँड़। बाड़की थूहर। स्नुहि।
 दे० 'सेहुँड़'।
 काड-टोडली—संज्ञा स्त्री० [बं०] जंगली काली मिर्च।
 काञ्चन। दहन। (इ० मे० मे०)। दे० 'कांचन फल'।
 काड-तुलसी—संज्ञा स्त्री० [कना०] राम तुलसी।
 काड-धुरावान—संज्ञा पुं० [को०] देवनल। (Viobelia
 hiastinacfolia)।
 काड-नि (ने) वली—संज्ञा पुं० [म०] सेहुँड़। बाड़की थूहर।
 स्नुहि। (डी०)।
 काड-पड्डुला—संज्ञा पुं० [को०] वन पटोल। कडुआ
 परवल। तिक्त पटोल।
 काड-पोगाकु—संज्ञा पुं० [ते०] तमाकू।
 काड-बेवु—संज्ञा पुं० [कना०] कडु खजूर।
 काड-रसीना—संज्ञा पुं० [कना०] अम्बा हलदी। आम्र हरिद्रा।
 काड-लिह्वर ऑयल—[अ० Cod liver oil] काँड नाम की
 मछली के कलेजे से निकाला हुआ तेल। जीवन 'ए' के आश्रय
 द्रव्य के रूप में इसका प्रचुर उपयोग होता है। यह क्षय
 रोग की अच्छी दवा मानी जाती है। काड मत्स्य यकृत तैल।
 काड-बेर—संज्ञा पुं० [कना०] कठबेर। काष्ठ वदरी।
 दे० 'ककोर'।
 काड-हरलु—संज्ञा पुं० [कना०] जंगली रेंड। जंगली एरंडी।
 काड-हाकुकोर—संज्ञा पुं० [कना०] जंगली काली मिर्च।
 काडा-जीरगे—संज्ञा पुं० [कना०] करजीरी। काली जीरी।
 जंगली जीरा।
 काडि—संज्ञा स्त्री० [सि०, ता०, कना०] शुक्त। सिरका।
 काँजी। काञ्जिक।
 काडिक-कारम्—संज्ञा पुं० [ता०] काडीखार। शोरक।
 काडिक-कारम्—[कना०] मो० श०।
 काडिकारमु—[ते०]। दे० 'सोरा'
 काडिक पान—संज्ञा पुं० [बम्ब०] वनस्पति विशेष।
 (Tolipodium querifolium)
 काडिगे गरगे—गरगा—संज्ञा पुं० [कना०] भाँगरा। भुङ्गराज।
 (डी०—इ० मे० मे०)।
 काडिगरगा—संज्ञा पुं० [कना०] भाँगरा। भुङ्गराज। (मो० श०)।

काडिनिल्लू—संज्ञा पुं० [ते०] सिरका। शुक्ल। काँजी।
 काडिप्-तीगे—संज्ञा पुं० [ते०] अमलोलो बड़ा। गिदड़दाख।
 (मे० मो०)।
 काडीकोसोरो—संज्ञा पुं० [म०] कलमी शोरा।
 काडीटवार—संज्ञा पुं० [ते०] काडिकारम्। (मो० श०)।
 काडीखार, शोरा। दे० 'सोरा'।
 काडी-पण्डु—संज्ञा पुं० [ते०] बलसु। दे० 'कारी'।
 काडीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष विशेष (ध० नि०)।
 काडीरल्ली—संज्ञा स्त्री० [ता०] द्रव्य विशेष।
 काडी-थिरट्ट (त्त) स्—संज्ञा पुं० [ता०] पुनर्नवा। साँठ।
 ठिकरी बूटी। दे० गदहपूरना (इं० मे० मे०)।
 काडु-असिना—संज्ञा स्त्री० [कना०] अम्बा हलदी। अरण्य
 हरिद्रा।
 काडु-इन्द्रजौ—संज्ञा पुं० [म०] कडुआ इन्द्रजौ। तिक्त कुटज
 बीज। (डी०)।
 काडु-इप्पगिडा—संज्ञा पुं० [कना०] जंगली महुआ। वन
 मधूक। (मो० श०)।
 काडु-एरडि—संज्ञा स्त्री० [को०] जंगली रेंड। वन एरण्ड।
 काडु-कवथ—संज्ञा पुं० [म०] कटु-कपित्थ। दे० 'आठिल'।
 काडु-कस्तूरी—संज्ञा पुं० [कना०] मुश्कदाना। कर्पूर भिण्डी।
 (मो० श०)।
 काडु-कैपु—संज्ञा पुं० [ता०] अलडि केई (तेलिंग)।
 काडु-खजूर—संज्ञा पुं० [गु०] कटु खजूर।
 काडु-गुग्गु—संज्ञा पुं० [कना०] वन मूँग। अडवी मूँग (ते०)।
 काडु-जिरगे—संज्ञा पुं० [कना०] कलौजी। मँगरैला। (मो० श०)।
 काडु-डुद्धी—[कना०] संज्ञा स्त्री० अलावु कद्दू। कडुवी तुम्बी।
 काडु-डो (दो) रक—[म०] कडुवी तोरई। (डी०)।
 काडु-बेल्लि (ल्लु)—संज्ञा स्त्री० [कना०] काँदा। जंगली
 प्याज। वन पलाण्डु। दे० 'प्याज' में।
 काडु-मणसु—संज्ञा पुं० [कना०] जंगली काली मिर्च। दहन।
 दे० 'काञ्चनफल'।
 काडु-मल्लिगे—संज्ञा पुं० [कना०] वन मल्लिका। वन
 मालती। (मो० श०; इं० मे० मे०)।
 काडु-मुगो—संज्ञा पुं० [गु०] जंगली मूँग, मुग्दपर्णी।
 काडु-मेन्थ्या—संज्ञा पुं० [कना०] गंगेरन। गुलशकरी, नागबला।
 काडु-लिम्बे—संज्ञा पुं० [कना०] जंगली जम्बीरी। वनजम्बीर।
 काडु-सम्पिगे—संज्ञा पुं० [कना०] गुल आचीन।
 काडु-रुतरिक—संज्ञा पुं० [कना०] वनस्पति विशेष।
 काडु सिरला—संज्ञा पुं० [म०] कडुई तराई। कोषातकी।
 कृतवेधन।
 काडू—संज्ञा सं० [?] कटु चरपरा रस। कडुआ। कटु रस।
 काडे—संज्ञा पुं० [को०] चिरायता। किराइट। किरात तिक्त।
 काडे चिराईत—संज्ञा पुं० [म०] चिरायता। किरात तिक्त।
 काडेल्लु—संज्ञा पुं० [कना०] वनस्पति भेद।

काढा—संज्ञा पुं० [हि० काढ़ना] कषाय। क्वाथ। जोशाँदा।
 दे० क्वाथ।
 काण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौआ। काक। वि० [सं०]
 एक नेत्र का व्यक्ति। काना। "काणः काकैक चक्षुसि।"
 (मे० णट्टिक)।
 काण कपोत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कबूतर।
 इसका मांस सुश्रुत के अनुसार कषाय, मधुर, लवण और
 भारी होता है। (सु० सू० ४६ अ०)।
 काण भाग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तीन भाग। त्रिभाग।
 (भैष० र० कालाग्नि भैरव रसे)।
 काणर—संज्ञा पुं० [हि० सं० काण गृध्र] एक प्रकार का
 सफेद रंग का गिद्ध जो विष्ठा एवं मांस भक्षण करता है।
 काणविकाणिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० परिशिष्ट में।
 काणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकोली। (२)
 काकिनी लता। (३) पीपल। पिप्पली। (च० द०)।
 काणु (णू) क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करट पक्षी,
 बाबुई पाखी। (२) हंस भेद। (३) कुक्कुट। मुरगा।
 (४) काक। कौआ। वायस।
 काण्य—वि० [सं० त्रि०] एक नेत्रवाली स्त्री। कानी स्त्री।
 काणेर—वि० [सं० त्रि०] एक नेत्रवाली स्त्री का पुत्र।
 काण्टक तन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तन्त्री भेद।
 काण्टक रन्ध्रम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीरगत छिद्र
 विशेष। (अ० शा०)।
 काण्टकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भटा। भाँटा। वार्ताकु।
 काण्टाल—संज्ञा पुं० [वं०] कटहल। पनस।
 काण्टिक गोजिह्विकीया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी
 विशेष। कण्ठगत पेशी जो जिह्वातल में होती है। (अ०
 शा०)। (२) शिरा जो जिह्वा से कण्ठ तक जाती है।
 काण्टिक जिह्वीया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कण्ठगत
 सिरा विशेष। (अ० शा०)। वह शिरा जो कण्ठ से
 जिह्वा तक जाती है।
 काण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) तरुप्रकाण्ड। (रा०
 नि० व० २)। (२) दीर्घस्थि। लम्बी हड्डी। (३) शर।
 सरई। सरपत। (४) जल। पानी। (मे० डट्टिक)। (५)
 धान्य नाल। (हे० च०)। (६) चिरायता। किराततिक्त।
 (ध० नि०)। (७) कोयल का अंडा। कोकिलाण्ड।
 काण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काल कर्कटक। काला केकड़ा।
 (वै० निघ०)।
 काण्डकम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वालुक। (ध० नि०)।
 काण्ड कटुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करेला। कारवेल्ल।
 (रा० नि० व० ३)।
 काण्ड कण्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिरचिटा। चिचिड़ी।
 अपामार्ग क्षुप। (रा० नि० व० ४), (२) सफेद चिर-
 चिटा। श्वेत अपामार्ग। (वै० निघ०)।

काण्डक (का) ण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वेर। बदरी वृक्ष। (वै० निघ०)। (२) कासा। काश तृण। (रा० नि० व० ८)।

काण्डका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) फूट, ककड़ी। वालुकी नामक कर्कटी।

काण्डका (की) र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुपारी। पूगफल। गुवाक। (श० मा०)।

काण्डकील, काण्डकीलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोध। लोध वृक्ष। (रा० नि० व० ६; ध० नि०)।

काण्डखेट—वि० [सं० वि०] अधम। नीच।

काण्डगुड, काण्डगुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुजेना। गुण्डतृण जो जल में उगता है। (रा० नि० व० ८)। त्रिधार तृण। (वै० निघ०)।

काण्डगोचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाराच। लोहमय वाण (त्रि०)।

काण्डचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक जाति का साँप। मण्डली साँप का एक भेद जो काले रंग का होता है। इसकी पीठ पर बड़े-बड़े सफेद चिन्ह पड़े होते हैं। यह अत्यंत विषधर होता है। (वा० उ० २६ अ०)।

काण्डज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मकाई। मक्का। भुट्टा।

काण्डजात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिलोय। गुरुच। गुडूची।

काण्डणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रामदूती। सूक्ष्मपर्णी लता। (श० च०)।

काण्डतिक्त (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का चिरायता। किराततिक्त।

काण्डनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागवल्ली, रामदूती।

काण्डनील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोध। लोध वृक्ष। (रा० नि० व० ६)।

काण्डपट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिरस्करिणी। (हे० च०)।

काण्डपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्वतों में होने वाली एक प्रकार की लता है। राजकृष्ण पुष्पी।

न राज कृष्ण पुष्पी च ईषच्छत्र दला लता।

काण्डपर्णी भवेद्वल्ली कुमुदस्थल पर्वते॥

(रा० का० धे०)।

काण्डपुंखा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सरफोंका। शर-पुंखा। (रा० नि०)।

काण्डपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दौना। (बं०) राम तुलसी।

काण्ड भङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अस्थिभग्न का एक प्रकार। अस्थिकाण्डभग्न। दे० 'भग्न'। (वा० भ०)।

काण्ड भग्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अस्थिभग्न। (वा० भ०)। दे० "भग्न"।

काण्डमणि चेडिड—संज्ञा स्त्री० [म०] सर्वजया। (Canna Indica, Linn)।

काण्डमणु—संज्ञा पुं० [ता०] कामाक्षी, सर्वजया। सर्वजया (हिं०)। (इ० मे० मे०)।

काण्डमध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काण्डवल्ली। काण्डवेल। (वै० निघ०) 'हड़जोर'। दे० 'अस्थि संहार'।

काण्डमुरगारित्तम—संज्ञा पुं० [म०] हीरादोखी (चो०)। दम्मुल अखैन। खूनाखरावा। रक्तबोल।

काण्डरास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] अस्थिकाण्ड।

काण्डरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काण्डीर। (ध० नि०)।

काण्डरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी। (प० मु०)।

काण्डरोहिका, काण्डरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी।

काण्डली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रामदूती नामक तुलसी विशेष। (श०)।

काण्डव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केउआँ। केमुक कन्द। (वै० निघ०)।

काण्डवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) करेला।

कारवेल्ल। (२) हड़जोड़। काण्डवेल। दे० 'अस्थिसंहार'।

काण्डवेल—संज्ञा स्त्री० [म०, हिं०] हड़जोड़। काण्डवेल (म०)। दे० 'अस्थिसंहार'।

काण्डशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महिषवल्ली। सोम-वल्ली। भैंसावेल। (वै० निघ०)। सौम्या (ध० नि०)।

काण्डसंधि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाँस का पोरा। वंशसंधि। पर्व। पुर। (रा० नि० ७ व०)।

काण्डहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लोध। लोध वृक्ष। (वै० निघ०)।

काण्डहीन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोध। लोध। (ध० नि०, रा० नि०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नागरमोथा। भद्रमुस्तक। (श० च०)।

काण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुसली। तालमूली। (प० मु०)।

काण्डाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शस्यागार, गाड़। गोला।

काण्डाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दूब, दूर्वा।

काण्डालु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्रपुसी। ककड़ी। (रा०)।

काण्डिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पलाशी लता।

वै० निघ०। (२) आलावु। दे० 'कदू'।

काण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लंका धान्य। तेउड़ा। (रा० नि० १६ व०) करट (ध० नि०)।

काण्डिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथीसुंडी। हस्ति-शुण्डि। (प० मु०)। 'दे० नागदन्ती'।

काण्डीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कारवल्ली। काण्डरी। (च० चि० ८ अ०। ध० नि०। रा० नि०)। (२) अपा-मार्ग। चिचिड़ी। (३) तोयवल्ली। (४) महादुग्धा।

(५) अमृतसवा। (रा० नि० २३ व०)।

काण्डीरा (री)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मजीठ। मञ्जिष्ठा। (२० मा०)। (२) कारवेल्ल। करेला। (३) अमृतस्रवा, (वै० निघ०)।

काण्डूला—संज्ञा पुं० [म०] कुलू। गुलू। कुल्ली। तेवसी। दे० 'काण्डचु-रेंगो'।

काण्डेमाट—संज्ञा पुं० [द्राविड़] चौलाई। तण्डुलीय।

काण्डेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चौलाई। तण्डुलीय शाक। (भा० पू० १ भ०)।

काण्डेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाकाल लता। (२) नागदन्ती। (२० मा०)।

काण्डेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काण्डेरुहा। कुटकी। (२० मा०)। (२) वह द्रव्य जो काण्ड रूप से उत्पन्न होते हैं। यथा—इक्षु, नल, ज्वार, मकाई, अस्थि संकरी इत्यादि।

काण्डेक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्वेत इक्षु। सफेद गन्ना। ईख सफेद। (रा० नि० व० १४)। तापस इक्षु। गुण—वात कोपक है। (२) काली ईख। कृष्णक्षु। कजली-ऊख। दे० 'ईख'। (सु० सू० ३८ अ०)। (३) काश ऋण। कासा। (२० मा०)। (४) कोकिलाक्ष। तालमखाना। (च० सू० ४ अ०)।

काण्डेडेंड्रोन-टोमेन्टोसम—[ला० Condodendronto-mentosum] वनस्पति विशेष।

काण्डोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्ट्र। दे० ऊँट।

काण्डयुरेंगो—संज्ञा पुं० [अ० Condu-Rango] वृक्ष विशेष पर्याय—(सं०)—कन्दर वृक्ष। (सिन्ध) कुलु। (हि०) कुल्ली का पेड़।

परिचय—एक प्रकार का वृक्ष है जो कुलु वा कुल्ली के नाम से प्रसिद्ध है। उद्भव स्थान—भारतव के जंगलों, कोलम्बिया, दक्षिणी अमरीका के अमीकोयडू इत्यादि। इसका बाह्य भाग—झुर्रीदार तथा धूसुर होता है। निम्न भाग—पीताभ रेखाओं से युक्त एवं भूरा होता है। इसके ऊपर दाने उभड़े होते हैं। स्वाद—किञ्चित् तिक्त तथा निर्गन्ध होता है। इसके काण्ठीय खण्ड जो विक्रयार्थ औषध-विक्रेताओं के यहां मिलते हैं, प्रायः कलम की भांति होते हैं; प्रायः $\frac{1}{2}$ इंच स्थूल होते हैं। इसका भीतरी धरातल, पीताभ धूसुर, किञ्चित् तन्तुयुक्त होता है।

उपयोगी अंग—छाल, निर्यास (गोंद)।

गुण तथा उपयोग—अमरीका में सर्वप्रथम इसका उपयोग कर्कट (सरतान-व्रण विशेष) में होता था। किन्तु पर्याप्त अनुभव के पश्चात् उक्त गुण सिद्ध न हो सका। दक्षिणी अमरीका में वहां के लोग प्रायः फिरंग रोग (आतशक), रक्तष्ठीवन, व्रण, आमाशयिक विद्रधि (सरतान मिअदः) में करते थे। आधुनिक अन्वेषण से

ज्ञात हुआ है कि इसकी प्रधान क्रिया पाचक रसोत्पादक ग्रंथियों पर होती है। इसके अतिरिक्त इसका प्रभाव गतिशक्ति विनाशक रोग (लोकोमोटर टेवसी) नाम के रोग में जब किसी अन्य औषध के उपयोग से नहीं होता, तब इसके उपचार से होता है। (डा० हेल)। अथवा जब ओष्ठ के किनारे फटते हों, तब इसका उपयोग हितकर होता है।

आमाशयगत रोग—जब पाकस्थली की श्लैष्मिक कला में पुरातन प्रदाह, विद्रधि, वेदना, अग्निदग्धवत् प्रदाह, आहार-नलिका संकोच होकर वक्षोस्थि मध्य के पश्चात् भाग में निरन्तर प्रदाह तथा भोजनकालीन काल में आहार निगलने के समय कठिनता होने पर इसका उपयोग हितकर होता है। **मात्रा**—त्वक्चूर्ण भोजन करने के ठीक पूर्व जल के साथ ५ ग्रेन। एलोपैथिक **मात्रा**—१० से ३० ग्रेन। होमियोपैथिक—क्रम ०१ × विचूर्ण।

फार्मूला—टिचर ४; विचूर्ण—७। फिरंग की तृतीय अवस्था में ०, १ × तथा ३ शक्ति।

काण्डयु रेंगु वार्क—संज्ञा पुं० (अ० Condu Rango bark) दे० 'काण्डयुरेंगो'। कुलु की छाल। (सं०)—कन्दर वृक्ष त्वक।

काण्डस क्रिस्पस—संज्ञा पुं० [ला० Condruiscrispus] क्षुपविशेष।

कात—संज्ञा पुं० [फा० वं०] (१) खदिर सार। खैर। कत्था। (२) (फा०) एक प्रकार का धोया हुआ चावल जो ७ वर्ष तक फल देता है।

कातउल् मनी—वि० [अ० कातिल + मनी] प्रत्येक उष्ण तथा शुष्क औषध, जो वीर्य का शोषण करे, यथा अकरकरा, भाँग, धतूरा, अहिफेन इत्यादि। दे० 'काति-उल्मनी'।

कातक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य विशेष।

कातक—संज्ञा पुं० [अ०] दही। दधि।

कातकबूद—संज्ञा पुं० [अ०]। दे० परिशिष्ट में।

कातर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मत्स्य विशेष। (वं०)—कातला माछ। एक प्रकार की मछली जो लाल रंग की होती है। **गुण**—इसका मांस—मधुर, दीर्घपाकी तथा त्रिदोष नाशक है। (रा० नि० व० १९)। उष्ण, मधुर, गुरुपाकी तथा त्रिदोष नाशक है। (राज०) : कातला। (Cyprinus catla, Leatha Catla, Ham)।

कातर—संज्ञा पुं० [अ०] एक शफ नामक चतुष्पद। खच्चड़, अश्वतर। दे० 'खच्चड़'।

कातर—संज्ञा पुं० [लेप०] वनआम। जं० आम। (मे० मो०)।

कातर कण्डू—संज्ञा पुं० [पं०] कंडियार नामक वनस्पति।

एक प्रकार का वृक्ष विशेष। (मे० मो०)।

कातर वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वृक्ष जो खदिर तुल्य होता है। (लु० क०)।

कातरान—संज्ञा पुं० [अ०] पिक्स लिक्विड (Pix Liquid) दे० 'कतरान'।

कातरीगंद—संज्ञा पुं० [का०] कंद विशेष।

कातरः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नमाम। (२) जंगली धनियाँ। कश्मीर-सहराई। (लु० क०)।

कातल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोह मछली। दे० 'कातर'।

कातला—संज्ञा स्त्री० [सं० कातल] मोह मछली। दे० 'कातर'।

कातसअरुमा-तीकी—संज्ञा पुं० [यू०] चीरतिक्त। दे० 'चिरायता'। (लु० क०)।

कात-हिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] भारतीय कथा। खदिर।

काता नीकी—संज्ञा पुं० [यू०] कावातीकी। एक प्रकार का क्षुप, जिसके पत्ते विलायती मेहँदी (आस) के पत्तों के सदृश होते हैं। इसके दो भेद हैं—प्रथम भेद के फल मटर के समान तथा द्वितीय भेद के फल छिद्रयुक्त लाल रंग के और आकार में चना के समान होते हैं। (म० अ०)।

कातानीकी—मखन और मुहीत के मत से यूनानी भाषा का शब्द है और कावातीकी नाम से भी आया है। इसका अर्थ कफुल् उक्ताव अर्थात् गृध्रपाद होता है।

वर्णन—एक वनस्पति जिसके पत्र धुद्र आस और जैतून के पत्र की तरह होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—(१) एक का फल मटर की तरह होता है। जड़ पतली इजखिर की तरह होती है जिसमें छः सात सिरे होते हैं। सूखने पर यह टेढ़ी हो जाती है और इसका सिर नीचे की ओर झुका हुआ और आकृति में चील्ह के नख की तरह होता है। (२) दूसरे का सिर छोटे सेव की तरह और जड़ जैतून की जड़ की तरह और इसके पत्ते भी रंग और आकृति में जैतून पत्रवत्, किंतु उनसे बृहत्तर होते हैं। फल छोटा चने के बराबर लाल होता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—इस शर्त के साथ इनका पीना, कि इनके सेवनकाल में प्रेमिका और उसकी माता दोनों भी इसे पीती रहें, प्रीति उत्पादन का कारण होता है। अंताकिया के प्रदेश में मैत्री स्थिर रखने के लिए इसका सेवन करते हैं। कहते हैं कि गले में लटकाने से (ताबीज की भांति) यह प्रीति विच्छेदक है।

इसका फाड़ा हुआ रस कामला, यकृत एवं प्लीहा के अवरोधों में अतिशय गुणकारी है तथा गरमी वाले जलंधर और गरमी के रक्तज एवं पित्तज ज्वरों को अतीव गुणकारी है। (म०, मु०)।

इसका फाड़ा हुआ पानी सिकंजबीन के साथ आमाशय-बलप्रद और ज्वरघ्न है। (बु० मु०)।

काति (ते०)—वि० [अ०] छेदक। पृथक करने वाला। शल्यतन्त्र की परिभाषा के अनुसार वह यंत्र, जिसके द्वारा कोई अंग व उसका कोई भाग छेदन कर पृथक कर दिया जाए। शारीरक शास्त्र में इसका उपयोग विशेष रूप से काटने व कतरने वाले दांतों के लिए भी होता है। (अ०)—इन्सीसिव्ह (Incisive)।

कातिउल् नजीफ़—वि० [अ०] पर्याय—रक्तसावाव-रोधक। (अ०)—हाविसदम्मा। मानेआत दम्मा। वह द्रव्य जो रुधिर-साव को अवरुद्ध करे। वह औषध द्रव्य जो निज प्रभाव तथा रुक्षता के कारण—धमनी, सिरा व स्रोतसों में संकोच उत्पन्न कर व रुधिर में स्कन्दन शक्ति की वृद्धि कर रक्त के प्रवाह को रोक देवें। यथा—अञ्जन (सुरमा), फिटकिरी, जलमिश्रित गन्धकाम्ल, अंडों की सफेदी (अण्डश्वेतक), केशर, लोवान, दग्ध कागद, शैवाल (काई), कत्था, चौलाई, कहरूवा, दग्ध केकड़ा, मायाफल, अडूसा, तूतिया, याकूत, प्रवाल, हीरादोखी, सरो के बीज, धातकी पुष्प, दग्ध शुक्तिका, अभ्रक-भस्म, मुक्ता, सरेस मछली, गुलाब, संगजराहत, तेन, माई, सफेदा (नागभस्म), कंधी, मण्डूर, अञ्जवार, दग्ध स्पञ्ज, सरेस, लौह के योग, खर्बूद, गोदन्ती, अक्रा-किया, अहिफेन, पोस्ता के डोड़े (अतीस, चाकसू, गुगुल, दूर्वा, बारतंग, विशल्यकर्णी, (आया पान), कसीस, लज्जावन्ती, गुलनार, पतंग, मस्तगी, बाँदा, बलूत, गिलेरमनी, गूलर, अशोक की छाल, अनार के फलों की छाल, बरगद की छाल, जामुन की छाल, उसका बीज, आम की गुठली, बबूल की छाल, शादनज, इत्यादि।

कातिउल्-जरासियम—वि० [अ०] कृमिघ्न। कीटाणुनाशक।

कातिउल्-बलगम—वि० [अ०] श्लेष्मघ्न, कफघ्न, एक्सपेक्टोरेण्ट (Expectorant) वह द्रव्यौषध जो सान्द्रीभूत श्लेष्मा को पृथक-पृथक कर देवे तथा सरलतापूर्वक निकालने लगे। यथा—लवण, लिसोड़ा इत्यादि।

कातिउल्-मनी—वि० [अ०] (१) धात्वर्थ-वीर्य को छेदन करने वाला। यूनानी वैद्यकीय परिभाषा के अनुसार—वह उष्ण व शोषक द्रव्य, जो शुक्र को शुष्क करे। (२) वह अत्यन्त शीतल औषधि, जो वीर्य की भौतिक स्थिति में विकार उत्पन्न करे।

कातिक—वि० [अ०] वह वस्तु, जिसके द्वारा भोजन किया जावे।

कातिक—संज्ञा पुं० [अ० ककात्] हरे रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा तोता। काकातूआ।

कातिन्त—संज्ञा पुं० [मल०] जंगली खजूर। वन खज्जूर। (मे० मो०)।

कातिरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कत्था। खदिर सार।

कातिरुद्धम—संज्ञा पुं० [अ०] हीरादोखी। दम्मुल अखवैन।
कातिरुद्धम-हिन्दी—संज्ञा पुं० [अ०] हीरादोखी। विजय
साल निर्यास। खूना-खराबा।

कातिल—वि० [अ०] विषैला। घातक। प्राणनाशक।
सम्मी। प्राणघ्न। प्राण हर। प्राणनाशक द्रव्य जो
शरीर में असाधारण व्याघात उत्पन्न कर मृत्यु का आह्वान
करे। अथवा निज विषाक्तता तथा प्रकृत वैषम्य के कारण
प्राणौज, मनः ओज और जीवनौज वा प्राकृत ओज अर्थात्
रूहैवानी, रूहनफसानी तथा रूहतवई को विनष्ट कर
जीवन के नाश का कारण हो; यथा—संखिया, सायो-
नाइड, सर्पविष, सेंदुर, शिंगरफ, सकमूनिया, शूकरान,
सुरमा, स्याह जुन्द बेदस्तर गिर्गिट-मांस, गण्डक मांस
(गैंडा का गोश्त) अहिफेन, वत्सनाभ, धतूरा, कनेर,
रसकपूर, कुचिला, हरताल, दारचिकना इत्यादि। (Pison)

कातिल-अस्त्रियः—संज्ञा पुं० [अ०] सालव-मिश्री (लु०
क०)।

कातिल-अबियः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बदअश्काँ, (२)
कातिल, दीदान कुतूलुब।

कातिल-दीदान-वि—[अ०] कृमिघ्न, कृमिप्रशमन, कृमि-
सूदन (सु० सू० ३८ अ०)। (अं०)—वर्मिफ्यूज (Vermi-
fuse), वर्मिसाइड (Vermiside), अन्येल्मिण्टिक
(Anthelmintics)।

वह द्रव्य जो उदरीय तथा आन्त्रीय कृमियों को विनष्ट
करे। कृमियों को नष्ट करने में इनका विषात्मक प्रभाव
होता है। इनके सेवन से वे विनष्ट होकर शरीर से अधो-
मार्ग से बहिर्गत होते हैं। कृमिघ्न द्रव्यों के कतिपय प्रकार
हैं, यथा—

(१) वह द्रव्य जो कृमियों को उद्विग्न कर आन्त्र-
प्रदेश से बहिर्गत करते हैं, मारते नहीं, तिब्ब की परिभाषा
में उनको मुखरिज-दीदान (कृमि-उत्सारक) कहते हैं।
पर्याय—(अ०)—तारियुद्दीदान, मुजादुद्दीदान, द्रव्य—
जलापामूल, सकमूनिया, उसारावेन्द इत्यादि।

(२) वे द्रव्य जो आन्त्रस्थ कृमियों को नष्ट कर
तथा जीवितावस्था में ही उन्हें उद्विग्न कर बहिर्गत करते
हैं, ऐसे द्रव्यों को तिब्ब में—‘कातिल मुखरिज-दीदान’
कहते हैं; द्रव्य यथा—वायविङ्ग, कबीला, पलाश पापड़ा
इत्यादि।

(३) वह द्रव्य, जो आन्त्रगत कृमियों को नष्ट करते
हैं, ऐसे द्रव्यों को तिब्ब की परिभाषा में—कातिल दीदान
(कृमिघ्न) कहते हैं। यथा—हींग, सनाय, सरख्स,
छोटी-कटेरी, रेवत चीनी, गिलोय, चिरायता, मुरमक्की
(बोल), द्रोणपुष्पी, नाय (नाकुली), बूजीदान, इस्पंद,
कलौंजी, एरण्ड-पत्र, खूवानी के पत्र, बकुची, सोंठ,
सत्यानासी के बीज, कत्था, जूफा, मुरदासंग, दूकू, मरुआ,

तुर्मुस, अफ्तीमून, अम्बरबेद (जुअदा), उशक, चन्द्रसूर,
अफसन्तीन, बरफ, सागौन, बूरए-अरमनी, जराबन्द,
सातर, श्लेष्मान्तक (लिसोडा), नागरमोथा, बेर,
सन्दरूस, अखरोट के बीज इत्यादि।

उपर्युक्त भेदत्रय कृमिघ्न द्रव्यों में से पृथक्-पृथक् कृमिघ्न-
द्रव्यों के भेद से पुनः ४ प्रकार हैं, यथा—

(१) वह द्रव्य, जो स्फीतवत् अर्थात् ब्रध्नाकार कृमि—
कद्दाने (Tapeworms) पर घातक प्रभाव करते हैं;
उनको तिब्ब की परिभाषा में—‘कातिल-हब्बुल्-कअ’
(ब्रध्नाकार कृमिसूदन) कहते हैं; यथा—कबीला, सरख्स।
उक्त उभय द्रव्य कद्दानों को नष्ट करते तथा उत्सर्गित भी
करते हैं; उनको तिब्ब में—‘कातिल व मुखरिज-हब्बुल्
कअ’ कहते हैं; यथा—कबीला, काकनज, केला, कस्सू,
काले सहतूत की जड़ की छाल, अम्ल-दाड़िम मूल-त्वचा,
पुरातन नारिकेल की मज्जा, अजवाइन, उशवा-मशरबी,
बकाइन, सरख्स (मेल-फर्न), वायविङ्ग, पपीता (एरण्ड
खर्बूजा), खुरफा, पूगफल, तारपीन के तेल, मिष्ठ अलाबू
के बीज इत्यादि।

(२) वह द्रव्य, जो गण्डूपद (हय्यात-केचुआ—Round-
worms) पर घातक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, यथा—
नीम की छाल, (कातिल हैय्यातह-गण्डूपद कृमिघ्न, और
पलाश के बीज (‘कातिल व मुखरिज-हय्यात’—गण्डूपद
कृमिघ्न और गण्डूपद कृमि निःसारक द्रव्य, यथा—
किरमानी अजवाइन (दिरमना), इसका सत्व-सेंटोनीन,
नीम की छाल, बकाइन की जड़ की छाल, सुपारी, पलाश
के बीज, एरण्ड बीज तैलादि।

(३) वह द्रव्य—जिनका प्रभाव—सौत्रिक-कृमि-चूरनो
(दुदुल-खुल) दीदान-खल्लिया (Thread-worms) पर
होता है, यथा—एलुआ सूत्र कृमि-नाशन और सूत्र
कृमिनिर्हरणकर्ता कातिल व मुखरिज दीदान खल्लिया है।
किरमानी अजवाइन, सुपारी, आडू के पत्ते मिश्रकरामशीअ
तथा अंतरीय रूप से—तारपीन के तेल का घोल तथा उक्त
प्रकार से—एरण्ड तैल; जैतून का तेल, सेंधा नमक और
कसीस का घोल, सिरका, मिश्र तरामशीअ का क्वाथ,
एलुआ का क्वाथ, आस्थापन वस्ति रूप से—लवण, चूना,
फिटकिरी का घोल, कलम्बा का क्वाथ तथा आस्थापन
वस्ति रूप से—चुस्कृमिनाशक है।

(४) वह द्रव्य, जो द्वादशांगुलान्त्र वा ग्रहणीस्थ बड़िश
कृमि (Hook-worms) को नष्ट करते हैं। उक्त कृमि
प्रायः मिश्र देश में होते हैं। द्रव्य यथा—थाइमोल,
यूकेलिप्टस का तेल।

स्पष्टीकरण—उपर्युक्त आन्त्रकृमि (दीदानअमआभी)
यद्यपि पराश्रयी सूक्ष्म कृमियों के अन्तर्भूत नहीं हैं, तथापि
इनसे—वे कीट पतंग भी अभिप्रेत हैं, जो प्राणियों के

त्वचादि पर रहते हैं और उनसे अपनी पोषण सामग्री प्राप्त करते हैं; यथा—यूका (जूं), लीक्षा (लीख) और अन्यान्य सूक्ष्म जीवाणु भी। अस्तु जो द्रव्य बाह्य कृमियों के घातक हैं उनको तिव्व में 'क्रातिलुल्लहशरात' कहते हैं; यथा—वच, कायफल, निम्बतेल, शरीफा के बीज, पारद, सरसों का तेल इत्यादि। गन्धक, पारदादि—यूका, लीक्षा के विशेष नाशक हैं। जटाधारी—जिनकी जटाओं में यूकादि पड़ जाती हैं, उनको नष्ट करने के निमित्त पारद का विशेष उपयोग करते हैं अतः पारद में कीटाणु नाशक गुण विद्यमान है। गन्धक, रोगन विलसई, रोगन संदल, सिलारस इनके उपयोग से—कच्छू (जरब) का शीघ्र नाश होता है।

क्रातिल व मुखरिज दीदान—वि० [अ०] वे द्रव्य जो अन्त्र एवं उदरज कृमियों को नष्ट करते हैं। दे० 'क्रातिल दीदान'।

क्रातिल व मुखरिज-हब्बुल कर्भ—वि० [अ०] दे० 'क्रातिल दीदान'।

क्रातिल व मुखरिज-हय्यात—वि० [अ०] दे० 'क्रातिल दीदान'। दे० क्रातिल दीदान।

क्रातिल-दीदान-शिकम—वि० [अ०] उदरीय कृमि सूदन द्रव्य। दे० क्रातिल दीदान।

क्रातिलन्नक्स—संज्ञा पुं० [अ०] (१) फरफयून (२) कर्पूर, (३) कामलता। दे० इस्कपेचा।

क्रातिलुदीदान—वि० [अ०] कृमिघ्न। कृमिसूदन। दे० 'क्रातिल दीदान'।

क्रातिलान-दूद—वि० [अ०] कृमिघ्न। कृमि सूदन।

क्रातिलुज्जीब—संज्ञा पुं० [अ०] कुटकी। (लु० क०)।

क्रातिलुज्जरासियम्—वि० [अ०] कीटाणु नाशक। ऐण्टी-पेरासाइटिक्स (Antiparasitics)

क्रातिलुन्नक्स—संज्ञा पुं० [अ०] तरलता। दे० इस्कपेचा। (२) कर्पूर। (३) फरफयून।

क्रातिलुन्नमिर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) माजरियून स्याह। (२) इशखीस स्याह। (३) खानिकुन्नमिर। (लु० क०)।

क्रातिलुन्नहल—संज्ञा पुं० [अ०] कमल। पद्म।

क्रातिलुल्-कल्ब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कुचला, (२) कुटकी सफेद। खानिकुलकल्ब।

क्रातिलुस्समक—संज्ञा पुं० [अ०] काकमारी। दे० 'काकनासा'। माहीजहरज।

क्रातिलुल्-हशरात—वि० [अ०] बाह्य कृमिघ्न। दे० 'क्रातिलदीदान'।

क्रातिलुल्-हीतान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) काकमारी। माही जहरज। दे० 'काकनासा'। (२) लायः। (लु० क०)।

क्रातिस-अरुमातीक्री—वि० [यू०] पुरातन। प्राचीन।

क्रातीक—संज्ञा पुं० [अ०] दधि। दही। (लु० क०)।

क्रातीख्वा—संज्ञा पुं० [यू० सुर०] इन्द्रायण। (लु० क०)।

क्रातीदाऊस—संज्ञा पुं० [यू०] छोटी इलायची। क्षुद्रएला। (डाइमाक)।

क्रातुस्काथ—संज्ञा पुं० [मल०] हरीतकी पुष्प। हड़ के फूल।

क्रातूस—संज्ञा पुं० [अ०] इसवगोल। (लु० क०)।

क्रातुखस—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार का रोग। मज्जं जमूद। केटालेप्सी (Catalepsy)। दे० 'जमूद'।

क्रातून—संज्ञा पुं० [अ०] नौसादर। नृसार।

क्रातूनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का मान जो ४ मासा ४ रत्ती के बराबर होता है।

क्रातूलः—संज्ञा पुं० [तातूलः से अरबी कृत तातूरः] कनक। दे० 'धतूरा'।

कातेअ—वि० [अ०] सूदन। विनष्टकारी।

कातेअ बाह—वि० [अ०] कामघ्न। कामशक्ति नाशक। पर्याय—(अ)—मुजरिति बाह। मुक्तेबाह। मुजइफ़ (कुलफात) बाह। वह द्रव्य, जो कामशक्ति को कम करे। वह द्रव्य जो रतिशक्ति तथा कामेच्छा को अवसन्न करे, अर्थात् जिनके सेवन से जननांगों की, वातनाडियों वा कामकेन्द्र को अवसन्न कर वात-सम्बन्धी अंगों के रक्ताभिसरण को न्यून कर मैथुनेच्छा को अल्प करे द्रव्य—

कहवा, कासनी, कच्चा लहसुन, काहू, कुलथी, कुल्फा, कर्पूर, कुष्ठ, कोकेन, खसखाश स्याह, अहिफेन, डमली, ईरसा, आलूबोखारा, चूका, चन्दन, धवल बिरवा की जड़ की छाल—फल, तमाकू, नीबू, नौसादर, निलोफर की जड़, यवरूज-बेलाडोना, गेंदा, चौलाई, मोम, लवण, बरफ, मूंग, शीतल जल, पोटाश आयोडाइड, पोटाश ब्रोमाइड फिरज्जमुस्क, वंशलोचन, धनियां, सुदाव, शूकरान, धतूरा सम्हालू, क्षारीय द्रव्य इत्यादि।

स्पष्टीकरण—कातेअमनी २ अर्थों में प्रयुक्त है—(१) उष्ण और रुक्ष औषध-द्रव्य जो वीर्य को शुष्क अर्थात् उसको शोषण करे, यथा—सुदाव, भाँग के बीज, धतूरा के बीज, शाहदानज इत्यादि।

(२) अत्यन्त शीतल पदार्थ, जो वीर्य की भौतिक स्थिति (किवाम) में विकृति उत्पन्न करे, यथा खस, कर्पूर, चन्दन इत्यादि।

कातूण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली] तिखाडी। रोहिष तृण। दे० 'कतूण'। (रा० नि० व० ८)।

कातूइन्द्रायण—संज्ञा पुं० (सं० पुं०) काँटेरी इन्द्रायण। किसाउल् हिमार।

कातोखुश—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार का रोग। कातू-खुश। केटालेप्सी (Catalepsy)। दे० 'जमूद'।

कातोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोहल। सुरा। मद्य।
'यवमापादि पिष्ठोत्था कातोली कोहल, सुरा'। (वाच-
स्पतिः)।

कात्त—संज्ञा पुं० [मल०] कत्था। खदिरसार।

कात्यायन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृषि विशेष।

कात्यायनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काषाय वस्त्र।
(मे० चतुष्क)।

कात्स्यकावीणक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीरांग विशेष
(अ० शा०)।

कात्रि—संज्ञा पुं० [म० सं० कात्] कात् इन्द्रायण।
काँटेरी इद्रायन। किसानलहिमार।

कात्रिइन्द्रायण—संज्ञा पुं० [भारतीय बाजार] किसानल
हिमार। काँटेरी इन्द्रायण।

कात्रि—संज्ञा पुं० [वम्ब] निर्गुण्डी भेद।
कात्री—संज्ञा स्त्री० [वम्ब०, म०] निर्गुण्डी।
कर्तूनिर्गुण्डी। (इ० मे० मे० चोपरा)। } निर्गुण्डी,
समालू।

काथ—संज्ञा पुं० [वं०] कत्था। खदिरसार। खैर।

काथरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वकाथरा। हय-
काथरिका। अश्वकाथरिका। गुण—स्वाद में तिक्त,
वातनाशक तथा परम दीपन है। (च० नि०)।

काथा—संज्ञा पुं० [म०, हि०] कत्था, खैर। खदिरसार।

काथु—संज्ञा पुं० [गु० काथो] } कत्था। खदिरसार।
काथो—संज्ञा पुं० [गु०]

काद—संज्ञा पुं० [अ०] कत्था। खैर, खदिरसार।

कादम्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कदम्ब वृक्ष।
(वै० निघ०)। (२) एक प्रकार का हंस। कलहंस।
वाल हाँस। (हि०)—करवा। मांस गुण—शीतल,
स्निग्ध, वृष्य, वातघ्न तथा रक्त-पित्तघ्न है। (सु० सू०
४६ अ०)। भेदक, शुक्ल, वात तथा रक्त पित्तघ्न है।
(राज०)। (३) उक्तनाम का एक स्थावर विष जिसका
पुष्प विषैला होता है। (सु० कल्प० २ अ०) दे० पुष्प-
विष। (४) कदम्बपुष्प। कदम्ब का फूल। (५) कदम्ब के
पुष्पों द्वारा निर्मित सुरा। कादम्बरी। (६) गन्ना, ईख।
कादम्बकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम्ब वृक्ष। कदम।
(वै० निघ०)।

कादम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम्बपुष्पादि द्रव्यों द्वारा
निर्मित मद्य। गुण—मधुर, पित्त, भ्रम, तथा मदनशक
है। (रा० नि० व० १४, राज०)। (२) कदम्ब पुष्प
द्वारा निर्मित सुरा। (मे०)। [सं० क्ली०]—(१)
नवनीत। दधिसार। मक्खन। (हे० च०)। (२) शीघ्र
नाम का मद्य। (विश्व०)

कादम्बरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) विविध द्रव्यो
त्पन्न सामान्य मद्य। (रा० नि० व० १४)। प्रसन्ना और-
सुरा की सपेक्षया यह घनतर होती है। यह कदम्ब पुष्प

तथा अन्य विविध द्रव्यों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। गुण—
कादम्बरी सुमधुर, भ्रम तथा पित्त नाशक है। (अत्रि०)।
यह घन होती है। (प० प्र० ३ अ०)।

(२) वारुणी नाम की सुरा। (३) कोयल, कोकिला
पक्षी। (४) मैना। सारिका पक्षी। (मे० रचतुष्क०)।

(५) कदम्ब पुष्पोत्थ मद्य। (६) कदम के वृक्ष के
कोटरस्थ वृष्टि-जल।

कादम्बरी बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] किण्व। सुराबीज।
(Yeast)।

कादम्बर्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैमा। धारा कदम्ब। दे०
'कदम'। (वै० निघ०)। (२) कदम्ब वृक्ष। (रा० नि०
व० ९, जटा०) (३) कमल। पद्म।

कादम्बा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुण्डी। कदम्ब पुष्पी।
गोरखमुण्डी। (श० च०)।

कादम्बिक—वि० [सं० त्रि०] भोज्य द्रव्यकारवचा।

कादम्बिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बादलों का समूह।
मेघमाला। घटा। (अम०)।

कादरस—संज्ञा पुं० [यू०] शरबीन। (लु० क०)।

कादरुनी—संज्ञा स्त्री० [रुमी०] विलायती कृष्ण जीरा।
कुरोया। (लु० क०)।

कादव—संज्ञा पुं० [गु० = बर्ह० काँदव] कर्हम। कीचड़।
पंक। कीच (Mud)।

कादसूस—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का सान्निपातिक
ज्वर। तपमुहरकः। मुहरकः बुखार। टायफाइड-फीवर।
दे० 'मुहरकः'।

कादि—संज्ञा पुं० [अ० बहुव० कवादिः] दाँतों की कृष्णता।
दाँतों का नीलापन। दाँतों का गड्ढा। दाँतों का कीड़ा।
दन्त कृमि। (म० ज०)।

कादियः—संज्ञा पुं० [अ०] पक्षियों का पक्ष तथा पंख।

कादिया—संज्ञा पुं० [अ०] (लु० क०)।

कादियातिगे—संज्ञा पुं० [ते०] गोधापदी। अमलोलवा।

कादिर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कत्था। खदिरसार।

कादी—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] केतकी भेद। 'केवड़ा'।

कादीए शुस्तः—संज्ञा पुं० [फा०] धोयी हुई खड़िया मिट्टी।
(लु० क०)।

कादीशौ—संज्ञा पुं० [ते०] 'ताल मखाना'। कोकिलाक्ष।

कादुल—संज्ञा पुं० [ते०] 'आड़की'। तुवर। अरहर।

कादूत—संज्ञा पुं० [तुर०] सत्तू। शाकसुक।

कादूर—संज्ञा पुं० जंगली कासनी। 'अरण्यकासनी'।

कादूहः—संज्ञा पुं० [अ०] वृक्षों तथा दाँतों को खाने वाला
कीट विशेष। कृमिदन्त। (लु० क०)।

कादेह—दे० 'कादूहः'।

काद्विक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अक्ष। (घ० नि०)।

काव्रवेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) साँप। सर्प। (२) (रंग में०)

कान—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्य] पर्याय—(अ०) उज्ज। (फा०) गोश। (अं०) इयर (ear)। वह इन्द्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है। सुनने की इन्द्रिय। श्रवणेन्द्रिय। श्रुति। श्रोत्र।

क्रान—संज्ञा पुं० [तुर०] रक्त। रुधिर। खून। (अं०) ब्लड (Blood)।

कानक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जयपाल बीज। जमालगोटा। दन्ती-बीज। (२) धतूर के बीज। (सु० सू० श्लो० २०, २६ अ०, द्रव्याभिधान)। (३) घर का धूआँ। धूमसा। गृहधूम।

कानकच—संज्ञा पुं० [पं०] वृक्ष विशेष। (ले०) माचल्ला एस्क्युलेंटा (Marchella Esculenta)। (डा० चो० पृ० ५०८)।

कानकचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुखरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग। निर्माण-विधि—गृहधूम, यवक्षार, पाठा, सोंठ, मरिच, पीपर, रसौत, तेजवल (नेपाली धनियाँ), त्रिफला, लोहचूर्ण, चित्रकमूल—सब समान भाग में ग्रहण कर बारीक चूर्ण करें। गुण—मधुयुक्त मुख में धारण करने से समस्त मुखगत व्याधियों का नाश होता है। (सा० कौ०)।

क्रानक्रमन—संज्ञा पुं० [?] सन्दरुस। (लु० क०)।

क्रानकरातियून—संज्ञा पुं० [यू०] पलाण्डु (प्याज) तुल्य एक प्रकार का पौधा। (लु० क०)।

कानकी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो कोंकण देश में होता है।

कानगु—संज्ञा पुं० [ते०] करञ्ज।

कानङ्ग—करै—संज्ञा पुं० [म०] काँचड़ा। कञ्चट। (हि०, बं०)। कोमेलिना बेंगालेंसिस (Commelina Bengalensis) (डा० चो०)।

कान झमरमीना—संज्ञा स्त्री० [सं० ?] सौराष्ट्री। (लु० क०)।

• कानडू—संज्ञा पुं० [?] वृक्ष विशेष।

कानन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वन। अरण्य। जंगल।

कानन एरण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाघभेरण्ड। जं० एरण्ड। (Jatropha Curcas)। (डाइमाँक)।

कानन कदली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन कदली (जंगली केला)।

काननकन्द—संज्ञा पुं० [आसा०] द्रव्य विशेष। (बं०) सेवाला। (मे० मो०)।

काननारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोकरा। शमी वृक्ष। (श० च०)।

काननित—संज्ञा पुं० [ता०] काकवी। (मो० श०)।

काननीका—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बन्दर। वानर। कपि।

कानप—संज्ञा पुं० [ते०] समुद्रफल। हिज्जल। (इं० मे० मे०)।

कानपचेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] गन्धनाकुली। सर्पगन्धा। वंदाक। (इं० मे० मे०)।

कानफटा—संज्ञा पुं० [सं० कर्णस्फोटा] कनफोड़ा। लता फटकी।

क्रानक्रामुन—संज्ञा पुं० [यू०] (१) एक प्रकार का दुर्गन्धयुक्त गोंद जो अरब में होता है। (२) सन्दरुस। (लु० क०)।

कानफुटी—संज्ञा स्त्री० [बम्ब, म०] नायफटकी। कर्णस्फोटा। कनफोड़ा। फ्लेमिंगिया स्ट्रोबिलिफरा। (Flemingia Strobilifera)। (इं० मे० मे०)।

कानफूल—संज्ञा पुं० [गु०, पुं०] जंगली कासनी, दूधल।

कानफूल—संज्ञा पुं० [गु०, पुं०] दुग्धफेनी। दे० 'अरण्य कासनी'।

कानफोटा—संज्ञा पुं० [ते० कर्णस्फोटा] दे० 'कनफोड़ा'।

कानफोड़ी—संज्ञा स्त्री० [म०, गु०] श्वेत ब्रह्मशोचली। सफेद फूल का दुरदुर। दे० 'दुरदुर'।

कानभेर—संज्ञा पुं० [म०] रास्ता भेद। 'सॅकोलेबिअम्-पैपिलोसम्' (Saccolabium Papillosum)

कानयून—संज्ञा पुं० [यू०] शाहतरा। पित्तपापड़ा। (लु० क०)। कनयून।

कानयस—संज्ञा पुं० [यू०] कानियूस। शाहतरज फर्फीरी। (लु० क०)।

क्रानरेगू—संज्ञा पुं० [ता०, ते०] कँगारू। (पं०) कोंडे। फ्लेकोर्टिया सेपिएरिया (Flacourtia Sapiaria) (इं० मे० मे०)।

कानवेल—संज्ञा पुं० [म०] कैवर्तिका। केवटी।

क्रानस—संज्ञा पुं० [कब्ती०] वाकला-कब्ती। (लु० क०)।

कानसा—संज्ञा पुं० [सुर०] संविदामज्जती। गञ्जा। गाँजा।

कानसी—संज्ञा स्त्री० [बर०] गन्धक का तेजाब। गन्ध-काम्ल। सल्फ्युरिक एसिड (Sulphuric acid)। (मो० श०)।

कानसो—संज्ञा पुं० [बर०] महुआ। मधूक। संज्ञा पुं० (गु०) काँसा। कांस्य धातु।

काना—संज्ञा पुं० (१) अन्धा। (२) एक आँख से देखने वाला।

कानाकच—संज्ञा पुं० [पं०] भुँइफोड़। गिरिछत्रा। (मे० मो०)।

कानाकचू—संज्ञा पुं० [पं०] गिरिछत्रा। भुँइफोड़। साँप की छतरी। दे० 'छत्रिका'।

वक्तव्य—तालीफ़शरीफ़ी में इसका उच्चारण कानागच्छू लिखा है। उसमें लिखा है कि यह काश्मीर की तरफ़ से आता है और वहाँ इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। स्वाद में यह कुछ नमकीन और मीठा होता है और इसे मांस के साथ पकाकर खाते हैं।

कहते हैं कि यह एक प्रकार का समारोग व खुमी है। परन्तु समारोगवाचक संज्ञा कानाकच्चू है जिसमें फल नहीं लगता और वह एक कुक्कुटाण्ड के आधे भाग की तरह पौधे पर उलटा रखा रहता है। यह सफेद और जंगली होता है। यह वरसात की ऋतु में पुराने काष्ठ से, सीली जमीन में व गोवरादि डालने की जगह उत्पन्न होता है। इसे खुम्बी व खुमी कहते हैं। इनमें जंगल व पवित्र भूमि में उत्पन्न उत्तम समझा जाता है। निम्न श्रेणी के हिंदू प्रायः इसे खाते हैं। मुहीत के अनुसार यह एक प्रकार का समारोग व खुमी है जो काश्मीर से आती है और वहाँ के निवासी इससे बड़ी रुचि रखते हैं। परन्तु निघंटुप्रकाश के अनुसार यह एक प्रकार का कुष्ठ या कुट है जो पाताल कमलिनी की जड़ है, जिसका एक नाम पुष्करमूल भी लिखा है।

गुणधर्म और प्रयोग—इसका स्वादिष्ट, वल्य और गरिष्ठ होना प्रकट है। इसके अन्य गुणादि यनानी ग्रंथों में उल्लिखित हैं। यह नेत्र रोगों में बहुत उपकारी है। (ता० श०; मुहीत) विशेष 'खुमी' में देखें।

कानाकथा—संज्ञा स्त्री० [कना०] कर्णस्फोटा। कानफुटी। (Cardiaspermum-Helicacabum)

कानाकस—संज्ञा पुं० [यू०] काशम रुमी। (लु० क०)।

कानाकैन—संज्ञा पुं० [कना०] कर्णस्फोटा। कानफटा।

कानागीस—संज्ञा पुं० [यू०] भाँग के बीज, शाहदाना। (लु० क०)।

कानागूर्कमै—संज्ञा पुं० [ता०] सुक्कपात। (Azima-Tetranantha)

कानातीर—संज्ञा पुं० [अ०] देखो—'कासातीर'।

कानाफामन—संज्ञा पुं० [यू०] सन्दरूस। कानाकामुन (लु० क०)।

कानामीस—संज्ञा पुं० [यू०] भाँग के बीज। भंग बीज। (लु० क०)।

कानाला—संज्ञा पुं० [वं०] ब्रह्मसोचली। दे० 'हुरहुर'।

कानालियून—संज्ञा पुं० [यू०] अल्प श्वेतता जो नेत्रों के कृष्ण-मण्डल में पड़ जाती है। इसको अरबी में सहाव व सिमाम भी कहते हैं।

कानि—संज्ञा पुं० [सं० कंगु] काँक। क्षुद्र धान्य जो वर्षा ऋतु में बोया जाता है। कंगु धान्य।

कानिअपतिगे—संज्ञा पुं० [ते०] गोधापदी। अमलोला। गुआलिया लता।

कानियून—संज्ञा पुं० [यू०] शाहतरा। पित्तपापड़ा।

कानियूस—संज्ञा पुं० [यू०] शाहतरज-फरफरी।

कानिसः—संज्ञा पुं० [अ०] पथरी। संगदानः। संगदान मुर्ग। जानवरों की पथरी (अश्मरी)।

कानी—वि० [अ०] (१) गहरा सुखरंग। (२) रक्त कृष्णाभ रंग। सुख स्याही मायल रंग। (Blackish red).

कानि तनसक—संज्ञा पुं० [सिराजी] शन्नम। (लु० क०)।

कानीन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोध्र। लोध्र। (श० च०)।

कानूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मुरगा। कुक्कुट। ताम्रचूड़। (२) हंस भेद। बाबुई पक्षी। (के०)।

कानून—संज्ञा पुं० [अ०] भट्ठी। भ्राष्टी। भाड़। अँगठी।

कानून—संज्ञा पुं० [अ० बहुव० कवानीन, यू० केनान] (१) नियम, विधान, विधि। (२) वास्तविक, असल,

मूल, जड़, बुनियाद, कायदा। (३) कानून-तिब्ब जो

इल्म तिब्ब की अपने समय की एक उत्तम प्रसिद्ध पुस्तक

है। इस ग्रंथ के लेखक शैखुरईस-बू-अली-बिन-सीना हैं।

तिब्ब में इसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा है और अच्छी दृष्टि से

देखी जाती है। शैखुरईस का जन्मकाल ख्रीष्टाब्द ९८०

है। इन्होंने खुरासान में जन्म ग्रहण किया। इनकी

मृत्यु ख्रीष्टाब्द १०३८ में हुई। उक्त ग्रंथ की पूर्ति

ईसा की १०वीं शताब्दी में हुई प्रतीत होती है। इस ग्रंथ

की प्रतिष्ठा—एशिया, भारतवर्ष, अरब, ईरान, तुर्किस्तान

इत्यादि में पर्याप्त रूप से है। यह तिब्ब का श्रेष्ठतर

ग्रन्थ है और इसके द्वारा तिब्ब की शिक्षा भी दी

जाती है। यहां तक कि १५वीं शताब्दी में यूरोप में भी

वहाँ के आयुर्वेदाचार्य इसको प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने

लगे। ख्रीष्टाब्द १५४० तक इस ग्रन्थ के अनुवादक लेटिन

भाषा में ३० संस्करण कर लिए। इसका अन्तिम

अनुवाद सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। इसकी

उत्तमता के कारण ही कतिपय अनुवाद किए गए और

अब तक भारतीय ग्रंथागार में सुरक्षित हैं।

उक्त ग्रन्थ के उत्कृष्ट भाष्य—शरह कानून, शरह

जीलानी, शरह-आमली, शरह कर्शी, शरह अलमसीह,

शरह-सदीद, शरह-हकीम शरीफ खाँ इत्यादि हैं।

कानून-अल्सेहत—संज्ञा पुं० [अ०] स्वास्थ्य और उसकी

रक्षा। सेहत और उसकी हिफाजत। इल्म-हिफाजानुल्

सेहत।

कानून-दिया—संज्ञा पुं० [अ०] उक्त नाम का ग्रन्थ

विशेष।

कानूर—संज्ञा पुं० कामला रोग। (Jaundice)।

कानूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुक्कुट। मुरगा।

(२) हंस का एक अन्य भेद। (हि०) बाबुई पक्षी।

(के०)।

कानेर-चेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] कनेर। करवीर पुष्पवृक्ष।

कानेरु—संज्ञा पुं० [फा०] माजरियून। (लु० क०)।

कानोश्का—संज्ञा पुं० [?] कंशीरा। (इं० है० बु० गा०)।

कान्करातिमून—संज्ञा पुं० [यू०] विलायती काँदा के समान

एक पौधा है।

कान्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) केशर। (२) कान्त

लोह। (रा० नि० व० १२, १३)। (३) चक्रवाक।

चकवा पक्षी। (रा० नि० व० १९)। (४) चुम्बक पत्थर। कान्त-पाषाण। (भा०)। (५) वर्षा तथा वसंत ऋतु। (रा० नि० व० २१)। (६) समुद्रफल। हिज्जल। (रा० नि० व० ८)। (७) चन्द्रमा। (श० र०)। (८) चन्द्रकान्त-मणि। (९) सूर्यकान्त मणि (मे०)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) चन्द्रमा (श० र०)। (२) चन्द्रकान्त-मणि, (३) सूर्यकान्त-मणि, (४) अयस्कान्त, कान्ति लोह। (मे०)। (५) कृष्ण लौह। (६) केशर, कुंकुम। (रा० नि० व० १२)। (७) लोहा। लौह। (रा० नि० व० १३)।

कान्त-क्रामक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कोल्हू। चक्र यंत्र। (२) नागरमोथा। भद्र मुस्तक। (३) गन्धक। कान्त-पक्षी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोर। मयूर पक्षी। (श० च०)।

कान्त-पाषाण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चुम्बक पत्थर (Load-Stone)।

शोधन-विधि—बारीक चूर्ण कर लोहे की कड़ाही में स्थापन कर गोघृत तथा माहिषी घृत में पकाएँ और लवण, क्षार (नौसादर) और सहिजन के रस में दोला-यंत्र द्वारा पचाएँ तथा रुद्राक्ष एवं अम्ल फलों के रसों की १ दिन भावना देवें। तदुपरान्त धूप में स्थापन करें अथवा २ बार दोलायंत्र में स्थापन कर उक्त फलों के रस में पाचन करें। इस प्रकार से शोधित कान्तपाषाण का रसकर्म में योजना की जाती है।

गुण—लेखन, शीतल, विषविकार नाशक, मेदघ्न है तथा कण्डू, पाण्डु रोग, क्षय रोग, मोह, मूर्च्छा नाशक है। (वै० निघ०)। देखो—‘चुम्बक’। (२) चन्द्रिका (र० सा० सं०)।

कान्त-पिण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चुम्बककृतपिण्डी। मिकनातीस-महलूल।

कान्त-पिण्डी-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हलीमक में प्रयुक्त योग। निर्माण-विधि—विशुद्ध शोधित चुम्बक पत्थर से निकाले हुए लोहे की भस्म १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, ग्रहण कर एकत्र खरल करें। मात्रा—१-२ रत्ती। गुण—पुनर्नवा के रस के साथ सेवन करने से कामला तथा हलीमक का शीघ्र नाश होता है। (र० यो० सा०)।

कान्त-पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोविदार। कोइलार। (रा० नि० व० १०)। दे० ‘कचनार’।

कान्त-भस्म योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिकानाशक योग विशेष; यथा—कान्तलोह की भस्म ३ रत्ती की मात्रा में मधुयुक्त सेवन कर तदुपरान्त दशमूल का क्वाथ सेवन करने से कास-श्वास तथा ५ प्रकार की हिकका शांत होती है। (रस० यो० सा०)।

कान्त-मणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चन्द्रकान्तमणी।

कान्तयोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोगनाशक-योग विशेष। यथा—रुद्रवन्ती, नील ज्योति और कान्त लोह की भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर, इसमें त्रिफला और आँवलों के रस तथा क्वाथ की ३-३ भावनाएँ देवें।

गुण तथा उपयोग—३ रत्ती की मात्रा में मधुयुक्त ६ मास तक प्रतिदिन सेवन करने से—बलवीर्य की वृद्धि होकर अंगों की शिथिलता दूर होकर दिव्य दृष्टि हो जाती है और कुष्ठ का समूल नाश हो जाता है।

कान्तरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नवज्वर में प्रयुक्त योग।

निर्माण-विधि—कण्टकभेदी शोधित ताम्रपत्र और शुद्ध पारद समान भाग मिश्रित कर भली-भांति मर्दन करें। पुनः पारद के बराबर शुद्ध गन्धक और शुद्ध सोहागा मिश्रित कर ३ दिन पर्यन्त निम्बपत्र के रस में यहां तक मर्दन करे कि संपूर्ण रस शुष्क हो जाए। पुनः उक्त विधि से पारद के समान भाग रोहू मछली का पित्त मिश्रित कर मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती।

गुण तथा सेवन-विधि—अदरक के रस के साथ सेवन करने से शीतपूर्वक आने वाले नवज्वर का शीघ्र नाश होता है। (र० यो० सा०)।

कान्तरसायन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पाण्डुरोगनाशक योग विशेष। यथा—शुद्ध कान्तलोह का निरुल्य दिव्य भस्म, त्रिकुटा, विडंग, मधु और गोघृत, प्रत्येक ४-४ माशा ग्रहण कर एकत्र मिश्रित करें। मात्रा—१ से ४ माशा। गुण—मधुयुक्त सेवन करने के उपरान्त रात्रि में भिगाए हुए चने का पानी ४ तोला पान करें। उक्त अनुपान से ६ मास तक सेवन करने से पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, प्रमेह, यक्ष्मा, वार्धक्य तथा अकाल मृत्यु का नाश होता है। पथ्य—तक्र। (र० यो० सा०)।

कान्तरान—संज्ञा पुं० [अ० कत्तरान] कतरान। दे० ‘कत्तरान’। (Pix Liquid)।

कान्तलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नन्दीवृक्ष। तुन्द। (प० मु०)। दे० ‘तून’।

कान्तलोह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] उक्त नाम से प्रसिद्ध एक प्रकार का लौह। (हिं०) कान्ति लोहा। भेद—(१) भ्रामक, (२) चुम्बक, (३) रोमक, (४) स्वेदज। लक्षण तथा परीक्षा—कान्तलोहनिर्मित पात्र में जल भर कर तेल की बूँदें डालने से यदि तेल न फैले व उसमें हींग जलाने से उसकी गन्ध जाती रहे, तथा उसमें निम्बपत्रकृत कल्क स्थापन करने से उसकी तिबतता न प्रतीत होवे, तथा उसमें दुग्ध औटाने से उफान न देवे तो उसको वास्तविक कान्तलोह समझना चाहिए।

भ्रामक—जो लोहे की जाति मात्र को भ्रमावे, उसको भ्रामक कहते हैं।

चुम्बक—यह अन्य लोहों को आकर्षित करता है। इसको 'कर्षक लोह' भी कहते हैं।

द्रावक—इसके योग से अन्य लोह द्रवीभूत होते हैं।

रोमक—इसको तोड़ने से इसके भीतर रोमवत् वारीक-वारीक रेखाएँ प्रतीत होती हैं। (सुखबोध, वृ० रस रा० सु०)।

गुण—शुद्ध कान्तलोह सेवन से—गुल्म, उदररोग, अर्श, शूल, भगन्दर, कामला, शोथ, आम दोष, राजयक्ष्मा, कुष्ठ, प्लीहा के रोग, अम्लपित्त, यकृतविकार, शिरोरोग तथा अन्य प्रकार के समस्त रोग निःसंदेह नष्ट होकर बल-वीर्य की वृद्धि तथा शरीर की पुष्टि होती है। (भा० पु० १ भ० धा० व०)।

कान्तलोह रसायन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का आयुर्वर्धक योग जो कान्तलोह के संयोग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। **निर्माण-विधि**—कुटा हुआ त्रिफला १ मन ग्रहण कर मिट्टी के घड़ा में स्थापित कर उसमें गो मूत्र भर दें। १-२ मास के उपरान्त उसमें १ मन विशुद्ध कान्तलोह का वारीक चूर्ण डाल कर मिश्रित करें। जब उसमें त्रिफले का रस भली-भाँति अभिशोषित हो जावे, तब निकाल कर भली-भाँति खरल करें, और संपुट कर गजपुट में कंडों की आँच दें। उक्त विधि से २१ बार आँच देने से रक्त वर्ण का निस्त्य भस्म होता है।

गुण तथा उपयोग—मधु एवं पुनर्नवा के क्वाथ के साथ १ गद्याणक (४८ रत्ती) वा आवश्यकतानुसार सेवन करने से प्रत्येक रोग का नाश होता है।

उक्त भस्म ३ रत्ती और गुडूची सत्व तथा मिश्री २४ रत्ती प्रमाण मिश्रित कर सेवन करने से तथा तदुपरांत शीतल जल पान करने से पाण्डु रोग, प्रमेह और राजयक्ष्मा, तथा नागर मोथा, गुडूची सत्व, अतीस, मिश्री प्रत्येक ८-रत्ती के चूर्ण के साथ ३ रत्ती के प्रमाण में इस भस्म का सेवन करने से ज्वरातिसार का शीघ्र नाश होता है। (रस यो० सा०)।

कान्तवल्लभ रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कफ-पित्त विकार नाशक कान्तलोहघटित योग। **निर्माण-विधि**—कान्त भस्म, पारद, ताम्र भस्म, शु० गन्धक, क्षारानल (भजित सोहागा), चित्रक मूल, पद्मकाष्ठ, त्रायमाण (पीली जड़ी), इन्द्रयव, गुडूची, चिरायता, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर वारीक चूर्ण करें। पुनः पित्तपापड़ा के क्वाथ व स्वरस से मर्दन कर ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा सेवन-विधि—नागरमोथा तथा खस के क्वाथ के साथ, तथा पित्तपापड़ा के स्वरस के साथ सेवन करने से कफ तथा पित्तज ज्वरों का शीघ्र नाश होता है। (रस यो० सा०)।

(२) कान्त भस्म १६ भाग, लोह भस्म १४ भाग, मण्डूर

भस्म १२ भाग, सोहागे की खील १० भाग, शु० मैनसिल ८ भाग, शु० शिलाजीत ६ भाग, सर्व तुल्य भाग शु० पारद और शु० गन्धक ग्रहण कर ग्वारपाठा तथा तुलसी के रस में मर्दन कर अन्धमूषा में संपुट कर बालुकायंत्र में स्थापन कर ७ दिन की आँच दें। शीतल होने पर निकालें और वारीक चूर्ण कर सुरक्षित रखें। **मात्रा**—१—२ मा०। **गुण तथा सेवन-विधि**—मधुयुक्त सेवन करने से—ज्वर, उदर रोग, पाण्डु, कामला, गुल्म, ग्रहणी, कास, श्वास, हिक्का, प्लीह रोग, मन्दाग्नि, अर्श, अरुचि, कुष्ठ और भयंकर वातज शूल का नाश होता है तथा वृषता, तुष्टि, पुष्टि, बल तथा कान्ति की वृद्धि होती है। यह पाण्डु एवं क्षय रोग की सिद्ध औषधि है। (वै० चि० सर्वधये)।

कान्तसंज्ञक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैकान्त। (ध० नि०)।

कान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कृष्णकेलि पुष्प। त्रिसन्धि पुष्प। (रा० नि० व० १०)। (२) श्वेत दूर्वा। सफेद दूर्वा। (३) वाराहीकन्द। (४) आकाश-वल्ली। अमरवेल। आलोकलता। (५) मूषिकपर्णी। चूहाकानी, मूसाकानी। (वै० निघ०)। (६) प्रियङ्गु, गोदिनी, (मे-त-द्विक)। (७) रेणुका। (८) भद्र मुस्तक। नागरमोथा। (९) स्थूल एला। बड़ी इलायची। (रा० नि० व० ६)। (१०) स्त्री, नारी। (अम०)।

कान्ताङ्घ्रि (चरण) दोहक (द)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक।

कान्तादि वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाण्डु रोग में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—कान्तलोहभस्म, कृष्णाभ्र भस्म प्रत्येक ५ निष्क (२० माशा), मण्डूर भस्म २० माशा, पानी ४० निष्क (१६० माशा), मिश्रित कर आलोड़ित कर जल को निकाल लें। पुनः त्रिफला के क्वाथ से मर्दन कर १ टंक की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा सेवन विधि—प्रातः-सायं १-१ गोली आँवला के रस के साथ मधुयुक्त सेवन करने से कामला, पाण्डु ज्वर तथा रक्ताल्पता का नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कात्ताभ्र रसायन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का रसायन योग। **निर्माण-विधि**—(१) कान्तलोह भस्म, कृष्णाभ्र भस्म, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध वत्सनाभ, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रस सिंदूर—प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर वारीक खरल करें। मात्रा—१-१/२ रत्ती।

गुण तथा सेवन-विधि—मधु तथा घृतयुक्त सेवन करने से वार्धक्य तथा अकालमृत्यु का अपहरण होता है।

(२) कान्तलोह भस्म, अभ्रक भस्म, त्रिफला, वाय-विडंग, हरिद्रा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, नागरमोथा, त्रिकुटा, देवदारु, छोदी इलायची, पुनर्नवा, भीपलामूल, शुण्ठी,

अंकोल, शुद्ध शिलाजीत, प्रत्येक समान भाग तथा सर्वतुल्य शुद्ध गुग्गुलु लेकर भांगरा के स्वरस में यथाविधि मर्दन कर सुरक्षित रखें। मात्रा—१-३ माशा।

गुण—इसके उपयोग से आरोग्यता प्राप्त होती है तथा मेद-वृद्धि एवं वायु की प्रबलता दूर होती है।

(३) कान्तलोह भस्म और कृष्णाभ्र भस्म समान भाग में लेकर १ दिन अदरख के रस में मर्दन करें। पुनः इसमें अभ्र भस्म का १/१६वाँ भाग स्वर्ण भस्म मिश्रित करें और इसको विजौरा, अडूसा, गोरखमुण्डी, मुसली और दशमूल के क्वाथ तथा अन्य द्रव्यों के स्वरस से ७-७ दिन भावनाएँ दें। मात्रा—३ रत्ती।

गुण तथा सेवन-विधि—त्रिफला, त्रिकुटा १-१ माशा के चूर्ण में मधु, घृत मिश्रित कर सेवन करने से रसायन के गुण प्राप्त होते हैं तथा पञ्चकर्मों से शरीर की शुद्धि कर सेवन करने से पाण्डु, शोथ, उदर रोग, आनाह, ग्रहणी, शोथ, कास, कुष्ठ, सतत, सन्तत, पुरातन विषम ज्वर, सर्व कुष्ठ तथा २० प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कान्तायस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान्तलोह। अयस्कान्त। (रा० नि० व० १३)। दे० 'कान्त लोह'।

कान्तायसाश्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चुम्बक पत्थर। दे० 'कान्त पाषाण' वा 'चुम्बक'।

कान्तार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) लाल पुष्प का कचनार। रक्त काञ्चन वृक्ष। (रा० नि० व० १०)। (२) लाल गन्ना। रक्त इक्षु। केतारा। कांतारेक्षु। (प० मु०)। (३) सामान्य ईख। (४) बाँस। वंश। (रा० नि० व० १४)। (५) अमलतास, आरग्वध वृक्ष। (वै० निघ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]—(१) बिल, छिद्र, छेद। (मे०)। (२) छूतदार रोग। औपसर्गिक रोग। (३) कमल। पद्म। (हे० च०)। (४) वन, अरण्य, कानन, जंगल। (ध० नि०)।

कान्तारक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला गन्ना। कजली ईख। काली ऊख।

कान्ताराश्मज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] 'कान्तलौह'। (वै० निघ०)। कान्ती लोहा।

कान्तारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) इस नाम की
कान्तारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } प्रसिद्ध मक्खी।
कान्तारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(सु० कल्प० ८ अ०)। दे० 'मक्षिका'। (२) ईख। इक्षु विशेष। कजली 'ऊख' (राज०)।

कान्तारेक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केतारा नाम का गन्ना।

गुण—यह कषाय, गुरुपाकी, वृष्य, शुक्रल, वृंहण, सर (दस्तावर) तथा कफकारक है। (भा० पू० ई० व०)। उक्त गुण वंशेक्षु के भी हैं। (सु० सू० ४६ अ०)। मधुर,

लघुपाकी, इसमें क्षारीय तथा कफ-वातकारक गुण भी हैं। (राज०, वा०)।

कान्तात्मक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नन्दी वृक्ष। (वै० निघ०)। दे० 'तून'।

कान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वाराहीकन्द। (२) महासर्ज (सरो)। (वै० निघ०)।

कान्तिद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पित्त, सफरा। वाइल (Bile)। वि० [सं० स्त्री०] शरीर की कांतिवर्धनशील।

कान्तिदा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वकुची। सोमराजी। (व०) हाकुच।

कान्तिदायक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कालीयक। चन्दन वृक्ष। (जटा०)। वि० [सं० त्रि०] शोभाजनक।

कान्तिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरो। महासर्ज वृक्ष।

कान्तिसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान्ती लोहा। दे० 'कान्तलोह'।

कान्ती (लोहा)—संज्ञा पुं० [सं० कान्तिसार] दे० 'कान्तलोह'।

कान्तोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्डज सुरा। कुम्हड़े की शराब। (वै० निघ०)।

कान्द—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पक्वान्न विशेष। कन्द। मिष्ठान्न। मिठाई। (श० च०)।

कान्दर्पिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वाजीकरण। शुकीकरण। (श० च०)।

कान्दविक—वि० [सं० त्रि०] आपूयिक। रोटीकृता (अम०)।

कान्दाविष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कन्द विष भेद। शृंगिक विष। [वि० सं० त्रि०]। रोटी बनाने वाला नान-बाई (बावर्ची)।

कान्दूली—संज्ञा स्त्री० [व०] कॉम्पेलीनानेलीफलावर। (इ० है० गा० पू० ५२)।

कान्धरी—संज्ञा पुं० वनपलाण्डु। विषकन्दरा।

कान्धारी अनार—संज्ञा पुं० अनार जो कन्धार से आता है।

कान्तिरक-कुरु—संज्ञा पुं० [म०] कारस्कर। दे० 'कुचला'।

कान्तेड्ड—संज्ञा पुं० [मल०] सुखदर्शन। नागिन का पत्ता।

कान्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नली नाम का गन्ध द्रव्य। (वा०, च०)।

कॉन्वाल्व्युलस-माइक्रोफाइला—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus microphyla] शंखपुष्पी। संखाहुली।

कॉन्वाल्व्युलस-स्केमोनिया—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus-Scammonia] सकमुनिया।

कॉन्वेल्लेमेरीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Convalamarine] एक प्रकार का सत्व है।

कॉन्वाल्व्युलीन—संज्ञा पुं० [अं० Convolvuline] एक प्रकार का सत्व जो कान्वाल्व्युलस द्वारा प्राप्त किया जाता है।

कॉन्वाल्व्युलस-आर्जेन्टेन्स—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus Argentens] दे० 'कॉन्वाल्व्युलस स्पेसियोसा' या 'विधारा'।

कॉन्वाल्व्युलस-आर्वेन्सिस—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus Arvensis] एक प्रकार की लता है (चोपरा०)।

कॉन्वाल्व्युलस-स्केमोनिया—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus Scammonia] दे० 'सकमूनिया'।

कॉन्वाल्व्युलस-स्पेसियोसा—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus Speciosa] वृद्धदारक। बीजतारक। दे० 'विधारा'।

कॉन्वाल्व्युलस-नर्वोसस—संज्ञा पुं० [ले० Convolvulus nervosus] वृद्धदारक। बीज तारक। (Argyrea Speciosa)

कॉन्वाल्व्युलस-पॅनिक्युलेटा—संज्ञा स्त्री० [ले० Convolvulus-Paniculata] दुधवनिया, खीरबिदारी। देखो 'क्षीरबिदारी'।

कॉन्वैलेरीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Convallarine] एक प्रकार का सत्व, जो कॉन्वैलेरिया मॅजलिस द्वारा प्राप्त होता है। दे० 'कॉन्वैलेरिया मॅजलिस'।

कॉन्वैलेरिआमॅजलिस—संज्ञा पुं० [ले० Convallaria-majalis] पर्याय—(अं०) लिली ऑफ दी वैली (Lily of the valley)।

परिचय—एक प्रकार का पद्मवर्गीय क्षुप जो चतुर्दिक पर्वतों से घिरे हुए तालाबों में उत्पन्न होता है। इसके पुष्प की सर्वप्रधान क्रिया हृत्पिण्ड पर होती है।

गुण-कर्म—यह हृद्रोग, वस्तिरोग, वस्ति प्रदाह इनका नाशक तथा शोथघ्न है। **स्त्री रोग**—यह स्त्रियों के जरायु में तीव्र वेदना, योनि तथा मूत्रनलिका में कण्डू (खुजली) होने पर तथा गदोद्वेग में लाभप्रद है। **क्रम**—० से ३ शक्ति। **फार्मूला**—अमेरिकन—१। **प्रतिनिधि**—डिजिटलिस, लिलियम, क्रेटिगस इत्यादि।

कापथ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वीरणमूल, उशीर, खस। (अं० टी० भ०)। दे० 'गर्गड़'।

कॉपर—संज्ञा पुं० [अं० Copper] ताँवा। ताम्र धातु।

कॉपर-आर्सेनाइट—संज्ञा पुं० [अं० Copper-Arsenite] यह एक प्रकार का ताम्र और शंख विष (संख्या) का यौगिक है। (द्विटला मे० मे०)।

कॉपर ऑलिएट—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ताम्र घटित डाक्टरी योग।

कॉपरएसेण्टील—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ताम्र-घटित डाक्टरी योग। (द्विटला० मे० मे०)।

कॉपर-कापन—संज्ञा पुं० [अं०] करीर। देखो 'करील'।

कापरचिन्नी—संज्ञा स्त्री० शीतल चीनी। कवाब चीनी।

कापर प्रिकली—संज्ञा पुं० [अं०] करीर। कवर। आसिफ। दे० 'करील'।

कापर लेसीथीन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का डाक्टरी औषध। (द्विटला० मे० मे०)।

कॉपर-पाइराइट्स—संज्ञा पुं० [अं० Copper-Pyrites] सोनामक्खी। स्वर्णमाक्षिक।

कॉपर सल्फेट—संज्ञा पुं० [अं० Copper-Sulphate] तुल्यक। दे० 'तूतिया'।

कापली—संज्ञा स्त्री० [म०] द्रव्य विशेष।

कापलूस—संज्ञा पुं० [यू०] शाहतरा। पितपापड़ा। (लु० क०)।

कापसी—संज्ञा स्त्री० [म०] कार्पास। दे० 'कपास'।

कापाल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कपाल कुष्ठ। १८ कुष्ठों के अन्तर्गत वातज कुष्ठ। (२) ठिकरा, खपड़ा। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोकिलाक्ष। तालमखाना। कालिया कड़ा। कण्टकयुक्त प्रसिद्ध क्षुप है। (२) एक प्रकार की ककड़ी। (३) कापालास्थि। सिर की हड्डी। (वै० निघ०)। (४) वायविडंग।

कापाल कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] १८ प्रकार के कुष्ठों में से एक प्रकार का वातज कुष्ठ। (भा०, सुश्रुत)। दे० 'कुष्ठ'।

कापाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पुष्प विशेष। रक्त त्रिसन्धिका। (वै०) रक्त दोपाती। (वै० निघ०)।

कापालि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, पुं०] दे० 'हैंसा'। कण्टकपाली। अहिन्ना। (वै०), काँटा गुड़काउली। (रत्ना०)।

कापालिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का कोढ़ी जिसको कापाल कुष्ठ हुआ हो। कपाल कुष्ठी। दे० 'कुष्ठ'।

कापालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कण्टकपाली। दे० 'हैंसा'।

कापाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वायविडंग। विडङ्ग। (रा० नि० व० ६)। (२) कण्टकपाली। दे० 'हैंसा'। (प० मु०)।

कापाविला—संज्ञा स्त्री० [म०] द्रव्य-विशेष।

कापास—संज्ञा पुं० [व०] दे० कपास। कापसि।

कापि—संज्ञा स्त्री० [व०] काफी। मलयाफल। दे० 'कहवा'।

कापिआ कुशो—संज्ञा स्त्री० [व०] द्रव्य-विशेष। (चोपरा मे० मे० पृ० ४१)।

कापित्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कैथ। कपित्थ वृक्ष।

कापिलेक्षण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकिलाक्ष। दे० 'तालमखाना'।

कापि वित्तुलु—संज्ञा पुं० [ते०] कार्पास बीज। बिनौला।

कापि बीजा—संज्ञा स्त्री० [कना०] काफी। दे० 'कहवा'।

कापिश—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का मद्य जो माधवीके पुष्पों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। (वै० निघ०)।

कापिशायन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दे० 'कापिश'।
(२) मधु। (हला०, जटा०) (३) द्राक्षाकृत मद्य।
(वै० निघ०)।

वि० (सं० त्रि०) द्राक्षा द्वारा निर्मित (मद्य)।

कापिशायनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दाख। द्राक्षा।
मुनक्का। (वै० निघ०)।

कापुलि—संज्ञा स्त्री० [म०] पंजीरी। अजपाद। उपल-
भेदी। इन्दुपर्णी। (रा० नि० व० २०)। (Anisochi-
lus Carnosus)। (इं० मे० मे०, ओ० सं०)

कापुस—संज्ञा पुं० [म०] कपास। कार्पास।

कापूत—संज्ञा पुं० [?] सज्जिका क्षार। सज्जी।

कापूर—संज्ञा पुं० [सं० कर्पूर] कपूर। काफूर।

कापूर कचरी—संज्ञा स्त्री० कपूरकचरी। गन्धपलाशी।

कापूर काचरी—संज्ञा स्त्री० [म०] गन्धपलाशी। कपूरकचरी।

कापूर च तेल—संज्ञा पुं० [म०] कपूर तैल। (मो० श०)।

कापूर नु तैल—संज्ञा पुं० [गु०]। कर्पूर तैल

कापूर भेंडी—संज्ञा स्त्री० [म०] लताकस्तूरी।

कापूरी भेंडी—संज्ञा स्त्री० [गु०] मुश्कदाना।

कापूर-मदियन—संज्ञा पुं० [म०] कर्पूर मोदिवन।

कापूली—संज्ञा स्त्री० दे० 'कपुली'।

कापूस—संज्ञा पुं० [म०] दे० 'कपास'। कार्पास। (मो० श०)।

कापूस-च-बी—संज्ञा पुं० [म०] विनौला। कार्पास बीज।

कापूस-च-झाड़—संज्ञा पुं० [म०] कपास क्षुप।

कापेका—संज्ञा पुं० [?] हंसराज। हंसपदी।

कापोत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सज्जिका क्षार। (रा० मा०)।
दे० 'सज्जी खार'।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रूचक लवण। सोंचर
लोन। (मे० तुत्रिक)। (२) स्त्रोताञ्जन। सफेद सुरमा।
(३) नीलाञ्जन। काला सुरमा। (हे० च०)। (४)
मधु। शहद।

कापोत वक्रक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपोतवङ्का।
ब्राह्मीशाक जिसकी पत्तियाँ सूक्ष्म सिरस तुल्य होती हैं।
प्रायः आद्र भूमि तथा नदियों के तट पर भूलुंठित रहती
हैं, इसमें नील वर्ण के छोटे-छोटे पुष्प लगते हैं। इसको
जल नीम भी कहते हैं। स्वादतिक्त होता है। गुण—रक्त-
विकारनाशक है। (च० द०)। (२) वीरतरु।

कापोता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपोतचरणा।

कापोताञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौवीराञ्जन।
स्रोताञ्जन। काला सुरमा। नीलाञ्जन। दे० 'अञ्जन'।
(भा०; अम)।

कापौरस—मोनो कार्पास संज्ञा पुं० [ले० Coporus-Mono-
Carpus] वनस्पति विशेष।

काप्टिस्-एनिमोनोफोलिआ—संज्ञा पुं० [ले० Coptis
Animonifolia] क्षुप विशेष। (डाइमॉक I, 33)।

काप्टिस-ट्रिफोलिएटा—संज्ञा पुं० [ले० Coptis Tri-
foliata] क्षुप विशेष। (डाइमॉक I, 33)

काप्टिस-टीटा—संज्ञा पुं० [ले० Coptis-Teeta]
ममीरा। पीत मूला। मामीरान। (डाइमॉक) 'मिस्मी-
तीता'। दे० 'ममीरा'।

काप्टिसिआ-क्लेविडा—संज्ञा पुं० [ले०] क्षुप विशेष।

काफ—संज्ञा पुं० [अ० Calf] वत्स। बछवा।

काफज—संज्ञा पुं० [?] कुकरौंवा। (लु० क०)।

काफनूस—संज्ञा पुं० [यू०] पित्तपापड़ा। (अ०) बकलतुल
मलिक। (डाइमॉक I, 115)

काफर—संज्ञा पुं० [अ०] छोहाड़े के फलों का कोष (गिलाफ)।
(लु० क०)।

काफरी-मिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं०] काफिरी मिर्च। एक
प्रकार का मिरचा जिसका फल गोल-गोल किञ्चित्
चिपटा होता है।

काफल—संज्ञा पुं० [सं० कायफल] (१) गौरीफल के नाम
से भी यह गढ़वाल में प्रसिद्ध है। दे० 'खुवानी'। (२)
कटफल वृक्ष। (श० र०; अत्रि० २ अ०)। स्थान २।
दे० 'कायफल'।

काफि—संज्ञा पुं० [वं०, म०] काफी। दे० 'कहवा'।

काफिय—संज्ञा पुं० [अ०] गुद्दी। पसेगर्दन।

काफी—संज्ञा पुं० म्लेच्छ फल। दे० 'कहवा'।

काफीच—संज्ञा पुं० [अ०] गुद्दी, पसेगर्दन।

काफीआ-अरेबिका—संज्ञा पुं० [ले० Coffea Arabica,
Linn.] म्लेच्छ फल। दे० 'कहवा'।

काफीखरिआन—संज्ञा पुं० [ले०] खरियान देश में होने
वाला कहवा। (मे० मो०)।

काफी जैक्सआई—[?] संज्ञा पुं० [ले०] कहवा। (मे० मो०)।

काफी-टेट्रेण्ड्रा—संज्ञा पुं० [ले०] चीलमारी। (मे०
मो०)।

काफी-ट्राविकोरेन्सिस—संज्ञा पुं० [ले०] त्रावणकोर में
होनेवाला म्लेच्छफल। दे० 'कहवा'। (मे० मो०)।

काफी ट्री-टू—संज्ञा पुं० [अ०] म्लेच्छफल वृक्ष। काफी।
दे० 'कहवा'।

काफीना—संज्ञा पुं० [अ०] कैफीन। कहवा का सत्व।

काफीना फोर स्टेण्ड—संज्ञा पुं० [अ०] चीलमारी। (इं०
है० गा०)।

काफी फ्रैप्रेन्स—संज्ञा पुं० [अ०] सौमनस्यजनक म्लेच्छ
फल (कहवा)। (मे० मो०)।

काफीलू—संज्ञा पुं० [फा०] शुकाई। (लु० क०)। दे०
'शूकरान'।

काफी विगिआना—संज्ञा पुं० [ले०] म्लेच्छफल। दे०
'कहवा'।

काफीशा—संज्ञा पुं० [?] कुसुम्भ। कड़। (लु० क०)।

काफी-सी--संज्ञा पुं० [बर०] म्लेच्छफल। दे० 'कहवा'।
 काफूर--संज्ञा पुं० [फा०] (सं०) कर्पूर, (हि०) कपूर।
 दे० 'कपूर'।
 काफूर अनीसू--[?] संज्ञा पुं० [फा०] (१) कपूर जो किर-
 मानी जीरा द्वारा प्राप्त होता है। (२) छोहाड़े की छाल।
 (लु० क०)।
 काफूर-अस्फरस्--संज्ञा पुं० [फा०] उवैसरान। (लु० क०)।
 काफूर-कचरी--संज्ञा स्त्री० कपूरकचरी। गन्धपलाशी।
 काफूर कत्रान--संज्ञा पुं० [फा०] कर्पूर जो कत्रान द्वारा
 प्राप्त होता है।
 काफूर-कमूनी--संज्ञा पुं० [फा०] कपूर जो जीरा द्वारा
 प्राप्त होता है। (डा० मे० मे० गी०)
 काफूर कराविय--संज्ञा पुं० [फा०] कपूर जो कृष्णजीरक
 द्वारा प्राप्त होता है।
 काफूर का तेल--संज्ञा पुं० [द०, हि०] कर्पूरतैल।
 (मो० श०)।
 काफूर का तैलम्--[द०] कर्पूर तैल।
 काफूर का पत्ता--संज्ञा पुं० [हि०, द०] कर्पूरपत्र। कपूर
 पाता। (मो० श०)।
 काफूर-कैसूरी--संज्ञा पुं० [फा०] कैसूरदेशीय कर्पूर।
 फारमूसा का कपूर। (लॉरेल कैम्फर)।
 काफूर जूरान--[?] संज्ञा पुं० [फा०] सुगन्धपूर्ण कर्पूर-भेद।
 काफूर जूरान फिलिफली--[?] संज्ञा पुं० [फा०] कर्पूर जो
 पुदीना व मिर्च द्वारा प्राप्त होता है। (डा० मे० मे०
 गी०) पिपरमिट। सत्त पुदीना।
 काफूर-पूदन--संज्ञा पुं० [फा०] सत्त पुदीना। पिपरमिट।
 (डा० मे० मे० गी०)
 काफूर भीमसेनी--संज्ञा पुं० [फा०] भीमसेनी कपूर।
 काफूर मौती--संज्ञा पुं० [अ०] कर्पूर का निकृष्ट भेद।
 (लु० क०)।
 काफूर-यहूदिय--संज्ञा पुं० [अ०] कर्पूर जो रैहां (तुलसी)
 द्वारा प्राप्त होता है। रैहानुल-काफूर। (लु० क०)।
 काफूर-शकीक--संज्ञा पुं० [फा०, अ०] शकीक कपूर।
 काफूरिय--संज्ञा पुं० [अफरीकीय] उकहवान।
 काफूरी--संज्ञा पुं० [अफरीकीय] बाबूना गाय।
 काफूरुल् कस्क--संज्ञा पुं० [अ०] शटी। नरकचूर। जरं-
 वाद। (लु० क०)।
 काफूरे-कैसूरी--[?] संज्ञा पुं० [फा०] कैसूरदेशीय कर्पूर।
 काफोनिम्बिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी
 विशेष। (अ० शा०)।
 काब्--[अ०] } शोक। शोक तथा चिन्ताग्रस्त होकर हृदय
 काबल्--[अ०] } का बैठ जाना। एङ्गजाइटी (Anxiety)।
 काब--संज्ञा पुं० [अ०] गिद्ध। गृध्र पक्षी। ओकाव।
 (लु० क०)

काबसजरक--संज्ञा पुं० [फा०] काकली। दलदल। (लु०
 क०)।
 काबातीकी--संज्ञा पुं० [?] दे० कातानीकी। (लु० क०)।
 काबावचीनी--संज्ञा पुं० [बं०] कवावचीनी। शीतल
 चीनी।
 काबाबशर्करा--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विडंगत्का फल
 जिसको भाषा में कवावचीनी कहते हैं। शीतलचीनी।
 (मुस्तकादि मोदके)।
 काबास--संज्ञा पुं० [बं०] कार्पास। कपास।
 काबिज--वि० [अ०] पर्याय--(सं०) संग्राही, (हि०)
 संकोचक। (अ०) हवुस्सः। हवुसह, हाविस। (अं०)
 ऐस्ट्रिञ्जेण्ट (Astringent)। संकोच उत्पादक द्रव्य।
 वह द्रव्य जो शरीरांग में इस प्रकार का गुण उत्पन्न करे
 कि वह संकुचित होकर शरीरगत प्रणालियाँ तथा
 स्रोतसादि संकीर्ण हो जायँ।
 द्रव्य--अहिफेन, अरगट, अर्जुन की छाल, अमरुद,
 अखरोट, अनीसून, आम की गुठली, आड़की, इसबगोल,
 कचनार की छाल, कहरूना, बबूल की छाल, (गोंद),
 गुलनार, दम्मुलअखवैन, वारतंग, बाकला, वंशलोचन,
 जरिस्क, रसौत, माई, माजूफल, निशास्ता, गेहूँ, प्रवाल
 मूल, इक्लीलुल मलिक, जी, चन्दन, तुर्मुस, तुख्म रीहां,
 मौलसरी, जामुन की गुठली, शकरकंद, वेलगिरी, मसूर,
 वर्क चाँदी, वर्क सोना, भाँग, मस्तगी, हवुलआस,
 पोस्तखशखश, सुरमा, इजखिर, पोस्ततुरञ्ज, जुप्त
 बलूत, पिस्ता की छाल, सरो के फल, गिलेमख्तूम, ज्वार,
 संगजराहत, बाजरा, इत्यादि द्रव्य समूह जो कषाय-रस
 संपन्न होते हैं, प्रायः संग्राही होते हैं।
 काबिज-अमआ--वि० [अ०] आन्त्रसंकोचक। आँतों में
 संकोच उत्पन्न करने वाला। आन्त्रसंग्राहक। विष्टब्ध-
 जनक। आँतों में कब्ज उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। वह द्रव्य
 जो आँतों की पुरःसरण क्रिया को मंद और तदुद्विक्त द्रवों
 को न्यून करे। इसमें भी प्रायः उपर्युक्त 'काबिज' में वर्णित
 द्रव्य हैं--
 द्रव्य--अजवाइन खुरासानी, अहिफेन, अकाकिया, अञ्ज-
 वार, अनारदाना, अमड़ा, अखरोट, अतीस, अरहर, अर्जुन
 की छाल, अशोक की छाल, अमरुद का कच्चा फल, अनार
 का छिलका, आम की गुठली, इन्द्रजी मीठा, इक्लीलुल
 मलिक (नाखूना), कहेला, कहेली, कसेरू, कैथ, कोदो, कुड़ा
 की छाल, कनौचा के बीज भजित, खुरफा के बीज, इसब-
 गोल भजित, इलायचीदाना, इस्पस्त, कुंदुर, काई, कत्था,
 केसर, गुलाब, अंगूर, अनार अम्ल, गिलोय, गुलमुख, गुल
 दुपहरिया, गुलनार, गुलधौ, गुलटैसू, गुलसुपारी, गेंदा,
 चिरायता, चावल, उड़द, ज्वार, जी, खशखश के बीज,
 खुरफा के बीज, छड़ीला, बाजरा, जायफल, माजूफल,

माई, दही, तुख्म इस्पस्त, वारतंग, दालचीनी, तज, धनियां, चुकवीज भजित, खुरफा के बीज, तुख्म बालंगो, चन्द्रसुर, कुंदुर, मस्तगी, मामीसा, गुलदुपहरिया, वहेड़ा, नीबू का रस, बेलगिरी, सुदाव, दही, तक्र, सिरका, हव्वुल् आस, हाऊबेर, जरिस्क, लाजवन्ती, सुरवाली, दुद्धी, भांग, रतनजोत, मोचरस, वाजरा, मूंग, सत्तू इत्यादि कषाय द्रव्य भी।

क्राविज उरुक—वि० [अ०] रक्तस्तम्भक, वाहिनीसंग्राहक रक्तवाहिनीसंकोचक; (अ०) हाविस-दम्म, हावि-सातुद्म, हाविसुद्म। क्राविजात उरुक; (अ०) हीमॉस्टेटिक (Haemostatic), हीमास्टीप्टिक (Haemostyptic)

वह द्रव्य जो रक्तवाहिनियों को संकुचित कर रक्त-स्राव को अवरुद्ध करें। वाहिनीसंग्राहक द्रव्य वही हैं जिनका वर्णन क्राविज अमआ तथा क्राविज उरुक में किए गए हैं।

क्राविज-मेदा—वि० [फा०] आमाशयसंग्राही। आमाशय संकोचक। वह द्रव्य, जो आमाशय में संग्राहिता वा संकोच उत्पन्न करें। इस परिभाषा में भी क्राविज अमआ तथा क्राविज उरुक में वर्णित द्रव्य हैं।

क्राविजात—संज्ञा पुं० [अ० बहुव०; एक व० क्राविज] वह द्रव्य जो शरीरांग में संकोच उत्पन्न करें। दे० 'क्राविज'।

क्राविसःज—संज्ञा पुं० [अ०] अश्मरी। पथरी। (लु० क०)।

क्राविलः—संज्ञा स्त्री० [अ०] धात्री। वह स्त्री जो प्रसव कराने में सहायक होती है। मिडवाइफ़ (Midwife)।

क्राविस—संज्ञा पुं० [सं० कापिश] एक प्रकार की लाल रंग की मिट्टी। यह रक्तस्राव रोधक है।

क्रावी—वि० [अ०, बहु व० क्राविजात] दाहक, दग्धकारक। फोस्फाजनक, दहन-कर्म में उपयुक्त द्रव्य। (अ०) कॉष्टिक (Caustic), पायरोटिक (Pyrotic), एस्कारोटिक (Escharotic)।

वह द्रव्य जो त्वचा को दग्ध करें; यथा—तीक्ष्ण उत्ताप, अम्ल (तेजाब) जो लोहादि द्वारा त्वचा पर दहन क्रिया में प्रयुक्त हैं। तिब्ब में—दहन क्रिया व कर्म को 'कय्य' कहते हैं। उक्त कर्म द्वारा त्वचा में रुक्षता तथा उष्णता उत्पन्न होकर त्वचा वा कला (झिल्ली) में चिन्ह (दाग) उत्पन्न होता है। इस प्रकार के आग्नेय द्रव्य शरीर के जिस भाग पर लगाए जाते हैं, उस स्थान की त्वचा आरक्त होकर अंगारवत् एवं कृष्ण वर्ण की हो जाती है और उस स्थान के द्रवों का उत्सर्ग रुक जाता है। इस कर्म का उपयोग रक्तस्रावरोधकरणाथ किया जाता है। जब शल्यकर्म की अनभिज्ञता द्वारा सिराएँ भग्न हो जाती हैं तथा व्रणपूरण दुस्तर हो जाता है, तब इस कर्म का विशेष अवलम्बन किया जाता है।

उपयुक्त द्रव्य—लवणाम्ल, शोरकाम्ल, गन्धकाम्ल, सिलवर नाइट्रेट, कसीस, फिटकिरी, तुत्यक, संखिया, चूना, दारचिकना और मुलेमानी इत्यादि हैं।

क्रावीनस—संज्ञा पुं० [?] वंश। बाँस। (लु० क०)।

क्रावीशा—संज्ञा पुं० [?] कुसुम्भ। कड़। (लु० क०)।

क्रावीशः—संज्ञा पुं० [फा०] छुछुन्दर। मस्करैट (Musk-rat)। (लु० क०)।

क्राबुली—संज्ञा पुं० [को०] कृष्णसारिवा। कालीसर। वि० [हि० काबुल] काबुलदेशीय। काबुल का।

क्राबुली अखरोट—संज्ञा पुं० काबुलदेशीय अखरोट।

क्राबुली-कसीस—संज्ञा पुं० [हि०] कसीस जो काबुल देश से आती है।

क्राबुली किसमिश—संज्ञा स्त्री० [हि०] क्षुद्र अबीजद्राक्षा जो शुष्कावस्था में काबुल से आती है।

क्राबुली चना—संज्ञा पुं० [हि०] श्वेत हरिमन्थ। सफेद चना जो काबुल में होता है।

क्राबुली-पिस्ता—संज्ञा पुं० [हि०] गुले पिस्ता।

क्राबुली-बबूल—संज्ञा पुं० [हि०] राम बबूल।

क्राबुली मस्तगी—संज्ञा स्त्री० [हि०] पर्याय—

(हि०) खिजक, गुलेपिस्ता, काबुली पिस्ता। (ले०)

पिस्टेसिया काबुलिका (Pistacia Cabulica)। यह खिजक के वृक्ष का गोंद है, जो रूमीमस्तगी के सदृश होता है। यह रूमीमस्तगी की उत्तम प्रतिनिधि है। बम्बई में मस्तगी के नाम से प्राप्त होती है। वहाँ 'बूजगंज' भी कहते हैं। इसका उपयोग कुन्दुररूमी के स्थान में भी होता है। (इ० मे० मे०)।

क्राबुली-हड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार की हरीतकी। दे० 'हरीतकी'।

क्राबूक—संज्ञा पुं० [अ०] त्वचा। छाल। छिलका। (लु० क०)।

क्राबूला—संज्ञा पुं० [फा०] काँची। हरीरा। हलुआ।

क्राबूस—संज्ञा पुं० [अ०] जागृत। धात्वर्थ—दवाने वाला। पर्याय—इनक्युवस (Incubus), नाइटमेअर (Night-mare), ऐफीआलीज (Aphiales)। यह एक प्रकार का रोग है जिसमें शयनकाल में ऐसा प्रतीत होता है कि वक्ष पर कोई भारी शक्तिशाली वस्तु रखी गई हो अथवा किसी भारी बोझ से दबा हुआ प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में स्वासावरोध हो जाता है, वाचाशक्ति का भी अवरोध हो जाता है और हिलने-डोलने की शक्ति जाती रहती है। पुनः व्यग्रता हो कर निद्रा खुल जाती है।

काब्बः—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ—औंधा करनेवाला, पट करनेवाला। (अं) प्रोनेटर (Pronator)। तिब्ब की परिभाषा में इस शब्द का उपयोग, उन

पेशियों के निमित्त होता है, जो मणिबन्ध (कलाई) को पट वा औंधा करती है।

कामः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कामदेव। मदन। (२) शक्ति, बल, तेज, वीर्य। (३) मनोरथ, इच्छा, (४) दमनक क्षुप। दौता। (५० मु०)। (५) आम्र भेद। महाराजचूत वृक्ष। (१० नि० व० ११)। (६) वनिता-परिश्वाङ्ग। (च० सू० १ अ०)। (७) राजाम्र। (ध० नि०)। (८) मैथुन की इच्छा। स्त्री सहवासेच्छा। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शुक्र। वीर्य। (मे० मट्टिक)।

कामः—संज्ञा पुं० [फा०] प्रवाल। मूंगा। बसुद। मिर्जा।

कामकटिबन्धः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीरस्थ कामदेव का स्थान जहाँ स्पर्श करने से मैथुनेच्छा जाग्रत होती है। यथा—अधर, उर, कक्षा, गुद, योनिमुख, वस्ति स्थान, स्तनाग्र। (अँ) एरोजेनी जोन (Erogeni zone)।

कामकला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काम विज्ञान। कोक विद्या। कामशास्त्र।

कामकलाख्य रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामकलारस।

कामकला-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाजीकरण प्रसंग में वर्णित रसयोग। निर्माण विधि—मृत पारद (रस सिन्दूर), अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, मुसली, अश्वगन्धा मूल, कदलीकन्दद्रव (रस), गुडूची रस, एकत्र मर्दन कर लघु पुट द्वारा भस्म करे। पुनः उक्त द्रव्यों के द्रवों में मर्दन कर पूर्ववत् ८ पुट देकर भस्म करें। गुण तथा सेवन-विधि—शेमल के रस में उचित मात्रा में मिला सेवन कर तदुपरान्त दुग्धपान करने से तथा मिश्री कौंच के बीज के चूर्ण के अनुपान से सेवन करने से—शरीर पुष्ट होता और वीर्य की वृद्धि होती है। मात्रा—उड़द प्रमाण। (रस० र० बाजी० चि०)। ग्रन्थान्तर में इसके निर्माण में त्रिफला का योग अधिक है एवं भूधरयंत्र में मूषा में बन्द कर भस्म निर्माण का निर्देश किया गया है। मात्रा—१-२ मा०। अनुपान में मोचरस २ मा०, मिश्री ४ मा० के चूर्ण के साथ तथा कौंच के बीजों का चूर्ण २ तो० गोदुग्ध के साथ सेवन किया जाता है। और शेमल के रस में यवचूर्ण मिश्रित कर उबटन करने का आदेश किया गया है। इस प्रकार सेवन करने से सैकड़ों स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति होती है। (रस० यो० सा०)।

कामकला वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वातरक्त में प्रयुक्त योग। निर्माण विधि—अंकोलमूल, त्रिफला, गुडूची, कालीमिर्च, कूठ, कुटी (मरुवक), मुरामांसी, हरिद्रा, प्रत्येक १ कर्ष १० माशा, वायविडंग, मोथा, काच (कंचट वा काला नमक), शुद्ध हरिताल, सुहगे की खील, निशोथ, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म प्रत्येक ३ पल०, शुद्ध गुग्गुल ३ पल, गोघृत युक्त यथा

विधि मर्दन कर ४ माष (उड़द प्रमाण) की गोलियां बनाएँ। गुण—पथ्यपूर्वक सेवन करने से वातरक्त का नाश होता है। (रस० र०)।

कामकस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (कों०, क०, तु०) तुलसी भेद। बाबुई तुलसी। (सं०) बर्बर (री) (ख० अ०)। (Ocimum-Sanctum)।

कामकान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मल्लिका। मालती। (बं०) मनछाल। (वै० निघ०)।

कामकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलचर पक्षी विशेष। (चरक सू० २७ अ०)।

कामक्री—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का कीड़ा जो शाकों को खाता है। शाक कृमि। (लु० क०)।

कामकेलि (ली)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रतिक्रिया। मैथुन कर्म।

कामक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भोग-विलासकृत कर्म।

कामख—संज्ञा पुं० [अपभ्रंश० फा० कामः] एक प्रकार का सालन है। (लु० क०)।

मुन्तहयुलअरब में इसका उच्चारण कामिख लिखा है। यह फारसी कामः से अरबीकृत है। इसका बहुवचन कवामिख है। मख्जन में लिखा है कि कोई-कोई इसे फारसी में जवाव और असफहानी में कोमः कहते हैं।

वर्णन—एक प्रकार का सालन जिसे पुदीना, दूध, गरम मसाले और फूजज (काँजी या खमीर) से तैयार करते हैं। करावादीनों में फूजज में इसका योग मिलता है। उत्तम वह है जिसमें औसत दर्जे में तीक्ष्णता हो और बहुत मसाला पड़ा हो।

प्रकृति और गुणधर्म तथा प्रयोगादि—यह उष्ण और रुक्ष है। परंतु आवकामः (विलायती काँजी) से कम रुक्षता उत्पन्न करता है, क्षुधा की वृद्धि करता है और आहार को आमाशय से शीघ्र नीचे उतार देता है। परंतु इससे हानि भी अधिक होती है। इससे कैमूस खराब बनता है। यह तृष्णा उत्पन्न करता है और आमाशय को असात्म्य है। प्लीहा और वक्ष को हानिकारक है। अत्यधिक सेवन से चिरकारी शोथ, दुर्गन्धजनित ज्वर और कास उत्पन्न करता है। इसका अधिक सेवन वर्जित है। (मख्जन, मुहीत)। मख्जन में लिखा है कि यह वक्ष एवं कास को हानिप्रद नहीं है।

कामख अद्यज—संज्ञा पुं० [फा०] श्वेत तुलसी। (लु० क०)।

कामखङ्गदला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वर्ण केतकी। केवड़ा भेद। (रा० नि० व० १०)।

कामगा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोयल, कोकिला पक्षी। (वै० निघ०)।

कामगु—संज्ञा पुं० [ता०] सोपारी। पूग फल। (डाइमॉक)।

कामगेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] स्त्री-योनि। काम कटिबन्ध।

कामचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रास्ना।

(२) सुगन्धवाला। (वै० निघ०)।

कामचारी-(इन्)---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गौरैया। चिड़ा।
कलविक पक्षी।

कामचि कस्सपु---संज्ञा पुं० [ते०] गन्धवेना। भूतृण।
मूल तृण। (इं० मे० मे०)।

काम चूड़ामणि रस---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकरण
योग विशेष। **निर्म्माण-विधि**---लौंग, जायफल, जावित्री,
कपूर, मुक्ता, स्वर्ण भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, वंग भस्म,
रजत भस्म, प्रत्येक १-१ भाग, सब का अर्ध भाग चातुर्जति
(तज, पत्रज, नागकेसर, इलायची) इनका चूर्ण ग्रहण कर,
एकत्र शतावरी के स्वरस की ७ भावनाएं देवें और १-१
रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएं। **गुण**---इसको यथोचित
अनुपान से सेवन करने से श्वज्वर तथा नपुंसकता का
नाश होता है। यह परम शुक्ल योग है। अग्निमान्द्य,
शोथ, रक्तविकार तथा मैथुन की शक्ति के अभाव में
इसके सेवन से अपूर्व लाभ होता है। (आ० वे० वि०)।

कामज---संज्ञा पुं० [कना०] दे० 'कामजा'।

कामजननी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पान।
नागवल्ली। (२) बहुला। (ध० नि०)।

कामजा---संज्ञा स्त्री० [कना०, सं० स्त्री०] एक प्रसिद्ध बीज जो
कर्णटक देश में होता है। इसके क्षुप बड़े होते हैं। **गुण**---
मधुर, बलकारक, रुचिप्रद एवं कामशक्तिवर्धक है।
इसके बीज इन्द्रियों को तृप्त करते हैं। (रा० नि० व०
४, वै० निघ०)।

काम जान (नि)---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल, कोकिला
पक्षी। (श० र०)।

कामजाल---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल, कोकिला पक्षी।
(शब्द र०)।

कामजित्---संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] स्त्री। भार्या।

कामज्वर---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामजनित ज्वर।

कामञ्चि-गड्ड (डिड)---संज्ञा पुं०, स्त्री० [ते०] तिखाड़ी,
रोहिषतृण। रोहासा। इजखिर।

कामञ्चि-गड्डनूणे---संज्ञा पुं० [ते०] रोहिषतैल। तिखाड़ी।
का तेल। (मो० श०)।

कामञ्चि चेदु---संज्ञा पुं० [ते०] मकोय। काकमाची।
(डाइमाँक)।

कामञ्चि पुरी---संज्ञा स्त्री० [ते०] अडूसा। वासक।

कामठ---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कछुआ। कच्छप। (बं०)
कौचकड़ा।

कामत---संज्ञा पुं० [अ०] डील-डौल। आकार-प्रकार।
स्ट्रक्चर (structure)।

कामतन्त्र---संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह शास्त्र जिसमें स्त्री-
पुरुषों के लक्षण, मैथुन के विभिन्न आसन, देश-भेद से
स्त्रियों की प्रकृति, ६४ कलाओं का वर्णन तथा वाजीकरण

औषधों का वर्णन किया गया हो। कामतन्त्र के प्रधान
ग्रन्थ---वात्स्यायन कामसूत्र, अनंगरंग, कन्दर्प चूड़ामणि
इत्यादि हैं।

कामतरु---संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वन्दाक, वाँदा, परगाछा।
(वै० निघ०)।

कामतरुलता---संज्ञा स्त्री० इक्केपेचा।

कामताल---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल। कोकिला पक्षी।
(त्रिका०)।

कामदा---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कामधेनु। (वै०
शब्द०)। (२) पान। नागवल्ली। (३) हरीतकी।
(मे०)। (४) बहुला। (ध० नि०)।

कामदीपक---वि० [सं० त्रि०] कामशक्ति उत्तेजक। रति शक्ति
का उभाड़ करनेवाला। एफ्रोडिजिएक (Aphrodisiac)।

कामदीपक-रस---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वाजीकर योग
विशेष। **निर्म्माण-विधि**---शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,
मोचरस, श्वेत पुनर्नवामूल, समान भाग में ग्रहण कर
यथा-विधि सेमल मूल की छाल के रस में मर्दन कर १-१
रत्ती की गोलियां बनाएं। **गुण**---परम वीर्यवर्धक है।
(रस० र०)। यदि उक्त योग में से पारद निकाल कर
१ शाण की मात्रा में सेवन किया जाय तो अगम्या स्त्री
भी गमन योग्य हो जाती है। इसको चण्डालनी योग
कहते हैं। (भैष० र०)। **अनुपान**---दुग्ध।

(२) शुद्ध गन्धक में भाँगरा के रस की ७ भावनाएं
दे कर धूप में स्थापित करें और इसमें जायफल,
जावित्री, शुद्ध कर्पूर, लौंग प्रत्येक---२ माशा मिश्रित कर
गुड़ के साथ प्रत्येक मात्रा में उक्त भावित गन्धक का
चूर्ण ४ रत्ती ग्रहणीय है। इस प्रकार प्रातःकाल सूर्य की
आराधनापूर्वक सेवन करने का विधान है और अदरक
का रस १ माशा, सेंधा नमक ४ रत्ती, कालीमिर्च ७
दाना सेवनोपरान्त चर्वण कर दुग्ध-पान करना चाहिए।
इस नियम से सेवन करने से वृद्ध भी युवत्व प्राप्त कर
सकता है। (रस० यो० सा०)।

कामदुधा---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामधेनु।

कामदुधा रस---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रसायन तथा ज्वरा-
धिकारोक्त योग। यथा---(१) मोती, मोती की
सीप, कौड़ी, शंख, प्रवाल प्रत्येक की भस्म, स्वर्णगैरिक,
गुड़चीसत्व प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर सूक्ष्म चूर्ण
करें। मात्रा---२ रत्ती।

गुण तथा उपयोग-विधि---३ माशा जीरा और ३ माशा
मिश्री के साथ प्रातःकाल सेवन करने से---जीर्ण ज्वर
भ्रम, पित्तज रोग, उन्माद तथा सोमरोग का नाश होता है।

(२) स्वर्ण गैरिक ग्रहण कर घृत में भोजित करें। पुनः
इसमें ७ पुट आमलों के रस की देवें। मात्रा---६
रत्ती।

गुण तथा सेवन विधि—गोधृत, मधु और मिश्री युक्त सेवन करने से—पित्तजनित रोग, प्रमेह, पाण्डु, कामला, हलीमक, घोर अंग दाह, तृषा, भ्रम, तथा जीर्णज्वर का नाश होता है और रक्त की वृद्धि होती है। यह स्वल्प मूल्य एवं बहुगुणसम्पन्न योग है। (रस० यो० सा०)।

गुण—इसके सेवन से—दुर्बलता, नपुंसकता, हृदय की निर्वलता, तथा ओजक्षय का नाश होता है और यह वृष्य तथा रसायन है। बहुस्त्रीगामी पुरुषों को इसका सेवन अत्यन्त हितकर है। (च० द० रक्त पि० चि०, वंगसेन रक्त पि० चि०)।

कामदूत रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकरण में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—(१) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कान्तलोह भस्म सर्व समान भाग में ग्रहण कर शाल्मली के स्वरस में मर्दन कर गोला बनाएं और अन्ध मूषा में वेष्टित कर तथा काचकूपी में भर कर बालुकायंत्र में यथाविधि पकाएं और स्वांग शीतल होने पर निकाल, पुनः भूकूष्माण्ड और नागवल्ली (पान) के रस में मर्दन करें। मात्रा—१ रत्ती। इसे घृत के साथ सेवन करने से कामदेव की वृद्धि होती है। पथ्य—दुग्ध, मिश्री, घृत। (रसर०)।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रति का स्वामी। (२) वीर्य। (३) स्त्री संभोग की कामना। इच्छा।

कामदूता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) मैतसिल।
कामदूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
कामदूती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (२) पाटल वृक्ष। (३) कोकिला पक्षी, (का०)। (४) नागदन्ती (हाथी सुण्डी)। (प० मु०)।

कामदूती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पटोल। परवल की बेल।

कामदेव घृत—संज्ञा पुं० [सं० वली०] क्वाथार्थ—अश्वगन्धा १०० पल, गोखरू ५० पल, शतावरी, विदारीकंद, शालपर्णी, बला, गुडूची, पुनर्नवा, काश्मरी (अभाव में द्राक्षा), कमलगट्टा, पीपल के शृंग (कोपल) प्रत्येक १० पल। जल ४ द्रोण (४४ सेर)।

कल्कार्थ—द्राक्षा, कूट, पद्मकाष्ठ, रक्तचन्दन, पीपल, तेजपत्र, नागकेसर, केवांच के बीज, नीलोत्पल, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, जीवनीय गण (मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुद्गपर्णी, शालपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी) प्रत्येक १ कर्ष; मिश्री २ पल, गन्ने का रस ६४ पल, पौण्डे का रस ६४ पल, गो दुग्ध ४ प्रस्थ, गो घृत १ प्रस्थ।

कामदेव रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकरण में प्रयुक्त योग। **निर्माण विधि**—(१) रस सिन्दूर ३ तो०,

स्वर्ण भस्म १ तो०, एकत्र कदलीकंद और शाल्मली के रस में १-१ दिन मर्दन करें। पुनः इसमें—मिश्री, द्राक्षा, मुसली, गोक्षुरबीजचूर्ण प्रत्येक ३ तो० मिश्रित कर मधु, दुग्ध और इक्षु रस द्वारा मर्दन कर धूप में शुष्क करें। पुनः इसमें—तालमखाना, आंवला का रस, मधुमिश्रित १२ तोला डाल कर शाल्मली के रस से मर्दन कर शुष्क कर लें। मात्रा—१-८ रत्ती। **गुण**—अत्यन्त शुक्ल एवं बलवर्धक है। (२) शुद्ध पारद १ भाग (रस सिंदूर), रजत भस्म २ भा०, शुद्ध हिंगुल ३ भाग, नाग भस्म ४ भा०, अभ्रक भस्म ५ भा०, लोह भस्म ६ भा०, वंग भस्म ७ भा०, ग्रहण कर, इसमें—क्रम से—धतूर स्वरस, भांग का रस तथा तालमूली के रस की ७-७ भावनाएं दें। मात्रा—१-३ रत्ती। **सेवन विधि**—वीर्यस्तम्भन हेतु इसमें—भर्जित चना की बेसन, भर्जित भंग, जावित्री, मिश्री समान भाग में मिश्रित करें और घृत के साथ सेवन करें। **पुष्टि हेतु**—घृत, मिश्री, मुसली, विदारीकंद समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें और उचित मात्रा में सेवन कर दुग्ध पान करें। इसको अग्नि तथा बल के अनुसार सेवन करने से मदोन्मत्त स्त्रियों में विजय प्राप्त होती है। (रस० यो० सा०)।

कामदेवेशरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकर योग विशेष। **निर्माण-विधि**—शु० गन्धक, शु० पारद, अहिफेन, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर पान के रस से मर्दन कर १ प्रहर के पश्चात् जब शुष्क होने लगे ३ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएं। भैंस के दूध और मिश्री के साथ रात्रि के प्रारम्भ में सेवन कर बिना भोजन किए स्त्री के साथ संभोग करने से अत्यंत वीर्यस्तम्भन होता है। यदि स्थलित न हो तो नीबू का रस मिश्रीयुक्त सेवन करें।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुक्रस्तम्भन योग। **निर्माण-विधि**—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भा० कज्जली कर कण्टकारी के फलों के रस में मर्दन कर गोली बनाएं और पुनः कण्टकारी के बड़े फल में रख व धतूर के फल में रख कपड़मिट्टी कर ८ बार कुक्कुट पुट से भस्म करें। **गुण तथा सेवन विधि**—सूर्योदय से आरम्भ कर १ पहर के अन्तर से १-१ रत्ती की मात्रा में पान के रस के साथ दिन में ४ मात्रा सेवन करने से वीर्यस्तम्भन होता है। पथ्य—इच्छानुसार दूध भात लवणरहित। (रस रा० मु०)।

कामदोरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमेहनाशक तथा कामदेव-वर्धक योग। **निर्माण-विधि**—शु० पारद, शु० हिंगुल, अम्बर, अकरकरा, वंग भस्म, शुद्ध वच्छनाग और धतूर बीज प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि १ दिन पान के रस में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएं।

यथोचित अनुपान से सेवन करने से यह प्रमेहों का शीघ्र नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्वनामाख्या गवि (गाय)। (२) उक्त नाम का कामवर्धक योग। यथा—शुद्ध गन्धक, आमला का चूर्ण समान भाग में ग्रहण कर आँवलों के रस और सेमल के रस की ७-७ भावनाएं देवें। गुण—यह परम वाजीकर है।

कामधेनु गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वाजिकर योग विशेष। **निर्माण-विधि**—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, वंग भस्म, नाग भस्म, प्रत्येक १ तोला; गोक्षुर चूर्ण, कौंच के बीजों का चूर्ण, शतावरी चूर्ण, मुसली चूर्ण, अश्वगन्धा चूर्ण प्रत्येक ९ माशा। इनको एकत्र शाल्मली मूल-स्वरस के रस में मर्दन कर चना-प्रमाण की गोलियाँ बनाएं।

गुण तथा सेवन-विधि—इसे मिश्री मिले गोदुग्ध के साथ सेवन करने से बल-वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है और शुक्र का स्तम्भन होता है।

कामधेनु रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुक्रमेह में प्रयुक्त योग। (१) **निर्माण-विधि**—रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, कपूर, खर्पर, रजत भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर एकत्र (शाल्मली कंद) के रस में मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएं और छाया में शुष्क कर सुरक्षित रखें।

गुण—यथोचित अनुपानों से सेवन करने से क्षय रोग तथा २० प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है। (भैष० र०)।

(२) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकुटा चूर्ण, लौह भस्म और अभ्रक भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर त्रिफला के क्वाथ से मर्दन कर सुरक्षित रखें। **मात्रा**—६ रत्ती। **गुण तथा सेवन-विधि**—पिप्पली चूर्ण और मधुयुक्त सेवन करने से धातुक्षय, जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, पाण्डु रोग, प्रमेह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, प्रचण्ड वात, शूल, गुल्म, अर्श, कृमि तथा ग्रहणी रोग का व्यथानुपान सेवन करने से तत्क्षण नाश होता है। (रसा-यन सं०, सर्वरोगे)।

(३) शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, एकत्र कज्जली कर लोह की कड़ाई में द्रवीभूत करें और कुछ कालोपरान्त शीतल कर यथाविधि खरल करें और ४ तह निर्मल वस्त्र में बांध कर काँजीपूर्ण पात्र में दोलायंत्र में यहाँ तक पाक करें कि समस्त काँजी समाप्त हो जावे, पुनः शुष्क हो जाने पर उसमें १ भाग शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण मिश्रित कर बकुची के तेल में मर्दन कर सुरक्षित रखें। **मात्रा**—२ निष्क (८ माशा)।

गुण तथा सेवन-विधि—शुद्ध गुग्गुलु, त्रिफला, शुद्ध गन्धक चूर्ण तथा सर्व तुल्य भाग एरण्ड तैल एकत्र

मिश्रित कर उक्त मात्रा में सेवन करने से रक्तमण्डल कुष्ठों का शीघ्र नाश होता है। (रस यो० सा०)।

कामध्वज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जननेन्द्रिय। लिङ्ग। [अं०] पेनिस (Penis), जेनाइटल अर्गन (Genital organ)। **कामन, चिकपी**—संज्ञा स्त्री० [अं०] चना। हरिमन्थ। चणक। **कामन, पार्सले**—संज्ञा पुं० [अं० Common parsley] अजमोदा।

कामनफ्लैक्स—संज्ञा पुं० [अं० Common flax] अलसी, अतसी, तीसी। (डाइमाक I. २३९)

कामन, बाइल-डक्ट—संज्ञा पुं० [अं० Common bile-duct] पित्तप्रणाली।

कामन-बीट—संज्ञा पुं० [अं०] चुकन्दर। (अं०) गार्डन बीट (Garden beat)

कामन-मेलो—संज्ञा पुं० [अं० Common mallow] खातमी मार्शमेली (Marsh mallow) दे० 'खतमी'।

कामन, राई—संज्ञा स्त्री० [अं०] 'अर्गट' शैलम। (लु० क०)

कामनरू—संज्ञा पुं० [अं०] मुदाव। शतरी। (डाइमाक)।

कामन मिल्क हेज—[अं० Common milk-Hedge] सेंहुड़ा।

कामन, वालनट—संज्ञा पुं० [अं० Common walnut] आक्षोट। अखरोट।

कामन साल्ट—संज्ञा पुं० [अं० Common salt] सेंधा नमक।

कामन सौरल—संज्ञा पुं० [अं० Common sorrel] अम्ल लड्क, चांगेरी, खटकल।

कामना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वरगाछा। वन्दाक। (२) इच्छा। (वै० निघ०)।

कामनायक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकर योग विशेष।

निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक ग्रहण कर, पृथक्-पृथक् शाल्मली कंद के रस में १५ दिन पर्यन्त यथा-विधि मर्दन करें तथा गन्धक को २१ दिन तक मर्दन करें। पुनः ४ प्रहर गोघृत में मर्दन कर गोला बना लें और ४ तह वाले वस्त्र में बांध कर पोटली बनाएं और २ प्रहर तक वृत्युक्त लोह-पात्र में पकाएं। पुनः शीतल कर ३ दिन तक शाल्मलीकन्द स्वरस में मर्दन करें और शुष्क हो जाने पर काचकूपी में भर कर १ दिन बालुकायंत्र में स्थापन कर आँच देवें और स्वांग शीतल होने पर शीशी फोड़ कर रक्तवर्ण का मूर्च्छित पारद निकालें। उसमें समान भाग मिश्री मिश्रित कर चूर्ण करें। **मात्रा**—४ माशा तक।

गुण तथा सेवन-विधि—२० तोला दुग्ध में ४ तो० मुसली चूर्ण मिश्रित कर मिश्री के साथ सेवन करने से अनेक स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति होती है और समस्त प्रमेहों का नाश होता है। (रस यो० सा०)।

कामनाशक-वि० [सं० त्रि०]। मुसखिन मनी। कातिउल् मनी। वह द्रव्य जो मैथुनेच्छा को न्यून करे। दे० 'कातेअबाह'।

कामनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बांदा। वन्दाक।
 कामनीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृगनाभि। कस्तूरी।
 (वै० निघ०)।
 कामपतीगे—संज्ञा पुं० [ते०] गोधापदी। अमलोला।
 वाइयिस पेडेटा (Vitis Pedata) (इं० मे० मे०)।
 कामपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरवड़। आहुल्य।
 कामपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (वै० धि०)
 कामपाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राजास्र। महाराज चूत।
 (रा० नि० व० ११)। दे० 'आम'।
 कामपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली० पुं०] वनफशा।
 कामप्पु—संज्ञा पुं० [ता०] जंगली मदनमस्त का पुष्प।
 कामप्रियकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगन्धा।
 अत्तगंध। (वै० निघ०)।
 कामफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मालदह आम। महाराज
 चूत। (रा० नि० व० ११)। दे० 'आम'।
 कामफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कदली। केला।
 (वै० निघ०)। (२) कवावचीनी। शीतलचीनी।
 कामवाण-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकरण योग-विशेष।
 निर्माण-विधि—शुद्धपारदभस्म (रससिद्धर), शुद्ध
 वत्सनाभ, शुद्ध अहिफेन, अकरकरा, अजवाइन,
 अश्वगन्धा, समुद्रशोध, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, कर्पूर,
 लौंग, चमेली का फूल, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर
 चूर्ण करें और पान के रस में मर्दन कर गोला-सा बना लें
 और डाभ (जलयुक्त) नारियल में रख उसका मुख बन्द
 कर दें और १६ सेर दूध में पकाएं। जब दूध जल कर
 समाप्त हो जावे, तब नारियल सहित बारीक चूर्ण कर
 लें। मात्रा—१-९ रत्ती।
 गुण तथा सेवन-विधि—स्वर्णभस्मयुक्त सेवन
 करें और रात्रि में पान में रख कर सेवन करने से
 कामाग्नि संदीप्त होती है, वीर्यस्तम्भन होता है और
 इसके उपयोग से षण्डता दूर होती है। वृद्ध भी भली-भांति
 स्त्रियों की तृप्ति के योग्य होता है। (रस० यो० सा०)।
 काममक्री—संज्ञा स्त्री० [?] शाकाहारी कृमि विशेष।
 (लु० क०)।
 काममन्दिर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कामगेह। योनि।
 काममय शोक ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आगन्तुक ज्वर
 भेद। काम-शोक युक्त ज्वर।
 काममरम्—संज्ञा पुं० [ता०] जंगली मदनमस्त। (मो०
 श०)।
 काम-मलोलुप-(भ)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सदवेद्य। (वै०
 निघ०)।
 काम-मोदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 काम-मोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } मृग-नाभि।
 (रा० नि० व० १२)। दे० 'कस्तूरी'

काम-याना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सगर्भा स्त्री।
 गर्भिणी।

काम-रङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } अम्रातक। अम्बाड़ा।
 काम-रङ्ग—स्त्री० [सं० स्त्री०] }
 कमरख।

काम-रत्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का ग्रन्थ जिसमें
 व्यन्ध्यादि की चिकित्सादि का वर्णन है।

कामराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, वं०] (१) वनपालक।
 (इं० है० गा०)। (२) क्षुद्र चञ्चु शाक। बहुफली।
 (३) चमार मुसली, बन्दरखेल, घोरखेल; (म०)
 वेन्द्री। (४) जंगली गाजर जो सौंफ के आकार का होता
 है। प्रायः विन्ध्यपर्वतों में होता है। कार्तिक मास में
 फूलता है। इसके पके बीज जीरा के समान होते हैं। जंगली
 इससे दाल बघारते हैं। मूल—इसका स्वाद गाजर का-सा
 किन्तु अनुरस होता है। यह कामवर्धक एवं शरीर
 पुष्टिकर है।

कामराज-मोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजिकर योगविशेष।

निर्माण-विधि—दुग्धशोधित भंग चूर्ण २ मा०,
 घृत २ मा०, माहिषी क्षीर ४ शाण, मिश्री २ शाण,
 एकत्र पकाएँ, पुनः इसमें—जीरा, शुण्ठी चूर्ण, धनियां,
 दालचीनी, तेजपात, इलायचीदाना, मरिच, जायफल,
 जावित्री, लौंग, सौंफ, पीपलामूल, मिश्री ३२ तोला,
 विधारा बीज चूर्ण ६ तो०, लोह भस्म, अभ्रक भस्म,
 शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद (कज्जली), प्रत्येक २ तो०
 चूर्ण कर प्रक्षेप दें। मात्रा—१-३ माशा। गुण—इसके
 सेवन से वीर्यस्तम्भन होता है और बल-वीर्य की वृद्धि
 होती है। यह कामोत्तेजक है।

कामरूप—संज्ञा पुं० [हिं०, वं०, नैपाल] वृक्ष विशेष।

परिचय—एक प्रकार का वृहत् वृक्ष है। वसंत ऋतु
 में भी इसके पत्र नहीं गिरते। इसमें छोटे-छोटे फल लगते
 हैं जो सुपक्वावस्था में बैंगनी रंग के हो जाते हैं। फलों
 के ऊपर पीत वर्ण के छोटे-छोटे छींटे पड़े होते हैं।

वर्ग—वटादि कुल।

उद्भवस्थान—दक्षिण भारतवर्ष, पूर्वी हिमवती
 पर्वत की तराई, खसिया पर्वत, बंगाल, आसाम इत्यादि।

पर्याय—(हिं० वं० नैपा०)—कामरूप; (छोटा
 नागपुर) जड़ी पकड़ी; (म०) जीली, नान्दरुक; (बम्ब०)
 पिपली; (ते०) पुत्रजननी, एरंजूवा, नन्दिरका,
 सनोनी झाड़; (को०) अरेक गोल, धाविदेक-गोली;
 (बं०) फानकज; (सन्ता०) सन्ननजोन; (ले०)
 फाइकस बेज्जामिना (Ficus Benjamina)।

उपयोगी-अंग—पत्र स्वरस, मूल और त्वचा।

गुण तथा उपयोग—अत्यन्त वातघ्न है। इसकी जड़
 एवं छाल तिल तेल में पचा कर व्रण पर लगाने से शीघ्र

भर जाता है। उक्त पाचित तैल का अभ्यंग करने से आगन्तुक आघातजन्य वेदना तथा नाहूँ की पीड़ा शान्त होती है। इसकी त्वचा एवं पत्र का उपनाह (पुलटिस) निर्माण कर बांधने से वातजन्य शिरोवेदना शान्त होती है।

पत्र-स्वरस, तुलसीपत्र समान भाग के कल्क से घृत पका कर एवं पुनः उभय द्रव्यों के स्वरस में घृत पाक कर उदर पर अभ्यंग करने से तथा कामरूप के पत्रस्वरस को उष्ण किए हुए ईंट से सेंक करने से, वातज उदरशूल एवं आटोप शीघ्र शान्त होता है। कामरूप की छाल का रस १ तोला दुग्ध में मिश्रित कर पान करने से यकृत रोग का नाश होता है। (डाइमॉक; इं० मे० मे०; ख० अ०)।

पर्याय-कामरूपः—सं०। कामरूप—त्रं०। नान्द्रूक—मरा०। वेलिया पीपल, कम्पुप—हिं०। (Ficus Retusa, Linn.)

नोट—यह नंदी वृक्ष है जिसका वर्णन खजाइनूल अद-विया में उपर्युक्त नाम से किया गया है। उसी ग्रंथ में नन्दीवृच्छन (नन्दी वृक्ष) शब्द में इसका पृथक् वर्णन भी दिया है। दे० “नन्दी वृक्ष”।

वर्णन—यह हिमालय के पूर्वी भाग में कुमाऊँ से बंगाल तक आसाम, दक्षिण हिंदुस्तान प्रभृति प्रायः प्रदेशों में होता है। इसके विशाल वृक्ष होते हैं। इसके पत्ते पतझड़ में नहीं गिरते हैं। इसके छोटे-छोटे एक-दो फल कहीं-कहीं लगते हैं। पकने पर वे बैजनी रंग के हो जाते हैं और उन पर छोटे कुछ छींटे रहते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—इसकी जड़ या जड़ की छाल या पत्ते तेल में औटा कर लगाने से व्रण पूरण होता है और आघातजन्य वेदना आराम होती है। इसके तेल के मर्दन से नारुगत वेदना मिटती है। इसके पत्तों और छाल की पुलटिस बनाकर बांधने से वातज शिरोशूल आराम हो जाता है।

कामरूपका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन्दाका। बरगाछा। बाँदा। (ध० निघ०)।

कामरूप देशज कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामरूप देश में होनेवाली मृगनाभि। (भा०)। दे० ‘कस्तूरी’।

कामरूप-मस्क—संज्ञा पुं० [अं०] कामरूप की कस्तूरी।

कामरूपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगन्वा। (रा० नि० व० ४)।

कामरूपी-(इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूकर। सूअर।

कामरूपोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामरूप देश में होने वाली कृष्ण कस्तूरी। दे० ‘कस्तूरी’।

कासल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० ‘कामला’।

कामलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इक्षपेचा। तरुलता। (२) शिश्न। जननेन्द्रिय (अं०) पेनिस (Penis)। (हे० च०)।

मालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मस्तगी।

कामलकया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मस्तगी।

कामला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रोग-विशेष। पर्याय—(हिं०) कवल, कँवल। (सं०) कामल। (बं०) काँवल। (म०) कावील। (अ०) अरकान। यरकान। कानूर। सफार। (अं०) जाण्डिस (Jaundice)। (देश) कँवल-वाय। पीलिया। यह एक प्रकार का रोग है, जिसमें शरीर का वर्ण—पीत तथा कृष्ण वर्ण का हो जाता है। यह कोष्ठ-उदर-आश्रयी तथा रक्तादि धातु-आश्रयी भेद से दो प्रकार का होता है।

निदान-लक्षण-संप्राप्ति—जो पाण्डुरोगी अतिशय अधिक पित्तवर्धक पदार्थों का सेवन करता है, उसका पित्त दोष—रुधिर तथा मांस को दूषित कर कामला रोग को उत्पन्न करता है। रोगी का नेत्र, त्वचा, नख तथा मुखमण्डल हरिद्रा के समान पीत वर्ण का हो जाता है। मल-मूत्र लाल-पीला मिश्रित वर्ण का हो जाता है और रोगी वर्षारम्भ काल के मेढक के समान पीला हो जाता है।

उपद्रव—इस रोग के बढ़ जाने से इन्द्रियों की शक्ति नष्टप्राय हो जाती है। दाह, अन्न का अपरिपाक, दुर्बलता, शरीर में वेदना तथा भोजन में अरुचि होती है।

असाध्यता—कोष्ठाश्रित कामला अधिक दिनों तक बना रहने पर तथा रक्तादि धातुओं में रुक्षता की वृद्धि हो जाने पर कष्टसाध्य हो जाता है। इस अवस्था में—इसको ‘कुम्भकामला’ कहते हैं। कुम्भ से यहां कोष्ठ अभिप्रेत है और कोष्ठ ही इस रोग का मुख्य स्थान है। अतः इसको ‘कुम्भकामला’ कहते हैं।

असाध्य—कामला के लक्षण—जिस कामला रोगी का मल-मूत्र काला और पीला मिश्रित वर्ण का होता है, अंगों में शोथ, मुखमण्डल और नेत्रों में रक्तता, वमन, मल-मूत्र में रक्तता और मोह (बेहोशी) हो तो ऐसे रोगी को असाध्य समझना उचित है। इसके अतिरिक्त जिसको—दाह, भोजन में अरुचि, अधिक तृषा, उदरा-ध्मान, तन्द्रा, मोह, अचैतन्यता तथा जठराग्नि का नाश हो तो ऐसा रोगी असाध्य हो कर शीघ्र ही काल-कवलित हो जाता है। (मा० नि०)।

चिकित्सा—(१) गुड़ची-पत्र-स्वरस में तक्र मिश्रित कर सेवन करने से कामला का शीघ्र नाश होता है। (२) आँवला, लोह-भस्म, त्रिकुटा चूर्ण, हलदी चूर्ण, मिश्रो और गोघृत यथोचित प्रमाण में सेवन करने से महाप्रबल कामला रोग का विनाश होता है। (३) त्रिफला चूर्ण, गुड़ची और दारुहल्ली का क्वाथ मधु-मिश्रित कर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। (४) घृतकुमारी के रस का नस्य ग्रहण करने से तत्काल कामला रोग दूर होता है।

कुम्भ कामला—उत्तम शुद्ध शिलाजीत को गोमूत्र के साथ सेवन करने तथा शुद्ध मण्डूर मधुयुक्त सेवन करने से कुम्भकामला का नाश होता है। अन्य चिकित्सा कामला की ही की जाती है। (भा० म० पाण्डु० रो० अ०—)।

पथ्य—जौ, गेहूं की रोटी, शाली चावलों का भात, अम्लपित्तनाशक पदार्थ, मूंग, मसूर, अरहर की दाल, जांगल जीवों का मांस रस तथा तक्र सेवन कराए।

अपथ्य—पित्तकारक पदार्थ, तेल, लवण तथा वह पदार्थ जो पाण्डु रोग में वर्जित हैं न दें।

तिब्ब के अनुसार कामला के निदान-लक्षण—इस रोग में कभी मुखमण्डल और नेत्र पीले या स्याह पड़ जाते हैं, और कभी सम्पूर्ण शरीर, कभी केवल नेत्र ही पीला वा स्याह हो जाते हैं और रोगी के मुखमण्डल का रंग विकृत हो जाने के अतिरिक्त कतिपय विकृतियां उपस्थित हो जाती हैं।

निदान—कभी उष्ण और तीक्ष्ण वस्तुओं के अधिक सेवन करने से तथा लू लगने से यकृत में पित्त अधिक उत्पन्न होकर रक्त में मिश्रित हो जाता है और उक्त कारण से शरीर, मुखमण्डल तथा नेत्र पीले पड़ जाते हैं। कभी यकृत और प्लीहा की रगों में ग्रन्थि (सुदा) पड़ जाने के कारण पित्त और सौदा दोनों पित्ताशय में नहीं जाते और रुधिर के साथ मिश्रित होकर शरीर में व्याप्त हो जाते हैं, जिससे शरीरादि का रंग पीला या स्याह हो जाता है। जब सफरा (पित्त) की अधिकता के कारण रंग पीला पड़ जाता है, तब उसको पित्तज कामला (यरकान सफरावी) कहते हैं और जब सौदा (रक्त विदग्ध) के पित्त के कारण शरीर का वर्ण कृष्ण हो जाता है तब उसको यरकान सौदावी (रक्त विदग्ध-कामला) कहते हैं।

लक्षण—पित्तज-कामला (यरकान सफरावी) में मूत्र का रंग पीला और यरकान अस्वद में मूत्र का रंग कृष्णाभ होकर उत्सर्ग होता है। पुनः नेत्रों का रंग भी पीला पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त—ओष्ठ, मसूढ़े, जिह्वा तथा त्वचा की रंगत किञ्चित् पीताभ तथा धूसर-कृष्णाभ हो जाती है। भोजन ठीक नहीं पचता, और मुंह का स्वाद तिक्त प्रतीत होता है। क्षुधा नहीं लगती, स्निग्ध तथा तैलीय भोजनों में द्वेष हो जाता है। उदर में आटोप प्रतीत होता है और उद्गार भी अधिक आता है। मलग्रन्थि (सुदा) के कारण पित्ताशय से पित्त (सफरावी) आंतों पर नहीं गिरने पाता। उक्त कारण से मल का रंग मलिन एवं मटमैला होता है। रोगी को धाराम नहीं मिलता, बेचैनी रहती है। निर्बलता अधिक प्रतीत होती है, साहस जाता रहता है। स्वभाव ठीक

नहीं रहता। त्वचा में खुजली होती है। कभी-कभी फुंसियाँ भी निकल आती हैं। कभी रोगी प्रत्येक वस्तु को पीत वर्ण का देखने लगता है। यदि रोग पुरातन हो जाए तो उग्र निर्बलता हो जाती है और शरीरांगों में, अस्थियों में उद्वेष्टन इत्यादि होकर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—यदि केवल उष्णता के कारण हो तो ताजे अनार का रस ३ तोला, तर्बूज का पानी २ तोला, कद्दू का रस ३ तोला, खीरे का निचोड़ा हुआ पानी ३ तोला, शर्बत बजूरी ४ तोला मिश्रित कर पानार्थ दें। इसी प्रकार प्रातःकाल भिगाए हुए चनों का पानी जिसमें ४ तोला शर्बत बजूरी मिश्रित किया गया हो कतिपय दिनों तक पानार्थ दिया करें और पित्त की तथा रक्त की उत्पन्नता निवृत्त्यर्थ—उन्नाव ५ दाना, आलूबोखारा ५ दाना, कासनी के बीज ५ माशा, मकोय शुष्क ५ माशा, गुलनिलोफर ५ माशा, रात्रि में जल में भिगा कर प्रातःकाल मल-छान कर, खमीरा वनफशा ४ तोला मिश्रित कर उसमें—हरी मकोय का रस ४ तोला, हरित कासनी पत्र स्वरस ४ तोला मिश्रित कर पानार्थ दें। अथवा—कासनी के बीज ३ माशा, खीरा, ककड़ी, कद्दू और खर्बूजा के बीज मिश्रित ३ माशा, जरिस्क ३ माशा, अर्क विरंजासिक २ तोला, अर्क सौंफ २ तोला में पीस कर, सिकञ्जवीन बजूरी ४ तोला अथवा शर्बत बजूरी ४ तोला मिश्रित कर कुछ दिनों तक देने से लाभ होता है। अथवा रेवन्दचीनी २ मा०, सौंफ ५ मा०, कासनी के बीज ५ मा०, मुनक्का ९ दाना, रात्रि में उष्ण जल में भिगा कर प्रातःकाल मल-छान कर उसमें खमीरा वनफशा ४ तो० व शर्बत बजूरी ४ तो० मिश्रित कर कुछ दिनों तक सेवन कराएं। यदि उपर्युक्त योगों से लाभ न हो तो निम्न उपाय करें—

गुलेवनफशा ७ मा०, काला मुनक्का ९ दाना, कासनी के बीज ७ मा०, सौंफ ७ मा०, गावजबाँ ५ मा०, गुलेकासनी ५ मा०, ककड़ी, कद्दू, खरबूजा, खीरा के बीज मिलित अर्ध कुट्टित ५ मा०, खितमी के बीज ७ मा०, गुलनिलोफर ५ मा०, आलू बोखारा ५ दाना, गोखरू अर्ध कुट्टित ७ मा०, रात्रि में उष्ण जल में भिगा कर प्रातःकाल मल-छान कर उसमें खमीरा वनफशा ४ तोला मिश्रित कर ८-१० दिन तक दें। इसके पश्चात् सनायमक्की ७ मा०, इमली की गूदी ५ तो०, उक्त योग में मिश्रित कर उपर्युक्त विधि से मल-छान कर उसमें तुरञ्जवीन ४ तो०, शीरखिस्त ४ तो०, लाल शक्कर ४ तो०, गुलकंद ४ तो० मिश्रित कर पानार्थ दें। इसके बाद निम्न योग दें—

खमीरा गावजबाँ १ तो०, वर्क चाँदी १ अदद, में लपेट कर प्रथम देकर, उपरान्त उन्नाव-५ दाना, ककड़ी,

कद्दू, खर्बूजा, खीरा के बीज मिश्रित ५ मा०, सौंफ ५ मा०, अर्क विरंजासिक, १२ तोला में पीस कर उसका शीरा निकालें और उसमें शर्बत वजूरी ४ तो०, व शर्बत बनफशा ४ तो० मिश्रित कर उसमें तुख्म रेह्रांसमूचा ५ मा० छिड़क कर पानार्थ देवें। इस प्रकार से आवश्यकता-नुसार २ मुसहिल (मृदु विरेचन) देवें।

और कृष्ण कामला (यरकान अस्वद) में निम्न मुंजिज देवें—

करपस (अजमोद) की जड़ ५ मा०, अनीसून ५ मा०, इजखिर ५ मा०, सुम्बुलतीव ३ मा०, काला मुनक्का ५ दाना रात्रि में गरम पानी में भिगा देवें, प्रातः-काल मल-छान कर उसमें सिकंजवीन वजूरी ४ तो० मिश्रित कर प्रतिदिन ८ रोज तक पिलाते रहें। नवें दिन उक्त योग में सनाय मक्की ७ मा०, अफ़सन्तीन ५ मा०, रेवन्दचीनी ५ मा० बढ़ा कर रात्रि में गरम पानी में भिगा देवें; प्रातःकाल मगज फलूस ५ तो०, तुरज्जवीन ४ तो०, लाल शक्कर ४ तो०, शीरा मगज वादाम ५ दाना बढ़ा कर, शर्बत दीनार ४ तो० डाल कर पानार्थ देवें। और दूसरे दिन ठंडई के अतिरिक्त—अस्लुस्सूस ५ माशा, बादियान ५ मा०, अनीसून ५ मा०, क्वाथ कर, शर्बत वजूरी ४ तोला मिश्रित कर तुख्मरेह्रांस ५ मा० अकुट्टित उसमें छिड़क कर पिलाएँ। इस प्रकार ३ मुसहिल देने के बाद कास्नीपत्र स्वरस ४ तोला मकोय, पत्र स्वरस ४ तोला, शर्बत वजूरी ४ तोला मिला कर कुछ दिनों तक पिलाते रहें और अर्क गुलाब तेज सिरका में सम भाग में मिला कर आवनूस की सलाई से नेत्रों में अञ्जन लगाते रहें। अथवा पोस्त तुरंज पानी में पीस कर चाँदी की सलाई में लगाकर आँखों में लगाएँ। अथवा गुमा के पत्र स्वरस का अञ्जन कराने से नेत्रों का पीलापन शीघ्र जाता रहता है। अथवा कलौंजी ७ दाना स्त्री के दूध में घिसकर नस्य देवें तो भी आँखों का पीलापन दूर हो जाता है। आरोग्यता प्राप्त होने के बाद शक्तिवर्धनार्थ जवारिश अनारैन् ७ माशा वा दवाउल मिश्क मास्तदिल ५ माशा वा मुफरेह् वारिद ५ माशा व खमीरा अब्रेशम, शीरा उन्नाव वाला ५ मा० देवें।

अपथ्य—तैलीय स्निग्ध पदार्थों को वर्जित करें, दीर्घपाकी, वायुकारक वस्तुएँ यथा—आलू, अरई, भिंडी इत्यादि न देवें। उष्ण वस्तुएँ यथा—लहसुन, प्याज, लाल मिर्च, गरम मसाला इत्यादि भी न देवें।

पथ्य—रोगारम्भ में जब तक क्षुधा लगने न लगे तब तक शीघ्रपाकी आहार देवें। माउश्शईर (यवमण्ड) आँवला, शर्बत वजूरी ४ तो० मिश्रित कर पानार्थ देते रहें अथवा सागू पका कर उसमें नारंगी व शर्बत अनार

व शर्बत नीबू शर्वती मिला कर देवें। और पुनः बकरी का मांस रस, चने का पानी, चौपाती रोटी व जौ की रोटी छाँछ के साथ देवें। मूली की भाजी, गाजर, संतरा, लुकाट, अनार अत्यन्त हितकर हैं।

संज्ञा पुं० (सं० पुं०) (१) वसन्त-काल। (२) मरुदेश। (मे०)।

कामलागुरि—संज्ञा पुं० [वं०] कवीला, कमीला। कम्बिल्ल।

कामलानाशक-अञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] द्रोण-पुष्पी (गुमा) पत्र स्वरस का अंजन करने से नेत्रों की जरदी दूर होती है। (भैष० र०)।

कामलानिमाला—संज्ञा स्त्री० [म०, गु०] कामला रोग में प्रयुक्त माला जो पुनर्नवा की टहनियों द्वारा बनायी जाती है। (डाइमॉक)।

कामला नेबू—संज्ञा पुं० [हिं० वं०] नागरंग। नारंगी।

कामलान्तक (कपर्दक रस)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामला रोग में प्रयुक्त पारद योग—निर्माण-विधि—शुद्ध गन्धक, पारद भस्म (सिद्धूर), इलायचीदाना, एलवालुक (कैथ) सोहागा की खील, गुड़ची, खस, कूठ, नागरमोथा, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि अदरख के रस में २ प्रहर तक मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। सेवन विधि—जीरा के क्वाथ के साथ सेवन करने से पित्तज दाह तथा कामला रोग का नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कामलाबाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बालकामला। शिशुओं में होने वाली पीलिया।

कामलाप्रगुद्रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्रिधोनिरस, कामला रोगनाशक पारद योग। निर्माण-विधि—पारद भस्म (सिद्धूर), कान्त भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध हरिताल, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर देवदाली (वंदाल) के रस में मर्दन कर शुष्क कर लेवें, पुनः बालुका-यंत्र में स्थापन कर ४ प्रहर की अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकालें। और श्वेत कमल और रक्त कमल के कंद के रस में मर्दन कर पुनः द्राक्षा रस में मर्दन कर सुरक्षित रखें। मात्रा—१-३ रत्ती। गुण तथा सेवन विधि—मधु मिश्री के साथ सेवन कर मुलेठी का क्वाथ पान करने से कामला का शीघ्र नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कामलाव्याधिहन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथी-शुण्डी। नागहुली। दे० नागदन्ती। (वै० निघ०)।

कामलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंगु धान्य। कौगुनी। दे० 'काँक'।

कामली—(इन्)-वि० [सं० त्रि०] वह स्त्री जो कामला रोग से पीड़ित हो।

कामलेई—संज्ञा स्त्री० [?] द्रव्य विशेष।

कामवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दारु हरिद्रा। (रा० नि० व० ६)। (२) कामपीडित स्त्री।

कामवर्धक—संज्ञा वि० [सं० पुं०] वाजी कर। मैथुन-शक्ति की वृद्धि करने वाले द्रव्यौषध।

कामवर्धन रस (हर्षोदय)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैथुन शक्ति वर्धक योग। **निर्म्माणविधि**—रस सिन्दूर, शुद्ध अहिफेन, काली मिर्च, प्रत्येक १ तो०, कस्तूरी, कर्पूर, प्रत्येक ३ रत्ती, जावित्री, जायफल, केशर, शिंगरफ, प्रत्येक ६ मा० यथाविधि चूर्ण कर, (पान) के रस में मर्दन कर ३ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएँ।

गुण तथा सेवन विधि—प्रतिदिन १-१ गोली पान के साथ सेवन करने तथा मलाई, मिश्री युक्त माहिषी क्षीर और उड़द की दाल तथा उड़द से निर्मित अन्य पक्वान्न २ मास तक सेवन करने से अनेक स्त्रियों में रमण की शक्ति होती है और संग्रहणी, अतिसार तथा विसूचिका का नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कामवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आम्र वृक्ष। (रा० नि० व० ११) दे० 'आम'। (२) सारस पक्षी। (रा० नि० व० १९)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दालचीनी। गुडत्वक।

कामवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ज्योतिसूर्या।

ज्योत्स्ना। चन्द्रिका, चाँदनी। (रा० नि० व० २१)।

कामवासना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैथुन करने की इच्छा।

कामवासनाल्पता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैथुनेच्छा की अल्पता।

कामविलासिनी वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काम-शक्ति वर्धक योग। **निर्म्माण-विधि**—शुद्ध शिंगरफ और कर्पूर प्रत्येक १ मा०, अहिफेन, जावित्री प्रत्येक २ मा०, गेरू ३ मा०, पतंग ४ मा० एकत्र चूर्ण कर पान के रस में मर्दन कर प्रयोग में लाएँ। **मात्रा**—४ रत्ती।

गुण तथा सेवन विधि—पान में सेवन करने तथा माहिषी क्षीर का सेवन करने से स्त्री-रमण में अत्यन्त आनन्द आता है और शुक्र स्तम्भन होता है, यदि शुक्रस्खलित न हो तो मिश्रीयुक्त नीबू का रस पान करें। (रस० यो० सा०)।

कामविवर्धक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैथुनेच्छा की वृद्धि करने वाले द्रव्य।

कामव्याख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैथुन कर्म की विवेचना।

कामवृद्धि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] काम वृक्ष। कर्णाटक देश में कामजा नाम से प्रसिद्ध वृक्ष। दे० 'कामजा'। मनोज वृद्धि।

कामवृन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुलाब। पाटल क्षुप। (श० मा०)।

काम वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कामतरु। (२) वाँदा। वृन्दाक।

काम शान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैथुन से संतुष्ट होना। यह प्रायः गर्भ धारणा के पश्चात् तथा पूर्ण रूप से स्त्री बीज का स्खलन होने पर होता है।

कामसख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वसन्त ऋतु। वसन्तकाल। (रा० नि० व० २१)। काम सखा।

कामसंगी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूढगर्भ, प्रतिरखुर। 'प्रतिखुरं सहि काम (च) संगी'। (मा० नि० मूढगर्भ)।

काम संदीपन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैथुन-शक्ति को जाग्रत करने का कार्य।

कामसलिल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] योनि द्रव जो रति काल में काम भवन द्वार से परिस्त्रावित होता है। स्त्री धातु। (काम० शा०)।

कामसुन्दरमोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामवृद्धिकर योग विशेष। **निर्म्माण-विधि**—मेथी, गुडूची सत्व, मुसली, कचूर, तज, इलायची, विदारीकंद, आमला, लौंग, तालमखाना, पत्रज, सेंधा नमक, शतावरी, गोखरू, मोचरस, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, पिप्पली, कदलीकंद, अश्वगन्धा, नागकेसर, जावित्री, जायफल, धनियां, काकड़ासिंगी, कायफल प्रत्येक सम भाग। प्रत्येक का द्विगुण अभ्रक भस्म, पुनः सबों का ३ भाग शुद्ध भाँग। और पुनः सबसे द्विगुण मिश्री। यथा विधि मोदक प्रस्तुत करें। **मात्रा**—१-४ माशा। **गुण तथा सेवन विधि**—रति काल के ३-४ घंटा पूर्व सेवन कर दुग्ध पान करने से पुरुष स्त्रियों को पूर्णतः संतुष्ट करता है।

कामसुन्दरीगुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामोद्दीपन योग। **निर्म्माण-विधि**—स्वर्ण भस्म, रस सिन्दूर, प्रत्येक ३ भाग, हीरा भस्म (अभाव में सर्पत्रिष) १ भाग। एकत्र तप्त खरल में क्षीर विदारी और देवदाली के रस से मर्दन करें। और हीरा भस्म के बराबर कान्त भस्म मिश्रित कर यथाविधि अन्ध मूषा में स्थापित कर अग्नि योग से धमन करें। इस क्रिया से गुटिका वन जायगी।

गुण तथा उपयोग विधि—मुख में धारण कर स्त्री प्रसंग करने से वीर्य स्तम्भन होता है। १ वर्ष पर्यन्त मुख में धारण करने से अकाल मृत्यु तथा वार्धक्य दोष का नाश होता है। तथा इसकी ४ माष (उड़द) प्रमाण पलाश के बीजों का तेल २ पल गोदुग्ध युक्त सेवन करने से दीर्घायु प्राप्त होती है।

कामा—संज्ञा स्त्री० [तुर०] (१) उशक। (२) आलू-बोखारा। (लु० क०)।

कामाकदीस—संज्ञा पुं० [यू०] जावशीर की जड़। (लु० क०)।

कामाख—संज्ञा पुं० [बं०] गञ्जनी। रोहिण तृण।

कामाखेर तैल—संज्ञा पुं० [वं०] गञ्जनी का तैल। रोहिष तृण तैल। तिखाड़ी का तैल।

कामाग्नि—संज्ञा पुं० [सं० काम+अग्नि] मैथुन उत्तेजक अग्नि।

कामाग्निउद्दीपक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामशक्ति उत्तेजक। यथा—अकरकरा, शुण्ठी, कस्तूरी इत्यादि।

कामाग्निसंदीपनरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृष्याधिकारोक्त उक्त नाम का रस योग। निम्माण-विधि—शुद्ध पारद, शु० गन्धक, अभ्रक भस्म, यवक्षार, सर्जिका क्षार, चित्रकमूल, पञ्च लवण, कचूर, अजवाइन, अजमोद, विडंग, तासीश पत्र, प्रत्येक २ तो०। जीरा, नाग केसर, दालचीनी, तेजपत्र, इलायचीदाना, लौंग, जायफल, प्रत्येक ४ तो०। विधारा के बीज, त्रिकुटा, मिलित ६ तो०, धनियाँ, मुलेठी, सौंफ, कसेरू, त्रिफला प्रत्येक ८ तो०। (मतान्तर से त्रिफला १० तो०)। शतावरी, भूमिकूष्माण्ड, बहेड़ा, हस्तिकर्णपलाश, गोखरू बीज, कौंच बीज, प्रत्येक १० तो०। सर्वाङ्ग भंग चूर्ण सर्व तुल्य, शर्करा, घृत, मधु प्रत्येक सर्व चूर्ण के बराबर। कर्पूर २ तो०। कसेरू २ तो० यथाविधि चूर्ण कर उपयोग में लाएँ। परम कामसंदीपन है। (सा० कौ०, रस० र०)।

(२) शुद्ध पारद, शु० गन्धक, शु० हिंगुल, हीरा भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें पुनः इसमें कनक बीज, अदरक, भाँगरा और श्वेत जयन्ती के रस की ७-७ भावनाएँ दें। जब शुष्क हो जाए कपड़ मिट्टी की हुई काँचकूपी में स्थापन कर यथाविधि बालुकायंत्र में रख ६ दिन तक अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकालें और उक्त सिद्ध पारद में—इलायचीदाना, जायफल, कर्पूर, कस्तूरी, मिश्री, काली मिर्च, अश्वगंधा का चूर्ण मिश्रित कर उपयोग में लाएँ। गुण—परम कामाग्नि संदीपन, सर्व व्याधिनाशक, ओजवर्धक एवं शरीर पुष्टिकारक है। (रस० यो० सा०)।

कामाग्निसंदीपनमोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कामाग्नि संदीपन रस'।

कामाङ्कुश—संज्ञा पुं० [सं० पुं० काम+अङ्कुश] (१) अगुलियों के नख (२) शिश्न, लिंग, (त्रिका०)।

कामाङ्कुश-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाजीकर योग विशेष।

निम्माण-विधि—स्वर्ण भस्म, अभ्रक सत्व, गोरोचन, कृष्ण धतूर मूल, रजत भस्म, हीरा भस्म (अभाव में—सर्प-विष), ताम्र भस्म, लोह भस्म, शरपुंखा, प्रत्येक सम भाग। सर्वतुल्य शुद्ध पारद। एकत्र कलिन्दीफल (इन्द्रायण) के रस में २१ दिन तक मर्दन करें, पुनः गोला बना कर शुष्क करें और उसको कच्चे तागे से बांध कर इन्द्रायण के बृहद फल में स्थापन करें और उसकी गूदी से डाढ़ लगा कर बंद करें और उस पर २-३ कपड़मिट्टी

कर २ सेर जंगली कंडों की आँच दें। स्वांग शीतल होने पर निकालें और पुनः उक्त विधि से १०० व कम से कम २१ आँच दें। इस प्रकार करने पर वह पारद कठोर गुटिका के रूप में परिणत होगा।

उपयोग—उक्त गुटिका को मुख में धारण करने से वीर्य का स्तम्भन होता है और कामकला निपुण स्त्रियों को वश करता है। (रस० यो० सा०)।

कामाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम्रवृक्ष फल। दे० 'आम'।

कामाङ्ग नायक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का वाजीकर योग। निम्माण-विधि—शु० पारद, शु० गन्धक, प्रत्येक सम भाग में ग्रहण कर रक्त कमल के पुष्प रस से मर्दन कर उसमें शु० गन्धक का चूर्ण मिश्रित करें। मात्रा—५ गुंजा प्रमाण। अनुपात—कुटज मूल चूर्ण, इन्द्रियव चूर्ण तथा शर्करा समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण कर ३ पल। अनुपात—गोदुध के साथ।

कामाच—संज्ञा पुं० [वं०] कपिकच्छू। दे० 'केवाँच'।

कामाची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकमाची। छोटी काली मकोय। (वै० निघ०)।

कामाता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वाँदा। वृन्दाक। (२) काकमाची, काली मकोय। (वै० निघ०)।

कामातुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काम के वेग से उद्भिन्न। मैथुन कर्म में उतावला। काम के वेग से व्याकुल।

कामातुरता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैथुन कर्म में उतावलापन।

कामादा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आम्रातक। दे० अम्बाड़ा वा 'कमरख'।

कामाद्रि—संज्ञा पुं० (सं० पुं०) केश-भू। स्त्री के गुहाङ्ग का ऊपरी भाग जहाँ सघन बाल उगे होते हैं।

कामानन्दा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कस्तूरी। मृगनाभि। (ध० निघ०)।

कामान्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकिला। कोयल पक्षी। (रा० नि० व० १९)।

कामन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कस्तूरी, मृग-नाभि। (रा० नि० व० १२)।

कामायु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिद्ध। गृध्र पक्षी। (वै० निघ०)। दे० 'गिद्ध'।

कामायुध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मालदा आम। महाराजाम्र। (रा० नि० व० ११)। संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) शिश्न। लिंग।

कामाराखा—संज्ञा पुं० [गु० म०] कमरख। कर्मरंग।

कामारि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] विड्माक्षिक धातु। (हे० च०)।

कामारियून—संज्ञा पुं० [यू०] वदअस्कां। (लु० क०)।
 कामाला—संज्ञा पुं० [ले० Kamala] कमीला, काम्पिल्ल दे० 'कद्वीला'।
 कामालावन—संज्ञा पुं० [यू०] माजरियून। (लु० क०)।
 कामालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मद्य, शराव। (बे० निघ०)।
 कामालिया—संज्ञा स्त्री० [यू०] (१) (शब्रम।) (लु० क०)। (२) माजरियून।
 कामालु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्त काञ्चन। लाल कचनार। दे० कचनार।
 कामावसाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैथुनेच्छा। मैथुन की चाह।
 कामावसान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मैथुन कर्म की हानि।
 कामावेसिलाई—संज्ञा [अं०] कीटाणु विशेष (गि० २२६५२)।
 कामासीन—संज्ञा पुं० [यू०] कामाशीर। (लु० क०)।
 कामाह—संज्ञा [सं० पुं०] राजाम्र। मालदः आम। (ल०)।
 कामाह्वा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] राजाम्र, मालदः आम।
 कामाक्ष-पुल्लु—संज्ञा पुं० [मल०] रोहिष तृण। तिखाड़ी। (मो० श०)।
 कामाक्षि-पुल्ल-एण्णय—संज्ञा पुं० [ता० मल०] गंजनी का तेल। रोहिष तृण तैल। (मो० श०)।
 कामाक्षि-पुल्लु—संज्ञा पुं० [मल०] रोहिष तृण। (मो० श०)।
 कामाक्षी—संज्ञा स्त्री० [मल] (Canna Indica) गज्जनी।
 कामिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कारण्डव पक्षी। (श० र०)।
 कामिनियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ है। 'दे० कमिनी'।
 कामिन्—वि० [अ०] गुप्त। गुह्य, छिपा हुआ। इस शब्द का उपयोग तिब्ब में गुप्त-रोग के निमित्त होता है। (अं०) लेटेण्ट (Latent) गुप्त स्थान।
 कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्त्री, वरांगना। (२) वन्दाक। वांदा, वरगाछा। (रा० नि० व० ५)। (३) दाग हरिद्रा। दारुहलदी। (४) मद्य। मदिरा। शराव। (रा० नि० व० ६, १४)।
 (बं०) एक प्रकार का फूल जो उद्यानों में प्रायः अंग्रेजी बागों में लगाया जाता है। इसका पेड़ प्रायः २ गज ऊँचा होता है। पत्तियाँ रोठा की पत्तियों की-सी होती हैं, और इसमें ग्रीष्मारम्भ में गुच्छों में पुष्प लगते हैं, उनका रंग इतने जूही के पुष्प के समान तथा अति प्रिय गन्ध होता है। पर्याय—(हि०) बीव सर। कुन्ती, (म०)

कौन्ती। (कुमायूँ)-मुरचोव, (ते०) नागबोलगू, (बर) पानेतखा, मप-काय। (ला०) मुराय-एग्जोटिका (Murray-Exotica, Linn) (अं०) काज्मेटिक बाक्स (Cosmetic-box)। हनी बुश (Honey-bush)। चाइना बाक्स (China box), (कों०) पाँढरी।
 कामिनी कामभञ्जन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रसयोग जो बाजीकर योगों में वर्णित है। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शु० गन्धक १-१ पल, शु० हरिताल भस्म १ पल, स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म १-१ कर्ष, एकत्र पञ्चामृत (दुग्ध, दधि, घृत, मधु, शर्करा) में १२ घंटा मर्दन कर शुष्क कर लेवें, पुनः सकोरा में बंद कर यथा-विधि कपड़मिट्टी करें और शुष्क हो जाने पर बालुका-यंत्र में स्थापन कर आँच देवें, जब स्वांग शीतल हो जावे निकालें और पुनः पञ्चामृत में मर्दन कर बेर की गुठली प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण—यह परम कामोत्तेजक, क्षुधावर्धक तथा वीर्य-वृद्धिकर है। इसके सेवन से १०० स्त्रियों में रमण करने की शक्ति होती है। (रस० यो० सा०)।

कामिनीदर्पघ्नरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ध्वजभंग अधि-कारोक्त पारद योग। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद-गन्धक समान भाग में ग्रहण कर कज्जली करें, पुनः उसमें समान भाग कृष्ण धतूर बीज का चूर्ण मिश्रित कर धतूर बीज के तैल में मर्दन कर सुरक्षित रखें। मात्रा—१-३ रत्ती।

गुण तथा सेवन विधि—मिश्री के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण प्रमेहों का नाश होता है और वीर्य की पुष्टि होती है। वीर्य स्तम्भन होता है और स्त्रियाँ शीघ्र द्रवीभूत होती हैं। (भैष० र०)।

(२) रसायन अधिकारोक्त योग—शाल्मली कंद का बारीक चूर्ण और शु० गन्धक दोनों समान भाग में ग्रहण कर शाल्मली कंद के रस से मर्दन कर १-१ माशा की गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके सेवन से मनुष्य का स्वरूप कामदेव के समान कान्तियुक्त, बलवान्, तेजस्वी होता है और बली-पलित का नाश होता है और अश्वत्थुल्य वेगवान् होता है। यह अत्यन्त शुक्रवर्धक योग है। (रस० रा० सु०)।

कामिनीमदभञ्जन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाजीकर योग विशेष। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शु० गन्धक समान भाग में ग्रहण कर १ प्रहर पर्यन्त कुमुदिनी के रस से मर्दन कर शुष्क कर लेवें, पुनः गोला बना कर यथाविधि बालुका यंत्र में स्थापन कर आँच देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर १२ घंटा अरनी के रस में मर्दन कर सुरक्षित रखें। मात्रा—१ रत्ती। गुण तथा अनुपान—१ रत्ती मिश्री के साथ सेवन करने तथा यथेष्ट भोजन करने

से १०० स्त्रियों में रमण करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। (भैष० २०)।

नोट—किसी के अनुसार—अरुनी के स्थान में रक्तचंदन के क्वाथ की भावना दी जाती है। (रस० रा० सु०)।

कामिनी-विद्रावण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्त्री विद्रावण की वह अवस्था जो मैथुन-काल में द्रवीभूत होती है।

कामिनी-विद्रावण-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वीर्य स्तम्भन कारक योग। **निर्माण-विधि**—अकरकरा, सोंठ, लौंग, केशर, पीपर, जायफल, जावित्री, बुरादा चन्दन सफेद, प्रत्येक १ कर्ष। शुद्ध हिंगुल तथा शु० गन्धक-१ शाण, शुद्ध अहिफेन १ पल, एकत्र पान के रस में मर्दन कर २ रस्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण तथा सेवन विधि**—सायंकाल में १ गोली खाकर दुग्ध पान करे पुनः रात्रि में ३-४ घंटा के पश्चात् संभोग करने से वीर्य स्तम्भन होता है और स्त्रियाँ विद्रावित होती हैं। (भैष० २०)। (रस० यो० सा०)।

नोट—मतान्तर से इसमें समुद्र शोष का भी योग किया गया है।

कामिनीमद-विधूतन-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वीर्य स्तम्भन-कारक योग। **निर्माण-विधि**—शुद्ध पारद, शु० गन्धक समान भाग में ग्रहण कर कज्जली करें, पुनः सर्वतुल्य शुद्ध कनक बीज चूर्ण मिश्रित कर धतूर के बीजों के तैल से मर्दन कर ३ रस्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण तथा उपयोग**—मिश्री के शर्वत के साथ सेवन कर दुग्ध पानो-परान्त संभोग करने से स्त्रियाँ शीघ्र द्रवीभूत होती हैं। और यह प्रत्येक प्रमेहों का नाशक है। (वृ० रस० रा० सु०)।

कामिनीवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सारस पक्षी। (ध० नि०)।

कामिनीश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सहिजन। सोभाञ्जन वृक्ष। (श० च०)।

कामी—संज्ञा पुं० [सं० कामिन्] (१) चक्रवाक पक्षी। 'चक्रवा'। (२) कबूतर, पारावत पक्षी। (मे० त्रिक०)। (३) सारस पक्षी, विहंग। (रा० नि० व० १८)। (४) माधवी लता। (वै० निघ०)। (५) चटक पक्षी। चिड़ा, 'गौरैया'। (श० २०)। (६) ऋषभक नामक द्रव्य। (रा० वि० व० ५)। (७) चन्द्रमा। (त्रिका०) वि० (सं० त्रि०)-विषयी, कामुक, रसिक व्यक्ति।

कामीकजीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामज वृक्ष। (वै० निघ०) आम्र वृक्ष। दे० 'आम'।

कामीन (ल)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राम सुपारी। रामपूग। राम गुवाक। (त्रिका०)।

कामुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अशोक वृक्ष। (२)

पुन्नाग चंपा। (३) माधवी लता। (मे०)। (४) चिड़ा। चटक पक्षी। गौरा, गौरैया। (रा० नि० व० १९)। (५) चक्रवाक पक्षी। 'चक्रवा'। (६) कपोत पक्षी। कबूतर। (वै० निघ०)। (७) राम पत्री। जंगली जायफल। (इ० मे० मे०)। (८) मालती, मल्लिका। वि० (सं० त्रि०) कामी, विषयी, कामातुर व्यक्ति। **कामुककान्ता**—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माधवी लता। अतिमुक्तक लता। (रा० नि० व० १०)।

कामुक विप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विषयी पुरुषों में ध्वजोच्छ्राय की विप्राकृतिक स्थिति। (Sexual-aberration, Perversions, Erection of the Penis)। (सु० घा० टी०)।

कामुका (की)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) माधवी लता। अतिमुक्तक लता। रक्तमञ्जरी। (वा० सू० १५ अ०) 'सरसि भार्गी कामुका काकमाची'। (२) वगला। वकपक्षी।

कामुण—संज्ञा पुं० [म०-अ० कामून] सफेद जीरा, शुक्ल जीरक।

कामुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वनस्पति विशेष। **पर्याय**—(हिं०) कामुनी, (को०) काके-सम्पु, (कना०) सन्नकागे (के)-सोप्पु, (ते०) नल्ल-पुरु-गडु। (ता०)-नीरपूल, (मल०) कटु-निहरी (फ्रांस०)-फाइलेंथी मल्टि-फ्लोरी (Phyllanthus-multiflore)। (जर) वेलि-ब्लुटिगे-ब्लोट-ब्लूम (Vielblutigo-Blattblume)। (ले०) फाइलेन्थस-मल्टिफ्लोरस (Phyllanthus-multiflorus)। **वर्ग**—स्तुब्धादि (Euphorbiaceae)।

उद्भवस्थान—प्रायः भारतवर्ष में पूर्वी-पश्चिमी कोष्ठों पर होता है।

गुण-कर्म—पत्र-शीतल, मूत्रल। मूलत्वक-परिवर्तक (Alterative)। **उपयोग**—कवाबचीनी, कर्पूर समान भाग में ग्रहण कर इसके पत्र स्वरस से मर्दन कर मुख में धारण करने से मसूड़ों द्वारा होने वाला रुधिर-स्राव बंद होता है। इसकी मूल त्वचा उपयुक्त मात्रा में क्वाथ कर तथा अन्य उपयुक्त वातनाशक द्रव्यों के साथ वटिका तथा क्वाथ रूप से सेवन करने से अश्मरीजन्य मूत्रावरोध का नाश होता है। **मात्रा**—क्वाथकी ५ तोला के अनुमान से। (इ० मे० मे०)।

कामूअजी—संज्ञा पुं० [?] अकूर की-सी एक पक्षी है। (लु० क०)।

कामूज—संज्ञा पुं० [सुर०] (१) गोंद। निर्यास। (२) सन्दरुस। (लु० क०)।

कामूज-इकरान—संज्ञा पुं० [सुर०] सादरान। (लु० क०)।

कामूज-दनीइया—संज्ञा पुं० [सुर०] मुदाब की गोंद (निर्यास)। (लु० क०)।

कामूज-दरअनी—संज्ञा पुं० [सुर०] खत्मी की गोंद।

कामूज-दरीना—संज्ञा पुं० [सुर०] जैतून का गोंद।
(लु० क०)।

कामूज-दशीआ—संज्ञा पुं० [सुर०] फफूँन। (लु० क०)।

कामूज-दीवाज—संज्ञा पुं० [सुर०] बादाम के वृक्ष का गोंद।

कामून—संज्ञा पुं० [अ०] शुक्ल जीरक। सफेद जीरा।

कामूनी—संज्ञा स्त्री० [वम्ब०] काकमाची। काली मकोय।

कामूनी-मुलुकी—संज्ञा स्त्री० [अ०] यमानी। अजवाइन।

कामूनी-स्याह—संज्ञा स्त्री० [द०] काकमाची। काली मकोय।

कामूने अस्वद—संज्ञा पुं० [अ०] कृष्ण जीर। स्याह जीरा।
काला जीरा।

कामूस—संज्ञा पुं० [यू०] रोग विशेष। दे० 'सन्यास'।

कामेलिआथीआ—(ले० Commelia Thea) देखो—
'चाय' (Tea-plant)

कामेलिआथेईफेरा—(ले० Commelia Theifera) दे०
चाय। (Tea-plant)

कामेश-वत्सर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद योग विशेष।

निर्माण-विधि—पारद भस्म (सिंदूर), शु० गन्धक, प्रवाल भस्म, नाग भस्म, प्रत्येक १-१ भाग, वैक्रान्त भस्म, अभ्रक भस्म, वंग भस्म, स्वर्ण भस्म, मुक्ता भस्म, प्रत्येक २-२ भाग एकत्र—सेमल, चित्रक, ग्वारपाठा, लजालू, मुसली, भूशर्करा (शाहदीमक), भांगरा, निर्गुण्डी, त्रिपदी (हंसराज), उक्त द्रव्यों के स्वरस में ७-७ भावनाएँ देवें, शुष्क हो जाने पर काँचकूपी में भर कर वालुका-धंत्र में स्थापित कर उपर्युक्त भावना दी जाने वाली औषधियों के रसों से जो पारद के सातगुना हों अभिशोषित करें, पुनः शीशी में से निकाल कर उक्त द्रव्यों के रसों में मर्दन कर गोला बनाएँ और संपुट कर ६-७ कपड़मिट्टी करें और लघु पुट से भस्म करें। स्वांग-शीतल होने पर उस गोला के ऊपर उड़द का गूँधा हुआ आटा का लेप करें और पुनः तिल-तेल में यहाँ तक पकाएँ कि ऊपर का चढ़ा हुआ आटा सुख हो जावे। पुनः आटे को हटा कर वारीक चूर्ण कर सुरक्षित रखें। मात्रा—३ रस्ती।

गुण तथा सेवन-विधि—मधु और पिप्पली के चूर्ण-युक्त सेवन करने से इन्द्रियों की शिथिलता, प्रमेह, कास, श्वास, अर्श, जीर्ण ज्वर, क्षयरोग, गुल्म, उदररोग, वातव्याधि, प्रदर, कुष्ठ तथा पाण्डुरोग का नाश होता है और बल-वीर्य की वृद्धि होकर शरीर की कान्ति सुन्दर हो जाती है। (रस० यो० सा०)।

कामेश्वर मोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्रहणी अधिकारोक्त योग विशेष। **निर्माण-विधि**—अजवाइन, अजवाइन खुरासानी, आँवला, इलायचीदाना, जीरा सफेद, जीरा स्याह, कायफल, कूट, धनियाँ, कचूर, काकड़ासिंगी,

नागकेसर, तमालपत्र, तालीशपत्र, दालचीनी, पीपर, सोंठ, सेंधा नमक, मुलेठी, बच, हड़, बहेड़ा, काली मिर्च, प्रत्येक समान भाग, विजया (भाँग) सर्वतुल्य। एकत्र चूर्ण कर सबों का द्विगुण मिश्री मिश्रित करें। यथाविधि ६-६ माशा प्रमाण का मोदक प्रस्तुत करें। किसी के अनुसार काला तिल और कर्पूर भी मिश्रित करने से अधिक उत्तम हो जाता है। **गुण तथा सेवन विधि**—इसके सेवन से कास, श्वास, अतिसार, ग्रहणी, अग्निमान्द्य का नाश होता है और भोजन के आदि तथा अन्त में सेवन करने से स्त्री-संभोग में अधिक आनन्द आता है, बल, वीर्य की वृद्धि होती है और गीत वाद्य वादन में प्रवीणता तथा बुद्धि का विकास होता है।

✓ (२) **वाजीकरण में प्रयुक्त योग**—शुद्ध गन्धक $\frac{1}{2}$ भाग, अभ्रक भस्म $\frac{1}{2}$ भा०, कूट, गुडूची सत्व, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, गोखरू, तालमखाना के बीज, विदारीकन्द, मुसली, शतावरी, अजवाइन, कसेरू, खुरासानी अजवाइन, तालवृक्ष का अंकुर, धनियाँ, मुलेठी, भर्जित काला तिल, शटी, खिरेटी, जायफल, सौंफ, सेंधा नमक, भारंगी, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिर्च, पीपर, सफेद जीरा, स्याह जीरा, दालचीनी, इलायचीदाना, नागकेसर, चित्रकमूल, तेजपात, गजपीपर, कचूर, कायफल, पुनर्नवा, त्रिफला, केवाँच के बीज, सेमल का मुसला, प्रत्येक समान भाग, सबों का अर्ध भाग भर्जित भाँग तथा सबसे द्विगुण मिश्री। यथाविधि चूर्ण कर घृत, मधु युक्त ६ माशा प्रमाण का मोदक प्रस्तुत करें। **गुण तथा सेवन विधि**—गो-दुग्ध के साथ सेवन करने से वीर्य स्तम्भन होता है, स्त्री प्रसंग में विशेष आनन्द आता है। बल, और वीर्य की वृद्धि होती है। [भैष० र०]।

कामेश्वर-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाण्डु रोगाधिका-रोक्त पारद योग। **निर्माण-विधि**—शुद्ध पारद, शु० गन्धक, हरीतकी, चित्रक मूल, प्रत्येक १ पल। नागरमोथा, इलायचीदाना, तेजपात, प्रत्येक $1\frac{1}{2}$ पल। सोंठ, मिर्च, पीपर, पीपलामूल, शुद्ध विष, प्रत्येक १ पल, नाग केसर १ कर्ष, एरण्ड मूल १ पल, सर्व तुल्य पुरातन गुड़। यथा-विधि चूर्ण कर मिश्रित कर धतूर पत्र स्वरस की भावना देकर पुनः घृत मिश्रित कर जंगली बेर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण**—रात्रि में भोजनोपरांत सेवन करने से पाण्डु रोग का नाश होता है। (२० सा० सं० पाण्डु, कामला चि०)।

नोट—मतान्तर से एरण्ड बीज १ पल (४ तो०) का योग किया जाता है।

✓ (२) जायफल, फिटकिरी, कृष्ण धतूर बीज, जावित्री, अहिफेन, नाग भस्म, शु० हिंगुल, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें और इसमें खस के

क्वाथ की भावना देकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएँ। **सेवन-विधि**—सायंकाल में १ गोली मिश्री के शर्वत के साथ सेवन कर स्त्री संभोग करने से वीर्य स्तम्भन होता है और विशेष आनन्द आता है।

(३) लोह भस्म १ तोला, ताम्र भस्म ३ तोला, शुद्ध पारद ७ तोला सर्व तुल्य शुद्ध गन्धक, एकत्र खरल कर काँच कूपी में भर कर यथाविधि बालुका-यंत्र में स्थापन कर १२ प्रहर की आँच देवें, स्वांग शीतल होने पर शीशी तोड़ कर निकालें। **मात्रा**—१ रत्ती। **गुण**—उचित अनुपान योग से सेवन करने से यथेष्ट संभोग करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। (रस० यो० सा०)।

कामेश्वरी-गुटिका (वटी)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वीर्य स्तम्भन कारक योग। **निर्माण-विधि**—श्वेत करवीर मूल स्वरस में यथोचित प्रमाण में शुद्ध पारद यहां तक मर्दन करें कि विष्टी बन जावे। पुनः गोला बना कर कृष्ण सर्प के उदर में स्थापन कर लवण यंत्र में ४ प्रहर की आँच देवें। स्वांग शीतल होने पर गुटिका निकाल कर सुरक्षित रखें।

प्रयोग विधि—इसको दुग्ध में डाल कर केवल दुग्ध पान करने तथा मुख में रख कर अथवा कटि में बांध कर मैथुन करने से वीर्य स्तम्भन होता है और हजारों स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति होती है। (रस० यो० सा०)।

कामेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राजाम्र, मालदः आम। (रा० नि० व० ११)। दे० 'आम'।

कामो—संज्ञा पुं० [सिंध०, बम्ब०, बं०] भोर, ज्युपोमा। *Rhizophoromucranata*, *Lamb* (चो० पृ० ५२२)।

कामोणि (णी)—संज्ञा स्त्री० [म०] काकमाची 'मकोय'।

कामोणी—संज्ञा स्त्री० [म०] काकमाची। काली मकोय।

कामोत्कट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रवृद्ध काम। मैथुन की उत्कट गति। काम-वृद्धि।

कामोत्कटता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काम की प्रबलता। काम की अधिकता। मैथुनेच्छा की प्रबलता।

कामोत्तेजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वांजीकरण। कामोद्दीपक, मुवही, बाहपैदा करने वाला। (*Aphrodisiac*)।

कामोद्दीपक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैथुन शक्ति उद्दीप्त कारक द्रव्य। यथा—कस्तूरी, अम्बर, जुन्दबेदस्तर (खट्वास) अकरकरा, शुण्ठी, इत्यादि।

कामोद्दीपन—वि० [सं० त्रि०] काम को उद्दीपन करने वाला जिससे प्राणियों को सहवास की अधिक इच्छा जाग्रत हो।

कामोन्मत्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामोन्माद।

कामोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देखो 'उन्माद'।

कामोपजीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामवृद्धि नाम का एक महा क्षुप। (रा० नि० व० ५, घ० नि०)।

कामो-लिना-ऑब्लिक्वा—[ले० *Commolina Obliqua*] (हि०) कंजुरा। (बं०) जटा कंजुरा।

कामोलिना न्युडिफ्लोरा—[ले० *Commolina-nudiflora*] कञ्चट भेद।

कामोलिना-बेंगालेंसिस—[ले० *Commolina-Bengalensis*] (सं०)-कञ्चट। (बं०) काँचड़ा।

कामोलिना-सुफ्रुटिकोसा—[ले० *Commolina suffruticosa*] (संथाल)-दरेओसाँ।

कामोलिना-सॅलिसिफोलिया—[ले० *Commolina Salicifolia*] वनस्पति जो प्रायः उन्माद एवं प्रवाहिका में प्रयुक्त है।

कामोही—संज्ञा स्त्री० [सिंध] दे० पानजोली।

काम्पिल्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्लि०] रोरी, रैनी, रोहिता, दे० 'कवीला'।

काम्पिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) कवीला। गुण्डा रोचनिका [बं०] कामला गुड़ि। (सु० सू० ३८ अं०)। (२) काकमाची। काली मकोय।

काम्पिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुण्डारोचनिका। (बं०) कमला गुड़ि। (हारा०)।

काम्पील (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुण्डा रोचनिका। (बं०) कमला गुड़ि। (र० मा०, श० र०)।

काम्पोजीटी—[ले० *Compositae*] ब्रह्म दण्डी वर्ग।

काम्बलिक (यूष)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) यूष भेद यथा—तिल कल्क और अम्लिका (इमली) द्वारा प्रस्तुत यूष। (च० द० अतीसा० चि०)। (२) खड़यूष में दधि, इमली, तिल कल्क, उड़द चूर्ण तथा सेंधा नमक मिश्रित किया हुआ यूष।

सुश्रुत के अनुसार—काम्बलिक यूष में तक्र और शाक डालने का विधान है और खड़ नामक यूष में तक्र और शमी धान्य डाला जाता है। **गुण**—

उभय प्रकार के यूष—वात, कफ रोगों में हितकर तथा हृद्य है—'खड़ काम्बलिकौ हृद्यौ तथा वात कफे हितौ'। (सु०, सू० ४६ अ० श्लो० ३७६)।

काम्बव-सुषिर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीरगत छिद्र-विशेष। (अ० शा०)। वह अंग जिसमें शंख तुल्य छिद्र होता है।

काम्बवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीरांग विशेष। (अ० शा०)। शंखाकार अंग-विशेष।

काम्बायन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ नाशक योग विशेष। **निर्माण-विधि**—शुद्ध पारद, शु० गन्धक, हलदी, सज्जी, खार, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर सर्व तुल्य गोघृत मिश्रित कर मर्दन कर गोलियां बनाएं। **मात्रा तथा सेवन विधि**—२ माशा, ६ माशा बंदाल के चूर्ण के साथ घृत-मधु मिश्रित कर सेवन करने से समस्त कुष्ठों का नाश होता है।

नोट—इसके सेवन से अधिक दस्त आने लगते हैं, अतः रोगी को धैर्यपूर्वक सेवन करना उचित है। (रस० यो० सा०)।

काम्बु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पक्षी विशेष। (के०)। (२) शंख।

काम्बुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगन्धा। असगंध। (र० मा०)।

काम्बोज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काम्बोज देश में उत्पन्न घोड़े। (ज० द०)। (२) श्वेत खदिर। सफेद कत्था। (३) नाग केसर वृक्ष। पुन्नाग वृक्ष। (४) कट्फल। काय-फल। (मे० जत्रिक)। (५) वरुण वृक्ष। वरना। संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) पद्म काष्ठ। पटुम काष्ठ। पद्म। (वै० निघ०)।

काम्बोजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत गुञ्जा। सफेद घुंवची। (वै० निघ०)।

काम्बोजी (म्भोजी) जी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चूड़ामणि। रक्त गुञ्जा। (२) वलक्ष खदिर। पपड़ी खैर (कत्था)। (रा० नि० व० ८)। (३) श्वेत गुञ्जा। काम्बोजी। सफेद घुंवची। (वै० निघ०)। (४) सोमराजी। वकुची। (रा० नि० व० ३, ४)। (५) विटू खदिर। रीवाँ। दुर्गंध खदिर। (६) माष पर्णी। वन उड़द। वनमाष (अम०)। (सु० चि० १८९, अ०)। गन्ध मुण्ड।

कॉम्ब्रेटम डिकण्ड्रम—[ले०] (Combretum Decandrum) (हि०) पुंक। (मे० मो०)।

काम्ब्रेटम्-नेनम्—[ले०] (C. nanum) (पे०) दंत जाल्ही। (मे० मो०) भोरीलोघ। (मे० मो०)।

काम्ब्रेटम् पाइलोसम—[ले०] (C. pilosum) (हि०) धूनिया लोघ। भूरीलोघ

काम्भारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खुमेर। काश्मरी। (घ० निघ०)।

काम्भोजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देखो-‘काम्बोजी’।

काम्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) रेत, शुक, वीर्य (२) आसन असन वृक्ष (वै० निघ०)।

काम्यक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आसन वृक्ष, असन। (वै० निघ०)।

काम्ल—वि० [सं० त्रि०] किञ्चित् अम्ल। ईषद अम्ल। अत्यल्प खट्टा। कुछ खटास रस युक्त।

काय—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) वपु। शरीर, जिस्म। कालिव। (Body)। भेद—(१) सात्विक, (२) राजस तथा तामस भेद से ३ प्रकार की होती है।

सात्विक के भेद—(१) ब्राह्मण काय, (२) माहेन्द्र काय, (३) वारुण-काय, (४) कौबेर-काय, (५) गान्धर्व काय, (६) याम्यर्षि काय।

राजस के भेद—(१) आसुर काय, (२) साप काय, (३) शाकुन काय, (४) राक्षस काय, (५) पैशाच काय, (६) प्रेत काय। प्रेत सत्वयुक्त मनुष्य,

तामस काय के भेद—(१) पाशव काय, (२) मात्स्य काय, (३) वावन काय, (४) वानस्पत्य काय। वह मनुष्य जो एक स्थान में ही रहने की इच्छा करता है। नित्य खाने-पीने में संलग्न रहता हुआ; सत्य, धर्म, काम और अर्थ से विरहित होता है। ऐसे मनुष्य को वानस्पत्य काय कहते हैं। उपर्युक्त काय (भाव) के मनुष्य पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों तथा माता-पिता के गुण-दोष के अनुसार उत्पन्न होते हैं। (सुश्रुत चरक) इनके पृथक्-पृथक् लक्षण सुश्रुत के शरीर चतुर्थ अध्याय में वर्णित हैं। (सु० शा० ४ अ०, च० शा०)। (१) प्रकृति, स्वभाव। खासित। (२) मूर्ती। प्रतिमा। तसवीर। (मे०)। (३) तरुकाण्ड।

संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) प्रजापति तीर्थ। मनुष्य तीर्थ। (मे० पट्टिक)।

संज्ञा पुं० (ते०, मल०)-फल। फ्रूट (Fruit)।

कायक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दारु हरिद्रा। दारु हल्दी।

काय कुटि—संज्ञा स्त्री० [वम्ब०] कायपुटी। कायबुटी।

काय गह्वर—संज्ञा पुं० [मल०] अगर। अगरु (Eaglewood)

काय-चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुश्रुत कृत चिकित्सा के आठ विभागों व अंगों में से एक। इसमें सर्वाङ्ग संसृष्ट व्याधियां सम्मिलित हैं, यथा—जिसमें ज्वर, रक्त-पित्त, राजयक्ष्मा, अपस्मार, उन्माद, कुष्ठ, प्रमेह, अतिसार इत्यादि सर्वाङ्ग व्यापी व्याधियों की चिकित्सा का उल्लेख किया गया है। (सु० सू० १ अ०)।

कायछाल—संज्ञा स्त्री० [व० हि० गु० म०] कायफल। कट्फल वृक्ष। दे० ‘कायफल’।

कायडिआ कॅलिसीना (ले०)—पुलिपाढ़। पोटारो।

कायफल—संज्ञा पुं० [सं० कट्फल] कायफल। राम पत्री।

जंगली जायफल। दे० कायफल।

कायपुटि—संज्ञा स्त्री० [पुं० गुं०] कायबुटी। कैपूती।

कायपुटि का तेल—संज्ञा पुं० [हि०] काय बुटी का तेल, कैपूती का तेल। (मो० श०)।

कायपुटीच तेल—संज्ञा पुं० [म०] कायपुटि का तेल।

कायपुटी नु तेल—संज्ञा पुं० [गु०] कैपूती का तेल काय बुटी का तेल। (मो० श०)।

कायप्पान—कोट्टै—संज्ञा पुं० [ता०] पपीता।

कायम्-पुव-चेड़ि—संज्ञा स्त्री० [ता०] अंजनी। (वम्ब०)—लोखण्डी। (कों०) कालोकुड़ो। (सं०) कृष्ण अगरु। (मल०)—कायगह्वर। (अं०) ईगल वूड (Eagle-wood) (ई० मे० मे०)। दे० ‘अगर’।

कायफर—संज्ञा पुं० [सं० कट्फल] कायफल।

परिचय—एक बड़ा वृक्ष है, जिसके पत्ते पान के समान और पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं। फल गोल जायफल के समान होते हैं। उस फल के ऊपर की छाल को जो जावित्री के समान होती है, उसको देश में रामपत्री कहते हैं। वृक्ष की छाल मोटी तथा वजनदार होती है। इसके फल तथा छाल उपयोग में आते हैं। इसके वृक्ष दक्षिण भारत में कोकणादि में भी अधिक पाए जाते हैं। इसका फल वास्तविक जायफल की अपेक्षा अधिक लम्बोत्तर होता है। जावित्री की अपेक्षा रामपत्री अत्यल्प गन्ध की होती है, और यह अल्प मूल्य पर बाजारों में विकती है।

वर्ग—कट्फलादि (myricaceae)।

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वत, खसिया, सिलहट, सिंगापुर इत्यादि।

रासायनिक संगठन—इसके बीज में ४० प्रतिशत वसा (Fat) और मेस (Mace) ६३ प्रतिशत तथा वसा में रक्त वर्ण का निर्यास (Red-resin) पायी जाती है।

गुणकर्म—कषाय, तिक्त, कटु, वात, कफ, ज्वर, कास, श्वास, प्रमेह, अर्श और कण्ठरोग तथा अरुचि नाशक है। 'कट्फलस्तु वरस्तिक्तः कटुवर्तिकफ ज्वरान्।' हन्ति श्वास प्रमेहार्शः कास कण्ठमयारुचि' ॥

(या० पू० हरितवयादि, रा० निघ०, ध० निघ०)।

कायफल—संज्ञा पुं० [सं० श्री०] जंगली वृक्ष का एक भेद।

पर्याय—[सं०] कटफल, कटफलम्, कुमुदा, कुम्भीका, कुम्भी, महाकुम्भी, भद्रवती, भद्रा, उग्रगन्ध, रञ्जनक, लघु काश्मर्य, नीपपर्णी, (छाल) सोमवल्क, सोमवृक्ष, काम्बोज, अरण्यज, कृष्णगर्भ, प्रचेतसी, कैट्य, कुम्भि, वृष्णी; (अं०) मलावार नट मेग (Malabar nut meg) कंट्री नट मेग (Country nut meg), (म०) रामपत्री बाम्बे मेस (Bombay-mace); (ला०) *Myrica sapida*, wall. माईरिस्टका मलावेरिका (*Myristica-malabarica*) (इ० मे० मे०) (रा० निघ०, ध० निघ०)। हि०, बं०, द०, मरा०। कायफल (को०) जंगली जायफल, रामपत्री। (फा०) दारशीश आन। (अ०) अजूरी, ऊदुल्वर्क, कन्दी (न्दू) ल, वक्तव्य—

अर्थ और व्युत्पत्ति आदि—मुहीत में इसकी बरबरी संज्ञा अजदवी लिखी है। बुहान में अजूरी बरबरी संज्ञा के संबंध में लिखा है कि यह मोटा और कंटीला वृक्ष है जिसकी छाल मोटी एवं लाल होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रागुक्त अजदवी और यह एक हैं और दोनों में एक अशुद्ध है। ऊदुल्वर्क इसे इसलिए कहते हैं कि जब इन्द्रधनुष वा विद्युत् इसके निकट पहुँचते हैं, तो इसमें से हिंदी अगर से भी अधिक सुगंधि आने लगती है। कामूस में कंदोल कायफल के वृक्ष का नाम लिखा है। बुहान में इसका

उच्चारण किन्दोल लिखकर इसे रूमी भाषा का शब्द लिखा है। अस्तु, मखजन और मुहीत लिखित कंदावल अशुद्ध जान पड़ता है। जामअ इन्वेतार में इसका उल्लेख मिलता है। मखजन में कायफल और काँफल हिंदी संज्ञाएँ दी हैं। मुहीत में इसकी रूमी अशहा (वू) यूस, और इश्तलानूस, यूनानी अस्फलावस और इंदरूवास (रू)न, शामी ईदान (ऊद का बहुव०) और अफरीकन ऊदुल्वर्क संज्ञाएँ दी हैं।

वर्णन—एक मोटे, बड़े और कंटीले वृक्ष की मोटी छाल है जो तज की तरह सुखीमायल और कोई-कोई एकदम सुख होती है और उसमें सुगंधि आती है। स्वाद में किंचित कटुक वा तीक्ष्ण और कषाय होती है। किसी-किसी के मत से यह छाल तज से भी अधिक मोटी और रक्तवर्ण की होती है। यदि इसके ऊपर की पतली छाल उतार डाली जाय। मखजन के अनुसार इसका पेड़ छोटा और कंटीला होता है।

कायफल के परिचय के संबंध में प्राचीन यूनानी निघंटु-ग्रंथों में बहुत मत-विभिन्नता पाई जाती है। कोई-कोई कहते हैं कि यह हव्वुल्वान का पेड़ है। किसी-किसी के मत से भारतीय बालछड़ की जड़ है। परंतु शैख के कथनानुसार यह प्रमाणरहित है। मसीही के मतानुसार यह भारतीय दाड़िम वृक्ष है। राजी के वचन से यह ज्ञात होता है कि यह नारदेन की लकड़ी है। मुहम्मद कासिम फरिस्ता ने लिखा है कि यह एक भारतीय वृक्ष की छाल है जिसे फाँकरा कहते हैं। अर्थात् उन्होंने फाँकरा को ही दारशीश आन का पेड़ लिखा है और उसकी छाल को कायफल। तालीकशरीफी में ऐसा ही लिखा है। संस्कृत में उसे पारिजात और रक्तपुष्प कहते हैं। मराठी में पांगरों और हिंदी तथा मारवाड़ी में फरहद के नाम से प्रसिद्ध है। इससे फरहद और फाँकरा एक है, ऐसा सिद्ध होता है। परंतु तालीक शरीफी में फरहद को इससे भिन्न लिखा है। मुहीत के अनुसार फाँकरा अर्थात् फरहद में काँटे अधिकता से होते हैं। क्रद छोटा होता है। यहाँ तक कि डेढ़ हाथ से अधिक नहीं बढ़ता। तना दृढ़ होता है। डालियाँ पतली और कड़ी होती हैं, जिनके सिरे काँटों की तरह तेज होते हैं। बहुत बारीक और दूर-दूर लगते हैं। लकड़ी चरपरी और फूल पीला और तेज खुशबूदार होता है। जड़ कड़ी और श्यामता लिए होती है। फल जर्द और कड़ा होता है। इसको बल कहते हैं। स्पेन और भारतवर्ष में यह प्रचुरता से होता है। कहते हैं कि यदि इसको इन्द्र धनुष निकलने के समय काटा जाता है, तो अत्यंत सुगंधि देता है। इसके विरुद्ध दूसरे समय में काटने से बिल्कुल सुगंधि नहीं देता। किसी-किसी ने लिखा है कि यदि इन्द्र धनुष वा विद्युत् उसके पास पहुँच जाती है, तो यह हिंदी अगर से भी अधिक सुगंधि देता है। इसीलिए अफरीका

निवासी इसको ऊदुल्वर्क (वैद्युतिक अगरु) कहते हैं। इसका रंग लाल होता है और कम सफ़ेद भी होता है। इसमें चिकनाई भी होती है। चिकनी क्रिस्म अत्यंत तिक्त होती है। सफ़ेद क्रिस्म बिल्कुल सुगंधिरहित होती है और घटिया होती है; अस्तु अग्राह्य है।

कायफल के संबंध में निश्चित मत यह है कि कायफल के पेड़ की ऊँचाई लगभग ३० फुट होती है। इसका तना मोटा और सीधा होता है। चैत-वैसाख में इसमें नये पत्र आते हैं। इनके मलने या तोड़ने से हलकी सुगंध आती है। इसके फल छोटे और लंबे होते हैं। उनमें लाल रंग की थोड़ी मींगी निकलती है। इसकी छाल से एक प्रकार का रंग निकाला जाता है। आश्विन से मार्गशीर्ष तक इसमें पुष्प आते हैं। वैसाख में फल पकते हैं। इसके वृक्ष भारतवर्ष में हिमालय में रावी से पुरब की ओर खसिया पहाड़ में सिलहट और दक्षिण की ओर सिंगापुर तक होता है। कायफल संज्ञामात्र से इस वृक्ष की छाल अभिप्रेत होती है। मोटी, भारी, सुगंधित और रक्तवर्ण की एवं स्वाद में चरपराहट वा तीक्ष्णता युक्त कड़ुई और कसेली छाल उत्तम समझी जाती है। इसमें वर्षों तक गुण विद्यमान रहता है।

नोट—तालीकशरीकी में कायफल और फाँकरा शब्द में, मरुजन में दारशीशअन, मुहीत में दारशीशअन और कायफल और खजाइन में कायफल शब्द में इसका वर्णन किया गया है।

प्रकृति—उष्णता लिए द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। शीत एवं संग्राही शक्तियुक्त, प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय में रूक्ष है। किसी-किसी ने प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष लिखा है। मतांतर से द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष वा तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष वा प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। किसी-किसी के मत से किंचित् संग्राही एवं उष्णता शक्तियुक्त शीतल है। इसका फूल द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। लकड़ी कसेली है। इसमें थोड़ी सी सड़ी भी है। सुतरां यह परस्पर विरोधी गुणधर्मयुक्त (मुरक्किबुल कुवा) भी है। इसमें चरपराहट है और यह जिह्वा का संकोच भी करता है। तात्पर्य यह है कि चरपराहट के कारण यह उष्णता उत्पन्न करता है और कपाय अर्थात् संग्राही गुण से शीत उत्पन्न करता है। उक्त दोनों गुण व्रणशोधक हैं। इसलिए व्रण में उपकारी है। किसी-किसी के कथनानुसार इसकी उष्णता समप्रकृतिस्थ है। परंतु रूक्षता उष्णता की अपेक्षा अधिक है। वैद्य भी इसे उष्ण बतलाते हैं। पर कोई-कोई इसके विरुद्ध शीतल भी बताते हैं। **हानिकर्ता**—यकृत और प्लीहा को हानिकर है और वातनाडियों को खुश्क करता है। **दर्पण**—दूकू और मस्तगी तथा बबूल का गोंद एवं कतीरा।

प्रतिनिधि—वातनाडियों की शिथिलता निवारणार्थ सम

भाग असारून, अर्ध-भाग दरूनज और दो-तिहाई जरावंद मुदहरज। **ग्रह**—सूर्य। **विशिष्ट कर्म**—नजला (प्रसेक) रुद्धक, वातनाडियों को बलप्रद और आमाशयशूलनाशक है। **मात्रा**—३॥ मा० से ७ मा० तक। किसी-किसी ने ९ मा० तक लिखा है। वैद्यों के मत से ३॥ मा० तक व्यवहार करें।

गुणकर्म तथा प्रयोग—उक्त ओषधि के परिचय विषयक मतभेद के कारण इसके गुण-वर्णन के संबंध में भी विभिन्नता पाई जाती है। उनमें सर्ववादिसम्मत मत के अनुसार इसकी छाल अर्थात् कायफल अत्यंत विलीनकर्त्ता और अवरोधोद्धाटनकर्त्ता है। फूल अतीव आशुकारी है। लकड़ी अधिक संग्राही है। आगे इसके गुणधर्म विस्तार से लिखे जाते हैं—वृक्ष-बलकल अर्थात् कायफल शीथ और वायु को विलीन करता है, शीतसंग्राही अर्थात् काविज है, नजला (प्रसेक) नहीं गिरने देता, वातज वसवास (कुविचार) को लाभकारी है और शीतजन्य शिरोशूल को दूर करता है। सांद्र द्रवों को अभिशोषित करता, वातनाडियों अर्थात् पुटों को शक्ति प्रदान करता और उनकी एवं वस्ति और समस्त अंगों की शिथिलता को दूर करता है। यह अवरोधोद्धाटक है और इसकी वृत्ति धारण करने से गर्भपात हो जाता है। यह अर्शाङ्कुरों को नष्ट करता है। इसे दालचीनी के साथ सेवन करने से जीर्ण आर्द्र कास, चातुर्थक ज्वर, अर्श और शुक्र-स्राव में उपकार होता है। इसे ३॥ मा० (४॥ मा० से ६ मा० तक) की मात्रा में लेकर इसका क्वाथ कर शर्करा मिलाकर सेवन करने से आमाशय का शोधन होता है और शीतजन्य असाध्य आमाशयशूल आराम होता है। इसके काढ़े का गंडूष वा कुल्ली करने से दांतों का स्वास्थ्य स्थिर रहता है, मुंह आने में उपकार होता है और अत्यन्त दूषित एवं दुर्गंध तथा प्रकोथयुक्त मुखपाक वा मुखक्षत आराम हो जाता है। इसका चूर्ण सिरके में मिलाकर दाँत पर लगाने से घोर दन्तशूल आराम होता है। मुखदौर्गन्ध्य में इसका मंजन बहुत गुणकारी होता है। नासार्शजन्य दुर्गंधि निवारणार्थ इसको बारीक पीस कर उसमें बत्ती लत करके नाक में धारण करें। इससे दुर्गंधि जाती रहती है। रोगन खैरी (वा किसी अन्य तैल) में मिला कर कान में डालने से कर्णशूल आराम होता है। इसका काढ़ा शीत-संग्राही है। अतएव रक्तस्राव और रक्तनिष्ठीवन में उसके सेवन से उपकार होता है। यह पुटों की शिथिलता, दोषों की दुर्गंधि और मूत्रकृच्छ्र को दूर करता और अतिसाररुद्धक है। यह वस्ति को शक्ति प्रदान करता और अंगों के भीतर से मादृएगरीवा अप्रकृत दोष को विलीन कर के उनको शक्ति देता है। **गोलानी** के अनुसार इसकी छाल और फूल तदन्तर्भूत उष्णता के कारण उन मूलभूत एवं दूषित द्रवों को जो प्रकोथासन्न हों विलीन करता

है। जालीनूस के कथनानुसार यह दुर्गन्धनाशक है। इसको पीस कर प्रसरणशील, दुर्गन्धितकोथयुक्त दुष्ट व्रणों पर अवचूर्णित करने (वा लेप करने) से वे सूख जाते हैं। शिशुओं के आर्द्र व्रणों पर भी इसके अवचूर्णन से उपकार होता है। इसके प्रलेप से पुट्टों की शिथिलता दूर होती है। इसके फूल भी पुट्टों को मजबूत करते हैं। इसके फूल नजला और वातज वसवास को लाभकारी हैं। वस्त्र के भीतर रखने से उसमें सुगन्धि आ जाती है और कीड़ा नहीं लगता। इनको पीस कर रोगान खैरी में मिला कर कान में टपकाने से कान के कीड़े मर जाते हैं और निकल जाते हैं। इनको क्वथित कर गंडूष करने से दंतशूल आराम होता है। इनको पीस कर दाँतों पर मलने से मसूढ़े दृढ़ हो जाते हैं। इनको दालचीनी के साथ क्वथित करके पीने से जीर्ण, तर, कास, ज्वर और अर्श आराम होते हैं। इससे शुक्रप्रमेह आराम होता है। इनका क्वाथ उदरावष्टम्भकारक है और वस्तिशूल को दूर करता एवं वस्ति को शक्ति प्रदान करता है। इसके पत्तों को पीस कर योनि में धारण करने से आर्तवरजः प्रवर्तन होता है और वच्चा निकल जाता है। इसकी छाल और फूल उभय मूत्र का प्रवर्तन करते हैं और पेट के वच्चे को निकाल देते हैं। वंध्या स्त्रियों में इससे गर्भधारणा भी होती है। शिशनगत व्रणों पर कायफल का चूर्ण अवचूर्णित करने से उनका प्रसार रुक जाता है और वे सूख जाते हैं तथा उनकी कड़ाई दूर हो जाती है। गुदा और वृषणमध्य अर्थात् मूलाधारगत व्रणों पर इसके अवचूर्णन से उपकार होता है। किसी-किसी के मत से यह उसके लिए स्वभाव से ही उपकारी है। इसका एक विशेष गुण यह भी बतलाते हैं कि इसकी एक डाली लेकर उसे कुंदुर वा लोवन की धूनी देकर लत्ते में बाँध कर शूल पक्ष की चतुर्दशी को रात में उसे उस व्यक्ति के बिछौने के नीचे रख दें, जिसे कोई मनोकामना हो, तो स्वप्न में उसे किसी पुरुष के दर्शन होंगे, जो उसकी मनोकामना-सिद्धि का उपाय बतलाएगा।

कायफल के फूलों का तेल (डुहनुल् क्रन्दूल)—मुहीत के अनुसार इसे रोगान गुल की तरह तैयार करते हैं। परंतु मख्जन के अनुसार इसे रोगान गुल-वनफ़ूश और बादाम की भाँति निकालते हैं। यदि बादाम के स्थान में साफ़ की हुई तिल्ली हो, तो अधिक सुगन्धित हो। यह अत्यंत सुगन्धित होता है। यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। यह कठिन शोथों को विलीन करता है। वातरक्त (निकरिस) और शीतजन्य संधिशूल में इसको लगाने से उपकार होता है। इससे शिथिलता मिटती है, इसके नस्य से शिरोशूल और नजला आराम होता है। इससे अर्धाविभेदक और शीतजन्य

शिरोशूल (वा अपस्मार) भी आराम हो जाता है। इसके नस्य से मस्तिष्क की झिल्लियों में रुका हुआ वायु विलीन होता है। और मस्तिष्क के अवरोधों का उद्घाटन होता है। इसे १४ मा० की मात्रा में शर्वत गाजर वा बिही के साथ पीने से शीतल आमाशयिकद्वार को शक्ति प्राप्त होती है। वृक्क और वस्ति में गरमी आती है। संग्राही औषधियों के साथ इसकी वस्ति देने से रतूबी दस्त बन्द हो जाते हैं। अर्धागवात वा फ़ालिज और अर्धाविभेदक में इस के लगाने से उपकार होता है। इसके लेप से मस्तिष्क और पुट्टों के रोग आराम होते हैं। मस्तिष्कगत अवरोध का उद्घाटन होता है और मस्तिष्क के पदों को शक्ति प्राप्त होती है और कठिन सूजन उतर जाती है। यह वाजीकर और शिशनप्रहर्षकारी है और यह वायु को विलीन करता है। (मख्जन और मुहीत)।

वैद्यों के कथनानुसार इसके पुष्पतेल का व्यवहार प्रायः उन्हीं व्याधियों में होता है, जिनमें इसके वृक्षवलकल अर्थात् कायफल का। (खजाइन)।

वैद्यक के मतानुसार—तालीफ़शरीफी में लिखा है—कायफल तिक्त, कषाय एवं तीक्ष्ण है और यह वायु तथा कफ को नाश करता है। तथा ज्वर, कृच्छ्रवास प्रमेह, अर्श, कास और कंठरोगों में उपकारी है। **मुफ़रिदात बिक्रमी में भी ऐसा ही लिखा है। मुहीत में यह अधिक लिखा है—**किसी-किसी के मत से यह शीत प्रकृति भी है। अधिक स्वेद आता हो तो इसके चूर्ण का शरीर पर धूँडा करने से वह बंद हो जाता है। इसे पीसकर पीने से रक्तस्राव और रक्तनिष्ठीवन दूर होते हैं और अतिसार आराम होता है। वातरक्त, फ़ालिज (अर्धागवात) और अर्धाविभेदक में इसके फूलों का तेल लगाने से उपकार होता है।

खजाइन में यह अधिक लिखा है—कायफल को मुहीन पीस कर सुंधाने से रुका हुआ प्रतिश्याय जाता रहता है। अत्यधिक स्वेदस्राव होता हो तो कायफल और सोंठ को (पीस-) छान कर शरीर पर मलने से बंद हो जाता है। इस काम के लिए यह परमोपयोगी औषध है। सिर का भारीपन दूर करने के लिए कायफल और काली मिर्च को पीस कर सुंधाना चाहिए। इसको सिरके में पीस कर लगाने से मसूढ़े दृढ़ हो जाते हैं और दंतशूल आराम होता है। कायफल को तेल में पका कर उसकी बूँदें कान में डालने से कर्णशूल आराम होता है। इसका काढ़ा पिलाने से श्वास वा दमा आराम होता है। कायफल और बेलगिरी को पिलाने से पेशाब बहुत होता है। इसे पीस कर दुष्ट क्षतों पर अवचूर्णित करना चाहिए अथवा इसे पानी में पीस कर साफ़ करके शीतल पानी से ऐसे क्षतों को प्रक्षालित करना चाहिए। इसकी छाल स्फूर्तिजनक है। इसके चूर्ण को शहद में मिला कर चटाने से कफ एवं कास में उपकार होता है। इसको

काले नमक के साथ पीस कर फँकाने से उदरशूल आराम होता है। इसको पानी में पीस कर गरम करके प्रलेप करने से ग्रंथि-शोथ विलीन होता है। पीपल और कायफल को पीस कर शहद में मिला कर चटाने से कफज्वर दूर होता है। इसको बारीक पीस कर घी में मिलाकर लेप करने से अर्शकुरज्ज्व वेदना आराम होती है। इसको पान में रख कर चाव-चाव कर पीक निगलने से समस्त प्रकार के कफज कंठरोग दूर होते हैं। इसको क्षथित कर के छान कर उस पानी से कुलियाँ करने से दंतशूल आराम होता है और जिह्वा की गुस्ता दूर होती है। कायफल, नकछिकनी के पत्ते और कटेली के सूखे फल प्रत्येक छः-छः मा० और तमाकू ४ मा०—इनको बारीक पीस कर उसमें से दो माशे खाने से मृगी दूर होती है। इसको भैंस के दूध में पीस कर रात्रि को लिंग पर लेप कर के प्रातःकाल धो डालें। इसी प्रकार कई दिन तक करने से क्लीबत्व का नाश होता है। इसको बारीक पीस कर सम भाग खाँड़ मिला कर रख लें। यदि ऋतु-स्नाता स्त्री उसमें से प्रतिदिन एक तोला खाया करे और तीन दिन तक खाए तो गर्भ-स्थापन हो।

आयुर्वेद के अनुसार—कटफल के गुण-धर्म—कषाय, कफ-वातघ्न, गुल्म, मेह, अग्निदाहनाशक, रुचिप्रद तथा ग्रहणी, अर्श, पाण्डुरोग, हृल्लास, मुखरोग, कास, स्वास और ज्वरनाशक है। (रा० नि० व० ८)।

कटु, उष्ण, कास, स्वास, ज्वर, अग्निदाह, मुखरोग नाशक तथा रुचिकारक है।

भ.प्रकाश में लिखा है—

कटफल तुवरस्तिक्तः कटुर्वात कफज्वरान् ।
हन्ति स्वास प्रमेहार्शः कासकण्ठामया रुचिः ॥
कटफलः कफवातघ्नो गुल्म मेहाग्नि दाह जित् ।
रुचिष्यो ज्वर दुर्गम ग्रहणी पाण्डुरोगहा ॥
कटफलं च कषायं च कफधातुविकारजित् ।
हृल्लास मुख रोगघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ॥
(रा० नि०) ।

कटफलः कटुरुष्णश्च कास श्वास ज्वरापहः ।
उग्र दाह हरो रुच्यो मुख रोग शम प्रदः ॥
देखो—'कायफल' । (ध० नि०) ।

नव्यमत

डीबक—Under the names Dar—shishaan, Kandul and ud-el-bark, Mahomedan writers state that the bark is resolvent, astringent, carminative and tonic; that it cures catarrh and headaches; with cinnamon they prescribe it for chronic cough; fever, piles etc. Compounded with vinegar it strengthens the gums and cures toothache; an oil prepared from it is

dropped into the ears in earache. A decoction is a valuable remedy in asthma, diarrhoea and diuresis; powdered or in the form of lotion the bark is applied to putrid sores; pessaries made of it promote uterine action. The usual dose for internal administration is about 60 grains. Duhnel-Kandul, an oil prepared from the flower, is said to have much the same properties as the bark. We have never met with it; nor does it appear to be known in commerce (Pharm. Ind. pt. iii, p. 356)

कायबुटी—संज्ञा स्त्री० [कैपूती] कायबुटी। केजुपुटि। (Cajuputi) दे० "कायपूटी"।

कायबुटी का तेल—संज्ञा पुं० रोगन कायाबूटी। [अँ] ऑइल केजुपुटि (Oil cajuputi) गुण तथा उपयोग—इसके उपयोग से पुरातन सन्धिवात, वात रोग, गुल्म रोग, कास, स्वास, जीर्णज्वर, जलोदर एवं विषूचिका का नाश होता है। मात्रा—५ से १० बूँद। दे० 'कायापुटि'।

कायस्—संज्ञा पुं० [ता०] (१) हिङ्गु। हींग। (डाइमॉक ii, 147) (२) हिङ्गु वृक्ष।

कायमान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) देह परिमाण। शरीर का नाप। दे० 'शरीर प्रमाण'। (२) तृण कुटी। (त्रिका०)।

काययात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकङ्कत, वृक्ष। बड़ची गाछ। कटार का पेड़। (ध० नि०)।

कार्यालिंग मोनोसिफेला—[लि०] निर्विषी। श्वेत गोदूवी।

कायली—संज्ञा स्त्री० (?) द्रव्य विशेष।

कायलोर—संज्ञा पुं० [मल०] सहिजन। सोभाञ्जन वृक्ष। (इं० मे० मे०)।

कायवाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृकलास। सरट। दे० 'गिरगिट'।

कायसी—संज्ञा स्त्री० [बर०] इन्द्रवारुणी। इन्द्रायन।

कायसौख्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शारीरिक सुख।

कायस्था—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकोली। (अ० टी०, वा० वि० ६ अ०)। (२) आँवला, आमलकी (जटा)। (३) बड़ी इलायची। स्थूल एला। (४) छोटी इलायची। क्षुद्र एला। (रा० नि० व० ६)। (५) हरीतकी। (भा० ज्व० चि०)। (६) तुलसी (रा० नि० व० १०)। (७) निर्गुण्डी, (सि० यो० उन्मा० चि०, अप० चि० महापैशाच घृत)। 'कायस्थाशूकरीच्छत्रा'।

कायस्थादि तेल—धूप, लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] शीतज्वर में प्रयुक्त उक्त नाम का योग। निम्नार्ण विधि—हरीतकी, नाकुली, कुटकी, गिलोय, गूगुल, ग्रन्थिपर्णी (गठिवन), सहदेवी, वच, कूट—प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर उसमें सेंधानमक, जवाखार और नीबू का रस योजित कर तिल तैल में पचा कर अभ्यंग करने

तथा उक्त द्रव्यों की धूनी देने तथा एकत्र पीस कर अभ्यंग करने से शीतपूर्वक आने वाले ज्वरों का नाश होता है।
(भा० म० ख० विषम ज्वर चि०)।

कायस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल फूल की पादल। रक्तपादला।

कायस्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकोली। (भा० पू० १ भ०)।

काया—संज्ञा पुं० [सं० काय] शरीर। वपु। दे० 'काय'।

कायाकल्प—संज्ञा पुं० [सं० कायकल्प] (१) औषध जो जरा (वार्धक्य) अवस्था को दूर कर यौवन की रक्षा करे, वह वयस्य वा कायाकल्प कहे जाते हैं। (२) चिकित्सा वा युक्ति जिससे अशक्त या जर्जर शरीर हो जाय। (३) वह विधान जो औषध के प्रभाव से शरीर को पुनः तरुण और सशक्त किया जाय।

कायाकल्प-वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कायाकल्पवटिका] वह वटी वा गुटिका जो शरीर के शोधन में प्रयुक्त है।

निर्माण-विधि—आँवला ४ भाग, पीली हड़ ८ भाग, सौंफ २ भाग, इन्द्रायण की गुदी २ भाग, निशोथ २ भाग, आकाशवेल २ भाग, सनाय २ भाग, गुलाब के फूल २ भाग, सकमुनिया २ भाग, एलुआ २ भाग, सोंठ २ भाग, रेवन्दचीनी २ भाग, इलायचीदाना २ भाग, अनीसून २ भाग, जीरा सफेद २ भाग—इनको एकत्र वारीक चूर्ण कर अर्कगुलाब ५ तोला, अर्क सौंफ ५ तोला, अर्क मकोय ५ तोल, रोगन बादाम ५ तोला मिश्रित कर तीन दिन खरल कर मटर प्रमाण की गोलियां बनाए। **सेवन विधि**—शयनकाल में १ गोली खाकर दुग्ध वा उष्ण जल पान करें। पुनः प्रातःकाल २-३ गोली वा आवश्यकतानुसार सेवन करें। इस प्रकार सेवन करने से विरेचन होकर कोष्ठ का परिष्कार होता है और आमवात, पाण्डु, आनाह, गुल्म, प्रमेह-यकृत रोगादि का नाश होता है।

कायाकुटी—संज्ञा स्त्री० [वम्ब०] } कैपूती। दे०

कायापुटि—संज्ञा स्त्री० [हिं० ता०] } 'कायापुटी'।

कायाग्नि—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] शरीरगत पाचकाग्नि।

काया पुटी—संज्ञा स्त्री० वृक्ष विशेष। ध्यायि—(बं०) काजु-पुटि; (वम्ब०) कायाकुटी; (ता०) किजापुटे; (अं०) केजुपुट ट्री (Cajuput-tree); (ले०) मेलनल्युका ल्युके-डेण्ड्रोन (Melanleuca Leucadendron), मेलनल्युका केजुपुटि (M. cajuputi) मेलनल्युका-माइनर (M. Minor)।

वर्ग (कुल)—जम्बुआदि (Myrtaceae)।

उद्भवस्थान—भारतीय द्वीप तथा भारतवर्ष में इसके वृक्ष रोपण किए जाते हैं। जावा, मन्निल्ला तथा अन्य स्थानों से इसके पत्र द्वारा आकर्षित तैल का आयात भारतवर्ष में होता है।

रासायनिक संगठन—इसके आकर्षित तैल द्वारा केजुपुटीन तथा केजुपुटोल नाम का सत्व ग्रहण किया जाता है। जिसमें केजुपुटोल नामक सत्व, इसके गदले तैल द्वारा आकर्षित कर प्राप्त किया जाता है। इसके गदले तैल को भाषा में कायपुटी का तैल कहते हैं। यह वर्ण में पीताभ, नीलिमायुक्त स्वाद में तिक्त एवं गन्ध में अनुरस तथा स्वाद सुगन्धमय होता है।

गुणकर्म—इसका तैल उग्र उत्तेजक, दाहक, वात नाशक, मूत्रल और वात-प्रकोपनाशक है। इसके उपयोग से शूल, उदराध्मान, विसूचिकीय अतिसार, योषापस्मार, हिक्का, वातज वमन, उत्क्लेश, रजःकण्ट, अर्धावभेदक, मन्द ज्वर और सन्धिवात (आमवात) का नाश होता है। **मात्रा**—२ से ५ बूंद बतासा में टपका कर। इसके द्वारा प्रस्तुत सुरा की मात्रा ३ से २ तरल ड्राम है।

वाह्य उपयोग—वाह्यकृमिनाशक, दाहजनक तथा फोस्काकारक है। इसका उपयोग प्रायः मरहमों में मिश्रित कर किया जाता है। वातव्याधि, सन्धिशूल तथा अर्धावभेदक में उपयोगी है। जैतून के तैल में मिश्रित कर कान में टपकाने से कर्णशूल एवं वाधीर्य दोष शान्त होता है। चर्मरोग, विचर्चिका तथा पेशियों पीड़ा में उपयोगी है। इसके निम्नलिखित योग की उत्तम हैं:—

(१) कायाबूटी का तैल ३ ड्राम,

एरण्ड तैल १ ड्राम,

और जैतून का तैल ४॥ ड्राम अथवा

(२) कायाबूटी का तैल ३ ड्राम,

कर्पूर—३ ड्राम।

जैतून का तैल ४ ड्राम मिश्रित कर उपयोग में लाएँ।

काया-पुटिया—संज्ञा पुं० [मल०] दे० 'कायापुटी'।

कायाबूटी—संज्ञा स्त्री० [कैपूती] देखो 'कायपुटी'।

कायाबूटी का तैल—संज्ञा पुं० रोगन काया बूटी। (अं०)।

ऑइल केजुपुटि (oil cajuputi)।

दे० 'कायापुटी' मात्रा—५-१० बूंद बतासा में।

कायास—संज्ञा पुं० [ता०] हिंगु। हींग। डायमॉक (iii 41)।

कायार—संज्ञा पुं० [हिं०] द्रव्य विशेष।

कायाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ईश्वरी बूटी। (लु० क०)।

कायाह्व—संज्ञा पुं० [मल०] अञ्जनी। लोखण्डी। (Iron-wood)। अगुरु भेद। काली अगर

कायिक—वि० [सं० त्रि०] (१) शरीर सम्बन्धी। (२) शरीर से उत्पन्न।

कायिली—संज्ञा स्त्री० [को०] किर्नी। केंथियम पार्वी फ्लोरम (Canthium-Parviflorum)। (इं० हैं० गा०)।

कायि-वर्तियेल-पुल्लुणि—संज्ञा स्त्री० [मलाबार] कुचले

का मलंग। (मो० श०)। वन्दाक जो कुचला के वृक्षों पर होता है।
 कायीफ्लोरिबण्डा—[ले०] करञ्ज।
 कायू-ओब—संज्ञा पुं० [जावा] बाड़ की थूहर। बाड़ की सेहुँड़। वज्रद्रुम। (इ० मे० मे०)।
 कायेरू—संज्ञा पुं० [तुर०] कुचला। कारस्कर। (लु० क०)।
 कायोगडिस—संज्ञा पुं० [म०] सुगन्धद्रव्य विशेष। सिन्नामोमम पार्थेनोजलोन (Cinnomomum-Porthenoxylon)।
 कार—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कीर'। (मु० आ०)।
 कार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिमशिला। बर्फ से ढका पहाड़। (मे०)।
 कारअ—संज्ञा पुं० [अ०] पालेवत वृक्ष। छोहाड़े का पेड़। (लु० क०)।
 कारः—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) भल्लुकी। रीछिनी। सताखनीस। (लु० क०)। (२) वह रक्त जो त्वचा के नीचे जम जाता है और जम कर नीलवर्ण का हो जाता है। (Ecchymosis)। (म० ज०)।
 कारक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) यमानी। अजवाइन। (वै० निघ०, भ० कास० चि० पिप्पल्यादि कषाये)। (२) वदर। वेर। (वै० निघ०)। (३) वर्षोपल जल। बरसाती ओले का पानी। (रा० नि० व० १४)। (४) काशतृण। कासा।
 कारक—संज्ञा पुं० [अ०] कवर। करील का एक भेद। (डाइमाक i—135)
 कारकतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] सोमराजी। बकुची।
 कारकत्री—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] विडंग। वायविडंग। (मे० मो०)।
 कारकरोडन—कार्कॅरिअस—[ले०] द्रव्य विशेष।
 कारकीबुआ—संज्ञा पुं० [यू०] शृगाल। गीदड़। (लु० क०)।
 कारकूस—संज्ञा पुं० [यू०] वृषभ वा छाग शृंग। बैल वा बकरे की सींग। (लु० क०)।
 कारकेरुइस-ग्लाकम्—[ले०] वनस्पति विशेष।
 कारकेरुइस-ब्लौरिस—[ले०] वनस्पति विशेष।
 कार्कोरस एक्युटैंग्युलेरिस—[ले०] (Gorchorus Acut-angularis) चञ्चुक शाक। दे० 'चैच'।
 कार्कोरस कॅप्स्युलेरिस—[ले०] (Chorchorus-Capsularis)। चञ्चुक भेद। दे० 'बहुफली'। (सं०) नदिका। सिंगिका। (इ० मे० मे०)।
 कार्कोरसट्रिलोक्युलेरिस—[ले०] Chorchorus-Tri-ocularis] चञ्चुक भेद। बहुफली। कामराज। (इ० मे० मे०)।
 कारङ्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमलकी। आँवला।
 कारङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हींगड़ा। डीकामाली। नाड़ी हिंगु।

कारज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गजवालक। हाथी का बच्चा। (वै० निघ०)।
 कारज—संज्ञा पुं० [अ०] खुम्बी (छत्रिका) जो खाई जाती है। (लु० क०)। दे० 'खुमी'
 कारज वेल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] काजर वेल। कुचिला लता। (ओ० सं०)। दे० 'काजर वेल'।
 कारजा—संज्ञा [?] उकह्वान। (लु० क०)।
 कारञ्जक—संज्ञा पुं० [फा०] (१) त्रपुष। खीरा। (२) कर्कटी। ककड़ी। (इ० है० गा०)।
 कारञ्जसुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करञ्ज का चूर्ण। कंजा का चूर्ण। गुण—रुचिप्रद है। (वै० निघ०)।
 कारञ्जा—संज्ञा स्त्री० [वं०, सं०] (१) करञ्ज। (२) नेरम रेटिक्युलेटा (Nerum-Reticulata)।
 कारण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रोग निदान। हेतु। रोग हेतु। यह सन्निकृष्ट तथा विप्रकृष्ट भेद से दो प्रकार का है। सन्निकृष्ट कारण वातादि में और विप्रकृष्ट कारण का उपयोग विरुद्ध आहारादि में होता है। (मा० नि०)। (२) वध। (३) इन्द्रिय। (४) देह। (५) रत्न कोष। रत्नों का खजाना। (६) ज्ञान-इन्द्रिय। (वै० निघ०)। (७) कार्य संपादन में प्रयत्न करते हुए कर्ता के उपकरण रूप में जो समर्थ होता है उसको 'कारण' कहते हैं। (च० वि०)। (८) वह जिसके बिना कार्य न हो। वह जिससे दूसरे पदार्थ की संप्राप्ति हो। हेतु। निमित्त। प्रत्यय। न्याय के मत से कारण के तीन प्रकार हैं—समवायि। जैसे—तन्तुओं और वस्त्र का संयोग। जैसे—(तन्तु व वस्त्र), असमवायि। तन्तुओं और वस्त्र का संयोग और निमित्त (जैसे जुलाहा, ढरकी आदि वस्त्र का)।
 कारण-शरीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सत्वप्रधान अज्ञान। सुषुप्ति अवस्था का कल्पित शरीर। आनन्दभय कोश।
 कारणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुःख। गाढ़ वेदना। (अम०)।
 कारण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हंस विशेष। (वं०) खड़ाहंस पाखी। (२) दीर्घ चरण तथा कृष्ण वर्ण का पक्षी। (वं०) जल पिपि। मांसगुण—समस्त गुण वह है, जो प्लवजातीय पक्षियों के मांस में होते हैं। (सु० सू० ४६ अ०)।
 कारण्डव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हंस विशेष। देखो—'कारण्ड'।
 कारतन(क)—संज्ञा पुं० [फा०] } लूता। मकड़ी। (लु० क०)।
 कारतना—संज्ञा स्त्री० [फा०] }
 कारतना—संज्ञा स्त्री० [फा०] मेथिका। मेथी। (लु० क०)।
 कारङ्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँवला। आमलक।
 कारद—संज्ञा पुं० [?] द्रव्य विशेष। सताखनीस। (लु० क०)।

कारदनक—संज्ञा पुं० [फा०] वच। (लु० क०)।
 कारदानग—संज्ञा पुं० [फा०] एक पक्षी, जिसकी ग्रीवा (गरदन) लम्बी होती है। (लु० क०)।
 कारदायून—संज्ञा पुं० [यू०] चन्द्रसुर। हालो।
 कारदिया सलाया—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली गाजर का बीज। कामराज के बीज। काकालीस।
 कारदी पीच किलग स्टीन—संज्ञा पुं० [अं०] क्षुप विशेष। (इं० है० गा० पृ० ११२)।
 कारन—संज्ञा पुं० [?] कुक्कुर। कुत्ता। (लु० क०)।
 कारनामून—संज्ञा पुं० [यू०] नमाम का एक भेद जो हुफ के समान होता है। (लु० क०)।
 कारनी-बारूक—संज्ञा पुं० [तु०] इसबगोल। (लु० क०)।
 कारन्द (ण्ड)—संज्ञा पुं० [म०] करमदक। करौदा।
 कारन्धमी (इन्)—वि० [सं० वि०] धातुपरीक्षक। (हारा०)। जौहरी
 कारपो करीषी—संज्ञा पुं० [ता०] सोमराजी। बकुची। (मो० श०)।
 कारफी बुआ—संज्ञा पुं० [यू०] कर्कट। केकड़ा। (लु० क०)।
 कारबंकल—संज्ञा पुं० [अं० Carbuncle] प्रमेह पिडिका। राजफोड़ा।
 कारबा—संज्ञा पुं० [फा०] कहखा। तृणकान्त। (लु० क०)।
 कारबा एंण्टिसेप्टिका—संज्ञा स्त्री० [ले० Carba. Antiseptica] द्रव्य विशेष। (पा० द्र० १४८ पृ०)।
 कारबन—संज्ञा पुं० [अं० Carbon, वि० कारबोनिक] आधुनिक रसायनशास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि में दो रूपों में पाया जाता है। एक हीरे के रूप में, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप में।
 कारबीज—संज्ञा पुं० [?] च्यूटा। पिपीलिका भेद।
 कारबोर—संज्ञा पुं० [?] तरबूज। कलिन्दा।
 कारबोलिक—वि० [अं० Carbolic] अलकतरा संबंधी। अलकतरा मिश्रित वा उससे निर्मित।
 कारबोलिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Carbolic acid] एक प्रकार का तेजाब जो अत्यन्त दाहक होता है। यह कोलतार का तेजाब है। देखो—कार्बोलिकाम्ल।
 कारबोलिक गॉज—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का कोथछन वारीक झीना कपड़ा जो कारबोलिकाम्ल द्वारा प्रस्तुत किया होता है। इसका उपयोग प्रायः व्रणचिकित्सा में होता है।
 कारबोलिकवूल—संज्ञा पुं० [अं० Carbolic wool] कोथछन रूई जो कार्बोलिकाम्ल द्वारा प्रस्तुत की जाती है। इसका उपयोग कोथनिवारणार्थ व्रणचिकित्सा में होता है।
 कारभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथ की हड्डी, करास्थि।

कारमङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली सहिजन। अरण्य सोभाञ्जन वृक्ष।
 कारमित्री-विरै—संज्ञा पुं० [म०, ता०] बीज विशेष।
 कारमिहिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्पूर। (रा० नि० व० १२)।
 कारमी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंदफल विशेष। (लु० क०)।
 कारम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोदनी। प्रियंगु। (अम०)।
 कारल—संज्ञा पुं० [बम्ब०] कारवेल्ल। करैला।
 कारलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्ण तुलसी। काली तुलसी।
 कारली—संज्ञा स्त्री० [म०] कारवेल्ल। करैला।
 कारवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करैली। छोटा करैला। जंगली करैला। छोटी करैली। (म०) लघु कारली। गुण—अरुचिनाशक, उष्णवीर्य, दीपन, तिक्त, रक्तविकारहर तथा कफवातनाशक है। (रा० नि० ७)। रुचिकारक, कफपित्तनाशक तथा अवृष्य है। (राज०)। फल—भेदक, लघुपाकी, तिक्त, शीतल, पित्त, रक्तदोष, कामला, पाण्डुरोग, कफ, मेह, कुमिनाशक तथा वातनाशक नहीं है। (मद०) लघुपाकी तथा अग्निदीपन है। (भा०। सु० सू० १ भ०)। (२) कटुहुञ्ची। उच्छे। (रा० नि० व० २३)।
 कारवल्लिलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करैली। (रा० नि०)। दे० “कारवल्ली”।
 कारवेल्ल (क)—संज्ञा पुं०, [सं० पुं० क्ली०] (१) करैला। करेला। (२) रसक। (ध० नि०)।
 कारवेल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० कारवल्ली। (momordica charantia)। (भा० पु० १ भ० शा० व०)।
 कारव्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विलायती जीरा। कारवी। कृष्ण जीरक। (२) उपकुञ्चिका। मगरैला। कलौंजी। (ध० नि०)।
 कारव्यादि (कषाय)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अभिन्यास-ज्वरनाशक-ववाय विशेष। निर्माण-विधि—कलौंजी, पुष्करमूल, एरण्डमूलत्वचा, त्रायमाण, सोंठ, कचूर, काकड़ासिगी, भारंगी, पुनर्नवा, दशमूल के १० द्रव्य, प्रत्येक समान भाग, गोमूत्र ३२ तोला, उक्त प्रत्येक द्रव्य ८ रत्ती प्रमाण में ग्रहण कर यथाविधि ववाय करें। (भैष०)।
 कारव्यादि कवलधारण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अरुचि चिकित्सा में प्रयुक्त योग। यथा—कलौंजी, जीरा, कालीमिर्च, मुनक्का, अम्लवेत, अनारदाना, काला नमक और गुड़ समान भाग में ग्रहण कर काष्ठादि द्रव्यों

का चूर्ण कर गुडमिश्रित गुटिका निर्माण करें। इसे मुख में धारण करने से मुख की विरसता तथा अरुचि का नाश होता है। (भैष० र०)। मतान्तर से इसमें इमली का भी योग किया गया है। (रस० यो० सा०)।

कारव्यादि गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कार-व्यादि कवलधारण'। (रस० यो० सा०)।

कारशोधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्याह जीरा। (लु० क०)।

कारस—संज्ञा पुं० [यू०] करील का एक भेद। कन्न। कवर।

कारसिया—संज्ञा पुं० [?] शीतलचीनी। कवावचीनी।

कारसीसयून—संज्ञा पुं० [यू०] } कवावचीनी। (लु० क०)।

कारसीसा—संज्ञा पुं० [यू०] }

कारसकराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्णजलौका। कनसलाई। कानखजूरा। कोठारी। केंडाई। (त्रिका०),

कारस्कर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कुपीलु वृक्ष। विपतिन्दुक।

कारस्काय—संज्ञा पुं० [ते०] }

कारस्कार—संज्ञा पुं० [म०] } दे० 'कुचला'।

कारह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दे० 'कारः'। (२) सताखितूस। रीछनी। भल्लूकी।

कारा—संज्ञा पुं० [वम्ब०] कृष्ण जीरक। स्ट्रोवाइलेंथस सिलिएटस (Strobilanthus Ciliatus)। दे० 'कारवी'।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुःख। पीड़ा। (हारा०)।

कारा—संज्ञा पुं० [?] (१) गुग्गुलु। (२) मसिल (पनीर का पानी)। (लु० क०)। (३) वहमन सफेद। (४) वहमन सुखं।

कारासीतस—संज्ञा पुं० [यू०] नयफासी। वंशभेद।

कारातस्बून—संज्ञा पुं० [यू०] पलाण्डु। प्याज। (लु० क०)।

कारातिया—संज्ञा पुं० [यू०] खनूवशामी। (लु० क०)।

कारातीतस—संज्ञा पुं० [यू०] खशखवासमकरन।

कारातीस—संज्ञा पुं० [यू०] विलायती काला जीरा। 'कारवी'। कृष्णजीरक विदेशी।

काराते—संज्ञा पुं० [को०] कारवेल्ल। 'करेला'। करैली।

काराद-कवालून—संज्ञा पुं० [यू०] 'लौंग'।

कारादमन—संज्ञा पुं० [यू०] }

कारादामन—संज्ञा पुं० [यू०] }

कारादूमन—संज्ञा [यू०] }

काराफल—संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] कारी। बलसू।

कारायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सारस पक्षी। (२) बलाक पक्षी। (जटा०)।

कारार्क—संज्ञा पुं० [कना०] 'कुचला'। कुचेलक। कार-स्कर।

कारास—संज्ञा पुं० [यू०] शृङ्ग। सींग। (लु० क०)।

कारासिया—संज्ञा पुं० [?] करासिया।

कारिअ—संज्ञा पुं० [अ०] वह व्यक्ति जिसके शिर के केश किसी रोग के कारण गिर गए हों। (म० ज०)।

कारिक—संज्ञा पुं० [पं०] अम्लपर्णी लता। गिदड़द्राक। (पं०) दिक्री। (हिं०) अमलोला। अमलवेल। (वं०) अमल लता। (ले०) वाइटिस ट्रिफोलिया (Vitis trifolia)

कारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] यातना। कष्ट। (मे०)।

कारिकुरि—संज्ञा पुं० [म०] साखोट वृक्ष। दे० 'सिहोर'।

कारि (लि) ख—संज्ञा स्त्री० [सं० कलुष] काजल।

कारिडेलिस काश्मेरिना—संज्ञा स्त्री० [ले० Corydalis Gashmerina] तृण विशेष। काश्मीरी दूब।

कारिडेलिस-गोवानिएना—संज्ञा पुं० [ले० Corydalis govaniana] (१) गोलोमी। भूतकेशी। (इं० मे०)। (२) श्वेत दूर्वा। 'भूतकेशी' श्वेत दूर्वा। (वै० श० सि०)।

कारिडेलिस-रेसिमोसा [ले० Corydalis Rasimosa] दूर्वा भेद।

कारितुम्ब—संज्ञा पुं० [ता०] स्पृक्का। अस्प (व) र्ग।

कारिन—संज्ञा पुं० [अ०] त्वचान्तर स्कन्दित रक्त। चमड़ा के नीचे जमा हुआ खून। (Ecchymosis)।

कारिफाअम्ब्रीव्युलिकेरा—[ले० Carypha umbri-culifera] 'वजरवट्ट'। अल्पायुष्णी। कटकाली। (इं० मे० मे०)।

कारिलस अवल्लेना—[ले०] वनस्पति भेद।

कारिवणा—संज्ञा स्त्री० [म०] ब्राह्मी। (ओ० सं०)।

कारिवेलि-पान-मरवर—संज्ञा पुं० [द०, म०] महापान। (अलवर)।

कारिवेल्ल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करेला। (२) कठिलक वृक्ष। (हे० च०)।

कारिस-वि० [अ०] (१) छेदक। काटने वाला। (२) वह दूध जिससे जिह्वा झुलझुलाने लगे।

कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०, हिं०] वृक्ष विशेष। पर्याय—(१) (सं०) कारिका, काय्या, कटुपत्रिका। गिरिजा। (हिं०) मोवा। बकलवा। बलसू। गुण-कर्म—मधुर, कषाय, दीपन, गुरुपाकी, पित्तघ्न, रुचिप्रद, कण्ठशोधक तथा संग्राही है। (रा० गिन० व० ८, निघ० शिरो०)। दे० 'भाँट'।

टिप्पणी—मुहीत और खजाइन में बलसू नाम से कारी का वर्णन आया है। मुहीत में इसकी संस्कृत संज्ञाएँ इस प्रकार दी हैं—कारीपंडु जिसे खजाइन में काडीपंडु लिखा है। मुहीत में इसका अर्थ 'जिसका पुष्प सफेद हो' ऐसा लिखा है। परन्तु आयुर्वेदीय निघंटुओं में कारी के पर्यायों में कारीपंडु शब्द देखने में नहीं आता और न यह संस्कृत शब्द ही जान पड़ता है। अन्य संज्ञाएँ—काराफल दक्षिणी भाषा में 'पण्डू' फलका पर्याय है।

(जिसका फल काली मिर्च का-सा स्वादयुक्त हो) और कानककरी (जो शरीर का वर्ण सुनहला करे) हैं।

वर्णन—एक जंगली वृक्ष जो दक्षिण में कारी नाम से प्रसिद्ध है। यह शाखावहुल होता है और बड़े-बड़े और मोटे-मोटे काँटों से व्याप्त होता है। प्रत्येक काँटे के तले दो पत्ते कमवार मेंहदी के पत्तों की तरह, परंतु उनसे किसी प्रकार क्षुद्रतर, लगे होते हैं। पत्तों के मध्य में फूल आते हैं। इसके बाद फल लगते हैं। प्रत्येक स्थान पर एक से तीन फल तक लगते हैं। फल आकार में फालसे के बराबर, किंतु उससे थोड़े चपटे होते हैं। कच्चे फल कसैले, अधपके पीले केसरिया और पके लाल होते हैं। प्रत्येक फल में एक से तीन तक वृक्काकार बीज होते हैं। फल स्वाद में स्निग्ध, मधुर एवं कषाय होता है।

वृत्तव्य—मिरजापुर के विन्ध्य पर्वतों में जो कारी के वृक्ष होते हैं, उनमें काँटों का अभाव होता है। और पत्ते लिसोड़ा के समान बड़े होते हैं।

प्रकृति—फल उष्ण एवं तर है।

गुणकर्म तथा उपयोग—फल बल्य, कामवर्द्धक और कामोत्तेजक वा वाजीकरण है। यह प्रवाहिका वा पेचिस को दूर करता है। **उपयोग**—वैद्यों के अनुसार गुण—कषाय, मधुर, दीपन, दीर्घपाकी, कण्ठशोधक, संग्राही, पित्तघ्न तथा रुचिप्रद है। (रा० नि० व० ८, नि० शिरोमणि)। यह कषाय, वादी और काविज है। तथा प्रमेह, मजी (पौरुषग्रन्थिस्त्राव) और शुक्रस्त्राव तथा सांद्रमेह (शिल्ज बौल) में उपकारी है। इसके कोमल पत्तों को पका कर रोटी से खाते हैं। यह पत्ते वायु पैदा करते, पेट फुलाते और क्षुधानाशक हैं तथा मूत्ररोग एवं संग्रहणी को लाभ पहुँचाते हैं। ज्वर में इनसे शीघ्र उपकार होता है; वल्कि एक प्रहर में आराम हो जाता है। (मुहीत)।

(२) बलसू। (३) आकर्षकारी नामक प्रसिद्ध क्षुप। (ध० नि०)। (४) प्लक्ष। पाखर। पकरी। राम अंजीर। (इ० मे० मे०)। (५) भाँटा (स०) भण्डीर। (हि०) भाँट, भटेउर, भाट।

कारीखड़ी—संज्ञा पुं० [काठियावाड़] कुड़ा। कुटज। कोरया।

कारी गन्ने—संज्ञा पुं० [कना०] ज्योतिष्मती। मालकांगनी। (इ० मे० मे०)

कारीचेरी—संज्ञा पुं० [सिंध] संगजराहत।

कारीजली—संज्ञा स्त्री० [कना०] अरिमेद। विट्खदिर।

कारीजा—संज्ञा पुं० [?] क्षुप विशेष।

कारीजीरिगे—संज्ञा पुं० [कना०] उपकुञ्चिका। मँगरैला।

कारी जीरे—संज्ञा पुं० [कों०] (अ०) कमूने अस्वद (फा०) सियाहदानः

कारीजीरी—संज्ञा स्त्री० कालीजीरी। दे० 'करजीरी'

कारीट—संज्ञा पुं० [म०] विशाला। जंगली इन्द्रायण।

(हि०) विपलम्बी (म०) काकमाकी।

कारीडा—संज्ञा पुं० [?] क्षुप भेद।

कारी तुलसी—संज्ञा स्त्री० [कना०] तुलसी। विष्णु-प्रिया। (मल०) शिवतुलसी। श्यामदल। काली तुलसी। (इ० मे० मे०)।

कारी तुम्ब—संज्ञा पुं० [मल०]

कारी तुम्बी—संज्ञा स्त्री० [कना०] (वम्ब०) गाव-

कारी थुम्पु—संज्ञा पुं० [ता०] जवान। (ते०) मोग-

कारीथुम्बी—संज्ञा स्त्री० [कना०]

वीराकु। (द०) मोगवीर का पत्ता। (ले०) ऐनिसो-मेलिस मलाबारिका (Anisomeles malabarica)।

कारीपाठ—संज्ञा पुं० [पोरबंदर] राजपाठा। साइकल रील्लेटा। (Cycle Rellata)।

कारी बेल्ली-पान्न-मर-वर—संज्ञा पुं० [मल०] महापान।

कारी मट्टी—संज्ञा स्त्री० [कना०] (१) आसन। असन।

पियासाल। (२) (वं०) खड़िया मिट्टी। विलायती चूना (Calcium-Carbonate)।

कारी मरथु—संज्ञा पुं० [मल०] साल। साखू। अश्वकर्ण। सिखुआ। (डाइमॉक; इ० मे० मे०)।

कारीमटल—संज्ञा पुं० [कना०] तिनिश। छानन। सादन। तिरिच्छ। दे० 'छानन'। (म० प्र०) काला पलास।

कारी मुट्टन—संज्ञा पुं० [मल०] नागरमोथा। भद्रमुस्तक। धनांकुट। (इ० मे० मे०)। (सिन्ध) काली मुसली।

कारी-मुल्लि—संज्ञा स्त्री० [ता०] बृहती। बड़ी कटेरी। बरहूटा। बनभटा।

कारीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करील। करीर फल। टेंटी।

कारीरः—संज्ञा पुं० [फा०] कुसुम बीज। कड़।

कारीलेसीई—[ले०] वनस्पति कुल विशेष।

कारी बेवु—संज्ञा पुं० [कना०]

कारीवएपु—संज्ञा पुं० [मल०] सुरभिनिम्ब। कृष्ण

कारी-वंपमु—संज्ञा पुं० [ते०] निम्ब। कढ़ी नीम।

कारीवम-उन्दरी—संज्ञा स्त्री० [द०] ब्राह्मी। (Indian Penny-wort)।

कारी विपोला—संज्ञा पुं० [ते०] कोटगन्धल। टॉर्चट्री (Torch-tree)।

कारी वीलम्—संज्ञा पुं० [मल०] अरिमेद। विट्खदिर। (देश०) रीवाँ। गंध बबुर।

कारी वेम्बु—संज्ञा पुं० [ता०] सुरभिनिम्ब। कृष्णनिम्ब। कढ़ीनीम। करिया पात। (म०) घोगर। कुसर। गेरुगा पिन्नेटा (Garuga pinnata)।

कारीष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करसी की रास। कंडों का ढेर। करीषसमूह।

कारी ससिवे—संज्ञा पुं० [कना०] कृष्ण सर्पप। काली सरसों। काली राई।

कारु—संज्ञा पुं० [म०] साखोट वृक्ष। दे० 'सिहोर'।
 कारुअल्लमु—संज्ञा पुं० [ते०] वनार्द्रक। जंगली हल्दी।
 मलावरी हल्दी।
 कारुइंगवा—संज्ञा पुं० [ते०] वंशपत्री। डीकामाली।
 कारुइन्दु—संज्ञा पुं० [ता०] (ब०) बाघचूर। (उड़ि०)
 हाथी अंकुश।
 कारु (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्मरंग। कमरख।
 (श० चि०)।
 कारुक-कर्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सूपकार कर्म।
 आहार-निर्माण संबंधी कार्य। (रन्धन)।
 कारुकट्ट—संज्ञा पुं० [मल०] वनस्पति भेद।
 कारुक-पुल्लु—संज्ञा पुं० [मल०] द्वर्वा। दे० 'दूब'। (इं०
 मे० मे०)।
 कारुकरिण्डा—संज्ञा पुं० [मल०] वनस्पति भेद। (डा०
 चोप०)।
 कारुका—संज्ञा पुं० [?] फल विशेष। (अ०) जौजुलमलिक।
 कारुवाकरु—संज्ञा पुं० [ता०] गुडत्वक्। दालचीनी।
 कारुज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गैरिक। गेरु। (२)
 नागकेसर। (३) फेन। (४) वामलूर। (मे०) (५)
 हस्तिसावक। हाथी का वच्चा। (६) मोथा मुस्तक।
 कारुणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पुनर्नवा। दे० 'गदहपुरना'।
 कारुण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलौका। जोक
 कारुण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (Leech)
 (श० च०; हारा०)
 कारुण्य-भैरव-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपातज्वर में
 प्रयुक्त पारद योग। निर्ममाण-विधि—शुद्ध पारद, शु०
 गन्धक तथा कृष्णाभ्र भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण
 कर भाँगरा के रस में १२ घंटा मर्दन कर संपुट कर
 उस पर कपड़मिट्टी करें। पुनः बालुकायंत्र में स्थापित
 कर १ पहर की आँच देवें। स्वांगशीतल हो जाने पर
 इसमें मोर (भयूर) और वाराह पित्त की भावना दे
 कर उड़द प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।
 गुण तथा उपयोग-विधि—अदरक तथा अन्योचित
 अनुपान द्वारा सेवन करने से प्रलापक सन्निपात का शीघ्र
 नाश होता है। पथ्य—तक्र और भात। अधिक दाह होने
 पर नारियल के डाभ का पानी देवें।
 कारुण्य सागर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वरातिसार में
 प्रयुक्त योग। यथा—रससिन्दूर १ भाग, शु० गन्धक
 २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग। एकत्र सरसों के तेल में
 मर्दन कर संपुट करे और बालुकायंत्र में स्थापन कर १
 प्रहर पर्यन्त पाक करें। स्वांगशीतल होने पर निकाले
 और भृंगराजमूल के रस द्वारा मर्दन कर पुनः उक्त
 विधि से बालुकायंत्र में १ प्रहर की आँच देवें। स्वांग
 शीतल होने पर निकालें और इसमें—सज्जीखार,

जवाखार, सुहागे की खील, पांचो नमक, शुद्ध वच्छनाग,
 त्रिकुटा, चित्रकमूल, जीरा और वायविडंग प्रत्येक
 मिलित रसादि द्रव्यों के बराबर मिश्रित कर (भाँगरा)
 के रस में मर्दन कर उड़द प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।
 गुण—यथोचित अनुपान द्वारा सेवन करने से एक
 मात्रा में—समस्त अतिसार, ज्वरयुक्त अतिसार वा
 केवल अतिसार, शूलयुक्त अतिसार, निराम वा शोथ-
 युक्त अतिसार, संग्रहणी तथा सन्निपातज्वर का नाश
 होता है। (र० सा० सं० ज्वरा-अ० चि०)।
 कारुद—संज्ञा पुं० [फा०] (१) कपूर। (२) नूतन
 छोहाड़ा।
 कारुनक—संज्ञा पुं० [फा०] ऊदुल्वज्ज। घोड़वच।
 अगरे तुर्की।
 कारुनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] जौजुलमलिक। (लु० क०)।
 कारुनी—संज्ञा स्त्री० [?] घोड़ों की एक जाति।
 कारुपासुपु—संज्ञा पुं० [ते०] कपूरहरिद्रा। वनार्द्रक।
 कपूरहल्दी।
 कारुपेसारा—संज्ञा पुं० [ते०] वनमूंग। मुद्गपर्णी।
 (मो० श०)।
 कारु पोगाकु—संज्ञा पुं० [ते०] कूकुरदु। कुकरौधा।
 कारुफोलून—संज्ञा पुं० [यू०] लौंग। करनफल।
 कारुबोगी (गु)—संज्ञा स्त्री०, पुं०, [मल०] सोमराजी।
 वकुची। (मो० श०)।
 कारुरा—संज्ञा पुं० [अ०, बहुव० कवारीर] (१) एक प्रकार
 की वस्त्याकार फुंकनी शीशी जिसमें रोगी का मूत्र रख
 कर वैद्य के निकट परीक्षार्थ ले जाया जाता है।
 (२) इसका वास्तविक अर्थ मूत्र (पेशाब) होता
 है। डाक्टरी में इस शीशी को विआल (vial) और
 मूत्र को यूरिन (urine) कहते हैं।
 कारेती (ली)—संज्ञा स्त्री० [म०] करेला। कारवेल्ल।
 कारेया आर्बोरिआ—[ले० Careya Arborea] वाकुम्भ।
 कुम्भी। दे० 'कुम्भी'।
 कारेला—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) करेला (२) पटोल,
 पड़वल।
 कारेली—संज्ञा स्त्री० [गु०] कारवल्ली। करेली।
 कारै—संज्ञा पुं० [ता०] कीर्नी। खिरनी।
 कारैक—संज्ञा पुं० [गु०] खजूर। खजूर।
 कारैला—संज्ञा पुं० [हिं०] करेला। कारवेल्ल।
 कारोट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] शरीरांग भेद।
 (अ० शा०)।
 कारोत्तर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } सुरामण्ड। (अम०)।
 कारोत्तर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
 कार्क—संज्ञा पुं० [अ०] काग। शीशी का ढक्कन। इसका
 आयात भारत में पुर्तगाल से होता है।

कार्क काकली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीर अंग-विशेष।
(अ० शा०)।

कार्कट (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कोटक। खेखसा।

कार्कट्री—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का वृक्ष जो पुर्तगाल में होता है। इसकी लकड़ी बहुत हलकी होती है। इससे बोटलों में लगाने की ठेंठी (डाट) बनती है। इसको फारसी में शाहबलूत या दरख्तमन्तर कहते हैं। स्पेन और पुर्तगाल से यह भारतवर्ष में आता है।

कार्कण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वनकुक्कुट। जंगली मुरगा।
(व० निघ०)।

कार्कर-सरित्का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरुणास्थि सम्बन्धी सरित्का (Sulcus)। (अ० शा०)।

कार्कश्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्कशता। रौक्ष्य।
रूखापन। रूक्षता।

कार्कोडिलस-पोरोसस—[ले०] वनस्पति विशेष।

कार्कोरस-एण्टिकोरस—[ले० Corchorus Antichorus] क्षुद्र चञ्चु। बहुफली। कामराज।

कार्कोरस-कॅटेशूलेमर्स—[ले० Corchorus Catashoolamurs] चञ्चुशाक जातीय वनस्पति।

कार्कोरस कॅप्सुलेरिस—[ले० Corchorus Capsularis] नाडिका। सिंगीन। बहुफली। (व०) तीतवल। दारु।
(सं०) 'नाडिका'।

कार्कोरस ट्रिलोक्युलेरिस—[ले० Corchorus Trilocularis] (सं०) नाडिका, सिङ्गिका। (व०) तीत-पात
(हि०) कामराज। बहुफली।

कार्कोरस नालिटोमिअस—[ले० Corchorus Nolito-mius] चञ्चुजातीय वनस्पति-विशेष।

कार्कोरस-फैसिक्युलेरिस—[ले० Corchorus fascicularis] बहुफली। (हि०) सिंगिका। (सं०) नाडिका।

कार्जक—संज्ञा पुं० [फा०] आलूज। (लु० क०)।

कार्ट—संज्ञा पुं० [को०] शिवालिंगी। विजगुरिया।

कार्टिलेज—संज्ञा पुं० [अं० Cartilage] तरुणास्थि। कुरी।
मृदु अस्थि।

कार्ड—संज्ञा पुं० [अं० Cord] (१) रज्जु। रस्सी।
(२) हृदय।

कार्डाइटिस—[अं० Corditis] हृदय-शोथ। वरम कल्ब।

कार्डिअल—[अं० Cordial] हृदय। मुनइइश। प्राकृतिक उष्णता की रक्षा करनेवाले द्रव्य। हृदयोत्तेजक।

कार्डिआ अंगुस्टिफोलिआ—[ले० Cordia Angustifolia] प्रियंगु। गोंदनी। गोंदी। गोवन्दनी।

कार्डिआ-ऑब्लिक्वा—[ले० Cordia obliqua] क्षुद्र श्लेष्मातक। छोटा लिसोड़ा। देखो—लिसोड़ा।

कार्डिआ टैपरलीह्वड—[अं० Cordia Tapperleaved]

रामत। (इ० है० गा०)।

कार्डिआ डोमेस्टिका—[ले० Cordia Domestica] श्लेष्मातक। बहुवार। लिसोड़ा। दे० 'लिसोड़ा'।

कार्डिआ-ब्रॉड लीव्हड—[अं० Cordia broadleaved] वृहत् श्लेष्मात्मक। बड़ा लिसोड़ा। (इ० है० गा०)।

कार्डिआमिक्सा—[ले० Gordiamixa] सेलु। बहुवार।
छोटा लिसोड़ा। दे० 'लिसोड़ा'।

कार्डिआ मैक्लिओडिआई—[ले० Cordia macleodii] (हि०) दही पलास।

कार्डिआ-रम्फिआई—[ले० Cordia Rumphii] गोदनी।

कार्डिआ रॉथिआई—[ले० Cordia-Rothii] गोंदी।

कार्डिआ-लैटिफोलिआ—[ले० Cordia Latifolia] (सं०) सेलु। बहुवार वृक्ष। श्लेष्मात्मक।

कार्डिआ-वेस्टिता—[ले० Cordia-vestita] कुम्पइमान।

कार्डिओ-स्पर्मम-हेलीकेकाबम्—[ले० Gordiospermum-helicacabum] (हि०) कनफोड़ा। कनफटा। कर्णस्फोटा।

(व०) लता फटकरी। (देश०) काली घुँघची (?)

कार्डिआ स्मूथ-लीह्वड—[अं०], श्लेष्मात्मक। लिसोड़ा।

कार्डिएक—[अं० Cordiac] हृदय सम्बन्धी। हृदय।

कार्डिएक—वि० [अं० Cordiac] हृदय बलप्रद। हृद्य।

कार्डिएक आज्मा—[अं० Cordiac Asthma] हृदय-
विकारज श्वास-रोग।

कार्डिएक एण्ड—[अं० Cordiac End] (अ०) फममिअदः
आउलिउल फवाद। (सं०) आमाशय-मुख।

कार्डिएक एपिलेप्सी—[अं० Cordiac Epilepsy] हृदय
विकारज अपस्मार।

कार्डिएक टोनिक—[अं० Cordiac tonic] हृदयबलदायक।

कार्डिएक-डिप्रेसेंट—[अं० Cordiac depressant], हृदया-
वसादक।

कार्डिएक-सिडेटिव्ह—[अं० Cordiac sedative] हृदयाव-
सादक।

कार्डिएक स्ट्युमुलेण्ट—[अं० Cordiac Stumulent] हृदयोत्तेजक।

कार्डिएल्लिआ—[अं० Cordialgia] हृदय-शूल। हृच्छूल।
दर्द कलेजा। कलेजे का दर्द।

कार्डुअस-मेरिएनस—[ले० Corduus Marianus] एक प्रकार का वृक्ष जो योरोप में होता है। इसके सुपक्वफल द्वारा सुरासव (टिचर) प्रस्तुत किया जाता है। इसकी प्रधान क्रिया यकृत वा यकृत की शिरा तथा धमनी आदि (Portal System) पर होती है।

उपयोग—शिराकुटिलता (Varicosis) तथा उसके प्रकोप से उत्पन्न क्षतादि में होता है। यकृतरोग की अन्तिम अवस्था में जब सर्वांग शोथ हो जाता है, तब इसके उपयोग से उत्तम लाभ होता है।

मूत्र रोग—किसी भी रोग में, जब मूत्र का वर्ण धूम्रवत् (Cloudy) गँदला वा पक्के सोने की भाँति अल्पप्रमाण में सुनहला हो जाता है, तब इसके उपयोग से लाभ होता है।

यकृताश्मरी—यकृत् तथा पित्ताशय में पथरी पड़ जाने पर इसके सेवन से उपकार होता है। इसके अतिरिक्त यह कामला में भी हितकर होता है।

वक्षगत रोग—छाती के दक्षिण भाग के निम्न भाग में, जब पर्शुकाओं के भीतर और सामने की ओर सूई चुभाने की-सी वेदना होती है तथा इधर-उधर करवट बदलने से वेदना की वृद्धि होती है और वह वेदना कभी कटि, उदर, कंधा तथा पृष्ठ भाग में प्राप्त होती है, तब उक्त अवस्था में प्रायः लाभ होता है।

कास (खाँसी)—यकृत् विकारज खाँसी तथा यकृत के निकट वेदनायुक्त कास में इसके उपयोग से लाभ होता है। प्रतिनिधि—त्रायोनिया, बेलाडोना, पोडोफिलीन इत्यादि।

क्रम—० से निम्न शक्ति।

कार्डेमम् एलेटरी—[अं०] दे० 'इलायची'।

कार्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्णमल। कान का मैल। खूँट।

कार्ण-कीली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्ण पिप्पली।

कार्ण-जलौका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्ण जलौका। कनसलाई।

कार्ण-शाखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्ण साक्षी।

कार्तन (क)—संज्ञा पुं० [फा०] } लूता। मकड़ी।

कार्तिनः—संज्ञा पुं० [फा०] }

कार्तूनः—संज्ञा पुं० [फा०] मेथिका। मेथी।

कार्त स्वर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) धतूर का फल। धुस्तुर फल। (अम०)।

कार्तक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (गढ़वाल) दुधेला। स्वर्णक्षीरी क्षुप।

कार्तिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्कन्द। (२) कृत्तिकायुक्त मास (महीना)।

कार्तिक-शालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] धान जो कार्तिक के महीना में पकता है। कार्तिकशालि धान।

कार्तिकिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कार्तिक मास। कार्तिक का महीना। (वै० निघ०)।

कार्तिकिक-किङ्गु—संज्ञा पुं० [ता०] }

कार्तिकिक-किलंगु—संज्ञा पुं० [ता०] } शक्रपुष्पिका।

लांगली। करियारी। (इं० मे० मे०)।

कार्थेमस-टिक्टोरिअस—[ले० Carthamus tinctorius]।

कार्थेमस सैटिटरिअस—[ले० Carthamus Sativus]। कुसुम्भ। कड़।

कार्थेमस—[अं० Carthamus] वरें। कुसुम्भ। कड़।

कार्दि—संज्ञा पुं० [हिं०, बं०] बादाम फारसी। (Amygdalus-Persica)।

कार्दिन्यूस—संज्ञा पुं० [यू०] काकजंघा। दे० 'मसी'।

कार्दिस—वि० [सं० त्रि०] (१) पंकयुक्त। पंकिल। कीचड़ से भरा हुआ। (२) पंकोद्भूत। कीचड़ में उत्पन्न।

कार्न—संज्ञा पुं० [पं०] वालसिजल। (पं०)। मे० मो०।

कार्न—संज्ञा पुं० [अं० corn] (१) घट्ठा। (अ०)

अक्रिक। मजल। शगर। (२) भुट्टा। मक्का। यावनाल।

कार्न-पॉपी—संज्ञा स्त्री० [अं० Corn-popy] अगार (डाइमाक i, 104)।

कार्नस-मैस्वयुला—[अं०] करानिया।

कार्न सिल्क—संज्ञा पुं० [अं० Corn Silk] मकाई का धुआ। मक्का के बाल में होनेवाली रेशम के समान जो बारीक तन्तुएँ होती हैं। (Stigma)। (डाइमाक)।

कार्नस्मट—[अं० Corn Smut]। भुट्टा, मक्का।

कार्नस—[अं० Corns] (१) गोल मस्सा। (२) घट्ठा।

कार्निल-अलसर—संज्ञा पुं० [अं० Corneal ulcer] नेत्र के कृष्ण भाग में उत्पन्न व्रण (कुरः)।

कार्निया—[अं० Cornea] कर्नीनिका। नेत्र का कृष्ण भाग।

कार्नियाइटिस—संज्ञा पुं० [अं० Corneitis]

कर्नीनिक शोथ—इल्लिहाबुल क्रनियः। वरमक्रनिया।

कार्न—संज्ञा पुं० [अं० Cornu] उद्भेद। उभाड़। करन।

कार्न क्यूटेनिस—वि० [Cornu-Cutaneus] त्वगोद्भेद। त्वचा का उभाड़। कर्नुल् जिल्द।

कार्नल—[अं० Cornel] गौजोरन। करानिया। सरखक। जगाल। (इं० है० गा०)।

कार्नसीई—[अं० Corneceae] वनस्पति कुल वा वर्ग-विशेष।

कार्नसि-डास डायबोस—[ले०] वनस्पति विशेष

कार्न्युशआकोरिम्बोसा—[ले०] (डाइमाक iii. 24)

कार्न्यूटीन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का सत्व। iii. 67

कार्न्यूटीनसाइट्रेट—[अं०] कार्न्यूटीन साइट्रास।

कार्पट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाक्षा। जतु। लाख। लाही।

कॉर्पस—संज्ञा पुं० [ले० Corpus] (१) वपु, काय, शरीर, तनु, तन। (अ०) वदन। जिस्म। जस्द। (Body) (२) कलाई। मणिबन्ध।

कॉर्पस-कैवरनोसम—[अं० Corpus-Cavernosum] शरीर का आकाशीय भाग। पोला जिस्म। खोखला शरीर। जिस्म अजौफ।

कॉर्पस-क्लोसम—[ले० Corpus-Chlosum] शरीर का ठोस भाग। जिस्म सलव। सख्त जिस्म।

कॉर्पस-डेन्टेनम्—[ले० Corpus-Dentatum] शरीर का दन्तुर भाग। दन्तानदार जिस्म। जिस्म मुनपिफन।

कॉर्पस ल्युटियम—[ले० Corpus-Lutium] गौर शरीर। शुक्ल वर्ण काय। जिस्म अस्कर। दे० 'किणपुट'।

कॉर्पस स्ट्राइटम्—[ले० Corpus-Stritum] सम्पूर्ण शरीर पूरा जिस्म। जिस्म मुसल्लस।

कार्पाक—संज्ञा पुं० [?] कारस्कर। कुचला।

कार्पास (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपास। जंगली कपास। वनकार्पासि। (सु० सू० ३९ अ० वात सं० व०)।

गुण—उष्ण, मधुर, लघुपाकी, वातघ्न। पत्र—वातघ्न, रक्त उत्पादक, मूत्रवर्धक, कर्णनाद, कर्णपूय, कर्णसाव तथा कर्णपिण्डिका नाशक है।

बीज—दुग्धोत्पादक, वृष्य तथा गुरुपाकी है। (भा० पू० १ भ०)। दे० 'कपास'।

(२) तुण्डिका। (ध० नि०)।

कार्पासकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपास।

कार्पास कीकस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विनौला। वेनउर।

कार्पास कृतोष्णीष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोआव। कपास के रुई का फाहा। इसका उपयोग गुदा, कान तथा अन्य व्रणगत पुयादि का परिष्कार करने के निमित्त होता है। (सु० सू० ७ अ० यंत्रविधि)।

कार्पास-तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाड़ीव्रण में प्रयुक्त तैलयोग। निम्नविधि—कपास की जड़ और हल्दी दोनों का कल्क बना कर जलयुक्त तिलतैल में पचाएँ।

नोट—तिल तैल ४ भाग, जल १६ भाग तथा हल्दी और कपास की जड़ का परिमाण ११ भाग ग्रहण किया जाता है।

गुण—नाड़ीव्रण में लगाने से पुरातन नासूर का नाश होता है। (रस० र०)।

कार्पास नासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तर्की। (बं०) ठेको।

कार्पास बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विनौला। दे० 'कपास'।

कार्पासमु—संज्ञा पुं० [ते०] दे० 'कपास'।

कार्पास-वित्तुलु—संज्ञा पुं० [ते०] विनौला। कपास बीज।

कार्पास मज्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कार्पास के बीजों की गिरी (मींगी)।

कार्पास मज्जा गुठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अर्श में प्रयुक्त गुटिका। निम्नविधि—विनौला की गिरी, लहसुन, सज्जीखार और हींग एकत्र मर्दन कर घृतयुक्त मर्दन कर बेर प्रमाण की गोलियां बनाएँ। गुण—इसके उपयोग से अर्श (ववासीर) का नाश होता है। (वृ० नि० र० संग्रह)।

कार्पासादिक लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्वक् रोग में प्रयुक्त लेप। यथा—कपास की पत्तियाँ, काक जंघा, मूली के बीज एकत्र तक्र में मंगल के दित लेप करने से—सिध्म कुष्ठ का नाश होता है। (वृ० नि० र० त्वक् र० चि०)।

कार्पासास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विनौला। कपास के बीज। देखो—'कपास'।

कार्पासास्थ्यादि-स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूलाधिका-रोक्त स्वेदन योग। यथा—विनौला, कुलथी, जी, तिल, एरण्डमूल, अलसी, सोंठ, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर शण बीज और कांजीयुक्त पीस कर तथा वस्त्र में बांध कर स्वेदन करने से—उदर, मस्तक, कूल्हा, घुटना, पाद, अँगुली, एड़ी, कंधा तथा कटि-प्रदेश में प्राप्त शूल तथा वात सम्बन्धी संपूर्ण वेदना शांत होती है। (भा० म० शूल० चि०)।

कार्पासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी कपास।

कार्पासी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कपास'।

कार्पूर तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्पूर तैल। कपूर का तेल। (Camphor oil)।

कार्पेन—[अं० Carpaine] एक प्रकार का क्षाराभ सत्व जो पपीता के पत्तों में होता है।

कार्पोकिरिशी—संज्ञा स्त्री० [मह०, ता०] वकुची। सोमराजी धुप।

कार्पोकिरिशी ब्राजिलीएन्सिस—[ले०] वकुची जो ब्राजील देश में होती है।

कार्पो ट्रोची—[ले०] एक प्रकार का वृक्ष जो पंजाब में 'हुक्म अन्दाज' के नाम से प्रसिद्ध है।

कार्पोपोगन-नाइविअम्—[ले०] (Corpopogon Niveum) खमाश। (मे० मो०)।

कार्पोपोगन-प्रुरिएन्स—[ले०] (Corpopogon-Prurians, Rox.) कपिकच्छू। वानरी। दे० 'केवाँच'।

कार्पोसाइड—[अं० Carposide] एक प्रकार का सधुमय सत्व जो पपीता के पत्तों में होता है।

कार्पोसिअम् एंब्रोटेनाइडिस—[ले०] द्रव्यविशेष।

कार्पसल्स—[अं०] (Corpuscles) शरीर के परमाणु, (जरः) दानाहाए जिस्म।

कार्बन—संज्ञा पुं० [अं० Carbon] दे० 'कारबन'।

कार्बासा-एण्टिसेप्टिका—[ले० Carbasa Antisptica] द्रव्य विशेष।

कार्बन-डाइसल्फाइड—[अं० Carbondisulphide] कज्जलद्विओषिदय। यह कार्बन और सल्फर का एक यौगिक है।

कार्बन-बाईसल्फाइड—[अं० Carbon-bisulphide] गन्धक और कज्जलन का मिश्रण।

कार्बूर—संज्ञा पुं० [?] कलिद। तरबूज। हिरमाना।

कार्बोटोन—संज्ञा पुं० [अं० Carbotone] पाश्चात्य देशीय द्रव्य विशेष।

कॉर्बो-एनिमेलिस—[ले० CorboAnimalis]

पर्याय—जान्तव अङ्गार। अस्थि अङ्गार। हड्डी का कोयला। चर्मअङ्गार। चर्म भस्म। जान्तव कार्बन।

प्रस्तुतकरण—बलीवर्द (साँड़) का चमड़ा दग्ध कर यह औषध प्रस्तुत की जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी प्रधान क्रिया त्वचा तथा पाचक यंत्र पर होती है। कंठमाला, शुक-दोष तथा जिस समय प्रसूता शिशु को स्तन्य पान कराती है उस समय में उत्पन्न होने वाले रोगों में इसके उपयोग से अधिक लाभ होता है।

नाड़ी व्रण—वह नासूर जो किसी प्रकार आरोग्य नहीं होता उन व्रणों में हड्डी का कोयला लगाने से लाभ होता है। इस उपयोग के लिए प्रायः सर्पस्थि भस्म कर मर-हमों में मिश्रित कर लगाने से अधिक लाभ होता है। कार्बो-ड्यूल मुख्य व्रणों में भी इसका उपयोग कराया जाता है।

कफ्ट (कैंसर)—स्तन तथा जरायु के कैंसर में यदि गाँठों में शोथ हो जाय और जरायु-ग्रीवा में अधिक कठोरता हो जाय, प्रदाह हो, कष्टपूर्वक जरायु द्वारा रक्तस्राव हो, और साथ ही अन्य प्रकार का भी दुर्गन्धयुक्त स्राव हो तो 'कार्बो-एनिमेलिस' से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त अति दुर्बल स्त्रियाँ जिनकी जरायु में अर्बुद (ट्यूमर) वा किसी अन्य प्रकार का शोथ, प्रदाह तथा वेदना हो और ऋतु में विकृति भी हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

यकृत विद्रधि (लीवर कैंसर)—यदि यकृत में छेदनवत् वेदना के कारण अनिद्रा, यकृत शोथ, उदरा-ध्मान हो, तथा शोथ के कारण पेट की शिराएँ उभड़ आई हों तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

उपदंश—पारद के अपव्यवहार के पश्चात् यदि (बाघी, वद) तथा अन्य सन्धियों में शोथ हो और क्रमशः निर्बलता प्राप्त हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है। यदि मुखमण्डल पर ताम्रवर्ण के छोटे-छोटे असंख्य चकत्ते निकलते हों तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

निर्बलता—जंघा, सन्धि, तथा अन्यान्य गाँठों में निरन्तर पूय उत्पन्न होकर शरीर अत्यन्त निर्बलता को प्राप्त हो जाय, वा प्रसूता के जरायु द्वारा अधिक प्रमाण में रक्तस्राव होकर क्रमशः रक्ताल्पता प्राप्त हो तो इसके उपयोग से निश्चय लाभ होता है।

अजीर्ण—प्रसव पश्चात् जब अन्न का पाक भली-भाँति न हो, भोजन करने से उदर में कष्ट हो और हाथ से मर्दन करने पर वेदना में कमी हो तो कार्बो-एनिमेलिस का उपयोग लाभप्रद है।

फुफुस-रोग—यक्ष्मा, कास, निमोनिया इत्यादि रोगों में धातु (टीशू) नष्ट होने के कारण जब दुर्गन्धयुक्त कफस्राव वा पूय मिश्रित श्लेष्म स्राव हो, श्वासावरोधक-कास, स्वर भंग, दक्षिण फुफुस में रोग का अधिक

प्रकोप तथा फुफुस-गद्दर के, दक्षिण भाग में रोग की वृद्धि हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

अथवा—स्वरभंग, श्वास में घरघराहट, यकृत प्रदाह, श्वास में कष्ट तथा पूययुक्त कफस्राव में, तथा फुफुस-वरण प्रदाह (प्ल्युरिसी) नष्ट होने के पश्चात् यदि वक्ष में सूचिभेदनवत् वेदना हो तो कार्बो-एनिमेलिस के उपयोग से लाभ होता है।

अथवा शिराओं में रक्त की अधिकता के कारण जब हस्तपादस्थ चर्म तथा ओष्ठ में नीलिमा प्रदर्शित हो और अति निर्बल व्यक्तियों की व्याधि में इससे अधिक लाभ होता है। अथवा जिन व्यक्तियों के पैर शीतल रहते हैं, शरीर की स्वाभाविक उष्णता कम हो जाती है, जिन्हें शीतल वायु की सहन शक्ति नष्ट हो जाती है, वृद्धावस्थाजन्य उक्त रोगों में इसके उपयोग से लाभ होता है।

ग्रन्थि-शोथ—बगल, जंघा सन्धि, स्तन इत्यादि की ग्रन्थि, वृद्धि, शोथ तथा पाषाणवत् कठोरता में तथा उपदंश वा पूयमेह के कारण वद (बाघी) निकलता वा उसमें अधिक कठोरता उत्पन्न हो जाने पर इसका व्यवहार उपयोगी होता है। वद छेदन के पश्चात् यदि शीघ्र शुष्क न हो वा उसके किनारे अति कठोर हों तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

स्त्री रोग—यदि स्त्रियों के ऋतुस्राव का वर्ण काला, कभी अल्प परिमाण में, कभी अधिक परिमाण में, शीघ्र-शीघ्र हो। ऋतु-अवरोध होकर कोई कष्टदायक उपसर्ग हो तथा अधिक निर्बलता प्राप्त हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है। यदि स्त्री रोगग्रस्त हो कर अति दुःखित तथा उदासीन रहती हो, सदैव सब से पृथक् रहना चाहती हो, उसकी पाकस्थली अपूर्ण सी रहती हो, निर्बलता हो तो ऐसी अवस्था में इसका उपयोग लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त जरायुप्रदाह (Metritis), अर्बुद, डिम्बकोष की कठोरता, गर्भाशयिक कैंसरादि में भी इसके उपयोग से लाभ होता है। यदि योनि में अग्निवत् प्रदाह होता हो तो इसके सेवन से उपकार होता है।

क्रियास्थिति काल—६० दिन।

क्रम—६ से ३० शक्ति। **फार्मूला**—७।

प्रतिविष—केम्फर, नक्स, सुरा, आर्सनिक।

कार्बोनिआई बाइ सल्फाइडम्—[ले० Carbonii bisulphidum] एक प्रकार का डाक्टरी औषध जो कार्बन और गन्धक के योग से प्रस्तुत किया जाता है।

कार्बोनिक—वि० देखो 'कार्बोनिक'।

कार्बोनि स बाइसल्फाइडम्—[ले०] (Carbonis bisulphidum) डाक्टरी द्रव्य-विशेष। कार्बोनिआई बाई सल्फाइडम्।

कार्बोनेट ऑफ अमोनियम—[अं०] दे० अमोनियाइ कार्बोनास'।

कार्बोनेट ऑफ जिंक—[अं० Carbonate of Zinc]

पर्याय—(ले०) जिन्साई कार्बोनास (Zinci carbonas)

निर्माण—इसको सल्फेट ऑफ जिङ्क और कार्बोनेट ऑफ सोडियम द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह एक प्रकार का श्वेत चूर्ण है जो गन्धविहीन तथा निस्वाद होता है।

घुलनशीलता—यह जल में अविलेय है किन्तु शोरकाम्ल में मिलाने से उबल कर विलीन हो जाता है। इसको जिङ्क कार्बोनेट भी कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका उपयोग भक्षणार्थ नहीं होता, केवल बाह्य उपयोग में व्यवहृत होता है। अधिक उपयोग मरहमों में मिश्रित कर किया जाता है। यह व्रणशोधक तथा शोधन है। स्तन्यव्रण पर लगाने से लाभ होता है। शय्याक्षत पर भी इसका उपयोग होता है। क्षतों तथा छिली हुई जगहों पर तथा हाथ और ओष्ठ के फट जाने में और शीत के कारण अँगुलियों के फट जाने में इसका मरहम निर्माण कर लगाने से लाभ होता है।

मरहम निर्माण विधि—कार्बोनेट ऑफ जिङ्क १० भाग, वैस्लीन वा मोम १ भाग, शुद्ध चरबी १॥ भाग, रोगन वादाम १॥ भाग, अग्नि के ताप से पिघला कर मिश्रित कर कार्य में लावें।

कार्बोनेट ऑफ पोटेशियम—[अं० Carbonate of Potassium]

पर्याय—[ले०]—पोटासी कार्बोनास, पोटासियाई कार्बोनास। [अं०] पोटेशियम कार्बोनेट, कार्बोनेट ऑफ पोटेश।

प्रस्तुतकरण—विभिन्न वनस्पतियों का क्षार ग्रहण कर जल में घोल कर और छान कर जल को शुष्क करने से अशुद्ध कार्बोनेट ऑफ पोटेशियम की प्राप्ति होती है। इसको 'पल एश' भी कहते हैं। शोधन-विधि—इसको शोधनार्थ सम भाग परिस्रुत जल में घोल कर फिल्टर किया जाता है और जल को ताप देकर शुष्क कर लिया जाता है। इस प्रकार करने से श्वेत वर्ण का रवादार चूर्ण प्राप्त होता है। इसमें १६ प्रतिशत जलांश होता है। स्वाद—क्षारीय, दाहक, तथा शीघ्र घुलनेवाला होता है।

घुलनशीलता—जल में शीघ्र घुल जाता है; किन्तु सुरा में अविलेय है। शोरकाम्ल में मिश्रित करने से उबलता है।

गुण-कर्म—क्षारघ्न, मूत्रल, चर्म रोग नाशक, दाहक, क्षोभ उत्पादक, रक्त कण वर्धक, तथा अधिक मात्रा में देने से हृदय अवसादक और श्लेष्मनिस्सारक भी है।

उपयोग—यदि आँतों में अम्लता अधिक हो तो—१०

से ३० ग्रेन तक कार्बोनेट ऑफ पोटेशियम को ४ ग्रेन नाइट्रेट ऑफ पोटेशियम के साथ मिश्रित कर भोजन के पश्चात् ४ घंटा पर प्रदान करने से लाभ होता है। यदि मूत्र में अधिक अम्लता (बोरिक एसिड) वा उसके अन्य लवणों की अधिकता हो तो इसके देने से उपकार होता है। चर्मरोग में बाह्य उपयोग से इससे लाभ होता है। पोटेशियम कार्बोनेट और वाई कार्बोनेट आक पोटेशियम दोनों को सम भाग में ग्रहण कर अर्क नीबू में मिश्रित कर पानार्थ देने से आमाशयिक क्षोभ शान्त हो कर शान्ति प्राप्त होती है। विधि—उक्त द्रव्यों को जल में मिश्रित करे, जब उबलने लगे शीघ्र पिला देवे।

पोटेशियम कार्बोनेट, पोटेशियम वाई कार्बोनेट की अपेक्षा अधिक क्षोभोत्पादक तथा मांसभक्षक (अक्काल) है। किन्तु काष्ठिक पोटेश और उसके द्रव की अपेक्षा यह अल्प क्षोभ उत्पादक तथा दाहक है; किन्तु इस प्रकार के प्रभाव के निमित्त इसको और पोटेशियम वाई कार्बोनेट को कभी भी उपयोग में नहीं लाया जाता। यह रक्त में शीघ्र अभिशोषित हो जाता है और शीघ्र उत्सर्गित होता है। इसका आन्तरिक उपयोग करने से रुधिर की शोरियत अधिक हो जाती है। रक्ताल्पता की दशा में इसको प्रायः लोहे के यौगिक के साथ दिया जाता है। इससे रुधिर की रक्तता तथा रक्त कण की वृद्धि होती है; किन्तु यदि इसको बहुकाल पर्यन्त उपयोग किया जाय तो रक्त के दूषित होने का भय होता है और शरीर का भार अल्प हो जाता है। अल्प मात्रा में सेवन कराने से इसका हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता; किन्तु अधिक मात्रा में देने से इसका हृदय पर अवश्य अवसादक प्रभाव पड़ता है और विषैली मात्रा में देने से हृदय-पेशी पर इसका अल्प प्रभाव होने से उसमें संकोच उत्पन्न होकर उसके गति का व्यतिक्रम होने लगता है। यदि इसको किसी सिरा में पिचकारी द्वारा रक्त में पहुँचाया जावे तो उक्त प्रभाव अधिक प्रकट होता है और आन्तराय गति की विकृति होकर उद्वेगन इत्यादि उपद्रव होकर मृत्यु उपस्थित होती है।

अधिक मात्रा में देने से रक्तचाप घट जाता है और नाड़ी की गति भी अत्यल्प हो जाती है। वायु प्रणालियों की द्रवता अधिक हो जाती है और श्लेष्मा की श्लक्ष्णता बढ़ जाती है। अतः कफ का स्राव अधिक होने लगता है और कार्बोनेट के स्वरूप में शरीर से उत्सर्गित होता है और इस प्रकार से वह मूत्र की तरलता को भी वर्धित करता है। इसके सेवन से मूत्र की शोरियत भी अधिक हो जाती है। इस कारण इसमें यूरिकाम्ल (यूरिक एसिड) अधिक मिश्रित रहता है। सूत्राशय व अण्डकोष की श्लैष्मिक कला पर इसका संकोचक प्रभाव होता है।

मस्तिष्क, सुषुम्ना (हराम भग्ज) तथा पेशियों पर इसका अवसादक प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त कारणों से इसका उपयोग अत्यन्त ध्यानपूर्वक करना उचित है। इसके स्थानीय उपयोग से मांसपेशियों में संकोच उत्पन्न होता है; किन्तु यदि इसको अधिक मात्रा में अधिक काल तक लगाया जाय तो पेशियों में अवसन्नता उत्पन्न होती है। $\frac{1}{2}$ सेर जल में $\frac{1}{2}$ ड्राम इसको मिश्रित कर शीत पित्त, उदर आदि में लगाने से कण्डू इत्यादि का नाश होता है। श्वेत प्रदर में योनि में पिचकारी द्वारा प्रक्षालन करने से लाभ होता है। $\frac{1}{2}$ ड्राम $\frac{1}{2}$ सेर जल में घोल कर नासिकागत रक्त फुंसियों पर लगाने से उनमें से होने वाला स्राव बंद होता है। अतः इस कार्य की सिद्धि के लिए इसके घोल में लिट्मिग कर रुग्ण स्थान पर स्थापन कर इसके ऊपर तैलाक्त रेशम रख दिया जाता है। चिकित्सा में वाई कार्बोनेट ऑफ पोटेशियम से सतर्क रहना चाहिए। खनिज क्षारों के विषों पर नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे आमाशय में अधिक कार्बनिक एसिड गैस उत्पन्न होकर आमाशय के फट जाने का भय होता है। अतः इसके स्थान में लाइकर पोटेशी वा अन्य क्षारीय लवणों को उपयोग में लाया जा सकता है। लाइकर पोटेशी, पोटेशियम कार्बोनेट को जल में घोल कर और उसमें बुझे हुए चूने को मिश्रित कर उबाल कर प्रस्तुत किया जाता है वा २७ ग्रेन कार्बोनेट पोटेश १ औंस जल में मिश्रित कर प्रस्तुत किया जाता है। मात्रा—१० से ३० ग्रेन तक।

वस्तुव्य—जवाखार इम्प्योर कार्बोनेट ऑफ (Impure Carbonate of potash) है। अतः देखो (जवाखार)।

कार्बोनेट ऑफ-बिस्मथ—[अं० Carbonate of Bismuth]

पर्याय—(ले०)—बिस्मथार्ड कार्बोनास (Bismuthii Carbonas)। यह विशुद्ध बिस्मथ और कार्बोनिक् एसिड का यौगिक है। यह श्वेत वर्ण का चूर्ण है। यह जल में अविलेय है; किन्तु शोरकाम्ल (Nitric acid) में खोलकर मिश्रित हो जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी प्रधान क्रिया पक्वाशय तथा पाचकग्रन्थ पर होती है। **उपयोग—**जब उदर में गुड़-गुड़ शब्द, निरन्तर अधोवायु का उत्सर्ग और साथ ही दस्त होता हो अथवा पक्वाशय की वेदना शीतल तथा तरल वस्तुओं के सेवन से कम हो जाती हो और भोजन करते-करते उदर भरते ही वमन हो जाता हो तो ऐसी अवस्था में इसके उपयोग से लाभ होता है।

विसूचिका—यदि शिशु वा युवा पुरुषों को अचानक हैजा होकर देखते-देखते रोग के लक्षणों की वृद्धि हो तो इससे लाभ होता है। यदि प्यास की अधिकता हो, अधिक

परिमाण में दस्त दुर्गन्धयुक्त, वमन, उत्क्लेश इत्यादि लक्षण हों तो इसके उपयोग से लाभ होता है; किन्तु शीताङ्ग की अवस्था में इससे लाभ नहीं होता। इसके अतिरिक्त शूलावस्था में भी उपकार नहीं होता। यदि तृष्णा में जल-पान करने से वमन हो जाता हो, रोगी का शरीर पूर्णतः उष्ण हो, स्वेद होता हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है। अतिसार तथा हैजा जो बालकों को हो तो, इसके अल्प मात्रा से ही लाभ होता है।

शिरोवेदना—यदि वातज शिरोवेदना में पाकस्थली में वेदना हो, कुछ आहार करने के कुछ कालोपरान्त शिर में वेदना आरम्भ होकर, वमन के पश्चात् शिरोवेदना अल्प हो जाय तो ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर इससे उपकार होता है।

आमाशयिक विद्रधि—यदि आमाशय में क्षत तथा शूल हो तो बिस्मथ के उपयोग से लाभ होता है। बालातिसार में जब दस्त आते-आते बालक अत्यन्त दुर्बल हो जाते हैं तब इसके उपयोग से शीघ्र लाभ होते हुए देखा गया है। बालकों के दन्तोद्भेद काल में जब वमन व अतिसार होता है तो इसके उपयोग से शीघ्र लाभ होता है।

पक्वाशयशूल—यदि उदर में प्रदाह हो, पक्वाशय में प्रथम उद्वेष्टन वा मरोड़ हो, कुछ आहार करने पर वेदना की वृद्धि हो वा पाकस्थली में कठोर ढेला रखा हुआ-सा प्रतीत हो, इसके पश्चात् उदर से होते हुए पृष्ठवंश तक प्राप्त हो, तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

एलोपैथिक मात्रा—५ से २० ग्रेन। (२॥ से २० रत्ती)।

होमियोपैथिक—६ से २०० शक्ति तक। पक्वाशय शूल में ६ शक्ति वा निम्न शक्ति। बाल विसूचिका में २०० शक्ति से प्रायः लाभ होते देखा गया है।

फार्सूला—७।

कार्बोनेट ऑफ मैग्नीशिया—[अं० Carbonate of magnesia]

पर्याय—(ले०) मैग्नीशी कार्बोनास (magnesi carbonas) मैग्नीशियम कार्बोनेट।

निर्माण-विधि—एप्सम साल्ट १० औंस, सोडा कार्बोनेट १२ औंस दोनों को ग्रहण कर पृथक्-पृथक् आध-आध सेर उबलते हुए परिस्तुत जल में खरल करें। पुनः मिश्रित कर बालुकाग्र की उष्मा देकर शुष्क करें। पुनः इसको १ सेर जल में २॥ घंटा तक डाइजेस्ट कर छान लें। छन जाने पर जो वस्तु प्राप्त हो, उसे परिस्तुत जल द्वारा इस प्रकार प्रक्षालन करें कि प्रक्षालित जल में क्लोराइड ऑफ बेरिअम् का पानी देने से उस पर कुछ भी प्रभाव न हो, और इसके पश्चात् शुष्क कर लें। स्मरण रहे कि उष्णता २१२ डिग्री से अधिक न प्राप्त हो। इसी

स्वच्छ श्वेत वर्ण के अति लघु चूर्ण को 'कार्बोनेट ऑफ मैग्नीशियम' भी कहते हैं।

परिचय—यह श्वेतवर्ण का रवादार चूर्ण है, जो जलमिश्रित पार्थिवाम्ल (तेजाब) में उबलकर भली-भाँति मिश्रित हो जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अम्लतानाशक, वातानुलोमक, मूत्रशर्कराविद्रावक तथा अम्लजीर्णनाशक है। **उपयोग**—इसके उपयोग से कोष्ठबद्धता नष्ट होती है। यदि मूत्र में रक्त वर्ण के कण उत्सर्गित होते हैं तो इसके उपयोग से उनका उत्सर्ग नष्ट होता है। अजीर्ण में जब उदर में आटोप होता हो तो इसका उपयोग बर्जित है; क्योंकि उदर में प्राप्त होने पर इससे कार्बोनिक् एसिड पृथक् होकर उदरस्थ आटोप की वृद्धि होती है।

मात्रा—१० ग्रेन से १ ड्राम तक। अम्लता शमनार्थ १० ग्रेन से २० ग्रेन तक।

संयोग विरोधी द्रव्य—क्षारीय द्रव्य, खनिज लवण, नृसार (नौसादर) और चूने का पानी।

कार्बोनेट ऑफ लाइम—[अं० Carbonate of lime] खड़िया मिट्टी। चाक। (कैल्शियम-कार्बोनेट)।

कार्बोनेट ऑफ लीथियम—[अं० Carbonate of Lithium]

पर्याय (ले०)—लीथी-कार्बोनास, लीथिआई कार्बो-नास।

प्रस्तुतकरण—कार्बोनेट ऑफ अमोनियम के तीक्ष्ण घोल में सल्फेट ऑफ लीथियम की मेच्युरेटेड (निर्मल) घोल मिश्रित कर ताप पहुँचाने से श्वेत वर्ण का तलस्थायी द्रव्य जो प्राप्त होता है, उसको "कार्बोनेट ऑफ लीथिया" कहते हैं। इसी को "कार्बोनेट ऑफ लीथियम" भी कहते हैं।

स्वरूप—इसका वर्ण श्वेत होता है। इसके अत्यन्त सूक्ष्म कण होते हैं। इसका स्वाद तथा गुण क्षारीय होता है।

विद्रावण—१५० भाग शीतल जल में इसका १ भाग भली-भाँति विलीन हो जाता है। यह विशुद्ध सुरासार में विलीन न होकर लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) में उबल कर घुल जाता है।

रूपान्तर—यदि कार्बोनेट ऑफ लीथियम में निबू-काम्ल (साइट्रिक एसिड) मिश्रित किया जाय तो एक प्रकार का रवादार चूर्ण बन जाता है। इसको वायु में खुला रखने से इसमें जलाकर्षित हो कर पिघल जाता है। यह भी मद्य में विलीन नहीं होता, किन्तु शीतल जल में पूर्णतः विलीन हो जाता है। इसको अँग्रेजी में 'लीथियम साइट्रेट' और लेटिन में 'लीथिआई साइट्रास' कहते हैं।

गुण-कर्म—क्षारघ्न, मूत्रल, शीतल, प्रदाहनाशक तथा अश्मरीघ्न है। **उपयोग**—यदि मूत्र में बोरिकाम्ल (बोरिक एसिड) वा लवण के यूरेट उत्सर्गित होते हैं तो

इसके उपयोग से उनका उत्सर्ग बंद होता है। वातरक्त (निकरिस Gout) के पुरातन रोग में यदि यूरिक एसिड (मूत्राम्ल) और यूरेट ऑफ सोडियम की अधिकता हो तो इसके उपयोग से अत्यधिक लाभ होता है। यही लाभ लीथियम साइट्रेट से भी होता है। यदि अश्मरी का दोष हो तो भी इसके उपयोग से लाभ होता है। उक्त दोनों द्रव्य सरलतापूर्वक रक्त में अभिशोषित हो जाते हैं और उसकी शोरियत की वृद्धि करते हैं। इसके अन्य गुण पोटाशियम के लवणतुल्य हैं। अन्तर केवल यह है कि (१) यह यूरिक एसिड (क्षारीय अम्ल) के रूप में उत्सर्गित होने लगती है। यह विलायक-शक्तिवर्धक (क्वो-मुहल्लिल) है। क्योंकि यह रुधिर में अभिशोषित हो कर और यूरिक एसिड के साथ मिश्रित हो कर यूरेट ऑफ लीथियम का निर्माण करता है, जो सोडियम वाई-यूरेट की अपेक्षा रुधिर में सरलतापूर्वक मिश्रित होकर रह सकती है। (२) इसका मूत्रल गुण भी शर्कराघ्न है। (३) हृदय पर इसका अवसादक प्रभाव अल्प होता है। इसके उपयोग से मूत्र का स्वरूप क्षारीय हो जाता है और उसमें यूरिकाम्ल अधिक परिमाण में मिश्रित होकर रह सकता है। अतः इसको अधिक काल पर्यन्त उपयोग करने से यूरिकाम्ल की अश्मरी विनष्टप्राय हो जाती है; किन्तु आधुनिक अन्वेषण से उपर्युक्त गुण न होने की अनुमति प्राप्त हुई है। अतः यह अभी कुछ अनिश्चित-सा है। क्योंकि वाह्य रूप से यदि इसको यूरिकाम्लयुक्त मूत्र में मिश्रित किया जाय तो यूरिक एसिड भली भाँति विलीन हो जाता है; किन्तु मनुष्यशरीर में प्राप्त होने पर उक्त गुण का अभाव हो जाता है।

डा० हेग का कथन है कि लीथिया के उपयोग से मूत्र में यूरिक एसिड का उत्सर्ग भी अल्प हो जाता है। उनका यह भी कथन है कि यदि कार्बोनेट ऑफ लीथियम का घोल निर्माण कर जिसमें ४॥ ग्रेन लीथियम और १ औंस जल हो, वातरक्त (निकरिस) रोग में वेदना स्थल पर सन्धियों पर वस्त्र में भिगो कर स्थापन किया जाय और बंधन लगा कर आच्छादित किया जाय तो वेदना और शोथ नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि उक्त रोग में क्षत हो जाय तो उस पर भी इसके घोल से लाभ होता है और तद्गत द्रव भी अभिशोषित हो जाते हैं। किन्तु आधुनिक परीक्षण से उक्त रोग में इसका उपयोग अत्यल्प होता है। **विधि**—इसको तथा इसके लवणों को जल में विलीन कर उपयोग करना उचित है। इस प्रकार उपयोग करने से आमाशय में क्षोभक प्रभाव नहीं होता।

मात्रा—कार्बोनेट ऑफ लीथियम—३ से ६ ग्रेन।

लीथियम साइट्रेट—५ से १० ग्रेन तक।

कार्बोनेट ऑफ सोडियम—[अं० Carbonate of Sodium]

पर्याय—(ले०) सोडिस्कार्बोनास, सोडिआई कार्बोनास; (हि०) सज्जीमिट्टी; (सं०) स्व (स) जिकाक्षार; (अ०) नतरून; (बं०) साजीमाटि ।

परिचय तथा प्रस्तुतकरण—तृण तथा समुद्रीय क्षार द्वारा भस्म कर उनकी भस्म में से प्राप्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसको खाने वाले नमक से भी प्रस्तुत किया जाता है। **विधि**—उक्त लवण को ग्रहण कर गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) में मिश्रित कर पाक किया जाता है, जिससे सल्फेट ऑफ सोडियम बन जाता है। फिर इसको कार्बन के साथ पकाने से सल्फाइड ऑफ सोडियम का निर्माण होता है। पुनः इसको कैल्सियम कार्बोनेट अर्थात् विशुद्ध खटिका (चाक) के साथ पकाने से कार्बोनेट ऑफ सोडियम प्राप्त होता है। अथवा खाने वाले लवण को अमोनियम वाई कार्बोनेट के साथ मिश्रित करने से भी यह प्रस्तुत किया जाता है।

यह एक प्रकार का पारदर्शक वर्णविहीन परतदार लवण है। वायु में खुला रखने से तथा पानी निकल जाने से यह चूर्णवत् हो जाता है। **स्वाद**—तीक्ष्ण और क्षारीय है। जल मिले हुए लवणाम्ल में मिश्रित करने से यह उबलने लगता है। दग्ध करने से इसमें से पीत वर्ण की लौ निकलती है। इसका ५ भाग ८ भाग शीतल जल में और १२ भाग १ भाग उष्ण जल में विलीन हो जाता है। साधारण भाषा में इसको सोडा भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे सोडियम कार्बोनेट तथा वाशिंग सोडा कहते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—क्षारघ्न तथा परिवर्तक (मुवदिल) है। इसका उपयोग खाने में अत्यल्प होता है। वाई कार्बोनेट ऑफ सोडियम का उपयोग अजीर्ण में, जब क्षारीय अवस्था प्राप्त होती है, तब इसकी गोलियां उपयुक्त द्रव्यों के साथ मिश्रित कर सेवन करने से लाभ होता है। बालाजीर्ण में कभी-कभी इसका उपयोग लाभदायक होता है।

मात्रा—३ से ५ ग्रेन तक।

धत्तव्य—सोडियम वाईकार्बोनेट (Sodium bicarbonate) वा सोडावाई कार्ब (Soda bicarb) विदेशी सज्जीखार है जिसको मोठा सोडा भी कहते हैं।

कार्बोर—संज्ञा पुं० [अं०] भस्म। कुश्ता।

कार्बोलिक लोशन—संज्ञा पुं० [अं० Carbolie Lotion] कार्बोलिक धावन (घोल)। दे० 'कार्बोलिकाम्ल'।

कार्बोलिकाम्ल—संज्ञा पुं० [अं० कार्बोलिक + सं० अम्ल]

पर्याय—(अं०) कार्बोलिक एसिड, फेनोल कार्बोलिक एसिड; (ले०) एसिडम कार्बोलिकम्; (अं०) फेनिक एसिड, फेनिक एसिड; (हि०) तेजाब कोलटार, कोलटार का तेजाब।

निर्माण-विधि—पर्याप्त मात्रा में पत्थर का कोयला ग्रहण कर अर्क परिस्रुत करने से कोलटार (तारकोल)

प्राप्त होता है। पुनः कोलटार को ३ या ४ सौ फा० हा० के उच्चाप पर परिस्रुत करने से अशुद्ध रूप में कार्बोलिकाम्ल परिस्रुत होता है। पुनः इसको विशेष प्रकार से छान कर विशुद्ध कार्बोलिकाम्ल प्राप्त किया जाता है। **स्वरूप**—यह कलमदार होता है। इसकी कलमें वर्णविहीन चूर्णरूप में होती हैं। यह पृथक्-पृथक् या डलियों में भी होती हैं। अधिक उपयोग डलियों का होता है। इसकी कलमें सूचिकाकार होती हैं और सरलतापूर्वक द्रवीभूत होती हैं। इनमें से कोलटार की-सी गन्ध आती है। **स्वाद**—खराशदार मधुर होता है। खुला रखने से प्रायः इसका वर्ण किंचित् रक्ताभ हो जाता है।

विद्रावण—१ भाग कार्बोलिकाम्ल ३० वा ४० भाग जल में विलीन हो जाता है। इसमें एक प्रकार का विशेष कोलटारवत् गन्ध होती है। इसी गन्ध से इसकी परीक्षा की जाती है। इसके अतिरिक्त सुरासार, ईथर, क्लोरोफॉर्म, ग्लिसरीन, लाइकर पोटाश तथा लाइकर सोडियाई में भी सरलतापूर्वक घुल जाता है।

नोट—यदि ६०° फारनहाइट के उच्चाप पर कार्बोनिक एसिड में ६ से १० प्र० श० तक जल का मिश्रण किया जाय तो प्रवाही हो जाता है।

मिश्रण वा खोट—आयर्न (लौह) और रोजेलिक एसिड के मिश्रण के कारण खुला रखने से कुछ कालोपरान्त इसका वर्ण लालिमायुक्त हो जाता है तथा क्रियोजोल जिसके मिश्रण के कारण इसको जल में मिश्रित करने से वह जल किञ्चित् गंदला-सा हो जाता है।

संयोग-विरोधी द्रव्य—क्लोरल और फेरल सल्फेट।

उपयोग-विधि—इसका उपयोग गुटिका वा घोल रूप में होता है।

कार्बोलिकाम्ल घोल—संज्ञा पुं० [अं० कार्बोलिक सं० अम्ल] हि०, घोल (ए० बी० सोल्यूशन)—इसका एक भाग प्रतिशत १० भाग जल में मिश्रित कर प्रस्तुत किया जाता है। इसको लिक्वीफाइड कार्बोलिक एसिड कहते हैं।

गुण-कर्म—विशुद्ध कार्बोलिकाम्ल—दाहक, वायुनाशक, संशमन (मुसविकन) वमननाशक, प्रतिक्षोभक, कोथ-प्रतिरोधक, व्रण-शोधक, कीटाणुनाशक, दुर्गन्धनाशक है तथा अवसन्नताकारक है। त्वचा तथा श्लैष्मिक कला पर लगाने से क्षोभोत्पादक है।

उपयोग—त्वचा पर लगाने से इसका दाहक प्रभाव होता है। विषैले जन्तुओं के दंशस्थान पर लगाने से लाभ होता है। २ भाग यह और १०० भाग जल में मिश्रित कर प्रक्षालन करने से जमरा (Anthrax) नामक फुंसियों का दाह शान्त होता है तथा उनमें होनेवाले कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। यदि इसका १ भाग और जल १०० भाग मिश्रित कर उपयोग किया जाय तो ५ मिनट

में उक्त रोगोत्पादक कीटाणु नष्टप्राय हो जाते हैं। कार्बोलिकाम्ल घोल का त्वचा पर संशमन प्रभाव होता है और क्षणमात्र में ही त्वचा पर इससे अवसन्नता प्राप्त होती है और यह अवसन्नता घंटों तक बनी रहती है। यदि विशुद्ध कार्बोलिकाम्ल त्वचा पर लगाया जाय तो स्थानीय दाह प्रतीत होता है, त्वचा दग्ध हो जाती है और उसमें क्षोभ उत्पन्न होता है तथा कुछ कालोपरान्त त्वचा रक्ष हो जाती है।

विशुद्ध कार्बोलिकाम्ल का आन्तरिक उपयोग वर्जित है; क्योंकि इसमें आमाशयान्त्र में प्रदाह होने लगता है और विषवत् घातक प्रभाव हो कर मृत्यु का आह्वान होता है। यदि इसको जल में मिश्रित कर अत्यल्प मात्रा में दिया जाय तो वह आमाशय में प्राप्त हो कर सल्फोकार्बोनेट के स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है। यह आमाशयगत हो कर इस प्रकार घुल जाती है कि इसका अभिपवात्मक प्रभाव विनष्ट हो जाता है।

विषाक्तता—यदि इसको अधिक तथा विषैली मात्रा में दिया जाए तो उक्त प्रभाव स्थिर रहता है। श्लैष्मिक-कला, श्वास और आमाशय द्वारा कार्बोलिकाम्ल अति शीघ्र रुधिर में अभिशोषित हो जाती है; किन्तु इसको किंचित् अधिक मात्रा में देने से प्रथम हृदय-केन्द्र, स्वेद-केन्द्र और श्वासकेन्द्र में उत्तेजना उत्पन्न होती है और पुनः उक्त अंगों में अवसन्नता प्राप्त होती है। अतः प्रथम तो रक्तचाप और नाड़ी की गति अधिक हो जाती है; किन्तु इसके पश्चात् इनमें कमी आ जाती है।

आन्तरिक उपयोग—अल्प मात्रा में देने से इसका हृदय पर कुछ प्रभाव नहीं होता; अधिक मात्रा में देने पर श्वास पर भी कुछ प्रभाव नहीं होता; किन्तु बड़ी मात्रा में देने से पूर्व श्वासकेन्द्र तीव्र हो जाता है और इसके पश्चात् उसमें अवसन्नता प्राप्त होती है। उक्त कारण से प्रथम श्वास में वृद्धि हो जाती है; किन्तु अन्त में उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है और मृत्यु प्राप्त होती है।

चिकित्सा— $\frac{1}{2}$ औंस सोडियम सल्फेट ग्रहण कर $\frac{1}{2}$ सेर उष्ण जल में मिश्रित करें अथवा $\frac{1}{2}$ औंस मैग्नीशियम सल्फेट १ पाइण्ट उष्ण जल में मिश्रित करें अथवा स्लैक्ड सोल्यूशन ऑफ लाइम (बुझाए हुए चूने का पानी) १ ड्राम १ औंस जल में मिश्रित कर सायफन स्टमक ट्यूब द्वारा आमाशय को उस समय तक प्रक्षालन करते रहें कि जब तक कार्बोलिकाम्ल की गन्ध प्रक्षालित जल में आना पूर्णतः बंद न हो जाय। यदि उक्त विधि का औसर प्राप्त न हो तो शीघ्रातिशीघ्र एपोमाफीन की त्वगन्तर अन्तःक्षेप (पिचकारी) करें। इस प्रकार करने से वमन होकर आमाशयस्थ विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है और उसका शोधन हो जाता है। इसके पश्चात् मैग्नीशियम

सल्फेट १ औंस ग्रहण कर या सोडियम सल्फेट $\frac{1}{2}$ औंस ग्रहण कर ८ औंस जल में मिश्रित कर शीघ्र ही पानार्थ दें।

नोट—सोडियम सल्फेट और मैग्नीशियम सल्फेट कार्बोलिक एसिड का प्रतिविष हैं। इनसे उसकी विषाक्तता नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त यदि रोगी को वमन कराने वा औषध पान का अवकाश न हो तो पुनः सोडियम सल्फेट की त्वगन्तर अन्तःक्षेप करना उचित है। जब आमाशय संपूर्णतः विषरहित हो जाय तब बादाम का तेल वा जैतून का तेल वा अलसी का तेल या दो छटाँक की मात्रा में एक ग्लास उष्ण जल में मिश्रित कर पानार्थ दें अथवा ५-७ अण्डों की सफेदी जल में फेट कर पानार्थ दें अथवा दुग्ध-घृत मिश्रित कर जितना रोगी पी सके पानार्थ दें। अवसन्नता की अवस्था में ब्राण्डी इत्यादि उत्तेजक द्रव्यों का सेवन कराएँ। अथवा ईथर वा पिट्रकनीन् हाइड्रोक्लोर की त्वगन्तर पिचकारी करें। रानों और बगलों में उष्ण जल की बोतलें वा रबर की थैली रखें। यदि श्वासावरोध होने लगे तो कृत्रिम श्वसन की व्यवस्था करें।

कभी-कभी ड्रेसिंग के द्वारा भी कार्बोलिकाम्ल शनैः शनैः अभिशोषित होकर विषाक्तता के लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं। अतः रोगी के शिर में वेदना होने लगती है। क्षुधा नष्ट हो जाती है। निद्रा का अभाव होता है। ज्वर हो जाता है और मूत्र का वर्ण हरिताभ-कृष्ण वा धूम्रवत् हो जाता है।

कभी-कभी प्लेग में भी इसका उपयोग कराया जाता है; किन्तु निश्चयरूप से लाभ की आशा नहीं होती। रोगशामक मात्रा में देने से इसका शारीरिक उष्मा पर कुछ प्रभाव नहीं होता, किन्तु अधिक मात्रा में देने से शारीरिक उष्मा अल्प हो जाती है; क्योंकि शरीर की उष्मा की उत्पत्ति अल्प हो जाती है और इसका उत्सर्ग अधिक हो जाता है। अधिक मात्रा में प्रदान करने से मस्तिष्क पर इसका आह्लादकारक प्रभाव होता है; किन्तु लालाग्रन्थि और स्वेद केन्द्रों पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। जिसके कारण छीवन (थूक) और स्वेद की अधिक उत्पत्ति होने लगती है। परिणाम यह होता है कि प्रथम तो शरीर में उद्वेगन होने लगता है और पुनः शारीरिक गतियां अवरुद्ध हो जाती हैं। विषैली मात्रा में देने से शिरोवेदना होने लगती है। शिरोभ्रमण होता है। नेत्रकनीनिका (पुतलियों) में संकोच उत्पन्न होता है और अन्त में संन्यासावस्था प्राप्त होती है।

कार्बोलिकाम्ल का उत्सर्ग अधिकतर मूत्रमार्ग द्वारा होता है और यदि इसका उपयोग सावधानतापूर्वक

न किया जाय तो मूत्र का वर्ण काला पड़ जाता है। उक्त कारण से कभी-कभी मूत्र में शर्करा भी आने लगती है। मूत्र में स्वस्थावस्था में जो सल्फेट्स प्राप्त होते हैं, वे इस क्षार के विष से लुप्तप्राय हो जाते हैं। किन्तु ऐसी अवस्था में मूत्र अधिक विलम्ब-पर्यन्त सुरक्षित रहता है। शरीर से कार्बोलिकाम्ल का उत्सर्ग स्वेद, श्वास, लाला तथा मल द्वारा भी होता है और इसका कुछ भाग शरीर में अवशिष्ट भी रह जाता है जो लुप्तप्राय रहता है।

अन्य उपयोग—दुर्गन्ध तथा कीटाणुनाशनार्थ कार्बोलिकाम्ल को चहबच्चों, नालियों, पाखाने के बरतनों, ष्ठीवनशरावों (उगालदानों), रोगी के कमरों इत्यादि में भी छिड़का जाता है। इसके अतिरिक्त इसको विषैले कृमियों को नष्ट करने के लिए भी व्यवहार किया जाता है। २½ प्रतिशत के घोल में एक चादर भिगा कर रोगी के कमरे के दरवाजे पर लटका देने से कमरे की वायु शुद्ध रहती है और उसके भीतर का दुर्गन्ध नष्ट होती है।

इसके सेवन से प्रायः देखा गया है कि पसीना अधिक आने लगता है और नाड़ी की गति अत्यल्प हो जाती है। अर्थात् कुछ घंटों में इसकी गति प्रति मिनट १२० से ६० तक शेष रह जाती है।

गर्भाशयमुख और वृक्कों के पुरातन प्रदाह तथा उनमें क्षत हो जाने पर इसका उपयोग लाभदायक है; किन्तु इसका उपयोग पूर्णतः सावधानतापूर्वक होना चाहिए—किसी अन्य स्थान में न लगाना चाहिए। गर्भाशय के कर्कट (कैंसर) में भी इसको लगाने से अधिक लाभ होता है। फिरंगजन्य क्षत और विषैले जन्तुओं के दंश में इसके द्वारा दग्ध करने से लाभ होता है।

कर्कट (कैंसर) के व्रण तथा दुर्गन्धित सड़े हुए तथा निर्बल क्षतों पर लगाने की विधि—कार्बोलिकाम्ल १॥ वा २ ड्राम, मद्य विशुद्ध १ औंस, जल १ सेर मिश्रित कर उपयोग में लाएँ।

कंठरोहिणी (डिप्थीरिया) नामक रोग में, कंठ के क्षत में इसका गण्डूष धारण कराने से लाभ होता है। बालक जो गण्डूष धारण के अयोग्य हों उनके लिए स्पंज में भिगो कर लगाया जाता है।

कोष्ठबद्धता तथा मुखदुर्गन्ध जो कोष्ठबद्धता के कारण उत्पन्न हो इसको उचित प्रमाण में देने से लाभ होता है। सगर्भावस्था में होनेवाले वमन में अथवा किसी अन्य कारण से उत्पन्न वमन में भी उपयोगी है।

बाह्य प्रभाव—त्वचा पर जिस स्थान पर इसका स्पर्श होता है वहाँ की त्वचा श्वेत हो जाती है। यदि इसको हटा दिया जाय तो पुनः वह स्थान लाल हो जाता है और यदि देर तक लगाया जावे तो वहाँ की त्वचा मुरदार हो जाती है।

सावधानता—विशुद्ध एसिड विष है। अतः इसका आन्तरिक प्रयोग वर्जित है। तरल द्रव ३०-४० बूँद भी पिलाने से उद्वेगन होने लगता है। ओष्ठ श्वेत हो जाते हैं। मुख से कफस्राव होता है। लाला टपकती है। श्वास-ग्रहण में कष्ट होता है। श्वास में खरटे का शब्द होता है। निज सम द्रव्यों को भक्षण करता है अर्थात् अंगों के स्वरूप को नष्ट करता है। अन्त में रोगी लड़खड़ाकर गिर पड़ता है और कम्पग्रस्त होकर मृतक हो जाता है।

अन्य उपयोग—रूई के फाहा में शुद्ध कार्बोलिकाम्ल भिगा कर सड़े दाँत के छिद्र में स्थापन कर उस पर शुष्क रूई रख देने से शीघ्र ही दन्तवेदना शान्त होती है।

शुद्ध कार्बोलिक एसिड १ भाग, कमीज़र क्लोरोडीन ३ भाग मिश्रित कर इसमें किंचित् रूई भिगा कर स्थापन करने से भी शीघ्र दन्तवेदना शान्त होती है।

जब दाँत खराब हो जाता है तो अमरीका के डाक्टर उस दाँत को निकाल कर उसको घिस कर उस स्थान पर इसे रूई में भिगा कर रखते हैं। इस प्रकार उपयोग करने से मसूढ़ों का मांस बढ़ कर पूर्ववत् हो जाता है।

आन्तर उपयोग-विधि—यदि आमाशय पर पड़नेवाला प्रभाव रोकने की आवश्यकता हो तो इसकी गुटिकाओं पर केराटीन आवेष्टित कर देना उचित है वा सैलोल का वार-निश कर देना चाहिए ताकि वह आमाशय में जीर्ण न हो सके। अथवा जब इसको घोल के रूप में देना हो तो इसको जल में भलीभाँति मिश्रित कर इसमें ग्लिसरीन और पेपरमेंट का जल मिश्रित कर दें।

कार्बोलिक एसिड का अंतःक्षेप यदि वक्षगत फुफुसा-वरण में किया जाय तो सम्भवतः यक्ष्माणुओं का नाश होता है। **मात्रा—**१ भाग १०० भाग परितुत जल के साथ।

अधिकृत—प्रामाणिक (ऑफीशियल) योग—(१) (ले०) एसिडम् कार्बोलिकम् (फेनोल) लिक्वीफैक्टम् (Acidum Carbolicum (Phenol) Liquefactum); (अं०) लीक्वीफाइड फेनोल (Liquified Phenol); (अ०) हम्जुलफीनिक सहलूल; (उ०) पिघला हुआ तेजाब कोल्डार। **निर्माण-विधि—**दस भाग कार्बोलिक एसिड में एक भाग परितुत जल मिलाने से वह प्रवाही हो जाता है। **नोट—**तेजाब को तौलकर मिलायें, नापकर नहीं।

(२) (ले०) ग्लिसराइनम् फीनोलिस—(Glycerinum Phenolis); (अं०) ग्लिसरीन ऑफ फीनोल (Glycerine of Phenol); (अं०) ग्लिसरीन हम्जुलफीनिक; (उ०) ग्लिसरीन फीनोल। **निर्माण-विधि—**फीनोल १

आउंस और ग्लिसरीन इतना जिससे सम्पूर्ण औषधि आयतन में ५ फ्लूइड आउंस हो जाय। फीनोल और ग्लिसरीन को शीशे आदि के खरल में डालकर खूब रगड़ें जिसमें फीनोल ग्लिसरीन में भली-भाँति घुल-मिल जाय।

(३) (ले०) सपोजिटोरिया फीनोलिस—(Suppositoria Phenolis); (अ०) फीनोल सपोजिटरीज (Phenol Suppositories); (अ०) शियाफ हम्जुल्फीनिक; (उ०) शियाफ फीनोल; (स०, हि०) फीनोल वर्ति। निर्माण-विधि—फीनोल १२ ग्रेन, सफेद मोम २४ ग्रेन, ऑयल ऑफ थियोब्रोमा आवश्यकतानुसार (या लगभग १४४ ग्रेन)—ऑयल ऑफ थियोब्रोमा और मोम को पिघलाकर उसमें फीनोल सम्मिलित करें और पुनः साँचे में डालकर १२ वर्तियाँ प्रस्तुत करें। शक्ति प्रत्येक वर्ति में १ ग्रेन फीनोल होता है।

(४) (ले०) ट्रॉक्किस्कस फीनोलिस—(Trochiscus Phenolis); (अ०) फीनोल लॉजेन्ज (Phenol Lozenge); (अ०) कुर्स हम्जुल् फेनिक; (उ०) कुर्स फीनोल; (स०, हि०) फीनोल वर्ति। निर्माण-विधि—टोलू बेसिस से (जिसमें टिक्चर टोलू पड़ता है) यह टिकियाएँ बनाई जाती हैं। शक्ति—प्रत्येक टिकिया में ३ ग्रेन फीनोल होता है। मात्रा—१ से ३॥ टिकिया तक।

(५) (ले०) अंग्वेंटम् फीनोलिस—(Unguventum Phenolis); (अ०) फीनोल ऑयन्टमेन्ट (Phenol Ointment); (अ०) मरहम हम्जुल् फेनिक; (उ०) मरहम फीनोल; (स०, हि०) फीनोल लहर। निर्माण-विधि—फीनोल १ भाग, ह्वाइट पैराफीन ऑयन्टमेन्ट ३३॥ भाग परस्पर मिला लें।

अनधिकृत (नॉट ऑफिशियल) योग—

(१) कार्बोलिक लोशन—(Carbolic Lotion), (२) कार्बोलिक ऑयल—(Carbolic Oil), (३) कार्बोलिक सोप—(Carbolic Soap), (४) पिल्युला एसिडाई कार्बोलिसाई—(Pilula Acidi Carbolic), (५) फीनोल कैम्फर—(Phenol Camphor), (६) फीनोल आयोडेटम्—(Phenol Iodatum) या आयोडाइज्ड फेनोल (Iodized Phenol), (७) ब्रोमोल (Bromol) या ट्राइब्रोमोफेनोल (Tribromo Phenol), (८) क्लोरोफेनोल—(Chlorophenol) या पैरा-मोनो क्लोरो-फेनोल (Para-monochloro-Phenol), (९) ट्राइ-क्लोरोफेनोल (Tri-Chloro Phenol) और (१०) सल्फो कार्बोलिक एसिड (Sulpho Carbolic Acid) या एसेप्टोल (Aseptol) प्रभृति इसके असम्मत योग हैं।

फीनोल की फार्माकोलॉजी अर्थात् गुण-कर्म—वाह्य—शरीर के बाहर कार्बोलिक एसिड निम्न कोटि के औद्भिज्ज या जाङ्गम अणुवीक्ष्य जीवाणुओं को मार डालता है तथा प्रबल पराश्रयी जीवाणुनाशक है। इसके प्रभाव से औद्भिज्ज एवं प्राणिज अभिषवद्रव्य जिसमें जीवाणु होते हैं अति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं तथा यह कोथजनक द्रव्यों को भी नष्ट करता है। अतएव यह प्रबल अभिषवनाशक (एण्टिजाइमोटिक) और कोथ-प्रतिबंधक (एण्टिसेप्टिक) है। कोथ के साथ सड़ाँध या दुर्गन्धि का होना भी अनिवार्य हुआ करता है। अस्तु जब यह कोथ का निवारण करता है तब कोथ या दुर्गन्धि स्वयमेव दूर हो जाती है। अतएव इसे दुर्गन्धहर (डिओडोरेंट) भी कहते हैं।

परन्तु इसका अभिषवहारक (एण्टिजाइमोटिक) प्रभाव प्रबल नहीं होता जैसा कि रसकपूर या दारचिकना का होता है; क्योंकि इसके पाँच प्रतिशत शक्ति के विलयन से एन्थ्रेक्स रोग के जीवाणु २४ घंटों में तथा इसके एक प्रतिशत के विलयन से एन्थ्रेक्स के जीवाणु ५ मिनट में मर जाते हैं।

त्वचा पर यदि कार्बोलिक एसिड का विलयन लगाया जाय तो स्थानीय स्वापजनन प्रभाव होता है और कुछ घंटों तक त्वचा की संवेदना में कमी हो जाती है। पर यदि शुद्ध तेजाव त्वचा या श्लेष्मल कला पर लगाया जाय तो वह संक्षोभकारक एवं दाहक प्रभाव करता है। अस्तु तीव्र दाह अनुभूत होकर कतिपय क्षणों में विकारी स्थान की रचना बिना विस्फोट उत्पन्न हुए ही मृतप्राय हो जाती है। इसलिये यह स्थानिक क्षोभकारक (इरिटेण्ट), स्वापजनन और दाहक (काँष्टिक) है।

वस्तव्य—जहाँ पर यह तेजाव लगाया जाता है, वह स्थान कुछ मिनट में सफेद हो जाता है और यदि तेजाव को हटा दिया जाय तो फिर वह स्थान रक्तवर्ण हो जाता है। पर यदि देर तक तेजाव लगाया जाय तो वह स्थान मृतप्राय हो जाता है।

आन्तरिक गुण-कर्म—अन्त्र तथा आमाशय—शुद्ध कार्बोलिक एसिड अन्त्र और आमाशय पर प्रबल क्षोभ एवं श्वयथुकारक प्रभाव करता है तथा घातक विष है। किन्तु इसका विलयन अल्प प्रमाण में दिया जाय तो वह आमाशय में पहुँच कर सल्फोकार्बोनेट के रूप में परिणत हो जाता है।

वस्तव्य—यह आमाशय में पहुँच कर इतना हल्का (डायल्यूट) हो जाता है कि इसका अभिषवनाशक (एण्टिजाइमोटिक) प्रभाव नष्ट हो जाता है। पर हाँ यदि इसको अधिक मात्रा अर्थात् विष प्रमाण में दिया जाय तो यह प्रभाव स्थिर रहता है।

रक्त एवं रक्तानुधावन—त्वचा, क्षत, श्लेष्मल कला श्वास और आमाशय के द्वारा कार्बोलिक एसिड अति-शीघ्र रक्त में अभिशोषित हो जाता है और संभवतः अल्कलाइन कार्बोनेट के रूप में यह रक्त में पाया जाता है। परंतु इसको किंचित अधिक प्रमाण में देने से पहले वाहिन्युनेजक वाहिनी केन्द्र (वैसोमोटरसेन्टर) में गति होती है और फिर वह वातग्रस्त हो जाता है। अतएव प्रथम तो रक्तचाप और नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है, तदुपरांत उनमें कमी आ जाती है। अल्प मात्रा में देने से हृदय के ऊपर इसका कुछ प्रभाव नहीं होता परंतु बड़ी मात्रा में देने से हृदय की गति दुर्बल हो जाती है।

श्वासोच्छ्वास—थोड़ी मात्रा में देने से इसका श्वास प्रश्वास पर कुछ प्रभाव नहीं होता; परंतु बड़ी मात्रा में देने से पहिले तो श्वासोच्छ्वास केन्द्र को तीव्र (उत्तेजित) करता है, तदुपरांत उसको वातग्रस्त कर देता है, जिससे प्रथम तो श्वासोच्छ्वास तीव्र हो जाता है; परंतु अन्ततः श्वासोच्छ्वास की गति मारी जाकर मृत्यु उपस्थित होती है।

शारीरिक तापक्रम—औषधीय मात्रा में देने से शरीर के तापक्रम पर इसका कुछ प्रभाव नहीं होता। किन्तु बड़ी मात्रा में देने से शरीर का तापान्श कम हो जाता है। क्योंकि इससे शरीर में तापोत्पत्ति कम हो जाती है तथा उसका उत्सर्ग बढ़ जाता है।

वात-संस्थान—इसको बड़ी मात्रा में देने से सुषुम्ना और मस्तिष्क के ऊपर इसका हानिकर प्रभाव पड़ता है। अस्तु, मस्तिष्कगत श्वासोच्छ्वास, वाहिन्युनेजक और हृदयोत्तेजक इन केन्द्रों पर इसका जो प्रभाव पड़ता है, उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उनके अतिरिक्त यह मुखलाला एवं स्वेद के केन्द्रों पर भी उत्तेजक प्रभाव करता है जिससे थूक एवं स्वेद अधिक उत्पन्न होने लगता है।

इससे प्रथम एण्टीरियर कार्नीवा को उत्तेजना प्राप्त होती है। तदुपरांत वह वातग्रस्त हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि पहिले तो आक्षेप होने लगता है और फिर पक्षवध हो जाता है।

इसे विषमात्रा में देने से शिर ददं करने लगता और चकराता है, नेत्र की पुतलियाँ सिकुड़ जाती हैं और अन्त में मूर्च्छा हो जाती है।

मूत्र—कार्बोलिक एसिड अधिकतया मूत्र के द्वारा उत्सर्गित होता है। यदि इसका उपयोग असावधानी से किया जाय तो मूत्र का रंग श्याम हो जाता है। परीक्षा करने से उसमें सल्फो-कार्बोलेट्स, ग्लाइकोजोनिक एसिड, हाइड्रोकोलोन और पाइरोकैटीकीन ये यौगिक पाये जाते हैं जो कार्बोलिक एसिड के ऑक्सिडाइज होने

के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें पाइरोकैटीकीन नामक यौगिक का वर्ण श्याव होता है, इसलिये इससे मूत्र का वर्ण श्याव (काला) हो जाता है। परंतु मूत्र की श्यामवर्णता का केवल यही कारण नहीं हो सकता। संभव है कि कोई और भी कारण हो।

इसके कारण कभी-कभी मूत्र में (अल्ब्युमिन) भी पाया गया है। स्वस्थावस्था में मूत्र में जो सल्फेट्स पाये जाते हैं; वह इस तेजाब की विषमयता में सर्वथा लुप्त हो जाते हैं; किन्तु ऐसी दशा में दीर्घकाल तक मूत्र दूषित नहीं होता।

उत्सर्ग—शरीर से कार्बोलिक एसिड का उत्सर्ग मुख-लाला, स्वेद, श्वासोच्छ्वास, मूत्र एवं मल के द्वारा होता है। और इसका कुछ भाग शरीर में लुप्त हो जाता है, जो संभवतः कार्बोनेट्स और ऑक्जिलेट्स में परिणत हो जाता है।

फेनोल के आस्रयिक प्रयोग (थेराप्युटिक्स)—बाह्य—कोथ एवं घुर्गन्धिनिवारण के लिये कार्बोलिक एसिड या फेनाइल को चहवच्चों, नालियों, मलत्याग प्रपात्रों, उगालदानों और रोगियों के कमरों आदि में डालते एवं छिड़कते हैं। विषालुप्त वस्त्र आदि को शुद्ध करने के लिये भी यह काम आता है। अढ़ाई प्रतिशत वाले कार्बोलिक लोशन में एक चादर भिगोकर रोगी के कमरे के द्वार पर लटकाने से कमरे की वायु दोषरहित अर्थात् शुद्ध हो जाती है किन्तु यह संदिग्ध है कि इससे किसी संक्रामक या व्यापमान रोग के रोगानु भी नष्ट हो सकते हैं या नहीं।

कोथप्रतिबंधक एवं घुर्गन्धिहर रूप में शल्यचिकित्सा में इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। अस्तु कार्बोलिक लोशज (४० भाग में १ भाग या १०० भाग में १ भाग की शक्ति का) शल्यकर्ता के हाथों, शस्त्रों, इस्पंज और रोगी के शल्यकर्म किये जानेवाले (ऑपरेशन के) स्थान को धोने के लिये प्रतिदिन प्रयुक्त होते हैं।

निष्क्रिय घावों (Indolent Sores) को उत्तेजना देने के लिये, जिसमें उनमें स्वस्थ अंकुर उत्पन्न होकर व्रण पूरित हो जाय तथा प्रकोथयुक्त व्रणों (Gangrenous Ulcers) से प्रकोथ एवं घुर्गन्धिनिवारण के लिये और व्रणगत घुष्ट मांस को नष्ट करने के लिये शुद्ध कार्बोलिक एसिड का प्रयोग परम गुणदायक है।

शीतपित्त और पामा आदिगत खर्जु दूर करने के लिये इसका पचास प्रतिशतक घोल उपयोग करने से प्रायः लाभ होता है। ग्लीसरीन ऑफ कार्बोलिक एसिड दद्रु, (Favus) और गैंग्रीन (टीनीऑसैक्युलर) के लिये लाभकारी औषधि है।

उरःक्षत, फुफुसों का—

(गैंग्रीन ऑफ दी लंग्ज) और चिरज कास में कार्बोलिक

एसिड के वाष्प सुंघाये जाते हैं किन्तु इनका लाभकारी होना संदिग्ध है विशेषकर उरःक्षत रोग में; क्योंकि फुफुसों तक पहुँचते पहुँचते वे इतने निर्वल हो जाते हैं कि उरःक्षत के रोगाणुओं पर इनका कुछ प्रभाव नहीं होता।

फेनोल कैम्फर या आयोडाइड फेनोल को गर्भाशय-मुख एवं गर्भाशयग्रीवा के व्रणीभवन और (Excoriation) और चिरज गर्भाशय के भीतर के शोथ (Chronic Endometritis) में लगाने से वेदना आदि में कमी हो जाती है।

इसका एक प्रतिशतका—

(Vaginal Douche) श्वेतप्रदररोग, गर्भाशयव्रण और गर्भाशयस्थ कर्कटार्बुद (कैंसर) में लाभकारी होता है; पर कभी-कभी गर्भाशय में कण्डू एवं क्षोभ होने लग जाता है।

आभ्यन्तरीय उपचार—

शुद्ध पिघले हुए कार्बोलिक एसिड में रुई का फाहा तर करके कुथित एवं कृमिदंत के छिद्र में रखकर उसके उपर थोड़ी सी और सूखी रुई रख दें तो दाँत का दर्द तुरत दूर हो जाता है।

नोट—शुद्ध कार्बोलिक एसिड एक भाग, क्लोरल ३ भाग, परस्पर मिलाकर और उसमें जरा-सी रुई तर करके रखने से भी दंतशूल तुरत आराम हो जाता है।

मुखव्रण, मुखपाक और उपजिह्विका (Follicular Tonsillitis) रोग में ग्लिसरीन ऑफ कार्बोलिक एसिड के विलयन (१५ या २० बूँद एक औंस पानी में मिलाकर) से गण्डूष कराने से लाभ होता है। रोहिणी (डिप्थीरिया में) ग्लिसरीन ऑफ कार्बोलिक एसिड लगाने से वेदना में किंचित् कमी हो जाती है। किन्तु मूल व्याधि में इससे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। आन्त्रिक सन्निपात ज्वर (टायफॉयड), कोथयुक्त प्रवाहिका और उग्र एवं चिरज अतिसार में कार्बोलिक एसिड का उपयोग अन्त्रकोथहर औषध की भाँति किया जाता था किन्तु अनुपयोगी होने के कारण अब इसका उपयोग वर्जित हो चुका है।

सेवन-विधि—कार्बोलिक एसिड का गोली के रूप में उपयोग श्रेष्ठतर होता है।

नोट—यदि इसका प्रभाव आमाशय पर नहीं अन्त्र के ऊपर अभीष्ट हो तो इसकी गोलियों पर श्रृंग का गाढ़ा खोल (केराटीन) चढ़ा देना चाहिये या सेलोल का वार्निश कर देना चाहिये जिसमें वह आमाशय में पच न सके। जब इसको प्रवाही मिश्रण के रूप में देना हो तो इसको खूब डायल्यूट करके तथा उसमें ग्लिसरीन एवं पेपरमिन्ट वाटर मिलाकर देना चाहिये।

फेनोल (कार्बोलिक एसिड) के विषप्रभाव (Toxicology) और उनकी चिकित्सा—यदि तीव्र कार्बोलिक एसिड पी लिया जाय तो रोगी को मुख से लेकर आमाशयपर्यंत तीव्र दाह प्रतीत होता है और (लोआ-बदार) झिल्ली के जल जाने से मुख में सफेद दाग पड़ जाते हैं तथा वह अतिशीघ्र (मुजमहल) हो जाता है। अस्तु उसका शरीर शीतल पड़ जाता है। शरीर की ऊष्मा प्रकृत ऊष्मा की अपेक्षा कम हो जाती है, नाड़ी दुर्बल हो जाती है, स्वासोच्छ्वास निर्वल एवं उथला होकर कठिनता से आने लगता है और अन्ततः बंद हो जाता है। स्वासोच्छ्वास के बंद होने के साथ ही हृदय की गति भी बंद हो जाती है। स्वास से कार्बोलिक एसिड की तीव्र गंध आती है। नेत्रकनीनिका प्रारंभ में सिकुड़ी हुई मालूम होती है। किन्तु अन्त में विस्फारित हो जाती है। मूत्र का रंग हरियाली लिए श्याव होता है और सम्पूर्ण शरीर की प्रतिसंक्रामित चेष्टाएँ नष्ट होकर अन्त में रोगी सर्वथा अचेत हो जाता है।

आशुमृतक परीक्षा (पोस्ट मार्टेम)—मृतक के मुख, अन्नमार्ग और आमाशय में सफेद दाग पाये जाते हैं, जिनके चतुर्दिक् शोथमय रक्तमा होती है। रक्त श्याव हो जाता है तथा उसकी स्कंदनशक्ति नष्ट हो जाती है।

प्रतिविष (एण्टिडोट)—पहिले सायफन स्टमक ट्यूबको आमाशय में प्रविष्ट करके निम्नलिखित औषधियों में से किसी एक के द्वारा निरंतर उस समय तक धोते जायँ, कि धोवन से तेजाव की गंध का बिल्कुल लोप हो जाय। (१) सोडियम सल्फेट ३ औंस, १ पाइंट गरम पानी में मिलाकर या (२) मैग्नेसियम सल्फेट ३ औंस, १ पाइंट गरम पानी में मिलाकर या (३) सैकेरेटेड सोल्यूशन ऑफ लाइम १ ड्राम, १ औंस पानी में मिलाकर यदि आमाशय का धोना संभव न हो तो तुरत एपोमॉर्फिन की—त्वगीय पिचकारी—करें जिसमें वमन होकर आमाशय शुद्ध हो जाय। पुनः मैग्नेसियम सल्फेट १ औंस या सोडियम सल्फेट ३ औंस, ८ औंस पानी में मिलाकर तुरत पिला दें।

नोट—सोडियम सल्फेट आदि कार्बोलिक एसिड के साथ मिलकर सल्फो कार्बोनेट के यौगिक बना देते हैं जो विष-प्रभाव रहित होते हैं। इसलिये मैग्नेसियम सल्फेट और सोडियम सल्फेट इसके अत्युत्तम प्रतिविष (अगद) हैं।

यदि रोगी को वमन कराने या औषध देने का अवसर बीत चुका हो तो सोडियम सल्फेट को त्वगीय पिचकारी के द्वारा उदरावरण (पेरीटोनियम) में पहुँचाना चाहिए।

आमाशय की शुद्धि के उपरांत बादाम का तेल या जैतून का तेल अथवा तीसी का तेल १ या २ छट्ठाँक

एक गिलास भर पानी में मिलाकर पिला दें या ५-७ अंडों की सफेदी पानी में फेटकर पिला दें या रोगी जितना दूध पी सके, पिलावें। दुर्बलता की दशा में ब्रांडी या प्रवाही वाइटल आदि या ईथर और स्ट्रिक्नीन की त्वगीय पिचकारी करें। जाँघों और कक्षों में गरम पानी की बोतल रखें। श्वास बंद होने लगे तो कृत्रिम श्वासोच्छ्वास जारी करें

नोट—कभी ड्रेसिंग के द्वारा कार्बोलिक एसिड धीरे धीरे अभिशोषित होकर हल्के विष के लक्षण उत्पन्न कर देता है। फलतः रोगी के सिर में दर्द होता है; भूख जाती रहती है; नींद नहीं आती और ज्वर हो जाता है। विशेषकर मूत्र श्यावतालिये हरे रंग का या धुएँ के रंग का आने लगता है। सावधानता—हरे या धुएँ के रंग का मूत्र होना इसकी विषाक्तता का प्रथम लक्षण है। परंतु संदिग्ध रोगियों में मूत्र की परीक्षा कर ज्ञात कर लेना चाहिये कि उसमें सामान्य सल्फेट विद्यमान है या नहीं।

मात्रा—१ ग्रेन से २ ग्रेन तक। तरल कार्बोलिकाम्ल की मात्रा—१ से ४ बूंद। घोल के रूप में।

कार्बोलिक ऑयल [अ० Corbolic oil]

निर्माण विधि—१ भाग २० भाग तिल में मिलाने से कार्बोलिक का तेल प्रस्तुत होता है। गुण—व्रणशोधक है।

कार्बो-वेजीटेबिलिस—[ले० (Carbo-Vegitabilis)]

पर्याय—लकड़ी का कोयला, काष्ठ अङ्गार, वानस्पतिक अङ्गार, उद्भिज कार्बन।

परिचय—लकड़ियों को दग्ध कर इसके द्वारा औषधि प्रस्तुत किया जाता है।

उपयोग—किसी रोग की अन्तिम अवस्था में जब जीवनीशक्ति लुप्तप्राय होने लगती है, शरीर में शीताङ्ग हो जाता है, शीतल श्वास आने लगती है, नाड़ी सूत्रवत् अत्यल्प गति की होती है, बीच-बीच में रुक-रुक कर चलती है, अत्यधिक स्वेदस्राव होता है और कंठ से शब्द नहीं आता तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

विसूचिका—हैजा की शीताङ्गावस्था प्राप्त होने पर इससे लाभ होता है। अथवा किसी अन्य औषध से लाभ न होने पर यदि रोग की वृद्धि होती जा रही हो और पूर्णतः पतनावस्था प्राप्त हो गई हो, नाड़ी लुप्तप्राय हो गई हो, शरीर शिथिल होकर उसमें इधर-उधर घूमने की शक्ति न रह गई हो, उद्वेष्टन भी न होता हो, वमन-अतिसार के लक्षण समाप्त हो चुके हों, रोगी कभी चैतन्य, कभी मूर्छित रहता हो, कष्टपूर्वक शनैः शनैः श्वास छोड़ता हो, केवल पंखे की हवा की इच्छा रखता हो, वायु प्राप्त न होने पर श्वासावरोध हो जाता हो तो ऐसी अवस्था में इससे उपकार होता है। इसके अतिरिक्त

जब रोगी की अंगुली, नासिका, गला, जिह्वा तथा श्वास में पूर्ण शीतलता प्राप्त हो गई हो, स्वर-भंग हो गया हो; बोलने की शक्ति का अभाव हो तो उस समय भी इसके उपयोग से लाभ होता है। यदि शीताङ्गावस्था में भी क्रय-दस्त की अधिकता हो और उदर में वेदना का अभाव हो तो इसके साथ रिसिनस पर्याय क्रम से उपयोग करने से लाभ होता है।

अजीर्ण—(Dyspepsia)—यदि अधिक जागरण, अधिक मद्यपान, विरुद्ध आचरणादि के कारण अन्न का पाक न हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है। आध्मान, कोष्ठवद्धता, अर्श, इत्यादि के कारण यदि अन्न-पाक न हो तो भी इससे लाभ होता है। यदि दुर्गन्धपूर्ण उद्गार होता हो, अम्ल उद्गार हो, उदर में वायु भरी हो, कष्टपूर्वक डकार आती हो, डकार आने पर कष्ट अल्प हो जाती हो, तो इसका उपयोग सफल होता है। जब भोजनोपरान्त पाकस्थली मशकवत् फूल जाती हो, वक्ष में प्रदाह होता हो, भक्ष्यभोज्य का अपाक हो, भोजन करते-करते या उसके अन्त में पेट फूल जाता हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

सविराम ज्वर—ज्वर की शीतावस्था में जब पैर से घुटने तक शीतलता आ गई हो, हाथ के नखों में नीलिमा हो, प्यास हो, अथवा—उत्तापावस्था में ज्वर चढ़ने पर जब तृष्णा न हो, शरीर में उग्र प्रदाह हो, अम्लगन्धी स्वेदस्राव हो तो ऐसी अवस्था में इससे लाभ होता है। जीर्ण ज्वर जो किसी प्रकार न छूटता हो तो इसके उपयोग से छूट जाता है। सान्निपातिक ज्वर की शीताङ्गावस्था में भी इससे उपकार होता है। सूतिका ज्वर, रक्त विकारज ज्वर (Pyæmia) में भी इससे उपकार होता है।

कास—गलनलिका में उपदाह के कारण यदि आक्षेपिक तथा सहसा वेगपूर्वक आने वाली खाँसी, निरन्तर कोसने की इच्छा, कास के साथ हृदय में जकड़नादि होने पर इससे उपकार होता है। अथवा वह कास जो शीतल वस्तुओं के सेवन से हो तो भी इससे उपकार होता है।

श्वास-कास—प्रातःकाल वा बाल्यावस्था के कुकुर-कास में भी इससे उपकार होता है।

स्वरभंग—सायंकाल में आनेवाली शुष्क खाँसी के कारण स्वरभंग हो तो इससे उपकार होता है।

वर्षा तथा शीत-काल में स्वरभंग होने पर भी इससे अधिक उपकार होता है।

व्रण—कोई भी व्रण यदि उसमें कोथ उत्पन्न हो गया हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

स्त्री-रोग—यदि ऋतुस्राव दुर्गन्धपूर्ण हो, श्वेत प्रदर के कारण योनिगत त्वचा गल गई हो, योनि में क्षत प्राप्त हो, उसमें कण्ड हो, प्रदाह हो, डिम्बकोष (Ovary)

में भारीपन तथा वेदना हो, अथवा गर्भाशय मुख का संकोच न हो तो ऐसी अवस्था में इससे लाभ होता है।

निर्बलता—यदि शरीर के किसी भी स्थान से रस-रक्त निकलने के कारण, अधिक दिनों पर्यन्त सन्तान को स्तनपान कराने से, फुफ्फुस के किसी रोग में अत्यधिक कफस्राव होने से, पुरातन अतिसार से तथा बहुत दिनों पर्यन्त हस्तमैथुन करने के कारण निरन्तर शरीर दुर्बल तथा जीर्ण-शीर्ण हो गया हो, तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

शिरवेदना—शिर में बोझ-सा प्रतीत होना तथा ऐसा प्रतीत होना जैसे कोई भारी वस्तु दबाए हुए है वा शिर वस्त्र से कस कर बाँध दिया गया है, ऐसी अवस्था में इससे उपकार होता है।

केश-पात—यदि किसी उग्र व्याधि के कारण प्रसव पश्चात् शिर के केश गिरने लग गए हों तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

कर्ण रोग—बाधिर्य, आरक्त ज्वर, खसरा के पश्चात् कर्ण में रुक्षता प्राप्त होने पर, अथवा दुर्गन्धपूर्ण पूय-स्राव होने पर, वा कर्ण में मलवृद्धि के कारण बाधिर्य रोग हो, तो इससे लाभ होता है।

दन्त रोग—यदि मसूड़ों में स्पञ्जवत् छिद्र हो गये हों, उनमें वेदना हो, उनका मांस हट गया हो, दाँत की जड़ बाहर निकल आई हो, दाँत ऊपर उठ गया हो, दाँत की जड़ पृथक् हो गई हो, और दाँत गिरने लग गए हों तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

क्रिया स्थितिकाल—६० दिन।

प्रतिषेध—कैम्फर। कॉफी। आर्सेनिक। लैंकेसिस इत्यादि।

कृष्ण—६ से २०० शक्ति।

फार्मूला—७

देखो—‘कोयला’।

कार्बोलिग्नाई—[ले० Carboligni] काष्ठ अंगार। लकड़ी का कोयला। दे० ‘कोयला’ तथा ‘कार्बोवेजिटे-विलिस’।

कार्बोलिट ऑफ कोकेन—[अ० Carbolate of cocaine] डाक्टरों औषध विशेष।

कार्बोल्युरिया—[अ० Carboluria] कालमेह। दे० ‘मेह’।

कार्बोहाइड्रेट—[अ० Carbolhydrate] शर्कराजातीय पदार्थ जो खाद्य-पदार्थों में होता है।

कार्मर्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देखो ‘कार्मुका’

कार्मर्ज—वि० [सं० त्रि०] आचार्य जो मंत्र-तंत्र की योजना में नियुक्त हो। (मे० गत्रिक)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मंत्र-तंत्र की क्रिया वा प्रयोग। (२) मंत्र-तंत्र।

कार्मर्गोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद का एक भेद।

११

कार्मर्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वंशलोचन। (रा० नि० व० ६)।

कार्मिनेटिह्व—[अ०] (Carminative) दीपनीय द्रव्य जो उदराध्मान तथा उदरशूल में वायुनाशनार्थ प्रयुक्त होते हैं।

कार्मिनेटिह्व-मिवश्चर—[अ०] (Carminative mixture)

शूल-आध्मान नाशक तरल योग, यथा—

स्पिरिट अमोनिया एरोमेटिक—२० बूँद।

टिचर कार्ड कम्पाउण्ड—२० बूँद।

स्पिरिट क्लोरोफार्म—२० बूँद।

सोडा वाई कार्व—१० ग्रेन।

जल—१ औंस।

मिश्रित कर उपयोग में लाएँ।

कार्मुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्वेत खदिर। सफेद कल्था। (२) समुद्रफल। हिज्जल वृक्ष। (रा० नि० व० ८)। (३) बकाइन। महानिम्ब। (रा० नि० व० ९)। (४) चोपचीनी। (वै० निघ०)। (५) माधवी लता। (६) वंश, बाँस। (हे०, मे०)। (७) रक्त-मञ्जरी। (नि० प्रकाश)। (८) वि० एक प्रकार का मधु (शहद)।

कार्मुका—संज्ञा स्त्री० [सं० कार्मुक]।

टिप्पणी—मुहीत में इसकी संस्कृत संज्ञा पाचीन (शुद्ध प्राचीन) और रक्तमंजरी आदि दी है।

वर्णन—मुहीत के लेखक इसे एक वृक्ष की तिक्त छाल (? بومل) बतलाते हैं। परन्तु निघंटु प्रकाश में कार्मुक शब्द के बकाइन और नीम ये दो अर्थ लिखे हैं और रक्त-मंजरी उसका एक पर्याय लिखा है। उक्त निघंटु के मत से रक्तमंजरी नीम की एक अन्यतम संज्ञा सिद्ध होती है। **प्रकृति**—उष्ण और रुक्ष।

गुणधर्म और प्रयोग—यह तिक्त है और भूख पैदा करती है, पित्त एवं रक्तविकार को दूर करती, मुखवैरस्य वा मुखविस्वाद का निवारण करती है और पाचनशक्ति बढ़ाती है। (मुहीत)।

कार्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) प्रयोजन। फल। परिणाम। (२) आरोग्यता।

कार्य प्रवेश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आलस्य। (ध० नि०)।

कार्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वह जो कारण से उत्पन्न हो। (२) प्रयोजन। (मे०)।

कार्य द्वेश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } आलस्य। (रा०
कार्य-प्रवेश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
नि० व० २०)।

कार्य-पुट (ध्वनि)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षाणक। बौद्ध भिक्षुक। वि० (सं० त्रि०) उन्मत्त। पागल। अंड-बंड काम करनेवाला। (हारा०)।

कार्या (कार्या)---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कारी वृक्ष।
(रा० नि० व ८, ध० नि०)। दे० 'कारी'।

कार्याक---संज्ञा पुं० [को०] कारस्कर। कुचला।

कार्योनि---संज्ञा पुं० [यू०] Caryon कृष्णजीरक।
(करोया) में प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व।
कावी-सत्व।

कार्ल्सबाड---संज्ञा पुं० [अं०] (Carlsbad) झरने का पानी। दे० 'जल'।

कार्वोल---संज्ञा पुं० [अं०] (Carvole) कावी कर्पूर अर्थात् कृष्ण जीरक। (करोया) में प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व।

कार्श---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शटी। कचूर। (ध० निघ०)।

काश्मरी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काश्मरी। गम्भार।
खुमेर। (अ० टी० भ०)।

काश्य---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) शटी, कचूर। (रा० नि०

काश्य---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } व० ध०, ध० नि०)। (२)
काश्मरी। गम्भार। (३) लकुच। बड़हल। (रा०
नि० व० ९)। (४) क्षुद्र पर्णसि। (५) साल। साखू
(अ० टी० म०)। (६) शाक वृक्ष। सागवन। (वै०
निघ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुर्बलता। दुबलापन। लागरी,
कृशता।

निदान---वायु, रुक्ष अन्नपान, लघन, अल्प भोजन,
तथा विरेचनादि क्रियाओं का अति योग, शोक, मल-
मूत्रादि के उपस्थित वेगों का रोकना, निद्रा का पूर्णतः
न आना, सर्वदा रोग, नित्य मैथुन, नित्य व्यायाम, अल्प
आहार का सेवन, भय तथा अन्य धनादि का नित्य चिन्तन,
तथा अति शोक करने से कृशता उत्पन्न होती है, विशेष
कारण निद्रा का निग्रह है।

लक्षण---जिस व्यक्ति के स्फिक (कूल्हा), उदर तथा
ग्रीवा शुष्क हो गई हो, शरीरगत शिराजाल दीख
पड़ते हों, त्वचा और अस्थिमात्र शेष रह गई हो तथा
संधियाँ और मुख स्थूल हो गया हो तो उक्त लक्षणों से
युक्त व्यक्ति को काश्य रोग से पीड़ित समझना उचित है।
यह रोग भी शोष रोग के ही अन्तर्गत है।

अत्यन्त कृशता---अत्यन्त कृश व्यक्ति---प्लीहा रोग,
कास, श्वास, गुल्म, अर्श, उदर रोग तथा ग्रहणी इत्यादि
रोगों से पीड़ित रहता है, कतिपय व्यक्ति ऐसे भी होते
हैं, जो कृश होने पर भी बलवान् होते हैं। कारण यह है
कि यदि गर्भाधान काल में पिता के वीर्य का अंश अधिक
परिमाण में गर्भाशय में प्राप्त होकर गर्भ धारण होकर
सन्तान की उत्पत्ति हो तो ऐसी सन्तान कायक्षीण होने
पर भी बलवान् होती है।

स्थूलता होने पर भी बलहीनत्व का कारण---गर्भाधान-

काल में यदि पिता की वीर्य की अल्पता हो और मेद का
भाग अधिक हो तो ऐसी अवस्था में स्निग्ध और पुष्ट
होने पर भी बल का अभाव होता है।

असाध्यता---जिस कृश व्यक्ति की अग्नि अत्यन्त मंद
पड़ गई हो, निर्बलता अत्यधिक हो तथा प्राकृतिक अत्यन्त
कृशता प्राप्त हो तो ऐसे व्यक्ति की चिकित्सा त्याज्य है।

चिकित्सा---यदि रोग साध्य हो तथा रुक्ष आहारादि
द्वारा कृशता प्राप्त हो तो ऐसी अवस्था में धातु-पुष्टिकर,
बलवर्धक, रुचिप्रद, रुधिरवर्धक, वृष एवं वाजीकर
औषधियों का सेवन हितकर होता है।

काश्यहर लौह---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृशता रोग में प्रयुक्त
योग। निर्माल-विधि---(१) वंशलोचन, पुनर्नवा,
दन्तीमूल, अश्वगन्धा, हरीतकी, आमलकी, विभीतक,
त्रिकुटा, मुस्तक, चित्रकमूल, विडङ्ग, शतावरी, बला,
प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर वारीक चूर्ण करें और
सर्वसम लौह भस्म मिश्रित कर सुरक्षित रखें।

मात्रा---१ से १० रत्ती। (वृ० रस रा० सु०)।

कार्ष---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शटी। कचूर। (ध० नि०)।

कार्षापण---संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] एक प्रकार का
प्राचीन मान (सिक्का) जो सोने का होने पर १६ माशे
का और चाँदी का होने पर १६ पैसा वा १२८० कौड़ियों
के बराबर होता था। किसी-किसी के कथनानुसार---
ताँबा का होने पर ८० रत्ती वा ८० कौड़ियों के बराबर
होता था। (मे०)।

कार्षिक---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्षापण। १६ पण।
(अ०)। (२) कर्ष परिमाण। (के०)।

काष्ण---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला हिरन। कृष्णसार मृग
संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) काले हिरन का चमड़ा। कृष्ण
मृग-चर्म। (वै० निघ०)।

काष्णी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लघु शतावरी। छोटी
शतावर। (वै० निघ०)।

काष्णयस---संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] काले लोह की किट्ट।
कृष्णायस विकार।

काष्णाय---(धर्ययम्)---संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लौह-
मल। मण्डूर। (रा० नि० व० १३)। (२) काला
लोहा। कृष्णवर्ण लौह। वि० (सं० त्रि०)। कृष्णता।
कालापन। कृष्णसार मृग-चर्म द्वारा निर्मित।

काष्णायस---वि० [सं० त्रि०] कृष्ण लौह द्वारा निर्मित।
काले लोहे से बना हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोह। (Iron)

काष्णी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी शतावर। शता-
वरी। (रा० नि० व० ४, अम०)।

काश्य---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साल। शाल वृक्ष। साखू।
(अ०)।

कार्प्यवन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शालवन। साखू का जंगल।

कार्प्यु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्ज वृक्ष। सरो। (Sororia Robusta)। (अम०)। (२) काला हिरन। कृष्णसार मृग।

काल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समय। व्युत्पत्ति—‘कल’ शब्द का ककार और आकार तथा ‘ली’ धातु का लकार ग्रहण कर—काल शब्द का निर्माण किया गया है—‘कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः अर्थात् यह समस्त जीव-सृष्टि का संकलन करता है अतः इसको काल के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। काल सर्वभूत-संयोगी (विभु) होने के कारण सूक्ष्म कला का भी ग्रहण करता है। अतः इसको ‘काल’ कहते हैं।

जिसको काल कहते हैं, वह संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त है, वह किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं है। इसका न आदि है और न अन्त है। द्रव्याश्रित रसों की व्यापत्ति और संपत्ति तथा प्राणियों का जीवन-मरण काल के ही आधीन है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म कला मात्र भी नहीं रुकता और यह स्वयं संहार-शक्ति के द्वारा संपूर्ण प्राणियों का संकलन वा ग्रहण करता है, अतः उसको ‘काल’ कहते हैं। (सु० सू० ७ अ०)।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजा।

कालः स्वपति जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः॥

कालोहि भगवान्देवः स साक्षात् परमेश्वरः।

सर्वपालनसंहर्ता स कालः सर्वतः समः॥

येन मृत्यु वशं याति कृतं येन लयं व्रजेत्।

संहर्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात् कलनापरः॥

संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) (१) लोह। (अ० टी० भ०)।

(२) कंकालफल। (रा० नि० व० १२)। (३)

कृष्ण अगुरु। काली अगर। (श० च०)। (४) कासमर्द।

कसौदी। (५) रक्त चित्रक। काला चीता। (६) राल।

संज्ञा पुं० (सं० पुं०) (१) कोकिला पक्षी। कोयल। (रा०

नि० व० १९)। (२) बाघनख। व्याघ्र नख। (रा०

नि० व० १२)। (३) मृत्यु। (मे०)। (४) द्रोण

काक। डोम कौआ। (५) कृष्ण गोरोचन। (६) कृष्णा-

ञ्जन, काला सुरमा। (७) कंकाल। अस्थिपञ्जर।

(वै० निघ०)। (८) समय। बेला। (९) व्याधि

काल। ‘भक्तं दिनर्तु युक्तां व्याधि कालो यथा-

मलम्’ (मा० नि०)। (१०) काला साँप। (११)

कालरठ्ठी। पाखर। पकरी। प्लक्षवृक्ष। (Ficus

Talbot) (मद०)।

संज्ञा पुं० (हि०) काल उमर। काकोदुम्बर। खरोटी,

खरवट। (म०)। (Ficus Asperina)।

कालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) अलगर्द नामक

पानी का साँप। जल-सर्प। जलढोड़ा। जलबोड़ा।

डेङ्हा। (श० र०)। (२) लाक्षा। लाख। (अम०)।

संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) (१) चञ्चुशाक। कालशाक।

चञ्चु। (भा० पू० शा० व०)। (२) यकृत (हे० च०)।

(३) नेत्रतारक। आँख की पुतली। (४) शब्द-भेद।

(फा०) (१) कद्दू। अलाबु। (२) घुइया। अरई।

(कों)-वंश। वाँस। (चो०)।

कालकडो—संज्ञा पुं० [गु०, म०, बम्ब०] कडुआ कुडा।

असित कुटज। तिकत कुटज दे० ‘कुड़ा’।

काल कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुस्कदाना। मुस्क

भिण्डी। लता कस्तूरी। (Hibiscus-Abelmoschus)।

काल काङ्गुण—संज्ञा पुं० [म०] काली मकोय। कृष्ण काक-

माची। देखो—‘मकोय’।

कालकाथा—संज्ञा पुं० [बं०] नेवाड़ी का फूल। वासन्ती

पुष्प। (इ० है० गा०)।

कालकापिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } अशोक वृक्ष।

कालकाण्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (के० दे० नि०)।

कालका सुंदरपाता—संज्ञा स्त्री० [बं०] कसौदी की पत्ती।

काशमर्द पत्र।

कालकासुंदा—संज्ञा स्त्री० [बं०] काली कसौदी। कृष्ण

कासमर्द।

कालकिण्वीड—संज्ञा पुं० [वर०] चुक्र। चूका पालक।

(मे० मो०)। दे० ‘लूनक’।

कालकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पहाड़ी मिट्टी की एक भेद,

पर्वतमृत्तिका विशेष। दे० ‘कङ्कुष्ठ’। (रा० नि० व०

१३)।

कालकूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का भयंकर

महाविष जो किसी के अनुसार अश्वत्थ वृक्ष के निर्यास

तुल्य होता है। किसी के अनुसार सिकिम तथा भूटान में

होनेवाले श्रृङ्गिक विष की जाति के एक पौधे की जड़

जिसमें छोटी-छोटी गोल चित्तियां होती हैं और इसको

काला वच्छनाग भी कहते हैं। भावप्रकाश के अनुसार

यह एक पौधे का गोंद है जो श्रृङ्गवेर, कोकण और

मलयाचल पर्वतों में उत्पन्न होता है।

पुराणों के अनुसार इसकी उत्पत्ति दैत्यों के रुधिर

से हुई थी। इसको शिव जी ने पान किया था और

गरल के नाम से भी शास्त्रों में आया है। देवासुर-संग्राम में

भी इसका वर्णन आया है और अश्वत्थ निर्यास तुल्य

होता है।

‘देवासुररणे देवैर्हृतस्य पृथुमलिनः। दैत्यस्य रुधिरजातस्त-

ररश्वत्थ सन्निभः निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः

परिकीर्तितः। सोऽहि क्षेत्रे श्रृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत्।

(भा० पू० १ भ० विष व०)।

स्वरूप—‘घनरुक्षचकठिर्नभिन्नाञ्जनसमप्रभम्। कडा-

कारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम्’। (रस कौ०)।

कार्या (कार्या)---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कारी वृक्ष।
(रा० नि० व ८, ध० नि०)। दे० 'कारी'।

कार्यारक---संज्ञा पुं० [को०] कारस्कर। कुचला।

कार्योन---संज्ञा पुं० [यू०] Caryon कृष्णजीरक।
(करोया) में प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व।
कार्वी-सत्व।

कार्ल्सबाड---संज्ञा पुं० [अँ०] (Carlsbad) झरने का पानी। दे० 'जल'।

कार्वोल---संज्ञा पुं० [अँ०] (Carvone) कार्वी कर्पूर अर्थात् कृष्ण जीरक। (करोया) में प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व।

कार्श---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शटी। कचूर। (ध० निघ०)।

काश्मरी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काश्मरी। गम्भार।
खुमेर। (अ० टी० भ०)।

कार्श्य---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) शटी, कचूर। (रा० नि०
कार्ष्य---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } व० धं०, ध० नि०)। (२)
काश्मरी। गम्भार। (३) लकुच। बड़हल। (रा०
नि० व० ९)। (४) क्षुद्र पर्णसि। (५) साल। साखू
(अ० टी० म०)। (६) शाक वृक्ष। सागवन। (वै०
निघ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुर्बलता। दुबलापन। लागरी,
कृशता।

निदान---वायु, रुक्ष अन्नपान, लंघन, अल्प भोजन,
तथा विरेचनादि क्रियाओं का अति योग, शोक, मल-
मूत्रादि के उपस्थित वेगों का रोकना, निद्रा का पूर्णतः
न आना, सर्वदा रोग, नित्य मैथुन, नित्य व्यायाम, अल्प
आहार का सेवन, भय तथा अन्य धनादि का नित्य चिन्तन,
तथा अति शोक करने से कृपता उत्पन्न होती है, विशेष
कारण निद्रा का निग्रह है।

लक्षण---जिस व्यक्ति के स्फिक (कूल्हा), उदर तथा
ग्रीवा शुष्क हो गई हो, शरीरगत शिराजाल दीख
पड़ते हों, त्वचा और अस्थिमात्र शेष रह गई हो तथा
संधियाँ और मुख स्थूल हो गया हो तो उक्त लक्षणों से
युक्त व्यक्ति को कार्श्य रोग से पीड़ित समझना उचित है।
यह रोग भी शोष रोग के ही अन्तर्गत है।

अत्यन्त कृशता---अत्यन्त कृश व्यक्ति---प्लीहा रोग,
कास, श्वास, गुल्म, अर्श, उदर रोग तथा ग्रहणी इत्यादि
रोगों से पीड़ित रहता है, कतिपय व्यक्ति ऐसे भी होते
हैं, जो कृश होने पर भी बलवान् होते हैं। कारण यह है
कि यदि गर्भाधान काल में पिता के वीर्य का अंश अधिक
परिमाण में गर्भाशय में प्राप्त होकर गर्भ धारण होकर
सन्तान की उत्पत्ति हो तो ऐसी सन्तान कायक्षीण होने
पर भी बलवान् होती है।

स्थूलता होने पर भी बलहीनत्व का कारण---गर्भाधान-

काल में यदि पिता की वीर्य की अल्पता हो और मेद का
भाग अधिक हो तो ऐसी अवस्था में स्निग्ध और पुष्ट
होने पर भी बल का अभाव होता है।

असाध्यता---जिस कृश व्यक्ति की अग्नि अत्यन्त मंद
पड़ गई हो, निर्बलता अत्यधिक हो तथा प्राकृतिक अत्यन्त
कृशता प्राप्त हो तो ऐसे व्यक्ति की चिकित्सा त्याज्य है।

चिकित्सा---यदि रोग साध्य हो तथा रुक्ष आहारादि
द्वारा कृशता प्राप्त हो तो ऐसी अवस्था में धातु-पुष्टिकर,
बलवर्धक, रुचिप्रद, रुधिरवर्धक, वृष एवं वाजीकर
औषधियों का सेवन हितकर होता है।

काश्यहर लौह---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृशता रोग में प्रयुक्त
योग। निर्ममज-विधि---(१) वंशलोचन, पुनर्नवा,
दन्तीमूल, अश्वगन्धा, हरीतकी, आमलकी, विभीतक,
त्रिकुटा, मुस्तक, चित्रकमूल, विडङ्ग, शतावरी, वला,
प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर बारीक चूर्ण करें और
सर्वसम लौह भस्म मिश्रित कर सुरक्षित रखें।

मात्रा---१ से १० रत्ती। (वृ० रस रा० सु०)।

कार्ष---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शटी। कचूर। (ध० नि०)।

कार्षापण---संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] एक प्रकार का
प्राचीन मान (सिक्का) जो सोने का होने पर १६ माशे
का और चाँदी का होने पर १६ पैसा वा १२८० कौड़ियों
के बराबर होता था। किसी-किसी के कथनानुसार---
ताँबा का होने पर ८० रत्ती वा ८० कौड़ियों के बराबर
होता था। (मे०)।

कार्षिक---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्षापण। १६ पण।
(अ०)। (२) कर्ष परिमाण। (के०)।

कार्ष्ण---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला हिरन। कृष्णसार मृग
संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) काले हिरन का चमड़ा। कृष्ण
मृग-चर्म। (वै० निघ०)।

कार्ष्णी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लघु शतावरी। छोटी
शतावर। (वै० निघ०)।

कार्ष्णायस---संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] काले लोह की किट्ट।
कृष्णायस विकार।

कार्ष्णाय---(इर्ययम्)---संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लौह-
मल। मण्डूर। (रा० नि० व० १३)। (२) काला
लोहा। कृष्णवर्ण लौह। वि० (सं० त्रि०)। कृष्णता।
कालापन। कृष्णसार मृग-चर्म द्वारा निर्मित।

कार्ष्णायस---वि० [सं० त्रि०] कृष्ण लौह द्वारा निर्मित।
काले लोहे से बना हुआ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोह। (Iron)

कार्ष्णी---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी शतावर। शता-
वरी। (रा० नि० व० ४, अम०)।

कार्ष्य---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साल। शाल वृक्ष। साखू।
(अ०)।

कार्यवन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शालवन। साखू का जंगल।

कार्यु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सज्ज वृक्ष। सरो। (Sororia Robusta)। (अम०)। (२) काला हिरन। कृष्णसार मृग।

काल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समय। व्युत्पत्ति—‘काल’ शब्द का ककार और आकार तथा ‘ली’ धातु का लकार ग्रहण कर—काल शब्द का निर्माण किया गया है—‘कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः अर्थात् यह समस्त जीव-सृष्टि का संकलन करता है अतः इसको काल के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। काल सर्वभूत-संयोगी (विभु) होने के कारण सूक्ष्म कला का भी ग्रहण करता है। अतः इसको ‘काल’ कहते हैं।

जिसको काल कहते हैं, वह संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त है, वह किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं है। इसका न आदि है और न अन्त है। द्रव्याश्रित रसों की व्यापत्ति और संपत्ति तथा प्राणियों का जीवन-मरण काल के ही आधीन है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म कला मात्र भी नहीं रुकता और यह स्वयं संहार-शक्ति के द्वारा संपूर्ण प्राणियों का संकलन वा ग्रहण करता है, अतः उसको ‘काल’ कहते हैं। (सु० सू० ७ अ०)।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजा।

कालः स्वपति जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः॥

कालोहि भगवान्देवः स साक्षात् परमेश्वरः।

सर्वपालनसंहर्ता स कालः सर्वतः समः॥

येन मृत्यु वशं याति कृतं येन लयं व्रजेत्।

संहर्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात् कलनापरः॥

संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) (१) लोह। (अ० टी० भ०)।

(२) कंकालफल। (रा० नि० व० १२)। (३)

कृष्ण अगुरु। काली अगर। (श० च०)। (४) कासमर्द।

कसौदी। (५) रक्त चित्रक। काला चीता। (६) राल।

संज्ञा पुं० (सं० पुं०) (१) कोकिला पक्षी। कोयल। (रा०

नि० व० १९)। (२) बाघनख। व्याघ्र नख। (रा०

नि० व० १२)। (३) मृत्यु। (मे०)। (४) द्रोण

काक। डोम कौआ। (५) कृष्ण गोरोचन। (६) कृष्णा-

ञ्जन, काला सुरमा। (७) कंकाल। अस्थिपञ्जर।

(वै० निघ०)। (८) समय। बेला। (९) व्याधि

काल। ‘भक्तं दिनर्तु युक्तां व्याधि कालो यथा-

मलम्’ (मा० नि०)। (१०) काला साँप। (११)

कालरठ्ठी। पाखर। पकरी। प्लक्षवृक्ष। (Ficus

Talbot) (मद०)।

संज्ञा पुं० (हि०) काल उमर। काकोदुम्बर। खरोटी,

खरवट। (म०)। (Ficus Asperina)।

कालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) अलगद नामक पानी का साँप। जल-सर्प। जलढोड़ा। जलबोड़ा।

डेइहा। (श० र०)। (२) लाक्षा। लाख। (अम०)।

संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) (१) चञ्चुशाक। कालशाक।

चञ्चु। (भा० पू० शा० व०)। (२) यकृत (हे० च०)।

(३) नेत्रतारक। आँख की पुतली। (४) शब्द-भेद।

(फा०) (१) कद्दू। अलाबू। (२) घुईया। अरई।

(कों)-वंश। वाँस। (चो०)।

कालकडो—संज्ञा पुं० [गु०, म०, वम्ब०] कड़ुआ कुड़ा।

असित कुटज। तिक्त कुटज दे० ‘कुड़ा’।

काल कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुश्कदाना। मुश्क

भिण्डी। लता कस्तूरी। (Hibiscus-Abelmoschus)।

काल काङ्गुण—संज्ञा पुं० [म०] काली मकोय। कृष्ण काक-

माची। देखो—‘मकोय’।

कालकाथा—संज्ञा पुं० [वं०] नेवाड़ी का फूल। वासन्ती

पुष्प। (इ० है० गा०)।

कालकापिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } अशोक वृक्ष।

कालकाण्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (के० दे० नि०)।

कालका सुंदरपाता—संज्ञा स्त्री० [वं०] कसौदी की पत्ती।

काशमर्द पत्र।

कालकासुंदा—संज्ञा स्त्री० [वं०] काली कसौदी। कृष्ण

कासमर्द।

कालकिऐनवीड—संज्ञा पुं० [वर०] चुक। चूका पालक।

(मे० मो०)। दे० ‘लूनक’।

कालकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पहाड़ी मिट्टी की एक भेद,

पर्वतमृत्तिका विशेष। दे० ‘कङ्कुष्ठ’। (रा० नि० व०

१३)।

कालकूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का भयंकर

महाविष जो किसी के अनुसार अश्वत्थ वृक्ष के निर्यास

तुल्य होता है। किसी के अनुसार सिकिम तथा भूटान में

होनेवाले श्रृङ्गिक विष की जाति के एक पौधे की जड़

जिसमें छोटी-छोटी गोल चित्तियां होती हैं और इसको

काला वच्छनाग भी कहते हैं। भावप्रकाश के अनुसार

यह एक पौधे का गोंद है जो श्रृङ्गवेर, कोकण और

मलयाचल पर्वतों में उत्पन्न होता है।

पुराणों के अनुसार इसकी उत्पत्ति दैत्यों के रुधिर

से हुई थी। इसको शिव जी ने पान किया था और

गरल के नाम से भी शास्त्रों में आया है। देवासुर-संग्राम में

भी इसका वर्णन आया है और अश्वत्थ निर्यास तुल्य

होता है।

‘देवासुररणे देवैर्हृतस्य पृथुमलिनः। दैत्यस्य रुधिरजातस्त-

ररश्वत्थ सन्निभः निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः

परिकीर्तितः। सोऽहिक्षेत्रे श्रृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत्।

(भा० पू० १ भ० विष व०)।

स्वरूप—‘घनरुक्षंचकठिर्नभिन्नाञ्जनसमप्रभम्। कडा-

कारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम्’। (रस कौ०)।

सुश्रुत ने इसका उल्लेख कल्पस्थान द्वितीय अध्याय में किया है जो एक प्रकार का कंदविष है। इसके सेवन से शरीर में कंप, स्तम्भ (जड़ता) तथा स्पर्श का अज्ञान होता है।

वृद्ध वाग्भट्ट ने इसका सेवन वर्जित किया है—

‘न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं कालकूटं विशेषतः’।

कालकूटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] कुचला। कार-
स्कर। (रा० नि० व० ९)।

कालकूटरजोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राल। रजन।
(वै० निघ०)।

कालकूट रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपात ज्वर में प्रयुक्त रस-योग विशेष। निर्माण-विधि—शुद्ध वच्छनाग ११ भाग, शुद्ध पारद ३ भा०, शुद्ध गन्धक ५ भा०, शुद्ध सैनसिल ६ भा०, ताम्र-भस्म ४ भा०, भर्जित सोहगा ६ भा०, शुद्ध हरिताल ९ भा०, चित्रक चूर्ण ९ भा०, त्रिकुटा चूर्ण १२ भा०, त्रिफला १० भा०, हींग और वच १-१ भा०। एकत्र चूर्ण कर इसमें अदरक, चित्रक-मूल, जम्भीरी, लहसुन, काकजंघा, आक की जड़, कलिहारी, धतूर की जड़, मद्रासी पान, अंकोल की जड़, सहिजन की जड़, पञ्चकोल और पञ्चमूल के अंग स्वरस तथा क्वाथ से १-१ प्रहर मर्दन कर १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएँ।

गुण तथा सेवन विधि—अदरक के रस के साथ सेवन करने से—प्रत्येक सान्निपातिक ज्वरों का नाश होता है।

पथ्य—स्नान एवं शरीर में चन्दन विलेपन तथा भक्षणार्थ दही-भात, ताम्बूल तथा छोहाड़ा। (रा० यो० सा०)।

कालकृत—[सं० वि०] समय एवं ऋतु-प्रभावजन्य।

कालकृत औषधि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालकृत, प्रतिकार, यथा—धूप, छाया, प्रकाश, शीत, उष्ण, वर्षा, रात्रि, ऋतु, इत्यादि के द्वारा औषध।

कालकृत व्याधि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऋतुविकारज रोग जो ऋतुओं के ठीक न होने से उत्पन्न होते हैं।

भेद—(१) कालकृत। (२) अकालकृत। (च० सू० २४ अ०)।

कालकृत रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० कालकृत व्याधि।

काल कोठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कन्दशाक विशेष।

पर्याय—पान शारू। कोमर भोग कचू।

कालक्लीतक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नील का पौधा। नीली क्षुप। दे०—‘नील’।

कालखञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जिगर। यकृत।
Liver (हे० च०)।

कालखण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) यकृत।
(रा० नि० व० १८)। (२) यकृत रोग भेद।
(वै० निघ०)।

कालगंडेल—संज्ञा पुं० [हि०] } एक प्रकार का विषधर
काल सांडा—संज्ञा पुं० [हि०] }

सांप, जिसके ऊपर काले गंडे वा चित्तियाँ होती हैं।

कालगन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोब्रा साँप।

कालगिञ्ज—संज्ञा पुं० [ते०] सोमराजी। दे० बकुची।

कालगोरि—संज्ञा स्त्री० [म०] } पाढल। पाटला वृक्ष।
कालगोह—संज्ञा पुं० [ते०] }

काल ग्रन्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] संवत्सर। साल
(हारा०)।

कालघण्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } घंटापाटला। घंट
कालघण्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } का पेड़ (वं०)
घंटापारूल।

कालङ्कत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्वर्णमुखी। दे०
‘सनाय’। (२) काली कसौदी। कासमर्द। (वं०)
कालका सुन्दा। दे० ‘कसौदी’।

कलङ्ग—संज्ञा पुं० [मल०] (१) कथील। रांगा। (२)
अलावु। दे० ‘कद्दू’।

कालङ्गु—संज्ञा पुं० [ता०] लताकरञ्ज। सागरगोटा।
दे० ‘करञ्ज’।

कालचक्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] समय की गति-विशेष।
अर्थात् निमेष (पल) से लेकर युग-पर्यन्त की गति जो
परिवर्तित रूप से चला करती है उसको ‘कालचक्र’ कहते
हैं (सू० सू० ८ अ० ६)।

कालचटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भाँगरा। भृङ्गराज।

कॉलचिकम्-इल्लिरिअम्—संज्ञा पुं० [ला० Colchicum-
Illyrium] सरिंजान भेद।

कॉलचिकम्-कोरम्—संज्ञा पुं० [ला० Colchicum
corum] सरिंजान।

कॉलचिकम्-रूट—संज्ञा पुं० [अ०] Colchicum root।
सुरिञ्जान मूल।

कॉलचिकम्-ल्युशिअम्—संज्ञा पुं० [ला०] (Colchicum-
Luteum)। हरन तूतिया। हिरण्य तुथ। दे०
‘सुरिञ्जान’। (इ० मे० मे०)।

कॉलचिकम्-सीड—संज्ञा स्त्री० [अ०] Colchicum
Seed सुरिञ्जान बीज। दे० ‘सुरिञ्जान’।

कॉलचिकम्-सेमिना—संज्ञा स्त्री० [ला० Colchicum-
Semina] सुरिञ्जान बीज। दे० ‘सुरिञ्जान’।

काल चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालजनित
प्रतिकार। वह चिकित्सा जो प्रकृत रूप से स्वयं प्राणियों
को प्राप्त होती है। कालकृत औषधि। वह चिकित्सा जिससे
स्वभाव से ही दोषत्रय का संचय, प्रकोप, प्रशमन तथा
प्रतिकार होता है। (सू० सू० १ अ०)। प्राकृत चिकित्सा।

कालजाम—संज्ञा पुं० [वं०] जम्बूफल। जामुन।

कालजीरा—संज्ञा स्त्री० [वं०] कृष्ण जीरक

कालजीरे—संज्ञा पुं० [वं० म०] } स्याह जीरा। कृष्ण
कालजीरो—संज्ञा पुं० [गु०] } जीरक।

कालजो-उन्सी—संज्ञा स्त्री० [वर०] }
कालजो उन्सी—संज्ञा स्त्री० [वर०] } बेलम्बु। (मो० श०)।

कालज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मृत्युकारक
सन्निपातिक ज्वर जिसमें तापमान शीघ्र ही बढ़ कर
कास-श्वास-हिककादि उपद्रव होता है और २४ घंटा के
भीतर जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। (२) काला
आजार नामक एक प्रकार का दुष्ट ज्वर।

कालज्वरकुल—संज्ञा पुं० [मल०] लताकरञ्ज। सागर-
गोटा। दे० 'करञ्ज' (इं० मे० मे०)।

कालञ्चे—संज्ञा पुं० [को०] गोरखमुण्डी। मुण्डिका।
भूकदम्बिका।

कालञ्ज—संज्ञा पुं० [का०] जअर। (लु० क०)।

कालञ्जनी—[संज्ञा स्त्री०] कापसि। दे० 'कपास'।

कालञ्जा—संज्ञा स्त्री० [तुर०] अकअक। (लु० क०)।

कालञ्जी—संज्ञा स्त्री० [को०] मुण्डी।

कालञ्ज्य-कुडु—संज्ञा पुं० [मल०] लताकरञ्ज। सागर-
गोटा।

कालताल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तमाल वृक्ष। (रा०
नि० व० ९)।

कालतिन्दु (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मकरतेंदुआ।
माकड़तिन्दु।

कालतुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कृष्ण अगुरु। काली
अगर। (वै० निघ०) दे० 'अगर'।

कालतुलसी—संज्ञा स्त्री० [वं०] श्यामदल। काली तुलसी।

कालतेउड़ी—संज्ञा स्त्री० [वं०] श्यामा। काली निशोथ।

कालत्रय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वर्तमान, भूत और
भविष्य काल।

कालदमअमीनक—संज्ञा पुं० [किर०] चिरायता। (लु० क०)।

कालदोला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नीली क्षुप। दे०
'नील'। (भा०)।

कालधतूरा—संज्ञा पुं० [वं०, हिं०] कृष्ण धुस्तुर। काला
धतूर।

कालधर्म—(मर्न)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृत्यु। मौत
(Death)। अवसान। विनाश। (अम०)।

कालनज—संज्ञा पुं० [तुर०] पक्षी विशेष। (लु० क०)।

कालनारु—संज्ञा पुं० [कना०] अस्थिभङ्ग। हेमसागर।
पर्णबीज। (इं० मे० मे०)।

कालनाशन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद-योग विशेष।

निर्म्माण-विधि—पारद भस्म, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म,
लोह भस्म, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध गुग्गुलु प्रत्येक समान
भाग में ग्रहण कर यवचिञ्चा (तितली) के स्वरस में
मर्दन कर चणक प्रमाण की गोलियां बनाएँ।

गुण तथा सेवनविधि—एक-एक गोली सायं-प्रातः रोगा-
नुसार अनुपान से सेवन करने से—अग्निमान्द्य, शोथ,
पाण्डु तथा श्वास का नाश होता है। (रस० यो० सा०)।
काल निर्यसि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुग्गुलु। गुग्गुलु।
(रा० नि० व० १२)।

कालन्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खटमल (Bug)।

कालन्दुरु—संज्ञा पुं० [सि०] मोथा, मुस्तक (चो०)।

कालन्धर रस—(पित्त हिसक, वात मुग्दर)—संज्ञा पुं०

(सं० पुं०) वात, पित्त तथा सन्निपात ज्वर में प्रयुक्त
पारद योग। निर्म्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,
शुद्ध मैन्सिल, शुद्ध बच्छनाग, पीपर, धतूर बीज। प्रत्येक
समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि चूर्ण कर कज्जली
बनाएँ, पुनः संपुट कर दृढ़ कपड़मिट्टी करें और शुष्क कर
१०० जंगली कड़ों की आँच देवें, शीतल होने पर निकालें
और पुनः थूहर के दूध में मर्दन कर पुनः रोहू मछली के
पित्त की भावना देकर सुरक्षित रखें। मात्रा—१ रस्ती।

गुण तथा उपयोग—यथोचित अनुपान से सेवन करने
से ज्वर-समूह का शीघ्र नाश होता है।

पथ्य—मूँग की दाल शालि चावलों का भात। दाह
उत्पन्न होने पर शीतल जल तथा मिश्री का शर्वत देवें।

कॉलन्सोनिआकेनाडेन्सिस—[ला० Collinsonia Canna-
densis]

पर्याय—[अ०] खश्बुन्नील। (अं०) स्टोन रूट (Stone
Root) हासवीड (Horseweed)।

उद्भव स्थान—कनाडा।

परिचय—यह एक वनस्पति है जो कनाडा में प्रायः
होती है। इसका तना सीधा होता है और प्रायः ४ इंच
का लंबा होता है जिस पर छोटी-छोटी ग्रन्थियुक्त बेडौल
शाखें होती हैं। तने पर बहुत से उथले चिन्ह पड़े होते हैं।
अत्यन्त कठोर होती है। इसका बाह्य वर्ण भूरा
श्वेताभ, त्वचा अत्यन्त बारीक, जड़ें असंख्य तथा सरलता-
पूर्वक टूटने वाली होती हैं। स्वाद निर्गन्ध, बाघत्वचा तीक्ष्ण
(तल्व) तथा मूर्च्छाउत्पादक होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें गोंद, शक्तिवर्धक सत्व,
गोधूम सार (निशास्ता), श्लक्ष्ण पदार्थ (लवाब) तथा
सिक्थ (मोम) आदि उपादान होते हैं।

गुण-कर्म—उद्वेष्टनहर, संप्राहक, शक्तिवर्धक तथा
संशमन है। मात्रा—१५ से २० ग्रेन तक।

होमियोपैथिक के अनुसार इसका मूल अरिष्ट (टिंचर)
—यह स्त्रियों के पेड़ू और यकृत सम्बन्धी यंत्र में अधिक
रक्त-संचय के कारण उत्पन्न अर्श, कोष्ठबद्धता, शोथ
इत्यादि रोग। विशेषतः हृत्पिण्डगत रोग द्वारा उत्पन्न
शोथ, तथा शैशव कोष्ठबद्धता इत्यादि रोगों में इसका
प्रायः उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के जरायु

भ्रंश रोग में भी इसका उपयोग होता है। हृत्पिण्डगत-रोग में—हृद्रोग निवृत्त होने के पश्चात् अर्श तथा अर्श नष्ट होने के पश्चात् हृत्पिण्डगत रोग में इसके उपयोग से लाभ होता है।

सम्बन्ध—अर्श और हृत्पिण्ड गत रोग में—कैक्टस, डिजिटेलिस और अन्यान्य ओषधों से लाभ न होने पर तथा शूल रोग में—कॉलोसिन्थ तथा नक्सवाँमिका से लाभ न होने पर कॉलिन्सोनिया के उपयोग से लाभ होता है।

क्रिया नाशक—नक्सवाँमिका। क्रियास्थिति-काल—३० दिन।

क्रम—और ३५ से ३० शक्ति तक। अर्श के साथ हृत्पिण्ड की कोई यान्त्रिक रोग रहने पर इसके उच्च शक्ति का प्रयोग करना उचित है।

फार्मूला—३।

कालपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तालीशपत्र। (वै० निघ०)।

काल परीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वह परीक्षा जो
कालज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } रोग के उत्पन्न होने पर की जाती है। रोग का आक्रमण-काल, रोग-मुक्त होने का समय तथा रोगी के आयु का ज्ञान जो रोग काल में जान कर चिकित्सा का कार्य आरम्भ किया जाता है, उचित लाभ होता है।

कालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तगर वृक्ष। (श० च०)। (२) श्यामा। काली निशोथ। (डाइमाक)।

कालपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) श्यामा। काली
कालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } निशोथ।
कृष्णनिवृत्त।

(२) काली तुलसी। श्यामदल। (भा० पू० १ भ०)।

कालपालक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कङ्कण मृत्तिका। (रा० नि० व० १३)।

कालपाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृत्युपाश।

कालपाश रसांकुश-मंत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद सिद्धि में प्रयुक्त शिव मंत्र विशेष, यथा—ॐ शिव ह्रां ह्रीं हं सः। (रस कामधेनु)।

कालपाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण सारिवा। दे० कालीसर। श्यामलता। दे० 'शारिवा'।

कालपीलुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुपीलु। माकड़तिन्दुक। मकरतेनुआ। (भा०)।

कालपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कूलचर मृग-विशेष। कूलचर वर्ग में वर्णित कृष्ण पुच्छ का एक मृग। (सु० सू० १४ सू० ४६ अ०)। (च० चि० ४ अ०)। (२) कृष्ण चटक। काली गौरैया। (वै० निघ०)।

कालपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कलाय। मटर। (सं०

पुं०) उन्मत्त क्षुप। धतूर। (ध० नि०)।

कालपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्यामा। काली निशोथ। (ध० निघ०)।

कालपूर्व प्रसव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विप्रसव। विगुण प्रसव। वह प्रसव जो महीना पूर्ण होने के पूर्व हो जाता है।

कालपेखी (षी)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण सारिवा। दे० 'शारिवा'। श्याम लता। (रत्ना)।

कालपेशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मजीठ। मज्जिष्ठा। (२) स्याह जीरा। कृष्ण जीरक। (वै० निघ०)। (३) कृष्णशारिवा। (रत्ना०)। दे० 'कालीसर'।

कालपेखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्याम लता। कृष्ण शारिवा। (दे० 'शारिवा')।

कालपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला मृग। कृष्ण सार मृग। काला हिरन जिसका पीठ कृष्ण वर्ण का होता है।

(हे० च०) (२) काँक पक्षी। कङ्क पक्षी। (मे० चतुष्क)।

काल-प्रसीत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरद ऋतु। शरद काल। (त्रि०का०)।

कालप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग जिसमें काला पेशाब होता है। दे० मेह। काल मेह। (सुश्रुत)।

कालप्ररुद्ध—[वि० सं० त्रि०] अतिपक्व।

कालप्रसव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निश्चित समय पर होने वाला प्रसव जो विगुण प्रसव के विरुद्ध होता है। (Partus maturus)।

काल प्रियंकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } असगंध।
कालप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }

अश्वगन्धा क्षुप। (धन्व० नि०)। (रा० नि० व० ४)।

कालबर्बर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काला कीकर। काला बबूर।

कालबर्बर निय्यासि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काले बबूर का गोंद।

कालबर्बर वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला बबूर। काला कीकर।

काल बल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] समय का प्रभाव। (शक्ति)।

कालबल प्रवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आधिदैविक रोग मात्र। वह रोग जो ऋतु के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। यथा—ऋतुज ज्वरादि।

कालबलप्रवृत्तव्याधि—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] वह रोग जो शीत, उष्ण, वायु, वर्षा इत्यादि कारणों से उत्पन्न होते हैं। भेद—(१) व्यापन्न कृत अर्थात् विकृत ऋतु जन्य रोग। (२) अव्यापन्न कृत अर्थात् अविकृत ऋतु जन्य रोग। (सु० सू० सू० ७ अ० २४)।

कालबाबली--संज्ञा स्त्री० [म०] कृष्ण वर्वर। काला कीकर।

कालवाल--संज्ञा पुं० [सं० पुं० कालपाल०] मुर्दासंग। कङ्कुष्ठ।

कालबाल--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुर्दासंग। कङ्कुष्ठ। (लु० क०)।

कालभण्डिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मजीठ। मञ्जिष्ठा। (रा० नि० व० ६)।

कालभण्डी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेतगुञ्जा। सफेद घुँघची। (२) मञ्जिष्ठा। मजीठ। (रा० नि० व० ६)।

कालभु--संज्ञा पुं० [वं०] वृक्ष विशेष। (*Sorghum balpense, Pers*)।

कालभृत्--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दिवाकर। सूर्य।

कालभैरव रस--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपात ज्वर में प्रयुक्त रस योग विशेष। निर्माण-विधि--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, सुहागे की खील, सज्जीखार, जवाखार, सेंधा नमक, काली मिर्च, बोल (एलुसा) प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि धतूर के रस में खरल कर गोला बना कर शुष्क करें, पुनः वस्त्र में पोटली बना कर दोलायंत्र में धतूर वा अदरक का रस भर वा जल भर कर ४ प्रहर तक पकाएँ और निकाल कर पुनः इसको रोहू मछली, सूअर, जंगली भैंसा और कछुआ के पित्तों से १-१ दिन भावनाएँ दें। और उड़द प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग--अदरक के रस के साथ सेवन करने से सान्निपातिक एवं दूषित ज्वरों का शीघ्र नाश होता है। पथ्य--दही, तक्र, चावल। दाह उत्पन्न होने पर मिश्री का शर्बत वा नारिकेल का जल दें। (रस० यो० सा०)।

कालभैरव बटी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] निर्माण विधि--शुद्ध पारद, शु० गन्धक, शु० हरिताल, भर्जित सुहागा, नाग भस्म, इन्द्रियव, सोंठ, मिर्च, पीपर, सब समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि जल या अदरक के रस में मर्दन कर मूंग प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। यथोचित रोगानुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से वात, कफ-जन्य रोग, अर्श, अग्निमान्द्य, शीतांग एवं विसूचिका का शीघ्र नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कालम--संज्ञा पुं० [पं० हिं०, बम्ब०] कदम्ब। (*Steph- gyne Parviflora*)

कालमको--संज्ञा पुं० [वं०] काकमाची। काली मकोय।

कालमल्लिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णार्जक।

कालमल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली तुलसी। (वं० निघ०)।

कालमाडा--संज्ञा पुं० [?] द्रव्य विशेष

कालमान--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काल विषयक परिमाण।

यथा, जितने समय में एक लघु अक्षर का उच्चारण होता है उतने काल को आयुर्वेदी परिभाषा में अक्षिनिमेष (पल) कहते हैं और--

१५ अक्षिनिमेष = १ काष्ठा।

३० काष्ठा = १ कला।

२० $\frac{1}{4}$ कला = १ मुहूर्त।

३० मुहूर्त = १ अहोरात्र।

१५ अहोरात्र = १ पक्ष।

२ पक्ष = १ मास।

२ मास = १ ऋतु।

३ ऋतु १ अयन।

२ अयन = १ वर्ष। (सु० सू० अ० ६)।

नोट--अष्टाङ्ग संग्रह सू० ४ अ० के अनुसार जो काल विभाग दिया गया है उसमें किंचित अन्तर है यथा--

२० $\frac{1}{4}$ कला = १ नाड़िका।

२ नाड़िका = १ मुहूर्त।

३ $\frac{3}{4}$ मुहूर्त = १ याम।

४ याम = १ अहोरात्र।

उपर्युक्त कालमान की परिभाषा आयुर्वेद के अनुसार दी गई है, किन्तु; ज्योतिष शास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा न्याय-शास्त्र इत्यादि में वर्णित मान इससे भिन्न है।

कालमान--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्णपत्र की श्यामदल काली तुलसी।

कालमाल (क) [सं० पुं०] [प० मु०]। बाबुई तुलसी।

वर्वरिका। कृष्ण मल्लिका। (सु० सू० ३० अ०, च० चि० ३ अ०, भा० पू० १ अ०, सुरसादि वर्ग)।

कालमारिष--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरसा। बृहत पत्रों

वाली चौलाई। बृहत् तण्डुलीय शाक। (भेष०, च० द० अम्लपि० चि०, अन्न शुद्धि, र० मा०)।

काल माल--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शालुक। (ध० नि०)।

कालमाला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णार्जक। काली तुलसी। (वा० सू० १५ अ०)। 'सुरसमृगफणिशकाल-मालाविडङ्गम्'।

कालमाषी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोमराजी। देखो--'बकुची'। (ध० नि०)।

कालमिरि--संज्ञा स्त्री० [म०, बम्ब०] मरिच। काली मिर्च।

कालमीठ--संज्ञा पुं० [म०] सोंचर नमक। काला नमक। पाक्य लवण।

काल मरिचान--संज्ञा पुं० [?] काली मिर्च।

कालमीसक--संज्ञा पुं० [हिं०] मञ्जिष्ठा। मजीठ। (लु० क०)।

कालमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कपि, वानर, लंगूर।
(रा० नि० व० १९)।

कालमुख (क)---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाटला भेद घंटा पाटला। कृष्ण-पुष्पों का पाटला। इसके ३ भेद हैं—(१) कृष्णपुष्प, (२) श्वेत पुष्प तथा (३) पीत पुष्पों का। (वै० श० सि०, कु० टी० विश्वामित्र)। दे० 'पाटला'।

कालमूल—संज्ञा पुं० [हिं०] चावल का एक प्रकार।

कालमूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्त चित्रक। लाल चीता। (रा० नि० व० ६)।

काल मृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य की वह मृत्यु जो पूर्ण आयु प्राप्त होने के पश्चात् होती है। सुश्रुत के अनुसार काल मृत्यु १२० वर्ष की अवस्था होने पर होती है। काल मृत्यु की प्रबलता—मनुष्यों के शरीर में १०१ मृत्यु होती हैं, उनमें महामृत्यु एक है, जिसकी चिकित्सा नहीं होती। शेष मृत्युएँ १०० हैं, जो रोग के रूप में परिणत होती हैं और उनकी चिकित्सा की जाती है। महामृत्यु की चिकित्सा केवल ईश्वराराधन तथा दान एवं होन्य है। (भैष०)।

काल मेघ—संज्ञा पुं० [व० सं० पुं०] कलफनाथ। यवत्तिक्त। शङ्खिनी। यह एक प्रकार चीरत्तिक्त (चिरायता) है इसके पौधे शरत् काल में अत्यधिक प्राप्त होते हैं। इसके पौधों की ऊँचाई प्रायः १-२ फुट तक होती है। पत्तियों का स्वरूप भालाकार, कृष्णाभ एवं स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। बीज पीताभसिकतासम होते हैं। बंगाल मध्य प्रदेश इत्यादि में आर्द्र भूमि में प्रायः उगता है।

पदार्थ—[हिं०] किरायत। कलक नाथ। [द०] कलफनाथ। [गु०] किरायतो। [म०] ओलें किरायत। [उड़ि] नीलकण्ठ। [ते०] नलवेमु। [ता०] निलाम्बु। [कना०] नेलवेवु। [मल०] नीलवेवु। किरियात। [सं०] महात्तिक्त। किरातत्तिक्त। [अ०] चिरेटा (Chirata)। (ला०) एण्ड्रोग्राफिस पेनिक्युलेटा (Andrographis Paniculata)

उपयोगी अंग—पञ्चाङ्ग।

रासायनिक संगठन—इसमें सर्वाधिक एक प्रकार का तिक्त सत्व तथा सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride) होता है।

गुण-कर्म-मूल—आमाशय बलप्रद, विषम ज्वर नाशक, तिक्त बलप्रद, ज्वरघ्न, पित्तरेचक तथा पत्र कृमिघ्न है। मात्रा—नूतन हरित पत्र स्वरस एवं इसके द्वारा निमित्त तरल सत्व (Extract Liquid Calmegh), मात्रा—१० से ६० बूंद।

कल्पवा योग (१) हिम काल मेघ—नागरंगत्वक् १ भा०, धनियाँ प्रत्येक १ वा ४ भा०। मात्रा १ से २ औंस।

(२) टिंचर काल मेघ विभण—कालमेघ ३ भाग, विशुद्ध सुरा २० भाग। बोल—१ भा०, एलुआ ६ भा०। मात्रा—१-४ ड्राम।

(३) काल मेघ दटिका—कालमेघ पंचांग, जीरा, सौंफ, लौंग, बड़ी इलायची सर्व समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें पुनः कालमेघ पत्र स्वरस से मर्दन कर २ वा ५ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएं।

उपयोग—टिंचर काल मेघ—उत्तेजक, भेदक, पत्र स्वरस—वालातिसार, यकृतविकार, कृमिरोग, अम्ल पित्त, अर्धाव भेदक, निर्बलता, ज्वर, ज्वर पश्चात् जनित दुर्बलता तथा जीर्ण आमातिसार में अधिक उपयोगी है। इसका क्वाथ सांनिपातिक ज्वरों में उपकारी तथा विषम ज्वरों में भी अत्यन्त हितकर सिद्ध हुआ है।

कालमेक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मज्जिष्ठा। मजीठ। (अम० टी० रा०)।

काल मेक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) श्यामा।
कालमेधी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } काली निशोथ,
(भा० पू० १ म०)। (२) मजीठ। मज्जिष्ठा। (वै० निघ० २ अ० उन्मा० चि०)। (३) कृष्ण जीरक। स्याह जीरा। (४) निशोथ। त्रिवृत्त। (रा० नि० व० ६)। (५) सोम राजी। बकुची। (रा० नि० व० ४)। (६) हरिद्रा। हलदी। (रा० नि० व० २३)। (७) शुक्ल जीरक। सफेद जीरा। (वै० निघ०) (८) श्याम लता। शारिवा। (प० मु०)।

कालमेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मेहरोग कार्बोल्युरिया (Carbouluria)। लक्षण—इस मेह में मनुष्य स्याही के रंग का मूत्रोत्सर्ग करता है—'काल-मेही मसीनिभम्'। (मा० नि०)। इसकी उत्पत्ति पित्त के प्रकोप से होती है। (वा० भट्ट मेह नि०)।

कालमेह ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का ज्वर जिसमें ज्वर के साथ मूत्रविकार होकर कालमेह के समान मूत्र का रंग होता है।

कालाम्बर एपिथीलियम्—संज्ञा पुं० [ला०] द्रव्य विशेष।

कालर—संज्ञा पुं० [हिं०] उद्भिद मृत्तिका। रेह की मिट्टी।

कालरकोडि—संज्ञा स्त्री० [ता०] सागरगोटा। लता-करञ्ज। कठकरंज।

कालरस (महान्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृतपारद (रस सिद्ध), अभ्रक भस्म समान भाग में ग्रहण करें और दोनों के बराबर लोह भस्म और शुद्ध गंधक ग्रहण कर, त्रिफला, भांगरा, सहिजन और चित्रक के क्वाथ वा रस से पृथक्-पृथक् ७-७ दिन भावनाएँ दें, पुनः इसमें सर्व सम पीपल और पुरातन गुड़ मिश्रित कर ४-४ माशे की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—४-४ माशा प्रतिदिन १ वर्ष पर्यन्त सेवन करने

से अकाल मृत्यु तथा वार्धक्यदोष का नाश होता है।
 अनुपान—इसके सेवनोपरान्त काला तिल, गुड़ और
 सैरेयक (कटसरइया) का चूर्ण सेवन करें।

(२) कुष्ठनाशक योग विशेष । निर्माण-विधि—
 रससिद्ध, शुद्ध हरिताल सत्व और ताम्रभस्म समान
 भाग में ग्रहण कर आक के दूध और वकुची के तेल में
 मर्दन कर १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—प्रातःकाल सेवनोपरान्त भूतकेशी
 अथवा करंज की जड़ और अमिलतास की छाल दोनों
 का चूर्ण और पुरातन गुड़ मिश्रित कर सेवन करने से
 गलित कुष्ठ का नाश होता है।

(३) कुष्ठ में प्रयुक्त योग । निर्माण-विधि—शुद्ध
 पारद, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म और शुद्ध वच्छनाग
 प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर वकुची के तेल में मर्दन
 कर एक गोला बनाएँ; पुनः इस गोला के ऊपर द्विगुण शुद्ध
 गन्धक पीस कर पुनः पिष्टी बनाकर उक्त गोले के ऊपर
 चढ़ाएँ और लोहे की कड़ाही में तिल तैल के साथ पकाएँ।
 जब गन्धक और तेल दोनों दग्ध हो जायँ तब गोला को
 निकाल कर पुनः उसके बराबर लोह भस्म और निम्ब के
 पंचांग का चूर्ण मिश्रित कर यथाविधि ४-४ मासे की
 गोलियाँ बनाएँ।

अनुपान तथा सेवन-विधि—प्रातःकाल सेवनोपरान्त हल्दी
 १ माशा, पीपल २ मा०, सोंठ ३ मा०, वायविडंग ४ मा०,
 चित्रकचूर्ण ५ मा० और स्वर्णमाक्षिक भस्म ६ मा०
 मिश्रित कर यथोचित प्रमाण में गोमूत्र के साथ सेवन
 करने से कितिभ कुष्ठ का नाश होता है।

कालरा—संज्ञा पुं० [अ० Cholera] दे० 'विसूचिका'।

कालरा विषश्चर—संज्ञा पुं० [अ० Cholera-mixture]
 विसूचिका में प्रयुक्त मिश्रण विशेष।

काल रात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भीम रथ । (हारा०)।

कालरात्रि मन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद मारण में
 प्रयुक्त मन्त्र विशेष, यथा—'क्रां क्रीं क्रं क्रैं, क्रीं क्रः काल
 रात्रिकैः सर्व विकारान् हन हन स्वाहा'। (रस का०)।

काललवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोंचर नमक।
 पाक्य लवण। काला नमक। (रा० नि० व० ६)। (२)
 विडलवण। (च० शा० ८ अ०, प० मु०, च० सू०
 २० अ०)।

काललून (ण)—संज्ञा पुं० [सं० काललवण] पाक्य लवण।
 काला नमक।

काललौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तीक्ष्ण लौह। फौलाद
 लोहा। पय्यय—(सं०) कृष्णायस, तीक्ष्ण, रुक्म।
 (रा०)।

कालवज्राशनि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विषघ्न योग
 विशेष।

१२

निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शु० गन्धक, शु० तूतिया,
 शु० सुहागा और हल्दी सर्व समान भाग में ग्रहण कर
 बंदाल के रस में मर्दन कर शुष्क कर सुरक्षित रखें।
 मात्रा—१-२ माशा।

गुण तथा सेवन विधि—नर-मूत्र के साथ सेवन करने से
 प्रत्येक प्रकार के विषों एवं काल सर्प का दंशित व्यक्ति
 भी जीवित होता है।

कालघञ्जक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षय रोग नाशक
 योग। निर्माण-विधि—मृत पारद (सिद्ध), शु० नाग
 भस्म, शु० गन्धक, शु० तूतिया, सुहागे की खील प्रत्येक
 २-माशा, शु० ताम्र भस्म ४ मा०, शंख चूर्ण ८ मा०,
 कौड़ी भस्म ३६ मा० एकत्र चूर्ण कर बड़ी कौड़ी के उदर
 में भरें और सुहागा और गुड़ की पिष्टी से उसका
 मुख बंद करें तथा लोकनाथ रस की विधि से पकाएँ,
 जब स्वतः शीतल हो जाए निकालें, पुनः इसको आक के
 दूध और केला के रस से १-१ दिन मर्दन कर संपुट कर
 लघुपुट से पाक करें। उक्त विधि से ३ बार पकाएँ
 और स्वांग शीतल होने के पश्चात् इसके बराबर काली
 मिर्च का चूर्ण और ४ गुना शुद्ध गन्धक मिश्रित कर
 सुरक्षित रखें। गुण तथा अनुपान—१ माशा धृत युक्त
 सेवन करने से २१ दिन में असाध्य राज्यक्षमा का नाश
 होता है। (रस यो० सा०)।

कालवल प्रवृत्त व्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे०
 'कालवल प्रवृत्त'।

कालवश—वि० [सं० त्रि०] काल के आधीन। समयाधीन।

कालवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] वातादि रोगों में
 प्रयुक्त वस्ति (एनिमा)। भेद—(१) आदि में स्नेह
 तिलादि वस्ति, (२) निरुह वस्ति, (३) पुनः निरुह
 वस्ति, (४) पुनः स्नेह वस्ति, (५) पुनः निरुह वस्ति।
 उक्त क्रम से १२ वस्ति प्रदान के पश्चात् अन्त में ३ बार
 सैनहिक वस्ति का उपयोग करने से दोषों के संचित विकार
 शान्त होते हैं। (च० सिद्धि १ अ०)।

कालवादी—वि० [सं० त्रि०] 'काल'रूपी ईश्वर में विश्वास
 रखने वाले व्यक्ति अर्थात् जो व्यक्ति केवल काल को ही
 विश्व का कारण स्वीकार करते हैं।

कालवानर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लंगूर जिसका मुख
 काला होता है। कृष्ण मुख कपि (मर्कट) (रा० नि०
 व० १९)।

कालवाहन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भैंस, महिष। (दै०
 निघ०)।

कालविप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] समय संबन्धी
 विप्रतिपत्ति। विपरीत-काल। (सु० सू० १ अ०)।

कालविध्वंशक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाण्डुरोग में
 प्रयुक्त रस-योग।

निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध स्वर्ण पत्र, रजत पत्र, शुद्ध हरिताल, समान भाग में ग्रहण कर एकत्र जंभीरी के रस में १ दिन धूप में खरल स्थापन कर मर्दन करें। पुनः शुद्ध पारद सर्व सम मिश्रित कर पिष्टी करें और कृष्ण घृतूर फल के भीतर पृष्ठीकृत गोले को स्थापित कर घृतूर पंचांग स्वरस पूर्ण भाण्ड में दोलायंत्र की विधि से ३ दिन पकाएँ। स्मरण रहे कि पाचन के पूर्व घृतूर के फल को वस्त्र में वेष्टित कर लिया करें। पुनः शुद्ध आमला-सार गन्धक ग्रहण कर जम्भीरी के रस में मर्दन कर उक्त फलवद्ध पिष्टी के नीचे ऊपर रख लघु पुट द्वारा पाचन करें। इस प्रकार प्रति बार सर्वतुल्य शुद्ध गन्धक दे-दे कर १०० बार लघु पुट से जारित करें। और जब उक्त विधि का अन्त हो जाए, उस रक्त वर्ण के पारद का चूर्ण करें और सर्वसम लौह भस्म मिश्रित कर जम्भीरी के रस में मर्दन करें। पुनः छोटी और बड़ी कटेरी के रस में १-१ दिन मर्दन करें और यथाविधि उक्त द्रवों में मर्दन कर ३-३ पुट देवें। उक्त विधि से—आक, चिरबिल्व (चिल-विल) और चित्रक के स्वरस की ३-३ पुट देकर गोला बना लेवें और अन्धमूषा में स्थापन कर लघु पुट से पाचन कर चूर्ण निर्माण करें। और उक्त चूर्ण का दशांश शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण मिश्रित कर सुरक्षित रखें।

मात्रा—१ रत्ती। इसके उपयोग से असाध्य पाण्डु तथा अनुपान भेद से विविध रोगों का नाश होता है। (रस० र०)।

कालविध्वंसन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्माण-विधि—स्वर्ण पत्र २ तोला ग्रहण कर उसमें २ तोला शुद्ध पारद मिश्रित कर ८ दिन पर्यन्त भली-भाँति मर्दन करें। पुनः १ तोला शुद्ध पारद और १ तोला रजत पत्रमिश्रित कर मर्दन करें। पिष्टी बनाएँ और उभय पिष्टियों को घृतूर के पञ्चांग स्वरस में ७ दिन पर्यन्त मर्दन कर एक गोला बना लेवें और उसको घृतूर के फल के भीतर स्थापन कर उसके ऊपर ३-४ तह कपड़ा लपेट देवें और एक हाँड़ी में घृतूर का रस भर कर उसमें उक्त वस्त्र वेष्टित गोला को दोलायंत्र की विधि से ७ दिन पर्यन्त चूल्हा पर चढ़ा कर नीचे अग्नि देवें, इस प्रकार स्वेदन करें, घृतूर का रस शेष हो जाने पर पुनः रस डाल दिया करें। पुनः ६ माशा शुद्ध गन्धक का चूर्ण अंध मूषा में रख उस पर उक्त गोले को स्थापित कर गन्धक का चूर्ण डाल कर मूषा के ऊपर ढक्कन चढ़ा कर कपड़-मिट्टी करें, जब शुष्क हो जाए भूधर यंत्र में ४-४ जंगली कंडों की आँच देवें। उक्त विधि से १०१ बार आँच दे-देकर पाक करें। प्रत्येक बार नवीन मूषा का उपयोग करते रहें और कपड़-मिट्टी भी करते रहें। इस प्रकार पाक करने से सिंदूर के समान वह गोला रक्तवर्ण का हो जाता है।

पुनः उक्त सिद्ध पाक गोले को चूर्ण कर जम्भीरी नीबू के रस की ७ भावनाएँ देवें। इसी प्रकार २१ भावनाएँ त्रिकुटा के क्वाथ की और त्रिफला के क्वाथ की, कण्टकारी के स्वरस की, तथा अडूसा के स्वरस की ७-७ भावनाएँ देवें और इसी प्रकार अदरक के रस की २१ भावनाएँ देवें। इस प्रकार १० औषधियों की ७० भावनाएँ हुईं। स्मरण रहे कि प्रत्येक औषधियों की भावनाओं की समाप्ति में तथा दूसरी औषधि की भावना के आरम्भ में १-१ भावना अमरबेल के स्वरस की देते जाएँ। इस प्रकार की विधि अवलम्बन करने से इस रस की सिद्धि प्राप्त होती है। पूर्ण मात्रा—६ रत्ती।

गुण तथा उपयोग विधि—घृत के साथ सेवन करने से कास, श्वास, हिवका, त्रिविध शूल, मन्दाग्नि, समस्त ज्वर, राजयक्ष्मा, द्वन्द्वज तथा साक्षिपातिक व्याधियाँ, २० प्रकार के प्रमेह, कम्पवात, आमवात, २० प्रकार के कफज रोग, ४० प्रकार के पित्तज रोग, ८० प्रकार के वातजन्य रोग तथा अन्य वात, पित्त तथा कफज रोगों का एक मास के सेवन से नाश होता है।

शुद्ध पारद १६ भाग, शु० वत्सनाभ १ भाग। एकत्र सूक्ष्म चूर्ण कर पुनः इसमें छाग (वकरा), मोर तथा रोहू मछली के पित्तों की १-१ भावना देकर ३-३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएं।

गुण तथा उपयोग विधि—त्रिकुटा, नीबू का रस, मिश्री, मधु तथा अदरक के रस के साथ एवं शुंठी चूर्ण और गुड़ के साथ सेवन करने से रोग-समूहों का नाश होता है। निराम व्याधियों में दधि, भात तथा साम व्याधियों में मण्ड वा यूप का पथ्य देवें। वीर्य-वृद्धि के निमित्त द्राक्षा रस एवं अनार के रस के साथ देवें।

शुद्ध पारद ३ पल, शुद्ध गन्धक ३ पल, एकत्र कज्जली कर लोह की कड़ाही में मधुर आँच से १ प्रहर पर्यन्त पचाएँ और ७ पल गुडूची सत्व मिश्रित कर बारीक चूर्ण निर्माण कर और विशुद्ध मधु मिश्रित कर गोली बनाएँ और उसके ऊपर अडूसा का पत्र वेष्टित कर मधु-पूर्ण भाण्ड में स्थापित करें।

गुण—इसमें से १-१ गोली प्रातः एवं सायंकाल में सेवन करने से शुष्क पाण्डु तथा असाध्य शोथरोग का नाश होता है। (रस० यो० सा०)।

कालविध्वंसन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाण्डु रोग नाशक योग विशेष। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर १२ घंटा धूप में स्थापित कर जंभीरी नीबू के रस से मर्दन करें पुनः सर्व सम शुद्ध पारद मिश्रित कर कज्जली करें और उक्त कज्जली को कृष्ण घृतूर के फलों के उदर में भर कर दोलायंत्र में घृतूर का रस भरकर

३ दिन पर्यन्त पकाएं, जब रस जल कर शेष हो जाए तब पुनः उसमें दूसरा रस बार-बार डाल दिया करें। इस प्रकार पकाने के पश्चात् चौथे दिन फलों को निकाल कर स्वच्छ वस्त्र में बाँध कर इष्टिका यंत्र में स्थापित कर पाक करें और स्वांग शीतल होने के पश्चात् उक्त फलों को जम्भीरी के रस से मर्दन कर एक गोला बना लें और पुनः उक्त रस के बराबर शुद्ध गन्धक जम्भीरी के रस में मर्दन कर संपुट में नीचे-ऊपर उक्त मर्दित गंधक को स्थापित कर मध्य में गोला स्थापन करें और पुनः संपुट कर ऊपर कपड़-मिट्टी कर शुष्क कर लें और लघु कपोत पुट से भस्म करें। उक्त विधि से ६ बार गन्धक डालकर लघु कपोत पुट से सिद्ध करें। उक्त विधि से जारणोपरान्त इसमें सर्वे सम शुद्ध लोह भस्म मिश्रित कर १ दिन कण्टकारी के रस में खरल करें और गोला बना कर पुनः शराब संपुट में बंद कर जंगली कंडों की आग से कपोत-पुट से भस्म करें। उक्त विधि से ३ बार पुट दे-दे कर पकाएं। पुनः बृहती (बड़ी कटोरी) के रस से मर्दन कर ३ बार कपोत पुट से पकाएं। पुनः चित्रक, आक और अमलतास के रस में क्रमशः २-२ बार खरल कर लघु कपोत पुट से पाक करें। (उक्त औषधियों में से प्रथम जिसका पुट देना हो, उसके रस में २ बार दिन में घोंट कर पुनः रात्रि में २ बार पुट दें।) इसी प्रकार अन्य औषधियों का भी पुट दें। इसके अनन्तर उस रस में १० भाग शुद्ध वत्सनाभ मिश्रित कर १ दिन तक मर्दन कर वारीक चूर्ण बना कर शीशी में सुरक्षित रखें। मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—गुड़ और गोमूत्र। इसके उपयोग से पाण्डु रोग का समूल नाश होता है। (रस० र०)।
(रस मो० सा०)।

काल विध्वंशिका वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णाभ्र सत्व, कान्त लौह भस्म, स्वर्णभाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, तीक्ष्ण लौह (फौलाद) भस्म, काला सुरमा समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि गजपुट की आँच से भस्म करें। भस्म होने पर यह एक प्रकार का झाँवा-सा हो जाता है। पुनः उक्त झाँवा का १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग, हीरा ३ भाग, एकत्र जम्भीरी के रस के साथ तप्त खल में १ दिन मर्दन कर संपुट में स्थापन कर यथाविधि भूधर यंत्र में १ अहोरात्रि की आँच दें, स्वांग शीतल होने पर पुनः समान भाग में द्रुत पारद मिश्रित कर दिव्य औषधियों के अंग स्वरस से १२ घंटा भली-भाँति मर्दन कर संपुट कर पूर्ववत् भूधर यंत्र में पाक करें। पुनः तत्सम शुद्ध द्रवित पारद मिश्रित कर मर्दन करें। इस प्रकार ७ बार पाक करें और अन्त में सर्वे तुल्य भाग शुद्ध गन्धक मिश्रित कर अंध मूषा में बंद कर अग्नि में धमन कर

सुरक्षित रखें।

गुण तथा उपयोग—इस गुटिका को मुख में धारण करने से काल का भय दूर होता है। ६ वर्ष के प्रयोग से १००० वर्ष की आयु प्राप्त होती है। इसके सेवन करने वाले प्राणी के प्रस्वेद से धातुओं का रञ्जन होता है अर्थात् वे स्वर्ण में परिणत हो जाते हैं। इस गुटिका के सेवन काल में शिवाम्बु (हरीतकी क्वाथ) का पान उपयोगी होता है। इसे नियम से सेवन करने से शरीर में रस का उत्तम संक्रमण होता है। (र० ख०, रस यो० सा०)।

काल-विभाग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निमेषादि के द्वारा समय का विभाजन।

यथा—२ अयन (दक्षिणायन और उत्तरायण) मिल कर १ वर्ष, ५ वर्ष का १ युग होता है। इस प्रकार निमेष से लेकर युग पर्यन्त काल-चक्र, स्वनियमानुसार निरन्तर गतिमान रहता है। लोक में इस प्रकार के परिवर्तनशील समय को—‘काल-चक्र’ कहते हैं। (सु० सू० ६ अ०)।
दे० ‘कालमान’।

काल विषाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकोली और क्षीर काकोली। (वा० उ०)।

कालबीजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) महानिम्ब। अरुआ। (२) काकनिन्दुक। मकर तेन्दुआ। (वै० निघ०)।

कालवृन्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलत्थ। कुलथी (हे० च०)।

कालवृन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रक्त पाटला। लाल फूल की पाटल। (राज०)। (२) पेटिका। पेटारीगाछ। (रत्ना०)। दे० ‘कुवेराक्षी’।

कालवृन्ताक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काल वृन्ता।

कालवृन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } दे० ‘कालवृन्ता’।
कालवृन्ती— “ “ “ “ }

कालवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलथी। कुलत्थिका।

कालवेला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शनैश्चर वेला।

कालशाक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (?) चञ्चुक।

(भा० पू० शा० व०)। (२) नाड़ीशाक। दे० ‘चैच’।

कालशालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] काला धान। कृष्ण-शाली। (रा० नि० व० १६)।

कालशिष—संज्ञा पुं० [हि०] कालीसिरस।

काल शेष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } एक प्रकार का घोल
काल सेय— “ “ “ } जो १ भाग जल और ३ भाग दधिमिश्रित कर बनाई जाती है। (लस्सी)। रा० नि० व० १५)।

कालसङ्कषा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ९ वर्ष की कन्या।

कालसन्ध—संज्ञा पुं० [म०] कोकिलाक्षक्षुप। तालमखाना।

कालसर्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्ण वर्ण का साँप। काला साँप। (त्रिका०)।

कालसाक (ग)---संज्ञा पुं० [सं० काल शाक] (१) चञ्चुक शाक। दे० 'चेंच'। (भा० पू० शा० व०)।

पर्याय---(सं०)। कालशाक---(हि०)। कालसाग,---

टिप्पणी---तालीफ शरीफ़ी में कालशाक और मुहीत में कालसाग नाम से इसका उल्लेख आया है। खजाइन में दी हुई कालिका और कालिकाशाक संस्कृत संज्ञाएं शुद्ध कालशाक ही हैं। संस्कृत में इसे चंचु भी कहते हैं, जो नाड़ी शाक से भिन्न है। (२) नाड़ी शाक---
पर्याय---(सं०) नाड़िक, श्राद्ध शाक, कालक, कालशाक, (म०) कुलीचे माजी, (गु०) करली (ला०) फेलां-जिअम्टुबेरोसम् (Phalangium Tuberosum)। (भा० पू० शा० व०)। नारीचा, नाड़ीशाक---(Borchorus)

वर्णन---एक प्रकार का चेंच जो प्रसिद्ध है। इसका साग बनाकर रोटी से खाते हैं। प्लेफेयर ने भूल से कालसाग लिख दिया है।

गुणधर्म और प्रयोग---यह सर, रुचिजनक, कफ और शोथनाशक और वायुकारक है। (ता० श०। मुहीत)।

नोट---प्लेफेयर ने वाद अंग्रेज का अर्थ वायुकारक न करके वायुनिस्तारक (Expels winds) किया है, जो अशुद्ध है।

भावप्रकाश में लिखा है---

कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत्कफशोथहृत्।

वर्णं रुचिकरं मेघ्यं रक्तपित्तहरं हिमम्॥

नोट---नाड़ीशाक जलशयों में होती है।

दे० 'करेम्'।

कालसाद---संज्ञा पुं० [सं० कली०] पीत चन्दन। पीला चन्दन। कलवंक नामक चन्दन। (भा० पू० १ भ०)। (सं० पुं०), (१) कृष्णसार मृग। काला हिरन। (२) कृष्ण अगुरु, काली मगर। (३) तिन्दुक। तेन। (वै० निघ०)। (४) हरिताल 'हरताल'।

कालमुवना---संज्ञा स्त्री० [म०] काला सेम। कृष्ण निष्पाव। कालसेगुण---संज्ञा पुं० [व०] शाक वृक्ष। सागवान। कालस्कन्ध---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तिन्दुक। तेन। दे० तेन्दू। (२) विटखदिर। रीवाँ। (३) उदुम्बर। गूलर। (रा० नि० व ११)। (४) जीवक। (५) तमालपत्र। तेजपात। (वै० निघ०)। (६) काल ताल। ताड़ भेद। (मे०)।

कालस्कन्धा---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तिन्दुक। तेन। (घ० नि०)।

कालस्कर---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तिन्दुक वृक्ष। (२) कारस्कर। कुचला। (३) तमाल वृक्ष। तमाल गाछ। (रा० नि० व० १)।

कालस्था---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } पाटला। पाड़ल।
कालस्थाली---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (भा० पू० १ भ०)
कालहवाह---संज्ञा पुं० [?] कावुली हड़। कावुल देश की हरीतकी।

कालहारक---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महाकाल लता। लाल इन्द्रायण। कोंवर।

कालहीन---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोध्र वृक्ष। लोध का पेड़।

कालहैमिका---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कनकधुस्तुर। कनकधतूरा।

कालक्षय---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समय का दुरुपयोग।

कालक्षा---संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कासमर्द। कसौंदी।

कालज्ञ---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुक्कुट। ताम्रचूड़। मुरगा। (२) ज्योतिषी। (ध० निघ०)।

कालज्ञान---संज्ञा पुं० [सं० कली०] समय का पहचान। समय का ज्ञान। वह ज्ञान जो रोगी के व्याधि तथा मृत्यु के पूर्व जाना जाय। इसका विशेष विवरण अरिष्ट में वर्णित है।

कालंकन---संज्ञा पुं० [(१) सं० कालं कृत] गिरीडच फल वृक्ष।

काला---संज्ञा पुं० [?] स्नुहि भेद। त्रिधार सेण्ड। तिधारा सेहुँड़। (२) (म०) भल्लातक। भिलावाँ। भेला। (३) (गु०) मरिच। काली मिर्च।

कालाअकोला---संज्ञा पुं० [द०] } कृष्णअंकोल। कालाढेरा।
कालाअकौला---संज्ञा पुं० [हि०] }

कालाअगर---संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण अगुरु। काली अगर।

कालाअगार---संज्ञा पुं० [हि०] आलीअगार।

कालाअडलसा---संज्ञा पुं० [म० बम्ब० हि०] कृष्ण निर्गुण्डी। काला सम्हालू।

कालाअडलसो---संज्ञा पुं० [गु०] काला अडूसा।

काला अडुलसा---संज्ञा पुं० [हि०] नील निर्गुण्डी। काला सम्हालू।

काला अडूसा---संज्ञा पुं० [हि०] } (२) कृष्ण
वासक।

कालाअडूलसो---संज्ञा पुं० [गु०] (१) नील निर्गुण्डी। काला सम्हालू। (२) कृष्ण वासक

काला अपराजिता---संज्ञा पुं० [हि०] कृष्णकान्ता।

काला अबरख---संज्ञा पुं० [हि०] } कृष्णाभ्र।

काला अभ्रक---संज्ञा पुं० [हि०] } (Black Mica)

काला अरर---संज्ञा पुं० [हि०] } कृष्ण आढकी। काली

काला अरहर---संज्ञा पुं० [हि०] } अरहर।

कालाअरुसा---संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण आटरुष। काला अडूसा।

कालाअरुस्त-फैकून---संज्ञा पुं० [यू०] शैल की एक भेद। (लु० क०)।

कालाअसेलू---संज्ञा पुं० [नैपाल] काला अडूसा तथा काली कटसरैया। नील झिण्डी।

कालाआजार--संज्ञा पुं० [उर्दू] कालाआजार। कालज्वर।

पर्याय--(अं०) डमडम फीवर। आसाम फीवर।
बंगाल फीवर। ब्लैक फीवर। (Black Fever)

एक प्रकार का दुष्ट ज्वर जो आधुनिक विज्ञान के अनुसार खटमल के दंशन से उत्पन्न होता है। किसी के अनुसार यह पुरातन मलेरीआई ज्वर है। इस ज्वर का रोगी क्रमशः दुबल होता जाता है। यकृत और प्लीहा की वृद्धि होती है। ज्वर का आक्रमण बार-बार होता रहता है। और उसकी गति अत्यन्त मन्द होती है।

इस ज्वर का प्रसार प्रायः भारतवर्ष के विभिन्न नगरों, ग्रामों में हो गया है। डाक्टर ब्रह्मचारी ने इस ज्वर के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्वेषण किया है और उन्होंने इस ज्वर के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी दो पुस्तकें लिखी हैं। उनका कथन है कि काला आजार में प्रयुक्त संक्रिया, क्वीनीन इत्यादि औषधि जो मलेरिया में दी जाती है उन से कुछ भी लाभ नहीं होता; किन्तु उनके आविष्कृत यूरिया स्टीबेमाइन से अव्यर्थ लाभ होते देखा गया है।

काला-इन्द्रजी--संज्ञा पुं० [हिं०, बं०, मं०] काला कुड़ा।
कृष्ण कुटज। नेरियम-टोमेन्टोसम (Nerium Tomen-
tosum)

काला-इपै-किङ्गु--संज्ञा पुं० [ता०] लाङ्गली। करि-
यारी। कलिहारी। शक्रपुष्पिका। (इ० मे० मे०)।

काला-उम्बर--संज्ञा पुं० [मं०] काकोदुम्बर। कठूमर,
कठगूलर।

काला ऊख--संज्ञा पुं० [हिं०] कालागन्ना। दे० 'ईख'।
कजली ईख।

काला एरोमेटिका--संज्ञा स्त्री [ला०] द्रव्य विशेष।

काला-ओकड़ा--संज्ञा पुं० [हिं०] कालावकृत नामक द्रव्य
विशेष।

काला कट्वा (डवा)--संज्ञा पुं० [बम्ब०, मं०] वृक्ष
विशेष। भुङ्कुड़। (मं०) बरथो, मोरसाल, भौलन,
(डाइमाक ii. 193 पृ०) दे० 'भुङ्कुड़'।

काला-कटलक--संज्ञा पुं० [हिं०] बर्बरी। तुलसी भेद।

काला-करपा--संज्ञा पुं० [मं०] भुङ्कुड़। मोरसाल।
भ्रमर छल्ली। दे० 'भुङ्कुड़'।

काला कस्तूरी--संज्ञा पुं० [मं०] मुस्कदाना। लता कस्तूरी।
(इ० मे० मे०)।

कालाकात--संज्ञा पुं० [बं०] काला कत्था।

काला कासविन्दा--संज्ञा पुं० [मं०] काली कसौदी।

काला कासौदा--संज्ञा पुं० [बं०] यह विषघ्न एवं अर्श
में लाभजनक है। दे० 'कसौदी'।

काला किराइत--संज्ञा पुं० [मं०] कस्तुल। (Hapanthus
Verticullaris) (डाइमाक iii ३ पृ० ४७)।

काला कुचिला--संज्ञा पुं० [हिं०] कृचला भेद-कारस्कर।

कालस्कर।

कालाकुटकी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] काली कुटकी।

कालाकुडी--(जंगली)--संज्ञा पुं० [गु०] भुङ्कुड़। मोर
साल। (डाइमाक ii २, १९३)। दे० 'भुङ्कुड़'।

काला कुड़ा--संज्ञा पुं० [हिं०] कोरैया। कुटज भेद। कृष्ण
कुटज। (डाइमाक ii २, पृ० ३९०)।

कालाकुडु--संज्ञा पुं० [गु०] काला कुड़ा। कोरैया। कुटज
भेद। कृष्ण कुटज।

काला कुरवह--संज्ञा पुं० [बम्ब०] दे० 'भुङ्कुड़'।

काला कुरण्ड--संज्ञा पुं० [?] द्रव्य विशेष। काननित।

कालाकूट--संज्ञा पुं० [हिं०] कडुआ कूट। एक जड़ जो
विपैली होती है। (लु० क०)।

काला केकड़ा--संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण कर्कट। दे० 'केकड़ा'।

काला केला--संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण कदली। दे० 'कदली'।

काला खजूर--संज्ञा पुं० [हिं०] कडुआ खजूर। (डाइमाक
१ पृ० ३३२)। बकाइन।

काला खापड़ो (रो)--संज्ञा पुं० [गु०] खपर। खपरिया।
संग बसरी। (Carbonate of Zinc)

काला खेनबोन--संज्ञा पुं० [वर०] प्रव्य विशेष दे० 'लूनक'।

काला गन्ना--संज्ञा पुं० [हिं०]

काला गाँडा--संज्ञा पुं० [हिं०] इक्षु भेद। कजली ईख।

काला गेंडा--संज्ञा पुं० [हिं०]

काला गाछ--संज्ञा पुं० [मं०] क्षुप विशेष।

काला गुरु--संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण अगुरु। कालेयक।
काली अगर। (ध० नि०; रा० नि० व० १२)।

काला गूलर--संज्ञा पुं० [हिं०] जंगली अंजीर।

कालाग्नि--संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] रुद्राक्ष। पल्लवक।
(के०)।

कालाग्नि भैरव रस--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर चिकित्सा में
प्रयुक्त योग। निर्ममाण-विधि--शुद्ध पारद, शुद्ध
गन्धक समान भाग में ग्रहण कर कज्जली करे, पुनः
इसमें गोखरू के रस या ववाथ की भावना देवे, जब शुष्क
हो जावे, तब इसमें समस्त चूर्ण के बराबर शुद्ध ताम्र
चूर्ण तथा ताम्र चूर्ण का अष्टमांश शुद्ध विष (सिंगिया),
और शुद्ध हिंगुल १ भाग, शुद्ध धुस्तुर बीज २ भाग, शुद्ध
हरिताल ५ भाग, शुद्ध मैनशिल ३ भा०, भर्जित सुहागा
३ भा०, शुद्ध खपरिया ३ भा०, शुद्ध जैपाल बीज, ३ भा०
स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ भा०, लौह भस्म १ भा०, वंग
भस्म १ भा०। एकत्र आक के दुग्ध में मर्दन करें। पुनः
दशमूल वा पंचमूल के क्वाथ से यथाक्रम १ प्रहर मर्दन
कर चणक प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग--यथोचित अनुपान द्वारा सेवन करने
से समस्त साक्षिपातिक ज्वरों का नाश होता है।

पथ्य--शीतल जल तथा ज्वर शांत होने पर दधि भात

देवें। (भैष० र० ज्व० चि०)।

कालाग्नि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भगन्दर चिकित्सा में प्रयुक्त पारद योग। निस्मरण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक समान भाग में ग्रहण कर कज्जली करें पुनः इसमें—शुद्ध तूतिया और नाग भस्म समान भाग में मिश्रित करें पुनः समान भाग में जीरा और सेंधा नमक चूर्ण कर मिश्रित करें और कड़ई तरौई, (कोशातकी कटु) के रस में मर्दन कर पिष्टी बनाएँ मात्रा—१-२ रस्ती। इसको भक्षण तथा लेपन से भगंदर का शीघ्र नाश होता है। (रस० र०)।

कालाग्नि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ चिकित्सा में प्रयुक्त रस योग। निस्मरण-विधि—(१) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक की कज्जली करें पुनः इसमें समान भाग में कान्त लोह भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म, कृष्णाभ्र भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म मिश्रित कर गोला बनाएँ और बन्ध्या कर्कोटकी के कन्द में यथाविधि स्थापन कर कपड़-मिट्टी करें और भूधर यंत्र में लघु पुट से भस्म करें और पुनः इसमें सबका $\frac{1}{8}$ भाग शुद्ध विष (सिंगिया) का चूर्ण मिश्रित कर उपयोग में लाएँ। मात्रा—उड़द प्रमाण।

गुण तथा उपयोग—पिप्पली चूर्ण और मधुयुक्त सेवन करने से विसर्प का १० दिन में नाश होता है।

(२) हीरा, पारद (रस सिद्ध), ताम्र भस्म, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, चाँदी भस्म, तीक्ष्ण लोह भस्म क्रमशः वृद्धि भाग में ग्रहणकर मर्दन करें पुनः इसमें १ भाग शुद्ध विष का चूर्ण मिश्रित कर चित्रक और विजौरा के रस में ३-३ दिन खरल करें इसी प्रकार सहिजन के रस और पिप्पली के क्वाथ में ३-३ पुट देवें। पुनः अदरक के रस की ३ भावनाएं देवें, जब शुष्क हो जाय तब $\frac{1}{2}$ भाग भजित सुहागा और $\frac{1}{2}$ भाग विष (सिंगिया) का चूर्ण मिश्रितकर पुनः त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, चातुर्जात, सेंधा नमक, सोंचर नमक और धूम सार (कुकूआ) का चूर्ण मिश्रित कर विजौरा और सहिजन के रस में खरल कर ३-३ रस्ती प्रमाण की गोलियां बनायें।

गुण तथा उपयोग—यथोचित अनुपान से सेवन करने से अग्निमान्द्य, कास, श्वास, काश्य एवं स्थूलता इत्यादि विकार शान्त होते हैं। एक मण्डल तक सेवन करने से साध्य एवं असाध्य रोगों का नाश होता है।

(३) **कुष्ठनाशक योग विशेष**। निस्मरण-विधि—शुद्ध हरिताल, शुद्ध पारद, शुद्ध मैनसिल, ताम्र भस्म प्रत्येक २ भाग, शुद्ध गन्धक ८ भाग, एकत्र खरल कर काँच कूपी में भर कर बालुका यंत्र से पाक करें ४ प्रहर के पश्चात् स्वांग शीतल होने पर शीशी तोड़ कर निकालें। मात्रा—१ रस्ती।

गुण तथा उपयोग—यथोचित कुष्ठहर अनुपानों से सेवन करने से मण्डल अर्था १४, २१ वा ४९ दिन के उपयोग से समस्त कुष्ठों का नाश होता है।

(४) शुद्ध ताम्र चूर्ण १६ तोला ग्रहण कर गोरख मुण्डी और भांगरा के रसों की ७-७ भावनाएं देवें और टिकियां बना लेवें। पुनः टिकियों को संपुट में स्थापन कर सकोरे के निम्न (तल) में छिद्र करें और उक्त छिद्र में लोहे का तार डाल देवें और ऊपर कपड़मिट्टी की तह चढ़ावें और शुष्क कर लेवें। पुनः पाताल यंत्र में रख कर द्रव टपका लेवें। पुनः वह ताम्र द्रव निकाल कर उसका पत्र बनाएँ और उस पर नकछिकनी का कल्क लेपन कर पूर्वत क्रिया करें। इस प्रकार ३ बार करें पुनः उसके पत्रों पर सूअर की विष्टा लेप कर तपाएँ। और ७ बार सूकर मूत्र में बुझाएँ। पुनः इसमें शुद्ध पारद, हिंगुल, गन्धक, हरिताल और संखिया के सत्व द्वारा निकाला हुआ तेल ४-४ माशा ग्रहण कर आक के दूध में खरल कर उक्त ताम्र पत्र पर लेपन करे और यथाविधि संपुट कर ३ प्रहर आँच देवें। इस प्रकार ४९ बार आँच देकर सिद्ध करें। पुनः इसमें—अकरकरा, पीपल, हल्दी और मस्तगी १-१ तोला चूर्ण कर मिश्रित करें और यथाविधि ४-४ माशे की गोलियां बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—प्रातःकाल १ गोली मधु और मिश्री युक्त सेवन करने से—क्षय रोग, पाण्डु, कास, श्वास, और सन्निपात का नाश होता है। यह वार्षक्य दोष एवं अकाल मृत्यु नाशक है। (रस० यो० सा०)।

काला घास—संज्ञा पुं० (?) घास विशेष।

काला चंग्र—संज्ञा पुं० (म०) जोंकमारी। कासनी।

काला चट्टा—संज्ञा पुं० (म०) चाय (Camelia Theifera)

काला चंदन—संज्ञा पुं० (हि०) कृष्ण चन्दन।

काला चंडारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मञ्जिष्ठा। मजीठ। (लु० क०)।

काला चित्रक—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण चित्रक। काला, चीता।

काला चींटा—संज्ञा पुं० [हि०] काला च्युंटा पिपीलिका विशेष।

काला चीता—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण चित्रक। सीतरजे स्याह।

काला चोकमा—संज्ञा पुं० [बं०] वनस्पति विशेष। (इ० है० गा०)।

काला छड़ीला—संज्ञा पुं० [पुं०] कृष्ण शैलेयज। (Cetraria Islandic)

काला छोला—संज्ञा पुं० [बं० हि०] काला चना। नखुद स्याह।

काला जम्बूर—संज्ञा पुं० [हि० उर्दू०] कृष्ण भ्रमर। काला भौरा।

काला जाजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपकुञ्चिका।
मँगरेला। (भा० म० १ भ० आग० ज्व० चि०)।

'काला जाजी तुसगुड़ा'। (२) स्याह जीरा। (लु० क०)।

काला जाम—संज्ञा पुं० [वं०] जम्बु। जामुन।

काला जोर—संज्ञा पुं० [प०] सज्जी। सज्जिका। (लु० क०)।

काला जोरा—संज्ञा पुं० [हि० काला + जीरा] कृष्णजाजी।
दे० 'जीरा'।

काला जोरी—संज्ञा पुं० [द०] काली जीरी। दे०

काला जोरी—संज्ञा पुं० [हि०] 'करजीरी'।

काला ज्वार—संज्ञा पुं० [हि० वं०] जूनाल। मकाई।
भुट्टा। (Bicolour)। (इ० हैं० गा०)। काली
जोन्धरी।

कालाञ्जन—संज्ञा पुं० [हि०] कुलिजन। खुलञ्जान।
खोलञ्जान।

कालाञ्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काला
कपास। कृष्ण कपास। काल कपास। पर्याय—(सं०)
अञ्जनी। काली। कृष्णाञ्जनी। कृष्णाभा। कृष्ण
कपास। नीलाञ्जनी। रेचनी। शिलाञ्जनी।

गुग्गु—कटु, ऊष्ण, अम्लपाकी, कृमिघ्न, आम दोष
नाशक, आपानावर्त नाशक तथा जठर रोग नाशक है।
(रा० नि० व० ४)।

कृष्ण कर्पासिका—कटु, कृमिघ्न, मलदोष (आम दोष),
हृद्रोग तथा उदर रोग नाशक है। (वै० निघ०)। दे०
'कपास'। (२) नरमा। वन कपास। (३) नीलिनी।
दे० नील।

काला डामर—संज्ञा पुं० [हि० द० ड०] धूप। रजन भेद।
(Canarium Strietum)

दे० 'धूप'। (डाइमाक १, पृ० ३९४)।

काला डेरा—संज्ञा पुं० [हि० वं०] कृष्ण अंकोट।

काला डोकरा—संज्ञा पुं० [देश०] धातकी। धव।

कालाण्डज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल। कोकिला पक्षी।

काला तितमलिया—संज्ञा पुं० [कुमायू] बड़ा गोखरू।
दे० 'गोखरू'।

काला तिल—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण तिल। दे० 'तिल'।

कालातीतप्रसव—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] वैकालिक
प्रसव। वह प्रसव जो निश्चित समय पर न होता हो।

काला तीतर—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण तित्तिर।

काला तुङ्ग—संज्ञा पुं० [ते०] मुस्तक भेद। नागरमोथा।

काला तुलसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] काली तुलसी। दे०
'तुलसी'।

काला तुर्बुद—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण त्रिवृत्त] श्यामा।
निशोथ का भेद जो काले रंग का होता है।

कालातूत—संज्ञा पुं० [हि० उ०] काला सहतूत। दे० 'तूत'।

कालातूत—संज्ञा पुं० [हि०] काला सहतूत। कृष्ण तूत।
दे० 'तूत'।

काला तेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [वं०] श्यामा त्रिवृत्त। काली
निशोथ। दे० 'निशोथ'।

काला दाणा—संज्ञा पुं० [गु०] दे० काला दाना।

काला दाना—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण बीज।

पर्याय—(सं०)। कृष्णबीज, श्याम बीज—(हि०)

काला दाना, मिरचाई के बीज (द०) जिरकी के बीज,

कोली जिरकी के बीज—(अ०) हम्बुलील, कुर्तुम हिंदी,

दम्भतुल उश्शाक—(फ्रा०) तुलमे नील, तुलम कबकू।

(वं०) कालादाना नील कोलोमी,—(ता०) कोडि

काकटाड विरै, जिरिकि विरै (१) (ते०) जिरिकि वित्तुल,

कोल्लि वित्तुल—(गु०) कालादाणा, कालो कुंपो, काला

कुंपा—पोखंदर, (मरा०) नीलपुष्पी, नील बेल—(ले०)

आई पोमिया हेडरेसीया (Ipomaea Hederacea,

Jaeq.) फार्बिटिसनिल (Pharbitis Nil, Choirs (अं०)।

काला दाना (Kaladana)

अर्थ, व्युत्पत्ति आदि—मात्र नील शब्द से नीली नामक

वनस्पति और उससे बने रंग (Indigo) का ग्रहण

होता है और नीलफर शब्द के पूर्व पद के रूप में भी यह

आया है तथा उपर्युक्त हम्बुलील एवं तुलमे नील अरबी

फ़ारसी शब्दों के उत्तर पद में विशेषण रूप से भी आया

है। अस्तु कभी-कभी भूल से इनका व्यवहार क्रमशः

नील और कूई के अर्थ में किया जाता है। दक्षिणी संज्ञा

जिकी और तामिल काककणाड वा काककटाड के लिये

अपराजिता और हिंदी कालादाना संज्ञा के लिए कलौजी

शब्द में दी हुई संज्ञा निर्णायनी टिप्पणी अवलोकन करें।

खैरुल तजारुब में तुलम नीलफर संज्ञा का व्यवहार कालादाना

के अर्थ में किया गया है। परंतु तुलफतुल मोमिनीन

में हम्बुल् अरुस का नाम लिखा है। मरुजन और मुहीत

में कालादाने की फ़ारसी संज्ञा तुलम नीलफर पीच लिखी

है। मरुजन में इसकी अन्य हिंदी संज्ञा जीरकी और मुहीत

में इसके सिवा कसू और कौआडोरी (त० शं०) भी लिखी

है। मरुजन में बंगला नाम झाड़मिर्चा और मुहीत में

झारमिर्चा लिखा है। मुहीत में इसकी फ़ारसी संज्ञा पेचः

भी लिखी है। मुहीत में कालादाना शब्द में इसकी हिंदी

संज्ञा कौआडोरी की जगह डोडी और दधिपुष्पा और

खट्वा प्रभृति कतिपय संस्कृत संज्ञाएँ अर्थ सहित दी हुई

हैं। मुहीत और खजाइन (भा० ७) में इसकी अँगरेजी

संज्ञा आइयूमिया सुरुलया या यूमिया सुरुलया लिखी है

जो अँगरेजी नहीं, अपितु उसकी लेटिन संज्ञा है और शुद्ध

आइपोमिया सीरुलिया (Ipomoea Caerulea),

है। मरुजन और मुहीत में हम्बुलील के वर्णन में अपराजिता

को इसका एक अन्यतम भेद स्वीकार किया है और बुस्ता-

नुल् मुफ़रिदात में कालादाना शब्द को भी हरमल की एक प्रसिद्ध संज्ञा लिखी है जो वस्तुतः ठीक नहीं है। सुतरां विभिन्न तिब्बी ग्रंथों में उक्त संज्ञा का व्यवहार तीन विभिन्न ओषधियों के लिए किया गया मिलता है। उनमें से प्रथम उपर्युक्त कृष्णबीज नामक ओषधि है और द्वितीय अपराजिता और तृतीय हरमल। परंतु पूर्ण खोज करने पर यह ज्ञात हुआ कि हरमल के लिए उक्त संज्ञा का व्यवहार अशुद्ध एवं भ्रामक है और अपराजिता को कालादाने का भेद समझना भी कम भ्रामक नहीं है। अतः भविष्य में कालादाना संज्ञा का व्यवहार केवल कृष्णबीज के लिये ही करना समीचीन प्रतीत होता है।

(N. O. Convolvulaceae)

उत्पत्ति स्थान—समग्र भारतवर्ष।

वर्णन—एक उद्भिद जो बरसात में उत्पन्न होता है। इसकी बेल चढ़ती है। भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में यह वनस्पति बोई जाती है और अपने आप भी उत्पन्न होती है। इसकी बेल इस्कपेचा की तरह होती है और आस-पास की चीजों पर फैल जाती है। डालियां पतली और हरी तथा लोमश होती हैं। पत्ते हरे और इस्कपेचे के पत्तों से बड़े होते हैं और हर पत्ते की जड़ इस्कपेचे की तरह तथा नीला फूल लगता है। इसके बीजों को कालादाना कहते हैं क्योंकि ये कृष्ण वर्ण के होते हैं। ये बीज एक कोष के भीतर आवेष्टित होते हैं और प्रत्येक कोष में तीन बीज निकलते हैं। ये बीज तिकोनिया होते हैं। (मखन)

नफीसी के अनुसार पुष्प आकृति में कीफ़ वा छूही की तरह होता है। फूल के झड़ जाने पर हरमल के कोष की तरह तीन जोफ़वाला फल कोष प्रकट होता है।

मुहीत के अनुसार बीज काले और चने का हव्वुरासन वा हव्वुल् आस के बीज से छोटे होते हैं। इसके भीतर सफेद गिरी होती है। मखन के अनुसार तीन वर्ष तक इसकी शक्ति स्थिर रहती है।

मखन और मुहीत दोनों में अपराजिता को इसका एक भेद लिखा है और यह लिखा है कि यह अधिक रेचक है। तजकिरतुल् हिंद में छोटा-बड़ा भेद से कालादाना दो प्रकार का लिखा है। ऐसा ही मुहीत में आइयूमिया सुखलया शब्द में भी लिखा है। खजाइन में लिखा है कि छोटा आध ग्रेन के बराबर और बड़ा उससे द्विगुण होता है। बीज में रेचक की शक्ति अत्यधिक होती है। इसलिए छोटे बीज औषध के काम में लेते हैं। बीज-चूर्ण काली मिर्च चूर्णवत् और काले रंग का होता है। स्वाद मधुर और क्षोभक होता है और वह मुंह में लिपट जाता है। हल्लमुश्किलात में लिखा है कि हिंदुस्तानी कालादाना खुरासानी से बड़ा और अत्यंत प्रभावकारी होता है।

शरह मूजिज में इब्नुल् मुबारक ने लिखा है कि कड़ा, चिकना और नया वुस्तानी बीज सर्वोत्तम है।

इतिहास—प्राचीन मुसलमान चिकित्सकों ने हव्वुशील नाम से उक्त ओषधि का वर्णन किया है। अस्तु, मखन और मुहीत एवं मुफ़रिदात नासिरी में भी उक्त शब्द में इसका उल्लेख मिलता है। मुहीत में कालादाना में और आइयूमिया सुखलया संज्ञाओं में क्रमशः वैद्यक एवं डाक्टरों मतानुसार इसका पृथक् उल्लेख भी किया गया है।

रासायनिक संगठन—इसमें फार्बिटिसीन नामक एक राल लगभग ८ प्र० श० होती है, जिसकी रचना जलापा के रालवत् होती है। गुणधर्म में भी कालादाना जलापा के समान है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष (मखन), द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष (नफीसी) वा प्रथम कक्षा में उष्ण और रुक्ष वा तृतीय कक्षा में शीतल और रुक्ष वा प्रथम कक्षा में शीतल और तृतीय कक्षा में रुक्ष (मुहीत)। उलवी खां लिखित तुहफतुल उलवियः व एजाहुल् अलियः नामक मूजिज के भाष्य में उल्लेख है—

حب النیل حار یابس فی انشائیه وقیل
فی الاولی و هو الیس بعید وقیل فی
الاشائیه وقیل بارد و هو البعید

अर्थात् द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष होने की उक्ति अनुचित नहीं, परंतु तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष बताना वा शीतल निर्दिशित करना अनुचित एवं कल्पनातीत है। **हानिकर्ता**—हृदय और यकृत को हानिकर है तथा उत्कलेश, मरोड़ और व्याकुलता उत्पन्न करता है।

दर्पण—हृद का वक्कल, गुलाब का फूल और बादाम का तेल। वैद्यक के अनुसार घी में भून लेने से इसकी शुद्धि होती है।

प्रतिनिधि—तैल में आधा (वा समभाग) इंद्रायन का गूदा और पृष्ठ भाग हजर अरमनी।

ग्रह—मंगल। **विशिष्ट कर्म**—सांद्र दोषों का तीव्र रेचक और शरीर संशोधक। **मात्रा**—वयस्क मात्रा ३॥ माशा है। तिसोथ और सक्रमूनिया के साथ १॥। मा० या २॥ मा०। मतांतर से ४॥ मा० से अधिक सेवन से मृत्युकारक है। परंतु दररुलमुफ़ाखिर के लेखक के अनुसार ४॥ मा० से ९ मा० तक देने से किसी को अधिक रेचन आया किसी को कम। परंतु कोई मरा नहीं। बल्कि डॉक्टर लोग तो ३० ग्रेन से एक आउंस तक देते हैं, जो ढाई तोले के लगभग होता है। कनाश मंसूरी में जकरिया राजी ने लिखा है कि छिलके उतारने के बाद ३॥ मा० से १०॥ मा० तक उपयोग में लावें।

गुणधर्म तथा प्रयोग—इसके प्रयोग से छीप (बहुक अवैज) और फुलबहरी वा शिवत्र का नाश होता है।

परंतु इसके खाने से आकुलता और व्यग्रता उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि यह आंतों में अधिक समय तक ठहरता है और सेवन काल से चौबीस घंटे तक दस्त नहीं लाता और उत्क्लेश उत्पन्न करता है। अपनी विषाक्त शक्ति से सांद्र दोषों एवं श्लेष्मा और वायु का रेचन द्वारा उत्सर्ग करता है और विष के कारण ही कृमि और कद्दूदाने को नष्ट करता एवं निस्सरित करता है। (नफ्रीसी)

इसके लेप से छीप वा झाड़ (बहक) और श्वित्र के दाग मिट जाते हैं। इसके खाने से यकृत और प्लीहा के अवरोधों का उद्घाटन होता है। यह चाहे कितना ही सांद्रीभूत श्लेष्मा भी हो, उसका रेचन द्वारा उत्सर्ग करता है। विशेषतः निसोथ के साथ यह शरीर का पूर्णतया शोधन करता है। यह वातरक्त, संधिशूल एवं समस्त शीत जन्य व्याधियों का निवारण करता है। यह उदर-जात कृमियों (क्षतजात कृमि) और कद्दूदाने को निकालता है और छीप, श्वित्र, वातरक्त, खर्जू और दुष्ट व्रणों को लाभकारी है। सक्रमूनिया के साथ पित्त एवं सांद्र दोषों को विरेचन द्वारा उत्सर्ग करता है और हड़ के साथ वायु का रेचन करता है। मुआलिजात बुकराती के लेखक ने लिखा है कि १०॥ मा० कालादाने का चूर्ण पीने दो तोले खाँड़ में मिलाकर तीन दिन फाँक लेने से आर्द्र खर्जू का नाश होता है। यह अत्यंत परीक्षित है। (मरुजन)।

किसी-किसी के मत से कालादाने को कूट-छानकर घी में चिकना कर के ६ मा० वा न्यूनाधिक मात्रा में लेकर खाँड़ वा मिश्री मिलाकर उष्ण जल से फंका दें और इसी प्रकार तीन दिन तक फाँकें। इससे हर प्रकार का खर्जू आराम हो जाता है। इससे किसी-किसी को वमन भी होता है। वरन् विरेक् तो अवश्य ही आते हैं। यदि युवा पुरुष को तीव्र रेचन की आवश्यकता हो, तो एक ड्राम काला दाना और एक ग्रेन उसारारेबंद और १० ग्रेन सोंठ मिला कर देने से ६-७ दस्त अच्छी तरह से आ जाते हैं।

• पेट में इससे मरोड़ पैदा हो जाती है। पर यदि इसको पीस कर रात्रि भर बादाम के तेल में तर रखकर प्रातःकाल सेवन करें तो मरोड़ पैदा न हो। यदि इससे अत्यधिक दस्त आने लगें और बंद न हों, तो शीतल जल पीने को दें और वल्य एवं शीतसंग्राही द्रव्य खिलाएँ। परंतु उस अवस्था में जब कि भीतर से शरीर पूर्णतया शुद्ध हो चुका हो।

वैद्यक के मत से कालादाना कफ, पित्त और विष के विकारों को दूर करता है तथा यह अर्श और बावगोला (गुल्म) में लाभकारी है। यह गुदा और उदर के कृमियों को निकालता है और ज्वर, पादशूल और खर्जू को नष्ट करता है। (मुहीत) सवा माशे से पीने चार माशे तक कालादाना पीसकर फंकी देने से रेचन आते हैं और मूत्र

का प्रवर्तन होता है। कालादाने के ढाई रत्ती सत में आधा या एक रत्ती रसकपूर मिलाकर देने से या केवल ढाई रत्ती सत देने से वमन होता है। यकृत की शिथिलता से हुए मलबंध वा मलावरोध निवारण के लिए कालादाने का सत बहुत उपकारी है। ३॥ मा० कालादाना विरेचनार्थ जलापा के समान उपयोगी है। आन्त्र शोथ रोगी को कृष्ण बीज का रेचन वजित है। ३॥ मा० कृष्णबीज और २॥ रत्ती सोंठ के चूर्ण में थोड़ी सी खाँड़ मिला कर देने से उत्तम रेचन होता है। कालादाना और इमली का सत प्रत्येक १७॥ तो०—इसमें से उचित मात्रा में देने से ढाई से तीन घंटे तक पाँच-छः उत्तम रेचन (दस्त) आते हैं जिससे दूषित कफ और पित्त निस्सरित हो जाते हैं। कोई इनको सेंक-पीस कर फंकी देते हैं। (खजाइन)

अनुभूत योग—कालादाना भजित ३ तो०, इमली की गूदी १ तो०, जीरा सफेद ६ माशा, मिश्री २ तो०, इलायचीदाना ६ माशा, धनियाँ ३ मा०, दालचीनी ३ मा०, एकत्र पीस कर ३ माशा के अनुपात से सेवन करें। और अर्क सोंफ का अनुपात उचित प्रमाण में रखने से मल का विबन्ध दूर होता है।

कालानल रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपात ज्वर में प्रयुक्त योग।

निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, गन्धक, ताम्र भस्म, मुहागा भजित, मैन्शिल, हिङ्गुल, सर्पविष, देवदारु, शुद्ध वत्सनाभ प्रत्येक समान भाग। सर्व तुल्य भाग ताम्र भस्म। एकत्र मर्दन कर इसमें कल्हारी की जड़, कड़वी तरौई, रक्त चित्रक, गूलर, भुई आंवला, सोनापाठा और धतूर मूलोत्थ रस की १-१ भावनाएँ दें। पुनः शुष्क होने के उपरान्त, इसमें छाग, शूकर, मोर, महिष और रोहित मत्स्य के पित्तों की १-१ भावनाएँ दें। इसी प्रकार १ भावना अदरख के रस की दे कर चना प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—सायं प्रातः १-१ गोली अदरख के रस के साथ सेवन करने से क्षण मात्र में सान्निपातिक ज्वरों का नाश होता है। इसके अतिरिक्त अन्य वात-कफ जनित रोग क्षण मात्र में शांत होते हैं। (भैषर० ज्व० चि०)।

कालानल रस (महान्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वराटिका भस्म, शंख भस्म, शुक्ति भस्म, मुक्ता भस्म, (मुक्ता शुक्ति), गोखरु, छाग दन्त, शशक दन्त एवं खुर, मृगदन्त, श्वान दन्त, समान भाग में एकत्र करें और मृत्तिका की हाँड़ी में बंद कर दग्ध करें। पुनः उक्त भस्मों के समान वैक्रान्त भस्म, कान्त लौह भस्म, और ताम्र भस्म मिश्रित करें। पुनः सिंह, व्याघ्र, मृग, छाग, मत्स्य, रोहित

मत्स्य, शशक एवं सर्प के पित्तों की भावना देकर २ सर्षप प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—इसके उपयोग से क्षण मात्र में घोर सन्निपात ज्वर का नाश होता है। इसके प्रभाव से शीघ्र ही दाह उत्पन्न होती है अतः नारिकेल डाभ का पानी देवें। और चैतन्यता होने पर अन्य दाह शांति कर उपचार करें। यथा मद्य, अन्न, इक्षुरस, मिश्री, गुलाब जल युक्त शर्वत एवं खस, गुलाब के इत्रों का आघ्राण सुगन्धित पवन इत्यादि सेवन कराएँ। इसके सेवन से कास, श्वास, हृद्रोग इत्यादि विकार शीघ्र ही शान्त होते हैं। (रस० यो० सा०)।

काला नाग—संज्ञा पुं० [हि०] काला साँप जो अत्यन्त विषैला होता है। दर्बीकर साँप। दे० 'सर्प'।

काला नाग केसर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नागकेसर'।

काला निमक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कालानमक'।

काला निर्गुण्डी—संज्ञा स्त्री० [हि०] नील फूल की निर्गुण्डी। दे० 'निर्गुण्डी'।

काला निसोत्तर—संज्ञा पुं० [हि०] श्यामा। काली निशेथ। दे० निशेथ।

काला निसोथ—संज्ञा पुं० [हि०] श्यामा। दे० 'निशेथ'।

काला नुनादी—संज्ञा स्त्री० [सं० प्र०] (१) चटक पक्षी। कलविक। गौरैया। (२) चातक पक्षी। पपीहा। (मे०)। (३) कपिञ्जल पक्षी। (४) वनकुक्कुट। जंगली मुरगा। (वै० निघ०)। (५) काली बड़ी मक्खी वृहत् कृष्ण मक्षिका।

कालानुसार—(क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तगर पुष्प। गुलचांदनी। (रा० नि० व० १०)। (२) पीत चन्दन। पीला चन्दन। (भ० पू० १ भ०)।

कालानुसा (शा) रिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कृष्ण शारिवा। श्यामलता। कालीसर। दे० 'सारिवा'। (सु० चि० २० अ०)। (२) तगर पादिका। तगर पादुका (बं०)—शिउली छोप। 'बलाकालानुसारिवा' (च० द० मूत्रा घा० चि०)।

कालानुसारि—(रो)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) शैलेयज। भूरि छरीला। (रा० नि० व० १२)। (२) शिशप। सीसो। (३) मूषिक। चूहा। (वै० निघ०)। (४) अगर। अगुरु। (सु० चि० १ अ०)।

कालानुसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तगर।

कालानुसारिण—संज्ञा पुं० शारिवा। छड़ीला। शैलेयज।

कालानुसारिणी—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०) (१) श्वेत शारिवा। गौरी सर। (२) कृष्ण शारिवा। श्यामलता। दे० 'सारिवा'। (वै० निघ०)।

कालानुसार्य—(कं)—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) शिशप। सीस। सीसो गाछ। (मे०)। (२) काला

चन्दन। कृष्ण चन्दन। (च० चि० २, ३ अ०, मे०)।

(३) शैलेयज। भूरि छरीला। (रा० नि० व० १२, अम०)। (४) पीत चन्दन। पीला चन्दन। दे० 'चन्दन'।

(सु० सू० ४६ अ०)। (५) तगर। असारुन। (भा०)।

(६) पिण्डी तगर। (वै० निघ०)।

कालानुसार्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तगर। असारुन। (सु० चि० २ अ०)।

काला नून—संज्ञा पुं० [हि०] } दे० 'काला नमक'।
काला नोन—संज्ञा पुं० [हि०] }

कालान्तक—संज्ञा वि० [सं०] काल नाशक। मृत्यु हर।

कालान्तक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कास चिकित्सा में प्रयुक्त पारद योग विशेष। निम्माण-विधि—शुद्ध हिङ्गल, मरिच, सोंल, मरिच, पीपल (त्रिकुटा), शुद्ध गन्धक, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर जम्भीरी नीबू के रस में १२ घंटा मर्दन कर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

(२) यक्ष्मा चिकित्सा में प्रयुक्त योग। निम्माण-विधि—प्रथमोक्त योग गत द्रव्यों के चूर्ण में जीवन्ती, वाराही कन्द, घृतकुमारी के रस में मर्दन कर पुनः लहसुन (रसोन) के रस में मर्दन कर पिण्डी बनाएँ पुनः १२ अंगुल प्रमाण को लौह निर्मित मूषा में यथाविधि स्थापन करें और ३ भाग पारद और गन्धक को निर्गुण्डी के रस में मर्दन कर पिष्टी बनायें और लोह चक्र से यथाविधि बंद कर कपड़मिट्टी करें। उक्त विधि से ८ पुट देकर जारण करें और स्वांग शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर सुरक्षित रखें। मात्रा—१-५ रत्ती प्रमाण।

गुण तथा उपयोग—मृगाङ्ग रस में कथित अनुपान के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा रोग शान्त होता है। (रसर०)।

कालान्तक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राजयक्ष्मा नाशक योग।

निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ पल ग्रहण कर ११ प्रहर धतूर स्वरस, विदारीकंद, घृतकुमारी तथा लहसुन के रस में मर्दन करें और गोला बनाएँ। पुनः १२ अंगुल ऊंची पेंचदार लोहे की मूषा में स्थापन करें और २ तोला शुद्ध गन्धक को सम्हालू के रस में पीस कर पारद के गोले पर चढ़ा कर लोहे की पेंचदार ढक्कन से बंद करें। और पुनः रुद्र यंत्र में स्थापन कर यथाविधि जारण करें। उक्त विधि से ८ बार गन्धक दे-देकर जारण करें। और सूक्ष्म चूर्ण कर सुरक्षित रखें। मात्रा—१-५ रत्ती।

गुण तथा उपयोग—जो अनुपान मृगाङ्ग के हैं वही इसके भी हैं। राजयक्ष्मा के निवृत्त्यर्थ इसका उपयोग अव्यर्थ सिद्ध हुआ है। (रस० यो० स०)।

कालान्तर प्राणहर मर्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह मर्म

स्थान जिनमें आघात होने से कुछ कालान्तरोपरान्त मृत्यु होती है उसकी संख्या—१ वक्षगत मर्म, २ अपलाप, २ अपस्तम्भ, ३ स्तनरोहित, ४ स्तनमूल, ५ सीमान्त, ४ हृदयतल, ४ क्षिप्र, ४ इन्द्रवस्ति, २ कटीक तरुण, २ पार्श्व सन्धि, २ वृहती, २ नितम्ब, इस प्रकार ३३ हैं। (सु० शा० ६ अ०)।

कालान्तर-विष—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] मूषिक विष और लूता (मकड़ी) के विष जो कालान्तर में प्राणनाशक तथा दुःखदायक होते हैं। तथा ऐसे विषों के जन्तुओं के दंशन का विष जो तत्काल नहीं चढ़ता; किन्तु कुछ कालोपरान्त प्रतीत होता है।

कालाप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिर के बाल। शिर के केश, (२) सर्प फण, (३) पृथ्वी।

काला पहाड़—संज्ञा पुं० [हि०] } निर्पिषी। पाढ़। पाठा।
कालापाठ—संज्ञा पुं० [गु०] }
अम्बष्ठा।

काला पान—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण वर्ण। काले रंग का पान। (वृ० नि० २०)।

काला पिङ्गल—संज्ञा पुं० [वर०] ववरी। विश्व तुलसी के बीज—रेहँ।

काला पिण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खल। (लु० क०)।

कालाफल वालुं भोंदल—संज्ञा पुं० [गु०] पिण्डीतक। कृष्ण पुष्प का मदन फल।

काला फलास—संज्ञा पुं० [हि० मध्य प्रदेश]। सादन। तिरिच्छ। तिनिश। दे० 'छानन'।

काला फुलनी—संज्ञा स्त्री० [गु०] नील पुष्पी। शंखावली। (Ensivulus)

काला बच्छनाग—संज्ञा पुं० [हि०] वत्सनाभ विष जो काले रंग का होता है।

काला बण्डा—संज्ञा पुं० [ते०] घृतकुमारी। ग्वार पाठा। (इ० मे० मे०)।

• **काला बबई तुलसी**—संज्ञा स्त्री० [हि०] तुलसी की एक भेद जिसकी पत्तियाँ कृष्णाभ होती हैं।

कालाबंशग—संज्ञा पुं० [गढ़वाल] } नील पुष्प की निर्गुण्डी।
काला अडसा। काला

काला बशिम्ब—संज्ञा पुं० [हि०] } सम्हालू। दे० 'निर्गुण्डी'।

कालाबा—संज्ञा पुं० [ते०] कमल। (Rourea Santaloides)

कालाबान—संज्ञा पुं० [भारत० उ० प्र०] गोरख जीव। (मे० मो०)।

काला बारबीन—संज्ञा पुं० वनस्पति विशेष।

काला बाबली—संज्ञा स्त्री० [हि०, म०] काला कीकर। बबूल भेद। (इ० मे० मे०)।

काला बाला—संज्ञा पुं० स्त्री० [म०] नेत्र वाला। खस। उशीर।

काला बाश—संज्ञा पुं० [भा० बाजार] वनस्पति विशेष। क्रीसेंटिया इंजेटा (Crescentia Enjeta)

काला बासा—संज्ञा पुं० [हि०] नील झिण्डी। नील पुष्प की पियावासा। नील सैरेयक।

काला बिछुआ—संज्ञा पुं० [हि०]

पर्या०—(हि०) वर्ग (कुल) —(Pedaliaceae)। काला बिच्छू, काला बिछुवा, कौवा, बिच्छू—(वं०) बाघनखी—(गु०) विच्छिदा—(मरा०)। बिच्छू—(ब्रज०) बिछुआ घास—(लं०)। मार्टिनिया डाइएण्ड्रा (Martynia Diandra, Glox.) टाइगर्स क्लॉ (Tiger's Claw) (अं०) डेविन्स क्लॉ (Devil's Claw)। टाइगर्स क्लॉ (Tiger's claw)।

टिप्पणी—मुहीत और उसके बाद खजाइनल् अदविया में काला बिछुआ नाम से उक्त ओषधि का वर्णन आया है। इनके सिवा अन्य यूनानी निघंटुओं में इसका वर्णन नहीं मिलता। खजाइनल् अदविया में दी हुई इसकी गुजराती संज्ञा खाजोनी और पंजाबी तथा बंगला और मारवाड़ी पिच्छो (बिच्छी) है। इनमें से खाजोनी....

वर्णन—एक भारतीय उद्भिद जिसका पौधा गज-डेढ़ गज तक ऊँचा होता है। पत्ते चौड़े-चौड़े बड़े के पत्तों की तरह, लोमश खुरदरे, नोकदार और कटवाँ किनारों के होते हैं। इसमें हरे फल लगते हैं। जब वे पक कर फट जाते हैं, तब वह वस्तु प्रगट होती है, जिसे काला बिच्छू वा काला बिछुवा कहते हैं। यह उसका बीज है न कि फल। मुहीत में भूल से फल लिख दिया है। बीज काला और भोरे के बराबर वृश्चिक की आकृति का होता है और उसके पिछले हिस्से में दो काँटे लगे होते हैं जिनके सिरे नीचे को मुड़े होते हैं और वे काँटे किंचित दूरी पर होते हैं। पर आकृति में वे बिच्छू के डंक से मिलते-जुलते और उसके बराबर होते हैं और अत्यन्त कठोर होते हैं। बच्चे उनको लेकर खेलते हैं और आपस में छूते हैं। (खजाइन) फूल का रंग गुलाबी तथा आकार तिल के फूलोंका-सा होता है। इसमें शीतकाल में फूल लगते हैं जो फागुन तक पक कर झड़ जाते हैं।

उत्पत्ति-स्थान—यह अमरीका के मेक्सिको का निवासी है। परंतु अब भारतवर्ष में आबाद हो गया है। यह वर्षा के मध्य में भारतवर्ष के प्रायः उजाड़ स्थानों में देखने में आता है। कोंकण में भी होता है।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुण धर्म तथा प्रयोग—मुहीत के अनुसार यह कामोद्दीपक तैल के प्रयोगों तथा फालिज, सुन्नता प्रभृति वात व्याधियों में प्रयुक्त योगों में समाविष्ट किया जाता है। खजाइन में यह और लिखा है—यह शिवत्र में भी लाभकारी है। अस्तु हजरत शाह अब्दुल अलीम के परीक्षित प्रयोगों

में से योग यहाँ उद्धृत किया जाता है—काला बिछू एक सेर, बाबची ३ पाव—दोनों को खूब बारीक करके छान कर रख लेवें। इसमें से ६ माश प्रतिदिन प्रातःकाल तालाब वा बारिश के पानी में मिलाकर खा लेवें। परंतु पानी अधिक न हो, केवल इतना हो जिससे औषधि भीग भर जावे। प्रतिदिन इसी प्रकार सेवन करते रहें। यदि दस्त न आवे, तो मात्रा बढ़ाकर ९ मा० कर दें और फिर बढ़ाकर एक तोला तक खाने लें। यदि इतने से भी दस्त न आवे, तो दो-चार मा० और बढ़ा दें। जब दस्त आने लगे, तो वहीं पर रोक दें और ७० दिन तक सेवन करें। चालीस दिन औषध सेवन करने पर श्वित्र का स्थान और उसका रूप आदि काला हो जायगा। इससे किसी प्रकार का भय नहीं मानना चाहिये। माश की धोई हुई दाल के साथ गेहूँ की रोटी खाते रहें। लहसुन वा प्याज का बघार दे देने में कोई हर्ज नहीं है। परंतु लाल वा काली मिर्च से बचते रहें। दाल से घृणा हो जाने पर छाग-मांस और रोटी खावें। उसमें नमक डाल सकते हैं। परंतु मसाले में केवल प्याज और हलदी डालते रहें। इसके सिवा अन्य सभी प्रकार की तरकारी, फलादि और आहार वर्जित हैं। औषध सेवन-काल में आदि से अंत तक तीसरे-चौथे दिन शीतल द्रव्य पान करते रहें और शीतल औषध ठण्डाई अर्थात् तबरीद चौथे पहर (असर के वक्त) पिया करें। औषध-सेवन की मर्यादा समाप्त हो जाने पर शीतल (तबरीद की) औषध प्रति दिन दिनमें एक-दो बार पिया करें और पूर्ण लाभ होने तक बराबर पीते रहें। उत्तम यह है कि प्रारंभ करने की तिथि लिख लेवें। जिसमें भूल न पड़े। तबरीद ठण्डाई का योग यह है—तुलम काहू, तुलम कासनी, तुलम खियारैन (खीरे और ककड़ी के बीज), तुलम खुरफा और सूखी धनिया प्रत्येक ४-४ मा० और मिश्री १ तो०—सब दवाओं को पानी में पीसकर छानकर मिश्री मिला कर पीना चाहिये।

काले बिछुए का तेल—निम्माण-विोध—काला बिछुआ २॥ सेर ग्रहण कर पाताल यंत्र द्वारा तेल निकालें।

उपयोग—इसको उकवत (एन्जेमा), खुजली तथा कुष्ठ के दागों पर राई के तेल में मिश्रित कर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

(परीक्षित)।

नव्यमत

डीमक—They (natives) suppose it to have a curative effect upon the sting of that (scorpion) reptile, the nut being rubbed down with water and applied to the injured part. It is sold in the shops. (Pharm Ind. pt. III p. 36).

नाडकरणी—A paste of the nut is used as a

local sedative and is said to have a curative effect when applied to bites of venomous insects, such as scorpions etc. (The I. M. M. p. 533).

काला बिधारा—संज्ञा स्त्री० [हि०] वृद्धदारु। जीर्णदारु। (वृ० नि० २०)।

काला बिष—संज्ञा पुं० [नैपाल] कालाबच्छनाग। वत्सनाभ विष।

काला बीजतारक—संज्ञा पुं० [बं०] घावपत्ता जिसको बिधारा भी कहते हैं।

कालाबू—संज्ञा पुं० [यू०] बलूत। सीता सोपारी।

काला बांगोटी—संज्ञा स्त्री० [द०] लुटको। करेखा। गृध्र नखी। काला वघटी

कालाबोल—संज्ञा पुं० [म०] एलुआ। कुमारी रस सम्भवा।

काला भांगरा—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण भृङ्गराज। इसको पंजाब में सहदेई भी कहते हैं। और बंगाल में वनपालंग कहते हैं।

काला मकोय—संज्ञा पुं० [हि०] काकमाची। काले फल की मकोय। दे० 'मकोय'।

कालामध—संज्ञा पुं० [हि० द०] कृष्ण मध का पेड़। किसी के अनुसार घुँघची की जड़।

कालामन—संज्ञा पुं० (यू०) वंश। बाँस। (लु० क०)।

काला मयना—संज्ञा पुं० (हि० बं०) } कृष्ण मदन वृक्ष।

काला मयना गाघ—संज्ञा पुं० [बं०] } काला मैनफल।

काला मरि—संज्ञा स्त्री० [गु०] काली मिर्च।

काला मवास—संज्ञा पुं० (यू०) वंश। बाँस। (लु० क०)।

काला महमद—संज्ञा पुं० (हि०) (१) पानजूली। फाइ-लेंथस-मल्टीफ्लोरस (Phyllanthas multiflorous)

(२) काम्बोजी। ब्रायोनिआ पेटेर्स (Bryonia Paters)

काला माडादा—संज्ञा पुं० [हि०] गावजबाँ। [मे० मो०]। छोटा कुलफा।

कालाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शुक्त। सिरका। काँजी। [वै० निघ०]।

काला मालस—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली पुदीना। नहरी पुदीना। (लु० क०)।

काला मिरि—संज्ञा स्त्री० [गु०, म०] काली मिर्च।

काला मोनी—संज्ञा स्त्री० [यू०] नहरी पुदीना। जंगली पुदीना।

काला मीस—संज्ञा पुं० [यू०] वंश। बाँस।

काला मुनक्का—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण द्राक्षा फल। काली दाख।

काला मुरहरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] मधुसूता। पीलुपर्णी। मोरटा भेद। कृष्ण मूर्वा।

काला मुवास—संज्ञा पुं० [यू०] वंश। बाँस। (लु० क०)।

काला मूग—संज्ञा पुं० [हिं०] काली मूंग। मुद्ग भेद।
 काला मूर्वा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मूर्वा का एक भेद।
 काली मुरहरी।
 काला मूत—संज्ञा पुं० [यू०] (१) वंश : वाँस। (लु० क०)
 (२) अर्द मातीकी। कसबफासी। (लु० क०)। वंश भेद।
 कालामूस अरोमातीकी—संज्ञा स्त्री० (यू०) एक प्रकार का
 वाँस। कसबफारसी।
 काला मूसा—संज्ञा पुं० [यू०] (१) हुर्फ। (लु० क०)। (२)
 किर्दमाना।
 काला मोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० द०] विष भेद। शृङ्गिक
 विष। सिंधिया के जाति का एक पौधा जिसकी जड़
 विषैली होती है।
 कालाम्राय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य विशेष। (ध०
 निघ०)।
 कालाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुक्त। सिरका। (वै०
 निघ०)।
 कालायस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान्त लोह।
 काला रासुल अक्कीबा—संज्ञा पुं० [यू०] साबर शृंग
 वारसिंघे की सींग।
 कालारिरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपात ज्वर में प्रयुक्त
 पारद योग विशेष। निनांग-विधि—सिगिया, त्रिकुटा,
 स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म। धतूर बीज, मुक्ता
 भस्म, शंख भस्म, सर्प विष। समान भाग में ग्रहण करें।
 पुनः पारद गन्धक के समान कृत कज्जली में पञ्चपित्तों की
 भावना देवें और राई प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुग
 तथा उपयोग—उचित अनुपान के साथ सेवन करने से
 कालरूपी सन्निपात का शीघ्र नाश होता है। दाह उत्पन्न
 होने पर शर्वत चन्दन, गुलाब जल मिश्री की शर्वत तथा
 भोजन में दही भात देवें।
 काला रुख—संज्ञा पुं० [म०] काला शीशम। कृष्ण शिशिपा।
 काला रेवूस—संज्ञा पुं० [यू०] मद्य भेद। (लु० क०)।
 काला लवण—संज्ञा पुं० दे० 'काला नमक'।
 काला लील—संज्ञा पुं० [हिं०] नीलिनी। दे० 'नील'।
 काला लून (लोन)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'काला नमक'।
 काला लोध—संज्ञा पुं० [हिं०] पट्टिका रोध्र। पठानी
 लोध। दे० 'लोय'।
 कालावकृत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला ओकड़ा।
 कालावार—संज्ञा पुं० [कुमायूँ] खरमच। कँडियारी।
 (मे० मो०)।
 काला वाला—संज्ञा पुं० [म०] (१) सुगन्ध वाला। (२)
 उशीर। खस।
 काला वासा—संज्ञा पुं० [हिं०] नील निर्गुण्डी।
 काला वासो—संज्ञा पुं० [गु०] दे० 'निर्गुण्डी'
 काला वृन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुलेपातली।

पुष्प भेद। (लु० क०)।
 कालाशाम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य विशेष। नल्लातेगी।
 कारलाशिरष—संज्ञा पुं० [म०] काली सिरस। बन्दर
 काला सिरस—संज्ञा पुं० [हिं०] सिरस।
 कालास—संज्ञा पुं० [यू०] (१) हुर्क। (२) किर्दमानः।
 (लु० क०)।
 काला सकीना—संज्ञा पुं० [हिं०] वनकर्री। (मे०
 मो०)।
 काला सम्हालू—संज्ञा पुं० [हिं०] नील पुष्पों की निर्गुण्डी।
 दे० 'निर्गुण्डी'।
 काला संकरू—संज्ञा पुं० [हिं०] गुरुगुर। कृष्णमू। (मे०
 मो०)।
 काला साँप—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण सर्प। करैत साँप।
 दर्वीकर। दे०—'सर्प'।
 काला साँवा—संज्ञा पुं० [हिं०] श्यामाक। झँगोरा। क्षुद्र
 धान्य।
 काला सिरस—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण शिरीष वृक्ष। बन्दर
 सिरस।
 काला सिस्सो-गाछ—संज्ञा पुं० [बं०] कृष्ण शिशप।
 काला सिंसप—संज्ञा पुं० [हिं० म०] कृष्ण शिशप। काला
 काला सिंसा—संज्ञा स्त्री० [म०] सिस्सी।
 काला सीम—संज्ञा पुं० [बं०] काली सेम। कृष्ण निष्पाव।
 काला सीशम—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण शिशप।
 काला सीसो—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण शिशप।
 काला सुखदास—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की शाली
 (धान)।
 काला मुरमा—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्णाञ्जन। दे०
 'अञ्जन'।
 काला सेमर (ल)—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्णपुष्पकी शाल्मली।
 कूट शाल्मली वृक्ष। (भा० पू० १ भ०)।
 काला हरिन—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण हरिण।
 काला हल्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कृष्ण हरिद्रा।
 काला हिरण (न)—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण मृग।
 काला हिसालु—संज्ञा पुं० [हिं०] अञ्चू। कलहिसरा।
 कँडियारी। खरमच। निमङ्गरीक। (मे० मो०)।
 कालाव्ह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकतुण्ड। काक-तिन्दुक।
 काकतेन। (वै० निघ०)।
 काला कुंपा—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण बीज। दे० 'कालादाना'।
 कालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) कृष्ण वर्ण। (२)
 काला धतूर। कृष्ण धुस्तुर। दे० 'धतूर'। (ध० नि०)।
 (३) जलकुक्कुट। जल मुरगा। (कना०)—पान कोड़ि।
 (४) क्रौञ्च पक्षी। संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) काला
 चन्दन। कृष्ण चन्दन। (सं० च०)।
 कालिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलकुक्कुट। जल

मुरगा। (ध० नि०) (२) धतूर। धुस्तुर। दे० 'कालि'। (३) काला चन्दन। कृष्ण चन्दन।

कालिक—संज्ञा पुं० (अं Colics) शूल रोग।

कालिक रूट—संज्ञा पुं० (अं Colic Root) कुटकी।

कालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उपकुञ्चिका।

मँगरैला। (२) कृष्ण जीरक। स्याह जीरा। (भा०

पू० १ भ०)। (३) सोने का एक दोष। (जटा०)।

(४) काकोली। (५) शृङ्गिक विष। सिंगिया विष।

(ध० नि०)। (६) क्षीर कीट। (७) सोमपल्ली।

सोमराजी। (हारा०)। (८) वृश्चिक पत्र क्षुप।

बिलुआ नाम का पौधा। (९) एला। इलायची। (वै०

निघ०)। (१०) पटोलशाखा। (११) मांसी। जटा-

मांसी। (१२) काक वा कौवे की मादा। स्त्री काक।

(१३) शिवा। पिप्पली। (मे०)। (१४) सौराष्ट्र

मृत्तिका। सोरठी मिट्टी। (१५) कर्कटी लता। ककड़ी

की बेल। (१६) नाड़ी शाक। करेमू। काल शाक।

(वै० निघ०)। (१७) सुरा। मद्य विशेष। (हे० च०)।

(१८) कृष्ण चटक। कलविक। काली गौरैया। (रा०

नि० व० १९)। (१९) नीली क्षुप। नील। (मद०)।

(२०) कुञ्जटिका। कुञ्जटी। (अ० टी० भा)। (२१)

हरीतकी भेद। त्रिशिराख्य हरीतकी। वह हड़ जिसके ऊपर

३ लम्बी धारियाँ होती हैं। इसका उत्तम योग गन्ध करणार्थ

होता है। (राज०)। (२२) कर्ण स्रोत। कर्ण पात्री

गत सिरा। (सु०)। (२३) वाजि दन्ताग्र रेखा विशेष।

लक्षण—घोड़ों के आगं के दाँत में छठें, सातवें वा आठवें

वर्ष में टेढ़ी (वक्र) तथा कृष्ण वर्ण की एक रेखा उत्पन्न

होती है। उसको उक्त नाम से प्रसिद्ध किया जाता है।

उक्त रेखा के देखने से अश्व की ठीक अवस्था का ज्ञान

होता है। (ज० द०)। (२४) शृगाली। (२५)

श्यामा पक्षी। (२६) भट्ठे का कीट (कीड़ा)। (२७)

मसी। स्याही। (२८) नेत्रों की काली पुतली। (२९)

काली बिच्छू। वृश्चिक।

कालिकार्पा-आर्बोरिआ (ले० Collicorpa Arborea)

(बम्ब०)—धीवल। (बं०)—खोजा। (मे० मो०)।

कालिकार्पा-मैक्रोफाइल्ला (ला० Callicarpa Macro-

phylla) [पं०]—सुमाली। (मे० मो०)।

कालिकार्पा-लानेटा—(ला० Callicarpa Lanata)

(हि०) वस्त्रा। (बं०)—मस्संदरी। (बम्ब०)—ऐसर।

(मे० मो०)।

कालिकाशाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाड़ी शाक। दे०

'करेमू'। (वै० निघ०)। काल शाक।

कालिकास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] नेत्रगत अस्थि

विशेष। (वै० निघ०)।

कालिकोसन्दी—संज्ञा स्त्री० [बं०] काली कसौदी। बास

की कसौदी। कृष्ण कासमर्द। यह अर्श में विशेष हितक है। दे० 'कसौदी'।

कालिख—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिका] स्याही। कलौंछ।

कालिगोनम् पॉलिगोनाइडिज (ला० Colligonum-Polygonoides) (पं०)—तिर्नी। (मे० मो०)।

कालिङ्कत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काशमर्द। कसौदी। (पं० मु०)।

कालिङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] } (१) तरबूज।

कालिङ्गन—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] }

कालिग फल। हिन्दुवाना। हिरमाना। कलिदा।

(Water Melon)। (अत्रि०)। (२) इन्द्रयव। कुटज

बीज। (वै० निघ०)। (३) विलायती कुम्हड़ा। भूमि

कर्कटी। (म०)—उत्पैताडु। (४) सर्प। साँप।

(मे०)। (५) अंकोल सार। (हे० च०)। (६)

कुटज वृक्ष, कुड़ा। (भा० पू० १ भ०)। (७) लोह

भेद—वह लोहा जो गरम करने से लिंग के समान उठता

है और घना तथा सूक्ष्मांग का होता है—कालिङ्गो

लिङ्गवान् यः स्याद्घनो सूक्ष्माङ्गकोमलः। (सुखबोध)।

(८) हस्ति। हाथी।

कालिङ्गडु—संज्ञा पुं० [गु०] } कलिदा। हिन्दुआना।

कालिङ्गण—संज्ञा पुं० [म०] } तरबूज।

कालिङ्गक्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वात ज्वर में प्रयुक्त कषाय। दे० 'कालिग क्वाथ'।

कालिङ्गमान—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औषधीय मान जो कालिग देश के वैद्यों द्वारा निर्धारित किया गया था निम्न प्रकार से होता है—

१२ श्वेत सर्षप=१ यव, २ गुञ्जौ=१ गुंजा।

३ गुंजा=१ वल्ल, ३ गुंजा=१ वल्ल।

८ गुंजा=१ मासा, ४ मासा=१ शाण।

६ मासा=१ मद्याणक।

✓ १० मासा=१ कर्ष।

४ कर्ष=१ पल।

४ पल=१ कुडव।

नोट—कहीं ७ गुंजा का १ मासा माना जाता है। शाण को टंक और निष्क भी कहते हैं। पल का नाम १० शाण है।

सर्षपादिमान—

८ सर्षप=१ यव। २ यव=१ रत्ती।

२ रत्ती=१ वल्ल। ४ वल्ल=१ मासा।

४ माषा=१ शाण। २ शाण=१ कर्ष।

२ कर्ष=१ शुक्ति। २ शुक्ति=१ पल।

२ पल=१ प्रसृति। २ प्रसृति=१ कुडव।

२ कुडव=१ मानिका। २ मानिका=१ प्रस्थ।

४ प्रस्थ=१ आढक। ४ आढक=१ द्रोण।

२ द्रोण = १ सूर्य । २ सूर्य = १ खारिक ।

१०० पल = १ तुला । २० तुला = १ भार ।

परमाणुआदिमान—

३० परमाणु = १ त्रसरेणु । ६ त्रसरेणु = १ मरीची ।

६ मरीच = १ राजिका । ३ राजिका = १ सर्षप ।

८ सर्षप = १ यव । ४ यव = १ गुंजा ।

५ गुंजा = १ पण । ६ गुंजा = १ माषा ।

४ माषा = १ शाण = ११० तोला ।

२ शाण = १ कोल = १ तोला ।

२ कोल = १ कर्ष ।

२ कर्ष = १ अर्ध पल = २ तोला ।

२ अर्धपल = १ पल = ४ तोला ।

२ पल = १ प्रसृति = ८ तोला ।

२ प्रसृति = १ कुडव = १६ तोला ।

२ कुडव = १ मानिका = २२ तोला ।

२ मानिका = १ प्रस्थ = ६४ तोला ।

४ प्रस्थ = १ आढक = ५६ तोला ।

४ आढक = १ कलस = १०२४ तोला ।

२ कलस = १ सूर्य = २०४८ सेर ।

२ सूर्य = १ द्रोण = ४०२६ सेर ।

४ द्रोण = १ खारी = १६३८४ सेर ।

१०० पल = १ तुला = ४०० तोला ।

२००० पल = १ भार = ८००० सेर ।

ब्रीह्यादिमान—

४ ब्रीहि = १ गुञ्जा । ५ गुञ्जा = १ पण ।

८ पण = १ धरण । २ धरण = १ कर्ष ।

४ कर्ष = १ पल । १०० पल = १ तुला ।

२० तुला = १ भार ।

कालिङ्गिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] १. निशोथ। त्रिवृत।

कालिङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तेउड़ी। (रा० नि० व० ६) (२) बड़ी ककड़ी। राज ककटी। (मे० गत्रिक)।

कालिङ्गिन्—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अङ्गोल-सार।

कालिङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीना ककड़ी। राजककटी।

कालि जीरी—[गु०] बकुची। सोमराजी।

कालिञ्ज—संज्ञा पुं० [फा०] पक्षी विशेष। अकअक। (लु० क०)।

कालिट्रिस् इन्नोफाइलम्—संज्ञा पुं० [ला० Callitris Innophyllum] पुष्पाग। नागकेसर। सुलताना चंपा।

कालिन्द (क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तरबूज।

पर्याय—(सं०) कालिङ्ग, कृष्ण बीज, फलवर्तुला, मांसफल।

गुण-कर्म—अपक्वफल—शीतल, ग्राही, मधुर पाकी, विष्टभी तथा रस में दीर्घ पाकी है। (मद०)।

पक्वफल—उष्ण, पित्तवर्धक, कफ-वात नाशक (वै० निघ०)। शीतल, दीर्घ पाकी, शुक्रनाशक, ग्राही, कफ, पित्त नाशक है। (अत्रि०)। वात, कफ कारक, पित्त-नाशक तथा शुक्र, एवं दृष्टि नाशक है।

शारीय, उष्ण। तथा पत्र—तिक्त एवं हृदिर स्थापक है। (भा० पू० १ अ०)। पित्त नाशक, वात जनक, किञ्चित् कफ कारक, मल-मूत्र प्रवृत्ति कर तथा रस एवं विपाक में मधुर है। (सु० सू० ४६ अ० शाक वर्ग)। दे० खर्वूजा (२) काली घुंघची। कृष्ण गुञ्जा। कर्णस्फोटा। (३) करौंदा। करमईक।

कालिन्दका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्यामा। काली निशोथ (ध० नि०)। (२) श्वेत कटभी वृक्ष। (रा० नि० व० ९)। (३) अरुण त्रिवृत। लाल निशोथ। (रा० नि० व० ६)।

कालिन्द शाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तरबूज पत्र वा अपक्वफल कृत शाक। (सु० सू० ४६ अ०)। दे० 'कालिन्द'।

कालिन्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अरुण त्रिवृत। लाल निशोथ। (रा० नि० व० ६)। (२) रक्त निशोथ जिसकी डालियाँ अधिक रक्त वर्ण की होती हैं। (३) श्यामा। काली निशोथ। (ध० नि०)। (४) जमुना नदी। यमुना। (५) शुक्र भाण्डी। (५) श्वेत कटभी। (रा० नि० व० ९)। दे० 'कटभी'।

कालिन्दी धान—संज्ञा पुं० कृष्ण षष्टिक शालि। काली साँठी।

कालिन्दीसू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य। (त्रिका)।

कालिन्सोनिआ-केनाडेसिस—(ला० Collinsonia Canadensis) कनाडा में होने वाला एक वनस्पती विशेष। इसके मूल से अरिष्ट (टिचर) निर्माण किया जाता है।

गुण तथा उपयोग—इसके उपयोग से—अर्श, स्त्री गुल्म, कोष्ठबद्धता, हृद्रोग जन्य शोथ तथा बालकों के कोष्ठ बद्धता में इसका उपयोग हितकर होता है।

मात्रा—०, ३ x से ३० शक्ति। फारमूला—३। दे० 'कालिन्सोनिआ केनाडेसिस'।

कालिब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मानव शरीर। वपु। (२) खजूर। खजूर। पालेवत फल। (छोहाड़ा) भेद। (फा०) सुख सुन्न। (लु० क०)।

कालिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिमान्] (१) कृष्णता। कालापन। (२) कालिख। कलौख।

कालिय—संज्ञा पुं० [सि०] पलाश। ढाक।

कालि—(ली) य (क)—संज्ञा पुं० (सं० पुं० क्ली०) (१) कृष्ण सर्प। काला साँप। (२) अगुरु भेद। काली अगर। कृष्णागुरु। दे० 'अगर'। (च० चि० ३ अ०, २० मा०)। (३) पीत चन्दन। पीला चन्दन। कलम्बक। दे० 'चन्दन'। (४) दारुहरिद्रा। दारुहृत्दी। (वै० निघ०

२ भ० अप० चि० श० र०) । (५) शिला जतु । शिला-
जीत । (वै० निघ०) । (६) लोह ।

कालिय-पेल्लियम्—संज्ञा पुं० [सि०] पणस (कटहल)
निर्यास (गोंद) ।

कालिया—संज्ञा पुं० [?] जंगली तितली ।

कालिया कड़ा—संज्ञा पुं० [वं०] हैसा । दे० 'कण्ट कपाली' ।

कलिङ्गवाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वात
ज्वर में प्रयुक्त कषाय । निर्माण-विधि—गुड़ूची, पीपला-
मूल, और इन्द्रियव समान भाग में ग्रहण कर काढ़ा बनाएं ।

गुण—इसके उपयोग से वात ज्वर शांत होता है ।

(भा० ज्व० चि० मध्य० रव०) ।

काली—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०) (१) नीलिनी । नील ।

(२) पाटला । पाटल । (३) श्यामा । काली निशोध ।

(४) मञ्जिष्ठा । मजीठ । (५) कृष्ण वेल । काला बेंत ।

(वै० निघ०) । (६) कृष्ण कार्पास । काली कपास ।

(रा० नि० व० ४) । (७) कृष्ण जीरक । स्याह जीरा ।

(८) पृथ्विका । जीरा । (९) वृश्चिकाली । उतरन की

वेल । (रत्ना०) । (१०) क्षीर कीट (मे० मद्धिक) ।

(११) कण्ट कपाली । हैसा । (भैष० र० अम्ल पि० चि०)

बृहत् धुधावली, कन्दर्प सार तेल) । (१२) पिप्पली,

पीपल, (१३) नागबला, गुलसकरी, (वै० निघ०

वात व्या० चि०) । (१४) अश्वगन्धा । असगंध ।

(१५) मनःशिला । मैनसिल । (म०) । (१६)

भल्लातक । भिलावां ।

काली अकरा—संज्ञा स्त्री० (वं०) (१) काकादनी । (२)

अहिंसा । हैसा ।

काली अगर—संज्ञा स्त्री० [हिं] दे० 'अगर' ।

काली कंधी—संज्ञा स्त्री० (?) एक बड़ी कंटीली झाड़ी जो
प्रायः गुजरात तथा पंजाब इत्यादि में उत्पन्न होती है ।

(Rubris Lasioarpus) ।

काली कङ्गोई—संज्ञा स्त्री० [द०] } कृष्ण बला । काला बला ।

काली कङ्गी—संज्ञा स्त्री० [हि०] } बला ।

काली कटुकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] काली कुटकी । कटु
रोहिणी ।

काली कटभी—संज्ञा स्त्री० [हि०]

वर्ग—वर्वरादि ।

वर्णन—इसके पेड़ हिमालय में जमुना से पूरब की ओर
बंगाल, ब्रह्मा, मध्य प्रदेश के दक्षिण ओर और दक्षिण में
होते हैं । इसका पेड़ ५० फुट ऊँचा होता है । तने का घेरा
८ फुट और छाल १-२ इंच मोटी गहरी भूरी और खुरदरी
होती है । इसके फूल गिरने के उपरांत फाल्गुन और चैत
में नये पत्ते आने लगते हैं और प्रत्येक शाखा पर दस-
बारह जोड़े पत्ते लगते हैं । पत्ते कुछ लंबे और सिकुड़े
हुए होते हैं । जाड़ों में ये लाल पड़ जाते हैं और गरमियों

में इसमें छोटी-छोटी डालियों में सफ़ेद और गुलाबी या
प्याजी बड़े-बड़े फूलों के गुच्छे लगते हैं । फल हरे रंग का
होता है जिसका व्यास ३ इंच का होता है । फूल आने से
३-४ मास उपरांत यह फल पक जाता है । यह खाने और
औषध के काम में आता है । इसके बीज किसी भाँति
विपैले होते हैं । इसकी छाल रँगई के काम में आती है ।
इसमें भूरा या कुछ नीलापन लिये गोंद निकलता है जो
पानी में गल जाता है । इसको संस्कृत में कटभी और
पंजाबी में काँटोंवाला सिरस कहते हैं ।

गुण धर्म और प्रयोगादि—इसकी छाल से दस्त बंद
होता है । इसे भिगोने से प्रचुरता से लबाव निकलता है ।
जिस औषधि के शरीर पर लगाने से शरीर की त्वचा
लाल होकर उभर जाती है, उसके साथ इसे मिलालेने से
ऐसा नहीं होता । सर्प-विष निवारण के लिए इसकी
जड़ का काढ़ा पिलाना चाहिये । सर्प के दंश-स्थान पर
इसकी जड़ का प्रलेप भी करना चाहिये । शिशु प्रसवोत्तर
बल बढ़ाने के लिए स्त्री को इसके फूलों का शर्वत पिलाना
चाहिये । बच्चा पैदा होने से जो जह्म हो जाता है, वह
इसके काढ़े से प्रक्षालित करने से आराम हो जाता है ।
ताजी छाल के रस में शहद मिला कर पिलाने से कफ
और प्रतिश्याय आराम होते हैं । इसका फल काबिज
वा संग्राही है । इसके फल को क्वथित कर पिलाने से
पाचन शक्ति बढ़ती है । (खज्जाइन देखो 'कटभी' ।)

वस्तव्य—कटभी के २ भेद हैं—(१) श्वेत पुष्प की,
(२) गुलाबी पुष्पों की । कटभी को ग्रामीण भाषा में
'अइल, कहते हैं । इसकी पत्तियाँ बबूल की पत्तियों की-
सी होती हैं और इसके शाखों में गुलाब के-से काँटे होते
हैं । दोनों के फूल बबूल के फूल के आकार-प्रकार के होते
हैं । और गुच्छों में लगते हैं । प्रायः सड़कों के बाड़ों पर
इसके वृक्ष होते हैं । फूल वर्षान्त में लगते हैं और फलियाँ
लम्बी लम्बी लगती हैं बीज चपटे होते हैं । गुलाबी पुष्प
की कटभी ही गुलाबी कटभी है । शाखों में काँटा होते हैं
अतः कटभी का नामकरण इसी आधार पर हुआ है ।
विशेष देखो 'कटभी' ।

काली कटुकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कटुरोहिणी ।

काली कनइल—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण करवीर ।
दे० 'केनर' ।

काली कपास—संज्ञा स्त्री० [हि०] कालाञ्जनी ।

काली-कम्बोई—संज्ञा स्त्री० [गु०] कृष्ण काम्बोजी ।

(Breyonia Petrus.)

काली करबोड़ी—संज्ञा स्त्री० [म०] मेघशृङ्गी । गुड़मार ।

काली कसौदी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण कासमई । दे०
कसौदी । यह शुष्क (वातज अर्श) में उपकारी है ।
कसौजा (डाइमाँक) ।

काली कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [द० हि०] मुस्कदाना। लता कस्तूरी।

कॉली काप्टेरस-फ्लोरिबुन्डा— [ले० (Calycopterus Floribunda)] वनस्पति विशेष।

पर्याय—(मल०) चेम्पुल्लन्ही। वर्ग—हरीतक्यादि (Combretacea)

उद्भव स्थान—दक्षिणभारत, मलाबार इत्यादि।

परिचय—इसकी कोमल पत्तियाँ ताम्रवर्ण की होती हैं।

गुण-कर्म—मृदु विरेचक तथा कृमिघ्न है।

उपयोग—इसकी कोमल पत्तियों की गोलियाँ बना कर ५ या २॥ रत्ती की मात्रा में देने से आन्त्रस्थ कृमियों गोल (Round worms) का नाश होता है। इसके पत्र का सत्व सेन्टोनीन की प्रतिनिधि है। (इ० मे० मे०)।

कॉली काप्टेरस-फ्लोरिबुन्डा—[ला० Calycopterus floribundo] 'दे०—कोकोरंज'

काली कामूनी—संज्ञा स्त्री० [दे० बम्ब०] काकमाची।

काली मकोय। दे०—'मकोय'।

काली कावली—संज्ञा स्त्री० [म०] श्यामलता। कृष्ण सारिवा। दे० 'सारिवा'।

काली कीकड़ (र)—संज्ञा स्त्री० [द०] कृष्ण बब्बूर। काला बबूल। दे० 'बबूल'।

काली कुटकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कटुरोहिणी। खर्बूके स्याह। दे० 'कुटकी'।

काली कुड़ई—संज्ञा स्त्री० [गु०] कृष्ण कुटज। काला कुड़ा। दे० 'कुड़ा'।

काली कोढ़—संज्ञा स्त्री० [गु०] अरण्यजीरक। दे० 'करजीरी'।

काली कोयल—संज्ञा स्त्री० [गु०] कृष्ण क्रान्ता। कृष्ण वा नील पुष्प की अपराजिता। दे० 'अपराजिता'।

काली कोला—संज्ञा स्त्री० [गु०] गृध्र नखी। व्याघ्र नखी। वघाटी। विष भुष्टी। दे० 'करेखा'।

कालीकः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोंचबक। क्रौञ्च पक्षी। (श० र०)।

माली खजूर—संज्ञा स्त्री० [हि०] 'बकाइन'। (Melia dubia) लिम्बड़ा। दिन करलिंग।

काली खशखाश—संज्ञा स्त्री० [हि०] जंगली पोस्ता के बीज। तथा क्षुप। दे० 'पोस्ता'।

काली खाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कुकुर कास। हूँपिंग कफ (Hooping cough)। एक प्रकार की संक्रामक बाल कास जो प्रायः ६ वर्ष की अवस्था तक बालकों में फैलती है। इससे पीड़ित बालकों को आरोग्य शिशुओं से स्पर्श कराने से उनको भी आक्रान्त करती है अतः उनको पृथक् सुलाना चाहिए और पीड़ित बालक का उच्छिष्ट भोज-

नादि भी वर्जित रखना आवश्यक है।

इस दुष्ट व्याधि से पीड़ित बालक आक्षेपपूर्वक उद्धेष्टित हो जाते हैं; प्रायः दिन की अपेक्षा रात्रि में इसका आक्रमण विशेष होता है। खाँसते-खाँसते जब तक वमन न हो जाय, निरन्तर आती रहती है।

चिकित्सा—इस दुष्ट व्याधि की चिकित्सा में डाक्टर, हकीम तथा वैद्य भी असफल रहते हैं। मैंने खोजपूर्वक इसकी सर्वश्रेष्ठ उपचार कदली स्तम्भ गत कोमल श्वेत भाग का विचूर्ण पाया है। अतः इसके चूर्ण को मधु के साथ २-३ रत्ती २-३ घंटा के अन्तर से चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

काली गरणी—संज्ञा स्त्री० [म०] कृष्ण अपराजिता। कृष्ण क्रान्ता। काली कोयल। दे० 'अपराजिता'।

काली गूलर (री)—संज्ञा स्त्री० [हि०] काकोदुम्बर, कठूमर। दे० गूलर के अन्तर्गत।

काली गोदू-चेदू—संज्ञा पुं० [ते०] वनस्पति विशेष।

काली गोह—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण गोधा। दे० 'गोह'।

काली घुँघची—संज्ञा स्त्री० [हि०] कर्ण स्फोटा।

काली घेंडुली—संज्ञा स्त्री० [म०] नील पुष्प की पुनर्नवा। दे० 'गदहपुरना'।

काली घेंटा—संज्ञा स्त्री० [म०] वनस्पति विशेष। पुनर्नवा।

काली चाय—संज्ञा स्त्री० [हि०] श्यामपर्णी। दे० 'चाय'।

काली चिचुण्टर—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] वनस्पतिभेद (ला०) (Lepida Gethescrestata)।

कालीची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] यम विचार भूमि। (त्रिका०)।

काली चीकसी—संज्ञा स्त्री० [म०] काम्बोजी। (Breyonia Petarus)।

काली जड़ी—संज्ञा स्त्री० [पं०] लफरा। गुरगुमना। (Clotar Interuatid)।

कालीजर—संज्ञा पुं० [पं०] अपराजिता। श्यामपर्णी। कृष्ण-क्रान्ता। काली कोयल। कौआठेंठी। पपड़ा। (मे० मो०)।

माली जरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] वनस्पति भेद। 'अपराजिता'।

काली जिरकी—संज्ञा स्त्री० [द०] 'कालादाना'। कृष्ण बीज। (मो० श०)।

कालीजीर—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्णक्रान्ता। नील पुष्प की अपराजिता (मे० मो०, इ० मे० मे०)।

काली जोरी—संज्ञा स्त्री० [गु०] } अरण्य जीरक। दे०
काली जुरी—संज्ञा स्त्री० [गु०] } 'करजीरी'।

काली जेवर—संज्ञा स्त्री० [पं०] वनस्पति विशेष। पं०—
'सिपिल'। (मे० मो०)।

काली झट (प)—संज्ञा स्त्री० [हि०, बं०] हंसराज। हंसपदी। बनबिलन।

मालीञ्जीरी—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] उपकुञ्चिका, कृष्ण

जीरक। स्याह जीरा। मंगरैला।
 काली तनय—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] भैंस। महिष। (हे० च०)।
 काली तरोई—संज्ञा स्त्री [बुन्देलखण्ड] झिगा तुरोई, तरोई। कोशातकी।
 काली तुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण तुलसी] श्याम दल। दे० 'तुलसी'।
 काली तोदरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] } स्याह तोदरी। दे०
 काली तोरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] } 'तोदरी'।
 काली दाख—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण द्राक्षा। काला मुनक्का।
 काली दूनियून—संज्ञा पुं० [यू०] खाली दूनियून। (लु० क०)।
 काली द्राक्ष—संज्ञा स्त्री० [हि०] } कपिल द्राक्षा। मुनक्का।
 काली द्राक्षे—संज्ञा स्त्री० [म०] }
 काली धंधी—संज्ञा स्त्री० [हि० पं०] वनस्पति विशेष। (Rasuefulis, Roxb.)
 काली धराख—संज्ञा स्त्री० [गु० काली दाख] कृष्ण द्राक्षा। कपिल द्राक्षा।
 काली धवली—संज्ञा स्त्री० [हि० म०] वनस्पति विशेष।
 काली नगदी—संज्ञा स्त्री० [म०, राजपुं०] देवमञ्जरी। अजगुर। नगदी बूटी। निगंद बाबरी।
 काली निसोतर—संज्ञा स्त्री० [गु०] } श्यामा। कृष्णत्रिवृत्त।
 काली निसोय—संज्ञा स्त्री० [हि०] } तुर्वुद स्याह।
 काली पाट (ठ)—संज्ञा स्त्री० [गु०] } अम्बष्ठा। निर्विषी।
 काली पहाड़—संज्ञा स्त्री० [म०] } राज पाठा। देखो
 काली पहाड़ बेल—संज्ञा स्त्री० [प०] } 'पाठा'।
 पुरइन पाढ़ी। (Cleyea Peltata)।
 काली पाड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] पाठा। निर्विषी।
 काली पा(य)न्दन—संज्ञा पुं० (गोआ) वनस्पति विशेष। पर्याय—(म०) महापान। (मल०) पान्न मरमर, रुखेलिल। (ला० एस्प्लीनिअम् पेरासाइटिकम् (Asplenium Parasiticum) (Willd)।
 काली पाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] पुरइन पाड़ी। निर्विषी। अम्बष्ठा। देखो 'पाठा'।
 काली फुलड़ी—संज्ञा स्त्री० [गु०] जोंकमारी। जिगना। एनागेलिस आर्वेन्सिस (Anagalis Arvensis)।
 काली बसूटी—संज्ञा स्त्री० [पं०] काला अडूसा।
 काली बाबरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] काली तुलसी। गुण-सर्प पिषघ्न है। दे० 'तुलसी'।
 काली बेल—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक बड़ी लता है। कृष्ण शारिवा। दे० 'सारिवा'।
 काली मकोय—संज्ञा स्त्री० [हि०] काकमाची। दे० 'मकोय'।

काली स (मि) ट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कर्दमक। कृष्ण मृत्तिका।
 काली मन्त्र—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] पारद कर्म में प्रयुक्त मंत्र विशेष। यथा—'किणि किणि कालिके मम वाञ्छितं कुरु कुरु स्वाहा'। इसके द्वारा काली पूजनादि कार्य आरम्भ कर पारद का जारणादि कर्म करने से उसमें सिद्धि प्राप्त होती है। (रस का० धे०)।
 कालीमरिच—संज्ञा स्त्री० [हि०] गोल मिर्च। स्याह मिर्च। देखो 'मरिच'।
 काली माटी—संज्ञा स्त्री० [गु० म०] } कर्दमक। चिकनी
 काली मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि०] } करैली मिट्टी।
 काली मिरच—संज्ञा स्त्री० [हि०] }
 काली मिरि—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] } दे० 'मरिच'।
 काली मिरिच—संज्ञा स्त्री० [हि०] }
 काली मिर्च—संज्ञा स्त्री० [हि०] }
 काली मिर्च (जंगली)—संज्ञा स्त्री० } वन मरिच
 काली मिर्ची—संज्ञा स्त्री० [द०] } दे० 'काञ्चनफल'।
 काली मुर्गी—संज्ञा स्त्री० [हि०] (सं० कृष्ण कुक्कुटी)। सित कुक्कुटी। उपयोग—काली वा श्वेत मुरगी के अंडा के जल से नस्य व नेत्रों में अञ्जन एवं पान करने से प्रबल असाध्य सन्निपात ज्वर शीघ्र शान्त होता है—
 'सित कुक्कुटिकाण्डजजलं पानान्नस्यादप्यञ्जनाच्च। दुःसाधनं सन्निपातः प्रबलोऽप्याश्वेव शमयेति'। (भैष० रं० सन्निपा० चि०)।
 कालीमुष (स) ली—संज्ञा स्त्री० [गु० हि०] तालमूली। तालपत्री। (डाइमाक)। दे० 'मुसली'।
 काली मुसली—संज्ञा स्त्री० [हि०] } तालमूली। कृष्ण
 काली मोसली—संज्ञा स्त्री० [हि०] } मुषली। तालपत्री।
 काली मूंग—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण मुग्द। स्याह मूंग।
 कालीय (क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीत चन्दन। पीला चन्दन।
 कालीयक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पर्याय—(सं०) कालानुसार्य, जापणं। (अम०)। जाषक, कालेय, वर्णद, कान्तिदायक, कृष्ण चन्दन। (श०)। (२) दारुहरिद्रा। दारुहल्दी। (रा०)।
 कालीयस्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कृष्ण चन्दन। (२) पीत चन्दन। (भा०)।
 कालीयका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहरिद्रा। दारु हल्दी। (भैष०)।
 कालीयकाक्षोद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुङ्कुम। केशर।
 कालीया गुरु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कृष्ण अगुरु। काली अगर। कलम्बकटु। दे० 'अगर'। (भा० उ० वाजीक० चि० चन्दनादि तैले)।
 कालीयो काँस कीयो—संज्ञा पुं० [गु०] }
 कालीयो सरस—संज्ञा पुं० [गु०] } काली सिरिस।

कालीरसा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कदली । केला ।
(वै० निघ०) । देखो 'कदली' ।

कालीराई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कृष्ण राजिका । दे० 'सरसो' ।

कालीलरा—संज्ञा पुं० (नैपाल) वनस्पति विशेष । लेपचा में
'स्पेम' कहते हैं । (मे० मो०) ।

काली शम्बाली (लु)—संज्ञा पुं० स्त्री० [हिं० द०] नील
पुष्प की निर्गुण्डी । दे० 'निगूण्डी' ।

काली शम्बाली—संज्ञा स्त्री० [द०] काली निर्गुण्डी तथा
कालाअडूसा के अर्थ में भी ग्रहण किया जाता है किन्तु
यह मिथ्या है ।

काली शीतला—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार की शीतला
(चेचक) जिसके दाने काले रंग के होते हैं । यह प्रायः
भयावह होती है ।

कालीसर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कृष्ण सारिवा । श्यामलता ।

(२) अनन्तमूल । उपलसरी । कर्पूरिका । क्षीरिका ।

(३) भेद—गौरीसर । श्वेत सारिवा । दे० 'सारिवा' ।

कालीसर—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण सारिवा] ।

पर्या०—(सं०) । कृष्ण सारिवा, श्यामा, कृष्णमूली,
चंदन सारिवा (हिं०) । कालीसर, काला अनन्तमूल,
काला सारिवा (ब्रज०) । करियासाँउ (गु०) । काली
उपलसरी (मरा०) काली कावली ।

(व०, ब०) श्यामलता, (द०) कृष्ण सारिवा,
(को० म०) काँटेचैभौरी, (कना०) करेम्बु, गौरी
वल्ली, (ते०) नेल्लातीगा (मल०) पाल वल्ली,
(ला०) इक्नोकार्पसफ्रुटिसेस (Ichnocarpus Fruti-
ces) ।

वर्ग (कुल)—सारिवादि (Apocynaceae) ।

उद्भव स्थान—भारतवर्ष के वन-उपवनों में इसकी
लता वृक्षादि पर चढ़ती है ।

रासायनिक संगठन—

इसमें सिनकोनिक एसिड एसिड के साथ पाया जाता
है । इसके अतिरिक्त रज्जकपदार्थ, निर्यास, अल्प प्रमाण
में कोमारीन (Coumarin) और क्षाररहित पिष्ट पदार्थ
कौट चौक (Coutchouc) नामक सत्व भी होता है ।

परिचय—सुप्रसिद्ध लता है, हरी पत्तियाँ जामुन की
पत्तियों के समान होती हैं । शाख कृष्ण वर्ण की होती
है । कृष्ण सारिवा की जड़ कठोर और स्वाद अत्यन्त
तिक्त होता है । इसके सर्वाङ्ग से तोड़ने पर दूध
निकलता है । मधुर-तिक्त भेद से कृष्ण सारिवा के
दो भेद हैं ।

वर्णन—इसका पौधा छोटा होता है । शाखाएँ और
पत्तियाँ छोटी और बारीक होती हैं । सूखने पर जैसा कि
यह बाजार में मिलती है, बिल्लीलोटन की तरह होती है ।
फल उन्नाव की तरह किन्तु उससे पतला और लंबोत्तर

होता है । हरा खाकीमायल हरे रंग का और सूखने पर
पीताभ हो जाता है । इसके यह दो भेद होते हैं, सफेद
और काला । दोनों चिकने, मधुर और गुरु होते हैं ।
(ता० श०) । मुहीत । कोई-कोई (मुहीत) कहते हैं कि
काला मादा है और सफेद नर । सफेद किस्म को अनन्तमूल
कहते हैं, जिसका वर्णन अनन्तमूल शब्द में किया गया है ।
यहाँ काली किस्म का वर्णन किया जा रहा है । जिसे
कालीसर कहते हैं । तालीफ़ शरीफी के हाशिये पर लिखा
है कि यह प्रसिद्ध है और इसका फूल क्षुद्र वनफ़शा के रंग
का, तुल्य (फल) पिस्ते की तरह, किन्तु उससे अधिक
लंबा और चौड़ा होता है ।

नोट—प्लेफ़ेयर ने भूल से बादरंजवूया की जगह
बादतिंगवोस और उन्नाव के लिये वेर शब्दों का प्रयोग
किया है ।

उत्पत्ति-स्थान—कालीसर पच्छिम हिमालय में सरमूर
से नेपाल तक गंगा से ऊपर के मैदानों से बंगाल, आसाम
और सिलहट तक, दक्षिण भारतवर्ष, लंका, हिमालय के
उत्तरी-पश्चिमी प्रांत और शिमला इत्यादि कतिपय
उष्ण भागों में होती है ।

प्रकृति—शीतल और रुक्ष । उष्ण और रुक्ष (म० मु०)

गुण-कर्म और प्रयोग—पेट में कब्ज पैदा करती है
और जलोदर को लाभकारी है । यह वात, पित्त
और कफ तीनों दोषों को नष्ट करती, शुक्र की वृद्धि
करती और ज्वर को लाभ पहुंचाती है । अत्यधिक रक्त-
स्रावजनित योनिक्षत आदि योनिरोगों को लाभकारी
है । इसकी काली किस्म क्षुधाजनक है । (ता० श०),
(म० मु०) ।

तालीफ़ शरीफी के हाशिये पर लिखा है कि यह शीतल
और रुक्ष है तथा किंचित् कषाय, संग्राही और आध्मान-
कारक है । अस्तु, यह आमाशय-बलप्रद वा दीपन-पाचन
और पित्त प्रकृति को सात्त्य है । इसकी पत्ती भी शीतल
है । इसके मर्दन से दद्रु का नाश होता है ।

दोनों प्रकार की कालीसर शीतल और रुक्ष हैं तथा
संग्रहणी, वायु, कफ, तृष्णा, मुखवैरस्य और रक्तपित्त का
नाश करती हैं । काली किस्म अतिसारघ्न और क्षुधा-
जनक है । (मुहीत)

वैद्य कहते हैं कि कालीसर शीतल, लघु, मधुर, स्निग्ध
एवं शुक्ल है । इसमें और अनन्तमूल के गुण-धर्म में कोई
विशेष अंतर नहीं है । इसकी जड़ रक्तशोधक और वल्य
है । यह उश्वा के स्थान में व्यवहार की जाती है । इसके
डंठल और पत्तों का काढ़ा पिलाने से ज्वर छूटता है ।
इसकी एक छटाँक जड़ को २॥ पाव पानी में औंटा कर
उसमें से ५ या ७॥ तोला व्वाथ में पीपल के चूर्ण का
प्रक्षेप देकर दिन में दो बार पिलाने से त्वचा के रोग

आराम होते हैं। इसकी जड़ को चोबचीनी के साथ
औंटा कर पिलाने से फिरंग रोग का नाश होता है।

(खजाइन)

कृष्णम्लीतु संग्राहि शिशिरा कफपित्तजित् ।

तृष्णा रुचि प्रशमनी रक्त पित्त हरास्मृता ॥

(ध० नि०, रा० नि०) ।

सारिवा पुगलंस्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ।

अग्निमाद्यारुचि श्वास कासामविषनाशनम् ॥

दोष-त्रयास्रप्रदरज्वरातिसार नाशनम् ॥

दे० 'सारिवा' । (भा०, पू० १ भ०)

काली सरसों—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण सर्पव । काली
राई । देखो 'सरसों' ।

काली साँठी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण वर्ण की षष्ठि
शाली । षष्ठिक धान्य ।

काली साँवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० म०] कृष्ण शारिवा ।
श्यामलता । देखो 'सारिवा' ।

काली सिर (रि) स—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण शिरीष ।

काली सिरसा—संज्ञा स्त्री० [हि०] बंदर सिरस ।

काली सिस्सो—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण शिशिपा ।

काली सुर—संज्ञा पुं० [हि०] (१) कृष्ण सारिवा ।
इण्डियन सारसापरीला ।

(२) एक वृक्ष का फल जो बेर तथा उन्नाव के बराबर
होता है, वृक्ष छोटा और पत्तियाँ बारीक होती हैं ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, वीर्यवर्धक, वात, पित्त
तथा कफ नाशक है । ज्वरघ्न तथा स्त्रियों की योनि में जो
रक्तस्राव के कारण क्षत उत्पन्न हो जाता है, उसके
लिए अधिक उपयोगी है । निर्विषैल है । (अभि नि०
२ मा०) ।

काली सेम—संज्ञा स्त्री० [हि०] कृष्ण निष्पावी । कृष्ण
शिम्वी । चमरिया सेम । (Assam Bean) । (इं०
हैं० गा०) ।

काली हड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] चेतकी हरीतकी । हल्लेलजे
काली हरड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] स्याह । छोटी हर । जंगी
काली हर—संज्ञा स्त्री० [हि०] हड़ ।

काली-हलद—संज्ञा स्त्री० [वं०] कृष्ण हरिद्रा । नर
काली हल्दी—संज्ञा स्त्री० [हि० गु०] कचूर । कपूर हरिद्रा ।
काली हलदी—संज्ञा स्त्री० [हि० गु०] दे० 'कचूर' ।

कालु—संज्ञा पुं० [गु०, वम्ब०] शुक्ति । सीप । सीपी ।
(Ostrea Edulis) (इं० मे० मे०) ।

कालु-कड़वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०?] बकुची । सोमराजी ।

कालुनसोसर—संज्ञा पुं० [गु०] श्यामा । काली निशोथ ।

कालु-करियातु—संज्ञा पुं० [गु०] वस्तुल । नील कण्ठ ।

काला किराइट । काला चिरायता ।

कालुं केर—संज्ञा पुं० [वं०] विषमुष्टी । बघाटी । झाल ।
दे० 'करेखा' ।

कालु गोच्छ-वित्तुलु—संज्ञा पुं० [ते०] बकुची । सोमराजी ।

कालुञ्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालिकः । (ध० निघ०) ।

कालुदुरु—संज्ञा पुं० [सि०] कृष्ण जीरक । स्याह जीरा ।

कालुं नागकेसर—सं० पुं०, स्त्री० [गु०] कृष्ण पुन्नाग ।
सुलताना चंपा का काला भेद ।

कालुं सिरिस—संज्ञा स्त्री० [गु०] बन्दर सिरस । काली
सिरिस ।

कालुध्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रजोगुणकृत कलुपता ।
(रा० नि० व० २१) ।

कालुस्था—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाटला । पाटल ।

कालू—संज्ञा स्त्री० [देश] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो
सीप के भीतर होता है । सीप की मछली । (२) (फा०)
आकरकरभ । अकरकरा ।

कालू कचा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बकुची । सोमराजी ।

कालूख—संज्ञा पुं० [फा०] गन्दना । (लु० क०) ।

कालूज—संज्ञा पुं० [फा०] कपोत । कबूतर । (लु० क०) ।

कालूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वत्सनाभ । बच्छनाग ।

कालूसक—संज्ञा पुं० [फा०] वाकला । कलाय भेद ।
(लु० क०) ।

कालू सिस्स—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण शिशिपा । काला
शीशम ।

कालूह—संज्ञा पुं० [फा०] आकरकरभ । अकरकरा ।

काले—संज्ञा पुं० [हि० उर्दू] कृष्ण । काला । स्याह (Black) ।

काले जिरे—संज्ञा पुं० [को०] करजीरी । अरण्य जीरक ।
(२) उपकुञ्चिका । मंगरैला ।

काले जिरेको—संज्ञा पुं० [कना०] उपकुञ्चिका । मंगरैला ।

काले जीरे—संज्ञा पुं० [म०, कना०] उपकुञ्चिका । मंग-
रैला । (२) (को०) करजीरी । अरण्य जीरक ।

कालेतिल—संज्ञा पुं० [हि०] (१) रामतिल । परवतिया
तिल्ली । (२) काला तिल । कृष्ण तिल ।

काले नागकेसर—संज्ञा पुं० [म०] कृष्ण नागकेसर ।

काले नून—संज्ञा पुं० [म०] काला नमक । सौवर्चल लवण ।
पाक्य लवण ।

काले पान—संज्ञा पुं० [द० हि०] कृष्ण ताम्बूल । (मो०
श०) ।

काले पान की जड़—संज्ञा स्त्री० [द० हि०] छोटा कुलजन ।

फाले मध का झाड़—संज्ञा पुं० [द० हि०] काले मध का
पेड़ । (मो० श०) ।

कालेय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (१) केशर । कुंकुम ।

कालेयक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] }

(२) पीत चन्दन । पीला चन्दन जिसको लोक में मलेंडी
चन्दन कहते हैं । (रा० नि० व० १२, सु० सू० अ० ३९) ।

(३) काला चन्दन। कृष्ण चन्दन। काली अगर।
(प० मु०, च० द० पित्त ज्व० चि०)। (४) यकृत।
जिगर। (मे०)। (५) हरिचन्दन। (रा० नि० व०
२३)। [सं० पुं०] (१) दारुहरिद्रा। दारुहल्दी।
(रा० नि० व० ६)। (२) कुक्कुर। कुत्ता। श्वान।
(रा० नि० व० १९)। (३) कामला रोग का एक भेद।
कृष्ण कामला। दे० 'कामला'। (४) एक काष्ठ जो
सुगन्धपूर्ण पीत वर्ण का होता है (पीत चन्दन)। (५)
नील कमल। नीलोत्पल। (६) शिलाजतु। शिलाजीत।
(वै० निघ०)।

कालेय धमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण वर्ण की
धमनी नाड़ी जिसमें शुद्ध रुधिर प्रवाहित होता है।

कालेय शिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण वर्ण की
सिरा (Vein) जिसमें नील वर्ण का अशुद्ध रक्त का
चक्रमण होता है।

कालेश्वर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालनाथ कृत पारद
योग जो सन्निपात रोग में प्रयुक्त है। निर्ममाणविधि—शुद्ध
पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म,
स्वर्ण माक्षिक भस्म, वंग भस्म, शुद्ध, हिङ्गुल, जायफल,
लौंग, तज, इलायची, नागकेसर, शुद्ध धतूर बीज, शुद्ध
जमालगेटा, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि
मर्दन करें और ३ भाग काली मिर्च का चूर्ण मिश्रित कर
गाँजा वा भाँग के रस में २१ दिन मर्दन कर १ रस्ती
प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—इसको युवा अवस्था के व्यक्तियों
को १ गोली और वृद्धावस्था वालों को १/२ गोली अथवा
आवश्यकतानुसार अदरक के रस और मधुयुक्त सेवन
कराने से ५ प्रकार की खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, धातु-
क्षय, कुष्ठरोग, मूर्च्छा, अभिन्यास तथा सन्निपात ज्वर
का शीघ्र नाश होता है। प्रलापादि दूर होकर शीघ्र ही
निद्रा आती है। (रस यो० सा०)।

कालेसुर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कालीसर'। कृष्ण
शारिवा।

कालेस्टिरॉल—संज्ञा पुं० [अ०] डाक्टरी औषध विशेष।

कालेस्टेरीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] डाक्टरी औषध विशेष।

कालेहड—संज्ञा पुं० [हि०] चेतकी नाम की हरीतकी।

काले हलडे—संज्ञा पुं० [द०] (मो० श०)।

काले जिरें—संज्ञा पुं० [म०] अरण्य जीरक। दे० 'करजीरी'।

कालो—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण वर्ण। काला रंग।

कालो अवेरिआ—संज्ञा पुं० [गु०] अपामार्ग जो नील पुष्प का
होता है। चिरचिटा। लट्जीरा।

कालो अपकरो—संज्ञा पुं० [को०, कना०] पर्याय—
(कना०) अनामिणि गिदा, (म० को०)—गुनामणि-
झाड़, (मल०) नरुम-पनाल, (ला०) अनोनानेरम

(Unonanarum) अवेरिआ नेरम् (Uvarianarum)
वर्ग—सीताफलादि (Anonacea)

उद्भवस्थान—दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश, लंका,
पश्चिमीय प्रायद्वीप इत्यादि।

परिचय—यह एक प्रकार का झाड़दार वृक्ष है। इसकी
मूल हृद्यगन्धी तथा पत्र दालचीनी तुल्य प्रिय गन्धमय
होता है। इसके पुष्प केशर द्वारा एक प्रकार का द्रव
परिस्त्रावित होता है और मूल द्वारा हरिताम्र तैल परिसृत
किया जाता है जो उड़नशील होता है।

गुण तथा उपयोग—इसकी पत्तियों को पीस कर लेप
करने से सन्धि वात (गठिया) का नाश होता है। मूल
का क्वाथ पान करने से पित्तज ज्वर एवं विसर्प शान्त
होता है। इसके उत्पत् तेल के उपयोग से पित्तज वमन,
उत्क्लेश, विसूचिका तथा अग्निमान्द्य का नाश होता है।

मात्रा—२-१० बूंद।

प्रतिनिधि—अकरकरा।

कालोई—संज्ञा स्त्री० [म०] वंग धातु। राँगा। कथील
(Tin)।

कालो-कंका (थोरा)—संज्ञा पुं० [गु०, पोरबंदर] गृध्र
नखी।

कालो काल्लोन—संज्ञा स्त्री० [अ०] डाक्टरी औषध
विशेष। (ह्विटला मेटेरिया मेडिका)।

कालो कुड़ो—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण कुटज। काला कुड़ा।
कोरैया। (Nerium Tinctorium)

कालो कुंथो—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण बीज। दे० 'कालादाना'।
कालो केशिआएण्टि कोरम्—(ला० Colocasia Anti-
quarum) माणक। मान कन्द। मान कच्छू। कचू।

कालोकेशिआ-मॅक्रोफाइल्ला—(ला० Colocasia Macro-
phylla) कन्द-विशेष।

कालोकेशिआ मॅक्रोहाइझा—(Colocasia-Macrorrhiza)
हस्तिकर्णी। हतिकन।

कालोकेशिआ-वाइरोसा—(Colocasia-Virosa) कचू।
माणक। मानकंद।

कालोचम्पु—संज्ञा पुं० [को०] देखो—'कालो अपकरो'।
(Anona Narum)

कालोजेन टैब्लेट—संज्ञा पुं० [अ०] डाक्टरी औषध विशेष।
कालोडियम् फ्ले लेक्साइल—संज्ञा पुं० [अ० ला०] डाक्टरी
औषध विशेष।

कालोडिया—संज्ञा पुं० [अ०] डाक्टरी औषध विशेष।

कालोडामर—संज्ञा पुं० [गु०] रजन। धूप। काला डामर।

कालोडयम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमलगट्टा। पद्म
बीज।

कालोत्तर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुरामण्ड।

कालोत्तर प्रसव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालविरुद्ध प्रसव

अर्थात् वह प्रसव जो निश्चित काल के व्यतीत हो जाने पर होता है।

कालो थुम्बो—संज्ञा पुं० [गु०, कों०] आल मूल। भूताकुश।
कालो धतूरो—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण धुस्तुर। काला धतूरा। (मो० श०)।

कालो ध्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पट्टिका रोध्र। पठानी लोध।
कालो निगुण्डु—संज्ञा पुं० [कों०] नील पुष्प की निगुण्डी।
दे० 'निगुण्डी'।

कालो धिल्लुडो—संज्ञा पुं० [गु०] काकमाची। काली मकोय। (मो० श०)। दे०—'मकोय'।

कालो बाबल—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण बबूर। काला बबूल। काला कीकर। (मो० श०)। दे०—'बबूल'।

कालो बाबल गूँदर—संज्ञा पुं० [गु०] बबूर नियास।
बबूल का गोंद।

कालो भांगरो—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण भृङ्गराज। काला भांगरा। केशराज।

कालो मिर्चि—संज्ञा स्त्री० [गु०] काली मिर्च। (मो० श०)।

कालो मोठ—संज्ञा पुं० [म०] विट्त्वण। पाक्य लवण।
पागा नोन। दे० 'काला नमक'।

कालो मेघ—संज्ञा पुं० [वं०] शंखिनी। दे० 'कालमेघ'।

कालोरई—संज्ञा स्त्री० [गु०] कृष्ण सर्पप। काली सरसों।

कालोवालो—संज्ञा पुं० [गु०] (१) सुगन्धवाला। (२)
खस। उशीर।

कालो बिखमो—संज्ञा पुं० [गु०] काला बच्छ नाग।
वत्सनाभ विष।

कालो बिब—संज्ञा पुं० [गु०] सिगिया। शृङ्गिक विष।

कालोसिन्ध—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायण। इनारुन।

कालोसिन्धिटीन—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायण सत्व।

कालो सिन्धित—[अ०] (Colocythis) इन्द्रायण।

कालो सिन्धित पल्पा—संज्ञा पुं० [अ०] (Colocynthis
pulpa) इन्द्रायण की गूदी।

कालोसिन्धीन—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायण सत्व। इन्द्रायण
का सत्त।

कालो हंसराज—संज्ञा पुं० [गु०] कृष्ण हंस पद्मी। काली
झाँप।

काल्वर—संज्ञा पुं० [ला० Calx] चूना। सुधा।
(Calcium)

कालगोरी-पाड़ी—संज्ञा स्त्री० [म०, ते०] कामदूती।
पाटला। पाटल। (इ० मे० मे०) दे०—'पाटल'।

कॉल्चिकम्—संज्ञा पुं० [अ०] (Colchicum) सुरिजान।

कॉल्चिकीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] (Colchicine) सत्व
सुरिजान।

कॉल्चिकेसिया—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'सुरिजान'।

कॉल्चिकेसीई—संज्ञा पुं० [अ० Colchicaceae]
सुरिजान वर्ग। सुरिजान जाति का।

काल्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
काल्यक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) कचूर भेद। गन्धशटी।

कपूर कचरी। (२) नख। नखी। व्यात्र नख।
(सं० क्ली०) उवा काल। प्रत्युप काल। (हे० च०)।

काल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गर्भ-ग्रहण काल।
गर्भ की कललावस्था। (२) गाय। गवि। (३) वह

गाय जो प्रतिवर्ष में गर्भिणी होती है। पुरहुआ गाय।

काल्युटरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] डाक्टरी औषध (घघर
बेल) देवदाली।

काल्युटेरीज—संज्ञा पुं० [अ०] घघरबेल, देवदाली।

काल्युटेरीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] घघरबेल सत्व। यह
अत्यन्त प्रबलतम विरेचन है। इसका उपयोग जलोदर

के अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में वर्जित है।

काल्युनेरिआ—संज्ञा स्त्री० [ला०] वनस्पति विशेष।

काल्युटि (शि)—आवेसिस (ला०) वनस्पति विशेष।

कावई-काको—संज्ञा पुं० [का०] काकमाची। काली मकोय।

कावकशक—संज्ञा पुं० [फा०] शब्रम। (लु० क०)।

कावजान—संज्ञा पुं० [फा०] गावजवाँ। गोजिह्वा।
(लु० क०)।

कावडली—संज्ञा स्त्री० वनस्पति विशेष। (मे० मो०)

कावदम्-पुल्लु-एण्येय—संज्ञा पुं० [ता०] रोहिष तृणोत्थ
तैल। गंजनी का तैल। [द०] तिखाड़ी का तैल।
(मो० श०)।

कावनीनक—संज्ञा पुं० [फा०] जरजोर नाम का पक्षी।
(लु० क०)।

कावन्द—संज्ञा पुं० [अ०] तेल। (Oil)। (मख० अ०)।

कावशक—संज्ञा पुं० [फा०] कबर व उसका फल। (लु०
क०)।

कावल—संज्ञा पुं० (?) पहाड़ी गन्दना। करासुकिरम्।
(लु० क०)।

कावलि (ली)—संज्ञा स्त्री० [ते०] कुल्ली। कुलु। गुलु।
करई। कलरु। (ला०) स्टर्क्युलिया युरेन्स (Sterculia-
urens) (मे० मो०)।

कावली—संज्ञा स्त्री० [कों०] कृष्ण शारिवा। श्याम लता।
(२) मेढासिंगी। मेघ शृङ्गी। गुड मार। (देश०)

एक प्रकार की मछली (मत्स्य)। कवई मछली।

कावली ऐस्कलीविअस—संज्ञा पुं० [ला०] मेघशृङ्गी।
मेघविषाणिका। मेढा सिंगी। शारिवा। श्यामलता। दे०
'सारिवा'।

कावली चडोले—संज्ञा पुं० [म०] शिवलिंगी। विजगुरिया।
ईश्वर लिंगी। (Breyonia Laciniola) घर कुनरु।
कौआ डोड़ी। लिंगतुण्डी। दे० 'शिवलिंगी'।

कावलीजिमिनेटा—संज्ञा पुं० [ला०] मेष श्रृङ्गी। मेष वल्ली। मेष सिंगी। (हाइमाक)।

कावदं—संज्ञा पुं० दे० 'फुलवा'।

कावाकावा—संज्ञा पुं० (अं० Kava Kava) आस्ट्रेलिया की नई वस्तियों—साउथ सीलैंड में होने वाला एक वृक्ष है जिसकी जड़ की सुखाई हुई ग्रन्थि की छाल उतार कर सुखा लेते हैं। इसमें लगभग एक प्रतिशत तक केवेलीन नामक एक मणिभीय सत्व तथा दो रालें (उद्यास) होती हैं जिनमें एक कां कोवीन या कावीन (कावा का सत्व) कहते हैं। इसमें एक सूक्ष्म तेल भी होता है।

पर्याय—जड़ (ले०) कावी र्हाइझोमा (Kavae-Rhizoma); (अं०) कावाकावा (Kava Kava) कावा र्हाइझोम (Kava Rhizome)

वृक्ष—(ले०) पाइपरमेथिस्टिकम् (Piper Methysticum, Farst); (अं०) आवा (Ava), आवापेपर (Ava pepper) कावा। (Kava)।

पिप्पल्यादिकुल (N. O. Piperaceae)

गुण कर्म तथा उपयोग—यह एक उत्तम कटुपौष्टिक एवं उत्तेजक (उष्ण) औषधि है, अल्प मात्रा में देने से यह औषधि विवेक-शक्ति को तीव्र करती तथा थकावट एवं आलस्य को दूर करती है। सुतरां यह सत्व चाय के समान है। अधिक प्रमाण में देने से यह सुषुम्ना पर अपना प्रभाव करती है जिससे चाल लड़खड़ाती हो जाती है, किंतु विवेक-शक्ति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। स्थानिक स्वापजनन की भाँति यह कोकेन के सदृश कार्य करती है। जब इसको श्लेष्मल कला या जीभ पर लगाया जाता है तब पहिले इससे जलन प्रतीत होती है। उसके बाद जीभ सुन्न हो जाती है। बड़े प्रमाण में देने से यह साधारणतया सुन्नता पैदा करती है और सुषुम्ना के प्रभावित भाग एवं ज्ञानवहा नाड़ियों के अंतिम छोरों पर दौर्बल्यकारक प्रभाव करने के कारण अंग-घात उत्पन्न करती है और यह प्रभाव इसके केवीन राल (उद्यास) के कारण होता है। यह मूत्रजनन है और कई एक लेखक मूत्र एवं जननावयव पर इसका रसायन गुण स्वीकार करते हैं। यह सूजाक में भी लाभकारी बतलाई जाती है विशेषकर जब कि उसके साथ वात-रक्त, व्रण और वस्ति शोथ भी हो। मांसपेशी दौर्बल्यजनित शय्या मूत्र में तथा कास, आमवात और वातरक्त में भी यह गुणकारी है। आस्ट्रेलियास्थित पालीनेशिया द्वीपों में इसका सूजाक में पुष्कल उपयोग करते हैं तथा भाँग की तरह इसको मदकारी एवं नशा करने वाले गुण के लिये भी पीते हैं। इसका अधुना द्रव रूप में उपयोग प्रशस्ततर है जिसकी मात्रा ३० बूंद से ६० बूंद तक है।

कावाछी—संज्ञा स्त्री० [सं० गावाक्षी] सूतिया का फल। (लु० क०)।

कावार—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] शैवाल। दे० सेवार वा काई। (हारा०)।

कावार ह्हाइझोम—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की जड़ है। देखो 'कावा कावा'।

कावारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृणादि कृत छत्र। (वं०)—टोका। घास द्वारा निर्मित छत्र (छाता)। (त्रिका)।

कावालेव—संज्ञा पुं० [का०] कदली। केला।

कावाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सूतिया फल। (अ०)—क्राशिकतुल्लवाशिरः।

कावि—संज्ञा पुं० [ते०, ता०] गेरू। गैरिक।

काविकल्लु—संज्ञा पुं० [ते०, ता०] मिले सुखें। गैरिक। (मो० श०)।

कावी—संज्ञा स्त्री० [अ० बहुव० कावियात] आग्नेय। दग्धकारक। तीक्ष्ण। काष्टिक (Caustic), पायरोटिक (Pyrotic) एंस्कारोटिक (Escharotic)।

वह द्रव्य औषध जिनके द्वारा त्वचा विदग्ध होकर उस स्थान पर व्रण चिह्न उत्पन्न हो जाता है। अग्नि दग्ध कर्म द्वारा त्वचा दग्ध होकर शिथिल (मृदार) पड़ जाती है और कृष्ण वर्ण की हो जाती है और उक्त स्थान से द्रवों का उत्सर्ग अवरुद्ध हो जाता है और उक्त स्थान पर खुरण्ड उत्पन्न हो जाता है। इस गुण-प्रधान औषध का उपयोग ऐसे समय पर किया जाता है जब किसी स्थान का प्रवाहित रक्त न अवरुद्ध होता हो। और रुधिर वाहिनियाँ या धमनी कट गई हो और व्रण पूरित न होता हो। यथा, —द्रव्य—

तुल्य, संखिया, दारचिकना, चूना इत्यादि। तिब्बी परिभाषा गत—अक्काल, कावी तथा मुहरिक में प्रयुक्त अर्थ एवं द्रव्यों में अधिक समन्वय पाई जाती है। दे० अक्काल।

कावीन—संज्ञा पुं० [हिं०] द्रव्य विशेष।

कावीह्हाइझोमा—संज्ञा पुं० [ला०] वनस्पति विशेष। देखो 'कावा कावा'।

कावु राइ—संज्ञा स्त्री० [ते०] गैरिक। गेरू। (मो० श०)। मिले सुखें।

कावु वित्तुलु—संज्ञा पुं० [ते०] काहू के बीज। तुल्य-काहू।

कावूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुक्कुट पक्षी। मुर्गा। (२) कोक पक्षी जिसका मस्तक पीतवर्ण का होता है। (मे० कन्निक)।

कावेर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशर। कुंकुम। (जटा०)।

कावेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हरिद्रा। हल्दी। (मे० रन्निक)। (२) स्वनामख्यात दक्षिण भारत में बहने वाली नदी जिसका जल शीतल, स्वच्छ तथा दीर्घ पाकी होता है। इसमें लोहांश होने से गुरु पाकी है।

काश (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] तृण विशेष ।

पर्याय—इक्षु गन्धा, इक्षुवाल्कि, इषीका, अमर पुष्पक, इक्षुर, इक्षीर, इक्षुकाण्ड, काण्ड काण्डक, कच्छल, कारक, कर्ममूल, काशक, कास, काकेशु, दर्भ पत्र, काशा, काशी, चामर पुष्प, चामर पुष्पक, नादेय, शारद, सितपुष्पक, वनहासक, पोटगल, वायसेक्षु, लेखन ।

(हि०) कास, कासा, कशाड़, (म० कना०)—काजल, काँइसु, (ते०) रेलु, (कों०) कसाड़, (वं०)—छोटे कासे । (अं०) थैचग्रास (Thatch-grass) (ला०) सैकरमस्पाँटेनिअम् (Saccharm-spontaneum)

वर्ग—इक्ष्वादि (Graminea)

उद्भव स्थान—भारतवर्ष के सम्पूर्ण भागों में स्वयं उत्पन्न होता है । सुप्रसिद्ध तृण है जो शरद ऋतु में फूलता है इसके पुष्प चमर तुल्य श्वेत वर्ण के होते हैं । इसके काण्डों में मधुर रस होता है । इसके दो भेद हैं, प्रथम क्षेत्रों में और द्वितीय जलप्राय प्रदेशों में उत्पन्न होता है ।

रासायनिक संगठन—इसके रस में इक्षु शर्करा, जल, राल, बसा, प्रोटीन, फास्फोरस-अक्साइड, प्रोटीन इत्यादि प्राप्त होते हैं ।

उपयोगी-अंग—मूल, पत्र, काण्ड । स्वरस ।

गुण-कर्म—मधुर, शीतल, मूत्रल, तिक्त, मधुरपाकी, पित्तज रोग, अश्मरी, मूत्र दाह तथा रक्त विकार नाशक है । (भा० पू० १ भ०) । गौल्य (चिकित्सा), रुचिजनक, वृष्य, पित्त, दाह नाशक, तृप्तिकर, वलवर्धक, शुक्रल, श्रम, शोथ तथा कफ निःसारक है ।

द्वितीय भेद—(जलकाश)—मधुर, पित्त, दाह तथा क्षय रोग नाशक है । (रा० नि० व० ८) । वस्ति गत अश्मरी नाशक तथा रक्तज अर्श में उपयोगी है । इसके काण्डों का रस निचोड़ कर सेवन करने से उपर्युक्त विकार, मूत्रावरोध, पित्तज प्रदाह, उत्क्लेश, वमन, खूनी बवासीर तथा पित्तज ज्वर का नाश होता है । स्वरस की मात्रा—१-५ तोला ।

प्रतिनिधि—दर्भ (कुशा) ।

(२) (सं० पुं०) कण्ठ कण्डुयन । गले की खुजली,

(३) छिक्का, क्षुत् । छीक । (श० र०) । (४)

खाँसी । कास रोग विशेष । दे० 'कास' । (५) एक प्रकार का चूहा ।

काश—संज्ञा पुं० [फा०] काँच । (लु० क०) ।

काशक—संज्ञा पुं० श्लेष्मातक, (लिटोरा) । (फा०) लिसोड़ा । सपिस्ता ।

काशनाशन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कट शृङ्गी । 'काकड़ा सिंगी' । (रत्ना०) ।

काशनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मेउड़ी । नेगड़ । दे० निर्गुण्डी ।

काश पुष्पक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का स्थावर विष अन्तर्गत कन्द विष । (वा० उ० ३५ अ०) ।

काशमर्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] 'कसौदी' । एक प्रकार का क्षुय जो चक्रमर्द से बड़ा होता है ।

काशम्—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] हिङ्गुवृक्ष भेद । अञ्जदान रूमी । (यू०) सीसालियूस का चतुर्थ भेद ।

परिचय—स्वरूप—पीत-हरित वर्ण । स्वाद—किञ्चित् कटु । तीक्ष्ण, एवं सुगन्धियुक्त अञ्जदान तुल्य वनस्पति है ।

इन् वें तार तथा वगदादी के अनुसार काशिम का पौधा छोटा होता है । शाखें पतली, सूचिका तुल्य और पत्तियाँ इसकी इकलीलुल मलिक के पत्तों के समान होती हैं । किन्तु अधिक मृदु एवं अधिक सुगन्धिपूर्ण होती हैं । इसके शाख के ऊपरी भाग में जितनी पत्तियाँ होती हैं, निम्न भाग के अपेक्षा अधिक छोटी होती हैं । और शाख के सिर पर छत्र होता है । बीज अल्प कृष्ण वर्ण एवं ठोस होते हैं । आकार उनका सौलत के दानों से छोटे तथा सुगन्धिपूर्ण होते हैं । गिलानी महोदय काशिम के जड़ को उश्तरगार कहते हैं । और बीज गोल होते हैं । और इसके शेष भाग कुलज के अंग-प्रत्यंग तुल्य होते हैं । इसके बीजों के गुण जीरा तुल्य है । श्रेष्ठ वह है जो नूतन और सुगन्ध पूर्ण हो, तथा पीत वर्ण का हो । इसके वीर्य ३ वर्ष पर्यन्त विद्यमान रहते हैं ।

काशमरम्—संज्ञा पुं० [ता०] कृष्ण अगुरु । काली अगर ।

(म०) लोखण्डी, अंजन, पालकी । कुवी ।

काशम रूमी—संज्ञा पुं० [अ०] अञ्जदान भेद । सीसालियूस । दे० 'काशम' । काशिम ।

काशमर्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसौदी । कालकासुन्दा । (अ० टी० रा०) ।

काशा—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्त्री०] काश तृण । दे० काश (क) । काँस । कासा ।

काशाद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अपस्मार एवं मूर्च्छा नाशक कल्प विशेष । निम्प्राण-विधि—काश, कुशा, ईक्षु, विदारीकंद प्रत्येक का रस निचोड़ कर गो घृत में सिद्ध करें । (च० चि० १५ अ०) ।

काशाल्मलि—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कूट शाल्मली वृक्ष । काला सेमल । (Bombax Heptaphyllum) ।

काशा शकनक—संज्ञा पुं० [फा०] श्लेष्मातक । लिटोरा । सपिस्ता ।

काशि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काशिराज धन्वन्तरि के सुहोत्र । (२) सूर्य । (के०) ।

काशि कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काशी तनया ।

काशि (शी) प्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दिवोदास धन्वन्तरि । (श० र०) ।

काशि ग्रह

११३

काशिरः

काशि ग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्व ग्रह विशेष। एक प्रकार का दुष्ट ग्रह जिसके आक्रमण से अकस्मात् रोम हर्ष होता है, क्षुधा जाती रहती है और पश्चिम पाद में शूल होता है। (जद० ४७ अ०)।

काशिकतुल्य लवण—संज्ञा पुं० [अ०] दुग्ध-मापक यंत्र, जिसके द्वारा दुग्ध की परीक्षा की जाती है। लैक्टोस्कोप (Lacto-scope)

काशिम—संज्ञा पुं० [अ०] सीसालि यूस।

काशिम—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] एक उद्भिज जिसके स्वरूप के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मत पाये जाते हैं। जैसे—(१) कोई-कोई कहते हैं कि यह अंजुदान रूमी है। इसके बीजों को फारसी में 'कोलापज' और अरबी में जूफरा कहते हैं। (२) साहब मिन्हाज के समीप काशिम रूमी अंजुदान है तथा वह सीसालियूस है। (३) कतिपय उत्तरकालीनों का यह अभिमत है कि काशिम सीसालियूस का चौथा भेद है। (४) तिफलोसी कहते हैं कि अंजुदान तो नहीं उसकी तरह का अन्य उद्भिज है। रंग इसका पीला होता है। (५) इन्वेतार और बगदादी कहते हैं कि यह एक उद्भिज है जिसका वृक्ष छोटा होता है। पेंडी पतली सूई की तरह होती है। पत्ते इकलिलुलमलिक के पत्तों के समान और उनसे अधिक नरम एवं सुगंधित होते हैं। कांड के ऊपर के भाग में जितने पत्ते होते हैं वह निचले भाग के पत्तों से अधिक छोटे और फटे-फटे होते हैं। कांड के सिरे पर छत्र होता है। इसके बीज काले, ठोस, सौंफ के दानों से मोटे और सुगंधित एवं तीक्ष्ण आस्वादयुक्त होते हैं। जड़ अंजुदान की तरह तथा सुगंधित होती है। जड़ और बीज औषध के काम में लिये जाते हैं। शेष अन्य अंगों से इन दोनों में अधिक सुगंध एवं तीक्ष्णता होती है। (६) गीलानी कहते हैं कि काशिम की जड़ को फारसी में उश्तरगाज कहते हैं इसके बीज गोल होते हैं। शेष अवयव किल्व के अवयव के सदृश होते हैं। इसके बीजों की शक्ति जीरे के समान है। प्रशस्ततर वह है जो ताजा हो, स्वाद चरपरा, सुगंधित और रंग पीला हो। इसकी जड़ जितनी अधिक बड़ी हो, श्रेष्ठतर है। इसमें तीन वर्ष तक वीर्य रहता है।

प्रकृति—तीसरे दर्जे में गरम और रूक्ष, शेख के मत से इसकी जड़ और बीज दूसरे दर्जे में गरम और रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह औषधि यकृत के अवरोध का उद्घाटन करती है, आमाशय एवं वस्तिगत रक्त-संचय को दूर करती है। दीपन, पाचन, वातानुलोमन, आटो-पहर, कृमिघ्न, मूत्रजनन, सुख प्रसवकारक, गर्भ संधारक और वातविलयन है तथा सांद्र दोषों को पतला एवं प्रकृतिस्थ (मोटदिलुल् क्रियाम) करती है तथा जलोदर, शीतजन्य वेदना, पक्षवध, कम्प वात, पृष्ठ शूल और

गृध्रसी वात में लाभकारी है। इसके बीज ९ रत्ती की मात्रा में दस दिन तक मद्य के साथ सेवन करने से वृक्कशूल मिटता है। शीतल विषौषधियों और शीत प्रकृति के कीट विषों की अगद है। इससे मांसों में मृदुता (लताफत) आ जाती है। विशेषकर जलपक्षियों के मांसों के दोषों का परम निवारण होता है। अहितकर—उष्ण प्रकृतिको, शिर शूलजनक तथा फुफ्फुस एवं वस्ति को। निवारण—सिरके में भिगोना या सिरके के साथ खाना, गुलाब जल में कपूर घिस कर संधाना, कतीरा, सौंफ और खीरा-ककड़ी के बीज। प्रतिनिधि—जंगली गाजर और जंगली अजमोदा के बीज तथा सफेद जीरा। मात्रा—३॥ से ७ माशे तक।

काशिनी विरै—संज्ञा पुं० [ता०] कासनी के बीज।

काशिम—संज्ञा पुं० [अ०] सीसालि मूस। अञ्जु दानेसमी। दे० 'काशिम'।

काशिर—संज्ञा यि० [अ०] त्वगोत्पाटक। छिलका उतारने वाले द्रव्य। वह द्रव्य जो स्वलेखनीय प्रभाव के कारण त्वगत विकृतियों का शोधन करे तथा अस्थि के धरातल से दूषित अंशों तथा मलों का संशोधन करे। यथा—द्रव्य—जल धनिया (देव काड़र), ईश्वर मूल, कुष्ठ, भजित पय, काला तिल, कुलंजन, पोस्ता के बीज, राम पथरी, इत्यादि।

काशिर रियाह—वि० (अ०) दीपन-पाचन। वातानुलोमन। (अ०) वारिदुरियाह, दाफएरियाह। मुकश्शी। (अ०) कार्मिनेटिव्ह (Carminative) यथा—

वातानुलोमक द्रव्य—वह द्रव्य जो आमाशय तथा आंत्र की पाचन-क्रिया को उत्तेजित कर वायु को उत्सर्गित करे।

पाचन द्रव्य—वह द्रव्य जो स्व उष्ण एवं रुक्ष वीर्य द्वारा सान्द्रीभूत वायु को तरलावस्था में परिवर्तित कर अनुलोमन करे। ऐसे द्रव्य को आयुर्वेद की परिभाषा में—दीपन-पाचन कहते हैं।

द्रव्य सूची—पुदीना, भल्लातक, चिरतिक्त, आर्द्रक, पिप्पली, पीपरामिट, बकुची, शुण्ठी, कर्पूर, टंकण, सौवर्चल, सैधव, नृसार, सत्पुष्पा (सौंफ), जीरा, अनीसून, कृष्ण जीरक, उपकुञ्चिका, अजवाइन, अजमोद, सुदाव, सोआ, दालचीनी, लवङ्ग, मरिच, लाल मरिच, कुलंजन, कायफल, कवावचीनी, इलायची, जावित्री, तेजपत्र, अञ्जुदान, जुन्दवेददस्तर, (खट्वासी), अगर, बोल, पीपलामूल, तज, तुम्बुरु, इत्यादि।

काशि (शी) राज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धन्वन्तरि देव वैद्य। (त्रिका०)।

काशिरः—संज्ञा पुं० (अ०) वह व्यक्ति जिसके सिर का पुस्त उड़ गया हो।

काशी—वि० [सं० त्रि०] कास रोगी। खाँसी का मरीज।

वह व्यक्ति जिसको कासरोग हो गया हो।

काशीका प्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दिवोदास धन्वन्तरि भगवान्।

काशी निरि—संज्ञा स्त्री० [म०] वनौषधि विशेष। कोश फल। जायफल।

काशी फल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्हड़ा। पीत कुष्माण्ड। दे० कुम्हड़ा।

काशीराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धन्वन्तरि। (त्रिका०)। (२) दिवोदास। (३) काशी का राजा।

काशीश-(ष)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपधातु विशेष। दे० कसीस। कौसीस।

काशीश त्रितय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कशीस के तीन भेद—(१) काशीश। (२) धातु काशीश। (३) पुष्प काशीश। (भैष० प्लीह चि० महाद्रावक)।

काशीश तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्श चिकित्सा व स्त्री रोग में प्रयुक्त तैल कल्प। निम्माण-विधि—कसीस, अश्वगन्धा, पठानी लोध, गज पीपल, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर कल्क करें और तिल तैल युक्त पचा कर सिद्ध करें। (च० द०)।

काशीशसम्भूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद। पारा। (र० सा० सं०)। पाव्वर्ती रस।

काशु—संज्ञा पुं० [ता०] कत्था। खदिर। (मो० श०)।

क्राशुक—संज्ञा पुं० [सुर०] छोटा वा बड़ा चम्मच। (Spoon)।

काशु कट्टि—संज्ञा स्त्री० [ता०] कत्था। खदिर। (मो० श०)।

काशूकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूग फल। सुपारी। गुवाक। (वै० निघ०)।

काशूनट—संज्ञा पुं० [अं० Casheunut] अमेरिका में होने वाला एक वृक्ष जिसका फल नारंगी के बराबर होता है। इससे एक प्रकार का रस निकलता है जिससे मदिरा बनती है और फल को खाते हैं। फल के सिरे पर एक टोपी-सी होती है। इसके ऊपर का छिलका कड़ा होता है। छिलके और बीज के बीच से एक प्रकार का दाहक स्नेह निकलता है। कलकत्ता के कुष्ठाश्रमों में डाक्टर स्टुअर्ट ने काशूनट के उक्त स्नेह को किलास के दागों पर लगाया तो धीरे-धीरे उनकी रंगत बदल कर त्वचा अपनी स्वाभाविक दशा पर आ गई। डाक्टर महोदय ने शरीर की स्वच्छता और पथ्य में बहुत सावधानी रखी।

काशेक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तृण विशेष। दे० 'काश' (क)।

काश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कपिल द्राक्षा।

अंगूर भेद। (रा० नि० व० ३)। (२) कस्तूरी। मृग नाभि। (भा०)। (३) गम्भार। कमहार। (रा० नि० व० ९)। (४) काश्मरी फल। (५) गम्भारी फल। (च० द० वात पि० ज्व० चि०)।

काश्मरी फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कपिल द्राक्षा फल। (२) गम्भारी फलोत्थ मज्जा, (सि० यो० पित्त ज्व० चि०)। फल गुण—रसायन, मेधाजनक, हृदय, मूत्र विवन्ध नाशक, पित्तघ्न, केशवर्धक तथा रक्त-पित्त में उपयोगी है। (सु० सू० ४६ अ०)।

काश्मर्य—सं० पुं० [सं० क्ली०] (१) गम्भारी वृक्ष। कमहार। (रा० नि० व० ९)। (२) कायफल वृक्ष। (३) पुष्कर मूल। (वै० निघ०)।

काश्मर्य फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गम्भारी का फल। (२) कपिल द्राक्षा फल।

काश्मर्य फल क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पित्त ज्वर में प्रयुक्त कषाय। दे० 'काश्मर्यादि'।

काश्मर्या—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री] क्षुद्र गम्भारी वृक्ष। (वै० निघ०)।

काश्मर्यादि (क्वाथ)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वात ज्वर में प्रयुक्त कषाय। निम्माण-विधि—(१) काश्मरी फल, सारिवा, द्राक्षा, त्रायमाण (पीली जड़ी), गुडूची, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर क्वाथ करें पुनः गुड़ मिश्रित कर पान करने से वात ज्वर का नाश होता है। (यो० र० ज्व० चि०)।

(२) पित्त ज्वर में प्रयुक्त क्वाथ—काश्मरी फल (कपिल द्राक्षा), रक्त चंदन, पद्म काष्ठ, खस, द्राक्षा, मुलेठी प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर क्वाथ कर सेवन करने से पित्त ज्वर शमन होता है। (यो० र० तृषा० चि०)।

काश्मर्यादि क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पित्तप्रधान वात रक्त में प्रयुक्त कषाय। निम्माण-विधि—काश्मरी फल, द्राक्षा, अमलतास की गूदी, रक्तचन्दन। प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर दुग्ध युक्त पाक कर पान करने से वात रक्त की शान्ति होती है।

काश्मर्यादि गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वार्जा-करण योग विशेष। निम्माण-विधि—काश्मरी केशर, सुहागे की खील, जावित्री, अकरकरा, शुद्ध हिङ्गुल, रक्त बोल, जायफल, लवङ्ग और अहिफेन। प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर पक्व दुग्ध के साथ मर्दन कर चना प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा सेवन विधि—मैथुन के पूर्व रात्रि में दुग्ध के साथ सेवन कर ३ घंटा के पश्चात् स्त्री प्रसंग करने से काम विदग्ध व्यक्ति अपने स्त्री को प्रसन्न कर सकता है।

काश्मर्याविधृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] योनि व्याधि

में प्रयुक्त योग। **निर्म्माण-विधि**—काश्मीरी (कपिल द्राक्षा), त्रिफला, दाख, फालसा, कासमर्द, पुनर्नवा, हलदी, काकनासा, कटसरैया, शतावरी और गुडूची प्रत्येक कर्ष प्रमाण में ग्रहण कर कल्क करें, पुनः यथाविधि घृत मिश्रित कर सिद्ध करें। इसके सेवन से वातज योनि रोग शान्त होकर गर्भ धारण की शक्ति प्राप्त होती है। (च० चि० ३० अ०)।

काश्मीरी-द्रुवपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र गम्भार वृक्ष। (वै० निघ०)।

काश्मीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुष्कर मूल, (२) केशर। (३) टंकण, सुहागा। (४) कस्तूरी। (रा० नि० व० २३) (५) (सं० पुं०) गम्भार वृक्ष।

काश्मीर की नासपाती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] काश्मीर देश की नासपाती। साइडोनिया वल्गैरिस (Cydonia Vulgaris) दे० 'नासपाती'

काश्मीरज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशर। कुङ्कुम। (रा० नि० व० १२)। (२) कुष्ठ भेद (मे० ज० चतुष्क)। (३) पुष्कर मूल। (विश्व०)। (४) अतिविषा। अतीस। (५) काश्मीरी कस्तूरी। (६) काश्मीर देश की केशर।

काश्मीर जन्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशर। कुङ्कुम। (प० मु०)।

काश्मीरजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अतीस। (मे०)। (२) पुष्कर मूल। (३) केशर। कुङ्कुम।

काश्मीर जीरक (का) संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शुक्ल जीरक। सफेद जीरा। (रा० नि० व० ६)।

काश्मीर पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गम्भारी कुसुम। गम्भार का फूल। [मु० चि० २५ अ०]।

काश्मीर फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गम्भार का फल। (च० द० रक्त पि० चि० शतावरी घृत)।

काश्मीर वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्णा। गम्भार। (ध० नि०)।

काश्मीर सम्भव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) केशर। कुङ्कुम। (२) गन्धक। आमला सार गन्धक।

काश्मीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कपिल द्राक्षा। (रा० नि० व० ११)। (२) अतिविषा। अतीस। (प० मु०)। (३) स्थल पद्मिनी। थलकमल। (वै० निघ०)। (४) एक प्रकार का ऊर्ण वस्त्र। ऊनी मोटा कपड़ा जो काश्मीर से आता है।

काश्मीरी पत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० वै०] वृक्ष पत्र विशेष, पर्याय—(फा०) बर्गे तिब्बत। बर्गे कश्मीरी। (का०) पत्तर (गढ़वाल) नइर। (ला०) स्कीमिआ लॉरीओला (Skimia Laureola; Hook)।

वर्ग—नागर-झाड़ि—(Rutaceae)

परिचय—एक प्रसिद्ध वृक्ष पत्र है जो तेजपत्र तुल्य; किन्तु उसकी अपेक्षा बृहत् तथा स्थूल होता है। काश्मीर में इसका उपयोग विल्वपत्रवत् होता है।

उद्भवस्थान—काश्मीर, देहरादून, गढ़वाल, तिब्बत, इत्यादि।

प्रकृति—उष्ण एवं रुक्ष। **गुण-कर्म**—छिक्काजनक, शिरो-विरेचन; **उपयोग**—इसका बारीक चूर्ण निर्म्माण कर नस्य ग्रहण करने से प्रतिश्याय, शिरोवेदना शीघ्र शांत होती है।

योग—काश्मीरी पत्र १ भाग, कायफल की त्वचा २ भाग, एकत्र चूर्ण कर नस्य लेवे।

काश्मीरी नफशा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'वनफशा'।

काश्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काशी राजधन्वन्तरि। संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) मद्य। शराब। (रा० नि० व० १४)।

काश्यप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मृग विशेष। (मे०)। (२) मत्स्य विशेष। एक प्रकार की मछली। (३) काश्यप ऋषि। (च० सू० १२, १४ अ०) [सं० क्ली०]

—मांस। (हे० च०)।

काश्यपी—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०) अवनी। पृथ्वी। (ध० निघ०)।

काश्यपी गुटिका—[कपर्द पोट्टली] बलवर्धक योग विशेष।

निर्म्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, एकत्र गोमूत्र में मर्दन करें और उसकी पिष्टी पीत वर्ण की बराटिका (कोड़ी) के उदर में स्थापन कर उसका मुख सुहागा और गुड़ से भली भाँति बंद करें और एक मिट्टी की हाँडी में स्थापन कर उस पर ७ बार कपड़-मिट्टी करें जब शुष्क हो जाय गजपुट की आँच दें। जब स्वांग शीतल हो जाय निकाल कर जितनी भस्म हो उससे द्विगुण काली मिर्च का चूर्ण मिश्रित करें। **मात्रा**—१-४ माशा।

गुण तथा उपयोग—घृतयुक्त सेवनोपरांत अश्वगन्धा चूर्ण १ तोला, मिश्री २ तोला, गोदुग्ध में मिश्रित कर पान करने से बल की वृद्धि होती तथा मेद वृद्धि का नाश होता है।

काश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र काश्मीरी वृक्ष। (द्विरूपकोष, भरत)।

काष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुरुत पत्थर जिसके द्वारा खरसान बनाई जाती है।

काषायवासिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का सविष सौम्य कीट विशेष। इसके दंशन से कफजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। (सु० कल्प० ८ अ०)।

काषायी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की सविष मक्षिका विशेष। (सु० कल्प० ८ अ०)। दे० 'मक्षिका'।

काष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लकड़ी। काठ। दारू। (मे० ठत्रिक)। (२) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी। (वै० निघ०)। (३) सारिवा। सीरिवन। (४) इक्षु।

ईख। गन्ना। (५) ईधन।

काष्ठ अङ्गार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लकड़ी का कोयला।

काष्ठ आँवला—संज्ञा पुं० [हिं०] काष्ठ धात्री।

काष्ठ उदुम्बर—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० पुं०] कठगूलर।
काको दुम्बर। जंगली गूलर।

काष्ठक—संज्ञा [पुं० सं० क्ली०] कृष्ण अगुरु। काली
अगर। (रा० नि० व० १३)।

काष्ठीन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का पदार्थ जो
सगर्भा स्त्रियों के मूत्र में पाया जाता है। इसके द्वारा
गर्भाधान निश्चय किया जाता है।

काष्ठ कदली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन कदली।
जंगली केला। (म०)—काष्ठ केले। (बं०)—नूतो
कला। (सं०)—अश्म कदली। काष्ठिका, वन कदली,
सुकाष्ठा, शिला, रम्भा। वनमोचा, दारु कदली।
फलाढ्या।

परिचय—सुप्रसिद्ध केला जो जंगलों में स्वतः उत्पन्न
होता है।

गुण-कर्म—शीतल, रुचिप्रद, रक्त पित्त नाशक, दीर्घ
पाकी, दुर्जर तथा अग्निमान्द्य कारक है। पक्व फल
अत्यन्त मधुर होता है। तृष्णा, दाह, मूत्र कृच्छ, विष्फोटक,
रक्त पित्त एवं अस्थि रोग नाशक है। (वै० नि०)।

काष्ठ कयला—संज्ञा पुं० [बं०] काष्ठ अङ्गार। लकड़ी
काष्ठ कले—संज्ञा पुं० [वर०] का कोयला।

काष्ठ कावली—संज्ञा स्त्री० [को०] श्यामलता। कृष्ण शारिवा।
दे० 'सारिवा'। कालीसर।

काष्ठ कीट—संज्ञा पुं० (सं० पुं०) घुण। घून। लकड़ी का
कीड़ा।

काष्ठ-कुटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी विशेष।

काष्ठ-कुट्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कठ फोड़ा। कठ

काष्ठ-कूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ई, कठफोरा, काठडोका।
(वूडपेकर (Wood-pecker)। पाइकस बेंगालेंसिस

(Picus Bengalensis)। (त्रिका०)। मांस गुग्—
शीतल, अग्निवर्धक, लघुपाकी, वातघ्न तथा शुक्रवर्धक
है। मतान्तर से—वात, कफ, कारक अश्मरी भञ्जक,
विशद एवं तत्क्षण बलकारक है। (अत्रि० २१ अ०)।

काष्ठ-गोधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोधा विशेष।

काष्ठगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोधा
पदी भेद। (२) कोष्ठागार कीट। विसुन्दरी कीट।
काष्ठागार। (३) गोधा मृग। (च० चि० १ अ०)।

काष्ठजम्बु (बू)—संज्ञा पुं० (सं० स्त्री०) वन जम्बु।
कठजामुन। भुई जम्बु। भूमि जम्बु। (रा० नि० व० ११)।
दे० 'काकजम्बु'

काष्ठ तन्तु—संज्ञा पुं० (सं० पुं०) काठ के भीतर रहने
वाला कीड़ा। काष्ठ कृमि। लकड़ी का कीड़ा। (बं०)

गुटि पोका।

काष्ठ तक्षक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'काष्ठ तन्तु'।

काष्ठ तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लकड़ी का तेल।

काष्ठदारु—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] देवद्रु। देवदार
भेद। (Uvaria Longifolia) दे० 'देवदार'।

काष्ठद्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ढाक। पलाश। (Butea
Frondosa) (रा० नि० व० १०)।

काष्ठ धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काठ आँवला।
काष्ठामलकी। क्षुद्रामलक। (भा० पू० १ भ०)।

काष्ठधात्री फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्षुद्र आमलक।
(Embliaofficinalis)।

गुण—कषाय, कटु, शीतल तथा रक्त-पित्त नाशक है।

काष्ठ पाटला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत पाटला।
सित पाटलिका। सफेद पाढ़ल। श्वेत पारूल गाछ।
अधकषारी। दे० 'पाटला' वा 'पाढ़ला'।

काष्ठ पाढल—संज्ञा पुं० [हिं०] कठपाढर। दे० 'काष्ठ
पाटला' वा 'पाढ़ल'।

काष्ठ पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केतकी। केवड़ा।
(प० मु०)।

काष्ठ भङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कठ बड़ई। दे०
'काष्ठ कुटक'।

काष्ठ भाग—संज्ञा पुं० (हिं०) निःसार भाग। सिट्ठी।
तलस्थ भाग। फोंक। तलछट (Sediment)।

काष्ठमय निशा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माचिका भेद।
एक प्रकार की मकोय। इनबुस्सालब।

काष्ठ मञ्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } अजगर।
काष्ठ मञ्जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } देवमञ्जरी।
काष्ठ माञ्जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

काष्ठ मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन मल्लिका।

काष्ठर—(अं० Caster) अरण्ड बीज।

काष्ठर आइल—[अं० Caster oil] एरण्ड बीजोत्थ
तैल। अंडी का तेल। यह विरचन तेलों में सर्वश्रेष्ठ है।
(चरक, सूत्र०)।

काष्ठ रजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहरिद्रा।
दारु हल्दी। [वै० नि०]।

काष्ठर्ज-चेष्ट—[अं०] पीत अगुरु। पीली अगर।

काष्ठ लुनर—संज्ञा पुं० [अं०] डाकटरी औषध विशेष।

काष्ठ लेखक—संज्ञा पुं० (सं० पुं०) काष्ठ घुण। लकड़ी
का कीड़ा।

काष्ठ लोही (न्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोह वेष्टित
मुशल। मुग्दर। वातार्दि।

काष्ठ वल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कटु वल्ली विशेष।
कुटकी। (रा०
काष्ठ वल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } नि० व० ५)।

काष्ठ वास्तुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खरथुआ। वनवास्तुक।
वास्तुकशाक भेद। (वै० निघ०)।

काष्ठ विडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजगुर।
देवमञ्जरी।

काष्ठ विवर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वृक्षकोटर।
खोखला वृक्ष जिसमें पक्षी निवास करते हैं।

काष्ठ शारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उत्तरापद,
उत्तरन। (२) श्वेत शारिवा। (३) अनन्त मूल।
अनन्ता। (मद० व० १)। दे० 'सारिवा'।

काष्ठ शालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] रक्त शाली धान।
(रा० नि० व० १६)।

काष्ठस स्पेसियोसस—संज्ञा पुं० [ला० Caster Speciosus]
केमुक शाक।

काष्ठ-सारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्तरापथ,
उत्तरन। (मद० व० १)।

काष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काल परिमाण जो
एक कला का ३०वाँ भाग व १८ पल का समय।
(सु० सू० ६ अ०) अक्षि-निमेष। दे० 'काल मान'।

काष्ठागर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीत अगुरु काष्ठ।
पीली अगर।

काष्ठाग (गु) रू—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० काष्ठागर।
गुण—कटु, उष्ण तथा लेपन कर्म में रुक्ष तथा कफ
नाशक है। (रा० नि० व० १२) दे० अगर।

काष्ठागर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली० पुं०] दाहमय गृह।
लकड़ियों द्वारा निर्मित गृह।

काष्ठाङ्गार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लकड़ी का कोयला
(Wood Charcoal)।

काष्ठामलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } क. ष. अ. व. ला।
काष्ठामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] } मुम्यामलक। काष्ठ
धात्री

काष्ठाम्बुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काष्ठ द्वारा
निर्मित जलसेचनी।

काष्ठाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिण्डालु।

काष्ठालु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काठ आलु। शुभ्रालु।
(वै० निघ०)।

काष्ठालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पिण्डालु। वह आलू जो
काठ तुल्य कठोर होता है। देश में इसको कठालू वा काठ
आलू कहते हैं। (वै० निघ०)।

काष्ठाशन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घुण। घुन जो काठ
काटता है। काष्ठ कृमि। (रत्ना०)।

काष्ठासन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काठ की चौकी। दाह
निर्मित आसन (पीढ़ा)। चौका।

काष्ठिक—संज्ञा पुं० [अं० Caustic] यह चाँदी का एक
यौगिक है। इसे चाँदी और शोरे के तेजाब से तैयार करते

हैं। वि० दे० "चाँदी"।

काष्ठिक—संज्ञा पुं० [अं० Caustic] एक प्रकार का
क्षार जो कृष्णवर्ण का होता है। यह दग्ध-कर्म में
प्रशस्त है।

काष्ठिक पोटाश—संज्ञा पुं० [अं० Caustic potash]
यह पोटाशियम हाइड्रॉक्साइड और पोटाशियम कार्बोनेट
का एक यौगिक है। वि० दे० "पोटाशियम"।

काष्ठिक सोडा—संज्ञा पुं० [अं० Caustic Soda] दाहक
सोडा। यह काष्ठिक पोटाश के समान कार्य करता है।
दे० "पोटाशियम"।

काष्ठिक आयोडाइड—संज्ञा पुं० [अं० Caustic Iodide]
एक प्रकार का दाहक क्षार।

काष्ठिकम् आयोडाइडम् [ला० Causticum Iodidum]
क्षार विशेष।

काष्ठिक गिटिगेटेड—[अं० Caustic gitigeted]
संज्ञा पुं० क्षार विशेष। [द्वि० मे० मे०]।

काष्ठिक पोटाश—संज्ञा पुं० [अं० Caustic Potash]

पर्याय—[ला] पोटाश काष्ठिका (Potash Caustica)

काष्ठिक पोटेसी। प्रस्तुत करण—पोटाशियम कार्बोनेट
को जल में खरल कर चूर्णित चूने के पानी में मिश्रित
कर इतना पकाएँ कि जलीय अंश वाष्पीभूत होकर उड़
जाए और शेष भाग को साँचों में ढाल दें।
इसकी शुष्क डलियाँ श्वेत तथा कठोर हो जाती हैं।
इसको पोटाश हाइड्रेट, पोटाश हाइड्रास, पोटाशियम-
हाइड्रेट, पोटाश हाइड्रेट तथा हाइड्रेट ऑफ पोटाश
भी कहते हैं।

विद्रावण—उक्त द्रव्य १ भाग, जल २ भाग, विशुद्ध
सुरा ३ भाग और २ भाग ३ भाग ग्लेसीन में विलीन
हो जाती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसका स्वाद क्षारीय होता
है और त्वचा पर लगाने से वह दग्ध हो जाती है। जल
में मिश्रित कर बाहर लगाने से अत्यन्त संकोच उत्पन्न होता
है और तद्गत द्रव अभिशोषित हो जाता है। यह अत्यन्त
दाहक है। इसका दग्ध स्थान धूसुर वर्ण का हो जाता है।
इसके अत्यल्प घोल लगने से त्वचा में क्षोभ उत्पन्न होता है
इसके लगने से त्वचा का बाह्य भाग मृदु हो जाता है।
अत्यल्प परिमाण का घोल त्वचा पर लगने से वह रक्त
वर्ण की हो जाती है। और यदि उस पर वसा वा
घृतदि स्निग्ध पदार्थ लगे हों तो उसको भक्षण कर जाती
है। यह अम्लता को नष्ट कर देती है। इसके हल्के उष्ण
द्रव का त्वचा पर संशमन प्रभाव होता है।

आन्तरिक प्रभाव—इसका आन्तरिक प्रभाव पोटाशियम
कार्बोनेट तुल्य होता है। किन्तु यह उसकी अपेक्षा अधिक
क्षोभक और अल्प मूत्रल है। सर्वप्रथम इसका केवल बाह्य

उपयोग होता था, किन्तु आधुनिक समय में कभी कर्कट (कैंसर) आदि के दग्ध कर्म में भी होता है। यह अत्यन्त शीघ्र द्रवीभूत हो जाती है अतः इसका उपयोग अत्यन्त सावधानतापूर्वक होता है। और यह अभक्ष्य है।

उपयोग—(१) पादांगुष्ठ के निम्न भागके नखस्थ मांस-वृद्धि होती हो तो इसके घोल में रुई की फुहररी भिगा कर उसके समुचित स्थान पर लगाने से वह अत्यन्त मृदु हो जाती है; इस अवस्था में उसको खुरच कर निकालने में किंचित् मात्र भी वेदना नहीं होती। अथवा—४० भाग पोटाश को १०० भाग जल में मिश्रित कर घोल निर्माण करें। पुनः इस घोल में रुई की फुहररी भिगा कर नरम-मांस-वृद्धि स्थल पर स्थापन करें। १ मिनिट में वह नख मृदु होकर खुरचने योग्य हो जाता है और इस पर पुनः पोटाश की एक फुहररी लगा देने से वह कैची से कतर कर निकाल देने योग्य हो जाती है।

(२) अपरस (चम्बल) नामक चर्म रोग में भी उसको सरलतापूर्वक उतारने में इसका उपयोग किया जाता है। (३) शीतपित्त तथा उदरद पर लगाने से लाभ होता है। खुजली में भी इसके बाह्य उपयोग से लाभ होता है। (४) इसके हल्के उष्ण घोल से संधिवात (गठिया, निकरिस) के वेदना स्थान पर सेंक करने से लाभ होता है। उदर वेदना हरणार्थ इसके घोल से प्रक्षालन करने से भी लाभ होता है, (५) पोटाश द्वारा निर्मित साबुन से मलिन वस्त्र स्वच्छ किए जाते हैं।

खाने के कार्य में इसका उपयोग वर्जित है। इसके खाने से आमाशय में प्रदाह और अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होता है। किन्तु कभी-कभी उग्र अम्लपित्त में अम्लता निवृत्त्यर्थ अत्यल्प मात्रा में घोल कर सेवन कराया जाता है। इसके अतिरिक्त मेद वृद्धि में मेदननिवृत्त्यर्थ इसके घोल का उपयोग होता है।

काष्ठिक घोल—काष्ठिक पोटाश—४७ ग्रेन को १ औंस जल में घोल कर अम्ल पित्त में कार्य में लावें। मात्रा—१० से २० बुंद तक।

दग्ध कर्म में विशुद्ध काष्ठिक पोटाश का उपयोग होता है।

हानिकारक—विशुद्ध पोटाश काष्ठिक अभक्ष्य है। इसका विषवत् दाहक कार्य होता है।

विषाक्तता—इसके विष से समस्त शरीर पके फोड़े की भाँति हो जाता है। दस्त आने लगते हैं। शीतल स्वेदोत्सर्ग होता है। हिचकी आने लगती है, नाड़ी की गति अवरुद्ध होकर मृत्यु प्राप्त होती है। कभी-कभी श्वासप्रणाली में क्षत उत्पन्न होने से अति शीघ्र श्वासावरोध होकर मृत्यु प्राप्त होती है। उक्त कारणों से इसका आन्तरिक तथा बाह्योपयोग अत्यन्त सावधानतापूर्वक किया जाता है।

चिकित्सा—५-७ अण्डों की सफेदी ग्रहण कर जल में भली भाँति फेंटकर पिलाएँ। दुग्ध-घृत मिश्रित कर दें। अथवा जब प्रदाह शान्त हो जावे तो दुग्ध में अण्डे की सफेदी और अल्प मात्रा में ब्राण्डी मिश्रित कर दें।

कर्कट (कैंसर), पुरातन विद्रीधि इत्यादि में दग्ध कर्म की जाने वाली विधि—इसके लगाने में एक दुर्गुण यह है कि इसका प्रभाव अति शीघ्र होकर शीघ्र फैल जाता है, कारण यह है कि यह अत्यन्त द्रवणशील द्रव्य है। बूझे हुए चूने का पानी और पोटाश के मिश्रण से एक ऐसे पदार्थ का निर्माण हो जाता है कि जिसका प्रभाव पृथक् होने पर इतना उग्र नहीं होता। अतः इसका इस प्रकार उपयोग में लावें—जहाँ काष्ठिक पोटाश लगाने की आवश्यकता हो, सर्वप्रथम उस स्थान पर घृतादि की स्निग्ध पट्टी पलास्तर की भाँति लगा दें और बीच में छिद्र कर दें और जितने स्थान में दग्ध की आवश्यकता हो उसकी अपेक्षा छिद्र छोटा रखें और छिद्र की जगह पोटाश मर्दन करें, यह क्रिया उतने काल पर्यन्त करते रहें कि जब तक उस स्थान की त्वचा का वर्ण धूसर न हो जावे। पुनः उस स्थान को शुक्त (सिरका) मिश्रित जल से प्रक्षालन कर इस पर इसी की पट्टी रख कर बन्धन लगा दें। इस प्रकार करने से ५ से ९ दिन के भीतर ही उस स्थान की त्वचा गलीभूत होकर पृथक् हो जाती है। और वहाँ एक गम्भीर क्षत उत्पन्न हो जाती है और जब इस प्रकार का व्रण बन जाय तो उसके भीतर मटर का दाना स्थापन कर दें जिससे वह व्रण पूरित न होने पाए, और उसका निरन्तर परिस्त्राव होता रहे। **वर्जित स्थान—**उक्त विधि का अवलम्बन ऐसे स्थानों पर न करें कि जहाँ की अस्थि भंग हो गई हो, बड़ी शिरा तथा स्नायु (Nerve) पर भी इसका उपयोग वर्जित है। विभिन्न स्थान पर विभिन्न प्रकार से इस कर्म का उपयोग किया जाता है। **यथा—**पृष्ठ वंश की वक्रता प्राप्त होने पर इसका उपयोग लम्बा होता है, और सन्धिगत दुष्ट व्याधि, यथा—नितम्ब, वा घुटने पर—गोल, इसके २ लाभ हैं—(१) यह कि शरीर के बाह्य भाग की ओर पूय विस्रावित होने से किसी एक प्रमुख भीतरी अंग में रुधिर का स्कन्दन (जमाव) नहीं होने पाता, यथा—कर्ण के दुष्ट प्रदाह और यकृत के पुरातन प्रदाह और सन्धियों के पुरातन प्रदाह, **यथा—**नितम्बास्थि सन्धि के पुरातन व्याधि इत्यादि में। (२) शरीरगत साधारण रोग में पूय (मवाद) विस्रावित होने के लिए भी इसका उपयोग होता है, यथा—अपस्मार, संयास, कम्प वात (Chorca) तथा अन्य मस्तिष्क के दुष्ट रोग इत्यादि में। यदि किसी प्रमुख अंग में दग्ध करना हो तो उचित है कि उक्त आवश्यक अंग के निकट तथा शरीर के साधारण रोग में

प्रायः बाहु पर, वा पाद के भीतरी ओर करें।

काष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काष्ठ कदली। काठ केला। वन कदली। (रा० नि० व० ११)।

काष्ठिक्स—संज्ञा पुं० [अ० Caustics] क्षार विशेष। (द्वि० मे० मे०)।

काष्ठे नाप्सिस् इण्डिका—संज्ञा पुं० [ला० Castenopsis Indica] वनस्पति विशेष। (नैपा०)—लावज कतूस।

काष्ठेनाप्सिस ट्रिब्युटाइडिस—संज्ञा पुं० [ला० Castenopsis Tributoides] वनस्पति विशेष। (कुमायुं) तुमड़ी।

काष्ठेनाप्सिस-रुफिसेन्स—संज्ञा पुं० [ला० Castenopsis Ruphisens] (नैपाल)—दलनी कतूस।

काष्ठेनाप्सिस्-विस्का—संज्ञा पुं० [ला० Castenopsis Visca] आक्षोट। अखरोट।

काष्ठेनाप्सिस् रोजी इण्डिका—संज्ञा पुं० [ला० Castenopsis Rose Indica] वृक्ष विशेष। (डाइमॉक १. भा पृ० १७०)।

काष्ठेनाप्सिस् बल्गेरिस—संज्ञा पुं० (ला० Castenopsis Vulgaris) एक वृक्ष का भेद जो बल्गेरिया में होता है।

काष्ठिरसा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कदली। केला। (वै० निघ०)।

काष्ठिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कदली। केला। (२) राजार्क। आक का बड़ा भेद। (वै० निघ०)।

काष्ठी रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कदली। केला। (ध० नि०)।

काष्ठील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) राजार्क। आक का एक बड़ा भेद। शुक्रार्क। दे० 'आक'। (रा० नि० व० १०)। (२) सिंगी मछली। कुलिश मत्स्य। (त्रिका०)।

काष्ठीला—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०)

काष्ठीलिका—संज्ञा स्त्री० (सं० स्त्री०) } (१) काष्ठ कदली। काठ केला। (रा० नि० व० ११)। दे० 'कदली'। (२) राजार्क। दे० 'आक'। (वै० निघ०)।

• **काष्ठेक्षु**—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत इक्षु। सफेद ईख (गन्ना)। (रा० नि० व० १४)। गुण—वात प्रकोप कर तथा अन्य गुण कान्तार इक्षु तुल्य हैं। (सु० सू० ४५ अ०)। दे० 'ईख'।

काष्ठो दुम्बरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकोदुम्बरिका। कठ गूलर। काक उदुम्बर। दे० गूलर के अन्तर्गत।

कास—संज्ञा पुं० [हिं० सं० काश] (१) तृण विशेष। दे० 'काश (क)'। (२) (म०)—ग्रवास। दे० 'जवासा'। (३) रोग विशेष। खाँसी। (वं०) कासि। (अ०)—सुआल। इल्लिहाबुल् शब्ब। (अँ०) ब्रोङ्काइटिज (Bronchites)

भेद—(१) वातज कास, (२) पित्तज कास, (३) श्लेष्मज (कफज) कास, (४) क्षयज-कास। यह

उत्तरोत्तर बलवान् होती है। अर्थात्—वातज की अपेक्षा पित्तज, पित्तज की अपेक्षा कफज और कफज की अपेक्षा क्षयज कास (क्षतजनित कास)।

निदान, संप्राप्ति तथा लक्षण—मुख व नासिका द्वार में धूम प्रवेश होने से, प्रकुपित वायु द्वारा अन्न का अपक्व-रस ऊर्ध्वगामी होने से, अति शीघ्र आहार करने से, आहार के विमार्गगामी होने से, अधिक व्यायाम करने से, निरन्तर अधिक दिनों प्रयत्न रुक्ष-चणक, कोद्रव इत्यादि अन्नों के सेवन से, मलमूत्र, छिक्का इत्यादि के उपस्थि वेगों के रोकने से तथा अन्यान्य कारणों से उदान वायु प्रकुपित होकर उसके साथ प्राण वायु के संयोग से कफ और पित्त के साथ हो कर बहिर्गत होती है और फूटे हुए कांस्य पात्र के सदृश शब्द होता है। इस प्रकार की विकृति को आयुर्वेद के ज्ञाता आचार्य कास रोग कहते हैं।

वक्तव्य—इस रोग में प्रायः स्थानीय विकृति होती है स्वर यंत्र में तथा फुफ्फुस नलिका में तथा उसके कोषों में जब उपर्युक्त कारणों से श्लेष्मा एवं अन्य प्रकार के प्रदाह जनक कारणों से तथा स्वर यंत्र में तृण, धूल, नासिका के बाल इत्यादि आगन्तुक रूप से प्रविष्ट हो जाते हैं तब उसको बहिर्गत करने के निमित्त बार-बार खाँसी आती है तथा जब तक श्लेष्मादि का सम्यक् निर्गमन नहीं हो जाता तब तक खाँसी उठा करती है।

कास के पूर्वरूप—कास रोग उत्पन्न होने के पूर्व प्रथम इस प्रकार के लक्षण उपस्थित होते हैं—

मुख और गले में काँटे के समान चुभता हुआ-सा प्रतीत होता है और कण्ठ में कण्डूयन (खुजली) होती है। भोजन की रुचि का अभाव-सा होता है गले में व्यथा होने के कारण भोजन करने में कष्ट प्रतीत होता है।

(१) **वातज कास के लक्षण**—वातजन्य कास में हृदय, कनपटी, सिर, उदर तथा पार्श्व में पीड़ा होती है। मुख सूखता है, बल, स्वर तथा ओजादि शक्तियों का नाश होता है। वेगपूर्वक खाँसी आती है। स्वर भंग होता है। सूखी खाँसी आती है। और कफ का अवरोध होता है। उक्त लक्षण वर्तमान हों तो वातज कास समझना उचित है।

चिकित्सा—वातज कास में वास्तुक शाक, काकमाची (काली मकोय) का शाक, छोटी मूली, शिरिआरी, सुनिषणक (राम तुलसी-फिरञ्ज मिश्रक), ईख का रस, गुड़ द्वारा निर्मित पदार्थ, घृतादि स्निग्ध पदार्थ, दधि, अम्ल फल, काँजी, मिष्ट पदार्थ तथा प्रसन्ना नामक मदिरा का सेवन कराएँ।

औषध—दशमूल द्वारा प्रस्तुत यवागू, श्लेष्मान्तक, मुलेठी, अलसी, गोजिह्वा, इनमें से किसी एक का यथा-

विधि मधु, मिश्री मिश्रित योग की कल्पना कर दें।

आहार—ग्राम्य, जलप्राय प्रदेश तथा जल-जीवों का मांस रस, सांठी चावलों का भात, जो-गेहूँ की रोटी उड़द की दाल तथा केवाँच के फलियों का शाक निम्नमण कर दें।

(२) **पित्तज कास के लक्षण**—इसमें हृदयस्थल में दाह, ज्वर, मुख में कड़ुआहट, प्यास की अधिकता, मुखशोष, शरीर में दाह, मुखादि अंगों में, नेत्रों में दाह, खाँसी के साथ पीत वर्ण का मिश्रित कफ इत्यादि पित्तज उपाधियाँ होती हैं।

चिकित्सा—पित्तज कास में पित्तशामक द्रव्यों का क्वाथ तथा छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, द्राक्षा, अडूसा, कचूर, सुगन्धबाला सर्व समान भाग में ग्रहण कर क्वाथ करे और उसमें मिश्री मिश्रित कर पानार्थ दें।

आहार—जौ, गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल, भिण्डी का शाक, शाली धान्य के चावलों का भात तथा चौलाई का शाक दें।

(३) **कफज कास के लक्षण**—मुख में कफ लिपटा रहता है, शरीर में तथा शिर में वेदना होती है। शिर में भी वेदना होती है। कफ से पूर्ण होने से शरीर में भारीपन होता है। भोजन की रुचि का अभाव होता है। गले में कंडूयन होता है। खाँसी का अधिक वेग होता है। कफ गाढ़ा निकलता है। उक्त लक्षण कफज कास में होते हैं।

चिकित्सा—इसमें पिप्पलादि क्वाथ दें। द्रव्य-पीपल, कायफल, सोंठ, काकड़ासिगी, भारंगी, मरिच, काला जीरा, कटेरी, सम्हालू, अजवाइन, चित्रकमूल, और अडूसा। इन्हें समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि क्वाथ निर्माण कर पिप्पली चूर्ण और मधु मिश्रित कर देने से शीघ्र लाभ होता है।

(४) **क्षयज कास के निदान तथा लक्षण**—विषम भोजन अर्थात् अधिक भोजन, अत्यल्प भोजन, अकाल में भोजन, असात्म्य भोजन (अपथ्यकर भोजन) और अति मैथुन करने से, मल-मूत्र के उपस्थित वेगों को रोकने से, अत्यन्त दया वा अत्यन्त शोक करने से, आहार न मिलने से इत्यादि कारणों से जठराग्नि मंद पड़ जाती है, तब दोष त्रय कुपित होकर क्षतज कास को उत्पन्न करते हैं। इसमें शरीर का क्षय होता है। इसके उपद्रव—शरीर में व्यथा, ज्वर, दाह और मूर्च्छा होती है, शरीर शुष्क हो जाता है, दुर्बलता होती है, मांस क्षीण हो जाता है। रोगीपूय और रुधिर मिश्रित थूकता है। उक्त लक्षण प्राप्त होने पर चिकित्सा असफल होती है।

चिकित्सा—अवलेहः—द्रव्य—ईख की जड़, कमल की नाल, पद्माख, कमल पुष्प, चन्दन, मुलहठी, पीपल, दाख, लाख, काकड़ासिगी, शतावरी, ईख से द्विगुण

वंशलोचन और सबों से चोगुनी मिश्री ग्रहण कर यथा विधि सूक्ष्म चूर्ण कर इसमें मधु और गो-घृत मिश्रित कर सेवन करने से क्षतज कास का शीघ्र नाश होता है। अथवा काकुभ चूर्ण जो क्षतज कास में वर्णित है सेवन करावें।

असाध्य कास के लक्षण—यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल हो गया हो तो क्षतज कास असाध्य होता है और यदि रोगी बलवान हो तो किसी-किसी का साध्य वा याप्य होता है। उरःक्षत कास यह भी किसी का साध्य तथा याप्य होता है। यदि चिकित्सा के चतुष्पाद अनुकूल हों तो क्षतज वा क्षयज कास अल्पकालीन होने पर कदाचित् साध्य होता है। वृद्धावस्था में धातु क्षय होने से कास याप्य होता है।

(५) **क्षतज कास के निदान तथा लक्षण**—अत्यन्त मैथुन करने से, भारी बोझ उठाने से, शीघ्रतापूर्वक अधिक दूर तक मार्ग चलने से, मल्लयुद्ध करने से, हाथी वा घोड़े को सवारी के समय बलपूर्वक रोकने से, वायु कुपित होकर रुधिर शरीर वाले व्यक्ति को उरःक्षत रोग उत्पन्न होता है और कास हो जाता है। इसमें सर्वप्रथम शुष्क खाँसी आती है, पुनः रुधिर मिश्रित कफ उत्सर्गित होता है। कंठ में अधिक पीड़ा होती है, वक्षस्थल में सुई कोंचने की-सी पीड़ा होती है, ऐसा प्रतीत होता है मानो वक्षस्थल विदीर्ण हो गया है। पार्श्व में अधिक वेदना होती है, पसलियों का स्पर्श असह्य होता है, सन्धियों में वेदना, ज्वर, स्वास, तृषा, स्वरभंग इत्यादि लक्षण क्षतज कास रोग में प्रकट होते हैं। खाँसने का शब्द कबूतर के बोलने का-सा होता है।

चिकित्सा—क्षयज कास में प्रयुक्त योग दें। अथवा काकुभ चूर्ण (लोह चूर्ण) को अडूसा के रस में पुनः पुनः भावना देकर मधु, घृत के साथ मिश्री युक्त चटाने से क्षयजन्य कास का नाश होता है।

कास रोग में सामान्य उपचार—कास रोग से संतप्त होने से यदि नासास्राव होता हो, स्वर भंग हो गया हो, छिक्का आती हो और गन्ध ग्रहण शक्ति का ह्रास हो गया हो तो ऐसी अवस्था में मैनशिल, हरिताल, मरिच, जटामासी, नागरमोथा तथा हिंगोट, इन्हें समान भाग में ग्रहण कर यथा विधि कूट कर चिलम में रख कर धूम्र पान करने से तथा ऊपर से गुड़ मिश्रित दुग्ध पान करने से सम्पूर्ण दोषों से उत्पन्न कास रोग का नाश होता है।

कटेरी के क्वाथ में पीपल का चूर्ण मिश्रित कर पान करने से समस्त प्रकार के कास रोग का नाश होता है। मधु मिश्रित पीपल का चूर्ण सेवन करने से कास नष्ट होता है।

लवंगादि चूर्ण—लवंग १ भाग, जायफल १ भाग, पीपल १ भाग, मरिच २ भाग, सोंठ १६ भाग एकत्र चूर्ण कर सर्वतुल्य चीनी मिश्रित करें। मात्रा—१ से ६ माशा।

सेवन विधि मधुमिश्रित कर सेवन करने से—खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मन्दाग्नि तथा ग्रहणी विकार तत्काल नष्ट होते हैं।

(२) सहिजन का पेड़।

संज्ञा पुं० [सं० काश] काँस।

कास आफन—संज्ञा पुं० [यू०] सोसन जंगली। (लु० क०)।

कासए सिर—संज्ञा पुं० [फा०] कपाल का ऊपरी भाग जो छेदन करने से प्याला की भाँति निकलता है। क्रेनिअम (Cranium)।

कासकटिल्ला—संज्ञा स्त्री० [अँ०] डाक्टरी औषध विशेष। (द्वि० ते० मे०)।

कास कटिल्ली—संज्ञा स्त्री० [अँ०] डाक्टरी औषध भेद। (द्वि० मे० मे०)।

कास कण्डन-अवलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त चटनी। जो कास रोग में अति शीघ्र लाभ करता है।

कास कन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गेठी गूष्ठी का एक
कास कन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } भेद। कसालू। (रा० नि० व० ७), ध० (नि०)।

कास कर्तरी गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कसेरू रोग में प्रयुक्त वटी।

कास कर्तरी रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद, गन्धक, पीपल, हड़, बहेड़ा, अडूसा प्रत्येक वृद्धि भाग में ग्रहण कर एकत्र चूर्ण करें, पुनः इसमें बबूल के क्वाथ की २१ भावनाएँ देकर शुष्क करें। मात्रा—१-२ रत्ती। मधु युक्त सेवन करने से शीघ्र कास रोग का नाश होता है। (वृ० र० रा० सु०)।

कास कर्तरी-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त पारद योग। निम्माणि-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, समान भाग में ग्रहण कर कज्जली करे, पुनः सोंठ, मरिच, पीपल, बहेड़ा, आँवला, मुलेठी, हरीतकी, समान भाग में ग्रहण कर एकत्र चूर्ण करें। पुनः उक्त चूर्ण में कज्जली मिश्रित अडूसा की जड़ के क्वाथ की तथा बबूल की छाल के क्वाथ की ७-७ भावनाएँ देकर चना प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। मधु तथा शर्बत अडूसा के साथ सेवन करने से समस्त कास रोग का नाश होता है। (अनुभूत)।

कास कीनः—संज्ञा पुं० [फा०] कासान्तक। श्लेष्मान्तक। लिसोड़ा। सपिस्ता।

कास कुठार रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त पारद योग। निम्माणि-विधि—हिंगुल, काली मिर्च, गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागा भर्जित, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर अदरक के रस में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। यथोचित अनुपान द्वारा सेवन करने से समस्त प्रकार की खाँसी तथा शिरोरोग का नाश होता है। (वृ० रा० सु०)। (र० सा० सं०)।

कास केसरी रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास चिकित्सा में प्रयुक्त पारद योग।

कासघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विभीतक। बहेड़ा। (२) कासमर्द। कसौदी। (३) कण्टकारी। भटकटाई। कटेरी। (वै० निघ०)। (४) उक्त नाम का कास नाशक योग, यथा—हड़, पीपल, सोंठ, मरिच समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें पुनः पुरातन गुड़ मिश्रित कर मोदक बनाएँ। गुण—इसको मुख में धारण करने से प्रबल कास (खाँसी) का नाश होता है।

कासघ्न-धूम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पञ्च विध धूम पान्यतम धूम। निम्माणि-विधि—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सोंठ, मरिच, पीपल, कसौदी, हींग, इज्जदी (हिंगुआ), दालचीनी, मैनशिल, प्रत्येक द्रव्यों को समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें, पुनः इसमें खाँड़ वा जूसी मिश्रित कर कल्क करें। इसको धूम-पात्र (चिलम) पर रख कर धूम पान करने से प्रबल वातज एवं कफज कास का शीघ्र नाश होता है। (सुश्रुत चि० ४० अ०)।

कासघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भारंगी, (२) कण्टकारी। कटेरी। (३) वंशलोचन। (प० मु०)। (४) बड़ी कटेरी। वृहती। बरहूटा। वनभटा। (डाइमॉक भाग ३)। (५) विछाती। (Tragia)

कासज—संज्ञा तु० [फा०] दलदल। (लु० क०)।

कासजित—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भारंगी। (Clerodendrum Siphomenthus) वामन हाटी (बं०)।

कासड़ो—संज्ञा पुं० [सं० काश०] कासा। दे० 'काश' (क)।

कासनाशन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त पारद योग। निम्माणि-विधि—लोह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि अगस्त, कसौदी, चक्रमर्द (पमाड़) त्रिफला और अम्लवेतस के रस (वाक्वाथ) में क्रमशः १-१ बार मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसको शर्बत अडूसा तथा मधु के साथ सेवन करने से प्रत्येक प्रकार के कास रोगों का नाश होता है। (रस र० समु०)

कास नाशिका—संज्ञा स्त्री० (१) अरुण त्रिवृत। लाल निशोथ। (रा० नि० व० ६)। (२) कर्कट शृङ्गी। काकड़ासिगी।

कासनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्कटशृङ्गी। काकड़ासिगी।

कासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उर्दू] एक प्रकार का यूनानी द्रव्य जो वनज तथा उद्यानज भेद से २ प्रकार का होती है:

(१) उद्यानज कासनी। पर्याय (हिं०) कासनी, (काश०) सज्जएहिन्द, (ला०) सिकोरिअम्-इण्डी-विह्वा—*Cichorium Endivia Linn* (अं०)—दी गार्डेन इण्डाइवो। *The Garden Endive*)। [अ०] सिकोरिअः [यू०] तरुमी। कुल (N. O)—मेवत्यादि—(Compositae) बीज—(अ०) वज्जुल हिन्दवाऽ। (का०) तुल्लम कासनी। उद्भवस्थान—भारतवर्ष के उत्तरी-पश्चिमी भागों में, फारस तथा युरोप में इसको कृषि की जाती है।

कासनी-दस्ती—संज्ञा स्त्री० (फा०) जंगली कासनी। दे० 'अरण्य कासनी'।

नामकरण—अञ्जुभन आराएनासिरी के अनुसार यह सभरकंद के निकट एक नगर कासान नाम का है; वहीं यह प्रचुरता से उत्पन्न होती है; इसी आधार पर इसका कासनी संज्ञा दी गयी है। भारतीय आयुर्वेद में कासनी का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है।

उपयोगी अंग—पञ्चांग।

परिचय—सुप्रसिद्ध पौधा है जो उत्तर-पश्चिम भारत वर्ष में ६००० फुट की ऊँचाई पर तथा कुमायूँ संयुक्त प्रान्त, वजोरिस्तान बलूचिस्तान, ईरान, पश्चिमी एशिया इत्यादि में स्वयंउत्पन्न होता है। पंजाब तथा काश्मीर में इसकी कृषि की जाती है। भारतवर्ष में उत्तम कासनी काश्मीर तथा पंजाब के उत्तरी भागों में अधिक होती है।

उद्यानज कासनी के दो भेद हैं—(१) इसका पौधा प्रायः १-२ गज ऊँचा होता है। शाखाएँ कोमल, या पत्तियाँ जंगली कासनी की अपेक्षा अधिक लम्बी-चौड़ी, खुरदरी, स्वाद में किञ्चित् तिक्त, प्रायः चक्राकार नील वर्ण तथा देखने में अत्यन्त प्रिय होती हैं। (२) द्वितीय भेद की पत्तियाँ एवं क्षुद्र पुष्प नील वर्ण के स्वाद में अत्यन्त तिक्त होते हैं। इसके बीज छोटे धूसुर वर्ण के श्वेत होते हैं, स्वाद—अनुरस, (फीका) कुस्वाद युक्त होते हैं। उत्तम बीज भारी, स्थूल तथा स्याह वर्ण के होते हैं। बाह्य भाग भूरा, हलका भीतर से सफेद होता है। ऊपर की त्वचा पतली, स्वाद—अनुरस, किञ्चित् तिक्त तथा पिच्छिल होता है।

रासायनिक संगठन—कासनी के बीजों में एक प्रकार का स्निग्ध तैल (Bland oil) होता है। भर्जित कासनी में शर्करा, स्वतंत्र तद्भवद्रव्य (Free exuratives), काष्ठोज (Cellulose), वसा, भस्म तथा नत्रजनीय

पदार्थ भी होते हैं। इसके मूल (जड़) में नत्रेत, सल्फेट ऑफ पोटाश पिच्छिल पदार्थ, तिक्त सत्व तथा इन्यूलीन (Enulin) ३६ प्र० श० होती है। इसके फल में एक प्रकार का वर्णविहीन विलयन क्षार तथा उष्ण जल में घुलनशील एवं सुरासार में विलीन होनेवाला स्फटिक वर्ण का ग्लुकोसाइट होता है।

प्रकृति—इसका हरित पत्र प्रथम कक्षा में शीतल है। शुष्क पत्र शीतल एवं रूक्ष है। अरण्यज की अपेक्षा उद्यानज कासनी बड़ी कासनी से अधिक शीतल है। गुण-कर्म—कासनी अनुरस किञ्चित् तिक्त, क्षारीय, संग्राही तथा अवरोध उद्घाटक है। प्रकृत गत उन्नतोदर भाग के अनुबन्ध से उत्पन्न कासरोग में यह फलप्रद है। इसके अतिरिक्त कासनी मूत्रल, संताप, तृषा, रक्त की उष्णता, पित्त का प्रकोप तथा पित्त की उल्बणता शामक, यकृत-प्लीहा-आमाशय इत्यादि अंगों के उष्ण शोथ विलयक है। उष्ण शोथ में इसका प्रलेप दोषों को विलोम कर शीतलता पहुँचाकर शांत करता है। यह यकृतामाशय बलप्रद तथा प्रकृत को सात्त्विक है। उपयोग—कासनी के पत्र स्वरस में जौ का चूर्ण पीस कर लेप करने तथा उसमें सत्तू मिश्रित कर सेवन करने से हृदय कम्प का वेग शांत होता है। सिरका श्वेत चन्दन युक्त पीस कर शिर पर लेप करने से शीघ्र ही शिरकी वेदना शांत होती है। सिरका, रक्तचन्दन, कासनीपत्र और गुलाब जलयुक्त पीस कर लेप करने से पित्तज शीतपित्त (उदरद, उत्कोठ) का नाश होता है। इसके पत्तों को रोगन वन दशा में मिश्रित कर नेत्रपक्ष्मों पर लेप करने से नेत्रमिष्यन्द शूर होता है।

कासनी के पत्र स्वरस में मिश्री मिश्रित कर सेवन करने से कामला, पित्तज जलोदर, तृषा, उल्देश, वमन, पित्तजनित उद्वेग तथा यकृत-प्लीहा, आमाशय गत शोथ शांत होता है। कासनी के पत्र स्वरस में अमलतास की गूदी और शर्वत सहतुत घोलकर गण्डूष धारण करने से कण्ठशोथ विलीन होता है। इसके पत्र स्वरस में सिकंजबीन मिश्रित कर सेवन करने से यकृतामाशयगत शोथ विलीन होता है। अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसको पीस कर लेप करने से यकृतामाशय का शोथ शीघ्र विलीन होता है। जौ के चूर्ण के साथमें पीस कर लेप करने से वातरक्त एवं उष्ण आमवात का नाश होता है। इसके स्वरस में मिश्री मिश्रित कर सेवन करने से मूत्रप्रदाह शीघ्र शांत होता है।

हानिकारक—शीत जन्य कास रोग को प्रतिकार—शर्वत बनाफशा, शर्करा, प्रतिनिधि—पित्तपापड़ा, हरीखिल्ली के पत्रस्वरस। खुब्बासी का पत्रस्वरस। मात्रा—मखन के अनुसार इसका पत्र स्वरस १४ तोला हरी कासनी का

फाड़ा हुआ स्वरस ४-५ तोला तक।

कासनी के बीज—पर्याय—(हि०, पं० गु०) कासनी के बीज। (अ०) बज्जुल हिन्दवाऽ। (फा०) तुख्मकासनी। (ता०) कासनी विरै (तो०) कासिनी वित्तुलु। (म०) काचनीषियाँ। (अ०) गार्डेन इण्डाइव्ह सीड (Garden Indive seed)

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। **गुण-कर्म—**पित्त, रक्त प्रकोपसंशमन, अवरोधउद्धारक मूत्रल, पोवन, पित्तज्वर शामक तथा यकृत विकारन शब्द है।

उपयोग—इस के गुण-कर्म तथा उपयोग कासनी पत्र तुल्य ही हैं। बीजों के क्वाथ से गण्डूष धारण करने से मसूढ़ों की वेदना शांत होती है। शर्वत वनफशा के साथ सेवन करने से अनिद्रा का नाश होता है। इसके बीजों को सिरका के साथ पीस कर लेप करने से यकृत विकारज अवरोध जन्य कामला, जलोदर, यकृत-वरोध, यकृत शोथ तथा दोष संमिश्र तथा जीर्ण ज्वर एवं यकृत-प्लीहा के रोगों में अधिक लाभ होता है। उपयुक्त द्रव्यों के संयोग से पित्तज्वर में तथा जीर्ण ज्वर में अतिशय उपयोगी है। **हानिकारक—**ग्रह आमाशय में देर तक रुका रहता है। स्वादिष्ट न होने से कभी-कभी यह उक्लेश उत्पन्न करता है। कास-श्वास में अहितकर, प्लीहा को अहितकर तथा वृक्को निर्बल करता है।

प्रतिकार—बबूल का गोंद। कतीरा, अबीसून सिकंज-वीन हाली (चन्द्रसुर) तथा सुगन्धि द्रव्य।

मूल—(जड़) **पर्याय—**(फा०) बीखे कासनी (अ०) असलुल् हिन्दवाऽ।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। **गुण कर्म—**दोषपाचन, मूत्रल, रक्तशोधक, कफ ज्वरघ्न, प्रमाथी, संशोधन, शोथघ्न, दोष तारल्यजनन तथा आर्तवप्रवर्तक है। **उपयोग—**दोष-पाचन होने से इसका क्वाथ कफज ज्वरों में दिया जाता है। उदर की विकृति में भी इसका उपयोग होता है। मूत्रार्तव प्रवर्तन के निमित्त भी इसका उपयोग होता है। सिरका में पीस कर प्रलेप करने से यकृत-प्लीहा शोथ का नाश होता है। प्रमाथी, दोष तारल्य जनन तथा मूत्रल होने से सन्धिशूल, जलोदर और द्रवज्वरों में इसका क्वाथ हितकर होता है। **हानिकारक—**उक्लेश जनक है। **प्रतिकार—**विशुद्ध मधु। **प्रतिनिधि—**सौंफ की जड़, मात्रा—३-७ माशा। इसके हरित पञ्चांगों का परिस्तुत अर्क ७ से १४ तोला की मात्रा में उपर्युक्त रोगों में हितकर होता है। देखो—‘अरण्य कासनी’।

कासनी-शामी—संज्ञा स्त्री० [फा०] उद्यानज कासनी। बागी कासनी। दे० ‘कासनी’

कासनी-सब्ज—संज्ञा स्त्री० [उर्दू०] हरित कासनी दे०

‘कासनी’।

कासनी-सहराई—संज्ञा स्त्री० [फा०] जंगली कासनी। दे० ‘अरण्य कासनी’ तथा कासनी।

कासन्दा—संज्ञा पुं० [वं०] कसौंदी। कासमर्द।

कासन्दी—संज्ञा स्त्री० [हि०] [सं० स्त्री०] कासघ्न। कफनाशक।

कासन्दी-वटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कफघ्न औषध विशेष। कसौजी **गुण—**हृदय, रुचिप्रद, अग्निजनक, वात तथा मलानुलोमक और वात-कफ नाशक है। (राज०)।

कासब—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का संग्राही माजून (खण्ड)। (लु० क०)।

कासब्ब-सं.गे—संज्ञा पुं० [कना०] शतपुष्पा, सौंफ।

कास बस्त—संज्ञा पुं० [?] धिवनी। महालिब नामक द्रव्य।

कास-भञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पटोल। पलवल, परवर, परोरा। (भा० पू० १ भ०)।

कास मरू—संज्ञा पुं० [?] काश्मरी।

कास-मर्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कास मर्दक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } दे० ‘कसौंदी’।

कास मर्दकमु—संज्ञा पुं० [ते०]

कास-मर्द दल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसौंदी के पत्र (पत्ती)।

कासमर्दन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पटोल, परवर, पलवल। परोरा। (रा० नि० व० ३)।

कासमर्दक-पत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसौंदी की पत्ती।

कासमर्दादि घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कास रोग में प्रयुक्त घृतादि का एक योग।

निर्माण-विधि—कसौंदी की जड़, हड़, मोथा, पाठा, कायफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, काश्मरी और तुलसी प्रत्येक १-१ कर्ष ग्रहण कर कल्क करें और १ आढ़क (४ सेर) गोदुग्ध, १ आढ़क द्राक्षा रस और १ प्रस्थ (६४ तो०) गो-घृत के साथ यथाविधि पाचन कर सुरक्षित रखें।

गुण—१ तोला वा आवश्यकतानुसार सेवन करने से उग्र कास, क्षय, ज्वर तथा प्लीहा रोग का नाश होता है। (च० चि० २२ अ०)।

कासमर्दादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चर्म रोग में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि—**कासमर्द (चकवड़) के बीज, मूली के बीज तथा गन्धक एकत्र (तक्र) में पीस कर लेपन करने से सिध्म कुष्ठ, दद्रु इत्यादि चर्म रोगों का शीघ्र नाश होता है। (वृ० नि० रा० त्व० रो०, चि०)।

कास मिची—[सं० कास मोचन] लिसोड़ा। श्लेष्मान्तक। (लु० क०)।

कासहिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पटोल।
(२) कासमर्द। कसौदी। (वै० निघ०)।

कासम्भ—संज्ञा पुं० [बं०] वनौषधि विशेष। गण्डल।

कासर—संज्ञा पुं० [सं०] भैंसा। महिषापुरुष।

कासर-कनबंद-तिगे—संज्ञा पुं० [कना०] कुचिला के मलंग। वादाक जो कुचला के वृक्षों पर होता है।

कासरकाय—संज्ञा पुं० [कना०] कुचिला।

कासरुल्हज्र—संज्ञा पुं० [अ०] कुलथी के बीज। कुलथ बीज। (लु० क०)।

कासरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कास'।

कासलीस—संज्ञा पुं० [यू०] आक्षोट। अखरोट। (लु० क०)।

कासवंदा—संज्ञा पुं० [म०] } दे० 'कसौदी'।

कासविदा—संज्ञा स्त्री० [म०] } कासमर्द।

कास श्वास हरीगुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काश-श्वास रोग में प्रयुक्त वटिका। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भा०, शुद्ध गन्धक २ भाग, यवक्षार ३ भा०, मजित सुहागा १ भाग यथाविधि मर्दन कर, इसमें सेहूँड़ के दुग्ध की ७ भावनाएँ देवें। और ३ से ६ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके सेवन से कास युक्त श्वास का नाश होता है।

कास-श्वास विधूनन-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास-श्वास में प्रयुक्त पारद योग।

निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भा०, यवक्षार ३ भा०, काला नमक ४ भा०, काली मिर्च ५ भा० एकत्र चूर्ण कर सेहूँड़ के दूध में मर्दन कर ३-३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—सायं-प्रातः १-१ गोली मिश्री युक्त सेवन करने से कास, श्वास, ५ प्रकार की हिक्का तथा क्षय रोग का नाश होता है।

कास संहार भैरव रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कासाधिकारोक्त पारद योग। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, भजित सुहागा, लोह भस्म, काली मिर्च, कूठ, तालीश पत्र, जायफल तथा लौंग प्रत्येक १-१ कर्ष ग्रहण कर यथाविधि—मण्डूकपर्णी, भांगरा, निर्गुण्डी, काकमाची, द्रोणपुष्पी, शालिञ्ची, ग्रीष्म सुन्दर, भारंगी, हरीतकी, अडूसा, प्रत्येक का रस व अभाव में उनके क्वाथ के साथ मर्दन कर १-५ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—अडूसा, सोंठ, तथा कटेरी के रस व क्वाथ के साथ सेवन करने से पुरातन वातज, पित्तज, कफज उग्र कास, श्वास तथा अरुचि का नाश होकर बल, वर्ण की वृद्धि होती एवं शरीर पुष्ट होकर सुन्दर स्वरूप होता है। (२० सा० सं० कास चि०)।

कासह रगण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } दे० 'कासहर महा-कासहर वर्ग'—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कषाय'

कासहर महाकषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त क्वाथ—

निर्माण-विधि—मुनक्का, हड़, आवला, पीपर, धमासा, काकड़ासिगी, कटेरी की जड़, वृश्चीर (पुनर्नवा वा उतरन) तथा भुई आवला प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि क्वाथ निर्माण कर पान करने से समस्त कास रोगों का शीघ्र नाश होता है। (च० सू० ४ अ०)।

कास हरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्लेष्मातक। लिटोरा। सपिस्ता। देखो—'लिसोड़ा'

कासहरी वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कास रोग में प्रयुक्त गुटिका। निर्माण-विधि—पीपल, पीपलामूल, द्राक्षा, अडूसा, हड़, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करे, पुनः मधु मिश्रित कर वन बेर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इन्हें मुख में धारण करने से ५ प्रकार के कास रोगों का शीघ्र नाश होता है। (व्या० यो० सं०)

कासह शकनक—संज्ञा पुं० [म०] लिसोड़ा, क्लेष्मातक।

कासहा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कासघ्न द्रव्यों का क्वाथ वा कण्टकारी का क्वाथ पिप्पली चूर्ण युक्त तथा छोटी कटेरी के क्वाथ में भावित धूम द्रव्य तथा धूस पान की नाड़ी जो १६ अंगुल प्रमाण लम्बी होती है।

कास हीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कास हरी] कास मर्द। कसौदी।

कासा—संज्ञा पुं० [हिं०, फा०] (१) काश तृण, (२) दरियाई खरगोश।

कासाङ्कून—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली सोसन। (लु० क०)।

कासहेचीनी—संज्ञा पुं० [फा०] चीन मृत्तिका खण्ड। चीनी मिट्टी के टुकड़े। (लु० क०)।

कासहे पुस्त—संज्ञा पुं० [फा०] कच्छप। कछुआ।

कासाङ्कुश रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त योग। निर्माण-विधि—(१) पाठामूल, जवाखार, सत मुलेठी, हल्दी, चित्रक मूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, कण्टकारी मूल, वा फल, सेंधा नमक, लांगली मूल, शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध पारद, शुद्ध हरिताल, स्वर्ण माक्षिक भस्म समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि चूर्ण कर अदरख और चित्रक के रस में मर्दन कर छोटी बेर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इस यथाविधि सेवन से प्रत्येक कास रोगों का नाश होता है।

(२) शुद्ध सिंगरफ, मरिच, नागरमोथा, भजित सुहागा और शुद्ध बच्छनाग समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें और जम्बीरी के रस में मर्दन कर मूँग प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। अदरख के रस के साथ सेवन करने से प्रत्येक कास रोगों का नाश होता है।

कासात—संज्ञा पुं० [फा०] वनस्पति विशेष। **पर्याय**—(फा०) हैयुल्-आलम। (अ०) आजानुल् कैस, अबून-जलालक, अम्लूक। (रव० अ०)। देखो—'कौतु-लीदुन'।

कासातीर—संज्ञा पुं० [अ०] कानातीर। कासातीर।

यूनानी—'कथीटीर' शब्द का अरबीकृत शब्द है, जो शलाका या सलाई के अर्थ में प्रयुक्त होता है। तिब्बती परिभाषा के अनुसार मूत्रोत्सर्ग कराने की नलिका (सलाई)। (अ०) कथीटर (Catheter)। कानातीर शब्द का उपयोग मिथ्या है।

कासादिहरी वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कास रोग में प्रयुक्त गुटिका। **निर्माण-विधि**—भारंगी, सोंठ, अर्तिस और हड़, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें। पुनः मधु मिश्रित कर क्षुद्रवदरीप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण तथा उपयोग**—सायं प्रातः सेवन करने से कास और श्वास का शीघ्र नाश होता है। (व्या० यो० सं०)।

कासान्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त चूर्ण। **निर्माण-विधि**—त्रिफला और त्रिकुटा तुल्य भाग में ग्रहण कर मधुयुक्त सेवन करने से कास शमन होता है। (र० सा० सं० कास चि०)।

कासान्तक-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कासरोग में प्रयुक्त एक पारद योग। **निर्माण-विधि**—(१) शुद्ध पारद, गन्धक, सिंगिया, शालपर्णी और धनियाँ प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर बारीक मर्दन कर सुरक्षित रखें। **मात्रा**—१-४ रत्ती। **गुण तथा उपयोग**—मधुयुक्त सेवन करने से कास (खाँसी) शीघ्र शान्त होता है। (र० सा० सं०, कास० चि०)। **नोट**—उक्त योग में मतान्तर से समस्त द्रव्यों के बराबर कार्ली मिर्च का चूर्ण मिश्रित किया जाता है। (र० सं०)।

कासार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उक्त नाम से प्रसिद्ध पक्वान्न। (२) सरोवर। छोटा तालाब। (वै० निघ०)।

कासारि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कासमर्द क्षुप। दे० 'कसौदी'। (रा० नि० व० ४)।

कासारि-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—पारद भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर एकत्र, कसौदी, त्रिफला, अम्लवेतस तथा अगस्तिया के रस में मर्दन कर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। (वृ० र० राज० सु०)।

कासालि—संज्ञा स्त्री० [को०] द्रव्य विशेष।

कासालु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कन्द विशेष। **पर्याय**—(सं०) आलु, आलूक, कासकन्द, कन्दालु, विशाल पत्र, पत्रालु; (हिं०) मानकन्द, मान, कच्छू। (कों०) खम्बर।

गुण-कर्म—कण्डूघ्न, विषघ्न, स्वादु, श्लेष्महर, अग्निदीपन पथ्य तथा अरुचिनाशक है। दे० 'मानकन्द'। (रा० नि० व० ७)। सं० कासस्तुत्।

कासा शकनक—संज्ञा पुं० [फा०] श्लेष्मातक, लिसोड़ा (लु० क०)। देखो—'लिटोरा'।

कासि—संज्ञा स्त्री० [ब०, सं० कास] खाँसी। दे० 'कास'।

कासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्लेष्मा। कफ। (२) वनमुगद। मुगदपर्णी। (वै० निघ०)।

कासिनी-वित्तुलु—संज्ञा पुं० [ते०] तुल्य-कासनी। कासनी के बीज। दे० 'कासनी'।

कासिक—संज्ञा पुं० [अ०] आँधी। तूफान। हरीकेन (Hurricane)। विंडस्टॉर्म (Wind storm)।

कासिबः—संज्ञा पुं० [अ०] ग्रीवा के मध्य में अंस से स्कंध तक का स्थान।

कासिमुल्-अन्फ—संज्ञा पुं० [अ०] नासा मध्यवर्ती दीवार, बाँसा। दे० 'फासिलुल् अन्फ'। सेप्टमनेजी (Septum nasi)।

कासिर—वि० [अ०] (१) धात्वर्थ भञ्जक वा तोड़ने वाला। (२) अस्थिभञ्जक।

कासिर-कायल—एक हिंदुस्तानी फल जो तिक्त, कटु, स्निग्ध, रुक्ष, क्षुधाजनक, पाचन, कृमिघ्न, पित्तघ्न और विबन्धहर है। (मुहीत)।

कासिहरियाह (वारिडुल्रियाह)—वि० [अ०] वाता-नुलोमक। रियाह (वायु) को उत्सर्गित करनेवाला। कार्मिनेटिव्ह (Carminative)।

कासी—संज्ञा पुं० [तुर्की] गन्धाविरोजा।

कासी—वि० [सं० वि०] कासरोग का रोगी। (वै० निघ०)।

कासीना—संज्ञा स्त्री० [यू०] तज। सलीखा। (लु० क०)।

कासीफल—संज्ञा पुं० [हिं०] पीतकुष्माण्ड। कुम्हड़ा। कुष्माण्ड। देखो—'कुम्हड़ा'।

कासीमूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] काश-तृण की जड़।

कासी मृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सौराष्ट्र मृत्तिका। सोरठी मिट्टी। (ब०) पङ्क पर्पटी। (रा० नि० व० १३)।

कासीय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कांस्य। काँसा धातु। (वै० निघ०)। देखो—'काँस'।

कासीस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हीरा कसीस। दे० 'कसीस'। (२) माक्षिक सुरा विशेष। (३) तृत्तिया। तुथ। (वै० निघ०)।

कासीस द्वय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धातु कासीस। (२) पुष्पकासीस। (वा० सू० १५ अ०)।

धातु कासीस पांशु धातु और धातु कासीस पुष्पकासीस भस्म तुल्य किञ्चित् अम्ल और लवणीय होता है। द्वितीय पुष्पकासीस किञ्चित् पीताम्ब एवं कषाय रस सम्पन्न होता है। (ड०)

कासीस तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्श रोग में प्रयुक्त तैल कल्प। दे० 'काशीस तैल'।

कासीस तृतीय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कासीस के तीन भेदः (१) धातु कासीस, (२) पांशु कासीस, (३) पुष्प कासीस। दे० 'कसीस'।

कासीस वद्ध-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमेहरोग में प्रयुक्त पारद योग। **निर्माण-विधि**—(१) शुद्ध कासीस, नाग भस्म, गेरू, कृष्णअभ्रक भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण-माक्षिक भस्म, शिलाजीत, समुद्रशोष पत्र, करंज बीज, गोखरू, विट्खदिर, अर्जुन वृक्ष मूल, श्वेत गुंजा, कपित्थ निर्यास (गोंद), केशर, हरी मूंग, मजीठ, बहेड़ा, प्रत्येक सम भाग में ग्रहण कर एकत्र सूक्ष्म चूर्ण करे। पुनः इसमें कचनार के रस की भावना देकर १ तोला प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण तथा सेवन-विधि**—तक्र (छाँछ) के साथ ३ दिन तक सेवन करने से समस्त प्रमेहों का नाश होता है। ७ दिन के उपयोग से चित्त की भ्रान्ति तथा १५ दिन के उपयोग से प्रबल प्रवृद्ध तृष्णा शान्त होती है। १ मास के उपयोग से धातु की पुष्टि होकर शरीर बलवान् होता है। (रस रत्न समु०)।

(२) शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध कसीस ५ पल, एकत्र अर्जुन वृक्ष की छाल के रस में १ प्रहर मर्दन कर गोला बनाएँ और यथाविधि संपुट कर बराहपुट से सिद्ध करें। **मात्रा**—३ रत्ती। ३ मास तक प्रति दिन सेवन करने से दद्रु एवं श्वेत कुष्ठ का नाश होता है। (रसयो० सा०)।

कासीसादि-गुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुखरोग में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—कसीस, फिटकिरी, हींग, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर देवदारु चूर्णयुक्त जल से मर्दन कर गोलियाँ बनाएँ। **गुण तथा उपयोग**—इन्हें दाँतों के नीचे दबाने से दन्तशूल तथा कृमिदन्त का शीघ्र नाश होता है।

कासीसादि चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गुह्यरोग में प्रयुक्त योग। (१) **निर्माण-विधि**—शुद्ध कसीस, त्रिफला, गोपीचन्दन, आम की गुठली, जामुन की गुठली, धवई के फूल प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर बारीक चूर्ण कर सुरक्षित रखें। **गुण तथा उपयोग**—इस चूर्ण में मधु मिश्रित कर योनि में स्थापन करने से योनि की पिच्छिलता दूर होती है और व्रण तथा साव का अवरोध होता है। (च० चि० ३० अ०)।

(२) कसीस, लोध, मैनशिल, बच, पीपल, और फूलप्रियंगु एकत्र चूर्ण कर मसूढ़ों पर लेप करने से शीताद (दाँतों में पानी लगना), रुधिरस्राव तथा पूयदन्त (पायरिया) का शीघ्र नाश होता है। (वृ० नि० २०)।

कासीसादि तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्शरोग में प्रयुक्त तैलकल्प। **निर्माण-विधि**—कसीस, लांगली,

कूट, सोंठ, पीपल, मैनशिल, सेंधानमक, कनेर की जड़ की छाल, वायविडंग, चित्रकमूल, अडूसा, दन्ती, कडुवी तरौई के बीज, धतूरा, हरताल, प्रत्येक १-१ कर्ष प्रमाण में ग्रहण कर चूर्ण करें, पुनः इसमें सेहुँड़ और आक के दुग्ध २-२ पल के साथ कल्क कर और ४ प्रस्थ गोमूत्र युक्त १ पल तिलतैल पचा कर छान लें। **उपयोग**—इसको बवासीर के मस्सों पर रूई के फाहा में लगा कर कुछ दिनों तक लगाने से शीघ्र क्षारवत् कट कर मस्सों का पतन होता है।

कासीसादि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देखो—'कासीस वद्ध रस'।

कासीसादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अहिपूतन-चिकित्सा में प्रयुक्त लेपन। **यथा**—कसीस, गोरोचन, तूतिया, हरताल, रसौत, एकत्र काँजी में पीस कर लेप करने से बालकों के गुदा के तथा अण्डकोशों की खुजली शीघ्र शांत होती है। (वृ० नि० २०)।

कासीसाद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठादिरोग नाशक घृतयोगविशेष। **निर्माण-विधि**—कसीस, हल्दी, दारूहल्दी, मोथा, हरताल, मैनशिल, कबीला, गन्धक, विडङ्ग, गूगुल, मोम, मरिच, कूट, तूतिया, सफेद राई, रसौत, सिद्धर, राल (श्रीवास), रक्त चन्दन, विट्खदिर, नीम की पत्तियाँ, करंज बीज, सारिवा, बच, मजीठ, मुलेठी, जटामांसी, सिरस की छाल, लोध, पद्मकाष्ठ और पमाड़ के बीज, प्रत्येक १-१ कर्ष प्रमाण में ग्रहण कर यथा-विधि कल्क कर ३० पल घृत के साथ पचा कर छान लें और ताम्र पात्र में स्थापन कर एक सप्ताह पर्यन्त धूप में रखें।

गुण तथा उपयोग—इसका अभ्यंग करने से—कोढ़, दाद, खुजली, विचर्चिका, शूकदोष, विसर्प, वातरक्त, विस्फोटक, सिर के फोड़े-फुंसियाँ, उपदंश, दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण (नासूर), भंगदर, सूजन, तथा मकड़ियों का विषादि शीघ्र नष्ट होते हैं। यह शोधन-रोपण (धावपूरक) तथा समस्त चर्मरोगों का नाशक है। (शाङ्ग० सं०, भा० २, अ० ९)।

कासुक—संज्ञा पुं० [तुर्की] बड़ा वा छोटा चम्मच। स्पून (Spoon)।

कासू—संज्ञा पुं० [यू०] ममीरा। संज्ञा [सं० स्त्री०] (१) विफल वाक्य। (मे० सद्विक)। (२) रोग, व्याधि।

कासुन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कासुन्दरो—संज्ञा पुं० [गु०]

कासुन्दा—संज्ञा पुं० [म०]

कासुन्दी—संज्ञा स्त्री० [गु०]

कासुम्भी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कौसुम्भी धान।

कौसुम्भी शाली। (रा० नि० व० १६)।

कासमर्द। दे०
'कसौदी'।

कासुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भैंसा। महिष। कासर। (हला०)।

कासुल्-हजामत—संज्ञा पुं० [अ०] शृंगी (सींगी) लगाने का प्याला वा गिलास। सिंगी लगाने का यंत्र। (अं०) कपिंग-ग्लास (Cupping glass)

नोट—डॉक्टरों में रक्तमोक्षणार्थ सिंगी लगाने के लिए शीशे का ग्लास प्रयुक्त होता है। किन्तु प्राचीन चिकित्साप्रणाली के अनुसार उक्त कार्य के निमित्त सींग वा आबखोरा (पानी का कटोरा) का उपयोग होता है।

कासू—संज्ञा पुं० [यू०] ममीरा। संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) विफल वाक्य। [मे० सद्विक]। (२) रोग। व्याधि।

कासू खशखाश जुब्दी—संज्ञा स्त्री० [?] खसतिल का एक भेद जो जुब्द देश में होता है।

कासेक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तृण विशेष। क्षुद्र काश। ह्रस्व कास। छोटा कासा। 'दे० काश (क)'। (वै० निघ०)।

कासेबाभूल—संज्ञा पुं० [म०] राम बबूल। किंकिरात वृक्ष। (Acacia latiosum)।

कासोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अतिबला। (वै० निघ०)।

कास्कन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कासमर्द। दे० 'कसौदी'।

कास्केरा-अमागी—संज्ञा पुं० एक प्रकार का विदेशी वृक्ष जो औषध में प्रयुक्त होता है। देखो 'कैस्केरा'।

कास्केरा कार्डिअल—संज्ञा पुं० [अं०] पाश्चात्य देश में होने-वाला एक वृक्ष जो डाक्टरों औषध में प्रयुक्त है। दे० 'कैस्केरा'।

कास्केरा बार्क—संज्ञा पुं० [अं०] एक वृक्ष की छाल जिसको चिट्टम छाल वा पवित्र त्वक् भी कहते हैं। इसका उपयोग डॉक्टरों में अरिष्टादि के रूप में होता है। यह प्राकृतिक कोष्ठबद्धता के लिए हितकर है। दे० 'कैस्केरा'।

कास्केरा सैग्रेड-एलक्सिर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का तरल औषध, जो कास्केरा की छाल द्वारा निर्मित होती है। इसका उपयोग प्रायः वातानुलोमनार्थ होता है। इससे प्राकृतिक कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है।

कास्टिक—वि० [अं०] वह क्षार (तेजाब), जो त्वचा पर लगाने से, उसको दग्ध कर देवे। जारक। इसके द्वारा दुष्ट व्रण तथा विषैले कीटों का विष लगाने से नष्ट हो जाता है। दे० 'काष्टिक'।

कास्त—संज्ञा पुं० [?] झाँज। जालज। (ला०) चारा फ्युरेटा (Chara furata)

कास्तमून—संज्ञा पुं० [यू०] वनौषधि-विशेष। छिवनी। महालिब।

कास्तर—संज्ञा पुं० [यू०] एक जन्तु, जो केकड़ा और मछलियों का आहार करता है। यह जल और पृथ्वी उभय स्थानों में रहता है। मतान्तर से यह खट्टास (जुन्दवेदस्तर या मुस्कबिलाव) और किसी के अनुसार उक्त जन्तु का अण्डकोष है।

कास्तीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तीक्ष्ण लौह, फौलाद। (र० मा०)।

कास्तूरस—संज्ञा पुं० [यू०] खट्टास नामक जन्तु। जुन्दवेदस्तर। दे० 'कास्तर'।

कास्नी—संज्ञा स्त्री० [फा०] कासिनी नाभ का प्रसिद्ध पौधा।

पर्याय—

कास्नी—(फा० हि०, गु० पं०) कासिनी, सूचल, गुल, हन्द- (पं०) कासनी, कासनाज (मु०)—(फा०)। हिन्दवाऽ, हिन्दिवाऽ हिन्दुवाऽ—(अ०)। सिकोरियम् इण्टीवस Cichorium Intybus, Linn. सिकोरियम एन्डिविया (Cichorium Endivia, Linn.) (ले०) The Garden Endive (cult. sweat var.) लोटिन में सज्जेहंद— (काश०) कोशी—(ते०); Linn चिकोरी Chicory, वाइल्ड सकोरी Wild succory, Endive, cicory (Wild bitter variety) (अं०)। Barbe de Capucin, Chicor'ee—(फ्रां०)। किकोरियोन Kikorion, Kikori, Kichora, seris pikris—(यू०)।

(कासनी के बीज)

कास्नी—हि०, फा०, गु०, पं०। कासनी के बीज, कासनी हि०। (द०) कासनी के बीज। (फा०) तुख्मे कासनी। (अ०) बज़रुल् हिन्दवाऽ। (मरा०) काचनी (ता०) काशिनि बिरै। (ते०) कासिनि वित्तुलु। (पं०) गूल। (बम्ब०) हिन्दुवा। (वं०) कासनी, कु-कु, कुत्सइ—चीन।

(कासनी की जड़)

(अ०)। अस्तुल् हिन्दवाऽ; (फा०) वीखे कासनी।

संज्ञा-विमर्श, अर्थ एवं व्युत्पत्ति आदि—

अञ्जुमन आराये नासिरी के मत से कासनी कासान से व्युत्पन्न है, जो समरकंद के निकट एक नगर है। क्योंकि वहाँ यह बड़ी और खूब होती है, अस्तु कासनी अर्थात् कासान में प्रचुरता से होनेवाली, संज्ञा से अभिधानित हुई। कसनी इसका संक्षिप्त रूप है। मंशूरी समरकंदी की यह उक्ति है—

ख्वाजः दरबोस्ताँ इंसानी, हस्त अज रूये नाखुशी कसनी।
खानए काँदर व बूअद तनहा। खानए अंदरूँ बूद कसनी॥

मुहीत में इसकी यूनानी संज्ञायें इस प्रकार दी हैं—सारस, सरेस, तरस्मी, अन्दरूतूनिया, अन्तूनिया और रूमी इन्दीकिया, परंतु खजाइन में अन्दूतूनिया वा अन्दूनिया को रूमी तथा इन्दीकिया को यूनानी लिखा है। शरह गीलानी आदि में तो अन्तूनिया को कासनी बुस्तानी लिखा है, पर मुहीत में लिखा है कि इसे हिन्दवाय बलखी भी कहते हैं। रोमनिवासी इसके पौधे को इन्तुबस (Intubus) वा इन्तुबम कहते थे और उनमें से अंतिम संज्ञा के बहुवचन (इन्तुवा) से ही अरबनिवासियों का

हिंदुवा शब्द बना है।

मखन में हिन्दिवा और मुहीत में कासनी नाम से उक्त ओषधि का वर्णन आया है।

तुलसी कुल

(Family : Compositae.)

उत्पत्तिस्थान—फारस और यूरोप। कुमाऊँ और उत्तर-पश्चिम भारतवर्ष विशेषकर पंजाब और कश्मीर में ६००० फुट की ऊँचाई पर इसकी कृषि की जाती है। पंजाब के बाजारों में इसकी जड़ें और बीज सामान्यतया उपलब्ध होते हैं। हिंदुस्तान में अच्छी कासनी पंजाब के उत्तरीय भागों में तथा कश्मीर में होती है। पर यूरोप और साइबेरिया आदि की कासनी ओषधि के लिए बहुत उत्तम समझी जाती है। यह वजीरिस्तान, पश्चिमी एशिया, बलूचिस्तान और यूरोप में भी होती है। इसका बहुवर्षीय छोटा पौधा होता है।

वर्णन—एक प्रसिद्ध वनस्पति जो अनेक देशों में होती है। यह बोई जाती है और स्वयंभू वा जंगली भी होती है। इनमें से प्रथम को उद्यानारोपित वा बुस्तानी और दूसरी को वन्य वा दस्ती वा बरीं अर्थात् जंगली कहते हैं। इनमें बुस्तानी वा बागी के भी ये दो भेद होते हैं—(१) इसका पौधा एक-दो गज वा अधिक ऊँचा होता है और शाखायें ढीली वा कोमल होती हैं। पत्ते अपेक्षाकृत अधिक लंबे-चौड़े वा लगभग काहू के पत्तों के, लंबे-चौड़े, खुरदरे और स्वाद में किंचित् तिक्त होते हैं। फूल बड़ा, नील वर्ण का एवं प्रियदर्शन होता है (नफीसी में फूल सफेद स्वाद फीका लिखा है)। इसको हिन्दवाए शामी, हिन्दवाए हाशमी वा हिन्दवाए बलखी तथा यूनानी में मासरानतानिया और अकतरानिया कहते हैं। (२) पत्ते और फूल छोटे-छोटे और फूल नीलवर्ण के स्वाद में अत्यंत तिक्त होते हैं। इसे हिन्दवाउल्वकल कहते हैं। जलवायु, स्थान और कालभेद से इसके स्वाद, रंग और प्रकृति में भेद उत्पन्न होता है। (नफीसी में इसके पत्ते लंबे लिखे हैं)। कभी-कभी ग्रीष्म ऋतु में इसमें कुछ कड़ुआहट अधिक उत्पन्न हो जाती है। अस्तु, उस समय कुछ उष्ण हो जाती है, जिससे शीत वीर्य का पूर्ण प्रकाश नहीं होता। इनमें बुस्तानी वा बागी को कासनी और बरीं वा जंगली को तरखश्कूक कहते हैं। शैखुरईस ने भी इसके बरीं और बुस्तानी ये दो भेद लिखे हैं, जिनमें एक की पत्ती अधिक चौड़ी और दूसरी की बारीक होती है। नफीसी में भी लिखा है कि जंगली के पत्ते बागी से अधिक चौड़े होते हैं। तरोताजी, मधुर एवं स्वादयुक्त कासनी उत्तम समझी जाती है। इसका गुण-भाग पत्र के ऊपरी धरातल वा पृष्ठ पर होता है, इसलिए

इसे धोना नहीं चाहिए। (मखन, मुहीत, खजाइन)।

जड़ गावदुमी, गुदार, किसी प्रकार सशाख, लंबाई के रख झुरीदार, बाहर से हलकी भूरी और भीतर से सफेद होती है। इसके ऊपर की त्वचा पतली होती है। स्वाद तिक्त और लवावदार होता है।

प्रयोगांश—इस पौधे की जड़, डंठल, फूल, पत्र, बीज सब दवा के काम में आते हैं।

इतिहास—गमलों में लगाये जानेवाले पौधे की भाँति कासनी का व्यवहार अति पूर्वकाल से होता आ रहा है। पुराकालीन मिश्र, यूनान और रोमनिवासियों को यह ज्ञात थी। सावफरिस्तुस ने **किखोरी** और **किखोरियोन** नाम से इसका उल्लेख किया है। दीसकूरीदूस इसके इन दो भेदों का उल्लेख करते हैं—(१) वन्य, (किखोरियोन) और कृषिकृत वा आरोपित (सेरिस); वह उक्त दोनों को धारक, शीतल और दीपन-पाचन (Stomachic) लिखते हैं। शीतल गुण के कारण प्रादाहिक रोगों में इसके पौधे के बहिर प्रयोग का भी वे उल्लेख करते हैं। रोमनिवासी इसके पौधे को इन्तुबस (Intubus) वा इन्तुबम (Intubum) कहते थे जिसके अंतिम इन्तुबम शब्द के बहुवचन इन्तुवा से ही इसकी अरबी हिन्दुवा संज्ञा व्युत्पन्न है। इसके जंगली पौधे को प्लाइनी ने Cichorium, Chreston (उपयोगी), Pancration (सर्वशक्तिसम्पन्न) और अम्बूबया Ambubaia संज्ञाओं से अभिधानित किया है। कासनी के बीज (Endive seeds) रोम में Erraticum और Ambubaia या Ambubeia नामों से विकते थे और उनमें प्रेम को दृढ़ बनाये रखने का गुण होने का अनुमान किया जाता था। उन सीरियन नर्तकी कन्याओं को भी उनके मनोमुग्धकारी सौंदर्य के कारण अंबूबया (कासनी बीज) कहते थे, जिन्हें Cneius Manlius सर्वप्रथम रोम ले आया, उसी प्रकार जिस प्रकार भारतवर्ष में भी ऐसे व्यक्ति को प्रायः इलायचीदाना कहने का प्रचलन है। उक्त दोनों का कारण और अभिप्राय एक है। अम्बूबया यद्यपि सीरियन भाषा का शब्द है, तथापि इसके दोनों खंड इन अर्थों में प्राचीन फारसी में मिलते हैं; जैसे—अम्बूय (सुगंधि, सौरभ) और वया (पूर्ण) अर्थात् सौरभपूर्ण वा मोहक। वन्य कासनी (Wild Endive) को फारसी में तरखश्कून कहते हैं। इब्नसीना ने इसी नाम से उसका उल्लेख किया है। ऐचीसन (Aitchison) ने खुरासान में इसे सर्वत्र सामान्यतया स्वयंभू रूप में तथा उद्यानों और गमलों में उक्त नाम (कासनी) से आरोपित रूप में भी पाया। जर्मननिवासी वन्य कासनी को Wege warte (मार्गारक्षक), Weg-e-leuchte (मार्गदीप), Sonnen wende वा Sonn-

en wirbel (Solstice), Sonnenkraut (सूर्यक्षुप) और Verfluchte jungfer (अप्रसन्न युवती कन्या) आदि संज्ञाओं द्वारा अभिधानित करते हैं। इसके संबंध में यह आख्यायिका प्रसिद्ध है कि यह वनस्पति प्रारंभ में एक सुंदर राजकुमारी थी, जो अपने पतिदेव व प्रेमी के त्याग देने पर, अपनी इच्छा से उक्त वृक्ष-रूप में परिणत हो गई। यह आख्यायिका ठीक ऐसी ही है, जैसी भारतवर्ष में तुलसी की है।

रासायनिक संगठन—बीजों में एक प्रकार का तेल (Bland oil) होता है। द्रव्य कासनी में शर्करा, (Free extractives), काष्ठोज (Cellulose), भस्म, नत्रजनीय पदार्थ और वसा आदि होती है। जड़ में नत्रेत और सल्फेट ऑफ पोटाश, लवण, कतिपय तिक्त सत्त्वादि और एन्युलीन (Enulin) ३६% होते हैं। फूलों में एक प्रकार का वर्णरहित क्षार-विलेय और उष्ण जल एवं मुरासार-विलेय स्फटिकीय ग्लुकोसाइड होता है।

औषध-निर्माण—बीज-क्वाथ (२० में १), मात्रा—१ से २ आउंस; मूलकृत तरल-सत्व, मात्रा—१ से २ ड्राम और चूर्ण।

प्रकृति—हरे पत्र प्रथम कक्षा में शीतल एवं तर है। मखन के अनुसार प्रथम कक्षा में शीतल और तर। शैखुरईस के अनुसार प्रथम कक्षा में शीतल और उसके अंत में तर है। पर कभी जलवायु के प्रभाव से उसकी यह प्रकृति बदल जाती है। अस्तु, जब अधिक गरमी पड़ने लगती है, तब उनमें कर्कशता और कटुत्व बढ़ जाता है और उस समय किसी भाँति गरमी पैदा हो जाती है। किंतु उससे कोई प्रभाव प्रकट नहीं होता; क्योंकि शीतलता के घटक अधिक होते हैं। उष्ण स्थान में उत्पन्न कासनी में भी कुछ उष्णता रहती है और उसके शीत के घटक न्यून पड़े जाते हैं। सूखे पत्ते शीतल और रूक्ष होते हैं। किंतु उनकी रूक्षता प्रथम कक्षा से अधिक नहीं होती। कोई-कोई द्वितीय कक्षा पर्यंत मानते हैं। नफीसी के अनुसार हरी कासनी प्रथम कक्षा में शीतल और सूखी कासनी आर्द्रता-विरहित होने से प्रथम कक्षा में रूक्ष है। हरी कासनी आर्द्र-बाहुल्य के कारण तर होती है, उसमें भी बागी अधिक तर होती है। क्योंकि इसमें जंगली की अपेक्षा अधिक रस होता है और बड़ी की अपेक्षा छोटी कम तर और लतीफ होती है। जंगली की अपेक्षा बागी अधिक तर और शीतल होती है। इसके भीतर तिक्तता, फीकापन, क्षारत्व और किसी भाँति ग्राही गुण होता है और यह स्पष्ट है कि तिक्तता और क्षारत्व उस उष्ण वीर्य के परिणाम हैं जो इसके भीतर वर्तमान होते हैं। और वह रोधोद्घाटक हैं फीकापन इसकी जलीय शक्ति और कब्ज पार्थिव शक्ति

के कारण से है। इसमें लतीफ हार अजडा भी वर्तमान होते हैं, जो इसके पत्तों पर विकीर्ण (परिविस्तृत) होते हैं और उनका संगठन इतना विरल (निर्वल) होता है कि धोने से नष्ट हो जाता है। इसीलिए कासनी-पत्र को धोने से मना किया जाता है।

स्वाद—हरायंघ लिये किंचित्तिक्त। **अहितकर**—कास के लिए, कास के रोगी को जिसका कारण यकृत के उन्नतोदर भाग की सूजन न हो। यह कासजनक भी है। परंतु बहुत हानिकर नहीं है, अपितु कतिपय दोषों में तो इससे उपकार ही होता है। **निवारण**—शर्करा, शकर सफेद और शर्वत वनफूसा। **प्रतिनिधि**—शाहतरा वा हरी खत्मी वा खुब्बाजी के पत्र का स्वरस। **ग्रह**—प्रकृति और वर्ण के विचार से शुक्र। **विशिष्ट कर्म**—संताप, तृष्णा और रक्त एवं पित्त-प्रकोप-शामक। **मात्रा**—हरी कासनी का फाड़ा हुआ रस ४-५ तोले तक।

गुण-कर्म और प्रयोग—अपने क्षारत्व (बोरकियत) के कारण यह रगों और कोष्ठों के अवरोधों का उद्घाटन करती (स्रोतोविशोधक) है। इसमें काफी संग्राही गुण वा कब्ज है जिससे यह आमाशय को बल प्रदान करती है। इसी कारण यह यकृत को भी बलप्रद है। उष्ण यकृत को बहुत सात्त्विक है। क्योंकि एतद (स्वा)न्तर्भूत शैत्य से उसकी उष्णता को साम्यावस्था पर लाती है। यह शीतल यकृत को भी स्वभावज प्रभाव से लाभकारी है। हृत्स्पंदन (खफकान) में इसके स्वरस में सत्तू मिलाकर लेप करते हैं। कासनी हृदय को बल प्रदान करती है। क्योंकि एतदन्तर्भूत क्षारीय तत्व अवरोधोद्घाटन करता है और औषध के प्रभावोत्पादन में उसका सहायक होता है तथा शीतल पार्थिव घटक को हृदय तक पहुँचा देता है। क्योंकि उक्त पार्थिव घटक गुह, शीतल और विलीनीभवन के अयोग्य होता है। अतः चिरकाल पर्यन्त वह हृदय में अवस्थित रहता है और उसकी प्रकृति को परिवर्तित कर देता है और उष्ण घटक अपनी सूक्ष्मता के कारण शीघ्र विलीन वा नष्टप्राय हो जाता है। अमलतास के साथ यह कंठगत सूजन को उतारती है। क्योंकि शैत्य एवं संग्राही धर्म के साथ-साथ इसमें अवरोधोद्घाटन एवं आशुकरण की शक्ति भी निहित होती है तथा अमलतास में शोथ विलीन करने की शक्ति होती है। नेत्राभिष्यंद वा आँख आने को लाभकारी है। क्योंकि इसमें धारकत्व धर्म के साथ शीतवीर्य होता है। इसका रस अपनी तीक्ष्णता से आँख के जाले को काटता है। (नफीसी)।

कासनी अवरोधोद्घाटक है तथा रक्तसंताप एवं पित्त की तीक्ष्णता (प्रकोप) को शमन करती और प्यास बढ़ाती है।

गरमी के एवं पित्तज शिरोशूल में अकेले इसके पत्तों का स्वरस अथवा सिरके और सफेद चंदन के साथ माथे पर लेप करने से उपकार होता है। लाल चंदन, गुलाबार्क (अर्क गुलाब) और सिरके के साथ पित्ती उछलने वा शीतपित्त को लाभकारी है। तिला (मद्य भेद) के साथ उष्ण सूजन और नेत्रशूल को गुणकारी है। इसके पत्तों को पीस कर और विशेषतः रोगन बनफ़शा में मिला कर लेप करने से उष्ण वा पित्तज नेत्राभिष्यंद आराम होता है। (शैख के अनुसार) इसके पत्तों को जौ के आटे के साथ पीसकर हृदय के ऊपर प्रलेप करने से खफकान (हृत्स्पंदन) दूर होता है, कड़ी सूजन उतरती है और उष्ण हृदय को शक्ति प्राप्त होती है। इसके पीने से यकृत और प्लीहा के अवरोधों का उद्घाटन होता है, कामला और उष्णता-जन्य अर्थात् पित्तज जलोदर आराम होते हैं, रगों और कोष्ठों के अवरोधों का उद्घाटन होता है; यकृत को शक्ति प्राप्त होती है और रक्तगत उष्णता, तृष्णा, उत्क्लेश, पित्तोद्वेग और आमाशयशोथ मिटते हैं। यह शीतल और उष्ण यकृत को सात्म्य है। मूत्रमार्ग और गवीनी का शोधन करता है। यह जितना अधिक तिक्त हो, अवरोधों के उद्घाटन करने और यकृत के रोगों में उतना ही अधिक प्रभावकारी होता है (क्योंकि अपनी स्वाभाविकी शक्ति से यकृत की ओर शीघ्र व्याप्त होते हैं और अवरोधोद्घाटन पर इनका पूर्ण अधिकार होता है)। पित्तज वमन, पित्तप्रकोप, शीतपित्त (शरा), पैत्तिक रक्तप्रकोप, शीतला (जुदरी), खसरा (हुस्वः) और पित्तजन्य विसूचिका में खाकसी (संगशो) और सादे सिकंजबीन के साथ पीने से उपकार होता है। सिरके के साथ इसके पत्र खाने से पित्त शमन होता है और पित्तातिसार आराम हो जाता है। यदि थोड़ा सा सौंफ और तुल्य कुशूस के साथ पका लें, तो अवरोधोद्घाटन की शक्ति और अतिसार बढ़ जाय। जंगली आमाशय को और बागी यकृत को सात्म्य है। इसके पत्र, पुष्प, बीज और मूल सब को एकत्र, अकेले वा तुल्य कुशूस के साथ क्वथित कर सिकंजबीन सादा वा बजरी मिलाकर अथवा शर्वत कुशूस मिला कर वा यथावश्यक उनमें से हर एक बीज के साथ पकाकर पीने से जनपदोदध्वंसक चिरकालीन द्वंद्वज विषमज्वर (हुम्मयात मुरक्कबः कुहनः ववाइयः), जलोदर और प्लीहा आराम होते हैं और हस्त-पाद-शोथ (तहब्बुज) की यह सिद्ध औषध है। पत्र का प्रलेप वा पत्र-स्वरस का लगाना और पीना अथवा पत्र-स्वरस को जैतून के तेल में मिला कर पीना भी सांघातिक विषौषधों का अगद है। वृश्चिक-दंश, जमीन के भीतर घुसनेवाले सरीसृपादि विषैले जानवरों (हवाम्म) के दंश तथा भिड़ और छिपकली के दंश में

इसके पत्र और मूल दोनों को पीसकर प्रलेप करने से अनुपम लाभ होता है। सत्तू के साथ भी इसके प्रलेप से उक्त लाभ होता है। सिरके और जौ के आटे के साथ इसका प्रलेप करने से उष्ण संधिशूल, पित्तज वातरक्त और पित्तजनित सूजन उतरती है। इसके पत्तों के पानी में सफेदा और सिरका मिला कर जिस अंग को शीत पहुँचाना अभीष्ट हो, उस पर इसका लेप करें। इसका विलक्षण प्रभाव होता है। पत्रस्वरस की मात्रा १४ तो० (अर्द्ध रतल) है। (मख्जन)।

मुहीत में यह अधिक लिखा है—यह रक्त के रंग को साफ करता (रक्तशोधक) है। काहू की अपेक्षा इसमें प्यास बुझाने, तरावट पहुँचाने और शांति प्रदान करने का गुण न्यूनतर है। कहते हैं कि यह काहू से लतीफ है और इसमें उसकी अपेक्षा न्यून आहार-द्रव्य होते हैं। इसमें सरदी लिये गरमी होती है। इसका रस निचोड़कर, पकाकर साफ कर पीने से सूजन उतर जाती है, आमाशय को बल प्राप्त होता है और अवरोधों का उद्घाटन होता है। सौंफ और कुशूस की भाँति इसकी कोमल पत्तियों को शाकादि में मिलाने से भी उक्त रोगों में इसके गुण प्रगट होते हैं। शरीर के बाहरी सूजन पर इसका प्रलेप करने से उपकार होता है। जौ के आटे में मिलाकर लेप करने से विसर्प (हुमरा) आराम होता है और कठिन सूजन उतर जाती है। इसके रस का लेप पित्तज शोथों में उपकारी है। इसी प्रकार इसे, पीने, अकेले वा गोघृत के साथ पत्र का प्रलेप करने वा उसे पीने से गाढ़ी सूजन नरम पड़ जाती है, वह पाकाभिमुखी होती और विलीन एवं दूर हो जाती है तथा पित्तज रोगों में अत्यन्त उपकारी है। अमलतास के साथ पीने से कोष्ठगत पित्तज शोथ में उपकार होता है। इसी प्रकार चंदन के साथ लेप करने से होता है। इसके स्वरस में गुलाब का फूल पीस-मिलाकर दोनों कनपुटियों और मस्तक पर लेप करने से तज्जात वेदना शमन होती है। सत्तू और सिरका मिलाकर आँख पर लेप करने से पित्तज नेत्राभिष्यंद और नेत्रशोथ आराम होते हैं। इसके रस में अमलतास या शर्वत तूत घोलकर गंडूष करने से प्रारंभिक कंठशोथ एवं तज्जात वेदना और (खुनाक) आराम होते हैं। उसी प्रकार हरे धनियों के पत्तों के रस से भी होता है। गीलानी के अनुसार कासनी का रस रक्तनिष्ठीवन को लाभकारी है। ऐसे ही इसके फूल से होता है यदि ९ मा० शीतल जल से सेवन करें। शीतल प्रकृति कम मुआफिक (सात्म्य) है।

कासनी के पत्तों का फाड़ा हुआ पानी। माउल् हिन्दि-वाउल् मुरव्वक (अ०)। आब कासनी मुरव्वक (फा०)।
वर्णन और गुणकर्म—ताजे पत्ते कुचलकर पानी निकाल कर आग पर रख कर झाग इत्यादि दूर कर पीते

है। यह रस सिकंजवीन के साथ उष्ण आमाशय को शक्ति प्रदान करता है, जलोदर को लाभकारी है, यकृत के अवरोध का उद्घाटन करता है, यकृत की सृजन उत्तारता है और द्रवों की दुर्गंधि को निवारण करता है। रक्तमोक्षण या शृंगदान के पश्चात् इसे हलके सिरके के साथ पीने से यकृत के अवरोध का उद्घाटन होता है और वृक्क-मार्ग से दुर्गंधित द्रवों का उत्सर्ग होता है। इसे सिकंजवीन के साथ पीने से जीर्णज्वर, चातुर्थक एवं शीतपूर्वक ज्वरों में उपकार होता है। **मात्रा**—१४ तो०। या (४-५ तोला तक। मुहीत मखन)।

कासनी के पत्ते स्रोत एवं अवरोधों का उद्घाटन करते हैं तथा उष्णता, पित्तोत्पन्नता और प्यास को शमन करते हैं। बिना धोये पत्ते प्रकृति को मृदु करते (और विबंध का नाश करते) हैं और अतिशय गुणकारी हैं। धोने से हानिकर (और संग्राही हो जाते) हैं। (म०, मु०)।

कासनी-पत्र कास-रोगी को असात्म्य है। परंतु यकृत के उन्नतोदर भाग के संबंध से जो कास हो, उसको लाभ पहुँचाते हैं।

यदि आमाशय में गरमी पैदा हो जाय, तो इनसे बड़ कर कोई औषध नहीं है। शुष्क-पत्र में रूक्षता एवं किंचित् धारक शक्ति भी वर्तमान होती है; इसलिए इनसे आमाशय को बल प्राप्त होता है। इनसे यकृत को भी शक्ति मिलती है, पर उष्ण प्रकृति में। क्योंकि ये शीत-प्रकृति को सात्म्य नहीं है। पर किसी-किसी के मत से अन्य शाक-तरकारियों की भाँति कासनी शीत प्रकृति को हानि नहीं पहुँचाती। (इसके पत्र-स्वरस में थोड़ा सफेदा और सिरका मिला कर गंडूष करने से प्रारंभिक गरम सृजन उतर जाती है और कण्ठशोथ (खुनाक) आराम हो जाता है)। पित्त की उग्रता को पूर्णतया शमन कर देता है। यकृत की प्रकृति शीतल हो अथवा उष्ण को बहुत सात्म्य बतलाते हैं। परंतु उष्ण प्रकृति के यकृत को तो असीम गुणकारी है। प्रत्युत कासनी-पत्र शीतल यकृत को भी अन्य शीतल शाकों की भाँति हानि नहीं पहुँचाते। क्योंकि इनको प्रत्येक यकृत के साथ खुसूसियत है। ये गरमी से हुए जलोदर को दूर करते हैं, मूत्रमार्ग और वृक्क के अवरोधों का उद्घाटन करते हैं तथा इनमें अवरोधोद्घाटनी शक्ति काहू से अधिक है। कभी ऐसा करते हैं कि कासनी के बिना धोये हुए पत्ते लेकर स्वरस निकाल कर सबको एक बरतन में रखकर वस्त्र से ढँक कर वायु में रख देते हैं और प्रातःकाल छान कर पीते हैं। इससे यकृत के अवरोधों का प्रबल उद्घाटन होता है। इनसे पित्तज बमन, विसूचिका और रक्तातिसार आराम होते हैं। (खजाइत)।

प्रकृति—शीतल एवं तर। **अहितकर**—कास रोगीको

निवारण—शर्करा और शर्वत वनफशा। **मात्रा**—६॥ तो०।

गुण-कर्म-प्रयोग—मूत्रमार्ग-शोधक, आमाशय और उष्ण यकृत को बलप्रद, मिश्रदोषजन्य जीर्ण ज्वरों, जलोदर, प्लीहा, हाथ-पांव की सृजन, आमाशय, यकृत और प्लीहा का दाह और सृजन मिटाती है और अवरोधों का उद्घाटन करती है। (मु० ना०)

इसे सिकंजवीन के साथ पीने से कृष्ण एवं पीत दोनों प्रकार का कामलारोग नष्ट हो जाता है। (म० ए०)।

कासनी के बीज—

मिन्हाजुल् बयान में इब्न जज़ला कहता है कि तिक्त स्वादयुक्त होते हैं। श्यामता लिये मोटे और भारी बीज उत्तम समझे जाते हैं। द्वितीय कक्षा में शीतल और रूक्ष है। सहिव शिफाउल् अस्काम ने समशीतोष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष लिखा है। किसी-किसी के मत से इसमें शीतलता और उष्णता दोनों हैं। किंतु उष्णता स्पष्ट है। किसी-किसी के अनुसार इसकी प्रकृति कासनी के फाड़े हुए पानी के समीप है। **स्वरूप**—भूरा मैला सा जीरा से छोटे। **स्वाद**—फीका कुस्वाद। **अहितकर**—आमाशय में देर तक ठहरते हैं। कुस्वाद होने से कभी मतली और उबकाई पैदा कर देते हैं, प्लीहा को हानिकर है और कास, श्वास और वृक्क को निर्बल बनाते हैं।

निवारण—हालों, सुरभित द्रव्य, सिकंजवीन, सिकंजवीन और अनीसुन, कतीरा और बबूल का गोंद। **नोट**—साधारणतया हर प्रकार के हानि का निवारण अजमोदा (करप्स) और हरमल से होता है। **प्रतिनिधि**—तुख्म कुशूस, तुख्म खुर्फी वा तुख्म जिर्जीर, तुख्म-शाहतरा। **ग्रह**—शनि। **विशिष्ट कर्म**—शिरोशूलहर और खफकान को नाश करने वाले हैं। **मात्रा**—७ मा० से १७॥ मा० तक। मतांतर से चूर्ण ३॥ मा० से १४ मा० तक और क्वाथ और फांट में १७॥ मा० से ३ तो० तक शर्करा के साथ। कोई-कोई तो इनका शीरा शाहतरा के स्वरस के साथ १७॥ तो० तक बतलाते हैं।

गुण-कर्म और प्रयोग—बीजों के काढ़े का गंडूष (मज-मजा) करने से मसूढ़ों का शूल मिटता है। कंठशोथ और खुनाक में अमलतास वा शहतूत के शर्वत और उसी भाँति हरे धनिये के रस के साथ गंडूष (गरगरा) करने से उपकार होता है। यह अवरोधोद्घाटक है तथा शिरोशूल, खफकान, जलोदर, कामला, पित्तज ज्वरों में उपकारी है। भूमि के भीतर रहने वाले विषधर जीवों (हवाम्म) के विष एवं वृक्क और प्लीहा की निर्बलता तथा रक्त-निष्ठीवन में चंदन और सौंफ के साथ क्वथित कर पीने से उपकारी और क्षुब्धोदकारक है। समग्र गुणकर्म में यह अपने पत्तों के समान है। (मखन)

मुहीत में यह अधिक है—यह यकृत, अवरोधजन्य कामला, संमिश्रदोषज ज्वरों (हुम्मयात मुरक्कब) और अवरोधजनित ज्वरों को लाभकारी है। कहते हैं कि शर्वत वनफशा के साथ इसे सदैव पीने से बहुत नींद आने लगती है।

मखनुल् मुफरदात में यह अधिक लिखा है—यह मूत्रल है और यकृद्गत उष्णता और पिपासा को शमन करता है।

कासनी की जड़—

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। **स्वरूप—**सफेद भूरा प्रसिद्ध है। **स्वाद—**फीका कुछ तिक्त। **अहितकर—**उत्क्लेशकारक है। **निवारण—**शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि—**सौंफ की जड़। **ग्रह—**मंगल। **विशिष्ट कर्म—**रक्तप्रसादक। **मात्रा—**चूर्ण ३॥ मा० से १४ मा० तक। (क्वाथ में) १७॥ मा० से ४ तो० ४॥ मा० तक।

गुण-कर्म और प्रयोग—इसकी जड़ के काढ़े का अकेले वा सिरका मिला कर गंडूष करने से मसूढ़ों का शूल मिटता है। यह अवरोधों का उद्घाटन करती, दोषों को तरलीभूत करती और अन्नमार्ग का शोधन करती है तथा मूत्रल और रक्तप्रसादक है। यह कोष्ठावयवों के भीतर की सूजन उतारती, दोषों (मवादों) को परिपक्व और विलीन करती और मिश्रदोषोद्भूत जीर्ण ज्वरों को दूर करती है। सुंघिशूल वा गठिया को अतीव लाभकारी है और यह मूत्रल है। (मखन)

मुहीत में यह विशेष है—यह प्रबल अवरोधोद्घाटनकर्ता और शोधनकर्ता है तथा उष्णताजनित गठिया में अकेले परमोपकारी है तथा गर्भशातक है। गीलानी के अनुसार यह दूषित ज्वरों को दूर करती है। वृश्चिक और वृश्चिक भेद (जररिः), भिड़, सर्प, छिपकली अथवा कोई अन्य भूमि के भीतर निवास करने वाला विषधर जंतु के दंश में अकेले वा सत्तू के साथ (इसके पत्तों के साथ) प्रलेप करने से उपकार होता है। जैतून के तेल के साथ पीने से भी प्रायः विष-जंतुओं के दंश में उपकार होता है।

इब्न जहर के कथनानुसार भी कासनी की जड़ को वृश्चिक-दंश पर लगाने से उपकार होता है।

मखन मुफरदात में यह विशेष है—यह त्वचा को लाभकारी है। यदि मुंह तथा हाथ-पैर पर सूजन हो, तो इसके उपयोग से जाती रहती है।

इसका काढ़ा अकेले अथवा थोड़ा सिरका मिला कर कुल्ली करना दाँतों के कुंद (कोट) हो जाने के लिए लाभकारी है। हरे धनिये के पत्तों के रस या अमलतास या शहतूत के साथ गंडूष करने से आरंभिक कंठशोथ एवं (खुनाक) आराम होते हैं। (खजाइन)।

कासनी का अर्क

(अ०) माउल्हिन्दिबास

यह शैत्यजनक, बल्य, स्वच्छताजनन और शोधन है तथा उष्ण यकृत के अवरोधों का उद्घाटन करता है। यह आमाशय का शोधन करता है। यदि शरीर के किसी भाग में दोषों के अवस्थान वा अवरोध से दोषों का प्रकोप (हैजान) हो, तो उनको शमन करता है। यह यकृद्गत उष्णता को शमन करता और उष्ण यकृत का अत्यंत दर्पनिवारक है। इसके पीने से रक्तमूत्र आराम होता है। **प्रतिनिधि—**इसका आधा अर्ककुशूस। **मात्रा—**७ से १४ तो० तक। (मुहीत)।

नव्य मत

डीमक—Endive (C. Endivia) is much valued by the Indian hakims as a resolvent and cooling medicine, and is prescribed in bilious complaints much as Taraxacum is in Europe. The seeds are one of the four lesser cold seeds, and, as such are still much used in the East.

Chicory root dried, roasted and reduced to powder, is very extensively used in Europe as a substitute for coffee and for adulterating that article. (Pharmg. Ind. pt. ii, p. 312)

नादकरणी—A decoction of the seeds is used in obstructed menstruation. A strong infusion of powdered seeds is useful in obstructions or torpor of the liver and in checking bilious enlargement of the spleen with general dropsy. The root is useful as a substitute for coffee; with other vegetable bitters it is given in dyspepsia and fever. The flower made into sherbet is given in liver disorders. Chicory is prepared from the dried older roots which are roasted and powdered. It is useful in removing gravel for which the following powder is very useful:—Take of chicory 5, Gokshura 6, Melon seeds 7, Sweet fennel seeds 8, Mix and make a powder. Dose—grains 30 to 40. The plant is applied externally in inflammatory affections on account of its cooling properties. (In. M. M. p. 194).

चोपड़ा—In the Punjab plains and in Kashmir, chicory is cultivated as a fodder, and the roots and seeds are very common drugs of the Punjab bazars. The root is dried, powdered and mixed with coffee as an adulterant. It has also been described as a useful medicine in congestion of the liver and resembles taraxacum

in its pharmacological properties. The powdered seeds can be employed in disorders of menstruation. (Ind. d. I. p. 572).

Balfour—(c. Intybus) The root is bitter and used medicinally in the Punjab. An infusion of the chicory mixed with syrup causes a thickening of the liquid. (Balfour)

सखाराम अर्जुन—(c. Intybus) Has tonic, demulcent स्निग्ध and cooling शीत properties. The seeds are considered carminative and cardial हृद्य. A decoction of the seeds is used in obstructed menstruation.

Found to act usefully on the liver in cases of congestion. (Dr. Perry in Watt's Dictionary).

A strong infusion of powdered seeds prove highly useful in checking bilious vomiting. (Surg. Levinge in Watt's Dictionary).

The root (C. Endivia) is used in dyspepsia and fever as a tonic and desmulcent; fruit, a cooling remedy for fever, headache and jaundice. (T. N. Mukerjee).

The root is considered warm, stimulating and febrifuge, given in "Munjus" the diluent preparatory to purging; the seed is used in sherbets. (Irvine).

फूल का शर्बत यकृच्छूल में उपयोगी है।

कासनी जंगली—संज्ञा स्त्री० जंगली कासनी।

पर्याय—(सं०) दुग्धफेनी, पयःफेनी, फेनदुग्धा, पयस्विनी, लूतारिः, व्रणकेतुः, गोजापर्णी (रा० नि०)

—(हि०) दुधल, कानफूल, वरन, कासनी जंगली, जंगली कासनी—(फा०) कासनी दशती, कासनी सह्राई—(अ०)

हिन्दिबास वरी, हिन्दिबाउवरी, वक्रलये यूहृदिय : दूदल, —(पं०) दुधली, दूदली, दूधवत्थल, शमूके, वरन, कान-

फूल—(बम्ब०) बथुर (सिब) बुथुर—(द०) पाथरी, • पथरी—(गु०) कानफूल—(कों०) उदर-चे-कन, टैरेक्से-

कम् ऑफिशिनेली *Taraxacum Officinale* Wigg. टैरेक्सेकम डेंडेलियोनिस *Taraxacum Dandelionis*

—डें० (अं०) डेंडेलियन *Dandelion*—पिस्सेन लिट *Pissenlit* (फ्रा०)।

अर्थ एवं व्युत्पत्ति आदि—पिजिस्कीनामा के संपादक मान्य नाजिमुल् अतिब्बा महोदय के लेखानुसार टैरेक्सेकम यूनानी भाषा का शब्द है जो तारास्सुव से जिसका संकेतार्थ तलघ्यिन (मृदुकरण) है, व्युत्पन्न है। परंतु डॉ० डीमक महोदय के अनुसार उक्त शब्द की वास्तविकता अनिश्चित है। कदाचित् यह तर्खस्कून फारसी संज्ञा का अपभ्रंश है। उक्त वनस्पति के पत्तों के गंभीर दन्दाने सिंह के दाँतों के समान होते हैं। इसलिए आंग्ल

भाषा में इसे डेण्डिलाइन (सिंहदंत) नाम से अभिवानित करते हैं। तर्खस्कून जंगली कासनी का नाम है और इब्नसीना ने इस नाम से उक्त ओषधि का वर्णन किया है। पर किसी-किसी ने इसकी तुलना कुन्नावरी से की है। भेद यह है कि तर्खस्कून कड़ुआ है और कुन्नावरी तिक्त नहीं है (शरह जलानी)। जंगली कासनी के अर्थ में तर्खस्कूक को मख्जन में अरबी और मुहीत में यूनानी संज्ञा लिखा है। जखीरहुल् अत्तार में लिखा है कि या हक्क बरी है और नजीबुद्दीन समरकंदी के रिसाला में "हू नूब मनुल् हिन्दिबास" अर्थात् कासनी भेद और शिफाउल अस्काम की इवारत "व हू मनुल् हिन्दिबाउल् वरी" के अनुसार यह जंगली कासनी है। मुहीत में अन्य संज्ञाएँ तरशकूक, तलखस्कूक बकूस, कीजूरिया, (कीजूरिया-खजाइन), कीजूरियूत और खजाइन में इससे भिन्न तलखशूका लिखी हैं। मुहीत में कादूर को इसकी हिंदी संज्ञा, पर खजाइन में यूनानी लिखी है।

मख्जन में हिन्दिबाउवरी और मुहीत में कासनी दशती नाम से उक्त ओषधि का वर्णन आया है।

जंगली कासनी (अरण्य कासनी)

तुलसी कुल

(Family : Compositae)

उत्पत्ति-स्थान—यह सर्वत्र (संपूर्ण) हिमालय, नीलगिरी पर्वत, पश्चिमी तिब्बत और मिष्मी पर्वतों में आदि स्थानों में तथा यूरोप और उत्तरी अमरीका में होती है। सहारनपुर और पूना आदि के सरकारी वनस्पत्युद्यान में प्रति वर्ष इसकी कृषि की जाती है।

वर्णन—यह खंदरीली से एक भिन्न ओषधि है। यह कासनी की तरह होती है। परंतु इसके पत्ते अपेक्षाकृत अधिक बारीक, अधिक मोटे एवं क्षुद्रतर होते हैं। फूल इसका नीला छोटा होता है। यह अत्यंत कड़ुई होती है। फूल झड़ जाने के उपरांत बारीक बीज प्रकट होते हैं। अंगरेजों ने कासनी के जो बीज अपने देश से लाकर (बंगाल में) यहाँ बोई है और शरद् ऋतु के आदि में उत्पन्न होती है, वह जंगली भेद जान पड़ती है। इसके पत्ते पतले, लंबे और किंचित् दंतित, नाजुक और सफेद रंग के होते हैं, विशेषतया वे जो भीतर होते हैं और जिन पर सूर्य का प्रकाशन पड़ा हो, प्रारंभ में इसमें तना नहीं होता, अंत में पतला तना निकलता है, जिसके सिरे पर कासनी की तरह और किंचित् लंबा फूल लगता है। इसके बीज भी उसीके बीज की तरह के होते हैं। जलवायु जितना ही शीतल और तर होती है, वह उतना ही उत्तम होते हैं। छोटी और कच्ची दशा में ही इसके गट्ठे बांधे

**Dandelion* संज्ञा *Dent de lion* से व्युत्पन्न है।

जाते हैं जिसमें उसके भीतर सूर्य की गरमी प्रवेश न कर सके और उसके पत्ते नाजुक और लतीफ हों। संभवतः यह जंगली भेद हो। प्रकृति और गुणधर्म में यह लगभग जंगली के है। (मखन)

इतिहास—यद्यपि प्राचीन यूनानी और रूमी चिकित्सकों ने कई प्रकार की कासनी का वर्णन किया है; तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इस प्रकार की कासनी का वर्णन नहीं किया है। इब्नसीना ने तरखस्कून नाम (एक प्रकार का वन्य कासनी) से इसका वर्णन किया है। वे इसे यकृतवरोध और जलोदर में उपकारी लिखते हैं। अन्य अरबी और फारसी मुसलमान चिकित्सकों ने भी इसका वर्णन किया है। सभी ने इसे वन्य कासनी लिखा है। वे यह भी लिखते हैं कि इसका फूल बैंगनी लिए होता है। यूरोप में ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी में फूशियस Fuchius (१५४२) ने इसका चित्र प्रकाशित कराया और इसका नाम हेडिप्नाइस Hedypnois रखा, जो प्लाइनी कथित एक प्रकार की अरण्यकासनी की अन्यतम संज्ञा है। ट्रेगस Tragus (१५५२) ने हिरेशियम मेजस Hieracium Majus, मैथियोलस Mathiolus (१५८३) ने डेन्स लियोनिस Dens Leonis और लीनियस (१७६२) ने Leon to don Taraxacum आदि संज्ञाओं से, जिसको वे इब्नसीना के तरखस्कून का पर्याय समझते थे, इसका वर्णन किया है। सत्रहवीं शताब्दी के अंत में अरण्यकासनी (Dandelion) का उपयोग प्रचुरता से होने लगा। भारतीय वा आयुर्वेदीय चिकित्सकों ने दुग्धफेनी (राजनिघण्टु) नाम से इसका वर्णन किया है। अस्तु, मखनूल अद्विया डक्टर के लेखक का यह कथन है कि भारतीय चिकित्सकों ने इसका वर्णन नहीं किया है, अज्ञातासूचक है।

रासायनिक संगठन—इसके दूधिया रस में एक तिक्त विद्रुताकार सत्व—टैरेक्सेसीन Taraxacin, एक स्फटिकीय सत्व—टैरेक्सेसीरीन Taraxacerin एवं पोटासियम् और कैल्सियम् के लवण, रालदार (Resinoid) और सरेशी (Glutinous) पदार्थ होते हैं। जड़ में इन्युलीन Inulin २५% और पेक्टिन, शर्करा, लीव्युलीन Levulin, भस्म ५ से ७ प्रतिशत होते हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा वा कक्षांत में शीतल और रूक्ष है और कासनी से अधिक शीतल है। परंतु सत्यान्वेषकों का यह मत है कि यह शीतल नहीं, अपितु प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष है और उसके समर्थन हेतु शेख का वचन उद्धृत किया जाता है कि इसका दूध आँख का जाला दूर करता है और इसका निचोड़ा हुआ स्वरस जलोदर को

अतीव गुणकारी है और यकृत के अवरोध का उद्घाटन करता है और वृश्चिक आदि के दंश पर इसका प्रलेप करते हैं तथा यह कामला को अतिशय लाभकारी है। **अहितकर**—वृक्क को। **निवारण**—सिकंजबीन। **प्रतिनिधि**—कासनी बुस्तानी। मिन्हाजुत्तदावी की सुनूफुल् अमराज वशकावी में इब्न सुअद मगरबी ने लिखा है कि इसकी प्रतिनिधि रेवंद है। जराबंद मुदहरज (म०, मु०)। **ग्रह**—शनि। **विशिष्ट कर्म**—यकृत और प्लीहा के अवरोधों की उद्घाटक है। **मात्रा**—२ से ६ मा० तक।

गुण-कर्म और प्रयोग—यह संग्राही (काबिज तबअ) एवं आमाशय बलप्रद है और समस्त गुणों में (इसके पत्र, मूल और बीज) कासनी बुस्तानी से बलवती है। फिर भी कासनी बुस्तानी से अधिक तरावट पैदा होती है। यह रक्तनिष्ठीवन को हरण करनेवाली एवं आर्तव-प्रवर्तक है। इसका दूध आँख में लगाने से आँख की फूली कट जाती है। यदि योनि वा गर्भाशय में सूजन आ जाय, तो इसके स्वरस में कपड़ा भिगो कर धारण करने से आराम हो जाती है। जैतून के तेल के साथ इसका रस पीने से प्रायः पानजनित विषों एवं जमीन के भीतर रहनेवाले जानवरों (हवाम्म) के विषों का निवारण होता है। वृश्चिक, भिड़ और सर्पदंश में इसकी जड़ पीस कर प्रलेप करने से उपकार होता है और सुखबादे (विसर्म) में उसे जौ के आटे और अग्निदग्ध एवं दाह में सिरके और सफेदा के साथ लेप करने से उपकार होता है। इसके बीज और मूल गुण-कर्म में बुस्तानी की अपेक्षा अधिक बलशाली हैं और हर एक दूसरे की प्रतिनिधि हैं। यकृत और रंगों के अवरोधों के उद्घाटनार्थ एवं रक्तज और पित्तज ज्वरों के शमन हेतु बुस्तानी के पत्र-स्वरस-पान की रीति और उसके पत्र-स्वरस के फाड़ने एवं उसका अर्क खींचने और उसका चूर्ण और बीजों के माजून बनाने की रीति आदि का उल्लेख करावादीन कबीर में हुआ है। (मखन)।

यह शीतल, अवरोधोद्घाटक, संग्राही, आमाशय बलप्रद, रक्तनिष्ठीवन हर, आर्तवप्रवर्तक एवं स्तन्यजनन है और इसके पत्तों का रस आँख की झिल्लियों को लाभकारी है। इसके पत्र-स्वरस का एक रात-दिन गंडूष करने से कण्ठशोथ विशेष (जुबहा) को लाभ होता है। इसकी जड़ का काढ़ा शर्करा मिला कर पीने से कौडीगतवायु (रियाह शरासीफ) जन्य पार्श्व-शूल आराम होता है। शेख के अनुसार यह आमाशय के लिए बुस्तानी कासनी से उत्तम है। गीलानी के अनुसार तरखस्कूक वा जंगली कासनी यकृत की श्रेष्ठ औषधों में से है। इसका निचोड़ा हुआ स्वरस और जड़ दोनों ही जलोदर में उपकारी हैं। कहते हैं कि इसका

रस जलोदर में असीम गुणकारी है तथा यकृत के अवरोधों का उद्घाटक है। उससे बना शर्वत सकल शोथों एवं यकृत के अवरोधों में लाभकारी है। इसका रस शर्करा के साथ बीस दिन निहारमुंह पीने से जलोदर को प्रारंभ में ही रोक देता है। सिरके के साथ इसका काढ़ा अत्यंत संग्राही है। (मुहीत)।

मखन मुफरदात में यह विशेष है—यह रक्तसाव-रुद्धक और कामलानाशक है।

इब्न जहर के कथनानुसार यदि जंगली कास्नी का रस निकाल कर मद्य के साथ पिया जाय, तो कृष्ण सर्प (अफ़ई) का विष उतर जाय।

आयुर्वेदीय मतानुसार—

दुग्धफेनी कटुस्तिक्ता शिशिरा विषनाशिनी।

व्रणापसारिणी रुच्या युक्त्याचैव रसायनी॥

(राजनिघण्टुः)

नव्य मत

डीमक—At the close of the last century dandelion began to be much used as a remedy for chronic obstructions of the liver and bowels, and as a diuretic in calculous affections. From experiments made by Rutherford and Vignal, it appears that taraxacum is but a feeble hepatic stimulant, but it has powerful diuretic properties. Taraxacum is very popular in India in cases of hepatic congestion due to, or associated with, atonic dyspepsia and constipation; indeed, it has become quite a domestic remedy in this country. It is cultivated as an annual crop at Saharanpur for the use of the Government sanitary establishments. The Madras Medical Stores are supplied with the root from the Nilgiris.

(Pharm. Ind. pt. 11., p. 316.)

• नादकरणी—The root is a valuable hepatic stimulant and very beneficial in obstructions of the liver and visceral diseases. It is also a mild tonic, diaphoretic, cholagogue and diuretic. A popular combination is that of the fluid extract with podophyllin, which may be reckoned as a good remedy in chronic liver congestion and torpor. The root is also given in dyspepsia, jaundice, dropsy, chronic skin diseases and cachectic disorders generally. A decoction of the sliced fresh root (1 in 20 reduced to 10) with the addition of cream of tartar (4 drachms to the pint) is taken in 2 ounce doses twice or thrice a day. The dried root powdered is frequently used mixed

with coffee.

(Ind. M. M., p. 838-9).

चोपड़ा—Taraxacum occurs in the temperate Himalayas and to some extent also in the Oatakamund hills. Most of the Taraxacum that is used in the preparation of the pharmacopoeial drugs is imported. The indigenous root is somewhat smaller than the imported variety but is effective. Powdered root in doses of 10-15 grains is believed to be a hepatic stimulant. Decoction of the root in doses of 1-2 ounces, combined preferably with podophyllum is useful in jaundice, hepatitis and indigestion.

(Ind. d. I. pp. 597-598.)

दे० 'अरण्य कास्नी'।

कास्नी जंगली—संज्ञा स्त्री०। दे० अरण्य कास्नी।

कास्नी-दस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] अरण्यकास्नी। जंगली कास्नी। दे० अरण्य कास्नी।

कास्नी-वित्तुलु—संज्ञा पुं० [ते०]

कास्नी विरै—संज्ञा पुं० [ता०] } तुखम कास्नी। कांचनी बीज। देखो—(कास्नी)

कास्मर—संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द] (१) श्लेष्मातक। लिसोड़ा। (२) कसौंदी।

कास्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्लेष्मातक। लिसोड़ा। (२) काश्मरी। कपिलद्राक्षा। अंगूर भेद।

कास्मीर—संज्ञा पुं० [सं० काश्मीर] गम्भारी। फाइक्स एलास्टिका (Ficus Elastica)।

कास्मीराञ्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काश्मीराञ्जन'।

कास्त्रीकी—संज्ञा पुं० [मायसूर] } एक प्रकार का सरो का कास्त्रीके मायसूर—[ता०] } वृक्ष जो मैसूर में होता है, इसको विलायती सरो भी कहते हैं। (डाइमाक iii)।

काह—संज्ञा पुं० [फा०] संज्ञा पुं० काश तृण। कासा।

काहबंग—संज्ञा पुं० [पं०] बम्बज। किशमिशे कावलियान।

काहरस—संज्ञा पुं० [यू०] गावशीर। जवाशीर।

काहरुबा—संज्ञा पुं० [यू०] कहरुबा। तृणकान्त।

काहुरुस—संज्ञा पुं० [यू०] जावशीर। गावशीर।

काहल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ताम्र चूड़। कुक्कुट। मुरगा। (हारा०)। (२) पिण्डालू। कासालू। (श० मा०)। संज्ञा० पुं० [सं० क्ली०] अव्यक्त वाक्य।

काहलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद धतूर। श्वेत धुस्तुर। (रा० नि० व० १०)।

काहा—संज्ञा पुं० [फा० बहुव०-काह] घासें। तुणानि। (२) [सि०] तृण विशेष।

काहिप्पली—संज्ञा स्त्री० [कना०] वनपिप्पली। जंगली पीपर।

काहिनात—[अ० बहुव० कवाहिल]। उक्त शब्द का उपयोग पशु पक्षियों के झुण्ड के अर्थ में होता है।

काहिल—संज्ञा पुं० [अ०] अंस। कन्धा। सानः। अंस छाया का मध्य भाग।

काहिसोरे—संज्ञा पुं० [?] वनस्पति विशेष।

काही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटज। कुड़ा।

(सिंध०) काश तृण। कासा। (अ०) एक वृक्ष का पुष्प जिससे इत्र प्रस्तुत किया जाता है।

काही का अतर—संज्ञा पुं० [हि०] इत्र काही। इसका उपयोग कर्णशूल में उपयोगी कहा गया है।

काहू—संज्ञा पुं० [सिंध] (१) कासा। काश तृण। (२) उशीर। खस। (३) यूनानी द्रव्य विशेष।

काहू—संज्ञा पुं० [हि०, उर्दू] शाकपत्रविशेष। उद्यानज तथा अरण्यज भेद से काहू के २ भेद हैं।

(१) उद्यानज (वागी)—बुस्तानी—

पर्याय—(हि०) सलाद, सलात; (यू०) तरागीस; (अ०) खस्स। खस। (अं०) दी गार्डेन लेटिस (The Garden Lettuce)। (ले०) लैक्ट्यूका सेटाइवा (Lactuca Sativa, Linn)।

(हि०) सालाद, दाहू (वं०)।

पर्याय—फा०, अ० खस्स, खस। काहू (सिंध) खस, काहू, (हि०) सलाद। (पं०) खस्स, काहू, (तुर०) खास (मरा०) कोक—समरकंद। खासकाहू—ले० लैक्ट्यूका सेटाइवा (var) Lactuca Sativa Linn, लैक्ट्यूका स्केरिओला Lactuca Scariola, Linn, (अं०) गार्डेन लेटिस The Garden Lettuce, दी लेटिस Lettuce शल्लातु—(ता०) कावु (ते०) (फ्रा०) Laitue cultivee।

टिप्पणी—मुहीत में इसकी अन्य फ़ारसी संज्ञाएँ खुरा-सानी खोली, कैहर, बसंजरी कहूद और यूनानी जारीकस बदीकस लिखी हैं।

सहदेवी कुल

(Family : Compositae.)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र फारस और भारतवर्ष में इसकी खेती होती है। लैक्ट्यूका सेटाइवा इसका सामान्य वागी भेद है, जिसकी खेती शाक के लिये भारतवर्ष के अनेक भागों में होती है। लैक्ट्यूका स्केरिओला इसका वन्य भेद है जो पश्चिमी हिमालय में मूरी से कुनावर तक जंगलों में होता है। लैक्ट्यूका वाइरोसा Lactuca Virosa वा अलखस्सुज्जहम अर्थात् चिकना काहू इसका एक उपभेद मात्र है। त्रि० फा० को० में यह असम्मत है।

वर्णन—एक उद्भिद जो बुस्तानी वा वागी और बरी वा सहराई अर्थात् वन्य भेद से दो प्रकार का होता है। उनमें बुस्तानी के पुनः दो उपभेद होते हैं। (१) इसके पत्ते चौड़े और पेड़ १॥ गज तक (आध गज) ऊँचा, चिकना, मधुर एवं कोमल होता है और उससे बारीक शाखाएँ निकलती हैं, जिनके आस-पास सफेद फूल आते

हैं। तदुपरांत बारीक और सफेद बीज लगते हैं। बीजोद्भव-काल में उसमें दूध पैदा हो जाता है और पत्ते कड़े हो जाते हैं। हिंदुस्तान और बंगाल में शरद ऋतु में जबकि पानी नहीं बरसता, उत्पन्न होता है। परंतु अरब, ईरान और रोम आदि में बसंत ऋतु में होता है और प्रचुरता से होता है। इनमें भारतीय काहू ऊँचाई और गुण में विदेशीय काहू से हीन होता है। (२) फिरंगी है और यह भी दो प्रकार का होता है। उनमें एक किस्म का पत्ता हरा कम रंग, अत्यंत कोमल, मसृण और मधुर होता है। दूसरी किस्म के पत्तों के सिरों पर कुछ-कुछ बैंगनी रंगत रहती है और ये पहली की तरह कोमल, मसृण और मधुर नहीं होते। उक्त दोनों जातियों के पत्ते एक दूसरे से लिपटे और बँधे हुए कलिका की भाँति एवं गोल होते हैं। प्रति वर्ष इनके ताजे बीज फिरंग से लाते और जाड़ों में बोते हैं। वायु जितना ही शीतल एवं तर होता है, यह दोनों जातियाँ उतना ही अधिक प्रफुल्लित होती हैं और खूब, अत्युत्तम, अत्यंत कोमल और अधिक (पत्र) सिकुड़ती जाती हैं। उक्त दोनों के बीज प्रायः काले (मख्जन के अनुसार वनफ़र्शई फिरंगी के) होते हैं। भूमि भेद से मृदुता एवं कठोरता और उत्कृष्टता-अनुकृष्टता में भेद उत्पन्न होता है। अस्तु, नरम उर्वर भूमि में जिसमें अच्छी सिंचाई की गई हो, बोए हुए का पत्ता एवं तना कोमल, चिकना और मधुर तथा बीज सफेद होता है। इसके विपरीत बोए हुए का विरुद्ध होता है। खाने में केवल वागी काम में आता है।

काहू बरी वा काहू सहराई—वन्य काहू (खस्स बरी)

इसके पत्ते वागी काहू के पत्ते से अधिक पतले और अधिक लंबे होते हैं तथा चिकने नहीं होते और उससे अधिक हरे, कुछ अधिक कड़े और तिक्त होते हैं। तने में प्रचुर दुग्ध होता है। किसी-किसी स्थान में इसके स्वरस से अफीम बनाते हैं, परंतु पोस्ते से बनी अफीम से घटिया होती है। (मख्जन)। इसे अँगरेजी में लेट्यूस ओपियम (Lettuce opium) और लेटिन में लैक्ट्यूकेरियम (Lactucarium) कहते हैं। यह किसी भाँति स्पर्शजिताकारक एवं विषैली होती है।

नोट—मख्जन में वागी और जंगली दोनों प्रकार के काहू का वर्णन खस्स शब्द में और मुहीत में वागी का काहू और जंगली का काहू सहराई शब्द में आया है।

इतिहास—बुस्तानी काहू सलाद (हरित् शाकाम्ल वा रायता) के रूप में अत्यंत प्राचीन काल से प्रयोग में आ रहा है। अस्तु, हकीम हेरोदोटस (Herodotus) के कथनानुसार ईसवी सन् से ४०० वर्ष पूर्व यह पारस्य नृपतियों के दस्तरखानों पर चुना जाता था। प्राचीन यूनान और रोमनिवासी इसे अभाग्यसूचक समझते थे

और मृतकादि अशौच कर्मों में इसे खाते थे। पारस्य-निवासी अब भी हरे बागी काहू को खाने के साथ खाते हैं और यूरोपनिवासी भी सलाद रूप में इसका व्यवहार करते हैं। यह अनुमान किया जाता है कि जालीनूसोक्त अहिफेन कदाचित् यह काहूजात अहिफेन (*Lettuce opium*) ही है। इसके बीज प्राचीन ग्रंथोक्त ह्रस्व चतुर्वीजों में परिगणित होते हैं और पूर्वीय निघंटु-ग्रंथों में उनको अब भी वही स्थान प्राप्त है। प्राचीन यूनानी काहू को थ्रीडास कहते थे और इसीसे तरीदास अरबीकृत संज्ञा व्युत्पन्न है। सावफ़रिस्तुस ने इसकी एक यूनानी संज्ञा थ्रीडाकिनी भी लिखी है। जंगली काहू को यूनानी में थ्रीडास अगरिया कहते हैं। अधुना थ्रीडास संज्ञा का व्यवहार काहू-स्वरस के अर्थ में होता है। काहूजात अहिफेन जो प्राचीन समय में वन्य काहू से प्राप्त होता था, अधुना आरोपित काहू से भी प्राप्त करते हैं। परंतु वन्य आरोपित की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होता है। इसको भी दीसकूरीदूस, सावफ़रिस्तुस और जालीनूस प्रभृति प्राचीन यूनानी चिकित्सक भली प्रकार जानते और उपयोग करते थे। विशेषतः जालीनूस तो निद्राजनन हेतु प्रायः स्वयं भी इसका उपयोग करता था। यूरोप में अब भी इसका उपयोग होता है और लेट्यूस ओपियम् *Lettuce opium*) कहलाता है।

प्रयोगांश—पत्र, बीज और सांद्रीभूत दूधिया रस (*Lactucarium*) वा काहूजात अहिफेन।

रासायनिक संगठन—वन्य काहू (*L. Scariola*) में लैक्ट्युकेरियम् (*Lactucarium*) नामक एक दूधिया रस होता है, जो लैक्टोसीन *Lactocin* और लैक्ट्युसीन *Lactucic* (प्रधान कार्यकारी सत्व), लैक्टोपिकरीन *Lactopicrin* और लैक्ट्युसिक एसिड *Lactucic acid* नामक तिक्त सत्व-त्रय का मिश्रण है। इसमें लैक्ट्युसेरीन नामक एक निष्क्रिय मधूच्छिष्टसम पदार्थ भी लगभग ५० प्रतिशत होता है और इसमें चिह्नमात्र हायोस्यामिन *Hyoscyamin* तथा एक स्थिराम्ल और अस्थिराम्लगंध तुल्य एक जटामांस्यम्ल (*Valerianic acid*) एवं अल्युमेन ७%, मेन्नाईट *Manrite* २% और भस्म ३% से ६% जिसमें पोटाश, सोडा, मैग्निक आक्साइड, फेरिक आक्साइड और चूर्ण आदि पदार्थ होते हैं, पाये जाते हैं। लैक्ट्युसीन के श्वेत स्फटिक वा परत होते हैं। वन्य काहू (*L. Scariola*) के पत्तों में अल्युमिनीय पदार्थ, श्वेतसार, शर्करा, निर्यास, काष्ठोज (*Cellulose*), (Lignose), हरित (*Chlorophyll*), वसा, नत्रत-बहुल भस्म ये पदार्थ होते हैं। अपवाद स्वरूप इसमें प्रचुरता से लौह होता है। परंतु कोषस्थ रस (*Cell-Sap*) में अत्यल्प मात्रा में लोहा

होता है, जो उबालने से बहुधा पूर्णतया अवक्षेपित हो जाता है। (इं० मे० मे० ४९४)

औषधनिर्माण—क्वाथ और फांट; मात्रा—१ से १॥ आउंस। दूधिया रस (*Lactucarium*); मात्रा—३ से ८ ग्रैन (१॥ से ४ रत्ती)। बीज-चूर्ण, मात्रा—५ से १० रत्ती; टिक्चर (आसव), मात्रा—१० से ३० बूंद; शर्वत जिसमें १०% टिक्चर होता है, मात्रा—१ से ४ ड्राम। रसक्रिया, मात्रा—२॥ से ७॥ रत्ती; तेल और पाकादि।

प्रकृति—पत्र द्वितीय कक्षा वा द्वितीय कक्षा के प्रारंभ में शीतल एवं तर है। सफेद बीज वाले की अपेक्षा काले बीजवाले में सरदी और तरी न्यून होती है। **स्वाद—**फीका और मधुर (म०, मु०), किंचिन्मधुर स्निग्ध (बु० मु०)। **अहितकर—**काहू के पत्ते काम वा बाहु को हानिकर हैं, नेत्र की ज्योति कम करते और उसमें जाला वा फूली पैदा करते, बुद्धि को मलिन करते और विस्मृति-रोग का प्रादुर्भाव करते हैं तथा क्षत क्षय (सिल) एवं श्वास रोग को हानिकर हैं और वायु उत्पन्न करते हैं। **निवारण—**पुदीना, अजमोदा, शलगम, जीरा और हड़ का मुख्वा। अकस्मात् यदि इसे अधिक खाना पड़े, तो नेत्र की रक्षार्थ सौंफ का स्वरस नेत्र में लगाया करें और हृव्व कूकाया भक्षण किया करें। यदि इसके भक्षण से उरःक्षत रोगी के वक्ष में पूय जम जाय, तो मध्वम्बु (माउल् अस्ल) पीकर वमन करें और जूफा का क्वाथ पियें। ग्रह—शुक। **प्रतिनिधि—**कासनी वा खुरफा (पत्र-स्वरस)। **विशिष्ट कर्म—**रक्त और पित्त के प्रकोप को शांत करनेवाला और वाष्पारोहण का प्रतिषेधक है। **मात्रा—**पत्रस्वरस ८॥। तोला तक (मरुजन)। पत्र-स्वरस १-२ तो० और फाड़ा हुआ रस ५ से ७ तो० तक। (बु० मु०)।

गुणकर्म तथा प्रयोग—समग्र शाकों की अपेक्षा इससे अधिक आहार की प्राप्ति होती है। यह सर्वोत्तम है। इसलिये यह समझा जाता है कि इसकी सरदी अत्युग्र नहीं है। पकाया हुआ काहू अपेक्षाकृत अधिक पोषक होता है; क्योंकि पकाने से उसका सांद्र-द्रव विलीन हो जाता है। यह धोया हुआ अधिक आध्मानकारक होता है; क्योंकि उष्ण और लतीफ जौहर जो पत्र के ऊपरी धरातल पर लिप्त होता है, वह धोने से विनष्टप्राय हो जाता है एवं इससे उसमें एक प्रकार का स्निग्धतासंपादक द्रव (रतूबत बाल्लः) प्राप्त है, जो फलतः आध्मानजनक वायु (रियाह नाफ़िखः) में परिणत हो जाता है। मद्य-पान के बीच सेवन करने से यह नशा को रोक देता है; क्योंकि शीताधिक्य के कारण वाष्प सांद्रीभूत होकर आरोहणाक्षम हो जाता है। देश-देशांतरों के जल-पीने से हुए दोषों

(जैसा कि यात्राओं में प्रायः होता है) निवारण करता है। लेखक के विचारानुसार उसका कारण यह है कि काहू जलों के अभिशोषण में देर कर देता है, जिससे वह आमाशय एवं उसके आस-पास देर तक रुके रहते हैं। यहाँ तक कि पक कर उनके दोषों का शमन हो जाता है। रूह को प्रगाढ़ीभूत करने के कारण यह स्पर्शजिताजनक और निद्राजनक है और प्रलाप को लाभ पहुँचाता है। क्योंकि मस्तिष्क में सरदी पहुँचाता है और उसकी ओर वाष्पारोहण नहीं होने देता। यदि सिर में सूर्य की गरमी पहुँच गई हो, तो यह अपनी शीतलता से उसे लाभ पहुँचाता है। यह स्तनों में दूध बढ़ाता (स्तन्यजनन) है। क्योंकि प्रचुरता से शुद्ध रक्त उत्पन्न करता है। (नफीसी)

यह रक्तप्रसादक अर्थात् रक्त को शुद्ध करनेवाला है। हकीमों के कथनानुसार शुद्ध पतले रक्त को उत्पन्न करनेवाला है और यह अन्न शाक-भक्षण से उत्पन्न रक्त से उत्तम है। महामारिकाल में और यात्राकाल में जलवायु के दोषनिवारणार्थ खाते हैं। यह ववाई हवा और विविध जल-यान जनित दोषों और जलवायुपरिवर्तनजन्य दोषों को दूर करता है। यह रक्त और पित्त के प्रकोप तथा पित्त एवं वायु की रुक्षता, प्यास और दाह को शमन करता है। यह अवरोधोद्धाटक है तथा मदिरा-पानजनित खुमार और मस्ती को निवारण करता, मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहण को रोकता और शिरोशूल, नजला एवं उष्णता एवं रुक्षता-जनित कास को दूर करता है। यह निद्राजनक, सर, मूत्रल विशेषकर बिना धोया हुआ, क्योंकि बिना धोये हुए में अवरोधोद्धाटन की शक्ति धोये हुए की अपेक्षा, अधिक है और उष्ण शोथ पर मादा गिरने से रोकनेवाला (रादेअ) अर्थात् उसको नरम करनेवाला है। यह शुष्काद्रं खजू कुष्ठ, उन्माद, कामला, स्तनशूल, उष्ण ज्वर, वस्ति और मूत्रमार्गस्थ व्रण, तथा मूत्रदाह को लाभकारी है। इसे सिरके के साथ सेवन करने से क्षुधा की वृद्धि (उत्पन्न) होती है, कामला आराम होता है और उदरशूल मिटता है। हरे वा कच्चे की अपेक्षा इसका काढ़ा अधिक पोषक, उरोशूलनाशक और स्तन्यवर्द्धक है। इसके प्रलेप से दाह मिटता है, नेत्रशोथ दूर होता है और समस्त उष्ण शोथ, विसर्प एवं मोच आदि आराम होते हैं। इसकी राख को अवचूर्णित करने से क्षतपूरण होता है और मुँह आने (कुलाथ) में उपकार होता है। (मरुजन) काहू (पत्र) शुद्ध दोष उत्पन्न करता, दोषों को तरलीभूत (रकीक) करता, रक्तोद्वेग और पित्त की तीक्ष्णता वा पित्त की उल्वणता को शमन करता और रक्त को शुद्ध करता (रक्तप्रसादन) है। ववाई हवा के दोषों को निवारण करता है; इससे अन्य शाकोद्भूत रक्त से

उत्तम शुद्ध रक्त उत्पन्न होता है। यह रक्तगत उष्णता एवं उग्रता को दूर करता है। बिना धोये हुए पत्र उत्तम होते हैं। क्योंकि धोए हुए आध्मानकारक होते हैं। इसका प्रतीकार स्याह जीरा से होता है। मरुजन के लेखक के अनुसार काहू सर और मूत्रल है, विशेषकर बिना धोया हुआ। क्योंकि इसमें धोए हुए से अवरोधोद्धाटन की शक्ति अधिक है। परंतु शेख के अनुसार काहू न सर है और न शीतसंग्राही। उसका कारण यह है कि यह न नमकीन है, जिससे अपने लावण्य और क्षारत्व के कारण सर वा दस्तावर होता और न कषाय है, जिससे संकोचन वा संग्रहण कार्य अर्थात् कब्ज करता और न जिला पैदा करता है। किंतु प्रवर्त्तक अवश्य है। इसे धोना न चाहिये। क्योंकि पत्तों की सतह में सूक्ष्म उष्ण घटक होते हैं, जो धोने से नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार कासनी में उग्रही घटक प्रवर्त्तन कार्य करते हैं, जिससे अवरोधों का उद्धाटन होता है और कामला दूर हो जाता है। अतः कानून के कतिपय भाष्यकारों का यह आक्षेप उचित नहीं कहा जा सकता, कि काहू अवरोधोद्धाटन औषधों में से नहीं, अपितु सांद्रीकरण औषधों में से है, पुनः उससे रोधों का उद्धाटन कैसे संभव हो सकता है। यदि मदिरा-पान के बीच काहू के पत्र चावे जायँ, तो नशा कम होता है और मदिरा से आमाशय में दाह प्रतीत नहीं होता। इससे उष्ण शोथ विलीन होता है। मुँह आने और जिह्वा की सूजन में इसके काढ़े का गण्डूष लाभकारी होता है। सिरके के साथ नींद लाता है और अनिद्रा दूर होती है। शीतजनित शिरोशूल में इसे गुलरोग्न के साथ उपयोग करने से उपकार होता है। गरम प्रकृति के लिये शान्तिदायक औषध है। शेख के अनुसार यह कच्चा अथवा उसका काढ़ा निद्राकारक है और उनसे अनिद्रा रोग का नाश होता है और ये तीव्र ज्वरजात प्रलाप को लाभकारी हैं। इसके प्रलेप से पित्तज नेत्राभिष्यंद आराम होता है और नेत्र की ओर मादे का आना रुक जाता है।

उष्ण आमाशय को बलप्रद और क्षुधावर्धक है। यह अधिकतया आहार रूप में उपयोग (प्रयुक्त) किया जाता है। अपने उपर्युक्त गुण-कर्मों के कारण रक्त और पित्त प्रकृति के लोगों के लिए परम सात्म्य है। उष्ण कास, खुजली, उन्माद, मालीखोलिया, कामला, उष्ण ज्वरों और सूजाक में अतिशय लाभ करता है। प्रसूता को स्तन्यवर्धन के लिये खिलाया जाता है।

काहू के बीज

काहू के बीज—[हि०] (द०) काहू के बीज, (फा०) बज्रुल खस्स तुस्मे काहू (ता०) शलान्तु विरै (ते०) कावु वित्तुलु

प्रकृति—द्वितीय वा तृतीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष हैं। काहू के बीज जितना अधिक काले होंगे, उतनी सरदी उनमें अल्प होगी। **स्वरूप**—किसी-किसी ग्रंथ में यह उल्लेख है कि श्यामता लिये रक्त बीज बहुत भारी और बलवान् होते हैं और ललाई लिये सफेद लतीफ (लघु) और निर्बल होते हैं। सफेद चमकदार। **स्वाद**—फीका हीकदार। **अहितकर**—आमाशय तथा काम वा बाह को हानिकर और विस्मृतिरोगकारक है। **निवारण**—मस्तगी वा शुद्ध मधु। **प्रतिनिधि**—पोस्ते का दाना वा दम्मुलख्वैन। **ग्रह**—शनि। **विशिष्ट कर्म**—स्पर्शजिताजनक और निद्राजनक तथा शिरोशूलनाशक। **मात्रा**—६ मा० से १ तोला तक।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—इसके बीज (खिलाने से) वीर्य को शुष्क कर देते हैं अर्थात् अपने शीत प्रभाव से उसको सांद्रीभूत कर देते हैं और स्पर्शजिताजनक प्रभाव से कामेच्छा को कम करते अथवा उसे शांत करते हैं अर्थात् कामावसायकारक हैं। इसीलिये स्वप्नदोष को भी कम कर देते हैं तथा पिपासा और दाह को शमन करते हैं। इसके निरंतर सेवन से दृष्टि निर्बल होती है। क्योंकि इससे रूह सांद्रीभूत हो जाती है। (नफीसी)

यह अवसन्नताकारक, निद्राकारक और प्रकुपित दोषों का शामक है। इसे ७ मा० की मात्रा में सेवन करने से स्वप्नदोष आराम होता है, मैथुन-शक्ति निर्बल हो जाती है और नजला प्रतिश्याय, उरोशूल, बूँद-बूँद मूत्र आना (तकतीरुलबौल) और शुक्रस्राव आराम होते हैं। माथे और सिर पर इसे प्रलेप करने से (अनिद्रा दूर हो कर) नींद आने लगती है, शिरोशूल (गरम) आराम हो जाता है और आँख पर मवाद गिरना बंद हो जाता है। इसे बालों (सिर) पर लगाने से बाल झड़ना रुक जाता (बालों को शक्ति प्राप्त होती) है। अतएव बालों को गिरने से रोकने के लिए सिर पर लगाते हैं। और वृश्चिक-विष-निवारणार्थ इसे दंश-स्थान पर प्रलेप करते हैं। (मखजन)

महीत में यह विशेष है—यद्यपि इसके शाक में अधिक तरावट और आध्मानकारक गुण है, तथापि यह गुण में बीजों से हीन होता है। इसके बीजों का शीरा पीने और प्रलेप करने से शिरोशूल आराम होता है।

यह पित्त और शोणित के प्रकोप अर्थात् रक्तोद्वेग एवं पित्त की तीक्ष्णता को शमन करता है और मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहण नहीं होने देता, आमाशयिक दाह को दूर करता है और पेट को नरम करता है। यह मूत्र का प्रवर्तन करता, नींद लाता, शोथ के माहा को परिपक्व करता, रुक्षता उत्पन्न करता, अंग को शिथिल (सुन्न) करता, रक्त को शुद्ध करता और अत्यधिक स्वप्नदोष

होने को लाभ पहुँचाता है। निर्विषैल है। (म० मु०)।

मुफरिदात नासरी में इसे उष्ण अर्थात् पित्तज कास में भी उपकारी लिखा है।

तजकिरे सवेदी में लिखा है कि काहू का (उसारा) मस्तक, दोनों कनपुटियों और ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर प्रलेप करने से पित्तज गरम सिरदर्द (शिरोशूल) आराम होता है। इसी प्रकार काहू के बीजों को पीसकर मस्तक पर प्रलेप करने से भी लाभ होता है।

कामेच्छा कम करने में यह पत्तों से बढ़ा हुआ है। क्योंकि उनमें नफख बहुत है। इसलिये इतना कामावसाय-कर नहीं होते, जितना कि बीज होता है। निरंतर इसका शीरा पीने से काम-शक्ति (कुव्वत बाह) कम हो जाती है। (खजाइन)

आभ्यंतरिक रूप से रक्तज एवं पित्तज ज्वरों, मालिन-खोलिया, उन्माद जैसी व्याधियों में अकेले या उपयुक्त औषधद्रव्य के साथ इसका शीरा निकाल कर पिलाते हैं।

काहू का तेल (रोगन काहू)

रोगन तुरुम काहू (फा०)। दुहनुल् खस्स (अ०)। काहूबीज से तेल भी प्रस्तुत किया जाता है।

निर्माण-क्रम—काहू के बीजों का शीरा २ भाग, तिल का तेल अथवा बादाम का तेल १ भाग, दोनों को यहाँ तक पकायें कि केवल तेल मात्र शेष रह जाय अथवा बादाम तैलवत् प्रस्तुत करें। **स्वरूप**—किंचित् पीताभ श्वेत। **स्वाद**—किंचित् तिक्त हीकदार (वु० मु०) किंचित् तिक्त (म० मु०)। **प्रकृति**—शीतल एवं तर। **अहितकर**—शीत प्रकृति को और विस्मृति एवं दृष्टिमांद्यकर। **निवारण**—जीरा सफेद और शुद्ध मधु वा रोगन बादाम। **प्रतिनिधि**—कद्दू की गिरी का तेल वा सफेद पोस्ते का तेल वा तेल। **ग्रह**—शुक्र। **विशिष्ट कर्म**—निद्राकारक और मस्तिष्क को तर करता है। **मात्रा**—३ मा० से २ तोला तक।

गुण धर्म तथा प्रयोग—यह कठिनाई को दूर करता, मस्तिष्क में तरावट पैदा करता, नींद लाता, मर (माली-खोलिया) और रौक्ष्यजन्य मृगी को लाभकारी है, तथा शराब की मस्ती को मिटाता है। इसके पत्तों का रस सभी गुण-धर्म में बीज के समान है। इसे गुलोरोगन में मिलाकर लेप करने से उष्ण शिरोशूल आराम होता है। (मखजन, मुहीत)

मखजन मुफरिदात में यह विशेष लिखा है कि यह प्रायः पित्तज वातव्याधियों (अभ्राजगर्म अस्बानी) को लाभकारी है।

बुस्तानुल मुफरिदात में यह विशेष है कि इसे तालू पर लगाने अथवा नाक और कान में डालने वा औषधों में

मिलाकर खिलाने से मस्तिष्क में तरावट आती है और मस्तिष्क के लिये अत्युपयोगी है विशेषकर उष्ण प्रकृति को। यह वाष्पारोहणरुद्धक और शिरोशूलनिवारक है।

खजाइन में यह अधिक लिखा है कि यह उष्णताजनित अर्थात् पित्तज शिरोशूल एवं सिर की खुश्की में लाभकारी है।

नींद लाने के लिये इसे सिर में लगाया जाता है और नाक में टपकाया जाता है। इसके अतिरिक्त बालों को दृढ़ (मजबूत) करने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। सरसाम में रोगन काहू का प्रायः उपयोग होता है।

जंगली काहू

काहू बरीं, काहू सहराई (फा०)। खस्स बरीं (अ०)

Lactuca Scariola, Linn.

यह शीतल और तर है और बुस्तानी से इसमें तरावट (रतूवत) कम होती है। किसी-किसी के कथनानुसार इसमें बुस्तानी से सरदी भी न्यून है और गुणकर्म में बुस्तानी से बलवान् है। पत्र, बीज और दूधिया रस वा दुग्ध सब की शक्ति बुस्तानी के सदृश होती है, बल्कि उससे भी बढ़कर और काले पोस्ते के दूध के समान होती है। शेख ने लिखा है कि जंगली काहू शक्ति के विचार से काले पोस्ते के समान है। इसका दूध आँख में लगाने से (कर्नियः) व्रण स्वच्छ होता है और अक्षिकोणगत नाड़ी व्रण (गर्व) को भी लाभ होता है। गुण में बुस्तानी का दूध इसके समीप है। पौने दो मासे जंगली का दूध सिरके में मिला कर पीने से जलीय दोष मलमार्ग से निस्सरित हो जाता है (मुसहिल कैमूस माई)। जब वागी का पेड़ खूब बढ़ जाता है तब उसका दूध जंगली के दूध की शक्ति में हो जाता है। इसके पीने से आर्तव का प्रवर्त्तन होता है। और लगाने से रुतीला और विच्छू का विष उतर जाता है। इसके लिये यह प्रभाव से ही लाभकारी है। (मरुजन, मुहीत)।

पश्चिम के देशों में काहू का साग या तरकारी बहुत खाई जाती है।

नव्यमत

डीमक—Lettuces have always been greatly esteemed on account of their cooling and refreshing properties. In the wild state they produce to a certain extent narcotic and sedative effects, but these appear to be almost entirely removed by cultivation; still, even in the cultivated varieties a milky and bitter juice exists in the flower stem. The seeds are one of the four lesser cold seeds of old writers, and as such still retain their

position in the *Materia Medica* of the East. The lettuce seed of the bazars is white; it is imported from Persia. (*Pharm. Ind.* pt. I, p. 313-314).

नादकरणी—(Action) Anodyne, sedative, hypnotic, diuretic and expectorant; in action similar to opium, but it leaves no bad after-effects. The wild variety is believed to possess the sedative property in greater degree than the cultivated. The seeds are cooling, demulcent and refrigerant. The leaves are slightly hypnotic and sedative.

डीमक—Lactucarium is a brown viscid substance obtained by evaporating the juice which exudes when the stems of the wild lettuce are wounded. It has a peculiar opium odour and acts as a narcotic. (*Pharm. Ind.* pt. II, p. 313—314).

काहूजात अफीम

अफ्यून काहू, अफीम काहू—(फा०)

लेट्यूस ओपियम् *Lettuce opium* (अ०)।

लैक्ट्युकेरियम् *Lactucarium* (ले०)।

वर्णन—बुस्तानी काहू के पौधे अर्थात् नवात खस्स वागी (*Lactuca Virosa*) की फूलदार शाखाओं और उसके तने को पाछने (चीरादेने) से सफेद दूध की तरह एक रस निकलता है जो वायु लगने से कड़ा हो जाता है और उसकी रंगत भी बदल जाती है। यही शुष्कीभूत दूध या रस अफ्यून काहू कहलाती है। यह पोस्ते की अफीम की तरह तेज नहीं होती।

लैक्ट्युकेरियम (अफीम काहू)—इसके छोटे-छोटे वेडील टुकड़े वा स्वच्छ उन्नतोदर गोल चक्रिकाएँ होती हैं। रंगत बाहर से भूरी या किंचित् रक्ताभ धूसर, किंतु भीतर से श्वेत वा पीताभ टूटे हुए मोम की भाँति थोड़ी चमकीली होती है। इसकी गंध किसी प्रकार अहिफेन की गंध की तरह गंभीर होती है। स्वाद तिक्त होता है।

मात्रा—२ से ६ ग्रैन (१-३ रत्ती) या ४ चावल से १ रत्ती तक।

प्रकृति—सर्द एवं खुश्क।

नोट—थ्रीडेस (*Thridace*) वा तरीदास जो फरांसीसी लैक्ट्युकेरियम् है, लैक्ट्युका कैपिटेटा *Lactuca Capitata* नामक एक प्रकार के बुस्तानी काहू का सत है। यूनानी हकीम दीसकूरीदूस के कथनानुसार काहूजात अहिफेन तुल्य है और उसी प्रकार वेदनास्थापन

आदि के लिये दो-सहस्र वर्ष पर्यंत प्रयोग में आती रही है, विशेषतया वातज वेदनाओं को दूर करने के लिये। इसके सिवा जलोदर और आर्तवप्रवर्तन के लिये भी इसे लाभकारी समझा जाता था। परंतु गत शताब्दी मसीही के अंत होने पर, इसका उपयोग त्याज्य हो गया था। पर बाद को फिर इसके उपयोग का प्रचलन होने लगा।

अधुना सुप्तिजनन, वेदनास्थापन और निद्राजनन के लिये पोस्ते की अफीम की भांति इसका उपयोग करते हैं। परंतु अफीम के विरुद्ध इससे न तो पाचन विगड़ता है और न मलावरोध होता है और न पश्चात् को शैथिल्य वा सुस्ती प्रतीत होती है। अहिफेन से इसमें निद्राजनन धर्म निर्वलतर होता है। संक्षोभयुक्त कास में इसका शर्वत वा चक्रिका गुणकारी होती है। इससे गाढ़ी और सुखदायक नींद आती है। अफीम से भी गाढ़ निद्रा आती है, मगर उससे कब्जियत होती है और यकृत की क्रिया विगड़ती है। यह दुर्गुण इस औषधी से पैदा नहीं होता। इसका वेदनानाशक गुण अफीम की अपेक्षा बहुत कम है। इस कारण भयंकर कष्ट के कारण जब निद्रा भंग हो जाती है, तब काहू के सत्व से लाभ नहीं होता। उस समय अफीम ही कारगर होती है। सूखी खांसी और कफक्षय में काहू का सत्व देने से लाभ होता है। अफीम से भी खांसी में लाभ होता है। मगर उससे कफ का पड़ना बंद हो जाता है। काहू के सत्व से कफ का पड़ना बंद नहीं होता।

काहू-उद्यानज—संज्ञा पुं० [हि०] वागी काहू। दे० 'काहू'।

काहू की अफीम—संज्ञा स्त्री० [हि०] सलाद की अफीम। अपचूने काहू। दे० 'काहू'।

काहू के बीज—संज्ञा पुं० [द०, हि०] तुलम काहू। दे० 'काहू'।

काहू जंगली—संज्ञा पुं० [हि०] अरण्यज काहू। जंगली सलाद। दे० 'काहू'।

काहू-वागी—संज्ञा पुं० [हि०] उद्यानज काहू। दे० "काहू"।

काहू-सहराई—संज्ञा पुं० [फ०] काहू जंगली। दे० "काहू"।

काहू तुलम—संज्ञा पुं० [फा०] (१) तुलम काहू। काहू के बीज। दे० 'काहू'। (२) इजखिर। रोहासा। रोहिष तृण।

काहे बंग—संज्ञा पुं० [फा०] भांग के बीज।

काहे मक्का—संज्ञा पुं० [फा०] रोहिष तृण। मक्का अर्थात् अरब देशी रोहिष (इजखिर)।

काहे मक्की—संज्ञा स्त्री० [फा०] इजखिर। रोहिष तृण।

काहे मक्खी—संज्ञा स्त्री० [हि०] काहेमक्का। इजखिर। रोहिष तृण।

काहे सरू—संज्ञा पुं० [फा०] मुदपणी। बन मूंग।

काह्वय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नल। नरसल, नरकट।

रन्ध्रवंश। [वै० निघ०]।

काक्ष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अपाङ्ग दर्शन। दे० 'अपाङ्ग'।

काक्षायन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बाह्यलिक नाम के ऋषि। (च० सू० १२ अ०)।

काक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सौराष्ट्रमृत्तिका। गोपीचन्दन। सोरठी मिट्टी। [र० मा०]। (२) आढकी। अरहर। तुवर। (हे० च०)।

काक्षीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोभाज्जन। दे० 'सहिजन'। (श० र०, अम०)।

काक्षीरी—[सं० स्त्री०] वंशलोचन भेद। (रत्ना०)।

काक्षीव (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोभाज्जन। दे० 'सहिजन'।

काँक—संज्ञा पुं० [सं० कंकु] (१) क्षुद्र धान्य विशेष। कँगुनी। कँगनी। देखो—'कांकुन'।

संज्ञा पुं० [सं० कंक] पक्षी विशेष। काँक पक्षी। कंक पक्षी। सफेद चील।

काँकच—संज्ञा पुं० [गु०] लताकरंज। सागर गोटा। कठ करंज। दे० 'करञ्ज'।

काँकड़—संज्ञा पुं० [को०] वनस्पति विशेष। घोगर। खरपत्र। खरपत। (मे० मो०)।

काँकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० कंकड़] कपास के बीज। बिनीला। संज्ञा पुं० [गु०] हरफारेवड़ी। लवली।

काँकड़ा श्रिगी—संज्ञा स्त्री० [वं०, सं० कर्कटशृंगी] दे०—'काकड़ासिंगी'।

काँकड़ासिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृंगी] दे० 'काकड़ासिंगी'।

काँकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिन्दी] [मं=सं० कर्कटी] दे० 'ककड़ी'।

काँकर—संज्ञा पुं० [म०] वनस्पति विशेष। (Brugniera Gymnortya)।

काँकरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ककड़ी'।

काँकरोल—संज्ञा पुं० [हि०] कर्कोटक। खेखसा।

काँकुड़—संज्ञा स्त्री० [वं०] ककड़ी। कर्कटी।

काँकुन—संज्ञा पुं० [हि०] } कंगुधान। ककुनी। काँक।

काँकुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] }
परिचय—एक प्रकार का क्षुद्रधान्य है। जिसकी कृषि वर्षा ऋतु में होती है, वर्णभेद से ४ प्रकार की होती है। (सं०) कङ्गु, कङ्गु, कङ्गुका, कङ्गुनिका, कङ्गुनी, चीनक, पीत तण्डुल, (हि०) काँक, काँकुन, कँगनी, (वं०) काँगुनी। (म०) कांग, (कना०) नवणे, (ते०) प्रेकणपु चेद्रु। (ता०) कट्टु कोल्लु, (फा०) गल। (ल०) पेनिकम मिलिएसियम (Panicum Miliacium)। भेद—काली, सफेद, लाल और पोली होती है; इनमें पीली सर्वश्रेष्ठ होती है।

गुण-कर्म—भग्न सन्धानकारक, पुष्टिप्रद, भारी, रुक्ष, अत्यन्त कफनाशक; वातकर्त्ता तथा घोड़ों के लिए अत्यन्त हितकर है। (भा० पू० धा० व०)।

काँच—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष] कक्षा। बाहुमूल के नीचे की ओर की गुहा। बगल।

काँगड़—संज्ञा पुं० [म०] काँक। कंगु धान। ककुनी।

(पं०)—ककट शृंगी। काकड़ा सिंगी।

काँगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कंक] धूसर वर्ण का एक पक्षी। कंक पक्षी।

काँगनी—संज्ञा स्त्री० [म०] ज्योतिष्मती। माल काँगनी। देखो—'कांकुन'।

काँगनी दाना—संज्ञा पुं० [हिं०] } कंगु धान। प्रियंगु धान्य।
काँगनी धान—संज्ञा पुं० [हिं०] } काँक। ककुनी।
देखो—'कांकुन'।

काँगरी सफेद—संज्ञा पुं० [फा०] वादावर्द।

काँगरू—संज्ञा पुं० [अ० Kangaroo] एक जंगली जानवर जो आस्ट्रेलिया में प्रायः पाया जाता है और उसके उदर में थैला के भीतर उसका बच्चा रहता है, वह अपने पोछे के पैरों पर प्रायः बैठता है और उसका अगला पैर पिछले पैर के अपेक्षा छोटा होता है। उसका स्वरूप लोमड़ी का-सा किन्तु उसकी अपेक्षा बड़ा होता है। यह खानवर्गीय जन्तु है।

काँगक्षेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनस्पति विशेष।

काङ्गय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नल। नरसला। नरकट। रन्ध्रवंश। [वै० निघ०]।

काँगा—संज्ञा पुं० [मं०] मसी। काकजंघा।

काँगा च झाड़—संज्ञा पुं० [मं०] काकजंघा। दे० 'मसी'

काँगिरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गँगरेन। नागबला। गुल-शकरी। दे० 'नागबला'

काँगु—संज्ञा पुं० [सं० कंगु]

काँगुक धान्य—[सं० कंगु] ककुनी। काँक।

काँगुण—[मं० " "] कंगु धान्य।

काँगुन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] प्रियंगु। देखो—'कांकुन'

काँच—संज्ञा पुं० [सं० काँच] १ एक मिश्र धातु शीशा।

(२) मोतियाबिन्द।

[सं० स्त्री० कक्ष प्रा० कच्छ] गुदा के भीतर का भाग जिसमें उसकी वलियाँ होती हैं। गुदाचक्र।

काँच—संज्ञा पुं० [सं० काँच]

पर्या०—काचः (सं०)। जुजाज (अ०)। आवर्गीनः, शीशः (फा०)। काँच, शीशा—हिं०। ग्लेसम Glesum (ले०)। ग्लास Glass (अं०)। दरसूमारस, कंतूरीदस, कतरना (यू०)। शीशा 'उर्दू'

टिप्पणी—अरबी जुजाज शब्द का उच्चारण ज़जाज और ज़िजाज भी आया है, पर अधिक प्रसिद्ध जुजाज ही

है। मुहीत में भूल से इसका उच्चारण जुज्जाज लिखा है।

वर्णन—एक मिश्र धातु जो बालू और रेह या खारी मिट्टी को आग में गलाने से बनती है और पारदर्शक होती है। इसकी चूड़ी, बोतल, दर्पण आदि बहुत सी चीजें बनती हैं। यह कड़ा और बहुत खरा होता है और थोड़ी चोट से भी टूट जाता है।

प्राचीन मत

मरुजन और मुहीत आदि के मत से खनिज और कृत्रिम भेद से शीशा दो प्रकार का होता है। इनमें खनिज काँच कृत्रिम की अपेक्षा अधिक श्वेत और स्वच्छ एवं उज्ज्वल होता है। यह विश्वास योग्य है कि संभवतः खनिज शीशा और बिल्लौर एक किस्म के हों। अस्तु, अरस्तू का यही मत है।

खनिज को पत्थर में से इस प्रकार प्राप्त करते हैं—प्रथम शीशे के पत्थर को सज्जी के साथ बारीक पीसते हैं और बरतन में रखकर निरन्तर छः दिवा-रात्रि तीव्रग्नि देते हैं। यहाँ तक कि खूब गल जाता है। फिर मगनीसा पत्थर को बारीक पीसकर उस पर बुरकते हैं, जिससे तलछट नीचे बैठ जाती है। फिर शीशे को निकाल कर इच्छित वस्तु तैयार कर लेते हैं और पीत-रक्त-नील-हरित आदि रंगों में से मनोवांछित रंग देते हैं। इनमें से सर्वोत्कृष्ट वह है जो अत्यन्त स्वच्छ निर्मल और श्वेत हो।

कृत्रिम शीशा—रेत, संगरेजे और सज्जी से तैयार होता है। यूरूप के शीशे अधिकतया रेत और सज्जी को गला कर बनाये जाते हैं और ये अत्यन्त श्वेत एवं उज्ज्वल होते हैं।

यदि समान भाग राँग और शामी शीशे को लेकर घड़िया में खूब गरम करें और शीतल करके जो कुछ ज्ञाग की तरह उसके ऊपर आवे, उसे पृथक् कर लें, यही काचोत्थ वा काचमल (माउज्जुजाज़) है। वि० दे० "काँच नमक"।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष (मरुजन) वा द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष। सज्जी और संगरेजों से बना कृत्रिम शीशा उष्ण एवं तर वा अधिक उष्ण होता है। स्वाद—फीका विस्वाद होता है। अहितकर—आँतों को क्षतयुक्त करता और आमामशय को भी हानि पहुँचाता है। निवारण—कतीरा एवं स्निग्ध पदार्थ। प्रतिनिधि—जबरजह। जले हुए की प्रतिनिधि अश्मरिनाशनार्थ हज़रुल्लयहूद है। ग्रह—सूर्य। विशिष्ट कर्म—वस्त्यश्मरिनाशन। मात्रा—१॥ मा० से ३॥ मा० तक।

गुण-कर्म तथा प्रयोग

शीशा (जुजाज) छेदक, विलीनकर्त्ता, स्वच्छकर्त्ता और

प्रदाहकर्ता है। जलाया हुआ शीशा प्रदाहरहित आर्द्रताभिषोषणकर्ता है। इसकी राख अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म वा लतीफ है। इसे ३॥ मा० (=१ दिरम) की मात्रा में हल्के श्वेत* मद्य के साथ पीने से वस्तिगत अश्मरी का नाश होता है और इससे प्लीहा, एवं वस्ति तथा वृक्क की निर्बलता और मूत्र की जलनादि रोग दूर होते हैं। जलाया हुआ शीशा वा इसकी राख को धूल के समान बारीक पीस कर आँख में मुरमा की भाँति लगाने से आँख की फूली, खाज (जरब) एवं जाला में उपकार होता है तथा आँख की ज्योति निर्मल होती है। यदि दाँत पीले हों, तो इसके मंजन से स्वच्छ हो जाते हैं। शिरोगत रूसी (हज्राज) में इसका लेप गुणकारी है। जैतून के तेल के साथ इसे लगाने से बाल उग आते हैं और मेंहदी के साथ लगाने से कण्ठमाला इत्यादि रोगों में बहुत उपकार होता है। उक्त गुणों में इसका घोल और भी गुणकारी होता है। (मखजन)

मुहीत में यह अधिक लिखा है—इसमें कज्ज और लताफ़त (तरलता) है। यदि इसे बारीक करके मेंहदी के साथ मिला कर बालों पर लगायें तो बाल झड़ना रुक जाय। इससे सिर धोने से सिर की भूसी और रूसी को साफ करता है तथा दृष्टि को तीव्र करता और फूली को नष्ट करता है। स्वच्छताकारक, (जाली) अंजनों में डालने से उनकी गुण वृद्धि होती है।

मुहीत में इसके जलाने की विधि इस प्रकार लिखी है—सज्जी ४ रतल एक रतल (= ३३ तो० ९ मा०) पानी में धोलें। फिर शीशे को आग पर यहाँ तक गरम करें कि लाल हो जाय। पुनः इसे उक्त घोल में बुझायें। इसी प्रकार तब तक करें यहाँ तक कि उसके छोटे-छोटे कण हो जायँ।

इसे बारीक करके ४ रत्ती की मात्रा में वृक्करोगों में प्रयुक्त अन्य ओषधियों के साथ वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी को तोड़ने के लिये प्रयोगित करते हैं। (मुहीत)

• यह रूह और दोषों को लतीफ (तना) भी करता है एवं कांति प्रदान करता है; फोड़े-फुंसियों को दूर करता है, नेत्र को शक्ति प्रदान करता है और वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी का छेदन करता है, प्रधानतः जला हुआ। (म० मु०। ख० अ०)।

काँच वा काच हलका, स्थूल्यहर एवं चक्षुष्य है तथा फोड़े-फुंसियों को नष्ट करता है। (ता० श०। मुहीत)।

काँच कु (को) री—संज्ञा स्त्री० [सं०?] दहन। बिछाती। बिछूटी। बरहूँटा।

काँचड़ा—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] कसेरू। (डाइमाँक)। (बं०) कंचट।

काँचड़ा दाम—संज्ञा पुं० [बं०] काँचड़ा। कंचट।

*मुहीत में पतला सफेद पुराना मद्य लिखा है।

काँचन—संज्ञा पुं० [म०=सं० काँचन] दे० 'कचनार'।

काँचली—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका] आवरण। साँप की केंचुली। सर्प निर्मोक्क

काँचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देखो—कासनी।

काँचा—संज्ञा पुं० [हिं०] अपक्व। कच्चा।

काँचाधनियाँ—संज्ञा स्त्री० [बं०] हरी धनिया।

काँचिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०, म०] वनस्पति भेद। किसी के अनुसार यह कचनार है। गुण—स्तन्यजनक, त्रिदोषनाशक तथा अपस्मार (मृगी) में उपयोगी है।

वक्षव्य—संस्कृत में उक्त शब्द का उपयोग हरिद्रा तथा गोरौचन के अर्थ में होता है। और मतान्तर से स्वर्णक्षीरी के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। खजाइनल् अद्विया के अनुसार काँचिनी मराठी भाषा का शब्द है जो कचनार (काञ्चन) वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त है।

काँचिवार—संज्ञा पुं० [का०] कुचिला। कारस्कर।

काँची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) मेखला। (२) गुञ्जा। घुँघची। (३) लपसी। लपसिका।

काँची चेट्ट—संज्ञा पुं० [ते०] } काकमाची क्षुप। काक

काँची पण्डु—संज्ञा पुं० [ते०] } माचीफल। मकोय।

काँचु—संज्ञा पुं० [ते०] वनस्पति विशेष। कल्या।

काँचुरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'काँचली'।

काँचू—संज्ञा पुं० [सं० कचुल] केंचुल।

काँचेली—संज्ञा स्त्री० [पं०] विशाला। बड़ा इन्द्रायण।

काँक्षतिपर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चपोटा। (लु० क०)।

काँक्षीरा—[सं० काँक्षीरा] वनस्पति विशेष।

काँजल—संज्ञा पुं० [सं० कञ्जल] काजल। कारिख।

काँजिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काँजी। अम्लीभूत क्वथित पदार्थ। देखो काँजी।

काँजिक तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तैलयोग विशेष।

निर्माण-विधि—काँजी १६ भाग, तिल तैल ६४ भाग, एकत्र पाचन कर अभ्यङ्ग करने से ज्वरजनित संताप शीघ्र शांत होता है। (भा० म० दाह चि०)।

काँजिकाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० काञ्जिक तैल।

काँजिकाद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदररोग में प्रयुक्त घृत तैल योग। निर्माण-विधि—गोधृत ६४ तो० (१ प्रस्थ), आरनाल काँजी २५६ तोला ग्रहण कर इसमें हींग, सोंठ, कालीमिर्च, चीता, अग्निमन्थ, सेंधा नमक प्रत्येक—१-१ तोला का कल्क कर यथाविधि पाचन करें।

गुण तथा उपयोग—अग्निदीपन, शूल, विबन्ध, उदर रोग, आनाह, आमदोष, कटिग्रह तथा ग्रहणी विकार नाशक है। (भा० म० आम० चि०)।

काँजी—संज्ञा स्त्री० [सं० काञ्जिक] धान्यमण्डादि को मुख बन्द कर जो अभिषव वा सन्धानित होकर अम्ली-भूत हो जाता है, भाषा में उसको 'काँजी' कहते हैं।

पर्याय—(सं०) अभिषुत, अबन्तिसोम, अभिषव, अम्लसारक, काञ्जिक, काञ्जिका, काञ्जी, काञ्जिका, काञ्जीक, कुण्डगोलक, कुञ्जल, कुल्माष, कुल्माषिषुत, गृहाम्ल, चुक्र, उन्नाह, तुषाम्बु, तुषोदक, धातुघ्न, धान्य-योनि, धान्याम्ल, पङ्कवारि, धान्यमूल, भक्त हि, महारस, शुक्त, सिद्धसलिल, सुवीराम्ल, सौवीर, वीर।
(हि०) काँजी; (बं०) काँजि; (म०) काँजी; (फा०) आवकामः; (अ०) मुरी; (यू०) कोलू-गोरस; (सिं०) ओरिया, मूरिया, (अँ०) सावर ग्रुएल Sour-gruel, [water of boiled rice in a state of spontaneous fermentation.]

धान्याम्ल, आरनाल, सौवीर इत्यादि काँजी के कतिपय भेद हैं जिनका वर्णन यथास्थान किया गया है।

निर्माण-विधि—चरक में काँजीनिर्माण का उल्लेख इस प्रकार है—जिन धान्यों की काँजी बनानी अभिप्रेत हो उनको चूर्ण कर १ प्रस्थ (६४ तोला) परिमाण में ग्रहण कर १ आढक (४ सेर) जल में मिश्रित कर किसी मृत्तिका पात्र में स्थापन करें। जब सन्धानित होकर अम्लीभूत (खट्टा) हो जाए, तो ऐसी परिवर्तित अवस्था को संस्कृत में 'काञ्जिक' कहते हैं और यही सर्वत्र पूजित है—

आशु धान्यं क्षोदितञ्च वालमूलन्तु खण्डशः कृतं प्रस्थमितं पात्रजलं तत्राढकम् क्षिपेत्। तावत् सन्धान्यसंरक्षे द्याव-दम्लत्वमागतम्। काञ्जिकं तत्तु विज्ञेयमेतत् सर्वत्र पूजितम्॥

मतान्तर से काँजीनिर्माण की अन्य कतिपय विधियाँ हैं—किसी लोहपात्रादि निर्मित कलछल में सरसों, तिल वा अलसी के तेल में उचित परिमाण में जीरा, लहसुन, हींग डाल कर अग्निताप द्वारा तप्त करें। जब धूमोद्गमन होवे, उस पर मृत्तिकापात्र का मुख रखें कि उसकी गन्ध उक्त स्थापित पात्र से सुवासित हो जाए। पुनः सरसों, लवण, अजवाइन, जीरा, धनियाँ एकत्र यथोचित परिमाण में, जल में पीस कर उक्त पात्र में डाल दें और उसके मुख को स्वच्छ वस्त्र द्वारा ढाँक कर भली-भाँति बाँध दें। पुनः उक्त पात्र को २४ घंटा पर्यन्त धूप में रख दें इस प्रकार से वह शीघ्र अभिषव को प्राप्त होकर खट्टी काँजी बन जाती है; किन्तु शीत काल में विलम्ब से अम्लीभूत होती है। काँजी जितनी पुरानी होती है, अधिक गुणवती होती है।

भारतीय गृहस्थों में काँजी का प्रचार अधिकतम है, काँजी में उड़द के बड़े-बरी भिगा कर प्रायः सेवन किया जाता है।

भावप्रकाश में सन्धानवर्ग में भी इस प्रकार का उल्लेख किया गया है—

साधितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः।

माषादि वटकैर्यत्तु क्रियते तद्गुणाधिकम्॥

विलायती वा यूनानी काँजी को आवकामः कहते हैं। मरुजन में जिसके निर्माण की एक उत्कृष्ट रीति मुरिय शब्द में इस प्रकार लिखी है। उसमें लिखा है कि यह कलदानी चिकित्सकों द्वारा आविष्कृत एक प्राचीन औषधि है। इसके बनाने की एक उत्तम विधि यह है—जौ का आटा और पुदीना लेकर दोनों में पानी मिलाकर धूप में खमीर उठा लें और रोटी बनाकर तनूर में (या तवे पर) पकावें। पुनः सम भाग काञ्ज्युत्पादक द्रव्य वा मादृएआवकामः जिसे फुज्ज कहते हैं और उतना ही नमक तथा उसका चतुर्थांश सौंफ और शीत प्रकृति वालों के लिये थोड़े अजमोद के बीज, दालचीनी और लौंग इत्यादि पीसकर और पानी में सब को तर कर के बीस दिन तक धूप दें और किसी चीज से हिला दिया करें और थोड़ा-सा पानी भी डाल दिया करें। जब काला हो जाय और उठ आवे तब उसे पानी में धो लें। फिर छान कर बोतल में भर कर धूप दें। परंतु प्रतिदिन हिलाते रहा करें। तत्पश्चात् उपयोग में लावें। इसके अनेक भेदोपभेद हैं जिनका विस्तृत वर्णन करावादीन कबीर में आया है। मुहीत के लेखक ने उक्त वर्णन अक्षरशः मरुजन से लिया है, पर उन्होंने आवकामः शब्द के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है।

प्रकृति आदि—

प्रकृति—भारतीय काँजी शीतल एवं स्निग्ध और किंचित् संग्राही है। विलायती तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। किसी-किसी के मत से प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। **अहितकर**—भारतीय दुर्गन्धित जलवायुजनित ज्वरोत्पादक है और विलायती वक्ष, कास तथा अर्श और उन लोगों को जिनको खाज, दाद और कोढ़ का रोग हो, हानिकर है। **निवारण**—भारतीय का कालीमिर्च और नमक तथा विलायती का पिच्छवल वा लवाबदार पदार्थ, मधुर पदार्थ और वसा था बारंबार स्नानागार में प्रवेश करना। **प्रतिनिधि**—एक काँजी दूसरे की प्रतिनिधि है। **ग्रह**—शुक्र। **विशिष्ट कर्म**—पित्त एवं शोणित की उग्रता का शामक। **मन्त्रा**—आवश्यकतानुसार।

नोट—मरुजन तथा नासिरुल् मुआलजीन में और मुहीत में काँजी आमाशय एवं शीतल प्रकृति को हानिकर लिखी है और निवारण गुलकंद आफताबी वा शहद वा वर्द मुरब्बा (सोंठ) वा पिसा हुआ लहसुन मिलाकर पीना। नासिरुल् मुआलजीन में विलायती काँजी की प्रतिनिधि

माहियानः लिखी है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—

भारतीय काँजी—तालीफशरीफी के अनुसार काँजी (काँजी) स्तन्यजनन है तथा यह कफ, वात, पित्त एवं अंग्गलानि, उदरशूल, आध्मान और विवंध को निवारण करती है।

खजाइनुल् अदविया के लेखक इसके उपर्युक्त गुणधर्म लिखने के पश्चात् लिखते हैं—“भावप्रकाश में लिखा है कि यह विवंधहर, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षुधाजनक, लघु एवं पाचन है। इसको शरीर पर लगाने से शरीरगत उष्णता एवं ज्वर जाता रहता है। इसके खाने-पीने से वायु और कफ का नाश होता है। उरद के बड़ों से जो काँजी बनाई जाती है वह अत्यंत गुणकारी, लघु एवं वायुनाशक होती है, क्षुधा उत्पन्न करती है, अतीव पाचक होती है, उदर को मलों से शुद्ध करती है तथा उदरस्थ वायु, उदरशूल (कुलंज), अजीर्ण और आँव इनको दूर करती है। शोथ, उन्माद, कण्डू, कुष्ठ और रक्तपित्त के रोगी को यह असात्म्य होती है तथा पाण्डु, उरःक्षत, शोष, क्लान्ति और ज्वर में इसका सेवन हानिप्रद है।

आयुर्वेद के रस ग्रन्थों में काँजी का उपयोग पादादि धातु उपधातुओं के संस्कार में प्रायः किया जाता है—‘औषधस्यौषधस्यान्ते क्षालयेत्काञ्जिकेन’ (रससारे)। ‘आरनोलचोष्णेन प्रति दोष विषोध्यत्’ (सरत्त प्रदीप)। ‘आरनोलन संपिष्य कुर्यात् पिण्डेन कुल्हडीम्’ (रसेन्द्रचूडामणि)।

मख्जन के अनुसार यह स्वच्छताप्रद (जाली) है एवं शरीर के अवयवों को शक्ति प्रदान करती है और वमन, संताप एवं पित्त और शोणित के प्रकोप तथा तृषा की शामक है। (यह चावलों से बनी काँजी के गुण हैं) जो और गेहूँ की बनी काँजी मनोल्लासकारी एवं शरीर-शक्तियों को बलप्रद है और शारीरिक क्लान्ति को दूर करती है। इसके पीने और लगाने से वालों को शक्ति प्राप्त होती है। परंतु इसका भी अत्यधिक सेवन हानिप्रद होता है।

*काँजिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु।

दाहं ज्वरहरं स्पर्शत्पानाद्वातं कफापहम्॥

लघु वातहरं तत्तु रोचनं पाचनं परम्।

शूलाजीर्णं विबंधामनाशनं वस्ति शोधनम्॥

निषेध

शोष मूर्च्छा श्रमातर्नामदकंडू विशोषिणाम्॥

कुष्ठिनां रक्तपित्तीनां काँजिकं न प्रशस्यते॥

पांडुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोषातुरेषु च।

क्षत क्षीणे तथा श्रान्ते मंद ज्वर निपीडिते॥

एतेषां न हितं प्रोक्तं काँजिकं दोषकारकम्॥

(भा० संधानवर्ग)।

मुहीत में यह अधिक लिखा है—चावल और ज्वार से बनी काँजी कसेली वा विस्वाद एवं किंचित् मधुर तथा शीघ्रपाकी, संग्राही और पित्तज ज्वरनाशक है तथा संताप, मूर्च्छा, क्लान्ति, वमन, तृषा और शय्यामूत्र (सलसुल बौल) को दूर करती है। यह शुक्ल है और विसूचिका में इससे विशेष उपकार होते हुए अनुभव किया गया है।

विलायती काँजी वा मुरिय् मख्जन के मतानुसार सांद्र दोषों से स्रोतोमार्ग-विशोधिनी है तथा कफोत्सर्ग कराने वाली, कोष्ठ को मृदु करनेवाली और द्रवों को शोषण करनेवाली है। यदि चेचक के प्रारंभ के बीच इसे नेत्र में लगाया वा टपकाया करें, तो उसमें चेचक के दाने न निकलें और यदि पड़ गये हों, तो आराम हो जावें। यह अनुभूत है। यदि मुख में इसका गण्डूष धारण कराएँ, तो उपजिह्विकाएँ ग्रंथियों (लौजतैन) और कौए की सूजन मिटे और रसनेन्द्रिय के दोष दूर हों एवं उसे सुगंध एवं स्वाद-ग्रहण की क्षमता प्राप्त हो और मस्तिष्क स्थित श्लेष्मा का शोषण हो। अन्नमार्ग—यह जठराग्न्युद्दीपक, यकृतोत्तेजक और आमाशय तथा आंत्रस्थित द्रवों को शोषण करने वाली है। यह पाचक, विरेचक, क्षुधाजनक एवं अजीर्ण-नाशक है और वसाजनित विकारों को नष्ट करती है तथा सांद्राहार को सूक्ष्म बनाती है। यह प्रकृति को कोमल बनाती, शूल का नाश करती और आमाशयगत कृमियों को नष्ट करती है तथा अर्शजन्य पिच्छिल दोषों और मलों के उत्सर्ग के लिये तथा कूल्हे के दर्द (वज्रुल्लवरिक) एवं गृध्रसी के लिये गुणकारी है। शूल, आन्त्र-क्षत, आन्त्रप्रदाह, कूल्हे का दर्द और गृध्रसी में इसकी वस्ति उपकारी होती है। क्षत और व्रण—दुष्ट दुर्गंधित व्रणों में इसका तरेड़ा गुणकारी है। इसके लिये मछली एवं खारे मांस की बनी मुरिय् अर्थात् काँजी भी लाभकारी होती है। यह सुगंधजनक होती है। कुछ दिन तक कभी-कभी थोड़ी शुद्ध लाख (लुक मग्गुल) के साथ इसे पीने से शरीर की स्थूलता मिटती है और यह परीक्षित है (मुहीत में लाख की जगह नमक लिखा है)। यह श्वानद्रंष्ट्र वा जलसंत्रासरोग में गुणकारी है। वस्तुतः सर्वसाधारण में प्रसिद्ध काँजी (आबकामः) यह है—फोन्न को आबकामः का मादा और जौ या गेहूँ के आटे से तैयार किया जाता है, सिरके में घोल कर धूप में रख देते हैं और उठ आने के उपरांत उपयोग में लाते हैं। इसकी विरेचनी शक्ति गौण और अवरोधोद्धाटनी शक्ति प्रधान है। (मुहीत में लिखा है—आबकामः आंतों को हानिप्रद है। अस्तु, वस्ति में इसका उपयोग नहीं होता)। असफहान के लोग इसको सिरके की जगह दूध में घोल कर प्रस्तुत करते हैं। इसको कोमः कहते हैं। दे० ‘कोमः’।

मुहीत में यह अधिक लिखा है—राज्ञी के कथनानुसार मुरिय अर्थात् विलायती काँजी नमक का काम करती है, सिवा इसके कि वह इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावकारी एवं सूक्ष्म है। यह दस्त लाती, पिच्छल पदार्थों को छाँटती, उत्तम आहार को सूक्ष्मतर बनाती, पिपासा उत्पन्न करती तथा आमाशय और यकृत को उद्दीपन करती है। मुरिय अपेक्षाकृत अधिक तीक्ष्ण मुरिय वा काँजी का नाम है। जब उसमें से थोड़ा नाश्ता के समय पीते हैं, तब उससे पेट के कीड़े नष्ट होते हैं तथा यह आमाशय में सांद्र कफ-संचय को रोकती है और उसका छेदन करती है। अस्तु, उन लोगों के लिये गुणकारी है, जिनके उदर में शूल उत्पन्न हो गया हो और उसमें कृमि पड़ गये हों।....

खजाइनुल् अदविया में यह अधिक है—विलायती काँजी आहार का पाचन करती है, विबन्ध का नाश करती है, खुल कर साफ दस्त लाती है और स्तनों में स्तन्य की वृद्धि करती है। दूध में मिलाने से इसकी पिपासाजनक शक्ति का ह्रास हो जाता है। इसके अत्यधिक सेवन से शोथ उत्पन्न हो जाता है। मवाद में कोथ उत्पन्न होकर ज्वर आने लगता है।

काँट—संज्ञा पुं० [सं० कण्टक] काँटा। शल्यादि।

काँटमोग्रि—संज्ञा स्त्री० [को०] अपामार्ग।

काँटा—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टक] खार, कण्टक। शल्यादि।

काँटा-अशेरियो—संज्ञा पुं० [गु०] कुरण्टक। पियावाँसा।

दे० 'कटसरैया'।

काँटा इन्द्रायन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'किसाउल्हिमार'।

काँटा कचु—संज्ञा पुं० [बं०] कन्द विशेष। (ले० पोथास लैसिया (Pothas Lasia))

काँटा कटचु—संज्ञा पुं० [बं०] कन्द विशेष। (ले० लेसिया हेट्रोफाइला (Lasia Hetrophyla))

काँटाकरी—संज्ञा स्त्री० [बं० = सं० कण्टकारी] भटकटाई। कटेरी।

काँटा करंज—संज्ञा पुं० [बं०] वल्लीकरञ्ज। लता-करञ्ज। दे० 'करञ्ज'।

काँटा कोलिका—संज्ञा स्त्री० [बं०] कोकिलाक्ष। तालमखाना।

काँटा खड़िया—संज्ञा पुं० [को०] मारिष शाक। मरसा।

काँटा गुरका माई—संज्ञा स्त्री० [बं०] कण्टकपाली। दे० 'हैसा'।

काँटा गुड़कावली—संज्ञा स्त्री० [बं०] जंगली मकोय। अम्ल चुकाई। कण्टमाचिका।

काँटा चौरा (ला) ई—संज्ञा स्त्री० [हि०] तण्डुलीय। चौलाई खारदार। अमारेत्थस स्पाईनोसस (Amaranthus spinosus)

काँटा जाती—संज्ञा स्त्री० [बं०] }
काँटा झाँट—संज्ञा पुं० [बं०] } 'कटसरैया'
काँटा झाँटी—संज्ञा स्त्री० [बं०] } सैरेयक।

काँटा धोतरा—संज्ञा पुं० [बं०] कण्टकधतूर। धतूर जिसके फलों में काँटा होता है। मतान्तर से स्वर्णक्षीरी। भेंडभाँड़। सत्यानाशी।

काँटा नटिया—संज्ञा स्त्री० [बं०] चौलाई खारदार। वन तण्डुलीयक। दे० काँटा चौलाई।

काँटा नटे—संज्ञा पुं० [बं०] मारिष भेद। वनतण्डुलीय। खारदार चौलाई।

काँटा पाषाण—संज्ञा पुं० [हि०] पाषाण कण्टक।

काँटा बाँस—संज्ञा पुं० [हि०] वंश विशेष। एक प्रकार का बाँस जिसके फल कटीले होते हैं।

काँटा बेगुन—संज्ञा पुं० [बं०] वृहती। बनभटा। बड़ी कटेरी।

काँटाभरो कौलु—संज्ञा पुं० [गु०] पेठा। कुष्माण्ड। भतुआ।

काँटा मारिस—संज्ञा पुं० [बं०] मारिष। मरसा।

काँटार—संज्ञा पुं० [हि०] कटार। दे० 'विकङ्कत'।

काँटालु इन्द्रायण—संज्ञा पुं० [गु०] कात्रिइन्द्रायण।

काँटालो-इन्द्र वायणु—[गु०] काकादनी। क्षुद्र कण्टफल। (CucumisProphotarum) छोटा इन्द्रायन।

काँटालो ग (दा)म्भो—संज्ञा पुं० [गु०] जंगली चौलाई। तण्डुलीय शाक। चौलाई खारदार।

काँटालो बला—संज्ञा स्त्री० [गु०] नागबला। गँगेरन। दे० 'गुलसकरी'।

काँटावाली बला—संज्ञा स्त्री० [गु०] नागबला। गुल-सकरी। गँगेरन। दे० 'गँगेरन'।

काँटावालोमायाँ—संज्ञा स्त्री० [गु०] मायाफल। माई। माजूफल।

काँटा शेरि (लि) यो—संज्ञा पुं० [गु०] कुरण्टक। दे० 'कटसरैया'।

काँटा सलाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] }
काँटा सेलियो—संज्ञा पुं० [गु०] } कुरण्टक। कटसरैया।

गटुक सरमणी।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—शीतल एवं रुक्ष है। गुणकर्म तथा उपयोग—गर्भस्थापक, ज्वरघ्न तथा कासनाशक और प्रवाहिका में उपयोगी है। इसका क्वाथ बना कर पान करने से कास, जीर्णज्वर, सूतिका ज्वर, प्रवाहिका, मासिकधर्म के पूर्वकालीन गर्भ की विकृति दूर होती है। इसके पत्तियों का स्वरस १ तो० दधि ५ तो० में मिश्रित कर पान करने से वेदना शांत होती है और गर्भ स्थापन होता है। सूतिकाज्वर की यह सर्व प्रधान औषधि है।

पथ्य—लवणरहित दधि, और गेहूँ की रोटी।

सेवनकाल—३ दिन। दे० 'कटसरइया'।

कांटे कवण—संज्ञा पुं० [कों०] मध्वालु। [वं०] मनालु।
(Dioscorea Anticorumn)

कांटे कंगी—संज्ञा स्त्री० [?] पिण्डालु। (डाइमाक iii
पृ० ५५७)

कांटेगुटी—संज्ञा स्त्री० [म०] ककोर। कठवेर। काण्ट बदर।

कांटे गोखरू—संज्ञा पुं० [म०] क्षुद्र गोक्षुर। छोटा गोखरू।

कांटे चुबुक—संज्ञा पुं० [म०] उष्ट्रकण्टक। उँटकटेरा।

कांटे चेभुरणी—संज्ञा स्त्री० [कों०] तेन। तिन्दुक।

कांटे-धोत्रा—संज्ञा पुं० [म०] (१) भँडभाँड। सत्यानाशी।
स्वर्ण क्षीरी। (२) धतूरा जिसके फलों पर कांटे होते हैं।
(डाइमाक iii पृ० ५५५)।

कांटेना—संज्ञा पुं० [हि०] वनस्पति भेद।

कांटेनिवडुङ्ग—संज्ञा पुं० [म०] वज्र। थूहर। सेंहुड़।

कांटे पुवाण—संज्ञा पुं० [म०] चक्रमर्द भेद।

कांटे बेर—संज्ञा स्त्री० [हि०] झाड़ बेर। छोटी जंगली
बेर। क्षुद्र व री।

कांटेमाठ—संज्ञा पुं० [द०, म०, बम्ब०] जंगली खारदार
चौलाई। (Amaranthus-spinosus)

कांटेमौरी—संज्ञा स्त्री० [म०, कों०] कृष्णसारिवा।
श्यामलता (इ० मे० मे०)। दे० 'सारिवा'।

कांटेरीन्द्रायण—संज्ञा पुं० [गु०] } कात्रि इन्द्रायण।

कांटेरीन्द्रावणी—संज्ञा स्त्री० [म०] } घघरवेल। देवदाली।

एकबोलिअम् ईलाटेरिअम् (Ecbolium-Elatarium)

कांटेरीगणी—संज्ञा स्त्री० [म०] कण्टकारी। भुई रोगणी।
भटकटाई। (डाइमाक iii)

कांटेसामर—संज्ञा पुं० [म०] कण्टकशाल्मली। सेमल
जिसके तना तथा शाखों में कांटे होते हैं।

कांटे हसन—संज्ञा पुं० [म०] पर्याय— (मिर्जापुर)
खाझा। (हि०) खरका, लमकना। (म०) हसानी।

• पत्थरफोड़ा (Badolia Retusa)

कांटेनुदन्त—संज्ञा पुं० [द०] तण्डुलीय। चौलाई।

कांटों का खतयान—संज्ञा पुं० [हि०, द०, गु०] कण्टक
शाल्मली। रक्त शाल्मली। लाल फूल का सेमर।

कांटोका सेमल—संज्ञा पुं० [द०] कण्टक शाल्मली।

कांटोनिएस्टर माइक्रोफाइल्ला— (Cotoneaster-
microphylla) शीरखित का एक भेद। दवास।

कांटो सरियो—संज्ञा पुं० [गु०] कांटा सलाई। कुरण्टक।
दे० कटसरैया।

कांटो सेम्बल—संज्ञा पुं० [गु०, हि०] कण्टकशाल्मली।
रक्त शाल्मली। लाल फूल का सेमल।

कांटचा-निवली—संज्ञा स्त्री० [गु०, म०] नागफणी।
नागफनी। चप्पल सेंडें।

कांठाल—संज्ञा पुं० [हि०] वनस्पति विशेष।

कांड कटुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कांडल—संज्ञा पुं० [हि०] हरित सर्प शाक। दे० 'सरसों'।

कांडल वर्ग—संज्ञा पुं० काण्ड द्रव्यों का एक वर्ग।

कांडे (ढे) री—संज्ञा स्त्री० [सि०] वनस्पति भेद।

कांडवेल—संज्ञा स्त्री० [म०] अस्थिसंहारी। हड़जोर।

कांडोल—संज्ञा पुं० [म०] कुल्ली। कुलु। गुलु।

कांतन—संज्ञा पुं० [मल०] जंगली प्याज। वनअपलाण्डु।

कांदा। कांद। दे० कांदा।

कांद—संज्ञा पुं० [गु०] वनपलाण्डु।

कांदर—संज्ञा पुं० [हि०] उशक। (लु० क०)।

कांदा—संज्ञा पुं० [हि०] वनपलाण्डु। दे० प्याज के
अन्तर्गत।

कांदा— संज्ञा पुं० [हि० उर्दू]

जहाँ तक ज्ञात होता है यूनानी निघंटुकारों ने कांदा वा
देशी वनपलाण्डु का वर्णन अपने निघंटु-ग्रंथों में नहीं किया
है। भारतीय औषधियों के संबंध में फारसी भाषा में
लिखे तालीफशरीफी नामक बहुत प्राचीन निघंटुग्रंथ में
'कांदा' शब्द के अन्तर्गत लिखा है कि यह उन्सुल का नाम
है और कभी इसके पूर्व कोली शब्द जोड़कर इसे कोली-
कांदा कहते हैं। चूंकि यह प्याज जोलाहों के काम आता है।
अस्तु, इसे उक्त संज्ञा से अभिहित किया गया। यह प्याज
की तरह किंतु उससे* तिगुना-चौगुना बड़ा होता है और
जंगली होता है। इसके गुणधर्म उन्सुल शब्द में (यूनानी
ग्रंथों) में वर्णित हैं। प्लेफेयर ने इसके अपने आंग्ल
अनुवाद में कांदागोली (कांदाकोली) शब्द में उक्त
वर्णन दिया है। मरुजनुल्अदविया में कांदा का पृथकोल्लेख
नहीं हुआ है। उसमें इस्कील वा विलायती वनपलाण्डु
के पर्यायों में कांडा वा कंदरी शब्द पठित हुए हैं।
मुफरदात नासिरी में बस्लुल्फार शब्द के अन्तर्गत कंदरी
एवं जलकंदरी शब्द पठित हुए हैं। मुहीत में कांदा शब्द में
लिखा है कि हिंदी में प्याज का नाम है और जंगली कांदा
को हिंदी में कोलीकांदा तथा कंदा कहते हैं और यह
उन्सुल का नाम है। उक्त शब्द के अंतर्गत उसमें प्याज के
ही संस्कृत पर्याय एवं गुणधर्म आदि दिये हैं। पुनः उन्सुल
के पर्यायों में भी कंदा और कोलीकांदा शब्द दे दिये हैं।
उसका अर्थ इस प्रकार लिखे हैं (मरुजनुल और मुहीत तथा
खजाइन में भी) —यह प्याज की तरह एक जड़ है जो
उससे बड़ा वा छोटा और जंगली एवं पहाड़ी होता है
और अधिक से अधिक अर्ध रतल (१६ तो० १०॥ मा०)
तक के वजन का वा उससे भी अधिक होता है। प्रायः
प्रदेशों में होता है। बंगाल के जोलाहे प्रायः इसका लबाब

*भारतीय कांदा साधारण प्याज से बड़ा नहीं होता
और प्रायः गोल होता है।

सूत को कड़ा और मजबूत करने के लिये कपड़ा बुनने के पूर्व ताने-बाने पर मलते हैं। इसलिये हिंदी में इसे* कोलीकाँदा कहते हैं। क्योंकि कोली = जोलाहा + काँदा = प्याज अर्थात् जोलाहों का प्याज है। उसमें इसके एक भेद को विपैला और सांघातिक लिखा है। खजाइनुल अदविया में काँदा का पृथकोल्लेख न कर प्याजदशी वा प्याजमूश अर्थात् विलायती काँदा के पर्यायों में ही देशी काँदा वाचक कोला, काँदा और जलकंदरी प्रभृति हिंदी पर्याय लिख दिये हैं। इसी प्रकार कतिपय अन्य अर्वाचीन यूनानी निघंटुओं में काँदा शब्द के अन्तर्गत यद्यपि वर्णन तो काँदा का ही किया है, तथापि पर्याय और गुणधर्म प्रभृति विलायती काँदे का ही लिखा है। हमारे आशय को स्पष्ट करने के लिये, वस इतने प्रमाण ही पर्याप्त हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों के देने से हमारा अभिप्राय यह दिखलाने का है कि भारतस्थित यूनानी चिकित्सकों को सर्वप्रथम आयुर्वेद में काँदा का वर्णन नहीं मिला। इसलिये उन्होंने अपने निघंटुग्रंथों में इसके गुणधर्म आदि का उल्लेख नहीं किया। परंतु उन्हीं के दिये कोलीकाँदा प्रभृति शब्दों से यह सिद्ध होता है कि आयुर्वेद में इसका वर्णन विद्यमान है। अस्तु, राजनिघंटुकार लिखते हैं—

कोलकन्दः कृमिघ्नश्च पञ्जलो वस्त्रपञ्जलः।

पुटालुः सुपुटश्चैव पुटकन्दश्च सप्तधा॥

कोलकन्दः कटुश्चोष्णः कृमिदोषविनाशनः।

वान्ति विच्छिदि शमनो विषदोष निवारणः॥

(रा० नि० मूलकादि व०)

कितना स्पष्ट वर्णन है जिसे संदेह का कोई स्थान नहीं रह जाता है। काँदा की उक्त पूर्ण विवेचना के लिये लेखक द्वारा लिखित “आयुर्वेदीय निघंटु” अवलोकन करें।

द्वितीय यह कि उन्होंने उक्त दोनों द्रव्यों अर्थात् काँदा और इस्कील को एक ही वस्तु स्वीकृत की है। अस्तु, अपने ग्रंथों में उन्होंने दोनों को परस्पर एक दूसरे से अभिन्न मानकर वर्णन किया है। परंतु यह ठीक नहीं है। यद्यपि उक्त दोनों ही स्वरूप एवं गुणधर्म में बहुतांश में समान हैं, तथापि वे विभिन्न जलवायु एवं देशोद्भूत एक ही वर्ग की दो भिन्न जातियाँ हैं अथवा दो अलग-अलग देशोत्पन्न उद्भिद हैं। इसी कारण अर्वाचीन वनस्पति विशारदों ने इनका पृथक्-पृथक् नामकरण किया है। अस्तु, इनमें

*खजाइनुलअदविया में काँदा को मराठी भाषा का शब्द और उसका अर्थ प्याज लिखा है। काँदा को प्राकृत प्याज और संस्कृत में ‘देवकुम्भ’ का नाम लिखा है। कोलीकाँदा को हिंदी और उसका अर्थ वनपलांडु (प्याज दशी) लिखा है। मराठी में इसका उच्चारण ‘कोलकाँदा’ और मारवाड़ी में ‘कोलीकाँदू’ लिखा है।

परस्पर भेद प्रकट करने के लिये इनका पृथक् नाम रखना ही समीचीन प्रतीत होता है। इसलिये स्वदेशोत्पन्न वनपलाण्डु को काँदा तथा विदेशोत्पन्न काँदा को विलायती काँदा कहना श्रेयस्कर जान पड़ता है। उनको तथा इनके भेदोपभेदों एवं उपजातियों को पृथक् समझने के लिये इनका वानस्पतिक वर्णनादि अवलोकन करें।

जैसा कि मैंने ऊपर दिखलाया है कि यूनानी-निघंटु-रचयिताओं को आयुर्वेद में काँदा के उल्लेख का पता न होने के कारण, उन्होंने स्वरचित निघंटु-ग्रंथों में वन-पलाण्डु का गुणधर्म नहीं लिखा है। अस्तु, हम भी उनके दिये हुए वर्णन मात्र को देकर ही उक्त विषय को यहीं समाप्त करते हैं। इसके आगे प्रकरणवश विलायती काँदा वा इसकील जिसका विस्तृत विवरण प्रायः यूनानी एवं एल्लोपैथीय निघंटुओं में प्राप्त होता है, दिया जाता है।

विलायती काँदा वा इस्कील

पर्या०—विलायती काँदा (हि०)। विदेशीय वनपलाण्डु, विदेशीय कोलकन्दः—(सं०)। इस्कील, इस्कीला (मुअ०), उन्सुल, उन्सुलान, वसलुल् उन्सल, वसलुल्फार, वसलुल्वर, वसलुल् हय्यः, वसलुल् हनावल—(अ०)। स्क्वल्ला—यू०। प्याज दशी, प्याज मूश, प्याज उन्सुल—(फा०)। स्क्वल Squill (अं०)। अर्जिनिया सिल्ला Urginea Scilla (लै०)।

अर्थ एवं व्युत्पत्ति आदि—अंगरेजी स्क्वल (Squill) शब्द यूनानी स्क्वल्ला से जिसका अर्थ शुष्क करना वा क्लेशित करना है, व्युत्पन्न है। क्योंकि इसकी उत्कृष्ट जाति अति उग्र प्रभावी होती है। इसलिये इसको उक्त संज्ञा द्वारा अभिहित किया गया। पुनः उक्त स्क्वल वा स्क्वल्ला शब्द का उच्चारण इसकील किया गया जिससे इसकील अरबी बनाया गया। प्राचीन आरव्य भाष्यकारों के मत से इसकील अरबी इसकीत शब्द से जिसका अर्थ इहमिल हाजा अर्थात् इसको उठा है व्युत्पन्न है। परंतु उक्त पद बहुत ही अप्रचलित और अप्रसिद्ध है। इस्कील को इस्कील भी लिखा है। मरुजन में इसकील को यूनानी भाषा का शब्द लिखा है और लिखा है कि इसे यूनानी में इस्काल और इसकीला भी कहते हैं। कोई-कोई अतीतून कहते हैं। मुहीत में लिखा है कि साहब सैदनः के कथनानुसार इसे सिरियानी में इस्कील, इस्काल और इस्कीला और रूमी में इक्लीतून इक्लीतीकूस कहते हैं। उन्सुल को मुहीत में अन्सल लिखा है जो अशुद्ध है। मुन्तहयुल् अरब और मुन्तखिवुल् लुगात दोनों में उन्सुल उल्लिखित है। कोई-कोई अन्सुल वा उन्सुल वा उनुसुल भी लिखते हैं। इसका अर्थ वनपलाण्डु और बहुवचन अनासुल है। मुहीत और खजाइन तथा मरुजनुल् अदविया डाक्टरी में भी इसके अरबी पर्यायों में वसलुल्क शब्द समाविष्ट किया गया

है। यद्यपि उन्हीं पूर्वोक्त ग्रंथद्वय में इसे भिन्न मानकर पृथक् वर्णन किया गया है। अस्तु, हमने भी पर्यायों की सूची में उक्त शब्द को स्थान नहीं दिया। खजाइनुल् अदविया में अरबी के अंतिम पाँचों शब्दों को उक्त सूची में रखते हुए भी, सातवें खंड में उनका अर्थ नरगिस की जड़ लिख दिया है जिससे उन्हीं के कथन का विरोधाभास प्रतीत होता है। उक्त सभी ग्रंथों में इसकी जो हिंदी संज्ञाएँ दी गई हैं, वे काँदा की हैं, न कि इसकी। इसके लिये काँदा देखें।

क्योंकि यह समुद्र-तटों विशेषतः रूमसागर और ओक्रियानूस सागर के तटों पर अधिक उत्पन्न होता है, इसलिये इसकी एक प्राचीन वैज्ञानिक संज्ञा स्क्विल्ला मैरिटीमिया (*Squilla Maritima* or *Urginea Maritima*) अर्थात् सी ऑनियन (*Sea Onion*) है, जिसका अरबी पर्याय वसलुलुउन्सुल है। अस्तु, मरूजनुल् अदविया के लेखक ने वसलुलुवहर वा प्याज बहरी ऐसा नया नामकरण किया है। ये सब समानार्थी शब्द हैं जिनका अर्थ समुद्रतटजात पलाण्डु वा समुंदर का प्याज है। क्योंकि यह समुद्र-कुलों से दूर जंगलों में भी उत्पन्न होती है। इसलिये इसे अरबी में वसलुलुवर और फ़ारसी में प्याजदश्ती जिसका अर्थ वनपलाण्डु है, कहते हैं।

अरबी वसलुलुफ़ार और फ़ारसी प्याजमूश का अर्थ चूहाप्याज है। क्योंकि यह चूहे के लिये घातक है। अस्तु, इसकी उक्त संज्ञा भी अन्वर्थक है। पर्याय—सूचीगत संज्ञाएँ वस्तुतः इसकी जड़ की हैं। पौधा भी उन्हीं संज्ञाओं द्वारा प्रसिद्ध है।

मरूजन, मुफरदात नासिरी, मुहीत और खजाइन में क्रमशः इस्कील, वसलुलुफ़ार, उन्सुल एवं प्याज दश्ती वा प्याज मूश संज्ञाओं के अंतर्गत इसका वर्णन आया है।

पलाण्डु कुल

(Family Liliaceae)

उत्पत्तिस्थान—भूमध्यसागरीय समुद्रतट वा रूमसागर के तट। इसीलिये इसे प्याज बहरी कहते हैं। भूमध्यसागर तटवर्ती देशों से इसकी जड़ और उससे बनें योगों का प्रचुर मात्रा में भारतवर्ष में आयात होता है।

वर्णन—अमरूद की आकृति की प्याज की तरह एक जड़ है जो छोटी, बड़ी, जंगली और पहाड़ी नाना प्रकार की होती है। यह अधिक से अधिक अर्ध रतल (मुहीत के अनुसार) वा इससे भी अधिक (मरूजन के अनुसार)

* (१) भारतीय काँदा साधारण प्याज से बड़ा नहीं होता और अपेक्षाकृत गोल तथा तीक्ष्ण, कटु और उत्क्लेश-कारक स्वादयुक्त होता है।

वजन की और प्रायः स्थलों^३ में बहुतायत से होती है। बंगाल के जोलाहे (कोली) रूई के सूत के ताने-बाने में उसे कठोर एवं मजबूत करने के लिये इसका लवाव लगाते हैं। इसके पत्र सोलन, सोलन सफेद (जंबक), नरगिस वा प्याज वा गंदना के पत्र की तरह, किन्तु उनसे दीर्घतर एवं अधिक चौड़े होते हैं। इसकी प्याज की जड़ से किंचित् दीर्घ एक पुष्पदंड निकलता है। खजाइनुल् अदविया के अनुसार यह पौन गज वा एक गज ऊँचा होता है और पत्र निकलने से पूर्व निकलता है। इसके बाद पत्ते निकलते हैं जो साधारण प्याज के पत्तों की तरह परंतु चौड़ाई में किंचित् कम होते हैं) जो छिद्ररहित अर्थात् ठोस पीताभ हरित वर्ण का होता है। पुष्पदंड के सिरे पर सफेद और लंबा फूल लगता है। फूल का मध्य भाग सफेद होता है। प्रत्येक फूल में पाँच पंखड़ियाँ होती हैं जिनके मध्य लंबाई के रख रक्त वर्ण की रेखाएँ होती हैं। (खजाइन के अनुसार पुष्पा के खिलने पर भी पंखड़ियाँ पृथक् नहीं होतीं और स्वरूप मोगरे के फूल की सी होती हैं)। फूल के ठीक मध्य में पाँच से सात तक लाल रंग के तार (नरकेशर) होते हैं जिनके सिरे पर किंचित् चौड़ी हुलाली शकल की पीले रंग की एक चीज़ (पराग कोष) होती है जो सूखने पर काली पड़ जाती है। फूल में कुछ नीलोफर के फूल की सी सुगंध आती है। किसी-किसी का फूल कृष्णाभ श्वेत भी होता है। बीज प्याज के बीज की तरह पर उससे किंचित् बड़ा होता है। उत्तम जड़ अमरूद वा नासपाती की आकृति की उज्ज्वल श्वेताभ पीत वर्ण की (आज वर्णवत्—मुहीत) होती है। यह तीक्ष्णता एवं कड़ुआहट लिये मधुर स्वादयुक्त मध्यमा-कार की वा क्षुद्र होती है। (मरूजन और मुहीत तथा खजाइन)।

मुहीत में लिखा है कि इसकी एक किस्म सांघातिक विप है। किसी-किसी का यह अनुमान है कि वह बलबूस है।

(२) यद्यपि विदेशीय वनपलाण्डु की ही जाति का और समान गुणधर्म रखनेवाला काँदा और उसकी अनेक जाति-उपजातियाँ एवं उससे भिन्न जातीय, पर आकृति में समान बिसकंदरा प्रभृति की तरह अनेक पौधे प्रचुरता से भारतवर्ष में होते हैं, जिससे ऐसा भ्रम होना संभव है, तथापि बिलायती काँदा यहाँ की पैदावार नहीं है। ऐन्सली कहते हैं—

“The true squill, or squilla of the Greeks, has been said to grow in Ceylon; though Dr. White of Bombay, was of opinion, that this was not the case; but that the amaryllis zeylanica had been mistaken for the scilla maritima.”

किंतु वह भ्रमात्मक है जिसकी विवेचना के लिए 'बलबूस' देखें।

मुहीत के लेखक ने स्वयं निरीक्षण कर लिखा है कि इसकी जंगली किस्म जो पानी के किनारे पर उगती है वह आकार में बड़ा और कम तीक्ष्ण होता है। किंतु वही पहाड़ी छोटा और तीक्ष्ण होता है।

खजाइनल अदविया में लिखा है कि उज्ज्वल ग्रंथि पलाण्डु के आकार की और दो प्रकार की होती है। एक परतदार प्याजवत् होती है जिसके बाहर के परत पतले और प्याजी सुखं वा सफ़ेद और भीतरी मोटे एवं श्वेत होते हैं। यह खाद्यौषध में प्रयुक्त होती है। दूसरी में परत नहीं होते, बल्कि बिल्कुल भीतर गूदा होता है। यह विपैली होती है। केवल बाह्य प्रयोग में आती है। दोनों किस्में रसीली होती हैं। दूसरी किस्म का स्वाद अप्रिय कटु होता है। उत्तम वह है, जो स्याहीमायल पीतवर्ण एवं हाथी-दाँत के रंग की उज्ज्वल श्वेत और अमरूद की आकृति की हो और उसका स्वाद तीक्ष्ण और किंचित् कटु हो। जो जंगली प्याज समग्र भूमि में अकेला एक पौधा जगता है, वह घातक विष है। इसकी शुद्धि करने की रीति यह है कि डंठल को उसमें से खींच लें। फिर ठीकरी को आग पर लाल करके उस जगह दाग दें। किंतु अधिक न जलाएँ कि नष्ट हो जाय। फिर उसे औषध के काम में लावें।

इतिहास—यह एक अति प्राचीन औषध है। अस्तु यूनानी देशीय हकीम फीसागोरस ने इसके गुणधर्म के संबंध में एक ग्रंथ की रचना की और वनपलाण्डु-शुक्त (विलायती काँदा का सिरका) उसी के आविष्कारों में से है। यूनानी चिकित्सक विदेशीय वनपलाण्डु एवं सिरका और शहद से बने एक प्रकार के सिकंजवीन का उसी प्रकार व्यवहार करते थे, जिस प्रकार आज भी पाश्चात्य चिकित्सा में इसका व्यवहार होता है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसका उपयोग बुरात के समय से ही हो रहा है। वह इसका बहिराभ्यन्तरिक उभयविध प्रयोग करता था। दीसकूरीदूस ने भी स्क्वील (इसकील) नाम से इसका उल्लेख किया है। अतीतकालीन यूनानी चिकित्सक अंगघात आदि रोगों में तथा श्लेष्मानिस्सारक, मूत्रल, अवरोधोद्घाटक, और पाचन स्वरूप बहुशः रोगों विशेषतया श्वास, जलोदर, आमवात, अश्मरि, कुष्ठ और त्वग् रोग इत्यादि में इसका उपयोग करते थे। यह आर्तव-प्रवर्तक भी ख्याल किया जाता था। मिश्रनिवासी भी इससे परिचित थे। अरबी चिकित्सकों ने इसके गुणधर्म-वर्णन में प्रायः यूनानी चिकित्सकों का ही अनुसरण किया है। भारतीय मुसलमान लेखकों ने गुणधर्म के विचार से देशी काँदा को विदेशीय काँदे के समान स्वीकार किया है।

भारतस्थित यूरोपीय चिकित्सकों ने देशी काँदा के संबंध में विभिन्न मत प्रगट किये हैं। पर इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि नवीन छोटी और ताजी सुखाई हुई जड़ काफी गुणकारी होती है और यह विलायती काँदा की जगह काम में ली जा सकती है। वि० दे० "काँदा"।

उक्त औषधि का उल्लेख एल्लोपैथीय मेटिरिया मेडिका में सिल्ला (Scilla) नाम से हुआ है और पाश्चात्य चिकित्सानुयायी इसका विविध प्रकार से प्रचुर उपयोग करते हैं। विस्तार के लिये एल्लोपैथीय निघंटु अवलोकन करें। यहाँ केवल यूनानी ग्रंथोक्त वर्णन ही दिया गया है।

प्रयोगांश और परिचय—यह उन्मुल (Urginea Scilla) की ग्रंथिल जड़ है जिसके ऊपर के परत उतार कर और काट कर सुखा लेते हैं। ये भीतरी परत के कतरे हुए फाँके हैं जो किसी प्रकार बक्राकार, एक-दो इंच लंबी, अर्ध-स्वच्छ, पीताभ श्वेत वर्ण या गुलाबी होती हैं। ये निर्गंध और कड़ुई होती है। सूखी होने पर सहज में चूर्ण हो सकती हैं। किंतु गीली होने पर चूर्ण नहीं हो सकतीं। बीज और पत्र।

प्रकृति आदि—

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष। मतांतर से तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। बूअलीसीना ने द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष लिखा है। इनमें से पूर्व का कथन सत्य है। इसमें तीक्ष्ण एवं उष्ण अंश अधिक है और रुक्षता इसलिये कम है कि इसमें रतूवत फुजलियः (लभभूत द्रव) बड़ी हुई है और यह उसके आग्नेयांशजन्य रुक्षता को जो उष्णता का कारण है, साम्यावस्था पर लाती है। इसलिये उष्णता की अपेक्षा रुक्षता कारक होना आवश्यक है। अहितकर एवं निवारण—जंगली प्याज आमाशयिक द्वार में प्रदाह उत्पन्न करता है। अस्तु इसके भक्षणोपरांत दूध पीने से उसका शमन होता है। उष्ण प्रकृति को हानिकर है एवं व्याकुलता और शिरोशूल उत्पन्न करती है। सिर में चक्कर आने लगता है। उक्त दोषों का प्रतिकार श्वेत शर्करा के बने सिकंजवीन से हो जाता है। चीनी, मिश्री, दूध, मेवों के रस और उनके रुब भी इसके निवारण हैं। यह गुदाशय को हानिप्रद है और उसका निवारण मटर का आटा है। इसके अधिक सेवन से अथवा इसके खराब किस्म के खाने से पेट में मरोड़ और पेचिश पैदा हो जाती है। अंततः यकृत और आँतों के मार्ग में क्षत हो जाता है। इसका निवारण तप्त लौह से बुझाया हुआ दूध है। अंडे की जर्दी भी उपकारी होती है। प्रतिनिधि—सम भाग किर्दमाना या उतना ही वा तिगुना बच एवं उतना ही हमामा, समभाग बलबूस वा उस्कूदियून (जंगली लहसुन) वा लूफ़ वा कबर की जड़। ग्रह—(प्रकृति विचारानुसार)

ग्रह—मंगल। मात्रा—४॥ मा० से ७ मा० तक। डाक्टर दो ग्रेन से १० ग्रेन उपयोग करते हैं। अधिक मात्रा में इससे वमन और रचन आते हैं। तीव्र पेचिश का रोग हो जाता है, मूत्र में जलन होती है और मुश्किल से पेशाव उतरता है। आमाशय और अन्न में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। मखन मुफरदात में इसकी १ तोले की मात्रा घातक लिखी है। परंतु डाक्टरों के यहाँ १॥ मा० (२४ ग्रेन) घातक समझा जाता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—प्याज में दहन और क्षतोत्पादन ये दो धर्म पाये जाते हैं। क्योंकि यह भी एक प्रकार का प्याज है। अस्तु, इसके रस में भी उक्त धर्मद्वय विद्यमान होते हैं। यह सूजन और मादे को विलीन करता है। रक्त एवं मादे को शरीर के भीतर से त्वचा की ओर खींच लेता है। उसके उक्त कार्य में तदन्तर्भूत ऊष्मा उसकी सहायता करती है। यह सांद्रीभूत कैमूसां को तरलीभूत करता है और प्रदाहकारी मलों का उत्सर्ग करता है। कारण यह है कि इसमें उष्णता अधिक है जो तरलीभूत मादे को विलीन कर देती है। फलतः उसके प्रदग्धांश मात्र अवशिष्ट रह जाते हैं। जितने द्रव को वह खींचता है, वह दूषित हो जाता है। इसलिये जहाँ-जहाँ वह पहुँचता है, वहाँ क्षत उत्पन्न हो जाता है। विलायती काँदा में उष्णता भी इतनी है कि पदार्थस्थित पार्थिवांश पिघल जाता है और जलीयांश वह जाते हैं। अस्तु, इससे तरल भाव उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि इसमें अत्यधिक उष्णता एवं तीक्ष्णता है, इसलिये यह अंगों में भली भाँति प्रविष्ट हो जाता है और पिच्छल एवं चपदार द्रव्यों के सूक्ष्मांशों को पृथकीभूत कर देता है। सुतरां यह मादे को काटता भी है। इसमें जितनी मवाद काटने की शक्ति विद्यमान है, उतनी उष्णताजनन की नहीं है। भून वा उबाल लेने से इसकी तीक्ष्णता जाती रहती है। बिना भूने वा उबाले इसका उपयोग वर्जित है। बिना इसकी तीक्ष्णता दूर किये इसका भक्षण निषिद्ध है। इसके भूने की साधारण प्रचलित विधि यह है कि इसके ऊपर मिट्टी वा गूँधे हुए आटे का लेप करके इसे कोष्ण तनूर वा गरम भूभल के भीतर रखें, यहाँ तक कि पक जाय। तदुपरांत इसका गूदा खिलावें। इससे इसकी तीक्ष्णता जाती रहती है। गीलानी ने इसकी तीक्ष्णता निवारण की एक उत्कृष्ट विधि इस प्रकार बताई है—इसका रस दो तोला तीन माशा छः रत्ती (एक औकिया) लेकर २८ तो० ४॥ मा० (१ रतल) मधु में मिला कर क्वथित करें यहाँ तक कि गाढ़ा हो जाय। इसमें से रात्रि को सवादो माशे से साढ़े चार माशे तक चटाया करें। इससे सांद्र एवं पिच्छल दोष छँट कर निकल जायेंगे। सुतरां प्रायः शिर के रोग, यथा लीसुर्गुस (कफज सरशाम), मृगी, मालीखोलिया (मद) अर्द्धविभेदक,

शीतजन्य शिरोशूल, (सुवात), शिरोघूर्णन और तमस (दुवार व सदर), वेपथु, अंगसाद, अर्दित, पक्षाघात और विस्मृति इत्यादि एवं श्वासकृच्छ, जीर्णकास, प्लीहा-काठिन्य, जलोदर और कामला—इन रोगों में विलायती काँदा बहुत उपकारी है। नेत्र की ज्योति को तीव्र करता और शक्ति प्रदान करता है तथा नज़ले के पानी को आँख में उतरने से रोकता है। कर्णशूल, शुष्क कास (खू), रक्तवमन और वक्ष की कर्कशता को लाभ पहुँचाता तथा कंठ और आमाशय को शक्ति प्रदान करता है। यह पाचन की शक्ति बढ़ाता है। यदि आमाशय के द्वार पर अन्न रुक जाता हो, तो इसके उपयोग से उक्त विकार मिट जाता है। यह आन्त्रोद्वेष्टन (मगस), संधिशूल और गृध्रसी में उपकारी है तथा वस्त्यश्मरि का छेदन करता है। यह मूत्रकृच्छ में उपकारी है तथा आर्तवप्रवर्त्तक और गर्भशातक है। आमाशय से दूषित द्रवों को उत्सर्गित करता है। यह मूत्रप्रवर्त्तक है। इससे कामला और वातजशूल का नाश होता है। इसको भून कर छठा हिस्सा नमक और थोड़ा सा घी मिला कर पौने सात माशे नाश्ते की हालत में खा लेने से खूब विरेचन होकर उक्त व्याधियों में उपकार होता है।

हकीम उलवी खाँ के शिष्य मौलवी अब्दुल्ला साहब की अर्श की चिकित्सा-विधि यह थी कि नवीन पोथे के उखाड़ने वा तोड़ने से जो दूध वा रस उसमें से निकलता, उसे बूँद-बूँद लेकर अर्शाकुरों पर मलवाते थे। इससे थोड़े समय में ही वे बिलकुल जाते रहते थे। यह शीतल प्रकृति-वालों को अतिशय गुणकारी है।

विलायती काँदा और उसका चतुर्थांश बूरए अरमनी—दोनों को मोटे कपड़े में बाँधकर इन्द्रलुप्त (दाउस्सअलब) के स्थान को इतना रगड़ें कि रक्त निकल आवे। इससे एक ही बार में लाभ होगा और बाल उग आयेंगे। यदि पुनः इसके उपयोग की आवश्यकता प्रतीत हो, तो घाव अच्छा हो जाने के उपरांत फिर तथोक्त विधि से इसे काम में लावें। गीलानी ने अपने भाष्य में बूरए अरमनी की जगह नतरून लिखा है।

शेख ने इन्द्रलुप्त आदि श्मश्रुकेशघ्न रोगविशेषों (दाउस्सअलब और दाउल्हय्यः) की यह चिकित्सा बताई है कि शहद में पीसकर इसे उक्त स्थल पर प्रलेप करना चाहिए। इससे बालोत्पादन-विरोधी मादा विलीन हो जाता है। केवल अकेला इसे ही काट कर मर्दन करने से भी उक्त लाभ होता है। इसको भून कर दस-ग्यारह रत्ती की मात्रा में मध्वम्बु (माउल्अस्ल) के साथ खाते रहने से कुष्ठ-रोग का नाश होता है। इसे सिरका में पीसकर स्नानागार के भीतर उस पर लगाने से असाध्य व्यंग (बहक) का नाश होता है। सरदी से यदि हाथ-पैर फट

जायँ, तो उन पर इसे लगाने से और अशक्तियों पर इसके मर्दन से उपकार होता है। शेख बू अलीसीना के कथनानुसार इसे नीहार मुख खाने से नेत्र की ज्योति तीव्र होती है। इसको क्वथित कर कान में पानी टपकाने से ऊँचा सुनने का कान का रोग आराम होता है। इससे निर्मित तैल से भी उक्त लाभ होता है। प्रथम शहद को गरम कर के झाग उतारें। फिर इसको पीस कर उसमें मिलायें। इसमें से ४ मा० ३ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से स्वरभंग वा आवाज पड़ना, श्वास (रबू), कृच्छ्रश्वास, जीर्ण कास और वक्षगत कर्कशता में उपकार होता है। इसके पत्तों का रस द्विगुण शहद में चाशनी कर सेवन करने से भी श्वास वा कृच्छ्रश्वास (रबू व बुहर) में उपकार होता है। (मौलाना समरकंदी ने बुहर, रबू और जीकुन्नफस को समानार्थी शब्द स्वीकार किया है। परंतु आचार्य शीराजी के मतानुसार उनमें यह भेद है कि रबू का मादा फुफुस की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वायु प्रणालिकाओं में स्थित होता है और बुहर का धमनियों में)।

विलायती काँदा ३॥ मा० की मात्रा में सेवन करने से फुफुसगत मुद्दा का निवारण होता है। दो अंडों की जर्दी उसमें रख कर और भून कर नाश्ते की हालत में खा लेने से विरेचन द्वारा अपरिपक्व एवं पिच्छिल मल का उत्सर्ग होता है और इससे अत्यंत क्षीण एवं दुर्बल रोगी को भी आराम हो जाता है। इसे पका कर खाने से उदर-शूल, आध्मानजन्य वातज शूल और अपच में अतीव उपकार होता है। अपच वा अजीर्ण को दूर करने तथा आमाशय को शक्ति देने का इसमें विशेष गुण है। इसको मिट्टी वा आटे में लपेट कर भूभल में पकाकर उसमें थोड़ा सा लहसुन तथा नमक और प्याज मिला कर १३ मा० की मात्रा में चलाव अर्थात् चावलों के खशके के साथ खा लें तो हर प्रकार के उदर-कृमि निकल जायँ। इसके टुकड़े करके जैतून के तेल में यहाँ तक पकायें कि शुष्क हो जाय। पुनः तेल को छान कर रख लेवें। यदि हस्त-पाद में रक्त जम गया हो, तो इसकी मालिश से बिखर जायगा। यदि बालक के सिर में भूसी जमी होगी, तो इसके लगाने से उपकार होगा। इसके बीजों के निम्न प्रयोग से असाध्य उदरशूल भी जाता रहता है—विलायती काँदा के बीजों को पीस कर मदिरा वा सिरका में गूँध कर चना-प्रमाण की वटिकायें प्रस्तुत करें। पुनः अंजीर को एक दिन पतले शहद में भीगा रखें। फिर उसको साफ करके एक वटी उक्त अंजीर में रख कर खा लेवें। ऊपर से उष्ण जल वा ऐसा जल जिसमें बूरए अरमनी क्वथित किया हो, पान कर लेवें। इसके बीजों को पीस कर शहद में मिला कर भक्षण करने से पाखाना भी खुल कर होता है और वायु-जनित शूल आराम होता है तथा गुदा एवं गर्भाशयिक

शूल मिटता है। विलायती काँदा हर प्रकार के उदर रोगों को लाभकारी है। परंतु उदरक्षत को यह असात्म्य है। इससे विरेक द्वारा सांद्र एवं पिच्छलदोष उत्सर्गीभूत हो जाते हैं। नाड़ी-धातु के लिये यह अतीव गुणकारी है। परंतु नाड़ी संबंधिनी व्याधियों अर्थात् वातरोगों में बिना हमामा के इसका उपयोग कदापि न करें। क्योंकि यद्यपि यह नाड़ी-शूल में उपकारी होता है, तथापि स्वस्थ एवं नीरोग नाड़ियों में उष्णता उत्पन्न करके उन्हें रोगासक्त कर देता है जिससे वात व्याधियाँ प्रायः उत्पन्न होती हैं।

हकीम असकरी के परीक्षित प्रयोगों में से यहाँ यह प्रयोग उद्धृत किया जाता है—विलायती काँदा गूँधे हुए आटे में रख कर आग पर खूब सेंक लेवें। पुनः उसे भीतर से निकाल कर, उसमें से चार रत्ती की मात्रा में शर्वत बजरी में मिला कर जलोदरी को चटायें। इससे अत्यधिक पेशाब होकर, जलोदर का विकार शमन हो जायगा। इसके सेवनकाल में रोगी को अर्क वा जल तौल कर पिलाते रहें और पेशाब का भी वजन करते रहें। जब पेशाब पेय पदार्थों की अपेक्षा अधिक आने लगे, तो उसे स्वास्थ्य का लक्षण समझें। दद्रु, गृध्रसी, अंगसाद और कफज वा शीतजन्य आमवात और शिरोरुज्या (सिर की भूसी)—इन रोगों में इससे निर्मित तैल अतीव गुणकारी है। इसे सिरके में वा अकेला पीस कर कफज सरशाम रोगी के सिर पर प्रलेप करने से बहुत उपकार होता है। इसे चालीस दिन खाने से प्लीहा की सूजन मिटती है। यह विपैले कीटादि के दष्ट का अगद है। इसके बीज भी तज्जन्य विषों के प्रतिविष हैं। चूहा इसको भक्षण करते स्वर्ग सिंघारता है। यही नहीं प्रत्युत केवल उसकी गंध मात्र से भी उसकी मृत्यु हो जाती है। सर्प-दष्ट में इसको सिरका में पीस कर दष्ट-स्थान पर प्रलेप करें। काटने वाली मक्षिकाएँ इसकी गंध मात्र से मर जाती हैं। कहते हैं कि इसे ड्योढ़ी के पास रखने से कीट-पतंगादि द्वार के भीतर प्रविष्ट नहीं होते। इसको जल में क्वथित कर उक्त क्वाथ-जल को लेकर घर में छिड़कने से सर्प एवं अन्यान्य भौम कीटादि एवं सांसाहारी जीव तथा च्यूटियाँ, मक्खियाँ और चूहे आदि भाग जाते हैं। इसे पास रखने से जूँएँ आदि भी पास से चली जाती हैं। पाँच की संख्या में विलायती काँदा और पचीस भाग चमेली का तेल लेकर पकावें। जब वह भली प्रकार घुल जायँ, तो तेल को छान कर रख लेवें। इसमें से आवश्यकतानुसार तेल लेकर पाँव के तलुओं पर मर्दन करें और जब तक वे सूख न जायँ, पृथ्वी पर पैर न रखें, प्रत्युत उसी दशा में सो जायँ। इसी प्रकार सप्ताह पर्यंत उक्त विधि का पालन करने से अत्यंत शिश्न-प्रहर्षण होगा। ऐसा रहस्य-ग्रंथों में उल्लिखित है। अभृष्ट इस्कील शरीर पर

मर्दन करने से क्षत पड़ जाते हैं और कण्ट होता है। उक्त दशा में मुरदासंख पानी में पीस कर लगाने से उपकार होता है।

इब्न जुहर की खवास की किताब में यह उल्लिखित है कि यदि भेड़िया उस पर चले, तो बीमार हो जाय। इतना ही नहीं, अपितु वह प्रायः मर जाता है। यदि ३॥ मा० विलायती काँदा को कपोत-विष्टा के साथ पीस कर कुछ दिन पीता रहे, तो वस्तिगत अश्मरी टूट कर निकल जाय। कृष्ण चणक के क्वाथ वा हिम के साथ पीने से भी उक्त कार्य होता है। जंगली प्याज को उखाड़ कर रख दें। जब उसके उद्भेद की ऋतु आ जाय और उसमें हरे पत्र फूटने लगें, तब उनको सुखा कर थोड़े हव्बुलगार के तेल में पीसकर कुण्ठी के शरीर पर मर्दन करें। इससे उसकी समग्र त्वचा फट कर उतर जायगी और वह पूर्ण स्वस्थ हो जायगा। प्रातःकाल से पूर्व इसे उखाड़ कर धूनी देने से साँप, मकड़ी और मेंढक प्रभृति इसका धुआँ लगते ही मर जाते हैं। यदि उष्ण स्नानागार के फर्श को इसे पीसकर मला जाय और उस पर तेल डाल दिया जाय, तो उस पर बैठनेवाले की चूतड़ में खाज पैदा हो जाय। यदि इसे पीसकर सद्यः दूहे हुए दूध में मिला कर दोघों रानों के मध्य में प्रलेप किया जाय, तो इससे असीम वाजीकरण की शक्ति प्रादुर्भूत हो-

इसके प्रयोग के संबंध में अवश्य उल्लेख योग्य एवं परम आवश्यक बात यह है कि शीतल प्रकृति के लोगों को इसका उपयोग न कराना चाहिये तथा औदरीय व्रण एवं रक्तक्षरण के रोगी को इसका प्रयोग वर्जित है। अभृष्ट वा मात्रा से अधिक अथवा इसकी विषैली किस्म खाये हुए को वमन कराये तथा शीतल पदार्थ, पिच्छल या स्निग्ध पदार्थ और मेवों का रस तथा बहुत सा घी या मक्खन पड़ा हुआ शोरबा पिलायें।

इसके भर्जन वा मुशब्बी करने की विधि एवं इससे निर्मित सिरका, सिकंजबीन, तैल, पेय वा मद्य प्रभृति के निर्माण की रीतियाँ एवं अन्यान्य औषधों के योग, जैसे, गंडूष, तिरियाक फारूक में प्रयुक्त चक्रिकाओं तथा अवलेह और माजून इत्यादि के योग, उनके निर्माण की रीतियाँ गुणधर्म सहित यूनानी योग के ग्रंथों—करा-बादीनों में विस्तार से वर्णित हैं। उनके लिये लेखक द्वारा लिखित 'यूनानी-योग-सागर' ग्रंथ अवश्य अवलोकन करें।

एल्लोपैथीय मतानुसार—मुहीत में लिखा है कि स्क्वील उन्मुल की एक अन्यतम संज्ञा है। आंग्ल चिकित्सक इसके बारीक परत काट कर सुखा लेते हैं। इसका रंग ललाई लिये सफेद या खाकी होता है। यह तीव्रगंधी और तिक्त स्वादयुक्त होता है। इसको सिरका, मद्य वा जल में

भिगोने से इसका असर आ जाता है और वह कफघ्न, वामक, मूत्रल और विरेचक होता है। जलोदर, जीर्ण-कास और श्वास में लाभकारी होता है। शिशुओं को इसे नहीं देते। इसकी मात्रा २ ग्रेन से १० ग्रेन तक है। अन्य औषधियों के साथ यह योगों में भी पड़ता है।

खजाइनुल् अद्विया में इसके मरूजनुल् अद्विया डाक्टरों में उल्लिखित गुणधर्म और प्रयोग आदि ही उद्धृत हैं। अस्तु, उन्हें यहाँ नहीं दिया गया। उनके लिये एल्लोपैथीय निघंटु अवलोकन करें।

काँदा का सिरका

पर्याय—विदेशीय वनपलाण्डु शुक्त (सं०), खल्ल उन्मुल, खल्लुल् उन्मुल, खल्ल इसकील (अ०); सिरकए उन्मुल, सिरकए इस्क्रील, सिरकए प्याज दस्ती (फ्रा०); जंगली प्याज का सिरका (उ०); विलायती काँदा का सिरका (हि०)। एसीटम् सिल्ली Acetum Scillac (ले०)। विनेगर आफ स्क्विल Vinegar of squill (अ०)।

निर्माण-क्रम—इसकी एल्लोपैथीय विधि के लिये तो एल्लोपैथीय निघंटु अवलोकन करें। यहाँ केवल यूनानी विधि का ही उल्लेख किया जाता है। इसके निर्माण की अनेक रीतियाँ हैं जिनमें से कतिपय उत्तमोत्तम रीतियाँ निम्न हैं—

(१) नफीसी और मुहीत में भी उल्लिखित है—मध्यमाकार का सफेद रंग का विलायती काँदा लेकर उसे साफ़ कर डालें। फिर उसे लकड़ी की छुरी से टुकड़े-टुकड़े कर डालें। तदुपरांत उन्हें धागा में इस प्रकार पृथक् पृथक् बाँधें, कि परस्पर एक दूसरे को न लगने पायें। इसके बाद उनको छाँह में चालीस दिन तक सुखायें। तदुपरांत अष्ट गुण (नफीसी में १० गुना) अंगूरी सिरके (नफीसी में पुराना सिरका) में डाल कर दो महीने तक ग्रीष्म ऋतु के धूप में रखें जिसमें उठ आये। फिर प्याज को निकाल कर निचोड़ लें और सीठी फेंक दें।

(२) शेखुरईस और उनके अनुयायियों के अनुसार एक भाग छाँह में सुखाया हुआ विलायती काँदा ९ भाग अंगूरी सिरका में डाल कर छः महीने तक रख छोड़ें। तदुपरांत छान कर काम में लायें।

(३) जंगली प्याज को सम भाग सिरके में भी तैयार करते हैं।

(४) तर व ताज्जा उन्मुल को सिरके में भिगो कर छः मास के उपरांत छान कर स्वच्छ कर लेते हैं।

(५) एक भाग उन्मुल को कुचल कर ३ भाग जल और १२ भाग सिरके के साथ मिट्टी या पत्थर के बरतन में इतना उबालें कि घुल जाय। इसमें द्रव का $\frac{1}{3}$ भाग घट जाता है। गीलानी के कथनानुकूल यद्यपि यह शीघ्र

तैयार हो जाता है, तथापि दो मास पर्यंत घूप में रख कर तैयार किए हुए की अपेक्षा प्रभाव में न्यून होता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह सांद्र दोषों को छाँटता है और आमाशय एवं पचन-क्रिया को शक्ति प्रदान करता है। इसलिये बल्य है। और इसी कारण यह रंग को निखारता है और इस कारण से भी कि यह शोणित को तरलीभूत करता और उसे सूक्ष्मता प्रदान करता है एवं उसे बहिर त्वकीं ओर प्रवृत्त करता है। जिससे त्वचा के अवकाशों में उसकी व्याप्ति अत्यंत उग्र हो जाती है। यह मसूढ़ों को दृढ़ करता है; क्योंकि यह दन्तवेष्ट को शिथिल करने वाले द्रवों को विलीन एवं शुष्क करता है। यह मुखदौर्गन्ध्य का निवारण करता है। पुनः उसका कारण आमाशय के प्रकुथित वा दूषित द्रवों और चाहे मसूढ़ों के। यह चलित-दंत को स्थिर करता है। क्योंकि यह दंतमूल एवं उनके बंधक तंतुओं को शिथिल करनेवालों द्रवों को निवारण करता है। यह स्वस्थ नाड़ी-तंतुओं को किसी भाँति हानि पहुँचाता है। क्योंकि सिरका वात-नाड़ियों को अपेक्षाकृत अधिक हानि पहुँचानेवाले द्रव्यों में से है। पर क्योंकि यह उन्मुल से उष्णताजनक शक्ति प्राप्त कर चुका होता है। अस्तु, इसका वात-नाड़ियों को हानि पहुँचाने का गुण कम हो गया होता है। सुतरां यावन वनपलाण्डु आमवात, गृध्रसी और पक्षाघात (फ़ालिज) के लिये उपकारी है। यह सिरका अपस्मार, मालीखोलिया, कृच्छ्रश्वास और जीर्णकास में गुणकारी है, शब्द की खरखराहट को दूर करता है एवं आमाशय को बलप्रद और पाचक है। यदि आहार आमाशय के भीतर प्लवन-शील हो एवं आमाशयिक कोष्ठ में एकत्रित होकर भले प्रकार परिपाचित न हुई हो, तो उक्त अवस्था में विलायती काँदे का सिरका उपकारी होता है। यह जलोदर, कामला, अपतत्रक और मूत्रकृच्छ्र में लाभकारी है। यह खूब मूत्र का प्रवर्त्तन करता है। इसका सिरका और क्वाथ प्लीहाशय में पिए जाते हैं। क्योंकि छेदन, शोधन एवं अवरोधोद्धाटन की शक्ति के कारण यह सूजन को उतारता है। इसे खा लेने पर चूहा जीवित नहीं रहता और वह बिना दुर्गंध और किसी प्रकार के द्रव-साव के यूँ ही सूख कर पुरानी खाल की तरह हो जाता है। इसी कारण से यह प्याज बसलुलफ़ार (चूहा प्याज) संज्ञा द्वारा अभिहित हुआ है। (नफी०)

जंगली प्याज का सिरका सांद्र दोषों का पूर्णतया शोधन करता है, आमाशय को बल प्रदान करता, पाचन शक्ति को विवर्द्धित करता एवं स्वर को शुद्ध करता है और मुख-दौर्गन्ध्य, वातज दोष, मालीखोलिया, उन्माद, अपस्मार, गृध्रसी और वस्तिस्थाश्मरि को उपकारी है। यह कपोलों के रंग को निखारता और दृष्टि को तीव्र करता

है तथा शिरोभ्रमण, वातरोग (सदर) और वातज शूल में लाभकारी है। कान में टपकाने से बधिरता का नाश होता है। इससे गंडूष करने से मसूढ़े दृढ़ होते हैं। दंतमूल से रक्त जाने को रोकता है। किंतु कंठ में कर्कशता उत्पन्न करता है और उसके मांस को कठोर करता है; श्वास एवं शीतजन्य कास को मिटाता, फुफुसको शुद्ध करता (जिला देता), आमाशयिक शूल को आराम पहुँचाता, मस्तिष्क से मलावरोहण को रोकता और घर्षण (सहज) को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण उदर रोगों को लाभकारी है। यह जलोदर एवं प्लीहा को उपकारी है। इसको कम खाना चाहिये। क्योंकि उत्त्वलेशकारक है। अस्तु, ३ वा ३॥ तो० से अधिक न खावे।

—मरुजन में इसका उल्लेख नहीं है। देखो—प्याज

काँदे—संज्ञा पुं० [म०] पलाण्डु। प्याज। वन पलाण्डु। जंगली प्याज। वन पलाण्डु।

काँदो—संज्ञा पुं० [गु०] वनपलाण्डु। दे० प्याज।

काँध—संज्ञा पुं० [हि०] अंश। कंधा।

काँपल—संज्ञा पुं० [हि०] सुखदर्शन। सुदर्शन।

कांबोजी—संज्ञा स्त्री० [हि०] काम्बोजी।

कांश्य नील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तुत्य। तृतिया। मूषा तुत्य। (हे० च०)। तुत्याञ्जन। (प० मु०)।

काँस—संज्ञा पुं० (हि०) (१) कास रोग। खाँसी। (२) काश। कासा। काँसा।

पर्या०—काशः (सं०)। काँस, कासा (हि०)। काँस (मारवाड़)। काँसड़ो (गु०) कसी, कसाड (मं०)। कास, कलस (पं०)। सैकेरम् स्पॉन्टेनियम (*Saccharum Spontaneum Linn.*) देखा काश (क)।

वर्णन—एक प्रकार की घास जिसकी ऊँचाई प्रायः बारह फुट होती है। भूमि-भेद से छोटी-बड़ी भी हो जाती है। यह नीची और तर भूमि में होती है। बरसात में फूलती है। इसके पत्तों की दोनों तरफ़ की धारें तेज होती हैं। पत्तों के बीच में एक लंबी डंडी होती है। इसके सिरे पर प्रायः आध गज लम्बी फूलों की बाल लगती है जिसमें रेशम की तरह के अवयव होते हैं। इसकी जड़ में से चीनी निकाली जाती है। (खज़ाइन)

तालीफ़ शरीफी तथा मुहीत के अनुसार एक प्रकार की घास जिसके सिरे पर रेशम की तरह सफ़ेद फूल लगे होते हैं। मरुजनमुफ़रदात और मक्कालात एहसानी के अनुसार काले, हरे और पीले रंग की एक घास जिससे भारतीय रस्सी बनाते हैं।

नोट—मरुजन में इसका उल्लेख नहीं है और न इसकी अरबी फ़ारसी संज्ञाओं का ही यूनानी ग्रंथों में पता लगता है।

प्रकृति—शीतल और रुक्ष। स्वाद—कसेला एवं

किङ्गेन-फिई—संज्ञा स्त्री० [बर०] (१) चीता। चित्रक। (मो० श०)। (२) लालफूल की कटसरैया। रक्त अम्लान क्षुप। दे० 'कटसरैया'।

किङ्ग ऑफ डेनमार्क—संज्ञा पुं० [अ० King of Denmark] चेष्टमिक्स्चर।

किङ्ग ऑफ बिटर्स—संज्ञा पुं० [अ० King of Bitters] चिरतिक्त, चिरायता, कालमेघ।

किंग्ज क्युमिन—संज्ञा स्त्री० [अ० King's cumin] यमानी। अजवाइन।

किङ्गली—संज्ञा स्त्री० [हि०] अगलागल कचैटा। (Mimosa-Rubricaulis)। (इ० मे० मे०)।

किङ्गारो—संज्ञा पुं० [पं०] शेरवानी बूटी। कोण्डाई। (Flacourtia Sepiaria)।

किच्चिलिक्किङ्गडु—संज्ञा पुं० [ता०] कचर, शटी।

किच्चिलिङ्गडुल (लु)—संज्ञा पुं० [ते०] कचूर। शटी। (मो० श०, डाइमॉक)।

किच्चिलि-चेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] नागरंगफल। नारंगी। संतरा।

किच्चिप्पक्षम्—संज्ञा पुं० [ता०] } नारंगफल। नारंगी।

किच्चिलिपण्डु—संज्ञा पुं० [ते०] } संतरा।

किच्ची सुपारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दक्खिनी सुपारी। चिकनीसुपारी।

किच्ची—संज्ञा स्त्री० [द०] कृशरा। खिचड़ी।

किज अमावन—संज्ञा पुं० [यू०, रूमी] पलाण्डु। प्याज। (लु० क०)।

किज आयन—संज्ञा पुं० [इन्दुलस] वनस्पति विशेष। (लु० क०)। प्याज।

किजगनः—संज्ञा पुं० [फा०] वृजगनद (लु० क०)।

कि (कु) जद—संज्ञा पुं० [अ०] कुष्ठ। कूट। (लु० क०)।

किजदीर—संज्ञा पुं० [अ०] वंग। रांगा। कथील। (लु० क०)।

किजनीन—संज्ञा पुं० [अ०, बरबरी] सामअबर्स। (लु० क०)।

किजन्ना—संज्ञा पुं० [मल०] मुस्तक। नागरमोथा।

किजबरना—संज्ञा पुं० [सुर०] कुज्वरः। (लु० क०)।

किजल—संज्ञा पुं० [तुर्की] शोरा। शोरक क्षार। नाइटर।

किजलाना—संज्ञा पुं० [तुर्की] पक्षीविशेष।

किजवी—संज्ञा स्त्री० [अ०] लवणतृण। वनस्पति जिसके द्वारा लवण प्रस्तुत किया जाता है। (लु० क०)।

किजह—संज्ञा पुं० [अ०] पलाण्डु बीज। तुरुमप्याज। (लु० क०)।

किजाअ—संज्ञा पुं० [अ०] सौफतुल्य एक वनस्पति। (लु० क०)।

कि (कु) जामः—संज्ञा पुं० [अ०] चव्वणक (चवैना)। वह रुक्ष अन्न जिनको दाँतों से चबाकर खाया जाता है। यथा—चना इत्यादि।

किजापुटे—संज्ञा पुं० [ता०] कैपूती। कायापुटि।

किजार—संज्ञा पुं० [अ०] काँच। शीशा।

कि (क, कु) जाह—संज्ञा पुं० [अ०] वनस्पति जो सौफ तुल्य होती है। (लु० क०)।

किजुनीन—संज्ञा पुं० [?] }
 किजुमुआना—संज्ञा पुं० [?] }
 किजुजाअमवान— " ["] } पलाण्डु। प्याज।
 किजू मुआद— " ["] }
 किजुमोवाद— " ["] }

किज्जवः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) जबसीन। (२) छोटी सी पथरी। (३) चूना। (४) रेत। (लु० क०)।

किज्जलान—संज्ञा पुं० [तुर्की] पक्षी विशेष। (लु० क०)।

किज्जकाय-नेल्लि—संज्ञा स्त्री० [कना०, ता०, मल०] भूम्यामलक। भुँइ आँवला।

किज्जिङ्ग—संज्ञा पुं० [ता०] कंद, मूल। (मो० श०)।

किज्जनेल्लि—संज्ञा स्त्री० [ता०, मल०] भूम्यामलक। भुँइआँवला। (डाइमाक ३ भा०)।

किज्जन्ना—संज्ञा पुं० [मल०] अर्शघ्न, वनसूरण, जंगली सूरन।

किञ्चन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्तिकर्णपलास। (श० र०)।

किञ्चिच्चौरितपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पालक, पालक शाक। पालशाक। (वै० निघ०)।

किञ्चित्—वि० [सं० त्रि०] चतुर्थांश (१/४ भाग)। (वै० निघ०)।

किञ्चित्पाणि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का मान (तोल) जो १ कर्ष (२ तो०) के बराबर होता है। (प० प्र० १ ख०)।

किञ्चिदुष्ण—वि० [सं० त्रि०] ईषदुष्ण। थोड़ा गरम। गुनगुना। कुछ गरम।

किञ्चिलिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } भूनाग
 किञ्चुलुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
 गण्डूपद। महिलता। केचुआ जो वर्षाकालमें प्रायः पृथ्वी में पाए जाते हैं।

किञ्चोली—संज्ञा स्त्री० [उडि०] समुद्रफल।

किञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] किञ्जल्क। नागकेशर।

किञ्जल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कमलकेशर। पद्मकेशर। दे० 'कमल'। (श० च०)। (२) किञ्जल्क मात्र। (३) (म०) मरथु। ओल। (ता०) पेकर काय।

किञ्जल्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कुष्ठ, कूट। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नागकेशर तथा पुष्प। (वै० निघ०)। (च० द० अ० चि० चाङ्गरी घृत)। (२) केशर

कुङ्कुम। (३) कमलकेशर। गुण—शीतल, कषाय, ग्राही, एवं वृष्य है तथा कफ, पित्त, तृष्णा, दाह, रक्तार्श, विष एवं शोष का नाश करनेवाला है। (भा० पू० १ भा०)। दे० 'कमल'। मधुर, रुक्ष, कटु, शीतल, एवं रुचिप्रद है तथा पित्त, तृष्णा, दाह और मुखव्रणनाशक है। (रा० नि० व० १०। ध० निघ०)। दे० 'कमल'।

किञ्जबालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पवित्र मृत्तिका विशेष। कंकुष्ठ। (वै० निघ०)।

किञ्जी—संज्ञा स्त्री० [पं०] पर्याय-बालसिंजल कडु-मिमारीर। (ले०) रैहमनस पर्पूरिअस (Rhamnus Purpureus)। (हिं०) किजी। उद्भवस्थान-मुरी से पश्चिमी हिमवतीपर्वत, कुमायूँ इत्यादि।

कुल—बदर (Rhamneae)

गुणकर्म—इसका फल मलभेदक है। (इं० मे० मे०)।

किञ्जोली—संज्ञा स्त्री० [उड़ि०] हिज्जल। समुद्रफल।

किञ्जवल्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) केशर। (२) पद्म केशर।

किटि (टी)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) वनशूकर। जंगली सूअर। (२) शूकरकन्द। वाराहीकन्द। सुअरा कन्द। (वै० निघ०)।

किटिदंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सूकरदंष्ट्रा। (वै० निघ०)।

किटिभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जूँ। ढील। लीख लिखा। केशकीट। (२) कुष्ठरोग का एक भेद। (Psoriasis)। अपरस। (अ०) बर्सअस्वः। (प०) चम्बल। (३) तुल्य, तृतिया। दे० 'किटिम'।

किटिभग्न रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त-योग। निर्माण-विधि—शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक ३ भा०, सोंठ, मरिच, पीपल प्रत्येक, १-१ भा०, यथा-विधि चूर्ण कर जंगली गूलर (काकोदुम्बर) के रस (दुग्ध) से १२ घंटा मर्दन कर सुरक्षित रखे। अनुपान—चित्रक, वकुची, निम्ब पञ्चांगकृत चूर्ण वा क्वाथ। मात्रा उक्तयोग की १ माशा। (२० का० कुष्ठचि०; रस० यो० सा०)। किटिभहर लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठचिकित्सा में प्रयुक्त योग। निर्माण-विधि—पारा, गन्धक समान भाग में ग्रहण करें और शंखभस्म दोनों के बराबर। इन्हें एकत्र दाहहृदी, इन्द्रायन की जड़, चकवड़ के बीज, खिरनी की छाल, अगस्तिया के फूल-बराबर भाग में ग्रहण कर गोमूत्र, कांजी, और स्त्रीदुग्ध के साथ पीसकर लेप करने से किटिभकुष्ठ का शीघ्र नाश होता है।

किटिभारि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठचिकित्सा में प्रयुक्त योगविशेष। निर्माण-विधि—पारद भस्म, मकोय, चित्रक, केवाँच के बीज, वकुची सर्वतुल्य भाग में ग्रहण कर गोमूत्र में १२ घंटा मर्दन कर ४ रत्ती की

गोलियां बनाएँ। अनुपान योग—हल्दी, पीपल, सोंठ, वाय-विडंग, चित्रक, सोनामाखी वृद्धि भाग में ग्रहण कर गोमूत्र के साथ १ तो० प्रतिदिन सेवन करने से किटिभ-कुष्ठ का नाश होता है। (चि० क० कुष्ठ चि०; र० का०; रस० यो० सा०)।

किटिम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सौम्य विष का एक कीड़ा जिसके काटने से कफज विकार उत्पन्न होते हैं। (सु० कल्प० ८ अ०)। (२) क्षुद्र कुष्ठ भेद। लक्षण—

यह सप्ताव, गोल, ठोस, स्निग्ध, अत्यन्त खुजली से युक्त तथा कृष्ण वर्ण का होता है। इसको किटिभ वा किटिम भी कहते हैं। (सु० नि० ५ अ०)

चिकित्सा—(१) पमाड़ के बीजों को सेहूँड़ के दूध वा गोमूत्र में पीसकर धूप में रखकर तप्त करें और पुनः लेप करें। (२) कसौंदी की जड़ ग्रहणकर कांजी में पीसकर लेप करें। (३) अमलतास के पत्तों को कांजी में पीसकर लेप करने से किटिभ, सिध्म, कुष्ठ तथा दद्रु का शीघ्र नाश होता है। किटिभ में प्रयुक्त योग—(१) किटिभग्नरस, (२) किटिभहर लेप और (३) किटिभारि रस। यथास्थान देखो। दे० 'किटिभ'।

किटिमूलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } शूकरकन्द। वाराही-
किटिमूला—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कन्द। (वै० निघ०)।

किट्चली—संज्ञा स्त्री० [ता०] वनस्पति विशेष।

किट्ट (क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पुरीष। विष्टा। मल। गूह। बराज। (रा० नि० व० १८) (२) कर्णकिट्टे। कर्णमल। खूँट। (३) शुक्र। वीर्य। सीमेन (semen)। (४) लौहमल। मण्डूर। लोहकिट्टक। (अ०) खुम्सुल-हृदीद। (सं०) लौह मल, शिङ्खल, शलघातन, लोहचूर्ण, अयोमल, किट्ट, लोहज, कृष्णचूर्ण, लोहचूर्ण, लौष्ट्र। (प० मु०) लोहोच्छिष्ट। (ध० नि०)।

लोहकिट्ट १०० वर्ष से अधिक का उत्तम, ८० वर्ष का मध्यम तथा ६० वर्ष का अधम होता है; किन्तु उक्त वर्षों से न्यून का लोहकिट्ट विषतुल्य होता है।

लोहे को तप्त करने से जो किट्ट प्राप्त होता है उसको लोहमल तथा मण्डूर कहते हैं। जो गुण लोहा में होता है वही उसके किट्ट में होता है। (भा० पू० १ भा० धातु वर्ग)।

शोधन-विधि—विभीतक (बहेड़ा) के काष्ठ के अंगारों (कोयला) में लोहकिट्ट को भली-भाँति तप्त करें। पुनः जब लाल हो जाए, गोमूत्र में बुझा दें, इस प्रकार ७ बार बुझावें अथवा इसी प्रकार ७ बार त्रिफला के क्वाथ में बुझाकर बारीक चूर्ण कर लें। (सा० कौ०)।

(क)

किट्टले

१६१

क्रित्व

गुण—जो गुण जारित लोह के हैं, वही गुण मुण्डलोह के शोधित किट्टों में होते हैं। इसे मधु के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग तथा कुम्भकामला का नाश होता है। (२० सा० सं०)।

लोहकिट्ट मधुर, कटु, उष्ण, कृमि, पक्तिशूल, वातज शूल, गुल्म, मेह, शोथरोग में हितकर तथा वातनाशक है। (रा० नि० व० १३)। दे० 'मण्डूर'।

किट्टले—संज्ञा पुं० [कना०] नारंगी। संतरा। नागरंग।

किडनी—संज्ञा स्त्री० [अं० (Kidney)] वृक्क, गुरदा।

किडनी बीन, कामन—संज्ञा पुं० [अं० (Kidney Bean, common)] माष, उड़द।

किडमार—संज्ञा पुं० [हिं०] कीड़ामार। धूम्रपत्रा।

किड़ामार—संज्ञा पुं० [म०, बम्ब०] नक्तमाल, करञ्ज। (इं० मे० मे०)।

किड़ामारी—संज्ञा स्त्री० [गु०] कीड़ामार। धूम्रपत्रा।

किड़ामाल—संज्ञा पुं० [हिं०] करञ्ज, नक्तमाल, (इं० म० मे०)।

किडिटसई—संज्ञा स्त्री० [चीन] घोरराइ। राजिका भेद। (मे० मो०)।

किडिपुरन्दन—संज्ञा पुं० [बम्ब०] वनस्पति विशेष।

किडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कीट] कृमि जन्तु।

किडीमार—संज्ञा पुं० [पं०] बग्गी वूटी। (मे० मो०)।

किण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मांसग्रन्थि। (अम०)।

(२) घृणा। (३) ईख। इक्षु। (४) करीर। करील।

(५) कोशांग। इत्कट। (हारा०)। (६) कर्णिका।

'राजकोशातकीमूल' किणोवा मथितोद्भव'।

(वा० उ० ३७ अ० विष० चि०)। (७) योनिकन्द

नामक स्त्रीरोग। (वै० निघ०, त्रिका०)। मणितोप-
रिस्थ के नाम वस्तु।

किणही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

किणि— " [,,] } अपामार्ग क्षुप। श्वेत

किणिहि(ही)— " [,,] } अपामार्ग।

यह अत्यन्त विषघ्न है। (सुश्रुत; रा० नि० व० ४)।

(२) कृष्ण कटभीवृक्ष। (रा० नि० व० ९; सु० सू०

२९ अ०)। (३) श्वेत अपराजिता। श्वेत गोकर्णी।

विष्णुकान्ता। (वै० निघ०)।

किण्डल—संज्ञा पुं० [बम्ब०] वनस्पति विशेष। निमड़ी।

(मे० मो०)।

किण्व(-क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] सुराबीज।

खमीर (Yeast)। (सु० सू० २५४)।

किण्वमूलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बकुल। मौलसरी।

(वै० निघ०)।

किण्वाविष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] सुराबीज। खमीर।

(Yeast)। (सु० चि० पू० ९०८)।

२१

किण्वी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्व। घोड़ा।

क्रितअ—संज्ञा पुं० [अ०] काष्ठकीट। लकड़ी का कीड़ा जो लाल रंग का होता है।

क्रितआ—संज्ञा पुं० [अ०] काष्ठकीट। लकड़ी का कीड़ा। दे० 'क्रितअ'।

क्रितनी—संज्ञा स्त्री० [म०] पानलता। काजरवेल। (ओ० सं०)।

क्रितफ—संज्ञा पुं० [अ०] बथुआ। वास्तुक शाक। (अ०) अनकूद।

क्रितफ-बहरी—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बथुआ। वास्तुक। (२) शण। सन।

क्रितफरुमी—संज्ञा पुं० [अ०] जीवन्ती शाक।

क्रितब—संज्ञा पुं० [अ०] आन्त्र। अन्त्र। अँतड़ी।

क्रितर—संज्ञा पुं० [अ०] ताम्रधातु। ताँबा।

क्रितरया—संज्ञा पुं० [?] काक। कौआ।

क्रितरस—संज्ञा पुं० [?] उत्तम ताम्रधातु। श्रेष्ठ ताँबा।

क्रि (क) तरान—संज्ञा पुं० [अ०] कत्रान नाम की ओषधि जो प्रायः जर्जरियन टापू में उत्पन्न होती है। (डाइमॉक)।

दे० 'कत्रान'।

क्रितव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चोरक नामक गन्ध-द्रव्य। (रा० नि० व० १२, २३)। (२) धतूरा (धुस्तुर)। (रा० नि० व० १०)। (३) गठिवन। ग्रन्थिपर्णी। गठेला। (वै० निघ०)।

क्रितवराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धतूरा। धुस्तुर। (वै० निघ०)।

क्रितवाली—संज्ञा स्त्री० [उत्तर प० भा०] आरग्वध। अमलतास।

क्रिताअ—संज्ञा पुं० [अ०] शकरपाला। मिठाई। मिष्ठी।

क्रि (क) ताद—संज्ञा पुं० [अ०] शज्रतुलकुदस। (फा०) दरख्त आशिकाँ। यह एक प्रकार का कँटीला वृक्ष है जिसके निर्यास (गोंद) को कतीरा वा कटीरागोंद कहते हैं। (ले०) स्ट्रैगलस गम्मिफेरा (Stragalus gummiifera)।

क्रिताफ—संज्ञा पुं० [अ०] अंसशूल। कंधे का दर्द।

क्रिताब—संज्ञा पुं० [अ०] मद्यद्वारा निर्मित वस्तु।

क्रितालीक—संज्ञा पुं० [अ०] घृतपक्वरोटिका। रोगनी रोटी। (मो० आ०; म० अ०)।

क्रितः—संज्ञा पुं० [अ०] विडाल। माज्जिर। बिल्ला।

क्रितलेहणु—संज्ञा पुं० [ते०] नारंगी। संतरा। नागरंग।

क्रितलेहणुघ—संज्ञा पुं० [कना०] नारंगी। संतरा। नागरंगफल।

क्रितान—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] अतसी। अलसी। तीसी।

क्रित्या—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वनपलाण्डु। काँदा, दे० 'काँदा'।

क्रित्व—संज्ञा पुं० [अ०] आँत। अँतड़ी। अन्त्र। (Intestine)।

किन्नर—संज्ञा पुं० [?] किसानल्लहिमार।
 किल्ल—संज्ञा पुं० [अ०] मर्मस्थान। वह स्थान जहाँ चोट लगने से मृत्यु होती है।
 किदीद—संज्ञा पुं० [अ०] वह मांस जिसमें लवण मिश्रित कर शुष्क कर लिया गया हो। नमकसूद गोश्त।
 (Dried meat)
 किद्र—संज्ञा पुं० [अ० बहुव० अकृताव] भाण्ड। पात्र। देग।
 किनई (न्ही)—संज्ञा स्त्री० [म०] शिरीष। सिरस।
 (Albizia Procera)। (ओ० सं०)।
 किनः किनः—संज्ञा पुं० [फा०] सिकोना।
 किनगोड़ा—संज्ञा पुं० [गढ़वाल] दारुहरिद्रा। दारुहल्दी।
 किनतीन—संज्ञा पुं० [वं०] तेजपत्र। तेजपात।
 किनपालिन—संज्ञा पुं० [वर०] तुंगवेर (लेपचा)।
 किनब—संज्ञा पुं० [फा०] भाँग। विजया। सिद्धी। भंग।
 किनब-हिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] भाँग। भारतीय भंग।
 विजया। सिद्धी।
 किनबीर—संज्ञा पुं० [अ०] कबीला। कंपिल्ल।
 किनबीरा—संज्ञा पुं० [फा०] खीरा। त्रपुष।
 किनबील—संज्ञा पुं० [अ०] कबीला। कंपिल्ल।
 किनह किनह—संज्ञा पुं० [?] (१) (अ०) सिकोना।
 (२) हिम। बरफ। (Ice)।
 किना—संज्ञा पुं० [अ०] किनाकिन। सिकोना। किनः
 किनः।
 किनाक्ष—संज्ञा पुं० [अ०] हृत्पटल। गिलाफे दिल।
 हृदयावरण।
 किनाकिन—संज्ञा पुं० [द०] सिकोना।
 किनाकिना—संज्ञा पुं० दे० 'सिकोना'।
 किनाज—संज्ञा पुं० [अ०] हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति। पुरगोश्त।
 आगुन्दः गोश्त।
 किनाबरी—संज्ञा पुं० [अ०] 'कुनाविरी'।
 किनाबरी दास—संज्ञा पुं० [य०] तेलनीमक्खी। दे०
 'जरारीह'।
 किनाबिस—संज्ञा पुं० [यू०] भंग। सिद्धी।
 किनार—संज्ञा पुं० [फा०] बंदर। वेर।
 किनार दश्ती—संज्ञा स्त्री० [का०] वनबंदरी। वेर जंगली।
 झाड़ वेर।
 किनिया गोंद—संज्ञा पुं० [द०] (१) जिगनी निर्यास। गोंद
 चिनाई। चीनियागोंद। (२) पलाशनिर्यास।
 किनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र कण्टकारी। छोटी
 कटेरी। ह्रस्व वृहती। (वै० निघ०)।
 किनी—संज्ञा स्त्री० [अ० बहुव० कनवान] यकृत् विकृति।
 जिगर का विकार। दे० 'सूउल्किनयः'।
 किन्केन्नि—संज्ञा पुं० [वर०] लालचीता। रक्त चित्रक
 क्षप।

किन्तनु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लूता। ऊर्गनाभ। मकड़ी।
 मकड़ा।
 किन्तुः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) दुर्गन्ध। बूएनाकिस। बदबू।
 (Bad-smell)। (२) देवद्रुनिर्यास। गन्धाबिरोजा।
 किन्दीद—संज्ञा पुं० [अ०] गुड़ासव। गुड़कृतमद्य।
 भेद—(१) किन्दीद, (२) उक्कार, (३) समूस और
 (४) हूम।
 अन्तर—(१) किन्दीद उस मद्य को कहते हैं जिसमें
 कस्तूरी मिश्रित की गई हो। (२) उक्कार—उस मद्य
 को कहते हैं जो अधिक काल पर्यन्त खमीर में रहे।
 (३) समूस—उस मद्य को कहते हैं जो अत्यधिक
 तीक्ष्ण हो (तेज शराब)। इसके पान से विस्मृति
 होती है। (४) हूम—वह तीक्ष्ण मद्य है जिसके पीने से
 शिरोघूर्णन उत्पन्न होता है।
 किन्दा (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] घोटक। घोड़ा।
 त्रिका०।
 किन्धी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] घोटक। घोड़ा।
 किन्न—संज्ञा पुं० [अ०] चक्षुसंरक्षक पुटक। नेत्ररक्षक
 खोल। (अ०) आई शेड (Eyeshade)।
 किन्नब—संज्ञा पुं० [अ०] भंग। विजया।
 किन्नबवेद—संज्ञा पुं० [अ०] वेतस फल। वेद का फल।
 (लु० क०)।
 किन्नब-हिन्दी—संज्ञा पुं० [अ०] भंग। विजया जो भारत
 वर्ष में उत्पन्न होती है।
 किन्नरकण्ठरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वरभंगचिकित्सा
 में प्रयुक्त योग विशेष।
 निम्माण-विधि—शु० पारद, शु० गन्धक, अभ्रक
 भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, लोह भस्म प्रत्येक समान भाग
 और पारद का चतुर्थांश वैक्रान्तभस्म। वैक्रान्तभस्म
 का आधा सुवर्णभस्म और स्वर्णभस्म का चौगुना रजत
 भस्म ग्रहण करें। पुनः एकत्र अडूसा, भारंगी, कण्टकारी,
 बड़ी कटेरी और ब्राह्मी के पञ्चांगस्वरस से क्रमानुसार
 १-१ भावना देकर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ
 और छाया में शुष्क कर शीशियों में सुरक्षित रखें।
 गुण तथा उपयोग—उचित अनुपान द्वारा सेवन करने
 से प्रत्येक प्रकार का स्वर भंग, कास, श्वास, वात-कफ-
 जनित रोगसमूह शीघ्र प्रशान्त होते हैं। (आ० वि०;
 रस च० स्वरभ० अ०)।
 किन्नर यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारदसंस्कार में प्रयुक्त
 उक्त नाम का यंत्र। निम्माण-विधि—एक दूढ़ हाँड़ी ग्रहण
 कर उसके भीतरी भाग में औषध पीसकर लेपन करें
 और तलभाग में नौसादर (नृसार) पीस कर बिछा दें।
 पुनः उस पर पारद स्थापन कर उसको शराव द्वारा ढाँक
 कर उसकी सन्धि मृत्तिका से भली-भाँति बंद कर दें।

और ऊपर तक लवणचूर्ण प्ररित करें। पुनः हण्डिका का मुख यत्नपूर्वक बंदकर चूल्हा पर स्थापनकर नीचे अग्नि प्रज्ज्वलित करें और एक याम पर्यन्त दीपकतुल्य अग्नि देकर स्वांग शीतल होने के पश्चात् पारद को निकालें। (रससार; रस० का० धे०)।

किन्नारतु—संज्ञा पुं० [फा०] एरण्ड वृक्ष। रेंड। (डाइमॉक भा० २)।

किन्नाब—संज्ञा पुं० [फा०] चरस। संविदानिय्यास। गञ्जानिय्यास। (लु० क०)।

किन्नामोमन—संज्ञा पुं० [जर० (Kinamomon)] गुडत्वक्। दालचीनी। (इ० मे० मे०)।

किन्नि—संज्ञा पुं० [फा०] रूमीमस्तगी।

किन्नी—संज्ञा स्त्री० [पं०] केंदू। (पं०, सिन्ध)। (मे० मो०)।

किन्नी काठी—संज्ञा स्त्री० [सि०] वनस्पतिविशेष। (द्र० गु० पृ० ३३७)।

किन्नुब—संज्ञा पुं० [अ०] वनस्पतिविशेष। (द्र० गु० पृ० ३४८)।

किन्ने की गोंद—संज्ञा पुं० [द०, हि०] जिगन की गोंद।

किन्नेह—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] गन्धाविरोजा। खलबानी (यू०)। (डाइमॉक भा० २ पृ० १५३)।

किन्फिर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नासाग्र, नाककी फुनगी (नोक)। (२) नासाद्वार (नथुना) जो पर्याप्त वृहत् हो। कुशादा और बड़ा नथुना।

किन्न्या—संज्ञा पुं० [सुर०] कीकर। बर्वूर वृक्ष।

किन्न्यादून—संज्ञा पुं० [रूमी] कर्कट। केकड़ा।

किन्न्यान—संज्ञा पुं० [?] (१) वृन्ताक। बैगन। (२) वन वृन्ताक। बंनभटा। वृहती। कण्टकारी।

किन्न्यारीदास—संज्ञा पुं० [यू०] तेलनीमक्खी। तैल-मक्षिका। जरारीह।

किन्व—संज्ञा पुं० [अ०] छोहाड़े की खुशा।

किन्वान—संज्ञा पुं० [?] बैगन। वृन्ताक।

किन्शुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } ढाक। पलाश।

किन्शुकमु—[ते०] }

किन्हई—संज्ञा स्त्री० [म०] किनई। (सं०) कटभी। अल्बीज़िया प्रोसेरा (Albizia Procera)। दे० 'कटभी'।

किपरन—संज्ञा पुं० [हि०] श्योनाक। सोनापाठा। पृथुशिम्बी।

किफ्राफ़—संज्ञा पुं० [अ०] कर्णछोर। कान का किनारा। किनारः गोश।

किफ्रीज—संज्ञा पुं० [अ० बहुव० कफ़ज़ः] एक प्रकार का मान जो १ मन १। सेर १० माशा वा ३२४० तोला

के बराबर होता है।

किफ्रीज-हिजाजी—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो २७० तोला के बराबर होता है।

किपफः—संज्ञा पुं० [अ०] नवजात शिशु।

किबरीत—संज्ञा पुं० [फा०] गन्धक। गन्धपाषाण।

किबरीते अहमर—संज्ञा पुं० [फा०] (१) लाल गन्धक। (२) लाल मैनशिल।

किबाअ—संज्ञा पुं० [अ०] शूकर। सूअर।

किबाबः—संज्ञा पुं० [अ०] मत्स्यविशेष। एक प्रकार की मछली।

किबाब—संज्ञा पुं० [फा०] शीतलचीनी। कबाबचीनी।

किबार—संज्ञा पुं० [अ० बहुव० कब्र वा कबीर] कबर। करील भेद। दे० 'किन्नम'।

किबार—संज्ञा पुं० [यू०] कबर। करील। दे० 'किन्नम'।

किबारद—संज्ञा पुं० [यू०] } कनाबरी।

किबारद मब्दूस—["] }

किबारस—संज्ञा पुं० [यू०] छाल। त्वचा। (अं०) कॉर्टेक्स (Cortex), बार्क (Bark)। (अ) कश्त्र।

किबारीस—संज्ञा पुं० [यू०] किबारस।

किबालः—संज्ञा पुं० [अ०] धात्रीकर्म। दायगीरी। (अं०) मिडवाइफरी (Midwifery)।

किब्द अस्प—संज्ञा पुं० [अ०] अब्रेशम। कबिह अस्प।

किब्दः—संज्ञा पुं० [अ०] कबिद। खर्जतुल् हव्व।

किन्न—संज्ञा पुं० [फा०] कब्र। करील भेद। दे० 'किन्नम'।

किन्न की जड़—संज्ञा पुं० [हि०, फा०] वेख कब्र। (अ०)

अस्लूल कब्र। **परिचय**—एक प्रकार की लता है जो पृथ्वी पर फैलती है और इसमें खीरा के बराबर फल लगते हैं। इसके मूल को अरबी में बेखकिन्न वा अस्लूल किन्न कहते हैं। स्वाद कटु और स्वरूप श्वेत होता है। **प्रकृति**—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। **गुण-कर्म**—मूत्रल, वातज शोथविलयन एवं स्वच्छताकारक है। प्राणवायु अनुलोमक, कफ, वात एवं लसयुक्त दोषों का निर्हरण कारक, मस्तिष्कसम्बन्धी शीतजन्य विकारों में फलप्रद, गृध्रसी, अर्श, और उदररोग तथा शिवत्र में उपयोगी है। **हानिकारक**—वृक्क-वस्ति एवं आमाशय को। **प्रतिकार**—अनीसून, मधु, सिकंजीबीन।

प्रतिनिधि—जरावंददराज, और हींग।

मात्रा—६ माशा।

किन्नबीख—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'किन्न की जड़'।

किन्नम—संज्ञा पुं० [?]

एक जंगली अथवा पहाड़ी वृक्ष जिसकी शाखाएँ इतस्ततः परिविस्तृत और भ्रूलुण्ठित होती हैं। फूल सफेद, फल चने के बराबर होता है। इसकी छाल भी सफेद होती है और जड़ की छाल औषध के काम में आती है। यह स्वाद में तिक्त,

तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है; पिच्छिल दोषों, कफ और वायु को रेचन द्वारा निस्सरित करता है। इसकी मात्रा ४ मा० से ५ मा० तक है। इससे न्यून मात्रा में अवरोधोद्घाटक, स्वच्छताप्रद, शोथ विलीनकर्ता तारल्यजनक और शीतल मस्तिष्क-रोगों में लाभकारी है। (म० इ०) दे० 'किन्न की जड़'।

किब्रीत—संज्ञा पुं० [अ०] गन्धक। (अं०) (Sulphur)।
किब्रीते मुतरसब—संज्ञा पुं० [फा०] अधःक्षेपित गन्धक सल्फर।
किब्रीते मुसअद—संज्ञा पुं० [फा०] ऊर्ध्वपातित गन्धक।
किब्रीतेमुख—संज्ञा पुं० [फा०] (१) लाल गन्धक। (२) मैनसिल।

किमही—संज्ञा स्त्री० [पं०] अञ्जीर।
किमाद—संज्ञा पुं० [अ०, बहुव०] किमादात, अक्मीद।
पर्याय—टकोर। सेंक। परिषेक। (सं०)
उष्ण स्वेद। तप्त स्वेद। (अ०) तक्मीद। (हिं०) सेंकना।
टकोरना। (अं०) फोमेशन (Fomentation)।

किमाद खुश्क—संज्ञा पुं० [फा०] रुक्ष स्वेद।
किमी—संज्ञा स्त्री० [?] (१) विडंगमूल। (२) विस्फाज।
किमीजदान—संज्ञा पुं० [फा०] मूत्राशय। वस्तिस्थान।
मसानः। फुकनः।

किमु—संज्ञा पुं० [कु०] वनस्पति भेद। (द्र० गु०)।
किमुल—संज्ञा पुं० [हिं०] जीवल। जिगनी। जिगन। जिगना।
किम्ज—संज्ञा पुं० [अ०] अश्वीक्षीर। घोड़ी का दूध।
किम्पाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) महाकाल। कोंवर।
लाल इन्द्रायण। (२) कुचिला। कारस्कर। (वृ० नि० र०)।

किम्पाक फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुचले का फल।
किम्पालीन—संज्ञा पुं० [वर०] चिञ्चा। इमली। अम्लिका।
किम्बीर—संज्ञा पुं० [अ०] द्रव्यविशेष।
किम्बील—संज्ञा पुं० [अ०] कम्पिल। कबीला।
किम्बु—संज्ञा पुं० [नैपाल] वनस्पति भेद। बोला।
(आसाम)।

किम्बे—संज्ञा पुं० [वर०] सागू। माड़ी। सेगू। (मो० श०)।
किम्बरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नली नाम का गन्ध
द्रव्य। (श० च०)। नलिका।

किम्म (मः)—संज्ञा पुं० [अ०] वसा। चरबी।
किम्या—संज्ञा पुं० [?] जाति। चमेली। चम्बेली पुष्प।
कियः—संज्ञा पुं० [फा०] मस्तगी।
कियन-ए—संज्ञा पुं० [वर०] चक्रमर्द। चकवड़। पमाड़।
(मो० श०)।

कियान—संज्ञा पुं० [वर०] इक्षु। ईख।

कियाफः—संज्ञा पुं० [अ०] इलम कयाफा। स्वभाव-
परिच्छेदशास्त्र। वदनरेखाशास्त्र। फ्रिजिओग्नामी
(Physiognomy)। वह विद्या जिसके द्वारा

मनोवृत्ति का ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् मनुष्य के स्वरूप-
निरीक्षण मात्र से ही उसके मनोवृत्ति का ज्ञान होता है।

क्रियास—संज्ञा पुं० (अ०) (१) उठ जाना। खड़ा होना।
तत्पर होना। (२) दस्त आना। विरेचन होना।

क्रियाम कबिदी—संज्ञा पुं० [अ०] यकृतिय-अतिसार।
जिगरी दस्त। इसहाल कबिदी। वह अतिसार जो
यकृत की विकृति से उत्पन्न होता है। इस प्रकार का
अतिसार कभी यकृत दौर्बल्य के कारण और कभी यकृत
में विद्रधि (फोड़ा) उत्पन्न होकर, उसके फूटने से रधिर,
एवं पूयमिश्रित दस्त आते हैं। पर्याय—(अ०)-इसहाल-
कीर्ई, इसहाल मिदी। (अं०) हिपेटिक डायरिया
(Hepatic-Diarrhoea), डिसेण्ट्रिक डायरिया (Dysen-
tric-Diarrhoea)।

वक्तव्य—उपर्युक्त वर्णित अतिसार में रोगी को पुनः
पुनः उठना-बैठना पड़ता है। उठने-बैठने को अरबी में
'क्रियाम' कहते हैं। अतः इसी आधार पर यह नामकरण
किया गया है। दे० 'इसहाल गिसाई'।

क्रियार-पेओ (बो) स्न—संज्ञा पुं० [वर०] शैलेयज।
छड़ीला। पत्थर का फूल।

क्रियाव-पो-एड—संज्ञा पुं० [वर०] शैलेयज, छड़ीला।
पत्थर का फूल।

क्रियावर—संज्ञा पुं० [सं० कावार] काई। शैवाल। दे०
'काई' वा 'सेवार'।

क्रियास—संज्ञा पुं० [अ०] तर्क। अनुमान। अन्दाज।
अन्दाज लगाना। अटकल करना। अर्थात् दो वस्तुओं
के बीच में तुलनात्मक-विचार करना। तर्कशास्त्र
के अनुसार दो मिश्रित वाक्यों पर गम्भीरतापूर्वक
मीमांसा करने के पश्चात् परिणाम पर पहुँचना
पड़ता है।

रसायनशास्त्र के अनुसार—क्रियास (अनुमान)
व अयार का अर्थ किसी मिश्रण को किसी निश्चित परिमाण
तथा मात्रा व शक्ति पर निर्माण करना अथवा किसी
एक प्रमुख शक्ति के मिश्रण के बराबर उक्त शक्ति का
अन्य मिश्रण प्रस्तुत कर उनको एक दूसरे के साथ तुलना
करना होता है। पाश्चात्य रसायनशास्त्र में इस कल्पना
को स्टैण्डर्डिजेशन (Standardization) या स्टैण्डर्डिज
(Standardize) कहते हैं।

वक्तव्य—जब किसी प्रमुख शक्ति के योग वा मिश्रण
के बराबरी व अंदाज से किसी अन्य मिश्रण को प्रस्तुत
किया जाता है तब उसको अरबी की परिभाषा में 'क्रियास
व मियार' कहते हैं; किन्तु आधुनिक मिस्री चिकित्सक
भी इसको क्रियास व अयार शब्द से अभिहित करते हैं।
अनुमान तथा क्रियास का यह भी अर्थ होता है कि किसी
द्रव्य के बाह्य लक्षणों से उसके आन्तरिक वा गुप्त लक्षणों

के विषय में परामर्श किया जावे ।

भारतीय तर्कशास्त्र के अनुसार प्रमाण के ४ भेदों में से एक, जिसके द्वारा प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना होवे। इसके यह ३ भेद हैं:-

(१) पूर्ववत् वा केवलान्वयी, (२) शेषवत् वा व्यतिरेकी और (३) सामान्यतोदृष्ट वा अन्वयव्यतिरेकी।

क्रियासबिल् इस्तेहाला—संज्ञा स्त्री० [अ०] परिवर्तन संबंधी अनुमान।

क्रियास-नी-इड़—संज्ञा स्त्री० [वर०] आम्रहरिद्रा। अम्बाहल्दी। जंगली हल्दी। (मो० श०)।

क्रिया-सी—संज्ञा स्त्री० [वर०] इन्द्रवारुणी। इन्द्रायन।

क्रियासूस—संज्ञा पुं० [यू०] पर्पटक। पित्तपापड़ा। शाहतरा। (लु० क०)।

क्रियाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्रृगाल। गीदड़। स्यार।

(२) रक्तवर्ण अश्व। लालरंग का घोड़ा। (ज० द० ३ अ०; हे० च०)।

क्रियु वान-विड—संज्ञा पुं० [वर०] निर्गुण्डी। सम्हालु। मेउड़ी। नेगड़।

क्रियून-बहर(री)—संज्ञा पुं० [फा०, हिं०] जंगली अंजीर।

क्रियुलः—संज्ञा पुं० [विहार] कौला। संतरा। नागरङ्ग। नारंगी।

क्रियो-ड-खी—संज्ञा स्त्री० [वर०] फिटकिरी। स्फटिका। (मो० श०)।

क्रियो-ड यान-विड—संज्ञा पुं० [वर०] निर्गुण्डी। सम्हालु। नेगड़। (मो० श०)।

क्रिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूकर। सूअर।

क्रिरकअना—संज्ञा पुं० [यू०, सुर०] केशर। कुङ्कुम।

क्रिरकत—संज्ञा पुं० [अ०] मद्य। शराब।

क्रिरकल—संज्ञा पुं० [बं०] कंद विशेष। क्रिरकिन्वालु। (मे० मो०)।

क्रिरकस—संज्ञा पुं० [यू०] (१) केशर। कुङ्कुम (२)

शम्बूक। घोंघा। (३) सरस्स। (४) मुक्ताशुक्ति। मोती की सीप। (५) हलजून का एक भेद। (लु० क०)।

क्रिरकसम्—संज्ञा पुं० [तुर्की] उसरब (सीसा)। (लु० क०)।

क्रिरकाआ—संज्ञा पुं० [यू०] उशरक। (लु० क०)।

क्रिरकात्—संज्ञा पुं० [यू०] क्रातात (लु० क०)।

क्रिरकार—संज्ञा पुं० [अ०] कबूतर जो बगदाद में होता है। (लु० क०)।

क्रिरकावल—संज्ञा पुं० [अ०] पक्षी विशेष। लावा (त द र व)। (लु० क०)।

क्रिरकास—संज्ञा पुं० [अ०] फनक। (लु० क०)।

क्रिरकिचालु—संज्ञा पुं० [पुं०] कंद विशेष (Arum-curvatum)। एक कंद है जो घुइयाँ (अरुई) के सदृश

होता है।

क्रिरकिफ़—संज्ञा पुं० [अ०] } (१) मद्य। शराब।

क्रिरकिब— " ["] } (२) छोटा पक्षी।

क्रिरकिमान (क्रिरकमान)—संज्ञा पुं० (अ०)

काष्ठकृमि जो 'कीर' तुल्य होता है। वर्णन—

कार वा कीर की तरह एक वस्तु जो अरब में पुराने पेड़ों विशेषतः खजूर और गूगल वृक्ष के भीतर से निकलती है। किसी-किसी के अनुसार एक लकड़ी जो गूगल के पेड़ में से निकलती है। हजाजी, सईदी और अन्ताकी के कथनानुसार एक कृमिभक्षित पदार्थ है जो कतिपय पुराने पेड़ों में से मिलती है, विशेषतः गूगल के पेड़ में से।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष। किसी किसी के मत से अत्यंत शीतल और रुक्ष है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह जीर्ण अतिसार, रक्तस्राव एवं समस्त प्रकार के स्रावों का रुद्धक, मूत्रल एवं स्तन्यजनन है। इसको पीसकर दांतों पर मलने से मसूढ़े दृढ़ और सफेद होते हैं। इसे सिरके में पीसकर शरीर पर लेप करने से त्वचा कोमल होती है। (मरुजन, मुहीत)।

क्रिरकीमू—संज्ञा पुं० [यू०] कर्कट। केकड़ा। दे० 'क्रिरकिमान'।

क्रिरकिरा—संज्ञा पुं० [?] वनस्पति भेद। (डाइमाक भ० ३, पृ० २७५)।

क्रिरकिरा—संज्ञा पुं० [अ०] किरकिरा।

क्रिरकिरा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पक्षी—(वक) बगला है जो साधारण बगला से बड़ा होता है। इसके पाँव बड़े-बड़े और आँखें रक्तवर्ण की होती हैं जिनके निकट कालापन होता है। शरीर धूम्रवर्ण का होता है।

प्रकृति—इसका मांस उष्ण एवं रुक्ष होता है।

गुण-कर्म—इसके सेवन से शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है।

और मैथुनेच्छा की वृद्धि होती है। यह लघुपाकी है तथा वातनाडियों की शक्ति को बढ़ाता है।

क्रिरकीमू—संज्ञा पुं० [यू०] कर्कट। केकड़ा। (लु० क०)।

क्रिरकुन्दी—संज्ञा स्त्री० [म०] किर्कुन्दी। (ले०) जेट्रोफा नेना।

क्रिरकू—संज्ञा पुं० [य०, सुर०] (१) केशर। कुङ्कुम। (२) सातर तुर्की।

क्रिरकूगमा—संज्ञा पुं० [यू०] } केशर के तेल की गाद,

क्रिरकून— " ["] } (तेल छट),

क्रिरकूमगमा— " ["] } तेल किट्ट।

क्रिरकूमगामा— " ["] } (लु० क०)।

क्रिरकूफ—संज्ञा पुं० [अ०] मद्य। शराब।

क्रिरकूस—संज्ञा पुं० [यू०] रातीनज। सनोवर वृक्ष की

गोंद। (लु० क०)।

कि (क) रगदन—संज्ञा पुं० [फा०] गण्डक जन्तु। गैंडा।
(अ०) जरीश।
किरगोस—संज्ञा पुं० [म०] खरगोश। शशक।
किरङ्ग—संज्ञा पुं० [?] वनस्पति विशेष।
किरटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़। कुसुम्भ बीज।
(वै० निघ०)।
किरटीमारी—संज्ञा स्त्री० [कों०] सुखदर्शन। सुदर्शन।
किरण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] प्रकाश की किरन
अर्थात् ज्योतिशिखा। रश्मि। (Ray of Light)।
किरथी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रसोनभेद। लहसुन का
एक भेद। (डाइमाक ३ भा० पृ० ४८९)।
किरन—संज्ञा पुं० [सं० किरण] दे० 'किरण'।
किरन—संज्ञा पुं० [अ०] शृंग। सींग।
किरनकार—संज्ञा पुं० [अ०] करोया। जंगली जीरा।
कृष्ण जीरक।
किरनखुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] हिरनखुरी लता।
कि (क) रनब—संज्ञा पुं० [अ०] मूषिक। घूँस।
किरनवा—संज्ञा पुं० [अ० किर्नवाद] करोया। कृष्ण जीरा।
वनजीरक। अरग्यजीरक। जंगल जीरा।
[यू०] (१) करमकल्ला। (२) हुम्माज खुर्द।
(३) राजमाष। लोबिया। रतड़ा। वोड़ा। (लु० क०)।
किरनवा-अगरिया—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली कनब।
(लु० क०)।
किरना—संज्ञा पुं० [अ०] शृंग। सींग।
किरनावेला—संज्ञा पुं० [?] सावरशृंग। वारहसिंगा
की सींग।
किरनफल (करन्फुल)—संज्ञा पुं० [अ०] लवंग। लौंग।
किरनियून—संज्ञा पुं० [यू०] शाहबलूत।
किरनी—संज्ञा स्त्री० [म०=वम्ब०। सं० क्षीरिणी] (१)
खिरनी। राजादन वृक्ष। खीरखजूर। (२) (म०) वृक्षभेद।
(ले०) केन्थिअम् पार्वीफ्लोरम्।
किरनीफल बुस्तानी—संज्ञा पुं० [अ०] वर्ग फिरञ्जमुखक।
फणझकपत्र। (डाइमाक भा० २, पृ० २१०)।
किरनीफल शामी—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का क्षुप,
जिसकी पत्तियाँ वनफशा की पत्तियों के समान तथा पुष्प
श्वेत सुगन्धपूर्ण होता है।
किरनुबकर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृषभ शृंग।
बैल की सींग। (२) शुष्क मेथी। (लु० क०)।
कि (क) रनुल्-अनज—संज्ञा पुं० [अ०] छागशृङ्ग। बकरे
की सींग।
कि (क) रनुल् बुझ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कहरुवा।
तृणकान्त। (२) प्रवाल। मूंगा। मर्जी।
कि (क) रनुल्-माअज—संज्ञा पुं० [अ०] छागशृंग। बकरा
की सींग।

कि (क) रनुल्हरबीब—संज्ञा पुं० [अ०] गण्डकशृंग। गैंडे
की सींग। (फा०) शाखकरगदन।
कि (क) रनुस्सौर—संज्ञा पुं० [अ०] वृषभ शृंग। बैल
की सींग।
किरनूस—संज्ञा पुं० [रूमी] हाऊवेर।
किरनूस-कालून—संज्ञा पुं० [रूमी] चिलगोजा।
किरनूह—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'हरनूह'।
किरनेली—संज्ञा स्त्री० [मायसूर] (१) लवली। हरफारी।
हरफारेवड़ी। (२) भुईआँवला।
किरनेल्लि-गिडा—संज्ञा पुं० [कना०] भूम्यामलक।
भुईआँवला।
किरन्तिया—संज्ञा पुं० [सुर०] रोचनी। पुदीना।
किरन्तिया-दन्तियास—संज्ञा पुं० [सुर०] नहरी पुदीना।
किरन्तिया-देरा—संज्ञा पुं० [सुर०] जंगली पुदीना।
किरन्तिया-रमया—संज्ञा पुं० [सुर०] नहरी पुदीना।
किरन्तिया-वतूरा—संज्ञा पुं० [सुर०] पहाड़ी पुदीना।
किरन्तिया-वफज अलान—संज्ञा पुं० [सुर०] क्षेत्रजरोचनी।
क्षेत्ररोचनिका। खेत में होनेवाला पुदीना। दे० "पुदीना"।
कि (क) रन्फुल—संज्ञा पुं० [अ०] लवंग। लौंग।
किरफः—संज्ञा पुं० [अ०] तज।
किरफतुद्दरसीनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] दालचीनी। गुडत्वक्।
किरफतु—संज्ञा पुं० [अ०] मदिरा। मद्य। शराब।
किरफहे सेलानिया—संज्ञा पुं० [अ०] दालचीनी। गुडत्वक्।
किरफियूनस—संज्ञा पुं० [यू०] } केशर। कुङ्कुम।
किरफयूनस— " " [यू०] }
किरब—संज्ञा पुं० [सिंध] करीर। करील। किर्र।
किरबाग—संज्ञा पुं० [तुर्की] भेक। मेढक। मण्डूक।
(अ०) फ्रॉग (Frog)।
किरबिनून—संज्ञा पुं० [यू०] सीतासोपारी। बलूत।
किरबियून—संज्ञा पुं० [यू०] मत्स्य। मछली।
किरबूत—संज्ञा पुं० [अ०] वनस्पति विशेष (डाइमाक
भा० २ पृ० ६४)।
किर बू (बो) ला—संज्ञा पुं० [?] लबलाव भेद।
किरम—संज्ञा पुं० [नैपाल] (१) पोई। धामन। गर्त शियार।
(मे० मो०)। (२) (सिन्ध०) करीर। करील।
(३) (फा०) कृमि। कीट।
किरम-अब्रेशम—संज्ञा पुं० [फा०] रेशम का कीड़ा।
कोशकीट। कोशकृमि। किसारी। दे० 'कुसियारी'।
किरमआ- (किरम मास) संज्ञा पुं० [फा०] कच्छप। कछुआ।
किरम-आयूब—संज्ञा पुं० [फा०] जुबुलुवहर का एक
भेद। समुद्रफेन का एक भेद।
किरम आबरेशम—संज्ञा पुं० [फा०] कोशकृमि। रेशम का
कीड़ा। किसारी। दे० 'कुसियारी'।
किरमए बैजा—संज्ञा पुं० [फा०] द्राक्षा जो अंडाकार

होती है। (फा०) फाशरा। (Vitis Alba)
किरमए शौकः—संज्ञा पुं० [फा०] कीट विशेष। फशाग
(लु० क०)। दे० 'खटमल'।

किरम गिलखुर्दः—संज्ञा पुं० [फा०] गण्डूपद। केचुआ।
भूलता। भूनाग।

किरम चोब—संज्ञा पुं० [फा०] काष्ठकीट। काष्ठकृमि।
लकड़ी का कीड़ा। सूस अंशव।

किरम जमीन—संज्ञा पुं० [फा०] भूनाग। गण्डूपद। केचुआ।
किरमजा—संज्ञा स्त्री० [गु०] इन्द्रवधु। इन्द्रगोप। वीर-
वहूटी। वीरवधु।

किरमञ्जी अजवान—संज्ञा पुं० [गु०] अजवाइन खुरासानी।

किरमट्टी—संज्ञा स्त्री० [सि०] गैरिक। गेरू मिट्टी।

किरमतान—संज्ञा पुं० [?] किरमदार। लकड़ी का कीड़ा।

किरम दरख्त काज—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का
कीट जो सनोवर के वृक्ष में होता है।

किरमदया—संज्ञा पुं० [?] सुधापाषाण। चूने का पत्थर।

किरमदानः—संज्ञा पुं० [फा०] } पर्याय—

किरमदाना— " [हि०] }

(अ) हव्वुल् दूद। परिचय—एक प्रकार का बीज जो
कृष्ण वर्ण का होता है और उसका उभय छोर नोक-
दार होता है। स्वाद—कटु होता है। प्रकृति—प्रथम कक्षा
में उष्ण एवं रुक्ष है। गुण-कर्म तथा उपयोग—पैत्तिक
मलविरेचनीय, उदरीय कृमिनाशक, योनिशोधक तथा
योनि में उष्णता उत्पन्न करता है। भाषा में इसको
'किरली' भी कहते हैं।

किरमदार—संज्ञा पुं० [?] किरमतान। (लु० क०)।

किरम बादामियः—संज्ञा पुं० [फा०] रेशम का कीड़ा।
कोषकार कीट। किसारी। दे० 'कुसियारी'।

किरम बेर—संज्ञा पुं० [ते०] लवंग। लौंग।

किरम-मखमल—संज्ञा पुं० [फा०] वीरवधू। इन्द्रगोप।
वीरवहूटी।

किरम रसदान—संज्ञा पुं० [फा०] माहूदाना।

किरम रंगरेजा—संज्ञा पुं० [फा०] कोचनील। किरमि-
जदाना। कोक्कस कोई।

किरमल—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का वृक्ष जिसमें
कांटे नहीं होते। (लु० क०)।

किरम-शबताब—संज्ञा पुं० [फा०] खद्योत। ज्योतिर्गण, जुगनू।

किरम सरगीन—संज्ञा पुं० [फा०] कीट भेद—जअल।
गुवरैला (लु० क०)।

किरम सुख—संज्ञा पुं० [फा०] कोचनील। किरमिजदाना।

किरम सौदा—संज्ञा पुं० [फा०] फाशरस्तीन।

किरम माअ—संज्ञा पुं० [अ०] } कच्छप। कछुआ।

किरमाआ— " ["] }

किरमाई—संज्ञा स्त्री० [सुर०] शुकाई। हेमलाक।

किरमाणी अजमो—संज्ञा पुं० [गु०] } किरमाला।

किरमाणी ओवा— " [वम्ब०]

किरमाणी अजवान— " [म०]

किरमाणी अजवायन— " ["]

किरमाणी अजमो— " [गु०]

किरमाणी ओवा— " [म०]

किरमादन—संज्ञा पुं० [यू०, रू०] प्याज। पलाण्डु।

किरमानियून—संज्ञा पुं० [यू०] अजवाइन। उकहवान।
(लु० क०)।

किरमाफीतस—संज्ञा पुं० [यू०] गण्डूपद। भूनाग।
भूलता। केचुआ।

किरमारस—संज्ञा पुं० [यू०] क्रातिल अव्यः। (लु० क०)।

किरमारा—संज्ञा पुं० [हि०] करवीर। कनेर। हयमार।

किरमारीस—संज्ञा पुं० [यू०] कुतलव। (लु० क०)।

किरमाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'किरमाल'।

किरमाला—संज्ञा पुं० [वम्ब०] (१) करञ्ज, (२) आरवध।
अमलतास।

किरमाला—संज्ञा पुं० [हि० किरमारा]¹

पर्या०—(सं०) चौहार, किरमाणी, यवानी, छ्वारः;
(हि०) किरमाला, किरमानी (णी) अजवायन, छुहारी
जवाइन, जौहरी अजवाइन, अजवायन किरमानी, जंगली
अजवायन, छवारी अजवायन, जौहरी जवाइन; (अ०)
शीह, दिर्मन; (फा०) अफसन्तीनुल् वहर; (यू०) सेरीफोन;
(मरा०; वम्ब०)। किरमाणी अजवान, किरमाणी ओवा,
चोर ओवा; (पश्तो) तर्ख; (गु०) छुवारो, किरमाणी अजमो,
छुवारी अजमोद; (ले०) आर्टीमिसिया; मरीटीसा (Artemisia Maritima Linna; (अं०) वर्म सीड Worm-
seed, सेन्टोनिफा Sontonica; (फा०) सीमेन साइन,
बार्वो टाइन (Semencine, Barbotine)।

अर्थ एवं व्युत्पत्ति आदि विषयक टिप्पणी—

इसकी किरमाला संज्ञा 'किरमान' शब्द का, जो फारस
में एक प्रदेश है और जहाँ से उक्त ओषधि भारतवर्ष
में आती है, अपभ्रंश है। यह कृमिघ्न बतलाया जाता है।
तालीफ़ शरीफ़ी और मुहीत में यवानी व यावानी
शब्द में जो शुद्ध यवानिका वा यवानी (यथा-यवानिका
यवानीस्याच्चौहारो जन्तुनाशनः) है, लिखा है कि जौहार
(शुद्ध 'चौहार' है) का नाम है और वह किरमानी
अजवायन है। मरूजन में इसकी यूनानी संज्ञाएँ सारीकून²
तथा अकदीना (अकदूनिया) लिखी हैं।

(१) पारस्या यावनीगंधा छ्वारोजन्तु विनाशकः।

(राजनिघण्टुः)

पाठभेदः—यवानिका यवानी स्याच्चौहारो जन्तु-
नाशनः।

(राजनिघण्टुः)

(२) सारीकून वा सरीकून का शुद्ध यूनानी रूप 'सरीफून' है।

शजरा और सीताबहर और फ़ारसी दिरमन: लिखी हैं। मुहीत में इनके सिवा एक यूनानी संज्ञा सोरबियून लिखी है। परन्तु उसी ग्रंथ में शीहअरमनी के लिए भी इस शब्द का व्यवहार किया है, जिससे भ्रम उत्पन्न हो सकता है। शीह और दिरमन: पर्यायवाची शब्द हैं और शीहअरमनी शीह का एक उपभेद है। मुहीत में इसकी सिरियानी संज्ञा अबरूता, बरूमी और अबरीतून लिखी है और शजरतुशयूख यह अरबी संज्ञा भी लिखी है। मरूजन में शीह और मुहीत में दिर्मन: शब्द में इसका वर्णन आया है। मुहज्जिबुलइस्मा में शीह का बहुवचन अशियाह लिखा है।

शीह के परिचय विषयक मतभेद और उनका निराकरण—(१) किसी-किसी के मत से यह अश्रास है जिसकी जड़ खुन्सा कहलाती है; (२) किसी-किसी के मत से दिर्मन:तुर्की का एक भेद है; (३) अन्य मत से यह स्वयं दिर्मन:तुर्की ही है; (४) मतांतर से यह एक प्रकार का अफ़सन्तीन है; (५) शैख ने कानून में और दूसरों ने भी लिखा है कि इसके ये तीन भेद होते हैं—(क) एक कँटीला उद्भिद है जिसके पत्र सरो के पत्र की तरह होते हैं और लकड़ी खोखली होती है। यह धूनी के काम आती है। (ख) पत्र झावुक-पत्रवत् होते हैं। (ग) इसका रंग पीला होता है। इसको यूनानी में सरीफून (सरीकून?) कहते हैं। अफ़सन्ती-नुल्बहरी यही है। (६) किसी-किसी ग्रंथ में लिखा है कि शीह एक घास है जो सोए के बराबर ऊँची होती है। इसके पत्ते क्षुद्र और कोमल सुदाव के पत्तों की तरह होते हैं। कुछ पत्तों का रंग पीताभ और कुछ का रंग मैला होता है। फूल पीला और लाल होता है और स्वाद तिक्त होता है। इसके ये तीन भेद होते हैं—

(क) इसका फूल पीताभ और पत्ते सुदाव के पत्तों की तरह और पेड़ सोए के पेड़ से छोटा होता है। इसे शीह अरमनी कहा करते हैं। (ख) इसका रंग भगमैला और बीज कुशूस के बीज की तरह एवं पेंदार होते हैं। फूल पीला होता है। स्वाद में यह तिक्त होता है। इसे पहाड़ी शीह (शीह जबली) और यूनानी में अक़लियून कहते हैं। (ग) इसके पत्ते चौड़े और फूल लाल होते हैं। इसे शीह खुरासानी वा शीह तुरकी कहते हैं। दे० 'दिर्मन: तुर्की'।

इसके केवल पुष्प औषध के काम आते हैं, शेष भाग को जलाया करते हैं। उनमें पीला और अरमनी सर्वोत्तम है। किसी-किसी ग्रंथ में लिखा है कि यह बनों और पर्वतों में होता है। उनमें पहाड़ी तीव्र और अधिक बलवान् एवं गुणकारी होता है। इसी को अरमनी कहते हैं। यह सर्वश्रेष्ठ है। इसके बाद खुरासानी, फिर वह जंगली

भेद जो श्वेताभ हो। यह श्याम देश में और हिन्दुस्तान में भी होता है। भारतीय शीह को जोहरी जवाइन कहते हैं। फ़ारसी में इसे दिर्मन: कहते हैं। परन्तु दिर्मन: तुर्की इससे भिन्न है, जिसका वर्णन दिर्मन: शब्द में अवलोकन करें।

वर्णन—इसके अविकसित पुष्प-स्तवक (Santonica) और उससे प्राप्त सत्व सेंटोनीन (Santonin) औषध के काम आते हैं। इसके फल इतने क्षुद्र होते हैं कि लगभग १० फूल की तौल मिलकर आध रत्ती के बराबर होती है। पुष्पकलिका एक इंच का दशमांश लंबी, दोनों ओर तर्जकार वा दीर्घायताकार (Elliptical or oblong), नवीन हरिताभ पीत और पुरानी देरकी रखी हुई धूसर वर्ण की होती है। देवने से बीज की तरह जान पड़ती है। परन्तु वे फूल की पंखड़ियाँ होती हैं जो अविकसित अवस्था में एक दूसरे पर लिपटी रहती हैं और संख्या में १२-१८ तक और गुलाबी होती हैं। गंध विशेष प्रकार की तीव्र एवं प्रिय किसी भाँति कपूर वा कायापुटी के तेल की गंध से मिलती हुई होती है और स्वाद सुरभित तिक्त होता है। सेंटोनीन वा सेंटोनीनम् का व्यवहार अधिकतया एल्लोपैथीय चिकित्सा में होता है। भारतवर्ष में अफ़गानिस्तान और फारस से इसका अधिक परिमाण में आयात होता है।

इतिहास—यद्यपि किरमाला भारतवर्ष में होता है, फिर भी जहाँ तक ज्ञात होता है आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों, यथा, चरक, सुश्रुत और वाग्भट में किरमाणी का उल्लेख नहीं मिलता, पर नवीन ग्रंथ भावप्रकाश में अवश्य मिलता है। कोई-कोई इसका संस्कृत नाम गदाधर बतलाते हैं, परन्तु निघंटुओं में इसका यवानी के पर्यायों में अन्तर्भाव हुआ है। दीसक्रीदूस ने सेरीफोन *aepiφov* और अप्सीन्थीओन थल्लस्सीओन *αψιθ* *ιουθαλλαοδίου* संज्ञाओं से शीह वा अफ़सन्तीनुल् बहर (A. Maritima) का उल्लेख किया है। यूनान और रोमनिवासी इसका उपयोग आन्त्रस्थ कृमियों के निस्सरणार्थ करते थे। संभवतः इसका ज्ञान सर्वप्रथम मिश्रनिवासियों को हुआ, ऐसा प्लाइनी का अभिमत है। अरब और पारस्य देशीय चिकित्सकों ने शीह, सरीफून और अफ़सन्तीनुल्बहर नाम से इसका उल्लेख किया है। सरीफून को मरूजन और मुहीत के लेखक ने भूल से सरीकून वा सारीकून लिखा है। मुसलमान चिकित्सकों ने इसके गुणधर्म लिखने में प्रायः यूनानियों का ही अनुसरण किया है। भारतीयों को इसका ज्ञान संभवतः मुसलमान चिकित्सकों द्वारा ही प्राप्त हुआ।

प्रकृति—द्वितीय वा तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष अथवा तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष। परंतु शैख का कथन इसके विरुद्ध है अर्थात् उनके अनुसार यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय में रूक्ष है। **अहितकर**—शिर, आमाशय और वातनाडियों वा पुटों को हानिप्रद है एवं शिरोशूलकारक है। इसका काढ़ा पीने से उत्क्लेश उत्पन्न होता है। **निवारण**—गस्तगी, तुर्मुस, वनफशा, वमन के लिए शर्वत रेवास, शर्वत तुरज्ज और शर्वत नञ्जन्। **प्रतिनिधि**—समभाग अफसंतीन, सुदाव, अर्धभाग पुदीना, वहमन, उदरज कृमियों के लिए अर्धभाग कमीला वा वायविडंग। **मात्रा**—पौने दो माशे से ९ मा० तक और विष-निवारणार्थ १०॥ मा० पर्यंत।

ग्रह—मंगल। **विशिष्टकर्म**—श्लेष्मछेदक, वातानुलोमक और मलोत्सर्गकर्ता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ६३ प्र० श० भस्म, भस्म में (चूना) तथा यवक्षार होते हैं। पुष्पों में सेन्टोनीन नाम का एक क्षारस्वाभावी सत्व होता है। नूतनावस्था में श्वेत, किन्तु पुरातनावस्था में पीत वर्ण में परिवर्तित हो जात है। इसमें एक प्रकार का तेल भी होता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—शीह अवरोधोद्घाटन करती, कफ को छाँटती और वायु का अनुलोमन करती है, दुष्ट दोषों का रेचन द्वारा उत्सर्ग करती, मलों का प्रवर्त्तन करती तथा खाने और प्रलेप करने से हर प्रकार के कृमियों को निस्सरित करती है। वृश्चिक-दंश एवं रूतैला-दंश तथा शीतल विषों, कृच्छ्रश्वास, मरोड़, हिवका, कूहे का दर्द (दर्द वरिक) और मिलितदोषजन्य ज्वरों में इसके पीने से उपकार होता है। संशोधन के उपरांत इसके काढ़े से स्वेदन करने एवं यथाविधि अभ्यंग करने से कफज नेत्राभिष्यंद और समस्त प्रकार के प्रगाढ़ कफज शोथ आराम होते हैं। इसकी राख को जैतून वा सोसन के तेल में फेंटकर बालखोरे पर लेप करने से खालित्य का नाश होता है और बाल शीघ्र जम आते हैं। इसकी राख को मांसखोरे (आकिलः) पर अवचूर्णित करने से उपकार होता है। गुलरोगन की भाँति तैयार किया हुआ इसका तेल कृच्छ्रश्वास, शीतपूर्वज्वर (हुम्मयात लर्जः), शीतजनित व्याधियों, आमाशय शोथ, जलोदर, वृश्चिक एवं रूतैला के दंश—इन व्याधियों में तथा स्फीतकृमि वा कद्दूदाने को निकालने और मांसरोहण के लिए उपकारी है। (मखजन)

सभी प्रकार की शीह वातानुलोमक, छेदक, मार्दवकर और शामक है। यह अफसंतीन की अपेक्षा कम संग्राही, किन्तु उससे अधिक उष्ण है। इसमें किंचित् खारापन

लिये अत्यधिक कड़ुआहट होती है। भाष्यकार गाजरूनी के कथनानुसार शीह द्वितीय कक्षांत वा उसके मध्य में उष्ण है और अफसंतीन द्वितीय कक्षा के प्रारंभ वा मध्य में उष्ण होगा। कहते हैं कि यह तीव्रगंधी है और उष्णवीर्य के कारण इसमें अवरोधोद्घाटन और कब्ज करने की शक्ति है। इसलिये यह श्रेष्ठ रोमसंजनन औषधि है। इसको जलाकर जैतून वा कड़ुए बादाम के तेल में मिलाकर बालखोरे (खालित्य) पर लगाने से बहुत लाभ होता है। इसकी राख को हर प्रकार के तेल में मिलाकर अभ्यंग करने से शिरोखालित्य वा सिर का गंज आराम होता है और उस पर बाल उग आते हैं। यदि दाढ़ी देर में आये या छोटी हो, तो इसके लगाने से जल्द आ जाती है। यह ७ मा० जलाकर और छोटी दाढ़ी पर अभ्यंग करने से वह लंबी हो जाती है। यह उसका प्रभाव है। सूक्ष्मता (लताफत) और संक्षोभ के कारण शरीर के छिद्रों को विस्फारित करके बाल-पोषक द्रव्य को अभिशोषित करती है। इसके लगाने से शोथ और व्रण आराम हो जाते हैं। यदि शरीर की त्वचा फटकर छिलके की भाँति उतरने लगे, तो इसकी राख को जैतून के तेल में मिलाकर लगाने से उपकार होता है। इसकी राख को मांसखोरे (आकिलः) पर बुरकने से लाभ होता है। इसका तेल लगाने से सिर गरम हो जाता है। इसके पानी से आँख को स्वेदित करने से शीतजन्य नेत्राभिष्यंद की सूजन उतर जाती है। इसका काढ़ा पीने से कृच्छ्रश्वास और पेट की मरोड़ मिट जाती है। इसके खाने और पेट पर लगाने से कद्दूदाने (स्फीतकृमि) मरकर निकल जाते हैं। बकरा इसे चरने से मोटा होता है। (मुहीत)

यदि पौने दो माशे का चूर्ण मुर्गी के अंडे के साथ खांय तो इसके प्रभाव से कृमि निस्सरित हो जायँ। इसमें मूत्र और आर्त्तव प्रवर्त्तन की शक्ति अफसंतीन से अधिक है।

मखजनुल् मुफ़रदात में यह अधिक है—यह सूजन उतारती, मूत्र और आर्त्तव का प्रवर्त्तन करती, प्रकृति को कोमलता प्रदान करती, माँह को समप्रकृतिस्थ (मोब्-तदिल् किवाम) बनाती, कामोद्दीपन करती और मूत्रावरोध मिटाती है। मुँह की खुजली में इसकी चुटकी गुणकारी है। यह झाँई मिटाती है, इसके लेप से बिच्छू का जहर उतर जाता है। इसके सेवन से शीतवीर्य विषों का प्रभाव नष्ट होता है। इब्नजुहर के कथनानुसार शीह का ताजा स्वरस दृष्टि को तीव्र करता है। जिस दिन शिशु प्रसव हो, उसी दिन उसे शीह अरमनी चटा देने से पुनः वह किसी चीज से भय नहीं खाता।

शीह का तेल

इसे सिर में लगाने से सिर में गरमी आती है। इसे पीने से आमाशय को उष्णता प्राप्त होती है, हिक्का शमन होती है और आमाशयगत सांद्र वायु का अनुलोमन होता है। इसे पीने से दूषित और पिच्छिल दोषों का रेचन द्वारा उत्सर्ग होता है, श्लेष्मा का छेदन होता है और अवरोधों का उद्घाटन होता है। इससे उदर-कृमि और स्फीतकृमि मर कर निकल जाते हैं और मरोड़ बंद हो जाती है। इसके पीने वा नाभि पर लेप करने वा अकेले या चावल के साथ पकाकर शहद मिलाकर पीने से स्फीतकृमि मृतप्राय होते और रेचन द्वारा मल के साथ निकल जाते हैं। मसूर के साथ पकाकर खाने से भी उक्त लाभ होता है। इसके अभ्यंग से पृष्ठ और कूल्हों की वेदना आराम होती है। ज्वर के वेग से पूर्व इसके अभ्यंग से शीत एवं वेपथु आदि लक्षण प्रगट नहीं होते। यह कृच्छ्रश्वास और जलोदर में लाभकारी है और मिश्रदोषजनित ज्वरों को दूर करती है। इसे लगाने से व्रणपूरण होता है। इसे विच्छू के दंश पर लगाने से उपकार होता है। (मुहीत)

वैद्यक के मत से—गुण में यह अजवायन के समान है, परंतु उदरज कृमि (मुहीत) वा स्फीतकृमि (ता० श०) नाश करने का गुण इसमें अजवायन से बहुत अधिक है। प्रबल कृमिघ्न है। (ता० श०, मुहीत)।

नव्यमत

डीमक—It is prescribed (by Arabian or Persian physicians) in doses of 2 to 3 dirhems as an anthelmintic, and also as a deobstruent and stomachic tonic. In the form of a poultice they use it to relieve the pain caused by the bites of scorpions and other venomous reptiles. (Pharm. In. pt. 11. p. 288.)

किरमालादि क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वरचिकित्सा में प्रयुक्त कषाय। **निर्म्माण-विधि**—किरमाला, वच, हींग, सुगन्धबाला, धनियाँ, हल्दी, मोथा, मलेठी, भारंगी तथा पित्तपापड़ा, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर काढ़ा करे। जब अष्टमांश शेष रहे मधुयुक्त सेवन कराए। उचित प्रमाण में सेवन करने से तथा पथ्य-पूर्वक रहने से—कफपित्त ज्वर शांत होता है। (वृ० नि० २० ज्व० चि०)।

किरमालो—संज्ञा पुं० [गु०] दे० 'किरमाल'।

किरमिज—संज्ञा पुं० [अ०] किरमिजदाना। कोचनील। (मो० आ०)। (ले०) कोक्कस केकटाई।

किरमिजदाना—संज्ञा पुं० [फा०] किरमिज। कोचनील।
किरमिजी अजवाइन—संज्ञा स्त्री० [द०] जंगली अजवाइन (ब०) वन यामम। वन जोवान। (Scseli Indicum)।

किरमिजुल् मादनी—संज्ञा पुं० [अ०] खनिजद्रव्य विशेष।

किरमिया—संज्ञा पुं० [?] तुल्य। तूतिया।

किरमियून—संज्ञा पुं० [यू०] नदीज मत्स्य। दरियाई मछली। (लु० क०)।

किरमिरा—संज्ञा पुं० [बम्ब०] वन निम्बु। गिरगिट्टी। पोटाली। (मे० मो०)।

किरमिल—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का कण्टकविहीन वृक्ष। (लु० क०)।

किरमोद—संज्ञा पुं० [यू०] इष्टिका। ईंट। (लु० क०)।

किरमुकम्—संज्ञा पुं० [ता०। सं० क्रमुक] क्रमुक। पूग। दे० 'सुपारी'।

किरमूद—संज्ञा पुं० [अ०] गजयान का फल। (लु० क०)।

किरम्बर—संज्ञा पुं० [ता०] } लवंग। लौंग।

किरम्बु— " " " } लवंग। लौंग।

किरयात—संज्ञा पुं० [सं० किरात] कालमेघ। कलफनाथ। (डाइमॉक भा० ३, पृ० ४६)।

किरयातो—संज्ञा पुं० [गु०=सं० किरात] कालमेघ। कलफनाथ।

किरर—संज्ञा पुं० [हि०] कर्कोटकी। ककोड़ा।

किरल—संज्ञा पुं० [पं०, म०, सिंध०] करील।

किरली—संज्ञा स्त्री० [हि०] (१) कालादाना। (२) किरमाला।

किरलु—संज्ञा पुं० [का०] पर्याय—(पं०) कुकरी, किरकी (मे० मो०)।

किरलुल् निफूख—संज्ञा पुं० [तुर्की] पक्षी विशेष। दे० 'अबावील'।

किरवा—संज्ञा पुं० [?] लबलाब। (लु० क०)।

किरवातू—संज्ञा पुं० [सं० किरात] भूनिम्ब।

किरवारा—संज्ञा पुं० [हि०] } (१) अमलतास।

किरवारो— " " [गु०] } आरग्वध।

(२) किरमाला। गिरिमाला।

किरबाल—संज्ञा पुं० [यू०=सं० प्रवाल] मूंगा। बुसुद। प्रवाल।

किरवालियून—संज्ञा पुं० [यू०=सं० प्रवाल] मूंगा। प्रवाल। बुसुद।

किरवाली—संज्ञा स्त्री० [हि०] आरग्वध। अमलतास। (डाइमॉक, भा० २, पृ० ५११)। दे० 'किरमाल'।

किरसेल—संज्ञा पुं० [म०] पाटला। पाढ़ल। पाडर। पाडरी। (मे० मो०)।

किरा—संज्ञा पुं० [सुर०] कद्दू। अलाबु।

किराअत—क्रि० [अ०] पढ़ना तथा किसी अक्षर को मुख

द्वारा उच्चारण करना।

किराआस-काफालूतन—संज्ञा पुं० [यू०] } शमी
किराआस-बाबालूतन— " ["] } गन्दना।

किराइत—संज्ञा पुं० [म० = सं० किराततिक्त] भूनिम्ब।
चिरायता। कालमेघ। दे० 'चिरायता'।

किराकः—संज्ञा पुं० [अ०] वृक्षजटा। (लु० क०)।

किराकहत—संज्ञा पुं० [तुर्की, सिराजी] रखवीन। मसल।
(लु० क०)।

किराकाज—संज्ञा पुं० [?] दरदारफल। देवद्रुफल।

किराकिनूस—संज्ञा पुं० [यू०] उश्तरगाज। (लु० क०)।

किराकूस—संज्ञा पुं० [तुर्की] गिद्ध पक्षी। उकाव।

किराचौरफआऊदी—संज्ञा पुं० [तुर्की] उपकुञ्चिका।
कलौजी। मगरैल। शोनीज।

किराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शुक,
तोता। (२) सारिका। मैना।

किरात (क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भूनिम्ब। किरात-
तिक्त।

पर्याय—(सं) अनाय्यतिक्त, किरातक, भूनिम्ब,
चिरतिक्त, तिक्तक, सुतिक्त (शब्द० र०), चिराटिका,
कटुतिक्त, रामसेवक, (ज०), किरातम्, कैरातम्,
काण्डतिक्तक (र० मे०), कैरात, हैम, काण्डतिक्त
(च० द० पित्त० ज्व० चि०)।

गुण—तिक्त, वात, कफ, पित्तज्वरघ्न, व्रणरोपण,
कुष्ठ, कण्डू, शोष(यक्ष्मा)नाशक तथा पथ्य है।
(रा० नि० व० ९)। शीतल, रुक्ष, लघुपाकी, सारक,
सन्निपातज्वर, तृष्णा, शोथ, कास, श्वास, रक्तविकार,
दाह, कुष्ठ, ज्वर, कृमि, कफ, पित्तज्वर तथा व्रणनाशक
है। (भा० पू० १ भा०)। दे० 'चिरायता'। (२) पर्वत।
पहाड़।

किराततिक्तादि (क्वाथ)—संज्ञा पुं० [सं पुं०]

किरातादि—[सं० पु०]

वातपित्तज्वर में प्रयुक्त कषाय। निर्माण-विधि—

(१) चिरायता, गुडूची, द्राक्षा, आंवला, कचूर, प्रत्येक
समान भाग में ग्रहणकर यथाविधि क्वाथ करें। इसे
मिश्री (गुड़)युक्त पान करने से वातपित्तज्वर का
नाश होता है। इसको 'चातुर्भद्रक' भी कहते हैं।

(२) चिरायता (महानिम्ब), धनियाँ, शंतावरी,
पटोलपत्र, रक्तचन्दन, पद्माक, शाल्मली, उदुम्बर,
भुँडआंवला, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर क्वाथ
करें। (रस० च०)।

(३) चिरायता, नागरमोथा, गुडूची, प्रत्येक सम भाग
में ग्रहणकर क्वाथ करें। (सि० यो०, सा०, ज्व०
चि०)।

(४) चिरायता, नागरमोथा, गुडूची, सुगन्धवाला,

बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी,
सोंठ प्रत्येक समभाग में ग्रहण कर क्वाथ करें। उक्त
द्रव्यसमूह १६ रत्ती, जल ३२ तो०, शेष ८ तो०।
(भा० म० ज्व० चि०)।

(५) चिरायता, पीपर, कुटकी, कुड़ा, कटेरी, कचूर
बहेड़ा, देवदारु, हड़, मरिच, मोथा, कायफल, अतीस,
आंवला, पुष्करमूल, चित्रकमूल, काकड़ासिंगी, अडूसा,
प्रत्येक २-२ तो०, यथाविधि क्वाथ कर शुण्ठीचूर्ण ६
मा० मिश्रित कर सेवन करने से कण्ठकुब्जसन्निपात-
ज्वर का नाश होता है। (भा० म० २ मा० ज्व० चि०)।

(६) चिरायता, कुटकी, मोथा, पित्तपापड़ा और गुडूची
प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि क्वाथ करें।
इसके सेवन से पुनरावर्तक (बार-बार) आनेवाला
ज्वर दूर होता है। (च० चि० ज्व० चि०)।

(७) चिरायता, धनियाँ, रक्तचन्दन, खस, पित्तपापड़ा,
पद्मकाष्ठ, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर क्वाथ करें।
इसके सेवन से पित्तज्वर, दाह, तृष्णा, अरुचि श्रान्ति,
वमन, उत्क्लेशादि का नाश होता है। (वृ० नि० र०
ज्व० चि०)।

(८) दशमूल और किरातादिगणयुक्त द्रव्यों का क्वाथ
सेवन करने से जीर्णज्वर, वात-कफज्वर तथा सन्निपात
ज्वर का दमन होता है और यदि कोष्ठशोधन की
आवश्यकता हो तो उक्त द्रव्यों के साथ निशोथ का चूर्ण
मिश्रित करें। (च० द० ज्व० चि०)।

(९) चिरायता, नागरमोथा, गुडूची, सोंठ, रक्तचन्दन
और इन्द्रजौ समभाग में ग्रहण कर क्वाथनिर्माण
कर सेवन करने से ज्वरातिसार और शोथ का नाश
होता है। (वृ० नि० र० अतिसार चि०)।

(१०) चिरायता, सोंठ, गुडूची, छोटी कटेरी, बड़ी
कटेरी, अडूसा, पीपलामूल, लहसुन और सम्हालू समान
भाग में ग्रहण कर क्वाथनिर्माण कर सेवन करने से
वातकफज्वर का शीघ्र नाश होता है। (भा० म० ज्व०
चि०)।

किराततिक्तादि-कल्क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रसाज्ञान
में प्रयुक्त योग। निर्माण-विधि—सोंठ, मरिच, पीपल,
सैंधानमक तथा अमलबेत, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण
कर पीस कर चटनी बनाएँ। जिह्वा पर इसका प्रयोग करने
से मुख की विरसता तथा रसाज्ञता का नाश होता
है। (भा० म० ख० वात व्या० चि०)।

किराततिक्तादि गण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिरायता
प्रधान योग जिसको चतुर्भद्रक भी कहते हैं। यह
महाज्वरघ्न योग है। दे० 'किरातादि क्वाथ'।

किरातादि चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ज्वरचिकित्सा
में प्रयुक्त योग। निर्माण-विधि—चिरायता, निशोथ

सुगन्धवाला, पीपल, बायविडंग, सोंठ, और कुटकी, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर कूट-कपड़छान कर सुरक्षित रखें। मात्रा-१-६ माशा। इसके उपयोग से दूषित जल द्वारा उत्पन्न दुस्साध्यज्वर का अतिशीघ्र नाश होता है। (भा० म० ज्व० चि०)। अनुपान—शहद।

किराततिक्तादि चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्माण-विधि—चिरायता, वच, खस, दारुहल्दी, त्रायमाण, त्रिकुटा, चंदन, पद्मकाष्ठ, कुटकी, कुंडा की छाल, इन्द्रजौ, मोथा, अजवाइन, देवदारु, पटोल पत्र, निम्बपत्र, इलायची, अतीस, सोरठीमिट्टी, मुलेठी, दालचीनी, सहिजन के बीज, मूर्ध्वा और पित्तपापड़ा, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर वारीक चूर्णकर सुरक्षित रखें। **गुण तथा उपयोग**—मधुयुक्त सेवन करने से तथा मद्य वा जल के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग, गुल्म, ग्रहणी, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला, हृदयरोग, मुखरोग तथा सन्निपातज्वर का शीघ्र नाश होता है। (च० चि० १९ अ०)।

किरातादि तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्माण-विधि—मूर्ध्वा, लाख, हल्दी, मजीठ, इन्द्रायन की गूदी, सुगन्ध वाला, पुष्करमूल, रास्ना, गजपीपल, सोंठ, मरिच, पीपल, पाठामूल, इन्द्रजौ, सेंधानमक, कालानमक, विडनमक, अडूसा, आक, कालीनिशोथ, देवदारु, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण करें और यथाविधि कल्क कर, दधिमन्थ, आरनाल कांजी तथा चिरायता के १ प्रस्थ क्वाथ के साथ १ प्रस्थ तिलतैल युक्तिपूर्वक सिद्ध करें।

गुण—इसके अभ्यंग से पित्तयुक्त ज्वर, सतत ज्वर, सतत ज्वर, धातुगत ज्वर, अस्थिगत ज्वर, कामला, पाण्डु, शोथ, अतिसार, हलीमक तथा अन्य समस्त प्रकार के ज्वरों का नाश होता है। ज्वरों का नाश करने के लिए इससे उत्तम अन्य कोई भी तैलयोग नहीं हैं।

(धन्वन्तरि० ज्व० चि०)।

किरातादि मण्डूर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'अष्टादशांग लौह'।

किरातादि सप्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] ज्वर-चिकित्सा में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ, पाठामूल, सुगन्धवाला तथा कमलनाल, इन द्रव्यों को समान भाग में ग्रहण कर यथा-विधि क्वाथ कर सेवन करने से—पित्तप्रधान सन्निपात-ज्वर का दमन होता है। (भा० म० ज्व० चि०)।

किरिक्—संज्ञा पुं० [पं०] किरोही।

किरीस—संज्ञा पुं० [अ०] (१) एक प्रकार का भोजन जिसमें मांस पड़ा होता है। (२) सालन।

किरुकुस—संज्ञा पुं० [यू०] दे० 'किरकस'। (लु० क०)

किरुनेल्लि—संज्ञा स्त्री० [कना०] भूम्यामलक। भूँइआंवला।

किरुनुसुम्बुल—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद सुम्बुल तथा एक अन्य प्रकार की जड़। (लु० क०)।

किरुत—संज्ञा पुं० [?] प्याज। पलाण्डु। (लु० क०)।

किरातादि मण्डूर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'अष्टादशांग लौह'।

किरोनिआ सेण्टारिलाइक—संज्ञा [अँ] वनस्पति विशेष। (अ०) गरमः। (इं० है० गा०)।

किरोनिआ-सेपिडा—संज्ञा स्त्री० [ले० (C. Sapida)] चार। प्रियाल वृक्ष। चिरौजी।

किरोही—संज्ञा पुं० [पं०] कुकड़ी। किरिक। (मे० मो०)।

किरति—संज्ञा पुं० [अ०] करातात। (लु० क०)।

किर्किमान्—संज्ञा पुं० [अ०] परिचय—कीरतुल्य एक प्रकार का द्रवपदार्थ जो अरब देश में खजूर तथा गूगुल के वृक्षों से परिष्ठावित होता है। मतान्तर से यह एक प्रकार का काष्ठ है जो गूगुल के वृक्षों द्वारा प्राप्त होता है।

अन्ताकी महोदय के मतानुसार यह एक प्रकार की कीट-भक्षक वस्तु है तथा किसी के अनुसार पुरातन वृक्षों से प्राप्त होनेवाली वस्तु है, जिसका संबन्ध गूगुल के वृक्ष से नहीं है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। मतान्तर से शीतल तथा रुक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—संग्राही, रक्तावरोधक, मूत्रल तथा दुग्धवर्धक है। इसके उपयोग से रक्तस्राव, तथा रक्तातिसार बंद होता है और मूत्र तथा दुग्ध की मात्रा अधिक हो जाती है। इसके चूर्ण से मज्जन करने से मसूढ़ों का रक्तस्राव बंद होता है और दाँत दृढ़ रहते हैं। इसको पीसकर उपटन करने से शरीर की त्वचा मसृण (मृदु) रहती है। (ख० अ०, मो० आ०)।

किर्कुन्दी—संज्ञा स्त्री० [म०] वनस्पति विशेष जो प्रायः पथरीली भूमि में उत्पन्न होती है। (ले०) जैट्रोफा नेना (Jatropha nana)। इसका स्वरस फोस्काजनक है। (इं० मे० मे०)।

क्रि (कृ) कूँ—संज्ञा पुं० [यू०, सुर०] केशर, कुङ्कुम।

क्रिक्—संज्ञा पुं० [तुर्की] साउतर। (लु० क०)।

किर्च—संज्ञा पुं० [हिं०] लक्ष्मणा बूटी। (मे० मो०)

किर्चक—संज्ञा पुं० [डेलमी] अजवाइन खुरासानी।

(डाइमॉक भा० २ पृ० ६२७)।

किर्चक हिन्दी—संज्ञा पुं० [?] वनस्पति भेद। लक्ष्मणा

क्रि (कृ) तं—संज्ञा पुं० [अ०] (१) गन्दना का एक भेद (२) रतबातुल्य एक वनस्पति है।

किर्तान—संज्ञा पुं० [म०] पानलता। दे० 'काजरवेल'।
 किर्तमारी—संज्ञा स्त्री० [को०] विषमण्डल। सुखदर्शन।
 (Crinum Deflexum)

कि (कु) तांस—संज्ञा पुं० [अ०] कागज। पत्र।

कि (कु) तुम—संज्ञा पुं० [अ०] कड़। कुसुम्भ बीज।

किर्द—संज्ञा पुं० [अ०] कपि। बन्दर। मर्कट।

किर्दअ—संज्ञा पुं० [अ०] लीक्षा (जूं) जो ऊँट तथा
 मुरगियों के परों में होती हैं।

किर्दआली—संज्ञा स्त्री० [अ०] कृष्णजीरक। स्याह
 जीरा। कुरोया।

किर्दगाँ—संज्ञा पुं० [फा०] आक्षोट। अखरोट।

किर्दजमासा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वुन्दक।

कि (कु) र्द नाज—संज्ञा पुं० [?] यह कुर्दनाक फारसी
 से व्युत्पन्न है। इसका उपयोग कवाब (भृष्टमांस)
 के अर्थ में होता है।

किर्दमन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'किर्दिमाना'।

किर्दमावस—संज्ञा पुं० [यू०] हुर्फ। चन्द्रसुर। (लु० क०)।

किर्दमीन—संज्ञा पुं० [यू०] यह सीसालियूस का एक
 भेद है। (लु० क०)।

किर्दमून—संज्ञा पुं० [यू०] दे० 'किर्दिमाना'।

किर्दान—संज्ञा पुं० [?] पक्षी विशेष।

किर्दाभिनात—संज्ञा पुं० [यू०] पियाज। पलाण्डु।

किर्दामीनी—संज्ञा स्त्री० [यू०] कुर्तहुलएन। हुर्फुलमाअ।
 (लु० क०)

किर्दामून—संज्ञा पुं० [यू०] } दे० 'किर्दिमाना'।

किर्दामून—संज्ञा पुं० [यू०] }

किर्दाहन—संज्ञा पुं० [यू०] हुर्फ। चन्द्रसुर। (लु० क०)।

किर्दिनाज—संज्ञा पुं० [फा० गर्दनाक] भजित मांस विशेष।

किर्दिमाना—संज्ञा पुं० [य०] पर्याय—(यू०) किर्दमानी,
 किर्दामून। किसी के अनुसार उक्त शब्द 'किर्दामून'
 द्वारा व्युत्पन्न है जिसको कि 'किर्दिमाना' भी कहते
 हैं।

परिचय—(१) किसी के अनुसार बबूनातुल्य एक
 प्रकार की वनस्पति है। इसकी शाखें टेढ़ी होती हैं। इसमें
 अत्यल्प पत्र होते हैं। पत्तों का वर्ण पीत श्वेताभ होता
 है, पत्ते बाबूना के पत्तों से बड़े होते हैं और जड़
 मोटी होती है। इसके पुष्प श्वेत नीलिमायुक्त छोटे
 छोटे होते हैं। इसके बीज करोया (जंगली जीरा)
 के सदृश किन्तु लम्बे और पतले होते हैं। स्वाद—
 तिक्त, तीक्ष्ण गन्धयुक्त होता है।

(२) किसी के अनुसार इसकी शाखें ४-४ वित्ता की
 लम्बी होती हैं तथा बड़ी भी होती हैं। वर्ण—किञ्चित्
 नीलिमायुक्त आकाश वर्ण के मध्य में होता है। इसके
 पुष्प श्वेत हिना के पुष्पतुल्य होते हैं। इसकी

शाखें फैली हुई होती हैं और अत्यन्त पतली
 होती हैं।

बीज—इसके बीज का वर्ण काला जीरातुल्य होत
 है और स्वाद तिक्त तथा चरपरा होता है।

उद्भवस्थान—अफ्रीका में बहुतायत से होता है।
 वहाँ के व्यक्ति इसको जंगली तथा पहाड़ी करोया
 (कृष्ण जीरक) कहते हैं और अरबी में 'कुरोयाएरुमीय'
 कहते हैं। कारण यह है कि इसके बीज, पुष्प तथा पत्र
 कुरोयातुल्य होते हैं। दोनों में केवल छोटे-बड़े का
 अन्तर है। इसकी जड़ और पत्ते कुरोया की जड़ और
 पत्तों से लम्बे होते हैं। रंग भी अधिक हरा होता है।
 शाखें अधिक दृढ़ और पेड़ी अधिक लम्बी तथा खुरदरी
 होती हैं, बीज भी कुरोया के बीज से लम्बा तथा कठोर
 होता है।

कतिपय व्यक्ति इसको कालीजीरी समझते हैं जिसका
 बीज ही उपयोगी होता है। फारसी में इसको 'तुश्मतो-
 खर' कहते हैं। उत्तम वह है जिसके बीज बड़े और
 स्वाद तीक्ष्ण हो और शीघ्र न कट सके। यह प्रायः
 भारतवर्ष, अरब तथा आरमीनियों के पर्वतों में तथा
 जलीय भागों में उत्पन्न होता है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है और
 उष्णता तथा रूक्षता के कारण शक्तिदायक है।

गुण-कर्म—व्यवायी, रागोत्पादक (मुहम्मिर),
 (Rubifacient), मूत्रल, अश्मरीघ्न, विषघ्न, दोष-
 तारक्यकारक (अखलातलजिज), अन्तर अवयवों को
 बलप्रद, संग्राही तथा आन्तरवेदनाशामक है।

उपयोग—इसके सेवन से अपस्मार, गुर्ध्रसी, जलोदर,
 तथा कफज-विकार नष्ट होता है और पेशियों की वेदना
 शान्त होती है। इसके अतिरिक्त—जीर्णकास, श्वास,
 फुफुस-विकार, शूल, हिक्का, उदररोग, अन्त्रकृमि तथा
 वृक्क-शूल में उपयोगी है। अथवा इसके उपयोग से प्लीहा
 एवं यकृत का अवरोध दूर होता है; बिच्छू इत्यादि
 जन्तुओं का विष शान्त होता है; मूत्रावरोध नष्ट होकर
 स्वच्छ मूत्र अधिक प्रवृत्त होता है; अश्मरी खण्डित होकर
 उसका उत्सर्ग होता है; शीतजन्य विष में दंश स्थानपर
 मद्य में पीस कर प्रलेप करने से विषविकार शान्त होता
 है। इसकी धूनी योनि में देने से गर्भ का नाश होता है।
 अथवा इसको मद्य से पीसकर फलवर्त्ति निर्माणकर
 गर्भाशय में स्थापन करने से गर्भपात हो जाता है।
 सिरका में पीसकर लेप करने से शुष्क और आर्द्र कण्डू
 और इन्द्रलुप्त, का नाश होता है। इसके अतिरिक्त दद्रु,
 मुखदूषिका (झाई), शिक्का-कुष्ठ इत्यादि चर्मरोग शान्त
 होते हैं। इसका चूर्ण बना कर तक्र के साथ सेवन
 करने से विविध प्रकार के उदरक्रिमियों का नाश होता

ओर अशुद्ध वायु की शुद्धि होती है।

अहितकर—उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को और प्लीहा, यकृत तथा हृद्रोग को। निवारण—प्लीहा के लिए अहिफेन एवं अनीसून और यकृत के लिए चन्दन।

प्रतिनिधि—इस्पन्द, राई, इजखिर, मिशकतरामशी, और सालब। मात्रा—४ माशा।

वक्तव्य—विलियम डाइमॉक किर्मदाना को खुरासानी अजवाइन तथा मखजनलअद्विया के लेखक मुहम्मद हुसेन ने इसको पहाड़ी वा जंगली जीरा (करोया) लिखा है जिसके बीज को कालीजीरी कहते हैं।

किर्दिल—संज्ञा पुं० [अपभ्रं०, फा०] } प्रवाल। मूंगा।
किर्दिलियून—” [यू०] }

किर्दीदः—संज्ञा पुं० [अ०] वसा (चरबी) का टुकड़ा वा लोयड़ा। (लु० क०)।

किर्न—संज्ञा पुं० [?] सींग नाम का वृक्ष। (लु० क०)।

किर्नफल—संज्ञा पुं० [फा०] } लवंग। ल.ग।

किर्नफलून—” [अ०] }

किर्नी—संज्ञा पुं० [हिं] नागरंग। नारंगी।

किर्फः—संज्ञा पुं० [अ०] त्वचा। छाल।

किर्फतुहारसीनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] चीनदेशीय वृक्ष की छाल जो दारचीनी तथा दालचीनी के अर्थ में प्रयुक्त है।

किर्फतुल्लर वियः—संज्ञा पुं० [अ०] दालचीनी। गुड़त्वक्।

किर्फद—संज्ञा पुं० [अ०] प्रवाल। मूंगा।

किर्फलून—संज्ञा पुं० [रूमी] लवंग। लौंग।

किर्फः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) तज। (२) वृक्षों की छाल। दालचीनी का एक भेद जिसको 'तज' कहते हैं।

किर्फी—दे० 'किर्फः'।

किर्फियून—संज्ञा पुं० [यू०] शकरान।

किर्फी—संज्ञा स्त्री० [अ०] अँगूठा के ऊपरका कठोर छिलका (त्वचा)।

किर्बास—संज्ञा पुं० [अ० = सं० कर्पास] (१) रूई। कपास की रूई (तुला) (२) सूती वस्त्र।

किर्बुत—संज्ञा पुं० [सिंध] खर्बूजा। साइट्रुलस अमारस (Citrus Amarum)। (डाइमॉक भा० २ पृ० ६४)।

किर्म—संज्ञा पुं० [फा० = सं० कृमि] कीट (कीड़ा)।

किर्म अयूब—संज्ञा पुं० [फा०] जुब्दुल्वहर का एक भेद।

किर्मया (किर्ममाS)—संज्ञा पुं० [?] कच्छप। कछुआ। कूर्म।

किर्मएवैजा—संज्ञा पुं० [फा०] फाशरा।

किर्मएशूकः—संज्ञा पुं० [फा०] फशाग। खटमल।

किर्मएशाइलः—संज्ञा पुं० [फा०] फाशरा।

किर्मकुटा (डा)—संज्ञा पुं० [हिं] रतनजोत।

किर्म गिलेबुर्दः—संज्ञा पुं० [फा०] गण्डूपद। भूनाग। महिलता। भूलता। दे० 'केचुआ'।

किर्मचोब—संज्ञा पुं० [फा०] काष्ठकृमि।

किर्मजमीन—संज्ञा पुं० [फा०] } गण्डूपद। दे० 'केचुआ'।

किर्मजुलमादनी—” [अ०] }

किर्मतुलबैजा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शुक्राणु। शुक्र कीट (२) फाशरा।

किर्मदरख्त—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार के कीट जो सनोवर के वृक्षों पर होते हैं।

किर्मदशती—संज्ञा पुं० [फा०] फाशरा। किर्मएवैजा।

किर्मदाना—संज्ञा पुं० [फा०] (१) एक प्रकार का बीज जिसके सम्बन्ध में मतभ्रमता है। सिद्धरी। (२) किर्मिजदाना।

किर्ममखमल—संज्ञा पुं० [फा०] बीरबहूटी इन्द्रवधु। बीरवधु। इन्द्रगोप।

किर्मरंगरेजा—संज्ञा पुं० [फा०] किर्मिजदाना जिसके टिचर से औषधीय घोल रंगीन किए जाते हैं। कोचनील या किर्मिज (Kermes)। दे० 'किर्मिजदाना'।

किर्मरसनदानः—संज्ञा पुं० [फा०] माहदाना।

किर्मशबताब—संज्ञा पुं० [फा०] खद्योत। पटबीजना। जुगनू।

किर्म शाइलः—संज्ञा पुं० [फा०] फाशरा।

किर्मसरगीन—संज्ञा पुं० [फा०] गुबरीला। (अ०) जअल। कीड़े जो वर्षा ऋतु में मलादि में उत्पन्न होते हैं।

किर्मसुर्ख—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'किर्मिजदाना'।

किर्मसौदा—संज्ञा पुं० [फा०] फाशरस्तीन।

किर्महा—संज्ञा पुं० [सं०] मेघशृंगी। मेड़ासिगी।

किर्महेशौका—संज्ञा पुं० [फा०] फशाग। खटमल।

किर्मिज—संज्ञा पुं० [फा०] } कोचनील।

किर्मिजदाना—” ["] }

किर्मिजदाना—[फा०] किर्मदानः (फा०)।

विलायती बीरबहूटी। किर्मिज। पर्याय—(गु०) किर्मरजा। (ता०) कोचनील पुचि। (ते) कोचनील-पुष्प। (ले०) काँकस-केक्टइ (Coccus-Cacti) (अ०) कोचनील (Cochineal)

परिचय—बीरबहूटीतुल्य रक्तवर्ण का एक कीट है। मेक्सिको में ये नोपल नामक वृक्ष पर अधिक होते हैं। औषध में स्त्रीजातीय कीट का अधिक उपयोग होता है। वृक्षों की शाखों से एकत्र कर कुचल लेते हैं और उष्ण जल में डालकर पुनः शुष्क कर लेते हैं। इसे चूर्ण कर औषधार्थ सुरक्षित रखते हैं।

रासायनिक-संगठन—इसमें रञ्जक द्रव्य (कारमाइन Carmine) वा कार्मिनिक एसिड १० प्रतिशत, इसके अतिरिक्त—तरलवसा १८%, जलीय अंश ६% और भस्म

३ से ५ प्रतिशत होता है।

सत्वकिर्मिजदाना (Carmine)—यह अत्यन्त रक्त वर्ण का होता है। इसका स्वाद तिक्त, स्पर्श उष्ण किञ्चित् गन्धयुक्त होता है।

विलेयता—यह सुरासार और जल में तथा नृसारके जल में भली भाँति घुल जाता है। इसमें अम्लता अधिक होती है। अतः इसको अँग्रेजी में कार्मिरिक-एसिड (Carmiric-acid) कहते हैं। यह केवल औषध रंगीन करने के काम में आता है।

गुण—कासघ्न तथा आक्षेपनाशक है।

उपयोग—इसके सेवन से कुकुरकास तथा अर्द्धविभेदक का नाश होता है।

शुष्क चूर्ण-मात्रा—३ से ५ रत्ती तक।

जब गलशुण्डी बढ़कर कास उत्पन्न होता है, तब होमिओपैथिक चिकित्सक इसका उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अश्मरी वा मूत्ररोग में जब मूत्र में युरेट और युरिकएसिड (मूत्राम्ल) की मात्रा अधिक हो जाती है तब इसको देने का आदेश करते हैं।

क्रम—३० शक्ति वा निम्न शक्ति वा त्रिचूर्ण का उपयोग करें।

किर्मिजी अजवान—संज्ञा पुं० [म०] वनयमानी। जंगली अजवाइन। ले० (Seseli indicum)। दे० 'अजमोद'।

किर्मिजी रंग—संज्ञा पुं० [हिं] टिचर कोचनील जो किर्मिज-दानों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इससे औषधीय घोल रंगीन किए जाते हैं। देखो 'किर्मिजदाना'।

किर्मियून—संज्ञा पुं० [यू०] मत्स्य विशेष। दरियाई मछली।

किर्मिसमाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्षिका भेद।

किर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पलाशवृक्ष।

किर्मीद—संज्ञा पुं० [अ०] ईंट। इष्टिका।

किर्मूद—संज्ञा पुं० [अ०] गजयान का फल।

किर्मूर्ति—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नारंगी। नागरंग। संतरा।

किर्मूर्तिवत्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नागरंग फल-त्वचा। नारंगी का छिलका। (२) नागरंगवृक्ष। (मे० त्रिक०)।

किर्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वनशूकर।

किर्याणी— " ["] } जंगली सूअर।

किर्यातु (तो)—संज्ञा पुं० [गु०] चिरायता। चिरतिक्त।

किर्यास—संज्ञा पुं० [रूमी] मांस। गोश्त।

किरंरी—संज्ञा स्त्री० [सिंध] गोरन (मे० मो०)। (Ceriops-candullae)।

किर्मिकलु—संज्ञा पुं० [सिंध] हुरना। बतूल। (मे० मो०)।

किरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृमि] (१) क्षुद्रकीट जो प्रायः जल में पड़ जाते हैं। (२) एक प्रकार की घास।

किर्ह—संज्ञा पुं० [पुं०] पेशावर में किलार के नाम से प्रसिद्ध एक क्षुप। (मे० मो०)।

किर्श—संज्ञा पुं० [अ०] जुगाली करनेवाले पशुओं की ओझड़ी। (लु० क०)।

किशमि—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ी पपड़ी।

किर्स—संज्ञा पुं० [अ०] क्षुद्रमषक (मच्छड़) भेद।

कि (कु) सं—संज्ञा पुं० [अ०] (१) चक्रिका। टिकिया (२) रोटिका। रोटी। अ० (Bread)।

कि (कु) संअन—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शज्जए इ-त्राहिम। (२) कण्टकयुक्त वनस्पति जिसकी पत्तियाँ पृथ्वी पर फैलती हैं।

(म० अ०; मु० आ०)।

किर्सआ—संज्ञा पुं० [?] कच्छप। कमठ। कूर्म। दे० 'कछुआ'।

किर्सगियाह—संज्ञा पुं० [अ०] वनस्पति भेद। (डाइमांक भा० २, पृ० १३६)।

किर्सतारियून—संज्ञा पुं० [यू०] कमातकोही। पहाड़ी कमात का वृक्ष। (लु० क०)।

किर्सतूस—संज्ञा पुं० [यू०] कुष्ठ ओषधी। दे० 'कूठ'।

किर्स तैलूस—संज्ञा पुं० [रूमी०] सादनज।

किर्समनून—संज्ञा पुं० [यू०] गेहूँ के रेशे (तन्तु)।

किर्सिय—संज्ञा पुं० [?] नमक नपती।

किर्सीकी—संज्ञा स्त्री० [?] तराशीश का एक भेद।

किर्सूफ—संज्ञा पुं० [?] असीउरई।

किल—अव्यय [सं०] निश्चित।

किलअ—संज्ञा पुं० [अ०] कथील। राँग। वंग धातु।

किलअ-अरमनिया—संज्ञा पुं० [सुर०] अरमनी मिट्टी। गिले अरमनी।

किलअ मनीन—संज्ञा पुं० [?] बखुरमरियम। हत्थाजोड़ी। करज्योड़ी।

किलक—संज्ञा पुं० [फा०] कच्चा खर्बूजा।

किलकास—संज्ञा पुं० [अ०, रूमी] } कपास। कार्पास।

किलकासी—संज्ञा स्त्री० [सुर०] } रुई।

किलकिल—संज्ञा पुं० [अ] चकवड। चक्रमर्दक्षु।

पमाड़। इसके अतिरिक्त यह अन्य कतिपय द्रव्यों के अर्थ में प्रयुक्त है। (डाइमांक)।

किलकिलन्त—संज्ञा पुं० [रूमी०] } हीराकसीस।

किलकिलन्द— " ["] }

किलकिला—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं] पक्षीविशेष। पक्षी जो मछलियों को पकड़ कर खाता है। इसके मुख से 'किलकिल' शब्द का उच्चारण होता है। यह जिस गृह में बैठता है वहाँ कलह (झगड़ा) होता है। गुण—इसका मांस गुरुपाकी होता है।

पर्या०—(हि०) किलकिला। (अ) जुम्मजुल्माऽ।

नोट—हिंदी कोषों में इसे स्त्रीलिंग लिखा है। (अ०)

जुम्मज = चर्ग + माऽ = पानी)।

वर्णन—एक पक्षी जिसकी चोंच लंबी और काली, दुम छोटी, पीठ के पंखों का रंग जंगारवत् हरा और बाजुओं के पंखों का रंग हरा होता है, जिन पर गोल धब्बे होते हैं तथा पेट का रंग पीलापन लिये जौजी, पैर लाल, कोई-कोई चितकवरा (अवलक) सफेद और काला होता है। किसी-किसी के कथनानुसार मिश्र में विलकुल श्वेत भी होता है। आवाज तेज होती है। तालाब और झीलों पर वायु में उड़ता है और पानी की ओर टक लगाकर देखा करता है। जब कोई मछली देखता है, अचानक तेजी से उस पर टूटता है और पानी में डुब्बी लगाता है और हाथ आ जाने पर खा लेता है। पर मुरदा पर नहीं बैठता और मछली के सिवा अन्य चीज नहीं खाता। अंजुमन के लेखक कहते हैं कि मैंने अमान तामाफ नदी के कूलों पर प्रायः ऐसा देखा है कि कभी दो मछलियाँ दो पंजों में पकड़कर उड़ता है। एक गिर जाती है और कभी दूसरी भी गिर जाती है। शेख सादी कहते हैं—

मुर्ग हवा रा नसीब माही दरिया।

गुण-प्रयोग—इसका मांस दीर्घपाकी है। इसका निवारण अफीम है (मुहीत)। यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है तथा भक्षण करने से पैत्तिक रक्तोत्पादक और शीतजनित रोग का प्रतिबंधक है। (म० इ०)।

नोट—किलकिला शब्द संस्कृत कृकल से व्युत्पन्न है। कहते हैं कि जिसके घर पर से यह बोलता और उड़ता है, उसके रहनेवालों में किलकिल अर्थात् कलह वा झगड़ा होता है। इसलिए इसे उक्त नाम से अभिधानित किया गया है। इसकी बोली से किलकिल शब्द निकलता है। मकालात इहसानी में इसे घोबिन लिखा है और यह एक चिड़िया है जिसके पर (बाजू के) सफेद और सिर तथा दुम काली और चोंच लाल होती है। यह हवा पर ठहर कर पानी में गिरती और छोटी मछली पकड़कर खाती है। दे० “घोबिन”।

किलकिलान—संज्ञा पुं० [?] चक्रमर्द। पर्मांड। चकवड़ का क्षुप।

किलकिलानिया—संज्ञा पुं० [अ०] पेण्डुकी। फाखता पक्षी। जाज अखजर।

किलकिलानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] पेण्डुकी (फाखता) के सदृश एक पक्षी है।

किलङ्ग—संज्ञा पुं० [ता०] आल। आरुक।

किलचिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा बगला (वकपक्षीभेद)।

किलतार—संज्ञा पुं० [ता०] कीर। कील। पाइनस एक्सेलसा

(Pinus Excelsa) नाम का वृक्ष जो चीड़ का एक भेद है। इसमें से एक प्रकार का निर्यास निकलता है जिसको कीर वा तार कहते हैं।

किलन—संज्ञा पुं० [द० भा०] देवद्रु। देवदार। (मो० श०)।

किलन का पेड़—संज्ञा पुं० [हि०] देवदार। देवद्रु।

किलन का तेल—संज्ञा पुं० [हि०] तारपीन का तेल।

किलनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कीट विशेष। यह कतिपय प्रकार की होती है और पशुओं का रक्तपान करती है।

किलनेल्लि—संज्ञा स्त्री० [मल०] भूम्यामलक। भूई-आंवला।

किलपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र लज्जालुका। छोटी लाजवन्ती। (वै० निघ०)।

किलम—संज्ञा पुं० [चीन, हो०] (डाइमॉक भा० ३ पृ० २२०)।

किलमर—संज्ञा पुं० [कुमार्यु] चित्रा। (मे० मो०)।

किलमिच—संज्ञा पुं० [काश०] गूच। (मे० मो०)।

किलमोड़ा (रा)—संज्ञा पुं० [?] वृक्ष भेद। किलमोड़ा।

किलयान—संज्ञा पुं० [?] सफेद तथा काला चना। हरिमंथ।

किलयानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] उश्शक। (लु० क०)

किलयानीस—संज्ञा पुं० [यू०] (१) पैरोज, पिरोज। (२) उश्शक। (लु० क०)।

किलवरी—संज्ञा स्त्री० [ता०] सफेद मुसली।

किलवा—संज्ञा पुं० [पुं०] तिक्त कुटज। कटु इन्द्रजौ। दे० ‘कुड़ा’

किलवारी—संज्ञा स्त्री० [ता०] सफेद मुसली।

किलहँटा—संज्ञा पुं० [पा० गिलाट वा हि० कलह। संज्ञा स्त्री० किलहँटी] सिरोंही पक्षी। यह सारिका की छोटी जाति है।

किलाअ-जारः—संज्ञा पुं० [इस्फहान] अकअक पक्षी।

किलाकल—संज्ञा पुं० [अ०] पर्मांड (चक्रमर्द) बीज।

किला कलानग—संज्ञा पुं० [?] वृक्ष भेद

किलाकलीतस—संज्ञा पुं० [यू०] अकलीमिया।

किलाक्री—संज्ञा पुं० [?] पेण्डुकी। फाखता तथा उसके समान एक पक्षी है।

किल (स) घन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कोटकी। ककोड़ा। खेखसा।

किलाजाह—संज्ञा पुं० [?] अकअक। काक विशेष। कुलाग।

किलाट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खोवा। मावा। खीस।

दुग्धविकार। नष्ट दुग्धपिण्ड। (हारा०)। क्षीर-

कुचिका। छेना। गिजरी। (२० मा०); (वा०

क्षीरवर्ग)। किलाटक। पक्वदुग्धपिण्ड = खोआ।

मावा। (२) अपक्वदुग्धपिण्ड = छेना। (भा०)।

दधिकचिका।

गुण—दीर्घपाकी, निद्राजनक तथा पुंसत्वजनक है।

किलाटक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'किलाट',।

किलाटकृतभक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छेना द्वारा निर्मित रसगुल्ला, गुलाबजामुन इत्यादि भक्ष्य पदार्थ।

किलाटी (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) वंश। वांस। (२) एरण्डवृक्ष। (हारा०)।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुग्धविकार।

किलात—वि० [सं० त्रि०] वामन। छोटा। लघु। ह्रस्व। क्षुद्र।

किलात—संज्ञा पुं० [अ०] मत्स्यविशेष। मछली।

किलातानस—संज्ञा पुं० [?] चनार का पेड़।

किलान—संज्ञा पुं० [तुर्की] गोरखर।

किलानश—संज्ञा पुं० [?] अप्रसिद्ध वनस्पतिविशेष।

क्रि (क्रु) लाब—संज्ञा पुं० [अ०] वृक। भेड़िया।

किलाब—संज्ञा पुं० [अ०] उन्मादजनित बुद्धिभ्रंश। (विस्मृति)।

किलास—संज्ञा पुं० [?] (१) रईउल्लवल्। (२) काकली। (लु० क०)।

किलामती—संज्ञा स्त्री० [रूमी]

किलामीस— " पुं० ["] } नहरी पुदीना।

किलामिसी— " स्त्री० ["] }

किलामतून—संज्ञा पुं० [यू०] जरनुवाद। तालीशपत्र।

किला (कॅले) मस एरोमेटिका—संज्ञा स्त्री० [ले० (Calamus Aromatica)] वच।

किलामुस अरोमातीस—संज्ञा पुं० [यू०] वच। अगरे तुर्की। वच।

किलार—संज्ञा पुं० [पं०] फिर। पेसार। पासेर। (मे० मो०)।

किलार—संज्ञा पुं० [?] } सफेद अंजीर

किलारी— " स्त्री० [?] } का एक भेद।

किलारुमातिपून—संज्ञा पुं० [यू०] मद्यभेद।

किलाल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोमूत्र। (वै० निघ०)।

किलाशरः—संज्ञा पुं० [?] बीही। अशखार (लु० क०)।

किलास—संज्ञा पुं० [?] तेजपत्र। तेजपात।

किलास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] क्षुद्रकुष्ठ का एक भेद।

पर्याय—(अ०) बर्स अब्यज। (ले०) ल्युकोडर्मा (Leucoderma)। (सं०) शिवत्र। (हिं०) सफेद कोढ़।

सफेद दाग। श्वेत कुष्ठ। फुलबहरी।

किलास—शिवत्र तथा अरुण भेद से दो प्रकार का होता है। जिन-जिन कारणों से कुष्ठ की उत्पत्ति होती है, उन्हीं कारणों से किलास की भी उत्पत्ति होती है।

वाताधिक्य से उत्पन्न किलास किञ्चित् रक्त तथा रुक्ष होता है। पित्ताधिक्य से उत्पन्न किलास रक्तवर्ण एवं कमलपत्रवत् होता है। इसमें दाह होता है और त्वचा

के केश नष्ट हो जाते हैं। कफ की अधिकता से उत्पन्न किलास श्वेत वर्ण का होता है, खुजली होती है और सघन तथा भारी होता है। रुधिर, मांस तथा मेद-गत दोषों से उत्पन्न किलास क्रमशः उपर्युक्त वर्ण का होता है। अर्थात् रुधिरगत दोष होने से रक्तवर्ण, मांस-गत दोष से उत्पन्न किलास ताम्रवर्ण एवं मेदोगत दोष से उत्पन्न किलास श्वेतवर्ण का होता है। किलास उत्तरोत्तर कष्टसाध्य होता है।

शिवत्र के मुख्य २ भेद हैं—(१) परज और (२) दोषज। पुनः दोषज के भी २ भेद हैं—(१) आत्मज और (२) परज। इन दोनों में आत्मज किलास वातादि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता है और परज किलास पर संस्कार अर्थात् स्पर्शादि से उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्यता—यदि रोंगटे श्वेत वर्ण के न हुए हों, अधिक न हुआ हो, परस्पर मिलित हो, नूतन उत्पन्न हो, अग्निदग्धज न हो तो ऐसा शिवत्र साध्य होता है। इसके विरुद्ध शिवत्र असाध्य होता है अर्थात् यह चिकित्सा के अयोग्य होता है।

यदि गुदा, पाणितल (हथेली), पादतल (पैर का तलुआ) तथा ओष्ठ में उत्पन्न नवीन होने पर भी चिकित्सा के अयोग्य होता है।

साध्यकिलास की चिकित्सा—(१) कृष्णसर्प को अन्तरधूमविधि से दग्धकर उसका भस्म बहेड़ा के बीजोत्थ तेल में मिश्रित कर शिवत्र पर लेप करने से शिवत्रकुष्ठ का नाश होता है।

(२) उपर्युक्त भस्म में अर्धभाग जल मिश्रितकर क्षार की भाँति ७ बार निथार लेवे। पुनः उक्त निथारे हुए जल में १ भाग बहेड़ा का तेल मिश्रित कर पचा लेवे। जब तेलमात्र शेष रह जाए, सुरक्षित रखें। इसके उपयोग से निश्चय शिवत्र का नाश होता है।

(३) आम्र तथा हरीतकी के पत्र एवं छाल का क्वाथ करें और कपड़े की बत्ती बनाकर उक्त क्वाथ में भिगा कर शुष्क करें। पुनः उक्त बत्ती को वटवृक्ष के दुग्ध में भिगा कर शुष्क करें और दीपक की भाँति ताम्रपात्र में काजल पारें। पुनः उक्त काजल में हरीतकीस्वरस की भावना देकर सुरक्षित रखें।

उपयोग-विधि—सर्वप्रथम शिवत्र पर सर्वप तेल लगावें। पुनः उपर्युक्त निर्मित काजल लगाएँ। कतिपय बार के उपयोग से शिवत्र का नाश होता है।

(४) बकुची स्वर्णमाक्षिक, कठ्मर, लाख, लोहचूर्ण, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर सर्वतुल्य कृष्णतिलतैल मिश्रित करें। पुनः इसमें गोपित्त की भावना देकर बत्ती बनाएँ और उपर्युक्त विधि से काजल बनाकर शिवत्र पर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(५) तृतीया, हरताल, कनेर की जड़ और बकुची एकत्र गोमूत्र में पीसकर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ का नाश होता है।

(६) ककोड़ा की जड़ गोपित्त में पीसकर लेप करने से श्वित्र का शीघ्र नाश होता है।

किलासघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कोटक। ककोड़ा। (हे० च०)।

किलासजेतारस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किलास तथा श्वित्र में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग। दोनों को कज्जली कर बकुची और भांगरा के रस में मर्दन कर पिष्टी बनाएँ पुनः यथाविधि लघुपुट से भस्म करें। स्वांगशीतल होने पर पीसकर सुरक्षित रखें। **मात्रा**—१-३ रत्ती। **उपयोग तथा सेवनविधि**—आवलों के रस वा क्वाथ के साथ मेवन करें और तक्रपान के अतिरिक्त अन्य आहार वर्जित करें। इस प्रकार सेवन करने से अरुण एवं मण्डलकुष्ठ का नाश होता है।

किलासनाशन—वि० [सं० त्रि०] किलासघ्न।

किलासनाशन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किलास में प्रयुक्त योग। **निर्माण-विधि**—शुद्ध पारद १ भाग, शु० गन्धक २ भा०, एकत्र कज्जली करें। पुनः नीबू के रस से मर्दन कर कण्टकवेधी ३ भाग ताम्रपत्र पर लेपन कर शराव-संपुट में यथाविधि कपड़मिट्टी कर पुट देवें। पुनः खदिर, बकुची और निम्बपत्र के स्वरस से मर्दन कर पुनः पुट देवें। जब पूर्णतः ताम्र दग्ध होकर भस्म प्रस्तुत हो जाये, सुरक्षित रखें। **मात्रा**—२ से ६ चावल। **सेवनविधि**—बकुची के क्वाथ से सेवन करने तथा केवल तक्रपान करने से शीघ्र श्वित्र का नाश होता है। (रस० र० स० २० अ०)।

किलासी (इन्)—वि० [सं० त्रि०] वह व्यक्ति जिसको किलास का रोग हो। (अम०)।

किलि—संज्ञा स्त्री० [सं० उ०] कण्ठकूजन। कण्ठ द्वारा उत्पन्न घर-घर शब्द।

किलिक (च)—संज्ञा पुं० [हिं०] जलकाश। भरई। ढाँड़ा। दे० 'काश (क)'।

किलिङ्गा-अम्बिलेटा—[ले०] }
किलिङ्गा-ट पटे ड—[अं०] } (बं०) बड़ा गोठोबी।
किलिङ्गा-ट्राइसेप्स—["] } (इं० है० गा०)

किलिङ्गा मोनोसिकेला—संज्ञा पुं० [ले०] (बं०) सात गोठोबी।

किलिच—संज्ञा पुं० [हिं०] जलकाश। दे० 'काश (क)'।

किलिञ्च—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सूक्ष्म काष्ठ। (जटा०)।

किलिञ्ज (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सींक।

वीरण। खस। उशीर। (२) सूक्ष्मकाष्ठ। (सु० चि० १० अ०; महाकुष्ठ। (त्रिका०)।

किलिञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) राल। धूप। रजन। (२) मत्स्य विशेष। एक प्रकार की मछली। मीन। (वै० निब०)।

किलिम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) देवदार। देवद्रु। (भा० म० १ भ० ज्व० चि०। च० शा० ८ अ०)। (२) धूप। राल। धूनक। धूना। (वै० निघ०)। (३) देवदारु तैल। तारपीन का तेल। (च० द० वा० व्या० चि० प्रसारणी तैल)।

किली—संज्ञा स्त्री० [अ०] सर्जिका। सज्जी।

किलीमिया—संज्ञा पुं० [?] अकलीमिया। कार्बोनेट ऑफ़ झिंक (Carbonate of Zinc)।

किलीलुस्सबागीन—संज्ञा पुं० [अ०] सर्जिका। सज्जीखार।

किलूट—संज्ञा पुं० [बं०] पातिखुरि। तिल्लक। (मे० मो०)।

किलैप्प-किशङ्ग—संज्ञा पुं० [ता०] लांगली, कलिहारी।

किलो—संज्ञा पुं० [अ०] सुधा। सुधकक्षार। कली का चूना। (Calx, Calcium Oxide)।

किलोज—संज्ञा पुं० [उ० प० भा०] तिमशा। मोड़ू। (मे० मो०)।

किलौटा—संज्ञा पुं० [हिं०] वनस्पति विशेष। पंजाब में झेलम नदी के निकट होता है। पलूदर और रेवडी के नाम से प्रसिद्ध है।

किलअ—संज्ञा पुं० [अ०] ज्वर का विराम तथा मोक्ष काल।

किलकंतर—संज्ञा पुं० [फा०] }
किलकदीसी— " [रूमी०] } कसीस का एक भेद जो
किलकन्दीस— " ["] }

पीताभ वर्ण का होता है। हीराकसीस भेद।

किलख—संज्ञा पुं० [?]

किल्ल वा किल्ह—संज्ञा पुं० [?] वक्तव्य—

यद्यपि किना और इसको परस्पर मिलाकर वा एकत्र लिखकर विषय को जटिल बना दिया गया है, तथापि कानून के भाष्य में हकीम गीलानी द्वारा लिखित यह बात अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है कि बुगदादी ने कहा है कि एक उद्भिद है, जिसके पत्ते सेब के पत्तों की तरह होते हैं। प्रकृति इसकी शीतल और रूक्ष है। यह संग्राही (क्राबिज) है तथा रक्तनिष्ठीवन, रक्तस्राव और रक्ता-तिसार को नाश करती है। यह सर्पविषघ्न है। इसके नस्य (सऊत) से नकसीर बंद होता है। इसका बीज अत्यन्त उष्ण एवं मूत्रल है। इससे पेट की मरोड़ मिटती है।

टिप्पणी—मरुजन के लेखक ने इस बात पर आश्चर्य

किल्ह

चि०

धूप।

छली।

दार।

शा०

(वै०

तेल।

वैनिट

वार।

(मे०

री।

गे का

मोड़।

ब में

रेवडी

मोक्ष

द जो

एकत्र

थापि

बात

कहा

तरह

ग्राही

रक्ता-

नस्य

त्यन्त

।

श्वर्ब

किल्ज

१७९

किशमिश

प्रगट किया है कि बुगदादी के एक कथन से तो किल्ख अन्दरूतालीस जान पड़ता है जो उसनान की तरह पत्रशून्य होता है और यहाँ पर उससे भिन्न दूसरी ही बात कही है। इसका समाधान यह है कि अन्दरूतालीस में किल्ख के स्थान में वस्तुतः कलंज लिखा है, न कि किल्ख और यहाँ किल्ख वर्णित है।

किल्ज—संज्ञा पुं० [अं०] दअदरूतालीस } चूना।

किल्ज—संज्ञा पुं०

किल्ज—संज्ञा पुं० [सुर०, किल्जी]

वर्णनादि—मखन में इसकी सुरियानी संज्ञा किल्जी और रूमी सलूफीतज लिखी है। सलूफीतज की जगह मुहीत में शलूफतीनज लिखा है। बुरहान में इसे मुगास हिंदी (मै लकड़ी) लिखा है, जो उनके अनुसार जंगली अनार की जड़ है। गीलानी ने लिखा है कि कदाचित्त यह मुगास हिंदी हो। उन्होंने इसको जंगली अनार की जड़ बतानेवाले को अमान्य ठहराया है। इसे केवड़े का बीज माननेवाले भी अमान्य हैं। दे० “मैदा लकड़ी”। गुणकर्म और प्रयोग—यह उष्ण और तर है। अस्थिभंग और संधिच्युति में इसे पीने और प्रलेप करने से उपकार होता है। अन्य गुणादि मुगासवत् हैं। (मखन)

किल्या—संज्ञा पुं० [अ०] सज्जीखार।

किल्यान—संज्ञा पुं० [?] सफेद चूना।

किल्द—संज्ञा पुं० [अ०] चार्तुथिक ज्वर की पारी। नौबत तपेचहारम। (Paroxysm of the artan fever)।

किल्लअ—संज्ञा पुं० [अ०] ज्वर का मोक्षकाल। बोखार उतरने का समय।

किल्लत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कष्ट। (२) अल्पता। कमी। कम होना।

किल्लतुदम—संज्ञा पुं० [अ०] रक्ताल्पता। खून की कमी। शरीर में रक्त का परिमाण का कम हो जाना। (अं०) आलिगीमिआ (Alegaemia), स्पेनीमिआ (Spanaemia)।

किल्लतुलबौल—संज्ञा पुं० [अ०] मूत्राल्पता। पेशाब की कमी। पेशाब का कम आना। पेशाब का थोड़ा आना। ऐन्युरिआ (Anuria)।

किल्लतुलबन—संज्ञा पुं० [अ०] स्तन्याल्पता। अल्प क्षीरत्व। दुग्धाल्पता। दूध की कमी। दूध का परिमाण घट जाना। (अ०) गैलेक्टोस्केसिस (Galactoskesis)।

किल्लुदेवधावोर—संज्ञा पुं० [बं०] देवधान्य। देवधान। यथा श्यामाकादि।

किल्विष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोग। व्याधि। पाप। (मे० षत्रिक)।

किल्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] अश्व। घोटक। घोड़ा।

किल्स—संज्ञा पुं० [फा०] सुधा। चूना। (अं०) लाइम (Lime), कैल्सिम (Calcium)। दे० ‘चूना’।

किल्स क्लोराइड—संज्ञा स्त्री० [अं० Calcium Chloride]। चूना।

किल्सुकोवुनियन—संज्ञा पुं० [यू०] एक वनस्पति जो जलाई जाती है। (म० अ०; मु० आ०)।

किल्ह—संज्ञा पुं० [अ०] दे० ‘किल्ख’।

किवच—संज्ञा पुं० [हिं०] अलाकुशी। केवाँच। कपिकच्छू। बानरी।

किवाड़—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] द्वार। (अं०) वॉल्व (Vault)।

किवाड़ा—संज्ञा पुं० [उ० प० भा०] सर्वजया (लाल)। (मे० मो०)।

किवाम—संज्ञा पुं० [अ०] चाशनी। पाक। पाकसिद्ध कल्प।

किवाम अद्विया—संज्ञा पुं० [उर्दू] वह द्रव्य जिनके द्वारा पाक सिद्ध किया जाता है। यथा—गुड़, शर्करा, चीनी, कन्द प्रभृति।

किवाँच—संज्ञा पुं० [हिं०] केवाँच। कौंच। अलाकुशी। कपिकच्छू।

किवु—संज्ञा पुं० [बं०] कुष्ठ। कूट। कुश्त।

किशअ—संज्ञा पुं० [अ०] सरट। गिर्गिट। गिरगिटान।

किशक (कि) न्धा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष क्षुप।

किशमिश—संज्ञा स्त्री० [हिं०] फल विशेष। पर्याय—(सं०) अमृतफला, अबीजद्राक्षा गुच्छफला, तापस-प्रिया, चारुफला, मधुरसा, मृद्वीका, प्रिया, प्रियाला, यक्षमघनी, रसाला, स्वादुफला, हारहरा; (हिं०, गु०, म०, ते०) किसमिस; (फा०) किशमिश, अंगूर बेदाना, किशमिश; (अ०) मवेज बेदाना; (अं०) रेजिन्स (Raisins), सुलतानाज (Sultanas)।

परिचय—शुष्क अंगूर जिसमें बीज का अभाव होता है। अंगूर की अपेक्षा यह क्षुद्र, लंबोतरा तथा गोल होती है। वर्णभेद से यह कतिपय प्रकार की होती है। श्रेष्ठ वह है जो हरिताम एवं नवीन होती है।

वर्ग—द्राक्षादि कुल (Fameliy Ameplideae)।

उद्भवस्थान—काबुल, काश्मीर इत्यादि।

रासायनिक संगठन—इसमें समस्त उपादान जो अंगूर में वर्णित है, पाए जाते हैं।

गुण-कर्म—सुपक्व फल सर (दस्तावर), शीतल, बृंहण तथा नेत्रों को हितकर। अपक्व फल—स्वल्प गुणकारक, अम्ल, दीर्घपाकी, तथा रक्तपित्तकारक है। अबीज द्राक्षा, द्राक्षा की अपेक्षया अल्प गुणकारक है। दे० ‘अंगूर’।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—प्रथम कक्षा में रूक्ष, द्वितीय कक्षा में उष्ण, मतान्तर से समस्निग्धोष्ण।

गुण-कर्म—जीवनीय, चित्त आह्लादकर, हृदय-बलदायक, वाजीकर, मेघ्य, मार्दवकर, यकृतबलप्रद, उरः संशोधक

तथा ग्रन्थिविलयन है।

उपयोग—इसके उपयोग से शरीर पुष्ट होता है, हृदय बलवान् होता है और कोष्ठबद्धता दूर होती है। हृदय की दुर्बलता तथा गदोद्गतिनिवारणार्थ हरितवर्ण की किशमिश गुलाबजल में भिगा कर सेवन करने से हृदय की धड़कन दूर होती है। मात्रा—हरित किशमिश ४० की संख्या में ५ तोला गुलाबार्क में सायंकाल में भिगा दें और प्रातः काल अनाहारमुख सेवन करें।

व्रणदारण तथा ग्रन्थिशोथनिवारण के निमित्त किशमिश, कुसुम्भबीज और मुरगी के अंडों का पीत भाग, एकत्र पीस कर लेप करें।

एलुआ के साथ पीस कर लगाने से गंज (इन्द्रलुप्त) का नाश होता है। स्वरभंग तथा शुष्ककाशसमनार्थ किशमिश का कषाय फलप्रद है। किशमिश प्रतिदिन सेवन करने से शुद्ध रक्त उत्पन्न होता है और कामशक्ति की वृद्धि होती है।

अहितकर—वृक्क तथा उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को।

निवारण—सौंफ उन्नाव, सिकंजवीन, खशखाशओं, गुलाब जल।

प्रतिनिधि—द्राक्षा (मुनक्का)।

मात्रा—प्रकृति के अनुकूल।

किशमिश काबिलयान—[वम्ब०] लघु द्राक्षा। किशमिश काबुली। देखो 'किमिशे काबलियाँ'।

किशमिश काबलियाँ—संज्ञा पुं० [अ०] | काबुली

किशमिश-काबल—संज्ञा पुं० [भारतीय बाजार] | किशमिश।

फल विशेष। पर्याय—(हिं०) भांगर, वन्दा; (अफ०) तुरपौली; (पं०) काह बंग, वम्बज। (अं०) मिस्ट-लेटी (Mistletoe); (ले०) विस्कम अल्बा (Viscum Alba)

द्राक्षादि कुल (Family : Loranthaceae)।

उद्भवस्थान—समशीतोष्ण हिमवती पर्वत इत्यादि।

परिचय—एक प्रकार की लता जो उक्त नाम से प्रसिद्ध है और फल किशमिश के आकार का होता है और विषैला होता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में एक प्रकार का वानस्पतिक सिक्थ के समान सत्व होता है जिसको अंग्रेजी में विस्कीन (Viscin) कहते हैं। यह अत्यन्त लचकदार तथा शहदतुल्य होता है।

गुण-कर्म—बलवर्धक, निद्राजनक, वमन-विरेचनकारक, आक्षेपहर तथा विषघ्न (Oxytoxic) है।

उपयोग—यकृतप्लीहशोथघ्न, तथा आक्षेपघ्न होने से इसका उपयोग यकृत तथा प्लीहा की वृद्धि में होता है। अपस्मार तथा अपतन्त्रक (हिप्टीरिया) जनित आक्षेप में देने से शीघ्र लाभ होता है। हृदयोद्ग

(Palpitation of the heart) में इसका उपयोग डिजिटेलिस की भाँति किया जाता है। इसको पीसकर लगाने से व्रणशोथ (विद्रधि) का नाश होता है।

कल्प—फलववाथ—१ भाग १० भाग जल में निर्माण कर देने की मात्रा १ से २१ औंस तक। टिचर—१ भाग १० भाग मद्यसार में प्रस्तुत कर देने की मात्रा—१ से २ तरल ड्राम तक।

किशमिश काबुली—संज्ञा पुं० [हिं०] पर्याय—(भा० बाजार) किशमिश काबुली, किशमिशेकाबलियाँ; (फा०) मवीजक असली; (अ०) दिक्क, मवीजजे असली; (ईरान) अंगूरे कौली; (हिं०) बन बदर; (पं०) बाँदा, बंबल; (का०) झिंझा; हरिबंबल; (लेपचा) हुचु; (अं०) ह्वाइट मिस्टलेटो (White mistletoe); (सं०) काबुली द्राक्षा; (यू०) इक्सोस (Ixos)।
द्राक्षादि कुल (Family : Loranthaceae)।

उद्भवस्थान—अनुष्ण हिमवती तथा पश्चिम की ओर अटलांटिक समुद्र पर्यन्त।

परिचय—यह काबुल में होनेवाली बाँदा नामक लता के शुष्क फल हैं जो आकार में लघुचुकतुल्य प्रायः ३ इंच के व्यास में होते हैं। यह मृदु, लघु लम्बोत्तर, हरित वर्ण तथा शुष्क फल भूरे कृष्णाभ वा क्षुरीयुक्त होते हैं। बीज पोस्ता के दाना सदृश होता है। फल का आन्तरिक भाग लसयुक्त होता है। इसकी लता बलूत, नासपाती तथा सेवादि पर फैली होती है। बलूत पर होनेवाली लता का फल सर्वोत्तम है।

गोल, चिक्कण, नूतन, हरितवर्ण तथा नीलाभकृष्ण वर्ण के फल औषधार्थ ग्रहण किए जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फल में द्राक्षिन (Viscin) नाम का सत्व होता है।

उपयोगी अंग—फलमात्र।

प्रकृति—प्रथम कक्षा वा द्वितीय कक्षा में उष्ण, प्रथम कक्षा में रुक्ष, किसी के अनुसार समशीतोष्ण है।

बीज—शीतल एवं रुक्ष हैं।

गुण-कर्म—मलपक्वकारक, कठोरतानाशक, रोधो-दघाटक, कफज प्रकृति को मृदुकारक, सारक, शोथघ्न, दोषतारल्यकारक, कफज-शीतपित्त एवं उदरदनाशक, व्रणशोथविलायक, रक्तप्रकोपशान्तिकारक, कास-श्वासघ्न, ओजप्रद, वृंहण तथा मस्तिष्कबलप्रद है।

उपयोग—जलमें पकाकर बीजसहित किसमिस १ भाग, एरण्डबीज २ भाग, आक्षोट बीज ३ भाग एकत्र पीसकर मधुमिश्रित कर सेवन करने से शुष्क कफ, गुध्रसी, भगंदर तथा विष्टम्भ का नाश होता है। पीस कर लेप करने से व्रणशोथ नष्ट होता है तथा विदीर्ण होकर पूयसाव होता है। मोम, कुंदुर और घप के साथ

इसकी कैरूती बनाकर लगाने से कठिन सन्धि में मृदुता उत्पन्न होती है और वेदना शान्त होती है। मुख पर प्रलेप करने से व्यंग, झाँई (मुखदूषिका) इत्यादि का नाश होता है। हुरताल और जुप्त के साथ मिश्रित कर लगाने से सड़े गले नख गिर जाते हैं। चूना, द्राक्षारस और मधुमिश्रितकर लगाने से नख निकलते तथा दृढ़ होते हैं। मेंहदीपत्रयुक्त पीस कर लगाने से इन्द्रलुप्त और शिरोगत चर्मविकार शान्त होते हैं। गुलरोगन युक्त लगाने से केशों की वृद्धि होती है। चूना के पानी में पीस-लेप करने से प्लीहशोथ नष्ट होता है।

अहितकर—अधिक मात्रा में खाने से भ्रम, अंग-गौरव, उद्वेगन तथा पेट में मरोड़ होता है तथा ज्वर की उत्पत्ति होती है। यह गर्भपातक है।

निवारण—उक्त अवस्था में मधुमिश्रितजल द्वारा वमन कराएँ तथा वस्ति (एनिमा) देवें और पुनः सिकंजवीन चटाएँ तथा विल्लीलोटन, गावजवाँ, खीरा-ककड़ी के बीज उचित परिमाण में देवें।

प्रतिनिधि—किशमिश तथा मुनक्का के बीज।

मात्रा—कफज व्याधियों में ३॥ माशा।

किशमिश-काबलियाँ—[हिं०; उर्दू] किसमिसकाबुली।

किशमिश काबुली—[उर्दू] किशमिश-काबुली।

किशरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृशरा। खिचड़ी। (द्विरूपकोश)।

किशरोमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] शुक्रशिम्बी। सेम। केवाँच। कपिकच्छू। (वै० निघ०)।

किशल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वृक्षों के नूतन मृदु पत्र। (शब्द र०)।

किशल्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कोमल पत्र (पल्लव)। (त्रिका०)

क्रिशाअ—संज्ञा पुं० [अ०] चर्म।

क्रिशाम—संज्ञा पुं० [अ०] क्रिज। आवरेशम भेद।

क्रिशार—संज्ञा पुं० [अ०, बगदाद] (१) हब्बुल्महलिव की छाल। (२) दिक्क।

क्रिशार कुन्दुर—संज्ञा पुं० [अ०] कुन्दुरगोंद के कण।

क्रिशारह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) क्रिशार कुन्दुर देखें। (२) महलिव (महालिव) की छाल।

क्रिशिंग—संज्ञा पुं० [कुमायूँ] बंखोर (Aesculus Indica)।

क्रिशिर—संज्ञा पुं० [अ०] त्वचा। छाल। क्रिश्र।

क्रिशुर—संज्ञा पुं० [ब०] कबीला। काम्पिल्ल।

क्रिशोर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घोटक-शिशु। बछेड़ा। (२) तिलपर्णी। (मे० रत्रिक)। (३) सूर्य।

क्रिशअ—संज्ञा पुं० [अ०] कूड़ा-ककट। (अ०) स्वीपिंग्स (Sweepings)।

क्रिशत-बर-क्रिशत—संज्ञा पुं० [फा०] आवर्तकी। मरोड़फली।

किशनीज—संज्ञा स्त्री० [फा०] कुजबुर। कुस्तुम्बुरु। घनिय्याँ।

किशब—(वि०) [अ०] (१) घातक विष। मारकविष। जहरकातिल। (२) जंग, किट्ट, मुरचा।

किशमिश—संज्ञा स्त्री० [हिं०] किशमिश।

किशमिश-काबल—संज्ञा पुं० [भा० बाजार]

किशमिश-काबलियाँ—संज्ञा पुं० [उर्दू, अ०]

किशमिश काबुली—[हिं०]

किशमिश-काबुल—संज्ञा पुं० [हिं०]

किशमिश काबलियाँ—संज्ञा स्त्री० [अ०]

किशमिश
काबुली।

क्रिश—संज्ञा पुं० [अ०] त्वचा, छाल, पोस्त, वृक्ष आदि की छाल। छिलका। (अं०) स्केल (Scale), कॉर्टेक्स (Cortex)।

क्रिशह—संज्ञा पुं० [अ०] घोड़े की खाल। (लु० क०)।

क्रिशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] बालाई। मलाई। साढ़ी। दुग्धविकार। क्षीर-विकार।

क्रिशुल खशखाश—संज्ञा पुं० [अ०] पोस्ता के ढोंढ़ का छिलका।

क्रिशश—संज्ञा पुं० [अ०] कूड़ा-ककट। अं० (Sweeping)।

क्रिष्कु—सं० पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) एक प्रकार का मान जो १२ अंगुल का होता है। हाथ। हस्त। (रत्ना०)। (२) प्रकोष्ठ। कूर्पर। पाणिमध्यभाग। (मे० कद्विक)। (३) शालवृक्ष। साखु। (४) बाँस। वंश। (५) ईख। इक्षुभेद।

क्रिष्कु पर्य्या—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बाँस। वंश। (२) नल। नकट। नरसल। (मे०)।

क्रिसगि—संज्ञा पुं० [कना०] कंधी। पीतवला। पीत सहदेवी।

क्रिस-अल—संज्ञा स्त्री [अ०] अकरब। बिच्छू। वृश्चिक।

क्रिसब—संज्ञा पुं० [अ०, यू०, फा०] बाँस। वंश।

क्रिसबुआ—संज्ञा पुं० [अ०] चिरायता। कालमेघ। कलफनाथ। भूनिम्ब।

क्रिसमिशकावली—संज्ञा पुं० [म०] किशमिश काबुली।

क्रिसमिस—संज्ञा पुं० [हिं०, गु०] क्षुद्र द्राक्षा। अबीज द्राक्षा। दे० 'किशमिश'।

क्रिसया—संज्ञा पुं० [तुर०, यू०] तज। सलीख।

क्रिसर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुगन्धिद्रव्य विशेष।

क्रिसल (य)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] वृक्षों के कोमल नूतन पत्र। (अम०)।

क्रिसः—संज्ञा पुं० [?] निशोथ। तुर्वुद। त्रिवृत्त।

क्रिसाअ—संज्ञा पुं० [अ०] ककड़ी। खियार्जः। ककटी (त्रपुषी)।

क्रिसाअ-हिन्दी संज्ञा पुं० [अ०] (१) अमलतास। (२) तरौई।

क्रिसाउल्लमाज्—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायण। इनारुन।

क्रिसाउल्-कबर—संज्ञा पुं० [अ०] कबर वा करील का फल।

क्रिसाउल् कल्ब—संज्ञा पुं० [अ०] ग्रासालिस।

क्रिसाउल्बर—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ी ककड़ी। फूट।

क्रिसाउल् शाम—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायण। हंजल।

क्रिसाउल् सफ़ार—संज्ञा पुं० [अ०] छोटी ककड़ियाँ।

किसाउल्बरीं—संज्ञा पुं० [अ०] बन्दाल। घघरबेल। जीमूत।

किसाउल्सिगार—संज्ञा पुं० [अ०] छोटा इद्रायण।

किसाउल्हिमार—संज्ञा पुं० [अ०] पर्याय—कण्टक कर्कटी।

पर्याय—(सं०) कण्टकिनी, कण्टकर्कटी (हिं०) काँटेवाली इन्द्रवारुणी; (अ०) किस्साउल्हिमार, मस्तुज्जिऽव, सुअवे; (फा०) खियार्जएअस्पन्द, खियार्जएखर, खियार खर, समाहंग, कुर्बुज (मख्जन, मुहीत), खियार दश्ती (तोहफतुस्सआदत, मुहीत), किस्साऽबरीं? (बहर्लुजवाहर); (यू०) शकूशीना (मख्जन), सफ्रीस अगारयूस अर्थात् खियारसहराई (दीसकूरीदूस), इसकर अगारयूस, इस्फेरिद अगारिओन (स्फईरिदियोन अगरीओन (*σφαίριδιον*)) (हाजी जैन), सन्दयूस, अगारयूस, कतूरयून; (भा०, बाजार) कांटेरी इन्द्रायन, कातरी इन्द्रायन; (गु०) कांटाला इन्द्रावणां, कांटाला इन्द्रायण; (मरा०) कांटेरी इन्द्रावणी; (ले०) एक्बेलियम् इलेटेरियम् (*Ecballium Elatrium A. Rich.*); (अं०) स्क्विटिंग क्युकुंबर (*Squirting cucumber*)-(फ्रा०) *Concombre d'an*; किन्न (जॉर्जिया)।
संज्ञा-विमर्शमकटिपणी—किस्साउल्हिमार का अर्थ (किस्साऽ=ककड़ी+हिमार=गदहा) गर्दभकर्कटी है और खियार्जएखर एवं खियारखर (खियार्जः, खियार=खीरा वा उपलक्षण से ककड़ी+खर=गदहा) उसके समानार्थी शब्द हैं। खियारदश्ती और किस्साऽबरीं का अर्थ अरण्यकर्कटी है। शकूशीना और अगारयूस का अर्थ खजाइन में इन्द्रायन का फल लिखा है। इलेटेरियम् संज्ञा यूनानी एलाटेरियोन (*Ela Tnpior*) से, जिसका अर्थ तीव्ररेचनौषध है, व्युत्पन्न है। मख्जन में और उसके पीछे मुहीत में किस्साउल्हिमार के वर्णन में इसके उसारा (सत्व) की यूनानी संज्ञा इतिरयून लिखी है, जो शुद्ध इलातिरयून है।

कुसमाण्डादि कुल

(Family: Cucurbitaceae)

उत्पत्तिस्थान—यूरोप (फ्रांस और इंग्लैण्ड में औषधार्थ इसकी कृषि करते हैं), उत्तरी एशिया विशेषतया टिफ़लिस, जॉर्जिया (रूस स्थित) और फ़ारस इत्यादि।

वर्णन—इसकी बेल ईरान में होती है और ४ से ६ फुट लंबी होती है। फल ककड़ी के समान रंग में कोमल काँटों से व्याप्त होते हैं। इसकी बेल देवदाली से मिलती हुई होती है। फल भी देवदाली के समान होते हैं। इसके कच्चे वा पके हुए फलों को तोड़कर सुखा लेते हैं। यह अत्यंत कड़ुए होते हैं।

प्राचीन मत-मतान्तर—किसी-किसी के मत से एक वनस्पति जिसका पौधा ककड़ी वा खीरे के पौधे की तरह होता है। पत्र उससे छोटे खुरदरे और रोंगटेदार होते हैं। फल बलूत के फल की तरह, किंतु उससे अधिक लंबा होता है। जड़ बड़ी और सफेद रंग की होती है। यह वीरान और रेतीली भूमि में होता है। फल तिक्त एवं दुर्गन्धयुक्त होता है और पुराने में से कोई-कोई रेखांकित होता है और कोई मसृण। (उक्त औषधि के अंगों में से पत्र, फल और जड़ औषध के काम आती है) बृगदादी के कथनानुसार एक वनस्पति है जिसमें एक खड़ी डंडी होती है। पत्ती बुस्तानी ककड़ी की पत्ती से छोटी होती है और इसके सभी अंग बलिष्ठतर हैं। इसके फल का, किसी किसी के मत से जड़ का उसारा व्यवहार में आता है। परंतु सत्य यह है कि इसके फल का उसारा (रसक्रिया) औषध के काम आता है, जिसे यूनानी में इतिरयून कहते हैं। अन्य मत से श्यामता लिये हरे रंग की एक वनस्पति है। पौधा कबर के पौधे की तरह, किंतु कंटकशून्य होता है। फूल सफेद और फल बलूत से अधिक लंबा हरे रंग का होता है। पका फल पीला और अत्यंत तिक्त होता है। इसलिए इसे 'अल्कम' कहते हैं। क्योंकि अरब लोग प्रत्येक कड़ुई चीज को अल्कम कहते हैं। इसके समस्त अंगों में फल उत्तम है। फलों में वह फल श्रेष्ठतर है जो पका, अत्यंत पीला, ककड़ी के बराबर लंबा और बहुत कड़ुवा हो। फल ऐसे पौधे का उत्तम होता है जिसमें केवल एक ही फल नहीं, अपितु जितने ही अधिक फल लगते हैं, उतने ही फल उत्तम होते हैं। (मख्जन, मुहीत)।

वक्तव्य—मख्जन के अनुसार इसे हिंदी करेला समझने-वालों ने भल की है। क्योंकि किस्साउल्हिमार विरेचक है, पर करेला विरेचक नहीं है। कोई-कोई कहते हैं कि यह गड़मी (इन्द्रायण) वा कड़वी कचरी है और संभव है कि जंगली कड़ुआ परवल हो, जिसे कुंदरु कहते हैं। परंतु मुहीत में लिखा है कि जिन लोगों ने इसको करेला वा कड़वी कचरी वा जंगली तिक्त परवल जिसे कड़वी कंदूरी कहते हैं, जाना है, उन्होंने भूल की है। अंत में उन्होंने अपना निर्णीत मत यह दिया है कि हिंदी में इसे बंदाल और घघरबेल कहते हैं। अर्थात् इनके मत से किस्साउल्हिमार बंदाल है। परंतु किसाउल्हिमार में वर्णनादि मख्जन के अनुकूल किसाउल्हिमार देकर बंदाल का बंदाल शब्द में पृथक् वर्णनादि दिया है। मख्जन में भी उक्त दोनों का पृथक् वर्णन किया है और एक को दूसरे से भिन्न माना है। परंतु खजाइन के लेखक ने मुहीत के निर्णयात्मक विचार को

ध्यान में रखकर दोनों को एक-द्रव्य स्वीकार कर लिया है। अस्तु, बंदाल शब्द में बंदाल और किस्साउल्हिमार दोनों का एकत्र वर्णन देकर विषय को सुलझाने की जगह और जटिल बना दिया है। वास्तविक बात यह है कि यद्यपि उक्त वनस्पतिद्वय एक ही कुल की और रूप एवं गुण में बहुत कुछ समान हैं; तथापि दोनों पृथक्-पृथक् बूटी हैं। अस्तु, वनस्पतिशास्त्रज्ञों ने इनके अलग-अलग नाम रखे हैं। इनमें से किस्साउल्हिमार तो कदाचित् यहां होता भी नहीं, प्रायः इरानादि विदेशों से इसके फल यहां लाये जाते हैं। अस्तु, मैंने मरुजन के अनुसार इनका पृथक् वर्णन करना अधिक श्रेयस्कर समझा। दे० “बंदाल” वा “देवदाली”।

किस्साउल्हिमार का सत वा इलातरियून

पर्या०—(अ०) खुलासए किस्साउल्हिमार, असीर किस्साउल्हिमार; (फा०) उसारए खियारदस्ती, असीर खियारखर; (ले०) एलेटेरियम् (Elatarium)।

नोट—यह किस्साउल्हिमार के फल-स्वरस का गाद वा तलछट है।

निर्माण-क्रम—ऐसा पका फल, जो हाथ से छूते ही बिना तोड़े पेड़ से गिर पड़े और ताज्जा और पुष्ट हो, लेकर और काटकर साफ़ी वा चलनी में रखकर निचोड़ें। छन जाने के उपरांत उसपर मीठा पानी डालें और स्थिर होने दें। जब गाद नीचे बैठ जाय और ऊपर निथरा हुआ साफ़ पानी रह जाय, तब उस पानी को निथार कर फेंक दें। कई बार ऐसा ही करें। पुनः नीचे के बचे हुए अर्थात् तलछट को खूब बारीक करके समभाग बबूल का गोंद वा अर्ध भाग निशास्ता* अथवा गिलअरमनी (Calamina) के साथ घोलकर टिकिया बनाकर और सुखाकर रख लें। इसकी द्वितीय विधि यह है—ग्रीष्म ऋतु के अंत में जब बंदाल के फल पककर पीले पड़ जाते हैं, तब उन्हें लेकर और कूट-पीसकर साफ़ी आदि से वस्त्रपूत कर और यथाविधि पानी डाल-डालकर निथारकर नीचे बैठे हुए द्रव्य को इस प्रकार सुखा लें—बारीक और छनी हुई राख को प्रथम एक चौड़े बरतन में बिछा दें और उस राख पर कपड़ा फैलाकर उक्त तलछट को कपड़े के ऊपर फैला दें। जब राख पानी को चूस ले, तब उक्त शुष्क द्रव्य को पीसकर टिकिया बनाकर साये में सुखा लें। इसकी शक्ति दस वर्ष तक शेष रहती है। इसमें अनेक वस्तुओं का मिश्रण करते हैं। शुद्ध की पहिचान यह है कि यह सफेद रंग का चिकना और हलका होता है। चिराम के पास रखने से शीघ्र भड़क कर जल उठता है। जो एक वर्षसे अधिक न हुआ

*दीसकूरीदूस और प्लाइनी लिखित ‘एलाटेरियोन’ की निर्माण-विधि के समान ही यह विधि है।

हो, वह उत्तम समझा जाता है। मिश्रण वा खोट की यह पहिचान है कि उसमें उक्त लक्षण न हों और वह अत्यंत सफेद और गंदने के रंग का, खुरदरा और भारी हो तो अशुद्ध वा रद्दी समझें। इसका प्रयोग वर्ज्य है। (मरुजन)।

इतिहास—पुराकालीन यूनानी चिकित्सकों ने इलातिरियून (एलाटेरियोन) के नाम से जिससे इसकी लेटिन संज्ञा एलेटेरियम् व्युत्पन्न है, उसारए किस्साउल्हिमार (कांटेवाली इन्द्रायन का सत) का वर्णन किया है। मुस मान चिकित्सकों ने भी इसका वर्णन किया है। परन्तु डी. क. के कयनानुसार प्राचीन भारतीयों को उक्त औषधि अज्ञात थी। अति प्राचीन काल से उक्त औषधि का सत (उसारा) औषधरूपेण व्यवहार में आ रहा है। यह आज-कल यूरोप और अमेरिका में भी औषधिरूप से व्यवहार किया जाता है। डाक्टरों ने इसका क्षारोद भी निकाला है। जिसको लेटिन में एलेटेरियम् और अंगरेजी में एलेटेरीन कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एलेटेरीन वा एकवेल्लीन (Elaterin, Ecballin-किस्साउल्-हिमारीन) जो इसका क्रियात्मक सार है, प्राफेटीन (Prophetin) एक ग्ल्युकोसाइड और गमीमैटर (नियसिवत् पदार्थ) ये तीन घटक पाये जाते हैं। डाक्टरी में इसका उसारा (Elaterium) और क्रियात्मकसार एलेटेरिनम् (Elaterinum) दोनों का व्यवहार होता है और दोनों ही सम्मत (Official) हैं। उसारे (Elaterium) की मात्रा $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन है और क्षारोद अर्थात् इलेटेरीन (Elaterin) की मात्रा $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन है।

प्रयोगांश—फल, फूल, पत्र, मूल (पञ्चांग) और फल का उसारा।

प्रकृति—द्वितीय वा तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष। राजी ने हाबी कबीर में लिखा है—

“حارنى آخرالشايسته يابستنى آخرالشايسته”

अहितकर—उष्ण प्रकृति को और दुर्बल शरीरवालों को यह अत्यंत वा. क. है और मरोड़ (सहज्ज) पैदा करता है तथा यकृत, फुफुस और आमाशय को हानिकारक है।

निवारण—अत्यधिक वमन में पूर्वोक्त द्रव्य और उपर्युक्त स्नेह वा तेलादि के साथ लबाब। इसके उसारा का अकेले व्यवहार न करें, क्योंकि बहुत मरोड़ पैदा करता है; प्रत्युत अनुकूल प्रकृतिवाले को और निवारण (शीतल और तर) एवं उसके कार्य की सहायक औषधों के साथ व्यवहार करें, जो यह हैं—

औषध-निर्माण—एलुआ (वटी में), कंतूरियून दक्कीक (बस्ति में) और माजूनों में सूरंजान, बूजीदान कमाफीतूस, कुस्त, मुर, केसर, जटामांसी, दारचीनी,

तज, जरावंदमुदहरज, अनीसून, पहाड़ी और बुस्तानी अजमोद के बीज, जावशीर, सकबीनज, गूगल, निसोथ, नमकहिंदी इत्यादि और हृदयबलसाँ मध्वाम्बु और रुब्रंगूर के साथ, समस्त प्रकार के गोंद और स्नेह इसके निवारण हैं।

बादाम के वृक्ष का गोंद इसकी कार्यकारिणी शक्ति को एक दम नष्ट कर देता है। निवारण के लिए फल और मेवों का उपयोग करें। उत्तम यह है कि इसका उसारा एक दाँग (४ रत्ती) पीसकर समभाग बबूल का गोंद, आधा भाग गिल अरमनी और निशास्ता के साथ घोलकर सेवन करें और इन्द्रायन के गूदा तथा सकमूनिया प्रभृति उष्ण औषधों के साथ इसका प्रयोग अत्यन्त वर्जित है। साहबमिन्हाज के अनुसार उष्ण प्रकृति के लिए बबूल का गोंद और गूलाव का फूल, आमाशय और फुफुस के लिये शहद, कतीरा और जौ का आटा इसके साधारण निवारण हैं।

प्रतिनिधि—माहूदाना (मुहीत)। **ग्रह**—सूर्य।

विशिष्ट कर्म—मस्तिष्क-शोधक, कफ एवं पित्त को रेचन लाता, मूत्रप्रवर्तक और आर्तवप्रवर्तक है। **मात्रा**—उसारा १ रत्ती और सवा जौ भर से १ मा० और १॥ जौ भर तक। जड़ उसारे से द्विगुण अर्थात् ८ मा० १ रत्ती तक। सवा दो मासे से अधिक जड़ का प्रयोग किसी दशा में उचित नहीं है। क्योंकि उससे अत्यधिक वमन और रेचन होकर मनुष्य मर जाता है। ववाथ ३ औकिया (७॥ तो०) तक। फूल, फल और तेल ३॥ माशा तक। वस्तियों में इससे अधिक प्रयोग न करें। प्रायः निवारण औषधों के साथ व्यवहार्य है। तेल की मात्रा एक दिरम (३॥ मा०) तक। वस्ति में इससे अधिक प्रयुज्य है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह तारल्यजनक (मुलत्तिफ), लेखनीय (जाली), दोषविलयन (मुहल्लिल) और मस्तिष्क का शोधनकर्त्ता है। पतले कफ से मिला हुआ अप्राकृतिक वा विकृतपित्त और आमश्लेष्मा का रेचनकर्त्ता है। पीत द्रवों को रेचन द्वारा निस्सरित करता है तथा अर्द्धगवात (फ़ालिज), अर्दित (लक्रवा), अपस्मार, धनुस्तंभ (कुजाज), शिरोशूल (वैजः वखोजः), आमवात, वातरक्त, गृधसी, शीत कास, श्वास, कृच्छ्रश्वास सांद्रवायु, जलोदर, कृष्ण कामला और अर्श आदि रोगों में लाभकारी है; वृक्क और वस्तिस्थअश्मरि का छेदन करता है और मूत्र तथा आर्तव का प्रवर्तन करता है। शैख कहते हैं कि इसके पत्र, मूल और फल समस्त लेखनीय विलीनकर्त्ता और शोषणकर्त्ता रूक्षण (मुजफिफ़) हैं। इसके मूलत्वक् (पोस्त) का शोषणकारी गुण पत्ते से बढ़कर है। इसका उसारा, जड़ और पत्र अत्यंत तीव्र होते हैं। पत्र का उसारा फल के उसारे से निर्बल होता

है। कहते हैं कि इसकी जड़ में सभी अंगों से अधिक शोषण की शक्ति है। इसके पत्र और मूल दोनों का उसारा गुण में एक दूसरे के समीप है। अर्द्धविभेदक, जीर्ण शिरोशूल, समग्र शिर के सामान्य शूल और समस्त चिरकारी शीत-जन्य शूलों में इसके उसारे को बोटियों के दूध में घोलकर नाक में टपकाने से उपकार होता है। परंतु संशोधनोत्तर (तनकीहताम) इसके उपयोग से अधिक लाभ होता है। इससे अर्दित, संज्ञाशून्यता, धनुस्तंभ और अपस्मार में भी उपकार होता है। इसे पीसकर नकुओं में लगाने वा मलने से नाक द्वारा शिर के मलों का प्रचुरता से उत्सर्ग होकर पुरातन शिरोशूल और समग्र शिरोगत शूल (वैजः खोजः) आराम हो जाते हैं। गीलानी के अनुसार एक भाग इसकी जड़ और हींग चार भाग और थोड़ी सी चक्की की झाड़न—इनको सिल पर बारीक पीसकर स्कंधों के सिरों और गुद्दी पर लेप करने से शून्यता, और कंप रोग में असीम उपकार होता है। इसकी जड़के पीसकर कर्णमूल वा कान के पश्चात् भाग पर लेप करने से कर्णशोथ आराम हो जाता है। इसमें जौ के आटे के साथ तैयार किया हुआ इसका काढ़ा भी लाभकारी होता है। इसका कोष्ण उसारा कान में टपकाने से कर्ण-शूल आराम होता है। सिरके में वा अकेले तैयार किये हुए इसके काढ़े का गंडूष करने से शिरोशूल और दंतशूल (शीतल) आराम होते हैं। इसके उसारे को जैतून के तेल में मिलाकर आतपतप्त कर इसकी कुछ बूँदें कानमें टपकाने से कर्णशूल और वायु एवं सांद्र दोषजन्य कर्णक्ष्वेद और ऊँचा सुनना (सिक्ल समाअत) वा वाधिर्य आराम होते हैं। इसे अकेला गरम करके कान में टपकाने से कर्णगत कृमि नष्ट होते हैं और इसे कंठ के भीतर लगाने से कण्ठरोहिणी (डिफ्थीरिया—खुनाक) आराम होती है। इसके उसारे को शहद वा जैतून-तेल वा गोपित्त में मिलाकर लगाने से स्वरयंत्र (हज्जरः) की सूजन उतर जाती है और कण्ठरोहिणी (खुनाक) आराम होती है। उसी प्रकार इसके उसारे को शहद और जैतून के तेल में मिलाकर तालू पर लेप करने से कफज कण्ठरोहिणी (खुनाक) और कंठ की सूजन मिटती है और अतिसार बंद हो जाता है। श्वासकृच्छ्र और श्वासविकृति में इसके उसारे को पीना बहुत अनुकूल है। शैख के अनुसार अपनी शक्ति से पीत द्रवों का उत्सर्ग करके यह जलोदर में विलक्षण लाभ पहुँचाता है और इससे क्षोभ वा किसी प्रकार की हानि नहीं होती। जलोदर, कृष्ण कामला और रवताल्पता (सूउल्कि न्यः) में १½ मा० इसकी जड़ का स्वरस (अथवा १॥ अबोलोस जड़, वा १½ दिरम जड़ की छाल मध्वाम्बु के साथ पीने से विलक्षण लाभ होता है। जड़ ३ मा० वा इसका काढ़ा अर्ध रतल द्विगुण मद्य के

साथ तीन दिन में २ रत्ती २ मा० व ४॥ मा० मध्वम्बु के साथ नीहार पीने से कफ और पित्त के वमन होते हैं, रेचन द्वारा आम श्लेष्मा, पित्त और पीत द्रवों का सहज में उत्सर्ग होता है और आमाशय को किसी प्रकार की हानि नहीं होती। यह जलोदर की सर्वोत्कृष्ट औषधि है। प्रतिदिन ६ मा० इसकी छाल (पोस्त) शहद के पानी के साथ पीने से उक्त रोग में उपकार होता है। इसके उसारे में द्विगुण लवण और थोड़ा सुरमा मिलाकर मटर प्रमाण की वटिकाएँ बनाकर अनुकूल मात्रा में पानी के साथ खाने से खूब रेचन होता है। ७ रत्ती वा ३॥ रत्ती अकेले वा जैतून वा सोसन के तेल में मिला कर खाने से कफ और पित्त के वमन आते हैं। थोड़ा इसके उसारे को पानी में घोलकर मुर्ग के पर में लत करके जिह्वामूल वा उसके आस-पास लगाने से वमन होता है। यदि इससे तीव्रतर एवं प्रबलतर प्रभाव अभीष्ट हो तो जैतून वा सोसन के तेल में मिलाकर व्यवहार करें। यदि इससे अत्यधिक वमन होने लगे तो संप्राही मद्य और कच्चे जैतून का तेल पिलायें। क्योंकि ये उसके निवारण हैं। कारण यह है कि इनसे आमाशय को शक्ति प्राप्त होती है। अस्तु, इनके पीते ही तुरन्त कै बन्द हो जाती है। इस पर भी यदि बंद न हो तो जौ का सत्तू शीतल जल में मिलाकर अथवा जलमिला सिरका पिलायें व शीतल जल में बिठाएँ अथवा सिर पर शीतल पानी धारें और हाथ पैर को मलें (सुहलाएँ) और बिना शर्तके सींगी (मिहजमा नारी) लगायें तथा शीतसंप्राही एवं वमनरुद्धक औषध प्रयोग करें। गाजरूनी के मतसे नीबू या अनार का रस अधिक अनुकूल है। गीलानी के अनुसार इसकी जड़ का उसारा १॥ मा० अथवा जड़ खाने से विशेषतया जलोदरी को अथवा जिसे जलोदर होनेवाला है, कफ और पतला कफ मिला हुआ विकारी पित्त का रेचन कराता है। अर्ध रतल इसकी जड़को पीसकर तीन रतल शराब मिलाकर रखें। इसमें से ७॥ औकिया प्रतिदिन तीनदिन पर्यंत पीने से जलोदर में परम उपकार होता है। कामलारोग में इसके उसारे को बेटियों के दूध में घोलकर नाकमें प्रथमित करने से उपकार होता है। परीक्षित है। उसी प्रकार इसकी जड़ का काढ़ा मैफुस्तज में मिलाकर लेप करने से सर्वांगशोथ (इस्तिस्काऽलहमी) मिटता है। जड़ प्रबलतर कफरेचक और उसारा पित्तरेचक है। यह आमविकारी वायु और पीतद्रव-रेचक है। शैख के मत से स्वयं अवरोधोद्धाटनी शक्ति से यह मूत्र और आतव का प्रवर्तन करता है। इसे योनि में धारण करने से गर्भपात होता है। इसको (पत्र) कूट-पीसकर स्वरस निकालकर कोष्ण नाभि के नीचे अर्थात् पेड़ पर मलने

से कृमि मरकर निकल जाते हैं और इसे आमाशय के ऊपर मलने से कै आती है। इसे वृषणों पर मर्दन करने से वृषणशूल आराम होता है और पानी उतरना रुक जाता वा उतरा हुआ पानी विलीन हो जाता है। शैख के अनुसार इसकी जड़ के व्वाथको जौ के आटे में मिलाकर लेप करने से कफ की पुरानी सूजन उतर जाती है और व्रणादि विदीर्ण हो जाते हैं विशेषकर बुलम के गोंद में मिलाकर प्रयोग करने से। उक्त कार्य के लिये इसका उसारा अधिक बलशाली है। इसके पीने से आमवात, अंगसुप्तता (खदर) और हस्त-पाद तथा सकलांगगत कफज और वातज सभी प्रकार के शूल आराम हो जाते हैं। गृध्रसी में इसके काढ़े की वस्ति देने से बहुत उपकार होता है। उसी प्रकार पृष्ठशूल और शीतवातरक्त में इसे सिरका व शहद व मैफुस्तज में पकाकर लेप करने से लाभ होता है। पृष्ठगतशूल में इसके उसारे की वस्ति लाभकारी होती है। चिरकारी आमवात में इसके फलों का प्रलेप गुणकारी है। इसको पकाकर लेप करने से भी उक्त लाभ होता है। इसे सूखा पीसकर व्रणित कण्डू और दद्रु पर छिड़कने से उपकार होता है। व्रणित कण्डू, मस्सा (सालील), दद्रु, मुखदूषिका और मुख एवं सम्पूर्ण शरीरगत व्यंग और नीलिका आदि में इसे मधु, सिरका वा शराब में मिलाकर लेप करने से उपकार होता है। शरीफ अन्दलुसी के अनुसार इसके मूल और पत्र का व्वाथ निरंतर सेवन करने से कुष्ठरोग आराम होता है। किस्साउल्हिमार के स्वरस को तिलतैल वा अतसीतैल में इतना पकाएँ कि तेलमात्र शेष रह जाय। इसे लगाने से अर्शिकुर नष्ट होते हैं। इसके पके फलके छोटे-छोटे टुकड़े काटकर अथवा इसका स्वरस उसके द्विगुण जैतून का तेल मिलाकर एक बरतन में रखकर और मुख बंद करके ४० दिन तक धूपमें रखें अथवा गरम राख व आग पर रखें जिसमें रस सूखकर तेलमात्र शेष रह जाय। इस तेल को लेकर शरीर पर अभ्यंग करने से शरीर की सरदी दूर होती है, मलों का शोषण होता है, व्यंग और झाई एवं मुखदूषिका (मसूरवत् पिटिकाएँ) दूर होती हैं और चिरकारी आमवात आराम होता है। इसके पीने से भी उक्त लाभ होता है। (मखजन)। गीलानी ने लिखा है कि किस्साउल्हिमार का तेल उष्ण, और विलीनकर्ता है। इसे कानमें टपकाने से कर्णनाद और कर्णश्वेद आराम होता है तथा कर्णगत कृमि एवं सान्द्र वायु का नाश होता है। इसे योनिमें धारण करने से आतव का प्रवर्तन होता है और गर्भगतशिशु बाहर निकल आता है। पेय मात्रा ७ मा० है। (मुहीत)।

इब्नजुहर कहता है कि यदि कोई यह चाहे कि दाँत बिना कष्ट के उखड़ जाय तो उसको चाहिए कि इद्रायन

का फल कुचलकर सिरके में मिलाकर गूथे। जब शहद की तरह हो जाय तब उसको दंतोत्पादन के काम में लेवें।

उपयोगी अंग—फल, फलसत्व, पत्र-स्वरस, मूल तथा पञ्चांग।

किसाउल्-हियः—संज्ञा पुं० [अ०] जरावन्द तवील।

किसातूमस—संज्ञा पुं० [यू०] कुसुम्भ। कड़।

किसातूस—संज्ञा पुं० [यू०] }

किसादा—संज्ञा पुं० [यू०] टंकण। तंकार। सोहागा।

किसाम—संज्ञा पुं० [?] चर्मादा।

किसाम—संज्ञा स्त्री० [अ०] भटीरा

किसामुलीस—संज्ञा पुं० [यू०] }

किसामूली—संज्ञा पुं० [यू०] } दालचीनी। गुडत्वक्।

किसामूस—संज्ञा पुं० [यू०] }

किसार कर्नीन—संज्ञा पुं० [यू०] हरा छोहाड़ा। खुर्मा तर।

किसार करनीकन—संज्ञा पुं० [यू०] इमली। चिञ्चा।

किसार दोस्मा—संज्ञा पुं० [यू०] चिरायता। चिरतिक्त।

किसार वाकिरकून—संज्ञा पुं० [यू०] }

किसार-वाकूकीहन—संज्ञा पुं० [यू०] } नागरमोथा।

किसारस—संज्ञा पुं० [यू०] कवर। किन्न। करील भेद।

किसारा—संज्ञा पुं० [रू०] ऊदबलसाँ।

किसारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] (१) केसारी। लतरी।

केराव। (२) रेशम का कीड़ा। दे० 'कुसियारी'।

किसास—संज्ञा पुं० [अ०] गूलर भेद। (लु० क०)।

किसीबीसूस—संज्ञा पुं० [रू०, यू०] तज। सलीखा।

किसमास—संज्ञा पुं० [यू०] दारचीनी। दालचीनी। गुडत्वक्।

किसोरया—संज्ञा पुं० [म०] (१) मैना पक्षी। (२) एक वनस्पति।

किस्त्रल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बिच्छू। वृश्चिक। (२) वृकशिशु। भेड़िए का बच्चा।

किस्क्रामूर—संज्ञा पुं० [यू०] पुदीना। रोचनी।

किस्त—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भाग। हिस्सा। बहर (२) तुला। तराजू। (३) एक प्रकार का मान जो ४ रतल व १३५ तोला के बराबर है। (४) कूठ।

किस्त अन्ताकी, किस्तमिल्ली—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो १८ औकियः वा ४ रतल वा १६ औकियः ४५ तोला के बराबर होता है।

किस्तईर—संज्ञा पुं० [?] रांग। कथील।

किस्तक—संज्ञा पुं० [फा०] कलाय। मटर।

किस्तक्रूर—संज्ञा पुं० [अ०] यूनानी द्रव्यविशेष।

किस्त बर किस्त—संज्ञा पुं० [फा०] मरोड़फली। आवर्तकी। (द०) धमिनी। (म०) मेढासिंगी।

किस्तरून—संज्ञा पुं० [यू०] नीबू। तुरंज।

किस्तरून—संज्ञा पुं० [?] एक वनस्पति है जिसके गुण-धर्म में मतभेद है। (लु० क०; मो० आ०; म० अ०)।

किस्तल—संज्ञा पुं० [रू०, यू०] शाहबलूत।

किस्तवतामर—संज्ञा पुं० [ते०] जंगली उश्वा।

किस्तारूस—संज्ञा पुं० [यू०] उसारए लह्यतुत्तीस।

कि (कु) स्तास—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो डेढ़ पाव एक तोला के बराबर होता है। इसको 'तसाएमीस सेर' भी कहते हैं।

किस्ताल—संज्ञा पुं० [रू०, यू०] शाहबलूत।

किस्तासीस—संज्ञा पुं० [यू०] एक वनस्पति है जिसके पत्र लबलावपत्रवत् चौड़े होते हैं।

किस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [म०] कस्तूरी।

किस्तूसुल्तारूस—संज्ञा पुं० [यू०] लह्यतुत्तीस।

किस्तोअलक्रम—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायन। (इ० है० वु० गा०)।

किस्तोबरून—संज्ञा पुं० [यू०] फाशरा। (लु० क०)।

किस्तोलीतस—संज्ञा पुं० [यू०] जरावन्दतवील।

किस्नक—संज्ञा पुं० [फा०] मटर। कलाय।

किस्फः—संज्ञा पुं० [अ०] गर्व के पत्ते। (लु० क०)।

किस्म—संज्ञा पुं० [अ०] टिड्डी के अंडे। (लु० क०)।

किस्म—संज्ञा पुं० [अ०] खण्ड, भाग, टुकड़ा, हिस्सा। तिब्बी परिभाषा में शरीर का कोई सीमित स्थान।

बहुव०—'अक्साम'। (अ०) रिजीऑन (Region)।

किस्म उर्बी—संज्ञा पुं० [अ०] इक्लीमउर्बी। वंक्षण का भाग। कुंजरानवाला हिस्सः। पुट्टा। चड्डे का मुकाम। पेड़ के नीचे के उभय भाग। (अ०) इंग्विनियल रीजीऑन (Inguinal Region)।

किस्म-कतनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] कटिविभाग, कमरवाला हिस्सः। (अ०) लम्बर रीजीऑन (Lumber Region)।

किस्म-खस्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] वस्तिविभाग। पेड़वाला हिस्सा। (अ०) हाइपोगेस्ट्रिक रीजीऑन (Hypogastric Region)।

किस्म-तहतुल्-गजारीफ—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'किस्म तहतुशरासीफ'।

किस्म-तहतुशरासीफ—संज्ञा पुं० [अ०] } पसलियों की इक्लीम-तहतुशरासीफ—संज्ञा पुं० [अ०] } कुरियों के नीचे-वाला भाग। इक्लीम फौकुल् मिअदः के दाएँ-बाएँ इस नाम के दो हिस्से होते हैं। हाइपोकोण्ड्रिक रीजीऑन (Hypochondriac Region)।

किस्म-फौकुल्मिअदः—संज्ञा पुं० [अ०] इक्लीम फौकुल् मिअदः। देखो उपर्युक्त नोट।

किस्म-सरासीफ्री—संज्ञा पुं० [अ०] इक्लीम फौकुल्मिअदः। आमाशय के ऊपरवाला भाग। कौड़ी के नीचे का स्थान। देखो 'किस्मसुरी'।

किस्म-सुरी—संज्ञा पुं० [अ०] नाभिवाला भाग। देखो 'किस्मखस्ली'। अम्बिलिकल रीजीऑन (Umbilical Region)।

किस्मीहर—संज्ञा पुं० [यू०] चर्गा नामका जानवर है।
 किस्मावुर्द-अजनि—संज्ञा पुं० [फा०] काकुन। कंगु धान्य।
 किस्मिस—संज्ञा पुं० [हिं०, गु०] अबीज द्राक्षा। किशमिश।
 किस्मिस द्राक—संज्ञा पुं० [गु०] अबीज द्राक्षा। किशमिश।
 किल—संज्ञा पुं० [अ०] खजूर की जड़ और शाख।
 किस्ल—संज्ञा पुं० [अ०] फूलवेर।
 किस्लअ—संज्ञा पुं० [?] कबीला। किम्बील। कम्पिल्ल।
 किस्सः—संज्ञा पुं० [अ०] यूनानी द्रव्य विशेष।
 किस्स-मिस्स—संज्ञा पुं० [भा० बाजार] किशमिश।
 किस्साS—संज्ञा पुं० [अ०] ककड़ी। कर्कटी।
 किस्साS हिन्दी—संज्ञा पुं० [अ०] आरग्वध। अमलतास।
 किस्साउल् हिमार—संज्ञा पुं० [अ०] कण्टकइन्द्रायण।
 काँटवाली इन्द्रवारुणी। देखो 'किसाउल्हिमार'।
 किहिन्—संज्ञा पुं० [वर०] जंगार। (मो० श०)।
 किहिरि—संज्ञा पुं० [सं०] खैर। खदिर।
 किकण—संज्ञा पुं० [म०] वृद्ध पीलु। झाल।
 किर्णिण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिकोना। किनाकिन।
 किर्णिण वर्ग—ओषधि वर्ग विशेष।
 किर्णिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] 'व्याघ्रघण्टी'
 किकिरात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामबबूल। बबूल भेद।
 (भा० पू०)।
 किगरई—संज्ञा स्त्री० [गढ़] दाहहल्दी। किगोरा।
 किगोड़ा (रा)—संज्ञा पुं० [गढ़वाल] दाहहल्दी।
 किचित्—[सं० व्य०] (१) साधारण काल। (२) अल्प।
 अत्यल्प। बहुत न्यून। (ध० नि०)।
 किचिदाटवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कासघनी। (ध०
 किचिदाटव्या— „ „ } नि०)
 किजल—संज्ञा पुं० [बम्ब, म०] पर्याय—(ता०) पेकर-
 काय; (ते०) निमिड़ी; (कना०) होणल, हुलुवा, हुणाव;
 (ले०) टर्मिनेलिया पेनिक्युलेटा (Terminalia Pani-
 culata)। उद्भवस्थान—नीलगिरि, मलाबार, बम्बई,
 कोचीन, कुर्गावर्त इत्यादि।
 उपयोग—इसके नूतन पुष्परस ४ तोला में गरुड़वल्ली
 (जलजमनी) की जड़ मिश्रित कर सेवन करने से
 विसूचिका का नाश होता है और अहिफेन विषनिवार-
 णार्थ ४ तोला स्वरस अमरुद की छाल के साथ पीसकर देने
 से लाभ होता है। पाषाणगर्दभ (Parotitis) में इसका
 स्वरस, घृत और सेंधव मिश्रितकर देने से लाभ होता है।
 किपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कारस्कर। दे० 'कुचला'।
 (ध० नि०)
 किबील—संज्ञा पुं० [अ०] } काम्पिल्ल। कबीला। रोरी।
 किबीला— „ „ }
 किवाच—संज्ञा पुं० [हिं०] कपिकच्छु। खाजकुहिली।
 किशुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०], (१) ढाक। पलाश।

(रा० नि० व० १०; द्र० गु० १६१)। (२) नन्दी वृक्ष।
 तून। (रा० नि० व० १०; ध० नि०)। (३) प्रवर। वातपीथ।
 (ध० नि०)
 किशुक तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पलाशबीजोत्थ तैल।
 यह वात-पित्त और कृमिनाशक है। दद्रु में लगाने से
 उत्तम लाभ होता है। (वा०)।
 किशुक क्षार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पलाशक्षार। (च० चि०
 १ अ०)।
 किशुका—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) पलाशवृक्ष। ढाक।
 (२) मालकांगनी। (३) नन्दीवृक्ष। तून। (रा० नि०
 व० २२)।
 किशुकादिगण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्रिदोषहरद्रव्यसमूह।
 यथा—किशुक, काश्मरी, विश्व, अग्निमन्थ, चित्रक,
 श्योणाक, शालपर्णी, सिंहपुच्छी (शालपर्णी भेद), पाटला,
 कण्टकारी, बृहती और विल्व। (र० सा० सं०)।
 किशुलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हस्तिकर्ण पलाश।
 (श० र०)। (२) नीलकण्ठ पक्षी। (वै० निघ०)।
 किसुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] किशुक। पलाश। ढाक।
 किसुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पराशिन। बेलपलाश।
 लतापलाश। बल्लीपलाश।
 कीअदस—संज्ञा पुं० [?] मत्स्य भेद। ताजी मछली। सद्यः
 प्राप्त मस्य।
 कीअम—संज्ञा पुं० [अ०] विडाल। बिल्ली।
 कीअलह—संज्ञा पुं० [?] उकाब। गिद्ध।
 कीअली फ़ातूस—संज्ञा पुं० [यू०] जुप्त।
 कीअसूसी—संज्ञा पुं० [यू०] जुप्त। विष।
 कीउह—संज्ञा पुं० [चीन] नारंगी। नागरंग। संतरा।
 कीऊर—संज्ञा पुं० [?] बलबूस।
 कीक—संज्ञा पुं० [अ०] अंडे के भीतर का बारीक छिलका।
 कीक—संज्ञा पुं० [फा०] जूँ। लिखा। डील। पिस्सू।
 कीकट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } घोड़ा। अश्व। घोटक।
 कीकटक—संज्ञा पुं० [„] }
 कीकटी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन्य वराह। वनशूकर।
 जंगली सूअर। (वै० निघ०)।
 कीकड़—संज्ञा पुं० [पं०, हिं०] बबूल। बर्बूर।
 कीकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] कर्कट। खरचंग। दे० 'केकड़ा'।
 कीकब—संज्ञा पुं० [अ०] } (१) बकाइन। (२) कुतलुब।
 कीकबान—संज्ञा पुं० [अ०] } कातिलअव्यः।
 कीकवान—संज्ञा पुं० [अ०] कुतलुब।
 कीकर—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) बबूल। बर्बूर। (२) नल,
 नरसल।
 कीकर का गोंद—संज्ञा पुं० [हिं०] बर्बूरनिर्यास। बबूल
 का गोंद।
 कीकर का रस—संज्ञा पुं० [हिं०] अक्राकिया।

कीकर की दाह—संज्ञा पुं० [द०, हिं०] बर्वूर मद्य। बबूल द्वारा प्रस्तुत मद्य।

कीकर की शराब—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कीकर की दाह।

कीकर विलायती—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) रीवाँ। गन्धबबूल। अरिमेद। (२) विलायती बबूल जिसकी फली की गूदी सीठी होती है।

कीकराट—संज्ञा पुं० [सं० किंकिरात] } बबूल। बर्वूर।

कीकरात—संज्ञा पुं० [,,] }

कीकलनियून—संज्ञा पुं० [यू०] सिरिस। देखो 'सिरिस'।

कीकवाश—संज्ञा पुं० [फा०] } यूनानी द्रव्यविशेष।

कीकवाशा—संज्ञा पुं० [,,] }

कीकश(स)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कृमि जाति। कृमिभेद। (मे०)। (२) अस्थि। हड्डी। (रा० नि० व० १८)।

कीकशहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोरपंखी। मयूरशिखा। (लु० क०)।

कीकस—संज्ञा पुं० [यू०] बलूत। सीतासुपारी।

कीकसमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी विशेष।

कीकसान्तरीय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेशी तथा शिरा व धमनी नाड़ी।

कीकसास्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षीविशेष।

कीकसम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अस्थि। हड्डी (Bone)।

कीकह—[अ०] अण्डे के भीतर का बारीक छिलका।

कीकहन—संज्ञा पुं० [यू०] सन्दरुस तुल्य गोंद। राल। शालपेष्ट।

कीकह मायून—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली खीरा।

कीकहर—संज्ञा पुं० [यू०] धूप। यह साखू के वृक्षों में होता है। (Cacatum)। दे० 'कीकहन'।

कीका—संज्ञा पुं० [?] गर्भ-अण्ड। अंडा।

कीकान—संज्ञा पुं० [सं० केकाण देश] घोड़ा। अश्व।

कीकास—संज्ञा पुं० [फा०] कीट। कीड़ा।

कीकि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चाप पक्षी। चाहा। जलकूलों पर होनेवाला एक छोटा पक्षी है।

कीकी—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कुक्कुटाण्डश्वेतक। तुल्य मुर्ग। अंडे की सफेदी। (अ०) एग एल्ब्युमीन (Egg Albumin)। (२) एरण्ड।

कीकून—संज्ञा पुं० [रूमी०] नागरमोथा।

कीकूलाकातीस—संज्ञा पुं० [यू०] } (१) जुप्त। (२)

कीकूलाकातूस—संज्ञा पुं० [,,] } जुप्त याबिस।

कीकूलानस—संज्ञा पुं० [,,] }

कीकूस—संज्ञा पुं० [अ०] बलूत भेद। सीतासोपारी। (म०) राँझ। इसके ४ भेद हैं। कीटमेष।

कीकानियून—संज्ञा पुं० [यू०] सुदाव। (सं०) कीटरिपु।

कीगी-साम्या-सी—संज्ञा स्त्री० [बर०] बड़ा नीबू।

(मो० श०)।

कीच—संज्ञा पुं० [हिं०] कर्दम। गीली मिट्टी।

कीचक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रुध्रवंश। पोला बाँस। (रा० नि० व० ८)। (२) नल। नरसल। नरकट। (ध० नि०)। (३) वंश। (ध० नि०)।

कीचकाम्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वंश। बाँस। (ध० नि०)।

कीचड़—संज्ञा पुं० [हिं०] कर्दम। गीली मिट्टी (Mud)।

पर्याय—(सं०) पंक, जलकल्क, चुलुक, कर्दम, मल, चिकिल, पलित, द्राप, पलल, निषद्वर, जम्बाल, साद, दम। (वं०) कादा। (म०) चिखल। (ता०) शेर (गु०) कादव। (अँ०) मड, ब्लैक-क्ले। (Mud, Black clay)। (ले०) हाइड्रेसिस-सिलिकेट ऑफ अल्युमीनियम (Hydrasis Silicate of Aluminium)।

गुण—शीतल, दाह-पित्तनाशक, शोथघ्न तथा सर (दस्तावर) है।

कीच-विरिगि-चेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] जलमधक। जलमहुआ।

कीज—[?] वाताद। बादाम।

कीजर—[?] बादाम। वाताद।

कीजह—संज्ञा पुं० [अपभ्रंश-कादी या काजी] केवड़ा। धतकी।

कीजियून—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार की वनस्पति है।

कीजी—संज्ञा पुं० [तुरकी] (१) जंगली राई का क्षुप। (२) चित्रक क्षुप।

कीजीअ—संज्ञा स्त्री० [?] खैरी।

कीझ-काय-नेल्लि—संज्ञा स्त्री० [ता०] }

कीझ-कायिनेल्लि—संज्ञा पुं० [मल०] } भूम्यामलक।

कीझनेल्लि—संज्ञा पुं० [ता० मल०] } भूँइ आँवला।

कीट (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लौहकिट्ट। मण्डूर। (२) कृमिभेद। (श० र०)। कीट अनेक प्रकार के हैं; यथा—कुम्भीन, तुण्डिकेरी, शृंगी, शतकुलीरक, उच्चिचिङ्ग, अग्निनामा, चिच्चिर्चिङ्गी, मयूरिका, आवर्त्तक, अभ्रसारिका, मुखवैदली, शराव, कुर्द, अभिराजी, पुरुष, चित्रशीर्षक, शतवाहु, रक्तराजी इन १८ प्रकार के कीटों के दंशन से वायु का प्रकोप होता है। सर्वसमूहों को वायव्य कीट कहते हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कीट हैं; यथा—कौण्डिल्यक, कणभ, वरटी, पत्र, वृश्चिक, विनासिका, ब्रह्मणिका, विन्दुली, भ्रमर, बाह्यकी, पिच्चिट, कुम्भी, वर्चकीट, अरिमेदक, पद्मकीटी, दुन्दुभी, सफर, शतपादक, पञ्चालक, पाकमत्स्य, कृष्णतुण्ड, गर्दभी, क्लीत, कृमि और सरारी। इनके दंशन से उत्क्लेश (मिचली) उत्पन्न होता है। उक्त कीट अग्नि प्रकृति के हैं और इनके दंशन से पित्तजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त भी कीट हैं; यथा—विश्वम्भर, पञ्चशुक्ल, पञ्चकृष्ण, कोकिल, सैरेयक, प्रचलक, वलभ, किटिभ, सूचीमुख, कृष्णगोधा, कपाय,

वासिक, कीटगर्दभ और त्रोटक—ये सौम्य कीट हैं। इनके दंशन से कफ का प्रकोप होता है और इनसे कफज्वर उत्पन्न होते हैं।

तुंगनासा, विचिलक, तालक, बाहक, कोष्ठागारी, (विसुन्दरी), कृमिकर मण्डल-पुच्छक, तुंगनाभ, सर्षपिका, अवलगुली, शम्बुक, अग्निकीट—इन १२ कीटों के दंशन से प्राणनाश होता है और सर्पवत् शीघ्र संज्ञा नाशक है।

त्रिकण्टक, कुणी, हस्तिकक्षा, अपराजित—ये कणभ कीट प्रसिद्ध हैं। इनके दंशन से तीव्र वेदना उत्पन्न होती है, शोथ होता है, अंगमर्द, भारीपन इत्यादि लक्षण होते हैं और दंशस्थान काला पड़ जाता है।

प्रतिसूर्य, पिगभास, बहुवर्णी, महाशिरा, निरुपम—ये पाँच गौनरक हैं। (सु० कल्प० ८ अ०)। श्वेत यूका (ध० नि०)।

कीटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निम्ब। नीम गाछ। (ज०)।

कीटकदंश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कीड़ों का दंश। (सु०)।

कीटकदंश रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्वचा का रोग जो कीड़ों के काटने से उत्पन्न होता है। (सु० कल्प०)।

कीटकल्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का अध्याय जिसमें प्रायः कीटों का उल्लेख किया गया है। (सु० कल्प० ८ अ०)।

कीटकाण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वोदर जात कृमिविशेष। घोड़ों का कीड़ा।

कीट कौण्डल्यक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कीट जिसके मल-मूत्र दोनों में विष होता है। (सु० कल्प० ३ अ०)।

कीट-गर्दभक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सौम्यविषयुक्त कीट विशेष। इसके दंशन से कफज्वररोग उत्पन्न होते हैं। (सु० कल्प० ८ अ०)।

कीटधन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धक। (रा० नि० व० १३)।

कीटज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेशम। तसर। दे० 'कुसियारी'।

कीटजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लाक्षा। लाख। लाही (२० मा०)। (२) माजूफल। मायाफल। माई। (३) शकरतीगाल।

कीटनासा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लालवर्ण का लजालू। रक्तलज्जालुका। (वै० निघ०)।

कीटपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हंसपदीलता।

कीटपादी— " ["] (बं०) गोधापदी।

गोयाली लता। अम्लोला। (रा० नि० व० ५) (२) रक्तलज्जालुका। लाल लजालू। (वै० निघ०)।

कीटभणि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जुगनू। खद्योत। सनकीरा। (२) पतंग भेद। (Butterfly)।

कीटमर्दरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमि-अधिकारोक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग की कज्जली, अजमोद ३ भाग, वायविडंग ४ भाग, शुद्ध कुचिला ५ भाग, पलाशपापड़ा ६ भाग—इनको ग्रहण कर एकत्र चूर्ण करें।

गुण तथा उपयोग—१ निष्क (४ माशा) मधु मिश्रित कर मुस्तकवाथयुक्त सेवन करने से कृमियों का नाश होता है। (२० र० स० २० अ०)।

कीटमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोधापदी। हंस-कीटभारी—संज्ञा स्त्री० ["] पादीलता। (भा०);

(रा० नि० व० ५)। लाल लजालू। रक्तलज्जालुका (वै० निघ०)। (२) मायाफल। माजू। (३) शकरतीगाल (४) विश्वग्रन्थि। (ध० निघ०)।

कीटमार—संज्ञा पुं० [सं०] } दे० 'कीड़ामार'

कीटमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] } (१) गन्धाटी। डीकामाली लता। (मा०; रा० नि० व० ५)

(२) कीटमारी। लाल लजालू। रक्त लज्जालुका। (वै० निघ०)। (३) माया। माजू। (४) शकरतीगाल। (५) विश्व

ग्रन्थि। (ध० नि०)। (६) यवानी, अजवाइन।

कीटमेष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृगचिरा नामक प्रसिद्ध कीट। यह नदीकूलों में बालू के मध्य उत्पन्न होता है। देश में इसको रीवाँ कहते हैं।

कीटवास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] माजूफल। मायाफल। मज्जफल।

कीटवेध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देखो 'कीटारिष्ट'।

कीटरिपु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] } वायविडंग।

कीटशत्रु—संज्ञा पुं० ["] } (वै० निघ०)।

कीटहारि—संज्ञा पुं० ["] }

कीटाणु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अणुवीक्षणीय कीट। जरा-सिअम। (अं०) जर्म (germs)।

कीटार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] वायविडंग। (वै० निघ०)।

कीटारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पमाँड़। चकवड़। चक्रमर्द। (आ०)। (२) धूम्रपत्रा, कीटमारि। (३) अगद।

कीटारिरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध गन्धक और

शुद्ध पारद की कज्जली, इन्द्रयव, अजमोद, शुद्ध मैन्शिल और पलाशबीज—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें। पुनः

देवदाली के स्वरस में १ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाकर मुद्गपर्णी के रस के साथ सेवन करने

और मिश्री के शर्वत का अनुपान करने से कृमिविकार शान्त होता है। मात्रा १-३ रत्ती। (भैष० र०)।

कीटारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अश्व (घोड़ों) में उत्पन्न होनेवाला कीटवेध नाम का रोग। इसकी उत्पत्ति प्रायः

ज्येष्ठ सुदी द्वितीया को होती है। घोड़ों को शरद्ऋतु में अधिक घर्म सेवन कराने तथा वर्षा ऋतु में दूषित जलपान

कराने से और उन्हें भली-भाँति प्रक्षालन न करने से उनके शरीर में कीटकाण्डा नामक कृमि अश्वोदर में उत्पन्न

होकर उक्त रोग के कारण होते हैं। (ज० द० व० २५)।

कीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) माई। यायाफल।

कीटमार। (२) कीटमारी। दे० कीड़ामार

कीटी—संज्ञा स्त्री [सं० किट्ट] तलछट । किट्ट दे० ।

कीटोन—संज्ञा पुं० [अं० Ketone] स्नेह-द्रव्यों के अपूर्ण पाक से उत्पन्न अ.म या अर्धपक्व द्रव्य । इन्हें अंगरेजी में कीटोन बॉडीज (Ketone bodels) भी कहते हैं ।

कीटोनीमिया—[अं० Ketonemia = कीटोन + हेमा Haima = रक्त] रक्त में कीटोन द्रव्यों का आधिक्य । इसे 'कीटोसिस' भी कहते हैं ।

कीटोसिस—संज्ञा पुं० संज्ञा [अं० Ketosis] इक्षुमेहादि रोगों में रस रक्क में कीटोन द्रव्यों की विद्यमानता ।

कीड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] कीट । कृमि । गण्डपद ।

कीड़ामार—संज्ञा पुं० [हिं०, द०, गु०, वम्ब०] पर्याय—(हिं०) गन्धाटी ; डीकामली ; (म०) गन्धानी, गावल ; (ते०) गुडिडे-गडिडे गडपाड़ा ; (ता०) अडुतिन्न-पलै ; (कना०) सञ्जली-हुल्लु ; (मल०) आटु-तिलप ; (सं०) धूम्रपत्रा, पत्रवंग, गन्धारणी ; (ले०) अरिष्टोलोक्रिया-ब्रैक्टीएटा (Aristolochia Bracteata) ; (अं०) वर्म-कीलर (Wormkiller), बर्थ-वर्ट (Birth-wort)

कुल—ईश्वरी (Aristolochiae) ।

उद्भवस्थान—दक्कन, ट्राविकोर, कारोमण्डल, लंका इत्यादि ।

उपयोगी अवयव—झाड़, बीज, पत्र. और गोंद ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का उत्क्लेशक उत्पत् तैल, लवणीयक्षार तथा विशेषतः पोटेशियम-क्लोराइड का अंश अधिक होता है ।

कल्प—१ भाग १० भाग जल द्वारा हिमकषाय रूप से ।

मात्रा—३ से १ औंस तक । बीज-चूर्ण-३० से ९ ग्रेन ।

गुण-कर्म—रजः प्रवर्तक, विरेचक, परिवर्तक, कृमिघ्न तथा पर्यायज्वरनाशक है । उपयोग—एरण्डतैलयुक्त सेवन करने से रजःकण्ट, अवरुद्धार्तव, शूल, प्रसव-शूल, कृमिविकार, पूयमेह, उपदंश तथा कम्पज्वर (Intermittent-fever) का नाश होता है ।

कीड़ामारी—संज्ञा स्त्री० दे० 'कीड़ामार' ।

कीड़ामाल—संज्ञा पुं० [हिं०] करंज । कृतमाल ।

कीड़ामारी—संज्ञा स्त्री० [गु०] (१) गान्धाटी । (२) नाड़ी हिङ्गु । डीकामाली । दे० 'कीड़ामर' ।

कीड़िआ-केलीसाइन—(अं०) } (बं०) चोण लतिया ।

कीड़िआ-केलोसीना—[ले०] } (इं० है० गा०) ।

कीडीमार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कीड़ामार' ।

कीडेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कांटाचोलाई । चोलाई खरदार । तण्डुलीयशाक । (बं०) कांटा नाटिया ।

क्रीतम—संज्ञा पुं० [हिं०] लवण । नमक ।

क्रीतनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] यष्टीमधु । मुलहठी । (बं० निघ०) ।

क्रीतमन—संज्ञा पुं० [?] समुद्रफेन । समुद्रझाग ।

क्रीतमुकूस—संज्ञा पुं० [रुमी] } रामतुलसी ।

क्रीतमोलस—संज्ञा पुं० [,,] } फिरञ्जमुक्क ।

क्रीतयून—संज्ञा पुं० [यू०] सुआली । (लु० क०) ।

क्रीतरः—संज्ञा पुं० [?] जंगली धनियार ।

क्रीतरस्तीन—संज्ञा पुं० [यू०] गुडत्वक् । दालचीनी ।

क्रीतल—संज्ञा पुं० [?] सफतन्दनियून ।

क्रीतश—संज्ञा पुं० [यू०] त्रिलायती मेहदी ।

क्रीतादूस—संज्ञा पुं० [यू०] कुसुम । कड़ । बरें ।

क्रीताफूल—संज्ञा पुं० [यू०] तुर्मुस ।

क्रीतीदा—संज्ञा पुं० [यू०] अफीम । अहिफेन ।

क्रीतीवन—संज्ञा पुं० [यू०] सुआली । किमीतून ।

क्रीतुस—संज्ञा पुं० [यू०] सनोवर का छोटा भेद ।

क्रीतून—संज्ञा पुं० [यू०] सुआली । (लु० क०) ।

क्रीद याकली—संज्ञा पुं० [?] शीह । किरमाला । किरमानी अजवाइन ।

क्रीदस—संज्ञा पुं० [यू०] कलौजी । उपकुञ्चिका । मँगरैला ।

क्रीन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मांस धातु । (निघ०) ।

क्रीनः—संज्ञा पुं० [?] त्रिवृत् । निसोथ । तुर्वुद ।

क्रीन-कस-अगरियून—संज्ञा पुं० [यू०] अरण्यकुसुम्भ । जंगली कुसुम । जंगली कड़ ।

क्रीनकहर—संज्ञा पुं० [?] राल । धूप । साखू की गोंद ।

क्रीन कुमारी गड्ड—संज्ञा पुं० [ते०] (?) कन्याकुमारी । ग्वारपाठा । (२) सफेद मुसली ।

क्रीन तूस—संज्ञा पुं० [यू०] जंगार । पितराई ।

क्रीनस—संज्ञा पुं० [यू०] बेल । विल्व ।

क्रीन हूश—संज्ञा पुं० [यू०] अस्फर । (लु० क०) ।

क्रीना—संज्ञा पुं० [यू०] लुणक भेद । खुरफः का एक प्रकार ।

क्रीना-ईम्रयः—संज्ञा पुं० [अ०] यूनानीद्रव्यविशेष सिकोना का एक भेद । (गी० पु० १०५०) ।

क्रीना कीना—संज्ञा पुं० [फा० कुनः कुनः] दे० 'सिकोना' । क्वीनीन (गी० पु० १०५०) ।

क्रीना जर्द—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'सिकोना' (गी० पु० ११०७) ।

क्रीनानीस—संज्ञा पुं० [यू०] शहदानज । तुख्ममंग । विजयाबीज ।

क्रीनाफारस—संज्ञा पुं० [यू०] हिंगुल । सिंगरफ ।

क्रीनाबरीदास—संज्ञा पुं० [यू०] तेलनीमक्खी ।

क्रीनावार—संज्ञा पुं० [यू०] }

क्रीनाबारी—संज्ञा पुं० [यू०] } हिंगुल । सिंगरफ ।

क्रीनारी—संज्ञा पुं० [यू०] }

क्रीनारीदास—संज्ञा पुं० [यू०] तेलनीमक्खी ।

क्रीनाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वानर विशेष ।

क्रीना सफेद—संज्ञा पुं० [उर्दू] सफेद सिकोना । दे० 'सिकोना' ।

क्रीना सुर्ख—संज्ञा पुं० [उर्दू, फा०] लाल सिकोना । दे० 'सिकोना' (गी० १०५० पु०) ।

क्रीनी—संज्ञा पुं० [बम्ब०] सफेद सिरिस ।

क्रीनीतस—संज्ञा स्त्री० [यू०] गिलेअरमनी ।

क्रीनून तीरून—संज्ञा पुं० [यू०] कुन्दुर गोंद ।

क्रीनूमस—संज्ञा पुं० [यू०] शब्रम । (लु० क०) ।

क्रीनूमून—संज्ञा पुं० [यू०] भेड़िया । वुक ।

कीप—संज्ञा पुं० [सिध] खीप । माहुर । (दिल्ली) । (मे० मो०)

कीफरी-हिसार—संज्ञा पुं० [यू०] जवसीन। (लु० क०)।

कीफा—संज्ञा पुं० [?] कुल्ली की छाल। (लु० क०)।

कीफा-कीरु—संज्ञा पुं० [यू०] जवसीन।

कीफाद कीरु—संज्ञा पुं० [सुर०] गागाती। पापाणभेद। (लु० क०)

कीफा नूरा—संज्ञा पुं० [सुर०] मारकसीशा। (लु० क०)।

कीफा मिकनीतस—[सुर०] चुम्बक। मिकनीतस।

कीफा मिस्रिया—संज्ञा पुं० [सुर०] संगमिस्री। पापाणभेद।

कीफा यहूदिया—संज्ञा पुं० [सुर०] पत्थरखेर। हज्रुल-यहूद।

कीफाल—संज्ञा पुं० [अ०] बाहुकी स्थूल तिरा। सरारुग। सरोरु। यह बाहु में ऊपर की ओर स्थित है। (अ०) कीफेलिक वेन (Cephalic Vein)।

कीफावकीरु—संज्ञा पुं० [सुर०] पापाणभेद। गागाती।

कीफास—संज्ञा पुं० [?] सीसारुन। (लु० क०)।

कीफूलूस—संज्ञा पुं० [?] गालियः। (लु० क०)।

कीमन—संज्ञा पुं० [?] वनस्पति विशेष। अबूकीकनस। रयुस्सलब। रैउल्वहर। (लु० क०)।

कीमनुल् बौकीकनस—संज्ञा पुं० [यू०] रयुल्सलब। (लु० क०)।

कीमल—संज्ञा पुं० [हि०] जिगनी।

कीमाक (ग)—संज्ञा पुं० [तुर्की०] दुग्धसार। मलाई। दुग्धविकार।

कीमिया—संज्ञा पुं० [उर्दू] रसायनविद्या।

कीमियाए-हयात—संज्ञा पुं० दे० 'अकसीरबदन'।

कीमू कीज—संज्ञा पुं० [यू०] शक्तुक। सतू। सतुआ।

कीमून—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली जीरा। अगरियून।

कीमूमीन—संज्ञा पुं० [यू०] (१) जंगली करनब। (२) पित्तपापड़ा। शाहतरा।

कीमूलिया—संज्ञा पुं० [?] दुग्धपापाण। खड़ियामिट्टी।

दुधया। यह तीन प्रकार की होती है—(१) श्वेतसुगन्धमय, (२) नीलाभ। स्निग्ध और (३) कृष्णवर्णकी।

कीर—संज्ञा पुं० [अ०] (उर्दू स्त्री०) पर्याय—(अ०) कार। (अ०) पिक्सलिविड (Pix liquid)।

परिचय—यह एक प्रकार का द्रव्य है जिसका वर्ण काला तथा रक्ताभ होता है। यह पृथ्वी से द्रवरूप में उफान खाकर उद्धृत होता है। किसी के अनुसार यह फरात नदी के कूलों पर होनेवाले स्रोतों से उफान खाकर निकलता है और शीतल होने पर जम जाता और ठोस हो जाता है। बसरा तथा बुगदाद के लोग इसको एकत्र करते हैं। कुछ व्यक्ति भ्रमवश इसको गोंद वा राल समझते हैं। राजी के अनुसार यह ज़िफ्त का गोंद है जो भ्रमात्मक है।

किसी ने इसको जंगली सनोबर का निर्यास समझा है। वास्तव में 'कीर' कफुल्यहूद (मिट्टी के तेल) तुल्य व उसका ही एक भेद है व 'क़त्रान' का द्वितीय भेद है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—श्लेष्मल (Clammy), शीघ्रदोषप्रविष्ट-कारक (मुनफिज्ज) तथा पाचक है। इसके चर्वण करने से मस्तिष्क, वृक्कों और हनु (जबड़ों) से द्रव छन कर उत्सर्गित होता है। यह तुतलाने के दोष को नष्ट करती है। इसके सेवन से अन्न का शीघ्र पाक हो जाता है। यह आमाशयिक शक्तिवर्धक है एवं आध्मान तथा वातज शूल में उपयोगी है और आमाशय-यकृत-प्लीहाबलवर्धक एवं वायुशोधक है। यह जनपदोद्ध्वंसक रोगों को नष्ट करती है। इसे पीसकर प्रलेप करने से शोथ और विद्रधि का नाश होता है। यह विद्रधियों को शीघ्र पका देती है और आगन्तुक अस्थिभंग, आघात तथा मोचादि में उपयोगी है।

हानिकारक—वस्ति-आन्त्र में क्षतोत्पन्न करती है।

प्रतिकार—तैल, घृत तथा स्निग्ध पदार्थ।

प्रतिनिधि—कफुल्यहूद (मिट्टी का तेल)।

मात्रा—४ माशा। अधिक मात्रा में मृत्युकारक है।

कीरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृक्षभेद। (२) पृथ्वी।

कीरकुन्दी—संज्ञा स्त्री० [म०] पर्याय—(ले०) जैट्रोफा नाना (Jatropha nana)। उद्भवस्थान—पूना के निकट पथरीली भूमि पर इसके क्षुप उत्पन्न होते हैं।

उपयोग—इसका स्वरस स्थानीय दाहोत्पादक है।

कीरट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वंग धातु। राँगा। कलई। (वै० निघ०)।

कीरटा—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०]। 'कीरट'। (वै० निघ०)।

कीरततुर्फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आक। अर्क। दे० 'आक'।

कीरदूना—संज्ञा पुं० [?] जलायुका। जोंक। अस्त्रपा। (लु० क०)।

कीरनासा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुकनासा। (वै० निघ०)

कीरनुबा—संज्ञा स्त्री० [?] आक्षोट। अखरोट।

कीरपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] थुनेर। गंठेला। थुनियार। स्थौण्यक (के०)।

कीरबुबा—संज्ञा स्त्री० [?] मेंहदी। नखरञ्जनी।

कीरवर्णक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] थुनेर। गंठेला। थुनियार। कीरपर्ण। (रा० नि० व० १२)।

कीरवानियून—संज्ञा पुं० [यू०] तितली।

कीरस—संज्ञा पुं० [यू०] खट्टास। जुन्दबेदस्तर।

कीरसतारियून—संज्ञा पुं० [यू०] रयुल्हमाम। (लु० क०)।

कीरा—संज्ञा पुं० [देश०] सर्प। साँप। दे० 'सर्प'।
 कीरात—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो ४ जौ
 व २ रस्ती के बराबर होता है।
 कीरातिया—संज्ञा पुं० [?] खनूवशामी। (लु० क०)।
 कीरासूस—संज्ञा पुं० [यू०] 'आलूबालू'।
 कीरमार—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कीटिका। (ध० नि०)।
 कीटघनद्रव्यविशेष। कीटमारी। कीड़ामार।
 कीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिपीलिका। च्यूटी।
 (२) कीड़ी।
 कीरीपण्डु—संज्ञा पुं० [ता०] सर्पाक्षी। उसरहटी। सरफोका।
 कीरीवेलिकम्—संज्ञा पुं० [ले०] लवंग। लौंग।
 कीरून—संज्ञा पुं० [?] 'आलूबालू'।
 कीरुफस—संज्ञा पुं० [यू०] शम्बूक।। घोंघा।
 कीरूस—संज्ञा पुं० [यू०] सिक्थ। मोम। मधुच्छिष्ट।
 कीरेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निम्ब। नीम। (रा० नि०
 व० ९)। (२) आम्र। आम। (३) आक्षोट।
 अखरोट। (४) जलमहुआ। जलमधूक। (रा०
 नि० व० ११)।
 कीरैन्थस कीरी—संज्ञा स्त्री० [ले०] क्षुपविशेष। अपामार्ग
 भेद।
 कीर्णपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षीरमोरटा। मूर्वा का
 एक भेद। (वं०) लता कडार। (रा० नि० व० ३)।
 कीर्त्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नील। नीली।
 (वै० निघ०)।
 कीर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पट्ट। कीचड़।
 (अं०) मड (Mud)। (२) यश। (विश्व०)।
 कीर्त्ति शेष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरण। मृत्यु। (अं०) डेथ
 (Death)। (वा०)।
 कीर्त्ती—संज्ञा स्त्री० [म०] (१) केन्थियम पार्वीफ्लोरम
 (Canthium Parviflorum)। (२) खिरनी।
 क्षीरिणी।
 कील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गर्भसंग। योनिंसंस्कृत
 गर्भ। मूढगर्भ। (भा० म० ४ भा० गर्भ० चि०)। (मा०
 नि० मूढ, गर्भ नि०)। 'संकोच यो भवति कीलकवत् स
 कीलः।' (२) शस्त्रज्वाला। (३) कफोणी। केहुनी। (४)
 अक्षकास्थि। हँसली। (अं०) क्लाविकल्स (Clavicles)
 (चक्रपाणि, च० शा० ७-८)। (५) शंख। (भे०)।
 (६) काष्ठफलक। काठ की पट्टी। खपाच जिससे
 भग्नसन्धान किया जाता है। (७) (हि०) शल्य।
 काँटा।
 संज्ञा पुं० [फा०] जइर का फल। (लु० क०)।
 कील—संज्ञा पुं० [द०, हि०] दे० 'कीर' व 'क्तरान'। (Pix
 liquid)।
 कीलअ—संज्ञा पुं० [?] कबीला। कम्पिल। रोरी। कंबील।

कीलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कक्कोल। हाऊवेर।
 (वै० निघ०)। (२) शल्य। काँटा। (भा० मूढ गर्भ
 चि०)। दे० 'कील'। (३) अक्षकास्थि। (च० शा०
 ७-६ चक्रपाणि)।
 कीलकाख्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भसंग। मूढगर्भ।
 कीलकान—संज्ञा पुं० [?] गन्दना का एक भेद।
 कीलकी—संज्ञा स्त्री० [?] (१) उश्तान। (२)
 अर्तनीशा।
 कीलङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलिंगी, कलिंग।
 सीठा इन्द्रयव। मिष्ट कुटज।
 कीलदारु—संज्ञा पुं० [फा०] सरखस।
 कीलपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृण विशेष।
 कीलः—संज्ञा पुं० [?] अंडा। गर्भ। (लु० क०)।
 कीलः—संज्ञा पुं० [अ०] अण्डवृद्धि। पर्याय—(अ०)
 फटक सफनी। करुज। (उर्दू) फोटों का नुक्स।
 (सं०) वातज वृद्धि। वातजन्य अण्डवृद्धि। (हि०)
 वायु की अण्डवृद्धि। (अं०) स्क्रोटल हर्निया
 (Scrotal Hernia)। इस प्रकार की वृद्धि में अण्ड-
 कोष की थैली में वायु भरा रहता है।
 कीलः दम्बिग्यः—संज्ञा पुं० [अ०] उद्गः दम्बिग्यः।
 रक्तज अण्डवृद्धि। पोतों की थैली में खून का भर जाना।
 अण्डकोष में रक्त का संचित होना। (अ०) हेमेटोसील
 (Hematocoele)।
 कीलः दवालिग्यः—संज्ञा पुं० [अ०] उद्गः-नुद्वाली।
 दवालिउस्सफन। अण्डकोष की शिरा की स्थूलता।
 फोटों की रगों का मोटा तथा पेचदार हो जाना। एक
 प्रकार का अण्डकोषगत रोग जिसमें तद्गत शिराएँ
 स्थूल एवं पेचदार हो जाती हैं। (अं०) वैरिकोसील
 (Varicocoele), सिसोसाल (Girsocoele)।
 कीलः माइग्यः—संज्ञा पुं० [अ०] कोषजलवृद्धि। अण्डकोष
 में जलसंचित होना। अण्डकोष जलवृद्धि। जलवृषण।
 यह कोष का एक रोग है जिसमें उसकी थैली में
 पानी भर जाता है। (अं०) हाइड्रोसील (Hydro-
 cele)।
 कीलय—संज्ञा पुं० [मल०] करौंदा। करमईक।
 कीलसरख—संज्ञा पुं० [फा०] जइर भेद।
 कीला—संज्ञा पुं० [हि०] (१) कील। काँटा। कटिया।
 शल्य। (२) मौज। (लु० क०)।
 कीलाज (जू) निया—संज्ञा पुं० [यू०] दे० 'ममीरा'।
 कीलाजूनियून—संज्ञा पुं० [यू०] ममीरा।
 कीलाट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुग्धविकार का एक भेद।
 पियूस। पेउछ।
 कीलानस—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आलूबालू'।
 कीलाल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सलई का पानी।

शल्लकीरस। संजीवनी तोषा। (२) मधु। (श० र०)। (३) जल, पानी। (४) रक्त। खून। (रा० नि० व० १८। ध० नि०)।

कीलालधि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्र। (शब्द० र०)।

कीलाहूरा—संज्ञा स्त्री० [?] बावूना।

कीली—संज्ञा स्त्री—[वम्ब०] श्वेत शिरीष। सफेद सिरस।

कीलू—संज्ञा पुं० [कना०] कील। तार। दे० 'कर्तारन'।
[पं० सतलज नदी] मजरी। नोजराई ट्री।

[कुमायूँ] हिज्जल। समुद्रफल।

कीलूजूनियून—संज्ञा पुं० [यू०] मामीरान। ममीरा।
(लु० क०)।

कीलूत—संज्ञा पुं० [पश्चिम प्र०] शामी गन्दना। (लु० क०)।

कीलूनिया—संज्ञा पुं० [?] पहाड़ी कैसूम का एक भेद।

कीलूरा—संज्ञा पुं० [?] दरदार।

कीलूस—संज्ञा पुं० [?] रतनजोत।

कीवन तानिनी—संज्ञा स्त्री० [को०] मरोड़फली। आवर्तकी।

कीवन्द—संज्ञा पुं० [?] } कावन्दी। फलवा।

कीवन्दी—संज्ञा स्त्री० [?] }

कीवर—संज्ञा पुं० [अ०] धूप। धूना। राल।

कीवा—संज्ञा पुं० [?] जुप्त खुश्क।

कीवाछ—संज्ञा पुं० [म०] केवाँच। कपिकच्छू। वानरी।

कीवातहना—संज्ञा पुं० [?] जंगली आजरयून। (लु० क०)।

कीवान—संज्ञा पुं० [?] तालीशपत्र। जर्नव।

कीवाँच—संज्ञा पुं० [हि०] केवाँच। वानरी। कपिकच्छू।

कीवुन बहूर—संज्ञा पुं० [हि०] } कीवूँ। जंगली अंजीर।

कीवुन बहुरी— „ [„] }

कीवूँ—संज्ञा पुं० [हि०] जंगली अंजीर

कीश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बंदर। वानर। मर्कट।
(ध० नि०, हला०)। (२) पक्षी। (श० र०)। (३)

सूर्य। (वै० निघ०)।

कीशपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } अपामार्ग क्षुप।

कीशपर्णी— „ स्त्री० [सं० स्त्री०] } लट्जरी। चिरचिटा।

कीशफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हाऊबेर। कक्कोल।
(वै० निघ०)।

कीशरोमा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपिकच्छू। केवाँच
अलाकुशी। (रा० नि० व० ३)।

की (कै) शूर—संज्ञा पुं० [अ०] प्रस्तर विशेष। हज्जुल-
कैसूर।

कीस (सः)—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ कोष व थैली।
तिब्ब की परिभाषा में शरीरगत विकृत तथा प्राकृतिक
कोष।

बहुव० 'अक्यास' 'वकीसात'। (अं०) पाउच (Pouch),
सैक (Sack), बैग (Bag), सिष्ट (Cyst)।

वक्तव्य—कीस का उपयोग कभी-कभी प्रक्षालन तथा
मर्दन (मसलने) के अर्थ में भी होता है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बंदर। कपि।

संज्ञा पुं० [मेवाड़] किलाट। पिपूष। पिवसी। पेउँछ।

कीस—संज्ञा पुं० [?] खुबानी। गौरी फल। जर्दालु
शुष्क। (लु० क०)।

कसतुलबौल—संज्ञा पुं० [अ०] आवी। गर्भोदक कोष।

मुतउड़। गर्भवती स्त्री की थैली जिसमें गर्भावस्था में
शिशु का मूत्र इकट्ठा होता रहता है। ऐलण्टॉइस
(Allantois)।

कीसतुवा—संज्ञा पुं० [?] कुष्ठ। कूट। दे० 'कूट'।

कीस-मीस—संज्ञा स्त्री० [गु०] किशमिश। अबीज द्राक्षा।
छोटी दाख। दे० 'किशमिश'।

कीसर—संज्ञा पुं० [यू०] } प्रस्तर विशेष। हज्जुकैसूर।

कीसरीन—संज्ञा पुं० [„] }

कीसलगुर—संज्ञा पुं० [?] वनस्पति विशेष। (मे० मो०)।

कीसलमून—संज्ञा पुं० [?] जुप्तरतब का तेल।

कीसलूस—संज्ञा पुं० [यू०] कलहिसरा। अञ्चू। उलीक।

कीसा (आ)—संज्ञा पुं० [यू०] कुलफा। खुर्फा। बड़ी

नोनियाँ।

कीसानुल्मनी—संज्ञा पुं० [अ०] शुक्रकोष। शुक्राशय। मनी
की थैलियाँ। (अं०) वेसिक्यूलि सेमिनैलिस (Vesiculae
seminales)।

यह शिरावद्ध युग्मकोषयुक्त कलामय कोष है, जो
वस्तिमूल और गुदा के मध्य में स्थित हैं। इनमें शुक्र
एकत्रित रहता है। वास्तव में यह गुत्थीयुक्त ग्रन्थियाँ हैं
जो एक दृढ़ रेशेदार झिल्ली में आवद्ध होती हैं।
प्रत्येक कोश का चौड़ा शिरा पीछे और संकुचित शिरा
सामने होता है जो पौरुष ग्रन्थिमूल के निकट अपनी
ओर के अण्डप्रणाली के साथ मिलकर शुक्रप्रणाली
का निर्माण करता है। अतः आवश्यकता होने पर
उक्त प्रणाली के द्वारा शुक्र मूत्रवहनाली में प्राप्त
होता है।

कीसानः—संज्ञा पुं० [अ०] हरितवर्ण की एक गोल आकार
की मछली है।

कीसा नादीन—संज्ञा पुं० [सुर०] पाषाणभेद।

कीसारस—संज्ञा पुं० [यू०] फफियून।

कीसारीन—संज्ञा पुं० [यू०] बाकला (कलाय) कृत
क्वाथ विशेष।

कीसारूस—संज्ञा पुं० [यू०] रसक्रिया विशेष। उसारः
लह्यतुत्तीस। (लु० क०)।

कीसा हूना—संज्ञा पुं० [सुर०] हलियून।

कीसिया—संज्ञा स्त्री० [?] तज। (लु० क०)।

कीसी—संज्ञा स्त्री० [?] शुष्क खुबानी। सूखा गौरी

फल । [यू०] हशीशतुज्जुजाज । (लु० क०) ।
 कौमुदम्—संज्ञा पुं० [अ०] अश्रुकोश । अश्रुखात ।
 आँसुओं की थैली । (अ०) लैक्रिमल सैक (Lacrima
 sac) ।
 कौमुल् उन्सयैन—संज्ञा पुं० [अ०] } अण्डकोश । अण्ड की
 कोसः खुसियः— „ [„] } थैली । खुसियों की
 थैली । सफन । (अ०) स्क्रोटम (Scrotum) ।
 कौसू—संज्ञा पुं० [यू०] प्रस्तर विशेष । हज्जुल्कैसूर ।
 कौसूम—संज्ञा पुं० [?] कैसूम । (लु० क०) ।
 कौ (कै) सूरी—संज्ञा पुं० [यू०] प्रस्तरभेद । हज्जुल्-
 कैसूर ।
 कौ (कै) सूस—संज्ञा पुं० } लादन । (लु० क०) ।
 कौसूसा शायी— „ [„] }
 कौ (कै) सूसी—संज्ञा पुं० [यू०] कैसूस ।
 कौ (कै) ह—संज्ञा पुं० [अ०] पूय । पीप । मवाद । (अ०)
 पस (Pus) ।
 कौहरा—संज्ञा पुं० [सुर०] कच्चाभाजू । अपक्व मायाफल ।
 कौहि—संज्ञा स्त्री० [वर०] जंगार । पितराई जो पीतल
 तथा ताम्रपात्र में लगता है । (मो० श०) ।
 कौहरीन—संज्ञा पुं० [?] जंगली शाकविशेष ।
 कु(क)अक—संज्ञा पुं० [अपभ्रंश 'काक' फारसी] मैदा की
 शुष्क छोटी रोटी । अँग्रेजी का 'केक' इसी शब्द से
 व्युत्पन्न है ।
 कुअकरूर—संज्ञा पुं० [?] नील । नीलिनी क्षुप ।
 कुअक्राअ—संज्ञा पुं० [अ०] सूखा छोहाड़ा । शुष्क पाले-
 वत फल ।
 कुअकामर—संज्ञा पुं० [?] सन्दरूष ।
 कुअकुअ—संज्ञा पुं० [अ०] पक्षीविशेष । अकअक ।
 लकलक पक्षी ।
 कुअनब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) व्याघ्र । शेर । बाघ ।
 (२) नर लोमड़ी ।
 [फा०] बाज पक्षी के नख के समान एक क्षुप है ।
 कुअब—संज्ञा पुं० [अ०, बहुव० क्राव] पैर का टखना
 (गुल्फ) ।
 कुअबर—संज्ञा पुं० [अ०] कालीमिर्च । गोलमिर्च ।
 कुअबल—संज्ञा पुं० [नब्ती] पलाण्डुतुल्य एक कन्द ।
 कुअबुरः—संज्ञा पुं० [अ०] मणिबन्ध की बाह्य अस्थि ।
 कलाई की बेरुनी हड्डी । कलाई के अँगूठे की ओर की हड्डी ।
 (अ०) रेडियस (Radius) । (अ०) जनदाआला ।
 वक्तव्य—कुअबुरः का उपयोग तिब्ब की प्राचीन
 परिभाषा में रान की हड्डी के सिरे तथा मांसखण्ड के
 अर्थ में भी होता है; किन्तु आधुनिक मिश्र के चिकित्सक
 इसका उपयोग रेडियस (जनदाआला) के अर्थ में
 करते हैं ।

कुअबूल—संज्ञा पुं० [अ०] } कमात का एक भेद । (लु०
 कुअमूस— „ [„] } क०) ।
 कुअम्बे—संज्ञा पुं० [ता०] वंशपत्री । (वृ० नि० र०) ।
 कुअलामीनस—संज्ञा पुं० [यू०] बखुरमरियम । करज्योड़ी ।
 हत्थाजोड़ी ।
 कुअलूस—संज्ञा पुं० [यू०] गारवृक्ष । दे० 'गार' ।
 कुआ—संज्ञा पुं० [ता०] पर्याय—(मल०, कोल०) मर्दामण्णु ।
 (ले०) केसिया अंगष्टिफोलिया (Classia Angusti-
 folia) ।
 कुआअ—संज्ञा पुं० [अ०] कडुआ तथा नमकीन पानी ।
 आवेतलख ।
 कुआदक्षुद्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगली गूलर । काकोदुम्बर ।
 कुआमऊ—संज्ञा पुं० [ता०, मल०] तीखुर । (अ०) एरोरूट
 (Arrowroot) ।
 कुआर बाब—संज्ञा पुं० [वम्ब०] धृतकुमारी ।
 कुआल—संज्ञा पुं० [अ०] द्राक्षशृंग । अंगूर की शिगूफा ।
 कुआँ—संज्ञा पुं० [हि०, देश०] कूप ।
 कुआँ की मछली—संज्ञा स्त्री० [देश०] कूपमत्स्य । कौप्य
 मत्स्य । गुण—शुक्ल, मूत्रल, कफकारक तथा कुष्ठ-
 जनक है । (भा० पू० १ भ०) ।
 कुआँरक (ग)ण्डल—संज्ञा पुं० [पं०] देवकाँड़र । जलधनियाँ ।
 कवीकज ।
 कुइ—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] (१) नीलोत्पल ।
 नीलोफर । (२) श्येन पक्षी । शिकरा । बाज ।
 कुइक्स कावेटा—[ले०] काशतृण । कासा ।
 कुइबेरा—संज्ञा पुं० [सं० कुमुदिनी] कुमुद । नीलोत्पल ।
 कुइलिरखा—संज्ञा स्त्री० [उड़िया] कोकिलाक्ष । ताल-
 मखाना । कुलिखाड़ा ।
 कुईद—संज्ञा पुं० [अ०] (१) टिड्डी । (२) पुरुष शशक ।
 नर खरगोश । (लु० क०) ।
 कुऊद—संज्ञा पुं० [अ०] कुमारी कन्या । अविवाहिता स्त्री ।
 कुऊसा—संज्ञा स्त्री० [?] खर्वक ।
 कुएर बाबल—संज्ञा पुं० [सिंध] अरिभेद । विटखदिर,
 गूहबबूल । रीवाँ ।
 कुएर बक्र—संज्ञा पुं० [अ०] काली कुटकी । खर्वकेस्याह ।
 दे० 'खर्वक' ।
 कुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्रवाक पक्षी । चकवा ।
 सुरखाव ।
 कुकई—संज्ञा स्त्री० [पं०] स्वादुकण्टक । (हि०) जलोदर ।
 (पं०) कुचनी । (मे० मो०) ।
 कुककेश—संज्ञा पुं० [वं०] बहुबीज ।
 कुकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] मुरगी ।
 कुकडबेल—संज्ञा पुं०, स्त्री० [गु०, म०] जीमूत । दे०
 'देवदाली' ।

कुकड़ बेला—संज्ञा स्त्री० [गु०] 'देवदाली'। घघरवेल।
बन्दाल।

कुकड़ भाँगरा—संज्ञा पुं० [हिं०] भृङ्गराज भेद।

कुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुट] मुरगा। ताम्रचूड़।
अरुणशिखा।

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] मुरगी।

कुकड़ी रेती—संज्ञा स्त्री० [उ० प० भा०] ककड़ी जो नदियों
की रेतीली जमीन में ग्रीष्मऋतु में होती है। फूँट।

कुकतूस—संज्ञा पुं० [यू०] दीपकलात नाम का पक्षी।

कुकनूस—,, ,, [यू०] जिसके चोंच में बाँसुरी की
भाँति ७ छिद्र होते हैं। कुछ यमन संगीत के ज्ञाताओं का
कथन है कि संगीत के सप्त स्वरों की उत्पत्ति आदिकाल
में उक्त पक्षी से हुई है। (शरमाए इशरत)।

कुकपाल-कुरा—संज्ञा पुं० [ते०] (पं०) अलेथी।
(मे० मो०)।

कुकभ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मद्यविशेष। (श० च०)।

शराव जो अर्जुनवृक्ष की छाल द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

कुकभ वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कहुआ। कहूँ। अर्जुन
वृक्ष।

कुकमाची—संज्ञा स्त्री० [ते०] बृहती। बड़ी कटेरी।
वनभटा।

कुकुर—संज्ञा पुं० [सं० कुकुर] कुत्ता। श्वान।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गठिवन। ग्रन्थिपर्णी। (वै० शब्द सि०)।

कुक (कु) र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गठिवन,
ग्रन्थिपर्णी। (२) श्वान। कुत्ता। वि० [सं० त्रि०]
रोगादि द्वारा कुञ्चित हस्त (हाथ)।

कुकुरखाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बालकास-रोग। सूखी खाँसी
'काली खाँसी'। (अं०) हूँपिंग कफ (Hooping-cough)।
एक प्रकार का संक्रामक कास जो प्रायः बालकों को ५-६ वर्ष
की अवस्था में होता है। यह खाँसी दिन की अपेक्षा
रात्रि में अधिक आती है और जब तक खाँसते-खाँसते
वमन नहीं हो जाता, निरन्तर आया करती है। इसके
आक्रमणकाल में बालकों को उद्वेगन होता है और उनका
वर्ण नीला-पीला हो जाया करता है। इस कास में वात-
कफ की प्रचलता होती है।

चिकित्सा—यह कठिनातापूर्वक जाती है। डाक्टर,
हकीम प्रायः असफल रहते हैं। अतः बालकों को धारोष्ण
दुग्धपान कराएँ और काकड़ासिंगी, अकरकरा, अजवाइन,
समान भाग में ग्रहण कर किंचित् घृत मिश्रित कर दिन-रात
में ३-४ बार १-१ चम्मच दिया करें। दे० 'काली
खाँसी'।

कुकुरचमोटी—संज्ञा स्त्री० [पं०] साँप की छतरी।
भुईँफोड़। देखो 'छत्रिका'।

कुकुरचिटा—संज्ञा स्त्री० [बं०] मैदालकड़ी। (मे० मो०)।

कुकुरचीन—संज्ञा पुं० [तुर्की] पारावत पक्षी। कबूतर।

कुकुरचूर—संज्ञा पुं० [बं०] पपड़ी। कंकरा। (ले०) इक्षोरा।

कुकुर चोरा—,, ,, } पेवेटा (Ixora-Pavetta)।

कुकुर छत्ता—संज्ञा पुं० [हिं०]

कुकुर छद्दा—,, ,, [,,]

कुकुर छद्दाँ—,, ,, [,,]

कुकुर छाता—,, ,, [,,]

कुकुर छिद्दी—,, स्त्री० [,,]

कुकुर छेद्दी—,, ,, [,,]

कुक (कु) र- जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कुकुर झीआ—,, ,, [हिं०]

(१) लीआस्टेफाइलीआ (Laea Staphylea) नामक

वनस्पति (२) एक प्रकार की मछली।

कुकुरडाँस—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की कुकरखाँसी

जो प्रायः गाय-बैलों में होती है। चिकित्सा—कुत्ता
की हड्डी गले में बाँधने से लाभ होता है।

कुकुर तमाकु—संज्ञा पुं० [हिं०, पं०] चिलस्सी तमाकु।

कुकुरनील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नीलोत्पल। निलोफर।

कुकुरबन्दा—संज्ञा पुं० [सं० कुकरदु] दे० 'कुकुरौंधा'।

कुकुरबीचा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] क्षुप विशेष। पर्याय—

(सन्ताल) सेतकात, सेतअन्दीर। (वम्ब०, कों०) गौली।

(ले०) ग्रेविया पालीगेनिया (Grewia Polygania)।

ग्रेविया लेंसिफोलिया (G. Lancifolia)।

कुल—पौष्टिकादि (Family-Tiliaceae)।

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वतमाला, नैपाल, कोंकण
से लेकर उत्तर-पश्चिम प्रदेश इत्यादि।

गुण-कर्म—शीतल, संग्राही, बलवर्धक। उपयोग—

इसके पत्तों का हिम वा क्वाथ निर्माण कर सेवन करने से
आमातिसार शान्त होता है। मात्रा—२। १०। फल—

इसका सुपक्व फल खाने से आमातिसार, एवं अतिसार शान्त
होता है, और शरीर पुष्ट होता है। यह शुक्र को हितकर है।

मूल—इसकी जड़ की छाल का क्वाथ सेवन करने से
उपर्युक्त लाभ होता है। मूलत्वचा पीस कर लगाने से
क्षत का नाश होता है।

कुकुरबीटा-पेपा—संज्ञा पुं० [अं०] अण्डखर्बूजा। विलायती
रेंड। देखो 'अरण्ड ककड़ी'।

कुकुरबीटा मँगिसमा—संज्ञा पुं० [ले०] काशीफल। भूरा
कुम्हड़ा। पीत कुष्माण्ड। दे० 'कुम्हड़ा'।

कुकुरबीटा-सेमिता प्रिपारेटा—संज्ञा पुं० [ले०] मीठे
कद्दू का छिला बीज। दे० 'कद्दू'।

कुकुर बिट्टेसीई—संज्ञा पुं० ले० [Cucurbitaceae]
कूष्माण्डादि कुल।

कुकुरबेल—संज्ञा स्त्री० [गु०, म०] बन्दाल। जीमूत।
दे० 'देवदाली'।

कुकुर बेल—संज्ञा स्त्री० [गु०, बम्ब०] देवदाली।

कुकुरबेली—संज्ञा स्त्री० [गु०, बम्ब०] बन्दाल। दे० 'देवदाली'।

कुकुर भांगरा—संज्ञा पुं० [हि०] भृंगराज भेद।

कुकुर-मुत्ता—संज्ञा स्त्री० [हि०] भूछत्रिका। साँप की छतरी। खुम्बी। देखो 'खुमी' व 'छत्रिका'।

कुकुर लता—संज्ञा स्त्री० [हि०] देखो 'देवदाली'।

कुकुर सुंगा—संज्ञा स्त्री० [हि०, बं०] दे० 'कुकुरौंधा'।

कुकुर सोंका—संज्ञा स्त्री० [बं०] देखो 'देवदाली'।

कुकुरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] श्विनी। कुतिया।

कुकुरी रेती—संज्ञा स्त्री० [उ० प० भा०] फूट। रेत में होनेवाली ग्रैष्मिक कर्कटी।

कुकुरोहन—संज्ञा पुं० [हि०] वयुआ। वास्तुक शाक।

कुकुरौंछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मक्षिकाविशेष। दे० 'कुकुरमाछी'।

कुकुरौंधा (दा)—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुरुद्रु] क्षुप विशेष।

पर्याय—(सं०) कुक्कुरुद्रु, कुकुन्दर, ताम्रचूड़, सूक्ष्म पत्रक, मृदुच्छद; (हि०) कुकुरौंधा; (बं०) कुकुर शोंका, कुकुरमुत्ता; (म०) कुकुर बन्द्रा; (गु०) बोडिया कलार, चंचरमारी, कलार; (बम्ब०) जंगली मूली; (द०) दिवारी मूली; (फा०) कमाफितुस; (अ०) सनोबर्ल्-अर्ज; (ले०) ब्लूमिआ ओडोरेटा (Blumia Odorata), ब्लूमिआ लैसिरिआ (B. Laceria), ब्लू० बालसेमिफेरा (B. Balsemifera)।

कुल—सेवत्यादि (Family-Compositae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष की विभिन्न आर्द्र भूमि में स्वतः उत्पन्न होता है।

परिचय—सुप्रसिद्ध दुर्गन्धमय क्षुद्रक्षुप है जो वर्षाऋतु के अन्त में प्रायः दीवारों के नेहों में स्वतः उत्पन्न होता है। पत्र लोमश उग्रगन्धपूर्ण, दलदार तथा मूली के पत्तों के आकार का होता है और मूल से उत्पन्न होकर पृथ्वी पर फैल जाता है। इसके पश्चात् उसके मध्य भाग से तना तथा शाखाएँ निकलती हैं। इसकी उँचाई प्रायः १ से ३ तीन विक्ता तक की होती है। इसमें ढोंढ़दार पुष्प लगते हैं और पक जाने पर रूई की भाँति वायु में उड़ जाते हैं। बीज अत्यन्त छोटे-छोटे और स्वादविरहित होते हैं।

उपयोगी अंग—पञ्चांग।

रासायनिक संगठन—इसके सर्वांग में कर्पूर का अंश अत्यधिक होता है और तद्गत कर्पूर को नागीकर्पूर तथा पत्रीकर्पूर कहते हैं।

गुण-कर्म—रुटु एवं तिक्त और ज्वर, रक्तविकार तथा कफनाशक है। मूल—इसकी आर्द्र जड़ मुख में धारण करने से मुखशोथ विलीन होता है। (मद०, भा०)।

उपयोग—कुकुरौंधा का नवीन पञ्चांग जल में पीस

कर पान करने से पूयमेह (सूजाक) तथा रक्तार्श का शीघ्र नाश होता है। इसके अतिरिक्त मुखरोग जिसमें जिह्वा तथा कंठ में काँटों के निकलने की सी अवस्था उत्पन्न होती है। उसमें इसे जल में पीस कर पीने से उत्तम लाभ होता है। पत्रों को पीस कर सद्यःजात क्षत पर लगाने से लाभ होता है।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। मतान्तर से द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। किन्तु लेखक के मत से प्रथमोक्त ही सत्य है।

गुण-कर्म—शोथघ्न, उदरीयकृमिनाशक, सर, रक्तज तथा वातज अर्श में उपयोगी एवं उन्मत्त श्वानविष में हितकर है।

उपयोग—इसके पत्तों का स्वरस निकाल कर इससे आश्च्योतन करने से नेत्राभिष्यन्द दूर होता है। बालकों की गुदा में लगाने से सूत्रकृमियों का नाश होता है। इसके स्वरस के उपयोग से अर्शाङ्कुर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। कालीमिर्च के साथ पीस कर पीने से खूनी तथा वादी बवासीर जाता रहता है।

इसके पत्तों का स्वरस पान करने से जलोदर तथा उदरकृमियों का नाश होता है। कुकुरौंधा की जड़ कालीमिर्च के साथ पीस कर पीने से पागल कुत्तों का विष नष्ट होता है और वमन होता है। इसके पत्तों को पीस कर घृतयुक्त गरम कर लेप करने से शोथ विलीन होता है।

हानिकारक—फुफुस तथा कंठ को। प्रतिकार—मधु और कालीमिर्च। मात्रा—पत्रस्वरस-१-२ तो० तक।

वक्तव्य—शुद्ध कृष्णअभ्रक ग्रहण कर उसमें कुकुरौंधा के पत्तों का रस निचोड़ कर मर्दन कर और जब शुष्क हो जाय टिकिया बनाकर गजपुट की आँच देने से रक्तवर्ण का भस्म प्रस्तुत होता है। किन्तु उक्त विधि से १० से २० बार फूँकने से अत्यन्त हितकर भस्म होता है। मात्रा—१-४ रत्ती। अनुपान यथारोग देवें। उपर्युक्त वर्णन काला कुकुरौंधा के सम्बन्ध में किया गया है। इसके अतिरिक्त दूसरा श्वेतकुकुरौंधा भी होता है। इसके सर्वांग में उग्र गन्ध होती है।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] सुकर्म का विरोधी कर्म। वह कार्य जो मानव-धर्म के विपरीत किया जाता है; यथा—व्यभिचारादि।

कुललया—संज्ञा पुं० [हि०] कलकलया नाम की वनस्पति। (मे० मो०)।

कुक्कवोमिण्ट—संज्ञा पुं० [तेलिंग] जंगली हुरहुर। पीत पुष्प की हुरहुरिया जो प्रायः जंगलों में होती है। इससे ताम्र का उत्तम भस्म प्रस्तुत किया जाता है।

कुकुशिमा—संज्ञा पुं० [बं०] कुलहल।

कुकुशोम—” [हि०] देखो—'कुलाहल'। (डाइ-

माक iii पृ० ४ भा० ३) दे० 'कुटकी'।

कुकसीम—संज्ञा पुं० [वं०] उक्त नाम की वनस्पति जिसको लेटिन में साइलेसिया कारोमैण्डिलाना कहते हैं। (डाइमाक भा० २, पृ० २४३)।

कुकसुंगा—संज्ञा पुं० [वं०] कुकुरद्रु। दे० 'कुकुरौधा'।

कुकुञ्चन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मिश्रक धातु विशेष। पीतल। (अं०) ब्रांस (Brass)।

कुकीलीपोट—संज्ञा पुं० [काश०] जटामांसी। (अं०) मस्क रूट (Musk-root)।

कुकुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सितीवार नाम का क्षुप। दे० 'सिरियारी'। (रा० नि०) (२) शाल्मली वृक्ष। सेमल। (रा० नि० व० ४)।

कुकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ऋषभक नाम की ओषधि। (२) शाल्मली वृक्ष। सेमल। (रा० नि० व० ४)।

कुकुड—संज्ञा पुं० [ते०] रीठा, रीठी, अरीठा, अरिष्टक।

कुकुडचूर—संज्ञा पुं० [वं०] तिरयाकफल। कंकर। पपड़ी। कुकडचूर।

कुकुड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुककुट] ताम्रचूड़ पक्षी। मुरगा।

कुकुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० कुककुटी] मुरगी।

कुकुद्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } दे० 'कुकुरौधा'।

कुकुन्द—,, [,,] }

कुकुन्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मालकांगनी, ज्योतिष्मती लता। (वै० निव०)।

कुकुन्दर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नितम्बस्थ कूपद्वय। चूतड़ के दोनों गड्ढे। (२) उक्त नाम का मर्मस्थान जहाँ वेध होने से स्पर्शलोप (सुन्नता) तथा चेष्टा का नाश होता है। (सु० शा० ६ अ०)। (३) क्षुप विशेष। दे० 'कुकुरौधा'।

कुकुन्दरौ—संज्ञा पुं० [सं० द्वि व०=कुकुन्दरद्वय] (१) जघनधारा का उच्चतम उन्नत भाग (Highest curve of the iliac crest on both sides)। (२) कुकुन्दरपिण्ड नामक श्रोणिफलक के अस्थिभाग। मर्मस्थान। दे० 'मर्म'। (अं०) Ischial tuberosities (च० शा० ७-११)।

कुकुन्दरमेचक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोरखतंडुली। (वं०) गोरक्षचाकुलिया। गोरक्षतण्डुलीक्षुप। (रस र० स्तन रो० चि०)।

कुकुन्दरसन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] नितम्ब की सन्धि। चूतड़ का जोड़।

कुकुभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक पक्षी। कुकभ पक्षी।

कुकुभा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] देखो 'कुकुरौधा'।

कुकुमिस—आंग्विनस—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis

Anguinas] चिभिट। पेंहटुल। पेहँटा। शशा डुली।

कुकुमिस-एक्युटेंग्युलस—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis Acutangulus] धमागंव। झिंगा। तरौई।

कुकुमिस-ट्रिगोनस—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis Trigonus] विशाला। जंगली बड़ा इन्द्रायन जो छोटे खरबूजे के आकार का होता है।

कुकुमिस-मोमोर्डिका—संज्ञा स्त्री० [ले० Cucumis Momordica] एरवारक। क हटी। पेंहटुल का बड़ा भेद।

कुकुमिस-मेलो—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis Melo] कलिंग। तर्बूज।

कुकुमिस-युटिलिस्मस—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis Utilissimus] कर्कटी। ककड़ी।

कुकुमिस-सेटाइवस—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis Sativus] त्रपुष। खीरा।

कुकुम्बर—संज्ञा पुं० [अं० Cucumber] ककड़ी। कर्कटी।

कुकुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ग्रन्थिपर्णी। गठिवन। (२) श्वान। कुत्ता। (३) एक प्रकार का साँप।

कुकुरआलू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की लता जिसकी जड़ में आलू के समान कंद होता है। वनालू। कुस बगड़ा।

कुकुरकाट—संज्ञा पुं० [म०] भुडकुड़। भ्रमरच्छल्ली। देखो 'भुडकुड़'।

कुकुर चिता—संज्ञा पुं० [पं०] मैदालकड़ी।

कुकुर चन्दी—संज्ञा स्त्री० [?] कुकरचन्दी। दे० 'कुकुरौधा'।

कुकुर चूर—संज्ञा पुं० [वं०] } पपड़ी।

कुकुर चोरः—,, [,,] } (Ixora Pauvetta)।

(डाइमाक भा० २, पृ० २११)।

कुकुरजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की मछली (मत्स्य)। (अं०) एकीरिस कुकुरजिभा (Acheiris Kookorzibha)। (२) कुरकुरजिह्वा। हँसुआ।

कुकुरन्दे—संज्ञा पुं० [म०] दे० 'कुकुरौधा'।

कुकुरन्दु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुकुरौधा'।

कुकुरबीचा—संज्ञा पुं० [देश०] } दे० 'कुकुरबीचा'।

कुकुर बिचा—,, [,,] }

कुकुर भं (भां) गरा—संज्ञा पुं० [देश०] भृंगराज क्षुप का एक अन्य भेद।

कुकुरमाँछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मक्षिकाविशेष। एक प्रकार की छोटी सुनहले रंग की मक्खी जो प्रायः कुत्तों तथा अन्य पशुओं के ऊपर बैठती है। यह उनका रक्त पान करती है। इसके दंशस्थान पर खुजली होती है।

कुकुरमाँण—संज्ञा पुं० [सि०] मदनवृक्ष। मैनफल।

कुकुर-मुत्ता—संज्ञा स्त्री० [हि०, वं०] (१) साँप की छतरी। दे० 'छत्रिका'। (२) कुकुरौधा।

कुकुर लता—संज्ञा स्त्री० [हि०] घघरेल। दे० 'देवदाली'।
 कुकुरसाक—संज्ञा पुं० [हि०]
 कुकुरसुंगा—, [पं०]
 कुकुर-सोक—, [,]
 कुकुर सोंका—, [,]
 कुकुरन्द—, [सं० पुं०]
 कुकुरौंदा (धा)—, [हि०]
 कुकुरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [मल०] लताविशेष। (M. Giganta)।

कुकुवाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षीविशेष। कुकुभ पक्षी। (वं० निघ०)।

कुकुसिया—संज्ञा पुं० [वं०, सं० कुकुरु] दे० 'कुकुरौंदा'।
 कुकूट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मयूरपुच्छ। मोर का पंखा। (वं० निघ०)।

कुकूणक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक प्रकार का नेत्र-रोग जो प्रायः बालकों की शैशवावस्था में उनके वर्त्म (पलकों) में उत्पन्न होता है। इसका वर्णन नेत्ररोग में न होकर पृथक् बालरोग में होता है। पर्याय—(हि०) कुयुआ, कुयुई, रोहा; (वं०) कोतो।

लक्षण तथा निदान—यह माता के दुग्धविकार से उत्पन्न होता है और उत्पन्न होने पर नेत्रों के पलकों में शोथ उत्पन्न होता है। आँसू बहता है। खुजली होती है और प्रायः बालक अपने नाक को घिसा करता है। उसको प्रकाश असह्य होता है। शोथ के कारण नेत्र बंद रहते हैं।

उपयुक्त चिकित्सा न होने पर नेत्र में फूली पड़ जाती है। अतः अति शीघ्र उपयुक्त उपाय से शान्त करने की व्यवस्था करें।

चिकित्सा—(१) कसीस, फिटकरी, लोघ, एकत्र पीस कर पलकों के ऊपर लेप करें। शीघ्र लाभ होता है।

(२) रसकपूर, नौसादर, छोटी इलायची के दानों का चूर्ण और देशी कपूर उचित परिमाण में ग्रहण कर पीतल के पात्र पर घिसकर अत्यल्प परिमाण में पलकों के भीतर आँजन की भाँति लगाएँ। यद्यपि यह लगता विशेष है, किन्तु एक ही बार के प्रयोग से पर्याप्त लाभ होता है।

(३) नौसादर, भूना सुहागा, कसीस एकत्र जल में घिस कर पलकों के ऊपर लेप करें। शीघ्र शोयादि उपद्रव शांत हो जाते हैं। (४) करोनी के फलों की माला गूथ कर गले में धारण करने से भी क्रमशः लाभ होता है। (५) चाकसू, फिटकरी, निम्बपत्र और लोघ एकत्र उष्ण जल में पीसकर पलकों के ऊपर लेप करें। (६) त्रिफला, सोंठ, लोघ, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी एकत्र पीस कर पलकों के ऊपर लेप करें। (७) रसकपूर, हीराकसीस एकत्र जल में पीस कर आँजन करने से शीघ्र लाभ होता है।

कुकूरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुकुरौंदा'।

कुकूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शाल्मली वृक्ष। दे० 'सेमल'।

कुकूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तुषानल। भूसी की आग (अग्नि)।
 कुकोआ—संज्ञा पुं० [पं०] स्वादुकण्टक। बड़ची गाछ। कण्टाई। दे० 'विकङ्कत'। (मे० मो०)।

कुकोल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छोटी बेर। झाड़ बेर। बदरीफलवृक्ष। कोली। (वं०) कूल गाछ।

कुक्—संज्ञा पुं० [?] सर्पविशेष।

कुक्क-आवालु—संज्ञा पुं० [ते०] जंगली हुरहुर।

कुक्क तुलसी—संज्ञा स्त्री० [ते०, द०] सफेद तुलसी।

कुक्क पाल—संज्ञा पुं० [ते०] अन्तमल। जंगली पिकवन। (म०) पित्तकारी।

कुक्क बीजम्—संज्ञा पुं० [ते०] दे० 'जुन्दवेदस्तर' (Castoreum)।

कुक्क-मोचा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शाल्मलीनिर्यास। मोचरस।

कुक्कर—संज्ञा पुं० [हि०] ग्रन्थिपर्णी। गठिवन। गठौना।

कुक्क वाण्टमिण्ट—संज्ञा पुं० [ते०] } (१) सफेद। हुर
 कुक्क वामिण्ट—, [,] } हुर। जंगली हुरहुर।

(डाइमाँक)। (२) पीले फूल का हुरहुर। (अं०) क्लीओमी विस्कोसा (Cleome Viscosa)। (इं० मे० मे०)।

कुक्क-बीजम्—संज्ञा पुं० [ते०] खट्टासी। दे० 'जुन्दवेदस्तर'।

कुक्कातुलसी—संज्ञा स्त्री० [द०] सफेद तुलसी।

कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी विशेष। पर्याय—(सं०)

अरुणशिषा, अग्निचूड़, कलाविक, कालज्ञ, काहन, कुक्कुभ, चरणायुध, कुहनस्वर, कुहकम्बल, उपाकर, निशाबेदी, निशाकर, निषोद्धा, नखरायुध, यामनादी, दक्ष, ताम्रचूड़, ताम्रशिखी, रात्रिवेद, वृताक्ष, रात्रिवेदी, यामघोष, प्रकाशज्ञाता, कृकवाक, विवृताक्ष, विष्किर, शिखण्डिक, (हि०) मुरगा; (उर्दू) मुर्गा, कोमड़, कुकड़ा; (वं०) कूको पाखी; (अं०) कॉक (Cock)।

ग्राम्य तथा वन्य भेद से कुक्कुट के २ भेद हैं।

(१) ग्राम्य कुक्कुट-मांस के गुण—वृंहण, वृष्य, बलवर्धक, शुक्रल, स्निग्ध, दीर्घपाकी, कषायरस, उष्णवीर्य होते हुए कफकारक है। ग्राम्य कुक्कुटमांस वनकुक्कुटमांस तुल्य है; किन्तु वह दीर्घपाकी, वातरोग, क्षयरोग तथा विषमज्वर नाशक है। (सु० सू० ४६ अ०)।

(२) वन्य कुक्कुटमांस—स्निग्ध, उष्णवीर्य, वातनाशक, वृष्य, स्वेदल, शरीरपुष्टिकर, बलवर्धक तथा स्वर को उत्तमकारक है। (सु० सू० ४६ अ०)।

श्लेष्मल, लघुपाकी, तथा हृदय को हितकारी है। (रा० नि० व० ११)।

रूक्ष, स्वादिष्ट, रस में कषाय तथा शीतल है। (राज०)। संप्राही, कषाय, रुचिकर, शीतल, रूक्ष, अग्निदीपन, मधुर, लघुपाकी, अविदाही, हृद्य, वृष्य, त्रिदोषघ्न है तथा मेह, ज्वर, श्वास, मेदवृद्धि, कुष्ठ, भ्रम तथा अरोचक नाशक है, ऐसा पुरातन वैद्य कहते हैं। (वै० निघ०)।

(३) कुक्कुटाण्ड—पर्याय—(सं०) कुक्कुटीडिम्ब, कुक्कुटी-गर्भ; (हि०) मुरगी का अंडा; (फा०) तुख्म-मुरग; (अ०) वैज, वैजा; (अं०) हेन-एग (Hen-Egg)।

रासायनिक संगठन—मुरगी के अंडों में कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त आहार के समस्त उपयोगी उपादान प्राप्त हैं। इसमें—प्रोटीन (जीवनीय द्रव्य), वसा, सुधा (केल्सिअम्), भास्वर (फास्फोरस), लौह, क्षार (पोटाशियम्) इत्यादि उपादान प्रचुर परिमाण में पाए जाते हैं। उक्त द्रव्य ऐसे हैं जो शीघ्र पचकर शरीर में अभिशोषित हो जाते हैं।

गुण-कर्म—मधुर, कटुपाकी, शुक्ल, रुचिप्रद तथा वातकफनाशक है।

कुक्कुटाण्ड ३ भागों में विभक्त है:—(१) अण्डपीतक (जर्दी), (२) अण्डश्वेतक (अंडों की सफेदी अर्थात् अण्डोदक) और (३) अण्डकोषावरण (अंडों का बाह्य छिलका) जिसको कुक्कुटाण्डत्वक् भी कहते हैं। कुक्कुटाण्ड-दल (अंडे का छिलका) का उपयोग सुश्रुत उत्तरतन्त्र में नेत्ररोग की चिकित्सा में वर्णित है; यथा—देखो अञ्जनगुटिका अ० १८ में 'कालानुसरिवा चैव कुक्कुटाण्ड दलानि च, तुल्यानि पयसा पिष्ट्वा गुटिकां कारयेद्बुधः। कंडू तिमिर शुक्लार्म रक्तराज्युपशान्तये।' अर्थात् मुरगी के अंडे का छिलका और कृष्णसारिवा स्त्री के दुग्ध में घिस कर अञ्जन करने से—तिमिर, शुक्ल (फूली), अर्म (नाखूना) तथा नेत्रगत रक्तवर्ण की रेखा नष्ट होती है।

कुक्कुटाण्डोदक—अंडों की सफेदी १ तो०, गोदुग्ध ५ तो०, ब्राण्डी २० बूँद, चीनी वा बतासा उचित परिमाण में मिश्रित कर देने से शीतला (चेचक)जन्य अतिसार शान्त होता है। इसी प्रकार प्रदाहिक अतिसार में भी देवें।

कालीमुरगी के अंडा की सफेदी ग्रहण कर नस्य लेने तथा गुलरोगन में मिश्रित कर केशमुण्डन कर मस्तक पर लेप करने से—प्रलाप, सान्निपातिक ज्वर तथा अनिद्रा का नाश होता है। दे० 'काली मुरगी'।

तिब्ब के अनुसार प्रकृति—(१) कुक्कुटाण्ड-पीतक—यह प्रथम कक्षा में उष्ण एवं तर है। (२) कुक्कुटाण्डश्वेतक—प्रथम कक्षा में शीतल (तर) है। (३) कुक्कुटाण्डदल अर्थात् मुरगी के अंडों का छिलका यह द्वितीय कक्षा में

शीतल एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—अण्डपीतक—यह रक्तवर्धक, वाजीकर; श्वेतक दोषसंशमन, शीतजनक तथा प्रदाहनाशक है।

कुक्कुटाण्ड दल—(त्वक्) यह संप्राही, लेखन, उपशोषण तथा नेत्ररोग में हितकर है।

उपयोग—अर्धभजित अंडा—शीघ्रपाकी, शरीर-पुष्टिजनक, जीवनीय एवं शक्तिवर्धक है। इसके सेवन से शरीर में अधिक परिमाण में रक्त उत्पन्न होता है; शरीर पुष्ट एवं बलवान् होता है और काम-शक्ति की वृद्धि होती है।

अंडों का हलुआ नपुंसकतानाशक तथा वाजीकर है। जल में उबाला हुआ अंडा कच्चा अंडा की अपेक्षा लघुपाकी और अधिक स्विन्न अंडा गुरुपाकी होता है। अण्डोदक अर्थात् अंडे की सफेदी अल्पपौष्टिक तथा दीर्घपाकी है। इसका अग्निदग्ध स्थान पर तथा प्रदाहिक व्रणों पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

गुलाब-जल, गुलरोगन तथा सिरकायुक्त मस्तकपर लगाने से सन्निपातज्वर (सरसाम) का प्रकोप शीघ्र शांत होता है।

सद्यः वध किए हुए कुक्कुट का चर्मनिर्मित खोल मस्तक पर धारण करने से सन्निपातज्वर का उग्र प्रकोप अति शीघ्र शांत होता है।

भस्म निर्माण-विधि—अंडों के छिलके की भस्म जो कतिपय प्रकार की निर्बलता में उपयोगी है निम्न विधि से प्रस्तुत करें।

अंडा की सफेदी १ पाव ग्रहण कर सिरका में उबाल लेवें। पुनः नीबू के रस से मर्दन कर ठिकिया बनाएँ और सकोरा में बंद कर गजपुट की आँच देवें और स्वांगशीतल होने पर पीस कर सेवन कराएँ। मात्रा—१ से ६ रस्ती तक।

उक्त भस्म का नस्य लेने से नासिका द्वारा रक्तस्राव होना बंद होता है और नेत्रों में मुरमा की भाँति लगाने से शुक्ल (फूली) का नाश होता है।

सर्प-विषहरण में कुक्कुट का उपयोग—जिस स्थान में साँप ने काटा हो वहाँ, उसके दंश स्थान को नश्वर लगाकर थोड़ा बड़ा देवें। पुनः एक मुरगा लेकर उसके गुद-द्वार पर नश्वर लगाकर घाव कर देवें और उसको पकड़ कर दंश स्थान से मिला कर रखें। जब उसकी मृत्यु हो जाय, उसको हटा कर, पुनः इसी विधि से दूसरा मुरगा लगाएँ। जब तक मरते जाएँ बदल-बदल कर लगाया करें। जब न मरें तब समझना चाहिए कि वह स्थान निर्विष हो गया। इसके पश्चात् दंश स्थान को भली भाँति उष्ण जल से प्रक्षालन कर उसपर क्षार लगा कर पट्टी बाँध देवें। दंष्ट रोगी को घृत पान कराएँ। इस प्रक्रिया द्वारा रोगी निश्चय जीवन प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त कुक्कुटाण्ड का उपयोग तरकारी, पापड़, हलुआ इत्यादि कतिपय प्रकार से किया जाता है।

हानिकारक—

कुक्कुटाण्डपीतक—उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को।

प्रतिकार—दुग्ध और मिश्री। **प्रतिनिधि—**मृग के वृषण।

मात्रा—१ से ४ अंडा तक। दे० 'कुक्कुटगर्भ'।

कुक्कुट (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शित्तिवार।

दे० 'सिरियारी'। (२) विष्किर जन्तु। (३) अग्निकण।

(४) सुनिवण्णक शाक। (भा० पू० १ भ०)। **पर्याय—**

(कों०) रान माष। देवकुसुड।

कुक्कुट गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुटाण्ड, कुक्कुट-डिम्ब। मुरगी का अंडा।

गुण—संग्राही, उष्ण वीर्य, रसायन, शीतल, रूक्ष, अग्नि-दीपन, अविदाही, लघुपाकी, मधुर, वृष्य, हृद्य, त्रिदोषनाशक, दाह, मेद, कुष्ठरोग, भ्रम, अरोचकनाशक तथा पुरातन वैद्यों के अनुसार रसायन है। (वै० निघ०)। दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुट डिम्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० कुक्कुट गर्भ।

कुक्कुट पादप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कुक्कुट पादो—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } देव सर्पप।

श्वेत सर्पप। सफेद सरसों। सफेद राई। **गुण—**तेल-उग्र-गन्धी, वात, कफ तथा सन्निपातज्वर नाशक है। **मूल—**रक्तविकारजनक तथा रूक्षण है। (वै० निघ०)। कटु-पाकी, उष्णवीर्य, कफनाशक, रुचिप्रद तथा मुखरोग-नाशक है। (रा० नि० व० ९)।

कुक्कुट-पिच्छ—संज्ञा पुं० दे० 'कुक्कुटपेटक'।

कुक्कुटपुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारदादि भस्म-निर्माण करने का गड्ढा। **लक्षण—**२ वालिशत ऊँचा, २ वालिशत गहरा तथा उतना ही विस्तृत (चौड़ा) गड्ढा भूमि में खोदकर और उसके मध्य में उपला भरकर तथा उसके मध्य में ओषधिपूर्ण मृदा स्थापनकर, उसके ऊपर गड्ढे का रिक्त स्थान अर्धभाग उपला रख कर अग्नि देने को 'कुक्कुट पुट'—कहते हैं। (र० र० सं०)।

मतान्तर से १ हाथ प्रमाण का खात निर्माण कर उसमें १० वनोपल (जंगली कंडों) की आँच देने को 'कुक्कुट-पुट' कहते हैं। अथवा १ विक्ता गहरा गड्ढा खोदकर उसमें कंडों को भर ओषधियुक्त आँच देने को (कुक्कुट-पुट) कहते हैं—

'अधःषडङ्गुलं खातं चतुर्दिक् सु च तादृशं एतत्कुक्कुट नामकं पुटं विद्याद्विषग्वरैः।'।

कुक्कुटपुटभावना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दो पल रस की मिलित भावना को उक्त नाम से अभिहित करते हैं। (वैद्यक)।

कुक्कुट-पेटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुरगे का पंख। मुरगे की पुच्छ (डुम)।

कुक्कुट-मञ्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चव्य। चाव। चविका। (रा० नि० व० ६)।

कुक्कुट मर्दि (र्दी) का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आराम-शीतला। (वै० निघ०)।

कुक्कुट-मस्तक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चव्य। चविका। चाव। (रा० नि० व० ६)। (२) कालीमिर्च का एक भेद।

कुक्कुट मांस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुटमार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अजवाइन खुरासानी।

कुक्कुट-शिख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुसुम। कुसुम्भ क्षुप। (श० च०)।

कुक्कुटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीतपुष्प की कट-सरैया। पीतअम्लानक्षुप। दे० 'कटसरैया'। (वै० निघ०)।

कुक्कुटाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) धान्य विशेष।
कुक्कुटाण्डक—,, [,,] } ब्रीहि धान्य जो मुरगे के अण्डे की आकृति का होता है। (भा० पू० १ भ०)।

(२) कुक्कुटडिम्ब। मुरगी का अंडा। दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुटाण्ड-कपाल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुक्कुटाण्डदल। मुरगी के अंडों का छिलका। (सुश्रुत)। दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुटाण्ड त्वक्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुटाण्ड-दल। दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुटाण्ड-दल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुक्कुटाण्ड-आवरण (छिलका)। मुरगी के अंडों का छिलका। (सुश्रुत)। दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुटाण्ड-पीतक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुरगी के अंडों की जर्दी (पिलाई) वा पीत भाग। दे० 'कुक्कुट'।

कुक्कुटाण्ड श्वेतक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुक्कुटाण्डोदक। मुरगी के अंडों की सफेदी। दे० 'काली मुरगी' वा 'कुक्कुट'।

कुक्कुटाण्ड-सम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद बैंगन जो अंडा के समान श्वेतवर्ण का होता है। विलायती भाँटा। श्वेत वात्सिकु।

कुक्कुटाण्डोदक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुरगी के अंडों की सफेदी। (कश्यप)। दे० 'काली मुरगी'।

कुक्कुटाभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्पविशेष। एक प्रकार का साँप जो कुक्कुटपक्षी के चरण की आकृति का होता है। (हे० च०) (२) गोनस सर्प।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुरगी के अंडों का छिलका। कुक्कुटडिम्ब कपाल। दे० 'कुक्कुट'। **गुण—**यह व्रणोत्सादक है। (सु० सू०)।

कुक्कुटाहि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुक्कुटाभ'।

कुक्कुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्लवचर पक्षीविशेष। मुरगी। जल के किनारों पर विचरनेवाली मुरगी। (सुश्रुत)।

कुक्कुटि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] टोंक नाम का पक्षी।
(ध० नि०)।

कुक्कुटी (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) कुकुड़ी।
मुरगी। कुक्कुभ पक्षी। (२) एक प्रकार का कंद जो
अंडा की आकृति का होता है। (मे०)।
संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सेमल। शालमली। (रा० नि०
व० ८; भा० पू० ४४० मूत्राष्टक तैले)। (२) शित्तवार।
सितावरी। सिरियारी। (वा० उ० ५ अ०)। (३)
मुरगी। (४) गृहगोधा। छिपकली। टिकटिकी। (श०
र०)। (५) उत्कट क्षुप। सफेद उकड़ा। (वं०)
कालियाविषर। (प० मु०)। (६) उच्चटा मूल।
'मूल मुच्चटा बहुलिगीस्यात् सैत्रोक्ता कुक्कुटी क्वचित्'।
(रत्ना०)।

कुक्कुटीमूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शालमलीमूल।
सेमल का मुसला। (ज० द०)।

कुक्कुटोरग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोणस सर्प।

कुक्कुफलावर—संज्ञा पुं० [अ० Cuckoo-Flower] क्षुप
विशेष। (डाइमॉक भा० १; पृ० १३०, १२४)।

कुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन्यकुक्कुट। जंगली मुरगा।
दे० 'कुक्कुट'। (अ०) ए वाइल्ड कॉक (A wild cock);
(ले०) फेसिआनस गैलस (Phasianus Gallus)। (वं०)
कूकोपाखी, पातूका। (अम०; हारा०)।

कुक्कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री० कुक्कुरी, कुक्कुर पत्नी]
सारमेय, कुत्ता, कूकुर। (ध० नि०; रत्ना०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ग्रन्थिपर्णी। गठिवन। (मे०)।

कुक्कुरकास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूकरखाँसी। (अ०)
हूपिंग कफ (Hooping-cough)। दे० 'कूकरखाँसी'।

कुक्कुर चीत—संज्ञा पुं० [वं०] ग्रन्थिपर्णी, गठिवन।
(डाइमॉक भा० ३, पृ० २११)।

कुक्कुरद्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } दे० 'कूकरौधा'।

कुक्कुर पत्री—स्त्री० [स्त्री०] }

कुक्कुर-मेण्डुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } गोरक्षतण्डुली।

कुक्कुर-मेण्डुक—संज्ञा पुं० [पुं०] }

चौलाई भेद। (वं०) गोरक्ष चाकुलिया।

कुक्कुर-वद्रा—संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] क्षुप विशेष।

कुक्कुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कूकरौधा।
(२) कुक्कुर पत्नी।

कुक्कुलु—संज्ञा पुं० [ता० = सं० गुगुलु] दे० 'गूगुल'।

कुक्कुवाक्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृगविशेष। सारङ्ग
मृग। (रा० नि० व० १९)।

कुक्कुमिस एक्कुटङ्गयुलस—संज्ञा पुं० [ले० Cucumis
acutangulus] शशाण्डुली। चिभिट भेद।

कुक्कुमिस-एङ्ग्वनस—संज्ञा पुं० [ले०] चिभिट। पेंहटुल।

कुक्कुमिस-ट्रिगोनस—संज्ञा पुं० [ले०] जंगली इन्द्रायण।

कुक्कुमिस-युटिलिस्मस—संज्ञा पुं० [ले०] कर्कोटी विशेष।
ककड़ी भेद।

कुक्कुमिस-सेटाइवस—संज्ञा पुं० [ले०] (१) ककड़ी।
(२) त्रपुश। खीरा।

कुक्कुमिस स्युडो-कॉलोसिन्थीस—संज्ञा पुं० [ले०] जंगली
इन्द्रायण।

कुविशमा—संज्ञा स्त्री० [वं०] भूकदम्ब। भुंइ कदम।
कुक्सीम। कुक्शीम। (ले०) साइलेसिया कारोमण्डलि-
आना। (डाइमॉक)।

कुख आवलु—संज्ञा पुं० [ते०] वनस्पति विशेष।

कुगर लता—संज्ञा स्त्री० [गु० = कुकरलता] देवदाली।
घघर वेल। बंदाल। (डाइमॉक भा० २, पृ० ८१)।

कुगरवेल—संज्ञा स्त्री० [गु० = कुकरवेल] देवदाली।
घघरवेल। बंदाल। (डाइमॉक भा० २, पृ० ८१)।

कुग्राम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह ग्राम, जिसमें वैद्य, धनाढ्य,
श्रोत्रिय, राजा तथा नदी का अभाव हो। कुत्सित ग्राम।

ऐसे ग्रामों का निवास वर्जित है। (चाणक्य)।

कुग्रामी—वि० [सं० त्रि०] कुत्सित ग्राम का निवासी।

कुग्रामी वैद्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्सित ग्राम में निवास
करनेवाला वैद्य वा चिकित्सक। 'कर्कशः कश्मलः स्तब्धः
कुग्रामी स्वयमागतः। पञ्च वैद्याः न पूज्यन्ते धन्वन्तरीसमा
यदि'। (यो० तर०)।

कुङ्कुपूतरी—संज्ञा स्त्री० [ते०] वनस्पति विशेष पर्याय—
(हिं०) हाती (थी) अंकुश; (वं०) बाघचूर; (उड़ि०)
हाथी अंकुश; (ता०) कडुइन्दु; (ले०) पाइसोनिया
एक्युलेटा (Pisonia Aculata)।

कुङ्कु—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केसरी'। (अ०) युआं-
निमस (Euonymus)।

कुङ्कु-कायलु—संज्ञा पुं० [ते०] अरिष्टक। रीठा। रीठी।

कुङ्कुम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशर। जाफरान। दे०
'केसर'।

कुङ्कुम-आपवी—संज्ञा स्त्री० [ते०] केशर।

कुङ्कुमकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पतंग। बकम। विजयसाल।

कुङ्कुम केशरी—संज्ञा स्त्री० [कना०] }

कुङ्कुम-केसर—, पुं० [म०, कौ०] } केशर

कुङ्कुम-पु—, पुं० [ता०, मल०] }

कुङ्कुम पुव्वु—, पुं० [ते०] }

कुङ्कुमम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) केशर। (२)
बाहलिधान। ब्रीहिधान्य। केसरधान। (ध० निघ०)।

कुङ्कुम-रेणु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुङ्कुम। केशर।
मुण्डक।

कुङ्कुमशालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] केशर धान। गुण—
शीतल, मधुर, रक्तपित्त तथा अतिसारनाशक है।
(रा० नि० व० १६)।

कुङ्कुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शालमली वृक्ष। सेमल। (वै० निघ०)।

कुङ्कुमागुल्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्दन भेद। पीत-रक्तवर्ण का चन्दन। हरिचन्दन। गुण—शीतल एवं तिक्त है तथा पित्त, श्रम, शोष, दन्त्यु (प्रदाह) नाशक अर्थात् पित्त के उद्रेक में उपयोगी है। यह स्वर्गसुख भोगनेवाले व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य मनुष्यों को दुर्लभ है। (वै० निघ०)।

कुङ्कुमादि घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चर्मरोग में प्रयुक्त योग। निम्माण-विधि—केसर, हल्दी, दारुहल्दी, पीपर और चित्रक—प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर कल्क करें। पुनः गोघृत के साथ पकाकर छान लें।

गुण—इसके अभ्यंग से—नीलिका, मुखदूषिका (झाँई), सिध्म तथा अन्य कफविकारज रोगों का नाश होता है। (भैष० क्षुद्रो० चि०)।

कुङ्कुमादिचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का योग जिसमें केशर प्रधान है। वातकफरोग में उपयोगी है।

कुङ्कुमाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्षुद्ररोग में प्रयुक्त योग। निम्माण-विधि—केसर, चन्दन, लाख, मजीठ, मुलेठी, अगर, खस, पद्मकाष्ठ, नीलोत्पल, वटजटा, पाखर की काँपल, कमलकेशर तथा दशमूल, प्रत्येक १-१ पल ग्रहण कर १६ सेर जल में क्वाथ करें। जब ४ सेर शेष रह जाय, छान लें। पुनः कल्कार्य—मजीठ, महुआ, लाख, पतंग और मुलेठी—प्रत्येक १-१ कर्प ग्रहणकर जल में पीसकर चटनी बनाएँ। पुनः ८ पल बकरी का दूध और ४ पल तिल का तेल एकत्र मिश्रितकर मन्दाग्नि से तेल सिद्ध करें।

गुण—इसके उपयोग से नीलिका, मुखदूषिका, व्यंग, यौवनपिड़िका इत्यादि का नाश होता है। (च० द० क्षुद्रो०—चि०; भैष० र०; रस० र०)।

कुङ्कुमुद-हुवु—संज्ञा पुं० [कना=सं० कुङ्कुम] केसर।

कुङ्कु—संज्ञा पुं० [आसाम] } पुड्या।

कुङ्कु—, [,,]

कुङ्ग चिनीरिक्—संज्ञा पुं० [लेपचा] कोलेजान (बम्ब०)।

कुङ्ग-जियान—संज्ञा [वर०] सिद्धार्थक। श्वेत सर्पप।

कुङ्गनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ी मालकांगनी। महाज्योतिष्मती लता। (रा० नि० व० ३)।

कुङ्गम-पू—संज्ञा पुं० [ता०=सं० कुङ्कुम] केसर।

कुङ्गली—संज्ञा स्त्री० [ता०] सजीवन। सलई। शल्लकी वृक्ष।

कुङ्गियम्—संज्ञा पुं० [ता०] धूना। धूप। राल।

कुङ्गु—संज्ञा पुं० [पं०, हि०] अपामार्ग। चिरचिटा।

कुङ्ग-चिनीरिक्—संज्ञा पुं० [लेपचा] कोलेजान (बम्ब०)।

कुङ्गो-गिदा—संज्ञा पुं० [कना०=कुङ्ग धान्य] कंगुनी। काँक।

कुच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूचुक। स्तनाग्र भाग। चूची। स्तन। (Teet, breast)। (रा० नि० व० १८; ध० नि०)।

कुचकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अप्रसिद्ध है।

कुचकुचवा—संज्ञा पुं० [देश०] रात में निकलनेवाला एक पक्षी।

कुचकुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्त्री की चूची। (The female-breast)।

कुचण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } मूर्च्छा। मुरहरी।

कुचण्डी—, [,,] }

कुचतट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूचुक का निकट भाग।

कुचतटाग्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूचुकमुण्ड। (Nipple)।

कुचदर्भ—संज्ञा पुं० [का०] कुश। दर्भ।

कुचन—संज्ञा पुं० [?] क्षुद्र शतावरी। छोटी सतावर।

कुचनी—संज्ञा स्त्री० [पं०] कुकई। जलोदर। (मे० मो०)।

कुचन्दन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रक्तचन्दन। लाल चन्दन। (२) पतंग। पत्रांग। विजयसाल। वकम। (Sappan, Log-wood)। (श० च०)। (३) मलेन्द्री चन्दन। (ले०) लिग्युमिनस पेवोनिया (Leguminus Pavonia)। (सु० सू० १८ अ० प्रियङ्गवादि व०)।

कुचकल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनार। दाड़िम।

कुचमर्दन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूचुकपीड़न। (Breast-Massage)।

कुचमुख—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूचुकमुण्ड। चूची का अग्र भाग (Nipple)। (अम०)।

कुचल—संज्ञा पुं० [म०] कारस्कर। विषमुष्टि।

कुचला—, [द०] दे० 'कुचला'।

कुचला मुदब्बर—संज्ञा पुं० [उर्दू] शोधित कुचला। दे० 'कुचला'।

कुचला—संज्ञा पुं० [सं० कच्चीर] फलविशेष। पर्याय—(सं०) कुलक, कारस्कर, कालकूटक, करदुम, किम्पाक, कुपीलु, विषतिन्दु, विषतिन्दुक, विषद्रुम, विषमुष्टी, रम्य फल, कुलिक; (हि०) कुचला जहर, कुचिला, कुचला; (म०) काजरा, काजिरा; (गु०) झेर कौंचला; (बं०) कुचिला; (पं०) काग फल; (बम्ब०) काज्रा, कुचला; (फ्रांस) नॉइक्स वामिक्यु (Noix Vomique); (जर०) गेमिनर ब्रकनसबाम (Gemeiner Brechnussbaum); (ते०) मुष्टि वित्तुलु; (ता०) येट्टि-कोट्टै; (कना०) कांजिवार, मकर तेन्दुआ, माकड़ा तेंद, कासर कायमर; (मल०) काञ्जीरम्; (कों०) करय-रुकु; (वर०) खबौङ्ग; (यू०) कुतूलिदून, कूमालियून, तीनुल जयूस; (अ०) अजराकी, इजराकी, फलस माही, खानिकुलकलब, हब्बुलगुराब; (फा०) कुचूल; फलसे माही; (ले०)

स्ट्रिकनॉस नक्स वॉमिका (Strychnos Nux-Vomica, Linn); (अं०) नक्स वॉमिका (Nux Vomica), वॉमित नट (Vomit-nut), डॉग पॉइज़न (Dog poison)।

कुल—कारस्करादि (Family: Loganiaceae)।

उद्भवस्थान—

भारतीय उष्णप्रधान प्रदेशों तथा विध्य के वनों में स्वयं उत्पन्न होता है। मानभूम के वन, मद्रास, मालाबार और कारोमंडलकोष्ठ में भी प्रायः होता है।

परिचय—वृहद् वृक्ष के फल का बीज है। इसका फल तेन्दू फलवत्, बीज गोल चक्रिकाकार १ इंच के व्यास में तथा चौथाई इंच स्थूल, नाभियुक्त अत्यन्त कठोर होता है। जल में कतिपय दिनों तक भीगा रहने पर इसके खण्ड किए जाते हैं। बीज का बाह्यभाग भस्मवत् और त्वचा पर रेशमनुल्य श्वेतवर्ण के रोंगटे होते हैं। आन्तरिक गिरी अर्धस्वच्छ, आर्द्र अवस्था में लचकदार, गन्धहीन तथा स्वाद अत्यन्त कटु होता है। इसके द्विदलमध्य में हरित वर्ण का बीजपत्र होता है। भाषा में इसको 'जीभी' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके बीज में कुचलीन (ष्ट्रिकनीन) विभिन्न मात्रा में ९ से १९ वा २ प्रतिशत तक, ब्रूसीन ५ से १५ व ३ प्रतिशत पर्यन्त, आइगेस्युरिक एसिड (Igasuric acid), कुचिशीनाम्ल (Strychnic acid) और लॉगेनीन (Loganin) होता है। इसके फलमज्जा और निष्क्रिय ग्लूकोसाइड, वसा, शर्करा, निर्यास, श्वेतसार तथा सिक्थ इत्यादि द्रव्य भी २ प्र० श०, और शर्करा ६ प्र० श० होती है। इसके काष्ठ या पत्र में ब्रूसीन होती है और कुचिलीन का अभाव होता है। वृक्ष के नूतन त्वचा में ब्रूसीन ३१ प्रतिशत और पत्र में ३ प्रतिशत होती है तथा प्रोटोड (Proteid) में ११ प्र० श० होती है। (इं० मे० मे०)।

उपयोगी अंग—वृक्षत्वचा तथा बीज।

शोधन—३ दिन पर्यन्त काँजी में भिगाकर रखने से विषतिन्दुक शुद्ध होता है। **मतान्तर से**—सर्वप्रथम कुचला को उबाल लेवे। पुनः रेती से रेत कर बुरादा बना लेवे और पोटली बाँध कर गोदुग्ध में दोलायंत्र की विधि से पकाएँ। पुनः उष्णजल से प्रक्षालन कर घृत में भजित कर योगों में मिलाया करें।

गुण—आयुर्वेद में—कटु, उष्ण, तिक्त, कुष्ठघ्न, वात-रक्तनाशक, कण्डू, कफ, व्रण, और अर्शनाशक है (रा० नि० व० ९)। इसका अपक्व फल ग्राही, कषाय, वात-कारक और लघुपाकी है और सुचारू रूप से सुपक्व फल गृह तथा विषकारक होते हैं। पाक में मधुर, कफ-वात तथा प्रमेहक (मूत्रल) और पित्त तथा रक्तविकारनाशक और अग्निवर्धक है। (वै० निघ०)। यह सर्पविष की प्रधान औषधि है। दे० 'कुलिकादिवटी'। यह शीतल, एवं तिक्त और

वात तथा मद (नशा) कारक है। इसके अतिरिक्त लघुपाकी, वेदनाहर, ग्राही और कफ-पित्त नाशक है। (भा०)।

तिब्बी ग्रन्थों के अनुसार—प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुण कर्म—कफज और वातज व्याधिनाशन, दीपन, वात-तन्तुबलप्रद, सारक, उत्तेजक, हृदयबलप्रद, श्लेष्म-निस्सारक, वाजीकर, वस्तिबलप्रद, बलयुक्तरक्त-प्रसादक तथा चर्मविकारनाशक है। यह कामोत्तेजक, कामशक्तिवर्धक तथा हृदयोत्तेजक है। अधिक मात्रा में विष है। त्वचा-बलप्रद तथा ज्वरघ्न है। **कुचिलीन**—काम-केन्द्रोत्तेजक तथा श्वासपथोत्तेजक है। अल्पमात्रा में प्रायः वही गुण हैं जो कुचला में हैं। ब्रूसीन में भी उपर्युक्त गुण हैं, किन्तु इसमें विष की मात्रा अल्प है।

उपयोग—पक्षवध, अर्दित, आमवात तथा कटिशूल आदि वातज तथा कफज व्याधियों में तथा आमाशय और वातनाड़ी को बलप्रदान तथा वाजीकरणार्थ उपयुक्त योगों में वा केवल दिया जाता है। अरोचक और आन्त्र-दीर्बल्यजन्य कोष्ठबद्ध में उपयोगी है। कफोत्सारक होने से यह कास तथा कृच्छ्र-श्वास में और उरःक्षत में उपयोगी है। वृद्धावस्थान्त्य बहुमूत्र में वस्तिदीर्बल्यनिवारणार्थ इसका उपयोग होता है। इसे जल में पीसकर प्रलेप करने से व्रणशोथ तथा प्लेगग्रन्थि का नाश होता है। तिलतैल में पकाकर अभ्यंग करने से आमवातजन्य पीड़ा शान्त होती है। इसे उचित मात्रा में सेवन करने से रक्तविकारज तथा फिरंगजन्य रोग शान्त होते हैं।

शुद्ध कुचला १-२ रत्ती ४० दिन तक सेवन करने से कुत्ता काटने का विषविकार शान्त होता है।

योग—

कुचिला वटी—शुद्ध कुचला, केशर, जायफल, जावित्री, अकरकरा, मरिच, समान भाग में ग्रहणकर अदरक के रस में मर्दनकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—क्षुधावर्धक, कामोत्तेजक, वातव्याधि में उपयोगी तथा वात-कफजन्य रोग में हितकर है।

विषाक्तता—अशुद्ध वा तीव्र मात्रा में सेवन से अंग में उद्वेग होता है। हस्तपाद तथा पृष्ठ में वेदना होती है और पुनः आक्षेप उत्पन्न होता है। नाड़ी तीव्र गति से चलती है। शारीरिक ताप की वृद्धि होती है और स्वेद की वृद्धि भी होती है। श्रम-शान्ति का अनुभव होता है और पुनः पुनः आक्षेप का आक्रमण होने लगता है। नेत्रगोलक वहिर्गत हो जाते हैं। हनु की पेशियों में उद्वेग प्रतीत होता है। पृष्ठगत पेशियों के आक्षेप-ग्रस्त होने से समस्त शरीर धनुषाकार हो जाता है और रोगी का शिर एवं एड़ी शय्या पर लगी रहती है। परिणाम यह होता है कि आक्षेप की वृद्धि के कारण

रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसके विष के प्रभाव से कुत्ता शीघ्र मृत्युग्रस्त होता है।

चिकित्सा—सर्वप्रथम मैनफलादि वामक ओषधियों द्वारा वमन कराएँ अथवा आमाशय प्रक्षालनलिका (स्टमक पंप) द्वारा उदरपरिष्कार करें। पुनः दुग्ध में गोघृत मिश्रित कर पानार्थ देवें अथवा गोदुग्ध में अण्डोदक (अंडा की सफेदी) मिश्रित कर देवें।

हानिकारक—उपर्युक्त कथित लक्षण प्रकट होकर मृत्युजनक है। **प्रतिकार**—उपर्युक्त वर्णित है।

प्रतिनिधि—भल्लातक।

मात्रा—शोधित कुचला ३ से २ रस्ती। सत्व (स्ट्रिकनीन) ३ से ४ ग्रैन तक।

डॉक्टरों में—टिचर नक्सवामिका तथा सत्व (स्ट्रिकनीन) और तन्निमित्त द्रव का उपयोग प्रमेह, कोष्ठवद्ध, अर्श, रक्तपित्त (रक्तोत्कास), दन्तशूल, शीतांग, कष्टरज, रक्तमेह, ज्वर, प्रतिश्याय (खांसी-जुकाम), यकृत-प्लीह रोग, मद्यज कामला, आन्त्रवृद्धि, वृक्कशूल, हिक्का, अम्लपित्त, अजीर्ण, अतिसार इत्यादि रोगों में प्रायः होता है। यह कोष्ठवद्धता में अत्यन्त हितकर है।

कुचलीन—संज्ञा पुं० [हिं०] कुचले का सत्व। स्ट्रिकनीन। दे० 'कुचला'।

कुचले का बाँदा—संज्ञा पुं० [हिं०] वरगाछा जो कुचला के वृक्षों पर होता है।

कुचले का मलंग—संज्ञा पुं० [द०, हिं०] वनस्पति विशेष। (ले०) विस्कम् मोनोइकम् (Viscum Monoicum)। (मो० श०)। कुचले का बाँदा।

कुचले का सौ तन—संज्ञा पुं० [द०] कुचले का मलंग (बाँदा)।

कुचले के बीज—संज्ञा पुं० [द०, हिं०] काकतिन्दुकबीज।

कुचाग्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्तनाग्र। कुचमुण्डक। (Nipple)।

कुचाङ्गेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चूका। चूका पालक। चूका। (Rumex Vesicaria)।

कुचार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुराचार। व्यभिचार इत्यादि।

[देश०] एक अति विशाल वृक्षारोही काँटेदार लता जिस की पत्तियाँ अड़ल की पत्तियों की-सी होती हैं।

कुचाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूलविरेचन में प्रयुक्त द्रव्य विशेष। (वा०)।

कुचि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का मान जो अष्ट-मुष्टि प्रमाण का होता है। (वै० निब०)।

कुचिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली जो बंगदेश में कुचिया माछ के नाम से प्रसिद्ध है। (Unibrancha Perttura-cuchia)। (वै० श०

सि०)। दे० 'कुचिका'।

कुचिकण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णरोग का एक भेद। (वा० उ० १७ अ०)।

कुचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मत्स्य विशेष। **पर्याय**—(सं०) रिपुधातिनी; (हिं०) कुचाई; (बं०) कुचिया माछ। (२) (हिं०) कुचूई काँटा, रिपुधातिनी, सफेद गुञ्जा, कुञ्चिका, 'कुञ्चिका बहुविस्तीर्णा कुञ्चिका रिपुधातिनी'। (वै० श० सि०)।

कुचिञ्चा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सूर्यावर्त। सूरज-मुखी।

कुचिल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुचला।

कुचेलक। कुचिला (अं०) नक्सवॉमिका (Nux vomica)।

कुचिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तगरपादिका। (२) कारस्कर। दे० 'कुचला'।

कुचिला के मोलंग—संज्ञा पुं० [द०, हिं०] दे० 'कुचले का मलंग'। (वरगाछा)।

कुचिला लता—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पर्याय—कटकवल्ली। (गु०) गोआजारी। लाकड़।

कुचिलालता—संज्ञा स्त्री० [हिं०] काजरवेल।

कुचीका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूमिराय नाम का जन्तु विशेष।

कुचुगुन्दुबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०, बं०] वनस्पति विशेष। (ले०) होमालोमेना एरोमेटिकम् (Homalomena Aromaticum)।

कुचुटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शाकपत्रभेद जो प्रायः नदियों के तटों पर होता है। (वै० निब०)।

कुचुमार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामशास्त्र के एक प्राचीन आचार्य। इनका लिखा 'कुचुमार तन्त्र' है जो देखने में नहीं आता। बाजीकरणतन्त्र इन्हीं का लिखा था किन्तु वह भी लुप्तप्राय है। कामशास्त्र के ग्रन्थों में कुचुमार का पाठ देखने में आता है।

कुचुला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुचला'।

कुचेलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सरस्त्री। (२) कुचला। कारस्कर।

कुचेला—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) कुचला। कारस्कर। (२) अम्बष्ठा। पाठा। कनकफलक्षुप। (बं०) कुचले गाछ। कुचला। (भैष० कुष्ठ० चि० कन्दर्प-सार तैल)। (३) मलिन वस्त्र, कुत्तित वस्त्र, गन्दा कपड़ा। (मे०)।

कुचेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } अम्बष्ठा। पाठा।

कुचेली—, ["] } (ध० नि०)।

कुचेली—, ["] }

कुच्चीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुचला'।

कुच्छ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] श्वेतकमल। कुमुद।

कुच्छाय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर, वपु, काय, तनु। (अ०) बाँडी (Body)। (वै० निघ०)।

कुच्छुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कीकर। बर्बर वृक्ष। बबूल। (ध० नि०)।

कुज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष।

संज्ञा पुं०। [सं० क्ली०] कमल। पद्म (रा० नि० व० ९)।

कुज—संज्ञा पुं० [अ०] छोटी पथरी। (लु० क०)।

कुज—संज्ञा पुं० [फा०] वृक्षमूल। वृक्ष की जड़। (लु० क०)।

कुजक—संज्ञा पुं० [फा०] खर्बूदशामी का फल। (लु० क०)।

कुजकानुल अज्जनान—संज्ञा पुं० [?] कीट। पिस्सू।

कुजज—संज्ञा पुं० [अ०] कीट। पिस्सू।

कुजब—संज्ञा पुं० [अ०] अस्पस्त। बृहद्वृक्ष। (लु० क०)।

कुजवा—संज्ञा पुं० [फा०] रैवास भे। (लु० क०)।

कुजुबा—संज्ञा पुं० [अ०] रत्न। (लु० क०)।

कुजबुर—संज्ञा पुं० [अ०] धान्यक। दे० 'धनियाँ'।

कुजबुरतुस्सालब—संज्ञा पुं० [अ०] अप्रसिद्ध वनस्पति विशेष।

कुजबुरतुलवर्द—संज्ञा पुं० [अ०] } हंसराज। हंसपदी।

कुजबुरतुलवास—, [,,] } (लु० क०)।

कुजबुरतुलवर्दिय—संज्ञा पुं० [अ०] वनधान्यक। जंगली धनिया।

कुजबुरतुस्सालब—संज्ञा पुं० [अ०] अप्रसिद्ध वनस्पति। (लु० क०)।

कुजबुरतुलहिमाम—संज्ञा पुं० [अ०] } पित्तपापड़ा। शाह-

कुजबुरतुल हिमार—, [,,] } तरा। पर्पटक।

कुजम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सौगन्धिक (ध० नि०)। (२) पद्मराग। माणिक। (३) नीलोत्पल।

कुजह—संज्ञा पुं० [अ०] कीट। पिस्सू।

कुजा—संज्ञा पुं० [ब०] कुब्जक पुष्प। सदागुलाव।

संज्ञा पुं० [प०] स्वर्णमूथिक। सोनजूही। (कुमार्य) सोनजाही।

कुजाआ—संज्ञा पुं० [अ०] खट्वास। ऊदविलाव। मुस्क विडाल।

कुजाई—संज्ञा पुं० [सं० कुब्जक] सदागुलाव। गुलसेवती। (अ०) मुस्क-सेन्टेड रोज (Musk-Scented Rose)।

कुजाज—संज्ञा पुं० [अ०] सौंफ तुल्य एक प्रकार की वनस्पति है। (लु० क०)। 'दे० कुजाह'।

कुजाज—संज्ञा पुं० [अ०] रोगविशेष। पर्याय—(सं०) धनुस्तम्भ, हनुस्तम्भ; (ब०) धनुषटंकार; (अ०) टिटानस (Tetanus), ट्रिस्मस (Trismus), लॉक जा (Lock-jaw)।

यह एक प्रकार की वातव्याधि है जिसमें उद्वेष्टन

(तश्नुज) होता है और मुख, ग्रीवा इत्यादि की पेशियों में भी उद्वेष्टन होता है और अग्र तथा पश्चात् भाग में तनाव होकर शरीर धनुषतुल्य वक्राकार हो जाता है।

वक्तव्य—तिव्व के अनुसार कभी कुजाज का उपयोग प्रत्येक तनाव (तमद्दुद) के निमित्त होता है और कभी उक्त शब्द का उपयोग उस उद्वेष्टन (तश्नुज) के लिये भी होता है जो अन्यन्त शीत के कारण उत्पन्न होता है।

डॉक्टरी मतानुसार कुजाज एक प्रकार का उग्र संक्रामक व्याधि है जिसमें शरीर के संपूर्ण पेशियों में उद्वेष्टन होकर शरीर में ऐंठन होने लगती है और शरीर अकड़ कर पूर्णतः सीधा तथा धनुषाकार आगे-पीछे तथा वाम भाग की ओर टेढ़ा हो जाता है। इस रोग का मूल कारण एक प्रकार का जीवाणु है, जिसको धनुस्तम्भ-उत्पादक जीवाणु तथा डॉक्टरी में बैसिलस-टिटनस और नवीन तिब्व में किरम-कुजाज कहते हैं।

आयुर्वेद में यह एक प्रकार का वातव्याधि है जो वायु के प्रकोप से उत्पन्न होता है।

कुजाज और तमद्दुद के अन्तर के लिए दे० 'तमद्दुद'।

कुजाज—संज्ञा पुं० [अ०] स्वर्णखण्ड। सोने का टुकड़ा।

कुजाज-अमामी—संज्ञा पुं० [अ०] } वातरोग का एक

कुजाज-कुदामी—संज्ञा [,,] } भेद जिसको

धनुस्तम्भ-संमुखी तथा डॉक्टरी में इम्प्रास्थोटोनस (Emprothotonas) कहते हैं। इस व्याधि के आक्रमण में अर्थात् धनुस्तम्भ में मनुष्य का शरीर अकड़ कर सामने की ओर वक्र (टेढ़ा) हो जाता है।

कुजाज-खल्की—संज्ञा पुं० [अ०] वातव्याधि का एक भेद जिसको पृष्ठानुबन्धी धनुस्तम्भ तथा डॉक्टरी में प्लीरोथोटोनस (Plaerthotonas) कहते हैं।

इस प्रकार के धनुस्तम्भ में शरीर अकड़ कर दक्षिण तथा वाम भाग की ओर वक्र (टेढ़ा) हो जाता है।

कुजाज जर्त्री—संज्ञा पुं० [अ०] आगन्तुक तथा क्षतज कुजाज-जिरहो—संज्ञा ,, धनुस्तम्भ। (अ०) ट्रॉमेटिक टिटानस (Traumatic Tetanus)।

इस प्रकार के धनुस्तम्भ में उपर्युक्त लक्षण होते हैं और प्रायः यह चौर-फाड़ के काल में तथा अन्यान्य प्रकार के क्षतादि के कारण उत्पन्न होता है।

कुजाज जाती—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की वातव्याधि जो प्रकृति से उत्पन्न होता है। इसको प्राकृतिक धनुस्तम्भ तथा डॉक्टरी में इडिओपैथिक टिटानस (Idopathic Tetanus) कहते हैं।

यह वातरोग प्रायः जल-वायु के विकार से तथा आद्र भूमि में निवास करने के कारण शीतादि के प्रकोप से

उत्पन्न होता है अथवा शीतल जल में अधिक काल-पर्यन्त रहने से होता है।

कुजाज-जानिबी—संज्ञा पुं० [अ०] देखो 'कुजाज-खल्की'।

कुजाज-मुस्तकीस—संज्ञा पुं० [अ०] धनुस्तम्भ तुणीरी। (अ०) ऑर्थोटोनस टिटानस (Orthonos tetanus)। इस प्रकार के वातरोग में शरीर अकड़ कर तीर के समान सीधा हो जाता है।

कुजाज-सिबियानी—संज्ञा पुं० [अ०] बालधनुस्तम्भ। (हिं०) जमुआ। (अ०) टिटानस न्यूनाटोरम (Tetanus Neunatorum)। यह एक प्रकार का वातव्याधि है जो नालछेदनकाल में रोगोत्पादक जीवाणुओं द्वारा रक्त दूषित हो जाने से उत्पन्न होता है।

कुजानः—संज्ञा पुं० [फा०] कोपकारकीट। रेशम का कीड़ा। दे० 'कुसियारी'।

कुजाब—संज्ञा पुं० [मिस्री] वनस्पति विशेष। आजानुल अनज। (लु० क०)।

कुजावा—संज्ञा पुं० [अ०] छिपकली। सामअवर्स। (लु० क०)।

कुजाम—संज्ञा पुं० [अ०] हरिमन्थ। चने का पोधा।

कु (कि) जामः—संज्ञा पुं० [अ०] चर्वणक। चवेना। वह रूक्ष भज्जित दाना जो दातों से चबा-चबा कर खाया जाता है।

कु (कि) जार—संज्ञा पुं० [फा०] पक्षियों का पपोटा। (लु० क०)।

कुजाह—संज्ञा पुं० [अन्दुलस] वनस्पति विशेष। पर्याय—(शीराज) कमः, कुमा; (अफ्रीका) अत्जान। परिचय—एक प्रकार की वनस्पति जिसकी पत्तियाँ सौँफ की पत्तियों की-सी वारीक होती हैं; किन्तु इसकी शाखें सौँफ की शाख की अपेक्षा छोटी होती हैं। इसमें पीतवर्ण के पुष्प लगते हैं और बीज अनीसून तुल्य होते हैं। स्वाद—सौँफ तुल्य मधुर होता है। इसके सर्वांग में सुगन्ध होती है। उद्भवस्थान—मिस्र, किर्दवान तथा शीराज इत्यादि में स्वयं उत्पन्न होती है। मतान्तर से यह सौँफ का ही एक भेद है। इसको ऊँट तथा बकरियाँ अधिक खाकर हृष्टपुष्ट होती हैं।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-रूम—वातघ्न, उरोशोधक, मूत्रार्तवप्रवर्तक, शूलघ्न तथा शिरोवेदननाशक है।

उपयोग—इसका चूर्ण तथा क्वाथ सेवन करने से मूत्रार्तव का अवरोध, शिरोवेदना, उदरशूल, आन्त्रशूल और उदराध्मान शान्त होता है तथा शुद्ध उद्गार आता है और सुगन्धवर्धनार्थ भी सेवन किया जाता है। मात्रा—३ से ४ माशा। प्रतिनिधि—जीरा और सौँफ।

कुजुज—संज्ञा पुं० [?] छोटी पथरी। (लु० क०)।

कुजुभान वीड—संज्ञा पुं० [वर०] जलनिर्गुण्डी। पानी का सम्हालू। निचिडा।

कुज्जा—संज्ञा पुं० [सं० कुज्जक] सदागुलाब। दे० 'कूजा'।

कुज्जाह—संज्ञा पुं० [स्पेन] दे० 'कुजाह'।

कुज्जिश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मत्स्य विशेष। कुड़िश मत्स्य। (वं०) कुड़की माछ। दे० 'कुड़िश'।

कुज्जटि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वनस्पति जिसको
कुज्जटिका—, ,, [,,] } बंगाल में कूया
कुज्जटी—, ,, [,,] } तथा कूयासा
कुज्जिका—, ,, [,,] } कहते हैं।
कुज्जि—, ,, [,,]

कुज्जिस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुड़िश'।

कुज्जलान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) यह अरबी शब्द 'कुज्जह' का अपभ्रंश है जो कर्णद्वय के अर्थ में प्रयुक्त है। दोनों कान।

(२) योनिकूलद्वय। योनि के दोनों किनारे।

कु (कि) र्द—संज्ञा पुं० [अ०] कुण्ड। कूठ।

कुज्वरुतुस्सअलव—संज्ञा पुं० [अ०] वनस्पति विशेष। (सिरि०) कज्वरना। (अ०) कुज्वरुतुस्सअलव (कुज्वरुः वा कज्वरुः = धनिया + सअलव = लोमड़ी)।

वर्णन—ग्राफ़की के अनुसार एक पहाड़ी बूटी जिसकी शाखाएँ वारीक बटे हुए सूत की तरह होती हैं और भूमि पर इतस्ततः परिविस्तृत होती हैं। रंग उनका सुख्खिमायल रक्त के वर्ण का होता है। पत्ते छोटे और शाखा की दोनों ओर लगे होते हैं। पत्रप्रांत दंतित वा कटावदार होता है और दाँते पास-पास होते हैं। रंग उनका सव्जी और स्याहीमायल होता है। तना गोल और खड़ा होता है, जिसके किनारों पर अंगुष्ठप्रमाण लंबे सनोबरी शकल के सिर होते हैं, जिनपर सुख्ख और वारीक फूल आते हैं। बीज वारीक होता है। (मरुज्जन)।

कुञ्च—संज्ञा पुं० [वं०] (१) पर्याय—(हिं०) संखर; (वं०) गुर-गुर। (मे० मो०)। (२) गुञ्जा, घुघची।

कुञ्चन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नेत्ररोगविशेष। नेत्रवर्तमगतरोग। लक्षण-निदान—जब वातादि दोष कुपित होकर पलकों में संकोच उत्पन्न करते हैं, तब पलकों के न खुलने से कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती। इसका उल्लेख सुश्रुत में नहीं हुआ है। (मा० नि०)।

(२) एक प्रकार का पादगतरोग।

कुञ्चफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्ड। कुम्हड़ा।

कुञ्चल-वल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुचिला लता। दे० 'काजर वेल'।

कुञ्चवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचला। विषतिन्दुक।

कुञ्चि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का मान जो

अष्टमुष्टिप्रमाण का होता है—'अष्टमुष्टिभवेत् कुञ्चि',
(प० प्र०)।

कुञ्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मेथिका
(मेथी)। (रा० नि० व० ६)। (२) कालीजीरी।
उपकुञ्चिका। (जटा०)। (३) हपुषा। हाऊवेर।
(जटा०)। (४) गुञ्जा। घुंघची। (५) वृक्ष विशेष।
(६) कुञ्चिका। कुञ्ची। (श० च०)।
(७) एक प्रकार की मछली। (व०) कूचेमाछ।
(८) कृष्णजीरक। स्याहजीरा। (जटा०)।
(९) शुक्लजीरक। सफेदजीरा। (इ० मे० मे०)।

कुञ्चित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तगर। तगरपादुका।
(रा० नि० व० १०)। (२) पिण्डीतगर।

वि० [सं० त्रि०] मुड़ा हुआ। टेढ़ा। वक्र। (अम०)।

कुञ्चित-केश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुड़े हुए बाल।
घुंघराले बाल।

कुञ्चिता (शिरा)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कुञ्चितशिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार
की शिरा जो कुण्ठित हो गई हो तथा शस्त्र से कतिपय
बार कुचल गई हो अथवा चपटी हो कर पिच्छित हो
गई हो। पिच्छितशिरा। (सु० शा० ८ अ०)।

कुञ्ची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जीरा। जीरक।
वृहत् जीरक। (भा० पू० १ भ०)। (२) उपकुञ्चिका।
मंगरैला। (ध० नि०)।

कुञ्चुभारुण—वि० [सं० त्रि०] रक्ताभ। लालिमा
युक्त। लाल-अरुण मिश्रितवर्ण की अस्थिविशेष।
टखने की हड्डी। पाँव की हड्डी। (अँ) अस्ट्रागेलस
(Astragalus)। पादास्थि।

कुञ्ज—संज्ञा पुं० [हि०] पर्याय—(फा०) कुलंग; (अ०)
कर्की। परिचय—एक पक्षी है जो वन तथा जलप्रायः
भूमि पर रहता है। इसके दो प्रकार हैं: वर्ण श्वेत
कूसर होता है। उत्तम वह है जिसका किसी ने शिकार
किया हो। क्योंकि भयभीत तथा श्रमावित होने से
इसका मांस मृदु हो जाता है।

प्रकृति—इसका मांस द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष
है। किसी के अनुसार शीतल एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—इसका मांस वृंहण, पलितनाशक, वातघ्न,
रोधोद्धाटक, कण्डूघ्न, शिवत्रकुष्ठघ्न, प्लीहशोथघ्न
तथा बलप्रद है।

उपयोग—इसको यथाविधि पाककर सेवन करने
से बलकी वृद्धि होती है तथा शूल का नाश होता है।
इसके भेजे को ग्रहण कर नेत्रों में अंजन करने से नक्तान्ध
(रतौंधी) का नाश होता है। इसका प्रलेप करने
से कण्डू और शिवत्रकुष्ठ का नाश होता है। इसके
उपयोग से शिर के केश काले बने रहते हैं। इसकी वसा

ग्रहण कर जंगली प्याज और सिरकायुक्त सेवन करने से
प्लीह-शोथ शमन होता है। पलितनाशनार्थ अंडा—कुञ्ज
का अंडा ग्रहण कर उसमें मसूर प्रमाण छिद्रकर उसके भीतर
१ तोला शुद्ध पारद भर दें और माषपिण्डी द्वारा छिद्र
को अवरुद्ध करें और उसके अन्य भाग को भी उक्त
पिण्डी द्वारा आवृत कर दें। पुनः इसे निर्धूम अग्नि
से पकावें। पकने के बाद आग में से निकाल कर उसका
आवरण हटाकर उसमें से पारद को पृथक् कर लें।
अण्डे का श्वेत तथा पीत भाग ग्रहण कर सेवन करें।
इसी प्रकार उक्त पारद को उक्त विधि द्वारा प्रस्तुत कर
१ सप्ताह पर्यन्त नूतन अंडा निर्माण कर सेवन करते
रहें। इसके पश्चात् पुनः नूतन शुद्ध पारद ग्रहण कर उक्त
विधि से निर्माणकर उसी प्रकार सेवन करें। इस विधि
से ४० दिन तक सेवन करते रहें और सेवनकाल में दीर्घ-
पाकी वातकारक तथा अम्लद्रव्य का सेवन वर्जित रखें।

कुलंग का भेजा और सौंफ समान भाग में ग्रहण कर लेप
करने से केश नष्ट होकर पुनः नहीं उगते।

कुलंग का पित्ता और भेजा पारद के साथ मिश्रित कर
नस्य ग्रहण करने से विस्मृति का नाश होता है अर्थात्
भूली हुई वस्तु का पुनः स्मरण होता है।

हानिकारक—इसका मांस दीर्घपाकी है और अशुद्ध
दोषों का उत्पादक है।

प्रतिकार—मांस को बासी रखकर पकाना और सिरका
तथा लवण से गरम मसालायुक्त पाक करना।

देखो—'कराकुल'।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) निकुञ्ज। हनुदेश।
ठुड्डी प्रदेश। (२) हस्तिदन्त। हाथी का दाँत। (मे०
जट्टिक)। (३) गुञ्जा। घुंघची। (४) कुटि जिस पर
लताएँ चढ़ी हो।

कुञ्जअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) चोटी। जूरा। (२)
पुच्छमूल। दुम की जड़। (३) छिद्र। दराज।

कुञ्जई—संज्ञा स्त्री० [अ०] अज्मुल्कअब। अस्थि
विशेष।

कुञ्जक—संज्ञा पुं० [फा०] दरदार वृक्ष। (लु० क०)।

कुञ्जडो—संज्ञा पुं० [गु०] कुञ्जक पुष्प। कूजा। सदा-
गुलाब।

कुञ्जद—संज्ञा पुं० [फा०] तिल।

कुञ्जदफ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अज्जरूत। (२) बादजहर।
(लु० क०)।

कुञ्जदः—संज्ञा पुं० [अ०] अज्जरूत। गोश्त पेड़।
(मे० मो०)।

कुञ्जदा—संज्ञा पुं० [फा०] अज्जरूत। (लु० क०)।

कुञ्जद्युजवा—संज्ञा स्त्री० [फा०] कुटज बीज। इन्द्रयव।

कुञ्जनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] राजिका। राई।

कुञ्जप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जवा वृक्ष। (वै० निघ०)।
कुञ्जमेवा—संज्ञा पुं० [लेपचा] चमू नामक वृक्ष। (लेपचा)।
(मे० मो०)।

कुञ्जर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हस्ति। हाथी।
(२) कण्ट कुजाई। कुब्जक। सदागुलाब। (रत्ना०)।
(३) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल। (त्रिका०)। (४)
केश। (५) बाल रोग। (मे०)।

संज्ञा पुं० [सिंधी] कुलंजन। खुलंजन। (मे० मो०)।

कुञ्जरवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपिप्पली।
चविका फल। गजपीपर।

कुञ्जरपादप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुन्दरुक् वृक्ष जिसमें
से कुन्दुर गोंद निकलता है। (वै० निघ०)।

कुञ्जरपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपिप्पली।
चविका फल। गजपीपर। (श० मा०)।

कुञ्जरपुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्त विशेष। गजपुट।

कुञ्जरसरः—संज्ञा पुं० [सुर०] कंकरजद। एक प्रकार का
गोंद। (लु० क०)।

कुञ्जरक्षार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मूलीखार।

कुञ्जर क्षारमूल (क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुरई।
मूलक। नेवारमूली। गजदन्त। (रा० नि० व०
७; ध० नि०)।

कुञ्जरा (री)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) धाय।
धौ। धातकी। (र० सा०)। (२) पाटला। पाड़ल।
(मे० रत्रिक०)। (३) हस्तिनी। हथिनी।

कुञ्जरान—संज्ञा पुं० [फा०] वंक्षण। चड्ढा। उर्वियः।
जंघासः।

कुञ्जराराति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] शरभ पक्षी।
(हे० च०)। बगला।

कुञ्जरारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धातकी। धाय।
धव वृक्ष।

कुञ्जरालु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आर। हस्त्यालुक।
(श० च०)।

कुञ्जराशन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वत्थ। पीपल।
(अम०)।

कुञ्जराक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करञ्ज।

कुञ्जरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शल्लकी। सजीवन।
सलई वृक्ष। (वै० निघ०)।

कुञ्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धातकी। धव।
धाय का पेड़।

कुञ्जरीश—संज्ञा पुं० [फा०] कंकरजद। गोंदभेद।
(लु० क०)।

कुञ्जल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रसोन। लहसुन।
(२) काञ्जिक। कांजी। (प० मु०)।

कुञ्जलक—संज्ञा पुं० [सं० किञ्जल्क] पद्मपुष्परज।

कमल के फूल की धूली।

कुञ्जलक—संज्ञा पुं० [सं० किञ्जल्क] पद्मपुष्परज।
कमल के फूल की धूल।

कुञ्जवलरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] निकुञ्जिका।
(ध० नि०)। निकुञ्जिकाम्ल वृक्ष। (रा० नि० व० ८)।

कुञ्जबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव। कुटज बीज।

कुञ्जाई—संज्ञा स्त्री० [गञ्जाई] गाँजा। गञ्जा।
संविदामञ्जरी।

कुञ्जार—संज्ञा पुं० [फा०] कुञ्जद। तिल।

कुञ्जारः—संज्ञा पुं० [फा०] पिण्याक। पीना। तिल की
खली।

कुञ्जाल—संज्ञा पुं० [हिं०] शैवाल। सेवार।

कुञ्जआ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वनभिण्डी। दुल्ला।
लोटा। लोटी। जंगली भिण्डी। (बं०) वन ओका।

(ले०) यूरीना लोबेटा (Urena Lobata), यूरीना
सिनिएटा (U. Siniata)।

कुञ्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुञ्चिका।
कृष्णजीरक। (२) उपकुञ्चिका। मँगरैला। (३)
निकुञ्जिकाम्ल वृक्ष। (रा० नि० व० ८)।

कुञ्जिशक—संज्ञा पुं० [फा०, सं० कुञ्जबीज] (१) इन्द्रयव।
कुटजबीज। (२) गौरैया। चटक पक्षी। कलविक।
कुलिग।

कुञ्जी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तिलचुनी। विलायती
कंडिका। (मे० मो०)।

कुञ्जीन—संज्ञा पुं० [वहुव० फा० कुञ्ज] कलविक।
चटक पक्षी। गौरैया।

कुञ्जीलअस—संज्ञा पुं० [ला०] राल। धूना।

कुञ्जुअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) चोटी। जूरा। (२)
पुच्छमूल। दुम की जड़। (३) छिद्र। छेद। दराज।

कुञ्जुई—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कुञ्जई'।

कुञ्जुद—संज्ञा पुं० [इस्फहान] अञ्जरूत।

कुञ्ज—संज्ञा पुं० [अ०] अस्थि ग्रैवी। ग्रीवास्थि।
(अ०) वस्ततरकूह। (हिं०) हँसली की हड्डी। चंबर।
गर्दन का बीच। हँसली के हड्डी का मध्य स्थान।

कुट—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ, प्रा० कुट्ट] मूल विशेष।

पर्याय—(सं०) आप्य, उत्पल, आमय, कुठिक, कुत्सित,
कुष्ठ, गदाख्य, काकल, कौवेर, गदाख्य, गदाह्व, जरण,
दुष्ट, भीरुज, भासुर, व्याप्य, व्याधि, गद, रूजा, पाकल,
पावन, पद्मक, पारिभद्रक, वाणिरज, राम, गदाह्वय,
रोगाह्वय, किञ्जल्क, हरिभद्रक;

(हिं०) कुट, कूठ, कूट; (फा०) कुस्त; (अ०) कुस्ते
हिन्दी, कुस्तुल्मुर; (यू०) कुस्तुस, कुस्त; (बं०)
कुड, पाचक; (पं०) कुठ; (का०) पोस्तख; (गु०)
कुठ, उपलेट; (बम्ब०) उपलेट; (काश०) पताल,

पद्मिनी; (ते०) कुस्तम्; (ता०) गोस्तन; (मल०) सेपुड्डय; (कना०) कोस्ता; (जर०) प्राक्तीगे-कोस्त-वुर्ज (Practige-Kost-Worze); (फ्रांस) कोस्टस एलिगेण्ट (Costus Elegant); (अं०); कोण्टस (Costus); (ले०) साँस्युरिया लप्पा (Saussuria Lappa), साँस्युरिया आरिक्युटेटा (S. Auriculata)।

कुल—सहदेव्यादि (Family—Compositae)।

उद्भवस्थान—काश्मीर के पर्वतों के चतुर्दिक् स्वयं उत्पन्न होता है।

परिचय—यह एक प्रकार का ऊँचा धूप है जिसकी पत्तियाँ पञ्चपत्रवत् होती हैं। धूप बहुवर्षायु होता है। इसकी जड़ का संग्रह सितम्बर तथा अक्तूबर मास में खोद कर किया जाता है। जड़ों में एक विशेष प्रकार की हृद्य गन्ध होती है। जड़की मोटाई प्रायः ३ से १॥ इंच तक होती है।

स्वाद—तीक्ष्ण (चरपरा) होता है। औषधादि में इसके मूल का ही उपयोग होता है। मृदु त्वचा का कुष्ठ श्रेष्ठ होता है। इसकी जड़ टेढ़ी-मेढ़ी बेडौल होती है।

उपयोगी अंग—मूल, तैल।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ में एक प्रकार का प्रभावात्मक उत्पत्त तैल १.५ प्रतिशत, सत्व-साँस्युरीन (Saussurine) नामक क्षारोद ०.०५ प्र० श०, निर्यास प्रायः ६.० प्र० श०, एक प्रकार का अंशतः तिक्त पदार्थ अल्प प्रमाण में, कषायिन (Tannin), इन्सुलीन प्रायः १८.० प्र० श०—इसके अतिरिक्त—अनुत्पत्त तैल, पोटेशियम् नाइट्रेट, शर्करा इत्यादि तथा पत्र में ०.० २५ प्र० श० क्षारोद होता है।

गुण-कर्म—उष्ण, कटु, स्वादु, शुक्ल, तिक्त एवं लघु-पाकी है। उपयोग—इसके उपयोग से वातरोग, रक्तशोष, विसर्प, कुष्ठरोग, कास, श्वास तथा कफज रोगों का शीघ्र नाश होता है। (भा० पू० १ भ०)। यह कान्तिवर्धक, विषविकार, कण्डू, खज्जू तथा दद्रुनाशक है। (रा० नि० व० १०)।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में श्वासरोग में पुष्करमूल का उपयोग प्रायः किया गया है। भावप्रकाश में कुट का अन्य भेद 'पुष्करमूल' के नाम से वर्णित है; यथा—

पद्यांश—(सं०) काश्मीर, पञ्चपत्र, पुष्कर, पुष्करमूल, पुष्कर और मत्तान्तर से—पञ्चपर्णक, पञ्चपर्ण, पुष्करिणी, पुष्करजटा, पुष्करशिफा, पञ्चपत्रक, पञ्चपुष्प, ब्रह्मतीर्थ, वृक्षरुद्र, वीर, पुष्कराह्वया, मूलपुष्कर, श्वासारि, समूलक, शूलघ्न; (हिं०) पुहकरमूल, पोहकरमूल; (गु०) पोकरमूल; (पं०) पोहकर मूल; (कना०) पुष्करमूल।

परिचय—पुष्करमूल भी कुट ही का भेद है। कुट और पुष्करमूल के पत्र तथा शाखाओं में किसी प्रकार का भेद नहीं प्रतीत होता और गुण में भी समानता होती है। अतः कुट के अभाव में पुष्करमूल और पुष्करमूल के स्थान में कुट ग्रहण किया जाता है।

गुण—कटु, तिक्त, वातकफज्वरनाशक तथा विशेषतः पार्श्वशूल, अरुचि तथा श्वासरोग और शोथनाशक है।

'पौष्करं कटुकं तिक्तयुक्तं वातकफज्वरान्। हन्ति शोथारुचि श्वासान् विशेषात् पार्श्वशूलान्।' (भा० पू० हरीतक्यादि वर्ग)। कुष्ठ का उपयोग अजेयवृत्त में किया गया है। (मु० कल्प ३ अ०)।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—कुट तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—यह वातघ्न, लेखन, रक्तोत्कलेशक, शोथघ्न एवं रुक्षण है। आन्तर उपयोग से—यह उत्तमांगों को बलप्रद तथा वातनाडीवृद्धायक है। फुफ्फुसद्वय पर इसका कफोत्सारक कार्य होता है। अतः उरोवेदना-नाशक है। आन्त्र और आमाशय पर इसका बलकारक तथा वातानुलोमक कार्य होता है। अतः वातरोग में प्रशस्त है। इसके अतिरिक्त यह आर्तव तथा मूत्र का प्रवर्धक है। उदरशूल, कृमिरोगनाशक जरायुजशूल तथा कफज्वर में उपयोगी तथा खाने तथा लगाने से कामोत्तेजक कार्य होता है।

बाह्य उपयोग—इसको मधु, जल तथा सिरका में पीसकर प्रलेप करने से—व्यंग, मुखदुष्पिका (मूँहासा), खादित्य, इन्द्रलुप्त इत्यादि चर्मरोगादि का नाश होता है।

जैतून के तेल में पकाकर अभ्यंग करने से—अदित, पक्षाघात, अपतानक, कंपवात, वातरक्त, आमवात, शीतजन्य गृध्रसी (सायटिका) इत्यादि व्याधियों का नाश होता है और वातनाडियों में उत्तेजना उत्पन्न होती है। नपुंसकतानिवारणार्थ इसका तिळा उपयोगी है।

आन्तरिक उपयोग—इसका चूर्ण मधुमिश्रितकर तथा क्वाथकर सेवन करने से—कास, कुच्छ्र श्वास, उरोवेदना, पार्श्वशूल, प्लीहोदर तथा कृमिरोग का नाश होता है। मधुयुक्त क्वाथ पान करने से मासिक-धर्म का अवरोध दूर होता है तथा इसके क्वाथ में कटि-पर्यन्त अवगाहन करने से जरायुज शूल शान्त होता है।

हानिकर—वस्ति तथा फुफ्फुस को।

प्रतिकार—गुलकंद तथा मधु।

प्रतिनिधि—अकरकरा और बाबूना।

मात्रा—२ से ३ माशा।

भेद—मीठा कूठ (कुस्तशीरी), कुस्तअरबी, कुस्त

रुमी, कुश्त शामी, कुश्त बहरी, कुश्त सूरी इत्यादि। उपर्युक्त वर्गन कटु कुष्ठ का किया गया है।

कुट---(कुष्ठ) के कतिपय प्रयोग जो आयुर्वेद में वर्णित हैं—(१) कुष्ठदि क्वाथ---निम्माणि-विधि---कुट, इन्द्रजौ, पटोलपत्र तथा मूर्वा समान भाग कृत क्वाथ के साथ मधु और मिर्च का चूर्ण मिश्रित कर सेवन करने से कफज्वर का नाश होता है। (वृ० नि० २० ज्व-चि०)।

(२) कुष्ठदि चूर्ण---कुष्ठ, कास की जड़ और मुलहठी जल के साथ सेवन करने से पुरातन तृष्णा (प्यास) का नाश होता है। (वृ० नि० २० तृष्णा-चि०)।

अथवा---कूठ, इन्द्रजौ, पाठा, चित्रक, अतीस और हल्दी समान भाग में ग्रहणकर चूर्ण करें। इसमें से चूर्ण ६ माशा उष्ण जल के साथ सेवन करने से विविध प्रकार के वातरोगों का नाश होता है। (वृ० नि० २० वा० व्या० चि०)।

अथवा---कूट, वच, सोंठ, चित्रकमूल, इन्द्रजौ, पाठा, अजमोर और पीपर समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें। १ कर्ष वा उचित मात्रा में उष्ण जल के साथ सेवन करने से प्लीहरोग, उदररोग तथा उदावर्त रोग का नाश होता है। (यो० २० उदररोग-चि०)।

कुष्ठदि तैल---(१) कूट, श्रीवेष्ट (राल), सुगन्धवाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, केसर, अश्वगन्धा, जंगली तुलसी-इनका कल्क सरसों के तेल के साथ पकाकर यथोचित मात्रा में मधुयुक्त पान करने से ऊरुस्तम्भरोग की पीड़ा शांत होती है। (वृ० यो० त० ९३ त०)।

अभ्रंगार्थ---कूठ, राल, जटामांशी और श्वेत कदम्ब के पुष्पों के कल्क के साथ तैल सिद्ध करें। इसके उपयोग से रेवतीग्रहस्त शिशुओं की पीड़ा शांत होती है।

श्वेत कुष्ठ और हिंगु प्रत्येक २-२ शाण तथा जवाखार, त्रिफला का चूर्ण १०-१० शाण, गो-दुग्ध के साथ कल्क करें और सेहूँ के दूध के साथ तिलतैल युक्त पकाकर सिद्ध करें। उपयोग---४ दिन के अन्तर से २-२ शाण की मात्रा में पान करने से विरेचन होता है। दस्त आने के उपरांत तक्र के साथ चावलों का भात सेवन करें। मात्रा---२ निष्क। (वृ० नि० २० गुल्म-चि०)।

कूठ, आक, तूतिया, कायफल, मूली के बीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नीलोत्पल, मोथा, कटाई, कनेर, कसीस, पवाड़ के बीज, नीम की छाल, पाठा, धमासा, चित्रक, बायविडंग, कड़ुई तरीई के बीज, कमीला, आक, सरसों, वच, हल्दी और दारुहल्दी, एकत्र कल्क निम्माणकर तिलतैल के साथ तैल सिद्ध करें।

उपयोग---इसके अभ्यंग, लेपन तथा अवचूर्णन से कुष्ठ-जनित विकार शांत होते हैं। (च० चि० ७ अ०)।

कुष्ठदिनस्य---कूठ, इन्द्रायण, सोंठ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा

मरिच, बच और पिप्पली, एकत्र बकरा के मूत्र में पीसकर नस्य कराने से तन्त्रिक सन्निपात की तन्द्रा जाती रहती है। (वृ० नि० २० सन्निपात-चि०)।

नोट---उक्त योग का नस्य देने से मृगी (अपस्मार) भी छूट जाती है। (लेखक)।

कुष्ठदि वस्ति---कूठ, पीपल, आक की कोंपल, संधानमक एकत्र बकरा के मूत्र में पीसकर बस्ती बनाएँ। उपयोग---कर्णिनी योनिरोग से पीड़ित स्त्रियों के गुह्य मार्ग में स्थापन करने से लाभ होता है। (च० चि० ३० अ०)।

कुष्ठदि लेप---(१) कूठ और संधानमक एकत्र जल में पीसकर तथा चुक्र (चांगेरी) के कल्क को किञ्चित् उष्णकर अभ्यंग करने से विशूचिका तथा खल्लीवात का नाश होता है। (च० द० अग्नि-मा०-चि०)।

(२) कूठ, एरण्डमूल की छाल, सोंठ, छाँछ, एकत्र पीसकर गरम-गरम लेप करने से शिरोवेदना शांत होती है।

नोट---यह उपयोग वातज एवं कफज शिरोरोग में उपयोगी है। (वृ० नि० २० शिरोरोग-चि०)।

कुट---संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) घड़ा। घट। कोट। (मे०)। (२) चीता। चित्रक क्षुप। (हे० च०)। (३) पाषाणभेद। पखानभेद। शिलाकुट। (वं०) पातरभांगा। (४) पहाड़। पर्वत। (हा०)। (५) आलय। (६) सींग। शृंग। (के०)।

कुटक---संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा। कुरैया। कुटज। कुरची। कुटकन---संज्ञा पुं० [मल०] ब्राह्मी। (डाइमाँक भा० २ पृ० १०६)।

कुटक पत्री---संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] दारुहल्दी। दार्वी। दारुहरिद्रा।

कुटक फल---संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्मली। कतकफल।

कुटकम्---संज्ञा पुं० [मल०] ब्राह्मी। (इं० मे० मे०)।

कुटककानाथी---संज्ञा स्त्री० [?] निर्मली। (लु० क०)।

कुटकी---संज्ञा स्त्री० [सं० कटुका (की), कुटका] भेद---(१)

पर्याय---(सं०) तिक्ता, तिक्तरहिणी, कटु, कटुरहिणी, केदारकटुका, अरिष्ठा, आमन्नी, जननी, चक्र, ज्झी, नकुला, मत्स्यपित्ता, शकुलादनी, शतपर्वी, सादनी, द्विजाङ्गी, मलभेदिनी, अशोकरोहिणी, कृष्णा, कृष्णभेदा (काली-कुटकी), कृष्णभेदी, महौषधी, अञ्जनी, काण्डेरुहा, वान्तिदा (ध० नि०), कटम्भरा, कटुम्भरा, अशोका, काण्डेरुहा, तिक्तरहिणिका, तिक्तिका, मत्स्यशकला, द्विजाङ्गी। (अ०, फा०) खर्बूके हिन्दी; (ले०) पिक्रोहार्डिआ कुरोआ (Picrorrhiza Kurroa Roy.)।

कुल---कटुक्यादि (Scrophularinae)।

उद्भवस्थान---भारतवर्ष, कश्मीर से सिक्किम पर्यन्त माला में १००० से १५००० फुट की उँचाई पर स्वयं उत्पन्न होती है।

परिचय—यह परसियन खर्बक से सर्वथा भिन्न एक गुल्मजाति की जड़ है। **स्वरूप**—गूँतली, श्वेताभ, कृष्णवर्ण-काण्डयुक्त होती है। इसमें सूक्ष्म तन्तु लगे होते हैं। इसका भीतरी भाग कृष्णवर्ण का होता है। इसके ऊपर झुर्रियाँ पड़ी होती हैं। **स्वाद**—पित्तवत् अत्यन्त कटु होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का जलघुलनशील सत्व, जिसको ग्लूकोसाइड (Glucoside) या पिक्रो-रहाइजिन (Picrorrhizine) कहते हैं १५ प्रतिशत और एक प्रकार का विरेचनीय द्रव्य रेचनाम्ल अर्थात् कैथार्टिक एसिड (Cathartic acid) १५ प्रतिशत होता है।

उपयोगी अंग—मूल।

गुण—सारक, रुक्ष, कफघ्न, अति कटु, शीत, पित्त, रक्त, दाह, कफरेचक, अरोचकघ्न, (वा०), श्वास, ज्वर, मलभेदक अर्थात् पिण्डित मल को तोड़ कर निःसारक (च० द०), कटु, तिक्त, रुक्ष, लघु, दीपन, भेदक, हृदयग्राही कफपित्तज्वर, प्रमेह, श्वास-कास, रक्त, दाह, कुष्ठ और कृमिघ्न है। (भा० १ भ०; हे० च०)।

योग—कटुक्यादि क्वाथ—द्रव्य—कुटकी, मुलहठी, द्राक्षा, निम्ब छाल, प्रत्येक ६ माशा। जल ३२ तोला में क्वाथ करे जब १ भाग शेष रह जाय पानार्थ देवें। **गुण**—इसके उपयोग से पित्त ज्वर का नाश होता है और कोष्ठवृद्धता दूर होती है। (च० द०)।

तिब्ब के अनुसार—

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। **गुण-कर्ष**—दीपन, वातातुलोमक, सारक, अधिक मात्रा में विरेचक, उदरकृमिनाशक तथा ज्वरघ्न है। **उपयोग**—इसके उपयोग से शिरोगत रोग, अजीर्ण, तथा मन्दाग्नि का नाश होता है। इसे चूर्ण कर सेवन करने से—जीर्ण ज्वर, जलोदर, यकृतविकार, शोथ तथा उदरज कृमियों का नाश होता है। कुटकी और निम्ब की छाल का क्वाथ पान करने से कोष्ठवृद्धता दूर होती है और पित्तज्वर का नाश होता है।

हानिकारक—गर्भपातक, वमनप्रद, आक्षेपोत्पादक तथा कंठशोथकारक है।

प्रतिहार—रोगत बादाम और मस्तगी।

प्रतिनिधि—जंगली करैला की पत्ती।

मात्रा—५ रत्ती से १। माशा तक। ज्वर में २ से ३ माशा तक और विरेचनार्थ जलोदर में ६ से ९ माशा तक। (२) **कुटकी काली**—(सं०) कटुरोहिणी, कृष्णभेदा, (बं०) कटुकी; (गु०) कडुक; (कना०) केदार कटुकी; (ते०) कटुकरोहिणी; (फा०) खर्बके सियाह; (अ०) खर्बके अस्वद; (अँ) ब्लैक हेल्लीबोर (Black Hellebore)।

कुटकी—संज्ञा स्त्री० [गोंडा] भोंडर। (ने०) नखोटकु। (मे० मो०)।

कुटकी कल्क—कुटकी का चूर्ण १ तोला और मिश्री १ तोला मिश्रित कर उष्ण जल के साथ सेवन करने से पित्त और कफ ज्वर शमन होता है।

कुटकी-सफेद—संज्ञा स्त्री० [हिं०] श्वेत कुटकी।

कुटकी सियाह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] काली कुटकी।

कटु रोहिणी। देखो—'कुटकी'।

कुटङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गृहाच्छादन। कुटी। कुटीर।

कुटङ्गक—संज्ञा पुं० [,] } (ब०) कूड़े। तरलता गहन। (अ० टी०)।

कुटच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रजौ देखो 'कुड़ा'।

कुटचु—संज्ञा पुं० [म०] नरकचूर। (डाइमाक ३ भा० पृ० ४०४)।

कुटज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुरैया। कुर्ची।

कुटजचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] द्रव्य तथा निर्माण-विधि—इन्द्रयव, बाला, नागरमोथा धातकी पुष्प, बेलगिरी, लोध, सोंठ तथा मोचरस, सबको समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें। **गुण**—इसे गुड़ वा तक्र के साथ सेवन करने से अति प्रबल अतिसार का नाश होता है।

मात्रा—३ से ९ माशा तक। वृ० नि० २० अतिसा० चि०)।

कुटजत्वक्—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० क्ली०] कुटज मूल त्वचा। कूड़ा की जड़ की छाल। (च० द० ज्वरातिसार-चि०)। देखा—कुड़ा वा 'कुरैया'।

कुटज-दाडिम-क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] द्रव्य तथा निर्माण विधि—कूड़ा की छाल, अनारफल की छाल दोनों समान भाग में ग्रहण कर उष्ण जल में क्वाथ करें। जब १ भाग शेष रह जाय तो छान कर मधुयुक्त पान करने से भयंकर अतिसार नष्ट होता है। (भा० अति० चि०)।

कुटज-पुटपाक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कुड़ा की चिकनी मोटी तन्त्ररहित गोली छाल को ग्रहण कर उसे बारीक कूटकर उसमें तण्डूलोदक मिश्रितकर गोला बनाएँ। पुनः जामुन या ढाक के पत्तों में लपेट कर कुशा से बाँध दें और उस पर मिट्टी का गाढ़ा लेप करें और धूम्ररहित अग्नि में स्थापन करें। जब गोले का वर्ण लाल हो जाय, भीतर की लुगदी निकाल कर रस निचोड़ लें।

उपयोग—१ या ४ तोला रस में मधु मिश्रितकर पान करने से प्रत्येक प्रकार के अतिसार का नाश होता है। (भैष० २० ग्रहणी० चि०। भा० म० १ भ० रक्ताति सा० चि०)।

कुटज फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयवा (सि० यो० अर्श० चि० कुटजा घृत)।

कुटजमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटजमल्लिका।

कुड़ा वृक्ष। देखो—‘कुड़ा’

कुटज योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा की छाल गोदुग्ध-युक्त पीसकर पान करने से दाहण मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। (वृ० नि० २० मूत्र कृच्छ्र चि०)।

कुटज रसक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटजत्वक् (छाल) १०० पल ग्रहणकर आकाश जल (अभाव में भीम जल) ६४ पल में पकाएँ। जब १६ भाग शेष रह जाय भली भाँति छानकर पुनः पकाएँ। जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें मोचरस, वराहक्रान्ता (मजोठ) और प्रियंगु (मोदनी) का चूर्ण बराबर-बराबर भाग में मिश्रित करें अथवा तीनों के बराबर इन्द्रयव का चूर्ण मिश्रित करें। पुनः भली भाँति पकाएँ। जब दर्वी से लगने लगे उतार लें।

मात्रा—१ से ९ माशा पर्यन्त।

गुण तथा उपयोग—अग्नि तथा बल के अनुसार छागी-दुग्ध वा मण्ड वा पेया के साथ सेवन करने से रक्ताश, रक्तातिसार, रक्तप्रदर और ऊर्ध्व वा अधोगत रक्त-पित्त का नाश होता है। (च० चि० ९ अ०)।

कुटजवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] यह एक प्रकार की लता है। वर्षा के आदि में इसका स्वाद अम्ल, द्वितीय भाग में तिक्त तथा वर्षा के तृतीय पाद में अर्थात् अन्त में मधुर हो जाता है। इसमें उत्तम गोल फल लगते हैं।

गुण—इसका पत्र तथा फल सेवन करने से सद्यः पित्त-ज्वर का नाश होता है। (२० काम० धे० श्लो० १०६)।

कुटज लेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्माण-विधि—१०० पल कुड़ा की छाल ग्रहण कर २५६ पल जल में क्वाथ करें। जब चतुर्थांश शेष रह जाय छा : कर पुनः पकाएँ। पाकान्त में इसमें कालानमक, विड़नमक, सेंधानमक, जवाखार, धातकीपुष्प, इन्द्रयव, जीरा प्रत्येक का चूर्ण २ पल मिश्रित कर चटनी तुल्य बना लें।

गुण तथा उपयोग—इसमें से ८ माशा वा उचित मात्रा में ग्रहण कर मधु मिश्रितकर सेवन करने से पक्व वा अपक्व विविध वर्ण और वेदनायुक्त प्रत्येक अतिसार, दुःसाध्य संग्रहणी तथा प्रबल प्रवाहिका (पेचिश) का नाश होता है। (भै० २० ग्र० चि०)। **मात्रा**—३ से ९ माशा। (भा० म० अति० चि०)।

कुटज बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव। रा० नि० व० ९। दे० ‘कुड़ा’।

कुटज मुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटज चूर्ण। ‘कौटजा गोषनाशिनी’। (वै० निघ०)।

कुटज क्षीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्माण-विधि—कुटज मूलत्वक् कुट्टित १६ तोला ग्रहण कर ३२ पल जल में क्वाथ करें। जब १ भाग शेष रह जाय तब छान कर इसमें २ पल छागीक्षीर (बकरी का दुग्ध) मिश्रितकर पुनः पकाएँ।

जब दुग्ध-मात्र अवशिष्ट रह जाय तब शीतल होने पर इसमें ८ माशा मधु मिश्रित कर पान करने से रक्तातिसार का शीघ्र नाश होता है। (भा० म० अतिसा० चि०)।

कुटजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रयव। कुटज बीज। (रा० नि० व० ९)। दे० ‘कुड़ा’।

कुटजादि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुटजादि क्वाथ। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कुड़ा, अनार, नागरमोथा, धौपुष्प, बेलगिरी, लोध, सुगन्धबाला, चन्दन और पाठा इन्हें समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि क्वाथ कर मधुयुक्त पान करने से आमशूल, रक्त दोष, पिच्छलस्रावादि का नाश होता है। यह प्रत्यक्ष फलदायक सिद्ध हुआ है। (भैव० २० अतिसा० चि०)।

कुटजादि क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यह सम्पूर्ण अतिसार में प्रशस्त है। (भा० प्र० अतिसा० चि०)। देखो ‘कुटजादि’।

कुटजादि चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुड़ा की छाल और अतीस समान भाग में ग्रहण कर यथाविधि चूर्णकर मधु युक्त सेवन करने से पुरातन पक्वातिसार का शीघ्र नाश होता है। **मात्रा**—३ से ९ माशा। (वृ० नि० २० अति० चि०)।

कुटजादि लोह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुटज और लोह घटित योग।

कुटजादि स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य तथा निर्माण विधि—कुड़ा की छाल, आक और सिरिस की छाल, एरण्ड और निम्बपत्र इन्हें यथावश्यक जल में पकाकर इससे स्वेदन करने से शोथ का नाश होता है। (वृ० नि० २० शोथ० चि०)।

कुटजाद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्ताश में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कुड़ा की छाल, इन्द्रयव, नागकेशर, नीलोत्पल, लोध और धाय की छाल वा पुष्प के कल्क द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत पान करने से रक्ताश का शीघ्र नाश होता है। (च० चि० १४ अ०)।

कुटजाद्यवलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा की छाल २ पल, गिलोय २ पल, जल १ प्रस्थ में क्वाथ करें। जब १ भाग शेष रहजाय छानकर पुनः इसमें ८ पल इन्द्रयव का चूर्ण मिश्रित कर पकाएँ जब चटनी-सा हो जाय सुरक्षित रखें। **मात्रा**—१ से ९ माशा तक। **गुण**—इसमें से अग्निबल के अनुसार सेवन करने से ग्रहणी और प्रत्येक प्रकार के अतिसार का नाश होता है। (यो० २० अति० चि०)।

कुटजाफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव। (ध० नि०)।

कुटजाभिधम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव। दे० ‘कुड़ा’।

कुटजाभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रयव। (ध० नि०)।

कुटजारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य तथा निर्माण विधि—कुड़ा की जड़ की छाल १ तुला, मुनक्का ३

तुला, मधुक पुष्प और काश्मरी फल (किशमिश) प्रत्येक १०-१० पल ग्रहण कर ४ द्रोण जल में यथाविधि क्वाथ करें जब १ द्रोण अवशिष्ट रह जाय छान लें। पुनः इसमें धातकीपुष्प २० पल, पुरातन गुड़ १ तुला मिश्रित कर यथाविधि संधान करें। जब निर्मलरस उत्पन्न हो जाय छानकर बोटलों में सुरक्षित रखें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से प्रत्येक प्रकार का ज्वर, रक्ततिसार और दुःसाध्य संग्रहणी का नाश होता है और अग्नि की वृद्धि होती है। (भैष० २० अति० चि०)।

कुटजावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इस नाम के प्रसिद्ध ४ योग हैं। **द्रव्य तथा निर्माण विधि**—(१) कुड़ा की छाल के घनीभूत क्वाथ में १ वा १ भाग अतीस का चूर्ण मिश्रित कर मधुयुक्त सेवन करने से त्रिदोषज अतिसार नष्ट होता है। (च० द० अति० चि०)।

(२) कुड़ामूलत्वचा १ तुला ग्रहण कर १ द्रोण जल में पकाएँ, जब १ भाग शेष रह जाय तब छान कर इसमें लाजवन्ती, धातकीपुष्प, बेलगिरी, पाठा, मोचरस, मोथा और अतीस का चूर्ण १-१ पल मिश्रित कर पुनः पकाएँ जब दर्वी से लगने लगे शीतलकर सुरक्षित रखें।

गुण—इसको जल, छागी दुग्ध वा मण्ड के साथ सेवन करने से कष्टसाध्य वेदनायुक्त विविध वर्ण का अतिसार, रक्त प्रदर, अर्श तथा प्रवाहिका का नाश होता है। (शा० ध० सं० ८ अ० २ खंड)।

(३) कुड़ा की छाल का उत्तम क्वाथ निर्माणकर उसमें—मोथा, छागी दुग्ध, वायविडंग, कालानमक, संधानमक, धातकीपुष्प और पीपल का चूर्ण यथोचित परिमाण में मिश्रितकर पकाएँ। जब दर्वी से लगने लगे शीतल कर मधु मिश्रित कर सुरक्षित रखें। मात्रा ३ से ९ माशा। **गुण**—इसके सेवन से कष्टसाध्य अतिसार, अर्श, संग्रहणी, भगंदर, श्वास और कास का नाश होता है। (वृ० नि० २० अति० चि०)।

(४) कुड़ा की छाल १ तुला (१०० पल) ग्रहण कर १ द्रोण (१५६ पल) जल में क्वाथ करें। जब १ भाग शेष रह जाय छान कर इसमें पुरातन गुड़ ३० पल मिश्रित कर पकाएँ। जब गाढ़ा हो जाय, पुनः इसमें रसौत, मोचरस, सोंठ, मरिच, पीपल, हरीतकी, बहेड़ा, आमला, चित्रक-मूल, लज्जावन्ती, पाठा, बेलगिरी, इन्द्रयव, वच, भल्ला-तक बीज, अतीस, वायविडंग और सुगन्धवाला का १-१ पल चूर्ण और १ कुड़व गोघृत मिश्रित कर पकाएँ। जब शीतल हो जाय तब इसमें ४ पल (१६ वा ३२ तोला) मधु मिश्रितकर सुरक्षित रखें।

गुण—इसे उपयुक्त मात्रा में सेवन करने से तथा पथ्य पूर्वक आहार सेवन करने से—अर्श, अतिसार, अरुचि,

संग्रहणी, पाण्डु, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, शोष, काश्य और प्रवाहिका का शीघ्र नाश होता है।

अनुपान—छागी पय, छागी तक्र, छागी दधि वा छागी घृत, जल। **मात्रा**—व्यावहारिक २ से ९ माशा पर्यन्त। (शा० ध० सं० ८ अ० २ ख०)।

कुटजाष्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुटजमूलछाल १०० पल कूट कर १ द्रोण जल में पकाएँ। जब १ भाग शेष रह जाय शीतल होने पर छान लें। पुनः इसमें—मोचरस, पाठा, मजोठ, अतीस, मोथा, बेलगिरी और धातकी पुष्प १-१ पल चूर्ण कर उक्त क्वाथ में पकाएँ। जब दर्वी से लगने लगे उतार लें।

गुण तथा उपयोग—इसको कालानुसार यथोचित मात्रा में ग्रहण कर जल, मण्ड वा छागीक्षीर के साथ सेवन करने से प्रत्येक प्रकार का प्रव्रल अतिसार, विविध वर्ण मिश्रित मल, ग्रहणी, रक्तस्राव, शूल, रक्तार्श और कष्ट-साध्य प्रदर का नाश होता है। (च० द० अति० चि०)।

कुटजाष्टक-क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] **द्रव्य तथा निर्माण विधि**—कुड़ा की छाल, अतीस, पाठा, धातकी पुष्प, नागर-मोथा, लोध, सुगन्धवाला और अनार के फल की छाल समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें। पुनः इसमें से १ भाग निकाल कर क्वाथ करें। जब १ भाग शेष रह जाय तब इसमें १ भाग मोचरस मिश्रित कर सेवन करने से वातातिसार, रक्ततिसार, शूल और आमातिसार का नाश होता है। (शा० ध० सं० २ अ० २ ख०)।

कुटजाष्टकावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिसार में प्रयुक्त उक्त नाम का प्रसिद्ध योग। (भा० म० अति० चि०)। देखो 'कुटजावलेह' का द्वितीय योग।

कुटजीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापोता, पुत्रजीव वृक्ष। (वै० निघ०)।

कुटजोद्भव (वा)—सं० पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] इन्द्रयव। कुटजबीज। (वा० टी०, हे० च०)।

कुटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ी मालकांगुनी की बेल। महाज्योतिष्मतीशता। (मे०)।

कुटन्नक—सं० पुं० [सं० क्ली०] (१) बड़ा मोथा, भद्रमुस्तक। नागरमोथा (२) श्योनाक, सेनापाठा।

कुटन्नट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मोथा। (प० मु०)। (२) भाँगरा। केशराज। (बं०) केशर। (अ० टी०)। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (बं०) बड़ची गाछ। विकङ्कत वृक्ष। (२) सेनापाठा। पृथुशिम्बी। श्योनाक। (रा० नि० ब० ९। सु० सू० ३८ अ०)। (३) केवड़ी मोथा। कैवर्त्तमुस्तक। (४) वितुन्नक नामक वृक्ष विशेष। (५) परिपेल्ल वृक्ष। (ध० नि०)।

कुटन्नटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पालक शाक, पालकी का शाक। (सु० चि० २० अ०)।

कुटप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का मान जिसको 'कुडव' कहते हैं। (२) गृहवाटिका। गृहसमीपस्थ उद्यान। (३) कुड़बार्द्धमान। (हे० च०)। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल। पद्म। (रा० नि० व० १०, ध० नि०)।

कुटवान—संज्ञा पुं० [मल०] वज्रवट्ट; अल्पायुष्पी। कटकली। देखो—वजरवट्ट। श्रीताल। सागू वृक्ष भेद।

कुटपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पद्मिनी। छोटा कमल। (रा० नि० व० १०)।

कुट मीठा—संज्ञा पुं० [हिं०] कुस्त शीरीं। ईरसा मूल। पुष्कर मूल। मीठा कूठ। (डाइमॉक भा० २ पृ० ३००)।

कुटम्बक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोहासा, तिखाड़ी, रोहिय तृण। (वै० निघ०)।

कुटरणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] निशोथ।

कटरणी—,, [,,] (१) त्रिवृत्त। तेउड़ी। (प० मु०)। (२) लाल निशोथ। अरुणमूल त्रिवृत्त। (३) श्वेत निशोथ। शुक्लत्रिवृत्त। (वा० सू० १५ अ०)। 'क्रमक कुटरणी शंखिनी चर्मसाह्व'।

कुटरिणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } निशोथ। तेउड़ी।

कुटरिणी—,, } त्रिवृत्त।

कुटरवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद निशोथ। श्वेत त्रिवृत्त। (वै० निघ०)।

कुटरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कनात। तम्बू। पटगृह। (उणा०)

कुटरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } निशोथ। त्रिवृत्त।

कुटरुणी—(,,) } त्रिवृत्त।

कुटल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पटल। परदा। चाल screen (हारा०)।

कुटल मस्तक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चव्य। चविका। (ध० नि०)।

कुटशालमल्लि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोहितक वृक्ष। रोहिड़ा, रहेड़ा। (के०)।

कुटाचस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुटि वृक्ष। (लु० क०)।

कुटामोद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धमार्जारण्ड। जुन्दवेद-स्तर। कस्तूरिपूत। ऊदबिलाव का अण्ड। (वै० निघ०)।

कुटार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पादप। वृक्ष। पेड़। तर। (शब्दर०)।

कुटि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृक्ष। (श० र०)। (२) शरीर। (उणा०)। संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०], मुरामांसी। (मद० व० ३)। (२) गृह। (अ० टी० भ०)।

कुटिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूठ। कुष्ठ। मृत्फली। (बं०) कूड़। (हारा०)।

कुटिचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूईस। जलशूकर। (बं०) शुशुक। (श० र०)।

कुटिञ्चर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पत्रशाकविशेष। वन-

वास्तुक। जंगली बथुआ। इसका क्षुप २-३ फुट ऊंचा होता है। पत्तियाँ सुन्दर रक्तवर्ण की होती हैं।

गुण—स्वादु पाक, क्षारीय, रूक्ष, शीतल, गुरुभाकी, मल स्तम्भकारक तथा दोषोत्पादक है। (वै० निघ०)।

कुटिर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छोटा घर। क्षुद्र गृह। (जटा०)।

कुटिल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जंगली बथुआ, वन वास्तुक। (वै० निघ०)। (२) पिण्डी तगर। तगरपादिका। तगर पादुका। (ध० नि०); (प० मु०)। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शंख। (२) घोंघा। शम्बूक। (रा० नि० व० १३)।

कुटिल कीटक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तन्तुवा पादपः (ध० नि०)। तगर, तगर पादुका। पिण्डी तगर।

कुटिल पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } पिण्डी तगर,

कुटिल पुष्पिका—[संज्ञा स्त्री० सं० स्त्री०] } पादुका। तगर (प० मु०)। (२) स्पृक्का नामक गन्धद्रव्य। (रा० नि० व० १२)।

कुटिल सप्तक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चव्य। चविका। (मे०)।

कुटिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्पृक्का नामक गन्ध-द्रव्य। देखो 'कुटिल पुष्पिका'। सरस्वती। स्पृक्का। (ध० नि०)। (२) भड़भाड़। (डाइमॉक १, भा० पृ० ११०)।

कुटिलासिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] टेढ़ी तथा ग्रन्थियुक्त सिरा। (Varicose vein) (सु० नि० १ अ) इल्हग)।

कुटिलास्वेद—संज्ञा पुं० देखो 'कुटी स्वेद'।

कुटिस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुटिप्रवेशिक स्वेद।

कुटिः—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) वृक्ष, (श० र०); (२) शरीर (उष्ण०)। चटी। (ध० नि०)।

कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुरा नाम का गन्ध द्रव्य। (ध० नि०)। (रा० नि० व० १२)।

(२) एकाङ्गना। कपूरकचरी। (३) अन्नादिरहित सिक्क (प० प्र० २ खं०)। (४) श्वेत कुड़ा। श्वेत कुटज वृक्ष। (५) मरुआ। मरुवक क्षुप। (वै० नि०)।

कुटीका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूशय मृग। (च० सू० ४ अ०)।

कुटीप्रवेशिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुटी। गृह। छोटा गृह। (च० चि० १ अ०; सु० कल्प०) सोमकल्प में। (सु० चि० ४ अ०; वा० उ०-३९ अ०)।

कुटी स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पसीना देने योग्य कुटी।

निर्माण-विधि—एक ऐसी कुटी (गृह) निर्माण करें जिसकी ऊँचाई और व्यास अधिक न हो। इसमें कोई झरोखा या खिड़की भी न हो। उसका आकार गोल हो। दीवार (भीत) मोटी हो, दीवार पर भीतर की ओर कुष्ठ आदि उष्णवीर्य सुगन्धिद्रव्यों का लेप करावें। इसके भीतर

मध्य में एक शय्या रखें और उस पर प्रावार अर्थात् भारी आ छदन, वस्त्र, अजिन (मृगछाला), कौषेय अर्थात् रेशमी वस्त्र, कुच (चित्र कम्बल), कम्बल वा गोणिक (सन का वस्त्र) भली भाँति बिछा कर उस शय्या के चारों ओर निर्धूम अंगारों से भरी अँगीठी रख दें और रोगी को स्नेहाम्यंग करा कर उस शय्या पर बैठा कर स्वेद दिलावें। (च० सू० १४ अ०)।

सुश्रुत के अनुसार—

एक ऐसे कमरे का निर्माण करें, जिसके चारों दिशाओं में एक-एक द्वार हो और उन द्वारों पर भीतर की ओर निर्धूम धधकते हुए अंगारों से पूर्ण अंगीठियाँ रखी हों। फिर रोगी को सुखपूर्वक शय्यापर बिठा दें अथवा डल्लण मिश्र के अनुसार चारों द्वारों के भूमिभाग को अंगारों द्वारा गरम करें। पश्चात् अंगारों को हटाकर उस भूमिभाग को काँजी वा जलादि द्वारा सेंचन करें। पुनः शय्या पर रोगी को बिठाकर स्वेदित करें। वायु के कारण द्वारमुख से उड़ कर भीतर जाते हुए वाष्प रोगी का स्वेदन करते हैं। इस प्रकार रोगी को स्वेदित करने से वातजन्य रोगों का शीघ्र नाश होता है।

कु (क) टुअयमोदकम्—संज्ञा पुं० [मल०] पर्याय—(सं०) सुगंधवास्तुक; (ले०) केनोपोडियम् एम्ब्रोसिआइडिस (Chenopodium Ambrosioides)।

परिचय—यह एक प्रकार का गमला में रखने योग्य झाड़युक्त वनस्पति है।

कुल—Family—Chenopodiaceae।

उद्भवस्थान—दक्षिणी भारतवर्ष।

इसके बीज वा फल तथा तने को भभका में रखकर एक प्रकार का उत्पत् तेल खींचा जाता है।

उपयोग—इसका अर्क वा तेल कृमिघ्न है। १० बूँद की मात्रा में देने से अंकुशमुख कृमि (Hookworms) का नाश होता है। (इं० मे० मे० N. k.)।

कुटुङ्गक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृक्षलता गहन। (२) गृहाच्छादन। (३) कुटी। (अ० टी० भ०)।

कुटुम्बक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूस्तृण। गन्धतृण विशेष। (रा० नि० व० ८)।

कुटुम्बिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वनाम से विख्यात महाक्षुप।

पर्याय—पयस्या। क्षीरिणी। जलकामुका। वक्रशल्या। दुराधर्षा, क्रूरकर्म्या, सिरिण्टिका, शीता, प्रहर, कुटवी, शीतला, जलेरुहा।

गुण—मधुर, ग्राहिणी, कफ पित्तघ्नी, व्रण तथा रक्त दोष, कण्डूघ्न और रसायन है। (रा० नि० व० ५)।

कुटुम्बीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अरलु। टेढा, पृथुशिम्बी। देखो—‘सोनापाठा’।

कुटेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुटी। छोटा गृह।

कु (क) टैला—संज्ञा स्त्री० [हिं०] स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी। भड़भाड़। (Argemone mexicana)

कुटोञ्च—संज्ञा पुं० [कुमायूँ] कुस्तुरी। कतूस्त। (नेपाल)।

कुट्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलकाक। पानीय काक। (वं०) पानकीड़ी। (वै० नि०)। (२) कठबढ़ई। काठफोरा। ‘दे० काष्ठ कुट्टक’।

कुट्टन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कूटना-काटना। छेदन। (२) कुत्सन। उसकाना। (३) तापन।

कुट्टमल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] पुष्पकोरक। फूलों के किनारे।

कुट्टरा—संज्ञा स्त्री० [?] द्रव्यविशेष। (डाइमॉन्ड भा० ३ पृ० ७)

कुट्टल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निलोफर। नीलोत्पल। (रा० नि० व० १०)।

कुट्टार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सुरति। (२) कम्बल। (वि०)।

कुट्टार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की वनौषधि जो पारद में भावना तथा पुट पाक में योजित की गई है। (रा० का० धे० पारद प्रा०)।

कुट्टितमांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कवावनिर्माण में कूटा हुआ मांस तथा व्यञ्जन भेद। मांस-कवाव। (श० वि०)।

कुट्टितसिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० ‘कुटिलसिरा’।

कुट्टिम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अनार। दाड़िम वृक्ष। (रा० नि० व० २१) (२) बद्ध भूमि। (हला०)।

कुट्टिविलास—संज्ञा पुं० [ता०] भुइ कठवेल। भूकपित्थ।

कुट्टुभकार चम्मथो—संज्ञा स्त्री० [ता०] जंगली नील का एक भेद है जो सिन्धुदि में होती है। (ले०) इण्डिगोफेरा पाचीफोलिया (Indigofera-Pauchifolia)

उपयोग—यह विषघ्न माना जाता है। इसकी जड़ दूध में पकाकर पान करने से विरेचन होता है। इसके तना को पकाकर बफारा देने से सन्धिवेदना तथा शोथ का नाश होता है। इसके पत्र कवाथ से कुल्ली (गण्डूष) करने से पारदजन्य लालास्राव नष्ट होता है तथा अस्थि कोषशोथ Periostitis में इसके तना को पकाकर वाष्पस्वेद करने से लाभ होता है। (इं० मे० मे०)

कुट्टुवकोल—संज्ञा पुं० (ता०) चाकसू (Cassia absus)।

कुट्टुन—संज्ञा पुं० द्रव्य विशेष।

कुट्टेलफिशबीन—संज्ञा स्त्री० समुद्रफेन। समुद्रझाग। (Kuttel-fish-bein) (जर०) (Cuttel fishbone)।

कुट्टमल--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुकुल । (अम०) ।
(२) कोष । (जटा) ।

कुट्टम्बो--संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] तरबूज । कलिंग ।
हिन्दुमाना । (इं० मे० मे०) ।

कुठ--सं० पुं० [संज्ञा पुं०] चीता । चित्रकक्षुप । (रा० नि०
व० ६) (२) वृक्ष । (अम०) । (हिं०) द्र० गु०
२४१ (३) संज्ञा पुं० दे० 'कुट'

कुठर--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दण्ड विष्कम्भ । (अ० म०) ।

कुठरिणी--संज्ञा स्त्री० [संज्ञा पुं०] सफेद निसोथ ।
श्वेतत्रिवृत्त ।

कुठारकु--संज्ञा पुं० कठफोरा । वं०-काठफोरा । कठवर्द्ध ।
(उणा०) खुटक-वर्द्ध । (wood-pecker)

कुठारङ्कु--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुठार । (जटा) ।

कुठार--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुठेरक वृक्ष । (र०
सां० सं०) ।

(२) टाँगा नामक अस्त्र विशेष । (३) तुलसी मूल ।

कुठारक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बवुई तुलसी । (रा० नि०
व० १०) । (भैष० र० अग्नि गन्ध-चि० रुद्र-तैले) ।

(२) पर्णसि । काली तुलसी । (वं०) काल बावुई,

काल-तुलसी । (रा० नि० व० १०) । (च० सू० २अ० ।

भा० प्र०) । (३) नन्दी वृक्ष । (रा० नि० व० २३) ।

(४) तुलसी क्षुप । (उण०, अम०) ।

कुठारक-तैल--संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] एक प्रकार का
शरीरव्रणघ्नतैल । द्रव्य--कुठारक, उत्पल १०० भाग ग्रहण
कर यथाविधि १६ गुना जल में पकाएँ । जब $\frac{1}{2}$ भाग शेष
रह जाय १ प्रस्थ तिल तैल मिश्रित कर पकाएँ और
कल्कार्थ-कुठार, अपामार्ग, पिण्डी और मोम मिश्रित कर
यथाविधि पाक करें ।

उपयोग--इसके उपयोग से व्रणरोपण होता है ।

नोट--मक्षिका (मोम) न ग्रहण कर चिंगड़ी (झोंगा)
म.स्य का उपयोग करते हैं । 'कुञ्जवक्षि कामत्स्य इति नील
कण्ठ ।' (रस० र०) । कुठारक शब्द से तुलसी की जड़,
का भी ग्रहण किया जाता है ।

कुठेर--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्याय--(ता०) सुम्भति ।
(ले०) इण्डिगोफेरा क्वासिकोलिया । (Indigofera
quasifolia) । (डाइमॉरु भा० १, पृ० ४११) । (ता०)
कुट्टकार चम्पत्यी । (ई० इं० मे०) देखो ।

कुठेर--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद तुलसी । सितार्जक क्षुप ।

कुठारच्छिन्ना--[सं० स्त्री०] (१) कन्द गुडूची । कन्द-
गिलोय । (२) कुरैया (वं० निघ० क्षयरोग लौह रसायने) ।

कुठारिका--(सं० स्त्री०) } कुल्हाड़ी । कुठार । टांगा ।

कुठारी--(सं० स्त्री०) } (सु० शा० ८ अ०) ।

कुठार--सं० पुं० [सं० पुं०] कुठेरक वृक्ष । (२) कीश ।
(मे०) ।

कुठि--संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] वृक्ष । तरु । (उणा०) ।

कुठिक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कठ । कुष्ठ नामक द्रव्य ।
(हारा०)

कुठिज्जर--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शाक । साग । बथुआ ।
पत्रशाक । जंगली वास्तुक जो १ गज तक लम्बा होता है
और इसका पत्र गुठारी रंग का होता है ।

कुठिल्लक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तपुनर्नवा । लाल गदह-
पुरना । (वं० निघ०) ।

कुठेरक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तूणी नामक द्रव्य ।
(ध० नि०) ।

कुठेरई-फोउटपादि--संज्ञा स्त्री० [ते०] छागुल खुरी ।
छागछो । दोपाती लता ।

कुठेरई--संज्ञा स्त्री० [ता०] पर्याय (ते०) वैगन ।
कुण्डा । (ता०) करचुनै ।

कुठेरज--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद तुलसी । (वं०) बावुई
तुलसी । (Oimum-Gratis:im m) ।

कुठे--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चामर वात । चँवर द्वारा
उत्पन्न वायु । (वं०) चामरेर वातास ।

कुठेरै-कोलपडि--संज्ञा स्त्री० [ता०] दोपातीलता ।

कुड़--संज्ञा पुं० [वं०] कूठ । कुष्ठ नामक द्रव्य । दे० 'कुट' ।
संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ, पा० कुट्ट] कुठ नाम को
अपेक्षित ।

कुड़क--संज्ञा पुं० [बम्ब०] घोगर । (पं०) खरपत ।
(इं० मे० मे०) ।

कुड़का--संज्ञा स्त्री० द्रव्य विशेष

कुड़की--संज्ञा स्त्री० [मं०] पर्याय--(गं०) कन्थार ।
देखो 'काकादनी' ।

कुड़कु--संज्ञा पुं० [ता०] चुकक । चूका ।

कुड़कुड़ा--संज्ञा पुं० [मल०] काचक्रु । (Turtle) ।
कच्छप । दे० कछुआ । (हिं०) काचक्रु ।
(Cheolia) ।

कुड़खन--संज्ञा पुं० [सि०] राजिका । कृष्णा । सोमराजिका ।
मडुआ धान्य । (इं० मे० मे०) ।

कुड़गु--संज्ञा पुं० [१] द्रव्य विशेष ।

कुड़ची--संज्ञा स्त्री० [वं०] कुड़ा । कुटज । दे० 'कुड़ा' ।

कुड़ना--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] निशोथ । वृत्तिव ।

कुड़प--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मान जो ३२
तोला (वा ८ पल या ४ पल) के बराबर होता है । पर्याय--
२ प्रसूति = १ कुड़व (१६ तोला) ।

कुड़पुष्प--संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] मौलसरी का फूल ।
बकुलपुष्प ।

कुड़मल्लिगै--संज्ञा पुं० [ता०] बटमोगरे का पुष्प ।

कुड़ल चुरिकि--[मल०] द्रव्य विशेष (चो० ३२३, ४९४) ।

कुड़लिया--संज्ञा पुं० [हिं०] द्रव्य विशेष (चो० ४८३) ।

कुड़ली—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कचनार भेद। काञ्चनार भेद। (म० द० व० १)।

कुड़हञ्ची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र कारवेल्लकी। दे० 'कुड़हुञ्ची'।

कुड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुटज] पर्याय (हिं०) कुरैया, कोरया। (सं०) कुटज, शक्र, वत्सक, गिरिमल्लिका, पाण्डर, कटुक, शक्राशन, कीटज, तिक्तक, वृक्षक, शक्राह्वय, कूटज, कालिङ्ग, काडवी, मल्लिका पुष्प, प्रावृष्य, शक्रपादप वरतिक्त, यवफल, संग्राही, पाण्डुर-द्रुम, प्रावृषेय, महागन्ध, इन्द्रद्रु।

(अ०) शजलिसानल् असाफिरुमुर, (फा०) दरख्त-जवान कुंजिस्कतलख; दरख्त इन्द्रजौ तलख; (बं०) कुरची; (गु०) कडो; (म०) काला कुड़ा (पं०) कुड़ो; (को०) कुड़ा; (बम्ब०) पाँढर कुड़ा (सफेद कुड़ा); (ते०) काककोडिसे, इन्द्रवृक्षमु; (ता०) वेम्पलै; (कना०) कोरासिगिणागिडा; (पोर्ट०) कुड़ो; कुड़ा।

बीज पर्याय—(सं०) इन्द्रयव; (हिं० बं०) इन्द्रजाव; इन्द्रजौ; तीत इन्द्र जौ; (बम्ब०) कड़वा इन्द्र जौ; (ता०) कलुप्पलै-विरै; (अ०) लिसानुल् असाफीर, लिसानुल् असाफिरुमुर; (फा०) जवानै कंजिस्कतलख, जवानै कुंजिस्क, इन्द्रयव तलख। पंजशकरदान, इन्द्रयव तिक्त; (गु०) कड़वा इन्द्रजव; (म०) कडु इन्द्रजौ, कड़वा इन्द्रजव।

छाल—(सं०) कुटज त्वक। (अ०) तीवाज। उपर्युक्त पर्याय—कड़वे कुड़-कि हैं। कृष्ण वा श्वेत भेद से कुड़ा दो प्रकार का होता है, असित वा कृष्ण कुड़ा तिक्त कुड़ा है और सित वा सफेद कुड़ा मिष्ठ कुड़ा है।

कुड़ा सफेद वा मीठा, पर्याय—वृक्ष (सं०) सित कुटज (हिं०) सफेद कुड़ा, मीठा कुड़ा (मिर्जापुर) खिरना; (म०) सफेद कुड़ा, पाँढर कुड़ा; (काठियावाड़) दुधला; (ले०) राइटिया टिक्टोरिया (Wrightia Tinctoria Br.)

बीज—(हिं०; द०, गु०) मीठा इन्द्रजौ; (अ०) लिसानुल् असाफीर हलो (हुल्लुव); (फा०) इन्द्रजव शीरीं जवाने कुंजिस्क शीरीं; (म०) गोडा इन्द्रयव।

कुल—अर्कादि (Aphocynaceae) भाषा में इस कुल के तीन वृक्षों को कुड़ा, कोड़ा वा कुडा कहते हैं। इनके लाटिनी नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) ऐण्टिडिसेन्ट्रिका Antidysentrica.

(२) राइटिया टोमेन्टोसा Wrightia Tomentosa और (३) राइटिया-टिक्टोरिया Wrightia Tinctoria इनकी त्वचा प्रायः कुटजारिष्ट निर्माण में प्रयुक्त होते हैं।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के समस्त वनों तथा हिमवती

पर्वत के उष्ण प्रदेशों में इसके वृक्ष स्वयं उत्पन्न होते हैं। विन्ध्य पर्वत में दोनों प्रकार के और बंगाल में तिक्त कुड़ा के अधिक वृक्ष होते हैं।

परिचय—इसके वृक्ष की ऊँचाई प्रायः १० से १५ फुट की होती है। तेना छोटा और पुरातन वृक्ष को गोलाई प्रायः १-४ फुट होती है। इसके पत्र मधुन वा बाराकदम्ब के पत्र तुल्य होते हैं। शीत काल के अन्त में पत्र गिर जाते हैं और पुनः ग्रीष्म ऋतु में निकलते हैं। पत्राग्र भाग वा कोमल शाखाओं के तोड़ने पर दुग्धस्राव होता है। मिर्जापुर में इसको दुधारा कहते हैं। इसमें वेला के सदृश श्वेत वर्ण के गुच्छों में अत्यन्त सुगन्धित पुष्प लगते हैं। इसमें गोल पतली-पतली १ फुट तक लम्बी फलियां लगती हैं, श्वेत कुड़ा की फलियां पतली और छोटी होती हैं। फलियों का वर्ण जो काले कुड़ा में लगती हैं हरित कृष्णाम होता है और एक साथ दो-दो फलियां लगती हैं। शीत काल में पक कर फाल्गुन तक पक कर फट जाती हैं। फलियों में तूलवत रेशा होती है जो बीजों में लगी होती हैं। सुपक्व बीज चिड़ा के जिह्वा तुल्य होते हैं। इन्हें भाषा में इन्द्रजव के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। कृष्ण कुड़ा के बीज तिक्त और श्वेत के बीज मिष्ठ होते हैं। इनका स्वरूप किंचित् श्वेत-पीत रक्ताभ होता है। शुष्क बीज तैलाक्त होते हैं। स्वाद भेद से इनको भिष्ट वा तिक्त कुड़ाबीज (इन्द्रयव) कहा जाता है।

छाल—मोटी बाहर से किंचित् भूरी वा काली, भीतर लाल, हलकी और कड़ुई होती है। श्वेत कुड़ा के वृक्ष की अपेक्षा काले कुड़ा के वृक्ष अधिक बड़े होते हैं। व्यवहार में प्रायः कुड़ा के बीज और छाल दोनों आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी त्वचा में एक प्रकार का श्वेत सत्व प्राप्त होता है जो क्षारीय होता है। डाक्टरी में इसको कोनेसीन (conessine) वा कुचीसीन और होलेरीन (Holarrhenine) कहते हैं। यह जल वा सुरासार में भली-भांति द्रवीभूत हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह जल मिश्रित एसिड में भी घुल जाता है। हीलेरीन को ईथिल एसिटेट के द्वारा रवादार बनाया जाता है। इस अवस्था में यह सुरासार तथा क्लोरोकार्म के अतिरिक्त उपर्युक्त द्रवों में नहीं घुलता।

उपयोगी अंग—त्वचा, बीज, तैल, पुष्प।

गुण—काला कुड़ा (कृष्ण कुटज) रक्तदोष, अर्श तथा त्वग्दोष नाशक है। पित्तशामक तथा अन्य गुण श्वेत कुड़ा तुल्य होते हैं। (वै० निष०)। सफेद कुड़ा (सित कुटज)—कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, अतिसारघ्न (रा० नि० व० ९), कटु, रुक्ष, दीपन, कषाय, शीतल अर्श, अतिसार, पित्त, रक्तदो, कफ, तृष्णा, उत्तम दोष, तथा कुष्ठ नाशक है।

वक्तव्य—मिष्ट कुटज की छाल का चूर्ण और घृत शर्करायुक्त लड्डू निर्माण कर सेवन करने से शुक्र की वृद्धि होती है और मैथुन की शक्ति भी अधिक हो जाती है। लेखक। कुटजपुट युक्त पाक, कुटजाष्टक, कुटज, अवलेह, कुटजरसक्रिया, कुटजारिष्ट, कुटजादि चूर्ण इत्यादि कुड़ा के प्रधान उपयोगी योग हैं।

कुटज पुष्प—वातल, शीत, तिक्त, पित्तातिसारनाशक है। (भा० पू० १ भ०)। अथवा—कषाय, अग्निदीपन, तिक्त, शीतल, वातज, लघु, पित्तातिसार, रक्तदोष, कफ-पित्त, कुष्ठ और वातातिसार नाशक है। अथवा कृमिविकारनाशक एवं सुरभियुक्त है। अन्य गुण कुड़ा तुल्य होते हैं। तिब्ब के अनुसार—

कुड़ा की छाल—(तोबाज)—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष तथा मतान्तर से द्वितीय कक्षा में शीतल है।

गुण-कर्म—इसमें अतिसारनाशक, शिरोशूलनाशक, संग्राही, रक्तस्तम्भक, वक्षस्थ स्निग्धता तथा स्निग्ध श्लेष्मा को हरण करता और नासास्र (नकसीर) नाशक गुण हैं।

उपयोग—इसको क्वाथ वा अवलेहरूप में सेवन करने से—पुरातन अतिसार, रक्तार्श, अर्शजात अतिसार, अतिरजस्नाव तथा प्रत्येक अंगजात रक्तस्त्राव का नाश होता है। इसे चूर्ण कर ५ माशा से १ तोला तक दधि युक्त सेवन करने से अतिसार तथा अर्शजात अतिसार का नाश होता है। इसके द्वारा मंजन करने से दांत दृढ़ होते हैं। इसका नस्य ग्रहण करने से नासास्र बंद होता है। उक्त गुणार्थ कर्पूर और गुलाब मिश्रिकर मस्तक पर लेप किया जाता है। **मात्रा**—१ से ६ माशा तक। इसे चूर्ण कर पौष्टिक मोदक प्रस्तुत किया जाता है।

हानिकारक—उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को।

प्रतिकार—कतीरा।

प्रतिनिधि—अञ्जुवार। **मात्रा**—३ माशा।

कुड़ा बीज—(इन्द्रियव)। प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—वातानुलोमक, मूत्रल, अश्मरीघ्न, बाजीकर, शुक्रल तथा गर्भस्थापक है।

उपयोग—मिश्रयुक्त इसे चूर्णकर सेवन करने से—वातार्श, में अश्मरी और शुक्र की तरलता नष्ट होती है तथा उसकी पुष्टी होती है। इसे चूर्ण कर बाजीकर योगों में मिश्रित किया जाता है और मधु केशर के साथ ऋतु-स्नान के पश्चात् वर्तिका निर्माण कर योनि में स्थापन करने से गर्भस्थापन होता है।

हानिकारक—आमाशय को।

प्रतिकार—गरम मसाला लवणयुक्त देवें।

प्रतिनिधि—तोदरी तथा बहमन।

मात्रा—२ से ३ माशा तक।

देखो 'कुरैया' भी।

कुड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] शरीर। देह। (उणा०)।

कुड़ि—संज्ञा स्त्री० [उत्कल] बदरी। बेर। संज्ञा स्त्री० [आसाम] तिक्त इन्द्रियव।

कुड़िआ खार—संज्ञा पुं० [बम्ब०]। तालमखाने का खार।

कुड़िमं कुनी—संज्ञा पुं० [सिलहट] द्रव्य विशेष। (चो० पू० ४१२) कुरिया मछली—संज्ञा स्त्री० तुं० दे 'कुड़िश'

कुड़ियो—संज्ञा पुं० [ता०] भड़भाड़। स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी।

कुड़िश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मछली। [मत्स्य] भेद। (Cyprinus curchius)। (बं०) कुड़ची माछ, वाटी माछ, कुड़िया मछली।

गुण—मधुर, हृद्य, कषाय, अग्निदीपक, लघुपाकी, स्निग्ध, वातरोग में पथ्य, बलवर्धक, रुचिकारक तथा कोष्ठबद्धकारक है। (राज०)।

कुडीरे—संज्ञा पुं०—[ता०] पलपाषाणम् मैनशिल। लाल हरताल जर्नीख सूखें।

कुडु—संज्ञा पुं० [तुरकी] कुलथ। कुलथी। (डाइमाक पू० २६० भा० १)

कुडुरमिरिस—जंगली काली मिरिच। टोडेलिया एक्जुलेटा (Toddalia Aculata)। देखो—'काञ्चनफल'

कुडुमिरिसवेल—संज्ञा पुं० [सि०] पर्याय—कांचन, दहन। दे० 'काञ्चन फल'

कुडुहुंची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्र कारवेल्ल, जंगली करेली। (बं०) छोटउच्छे। **लता, फल**—**गुण**—कटु, उष्ण, अति रुचिकारक, अग्निदीपक, वातरक्तकारक।

कन्द—अर्शघ्न, मलशोधक तथा योनिदोषनाशक है।

(रा० नि० व० ७)। **कडुहुंची**। [र० का० धेनु०]

कुडडु—संज्ञा पुं० [गु०] कुटकी। कृष्णभेदी।

कुडमल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुमुद। सौगन्धिक। नीलोत्पल। (ध० नि०)। (२) कोरक, मुकुल। (ध० नि०, मे०)।

कुडुम्बर—संज्ञा० [ते०] द्रव्य विशेष (चो० पू० ४७१)।

कुडच—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) विलेपन। (२) गृहभित्ति दीवार।

कुडचकीटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छिपकली।

कुडचमत्सी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छिपकली। विस्तुड्या।

कुडचमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गृहगोधिका। (बं०) टिक-टिमी (श० र, च० शा० ८ अ०)। टिको (हे च०)।

कुडल—संज्ञा पुं० [द०] जपापुष्प। गुडहल, ओढउल।

कुण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रावार कीट (सं०)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चीलर। जूँ।

कुणक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सद्यः जात शिशु। बालक। (श०

चि०)

कुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुण्डर। (ध० नि०)।
 कुण्डर—संज्ञा पुं० [„] जंगली वधुआ, अरण्य वास्तुक।
 कुण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इसका क्षुप १ गज तक ऊँचा होता है।
 कुण्डजी—दे० 'कुण्डर'।
 कुण्डी—संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] (१) मैनशिल। (रा० नि० व० १३, २३) (२) धान। (भा० पू० १ भ०)।
 कुणप—वि० [सं० वि०] शवगन्ध। मृत शरीर की गन्ध। दुर्गन्ध, [संज्ञा पुं०] रक्तदोष। आर्तव दोष। मृत्शरीर। (अम०)।
 कुणप गन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृत्शरीरजन्य दुर्गन्ध। शवगन्ध।
 कुणपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कुण्डी'।
 कुणपी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शारीरिक मल। शारीरिक विट्। (वं०) गुण शालिक। गुथेला कड़ा।
 कुणारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुण्डरोगविहित भक्ष-द्रव्य, जिसको 'यवपर्णी' कहते हैं। (सु० वि० १० अ०)। कुछ लोग इसका उच्चारण 'कोणाड़ि' करते हैं।
 कुणाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी विशेष।
 कुणि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) तून। नन्दी वृक्ष। (मे० वि०) (२) कुर्पर (मे०)। मर्मस्थान (शु०) शा० ६ अ०
 कुणि कुण्डर } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगली वधुआ। अरण्य-
 कुण्डर } वास्तुक। इसका क्षुप १ गज तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ रक्त वर्ण की होती हैं। गुण—मधुर, रुचिकारक, दीपन और पाचन। (रा० नि० व० ५)।
 शाक गुण—त्रिदोषघ्न, मधुर, रुचिकारक, दीपन, ईष-
 त्रुपाय, लघुपाकी तथा संग्राही है। (रा० नि० व० ७)।
 कुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कणभ जाति का एक कीट है। (सु० कल्प ८ अ०)। देखो—'कणभ' तथा 'कट'।
 कुण्ट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अर्जुन वृक्ष। कहू। (२) गुजेना। गुण्ड तृण जो जल में तथा आर्द्र भूमि में होता है। (वै० नि०)।
 कुण्टक—वि० [सं० वि०] स्थूल। मोटा (श० मा०)।
 कुण्टकुरण्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीत सरेयक। पीली कटसरैया। झाँटी। (वै० निष०)।
 कुण्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैनशिल। कुण्टी शिला।
 कुण्टो—शिला संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] मैनशिल।
 कुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गुण्ड। (ध० नि०)।
 कुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का मान। (२) जलाशय। विशेष। चूँआँ। इन्दारा।
 जल गुण—रुक्ष, अग्निकारक, कफकारक लघुपाकी तथा मधुर है। (रा० नि० व० १४)। (३) थाली।

स्थाली। (अम०)। [सं० पुं०] (१) वारिपात्र। लोटा
 संज्ञा पुं० (२) जारज पुत्र। दोगला बालक। (३)
 कौञ्च पक्षी।
 कुण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुञ्ज। कौञ्च पक्षी (हला०)।
 कुण्ड गोलक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काञ्चिक। काँजी।
 (हे० च०)।
 कुण्डङ्ग—(संज्ञा पुं०) [सं० पुं०] कुञ्ज। (हे० च०)।
 कुण्डमामिडी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] आम्नातक। अंबाड़ा। अमड़ा।
 कुण्डल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाल पुष्प का कचनार।
 रक्त काञ्चन। (र० मा०)। (२) (क्ली०) कर्ण भूषण।
 (३) पाश। (४) वलय। (मे० लत्रिक)।
 कुण्डलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दौना। (वै० निष०)।
 दना इति ख्याति क्षुप।
 कुण्डला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गिलोय। देखो—
 'गूडूची'।
 कुण्डलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलेबी। जिलेबी।
 प्रसिद्ध मिष्ठान्न है।
 कुण्डलिनायक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिङ्गल सर्प।
 कुण्डलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुण्डलिका। जलेबी।
 कुण्डली (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) सर्प।
 साँप। (हारा०)। (२) वरना। वरुण। (३) मोर।
 मयूर। (मे०)। (४) हिरन भेद। मृग विशेष। (५)
 अमलतास। आरग्वध वृक्ष। सं० स्त्री० [] (१) कोविदार
 (ध० नि०)। कुण्डेला, कुण्डली। गुडूची, गिलोय।
 (भा० म० १ भ० कर्णक ज्व० वि०)। (२) कवनार,
 काञ्चन वृक्ष। (मे०)। (३) सर्पिणी लता। गरुड़
 वल्ली। (वं०) गड़गड़ेशाक। (रा० नि० व० ५)। (४)
 कपिकच्छू। केवाँच। (रा० नि० व० ३)। (५) ग्वार
 पाठा। घृतकुमारी। (६) कुण्डलिका। जलेबी। (भा०
 पू० कृतान्न व०)।
 कुण्डलीचक्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आँतों का चक्र जो
 जलेश की भाँति घूमा होता है।
 कुण्डलीचालन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्पिणी
 लता। गरुड़ वल्ली। (२) योग-शक्ति से आँतों का
 घुमाव।
 कुण्डलीपञ्चक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पाँचवी आँत
 द्रव्यविशेष। (ध० नि०)।
 कुण्डली विरला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अन्न विशेष।
 कुण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कमण्डल (हे०
 च०)। (२) पिठर। (श० च०)।
 कुण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जूही। शुक्लयूथिका।
 (वै० निष०)। (२) कमण्डल। (अ०)। थाली।
 स्थाली। (अ० टी० भ०)।
 कुण्डी—संज्ञा स्त्री० इन्-[सं० पुं०] घोड़ा। अश्व।

कुण्डीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मनुष्य। (२) पृथ्वी। धरणी।

कुण्डूश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला कुड़ा। कृष्ण कुटज (लु० क०)। देखो—'कुड़ा' वा 'कुरैया'।

कुण्डेरु—संज्ञा पुं० [सुर०] अञ्जूरुत। (डाइमांक भा० १ पृ० ४७७)।

कुण्डेल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सकवीनज। (डाइमांक भा० २ पृ० १६१)।

कुतक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रसाज्जन। रसीत। (प० मु०)।

कुतन—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] (१) कार्पास। (२) रूई। पुम्बेदाना। विनौला।

कुतन-बरी—संज्ञा पुं० [अ०] अरण्यकार्पास। जंगली कपास।

कुतन्दस—संज्ञा पुं० [यू०] द्राक्षा। मुनक्का। (लु० क०)।

कुतप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] दर्भ विशेष। (१) कुशा कूश। (२) छाग कम्बल। (मे०) (३) बैल। वृष। (४) अग्नि। आग। (५) सूर्य। (हे० च०)। वि [सं० त्रि०] किञ्चित् उष्ण। ईषदूष्ण। थोड़ा गरम।

कुतपकाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मध्याह्न-काल। अत्यूष्ण काल। (के०)।

कुतपसप्तक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काला तिल। कृष्ण तिल। (२) रूपा। रौप्य। (३) ऊनी वस्त्र। ऊर्णवस्त्र। ऊनी कपड़ा। (वै० निघ०)।

कुतफ (क) तक—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सर्पक। वास्तुक। बथुआ। (मख० अ०)। (२) उड्डुद। (लु० क०)।

कुतफ बहरी—संज्ञा पुं० [अ०] बथुआ। भारतीय बथुआ। भारतीय वास्तुक। (मख० अ०, मो० आ०)।

कुतफ-रूमी—संज्ञा पुं० [अ०] जाँती। रूमी बथुआ।

कुतफा—संज्ञा पुं० [अ०] वास्तुक। बथुआ। सरमक।

कुतफः—(„) (लु० क०)

कुतब—संज्ञा पुं० [अ०] कुत्ता। श्वान। दे० 'कुत्ता'।

कुतबा—संज्ञा पुं० [सुर०] कुत्ता। कुक्कुर। श्वान।

कुतबाना—(„)

कुतबी—संज्ञा स्त्री० („)

कुतबूस—संज्ञा पुं० [सुर०] सरव्स। पंखराज। रजतपत्री। कील दारू। हंसराज भेद।

कुतम—संज्ञा पुं० [अ०] पुराने दुम्बे का मांस। (लु० क०)।

कुतमीर—संज्ञा पुं० [अ०] जंगली भंग। अरण्यज विजया। (सिद्धि)।

कुतम्बीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोनापाठ। श्योनाक।

कुतरना—संज्ञा पुं० [?] शीशा।

कुतरब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) जल भौरा। जल-भ्रमर। पौड़-किया। यह एक प्रकार का कृष्ण वर्ण का कृमि है जो जल

के ऊपर इधर-उधर, आगे-पीछे शीघ्रतापूर्वक भागा करता है। इसको जोलाहः भी कहते हैं। (२) माली खोलिया का एक प्रकार जो उन्माद में वर्णित है। 'दे०' उन्माद'।

कुतर बीलयः—संज्ञा पुं० [अ०] मद्य का एक प्रकार।

कुतरान—संज्ञा पुं० [अ०] कतरान। सरवीन नामक वृक्ष का तेल। देखो—कतरान।

कुतरान—संज्ञा पुं० [अ०] अलकतरा।

कुतरान-माददनी—[अ०] 'दे०—कतरान'।

(Pix Liquid)

कुतराय—संज्ञा पुं० [?] कबर। करील भेद।

कुतरी—संज्ञा स्त्री० [को०, पं०] (१) अपामार्ग (मे० मो०)। (२) (गु० काठियावाड़)। कुतरीघास (Sctariaglenca) (३) कतरी घास (नि० आ०)

कुतरुना—संज्ञा पुं० [?] निशोथ। त्रिवृत्त। (डाइमांक भा० २ पृ० ५२७)।

कुतरुही—संज्ञा स्त्री० [?] बथुआ। वास्तुक। ककरोहन।

कुतरे बांदरे—संज्ञा पुं० [म०] क्षिप्ररोट।

चिरियारी। चिटकी। (बं०) वनओका। (Trimetta Rotundifolia)।

कुतला निम्बु—संज्ञा पुं० [हिं०] बीज पूर। विजौरा।

कुतलुब—संज्ञा पुं० [शामी] कातिलअव्यः। (म० अ०, मो० आ०)। दे० 'कुतलुब'।

वक्तव्य—कुतलुब का उपयोग यूनानी चिकित्सा-शास्त्र में कुतुख नाम के उन्माद में होता है, अतः उसी के नाम पर इसका नामकरण किया गया है।

कुता—सं० स्त्री० [अ०] लवा पक्षी। संगखारः। (लु० क०)।

कुताभा—संज्ञा पुं० [अ०] मिष्ठान्न। शकरपारः। (लु० क०)

कुतात—संज्ञा पुं० [अ०] लवा पक्षी।

कुताफ़—संज्ञा पुं० [अ०] संवसः। पोई। उपोदकी (मख० अ० वे०)।

कुताबा—संज्ञा पुं० [रुमी०] जंगली बेल का एक प्रकार।

कुतमबूस—संज्ञा पुं० [सुर०] सरख्स। (बं०) पंखराज। 'कील, दारू'।

कुतामयून—संज्ञा पुं० [सुर०] मिश्केतरामशी। पहाड़ी पुदीना।

कुतामी—संज्ञा स्त्री० [अ०] शकर-नबीज। अंगुरी शकर।

कुतायफ़—संज्ञा पुं० [अ०] पूरिका। पूड़ी घृताक्त आपूप। रोगनी रोटी। तथा रोटी का अन्य भेद। (लु० क०)।

कुतायस—संज्ञा पुं० [?] प्याज। पलाण्डु॥

कुतार—संज्ञा पुं० [अ०] बघार की गन्ध। दाल छौंकने की गन्ध। घृत वा तेल के जलने की गन्ध।

कुताला—संज्ञा पुं० [?] दरदार। (लु० क०)।
 कुतालीस—संज्ञा पुं० [यू०] प्याज। असिल।
 कुतातास—संज्ञा पुं० [अ०] मुअही अजगावलमुही।
 कुतित्तिरि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] तित्तिर पक्षी विशेष।
 जंगली तीतर। (सु० सू० ४६ अ०)।
 कुतिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] कुत्ती, स्त्री, श्वान, मादा कुत्ता, कुती, कुतिया, श्वनी।
 कुतिल—संज्ञा पुं० [हि०] भंडभांड बीज। सत्यानाशी।
 स्वर्ण क्षीर बीज।
 कुतीदा व कुतीर—संज्ञा पुं० [यू०] अहिफेन। अफीम।
 कुतीदाऊस—संज्ञा पुं० [यू०] इलायचो। एला।
 कुतीला—संज्ञा पुं० [?] दरदार।
 कुतीलाल—संज्ञा पुं० [पं०] (अफगानी) लघूनी।
 (मे० मो०)।
 कुतु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चर्म पात्र। (अम०)।
 कुतुन—संज्ञा पुं० [अ०] } कपास। कार्पास।
 कुतुन—(")। }
 कुतुप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] चर्म-पात्र। (बं० कूपो)। (अम०)।
 कुतुम्ब—संज्ञा पुं० (?) द्रव्य विशेष। गूमा
 कुतुम्बा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रोणपुष्पी। गूम
 कुतुम्बिका—(") (रा० नि० व० ६ ध० नि०)
 कुतुम्बुरु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तेन। तिन्दुक। तेन का फल। (श० च०)।
 कुतुरम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष विशेष।
 कुतुर-पुगु—संज्ञा पुं० [ते०] एलुआ।
 कुतुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुरी। (ध० नि०)।
 कुतुरियून—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली ककड़ी। अरण्य कर्कटी।
 (फा०) खयार सहराई।
 कुतुली—संज्ञा स्त्री० [?] द्रव्य विशेष।
 कुतुलीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुथुआ। एक प्रकार का नेत्र पक्षमगत रोग। दे० 'कुकूणक'।
 कुतुना—संज्ञा पुं० [अ०] इसबगोल का पौधा।
 कुतुर—संज्ञा पुं० [अ०] बूंद-बूंद कर जल इत्यादि का टपकाना।
 कुतुरीयून—संज्ञा पुं० [यू०] वन कर्कटी। जंगली ककड़ी।
 खयार सहराई।
 कुतुलीदून—संज्ञा पुं० [यू०] कारस्कर। दे० 'कुचला'।
 कुतुशाहत—संज्ञा पुं० [यू०, अ०] इन्द्रायण। इन्द्रवारुणी लता।
 कुतुस—संज्ञा पुं० [सुर०] सरस्स। रजत पत्री। पंखराज।
 हंसपदी।
 कुतण—संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गन्धतृण।

गन्धेला। गन्धान्तृण (रा० नि० व० ८)।
 (२) जलकुम्भी, कुम्भी। (हारा)।
 कुतफितलय—संज्ञा पुं० [शामी०] कातिल अव्यः। (म० अ०; मो० आ०)।
 कुतमहमा—संज्ञा पुं० [सुर०] इन्द्रायण। हंजल। (लु० क०)
 कुतैफ (फि) तुशम्स—संज्ञा पुं० [अ०, फा०]। द्रव्य विशेष
 कुतैल—संज्ञा पुं० [हि०] कुतिल। भंडभांड। सत्यानाशी।
 (डाइमांक भा० १ प० ११०)।
 कुतैला—संज्ञा स्त्री० [हि०] भंडभांड। सत्यानाशी।
 कुतैल—संज्ञा पुं० (उर्दू०) परिचय—एक वनस्पति जो एक दिता से एक गज तक ऊँची होती है। इसकी एक जड़ से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है। पत्ते आस के पत्तों की तरह और उनसे बारीक और सफेदीमायल होते हैं। पत्तों पर रोंगटे होते हैं।
 उद्भवस्थान—शाम देश और बैतुल मुकद्दस इत्यादि।
 गुण, कर्म तथा उपयोग—उष्णवर्चि एवं रूक्ष हैं। इसके उपयोग से शीतजन्य व्याधियाँ शान्त होती हैं। उत्तम खमीर उठाने के लिए इसको मद्य के संधान में डालते हैं। (मरुजन)।
 कुत्ता—संज्ञा पुं० [हि०] प्रसिद्ध जानवर है।
 पर्याय—(सं०) कुक्कुर। श्वान। सारमेय। (हि०) कूकर। कुक्कुर। (अ०) कल्व। (फा०) सग। (अ०) डाग (Dog)। कुल—शृगालादि।
 मांस-पर्याय—(सं०) श्वान मांस। (अ०) लहसुल कल्व। (फा०) गोस्तसग। परिचय—स्वरूप-श्वेताभ तथा दुर्गन्धयुक्त होता है।
 तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। गुण-कर्म तथा उपयोग—कुत्ते का भ्रूट मांस (भस्म) दुर्गन्ध युक्त तथा अभक्ष्य है; किन्तु भ्रूट यकृत (कलेजा) श्वान-दंश विष का अगाद है। इसकी दग्ध जिह्वा मूत्रप्रणालीगत क्षत (सूजाक) में उपयोगी है। इसको वसा (चरबी) कंठमाला में उपयोगी है।
 हानिकारक—अभक्ष्य एवं उपविष है।
 (उन्मत्त कुक्कुर पागल कुत्ता)
 आयुर्वेद के अनुसार—श्वान, शृगाल (गोदड़) रीछ, व्याघ्र तथा अश्वतर (सत्तर) इत्यादि जीवों के शरीर में जब वात, कफ प्रदुष्ट हो कर उनकी संज्ञावहशिराओं में व्याप्त होते हैं तब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उनकी पूँछ सीधी हो जाती है। उनके जबड़े (हनु) तथा कंधे की पेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं। मुख द्वारा लाला स्राव निरन्तर होने लगता है और अत्यन्त वधिर तथा अन्धा-सा हो कर प्राणियों को काटने के निमित्त उनका पीछा करते हैं।

दंशस्थान के लक्षण—दंश-स्थान में जब विष व्याप्त हो जाता है, तब वह स्थान स्वाप युक्त हो जाता है और सूची इत्यादि के चुभाने पर पीड़ा प्रतीत नहीं होती। दंश स्थान से काला रुधिर का स्राव होता है। अन्य लक्षण विपाक्त शस्त्र तुल्य होते हैं। दृष्टव्यक्ति की चेष्टा श्वान तुल्य हो जाती है अर्थात् कुत्ता की भाँति भूँने लगता है और जल देव कर भयभीत होता है और जल में उसको अन्य कुत्ते का स्वरूप दिखाई देता है। अतः देख-देख कर हट जाया करता है। दर्शन में भी उसको कुत्ते का दर्शन होता है। उक्त लक्षणों को प्राप्त होने पर रोगी असंध्य हो जाता है।

चिकित्सा—पति शीघ्र दंश स्थान से रुधिर निकलवा कर, तत्काल ही संतप्त घृत से दग्ध करें और पुनः घृत का पान कराएँ अथवा श्वेत पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण ग्रहण कर उसमें काले धतूरे के पत्तों का स्वरस मिश्रित कर नस्य देवें। अथवा आक के दूध में चावलों को भिगो कर शुष्क कर लेवें और वारीक चूर्ण निर्माण कर नस्य देवें। इसी प्रकार तिल तैल, वा गुड़ तथा अर्क-क्षीर का भी उपयोग हितकर होता है। अथवा अन्य उपाय निम्न हैं—

(१) सरफोंका की जड़ १० माशा, धतूर की जड़ ५ माशा, चावल १ छटाँक, एकत्र जल में पीस कर गोला बनाएँ और उस पर ६-७ पत्र धतूर का लपेट कर पुट पारु करें और आवश्यकतानुसार दृष्ट व्यक्ति को भक्षण कराएँ।

(२) सिहोर वृक्ष की ४० पत्तियों को ग्रहण कर २० दाना काली मिर्च के साथ पीस कर पानार्थ देवे। इसके उपयोग से दृष्ट व्यक्ति के मूत्र के साथ शूकर के आकृति के कृमि निर्गत होते हैं और पुनः विष का प्रकोप नहीं होता।

उपर्युक्त द्वितीय विधि का अयलम्बन तीन या पाँच दिन के पश्चात् उसकी मात्रा घटा कर आधी कर देना उचित है। इसके उपयोग से विष का प्रकोप जो स्वतः उत्पन्न होता है, उसके पूर्व ही विष प्रकोप का लक्षण उत्पन्न होकर विष निःशेष हो जाता है। इसके विरुद्ध स्वयं कुपित हुआ विष प्राणनाशक होता है। (सुश्रुत)।

वक्तव्य—आधुनिक प्रणाली में प्रयुक्त ऐण्टीरेट्रिट सीरम का उपयोग निरापद सिद्ध हुआ है और इससे निश्चित रूप से लाभ होता है। अतः अतिशीघ्र अर्थात् १० दिन के अन्तर्गत ही रोगी को श्वान-विष चिकित्सालय में प्रवेशकर लाभ उठाना उचित है।

कुत्तान—संज्ञा पुं० [अ०] मयक। मच्छड़।

कुत्ताल्लमान्—संज्ञा पुं० [अ०] सेवार। काई।

कुत्ते के जीभ का पत्ता—संज्ञा स्त्री० द० [हिं०]

कुत्ते के जीभ की सेंउ— " ["] थूहर। सेंहुँड़।

कुत्तन—संज्ञा पुं० [अ०] कपास। कार्पास। (लु० क०)।

कत्मीर—संज्ञा पुं० [अ०] वन विजया। अरण्य सिद्धि। जंगली भाँग।

कुत्तन्ता—संज्ञा पुं० [अ०] भूरा रंग (Brown colour)

कुत्र—संज्ञा पुं० [अ०] चिन्ह विशेष। प्रतीक। तरक। फासिला, पार्श्व। अलतार सलासः। शरीर के तीन फासिलों में से कोई एक फासिला (दूरी)। वह चिह्न (खत) जो गोलक के केन्द्र से निकले तथा उसको दो भागों में विभक्त कर देवे। (अं०) डाइमेंशन (Dimension), डायमीटर (Diameter)

कुत्रा—संज्ञा स्त्री [हिं०] आम्रगन्धा (Limnop Rita Gretioides)

कुत्र्योचसूत—संज्ञा पुं० [म०] भूछत्रिका। कुरुरछाता। साँप की छतरी।

कुत्तुब—संज्ञा पुं० [अ०] वृक्ष विशेष।

पर्या०—कुत्तुब—(अ०, श्या०)। क्रातिल अव्यः, (अ०)। मतरदियः مطردیه (स्पेन, अजमी)। असाउद्दव عصى دلذب कोमारीस, कोमारूस, बाकूला (यू०)।

नक्राव—कुद्स। (फल) जनियुल अहमर।

वर्णन—एक प्रकार का पेड़ जो बिही के पेड़ की तरह होता है। इसके पत्ते बिही के पत्तों से बहुत कोमल और उनसे छोटे भी होते हैं। फल आलूबुखारे के फल की तरह और बीजरहित होता है। (बच्चा फल हरा) पक कर केसरिया, रक्त और याकूती पड़ जाता है। यह मीठा और सुगंधित होता है। यह किंचित कषाय भी होता है। इसमें गुठली नहीं होती। चूसने के उपरांत घास की तरह वारीक सीठी शेष रह जाती है। (मखन)। इसकी शाखाएँ वेदसादा की शाखाओं की तरह होती हैं। पेड़ी कुछ अधिक मोटी नहीं होती। छाल सुखीमायल होती है और उस पर दरारें होती हैं। फूल सफेद होता है। (सुहीत)। इब्न जुलजुल के मत से इसे क्रातिल अव्यः इस कारण कहते हैं कि इसके अगले फल अभी पकने भी नहीं पाये कि दूसरे लग जाते हैं (अथवा अगला पेड़ अभी पकने वा पूरी वाढ़ को पहुँचने नहीं पाता कि दूसरा नया पैदा होने लगता है)। फल खरीफ में बलूत के साथ पकते हैं। इसका गोंद कम मिलता है।

प्रकृति—प्रथम वा द्वितीय कक्षा में शीतल और रुक्ष।

गुणकर्म तथा प्रयोग—(फल) यह सांघातिक विषों का अगद है, आँख पर इसके प्रलेप से नजले का पानी साफ हो जाता (पक जाता) है। मस्सों (सालील) और फोड़ों में इसका काढ़ा कर के पीने से उपकार होता है और इससे सूजन भी उतर जाती है। इसी प्रकार गुदशूल और गर्भाशयिक शूल में इसके पत्तों के लेप और पत्र-क्वाथ से तरेड़ा (नतूल) देने से उपकार होता है। इसके

पत्र-चूर्ण के अवचूर्णन और पत्र के प्रलेप करने से आद्र-व्रण शुष्क हो जाते हैं और मस्से और अग्निदग्ध में उपकार होता है। फल आमाशय को हानिप्रद और शिरोशूलोत्पादक है। गर्भवती स्त्री को इसका गोंद खिलाने से गर्भस्रावादि का भय जाता रहता है। इससे अर्श में भी उपकार होता है। इसकी धूनी से जादू और झाड़-फूंक आदि का प्रभाव छू-मन्त्र हो जाता है। (मखन)। गोलानी के अनुसार ९ मा० इसकी मीठी (तुख्म) खाने और लगाने से मस्से शिथिल पड़ कर गिर जाते हैं। कंठमाले पर इसका पत्र-स्वरस गुलरोगन में मिला कर लगाने से उपकार होता है। पित्तज शोथ में (वर्म हुमरा) में भी उक्त प्रयोग लाभकारी है। इसके पत्र-स्वरस के गण्डूष (मज्जमज्जा) से मसूढ़ों का जख्म भर जाता है। इसके पत्तों को बारीक पीस कर सूंधने से अपस्मार रोग नाश हो जाता है। जालीनूस के मत से यह (खफ़ान) और श्वास में लाभकारी है। इसके काढ़े में स्त्री को बिठाने से गर्भाशय से रक्त-स्राव बंद हो जाता है। इसकी सूखी पत्ती पीस कर और सम भाग शर्करा मिला कर उसमें से १०॥ मा० तीन दिन तक निरंतर नोहार खाने से अतिसार भेद (इस्हाल जरीअ) आराम हो जाता है। इसके पत्तों को पीस कर लेप करने (और काढ़ा कर के पीने से) कृष्ण सर्प-दंश में असीम उपकार होता है। (मुहीत)।

कुत्सम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठ। (रा० नि० व० १२)। दे० 'कुट'

कुत्सला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नीली। नीली।

कुत्स शिम्बी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कुत्सा— „ [„] रक्त निष्पाव। लालसेम। रक्त शिम्बी।

कुत्सित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रोहिष तृण भेद। बड़ी तिखाड़ी। बड़ा रोहासा। दीर्घ रोहिष। (वै० निघ०)। (२) कुष्ठ (रा० नि० व० १२)। दे० 'कुट' (३) भ्रष्ट।

कुत्सितशालमली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण शालमली वृक्ष। काले फूल का सेमल।

कुत्सिताङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सारिका। गोरटिका पक्षी। मैना। (ध० नि०)।

कुत्सिताम्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम्ब वृक्ष। (वा० सू० १५ अ०)।

कुय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दर्भ। कुशा (प० मु०)। (२) कंथा। कथरी। (३) एक कीट (कीड़ा)।

कुया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुशा। दर्भ। (प० मु०)।

कुथित—वि० [सं० त्रि०] पूति युक्त। पूयमय। पीप मिश्रित। (व०) पचा। (सु० वि० १९ अ०)।

कुथिया—संज्ञा स्त्री० [देश० इटावा] दे० 'करोनी'।

कुथुआ—संज्ञा पुं० [हि० सं० कुकूणक] (१) नेत्र रोग जो प्रायः शैतवास्था में बालकों को होता है। (२) एक वनस्पति। दे० 'करोनी'।

कुदई—संज्ञा स्त्री० [सं० कोदव] कोदों धान्य।

कुदका—संज्ञा स्त्री० [वम्ब०] नन्दी वृक्ष। दे० 'तून'।

कुदरत—संज्ञा पुं० [अ०] रंग विशेष। तैरगी रंग। रंग बदल कर किंचित् श्याव वर्ण का हो जाना।

कुदरत्—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) प्रकृति। मूल प्रकृति। (२) वह शक्ति जिसके द्वारा प्राणी किसी कार्य के करने तथा न करने को उद्यत होता है।

कुदरत तथा कुव्वत का अन्तर—किसी कार्य को करने तथा न करने को—'कुदरत' कहते हैं और किसी स्वाभाविक कार्य (अञ्जाल शक्तियः) में से किसी कार्य को स्वेच्छानुसार कर सकने को 'कुव्वत' कहते हैं।

कुदरती—वि० [अ०] (१) प्राकृतिक। स्वभाव-जन्य। (२) (अ०, फा०) साँप को छतरी। कुकुरमुता धरती का फूल। चतरमार। (सं०) भूजलिका। फेनछत्र। खुमी। (लु० क०)। देखो-'खुमी'।

कुदरप-दुक्कु—संज्ञा पुं० [ता०] जंगली बादाम। वन वाताम। वाइल्ड आमंड (wild Almond)

कुदरी—संज्ञा स्त्री० [व०] तरली। टिन्हेरिया (Tihneria) (डाइमांक भा० २ पृ० ८९)

कुदलि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) अश्मन्तक वृक्ष। एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो 'परसिद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। (२) कोइलार (कोविदार) जंगली कचनार। (२० मा०, रा० नि० व० ९, १०)। (३) आरग्वध। अमलतास। (वै० निघ०)। (४) कोदव। कोदई। धान। (प० मु०)।

कुदलोप—संज्ञा पुं० [कना०] चणक। चना। हरिमन्थ।

कुदल्लु—संज्ञा पुं० [सि०] जलायुका। जोंक। (Leech) (मो० श०)।

कुदार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्मन्तक। दे० 'कुदलि'।

कुदारी—संज्ञा स्त्री० [व०] गुंठी। गुमथी। झिनेरिया अम्बिलेटा (Jehneria umbellata)।

कुदाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं० भा०] दे० 'कुदार'।

कुदालिया—संज्ञा पुं० [उ० प० भा०] वृक्ष विशेष। सिसमे-डिअम् टर्बेरम् (Sismadiu n Turbarum)। (मे मो०)।

कुदाह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शाकपत्रादि के मूडु शृंग (कौपल)। (२) मक्षिका। मक्खी। कदूह। (लु० क०)।

कुदाह मरियम—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कदःमरियम। जटाधारी। (२) हैउल् आलम। (लु० क०)।

कुदाही—संज्ञा स्त्री० [अ०] पक्षियों के पंख।
 कुदिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्रीहि धान्य।
 (ध० नि०)।
 कुदिर-पुल्लु—संज्ञा पुं० [मल०] चोर पुष्पी। अंधाहुली।
 (मे० मो०)।
 कुदी-मतकुदी—संज्ञा स्त्री० [बं०] झाड़ विशेष। सीक्वेटे-
 रिया-हर्बसिलेटा (Phycthatria Herbaceolata)
 कदीमा—संज्ञा पुं० [हिं०] कुम्हड़ा। काशोफल। कुष्माण्ड।
 कुदीरे-पालयाषाणार—संज्ञा पुं० [ता०] (इं० मे० मे०)।
 दे० 'मैनशिल'।
 कुदु-तल्ल—संज्ञा पुं० [फा०] कड़आ तुम्बा। तितलीकी
 तिकतअलाव।
 कुदुमिरिस—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली कालीमिर्च।
 कुदु (डु) मिरिस वेल—संज्ञा स्त्री० [सि०] जंगली काली
 मिर्च की वेल। (डाइमॉरुभा० १ पृ० २६०)। दे०
 'काञ्चनफल'।
 कुदूरत—संज्ञा पुं० [अ०] (२) दुष्टता। दे० 'कुदरत'।
 कुदूरु-च-कन्द—संज्ञा पुं० [म०] केउआँ। केमुक। (बम्बई)
 कुदेह (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुत्सित देह। (२)
 महाशाल वृक्ष। (बै० निघ०)।
 कुदाम्—संज्ञा पुं० [अ०] सामने। संमुख।
 कुदामी—वि० [अ०] आगे का। सामने का। संमुखवर्ती।
 कुदाल (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिरि काञ्चन।
 जंगली कचनार। दे० 'कचनार'।
 कुदाह—संज्ञा पुं० [ता०] (१) अश्मन्तक वृक्ष। (२) समुद्र-फल।
 कुद्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भीत। दीवार। कुड्ड। (अ०
 टो०)।
 कुद्रङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गृहविशेष। मंच। मण्डप।
 कुद्रङ्ग— " ["] }
 कुद्रत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कुदरत'।
 कुद्रव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
 कुद्रवल— " ["] } कोदो। कोदई। दे० 'कोद्रव'।
 कुद्रोम—संज्ञा पुं० [पं०] रेवड़ी। पलूदर। मोतीपाना।
 (पंजाब-झेलम नदी)।
 कुधर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पहाड़। पर्वत। गिरि। (रा०
 नि० व० २)।
 कुधानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुदर्शन। सुखदर्शन।
 नागिन का पत्ता।
 कुधान्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तृण धान्य। क्षुद्र धान्य।
 कुधान्य वर्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षुद्रधान्यसमूह।
 यथा—कोरदूष। श्यामाक। नीवार। शान्तनु। तुवरक।
 उदालक, प्रियंगु। मधूलिका, नन्दीमुख। कुरुविन्द
 गवेधुक। वरूकोदपर्णी। सुकुन्द। वेणुज प्रभृति।
 गुण—रूपाय, मधुर, रुक्ष, कटुपाकी, श्लेष्मघ्न, स्राव

रोधक, वात-पित्तन प्रकोप कारक है। (सु० सू० ४६,
 अ०)। वातादिप्रकोप कारक तथा शीतल है। (रा० नि०
 व० १५)।
 कुधियातकियाबागा—संज्ञा पुं० [?] कालासंकरू।
 (मे० मो०)।
 कुधन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पहाड़। पर्वत। गिरि। (हे०)।
 कुनक—संज्ञा पुं० [फा०] छुहाड़े की खुशा। खज्जूर शिखा।
 पारेवत फल शिखा।
 कुनख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] क्षुद्र रोग का एक भेद।
 लक्षण निदान—वात-पित्त के अल्प दोष से यदि नखों
 में कठोरता उत्पन्न हो जाय तो उसको 'कुनख' कहते हैं।
 (मा० नि०)। दे० 'चिप्प'।
 मतान्तर से काष्ठादि के आघात से प्रदुष्ट नख यदि रुक्ष
 श्वेत तथा खुरदरा हो जाय तो उसको भी 'कुनख' कहते हैं।
 चिकित्सा—इसकी चिकित्सा कफज विद्रधि के समान
 की जाती है। अथवा भजित सुहागा नखों पर लगाने से
 लाभ होता है। (भा० म० क्षुद्र रोग चि०)।
 कुनखी—संज्ञा वि० [सं० त्रि०] कुनख रोग से पीड़ित रोगी।
 कुनज—संज्ञा पुं० [फा०] कलौजी। उपकुञ्चिका। मगरैला।
 कुन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पृथुशिम्बी। सोनापाठा।
 श्योणाक। (रा० नि० व० १)। (२) पीतलोध।
 कुन्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मनःशिला,
 मैनशिल। (Red Arsenic)। (रमा०)। (२)
 धान्यक। धनियाँ। (३) नेपाल देश में उत्पन्न होने
 वाली मैनशिल। (भरत०) 'नेपाल देशजमनः शिलायाम्'।
 कुन्दयादिलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योग
 जिसमें मैनशिल प्रधान द्रव्य है।
 कुन्डी—संज्ञा स्त्री० [ता०] गुञ्जा। घुँघची।
 कुनोय—संज्ञा पुं० [बर०] पान। नागवल्ली। (मे० मो०)।
 कुनरू—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दूरी] फलशाक विशेष। पर्याय—
 (सं०) बिम्बा। बिम्बजा। बिम्बिका। बिम्बी, बिम्बोष्ठा।
 तुण्डिका। तुण्डिकेरी।
 (हिं०) कुनरू, कन्दूरी, (बं०) तेल कुचा; (गु०)
 घोली; (म०) रान टोण्डल; (ता०) कोवै। (ते०)
 काकी तोण्ड; डोण्डतिगा। (कना०) टोण्डे-कोण्डे;
 (ले०) सिफालेंड्रा इण्डिका Cephalandra Indica
 कुल—पटोलादि Cucurbitacea.
 उद्भवस्थान—भारतवर्ष में इसकी कृषि होती है और
 वन-उपवनों में भी स्वयं उगती है।
 परिचय—सुप्रसिद्ध लता है जो वृक्षादि पर चढ़ती है।
 इसकी पत्तियाँ पटोल पत्रवत् होती हैं, किन्तु अत्यन्त
 चिकनी होती हैं। पुष्प श्वेत तथा फल पटोलफलतुल्य
 होता है और सुपक्व फल अत्यन्त सुन्दर रक्त वर्ण का
 होता है। स्वाद किञ्चित् अम्ल होता है। पटनादि में

कुनरू की अधिक कृषि की जाती है। जंगली कुनरू का स्वाद कटु होता है। मीठे कुनरू का उपयोग तरकारी के रूप में अधिक होता है।

उपयोगी अंग—मूल, पत्र, फल और त्वचा। **रासायनिक संगठन**—इसके मूल में निय्यास (गोंद), शर्करा, क्षार, स्टार्च, चरबीला पदार्थ, ऑर्गेनिक एसिड तथा भस्म १६ प्र० श० होती है।

गुण-कर्म—फल—मधुर, अम्ल, शीतल, दीर्घप. की लेखन, मलस्तम्भक, विवन्ध-आध्मानकारक, रुचिप्र. वात, पित्त तथा रक्तविकार नाशक और पुराण के अनुसार वृद्धिनाशक है। सुश्रुत के मत से यह दुग्ध-उत्पादक, कफपित्तनाशक, तृषा, दाह, ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास तथा क्षयरोगनाशक है। (सु० सू० ४६ अ०)।

मूल—मतान्तर से उत्तम विरेचन, पत्र तथा तना आक्षेप-नाशक एवं कासघ्न है।

उपयोग—कुनरू की जड़ का स्वरस सेवन करने से बहुमूत्र, चर्मरोग, विद्रधि तथा रक्तविकार शान्त होता है। पत्रस्वरस में घृत मिश्रितकर लगाने से चर्मरोग तथा फुंसियों का निकलना बंद होता है। पत्तियों को पीसकर फुंसियों पर लगाने से उपकार होता है। पत्रस्वरस में मिश्री तथा कृत्या मिश्रितकर सेवन करने से पूयमेह (सूजाक) नष्ट होता है। इसके पत्तों का स्वरस पान करने से विषैले जन्तुओं का विष नष्ट होता है और स्वरसपान से पसीना का अधिक आना बंद होता है। इसके पत्र तथा शाखाओं का क्वाथ सेवन करने से प्रतिश्यायजन्य कास का नाश होता है। इसके पत्र-स्वरस में तेल पचाकर लगाने से दद्रु, कण्डू (खुजली) तथा विविध प्रकार के चर्मरोगों का नाश होता है। इसके पत्रांगों का अरिष्ट (टिचर) पूयमेह में हितकर है।

मात्रा—१ भाग १० भाग जल द्वारा निर्मित टिचर १ से १ ड्राम तक।

क्वाथ—पत्र तथा तना निर्मित (१ भाग १० भाग जल द्वारा) १ से १ औंस तक। **त्वचा**—चूर्ण—२ माशा। **मूल-स्वरस पानार्थ**—१ से २ ड्राम तक। दे० 'कंदूरी'।

कुनरू फल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुनरू' तथा 'कंदूरी' फल।

कुनलई—संज्ञा पुं० एक प्रकार का काँटादार वृक्ष।

कुनली (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] अगस्तिया। अगस्त का वृक्ष। वक वृक्ष। (त्रिका०)। (बं०) वाकस गाछ।

कुनसुंग—संज्ञा पुं० [लेपचा०] फरसिया। (मे० मो०)।

कुनह—संज्ञा पुं० [फा०] अपामार्ग। चिरचिटा।

कुनह-कुनह—संज्ञा पुं० [फा०] सिकोना जिसके द्वारा क्वीनीन प्रस्तुत की जाती है। दे० 'सिकोना'।

कुनः—संज्ञा पुं० [अ०] गुण, माहि्यत, हकीकत, दव्या-श्रित गुण-धर्म।

कुनाण—संज्ञा पुं० [फा०] कोशा। रेशम।

कुनानी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सेंधी। तालरस। ताड़ी। (मो० श०)।

कुनाविरी—दे० 'कुन्नावरी'।

कुनाभि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) निकट।

समीप। (हे० च०)। (२) वातमण्डल। (त्रिका०)।

कुनार—संज्ञा पुं० [फा०] बदर। बदरी। बेर।

कुनारी—संज्ञा स्त्री० [सुर०] जंगली बेर। वन बदरी। संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुष्ट स्त्री।

कुनाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल। कोकिला।

कुनाला—संज्ञा स्त्री० [हि०] सकवीनज। कंदल (Sagopenum)।

कुनालिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल। कोकिला।

कुनाशक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] दुरालभा। जवासा। रक्तयवास। लाल फूल का जवासा (हिगुआ)। (ध० नि०)।

कुनास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्ट्र। ऊँट।

कुनि—संज्ञा स्त्री० [उ० प० भा०] चिरफल। (मे० मो०)।

कुनिआ—संज्ञा पुं० [कुमायूँ] खरहर। खेन। (मे० मो०)।

कुनीन—संज्ञा पुं० [अ० क्विनीन Quinine] यह सिकोना द्वारा प्राप्त एक सत्व है, जो खेतवर्ण का तथा स्वाद में अत्यन्त तिक्त रसमय होता है। **गुण-कर्म**—तिक्त, उष्णवीर्य, अरुचि-नाशक, कफ की उल्वणता से उत्पन्न प्रतिश्याय, एवं कफज ज्वरनाशक तथा विषमज्वरों में उपयोगी है तथा विपाक में तिक्तगुण से शक्तिवर्धक है। इसके अतिरिक्त स्ववीर्य एवं स्वप्रभाव से कालाज्वर तथा अन्य प्रकार के ज्वरों में भी इसका उपयोग हितकर है। उष्ण-वीर्य होने से यह उष्णप्रकृति के व्यक्तियों की प्रकृति के विरुद्ध होता है। अतः इसके उपयोग काल में शीतल उपचार करने से उक्त दोष का प्रतिकार होता है। अर्कबेदमुश्क, गुलाबजल तथा उशीर का क्वाथ भी इसके दुर्गुणों का प्रतिषेधक हैं। क्वीनीन (Quinine) के कतिपय योग हैं जो विविध प्रकार के मलेरियाई ज्वरादि में व्यवहृत होते हैं। दे० 'सिकोना'।

कुनीली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तैरणी। (रा० नि० व० ४)।

कुनेला-मोड—संज्ञा पुं० [बर०] अपामार्ग क्षुप।

कुनैन—संज्ञा पुं० [अ० क्विनीन Quinine]

पर्याय—(हि०) किनाकिन; (अ०, फा०) कुनः कुनः; (अ०) क्विनीन सल्फास (Quinine sulphas)। इसका उपयोग कफोल्बण ज्वरों में जो प्रायः ऋतुज ज्वर (विषम ज्वर) के रूप में उत्पन्न होते

हैं, हितकर होता है। अधिक मात्रा में इसका प्रभाव विषैला होता है अर्थात् कानों में भनभनाहट, हृदय-नसाद आदि दुर्गुण उत्पन्न होते हैं। इसकी मात्रा २ से १० ग्रेन की होती है, किन्तु अत्यल्प मात्रा में सेवन से बल की वृद्धि होती है और रोगादिजन्य दुर्बलता का नाश होता है। यह मलेरियाज्वर की अव्यर्थ औषध है। किसी डाक्टर का कथन है कि जिसकी चिकित्सालय में कुनैन का उपयोग न हो, उसको अपनी चिकित्सालय से कोई लाभ होना असम्भव है। तात्पर्य यह है कि कुनीन के बिना उन्हें कभी सफलता प्राप्त न होगी।

विलेयता—यह जल में अविलेय है, पर शोरकाम्ल, लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) में शीघ्र ही विद्रावित होता है। इसका प्रधान मिश्रण जो विषमज्वर में शीघ्र प्रभाव करता है, निम्न है—

क्विनीन सल्फ—१५ ग्रेन।

एसिड सल्फ—४० बूंद।

मैंगसल्फ—४ ड्राम।

फेराई सल्फ—५ ग्रेन।

लाइकर स्ट्रिकनीन—२० बूंद।

परिस्तुत जल—२ औंस।

एकत्र मिश्रितकर इसमें उत्तम अर्कगुलाब १ औंस, अर्क वेदमुश्क २ औंस, और अर्ककेवड़ा दो औंस मिश्रित करें। पुनः इसको १० भागों में विभाजितकर उपयोग में लाएँ। इसका उपयोग विषमज्वरों में जब ज्वर न रहे अर्थात् ज्वर आने से पूर्व २-२ घंटा के अन्तर से सेवन कराने से ज्वर की पारी रुक जाती है। किन्तु १ सप्ताह पर्यन्त सायं-प्रातः १-१ मात्रा देनेसे पुनः आक्रमण का भय दूर होता है। उक्त योग का उपयोग जो प्रायः एलोपैथी चिकित्सकों द्वारा कराया जाता है, निरापद एवं हितकर है; किन्तु जिन ज्वरों में स्वेद का अभाव होता है, उनमें कुनैन का उपयोग विफल होता है। (लेखक)। दे० 'सिकोना'।

कुनैननिःस्वाद—संज्ञा पुं० [हिं०] मीठा कुनीन। स्वाद-विरहित कुनीन। स्वीट क्विनीन। यह क्विनीन का ही एक भेद है जो प्रायः बालकों को ज्वरनिमुक्तकरण में उपयोगी है।

कुनः कुनः—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] दे० 'सिकोना'।

कुन्कु—संज्ञा पुं० [हिं०] झाड़ विशेष।

पर्याय—(हिं०) केसरी, चोपड़ा, पापड़, गुली, रंग चूल, बारफली, सिखी;

(अ०) बितरपेश Bitter-ash, डॉग-वूड (Dog-wood), पेग-वूड (Peg-wood), इण्डियन एरो-वूड (Indian Arrow-wood), प्रिक-वूड (Prick-wood), बर्निंग बूश Burning bush, स्ट्रॉबेरीट्री (straw-berry tree),

स्केवर वूड (skewer wood), स्पिडिल वूड (spindle wood); (फ्रांस०) फुसेन (Fusain); (जर०) स्पिडिल-वाम (Spindle baum); (ले०) यूऑनिमस् एथोपारपर्कस् (Euonymus Athoparpurcus B. P.)।

उद्भव स्थान—समशीतोष्ण हिमवती पर्वत, नीलगिरि, पश्चिमी प्रायद्वीप तथा छाया एवं शैत्य प्रधान प्रदेश इत्यादि।

उपयोगी अंग—मूल और त्वचा।

रासायनिक संगठन—इसकी त्वचा में कषायिन (Tannin), क्षारत्वविहीन शर्करा, निर्यास (गोंद), सिक्थ, अण्डलाल (मण्ड), स्थिर तैल, गोधूम सारवत् सत्व (starch), शिविकाम्ल (Anonic acid), एस्पराजिन (Asparagin), एट्रोपपर्पूरीन (Atroparpurin), यूऑनीमीन (Euonymin) तथा १४ प्र० श० भस्म होती है।

विलेयता—उक्त द्रव्याश्रित यूऑनीमीन नामक द्रव्यांश जल, मुरासार तथा ईथर में द्रवीभूत होता है।

मात्रा तथा निर्मित कल्प—सत्व—१ से २। रस्ती। जल-अविलेय सत्व १ ड्राम (३० रस्ती); अरिष्ट (टिचर) १ भाग ५ भाग की १०-४० बूंद; एक्स्ट्रेक्ट यूनिमि सिक्कम् (Eunymi Siccum B. P.) और यूनीमीन १ से २ ग्रेन।

गुण-कर्म—उत्कलेशक, वामक, विरेचन, मूत्रल, बलप्रद, यकृदुत्तेजक, कीटघ्न तथा पयिहारक है।

उपयोग—इसके सेवन से प्राकृत कोष्ठवद्धता, जलोदर, फुफुसावरणविकृति, उदररोग, यकृतरोग, अजीर्ण तथा आध्मान नाश होता है। इसकी त्वचा जल में पीसकर लेप करने से चक्षुप्रदाह शान्त होता है। अजीर्णादि आमाशयिक रोगों में पेप्सीन के योग से अत्यधिक हितकर है तथा आन्तरिक द्रवों का विरेक्कारक है।

प्रतिनिधि—जलापा, रेवन्दचीनी, इन्द्रायण, एलुआ और अरण्यकासनी (अ०) Podophyllin।

कुन्कू—संज्ञा पुं० [हिं०] केसरी। दे० 'कुन्कु'।

कुन्तः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गवेधुक। गरेडुआ। (Coix Barbata)। (२) क्षुद्र जन्तु। कृमि। (विश्व०)।

कुन्तल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुन्तल। केश। बाल। (रा० नि० व० १८)। (२) चषक। प्याला। (३) यव। जौधान्य। (मे० लत्रिक)। (४) उशीर, त्नीवेर, वाला, सुगन्धवाला। (अम०)। (ध० नि०)। (५) हल। लांगल। (त्रि०)।

कुन्तल वर्धन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भृङ्गराज। भांगरा। (वं०) भीमराज। (रा० नि० व० ४)।

कुन्तला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केश। बाल। (ध० नि०)।

कुन्तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुन्तली।

कुन्दुश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] **पर्याय**—(अ०) कुंदश; (फ्रा०) वेखगाजुरान (रजककाष्ठ), कुन्दसः (शः); (सुर०) अदरना; (शीराजी) चोवक उश्नान।

परिचय—एक प्रकार की जड़ है। बाह्य भाग काला तथा आभ्यन्तर भाग पीताभ होता है। इसको चूर्णकर आघ्राण करने से अत्यन्त छींक आती है। नूतन मूल उत्तम होता है। इसमें २० वर्ष पर्यन्त वीर्य रहता है। यह नर्कछिकनी से भिन्न वनस्पति है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है।

गुणकर्म—उग्र छिक्काकारक, मस्तिष्कशोधक, कफ—निःसारक, मूत्रल, आर्तवजनक तथा लेखन है। **उपयोग**—इसे चूर्णकर नस्य ग्रहण करने से—शिरोवेदना, अपस्मार तथा संन्यास का नाश होता है। इसे क्वाथकर सेवन करने से कास-स्वास नष्ट होता है। जल में पीसकर लेप करने से कतिपय चर्म-विकार नष्ट होते हैं। यह नासा-रोगनाशक है।

अहितकर—फुफुस को, मूर्च्छा एवं व्यग्रताकारक है।

निवारण—कतीरा, और ताजा दूध।

प्रतिनिधि—मिर्च और मदनफल मिश्रित कर।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा पर्यन्त। नोट—कुन्दुश छिक्कणी से पृथक् द्रव्य है।

कुन्दुश—संज्ञा पुं० [अ०] पर्या०—कुन्दुश, कुन्दुस—अ०। वीख गाजुरान, कुन्दसः (शः)—(फ्रा०)। अदरना—(सिरि०)।

टिप्पणी—कुन्दसः अर्तनीसा को कहते हैं। इसे शीराज निवासी 'चोवक उश्नान' कहते हैं।

वर्णन—इसहाक-बिन-उमरान ने लिखा है कि यह एक उद्भिद की जड़ है। इसका पेड़ हर्षफ्रबुस्तानी (कंगर) की तरह होता है। उसकी केवल यह जड़ ही औषध में ली जाती है। किसी-किसी के मत से इसके पत्तों का रंग सब्जी व-सफेदीमायल होता है। श्यामदेश में इससे ऊनी वस्त्र धोते हैं। इसकी गंध तीक्ष्ण होती है। यह सावन के क्रोवि पैदा होता है। यह प्रायः जंगली होता है। जड़ (छोटी सी गोल लकड़ी वा कुंदुश) ऊपर से काली और भीतर से पीली वा पीताभ श्वेत होती है। इसमें बीस वर्ष तक शक्ति रहती है। ताजी और तीक्ष्णगंधी उत्तम समझी जाती है। यह विषैली ओषधि है। मरुजन में भी इसी प्रकार उल्लिखित है।

किसी-किसी के कथनानुसार इसकी जड़ को हिंदी में अकलवेर कहते हैं, क्योंकि दोनों में गुणसाम्य और स्वरूप-साम्य पाया जाता है। हकीम अरजानी और अलफाजुल-अदविया के रचयिता ने इसका नाम चोक लिखा है। परन्तु इससे भिन्न अन्य लेखकों ने इस बात का खंडन किया है। उनके मत से चोक इससे एक भिन्न

लकड़ी है। आयुर्वेद के ग्रंथों में इसे स्वर्णक्षीरीमूल लिखा है। भावप्रकाशकार ने इसे हेमक्षीरीमूल लिखा है। यह कुंदुश के समान नहीं होती। किसी-किसी ने कुन्दुश और नर्कछिकनी को अभिन्न माना है। परन्तु यह सत्य नहीं है। क्योंकि नर्कछिकनी एक भूलुण्ठिता एवं पत्र-समन्विता क्षुद्र वनस्पति है और कुंदुश लकड़ी है। इसीलिए कुन्दुश को ऊदुल्लतास (क्षुत्कारक काष्ठ) भी कहते हैं। अलफाजुल-अदविया के रचयिता का ऊदुल्लतास को नर्कछिकनी समझना भ्रमात्मक है। अन्य मत से कुन्दुश और ऊदुल्लतास में भी भेद है। मुहीत के लेखक के अनुसार वह सतरुनियून है। रियाजुल-अदविया में लिखा है कि इसको 'वीख गाजुरी' (रजकमूल) कहते हैं। कारण यह है कि धोबी इससे वस्त्र सफेद करते हैं। वज्जातुल्ल अतिव्वा में लिखा है कि यह एक उद्भिद की डाली है। बुरुहिन के अनुसार शीराजनिवासी इसे 'चोवक उश्नान' कहते हैं और आजरबूया यही है। तमीमी के मतानुसार दीसकूरीदूस ने सतरुनियून संज्ञा से कुन्दुश का वर्णन किया है। हुनैन ने स्वरचित निघंटु-ग्रंथ (मुफ़रदात) में लिखा है कि जालीनूस ने सतरुनियून नाम से कुन्दुश का उल्लेख किया है, परन्तु कुन्दुश इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है (सतरुनियून कुन्दुश नहीं है); यद्यपि दोनों से छींकें आती हैं और एक-दूसरे की जगह प्रयोग की जा सकती हैं अर्थात् परस्पर ये एक-दूसरे की प्रतिनिधि हो सकती हैं। मुहीत के लेखक का सतरुनियून को ऊदुल्लतास समझना भी भ्रमपूर्ण है। जामा के लेखक के निर्णय के अनुसार कुन्दुश का उल्लेख न तो दीसकूरीदूस ने किया है और न जालीनूस ने। सतरुनियून को कुन्दुश वा ऊदुल्लतास मानकर यह कहना कि उन्होंने वर्णन किया है, यह भिन्न बात है।

प्रकृति—तृतीय कक्षांत में उष्ण और रूक्ष है। मतांतर से तृतीय कक्षांत में बल्कि चतुर्थ कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और तृतीय कक्षा के प्रारंभ में रूक्ष है। अन्य मत से चतुर्थ कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और तृतीय कक्षांत में रूक्ष है। कानून के लेखक के अनुसार तृतीय से चतुर्थ कक्षा पर्यंत उष्ण और रूक्ष है। इसका अर्थ यह लगा सकते हैं कि यह तृतीय कक्षांत में उष्ण और रूक्ष है। **अहितकर**—फुफुस को हानिप्रद है एवं आकुलता और मूर्च्छा उत्पादक है। **निवारण**—कतीरा और ताजा दूध।

प्रतिनिधि—समभाग मैनफल तिहाई कालीमिर्च के साथ।

मात्रा—वमतार्थ ६ से १२ रत्ती तक ताजे दूध के साथ। तापतिल्ली और पाण्डु इत्यादि में १२ से २१ जो भर। जहाँ तक हो सके इसका सेवन न करना चाहिये। ७ मासे कुन्दुश खाने से कष्टशोथ विशेष (खुनाक), प्रदाह, तृष्णाधिक्य, बुद्धिभ्रंश और उदरशूल तथा आन्त्रक्षत हो कर रोगी स्वर्ग

सिधारता है। इसका उपक्रम यह है कि दूध और तेल पीकर वमन करें। तीव्र ओषधियों की वस्ति दें। यदि आक्षेप से पीड़ित हो जाय, तो उसका उपचार करे। कोई-कोई हकीम यह कहते हैं कि बुद्धिविभ्रम वा बुद्धिनाश और तीव्र आमाशयिक शूल उपस्थित होने पर यह असाध्य है।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—यह प्रबल क्षुताभिजनक, रक्त और कफ को प्रदहनकारक (मुहुरिक), श्लेष्माछेदक और दुष्टभूत वात वा प्रकुपित वायु (मिरए सौदा) का उत्सर्ग करता है। मसूर बराबर कुन्दुश को रोगन वनफ़शा में मिलाकर नस्य लेने से झर्झरिकास्थि गत अवरोधों का उद्घाटन होता है; नथुनों (खिदाशीम) की वायु और प्रगाढ़ीभूत दोष विलीन होते हैं और छींक द्वारा उनका उत्सर्ग होता है। यह स्वाप, स्पर्शहानि, पक्षावात, अदित और इसी प्रकार अपस्मार एवं स्तब्धता (सक्ता) जनित मूर्च्छा का नाश करता है, सूँघने की शक्ति के नष्ट हो जाने (खशम) और नासादौर्गन्ध्य का निवारण करता है, स्वर को शुद्ध करता है, दृष्टि को तीव्र करता है और रोगन वनफ़शा में मिलाकर नस्य लेने वा आँख में आश्च्योतन करने से रतौंधी को दूर करता है तथा नेत्ररोगों में प्रयुक्त वर्तिकाओं में पड़ता है। रोगनवनफ़शा या अन्य उपयोगी तेल आदि के साथ पकाकर कान में डालने से कान की मैल साफ़ करता है। (इसके तेल की मालिश से बाजू का दर्द) शीतजन्य वेदनाओं का नाश होता है। इसे कान में डालने से क्लेद और शीतजन्य कर्णनाद (तनीन व दवी), कर्णगत वायु और कर्णकृमि का नाश होता है। प्रायः शीतल एवं तर मस्तिष्करोगों में इसके नस्य और प्रधमनादि से महत् उपकार होता है। किंतु उचित यह है कि इसके सेवन से पूर्व शरीर का शोधन कर ले और शरद् ऋतु अथवा उसके लगभग उपयोग करे। वर्द्धित रक्तभार (इस्तिलाय ताम) तथा ग्रीष्मकाल और उष्ण देश में तथा उष्ण प्रकृति, बालक, वृद्ध और कृश एवं निर्बल व्यक्तियों को इसका उपयोग वर्जित है। इससे अत्यंत छींकें आती हैं जो अपने-आप बंद नहीं होतीं। इनके बंद करने का उपाय यह है कि रोगन वनफ़शा का नस्य लें और सिरका एवं गुलाब को वर्फ़ में ठंडा करके उनसे नाक को तर करें। श्वास और कृच्छ्रश्वास में कुन्दुश द्वारा वमन कराने से उपकार होता है। ६ रत्ती (१ दाँग) कुन्दुश ताजे दूध और तिल के तेल के साथ पीने से बड़ी कैं आती है। यह तीव्र रेचक है। इससे प्लीहा की कठोरता जाती रहती है। यह मूत्रल, आर्तवप्रवर्त्तक और गर्भशातक है। इसे शहद में मिलाकर योनि में धारण करने से गर्भपात हो जाता है (गर्भाशय से मृत शिशु के निकालने के

लिए सिद्धीपधि है)। करील अर्थात् कवर की जड़ और जावशीर के साथ वायु वा सौदा का शोधन करता है और वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी का उत्सर्ग करता है। यह प्रबल अश्मरीघ्न है तथा कोष्ठावयवों में गरमी पहुँचाता है। पाण्डु, जलोदर और प्लीहारोग में यह पान और लेप उभय विधि से उपकारक है। शहद के साथ लेप करने से व्यंग (कल्फ), नीलिका और किलास एवं अन्यान्य त्वग् रोग आराम होते हैं। समभाग हड़ताल और जैतून के तेल के साथ लगाने से इन्द्रलुप्त और खालित्य (दाउस्सअलव और दाउल्हयः) के स्थान पर बाल उग आते हैं। आर्द्र और शुष्क कण्डू तथा दद्रु पर इसे सिरके और शहद में मिला कर लगाने से उपकार होता है। इसे सिरके और थोड़े गुलरोगन के साथ लगाने से भी खाज मिटती है। आमवात और गृध्रसी में इसके पान और लेप से उपकार होता है। (मख़्ज़न)।

जालीनूस—इसे सिराजुज्जलाम नाम से अभिधानित करते हैं। क्योंकि यह आमाशय से कफ और संधियों से पिच्छिल श्लेष्मा का उत्सर्ग करता है।

हावी कबीर के लेखक और पुराकालीन हकीमों का यह विश्वास है कि कुन्दुश को कुक्कुटवसा तैल के साथ जिस प्रत्यंग पर लेप करें, वही बाल जम आयेंगे, यहां तक कि हथेली पर भी जम सकते हैं।

यह किलास और नीलिका को दूर करता है तथा तर खाज, दद्रु और त्वचा पर से छिलके उतरने को लाभकारी है। यह गर्भशातक, मूत्रल और अश्मरीघ्न है। इसके लेप करने से प्लीहा की कड़ाई दूर होती है। (खजीरतुल अत्तार)। यह वामक, अत्यंत पिपासाकारक, श्लेष्माछेदक, मस्तिष्क के अवरोधों का उद्घाटक.... है। (मु० ना०)।

श्वास और कृच्छ्रश्वास में कैं कराने के लिए इसकी मात्रा ६ रत्ती से ३ माशे तक है। इसे पीस-छानकर दो-तीन अण्डों की अर्धभृष्ट जर्दी में मिलाकर खायें और इसके ऊपर कुट्टित मसूर वा जौ मिलाकर पकाया हुआ पानी (अर्ध रतल) पियें। व्रणित तर खाज पर इसके साथ सत्तू मिलाकर लेप करें। (मुहीत)।

इसको रोगन वनफ़शा इत्यादि में पकाकर नाक में बुड़कने से मस्तिष्क से कफ छूट जाता है। इसके अभ्यंग से वायु विलीन होती है तथा यह श्वित्र, नीलिका और व्यंग आदि को लाभकारी है। खाज पर इसे मर्दन करने से बहुत उपकार होता है। संधिशूल और आन्ववृद्धि में भी यह लाभकारी है। (खज़ाइन)।

कुन्दुस—संज्ञा पुं० [यू०] जुन्दवेदस्तर।

कुन्दुस—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'कुन्दुश'।

कुन्दुसदराज—संज्ञा पुं० [फा०] ऊदुल उत्तास। छिक्किका मूल। दे० 'कुन्दुश'।

कुन्दुसः—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'कुन्दुश'।
 कुन्दूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुन्दा विम्बा फल।
 कुन्दूरी की बेल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] विम्बालता।
 कुन्देवा (वे) दस्तर—संज्ञा पुं० [फा०] जुन्देवदस्तर।
 दे० 'जुन्देवदस्तर'।
 कुन्देरू—संज्ञा पुं० [शिराजी] अञ्जूरुत। (डाइमॉक)।
 कुन्दगोपुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुन्दुर। (ध० नि०)।
 कुन्दिकम्—संज्ञा पुं० [सि०] लोवान। धूप।
 कुन्द्री—संज्ञा पुं० [वं०] शल्लकीनिर्यास। सलई का गोंद।
 कुन्धिका—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कुम्भिका। जलकुम्भी।
 कुन्धब हिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] भाँग। सिद्धि।
 कुन्धबाय—संज्ञा पुं० [?] विस्तिर्याज।
 कुन्धबीज—संज्ञा पुं० [अ०] सर्प। साँप।
 कुन्धबीत—संज्ञा पुं० [अ०] शामी करनव। (म० अ०, मो० आ०)।
 कुन्धः—संज्ञा पुं० [अ०] धिरोजा। वारजद। (लु० क०)।
 कुन्धब—संज्ञा स्त्री० [अ०] भंग। सिद्धि।
 कुन्धबरी—संज्ञा पुं० [अ०, नव्ती०] शाक भेद। तेल भेद।
 कुन्धुची—संज्ञा स्त्री० [पं०, तिब्बत] चिलगोजा।
 (मे० मे०)।
 कुन्धज—संज्ञा स्त्री० [अ०] साही। शल्यकी।
 कुन्धजा—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्त्री शल्यकी। मादा साही।
 कुन्धः—संज्ञा पुं० [अ०] चतुष्पदों के जननेन्द्रिय की खाल।
 गिलाफ कजीब चारपायः।
 कुन्धअ—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) ऐतुदीक। (२) घुँघची।
 (३) कलिंग। (लु० क०)।
 कुन्धोए—संज्ञा पुं० [वर०] गन्धाधिरोजा। रामगसनोवर।
 चीड़ का गोंद। अ०—आअलकस।
 कुन्धिमा—संज्ञा पुं० [वं०] }
 कुन्धिमा—संज्ञा पुं० [,,] } कुक्शिमा।
 कुप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भारद्वाजनामक पक्षी। (वै० निघ०)।
 कुपक—संज्ञा पुं० [फा०] कुवक। एक पक्षी।
 कुपथ्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अस्वास्थ्यकर पथ्य। पथ्य के विरुद्ध कार्य।
 कुपनस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटहल। पतस वृक्ष। (प० मु०)।
 कुपनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्राह्मी।
 कुपन्ती—संज्ञा स्त्री० [ते०] काकनज। (पं०) टेकारी।
 (वं०) तुलती पाती। (डाइमॉक भ० २ पृ० ५६१)।
 कुपन्ते—[ते०] टेकारी। तुलतीपाती। (अ०) केपगूजवेरी
 (Cape gooseberry)। (इं० मे० मे०)। काकनज।
 कुपमेण्य—संज्ञा पुं० [सि०] द्रव्य विशेष
 कुपवील—संज्ञा पुं० द्रव्य विशेष (Vinca pussila)
 (डाइमॉक भ० २, पृ० ४२४)।

कुपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुपीलु। कुचिला।
 कारस्कर। (ध० नि०, वै० निघ०)।
 कुपाणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] (१) कुता। कुकर। (२)
 टुण्डा, वक्र हस्त। (जटा)। (वं०) कोपा।
 कुपाल—संज्ञा पुं० [क०]। द्रव्य विशेष।
 कुपि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] हरितमंजरी। (वं०) हागापता।
 दे० 'कुपी'।
 कुपित—वि० [सं० त्रि०] कोपयुक्त। विगड़ा हुआ।
 (च० सू०, १२ श्लो०)
 कुपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रव्य विशेष।
 कुपित दोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रकोप को प्राप्त दोष।
 कुपितवातजन्य उदावर्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
 कुपितवातोत्पन्न उदावर्त।
 निदान-सम्प्राप्ति, लक्षण—रूक्ष, कपाय तथा कटु
 भोजनों से कुपित हुआ कोष्ठगत वायु शीघ्र
 उदावर्त को उत्पन्न करता है। कुपित वायु,
 अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, अश्रु (आँसू), कफ
 और मेद को वहन करनेवाली नाड़ियों के मार्ग को अवरुद्ध-
 कर मल को स्तम्भित करती है, तब हृदय वा वस्ति में
 शूल उत्पन्न होता है; हृल्लास, अरति आदि पीड़ा होने से
 मनुष्य का अधोवायु, मूत्र तथा विष्ठा अल्प-अल्प अत्यन्त
 श्रमयुक्त उत्सर्गित होता है और श्वास, कास, प्रतिश्याय,
 दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिकका, शिरोवेदना, भ्रम,
 श्रवण में भ्रम इत्यादि वायुजन्य विकार उत्पन्न होते हैं।
 चिकित्सा—(१) योग—हींग, मधु और सेंधानमक
 एकत्र चूर्णकर घृतयुक्तवर्तिका (वत्ती) निर्माणकर
 घृत से स्निग्ध कर गुदा में धारण करावें। इसको 'विष्ट
 फलवर्ति' भी कहते हैं।
 (२) मदनफलादिवर्ति—मैनफल, पीपल, कूठ, वच,
 श्वेत सर्षप समान भाग में ग्रहण कर दुग्ध में पीसकर
 वर्ति निर्माणकर गुदा में धारण करावें। इससे वायु का
 तथा मल का उत्सर्ग होकर पीड़ा शान्त होती है।
 (३) नाराच चूर्ण—मिश्री ४ तोला, पीपल का चूर्ण १
 तोला, निशोथमूलत्वक्चूर्ण १ तोला मिश्रितकर मधु-
 युक्त अवलेहन करने से उदावर्तजन्यपीड़ा शान्त होती
 है और सुखपूर्वक मलोत्सर्ग होता है।
 कुपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वल्पमत्स्यधान्य।
 गौड़ भाषा में इसको 'खालुइ' कहते हैं। (श० र०)।
 कुपिन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वस्त्रनिर्मात। वस्त्र
 निर्मातरि। (वै० निघ०)।
 कुपिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचला। कारस्कर। (ध०
 नि०) कुपिलु, कुपीलु।
 कुपिलु—सं० पुं० [सं० पुं०] काकपीलु। दे० 'कुचला'।
 कुपीलु—संज्ञा पुं० [मेवाड़] कुचला।

कुपीलु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचिला। दे० 'कुचला'।

कुपईरोन—संज्ञा पुं० [१] (डाइमॉक भ० ३ पू० ५५३)।

कुप्प तुलसी—संज्ञा स्त्री० [ते०] रामतुलसी। भरभरी (सन्ताल)।

कुप्पमनी—संज्ञा स्त्री० [मल०] हरितमञ्जरी।

कुप्पमेणि—संज्ञा स्त्री० [मल०] कुप्पी।

कुप्पि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] हरितमञ्जरी।

कुप्पि गिडा—संज्ञा पुं० [कना०] हरितमञ्जरी।

कुप्पि चेदु—संज्ञा स्त्री० [ते०] हरितमञ्जरी।

कुप्पिमैणि—[ता०] हरितमञ्जरी। हागापाता (बं०)। कुप्पी।

कुप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं०, द०] हरितमञ्जरी। वनस्पति विशेष। पर्याय—(सं०) हरित मञ्जरी; (बं०) मुक्ता-झड़ी, हागापाता; (गु०) बंची काँटो; (म०) खोकली, खजोटो; (ते०) कुप्पि-चेदु; (ता०) कुप्पि वैणि; (कना०)

कुप्पि-गिडा; (मल०) कुप्प-मणि; (कों०) कुङ्कुमिकल; (अं०) इण्डियन अकैलिफा (Indian acalypha); (ले०) अकैलिफा इण्डिका (Acalypha Indica) कुल—स्नुह्यादि (Euphorbiaceae) उद्भवस्थान—भारतवर्ष के उद्यान तथा आर्द्र भूमि में स्वयं उत्पन्न होती है।

परिचय—इसका क्षुप १-२ फुट ऊँचा होता है। पत्र अग्र भाग में किंचित् कुण्ठित होते हैं। इसमें तुलसी तुल्य मञ्जरियाँ लगती हैं। यह प्रतिवर्ष वर्षाकाल में उत्पन्न होती है।

उपयोगी अंग—पञ्चाङ्ग।

रासायनिक-संगठन—इसमें अकैलिफा नामक एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षार होता है।

गुण-कर्म—कृमिघ्न, मलभेदक, वामक, कासघ्न, चर्म-रोगनाशक, निद्राप्रद तथा वेदनाशामक है।

योग—क्वाथ, चूर्ण, स्वरस, टिचर तरल सत्व और, मूल का हिम।

उपयोग—इसके पत्रों की फलवर्ती निर्माणकर गुदा में धारण कराने से गुदा में क्षोभ उत्पन्न होकर शीघ्र ही मलोत्सर्ग होता है। पत्रस्वरस त्वचा पर मर्दन करने से दद्रु का शीघ्र नाश होता है। पत्तियों का क्वाथ वा चूर्ण निर्माणकर सेवन करने से कोष्ठवद्धता दूर होती है। रसोनयुक्त सेवन करने से कृमि-विकार शान्त होता है। सेंधालवणयुक्त त्वचा पर मर्दन करने से कण्डू नष्ट होता है। पत्रस्वरस में सर्पपतैल मिश्रित कर अभ्यंग करने से आमवातजन्य शोथ नष्ट होता है। १ चम्मच की मात्रा में पत्रस्वरस निचोड़ कर देने से डिप्थीरियाजन्य कण्ठा-वरोध वमन होकर नष्ट होता है। अल्पमात्रा में सेवन करने से श्वास नष्ट होता है। इसके पत्र का क्वाथ कर कर्णपूरण करने से कर्ण-शूल शीघ्र शान्त होता है। शुष्कपत्र का अवचूर्णन करने से उपदंशज क्षत का नाश होता है। सर्पदंशस्थान पर पीसकर लेप करने से विष-

विकार दूर होता है। शुष्कपत्रचूर्ण का अवचूर्णन करने से शय्याक्षत का नाश होता है। पत्र-स्वरस में रूई भिगा कर नासारन्ध्रद्वय में धारण कराने से रक्तस्कन्दनजन्य शिरोवेदना रक्तस्राव होकर शान्त होती है। इसका मूल जल में पीस कर ग्रहण करने से मलावष्टम्भ नष्ट होता है। वातज उदावर्त में इसकी फलवर्ती निर्माणकर गुदा में रखने से विरेचन हो कर उदावर्त नष्ट होता है।

टिचर-निर्माण-विधि—(१)

इसका नूतन पंचांग ग्रहणकर ८ तोला की मात्रा में ४० तोला सुरासार में चूर्ण कर एक बोतल में बन्द कर ८ दिन पर्यन्त रखें। पुनः छान कर इसमें स्पिरिट इथर (Spirit Eather) ४ औंस मिश्रित कर भलीभाँति बोतलों में बंद कर रखें। मात्रा—३०-६० बूँद।

उपयोग—इसमें मधु मिश्रितकर सेवन कराने से नवोत्पन्न उन्माद शान्त होता है। (परीक्षित)।

(२) सद्यः गृहीत पत्रस्वरस २॥ तोला की मात्रा में ३ रत्ती सेंधालवणयुक्त, ४-६ बूँद प्रतिदिन नासारन्ध्र में टपकावें। इस प्रकार प्रतिदिन करने से मस्तिष्कगत दूषित-द्रव उत्सर्गित होकर नवोत्पन्न उन्माद शान्त होता है। (परीक्षित)।

कुप्पीपाक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आतशी शीशी में गन्धक आदि को वालुका यन्त्रमें स्थापित कर पकाने की एक विधि है,

कुप्पीवैणि—संज्ञा स्त्री० [ता०] कुप्पी। हरित मञ्जरी।

कुप्पे चेदु—संज्ञा पुं० [ते०]

कुप्पेमैणि—संज्ञा स्त्री० [ता०] कुप्पी।

कुप्पेमैनि—संज्ञा स्त्री० [ता०] खोकली। कुप्पी। हरितमञ्जरी (डाइमॉक, मो० श०)।

कुप्पर—संज्ञा पुं० [जर० Kupfer] ताम्र। ताँवा। शुल्ब।

कुप्प्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सीस-रंगमिश्रित धातु। जस्ता। यशद धातु।

कुप्प्यक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दस्ता। (२) सुवर्ण-रजत मिश्रित धातु। (रत्ना०)।

कुप्प्यधौत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रूपा। रौप्य। (रा० नि० व० १३)।

कुप्प्य-संधाल—संज्ञा पुं० [मल०] सिन्दूरी। लटकन।

कुप्प्यलवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लवण विशेष। कूपी-खार। (च० चि० ८ अ०)।

कुप्प्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धातुद्रव्य निर्माण स्थान।

कुप्रम—संज्ञा पुं० [ले० cuprum] शुल्ब। ताँवा। (ता०) तावा।

कुप्रम् एल्युमिनेटम्—संज्ञा पुं० [ले० Cuprum Alumin-atum] ताम्रस्फटिका का एक यौगिक है।

कुप्राई फीलीएटम्—संज्ञा पुं० [ले० (Cupri philiatum)]
ताम्र का एक यौगिक है।

कुपूक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हिमावली।

कुफरी—संज्ञा पुं० [अ०] छुहाड़े के फलों का कोष (गिलाफ)।

कुफ्राफ—संज्ञा पुं० [अ०] खाद्य। राशन (Ration)।

कुफारिलियून—संज्ञा पुं० [यू०] पित्तपापड़ा। शाहतरः।

कुफारिस—संज्ञा पुं० [यू०] कवर। करील भेद।

कुफारीस—संज्ञा पुं० [सुर०] हव्वुज्जलम।

कुफाला—संज्ञा पुं० [?] आलुबोखारा।

कुफास—संज्ञा पुं० [?] पहाड़ी वेल। एक प्रकार की जंगली
लता है।

कुफफः—संज्ञा पुं० [अ०] ज्वरजन्य कंप। चिल्ल (अं) राइगर
(Rigor)।

कुफ—संज्ञा पुं० [?] आखु। मूषक। चूहा।

कुवअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) साही। शल्यकी। (२) पहाड़ी
शूकर। सूअर।

कुवअर—संज्ञा पुं० [अ०] दूषित छुहाड़े। सड़ा
छुहाड़ा।

कुवअः—संज्ञा पुं० [अ०] चिड़ा से छोटा एक पक्षी है।

कुवफात—संज्ञा पुं० [?] नदी की सीपी। नद्यज
शुक्तिता।

कुवज—संज्ञा पुं० [अपभ्रंश-कुवक फः०] चकोर।

कुवज—संज्ञा पुं० [?] (१) शिशु। (२) कज। (३)
आवरेशम भेद।

कुबर—संज्ञा पुं० [अ०] लम्बा लंगूर।

कुबरः—[,,]

कुबाअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) साही। शल्यकी। (२) जंगली
शूकर।

कुबाक—संज्ञा पुं० [अ०] कदू। अलावु। लौकी।

कुबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] खुवाजी।

कुबातु—संज्ञा पुं० [अपभ्रंश-कवीदह तथा कवीतः]।

प्रसिद्ध मिष्ठान्न (मिठाई) है। बर्फी। कुबात।

कुबार—संज्ञा पुं० [अ०] कवर।

कुबार—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का तृण है, जिसको
ऊँट खाते हैं

कुबारस—संज्ञा पुं० [यू०] कवर। करील भेद।

कुबारीस—संज्ञा पुं० [यू०]

कुबारस—संज्ञा पुं० [फा०] हर्शफ का एक भेद है।

कुबास—संज्ञा पुं० [अ०] पीलू का फल जो पककर काला
हो गया हो

कुबाह—संज्ञा पुं० [अ०] रीछ। भालू। रिक्ष।

कुबाहुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट। उष्ट्र। (श० च०)।

कुबिण्डी—संज्ञा स्त्री० [नैपाल०] (बं०) पुलिपाठ।

कुबीतः—संज्ञा स्त्री० [अ०] बर्फी। मिष्ठान्न भेद।

कुबीती—संज्ञा स्त्री० [अपभ्रंश कुवीद व कुवीतः] मिष्ठान्न
भेद। बर्फी।

कुबीदः—संज्ञा पुं० [फा०] बर्फी।

कुबीदा—संज्ञा पुं० [फा०] सत्तू। शक्तुक।

कुबुदान—संज्ञा पुं० [अ०] सोनीज। कलौजी।

कुबेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तून। नन्दीवृक्ष।

कुबेरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तून। नन्दीवृक्ष।

कुबेरनेत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाटल वृक्ष। (२)
लताकरंज।

कुबेरनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] लताकरंज।
(ध० नि०)।

कुबेरपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वातव्याधि में प्रयुक्त
योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—लताकरंज के छिले
हुए बीज १ प्रस्थ ग्रहण कर चार प्रस्थ गोदुग्ध मिश्रित
कर घृतयुक्त पाक करें। जब सिद्ध हो जाय तब इसमें
मधु, दालचीनी, तेजपात, इलायची तथा केशर, त्रिकुटा,
जायफल, जावित्री, लौंग, वायविडंग, सौंफ, जीरा, मोथा,
खिरेटी, हल्दी, दारुहल्दी, लोहभस्म, ताम्रभस्म तथा
वंगभस्म प्रत्येक अर्ध-अर्ध पल चूर्ण कर मिश्रित करें।
मात्रा—१—४ तोला।

गुण—इसमें से बलानुसार तथा अग्निबल देखकर
सेवन करने से—प्रत्येक वातव्याधि, अग्निमान्द्य,
बलक्षय, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, गुल्म, पाण्डु, पीनस,
ग्रहणीविकार, अतिसार तथा अरुचि का नाश होता
है। (वृ० नि० २० वा० व्या० चि०)।

कुबेराह्वय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तून। नन्दीवृक्ष। (वै०
निध० ७ अ० ग्रहणी० चि०)।

कुबेराक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लताकरंज।

कुबेराक्ष पाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूलरोग-अधिकारोक्त
योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—लताकरंज के बीजों को
ग्रहण कर ३ दिन पर्यन्त धान्याम्ल (काँजी) में पकाएँ।
पुनः उनमें से गिरी निकाल कर १ भाग ग्रहण कर उसमें
सैंधालवण १ भाग, सोंठ १ भाग, मिर्च १ भाग तथा
पीपल का चूर्ण १ भाग मिश्रितकर एक मृत्तिका पात्र में
रखकर ऊपर से नीबू का रस भर दें। जब शुष्क हो
जाय १-१ माशा की गोलियाँ बनाएँ। मात्रा १-४ गोली।
गुण—इसे उष्णजलयोग से सेवन करने से विविध
भाँति का शूल नष्ट होता है और भोजन में रुचि
उत्पन्न होती है। (वृ० नि० २० शूल० चि०)।

कुबेराक्ष वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रव्य तथा निर्माण-
विधि—करंज की गिरी और सोंठ १-१ कर्ष। काला
नमक ३ कर्ष, भूनी हींग ३ कर्ष—एकत्र सहिजन व
रसोन के रस में पका कर मर्दन कर छोटे बेर प्रमाण
की गोलियाँ बनाएँ। इसको उष्णजल योग से सेवन

करने से ८ प्रकार के शूलों का नाश होता है। (वृ० नि० २० शूल० चि०)।

कुबेराक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पाटला वृक्ष। पाटल। (प० मु०)। (२) काष्ठपाटला। कठपाटल। (३) सितपाटला। सफेद पाटल। (रा० नि० व० १०)। (३) कंधी। पेटारी। पेटिका। (रत्ना०; सु० सू० ३९ अ०)। भा० म० ४ अ० वाल० चि०)। (४) लताकरंज। (वै० निघ०)।

कुबो—संज्ञा पुं० [गु०] द्रोणपुष्पी। कुम्भ फूल। तुम्ब फूल। (हिं०) गुम। गुमा।

कुब्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वनचटक। जंगली गौरैया। (२) मत्स्य विशेष। मछली भेद। (३) अपमार्ग। चिरचिटा। (रा० नि० व० ४)। (४) एक प्रकार का वातरोग। लक्षण—इस रोग में छाती तथा पीठ शरीर के भाग से बाहर निकल आती है। इसमें वेदना होती है और वायु का प्रकोप होता है। कुबड़ा। कूजा (हिं०)।

चिकित्सा—प्रसारणीतैल की मालिश तथा दशमूल-तैल का अभ्यङ्ग और पान करावें। यह सामान्य चिकित्सा है।

कुब्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सदागुलाव। कूजा। सेवती।

पर्याय—(सं०) वारिकण्टक, भद्रतरणी, वृत्तपुष्प, अतिकेशर, महासह, कण्टकाढ्य, खर्व, अलिकुल सङ्कल। **गुण**—मुरभित गन्धयुक्त, शीतल और रक्त-पित्त नाशक है। इसका पुष्प शीतल, वलवर्धक, दाह-नाशक और वात-पित्तनाशक है। (रा० नि० व० १०)। मुरभि, स्वादु, कषाय, मुरस, सर, त्रिदोष-नाशक, वृष्य तथा शीतहारक है। (भा० पू० १ भा०)। इसके क्षुप कोंकण में बहुतायत से होते हैं।

(२) सिंघाड़ा। शृंगाटक। पानीफल।

(३) पीली कटसरैया। पीत झिण्टी। (२० मा०)।

(४) मालती।

कुब्ज-कण्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद कत्था। श्वेत खदिर। (रा० नि० व० ८)।

कुब्जका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुब्ज वृक्ष। सदा-गुलाव। सेवती। दे० 'कुब्जक'।

कुब्जकिरात—संज्ञा [सं० पुं०] कुब्ज। कूजा।

कुब्जत्व—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुब्जता। वातरोग विशेष। कुबड़ापन। दे० 'कुब्ज'।

कुब्जनायक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पित्तपापड़ा। पर्पटक।

कुब्ज-पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीली कटसरैया। पीत झिण्टी। पीतपुष्प झाँटी-वं०। (२० मा०)।

कुब्जप्रसारणी तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुब्जरोग में

प्रयुक्त एक प्रकार का तैलयोग। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—कल्कार्थ—चित्रक, पुष्करमूल, मुलहठी, सेंधा-नमक, खिरेटी, मोथा, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, प्रसारणी-मूल, जटामांसी और भिलावाँ, प्रत्येक २-२ पल। क्वाथार्थ—प्रसारणी १०० पल, जल १ द्रोण (१६ सेर), शेष ३ भाग। पुनः इसमें दधि १०० पल, काँजी १०० पल, गोदुग्ध २०० पल, तिल तैल १६ पल। यथा-विधि एकत्र पकावे। **गुण**—इसके अभ्यङ्ग व पान से वातज तथा कफज रोग नष्ट होते हैं। कुब्जवात, ८० प्रकार के वातव्याधि, शृङ्गशी, लूलापन, अर्दित, खुङ्गवात, हनुग्रह, पृष्ठगत वात, शिरोव्याधि तथा ग्रीवास्तम्भादि रोग नष्ट होते हैं। (च० द०, सैप० २० वा० व्या० चि०)

कुब्जवामन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुब्ज। कुबड़ा। कूजा। **कुब्जविनोद-रस**—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुब्जादि वातरोग में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद-गन्धक की कज्जली, हरीतकी, हरताल, मीठा विप, कुटकी, बोल (मुरमकी) तथा जमालगोटा समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें और भाँगरा, थूहर और आक के स्वरस में मर्दन कर २-२ रस्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—उचित अनुपानद्वारा सेवन करने से—पार्श्व-शूल, हृदयशूल, आमवात, आढ्यवात, कटिशूल तथा स्थूलता (मोटापा) का नाश होता है। (२० रा० सु० वा० व्या० चि०। २० सा० सं० वात० व्या० चि०)।

कुब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली गौरैया। वन चटक।

कुब्जासव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुब्जक (सेवती गुलाव) पुष्प १०० पल, द्राक्षा ५० पल, मधुकपुष्प, किसमिस (काश्मरी) प्रत्येक १०-१० पल ग्रहण कर ४ द्रोण (६४ सेर) जल में पकाएँ, जब १ द्रोण शेष रह जाय तब छानकर शीतल होने पर इसमें—धातकी पुष्प २० पल, गुड़ ३०० पल, धतूर मूल ४ पल, त्रिकुटा, कंकोल, इलायची, दाल-चीनी, पत्रज, जावित्री तथा लौंग प्रत्येक १-१ पल चूर्ण कर मिश्रित कर यथाविधि सन्धानितकर १ मास पर्यन्त रखकर छान लेवें और बोटलों में बंद कर रखें। मात्रा—१ से ४ पल।

गुण—इसके उपयोग से प्रत्येक उवरविकार का नाश होता है। यह अत्यन्त बलप्रद है। हृदयरोग तथा मस्तिष्कविकार में विशेष उपकारक है। (गद० नि०) व्यावहारिक मात्रा—१-२ तोला।

कुब्जक—संज्ञा पुं० [फा०] चक्रवाक। चकवा।

कुब्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वन। (उणा०)। (२) कुण्ड। (३) कुण्डल। (४) तन्तु। (५) गाड़ी। शकट। (संक्षिप्त सा०)।

कुम्बर (२)—संज्ञा पुं० [अ०] कवर। करील भेद।

कुम्बरी—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] नारियल नारिकेल।

कुन्न—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कुजबुर। धनियाँ। (२) गोस्तनी। लम्बे अंगूर।

कुबूस—संज्ञा पुं० [?] एक द्वीप है जिसमें ताँवा उत्पन्न होता है।

कुल—संज्ञा पुं० [अ०] योनि। फर्ज। (अ०) वेजाइना (Vagina)।

कुम्बुसूत—[अ०] यूनानी द्रव्य विशेष।

कु (कि) दून—[यू०] एक अप्रसिद्ध ओषधि है जो अफ-रीका में उत्पन्न होती है।

कुभुक्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अछूतों का अन्न। कदर्यन्न।

कुभृङ्गक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भ्रमर। ततैया।

कुप—संज्ञा पुं० [पं०] सुम।

कुमकाम—संज्ञा पुं० [अ०] पाक वा माजून भेद।

कुमकुम—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] केशर।

कुमकूट—संज्ञा पुं० [?] फर्फोरान।

कुमटा दे० 'कुमटा'—संज्ञा पुं० [अ०] अश्वीपय। घोड़ी का दूध।

कुमठा—संज्ञा पुं० [कना०] विदारी। विदारीकंद।

कुमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०, बं०] कुम्हड़ा। कूष्माण्ड। काशीफल।

कुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] मीठा कद्दू। छोटा कूष्माण्ड।

कुमता—संज्ञा पुं० [म०] खोर (सिन्ध)।

कुमदा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काश्मरी। (ध० नि०)।

कुमनः जुजइयः—संज्ञा पुं० [अ०] दृष्टिमान्ध। धुन्ध। (अ०) एम्ब्ली ओपिआ (Ambliopia)। इस रोग में क्रमशः दृष्टि कम होती जाती है। यदि उचित उपाय का अवलम्बन न किया जाय तो रोगी अंधा हो जाता है। पुरातन तिब्ब के विद्वान् इसका वर्णन दृष्टिदोषल्य में करते हैं।

कुमबैनन—संज्ञा पुं० [हिं०] कुम्बी। बेरूला। (मे० मो०)।

कुमर पिण्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं०]

वर्णन—एक उद्भिद जिसका पौधा एक गज या उससे न्यूनाधिक उच्च होता है। पत्ते छोटे-छोटे वकुची के पत्तों की तरह होते हैं और उनका रंग श्वेताभ होता है। फूल लंबा और श्वेत होता है। बीज पोस्ते के दानों की तरह बारीक और सफेद होते हैं। जड़ निसोथ की तरह सफेद होती है, जिस पर चुन्नटें (चींदार) होती हैं।

गुणधर्मादि—यह मूत्ररोग, संधिरोग और पक्षवध में लाभकारी है। इसकी जड़ पीसकर पीने से वातज दंतशूल आराम होता है। इसके पत्र पीने से कैं और वमन आते हैं। वृश्चिकदंश में इसका दूध उपकारी है। फल गोघृत और शहद के साथ खाया जाता है। (जड़) यह अर्दित में लाभकारी है। (मुहीत)

कुमरि—संज्ञा स्त्री० [ता०] घृतकुमारी। ग्वारपाठा।

कुमरिच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल मिर्च। मरचा। (बं०)

लंका मरिच (Capsicum)। उत्तिकोमरिच।

कुमरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] टोटरू। कबूतर से छोटा श्वेत वर्ण का सुन्दर पक्षी है। पंडुक की जाति की एक चिड़िया जो सफेद कबूतर और पंडुक से उत्पन्न होती है।

पर्या०—कुमरी-अ०। मुर्गे हकगो-फ्रा०। टूटरू-हिं०।

संज्ञा-विवरण—क्रमर शब्द में संबंधवाचक ईकार जोड़कर कुमरी बनाया गया है। क्रमर मिश्र का एक देश है जिसे कोई-कोई इसकंदरिया कहते हैं। क्योंकि उक्त पक्षी का रंग तद्देशीय मृत्तिकावत् होता है, इसलिए इसे 'कुमरी' कहते हैं। इसका एक वचन क्रमारी बतलाते हैं और कहते हैं कि यह अक्रमर तथा कुमरी का बहुवचन है। क्रमरिया इसका मादा (स्त्री लिंग) है। नर को साकजर और हिंदी में टूटरू कहते हैं।

वर्णन—एक पक्षी जो फ्राखते से छोटा होता है और प्रभु-भक्त, मानवप्रेमी, प्रियदर्शन और मधुरभाषी होता है। सफेद और पीला भेद से यह दो प्रकार का होता है। इसका एक विशेष गुण यह है कि विष मिले आहार को देखते ही इसकी आँखें रक्तवर्ण की हो जाती हैं, उनसे आँसू आने लगता है और वे पथरा जाती हैं। उसे खुले मुँह के जख्मों पर छिड़कने से वे अच्छे हो जाते हैं। कहते हैं कि सुलतान महमूद सुबुक्तगीन को भेंट चढ़ाए हुए बहुशः उपहारों में एक 'कुमरी' भी थी।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष।

स्वाद—किंचित् लवण रस। **अहितकर**—अति सेवन से कुष्ठ और वातिक अन्यथा ज्ञान (वसवास) उत्पन्न करती है। **निवारण**—स्निग्ध पदार्थ (घी और रोगानवादा म इत्यादि) और लतीफ वा तरल द्रव्य। **प्रतिनिधि**—बटेर। **ग्रह**—सूर्य। **विशिष्ट कर्म**—शीत प्रकृति को सात्त्व्य। **मात्रा**—इसका खाना हलाल वा विहित है। आवश्यकतानुसार खा सकते हैं।

गुणकर्म और प्रयोग—यह दुष्ट दोषोत्पादक और स्निग्ध तथा शीतल प्रकृति को सात्त्व्य है। इसका तेल मलने से बच्चे शीघ्र चलने लगते हैं। इसका अण्डा पीने (खाने) से बच्चे समय से पूर्व बोलने लगते हैं। इसे गृह में रखने से उक्त गृह में रहनेवालों पर जादू-टोना आदि मंत्रप्रभाव और कुदृष्टि अर्थात् नजर नहीं लगता। (मख्जन)। इसके शब्द से सर्प इत्यादि भीम कीट भागते हैं। (मु० ना०)।

किसी-किसी के मत से इसका मांस, रक्त और अण्डा स्वर को शुद्ध करने वाले और प्रेम उत्पन्न करनेवाले हैं। (मुहीत)।

कुमरीत—संज्ञा पुं० [इस्फहानी] कर्नब।

कुमरीयक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दाघा नामक वृक्ष। (के०)

कुम्हून—संज्ञा पुं० [अ०] रुव्यान।

कुर्मतिका—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] लक्ष्मणा । (ध० नि०) ।

कुमल—संज्ञा पुं० [हि०] उलटकंवल । भारद्वाजी ।

कुमसुम—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष ।

कुमस्सरा—संज्ञा पुं० [अ०] नाशपाती ।

कुमस्सराजबली—संज्ञा स्त्री० [अ०] पहाड़ी नाशपाती ।

कुमस्सरा-बरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] जंगली नाशपाती ।

कुमस्सराहामिज—संज्ञा स्त्री० [अ०] खट्टी नाशपाती ।

कुमहः—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मछली । (२) कुमात ।

कुसः—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कुमात' ।

कुमा—संज्ञा पुं० [?] जावित्री ।

कुमाच—संज्ञा पुं० दे० 'कौंच' ।

कुमात—संज्ञा पुं० [फा०] हींग का वृक्ष ।

(अ०) कज्जह ।

संज्ञा पुं० [सुर०] बादावर्द ।

कुमातः—संज्ञा पुं० [अ०] फितर का एक भेद ।

कु (क, कि) मा फीतस—संज्ञा पुं० [यू०] कुकरौंधा ।

कुमार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) १७ से ३० वर्ष की अवस्था का पुरुष । (रा० नि० व० १८) । (२) पाँच वर्ष का बालक (हे० च०) । (३) एक ऊँचा वृक्ष । सेव ।

कुमारक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वरना, वरुण वृक्ष । (रा० नि० व० ९) । (२) समुद्र वृक्ष । (व०) महासमुद्र । (रत्ना०) (३) तोता, शुक पक्षी । (४) अश्वारि । कनेर । (मे०) ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खोटा सोना । जात्यकांचन (मे०) । (२) नेत्रतारक ।

कुमारकल्पद्रुम घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्त्रीचिकित्सा में वर्णित योग । द्रव्य तथा निर्माणविधि—छाग-मांस २०० तोला, जल ८०० तोला ग्रहण कर दशमूल के द्रव्यों के साथ क्वाथ करें । जब ३ भाग शेष रह जाय तब छानकर इसमें गोघृत ६४ तोला मिश्रित कर २ प्रस्थ गोदुग्धयुक्त पुनः मन्दाग्नि से पाक करें और २ प्रस्थ शतावरी स्वरस भी मिश्रितकर यथाविधि पाक करें । पाकपात्र मिट्टी वा ताम्र का होना चाहिए ।

कल्कार्थ—कूठ, कचूर, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, मालकांगनी, त्रिफला, देवदारु, तेजपात, इलायची, शतावरी, काश्मरी, मुलहठी, क्षीर काकोली, नागरमोथा, कमल, जीवन्ती, चंदन, काकोली, सफेद व काला अनन्त मूल, श्वेतबला, शरपुखामूल, विदारीकन्द, क्षीर-विदारी, मजीठ, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, नागकेशर, दारु-हल्दी, निर्गुण्डीबीज, मालकांगनी की जड़, शंखिनी, नलिका, वच, अगर, दालचीनी, लौंग, केशर प्रत्येक १-१ तोला का कल्क मिश्रितकर मन्दाग्नि से पाक करें । जब सिद्ध हो जाय, छान कर रख लें । पुनः इसमें पुरातन शुद्ध पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म १-१ तोला मिश्रितकर

काँच के पात्र में सुरक्षित रखें । मात्रा—२ तोला ।

गुण—इसके सेवन से बन्ध्या भी गर्भवती होती है । अनुपान शीतल गोदुग्ध ८ तो० । इसके सेवन से रज-वीर्य-विकार शान्त होता है, योनिगत रोग मासिक-धर्म सम्बन्धी समस्त विकृतियाँ शान्त होकर गर्भधारण होता है, मृत्वत्सा के पुत्र जीवित रहते हैं और स्वरूपवान् पुत्र की उत्पत्ति होती है । जिस स्थान में यह योग रखा होता है वहाँ सर्प और विद्युत्भय नहीं होता । इसके आदिनिर्माता श्री पराशर मुनि हैं ।

कुमारकल्याणघृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बालरोग में प्रयुक्त योग । (१) द्रव्य तथा निर्माणविधि—शंखपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला, द्राक्षा, मिश्री, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, बला, कचूर, दुरालभा, बिल्वमूल, अनार, सुरस (बोल वा दालचीनी) धातकीपुष्प, मोथा, पुष्करमूल, जयन्ती, सुधमैला, गजपीपल—प्रत्येक १-१ कर्ष और गोघृत १ प्रस्थ । उक्त द्रव्यों के कल्क के साथ यथाविधि पाक करें । क्वाथार्थ—कण्टकारी चतुर्गुण और गोदुग्ध चतुर्गुण मिश्रितकर यथाविधि सिद्ध करें । घृत—४ शराव होना चाहिए ।

(२) द्राक्षा, मिश्री, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खिरेटी, कचूर, जवासा, बेलगिरी, अनार, सुरसा, शालपर्णी, नागरमोथा, पुष्करमूल, छोटी इलायची, गजपीपर—प्रत्येक १-१ कर्ष, गोघृत १ प्रस्थ, कण्टकारी-स्वरस चतुर्गुण और गोदुग्ध चतुर्गुण एकत्र मिश्रितकर यथाविधि पाक करें । मात्रा—१ से २ तोला ।

गुण—इसके सेवन से बल, स्वरूप तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है ; पुष्टता प्राप्त होती है ; सर्वग्रह, अलक्ष्मी, छाया इत्यादि बालरोगसमुदाय नष्ट होते हैं और द तोद्भेद के निमित्त उत्तम है । (भैष० बाल-चि०) ।

कुमारकल्याण रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य तथा निर्माण विधि—सिन्दूर, मोती, स्वर्णदल, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म—इन्हें समान भाग में ग्रहणकर ग्वार-पाठा के रस में मर्दनकर मुग्द प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण तथा उपयोग—अवस्थानुसार इसे गोदुग्ध के साथ सेवन करने से बालज्वर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक, सर्वग्रहदोष, कामला, स्तन्यका ग्रहण न करना, अतिसार, कृषता, अग्नि की विकृति इत्यादि रोग नष्ट होते हैं । (भैष० बाल०-चि०) ।

कुमारजीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापोता । पुत्रजीवा । (२० मा०) ।

कुमारञ्जीव संज्ञः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापोता, पुत्र जीवा, पुत्रञ्जीव वृक्ष । (२० मा०) ।

कुमारतन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] श्री रावणकृत बालरोग-प्रबन्ध नामक ग्रन्थ । उक्त ग्रन्थ में उल्लिखित है कि

कुमारग्रह का आक्रमण किस प्रकार होता है—जन्म से प्रथम दिवस, प्रथम मास व प्रथम वर्ष में नन्दा मातृका का, द्वितीय दिवस, मास वा वर्ष में सुनन्दा का, तृतीय दिवस, मास वा वर्ष में पूतना का, चतुर्थ दिवस, मास वा वर्ष में मुखमुण्डितिका का, पंचम दिवस, मास वा वर्ष में कटपूतना का, षष्ठ दिवस, मास वा वर्ष में शकुनी का, सप्तम दिवस, मास वा वर्ष में शुष्क रेवती का, अष्टम दिवस, मास वा वर्ष में अम्बिका का, नवम दिवस, मास वा वर्ष में सूतिका का, दशम दिवस, मास वा वर्ष में निर्धृता का, एकादश दिवस, मास वा वर्ष में पिलिपिच्छिका का और द्वादश दिवस, मास वा वर्ष में कामुका नाम मातृका ग्रह का बालकों पर आक्रमण होता है। इन समस्त बालग्रह में उवरोदय होता है। (च० द०)।

कुमार धर—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] धात्री।
संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बालरक्षक।

कुमारधराङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] धात्री की गोद (सु० सू० १६ अ०)।

कुमार पाठा—संज्ञा पुं० [हिं०] ग्वारपाठा। घृतकुमारी।

कुमारभृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भिणी परिचर्या। (बालतन्त्रिका०)।

कुमार ललिता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बालक्रीड़ा। शिशुक्रीड़ा। बच्चों का खेल-कूद।

कुमारवाही (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोर। मयूर। (श० र०)।

कुमारशिरा भरद्वाज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का मुनी। (च० सू० १२ अ०)।

कुमारा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सन्ध्याराग। त्रिसन्धि पुष्पक्षुप। (वै० निघ०)।

कुमारागार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बालरक्षण स्थान। (सु० शा०)।

कुमारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] बालरक्षण स्थान। (सु० शा०)।

कुमारिका—[अ०] जंगली उश्वा। (मे० मो० १) संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अनागत आर्तवा कन्या। वह कन्या जिसको मासिक धर्म न हुआ हो। (रा० नि० व० १८)। (२) ग्वार। ग्वारपाठा। घृतकुमारी। दे० 'ग्वारपाठा'। (३) कर्कोटकी, वन्ध्याकर्कोटकी, बाँझ खेखसा। (ध० नि०)।

कुमारिका योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घृतकुमारी योग। केवल ग्वार का गूदा ग्रहण कर उसमें किंचित् सेंधानमक मिश्रित कर २ दिन पर्यन्त सेवन करने से प्रमेह का नाश होता है, 'कुमारी केवला देया चेपल्लवण संयुक्ता, प्रमेह हन्ति सकलं सप्ताहात् परतो नृणाम्'। (र० सा० सं०)।

कुमारिका वर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] नेत्ररोग में

प्रयुक्त रोपणी वर्त्ती। योगनिर्माण-विधि—तिलपुष्प ८०, पीपल ६०, जाती (चमेली) पुष्प ५०, मरिच १६ की संख्या में ग्रहणकर जल में पीसकर बत्ती बनाएँ।

गुण—जल में घिस कर नेत्रों में अंजन करने से नेत्ररोग का नाश होता है।

कुमारिया—संज्ञा पुं० [?] हाथियों की एक जाति।

कुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देखो कुमारिका के पर्याय।

कुमारी-आसव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुमार्यासव'।

कुमारीकन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घृतकुमारी मूल। ग्वारपाठा की जड़। (वै० निघ० २ भ० कामला चि० नस्य में)।

कुमारीकन्दनस्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ग्वारपाठा की जड़ ग्रहणकर नस्य ग्रहण करने से कामला तथा उससे उत्पन्न नेत्रों का पीलापन दूर होता है। (वृ० नि० र० कामला चि०)।

कुमारी तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिरोरोग में प्रयुक्त तैलयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—धीक्वार का स्वरस ६४ तोला, धतूरस्वरस ६४ तोला, भृंगराजस्वरस १२८ तोला, गोदुग्ध २५६ तोला; कल्कार्य—मुलहठी, सुगन्धवाला, मजीठ, नागरमोथा, नखद्रव्य, कर्पूर, भाँगरा, इलायची, हरीतकी, पद्मकाष्ठ, कूठ, काला भाँगरा, अडूसा, तालीसपत्र, राल, तेजपात, वायविडंग, सोया, अश्वगन्ध, अण्ड, वट और नारियल—प्रत्येक १-१ तोला ग्रहणकर जल में पीसकर कल्क करें और ६४ तोला तिल तेल मिश्रितकर यथाविधि पाक करें। सिद्ध हो जाने पर छानकर उत्तम सुवासित पात्र में स्थापितकर विधिपूर्वक ३ दिन तक पृथ्वी में गाड़ दें।

गुण तथा उपयोग—इसे विधिपूर्वक अभ्यंग व शिर में लगाने से अदित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तालुवे का शोथ, नासिकाशोथ, नेत्रशोथ, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, वाधिर्य और कर्णशूल का नाश होता है। (भा० प्र०)।

कुमारी पाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य तथा निर्माण विधि—कुमारीकन्द २० पल ग्रहणकर ८० पल गोदुग्ध में मन्दाग्नि से पकाएँ, जब शुष्क हो जाय चूर्ण करें और इसमें पीपल, सोंठ, मिर्च इनका चूर्ण ३-३ पल, जावित्री, लौंग, गोखरू, ककड़ी के छिले बीज, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची और चित्रकमूल प्रत्येक का चूर्ण १-१ पल, मिश्री २० पल, गोघृत १० पल, महिषी क्षीर १० पल और शुद्ध मधु १० पल मिश्रितकर यथा-विधि मन्दाग्नि से पाक करें। पुनः पुनः करछी से चलाते रहें, जब घृत पृथक् होने लगे तो उसमें लोह भस्म, स्वर्ण भस्म और रससिन्दूर १-१ कर्ष मिश्रित कर ८-८ माशा की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से जीर्णज्वर, क्षय, कास, श्वास, संताप, शूल, अजीर्ण, आमवात, प्रदर, वन्ध्यत्व और ण्ड-

वृद्धि का नाश होता है।

कुमारी पुत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कुमारी-पुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } जीयापोता।
वृक्ष। पुत्रजीव

कुमारी मूलकादिवसन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ग्वारपाठा की जड़ १ कर्ष ग्रहणकर उष्ण जल के साथ पीस कर, पीकर वमन करने से विषमज्वर का नाश होता है। (वृ० नि० २० ज्वर चि०)।

कुमारीरससम्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] मुसव्वर। एलुआ।

कुमारी वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रव्य तथा निर्माण-विधि—स्वर्णभस्म, रजतभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म और शुद्ध हरिताल सर्व समानभाग में ग्रहणकर ग्वारपाठा के स्वरस की ११० भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इन्हें आमला के स्वरस के साथ सेवन करने से स्नायुरोग तथा मन्दाग्नि का नाश होता है। (भैष० परि० भा०)।

कुमार्यादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्वारपाठा, चित्रकपत्र, दाडिमपत्र, वच, हरिद्रा तथा शूठी वा सोंठ और गेरू इन्हें जल में पीसकर लेप करने से नेत्रगत समस्त विकार नष्ट होते हैं। (शा० घ० सं० १३ अ० ३ ख०)।

कुमार्यासव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) द्रव्य तथा निर्माण विधि—दशमूल ५० पल, पुष्करमूल २५ पल, घमासा २५ पल, चित्रकमूल १२॥ पल, गिलोय ८ पल, हरीतकी ४ पल, लोह, आमला, चौलाई की जड़, मजीठ, बहेड़ा, चव्य, कूठ, मुलहठी, कैथ, देवदारु, वायविडंग, पीपल, भारंगी, अष्टवर्ग के द्रव्य, जीरा, सुपारी, रास्ना, कपूरकचरी, रेणुका, काकड़ासिंगी, हरिद्रा, प्रियंगु, जटामांसी, मोथा, सारिवा, अडूसा, शतावरी, इन्द्रजौ, नागकेशर और पुनर्नवा—प्रत्येक ४-४ पल ग्रहण कर एकत्र ६ द्रोण जल में पकाएँ, जब $\frac{1}{2}$ भाग शेष रह जाय, छानकर उसमें ग्वार का स्वरस १ द्रोण, द्राक्षा ३० पल, मधु, ३२ पल, गुड़ ४ तुला (४०० तोला), धातकीपुष्प २ तुला, लौंग, कंकोल, श्वेत चन्दन, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, पीपल, मरिच, जावित्री, तेजपात, अकरकरा, जायफल, केवाँच के बीज, अजमोद, वच, खदिर, चित्रक, जीरा, सुगन्धवाला, सोंठ, घनियाँ, हरीतकी, हाऊबेर और तित्तिडीक—प्रत्येक का चूर्ण २-२ पल मिश्रित कर मिट्टी के चिकने पात्र में जिसमें सुगन्ध द्रव्यों द्वारा धूपन किया गया हो, यथाविधि संधान करें और भूमि में गाड़ दें। १ मास के पश्चात् छानकर बोटलों में रखें। मात्रा—१-४ तोला।

गुण—प्रातःकाल सेवन करने से धातुक्षय, कास, ५ प्रकार का श्वास, अर्श, संग्रहणी, वातव्याधि, उदावर्त,

पाण्डु, कामला, ५ प्रकार के गुल्म, आध्मान, कुक्षिशूल, प्रत्याध्मान, गुदग्रह, अष्ठीला, हृद्रोग, प्लीह-यकृत-विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। (गदनिग्रह ६ अ०)।

(२) योग—ग्वार का स्वरस ५० पल, गुड़ २५ पल, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, लौंग, सेंधानमक, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, करंज, मरिच, धातकीपुष्प, अकरकरा, वच, जावित्री तथा वायविडंग प्रत्येक का चूर्ण १-१ पल, हरीतकी २ पल मिश्रित कर यथाविधि सन्धान कर १५ दिन पर्यन्त पृथ्वी में गाड़ दें। पुनः छान कर बोटलों में बंद रखें। मात्रा—१-४ तोला।

गुण—प्रति दिन प्रातःकाल सेवन करने से गुल्म, उदावर्त, आध्मान, पार्श्वशूल, उदररोग, कफज रोग, मन्दाग्नि, कास-श्वास, हिक्का, क्षय, यकृत विकार, प्लीहरोग तथा शोथ का नाश होता है। (गद० नि०)।

(३) योग—२५ पल भाँग को ग्रहणकर १ द्रोण जल में क्वाथ करें, जब $\frac{1}{2}$ भाग शेष रह जाय, छानकर इसमें ग्वार का स्वरस १ द्रोण, गुड़ १०० पल, मधु १ आठक, धातकीपुष्प १६ पल, जायफल, लौंग, कंकोल, कवाव-चीनी, जटामांसी, चव्य, चित्रकमूल, जावित्री, काकड़ा-सिंगी, बहेड़ा, पुष्करमूल, प्रत्येक का चूर्ण १-१ पल, लोहभस्म, ताम्र-भस्म प्रत्येक २-२ पल मिश्रित कर यथा विधि संधान करें और पृथ्वी में गाड़ दें अथवा धान्य के ढेर में स्थापित करें। पुनः २० दिन के पश्चात् निकाल-कर छान लें और बोटलों में बंदकर सुरक्षित रखें, मात्रा—१-४ तोला।

गुण—इसके सेवन से ५ प्रकार का कास, श्वास, क्षय, ८ प्रकार के उदररोग, ६ प्रकार के अर्श, वात-व्याधि तथा अपस्मारादि अनेक प्रकार के दारुण रोगों का नाश होता है। १५ दिन निरन्तर सेवन करने से मन्दाग्नि, उदरशूल, ८ प्रकार के गुल्म तथा नष्टार्तव का नाश होता है। (यो० २० गुल्म-चि०)।

कुमाला—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़। (Leea Aspera)।

कुमाशीर—[फा०] जावशीर तुल्य एक प्रकार का गाद है। अरबी में कमाशीर भी कहते हैं।

पथ्यां—कुमाशीर—फा०। कुमाशीर—अरबीकृत, यू०। लोपितयून—यू०।

टिप्पणी—कुमाशीर को मख्जन में यूनानी, पर बुरहान में कुमाशीर से अरबीकृत लिखा है। कुमाशीर का उच्चारण बुरहान में कमाशीर लिखा है।

वर्णन—इस द्रव्य के संबंध में बहुत मतभेद पाया जाता है। इसके संबंध में हकीमों के भिन्न-भिन्न मत यह हैं—(१) यह कुमात का गोंद है और कुमा 'कश्नज' का नाम है, जो एक प्रकार की खुमी है। इसे ललनाएँ पुष्टि के लिये

हलुओं में मिलती हैं। कश्नज कश्नः फारसी से अरबीकृत है। कुमा को कुमाय भी लिखते हैं। (२) एक अन्य दुर्गंधित उद्भिद का गोंद। (३) जवाशीर की तरह के एक उद्भिद का गोंद। (४) एक भारतीय उद्भिद का गोंद है जो जवाशीर की तरह होती है। (५) पहाड़ी करपस वा अजमोदे का गोंद जो जवाशीर की तरह होता है। (६) तीव्र एवं तीक्ष्ण ओस जो जवाशीर की तरह होती है। (७) गोलानी के मत से हिंदी जवाशीर है। (८) कंदी ने विषतंत्र (किताबुस्सुम्) में लिखा है कि एक प्रकार की खुमी है। कंदी की उक्त खोज पूर्वोक्त सभी से भिन्न है। क्योंकि इसके गोंद होने के विषय में उन सभी का मतैक्य है। उनमें केवल कंदी ही वह व्यक्ति है जिसके कथन से गोंद के परिपोषक मतों का खंडन होता है। तक्रवीमुलअदविया में नीलूफर हिंदी की जड़ उल्लिखित है। उपर्युक्त कथन का सारांश यह है कि इसके गुणधर्म जवाशीर की तरह हैं। सुतरां यह उससे भी वलवत्तर है। उनमें भी तीक्ष्णगंधी, पीत और ताजा सर्वोत्तम होता है।

प्रकृति—द्वितीय और मतांतर से तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। **स्वाद**—किंचित्तिक्त। **अहितकर**—यकृत एवं फुफुस को। **निवारण**—यकृत के लिए गुलाब के फूल और चंदन, फुफुस के लिए कतीरा। **प्रतिनिधि**—जवाशीर। **ग्रह**—मंगल। **विशिष्ट कर्म**—जलोदर को लाभकारी है। **मात्रा**—६ रत्ती से १॥ मा० तक। गोलानी के मत से ७ रत्ती से अधिक खाना वर्जित है। साहब मिन्हाज के अनुसार रेचन और मूत्रजनन औषधों में इसका उपयोग होता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह गोंद अत्यंत शोथादि विलीनकर्त्ता है तथा मूत्र और आर्त्तव का प्रवर्तन करता है। इसके उपयोग से गर्भपात हो जाता है। बबूल के गोंद के साथ इसकी वर्त्ति बनाकर गुदा में धारण करने से मल द्वाारा पीत द्रव का भलीभाँति उत्सर्ग हो कर जलोदर और शोथरोग का नाश होता है। इसके खाने और लगाने से समस्त प्रकार की सूजन उतर जाती है। (मरूजन)।

कुमाह—[अ०] खजूर का खुशा वा गेहूँ के खुशा का गिलाफ़।

कुमिस—संज्ञा पुं० दे० 'कूमिस'।

कुमीजदान—संज्ञा पुं० [फा०] मूत्राशय। वस्ति।

कुमीनः—संज्ञा पुं० [अ०] नेत्र की ललाई। आँख की सुरखी, जो आँख दुखने के पश्चात् शेष रह जाए। वास्तव में यह आँख उठने की परीक्षा है। कुमीनः में नेत्रपटल में ललाई आ जाती है, इसलिए चक्षु प्रदाह (आशोब चश्म) का शेष दोष (माद्ः) शेष रह जाता है। इस कारण से इस शब्द का उपयोग किया जाता है।

कुमीर—संज्ञा पुं० [ब०] द्रव्य विशेष।

कुमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूकर। सूअर।

कुमुत्(द)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कूई। कोई। (२) रक्तोत्पल। लाल कमल। कोक।

कुमुद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पर्याय—(सं०) कैरव, कन्दोत, कच्छ, कुव, गन्धसोम, चन्द्रकान्त, गर्दभ, कुमुत्, धवलोत्पल, कल्हार, शीतलक, शशिकान्त, इन्दुकमल, चन्द्रिकाम्बुज, नीलोत्पल; (हि०) कूई, कोई; (फा०) नीलूफर; (अ०) अर्नबुल्माड; (क०) वम्पोश, लिलोफर; (बं०) सालुका, रक्तम्बल; (मल०, गु०) नीलोपल; (म०, बम्ब०) कृष्णकमल; (ते०) अल्लिकड, तेल्ल-कलवा; (ता०) वेल्लम्बल, इन्दौरावचन; (कना०) विलेनैदिले, विलेतबड़े; (मल०) वेलपल, नीरम्पल; (को०) धवल सलक; (उड़िया) रंगकैन; (द०) अल्लि फूल; (सि०) ओलुएट ओलु; (अं०) वाटर लिली (Water lily); (ले०) निम्फिआ लोटस Nymphia Lotus; N. Rubra; N. stellata)।

पुष्प—(अ०) वर्दनीलूफर; (फा०) नीलूफर, गुले-नीलूफर बीज—(फा०) तुखम नीलूफर; (अ०) बज्जुल नीलूफर; (हि०) गंगोल, बेरा।

कुल—पद्मादि (Nymphaeaceae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के समस्त तलइया, ताल तथा झीलों में स्वयं उत्पन्न होता है।

भेद—यह ३ प्रकार का होता है: (१) नील, (२) श्वेत और (३) रक्तोत्पल। नीलोत्पल कश्मीर के उत्तरांश, तिब्बत के अन्तर्गत प्रदेश तथा चीन में कतिपय स्थानों में होता है। भारतवर्ष में झाँसी में भी होता है।

परिचय—यह कमल का एक भेद है। कमल दिन में और कुमुद रात्रि में विकसित होता है। इसको चन्द्रप्रकाश प्रिय है और कमल को सूर्य का प्रकाश। नीलोत्पल का अन्य छोटा भेद भी है जिसको भूनीलोत्पल कहते हैं। यह पृथ्वी पर आर्द्रभूमि में होता है। इसके पुष्प का आकार नीलोफर तुल्य होता है। किन्तु इसका पुष्प अत्यन्त छोटा प्रायः १ से ३ इंच लम्बा होता है। पंखड़ियाँ श्वेत नीलाभ होती हैं।

गुण—शीतल, स्वादु, पाक में तिक्त, ककघ्न, रक्त-दोषहर, दाह, श्रम और पित्तघ्न है। (रा० नि० व० १०), पिच्छल, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य तथा ह्लाद-कारक है। (भा० पू० १ अ०)।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—नीलूफर, द्वितीय कक्षा में शीतल एवं तर है। **मूल**—उष्ण एवं रुक्ष; और **बीज**—शीतल एवं रुक्ष है। भारतीय नीलोत्पल विदेशी की अपेक्षया अल्प शीतल है।

गुण-कर्म—पुष्प—स्निग्ध, मार्दवकर, दोषतारल्य-कारक, शीतल, संग्राही, स्वप्नजनक, दाहशामक, कामाव-सादक, वीर्यपुष्टिकर तथा मूल और बीज उभय संक्षोभ-

रहित रूक्ष एवं स्नावावरोधक है।

उपयोग—शीतल तथा संग्राही होने के कारण इससे निद्रा आती है। यह हृदय की उष्णता नष्ट करता और मस्तिष्क को बल प्रदान करता है। इसके सेवन से पित्तज शिरोवेदना, रक्त प्रकोप, दाह तथा गदोद्वेग नष्ट होता है। अधिक शीतगुणविशिष्ट होने से यह स्वप्नदोष एवं काम-शक्ति की उत्तेजना को न्यून करता है। इसका शर्वत गदोद्वेग तथा प्रदाह में उपयोगी होता है। यह उष्णकास तथा वृक्ष की रूक्षता में उपयोगी है और शीतला की अन्तावस्थामें उपयोगी एवं दाहशामक है। **अहितकारक**—वस्ति, मस्तिष्क एवं कामशक्ति को। **निवारण**—मिश्री, गाजर-खण्ड, मधु। **प्रतिनिधि**—खिलमी, बनफशा। **मात्रा**—**पुष्पचूर्ण**—१० माशा से २ तोला क्वाथ में। **मूल**—३॥ माशा। **बीज**—१०॥ माशा पर्यन्त। दे० 'कुमुद बीज'।

(२) लाल कमल। रक्त पद्म। (मे०)। (३) रूपा, रौप्य। (हे० च०)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गम्भारी। कमहार। गम्भार। (२) वारहसिगा। शाखामृग। (मे०; अत्रि २० अ०)। (३) कुमुदकन्द। (४) गूगुल। गुगुलु। (४) सर्पभेद। (५) सफेद कमल। श्वेतोत्पल। (हे० च०)। (६) कपूर। कर्पूर। (रा० नि० व० १२)। (७) जलकुम्भी। कुम्भी। (८) कटफल। कायफल वृक्ष। (वै० निघ०)। (९) सोमवल्क। (१०) महाकुम्भी। (११) श्री पर्णिका, कुम्भी पाकी। (डाइमॉक)। (१२) सांप। सर्प। (ध० नि०)।

कुमुदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पुण्डरिया। प्रपौण्डरीक। (वै० निघ०)।

कुमुद गन्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुक्रभाण्डी। (ध० नि०)।

कुमुदघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम का स्थावर विष। इसके क्षीर में विष होता है। (सु० कल्प० २ अ०)।

कुमुद प्रकाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] १ (१) सूर्य। (२) चन्द्रमा।

कुमुद प्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] १

कुमुद बान्धव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्पूर। (२) चन्द्र। (वै० निघ०)।

कुमुद रागा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धातकी वृक्ष। धवई। (वै० निघ०)।

कुमुद बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तुलम निलूफर। (बं०) तेलो विची। (हि०) भेटवेरा। गुण—स्वादु, गुष्पाकी, रूक्ष एवं शीतल है। (भा०)। इसका हलुआ रक्तपित्त एवं रक्तप्रदर में उपयोगी है। (अनुभूत)।

कुमुदम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्पूर। (ध० नि०)।

कुमुद वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोहिता। कमीला (Rottlera Tinctoria; Mallotus Phillipinensis) इसमें से कम्पिल्ल वा कबीला (रोरी) उत्पन्न होता है।

कुमुद-मुहत्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्पूर। (२) चन्द्रमा।

कुमुदा—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जलकुम्भी। कुम्भिका; (बं०) पाना। (२) गमहार, गम्भारी। (हे० च०)। (३) शालपर्णी। (४) धाई। धातकी। (५) कायफल। कटफल वृक्ष। (रा० नि० व० ४, ६, ९)।

कुमुदाद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] द्रव्य तथा निर्माणविधि—कमलपुष्प, पद्मकाष्ठ, खस, गेरू, चावल, माषपर्णी, शालपर्णी, ऋद्धि, जीरा, खीरा के बीज, केला की फली, प्रत्येक १-१ पल, गोदुग्ध ४ प्रस्थ, जल २ प्रस्थ, गोघृत १ प्रस्थ। यथाविधि सिद्ध करें। **गुण**—इसके सेवन से प्रदर, रक्तदोष, पाण्डु, हलीमक, कामला, वातरक्त, अरुचि, जीर्णज्वर, स्त्रीरोग, मद, भ्रम, विविध प्रकार के पित्तजन्य रोग तथा बन्ध्यत्व का नाश होता है।

कुमुदाभिल्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रूपा। रौप्य। (हे० च०)।

कुमुदावास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुमुदप्राय प्रदेश। वह स्थान जहाँ प्रायः कुमुद अधिक होता है। (हे०)।

कुमुदासव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'अरविन्दासव'।

कुमुदिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) कुई। बेरा। कुमुदिनी। नीलूफर। दे० 'कुमुद'। (२) कायफल। कटफल वृक्ष। (भा० पू० १ अ०)।

कुमुदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चन्द्रप्रिया। कुई। कोई। कुमुदनी, ज्योत्स्ना; (बं०) शुन्दी, छोटे शुन्दी, कुमुद झाड़; (ते०) कलुवलनु कोलितु, कलुव पुव्वुलु। (रा० नि० व० १०)। इसमें कमलिनीसदृश गुण हैं। (भा० पू० १ अ०)। दे० 'कुमुद'। (२) वह स्थान जहाँ कुमुद हों।

कुमुदिनी-बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुमुद बीज। तुलम निलूफर। (वै० निघ०)। दे० 'कुमुद'।

कुमुदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कायफल वृक्ष। कटफल वृक्ष। (मद० व० १)। (२) कमहार। गम्भारी (रा० नि० व० ९)।

कुमुदेश्वर-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तृष्णारोगोक्त रसयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—ताम्रभस्म २ भाग, वंगभस्म १ भाग, एकत्र मुलहठी के क्वाथकी भावना देकर शुष्क कर लें और माष (उड़द) प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

(२) लालचन्दन, अनन्तमूल, मोथा, छोटी इलायची और नागकेसर को समभाग में ग्रहण करें और

सब के बराबर धान की खील लेंवें। इसे १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें। जब अर्ध भाग शेष रह जाय, तब छान लेंवें। इसमें मिथ्री तथा मधु मिश्रित कर इसके साथ सेवन करें। गुण—उक्त विधि से सेवन करने से वमन, उग्र तृष्णा तथा दाह का नाश होता है। (२० सा० सं०)।

(२) योग—शुद्ध पारद, और गन्धक की कज्जली, अभ्रक भस्म १-१ भाग, शुद्ध हिंगुल उक्त द्रव्यों से ३ भाग। शुद्ध मैन्शिल हिंगुल का ३ भाग तथा सब का १ भाग लोहभस्म ग्रहण कर एकत्र चूर्ण कर इसमें शतावरी स्वरस की १४ भावना दें। मात्रा—१ से ३ रत्ती।

गुण तथा उपयोग—प्रातःकाल कालीमिर्च के चूर्ण के साथ इष्टदेव की प्रार्थनापूर्वक उचित मात्रानुसार सेवन करने से उग्र यक्ष्मा, ज्वर, त्रिदोषज व्याधि, पलित इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। (यो० २० राजयक्ष्मा चि०)।

कुमुद्वती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुमुदिनी। कोई। (रा० नि० व० १०)। दे० 'कुमुद'। (२) एक प्रकार का स्थावर विष। इसके फल में विष होता है। (सु० कल्प २ अ०)। दे० 'फलविष'।

कुमुद्वती बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुमुद बीज। गुण—यह रुक्ष, स्वादु, शीतल एवं गुरुपाकी है। (वैद्यकम्)। दे० 'कुमुद'।

कुमुद्वान्—वि० [सं० त्रि०] कुमुदविशिष्ट देश। (मे०)।

कुमुरेकूष्ठ—[वं०] हैंसा। अहिंसा। काकादनी।

(Capparis Sepiaria)।

कुमूनल्मिहः—[अ०] नेत्रकनीनिका के पीछे पूय का एकत्री कल्कतारिय्यः—[„] भूत होना। यदि इस दशा में ताककुल (भक्षणीय दोष) उत्पन्न हो जावे तो इसको अरबी में 'कल्कतारिय्यः' कहते हैं। इस दशा में कनीनिका घुल जाती है। (अ०) हाइपोपीन (Hypopyn)।

कुमून जूजइय्यः—[अ०] दृष्टिमान्ध। धुन्ध। गुवार। (अ०) ऐम्ब्लीओपिया (Ambliopia)। इस रोगमें क्रमशः दृष्टि का नाश होता है। इसके वर्धित अवस्था को दृष्टि-नाश वा अखीम 'जहाबुल बल' कहते हैं। पुरातन तिब्बी चिकित्सक इसका कारण दृष्टि की निर्बलता समझते हैं।

कुमेठ—संज्ञा पुं० [हि०] पेठा। भतुआ। रकसवा कुम्हड़ा।

कुमेडन—संज्ञा पुं० [हि०] पेठा।

कुमेडिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेर पाठ—संज्ञा पुं० [म०, मेवाड़] घृतकुमारी। ग्वार।

कुमोद—संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] कुई।

कुमोदनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कुमुदिनी'।

कुमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कुमुदिनी'।

कुमोही—संज्ञा स्त्री० [सिन्ध०] कृष्ण काम्बोजी। पानजोली।

(Phyllanthus Reticulatus)। (इ० मे० मे०)।

कुम्कुम—संज्ञा पुं० [देश०] कुङ्कुम।

कुम्टा—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष विशेष।

कुम्नापिण्डी—[म०] चाय, (डाइमाक iii 138)।

कुम्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाहुकुण्ड। कुम्पा (जटा०)।

कुम्पटा—संज्ञा पुं० [देश०] कुमटा।

कुम्पाइ मान—[हि०] ओषधि विशेष।

कुम्बइ—संज्ञा स्त्री० [ता०] डीकामली। कीड़ामारी। नाडी-हिंगु। हिंगुनाडिका।

कुम्ब-भुंग—संज्ञा पुं० [लेपचा] तुंगचेर।

कुम्बल-मरम—संज्ञा पुं० [मल०] वनस्पति विशेष।

कुम्बल-बड़ी—संज्ञा स्त्री० [कना०] कुष्माण्ड। पेठा।

कुम्बलबाव—संज्ञा पुं० [वम्ब०] कुष्माण्ड। पेठा।

कुम्बल बीलि—संज्ञा पुं० [कना०] कुष्माण्ड। पेठा।

कुम्बलि (ली)—संज्ञा स्त्री० [ता०] कोंहड़ा। कुम्हड़ा।

कुम्बलु-पोट्ट—संज्ञा पुं० [सि०] पेहमाणु पट्ट (सि०)।

कुम्बाई—संज्ञा स्त्री० [ता०] डीकामाली। कीड़ामारी। नाडीहिंगु।

कुम्बालम्—संज्ञा पुं० [मल०] कुष्माण्ड। पेठा।

कुम्बी—संज्ञा स्त्री० [हि०] (१) खुम्बी। (पं०) वेरुला (मे० मो०)।

कुम्बी—(२) पर्याय—(सं०, हि०, वं०; म०) कुम्बी; (वं०) वक्कुम्भ; (ते०) पुदिप्पी; (ता०) पैलक पुटाटम्मी; (कना०) द (ड) ड्डल, गुड्ड-इप्पै; (मल०) पीलम्, पैड, आलम्, उकमरम्; (मायसूर) गोवुलडु; (ले०) कैरिया आबोरिया (Careya arborea); (म०) वाकुम्भ; (सं०) कुम्भी फल; (हि०) वायकुम्भा, कुम्ही का फल; (गु०) वाकुं (पुं०) भा; (अं०) वाइल्ड ग्वावा (Wild-guava)। जंगली अमरूद।

कुल—आसादि (Myrtaceae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष में हिमवती पर्वत से जमुना के पूर्वी देशों में।

परिचय—एक वृक्ष के फल हैं। स्वरूप भूरा तथा मटमैला होता है। इसके फल ही औषध में बरते जाते हैं।

उपयोगी अवयव—फल, छाल, स्वरस तथा पुष्प।

रासायनिक संगठन—इसकी स्थूल त्वचा में कुम्बीन (Tannin) ४ प्रतिशत और तह (Liber) में कैल्सियम् आक्सलेट (Calcium oxalate) प्रचुर मात्रा में होता है।

योग—क्वाथ—त्वचा का छाल १ भाग, जल १० भाग कृत।

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से $1\frac{1}{2}$ औंस।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—दोषपाचक, सर, दीपन तथा वातानुलोमन है। **उपयोग**—आमाशयिक निर्वलता में तथा शिशुओं के घुटी में अन्य उपयोगी द्रव्यों के साथ मिश्रित कर फाण्टरूप से दिया जाता है। वातज बाल-शूल में १ रत्ती से १ माशा तक देते हैं।

त्वचा—इसके नूतन त्वचोद्भूत पिच्छल द्रव का प्रलेप करने से प्रन्तशोथ का नाश होता है। सर्पदंशस्थानपर पीसकर लगाने से विष शमन होता है। इसका हिम निर्माणकर पानार्थ दिया जाता है।

पत्र—इसको कुचल कर दिन में ३-४ बार लगाने से प्रादाहिक क्षत या विद्रधि का नाश होता है।

पुष्प—फूलों का शर्वत वा हिम प्रस्तुतकर देने से प्रसवप्रश्वात् योनिस्फटन में उपकार होता है। इसके पुष्प और त्वचा का क्वाथ निर्माणकर उपयोग करने से वातज कास में उपकार होता है और पित्तज प्रतिश्याय में भी उक्त विधि से देने से लाभ होता है। इसके क्वाथ से ब्रणादि को प्रक्षालन करने से उत्तम लाभ होता है। इसके क्वाथ में मिश्री मिला कर सेवन करने से रक्तातिसार, प्रवाहिका तथा अजीर्ण का नाश होता है।

फल—इसके फलों का क्वाथ निर्माण कर सेवन करने से आमाशयिक निर्वलता दूर होती है।

[ता०] डीकामली। नाडीहिंगु। (मे० मो०)।

कुम्बीज—संज्ञा पुं० [अ०] साँप। सर्प।

कुम्बीड़ा—संज्ञा पुं० [अ०] सर्प। साँप।

कुम्बुक—संज्ञा पुं० [सि०] आसन। (मे० मो०)।

कुम्बुर—संज्ञा पुं० [अ०] द्रव्य विशेष

कुम्बुला—संज्ञा पुं० [मल०] गम्भारी। काश्मरी।

कुम्बुली—संज्ञा स्त्री० [?] एक ओषधि। (डाइमाँक भ० २ पृ० ६८)।

कुम्बुलू—संज्ञा पुं० [?] एक ओषधि। (डाइमाँक भ० ३ पृ० ७०)।

कुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) निशोथ, त्रिवृत्त। (हे० च०)। (२) गुगुल, गुगुलु। (अम०)। (३) सूर्प नाम का मान जो ६४ सेर का होता है। (प० प्र० १ ख०)। (४) जमालगोटा, जयपाल वृक्ष। (५) कायफल, कटफल वृक्ष। (६) पिठवन, पृश्निपर्णी। (७) पाढल, पाटला वृक्ष। (८) फलसा, कलस। (९) हाथी के शिर का पिण्ड। (हला०)।

संज्ञा पुं० [सं०] गुगुल। (अम०)।

कुम्भक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जमालगोटा। जयपाल। (मे०)।

कुम्भरेचना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जयपाल वृक्ष। जमाल गोटा। (वै० निघ०)।

कुम्भकामला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामला भेद। लक्षण

—कामला जब अधिक पुरातन हो जाता है तब रूक्षता की वृद्धि हो कर जठराग्नि जाती रहती है। जिस प्रकार घड़े का मुख छोटा होता है और उसका पेट बड़ा होता है, इसी प्रकार कुम्भकामला रोगी का उदर हो जाता है। जब दोष कोष्ठाश्रित होकर उक्त लक्षण उत्पन्न करते हैं, तब कुम्भकामला उत्पन्न होता है। यह जॉण्डिस (Jaundice) अर्थात् यरकान का एक भेद है।

कुम्भकामलारिष्ट लक्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जब कुम्भकामला में वमन, अरुचि, उत्क्लेश, ज्वर, क्लम (श्रम), श्वास, कास और मल फटा हुआ होता है, तब शीघ्र ही रोगी यमपुर को निवास बनाता है।

कुम्भकामला-कामलारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जिस कामला के रोगी का मल-मूत्र काला-पीला मिश्रितवर्ण का हो और मुख-नेत्र भी लाल हों, वमनद्रव का भी वर्ण लाल हो, समस्त शरीर में शोथ हो, कफरक्तमिश्रित हो, चित्त में ग्लानि हो, दाह, अरुचि आध्मान, तन्द्रा, मोह, मन्दाग्नि हो, संज्ञा नष्ट हो तो ऐसा रोगी यमपुर की यात्रा करता है।

कुम्भकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कक्कुभ (कोयल भेद) नाम का पक्षी। (हे० च०)।

कुम्भकार कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का क्षुद्र कुक्कुट भेद। मुर्गा। (ले०) फेसिआनस गैलस (Phasianus-Gallus)।

कुम्भकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली कुलथी। वन कुलथ।

कुम्भकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुलथांजन। (हिं०) चाकसू। (प० मु०)। (२) मैनशिल। मनःशिला। (जटा०)।

कुम्भकालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घोल। (वै० निघ०)।

कुम्भज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अगस्त। वकपुष्प। (प० मु०)।

कुम्भड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्डशाली। कुम्हड़ धान। (रा० नि० व० १६)।

कुम्भतुम्बी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोल कद्दू। वृहत्तुम्बी। (वै० निघ०)।

पर्याय—कुम्भालावू, गोरक्षतुम्बी, गोरक्षी, घटाभिधा, घटालावू, नागालावू।

गुण—कुम्भतुम्बी—मधुर, शीतल, तर्पणकारक, गुरुपाकी, रुचिकारक, पुष्टिकर, शुक्रवर्धक, बलप्रद, पित्तनाशक और गर्भपोषक है। इसके फल में वही गुण हैं जो इसकी लता में हैं। (वै० निघ०)। शीतपित्त, श्वास, कफ, रक्तदोष, ज्वर, और कास नाशक तथा बलकारक है। (रा० नि० व० ७)। दे० 'कद्दू'।

कुम्भपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्भाड़िका लता। (प० मु०)।

कुम्भ-पुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] विधि—एक घड़े में

कतिपय छिद्र कर उसके भीतर कोयला भर दें और मध्य में औषधस्थापन कर उसमें कुछ सुलगते हुए कोयले भी डालें और मुख बंद कर रख दें। शीतल होने पर औषध निकाल लें। (२० का० घ० पृ० २७)।

कुम्भ-पुटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद निशोय। श्वेतत्रिवृत्। (वै० निघ०)।

कुम्भ-पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रक्त पाटला। लाल पुष्पवाला पाटल। (वै० निघ०)।

कुम्भफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाकुष्माण्ड फल। बड़ा कुम्हड़ा। काशीफल। (रा० नि० व० ७)।

कुम्भ फूल—संज्ञा पुं० [हिं०, म०] द्रोणपुष्पी। गूमा। (डाइमॉक)।

कुम्भ बीजक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रीठाकरंज। (घ० नि०)।

कुम्भमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] व्रण भेद (सु०)।

कुम्भयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) द्रोणपुष्पी। गूमा। (रा० नि० व० ६)। (२) अगस्त। वक्र वृक्ष। (वै० निघ०)।

कुम्भरड्ड—संज्ञा पुं० [ते०] जंगली उखा।

कुम्भरेता—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि। आग। (अं०) फायर (Fire)।

कुम्भला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुण्डीरी। मुण्डी। (२० मा०)।

कुम्भबीज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अरिष्टकफलवृक्ष। रोठी। रोठा

कुम्भ बीजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करंज। (रा० नि० व० ९; घ० नि०)।

कुम्भ वारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुण्डीरी भेद। (प० मु०)।

कुम्भशालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वनामाख्यात शालिधान्य। गुण—मधुर, स्निग्ध और वातपित्तनाशक है। (रा० नि० व० १६)।

कुम्भसन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] हाथी के उभयकुम्भ का मध्य भाग। करिकुम्भद्वय मध्यभाग।

कुम्भसर्पि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] एकादशोत्तर शत (१११) वार्षिक पुरातन घृत। गुण—१११ वर्ष का पुराना घी रक्षोघ्न है। (सु० सू० ४५ अ०) 'रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः'।

कुम्भसी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृगाक्षी। (घ० नि०)।

कुम्भस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्भीस्वेद।

विधि—(१) वातघ्न औषधियों के क्वाथसे भरी हुई हाँड़ी का आधा वा तीसरा भाग भूमि में गाड़ दें और इसके ऊपर लेटने की चारपाई वा बैठने की छोटी पीढ़ी जो बहुत ऊँची न हो, जिस पर अत्यधिक मोटे वस्त्र न बिछे हों, रखें। इस पर रोगी को बैठाकर वा शयन करा

कर लोहे के गोलों को वा पत्थरों को भली भाँति तप्त कर हाँड़ी में डाल दें। इस प्रकार उस क्वाथ की उष्णता से और वाष्प से सुखपूर्वक स्वेदन होता है। (च० सू० १४ अ०)।

(२) उष्ण मांसरस आदि से भरी हुई उष्ण कुम्भी को वस्त्र से लपेटकर ऊष्मा ग्रहण करें। इसमें वातहर धान्याम्ल इत्यादि द्रव्यों का योगकर ऊष्मा दें। (सुश्रुत)।

कुम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उखा। (२) कटफल। कायफल। (३) पिठवन। पृश्निपर्णी। (४) पाटल। पाटला। (मे०)। (५) गूमा। द्रोणपुष्पी। (वै० निघ०)। (६) सफेद निशोय। श्वेत त्रिवृत्। (७) तुम्बी। (वै० निघ०)।

कुम्भाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लालपुष्प का पाटल। रक्त पाटला। (वै० निघ०)।

कुम्भाच (चि) साल—[म०] कायफल। कटफल वृक्ष। **कुम्भाट**—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वृहत् जंगली वृक्ष है। कुम्भा, कुम्भाड। (रत्ना०)।

कुम्भाणु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्हड़ा। कुष्माण्ड। (रा० नि० व० ७)।

कुम्भाण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्हड़ी। कुष्माण्डी। (रा० नि० व० ७)।

कुम्भाद्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कुम्हड़ा। कुष्माण्ड।
कुम्भाद्री—संज्ञा स्त्री० [„] }

कुम्भार—संज्ञा पुं० [हिं०] गम्भारी।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोविदार। कोइलार। (घ० नि०)। **कुम्भारी**—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्हड़ा। कुष्माण्ड। (वै० निघ०)।

कुम्भालाबु—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] महादुग्धालाबु। गोल कद्दू। (वै० निघ०)।

कुम्भालाम्बु—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गोरक्षतुम्बी। गोल कद्दू। (घ० नि०)।

कुम्भाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक वृक्ष विशेष।

कुम्भाह्वय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्भकामला। (च० द० पाण्डु चि०)।

कुम्भिआ—[कना०] कुम्भी।

कुम्भिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुन्नागवृक्ष। (२० मा०)। (२) छतिवन। सप्तपर्ण वृक्ष। (प० मु०)। (३) कुम्भी। वारिपर्णी। (ब०) पाना। (४) भोजपत्र। भूर्ज वृक्ष। (सु० सू० ३० अ०)। दे० 'भूर्ज'। (५) पाटल। पाटल वृक्ष। (६) नपुंसक। षण्ड विशेष। हिजड़ा। (सु० चि० १७ अ०; भा०)।

कुम्भिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जलकुम्भी। टोक

पाना (वं०) । (रत्ना० पा० उ० ८ अ०) । (२) रक्तपाटला । लाल फूल का पाटल । (रा० नि० व० १०) । (३) उक्त नाम का नेत्रवर्त्मगत रोग ।

लक्षण—नेत्रवर्त्म के अन्त में पिड़का होती है । इसमें भेदनवत् पीड़ा तथा स्राव होता है । यह पिड़का कुम्भीक-बीजतुल्य और सन्निपातज होती है । (मा० नि०) । (४) कायफल । कट्फल वृक्ष । (वै० निघ०) । (५) पाटल, पाटला वृक्ष । (प० सु०) । (६) गूमा । द्रोणपुष्पी । (रा० नि० व० ६) । (७) गूगुल । गुग्गुलु । (८) शूकदोष विशेष । **लक्षण**—यह रक्तपित्त के प्रकोप से होती है और जामुन की गुठली सदृश होती है । (सु० नि० शूकदोष १४ अ०) ।

कुम्भिकाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाड़ीव्रणाधिकारोक्त योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—जमालगोटा, खजूर, कूठ, वेलगिरी और वट इनके फलों का क्वाथ निर्माण कर उसमें नागरमोथा, फुलप्रियंगु, देवदारु, रोहिपतृण, सुगन्धितृण, मोचरस, नागकेसर, लोध तथा धातकीपुष्प इनका कल्क बनाकर तेल मिलाकर पकाएँ । तेल की मात्रा ४ श० ।

गुण—इसके उपयोग से शल्य सम्बन्धी तथा अन्यान्य प्रकार के नाड़ीव्रण नष्ट होते हैं । (भा० म०) ।

कुम्भिकुकार पिंडी—[हि०]

कुम्भितित्तिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तीतरपक्षीभेद ।

कुम्भिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जयपाल वृक्ष । जमालगोटा । (२) पेहटुल । मृगैर्वाल् लता । वं०—राखाल शशा । (रा० नि० व० ६) ।

कुम्भिनीफलबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जमालगोटा । जयपाल । (रा० नि० व० ६) ।

कुम्भिपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कायफल । कट्फल वृक्ष । (भा०) ।

कुम्भिमद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी का मद्ग । हस्तिमद ।

कुम्भिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शालमत्स्य । सिंही मछली । (मे० लत्रिक) ।

कुम्भी (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) हाथी । हस्ति । (हला) । (२) गूगुल । गुग्गुलु वृक्ष । (जटा०) । (३) सविष पतंग भेद । (४) मछली भेद । वं०—कुम्भीरके । (५) वालग्रह विशेष । (६) कुम्भीर (हे० च०) ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिठवन । पृश्निपर्णी । (२) पाटल । पाटला । (मे०) । (३) कायफल, कट्फल वृक्ष । (रा० नि० व० ९) । (४) जलकुम्भी, वारिष्पर्णी । (वं०) टोकापाना । (रा० नि० व० ६) । (५) दन्ती क्षुप । जमालगोटा । (रा० नि० व० ५) । (६) पुष्पवृक्ष विशेष यह कोकण देश में प्रसिद्ध है । **पर्याय**—पर्पटद्रुम, रोमश, रोमालु, विटपी । **गुण**—कटु, कषाय, उष्ण, वात-

कफघ्न तथा संग्राही है । (रा० नि० व० ९) । वातपित्त-उ्वर, दाह, कफ तथा रक्तातिसारनाशक है । इसके उपयोग से योनिदोष तथा विष का नाश होता है । (वै० निघ०) । (७) अग्निकोट । इसके दंश से पित्तज रोग उत्पन्न होते हैं । यह अग्नि प्रकृति का होता है । (सु० कल्प० ८ अ०) । (८) सफेद निशोथ । श्वेत त्रिवृत् । (९) जमालगोटा । जयपाल वृक्ष । (वै० निघ०) ।

कुम्भीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का षण्ड (नपुंसक) । यह स्त्री की गुदा में मैथुन करने की प्रकृति रखता है ।

कुम्भीनस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्रूर सर्प । दुष्ट साँप । (मे०) । (२) वातज प्रकृति का कोट । इसके दंश से वात निमित्तज रोग उत्पन्न होते हैं । (सु० कल्प० ८ अ०) ।

कुम्भीपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का सन्निपातज उ्वर । **लक्षण**—जिस व्यक्ति के नासारन्ध्र द्वारा सान्द्र रुधिर का स्राव हो और जो अपने शिर को इधर-उधर फेंका करे उसको 'कुम्भीक सन्निपात' कहते हैं ।

चिकित्सा—द्राक्षादि क्वाथ का सेवन कराये और शिर पर दूर्वादि धृत का लेप करावें ।

कुम्भीपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कायफल । महाकुम्भी । कट्फलवृक्ष । (डाइमॉक) ।

कुम्भी पुट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गजपुट । (२० सा० सं०) ।

कुम्भी फल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जमालगोटा । जयपाल वृक्ष । (२) कुम्भी वृक्ष ।

कुम्भी बीज—संज्ञा पुं० [„] (१) जमालगोटा । (२) कुम्भी वृक्ष । (वै० निघ०) (रा० नि० व० ६) ।

कुम्भीमद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथीमद । हस्तिमद ।

कुम्भीमुख—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुष्टव्रण विशेष । नाड़ीव्रण ।

कुम्भीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घण्टिका । घड़ियाल । (अं०) क्रोकोडाइल (Crocodile) ।

पर्याय—(सं०) कुम्भी, जलशूकर, तालुजिह्वा, द्विधागीरा, पिकचक्षु, महामुख, शंखमुख, जल-जिह्वा (हा०), नक्र, कुम्भील, गिलाग्राह, महावल, अम्बुकिरात, अम्बुकण्टक । **कुम्भीरमांस गुण**—पाक, में स्वादु, वातघ्न, स्निग्ध, शीतल, पित्तरोग में हितकर, मलवर्धक तथा कफकारक है । वसा (चरबी)—प्रमेहकारक है । (च०) । (शिशु, लिंग)—कामोत्तेजक तथा नपुंसकतानाशक है ।

तिब्ब के अनुसार घण्टिका-मांस । **पर्याय**—(हि०) घड़ियाल का मांस, गोश्त मगरमच्छ; (सं०) घण्टिका मांस; (फा०) गोश्त निहंग; (अ०) लहमुल् तमसाख ।

परिचय—स्वाद—कटु तथा विसैधा होता है । जल का

दृढ़ अंगवाला बहुत लम्बा जन्तु है।

मांस—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं तृतीय कक्षा में रुक्ष है।

गुण-कर्म—ओज एवं बलप्रद, बृंहण और गुल्मनाशक है।

विष्टा (लीद)—नेत्रजालानाशक है। **वसा**—गुल-रोगन के साथ लगाने से अध-विभेदक नष्ट होता है। कर्णपूरण करने से शूल एवं वाधिर्य का नाश होता है। अभ्यंग करने से कटिशूल नष्ट होता है। **दन्त**—इसके दाहिने ओर के दाँत को दाहिने भुजा में बांधने से विषय-शक्ति की वृद्धि होती है।

हानिकारक—अपक्व रसोत्पादक है। (चरबी प्रमेह-जनक है)।

(२) कुम्भी वृक्ष। (सु०; वै० निघ०)।

कुम्भीर मक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मक्षिकाविशेष।

मक्खी भेद। (बं०) कुमीरा पोका।

कुम्भीर वल्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कायफल वृक्ष। वै० निघ०)।

कुम्भीरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुरपुत्राग। सुरपत।

कुम्भील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घड़ियाल। दे० 'कुम्भीर'।

कुम्भी वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कायफल का वृक्ष। कटफल वृक्ष।

कुम्भीवृक्षफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कायफल। (वै० निघ०)।

कुम्भी स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुम्भ स्वेद'। (च० सू० १४ अ०)।

कुम्भेर—संज्ञा पुं० [हिं०] (१) पर्याय—(हिं०) गम्भारी, गम्भार, खम्भार, कमहार; (सं०) गम्भारी, अभद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृन्ता, मधुरसा, महाकुसुमिका, सर्वतोभद्रा, भद्रा, गोपभद्रिका, कम्भारिका, कुमुदा, सद्भद्रा, कृष्णफला, कटफला, कृष्णवृन्तिका, सर्वतो-भद्रिका, स्निग्धपर्णी, सुभद्रा, कम्भारी, गोपभद्रा, सारिणी, विदारिणी, महाभद्रा, मधुभद्रा, स्वरूपभद्रा, कृष्णा, अश्वेता, रोहिणी, गृष्टि, स्थूलत्वचा, मधुमती, सुफला, मोहिनी, महाकुमुदा, सुदृढत्वचा, महाकुमु-दिका, पीतफला; (बं०) गाम्भारी, गंभार, गामारी; (गु०) शीवण; (मं०) शीवण साल; (कना०) सीवणी; (हो०) गमार, ठेक, पेद्गोमरू, साल्लागुपुणी चेदु; (मल०) कम्बल; (ता०) गम्भडु, टेकु; (कना०) काश्मरीमर, शिवणि-गिदा; (ले०) मेलीना अबोरिया (Gmelina arborea)। पिप्पलादिकुल (N.O.—Verbenaceae)।

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वत की तराई, नीलगिरि, विन्ध्यपर्वत इत्यादि।

उपयोगी अंग—मूल, त्वचा, फल।

परिचय—कुम्भेर के बहुत बड़े वृक्ष होते हैं। इसके पत्र पीपल के पत्तों से बड़े होते हैं। पुष्प पीत, फल पीत, द्वितीय भेद के पुष्प श्वेत होते हैं। त्वचा श्वेत होती है। इसमें से दुग्धस्राव होता है।

गुण-कर्म—कषाय, कटु, उष्णवीर्य, मधुर, दीपन, पाचन, बुद्धिप्रद, भेदक तथा भ्रम, शोष, तृषा, आमशूल, अर्श, विष, दाह और ज्वर नाशक तथा बलवर्धक, पौष्टिक, प्रसन्नताकारक, आमाशयबलप्रद, श्लक्ष्ण तथा शीतल है।

फल—कुम्भेर का फल वीर्यवर्धक, बलदायक, दीर्घ-पाकी, केशों को हितकर, रसायन, पाक में मधुर शीतल, स्निग्ध, कषाय, अम्ल, कोष्ठपरिष्कारक, त्रिदोषनाशक, तृष्णद, रक्तपित्त तथा क्षत-क्षय शामक है। भेद—

(२) विहारी। पर्याय—(ता०) नीलक किमनीझ; (ते०) चल्लगुमुडु, श्री गुमुडु; (कना०) कुमठा; (सि०) गट्टदीमट; (कों०) सिवणी; (ले०) मलीना एसिआटिका (Gmelina Asiatica), मे० पार्विफ्लोरा (G. parviflora)।

यह कुम्भेर का द्वितीय भेद है जो ट्रावंकोर तथा कारो-मण्डल कोष्ठ में होता है। इसका मूल पिच्छिल तथा लसदार होता है। इसका नूतन पत्र शीतल तथा पूयमेह-नाशक है और मूत्रकच्छ में उपयोगी है।

कुम्भोद्भव तरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अगस्त वृक्ष। वक पुष्पी। (भा० म० १ अ० चित्तविभ्रम ज्व० चि०)।

कुम्भोलु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } पेचक भेद।

कुम्भोलूकर—संज्ञा पुं० [] }

कुम्भोलूखलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुगुल। गुगुलु। (घ० नि०; वै० निघ०)।

कुम्भला—[अ०] नाशपाती। नसपाती।

कुम्भा—[ब०] पेठा। कुम्भाण्ड।

कुम्भी—[ता०] गम्भार। कुम्भेर। (मे० मो०)।

कुम्भापिण्डी—[म०] गोरख बूटी। (बं०) भुइ कल्लान। पेरीरा लानेटा (Perera Lanata)। चाल कुमड़ा। देशी कुम्हड़ा। (डाइमॉक)

कुम्भिनकुर पिंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०]

वर्णन—एक भारतीय वृक्ष जिसका फल अमलतास की तरह लंबा (कोलफल) होता है। इसका फूल भी लंबा (पूतिका) होता है और दिन भर खिला रहता है। फल स्वादिष्ट होता है। इसकी एक संस्कृत संज्ञा 'तुरयातुण्डी' भी है। महीत में ऐसा ही लिखा है। इसमें दी हुई उपर्युक्त एवं अन्य संस्कृत संज्ञाओं का ठीक पता नहीं लगता।

गुणधर्म आदि—यह वृक्ष और वस्तिगत अश्मरी और

शर्करा की नाशक है तथा उदरवृद्धि वा कलानीशिकम (शोहः ? = शोथ), सन्निपात (दीवानगी और वेहोशी), प्रलाप, उष्णता, और ज्वर इनको तथा वायु को नष्ट करती है। (मुहीत)

कुम्हड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड, पा० कुम्हड़ा (कोहंग)] (वं०) कुमड़ा। (हि०) कुम्हड़ा। पर्याय—(सं०) घृणावास, तिमिष, ग्राम्य कर्कटी, पुष्प फल, कर्कारू, कुष्माण्ड, शिखिवर्धक, कुष्माण्डी, कर्कोटिका वृहत्फला, सुफला, कुंचफला, नागपुष्पफला, शुनी, कुम्भाण्ड, बलीफल, श्रष्ट; (उत्कल) कखाड़, पानी कखाड़; (द०) पेठा; (वं०) कुमड़ा काय; (गु०) कोहला, भुलू कोहलू, कोलू, काटा भूरो कोलू; (म०) कोहला; (ते०) बूड़िदे गुम्ममड पेंडूलि, गुम्मडी, काय; (ता०) कल्याण पूशिनी, वकाय; (मल०) कुम्पलड; (कना०) बुदे, कुम्बला; (कों०) कुवले; (अ०) महदबा; (फा०) वजू दुबा, कद्दू रूमी; कुष्माण्डादि कुल (N. O. Cucurbitaceae.)

उद्भवस्थान—समस्त भारतवर्ष में इसकी कृषि की जाती है या यह जंगली होता है।

उपयोगी अंग—बीज, और फल, (फलस्वरस।)

रासायनिक संगठन—इसके बीज से एक प्रकार का स्थिर तैल ४४ प्रतिशत, स्टार्च (गोधूमसत्वकपदार्थ) ३२ प्रतिशत, क्षार सत्व, गोंद, प्रोटीड (प्रोभूजिन), मायसीन, वाइटे लीन तथा शर्करा ४ प्रतिशत प्राप्त होते हैं।

गुण-कर्म—गोषक, बलप्रद, मूत्रल, अवस्थापरिवर्त्तक, पारदविषनाशक और शोणितस्तम्भक।

बीज—मूत्रल, मस्तिष्कबलप्रद, जीर्णज्वरनाशक, तथा कृमिनाशक है। कुष्माण्डखण्ड परिवर्त्तक, पोषक, बलप्रद, क्षयनाशक, मूत्रल तथा अवस्थास्थापक है।

उपयोग—इसका बीज कृमिरोगनाशक है तथा स्वरस मिश्रितसेवन करने से रक्तपित्त का नाश होता है। इसमें मोक्षितक भस्म और मधु मिश्रितकर सेवन करने से प्रारम्भिक क्षय का नाश होता है। इसके अतिरिक्त मूच्छा, अपस्मार तथा उन्माद में अत्यन्त उपयोगी है। वानस्पतिक विष वा पारदजन्यविष-विकारनाशनार्थ इसका प्रचुर प्रयोग होता है। मधुमेह और मदातय में इसकी त्वचा का स्वरस निकाल कर ४ औंस की मात्रा में केशर, रक्तशालीवूर्ण समान भाग में चूर्ण कर ४ माशा मिश्रितकर सायंप्रातः सेवन करने से उत्तम लाभ होता है।

योग—कुष्माण्डक वटी, कुष्माण्डखण्ड, कुष्माण्डक घृत, कुष्माण्डगुडकल्याण इत्यादि।

गुण—कुष्माण्ड—वातघ्न, रोचक तथा बाल कुष्माण्ड

और मध्यावस्था का कुष्माण्ड—त्रिदोषनाशक, शोफ, वातकफ और रक्तपित्तनाशक है। (अत्रि १६ अ०)। बृंहण, वृष्य, दीर्घपाकी, श्लेष्मल, रक्तपित्त तथा वातघ्न है। बालकुष्माण्ड पित्तघ्न, शीतल और मध्यावस्था का कुष्माण्ड कफकारक है। वृद्ध कुष्माण्ड—अति शीतल नहीं होता तथा स्वादु, क्षारयुक्त, दीपन, लघुपाकी, बस्तिशोधक तथा विस्मृतिनाशक है। (भा० पू० १ अ०)। इसका मध्यफल, कफकारक, गुरुपाकी और पक्वफल लघुपाकी, उष्ण, क्षाररसयुक्त, अग्निदीपक, बस्तिशोधक, हृद्य, पथ्य एवं पित्त-विकारनाशक है।

लताशाक—क्षारीय, मधुर, गुरुपाकी, रूक्ष, रुचिकारक वात, कफ, अश्मरी तथा मूत्रशर्करा नाशक है।

मज्जा—पित्तघ्न, शुक्रल तथा बस्तिशोधक है। (राज ३ अ०)। मूत्राघातहर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरीघ्न, विण्मूत्र, मूत्राम्लनाशक, शुक्रवृद्धिकारक, तृष्णाहर, जीवाङ्ग पुष्टिकर, स्वादु, अरोचकहर, बलवर्धक तथा पित्तघ्न है। (रा० नि० व० ७)। कुष्माण्ड स्वरस में गुड़ मिश्रित कर सेवन करने से पानातृक्त, कुष्ठ तथा द्रवसंजात मद का नाशक है। (शाङ्ग०, म० १)।

कुष्माण्डस्यतुबीजानि। बस्ति सन्धारयेत् तेन प्रशाम्येन्मत्रनिग्रहः। (भावप्रकाशः)।

नोट—उपर्युक्त गुण पेठा के हैं, काशीफल अथवा साधारण कुम्हड़ा के नहीं।

(२) (हि०) पेठा, भतुआ, रकसवा कोहड़ा; (सं०) कुष्माण्ड; (फा०) कद्दू रूमी; (अ०) महदबा; (ले०) बेनिन्कासा सेरिफरा (Benincasa cerifera), कुकरबिता पेपो (Cucurbita pepo, Rox); (अं०) ह्वाइट पम्पकिन (White pumpkin), ह्वाइट गोर्ड-मेलन (White gourd-melon)।

वक्तव्य—

वर्णन—इसके पौधे की बेल चलती है और वह कद्दू की बेल की तरह होती है। इसकी पत्ती तुरई की पत्ती की तरह होती है, किंतु उसकी पत्ती से किंचित् बड़ी, कड़ी और हरी होती है। पत्ती अत्यंत लोमश होती है। शाखाएँ खुरदरी होती हैं और उन पर भी रोआँ होता है। फूल में पीली केसरिया रंग की पाँच बड़ी-बड़ी पंखड़ियाँ होती हैं। फूल के मध्य में एक सफेद वस्तु होती है। फल तरबूज के बराबर (वा उससे दूना बड़ा), किंतु लंबाई लिये गोल होता है। फलत्वक् कड़ा और हरे रंग का होता है और उसके ऊपर रोएँ की तरह एक सफेद चीज बिछी होती है। इसलिये वह सफेद मालूम होता है। जहाँ से उक्त सफेदी उतर जाती है, वहाँ वह हरा दिखने लगता है।

यह भी कद्दू की क्रिस्म में से है। इसका गूदा मोटा होता है। बीज हिंदवाने के बीज की तरह किंतु सफ़ेद होते हैं। पेठा बहुत काल तक सड़ता गलता नहीं (स्थिरफला) है। इसे मांस में वा बिना मांस के पकाते हैं। इससे कभी-कभी अचार और वड़ियाँ भी बनाते हैं। मुरब्बा, मिठाई और हलवा अधिक बनाते हैं। (मुहीत)। हलुआ बनाने के लिये पुराना मीठा पेठा लेना चाहिये।

रासायनिक संगठन—स्थिर तेल ४४ प्र० श०, श्वेतसार ३२ प्र० श०, एक एलकलाइड कुकुरबिटीन, एक कटु राल, प्रोटीड्स, मायोसीन, वाइटेलीन, शर्करा और भस्म ४ प्र० श० (आर० एन० खोरी—मे० मे० इ० भ० २, पृ० ३०४)।

औषधार्थ व्यवहार—फल का गूदा, फल के गूदे का स्वरस, बीज, बीजोत्थ तेल, मूल, पत्र, नाल, पुष्प इत्यादि।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल और स्निग्ध है। तरी अधिक है। **स्वाद**—फीका किंचित् हरा यँव लिए; गंध विस्वाद। **अहितकर**—शीतल और कफ प्रकृति को हानिकर और कफकारक है। **निवारण**—मिर्च, लवण, शर्करा और सौंफ तथा आदी का मुरब्बा, तालीफशरीफी के अनुसार सोंठ। **प्रतिनिधि**—लौकी वा कद्दू और समभाग लौकी के बीज। **ग्रह**—चन्द्रमा। **प्रधान कर्म**—रक्त और पित्त के प्रकोप और संताप को शमन करता है। **मात्रा**—आवश्यकतानुसार।

गुणकर्म तथा प्रयोग—शुद्ध वा प्रकृत दोष उत्पन्न करता, आमाशय, यकृत और हृदय की ऊष्मा को शमन करता, उष्णताजनित हृस्पर्दन (खफकान) को लाभ पहुँचाता और उरः क्षत तथा राजयक्ष्मा को लाभकारी और परम शुक्रल एवं बृंहण वा स्थूलयजनक है। इसका मुरब्बा हृदय एवं मस्तिष्क को बल प्रदान करता, ऊष्मा को शमन करता और परम उल्लासप्रद है। (म० मु०)।

मुहीत में यह अधिक लिखा है—अपने सांद्रिकरण प्रभाव से यह प्रोप्टेटग्रिथिरस (मजी) के स्राव का रुद्धक है और शुक्र उत्पन्न करता एवं वस्ति का शोधन करता है। यह मूत्रग्रह और कास को लाभ पहुँचाता है तथा रक्त और पित्त के प्रकोप वा ऊष्मा को शमन करता है। यह उष्ण प्रकृति को सात्त्व्य है तथा वातज दोष एवं फोड़े-फुंसी को दूर करता है। यह सुस्वादु, वल्य, विषघ्न और मूत्रकारक है तथा प्रवाहिका, रक्त और पित्तज्वर तथा वृक्कस्थ क्षत को लाभकारी है। यह मूत्रकृच्छ्र, वस्ति के रोग और वस्तिस्थ अश्मरी को लाभकारी है, पित्तज तृषा को शमन करता है, क्षुधा उत्पन्न करता है, दुष्ट एवं विषाक्त दोषों से आमाशय को शुद्ध करता, उन्माद, भय, और सौदावी अन्यथा वात (तबहहुश और बसवास सौदावी) इनको दूर करता है। पदःस्नान (पाशोया) में इसका छिलका समा-

विष्ट करने से सन्निपात भेद (सरसाम) और गरमी का शिरः शूल आराम होता है। निम्न रीति से निर्मित इसका शर्वत उष्ण कास, श्वास और यक्ष्मा में लाभकारी है। शर्वत की विधि यह है—जिस तरह कद्दू का रस निकालते हैं, उसी तरह इसका रस निकाल कर २८ तो० ४॥ मा० ले उसमें ४० इने उन्नाव, २० दाने आलूबुखारा, दो गुलनिलोफर सम्मिलित कर के काढ़ा करें। इसके बाद उसे छानकर १४ तो० २॥ मा० मिश्री मिला कर चाशनी करके रख लें। (मुहीत)। वैद्य कहते हैं कि (अधपका वा कच्चा पेठा) शीतल है तथा वातपित्तनाशक और कफवर्द्धक है। पका पेठा मधुर, शोरीमायल (चरपरा) और सरदी में मातदिल है। यह लघु और क्षुधाजनक है तथा दोषों से आमाशय को शुद्ध करता है और वातपित्तकफ अर्थात् त्रिदोष-जन्य व्याधियों को नष्ट करता है। इसकी जड़, पत्र और नाल मधुर है तथा वातकफनाशक और वस्तिस्थ अश्मरीनाशक है। इसका गूदा मधुर, पित्तनाशक एवं वाजीकरण है और वस्ति को सिकता और मल से शुद्ध करता है। **इलाजुल अमराज** में लिखित माजून-पेठापाक महत् बृंहण एवं वाजीकरण है। (ता० श०)।

कोई-कोई वैद्य कहते हैं कि स्वाद में कषाय और मधुर है तथा यह लघु, क्षुधाभिजनन, पाचन एवं मूत्रजनन है। यह प्रकृति को मृदु करता, खजू और त्वग्रोगों को दूर करता और भस्मसेवनजनित विष एवं शरीरोष्मा को शमन करता है। इसका गूदा साये में सुखा कर समभाग शर्करा मिलाकर प्रति दिन एक तोला खाने से अर्ग का नाश होता है। इसका स्वरस पौने ९ तोले (५ दिरम) और स्याह मुसली का रस पौने ९ तोले (५ दिरम) इनको दो सेर गोघृत में पका कर प्रतिदिन थोड़ा नाशता करने (निहार खाने) से और नाक में टपकाने (सज्जत) से मस्तिष्क को शक्ति प्राप्त होती (मेध्य) है, नाक और मस्तिष्क की रूक्षता दूर होती है और कामोद्दीपन होता है। (मुहीत)।

इसका शर्वत पीने से रक्त शुद्ध होता है। इसका खालिस रस पीने से रक्तवमन बंद हो जाता है। इसके रस में मिश्री डाल कर पिलाने से उदर-दाह शमन होता है। कनपुटियों पर इसका गूदा बांधने से पित्तज नेत्रदाह शांत होता है। उरः क्षत रोग के प्रारम्भ में इसके ताजे रस के साथ मोती के सीप का चूर्ण चटाते हैं। फुफ्फुस-जात उरः क्षत रोग में यह एक अनुपम गुणकारी भेषज है। फुफ्फुसगत क्षुद्र गाँठों को दूर करने के लिए इसका स्वरस एक परमोपकारी औषध है। इसके गूदे को पका कर उससे फिरंग की टांकियों को बफ़ारा देना चाहिए। इसके स्वरस से भूख खुलती है। पारा सेवन जनित दोष निवृत्त्यर्थ इसका रस समग्र शरीरपर मर्दन करना

और इसका उक्त रस पान भी कराना चाहिए। शरीर को गरमी दूर करने के लिए इसको मिठाई वा मुरब्बा खिलाया जाता है और शर्वत पिलाया जाता है। शरीर को सुदृढ़ एवं बलवान् बनाने के लिए इसका हलुआ, मिठाई या मुरब्बा परम हितकारी द्रव्य है। रक्तार्श में इसके शर्वत के साथ सूरन के चूर्ण की फंकी देने से उपकार होता है। पारासेवनजनित दोषों के शमनार्थ पेटे का हलुआ खिलाना चाहिए। पेटा अधिक पेशाब लाता है और आभ्यन्तरिक अंगों से रक्तस्राव का प्रतिबन्धक है। इसके रस में मिश्री मिलाकर पिलाने से पित्तज हृत्स्पंदन (खफकान) आराम होता है। मृगीनाशक भेषजों के साथ कुष्माण्डघृत बना कर खिलाने से हित होता है। विशूचिका में इसका फूल ६ मां पीसकर पिलाने से लाभ होता है। इसके पौधे की जड़ सुखा-पीसकर पानी के साथ देने से कास और कृच्छ्रश्वास आराम होते हैं। इसके रस में गुड़ मिला कर देने से कोद्रवभक्षण जनित विष शमन होता है। मूत्रदाह और पूषमेह में इसके ४ तोला रस में १ माशा जवाखार और एक तोला शर्करा मिला कर पिलाने से उपकार होता है। इसके स्वरस में हींग और जवाखार मिला कर पिलाने से गुदशूल और शिश्नशूल आराम होता है, अश्मरी नष्ट होती है और मूत्र में सिकता वा रेत आना रुक जाता है। पेटे का स्वरस १८ भाग, मुलेठी का काढ़ा और घी एक भाग इनको इतना पकायें कि केवल घी मात्र शेष रह जाय। इसके खाने से मृगी में उपकार होता है। इसके रस में गुड़ और जवाखार मिला कर पिलाने से मूत्रावरोध मिटता है, वस्तिस्थ अश्मरी और सिकता आदि का नाश होता है। (खजाइन)।

कुष्माण्डका श्रेष्ठत्व—वल्लीफलानां कुष्माण्डप्रवरम्

कुष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरुपित्तालवातनुत् ।
बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥
वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ।
वस्तिशुद्धिकरं चेतो रोगहृत्सर्वदोषजित् ॥
कर्करु ग्रीहिणी शीतारक्तं पित्तहरा गुरुः ।
पक्वातिक्ताग्निजननी सक्षारा ककवातनुत् ॥

(भाव प्रकाश)

१. कुष्माण्डक शिफाचूर्ण पीतं कोष्णेण वारिणा ।
शीघ्रं शमयतिश्वासं कासञ्चापि दाहणम् (भा० प्र० श्वास चि०) ।

२. कुष्माण्डरसः सगुड़ः शमयति मदमाशु मदन कोद्रवजम् । (चक्रदत्तः मदात्य-चि०) ।

३. यवक्षारगुडोपेतं पिवेत् पुष्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविवन्धनं शर्कराश्मरीनाशनम् ॥ (चक्रदत्त अश्मरीचि०) ।

(वा० सू ६ अ०) ।

पुनः—कुष्माण्डं प्रवरं वदति भिषजो वल्लीफलानांपुनः ।
(रा० नि०, अत्रि०) ।

पेटे का बीज

पर्या०—कुष्माण्ड बीज—सं० । वज्रहृत् महदवः—
अ० । तुल्य कद्दू एरुमी—फा० ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा में स्निग्ध। अहितकर—शीतल प्रकृति को। निवारण—सौंफ ।
(ऊद हिंदी और लौंग—मु० ना०) । प्रतिनिधि—लौकी के बीज, कद्दू के बीज या तरबूज के बीज । मात्रा—१ तोला तक ।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह स्निग्धतासंपादक और सूत्रकारक है तथा प्रवाहिका, अन्त्र एवं वस्ति के संक्षोभ एवं व्रण को लाभकारी है और रक्तस्रुति, प्राण्डु, संग्रहणी, उग्रज्वर, सिर के रोग और कास में गुणकारी है। यह यकृद्गत ऊष्णता को शमन करता, हृदय को शक्ति प्रदान करता तथा हृत्स्पंदन (खफकान) और उरः क्षत को लाभ पहुँचाता है। (मु० ना०) ।

गतिशील वा प्रकुपित दोषों, पित्त, रक्तप्रकोप, यकृत् को ऊष्मा और तृषा इनको शमन करता है। यह सूत्रकारक है तथा कास एवं प्रायः वस्तिरोगों और उरः क्षत एवं राजयक्ष्मा को लाभकारी है। (म० मु०) ।

यह वल्य, मेध्य और शुष्ककासनाशक है। (बु० मु०) ।
इसके बीज की गिरी हिंदवाने के बीज की गिरी का प्रतिनिधि है। (मुहीत)

पेटे के बीजों का तेल

पर्या०—कुष्माण्डबीजोत्थ तैल—सं० । दुह्न वज्रहृत् महदवः—अ० । रोगान् तुल्य कद्दू एरुमी—फा० ।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह मस्तिष्क की रूक्षता और अनिद्रा को दूर करता है। (म० मु०) । वुस्तानुल मुफ्फरदात में इसे मेध्य अर्थात् मस्तिष्कवलप्रद भी लिखा है। मुहीत में इसे मधुर, चिरपाकी और शीतल लिखा है। यह वालों को शक्ति देता और (रोमसंवर्धक) है तथा कफ और पित्तनाशक है। खजाइन के अनुसार पेटे के बीजों में से पतला, फीका और पीले रंग का तेल निकलता है जो शीतल एवं तर है और मस्तिष्क में तरी पैदा करता, शरीर को स्निग्ध वा तर रखता और रूक्षता का निवारण करता है। यह निद्राजनक और बृंहण है तथा माली-खोलिया, अनिद्रा और पुट्टों की ऐंठन में लाभकारी है और नथुनों की रूक्षता को दूर करता है। वैद्य* कहते हैं कि यह तेल सवा तोले एक बार या दो घंटे पश्चात् दूसरी बार पिला कर उसके उपरांत रेचन औषध देने से कृमि मृत हो कर वा जीवित निस्संस्ति हो जाते हैं ।

त्रपुस्येर्वार कुष्माण्ड श्लेष्मातक प्रियालजम् ।
वातपित्तहरं केश्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलम् ॥

(राजनिघण्टु)

विलायती कोंहड़ा वा पीतकुष्माण्ड

पर्या०—पीतकुष्माण्ड—सं० । विलायती कोंहड़ा, कोंहड़ा, काशीफल, लाल कुम्हड़ा, लाल पेठा—हि० । साकर कोलुं, पतकार, कोलुं—गु०, काठिया०; लाल भोपला, तांबड़ा भोपला—म० । पूशिनिकाय—(ता०) । गुम्मडिकाय—ते० । मत्तंग—मल० । कुम्बल कायि कुम्बल हण्णु—कना० । सकूरी कोमरा, विलायती कुमड़ा—बं० । घित्व कुमड़ा—कोचविहार । कुकुरबिटा मैक्सिमा Cucurbita Maxima Duch—ले०; रेड गोवर्ड Red gourd, मेलन पम्पकिन Melon pumpkin—अं०; Gourg—फ्रा० । Riesenkurbis—जर० ।

टिप्पणी—कद्दू गोल और लंबा (लौकी) दोनों मधुर और तिक्तादि भेद से अनेक प्रकार के होते हैं और पीले कोंहड़े से सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। फिर भी खजाइनुल अद्विया के लेखक के मत से पीले कोंहड़े को जनसाधारण मोठा कद्दू इसलिए कहते हैं कि पकने पर इसमें कुछ मिठास आ जाती है। मुहीत में कदाचित् इसी कारण इसे शकर कद्दू वा कद्दूए शीरीं लिखा है। सईदी और मुहीत दोनों में इसकी फ़ारसी संज्ञा 'कद्दूए मुदव्वर' लिखी है जिसका अर्थ गोल कद्दू है। उक्त सभी संज्ञाओं से, मिष्ठ अलावू वा कद्दू से संदेह हो जाया करता है। इसलिए पीत कुष्माण्ड के लिए उक्त संज्ञाओं का व्यवहार भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। फिर भी हमारे देश में कहीं-कहीं इसे ही गोल कद्दू कहते हैं। मुहीत में शकरकद्दू और कासीफल शब्दों में कुष्माण्डकी, महाफल, कासीफल, कुमड़ी, ककुभाण्डा, पुष्पलता, राज कुमड़ी और रक्त कुष्माण्ड ये संस्कृत संज्ञाएँ अर्थसहित लिखी हैं। किसी-किसी ने इसे फ़ारसी में बादरंग लिखा है जो ग़लत है। बादरंग खोरे को कहते हैं। इस विषय में दो मत नहीं हैं। किसी-किसी ने इसे अरबी में यक्तीन लिखा है और यह भी प्रमादपूर्ण ही है।

कुष्माण्डादि कुल (N. O. Cucurbitaceae) ।

उत्पत्ति-स्थान—समस्त भारतवर्ष ।

वर्णन—कद्दू की तरह का एक फल। इनमें से किसी-किसी का रंग ऊपर से पीला और किसी का ललाई लिये होता है। फल के ऊपर छिलका होता है और भीतर से पीला एवं सुखी मायल गूदा निकलता है। कोई-कोई घड़े के इतना बड़ा होता है। इनमें जो खरबूजों के साथ पैदा होता है वह बरस रोज तक रह जाता है। पका हुआ कुछ मिठास लिये हो जाता है।

रासायनिक संगठन—पेठावत् ।

औषधार्थ व्यवहार—फल का गूदा, बीज और नाल । प्रकृति—नुसखा सईदी आदि के लिखितानुसार शीतल और स्निग्ध । अहि०कर—आमाशय को । निवारण—गरम मसाला वा सोंठ और अदरक । कद्दू से इसमें तरावट कम होती है और पेठा के करीब है।

गुणकर्म और प्रयोग—यह शीतल, स्निग्ध, मधुर तथा स्वादिष्ट है। पहले यह सीने में विकार उत्पन्न करता है और दस्त साफ़ लाता है अर्थात् इससे पाखाना मुलायम होता है। यह गुरु एवं पित्तघ्न है और पैतृक वायु उत्पन्न करता, शक्ति उत्पन्न करता और अर्श के खून को बंद करता है। इससे पेशाब खुलकर होता है, हाथ-पाँव की जलन (सोजिश) दूर होती है और शय्यामूत्र (सलसुलबोल) और बहुमूत्र आदि प्रमेह के रोग आराम होते हैं। यह तृष्णाहर, वृंहण वा स्थूल्यकारक, परम बल्य एवं क्षुधाभिजनक है। पका फल नियतकालिकज्वरप्रति-बंधक, अस्थिगतज्वरनाशक और कफघ्न है। अधपका कफ और पित्तनाशक है और जाहिरा विषवत् है। इसकी दूसरी किस्म (जो फ़ालोज ? में पैदा होता है) वायु, पित्त और फोड़े-फुंसी को दूर करता, सुस्वादु होता, चित्त को प्रफुल्लित रखता और कफ उत्पन्न करता है। यह बल्य है और विष का निवारण करता है। गुग में सफ़ेद कद्दू की तरह है। प्रत्युत इसमें उससे तरावट कम होती है और पेठे से संबंध रखता है। (मुहीत)

भाष्यप्रकाश में लिखा है—अपरं पीतकुष्माण्डं गुरुपित्तकरं परम् । अग्निमान्द्यकरं स्वादु श्लेष्मलं वातकोपनम् ॥

कुम्हड़ा के बीज—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुम्हड़ा' (पेठा) ।

कुम्हरा—संज्ञा पुं० [हि०] (१) उटंगन । (२) कुम्हड़ा ।

कुम्हल—[अ०] कपास । कार्पास ।

कुम्हार—संज्ञा पुं० [हि०] कुम्भेर । गम्भार । कमहार ।

कुम्ही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंभी] एक पौधा जो पानी पर फैलता है ।

कुम्ही का फल—संज्ञा पुं० [हि०] कुम्बी । बायखुंवा । कुंभी फल ।

कुम्हेर—संज्ञा पुं० [हि०] कुम्भेर । कमहार । काश्मरी ।

कुम्होरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कुम्हड़ा + औरी] बड़ी कोंहड़ौरी ।

कुयव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्सित यव । निकृष्ट यव ।

कुवेली—[म०] कपिकच्छु । कौंच ।

कुकुयुथांसु—[मल०] कुसुम । कड़ । बरें । कुसुम्भ । 'कुंभी' ।

कुर (इ)—[बं०] कुट । कुष्ठ । कूठ ।

कुर—[अ०] मण्डूक । मेढक ।

कुरअ—[अ०] कद्दू ।

कुरअ—[अ०] इस्कपेचा । तरुलता । कामलता ।

कुरअ कोकिया—[सुर०] हफारीकून ।

कुरअवी—[तुरकी] मांसभक्षीय पक्षी विशेष ।

कुरउलाना—[?] गोबरौरा । गुवरौला ।

कुरउल् मुर—[अ०] तिक्त अलावु । कददूतल्ल ।

कुरक—[म०] (कों०) घोगर । खरपत । (डाइमाक) ।

कुरकन—[प०] चरवा । कुसा । (मे० मो०) ।

कुरका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सलई । सल्लकी वृक्ष ।
(रा० नि० व० ११) ।

कुरकी—संज्ञा स्त्री० [वम्ब०] चीड़ । काकतुण्डी । (अं०)
ब्लडफ्लॉवर (Blood flower) ; (ले) ऐस्क्लीपिआस
कुरुसेविका (Asclepias curussavica) ।

कुल—सारिवादि (Asclepiadaceae) ।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेश तथा बंगाल
इत्यादि ।

उपयोगी-अंग—पत्र, पुष्प और मूल ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का सक्रिय सत्व
(Asclepiadin Glucoside) और पीताभ सत्व होता
है जो जल में घुल जाता है ।

गुण-कर्म—मूल पहले विरेचनीय तदुपरांत संकोचक
है । मूल और स्वरस उभय वमन एवं विरेचनीय हैं ।

उपयोग—मूल जलसे पीसकर सेवन करनेसे भूयमेह
एवं अर्शका नाश करता है । इसके उपयोग से आमा-
तिसार शीघ्र नष्ट होता है ।

कुरकु—संज्ञा पुं० [म० प्र०] कोसम ।

संज्ञा पुं० [ता०] पाकर । पकरी ।

कुरकुन—संज्ञा पुं० [हिं०] अर्जुन । करकनी ।

[म०] डीलोगोवा ।

कुरकुम—संज्ञा पुं० [अ०, सं० कुङ्कुम] (१) केसर । (२)
हलदी ।

कुरकुरजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [हिं०; बं०; सं० कुरकुरजिह्वा]
हँसुआ (मिरजापुर) ।

पर्या०—(म०) करफनी; (गोवा) डीनो; (ते०)
अंकडोस; (मल०) नलगु; (सि०) बहल्ला-गुरल्ला;
(ले०) लीआ स्टीफीलिआ (Leea styphylea), लीआ
सम्बुसिना (Leea Sambucina) ।

ब्राक्षकुल (Ampelideae) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के उष्ण-प्रधान प्रदेश तथा
लङ्का आदि ।

गुणकर्म तथा उपयोग—शीतल, पिपासाहर तथा वेदना-
हर । मूल का काढ़ाकर सेवन करने से तृष्णा शांत होती
है । यह अन्त्रशूल और उदरशूल में उपयोगी है ।

पत्र—किंचित् सेंक कर शिरमें लगाने से शिरोभ्रमण
(चक्कर) नष्ट होता है । नये कोमल पत्तों का स्वरस
सेवन करने से अतिसार और आमातिसार नष्ट
होता है । इसे पीसकर किंचित् उष्णकर लेप करने

से वातरक्त (Gout) का नाश होता है । जड़ स्वेदल
है ।

कुरकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] एक घास । रीहा । कनखुरा ।

कुरगात—संज्ञा [तु०] कुलंजन ।

कुरगी—संज्ञा स्त्री० [तु०] बाज पक्षी । बाशः ।

कुरगु, कुरगुम्बजल—संज्ञा पुं० [ता०] सिद्धूरिया । लटकन ।
सिद्धूरी मञ्जल (ता०) ।

कुरङ्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटा हिरन । स्वल्प हरिण
(रत्ना०) । यह न काला और न ताम्रवर्ण का होता है ।
(सु० सू० ४६ अ०; च० चि० ३ अ०) ।

कुरङ्क (ङ्क) र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कौञ्च पक्षी ।
कराँकुल । (२) सारस पक्षी । (हे० च०; वै० निघ०) ।

कुरङ्क (क) —संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छोटा हिरन ।
कुरङ्क । बादामी वा तामड़े रंग का हिरन (Indian
antilope) । (२) मृग । हिरन ।

—संज्ञा पुं० [शिमला] मरकुला (हिं०) ।

कुरङ्कक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिण्डार, करहाट । (डी०
भ० २, पृ० २९५) ।

कुरङ्क नयना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हिरण्यक्षी ।
(ध० नि०) ।

कुरङ्क नाभि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] मृगनाभि, कस्तूरी ।
(रा० नि० व० १२) ।

कुरङ्कम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का हरिण ।
छोटा मृग । कुरङ्क । (त्रिका०) ।

कुरङ्कमांस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिरन का मांस । (फा०)
गोश्त आह ।

गुणकर्म—मधुर, कफपित्तनाशक, मांसवर्धक तथा
रक्तपित्तनाशक है ।

यूनानीमतानुसार—प्रकृति—दूसरे दर्जे में गरम एवं
रूक्ष । गुणकर्म तथा उपयोग—सभी कर्मों में मानव
प्रकृति के अनुकूल, अत्यंत भोज्य और रूक्षताकारक
है तथा पक्षवध, धनुस्तम्भ और शीतजन्य रोगनाशक
है । इसकी खाल (मृगचर्म) पर बैठने से ओज का नाश
होता है । यह कीटाणुनाशक है । अहितकर—दीर्घपाकी
एवं गुल्मोत्पादक है । निवारण—खट्टे फल और
सिक्कजीवन ।

कुरङ्क पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हरिनी, कुरङ्गी ।

कुरङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँवला ।

कुरङ्गिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वन मृग । मुद्गपर्णी ।
(रा० नि० व० ३) ।

कुरच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कराँकुल पक्षी । कौञ्च ।

कुरचिल्ल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केकड़ा, कर्कट । (हे० च०) ।

कुरचिल्लि—संज्ञा स्त्री० []

कुटज सत्व ।

कुरची—संज्ञा स्त्री० [वं०] कुटज। कुड़ा। कोरैया।

कुरटका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सिरियारी।

कुरट्टे—[ता०] महाकाल। लाल इन्द्रायन।

कुरड़ा—

कुरडु—[म०] सिरियारी। सफेद मुर्गी। (Celosia argentia)।

कुरण्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सिरियारी, सितवार।

शुशुनिशाक (वं०)। (वा० सू० १५ अ०)। (२)

सफेद कटसरैया, श्वेत झिण्टी। (रा० नि० व० १०)।

(३) कुड़ा। कुटज वृक्ष। (वै० निघ०)।

कुरण्ट (ड) क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीली कटसरैया।

पीत झिण्टी। (सु० सू० १३८ अ०)। (२) लाल

कटसरैया। रक्त झिण्टी। (मे०; वै० निघ०)।

कुरण्टकादि नामा लेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का अवलेह।

कुरण्ट मूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीली कटसरैया की जड़। पीतझिण्टीमूल। (भा० म० ४ अ० योनिरोचि०)। दे० “कटसरैया”।

कुरण्टा—संज्ञा पुं० [देश०] कटसरैया। (डी० ३ भ०, पृ० ४३)।

कुरण्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुड़ा। कुटज

वृक्ष। (२) साकुरण्ड। माई। (रा० नि० व० १०)।

(३) सुनिषण्णक शाक। (वै० निघ०)।

कुरण्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सिंहली पीपल। सिंह पिप्पली। (वै० निघ०)।

कुरण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुष्कवृद्धिरोग। जलवृषण। (अ०) हाइड्रोसेल (Hydrocele)। दे० “वृद्धि”।

संज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्द] एक प्रकार का पत्थर।

पर्या०—(सं०) कुरुविन्द; (हिं०) कुरंड, सान, कुरुन

पत्थर; (फा०) सुम्बाद; फसान, संगकारद, हजर

कारद; (अ०) सुम्बाजज, हजरुल्मिसन्न, मिसन्न,

हजरुल् माऽ, हजरुस्सीमूस; (अ०) कोरण्डम् स्टोन

Corundum stone (Adamantinus corundum)।

वक्तव्य—कामूस में सुम्बाद का अरबीकृत सुम्बाजज

लिखा है। यह असल अरबी का शब्द नहीं हो सकता;

क्योंकि अरबी के एक ही पद में “स” और “ज” युगपत्

प्रयोग में नहीं आते। इसलिए यह अन्य भाषा से अरबीकृत

है। फिर न जाने मख्जन और मुहीत दोनों में क्यों

सुम्बादज को अरबीकृत लिखा है। मख्जन में सुम्बादज

शब्द में और मुहीत में उसके सिवाय हजरुल्मिसन्न शब्द

में इसका वर्णन आया है।

वर्णन—एक प्रकार का पत्थर है जो किसी भाँति नरम

होता है। मानो रेत जमी हुई है। यह कई प्रकार का

होता है—(१) श्वेत जिसे ‘दुधिया’ कहते हैं; (२)

कृष्ण वा स्याह जिसे ‘तेलिया’ कहते हैं; (३) हरित जिसे ‘मसुरिया’ कहते हैं; (४) खाकी; (५) रक्त; (६) अबलक वा चितकवरा और (७) जैतूनी। इनमें रक्त, मसुरिया, कृष्ण एवं उज्ज्वल सर्वोत्तम होता है। सुम्बादः इसका निकृष्ट वा अधम भेद है। इस पत्थर पर छुरी, तलवार और चाकू इत्यादि तेज करते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि यह जितना ही अधिक कड़ा हो, वह उत्तम है। पर कोई-कोई अधिक नरमवाले को उत्तम बतलाते हैं। यह परम कांतिदायक है। यह रूक्ष एवं तर पाषाणों को खाता (घिसता) है अर्थात् उनकी मैल वा जंग दूर करता है। याकूत और जमुरद को साफ़ करने के लिये इससे उत्तम अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसको पानी में पीसकर इससे मूँगे को साफ़ करने से वह अत्यंत मसृण एवं चमकीला हो जाता है। ग्रंथों में इसके निम्न दो भेदों का पता लगता है—(१) कृत्रिम और (२) खनिज। चीन के द्वीपों में इसकी खानें पाई जाती हैं। हिंदुस्तान में यह हिमालय पर्वत की ओर से बहुत आता है। मेरी सम्मति में भारत में प्रसिद्ध कुरंड केवल इसका कृत्रिम प्रकार है। परंतु उपर्युक्त वर्णन में बहुधा इसके सभी भेदों का उल्लेख आ गया है।

प्रकृति—सभी प्रकार के कुरंड द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष हैं। मतांतर से सरदीमायल अथवा प्रथम कक्षा में शीतल और तृतीय कक्षा में रूक्ष हैं। कोई-कोई चतुर्थ कक्षा में उष्ण और रूक्ष (रक्त उष्ण एवं रूक्ष है) मानते हैं। किसी-किसी के मत से रक्त के सिवाय शेष समग्र भेद शीतल हैं। स्वाद—तीका, कुरकुरा एवं कुस्वाद। अहितकर—वातनाड़ियों वा पुटों और वृक्क को। निवारण—वातनाड़ियों के लिये केसर और वृक्क के लिये कतीरा। प्रतिनिधि—हजरुल्मिसन्न जो इसका उत्कृष्ट भेद है। ग्रह—शनि। प्रधान कर्म—रक्तस्राव-रुद्धक और दंत स्वच्छ एवं उज्ज्वल करता है। मात्रा—आंतरिक प्रयोग वर्जित है। यह केवल बाह्य प्रयोग में आता है।

गुणकर्म तथा उपयोग—इसका मंजन दाँतों को स्वच्छ एवं चमकदार करता है और मसूढ़ों के ढीलेपन को दूर करता है। इसके प्रलेप से हाथ-पाँव की सूजन (तरबुल), त्वचागत उभार वा सूजन प्रभृति (सभी प्रकार की) सूजन उतर जाती है और प्रदाह शांत होता है। अग्निदग्ध पर इसे मुर्गी के अंड की सफ़ेदी में मिलाकर लगाने से उपकार होता है और मोम के साथ अर्श को लाभकारी है। इसको जलाकर और बारीक चूर्ण करके छिड़कने से बहता हुआ खून बंद हो जाता है और यह पुराने व्रणों को सुखाता है। (मख्जन)।

अपस्मार और विवृद्ध प्लीहा में ३॥ मा० कुरंड सिरके

के साथ पीने से उपकार होता है। इसके लेप से छजना (छाजन—पामा) जाता रहता है। खाकी कुरंड को घिस कर उन फोड़े-फुंसियों पर जो सहसा निकल आती हैं, प्रलेप करने से बहुत उपकार होता है। हरे और जैतूनी कुरंड के टुकड़े कर के कोयलों की आँच पर जलालें। इसे सिरके और नतरून के साथ पीसकर लगाने से दद्रु, कंठमाला, आर्द्र एवं शुष्क खर्जू और गोश्तखोरा (आकिलः) आराम होते हैं। उसपर गुलरोगन डाल-डाल कर लोहा रगड़ने और फिर उस रोगन वा तेल को बालखोरे अर्थात् खल्वाट (दाउस्सअल्ब) पर लगाने से वहाँ बाल निकल आता है। हरे पत्थर पर नेत्रवर्तिका को रगड़ कर लगाने से नेत्र अधिक निर्मल हो जाता है तथा अर्म (जुफरः), नेत्रकण्डू, (फूला वा जाला) और बाह्यनी (मुलाक) इनका नाश होता है। अक्षतायोनिनारी के स्तनों पर इसे पीसकर लगाने से उनकी वृद्धि रुक जाती है। वृषणों पर भी इसके प्रलेप से उक्त लाभ होता है। इसे सिरके में पीस लेने से अधिक लाभ होता है। इसके हरे भेद को पीसकर कैंरुती में मिला कर लगाने से गुदभ्रंशरोग नष्ट होता है। इससे गुदचौर (शिक्राक मक्तअद), मांसखोरा (आकिलः), कर्कट और वातमंडलगत उष्ण शोथों में भी उपकार होता है, उनके क्षतों का पूरण होता है और उनकी वेदना शमन होती है। लाल पत्थर के चूर्ण को आँख में बुरकने से आँख का जाला कट जाता है। यह अनिदग्ध और तज्जात व्रण में लाभकारी है। खाकी क्रिस्म पर ताँबा रगड़ कर उक्त धूल आँख में लगाने से आँख का फोड़ा आराम हो जाता है। (मुहीत)। भस्म—इसकी भस्म रक्तस्त्रावनाशक तथा पुरातन क्षत एवं व्रण में उपयोगी है।

कुरण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मैनफल। मदनफल-वृक्ष। (२) सफ़ेद मैनफल। श्वेतमदनफल। (वै० निघ०)। (३) कटसरैया, कुरण्टक क्षुप। (अ० टी०; च० द० माष तैल)।

कुरण्डका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० “कुरण्डिका”।

कुरण्ड पत्थर—संज्ञा पुं० [हि० कुरण्ड+पत्थर] कुरुन पत्थर। दे० “कुरण्ड”।

कुरण्ड वृक्ष—संज्ञा पुं० [देश०] दादमारी, दादमर्दन। (गु०) अगियो।

कुरण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष विशेष। गुण-कर्म—गुरुपाकी, रुचिकारक, सर, अग्निप्रदीपक और वातकफनाशक है।

कुरण्डिका, वृहत्—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] वृहत् कुरण्डिका। गुण—पाक में शीतल, मधुर तथा कटु है। यह तिक्त, क्षारयुक्त, रुक्ष, सर, वृष्य तथा जड़ है। यह वातल,

पित्तल, वस्ति में वातकारी, कफहर, रक्तदोष एवं मूत्रकृच्छ्रनाशक है। (वै० निघ०)।

कुरण्डिन्ना—[म०]

कुरत—[मिश्री] इस्पिस्त।

[अ०] रतवा के सदृश एक पौधा है। दे० “कुर्त”।

कुरती कलाय—संज्ञा पुं० [वं०] कुलथी।

कुरतुम—संज्ञा पुं० [अ०] कुसुम। कड़। बरें।

कुरतुम वुसूल—[अ०] कपास।

कुरतुल्येन—[अ०] जरजीरुल् माऽ। (मरुजन, मुहीत)।

दे० “कुरहतुल्येन”।

कुरथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुलथी।

कुरन—संज्ञा पुं० दे० “कुरण्ड”।

कुरन्दा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चकरन।

कुरपा—[वम्ब०] अञ्जन (वम्ब०)।

कुरफा—संज्ञा पुं० [अ०]। किर्फ। तज।

संज्ञा पुं० [वम्ब०] कुलफा। बड़ी नोनिया।

कुरवक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफ़ेद मदार।

श्वेतार्क। शुक्लार्क। (२) कटसरैया। सैरेयक।

कुरबाहुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पक्षी।

(वं०) कुरकुरा पाखी। मांस गुण—कपाय, शीतल एवं लघुपाकी है। (सु० सू० ४६ अ०)।

कुरमिरि—[देश०] फल विशेष।

कुरम्बा, कुरम्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रोण-पुष्पी। महाद्रोण। गूमा। (वं० नि०)।

कुरया—संज्ञा पुं० [देश०] कुड़ा। कुटज वृक्ष।

कुरय्यः—संज्ञा पुं० [अ०] कोष। परमाणु। (अं०) सेल (cell)।

कुरय्यात—संज्ञा पुं० [अ०, कुरय्यः (कोष, अणु) का बहु व०] अणु। कोष। (अं०) कारपसलज (Corpuscles)।

कुरय्यातुल्लन्न—संज्ञा पुं० [अ०] दुग्ध के परमाणु। यह छोटे-छोटे स्नेहकण होते हैं जो दूध में पाये जाते हैं।

(अं०) मिल्क कार्पसलज (Milk corpuscles)।

कुरय्याते कैलूसिया—संज्ञा पुं० [अ०] वह सफ़ेद कण या परमाणु जो आहाररस (कैलूस) में पाये जाते हैं और रक्त के श्वेत कण के समान होते हैं। (अं०) काइल कार्पसलज (Chyle corpuscles)।

कुरय्याते दम्बिय्या—संज्ञा पुं० [अ०] रक्तकण। (अं०) ब्लड कार्पसलज (Blood corpuscles)।

कुरय्याते बलामिय्या—संज्ञा पुं० [अ०] दे० “कुरय्याते लिम्फाविध्या”।

कुरय्याते बैजाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] रक्त के श्वेतकण। श्वेतकायाणु। (अं०) ह्वाइट ब्लडकार्पसलज (White bloodcorpuscles)।

कुरय्याते लिम्फाविध्या—संज्ञा पुं० [अ०] श्लेष्मकण जो

लिम्फ (कफ) में पाये जाते हैं। कुरग्याते बलामिग्या।
(अं०) लिम्फ कार्पसल्ज (Lymph corpuscles)।

कुरग्याते हुमराऽ—[अ०] लाल रक्तकण। रक्त के लाल
कण। रक्तकायाणु। (अं०) रेड-ब्लड कार्पसल्ज (Red
blood-corpuscles)।

कुरर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्वनामख्यात प्लव-
जातीय पक्षीविशेष। उत्क्रोश पक्षी। गिद्ध की जाति का
एक पक्षी। (हिं०) कररा। (बं०) कर्कटिया। (हला०)।
मांस-गुण—रस एवं पाक में मधुर, शीतल, स्निग्ध,
वृष्य, वातघ्न तथा रक्तपित्तनाशक है। (सु० सू० ४६
अ०)। (२) कराँकुल। कौञ्च।

कुररव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारावत पक्षी। कबूतर।
(वै० निघ०)।

कुररा—संज्ञा पुं० [सं० कुरर] [स्त्री० कुररी] (१)
कराँकुल। कौञ्च। (२) टिटिहरी।

कुरराङ्गि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देवसर्प। (रा० नि०
व० ९; ध० नि०)।

कुररी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुररा का स्त्री
लिंग। स्त्रीकुरर पक्षी। (अम०)। (२) भेड़ी। मेघी।
(हे० च०)।

कुरल—संज्ञा पुं० [पं०] कण्डल। नल्ल।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उत्क्रोश पक्षी। कुरर।
(हला०)। (२) पृथ्वी। धरणी। (३) चूर्ण कुन्तल।
अलक। पागल कुत्ता।

कुरव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफेद मदार। शुक्लार्क।
(रा० नि० व० १०)। (२) लाल कटसरैया। रक्ता-
म्लानपुष्पक्षुप। रक्त झाँटी। (श० र०)। (३) झिण्टी
शाक। (बं०) कुरुई शाक। (रा० नि० व० १०)। (४)
पीली कटसरैया। पीत झिण्टी (सैरेयक)। (हे० च०)।
(५) साठी धान्य। पण्टिकधान्यजातिभेद। (सु० सू०
४६ अ०)। गुण—काँक (कङ्ग) तुल्य। (६) केश।
वाल। (रा० नि० व० १८)।

कुरवक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाल कटसरैया।
रक्त झिण्टी। (२) झिण्टी शाक। (बं०) कुरुई शाक।
दे० “कुरव”। (३) मेंहदी। रक्त गर्भ। (इं० मे० मे०)।

कुरवन—संज्ञा पुं० [हिं०, म०] बिरमी। (मेमो०)।

कुरवम्—[ति०] मेंहदी। हिना। (इं० मे० मे०)।

कुरवा—संज्ञा पुं० [सं० कुरवक] कटसरैया।

कुरवाहुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पक्षी।

कुरविन्द—संज्ञा पुं० दे० “कुरुविन्द”।

कुरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सिंहली पीपल। (घ०
नि०)।

कुरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आसव, मद्यविशेष। (हारा०)।

कुरसथ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैली खाँड़।

कुरसन—संज्ञा पुं० [सिंध] फरीद बूटी। (मेमो०)।

कुरसन्ना—[बम्ब०]

कुरसब—[फा०] अजमोदा। (मेमो०)।

कुरसा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक वृक्ष जो कुमाऊँ,
नीलगिरि, अवध, बंगाल, आसाम और मदरास में होता
है। (२) जंगली गोभी।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोजिह्वा। गोजिया। गाव-
जवाँ। (श० च०)।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुलिश] एक प्रकार की बड़ी
मछली।

कुरसिङ्ग—[बम्ब०] (Bignonia zolocarpa)

कुरसी—संज्ञा स्त्री० [गोंडा] गंभारी। काश्मरी।

कुरसूग—[अ०] कलाई की हड्डी का उभार।

कुरह—[अ०] कलौजा। मँगरैला। उपकुञ्चिका।

कुरह—[अ०; बहुव० कुरात] गेंद। गोल वस्तु। छोटा
कुरह्। (अं०) बॉल (Ball), ग्लोब (Globe)।

कुरह सगौर—[अ०] छोटी गोल वस्तु। छोटा कुरह।
(अं०) ग्लोब्यूल (Globule)।

कुरहा—[अ०] उश्शक।

कुरहान—[अ०] फितर या कुमात का सफेद छोटा
भेद।

कुरड—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्ड] कुरुविन्द। दे० “कुरण्ड”।

कुरंबा—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति।

कुरा—संज्ञा पुं० [सं० कुरव] कटसरैया।

कुरा—[अ०, बहुव० उकरा] (१) रज। ऋतुधाव।
(२) ऋतुकाल। (बहुव० कर्द)।

कुराअ [अ०, बहुव० अकारेअ] पाचः। पाये

कुराअ—[अ०] (१) गंज। इन्द्रलुप्त। (अं०) फेवस
(Favus)। (२) एक पक्षी जो ऊदसलीब लाकर अपने
घोंसले में रखता है।

कुराक—[बम्ब०] द्रोणपुष्पी। गुमा।

कुराख—[अ०] स्वच्छ जल।

कुराङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुरर पक्षी। (बं०)
कुरुई पाखी।

कुरागोंद—संज्ञा पुं० [देश०] कतीरा गोंद। गुलूका गोंद।
कुल्ली का लासा।

कुराज—[?] बाबूना। उकहवान।

कुराजह—[अ०] एक प्रकार की मिठाई।

कुराजिया—[रूमी] आलूबालू।

कुराट—[म०] कोटगन्धल। (अं०) टॉच ट्री (Torch
tree); (ले०) इक्सोरा पार्विफ्लोरा (Ixora parvi-
flora)।

कुराटी—[कों०] कोटगन्धल। दे० “कुराट”।

कुरात—[बम्ब०] एक प्रकार का जरिशक।

कुराद—[अ०; ए० व० कुर्द] (१) कुनः । चिचड़ी ।
 किलनी । (२) स्तनाग्र । चूचुक । भिटनी ।
 कुराद कल्ब—[अ०] कुत्ते की चिचड़ी (किलनी) ।
 कुराब—[अ०] (१) बुद्धि की कुशाग्रता । फ़ेरासत ।
 तेजीतबा । (२) संबंध । सामीप्य ।
 कुरारी—[सुर०] रेंडी । अंडी बीज । एरण्ड बीज ।
 कुराल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलाह घोटक । वह घोड़ा
 जिसका जंघा ईषत्पाण्डुकृष्णवर्ण का हो ।
 संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जो हिमालय के उत्तर-
 पश्चिम विभाग में शिमला, गढ़वाल और कुमाऊँ आदि
 स्थानों में होता है ।
 कुराशम—[अ०] बड़ी किलनी ।
 कुरा—संज्ञा पुं० [देश०] असारून ।
 कुरास—[अ०] (१) एक पहाड़ी वृक्ष । (२) गंदना ।
 कुरासाकतामा, कुरासा कत्तीबाबा—[सुर०] जंगली गंदना ।
 कुरासानी अजोवान—[गु०] }
 कुरासानी ओवम्—[ता०] }
 कुरासानी यमानी—[ते०] }
 कुरासानी वामम्—[ते०] }
 खुरासानी अजवायन ।
 कुरासा वकरा—[सुर०] } जंगली
 कुरासा सर्मा—[सुर०] } गंदना ।
 कुरासुल्हिमार—[अ०] खुत्सा ।
 कुरासुस्सोम—[अ०] कुरास किरम । जंगली गंदना ।
 कुरासे अन्दलुसी—[अ०] गंदना शामी ।
 कुरासे किरम—[अ०] जंगली गंदना ।
 कुरासे खुरासानी—[अ०] कुरासकानका का एक भेद ।
 खुरासानी गंदना ।
 कुरासे जबली—[अ०] (१) कुरास नव्ती । (२) फ़रा-
 सियून ।
 कुरासे विक्राक—[अ०] कुरासे किरम । जंगली गंदना ।
 कुरासे नव्ती—[अ०] पहाड़ी गंदना या बड़ा उद्यानज
 गंदना का छोटा भेद ।
 कुरासे बकल—[अ०] शामी बुस्तानी (वागी) गंदना का
 छोटा भेद ।
 कुरासे बरी—[अ०] (१) जंगली गंदना । कुरास किरम ।
 (२) कुरासे सोम ।
 कुरासे माइदा—[अ०] कुरासे बकल ।
 कुरासे रूम—[अ०] रूमी गंदना ।
 कुरासे शामी—[अ०] वागी गंदना का बड़ा भेद ।
 कुराह, कुरीह—[अ०] शुद्ध जल ।
 कुराह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का घोड़ा ।
 कुराल ।
 कुरिएल—[म०, ता०]

कुरिञ्ज वामम्—[ते०] खुरासानी अजवायन ।
 कुरिन्द—[ता०] माधवी लता ।
 कुरिया—संज्ञा पुं० [देश०] कुड़ा । कुरैया । कुटज ।
 कुरिल्ला—
 कुरिविलण्डी—[मल०] जंगली उशवा ।
 (Smilax ovalifolia)
 कुरी—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का तृण-
 धान्य जो यमुना के तट पर होता है । चेना नाम का
 अन्न । गुण—मधुर, बलप्रद और वीर्यपुष्टिकर है ।
 (ध० नि०; रा० नि० व० १६) । (२) अरहर की
 फली ।
 कुरीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मैथुन । स्त्रीप्रसंग ।
 (उणा०) ।
 कुरंगालि—[ता०] काकतिन्दुक । केदू ।
 कुरंतोहि—[मल०] पीला वरियरा । पीत बला । (Sida
 Rhombifolia) ।
 कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) भात । पका
 हुआ चावल । (२) कटेरी । कण्टकारी । भटकटैया ।
 संज्ञा पुं० [देश०] गुलजाफरी । जाफरी ।
 कुरकन्दक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] मूली । मूलक ।
 कुरकपुलि—[मल०] तमाल । उसारः रेवन्द ।
 कुरकाश—संज्ञा पुं० [देश०] (कश्मीर) कैरपोश ।
 कुरकुटकी—संज्ञा स्त्री० [] कुटकी ।
 कुर खजूर—संज्ञा पुं० [गु०] कड़ु खजूर । वकाइन । दिन-
 करलिंग । निम्बाड़ा । (डी० भ० १, पृ० ३३२) ।
 कुर (डु) चिता—[गु०] कुचला । (डी० भ० २, पृ०
 ४५९) ।
 कुरचिल्ल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केकड़ा । कर्कट । (वै०
 निघ०) ।
 कुरचिल्ला—[म०] कुचला । कुचिला । (डी० भ० २
 पृ० ४५९) ।
 कुरचुण्टा—[म०] पाट । (बं०) राजकरेला । (डी०
 भ० १, पृ० २३६) ।
 कुरट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिरियारी । (बं०) शुशुनि
 शाक । (रा० नि० व० ४) ।
 कुरटी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्व । घोड़ा ।
 कुरणु—[म०] सिरियारी ।
 कुरण्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पीली कटसरैया ।
 पीत झांटी । (रा० नि० व० १०; च० द० प्रदर-चि०) ।
 (२) एक प्रकार की कटसरैया । कुरुण्टक । दारूपत्री ।
 (मे०) । (३) कुड़ा । कुरैया ।
 कुरुण्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुरुण्ट । पीली कट-
 सरैया ।

कुरुण्टका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीली कटसरैया।
(च० द० अश्मरी-चि०)।

कुरुण्टिका, कुरुण्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)
साकुरुण्ड वृक्ष। (रा० नि० व० १०)। (सु० सू०
३८ अ०—“कृष्णसूक्ष्मफला शिरवालिका इति लोके”)।
(२) कटसरैया। झिण्टी। (३) हाथीसुंडी। हस्ति-
शुण्डी। (४) श्वेतनिर्गुण्डी। शेफालिका भेद। (सु०
चि० ७ अ०)। (५) कठपुतरी। काष्ठपुतलिका। (मे०)।

कुरुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटसरैया। सैरेयक।

कुरुण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी कटसरैया।
इसका उपयोग पारदमारण में होता है। (रा० का०
धेनु)।

कुरुण्डो—[सि०] दालचीनी। गुडत्वक्।

कुरुदिण्णे—[ति०] जंगली अंगूर। गिदड़दाख।

कुरुन—संज्ञा पुं० [सं० कुरुविद] कुरुण्ड। कुरुन पत्थर।

कुरुन पत्थर—संज्ञा पुं० [हि० कुरुन-पत्थर] कुरुण्ड।

कुरुनाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊँट। उष्ट्र। (वै०
निघ०)। (२) पीली कटसरैया। पीत झिण्टी। (सु०
सू० ३८ अ०)।

कुरुपले—[ता०] जियापोता। पुत्रञ्जीव वृक्ष। (डी० भ०
३, पृ० २७२)।

कुरुपुमरुतमरम्—[ता०] आसन। (डी० भ० ३, पृ० ६)।

कुरुबक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटसरैया। सैरेयक।
(ध० नि०)।

कुरुबाहु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी-विशेष। कुरुकुरु नाम
का पक्षी। (वै० निघ०)।

कुरुध—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कछुआ।

कुरुम—[अ०] एक प्रकार का पत्थर जिसमें सात रंग
होते हैं।

कुरुमनियान—[यू०, सुर०] प्याज।

कुरुमूलगु, कुरुमूलक—[मल०] कालीमिर्च।

कुरुम्ब—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की नारङ्गी।
कुलपालक। कमला नीबू। (श० च०)।

कुरुम्बा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रोणपुष्पी। गूमा। (रा०
नि० व० ५)।

कुरुम्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गूमा। द्रोणपुष्पी।

कुरुम्बी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सिंहली पीपल। (रा०
नि० व० ५)।

कुरुरी, कुरुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुरर पक्षी।
(२) चपक पक्षी। कुत्तल पक्षी। (हे० च०; वै०
निघ०)।

कुरुवक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लाल फूल की कट-
सरैया। रक्त झिण्टी। कुरव (ब) क। (२) पीले फूल
की कटसरैया। (मे०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुरुवक शाक। (प० मु०)।

कुरुविगि—[ता०] इरेक्टिया वक्सिफोलिया (Ehrectia
buxifolia)

कुरुविजीवयर—[ता०] बफनालरी। (प०) पलेके जूरद।

कुरुविन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक अत्यन्त कठिन

प्रकार का पाषाण। इसे अंग्रेजी में कोरंडम (Corun-
dum) कहते हैं, जो संस्कृत कुरुविन्द से निकला है। (२)

लोहिताश्मरत्न भेद। पद्मरागमणि या माणिक। (अ०)
रुग्बी (Rugby)। (सु० सू० अ० ८ श्लो० १३)।

(३) कुधान्यवर्गोक्त धान्य। कुरुक्षेत्रज ब्रीहिभेद।
कुलमाष। कुलथी। (सु० सू० ३६ अ०)। (४) माष।

उड़द। (रा० नि० व० १६; सु० सू० ४६ अ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शिगरफ। हिगुल।
(हे० च०)। (२) पद्मरागमणि। मानिक। (३) काच-

लवण। (रा० नि० व० ६)।

कुरुविन्दक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भद्रमुस्तक।
नागरमोथा। (ध० नि०)। (२) माणिक्य। मानिक।

नीलकाचोद्भव। (ध० नि०)। (३) रत्नभेद। (रा०
नि० व० १३)। कुरुण्ड।

कुरुविन्दा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोथा। मुस्ता। (ध०
नि०)।

कुरुविन्दारका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागरमोथा।
भद्रमुस्तक। (ज० द० १२ अ०; अम०)।

कुरुविन्दु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काचलवण।
संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मोथा। नागरमोथा। भद्र

मुस्तक। (२) माष। उड़द।

कुरुविलाई, कुरुविलै—[ता०] अपराजिता। विष्णुकान्ता।

कुरुविल्ल, कुरुविल्व, कुरुविल्वक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
(१) नागरमोथा। भद्रमुस्तक। (ज० द० व० १२)।

(२) पद्मरागमणि। मानिक। (३) वनकुलत्थ।
चाकसू। (रत्ना०)। कुलत्थाञ्जन (२०)।

कुरुविस्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुवर्णपल। ४ तोला
सोना। (अम०)।

कुरुवीरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्जुन वृक्ष। कहुआ।
(रा० नि० व० ९; ध० नि०)।

कुरुवेयलम्—[ता०] बबूल।
कुरुवेलम्—[मल०] कीकर।

कुरुवैरु—[ते०] उशीर। खस। वीरणमूल।

कुरु (डु) वृन्दावण—[मल०] इन्द्रायन। विशाला।
कुरुह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष। पेड़। (ध० नि०)।
कुरु—[यू०] (१) लोहा। (२) ककरोहन।
कुरुन—[अ०, कर्न का बहुव०] (१) कठोर मस्से। (अ०)
कानू क्युटेनियस (Cornu cutaneus)। (२) चाँदी
की मैल।

कुरुनुल्बहर—[अ०] (१) प्रवाल। मूंगा। (२) कह-
रवा।

कुरुनुस्सुबुल—[अ०] (१) सफेद सेमल की जड़ या अन्य
प्रकार की जड़। (२) एक प्रकार की सींगिया। दे०
“बछनाग”।

कुरुप्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रांगा। कथील। रङ्ग
धातु। (रा० नि० व० १३)। त्रपु। (ध० नि०)।

कुरुम—[अ०] एक प्रकार का पत्थर जिसमें सात रंग
होते हैं।

कुरुमिया—[बं०] करौंदा।

कुर्या—संज्ञा पुं० [अ०] यह एक क्षुद्र वनस्पति के बीज
हैं। बागी और जंगली भेद से कुर्या दो प्रकार का होता
है। इसके जंगली भेद को “किदिमाना” कहते हैं। इसका
क्षुप हाथ भर ऊँचा, पत्र सोये के पत्र के समान और
स्याहीमायल, फूल सफेद; बीज (फल) पिलाई लिये
सफेद जीरे की तरह, किंतु उससे किंचित् बड़ा और
तिक्त-कटु होता है। जड़ गाजर की तरह होती है। इसको
पकाकर खाते हैं। तीन वर्ष तक इसमें वीर्य रहता है।
भारतवर्ष में इसका आयात बहुधा इंग्लैंड और लेवांट
से होता है।

पर्या०—(हि०, म०, गु०) विलायती जीरा; (अ०)
कुर्या, करोया, कमूने रूमी, कमूने अरमनी; (फा०)
करोया, कुर्या, जीरए रूमी, जीरए अरमनी, शाहजीरा;
(द०) करोया; (बं०) विलाती जीरा; (ले०) केरम
केरुई (Carum carui, Linn.); (अं०) केरवे
(Caraway)

वक्तव्य—प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कालाजीरे के
अर्थ में ‘कारवी’ संस्कृत शब्द आता है। कुर्या इसी
का एक विदेशी भेद है। यह संभव है कि इसके उक्त
सभी नाम इसी संस्कृत कारवी से ही व्युत्पन्न हों। यूनानी
में इसको अरमीनियून (Armenion) कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और ईरान (किरमान)।

गर्जरारिद कुल (Family: Umbelliferae)।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उत्पत् तेल पाया जाता
है जिसके ये पाँच उपादान हैं (१) सायमीन (Cymin),
जो यूकेलिप्टस् तेल में भी विद्यमान होता है; (२)
कारयोन (Caryon), (कारवीन); (३) कार-
वोल (Carvole), या कारवी कपूर; (४) क्युमिनोल
(Cuminol) या जीरककर्पूर (काफूर कम्मूनी)
और (५) लाइमोनीन (Limonin) या निम्बुकीन—
एक प्रकार की टर्पीन जो निंबुकतेल में भी पाई जाती
है। मात्रा— $\frac{1}{2}$ से ३ बूँद।

उपयुक्त अंग—बीज और पञ्चाङ्ग। प्रकृति—दूसरे दर्जे
में गरम और खुश्क। गुण-कर्म—अन्न और आमाशय

पर कुर्या ग्राही और वातानुलोमन कर्म करता और
भूख लगाता है; उदरज कृमियों को मार कर निकालता
है और मूत्रजनन है। प्रधानतया यह वातानुलोमन,
दीपन और पाचन है। उपयोग—वातिक हिक्का,
अरोचक, उदरशूल, अजीर्ण, आनाह और वातिकोद्वेष्टन
में कुर्या का उपयोग करते हैं। इसे उदरज कृमियों को
नष्ट करने के लिये खिलाते हैं। जलोदर में मूत्रल होने
के कारण इसका उपयोग किया जाता है। यह आनाह-
कारक आहारों के उक्त दोष निवारण के लिये भी
उपयोग किया जाता है। अहितकर—फुफुस के लिए।
निवारण—शुद्ध मधु और सातर फारसी। प्रतिनिधि—
अनीस और जीरा। मात्रा—३ से ५ माशे तक। (यू०
द्र० गु० विज्ञान से अविकल उद्धृत)।

कुरुह—संज्ञा पुं० [अ० कर्हा का बहुव०] सपूय क्षत। व्रण।
(अं०) अल्सर्ज (Ulcers)। दे० “कहीं”।

कुरुहत—[अ०] कण्ठ। (ले०) पोमम् एडेमाइ (Pomum
adami)।

कुरुहुल् अम्आऽ—[अ०] आन्त्रव्रण। (अं०) इन्टेस्टाइनल
अल्सर्ज (Intestinal ulcers)।

कुरेटा—[बं०] जंगली मेथी। एक प्रकार का बरियरा।
(Sida acutifolia)।

कुरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटज] कुरैया। कुड़ा।

कुरेला—संज्ञा पुं० करैला। कारवेल्ल।

कुरेलिओ—[बम्ब०] जाङ्गारी।

कुरेली—[बं०]

कुरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटज] कुड़ा वृक्ष। दे० “कुड़ा”।

पर्या०—(काला वा तिक्त) कुटजः, कूटजः, वत्सकः,
गिरि-मल्लिका, कार्लिगः, मल्लिकापुष्पः—सं०। कुड़ा,
कुरया, कुरैया, कूडा, कोरया, कालाकुडा, कालाकूडा,
काला कुड़इ—हि०। कुड़चि गाछ—बं०। कूडा,
इन्द्रयवनु झाड़—गु०। कारी खड़ो—(काठियावाड़)।
काली कुड़ई, कालाकुड़ा—मरा०। कुरो, खओ—गों०।
कुड़िया—(उत्क०)। कुरो—पं०। दरख्तलिसानुल्-
असाफीरेल्मुर्—अ०। दरख्तजवानकुंजिश्कतल्ल, दरख्त-
इन्द्रजौतल्ल—फ्रा०। हालेरहेना अण्टीडिसेण्टरीका
Holarrhena antidysenterica Wall.—ले०।

कुरया की छाल—कुड़ा छाल, कुरया की छाल, कुरैया
की छाल—हि०। कुटज त्वक्—सं०। कश्च दरख्त
लिसानुल् असाफीर, तीवाज हिंदी—अ०। पोस्त दरख्त
लिसानुल् असाफीरेल्मुर्, पोस्तदरख्तइन्द्रजौतल्ल—
फा०। कुड़ची—बं०। कोनेसी बार्क Conessi bark,
टेलीचेरी बार्क Telli-cherry bark, कुड़ची बार्क
Kurchi bark—अं०। Ecorce de Codagapala
—फ्रा०।

(इन्द्रजौ तिवत्) कुटज बीज—सं० । इन्द्रजौ, कड़ुआ इन्द्रजौ—हिं०, द० । इन्द्रयव, तीता इन्द्रयव—बं० । इन्द्रजव, कड़वो इन्द्रजव—गु० । कड़ु इन्द्रजौ—मरा० । लिसानुल्असाफीर, लिसानुल्असाफीरेल्मुर्—अ० । जवानेकुञ्जिश्के तल्ल, जवाने कुञ्जिश्क, इन्द्रजवे तल्ल, पञ्जशकरदान—फ्रा० । कोशवली—तु० । तुल्लमअहर, तुल्लमअहरेतल्ल—शीरा० । मुहीत में इसकी हिंदी संज्ञा 'कुरशा' लिखी है ।

टिप्पणी—अरबी लिसानुल्असाफीर संज्ञा का अर्थ (लिसान=जिह्वा+उल्+असाफीर, उस्फूर का बहुवचन=चटक) 'चटक जिह्वा' है और यही अर्थ फ़ारसी जवान कुञ्जिश्क (जवान=जिह्वा+कुञ्जिश्क=चटक) शब्द का है । लिसानुल्उस्फूर अरबी शब्द इसका पर्यायवाची है । गंजवादावर्द नामक ग्रंथ में इन्द्रजौ के अर्थ में उक्त शब्द का व्यवहार हुआ है । कुटजबीज गौरे की जीभ की तरह होता है । इसलिये इसे उक्त संज्ञाओं द्वारा अभिधानित किया गया है । इसके मधुर और तिक्त भेदों के लिये अरबी में क्रमशः हलो और मुर् एवं फ़ारसी में शीरीं और तल्ल विशेषणों का प्रयोग होता है । मरुजन में तीवाज के वर्णन में इसके वृक्ष के लिये कुरया और कालागुरा (कालाकूरा) हिंदी संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है । इसके वृक्ष को शीराजी में अहर और बीज अर्थात् इन्द्रजौ को तुल्लमअहर और कली और फूल को सुवुल्लकल्ल कहते हैं । मुहीत में लिसानुल्असाफीर की यूनानी संज्ञा 'अन्दरुसारुन' लिखी है । परंतु वह इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है । उसके लिये उक्त शब्द में अवलोकन करें । मुहीत में दी हुई इसकी बहुशः संस्कृत संज्ञाओं में से कुछ शुद्ध और कुछ अशुद्ध हैं । यथा वृक्ष की—कुटजा (कुटजः), जूहक (वत्सकः), मल्लिकापुष्प, (वनतिक्तः) और गिरिजा; बीज की भद्रानी (भद्रजा), यवक्षीरनी?, कुंलिङ्का?, (कलिङ्गको), पच्छक पीचानी (वत्सक बीजानि) । मुहीत में कुड़ा शब्द में कालाकुड़ा के सिवाय इसकी अन्य हिंदी संज्ञाएँ कुड़शा और कौलम लिखी हैं ।

सित कुटज वा मीठे इन्द्रजौ का पेड़

पर्याय—(वृक्ष) सित कुटजः—सं० । दुधलो—(काठियावाड़) । सफेद कुरा, पांढरा कुड़ा—मरा० । धौल कुड़ा, मीठा इन्द्रजवनु झाड़—गु० । खिरना—(मिर्जापूर) । राइटिया टिङ्कटोरिया *Wrightia tinctoria*, Br.—ले० ।

नोट—खजाइन में आर्य-औषध का हवाला देकर इस वृक्ष की जो 'दुधला' संज्ञा दी गई है, वह शुद्ध 'दुधला' ज्ञात होती है ।

(बीज=मीठा इन्द्रजौ) मीठा इन्द्रजौ—हिं०, द० गु० । लिसानुल्असाफीरेल् हलो—अ० । इन्द्रजौ शीरीं, तुल्ले

अहरेशीरीं, जवाने कुञ्जिश्के शीरीं—फ्रा० । कोटकय्याल वित्त—मल० । वेपाल-पाल—सिंह० । मुहीत में इसकी हिंदी संज्ञा कुरशा-पाल लिखी है, जो हिंदी नहीं, अपितु कोई दक्षिणी भाषा जान पड़ती है । गोड इन्द्रयव, मीठा इन्द्रयव—मरा० ।

इन्द्रयवादि कुल ।

(Family: Apocynaceae.)

वर्णन—कालाकुड़ा का वृक्ष (*H. Antidysenterica*) मझोले आकार का होता है । इसके वृक्ष हिंदुस्तान के शुष्कतर वनों और बंगाल में बहुतायत से होते हैं । वृक्ष की ऊँचाई २० से ३० फुट होती है । तना छोटा और गोलाई में ३-४ फुट का होता है । इसके पुराने पत्ते माघ में गिर जाते हैं और चैत-वैसाख में पुनः नये पत्ते निकल आते हैं । सुवर्द्धित होने पर पत्र प्रायः धाराकदंब वा अमरुद के पत्र की तरह होते हैं । कोमल शाखाग्र वा पत्र तोड़ने पर उसमें से सफेद दूध निकलता है । यह चैत-वैसाख में अर्थात् स्थान वा जलवायुभेद से वर्षा में फूलता है । पुष्प अनुष्णवल शुभ्र, मिलितदल, पुष्पनल क्षीण एवं संकुचित, पुष्पनलग्नभाग पाँच भागों में चिरित होता है । पुष्प पत्रवृत् के समीप से निकलता और सशाखपुष्पदंडपर स्थित होता है । यह गुच्छों में लगता है और इसमें मधुर सुगंध होती है जो दूर तक फैल जाती है । फलियाँ गोल पतली, एक बित्ता वा डेढ़ बित्ता लंबी, युग्म और सिरे मिली हुई नहीं होतीं । ये जाड़े में पकतीं और प्रायः फागुन-चैत में तड़क जाती हैं । इनमें से जौ वा गौरे की जीभ के तरहके लंबे-लंबे बीज निकलते हैं । इनके सिरेपर स्वेत रोएँ का गुच्छा लगा रहता है जो खुलकर गोल हो जाता है । इन बीजों को 'इन्द्रजौ' वा 'कड़ुआ इन्द्रजौ' कहते हैं । वास्तविक इन्द्रजौ ये ही हैं । पके बीज बाहर से रक्ताभ और सूखने पर मटमैले और भीतर से पिलाई लिये सफेद होते हैं । इसका स्वाद तिक्त और तीक्ष्ण वा चरपरा होता है । इनको चाबने से जिह्वा पर संक्षोभ प्रतीत होता है । वृक्षत्वक् आघ ईंच मोटा, कुछ भूरे या कुछ काले रंग का होता है । इसे कुड़ा छाल (कुटज त्वक्) कहते हैं । आर्य-औषध में लिखा है कि कड़वे इन्द्रजौ के पेड़ की छाल औषध के काम में लेते हैं । छाल मोटी और रंग में गंभीर रक्तवर्ण की और हलकी एवं कड़ुई होती है । किंतु इसके चाबने से जिह्वा सुख नहीं पड़ती । कुड़ाछाल को तीवाजे हिंदी समझना चाहिए और वास्तविक तीवाज को, जिसका यूनानी ग्रंथों में वर्णन आया है, तीवाजे खताई । क्योंकि उसे खता देश से लाते हैं । दोनों एक ही वस्तु हैं । केवल देश (हिंदी और खताई) भेद से पृथक् मानी जाती हैं । अस्तु, भारतीय कुड़ा जिसे कालाकुड़ा भी कहते हैं, इसकी छाल कुड़ाछाल वा तीवाजे हिंदी है और फ़ारस

एवं खता आदि स्थानों में होनेवाले कुड़ा की छाल तीवाज वा तीवाजेखताई है। इसे न मिलने पर कुड़ा की छाल व्यवहार में लेते हैं। यह तो है कुड़ा का वास्तविक वर्णन। किंतु यूनानी निघंटुओं में इसके जो प्रामादिक वर्णन आये हैं, उन्हें पाठकों के ज्ञानार्थ यहाँ देना उचित प्रतीत होता है।

यूनानी ग्रंथोक्त कुटज के प्रामादिक वर्णन—यूनानी निघंटुओं में लिसानुल्असाफीर (इन्द्रजौ) के वर्णन में लिखा है कि दरदार की तरह के एक विशाल वृक्ष का फल है। इसके पत्ते बादाम के पत्ते की तरह होते हैं। फल की वाली (खुशा) होती है और वह कोषावृत और हर एक दूसरे से अलग होता है और प्रत्येक कोष के भीतर चिड़े की जीभ की तरह एक लंबा और पतला बीज होता है। इसीलिये अरबी में इसे लिसानुल्असाफीर कहते हैं। बाहर से यह कुछ खाकी और भीतर से पीताभ श्वेतवर्ण का और स्वाद में तिक्त और चरपरा एवं दाहक होता है। हिंदुस्तान और बंगाल में इसके वृक्ष होते हैं। (मख्जन)। तालीफ़ के अनुसार इसका फल लंबा और चौड़ा तथा हर एक दूसरे से पृथक् होता है। फल में बहुसंख्यक बीज होते हैं जो खरबूजे के बीज से लंबे और लाल रंग के होते हैं। गीलानी के अनुसार यह प्रायः हौजों तथा सार्द्र भूमि में उत्पन्न होता है। पर इसके विरुद्ध यह शुष्क भूमि में उत्पन्न होता है। गाजरूनी ने जो यह लिखा है कि किसी-किसी के अनुसार यह एक नन्हें से वृक्ष का फल है अथवा यह कि दरदार का फल है। उक्त दोनों ही बातें सत्यता से दूर हैं। वस्तुतः इसके वृक्ष दरदार की तरह विशाल होते हैं। परंतु दरदार इससे सर्वथा भिन्न वृक्ष है। अस्तु, यह उसका फल नहीं हो सकता। इसके (कुड़ा) के वृक्ष बड़े और फ़ारस और आजुरबेजान में बहुतायत से होते हैं, जिनका यह प्रसिद्ध फल है। मख्जन और मुहीत में लिखित यह वर्णन तो और प्रमादपूर्ण है कि भारतीयों के कथनानुसार इसका पौधा धान के खेतों में होता है और धान के पौधे के बराबर होता है इत्यादि।

ववतव्य—यूनानी निघंटु-ग्रंथों के परिशीलन से यह प्रतिभास होता है कि यद्यपि उन्हें लिसानुल्असाफीर के मधुर और तिक्त उभय भेद स्वीकृत हैं। तथापि उनमें उक्त वृक्षद्वय का पृथक् वर्णन नहीं मिलता। उनके

१. तजकिरतुल् हिंद में लिखा है—“साधू से यह निश्चय हुआ कि इसका पेड़ कांडयुक्त और सशाख होता है। पत्र जामफलपत्रवत्, फूल श्वेत, फल सहिजन के फल की तरह और कोषावृत एवं दीर्घ, किंतु उससे कम लंबा और मोटा होता है। बीज जौ के दाने की तरह होता है। पत्र तोड़ने से दूध निकलता है। बीज कड़ुआ होता है।”

अध्ययन से यह भी प्रतिपन्न होता है कि कुड़ा वा काला-कुड़ा शब्दों से उक्त ग्रंथों में इसके कड़ुए भेद का ही ग्रहण हुआ है और तीवाज नामक औषधि उसी की छाल है। प्रमाण के लिये उन ग्रंथों के कुछ आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। अस्तु, मख्जन में लिसानुल्असाफीर शब्द में इसके वृक्ष का वर्णन करने के उपरान्त उसके लेखक लिखते हैं कि इसके बीज तिक्त और चरपरे होते हैं। उसी ग्रंथ में तीवाज के वर्णन में लिखा है कि यह खता देशोत्पन्न लिसानुल्असाफीर वृक्ष की छाल है जो बहुत कड़वी होती है। इसके भारतीय भेद के वृक्ष को कुरया और कालागूरा (कालाकूरा वा काला कुड़ा) और छाल को कुरया की छाल माना है। मुहीत में कुड़ा शब्द में लिखा है कि कुड़ा इन्द्रजौ तलख (लिसानुल्असाफीर तलख) के पेड़ की छाल है जो काली होती है। इसलिये हिंदी में इसे ‘कालाकुड़ा’ कहते हैं। कहते हैं कि तीवाजे हिंदी यही है। उसी ग्रंथ में इन्द्रजौ के वर्णन में भी लिखा है कि कड़वे को हिंदी में कुरया कहते हैं, जो कालाकुड़े के वृक्ष का नाम है। अस्तु, इनके मत से भी कड़वे कुड़ा को ही काला कुड़ा और उसकी छाल को तीवाजे हिंदी समझा गया है। यहाँ पर एक और विचारणीय बात यह है कि कुड़ा या कुरया या कुरैया संज्ञा का व्यवहार स्वयं वृक्ष के लिये होता है। इन्द्रजौ इसी के बीज हैं। इसके द्वितीय मधुर भेद को हमारे यहाँ (मीरजापुर में) ‘खिरना’ और काठियावाड़ में दुधला कहते हैं। इसके बीज कालाकुड़ा बीजवत् कड़वे नहीं होते। इसलिये इसको लोग मीठा इन्द्रजौ कहते हैं। इसकी छाल सफ़ेद होती है और कड़वी नहीं होती। इसलिये इसे सफ़ेद कुड़ा वा मीठा कुड़ा कहते हैं। तालीफ़शरीफी में इन्द्रजौ का वर्णन देखने से भी यह सिद्ध होता है कि उसके लेखक ने कड़ुए के बीज को हिंदी में इन्द्रजौ और अरबी में लिसानुल्असाफीर और वृक्ष को कुड़ा समझा है और कुड़ा शब्द में इसे ही कालाकूरा और छाल को तीवाजे हिंदी व खताई लिखा है।

गुणकर्म तथा प्रयोग

प्रकृति—शीतल और रुक्ष (ता० श०)। प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष है (मुहीत)। स्वाद—कषाय (ता० श०)।

गुण, प्रयोग—कुड़ा क्षुधाजनक, कफ और पित्तनाशक, रक्तविकारनाशक, अवरोधोद्धाटक तथा आमदोषघ्न है और कुष्ठ, अतिसार (इसहाल सहज्जी) और अर्श इनका नाश करता है। इसका फूल तिक्त, शीतल तथा वाजीकरण है और पित्त को नष्ट करता है (और आमामितिसारघ्न है)। कुड़ाछाल शीतल, रुक्ष, कषाय और पित्तघ्न होती है तथा अर्श और अतिसार (इसहाल

शिकम) में लाभकारी है। यह कफघ्न है और अतिरज और अर्शजात रक्त की रुद्धक है। इसे तीवाजे हिंदी लिखा है। यह ताजी काम में आती है। इसकी जगह इसकी सूखी छाल काम में लेते हैं। परंतु वह श्रेयस्कर नहीं होती। अस्तु, दस्तूरुल्लअतिब्बा में हकीम क़ासिमफ़रिश्ता लिखते हैं कि इसकी शुष्क छाल ताजी की प्रतिनिधि नहीं हो सकती। (ता० श०)।

मुहीत में यह अधिक लिखा है—यह (कुड़ा) वात-कफनाशक और ज्वरघ्न है तथा फोड़े-फुंसी को दूर करता है। रोग की अवस्था और बलाबल के अनुसार १३॥ माशे इसका चूर्ण दही के भीतर रखकर खाने से रक्तातिसार और अर्शज रक्तस्रुति बंद हो जाती है। परीक्षित है। इससे अतिरजदोष भी मिट जाता है। बवासीर के लिये तो यह रामबाण औषध है। इसकी छाल और जड़ के काढ़े और सत (रुब) में भी उक्त सभी गुण पाये जाते हैं। कहते हैं कि फल गुण में इन्द्रजौ के समान है। खजाइन में यह विशेष लिखा है—इसकी छाल पीसकर जलोदरी (मरीज इस्तिस्काऽज्जकी) के शरीर पर मलते हैं। फली को पीस कर साँपके दंश-स्थल पर लेप लगाने से सूजन उतरती है और दाह शमन होता है। इसकी जड़ की छाल का सत डेढ़ रत्ती और अफीम १ (पाव) रत्ती पीने से आँव के दस्त बंद होते हैं। केवल इसकी जड़ की छाल भी आँव रोक देती है। जड़की छाल का चूर्ण ५ रत्ती से १० रत्ती तक दिन में तीन बार युवा मनुष्य को देना चाहिये। इसकी जड़की छाल का काढ़ा २॥ से ५ तोला तक पीने से अतिसार और आमातिसार (आँव) बंद हो जाते हैं। इसका काढ़ा ज्वरातिसार-नाशक है। प्रारंभिक अतिसार और आमातिसार में कुटजत्वक् का प्रयोग वर्जित है। इसके क्वाथ से चिरज आमवात नष्ट होता है। कुरैया की ताजी छाल का रस १० से २० बूँद देने से अतिसार, रक्तातिसार और चिरज आमातिसार आराम हो जाते हैं। इसके ५ तोला काढ़े में थोड़ी सी अफीम मिला कर दो-दो वा तीन-तीन घंटे के अंतर से पिलाने से उग्र आमातिसार मिटता है। इसके काढ़े से वातज और रक्तजार्श के अंकुर नष्ट हो जाते हैं। इसकी छाल को पीसकर गोदुग्ध के साथ पिलाने से पूयमेह और मूत्रदाह आराम होता है। इसकी छाल को पीसकर गोदधि के साथ सेवन करने से मधुमेह आराम होता है। परंतु इसके सेवनकाल में पथ्यादि नियम का पालन आवश्यक है। इसकी छाल का रस पिलाने से अतिसार आराम होता है। इसका काढ़ा पिलाने से आमातिसार आराम होता है। ४ तोला कुड़ाछाल को बत्तीस तोले पानी में औटाकर पादशेष रहने पर उसे छानकर उसमें उतना ही अनार का रस मिलाकर पुनः

आगपर पकाकर गाढ़ा कर लें। उसमें से ६ माशा की मात्रा में रसक्रिया लेकर छाछ के साथ पिलाने से रक्तातिसार आराम होता है। छाल के काढ़े में सोंठ और घी मिलाकर पिलाने से रक्तातिसार आराम होता है। इसके पत्तों का स्वरस भी उक्त रोगों में लाभकारी है। दो माशे इसका चूर्ण तीन माशे शहद वा पानी में मिलाकर प्रति दिन प्रातःकाल निरंतर तीन सप्ताह पर्यंत सेवन कर लेने से अर्श समूल नाश होता है, चाहे जितना खून आता हो। किंतु अम्ल और वायुकारक पदार्थों से परहेज करना चाहिये और मलावरोध न होने प छाग-मांस भी खाना चाहिये।

जकाई में लिखा है—तीवाजखताई तीन-चार माशे लेकर पीसकर चके (दही) में मिलाकर खायें तो अर्शजात रक्त तुरंत बंद हो जाय। यदि तीवाज उपलब्ध न हो, तो कुड़ा की छाल जो उसकी प्रतिनिधि ही नहीं, अपितु गुण में उससे भी बढ़कर है, यथाविधि उपयोग में लें। उक्त भेषज अर्शजनित अतिसार में भी लाभकारी है।

तकमिला में लिखा है कि काला कुड़ा एक-दो माशे पीसकर दही के साथ खिलाने से प्रवाहिका आराम होती है।

*तीवाज

वर्णन—एक वृक्ष की छाल जो अत्यंत तिक्त होती है। तुह्र-फ़तुल् मोमिनीन नामक निघंटु-ग्रंथ में लिखा है कि यह 'तालीसफ़र' मालूम होता है। परंतु मख़्जन के रचयिता के अनुसार यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि यह तालीसफ़र नहीं, अपितु लिसानुल्असाफ़ीर अर्थात् इन्द्रजौ के वृक्ष की छाल है, जिसे हिन्दी में कुरैया की छाल कहते हैं। इसके वृक्ष को कुरैया वा कालागूरा (तालीफ़ शरीफ़ी के अनुसार कालाकूरा और मुहीत के अनुसार कालाकुड़ा) कहते हैं। किसी-किसी के मत से यह एक भारतीय वृक्ष की छाल है जिसका यूनानी चिकित्सक 'माकेर' नाम से प्रवाहिका में उपयोग करते हैं। इसके विषय में मुहीत के लेखक अपना अंतिम निर्णीत मत इस प्रकार देते हैं—“सत्य यह है कि यह विलायती कुड़ा अर्थात् विलायती कड़ू इन्द्रजौ की छाल है, जिसे तीवाजे खताई कहते हैं। क्योंकि इसे खता देश से लाते हैं और तीवाजेहिंदी कुड़ाहिंदी (कुटजत्वक्) है जिसे 'काला कुड़ा' कहते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षांत में शीतल और रूक्ष और मतांतर से उष्ण और रूक्ष है; परंतु खजाइन के अनुसार

*डीसक ने इसे 'त्वक्' संस्कृत शब्द का अपभ्रंश अनुमान किया है।

वास्तव में यह उष्ण है। स्वाद—किंचित् कषाययुक्त अत्यन्त तिक्त।

अहितकर—गुदा को और उष्ण प्रकृति को हानिकर तथा पिपासाजनक है। इससे कभी-कभी कोष्ठावयवों (अह्शा) में शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसीलिये इसे उष्ण मानते हैं। (मख्जन)। **निवारण**—कतीरा, शीतल फलादि और मेवों का गाढ़ा किया हुआ स्वरस (रुब्ब), इसबगोल और मीठे बादाम का तेल। **प्रतिनिधि**—अंजुवार, कुड़ा की छाल और दम्मुल्अख्वैन। **ग्रह**—प्रकृति की दृष्टि से सूर्य। **विशिष्ट कर्म**—रक्ताश और रक्तस्रुतिनाशक है। **मात्रा**—४॥ मा० तक। **कल्प**—जुवारिश, चूर्ण और मरहम इत्यादि।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह शिरोशूल और दंतशूल में लाभकारी है मसूढ़ों को शक्ति प्रदान करती है और तर नजला एवं नकसीर को बंद करती है। रक्ताश, चिरज अतिसार, गुदचौर (शिकाक मक्खद), श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर एवं क्षतों से रक्तस्रुति होने में इसकी धूनी लाभकारी है। इससे ढीली सूजन भी उतर जाती है। शिरोशूल और शिथिल शोथों पर इसे सिरके में मिलाकर लेप करने से उपकार होता है। दंतशूल में और तर नजला में इसे चूर्णकरके मंजन करने से उपकार होता है और इससे मसूड़े दृढ़ होते हैं। गुदचौरगत वेदना और गर्भाशय-शूल में इसकी धूनी से उपकार होता है। प्लेग और महामारी में इसका विलक्षण प्रभाव होता है। रक्तातिसार एवं अशर्जन्य अतिसार प्रभृति में २। मा० तीवाज खताई को ४॥ मा० नीलूफर के साथ उपयोग करने से परम उपकार होता है। टपकाये हुए दही के पानी के साथ अथवा विलायती मेंहदी के सत जैसे शीतसंग्राही सतों के साथ इसका चूर्ण सेवन करने से अशर्जात शीतल चिरज अतिसार आराम होता है। रक्ताश में इसे आगे लिखी विधि से सेवन करने से बहुत उपकार होता है; यथा २ तोला ७॥ मा० तीवाज लेकर बारीक पीस लें और बादाम के तेल में चिकनाकरके वटिकाएँ प्रस्तुत कर लें। पुनः उन सब को पाँच दिन में इस प्रकार खा जायँ कि प्रथम दिन ४॥ मा० खाएँ, दूसरे दिन ४॥ मा० ६ रत्ती और तीसरे दिन ४॥ मा० १२ रत्ती खायँ। इसी प्रकार प्रति दिन ६ रत्ती बढ़ाते रहें। दिन-रात में केवल एक बार दोपहर के समय चावलों का खसका अर्धभूट मुरगी के अण्डे की जर्दी के साथ खावें। पाँचवें दिन जर्दी की जगह खसके के साथ ताज्जा मक्खन खावें। नकसीर का रक्त बंद करने के लिये इसे पीसकर नस्य की भाँति सूँघें और थोड़ी सी तीवाज कपूर और चंदन के साथ गुलाब में पीसकर भस्तक पर लेप करें। ४॥ मा० तीवाज समभाग

लह्यतुत्तीस के साथ खाने से रक्तनिष्ठीवन आराम होता है। यदि क्षत से रक्तस्रुति बंद न होती हो, तो इसे बारीक पीसकर उसपर बुरक दें। रक्तातिसार बंद करने के लिये २। मा० तीवाज का चूर्ण खुरफे के भृष्ट छिले हुए बीज के शीरे के साथ पान करें। इसकी वर्ति बना कर योनि में धारण करने से श्वेत और रक्त दोनों प्रकार के प्रदर आराम होते हैं। (मख्जन)।

कड़ुआ इन्द्रजौ वा लिसानुलअसाफीर

प्रकृति—बूअलीसीना के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में तर है। किसी-किसी ने तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में स्निग्ध वा तर लिखा है। मतांतर से द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में रुक्ष और द्वितीय कक्षान्त में भी उष्ण और रुक्ष कहा है। इसमें मलभूत द्रव अवश्य है। वैद्य शीतल बतलाते हैं। **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिवाले के सिर को हानिकर है, शिरोशूल उत्पन्न करता है। मिन्हाज के अनुसार वृक्क को भी हानिकर है। **निवारण**—उष्ण प्रकृतिवाले के लिये धनिया और वृक्क के लिये कद्दू का मुरब्बा। **प्रतिनिधि**—वाजीकरणार्थ समभाग अखरोट की मींगी, जायफल, तोदरीसुख, अर्धभाग वहमनसुख और कवावचीनी। **ग्रह**—सूर्य। **विशिष्ट कर्म**—गर्भस्थापक। **मात्रा**—२। मा०। मतांतर से अकेला १०॥ मा० तक और अन्यान्य औषधियों के साथ ७ मा० तक। यह माजून इत्यादि में पड़ता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह वायुनाशक है। पत्र शीतसंग्राही है। पार्श्वशूल, नितंबशूल अर्थात् कूल्हे का दर्द, हृत्स्पंदन, कृच्छ्रश्वास और जीर्णकास में इसका फल पीने से उपकार होता है। मरोड़ (मगस), कटिशूल और गर्भाशय-शूल में इसे पीसकर पीने से उपकार होता है, मूत्रप्रवर्तन होता है, अश्मरी नाश होती है, उपस्थांगों को शक्ति प्राप्त होती है, कामोद्दीपन होता है और यह वाजीकरण है। ऋतुस्नानोत्तर शहद और केसर के साथ इसकी वर्ति* बना कर योनि में धारण करने से गर्भस्थापन में सहायता प्राप्त होती है। कहते हैं कि यह परीक्षित है। इसके पत्तों के लेप से तर व्रणों का शोधन, रोपण और रोहण होता है। मांसपेशियों की ग्लानि (कोफ्तगी) में इसकी छाल के (सिरके के साथ) लेप से उपकार होता है। (तुहफा और मख्जन)।

मुहीत में यह विशेष हैं—फल पृष्ठशूलनाशक है।

मुफरदातनासिरी में इसे सांद्रवायु का अनुलोमकर्ता और कृमिघ्न लिखा है।

* डीमक के मत से भारत के अतिरिक्त यूनान और रोमदेशवासी भी इस प्रकार की वर्तिकाओं का उपयोग करते थे।

खजाइन में यह विशेष लिखा है—यह पसली और कूहे का दर्द नाश करता है, याकृतीय अतीसार बंद करता है और उदरगत कृमियों को नष्ट करता है। यह वस्ति (और वृक्क) स्थ अश्मरिनाशक है। यह श्वासनाशक और तीक्ष्ण वायु को विलीन करता है। शरीर पर जो लाल और पीले दाने निकलते हैं, इसके लेप से उनका दाह मिटता है।

वैद्य कहते हैं*—इन्द्रजौ तिक्त, चरपरा, शीतल तथा संग्राही है और वातपित्तनाशक, ज्वरघ्न, अतिसारनाशक, रक्तार्शनाशक और कृमिघ्न है। यह उन फोड़ों को जिनमें से रक्त और पीव बह रही हो और उस पीव के लगने से दूसरी जगह भी व्रण उत्पन्न हो जाते हों, अच्छा करता है। (ता० श०)।

मुहीत में यह विशेष है—यह उष्ण शिरोशूल एवं अर्श का नाश करता है एवं पाचक है और रक्तज कास, उष्णता, मलोत्सर्गकालीन उदरशूल और उदरज कृमि इनको नष्ट करता है।

तजकिरतुल हिंद में लिखा है—यह रक्तपित्त, अतिसार, संग्रहणी, श्वेतप्रदर (सफेदा), रक्तार्श, मूत्ररोग वा प्रमेह, कुष्ठ एवं पिच्छिल श्लेष्मा तथा वायु और पित्त इनको नष्ट करता है तथा कृमिघ्न और दीपन-पाचन है। क्योंकि यह तिक्त है। अस्तु, कृमिनाशक और रक्तार्श में लाभकारी है। यदि इसे आध तोला की मात्रा में ठंडे पानी से खावें तो अर्शोजात अतिसार आराम हो। भारतीयों के मत से कड़वा समग्र गुणों में मीठे से बढ़कर है।

खजाइन में यह विशेष लिखा है कि इन्द्रजौ तिक्त, चरपरा, संग्राही और क्षुधावर्द्धक है तथा कफ, दाह, गरमी, पित्तज्वर, उदरशूल, अर्श, कुष्ठ, रक्तविकार और उदरगत कृमि इनको लाभ पहुँचाता है। यह अतिसारनाशक है। एक या दो रत्ती इसका चूर्ण देने से शिश्वतिसार आराम होता है। समस्त अंगों की निर्बलता और दुर्बलता मिटाने के लिये इसे दो-तीन रत्ती देना चाहिये। इसको पीसकर शहद मिलाकर पुरानी रूई का

*इन्द्रयवः त्रिदोषघ्नः संग्राही शीतलः कटुः।

ज्वरातिसार रक्तार्श कृमि विसर्प कुष्ठनुत् ॥

(म० नि०)।

वत्सकस्य च बीजं तु कटु तिक्तं च शीतलम्। ग्राहकं पाचकं चोष्णं चाग्निदीप्तिकरं परम्। वातरक्तं कफं दाहं पित्तं नानाज्वरं तथा।

शूलमर्शं चातिसारं त्रिदोषं गुदकीलकम्।

कृमिकृमिविसर्पामरक्तार्शल्लिखान् हरेत् ॥

(नि०र०)।

फाहा उसमें आप्लुत करके इसे गर्भाशय के मुखपर लगाने से गर्भाशय की पित्तज सृजन मिटती है। इन्द्रजौ को शहद के साथ चटाने से रक्तार्श आराम होता है। सात मासे इन्द्रजौ को चार पहर तक भैंस के दूध में भिगोकर उसके बाद पीसकर गरम करके उपस्थपर लेपकरके ऊपर से पट्टी बाँध दें। फिर उष्ण जल से धो डालें। इसी प्रकार कई दिन तक करने से इन्द्री बहुत बलवान् और दृढ़ हो जाती है। ४ तोला इन्द्रजौ को गरम पानी में भिगोकर उस पानी को छानकर पिलाने से पित्तज अतिसार आराम होता है और वात, पित्त एवं कफ के दोष मिटते हैं। यह वीसर्प में लाभकारी है।

मीठा इन्द्रजौ वा इन्द्रजौ शीरी

गुण-प्रयोग—इसके हरे पत्तों और फलियों की तरकारी पकाकर खाते हैं। मीठे इन्द्रजौ को पानी में पीसकर झड़वेरी के बराबर बटिकायें प्रस्तुत कर लें। इसमें से दो बटिकायें रात को सोते समय ठंडे पानी से खा लेने से रक्तज और वातज दोनों प्रकार के अर्श आराम होते हैं। मीठे इन्द्रजौ को कुल्हिया में बंद करके जला लें। इसमें से थोड़ी-थोड़ी भस्म शहद में मिलाकर चटाने से शिशुओं का उग्र कास आराम होता है। गुणधर्म में यह भी कड़ुए इन्द्रजौ के समान है। (खजाइन)।

कुरोया—[अ] कुर्या।

कुरंड—संज्ञा पुं० [] कुरण्ड।

कुरकना—[यू०, सुर०] केसर।

कुरा—

कुरास—

कुरी—संज्ञा स्त्री० दे० “कुरकी”।

कुरकुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुट। मुर्गा।

कुरकुण्ड—[पं०]

कुरकुम—[अ०, सं० कुङ्कुम] केसर।

कुरकुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुर। कुकुर। कुत्ता। (अ० टी०)।

कुरकुरजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० “कुरकुरजिह्वा”।

कुरकुलिगो आर्किऑइडीज—संज्ञा पुं० [ले० Curculigo orchioides] मुसली।

कुरकू—[यू०, सुर०] केसर।

कुरकी—संज्ञा स्त्री० [मल०] पानजीरा। (डी० भ० ३, पृ० ९२)।

कुरासगदी—[कना०] कोसम।

कुरवंशीर्षक, कुरवंसेषर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नारियल। (डी० भ० ३ पृ० ५१४)।

कुचिआई बिस्मथ—[अं० Kurchii bismuth]

बिस्मथ और कुटजसत्व का एक यौगिक। यह अतिसारनाशक है।

कुचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सूची। सूई। (अं०)
 नीडल (Needle)।
 कुचिसीन—[अं० Kurchicine] कुटजसत्व। दे० “कुड़ा”।
 कुची—संज्ञा स्त्री० [बं०] कुड़ा, कुटज।
 कुचीन—[अं०, बं०] कुटज सत्व। दे० “कुड़ा”।
 कुर्ज—[?] बाबूना।
 कुटिकलाय—[बं०] कुलथी।
 कुटी—[भूटिया] अर्जुन। कहुआ। (डी० भ० ३, पृ० २९७)।
 कुटीकी—[बम्ब०]
 कुर्णक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पटोल। परवललता।
 कुर्णज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलिञ्जन। गन्दमूल। (रा०
 नि० व० ९)।
 कुर्त—[अ०] एक उद्भिद जिसके यह दो भेद होते हैं—(१)
 इसके पत्ते इस्फिस्त या रतबा के पत्तों की तरह होते हैं और
 उससे इसके पत्ते अधिक बड़े और मीठे होते हैं। (२) यह
 भेद बड़ा होता है। इसके पत्ते बलूत के पत्तों के बराबर
 होते हैं। मिश्र में इसे खेतों में बोते हैं। इसके खाने से
 घोड़े पुष्ट एवं परिवृंहित होते हैं। पर्या०—(फ्रा०)
 शब्दर, शब्दर; (अस्फ०) शूदर। वक्तव्य—खजाइन
 में शूदर को फारसी लिखा है। मखजन में इसके फल को
 ‘रसीम,’ किंतु मुहीत और खजाइन में ‘रसमीन’ लिखा है।
 कहीं-कहीं रसीम लिखा मिलता है।
 कुर्तनः—[यू०] मधुवारि। माउलअस्ल।
 कुर्तफ—[अ०] वाकला। समरतुरम्स।
 कुर्तमान—दे० “कुर्तमान”।
 कुर्तमाना—[] (१) किर्दमाना। (२) करोयाए
 रूमी व फारसी।
 कुर्तमालक, कुर्तमालू—[सं० कृतमाल] अमलतास।
 कुर्तर—[] अकरकरा।
 कुर्तस—[] अंगूर का शिगूफा।
 कुतहे दशती—[फ्रा०]
 कुर्ता—[] शाहबलूत।
 कुर्तान—[सुर०] सफेदा।
 कुत्तिकलाय—[बं०] कुलथी।
 कुर्ती, कुर्तीकी—[सुर०] गोखरू।
 कुर्तीन—
 कुर्तुन—[यू०] मधुवारि। माउलअस्ल।
 कुर्तुफ—[अ०] वकला। समरतुरम्स।
 कुर्तुम—[अ०] कुसुमबीज। कड़। खसकदाना।
 कुर्तुम नहरी—[अ०] कालादाना।
 कुर्तुम बरीं—[अ०] जंगली कुसुम। उस्फुरबरीं।
 कुर्तुमान—[] हुर्तुमान फारसी। दे० ‘हुर्तुमान’।
 कुर्तुमाना—[] (१) किर्दमाना। (२) करोयाए
 रूमी व फारसी।

कुर्तुस—[] अंगूर का शिगूफा।
 कुर्तु—[सु०] गोखरू।
 कुर्थी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुलथी।
 कुर्दु—[म०] सिरियारी। (डी० भ० ३, पृ० १३९)।
 कुर्दुमान—[गु०, म०] सिरियारी।
 कुर्दूस—[अ०, बहुव० ‘कुरादीस’] (१) हड्डी का सिरा।
 (२) हड्डी के जोड़ का उभार।
 कुर्नेअफ—
 कुर्प, कुर्पा—[म०] अञ्जनी। (अं०) मेमीसिलोन एड्युल
 (Memecylon edule),
 कुर्पर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केहुनी। कफोनी। (हे० च०)।
 कुर्परास्थि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केहुनी की हड्डी।
 कुर्पास (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्त्रियों का स्तनाच्छादन-
 वस्त्र। काँचुली। चोली। दामन। (अम०)।
 कुर्पोडर—[म०]
 कु (कु) फ्रा—[अ०] कुलफा। बड़ी नोनिया।
 कु (कु) फ्रुस—[अ०, सं० कर्पास] कपास। कर्पास।
 कुर्ब—[अ०] (१) कुक्षि। कोख। पेट का कोमलस्थान।
 तहीगाह। पार्श्व और कटिका मध्य भाग। (२) सामीप्य।
 कुर्बके नशास्ते के गड्डे—[द०] तीखुर।
 कुर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कछुआ। कच्छप।
 कुर्मः—[अ०] एक मान जो छः किरात या १॥ वा २ दाँग के
 बराबर होता है।
 कुर्—[अ०] (१) शीत। जाड़ा। (२) मुर्गी का वच्चा।
 चूजा।
 कुरंतुलएने—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक उद्भिद जो बँधे हुए
 पानी में और कभी-कभी बहते हुए पानी में भी उत्पन्न होता
 है। इसकी छत्रिका (छतरी) पानी से बाहर होती है और
 यह फूल के बीच से निकलती है। फूल पीला होता है।
 काण्ड और पत्र अजमोदे (करप्स) के कांड और पत्र की
 तरह होते हैं। किंतु इसके पत्र अजमोदा के पत्र से ज़रा
 कमजोर होते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि इसके पत्ते मोटे,
 गोलाई लिये दंतित और आकृति में करप्सवत् होते हैं।
 उनमें से एक प्रकार का चिपचिपा रस वा चेष निकलता
 है। किसी-किसी के अनुसार इसके पत्ते नमाम के पत्तों की
 तरह होते हैं और पुदीने के पत्तों से किंचिद् दीर्घ होते हैं।
 ये श्यामता लिये अत्यंत हरे होते हैं। जड़ पतली और सफ़ेद
 होती है और कांड पोला और श्वेत होता है। फूल और
 बीज आदि इसके सकलांगों से सुगंध आती है। स्वाद
 तीक्ष्ण वा चरपरा होता है। इसका स्वाद और गंध करप्स
 और जिर्जीर के स्वाद और गंध की तरह होता है। इस-
 लिये इसको करप्सुल्माऽ (जलज अजमोद) और
 जिर्जीरुल्माऽ (जलज जिर्जीर) भी कहते हैं। यही
 करप्स माई, करप्स आजामी और करप्स नहरी भी है।

इसके पत्ते श्यामनिवासी बहुत खाते हैं। शक्ति में यह करपसबुस्तानी के समकक्ष है। किसी-किसी के मत से करपस के समस्त भेदों से निर्बल है।

पर्यां—(फा०) कंकर आवी; (अ०) जिर्जीरुल्मास, करफसुल्माई; (यू०) दीकूरस, सलीनून (बुहानि), अफूसालियूस, कर्दामीनी; (सिरि०) कर्कशाद (कर-पशाद); (रू०) सयून।

वक्तव्य—यूनानी अफूसालियूस संज्ञा का अर्थ जलजात अजमोदा (करफसुल्मास) है। इसकी अरबी संज्ञाओं का अर्थ क्रमशः जलज जिर्जीर या जलज करपस है। इसमें उक्त दोनों ही के स्वाद और गंध पाये जाते हैं। अतएव इसे उक्त संज्ञाओं से अभिवानित किया गया।

प्रकृति—द्वितीय कक्षांत में उष्ण और रुक्ष। **अहितकर—**अन्न और वृक्क को अथवा शरीर के नीचे के अंगों को।

निवारण—प्रथम के लिये काकनज और द्वितीय के लिये उन्नाव, कतीरा और शीतल पदार्थ। **प्रतिनिधि—**करपस वा अजमोदा। **ग्रह—**सूर्य। **विशिष्ट कर्म—**मूत्रप्रवर्तक, आर्तवप्रवर्तक, वातानुलोमक और रक्तस्थापक।

मात्रा—४। मा० तक।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह शरीर के भीतर गरमी उत्पन्न करती और सूजनादि उतारती है; प्रत्येक अंग की रक्तस्रुति को रोकती है, मूत्र और आर्तव का प्रवर्तन करती और वृक्काशमरी को खंड-खंड करके निकाल देती है। इसके हरे पौधे का रस वा उसका काढ़ा पीने से अन्न और आमाशयगत दुष्टभूत सांद्र वायु विलीन होती है, अवरोध उद्घाटित होते हैं, आमाशय उद्दीप्त होता है, आहार परिपाचित होता है, मूत्र और आर्तव प्रवर्तित होते हैं, वृक्काशमरी नष्ट होती है, चेहरे का रंग अरुण हो जाता है तथा पार्श्वशूल, पाण्डु, प्लीहा, मरोड़ और आन्त्रव्रण इन रोगों का नाश होता है। इसके काढ़े के तरेडा (नतूल) वा स्नान से ज्वरजनित वेपथु वा शीतज्वर का नाश होता है। (मख्जुन)।

गोलानी के अनुसार इसकी पत्ती तारत्यकारक, उष्ण-ताजनक और मुखदूषिका (मुंहासा) नाशक है तथा इसके रस में मेंहदी की पत्ती पीसकर लेप करने से बालकों का खर्जुविशेष नष्ट होता है। इसके खाने से आमवात नष्ट होता है, वायु नष्ट होती है और पेट से बच्चा निकल पड़ता है।

यह अन्न की सूजन उतारती है। (मुहीत)।

कुरीं—संज्ञा स्त्री० [नैपाल, हिमालय] बादाम।

संज्ञा स्त्री० [उर्दू] एक प्रकार की अस्थि। यह एक प्रकार की कोमल या मृदु अस्थि (हड्डी) है, जो हड्डी की अपेक्षया अत्यंत कोमल, सफेद और मुड़नेवाली होती है। यह शीतल और अन्य अमिश्र अंगों से शीघ्रपाकी होती

है। **पर्यां—**(सं०) तरुणास्थि; (हिं०) चवनी की हड्डी, मुरकनी हड्डी; (अ०) गुजरूप (बहुव० गज्जारीफ); (अं०) कार्टिलेज (Cartilage), ग्रिसिल (Gristle)।

अहितकर—शीतल प्रकृति को।

निवारण—सान्द्र मद्य। (मु० आ०)।

कुरूं—(म०) पटुआ।

कुर्वं—[बम्ब०] कुटजबीज। इन्द्रजव।

कुशंटकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मण्डूर। लोहकिट्ट।

कुशंटभेदा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी।

कुर्शा—[?सं० पुं०] काला कुड़ा।

कुर्सं—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास, जिसकी जड़ लंबी, नरम और मजबूत होती है।

कुर्सं—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० अक्रास] (१) रोटी।

(२) गेहूँ की छोटी सफेद और खमीरी रोटी। (फा०) कुल्चा। (३) कुर्स अरबी धातु कर्स (टिकिया बनाना) से व्युत्पन्न है। इसे हिंदी में 'टिकिया', संस्कृत में 'चक्रिका' और अंगरेजी में 'टब्लेट' (Tablet) कहते हैं।

कुर्सं अञ्जवार—संज्ञा पुं० [अ०] कुर्स का एक योग जिसमें अंजवार प्रधान द्रव्य है।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—अञ्जवार की जड़ १ तोला २ माशा, गुलाबपुष्प, बबूल का गोंद, कुलफा के बीज और कहरूवा प्रत्येक १०॥ माशा, गुलनार, गेहूँ का सत (निशास्ता), गिलअरमनी, मूंगा की जड़ (बुस्सद) की पिण्डी, वंशलोचन, मुलेठी का सत प्रत्येक ७ माशा, अका-किया ५। माशा—सब को कूटकर कपड़छानकर केले के स्वरस में मर्दन कर चक्रिका निर्माण करें।

मात्रा और सेवन-विधि—शर्वत अञ्जवार २ तोला के साथ ६ माशा यह चक्रिका प्रातः सायंकाल सेवन करने से रक्तातिसार, रक्तपित्त, अत्यातवशोणितस्राव बंद होता है।

कुर्सं अयारिज खास—[अ०]

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—बालछड़, दालचीनी, ऊद-बलसाँ, हब्व ऊदबलसाँ, तज, मस्तगी, तगर, केशर प्रत्येक एक भाग, एलुआ २ भाग—सब को एकत्र कूट-कपड़छानकर अर्क-सौफ में घोंट कर आधे-आधे माशा की चक्रिका निर्माण करें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—प्रातःकाल ४ से ६ टिकिया पर्यन्त अर्कबादियान वा ताजा पानी के साथ मधु मिला सेवन करने से आमाशय सान्द्रदोषों से सम्यक् परिष्कृत हो जाता है और विविधित यकृत अपनी पूर्व दशा पर आ जाता है। अथवा प्रतिदिन २-३ माशा सेवन करने से कण्ठमाला पूर्णतः नष्ट होता है। इसपर श्रेयस्कर उपाय यह है कि प्रातःकाल ४ बजे वयानुसार ३-४ टिकिया खा

कर दिन निकलने के उपरांत मुर्फेरहनिजाम और जुवारिश जालीनूस—प्रत्येक १ माशा मिश्रित कर अवलेहन करें।

कुर्सआ—[अ०] कछुआ।

कुर्सकहूबा—[अ०] रक्तष्ठीवन में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कहूबा (तृणकान्त), प्रवाल-मूल, मुक्ता, छिलका दूर किये हुए कुलफा के बीज प्रत्येक १ तोला ५॥ माशा, सावरशृंग अन्तर्धूमदग्ध, कुक्कुटाण्ड-त्वक् अन्तर्धूमदग्ध, कतीरा, गोंदबबूल प्रत्येक १०॥ माशा, भृष्ट शुष्क धनियां, श्वेत पोस्ता के बीज प्रत्येक १ तोला ९ माशा, बराटिका (कौड़ी) अन्तर्धूमदग्ध, श्वेत अजवाइन खुरासानी, प्रत्येक ७ माशा। एकत्र कूट-कपड़-छनकर बारतंग के रस में मर्दनकर ४-४ माशा की चक्रिका निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा सेवन-विधि—७ माशा सायं-प्रातः जल वा शर्वतअज्वार के साथ सेवन करने से रक्तपित्त तथा अन्य प्रत्येक अंगजात रक्तस्राव नष्ट होता है। (परी-क्षित)।

कुर्स काकनज—[अ०] वृक्कवस्तिगत व्रण में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—काहू बीज ५ तोला १० माशा, कुलफा बीज ४ तोला ४॥ माशा, वंशलोचन, सत मुलहठी प्रत्येक २ तोला ११ माशा, गुलावपुष्प, शुष्क धनियां, प्रत्येक १ तोला ५॥ माशा; अकाकिया, श्वेतचन्दन, गिलअरमनी, गुलनार—प्रत्येक ७ माशा और कर्पूर १॥ माशा। एकत्र कूट-कपड़छानकर अर्कगुलाब में मर्दनकर चक्रिका निर्माण करें।

गुण, मात्रा तथा उपयोग—प्रातःकाल प्रति दिन १०॥ माशा की मात्रा में ग्रहणकर खट्टे अनार के रस में मिश्रित-कर सेवन करने से वृक्क-वस्तिगत व्रण का नाश होता है।

कुर्स काफूर लूलुबी—[अ०] ज्वर में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—छिद्र वर्जित मुक्ता, वंशलोचन, कतीरा, गोधूम सत्त—प्रत्येक ९ माशा, गुलावपुष्प, श्वेतचन्दन, निलूफर, शुष्कधनियां, रक्तचन्दन, तुष-वर्जित खुरफाके बीज, तरबूज के छिले बीज, मीठे कद्दू के छिले बीज—प्रत्येक १ तोला १॥ माशा तथा काफूर कैसूरी २॥ माशा, एकत्र कूट-कपड़ छानकर इसबगोल के लबाब में मर्दनकर चक्रिकाएं निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा सेवन-विधि—४ माशा की मात्रा में उपयुक्त अनुपान द्वारा सेवन करने से तीव्रज्वर, राज-यक्ष्मा, जीर्णज्वर, उरः क्षत एवं क्षयजन्य अतिसार शमन होता है।

कुर्स काफूरी—[अ०] पाण्डु-कामला में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—वंशलोचन, गुलावपुष्प, श्वेत चन्दन प्रत्येक १०॥ माशा, कासनी बीज, कुलफा बीज, मीठा कद्दू के छिले बीज, काहू बीज प्रत्येक ७ माशा,

कतीरा ३॥ माशा तथा कपूर २ रत्ती। एकत्र कूट-कपड़छानकर इसबगोल के लबाब में मर्दनकर चक्रिकाएं निर्माण करें।

गुण, मात्रा तथा सेवन-विधि—७ माशा १० तोला अर्क-गुलाब और २ तोला सिकंजबीन सिरका के साथ प्रातः सायं सेवन करने से कामला तथा यकृत प्रदाह और तीव्र-ज्वरों का नाश होता है।

कुर्स कुहल—[अ०] वमन में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—सुरमा इस्फहानी, दम्मुल् अख्वैन, धौत शादनज—प्रत्येक ३ माशा, हरामाजू, गुलनार फारसी—प्रत्येक २ माशा, अन्तर्धूमदग्ध सावर-शृंग, अकाकिया—प्रत्येक १ माशा, धौत लाक्षा (लुक मम्मूल) १॥ माशा, अहिफेन, शुद्ध केशर प्रत्येक ४-४ रत्ती। एकत्र कूट-कपड़छानकर बारतंग वा कुलफा के रस में मर्दनकर चक्रिकाएं निर्माण करें। मात्रा—३ माशा।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से वमन तथा विदीर्ण रक्तवाहिनीसिराजन्य रक्तस्राव शान्त होता है।

कुर्सगुल—[अ०] ज्वर में प्रयुक्त एक यूनानी योग।

कुर्स गुलनार—[अ०] रक्तष्ठीवन में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—गुलनार, गिलअरमनी, गोंद बबूल, प्रत्येक १ तोला २ माशा, गुलावपुष्प, अकाकिया—प्रत्येक १०॥ माशा तथा कतीरा ७ माशा। एकत्र कूट-कपड़छानकर गुलनार के रस से मर्दनकर चक्रिकाएं निर्माण करें।

मात्रा, गुण तथा उपयोग—१ माशा शर्वतअज्वार के साथ सेवन करने से रक्तपित्त तथा रक्तस्राव नष्ट होता है।

कुर्स तबासीर काफूरी लूलुबी—[अ०] ज्वर में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—छिद्र वर्जित मुक्ता, वंशलोचन, अन्तर्धूमदग्ध मीठे पानी का केकड़ा, काहू बीज, सफेद पोस्ता के बीज, बीजकुलफा तुषवर्जित, कतीरा—प्रत्येक १ तोला १॥ माशा, कहूबा शमई, सत मुलहठी, गुलाब की कली प्रत्येक ९ माशा, ककड़ी के छिले बीज, खीरा के छिले बीज १ तोला, बबूल का गोंद, प्रवालमूल अन्तर्धूम-दग्ध—प्रत्येक ४॥ माशा, कर्पूर कैसूरी ३॥ माशा, केशर, कतरा हुआ अबरेशम—प्रत्येक ७॥ रत्ती। एकत्र कूट-कपड़छानकर बारतंग के स्वरस में मर्दनकर चक्रिकाएं निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा उपयोग—३ माशा उपयुक्त अनुपान द्वारा सेवन करने से—राजयक्ष्मा, उरः क्षत, अतिसार यकृतातिसार, रक्तातिसार तथा रक्तपित्त का नाश होता है।

कुर्स तबासीर-मुलघिन—[अ०]—ज्वर में प्रयुक्त योग—

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—वंशलोचन १ तोला २ माशा, तुरंजबीन खुरासानी १०॥ माशा, गोधूम सत्व, मीठे कद्दू के छिले बीज, खीरा-ककड़ी के छिले बीज, गोंद बबूल, कतीरा, सफेद पोस्ता के बीज—प्रत्येक ३॥ माशा। एकत्र कूट-कपड़छानकर इसवगोल के लवाव में मर्दनकर चक्रिकाएँ निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा उपयोग—७ माशा, ९ माशा अर्कगाव-जवान के साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, उरः क्षत, दूषित ज्वर (तपे मुहरिका), शुष्क-कास तथा वक्ष की कर्कशता नष्ट होती है। यह मृदुसारक, संतापहारक तथा तृषा में उपयोगी है।

कुसुं तवासीर, काबिज—[अ०] अतिसारादि में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—वंशलोचन, गुलाव-पुष्प, कासनी बीज, काहू बीज, कुलफा बीज, समाक—प्रत्येक ६ माशा; गुलनार, श्वेत चन्दन, चक्रवीज, तुलुम हुम्माज—प्रत्येक ३ माशा; अहिफेन १॥ माशा—सबको एकत्र कूट-कपड़छानकर अर्कगुलाव में मर्दनकर चक्रिकाएँ निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा सेवनविधि—३ माशा उपयुक्त अनुपान द्वारा सेवन करने से पित्तज अतिसार तथा जीर्णज्वर का नाश होता है।

कुसुंतवासीर काफूरी लूबूबी मुरक्कब—[अ०] यक्ष्मा में प्रयुक्त सिद्ध योग—द्रव्य तथा निर्माण-विधि—मुक्ता छिद्र-वर्जित, वंशलोचन, अन्तर्धूमदग्ध केकड़ा, श्वेतपोस्ता के बीज, काहू बीज, तुषवर्जित कुलफा बीज, कतीरा—प्रत्येक १०॥ माशा, कहरुवा शमई, गुलावपुष्प ९ माशा, ककड़ी-खीरा के छिले बीज २२॥ माशा, गोंदबबूल, अन्तर्धूमदग्ध प्रवाल-मूल प्रत्येक ४॥ माशा, कपूर ३॥ माशा, केशर १॥ माशा, कतरा हुआ आबरशेम १॥ माशा, हाइपोफॉस्फेट ऑफ लाइम ९ माशा। एकत्र सबको कूट-पीसकर यथाविधि चक्रिकाएँ बनाएँ।

गुण-मात्रा तथा सेवन-विधि—इसको ५ माशा की मात्रा में प्रातः सायं शर्वतअनार के साथ सेवन करने से राज-यक्ष्मा, उरःक्षत, गदोद्वेग, रक्तप्लीवन, रक्तपित्त, रक्त वमन, क्षयज अतिसार प्रभृति व्याधियों का नाश होता है।

कुसुं बसं—[अ०] शिवत्र वा किलास में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—देशी नील, वकुची, चित्रक—प्रत्येक ३ तोला, सिरका में मर्दनकर चक्रिकाएँ निर्माण करें।

उपयोग-विधि—एक टिकिया जल में पीसकर दिन में २-३ बार लेप करने से शिवत्र का नाश होता है। (परीक्षित)।

कुसुं मासिकुल बौल—[अ०] बहुमूत्र में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—झाऊ, कुन्दुर, अकाकिया प्रत्येक

३॥ माशा; गोधृतभर्जित काबुली हड़ की छाल ४॥ माशा भर्जित शुष्क धनिया ५॥ माशा, गुलनार, गिलअरमनी, गुलावपुष्प, मसूर प्रत्येक ७ माशा, बलूत बीज, विलायती मेंहदी के बीज प्रत्येक १०॥ माशा। सबको एकत्र कूट-कपड़छानकर छोटी-छोटी चक्रिकाएँ निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा उपयोग—७ माशा विही के लवाव में मिश्रित कर सेवन करने से तृष्णा और बहुमूत्र का नाश होता है।

कुसुंमुसल्लस—[अ०] शिरोरोग में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—बोल (मुरमकी), अहिफेन, अजवाइन खुरासानी बीज, केशर, लुफाहमूलत्वचा—प्रत्येक १ तोला ५॥ माशा, कुन्दुर, अञ्जूर, आमला, गिल अरमनी—प्रत्येक ७ माशा, एकत्र कूटछानकर अर्कगुलाव और काहू के रस में मर्दनकर चक्रिकाएँ निर्माण करें।

उपयोग—१ टिकिया जल में पीसकर कर्णपुटि पर तथा मस्तकपर लेप करने से शिरोवेदना शमन होती है। अर्धावभेदक और अनिद्रा में उपयोगी है।

कुसुं सरतान—[अ०] राजयक्ष्मा में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—अन्तर्धूमदग्ध कर्कट (केकड़ा) २॥ तोला, वंशलोचन, कहरुवा, पोस्ता की डोंडी, कर्पूर, संगजराहत, गिलअरमनी प्रत्येक ३ माशा; गोधूम सत्व (निशास्ता), ककड़ी-खीरा के छिले हुए बीज प्रत्येक १ तोला; गुलावपुष्प, यष्टिमधुसत्व, कतीरा, गोंद बबूल, भर्जित कुलफा बीज—प्रत्येक ९ माशा; अहिफेन १ माशा, एकत्र कूटकपड़छानकर विहिदाना के लवाव में मर्दनकर चक्रिकाएँ निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा उपयोग—४ माशा प्रातःसायं १२ तोला अर्क गावजबाँ के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा, उरः क्षत, रक्तपित्त तथा अतिसार का नाश होता है।

कुसुंसिल—[अ०] राजयक्ष्मा में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण विधि—शुद्ध कर्पूर, गोंद कबूल, गोधूम सत्व (निशास्तः गन्दुम), सत्व गूडूची, शकर तीगाल—प्रत्येक समभाग में ग्रहणकर एकत्र कूटकपड़छानकर गावजबाँ के लवाव में मर्दनकर चक्रिकाएँ निर्माण करें।

गुण-मात्रा तथा उपयोग—२ माशा प्रतिदिन प्रातःसायं शर्वत अञ्जवार के साथ सेवन करने से उरः क्षत का नाश होता है।

कुसुं—संज्ञा पुं० [अ०] कलाई की हड्डी का उभार। कलाई की हड्डी का निम्न छोर। (अ०) लोवर एण्ड आफ दी उल्ना (Lower end of the Ulna)।

कुसुंफ, कुसुंफ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हैज की गद्दी। बुन्ना। (२) दवात का सूफ।

कुसुंफ—[अ०] असीउरई।

कुल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०; ब०] (१) वेर। बदर। बदरीफल। (२) काला सुरमा। (त्रिका०)।

कुलअजा—[ब०] अर्जुन। कहुआ। (मेमो)।

कुलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, ब०] तालमखाना। कोकिल। (वृ० नि० २०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुचला। कारस्कर। (२) परवल या उसकी लता। (३) मरुआ। मरुवक। (४) तिलपुष्प। (५) कडुआ चिचिण्डा। (६) मकरतेंदुआ नामक वृक्ष। (७) हरा साँप।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] भोग्य वस्तु। रसनामल।

संज्ञा पुं० [फा०] भेड़िया। वृक।

कुलकक—[फा०] (१) कच्चा खर्वूजा। (२) बाँस (नै)।

कुलक कर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चिनिया ककड़ी। चीन कर्कटी। (रा० नि० व० ७; ध० नि०)।

कुलकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीना ककड़ी। यह चित्रकूट में प्रसिद्ध है। चीन कर्कटी।

कुलकमञ्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जिगनी।

कुलका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कडुआ चिचिण्डा। (२) कुलफा। खुर्फी। (३) मैनसिल।

कुलकादि क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक क्वाथ-योग-विशेष।

कुलकुल, कुलकुलान—संज्ञा पुं० [अ०] पँवाड़। चक्रमर्द।

कुलकुलानिया, कुलकुलानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] पेंडुकी। फाख्ता।

कुलकृत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अकरकरा। अकरकरभ। (वै० निघ० जिह्वकज्व०-चि०)।

कुलङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का काला साँप। कृष्णसर्प विशेष। (वै० निघ०)। (२) एक पक्षी जिसका सिर लाल और बाकी शरीर मटमैले रंग का होता है। (३) मुर्गा। (४) तरबूज।

कुलङ्ग मांस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलंग का मांस। (फा०) गोश्त कुलंग। (अ०) लहमुल्कुर्की।

प्रकृति—दूसरे दर्जे में गरम एवं रुक्ष। गुणकर्म तथा उपयोग—अवरोधोद्धाटक, बलप्रद, शोथघ्न और गुल्मनाशक है। इसके भेजे का नेत्रांजन नक्तान्ध्यनाशक है और लेप श्वित्र एवं कण्डू का नाशक है। इसका पित्त चमेली के तेल में पीसकर यवप्रमाण में लेकर सेवन करने से विस्मृति का नाश होता है। यह सिरके श्वेत केशों को भी लाभदायक है। इसकी बसा सिरका और जंगली प्याज के साथ सेवन करने से प्लीहा की कठोरता नष्ट होती है।

अहितकर—दीर्घपाकी एवं पिच्छिलदोषोत्पादक है।

निवारण—लवण, सिरका और जल। प्रतिनिधि—सारस।

कुलङ्गिर—

कुलङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकडासींगी। (वै० निघ०)। (२) मीठा इन्द्रजव।

कुलचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनुपदेशज जीव। (ध० नि०)।

कुलज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] माता-पिता के शुक्रशोणित दोषों के कारण संतति में प्रवेश करनेवाले व्याधि। (च०)। इसके आदिबलप्रवृत्त (मु०), संचारी (याज्ञवल्क्य), कुलोद्भव और सहज (वाग्भट), प्रकृतिप्रभव (भेल) इत्यादि नाम भी दिये गये हैं। (अ०) हेरिडिटरी (Hereditary)। (अ०) मरज मौरूसी।

कुलजा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली भेड़। कुचकार।

कुलजुद—

कुलञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुलञ्जन, (रा० नि० व० ६, प० मु०, ध० नि०)। (२) महाभरी वच।

कुलञ्जक—संज्ञा पुं० [फा०] केकड़ा। कर्कट।

कुलञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यह पान की जड़ नहीं, अपितु एक अन्य विदेशीय क्षुपका कंदवत् पाताली धड़ है। इसके कटे हुए उँगली के बराबर मोटे, २ से ३ इंच लंबे, एक सिरे पर दूसरे की अपेक्षा अधिक मोटे टुकड़े जिसे प्रायः जड़ समझते हैं, बाजार में मिलते हैं। इनमें से किसी-किसी टुकड़े पर उपमूल भी होते हैं। उन पर गोल-गोल सफेद मुद्रिकाएं होती हैं। बाहर से ये गहरी ललाई लिए भूरे और भीतर से भूरापन लिये सफेद (फीका लाल) और कड़े एवं चिपटे तथा सुगंधित होते हैं। स्वाद तीक्ष्ण कालीमिर्चवत् और चरपरा होता है। यह प्रायः ग्रंथिल होते हैं। चीन से भारतवर्ष में इसका आयात होता है। (यू० द्र० गु० वि०)।

छोटा कुलञ्जन

पर्या०—चीन वचा—सं०। कुलीजन, कुलीजन, कुलिजन, कुलंजन, कुलाजन—हि०। खौलिञ्जान, खूलिञ्जान, खार्वलिजान, खूलिञ्जान अक्रारिबी—अ०। खुरवे दारू—फा०। क्लोजान—सिरि०। तीफ्रीलून—यू०। करगात—तु०। खुलञ्जान—द०। कुलिजन—गु०। कुलंजन, कोलिजन—मरा०। इरत्तै, शित्तरत्तै, सित्तरिती, सुतरत्ती—ता०। दुम्प राष्ट्रकम, सन्न दुम्पराष्ट्रकम्—ते०। चित्तलत्ति—मल०। सण्ण रास्मि—कना०। सित्तरत्तै—सिंह०। कुंजर काठी—सिंध। दी लेसर गेलङ्गल The Lesser Galangal—अं०। आल्पीनिआ चाइनेन्सिस Alpinia Chinensis, Roscoe, आ० आफिसिनेरम् A. Officinarum, Hance—ले०। पेटिट गेलङ्गा Petit Galanga, गेलङ्गा डी ला चाइनी Galanga de la chine—फ्रां०। गलङ्गा Galanga—पुर्त०।

बड़ा कुलञ्जन

पर्या०—कुलञ्जः, कुलञ्जनः (रा० नि०), सुगन्धवचा, मलयवचा, महाभरी वचा (भा० प्र०)—सं०। बड़ा कुलञ्जन, कुलिजन—हि०। खौलिंजाने कस्बी, खूलिंजाने कबीर—अ०। खुरवेदारूकला—फ्रा०। कुलिजन—गु०। कोलिजन, कोष्ठकोलंजन, मोठा कोलंजन—मरा०। मोठें कुलिजन (मालावार)। बड़ा खूलञ्जन, मालावारी कोलंजन—द०। पेर-रत्त—ता०। पेद्दुम्प राष्ट्रकम्—ते०। पर-रत्त—मल०। दुम्परास्मि—कना०। बड़ा कलंजान—बं०। दी ग्रेटर गेलङ्गल The Greater Galangal, जावा गेलंगल Java Galangal—अं०। आल्पीनिया गेलंगा *Alpinia Galanga*, Willd.—ले०। गेलंगा ग्राण्ड *Galanga Grand*, गेलंगा डी जावा *Galanga de Java*—फ्रा०।

वक्तव्य—वहलू जवाहर में कुलंजन के अर्थ में खौलिंजान शब्द आया है। मुइदुलफ़जला में इसका उच्चारण खूलिंजान और अर्थ खसरवेदारू लिखा है। खसरवेदारू का अर्थ कोई-कोई कुलिजन लेते हैं और कोई कहते हैं कि एक वृक्ष है जिसका संबंध वे नौशेरावाँ से दिखलाते हैं। इसकी लकड़ी को खालूलिंजान कहते हैं। खजाइन में कुलिजन को मराठी भाषा का शब्द लिखकर जो उसका अर्थ पान की जड़ लिखा है, वह प्रामादिक है। बुरहान में इसे खालूलिंजान लिखा है। हलुलमुश्किलात में खौलिंजान को खुरूदारू लिखा है। कोई-कोई कहते हैं कि खुरूदारू सफ़ेद ताक का नाम है। अरबी में इसको किर्मतुलबैजा कहते हैं। इसका फल लाल होता है और अंगूर के (खुशे) के समान होता है। इससे चमड़ा पकाते हैं। बुरहान के लेखक का ऐसा ही मत है। (स्मरण रखें कि किर्मतुलबैजा फाशराका नाम है)। इस्तिथारातबदीई में जुसरूदारू का अर्थ खुरूदारू अर्थात् कुलंजन लिखा है। कोई-कोई उसे खुरूदारू का अरबीकृत बतलाते हैं। चीनी भाषा में जहाँ कि इसके क्षुप होते हैं, इसे 'काओन-लिअंग-किअंग' कहते हैं। इसी से खौलिंजान आदि इसके अरबी नाम व्युत्पन्न हैं। इन अरबी नामों से इसके अंगरेजी और संस्कृत आदि नाम व्युत्पन्न हैं।

आर्द्रकादि कुल।

(Family : Scitamineæ)।

उत्पत्तिस्थान—चीन।

उपयुक्त अंग—पाताली घड़ (जड़)।

रासायनिक संगठन—एक उत्पत् सुगन्धित तेल।

प्रकृति—द्वितीय कक्षात में उष्ण एवं रुक्ष है। सराबियून के अनुसार तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। वज्राअतुल अतिव्वा में रहमअली खाँ लिखते हैं कि यह तृतीय कक्षा के

प्रथमांश में उष्ण और रुक्ष, मखजन के अनुसार तृतीय और कक्षा के मध्य में उष्ण और रुक्ष है। अहितकर और निवारण—हृदय और वक्षावरण को हानिकर है, उष्ण प्रकृति-वालों में शिरोशूल उत्पन्न करता है; चंदन, बंस-लोचन, पुष्ट कुक्कुट का मांसरस, अवशेश और अनीसून उनके निवारण हैं। यह मूत्ररोधक है जिसका निवारण कतीरा है। मुहीत में हृदय के लिये कतीरा और स्निग्ध पदार्थ विशेषतः पुष्ट कुक्कुटी का मांसरस इसका निवारण लिखा है।

प्रतिनिधि—मखजन के अनुसार दालचीनी और कबाब-चीनी। वज्राअतुल अतिव्वा के अनुसार लॉग, मुहीत के अनुसार अर्ध भाग (तौल में) तुलम अंजुरः। ग्रह—प्रकृति की दृष्टि से मंगल वा सूर्य। प्रधान कर्म—वाजीकरण, पाचन, कासघ्न, उदरशूलनाशक और वातानुलोमक। मात्रा—४॥ मा० तक। रियाजुल अदविया में यूसफी ने ३॥ मा० से ७ मा० तक लिखा है। मखजन के अनुसार ६॥ मासे तक।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह (खौलिंजान) आमाशय, आन्त्रादि कोष्ठावयव (अहंशा) और अन्यान्य आंतरिक अंगों को बलप्रद, पाचनशक्तिवर्द्धक, वाजीकरण, वातानुलोमक और मूत्ररोधक है तथा शिरोशूल, कफजन्य अपस्मार और तर कास को लाभकारी है, स्वर को शुद्ध करता है, मुख की दुर्गंध दूर करके उसे सुगन्ध प्रदान करता है और शीतल कफज शूल, कटिशूल, अम्लोद्गार, उदरशूल, वृक्कस्थ शीत, वृक्कशूल, कंठमाला (खनाजीर), कर्कट (सर्तान) तथा गृध्रसी इनमें लाभकारी है और वायु (रियाह) को तोड़ती है। इसे थोड़ा सा जिह्वा के नीचे रखने (वा उस पर मर्दन करने) से उसकी जड़ता नष्ट होती है और बच्चे शीघ्र बोलने लगते हैं। इससे (मुख में रखने मात्र से) परम शिश्न प्रहरण होता है। ३॥ मासे कुलंजन को २। तो० बकरी के दूध में पीसकर पीने से कामोद्दीपन होता है और यह परीक्षित है। इसको पानी या जैतून वा चमेली के तेल में मिलाकर लेप करने से व्यंग वा झाई का नाश होता है। यह भी परीक्षासिद्ध है। इसका अर्क अत्यंत उत्कृष्ट और वातानुलोमक है। समस्त गुणों में यह इसकी जड़ से श्रेष्ठ है। अन्य अर्कों की भांति इसे प्रस्तुत करते हैं। जवारिश खौलिंजान के दो योग करा-वादीन में उल्लिखित हैं। (मखजन)।

साहब जामा कहते हैं कि वाजीकरण के लिए इसके उपयोग की सर्वोत्तम रीति यह है कि २। मा० अपितु ३॥ मा० कुलंजन को बारीक पीस-छानकर २८ तो० (अर्ध रतल) ताजे गोजुध पर बुरककर प्रति दिन नीहार पी लिया करें। वाजीकरण के लिये यह परीक्षित है। अथवा मैथुन के समय इसका एक टुकड़ा मुख में रख लें तो

शिशनोत्थान में परम सहायक हो। (तुहफतुल आशिकीन)।

रहम अली खाँ भी कहते हैं कि २८ तो० गोदुग्ध में २। मा० कुलञ्जन का चूर्ण मिलाकर पीने से परम वाजीकरण है।

कुलञ्जन को नीबू के रस वा सादे पानी में पीसकर प्रति दिन तीन बार मुँहपर लगाकर रहने दें, धोएँ नहीं। तीसरे दिन चावल पीसकर मुँहपर लगायें, जिसमें स्याह खाल उतर जाय। मिपताह में लिखा है कि उक्त औषध चौदह दिन तक दोनों काल लगाते रहें ताकि भीतर से स्याही खींचकर खुरंड बना कर दूर कर दे।

मुहीत में यह विशेष लिखा है—इसमें तारत्यजनन, विलिनीकरण, द्रवीकरण और उल्लासजनन धर्म पाया जाता है। इसका एक विशेष गुण यह है कि इसे उस वस्त्र पर रखने से जिस पर भोजन करते हैं, मक्खियाँ टूट पड़ती हैं। यह कफज और वातज व्याधियों को लाभकारी है तथा दुष्ट व्रणों एवं शीतल शोथों को नष्ट करता है। इसको चमेली आदि के तेल में मिलाकर लेप करने से शीतजन्य शिरोशूल आराम होता है। इसके चाबने से मुख सुगंधिपूर्ण होता है और दाँत स्वच्छ होते हैं। इसे पान के साथ खाने से शरीर गरम हो जाता है, आंतरिक अंगों को बल प्राप्त होता है, थकान दूर होकर स्फूर्ति आती है और वातनाडियों की शिथिलता दूर होती है। यह विकृत दोषों से आमाशय को शुद्ध करता है और उसे उष्णता प्रदान करता है तथा शीतल यकृत को उष्णता और बल प्रदान करता है तथा हृद्य है। यह शीतल वृक्कशूल और वातज उदरशूल में लाभकारी है और जिन्हें प्रायः उक्त व्याधि पीड़ित किया करता है, उन्हें गुणकारी है। कफरोगियों को यह अपने प्रभाव से लाभकारी एवं परीक्षित है। शैख के अनुसार वृक्करोगों में यह विशेषरूपेण प्रभावकारी है। यह वस्ति और वृक्क की सरदी से उत्पन्न हस्तिमेहभेद (सलसुलवौल्) और कूहे के दर्द (दर्द खासिरः) में लाभकारी है।

खजाइन में यह विशेष है—यह आमाशयगत द्रवों को अभिशोषित करती और वस्ति की सरदी को दूर करता है। बंध* कहते हैं—कुलीजन उष्ण है तथा आहार को पचाता और आमाशय के विकार दूर करता (मुसलेह) है तथा उदरशूल, वृक्कशूल, गृध्रसी, अपस्मार और शीतल शिरोशूल इनको नष्ट करता है। यह मूत्रसंग्राहक और वाजीकरण है। इसमें से थोड़ा सा मुख में रखने से गलग्रह

*कुलंजः कटुतिक्तोष्णो दीपनो मुखदोषनुत्।

(राजनिघण्टुः)

(गिरपतगी आवाज) दूर हो जाता है और कंठगत स्वर शुद्ध होता है। (ता० श०; मुहीत)।

पान की जड़ और मुलेठी इनको पीसकर शहद के साथ चटाने से समस्त प्रकार के उरोरोग आराम होते हैं। गवैया लोग स्वरशुद्धि के लिये इसकी जड़ चूसा करते हैं। (खजाइन)।

कुलञ्जर, कुलञ्जार—संज्ञा पुं० [फा०] केकड़ा। कर्कट।

कुलञ्जी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कलौजी। मंगरैला। मंग-रइल। उपकुञ्चिका।

कुलटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुन्टी, मेनसिल। (र० मा०)।

कुलतृण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दमनक। नागदमन। (प० मु०)

कुलत्थ, कुलत्थक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलथी। (सु० सू० ४६ अ० ३७ श्लो०)। दे० 'कुलथी'।

कुलत्थक्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुलत्थ यूष'।

कुलत्थ गुड़—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिककाश्वासाधिकारोक्त योग। द्रव्य तथा निर्माणविधि—कुलथी १०० पल, दशमूलसमूह १०० पल, भारंगी १०० पल, जल ६४ श० (१ द्रोण) में क्वाथ करें। पुनः जब १/२ भाग शेष रह जाय तब इसमें ५० पल गुड़ मिलाकर पकाएँ। जब अवलेहतुल्य हो जाय तब इसमें प्रक्षेपार्थ ८ पल मधु, वंश-लोचन ६ पल, पीपर २ पल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची प्रत्येक २ तोला चूर्णकर मिश्रित करें। (च० द०। रसर०)।

कुलत्थयूष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलथीका यूष। अपक्व कुलथी का क्वाथकर सेवन करने से गुल्म, तथा तूणी एवं प्रतितूणी का नाश होता है और यह वातानुलोमक है। (वा०)। यह वात, श्वास, पीनस, तूनी, प्रतूनी (वातरोग), कास, बवासीर, गुल्म और उदावर्त इनका नाश करता है। (सु० सू० ४६ अ०)। यह उष्णवीर्य, मधुर, अग्निप्रदीपक, कषाय, गुल्म, कफ, वायु, अर्श, श्वासकासनाशक है और वातानुलोमक तथा तूनी, मेह और मेदनाशक है। (वै० निघ०)। कुलत्थयूष मधुर, कषाय तथा वात-कफनाशक और महाश्मरी तथा वातजमेहनाशक, सन्दीपन और मेदविशेषक है। (अत्रि०)।

कुलत्थषट्पलक घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हिककाश्वास में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कुलथी, दशमूल, भारंगी, प्रत्येक १ प्रस्थ पृथक्-पृथक् और जल ६४ श० ग्रहणकर एकत्र पकाएँ। जब १/२ भाग शेष रहजाय, छानकर इसमें गोघृत ४ श०, छागीदुग्ध ४ श०, गोदुग्ध ४ श०। क्वाथार्थ—पंचकोल व यवक्षार प्रत्येक १ पल मिश्रित कर यथाविधि सिद्ध करें। (रस० र०)।

कुलत्थसूप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भर्जित कुलथी की दाल।

गुण—कुलथी की दाल—वातघ्न, कटु, पाक में कषाय, कफनाशक, उष्ण, स्वासकासनाशक, शुक्ररक्तवर्धक, शुक्राश्मरीनाशक और पित्तकारक है। (वे० निघ०)।

कुलत्था—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुलत्थाञ्जन। काला-सुरमा। (रा० नि० व० १३)। (२) वनकुलत्थ। जंगली कुलथी। चाकसू।

पर्याय—(सं०) अरण्यकुलत्थिका, टक्प्रसादा, कुलानी, लोचनहिता, चक्षुष्या, कुम्भकारिका, कुलत्थिका (रा०), कुल्माष, कुशविल्वक। गुण—कटु, तिक्त, अशंशूलघ्न, विबन्ध-आध्माननाशक, नेत्रों को हितकर तथा व्रणरोपणी है। (रा० नि० व० ५)।

कुलत्थाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कालासुरमा।। (A blue stone used as a collyrium)। पर्याय—(सं०) कुम्भकारी, प्रलापहा। गुण—कुलत्थिका नेत्रों को हितकर, कषाय, कटु तथा शीतल है और विष, विस्फोटक, कण्डू तथा व्रणदोषनाशक है। (रा० नि० व० १३)

कुलत्थादि-क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “कुलत्थ यूष।” कुलत्थादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णशूल में उपयोगी लेप। द्रव्य—कुलत्थ, कटुफल, शुण्ठी, करजीरी (कृष्ण जीरक) समभाग में ग्रहणकर जल में पीसकर किंचित उष्णकर लेप करने से कर्णमूलगत शोथ तथा शूल का नाश होता है। (भा० म० १ भ० ज्व० चि०)।

कुलत्थाद्य-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अश्मरी-अधिकारोक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कल्कार्थं वघ्नत्वक्, १२॥ श० (मतांतार से ८ श०), कुलत्थादि कल्क ८ पल, जल ६४ श०, पादांश-१६ श०, गोघृत ४ श० एकत्र पाक करें। मतान्तरे—गोघृत ४ श०, वरुण छाल ४ श०, जल १६ श०—शेष ४ श०। कल्कार्थं—कुलथी, सेंधव, विडंग, मिश्री, यवक्षार, कुष्माण्डबीज, गोखरूबीज, शिउली क्षुप प्रत्येक ८ तोला (सा० को०; च० द०)।

कुलत्थाञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुलथीकृत भक्त (भात)।

गुण—कुलथी का सिद्ध भात वा दाल—मधुर, कषाय, रुक्ष, उष्ण, लघु, वृषिकारक, पाक में कटु, अग्निदीपक, कफ, वात, कृमि तथा स्वासनाशक है। (वे० निघ०)।

कुलत्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुलत्थाञ्जन। (रा० नि० व० १३। रत्न०)। (२) कुलथी। कुलत्था। (३) वन कुलत्थ। चाकसू। वन कुलथी। (बं०) वन कुत्त। (र० मा०; हे० च०)। (४) रक्तकुलत्थ (भा०)। (५) शीतला देवी। (वे० निघ०)।

कुलथी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुलथी, कुरथी, कुलत्थ।

कुलथ—संज्ञा पुं० [सं० कुलत्थ]

कुलथी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थी] कुलत्थ वा कुलत्थिका।

पर्याय—(सं०) कालवृत्त, ताम्रवृक्ष, कुलत्थिका, ताम्रवृत्त, ताम्रबीज, सितेतर; (हिं०) कुलथी, कुरथी, खुरथी; (अ०) हव्वुलकि(कु)लत्त, बज्रुलवृक्ष; (फा०) संगशिकन, माशेहिन्दी; (बं०) कुलटी, कुलत्थ; (म०) कुलीच, हुलजी; (गु०) कलथी; (कों०) कुलियु; (ते०) उलवालु; (ता०) कोल्बु; (कना०) हुल्ली; (मल०) कुलु, मुतिर; (अं०) हॉसग्रेम-प्लाण्ट (Horsegram-Plant); (ले०) डॉलिकोस बाइफ्लोरस (Dolichos biflorus Linn.); (फ्रां०) डालिका डोक्सफ्लास (Dolica-deuxfleurs.)।

शिम्बिकादि कुल (Family : Leguminosae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष में मिर्जापुर, दुदही इत्यादि में इसकी कृषि की जाती है। वर्षान्त में बीज रोपण किया जाता है और कार्तिक वा अगहन मास में सुपक हो जाती है।

परिचय—इसके क्षुप उद्दतुल्य होते हैं। वर्णभेद से श्वेत, रक्त तथा धूसरादि कतिपय प्रकार के बीज होते हैं। जंगली लोग इसका दाल या सत्तू बना कर खाते हैं।

गुण—उष्ण, रुक्ष, कषाय, वात-कफघ्न, रक्तपित्तकारक, स्वास, कास, बल-वीर्यनाशक (रा० नि० व० १६), उष्ण, मास्त (वात), पीनस, कास, प्रतिश्याय, विबन्ध, गुल्म, हिक्का, रक्त, कफ और पित्तनाशक अथवा मेदनाशक है। (अत्रि १५ अ०)। पाक में अम्ल, उष्ण-वीर्य, शुक्राश्मरी, पीनस, कास, अशं-कफवातघ्न, रक्तपित्त-कारक (वा०); रस में कषाय, विपाक में कटु है। (हेमाद्रि शिम्बीधान्यवर्ग), कषाय, कटु, उष्णवीर्य होने से वातशामक है और पाक में कटु है। (सु० सू० ४० अ०)। इसके काथ में लोहादि की शुद्धि होती है।

उपयोगी अंग—बीज।

रासायनिक संगठन—तुषयुक्त बीज में अण्डलाल (Albuminoids), स्टाच (Starch), तेल, रेशे, भस्म, स्फुरकाम्ल (Phosphoric acid), मांसजातीयद्रव्य, पिष्ठ इत्यादि होते हैं।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—तृतीय कक्षामें उष्ण एवं द्वितीय कक्षामें रुक्ष है। किसी के अनुसार द्वितीय कक्षामें उष्ण एवं रुक्ष है। शैख ‘मासरजोया’ के अनुसार द्वितीय कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा में तर है।

गुण-कर्म—वृक्कस्थ अश्मरीघ्न, क्षुधाप्रद, नेत्ररोगनाशक मूत्रप्रवर्तक, आर्तवजनक, वीर्यशोषक प्लीहरोधोद्घाटक, गुल्मनाशक तथा अर्श, उदरशूल एवं कफनाशक है।

उपयोग—इसे पीसकर लेप करने से अर्शकुर नष्ट होता है। इसे क्वाथकर सेवन करने से वृक्कस्थ अश्मरी विचूर्णित होकर मूत्र के साथ उत्सर्जित होती है। ३॥ मासा कुलथी और मूलकपत्रस्वरस मिश्रितकर सेवन करने से अश्मरी का नाश होता है अथवा कुलथी २ तोला

३ माशा तथा इसी परिमाण में शलजम के बीज चूण-कर २० तोला जल में क्वाथ करें। जब ९ तोला जल शेष रह जाय तब छानकर ४॥ तोला की मात्रा में प्रातःसायं पान कराएँ। इससे अर्श नष्ट होता है और कपोलों का वर्ण सुन्दर होता है। इसके अन्य योग क्रमशः क्रमबद्ध दिये गए हैं। वहाँ देखो। अहितकर—फुफुस को। निवारण—मधु।

प्रतिनिधि—अलसी, हज्जुल्यहूद (पत्थरवेर)।

मात्रा—३ से ४॥ माशा तक। दे० 'कृष्ण कुलत्थ'। कुलथी, जंगली—संज्ञा स्त्री० वनकुलत्थ। अरण्यकुलत्थ। कृष्णकुलत्थ। चक्षुष्य। दे० "चाकसू" तथा "कुलत्था"। (म०) रान कुलित्था। (क०) काड हल्लिग।

कुलथी, काली—संज्ञा स्त्री० कृष्ण कुलत्थ। काली कुलथी। कुलथी, लाल—संज्ञा स्त्री० लाल कुलथी। ताम्रकुलत्थ, ताम्र बीज, ताम्रवृन्त, ताम्रवृक्ष।

कुलथी, सफेद—संज्ञा स्त्री० श्वेत कुलत्थ। सफेद कुलथी। दे० "कुलथी"।

कुलदरमा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हरीतकी। हड़। (बु० क०)।

कुलधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलौजी। मँगरैल।

कुलन कतार—[रुमी] पीतवर्ण का कसीस।

कुलननुकूल—[गु०] द्रोणपुष्पी। गुमा। (डाइमॉक भ० ३, पृ० १२३)। मधुपाती—हि०। (इ० मे० मे०)। (Leucus cephalotes)।

कुलनार—संज्ञा पुं० [देश०] एक खनिज पदार्थ वा पत्थर जो सफेद या कुछ सुमई लिये होता है। सिलखड़ी, संगजराहत।

कुलनाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट। उष्ट्र।

कुलन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शतावरी भेद।

कुल परीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वंशपरीक्षा, खानदान सम्बन्धी जाँच। विवाह के पूर्व आर्यजातिविशेष में कुल की परीक्षा करने का अधिक महत्व का विषय है। कुलकी पूर्ण परीक्षा न करने से कुलज आदिबलप्रवृत्त रोगों की उत्पत्ति होती है। माता-पिता के शुक्र-शोणित दोषों से कुष्ठ, अर्श इत्यादि रोगों की उत्पत्ति होती है। इनके दो प्रकार हैं—मातृज और पितृज। माता के रजके दोष से उत्पन्न सन्तान में पंगुता, जन्मान्वता, बाधिर्य, मूकत्व, मिन्मिन्त्व (हकलापन), वामनत्व इत्यादि दोष उत्पन्न होते हैं। इनको जन्मबलप्रवृत्त (Hereditary) भी कहते हैं। इस प्रकार की व्याधियाँ स्त्री-पुरुष का संयोग होने के पूर्व उनमें उपस्थित दोषों से उत्पन्न होती हैं। माता के रज में उसके तथा उसके पूर्वजों के गुण-दोष विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार पुरुष (पिता) के बीज में उसके तथा उसके पूर्वजों के गुण-दोष उपस्थित रहते हैं। बीज निर्दोष होने से उसके द्वारा उत्पन्न संतति भी

निर्दोष होती है। उक्त कारणों से विवाहबद्ध होने के पूर्व अपने सहकारी के तथा उसके कुल सम्बन्धी स्वास्थ्य पर पूर्ण विचार करना परमावश्यक है।

विवाह के सम्बन्ध में प्रचीन धर्मशास्त्र में भी इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त हैं—अप्लुत ब्रह्मचर्य्यो लक्ष्य्यौ स्त्रियमुद्वेहेत्। अनन्यपूर्विकांकान्तामसपिण्डांपवीयसीम्। अरोगिणीं भ्रातृमतीसमानार्षगोत्रजाम्। दशपूरुष विख्याताच्छेस्त्रियाणां महाकुलात्। स्फीतदपि न संचारिरोगदोषसमन्वितात्। एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियोवरः। यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः। (याज्ञवल्क्य स्मृति)।

उपयुक्त कारणों से अत्यन्त प्राचीन कालसे सगोत्र और सपिण्ड (Consanguineous) विवाह शास्त्रविरुद्ध हैं। असपिण्डा चयामातुरसगोत्रा च या पितु। साप्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने।

इस प्रकार माता-पिता के शुक्रशोणित दोषों के कारण संतति में प्रवेश करनेवाली व्याधियों को आयुर्वेद में आदिबलप्रवृत्त, संचारी, कुलज, कुलोद्भव तथा सहज वा प्रकृति-प्रभव (भेल) इत्यादि संज्ञाएँ दी गई हैं। कुष्ठ और अर्श के अतिरिक्त आयुर्वेद में राजयक्ष्मा, मधुमेह, श्वित्र, अपस्मार इत्यादि भी आदिबलप्रवृत्त 'कुलज' माने गए हैं। इसके अनुसार स्मृति में भी विवाह के निमित्त उक्त रोगों से पीडित कुल निषिद्ध हैं—शैतानि कुलानि परिवर्जयेत्। हीनक्रियं निष्पूरुष निश्छंदो रोमशार्शसम्। क्षय्यामया-व्यपस्मारि श्वित्र कुण्ठि कुलानिच। (मनुस्मृति)।

स्त्री-पुरुष के कुल—स्त्री-पुरुष उभय कुलों के विद्यमान तथा अविद्यमान मनुष्य-स्वस्थ, दीर्घायु तथा स्थिरेन्द्रिय होना उचित है। राजयक्ष्मा, मधुमेह, कुष्ठ, वातरक्त, वृक्करो, अपस्मार इत्यादि रोगरहित होना अनिवार्य है। उपयुक्त सिद्धान्त के अनुसार स्त्री-पुरुष के कुल अतुल्य होना उचित है। तुल्यगोत्रविवाह (Inbreeding) कुलजदोष वृद्धि करता है। कभी-कभी स्त्री-पुरुष विवाह के पूर्व स्वस्थ होते हैं, ऐसा देखकर यह न समझना चाहिए कि उनमें दोष नहीं हैं। उनमें कुलज दोष निहित रहते हैं और समयप्राप्त होने पर सन्तति में उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ कुलज रोग ऐसे भी हैं जो कतिपय पीढ़ी के पश्चात् अनुकूलता प्राप्त होनेपर उत्पन्न होते हैं और कतिपय कुलज रोग स्त्री द्वारा पुरुष सन्तति में प्राप्त होते हैं। उक्त कारणों से सम्भव है कि स्त्री-पुरुष उभय स्वस्थ हों, परन्तु उनके कुलमें कुछ विकार विद्यमान हों तो उनकी सन्तति में उनके स्वयंपीडित न होने पर भी आ सकते हैं। उक्त कारणों से वधु-वर की स्वस्थता देखकर भ्रम में न आना चाहिए, उनके कुल के स्वास्थ्य की परीक्षा अवश्य करना उचित है।

स्त्री-पुरुष का स्वास्थ्य—स्त्री-पुरुष उभय स्वास्थ्यपूर्ण

होना उचित है। उनमें उपर्युक्त कुलजविकार का अभाव होना चाहिए। उनमें पवित्रता के भाव हों, सुन्दरता, जनप्रियता इत्यादि गुण अवश्य होने चाहिए। उनमें नैष्ठुर्य, मात्सर्य, कामान्धता, क्षिप्रकोपता, अनवस्थित-चित्तता, उद्विग्नता, अहंकार, समाजविरुद्धता के बर्ताव की प्रवृत्ति तथा अन्य प्रकार के मानसिक-विकार का अभाव होना चाहिए।

कुत्सित व्यसन—भाँग, गाँजा, अफीम, मद्य तथा अन्य मादकद्रव्यसेवन की प्रवृत्ति न होनी चाहिए।

जननेन्द्रियगत स्वास्थ्य—बीजवाहिनी, गर्भाशय, योनि, शिश्न, वृषण, इत्यादि जननेन्द्रिय के अंग-प्रत्यंग स्वस्थ-शुद्ध होने चाहिए तथा रक्त-प्रदर, श्वेत प्रदर, उपदंश, फिर्ग, मूत्रमेह इत्यादि विकारों से प्रजननमार्ग अनुपहत होना चाहिए। जननेन्द्रियाँ पूर्ण परिपक्व होनी चाहिए। अपरिपक्वावस्थामें न होनी चाहिए। कुलपरीक्षण के साथ उक्त विषय भी परीक्षा के योग्य हैं।

कुलपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुक्रभाण्डी। 'कुमुद गन्धिनी'। (ध० नि०)।

कुलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दौना। दमनक। (रा० नि० व० १०)

कुलपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलपत्र। (ध० नि०)।

कुलपालक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमला नीबू। नारंगी भेद। श० च०। कुसम्ब।

कुलप्रवृत्ति—वि० [सं० त्रि०] कुलज। आनुवंशिक प्रवृत्ति। (Hereditary)।

कुलफा—संज्ञा पुं० [फा० खुरफा] पर्याय—(सं०) घोटिका, लोणी, बृहल्लोणी, कर्कटी, तुरङ्गी, चतुरङ्गी; (हिं०) खुरफा, बड़ी लोनी, बड़ी नोनियाँ, खुरफा; (अ०) बक्लतुल हुम्काऽ, बक्लतुलजोहर, बक्लतुल-मुबारिक, बक्लतुल फात्मा, फरफख; (फा०) खुरफ; तोरक; तुबुक; (द०) खुरफे की भाँजी; (बं०) बड़ नूनी; (बम्ब०) कुर्फा; (म०) मोठी घोल; (गु०) मोटी लूणी; (ते०) पइलकुर; (ता०) कोरिल कोरै; (कना०) दुद गोरे; (अं०) इण्डियन कॉमन पर्सलेन (Indian common Purslane); (उडिया) पुरणी साग; (ले०) पॉन्युलेका ऑल्लिरेसिआ (Portulaca oleracea)। (बीज) पर्याय—(हिं०) खुरफा के बीज; (सं०) घोटिका-बीज, बृहल्लोणिका बीज; (अ०) बज्जुल बक्लतुल हुम्काऽ, बज्जुल फरफख; (फा०) तुख्मे खुरफ; तुख्मे तोरक; (द०) खुरफे के बीज; (बं०) बड़नूनीबीज; (अं०) दी कॉमन इण्डियन पर्सलेन सीड्स (The common Indian Purslane Seeds)।

(२) छोटा कुलफा भेद—पर्याय—(हिं०)—नोनिया, छोटा कुलफा, लोनिया, लोनी, लोनिया साग; (सं०)

लोणी शाक, लोणिका, लोणा, लोणी, क्षुद्र लोणिका, लघु लोणिका, क्षुद्र घोलिका, क्षुद्र घोटिका।

लोणिकादि कुल (Family:Portulaceae)

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के समस्त उष्ण-प्रदेशों में इसकी कृषि की जाती है। छोटा कुलफा स्वयं आर्द्रभूमि वा कृषकों के क्षेत्रों में उत्पन्न होती है।

परिचय—यह एक प्रकार का कोमल रसयुक्त सर्व-प्रसिद्ध शाक है। छोटा-बड़ा भेद से यह दो प्रकार का होता है। स्वादभेद से अम्ल एवं कटु दो प्रकार का होता है। छोटा के पुष्प पीतवर्ण के होते हैं। स्वाद अम्ल होता है। पत्र स्थूल बड़े होते हैं। छोटी लूणक के भी दो प्रकार हैं। एक क्षेत्रों में और दूसरा गृहों की निकटस्थ भूमि में होता है। इसको ग्रामीण 'लेदरी' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें चांगेरीतुल्य अम्लक्षार होता है, अधिक अंश यवक्षार के होते हैं।

उपयोगी अंग—पत्र एवं बीज।

गुण—घोटिका (बड़ा कुलफा) कटु, उष्ण, मधुर, वात, व्रण, कण्डू, कुष्ठ तथा रक्तदोष वा शोथघ्न है। (रा० नि० व० ५)। क्षुद्रलूणक—रूक्ष, गुरुपाकी, वातश्लेष्महर, अर्शघ्न, दीपन, अम्ल और मन्दाग्निनाशक है। बड़ा कुलफा (घोटिका)—अम्ल, सर, उष्ण, वातकारक, कफ-पित्तघ्न, वाग्दोषघ्न, व्रणघ्न, गुल्मघ्न, कास-श्वास, शोथ, नेत्ररोग तथा प्रमेहनाशक है। (भा० पू० १३० शाक० व०)।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं स्निग्ध है। किसी के अनुसार तृतीय कक्षा में शीतल एवं द्वितीय कक्षा में तर है।

गुण-कर्म—पित्त तथा रक्त की तीक्ष्णता एवं उष्णता-नाशक, यकृत-आमाशयदाहशामक, मूत्र-वस्तिप्रदाह-नाशक, तृषानाशक और मूत्रल है। ब्रन्नाकारकृमिनाशक, वृक्कदाहशामक तथा यकृतसन्तापनाशक है। उपयोग—इसको अकेला वा मांस के साथ पकाकर भक्षण किया जाता है। इसका स्वरस निचोड़कर सेवन करने से—पित्तजरक्तज्वर, मूत्रदाह, उरःक्षत, यक्ष्मा, रक्तष्ठीवन, गर्भाशय-आमाशय-यकृतप्रदाह शांत होता है। इसे पीसकर प्रलेप करने से अग्निदग्ध, उष्णशोथ, रक्तज वा पित्तज शिरोवेदना शान्त होती है। हस्त-पाददाहनाशनार्थ इसको मेंहदीपन के साथ पीसकर लगाते हैं। इसका शाक खाने से पित्तज अतिसार शान्त होता है और आन्त्रबल की वृद्धि होती है। इसका शुष्क चूर्णकर अवचूर्णन करने से बाल-मुखपाक शांत होता है।

अहितकर—दृष्टि और प्लीहा को। निवारण-मस्तगी और पुदीना। मात्रा—५ तोला, स्वरस २॥ तोला।

बीज—(तुल्यखुरफः)—प्रकृति—तृतीय कक्षा में शीतल

एवं द्वितीय कक्षा में तर है। गुण-कर्म—शीतकारक, पित्त-रक्तशामक तथा मूत्रल है। तृषानाशक, पुंस्त्व-नाशक, पित्तज्वरघ्न, आमाशय-गर्भाशय-यकृत-प्रदाह-नाशक, रक्तष्ठीवन और शुष्ककासघ्न है। उपयोग—इसका चूर्ण मिश्री मिला सेवन करने से, पित्त-रक्तज शिरोवेदना उग्र तृष्णा, रक्तोद्वेग, पित्तोत्पणता, शुष्क कास, आमाशयान्त्र-प्रदाह और मूत्रप्रदाह शान्त होता है। इसके बीजों के शीरा में मिश्री वा शर्बतबजूरी मिलाकर सेवन करने से यकृतप्रदाहजन्य अतिसार शान्त होता है। इसके शीरा में शर्बतानार मिश्रितकर सेवन करने से आन्त्रिकसन्निपातज्वर शान्त होता है। बीजों को भर्जित-कर सेवन करने से आमाशयान्त्र की निर्बलता नष्ट होती है। यह उदरस्तम्भक अर्थात् संग्राही है। इसके उपयोग से मधुमेह शान्त होता है।

अहितकर—प्लीह, शीतल आमाशय और ओज को। निवारण—मिश्री और गुड़। प्रतिनिधि—इसबगोल, मीठे कद्दू के बीज। मात्रा—३ से ९ माशा तक।

कुलफा-दूदक—संज्ञा पुं० [पं०] महवी। हिर्लसीह। (मे० मो०)।

कुलबजफा—[यू०] सुरिज्जान। सुरंजान।

कुलबजफूर—[यू०, सुर०] सुरंजान।

कुलबद—[?] नारदीन। कायफल।

कुलबधूरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सन्निपातज्वर में प्रयुक्त योगद्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्धपारद, तृतिया, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, मैनशिल, प्रत्येक सम-भाग में ग्रहणकर इन्द्रायण के रस में १ दिन मर्दन करे और चणक प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण तथा उपयोग—जल में घिसकर नस्य देने से दारुण सन्निपातज्वर का नाश होता है। (वृद्ध वैद्य इसका अञ्जन भी कराते हैं)। (२० सा० सं०; मे० २०)।

कुलबर्ई—[वं०] बेर, बदरी।

कुलवा—[?] कुलफा, खुफः।

कुलवाद—[सुर०] पत्र। पत्ती। पत्ते।

कुलवाद-अक्रवनी—[सुर०] आइ के पत्ते।

कुलवाद-कवार—[सुर०] कवर के पत्ते।

कुलवाद-कुनार—[सुर०] बेर के पत्ते।

कुलवाद-कूर्जा—[सुर०] अखरोट के पत्ते।

कुलवाद-खिलाफ—[सुर०] बेदसादा के पत्ते।

कुलवाद-जाकनी—[सुर०] गार के पत्ते।

कुलवाद-जासा कलून-कफनाला—[सुर०] आलू के पत्ते।

कुलवाद-जीता—[सुर०] जैतून के पत्ते।

कुलवाद-नीला—[सुर०] नील के पत्ते।

कुलवाद-नूता—[सुर०] सीतासुपारी (बलूत) के पत्ते।

कुलवाद-बलूत—[सुर०] सीतासोपारी के पत्ते।

कुलवाद-हमसा-लबना—[सुर०] सूरंजान के पत्ते।

कुलवादा-कन्दना—[सुर०] अञ्जदान के पत्ते।

कुलवादा-तरुआ—[सुर०] सूरंजान के पत्ते।

कुलवादासिया—[सुर०] आस के पत्ते।

कुलबी नारदीन—[सुर०] जित्तियाना। जेंशन।

कुलभृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भिणी की सेवा करने-वाली धात्री। दाई। गर्भिणी पर्युपास्या।

कुलय—[अ०] (१) वृक। (२) गुदी।

कुलयी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष विशेष। गुण—मधुर, शीतल, कफकारक, गुरुपाकी तथा वातकारक है। (वै० निघ०)।

कुलर—[हि०] काकडासिंगी, कर्कटशृङ्गी।

कुलरा—[कश०, पं०] गूच। मे० मो०।

कुलराक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } सुरराहक, सेराह, एक
कुलराह—संज्ञा पुं० [,] } प्रकार का श्वेतवर्ण का
अश्व (घोड़ा)। (ज० द० ३ अ०)।

कुलर्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तालमर्दन। (हारा०)।

कुलवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कुलवधूरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुलवधूरस'।

कुलवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल निशोथ। रक्तमूल का विवृत्त। (रा०नि० व० ६०)।

कुलसञ्चय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] परिपेल, कैवर्तमुस्तक, केवटी मोथा।

कुलसन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

कुलसाताना—[रूमी] शाहबलूत।

कुलसीस—[यू०] लह्यतुत्तीस।

कुलसूफीदयून—[यू०] वनस्पति विशेष।

कुलसौरभ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मरुआ, मरुवक वृक्ष। (श० मा०)।

कुलस्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलधी। (इ० मे० मे०)।

कुलहण्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } जलावर्त, पानी का भँवर।

कुलहण्डक—संज्ञा पुं० [,] }

कुलहल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भूकदम्ब। (वं०) कुक्षिमा (Coryza Terebinthina or Celosia coromandelina)। (२० मा०)। (२) मुण्डीरी। महाश्रावणिका। (मद० व० १)।

कुलहला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरक्षमुण्डी। (वै० निघ०)।

कुलह-हन्दीकून—[?] बलबूस। (बु० क०)।

कुलहापड़—संज्ञा पुं० [] हिङ्गु वृक्ष। हींग का वृक्ष। (डी० भ० २, पृ० १४३)।

कुलक्षया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कपूरकचरी। कपूर-शटी। (वै० निघ०)। (२) केवाँच, कपिकच्छु।

कुलंज—दे० 'कुलञ्ज'।

कुला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मैनशिल। मनःशिला।

(वै० निघ०)। (२) शुकशिम्वी, केवाँच, कपिकच्छू।

कुला अजार—[इस्फहानी] अक्रयक।

कुलाफल—[अ०] पमाड़ के बीज। चक्रमर्द बीज।

कुलाग—[फा०] काक। कौआ। वायस।

कुलागन्दकम्—[ता०] }
कुलागन्धकम्—[ते०] } वास्दी गन्धक।

कुलागबीशः—[फा०] गराबुल् बक्रः। (लु० क०)।

कुलाअ—[अ०] मुखपाक। मुँह आना। (अं०)

श्रश (Thrush), मुग्वा (Muguet)।

कुलाउलू उज्ज—[अ०] कानकी जड़का घाव। (अं०)

एग्जेमा ऑफ दी इयर (Eczema of the Ear)।

कुलागसफेद—[फा०] सफेद कौआ। श्वेतकाक। गुराबुल् बक्रः।

कुलाग सियाह—[फा०] काला कौआ। डीम कौआ। द्रोणकाक।

कुलाट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

कुलान-नुकुल—[गु०] गुमा। द्रोणपुष्पी। (डी० भ० ३, पृ० १३३)।

कुलामः—[अ०, बहु व० कुलामाता] नख की कतरन। तराशा हुआ नाखून। तराशा नाखून।

कुलाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षिनीड़। स्थानमात्र। (मे०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर। वपु। काय।

कुलायस्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी। (शं० च०)।

कुलायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिजड़ा। पक्षिशाला। (त्रिका०)।

कुलाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वनकुक्कुट। जंगली मुर्गा।

कुक्कुभ पक्षी। (हारा०, मे०)। (२) घड़ियाल। घण्टिका।

कुम्भीर। (वै० निघ०)। (३) उल्लू। उलूक।

कुलालिका, कुलाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नीलो-

त्पल। निलूफर। (२) काला सुरमा। कुलत्थाञ्जन।

(मे०; रा० नि० व० १३)। (३) चाकसू। वन कुलत्था।

(रा० नि० व० ५)।

कुलासक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुरालभा। (प० मु०)।

कुलाह, कुलाहक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) किंचित् पीतवर्ण-

जानुका घोड़ा। (हे० च०)। (२) किंचित् कृष्णवर्णजानुका

घोड़ा। (ज० द० ३ अ०)। (३) लाल तालमखाना।

रक्त कोकिलाक्ष। गुण—रक्तरोगनाशक तथा आमवातघ्न

है। (राज०)। (४) सरट। कृकलास। गिरगिट।

(राज०)।

कुलाहल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]।

पर्याय—कुलाहलः—सं०। कुकशिमा, कुकशिमे—बं०।

गीदड़ तमाकू—हिं०। कुटकी—म०। कुलाहल, कलार।

गु०। कोलहाल—बम्ब०। सेल्लिया कॉरोमण्डेलियाना

Celsia Coromandeliana Vahl.—ले०।

तिक्तलोणिकादिकुल।

(Family : Scrophularineae)।

उत्पत्तिस्थान और वर्णन—एक उद्भिद जो भारतवर्ष में पंजाब से लंकापर्यन्त प्रायः ग्रीष्मऋतु में खेत और बगीचों में उत्पन्न होता है।

गुणकर्म और प्रयोग—इसके पत्तों का गाढ़ा किया हुआ रस पिलाने से पुराने आँव के दस्त मिटते हैं। यह स्तम्भक है और रक्त के वेग को कम करता है। इसके पंचाङ्ग का रस २॥-२॥ तो० दिन में दो बार पिलाने से फिरंग-रोग नष्ट होता है। इसके पत्र-स्वरस में समभाग राई का तेल मिलाकर लगाने से हस्त-पाद का दाह मिटता है। इसकी थोड़ी सी जड़ चवाने से ज्वरजनित उग्र पिपासा शांत होती है। इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से चिरज आमातिसार और अतिसार आराम होते हैं। यह बहुमूत्र और मधुमेह में परम गुणकारी है। इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से पित्त का उद्दीपन होता है। इसकी जड़ के काढ़े में शहद मिलाकर पिलाने से कास नष्ट होता है। (खजाइन)।

कुलाक्षिका, कुलाक्षुता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुतिया।

कुक्कुरी। शुनि।

कुलाक्षुता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कुलिक्षिका'।

कुलि—संज्ञा स्त्री० [कोल] अर्जुनवृक्ष।

कुलिअ खाइ—[बं०] तालमखाना।

कुलिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कण्टकपाली। जंगली मकोय। (बं०) केलेकडा, काँटागुड़का पली। (भेष०)।

(२) लताशाल। अश्वकर्णशाल। (३) तालमखाना।

कोकिलाक्ष। (४) कुचला, कारस्कर। (५) केकड़ा।

कुलिकच्छ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नन्दीवृक्ष। तून। गया अश्वत्थ (बं०)।

कुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मेढासिंगी। मेषशृङ्गी। (वै० निघ०)।

कुलिकादि वटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक वटीयोग—कुचला, सतिवन और कुट प्रत्येक १ तोला, देवदार १ माशा—सबका चूर्णकर मदार के स्वरस से मर्दन कर सरसों प्रमाण की गोलियाँ बनायें।

गुण तथा उपयोग—तक्षकदंशित व्यक्ति जो मरने के निकट हो और स्वरहत हो तो भी इसे दूध के साथ सेवन करने से जीवन प्राप्त करता है। यह विषमज्वर में भी उपयोगी है। (भेष० र० विष-चि०)।

कुलिखाइ—[बं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

कुलिङ्क, कुलिङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गौरिया। चिड़ा। गौरवा। गौरा। (रत्ना०)।

गृहकुलिङ्गमांसगुण—रक्तपित्तहर और अतिशीतल है। (रा० नि० व० १९)। कुलिङ्गीमांस स्निग्ध, कफ-

शुक्रविवर्धक, रक्तपित्तहर एवं शीतल है। (सुश्रुत)।
 वि० दे० 'चटक'। (२) सविष मूषिक (चूहा) विशेष।
 इसके दंश से कष्ट, शोफ तथा दण्डस्थान पर लकीर
 (राजी) होता है। (सु० कल्प० ६ अ०)। (३) फिङ्गक
 पक्षी। (बं०) फिंगा पाखी। (हिं०) गरगैया। (सं०)
 कुलिङ्गी। मांसगुण—कुलिङ्गी का मांस मधुर, स्निग्ध,
 कफशुक्र-विवर्धक (सु० सू० ४६ अ०) है। यह मधुर, स्निग्ध,
 कफपित्तकारक है। (राज०)। (४) मुगानी।
 कुलिङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुलिङ्गी पक्षी।
 गौरी! चटकी। (२) काकडासिगी। कर्कटशृङ्गी।
 (प० मु०; च० सू० ४ अ०)।
 कुलिङ्गाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पैटारी। पेटिका
 वृक्ष। (२) श्वेत उच्चटा। (बं०) श्वेत उकड़ा। (रत्ना०)।
 कुलिङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गौरी। चटकी।
 स्त्रीचटकपक्षी। (२) काकडासिङ्गी। कर्कटशृङ्गी।
 कुलिञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलञ्जन।
 कुलिञ्जक—संज्ञा पुं० [फ्रा०] केकड़ा।
 कुलिञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलञ्जन।
 कुलिञ्जार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] केकड़ा।
 कुलिञ्जेर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] (१) केकड़ा, कर्कट। (२) एक
 प्रकारका अंगूर।
 कुलिटपौन—[मल०] कछुआ। कच्छप।
 कुलिटमणिस—[मल०] दालचीनी।
 कुलितु—[को०] कुलथी।
 कुलित्य—[म०] कुलथी।
 कुलित्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लाल कुलथी। रक्त
 कुलथ। (वै० निघ०)। (२) कस्तूरिका। (ध० नि०)।
 कुलित्याञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चाकसू। वन
 कुलथ। (२) काला सुरमा। (नि० आ०)।
 कुलित्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चाकसू। वन
 कुलथ। (२) निशोथ, त्रिवृत। (३) मसूरिका। शीतला।
 (वै० निघ०)।
 कुलित्यु—[को०] कुलथी।
 कुलियाखाड़ (-ड़ा)—[बं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।
 कुलियून—[यू०] इसबगोल।
 कुलिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केकड़ा। कर्कट।
 कुलिश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लताशाल। (२० मा०)।
 (२) खण्डकण्ठवृक्ष। हस्तिकर्णपलाश। (रसेन्द्र चि०-२
 अ०)। (३) हडजोड़। "हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य
 तथैव च।" अस्थिसंहार। काण्डवेल। (प० मु०; भैष०
 अम्लपि० चि० ८ अ०; २० मा० लौहमारणे)। (४)
 हीरकप्रभ-मत्स्य विशेष। एक प्रकारकी मछली। (त्रिका०;
 मे०)। (५) एक प्रकार की बड़ी मछली। कुरसा। (६)
 हीरा। वज्र। (रा० नि० व० १३)।

कुलिशक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महुआ। मधुक।
 कुलिशतरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लताशाल। अश्वकर्ण-
 शाल लता। (रा० नि० व० ९)।
 कुलिशद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] थूहर। सेहुड़। स्नुही।
 (वै० निघ०)।
 कुलिशमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हीरक मत्स्य। कुडिश
 मत्स्य। दे० "कुडिश"।
 कुलिजन—संज्ञा पुं० दे० "कुलञ्जन"।
 कुली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चव्य। चाव।
 दे० "कुलि"। (२) कोविदार। कोइलार। (३) वन
 भाँटा। बृहती। बड़ी कटेरी। (ध० नि०)।
 संज्ञा स्त्री० [कना०] कमहार। गंभारी।
 कुलीजन—[म०] (१) कुलञ्जन। (२) पानकी जड़।
 (डी० भ० ३, पृ० ४३७)।
 कुलीजीद्वनियून—[हमी] (१) दारुहरिद्रा। दारुहलदी। (२)
 छोटी ममीरी। मामीरान सगीर।
 कुलीथ—[म०] कुलथी।
 कुलीन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुनख नाम का क्षुद्ररोग।
 (सु० नि० १३ अ०)। दे० "कुनख"। (२) उत्तम
 जाति का घोड़ा। (हे० च०)।
 कुलीनक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वन मूग। वनमुद्ग।
 (बं०) मूगानी। (२) केकड़ा। कर्कट। (प० मु०)।
 कुलीनस—संज्ञा पुं० [सं० वली०] जल। पानी। (हे० च०)।
 कुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० वली०] नेत्रसन्धि। आँखका
 जोड़। (वै० निघ०)।
 कुलीर, कुलीरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१)
 काकडासिगी। कर्कटशृङ्गी। (वै० निघ०)। (२) केकड़ा।
 कर्कट। छोटा केकड़ा। क्षुद्र कर्कट। (बं०) काँकड़ा।
 (रत्ना०-रस-२० बाल-चि०)।
 कुलीरमांस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केकड़ा का मांस। दे०
 "केकड़ा"।
 कुलीरभृङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकडासिगी।
 (ध० नि०)।
 कुलीर विषाणि(णी) का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकडा-
 सिगी। कर्कटशृङ्गी।
 कुलीरशृङ्गी, कुलीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकडासिगी।
 कुलीरात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकडासिगी। कर्कटशृङ्गी।
 कुलीरास्थिभस्म—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केकड़ेकी
 अस्थिकी भस्म। (क्रि० शा० पृ० ५६८, पा० टि०)।
 कुलीश—संज्ञा पुं० [सं० वली०] (१) हीरा। हीरक। वज्र।
 (२) हडजोड़। हडशङ्करी। काण्डवेल।
 कुलीशद्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] थूहड़। वज्र। सेहुड़।
 कुलू (लू)—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] कुल्ली। रामनामी।
 गुलू। दे० "कुल्ली"।

कुलुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जीभकी मेल। जिह्वामल।
(हे० च०)।

कुलुकगुञ्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लूक की आग।
उत्काग्नि। (हारा०)।

कुलुगोलिका—[कना०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

कुलुञ्ज—[अ०] ताँबा। ताम्र।

कुलुप्पलै, कुलुप्पलैविरै, कुलुप्पैविरै—[ता०] कडुवा इन्द्रजव।

कुलुमायून—[यू०] एक प्रकार की बागी और पहाड़ी
वनस्पति।

कुलुस—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की मछली।
कुरसा।

कुलू—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] कुल्ली।

संज्ञा पुं० [देश०] कतीरा (ला) गोंद का पेड़।

कुलूग्रैतून—[यू०] सनोबर का वृक्ष।

कुलूनूस—[?] सुबूत।

कुलूमायून—[यू०] कुलुमायून।

कुलूफ्रा—[यू०] कदू। अलावु।

कुलूबा, कुलूबामीख—[रूमी] आमला।

कुलूबा, कुलूबामीख—[रूमी] आमला।

कुलूबासीर—[रूमी] आमला का दूध।

कुलूमूस—[यू०] आजानुदुब।

वक्तव्य—यूनानी निघंटुओं में इसे यूनानी भाषा का शब्द
और अर्थ ऋक्षकर्ण (आजानुदुब) लिखा है। राजी के
मतसे यह 'बूसीर' है।

वर्णन—एक वनस्पति जिसके पाँच भेद होते हैं। माही-
जहरज इसका एक अन्यतम भेद है। (१) उनमें से प्रथम
श्वेतवर्ण की होती है। इसके पत्ते भी सफेद होते हैं।
यह नर और मादा होता है। उनमें मादा के पत्ते करम-
कल्ले (कलम) के पत्ते की तरह, किन्तु उससे अधिक चौड़े
और सफेद होते हैं। तना एक हाथ वा इससे अधिक ऊँचा
होता है और उसके ऊपर ऊन की तरह एक वस्तु लगी
होती है। फूल पिलाई लिये होता है। बीज क्षुद्र और जड़
उंगली के बराबर मोटी होती है। नर जाति के पत्ते
मादा जाति के पत्ते से अधिक लम्बे और पतले होते हैं।
इसका तना भी मादा के तने से बारीक और कड़ा होता
है। (२) इसके पत्ते पहली की अपेक्षा अधिक काले, चौड़े
और बड़े होते हैं। (३) इसकी शाखायें बहुत लम्बी होती
हैं और यह तनारहित होती है। पत्ते बिही के पत्तों की
तरह होते हैं। इनकी शाखाओं के सिरों पर फूलों की
गोलाकार छत्रिका होती है। फूल पीले सुनहले
रंग के होते हैं। (४) इसके पत्ते अंजीर के पत्ते की
तरह, पर उनसे क्षुद्रतर होते हैं। यह भी तनारहित और
भूमि से लगी हुई होती है। (५) इसके पत्ते ३ या ४
पत्र रोंगटेदार) बड़े और मोटे एवं तीक्ष्णगंधी होते हैं और

उनमें एक प्रकार का चपदार द्रव होता है। तना एक गज
से भी ऊँचा होता है। फूल ललाई लिये सफेद होता है।
बीज बहुत छोटे, खाकी और गोल स्वाद में तिक्त और
चरपरे होते हैं। बहुत संभव है कि यह 'तमाकू' हो
जिसका वर्णन उक्त शब्द में किया गया है। (मख्जन)।
मुहीतमें इसके तीसरे भेद के संबंध में यह भी लिखा है—
कोई-कोई कहते हैं कि इसके पत्र करमकल्ले (कर्नव) के पत्र
की तरह, किन्तु उनसे अधिक लम्बे और किंचित रोमश
होते हैं। बीज क्षुद्र, कालापन लिये लाल और कोषावृत
होते हैं। कहते हैं कि यह भेद कदाचित् तमाकू हो।

प्रकृति—तृतीय कक्षामें उष्ण और रुक्ष। अहितकर—वृक्ष
को। निवारण—कतीरा (और बबूल का गोंद)। प्रतिनिधि—
अनागोरस (वर्ग हब्बुलकलम)। ग्रह—मंगल। प्रधान कर्म—
श्वासकास एवं शोथनाशक है। मात्रा—२ मा० से ७ मा०।

गुणकर्म तथा प्रयोग—संग्राहिणी शक्ति से युक्त (विशेषतः
सुनहले फूलवाली), स्वच्छताप्रद (जाली) और शोथादि
विलीनकर्ता है। इसकी जड़ गुणमें माहीजहरज की प्रति-
निधि है। यह मूत्रकारक है। इसके श्वेत और कृष्ण
भेद की जड़ ४॥ मा० सेवन करने से सभी प्रकार के
साव (सैलानात) बन्द हो जाते हैं। मद्य के साथ सेवन
करने से अतिसार आराम होता है। इसका काढ़ा (चिरज)
शीतल कास, कृच्छ्रश्वास और पेशीगत विदार में लाभ-
कारी है। कफजशोथ और नेत्रशोथ में इसके तृतीय भेद के
पत्तों का काढ़ा लेप करने से उपकार होता है। अंगसाद
(शक्ताकलूस), क्षत और वृश्चिकदंश पर इसे मधु एवं मद्य के
साथ लेप करने से लाभ होता है। अग्निदग्ध पर इसके नर
भेद के ताजे पत्तों का लेप गुणकारी है। (मख्जन)।

मुहीत में यह विशेष है—यह शोषणकर्ता है। इसकी जड़
के काढ़े का गण्डूष दन्तशूलनाशक है। चिरज अतिसार
में सफेद पत्र लाभकारी है। × ×।

कुलूमूस पलासियूस—[रूमी] समुद्रफेन। समुंदरझाग।

कुलूमूस—[यू०] रासन।

कुलूरीका—[यू०] चंदन।

कुलूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भूसीकी आग। तुषानल।

कुलूली—[?] एक पक्षी। काजर।

कुलूसून—[यू०] पुदीना। रोचनी।

कुलूह—[?] वृक्षा। गुर्दा।

कुलेकांटा, कुलेखाडा—[बं०] तालमखाना।

कुलेचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छत्रक भेद। (वै० निघ०)।

(२) दे० 'कुलेचर'।

कुलेखाडा—[बं०] तालमखाना।

कुलोत्कट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलीन घोड़ा। (श० च०)।

कुलोत्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुलधी। कुलथ।
(वै० निघ०)।

कुलोपान

कुलोपान—[वर०] चना। चणक।

कुलंकक—[फा०] खर्बूजा के बीज। तुलम खपुंजः।

कुलंकातज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकड़ासिंगी।

कुलंग्रः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कुलंज—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्ज] कुलंजन। दे० “कुलञ्जन”।

कुलंज—संज्ञा पुं० [अ०] अन्त्रशूल। मरस। यह एक कठिन

एवं तीव्र रोग है जो वृहदन्त्र विशेषकर उसके एक भाग विशेष (रोदए कोलून) में अवरोध उत्पन्न होने या सान्द्र वायु के आवृत होने से उत्पन्न होता है। इस रोग में रोगी का मलोत्सर्ग नहीं होता और वह वेदना की तीव्रता से तड़पता और बेचैन होता है। कभी शूलकी तीव्रता के कारण मर जाता है। (अ०) कॉलिक (Colic)।

वक्तव्य—कुलंज वास्तव में कोलून (= रंज, दुःख) था, जो प्रयोगबाहुल्य से कुलंज रह गया।

कुलंजन—दे० “कुलञ्जन”।

कुलिजन—दे० “कुलञ्जन”।

कुल्क—[फा०] भेड़िया। वृक।

कुल्कास—[अ०] अरुई। घुइयाँ।

कुल्कासी—[सुर०] अरुई। घुइयाँ।

कुल्की—[बम्ब०]

कुल्कुल—[अ०] पमाड। चकवड़। चक्रमर्दं।

कुल्ज—[अ०] ताँबा। ताम्र।

कुलजद, कुलजुद—[] गण्डल।

कुल्टि—[बं०] कुलथी।

कुल्टू—संज्ञा पुं० दे० “कोट्टू” या “कूट्टू”।

कुल्टेकलायि—[को०] कुलथी।

कुलड (द) गजगा—[म०] गुच्छ-करञ्ज। वगाटी। वकेरी।

(Wagatea spicata)।

कुल्ट—[फा०, सं० कुलत्थ का अपभ्रंश] } कुलथी।

कुल्टा—[सुर०]

कुलथी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थिका] दे० “कुलथी”।

कुलथी, जंगली—[बम्ब०] सरफोंका। सरपुंख।

कुल्फ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुल्फ रोग। गुल्ल (बं०)।

(उणा०)।

कुल्फ (फा) तलस—[यू०] ताम्रकोट। संग-रासिख। ताँवे का मैल।

कुल्फा—संज्ञा पुं० [फा० खुर्फी] दे० “कुल्फा”।

कुल्फूनिया—[यू०] सनोवर का गोंद।

कुल्ब—संज्ञा पुं० [अन्दलुस] चकवड़ के बीज। चक्रमर्दबीज। तुलम पँवाड़।

पर्या०—सिजस अफरासियः (= कासिरुल हजर) —

स्पेन। लबलीस फिरसुन (= बजर हजरी) — यू०।

संगिसवूयः—फा०।

वक्तव्य—मुहीत में प्रथम संज्ञा की जगह सिजस-

अफरासियः और द्वितीय की जगह केलीसफिरसुन लिखा है।

वर्णन—हकीम उलवी खाँ लिखते हैं कि मेरे अनुमान से यह पँवाड़ का बीज है। उनके मत से इसे कुलथी समझनेवालों ने प्रमाद किया है। क्योंकि कुलथी हब्बुल्कुल्ट है। इनसे भी बढ़कर प्रमाद उन लोगों ने किया, जिन्होंने इसे मार्शेहिदी समझा। दूसरों ने भी लिखा है कि इसको फ़ारसी में संगिसवूयः कहते हैं। अस्तु, हब्बुल्कुल्ट (कुलथी), पँवाड़ जिसे बंगाल में चकवड़ कहते हैं और संगिसवूयः इन तीनों का वर्णन यूनानी निघंटुओं में उक्त शब्दों के अन्तर्गत पृथक्-पृथक् हुआ है।

सुलेमान बिन हसाम—के कथनानुसार उक्त वनस्पति को कुल्ब कहने का कारण यह है कि कुल्ब एक नाम है चाँदी का। क्योंकि इसके बीज रौप्यवत् कड़े और श्वेत होते हैं; इसलिये इसे उक्त संज्ञा से अभिधानित किया गया। आगे वे लिखते हैं कि यह स्पेन में बहुतायत से होता है। सिवाय उसके श्याम के अन्य प्रदेशों में जहाँ-जहाँ मैं ने निवास किया, इसे अवलोकन नहीं किया। किंतु बकर प्रदेश में खरीफ की फसल में देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। उससे यह ज्ञात हुआ कि यह हब्बुल्कुल्ट वा कुलथी से सर्वथा भिन्न है।

कहते हैं कि यह एक वनस्पति का बीज है जिसके पत्ते जैतून के पत्ते की तरह, किन्तु उनसे अधिक लंबे, चौड़े और कोमल होते हैं। उनमें से सबसे नीचे वा जमीन के पास के पत्र जमीन पर बिछे होते हैं। शाखाएँ खड़ी, पतली, एक हाथ की वा उससे न्यूनाधिक लंबी इज्रखिर की तरह और कड़ी होती हैं। शाखाओं के किनारों पर दो प्रकारों में विभक्त तने की तरह एक वस्तु होती है जिसके ऊपर छोटे-छोटे पत्र होते हैं। उन पत्रों के मध्य में इसके बीज होते हैं। जो सफेद, कड़े और गोल मटर के आकार के, किंतु उससे छोटे होते हैं। यह सख्त और ऊँची जमीन में होता है। अन्ताकी के मत से बीज काला कड़ा और खुरदरा होता है। यह पर्वती भूमि में उस समय होता है, जब सूर्य सिंह राशि में होता है। (मरुजन)।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। अन्ताकी के मत से द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। अहितकर—परम कामावसायकारक और शुक्रशोषणकर्ता है। निवारण—चिलगोज़े की गिरी। मात्रा—१०॥ मा० तक।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह चिरज शीतजन्य कास, श्वास और कुच्छश्वास में लाभकारी है। यह तर हिचकी एवं अतिसार में लाभकारी है। यह मूत्रकारक है। इसे सफेद शराब के साथ सेवन करने से वृक्क एवं बस्तिस्थ अश्मरी का नाश होता है तथा मूत्र और

आतंव का अवरोध मिटता है। इससे (इसके प्रलेप से) अर्श नष्ट होता है। (मखन)।

कुल्माष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) वह अन्न जिसमें दो भाग या दोल हों। द्विदलान्न। (सु० उ० ६२ अ०)। (२) कांजी। काञ्जिक। (रा० नि० व० २३)। (३) कुलथी। कुलथ। (४) गन्धशाली। (प० मु०)। (५) यावक। कुलथी। (मे०)। (६) घुंघुनी। घुघुरी। अर्धस्विन्नधान्य (चना, मटर, गेहूँ आदि)।

गुण—गुरुपाकी, रुक्ष, वातकारक तथा मल तोड़नेवाला (भिन्नवर्चस) है। (भा०)। (७) कीटदण्ट माष। (८) शूकधान्य यव इत्यादि। (वै० निघ०)। (९) बांस। वंश। (रा० नि० व० २३)। (१०) जटामांसी। (११) चाकसू। वन कुलथ। (र० मा०)। (१२) तुलसी भेद। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बोरो धान। (२) बोडा। लोविया। राजमाष। वर्बटी। (३) यवोदन। माउस्सईर। (सु० चि० ६ अ०)। (४) जौका आटा। यवचूर्ण। (५) उडदकी पीठी। पिष्टमाष। (सु० चि० १० अ०)।

कुल्माषाभिभव, कुल्माषाभिषुत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कांजी। काञ्जिक। धान्याम्ल।

कुल्मास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कुल्माष। (विश्व०)।

कुल्यः—संज्ञा पुं० [अ०] वृक्ष। गुर्दा।

कुल्यतान, कुल्यतैन—[अ०, द्वि० व०] दोनों वृक्ष (गुर्दे)।

कुल्यम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हाड़। अस्थि। (२) द्रोणाष्टक मान। (३) मांस। आमिष। (४) पशुंका। कीकस। पांजर। (मे०)।

कुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) द्रोणाष्टक मान (= १२८ सेर)। (२) जीवन्ती। (मे०)। (३) बड़ा भाँटा। स्थूल वार्ताकु। (र० मा०)। (४) पयः प्रणाली। दुग्धवाहिनी। (५) क्यारी। (सु०)।

कुल्लक—[ता०] सरफोंका। सरपुंखा।

कुल्लकठि—[कना०] पीपल का पेड़। अश्वत्थ वृक्ष। (डी० भ० ३, पृ० ३३८)।

कुल्लक कायधिरै—[ता०] सरफोंका के बीज।

कुल्लन—[सिंध] (१) छोटा गोखरू। (मेमो०)। (२) करोनी। (Xanthium strumarium)। (इं० मे० मे०)।

कुल्लपाशी—[ता०] छड़ीला। (अं०) राँक माँस (Rockmoss)।

कुल्लशर्या—[ते०]

कुल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] गण्डूष। कुल्ली। दे० “कुल्ली”।

कुल्लास—[अ०] काकुल्। घुंघराले केश। जुल्फ़। आगे को लटके हुए सिरके बाल।

कुल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार के गोंद का वृक्ष।

गुलू। कुलू। दे० “गुलू”।

कुल्लुक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकारका बांस। दे० “बाँसिनी”।

कुल्लू—[मल०] कुलथी। गुलाली। (मेमो०)।

कुल्वक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जीभ की मैल। जिह्वामल। (वै० निघ०)।

कुल्वमायुन—संज्ञा पुं० [यू०] एक पहाड़ी और बागी पौधा।

पर्या०—कुल्वमायुन—यू०। ज़ुफ़ुल् क़त्—अफ़०।

साबूनुस्सयाव—अ०।

वक्तव्य—मखन में इसकी संज्ञाएँ इस प्रकार दी हैं—शज़रए अबी मालिक—अ०। साबूनुल् काब, साबूनुलबात—(दमिश्क)। परंतु उक्त संज्ञाएँ इसके नहरी भेद की हैं, जिसे ‘अर्त्तनीसा’ कहते हैं। इसके विस्तृत विवेचन के लिये उक्त शब्द में अवलोकन करें। उपर्युक्त कुल्वमायुन संज्ञा इसके द्वितीय (जंगली) या पहाड़ी भेद की है। अस्तु, यहाँ इसी का वर्णन किया गया है। कहते हैं कि कुल्वमायुन संज्ञा का व्यवहार कभी-कभी इसके उभय भेदों के लिये करते हैं।

वर्णन—एक वनस्पति जो पहाड़ी और बागी होती है। तना चौपहल बाकला के तने की तरह होता है। पत्ते बारतंग के पत्ते की तरह होते हैं। तने के ऊपर गिलाफ़ होते हैं। किसी-किसी के किनारे किसी की ओर झुके होते हैं। इसका फूल उस सोसन के फूल की तरह होता है जिसकी जड़ को ईरसा कहते हैं और आकृति में यह कनखजुरे की तरह होता है। इनमें पहाड़ी सर्वोत्तम होता है। जड़ की तरह इसके पौधे से भी रस निचोड़ कर काम में लेते हैं। (मखन)।

प्रकृति—शीतल और रुक्ष।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह नकसीर का खून बंद करता है तथा वक्षोजात रक्तनिष्ठीवन और आमाशय एवं गर्भाशय द्वारा रक्तस्राव होने को रोकता है। सद्यः क्षतों पर इसके अधिकुटे पत्तों का (कोमल पत्तों को पीसकर) लेप करने से उनका संधान और व्रणपूरण होता है। परीक्षित है। (मखन)।

कुव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जलज पुष्पसमूह। कमल। (हे० च०)। (२) फूल।

संज्ञा पुं० [म०] कचूर। (इं० मे० मे०)।

कुव—[तु०] एक प्रकार की सुंदर मुरगाबीकी तरह का पक्षी है।

कुवकालक, कुवकालुका—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] कुलफा। घोली शाक। वृहल्लोणी। (रा० नि० व० ७)।

कुवङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सीषक। सीसा। (रा० नि० व० १३)।

कुवच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्यटक। पित्तपापडा।

कुवञ्जक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैक्रान्त मणि। (रा० नि० व० १३)।

कुवत—[अ०] (१) दे० “कुवत” । (२) अंडे का छिलका (,) ।

कुवअ—[अ०] अंडे का छिलका ।

कुवर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कषाय रस । तुवर । (अ० टी०) । (२) सुपारी ।

कुवल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वेर । बदरी । (२० मा०) । संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमल । पद्म । (२) उत्पल । (मे०) । (३) बेरका फल । बदरफल । कूल । (मद० व० ६) । (४) कलमी बेर । बृहद् बदर । (च० द० ४ भ०) । (५) मुक्ताफल । (प० मु०) । (६) सौगन्धिक । (ध० नि) ।

कुवलकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सलई । शल्लकी वृक्ष । सजीवन । (वै० निघ०) ।

कुवलकुण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोलिफलकाल ।

कुवल्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [स्त्री० कुवल्यिनी] (१) नील कोइ । (वं०) नील शुन्दि । (हिं०) कौजी । कोका । (रा० नि० व० १०; श० २०) । (२) श्वेत कमल । श्वेत पद्म । किंचित् नीलश्वेतवर्णका कुमुद । (३) नील कमल । नील पद्म । (वै० निघ०) । (४) श्वेत कुमुद । (भा० पू० १ भ०) ।

कुवल्यिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्पलिनी । कुमुदिनी । कुमुद । शुन्दि । (रा० नि० व० १०) ।

कुवला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुक्ता-विशेष । एक प्रकार का मोती ।

कुवली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बेरका वृक्ष । कोलिवृक्ष । (हे० च०) ।

संज्ञा स्त्री० [मल०] पेठा । कुष्माण्ड ।

कुवले—संज्ञा पुं० [को०] पेठा । कुष्माण्ड ।

कुवाँट—संज्ञा पुं० [सं० कु + पाटल] जंगली गुलाब ।

कुवा—[अ०, कुवत का बहुव०] दे० “कुवत” ।

कुवाऽ—[अ०] वमन (वामक) औषधि ।

कुवाअ—[अ०] खरहा । खरगोश । शशक ।

कुवा अन्तर—[श्यामी व मिश्री] विलायती मेंहदी । आस ।

कुवा-अरवआ—[अ०] (१) भूतचतुष्टय । चतुर्भूत । (२)

चार शक्तियाँ—कुवत जाजिवः (शोषणशक्ति), (२)

कुवत मासिकः (अवरोधक शक्ति, रोकने की शक्ति),

(३) कुवत-हाजिमः (पाचन शक्ति) और (४) कुवत

दाक्रिअः (निकालनेवाली शक्ति, उत्सर्ग कारक शक्ति) ।

कुवाअलसून, कुवाअलियून—[यू०] लिसानुलकत्व ।

कुवा-अव्वल—[अ०] त्रिशक्तियाँ, शक्तित्रय अर्थात् कुवत हैवानियः (जीवनीय-शक्ति), (२) कुवत-नफसानियः (गति-संचालक शक्ति) और (३) कुवत-त्वइय्यः (प्राकृतिक-शक्ति) । और इनके भेद हैं—कूव सवानी अर्थात् कुवत-नफसानिय्यः अर्थात् कुवत वासिरः, कुवत-सामः, कुवत

जाइकः और कुवत लामिसः । इनका वर्णन यथास्थान किया गया है । उक्त शक्तियाँ कुवत सवानी (कूवा अव्वल) के अन्तर्गत हैं ।

कुवा-सवानी—[अ०] दे० ‘कूवा अव्वल’ ।

कुवाए-जरुरिय्य—[अ०] आवश्यक शक्तियाँ । वह शक्तियाँ जिनके अभाव में जीवनरक्षा या जातिरक्षा इत्यादि का होना असम्भव है । विवरण के लिए उत्तमाङ्ग अर्थात् आज्ञाएरईसः देखो ।

कुवाए-मखदूमः—[अ०] इस शब्द का उपयोग चार शक्तियों अर्थात् (१) कुवतगाजियः, (२) कुवत-नामियः, (३) कुवत-मुवाल्लदह् और (४) कुवत मुसव्विरह् के लिए होता है ।

कुवाडियो—[गु०] पमाड़ । चँकवड़ । चक्रमर्द ।

कुवादीना, कूलदीना—[] समुद्रफेन । समुन्दर-झाग ।

कुवामस—[यू०] कव्ती वाकला ।

कुवामीस—[यू०] फ़िरोजह् तुल्य एक प्रकार का पाषाण है जो किवरस, कश्मीर तथा तिब्बत में होता है ।

कुवामूस—[यू०] लाजवर्द । लाजवर्त ।

कुवायाविस—[यू०] वाकला । कुलमाष ।

कुवार—[गु०] ग्वारपाठा । घृतकुमारी ।

कुवारकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गोंद पलाश । चुन्नी गोंद ।

कुवार—[?] गन्दना । (लु० क०) ।

कुवार चीदानः—[हिं०] पमाड़ बीज । हव्वकुलकुल ।

कुवारतुल् बिन्तीख—[अ०] फूट । बड़ी ककड़ी ।

कुवार पट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं०] ग्वारपाठा । घृतकुमारी ।

कुवारसामा—[सुर०] उद बलसाँ ।

कुवारी रावानी—[अ०] शीशा ।

कुवाल—[?] सूअर ।

कुवालिफ—[?] वादावर्द ।

कुवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्मन्तक वृक्षन युग्म पत्रक । परसिद्ध । एक बृहद् वृक्ष है । इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी दोहरी होती हैं । स्वाद अम्ल होता है । (सं०) अम्लपत्रक । (रा० नि० व०) ।

कुवास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुर्गन्ध । (के०) ।

कुवाहुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट । उष्ट्र । (श०) ।

कुवाँट—संज्ञा पुं० [सं० कुपाटल] जंगली गुलाब ।

कुवि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू । उलक पक्षी । (ध० नि) ।

कुविड़—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विड़लवण । (रा० नि० व० २३) ।

कुवृत्तिकृत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूतिकरंज । घृतकरंज । डिठोहरी । (श० च०) ।

कुवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मत्स्यधानिका । साबुई (वं०) ।

कुवेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तून । नन्दी वृक्ष । तुन्द । (मे०) ।

कुवेरक—संज्ञा पुं० [,] तून

कुवेराक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लताकरंज ।
(२) पाटला । पाटल । (३) पेटिका वृक्ष । (रा०
नि० व०) ।

कुवेल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल । पद्म । कुवलय, ।

कुवेहितु—[कना०] तीखुर । आराष्ट ।

कुवैद्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्सित वैद्य ।

कुव्व—[अ०] (१) एक प्रकार का मान जो ३ रतल अर्थात्
१०१ तोला ३ माशा के बराबर होता है । (२) पिलास ।
आबखोरः ।

कुव्वः, कुव्वत—संज्ञा स्त्री० [अ०] [बहुव० कुवा] वीर्य ।
शक्ति । बल । (अ०) पाँवर, फोर्स, एनर्जी ।

कुव्वत-आखिजह—[अ०] हार्दिक बल । कुव्वतदिल । हृदय
सम्बन्धी बल । हृदय शक्ति मानसिक शक्ति । मानसिक
बल । (अ०) स्ट्रेंथ ऑफ माइण्ड (Strength of mind) ।

कुव्वत-खियाल—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्मरणशक्ति । (अ०)
पावर ऑफ फैसी (Power of Fancy) ।

कुव्वत-गजबियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] चेष्टावह शक्ति का
एक प्रकार है जो आघात पहुँचने में रुकावट के लिए गति
का कारण होती है अर्थात् किसी दूषित व विरुद्ध
वस्तु से रक्षा करने के लिए शरीरांग में गति
उत्पन्न करती है । (अ०) इरस्किल पाँवर (Irascible
Power) ।

कुव्वत-गाजिय्य—संज्ञा स्त्री० [अ०] } शरीर में आहार
कुव्वत मुगैरः सानिय्यः—, [,] }
पहुँचानेवाली शक्ति । वह शक्ति जो आहारपाक करने
के पश्चात् आहार को शरीरपोषण के योग्य बनाती है ।
(अ०) न्यूट्रिएण्ट पावर (Nutrient Power) ।

कुव्वत-जाइकः—[अ०] आस्वादन-शक्ति । रसग्रहणात्मक
शक्ति । वह शक्ति जो आहाररस को आस्वादन
करती है । यह शक्ति जिह्वागत तन्तुओं में होता है ।
(अ०) टेस्टिंग पाँवर (Testing Power) ।

कुव्वत-जाजिबः—[अ०] शोषण-शक्ति । जड़व करनेवाली
कुव्वत । शरीर की वह शक्ति जो सरादि द्रव पदार्थ का
शोषण करती है । (अ०) पावर ऑफ अट्रैक्शन (Power
of Attraction), विस एफ्रण्टी (Vis a fronte), विस
एट्रेक्शन (Vis Attraction) ।

कुव्वत जौक—संज्ञा स्त्री० [अ०] आस्वादनशक्ति । चखने की
कुव्वत । यह शक्ति जिह्वागत रसवाहिनियों में होती है ।
कुव्वत जाइकः ।

कुव्वत जातिय्यः—संज्ञा पुं० [अ०] प्राकृतिक शक्ति ।
स्वभावज शक्ति । जाती कुव्वत । (अ०) नेचरल पाँवर
(Natural power) ।

कुव्वत तबइय्यः—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्राकृतिक शक्ति, प्रकृतिप्रदत्त
शक्ति, तबई कुव्वत, यकृतबल, जिगर की कुव्वत, पोषण-
शक्ति, परवरिश की कुव्वत । (अ०) विसनेचुरी (Vis Na-
turae), फिजिकल फोर्स (Physical force) । यह यकृत
की वह शक्ति है जो सिराओं द्वारा शरीरगत समस्त अंग-
प्रत्यङ्ग में प्राप्त होती है और शरीर का पोषण होता
रहता है तथा शरीर का संगठन ठीक रहता है । इस
शक्ति का केन्द्र यकृत है । यहीं से समस्त शरीर में शरीर-
पोषक द्रवों का प्रसार सिराओं द्वारा होता रहता है ।
इसके मुख्य दो कार्य हैं । प्रथम शरीर में आहाररस का
प्रसार करना और दूसरा सन्तानोत्पत्तिमें सहायता प्रदान
करना । यकृतगत तन्तुओं का सम्बन्ध अण्डकोष से
है । प्राकृत शक्ति के ४ प्रकार हैं—(१) कुव्वत गाजिय्यः-
(आहारसम्बन्धी बल), (२) कुव्वत नामिय्यः (वर्धन
शक्ति), (३) कुव्वत मुवल्लिदः (शुक्रोत्पादक-शक्ति), (४)
कुव्वत मुसव्विरह (गर्भ-उत्पादक शक्ति) ।

दे० 'कुव्वत मुहूरिजः' ।

कुव्वत दाफआ—संज्ञा स्त्री० [अ०] विसर्जनात्मक । शक्ति ।
उत्सर्जनी शक्ति । दाफ करनेवाली कुव्वत । वह शक्ति
जो शरीरगत अयोग्यमल (फुजलात) द्रव्यों को उत्सर्गित
करती है ।

कुव्वत-फाइलः—संज्ञा स्त्री० [अ०], क्रियात्मक शक्ति । फेल
करनेवाली कुव्वत । गति उत्पादक शक्ति । हरकत देनेवाली
कुव्वत । यह गतिदात्रिशक्ति का एक भेद है । इसके द्वारा
शरीरगत पेशियों में गति उत्पन्न होती है अर्थात् इसी शक्ति
द्वारा शरीरगत पेशियों में प्रसार वा आकुञ्चन उत्पन्न
होता है । (अ०) इफेक्टिव पाँवर (Effective Power) ।
(२) कभी-कभी इसका प्रयोग औष्ण्य एवं शैत्य अर्थात्
गर्मी व सर्दी के लिए होता है ।

कुव्वत-बाइसः—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कुव्वत शौकिय्यः,'
तथा 'कुव्वत मुहूरिजः' ।

कुव्वत-मुगय्यिरः—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कुव्वत
मुवल्लिदः' ।

कुव्वत-मुतखय्यिलः—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्मरण-शक्ति,
सोचनेवाली कुव्वत । दे० 'कुव्वत मुतसरिफः' ।

कुव्वत-मुतफिक्करह—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्मरण करनेवाली
शक्ति । सोचनेवाली कुव्वत । दे० 'कुव्वत मुतसरिफः' ।

कुव्वत-मासिकः—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्थिरात्मक शक्ति,
स्तम्भक शक्ति । स्थिर करनेवाली शक्ति । ठहरनेवाली
कुव्वत । रोकनेवाली कुव्वत । वह शक्ति जो आहार
इत्यादि को किसी प्रमुख काल तक रोक रखती है । इसी
शक्ति द्वारा आहार आमाशय तथा अन्न में कतिपय घंटों
तक रखा रहता है । (अ०) रिटेंटिव पावर (Retentive
power) ।

कुव्वत-मुत्सरिफः—संज्ञा स्त्री० [अ०]—स्मरण करनेवाली शक्ति, सोचनेवाली शक्ति, तर्कात्मक शक्ति, निर्णयात्मक शक्ति, तसरुफ करनेवाली कुव्वत । (अ०) पावर ऑफ इमेजिनेशन (Power of Imagination), वोलिशन (Volition) । यह वह शक्ति है जिसके द्वारा प्राणियों के तर्क इत्यादि निर्णयात्मक ज्ञान की उत्पत्ति होती है । योग्यायोग्य सम्बन्धी समस्त विचारधाराएँ इसी के द्वारा उत्पन्न होती हैं । इसका स्थान मस्तिष्कगत केन्द्र है; किन्तु इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मस्तिष्क से है ।

कुव्वत-मुदब्बिरह—संज्ञा स्त्री० [अ०] व्यवस्थात्मक शक्ति । तवीयत । तदवीर करनेवाली कुव्वत । 'प्राकृतिक शक्ति' । दे० 'तवीअत' 'प्राकृतिक ज्ञान', । (अ०) नेचरल पावर (Natural Power) विस-कंसर्वेट्रिक्स (Vis-conservatrix) ।

कुव्वत-मुदरिफः—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्मरणात्मक शक्ति, अनुभवात्मक शक्ति, बोधात्मक शक्ति, इहसास करनेवाली कुव्वत, इदराक करनेवाली कुव्वत, मालूम करनेवाली कुव्वत, परीक्षणात्मक शक्ति, दर्याफ्त करनेवाली कुव्वत । (अ०) अण्डरस्टैंडिङ्ग (Understanding), एप्रिहेण्डिङ्ग (Apprehending), कम्प्रीहेण्डिङ्ग (Comprehending) ।

कुव्वत-मुदरिफः बातिनः—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'हवासखमसः बातिनः' तथा 'कुव्वतमुदरिफः' ।

कुव्वत मुदरिफः जाहिरः—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कुव्वत-मुदरिफः' या 'हवासखमसः जाहिरः' ।

कुव्वत-सुफबिकरः—संज्ञा स्त्री० [अ०] सोचनेवाली कुव्वत । दे० "कुव्वत-मुत्सरिफः" ।

कुव्वत-मुलत्तिफः—संज्ञा स्त्री० [अ०] तरलताकारक शक्ति, पतला करनेवाली ताकत ।

कुव्वत-मुवल्लिदः—संज्ञा स्त्री० [अ०] उद्भवकारिणी शक्ति, कुव्वत मुगैरः अव्वली, पैदा करनेवाली कुव्वत । (अ०) विस फॉर्मेटिव (Vis-Formative) । वह शक्ति जो आहार को सुपककर शरीर के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त करती है । वह शक्ति जो शुरु की उत्पत्ति करती और उसके द्वारा सन्तानोत्पत्ति का कारण होती है ।

कुव्वत-मुहरिजः—[अ०] कुव्वत दाफा, दफा करनेवाली कुव्वत, उत्सर्गित करनेवाली शक्ति, वह शक्ति जो मलों (फुजलात) को शरीर से उत्सर्गित करती है । (अ०) विस अ टेग्रो (Vis a Tegro), इम्पेलिंग पावर (Impelling Power) ।

कुव्वत-मुहरिफः—संज्ञा स्त्री० [अ०] गतिदात्रि शक्ति । गत्युत्पादनी शक्ति । हरकत देनेवाली कुव्वत । (अ०) मूविंग पावर (Moving Power), विस मोटोरिआ (Vis motoria) । वह शक्ति जो शरीररक्षा के लिए शरीर में गति उत्पन्न करती है ।

कुव्वत-मुसब्बिरह—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वरूपधारक शक्ति । सूरत बनानेवाली कुव्वत । वह शक्ति जिसके द्वारा गर्भगत शिशु का स्वरूपनिर्माण होता है ।

कुव्वत-नफसानिदयः—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्राणोत्पादनी शक्ति । जीवोत्पादनी शक्ति । प्राणदा शक्ति । जीव संचारक शक्ति । नफसानी कुव्वत । (अ०) वाइटल फोर्स (Vital force) । वह शक्ति जिसके द्वारा शरीर में संज्ञा तथा गति उद्भूत होती है । इसका मूलस्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्कगत ज्ञान तन्तुओं द्वारा इस शक्ति का उदय होता है । पुनः समस्त शरीर में संज्ञावाहक तन्तुएँ व्याप्त होकर इस शक्ति को संचालित करते रहते हैं । इस शक्ति के दो प्रकार हैं—एक गत्युत्पादक और दूसरी अनुभवात्मक शक्ति । शरीर में गत्युत्पादक शक्ति द्वारा गति का संचालन होता है और अनुभवात्मक द्वारा वस्तुओं का अनुभव प्राप्त होता है । सम्पूर्ण शक्तियों का आधार प्राणदा शक्ति है ।

कुव्वत-नामियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] वर्धनात्मक शक्ति, कुव्वत नमू, कुव्वत वालीदगी, बढ़ानेवाली कुव्वत, शरीर की वृद्धि करनेवाली शक्ति, अज्जाड को बढ़ानेवाली कुव्वत । (अ०) पाँवर ऑफ ग्रोथ (Power of Growth) । इसी शक्ति के द्वारा गर्भगत पिण्ड तथा सम्पूर्ण शरीर के अंगप्रत्यंग की वृद्धि होती है ।

कुव्वत-नुत्किदयः—संज्ञा स्त्री० [अ०] वक्तृत्व शक्ति । वाचाशक्ति, बौद्धिक-शक्ति, कुव्वत-नुत्क, कुव्वत-मोयाई, कुव्वत-तकल्लुम, कुव्वत-अक्ल, कुव्वत-इदराक । (अ०) पावर ऑफ स्पीच (Power of Speech), इन्टेलेक्चुअल-पावर (Intellectual-Power) ।

कुव्वत-लामिसः—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्पर्श-शक्ति, छूने की शक्ति, छूने की कुव्वत, कुव्वत लमिस । (अ०) टचिंग पावर (Touching Power) । इस शक्ति का स्थान समस्त चर्मगत सूक्ष्म संज्ञावाहक तन्तु हैं । जब इन तन्तुओं में कुष्ठदोष व्याप्त हो जाते हैं तब स्वाप, त्वग्शून्यता इत्यादि उत्पन्न होती है ।

कुव्वत-वहम—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिन्तात्मक शक्ति ।

कुव्वत-वाहिमः—संज्ञा स्त्री० [अ०] दुष्चिन्तनात्मक शक्ति । वह शक्ति जो बाह्य ज्ञान द्वारा किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँचकर विभिन्न प्रकार की कल्पना में व्यस्त हो; यथा-प्रेम और शत्रुता का ठीक ज्ञान न प्राप्त होना । स्पष्टीकरण—कुव्वत वाहिमः द्वारा उन अर्थों का ज्ञान होता है, जिनका सम्बन्ध स्वरूप के साथ होता है और स्वरूप वा सूरतें उन वस्तुओं को कहते हैं जो बाह्य ज्ञान (हवास खमसः जाहिरी अर्थात् दृष्टिगोचर होना, श्रवण करना, आघ्राण करना, छींकना, स्पर्श करना) से ज्ञात हो; किन्तु जब तक कोई स्वरूप बाह्य ज्ञान से मस्तिष्क तक

न पहुँचे, उस समय तक 'कुव्वत-वाहिमः' द्वारा निश्चित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। और जब तक कोई स्वरूप मस्तिष्क तक न पहुँचे, सम्भव नहीं कि मित्रता वा शत्रुता का ज्ञान प्राप्त हो। इस शक्ति का स्थान मस्तिष्क का मध्य भाग है और इस का कोष स्मरणकेन्द्र (Memory) में है। जिस प्रकार साधारण ज्ञान (Common Sense) स्वरूप का ज्ञान प्राप्तकर इन्हें ज्ञानकोष में प्रेषित करता है, इसी प्रकार कुव्वत-वाहिमः (चिन्तात्मक-शक्ति) इनके स्वरूप का अर्थ जानकर ज्ञानकोष में सुरक्षित कर देता है और पुनः आवश्यक काल में उसका अर्थ हृदयंगम हो जाता है। (अं०) इमेजिनेशन (Imagination), पाँवर ऑफ़ इमेजिनेशन (Power of Imagination.)।

कुव्वत-शाफ़ियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] आरोग्यदायनी शक्ति। वह शक्ति जो रोगावस्था में आरोग्य प्रदान करती है, (अं०) विस नेचरी (Vis naturae), विस मेडिकेट्रिक्स (Vis medicatrix.)।

कुव्वत-शास्मयः—संज्ञा स्त्री० [अ०] आघ्राण शक्ति। गंध कुव्वत-शस्—, , , [अ०] ग्राहिणी शक्ति।

कुव्वत बूयाई। सूँघने की कुव्वत।

यह शक्ति उन दो नाड़ियों (आसावे शम्) में होती है, जिसका स्वरूप चूचकशिरतुल्य होता है और नासा-छतपर मस्तिष्क के निम्नभाग में स्थिर है (अं०) स्मेलिंग (Smelling)।

स्पष्टीकरण—जिस प्रकार वायु द्वारा हम श्रवण करते हैं, उसी प्रकार वायु द्वारा हम आघ्राण भी करते हैं। कारण यह है कि वायु में सुगन्ध-दुर्गन्ध के परमाणु व्याप्त होकर वायु को गन्धपूर्ण बना देते हैं। जब हम आघ्राण करते हैं तब वायु शनैः शनैः नासारन्ध्र में प्रवेश करती है और सुगन्ध-दुर्गन्ध के परमाणु जो वायु में मिश्रित रहते हैं, आघ्राण शक्ति के द्वारा गन्धवाहिनियों द्वारा गन्धग्राही केन्द्र तक पहुँचते हैं और सुगन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान मस्तिष्क को प्रतीत होता है। गन्धवाहिनियों की वह शक्ति जिसके द्वारा गन्ध प्राप्त होती है उसको हम कुव्वतशम् व कुव्वत शास्मयः (आघ्राणशक्ति) कहते हैं।

कुव्वत-शौक्रिया—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० "कुव्वत बाइसः"।

कुव्वत-साभेअः—संज्ञा स्त्री० [अ०] श्रवण-शक्ति, सुनने

कुव्वत-समअ—संज्ञा स्त्री० [अ०] की शक्ति, कुव्वत शुन-वाई, सुनने की कुव्वत। (अं०) हियरिंगपावर (Hearing Power)। यह शक्ति श्रवण (कर्ण) इन्द्रिय में होती है। शब्दवाहिनियों द्वारा जो कान के भीतर होती हैं। उनसे शब्द मस्तिष्कगत श्रवणकेन्द्र तक पहुँचते हैं।

स्पष्टीकरण—जिस प्रकार प्रकाश नेत्रपटल (रिटा-

इना) पर गति उत्पन्नकर नेत्र की दृष्टि उत्पन्न होती है वा दिखाई देता है, उसी प्रकार वायुतरंग (लहर) द्वारा कर्णगत शब्दवाहिनी पर तरंग उत्पन्न होकर श्रवण शक्ति उत्पन्न होती है। वस शब्दवाहिनी जिस शक्ति के द्वारा श्रवण का ज्ञान प्राप्त करती है, उसी को 'कुव्वत समअ या कुव्वत साभेअ' कहते हैं।

कुव्वत-शहवानियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] यह कुव्वत शौक्रियः वा कुव्वत मुहूर्तिकः का एक प्रकार है। यह किसी प्रमुख विषयग्रहण के लिये अंग में गति उत्पन्न होती है। विवर्ण के लिए दे० 'कुव्वतबाइसः'। (अं०) कान्-क्युपिसेण्ट पावर (Concupiscent Power)।

कुव्वत-हाजिमः—संज्ञा स्त्री० [अ०] आहारगत्युत्पादक शक्ति। पाचन-शक्ति। हजम करनेवाली कुव्वत।

भोजन को पचानेवाली शक्ति। गिजा को हजम करनेवाली कुव्वत। (अं०) डाइजेस्टिव पाँवर (Digestive Power.)

कुव्वत-हाफ़िजः—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्मरणशक्ति, याद

कुव्वत-हिफ़्ज—संज्ञा स्त्री० [अ०] रखनेवाली कुव्वत।

यह वह शक्ति है जो 'कुव्वत वाहिमः' के द्वारा प्राप्त होकर अर्थ को सुरक्षित रखती है अर्थात् वह शक्ति है जहाँ ग्रहण की हुई बातें सुरक्षित रहती हैं और आवश्यक कालपर उपस्थित हो जाती हैं। इस शक्ति के दोष से विभ्रम अर्थात् विस्मृतिरोग उत्पन्न होता है।

(अं०) मेमरी (Memory)।

कुव्वत-हिस्स-मुश्तरिक—संज्ञा स्त्री० [अ०] पर्याय—हवास खमूसः बांतिनः। साधारण शक्ति। कॉमन सेन्स (Common sense)। मस्तिष्कगत शक्ति। यह मस्तिष्क की प्रथम आन्तरिक शक्ति है, जिसमें हवासखमूसः जाहिरः अर्थात् बासिरह, सामिअः, शाम्मः, जाइकः, लामिसः की समस्त स्मृतियाँ (महसूसात) प्राप्त होती हैं अर्थात् यह सम्पूर्ण-विषय कर्मेन्द्रियों द्वारा मस्तिष्कगत होती हैं। नेत्रों से दृष्ट स्वरूप, कर्ण से सुने हुए शब्द, नासिका द्वारा आघ्राणकृत गन्ध, जिह्वा द्वारा आस्वादित रस और समस्त शरीरगतत्वचा द्वारा स्पर्शित पदार्थ का शीतोष्ण इत्यादि सब को यह शक्ति ग्रहण करती है। इसका मुख्य स्थान मस्तिष्क के अगले भाग में मस्तिष्कपटल में है।

कुव्वत-हयीवियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] जीवनीशक्ति।

कुव्वत-हैवानियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] कुव्वत-हयात। कुव्वत जिंदगी। (अं०) वाइटल-फ़ोर्स (Vital force), वाइटल-पाँवर (Vital Power), विस-वाइटी (Vis-Vitae), विस-वाइटलिस (Vis-Vitalis), बाइओटिक इनर्जी (Biotic Energy)।

यह वह शक्ति है जिसके ऊपर शरीरगत अंग-प्रत्यंग का प्राण निर्भर होता है। यह शक्ति हृदय में व्याप्त रहती

कुवतान फाएलतान

है। इसका मूलस्थान हृदय है। हृदयगत शिराओं द्वारा इसका संचार सम्पूर्ण शरीर में होता है और सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग इसके द्वारा सजीव बने रहते हैं। इसी शक्ति का मिश्रण जीवात्मा (रूह हैवानी) है और इसका यंत्र प्राकृतिक ऊष्मा अर्थात् हरात गरीजी है।

कुवतान फाएलतान—[अ०] दो कार्य करनेवाली शक्तियाँ। उष्णता एवं शैत्य।

कुवह—[अ०] [बहुव० “कुवा”]। झरोखा। प्रकाश द्वार। रोशनदान।

कुव्वारह—[अ०] मधुमक्षिकाग्रह। शहद का छत्ता। शहद का साफ किया गया छत्ता।

कुश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कासा (कांस) जाति का प्रसिद्ध घास है। इसकी पत्तियाँ नुकीली चुभनेवाली होती हैं। यज्ञादि में इसके द्वारा संकल्पादि क्रियाएँ कराई जाती हैं। इसके बिना यज्ञ की सिद्धि नहीं होती। ब्राह्मणों का यह सर्वप्रधान अस्त्र है। ह्रस्व तथा दीर्घ भेद से कुशा के दो प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सुगन्धयुक्त कुशा भी होता है जिसको भाषा में हरिद्वारी कुशा कहते हैं। इसका स्वाद मधुर होता है।

पर्याय—(सं०) दर्भ, कुह, पवित्र, याज्ञिक, ह्रस्व-गर्भ, वहि, कुतुप; (हिं०) कुश, कुशा, कुसा; (म०, ब०, हिं०) कुशा; (पं०) चिनक; (बम्ब०); दर्भ; (म०), वारीकदर्भ, मोटे दर्भ; (हिं०) दाभ, डाभ; (गु०) दाभड़ो, कुश; (कना०) विलीय वटुशशी; (ते०) कुश, दर्भालु; (ता०) दर्भम्; (अं०) सैक्रेड कुशा-ग्रास (Sacred kusa grass.); (ले०) + पोआ साइनोसुराइडिज (Poa cynosurides.), ऐण्ड्रो-पोगन-नार्डाइडिज (Andropogon-Nardoides.)।

उद्भव-स्थान—समस्त भारतवर्ष के जंगलों तथा अन्य कंकरीली भूमि में स्वयं उत्पन्न होता है।

गुण—कुशा तथा दाभ त्रिदोषनाशक, मधुर कषाय, शीतल तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर और रुधिरविकारनाशक है। (भा० पू० गुह्य्यादि वर्ग)। दोनों प्रकार के कुशा में सामान्यगुण होते हुए भी सित (श्वेत) दर्भ में अधिक गुण हैं। श्वेत के अभाव में अन्य कुशा ग्रहण किया जाता है। (रा० नि० व० ८; सु० सू० ३८ अ०)। कुशासन का ग्रहण रजस्वला स्त्री के लिए तथा यज्ञादि-कर्म में भी ग्राह्य है। (वा०; च०, द० प्रमेह चि०)। मृदु दर्भ। (ध० नि०)। जड़। दे० ‘कुशमूल’।

कुशअर—[?] यमन-ककड़ी।

कुशक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुग्गुलु। गूगल।

कुश कण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुशा की गंठियाँ।

कुशज—[अ०] छाँछ। तक्र।

कुश-बुबला—[त०] दर्भ। कुश। कुसा।

कुशद्वय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्थूल तथा सूक्ष्म दर्भद्वय। छोटा और बड़ा कुसा। (वा० सू० १५ अ० वीरतरादि)। ‘वृक्षादनी नल कुश द्वय’।

कुशनामा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट, उष्ट्र। (हिं० च०)।

कुशप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिलास, लोटा पानपात्रादि। (उणा०)।

कुशपत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } एक प्रकार का शस्त्र
कुशपत्रक— „ „ „ „ }

जिसका आकार दर्भपत्रतुल्य होता है। इसका फल तथा लम्बाई दो अंगुल होती है। इसकी समानता अंग्रेजी बिस्चुरी (Bistoury) या पेजेटका नाइफ (Paget's knife) के साथ होती है। इसका उपयोग व्रणविस्त्रावण में होता है। (सु० सू० ८ अ०)।

कुशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गठिवन, ग्रन्थिपर्ण, गँठि-याला। (प० मु०)।

कुशफ—[फा०] जुप्त। जुप्त-बलूत।

कुशम—[अ०] मांस। पक्वमांस। पकाया गया गोश्त।

कुशमुत्तली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुशकण्डिका। कुशा की गंठियाँ। कुशरचनाविशेष। (वा० कल्प० १ अ० अरुण)।

कुश-मूढ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुशनिर्मितपट। कुशा की बनी हुई रस्सी। (सु० सू० ४३ अ०) ‘कुशमूढावबद्ध-मृदुगोमय’।

कुशमूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसा की जड़। दर्भ-मूल। गुण—शीतल, मधुर, पित्तघ्न, रक्तज्वर, तृष्णा, श्वास और कामलानाशक है। (रा० नि० व० ८)।

कुशम्बुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धनियाँ।

कुशरीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महाशाल वृक्ष। शाल का वृहद् भेद, साखू। (वै० निघ०)।

वि० [सं० त्रि०] कुत्तित-शरीर।

कुशल—वि [सं० त्रि०] निपुण। दक्ष। चतुर। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुत्ता। कुक्कुर। (हिं० च०)। (२) महाजलवेतस। (३) मत्स्य भेद। (वै० निघ०)। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पूर्ण। पर्याप्त। काफी। (२) पण्डित। विद्वान। (ध० नि०)।

कुशल नामंतन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०; बहु० व०] पण्डित के नाम। (ध० नि०)। चतुर वैद्य, सर्वगुणसम्पन्न वैद्य।

कुशल-भिवक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सर्वगुणसम्पन्न वैद्य। वैद्याचार्य। अष्टाङ्गशरीर का ज्ञाता चिकित्सक।

कुशली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अश्मन्तक वृक्ष। परसिद्ध। आपट (आपुटा) नामक वृक्ष। अम्लपत्रक। गुग्मपत्रक। (२) क्षुद्राम्लिका।

पर्याय—(सं) चाङ्गेरी। (हिं०) खटकल। लोना या अमलोनी नामक साग। तित्तपतिया। (बं०) आम-रुल-शाक।

(३) ग्वारपाठा, घृतकुमारी। (वै० निघ०)।

कुशलोदर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चालता गाछ। भव्यफल।

कुशवारी—संज्ञा स्त्री० दे० “कुशयारी”।

कुशस्तव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुश गुच्छ। कुशकण्डिका।

कुशस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुत्सितास्त्र। कुण्ठितअस्त्र।

दूषित अस्त्र। ऐसे अस्त्र का उपयोग अज्ञानी शल्यचिकित्सक करते हैं। क्योंकि इसमें विकार उत्पन्न होते हैं। कुत्सित इस प्रकार है—(१) वक्र, (२) कुण्ठ, (३) खण्ड, (४) खरधार, (५) अतिस्थूल, (६) अति तुच्छ, (७) अतिदीर्घ, (८) अतिह्रस्व उक्त आठ दोषपूर्ण अस्त्र शल्यकर्म में त्याज्य हैं। (सु० सू० अ० ८)।

कुशा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रस्सी। रज्जु। (२)

मधुकर्कटी। एक प्रकार का मीठा नीबू। चकोतरा नीबू।

(श० च०)।

संज्ञा पुं० कूस। कुश। डाभ। दर्भ। (Meadan-grass)।

इ० है० गा०।

[सं०] बल्यु। छाग। (हे० च०)।

कुशाकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आग। अग्नि। (शब्द मा०)।

कुशाखल—संज्ञा पुं० [अ०] कश्नह। (इ० है० गा० पृ० ३)।

कुशाग्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वानर। बंदर। (२)

अग्नि। आग। (३) सूर्य। (के०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दर्भ, कुश, कुसा, डाभ।

कुशाग्रीय—वि० [सं० त्रि०] पंडित। विद्वान। आचार्य।

कुशाग्रीय-मति—[,, ,,] कुशाग्र बुद्धि। (ध० नि०)।

कुशाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुशतृणाङ्कुर। कुश की

तीव्र नोक वा धार। कुश का अँखुआ।

कुशादि-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अश्मरीचिकित्सा में

प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—क्वाथार्थ—कुश,

कास, रामसर (सरपत), गुजेता, गुन्द्रा, उत्कट (किलिच-

जलकाश), मोरट (ईख की जड़), पखानभेद, विदारी-

कंद, वाराहीकंद, शालपर्णीमूल, गोखरू, पाढल, भिलावाँ,

पाठा, पत्तर, (शालिच शाक), कटसरैया, पुनर्नवा और

सिरस इन्हें समान भाग में ग्रहणकर उचित प्रमाण में,

गोधृत मिश्रितकर यथाविधि पाक करें। जब सिद्ध हो

जाय, छानकर सुरक्षित रखें। गुण तथा उपयोग—इसको

शिलाजीत, मुलहठी, मधुकास्थिवीज (कोइता), खीरे

तथा ककड़ी के बीज के समानभाग चूर्ण के साथ सेवन

करने से तत्काल पित्तज अश्मरी का नाश होता है।

(भा० म० अश्म० चि०)।

कुशादि शालिपर्ण्य—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृणपंचमूल

और विदारिगन्धादि गणे। (सि० यो० दाह० चि०)।

कुशाद्य-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अश्मरी-अधिकारोक्त

योग। कुशादि घृत देखो। उक्त घृतयोग में द्रव्यों का

मान नहीं दिया है। अतः यहाँ क्वाथ-द्रव्य १२॥ श०, जल

६४ श० शेष १६ श०, शिलाजीतादि का कल्क मिलित

द्रव्य ५ पल, घृत ४ प्रस्थ, ग्रहण करना उचित है।

(च० द० अश्मरी० चि०)।

कुशाद्य-तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दाह चिकित्सा में

कुशाद्य-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—तिलतैल वा गोधृत ४ श०;

क्वाथार्थ—कुश, काश, शर (सरपत), इक्षु, उशीर,

शालपर्णी मिलित १०० पल, जल ६४ श० शिष्टकाथ

१६ श०। जीवकादिगण मिलित ८ पल का कल्क,

एकत्र यथाविधि पाक करें। (च० द० दाह चि०)।

कुशादि, शालपर्णी इत्यादि, जीवक इत्यादि युक्त साधित

तैल व घृत। मान—क्वाथार्थ—कुशादिपञ्चतृण, स्वल्प-

पञ्चमूल मिलित ३२ पल, कल्कार्थ जीवकादि अष्टवर्ग

मिलित १ श०। गुण—यह दाहनाशक तथा वात-पित्त-

नाशक है। (रस० र०)।

कुशाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अश्मरीचिकित्सा में

प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—क्वाथार्थ—कुशा, अरणी,

कटसरैया, नरसल, डाभ, ईख की जड़, गोखरू, ब्राह्मी,

आक की जड़, लाल चिरचिटा, सतावरीमूल, रामसर,

आमला, अरलू, बाँदा, सिरस की छाल, पाषाणभेद मिलित

१०० पल, जल १६०० पल, शेष ३ भाग। तिल तेल

४ प्रस्थ, एकत्र यथाविधि पाक करें। जब तेलमात्र

शेष रह जाय, छानकर बोतलों में रखे। गुण—इसको

यथाविधि पान, अभ्यङ्ग, उत्तरबस्ति, वस्ति द्वारा उपयोग

करने से शर्करा, पथरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, योनि-शूल

तथा वीर्यदोष का नाश होता है। इसके उपयोग से

वन्ध्यत्वदोष निवृत्त होता है। (भा० म० अश्म० चि०)।

कुशालमलि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] रोहितक वृक्ष। स्नेहा।

कुशालमली—संज्ञा स्त्री० [,,] रोहिता। रक्त रोहि-

तक। (बं०) रोढा गाछ। (रा० नि० व० ८)।

कुशावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमेह अधिकारोक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण विधि—उशीर (वीरणमूल), कुश,

काश, कृष्णइक्षु-मूल, खागडा-मूल, तालमखाना (कोकिलाक्ष)

प्रत्येक १० पल, जल १ द्रोण में पाक करें। जब ८ श० शेष

रह जाय तब इसको छानकर पुनः इसमें मिश्री ६४ तो०

प्रक्षेपार्थ—यष्टिमधु, कर्कटीबीज, कुष्माण्डबीज, त्रपुष

(खीरा)बीज, वंशलोचन, आमलकपत्र, इलायची,

दालचीनी, नागकेशरपुष्प, वरुणत्वक्, गुडूची और

प्रियङ्गु प्रत्येक २-२ तोला—इनको चूर्णकर यथाविधि

अवलेह बनाए। (सा० कौ०)। (च० द०)। गुण—

इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी,

त्रिदोषज अरोचक, वात, कफ तथा पित्तजन्य प्रमेह नष्ट

होते हैं। शरीर पुष्ट एवं बलवान् होता है।

(भेष० र० प्रमेह चि०) ।

कुशासन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुशा द्वारा प्रस्तुत आसन ।

(अ० ह० रजस्वला उपदेशे) ।

कुशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वानर, बंदर । (अं) मंकी (Monkey) । (श० मा०) ।

कुशि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेचक, बाज पक्षी, सेन पक्षी ।

कुशिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्जवृक्ष । अश्वकर्ण शाल । शाल वृक्ष । (मे०; ध० नि०) । (२) बहेड़ा, विभीतक वृक्ष । (हे० च०) । (३) अश्वकर्ण, लता शाल । (रा० नि० व० ९) । (४) तैलकिट्ट । तैलशेषभाग । (विश्व०) । (५) कपास, कार्पासवृक्ष । (६) भिलावाँ, भल्लातक-वृक्ष । (७) बेर । (८) वदर । (वै० निघ०) । (९) एक ऋषी । (चरक १ अ०) । —अंकोल, डेरा, (श० मा०) ।

कुशित—वि० [सं० त्रि०] जलयुक्त, जल मिश्रित । (उणा०) ।

कुशिशपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपिलवर्ण का सीसो । कपिलवर्ण शिंशपा वृक्ष । (रा० नि० वा० ९) ।

कुशिम्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, पुं०] सेम भेद, शिम्बी

कुशिम्वि—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० पुं०] विशेष गुण—विपाक

में मधुर, बलदायक तथा पित्तनाशक है । (वैद्यक) ।

कुशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कार्पासवृक्ष, फाल । (२) लौह विकार । मण्डूरादि । (मे०) ।

कुशीद—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) कार्पासवृक्ष, फाल ।

(२) लाल चन्दन, रक्तचन्दन । (३) मुण्डमाला तन्त्र ।

कुशीपु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनाज, अन्न । (अं०) ग्रेन्स (Grains) । (वै० निघ०) ।

कुशीरास—[रूमी] तेलनीमक्खी ।

कुशु—[लेदक, हि०] सेव ।

कुशुथ—[] कसूस । (डी० भ० १, पृ० ४७५; भ० २, पृ० ५४७) ।

कुशुम्ब—[हि०, गु०, ता०, ते०] कुसुम्भ, कड़, कुसुम ।

कुशुम्—[अ०] अपामार्ग । चिचिड़ा । किराद ।

(लु० क०)

कुशूर—[अ०] [ए० व० कश्च] छाल । त्वचा ।

कुशूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भूसी की आग, तुषाग्नि ।

(जटा०) । (२) अन्नकोष्ठ, धान्यकोष्ठ, बखार, गाड़ ।

(हला०) ।

कु(क)शूस—[अ०] अफतीमून के बीज, तुख्म अफतीमून, कसूस, दीनार । दे० 'अफतीमून' ।

कुशेशय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कमल, पद्म । (ध० नि०) । (२) कर्णिकार । छोटा अमलतास । (३) सारस पक्षी । (अम०) ।

कुशेशयकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य ।

कुशेष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूप, कुवाँ ।

कुशर—[] ककड़ी, ककटी । (लु० क०) ।

कुश्ज—[अ०] तक्र, छाँछ ।

कुश्त्—[अ०, फा०]

कुश्त्—कुश्त्, कुश्द [फा०] } कुट, कूठ, कुष्ठ ।

कुश्तक—[फा०] गोबरउरा । गुबरीला ।

कुश्तए-तल्ल—[फा०] कूठ कड़वा । (डी०) ।

कुश्तए-शरीरी—[फा०] मीठा कुट । (डी०) ।

कुश्तए-शामी—[अ०, फा०] (१) रासन । (२) कुस्तसूरी । (डी०) ।

कुश्तए नुकरा—[फा०] रजत-भस्म, चाँदी भस्म ।

कुश्ता—[फा०] भस्म । खाक ।

कुश्ता—[फा०] उस्तोखुद्स, शुष्क फल ।

कुश्ता—[?] कुस्त, कुट, कूठ, (लु० क०) ।

कुश्ताजात—[फा०] भस्म वर्ग । भस्म समूह ।

कुश्तुम्बरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धनियाँ । (डी०) ।

कुश्तुल्—हलु—[अ०] मीठा कुट । (डी०) । दे० 'कुट' ।

कुश्तुल्-बहरी—[अ०] समुद्री कुष्ठ । (डी०) ।

कुश्तुम्बरी—[] धनियाँ । (डी०) ।

कुश्द—[?] कुट, कुष्ठ ।

कुश्नीज—[फा०] कश्नीज, धनियाँ, धान्यक ।

कुश्फ—[फा०] (१) जूफा । (२) जुफ्त ।

कुश्लव—[सं०]—

कुश्च—[अ०] मत्स्यभेद, मछली का एक प्रकार ।

कुश्चान—[अ०] टिट्टी के पर तथा बागू ।

कुषक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेड़ा, विभीतक वृक्ष । (वै० निघ०) ।

कुषाकु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वानर, बंदर । (२) अग्नि । आग । (विश्व०) । (३) मदार । (अर्क) । (मे०) ।

कुषित—वि० [सं० त्रि०] जलमिश्रित । जलयुक्त । दे० 'कुशित' ।

कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कुट नाम का द्रव्य । देखी 'कुट' । (२) त्वनिविकार, चर्मरोग ।

परिभाषा—दोषों के चर्मगत होने से त्वचा में क्षिथिलता उत्पन्न होकर त्वचा में विवर्णता उत्पन्न होती है, इसलिए इसको कुष्ठ कहते हैं । (द्रव्यन्ति श्लथीकृत्य निश्चलत्वादि-तस्ततः । त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दोषा कुष्ठमुशन्ति तत्) । (भा० प्र०) ।

व्युत्पत्ति—वह रोग जिसके होने से शरीरगत धातुओं का नाश होता है । 'कुष्णातीति कुष्ठम्' वा 'कालेनोपेक्षितं यस्मात् सर्वं कुष्णाति तद्वपु' (अष्टाङ्गसंग्रह) । सुश्रुत के अनुसार, महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ, इस प्रकार १८ प्रकार के कुष्ठ हैं । चरक में प्रसंगवश सप्तविध कुष्ठ का उल्लेख हुआ है । पुनः चरक के अनुसार कुष्ठ असंख्य प्रकार के होते हैं 'स सप्तविधो अष्टादशविधोऽसंख्येय विधो वा भवति' । सुश्रुत के अनुसार कुष्ठ के निम्न भेद हैं—

क्षुद्र तथा महाकुष्ठ के दो भेद हैं—(१) महाकुष्ठ—
१-अरुण, २-औदुम्बर, ३-ऋष्यजिह्व, ४-कपाल,
५-काकणक, ६-पुण्डरीक और ७-दद्रु । (२) क्षुद्र कुष्ठ
—१-स्थूलाष्क, २-महाकुष्ठ, ३-एक-कुष्ठ, ४-चर्मदल,
५-विसर्प, ६-परिसर्प, ७-सिध्म, ८-विचर्चिका, ९-
किटिभ, १०-पामा और ११-रकसा । (सु० नि० ५
अ०) । दे० 'कुष्ठरोग' । (३) एक प्रकार का विष । (रस०
का० धे०) । (४) कुश नामक वृक्ष ।

कुष्ठकण्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खैर, खदिरवृक्ष । (वै०
निघ०)

कुष्ठकालानल तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठ में प्रयुक्त
तैल योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पारद, गन्धक,
मैत्रिशिल, हरिताल इन्हें काँजी में पीसकर वस्त्र पर लेप
करें । जब शुष्क हो जाय, बत्ती निर्माणकर ऋतुतेल में
भिगाकर दीपतुल्य जलावे और किसी ताम्र वा पीतल के
पात्र में तेल टपका लेवे । गुण—इसके अभ्यङ्ग से कुष्ठ
का नाश होता है । यह कुष्ठ के लिए महा औषध है ।
(भैष० र०, कुष्ठचि०) ।

कुष्ठकालानल-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त
योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,
सुहागा, ताम्रभस्म, लोहभस्म तथा पीपल—सर्वसमान
भाग में ग्रहणकर निम्ब-पञ्चाङ्ग तथा त्रिफला के काथ
और अमलतास के काथ से मर्दनकर सुरक्षित रखें ।
मात्रा—६ रत्ती । गुण—इसके उपयोग से समस्त कुष्ठों
का नाश होता है । (रस० चि०, ९ अ०) ।

कुष्ठकुठार-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] द्रव्य तथा निर्माण-
विधि—पारद भस्म (चन्द्रोदय) १ तोला, शुद्ध गन्धक १
तो०, लोहभस्म, ताम्रभस्म, गुग्गुलु, त्रिफला, महानिम्ब
(बकाइन), चित्रक, शिलाजीत-प्रत्येक पारद का १/४ वाँ
भाग, करंज १/४ भाग, मधु १/४ भाग तथा अभ्रकभस्म
१/४ भाग घृतयुक्त मर्दनकर रख लेवें । मात्रा—२-८
माशा तक । गुण—इसके उपयोग से गलितकुष्ठ का नाश
होता है । (रस० सा० सं०) ।

कुष्ठकुलान्तक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त
योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शु० गन्धक, शु० पारद,
अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, (तुल्य), कान्तलोहभस्म, प्रत्येक
समान भाग में ग्रहण करें और सबका चौगुना गोघृत,
घृत से चौगुना गिलोय, मुसली, सोंठ, हस्तिकर्णपलाश
का रस तथा भाँगरा, क्षीरविदारी, मुलेठी और जीवन्ती
के काथ वा रस से मर्दन करें । पुनः मेदा, महामेदा, कटेरी,
बड़ी कटेरी, ऋषभक, काकोलीद्वय और जीवक का रस
वा काथ घृत से चौगुना डालकर यथाविधि पाक करें ।

कुष्ठकेतु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भूम्याहुत्य क्षुप,
मार्कण्डिका । (२) भुई खेखसा ।

कुष्ठगजकेसरी रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठनाशक
योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध गन्धक, शु० पारद
४-४ तो०, शु० हरिताल १६ तोला, एकत्र कज्जली करें ।
पुनः धतूरे के रस में ३ दिन मर्दनकर टिकिया बना
लेवें और ताम्रमूषा में बंदकर ऊपर दढ़ कपड़मिट्टी
कर किसी हाँडी में स्थापनकर उसके ऊपर सेंधानमक
और चूना भर देवें । पुनः उसके ऊपर हाँडी के मुख
तक पीसा हुआ नमक और कंडा की राख भरकर सन्धि-
रहित कपड़मिट्टी करें । जब शुष्क हो जाए, चूल्हा पर
स्थापनकर तीन पहर तक तीव्रान्ति की ताप पहुँचाएँ । जब
स्वांगशीतल हो जाए, निकालकर ताम्रकी मूषासहित
सबको बारीक पीसकर पुनः आम की गुठली के काथ से
मर्दन करें और टिकिया निर्माणकर पूर्ववत् हाँडी में स्थापन-
कर उसमें आम की गुठली का काथ वा रस भर देवें और
जीवक का रस वा काथ घृत से चौगुना डालकर पकाएँ ।
जब घनीभूत हो जाए, तब इसमें श्रीपणी (गम्भारी),
वृहती, गोखरू, शालपर्णी, कटाई, वसंतदूती (पाटल),
पिठवन, बिल्व, सोनापाठा और अरनी का रस घृत से
चौगुना डालकर पाक करें । पुनः इसमें गाढ़ा होने के
पश्चात् त्रिकुटा, भिलावाँ, ब्रह्मदण्डी तथा चित्रक का चूर्ण
पारद के बराबर डालें और सर्वतुल्य पुरातन गुड़ मिश्रित
कर पाक करें । जब शीतल हो जाए, इसमें पारद भस्म
४ तो० और उतना ही गुड़चीसत्व और त्रिकुटा ८ तो०,
रक्तचित्रक का रस ८ तो०, त्रिफले का चूर्ण ७ पल
मिश्रितकर सुरक्षित रखें । मात्रा—३ से १० माष प्रमाण ।
सेवन-विधि—घृत, मधु, मिश्री के साथ सेवन करने से
तृतीय कक्षागत दद्रु तथा १८ प्रकार के कुष्ठों का नाश
होता है । (रस० यो० सा०) ।

कुष्ठगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगन्धा । भा०
पू० १ भ० ।

कुष्ठगन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एलुआ ।

कुष्ठगन्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगन्धा । भा०
पू० १ भ० ।

कुष्ठघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) परोरा । पटोल लता ।
(रा० नि० व० ३) । (२) काकमाची । काली मकोय ।
(३) सोमराजी । बकुची । (४) हितावली नाम की
औषधि । (वै० निघ०) ।

कुष्ठघ्न-महाकषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठनाशक काथ;
यथा—खदिरसार, हरीतकी, आँवला, हरिद्रा, भल्लातक,
सप्तपर्ण, अश्वगन्धा, करवीर, विडंग और जातीपत्र
(चमेली) समान भाग में ग्रहणकर काथ निर्माणकर सेवन
करने से कुष्ठ का नाश होता है । (च० सू० ४ अ०) ।

कुष्ठघ्न-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त योग
विशेष । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद ५ शाण,

कुष्ठघ्नी

शु० वत्सनाभ ५ शाण, शु० गन्धक १५ शाण, शु० हरिताल २० शाण, ताम्रभस्म २५ शाण, एकत्र चूर्णकर सुरक्षित रखें। मात्रा १-३ रत्ती। सेवन-विधि—त्रिफला चूर्ण और मधुयुक्त सेवनोपरान्त बकुची, चक्रमर्दवीज और यवास का चूर्ण ४-४ माशा मिश्रितकर सेवन करें। निषेध—क्षारीय एवं अम्ल पदार्थ।

कुष्ठघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकडुमुर, कठुमर, काकोदुम्बरी। (रा० नि० व० ११)। (२) काली मकोय, काकमाची। (३) बकुची, सोमराजी, हितावली (वै० निघ०)।

कुष्ठ तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूठ द्वारा निर्मित तेल।

गुण—जीवाणुनाशक है। (अष्टाङ्ग सं०)।

कुष्ठतोदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तखदिर वृक्ष। (रा० नि० व० ८)।

कुष्ठदलन-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त रस-योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पारद, गन्धक, बकुची के बीज, पलाश बीज, त्रिफला वा भिलावाँ और सोंठ, इसमें मधु तथा घृत मर्दनकर सेवन करने से कुष्ठ रोग का नाश होता है। (रस० २०)।

कुष्ठदोषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बकुची। सोमराजी। (रा० नि० व० ४)।

कुष्ठनाशक-योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग। केशर, कमल, मोथा, दालचीनी, तेजपत्र, नाग-केशर, इलायची और चित्रकमूल सर्वसमानभाग में ग्रहणकर चूर्ण करे। उपयोगविधि—१ तो० जल के साथ प्रातः काल सेवन करने से एक ही सप्ताह में सकृमि-युक्त गलितकुष्ठ भी शुष्क होने लगता है और व्रण भी शीघ्र ही शुष्क होने लगते हैं। (रस वि० ३ स्तवक)।

कुष्ठनाशन रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त रसयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पारदभस्म २ निष्क (८ मा०), शु० गन्धक ४ पल, चित्रक मूल ४॥ पल, बकुची २४ प०, मरिच १२ प० यथाविधि चूर्णकर सुरक्षित रखे। मात्रा—२-८ रत्ती।

सेवन-विधि—मधुयुक्त सेवन करने से समस्त कुष्ठों का नाश होता है। (रस० २० सं०, कुष्ठ चि०)।

कुष्ठ-नाशन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुष्ठहर वृक्ष। (२) श्वेत सर्पप, सफेद सरसों, गौर सर्पप। (रा० नि० व० १६)। (३) क्षीरकज्जुकी, क्षीरीश वृक्ष। (रत्ना०)। (४) वारा-हीकन्द। (रा० नि० व० ७)। (५) रक्तखदिर वृक्ष। लाल खैर। (६) अमलतास, आरग्वध वृक्ष। (वै० निघ०)।

कुष्ठनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बकुची। सोम-राजी (ध० नि०; प० मु०)। (२) काकमाची। (रा० नि० व० ४)।

कुष्ठनिकृन्तन-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, लोहभस्म, ताम्रभस्म, फौलादभस्म, स्वर्ण-माक्षिक भस्म और शिलाजीत सर्वसमानभाग ग्रहणकर एकत्र काकमाची, बन्दाल, ककोड़ा प्रत्येक के रसमें ३-३ दिन खरलकर पिष्टी निर्माण करे और यथाविधि भूधरयंत्र में स्थापनकर ३ दिन पर्यन्त तुषाग्नि देवे। चौथे दिन शीतल होने पर निकालकर चूर्ण करें। मात्रा—१-४ माष प्रमाण।

गुण तथा उपयोग—इसको भल्लातक, बकुची, हरीतकी, वायविडंग, कलिहारी, तिल, जीरा, वेर की जड़ समान भाग और सर्वतुल्य पुरातन गुड़ में मिश्रितकर इस अनुपात द्वारा सेवन करने से विचर्चिका का नाश होता है।

कुष्ठ-नोदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल खैर, रक्तखादिर। (वै० निघ०)।

कुष्ठमय—वि० [सं० त्रि०] कुष्ठरोगी।

कुष्ठमाणिक्य-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “कृष्णमाणिक्य रस”।

कुष्ठराक्षस तैल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त तैल-योग।

कुष्ठ रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठव्याधि, महाव्याधि; (अ०) जुजाम। (अ०) लेप्रासी (Leprosy)।

निदान-लक्षण—अहितकर आहार, अहितकर आचरण (विहार), विशेष गरिष्ठ भोजन, विरुद्ध भोजन, असात्म्य आहार, अध्यशन तथा अहित भोजन करनेवाले व्यक्ति की, ग्राम्य, आनुप और आदक प्राणियों का मांस दुग्ध के साथ पुनः पुनः सेवन करनेवाले व्यक्ति की, स्नेहपान और वमन के पश्चात् व्यायाम तथा मैथुन करनेवाले की, धूप में संतप्त होकर तत्काल शीतल जल में तैरनेवाले की और आते हुए वमन को रोकनेवाले की प्रवृद्ध हुई वायु प्रकुपित हुए पित्त तथा कफ को ग्रहणकर तिर्यग्गामिनी सिराओं में व्याप्त होकर और उनको व्याप्त कर पित्त-कफ को बाह्य रोगमार्ग में फैला देती है। पुनः जहाँ-जहाँ विक्षिप्त हुआ दोष संचार करता है, वहाँ-वहाँ मण्डल (चक्ता) उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार त्वचामें प्रकट हुआ दोष उसी स्थान में वृद्धि पाकर उचित प्रतिकार न करने से धातुओं को दूषितकर शरीर के भीतर प्रवेश करता है। (सु० नि० ५ अ०)।

स्पष्टीकरण—चरक के अनुसार त्रिदोष तथा त्वगादि चार धातु एक-साथ दूषित होकर कुष्ठ उत्पन्न होता है। सुश्रुत के अनुसार त्रिदोष सर्वप्रथम त्वचा को दूषित करते हैं और यदि उसकी उपेक्षा की जाय तो क्रमशः रक्तादि धातु दूषित होते हैं। चरक का कथन है कि ऐसा

कोई भी कुष्ठ नहीं है जो एक दोष के प्रकोप से उत्पन्न हो। और वाग्भट्ट तथा चरक का कथन है कि उचित प्रतिकार न होनेपर सम्पूर्ण धातुएँ क्लेदित होकर उनमें कोथ उत्पन्न होता है, जिससे उनमें सूक्ष्म कृमि उत्पन्न हो जाते हैं; यथा

“संस्वेद क्लेद संकोथान् कृमीन् सूक्ष्मान्सुदारणान्।” उक्त कृमिरोम, त्वचा, स्नायु, धमनी तथा तरुण अस्थियों को क्रमशः भक्षण करते हैं। उक्त लक्षण आन्तर कुष्ठ के हैं, न कि श्वित्र के। श्वित्र कुष्ठ केवल त्वचाके आश्रित रहता है। अतः यह बाह्य कुष्ठ है। भेद के लिए दे० ‘कुष्ठ’। चरक में मुख्य कुष्ठ सात हैं—वातादि के प्रकोप से (१) कपालकुष्ठ, पित्त की अधिकता से (२) औदुम्बरकुष्ठ, कफ की अधिकता से (३) मण्डल कुष्ठ, वात पित्त की अधिकता से (४) ऋष्य-जिह्व कुष्ठ, पित्त-कफ के बाहुल्य से (५) पुण्डरीक-कुष्ठ, कफ-वात की अधिकता से (६) सिध्म कुष्ठ और दोषत्रय की अधिकता से (७) सातवाँ का काणक कुष्ठ उत्पन्न होता है।

अष्टाङ्गहृदय में सुश्रुतोक्त कुष्ठों के अतिरिक्त—अलसक, विपादिका, शतारू और चर्मकुष्ठ का वर्णन मिलता है। इनके लक्षण तथा चिकित्सा का निर्देश यथास्थान वर्णित है।

कुष्ठ रोग में प्रयुक्त योग—

कुष्ठविद्रावण तैल—(१) निर्माण-विधि—वकुची का तेल ८ पल ग्रहणकर उसमें गन्धक २४ निष्क तथा ५-५ निष्क पारद और कान्तिलोहमिश्रित कजली तथा ६४ तो० तिलतैल मिश्रितकर पकाएँ। जब सिद्ध हो जाए, किसी पात्र में रख अनाज की राशि में १ मास पर्यन्त ढाँक कर रखें।

उपयोग—१५-३० बूँद की मात्रा में प्रतिदिन पान करने तथा अभ्यङ्ग करने से सुप्त (सुनबहरी) कुष्ठ तथा दाहकुष्ठ कुष्ठ का नाश होता है। पथ्य—दूध-भात। (रस २० सं० २० अ०)।

(२) कुष्ठहर योग—निर्माण-विधि—चमेलीपत्र-स्वरस, नवनीत (मक्खन) और मधु १-१ तो० और स्वर्णमाक्षिकभस्म ३ मा० मिश्रितकर सेवन करने से श्वित्र कुष्ठ के अतिरिक्त शेष १७ प्रकार के कुष्ठों का नाश होता है तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म और शुद्ध गन्धक ६-६ मा० प्रतिदिन सेवन करने से तथा केवल पारद-भस्म सोमराजी व अन्य कुष्ठहर अनुपातों के साथ सेवन करने से समस्त कुष्ठरोगों का नाश होता है। (च० सं०, टि० रस यो० सा०)। तथा हीरा की भस्म राई प्रमाण अभाव में कृष्णाभ्र भस्म १ माशा शुद्ध शिलाजीत १ तो० के साथ सेवन करने से समस्त कुष्ठों का नाश होता है।

(३) कुष्ठहर रस—निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शु० गन्धक, शु० वत्सनाभ प्रत्येक १-१ तो०, शु० हरिताल और शु० ताम्र भस्म ३-३ तो० ग्रहणकर एकत्र मर्दन करें। पुनः इसमें घृतकुमारी के रस की ६३, सेहूँड़ और आक के दूध की ३-३ पुट देवें और ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। सेवन-विधि—सायं-प्रातः १-१ गोली कुष्ठहर अनुपातों के साथ सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ठों का नाश होता है।

(४) कुष्ठहर लेप—पारद और गन्धक की कजली कर लोह की कढ़ाही में द्रवीभूत करें। पुनः गलकर गाढ़ा हो जाने के पश्चात् भाँगरा के रस के साथ मर्दनकर मरहम बना लें। उपयोग—कुष्ठरोगियों के शरीर पर लेपन करने से समस्त कुष्ठों का नाश होता है।

नोट—इसमें तिलतैल गन्धक से द्विगुण तथा भाँगरे का रस चतुर्गुण मिश्रित करने का आदेश है। अथवा पारद, गन्धक और धतूरबीज समान भाग में ग्रहणकर तिल के तेल के साथ मरहम सा बनाकर लेप करने से समस्त कुष्ठों का नाश होता है।

(५) कुष्ठाटवीकुठाररस—निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शु० गन्धक, सुहागे की खील, अभ्रक भस्म, प्रत्येक १-१ भाग तथा ताम्र भस्म और लोह भस्म ४-४ भा०, कुष्ठ और पिप्पली चूर्ण १-१ भाग एकत्र मर्दनकर इसमें निम्ब पञ्चांग, त्रिफला और भूपट्ट (केचुआ) रस वा काथ की ७-७ भावनाएँ देवें। मात्रा—२ से ६ रत्ती तक।

उपयोग—त्रिफला वा अन्य कुष्ठनाशक अनुपातों के साथ सेवन करने से गजचर्म, पामा, दद्रु, सिध्म, विसर्प, मण्डल और महाकुष्ठों के निवृत्त्यर्थ हरिद्रा, दारुहल्दी, पवाङ्ग के बीज, आक, धूहर के दूध, अमलतास की छाल और गोमूत्र युक्त १ दिन घूप में स्थापनकर लेप प्रस्तुतकर लेपन करने तथा उक्त रस के साथ सेवन करने से २१ दिन के प्रयोग से समस्त कुष्ठ निर्मूल हो जाते हैं।

(६) कुष्ठादि क्वाथ—इन्द्रयव, कूट, मूली और पटोल-पत्र समानभाग में ग्रहणकर क्वाथ करें। इसे मधु एवं मिर्च के चूर्ण के साथ पान करने से कफजनित कुष्ठों का नाश होता है। (बृ० नि० २० ज्व० चि०)।

कुष्ठवैरी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष विशेष। भाषा में इसे चालमुगरा कहते हैं। गुण तथा पर्याय—कुष्ठवैरी, शैलरोही, महागद, महीहृह, वैवस्वतद्रुम। गुण—बलकारक, रसायन, पामा, विचर्चिका, कण्डू, सिध्म, दद्रु, विपादिका तथा आमवातनाशक है और कुष्ठरोग को विशेषरूप से नष्ट करता है। (अत्रि०)।

कुष्ठशैलेन्द्रवज्र-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—हरिताल, मरिच, कूट

कुष्ठसूदन

काचलवण, सोहागा, वच, हरिद्रा, निगुण्डी, निम्ब, करैला, इनका बीज तथा पत्र १-१ तोला। इनका चूर्णकर सर्वचूर्णसम शुद्ध गुग्गुलु और वकुची चूर्ण ८ तोला, पारद गन्धक की कज्जली मिलित १६ तोला, त्रिफला द्वारा शोधित लौहभस्म १६ तोला—सबको एकत्र गोमूत्र में मर्दनकर ६ मासा प्रमाण की वटी निर्माण करें।

कुष्ठसूदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलतास, आरस्वध। (रा० नि० व० ९)।

कुष्ठहन्ता—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हथिकन। हस्तिकंद नाम का कंदशाक। (रा० नि० व० ७। ध० नि०)।

कुष्ठहन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वकुची। सोमराजी। (वं०) हाकुच। (रा० नि० व० ४)।

कुष्ठहरतालेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध हरताल १२ भाग, शुद्ध गन्धक १२ भाग, शुद्ध पारद ७ भाग, कृष्ण अभ्रक भस्म ७ भाग, एकत्र चूर्णकर इसमें अंकोलमूलरस, धूहरदुग्ध, आकदुग्ध, कनेरमूलरस तथा काकडुमुर के रस की बार-बार भावना देकर मर्दन करें। पुनः दो ताम्र-निर्मित कटोरी में बंदकर सम्पुट करें और पुटपाक की विधि से ६ पहर तक पाक करें। शीतल होने पर चूर्णकर सुरक्षित रखें। मात्रा—१ से ५ रस्ती।

गुण तथा उपयोग—इसे कटूमर के रस के साथ सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ठों का निश्चय नाश होता है। पथ्य—दूध, भात, सूर्य की आराधना। अनुपान कुष्ठ तथा अन्य रोगों में पीपरादि।

कुष्ठहृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैर का पेड़। (२) विट-खदिर। (३) कुष्ठनाशक। कुष्ठारि।

कुष्ठराक्षसतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पारद, गन्धक, कंकुष्ठ, सप्तपर्ण, चित्रक, सिन्दूर, हरताल, वकुची, रसोन, अमलतास के बीज, जीर्ण ताम्रभस्म तथा मैनशिल प्रत्येक १-१ कर्ष ग्रहणकर ८ पल कटुतैल में मिश्रितकर सूर्यताप में रखकर सिद्ध करें। गुण—इसके उपयोग से समस्त कुष्ठ तथा श्वित्र, औदुम्बर, कच्छू, मांसवृद्धि, भगंदर, विचर्चिका, पामा वात-रक्त इत्यादि समस्त चर्म-रोगों का अवश्य नाश होता है और शरीर का वर्ण उत्तम होता है। लोकोपकार के निमित्त इसको अश्विनी-कुमारों ने निर्माण किया है।

कुष्ठशुद्धेश्वर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठनाशक रस-योग। निर्माण-विधि—शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक २-२ पल, शुद्ध सीसा, शुद्ध वंग, शुद्ध पीतल, शुद्ध कान्त, शुद्ध साधारण लोह, चाँदी और शुद्ध सोनामाखी १-१ पल। इनमें से अग्निपर गलनेवाली चीजों को गला कर नीचे उतार लें। पुनः उसमें पारा मिलाकर खरल करें। शेष

कठिन घातुओं को रेती से रेतकर चूर्ण बनाकर पुनः एक साथ सबको मिलाकर खरल करें। फिर शुद्ध बच्छनाग का चूर्ण १ पल डालें। पुनः इसमें त्रिफला, भांगरा, अमलतास, विजयसार, खैर, निम्ब और महानिम्ब का रस वा काथ डालकर मर्दन करें। पुनः आक और सेहूँड का दूध डालकर घोटकर गोला बना लें और इसे संपुट में बंदकर महान् गजपुट की आँच दें। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब निकालकर सुरक्षित रख लें। मात्रा—१-२ मा०।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे खदिर, विजयसार और रोहिता के काथ में पकाकर अथवा बकरे के मूत्र में पकाकर देने से मण्डलकुष्ठ का नाश होता है। और मरिचादि तैल (जो रसचिन्तामणि में कहा गया है) के साथ लेपकर धूप में बैठने से और सत्य भाषणपूर्वक ईश्वराराधन करने से कुष्ठ का नाश होता है। इस रस के प्रभाव से उत्पथ और गतपूयकुष्ठ भी निश्चय नष्ट हो जाते हैं। सारे शरीर की सूजन चली जाती है तथा साध्यासाध्य सप्तधातुगत, वैद्यों द्वारा परित्यक्त और दूसरे शास्त्रों द्वारा भी त्यक्त और पूर्वजन्मकृत दोष से उत्पन्न कुष्ठ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। योगी लोग और गुच्छों की सेवा और परमिताहार अवश्य सेवनीय है। २० यो० सा०।

कुष्ठहा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] परोरा। पटोललता। (भा० पू० १ भ० शाक व०)।

कुष्ठाटवीकुठार रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग। “दे० कुष्ठ रोग में प्रयुक्त योग”।

कुष्ठाद्यतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उरुस्तम्भ में प्रयुक्त तैलयोग। द्रव्य—कटुतैल ४ श०, कुष्ठ कल्की-भूत ८ तो०, जल १६ श० तैलपाकविधि से सिद्ध करें।

(२) कर्ण रोग में प्रयुक्त तैल योग। द्रव्य—श्रीवेष्ट धूप, अजगन्धा, कोकान्दी।

(३) कुष्ठ, हिङ्ग, वच, देवदारु, शताह्वा, विश्वभेषज, कटुतैल—इनको छागमूत्रयुक्त पाक करें। गुण—इसके उपयोग से पूतिकर्ण शान्त होता है। उक्त द्रव्य मिलित १६ तोला, छागमूत्र ४ श० और तिल तैल १ श० लें। (च० द०)।

कुष्ठाद्य चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदररोग में प्रयुक्त योग।

द्रव्य—कुष्ठ, दन्ती, यवक्षार, त्रिकुटा, वच, त्रिलवण (सैधव, सांभर, सोंचर), वच, जीरा, अजवाइन, हींग, सज्जी, चव्य, चित्रक और सोंठ समानभाग में ग्रहणकर चूर्ण करें।

गुण—इसको जल के साथ सेवन करने से वातजन्म उदरविकार शान्त होता है। (भा० म० उद० रो० चि०)।

कुष्ठाद्य-नस्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठ में प्रयुक्त एक नस्ययोग ।

कुष्ठाद्य-लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त एक लेपयोग ।

कुष्ठाद्य-वर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त एक वर्त्तियोग ।

कुष्ठाद्युद्धर्तन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त उद्धर्तन । द्रव्य—कुष्ठ, हरिद्रा, बोल, पटोल, निम्ब, अश्व-गन्ध, देवदारु, सहिजन, सर्षप, तुम्बक, कैवर्त्तमुस्तक, चण्डा (चोरपुष्पी), इन्हें समभाग में ग्रहणकर चूर्ण करें, पुनः तन्मै पीसकर तैलाक्त शरीर में मर्दन करें। इस प्रकार कतिपय बार करने से कुष्ठविकार शांत होता है। कुष्ठचिकित्सक बोल के स्थान में तुलसी ग्रहण करते हैं। (च० द०)

कुष्ठान्तक-पर्वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शु० पारद १ पल, शु० गन्धक १ कर्ष, ताम्र भस्म १ कर्ष, वत्सनाभ १ पल, एकत्र चूर्ण करें। पुनः सर्वतुल्य शु० गन्धक घृताक्त लोह की कड़ाही में मन्दाग्नि से पकाएँ। जब द्रवीभूत हो जाए, कदलीपत्रपर ढालकर ऊपर से दूसरा कदलीपत्र स्थापनकर पपड़ी बना लें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक तथा १ निष्क प्रमाण वकुची के ३ मा० चूर्ण के साथ प्रातः सायं सेवन करने से गजचर्मकुष्ठ का नाश होता है। (रस २० सं० २० अ०) ।

कुष्ठान्तक-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त योग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग ग्रहणकर निर्गुण्डी और गुडूची के रस में १२ घंटा मर्दनकर १ दिन लवणयन्त्र में पाचन करें। शीतल हो जाने पर निकालें और इसका चूर्णकर, वकुची, त्रिफला और भाँगरा समानभाग में ग्रहणकर, चूर्णनिर्माणकर एक पलाश, खदिरकाथ तथा गोमूत्रयुक्त लोहपात्र में पाक करें। १२ घंटा के पश्चात् पाक प्रस्तुत हो जाने पर १-१ निष्क की गोलियाँ बनाए। इसका जल के साथ भक्षण करने से और इसको कटुतेल में मिश्रितकर धूप में सिद्ध-कर मर्दन करने से कुष्ठरोग का नाश होता है। (रस० २०) ।

कुष्ठारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विट्खदिर (Acasia farnesiana) । (२) नि० व० ८ । (३) परोरा, पटोल । (४) नि० व० ३ । (५) गन्धक । (६) नि० व० १३ । (७) खदिर, कत्था वा खैर का पेड़ । (Acasia-catechu) । (८) आदित्यपत्र क्षुप, आदित्यभक्ता (सूरजमुखी) । (९) नि० व० ४ । (१०) भ्रमरारि नामक पुष्पवृक्ष । यह मालव देश में प्रसिद्ध है। (रा० नि० व० १०) ।

कुष्ठारि-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठमें प्रयुक्त योग ।

द्रव्य तथा निर्माणविधि—कटूमर चूर्ण, ब्रह्मदण्डी, (त्रिबला-बला, अतिबला, नागबला) एकत्र चूर्णकर मधु-मिश्रितकर सेवन करने से वातरक्त नष्ट होता है। ३ टंक की मात्रा में सेवन करने से रक्त गिरता हुआ, मांस गलता हुआ, प्रयुक्त गलित तथा कृमि युक्त सम्पूर्ण कुष्ठ का नाश होता है। (२० सा० सं०) ।

कुष्ठिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मांसग्रन्थि । (२) घोड़े का अधो-मध्य भाग । 'किं तत्रैव मध्यस्थमधोभागे च कुष्ठिकम्' (ज० द० २ अ०) । (३) कुष्ठरोगी ।

कुष्ठी—वि० [सं० त्रि०] कुष्ठरोगग्रस्त व्यक्ति । कोढ़ी ।

कुष्ठेभ कण्ठीरव रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग । द्रव्य तथा निर्माणविधि—शु० पारद, शु० गन्धक १-१ भाग, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म २-२ भा०, शु० गुग्गुलु, त्रिफला, थूहर का दूध, कुचिला, शिला-जीत, तज, पमाड़ बीज १-१ भा०, एकत्र चूर्ण करें। पुनः सर्वतुल्य विशुद्ध मधु मिश्रित करें। मात्रा—२ से ६ मा० तक । उपयोग—मधु के साथ वा घृत और हरीतकी का चूर्ण मिश्रितकर सेवन करें और दुग्धपान करें। जल के साथ सेवनकर हरीतकीचूर्ण सेवन करें। इसके सेवन से संताप हो तो १ तो० बला चूर्ण सेवन करें। इस प्रकार सेवन से बीभत्स गलित कुष्ठ का नाश होता है। (२० कुष्ठ चि०) ।

कुष्ठ केशरी रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ में प्रयुक्त योग । कुष्ठ गजकेशरी रस ।

कुष्णीष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरीसृप ज्वर । (गण० वै०) ।

कुष्मल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छेदन कर्म, काटना, भंग करना । (उणा०) ।

कुष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोहड़ा (Benin casa कुष्माण्डक—संज्ञा पुं० ["] cerefera) । (२) 'कुम्हड़ा' ।

(२) जरायु । गर्भस्थली ।

कुष्माण्डक-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अपस्मार में प्रयुक्त योग । द्रव्य तथा निर्माणविधि—पेठा (भतुआ) स्वरस ७२ श०, घृत ४ श०, यष्टीमधु (मुलहठी) कल्क १ श०, एकत्र पाकसिद्धकर सेवन करने से अपस्मार नष्ट होता है। (च० द०; भेष०; यो० रत्नाकर) ।

कुष्माण्ड-कल्याण-गुड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुपक पेठा की गूदी १०० पल ग्रहणकर ताम्रपात्र में ३ प्रस्थ गोघृत युक्त पाककरें। पुनः पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, धनियाँ वायविडंग, सोंठ, मरिच, त्रिफला, अजमोद, इन्द्रजौ, जीरा तथा सेंधानमक प्रत्येक ४-४ तोला, निशोथ चूर्ण ३२ तोला, तिलवैल ३२ तोला, गुड २०० तोला, आमलास्वरस ३ प्रस्थ एकत्र मिश्रितकर

कुष्माण्ड शिफा

यथाविधि पाक करें। जब घृत पृथक् होकर पाक सिद्ध हो जाय, सुरक्षित रखें। मात्रा—वेर प्रमाण।

गुण—इसे अग्निबल के अनुसार सेवन करने से—समस्त प्रकार की संग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, भगंदर, ज्वर, आनाह, हृद्रोग, गुल्म, उदररोग, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, २० प्रकार के प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, दद्रु, राज्यक्षमा, हलीमक, वातपित्त तथा समस्त कफज रोग नष्ट होते हैं। धातुक्षीण, वयक्षीण, क्षय तथा अत्यन्त स्त्रीप्रसंग द्वारा क्षीण व्यक्तियों के लिए यह वीर्य-उत्पादक, बलकारक, पुष्टिवर्धक तथा अवस्थास्थापक औषध है। (भा० ग्रहणी—चि० म० ख०)।

कुष्माण्ड शिफा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्ड मूल, पेठा की जड़। (वै० निघ० २ कास० चि०)।

कुष्माण्डक वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्डकृत वटी।

यह रक्तपित्तनाशक तथा लघुपाकी है। (भा०)।

कुष्माण्ड खण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्तपित्त में प्रयुक्त कुष्माण्ड योग। द्रव्य तथा निर्माणविधि—निष्कलीकृत कुष्माण्ड (पेठा) १०० पल, गोघृत ४ श०, कुष्माण्ड जल १६ श०, शर्करा १०० पल, पाकसिद्ध हो जानेपर इसमें पिप्पली चूर्ण १ प०, शुण्ठी चूर्ण १ प०, जीरक, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, मरिच तथा धनिया प्रत्येक ४ तोला का चूर्ण और शुद्ध मधु २ श० मिश्रित करें। (सा० कौ०, वा० चि० अ०; भैष० २०)।

गुण—इसके सेवन से—रक्तपित्त, क्षतक्षय, कास, स्वास, तिमिर, छर्दि, वृष्णा तथा ज्वर का नाश होता है।

कुष्माण्ड गुड़-कल्याण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'कुष्माण्ड कल्याण गुड़'।

कुष्माण्ड-ग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूतग्रहविशेष।

लक्षण—कुष्माण्डग्रहीत व्यक्ति अत्यन्त प्रलाप करता है, मुखमण्डल कृष्णाभ हो जाता है, शनैः-शनैः रक्त-रक्तकर चलता है, अण्डकोष में शोथ होकर लटक जाता है।

चिकित्सा—शिव की उपासना तथा उनके गणों के पूजन से भूतग्रह शान्त होते हैं। (अ० ह० उ० ४ अ०)।

कुष्माण्ड-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'कुष्माण्डक-घृत'।

कुष्माण्डतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्माण्ड (पेठा) बीजोत्पन्न तैल।

गुण—शीतल, गुष्पाकी, कफकारक, तथा वात-पित्त-नाशक है। (वा० तैल-व०)।

कुष्माण्ड-नाडिका (डी)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्ड-नाल। पेठा की डंटी। (वं०) कुमडारडॉटा। गुण—गुष्पाकी, शर्करा तथा अस्मरीनाशक है। (राज० ३ प०)।

कुष्माण्ड-वटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठमाण्डकृतवटक (बड़ी)।

निर्माण-विधि—कुम्हड़ा की गूदी निचोड़कर रस पृथक् कर दें। पुनः इसमें माष (उड़द) चूर्ण, धनियाँ, हल्दी, तिल, सेंधालवण उचित प्रमाण में मिश्रित कर बरी (कुँहड़ौड़ी) निर्माणकर धूप में शुष्क कर लें। गुण—इसको तिलतैल में भोजितकर सेवन करने से वातज रोग शान्त होते हैं और यह अति रुचिकारक है (वै० निघ०)।

कुष्माण्ड बीज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुम्हड़ा के बीज। पेठा के बीज। दे० 'कुम्हड़ा'।

कुष्माण्ड-शालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] धान्यभेद। शाली धान का एक प्रकार। गुण—मधुर, गुष्पाकी, सुगन्ध-युक्त, पीतवर्ण, दुर्ज्वर, स्थूल चावल का और कोमल होता है। (रा० नि० व० १६)।

कुष्माण्ड-सुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्माण्डकृत मद्य। कुम्हणे की शराब। गुण—गुरु, धातुवर्धक, अग्निमांश-कारक, दृष्टिबलदायक तथा वृष्य है। (वै० निघ०)।

कुष्माण्ड-क्षार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्माणविधि—पेठा ग्रहणकर छोटे-छोटे खण्ड कर लें। पुनः धूप में शुष्ककर उन्हें हाँड़ी में भरकर ऊपर से कपड़मिट्टी करें और चूल्हापर चढ़ाकर नीचे मन्दान्नि से पकायें। जब कृष्ण-वर्ण अंगारवत् हो जाय तब निकालकर चूर्ण करें। गुण तथा उपयोग—१२ रत्ती उक्त चूर्ण और १२ रत्ती शुण्ठीचूर्ण मिश्रितकर जल के साथ सेवन करने से असाध्य शूल का नाश होता है। अत्यन्त शूलपीडित व्यक्तियों को इससे लाभ उठाना उचित है। (भा० म० ख० शूल० चि०)।

कुष्माण्डानाडी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेठा की डंटी। दे० 'कुष्माण्ड नाडिका'।

कुष्माण्डि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्कोटकी। काँकरोल। (२) कुम्हड़ा, कुष्माण्डलता। विलायती कुम्हड़ा। (रा० नि० व० ७)।

कुष्माण्डोष्माद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूतोष्माद भेद। (वा० उ० ४ अ०)। दे० 'कुष्माण्ड ग्रह'।

कुस—संज्ञा पुं० दे० 'कुश'।

कुस—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कुसू। कुसू भेद। इसका फल लबलावफलतुल्य होता है। (२) लबलाव (इक्षपेचा) का वह भेद जिसमें फल का अभाव होता है। इसकी पत्तियाँ क्षुद्र एवं झंझरीदार होती हैं और शाखाएँ पतली होती हैं।

उपयोग—इसका रस निचोड़कर नस्य ग्रहण करने से पूतिनस्य का नाश होता है। पत्र एवं तना का स्वरस पान करने से अनार्तवादोष का नाश होता है तथा इसकी फलवर्त्ति निर्माणकर योनि में स्थापन करने से गर्भस्राव हो जाता है। स्तीला नामक कीटदंश में सिरका के साथ इसका रस मिश्रितकर पान करनेसे उसका विष विनष्ट होता है। (मु० आ०)। मखजनुलअद्विया के अनुसार इसका प्रतिविष शाहबलूत है।

कुसुमः—[अ०] निशोथ ।

कुसुमल—[अ०] (१) विच्छू । (२) भेड़िये का वच्चा ।

कुसर—संज्ञा पुं० [देश०] पानीवेल व मूसल नामक लता की जड़ जो दवा के काम में आती है ।

कुसरि—[कों०] गृह कीकर । विटखदिर ।

कुसरुर—

कुसली—संज्ञा पुं० [हिं० कसैली] आमकी गुठली ।

कुसदा—संज्ञा पुं० [सं० कुश] जड़हन का एक रोग जिसमें उसके पत्ते पीले पड़ जाते हैं और उनका रंग खैर के ऐसा लाल हो जाता है । खैरा ।

कुसवारी—संज्ञा पुं० [सं० कोशकार] रेशम का जंगली कीड़ा जो वेर और पियाशाल आदि पेड़ों पर कोया बनाकर उसके भीतर रहता है । कुसारी । किरिमपिल्ला । दे० 'रेशम' ।

कुसा—संज्ञा पुं० [सं० कुश] डाभ । दर्भ । दे० 'कुश' ।

कुसादा—[यू०] सुहागा । टंकण ।

कुसादीस्मा—[यू०] चिरायता ।

कुसाबक—[अ०] सफरागून नाम का पक्षी ।

कुसावास, कुसामूली, कुसामूलीस, कुसामूस—[यू०] दाल-चीनी

कुसार—[म०] (१) घोगर (*Garuga pinnata*) । (२) मधुमाधवी । नवमल्लिका । कुन्दी । (*Jasminum arborecens*) ।

कुसारस—[यू०] कबर । करील भेद ।

कुसाररङ्गिनी—[वम्ब०] कुन्दी । कुन्दका छोटा भेद ।

कुसारा—[सुर०] ऊदबलसाँ ।

कुसारी—[दे०] 'कुन्द' ।

कुसारी, कुसियारी—संज्ञा स्त्री० रेशम का कोया । दे० "कुसवारी"

कुसावलेह—संज्ञा पुं० [सं० कुशावलेह] दे० "कुशावलेह" ।

कुसास्—[अ०] खुल्लर भेद ।

कुसाह्यमा—[यू०] हलियून ।

कुसिआर—संज्ञा पुं० [देश०] पौड़ा (ढा) । दे० "कुसियार" ।

कुसिम्ब—[वम्ब०] एक अत्यन्त अम्लफल । कोसम । को-साम्प्र । इसकी चटनी बनाई जाती है ।

कुसिम्बा (म्बी)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रक्तसिम्बी । लालसेम । कुसिम्बी लता । (रा० नि० व० १६) । वै० निघ० २ भ० अर्श चि०) ।

कुसियार—संज्ञा पुं० [सं० कोशकार] एक प्रकार की ईख जो मोटी, अत्यन्त रसपूर्ण, सफेद और नरम होती है । कुसिआर । धून । पौड़ा (ढा) । (सं०) पौण्ड्रक ।

कुसियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशकारी] (१) जन्तुविशेष ।

पर्याय—(सं०) कोशकारी । कोष्ठागारिका । कोष्ठागारी । कोषकार । (हिं०) कुसारी । कुसवारी । रेशम का कीड़ा ।

परिचय—एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः वेर वा रेंड के वृक्षों पर होता है और उनके पत्तों को खाता है । इसका रंग चमकीला देखने में अत्यन्त सुन्दर श्यामवर्ण का वा श्यामाभ रक्तवर्ण का होता है । और जब बढ़कर बड़ा हो जाता है तब प्रायः आधी अंगुली के बराबर हो जाता है और एक अत्यन्त दृढ़ गृह का निर्माण करता है जो लम्बोतरा गोल कबूतर के अंडे के बराबर होता है । उसी को कोआ, कोशा तथा कोसा भी कहते हैं ।

जब यह घर बनाकर बहुत बड़ा हो जाता है तब उसको काटकर बाहर निकलकर उड़ जाता है । इसके व्यवसायी उसको फाड़कर निकलने के पूर्व ही उष्ण जल में डालकर पकाते हैं और शुष्ककर रख लेते हैं । इसके पश्चात् उसमें से टसर (रेशम) निकालकर सूत कातकर कौशेय वस्त्रादि निर्माण करते हैं । भाषा में रेशमी वस्त्र को टसर भी कहते हैं । रेशम का सूत कटी वा कटी हुई त्वचा को सीवन लगाने में अत्यन्त उपयोगी होता है । उपयोग—जलाया हुआ रेशम रुधिरस्राव बन्द करने के निमित्त क्षत स्थान पर लगाया जाता है ।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—टसर उष्ण एवं रूक्ष है । वस्त्र द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है ।

कीड़ा—इसके कीड़े को बन्दा सहित दग्धकर मधु मिश्रित कर चटाने से बालापस्मार (बालकों की मृगी तथा जिसको अरबी में उम्मुस्सिब्यान कहते हैं) का नाश होता है और उक्त विधि से चटाने से डब्बा (बाल-श्वास जिसको भाषा में पलई चलना कहते हैं) लाभ होता है ।

(२) किसारी नाम का एक कीट जो चमकदार कृष्ण-वर्ण का होता है । इसके कमर पर लम्बाई के रख लम्बी-लम्बी रेखाएँ होती हैं । पैर संख्या में ६ होते हैं । यह पंखविहीन होता है । कीड़े की लम्बाई प्रायः चौथाई इंच होती है । इसका शरीर चपटा होता है और झींगुर के समान बड़ी-बड़ी मूँछें होती हैं । शिर से लेकर आधी कमर तक बिन्दु और लहरदार रेखाएँ होती हैं जिनका रंग सफेद होता है । यह कीड़ा पूँछ की ओर से चौड़ा होता है और शिर की ओर क्रमशः पतला होता है । इसका औषधीय प्रयोग होता है वा नहीं यह अज्ञात है । मुहीतआजम में इसका वर्णन उक्त प्रकार से किया गया है ।

कुसीकून—[यू०] जंगली चमेली ।

कुसुम्ब—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम्बक] एक बड़ा वृक्ष जो भारत, ब्रह्मा और चीन में होता है । यह कुसुम या बरें से भिन्न वनस्पति है । कुसुम्बिया ।

कुसुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] (१) कुसुम । बरें । अग्नि-शिखा । (२) केसर । कुमकुम ।

कुसुम्भा

कुसुम्भा—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] (१) कुसुम का रंग।
(२) अफीम और भाँग के योग से बना हुआ एक मादक द्रव्य।

कुसुन—[फा०] मटर। कलाय। खुस्क बाकला।

कुसुम—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ, कुसुम्बक] (१) कुसुंब।
(२) एक पौधा जो पाँच-छः फुट ऊँचा होता है और रबी की फसल के साथ खेतों में बीजों या फलों के लिये बोया जाता है।

पर्या०—(वृक्ष)—(सं०) कुसुम्भः, कुक्कुटशिखम्, वह्निशिखम्, वस्त्ररञ्जनम्; (हिं०) कुसुम, कसूम, वरें; (बं०) कुसुम; (गु०) कसुंबो; (अ०) मअस्फर; (म०) करडई; (कना०) कुसुम्बे; (अं०) वाइल्ड सेफन Wild saffron, सफफलावर Safflower, पेरट सीड Parrot seed; (ले०) कार्थेमस टिक्टोरियस (Carthamus Tinctorius, Linn.); (फ्रा०) (Safranbatard, Graine de perroquet)।

वन्य कुसुम्भः—C. Oxycantha, Bieb; दरखतेकुतुम्ब वरीं, उस्फुरवरीं—अ०। रायकुसुम्भ, काल कुसुम्भ—(हिं०)।

पुष्प—(सं०) कुसुम्भपुष्प; (हिं०) कुसुम का फूल, वरें का फूल, कुसुम, कसूम; (बं०) कुसुम फूल; (अ०) इहरीज (मखन), उस्फुर, तूरान, इहरीस, खरीज (मुहीत); (फ्रा०) गुलकाफिश; गुलखनक, रंगे जअफरान (मखन), वहरम (मुत्तह्युल अरब), वहरमान, काबीश; काफ्रीश; गुजलक? (मुहीत), गुलकाजीर; गुल काजीर: (खजाइन); गुल उस्फुर; (देलमी) काजीर: (मुहीत); (यू०) कञ्जूश (मुहीत); (पं०) कुसुम्भा।

बीज—(सं०) कुसुम्भबीज; (हिं०) कड़, कड़ के बीज, कुसुम के बीज, कर, कुसुंब का बीज (मखन), करं करड़; (द०) कुसुम के बीज; (बं०) कुसुम बीचि; (अ०) कुतुम्, कितुम्, हब्बुल् उस्फुर, हब्बुल् कुतुम्, बज्जुल् इहरीस; (फा०) खसकदान; तुखम काफिश; तुखम काश्फ; तुखम काजीर; तुखम उस्फुर, काजीर: (सिरि०); कस्नी;—(गीलान) तुखम काजर; तुखम काजीर; (तु०) कंतावरस; (यू०) अत्रकतूस; (ता०) कुशुम्बा विरे; (ते०) कुसुंबा वित्तुल, कुसुंबवित्तुल; (कना०) कुसुम्बि-बीजा; (बर०) सुपाड, सुबाड।

संज्ञा-विवरण—दाऊद अंताकी के तजकिरे में, गीलानी की शरह कानून, बहर्लुजवाहर, मखन और मुहीत में कुसुम के फूल के अर्थ में इसकी अरबी संज्ञा इहरीज, किंतु बुरहानकातिज में इहरीस लिखी है। अत्रकतूस यूनानी संज्ञा प्रायः कड़ के अर्थ में प्रयुक्त होती है। किंतु गीलानी उसे वन्यकुसुम्भबीज बतलाते हैं। काजीर: फ़ारसी संज्ञा प्रायः कड़ वा कुसुम्भ बीज के अर्थ में प्रयुक्त होती है। पर कोई कसूम वृक्ष और कोई कसूम अर्थात् कुसुम्भ पुष्प के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। मखन

लिखित इसकी यूनानी संज्ञा अत्रकतूस का शुद्ध यूनानी रूप संभवतः अट्रकटुलिस (atraktulis) है। मखन में अत्रिडुलिस को वन्यकुसुम्भबीज की यूनानी संज्ञा लिखा है। मखन के अनुसार इसकी दीसकूरीदूसोक्त, यूनानी संज्ञा फनीफुस और मुहीत के अनुसार फीनकुस है। किंतु उक्त दोनों ही अशुद्ध हैं। शुद्ध कनीकुस होना चाहिए। क्योंकि दीसकूरीदूस, सावफरिस्तुस और अरस्तू के ग्रंथों में 'क्नीकोस' (knikos) नाम से इसका उल्लेख मिलता है और इसी से इसकी रूमी संज्ञा क्नेकोस (Cnecos) व्युत्पन्न है। मखन के अनुसार जंगली कड़ की दीसकूरीदूस लिखित यूनानी संज्ञा फनीफुस अगरियून है जिसका अर्थ उसमें अस्फुर (उस्फुर) बरीं किया गया है। किंतु वह शुद्ध कनीकुस अगरियून (knikos agrion) है, जिसके लिए फीकन अगरियून, फीफन अगरियून और फनीकन अगरियून प्रभृति अशुद्ध संज्ञाएँ प्रायः दी जाती हैं। इख्तियारात के लेखक कुतुम्ब वरीं को 'तरीफान' कहते हैं। किंतु मतांतर से यह उसके बीज का नाम है, न कि पौधे का। शैखुरईस उसे इससे भिन्न मानते हैं। अस्तु, उसका "तरीफान" शब्द में पृथक् वर्णन किया गया है। मखन में इसकी रूमी संज्ञा कन्तादूस और मुहीत में क्रीतादूस लिखी है, जो शुद्ध कन्तावरस है। मुहीत लिखित इसकी रूमी संज्ञा कन्तावरस को डीमक ने तुरकी लिखा है। मुहीत में इसकी अन्य यूनानी संज्ञाएँ फीकन, फीनक, कस्तूखन और कस्फस लिखी हैं। मुहीत में लिखी हुई इसकी संस्कृत संज्ञा 'हिमा' जिसका अर्थ उक्त ग्रंथ में सुवर्णपुष्पी लिखा है, किसी भी आयुर्वेदीय निघंटु में उक्त अर्थ में देखने में नहीं आई। मखन में इहरीज और मुहीत में उस्फुर और कुसुम्भ शब्द में इसके फूल का और उक्त दोनों ही में कुतुम्ब शब्द में इसके बीज का वर्णन आया है और जंगली कड़ का वर्णन मखन में कुतुम्बवरीं तथा मुहीत में उस्फुरवरीं शब्द में आया है।

सहदेव्यादि कुल

(Family. Compositae)।

उत्पत्तिस्थान—यह रबी की फसल में प्रायः सर्वत्र होता है।

वर्णन—कसूम का पौधा कँटीला और दो हाथ का होता है। पत्ते लम्बे और ऊपर की ओर नीचे से अधिक चौड़े और तने एवं शाखा के जोड़ पर तथा शाखा फूटने की जगह पर और शाखा पर निकलते हैं। पत्रप्रांत दंतित वा बहुशः क्षुद्र (कँटीले अनीदार) कंगूरों से व्याप्त होता है। तना और शाखाएँ छोटे और अपरिपक्व पौधे की हरी और पक्क एवं पुष्ट पौधे की सफेद (और मसृण) हो जाती हैं। फूल कँटीले और रक्तवर्ण के होते हैं। फलकोष (कँटीला और गावदुमी तथा) फूलों के नीचे प्रगट होता

है। इसके भीतर बीज भरे होते हैं, जिन्हें कड़वा कुतुम्ब कहते हैं। प्रत्येक कोष में ७-८ बीज होते हैं। बीज आकृति में सनोवर की तरह अर्थात् शंकाकार, कुछ-कुछ चौड़े और चौपल एवं चिकने होते हैं। बीज के ऊपर का छिलका और भीतर की मींगी सफेद होती है। जितना पुराने पड़ते जाते हैं उतना ही छिलका स्याही मायल और गिरी जरदी-मायल होती जाती है और अंत में ये काले पड़ जाते हैं। बुस्तानी, सफेद, नया, भारी और मोटा दाना उत्तम होता है। उपर्युक्त वर्णन बुस्तानी वा ग्राम्य कुसुम्भ का है। मात्र कड़वा कुतुम्ब (और कुसुम) शब्द से (क्रमशः) इसी के बीज (और पुष्प) अभिप्रेत होते हैं। इहरीज वा कुसुम्भ पुष्प से इसका पृथक् वर्णन करने का कारण यह है कि यह परम गुणकारी एवं तदपेक्षया अत्यंत श्रेष्ठ औषधि है। (मखन)

यूनानी निबन्धों में बर्री (वन्य) और बुस्तानी (ग्राम्य) भेद से यह दो प्रकार का वर्णित हुआ है। किसी-किसी ने कण्टक और निष्कण्टक इसके ऐसे दो भेद स्वीकार किए हैं। इनके मत से कण्टकी कुसुम के फूलों से जो रंग निकलता है वह हलका होता है। परन्तु अकण्टकी कुसुम के फूलों से प्राप्त रंग सर्वोत्तम होता है। कसूम को शक्ति तीन वर्ष तक रहती है। इसके बर्री और बुस्तानी भेदों में से बुस्तानी का तो ऊपर वर्णन किया गया है। आगे बर्री अर्थात् वन्य कुसुम्भ का वर्णन किया जा रहा है।

जंगली कुसुम का पौधा ग्राम्य कुसुम के पौधे से ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ भी बुस्तानी वा ग्राम्य कुसुम की पत्तियों से बड़ी होती हैं और शाखामूल से निकलती हैं। शेष शाखा पत्रशून्य और सफेद होती है! (काँटे जंगली के पेड़ में भी होते हैं) शाखामूल में पाँच काँटे होते हैं। फूल पीला और बीज बुस्तानी के बीज की तरह होता है। (मखन)

नोट—जिस कपड़े को इसके रंग में लाल रंगते हैं, वह मञ्जुशकर कहलाता है। अस्तु इसके फूल को गुल्मञ्जुशकर और बीज को हब्बुल्मञ्जुशकर या बज्जुल्मञ्जुशकर कहना प्रमादपूर्ण है। कसूम को रंगने के लिए टपकाते हैं तो पहला पीला पानी 'पियन' कहलाता है। इसके उपरांत जब लाल रंग का पानी परिस्रावित होता है, तब उसको 'शहाब' कहते हैं। शीराजनिवासी पियन को 'अरुस' और शहाब को 'दामाद' कहते हैं।

औषधार्थ व्यवहार—पुष्प, बीज, पत्र आदि।

रासायनिक संगठन—

इतिहास—भारतीयों का कुसुमविषयक ज्ञान अत्यंत प्राचीन है। अस्तु, आयुर्वेद के चरक, सुश्रुतादि प्राचीन से प्राचीन ग्रंथों में कुसुम नाम से इसका विशद वर्णन मिलता है। यूनानी विद्वानों यथा सावफरिस्तुस, अरस्तू और

दीसकूरीदूस प्रभृति ने कनीकोस (knikos) नाम से इसका उल्लेख किया है। वे पनीर बनाने के लिये दूध में रेनेट (Rennet) की भाँति इसकी पत्तियों का जामन देते थे। प्लाइनी ने कनेकोस (Cnecos) के नाम से इसका उल्लेख किया है। मुसलमान चिकित्सक भी इसके पुष्प और बीजादि का भूरि-भूरि प्रयोग करते हैं। अस्तु, बुरहान, इख्तियारात, शैखुरईस आदि के ग्रंथों में तथा मखन और मुहीत प्रभृति सभी ग्रंथों में इसका विशद वर्णन मिलता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—वातकारक, रूक्ष, विदाही, कटुक है तथा रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र और कफनाशक है।

कुसुम शाक—मधुर, मूत्रदोषघ्न, दृष्टिप्रसादक, रुचिकारक और अग्निवर्धक है। (रा० नि० व० ७)।

कुसुम पत्र—मधुर, नेत्ररोगनाशक, कटु, अग्निदीपक, अति रुचिकर एवं गुष्पाकी है तथा, सर, पित्तकारक, अम्लपाकी, गुदरोगकारक, कफ, विड-मूत्रदोषघ्न तथा नेत्रदोषनाशक है। (वै० निघ०)। किंचित् अम्ल तथा इसका क्षार अग्निमान्द्य में प्रशस्त है। यह भेदक, रूक्ष, मधुर, कषाय तथा अति वातल है। (अत्रि० १६ अ०)।

कुसुम पुष्प—सुस्वादु, भेदक, त्रिदोषघ्न, रूक्ष, उष्ण, पित्तकारक, केशरञ्जक, लघुपाकी तथा कफनाशक है ऐसा मनीषियों का कथन है। (वै० निघ०)।

कुसुम बीज—कटुपाकी तथा शुक्रदृष्टिनाशक है। (वा० पुष्प व०)। मधुर, स्निग्ध, रक्तपित्तकफघ्न, कषाय, शीतल, गुष्पाकी, वृष्य एवं वातघ्न है। (भा०)।

कुसुम (बीजोत्थ) तैल—अम्लपाकी, स्वादु, उष्ण, गुष्पाकी एवं विदाही है। नेत्रोंको हितकर, बलवर्धक, रक्तपित्त तथा कफनाशक है। (वै० निघ०)। कृमिघ्न, बल तथा तेजवर्धक, राजयक्ष्मानाशक, त्रिदोषकारक, मलघ्न, पुष्टिनाशक, बलक्षयकारक और दृष्टिकण्डूजनक है। (रा० नि० व० १५)। कुसुम्भ तैल उष्ण, विपाक में कटु, गुष्पाकी, विदाहकारक विशेषकर सर्वदोषप्रकोपक है। (अत्रि० १४ अ०)। अम्लपाकी, उष्ण, गुष्पाकी तथा विदाही है। नेत्रोंको हानिप्रद, बलवर्धक तथा रक्तपित्त, तृषा और कफकारक है। (भा० पू० तैल-व०)।

कसूम, इहरीज या उस्फुर

प्रकृति—ग्राम्य वा बुस्तानी—शैव के अनुसार प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। किसी-किसी ने इसका उलटा लिखा है। साहबमिन्हाज के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। वन्यकुसुम द्वितीय कक्षामें उष्ण और तृतीय में रूक्ष है। मतांतर से गीलानी के मत से तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। अहितकर—कसूम बाष्पोत्पादक, शिरोशूलजनक और आमाशय तथा

प्लीहा को हानिकर है और शरीर की त्वचा को खुरदरा करता है। निवारण—शरीर की कर्कशता के सिवाय अन्य दोषों के निवारणार्थं मधु और शरीर की कर्कशता के लिये रोगान वनफ़शा इसका निवारण है। मतांतर से दही और सेंधी भी निवारण है। प्रतिनिधि—व्यंग और नीलिकादि दूर करने के लिये जौ का आटा और सिरका इसके प्रतिनिधि हैं। ग्रह—मंगल (प्रकृति और वर्ण की दृष्टि से)। प्रधान कर्म—यकृत को बलप्रद, सांद्रीभूत रक्त का द्रावक और मूत्ररोधनिवारक है। मात्रा—४॥ मा० (मखन और मुहीत)। परंतु मुहीत के दूसरे भाग और छठवें अध्याय से १ तो० मात्रा सिद्ध होता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—कसूम दोषपरिपाककारी (मुन्जिज), मल एवं शोथदि विलीनकर्ता (मुहल्लिल), संग्राहीगुणविशिष्ट तथा निद्राकारक है एवं यकृत को बलप्रदान करता है और सांद्रीभूत रक्त को द्रवीभूत करता है। इसको मेंहदी के पत्तों के साथ (शिगुओं के) पाँव के तलवों और हाथ की हथेलियों पर लगाने से चेचक के दाने नहीं निकलते। यदि पूर्व से लगायें, तो कदापि दाने न निकलें और यदि उनके निकलने के बाद लगायें तो उपसर्ग कम हो जायें। इसे शहद में मिलाकर लगाने से ददु नष्ट होता है। दहीमें मिलाकर बस्तिके ऊपर लेप करने से मूत्रावरोध मिटता है। यह परीक्षित है। इसे शहद में मिलाकर लगाने से नीलिका (बहक), किलास (वर्स) और बालकों का मुखपाक आराम होता है। शरीरगत खर्ज, उष्ण शोथ, वीसर्प (बादमुख) और यकृत की सूजन में इसे सिरके में मिलाकर लेप करने से उपकार होता है। (मखन)। इसका एक विशेष गुण यह है कि यदि मांस पकाते समय इसे भी उसमें मिला दें, तो वह शीघ्र गल जाता है और स्वादिष्ट हो जाता है। (मुहीत)। इसे शहद में मिलाकर लेप करने से अर्श और खर्ज आराम होते हैं। इसमें रंगे हुए कपड़े की सुगंधि से कामोद्दीपन होता है। यह वाजीकारक है और शरीर को कांति प्रदान करती और उसे अरुण बनाती है। (म०मु०)। इसे बटने में मिलाने से चेहरे का रंग निखर आता है और अरुण होता है। (बु०मु०)

खजाइन में यह विशेष लिखा है—यह रक्तशोधक है। एक तोला पानी में पीसकर और मिश्री मिलाकर दो-एक सप्ताह तक निरंतर पीने से वृक्क और वस्तिस्थ अश्मरी में उपकार होता है और मलावरोध दूर होता है।

वैद्य कहते हैं—(कुसुम) यह मधुर, अत्यंत उष्ण एवं

रूक्ष, लघु, पित्तकारक, कफ एवं रक्तविकारनाशक और कष्टमूत्र में लाभकारी है। (ता० श०)।

सूखे कसूम की ४ मा० की फंकी लेने से पाण्डु नाश होता है। इसको औटाकर पिलाने से पेशाब बढ़ता है। ववा हवा निकाला और चेचक इत्यादि को दोबारा बाहर निकालने के लिये कसूम को औटाकर पिलाना चाहिये! ३ मासे कसूम को पीसकर दही के साथ खाने से अर्श नाश होता है। (खजाइन)।

जंगली कुसुम वा उस्फुरवरी

इसकी पत्ती और फल की ४॥ मा० की मात्रा में लेकर २। मा० कालीमिर्च और मद्य के साथ पीने से वृश्चिकदंश में उपकार होता है। कहते हैं कि यदि वृश्चिकदंष्ट-पुष्प इसके पत्र एवं फल को मुख में रखले तो, जबतक वह मुख में रहेगा विष का प्रभाव कदापि न होगा। परंतु धूक देने पर पुनः वेदना अनुभव होने लगेगी। (मखन)।

मुहम्मदबिनअहमद लिखते हैं कि वन्यकुसुम कंटीला पुष्प है जिसे ऊँट बहुत खाता है। यह विषों का अगद है। इस विषय में इसके समान कोई अन्य भेषज नहीं है। इसको ताजा पीसकर खाने से सर्प और कृष्णसर्पदंश में उपकार होता है। यह अभिशोषणकर्ता (मुजफ़िफ़र) है और इसमें स्वल्प उष्णता भी है। यह दूध को जमा देता है। इसके फूल पीसकर लेप करने से अग्निदग्ध और रक्तस्राव में उपकार होता है। मोम-रोगान में मिलाकर लगाने से श्रान्ति (थकान) दूर होती है। रक्त के फटन में इससे उपकार होता है। इसकी जड़ पीसकर दूध के साथ फाँकने से कामोद्दीपन होता है। शैख के अनुसार मुख में इसका लेप (लुतूख) करने से बालकों का मुखपाक आराम होता है। इसके पत्र, फल वा बीज ४॥ मा० के लगभग २। मा० कालीमिर्च के साथ पीसकर पीने से वृश्चिकदंश में उपकार होता है। किसी किसी ने मद्य के साथ इसका लेप उपकारी लिखा है। (मुहीत)।

जंगली कुसुम कफवर्द्धक है तथा कामोद्दीपन करता और क्षुधा की वृद्धि करता है। (खजाइन)।

कुसुम बोज, कड़वा कर्तुस।

प्रकृति—रेचनीशक्ति के साथ द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में रूक्ष है। शैख के अनुसार प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षापर्यंत रूक्ष है।

स्वाद—फीका, हीकदार, चिकना और छिलके में कुछ कड़ुआहट होती है। अहितकर—आमाशय को।

निवारण—अनीसू और मधुर पदार्थ। प्रतिनिधि—हृवतुलखिजरा (बुटम का फल)। ग्रह—सूर्य। प्रधान

१. कुसुमं मधुरं रूक्षं वह्निकृद्रोचनं मतम्।

विण्मूत्रदोषशमनं कटूष्णं गुरुपित्तलम्।

कृमिहृत्वातलं कृच्छ्ररक्त पित्तकफापहम् ॥ (भावप्रकाशः)

कर्म—वातानुलोमक, उरोशोधक, वाजीकरण, शुक्रल और उदरशूलनाशक है। मात्रा—१७॥ मा० से २ तो० ११ मा० पर्यंत। इससे अधिक सेवन वर्ज्य है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—इससे रक्त स्वल्प वनता (क्ली-लुल् गिजा) है। यह पतले कफ और जले हुए दोषों का रेचनकर्ता और उनका उत्सर्गकर्ता तथा वातानुलोमनकर्ता है। १७॥ मा० कड़ को पीसकर शीरा निकालकर शर्करा वा गुड़ वा शहद मिलाकर पियें अथवा एक माशा कम तीन तोले कड़ को कूटकर १७ तोले (अर्ध रतल) पानी में पकाकर खूब मलें। फिर छानकर उसमें १ मा० कम ३ तो० गुड़ मिलाकर पियें अथवा १ मा० कम ३ तो० कड़ की छिलका उतारी हुई गिरी में कड़वे बादाम की गिरी और कुट प्रत्येक २॥ मा० और नवखन एवं अनीसू प्रत्येक ४॥ मा० सम्मिलित करें अथवा सूखे अंजीर और शहद के साथ भिगोएँ और १० मा० से २० मा० की मात्रा में सेवन करें। (यह जलीयरेचन लाता है)। अथवा उससे विधिवत् इस प्रकार हलुआ बनायें कि १ मा० कम ३ तो० कड़ की गिरी और उतना ही मिलित बादाम की गिरी, अनीसू और नवखन लेकर सहद और अंजीर के शीरे में मिलाकर चाशनी करके रख लेवें और रातको सोते समय खाएँ। उक्त सभी प्रयोग वृद्ध पुरुषों के बहुत अनुकूल हैं। इससे फाड़े हुए दूध के पानी (मांउज्जुन्न) में अप्तीमून को पोटली में बाँधकर उसमें डालें वा मलें जिसमें उसका गुण-भाग उसमें आ जाय, फिर उसे पी जावें और इसके ऊपर कोई अनुकूल शर्वत पियें, इससे मद वा विषाद (मालीखोलिया), अन्यथावातिकज्ञान (वसवास और तवहृश), हृत्स्पंदन (खफकान), कुष्ठ, शुष्क और आर्द्र खजूर और प्रायः वातव्याधियों में असीम उपकार होता है। इसी प्रकार इसके शीरे से जमाया हुआ दूध और थोड़ा सेंधानमक पीने से उसकी क्रिया प्रबल होती है। अंजीर के फांट वा शर्करा वा शहद के साथ इसका शीरा पीने से दोषों से उरोशुद्धि होता है, स्वर शुद्ध होता है, नज़ले का परिपाक होकर उसका निवारण होता है, प्रायः शीतल उरोव्याधियों का नाश होता है, शुक्र की वृद्धि होती है, कामोद्दीपन होता है, कपोल कांतिमान होते हैं, चेहरे का रंग निखर आता है और वायु का नाश और अनुलोमन होता है। मूँग (माश) और चने के शोरवे (मुज्रव्वरात) में सम्मिलित करने से यह दोषों को परिपक्व और विलीन करता और आम श्लेष्मा और जले दोषों के रेचन लाता है। ३५ मा० कड़ का शीरा शर्करा, गुड़ और शहद के साथ पीने से जलोदर एवं शोथ में उपकार होता है और थोड़े सेंधानमक के साथ उपयोग करने से उनका प्रबल उत्सर्ग करता है।

उदरशूलनिवारण के लिये लिखित विधि के अनुसार इसकी गिरी का सेवन अत्यधिक गुणकारी है एवं उदरशूल-रोगी को बहुत सात्म्य है। कफज्वर में दोषों के परिपक्व होने के उपरान्त इसके शीरे में अमलतास घोलकर पिलाने से बहुत उपकार होता है। यह उन भेषजों में से है जो समग्र दोषों को सांद्रीभूत करते और द्रवीभूत वा पतले दोषों को प्रगाढ़ीभूत वा बस्ता (पिण्डीभूत) करते हैं। इसलिये इसको दूध के ऊपर न खाना चाहिये। क्योंकि दूध को आमाशय में जमा देता है। यदि इसे दूध में डालना हो तो उचित यह है कि ३४ माशे (एक रतल) दूध में ३५ माशे कड़ डालें और उसमें से १७ तोले (अर्ध रतल) पियें, जिसमें उसका प्रभाव हो। (मछजन)।

इन्जुहर के कथनानुसार कड़ को पीसकर दूध या अंगूरी सिरका अथवा खट्टे अंगूरों के पानी में मिलाने से वह जम जाते हैं। कड़ को उष्ण भेषजों के साथ खाने से कामोद्दीपन होता है तथा स्तन्य और शुक्र की वृद्धि होती है।

शैख के अनुसार कड़ स्वल्पाहार (क्लीलुल् गिजा), उरो-शोधक, स्वरशोधनकर्ता, रेचनकर्ता, जलीय द्रवों का रेचन-कर्ता, दोषों के सहित कफ का उत्सर्गकर्ता तथा वाजीकरण है और उदरशूल में लाभकारी है। गीलानी के अनुसार इसको पीसकर पीने से आमाशय में जमा हुआ दूध फट (हल हो) जाता है तथा यह दुष्ट प्रगाढ़ीभूत दोषों के रेचन लाता है। कड़ की गिरी कुछ दिनों तक निरंतर प्रतिदिन ५॥ मा० पीसकर १ तो० १॥ मा० शर्करा मिलाकर खाने से पाण्डु नष्ट होता है। यदि इसके बीजों (कड़) को कूटकर एक रात-दिन गरम पानी में भिगो रखने के बाद खूब मलकर छान लें और उसमें से ६ तो० ९ मा० (३ औंक्रिया) लेकर २॥ तो० शहद के शर्वत या किसी पक्षी के शोरवे में मिलाकर पियें, तो रेचन कराए। कहते हैं कि इससे पिच्छिल द्रवीभूत कफ और जले हुए दोषों का रेचन और उत्सर्ग होता है। १७॥ मा० कड़ का शीरा निकालकर शर्करा वा लाल शक्कर वा शहद के साथ पीने से वायु का अनुमोलन होता है। इसकी गिरी समभाग बादाम की गिरी तथा अनीसू और शहद के साथ बारीक पीसकर भोजन से पूर्व खाने से विरेक आते हैं। २ मा० कम ६ तो० कड़ की गिरी पानी में पीसकर १ मा० कम ३ तो० मिश्री मिलाकर नाश्ता करने से विरेक आकर कफ का भली भाँति उत्सर्ग हो जाता है। इससे इस प्रकार मांउज्जुन्न (फाड़े हुए दूध का पानी) भी तैयार करते हैं। इसको कूटकर अप्तीमून की तरह पोटली में डालकर खूब मलते हैं। जब कड़ की गिरी का समग्र अंश अर्थात् उसका गुण-भाग निकल आता

है, तब उसे पीकर उसके ऊपर कोई अनुकूल शर्वत पी लेते हैं। इससे मालीखोलिया (मद, मनोलिया), वातिक अन्यथा ज्ञान (वसवास और तवहहश), हृत्स्पन्दन (खफ़क़ान), कुष्ठ, शुष्क एवं आर्द्र खर्जूर और प्रायः वातव्याधियों में बहुत उपकार होता है। इसमें दूध ५६ तो० और ९ मा० और कड़ २ मा० कम ६ तो० होना चाहिये। (तात्पर्य यह कि २८ तो० ४॥ मा० दूध के मुकाबिले में १ मा० कम ३ तोला कड़ से न्यून न लें और १४ तोला से कम न पियें)। कभी ऐसा करते हैं कि कड़ के साथ दूध जमाकर उसका तोड़ लेकर और थोड़ा सा सेंधानमक या काला या लाहोरी नमक पीसकर मिलाकर पी लेते हैं। इससे भी उपर्युक्त लाभ होता है। (मुहीत)।

मख़नुल मुफ़रदात के अनुसार यह नेत्रज्योतिवर्धक भी है। आमवात में घी और शर्करा के साथ कड़ की गिरी खाने से उपकार होता है। बुस्तानुलमुफ़रदात के लेखक ने इसे अपना परोक्षित लिखा है। ख़जाइनुलअद्विया के अनुसार वृश्चिकदंश में कड़ को हाथ में रखने से उसकी वेदना छक जाती है तथा कालीमिर्च के साथ पीसकर फाँक लेने से दर्द बिल्कुल जाता रहता है। इसका चूर्ण मुँह पर मलने से चेहरे का रंग साफ़ होता है।

बैद्य* कहते हैं कि कड़ सारक और विरेचनकर्ता है। इससे कफ तथा अन्य विकृत दोषों का उत्सर्ग होता है। इसके खाने से आर्तवस्राव का नियमन होता है। इसके लेप से ग्रन्थि विलीन हो जाती है। ४॥ मा० कड़ को २॥ पाव पानी में औटकर पिलाने से विरेक आते हैं। प्रसवोत्तर उक्त स्थल पर इसको पीसकर बांधने से तत्स्थानीय पित्तज सूजन और वेदना शमन होती है। विगड़े हुए फोड़े पर कड़ का प्रलेप करना चाहिये। कड़को पानी में पीसकर शीरा निकालकर उसमें थोड़ी सी ख़ाँड़ मिला कर गुनगुना करके पिलाने से उदरशूल आराम होता है। इसके साथ समभाग बबूल की छाल जलाकर चमेली के तेल में मिलाकर वालों की जड़ों में मलने से बाल लंबे और नरम होते हैं। (ख़जाइन)।

कड़ का तेल

पर्या०—कुसुम्भतैल—सं० । रोगान कुतुम्—फ़ा० ।
दहन हव्वुल् कुतुम्—अ० ।

निर्माण-क्रम—सरसों के तेल की तरह इसका भी तेल निकालते हैं। चालीस तोले कड़ में सात तोले तेल निकलता है। यह सफ़ेद और गाढ़ा वा पतले सफ़ेद घी की तरह होता है। यह निर्गन्ध किंचित् मधुर एवं फीका और विस्वाद होता है।

*कटुविपाके कटुकः (मधुरोऽनिलघ्नः) कफघ्नोविदाहि भावा-
दहितः कुसुम्भः ॥ (मु० सू० ४६ अ० ४८ श्लो०) ।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय में तर। अलसी के तेल की तरह शक्ति रखता है, किंतु उससे निर्वल है। कोई-कोई इसको गुण में एरण्डतैल की प्रतिनिधि मानते हैं, किंतु उससे भी निर्वल है। अहितकर—आमाशय को। निवारण—मधुर पदार्थ और अनीसूँ। प्रतिनिधि—बादाम वा जैतून का तेल। ग्रह—वृहस्पति। प्रधान कर्म—अंगवेदनाहर। मात्रा—४ मा० से ३ तो० तक।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह प्रायः गुणों में रोगान अंजुरः के समीप होता है, बल्कि उससे निर्वल है। उससे दूध जम जाता है और उसका जलीयांश उसके छेनेसे पृथक् भी हो जाता है। बुस्तानी का तेल विरेचन है। (मख़जन)।

यह निर्वल आमाशय को हानिप्रद हैं, सूजन उतारता है और श्वास को अतीव लाभकारी है। सात मासे कड़ का तेल स्नानागार के भीतर उस समय पीने से, जबकि पसीना आ रहा हो, श्वास में बहुत उपकार होता है। परन्तु हर सप्ताह में एक बार इसी प्रकार स्नानागार के भीतर पीना चाहिये। १०॥ मा० पीने से विरेक आने लगते हैं। गरम पानी में १४ मा० मिलाकर पीने से उदरज कृमि निस्सरित हो जाते हैं। आमाशय में शेष रहा तेल उसके मलभूत दोषों और पिच्छिलता का उत्सर्ग करता है। इसका पान और अभ्यंग शिवत्रोत्पादक है। (मुहीत)।

वायु और कफ के विकारों को नष्ट करता, अंगों को शक्ति प्रदान करता और आमाशयिक प्रदाह को शमन करता है तथा वातपित्तकफ अर्थात् त्रिदोषकारक है। (म० मु०)।

इसे मिश्री के साथ खाने से ज़ाँड़-जोड़ के दर्द को दूर करता है, वातनाडियों को शक्ति प्रदान करता है और उदरशूल में उपकारी है। देहात के लोंग घी की जगह प्रायः इसका उपयोग करते हैं। अधिक हानिकर नहीं है। (बु० मु०)।

इसके तेल में पूरी-कचौरी इत्यादि पकाकर खाते हैं। इसमें घी की सुगंधि नहीं होती, सूक्ष्म कसूम की गंध आती है। (ख़जाइन)।

*बैद्य कहते हैं कि तेलकरर स्वाद में तिक्त एवं कटु और उष्णवीर्य है। यह अकेला वातव्याधियों को नष्ट करता और बल्य है। परन्तु नेत्र की ज्योति को मंद करता, तीनों दोषों को प्रकुपित करता और आमाशय के दाह को शमन करता है। (ता० श०)।

आमवात में इसके तेल का अभ्यंग लाभकारी है। इसके

*कुसुम्भतैलं कटुकं गुरुष्णञ्च त्रिदोषघ्नम् । (रा० व०) ।

अभ्यंग से शरीर के प्रत्येक अंग की सुन्नता मिटती है । कड़, मूँगफली और तिल इन सबका एकत्र तेल निकालकर भेषज के काम में लेते हैं । इसे फोड़े-फुँसी पर लगाते हैं । (खजाइन) ।

कुसुम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पुष्पविशेष । (२) स्त्रीरज । (३) नेत्ररोग । (मे०) । (४) लौंग, लवंग ।
कुसुम चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुम के बीजों का चूर्णकर मधु के साथ सेवन करने से रक्तपित्तका नाश होता है ।

कुसुम, जंगली—संज्ञा पुं० []
जंगली कुसुम ।

कुसुमपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम पुष्प] दे० “कुसुम” ।
कुसुम फल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल । जातीफल । (वै० निघ०) ।

कुसुम मध्यम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भव्यफल । (वं० चालिता । (श० च०) ।

कुसुम-रस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मधु, शहद ।

कुसुम रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नेत्र की फूली । चिकित्सा—पुत्रागपत्र और नीलपुनर्नवा के काथ से नेत्रप्रक्षालन करने से कुसुम (फूली) नष्ट होता है । (२) दक्षाण्ड (मुरगी का अंडा) त्वक्, कपूर, शंखनाभि, गेरू काचलवण और चन्दन—इन्हे समानभाग में ग्रहणकर पीसकर बत्ती बनावें । इसको जल में घिसकर अंजन करने से नेत्रगत फूल तथा अर्शका नाश होता है । (भै० र०) ।

कुसुमवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रजस्वलास्त्री । मासिक—धर्मयुक्त स्त्री ।

कुसुम-शाक—संज्ञा पुं० [सं०] } दे० कुसुम ।
कुसुम-साग—संज्ञा पुं० [हिं०, कों०]

कुसुम-संजनन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रजसंजनन (कुसुमोत्पादन) क्रिया ।

कुसुम संजननी-वर्त्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी, तिल, बन्दाल बीज—इन्हें गोपित्त में पीसकर बत्ती बनाकर योनि में स्थापित करने से रज की प्रवृत्ति होती है ।

कुसुम सार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मधु । शहद । (च० द० यक्ष्मा० चि०) ।

कुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मालती पुष्प । (२) रक्तपाटला । (३) चमेली, जाती पुष्प ।

कुसुमाकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वसंत काल । वसंत ऋतु ।

कुसुमाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पित्तल किट्ट । पीतल का मैल । तुल्याञ्जन । पुष्पाञ्जन । (रा० नि० व० १३) ।

पर्याय—पौष्पक, रीतिपुष्प, पुष्पकेतु । (अ०) ।

निर्माण-विधि—पीतल को तपा-तपाकर उसका मल ग्रहणकर सुरमा की भाँति घोंट कर रख लेंगे । इसको

‘कुसुमाञ्जन’ कहते हैं । गुण—यह नेत्ररोगनाशक है । (२) जस्ते का भस्म ।

कुसुमात्मक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशर । कुङ्कुम । (हारा०)

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केश । बाल । (वै० निघ०) ।

कुसुमाधिप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चम्पा । चम्पक वृक्ष । (श० र०) ।

कुसुमाधिराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } महानागकेशर वृक्ष ।
कुसुमाधिराट— „ „ [„] } बड़ा चम्पा । (वं०)

नागेश्वर चाँपा ।

कुसुमायुध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामदेव ।

कुसुमारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुण्डलीपुष्प ।

कुसुमावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृन्दकृत सिद्धयोग-टीका । इस नाम की प्रसिद्ध पुस्तिका जिसको वृन्द ने लिखी है ।

कुसुमासव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] शहद । मधु । (रा० नि० व० १४) ।

कुसु (सू) मास—[यू०] दालचीनी ।

कुसुमोच्चय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पुष्पगुच्छ । फूलों का गुच्छा । (ध० नि०) ।

कुसुमोदर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भव्यफल । (वं० चालिता ।

कुसुम्ब—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्बक] [यु०, ते०] (१) कुसुम बीज । कड़ । बरें । (२) कुसुम का पेड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) केशर क्षुप । कुङ्कुम । (२) प्रतिकरञ्ज ।

कुसुम्बल—संज्ञा पुं० [सं०] दारुहलदी ।

कुसुम्बा—[ते०] कुसुम । बरें । कड़ ।

कुसुम्बानाबी—[यु०] कुसुम । बरें । कड़ ।

कुसुम्बि (म्बी) का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाटला । पाटल ।

कुसुम्बुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दारुहलदी । कुसुम्बक ।

कुसुम्बे—[कना०] कड़ । बरें । कुसुम ।

कुसुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) केशर का क्षुप । कुङ्कुम क्षुप । (२) प्रतिकरञ्ज । डिठोहरी ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हलदी । हरिद्रा । (ध० नि०) ।

कुसुम्भक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शालपर्णी । सरिवन । (ध० नि०) ।

कुसुम्भका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहलदी । दारुहरिद्रा ।

कुसुम्भ तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुमबीज का तैल । दे० “कुसुम” ।

कुसुम्भ पत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुम्भ शाक । दे० “कुसुम” ।

कुसुम्भ बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुम का बीज । कड़ । बरें । दे० “कुसुम” ।

कुसुम्भला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहलदी । दारुहरिद्रा ।
(वै० निघ०) ।

कुसुम्भ शाक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुम पत्रशाक ।
दे० “कुसुम” ।

कुसुम्भाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जावित्री ।

कुसुली—संज्ञा स्त्री० दे० “कुसली” ।

कुसुब—संज्ञा पुं० दे० “कुसुम्ब” ।

कुसुबिया—संज्ञा स्त्री० दे० ।

कुसुम्भ—संज्ञा पुं० दे० “कुसुम्भ” ।

कुसुभा—सं० स्त्री० दे० “कुसुम्भा” ।

कुसु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केचुआ । गण्डूपद । किञ्चुलक ।
(हे० च०) ।

कुसूपास—संज्ञा [सं०] एरण्ड

कुसूमास—[यू०] दालचीनी । -

कुसूरमून—[यू०] रीठा । बुन्दुक हिंदी ।

कुसूरयूकन—[यू०] हशीशतुज्जुजाज ।

कुसूल—[] एक प्रकार का फल ।

कुसूलन—[यू०] (१) दालचीनी । (२) लोबिया । राजमाष ।

कुसूलीदून—[यू०] } काकनज ।

कुसूलीदूस—[यू०] }

कुसोल—संज्ञा पुं० [] एक वृक्षका फल है । इन्ततल्मीज के मत से एक फल है जो उंगली के बराबर लंबा और स्वरूप एवं आकृति में अमलतास की फलीकी तरह और किंचित चौड़ा होता है । यह रोम देश में उत्पन्न होता है । गुणकर्म तथा उपयोग—यह शीतल, रुक्ष और अतीव संप्राही (काविज) है । इसको ३॥ माशा पीसकर पीने से रक्त-तिसार आराम हो जाता है और रक्तस्राव बंद होता है । इसको बारीक पीसकर क्षतों पर अवर्णित करने से उनका रक्तस्राव बंद हो जाता है । इसके लिये यह अनुपम भेषज है । (मखन) ।

कुसुअल—[अ०] (१) बिच्छू । वृश्चिक । (२) भेड़ियेका बच्चा । वृकवत्स ।

कुस्कून—[फा०] कड़ । कुतुम ।

कुस्कूबा—[] कुसुम ।

कुसुगो—[को०] पाटला । कामदूती । पाढ़ल ।

कुस्तंबरू—संज्ञा पुं० [सं० कुस्तुम्बरू] धनियाँ का बीज ।

कुस्तुंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धनियाँ ।

कुस्त, कुस्त—[फा०] कुट ।

कुस्त—संज्ञा [अरबीकृत, यू० कुस्तुस (kostos), सं० कुष्ठ, फा० कोस्त:] कुट । कुष्ठ औषधि ।

कुस्तः—[फा०] चौलाई साग । लाल साग ।

कुस्त अरबी—[अ०] सफेद सुगन्धित कुट । कुस्त हलो । (Arabian Costus) ।

कुस्त अस्वद—[अ०] कड़ुआ कुट । भारतीय कुट ।

कुस्तए तरख—[फा] कड़ुआ कुट ।

कुस्तए शामी—[फा०] (१) कुस्त सूरी । (Syrian Costus) । (२) रासन । (Elecam pane) ।

कुस्तए शीरी—[फा०] मीठा कुट ।

कुस्त करन्फुली—[अ०] कड़ुआ कुट ।

कुस्तज—[?] चौलाई ।

कुस्ततलख—[फा०] कड़ुआ कुट । दे० “कूट” ।

कुस्तन—[फा०] लाल साग । मरसा भेद ।

कुस्तनास—[अ०] एक वृक्ष ।

कुस्तनील—[यू०, रू०] शाहबलूत ।

कुस्त फारसी—[अ०] फारसदेशीय कुट ।

कुस्त बहरी—[अ०] सफेद कड़ुआ कुट ।

कुस्तम—[फा०] कुट ।

कुस्तमुर—[अ०] हिन्दी कुट । कुस्त सूरी ।

कुस्त सीनी—[अ०] कुस्त तलख । कड़ुआ कुट ।

कुस्तल—[फा०] खनाफस का एक भेद ।

कुस्तल—[रू०, यू०] शाहबलूत ।

कुस्त शामी—[अ०] (१) रासन । (२) कुस्त सूरी ।

कुस्त सीनी—[अ०] कड़ुआ कुट । कुस्त तलख ।

कुस्त सूरी—[अ०] कुस्त शामी ।

कुस्त हुलो—[अ०] कुस्त अरबी । अरबदेशीय कुट ।

कुस्त हिन्दी—[फा०, अ०] भारतीय कुष्ठ । कुष्ठ ।

कुस्त हुलो । (Indian Costus) ।

कुस्ता—[फा०] खनाफस भेद ।

कुस्तानिया—[यू०, रू०] शाहबलूत ।

कुस्तानीकी—[सूडानी] चौलाई ।

कुस्तारूस—[यू०] उसारः लह्यतुत्तीस ।

कुस्तास—[अ०] एक वृक्ष ।

कुस्तसीस—[यू०] लबलाब कबीर जिसके पत्ते चौड़े हंते हैं ।

कुस्तीनल—[यू०, रू०] शाहबलूत ।

कुस्तुबरन—[यू०] फाशरा ।

कुस्तुम्बरू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कुस्तुम्बरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कुस्तुम्बरी—,, [,,]

कुस्तुम्बुरी—,, [,,]

कुस्तुम्बुरी—,, पुं० [सं० पुं०]

(१) आर्द्र धनियाँ । हरा धनियाँ । (The Plant Costus rinader) । (२) वितुलक क्षुप । (ध० नि०) । (३) तेजबल के बीज । नेपाली धनियाँ ।

कुस्तुस—[यू०] कुट । कूट ।

कुस्तुम्बरी—संज्ञा [सं० स्त्री०] कुस्तुम्बरी । धनियाँ । हरा धनिया । (डी०) ।

कुसुद—[] कुट । दे० “कूट” ।

कुसुद—[फा०] कुट । कुष्ठ । दे० “कूट” ।

कुस्न—[फा०] मटर ।
 कुस्न हिंदी—[फा०] चिचड़ी । कुराद ।
 कुस्फा—[] कुत्ता ।
 कुस्फार्सा, कुस्फार्सुका—[यू०] वादजहर ।
 कुस्फुर—[अ०] धनियाँ ।
 कुस्फुरतुलबर्द—[अ] धनियाँ ।
 कुस्व—[अ] खली । तिलकी खली । कुञ्जारः ।
 कुस्वः—[अ०]
 कुस्वरज—[?] मोती । मुक्ता ।
 कुस्वा—[फा०, यू०] जुफर ।
 कुस्वरतुलबर्द—[अ०] हंसराज । परसियावशाँ ।
 कुस्वरः (रा), कुस्वरज—[अ०] धनियाँ ।
 कुस्वस—[यू०] सफेद जंगली चमेली ।
 कुस्मल—[] रसवत वृक्ष ।
 कुस्मादम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पत्रज । तेजपात ।
 कुस्मारीका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंडल का फूल ।
 कुस्मीहर—[यू०] चर्ख पक्षी ।
 कुस्मण्ट—[]
 कुस्री झाड़—[को०] गुह बबूल । विट्खदिर ।
 कुस्लः—[?] कमीला । कबीला ।
 कुस्वप्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्सित स्वप्न ।
 कुस्स—[अ०] ओस । शन्नम ।
 कुस्सम, कुस्सुम्ब—संज्ञा पुं० [मध्यप्रान्त] कोशाम्र । कोसम ।
 कुस्सुलकलाव—[अ०] गगालस ।
 कुस्सो—[] दे० “कस्सू” ।
 कुह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बड़ी बेर । राजबंदरफल (मद० व० ६) । (२) कमल । पद्म । (३) नीलकमल । नीलोत्पल । (वै० निघ०) ।
 कुहक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शब्द । वाक्य । वचन । (सु० सू० १० अ०, सू० २); (वैद्यकव्यवसाययोग्य वैद्ये) । (२) मण्डक जाति का कीट भेद । (सु० कल्प ८ अ०) । (३) गठिवन । गठोता । ग्रन्थिपर्णी । (वै० निघ०) ।
 कुहकस्वन (स्वर)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन मुरगा । वन कुक्कुट । (हे० च०) ।
 कुहकुह—संज्ञा पुं० [सं० कुमकुम] केसर ।
 कुहम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० “कुह” ।
 कुहन—वि० [सं० त्रि०] ईर्ष्या या डाह करनेवाला । (हारा०) ।
 संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूहा । मूषिक । (२) साँप । सर्प । (हे० च०) ।
 संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सृग्भाण्ड विशेष । काचपात्र । (मे०)
 कुहड़ा—संज्ञा पुं० [] कुम्हड़ा । कुष्माण्ड ।
 कुहनि—[फा०] जअरुर ।
 कुहनी—संज्ञा स्त्री० [] केहुनी
 कुहर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नाग विशेष । (२) कान ।

कर्ण । (३) कण्ठ । (४) कण्ठस्वर । कण्ठध्वनि । (५) अजयपाल ।
 संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) छिद्र । छेद । सुराख । (२) भर्जित अन्न । भृष्टान्न ।
 संज्ञा स्त्री० [दे०] बहरी । एक प्रकार का शिकरा जो पक्षियों को पकड़ता है । कुही ।
 कुहल—[अ०] (१) सुर्मा । अञ्जन । काला सुरमा । (२) तुल्य भस्म । (३) गुलकुंजद । तिल्ली का फूल ।
 कुहल अस्फहानी कुहल, जिला—[अ०] सुरमा । अञ्जन । इस्मद ।
 कुहल किरमानो—[अ०] अंजस्त ।
 कुहल खूलान—[अ०] रसवत । रसाञ्जन ।
 कुहलफारसी—[अ०] अंजस्त ।
 कुहल यास्मीन—[अ०] चमेली के फूल का अंजन ।
 कुहल सुलेमानी—[अ०] सुरमा । इस्मद ।
 कुहला—[अ०] रतनजोत भेद ।
 कुहलि—संज्ञा [सं० पुं०] (१) पान बीड़ा । सज्जित ताम्बूल । (वै०) साजापान । (२) पूगपुष्पिका । (त्रिका०) ।
 कुहलुसौदान—[अ०] चाकसू । वन कुलत्थ ।
 कुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोपचोण्टी । (वै०) शेयाकूल । (वै० निघ०) । (२) कुटकी । (श० च०) (३) बेर । बदर वृक्ष । (भा०) ।
 कुहाब—[अ०] शुष्क कास । सूखी खाँसी ।
 कुही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुधि=एक पक्षी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है । कुहर ।
 संज्ञा स्त्री० [फा० कोही=पहाड़ी] घोड़े की एक जाति । टाँगन ।
 कुहीला—[अन्वयुस] (१) गोजिह्वा, गावजबान । (२) जिह्वा । जीभ । जबान ।
 [अ०] रतनजोत ।
 [बम्ब०] केवाँच । कपिकच्छु ।
 कुहीली—[म०] केवाँच ।
 कुहीली च बीज—[म०] कौंचका बीज । वानरीबीज ।
 कुहु—संज्ञा [देश०, पं०] (बै) साअद । (Lactuca seriola) ।
 कुहुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गठिवन । गठोता । ग्रन्थिपर्णी । (श० च०) ।
 कुहक, कुहकण्ठ, कुहमुख, कुहजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोइल । कोयल । कोकिल । (त्रिका०; वै० निघ०) ।
 कुहलत—[अ०] शरीरकी रुक्षता । शरीर से भूसी निकलना । खुस्की बदन ।
 कुहलम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सशल्य भूरुध्र । गड्ढा । भूगर्त ।
 कुहः—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] आमावस्था । अपक्वावस्था । (ध० नि०) ।
 कुहेड़िका, कुहेड़ी, कुहेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] कुञ्जटी । कुञ्जटिका । (हारा०; त्रिका०) ।

कुह, कुह

कुह, कुह—[अ०] गुदास्थानको उभड़ी हुई हड्डी। वह हड्डी जो नितम्बों के मध्य में उभड़ी हुई होती है। नितम्बास्थि।
(अ०) कॉकिस (Coccyx)।

कुह, तल—संज्ञा पुं० [?] एक द्रव्य। किसीके मतसे यह मैतफल (जौजुलकै) है। इसको जल में पीसकर विद्रधि-पर लेप करने से उसमें शीघ्र पाक प्रारंभ होता है।
(ता० श० पृ० १३९)।

कुल—[अ०] हीरादोखी। खूनखराबा। दम्मुल्लखवेन।
कुक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोख। कुक्षि। (बं०) कौंका। (उणा०)।
कुक्षिकक्षा खेचरी मन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इस क्रियामें सिद्धि देनेवाला मन्त्र—“ॐ ह्रां ह्रीं कालीमार रमा काली नमो क्षमो नली मा मो देत तेद मोमा रक्षत त्व तप्पुर” है। (र० का० धे०)।

कुक्षिम्भरि—वि० [सं० त्रि०] स्वेदरपूरक। (अम०)।
कुक्षिरुद्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नल। नाड। (रा० नि० व० ८)।
कुक्षिविद्रधि—संज्ञा [सं०]
कुक्षिशूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वातव्याधि। (मा० नि०)।
कुक्षिसंग—संज्ञा पुं० [सं०]
कुंअरपुरिया—

कुंकरपिण्डी—संज्ञा स्त्री० [] एक भारतीय वृक्ष जिसमें अमलतास की तरह लंबे फल लगते हैं। फलका स्वाद मीठा होता है। यह अस्मरी-शर्करानाशक है। मूर्च्छा, उन्माद, प्रलाप, संताप और ज्वर में इसके उपयोग से लाभ होता है। यह वातरोग और उदरविकार में उपयोगी है।

कु कुं—

कुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] केशर।

संज्ञा पुं० [कना०] केशर। कुङ्कुम।

कुंकुम केशरी—[को०] केशर।

कुंकुमम्—[ता०, मल०] केशर।

कुंकुमादि-चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०; सं० = कुङ्कुमादि चूर्ण]
द्रव्य तथा निर्माण-विधि—केशर, कस्तूरी, मोथा, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, त्रिफला, अकरकरा, अभ्रक भस्म, बनिया, अनारदाना, मिर्च, पीपल, अजवा-इन, तित्तिडीक, हींग, कपूर, तुम्बुरु, तगर, सुगंधवाला, लींग, जावित्री, मजीठ, पुष्करमूल, विधारा (श्यामा), कमलगट्टा वंसलोचन, कपूरकचरी, तालीशपत्र, चीता, जटामांसी, जायफल, खस, बला, नागबला, सोनामाखी भस्म, कूठ, पीपलामूल और रूपामाखीभस्म—सर्वसम-भाग; मोचरस सबके समान; मिश्री मोचरस से दूनी यथाविधि चूर्ण बनाए।

गुण तथा सेवन-विधि—इसे एक कर्ष की मात्रामुसार प्रातः और सायं काल और विशेषतः भोजन के अंत में सेवन करने से अजीर्ण, अग्निमांद्य, अस्सी प्रकार के वातज रोग, ४० प्रकार के पित्तरोग, बीस प्रकार के कफज रोग,

उबकाई, वमन, अरुचि, ५ प्रकार की ग्रहणी, अतिसार, ११ प्रकार का क्षय, श्वास, ५ प्रकार की खाँसी, उदर-रोग, मूत्रकृच्छ्र, गलग्रह, बन्धत्व सन्निपातज्वर, विस्फोटक, भगंदर, नेत्ररोग, शिरोरोग, कर्णरोग, हनुग्रह, हृद्रोग, कंठरोग, जानु और जंघागत व्याधियाँ और अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। यह अत्यन्त वाजीकर है। (यो० चि० म० चूर्णा०)।

कुंकुमाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० “कुङ्कुमाद्य तैल”।

कुंकुमुपु—[ते०] केशर।

कुंक्षिमफल—[को०] सिद्धरी। लटकन।

कुंगकु—

कुंच—[बं०] गुंजा। घुंघची।

कुंचले—[बं०] कुचला। कारस्कर।

कुंची—[गु०]

कुंची घास—[] कुतरी घास।

कुंजव—[फा०] तिल।

कुंझि—[] खुब्बाजी

कुंटेर—[गु०] पतालतुम्बी। पतालतुम्बी।

कुंडल—

कुंडली—

कुंती—[] कामिनी।

कुंद—[] कुंभा। कुंभी।

कुंदर—

कुंदरश्क—

कुंदरु—संज्ञा पुं० [] विम्बाफल। कुनरु। दे० “कुंदरी” और “कुनरु”।

कुंदुर—संज्ञा पुं० [] दे० “कुन्दुर”।

कुंदुरी—संज्ञा पुं० [देश०] लता विशेष।

कुंदुरु—[गु०] शल्लकी-निर्यास। सलईका गोंद।

कुंदुरे रुमी—[फा०] रुमीमस्तगी।

कुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] दे० “कुम्भी” या “कुंभी”।

कुंदुश—[फा०] दे० “कुन्दुश”।

कुंभ—

कुंभा—[म०] गुमा। द्रोणपुष्पी।

कुंभाली—संज्ञा स्त्री० [] गंभारी। कमहार।

कुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) द्रोणपुष्पी, (२) काय-फल। (३) जलकुंभी। (४) कुंभनामक पेड़।

कुंभिल—

कुंभीनस—

कुंभी फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायकुंभा। वाकुंभ।
(अ०) वाइल्ड ग्वावा (Wild guava)।

कुंभीर—

कुंभेर—

कुंभोलुक—

कुंवाडिओ—[यु०] चक्रमदं । पेंवाड ।

कुंवार—[यु०]

कुंवरपाठु—[यु०] } ग्वारपाठा । धीकुआर ।

कुंहुकुंहु—

कुंहुडा—संज्ञा पुं० [हि० कुम्हड़ा] दे० “कुम्हड़ा” ।

कुः—संज्ञा [सं० स्त्री०] (१) पृथ्वी । (ध० नि०) । (२) पिशाची

कू—संज्ञा [सं० स्त्री०] पिशाची । (शब्द मा०) ।

कूअ—[अ०] कलाई की हड्डी का उभार जो अँगूठे की ओर होता है ।

कूअअ—[अ०] कड़ुआ पानी ।

कूई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवम्+ई (प्रत्य०)] जल में होने-वाला कमल की तरह का एक पौधा, जिसके पत्ते कमल ही के पत्तों के समान, पर कुछ लंबे और कटावदार होते हैं । इसकी नाल और कमल की नाल में इतना भेद होता है कि कमल की नाल के ऊपर गड़नेवाली रोई होती है, पर इसकी नाल चिकनी होती है । कमल का फूल सूर्यविकाशी होता है—सूर्योदय के समय खिलता और सूर्यास्त (संध्या) के समय बंद हो जाता है । कूई का फूल चंद्रोदयविकाशी या रात्रिविकाशी होता है, सन्ध्या के समय में खिलता है और सूर्योदय के समय बंद हो जाता है । कमल के फूल की तरह इसके फूल के भीतर छत्ता नहीं होता, अपितु एक कर्णिकामंडल होता है जिसके नीचे नाल की घुन्डी होती है । यह घुन्डी बढ़कर लड्डूकी तरह हो जाती है और बीजों से भर जाती है । ये बीज काली सरसों की तरह के होते हैं और बेरा कहलाते हैं । भूतने पर इनके सफेद लावे वा खोलें होती हैं । कोई । कोई ।

पर्या०—(सं०) कुमुद (दि, दु) नी, कुव, उत्पल, कैरव, कुमुद, कुवल (य); (अ०) कर्नबुल्माई; (फा०) नीलूफर; (कश्मीर) बम्पोश, निलोफर; (ले०) निम्फिआ लोटस् (Nymphaea Lotus linn); (अं०) वॉटर लिलि (Water lily), लोटस लिलि (Lotus lily) (फ्रा०) नेनुफर ब्लांक (Nenuphar blanc), निम्फी (Nympe) ।

पुष्प के भेद से कूई के निम्न भेद होते हैं—

(१) लाल कूई—(सं०) हल्लक, कोका; (ले०) निम्फिआ रयुब्रा (N. rubra Roxb), नि० प्युबिसेन्स (N. Pubescens) ।

(२) सफेद कूई—(सं०) उत्पल, कुवल (य), रात्रिपुष्प, सितोत्पल; (ले०) निम्फिआ अल्बा (N. alba Linn); (अ०) हाइट वॉटर-लिलि (White water-lily) ।

(३) नीली कूई—(सं०) नीलोत्पल, कोकावेली (री), नीलकुमुदिनी; (ले०) निम्फिआ सिर्किलिया (N. caerulea); (अं०) ब्ल्यू वॉटर लिलि (Blue water lily) ।

(४) पीली कूई आदि ।

वक्तव्य—इनमें पीले फूलका दुर्लभ है और सफेद फूलका पुष्कल मिलता है । यूनानी वैद्यक में मात्र नीलूफर शब्दसे कूई का नीला फूल विवक्षित होता है । नीलूफर संज्ञा संस्कृत नीलोत्पल (नील, उत्पल=कूई) से व्युत्पन्न जान पड़ता है । इन भेदों में औषधार्थ सफेद कूई सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है । बाजारमें नीलूफर नामसे प्रायः इसीके (सफेद) पुष्प मिलते हैं तथा यूनानी एवं आर्यवैद्यक दोनों में इसी का व्यवहार वैद्य और हकीम लोग करते हैं । दे० ‘नीलूफर’ और ‘कमल’ ।

कूक—संज्ञा पुं० [] कोक या कोग । एक जंगली जन्तु जो कुत्ते के बराबर होता है । यह बाघ और सूअर आदि को मार डालता है ।

[समरकंद] काहू ।

कूकइज—[अ०, बर०] अकरकरा ।

कूकनस—[तु०] ककनस, दीपकलता पक्षी ।

कूककरी—[सुर] चूहा, मूषा ।

कूक भाण्ड—संज्ञा पुं० [] कुम्हड़ा । कुष्माण्ड ।

कूकमारुस—[यू०] साही । शल्यकी ।

कूकया—[सुर०] जलजन्तु भेद ।

कूकयून—[यू०] शूकरान ।

कूकर—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] [खी० कूकरी] कुत्ता, श्वान ।

कूकरचण्डी (न्दी)—संज्ञा स्त्री० [हि० कूकर, सं० चण्ड]

(१) एक जंगली जड़ी जिसकी पत्तियों को पीसकर कुत्ते के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं । (२) कुकुरद, कुकुरौंघा ।

कूकरचीन—[तु०] कबूतर । कपोत ।

कूकरछड़ा (दी), कूकरछन्दी, कूकरछिंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० कूकर,] कुरौंघा, कुकुरद ।

कूकरन—[?] कूम ।

कूकर भंगरा—संज्ञा पुं० [हि० कूकर+भंगरा] (१) काला भंगरा ।

वर्णनादि—भंगरे का एक भेद है । तालीफ़ शरीफ़ी में इसे कूकरभंगरा लिखा है । भंगरे में और इसमें यह अंतर है कि इसके पत्र चौड़े और सिरपर नुकीले होते हैं और भंगरे के पत्र तुलसी पत्रवत् होते हैं और कूकर-भंगरे के पत्तों से लंबे होते हैं । कूकरभंगरे का फूल सफेद होता है जिसमें अदे रंग के लंबे-लंबे तार होते हैं । यह धूरों पर उगता है । कूकरभंगरा कहने का कारण यह है कि जब कुत्ता इसे खाता है, तब वमन करता है । इसे कुकुरौंघा समझनेवालों की भूल है । क्योंकि कुकुरौंघे के पत्ते बहुत बड़े और तमाकू के पत्तों की तरह होते हैं । परंतु कूकरभंगरे के पत्ते पुदीने के पत्तों से भी छोटे होते हैं । गंध कुकुरौंघे की सी आती है । इसके लगाने से कीड़े मर जाते हैं । कूकरछंदी । (खज्जाइन) । (२) कुकुरौंघा ।

कूकरमुत्ता—संज्ञा पुं० दे० “कूकरमुत्ता” ।

कूकुरश अन्दीक्रोस

कूकुरश अन्दीक्रोस—[किर०] नारियल ।
 कूकुरलस—[यू०] बिच्छू ।
 कूकुरलामस—[यू०] बखुरमरियम । हत्थाजोड़ी । करजोड़ी ।
 कूकुरलामीस—[यू०] हत्थाजोड़ी ।
 कूकुरस—संज्ञा पुं० [ले०] कोकस केवटई । किमिज ।
 कूकुरस कृदियून—[यू०] तुख्म माजरियून । दे० 'माजरियून' ।
 कूकुरलामालस, कूकुरलामीन—[यू०] आलूबोखारा ।
 कूकुरलामूजस—[यू०] कतीरा गोंद ।
 कूकुराय—[बरव०] अकरकरा ।
 कूकुराया—[?] रासन ।
 कूकुरार—[?] करसननः ।
 कूकुरामूस—[यू०] चिरायता ।
 कूकुरालस—[यू०] आलूबोखारा ।
 कूकुरी—संज्ञा स्त्री० [कना०] अहिंसा, काली वागाटी ।
 संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कीड़ा ।
 कूकुरी—[यू०] वड़ा सनोवर ।
 कूकुरीनूस—[तु०, यू०] ककनस, दीपकलातपक्षी ।
 इसकी चोंच में ७ छिद्र होते हैं ।
 कूकुरीला—[यू०] बिच्छू ।
 कूकुरीलूस—[यू०] (१) जीरा । (२) पित्तपापड़ा ।
 कूकुर—[बर०] जंगली उशवा ।
 कूकुरडु कायलु—[ते०] रीठा ।
 कूकुरन्दर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्रोणिकूलक ।
 कूकुरन्दरास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] श्रोणिफलकगत अस्थि ।
 (अ०) इस्कियम (Ischium) ।
 कूकुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्ता, कुक्कुर, श्वान । (वै० निघ०) ।
 कूकुरभें (भाँ)गरा—संज्ञा पुं० दे० "कूकरभंगरा" ।
 कूकुरमुत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० कूकुर + मुत्ता] छतरी । खुमी ।
 साँप की छतरी । कुकुरमुत्ता ।
 पर्या०—(सं०) छत्रिका; (म०, को०) पणसलम्बे; (ले०) ऐगारिकस-मस्केरियस (Agaricus muscarius.); (अ०) अगैरिक ऑफ दी ओक (Agaric of the oak) ।
 उद्भवस्थान—यह वर्षाकाल में वृक्षों के ऊपर स्वयं उत्पन्न होता है । कटहल वृक्ष के ऊपर अधिक उत्पन्न होता है ।
 उपयोगी अवयव—छत्रिका ।
 रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का गोंद, जान्तवाम्ल (Organic acid) तथा जेलाटिन होता है ।
 गुण-कर्म—संकोचक, क्षुद्रप्रदाहनाशक, प्रवृद्धलालास्रावनाशक है । इसके आंतरिक उपयोग से प्रवाहिका और अतिसारनष्ट होता है । बालक्षुद्रप्रदाह में इसका बाह्य उपयोग होता है ।
 होमियोपैथिक के अनुसार—चरित्रगत लक्षण—अनजान में सोकर उठते ही शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा हस्त-

पाद हिलते हैं और सोते ही बन्द भी हो जाते हैं । ताण्डव (Chorea कम्पवायु) की भाँति कम्परोग, विशेषकर मुखपेशी का कम्प, मूर्च्छा, बैठने पर कटिशूल की वृद्धि, अंगुलियों का स्वाप, कठोरता, कोणीय तौर पर (Angular) हाथ-पैर हिल उठना, वाततन्तुओं तथा वीर्यक्षय के कारण उत्पन्न रोग, पक्ष्म, ओष्ठ इत्यादि का कांपना तथा पृष्ठ की त्वचा में कृमि रेंगने की-सी सुरसुरी, कण्डू, बार-बार मूत्रोत्सर्ग की इच्छा, मूत्रप्रदाह, मूत्रनली से लसदार स्राव निकलना, आक्षेपिक बाधके वेदना के साथ तल पेट का कोई पदार्थ योनि पथ से बाहर निकल पड़ना—ऐसा अनुभव होना, साथ ही योनि में कण्डू, आकस्मिक आक्षेपिक कास आरम्भ होकर फुफुस से रक्त निकलना, रात्रि में निद्रा आते ही आक्षेपिक शुष्क कास, चाय, काफी वा तम्बाकू पीनेवालों का हृदय की धड़कन, हृत्पिण्ड की अनियमित और विपरीत गति; मेरुदण्ड में उपदाह (Spinal Irritation) होकर वह प्रदाह; होना, सूचिवत् वेदना और स्पर्श का सहन न होना इत्यादि लक्षणों में इसके सेवन से लाभ होता है । अन्य उपयोग—

अकारण प्रतिश्याय—न शीत लगे, न नाक में किसी प्रकार का प्रदाह ही हो, फिर भी नासाद्वार से अत्यधिक परिमाण में जलवत् स्राव हो और साथ ही छींक आया करे तो इससे लाभ होता है ।

वेदना—वाततन्तुजन्य वेदना में इसका उपयोग लाभदायक है ।

बाल-विद्रधि—छोटे बच्चों के ओष्ठ में फोड़े और फुंसियों के विविध प्रकार के उद्भेद निकलते हैं और अन्त में छाला का रूप धारण कर लेते हैं और उनमें पीत वर्ण का रस भरा होता है । ऐसी अवस्था में इसके उपयोग से लाभ होता है ।

श्वासयंत्र के रोग—फुफुस में रक्त का भ्रमण ठीक न होने के कारण उसमें अम्लजन वायु (ऑक्सिजन) नहीं प्रवेश कर पाती, जिससे रोगी के श्वास-प्रश्वास में अत्यधिक कष्ट होता है, इच्छापूर्वक श्वासग्रहण नहीं हो सकता, श्वास फूलता है । यह रोग प्रायः विसूचिका के अन्तिम अवस्था में होता है । ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर ३ से ६ शक्ति का अगैरिकस मास्केरिअस देने से लाभ होता है । यदि इससे भी लाभ न हो तो उक्त मात्रा में मस्केरिन देने से लाभ होता है ।

नेत्र-रोग—धुंधला देखना । यह प्रायः नेत्रों से अधिक देखने से होता है । इसमें पलक और पुतली में कंप होता है । नेत्रों में उद्भेदन (Spasm) होता है । ऐसी अवस्था में इससे लाभ होता है ।

इसके अतिरिक्त इसके उपयोग से ताण्डवरोग (Chorea), कम्प, मूर्च्छा, कटिशूल इत्यादि में भी इससे लाभ होता

है। बिवाई (Chilblain) की यह उत्तम औषध है।
वाह्य तथा आन्तर उभय उपयोग होता है। मात्रा—३,
३०, २००। चर्मरोग में निम्न शक्ति।

फार्मूला—३

स्थितिकाल—४० दिन।

(२) कूकुरमुत्ता भेद—ऐगेरिकस-फैलोऑइडिज।
(Agricus-Phalloides)—चरित्रगत लक्षण, प्रधान
लक्षण—इसमें निरन्तर वमन तथा अतिसार होता है।
और दस्त लेने की चेष्टा बनी रहती है। दस्त का रंग
चावल के धोवन वा बासी भात के पानी-सा होता है।
तृष्णा निरन्तर रहती है, त्वचा में रुक्षता, हिमांग, नाड़ी
निर्बल, क्षीण, सविराम गति वा लुप्तप्राय होती है। आमाशय
में मरोड़, श्वास-प्रश्वास का धीरे-धीरे, चलते-चलते अक-
स्मात् तीव्र होना, वा अकस्मात् धीमा हो जाना, मूत्र-
पूर्णतः न होना, उक्त लक्षण प्रायः विसूचिका में होते हैं।
उक्त लक्षण में यदि कोई परीक्षित औषध का फल न हो
तो इसके देने से लाभ होता है।

मात्रा—०, १×, ३ से ३० शक्ति तक।

फार्मूला—३

दे० 'कुकरीधा'।

कूकुल—[ता०] गुग्गुल। गुगल।

कूकूणक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "कुकूणक"।

कूकूवाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग। हरिन। (ध० नि०)।

कूकै—[ता०] वंशलोचन। तवाखीर।

कूच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुच। स्तन। चूचुक।

कूचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अन्धाहि मत्स्य।
गोइंजी मछली। (त्रिका०)। (२) क्षुद्रकुञ्चिका।

(३) दूध में पका हुआ तथा भोजित तन्दुल। चावल।

(वै० निघ०)।

कूची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तक्रकूचिका। (वै० निघ०)।

दे० "दुग्धविकार"।

कूचोड़ी—[बं०] ऊदा चिरायता। (मो० श०)।

कूज—[का०] सुख जअरुर।

कूजः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

अव्यक्त शब्द, गुप्त वाक्य।

कूजः (कूजा)—संज्ञा पुं० [फा०] [बहुव० अकूवाज] (१)
घरिया। गिलास। कुल्हड़। आबखोरा। (२) गिलास
से पानी पीना। (३) मिट्टी के पुरवे में जमाई हुई
अर्धगोलाकार मिश्री।

कूज—[फा०] गोंद। नियास।

कूजक—[फा०] (१) शामी खनूबका फल। (२) गोरः
()।

कूजगियाह—[फा०] (१) कबर का क्षुप। (२) इज्रखिर।

कूजन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुन्थन। (२) गुडगुड

शब्द, उदरगत शब्द भेद। (भा० म० १ भ० ज्वर-नि०)।
"कूजनञ्चाति वै गन्ध्यम्"।

कूजहे खशखाश—[फा०; अ०] पोस्ते की बोंडी।

कूजा—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जक] मोतिया या वेलेका फूल।

पर्या०—कुञ्जकः—सं०। कूजा, सदा गुलाब, मॉटल-

हि०। कूजा—बं०। वंदं मुन्तिन—अ०। गुले कूजा—

फा०। अनकून—यू०। मस्क सेण्टेड रोज। (Musk scen-

ted rose)—अं०। रोजा मॉष्केटा Rosa Moschata

Mill. रोजा प्युबिसेन्स Rosa pubescens—ले०।

Rosier Musque—फ्रा०। Bisamrose—जर०।

वक्तव्य—तालीफशरीफ़ी में कूजा और मुहीत में

कूजा, सदागुलाब और वंदंमुन्तिन शब्द में इसका वर्णन

आया है। अनकून को मुहीत में अनफून लिखा है।

अलफाजुलअदविया में इसका अर्थ गुलपियादा लिखा है

जो हर ऋतु के ऐसे जंगली फूल को कहते हैं जिसका

पौधा छोटा होता है। साहवरशीदी लिखते हैं कि गुल

कूजः को गुलमिस्की भी कहते हैं और वह सेवती का नाम

है। परंतु अन्यान्य प्रायः कोषों में गुलनसरीन का नाम

लिखा है और यह भी सेवती की ही अन्यतम संज्ञा है।

वहारअजम के संकल्पिता कहते हैं कि इस देश और

काल के कतिपय चिकित्सक गुलनसरीन और नस्तरन इसी

गुलकूजः को जानते हैं और वह सेवती का नाम है।

परंतु सत्य यह है कि कूजा और कूजा सदागुलाब का नाम

है। अस्तु, गुलकूजः और गुलसदबर्ग हिंदुस्तानी फ़ारसी है।

अमीर खुसरू का यह पद्य इसका प्रमाण है—

कँवल खाली नयायद कूजः अज मै चूँ गुल कूजः। पुर

अज शन्नम् शुद अज चः पुर न गर्दद कूजः अज शन्नम् ॥

गुलाबादि कुल।

(Family : Rosaceae.)।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर-पश्चिम भारत।

वर्णन—गुलाब और सेवती की जाति का एक पुष्प-वृक्ष

जिसे शतपत्री अर्थात् गुलकूजा और सेवती भी कहते हैं।

क्योंकि यह उसी की एक किस्म है। इसकी दूसरी किस्म

लाल है जिससे गुलेसुखं वा गुलाब अभिप्रेत है। सेवती

को गुलेनस्तरनीन कहते हैं। शतपत्री स्वरूप में गुलाब की

तरह होती है। परंतु इसका पौधा उससे बड़ा होता है।

(ता० श०)। मुहीत के अनुसार कूजा का फूल गुलाब के

फूल की तरह किन्तु उससे बड़ा होता है। यह गुलसेवती

की तरह और सफेद तथा उससे किंचित बड़ा होता है।

फूल की पंखड़ी क्षुद्रतर और उससे अधिक चौड़ी होती है।

मुहीत में सदागुलाब के वर्णन में लिखा है—“गुलाब की

तरह एक पुष्प जिसका वृक्ष उसके वृक्ष से बड़ा होता है।

पुष्प तीक्ष्णगंधी और पंखड़ियाँ गुलाब की पंखड़ियों से

न्यूनतर होती हैं। यह सदैव पुष्पित रहता है। इसलिये

इसे सदागुलाब कहते हैं ! इसे हिंदी में 'कूजा' और अरबी में 'वर्द मुन्तिन' कहते हैं। तालीफ़शरीफ़ी के अनुसार आयुर्वेद के ग्रंथों में उक्त नाम से इसका वर्णन नहीं मिलता। संभव है यह कूजा हो। मुहीत में वर्दमुन्तिन में लिखा है—“गुलाब का वह भेद है जिसमें सुगंध नहीं होती। इसे यूनानी में अनफून और हिंदी में 'भाँटल' और 'सदागुलाब' कहते हैं।” परंतु गाजरूनी के अनुसार यह गुलाब से भिन्न है। क्योंकि गुलाब में वर्णित गुण इसमें नहीं पाये जाते।

गुणकर्म तथा प्रयोग—वर्दमुन्तिन उष्ण और रूक्ष है। जड़ अकरकरे की भाँति जिह्वापर दाह उत्पन्न करती है। (मुहीत)।

कूजा, गुलाब और सेवती तीनों शीतल, लघु तथा वाजीकरण हैं तथा त्रिदोष एवं रक्तविकारनाशक, हृद्य, संग्राही और चेहरे का रंग निखारनेवाले हैं। हृदय को बल देने के लिये इसके सफ़ेद भेद को लेखक लाल भेद से अधिक गुणकारी मानते हैं और उसका गुलकंद और अर्क हृत्स्पंदन (खफ़क़ान) रोग में प्रायः प्रयुक्त करते हैं। (ता० श०)।

सदागुलाब शीतल और रूक्ष है। इसके फूलों का अर्क रक्तविकार, विस्फोट (फोला) और फोड़े-फुंसी में परीक्षित है। (मुहीत)।

*नव्य मत

नाडकरणी—It is said to be aphrodisiac and beneficial in bile and burning of the skin. Root called Rajatarini is said to be beneficial in eye diseases. (I. M. M., P. 753).

कूजित—संज्ञा [सं० क्ली०] पक्षीरव। पक्षियों का कुरेज करना।

कूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बैल की दृष्टी हुई सींग। वृषभमनशुद्ध (हला०)। (२) गृह। घर। (श० र०)। (अत्रि० २० अ०)। (३) वृक्ष विशेष।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लौहसार। (२) पीतल। (प० मु०)। (३) जलपात्र। गिलास। (वै० निघ०)।

संज्ञा पुं० [हिं०] कूट।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कूट, सं० कुष्ठ] कूट नाम की औषध। दे० “कूट”।

पथ्याय—(हिं०) कूट (ठ), कूट (ठ); (सं०) कुष्ठ, पाकल, वाप्यं, अगदः; (यू०) कोष्ठोस (कुस्तुस, कोस्तुस); (अ०) कुस्त; (सिरि०) कुस्ता, कोस्ता, सरयूकना; (फा०)

*आयुर्वेदमतेन

कुब्जकः सुरभिः स्वादुः कषायस्तु रसायनः। त्रिदोष शमनो बृष्यः शीतः संग्रहणोऽपरः॥ (धन्वन्तरिः)।
कुब्जकः सुरभिः शीतो रक्तपित्तकफापहः। पुष्पं तु शीतलं वर्णं दाहघ्नं वातपित्तजित्॥ (राजनिघण्टुः)।

कुस्द, कुस्त (बुर्हान), कोस्तः, कोस्त; (वं०) कुड; (द०) कूट, पचक; (गु०) कठ, उपलेट; (मरा०, कना०) कोष्ठ; (ता०) गोष्टम; (ते०) गोष्टमु; (पं०) कुट; (काश०) पोस्तरवै; (भूटान) कुष्ट; (बम्ब०) उपलेट; (अं०) द कॉस्टस (The Costus); (फ्रा०) कोस्टस एलीगन्ट (Costus elegant); (जर०) Practige Cost wurz; (ले०) Saussurea Lappa, clarke; Aplotaxis auriculata, Dc.; Costus Arabicus, Linn., (प्राचीन संज्ञा) Auclandia Costus.

अर्थ और संज्ञा-निर्णय—उपयुक्त बहुशः संज्ञायें सीधे संस्कृत कुष्ठ से अथवा संस्कृत से अन्य भाषाओं द्वारा व्युत्पन्न हुई हैं। उनमें अरबी कुस्त तो संस्कृत कुष्ठ ही है। अरबी में 'ठ' न होने से, उसके स्थान में 'त' हो गया है। अस्तु, आरव्यकोषकारों का इसका कुठ हिंदी से व्युत्पन्न बतलाना समीचीन नहीं प्रतीत होता। रियाजुल अदविया और मख्जन में इसे यूनानी कुस्तुस (कोष्ठोस-Costos) से व्युत्पन्न लिखा है। परन्तु डीमक* के अनुसार स्वयं यूनानी कोष्ठोस शब्द अरबी द्वारा संस्कृत कुष्ठ से व्युत्पन्न है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि आरव्यकोषकारों ने स्वयं इसे यूनानी से व्युत्पन्न माना है। अस्तु, अधिक संभव है कि यह संस्कृत कुष्ठ से यूनानी कोष्ठोस द्वारा वा सिरियन कोस्ता द्वारा व्युत्पन्न हो अथवा संस्कृत कुष्ठ से फ़ारसी कोस्तः द्वारा। उर्दू में कुस्त और कूठ दोनों ही स्त्री लिंग में आते हैं। मुहीत में 'कूठ' के वर्णन में लिखा है कि कुस्त का नाम है। क्योंकि यह श्वित्ररोगनाशक है; इसलिये इसे संस्कृत में रंगना? और दुर्नाम कहते हैं। कारण यह है कि श्वित्र को संस्कृत में उक्त संज्ञाओं द्वारा अभिहित करते हैं। उक्त ग्रंथ में इसकी अन्य संस्कृत संज्ञाएँ यह दी हैं—भालकम् कुष्टम्, पारिभाद्यम् (पारिभाद्रम्), तनुत्पलम्, (उत्पलम्) इत्यादि।

सहदेव्यादि कुल।

(Family: Compositæ.)।

उत्पत्तिस्थान—कश्मीर।

वर्णन—लुफ़ाह की तरह की एक जड़ जिसका पौधा भूमि पर आच्छादित होता है। यह कांडशून्य होता है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं। (मख्जन)।

बुरहान में और उसके बाद मुहीत में क्रमशः कुस्तुस और कुस्त शब्दों में इसके ये चार भेद लिखे हैं—

(१) कुस्ते अरबी—यह श्वेत वा पीताभ श्वेत, लघु, सुगन्धित और मधुर स्वादयुक्त होती है। कहते हैं कि इसका

*डीमक महोदय के उक्त कथन का आधार संभवतः दीस-कूरीदूस का यह लेख है, “अरब से आनेवाली वस्तुओं में कुष्ठ सर्वोत्तम है।”

व्यवहार सुगन्धियों में होता है। इसको कुस्त बहरी भी कहते हैं। मुल्लानफ़ीस कुस्तबहरी के सम्बन्ध में लिखते हैं—यह लघु सुगन्धित, श्वेत एवं तिक्तस्वादयुक्त होती है और कुस्त शब्द से यही (तिक्त) अभिप्रेत होती है। परन्तु आगे चलकर वे लिखते हैं, 'किसी-किसी के कथनानुसार कुस्तस्याहहिन्दी स्वाद में तिक्त होती है और कुस्तसफ़ेद मधुर। इससे यह निष्कर्ष निकला कि कुस्तबहरी मधुर होती है। अस्तु, फ़ारसी में इसे कुश्तेशीरी और अरबी में कुस्तुल् हलो (मीठा कूट) कहते हैं। हाजी जैनुलअत्तार के कथन से इस बात की पुष्टि होती है। मुल्लानफ़ीस के कथन से श्वेतमधुरकुस्त एक प्रकार के सोसन की जड़ है जो रोम देश में होती है। बनफ़्शे के साथ इसकी खेती की जाती है। अर्राक में इसकी जड़ को "बीखेवनफ़शा" वा "बनफ़शा की जड़" कहते हैं। परन्तु यह उससे भिन्न एक जड़ है जिसे ईरसा वा सोसन की जड़ कहना चाहिये। क्योंकि अरबनिवासी उसे ईरसा वा सोसन कहते हैं। इसे अँगरेजी में ऑरिस रूट (Orris root) और वृक्ष को आइरिस (Iris sp.) कहते हैं। अलफ़ाजुलअदविया के रचयिता ने भूल से इसे (कुश्ते शीरी को) पुष्करमूल वा पुहकरमूल लिखा है। इन्हीं का अनुसरण करके डीमक महोदय ने भी इसे पुष्करमूल मान लिया; यथा—"We think there can be little doubt that this root, which is not now obtainable and is described in the Nighantas as hot, bitter and pungent etc. . . . must have been Orris root. Kushta or Costus is now used instead of it, and Orris root, although much used in India by the Mahometans, has not been indentified by the modern Hindus with Pushkaramula." मानो पुष्करमूल के सम्बन्ध में उक्त डॉक्टर महोदय की यह नई खोज है। पर उन्होंने यह जानते हुए कि प्रायः सभी आयुर्वेद ग्रंथकारों ने इसका स्वाद तिक्त लिखा है। परन्तु डीमक महोदय प्रभृति द्वारा निर्णीत ऑरिस रूट (ईरसा मूल) कुश्तेशीरी स्वीकृत होने से मधुर होना चाहिये। अस्तु, इसे पुष्करमूल मानना विवेकविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध और प्रत्यक्षविरुद्ध भी है। पुष्करमूल को कूट माननेवाले भी गलती पर हैं। यद्यपि भावप्रकाशकार ने इसे कूट का एक भेद स्वीकार किया है, तथापि उससे भिन्न माना है। अस्तु, मरूजन के लेखक का यह कथन—"कहते हैं कि एक कड़ी जड़ है जिसे हिंदी में पुहकरमूल कहते हैं" सत्यता से कोसों दूर है। मरूजन में भी इसके उक्त भेद का उल्लेख आया है।

(२) कुस्ते रूमी जिसे बुरहान और मुहीत में तृतीय भेद

लिखा है। बुरहान में इसे श्वेत और मधुर लिखा है। मुहीत के अनुसार यह तीक्ष्णगंधी होती है और सूरिया में उत्पन्न होने के कारण इसे सूरी भी कहते हैं। खजाइन के अनुसार इसकी लकड़ी शमशाद की लकड़ी की तरह होती है।

(३) कुस्ते शामी जिसे बुरहान और मुहीत में इसका चतुर्थ भेद लिखा है। बुरहान के अनुसार यह काली होती है और इसमें से एलुए की सी गंध आती है। मुहीत में केवल यह लिखा है कि इसकी गंध गंभीर होती है।

किसी-किसी के अनुसार एलुए की गंधवाली निकृष्ट होती है। शैख के अनुसार इसे करन्फ़ुली कहते हैं। परन्तु मुल्लानफ़ीस ने कुस्त करन्फ़ुली (लौंगिया कूट) भारतीय कुष्ठ का नाम लिखा है। वे लिखते हैं कि इसका रंग शमशाद की लकड़ी के मानिद होता है। गंध तीव्र होती है इसी को कोई-कोई रासन कहते हैं। किसी-किसी ने इसे स्याहीमायल लिखा है। यूनानी निघंटुओं में रासन जंजबीलशामी को लिखा है, जिसे अँगरेजी में एलिकम्पेन रूट (Elecampane root) जो इन्डुला हेलेनियम (Inula Heleneum Linn.) नामक पौधे की जड़ है, कहते हैं। अस्तु, डीमक महोदय दीसकूरीदूस के कथन का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—"The Syrian Costus of the same writer is Elecampane root."

यह पुष्करमूल की जाति के एक पौधे की जड़ है जो श्याम-देश में होता है। कदाचित् इसी कारण भावप्रकाशकार ने इसे कुष्ठभेद लिखा है और यूनानी ग्रंथकर्त्ताओं ने इनको अभिन्न मानने का प्रमाद किया है।

(४) कुस्ते हिंदी (कुष्ठ व कूट)—बुरहान के मत से यह काले रंग की और कड़ई होती है। उनके मत से वास्तविक कुस्त वा कुष्ठ अर्थात् कूट 'कुस्तुलुमु-अ०, कड़वा कूट-हि० यही है। मरूजन और मुहीत के अनुसार भी यह कड़ई, ऊपर से स्याहीमायल और भीतर से जरदी मायल, मोटी, हलकी और स्वल्पगंधी होती है। परन्तु नफीसी में जो इसे मधुर लिखा है वह ठीक नहीं है। क्योंकि आगे चलकर उन्होंने स्वयं इसका खंडन किया है। उन्होंने इसकी एक संज्ञा कुस्तकरन्फ़ुली भी लिखी है जो दूसरों के मत से कुश्तेशामी का नाम है। खजाइन में लिखा है कि इसका प्रयोग बहुधा लेपनौषधों में होता है। अरबी और फ़ारसी ग्रंथ-रचयिता भारतीय कुष्ठ को स्वल्पगंधी कदाचित् इस कारण कहते हैं कि हिन्दुस्तान से बाहर जाकर पुराना पड़ने के कारण सुगंध जाती रहती होगी अथवा हिन्दुस्तान से निकृष्ट एवं निम्न कोटि का वा रद्दी कूट जाकर उन लोगों की नज़रों से गुज़रा होगा। वरन् भारतीय कुष्ठ परम् सुगंधित होता है। अस्तु, अनुभूतचिकित्सासागर में

उल्लेख है कि कूट कश्मीर, झेलम और चनाब के नलों में पैदा होता है। भादों और आश्विन में इसकी जड़ जमीन से खोदकर निकाली जाती है। यह बहुत सुगंधित होती है। यह गट्टों में बांधकर बैलों पर लादकर प्रेषित की जाती है और जिस ओर से इसे ले जाते हैं उस भाग की वायु मनोहर सुगंधि से परिपूर्ण हो जाती है। तजकिरतुल्-हिंद में भारतीय कुष्ठ के ये तीन भेद लिखे हैं—(१) यह मधुर, पीताम्ब, श्वेत, लघु और सुगंधित होता है। इसे 'कूट' कहते हैं। (२) सुरखी साबल, भारी सुगंधित और कड़ुआहटरहित होता है। विपाक्त एवं घातक होने से इसका उपयोग वर्जित है। इसको 'कङ्कष्ट' कहते हैं। (३) तिक्त, ऊपर से श्यामता लिए और भीतर से पीताम्ब, मोटी, हल्की और स्वल्पसुगंधि होती है। इसको "चङ्गल कुष्ठ" कहते हैं।

मुल्लानफ़ीस ने हिंदी, शामी और बहरी इन कुस्तत्रय का उल्लेख किया है। मरूजन के रचयिता अरबी और हिंदी इन दो भेदों का उल्लेख करके इसके द्वितीय और तृतीय भेदों के स्थान में अपने तृतीय भेद का इस प्रकार वर्णन करते हैं, "यह सुखीमायल, भारी (तौल में), शम-शाद की लकड़ी की तरह और तिक्तताशून्य एवं सुगंधित होती है। यह घातक और विष है।" मुहम्मद बिन अहमद के अनुसार तिक्त और मधुर भेद से कूट दो ही प्रकार का होता है। एक सफ़ेद और मधुर जिसको बहरी कहते हैं। दूसरा तिक्त जिसे हिंदी कहते हैं। इनमें मधुर अल्पसुगंधी और कम उष्ण है और तिक्त अधिक सुगन्धित एवं उष्ण है। मासरजोधा लिखते हैं कि कुस्त दो प्रकार की होती है। एक सफ़ेद और मधुर जिसे बहरी कहते हैं। दूसरा तिक्त जिसे हिंदी कहते हैं। इनमें सफ़ेद वा अधिक सुरभिपूर्ण और सुगंध-श्रेष्ठ होता है और हिंदी औषध में उपकारी होता है। अंताकी के अनुसार कुस्त का एक भेद बहुत भारी (तौल में) होता है जिसे वहाँ के लोग कुस्तेतल्ल और मारदारुमी कहते हैं। वे लिखते हैं कि मैंने उसके पीधे को अवलोकन किया और उसकी जड़ ले आया और उसका प्रयोग किया। हाजीजेनुल्-अत्तार भी लिखते हैं कि कुस्तेतल्ल कूट (Indian Costus) की फारसी संज्ञा है। कुस्तेशीरी को अरबी में कुस्तेहलो कहते हैं और यह जैसा पूर्व में बतलाया गया ईरसा व सोसन की जड़ है। निष्कर्ष यह कि कुस्त के सभी भेदों का विचार करने से अंततः वास्तविक कुस्त एक ही रह जाता है और वह भारतीय कुष्ठ है और नामभेद से इसे अरबी कुस्त (Arabian Costus) कहते हैं। यद्यपि अरबवालों की कुस्तेअरबी इससे भिन्न एक प्रकार के सोसन अर्थात् ईरसा की जड़ थी। अस्तु डॉ० फैलकूनर (Falconer) द्वारा कुष्ठ के उत्पत्तिस्त्रोत

(तत्त्व) के अन्वेषण होने से बहुत पूर्व, रॉयले (Royle) महाशय कुष्ठ के संबंध में लिखते हैं—“कुष्ठ दो प्रकार का होता है—तिक्त और मधुर।” रॉयले के तिक्त कुष्ठ विषयक वक्तव्य का परिशीलन करने से यह प्रतिपन्न होता है कि तिक्त कुष्ठ ही व्यापारिक कुष्ठ है। रॉयले द्वारा संगृहीत कुस्तेतल्ल के नमूनों के परीक्षण से यह सिद्ध हुआ कि वह Aplotaxis विशेष की ही जड़ है। अधुना बाजारों में एक ही प्रकार का कूट उपलब्ध होता है। कुक (Cooke) महाशय रॉयले की इस उक्ति का यह अर्थ लगाते हैं—“वस्तुतः मधुर-तिक्त भेद से कुष्ठ दो प्रकार का नहीं होता, प्रत्युत एक ही कुष्ठमूल छोटे पीधे से ग्रहण किया हुआ मधुर और वही पूरे बड़े पीधे से उद्धृत तिक्त होता है।” डिमक महोदय कुक के उक्त कथन के समर्थन में यह उक्ति पेश करते हैं कि बम्बई प्रांत में जहाँ कश्मीर से कुष्ठ विक्रयार्थ वा बाहर प्रेषणार्थ भेजा जाता है, वहाँ इसके तिक्त मधुर ऐसे किसी भेद का पता नहीं चलता। इस्तियारातवदीई नामक ग्रंथ के रचयिता हाजी जीनुल्-अत्तार लिखते हैं कि कुस्तेतल्ल कुष्ठ (Indian Costus) की फारसी संज्ञा है। और कुस्तेशीरी (मधुरकुष्ठ) को अरबी में कुस्तेहलो कहते हैं जो ईरसा की जड़ है और जिसे अंगरेजी में (Orris root) कहते हैं। डिमक के मत से यह पुष्करमूल हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। कामूस के लेखक का कुस्त को ऊर्देहिंदी (अगर) लिखना भी प्रमादपूर्ण है। जैसा ऊपर बतलाया गया है, कुष्ठ कश्मीर में होता है। परंतु कोई-कोई यूनानी निघंटुकार लिखते हैं—पारस्य देश के बहरी प्रांतस्थ वनों और पर्वतों में जिन्हें कर्मसीरात कहते हैं, सफ़ेद और कड़ुई कुस्त प्रचुरता से मिलती है। इसके पेड़ और पत्र फाशरा की तरह और जड़ उसकी जड़ से बड़ी और कड़ुई होती है। यह रक्त कुष्ठ है। (मुहीत)।

उपर्युक्त समग्र कथन का तात्पर्य यह है कि अंततः हकीमों के प्रयोग में कुस्ते तल्ल और कुस्ते शीरी अंततः इन दो शब्दों का ही अधिक प्रचलन है। मात्र कुस्त शब्द से उन्हें कुस्ते शीरी जिसे कुस्ते बहरी भी कहते हैं, अभिप्रेत होता है। इनमें भी ताजी, सफ़ेद, मधुर, मोठी और जो सुगन्धित हो, कृमिभक्षित न हो और उसमें सुगंधि आती हो, चाबने से जिह्वा में दाह मालूम हो, छाल पतली और नरम हो वह कुस्त सर्वोत्तम समझी जाती है। यह परम गुणकारी श्रेष्ठ औषधि है। इसके बाद हिंदी की गणना है जो काली और हल्की होती है। सबके बाद शामी है। (मरूजन)।

परीक्षा—कुस्त की शक्ति दस वर्ष तक शेष रहती है। कोई-कोई कुस्त बहरी में रासन (कुस्ते शामी) की मिलावट कर देते हैं। उसकी पहचान यह है कि रासन की

जड़ की गंध तीव्र नहीं होती और न उसके चबाने से जिह्वा में दाह ही मालूम होती है। वह इससे कड़ी भी होती है। (मखन)।

गंजबादावर्द में लिखा है कि कुस्त को पीसकर पानी मिलाकर धूप में रखें, जिसमें सूख जाय। फिर पानी में डालकर थोड़ी देर छोड़ दें। यदि वदस्तुर अपनी हालत पर रहे तो उत्तम और घुल जाने पर नकली समझें।

कुस्ते हिन्दी वा कुष्ठ का वर्णन

एक ऊँचा अत्यन्त सघन दृढ़ क्षुप जो प्रति वर्ष पुरानी जड़ से उगता है। जड़ मोटी और बहुवर्षीय होती है। पत्ते बड़े और हृदयाकार होते हैं। केवल इसकी जड़ औषध के काम में आती है। इसे सितम्बर और अक्टूबर महीने में जमीन से खोदकर संग्रह करते हैं। इसके टेढ़े-मेढ़े बलखाये हुए २ से ६ इंच (वा लगभग ३ इंच) लम्बे टुकड़े होते हैं जो आधा से ११ इंच व्यास के होते हैं। बाहर से ये भूरे होते हैं और उन पर लम्बाई के रख उभरी हुई रेखाएँ होती हैं। उसका धरातल खुरदरा और कुछ-कुछ जालनुमा होता है। यह भंगुर होता है। जड़ के टूटे भाग पर गोंद सी लगी हुई जान पड़ती है और वह खाकी सफेद रंग का होता है। जड़ स्वाद में तिक्त और चरपरी होती है जिसमें से बनफ़शे वा ईरसा (Orris root) की तरह की एक विशिष्ट प्रकार की अत्यन्त मुरभिपूर्ण गन्ध आती है।

मुण्डी या सहदेव्यादि कुल।

(Family Compositae)।

उत्पत्तिस्थान—हिमालय के उत्तरी वा उत्तरी पश्चिमी ढालों पर विशेषतया कश्मीर की घाटी के चारों ओर के पर्वतों के आर्द्र ढालों पर कूट के क्षुप उत्पन्न होते हैं और वहीं से संग्रह करके प्रभूत परिमाण में कलकत्ता और बम्बई भेजा जाता है जहाँ से जहाजों पर लदक़ीर क्रमशः चीन और लालसागर के बन्दरगाहों पर भेजा जाता है। यह मसाला, धूप और औषध के काम आता है। हमारे देश में जिस तरह देवालियों में धूप और गुग्गुलु प्रभृति जलाये जाते हैं, चीन देश में उसी प्रकार कुष्ठ का धूप देते हैं। इसकी बढ़ती हुई माँग को देखकर अब तो कश्मीर राज्य की सरकार अपने यहाँ ऐसे

१. उत्तम कुष्ठ के विषय में चक्रपाणि लिखते हैं—

“भंगे मनागति न चेन्नियतन्ति ततः कणाः। मृगश्रृंगोपमं कुष्ठम् (वातव्याधि चिकित्सायां)—अर्थात् जो तोड़ने पर जरा भी न मुड़े और देखने में हरिन की सींग की तरह हो, वह उत्तम कुष्ठ है। ‘मृगश्रृंगोपम’ विशेषण के पाठ से यह अनुमान होता है कि पूर्वकाल में कुष्ठ टुकड़ा टुकड़ा करके नहीं बिकता था।

स्थानों में इसकी बड़े पैमाने पर खेती कराती है, जहाँ से वह आसानी से बाहर भेजा जा सके। यह कश्मीर में ही पैदा होता है और यहीं से सर्वत्र भेजा जाता है। अस्तु, मुहीतलिखित इसके फारस के किसी स्थान विशेष में होने की बात को गौण समझना चाहिये। उसमें इसके यमन, रोम और भारतीय द्वीपों में होने का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यूनानी निबंद्दों में वर्णित कुस्त के अन्य भेद तो उन देशों में होते हैं। पर वास्तविक कुष्ठ केवल भारतवर्ष वह भी विशेषतः कश्मीर में होता है। इसलिये उन्होंने इसे कुस्तेहिन्दी नाम से स्मरण किया है। यह कुष्ठ प्राचीन काल से ही मसाला आदि अन्य द्रव्यों की भाँति भारत से बाहर जानेवाले निर्यातद्रव्यावलि की तालिका में समाविष्ट था। तालीफ़शरीफी के अनुसार भी तिक्त कुष्ठ हिन्दुस्तान में बहुतायत से होता है। अरब व्यापारी इसे युरोप आदि पश्चिमी देशों में ले जाते थे। अस्तु, बहुतकाल तक वहाँ के निवासी इसे अरब की पैदावार समझते रहे। इसी कारण इसकी एक अँगरेजी संज्ञा अरेबियन कास्टस (Arabian Costus) लिखी मिलती है। परन्तु कुस्ते अरबी इससे भिन्न द्रव्य है। इस बात को स्वयं आरव्य लेखक भी स्वीकार करते हैं। डाक्टर फैलकूनर लिखते हैं—

“It is collected in large quantities and exported to the Punjab, whence the larger portion goes down to Bombay, where it is shipped for the Red Sea, the Persian Gulf and China; a portion of it finds its way across the Sutlej and Jumna into Hindoo-stan Proper, whence it is taken to Calcutta and bought up there with avidity, under the designation of Patchak, for the China market.” (Pharm. Ind. pt ii, p. 298).

मिश्रण—विविध प्रकार के केमुक (Costus) जातीय पौधों की जड़ें, थूत (Salvia lanata) नामक पौधे की जड़, जो बिल्कुल कूट के सदृश होती है, निर्बिसी (Aconitum Sp.) की जड़ इत्यादि। कश्मीरनिवासियों के कथनानुसार इसी प्रकार की ५-६ चीजों की मिलावट का पता लगता है।

रासायनिक संगठन—इसमें (१) उडनशील तेल १.५%; (२) कुष्ठीन (Saussurine) संज्ञक एक क्षारोद ०.०५%; (३) राल लगभग ६.०%; (४) अंशतः एक तिक्त पदार्थ; (५) अल्पमात्रा में कषायिन (Tannin); इन्डुलीन लगभग १८.०%; (६) स्थिर तेल; (८) पोटेशियम नाइट्रेट, शर्करा इत्यादि पदार्थ होते हैं। पत्र में ०.०२५%

उक्त क्षारोद होता है और कोई उद्गन्शील तेल नहीं होता। (Ind. drugs of India by Chopra)।

औषधार्थ व्यवहार—मूल।

औषध-निर्माण—माजून, तैल आदि।

इतिहास—अथर्ववेदमें (कां० १९, सू० ३९) में कुष्ठका विशद वर्णन आया है। बल्कि कां० ५ तो पूरा अध्याय का अध्याय ही इसके (यक्ष्म वा कुष्ठनाशन) गुणगान में समाप्त कर दिया है। उसमें इसे 'हिमवतस्परि' लिखा है और इसका सोमसम वीर्यवती औषधियों में उल्लेख किया है तथा इसे शिरोरोग, तृतीयकज्वर, कुष्ठ और कृमिनाशक लिखा है। चरकसुश्रुतादि आयुर्वेद के प्राचीन चिकित्साग्रंथों तथा धन्वन्तरि, राजनिघण्टु प्रभृति निघण्टुग्रन्थों में कुष्ठ विशदरूपेण वर्णित हुआ है। सावफ-रिस्तुस और दीसकूरीदूस प्रभृति यूनानी चिकित्साचार्यों ने 'कोष्टोस' नाम से इसका उल्लेख किया है। उनके अनुसार ईसवी सन् से २४३ वर्ष पूर्व सीरिया के राजा सेल्युकस द्वितीय और उसके भ्राता एण्टिओकस हीरक्श (Antiochus Hierax) द्वारा मिलेटस (Miletus) के सूर्य (अपोलो) मन्दिर पर चढ़ाए हुए भेंट के द्रव्यों में कुष्ठ भी समाविष्ट था। मसाला इयादि बहुशः अन्यान्य भारतीय द्रव्यों की भाँति पूर्व काल में कुष्ठ भी अरब व्यापारियों द्वारा युरोप आदि पाश्चात्य देशों में प्रेषित किया जाता था। अस्तु, वे लोग इसे अरब की पैदावार होने का अनुमान करते थे, जिससे इसकी एक प्राचीन संज्ञा कुस्ते अरबी (Arabian Costus) लिखी मिलती है। दीसकूरीदूस लिखते हैं—“ताजा, फीके रंग का, गठीला वा ठोस, शुष्क, जो कीटदष्ट न हो, ताक्ष्ण-गंधी न हो और स्वाद में उष्ण और कुनकुनाहट पैदा करनेवाला हो, वह कुष्ठ सर्वोत्तम है।” वे इसके एक अधम जाति का भी उल्लेख करते हैं जो हिगुवत् (Ferula) लघु होता है, जिसे वे भारतीय कुष्ठ कहते हैं। उनके मत से कुश्तेशामी (Syrian Costus) जंजबील शामी वा रासन (Elecampane root) को कहते हैं। अरबनिवासी भी भारतीयों की भाँति एक प्रकार के काल्पनिक कुष्ठ का उल्लेख करते हैं जिसे वे जज्जल बहर (सामुद्र गर्जर) वा कुस्तुलबहर (सामुद्रकुष्ठ) कहते थे जो उनकी परम्परा में परमोत्कृष्ट भेषज वर्णित हुआ है। संभवतः उक्त अंधपरम्परागत प्राप्त अंधश्रद्धा ने ही यूनानियों को कुस्तेअरबी को भारतीय कुष्ठ से भिन्न वर्णन करने की प्रवृत्ति दिलाई है।* आरव्य लेखक

*तोहफतुल् मोमिनीन में लिखा है, “यह जड़ हिंदुस्तान के किनारे से आती है। इसका पौधा कांडरहित और पीले पत्तों का होता है।”

कुष्ठ को भारत से लाया हुआ एक काष्ठ लिखते हैं जो उनके मत से एक मनोरम प्रियंग्वी भेषज-द्रव्य है, जिससे स्त्री और बालकों को धूप देते हैं। पारस्य चिकित्सक यह स्पष्ट रूप से जानते हुए कि कुष्ठ एक ही प्रकार का होता है और कश्मीर से लाया जाता है, अपने लेखों में यूनान और अरब लेखकों का ही अनुसरण किया है। उक्त औषधि के इतिहास विषयक मध्यकालीन युरोपीय विद्वानों के विवरण के लिये (Phar. jour., Aug; 18th; 1877) में प्रकाशित डॉक्टर कुक (Cooke) और फ्लुकीजर (Flückiger) के एतद्विषयक निबन्ध का अवश्य परिशीलन करें। भारतीय द्रव्य-गुण के पाश्चात्य लेखकों में से ऐन्सली (Ainslie) यद्यपि कुष्ठ को कॉण्टस अरेबिकस (Costus Arabicus) की जड़ वर्णित करते हैं, फिर भी निम्न शब्दों द्वारा अपना सन्देह प्रगट करते हैं—जड़ की परीक्षा करने पर, इसका पौधा एशियाटिक रिसर्चेंज (Asiatic Researches) की जिल्द ११वीं, पृष्ठ ३४९ पर वर्णित पौधे से भिन्न प्रतीत होता है। वास्तविक कुष्ठ के सम्बन्ध में यह भ्रम बहुत काल तक बना रहा और इसकी जगह केमुक (Costus) की बहुसंख्यक उपजातियों में किसी-न-किसी की जड़ प्राचीननिवासी उपयोग करते रहे। उक्त द्रव्य के वास्तविक वानस्पतिक-स्रोत के सर्वप्रथम सुझाने वा निर्देश करने का श्रेय श्री गिबर्ट (Guibourt) महाशय को प्राप्त है। इसके उपरान्त फैल्कूनर महाशय ने उनके अनुमित विचारों का समर्थन किया। उन्होंने कश्मीर जाकर इस बात का पता लगाया कि वहाँ (Aplotaxis) जातीय जो एक वनस्पति होती है, व्यापार में काम आने वाला 'कूट' उसी की जड़ है। बाद की उक्त डॉक्टर महाशय ने अपने मत के पोषक और प्रस्थापक प्रमाणों को देने के बाद इस बात का प्रतिपादन किया कि प्राचीनकाल से प्रसिद्ध कुष्ठ भी यही है। तब से अब यह निश्चित द्रव्य माना जाने लगा और इसके सम्बन्ध में अब कोई मत-भेद देखने-सुनने में नहीं आता।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष। शैख ने तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष लिखा है। बुरहान ने चतुर्थ कक्षा में भी उष्ण और रुक्ष बताया है। दररुलमुफाखिर से मालूम होता है कि इसके तिक्त भेद की उष्णता और रुक्षता चतुर्थकक्षा के प्रथमांश तक पहुँचती है। मुल्लानक्रीस और भाष्यकार गीलानी लिखते हैं कि तिक्त होने से इसमें एक पार्थिव तत्व और चरपरा होने से आग्नेय तत्व भी पाया जाता है। क्योंकि यह जड़ है। इसलिये इसमें एक मलभूतद्रव्य भी होता है।

अहितकर—तिक्त कुष्ठ वस्ति को और मधुर फुफ्फुस को

हानिकर है। निवारण—तिक्त के लिये गुलकंद और सफेद अजवायन खुरासानी तथा मधुर के लिये अनीसून। साहबमिन्हाज ने इसका निवारण खत्मी भी लिखा है। प्रतिनिधि—अर्ध भाग (तौल में) अकरकरा और वज तुर्की (बच)। मात्रा—३॥ से ४॥ वा ७ मा० पर्यंत। ग्रह—(मधुर) मंगल वा सूर्य। (तिक्त) मंगल।

गुणकर्म और प्रयोग—यह (तिक्त) तारल्यकारक (मुलत्तिफ), क्षतोत्पादक (मुकर्रह), शोथादि विलीन कर्त्ता और छेदनकर्त्ता है। यह उष्ण है; इसलिये इसके अभ्यंग से पक्षवध और कम्प का नाश होता है। यह सांद्र और पिच्छिल दोषों का छेदन करता है। अपनी उष्णता और तीक्ष्णता एवं आकर्षणकारीशक्ति से गृध्रसीसम प्रत्येक ऐसी व्याधि के लिये लाभकारी है जिसमें शरीर के गंभीरतर वा आंतरिक भागों से बाहर अर्थात् त्वचा की ओर दोषों के आकर्षण की आवश्यकता होती है। अपनी प्रवर्तनकारी और रोधोद्घाटिनी शक्ति से यह मूत्र और आर्तवका बलात् प्रवर्तन करता है। तिक्त होने से स्फीतकृमियों को नष्ट करता है। मलभूत द्रवों के कारण कामोद्दीपक है। अपने शोषण और विलीनीकरण धर्म से अंगुलानि (फ्रस्व) और शोषण गुण से मांसपेशी के टूटने को लाभकारी है। (नफ़ीसी)।

(आरव्य लेखक कूट को एक भारतीय काष्ठ लिखते हैं जो उनके मत से प्रख्यात मधुरगंधी भेषज-द्रव्य है जिससे स्त्रियों और शिशुओं को धूप देते हैं।) यह मूत्रल है तथा यकृत, उदरशूल, उदरगत कृमि और चातुर्थकज्वर इन रोगों में इसे पीने से बहुत उपकार होता है। आमवात, स्रावावरोध (defluxions) और संक्रामक वा महामारी आदि रोगों में इसकी धूनी लाभकारी होती है। व्यंग और नीलिका प्रभृति त्वग्रोगों में इसका अभ्यंग गुणकारी है। यह संग्राही, मनोल्लासकारी और वातानुलोमक है तथा आमाशय और हृदय को शक्ति प्रदान करता है। यह बहुशः सुगंध-द्रव्यों का एक उपादान है। इसके द्वारा धूपन करने से सर्वोत्तम सुगंधि आती है। (कामूस और ताजुलअरुस)।

गुहफतुल मोमिनीन—के अनुसार यह तीन प्रकार का होता है। इनमें तीनों रूक्ष हैं तथा पित्तनिस्सारक, कामोद्दीपनकर्त्ता, जंगमविष के नाशक और वस्तिस्थ-अश्मरि द्रावक हैं।

यह उत्तमांगों तथा वातनाडियों को बलप्रद और वाजीकरण है। यह अपूर्ण आहार और स्निग्ध शीतल व्याधियों को लाभकारी है। जिन अंगों को उष्णता की आवश्यकता है, उन्हें उष्णता प्रदान करता है। रक्त, विष और समग्र दोषों को त्वचा की ओर आकृष्ट वा प्रवृत्त करता है। यह मेध्य (मुक़ब्बी

दिमाग), वातनाडियों को शक्तिप्रद, मस्तिष्क को अवसन्न करनेवाली वायु को विलीन करनेवाला और चिरज स्निग्ध-शीतल शिरोशूल को लाभकारी है। विशेषतया सफेद कुट उक्त कार्यों में परमोपकारी है। पूर्वमस्तिष्क (मुकद्दम दिमाग) गत व्याधि, कफज मस्तिष्कावरण शोथ वा विस्मरण (लीसुगुस), आक्षेप, धनु-स्तम्भ, कम्पवात और स्वाप प्रभृति स्निग्ध-शीतल मस्तिष्करोगों में मधु वा अन्य उपयोगी भेषजों के साथ इसे पान करने से उपकार होता है। शहद में मिलाकर इसका लेप करने से अथवा रोगन अरबी में जो कदाचित् गो वा छागी घृत है पकाकर उक्त रोगों में अभ्यंग वा मर्दन करने से भी उपकार होता है। वर्षा के पानी में पीसकर नाक में प्रथमन (सज़त) करने से चिरज शिरोशूल आराम होता है। विस्मृति रोग में इसके अनुलेपन (खुतूख) से उपकार होता है। पक्षवध, अंगवैथिल्य (इस्तरखाऽ) और शिरोशूल में इसे जैतून के तेल में मिलाकर प्रलेप करने से लाभ होता है। कान में इसका तेल डालने से शीतजनित कर्णावरोध का उद्घाटन होता है। प्रकोथ वा दुर्गंधजनित प्रतिश्याय और महामारी में इसकी धूनी देने से उपकार होता है। उरोवेदना, श्वास, श्वास भेद (बुहूर), श्वासकृच्छ्र और चिरजकास में इसे ४॥ मा० की मात्रा में मद्य और अफसंतीन के साथ पीने से उपकार होता है। इसे शहद में मिलाकर चाटने से पिच्छिल दोषों से उरोशोधन होता है और पार्श्वशूल मिटता है। आमवात, वातनाडियों और मांसपेशियों के वैथिल्य (इस्तरखाऽ), वातनाडीभंग (फ्रस्वअश्याब; मुहीत में फ्रस्व मफूसलअर्थात् संधिच्युति) और वातनाडी एवं संधिगत उष्णता, संधिरोग और गृध्रसी इनमें इसके पान-लेप और अभ्यंग से उपकार होता है। शहद के साथ इसे पीने से कफ और द्रव का शोषण और नाश होता है, पिच्छिल दोषों का छेदन होता है, वायु का अनुलोमन होता है, आमाशय, यकृत, वृक्क और वस्ति प्रभृति अंगों को शक्ति और उष्णता प्राप्त होती है तथा उनके और उदर्या पेशियों के रोगों और वेदनाओं (व्याधियों) का निवारण होता है। प्लीहा एवं वृक्क के अवरोधों का उद्घाटन होता है, प्लीहा की सूजन मिटती है और जलोदर, पाण्डु और गर्भशय की मरोड़ एवं वेदना आराम होती है। पानी के साथ उपयोग करने से आमाशय और आन्त्रस्थ कृमियाँ तथा स्फीतकृमि निस्सरित होते हैं और मूत्र और आर्तव का प्रवर्तन होता है। इसके धूपन (कमअ में अर्थात् स्वेदनाडिका द्वारा) और योनि में बर्त्ति वा पिचुवर्त्ति धारण करने से आर्तव का प्रवर्तन होता है, योनिशूल आराम होता है और गर्भस्थ शिशु एवं अमरा पात होता है। इसके द्वारा स्वेदन और

इसके काढे में स्त्री को बिठाने (जूलूस) से भी उक्त लाभ होता है। १॥ मा० कूट मधु वा मद्य के साथ पीने से एवं इन्द्री पर इसके लेपन करने अथवा इसके तेल का मर्दन करने से वाजीकरण है। वेग से पूर्व इसे सिकंजबीन के साथ पीने से चिरज चातुर्थकज्वर और जैतून के तेल में मिलाकर लेप लगाने से कफज्वरगत वेपथु का नाश होता है। व्यंग (कल्फ) और त्वग्रोग विशेष (आसार जिल्द) में इसे मधुवारि (माउलअस्ल) में मिलाकर लेप करने से उपकार होता है। इसे सिरके में पीसकर या शहद वा कतरान में मिलाकर बालखोरे वा खल्वाट (दाउस्सअलव) पर लगाने से वहाँ पर बाल जम आते हैं। व्यंग विशेष (वरश), मसा (नमश), अहंघिका वा गंज (सअफ़ा), विद्रधि (खुराजात) और मुखगत (सूरत) आक्षेप इनमें भी इससे उपकार होता है। तर व्रणों पर पुराने कूट के चूर्ण के अवचूर्णन से उपकार होता है। ताजा कूट क्षतोत्पादक वा व्रणकारक (त्वचा पर) है। ४॥ मा० कूट मद्य और अफ़संतीन के साथ विषों का अगद और उन्हें त्वचा की ओर आकर्षित वा प्रवृत्त करनेवाला है। कृष्ण सर्प (अफ़ई), वृश्चिक और स्तेला प्रभृति के विषों में तथा उनकी तरह अन्यान्य घातक विषों में यह लाभकारी है। (मख़्जन)।

इसके (तिक्त कूट) काथ में शर्करा मिलाकर पीने से यकृत के अवरोधों का उद्घाटन होता है, आमाशयशूल आराम होता है और वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी का छेदन होता है। शेख के अनुसार तिक्त कुष्ठ तर व्रणों को शोषणकर्ता है। वातनाडियों की शिथिलता संविच्युति और गृध्रसी में इसका प्रलेप लाभकारी होता है।

तिक्त कुष्ठ वायु और शोथ को विलीन करता है; शीतजन्य वेदनाओं और वातरक्त को लाभ पहुँचाता है; हर प्रकार की (कफज) वेदनाओं को दूर करता है। यह घातक है। इसलिये इसका किसी प्रकार सेवन (खाना) उचित नहीं है। लगभग विषैला है। (म० मु०)।

तिक्त कुष्ठ प्रायः प्रलेपीषधों में पड़ता है। यह तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। यह सूत्र और रजःप्रवर्तक है और शरीर के आभ्यन्तरिक अंगों से दोषों को आकृष्ट करता है। जंगम विषों का अगद है तथा अवरोधोद्घाटनकर्ता, तारल्यजनक, सांद्रदोषछेदनकर्ता, वाजीकर गर्भाशयशूलनाशक, उरोशूलनाशक, हर प्रकार के कृमियों का नाशक, दीपन-पाचन (मुक्कवी मेदा), वस्तिस्थ अश्मरिनाशक और गर्भघातक है तथा प्लीहा, जलोदर, आक्षेप और कम्पवात इन रोगों में परम लाभकारी है। मीठे कूट में कड़ुए की अपेक्षा कम गरमी होती है और बहुत प्रयोग में आता है। (ता० श०)।

आध पाव कूट लेकर कूटकर चौड़े मुँह की देगची में

डालकर यथावश्यक पानी डालें। इसके बाद उसे आग पर रखकर इतना पकायें कि उसका गुणभाग पानी में आ जाय। फिर आग कम कर दें जिसमें पानी ठंडा होकर हाथ डालने योग्य हो जाय। उस समय हाथ डालकर भीतर हाथों से मलते रहें और पानी को उतना ही गरम बना रहने दें। प्रहर भर तक ऐसा करें। इसके बाद हाथ बाहर निकालकर चार घड़ी तक घी हाथों पर मलें। फिर कपड़ा लपेटकर दो घड़ी तक हाथों को बगल में दावे रखें जिसमें वे गरम बने रहें। यदि इसके दो दिन बाद तक भी उसे सरदी न पहुँचायें तो उत्तम हो। उचित यह है कि यह क्रिया रात्रि में करें और उसी तरह सो जायें। हाथ में छजना (छाजन) पैदा हो जाय तो उसके लिये यह प्रयोग शतशोऽनुभूत है। एक बार से अधिक इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि सम्पूर्ण शरीर में छजना हो, तो अधिक कूट लेकर बड़ी देग में पकायें और उसमें बैठकर उक्त प्रयोग करें। यदि हाथ-पैर फट जायें, तो कूट के कोष्ण काथ में तीन घड़ी तक रखकर घी लगाकर कपड़े से छिपा लें। आशा है कि दो बार इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कूट को शराब में पीसकर सर्प और वृश्चिक के दष्ट स्थान पर लेप करने से यह विष को त्वचा की ओर खींचता है। (खजाइन)।

बैद्यक* के मतसे यह स्वादु, तिक्त, कटुक (तीक्ष्ण), उष्ण, लघु शुक्रल (मुवही) है तथा वीसर्प, वातरक्त (जोशीदगी), कास, कुष्ठ तथा वात और कफ इनका नाश करता है। (ता० श०)। यह शरीर को कांति प्रदान करता और जठराग्निवर्द्धक है। (मुहीत)। कूट वाजीकरण, वल्य और वातज तथा कफज रोगनाशक है। स्वासरोग में इसके चूर्ण को मधु मिलाकर चटाने से परम उपकार होता है। इसको पानी में घिसकर लेप करने से गाँठें बिखर जाती हैं। यह चरपरा और उद्दीपक है। कफ, स्वास, कास, ज्वर, मंदाग्नि और त्वचा के रोगों में इसका उपयोग होता है। इसके चूर्ण से निर्मित मरहम को

*कुष्ठ मुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु।

हन्ति वातात्त विसर्पकास कुष्ठं मरुत्कफान् ॥

(भावप्रकाशः)।

कुष्ठं कटूष्णं तिक्तं स्यात् कफमारुत कुष्ठजित्।

विषर्षं विष कण्डूति खर्जू दद्रुधन कान्तिकृत् ॥

(राजनिघण्टुः)।

कुष्ठं वात कफ स्वास कास हिक्का ज्वरापहम्।

(राजवल्लभः)।

कुष्ठं वातहराभ्यङ्गोपनाह योगिनाम् ॥

(चरकः सू० २५)।

फोड़ों पर लगाते हैं। विसूचिकाजन्य अंगसाद में शरीर को उष्ण करने के लिये इसका काढ़ा करके पिलाते हैं और इसे तेल में पकाकर उस तेल की मालिश करते हैं। फोड़ों पर इसका चूर्ण बुरकते हैं। इसका चूर्ण दाँतों पर मलने से दंत-शूल आराम हो जाता है। इसका तेल मर्दन करने से आमवातजनित वेदना शमन होती है। व्रणगत कृमियों को नष्ट करने के लिये इसका चूर्ण बुरकना चाहिये। इसका चूर्ण पानमें रखकर चबाकर निगलने से कासरोग आराम होता है। कूठ, सोंठ और सेंधानमक इनकी फंकी देने से मन्दाग्नि दूर होती है। कफ और वातज्वर-नाशक योगों में कूठ को समाविष्ट करते हैं। कूठ और राल का घृष्मपान करने से हिवका दूर होती है। कूठ और एरण्डमूल को काँजी में पीसकर मस्तक पर लेपन करने से वातज शिरोशूल आराम होता है।^१ इससे निर्मित तैल से वातरक्त आराम होता है। इसका बफारा लेने से पीनस और प्रतिश्याय आराम होते हैं। इसका चूर्ण दुग्ने शहदमें फेंटकर चटाने से कास और श्वास आराम होते हैं। ५ तोला कूट जौ-कुट करके सेर भर पानी में अर्द्धविशेष रहने तक औटाकर दिनमें तीन-चार बारमें पिला देने से कुत्ते का विष उतर जाता है। (खजाइन)।

कुस्तेशरीरों वा मधुर कुष्ठ

यह मस्तिष्क, यकृत और उत्तमांगों को शक्ति प्रदान करता और वाजीकरण है। यह वातनाडियों वा पुट्टों को भी बल प्रदान करता है, वायु को अनुलोम करता और पक्षवध, अर्दित और कंपवायु प्रभृति मास्तिष्क रोगों को लाभ पहुँचाता है। यह उदरस्थ कृमियों को निस्सरित करता और मूत्र एवं आर्तव का प्रवर्तन करता है। यह हृदय को शक्ति प्रदान करता और अवरोधों का उद्घाटन करता है तथा रक्त को त्वचा की ओर आकृष्ट करता है। दरखल मुफ़ाखिर के रचयिता कहते हैं कि कुस्ते-शरीरों उष्ण वा चरपरा, व्रणकारक और तारत्यकारक (मुलत्तिफ़) है तथा शीतल अंगों की प्रकृति को परिवर्तित कर देता है। इसके लेपसे आंतरिक अंगों से दोष और विष बाहर की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। इसको पीसकर मधु मिलाकर लेप करने से व्यंग में बहुत उपकार होता है। ३॥ मा० इसका चूर्ण खाने से मूत्र और आर्तव का प्रवर्तन होता है तथा योनिशूल आराम होता है। इब्नजुहर कहता है कि ४॥ मा० कूट मद्य के साथ खाने से सभी प्रकार के उदरज कृमि निकल जाते हैं। कुस्ते बहरी को पानीमें घिसकर व्यंग (झाई) पर

लगाने से उपकार होता है। इसके खाने से वाजीकरण होता है। कुष्ठतैल का शिशन पर कोष्ण लेप करने से भी वाजीकरण होता है। बाल उखाड़कर उस जगह इसका चूर्ण अवचूर्णित करें। इस प्रकार सात बार करने से फिर बाल नहीं निकलते। गोलानी के अनुसार इसे पीसकर शहद में मिलाकर खाने से मरोड़ और वृक्कशूल आराम होता है और उसकी पथरी टूटकर निकल जाती है। किसी-किसी अनुभव-ग्रन्थ में लिखा है कि इसको पीसकर पूर्वमस्तिष्क अर्थात् ललाट पर छिड़कने से शीतजनित प्रतिश्याय आराम होता है और इससे मस्तिष्क गरम हो जाता है। इसी प्रकार इसके घूप देने से उपकार होता है। मंसूरी में राज्ञी लिखते हैं कि शीतजनित प्रतिश्याय में परमोपकार होता है। नाक में कुष्ठ की धूनी देने से बालनाडियों वा पुट्टों की शिथिलता, स्वाप और कम्पवात में इसका तेल गुणकारी है।

रक्त कुष्ठ वा कुस्ते सुखं

गुणमें श्रेष्ठ है। इसका तेल वातव्याधियों, पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, आक्षेप, अंगम्लानि (इस्तरखाऽ) और हृत्स्पंदन (इखितलाज) इन रोगों में लाभकारी है। यह वातनाडियों का शीत दूर करता, उनको शक्ति प्रदान करता और कफज मस्तिष्क रोगों को अतीव गुणकारी है। इसकी विधि यह है—कूट माशा कम तीन तोला, अकरकरा १४ मा०, कालीमिर्च १०॥ मा० सबको कूटकर पुराने मद्यमें एक रात्रि भिगोकर प्रातःकाल इतना क्वथित करें कि आधा रह जाय। फिर उसमें १७॥ मा० जैतून का तेल मिलाकर पुनः क्वथित करें। जब मद्य बिल्कुल जल जाय, तब मलकर छान लें। इसके बाद उसमें १०॥ मा० फ़रफ़ियून और ८॥ मा० जुंदवेदस्तर मिलाकर काममें लावें। दूसरी विधि यह है—कुस्ते तख़् माशा कम तीन तोले और ईरसा, सोंठ, बालछड़ (उश्नः), तेजपात, तज, बछ और अकरकरा प्रत्येक १७॥ मा०, लौंग १४ मा० इनको रात्रिमें ८४ तो० पानीमें तर करें। प्रातःकाल क्वाथ करें। जब २८ तो० रह जाय, तब छानकर १४ तो० जैतून का तेल वा तिल का तेल मिलाकर पुनः क्वाथ करें। जब तेलमात्र शेष रह जाय, तब जुंदवेदस्तर, फ़रफ़ियून, जायफल और मस्तगी प्रत्येक ३॥ मा० पीसकर मिलाकर काम में लावें। कुष्ठ का तेल कानमें डालने से कर्णशूल आराम होता है और कर्णगत अवरोधों का उद्घाटन होता है। कड़वे कूट को पीसकर सिर पर मलने से शीतजनित प्रसेक (नज़ला) में बहुत उपकार होता है और मस्तिष्क में गरमी आ जाती है। इसका घूपन भी लाभकारी है। इसकी धूनी दुर्गंधित वायुजनित महामारी को दूर करती है। (खजाइन)।

१. कुष्ठमेरण्डमूलञ्च लेपात् काञ्जिक पेक्षितम्।
शिरोर्दत्त नाशयन्त्याशु... ॥ (वंगसेनः)।

कुष्ठतेल वा रोगानकुस्त (बुहुनुल् कुस्त)

निर्माण-विधि—१५ तोला कड़ुए कूट (कुस्ते तलख) को जौ-कूट करके एक रात-दिन शराब में भीगा रखकर फिर ३० छं० जैतून के तेल के साथ मंदाग्नि से इतना पकायें कि मद्य भर जल जाय। इसके उपरान्त तेल को छानकर रखलें।

प्रकृति—उष्ण और रुक्ष।

मात्रा—२ तो० आधा माशा तक।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह वातनाडियों (पुट्टों) और उपांगों को शक्ति प्रदान करता एवं वाजीकरण है। यह प्रबल शोथादि विलीनकर्त्ता, आमाशय और यकृत की सरदी को दूर करता है। कफ और वातज्वर एवं शीत-पूर्वज्वर में वेग से पूर्व इसे पिलाने से वेग रुक जाता है। बालों पर मलने और पीने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं और केश बढ़ते हैं। (मखन)।

शेख—कहते हैं कि इससे वायु परिवर्तन से होनेवाले विकार दूर होते हैं। यह संडासों और वायु की दुर्गन्धि दूर करता है। गोलानी कहते हैं कि यह आर्द्र और शुष्क खर्ज को शीघ्र नष्ट करता है। (मुहीत)।

कालाकूट

वर्णन—जदवार के रूप और वर्ण की एक विषैली जड़ जो वनफ़सल और काले रंग की होती है। इसका फूल और पौधा स्याहीमायल होता है। तिब्बत के आस-पास यह केदार नामक पर्वत में होता है। उज्ज्वल श्वेत वर्ण, कठिन और भारी (तौलमें) जड़ सर्वोत्तम और गुणकारी होती है। (मखन)। मुहीत के अनुसार उसमें से कोई-कोई हरी, कुछ पिलाई लिये खाई जाती है, जिसके ऊपर काले धब्बे होते हैं। इसे 'हलदिया' कहते हैं अर्थात् उनके मत से यह वछनाग का ही एक भेद है। परन्तु निघंटुप्रकाश में उसके लिये 'कालकूट' शब्द का प्रयोग हुआ है जो संस्कृत का शब्द है।

नोट—मखन में इसको 'कालाकूट' और इसका अर्थ स्याहगुल (कृष्णपुष्प) लिखा है। उसके अनुसार यह हिन्दी भाषा का शब्द है। खजाइन में इसका उच्चारण "काला-कूट" लिखा है।

गुण-प्रयोग—गुण में यह सींगिया के समान है जो विष (वीश) वा वत्सनाभ का एक भेद है। इसका फूल भी उग्र विष है। (मखन; मुहीत)।

कूटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] मुरामांसी। कपूरक-चरी। कर्पूरहरिद्रा। (रा० मा०)।

कूटककाय—संज्ञा पुं० [कता०] रीठा।

कूटकास्थि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भग्न अस्थि। टूटी हुई हड्डी।

कूटगृह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जेन्ताकगृह। (च० शा० ३ अ०)। कूटागार। गर्भगृह। वह स्थान जिसमें गर्भ स्थान प्राप्त करता है। (च०)।

कूटज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा। कुटज। कुर्ची। (भा० पू० १ भ०)।

कूटजीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापोता। पुत्रजीव वृक्ष। (रा० नि० व० ९)।

कूटतुला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुत्सित तुला।

कूटन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्योनाक, सोनापाठा। (२) शिशिर ऋतु। (ध० नि०)।

कूटपर्व्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्तिनस्त्रिदोषज्वर। (त्रिका०)।

कूटपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का सन्निपातज ज्वर।

कूटपाकल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्रिदोषोत्पन्न सन्निपात ज्वर। लक्षण—मध्यधात, अधिकपित्त, हीनकफ सन्निपात में तत्त्व दोषानुसार कम्प, दाह तथा भारीपन आदि लक्षण होते हैं तथा मोह, प्रलाप, मूर्च्छा, मन्यास्तम्भ, शिरोवेदना, कास, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, संज्ञानाश, हृदयव्यथा, इन्द्रियों के छिद्र द्वारा रुधिरपात, नेत्रों में लाली, नेत्र-स्तब्धता इत्यादि लक्षण होते हैं। इस सन्निपात का रोगी ३ दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है। इसको पाकल सन्निपात भी कहते हैं।

कूटपालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वात-पित्त-कफोत्पन्न-सन्निपात लक्षण—जब त्रिदोषोत्पन्न सन्निपात कुपित होता है तब उसमें दोषत्रय के लक्षण प्रकट होते हैं। यह सन्निपात सम्पूर्ण व्याधियों की अपेक्षा वज्र तथा शस्त्रतुल्य महाभयंकर होता है। इसमें रोगी ऊर्ध्वश्वास ग्रहण करता है। सम्पूर्ण शरीर स्तब्ध हो जाता है, नेत्र पथरतुल्य ठिठुर जाते हैं। इस सन्निपात का रोगी ३ दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है। इसके लक्षणों को देखकर मूर्ख व्यक्ति कहते हैं—इसको कुसमय में भ्रमण करनेवाले राक्षसों ने पकड़ लिया है। कुछ व्यक्ति कहते हैं कि इसको देवी का प्रकोप हो गया है। कोई क्षणी का प्रकोप भी बताते हैं; कोई ब्रह्मराक्षस का प्रकोप समझते हैं; कोई पिशाच, कोई यक्ष-वाधा तथा कोई शिर का आघात, कोई कुलदेव का प्रकोप, कोई नक्षत्रदोष तथा कोई विषविकार समझते हैं। ज्ञानी वैद्य इसको कूटपालक सन्निपात कहते हैं। (२) पित्तज ज्वर। (३) कुलाल भवन। कुमार मौन। (हारा०)।

कूटपूर्व्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी का त्रिदोषज्वर।

कूटम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शृङ्ग। सींग। (ध० नि०)।

कूटमान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुत्सितमान। खराब वजन।

कूटमन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मृग तथा पक्षी फँसाने का यन्त्र विशेष। पर्याय—उत्थाथ। (अ०)।

कूटल मस्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं० चव्य । चाव । (वै० निघ०) ।

कूटशाल्मलि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रोहिना । रुहेड़ा । रक्तरहितकवृक्ष । (रा० नि० व० ८) (२) सेमल की जाति का एक वृक्ष जो जंगलों में होता है । इसके पत्ते जिगनी के समान और फूल गहरे लाल रंग के होते हैं । काला सेमल । कृष्णशाल्मलि । काशिमाल्ला । जीवनीकापला । पर्याय—कुत्सित शाल्मलि, रोचन, कूटशाल्मलिक । गुण—तिक्त, कटु, मेदकारक, उष्ण, वातकारक, प्लीह, गुल्म, यकृत विषदोष, भूतवाधा तथा मलस्तम्भनाशक है । इसके अतिरिक्त यह मेद, रक्तदोष, शूलादि का भी नाश करता है ।

कूटशाल्मली—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "कूटशाल्मलि" ।

कूटस्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] व्याघ्रनखी । नखी नाम का गन्धद्रव्य । (रा० नि० व० १२) । (ध० नि०) ।

कूट-स्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] खोटा सोना । बनावटी सोना ।

कूटागार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूटगृह । गर्भगृह । वह स्थान जहाँ गर्भधारणा होती है । गर्भाशय । (च० शा० ३ अ०) ।

कूटार्थासिद्धिकृत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापूता । पुत्रजीव वृक्ष । (वै० निघ०) ।

कूट—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो हिमालयपर्वतपर ४००० फुट से १०००० फुट की ऊँचाई तक होता है । वहाँ इसे तरकारी के लिये बोते हैं । बंगाल, आसाम, ब्रह्मा, दक्षिण भारत, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में भी इसकी खेती होती है । इसके बीज काले रंग के तिकोने, लंबे और नुकीले होते हैं । इसके भीतर से निकाला हुआ चावल फलाहार के काम आता है । पर्याय—(सं०) उद्दालक (वन कोद्रव) । (सु० सू० १५ अ०, ३४ श्लो०); (हिं०) फाफर, कुल्ह, काठू, कोदू, कसपत तुंबा, कालातुंबा ।

कूठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुठ, सं० कुष्ठ] दे० 'कूट' व 'कूट' ।

कूठ कडुआ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूठ + कडुआ] कुठ भेद । दे० 'कूट' व 'कूट' ।

कूठ मीठा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूठ + मीठा] कुठ भेद । मीठा कुठ । दे० 'कूट' व 'कूट' ।

कूडमिरिचबेल—[सिं०] लिमड़ी । मरिच भेद ।

कूणि—वि० [सं० त्रि०] रोगादि द्वारा कुञ्चित कर (हाथ) । लूला । (बं०) नूलो । (अ० टी०) ।

कूणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पशुशृङ्ग । पशुओं का सींग । (हे० च०) । (२) पुष्पकलिका । फूलों की कली । (श० च०) ।

कूणितासिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चौथाई हिस्से में कटी हुई, अल्परक्त स्रवनेवाली सिरा । (सु० शा० अ० ८, श्लो० ३१) ।

कूत—[?] (१) सुबुल । (२) चंदन ।

कूतर—[?] वच या वच का पौधा ।

कूतरुबुर्मा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक लता जिसके पत्ते तुरई के पत्तों के समान, किंतु उससे छोटे होते हैं । फल गोल, छोटा, बड़ के फल के समान होता है ।

कूतस—[यू०] (१) अंगूरका (शिगूफा) । (२) मटर-भेद (कुसास) ।

कूता—[यू०] शाहबलूत ।

कूताकंबा—[अ०]

कूताकंभा—[फिरंगी] } फर्फीरान ।

कूतामा—[यू०] जंगली आजरियून ।

कूताश—[रू०] (१) शौकः मुन्तिनः । (२) खनूब ।

कूतिया—[?] पनीरमाया ।

कूती—[सुर०] गोखरू ।

कूतीन—[सु०] गोखरू ।

कूतीनूनस—[यू०] जैतूनलह्वस ।

कूतीनूस—[यू०] (१) अनार । (२) जैतूनलह्वस ।

कूतीरा—[रू०] (१) शौकः मुन्तिनः । (२) खनूब । (३) तवाक । (४) अबरून ।

कूतून, कूतूस—[यू०] अंगूरका शिगूफा ।

कूतूरा—[रू०] खनूब ।

कूतूली—[अ०] (१) एक मान जो १० औंकिया (औंस) = २८ तोला १ माशा ४ रत्ती वा २५ तोला ३ माशा ६ रत्ती के बराबर होता है । (२) शराब से १० वा २० औंकिया (औंस) । (३) जैत (तेल) से ९ औंकिया । (४) शहद से १३ औंकिया ।

कूतूलीद्वन—संज्ञा पुं० [यू०]

पर्याय—कूतूलीद्वन—यू० । जलायफुल मुलूक, आजानुल कसीस, बशानक—अफ्री० ।

वक्तव्य—मरून में इसकी यूनानी संज्ञा कूमालियून भी लिखी है । अफ्रीकावासियों की भाषा में जलायफुल मुलूक को 'जुल्फ़अरुसाँ' कहते हैं । जुल्फ़अरुसाँ को कोई-कोई फ़ारसी भाषा का शब्द बतलाते हैं । यह ह्यूयुलआलम का एक भेद है जिसे क़दाह मरियम भी कहते हैं । इसके फूलों की लंबी-लंबी बालें होती हैं जो परस्पर ऐसी लिपटी होती हैं, मानो गुंथे हुए केश हों । इसीलिये शीराजनिवासी इसे जुल्फ़अरुसाँ कहते हैं । अफ्रीकानिवासी जुलायफुलमुलूक और अरब का साँप कहते हैं । क्योंकि इसका पत्र छोटे से प्याले की भाँति होता है । किसी-किसी के मत से यह कूतूलीद्वन नामक उद्भिद है । कोई इसको नफ़सह्यूयुलआलम समझते हैं । किसी-किसी के मत से यह आजानुलकसीस नामक द्रव्य है । इसकी जड़ और पत्ते पीने से बस्त्यश्मरी नष्ट हो जाती है और मूत्र का प्रवर्तन होता है ।

कूतलीदून को ह्युलुआलम का एक भेद बतलाते हैं और आजानुलुकीस या तो कूतलीदून है या अशरान । तजकिरादाऊदअंताकी में उसे अशरान लिखा है । बहारअजम में लिखा है कि जुल्फ़अरूस एक फूल का नाम है जो गुंथे हुए केश की भाँति होता है और कश्मीर में उत्पन्न होता है । दाराबवेगजोया का यह पद्य है—
दिल अज जुल्फ़ अरूसश दर मुकंदस्त ।

ज जोश लालाअश आतश बुलंद अस्त ।।

वर्णनादि—मख्जन में लिखे वाक्य में तसामुह है । क्योंकि अवहनयूनानी में ह्युलुआलम का नाम है । इसको कासात (अरबी में) भी कहते हैं । क्योंकि इसके पत्र प्याले के सदृश होते हैं । तात्पर्य यह है कि यह एक वनस्पति है जिसके पत्र गोल और कुछ खोखले होते हैं । तना छोटा होता है । वीज तने के किनारों पर उससे संलग्न होता है । जड़ जैतून की तरह और स्वाद में तिक्त एवं चरपरी होती है । वस्तुतः यह संदिग्ध ओषधि है ।

प्रकृति—परस्परविरोधी गुणधर्मयुक्त (मुरक्किबुल् कुवा) है । किंतु जड़ उष्ण एवं रूक्ष है ।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह शीतसंग्राही (क़विज) है, अंगों पर लगाने से दोषों को प्रत्यावर्तित कर देती (रादेअ) है; स्वच्छताप्रद (जाली) है और शोथादि को विलीन करती (मुहल्लिल) है । इसके पत्र पीने से आमाशयिक प्रदाह शमन होता है इसे मद्य और मधु के साथ पीने से शरीर का शोथ (तहब्बुज) दूर होता है । इसकी जड़ (जो जैतून की तरह होती है) वस्तिस्थ अश्मरी का छेदन करती है और पेशाब खोलकर लाती है । इसके पत्तों के लेप से सूजन उतरती है और आमाशय तथा आँतों की गरमी दूर होती है । सरदी और हवा से फट जाय (शिकाक़) तो इसके लगाने से उपकार होता है । इसकी जड़ और पत्रस्वरस के लेप से सूजन उतरती है और क्षत आराम होता है । मद्य के साथ इसे क्षत के छिद्र के ऊपर लगाने से उसको चौड़ा करती है । (मख्जन) ।

कूयन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुयन । कूजन । (वै० निघ०) ।

कूदाव—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कूशाव । अंगूर का पानी ।

कूदाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तकांचन । लाल कचनार ।

कूदालक—संज्ञा पुं० [,,] कुदालक वृक्ष । (अ० टी० २०) ।

कून—[फ़ा०] कताद । कतीरा ।

कूनया—[यू०] राख का पानी ।

कन (नि) यून—[यू०] समुद्रज्ञाग । समुद्रफेन ।

कूनयो-ए—[बर०] पान । ताम्बूल ।

कूनश—[अ०] संगदान ।

कूनस—[यू०, सुर०] हब्बुस्सनोवर । सनोवर का फल ।

कून-सी—[बर०] सोपारी । पूगफल । (मो० श०) ।

कूना—संज्ञा पुं० [हिं०] अर्जुन वृक्ष ।

कूनाक—[तु०] वाजरा । वज्रधान्य ।

कूनाबा—[यू०, सुर०] दालचीनी । गुडत्वक् ।

कूनियाक—[अ०] ब्राण्डी । शराब । मद्य । (Congnac) ।

नोट—कूनियाक नाम का फ्रांस में एक प्रसिद्ध प्रदेश है, जहाँ अंगूर अत्यधिक उत्पन्न होता है । उन्हीं से यह मद्य प्रस्तुत किया जाता है ।

कूनियास—[यू०] अंगोजः भेद ।

कूनियून—[अ०] (१) शूकरान । तफ़ीकून । तफ़शीकून ।

(२) समुद्रज्ञाग । समुद्रफेन ।

कूनीतह—[?] स्याह माजरियन ।

कूनीन—[यू०] (१) शूकरान । (२) धतूरा ।

[अन्दलुस] कुनः कुनः । कुनैन ।

कूनूशबूरादानी—[रुमी] जलौका । जलीज ।

कूनस—[यू०; सुर०] (१) हब्बुस्सनोवर । सनोवर का फल ।

(२) कुवार ।

कूदड़पनइ—[ता०] सागू वृक्ष ।

कूदड़-पनइ-कल्लु—[ता०] सागू की । ताड़ी । (मो० श०) ।

कूदड़-पनइ-बेल्लस—[ता०] सागू द्वारा प्रस्तुत गुड़ । सागू का गुड़ । (मो० श०) ।

कूदल-पनइ—[ता०] सागू वृक्ष । सागू का पेड़ ।

कूदल-पनइ-गाड़ायाम—[ता०] सागू की शराब । सागू का दारू । (मो० श०) ।

कूप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पक्का कूआँ । इनारा । (बं०)

कूया, पात कूया, इन्दारा । पर्याय—अन्धु, प्रसिद्ध । उदपान ।

अवट, कोट्टार, कात्ता, कर्त्त, वज्र, काट, खात, अवत,

क्रिषि, सूद, उत्स, ऋक्ष दातु, कारोतरात, कुशेष, केपट ।

(वा० टी० हेमा० वारि व०) । (२) तेलपात्र । कुप्पा ।

कूपक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूप । कूआँ । कुप्प ।

कूप कच्छप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूपस्थ कच्छप । कूएँ का कछुआ ।

कूपज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केश । लोम । बाल । (फ़ा०) मूय । (Hair)

कूपजल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूपसलिल । कूएँ का पानी । (बं०) कूयार जल । कोयार जल । निझर जल । (Well water)

गुण—यदि कूपजल मधुर हो तो वह त्रिदोषघ्न और लघु, शीतल और क्षारीय हो तो दीपन, कफ-वातनाशक और पित्तकारक है । (भा०) । लघु, पित्तकर, कफघ्न तथा क्षारीय है (रा० नि० व० १४) । वात-कफघ्न, दीपन, लघु, पित्तकर, सक्षारीय, लवणरसयुक्त, समयानुसार शीतल और उष्ण होता है । (राज०) ।

कूपदहुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूपस्थभेक । कूएँ का मेढक ।

कूपमण्डूक—संज्ञा पुं० [„] (बं०) कोर वेन्च ।

कूपमयनी—

(डायमॉक iii २६२)

कूपल—[फिरंगी] सुपारी । पूगफल ।

कूपस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] चरकोक्त स्वेद का एक भेद । विधि—निर्वात तथा प्रशस्त स्थान में चारपाई प्रमाण लम्बा तथा चौड़ा व गहराई में लम्बाई से द्विगुण एक गढ़ा खुदवाएँ और उसे भलीभाँति स्वच्छकर मृत्तिका से लेप कराएँ । पुनः उसमें गो, गदहा, ऊँट, घोड़ा वा हाथी का पुरीष जो शुष्क हो गया हो भरकर अग्नि प्रवेश करें । जब ज्वाला तथा धूमरहित हो जाय, उस पर चारपाई बिछा दें । पुनः इसपर मोटा बिछोना बिछा दें और रोगी को जो वात से पीड़ित हो उस पर शयन कराकर उसके ऊपर कम्बल आदि से ढाँक दें । इस प्रकार करने से रोगी का सुख-पूर्वक स्वेदन होता है । शयन कराने के पूर्व रोगी के शरीर पर तेल द्वारा अभ्यङ्ग करा देना उचित है । (शा० १४ अ०) । अष्टाङ्गसंग्रह में इसी कूपस्वेद का वर्णन मिलता है । (सू० २६ अ०) । सुश्रुतने इस विधि का वर्णन नहीं किया है ।

कूपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दधिपुष्पी । (घ० नि०) । दे० 'दधिपुष्पिका' ।

कूपाङ्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } रोमांच । रोम खड़ा होना ।

कूपाङ्ग—संज्ञा पुं० [„] } (श० र०) ।

कूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदीजलगत उपल (वर्ष) ।

कूपी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवाँच । कपिकच्छू । (बं०) आलकुशी । (वै० निघ०) । (२) चन्द्रोदयादि निर्माणार्थ आतशीशीशी । (र० का० धे० १९ पृ०) । (३) पात्र विशेष । कुप्पी ।

कूपोदक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूएँ का पानी । कूपजल । दे० "कूपजल" ।

कूप्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रूपा, रीप्य । (२) मानिक, माणिक । (३) लवणविशेष । (च० वि० अ० ८, १४१) ।

कूप—[?] उल्लू । उल्लू पक्षी ।

कूपलन—[?] सुरमा ।

कूपा—[यू०] सनोबर या सनोबर गोंद भेद ।

कूपारनमीस, कूपारीसासीस—[यू०] हाऊवेर । अरअर ।

कूपी—[?] जलमानुष । एक प्रकार का जलजन्तु जो मनुष्य का-सा होता है । (मख्जन व मुहीत) ।

कूपूस—[यू०] खुन्सा । कूपूस ।

कूब—[अ०] (१) एक मान जो १ रतल या १०१ तोला के बराबर होता है । (२) जलपात्र । लोटा । आबखोरा ।

कूब—[अ०] (१) अंडे का छिलका । (२) मुरगी का बच्चा । (३) जलकुक्कुर (आबी कुत्ता) का बच्चा ।

कूबरकसू—[ले०] गन्दता ।

कूबरूस—[यू०] खुन्सा ।

कूबल—[?] बावूना भेद ।

कूबल (कवल) ककड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नीलूफर । नीलो-त्पल ।

कूबला—[सुर०] बावूना ।

कूबाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] दद्रु । दाद । दिनाय । (अ०) टिनिआ टास्युरन्स (Tinea tonsurans), रिंगवर्म (Ringworm) ।

कूबाऽ जङ्गन्मयः—संज्ञा पुं० [अ०] ठोड़ी का दाद । हजामों की खाज । (अ०) जरबुल्हलाक्रीन; (अ०) टिनिआ सायकोसिस (Tinea sycosis) । बार्बर्स इच (Barber's itch) ।

कूबाऽ सुतकशर—संज्ञा पुं० [अ०] बर्स अस्वद । स्याह बर्स ।

कूबा—[?] जुप्त या शुष्क जुप्त ।

कूबारसियूस—[यू०] } हाऊवेर ।

कूबारीसायीस—[यू०] } अरअर ।

कूबिया—राख का पानी ।

कूबीतस, कूबीतूस—[यू०] कमाफ्रीतूस ।

कूबूकी—[?] जंगली सातर ।

कूबूसवातस, कूबूसाफ़लूस—[यू०] ऊसज ।

कूबी—[यू०] गुमा ।

कूबरूस—[यू०] कूपूस । खुन्सा ।

कूभ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तलैया । छोटा तालाब ।

कूम—[फा०] अंजुदान ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो गढ़वाल और चटगाँव में बहुल होता है ।

कूभ—[?] पायखाना । विष्टा ।

कूभकूलूस—[यू०] तूतिया ।

कूमटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो राजपुताने और सिंध में होता है ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास ।

कूमतून—[यू०] मिश्री बाकला । कूमस्तून ।

कूमन—[यू०] प्रवालमूल । बुस्सद ।

कूसनी—[?] सातर बागी व बुस्तानी ।

कूमयाक्रियास—[सुर०] बबूल का गोंद ।

कूमया हिन्दवा—[यू०] बल ।

कूमयून—[यू०] (१) बबूल का गोंद । (२) रक्त । खून ।

कूमर—[जन्द] नासपाती ।

कूमरून—[?] भेड़िया । वृक ।

कूमल—[यू०] प्रवालमूल । बुस्सद ।

कूमस्तून—[यू०] मिश्री बाकला ।

कूम—[?] काँजी भेद ।

कूमा—[?] एक प्रकार का मद्य ।

कूमातानज—[?] कीकर। बबूल। (मेमो०)।
 कूमानस—[यू०] बिच्छू।
 कूमानोत्स—[यू०] मिट्टी का कीड़ा। केचुआ। तीन कर्खी।
 कूमासून—[यू०] गोंद। कतीरा वृक्ष।
 कूमारिसून—[?] जंगली सौंफ।
 कूमारीस—[यू०] एक बूटी। कुतलुब। कीकर।
 कूमारूस—[यू०] (१) प्याज। (२) कातिल अब्यह।
 (३) कुतलुब।
 कूमारूसी—[यू०] पलाण्डु। प्याज।
 कूमालस—[यू०] आलू।
 कूमालियून, कूमरून—[यू०] (१) कूतलीदून। (२) भेड़िया।
 (३) चीता। (४) कातिलुल्कलब। कुचला।
 कूमालिस—[यू०] आलू।
 कूमिया—[?] गोंद। कतीरा वृक्ष।
 कूमियाक्रियास—[यू०, सुर०] बबूल का गोंद।
 कूमिया हिन्दवा—[यू०, रू०] बल।
 कूमियन (स)—[यू०, सुर०] (१) बादाम का गोंद।
 (२) खून।
 कूमिस—
 कूमी—[?] गोंद, कतीरा वृक्ष।
 कूमी—[सुर०] वाकला।
 कूमीजून, कूमीदर—[सुर०] गोंद। कतीरा वृक्ष।
 कूमीन—[तु०] भेड़।
 कूमीनून—[यू०] जीरा।
 कूमातानजस—[यू०] कीकर। बबूल।
 कूमूर—[?] गोंद। नियास।
 कूमूश—[तु०] चाँदी।
 कूमूसून—[?] मिश्री वाकला। तुमूस।
 कूय—[तु०] मेघ। भेड़।
 कूयअल (ली) स—[यू०] लिसानुल्कलब।
 कूयनतून—[यू०] स्याह माजरियून।
 कूयनास—[यू०] अंगोजा का एक भेद।
 कूयरूक—[तु०] दुंवा।
 कूयरून—[यू०] अकरकरा।
 कूयली—[यू०] सातर भेद।
 कूयादूस—[यू०] कुतलब।
 कूयून—[यू०] शूकरान।
 कूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] अन्न। भक्त। भात।
 (रा० नि० व० २०)। आहार। (ध० नि०)।
 [अ०] [बहुव० अक्वार] (१) मिट्टी की भट्टी। भ्राष्ट्री।
 (२) मक्खी का छत्ता।
 [फा०] (१) कर्नब। (२) खनूब शामी। (३) मुकलुल-
 यहूद।
 कूर—[अ०] ताजी और नई रुई।

कूरक—[म०] तून। नन्दी वृक्ष।
 कूरक्रीस—[यू०] मछली का पित्त। मत्स्यपित्त।
 कूरकूकस—[यू०] रिज्जुलुगुराब। काकजङ्घा।
 कूरकून—[?] कौआ। काक।
 कूरक्का—[मल०] सीता की पञ्जीरी। (मो० श०)।
 कूरगान—[?] कौआ।
 कूरत (द)—[तु०] भेड़िया।
 कूरतायून—[यू०] धनियाँ।
 कूरदियूस—[यू०] (१) मिस्सी। (२) शजरए मरियम।
 कूरदीनातीला—[यू०] बिही।
 कूरदूस—[रू०] मेंढक।
 कूरदूसन—[यू०] वरल।
 कूरस—संज्ञा पुं० दे० 'कूर्म'।
 कूरमायून—[यू०] धनियाँ।
 कूरलियून—[यू०] प्रवालमूल।
 कूरसन—सौसन बुस्तानी।
 कूरसामा—[यू०] ऊदबलसाँ।
 कूरा—[यू०, तु०] ऊँट। उष्ट्र।
 कूरालन—[यू०] प्रवालमूल। बुस्मुद।
 कूरासनीवामम्—[ते०] खुरासानी अजवायन।
 कूरियूकस—[यू०] रिज्जुलुगुराब।
 कूरियून—[यू०] (१) धनियाँ। (२) प्रवाल। (३)
 खशखाश। (४) अकरकरा। (५) ऊदभेद।
 कूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चपरेला या मोतिया घास।
 कूरीगलासी—[रूमी०] हुम्माज। चूका।
 कूरीजूल—[बरबरी] लालसाग। मरसा भेद।
 कूरुथू—(डी० भ० ३, पृ० २७२)।
 कूरुन्नहल—[अ०] शहद की मक्खी का निहाल।
 कूरुलअसाफ़ीर—[अ०] खिरवउल् असाफ़ीर।
 कूर्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सूची। सूई। (२)
 कूंची। मार्जनी। (अं०) ब्रश (Brush)। (सु०; अत्रि०)।
 (३) मस्तक। श्मश्रु। (मे०)। (४) शरीरगत अवयव,
 कुशपुंजसदृश पदार्थ को कूर्च (कूंची) कहते हैं। भाव-
 प्रकाश के अनुसार कूर्चा छः हैं—दोनों हाथों में दो, दोनों
 पावों में दो, ग्रीवा में एक और लिंग में एक—इस
 प्रकार कुल छः। उक्त कूर्चा शिरा, स्नायु, मांस और
 अस्थि द्वारा निर्मित है। (भा० पू० गर्भ प्र०)। (५)
 इससे हस्तकूर्चास्थियाँ और शलाकाएँ तथा इनको जोड़ने-
 वाले स्नायु अभिप्रेत होते हैं।
 कूर्चति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेनिसिलिअम् (Penicillium)
 नामक क्षुद्र फफूँदी जातीय उद्भिज जिससे पेनिसिलीन
 नामक आधुनिक प्रसिद्ध ओषधि प्रस्तुत की जाती है।
 कूर्चमर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत के अनुसार एक
 प्रकार का मर्म जो क्षिप्र के ऊपर दोनों ओर स्थित है।

वहाँ पर वेध होने से पावों में वक्रता और कंपन होता है। (सु० शा० ६ अ०)।

कूर्चशरमर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मर्म जो गुल्फसन्धि से नीचे दोनों ओर स्थित है। वहाँ पर (वेध होने से) वेदना और शोथ उत्पन्न होता है। (सु० शा० ६ अ० ३१ श्लो०)।

कूर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० “कूर्चा”।

कूर्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्मश्रु। (२) दोनों भ्रू के मध्य का स्थान। भ्रूमध्य। (घ० नि०)।

कूर्चम्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) केश आदि द्वारा निर्मित मार्जनी। कूची। ब्रुश। (अं०) ब्रश (Brush)। (२) श्मश्रु। दाढ़ी-मूँछ।

कूर्च, कूर्चक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जीवक नामक द्रव्य। (२) एक प्रकार का जंगली पक्षी। जाङ्गल पक्षी विशेष। (अत्रि० २० अ०)। (३) भ्रूमध्य-आदि भाग। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दन्तधावनकुञ्चिका। दाँत धोने की कूची या ब्रुश। (वै० निघ०)। (२) इन्द्रलुप्त आदि रोग में प्रयुक्त यन्त्रविशेष। (३) सूई। सूची। (अत्रि०)। (४) मस्तक। (५) भ्रू का मध्यभाग। (६) श्मश्रु। (मे०)। (७) घोंघे का पिछला भाग। (ज० द० अ० २)।

कूर्चपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मेढासिंगी। मेघशृङ्गी। (वै० निघ०)।

कूर्चभाक्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भोजपत्र। भूर्जपत्र। (वै० निघ०)।

कूर्चमर्म, कूर्चमर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कूर्चमर्म।

कूर्चरा—[व०]

कूर्चल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्राणियों का पुनर्दन्तोद्भेदकाल। फिर से (दोबारा) दाँत निकलने का समय।

कूर्चशिरः—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) इससे मणिबंध-संधि की अन्तःपार्श्विक और बहिःपार्श्विक स्नायुओं का बोध होता है। (२) एक मर्मस्थान जो गुल्फसन्धि के नीचे दोनों ओर होता है। यहाँ वेध होने से पीड़ा और शोथ उत्पन्न होता है।

कूर्चशिरा मर्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० “कूर्चशिर”।

कूर्चशीर्ष, कूर्चशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जीवक ओषधि। (घ० नि०; र० मा०; ज० द० १२ अ०)। (२) नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष। (घ० नि०)।

कूर्चशेखर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नारियल, नारिकेल वृक्ष। (रा० नि० ब० १०)।

कूर्च सुरंग—संज्ञा पुं० [सं०]

कूर्चा—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूर्च। कूर्चा। यह छः है। ये हाथ, पैर, ग्रीवा, और मेढ में हैं; हाथ में दो, पाँव में

दो, ग्रीवा में एक और मेढ में एक। (सु० शा० ५ अ० २ श्लोक)। दे० “कूर्च”।

कूर्चान्तरीय सान्द्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]।

कूर्चास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] हड्डियों का फोंक जो मार्जनीतुल्य होता है।

कूर्चिक (का)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) दुग्धविकार। (अम०)। विग्रथित या फटा हुआ दूध। दूध का दही से लेकर तक्रादि जो रूपान्तर होता है, उसको ‘कूर्चिका’ कहते हैं। (वा० टी० हे०; च० सू० ५ अ०)। दही या तक्र के साथ पकाया हुआ दूध—दध्ना तक्रेणवा सह पाकात् पृथग्भूत घनद्रवभागं क्षीरं कूर्चिकेत्युच्यते। सा द्विधा—दध्नासह च यत्पक्वं क्षीरं सा दधिकूर्चिका। तक्रेण पक्वं यत् क्षीरं सा भवेत्तक्रकूर्चिका। (हेमाद्रि)। जो तक्र से बनाई जाती है, वह तक्रकूर्चिका और जो दही से बनाई जाती है, वह दधिकूर्चिका कहलाती है।

कूर्चिककृतभक्ष्य पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छेना (कूर्चिका) के बने खाद्य पदार्थ-भक्ष्य (जैसे—रसोगुल्ला, संदेश) गुरु हैं और विशेष पित्तकर नहीं हैं। (सु० सू० ४६ अ० ४०३ श्लो०)।

कूर्चिका पिण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किलाट। छेना। (र० मा०)।

कूर्ज, कूर्जह, कूर्जक—[फा०] शामी खर्बूब का फल।

कूर्त (दं)—[तु०] भेड़िया।

कूर्दियूस—[यू०] (१) मिस्सी। (२) शजरएमरियम।

कूर्दीनातीला—[यू०] बिही।

कूर्दीयुकूस—[यू०] रिज्जुलुगुराव। काकजङ्घा।

कूर्दूस—[रू०] मेंढक।

कूर्दसन—[यू०] वरल।

कूर्दन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बाल-क्रीडा। शिशुक्रीडा। बच्चों का खेल-कूद।

कूर्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भ्रू (भौंह) का मध्य भाग। (हे० च०)। श्मश्रु। (२) केहुनी। भुजमध्यभाग।

कूर्पर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) भुजमध्यभाग। केहुनी। (रा० नि० व० १८)। (२) कफोणी। जानुदेश। (मे०)। ठेगनी। (३) इससे कोहनीके जोड़ (Elbowjoint) का बोध होता है। यह संधिमर्म है। इसमें (वेध होने से) अग्रबाहु का लूलापन होता है। (सु० शा० ६ अ०)।

कूर्परकक्षधर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] टाँग में जो गुल्फजानु-वितप हैं, वे ही बाहु में मणिबंध, कूर्परकक्षधर हैं; जैसे-वक्ष और कक्षा के बीच में ‘कक्षाधर’ है; जैसे वक्ष और कक्षा के बीच में ‘कक्षाधर’ है। उसके विद्ध होने से विशेषकर कूर्परनामक मर्म में (वेध होने से) अग्रबाहु का लूलापन और कक्षधर में (वेध होने से) पक्षाघात होता है। (सु० शा० ६ अ०)।

कूर्परकूट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूर्परकपाल ।

वास्तव में यह स्वतन्त्र अस्थि न होकर अन्तःप्रकोष्ठा-स्थिका ऊपर का सिरा है (Olecranon) ।

कूर्परमम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] उक्त नाम के दो मर्मस्थान जो भुजा के मध्यभाग में स्थित हैं। ऊर्ध्वशाखा सन्धिगत मर्म । इनमें वेध होने से विकलता प्राप्त होती है । (सु० शा० ६ अ०) ।

कूर्परसन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] केहुनी का जोड़ । बाहु का जोड़ ।

कूर्परा—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] भुजमध्यभाग । केहुनी । (रा० नि० व० १८) । कफोणी । जानुदेश । (मे०) ।

कूर्परोरुमध्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] हस्तमूलादि । (ध० नि०) ।

कूर्पास, कूर्पासक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (१) एक प्रकार का मान जो आधा तोला के बराबर होता है । (२) चोली । कञ्चुलिका जो स्त्रियाँ पहिनती हैं । (हे० च०) ।

कूर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कछुआ । कच्छप । (रत्ना०) । गुणकर्म—इसका चर्म पित्तहर, पाद कफघ्न, अण्डा स्वादु तथा वाजिकर है । (रा० नि० व० १९) । वि० दे० 'कछुआ' । (२) शरीरगत एक वायु जो शरीर में गति का कारण होता है । (ध० नि०; श० च०) । यह प्रसिद्ध पाँचों वायुओं के अतिरिक्त पाँच अन्य वायुओं में से एक वायु है । इसका कार्य उन्मेष है ।

कूर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूर्म ।

कूर्मपित्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कछुए का पित्त । कच्छप-पित्त । दे० 'कछुआ' ।

कूर्मपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कटसरैया । अम्लान क्षुप । (श० च०) । (२) कच्छपपृष्ठ । कछुए की पीठ ।

कूर्मपृष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सकोरा । शराव । परई । (वं०) शरा । (श० च०) ।

कूर्मपृष्ठास्थि—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कछुए की पीठ की हड्डी । कच्छपास्थि । गुण—इसके द्वारा स्वेदन करने से वातव्याधि का नाश होता है । दे० 'कछुआ' ।

कूर्ममांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कछुए का मांस । कच्छपमांस । गुणकर्म—मधुर, स्वादु, शुक्रवृद्धिकारक, रूक्ष, बृंहण, वातश्लेष्मजनक, वातहर, चक्षुष्य, बलवर्धक, मेधास्मृतिकर, शोथघ्न और पथ्य है । वि० दे० 'कछुआ' ।

कूर्म यन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कच्छपयन्त्र ।

कूर्मराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महाकच्छप । बड़ा कछुआ । (ध० नि०) ।

कूर्मलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की लता है । इसके कन्द का स्वरूप कच्छपाकार अर्थात् कछुआ

का-सा होता है और इसमें दूध होता है । गुण—इसके दूध में मर्दन करने से पारद का बन्धन होता है । (रा० का० ३ प० पा०) ।

कूर्म-शीर्षक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीवक ओषधि । (रा० नि० व० ५; ध० नि०) ।

कूर्सन—[अ०] सोसन वुस्तानी । उद्यानज सोसन ।

कूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तट । तीर । नदी का किनारा । (अ० म०)

कूल—[?] (वं०) बदर, वेर । कुमुद ।

कूल—[?] निलोफर ।

कूलक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (१) पटोलपत्र । परोरा की पत्तियाँ । (सि० यो० ज्व० चि०) । (२) पटोल । परोरा । (भा० पू० १ भ० शाक व०) । (३) दीमक । वल्मीक । (वं०) डेइटिपि । (मे०) ।

कूलचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कुलेचर' ।

कूला—[?] गरीयुलज्वद । (बु० क०) ।

कूलस—[?] राँग का मैल । रङ्गकिट्ट ।

कूलहण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलावर्त । पानी का भँवर ।

कूलाभियूस—[?] मरियम का वृक्ष । शर्त्रेमरियम ।

कूलाल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एला । इलायची । (२) कनेर । करवीर ।

कूलालिया—[] (डाइमॉक भ० १, पृ० ४३०) ।

कूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हृजोर औषधि विशेष । इसके उपयोग से कालसर्पदष्ट व्यक्ति भी जीवित होता है । (च० द०) । (२) (कचला) ।

कूलिकादिवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कुलिकादि वटिका' ।

कूलिया—[सुर०] जुब्द । शाग । फेन ।

कूली—[?] प्रवाल । दरियाई मूँगा ।

कूली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत छोटी मछली ।

कूलीकून—संज्ञा पुं० [अ०] खरउल्-कल्व । कुचला ।

कूलीजान—[अपभ्रंश 'खुलजान'] कुलञ्जन ।

कूलीन—[?] कर्नब ।

कूलूअनीस—[यू०] इन्द्रायन ।

कूलूउमातूस—[यू०] शुकाई ।

कूलूकती—[यू०] कद् ।

कूलूकन्दन—[सुर०] बिस्फाइज ।

कूलू कसा—[?] कद् ।

कूलूक्रीनस—[यू०] इन्द्रायण । हंजल ।

कूलूक्रीलस—[यू०] } इन्द्रायण । हंजल ।

कूलू क्रीस—[यू०] }

कूलू कूमा—[यू०] } कद् । अलाबु ।

कूलूकूमाती—[] }

कूलूतरीखून—[?] वारतंग ।

कूलू-दली—[?] शर्वत शहद । माउलअस्ल ।

कूलून—[यू०] शुकाई ।

कूलूबिया—[यू०] कद्दू ।

कूलूस—[सुर०] विस्फाइज ।

कूलूसाफलूस—[यू०] ऊसज ।

कूलेचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतृपदेशान्तरगत पशुवर्ग । नदी आदि के कूलों (तटों) पर अधिक रहनेवाले पशुओं का वर्ग (समूह) । यथा—बुलाप, गण्ड (गैंडा), वाराह, चमरीनृगादि ।

कूलेचर पशुओं का मांस—वात-पित्ताशक, वृष्य, बलकारक, मधुर, शीतल, स्निग्ध, मूत्रल तथा श्लेष्म-वर्धक है । (भा०) ।

कूलचर—गज (हाथी), गवय (नीलगाय), महिष (भैंस), रू (मृग भेद), चमर (चमरी-वनगाय), सुमर (मत्स्याकार महाशूकर अर्थात् सूँस), रोहित, वाराह (शूकर), खड्गि (गैंडा), गोकर्ण (मृगभेद), कालपुच्छक (मृगभेद), उद्र (ऊदविलाव), न्यङ्कु (वारहसिंगा वा चित्तल मृग), अरण्यगवय (जंगली गाय भेद) इत्यादि कूलचर वा कूलेचर वर्ग में हैं ।

मांसगुण—इनमें हाथी का मांस—विरुक्षण, लेखन, उष्णवीर्य, पित्तदूषक, रस में मधुर, अम्ल, लवणीय, कफ तथा वायुनाशक है । गवय का मांस स्निग्ध, मधुर, कासहर, विपाक में मधुर तथा मैथुनशक्तिवर्धक है ।

भैंस का मांस—स्निग्ध, उष्ण, मधुर, वृष्य, तृप्ति-कारक, दीर्घपाकी, निद्रा, पुंस्त्व, बल और दुग्धवर्धक है ।

रू का मांस मधुर, अनुरस, कषाय, वातपित्ताशक, भारी तथा शुक्रवर्धक है । चमरी का मांस, स्निग्ध, मधुर, कासनाशक, विपाक में मधुर तथा वातपित्त-नाशक है । सुमर का मांस—अनुरस, कषाय, वातपित्त-नाशक, दीर्घपाकी तथा शुक्रवर्धक है । शूकर का मांस स्वेदजनक, शरीरपुष्टिकारक, वृष्य, शीतल, तृप्ति-कारक, दीर्घपाकी, श्रम-वायुनाशक, स्निग्ध तथा बल-वर्धक है । गैंडे का मांस कफनाशक, कषाय, वातनाशक, पितरश्राद्ध में हितकर, पवित्र, आयुर्वर्धक, सूत्रसंग्राहक तथा विरुक्षण है । गोकर्ण का मांस—मधुर, स्निग्ध, किंचित कफकारक, विपाक में मधुर तथा रक्तपित्ताशक है । (सु० सू० ४६ अ०) ।

कूलेचरा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतृपदेशज नदीकूलों में विचरनेवाले चतुष्पद मृगादि । (ध० नि०) । दे 'कूलेचर' ।

कूलंकषा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जल । पानी । (ध० नि०) ।

कूवकिञ्ज—[मल०] } तीखुर । आरारूट ।

कूव—[मल०]

कूवलप्यक्रम—[मल०] बिल्व फल, बेल ।

कूवेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुब्जक । सेवती ।

कूवो—[वं०] मैङ्गोष्टीन (Mangosteen) । (इं० हैं० गा०) । दे० 'कोकम' ।

कूशाब—[फा०] । अंगूर का पानी । कूदाव ।

कूस्त, कोस्त—[फा०] कुट । कुष्ठ ।

कूष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पेठा । कूष्माण्ड लता ।

कूष्माण्डक—,, [(हे० च०)] (२) कुम्हड़ा । कुम्हड़ा ।

कूष्माण्डकादि योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अपस्मारचिकित्सा में प्रयुक्त योग; यथा—पेठा के स्वरस में मुलेठी का चूर्ण मिश्रितकर ३ दिन सेवन करने से मृगी का नाश होता है । (वृ० नि० र०) ।

कूष्माण्डकावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रक्तपित्तचिकित्सा में प्रयुक्त योग विशेष । निर्माण-विधि—सुपक्व स्थूल-दल के बीज-स्वचावर्जित पेठे के टुकड़ों को १ तुला प्रमाण में ग्रहणकर २ तुला (२०० पल) गोदुग्ध के साथ मन्दाग्नि से पाक करें । जब पाक प्रस्तुत हो जाय तब इसमें अर्ध तुला मिश्री की चाशनी, गोघृत १ प्रस्थ (१६ पल), विशुद्ध मधु अर्ध प्रस्थ (८ पल), नारियल की गिरी १ कुडूप (४ पल), चिरौजी ३ पल और गोखरू का चूर्ण १ पल मिश्रितकर डालें तथा सौंफ का चूर्ण १ कर्ष (१० माशा), जीरा, अजवाइन, गोखरू, तालमखाना, हरीतकी, कौंच के बीज और दालचीनी का चूर्ण २-२ कर्ष, धनियाँ, पीपल, मोथा, अश्वगन्धा, शतावरी, मुसली, नागवला, सुगन्धवाला, तेजपत्र, कपूरकचरी, जायफल, लौंगे, छोटी इलायचीदाना, बड़ी इलायचीदाना, सिंघाड़ा और पित्तपापड़ा का चूर्ण १-१ पल; श्वेत चन्दन, सोंठ, आमला और कसेरू का चूर्ण ५-५ कर्ष तथा खस का चूर्ण २ पल और कालीमिर्च का चूर्ण ८ पल मिश्रितकर सुरक्षित रखें । मात्रा ३ माशा से ३ तो० वा बलानुसार ।

गुण—इसके उचित मात्रा में सेवन करने से—रक्त-पित्त, शीतपित्त, अम्लपित्त, अरोचक, मन्दाग्नि, दाह, तृष्णा, प्रदर, रक्तार्श, पैत्तिक वमन, पाण्डुरोग, कामला, उपदंश, विसर्प, जीर्णज्वर तथा विषमज्वरों का नाश होता है । यह परम वृष्य, बलवर्धक एवं बृंहण योग है । (वृ० नि० र० रक्तपि० चि०) ।

कूष्माण्डकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भूमिकुष्माण्ड । भुई कुम्हड़ा । पताल कुम्हड़ा । (२) कुष्माण्ड लता । पेठा । (वै० निघ०) ।

कूष्माण्ड-खण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) पेठा और कूष्माण्डखण्डावलेह—संज्ञा पुं० [सं०] } सूरन के टुकड़ों द्वारा निर्मित अवलेह सेवन से अर्श,

मन्दान्नि तथा मूढवात का नाश होता है। (शाङ्गध० सं० ख० २ अ० ८)।

(२) क्षयरोगनाशक योग विशेष। निर्माणविधि—छिले एवं बीजवर्जित पेठा के १०० टुकड़ों को ताम्रपात्र में १ प्रस्थघृत के साथ मन्दान्नि से भर्जित करें। जब सुपाक होकर मधुतुल्य हो जाए तब उसमें १०० पल मिश्री की चाशनी तथा पीपल, सोंठ और जीरा चूर्णकर २-२ पल के प्रमाण में तथा दालचीनी, इलायची-दाना, तेजपत्र, मरिच और धनियाँ अर्ध-अर्ध पल प्रमाण में चूर्णकर पाक करें। जब घृत का दर्शन हो तो पाक को सिद्ध समझें। इस प्रकार सिद्ध होने के पश्चात् शीतल होने पर अर्धप्रस्थ (३२ तो०) विमुद्धमधु मिश्रितकर काचनिर्मित पात्र में सुरक्षित रखें। मात्रा—१-३ तो० तथा बलानुसार।

गुण—इसके सेवन से—रक्तपित्त, क्षत, क्षय, कास, श्वास, वमन, तृष्णा तथा तमोदर्शन का नाश होता है और बल की वृद्धि होती है। यह परम वृष्य, नवजीवनसंचारक, वर्णकारक, उरःसन्धानकर, वृंहण, उत्तम स्वरकारक है। (भैव २० रक्त वि० चि०)।

कूष्माण्डगुड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृष्यकर योग विशेष।

निर्माणविधि—छिलका तथा बीजवर्जित पेठा के टुकड़ों को जो १०० पल प्रमाण में हों ग्रहणकर ताम्र की कड़ाही में १ प्रस्थ (६४ तो०) घृत के साथ मन्दान्नि से पकाएँ और पाककाल में आंवलों का रस ३ प्रस्थ (४८ पल) तथा पीपल, पीपलामूल, चित्रकमूल, गजपिप्पली, धनियाँ, वायविडंग, सोंठ, मरिच, पीपल, त्रिफला, अजमोद, इन्द्रयव, जावित्री तथा सेंधालवण का चूर्ण १-१ पल और निशोथ का चूर्ण ८ पल, तिलतैल ८ पल और पुरातन गुड १५ पल प्रमाण में मिश्रित करें। जब सुपाक प्राप्त होकर घृत-तैल का दर्शन होने लगे कड़ाही उतारकर शीतल करें और उत्तम काचनिर्मित पात्र में सुरक्षित रखें। मात्रा—आमला वा गूलरफलप्रमाण।

गुण—इसके उपयोग से संग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, ज्वर, आध्मान, गुल्म, हृदयरोग, उदररोग, विषूचिका, पाण्डु, कामला, वातरक्त, विसर्प, राजयक्ष्मा, ददु, हलीमक, वात-पित्त तथा कफ-जनित रोग एवं कुष्ठ का नाश होता है। यह परम बलवर्धक, वृष्य, वृंहण तथा वयःस्थापक (आयु स्थिरकर) योग है। (वृ० नि० २० संग्रहणीचि०)।

कूष्माण्डपाक (बृहत्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] परम बलवर्धक योग विशेष। निर्माणविधि—सुपक्व पुष्ट पेठा के टुकड़े ४०० तो० ग्रहणकर ताम्रपात्र में स्वेदन करें। पुनः ४०० तो० मिश्री की चाशनी मिलाएँ। प्रक्षेपार्थ—त्रिकुटा, धनियाँ, जीरा, चित्रक, तज, पत्रज, नाग-केशर, इलायची, त्रिफला, नागबला, अतिबला, शतावरी,

तालीशपत्र, मेथी, निशोथ, दन्तीमूल, गजपिप्पली, तालमखाना के बीज, काला तिल, द्राक्षा, नागरमोथा, चव्य, अश्वगन्धा, कूठ, चिरौजी, केवाँच के बीज, कचूर, मुलहठी, वंशलोचन, पीपल, कमलकन्द, लौंग, सेमल का मुसला, भाँग, दालचीनी, जायफल, जावित्री, विदारी-कन्द, सम्हालू के बीज, सफेद मुसली, स्याह मुसली, सिंघाड़ा—प्रत्येक १-१ तो०; गोघृत ८० तो०, अभ्रक भस्म ४ तो०, मिश्री ४०० तो० मिश्रितकर यथाविधि पाक करें। मात्रा—॥ से १ तो० तक। अनुपान—गोदुग्ध।

गुण—इसके सेवन से अग्निमान्द्य, धातुक्षय, राजयक्ष्मा, अम्ल-पित्त, पाण्डु, कास, श्वास, कामला तथा प्रमेहों का नाश होता है, बुद्धि की वृद्धि होती है और शरीर कान्ति-सम्पन्न होता है। स्त्रियों के साथ युवा की भाँति संभोग करने की शक्ति होती है।

कूष्माण्डवटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कूष्माण्डवटक। कुँहड़ौरी। कुम्हड़ा वेड़। (बं०) कुम्ड़ा बड़। यह रक्तपित्तनाशक तथा लघुपाकी है। दे० 'कूष्माण्डवटक'।

कूष्माण्डबीजयोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वातव्याधिचिकित्सा में प्रयुक्त योग; यथा—पेठे का छिला बीज और खदिर के बीजों को वारीक चूर्णकर मूत्राशयपर लेप करने से मूत्रावरोध जाता रहता है। (वृ० नि० २० वा० व्या० चि०)।

कूष्माण्डशिफा चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कासनाशक योगविशेष। यथा—पेठे की जड़ गरम जल में पीसकर पीने से दारुण कास एवं श्वास का नाश होता है।

कूष्माण्डक्षार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शूलरोग में प्रयुक्त पेठा से बनाया हुआ क्षार। निर्माण-विधि—पके हुए पेठे को काटकर धूप में सुखायें। पुनः उसे हाँडी में भरकर ढाँक दें। इसके बाद चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि के ताप से भस्म करें। स्मरण रहे कि यह पूर्णतया भस्म होकर सफेद भस्म न हो जाय, अपितु काली मसी बन जाय। मात्रा—१—३ माशा। सेवन-विधि—सोंठ के चूर्ण के साथ सेवन करने के बाद पानी पीने से भयंकर एवं असाध्य शूल शान्त होता है।

कूष्माण्डावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेठाकृत चटनी विशेष।

निर्माण-विधि—बीज-छालरहित पेठा के टुकड़ों को ४०० तो० ग्रहणकर ६४ तो० घृत और ६४ तो० तिलतैल के साथ ताम्र की कड़ाही में भर्जित करें। जब सुपाक को प्राप्त होवे उसमें तज, पत्रज, धनियाँ, सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा, इलायचीदाना, नागकेशर, बच, चव्य, अदरक, सिंघाड़ा, कसेरू, प्रवालभस्म, तालमस्तक (ताड़ का गोला) प्रत्येक ४-४ तो० विचूर्णितकर

मिश्रित करें। पुनः ४०० गुड की चाशनी तथा विशुद्ध मधु ३२ तो० मिश्रित करे। मात्रा—१-२ तो०।

गुण—इसके उपयोग से मन्दान्ति, कृषता, नपुंसकता, शुक्रक्षय, राजयध्मा, कास-स्वास, ज्वर, हिक्का, अरुचि तथा वमन का नाश होता है।

कूष्माण्डिका (की)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीतालावु। भूरा कुम्हड़ा। काशीफल। (वै० निघ०)।

कूष्माण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटा कुम्हड़ा। कर्काच। गुण—गुरुपाकी (भृश) तथा लघु है। (हे० च०)।

कूसज, कौसज—संज्ञा पुं० [अ०] एक दरियाई जानवर जो मनुष्य के ऊपर सवार हो जाता है।

कूसल—संज्ञा पुं० [सं० कुश] एक प्रकार की घास जिसके डंठलों का झाड़ू बनता है।

कूहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुञ्जटिका, कुहासा। (श०र०)।

कूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] वाज की जाति की एक प्रकार की शिकारी चिड़िया। कुही।

कूँच—[वं०] गुंजा। घुँघची।

[म०] केवाँच।

कूँच की फली—[म०] केवाँच की फली। कपिकच्छूकी शिम्बी।

कूँच गुला—[वं०] गुंजा। घुँघची।

कूँची—संज्ञा स्त्री० [फा० कूजा] कुल्हिया जिसमें मिश्री जमाई जाती है। उ०—कूँची की चीनी।

कूँज—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च, पा० कौँच] क्रौँच पक्षी। करांकुल।

कूँडी—संज्ञा स्त्री० [] सोंटा से घोटने की ऊखल वा पत्थर की बनी हुई खड़ी दीवार की पथरी।

कूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गल। गला। (हे० च०)।

कूकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) देवनाल। (२) भूकुर। चिर्भट। शशाण्डुली। पेहँट्रुल।

कूकण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कयार पक्षी, ककर पक्षी। (अम०)। (२) कृमि। कोट। (हारा०)।

कूकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चव्यनामक क्षुप। चाव। (वं०) चई। (रा० नि० व० ६)। (२) कुवार पक्षी। (वं०) ककटपाखी। (म०) करठौक। (ले०) परडिक्स सिल्वेटिका (Perdix Sylvatica)। मांस-गुण—कूकर का मांस लघुपाकी, शरीर—अग्निवर्धक तथा भारी (भृष) है। (अत्रि०)। (३) कनेर। करवीर वृक्ष। (रा० नि० व० १०)। (४) वैदिक ग्रन्थों के अनुसार पाँच प्रसिद्ध वायुओं के अतिरिक्त पाँच अन्य वायुओं में से एक जिसका कार्य क्षुधा है। कूकल।

कूकरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपर। पिप्पली। (रा० नि० व० ६)।

कूकराट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खिड़कि। खञ्जन। खञ्जरीट पक्षी। (ध० नि०)।

कूकल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दे० 'कूकर' (४)। (२) नकछिकनी। क्षुत्कारी। (३) शरीरस्थ वायुविशेष। (४) तन्त्र।

कूकला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपर। पिप्पली।

कूकलाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सरट। गिरगिट। (वं०) काँकलास। (रत्ना०)। (२) छिपकली। गृहगोधा। विस्तुइया। (अं०) लेजर्ड। पर्याय—सरट, वेदार, क्रकचपात, तृणाञ्जन, प्रतिसूर्य्य, प्रतिसूर्य्यक, वृत्तिस्थ, कण्टकागार, दुरारोह, द्रुमाश्रय, अण्डज, कूकलाश, कूकलास, सरट्टः।

कूकलास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कूकलाश'।

कूकवाकु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुक्कुट। मुरगा। (रत्ना०)। (२) मोर। मयूर। (त्रिका०)। (३) सरट। गिरगिट। (हारा०)।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छिपकली। विस्तुइया। टिक-टिकी। गृहगोधिका।

कूकषा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कङ्कणहारिक पक्षी। चन्दू-चहरा। यह पीताभ गौरैया के बराबर होता है और तृणों से वृक्ष पर कतिपय तुम्बिकाकार गृह बनाता है। यह अत्यन्त चतुर पक्षी है।

कूकाटिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिराभेद। (सु० शा ७ अ०)।

कूकाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का मर्म-स्थान। शिर तथा ग्रीवासन्धि में इसका स्थान है। इसके वेध होने से शिरःकम्प होता है तथा विलता की वृद्धि होती है (अं०) ऐटलाण्टो आक्सिपिटल आर्टिक्युलेशन् (Atlanto-occipital articulation)।

कूकाटिका सिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ग्रीवागत अवेध्य सिरा। (सु० शा ७ अ०)। (अं०) आक्सिपिटलवेसल्ज (Occipital-vessels.)

कूकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पक्षी भेद।

कूकुलाश (स)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरट। दे० 'कूकलास'।

कूकुवुत्स्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मकई। बन्दरी। (वै० निघ०)।

कूकू—[?] अनार। दाड़िम।

कूकूलास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूकलास। गिरगिट। (अ० टी०)।

कूकुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करील। करीर। (रा० नि० व० ८)।

कृच्छ्र

कृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कष्ट । (२) मूत्रकृच्छ्र-रोग ।

कृच्छ्रमूत्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूत्र कष्ट से आना ।

कृच्छ्रश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] साँस लेने में कठिनाई ।
श्वासकृच्छ्र । कृच्छ्रोच्छ्वासता । साँस की तंगी । (अं०)
डिस्पनोआ (Dispnoea) ।

कृच्छ्रसाध्य—वि० [सं० त्रि०] कष्ट साध्य । कठिनातापूर्वक
साध्य होनेवाला रोग ।

कृच्छ्रहर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाषाणभेद । (वि०
निघ०) । (२) मूत्रकृच्छ्रनाशक अन्य द्रव्यसमूह । यथा—
गोक्षुर, अंगूरक्षार, शशाण्डुली-प्रभृति ।

कृच्छ्रारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विल्वान्तर वृक्ष । (रा०
नि० व० ८)

कृच्छ्रात्तव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कष्टपूर्वक आनेवाला आर्त-
वशोणित (रजः स्राव) । कष्ट के साथ होनेवाला मासिक
धर्म । रजःकष्ट । रजःकृच्छ्र । उदावर्त्ता यानि । (अं०)
डिस्मेनोरिया (Dysmenorrhoea) । (अं०) उत्सृत्तम् ।
(उर्दु) हैज का तकलीफ से आना ।

कृच्छ्रात्तव-हर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह द्रव्य जो सघनीभूत
रज को द्रवीभूतकर स्वाभाविक रूप में परिवर्तित करे ।
यथा—मूली, वास्तुक, क्षारीय द्रव्य, सूरजमुखी, पपीता
(अण्डखर्वूजा), खरबूजा के बीज, कुमुम के बीज,
दालचीनी, कुटकी, गन्धक, हींग, मुसव्वर इत्यादि ।
उक्त द्रव्य जब आर्तवप्रवृत्तिकाल में श्रोणी-विभाग में
वेदना, शिरोवेदना, मानसिक दुर्बलता, स्वभाव में
चिड़चिड़ाहट, बेचैनी इत्यादि हो, तो लाभदायक
होते हैं ।

कृच्छ्रोन्मील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्षुरोग विशेष । लक्षण-
नेत्रगत प्रकुपितवायु नेत्रों के वर्त्मभागस्थ सम्पूर्ण शिराओं
का आश्रय ग्रहणकर निद्रित मनुष्य के नेत्रों में वर्त्म-
स्तम्भ अर्थात् नेत्रों के कोवों में स्तब्धता उत्पन्न करती
है । इसमें वेदना, नेत्रों में धूल-सा भरा रहना, कष्टपूर्वक
नेत्रों का खुलना, अश्रुस्राव इत्यादि लक्षण होते हैं । हाँथ
से मीड़ने पर किंचित् शान्ति मिलती है । (वा०) ।

कृणञ्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कृणञ्जर' ।

कृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) फल । (हे० च०) ।
(२) हिंसित । (मे०) ।

कृतक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रसाञ्जन । रसौत ।
(रा० नि० व० १३) । (२) विडलपण । विटलवण ।
(रा० नि० व० ६७; ध० नि०) ।

वि० [सं० त्रि०] कृत्रिम । (उणा०) ।

कृतकण्टक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'कृतक' ।

कृतकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पण्डित । विद्वान् । आचार्य ।
(ध० नि०) ।

कृतच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत कोषातकी ।
सफेद तरौई । (रत्ना०) ।

कृतछिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोषातकी लता । तरौई
भेद । घोषालता । (रा० नि० व० ३) ।

कृतत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] त्रायमाण । (रा०) ।

कृतत्राणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) त्रायमाण । (२)
अमलोला । (वं) गोयाले लता । (रा० नि० व० ४) ।

कृतधी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पण्डित । विद्वान् । (ध०
नि०) ।

कृतपिण्डीत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस । (वि०
कृतपिण्डीतक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निघ०) ।

कृतफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कक्कोल फल । हाउवेर ।
(रा० नि० व० १२) । (२) शीतलचीनी । (३) कोल
शिबी । सुअरासेम ।

कृतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच । कपिकच्छू ।
कोलशिवी । (वं०) आलाकुशी । (रा० नि० व० ७) ।

कृतबन्धन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } तरौई । कोशा
} तकीफल, घोषा ।
कृतवेधन—" " [सं०] } (भा० म० ४ भा०)

कृतमाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटा अमलतास । कर्णिकार ।
(वं०) सोनालु । सोन्दाल । (च० सू० ४ अ०) ।

कृतमालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कृतमाल' । (ध० नि०) ।

कृतमालादि-कल्क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठरोग में
प्रयुक्त योग । द्रव्य—अमलतासपत्र, करंजपत्र, सर्पपत्र,
राई, हरिद्रा, इन्द्रजौ, मुलहठी, नागरमोथा, सोंठ, लाल
चन्दन, आमला, अजवाइन तथा देवदारु—इन्हें समान भाग
में ग्रहणकर सरसों के तेल में मिश्रितकर भली भाँति पका-
कर अभ्यङ्ग करने से कण्डू (खुजली), पामा, शीतपित्त,
उदरद इत्यादि विविध प्रकार के चर्मरोगों का नाश होता
है । (भा० म० कुष्ठ० चि०) ।

कृतमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पण्डित । विद्वान् । (भ० नि०) ।

कृतपूष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमथ्या । मन्थ भेद । दे०
'प्रमथ्या' । (वा० चि० ६ अ०) ।

कृतरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अवस्थाविशेष में सिता-मधु-
युक्त रस । मांस-रस में मिश्री और मधु मिश्रितकर
प्रस्तुत किया हुआ मांसरस । कृता और अकृता भेद से
यह दो प्रकार का होता है । सोंठ, जोरा, अनाररस मिश्रित-
कर सिद्ध किया हुआ मांसरस विविध प्रकार का होता
है । (वा० टी०) ।

कृतवेध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तरौई ! कोशातकी । श्वेत
घोषा । (र० मा०) ।

कृतवेधक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तरौई । कोशातकी ।

कृतवेधन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्वेतपुष्प की तरौई ।
श्वेतपुष्पकोशातकीलता । श्वेतघोषा । (२) अमलतास ।

आरग्वध । (सु० सू० ३९ अ०, ४५ अ०) । (३)
ज्योत्स्निका । पटोलिका । परोरा भेद । लताफट्की—वं ।
(च० सू० २ अ० । च० द० गर्भा० चि०) ।

कृतवेधना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली तरौई । राज-
कोशातकी लता । कडुई तरौई । कटु घोषा । (प० मु०) ।
कृतवेधनी—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] तरौई । कोशातकी ।
(ध० नि०) ।

कृतत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] त्रायमाण । (रा०) ।
कृतज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्ता । कुक्कुर । श्वान ।
कृताकृतपरिभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्नेह, लवण
और कटुक के बिना किये गये रसयूपादि 'अकृत' और स्नेह
लवण और कटुक युक्त 'कृत' कहलाते हैं । (सु० सू०
४६ अ०, ३७६ श्लो०) ।

कृताख्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } लवण-मरिच-स्नेहसिद्ध
कृताख्ययूष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } यूप । यह गुरुपाकी
होता है । (वैद्यक) ।

कृताञ्जलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाजवन्ती । लजालू ।
लज्जावती । (च० द० ज्व० चि०) । इसको रक्तमूत्र
से बाँधने से एकाहिक ज्वर नष्ट होता है । (भै० स्त्री०
रो-चि० । रस० र० स्तन रो० चि०) ।

कृतान्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यमराज । (अम०) ।
कृतान्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काल । मृत्यु का स्वामी ।
कृतान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेणुका । रेणुक नाम का
गन्धद्रव्य । (श० च०) ।

कृतान्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अन्नद्वारा प्रस्तुत लड्डू प्रभृति
खाद्य पदार्थ ।

कृतालय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेढक । मण्डूक । भेक ।
मेघा । (त्रिका०) ।

कृति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कृतकर्म । करणी ।
(२) हिसा । (मे०) ।

कृतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भोजपत्र । भुज्जं
वृक्ष । (२) नेवला । नकुल । (Mangoose) ।

कृती (इन्)—वि० [सं० त्रि०] कुशल ।

कृत्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) छिन्न । (२) चेष्टित ।
(हे०च०) ।

कृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) कृष्णसारमृगादि का
कृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [,] } चर्म । (मृगछाला) ।

(२) भोजपत्र । भुज्जं वृक्ष । (मे०) । (३) घत्तूर । (ध० नि०) ।

कृत्तिकाभव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रमा । (श०) ।

कृत्तिवासा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिव । शंकर भगवान् ।
(अम०) ।
कृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अभिचारादि कृत
देवता । (सि० यो० उन्मा० चि०) । कृत्या के उपयोग से
ज्वर और अलक्ष्मी का नाश होता है । (मे०) । यह बम

(बीमा) तुल्य शब्दों को करनेवाली शिर, नाक, कानयुक्त
प्राणवातक सामग्रीयुक्त होती है । (सु० घा० टी०,
सू० ५ अ०) ।

कृत्याकृता—वि० [सं० त्रि०] हस्तकृत । हस्त द्वारा निर्मित ।
दे० 'कृत्या' ।

कृत्याकृत्यविधि—वि० [सं० त्रि०] सुश्रुतोक्त एक अध्याय ।
इसमें साध्य, सुखसाध्य और कृच्छ्रसाध्य, असाध्य, याप्य
आदि चतुर्विध व्रणों का वर्णन किया गया है । (सु० सू०
२३ अ०) ।

कृत्याशूकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चर्मकी ।
चर्मपक्षी । चर्मगादड़ । (वं०) चामचिकी । (रा० नि०
व० १६) ।

कृत्यान्माद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृत्याजात भूतोन्माद ।
(शाङ्ग०) ।

कृत्रिम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) विद्वलवण । (रा०
कृत्रिमक—संज्ञा पुं० [,] } नि० व० २३) । (२)
जवादि काचोद्भव लवण । (ध० नि०) । (३) रसीत ।
रसाञ्जन । कृत्रिम रसाञ्जन । (रत्ना०) । (४) चिनिया
कपूर । चीन कर्पूर । (५) गन्ध-राज । (६) कस्तूरी ।
(रा० नि० व० १२) ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पीला चन्दन । पीतचन्दन । (वै०
निघ०) । (२) शिलारस । सिल्लक । (मे०; ध० नि०) ।
तुरष्क । (प० मु०) ।

कृत (त्रि)मदन्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नकली दाँत ।

कृत्रिम दुग्धपान—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बनावटी दुग्ध
जो शिशुओं को पान कराया जाता है । कण्डेन्सड
मिल्क ।

कृत्रिम धूपक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] षोडशाङ्ग धूप । वृक
धूप । (अम०) ।

कृत्रिमरत्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काँच । (वै० निघ०) ।
नकली हीरादि जो काँच द्वारा परिष्कारकर निर्माण
किया जाता है ।

कृत्रिम प्रश्वसन—संज्ञा पुं० दे० "कृत्रिमश्वसन" ।

कृत्रिमविद्युद्बद्ध—संज्ञा पुं० कृत्रिमविद्युत् से जला हुआ ।

कृत्रिम-रसाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दारुहरिद्रामूल
द्वारा निर्मित नकली रसवत ।

कृत्रिम विष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बनावटी विषादि
जो रसायनिक प्रक्रिया द्वारा निर्मित होते हैं; यथा—साय-
नाइड, संखिया इत्यादि । (२) विषदोष । (वै० निघ०) ।

कृत्रिम-श्वसन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] } नकली
कृत्रिम-श्वासजनन—संज्ञा पुं० [,] }

श्वासोच्छ्वासग्रहण की प्रणाली । इस प्रणाली का अवलम्बन
उस समय होता है जब किसी कारण से फुफ्फुसगति का
अवरोध होता है । कृत्रिमश्वसन में डॉ० सिलवेष्टर तथा

डॉ० लेवोडें वा मार्शल की पद्धतियाँ उपयोगी मानी जाती हैं।
मार्शल की पद्धति में स्वासावरुद्धनवप्रसूतबालक को
प्रसारित हथेली पर क्रम से पीठ के बल तथा छाती के
बल पर रखा जाता है, जिससे उसका सिर तथा शाखाएँ
नीचे की ओर लटकती रहती हैं। मार्शल की पद्धति नील-
स्वासावरोध में अधिक उपयोगी होती है। दे० 'स्वास'।
कृत्स—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जल। (२) कोख।
'कुक्षिद्वय' (मे०)।

कृत्स्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'कृत्स'
कृदर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोला। वखार जिसमें धान्या-
दि सुरक्षित रखे जाते हैं। (सि० कौ०)।

कृन्तन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हल। लाङ्गल। पृथ्वी कर्षण
करणार्थ यंत्र। (सि० कौ०)।

कृन्तन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काटना, छेदना, भंग करना।

कृन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छुरी, चाकू, नश्वर।
(अं०) नाइफ (Knife), बिस्चुअरी (Bistoury)।

कृपण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमि, कीट। 'कृपणन्तु कृमौ
पुंसि'। (मे०)।

कृपणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सविष कीट विशेष। (सु०
कल्प० ८ अ०)।

कृपाण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खड्ग। तलवार। (अं०)।

कृपाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्तरी, छोटा चाकू,

कृपाणी— " ["] छूरिका, छुरी। मे०।

कृपीट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पेट, उदर, आमाशय।

(२) पानी, जल। (मे०)। (३) जंगल, वन। (४) लकड़ी,
काष्ठ। (शं० २०)।

कृपीटपाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हवा, वायु, वात। (शं० २०)।

कृपीटयोनि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आग, अग्नि, आतिश।
(हे० च०)।

कृमि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कीट। कीड़ा। (बं०)

केंचो, पोका। (फा०) किरम। (अं०) इन्सेक्ट (Insect)।

(सं०) नीलाङ्ग, नीलाङ्गु, क्रिमि, पुण्ड्र, पतंगमात्र,

पिपीलिका, लघु कीट, सूक्ष्म, कीट। दे० 'क्रिमि'। (२)

ऊर्णनाभ, ऊन। (हे० च०)।

कृमि आशय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उण्डुक पुच्छ। (का० सं०)।

कृमिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (१) छोटे कीड़े। क्षुद्र

कृमि। (२) पूरा फल। सोपारी।

कृमिकण्टक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वायविडंग, विडङ्ग।

(२) गूलर, उडुम्बर। (बं०) यज्ञमुद्र। (३) चूहाकानी।

चित्रा। (बं०) इन्दुरकानी। (हे० च०)।

कृमिकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सविष कीट भेद। जहरीले

कीट।

कृमिकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कीट। विशेष, कीटा-

कृमिकर्णक—संज्ञा पुं० ["] दि। (२) कर्णरोग।

लक्षण—वातादि दोषों द्वारा कर्ण दूषित होनेपर उसमें
कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और कान को खाने लगते हैं तथा
मांस, रक्त दूषित होकर उसमें तीव्र वेदना उत्पन्न
होती है।

चिकित्सा—सुरसादि वर्ग की ओषधियों में तेल पकाकर
कर्णपूरण करने वा ममरी का स्वरस कान में डालने से कृमि-
कर्ण का नाश होता है। (वा० उ० १७, १८ अ०)।
सु० उ० २० अ०।

कृमिकर्णारि-तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कृमिकर्णनाशक-
तैल।

कृमिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ग्रन्थिपर्णी। गठिवन।

(२) राई। राजिका। (३) शोथ। सूजन। (वै० निघ०)।

कृमि-काल-कूटरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोगनाशक

रसयोग। निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग,

शु० गन्धक २ भा०, अभ्रक भस्म ३ भा०, लोह भस्म

४ भा०, शु० वत्सनाभ १ भा०, सबके बराबर

विडंगचूर्ण तथा सबका आधा भा० कुटज की छाल

विचूर्णितकर सुरक्षित रखें। मात्रा—१—५ मा०।

सेवन विधि—कृमिहर अनुपान द्वारा सेवन करने से कृमि-

रोग शान्त होता है।

कृमिकालानल-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में

प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—वायविडंग २ पल,

शुद्ध सिंगिया चूर्ण १ पल, लौह भस्म ४ तोला, शुद्ध पारद

२ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला की कज्जली, एकत्र चूर्णकर

छागीपथ में मर्दनकर १६ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ

प्रस्तुत करें। गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से उदर-

कृमि, ग्रहणी, अर्वा, अग्निमान्द्य, शोथ, गुल्म, प्लीहा तथा

उदररोगों का नाश होता है। अनुपान—धनिया वा

जीरक चूर्ण। (२० सा० सं०)

कृमिकाष्ठानल-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त

योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध

गन्धक की कज्जली, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल,

कौड़ीभस्म, काला नमक, सोमराजीके बीज (बकुची),

वायविडंग, दन्तीबीज, शुद्ध जमालगोटा, मैनशिल, भुना

सुहागा तथा चीता की जड़, प्रत्येक १-१ कर्ष। इनका एकत्र

चूर्णकर थूहर के दूध में मर्दनकर मटरप्रमाण की

गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके सेवन से कृमि, कफज,

पित्तकफज तथा कफवातज कृमिरोग नष्ट होते हैं।

(२० सा० सं०)।

कृमिकुठार-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त

योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध कर्पूर ८ भाग, कूड़ा

की छाल, त्राममाण, अजमोद, वायविडंग, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध

सिंगिया, केशर तथा पलाश के बीज प्रत्येक १-१ भाग, इनका

एकत्र चूर्णकर इसमें मूषाकर्णी, भाँगरा तथा ब्राह्मी के रस

की एक-एक भावना देवे और १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण तथा उपयोग—इसे धतूर के रस के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण कृमिरोग का नाश होता है। (वृ० २० रा० सु०)।

कृमिकुम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाकाल लता। लाल इन्द्रायन। कोवर।

कृमिकोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) फलविशेष। माजूफल। पर्याय—पूगफल, संग्राही, पत्रफल, कषायी, असुरोधक, मायाफल। गुण—संग्राहक, तिक्त, रक्त-रोधक, ज्वर, रक्ताक्ष, रक्तप्रद, रक्तातिसार तथा कण्ठ-रोगघ्न है। (२) रेशम के कीड़ों का घर। कोया। ककून। कुसवारी।

कृमिकोषोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेशमी वस्त्र। कौषेय। टशर के कपड़े।

कृमिकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जिनके पेट में कृमि हैं वे।

कृमिकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वरोग विशेष। लक्षण—घोड़ों के पेट में जब कृमि उत्पन्न हो जाते हैं तब उनको भिन्न-पुरीष अर्थात् फटा हुआ दस्त होता है। (ज० द० ४६ अ०)।

कृमिगुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रायण। इन्द्रवाष्णी लता। (मद० व० १)।

कृमिग्रन्थि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेत्रसन्धिगत रोग।

लक्षण—नेत्रवर्त्म तथा नेत्रपक्ष्म की सन्धि में तथा वर्त्म और शुक्ल की सन्धि में अनेक प्रकार के कृमि उत्पन्न होकर खुजली उत्पन्न करते हैं और भीतर विचरते हुए नेत्रों को दूषित करते हैं। (सु० उ० २ अ०)। अपांग तथा कनीनिका व पक्ष्म में कृमि उत्पन्न होकर ग्रन्थि व पूयसाव उत्पन्न करते हैं। (वृद्ध वाग्भट)।

कृमिधातिनी-गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ तोला, वायविडंग ४ तोला, पलाश के बीज (पसदामा) ५ तोला और शुद्ध कुचला ६ तोला। एकत्र चूर्णकर मधु मिश्रितकर मर्दन करें और २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसे मिश्री-मोथा काथ वा मूषाकर्णों के रस के साथ सेवन करने से कृमिरोग का नाश होता है। (रस० चि०)।

कृमिघाती—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विडंग। वायविडंग। वि० [सं० त्रि०] कृमिनाशक द्रव्य; यथा-पलाशबीज, विडंग, मुरसादि वर्गीय औषधियाँ।

कृमिघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) फरहद। पारिभद्र वृक्ष। पाल्दे मान्दार। पलीतामदार। (रा० नि० व० ८)। (२) कटुनिम्ब। नीम का वृक्ष। (३) प्याज। पलाण्डु। (४) कोलकन्द। (५) बेर की जड़। वदरमूल।

(रा० नि० व० ७)। (६) भिलावाँ। भल्लातक वृक्ष। (रा० नि० व० ११)। (७) वायविडंग। विडंग। (प० मु०)। (८) हल्दी। हरिद्रा। (भा०)।

वि० [सं० त्रि०] कृमिनाशक। कृमिहर (द्रव्य)। शरीर में उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर कृमि तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले विकारों को नष्ट करनेवाले द्रव्य को 'कृमिघ्न' कहते हैं। जैसे—सर्हिजन, कालीमिर्च, वायविडंग, संभालू आदि। शुश्रुत ने अर्कादिगण को कृमिप्रशमन, मुरसादिगण को कृमिसूदन और लाक्षादिगण को कृमिघ्न लिखा है। (सू० अ० ३८)।

कृमिघ्न द्रव्य आँतों के अन्दर के कृमियों को मारते हैं या उन्हें निकालने में सहायता करते हैं। जैसे—(१) किरमानी अजवायन (और पलाशबीज) गोलकृमि (केंचुए—Round worm) के लिए; (२) कमीला (या वायविडंग), सुपारी और अनार के मूल की छाल फीते जैसे चपटे कृमि (Tape worm) के लिए; (३) नमक, चूना और फिटकिरी के घोल (तथा कलम्बा के क्वाथ) की आस्थापनवस्ति सूतजैसे कृमि (Thread worm) के लिए; (४) अजवायन के फूल बड़िसकृमि (Hook worm) के लिए। इन्हें अंगरेजी में अन्येलिन्टिक्स (Anthelmintics), वर्मिफ्यूज (Vermifuge), वर्मिसाइड्स (Vermicides), अन्टिस्कॉलिऑक् (Antiscoliac) कहते हैं। जो द्रव्य बाहर के (त्वचा आदि के) कृमियोंको मारते हैं, वे बाह्यकृमिघ्न कहते हैं। जैसे—कायफल, बच, निमोली का तेल आदि। इन्हें अंगरेजी में 'इन्सेक्टिसाइड्स' (Insecticides) कहते हैं। (डॉ० वा० दे०)।

कृमिघ्न औषधको यूनानी वैद्यक में 'क्रातिलदीदान' (कृमियों को मारनेवाले) और 'मुखरिजदीदान' (कृमियों को बाहर निकालनेवाले) कहते हैं।

चरकोक्त कृमिघ्नगण की औषधियाँ अक्षीव (

), मरिच, गण्डीर (), केवुक, वायविडंग, निगुण्डी, किण्णीही, (), गोखरू (श्वदंष्ट्रा), वृषपर्णिका () मूसाकानी (आखुपर्णिका) ये दश द्रव्य (च० सू अ० ४)।

कृमिघ्न रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—वायविडंग, पलाश के बीज, नीम के बीज, रससिन्दूर इन्हें एकत्र मूसाकानी के रस में मर्दनकर २ वल्ल प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसके उपयोग से कृमिरोग का नाश होता है। (र० सा० सं०)।

कृमिघ्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) हल्दी। हरिद्रा।

कृमिघ्नी— " ["] } (२) लाख, लाही, लाक्षा। (३) वायविडंग। विडंग।

(वै० निघ०) । (४) धूम्रपत्रा, तमाकू । (रा० नि० व० ५) । (५) वकुची । सोमराजी । (श० च०) ।
कृमि चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृमिरोग का उपाय । (च० वि० ७ अ०) । दे० 'कृमि रोग' ।
कृमिज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [स्त्री० कृमिजा] } (१)
कृमिजघ—संज्ञा पुं० ["]
 अगर । अयुरुकाष्ठ । (२) लाख । लाही । लाक्षा । (३) रेशम । (४) किरमिजी । हिरमिजी ।
 वि० [सं० त्रि०] कृमिजात । कीड़ों से उत्पन्न ।
कृमिजघ्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अगर । काष्ठागुरु । (घ० नि०) ।
कृमिजन्य—वि० [सं० त्रि०] कृमियों से होनेवाला ।
कृमिजलज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] संख का कीड़ा । कृमि-शङ्ख । (रा० नि० व० १३) ।
कृमिज शिरोरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिजन्य शिरो-व्याधि । (भा०) ।
कृमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } लाख । लाक्षा । (वं)
कृमिजाह्वा—संज्ञा स्त्री० ["] }
 आलता । (र० मा०) ।
कृमिजित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायविडंग, विडंग । (वै० निघ०) । (वा० व्या० महारासनादि) ।
कृमि तरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटा आम । क्षुद्राग्र । (घ० नि०) ।
कृमिदन्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
कृमिदन्तक—संज्ञा पुं० ["] } दन्तरोगविशेष । दाँतों में कीड़े लगना ।

लक्षण—दाँत का वर्ण काला पड़ जाता है; उसमें छिद्र हो जाता है; हिलता है; शोथ और स्राव होता है; तीव्र वेदना होती है; बिना कारणही अकस्मात् वेदना उत्पन्न होती है । यह वातजन्य कृमिदन्त होता है । (सु० नि० १६ अ०) ।

पर्याय—(फा०) ददें ददाँ किरमी, किरमे ददाँ; (अ०) दूदुस्सिन्न, दीदानुल्लिसान, वज्जुलअस्नानदूदी; (अं०) डेंटल केरीज (Dental caries) । यह प्रायः दाँतों में खाय पदार्थ के रूक जाने से उसमें कृमि उत्पन्न होकर उत्पन्न होता है । इसमें दाँत पीले पड़ जाते हैं । दन्तशूल तथा दन्तदालनरोग कृमिदन्त का सर्वप्रधान कारण समझना चाहिए । इसमें दाँतों की जड़ में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं ।

चिकित्सा—सर्वप्रथम हिलनेवाले कृमिदन्त को स्वेदितकर विस्त्रावण द्रव्यों द्वारा लालादि स्राव कराकर तथा वातनाशक द्रव्य, स्निग्ध प्रलेप, गण्डूष, नस्य और आहार का सेवन कराएँ और छिद्र में गुड़ तथा मोम भरकर तप्त शलाका द्वारा दग्ध करें । सातला तथा

आक (मदार) का दूध रुई के फाहा में भिगोकर दन्त-छिद्र में स्थापन करायें; कटेरी व गोनी (गन्दुम दीवाना) के बीजों को ग्रहणकर तप्त लोहपात्र में रख उसका धूम्र नलिका द्वारा दाँतों में पहुँचावें । क्रियाजोट नामक अंग्रेजी औषध रुई में भिगाकर छिद्र में लगायें ।

कृमिदावानल-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध हिङ्गुल १ तोला, शुद्ध जमालगोटा के बीज ६ भासा एकत्र चूर्ण-कर इसमें आक के दूध की १० भावना देवें । मात्रा तथा उपयोग—इसको आक की जड़ और हींग के साथ सेवन करने से समस्त प्रकार के कृमिरोग का नाश होता है । (वृ० र० रा० सुं) ।

कृमिद्रव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाख । लाही लाक्षा । (वै० निघ०) ।

कृमिद्रुम कुठार रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग ।

कृमिधूलिलजलप्लवरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, राँग भस्म, शंखभस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर यथा-विधि चूर्ण करें और सर्वतुल्य हरीतकीचूर्ण मिश्रितकर इसमें पटोलरसकी भावना देकर भली भाँति मर्दनकर कपासबीजप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण तथा सेवन-विधि—प्रातःकाल शीतल जल के साथ सेवन करने से पैत्तिक तथा वातपैत्तिक कृमिरोग का नाश होता है । इसके आदि निर्माता श्री गहननाथ जी हैं । (र० सा० सं०) ।

कृमिन्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विडंग । वायविडंग ।

कृमिनाशक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह द्रव्य जो क्रिमिसमूहों को नष्ट करते हैं । कृमिहर द्रव्य । दे 'कृमिघ्न' तथा 'कातिल दीदान' ।

कृमिनाशन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाख । लाही । लाक्षा । (वै० निघ०) ।

वि० [सं० त्रि०] कृमिघ्न (कृमिहर) द्रव्य ।

कृमिनाशनरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, मरिच, शुद्ध सिंगिया, धातकीपुष्प, हड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मोथा, रसाञ्जन, पाठा, सोंठ, मरिच, पीपर, मोथा, सुगन्धवाला और बेलगिरी सबको समान भाग में ग्रहणकर एकत्र चूर्ण करें । पुनः इसमें भाँगरे के रस की भावना देकर सुरक्षित रखे । मात्रा—वराटिका (कोड़ी भर) । इसके सेवन से क्रिमियों का नाश होता है ।

कृमिनाशिनी—संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] अजमोद । (वै० निघ०) ।

[कना०] मुखजली । (ओ० सं०) ।

कृमिपाना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख । लाही । लाक्षा ।

कृमिपामा—,, [,,] (वै० निघ०) ।

कृमिफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुलर । उदुम्बरवृक्ष-फल । (मद० व० ५) ।

कृमिभक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माखी । मक्खी । मक्षिका । (ध० नि०) ।

कृमिभैरवरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग ।

कृमिमक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृमितुल्य मक्खी । (वै० निघ०) ।

कृमिमुद्गर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त
कृमिमुद्गर-रस—,, [सं० पुं०] योग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, अजमोद ३ भाग, वायविडंग ४ भाग, शुद्ध कुचला ५ भाग, पलाशबीज ६ भाग, एकत्र चूर्णकर सुरक्षित रखें । मात्रा—१ निष्क । गुण—मधुयुक्त सेवन करने से तथा मोथाकाथ का अनुपान द्वारा सेवन करने से कृमि तथा कृमिजन्य रोगों का नाश होता है । (र० सा० सं०) ।

कृमिरिपु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायविडंग, विडङ्ग । (श० र०) ।

कृमिरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उदरजकृमिजन्य रोग । कृमिरोग बाह्य-अन्तर भेद से २, जन्म भेद से ४ तथा नाम भेद से २० प्रकार का होता है । (मा० नि०) । २१ प्रकार का (शाङ्ग०) । उत्पत्ति तथा कारण—जीर्ण भोजनादि अथवा प्रस्वेदादि बाह्य मल, कक, रुधिर तथा विष्ठा इत्यादि से शरीर में बाह्य कृमियों की उत्पत्ति होती है ।

स्वरूपादि—बाह्यकृमि तिलतुल्य, तिलाकृति तथा तिलतुल्यवर्णवाले होते हैं । यह अत्यन्त सूक्ष्म और अधिक पाँवोंवाले होते हैं । उनमें बहुत से जूँ तथा अधिक लीखें (लीक्षा) होती है । यह केश तथा वस्त्रों के आश्रित रहते हैं । कालेवर्णवालों को जूँ, ढील, चीलर विभिन्न वर्ण के अनुसार नामकरण हो सकता है । लीक्षा श्वेतवर्णवाली होती है ।

बाह्यकृमिजन्य विकार—इनके उत्पन्न होने से कोठ, पिटिका, कण्डू (खुजली) इत्यादि चर्मरोग उत्पन्न होते हैं ।

चिकित्सा—धतूर, शरीफा तथा पान के रस में पारद मिश्रितकर लेप करने से समस्त जूँ आदि बाह्य कृमियों का नाश होता है । धतूरपत्रस्वरस में कटुतैल पकाकर अम्यङ्ग करने से शीघ्र जूँवों का नाश होता है ।

(१) कारणभेद से आभ्यन्तर कृमियों की उत्पत्ति—उड़दादि द्वारा निर्मित पिण्ड पदार्थों के सेवन से, अम्ल पदार्थ, लवणीय पदार्थ, गुड़ तथा अधिक हरे शाकादि के सेवन से पक्वाशय में पुरीषज कृमिउत्पन्न होते हैं । मांस, मछली, दुग्ध, गुड़, दही तथा शुक्त (सिरका) अधिक खाने से आमाशय में कफज कृमि उत्पन्न होते हैं । परस्पर विरुद्ध भोजन करने से, अजीर्ण में भोजन करने तथा चना इत्यादि का हरा शाक अधिक खाने से रुधिर में रक्तज कृमि उत्पन्न होते हैं ।

आभ्यन्तर कृमिके लक्षण—आभ्यन्तरकृमिविकार में ज्वर, विवर्णता, आमाशय वा पक्वाशय में पीड़ा, हृद्रोग, उत्क्लेश, वमन, अंगों में वेदना, शिरोभ्रमण, भोजन में अरुचि, दस्त आना इत्यादि लक्षण होते हैं ।

(२) कफोत्पन्न कृमि का विप्रकृष्ट निदान—कफजकृमि मांस, उड़द, गुड़, दूध, दही तथा सिरका अधिक खाने से उत्पन्न होते हैं ।

लक्षण—कफोद्भव क्रिमिविकार से उत्क्लेश (उबकाई) होता है ; भोजन का पाक नहीं होता तथा भोजन में अरुचि होती है । कभी-कभी मूर्च्छा आती है । ज्वर होता है । उदराध्मान होता है । वमन होता है । छीकें आती हैं, पीनस होता है । शरीर कृश हो जाता है तथा अन्य प्रकार के कफोद्भव लक्षण होते हैं ।

कफज कृमियों की परीक्षा—कफज कृमियों की वृद्धि होने पर आमाशय में इधर-उधर ऊपर-नीचे विचरण करने से आमाशय में वेदना होती है । उनमें कोई चर्मलता अर्थात् ताँत तुल्य, कोई गण्डूपद (केचुआ) तुल्य, कोई धान्याङ्कुर तुल्य, कोई लम्बे, कोई छोटे, कोई पतले तथा श्वेरक्ताभ होते हैं ।

(३) नाम भेद से संख्या—(१) अन्नाद (आँतों में रहने वाले), (२) उदरावेष्ट (उदर में आवेष्टित रहनेवाले), (३) हृदयाद (हृदय में उत्पन्न होनेवाले), (४) महागुद (गुदा में रहनेवाले—चूने), (५) चुरू (चूने), (६) दर्भकुसुम (कुशाङ्कुरतुल्य) और (७) सुगन्ध । इनकी उत्पत्ति से उपर्युक्त लक्षण होते हैं ।

(४) रक्तज कृमि के लक्षणादि—रक्तजकृमियों के उत्पन्न होने से चर्मरोग (कुष्ठ) उत्पन्न होते हैं ।

परीक्षा—स्थान—रुधिरविकारज कृमि रक्तवाहिनी सिराओं में व्याप्त रहते हैं । बड़े होने पर अन्य स्थानों में भी फैल जाते हैं । यह अत्यन्त सूक्ष्म गोल होते हैं । इनका वर्ण ताँबड़ा होता है । यह पदहीन होते हैं । सूक्ष्मता के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते । अणुवीक्षणयन्त्र की सहायता से दृष्टिगोचर होते हैं । नामभेद से ये ६ प्रकार के होते हैं—(१) केशाद (रोम तुल्य), (२) रोमविध्वंस (रोम-

पात करनेवाले), (३) रोमद्वीप, (४) उदुम्बर, (५) (सौरस) और (६) माता ।

(५) पुरीषज कृमि के लक्षणदि—पुरीषज कृमि जब आमाशय में प्राप्त होते हैं तब निम्न उपद्रव होते हैं—नाभि के निम्न भाग में पीड़ा होती है। मलावरोध होता है। शरीर दुर्बल हो जाता है। वमन होता है। त्वचा में रुक्षता तथा कठोरता होती है। शरीर पीला पड़ जाता है। रोमांच होता है। अग्नि मंद पड़ जाती है। गुदा में खुजली होती है। विष्टातुल्य उद्गार होता है।

नाम भेद से ये ५ प्रकार के होते हैं—(१) ककेरुक, (२) मकेरुक, (३) सौसुराद, (४) सशूल और (५) लेलिह।

भावप्रकाशने चौथे भेद को 'मुलून' लिखा है—'मलूनाख्या लेलिहा जनयन्ति च' ।

चिकित्सा—कफज क्रिमिविकार में त्रिकुटा और वाय-विडंग का चूर्ण मण्डयुक्त सेवन करने से लाभ होता है। इससे अग्नि प्रज्वलित होती है और पेट के कीड़े नष्ट होते हैं। इसमें संदेव चरपरा तथा कड़ुआ आहार देवें। (२) ढाक के बीज का चूर्ण मधु मिश्रितकर सेवन करने से निश्चय लाभ होता है। (३) ६ माशा कवीला गुड़ मिश्रितकर सेवन कराने से उदरस्थ कृमियों का नाश होता है। (४) इन्द्रयव, वायविडंग, ढाक के बीज समान भाग में ग्रहणकर मिश्री के साथ १ तोला की मात्रा में सेवन करने से कृमि नष्ट होते हैं। नीवू वा धतूरपत्र स्वरस मधुमिश्रितकर पान करने से समस्त कृमियों का नाश होता है। (५) कवीला, ढाक के बीज, वायविडंग, जमालगोटा, जवाखार, अनार की जड़ की छाल—समान भाग में ग्रहण कर एकत्र चूर्ण करें। पुनः नीवू के रस में मर्दनकर १-१ मासा की गोलियाँ बनाएँ। इनको तक्र के साथ सेवन करने से आमाशय तथा आन्त्रगत समस्त क्रिमियों का निश्चय नाश होता है।

कृमिरोगारि-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, लोह भस्म, मरिच, शुद्ध सिंगिया, धातकीपुष्प, त्रिफला, सोंठ, नागरमोथा, रसवत, सोंठ, मरिच, पीपर, मोथा, सुगन्धवाला, पाठा तथा वेलगिरी—सबको समान भाग में ग्रहणकर एकत्र चूर्ण करें और भाँगेरे के रस में मर्दनकर छोटी कौड़ीप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इसके सेवन से कृमिरोग का नाश होता है। (वृ० र० रा० सु०) ।

कृमिलक—वि० [सं० त्रि०] विशिष्ट प्रकार का कृमि ।

कृमिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अनेकप्रसवा स्त्री। बहु-सन्तानप्रसवा स्त्री। (है० च०) ।

वि० [सं० त्रि०] कृमियुक्त ।

कृमिलोह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोह । लोहा । (ध० नि०) ।

कृमिवत् आकुञ्चन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कृमितुल्य नोद युक्त ।

कृमिवत्-पेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृमिसदृश पेशी ।

कृमिवारिरुह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शंख का कीड़ा ।

कृमिशङ्ख । (रा० नि० व० १३; ध० नि०) ।

कृमिविनाश-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म, लोह भस्म, शुद्ध मैन्शिल, धातकीपुष्प, हरीतकी, बहेड़ा, आमला, लोध, विडंग, हल्दी, दारु-हल्दी—सबको समान भाग में ग्रहणकर एकत्र चूर्ण करें। पुनः इसमें अदरक के रस की भावना देकर चनाप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण तथा उपयोग—प्रातःकाल त्रिफलाकाथ के अनुपान से सेवन करने से वात, पित्त तथा त्रिदोष क्रिमियों का नाश होता है। (र० सा० सं०) ।

कृमिविध्वंसन-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्रिमिरोग में प्रयुक्त योग ।

कृमिद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] बाह्य कृमि-कीटकों के दंशका विष । (सु० सू० ११ अ०, ४श्लो) ।

कृमिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलपाई । कोषाम्ब । (पा०) ।

कृमिशङ्ख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] शंख का कीड़ा ।

शंखकीट । जीवशङ्ख । गुण—इसमें शंखतुल्य गुण है ।

(रा० नि० व० १३; ध० नि०) । (अ०) (Conch) ।

कृमिशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वायविडंग । विडंग ।

(प० मु०; वै० निघ० मे० ज्व० चि०) । (२) पारिजात वृक्ष । पारिभद्र । पलीता मदार । (बं०) पालदे मान्दार ।

कृमिशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गूहबबूल । विटखदिर ।

कृमि शुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जलशुक्तिकीट ।

सीपीका कीड़ा । (बं०) झिनुक । (रा० नि० व० १३) ।

(२) मछली का एक प्रकार । मत्स्यभेद । (वै० निघ०) ।

कृमिशैल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } दीमक । बल्मीक । (श० र०) ।

कृमि शैलक—संज्ञा पुं० [, ,] }

कृमिसरारी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्निप्रकृति का कीट ।

इसके दर्शन से पित्तजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। (सु० कल्प ८ अ०) ।

कृमि सूक्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलशुक्तिका । सीपी ।

सुतुई ।

कृमिसूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुक्तिकीट । सीप का

कीड़ा । जलशुक्ति ।

कृमि हन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) वायविडंग ।

(वै० निघ०) ।

कृमिहर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (भा० म० १ भ०

तन्नि-ज्व० चि०)। (२) विडलवण। (३) मरिच।
(वै० निघ०)।

वि० [सं० त्रि०] कृमिघ्न। कृमिनाशक।

कृमिहर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक को कज्जली, इन्द्रयव, अजमोद, शुद्ध मैन्शिल, पलाश के बीज, एकत्र सबको हस्तिघोषा के रस में १ दिन खरलकर चूर्णकर सुरक्षित रखें। गुण तथा उपयोग एवं मात्रा—
१-४ रत्ती, शालपर्णी के काथ वा रस में मिश्रीयुक्त सेवन करने से कृमिरोग का नाश होता है।

कृमिहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वायविडंग, विडंग।

कृमिहान्— " ["] (रा० नि०)।

कृमिहृत्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राई। राजिका।

कृमिः—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०, पुं०] तन्तु यवादि के। (ध० नि०)

कृमी (इन्)—वि० [सं० त्रि०] कृमि विशिष्ट।

कृमीलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन मूंग। (वं०) मुगानी।
(रा० नि० व० १६)। दे० 'मकुष्ठक'।

कृम्यङ्कुश-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिरोगनाशक योग।

कृयातन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अम्रातक, अमड़ा, अम्बाड़ा।

कृश—वि [सं० त्रि०] क्षीण। दुर्बल। (अं०) थिन (Thin)।

कृशता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृशताजन्य रोग। काश्यं रोग।

कृशता निदानादि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'काश्यं रोग'।

कृशन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

कृशनम्— " ["] सोना। स्वर्ण। (के०)।

कृशर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कृशरा] (१) कृशरान्न।

खिचड़ी भेद। (२) माषकृत मण्ड विशेष। (रस्ता०)।

(३) तिलोदन—तिल-चावल-मिश्रीकृत ओदन (भात)।

तिल और चावल की खिचड़ी। (हे० च०)। (४) केसारी।

लोबियामटर। दुबिया।

कृशरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तिलोदन। तिल-चावल

द्वारा प्रस्तुत भात। (हारा०)। (२) खेचरान्न। खिचड़ी।

(वं०) खिचुड़ि। खयसा। (३) तिल-चावल और उड़द

एकत्र पकाये गये चावल (भात) को कूसरा वा तिसरा

कहते हैं। (प० प्र० ३ ख०)।

विधि—जल, चावल, दालमिश्रित लवण, अदरक और

हिङ्गवादिसे युक्त पक्वान्न को कृशरा अथवा भाषा में खिचड़ी

कहते हैं। (भा०)। गुण—कृशरा-शुक्ल, बलवर्धक,

गुल्पाकी, पित्तकफप्रद, दुर्ज्वर, वृद्धिकर, विष्टम्भी,

मल-मूत्र (तृष्णा) कारक है। (वै० निघ०)। जिस प्रकार

यवागु निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार से कृशरा

अर्थात् खिचड़ी भी प्रस्तुत की जाती है। उक्तविधि में घृत

का उल्लेख नहीं है। घृत, जीरा, हिंगु, मिर्च, रसोन से

कृशरोमा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुकशिम्वी, केवाँच, सेम। (वै० निघ०)।

कृश लक्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] 'काश्यं रोग' में देखो।

कृशला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिर के बाल। शिरः केश।

कृशा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रोहिणी।

कृशाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पित्तपापड़ा, पर्पट, क्षेत्र-

कृशाख— " ["] पापड़ा। (रा० नि० व० ५)।

कृशाकु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्णीकरण। गरम करना।
(वै० निघ०)।

कृशाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मकड़ी। लूता। (अं०)

स्पाइडर (Spider)। (२) कृशता, क्षीण होना।

कृशाङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) प्रियङ्गु। गोंदनी।

(२) दुर्बल स्त्री। दुबली-पतली स्त्री।

कृशाणु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चित्रक क्षुप। चीता।

(रा० नि० व० ६)। (२) भल्लातक। भिलावाँ।

कृशानु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चित्रक। चीता।

(२) भिलावाँ।

कृशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊर्णनाभ, मकड़ी, लूता।

(अं०) स्पाइडर (Spider)। (वै० निघ०)।

कृशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूसाकानी। चूहाकानी,

आखुकर्णी। (वं०) इन्दुर कानी। (रा० नि० व० ३)।

कृशीबल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकजंघा। मसी। (वं०)

केउया ठेऊँ। (र० मा०)।

कृशोदरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अनंतमूल। श्वेत

सारिवा। (भा० पू० १ भ०)। दे० 'अनन्ता'।

कृष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगल, वन, अरण्य। (हे० च०)।

कृषक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काल कर्षक, किसान।

(त्रिका०)। (२) बैल, वृष। (श० च०)।

कृषरी हर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कृषि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खेती, अन्न-उत्पादन-कर्म।

कृषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कृशिका'।

कृषि द्विष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बया। चन्द-चहरा।

गृहनिर्माणपट्ट पक्षी। बाबुई पक्षी। (रा०)।

कृषि लौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मुण्डलीह। (रा० नि०

व० १३)।

कृषीबल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काकजंघा, मसी।

कृष्ट पच्य—वि० [सं० त्रि०] क्षुद्रधान्य, ब्रीही।

कृष्ट पाच्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्षुद्रधान्य। ब्रीही।

कृष्टि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पण्डित, विद्वान्। (ध० नि०)।

कृष्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सौवीराञ्जन। (रा० नि०

व० १३)। (२) मरिच। (३) यवताल, ज्वार। (वं०)

काल ज्वार। (४) रसाञ्जन, सोताञ्जन। (र० मा०)।

(५) लोहा, लोह। (जटा)। (६) नीलाञ्जन। (रा० नि० व० २३)। (७) काली अगर। कृष्णगुरु। (रा० नि० व० ६)। (भा०)। (८) अगर, अगुरु। (रत्ना०)। (९) मण्डूर, लोह-किट्ट। (१०) विडलवण। (१०) सीसा, नाग, शीसक। (११) सौचरनीन, सौवर्चल लवण। (१२) तूतिया, तुत्थ। (वै० निघ०)। (१३) नेत्रतारा।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बड़ी सरसों, राजसर्पप। (व०) काल सरिषा। (रा० नि० व० १६)। (२) काला हिरन, कृष्णसार मृग। (रत्ना०)। (३) कौवा, वायस, काक। (मे०)। (४) मन्दविष वृश्चिक, अल्प विषवाला बिच्छू। (५) मण्डूकाख्य कीट भेद। (सु० कल्य० ८ अ०)। (६) कोइल, कोकिला। (विश्व)। (७) करौदा। करमद् वृक्ष। (श० र०)। (८) कृष्ण हरिमंथ। काला चना वा शिम्बी। (हे० च०)। 'कृष्ण प्रवर वासन्त हरिमन्थजशिम्बिका'।

कृष्ण अगुरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली अगर।
कृष्ण आत्रेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम के आयुर्वेद के एक सुप्रसिद्ध आचार्य जो भरद्वाज मुनि के शिष्य थे। यह उनके सब शिष्यों में प्रधान एवं योग्य थे। इन्होंने कायचिकित्सा पर एक सर्वोत्तम निबन्ध लिखा था। यह निबन्ध अनिवेशतंत्र के ढंग पर लिखा गया था और उच्च कोटि का था।

कृष्ण एला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ी इलायची।
कृष्णक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काली मूँग। कृष्ण मुद्गा। (२) कृष्णधान्य। कृष्णतण्डुल। काला धान। (वै० निघ०)।

कृष्ण कञ्चुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला चना। कृष्ण चणक। (वै० निघ०)।

कृष्ण कञ्चुका—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्ण हरिमन्थ। काला चना। (ध० नि०)।

कृष्ण-कदली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला केला। महाराष्ट्र देश में प्रसिद्ध कदली विशेष। गुण—कृष्ण कदली रुचिकारक, तुवर (कषाय), मधुर, लघुपाकी, वायु, धातुवर्धक, मेद, तृषा तथा पित्तनाशक है। दे० 'कदली'। (वै० निघ०)।

कृष्ण कन्द—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्त कमल। रक्तोत्पल। लालपुष्प का कमल। (त्रिका०)। दे० 'कमल'।

कृष्णकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल भेद।

कृष्णकरवीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्णपुष्पकरवीर-वृक्ष। काले फूल का कनेर। (व०) कालकरवीर फूलर गाछ। गुण—इसमें समस्त गुण कनेरतुल्य हैं। (रा० नि० व० १०)।

कृष्ण करवीरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कृष्ण करवीर' या 'कनेर'। (ध० नि०)।

कृष्ण कर्कटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला केकड़ा। (व०) काल काँकड़ा। दे० 'केकड़ा'। (सु० सू० ४६ अ०)।

कृष्ण-कर्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] व्रणरोपण में प्रयुक्त एक कर्म। व्रण का कृष्णीकरण। (सु० चि० १ अ०)।

कृष्ण (क) केलि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुलअन्वास। गुलावाँस।

कृष्णका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] राई। राजिका। छोटी सरसों। (प० मु०)।

कृष्ण-काक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] डोम कौवा। द्रोणकाक। (हला०)।

कृष्णकाण्डक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त कमल। उत्पल।

कृष्ण कातरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काली घुँघची। कर्णस्फोटा। कानफटा। (२) रक्त गुञ्जा। (वै० निघ०)।

कृष्ण कापोति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } एक ओषधि।
कृष्ण कापोती—संज्ञा स्त्री० ["] }

महौषधि विशेष। यह रोमश, क्षीरयुक्त, मृदु, रस में इक्षु (ईख) तुल्य, रूपादि भी ईखतुल्य होता है। (सु० चि० ३० अ०)।

कृष्ण काम्बोजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] 'पानजोली'। (Phyllanthus Reticulata)।

कृष्णकाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भैंस। महिष। (वै० निघ०)।

कृष्ण कार्पासी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली कपास।

कृष्ण काष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } काला अगुरु। कृष्ण
कृष्ण काष्ठक—संज्ञा पुं० ["] }

अगुरु। कालेयक। (रा० नि० व० १२; ध० नि०)।

कृष्ण कुटज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालाकुड़ा। कृष्ण कुटज।

कृष्ण कुठेरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली तुलसी। श्याम-दल तुलसी। कृष्ण तुलसी। (के०)।

कृष्ण-कुलत्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } काली कुलथी।
कृष्ण कुलत्थक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }

गुण—काली कुलथी ग्राही, रक्तपित्तकारक, रस में कषाय (तुवर), पाक में कटु तथा कफनाशक है और वात, शुक्र, अश्मरी, गुल्म, पीनस, कास तथा श्वास में उपयोगी है तथा आनाह, गुदकील, अर्श, मेद तथा धातुनाशक है। (वै० निघ०)।

कृष्ण कुलत्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चाकसू। वन-कुलत्थ। (वै० निघ०)।

कृष्ण कुसुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली कनेर, कृष्ण कर-वीर। (रा० नि० व० १०)। काले फूल का कनेर।

कृष्ण-केलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केलिकदम्ब, धारा-कदम्ब। दे० 'कदम्ब'। (के०)।

कृष्ण केली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धाराकदम्ब।

कृष्ण क्रान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नीलपुष्प की अपराजिता। कोयल।

कृष्णखदिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
 कृष्णखदिर-सार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } काला कत्था ।
 कृष्णगङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णा नदी । (ध० नि०) ।
 कृष्णगन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
 कृष्णगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) सैजत ।
 सहिजन । शोभाञ्जन । (बं०) सजिना गाछ । (र० मा०;
 मद०; च० सू० १, ३ अ०; वा० चि० ५ अ०) ।
 कृष्ण गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
 कृष्णगर्भक—संज्ञा पुं० ["] } कटफल, कायफल ।
 (रा० नि० व० ६; ध० नि०) ।
 कृष्णगल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कक्कुभ पक्षी । (बं०)
 कूकी पाखी । (वै० निघ०) ।
 कृष्णगोकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला मुरहरा ।
 काले फूल की मूर्वा लता । दे० 'मूर्वा' ।
 कृष्णगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सविष सौम्यकीट भेद ।
 इसके दंशन से श्लेष्मजन्य रोग उत्पन्न होते हैं । काला
 गोह । (सु० कल्प० अ० ८) ।
 कृष्ण चञ्चुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चना । चणक क्षुप ।
 (बं०) छोला गाछ । (रा० नि० व० १६) । दे०
 'चना' ।
 कृष्णचटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) श्यामाक पक्षी । (बं०)
 शामा पाखी । (२) काला गौरैया । दे० 'गौरैया' ।
 कृष्णचणक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला चना । कृष्ण हरि-
 मन्थ । (बं०) काल छोला । (म०) करिया चणा ।
 (कना०) करिय कडले । गुण—मधुर, कास, पित्तघ्न,
 पित्तातिसारनाशक, बलवर्धक तथा रसायन है । (रा०
 नि० व० १६) ।
 कृष्णचन्दन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हरिचन्दन ।
 (२) पीत चन्दन । काला चन्दन । (बं०) कालचन्दन ।
 (प० मु०) ।
 कृष्ण चूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुलतुरी । (ले०)
 सीसाल्पीनिया पल्चिरीमा (Caesalpinia Pulchirri-
 ma) । यह वर्षाकाल में उत्पन्न होनेवाला प्रसिद्ध पुष्पक्षुप
 है । इसमें रक्त-पीतवर्ण के पुष्प लगते हैं । इसमें अल्पसुगन्ध
 होता है । फल काञ्चनशिम्बीतुल्य होते हैं । (२) कल्प-
 द्रुम । (३) रक्त गुञ्जा । (रा० नि० व० ३) ।
 कृष्ण चूड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुंजा लता । (रा०
 नि० व० ३) ।
 कृष्ण चूरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चना । चणक क्षुप । (बं०)
 छोला गाछ । (प० मु०) ।
 कृष्ण चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मण्डूर । लौहमल ।
 (रा० नि० व० १३) ।
 कृष्ण जग्ध—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काला अगर । कृष्ण
 अगुरु । (वै० निघ०) ।

कृष्ण जटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जटामांसी नाम का
 सुगन्ध द्रव्य । (रत्ना; वा० अञ्जनादि व०) ।
 कृष्ण जयन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली जयन्ती ।
 कृष्णवर्ण जयन्ती । (बं०) काली जयन्ती ।
 गुण—रसायनी है । (रा० नि० व० ४) ।
 कृष्ण जिह्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालेजिह्वावाला घोड़ा ।
 सर्पजिह्वाश्च । वह घोड़ा जिसकी जीभ पर काले साँप का-
 सा चिह्न होता है । यह अशुभ है । (ज० द० ३ अ०) ।
 कृष्ण जीर (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) 'मगरैल' ।
 उपकुंची । उपकुंचिका । (Nigella Sativa) । (२)
 कारवी । कुह्या । 'कारवी कृष्णजीरकम् इति
 चक्रः' ।
 कृष्ण जीरा—संज्ञा पुं० [बं०] दे० 'मगरैल' । उपकुंचिका ।
 कृष्णडुण्डुभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काल साँप । सर्पभेद ।
 (ध० नि०) ।
 कृष्णतण्डुला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वायविडंग ।
 विडंग । (वै० निघ०) । (२) काली धुँधची । कर्णस्फोटा ।
 (रा० नि० व० ३) (३) पीपल । पिप्पली ।
 कृष्णतमाल—संज्ञा पुं० [व्रज] तमाल भेद ।
 कृष्णताम्बूलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालेडण्डी
 का पान । कृष्णतालनागवल्ली । (बं०) कालपान ।
 गुण—तिक्त उष्ण, कटु, कषाय, मुखजाड्यकारक, दाहो-
 त्पादक तथा मलस्तम्भकारक है—(वै० निघ०) ।
 कृष्णतान्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोशीर्षचन्दन । (श०
 मा०) ।
 कृष्ण तार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला हिरन । हिरण
 भेद । (रा० नि० व० १६) ।
 कृष्ण तित्तिरि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला तीतर ।
 कृष्ण तिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला तिल । दे० 'तिल' ।
 कृष्ण तीक्ष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काला जीरा ।
 (२) मगरैल । कृष्णजीरक । (बं०) काल जीरे । (वै०
 निघ०) ।
 कृष्ण तुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्निप्रकृति का कीट-
 विशेष । इसके दंशन से पित्तजन्य रोग उत्पन्न होते हैं ।
 (सु० कल्प० ८ अ०) ।
 कृष्णतुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] काली तुलसी । राम
 तुलसी । दे० 'तुलसी' । (ध० नि०) ।
 कृष्ण त्रिवृता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } काली निशोथ ।
 कृष्णत्रिवृत्—संज्ञा स्त्री० ["] } श्याम पतिलर ।
 (बं०) काल तेउड़ी । (भा० पू० १ भ०) । दे० 'निशोथ' ।
 कृष्णत्वक्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मौलसरी । वकुलवृक्ष ।
 (वै० निघ०) ।
 कृष्णदन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्भेर । गम्भार ।
 काश्मरी वृक्ष । (रा० नि० व० ६) ।

कृष्ण दंष्ट्रक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालिक । जलकुक्षुट ।
(ध० नि०) ।
कृष्णदुर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली दूब । दुर्वाभेद ।
कृष्ण देह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भ्रमर । काला भौरा ।
कृष्ण धतूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } काला धतूर ।
कृष्ण धतूरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (ध० नि०)
कृष्ण धतूरा—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण०, हि० धतूरा] काला
धतूर ।
कृष्णधान्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काली सांठी ।
कृष्णवर्ण पष्टिक धान्य । (व०) कालिन्दी धान । (२)
सांवा । श्यामाक । (वै० निघ०) । (च० सू० २७ अ०) ।
कृष्ण धतूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } काला धतूरा । कनक
कृष्णधतूरक—संज्ञा [सं० पुं०] } धतूरा । दे० “धतूरा” ।
कृष्णनिःक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निःक्षेप भेद ।
कृष्ण-निम्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुरभिनिम्ब । कढ़ी नीम ।
मीठा नीम ।
कृष्णपटल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नेत्र की काली पुतली ।
नेत्रगत कृष्ण भाग ।
कृष्णपट्टी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गानेवाली
चिड़िया ।
कृष्ण-पपीता—संज्ञा पुं० [] काला पपीता फल ।
कृष्ण पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली तुलसी । कृष्ण
तुलसी । काले पत्र की तुलसी । कृष्णा । (व०) कालतुलसी ।
(२० मा०) ।
कृष्णपल्लवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला करेमू ।
(व०) काल कलमीशाक । कृष्ण कलम्बी । (५० मु०) ।
कृष्ण पक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मास का दूसरा पक्ष । (ध०
नि०) ।
कृष्ण-पाक, कृष्ण फल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करौंदा ।
करमंदक । (व०) करञ्चागाछ । (श० २०) ।
कृष्णपाकफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काला करौंदा ।
कृष्णपिण्डार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) पिंडार । (२)
कृष्णपिण्डारू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } पियारा । अमरूद ।
(रत्ना०) ।
कृष्णपिण्डीतक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) पिंडार वृक्ष ।
कृष्ण पिण्डीर—संज्ञा पुं० [, ,] } पिंडार ।
कृष्ण पिण्डीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (रत्ना०) । (२)
कृष्ण मदनवृक्ष । मैनफल । (व०) काल मयना ।
कृष्ण-पिपीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } काली च्यूटी ।
कृष्ण पिपीली—संज्ञा स्त्री० [, ,] } कृष्ण वर्ण की
च्यूटी । (व०) कालपिपड़े । डेयो । (रा० नि० व०
१९) ।
कृष्ण-पुच्छ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लोमड़ी । लावा ।
लोवा । (वै० निघ०) । (२) रोहू मछली ।

कृष्ण-पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला धतूर । कृष्ण धतूर ।
(रा० नि० व० १०) ।
कृष्णपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोंदनी । प्रियङ्गु वृक्ष ।
(श० च०) ।
कृष्णपूतिफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बकुची । सोमराजी ।
कृष्ण प्रसव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धतूर । (ध० निघ०) ।
कृष्णप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम्ब वृक्ष । (वै० निघ०) ।
कृष्ण फल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } करौंदा । (अ० टी०
कृष्ण फलपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } भ०, द्वि कोष) ।
कृष्ण फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सफेद सेम । श्वेत
शुक्रशिम्बी । (व०) श्वेत आलाकुशी । (भा० पू० १ भ०
शाक व०) । (२) बकुची । सोमराजी । (अम०; प० मु०) ।
(३) क्षुद्र करञ्ज । छोटा करौंदा । (वै० निघ०) ।
(४) एक प्रकार का छोटा जामुन । (५) मिरिच की लता ।
कृष्ण-बर्बूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली बबुई तुलसी ।
(व०) काल बाबुई । (रा० नि० व० १०) । वैजयन्ती
नामक तुलसी । (वै० निघ०) ।
कृष्ण-बर्बूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला कीकर ।
कृष्ण बालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कङ्कुष्ठ । (वै०
निघ०) ।
कृष्णबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काला दाना । (२)
तरबूज ।
कृष्ण-ब्रीहि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्षाजात क्षुद्रधान्य ।
श्यामाक । सांवा ।
कृष्ण-बोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालाबोल । एलुआ ।
कुमारीरससार ।
कृष्ण भस्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कज्जली । पारद गन्धक
की कज्जली । (Black sulphide of mercury) ।
निर्माण विधि—धान्याभ्रक और पारद समानभाग में
ग्रहणकर पारदमारकवर्ग के रस द्वारा १ दिन पर्यन्त
मर्दनकर एक वस्त्र पर लेप करें । जब शुष्क हो जाय
उसकी बत्ती बनाकर एरण्ड तेल में मिला लें और किसी
स्निग्धघृतपात्र में रखकर जलावें । जो बूँद टपके उसे एकत्र
कर लें । इसको कृष्णभस्म कहते हैं । पुनः इसको
'नियामकगण' द्वारा मर्दनकर कन्दुकयन्त्र में स्थापनकर
पाक करने से निःसन्देह पारद का मारण होता है ।
(२० सा० सं०) ।
कृष्ण भूकुष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला भूमि-
कुष्माण्ड । कृष्णवृन्तपत्रभूमिकुष्माण्ड । (श० च०) ।
कृष्ण-भूभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कारवेल्ल । करैला ।
(वै० निघ०) ।
कृष्ण-भूम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कालीमिट्टीविशिष्ट
कृष्ण भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } भूमि । कृष्ण मृण्मय
देश । इस प्रकार की भूमि में अधिक उर्वरा शक्ति होती

हैं। इसमें गेहूँ, कपास, ज्वारादि अधिक होता है। (हे० च०; रा० नि० व० २; ध० निघ०)।

कृष्ण भूमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोमूत्रिका तृण। (रा० नि० व० ८)।

कृष्ण-भूषण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मिचं। मरिच। (वै० निघ०)।

कृष्ण भेदा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी। (रा० नि० व० ६)।

कृष्ण भेदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] व० ६)।

कृष्णमणि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] राजावर्त मणि। (वै० निघ०)।

कृष्ण-मण्डल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नेत्र का काला भाग। (अ०) आयरिस (Iris)। रचना—कृष्णमण्डल संकोचविस्तारशील नेत्र का सच्छिद्र पटल (परदा) है जो प्रकाश की तीव्रतातीव्रता के अनुसार सदैव सिकुड़ा तथा फैला करता है। इस पटल के मध्य में की तह अनैच्छिक मांसतन्तुओं द्वारा निर्मित होती है। इसके संकोच-विकास से पुतली छोटी तथा बड़ी होती है। इन मांसतन्तुओं के पाश्चात्य पृष्ठपर दोहरी सेलों की एक तह होती है। इनके अग्र पृष्ठपर संयोजकधातुओं की सेलों की तह होती है जिसमें रक्तवाहिनियाँ और नाडियों की अग्र तह होती हैं और इस तह के अग्रपृष्ठपर भी सेलों की एक तह होती है। इस प्रकार इस पटलमें ४ परत होते हैं और मांसतन्तुओं की तह को छोड़कर शेष तीनों की सेलों में स्वाभाविक अवस्था में रंग-कण (Pigment) पर्याप्त होते हैं जिनसे नेत्र का वर्ण कृष्ण प्रतीत होता है। यही नेत्रों का स्वाभाविक वर्ण है। जब रंग मध्यम पड़ जाता है तब नेत्र पिङ्गल वा घूसर दृष्टिगोचर होते हैं। जब रंग अल्प होता है, तब शुक्ल वर्ण दृष्टिगोचर होता है और जब अत्यल्प होता है तब (Albinism) भीतरी रक्तवाहिनियों के रक्त के कारण गुलाबी वा लाल दिखाई देता है।

कृष्णमण्डलगत रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेत्र के काले परदे में होनेवाले रोग। दे० “नेत्र रोग”।

कृष्णमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्टकयुक्त मत्स्यभेद। (सु० सू० ४६ अ०)।

कृष्णमदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला मैतफल। कृष्णवर्ण मदन वृक्ष। (बं०) काल मैना गाछ। (वै० निघ०)। दे० ‘मदन’ वा ‘मैतफल’।

कृष्ण मधुर ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मधुर ज्वरभेद। (वै० निघ०)। दे० “काला आजार”।

कृष्ण मरिच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालीमिचं।

कृष्णमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटी काली

कृष्ण मल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तुलसी। कृष्णार्जक क्षुप। कृष्णपत्र क्षुद्रतुलसी। (रा० नि० व० १०)। दे०

‘तुलसी’। (२) पर्णास। बाबुईतुलसीभेद। (बं०) काल बाबुई। (भा० पू० १ भ०)। दे० ‘वर्वरी’। (३) काली तुलसी। वनवर्वरी। (बं०) काल तुलसी। (वै० निघ०)।

कृष्ण मक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली मक्खी। (बं०) काल माछि। (वै० निघ०)।

कृष्ण माणिक्य रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रस विशेष।

कृष्ण मार्जारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का द्रव्य जिसके द्वारा पारद-बन्धन होता है। (र० का० धेनु)।

कृष्णमालुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली तुलसी। कृष्णार्जक। (रा० नि० व० १०)।

कृष्णमाष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला उद्द। कृष्ण कलाय।

(बं०) काल कलाय। गुण—रुचिकारक, बलवर्धक तथा त्रिदोषनाशक है। (वै० निघ०)।

कृष्णमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लंगूर। (बं०) मुखपोड़ा। (रा० नि० व० १९)।

कृष्णमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णसारिवा। मेढ़ा-सिंगी। (वै० निघ०)।

कृष्णमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अलगद जलौका। (सु० सू० १३ अ०)। (२) लाखेरी वगै।

कृष्णमुद्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली मूँग। (बं०) कालमूँग; (म०) करिया मूँग; (कना०) करिय हेसरू; (सं०) वासन्त, माधव, सु (सो) राष्ट्रज; (ले०) फेसिओलस मैक्स (Phaseolus max)। गुण—त्रिदोषनाशक, मधुर, वातनाशक, लघुपाकी, अग्निदीपक, पथ्य, बल-वीर्यपुष्टिकारक है। (रा० नि० व० १६)।

कृष्ण मुद्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली मूँग। (ध० नि०)।

कृष्ण मुष्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्ण घण्टापाटला।

कृष्ण मुष्कक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घंट।

(बं०) काल घण्टापाटल। काला घंटापाटला। दे० “पाटला”। (वै० निघ०; ध० नि०)।

कृष्णमुसली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालीमुसली। तालपत्री। तालमूली।

कृष्णमूला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णमूलसारिवा विशेष।

कृष्णमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (रा० नि० व० १२)।

कृष्ण-मूषिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला चूहा। इसके दंशन से रक्त का वमन होता है, विशेषकर दुर्दिनों में और कूठ, शिरिषफल तथा ढाक की भस्म सेवन करने से लाभ होता है। (सु० कल्प ६ अ०)।

कृष्ण मूग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला हिरन। कृष्ण हिरण। (वै० निघ०)।

कृष्ण-मूत—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सुगन्धयुक्त काली

कृष्ण मृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मिट्टी। (बं०) सुगन्ध

कृष्ण मृत्सना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काल माटी। (हि०)

करिया माटी । (म०) काली माटी । गुण—यह रक्तदोष, प्रदर, क्षत, दाह, सूत्रकृच्छ्र और पित्तविकारनाशक है । (वै० निघ०) । उक्त गुणयुक्त तथा श्लेष्मनाशक है । (रा० नि० व० २; च० चि० १ अ०; वा० चि० ९ अ०) । (२) कृष्ण भूमि । (वै० निघ०) ।

कृष्ण मूर्तिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्ण भूमि । (हे० च०) ।
कृष्णमेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालमेह । लक्षण—इसमें कालीस्याहीतुल्य सूत्रोत्सर्ग होता है । (भा०; मा० नि०) ।
कृष्णरङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शीस धातु । सीसा । नाग । (वै० निघ०) ।

कृष्णरम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कदली भेद । काला केला । (वं०) काल कला । (वै० निघ०) ।

कृष्णरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारद का कृष्णीकरण । विधि—एक पल शुद्ध गन्धक ग्रहणकर लोह या ताम्रपात्र में मृदु अग्नि से पिघलाकर उसमें ३ पल शुद्ध पारद मिश्रितकर लोह को दर्वी से पुनः पुनः घर्षण करे और केला के पत्र के नीचे गोबर रखकर उक्त द्रवीभूत रस को डाल देवे । पर्पटीरस भी इसको कहते हैं ।

मात्रा—१—३ रत्ती । गुण—इसको उचित अनुपान के साथ सेवन करने से सर्वरोगों का नाश होता है । (अत्रि०) ।

कृष्ण राज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काला सहिजन । कृष्ण शिग्रु । (वं०) कालसजना गाछ । (२) भुजंगा पक्षी ।

कृष्ण राजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण सर्पप । काली सरसों । (ब०) काल सरिषा । (वै० निघ०) ।

कृष्णरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जतुका नामक द्रव्य । (रा० नि० व० ३) ।

कृष्णल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) घुँघची । गुंजा । रत्ती ।
कृष्णलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }

(२) काली घुँघची । कृष्ण गुंजा । (वै० निघ०)

कृष्णलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक लता है जो कज्जलसदृश काली होती है ।

गुण—इसके रस से पारद की सिद्धि होती है और यह समस्त विषों की नाशक है । (रा० का० धे०) ।

कृष्ण लवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौंचरलोत । काँच लवण । (रा० नि० व० ६) । काला नमक ।

कृष्णला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काली घुँघची । (रा० नि० व० ३) वै० निघ० । (२) श्वेतगुंजालता । (भा० पू० १ भ०) । (ध० नि०) । (३) भुजाढ़की । (वं०) वेढेर कलाय । (प० मु०) ।

कृष्णलोहक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (रा० नि० व०
}

कृष्णलो (लौह)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोह ।

१३) । (२) तीक्ष्ण लोह । फौलाद । (सु० सू० ३५ अ०); (ध० नि०) ।

कृष्णवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लंगूर । श्याममुख वानर । (हला०) ।

कृष्णवनालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वनज कृष्णालुक । जंगली काला आलू । (वं०) वृत्तो काल-आलू ।

गुण—कालावनालू रुचिकारक और महासिद्धिकारक है । इसके उपयोग से मुख की जाड़यता नष्ट होती है, तत्त्वदर्शी मुनि इस प्रकार कहते हैं । (वै० निघ०) । वनालू इटावाप्रान्त में प्रसिद्ध है । इसके पत्र हरितवर्ण, चिकने तथा भालाकार होते हैं ।

कृष्णवर्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्णवर्णद्रव्यों का समूह—केला, करेला, त्रिफला, नील, चित्रक, कसीस, (बालाघ्न ठिकोरा) । (वृ० र० रा० सु०) ।

कृष्ण वर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वाराह (शूकर) । (२) काला मयनफल । (वं०) काल मयना । (३) मोथा । मुस्ता । (४) रीठाकरंज । (५) कालशाक । (६) मत्स्य भेद—करौंछी । करियासी ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जल । पानी । (२) लवङ्ग । (३) काला अगर । कृष्णायु । (वै० निघ०) ।

कृष्ण वर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असाध्य लूताविष विशेष । (सु० कल्प० ८ अ०) ।

कृष्णवर्त्मा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । आग । (२) चित्रक । चीता । (अम०) । (३) भिलावाँ । भल्लातक । (वै० निघ०) ।

कृष्णवर्वरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्वर वृक्ष । काली तुलसी । काली ववुई तुलसी । (वं०) काल वावुई तुलसी । (रा०) ।

कृष्ण वल्मीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] काली दीमक । कृष्णवर्ण का वल्मीक कीट । (सु० कल्प ८ अ०) ।

कृष्ण वल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जतुका लता । (रा० नि० व० ३)

कृष्णवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काली तुलसी । (वं०) कालवावुई । (प० मु०) । (२) कृष्ण सारिवा । श्यामलता । (रा० नि० व० १२) ।

कृष्णवानर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला लंगूर । गोलाङ्गुल । (वं०) मूखपोडा वानर । (रा० नि० व० १९) ।

कृष्ण वार्त्तिकु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला बैंगन । काला भाँटा । (वं०) काल बेगुन । (रस० र० उवराति० ग्रहणी-कपाट रस में) ।

कृष्ण विष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महाविष । कालकूट । काला वच्छनाग । (रा० का० धे० उ० पा०) ।

कृष्णबीज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल सहिजन । रक्त शिग्रु । (वं०) लाल सजना गाछ । (जय०) ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तरबूज । कलिङ्ग । (रा० नि० व० ७) । (२) कालादाना । (३) सरीफा । सीताफल ।

कृष्ण वृन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पादल । पाटला ।
कृष्ण वृन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (२) कुम्भेर गम्भारी ।
(रा० नि० व० २३) । (३) वन उद्द । माषपर्णी ।
(प० मु०) । (४) कुवेराक्षी । (ब०) पेठारिगाछ (र०
मा०) ।

कृष्णवेणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णवेणी । कृष्णा ।
(ध० नि०) । दे० 'कृष्णा' ।

कृष्ण वेधना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली तरोई ।
कृष्ण वेत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केले नाम की लता । (भै०
र० महाभल्लातक तेल में) 'कृष्णवेत्रोच्चटा फलम्' ।
रस रत्न० वज्रक घृते ।

कृष्ण-बोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुसब्बर । एलुआ ।

गुण—कटु, शीतल, भेदक, रस (पारद) शोधक, शूल,
आध्मान, कफ, वात, क्रिमि, गुल्मनाशक है । (वै० निघ०) ।

कृष्ण वंश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला बाँस । (ध०
नि०) ।

कृष्ण-व्रीहि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] काला धान । (ब०)
आउश केले । कृष्णवर्ण तुषतण्डुल । व्रीहिधान्य विशेष ।

गुण—यह समस्त क्षुद्रधान्यों में श्रेष्ठ है (मु०) । (भा०
पू० १ भ०) ।

कृष्ण शठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निकृष्ट लक्षण का घोड़ा ।
(ज० द०) ।

कृष्ण शण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काले फूल का सन ।
कृष्णपुष्प । शणवृक्ष । (ब०) काल सन । (भैष० क्षुद्रो०
चि० महानील तेल में । च० चि० २७ अ०) ।

कृष्ण शारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण सारिवा ।
श्यामलता । दे० 'कृष्णसारिवा' ।

कृष्ण-शालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हेमन्तऋतु में उत्पन्न
होनेवाला काले तुष का धान्य । शालिधान्य । पर्याय—
(सं०) श्याम शालि, काल शालि, सितेतर । (हि०)
करहनी । गुण—मधुर, बलकारक, वीर्य तथा पुष्टि-
वर्धक, वर्णदायक, कान्तिप्रद, तथा त्रिदोषनाशक है ।
(रा० नि० व० १६; ध० नि०) ।

कृष्ण शालुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पद्मकन्द । (ध० नि०) ।

कृष्ण शिखिक—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] काला अगर ।
अगुरु काष्ठ ।

कृष्ण-शिशु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला सहिजन । कृष्ण-
पुष्प शोभाञ्जन वृक्ष । नील शिशु । (ध० नि०) ।

कृष्ण-शिशपा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] काला सीसो ।
(ब०) काल शिशु गाछ । (म०) काला सिसपा ।
(कना०) करियइ वीह । गुण—तिक्त, कटु, उष्ण,
कफवातनाशक, दीपन, शोथघ्न तथा अतिसारनाशक
है । (रा० नि० व० ९) । तिक्त, कटु, उष्ण, अग्नि-
दीपक, तुवर (कषाय), कफवातनाशक, शोफ, अतिसार

तथा कुष्ठ नाशक है । श्वित्र, भेद, छर्दि, कृमिविकार,
बस्तिरोग, प्रमेह, रक्तदोष, व्रण, पीनस तथा गर्भ-
नाशक है और अजीर्ण में उपयोगी है । (वै० निघ०) ।
(मु० सू० ३८ अ०) ।

कृष्णशिम्बा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुलथी भेद । काली
कुलथी । कृष्ण कुलथिका । (ब०) काल कूलथ । (वै०
निघ०) ।

कृष्ण शिम्बिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } काली सेम ।
कृष्णशिम्बा—संज्ञा स्त्री० ["] }

(ब०) काल शीम । (र० मा०) ।

कृष्ण शृङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भैंस । महिष । (हे०
च०) ।

कृष्ण शैरीयक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नील झिटी । काली
कटसरैया, कृष्णपुष्पझिण्टीक्षुप । (ब०) काल झाँटी ।
(भैष० क्षुद्रो० चि० महानील तेलमें) ।

कृष्णश्रीफलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करैली ।
क्षुद्रकारवेल्ल । क्षुद्र करैला । (नि० आ०) । दे० 'श्री
फलिका' ।

कृष्णश्वेता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पादल, पाटल वृक्ष ।
(२) कुम्भेर । गम्भारी वृक्ष । (वै० निघ०) ।

कृष्ण सख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कहू । अर्जुन वृक्ष ।

कृष्ण सखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जीरा । जीरक ।

कृष्णसर्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वकर्ण शाल वृक्ष ।
(वै० निघ०) ।

कृष्ण सर्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दर्वीकर सर्पविशेष ।
गोहूँवन साँप । (ब०) कज्जेसाप । (मु० कल्प० ४ अ०) ।
दे० 'सर्प' ।

कृष्णसर्प तैल—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गलित कुष्ठ में प्रयुक्त
तैल । निर्माण विधि—कालामृतक सर्प ग्रहणकर शिर,
पुच्छ और आँत पृथक्कर शेष अंगों को किसी मृत्रिका
पात्र में बंदकर इस प्रकार दग्ध करें कि पात्रगत धूम्र
बाहर न निकले । पुनः भस्म ग्रहणकर इसमें बकुची
का कल्क और सर्पतैलयुक्त सिद्ध करें । गुण—इसका
अभ्यङ्ग करने से गलित कुष्ठ का नाश होता है ।
(भैष० र० कुष्ठ चि०) ।

कृष्णसर्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण कापोतिका ।
दे० 'कृष्ण कापोती' ।

कृष्ण सर्षप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } काली सरसों । राज
कृष्ण सर्षपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }

सर्षप । राजिका । (ब०) काल सरिषा । गुण—इसका
तेल अत्यन्त तीक्ष्ण होता है । अन्य गुण सरसों तुल्य हैं ।
(वै० निघ०; रा० नि० व० १६) । राजक्षवक ।
(ध० नि०) । दे० 'सरसों' और 'राजिका' ।

कृष्ण सार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काला हिरन ।

करसायल (बं०) । काल सार । पर्याय—कृष्ण सारङ्ग, कृष्ण सार । (के०; रत्ना) । (२) सेहुँड़, थूहर, स्नुही वृक्ष । (३) काला सीसो । शिशप वृक्ष । (भे०) । (४) खैर, खदिर वृक्ष । (श० र०) ।

कृष्ण सारका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला सीसो । कृष्ण शिशप वृक्ष । (हारा०) ।

कृष्णसारङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला हिरन । कृष्णसार मृग । (के०) ।

कृष्ण सारथि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्जुन वृक्ष । (रा० नि० व० ६) ।

कृष्णसारमांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काले हिरन का मांस । (सि० यो० रक्तपि० चि०) । गुण—संग्राही, रुचिकारक, बलवर्धक, ज्वरघ्न तथा रक्तपित्त में हितकर है । (राज०) । (२) नील शिपु ।

कृष्णसार—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला सीसो । कृष्ण शिशपा । (हिं०) शीशव । सीसो । (बं०) शिशु गाछ । (र० मा०) ।

कृष्ण सारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्यामालता । (हिं०) करिआ साँवा । काला सारिवा । कालीसर । मेढा-सिंगी । दे० 'सारिवा' ।

कृष्ण सिरिश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला सिरिस । दे० 'सिरिस' या 'सिरस' ।

कृष्ण सिसप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालासीसो ।

कृष्ण सुभ्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कालापान ।

कृष्ण सूक्ष्म फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शारिवा भेद ।

गुण—स्वादु, स्निग्ध, गुरुपाकी, शुक्रजनक, अग्निमान्द्य, अर्घचि, कास, श्वास, त्रिदोष, रक्तदोष, प्रदर, ज्वरातिसार तथा विष नाशक है । (वै० निघ०) ।

कृष्ण सञ्जक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौचरलोत । सौवर्चल लवण ।

कृष्ण स्त्रोत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रसाञ्जन । रसौत । (रत्ना०) ।

कृष्णस्कन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तमालवृक्ष । तमाल गाछ । (अ० टी० भ०) । (२) सुरती का पेड़ ।

कृष्णः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कृष्ण पक्ष । (२) कोयल । कोकिला । (३) खंजन, खजरीट । (४) तीतर, तित्तिरि । (५) मङ्गोर । (६) भैंस, महिष । (७) राजक्षवक । (८) सीसा, सीसक । (९) चित्रक । (ध० नि०) ।

कृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कृष्णा नदी । कृष्ण वेणी । कृष्ण गङ्गा । जल गुण—कृष्णानदी का जल जाड्यकारक, स्वादु, पवित्र, रक्तपित्तप्रकोपक है । (रा० नि० व० १४) । (२) सविष जलौका भेद । (सु० सू० १३ अ०) । दे० 'जोंक' । एक प्रकार की जहरीली

'जोंक' या 'जलायुका' । (३) काला गोजर । कृष्ण शतपदी भेद । (सु० कल्प० ८ अ०, सू० १३ अ०) । दे० 'शतपदी' । (४) मरिच । मिर्च । (च० द० वातरक्त चि० 'पिवेत्कृष्णा कफाधिके पिप्पल्याम्' । (प० मु०) । 'कृष्णा च मधुना सह' । 'आमलकाभया कृष्णा' । च० द० कफ-ज्व० चि०) । (५) बड़ा चूका । वृहच्चुक । (६) नील । नीली क्षुप । नील बरी । (रा० नि० व० ४) । (७) द्राक्षा लता । अंगूर की वेल । कालीदाख । (रा० नि० व० २३) । (८) नीलपुनर्नवा । (रा० नि० व० ५) । (९) कुम्भेर । गम्भारी वृक्ष । (रा० नि० व० ६) । (१०) कृष्ण जीरक । काला जीरा । कलौजी । (११) कुटकी । कटुकी । (१२) कालाकुड़ा, इन्द्रयव । (रा० नि० व० ६) । (१३) बड़ी सरसों । राई । राजसर्षप (रा० नि० व० १६) । (१४) बकुची । सोम-राजी । (रा० नि० व० २३) । (१५) काला सारिवा, कृष्ण सारिवा । (रा० नि० व० १२; च० द० यक्ष्मा-चि०) । (१६) काली तुलसी । कृष्ण तुलसी । (रा० नि० व० १०) । (१७) कालीसिरिस । कृष्ण शिरीष वृक्ष । (१८) परोरा । पटोल । (१९) पित्तपापड़ा । पर्पट । (भा०) । (२०) शतपत्री । सेवती । (भा० पू० १ भ०) । (२१) जटामांसी । (वै० निघ० अर्शचि०) । (२२) दूब । दूर्वा । (२३) काला सम्हालु । कृष्ण निगुण्डी । (२४) चाकसू । वन कुलत्थ । (२५) कस्तूरी । (२६) काली गौरैया । कृष्ण चटक । (वै० निघ०) । (२७) काकोली । (जटा०) । (२८) काला मटर । कृष्ण कलाय । (२९) पीपल, पिप्पली । (३०) पाढल, पाटला । (३०) नील, नीलिनी । (ध० नि०) (३२) अगर, ऊद (लकड़ी) । (३३) पपरी नामक गंधद्रव्य ।

कृष्णाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नील पुनर्नवा । (ध० नि०) ।

कृष्णाग (गुरु)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काला अगर । कृष्णा-गुरु । (प० मु०) ।

कृष्णाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कलौजी । मंगरैल । उप-कुञ्ची । (वै० निघ०) ।

कृष्णाचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक चूर्णयोग विशेष ।

कृष्णा जटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपलामूल । पिप्पली-मूल । (वै० निघ० २ भ० वा० व्या० चि०) ।

कृष्णाजाजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णजीरक । काला जीरा । (च० द० ग्रहणी चि०) ।

कृष्णाजिन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कृष्णसारचर्म । काले हिरन का चाम (मृगछाला) ।

कृष्णाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काला सुरमा । (ध० नि०) । (२) पीपर, मरिच, सेंधानमक, गोरोचन तथा मधुमिश्रित उक्त द्रव्यों का अञ्जन । गुण—नेत्रों में

आंजन लगाने से देवादि के प्रकोप से उत्पन्न हुआ उन्माद तत्काल नष्ट होता है। (भा० म० उन्मा० चि०)।

कृष्णाञ्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली कपास। कालाञ्जनी क्षुप। कृष्णकर्पास। (रा० नि० व० ४; वै० निघ०)।

कृष्णाढकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली अरहर। कृष्ण आढकी। (व०) कालरहर। गुण—कषाय, बलकारक, अग्निदीप्तिकारक, पित्तदाहशामक है, ऐसा ऋषियों का कथन है। (वै० निघ०)।

कृष्णातण्डुल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपर के बीज। पिप्पलीबीज तथा पीपर और तण्डुलयुक्त अवलेह। (सि० यो० छिंदि चि०)।

कृष्णात्रेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यकसंहिता के प्रणेता महर्षि। दे० 'कृष्ण आत्रेय'।

कृष्णादि गण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिप्पल्यादि वर्ग। यथा—पीपर, चित्रक, ग्रन्थिपर्णी (पीपलामूल), अहसा, मोथा, अतीस, विकसा (मजीठ), रेणुका, त्रिकुटा, यमानी, गोस्तनी (द्राक्षा भेद), चिरायता, वेल, चन्दन, भारगी, निशोथ (श्यामा), आंवला, मूवर्वा, जीरा, शिवा (हरीतकी), ब्रम्ही (आक), स्थिरा, (शालपर्णी)। दे० 'पिप्पल्यादि गण'।

कृष्णादि चर्वण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चर्वण विशेष।

कृष्णादि-चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चूर्णयोग विशेष। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पीपल अतीस, नागरमोथा और काकडांसींगी—इन चारों द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें। मात्रा—१ तोला। इस चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से ज्वर, अतिसार, स्वासकास और वमनरोग नष्ट हो जाता है। (शाङ्ग०)।

कृष्णादि नस्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] नस्ययोग विशेष।

कृष्णादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लेपयोग विशेष।

कृष्णाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नेत्ररोग में प्रयुक्त तैल। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पीपल, विडंग, मुलहठी, सिन्धुजम्ब (संधानमक) और सोंठ समान भाग में ग्रहण-कर कल्क प्रस्तुत कर बकरी के दूध में तिल-तैल युक्त यथाविधि सिद्ध करें।

नोट—इसमें कल्कद्रव्य प्रत्येक १ तोला, तिलतैल १ श०, जल ४ श०, छागीपय १ श०। (च० द०)।

कृष्णाद्याञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अञ्जनयोग विशेष।

कृष्णाद्यमोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्लीपदाधिकारोक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पिप्पलीमूलचूर्ण २ तोला, चित्रकमूलचूर्ण ४ तोला, दन्तीमूलचूर्ण ८ तोला, हरीतकीचूर्ण २० तोला—इसमें २ पल गुड़ मिश्रितकर

मोदक प्रस्तुत करें। अनुपान—मधु। (रस २०; सा० कौ०)। इसके सेवन से श्लीपद नष्ट होता है। (भैष० श्लीप० चि०)।

कृष्णाद्य लौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शूल में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पीपल, हरीतकी, लोह-चूर्ण समान भाग में ग्रहणकर मधु के साथ चाटने से परिणामशूल तथा त्रिदोषज शूल का नाश होता है। (रस० २०, २० चि० ६ अ०)।

कृष्णा नदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णागङ्गा। (ध० नि०)। दे० 'कृष्णा'।

कृष्णाभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालाञ्जनी। कृष्ण कार्पास। काली कपास। (रा० नि० व० ४)।

कृष्णाभ्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नीलाभ्र। काला अभ्रक। दे० 'अभ्रक'।

कृष्णाम—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काली मक्खी। मक्षिका। (ध० नि०)। मधुमक्षिका विशेष।

कृष्णामिष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लौह। लोहा। (हे० च०)।

कृष्णामूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपलामूल। पिप्पली-मूल। (वै० निघ०)।

कृष्णा मृद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काली मिट्टी।

कृष्णाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान्तलौह। कान्तिसार। (रा० नि० व० १३)। (सु० चि० अ० १२, ११)।

कृष्णायस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) इस्पात लोहा। कान्त लोह। कृष्णवर्ण लोह। (रत्ना०)। (३) फौलाद। तीक्ष्ण लोह। (२० मा०)। (३) मुण्ड लौह। (रा० नि० व० १३)।

कृष्णारुण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] चित्रक। (ध० नि०)। काला-लाल चीता।

कृष्णार्चि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि। आग। (२) चीता। चित्रकक्षुप। (वै० निघ०)।

कृष्णाञ्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली तुलसी।

कृष्णार्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला आजवला। (रा० नि० व० १०)। पर्याय—(सं०) काल-माल, मालूक, कृष्णमालूक, कृष्ण मल्लिका, कृष्ण वल्ली, गरम, वन वर्वर, वर्वर, जाति। गुण—उष्ण, कटु, कफ-वात रोग, नेत्ररोगनाशक, रुचिकारक तथा सुखपूर्वक प्रसवकारक है। (रा०)।

कृष्णालु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कृष्णालुक—संज्ञा पुं०, [सं० पुं०, क्ली०] } (१) नील आलू। काला आलू। (२) तेन, तिन्दुक, केन्दु वृक्ष। (वै० निघ०)। कृष्णालुक गुण—मधुर, शीतवीर्य, श्रमनाशक, पित्तदाहहर, रुचिकारक, बलकारक तथा मुखजाड्यहर है। (वै० निघ०)।

कृष्णावास

कृष्णावास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीपलवृक्ष। अश्वत्थ वृक्ष। (हे० च०)।

कृष्णाश्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला घोड़ा। (ध० नि०)।

कृष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) राई। राजिका। (अम०)। (२) श्यामा पक्षी।

कृष्णिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०]

कृष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रात्रि। निशा। रात।

कृष्णीकरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिवत्र आदि में कृष्णता सम्पादन करने का कार्य। (सु० चि० १ अ०)।

कृष्णेन्द्रिय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कदम्ब। (वै० निघ०)।

कृष्णेशु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालीईश। कालागन्ना।

कजली ईश। (म०) कालाउंस। (कना०) करिकवु।

(सं०) कान्तारक, श्यामलेशु, कोकिलेशु, कोकिलाक्ष।

गुण—मधुरपाकी, स्वादु, अधिक रसोत्पादक (रसबहुल),

कटुक, त्रिदोषनाशक, वलकारक, वीर्यप्रद (रा० नि०

व० १४), वृष्य, तर्पण, दाहनाशक, क्षारीय, किंचिन्

मधुर, रस से शोषनाशक तथा व्रणशोफकारक है।

(अत्रि० १० अ०)।

तत्कारक—वृष्य, तृप्तिजनक, बलदायक, श्रमनाशक तथा

जीवनीशक्तिवर्धक है। (च० द० प्रमेह चि०)। दे०

‘ईश’।

कृष्णोदर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का साँप।

दवाकर सर्प। काला गौह्वन। फणी। फनयुक्त सर्प।

(सु० कल्प० ८ अ०)। दे० ‘सर्प’।

कृष्णोदुम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काक डुमुर।

कृष्णोदुम्बरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकोदुम्बर।

कठूमर। जं० काला गुलर। (रा० नि० व० ११)।

कूसर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिल-तन्दुल सम्पक्वान्न। तिलकी

खिचड़ी। (हे० च०)।

कूसरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खिचड़ी। यवागू भेद।

विधि तथा गुण—तिल, चावल, उड़द की दाल में

६ गुना जलमिश्रितकर सिद्ध किया यवागू (खिचड़ी)

जरा (वार्यक्यकारक), दुर्जर, वलप्रद, मदकारक, पुष्टि-

कारक, कफ-पित्त-मलस्तम्भक, शुक्रकारक तथा वात-

नाशक है। (वै० निघ०)।

केआ—संज्ञा पुं० [ब०] केवड़ा भेद। दे० ‘केतकी’।

केइन्त—संज्ञा पुं० [प०] वनस्पति विशेष। पर्याय—मील।

मेहल। (मे० मो०)।

केउ—संज्ञा पुं० [ब०] केमुक।

(*Costus Spesiosus*, Linn, S. M.)।

केउआ—संज्ञा पुं० [ह०] केमुक।

केउट—संज्ञा पुं० [ब०] सर्प। साँप। (म०)।

केउटा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कोट] एक प्रकार का बहुत विषैला

साँप। औषधों में इसी का विष काम में आता है। करैत।

केउटी—संज्ञा स्त्री० दे० ‘केवटी’।

केऊ—संज्ञा पुं० [ब०] केमुक।

केऊँ—संज्ञा पुं० [हि०] केमुक। केउ।

केऊँआ—संज्ञा पुं० [सं० केमुक; केमुका] (१) कच्चू। (२)

चुकंदर (३) शलगम।

केओलीन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की मिट्टी जो चीन

से आती है। चीनी मिट्टी।

केओलीनसू—संज्ञा पुं० [लै०] केओलीन, चीनी मिट्टी।

(अं०) चाइना क्ले (China Clay)।

केकड़—संज्ञा पुं० [देश०] काकड़ा। पत्रगुल्म जो काकड़ा-

सींगी के नाम से प्रसिद्ध है। दे० ‘काकड़ासींगी’।

केकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, पा० ककट] जलजन्तु विशेष।

पानीका एक कीड़ा जिसे आठ टाँगें और दो पंजे होते हैं।

यह अंडज है।

पर्याय—(सं०) कर्कट; कर्कटक; कुलीर; कुलिक,

कुरचिल्ल; (हि०) केकड़ा, केकड़ा, केकरा, गेंगटा,

काकेड़ा, गेंगचा (मुहीत); (बं०) काँकड़ा; (अं०)

सरतान, अकरबुल्मास, अबुल्बहर; (फ्रा०) पंजपाय;

पञ्जपायक, खरचङ्ग, गुलचङ्ग, कवकास; (यू०) फ्राकीशर,

करकीन्त (मुहीत), फ्राकीर (खजाइन); (रू०) कन्यादून,

बाऊरस (मुहीत), कन्यारीदास (खजाइन); (अं०)

क्रैब (Grab)। अं०; कैन्सर (Cancer); (ले०) सिल्ला

सेरेटा (*Scilla serrata*); (यू०) कार्किनोस

(*Karkinos*)।

वर्णन—एक तीव्रगामी जल-जंतु जो देखने में बड़ी मकड़ी

की तरह जान पड़ता है। कोई-कोई आकार में उससे भी

बड़ा छोटे पंजे के बराबर रंग भगमैला एवं लाल और

काला (कृष्णकर्कटक:—सु० सू० ४६ अं०) भी होता है।

खजाइनुलअदविया के लेखक लिखते हैं कि मैंने बड़े पंजे

के बराबर और काला देखा है। इसके निम्न दो भेद

होते हैं—

(१) नहरी—इसके दो जबड़े तथा चंगुल और नख

एवं दंत होते हैं। पीठ कड़ी होती है। इसके सिर और

पूँछ दृष्टिगत नहीं होतीं। नेत्र स्कंधपर होते हैं और

मुख वक्ष में। दोनों जबड़े दोनों तरफ से फटे होते हैं।

इसके आठ पैर होते हैं। गियासुल्लुगात में लिखा है कि

यह दोनों तरफ चलता है अर्थात् सिर की ओर और

पूँछ की ओर भी। मुहीत और शमसुद्दरर के मत से

यह एक ही ओर चलता है। वर्ष भर में छः बार इसकी

खाल उतरती है। अपने निवासस्थान में दो दरवाजे

रखता है। एक पानी की ओर दूसरा किनारे की ओर।

जब इसके शरीर की खाल उतरती है, तब यह पानी

की ओर का दरवाजा बंद कर देता है जिसमें पानी के

अन्य जंतुओं से वह सुरक्षित रहे। परंतु खुश्की की ओर

का दरवाजा खुला रखता है जिसमें उसे वायु लगती रहे। जब उसकी नई खाल की आर्द्रता जाती रहती है और वह दृढ़ हो जाती है, तब पानी की ओर का दरवाजा खोल लेता है और अपने आहार की खोज में लग जाता है। इसमें यह एक विलक्षण गुण है कि जब यह अपने बिलमें चित लेटता है, तब उक्त स्थान और प्रदेश के मनुष्य दैवी उत्पाद से सुरक्षित रहते हैं। ऐसा ही शम्भुदरर में उल्लेख है। परन्तु मुहीत के लेखक का कथन सत्य प्रतीत नहीं होता। यह कैसे ज्ञात हुआ कि वह इस नियत से चित लेटता है। इसके उपर्युक्त भेद-द्वय में से बहते हुए मीठे पानी का और बड़ा यह नहरी केकड़ा सर्वोत्तम होता है। इसके नर और मादा ऐसे दो भेद होते हैं। उनमें मादा सर्वोत्तम होती है। मादा की पहचान यह है कि उसकी पीठ में सूई चुभाने से श्वेत द्रव निकलता है, जो नर में नहीं निकलता।

(२) बहरी वा सामुद्र कर्कट—मछ्जन में इसकी अरबी सरतानबहरी और फ़ारसी खरचंङ्गदरियाई लिखी है। यह नहरी केकड़े के बराबर और उससे कुछ छोटा होता है। इसके कई भेद हैं। उन सब में से इसका वह भेद उपयोग में आता है जिसके अंगों में पथराने का धर्म हो। गोलानी के कथन से कर्कट की श्रेणी में इसकी गणना नहीं होती। क्योंकि उससे यह स्वरूप इत्यादि में भिन्न है। यद्यपि इसकी आकृति नहरी की सी होती है; तथापि यह उससे लतीफ़ होता है। हिन्दुस्तान और चीन आदि के समुद्र-तटों पर यह बहुत मिलता है। कहते हैं कि चीनी को जब समुद्र से निकालते हैं, तब पथराकर वह तुरत मर जाता है। दीसकूरीदूस और जालीनूस ने इसके उक्त भेद का उल्लेख नहीं किया है। हुनैन ने जो मुफ़रदातजालीनूस से सामुद्रकर्कट का समाचार उद्धृत किया है, वह यह नहीं है। वह एक प्रकार की मछली है जिसको यूनानी में 'सीसबा' और अरबी में 'लिसानुल् बहर' कहते हैं। अफ़्रीका के कतिपय तटों पर 'क़नात' बोलते हैं। इसकी पीठ पर सीप की तरह एक कड़ी हड्डी होती है। उसका आमाशय काला होता है और उसमें से काले रंग का द्रव निकलता है, जिससे स्याही की भाँति लिखते हैं। इसकी अस्थि जलाकर चिकित्सा में प्रयोगित करते हैं। एक बात और उल्लेखयोग्य यह है कि हर केकड़े के सामने दो आँकड़े बिच्छू की तरह होते हैं जिनसे यदि वह उँगली को दबा ले, तो वह कट जाय। यह सामान्य आघात से मर जाता है अर्थात् कठिनजीवी नहीं होता। इसकी मादा लगभग सौ-सौ बच्चे बल्कि इससे भी अधिक बच्चे देती है। बच्चे प्रायः माता का उदरविदारण करके

और उसके भीतर के अंगों को खाकर निकल आते हैं। उक्त कथन अनुभवी कहारों का है। संभवतः इसी कारण संस्कृत में इसे 'अपत्यशत्रु' कहते हैं। केकड़ा और समुद्री केकड़े का वर्णन माख्जन और मुहीत में क्रमशः सरतान नहरी वा सरतान और सरतान बहरी शब्दों में आया है।

प्रकृति—नहरी द्वितीय (कक्षा) कक्षांत में शीतल और स्निग्ध। मतांतर से प्रथम कक्षा में उष्ण एवं स्निग्ध। बहरी प्रथम कक्षा में शीतल और रूक्ष। मतांतर से द्वितीय कक्षा में शीतल और रूक्ष। तमीमी ने किताब मुरशिद में लिखा है कि बहरी तृतीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। परन्तु हिन्दुस्तान में कहार लोग जो इसको सदैव खाते और पकड़ते रहते हैं, कहते हैं कि इससे अत्यंत उष्णता प्रतीत होती है।

स्वाद—फीका बसायँध और किंचित् नमकीन। अहितकर—बस्ति और बस्ति के रोगों को हानिकर है।

निवारण—गिल कुबरूसी और गिल मख़तूम। प्रतिनिधि—मुहीत के अनुसार नहरी केकड़े की प्रतिनिधि छोटी ताज़ी मछली है। ऐसी छोटी मछली को जौ वा मूँग में पकाकर खाने से उरःक्षत के रोगी को लाभ होता है। किसी-किसी ने शुष्क केकड़े की प्रतिनिधि सीप वा सीप का मांस लिखा है। रूमूज़ आजम के मत से जले हुए केकड़े की प्रतिनिधि ग्रन्थों में उल्लिखित देखने में नहीं आया। अस्तु, जहाँ जला हुआ केकड़ा न मिले, वहाँ बकरी का फुफ़ुस जलाकर उसकी जगह काम में लें। समुद्र कर्कट की प्रतिनिधि कौड़ी वा वराटिका और नहरी तथा सफ़ेद चीनी केकड़े का टुकड़ा (खज़फ़) है।

ग्रह—प्रकृति के विचार से शुक्र और बहरी की शनि।

प्रधान कर्म—यक्ष्मा, उरःक्षत और कास में लाभकारी तथा मूत्र और आर्तव का प्रवर्तनकर्ता है। मात्रा—१७॥ मा० तक और जला हुआ १०॥ मा० तक। यह उभय भेदों की मात्रा है। आवश्यकता होने पर इसकी राख अधिक मात्रा में भी सेव्य है।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—नहरी केकड़े में एक विशेष गुण यह है कि जब उसके पाँव काटकर फलवृक्ष पर लटका देते हैं तब उस वृक्ष के समस्त फल गिर पड़ते हैं। परन्तु समूचा केकड़े को वृक्ष पर लटकाने से फल अधिक आते हैं। इसमें आकर्षणकारी और शोथादि विलीन करने की शक्ति है। इसको जलाकर राख को उष्ण जल में घोलकर लगाने से व्यंग और नीलिका आदि का नाश होता है। इसको तेल में इतना पकायें की सम्पूर्ण वीर्य तेल में आ जाय। इस तेल को बालों पर लगाने से बाल लंबे हो जाते हैं। जिसका शरीर पीला पड़ जाय, उसे यदि केकड़े की आँख बाँध दें तो पीतवर्णता दूर हो जाय। परन्तु

यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि पाण्डुता सीधी आँख में होगी, तो सीधी आँख के बाँधने से जायगी। इसका मांस अत्याहार वा अधिक रक्तवर्द्धक (कसीरु गिजा) और दीर्घपाकी है। भली भाँति पच जाने पर इससे अधिक परिमाण में रक्त बनता है। यह वाजीकरण है। इसका रक्त सेवन करने से रक्तोष्मा दूर होती है। यह फुफुस-व्रण और उरःक्षत में परम लाभकारी है। इसका मांसरस उरः क्षत और राजयक्ष्मा के रोगी को गुणकारी है। यह उष्ण एवं रूक्ष कास और अवयवों की उष्णता को शमन करता है। अधिक उष्णता के मारे यदि शरीर कृश वा क्षीण हो जाय और शरीर में अधिक उष्णता हो, तो इसका खाना लाभकारी है। इसकी राख से भी उक्त लाभ होता है। इसे गदही वा स्त्री के दूध के साथ खाने से थूक में रक्त वा पूय आना रुक जाता है। उरःक्षती को इसका मांसरस प्रस्तुत कर पिलायें और जलाकर राख शर्वत खशखाश के साथ चटायें। इसके पकाने की यह रीति है—(१) केकड़े लेकर हाथ-पाँव काटकर पेट से मलादि दूरकर नमक और अंगूर की लकड़ी की राख से भली भाँति धोकर पकायें और रोगी को मांस खिलायें और मांसरस पिलायें। (२) केकड़े को साफ़ करके तुषरहित जी (जी मुकश्शर) के साथ पानी में उबालकर और साफ़ करके यक्ष्मी और उरःक्षती को पिला दें। (३) केकड़ों को हाथ-पाँव काटकर पेट से मल इत्यादि दूर करके अंगूर की लकड़ी वा वलूत की लकड़ी की राख और पानी से खूब धोकर हावनदस्ते में खूब कूटकर आंशजौ (कथित यवाम्बु-यवमंड) के साथ खूब पकाकर और गलाकर साफ़ करके पिला दें। गनीमनी में लिखा है कि केवल राख से भी धो सकते हैं। (४) कभी-कभी इसका मांस मूँग के साथ पकाते हैं और (५) कभी जी के हरीरे के साथ पकाते हैं। तात्पर्य यह कि रोगी को इसका मांसरस पिला देने से बड़ा उपकार होता है। कभी जलाकर १३-१४ मा० राख गिलेमखतूम के साथ खिलाते हैं।

इन्न तलमीज कहते हैं कि केकड़े की राख गिलेमखतूम, वलूत का गोंद, कतीरा और मुलेठी के सत के साथ उरः क्षत रोग में परम गुणकारी है। गदही के दूध के साथ इसका सेवन अतीव लाभकारी है। परन्तु ज्वर रहने पर गदही के दूध के साथ इसका सेवन वर्जित है। वक्ष, प्लीहा और फुफुस की रूक्षता से होनेवाली खाँसी में इसकी राख को जी के हरीरे के साथ खिलाने से उपकार होता है। इससे फुफुस और उरोगत रूक्षता एवं कर्कशता दूर होती है। उष्णप्रकृतिवाले के लिये वाजीकरण भी है। सरदी से हाथ-पाँव फटने पर इसकी राख मधु में फेंटकर लगाना चाहिये। अर्शाङ्कुरों में इसकी राख भर देने से उपकार होता है। ज्वरी को केकड़े की आँख बाँध देने से उपकार

होता है। यह उसका प्रभाव है। इसके खाने और लगाने से साँप और बिच्छू का जहर उतर जाता है। इसको पीसकर बकरी के दूध वा मद्य के साथ खाने से हर प्रकार के सर्प का विष उतर जाता है। इसका मांस जंगली तुलसी के पत्तों के साथ पीसकर बिच्छू पर डालने से वह मर जाता है। बिच्छू-स्त्रैला प्रभृति विषधर जंतुओं के दंश में इसे गदही के दूध के साथ सेवन करने से उपकार होता है। कुन्दुर १ भाग, पखानवेद ५ भाग और केकड़े की राख १० भाग—इन तीनों को पीसकर उसमें से आवश्यकतानुसार लेकर शहद में फेंटकर चाटने और लेप करने से बिच्छू और स्त्रैला का जहर उतर जाता है पागल कुत्ते के काटने पर अनेक प्रकार से इसका उपयोग करते हैं। यथा—(१) इसकी राख सिरका या शहद के साथ क्षत पर लगा दें। (२) १३॥ मा० इसकी राख पाने सात मा० पखानवेद इन दोनों को मद्य के साथ खिला दें। इस प्रकार तीन दिन तक खिलायें। (३) इसकी ताजी राख प्रतिदिन २२॥ मा० लेकर पानी के साथ फाँक लिया करें। यदि पुरानी हो तो २ तो० ७ मा० की मात्रा में खाया करें और क्षत पर जैतून के तेल, सिरका और जवाशीर के साथ प्रस्तुत इसका मलहम लगा दें। उसमें सिरका और जैतून का तेल समभाग और जवाशीर सबका आठवाँ भाग होना चाहिये। (४) केकड़े की राख १ भाग, कुन्दुर १ भाग, पखानवेद अर्ध भाग सबको पीसकर साढ़े तेरह मांशे चूर्ण प्रतिदिन तीन दिन तक कुक्कुरदष्ट व्यक्ति को शीतल जल के साथ फाँका दें।

कर्कट के नेत्र को जैतून के तेल में इतना आटाया जाय कि तेल शुष्क हो जाय। फिर उसको पीसकर फोड़े पर लगाने से उपकार होगा। नेत्राभिष्यंद में नेत्र पर केकड़े के चक्षु बाँधने से वेदना शमन होती है। इसको पीसकर और पानी में मिलाकर गण्डूष करने से गलगत रोगविशेष (खुनाक) और कौवों का दर्द जाता रहता है। यदि बिच्छू आदि विषैला कीड़ा काट खाया, तो ताजा केकड़ा पकड़ और कुचलकर उक्त स्थान पर लगा दें। यह विष को खींच लेगा। इसको लेप करने से तीर आदि शल्य (पैकान दुखार) निकल आते हैं। इसके लेप से उष्ण सूजन उतरती है। इसकी राख उरःक्षत, राजयक्ष्मा और असीम कृशता इनका निवारण करती है और अश्मरि छेदन करती है। यदि स्त्री के स्तनों में कर्कट-रोग हो जाय, तो इसका लेप लाभकारी होता है। शहद में मिलाकर लेप करने से नीलिका (बहक) दूर हो जाती है।

सरतान बहरी वा सामुद्र कर्कट

जलाया हुआ सामुद्रकर्कट स्वच्छताप्रद और अधिक तारल्यकारक है। सुरमे की भाँति इसे आँखों में लगाने से नेत्रपटलों से द्रवसाव बंद हो जाता है। यह नेत्र

की पेशियों को बलप्रद और नेत्रज्योतिवर्द्धक है। इससे नेत्रकण्डू, अर्म वा नाखूना (जुफरः), बाम्हनी (मुलाक) और अश्रुस्राव (दमः) में उपकार होता है। इसका अवचूर्णन क्षतों से रक्तस्राव का रुद्धक है। इसके मंजन से दाँत स्वच्छ और चमकीले होते हैं। इसके लेप से नीलिका (कलफ) और मसे (नमश) दूर होते हैं। (मरुज्जन)।

इवन्जुहर कहते हैं कि जब बारहसिंगे को साँप डस लेता है, तब वह सामुद्रककंट को खा लेता है जिससे वह विषमुक्त हो जाता है। यह स्वच्छताकारक (जाली) और शीतसंग्राही है। इसको जलाने से रूक्षता, स्वच्छताकरण और तारल्यजनन गुण की वृद्धि होती है। जले हुए मसों, किलास और नीलिका पर लगाने से उपकार होता है। इसमें सिरका और मूली के बीजों को भी समाविष्ट करलेने से परम उपकार होता है। इसके लगाने से झाई दूर हो जाती है। इसका चूर्ण फोड़ों पर बुरकने से वे शुष्क हो जाते हैं। स्नानागार में इसकी राख शरीर पर मलने से खुजली मिटती है। इसकी राख बुरकने से क्षतों से बहता हुआ रक्त बंद हो जाता है। इसे अकेले नेत्र में लगाने से अश्रुस्राव वा ढलका दूर होता है। सिरका वा नमक के साथ लगाने से जाला और फूली कट जाती है। इसके लगाने से नेत्र के सम्पूर्ण अंगों को शक्ति मिलती है। इससे नेत्र की शुद्धि होकर नेत्रज्योति बढ़ जाती है। नेत्रौषधों में इसे डालते हैं। विशेषतः जले हुए का डालना परमोत्तम है। इसके सम्पूर्ण गुण नहरी केकड़े की तरह हैं। (खजाइन)। इसको आग पर सेंककर नमक, मिर्च और जीरा के साथ पीस कर चटनी बनाकर भी खाते हैं। (खजाइन)।

वैद्य कहते हैं—इसका मांस शीतल, सप्तधातुवर्द्धक, वाजीकरण और आतंवरुद्धक है। (ता० श०)।

यह वायुनाशक और लघु है तथा कपोलद्वय का आक्षेप दूर करता है। हिंदू कहारों का यह कथन है कि जब पालकी या मियाणा उठाकर मंजिल में चलते हैं और रात में केकड़ा खा लेते हैं तो थकावट उतर जाती है। शीतजनित पार्श्वशूल (जातुज्जनब) और उरोशूल में जिसे गुजराती भी कहते हैं, एक केकड़ा पानी में उवाल और छानकर पी लेते हैं; फिर रजाई ओढ़कर सो रहते हैं जिसमें वायु न लगे। इससे वेदना शमन हो जाती है। परंतु इतना गरमी करता है कि मूत्र पीला उतरता है।

कर्कटो बृंहणो वृष्यः शीतलोऽसृग्गदापहः। (धन्वन्तरि राजनिघण्टुः)।

कृष्णककंटकस्तेषां बल्यः कोष्णोऽनिलापहः।

शुक्लः सन्धानकृत् सृष्टविष्णुमूत्रोऽनिलपित्तहा।

(सु० सू० ४६ अ०)।

केकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऐंचाताना देखनेवाला व्यक्ति। निम्नोन्नताक्षि पुरुष। ऐंचा। भेंगा। (वं०) गजा, ढेरा। (अम०)।

केकरा—संज्ञापुं० दे० “केकड़ा”।

केकसा—संज्ञा पुं०। प्रसवजन्यकटिउदरादि का चिह्न। वा० शा० १ अ०। दे० “किक्किस”।

केका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोर की बोली। मयूरवाणी। (अम०)।

केकाण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वभेद। घोड़े की एक जाति। दे० ‘घोड़ा’।

केकाबल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोर। मयूर। (श० च०)।

केकिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोर। मयूर। (रत्ना०)।

केकिकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोरपंखी। मयूर-

शिखा। (रा० नि० व० ५; भैष० बाल० चि०)।

केकी—संज्ञा पुं० [सं० केकिन्] मोर। मयूर।

केकेलिआ आलिण्डर लीहूड—संज्ञा पुं० [अं०] लिसानु-सौर। गावजबाँ।

केकेलिआ क्लीनिआ—संज्ञा पुं० [अं०] गावजबाँ।

केकेलिआ सॉड्कफोलिआ—संज्ञा पुं० [ले०] सफेद गोभी।

केवोलिआ सासीस्टल लीहूड—[अं०] सफेद गोभी।

केककण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० ‘केकाण’।

केककाण—संज्ञा पुं० [,] दे० ‘केकाण’।

केककुनी आइल—[लंका] जंगली अखरोट।

केककु वित्तुलु—[ते०] स्याहजीरा। कृष्णजीरक। (डॉइमाक भ० ३, पृ० १६)।

केककु विरै—(ता०) जीरास्याह। (डाइमाँक)।

केकटस इण्डिकस—संज्ञा पुं० [ले० Cactus indicus] नागफनी। चप्पल सेंड (द०)।

केकटस इण्डियन—संज्ञा पुं० [अं० Cactus, indian] नागफनी। चप्पलसेंड-द०।

केकर्स—(यू०) बाजरा। वज्र धान्य।

केडबोनूती—संज्ञा स्त्री० [व०] सीकाकाई। (मो० श०)।

केड्जल लिङ्गे—संज्ञा पुं० [का०] लाल कनेर। दे० “कनेर”।

केचङ्ग—संज्ञा पुं० [लेप०] बुलु (नैपा०)।

केच (चि)ट (कैचेट)—संज्ञा पुं० [अं० Cachet] मण्ड या कागज का बना तिक्त एवं कुस्वादु औषधिके सेवन का एक विशेष प्रकार का कोष वा डिब्बी।

केचली—संज्ञा स्त्री० [सं० कचुकी] काँचली। केंचुली।

केचन गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वज्र (हीरा) के द्वारा बद्धपारदकृत गुटिका। इसको मुखमें धारण करने से सर्वसिद्धि होती है। (र० का० धे०)।

केचिट्—कैचेट दे० ‘केचट’।

केचुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) अरई। घुइयाँ।

(बं०) कचु । (ले०) कोलोकेसिया अन्टिकोरम (Colocasia antiquorum) (त्रिका०) । (२) केउ । केमुक ।

केचुका कन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अरुई । पुइयाँ । (सु० चि० ६ अ०) 'केचुकाकन्द निर्यासम्' ।

केचुर—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुकी] } (१) साँपके
केचुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] }
शरीर पर की खाल । केंचुली । (२) केचुआ ।

केचुवा—संज्ञा पुं० [] दे० 'केंचुआ' ।

केंचवे—संज्ञा पुं० [हिं० केंचुवा का बहुव०] केंचुआ । ये दन्तशब्द के कारण हैं ।

केंचुआ—संज्ञा पुं० [सं० किञ्चिलिक, प्रा० केंचुओं] एक बरसाती कीड़ा ।

पर्या०—(सं०) किञ्चिलिकः, किञ्चुलिकः, किञ्चुलुकः, गण्डूपदः; (हिं०) केंचुआ, केचुवा, कैचुवा, केचवा; (बं०) केंचो; (अ०) खरातीन, अम्आउल् अर्ज, हुम्ल्ल अर्ज, (मख्जन), शह्मुल् अर्ज (मुहीत); (फा०) जुगार, किर्मगिलखुर्दः, शकंद, शिकंद, किर्मजमीं (मुहीत); (यू०) खलतीन अतरिया, तलीतलीस, तीलीबुस, तीलीलीस (मुहीत); (तु०) सकूलीजान (मुहीत); (अं०) अर्थवर्म (Earthworm), मडवर्म (Mudworm) ।

टिप्पणी—खरातीन अरबीसंज्ञा खरातीन से व्युत्पन्न है जिसका मूल खुरः वा खुर=चिपकनेवाली और मैली मिट्टी+आतीन (जन्म की भाषा)=उत्पन्न, जात, है । अस्तु, खुरःआतीन का अर्थ मृत्तिकाजात वा मिट्टी से उत्पन्न है । अम्आउल्अर्ज का अर्थ भूम्यन्त्र वा भूलता और महीलता है । मख्जन और मुहीत में 'खरातीन' शब्द में इसका वर्णन आया है ।

वर्णन—एक लाल रंग का लंबा कीड़ा जो नमनाक भूमि में विशेषतया बगीचों में और उन स्थानों पर जहाँ गोबर और लीद इत्यादि डाला जाता है, बरसात में और शरद् ऋतु के प्रारंभ में प्रचुरता से जमीन पर रेंगता हुआ दृष्टिगत होता है । (मख्जन) ।

यह पेट के बल चलनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा है जो लगभग एक बिन्ता वा उससे कम लंबा होता है । ऐसा पानी पीने से जिसमें केचुओं के अंडे हों, मनुष्य के पेट में केचुए पड़ जाते हैं । उससे मनुष्य पीला और दुर्बल हो जाता है । यदि ठिकाने से उसकी चिकित्सा की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो वह शीघ्र ही मृत्यु का शिकार हो जाता है । तालाबों का पानी पीनेवाले अधिक उक्त व्याधि से पीड़ित देखे जाते हैं । केचुआ मनुष्य के पेट से मलमार्ग द्वारा भी निकलता है । इसको अरबी में हथ्यतुल्बन् वा ह्यातुल्बन् और दूदुत्वील, फारसी

में किर्मशिकम और हिंदी में गेंडुवा* कहते हैं । वह केचुआ जो वमन में निकलता है, प्रायः स्तम्भन और वाजीकरण योगों में पड़ता है । यदि केचुए को बीट करते समय देखा जाय, तो वह प्रकाशमान प्रतिभास होता है । किंतु थोड़ी देर पश्चात् उक्त प्रकाश लुप्तप्राय हो जाता है । उसका कारण यह है कि केचुओं और उनकी मिट्टी में स्फुर वा फॉस्फोरस मिला हुआ होता है जो वायु लगने से दीप्तमान हो जाता है और थोड़ी देर पश्चात् वायु में मिल जाता है । अल्फाजुल्फारसिय-तुल् मुअर्रिबतः नामक वेरूत में प्रकाशित ग्रंथ में लिखा है कि केचुआ पेटभरकर मिट्टी इस भय से नहीं खाता कि कदाचित् कहीं उसकी राशि समाप्त न हो जाय । इसलिये भूखा मरते-मरते मर जाता है ।

केचुए से ताम्र निकालना

केचुओं से प्राप्त ताम्र के पर्या०—(अ०) जौहर खरातीन, जसद खरातीन, मिस खरातीन; (हिं०) नाग ताँवा । यह लोहे या चीनीलोहे (हृदीद चीनी) के समान किंचित् रक्तवर्ण की एक वस्तु है जो विशेष विधि से निकाली जाती है । विधि निम्न हैं—

(१) बहुत से केचुए एकत्रित करके जलाते हैं और राख को संग्रह करके धोते हैं । उसके भीतर दाने होते हैं, जिनको लेकर मलते हैं । इसका रंग किंचित् लाल होता है । (मख्जन) ।

(२) ताजा केचुए कुचलकर ताँबे की देगची में भरकर नीबू का रस डालकर ढकने से देगची का मुँह ढँककर उसे चूल्हे पर चढ़ाकर मंदाग्नि से पकायें । इससे समग्र यशद ढकने में और देगची के किनारों पर एकत्रित हो जायगा । (मुहीत) ।

(३) मोथा (सुअद) और सुहागा ८-८ भाग, हलदी और गोपित ४-४ भाग, शहद और केचुए २४ भाग सबको घी में भूनकर टिकिया बनाकर मिट्टी के बरतन में बंद करके भारी लोहे के कूजा में रखकर भट्टी में जला लें । सफ़ेद कँगनी के से दाने निकलेंगे । (मुहीत) ।

(४) शहावी लिखित केचुओं से ताम्र निकालने की विधि यह है कि ताजे केचुओं को जमीन से निकालकर मिट्टी इत्यादि से साफ़ करके एक दूध के घड़े में डालकर अग्नि पर रखें जिसमें दूध और केचुए सब कुछ जलकर राख हो जायें । फिर निम्नलिखित द्रव्यों में से प्रत्येक राख का आधा लें । यथा—सुहागा, गुग्गुलु शुद्ध, लाल बुँधची, सरसों, पुराना गुड़, शहद, हड़ का बकल, बहेडे का छिलका, आमला, सज्जी, अँट का ऊन, भेंड का ऊन

*गण्डूपद कृमि (Round worm) Ascaris Lumbricoides.

और गोघृत—इन सबको बारीक करके राख में मिलाकर गाय के गोबर में मिलाकर उपले बना लें और धूप में सुखा लें। इसके बाद जमीन में एक गढ़ा खोदकर उसमें प्रथम फोग ? वृक्ष की पतली-पतली लकड़ियाँ बिछाएँ। इन लकड़ियों पर उक्त उपले क्रमशः रखकर आग लगाएँ। दो-तीन दिन बाद सम्पूर्ण राख निकालकर उसे सावधानी से धोएँ। इससे ताँबा के टुकड़े निकलेंगे। इनको कुल्हिया में आगपर पिघलाकर अँगूठी वा जो वस्तु अभीष्ट हो बना लें।

नोट—खजाइनुल् अदवया में लिखा है, “एक मित्र कहते हैं कि जसद खरातीन के संबंध में मेरा निजी अनुभव यह है कि उसका रासायनिक विश्लेषण करने से यह ज्ञात हुआ कि वह फॉस्फेट ऑफ आयर्न है, न कि ताम्र। परमात्मा ने उसे इस प्रकार संघटित किया है कि मानवी फॉस्फेट ऑफ आयर्न का योग उसका किञ्चिन्मात्र भी मुकाबला नहीं कर सकता।”

(५) (२ रत्तल) केचुए लेकर रात भर दूध में रखकर प्रातःकाल गोघृत में भून लें। फिर (२ रत्तल) गोदुग्ध में जिसमें मधु, टङ्कण और भेड़ का ऊन प्रत्येक १७॥ मा० मिला हो, मिलाकर टिकिया बनाकर सुखा लें। पुनः ३० सेर कोयला जलाकर आग देवें और धौकनी से धौकें। इससे वह कबाव होकर चाँदी की तरह सफ़ेद ताँबा प्राप्त होगा। (मुहीत)।

गंडूपदोत्थ ताम्र के गुण-प्रयोग—१२ रत्ती उक्त दानों को जलमें पीसकर पीना अहिफेन और बछनाग का अगद है। इनको मुख में धारण करने से जायफल की तीक्ष्णता और नीम की तिक्तता अनुभव नहीं होती। इससे यह जाना जाता है कि वह असली है। विष मिले हुए भोजन में इनको डालकर पकाने से विषप्रभाव एवं उसकी उग्रता नष्ट होती है। इसे मुख में रखने से भी सर्प एवं प्रायः अन्यान्य विषों में लाभ होता है और इससे प्यास मिटती है। इसकी अँगूठी बनाकर पास रखने से सर्पदंश का भय और विद्युत् का भय जाता रहता है। (मख्जन। मुहीत)।

मिफ्ताहुल्खजाइन के रचयिता के अनुसार भारत के प्रसिद्ध अगदत्रय में से एक यह भी है। योगी और सन्यासी इसकी अँगूठी बनाकर राजा और महाराजाओं को भेंट करते हैं। क्योंकि इसमें यह एक विशेष गुण है कि जो इसकी अँगूठी धारणकरले फिर उसके पास कोई विषधर जीव फटक नहीं सकता। इससे बनी हुई भस्म वाजीकरण और शरीर के बलवर्द्धनार्थ वास्तविक अर्थ में रसायन है। सुतरां अन्य किसी भी धातु की भस्म इसकी तुलना में नगण्य एवं तुच्छ है। इसके

अतिरिक्त स्वयं केचुए को भी वाजीकरण के औषधों में नाना भाँति से उपयोग करते हैं। योगों में प्रायः इसे मृत्तिका इत्यादि से शुद्ध करके डालते हैं। अस्तु, इसके शोधन की कई उत्तमोत्तम विधियाँ यहां लिखी गई हैं।

केचुओं के शोधन की विधि

अजवायन को नीबू के रस में पीसकर उसमें रखने से अथवा अजवायन को दूध में पीसकर उसमें केचुए डालने से उसकी सारी मिट्टी दूर हो जाती है। (मुहीत)।

केचुओं को साफ पानी में डाल दें। फिर एक-एक केचुआ लेकर उसको बीच से तोड़कर इस प्रकार रेत-मिट्टी निकालें, जिस प्रकार जानवरों की आँतों से गोबरादि निकाला जाता है। अर्थात् एक ओर से पकड़कर दूसरी तरफ रेत को दूह कर निकालें और अच्छी तरह जल से धो डालें। इससे वे मलरहित हो जायेंगे। फिर उन्हें सुखालें। परन्तु उक्त विधि से रेत के साथ आंतरिक द्रवभाग भी निकल जाता है। (मि० ख०)।

दूध की कच्ची लस्सी बनाकर केचुओं को उसमें डाल दें। वे लस्सी को पी जायेंगे और रेत को निकाल देंगे। आवश्यक हो तो चार पहर के बाद लस्सी को बदल दें। किन्तु उक्त विधि में केचुओं का जीवित होना आवश्यक है। मरे हुए इस प्रकार मलरहित नहीं हो सकते। उक्त विधि से उनका आंतरिक द्रवांश भी सुरक्षित रहता है। दूध के अभाव में छाछ की लस्सी भी काम में ले सकते हैं। किन्तु दूध सर्वोत्तम है। (मि० ख०)।

प्रकृति—रतुवतगरीबा के साथ प्रथम कक्षामें उष्ण और स्निग्ध, मतांतर से द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष; अन्य मतसे तृतीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है। **रंग**—लाल, गुलाबी व सफ़ेद, कोई-कोई पुराना श्यामता लिये होता है। **स्वाद**—संभवतः फीका और किञ्चित् नमकीन। **अहितकर**—मस्तिष्क की वातनाडियों वा पुठों को तथा आमाशय और अन्न को हानिप्रद है। **निवारण**—गोघृत और बादाम का तेल। **प्रतिनिधि**—जोंक। ग्रह-वृहस्पति। **प्रधानकर्म**—मूत्रल, वाजीकरण और अर्शजन्य शोथमें लाभकारी है। **मात्रा**—३॥ मा० से १०॥ मा० तक। मुहीत के अनुसार ४॥ मा० तक। मुफ़रदातनासिरी में इसे हराम वा निषिद्ध लिखा है। अर्थात् यह केवल बहिर प्रयोग में आता है।

गुणकर्म तथा प्रयोग—यह मूत्रल और परम वाजीकरण है। अस्तु, १०॥ मा० केचुओं को अंगूरी दोशाब (खट्टा अंगूरों का रस) में (वा पानी में) पीसकर पीने से मूत्र का प्रवर्तन होता है और मांस की यखनी के साथ पीने से कामोद्दीपन होता है। तिल के तेल में पकाकर गलरोग विशेष (खुनाक) पर लेप करने से उपकार होता है। यह खाँसी के लिये भी परम गुणकारी और परीक्षित

है। इसको बारीक पीसकर बादाम के तेल में मिलाकर लगाने से अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है और तज्जात क्षत का रोपण और संधान होता है। वृक्क और बस्तिस्थ अश्मरी और कण्ठप्रसव में इसका आंतरिक प्रयोग गुणकारी है। मद्य के साथ पाण्डुजनित पीतवर्णता को यह उसी क्षण दूर करता है। इसके काढ़े में मुरसाबी की चरबी मिलाकर कर्णपूरण करने से कर्णशूल आराम होता है। इसके काढ़े में जैतून का तेल मिलाकर दर्द से विरुद्ध कान में कर्णपूरण करने से भी कर्णशूल (वा दंतशूल) मिटता है। केचुओं के ऊपर नमक छिड़क दें और उससे जो पानी निकले उसे कान में टपकाएँ। इससे भी कान का दर्द दूर होता है। काकशोथ और कंठशोथ में इसका लेप गुणकारी है। यह नज़ले को रोकता है। कटी हुई वातनाडियों के संधानार्थ पिसे हुए ताजे केचुओं का लेप परीक्षित है। परन्तु शर्त यह है कि उसे तीन रात-दिन बाँधे रखें और खोलें नहीं। इसका उसी प्रकार सेवन वातमंडलस्थ क्षत को लाभकारी है। चलितसंधि पर इसे चक्की की झाड़न के साथ लेप करने से वह स्थिर एवं दृढ़ होती है तथा घृष्ट और पिष्ट (ज्वर्य और सकृतः) स्वरूप आघातों में इसके लेप से उपकार होता है और उष्ण मूजन उतर जाती है। जर्दालू के बीजों के तेल के साथ इसका लेप अर्श में लाभकारी है। लिगवर्दनार्थ जैतून का तेल मिला हुआ इसका काढ़ा तथा जिपत और कद् की पत्ती के साथ इसका लेप अत्यंत प्रभावकारी है। जीवित गदहे के शिश्न के साथ इसका काढ़ा करके (अथवा इसके काढ़े में गर्दभशिश्न के चूर्ण का प्रक्षेप देकर) पीने व लगाने से भी लिगवृद्धि होती है। इसके लिये यह परीक्षित है। अर्श, रक्तस्रुति और गुदचीर में गुबरीले और वरदान ? के पौधे के साथ पकाये हुए केचुओं का पतला लेप (तिला) अनुपम गुणकारी है। जिस स्थान व ऋतु में केचुए न मिलें और उन्हें लेना चाहें तो ऐसा करें कि चील नामक प्रसिद्ध पौधे के पत्ते लेकर एक गढ़ा खोदकर उसमें भर दें। फिर उसके ऊपर मिट्टी डालकर पानी डालें। शीघ्र ही केचुए पैदा हो जाते हैं। चील नामक पौधा भारतवर्ष और बंगाल में बहुतायत से होता है और इसे चील का साग कहते हैं। (मखन)।

गोलानी के अनुसार केचुओं को पुराने जैतून के तेल में इतना पकायें कि अच्छी तरह पक जायँ। फिर उस तेल को लेकर खल्वाट (दाउस्सज़लब) पर मर्दन करें। इसे निरंतर लगाते रहने से उक्त रोग में विलक्षण प्रभाव होता है।

मुफ़रदात हिंदी के रचयिता कहते हैं कि मिट्टी से साफ किए हुए ताजे केचुए कुट्टित-भूष्ट मांस के साथ १०॥

मा० और सूखे हुए केचुए १॥॥ मा० यथाविधि सेवन करने से परम वाजीकरण है।

केचुओं को चूर्ण करके एक प्रकार के मद्य (तिला) के साथ खाने से तीन दिन में पाण्डु का नाश होता है। यदि इसी प्रकार विशेषतः (अक्रीद इनब) के साथ भक्षण करने से मूत्र का प्रवर्तन होता है और सुखा-पीसकर खाने से अश्मरी का नाश होता है।

(मुहीत)।

लिङ्गवर्द्धन और स्थूलीकरण के लिये हुकीम जाफ़र का यह प्रयोग परम गुणकारी है। तीन तोले केचुए छोटी कटाई के पत्र-स्वरस में और उसके अभाव में दूध में पीसकर एक वस्त्र-खंड पर लेप करके शिश्न के ऊपर लपेट दें और आठ पहर तक लिपटा रहने दें। तदुपरांत उष्ण जलसे धो डालें। इसी प्रकार तीन-चार बार प्रयोग करें। इससे वह तीन-चार जौ के बराबर बढ़ जायगा।

ख़ाजाज़ियाउद्दीनबख़्शी लिखित लज्जतुन्निसा नामक ग्रन्थ में लिखा है कि केचुओं को तिल के तेल में पकायें। फिर उस तेल को सप्ताह पर्यंत लिंग पर मलते रहें और प्रति दिन गरम पानी से धो डाला करें। इससे वह एक दो अंगुल बढ़ जायगा और दृढ़ वा सख्त भी हो जायगा।

ख़ाजाइनुल् अद्विया के रचयिता के अनुसार लिंग को स्थूल करने के लिये इसको तिला के योगों में मिलते हैं। वहिर और आभ्यंतरिक इसका उभयविध प्रयोग पुंस्त्वरक्षक है। वह कहते हैं, "हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि साँड़ा, रेगमाही, बीरबहूटी, हड़ताल और कनेर इत्यादि सकल उपादानों से इस रोग के लिये केचुआ सर्वोपरि है।" निम्न प्रयोग से कई दिनों में हस्तमैथुनी को बहुत उपकार होता है। केचुए ३ रत्ती और मैनसिल २ रत्ती दोनों को लोहे के बरतनमें डालकर तिल के तेल के साथ लोहे के दस्ते से रगड़े। जब मलहम की भाँति हो जाय, तब हस्तमैथुनी के शिश्न पर सुपारी छोड़कर रात को मलें और कपड़ा लपेट दें। प्रातःकाल गरम पानी से धो डालें। सूखे केचुए पीसकर सिकंजीवीन वा मद्य के साथ पांडु के रोगी को खिलाने से तुरत लाभ होता है। पाँच सेर केचुए पानी में डालकर उन पर थोड़ा-थोड़ा नमक छिड़कें कि मिट्टी से साफ़ हो जायँ। फिर उन केचुओं को साफ़ पानी के साथ लोहे के बरतन में डालकर और पाँच सेर नमक और मिलाकर मंदाग्नि से पकायें और केचुओं को चमचे से नीचे-ऊपर करते रहें। यहाँ तक कि उनका सब पानी शुष्क हो जाय और सब केचुए भी पूर्णतया नमक हो जायँ। उक्त लवण में से सालन में डालकर खाने से असीम सहवासेच्छा होती है। पारा, सफ़ेद घुँघची, संखिया कालीजीरी, हड़ताल, मालकंगनी, सफ़ेद कनेर की जड़की

छाल, बिना बुझा चूना—इनको कूट लें। फिर उसमें कै का निकला हुआ केचुआ रखकर घोड़े की लीदमें गाड़ दें। दो सप्ताह के बाद उसे निकालकर दूध में पीसकर बटिकाएँ बाँध लें। यह हस्तमैथुनी को परम गुणकारी है। इससे लिंग की वक्रता दूर होती है।* मनुष्य के पेट से मलमार्ग द्वारा निस्सरित केचुए को सुखा-पीसकर आँख में लगाने से जाला कट जाता है। बालक का सिर फर जाय और उसे किसी प्रकार आराम न हो, तो केचुओं की मिट्टी कई दिन लगाएँ। यद्यपि इससे दाह होगा, पर कई दिन लगाने से आराम हो जायगा। (खजाइन)।

तालीफ़ शरीफ़ी के अनुसार वाजीकरण तिलाओं और प्रलेपों में केचुए का उपयोग होता है, विशेषतया मनुष्य के मुख से निकला हुआ इसके लिये अधिक गुणकारी होता है।

मिश्रताहुल् खजाइन—के अनुसार यूनानी चिकित्सा पद्धति में वाजीकरण एवं बलवर्द्धनार्थ तथा पाण्डु एवं वृक्क और वस्तिस्थ अश्मरी में केचुए का उपयोग होता है। यह वाजीकरण है और वातनाडियों और वस्ति को विशेष-रूपेण बलप्रद है। केचुए से प्राप्त ताम्र की भस्म रसायन है।

शुद्ध प्रक्षालित केचुओं को सुखाकर खरल में बारीक पीसकर रखें। वाजीकरणार्थ उसमें से १ मा० चूर्ण एक पाव घृताक्त हलवे में मिलाकर खा जायें। ऊपर से एक सेर भैंस का दूध पकाकर मिश्री मिलाकर पीलें। चालीस दिन इसी प्रकार सेवन करने से युवावस्था का आनंद प्राप्त होता है... .. (मरुजनुल् अक्सीर)।

वमन द्वारा मनुष्य के मुख से उत्सर्गित केचुआ एक दाना (अदद) और तिल के तेल में मरी हुई मक्खी के सिर ५० अदद, सफ़ेद घुँघची के छिलकारहित तीन बीज—इनको खूब बारीक पीस लें। गुण-प्रयोग—वाजीकरण, स्तम्भन और शिश्रप्रहर्षण के लिये एक दाना लौंग को चाकू से छील-चावल की तरह लंबा और पतला बनाएँ। फिर प्रायुक्त औषधि इसके ऊपर लगायें और इसे शिश्र के छिद्र में प्रविष्ट कर दें। इससे असीम स्तम्भन होगा। यदि इसकी उग्र क्रिया से व्याकुलता प्रतीत हो, तो शीतल जल से स्नान करे और सहवास से खाली होने पर प्रातःकाल खीरे के बीजों का शीरा, सफ़ेद जीरा, गुलबनफ़शा और कलमीशोरा निकालकर मिश्री मिलाकर पीलें। घृत मिला आहार करें। एक दिनके प्रयोग से महीने भर शक्ति बनी रहती है। (मरुजनुल् अक्सीर)।

जसदख़रातीन की भस्म

जीवित केचुए एक सेर लेकर रात को खट्टी छाछ में

*मुहीत में दूधुतवील शब्द में उक्त प्रयोग दिया है।

डालकर रख दें। प्रातःकाल निकाल लें। शुद्ध मिलेंगे। फिर गाय या भैंस का साफ़ गोबर थाली इत्यादि में ले लें जिसमें भूमि पर गिर कर उसमें मिट्टी न मिल जाय। इसके बाद शुद्ध केचुओं को उक्त गोबर में मिलाकर उपले बना लें। परन्तु इस बात का ध्यान रखें कि कहीं केचुए दूट न जायें। उन उपलों को धूलि इत्यादि बचाकर धूप में शुष्क कर लें और इन्हें सावधानीपूर्वक जलाकर राख को पानी से धो डालें। इससे जसद ख़रातीन (गण्डूपदोत्य यशद) रेशम की भाँति बारीक रोमवत् नीचे से निकलेगा। उन्हें नाज़बू की एक छटाँक लुगदी में रखकर कपड़मिट्टी करे और दो सेर उपलों की आग दें। भस्म हो जायगा। उसे बारीक करके शीशी में रखें। गुण-प्रयोग—वाजीकरण के लिये एक (ख़स) के बराबर इसकी मात्रा पर्याप्त है। इससे इतनी शक्ति प्राप्त होती है कि वश में रखना कठिन हो जाता है! यदि इससे इतनी अधिक शक्ति बढ़ जाय कि सीमा का उल्लंघन होता हो तो दही पिलायें। इससे उसका निवारण हो जायगा। (इसरार सदरिया)। वैद्यक मत से—

गण्डूपदाद्य तैल—कल्कार्थ गण्डूपद (केचुए) १ भा०, कड़ुवा तेल ७ भा० और पाकार्थ जल १६ भा०। यथा-विधि तैल प्रस्तुत करें। यह व्रणरोग में हितकारी है। (च० द०)। विशुद्ध कुसुंभतैल में भूमिलता (केचुए) के चूर्ण को मिश्रित कर पादतलपर अभ्यङ्ग करने से वीर्य-स्तम्भ होकर लिङ्ग दृढ़ होता है। (भैष० वीर्यस्तम्भाधिकार)।

एक सेर जीवित केचुओं को लेकर दही में डालकर शुद्ध करके सुखालें। इस प्रकार शुद्ध एवं शुष्क केचुओं को लेकर एक शाहदीमक (Queen ant) के साथ पीसकर तीन गोलियाँ बाँध लें। इसमें से एक वटी प्रातःकाल खाकर ऊपर मिश्री मिला कोष्ण गोदुग्ध पान करें। इस प्रकार तीनों गोलियों को तीन दिन में खा जाने से नपुंसक भी पुंस्त्व प्राप्त करता है। परीक्षित सिद्ध औषध है।

इसके सेवनकाल में और तदुपरांत चालीस दिवस पर्यंत ब्रीसहवास से बचते रहें और रोहू मछली के शिर का मांसरस गेहूँ की रोटी के साथ खाते रहें। अम्ल पदार्थ वर्जित है।

केंचुल—संज्ञा स्त्री० [सं० केंचुक] [वि० केंचुली] सर्प आदि के शरीर पर की खोल। केंचुली।

केंचुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० केंचुल] दे० 'केंचुल'।

केंचुवा—संज्ञा पुं० दे० 'केंचुआ'।

केंत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

केंदु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़। केंदु (द), केन्दु (क), तिन्दुक।

केंदू—संज्ञा पुं० [सं० केन्दु] तेंदू।

कैंसर—संज्ञा पुं० [अं० Cancer] कर्कटाबुद ।

केजः—[] केवड़ा ।

केजनस इन्डिकस—संज्ञा पुं० [ले० *Cajanus indicus*] (डी० भ० १, पृ० ४७९) ।

केजयमीन—

केजा—संज्ञा पुं० दे० “केना” ।

केजीन—[अं०] केसीन ।

केजुपुट—[अं०] कायुपुटि । कैपूती ।

कुजुपुटाल—संज्ञा पुं० [अं०]

केजुरिया—[यू०] जंगली कासनी ।

केजेनियम्—[]

केजोपुटि ट्री—संज्ञा स्त्री० [अं० *Cajoputi tree*] कायपुटि । कैपूतीका पेड ।

के (कै) ट ऑयन—संज्ञा पुं० [अं० *Kat ions*] जो आयन धनविद्युत् से आविष्ट होते हैं । (क्रि० शा० पृ० ४६८) ।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी कटेरी ।

केटमी अम्ब्रेटी—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० *Ketmie ambretie* मुश्कदाना । लताकस्तूरी । (डी० भ० १, पृ० २०६) ।

केटमी अफिडेलस डिचनवरे—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० *Ketmie-a-fedellus dechanvarae*] (डी० भ० १, पृ० २१३) ।

केटमी एसिडी—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० *Ketmie, acide*] लाल पटुआ । लाल अम्बारी । (डी० भ० १, पृ० २०९) । दे० ‘पटुआ’ ।

केटमी कोमेस्टीबले—संज्ञा स्त्री० [फ्रां०] (डी० भ० १ पृ० २०४) ।

केटमीडी कोचिन चाइनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० *Ketmie de cochin chine*] अढ़उल । गुड़हल । जपा । (इं० मे० मे०) । दे० ‘अढ़उल’ ।

के (कै) टाबॉलिज्म—संज्ञा पुं० [अं० (*Katabolism*)] शरीरधातुओं द्वारा आहारद्रव्यों के उपयोग का एक प्रकार जिसमें जठराग्नि द्वारा पाक होकर इन द्रव्यों का विघटन (तोड़-फोड़) करके उनका उपयोग और मलों की उत्पत्ति होती है । इसे ‘मलपाक’ कहते हैं । (क्रि० शा० पृ० १८६) ।

के (कै) टालेज—संज्ञा पुं० [अं० *Catalase*] एक प्रकार का एन्जाइम । यह अनेक धातुओं में रहते हैं तथा हायड्रोजन पर-ऑक्साइड को विघटित करते हैं । (क्रि० शा० पृ० ३११) ।

केटेरेक्ट, कंटेरेक्ट—संज्ञा पुं० [अं० *Cataract*] मोतियाबिन्द । काच (तिमिर) । लिङ्गनाश, नीलिका काच ।

के (कै) टेलाइजर, कंटेलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० *Cataizer, Catalyst*] आधुनिक रसायनशास्त्रोक्त द्रव्य जो स्वयं रासायनिक क्रिया में भाग नहीं लेते, परंतु इनकी उपस्थिति

(सान्निध्य) के कारण ही रासायनिक क्रिया असाधारण वेग से हो जाती है । इनकी इस क्रिया को (कैटेलिसिस *Catalysis*) या कैटेलिटिक एकशन (*Catalytic action*) कहते हैं । (क्रि० शा० पृ० ३०३-४) ।

केडङ्गु—[मल०] जयन्तिका । जैत । रवासन ।

केतक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केवड़ा । दे० “केतकी” ।

केतक फल—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कुचेलक । कुचिला । कुचला । (च० द० अश्मरी-चि० कषाघृते) । (२) केतकी फल ।

गुण—यह त्रिदोषनाशक और विषघ्न है । (च० सू० २७ अ०) ।

केतकर—संज्ञा स्त्री० दे० “केतकी” ।

केतकाद्य तैल—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] वातव्याध्यधिका-रोक्त तैलयोग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—**क्वाथाय**—केतकी-मूल, कंधी (वाट्यालक) प्रत्येक ४२ पल २ कर्ष १० माशा, पाकार्थ जल १२८ श० शेष १६ श०, कांजी १६ श० एकत्र यथाविधि कल्कतुल्य तिलतैल मिलाकर पकायें । (च० द० वा० व्या० चि०) ।

केतकि—संज्ञा स्त्री० [बं०, ते०] केतकी । केवड़ा ।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी; नुकीली, चपटी, कोमल और चिकनी होती हैं और जिनके किनारे और पीठ पर छोटे-छोटे कांटे होते हैं । पुष्प के रंगभेद से केतकी दो प्रकार की होती है—(१) श्वेत पुष्प—इसे ‘केवड़ा’ या ‘केवरा’ (सितकेतकी) कहते हैं । यह इसका पुंपुष्प अर्थात् नर पौधा है । इसका पौधा केतकी से कुछ बड़ा होता है । यह सावन महीने में फूलता है । इसके पत्रपर तीक्ष्णकण्टक होते हैं । (२) पीतपुष्प—इसे सुवर्णकेतकी या हेमकेतकी या केवल ‘केतकी’ कहते हैं । यह पौधे का नारी (स्त्रीपुष्प) भेद है । यह माघ-फागुन महीने में फूलती है । इसके पत्रपर कांटे नहीं होते अथवा साधारण होते हैं । पर्याय—(सं०) केतक, क्रकचछद, विफला, धूलिपुष्पिका, कण्टदला, शिवद्विष्टा, नृप-प्रिया, क्रकचा, दीर्घपत्रा, स्थिरगन्धा, गन्धपुष्पा, इन्दुकलिका, दलपुष्पा, पांशुला, सूचिपुष्प, चामरपुष्प, जम्बूल, सूचिकापुष्प, हलीन, सूचीपत्र तीक्ष्णपुष्पा; (हिं०) केतकी, केवड़ा; (बं०) केया, केवड़ा; (अ०) कदर, कांजी; (गु०) केवड़ो; (बम्ब०, म०) केवड़ा; (ते०) मोगी स्त्री, गजाङ्गी, केतकी; (ता०) केदगै; (कना०) केदपे, मुण्डिगे; (मल०) कैया, केतकी; (कों०) केदगी, बोण्डीय; (अ०) कल्डेरा बुश (*Kaldera bush*), स्क्यू पाइन (*Screw pine*), अम्ब्रेला ट्री (*Umbrella tree*); (ले०) पण्डेनस फेसिवयुलस (*Pandanus fasciculus*) ।

पॅण्डेनस ओडोरेटिस्सिमस (P. Odoratissimus); फ्रैग्रेण्ट
स्कूपीडिन (Fragrant Screw-pine)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के समस्त प्रदेश।

उपयोगी अवयव—मूल, सार, अर्क, धूलि और केशर।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का उग्रगन्धयुक्त
तेल होता है। भाषा में इसको 'इत्र केवड़ा' कहते हैं।

अर्क केवड़ा—१ भाग पुष्प और २० भाग जल
मिश्रितकर वाष्पयंत्र द्वारा अर्क खींचा जाता है।

गुण—श्वेतकेतकी मधुर, तिक्त, कफनाशक, कटु तथा
लघुपाकी है। इसका पुष्प वर्णकारक तथा केशदुर्गन्ध-
नाशक है।

स्वर्णकेतकी—तिक्त, उष्ण, लघु, नेत्रों को हितकारक,
मधुर, कटु, कफ तथा विषरोगनाशक है। इसका पुष्प
सुखकर, कामोद्दीपक, बृंहण, किंचित् उष्ण तथा किंचित्
कटुतिक्त एवं सुगन्धपूर्ण और नेत्रों को हितकर है। स्तन—
अतिशीतल, देहदृढकारक, कटु, वर्णकारक, कफपित्तनाशक
तथा रसायन है। (रा० नि० व० १०)। इसके
केशर-फल में भी उपर्युक्त गुण हैं। भावप्रकाश के अनु-
सार श्वेतकेतकी—कटु, स्वादु, लघु, तिक्त, कफघ्न, उष्ण,
तिक्तरसयुक्त तथा नेत्रों को हितकर है। इसी प्रकार हेम-
केतकी (पीतकेतकी) के भी गुण हैं। (भा० पू० १ भ०)।
श्वेतकेतकी फल—किंचित् उष्ण, स्वादु, मेह, वात-कफघ्न
है। (वै० निघ०)। केतकी वातल, वृष्य, तन्द्रा तथा
निद्राकारक है। (अत्रि० १६ अ०)।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षामें उष्ण एवं रुक्ष है। पर कोई-
कोई कुछ-कुछ उष्णता लिये समशीतोष्ण लिखते हैं। वैद्यों
के मतसे शीतल है।

रंग—बाहर हरा भीतर सफेद ? (बुस्तान)। स्वाद-
फीका वेमजा। वैद्यक के मतसे मधुर-तिक्त। अहितकर—
नजला (प्रसेक) कारक। निवारण—अर्क वेदमुश्क।
प्रतिनिधि—केवड़ा। ग्रह—सूर्य। प्रधान कर्म—इन्द्रियों
को उल्लास-प्रद और बलप्रद। मात्रा—६ मा० से १ तो०
तक। अर्क ४ तो० तक।

गुणधर्म तथा प्रयोग—गुणधर्म में यह और इसका अर्क
लगभग केवड़े के समान है। (बु० मु०)।

केतकी उल्लासप्रद है और हृदय, मस्तिष्क और सम्पूर्ण
इन्द्रियों को शक्तिप्रदान करती है तथा हृत्स्पंदन, हृदय की
उष्णता, आमाशयिक दाह और मूर्च्छा को लाभकारी है।
यह मनोहर्षणकारी है, रक्त को शुद्ध करती है, अङ्गमर्द
और क्लान्ति एवं श्रान्ति को दूर करती है। शीतला से पूर्व
इसके शर्बत के सेवन से वही लाभ होता है, जो केवड़े
के शर्बत से होता है। यह पित्त को शमन करती है।
किन्तु नजला उत्पन्न करती है और स्वेद को सुरभिपूर्ण

करती है। इसका फूल सूँघने से हृदय और मस्तिष्क
प्रफुल्लित होते हैं और उन्हें शक्ति प्राप्त होती है। इसका
इतर केवड़े के इतर से सूक्ष्म होता है। इसके फूलों का
अर्क केवड़े के अर्क की तरह खींचा जाता है और उसी के
से गुणधर्म और प्रकृति रखता है। भावप्रकाश* में लिखा
है कि केतकी केवड़े का एक भेद है। परन्तु अन्य विद्वानों
के मतसे केवड़ा केतकी का एक भेद है। केतकी तीक्ष्ण,
उष्ण और चक्षुष्य है। (खजाइन)।

अनुभूत चिकित्सा सागर में लिखा है कि इसके फूलों का
अतर उद्दीपक है। वायु से किसी अंग के ँँठ जाने पर
इसके फूलों का तेल उपकारी है। इसके फूलों का तेल
मलने से शिरोशूल और आमवात नष्ट होता है। इसकी
जड़ का तेल भी औषध के काम आता है। इसके फूल
को मीठे तेल में डालकर चालीस दिन तक धूपमें रखकर
मलने से वातजन्य शूल आराम होता है।

तालीफशरीफी में लिखा है—दोनों प्रकार की
केतकी मधुर, शीतल, तिक्त, चरपरी, लघु और कफ-
विकारनाशक है। केतकी का अतर केवड़े के अतर से
सूक्ष्म (लवीफ) होता है।

केतकीद्वय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दोनों प्रकार की केतकी
अर्थात् केवड़ा और केतकी। (ध० नि०)।

केतकीमूलयोग—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी की जड़ का योग।

केतकी वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केतकी या केवड़ा का पेड़।

केतकीक्षारयोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक योग जिसमें
केतकी का बना क्षार पड़ता है।

केतन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चिह्न। स्थान। (हे० च०)।

केतारा—संज्ञा पुं० [सं० कान्तार] एक प्रकार की ईख। दे०
'ईख'।

केतिसा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कबीला। कमीला। कम्पिल्ल।

केतु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अरनी। अग्निमन्थ।
(ध० नि०; २० मा०)। (२) रोग। पीड़ा। (३)

उत्पात। उपद्रव। (४) चिह्न। लक्षण। (मे०)।

केतुग्रहवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैदूर्य रत्न। (भा०
पू० १ भ०)।

केतुतारा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] धूमकेतु नामक तारा।
पुच्छल तारा। इसके उदय होने से देश में विविध प्रकार
के उपद्रव होते हैं।

केतुभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेघ। बादल। (श० मा०)।

केतुरत्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैदूर्यमणि। लहमुनिया
नामक रत्न। (प० मु०)।

*केतकः कटुकः स्वादुर्लघुस्तिवतः कफापहः।

उष्णातिक्तरसाज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी॥ (भावप्रकाशः)।
श्लेष्मवातप्रशमनं उष्णवीर्यं च निर्मलम्।

पुष्पाणां प्रवरं चैव केतकी पुष्पमुच्यते॥ (क्षेमकुतूहलम्)।

केतुवसन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] झंडा । पताका ।
 केतो—संज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के गरम देशों में रहने-
 वाला एक जानवर जो लोमड़ी के आकार का होता है ।
 केथार्टिक—वि० [अं० Cathartic] रेचक । दस्तावर
 (औषध) ।
 केथार्टिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Cathartic acid] वह
 अम्लद्रव्य जो मलका भेदनकर उत्साहित करे । भेदकाम्ल ।
 केथार्टीकार्पस फिस्च्युला—संज्ञा पुं० [ले० Catharti-
 carpus fistula] अमलतास । आरग्वध ।
 केथीटर—संज्ञा पुं० [अं० Catheter] मूत्रशलाका । (अ०)
 कासातीर ।
 केदगई—संज्ञा स्त्री० [ता०] केतकी । केवड़ा ।
 केदर—वि० [सं० त्रि०] (१) टोक । काण । काक । कौआ ।
 (२) वनस्पति विशेष । (अम०) ।
 केदली—संज्ञा पुं० [सं० कदली] केले का पेड़ । दे० 'कदली' ।
 केदार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अद्रि । पर्वत । पहाड़ ।
 (२) जोता हुआ खेत । कृष्ट क्षेत्र । (३) क्यारी । थाला ।
 आलवाल । (मे०) । (४) केदारशालि । (बं०) आमन ।
 (वै० निघ०) । (५) एक प्रकार का बढ़िया धान । शालि
 धान । (६) पद्माक्ष । पद्मकाष्ठ ।
 केदारक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केदारजात पण्डिकधान्य-
 भेद । जोते हुए खेत में उत्पन्न साठी । साठी । धान ।
 दे० 'केदारशालि' ।
 केदारकटुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी । (रा० नि०
 व०६; ध० नि०) ।
 केदारकडु—संज्ञा पुं० [म०] कुटकी ।
 केदार (री) कुल्या न्याय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वस्थ-
 वृत्त में बताये हुए नियमों के प्रतिकूल आहारादि
 (आहाररस) से शरीर के अन्यान्य धातुओं का पोषण
 जिस क्रमसे होता है तथा जिसके विषय में आयुर्वेद में
 तीन वाद प्रचलित हैं, उनमें से एक इस न्याय के अनुसार
 धातुत्वत्तिक्रम माननेवाले लोगों का यह कहना है कि
 जैसे नालियों में बहनेवाला एक ही जल बगीचे या खेत
 में होनेवाले विविध वनस्पतियों का सिंचन करता है ।
 वैसे ही आहाररस वाहिनियों द्वारा शरीर में परिभ्रमण
 करते समय रक्त-मांस इत्यादि धातुओं का पोषण करता
 रहता है । इस न्याय के अनुसार आहाररस ही सर्व-
 धातुओं का पोषण करता है । वाद का यह पक्ष सुश्रुतसंमत
 है । इनके अतिरिक्त अरुणदत्त की सर्वाङ्गसुन्दरी में
 'एककालधातुपोषणपक्ष' का उल्लेख है जो इस केदारी-
 कल्यान्यायका ही दूसरा नाम है । इस पक्ष की धातुपोषण
 की कल्पना आधुनिक धातुपोषण की उपपत्ति के साथ
 मिलती है । सु० सू० १४ अ० श्लोक ११-१२ पर
 श्री घाणेकर महोदय की टीका ।

केदारखण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) वृहत्
 आलवाल विशेष । बड़ी क्यारी या थाला । (२)
 हिमवती पर्वत प्रदेश ।
 केदारज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हिमवती प्रदेश का जल ।
 गुण—विपाक में मधुर, दीर्घपाकी (गुरु) एवं दोषकारक
 है । (रा० नि० व० १४) ।
 केदारभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हिमालयप्रदेशस्थ
 भूमि ।
 केदारशालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिमालयप्रदेशस्थ धान ।
 उन्नतभूमि में उत्पन्न धान्य । (बं०) आमन धान । घेते
 धान । गुण—मधुर, वृष्य, बलवर्धक, पित्तवर्धक, किंचित्
 कषाय, अल्पमलकारक तथा कफघ्न है । (रा० नि० व०
 १६) । केदारधान्य—मधुर, शीतल, रुचिकारक तथा
 स्तन्यवर्धक है । (वै० निघ०) । केदारप्रभवधान्य—रूक्ष,
 वातपित्तविनाशक, रक्तपित्त विकारनाशक तथा वातकफ-
 कारक है । (अत्रि० १५ अ०) ।
 केदारी चुवा—संज्ञा पुं० [हिमा०]
 केन—संज्ञा पुं० [अं० Cane] बेंत । वेत्र ।
 संज्ञा पुं० [ता०] वाराहीकन्द । (ले०) टक्का पाइने-
 टिफोलिया (Tacca pinnatifolia) । (ओ० सं०;
 इ० मे० मे०) ।
 केना (नी)—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) सागपात । तरकारी
 भाजी । (२) पत्रशाक विशेष । केजा । (सं०) कंचट,
 सहस्रमूली, काण्डपत्री, कोषपुष्पी, वर्षाकाली; (बं०)
 काँचड़ा, काँचड़ा दाम; (म०) केना; (सिंध) चूड़ा,
 केजा; (ले०) कमेलिना बेंगालेंसिस (Commelina
 bengalensis Linn.); (अं०) स्पाइडरवर्ट (Spider-
 wort) । कंचटादि कुल—Commelinaceae) ।
 वर्णन—केनाका काण्ड किंचित् मांसल, प्रसरी तथा
 नीचे मूलयुक्त होता है । पत्तियाँ लट्वाकार या अण्डाकार-
 लट्वाकार, १-३ इंच × ५-१५ इंच बड़ी और
 कुण्ठिताग्र होती हैं । पुष्प पत्रावरणों में ढके हुए और
 नीले होते हैं । मूल के पास अंडाकार भौमिकपुष्प भी
 पाये जाते हैं । नम जगहों पर यह प्रायः पाया जाता
 है और शीतल तथा मूत्रल होता है । (वि० व० पृ०
 १३१) ।
 केना इण्डिका—संज्ञा पुं० [ले० Canna Indica] किवार ।
 लाल सर्वजया । दे० 'सबजया' ।
 केना ओरिएण्टलिस—संज्ञा पुं० [ले० Canna orientalis]
 सबजया ।
 केनाडा टर्पेन्टाइन—संज्ञा पुं० [अं० Canada turpentine]
 कनाडादेशीय चीड़ का पेड़ ।
 केनाडा पलीबेन—संज्ञा पुं० [अं० Canada flebane] एक
 विदेशीय वृक्ष । (ले०) एरिजिरोन केनाडेन्सिस (Erigeron

canadensis), एरिजिरोन विस्कोसम् (Erigeron Viscosum) ।

उत्पत्तिस्थान—उष्ण देश, पश्चिमीय हिमवतीपर्वत, कश्मीर, पंजाब और कनाडा (अमेरिका) ।

उपयुक्त अंग—सुपुष्पित हरित अवस्था में भभकासे निकाला हुआ इसका तेल (Flebane oil) ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का उत्पत् तेल होता है । इसका वर्ण पीताभ तारपीन के तेल के समान होता है । अधिक पुराना होने पर यह गाढ़ा हो जाता है । इसमें तारपीन तेल की तरह गंध भी होती है । यह सुरासार में शीघ्र धुल जाता है ।

गुणकर्म तथा उपयोग—इसमें सम्पूर्ण गुण तारपीन तैलवत् होता है; किन्तु उसकी अपेक्षा यह कम क्षोभक एवं कम प्रभावकारी है । इसके उपयोग से गर्भाशय से होनेवाला रक्तस्राव, रक्तप्रदर, अन्त्र से होनेवाला रक्तस्राव, मूत्रशर्करा, प्रतिश्याय कास तथा सन्निपातज ज्वर का नाश होता है । इसकी गंध से मच्छर भाग जाते हैं । मात्रा—५ से १० बूँद तक ।

केनाडावाल्सम्—संज्ञा पुं० [अं० Canada balsam]

पर्याय—टर्पेन्थाइनाईक्टेडेंसिस (Terpentini nactadensis); (अं०) (Canada Terpentine) ।

वर्णन—एक प्रकार की वृक्ष जो कनाडा में होता है । इसके वृक्ष में चीरा लगाने से बर्लसी नाम का निर्यास निकलता है । भारतवर्ष में कनाडा से इसका निर्यात होता है । रासायनिक संगठन—इसके तेल में—उद्यास (राल) होता है जो पीतवर्णका किञ्चित् हरिताभ एवं स्वच्छ द्रव है । यह मधु तुल्य एक प्रकार की विशेष गन्धयुक्त, सुगन्धिपूर्ण तथा स्वाद में किञ्चित् तिक्त एवं क्षोभक होता है । खुला रखने पर चिपचिपा तथा वानिश की भाँति शुष्क हो जाता है ।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह उष्ण, उत्तेजक और मूत्रल है । इसका संग्रहण एवं उत्तेजन प्रभाव प्रायः मूत्राशय पर विशेष होता है । मूत्राशय की श्लेष्मकला उत्तेजित होकर मूत्र आता है । जब स्त्रियों के ग्रन्थ स्थान से एक प्रकार का दुग्धवत् श्वेत कफरूप पिच्छिल स्राव (श्वेत प्रदर) होता है तब इसके सेवन से उपकार होता है । अपतंत्रक (हिप्टीरिया) में भी इसके उपयोग से लाभ होता है । पूयमेह में इसका उपयोग कोपाइवा के साथ किया जाता है । मात्रा—५ से २० बूँद ।

प्रतिनिधि—गंधाबिरोजे का तेल ।

केनाबिनोल—संज्ञा पुं० [अं० Cannabinol] भंगसत्व ।

भाँगका सत । दे० 'भाँग' ।

केनाबिस, अमेरिकन—संज्ञा पुं० [अं० Cannabis, American] अमेरिकीय विजया, अमेरिका में होनेवाली

भाँग । दे० 'भाँग' ।

केनाबिस इन्डिका—संज्ञा पुं० [ले० Cannabis indica] भारतीय भाँग ।

केनाबिस सैंटाइवा—संज्ञा पुं० [ले० Cannabis sativa] भंग । दे० 'भाँग' ।

केनाबिन—संज्ञा [अं० Cannabin] विजयासत्व ।

केनाबिनी—संज्ञा स्त्री० [अं० Cannabini] विजयासत्व भेद । (डी० भ० ३, पृ० ३३१) ।

केनार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिर और कपोल की संधि ।

केनिपात (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (श० र०) ।

केनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] केना ।

केने—संज्ञा पुं० [तु०] विदारीकंद । (Tacea pinnatifolia) ।

केनेरियम् कम्प्यून—संज्ञा पुं० [ले० Canarium commune] जंगली वादाम ।

केनेरियम् बेंगालेंस—संज्ञा पुं० [ले० Canarium bengalens] गुगुल । धूप । (डी० भ० १, पृ० ३२१) ।

केनेरियम् स्ट्रिक्टम्—संज्ञा पुं० [ले० Canarium strictum] काला डामर । (अं०) ब्लैक डामर (Black damar) ।

केनेली—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० Cannellee] दालचीनी ।

केनेली डी-काइन—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० Cannellee de-kine]

केनेवल्लिया इन्सिफॉर्मिस—संज्ञा पुं० [ले० Canavallia ensiformis] सफेद सेम । माखनसेम । महाशिमबी ।

के (चे) नोपोडियम् अँट्रिप्लिसिस—संज्ञा पुं० [ले० Chenopodium atriplicis] गोस्मुल ।

केनोपोडियम् अम्ब्रोसिओइडीस—संज्ञा पुं० [ले० Chenopodium ambrosioides] सुगंधवास्तुक । दे० 'बधुआ' ।

केनोपोडियम् ऐल्बम्—संज्ञा पुं० [ले० Chenopodium album] बधुआ ।

केन्थारिस—संज्ञा पुं० [अं० Cantharis] विलायती तेलनी-मक्खी ।

केन्थारिस वेसिकेटोरिया—संज्ञा पुं० [ले० Cantharis vesicatoria] विलायती तेलनीमक्खी ।

केन्थारोडीज—संज्ञा पुं० [अं० Cantharides] विलायती तेलनीमक्खी ।

केन्थारोडीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Cantharidin] तेलनी-मक्खी का सत्व । दे० "तेलनीमक्खी" ।

केन्थियम् अँगुस्टिफोलियम्—संज्ञा पुं० [ले० Canthium angustifolium] कौतःमाली ।

केन्थियम् डिडिमम्—संज्ञा पुं० [ले० Canthium didymum] एरकोला (ता०) । (डी० भ० २, पृ० २११) ।

केन्थियम् नैरो-लीहूड—संज्ञा पुं० [अं० Canthium narrow-leaved] कौतःमाली ।

केन्थियम् पार्विलोरम्—संज्ञा पुं० [ले० *Canthium parviflorum*] (डी० भ० २, पृ० ३१०) ।

केन्थियम् पेरिलोरम्—संज्ञा पुं० [ले० *Canthium peroflorum*] कारा ।

केन्थियम्, स्मॉलफ्लोवर्ड—संज्ञा पुं० [अं० *Canthium small-flowered*] कारा ।

केन्दु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिन्दुक । तेन । (पं०) गाव । *Diospyros glutinosa* । (श० च०) ।

केन्दुक, केन्दुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केन्दु ।

केन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] मध्य । बीच ।

केन्द्रिक ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] श्वसनक ज्वर ।

केन्द्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश की किरणों का नेत्रपटल पर ठीक तरह से पड़ने का कार्य इन पटलों में होनेवाले परिवर्तनों से सम्पन्न होता है । इन परिवर्तनों का नाम 'केन्द्रीकरण' है । (अं०) एकोमोडेशन, (*Accommodation*) ।

केन्द्रीय नाडीसंस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] नाडीसंस्थान के दो विभागों—केन्द्रीय तथा परिसरीय या प्रान्तीय—में से एक, जिसमें मस्तिष्क और सुषुम्नाकाण्डका समावेश होता है । (अं०) सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम् (*Central nervous system*) ।

केन्द्रीय वमन—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क के विभिन्न भागों में आघात या रोगों के कारण हुई विकृति होने से वमन के केन्द्र पर मस्तिष्क से मस्तिष्क में ही साक्षात् प्रभाव होकर होनेवाला वमन । (अं०) सेन्ट्रल वॉमिटिंग (*Central vomiting*) ।

केन्द्रिले—संज्ञा पुं० [कना०] लाल कमल ।

केन्नाबिनोन—संज्ञा पुं० [अं० *Cannabinon*] विजयासत्व-भेद ।

केन्नाबिनोल—संज्ञा पुं० [अं० *Cannabinol*] विजयासत्व-भेद ।

के (का) न्सकोरा—संज्ञा पुं० [ले० *Canscora*] ।

के (का) न्सकोरा डिकस्सेटा—संज्ञा पुं० [ले० *Canscora decussata*] वंगीय शंखाहुली । कम्बुमालिनी । (वं०) डांकुनी ।

डांकुनीके (का) न्सकोरा पर्फोलिएटा—संज्ञा पुं० [ले० *Canscora perfoliata*] भेद (डी० भ० २, पृ० ५१७) ।

केन्सची—[] (डी० भ० ३, पृ० २९५) ।

केन्सजनकोरा—संज्ञा पुं० [ले०, मल० *Cansjan cora*] (१) शंखाहुली । (वं०) डांकुनी । (डी० भ० ३, पृ० ५३५) । (२) केवड़ा । केतकी ।

केपगूजबेरी—संज्ञा स्त्री० [अं० *Capegoose-berry*] टकारी । तुलतीपाती । (पं०) काकनज ।

केपरप्लांट—संज्ञा पुं० [अं० *Caper-plant*] करील ।

केपलिन—[तु०] लालकमल ।

के (कें) पसू (स्पू) लज—संज्ञा पुं० [अं० *Capsules*] झिल्ली की पतली थैली या एक प्रकार का जिलेटिन का बना कोष ।

केपीलरी—संज्ञा स्त्री० [अं० *Capillary*] केशों के सदृश सूक्ष्म रक्तवाहिनी । केशिका । केशवाहिनी । वक्तव्य—अंगरेजी केपीलरी शब्द का मूल केपीलस (*Capillus*) शब्द है, जिसका अर्थ केश है । दे० 'केशिका' ।

केपेरिडीई—संज्ञा स्त्री० [ले० *Capparideae*] वरुण कुल ।

केपेरिडेसीई—संज्ञा स्त्री० [ले० *Capparidaceae*] वरुणकुल ।

केपेरिस—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis*] करील ।

केपेरिस ऑफाइला—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis aphylla*] करील ।

केपेरिस एक्जुमिनेटा—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis acuminata*] कवर । करीर भेद ।

केपेरिस ट्रिफोलिएटा—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis trifoliata*] वरना । वरुण वृक्ष ।

केपेरिस कोरुण्डास—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis corundas*] करौंदा ।

केपेरिस डिफ्यूजा—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis defusa*] बड़ा करौंदा । बंशीली करौंदा ।

केपेरिस स्पाइनोसा—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis spinosa*] करील ।

केपेरिस होरिडा—संज्ञा पुं० [ले० *Capparis horrida*] हँसा । हिंखा । (पं०) हीस ।

केप्रिलिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० *Caprylic acid*] एक प्रकार का सेन्द्रिय अम्ल जो अन्त्रों में प्राकृत पचन तथा जीवाणुओं की क्रिया से होनेवाले पचन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है ।

केप्सिकम्—संज्ञा पुं० [ले० *Capsicum*] मरचा । लाल मरचा । सुखमिर्च ।

केप्सिकम् ऑइण्टमेण्ट—संज्ञा पुं० [अं० *Capsicum, ointment*] लाल मरचे का मलहम ।

केप्सिकम् इथेरियल् टिचर—संज्ञा पुं० [अं० *Capsicum, Eatherial Tincture*] लालमरचे का ईथरघटित सुरासव ।

केप्सिकम् एन्नम्—संज्ञा पुं० [ले० *Capsicum annum*] लाल मरिच । मरचा ।

केप्सिकम् ग्रोसम्—संज्ञा पुं० [ले० *Capsicum grosum*] देशी मरचा ।

केप्सिकम् नेपालेन्स—संज्ञा पुं० [ले० *Capsicum nepalense*] नेपाली मरचा ।

केप्सिकम् फास्टिजाएण्टम्—संज्ञा पुं० [ले० Capsicum fastigiatum] घाटी मिर्च। मालावरी मरचा। इसकी कृषि भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में अधिक होती है। इसका फल रक्ताभ, $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच लंबा होता है। इसका स्वाद झालदार, तीक्ष्ण और विशेष प्रकार का गंधपूर्ण होता है। अंगरेजी में इसको गिनी पेपर (Guinea pepper) कहते हैं।

केप्सिसाई फ्रक्टस—संज्ञा पुं० [ले० Capsici fructus] मरचा।

केप्सिकम् फ्रूटिसेन्स—संज्ञा पुं० [ले० Capsicum frutescens] स्पेनदेशीय मरचा। गाच मिर्ची।

केप्सिकम् बक्केटम्—संज्ञा पुं० [ले० Capsicum baccatum] एक प्रकार का लाल मरचा।

केप्सिकम् मिनिमम्—संज्ञा पुं० [ले० Capsicum minimum] एक प्रकार का मरचा। गाच मिर्च।

केप्सिसीन—संज्ञा पुं० [अं० Capsicin] लालमिर्च का एक सत्व।

केफिआ—संज्ञा पुं० [ले० Caffea] काफी। कहवा।

केफीडी अर्बिक—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० Cafeide Arbic] अरबदेशीय कहवा। काफी।

केफिओल—संज्ञा पुं० [अं० Caffaeol] कहवे का एक सत्व। दे० 'कहवा'।

केफीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Caffeine] कहवासत्व। काफी का सत्व। दे० 'कहवा'।

केफीनक्लोरेल—संज्ञा पुं० [अं० Caffeine chloral] क्लोरेल और काफीघटित योग। यह निद्राकारक है।

केफीना—संज्ञा पुं० [ले० Caffaina] काफी। कहवा। दे० 'कहवा'।

केफी (फे) नी—संज्ञा स्त्री० [अं० Caffeine] कहवे का सत्व।

पर्याय—(हिं०, उर्दू) जौहर कहवा, कहवे का सत्व; (अ) कहवीन। दे० 'कहवा'।

प्रस्तुतिकरण—कहवा के बीजों का हिमनिर्माणकर उसका रंग इत्यादि दूर कर वाष्पयंत्र द्वारा उसमें से सत्व निकाला जाता है। इसकी कलमें सूचिकाकार निर्गन्ध तथा वर्णविहीन होती हैं। विलेयता—यह १ भाग ८० भाग शीतल जल में, ईथर में अत्यल्प तथा क्लोफॉर्म में भली भाँति विलीन हो जाती हैं।

स्वाद—किञ्चित् कटु होता है।

गुण-कर्म—वृक्क-हृदय-लालाग्रन्थि-उत्तेजक तथा मूत्रल है।

उपयोग—इसके सेवन से प्रायः लाला तथा आमाशयिक ग्रन्थियाँ उत्तेजित हो जाती हैं और आमाशयान्त्रगत रक्तवाहिनियों का विस्तार अधिक हो जाता है, जिससे आहारपाचनकर्म में सहायक होती हैं। कहवा-

सत्व सरलतापूर्वक रुधिर में अभिशोषित हो जाता है और निरन्तर रुधिर में परिभ्रमण करता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से नाडी की गति अस्थिर, अनियमित और अति तीव्र हो जाती है। अन्त में हृदय अव्यवस्थित संकोचयुक्त दशा में प्राप्त हो जाता है। उक्त परिणाम हृदयगत पेशियों में अधिक उत्तेजना प्राप्त होने से होता है। अथवा कभी-कभी उक्त दशा की प्राप्ति हृदय के गतिकेन्द्र पर उत्तेजक प्रभाव अधिक पड़ने से भी होती है।

इसके सेवन से प्रथम शिराओं का संकोच अधिक हो जाता है और उनका विस्तार भी अधिक हो जाता है। इस कारण से प्रथम रक्तचाप की अधिकता प्राप्त होती है। पुनः क्रमशः रक्तचाप कम हो जाता है। उक्त परिणाम हृदय-पेशियों के उत्तेजित होने से होता है। अथवा शिरागतिकेन्द्र के उत्तेजित होने से भी होता है।

औषधीय मात्रानुसार सेवन करने से केवल हृदयशक्ति की वृद्धि होती है और उसकी संकोच-क्रिया अधिक हो जाती है। इस कारण से वैस्तृत्य-काल घट जाता है और नाडीगति मन्द हो जाती है। अल्पमात्रा में सेवन करने से श्वास की गति तीव्र हो जाती है; किन्तु विपैली मात्रा में सेवन करने से श्वास की गति मन्द हो जाती है। उक्त परिणाम का कारण श्वास तथा हृदयकेन्द्र के ऊपर उत्तेजक प्रभाव पड़ने से होता है। अल्पमात्रा में सेवन करने से शरीरोष्मा पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। किन्तु अधिक मात्रा में सेवन करने से शारीरिक ताप अधिक हो जाता है।

अल्पमात्रा में सेवन करने से मस्तिष्कगत वाततन्तु-केन्द्र उत्तेजित होते हैं और मस्तिष्क के अन्य स्थानों पर भी इसका उत्तेजक प्रभाव होता है।

उपयोग—उक्त कारणों से कहवा तथा उसका सत्व सेवन से तम का नाश होता है, स्मरणशक्ति में उत्तेजना प्राप्त होती है, निद्रा नहीं आती, बुद्धि व संज्ञा तीव्र होती है, विविध प्रकार का मस्तिष्क सम्बन्धी भ्रम नष्ट होता है, मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करने में पुनः सहायता प्राप्त होती है।

अधिक मात्रा में सेवन करने से निद्रा का अभाव होता है, कर्ण में विविध प्रकार के शब्द होते हैं, बेचैनी होती है तथा प्रलापावस्था प्राप्त होती है, अंग तथा मांसपेशियों में उद्वेग और शरीर में कम्प होने लगता है।

मेरुदण्ड-रज्जु—मनुष्यजाति के मेरुदण्डरज्जु (Medula spinatis) पर अत्यल्प प्रभाव होता है; किन्तु मण्डूक-मेरुदण्डरज्जु पर अधिक उत्तेजक प्रभाव होता है। उनके पेशियों में उद्वेग होने लगता है तथा मांसपेशियों में स्तम्भ होता है। किन्तु संज्ञावाहिनी व वाततन्तुओं पर किसी प्रकार का व्याघात उपस्थित नहीं होता अथवा

होता। इसके उपयोग से यूरिया और जन्थीन की मात्रा अधिक हो जाती है।

वृक्क—अनुभव तथा प्रयोग से ज्ञात हुआ है कि केफीन का वृक्कों की शिराओं पर संकोचक प्रभाव होता है। उक्त कारण से मूत्र का उत्सर्ग अल्प हो जाता है और तद्गतशिराएँ विस्तृत हो जाती हैं। पुनः मूत्र का उत्सर्ग अधिक होने लगता है।

हृदय—हृदय के किसी भी विकार, यथा—हृदय संकोच (शाहरग), हृदय-कोषसंकोच के कारण जब हृदय के वाम कोष से रुधिर रक-रक कर जाने लगता है और हृदय के वाम-पटल के मध्य का छिद्र संकुचित हो जाने के कारण, रुधिर की उत्तेजना से हृदय-पटल में रुधिर रक-रक कर जाने की अवस्था में विशुद्ध कुचलीन (ट्रिकलीन) केफीन मिश्रितकर देने से लाभ होता है। कारण यह है कि कुचिलासत्व के साथ मिश्रण करने से उसकी शक्ति अधिक हो जाती है। हृदयरोग में डिजिटैलिस के स्थान में इसका उपयोग वर्जित है; किन्तु जलोदर तथा मांसवृद्धि (इस्तिस्कालहमी) में इसका उत्तम प्रभाव होता है। कारण यह है कि इसका प्रभाव हृदय-वृक्क दोनों पर समान रूप से होता है। इसके अतिरिक्त कतिपय उग्र व्याधियाँ, यथा—श्वसनकज्वरादि पर भी इसका उत्तम प्रभाव होता है। श्वासरोग में भी उसके आक्रमणकाल में देने से लाभ होता है। कभी-कभी अर्धावभेदक में इसके उपयोग से लाभ होता है।

वृक्कप्रदाह—वृक्कोत्तेजक होने के कारण इसको वृक्क-प्रदाह में देना अत्यन्त वर्जित है। इसका निरन्तर उपयोग करने से इसका मूत्रल प्रभाव समाप्त हो जाता है अथवा अत्यल्प हो जाता है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी इसकी मात्रा अधिक कर देनी पड़ती है।

विषशान्ति—अहिफेन व अहिफेन सत्व (मार्फिया) जन्म विषाक्तता में इसका उपयोग सदैव हितकर होता है।

दुर्गुण—इसके सेवन से कभी-कभी निद्रा का अभाव हो जाता है। अतः विचारपूर्वक इसका उपयोग करना उचित है।

विषाक्तता लक्षण—गलप्रदेश में प्रदाह होता है। अत्यधिक प्यास लगती है। आमाशय तथा अन्त्र में वेदना होती है। वमन व अतिसार होता है। रोगी बेचैन हो जाता है। शिरोभ्रमण और शिर में भारीपन होता है। कानों में विभिन्न प्रकार के शब्द होते हैं। दिल धड़काता एवं धड़कता है। श्वास बड़ जाता है। हस्त-पाद में कम्प; किसी-किसी अंग में उद्वेष्टन और शीघ्र-शीघ्र मूत्रोत्सर्ग होता है।

चिकित्सा—नाइट्रोग्लोसीन देने से लाभ होता है। शारीर अवयवों पर कुछ भी परिवर्तन-शील प्रभाव नहीं

औषधीय मात्रा—१ से ५ ग्रेन तक।

केफीनी एमोनियो साइट्रास—संज्ञा स्त्री० [ले० Caffeine Amonio-Citras] यह कहवासत्व, अमोनिया और साइट्रिकएसिड का एक यौगिक है। दे० 'कहवा'।

केफीनी-डाइआयोडो-हाइड्राइड-ब्रोमाइडम्—संज्ञा स्त्री० [ले० Caffeine-diodo-Hydrate-Bromidum] कहवे का योग। दे० 'कहवा'।

केफीनी-वेलेरिएनास—संज्ञा स्त्री० [ले० Caffeine valerianas] कहवे का एक योग। दे० 'कहवा'।

केफीनी सल्फास—संज्ञा पुं० [ले० Caffeine-Sulphas] कहवे का एक योग। दे० 'कहवा'।

केफीनी साइट्रास—संज्ञा स्त्री० [अं० Caffeine Citras] यह कहवासत्व और निम्बुकास (Citric acid) का एक यौगिक है। दे० 'कहवा'।

केफीनी साइट्रास-एफरवेसेन्स—संज्ञा स्त्री० [ले० Caffeine citras effervescens] कहवे का योग। दे० 'कहवा'।

केफीनी हाइड्रोब्रोमाइडम्—संज्ञा स्त्री० [ले० Caffeine hydrobromidum] कहवे का एक योग। दे० 'कहवा'।

केफीनी हाइड्रोब्रोमाइडम् एफरवेसेन्स—संज्ञा स्त्री० [ले० Caffeine hydrobromidum effervescens] दे० 'कहवा'।

केबिगुत्तरी—संज्ञा स्त्री० [का०] लाल चिचिड़ी, रक्ता-पामार्ग।

केबिनखैर—संज्ञा पुं० [का०] खैर। खदिर।

केबिनबेलड—संज्ञा पुं० [का०] किलुसांठ।

केबीर—[फा०] कबर।

केबुकम्—संज्ञा पुं० [सं० केमुक] केउआँ, पेऊँ।

केबुलिक माइरोबैलन्स—संज्ञा पुं० [अं० Chebulic myrobalans] हड़। हरीतकी।

केबूआ—संज्ञा पुं० [सं० केमुक] केउआ। पेऊँ।

केम—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] कदंब, कदम, कैमा।

केमा—संज्ञा पुं० [लेप०] बुलु (नैपाल)।

केमिकल एक्शन—संज्ञा पुं० [अं० Chemical action] रासायनिक क्रिया।

केमिकल एट्रैक्शन या एफिनिटी—संज्ञा पुं०, स्त्री० [अं० Chemical Attraction या Affinity] रासायनिक प्रीति। युयुक्षा।

केमिकल फूड—संज्ञा पुं० [अं० Chemical food] रासायनिक आहार।

केमिकल रिएक्शन—संज्ञा पुं० [अं० Chemical reaction] रासायनिक प्रतिक्रिया।

केमुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध
केमुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } केबुक नामक कंद।

इसका कन्दवत् मूलस्तम्भ अदरकके समान होता है। वायवीय पत्रयुक्त कांड २—६ फुट लंबा, वक्रित तथा ठोस होता है। पत्तियाँ अण्डाकार-आयताकार, ६—१२ इंच लम्बी और अधर तल पर रोमश होती हैं। कांडके अग्र पर पुष्पव्यूह होता है, जिसमें पुष्प बड़े, सफेद, परंतु कोणपुष्पक, भड़कीले लाल होते हैं। नम जगहों में इसके पौधे अधिकतर पाये जाते हैं। इसे 'केवाँ' कहते हैं। यह राजनिघण्टुमें वर्णित 'केमुक' है। इसे भूलसे कुछ लोग 'कलिहारी' या 'बड़ी करियारी' कहते हैं। इसके कन्द कभी-कभी खाये भी जाते हैं। यह कुट और वन आर्द्रक से सर्वथा भिन्न द्रव्य है। इसकी जड़ बाजारों में भूलसे कलिहारी की जगह विकती है। इसकी जड़ कुट के नाम से भी विकती है। इसी से इसको दक्खिन में (दक्षिणी भारतवर्ष में) पुष्करमूल और कोष्ठम् आदि नामों से पहिचानते हैं। पर ये नाम गलत हैं। असली कूट कश्मीर में होता है जो इससे सर्वथा भिन्न द्रव्य है।

पर्यायः—(सं०) केमुक, केमुका; (हि०) केवाँ, केउआँ, केमुआँ, केऊ; (बं०) पेऊ, केऊंगाळ; (मं०) पेवाँ, पेवा; (बम्ब०) केमुक; (गु०) पोकरमूल; (कना०, मल०, मं०) पुष्करमूल; (ते०) काश्मीरमु; (ता०) कुष्ठम्; (ले०) कॉस्टस स्पेसिओसस् (Costus speciosus); (फ्रा०) कोष्ठस एलीगेण्ट (Costus elegant); (जर०) प्राक्टीगे कोष्टवर (Practige Kostweer); (अं०) कोष्टस (Costus)।

आर्द्रक कुल—(Scitamineae).

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के प्रायः सभी उष्णप्रधान एवं नम प्रदेश।

उपयुक्त अंग—पत्र, मूल-कंद।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मूल—केऊँकी जड़ कटु, पाक में तिक्त, ग्राही, शीतल एवं लघु है तथा दीपन, पाचन, हृद्य एवं वातकारक है और कफपित्तज्वरनाशक एवं कुष्ठ, कास, प्रमेह और रक्तपित्तनाशक है। (भा० पू० १ भ०)। कफपित्तघ्न, रुचिकारक और अग्निदीपक है। (राज०)। मधुर, रुक्ष, शीतल, भेदक, ग्राहक, रुचिप्रद, गुरुपाकी, पित्तकफघ्न एवं वातघ्न है। (वै० निघ०)।

पत्र—मधुर, वृष्य, कटुपाकी, तिक्त, शीतल, लघुपाकी, दीपन, पाचन, हृद्य, वातल, एवं कफपित्तज्वरनाशक तथा प्रमेह, कुष्ठ, कास, रक्त रोग, पित्त, भ्रम और पिपासा इनका नाश करनेवाला है। (वै० निघ०)। पाचक, कृमिघ्न, उत्तेजक और कामोत्तेजक है। (इं० मे० मे०)।

केमुख्त—संज्ञा पुं० [फ्रा०] प्राणिज द्रव्य-विशेष।

पर्यायः—कीमुख्त, केमुख्त (फ्रा०, अं०)।

वर्णन—फरहंगआनन्दराज के अनुसार एक प्रकार का चमड़ा जो गढ़े और घोड़े की खाल को सिझाकर

बनाते हैं। तुर्की भाषामें इसको 'सुगरी ओसागरी' कहते हैं। इसका रंग हरा होता है। बुरहान में लिखा है, 'किसी-किसी के मत से कीमुख्त उन दानों का नाम है जो उक्त चमड़े में होते हैं।' फरहंगरशीदी में उल्लेख है कि कोई-कोई इसे गीव-आमोख्त का संक्षिप्त रूप मानते हैं। उसका कारण यह बतलाते हैं कि गीव ने गोरखर के चमड़े से तैयार किया और दूसरे लोगों को सिखाया था। चिरागहिदायत में भी लिखा है कि सामानी ने भी गीव आमोख्त ही बतलाया है। क्योंकि गीव जिस समय तुर्किस्तान के वन में छिपा था, वहाँ गोरखर से बनाया था और उससे दूसरों ने सीखा।

गुण-प्रयोग—नई कीमुख्त जलाकर नीबू के रस में ४२ पहर तक खरल करके चने प्रमाण की वटिकायें प्रस्तुत करें। इसमें से एक-एक वटी प्रातःसायंकाल फिरंग के रोगी को खिलायें। यदि इससे पूर्व मुसहिल हब्ब शिंगरफ का प्रयोग कराके यह गोलियाँ खिलाई जायें, तो वरसों की आतशक जाती रहे। (खजाइन)।

केमेलस ड्रोमोडेरिअस—संज्ञा पुं० [ले० Camelus dromodarius] उष्ट्र। ऊँट। (अं०) केमेल (Camel)।

केमेलिआ थी—[ले० Camelia Thea]

केमेलिआ-थीफेरा—[ले० Camelia-Theifera] } श्याम-पर्णी। चाय। टी (Tea), टी प्लांट (Teaplant)।

केमेलिआ-विराइडिस—[ले० Camelia-viroides] चाय। श्यामपर्णी।

केमोथिरैपी—संज्ञा स्त्री० [अं० Chemo-therapy] रस-चिकित्सा।

केमोफार्म—संज्ञा पुं० [अं० Camoform] यह जल में सुविलेय एक औषधि है। (पा०द्र० गु० वि०, २ भ०, पृ० ६९४—५)।

केमोमाइल—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile] बाबूना।

केमोमाइल-इङ्गलिश—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile-english] अंग्रेजी बाबूना। विलायती बाबूना।

केमोमाइल-फ्लावर्स—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile flowers] गुल बाबूना। दे० 'बाबूना'।

केमोमाइल-रोमन—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile, Roman] रूमी बाबूना।

केमोमाइल-वाइल्ड—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile, wild] जंगली बाबूना।

केमोमाइलस्टिकिंग—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile Stiking] बाबूना भेद।

केमोमाइल-स्पैनिश—संज्ञा पुं० [अं० Chamomile-Spanish] स्पेनदेशीय बाबूना।

केमोमिला—संज्ञा पुं० [ले० Camomilla]

परिचय—यूरोपदेश की जुती हुई भूमि में इसके क्षुप

स्वयं उत्पन्न होते हैं। इसके द्वारा एक प्रकार का अर्क प्रस्तुत किया जाता है। बालरोग में इसका सर्वाधिक उपयोग होता है।

चरित्रगत लक्षण—केमोमिला के मानसिक लक्षण बड़े ही विचित्र हैं—इसका रोगी बहुत ही चिड़चिड़ा तथा क्रोधी होता है; साधारण-सी बातों पर लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज करने पर तत्पर होता है। चिड़चिड़ापन ही 'केमोमिला' का प्रधान लक्षण है—प्रत्येक वार रें-रें करना, रुदन करना, क्रोध के आवेश में होना इत्यादि इसके प्रधान लक्षण हैं। प्रथम तो ऐसा प्रतीत होता है वह कुछ माँग रहा है, पर यदि उसको कोई वस्तु दे दी जाय तो उसे नोंचकर शीघ्र ही फेंक देता है और रुदन करने लगता है। इससे यह भाव प्रकट होता है कि वह कोई अन्य वस्तु की इच्छा करता है। इस प्रकार की चेष्टा को भाषा में 'नैश' कहते हैं।

उपयुक्त लक्षण उपस्थित होने पर तथा बालज्वर, पेट की बीमारी, दन्तोद्भेदकाल में जब सड़े अंडे की तरह दुर्गन्ध, हरा-पीला, उष्ण दस्त होता है और मलद्वार की त्वचा गल जाती है तथा ज्वरादि अन्य लक्षण होने पर केमोमिला ही एक मात्र औषध है। दन्तोद्भेदकाल में बच्चों की वैचैनी और निद्रा न आने की अवस्था में यह अमोघास्त्र है। बच्चा अल्पनिद्रा आते ही जब चौंक उठता है तथा शयनकाल में मुँह और हाथ-पैर फड़क उठते हैं तो उक्त लक्षण में 'केमोमिला' अव्यर्थ महौषधि है। बालाक्षेप, ऐंठन, अकड़ जाना इत्यादि लक्षण में भी इससे उत्तम लाभ की आशा होती है।

इसके सेवन से—अनिद्रा, वातज वेदना, दन्त-कर्णशूल, प्रसववेदना, शीतजन्य कर्णवेदना, उष्णवस्तु-जल मुख में धारण करने से दन्तशूल, कान में टनक की-सी वेदना होता, माँफियाजन्य रोग, झुनझुनी, उदरशूल, आध्मान, मिथ्या-प्रसव की वेदना इत्यादि लक्षणों में बालरोग के अतिरिक्त अन्य युवा, वृद्ध तथा स्त्रीरोग में भी इससे उत्तम उपकार होता है। इसके अतिरिक्त—शुष्क कास, गले में सुरसुरी, रात्रि में कास का बढ़ना, ठंडी वायु में पुरातन कास की वृद्धि इत्यादि में भी इससे उपकार होता है।

केम्पु—[कना०] रक्त वर्ण। लाल रंग। सुखरंग।

केम्पुकाञ्चि—[कना०] रक्तकाकमाची। लालमकोय। वं—रक्तगुडकावली।

केम्पु-किरनेल्लिगिदा—[कना०] रक्त भूम्यामलकी। लाल-मुँडआंवला।

केम्पु-खसखीस-गिदा—[कना०] लालपोस्ता। रक्त खाखस।

केम्पु-गणिकै—[कना०] रक्त काकमाची। लालमकोय।

केम्पु गन्ध—[कना०] लालचन्दन। रक्तचन्दन।

केम्पु-गन्धक—[कना०] लाल गन्धक।

केम्पु-गन्ध-चेक्के—[कना०] लाल चन्दन।

केम्पु गन्ध-गिरि—[कना०] लाल तुन। रक्तनन्दी वृक्ष।

केम्पु चित्र मूला—[कना०] लाल चीता। रक्तचित्रक।

केम्पु मन्दार—[कना०] लाल कचनार। रक्तकाञ्चन।

केम्पु-मुलङ्गि गिदा—[कना०] लाल गाजर। रक्तगर्जर।

केम्पु-मुलङ्गि-बीजा—[कना०] लाल गाजर के बीज। रक्त-गर्जरबीज।

केम्पु-शिव-हण्णु-गिदा—[कना०] लाल अमरुद। रक्त दृढ-बीज फल।

केम्फर—संज्ञा पुं० [अं० Camphor] कपूर। कर्पूर। काफूर। कर्पूर वृक्ष। दरख्तकाफूर। दे० 'कपूर'।

केम्फर-ट्री—संज्ञा स्त्री० [अं० Camphor-tree] कर्पूर वृक्ष। दरख्त काफूर। दे० 'कपूर'।

केम्फर-क्लोरल—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-Chloral] क्लोरल और कर्पूर का एक अंग्रेजी यौगिक। गुण—अल्प अवसादक होता है। ज्वर की उत्पत्ति में देने से ज्वर का वेग शांत होता है और निद्रा का आगमन होता है। मात्रा—५ से १० ग्रेन। दे० 'कपूर'।

केम्फर-पल्साटिल्ला—संज्ञा पुं० [अं० Camphor Palsatilla] कर्पूर और पल्साटिल्ला का एक मिश्रण है।

केम्फर पास्ले—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-Parsley] कर्पूर और पास्ले का एक यौगिक है। गुण—कृच्छ्ररज, ज्वर, रजःकण्ट इत्यादि में उपयोगी है। मात्रा—३-१० ग्रेन तक।

केम्फर पेपर-सिण्ट—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-Peppermint] यह कर्पूर और पीपरमिंट का एक यौगिक है। गुण—विसूचिका, अजीर्ण, वमन, उदरशूल इत्यादि में उपयोगी है। मात्रा—५-१५ बूँद। दे० 'कपूर'।

केम्फर-फेनीक्यू—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-Foenicu] कर्पूर और फेनीक्यू (सौंफ) का एक यौगिक है। गुण—अजीर्ण, विसूचिका, उदरशूल, अध्मान, वायुविकार आदि में उपयोगी है। मात्रा—५-१० बूँद।

केम्फर-बॉल—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-Ball] कर्पूरीय कंदुक। दे० 'कपूर'।

केम्फर-मानोब्रोमेटा—संज्ञा पुं० [अं० Camphor Monobrometa] दे० 'कपूर'।

केम्फर-वॉटर—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-water] कर्पूर सुवासित जल। गुण—विसूचिका में उपयोगी है। मात्रा—आवश्यकतानुसार। दे० 'कपूर'।

केम्फरमीन—संज्ञा पुं० [अं० Camphor-Mene] दे० 'कपूर'।

केम्फेरिआ अंगुष्टिफोलिआ—संज्ञा पुं० [ले० Kaempferia angustifolia] निर्विशाल। (मेमो०)।

केम्फेरिआ-गैलङ्गा—संज्ञा पुं० [ले० *Kaempferia galanga*] सुगन्धवत् । चन्द्रमल्लिका । दे० 'कपूरकचरी' ।
 केम्फेरिआ-रोटण्डा—संज्ञा पुं० [ले० *Kaempferia Rotunda*] भुइचम्पा । भूचम्पक ।
 केम्फेरिआ लाङ्गा—संज्ञा पुं० [ले० *Kaempferia Longa*] भूचम्पक भुइचम्पा ।
 केम्फोरा—संज्ञा पुं० [ले० *Camphora*] दे० 'कपूर' ।
 केम्फोरा ग्लैण्ड्युलिफेरा—संज्ञा पुं० [ले० *Camphora Glandulifera*] कर्पूर वृक्ष, सासाफ्रास । (मेमो०) ।
 केम्फोरिआ रोटण्डा—संज्ञा पुं० [ले० *Kaempferia Rotunda*] चम्पा । चन्द्रमूलचम्पा । भूचम्पक । (मेमो०) ।
 केम्फोरिक-एसिड—संज्ञा पुं० [अं० *Camphoric-acid*] कर्पूराम्ल । दे० 'कपूर' ।
 केम्फोरेटेड ऑइल—[अं० *Camphoreted oil*] कर्पूरतैल ।
 गुण—विसूचिका, अजीर्ण तथा अतिसार में उपयोगी है ।
 मात्रा—५ से १० बूँद । दे० 'कपूर' ।
 केम्फोरेटेड-क्लोरोफॉर्म—संज्ञा पुं० [अं० *Camphoreted Chloroform*] कर्पूर और क्लोरोफॉर्म का एक मिश्रण है । गुण—यह कास, श्वास, अतिसार और विसूचिका में उपयोगी है । मात्रा—५ से २० बूँद । दे० 'कपूर' ।
 केम्फोरेटेड क्विनीन—संज्ञा पुं० [अं० *Camphoreted-Quinin*] यह क्विनीन और कर्पूर का एक यौगिक है ।
 गुण—मलेरिया ज्वर में देने से उपकार होता है । सादा क्विनीन से इसका उत्तम तथा उपद्रवरोहित प्रभाव होता है । मात्रा—२ से १० ग्रेन ।
 केम्फोरेटेड-नैपथाल—संज्ञा पुं० [अं० *Camphoreted Napthal*] यह कर्पूर और नैपथेलीन का एक यौगिक है । यह परम कीटाणुनाशक है । दे० 'कपूर' ।
 कैम्फोरोडाइन-कैम्फोरोडीन—संज्ञा पुं० [अं० *Camphorodyne*] एक डॉक्टरी प्रवाही योगौषध है, जो विसूचिका विशेषरूप से भारतीय विसूचिका में परम गुणकारी एवं परीक्षित है । इसकी मात्रा १५-३० बूँद तक है । दे० 'कपूर' । यह क्लोरोडाइन (*Chlorodyne*) का प्रतिनिधि है । (वे०मी०) ।
 कम्बुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोपारी । पूग । (भा० म० ३ भ०, भू० कृ० चि०) ।
 केम्बोजिआ—संज्ञा पुं० [ले० *Cambogia*] उसारारे-वन्द । (अं०) गैम्बोजिया (*Gambogia*) ।
 केम्बोजिया-इण्डिका—संज्ञा पुं० [ले० *Cambogia Indica*] स्वर्णक्षीरी । (अं०) इंडियन गैम्बोज (*Indian Gamboge*) ।
 केम्भ-औन-विड—[बर०] कन्दूरी । कुन्दुरु की वेल । बिम्बा लता ।
 केयसुरिया—[वं०]

केया—[वं०] केतकी । केवड़ा ।
 केया फूलर गाछ—[वं०] केतकी । केवड़ा ।
 केयीनी पपर—
 केयूर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनन्त । वाजूबंद । अलंकार विशेष । पर्याय—(सं०) अङ्गद; (वं०) अनन्त, तामा, ताड़ ।
 केर—संज्ञा पुं० [गु०, हिं०] } करील । करीर ।
 कोडो—संज्ञा पुं० ["] }
 केरडों—["] }
 केरन ऑइल—संज्ञा पुं० [अं० *Carron oil*] गरीका तेल और चूने का पानी मिश्रितकर प्रस्तुत किया जाता है ।
 गुण—यह अग्निदग्ध में उपयोगी है ।
 केरनी—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] खिरनी । क्षीरिणी । राजादन ।
 केरम—संज्ञा पुं० [ले० *Carum*] जीरा ।
 केरम-कॉप्टिकम्—संज्ञा पुं० [ले० *Carum Copticum Benth*] अजवायन ।
 केरम्-केरुई—संज्ञा स्त्री० [ले० *Carum-carui*] विलायती स्याह जीरा । कारवी ।
 केरम्-नाइग्रम्—संज्ञा पुं० [ले० *Carum-Nigrum*] जीरा सफेद । शुक्ल जीरक ।
 केरम् बल्बो काष्ठेनम्—संज्ञा पुं० [ले० *Carum-Bulbo-castanum*] जीरा ।
 केरम्-बल्बो कॉप्टिकम्—संज्ञा पुं० [ले० *Carum-Bulbo-copticum*] जीरा ।
 केरम् राक्सबर्गिएनम्—संज्ञा पुं० [ले० *Carum-Roxburghianum*] अजमोद ।
 केरयोटा युरेन्स—संज्ञा पुं० [ले० *Caryota urens*] वन-खजूर । जंगली खजूर ।
 केरवी कन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तेलियाकन्द । तिल-कन्द । दे० 'तैल कन्द' ।
 केरवीज—संज्ञा पुं० [का०] भिलावाँ । भल्लातक ।
 केरवे—संज्ञा पुं० [अं० *Caraway*] करोया, विलायती जीरा ।
 केरवे फ्रक्टस—संज्ञा पुं० [ले० *Caraway Fructus*] विलायती जीरा ।
 केरा—संज्ञा पुं० दे० 'कदली' ।
 स्त्री० [देश०] विशेष । एक प्रकार की बत्तख ।
 [म०] करीर । करील । पतारी ।
 केरागेता पिग्मेई—संज्ञा स्त्री० [ले० *Ceragena Pigmei*] पर्याय—(लेदक) तामा । दामा । (मेमो०) ।
 केराटोवा रेलिजिओसा—संज्ञा पुं० [ले० *Cerateava Religiosa*] बरना । वरुण वृक्ष ।
 केराटोसिस् पामेरिस—संज्ञा [ले० *Ceratosi Pameris*] तामा, दामा (लेदक) । (*Cargana Pygmaea*) ।

केराम्बोला दूरी—संज्ञा स्त्री० [अं० Carambola Tree]
कर्मरंग। कमरख।

केराव—संज्ञा पुं० [सं० कलाय] मटर। खेसारी।

केरिया आर्बोरेआ—संज्ञा पुं० [ले० Careya arborea]

(१) कटभी। (२) कुम्भी। वाकुम्भा।

केरिया नेपाल—संज्ञा पुं० [अं० Careya Nepal]

केरिया नेपालेंसिस—संज्ञा पुं० [ले० Careya Nepalensis]

भोजनसी।

केरिका पपाया—संज्ञा पुं० [ले० Carica papaya] अरंड-

खबूजा। पपीता।

केरिङ्ग—संज्ञा पुं० [गारोपर्वत] श्योनाक, सोनापाठा।

केरियोफाइलम्—संज्ञा पुं० [ले० Caryo phyllum] लौंग।

लवङ्ग।

केरियोफाइलम् एरोमेटिकस—संज्ञा पुं० [ले० Caryo-

phyllum aromaticus] लौंग। लवङ्ग।

केरियोफाइलीन—संज्ञा स्त्री० [ले० Caryohyllin] लौंग

का सत।

केरिस दूरी—संज्ञा स्त्री० [अं० Caris tree] पीलूका पेड़।

केरिसा कोरण्डास—संज्ञा पुं० [ले० Carissa corundas]

करोड़ा। करमर्द।

केरिसा स्पाइनोसा—संज्ञा पुं० [ले० Carissa spinosa]

करोड़ा। करमर्दक।

केरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] आमका कच्चा और छोटा नया

फल। अंबिया। टिकोरा। बालाम्रफल।

[पुं०] (१) कंडेर। (२) आड़। आरू। पादम। (नेपाल)।

केरी कॉमन—संज्ञा पुं० [अं०] शाहदाना। शाह आलू।

केरी, बर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] गुलनार।

केरुइ फ्रक्टस—संज्ञा पुं० [ले० Carui fructus] विलायती

स्याह जीरा। कुर्या।

केरुइ फ्रूट—संज्ञा पुं० [अं० Carui fruit] कुर्या। विलायती

स्याह जीरा।

केरुयः—[फा०] कुर्या। कराविया।

केरेटाइटिस—संज्ञा पुं० [अं० Keratitis] अन्नण, शुक्ल।

साड़ा।

केरेटिन—संज्ञा स्त्री० [अं० Keratin] शृङ्गसम द्रव्य। (अं०)

करनीन (कर्न=सींग)। यह एक प्रोटीन है जो स्वभावतः

त्वचाके बाह्य स्तर, केश-रोम, नख, शृङ्ग और खुरों में

पायी जाती है तथा इनकी कठिनता का हेतु है। म० म०

क० गणनाथ सेनजी ने केरेटिन को 'शार्डवस्तु' नाम

दिया है।

केरेटिन कोटिंग—संज्ञा पुं० [अं० Keratin coating]

सींग का आवरण चढ़ाना, शृङ्गावगुणन।

केरेटिनाइजेशन—संज्ञा पुं० [अं० Keratinization] के-

रेटिन की वृद्धि होना।

केरोक्सीलोन ग्रिफिथिआइ—संज्ञा पुं० [ले० Caroxylon
griffithii] लघमी।

केरोक्सीलोन फिटिडम्—संज्ञा पुं० [ले० Caroxylon
fitidum] मोटी लाने। गोरा लाने।

केरोटिन—संज्ञा पुं० [अं० Carotene] गाजर के रञ्जक
द्रव्य (कैरट, Carot=गाजर) जो जीवनीय ए के

पूर्वरूप है।

केरोफीन—[अं०] [अं०] [अं०] [अं०] [अं०] [अं०] [अं०] [अं०] [अं०] [अं०]

केरोब दूरी—संज्ञा स्त्री० [अं० Carob tree] खर्बूद।

(अं०) जॉन्स ब्रेड (John's bread)।

केरोसिन—संज्ञा पुं० [अं० Kerosene] साफ किया हुआ।

मिटी का तेल।

कैर्योटा युरेन्स कार्गोटा—संज्ञा पुं० [ले० Caryota Urens

Cargota] सेगूका वृक्ष। सागूदाने का पेड़। सागू वृक्ष।

केल—संज्ञा पुं० [म०, गुं०] केला। कदली।

संज्ञा पुं० [सिंहली] कोर, कोल।

केलट—संज्ञा पुं० [सं० कली०] कुसुम बीज। कुसुम्भ बीज।

कड़। बरें।

केलटक—संज्ञा पुं० [खं० पुं०] केमुक-कन्द। केउआँ का

कन्द। दे० 'केमुक'। (वै० निघ०)।

केलां—[गुं०] केला। कदली।

कैला—संज्ञा पुं० [सं० कदल, प्रा० कयल] केला। कदली।

केलाफल—संज्ञा पुं० [हि० केला + सं० फल] केला।

कदली फल। दे० 'कदली'।

केलावेरीन—[अं० Calabarin] इसरीन।

केलामस एक्सटेन्सस—संज्ञा पुं० [ले० Calamus

extensus] बेंत। वेत।

केलामस रोटङ्ग—संज्ञा पुं० [ले० Calamus rotung]

बेंत। वेत।

केलामस रोटण्डा—संज्ञा पुं० [ले० Calamus rotunda]

बेंत। वेत।

केलास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विल्लौर। स्फटिकसणि।

(वै० निघ०)।

केलां—संज्ञा पुं० [गुं०] केला। कदली।

केलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूमि। पृथ्वी। (शब्द र०)।

केलिआ पेंशनर—संज्ञा पुं० [अं० Calia pensioner]

केलिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक वृक्ष। (वै० निघ०)।

केलिकदम्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम्बवृक्षविशेष।

दे० 'कदम्ब'।

केलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पटावास।

केलिकिण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अँट। उष्ट्र। (वै०

निघ०)।

केलिकिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक वृक्ष।

केलिकीण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अँट। उष्ट्र। (वै० निघ०)।

केलिक्स—संज्ञा पुं० [अ० Calx] चूना ।

केलिट्रिस क्वाड्रि वाल्विस—संज्ञा पुं० [ले० Calitris quadrivalvis] सन्दरुस ।

केलिडोनियम् मेजस—संज्ञा पुं० [ले० Chelidonium majus] जर्मनी और फ्रांस में होनेवाली एक वनस्पति जिसके द्वारा प्रस्तुत सुरासव (टिक्चर) का औषधीय उपयोग होता है । केलिडोनिया ।

चरित्रगत-लक्षण—केलिडोनियमजन्य निम्न लक्षण उपस्थित होते हैं—(१) ऋतुपरिवर्तनकाल में रोग का पुनः उत्पन्न होना; (२) मध्याह्नकाल के भोजन के पश्चात् प्रायः समस्त कष्टों का अल्प हो जाना; (३) नित्य अत्युष्ण पेय पदार्थ पान करने की इच्छा होना; (४) सब रोगों में दाहिनी स्कन्धास्थि की कोनेवाली हड्डी (स्कैपुला) के निम्न भाग में वेदना होना; (५) यकृत रोग, कामला, शरीर की त्वचा, मुख, मूत्र, नेत्र का श्वेत भाग, नखादि का पीला होना (हाइड्रेटिस); (६) कोष्ठबद्ध (मल की कठोरता), मँगनीतुल्य पाखाना होना, कब्ज तथा पर्यायक्रम से अतिसार होना; (७) उदरामय—रात में बढ़ना, मल चिकना, पतला, भूरा, राख का सा, सफेद, चमकदार, पीला, अनजान में मलोत्सर्ग होना; (८) दक्षिण भाग का फुफुसप्रदाह (न्युमोनिया), खाँसी में, गले तथा वक्ष में घरघर शब्द और साथही यकृत विकार; (९) आक्षेपजन्य कास—खाँसते-खाँसते श्लेष्मा के छोटे-छोटे कण मुख से छिटक कर निकल पड़ना; (१०) दाहिनी कनपटी और नेत्र में वातजन्य शूल; (११) पित्त, अश्मरी की वेदना और साथ ही दाहिने कन्धे के निम्न भाग में वेदना होना इत्यादि लक्षण होते हैं ।

यकृतविकार में—केलिडोनियम का उत्तम प्रभाव होता है । जब दाहिने कन्धे के निम्न भाग में और स्कन्धास्थि (स्कैपुला) कन्धेकी हड्डी के निम्न भाग में, किन्तु भीतर की ओर नहीं तो उक्त स्थान की वेदना में, किसी रोग में जब मुख का स्वाद तीता, जिह्वा के मध्य में गाढ़े पीले रंग का मल ढका हो और उसके किनारे लाल रहें; नेत्र, मुख, शरीर की त्वचा पीली, मल राख वा मृत्तिका का सा वा गन्धक का सा पीला, मूत्र जहाँ हो वहाँ की पृथ्वी पीली हो जाना, क्षुधा का अभाव होना, उत्क्लेश, पित्त का वमन, तरल, उष्ण वस्तुओं के अतिरिक्त और किसी वस्तु का उदर में न रख सकना इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर तथा यकृत का स्पर्श न विदित होने तथा कन्धा के निम्न भाग में वेदना न रहने पर भी केलिडोनियम् से उत्तम लाभ प्रदर्शित होता है ।

श्वासयंत्रगत रोग—छोटे-छोटे शिशुओं के केशिका-नलीप्रदाह (कैपिलरी ब्रांक्काइटिस) और श्वसनकेज्वर

में केलिडोनियम् से उत्तम लाभ होता है । कुक्कुर-कास और खसरा के साथ वा खसरा के पश्चात् कास और श्वसनरोगों में इससे लाभ होता है । न्युमोनिया के साथ यदि यकृतदोष विद्यमान हो तो इसके प्रयोग से अत्यधिक लाभ प्रदर्शित होता है । परोक्षित है । जब अधिक श्लेष्मा का स्राव हो, गले में घरघराहट हो वा श्लेष्मा मुखपूर्वक न आता हो तो वा रोगी का मुखमण्डल लाल हो तो ऐसी अवस्था में भी इससे लाभ होता है ।

कामलाज्वर—ज्वरयुक्त कामलारोग में केलिडोनियम से उत्तम लाभ होता है । इस ज्वर में कभी शीत का अभाव होता है, शरीर की अपेक्षा मुँह का ताप अधिक रहता है, निद्रावस्था में स्वेदागमन होता है, प्रातःकाल निद्राभंग के पश्चात् स्वेदस्राव होता है । स्वेद होने के पश्चात् यकृत तथा कन्धे की वेदना अल्प हो जाती है । मुख का स्वाद तीता होता है और मुख में लाला का संग्रह होता है । ज्वर पूर्णतः मोक्ष नहीं होता, सविराम-ज्वर (कार्पुस धारण करने पर केलिडोनियम के पश्चात् संख्या (आर्सेनिक) अधिक लाभप्रद होती है ।

अतिसार—केलिडोनियम में पतला दस्त, मल का वर्ण चमकीला, श्वेत तथा पीला होता है । कभी-कभी पतला दस्त आता है और कभी कोष्ठबद्धता होती है । इसके साथ यकृत और प्लीहविकार वर्तमान रहता है ।

केलिडोनियम के रोगी को दुग्धपान की प्रबल इच्छा होती है । दुग्ध भली-भाँति पच जाता है । उदर में वायु का अवरोध नहीं होता । उष्ण दुग्ध वा उष्ण जलपान की इच्छा होती है ।

उदरशूल—केलिडोनियम् में उदर में एक एक प्रकार की वेदना होती है । पेट खाली रहता है तो वेदना की वृद्धि होती है । कुछ आहार करने पर वेदना शांत हो जाती है ।

मूत्ररोग—मूत्र पीतवर्ण, झागयुक्त, काला तथा गदला रहता है ।

शिरोरोग—मस्तक में दाहिनी ओर वातजन्य वेदना, दाहिनी आँख, दक्षिण कर्ण, दक्षिण गण्डास्थि तथा दक्षिण कन्धे तक वेदना होती है । दक्षिण नेत्र में वेदना रहने से अश्रुस्राव होता है । शिर में चक्कर आता है । उठने-बैठने से, नेत्र बंद करने पर शिर में चक्कर होता है और सामने की ओर गिर पड़ने की-सी दशा हो जाती है । पित्त की कै होती है और कामला का रोग होता है ।

आमाशय-विकार—उत्क्लेश, वमन, जिह्वामलिन, मुख की कटुता, पित्तज शूल, पकाशय में शूल, आमाशयस्थान में वेदना, वेदना का पकाशय से उठकर पृष्ठ तथा दक्षिण कन्धे की हड्डी तक पहुँच जाना तथा पाकस्थली के ऊपर

से यकृत पिण्ड की ओर परिचालित होना इत्यादि लक्षण होते हैं।

निवारण—केमोमाइल, काफी, एसिड, मद्य तथा एकोनाइट।

केलिडोनिया—संज्ञा पुं० [ले० Chelidonia] दे० “केलिडोनियम्”।

केलिडोनीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Chelidonin] केलिडोनिया में पाया जानेवाला सत्व।

केलिपिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोयल। कोकिल पक्षी।

केलिप् ट्रेन्थस केरियोफाइलफोलिया—संज्ञा पुं० [ले० Caliptranthus caryophyllifolia] छोटा जाम।

केलिप् ट्रेन्थस, क्लबलीह्व्ड—संज्ञा पुं० [अं० Caliptranthus clubleaved] छोटा जाम।

केलिबृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) केलिकदम्ब। (२) अशोकवृक्ष।

केली—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली; प्रा० कयली] केलेकी एक जाति जिसके फल छोटे होते हैं। दे० ‘कदली’ (?)। करमकल्ला।

केलीगोनम् पॉलिगोनोआइडीज—[ले०] वलंज। ततकी। वेखज (पं०, ट्रांसइन्डस)।

केलूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कन्दशाक विशेष। केमुककन्द। केउआँ। (२) पानी गुलर। भूगुलर। जलोदुम्बर। भुइगुलर। इसकी जड़में फल लगते हैं। यह प्रायः नदीके कूलोंपर उत्पन्न होता है।

केलूटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] केलूट।

केलूराव—संज्ञा पुं० [देश०] केल।

केलेकी कली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कदलीकलिका। वंगदेशीय इसका शाकनिर्माणकर खाते हैं। यह बहुमूल्यमें उपयोगी है। दे० ‘कदल्यादिष्ट’। (मैप०)।

केलेडियम् निम्फोफोलियम्—संज्ञा पुं० [ले० Caladium nymphyfolium] अरई। घुइयाँ। सरकचू।

केलेडियम् वाटरलिल्लीह्व्ड—संज्ञा पुं० [अं० Caladium waterlilyleaved] अरवी। घुइयाँ। सरकचू।

केलेण्ड्युला ऑफिसिनेलिस—संज्ञा पुं० [ले० Calendula officinalis] एक प्रकार का गेंदा जो दक्षिण यूरोप में होता है। (अं०) मेरीगोल्ड (Marygold)।

कल्प—टिक्कर लेवेण्ड्युला। गुण तथा उपयोग—इसका उपयोग पूययुक्त क्षतमें प्रायः होता है। शरीर के किसी भी स्थान में चोट लगकर त्वचा छिल गई हो या कोई अंग कट गया हो तो इसके बाह्याभ्यन्तरीय उपयोग से लाभ होता है।

केलेमस—संज्ञा पुं० [ले० Calamus] खूनखरावा। हीरादोखी। दम्मुलख्वैन।

केलेमस एक्स्टेन्सस—संज्ञा पुं० [ले० Calamus extensus] बेंतका एक भेद। वेत्रभेद।

केलेमस एरोमेटिकस एशियाटिकस—संज्ञा पुं० [ले० Calamus aromaticus asiaticus] वच।

केलेमस ड्रेको—संज्ञा पुं० [ले० Calamus draco] खूनखरावा।

केलेमस रॉटन—संज्ञा पुं० [अं० Calamus rotton] बेंत। वेत्र।

केलेमस रॉटङ्ग—संज्ञा पुं० [ले० Calamus rotung] बेंत। वेत्र। (अं०) कॉमन केन (Common cane)।

केलेमिन्था क्लीनोपोडियम्—संज्ञा पुं० [ले० Calamintha Chlenopodium] असबुलकनियात।

केलो—संज्ञा पुं० [देश०] ‘केल’।

केलोट्राँपिस—संज्ञा पुं० [ले० Calotropis] आक। अर्क। मदार।

केलोट्राँपिस, कलर्ड फ्लावरड—संज्ञा पुं० [अं० Calotropis, coloured-flowered] लाल मदार। अर्क।

केलोट्राँपिस जायगण्टिया—संज्ञा पुं० [ले० Calotropis gigantea] मदार। अर्क। आक।

केलोट्राँपिस प्रोसेरा—संज्ञा पुं० [ले० Calotropis procera] मदार। अर्क।

केलोट्राँपिस स्पेसिओसम्—संज्ञा पुं० [ले० Calotropis speciosum] मदार।

केलोनिक्शन स्पेसिओसम्—संज्ञा पुं० [ले० Caloniction speciosum] गुलचाँदनी।

केलोनिआ—संज्ञा पुं० [ले० Calonia]

केलोफाइलम् इनोफाइलम्—संज्ञा पुं० [ले० Calophyllum inophyllum] सुलताना चम्पा। पुन्नाग वृक्ष। सुरपन।

केलोफाइलम् अपेटेलम्—संज्ञा पुं० [ले० Calophyllum apetalum] सुलताना चम्पा। पुन्नाग वृक्ष। सरपन।

केलोफाइलम् टोमेण्टोसम्—संज्ञा पुं० [ले० Calophyllum tomentosum] (मं०) यूम। यूने। (ता०) पोङ्ग। सरिमूने।

केलोफाइलम् डेसीफिएण्ट—संज्ञा पुं० [ले० Calophyllum decifient] सर्पन। सरपना। कटहरी चम्पा।

केलोफाइलम् वाइटिएनम्—संज्ञा पुं० [ले० Calophyllum wightianum] सर्पन। सरपना। कटहरी चम्पा। (ता०) चेरुविन्नाय।

केलोफाइलम्—संज्ञा पुं० [ले० Calophyllum] चम्पक भेद।

केलोफाइलम् स्वीट-सेन्टेड—संज्ञा पुं० [अं० Calophyllum sweet-scented] सुलताना चम्पा।

केलोमेल—संज्ञा पुं० [अं० Calomel] रसकपूर। मीठा

पारा । (अं०) सब क्लोराइड ऑफ मर्करी (Subchloride of mercury) । दे० 'पारा' ।

केलोरिक्रीसेण्ट—[अं० Caloricrescent] कृत्रिम श्वास-संजनन ।

केलोरी—संज्ञा स्त्री० [अं० Calorie या Calory; Calor, कैलोर=ताप] शरीर के लिये आवश्यक तापमान की इकाई । माप ।

केलंको लैसिनिटा—संज्ञा पुं० [ले० Kalanchoe laciniata] पर्णबीज । हेमसागर । अस्थिभक्षा ।

केल्टिस ऑरिएण्टेलिस—संज्ञा पुं० [ले० Celtis orientalis]

केल्ट्रॉप्स डाउनी—संज्ञा पुं० [अं० Caltrop downy] गोखरू । गोधुर ।

केल्ट्रॉप्स, स्मॉल—संज्ञा पुं० [अं० Caltrop, small] छोटा गोखरू ।

केल्था पाल्स्ट्रिस—संज्ञा पुं० [ले० Caltha palstris] मीरी । वरिङ्ग ।

केल्य— [यु०] कदली । केला ।

केल्शियम—संज्ञा पुं० [अं० Calcium] सुधा । आयुर्वेद या यूनानी वैद्यक की प्रवाल, मुक्ता, शृंग, अकीक, माणिक्य आदि औषधियाँ सुधा के ही रूप में हैं ।

केल्शियम सल्फेट—संज्ञा पुं० [अं० Calcium sulphate] गोदन्ती का रासायनिक नाम । प्लास्टर ऑफ पेरिस इसी की भस्म से बना द्रव्य है ।

केव (वः)—संज्ञा पुं० [] (१) काहू । (२) एक वृक्ष ।

केवड़—संज्ञा स्त्री० [चीन] दालचीनी ।

केवई—संज्ञा स्त्री० [उ० प० भारत] मोथा ।

केवई—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवा] कुई ।

केवका—संज्ञा पुं० [सं० कवक, ग्रास] वह मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है ।

केवकी—संज्ञा स्त्री० दे० 'केवटी' ।

केवट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूप ।

केवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कैवर्तिका] एक विस्तृत, मोटी और वृक्षारोही लता, जिसकी पत्तियाँ दो पंक्तियों में स्थित, प्रायः अण्डाकार या आयताकार, प्रायः लम्बाय, ३-५॥ × १॥-२॥" बड़ी, दन्तुरधारवाली और पुष्प पीताभ हरित, बहुत छोटे एवं फल सपक्ष होते हैं ।

छाल गहरे भूरे रंग की और लाल दरारों से युक्त होती है । छोटी-छोटी शाखाओं के अग्र कठोर अंकुश (woody tendril) या तन्तु (सूत्र) के रूप में कभी-कभी परिवर्तित होकर आरोहण में सहायक होते हैं । इसकी छाल से रेशा निकाला जाता है । छाल अत्यंत लबाबदार होती है । छालसे एक रंग भी निकाला जाता है । छाल ग्राही बतलाई गई है । मूलत्वक् का फाण्ट बनाकर पीने

से इसमें बुध्य और पीष्टिक गुण बतलाये जाते हैं । इसके सुपक्व बीजों से पहाड़ी लोग एक विशेष विधि से तेल निकालते हैं । यह बीजतैल खाने या जलाने के काम में आता है । राजनिघण्टु में 'कैवर्तिका' के नामसे इसका वर्णन किया गया है ।

पर्या०—(सं०) रक्तवल्ली, सुरंगा, रंगिनी, वस्त्ररंगा; (हिं०, खर०) केवटी, पित्ती, रामधानी; (को०, संथा०) वोगा सर्जम; (रांची) देवसरई; (बं०) रक्तपित्त; (देहरादून) काली बेल; (ले०) वेण्टिलेगो मडरासपटना (Ventilago maderaspatana); (अं०) रेड क्रीपर (Red creeper) ।

इसी की एक दूसरी जाति (V. calyculata) भी होती है जिसमें उपशाखायें अधिक रोमश, पत्तियाँ प्रायः पीताभ रोमश, अधिकतर लट्वाकार और गोलाग्र, द्वैतीयक सिराएँ कम (और-५) और पुष्प कुछ बड़े होते हैं । नाम और प्रयोग दोनों के एकसे होते हैं । दोनों प्रायः प्रान्त में सर्वत्र पाई जाती है ।

बदरकुल (Rhamnaceae) ।

गुणकर्म तथा उपयोग—यह शुक्रदोषनाशक, पुष्टिकारक, बृंहण तथा बलवर्धक है । इसका तेल पुष्टिकारक एवं बलवर्धक है । इसकी त्वचा द्वारा प्रस्तुत हिम शुक्रविकार में प्रयुक्त किया जाता है । यह अत्यंत पिच्छिल (लबाबदार) होता है । कहते हैं कि मूलको पीसकर कानमें डालने से बधिरता नष्ट होती है ।

केवटी बाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवट=एक संकर जाति + दाल] दो या अधिक प्रकार की एक में मिली हुई दाल ।

केवटी मोथा—संज्ञा पुं० [सं० कैवर्तमुस्ता] एक प्रकार का सुगन्धित मोथा जो मालवा में होता है । इसकी जड़ बहुत सुगन्धित होती है और औषध के काम में आती है । जलमुस्तक भेद ।

पर्या०—(सं०) वन्य, सितपुष्प, कैवर्ती(त्ति)मुस्तक, कैवर्तमुस्तक, कुटन्नट, ददाशपुर, बालेय, परिपेल, परिपेलव, पारिपेल, प्लव, गोपुर, गोनदं, कैवर्ती, दासपुर, वनसम्भव, धान्य, शीतपुष्प, जीर्णबुध्नक, जलमुस्तं, जलजं; (हिं०) केवटी मोथा, गुजेना, पटेर; (बं०) केशुर सूता, केउट सूता; (यु०) केवडी मोथो, केवटी मोथो; (ले०) साइप्रस टिन्नुइफ्लोरस (Cyperus tenuiflorus) ।

गुण—तिक्त, शीतल, कटु, कषाय, कफघ्न तथा पित्तघ्न है और विसर्प, रक्तदोष, कण्डू एवं कुष्ठ इनका नाशक है ।

केवटी लता—संज्ञा स्त्री० दे० 'केवटी' ।

केवड़ा—संज्ञा पुं० [] (१) सफेद केतकी का पौधा जो केतकी से कुछ बड़ा होता है । (Pandanus

केवड़ाकमल

३६६

fasciculus) । दे० 'केतकी' । (२) इस पौधे का फूल) ।
 (३) इस फूल से उतारा हुआ सुगंधित जल या आसव ।
 केवड़ाजल । अर्क केवड़ा ।
 केवड़े के अर्क का गुणकर्मादि-प्रकृति—शीतल एवं
 रुक्ष और किसी के अनुसार उष्ण एवं रुक्ष है । गुणकर्म
 तथा उपयोग—मनःप्रसादकर, हृदय, मस्तिष्क और
 समस्त इन्द्रिय व समस्त अवयवों को बलप्रद हृदय की
 व्याकुलता को दूर करनेवाला, सूच्छा, उष्णता तथा
 आमाशय की उष्णता में लाभप्रद, सुखकर, रक्तशोधक,
 भ्रमनाशक, उद्वेष्टनहर तथा उन्माद में उपयोगी है ।
 शीतला एवं खसरा निकलने के पूर्व सेवन करने से उत्तम
 लाभ होता है । अहितकर—प्लीहाको और प्रतिश्याय-
 जनक है । निवारण—उन्माद । प्रतिनिधि—लालचन्दन ।
 अर्क की मात्रा—४-६ तोला तक । (४) एक पेड़ जो
 हरद्वार के जंगलों और ब्रह्मा में होता है । यह गरमी
 के दिनों में फूलता है ।

केवड़ाकमल—संज्ञा पुं [] सोसन । (ले०) आय रिस
 फ्लोरेटिना (Iris florentina) ।

केवड़ा (ड़े) का अर्क— संज्ञा पुं० अर्क केवड़ा । दे० 'केवड़ा'
 और 'केतकी' ।

केवड़ाफल— [वं०] कोशम ।

केवड़े की जड़—संज्ञा स्त्री० [] केवड़ा की जड़ । (फा०)
 वेव केवड़ा । (अं०) अस्तुलकाजी ।

प्रकृति—दूसरे दर्जे में उष्ण एवं रुक्ष है । गुणकर्म
 तथा उपयोग—शोथघ्न, रक्तदोषनाशक तथा शोधक,
 वेदनाशामक, रक्तविकार एवं कुष्ठदोषनाशक और इन्द्रियों
 को बलप्रद है । वि० दे० 'केतकी' ।

केवड़ी—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] केवटी

केवड़ीमोथ—संज्ञा पुं० [गु०] मोथा ।

केवड़ीमोथो—संज्ञा पुं० [गु०]

केवड़ो—संज्ञा पुं० [गु०] केतकी, केवड़ा ।

केवण—संज्ञा पुं० [म०] मरोड़फली ।

केवनी—संज्ञा स्त्री० [म०] आवर्तकी ।

(डी० भ० १, पृ० २३२) ।

केवरा—संज्ञा पुं० दे० 'केतकी' और 'केवड़ा' ।

केवल द्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] मरिच । मिर्च । (श० र०) ।

केवा—संज्ञा पुं० [सं० कुव०] कमल । कमलकली ।

केवा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] केवार नाम से प्रसिद्ध

केवार—संज्ञा पुं० [को०] पुष्पवृक्ष विशेष । यह

केविका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोकण देश में प्रसिद्ध

है । केतकी भेद ।

पर्याय—(सं०) केविका, भृङ्गार, नृपवल्गभा, केवी,

सद्गन्धा, महागन्धा, भृङ्गमारी, राजकन्या, अलिवाहिनी;

(हि०) केवड़ा ।

केवाँच—संज्ञा स्त्री० [सं० कपिकच्छू] पर्याय—(सं०)
 कपिकच्छू, वानरी, शुकशिम्बी, आत्मगुप्ता; (बं०)
 आलाकुशी; (हि०) कौछ, कि (के) वाँछ, गौंच, कौंच; (वं०)
 धूनार गुड़, गुयाशिम्बी, दया; (म०) कुहिरि; (ते०)
 दुल्लुदि; (गु०) किवाँच; (द०) काँचकूरी; (बम्ब०) कीहली
 (री); (ते०) पिल्लिअदगु; (ता०) पनैकली; (कना०)
 नासुगनी, नायि सोझुवलि; (मल०) नायिकुरम,
 चोरिवल्ली; (को०) मांजरम, खटकटी, खाजर कुल्लि,
 खवल्यवली; (फा०) हब्बुल-कुले; (अं०) काउ-इच
 (Cow-Itch), काउ-हेज (Cow-hage), काउएज
 (Cowage); (ले०) म्युकुना प्रुरिन्स (Mucuna-
 Pruriens), म्युकुना प्रुरिता (Mucuna Prurita),
 कार्पोगिन प्रुरिएन्स (Carpogon-Pruriens), डॉलिकोस-
 प्रुरिएन्स (Dolichos-Pruriens) ।

उद्भवस्थान—भारतीय वन तथा ग्रामों में होती है
 परिचय—सेमतुल्य प्रसिद्ध लता है । जंगली और ग्राम्य
 भेद से यह दो प्रकार की होती है । जंगली केवाँच की फली
 अत्यन्त लोमश होती है । इसके ऊपर पीतवर्ण के रोम होते
 हैं । इनके स्पर्श से शरीर में खुजली उत्पन्न होती है । इसके
 बीज कृष्णवर्णके होते हैं । इनके भीतर श्वेतगिरि होती
 है । औषध में इसी का उपयोग होता है । उर्दू में इसको
 'तुखम कौच' कहते हैं । ग्रामों में होनेवाली केवाँच का शाक
 होता है । इसकी फली बड़ी तथा स्थूल होती है । वन्य
 की अपेक्षा यह अल्प लोमश होती है । इसके बीज
 संस्कृत वानरी बीज की अपेक्षा बड़े होते हैं । बीज को
 घृत में भजितकर लवण-मिर्चयुक्त भक्षण किया जाता है ।
 इसकी लता प्रतिवर्ष वर्षाकाल में प्रसारित होती है ।

शिम्ब्यादि कुल—(Leguminosae) ।

उपयोगी अवयव—बीज, फली, मूल ।

रासायनिक संगठन—इसकी फली में 'निर्यास, कषायिन
 (Tannin), वसा तथा अल्पमात्रा में लौहांश होता है ।

गुण-कर्म—शुक्रवर्धक, मधुर, तिक्त, मांसवर्धक, गुरु-
 पाकी, वातघ्न, बलवर्धक, कफपित्त तथा रक्तघ्न है ।

बीज—वातघ्न, अतिशुक्रवर्धक (भा० पू० १ भ० ; मद०
 भा० १) । फल—वाजीकरण (वा० सू० १५ अ०),

स्वादु, वृष्य, वातघ्न, शीत, पित्ताश्रण तथा व्रणघ्न है ।
 (रा० नि० वं० ३) ।

मूल—बलवर्धक, वीर्यस्तम्भक तथा मूत्रल है ।

तिब्ब के अनुसार—कौंच । प्रकृति—अनुष्णशीत ।

गुण-कर्म—शुक्रल, वाजीकर, वीर्यपुष्टिकर और
 वीर्यस्तम्भक ।

उपयोग—शीघ्रस्खलन, शुक्रतारल्य, शुक्रमेह तथा
 नपुंसकता-नाशार्थ चूर्ण, पाक तथा माजुनों में मिश्रित
 किया जाता है । बीज को ज्ञाय के दूध में पकाकर पीसकर

। पीठी बना धीमे भून मधु की चाशनी में डुबोकर। सेवन करने से नपुसकता का नाश होता है।

गुण—शीतल, मधुर, दाहपित्तशमनशक, व्रमन और वातश्लेष्मनाशक है। (रा० नि० व० १०; ध० नि०)।

केवान—[सं०] जर्नवाल। (१) पत्तूर। (ब०) केविका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवडी (केतकी) भेद।

केवडा। (ध० नि०)। दे० केवा।

केविरो—[सि०] केविरो। (१) पत्तूर। (ब०) केविका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवडी (केतकी) भेद।

केवडा। (ध० नि०)। दे० केवा।

केवुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पत्तूर। (ब०) केविका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवडी (केतकी) भेद।

केवडा। (ध० नि०)। दे० केवा।

केवोकिविड—[वर०] रतनपुष्प। (१) पत्तूर। (ब०) केविका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवडी (केतकी) भेद।

केवडा। (ध० नि०)। दे० केवा।

केवोर (डु)—[पं०] तित्त कुडा। कुटज भेद।

केश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ह्रीवेर। सुगंधवाला।

(प० मु०)। (२) कुन्तल। बाल। रोम। (मे०)। मनुष्य के बालों की धूनी देने से संपूर्ण दंशनविषका नाश होता है। (कश्यप; वा० उ० ३७ अ०)।

केश उत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाल उगना। बाल निकलना। गर्भस्थ शिशु के आठवें मासमें केशकी उत्पत्ति होती है। (सुखबोध)। स्त्रियों के गृहांगमें केशकी उत्पत्ति १३वें—१४वें वर्ष में होती है। गर्भविस्था में रोमराजी का उद्गम होता है। यह प्रायः व्यक्तगर्भों में होता है। (सु० शा० ३ अ०)। मनुष्यों में केश की वृद्धि निरंतर जन्ममे जीवितवस्था पर्यंत होती रहती है।

केशकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुशियार। पीठा। गुण—

गुण, शीतल एवं रक्तपित्तनाशक है।

केशकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रोहिणी। (वि० नि०)।

केशकोट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जूँ। उकुण। (चोलर)।

(अ०) लाउस (Louse)।

केशगर्भक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कवरी। (त्रिका०) (२) सोतापाठा। श्योताक। (३) बकरा। छाया।

(४) उकुण। जूँ।

केशघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रधनुस रोग। (ब०) टाकपोका। (रा० नि० व० ३०)।

केशट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उकुण। (२) सोतापाठा, श्योताक। (३) बकरा। छाया। (मे०, त्रिका०)।

केश तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशसमूह तैल। निर्माण विधि—सज्जी ६ पल, पर्णचूर्ण (पलाशबीज चूर्ण) ६ पल, जल १०० पल एकत्र पाचन करे। जब ३ भाग जल शेष

। रह जाय (तत्र) इसमें केश (शिर के बाल) यथोचित परिमाण में (२४ पल) मिश्रितकर मृन्दाग्नि से पाचन करे। जब जल समाप्त हो जाय तब कृष्णवर्ण का तेल छानकर निकाल लेवे। (१)। (२)।

गुण—इसके उपयोग से श्वित्रकुष्ठ का नाश होता है। इसके योग से स्वर्ण भी बनाया जाता है। दे० तार (प्रयोग)। (२६ का० धे०)।

केशधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केशपुष्पा, दुर्गपुष्पी। नाम की वनस्पति।

केशभूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मस्तक। (२) भूतकेश। सफेद दूब। श्वेत दुर्वा।

केशनाम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ह्रीवेर। सुगंधवाला। (अम०)।

केशनी—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] जटामांसी। (ध० नि०)।

केशपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिचिडी। अपामार्ग क्षुप।

केशपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चिचिडी। अपामार्ग क्षुप।

केशपक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केशसमूह। (अम०)।

केश पाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केशभार। केशबन्धन। बाल बाँधने का फीता।

केशपाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जूडा। चूडा। शिरो-मध्यस्थ शिखा। (अ०)।

केशफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कोषफल। कोशा-तकी। (२) देवदाली। (के०)। राज कोशातकी।

केश बन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जूडा। केशपाशी। (ध० नि०)।

केश बीरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटी सतावरी।

केश भू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] मस्तक। (रा० नि०)।

केशभूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] व० १८)।

केश सथनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शमी (छोंकरा, छीकुर) का पेड़ जिसके काँटों में बाल उलझ जाते हैं।

केशमाज्जक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चिरुनी। कांकुई।

केशमाज्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कङ्कतिका। कंधी।

केशमणि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बकाइन। महातिम्ब।

केशमुष्टि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करेखा। विषमुष्टि।

केशमुष्टिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (२) घोड़ानीम। बकाइन। महातिम्ब। (रा० नि० व० ४१९)।

केशयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपविषादि शोधनार्थ यन्त्रविशेष।

विधि—घ्रात्यपूरित थाली में विष रखें। ऊपर से नारिकेल का जल भरें। इस प्रकार करने से विष का शोधन होता है। केशो दुग्धे प्लुतोयस्मात् केशयन्त्र तथा स्मृतम्। (वै० चन्द्रिका)।

केशर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) नागकेशर वृक्ष। (मे०)। व० सू० ५ अ०)। (२) मौलसरी। वकुलवृक्ष।

(सु० सु० २८ अ०) । (एलादि०) । (३) पुत्राग वृक्ष । (हारा०) । (४) नागकेशर । किञ्जल्क (भा० पू० १ अ०) । (५) सिंहकेशी । (मे०) । (६) हिङ्गुवृक्ष । हींग का वृक्ष । (अ० टी० य०) । (७) केशर । दे० "केशर" ।
केशरङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केशराज । भृङ्गराज । भांगरा ।

केशरङ्गिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सहदेवी । (२) भृङ्गराज ।

केशरञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भांगरा । केशराज । भृङ्गराज । (रा० नि० व० ४) । (२) नीलझिण्टी । (वै० निघ०) ।

✓ केश(स) र पाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] वाजीकर-णार्थ पाक विशेष जिसमें केशर का योग किया जाता है । वाजीकर पाकयोगविशेष ।

निर्म्माण विधि—'कश्मीरी केशर ४ तो० ग्रहणकर ४ सेर दूध में औटाएँ । जब खोआ बन जाए तब १० तो० घृत के साथ मन्दाग्नि से भर्जित करें । पुनः २० तोला चीनी की चाशनी मिश्रित करें और जब शीतल हो जाए इसमें विद्युद्ध मधु २० तो० मिश्रित करें । पुनः इसमें रससिद्धर, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म और शुद्ध अहिफेन प्रत्येक १-१ तो०, नाग भस्म ६ तो०, जावित्री, चित्रकमूल, सफेद मुसली, स्याह मुसली, कस्तूरी, अम्बर, जुन्दवेदस्तर, गोरौचन, चव्यचूर्ण, कुलंजन, प्रत्येक १-१ तो० चूर्णकर मिश्रित करें । मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ तोला ।

(२) सोंठ, मिर्च, पीपर, तज, पत्रज, इलायचीदाना, त्रिफला, लौग, काली अगर, श्वेतचन्दन, तालमखाना, अकरकरा, जायफल, केवाँच के बीज, मोचरस, बला, अश्वगन्धा, गोखरू, सफेद व स्याह मुसली, वायविडंग, समुद्रशोष, शुद्ध कुचला, जावित्री, शीतलचीनी, प्रत्येक १-१ तो०, कश्मीरी केशर २० तो०, कस्तूरी १६ तो०—यथाविधि चूर्ण कर चौयुनी मिश्री की चाशनी में मिश्रित करें । पुनः इसमें वंग भस्म, रससिद्धर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म-कान्तपाषाण भस्म, कान्तलोहभस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक १२-१२ तो०, वर्क सोना २००, वर्क चाँदी २०० और शुद्ध भांग का चूर्ण एकत्र मिश्रितकर मर्दन करें मात्रा—जायफल प्रमाण तथा प्रकृति के अनुकूल ।

(३) काश्मीरी केशर, जावित्री प्रत्येक १६ तो०, विदारीकन्द का स्वरस और गोदुग्ध १-१ सेर डालकर मन्दाग्निसे पकाएँ । जब खोआ हो जाए, इसमें १ सेर चीनी की चाशनी मिश्रित करें और पुनः केशर, लौग, अफीम, अभ्रक भस्म, जावित्री, मोचरस, पीपल, जायफल, तज, केवाँच के बीज, समुद्रशोष, मस्तगी, शीतलचीनी, अकरकरा, वेर की मींगी, रससिद्धर, शुद्ध गन्धक तथा

पारा की कज्जली मिश्रितकर यथाविधि पाक करें । जब चाशनी गाढ़ी गोली बनाने योग्य हो जाय तब ६ मासा कर्पूर मिश्रितकर सुरक्षित रखें । मात्रा १-२ तो० तक ।

गुण तथा सेवन-विधि—उक्त द्वितीय योग—प्रातः काल दूध के साथ सेवन करने से स्त्रीसंभोग की शक्ति की वृद्धि होती है । क्षुधा लगने पर पुनः दुग्धपान करें । अधिक भूख की वृद्धि हो तो सम्भोगोत्तरकाल में यथेष्ट दुग्धपान करें । रात्रि में चावल-दाल-रोटी अन्ततः न खाएँ । इस प्रकार सेवन करने से मनुष्य इच्छापूर्वक मैथुन करने में समर्थ होता है । यदि रोगनिवृत्त्यर्थ सेवन करें तो यथेष्ट आहार करें । इसके प्रभाव से वातरोग, वातरक्त, अस्थिरोग, शिरोरोग, सन्धितगत रोग नष्ट होते हैं । वृद्ध भी तरुणतातुल्य समर्थवान् होता है और अनेक रमणियों के साथ मैथुन करने में समर्थवान् होता है ।

उक्त प्रथम योग के सेवन से समस्त प्रमेह, कास, श्वास, कफरोग, वातज प्रमेह, कटिशूल, गुल्म, अर्श, पुरातन असाध्य संग्रहणी तथा नपुंसकता का नाश होता है ।

अनुपान—दुग्ध । निषेध—दही, खटाई, तक्रादि ।

उक्त तृतीय योग—के सेवन से चटकपक्षीवत् स्त्रीसंभोग की शक्ति प्राप्त होती है । ओज की वृद्धि, शीघ्रशुक्रस्खलन, प्रमेह, वातरोग, ५ प्रकार का छर्द्दिरोग, शीतांगता, अग्निमान्द्य, बहुमूत्र, उरःक्षत तथा कास-श्वास का नाश होता है । (च०, र० प्र० भ० रसाय-अ०) । (रस यो० सा०) ।

केशर योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्मरीरोग में प्रयुक्त योग; यथा—केशर को पुरातन घृत के साथ ३ दिन पर्यन्त सेवन करने से मेदशर्करा (मूत्र में शर्करा का जाना) दूर होती है । (वृ० नि० २०) ।

केशर लेह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] रक्तपित्तचिकित्सा में प्रयुक्त योग; यथा—मधुयुक्त केशर के सेवन से अधिक रक्तस्राव का नाश होता है । (वृ० नि० २० रक्तपि० चि०) ।

केशर षष्ठयोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठचिकित्सा में प्रयुक्त योग; यथा—केशर, कूट, मूली के बीज, फूलप्रियङ्गु, धमासा तथा सरसों इन्हें जल के साथ पीसकर लेप करने से पुरातन सिध्म (सेहुआ) का नाश होता है । (वृ० यो० त० १२० त०) ।

केशरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागरमोथा । नागरमुस्ता । (रा० नि० व ६) ।

केशराग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भांगरा । भृङ्गराज । (भा० गण्डमा० चि०) ।

केशराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भांगरा । भृङ्गराज । दे० 'भांगरा' । (२) एक प्रकार का भुजंगा पक्षी ।

केशरादि वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] फिरंगरोग में प्रयुक्त वटी (चन्दनादि वटी); यथा—केशर, मिचं, रक्तचन्दन, रसकपूर, लौंग, मिस्त्री, पुनर्नवामूल, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर चूर्ण करे और उसमें पुनर्नवा के रसकी भावना देकर ३ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाए। अकवन में लपेटकर सेवनकरने से उपदंश, अग्निमान्द्य, भगन्दर, रक्तदोष तथा आतशक का नाश होता है। अनुपान—अनन्तमूल का काथ। (तू० क०; र० यो० सा०)।

केशराम्ल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विजौरा नीबू। मातुलुङ्ग वृक्ष। (जटा०)। (२) अनार।

केशरावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] शक्तिवर्धकयोग विशेष।

निर्म्माण विधि—कश्मीरी केशर १६ तोला, पिप्पली चूर्ण ३२ तो०, गोदुग्ध १२ सेर। यथाविधि पकाकर खोवा बनाले। पुनः इसमें १२ तो० घृत मिश्रितकर भजित करें और ४० तोला चीनी की चाशनी मिश्रित करें। प्रक्षेपार्थ द्रव्य—

जायफल, जावित्री, करंज की गिरी, शीतलचीनी, शतावरी, अश्वगन्धा, गोखरू, हाउवेर, कचूर, कोकम, सोंठ, धनियाँ, त्रिफलाचूर्ण, वंशलोचन, सिंघाड़ा, कसेरु, नागरमोथा, मोचरस, विधारा, देवदारू, तगर, अजवाइन, काली अमर, कमलगट्टा, तालमखाना, प्रत्येक—६-६ माशा तथा दुग्ध में पकाई हुई चोपचीनी २॥ तो०, यथाविधि चूर्णकर उक्त चाशनीकृत खोआ में मिश्रितकर मर्दन करे।

मात्रा—१-२ तो०।

गुण—इसके सेवनोपरान्त गोदुग्धपान करने से दुर्बलता, इन्द्रियों की क्षीणता, अनागत शुक्र, बल-मांस की हानि, वातजरोर, श्लैष्मिकरोग इत्यादि नष्ट होते हैं। (रस० यो० सा०)।

केशराह्वय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ह्रीवेर। सुगन्धवाला। (सु० चि० ९ अ०)।

केशरिम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नागकेशर, पुष्पाग वृक्ष।

केशरी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (२) घोड़ा। घोटक। (मे०)। (३) जलचर पक्षी विशेष। (च० सू० २७ अ०)। (४) लालसहिजन। रक्तशिग्रु। (रा० नि० व० ७)। (५) बिजौरा नीबू। मातुलुङ्ग वृक्ष। (मद० व० ६)। (६) सिंह (रत्ना०)। (७) वानर भेद। (वै० निघ०)। (८) केसरी।

केशरुह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नील, नीलिनी। (ध० नि०)।

केशरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ा नील। महा-नीलिनी। (वै० निघ०)। (२) बड़ी दन्ती। भद्रदन्ती वृक्ष। (रा० नि० व० ६)। (३) महाबला। सहदेवी। दे० 'केशवद्विनी'।

केशरुडक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसौदी। कासमर्द वृक्ष। (वै० निघ०)।

केशरुपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाँदा। बरगाछा। बन्दाक। वृक्षरुहा। (रा० नि० व० ५)।

केशव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुरपुत्राग। सुरपन। (२) काक। वायस। (मे०)। (३) नागकेशरवृक्ष। (प० मु०)।

केशवन्ध—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशविन्यास। खोंपा।

केशवप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरोचन। (प० मु०)।

केशवद्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाबला लता।

(रा० नि० व० ४)। सहदेवी नामक वृटी। सहदेइआ।

केशवायुध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम। आम्र वृक्ष। (श० मा०)।

केशवालय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष।

केशवावास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (त्रिका०; जटा०)।

केशवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'केशिका'।

केशवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] दे० 'लेखिका'।

केशवेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केशवन्ध। (ध० नि०)।

केश बाँधने का बँधना।

केशशौक्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पलित। केश सफेद होता। (ध० नि०; रा० नि० व १८)।

केशसीमन्तकृत्ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] असाध्य ज्वर विशेष। लक्षण—रोगी का शरीर ज्वर के कारण क्षीण हो गया हो, अंगों में शोथ हो, ज्वर के लक्षण गम्भीर हों, ज्वर बहुत दिनों का तथा बलवान् हो, रोगी के शिर के बालों में माँग-सी बन गई हो तो वह ज्वर असाध्य होता है। इस प्रकार के ज्वर में रोगी की मृत्यु हो जाती है। 'असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्त कृत्ज्वरः'। (मा० नि० ज्व० नि०)। (पिजर०)।

केशहन्त्रि (न्तु) फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाशमी केशहन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष।

शमी का बड़ा भेद। छोंकरा। छीकुर। (वै० निघ०)।

केश हस्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केशसमूह। बालों का गुच्छ। (अम०)।

केशहृत्फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाशमी वृक्ष। छीकुर। छोंकरा।

केशा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जटामाँसी। (वै० निघ०)।

केशारण्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ह्रीवेर। सुगन्धवाला। (रत्ना०)।

केशाञ्जली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रवासन। जैत का वृक्ष। ज्वालामुखी।

केशाञ्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रवासन, जैत, ज्वाला-मुखी।

केशाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुमिभेद। (वै० निघ०)। दे०

‘कृमिरोग’ । (च० सू० ८ अ०) । रक्तज (कुष्ठरोगजनक) कृमिविशेष ।

केशापहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शमीवृक्ष । छीकुर । छोंकरा ।

केशारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नागकैसर । (वै० निघ०) ।

केशारूहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाबला क्षुप । सहदेवी । सहदेइया । (रा० नि० व० ४) ।

केशार्हा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ा नील । महानीली क्षुप । (रा० नि० व० ४) ।

केशालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भांगरा । भृङ्गराज । भीम-राज । (वै० निघ०)

केशाह्व—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुगन्धवाला । बालक । (वै० निघ०) ।

केशिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसेरु । कशेरुक । केशुर । (प० मु०) ।

वि० [सं० त्रि०] प्रशस्त केशों से सुसज्जित । (अम०) ।

केशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शतावरी । शतमूली ।

(रा० नि० व० ४) । (२) स्रोतस्, केशिका, (अं०)

कैपिल्लरी (Capillary) । केशवाहिनी नलिका ।

केशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जटामांसी (रा०

नि० व० १२) । (२) वन्ध्या । (वै० निघ०) ।

केशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच । शूकशिम्वी । आला-

कुशी । (र० मा०) । (२) भूतकेश नाम की ओषधि ।

जटामांसी । भूकेश । (रा० नि० व० १२) । (वा० उ०

६ अ०) । (३) बड़ी सतावरी । महाशतावरी । (४)

अम्बाड़ा । आम्नातक वृक्ष । (वै० निघ०) । (५) नील ।

नीली क्षुप । (रा० नि० व० ६) । (६) चोरपुष्पी ।

अन्धाहुली । (अम०) । (७) एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ

खजूरकी पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं ।

केशुनट—संज्ञा पुं० [अं० Cashew-nut] काजू । हिजली

वादाम ।

केशुर—संज्ञा पुं० [व०] कसेरु । कशेरुक ।

केशुकिला—[?] वलूतका गोंद ।

केशे—[व०] कुश । कुशा । दर्भ ।

केशो—[आसाम] कर्पानेलिया ।

केशोच्चय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केशसमूह । वालोंका

गुच्छ । (हे०) ।

केशोण्डुक यन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वालोंकी गेंद ।

(सु० सू० २७ अ० १४ श्लो०) । गले में अटके हुए

अस्थिशल्य को निकालने के लिए पाश्चात्य शल्यचिकित्सा

में घोड़े के वालों का बनाया हुआ प्रोबंग (Probang)

नामक यन्त्र ।

केश्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भांगरा । भृङ्गराज ।

(रा० नि० व० ४) । (२) आसन । असनवृक्ष । (वै०

निघ०) ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काला अगर । कृष्णा-

गुरु । (रा० नि० व० १२) । (२) ह्रीवेर । वाला ।

सुगन्धवाला । (रा० नि० व० १० । ध० नि०) ।

वि० [सं० त्रि०] केशों के लिए हितकर ।

कैसर—संज्ञा पुं० दे० ‘कैन्सर’ ।

केस—संज्ञा पुं० [सं० केश] केश । बाल । कच ।

केसई—संज्ञा स्त्री० दे० ‘कसई’ या ‘कसेई’ ।

केसर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) नागकैसरपुष्प ।

(रा० नि० व० ६; वै० निघ०) । (२) किञ्जल्क । पद्म-

कैसर । (सि० यो० कल्याणघृत) । (३) मौलसिरी । बकुल ।

(रा० नि० व० १०) । (४) कसीस । हीराकसीस ।

(५) सोना । स्वर्ण । (रा० नि० व० १३) । (६) पुन्नाग

वृक्ष । (अम०) । (७) विजौरा नीबू । मातुलुङ्ग वृक्ष ।

(रा० नि० व० ११) । (८) हींग । हिङ्ग । (९) सिंह-

च्छदा । सफेद दूब । श्वेत दूर्वा । (मे०) । (१०) एक

प्रकार के फूल का कैसर जिसका पौधा बहुत छोटा

होता है और पत्तियाँ घास की तरह लंबी और पतली

होती हैं ।

पर्याय—(सं०) केशर, कुङ्कुम, काश्मीरज, कश्मीरजन्म,

अरुण, अग्नि-शेखर, असृक्, काश्मीर, पीतक, शठ, शोणित,

घुसृण, वरेण्य, कालेयक, जायुड, कान्ता, वह्निशिख,

कैसरवर, गौर, कुसुमात्मक, शोणिताह्वय, सङ्कोच, पिशुन,

हरिचन्दन, खल, रज, दीपक, लोहित, चन्दन, सौरभ,

घस्र, रक्त, शोणितामिध, धीर, बाल्हीक, रक्तचन्दन,

अग्निशिख, वीरचार, रुधिर, अक्ष; (हि०) केशर, कैसर;

(म०) केशर; (गु०) कैसर; (बं०, कना०) कुंकुम; (ते०)

कुम-पूवु; (यू०) फिरफियूनस, फिरफियूनस; (अ०)

जाफरान; (फा०) करकीमास; (कु०) (ता०, मल०)

कुंकुम-पु; (को०, कना०) कुंकुम, कैसर; (जर०) साफ्रान

(Safran); (फ्रांस) साफ्रान (Safran); (अं०) सैफ्रन

(Saffron); (ले०) क्रोकस् सेटाइवस् (Crocus

sativus), क्रोकस सैफ्रन (Crocus-Saffron); क्रोकिस्टि

ग्मेटा (Crocistigmata) ।

कुङ्कुमादिकुल—(Irideae) ।

उद्भवस्थान—कश्मीर, ईरान, चीन, स्पेन, बलखबुखारा,

एशियामाइनरमें इसकी प्रतिवर्ष कृषि होती है । इनमें कश्मीर

का कैसर सर्वोत्तम माना जाता है ।

उपयोगी अवयव—शुष्क पुष्प ।

विवरण—इसका क्षुप न बहुत बड़ा न अति छोटा

रसोनतुल्य होता है । इसके नीचे मूलमें लहसुनतुल्य गाँठ

होती है । फूल बैंगनी झाँई लिये बहुत रंग का होता है

और पौधे में फूल लगने के बाद पत्तियाँ लगती हैं । इसके

मध्यदण्ड में छत्तेदार पुष्प लगता है । उसके ऊपर सूक्ष्म

तन्तु निकलते हैं । इनका वर्ण पीतरक्ताभ होता है । जिस

प्रकार कुसुम के पुष्प में तन्तु होते हैं। वैसे ही केसर के पुष्प में भी होते हैं। इनको ग्रहणकर दवाकर डिब्बों में सुरक्षित रखते हैं। कश्मीरदेशीय केसर सुगन्धपूर्ण किंचित् कटु होता है। यह सर्वश्रेष्ठ होता है। बाह्लीक (बलख) देश का उत्पन्न केसर सूक्ष्म, केतकीपुष्पवत् गन्धवाला होता है तथा इसका वर्ण पाण्डुवर्ण होता है। यह मध्यम है। फारस देशीय केसर स्थूल, मधुगन्धी किंचित् पाण्डुवर्ण का होता है। यह अधम है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का उत्पत्त तैल, केसरीन (Crocine) जो जलविलेय तथा सुरासार में शीघ्र विलीन होती है। इसमें नागरंग वर्ण का ग्लुकोसाइड (Glucoside) भी होता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार का तिक्त सत्व, सिक्थ, घनतैल, गोंद, शर्करा, ५ प्रतिशत भस्म, १२ प्रतिशत तरल पदार्थ तथा ६५ प्रतिशत रज्जक द्रव्य होता है।

योग—टिचर क्रोकस (केसरसुरासव)। मात्रा—५ से २० बूँद।

हिस्—मात्रा—१ भाग ८० का १ से ४ औंस।

गुण—केसर चरपरा, चिकना, कटु, वर्णको उत्तम करने-वाला और शिरोरोग, व्रण, कृमि, व्यङ्ग (झाई), वमन तथा त्रिदोषनाशक है। (भा० पू० १ भ०)। बलवर्धक, उष्ण, हास्यकर है। (मद० व० ३)। कान्तिकारक, रुचिकारक, त्रिदोषघ्न, शिरोशूलनाशक, कास, वात-कफ-कण्ठरोगनाशक, तिक्त, कटु, उष्ण तथा सुरभित होता है। (रा० नि० व० १२)।

उपयोग—इसका व्यवहार पाक, खीरादि में सुगन्ध-उत्पादनार्थ सर्वाधिक होता है। ईरानदेश में इसका व्यवहार विविध प्रकार से होता है। सुखपूर्वक प्रसव होने के निमित्त वहाँ की स्त्रियाँ केसरकृत गुटिका आनन्द-पूर्वक अपने अंचलों में बाँधे रहती हैं। प्रसवपश्चात् जरायुजशूलनिवारणार्थ प्रतिदिन नियमितरूप से इसको भक्षण करती हैं।

तिब्ब के अनुसार—केसर—प्रकृति—द्वितीय कक्षामें उष्ण, प्रथम कक्षा में रुक्ष है। गुण-कर्म—चित्तप्रसन्नकारक, मूत्रल, वात-शोथघ्न, हास्यजनक, आर्तवजनक, संग्राही, लेखन, दृष्टि को सुखप्रद, मलसंपककारक, दोष-शोधक, दुर्गन्धनाशक, वृक्कबस्तिस्वच्छकारक, हृदय, मस्तिष्क एवं शरीर पुष्टिकारक है। उपयोग—इसकी सूक्ष्म वर्त्तिकानिर्माण कर मूत्रेन्द्रिय के मुख में प्रवेश करने से मूत्रावरोध दूर होता है। इसको आघ्राण करने से मस्तिष्क की शुद्धि होती तथा सन्निपात व छिक्का का नाश होता है। इसके बाह्य तथा आन्तर उपयोग से रुद्धार्तव का नाश होता है। दृष्टि की दुर्बलता में इसे गुलाबजल में घिसकर नेत्रों में अंजन करने से लाभ

होता है। यकृतशोथ तथा जरायुजशोथ में उपयुक्त औषधियों के साथ व्यवहार करने से लाभ होता है। शुक्ल द्रव्यों के साथ मिश्रितकर सेवन करने से पुंषकता नष्ट होती है।

अहितकर—क्षुधानाशक है। इन्द्रियों को मलिन करता है, कण्डू-उत्पादक और वृक्कदौर्बल्यकारक है। निवारण-जरिस्क, अहिफेन, सिकंजबीन, अनीसून, मधु व शुक्त।

प्रतिनिधि—तज, जावित्री, कुट और विजौरा के बीज।

मात्रा—१-३ माशा। (निर्विषैल)।

होमियोपैथी के अनुसार—चरित्रगत लक्षण—(१) सान्द्र, लसयुक्त वर्ण का थक्का-थक्का रक्त प्रवाहित होना, रक्त-स्रावस्थान से कृष्णवर्ण सूत्र की आकृति का लम्बा होकर लटकता रहना; (२) शिरोवेदना, रजनवृत्तिकालमें, ऋतुकालमें और सामयिक ऋतुस्राव के ३ दिन प्रथम से तथा ऋतु के पश्चात्; (३) नासिकासे कृष्णवर्ण का लसदार गोंदतुल्य रक्त प्रवाहित होना, जो सूत्राकार लम्बा होकर निकलता है और साथही ललाट पर पसीना; (४) बाधक के दर्द में काला थक्का-थक्का सूत तथा तारतुल्य लम्बा-स्राव; (५) जरायु, पाकस्थली, उदर, हाथ और पैर वा शरीर के अन्य किसी भी स्थान में ऐसा प्रतीत होना जैसे कोई जीवित वस्तु घूम रही है और उसके साथ ही उत्क्लेश तथा मूर्च्छा का भाव; (६) योषापस्मार तथा ताण्डवरोग (Chorea) में अत्यधिक आनन्द होना, नाचना-गाना, कभी क्रुद्ध और कभी दुःखित होना।

उपयोग—इसके टिचर से रक्तस्राव—नाक, मुँह, मूत्रद्वार, मलद्वार, जरायु इत्यादि किसी भी स्थान से यदि रक्त-स्राव होकर स्कन्दित हो जाए वा अधिक कृष्णवर्ण का सूत्रवत् गाढ़ा रक्त होकर निकलना, ऐसी अवस्था में लाभ होता है। अथवा उपर्युक्त केसर के चरित्रगतलक्षण में, योषापस्मार में, उदर में भ्रूण हिलने-डोलने के कारण अधिक कष्ट हो तो इससे लाभ होता है। गर्भवती स्त्री के अतिरिक्त यदि अन्य स्त्री के वक्षःस्थल पर, आँत, पाकस्थली और जरायु में ऐसा प्रतीत हो कि कोई कृमि वा केचुआसा घूम रहा है तो भी इसके उपयोग से लाभ होता है।

शिरोवेदना—ऋतुनिवृत्ति की अवस्था में, ऋतुस्राव होने के समय, ऋतुस्राव के पूर्व, ऋतुस्रावकाल तथा उसके पश्चात् कभी दक्षिण कभी वाम भाग में, कभी बायीं ओर और कभी आँख के ऊपर उग्र वेदना होना, रोगस्थल पर रक्त स्कन्दित हो जाने पर और टपककीसी वेदना होने पर इससे लाभ होता है।

नेत्र रोग—अक्षिपुट में वातज वेदना, वेदना का नेत्र से मस्तक की ओर बढ़ना, नेत्र की पुतली बड़ी हो जाना।

दृष्टिहीनता—रोगी को ऐसा प्रतीत होना कि मानो वह

धूम्र वा कुहरे के भीतर बैठा हुआ है और नेत्रों के ऊपर एक घूँघट-सा पड़ा है, नेत्रों के भीतर श्लेष्मा-सा भरा हुआ प्रतीत होना, जिसे निरन्तर हाथ से निकाल कर फेंकने की चेष्टा करता है, पठन-काल में नेत्रों में प्रदाह होना, अश्रुस्राव होना ।

पलक फड़कना—यदि यह योषापस्मार, ताण्डवरोग वा किसी अन्य रोग के कारण हो तो इससे उपकार होता है । वृद्धि—सन्ध्याकाल में, आमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन गर्भावस्था में, उष्ण वायु में, उपवास से वृद्धि हो तो इससे लाभ होता है ।

हास—निर्मल वायु सेवन करने से, प्रथम बार भोजन करते समय, उपवास भंग करने पर शक्तिक्षीण हो तो इससे लाभ होता है ।

क्रम—६ से २०० शक्ति । यदि शक्तिकृत औषधसे लाभ न प्रतीत हो तो अनेक क्षेत्रों में क्रोकस के मूलासव (मदर टिचर) से अधिक लाभ होता है । पश्चात् की औषधि चायना, नक्स, पल्स, सल्फ ।

सम्बन्ध—प्रायः सभी रोगों में क्रोकस के पश्चात् नक्स, सल्फ तथा पल्स से लाभ होता है ।

क्रिया स्थिति काल—८ दिन ।

क्रिया हारक—एकोन, वेल, ओपि ।

योग (फॉर्मूला) ४ ।

[म०; गु०] केसर । कुङ्कुम ।

केसर चेद्रु—[ते०] केसर ।

केसरञ्जन—संज्ञा पुं० [सं०] भांगरा । भृंगराज ।

केसरबोंडी—संज्ञा स्त्री० [म०] सिन्दूरी । लटकन ।

केसर वर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केसर । कुङ्कुम । (रा० नि० व० १२) ।

केसर सरबाम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नीलूफर जाफरानी ।

केसरराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भांगरा । भृङ्गराज ।

केसरामल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विजौरा नीबू । बीजपूर । (रा०) । (२) अनार । दाडिम्ब । (के०) ।

केसरालम्बा—

केसरि—[कना०] केसर । कुङ्कुम ।

केसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाबलाक्षुप । (रा० नि० व० ४) । (२) सहदेवी । सहदेई ।

केसरिचेद्रु—[ते०] सुदर्शन ।

केसरिमुत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हनुमान । (हे० च०) ।

केसरिन्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सिंह । (२) घोड़ा । घोटक । (३) पुन्नागवृक्ष । (४) नागकेसर वृक्ष । (५) लाल सहिजन । रक्तशिग्रु । (६) बीजपूर । विजौरा नीबू । (ध० नि०) ।

केसरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] (१) सिंह । (२) एक प्रकार का बगुला । (३) बारफली ।

केसरीन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दे० 'केसरिन्' । (२) कुंकु । बारफली ।

संज्ञा पुं० [म०] सिन्दूरी । लटकन ।

केसरीफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विजौरा नीबू । बीजपूर ।

केसरोच्चटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुस्ता । नागरमोथा । (वै० निघ०) ।

केसव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पलाश । ढाक । (२) नागकेसर ।

केसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, पा० किसर] एक कदन्न विशेष । केराव । खेसारी । कसारी । लतरी । मटर की जातिका एक अन्न जिसे दुबिया मटर भी कहते हैं । इसके दाने छोटे, चपटे, चौकोर और मटमैले होते हैं ।

केसाव ट्री—संज्ञा स्त्री० [अ० Cassav tree] आलू गाछ ।

केसिया अंगण्टीफोलिया—संज्ञा पुं० [ले० Cassia Angustifolia] सनायमक्की ।

केसिया अर्बा-बीटा—[ले० Cassia-Arbabeata] सनाये अरबी ।

केसिया अलेटा—[ले० Cassia-Alata] दाद मर्दन । दद्रु-मर्दन । विलायती अगस्ती । (इ० है० गा०) ।

केसिया ऑब्दुसिफोलिया—[ले० Cassia obtusifolia] दद्रुमर्दन । दादमर्दन । चक्रवर्द्ध । चक्रमर्द । पमाड़ ।

केसिया ऑरिक्युलेटा—[ले० Cassia Auriculata] तरवड़ । तरोटा । (बिहार) ।

केसिया ऑक्सिडेंटैलिस—[ले० Cassia Occidentalis] कसौदी । कासमर्द ।

केसिया इयर्ड—[अ० Cassia, Eared] तरवड़ ।

केसिया एलॉङ्गेटा—[ले० Cassia Elongata] सनाय भारतीय । सनाएहिन्दी । स्वर्णमुखी । सनामक्की ।

केसिया एव्स—[ले० Cassia Absus] चाकसू । (द०) चाकुर । (सं०) वन कुलत्थ । चक्षुष्या । दे० 'चाकसू' ।

केसिया ओवेटा—[ले० Cassia Ovata] चक्रवर्द्ध । पमाड़ । चक्रमर्द ।

केसिया ओवल-लीव्ड—[अ० Cassia oval-leaved] चक्रवर्द्ध । चक्रमर्द । पमाड़ ।

केसिया कॉरोमेण्डिलिएना—[ले० Cassia Coromendiana] कसौदी । कासमर्द । कसौजी ।

केसिया ग्लाका—[ले० Cassia Glaca] कोन्डा । टोन्ड पुचेद्रु-ते० ।

केसिया टेगारा—संज्ञा पुं० [ले० Cassia Tagara] चक्रवर्द्ध । पमाड़ । चक्रमर्द ।

केसिया टोरा—[ले० Cassia Tora] चक्रवर्द्ध । पमाड़ । चक्रमर्द ।

केसिया टोरोआइडिज

३७३

कैकः

केसिया टोरोआइडिज--[ले० Cassia Toroides] चकवई ।
 पमाइ । चक्रमई ।
 केसिया ट्री--[अं० Cassia tree] दालचीनी । दारचीनी ।
 तज । सलीखा ।
 केसिया पर्जिङ्ग--[अं० Cassia Perging] अमलतास ।
 आरखव ।
 केसिया फिटीडा--[ले० Cassia Foetida] चकवई । चक्र-
 मई । पमाइ ।
 केसिया फिलिफॉर्मिस--[ले० Cassia Filiformis] आकाश-
 बेल ।
 केसिया फिड्युला--[ले० Cassia Fistula] अमलतास ।
 आरखव ।
 केसिया फोर-लीव्ड--[अं० Cassia four-leaved]
 चाकसू । बन कुलथ ।
 केसिया बुरमेनाइ--[ले० Cassia Burmanai]
 केसिया ब्लण्ट-लीव्ड--[अं० Cassia Blunt-Leaved]
 पमाइ । चकवई । चक्रमई ।
 केसिया ब्रेक्टिएटा--[ले० Cassia Bracteata] दद्रुमईन ।
 दाद मईन । दद्रुम ।
 केसिया मेमो-साइडिज--[ले० Cassia Memosoides]
 पट्टवा घास । पटवास (सन्ताल) ।
 केसिया राउण्ड-पॉटेड--[अं० Cassia Round-Poted]
 कसौदा । कासमई ।
 केसिया लेन्सिलेता--[ले० Cassia Lanceolata]
 भारतीय सनाय । स्वर्णमुखी । सनाए-हिन्दी । सनाय
 मक्कीभेद ।
 केसिया सोफोरा--[ले० (Cassia Sophora)] कसौदी ।
 कासमई । बास की कसौदी ।
 केसिया हर्पेटिका--[ले० Cassia Herpetica] दादमईन ।
 दद्रुम । (द०) दाद का पत्ता । विलायती अगस्त ।
 विलायती अगती ।
 केसिएरिया-एस्क्युलेन्टा--[ले० Casearia Esculenta]
 चिल्ला । चिलरा । बैरी । (Wild Cowrie Fruit)
 केसिएरियाग्रेविओलेन्स--[ले० Casearia Graviolens]
 केसिएरिया टोमेण्टोसा--[ले० Casearia Tomentosa]
 केसीन--संज्ञा पुं० [अं० Casein] दूध में का ठोस भाग ।
 केसु (स्यु) एरिना इक्विसेटिफोलिया--[ले० Casuarina
 equisetifolia]
 केसु (स्यु) एरीना म्युरिकेटा--[ले० Casuarina
 muricata] गोज (ता०) । सनोबर ।
 केसुएरिना म्युरिकेटेड--[अं० Casuarina muricata]
 केसुजी--[वर०] अण्डबीज । जंगली एरण्ड ।
 केसुटी--[बं०] भांगरा । केशराज । भृङ्गराज ।
 केसुडां--[गु०] पलाशपुष्प ।

केसुमी--[वर०] प्याज । पलाण्डु ।
 केसुर--[बं०] कसेर । कसेरुका ।
 केसुला--[राजपुताना] ढाक । पलाश ।
 केसुसी--[वर०] अण्डी का तेल । एरण्डतैल ।
 केसु--संज्ञा पुं० [सं० किशुक] ढाक । पलाश । टेसू ।
 केसुकोहना--[बरबरी] जुअद । (लु० क०) ।
 केसुर-किउ--[वर०] लहसुन । रसोन ।
 केसुर--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसेर । केसुर ।
 केसुरिया--[बं०] भांगरा । भृङ्गराज । केशराज ।
 केसोचेटि--[ता०] अजून । करवा । (बम्ब०) ।
 केसोस--संज्ञा पुं० [यू०] लवलाव ।
 केसरी--संज्ञा पुं० [] ग्रंथितृण । दे० 'केसरी' ।
 केसर--[पं०]
 (ले० पॉलिगोनम् आर्टिक्युलक्स (Polygonum
 articulax) ।
 कैंसर--[बम्ब०]
 केहरस--[पं०] बलूत ।
 केहरी--संज्ञा पुं० [सं० केसरी] सिंह । शेर ।
 केहा--संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] (१) मोर । (२)
 एक छोटा जंगली पक्षी जो बटेर के समान होता है ।
 कैंसर--संज्ञा पुं० [अं० Cancer] एक प्रकार का घात-
 कार्बुद । दुष्टमांसाबुद । कर्कटाबुद । कैंसर । दे० 'कैंसर' ।
 क्रै--संज्ञा स्त्री० [अ०] वमन । छर्दि । धात्वर्थ उछालना या
 फेंकना या गिराना । तिब (यूनानी चिकित्साशास्त्र) की परि-
 भाषा में उलटी या वमन करना । यह आमाशय की एक
 गति है । आमाशय में जब कोई अप्रिय वस्तु प्राप्त होती है
 तब आमाशय उसको स्वीकार न कर बहिर्गत कर देता
 है । (अं०) वॉमिट (Vomit), वॉमिटिंग (Vomiting) ।
 क्रै अस्वद--संज्ञा स्त्री० [अ०] काला वमन । स्याह कै ।
 काले रंगका वमन । (अं०) वॉमिटोनाइगर (Vomito-
 niger) ।
 क्रैआवर अद्वियः--[अ०] वामक द्रव्य । कै वा वमन-
 कआवर दवा--[उर्दू] कारक द्रव्य, मुकई । वह द्रव्य
 जिसके उपयोग से वमन हो । यथा--तूतिया, फिटकिरी,
 जंगली प्याज इपिकाक इत्यादि ।
 क्रै उद्गम--संज्ञा स्त्री० [अ०] रक्तवमन । खूनी कै ।
 क्रै उलकातस--[यू०] जुल्फ । जुल्फ्याविस ।
 क्रै उल्मिद्ग--संज्ञा स्त्री० [अ०] पूयवमन । पीप की कै ।
 पीपवाली कै । (अं०) पस वॉमिट (Pus Vomit) ।
 क्रै दम्बी--संज्ञा स्त्री० [, ,] रक्त वमन, खून की कै, खूनी कै ।
 क्रै मुतहमम्--संज्ञा स्त्री० [, ,] कै खूनी । (अं०) ब्लड वॉमिट
 (Blood Vomit), हिमेटीमेसिस (Haematemesis) ।
 क्रै (क्रो)क्रः--[अ०] अंडे के अन्दर का बारीक छिलका ।
 कैकः--[?] अंडा ।

कैक—[फा०] पिस्सू । कुमि ।

कैकव—[अ०] बकाइन । महानिम्ब ।

कैकवान—[, ,]

कैकवान—[अ०] कुतलुब । कातिलअव्यः ।

कैकवाशः वा कैकवाश—संज्ञा पुं० [फा०]

पर्या०—कैकवाशः, कैकवाश (फा०) । हशीशतुल
विरागीस (श्याम) ।

टिप्पणी—हशीशतुल बरागीस को किसी ने गाफिस का
नाम लिखा है । परंतु दायरतुलमुआरिफ के सातवें जुज
में इसबगोल का नाम बतलाया है । श्यामदेश की भाषा
में दोकुस का नाम भी लिखा है ।

वर्णन और गुण-प्रयोग—एक घास है । तुहफतुल मोमि-
नीन के रचयिता कहते हैं कि तवरी भाषा में एक जाति
की वनस्पति का नाम है जिसे यूनानी में 'दोकुस'
कहते हैं । अथवा यह दोकुस का एक भेद है । किसी-किसी
के अनुसार यह उससे एक भिन्न ओषधि है । इसे बिछा
देने से पिस्सू पलायित होते हैं । इसके बीज पीसकर
बिछौने पर छिड़क देने से भी पिस्सू दूर हो जाते हैं ।
दोकुस शब्द में इसका वर्णन आया है । (मखजान ।
मुहीत) ।

कैकस-सन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] स्रोतस्-सन्धि ।

स्रोतस् की जोड़ ।

कैकहन—[यू०] } शालनिर्यास । धूप ।

कैकहर—[यू०] } साल वृक्ष का गोंद ।

कैकहर—[यू०] } (Shorea Robusta) ।

कैकहे मायून—[यू०] जंगली खीरा !

कैकहे मालून—[यू०] } कनावरी ।

कैकहे मालूम—[यू०] }

कैकानन कोदी—[ता०] विष्णुकान्ता । श्वेत अपराजिता ।

कैकास—[फा०] केकड़ ।

कैकीर—[फा०] } जर्जर ।

कैकीश—[, ,] }

कैकुन—[बम्ब०] बिलंगरा । स्वादुकंटक । विकङ्कत ।

कंटाई । (Flacourtia Ramontchi) ।

कैकून—[रूमी] नागरमोथा ।

कैकूल कातीस—[यू०] } (१) जुप्त । (२) जुप्त-याविस ।

कैकूलानस—[, ,] }

कैकूस—[यू०] (१) बलूत भेद । (२) कफरी ।

कैकेशी—[म०, ता०] भांगरा । भृङ्गराज । केशराज ।

कैकेक्सिआ—[अं० Cachexia] विप्रकृति । सूजलमिजाज ।

मिजाज का बिगड़ जाना ।

कैकेक्षियल फीवर—संज्ञा पुं० [अं० Cachexial fever]

दे० 'काला आजार' ।

कैकेल्यूमा—एटीन्युएटा

कैक्कुविरै—[ता०] विलायती जीरा ।

कैक्टस—[अं० Cactus] नागफनी ।

कैक्टस ग्रैण्डिफ्लोरा—[ले० Cactus Grandiflora] एक
प्रकार की वनस्पति है । सर्वप्रथम इसकी परीक्षा इटली के
डाक्टर रूवी ने की थी । इसकी क्रिया हृत्पिण्ड और उसके
अन्तर्गत शिराओं पर अधिक प्रकट होती है । इसके उपयोग
से हृद्वेष्टप्रदाह (पेरिकार्डिइटिस) । हृदन्तर्वेष्ट-प्रदाह
(नूतन एण्डोकार्डिइटिस), वातशूल (न्युरॉल्लिआ),
आक्षेप गदोद्वेग, हृत्पिण्डशोथ, हृत्पिण्ड-वृद्धि (Hyper-
trophy of the Heart) इत्यादि व्याधि नष्ट होते
हैं ।

कैक्कनियून—[यू०, रू०] सरो ।

कैक्सीनिआग्लौका—[ले० Caccinea glauca] गाव-
जवान ।

कैखानियून—[यू०] सुदाव । तितली ।

कैथमन—[]

(डाइमॉक भ० १, पृ० ३३२) ।

कैगर—संज्ञा पुं० [सं० कीकट, कीकर] एक प्रकार का ऊँचा
और सुंदर पेड़ ।

कैङ्गु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गरगण्ड नामका प्रसिद्ध वृक्ष ।
गरगण्डा । (सु० सू० ३६ अ०) ।

कैचकोल्ड—संज्ञा पुं० [अं० Catch Cold] शीत लगना,
ठंड लगना ।

कैचेट—दे० 'केचट' ।

कैज—[अं०] (१) अंडे के ऊपर का छिलका । कुक्कुटाण्ड
त्वक् । (२) ग्रीष्मऋतुजन्य उष्णता । सिद्धत, गरमी ।
चलने की गरमी । सिद्धत की गरमी ।

कैज—[अं०] अस्थिकुचक । हड्डी की कुच । (बहु० व०)
'कोज' ।

कैजन पी—संज्ञा स्त्री० [अं० Cadjan Pea] अरहर ।
आढकी ।

कैजुपुट—संज्ञा पुं० [अं० Cajuput] } कायपुटी ।

कैजुपुट ट्री—संज्ञा पुं० [अं० Cajuput-tree] } दे० 'कैपूती' ।

कैजूर—[?] वादाम ।

कैजेनस इण्डिकस—संज्ञा पुं० [ले० Cajanus Indicus] }

कैजेनस फ्लेवस—संज्ञा पुं० [Cajanus flavus] }

कैजेनस बाइक्लोरे—संज्ञा पुं० [ले० Cajanus Bichlor] }

अरहर । आढकी । तुवर ।

कैटक्कू—संज्ञा पुं० [अं० Catechu] कत्था ।
खैर ।

कैटगट—संज्ञा पुं० [अं० Cat-gut] तन्त्री । ताँत ।

कैटचक्क—[मल०] अनन्नास । अनरस ।

कैटज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुटज । कुड़ा । कुरैया । (भा०
पू० १ भ०) ।

कैट (ड) र्थ—संज्ञा पुं [सं० पुं०] (१) बकाइन। महानिम्ब। घोड़निम्ब। (२) कायफल। (३) खदिर। (४) कटभी वृक्ष। (५) मदनवृक्ष। मयनी। (६) करंज।
 कैटफिश—संज्ञा पुं० [अं० Cat-fish] शृङ्गिमत्स्य। सिंगी मछली।
 कैट्स हेयर—संज्ञा पुं० [अं० Cat's Hair] बिल्ली के बाल।
 कैटाप्लाज्मा—संज्ञा पुं० [अं० Cataplasma] प्रलेप। दवा का लेप। जमाद। फोड़े आदि पर बाँधने की पुलटिस।
 कैटाप्लाज्मा केओलीनी—संज्ञा पुं० [ले० Cataplasma Kaolini] चीनीमिट्टी का प्रलेप। दे० 'चीनी मिट्टी'।
 कैटाप्लाज्मेटा—[ले० Cataplasmeta] दे० 'कैटाप्लाज्मा'।
 कैटाफोरेसिस—[अं० Cataphorasis]।
 कैटाबोलिज्म—संज्ञा पुं० [अं० Catabolism] दे० 'कैटाबोलिज्म'।
 कैटाब्रोसा एक्वेटिका—संज्ञा पुं० [ले० Catabrosa Aquetica]।
 कैटामेनिया—[ले० Catamenia] ऋतुस्राव। मासिक-स्राव। हैज। खून हैज।
 कैटालेप्टिक—[ले० Cataleptic] जमूद का रोगी। जमूद। मरीज जमूद। जमूद का मरीज।
 कैटालेप्सी—संज्ञा स्त्री० [अं० Catalepsy] अपस्मार भेद। जमुआ। (अ०) आखजहजमूद, सखूस।
 कैटार—संज्ञा पुं० [अं० Catarrh] प्रतिश्याय। नजला। जुकाम। प्रसेक।
 कैटारल कंजंक्टिवाइटिस—संज्ञा पुं० [अं० Catarrhal conjunctivitis] श्लैष्मिक नेत्राभिष्यंद। रमदनजली। रमद बलगामी।
 कैटारल आज्मा—संज्ञा पुं० [अं० Catarrhal Asthma] कफज श्वास। रबू नजली। रबू बलगामी। बलगामी दमा।
 कैटारल डायरिया—संज्ञा पुं० [अं० Catarrhal-Diarrhoea] (१) कफज अतिसार। श्लैष्मिक अतिसार। (२) कफज प्रतिश्याय। श्लैष्मिक प्रतिश्याय। इसहाल दिमागी। इसहाल नजली।
 कैटारल फीवर—संज्ञा पुं० [अं० Catarrhal-fever] प्रतिश्यायजन्य ज्वर। हुम्मानजलिय्यः। नजले का बोखार।
 कैटारस सिसिफ्लोरस—संज्ञा पुं० [ले०]
 कैटिकोन—संज्ञा पुं० [अं०] खदिरसार।
 कैटिक्यु—संज्ञा पुं० [अं० Catechu] खदिर। कत्था।
 कैटिक्युटेनिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Catechutannic acid] खदिराम्ल।
 कैटिक्युट्री—संज्ञा पुं० [अं० Catechu tree] खदिर वृक्ष। कत्था का पेड़।

कैटिक्यु नाइग्रम—संज्ञा पुं० [ले० Catechu Nigrum] खदिरभेद।
 कैटिक्यु पैलोडियम—संज्ञा पुं० [ले० Catechu Palodum] खदिरभेद।
 कैटिक्यु लॉजेन्ज—संज्ञा पुं० [अं० Catechu Lozenge] खदिरगुटिका।
 कैड—संज्ञा पुं० कुसुम।
 कैडमियम सल्फेट—[अं० Cadmium sulphate]
 कैडमियम सल्फ्युरिकम्—[ले० Cadmium Sulphuricum] एक प्रकार का गन्धक का यौगिक है। इसके उपयोग से विसूचिका, उदरशूल, यकृतशूल, रक्तमूत्र, नासास्र (नकसीर), नेत्ररोग, मस्तिष्कविकार, ज्वर इत्यादि में विशेष लाभ होता है। क्रम—३ × से ३० × तक।
 कैडर्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बकाइन। महानिम्ब। घोड़ा नीम। दे० 'महानीम' या 'महानिम्ब'।
 कैडर्यमु—[ते०] कायफल।
 कैडा बूटी—संज्ञा पुं० [राजपु०] हाथीसुंडी।
 कैडेवा इण्डिका—संज्ञा पुं० [ले० Cadaba Indica]
 कैडेवा ट्रिफोलिएटा—संज्ञा पुं० [ले० C. Trifoliata]
 कैडेवा फेरिनोसा—संज्ञा पुं० [ले० C. Farinosa]
 पर्याय—(अ०) असल, सरह; (ते०) आदा मोरिनिका, चेकोराडी, चिमुछु; (ता०) वेल्लवी, विलुत्तु, मन्थक-काओलुन्धु; (अं०) इण्डियन कैडेवा (Indian Cadaba)।
 उद्भवस्थान—कर्नाटक, लंका, पश्चिमी भारतवर्ष इत्यादि।
 उपयोगी अंग—पत्र, पुष्पकली, तैल।
 रासायनिक संगठन—इसके पत्र में दो प्रकार के वानस्पतिक क्षार—(१) विरेचकाम्ल तुल्य (Cathartic acid), (२) शोरक तथा कार्बोनेट ऑफ लाइम (Carbonate of lime) और इसके अतिरिक्त एक प्रकार का तिक्त क्षार जो सुरासार तथा ईथर में भली-भाँति घुल जाता है, प्राप्त होता है। इसके भस्म में—क्षारीय लवण (Alkaline chloride), गन्धक (Sulphate) और एक प्रकार का क्षार (Carbonate) होता है।
 गुण-कर्म तथा उपयोग—उत्तेजक, कुमिघ्न, रजः प्रवर्तक, प्रदाहनाशक, दन्तरोगनाशक (Antiscorbutic) तथा भेदक है।
 योग—काथ, तैल तथा कवलिका (पुल्टिस)। इसका पत्र १ भाग, जल १० भाग में काथ कर २ से ४ औंस की मात्रा में देने से कुमिविकार नष्ट होता है। इसका पत्र, दारुहल्दी समान भाग में ग्रहणकर काथ करें और एरण्डतैल मिश्रितकर पानार्थ देने से रजःकण्ट और अरजःस्राव दोष का नाश होता है। अथवा इसके पत्र,

सनाय, सोंठ तथा हड़की छाल समान भाग में ग्रहणकर काथ करें। पुनः इसमें खारीनमक मिश्रितकर विरेचनार्थ दिया जाता है। इसके उपयोग से उपदंश, फिरंग रोग, सन्धिवात, गृध्रसी तथा गण्डमाला शमन होता है।

बाह्योपयोग—इसका पत्र और अजशृङ्गी ग्रहणकर पीसकर लेप करने से आमवातजन्य वेदना शान्त होती है और फोड़ा पर बाँधने से उसमें शीघ्र पाक उत्पन्न होता है। इसके पत्र द्वारा औषधार्थ तैल निर्माण किया जाता है। कैडेवाट्रिफोलिएटा के पत्रस्वरस सेवन कराने से बालअम्लपित्त का नाश होता है।

कैडेवी—संज्ञा स्त्री० []

कैडय—[मेची] रोध्र। लोध्र। लोध्र।

कैण्टोनीज फॉसफोरस—संज्ञा पुं० [अं]

कैण्डिल बेरी—संज्ञा स्त्री० [अं Candle berry]

कैण्डिल बेरी किसाआडूल—[]

कैण्डिल बेरीट्री—संज्ञा स्त्री० [अं Candle berry-tree]

वृक्ष विशेष। (डी० भ० ३, पृ० २७८)।

कैत—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ] कैथ। कपित्थ।

(द० एण्डमन) चपलास। (मेमो०)।

कैतक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कैतकीपुष्प।

(राज०)। (२) शृगालकोली। (बं०) शेयाकूल।

कैतचक्क—[मल०]। अनन्नास। (डी० भ० ३, पृ० ५०७)।

कैतत्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायविडंग।

कैतपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० कपित्थपत्री] (१) आठिलका पेड़। (२) एक भारतीय उद्भिद जिसका पत्ता कैथे के पत्ते से मिलता-जुलता होता है। यह उष्ण, तर (स्निग्ध), तेज (चरपरा), विषघ्न और कफघ्न है तथा शुकृसाव को दूर करती है। (ता० श०; मुहीत; खजाइन)।

कैतव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुमुद। (२) वैदूर्यमणि। (रा० नि० व० १३)। (३) राई। राजिका। (त्रिका०)।

कैथ, कैथा—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइन्थ] एक प्रसिद्ध वृक्ष का फल जो वेल की तरह गोल, अत्यन्त अम्ल और कषाय होता है। इसका ऊपरी आवरण बहुत कड़ा होता है। सुपक्व फल मधुर तथा अम्ल होता है। इसका गूदा पकने पर रक्ताभ होता है। बीज वेल के बीज के समान होते हैं। पत्र सुगंधपूर्ण होते हैं।

पय्यां—(सं०) कपित्थ, दधित्थ, ग्राही, मन्मथ, दधिफल, पुष्पफल, दन्तशठ, कगित्थ, कवित्थ, देवपादाख्य, मालूर, मङ्गल्य, नील, मल्लिका, ग्राहिफल, ग्रन्थिफल, कुचफल, कपीष्ठ, गान्धफल, दन्तफल, करभवल्लभ, काठिन्यफल, करंजाफलक, चिरपाकी, अक्षसस्य, करिवल्लभ; (हि०) कैत, कैथ, कैथा, कवीट; (बं०) कठबेल; (गु०) कोठू, कोठी, कोथ; (मं०) कैवथ, कवितपाण; (सन्ताल)

कवठ; (ते०) वेलग; (ता०) विल कपित्थम्, विलफलम्, वेल्लिल; (कना०) वेलडफल, विल्वफल; (अ०, फा०) कवीट; (मल०) विल्व; (कों०) वेलपत्री फल; (सि०) दिवल; (अं०) एलिफैण्ट ऐपिल (Elephant-apple), वूड ऐपिल (Wood-apple); (ले०) फेरोनिया एलिफैण्टम् (Feronia Elephantum)।

विल्वादि कुल—(Rutaceae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के दक्षिण प्रदेश में अधिक होता है। उद्यानों में भी इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

परिचय—भारतवर्ष का सर्वप्रसिद्ध वृक्ष है। इसका फल अत्यन्त अम्ल तथा कषाय होता है। सुपक्व फल मधुर तथा अम्ल होता है। इसकी गूदा पक जाने पर रक्ताभ होती है। इसके बीज वेल के बीजतुल्य होते हैं। पत्र—सुगन्धपूर्ण होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके गूदा में निम्बूकाम्ल (Citric acid) की मात्रा अत्यधिक होती है। इसके अतिरिक्त इसमें भस्म, सुधा तथा क्षार (पौटाश) तथा ल० ह० का अंश होता है। पत्र में एक प्रकार का सुगन्धयुक्त उत्पन्न तैल होता है।

उपयोगी अवयव—पत्र, गोंद, त्वचा तथा फल।

गुण—कैथ का अपक्वफल—ग्राही, कषैला, लघु तथा लेखन है। सुपक्व फल—दीर्घपाकी, तृषा, हिचकी, वात तथा पित्तशामक है। बालफल—कषाय, कंठशोधक, दुर्जर तथा ग्राही है। (भा० पू० आम्नादि वर्ग)। विशद, गुरुपाकी, कास, अतिसार, हृद्रोग, छर्दि, कफरोगनाशक, मधुर, अम्ल, कषाय, ग्राही, लघुपाकी तथा शीतल है (अत्रि० सूत्र १७ अ०)। मधुर, अम्ल, कषाय, तिक्त, शीतल, वृष्य, वातपित्तनाशक, संग्राही तथा व्रणघ्न है। कच्चा फल—अम्ल, उष्ण, कफघ्न, ग्राही, वातल, त्रिदोषनाशक है। पक्वफल—मधुर, अम्ल, गुरु है। कच्चाफल—जिह्वाजाड्यकारक, त्रिदोषवर्धक, विषघ्न, संग्राही, तथा रुचिकारक है। पक्वफल—श्वास, वमन, श्रम, हिक्काहर है। (रा० नि० व० ११)। सुश्रुत के अनुसार कपित्थफल शामक तथा रुक्षवीर्य है। (सू० ४ अ०)।

यूनानी मतानुसार—कपित्थ तृतीय कक्षा में शीतल तथा रुक्ष है। कच्चा—पक्व फल—ग्राही, हृदयबलप्रद, आन्त्र्यकृत्-आमाशयशक्तिवर्धक, पित्तज तीक्ष्णताशामक, तृषाहर, वेदनाशामक, रुतीला के विष का नाशक, चित्तप्रसन्नकारक है।

उपयोग—सुपक्व फल खाया जाता है। पित्तज प्रकृति के व्यक्तियों तथा पित्तज रोगों में लाभप्रद है। अतिसारनाशन के लिए सेवन कराते हैं। कच्चाफल मुखसंकोचकारक है। तालु, जिह्वा तथा कंठ को शीतला के

फोस्का से सुरक्षित रखने के निमित्त गण्डूष धारण कराया जाता है। पतालयंत्र द्वारा इसका अर्क खींचकर व्यंग (बहक), किलास-दद्रुप्रभृति त्वचाविकार में लगाया जाता है। इसके पत्र को जीरायुक्त पीसकर मिश्री-मिश्रित कर सेवन कराने से शीतपित्त तथा उदर का नाश होता है।

अहितकर—कंठ तथा वक्ष को। **निवारण**—लवण-मरिच तथा शर्करा। **प्रतिनिधि**—अमरुद।

कैथपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपित्थपत्री। आठिल।

कैथार्टिक—संज्ञा पुं० [अं० Cathartic] भेदक द्रव्य। मुस-हिल विल जर्दाब।

कैथार्टिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Cathartic acid] भेदकाम्ल। दस्त तोड़कर निकालनेवाला अम्ल द्रव्य।

कैथोटर—संज्ञा पुं० [अं० Catheter] मूत्रशलाका। पेशाब निकालने की सलाई। कासातीर।

कैथारीडीन—संज्ञा पुं० [अं० Catharedine]

कैथारीडिनेट ऑफ पोटाश—संज्ञा पुं० [अं० Catharidenate of Potass]

कैथार्टिक्स—संज्ञा पुं० [अं० Cathartics] मलभेदक द्रव्य।

कैद—संज्ञा स्त्री० [अं०] [बहु व० 'क्यूद'] प्रतिबन्ध, बन्दिश, तस्मा, लगाम, लिजाम। (अं०) फ्रेनम् (Fraenum)।

कैद शफविष्य आला—संज्ञा स्त्री० [अं०] ओष्ठबन्ध, ऊर्ध्वोष्ठ का लगाम, वह चुन्नट जो ऊपरवाले ओष्ठ के मध्य में भीतर की ओर होती है और उसको मसूढ़ों से मिलाती है। (ले०) फ्रेना लेबिओरम् (Fraena Labiorum)।

कैद शफविष्य अस्फल—संज्ञा स्त्री० [अं०] निम्न ओष्ठबन्ध, लगाम लव जेरीन, वह चुन्नट जो निम्न ओष्ठ के मध्य भाग में भीतर की ओर होती है और उसको मसूढ़ों से मिलाती है। (ले०) फ्रेना लेबिओरम् (Fraena Labiorum)।

कैदार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केदार शालिधान्य। (बं०) आमन धान, साँठी धान, सेटे धान। गुण—यह मधुर, कृष्ण, बलवर्धक, पित्तघ्न, किञ्चित् कषाय, रस में अम्ल, गुष्, कफ तथा शुक्रकारक है। (मु० सू० ४६ अ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पद्म, पदुमकाठ, पद्म काष्ठ। (प० मु०)।

कैदार जल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लक्षण तथा गुण—केदार क्षेत्रज जल अभिष्यन्दि, मधुर, भारी तथा दोषकारक है। (भा० पू० वारि व०)।

कैदार शालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साँठी धान्य। दे० 'कैदार'।

कैदारा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, बहुव०] ब्रीहि धान्य। (ध० नि०)।

कैदुल अस्नान—संज्ञा स्त्री० [अं०] दन्तवेष्ट। दन्तबन्धन। बन्दिश दन्दा। दाँत को स्थिरकरनेवाली झिल्ली। दाँतों के मसूढ़े। मसूढ़े। (अं०) गम्स (Gums)।

कैदुल् कुल्फ—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह चुन्नट जो सुपारी (मणि) के नीचे की ओर होती है और इसको कुल्फः वा घूँघट से मिलाकर रखती है। कैदुल्हस्फा। लगाम नरः। (ले०) फ्रेनम् प्रीप्युसाइ (Fraenum Prepucci)।

कैदुल् फर्ज—संज्ञा स्त्री० [अं०] } योनिबन्धन। वह **कैद फर्जी**—संज्ञा स्त्री० [] } चन्द्राकार चुन्नट जो योनि के भीतर की ओर होती है। यह प्रायः प्रथम प्रसवकाल में विदीर्ण हो जाती है। (ले०) फ्रेनम् प्युडेण्डी (Fraenum Pudendi)।

कैदुल्लिसान—संज्ञा स्त्री० [अं०] जिह्वाबन्धनी। लगाम जबान। जिह्वा के नीचे की चुन्नट जो उसको नीचे के जबड़े से मिलाती है। (ले०) फ्रेनम् लिंग्वी (Fraenum Linguae)।

कैदुल् हस्फ—संज्ञा स्त्री० [अं०] मणिबन्ध। दे० 'कैदुल्-कुल्फः'।

कैन—[पं०] मोरेड। पबना। (मेमो०)।

कैनाडियन हेम्प—संज्ञा पुं० [अं० (Canadian hemp)] कनाडादेशीय भाँग।

कैनान—[अं०] पिण्डली की दोनों हड्डियाँ।

कैनाविस इण्डिका—संज्ञा पुं० [ले० Cannabis indica] भारतीय विजया। दे० 'भाँग'।

कैनाविस सैटाइवा—संज्ञा पुं० [ले० Cannabis sativa] विजया। भाँग।

कैनाबिसीई—संज्ञा स्त्री० [ले० Cannabiseae] विजया कुल। भंगकुल।

कैनित—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक खनिज पदार्थ।

कैन्थेरिडीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Cantharadin] तेलनी-मक्खी में पाया जानेवाला एक सत्व। कैन्थेराइडिन।

कैन्द्रिक गण्डु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कै (कँ) न्वेलेरिया मेजेलिस—संज्ञा स्त्री० [ले० Cantharia majalis] यह एक प्रकार की लता है जिसकी जड़ बहुशाखाप्रशाखायुक्त, लगभग १ इ० मोटी, लंबाकार (सीधी) और सफेदी लिये होती है। एक से तीन-तीन इंच की दूरी पर यह ग्रन्थियुक्त होती है तथा उस पर कतिपय गोल-गोल चिह्न होते हैं। पत्तियाँ ४ से ६ इंच तक लंबी, अंडाकार और नुकीली; फूल सफेद अंगुष्ठाना की आकृति के; स्वाद मधुरता लिये कटु (चरपरा) होता है। नाम—(ले०) क (का) न्वेलेरिया मेजेलिस; (अं०) लिलि ऑफ दि वैली (Lily of the Valley)।

उपयुक्त अंग—समस्त क्षुप विशेषकर फूल औषध के काम में लिये जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान—यूरोप और अमेरिका आदि।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इससे पानी के समान पतले दस्त आते हैं। इसके अतिरिक्त यह हृदय को शक्ति भी देती है और मूत्र का प्रवर्तन करती है। यह हृदयविकारज जलोदर में भी लाभकारी है। यद्यपि अधुना इसका कोई अधिक विश्वसनीय योग प्राप्त नहीं है, तथापि इसके सत्व 'कन्वेलेरीन' को क्लोरोफॉर्म के विष में हृदय की गति बंद हो जाना रोकने के लिये देने से प्रायः निश्चित लाभ होता है। यह औषधि न केवल हृत्कपाटीय रोगों में अपितु वातनाडीविकारज हृत्स्फुरण में विशेष गुणकारी है। मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती तक और रसक्रिया १ से ४ रत्ती तक तथा टिक्चर ५ से २० बूँद तक।

कैंसर—संज्ञा पुं० [अं० Cancer] एक प्रकार का राज-फोड़ा जो प्रायः बाह्य तथा श्लैष्मिक कला में सामान्यतया होता है। ओष्ठ, मुख, नासिका, अन्नप्रणाली, जठर, अन्न, नेत्र, मलाशय, जिह्वा, स्त्रियों में स्तन और गर्भाशय तथा पुरुषों में प्रोस्टेट ग्रन्थि और शिश्न इसकी उत्पत्ति के प्रधान स्थान हैं।

पर्याय—(सं०) घातकाबुंद, दुष्ट मांसाबुंद, कर्कटाबुंद; (अ०) सरतान, सल्आ सरतानिया; (फा०) सरतानी रसौली, सरतान गुर्दा; (अं०) कैंसर (Cancer), कार्सिनोमा (Carcinoma)।

यह रसायनियों से फैलता है। समीपवर्ती रसग्रन्थियाँ पाषाण-कठिन हो जाती हैं।

यह प्रायः ४० वर्ष की आयु के बाद उत्पन्न होता है। इस अबुंद के पृष्ठ पर अधिक अंकुर उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी यह फूलगोभी के सदृश दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ कालोपरांत इसमें व्रण बन जाते हैं जिसमें सदैव न्यूनाधिक रक्तस्राव होता रहता है। इसके निकटस्थ एक अन्य घातकाबुंद (सारकोमा—Sarcoma) से भेद करने में यह ज्ञान उपयोगी है। कारण, वह शिराओं द्वारा फैलता है, तथा उसके प्रसर के लक्षण उनके मार्ग पर दिखाई देते हैं। उसमें रसग्रन्थियों में शोथ नहीं होता। लसिकाग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी कैंसर उत्पन्न होते हैं। यह माता-पिता के दोष से भी सन्तान में उत्पन्न होता है।

कैपजीर— [] (डी० भ० २, पृ० १०३)।

कैपया—[सि०] केतकी। केवड़ा।

कैपवल्ली—संज्ञा स्त्री० [मल०] करैली। कारवेल्ल।

कैपीला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला निसोथ। कृष्ण त्रिवृता। श्यामा। (बै० निघ०)।

कैपूती—संज्ञा स्त्री० दे० 'कयपूती' और 'कायापुटी'।

कैपे-डोड—[वर०] सीकाकाई।

कैप्रा इगेप्रस—

(चो० ५४४)।

कैप्रिफॉलिऐसीई—

कैप्सिकम्—संज्ञा पुं० [ले० Capsicum] मरचा। लाल मिर्च। दे० 'मरचा' और 'केप्सिकम्'।

कैप्सिकम् एनम्—संज्ञा पुं० [ले० Capsicum annum] मरचा। कटुवीर। दे० 'मरचा'।

कैप्सिल्ला वर्सा पैष्टेरिस—संज्ञा पुं० [ले० Capcilla versa-pastaris]

कैप्सिसाइ फ्रक्टस—संज्ञा पुं० [ले० Capsici Fructus] मरचा।

कैप्सीसोन—संज्ञा स्त्री० [ले० Capsicin] जौहरसुखं-मिर्च। कटुवीरसत्व। दे० 'केप्सिकम्'।

कैप्सूल—दे० 'केपसूल'।

कैफ़ियत—संज्ञा स्त्री० [अ०; (बहुव० कैफ़िय्यात)] गुण, प्रभाव, प्रकृति, स्वभाव, मिजाज।

यूनानी वैद्यक के अनुसार कैफ़ियत वह गुण वा धर्म (बिल्अर्ज) है जो स्वभावतः विभाजन स्वीकार न करे; यथा—उष्णता एक प्रकार का गुण (कैफ़ियत) है जो स्वभावतः विभाजन स्वीकार नहीं करता, प्रत्युत उस द्रव्य के (जिसमें आश्रित होकर स्थित है) विभाजित होने से अर्थात् बिल्अर्ज, विभक्त हो जाती है। इसके भेद यथा-स्थान दिए गए हैं।

कैफ़ियत अरजियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह अस्वाभाविक गुण जो द्रव्य के स्वभाव (तबीअत) अर्थात् उसके प्रकृति-भूत वा सहज प्रभाव से प्रकट न हो, अपितु किसी बाह्य तथा आभ्यन्तरिक कारण के द्वारा प्रकट हो; यथा—प्रकोथ (सड़ांध) जो आन्तरिक कारण से प्रकट होता है और उष्णजलगत उष्णता जो बाह्य कारण से प्रकट होती है।

कैफ़ियत-इस्तिजाजियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] कैफ़ियत इस्तिजाजी। अभिव्यञ्जक गुण।

कैफ़ियत-जातियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] निज या प्राकृत अर्थात् जाति तथा जन्मजात गुण। द्रव्यगत स्वाभाविक वा सहज गुण जो द्रव्य के प्रकृतिभूत प्रभाव द्वारा प्रकट हो। आत्म-गुण।

कैफ़ियतेतासीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] द्रव्यों के कर्म की कार्य-कारणमीमांसा। द्रव्यात्मक प्रभाव।

कैफ़ियते फ़ाइलः—संज्ञा स्त्री० [अ०] कर्तृत्वगुण, कार्यकर गुण (कैफ़ियतेमुवस्सरा)। इससे शीतलता वा उष्णता का बोध होता है।

कैफ़ियते मुन्फ़इलः—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रतिकर्तृत्व गुण। जिससे स्निग्धता तथा रूक्षता का बोध होता है।

कैवर्नी-फूल--संज्ञा पुं० बघोला । कुई । कुमुदिनी ।
निलूफर ।

कैवल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विडंग । बायविडंग ।
(२० मा०) ।

कैवल्य--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मोक्ष ।

कैवल्यार्थ--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मोक्षप्राप्ति के निमित्त ।
(सु० शा० १ अ०, सू० ७) । (२) अद्वितीयता । प्रकृति से
वियोग होना । कैवल्यप्राप्ति--जब त्रिगुणातीत होकर
प्रकृति से पृथक्त्व होता है अर्थात् प्रकृति जब पृथक् हो
जाती है तब कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है । जब सृष्ट
पदार्थों का मुख-दुःखभोग की इच्छा निवृत्त होकर शुद्ध ज्ञान
प्राप्त होता है तब प्रकृतिपार्थक्य का भाव उत्पन्न होता है ।

कैविषी-इलै--[ता०]

(डी० भ० २, पृ० २६६) ।

कैशिक--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केशसमूह । वालों का
गुच्छ । (अ०) ।

कैशिकी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केश-प्रमाणवाली धारयुक्त
नस्तर । इसका उपयोग विद्रविभेदनार्थ होता है । (सु०
सू० ८ अ०, ८ श्लो०) ।

कैशिया--दे० 'कैसिया' ।

कैशूर--संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का समुद्रफेन जो उष्ण,
रूक्ष एवं लेखन (जाली) और संशोधनकर्ता (मुनक्का) है ।
लेखनार्थ इसका प्रतिनिधि चूर्ण किया हुआ चीनी बरतन
है । (ता०; मु०) ।

कैशोर--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

कैशोरको (गुग्गुलु)--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वातरक्त में प्रयुक्त
इस नाम का योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि--पोटुलीवृद्ध
गुग्गुलु २ श०, त्रिफला २ श०, गुरुच ४ श०, जल ६६ श०
क्वाथ करें, जब ४८ श० शेष रह जाय तब वज्र में छान
लेवें । पुनः पाक करें । जब घनीभूत हो जाय तब उतार-
कर इसमें त्रिफलाचूर्ण ४ तोला, त्रिकुटा चूर्ण ४
तो०, विडंग चूर्ण ४ तो०, निशोथचूर्ण २ तो०, दन्तीमूल-
चूर्ण २ तो०, गिलोय चूर्ण ८ तो० मिश्रितकर मर्दन करें ।
(च० द०; सा० कौ०; भा०; भैष०) ।

कैशोर गुग्गुलु--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कैशोरको गुग्गुलु' ।

कैशोरगुग्गुलुरस--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रसायनयोग विशेष ।

निर्माण-विधि--कृष्णाभ्रसत्व जो पातनान्तर पारद
के संस्कार के पश्चात् प्राप्त होता है । पारद का ६४
वाँ भाग ग्रहणकर दृढ़ कुठारी में स्थापनकर कोयला के
आग पर धमन करें । पुनः मूषा में से निकालकर पुनः
धमन करें । इस प्रकार १० बार करने पर पारद दोषरहित
होता है । अभाव में अभ्रकचूर्ण समान भाग देकर काँजी
में पारदयुक्त मर्दन करें । इस प्रकार काँजी के साथ
१० बार ४ दिन तक मर्दन करें । पुनः १६ वाँ भाग

संस्कृतसंवर्ण मिश्रितकर अंधमूषा में बीज जारण करें ।
उक्त विधि से उक्त पारद में शतगुण शुद्धगन्धक जारण
करें । पुनः कस्तूरी मिश्रितकर जल के साथ मर्दनकर
स्वेदन करें । जितना अधिक स्वेदन हो सके, करें । पुनः
अभ्रक जो परिमाण में १०८ रत्ती से अधिक न हो,
काँजी के साथ मर्दनकर पिष्टी करें । जब पिष्टी शुद्ध
होकर गोला बँधने लगे तब उसको लाल फूल के अगस्त के
फूलों के रस में ७ दिन मर्दन करें । जब शुष्क होने लगे
तब उसका गोला बनाकर २-३ वर्ष के पुरातन सूरन के
कंद में गड़ढा बनाकर उक्त गोला को उसमें स्थापन करें ।
पुनः लाल फूल के अगस्त के फूलों का रस निचोड़कर
उक्त गड़ढे में भरकर सूरन के टुकड़ों से उसका मुख
दृढ़रूप से ६-७ कपरौटी करें और उसको जहाँ प्रकाश
न जा सके ऐसे स्थान में २१ दिन पर्यन्त सुरक्षित रखें ।
पुनः कंद में से निकालकर ७ दिन के पश्चात् सूरन के
गड़ढा के बाहर निकालें और जमीन प्रायः ५-६ फुट
गहरा गड़ढा खोदकर जंगली कंदों के मध्य में रख आग
लगाएँ । जब स्वांग शीतल हो जाए, अभ्रक को निकालकर
उसके बराबर पूर्ववत् सुसंस्कृत पारा और गन्धक
मिश्रितकर श्वेत गुंजा का छिलका रहित बीज विचूर्णित
कर दोनों के बराबर मिलाकर विशुद्ध मधु के साथ १ दिन
मर्दनकर ३६ गोलियाँ बनाएँ और पञ्चकर्मों से शुद्धि के
पश्चात् १-१ गोली प्रति दिन १॥तो० काले तिलों को
चर्वणकर ऊपर से धारोष्ण दुग्धपान करें । इस प्रकार
सूर्योदय के पूर्व ही सेवन करें और मध्याह्नकाल में दूध-
भात खाएँ । इस नियम से १ वर्ष सेवन से वली-पलित
का नाश होता है । निषेध--अम्लरस, मांस, मैथुन,
रात्रि का जागरण । (रस० यो० सा०, रसलंकार से) ।
कैषि(षी)का--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आम्नातक ।
अमड़ा । (२) शरमूल । (च० चि० ३ अ०) ।
कैषी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पाठा । (ब०) आकनादि ।
(वै० निघ०) ।
कैण्ट(स्ट)र--संज्ञा पुं० [अं० Castor] एरण्ड ।
कैण्टर ऑयल--संज्ञा पुं० [अं० Castor oil] एरण्ड तैल ।
रेंडी का तेल ।
कैण्टर-ऑयल प्लांट--संज्ञा पुं० [अं० Castor-oil Plant]
एरण्ड वृक्ष । रेंड ।
कैण्टाइल सोप--संज्ञा पुं० [अं० Castile Soap] साबुन
विशेष ।
कैण्टेनिआ इण्डिका--संज्ञा पुं० [ले० Castania Indica]
बलूत ।
कैण्टोरियम्--संज्ञा पुं० [ले० Castoreum] जुन्दवे-
दस्तर । (यू०) कास्तूरस । (हि०) जुन्द । वि० दे०
'जुन्दवेदस्तर' ।

होमियोपैथिक के अनुसार यह बीवर नामक एक प्रकार के जन्तु की योनि से प्रस्तुत किया जाता है। यह स्त्रियों के कतिपय रोगों; यथा—अपतन्त्रक (हिष्टिरिया) और अत्यन्त कष्टदायक वाधक वेदना, बूँद-बूँद रजःस्राव, रजःस्रावावरोध और उदराध्मान, उदर-शूल, निबल और वातप्रधान स्त्रियों का सदैव उत्तेजित भाव, क्षणमात्र में पसीना आ जाना, दिनांघ्ररोग में नेत्रों में प्रकाश सहन न होना, किसी रोग में नित्य जम्हाई आना, इस प्रकार के अनेक रोगों में इसका उपयोग होता है। मात्रा ३, ६, ३०, शक्ति। फार्मूला—७ और टिचर—४; प्रतिनिधि—कस्तूरी (मस्कस), अंबर (एम्ब्रागिसिआ)।

कैस—[अ०] (१) दाँत का जड़ से उखड़ जाना। (२) पेट हिलना। (३) लादन नामक द्रव्य।

कैसर, कैसरीन—[यू०] हज्जलकैशूर।

कैसलमून—[यू०] जिप्तरतब का तेल।

कैसा—[?] जायुन्नहार।

कैसाआ—[यू०] कुलफा। खुर्पा

कैसिया—[?] तज। सलीखा।

कैसी, कैसी—[] खूबानी।

जर्दालू जो सुखाया गया हो।

कैसी—[यू०] हशीशतुज्जुजाज।

कैसू, कैसूरी—[यू०] हज्जलकैशूर। कैसूरी पत्थर।

कैसुर—[बं०] कैसर।

कैसून—[यू०] लादन

कैसू (सू) म—संज्ञा पुं० [अ०] बिरंजासिफ। वस्तुतः कैसूम और बिरंजासिफ एक ही पौधे के नर-मादा दो भेद हैं। नर को कैसूम और मादा को बिरंजासिफ कहते हैं।

पर्या०—कैसूम, कैसूम—अ०। शूसुरा—यू०। अरता-मासिया, अत्वमीसा—ह०। रीतपत्ता (मुहीत)—हि०। सरजदक—शीरा०। (ले०) आर्टिमिसिया Artemisia।

टिप्पणी—अरतामासिया को किसी-किसीने सिरियानी भाषा का शब्द लिखा है। अल्फाजुलअदविया और बुहान-क़ातिअ में कैसूम के अर्थ में अत्वमीसा को जगह अत्वमीसा लिखा है। खजाइन के अनुसार यह यूनानी भाषा का शब्द है। मरूजन में इसकी हिंदी संज्ञाएँ गंदना और गंदमार लिखी हैं। परंतु यह उससे भिन्न ओषधि है। मरूजन और मुहीत में लिखित बिरंजासफ बिलनजासफ, बूयेमादरान और बरतरासक इसकी फारसी संज्ञाएँ बिरंजासफ की वास्तविक संज्ञाएँ हैं। ऐन्सली (Mat Ind., pt. 1; p. 400) ने इसे दौने का एक भेद समझकर इसकी लेटिन संज्ञा आर्टिमिसिया ऑष्ट्रिएका (Artemisia Austriaca, Linn.) और अंगरेजी इंडियन सदनवुड (Indian southern-wood) लिखा है।

वर्णन—बिरंजासफ की तरह की एक घास है, न कि स्वयं बिरंजासफ। गीलाती के अनुसार कैसूम एक प्रिय-दर्शन वनस्पति है जिसके पत्ते छोटे, बारीक और फटे हुए होते हैं। शाखाओं में फूलों के गुच्छे भरे पड़े होते हैं और आस-पास गोल सुनहले रंग के फूल लगते हैं। फूल यद्यपि सुगंधित होते हैं, तथापि गंध गंभीर वा भारी और बसायँध होती है। अस्तु, वे अप्रिय होते हैं। स्वाद अत्यंत तिक्त और किंचित कषाय होता है। जड़ पतली होती है। उक्त बूटी को ऊँचाई एक दो बित्ते के भीतर होती है। यह तबरिस्तान और देलम के पर्वतों में बहुतायत से होता है। वहाँ के लोग इसे 'लारद' और 'लियारद' कहते हैं। इसमें और बिरंजासफ में यह अंतर है कि कैसूम बड़ा भेद है और बिरंजासफ छोटा। जैसा कि बाबूना और उकहवान (बाबूनागाव) में उक्त भेद होता है। किसी-किसी के मत से नर और मादा भेद से कैसूम दो प्रकार का होता है। उनमें नर की शाखाएँ बारीक, पत्ते अफसंतीन के पत्तों की तरह एवं छोटे और पुष्प किर-मिजी और सफेदीमायल होता है। मादा का पौधा नर से बड़ा होता है। रंग सफेदीमायल होता है। शाखाएँ पत्तों से लदी होती हैं। पत्ते फटे हुए और बारीक होते हैं और आकृति में मुदाब के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं। इसके तने पर एक प्रकार का चपदार द्रव लगा होता है। शाखाओं के छोरों पर और आस-पास गोल, पीले और सुनहले रंग के पुष्प आते हैं जो नर जातीय पुष्प से बड़े होते हैं। गंध गंभीर और तीव्र होती है। स्वाद तिक्त होता है। बीज विलायती मेंहूदी की तरह होते हैं। गरमी में फूल आते हैं। नर को क्षुद्र (सगीर) और मादा को वृहत् (कबीर) कहते हैं। किसी-किसी के मत से बिरंजासफ मादा है और कैसूम नर। कैसूम के तने पर शाखायें नहीं होतीं अर्थात् यह शाखाविहीन होता है और बिरंजासफ शाखाबहुल। इसके तने की छोर पर एक छत्तर सा होता है जो इसका पुष्प है। इसकी गंध गंभीर वा भारी और अप्रिय होती है। रंग पीला और स्वाद तिक्त होता है। मरूजन के रचयिता के अनुसार बिरंजासफ से इसके उक्त सादृश्य के कारण से ही कुछ लोगों ने भूल से स्वयं कैसूम को बिरंजासफ समझ लिया। परंतु यह उसका एक भेद है, न कि स्वयं वही है।

प्रकृति—शेख के अनुसार प्रथम कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और तृतीय कक्षा में श्लक्ष्ण है। मतांतर से तृतीय कक्षा में उष्ण भी है।

अहितकर—फुफुस और तिक्तता के कारण आमाशय को भी हानिकर है। निवारण—फुफुस के लिये कतीरा, खसबीज (खशाखा) और बनफ़शा, आमाशय के लिये

मधु और शीह । प्रतिनिधि—अफसंतीन, बाबूना और पुदीना । मात्रा—७ मा० तक ।

गुणकर्म तथा प्रयोग—इसके फूल में अफसंतीन से शोथादि विलीन करने की अधिक शक्ति है । शीतजन्य शिरोशूल में इसका तरेड़ा (नतुल) लाभकारी है । अकेले या उपयुक्त औषधों के साथ इसका काढ़ा करके पीने से कृच्छ्रश्वास और उरोशूल आराम होते हैं, आमाशयान्त्र-स्थ विविध भ्रांति के कुमि नष्ट होते हैं एवं उनका उत्सर्ग होता है; मूत्र एवं आर्तव का प्रवर्तन होता है; मूत्रकृच्छ्र आराम होता है; वृक्क और वस्तिस्थ अश्मरि का छेदन होता है; लंबाई के रूख पेशी का विदीर्ण होना (फ्रस्क्) दूर होता है और संश्लिप्त वायु, चिरज गृध्रसीरोग, घातक औषधजन्य दोष, ज्वरजात वेपथु इनमें विशेषतः तेल मिलाकर सेवन करने से उपकार होता है । वृश्चिक और रूतैला के दंश तथा समस्त प्रकार के विषों में इसे शराब के साथ पीने वा लगाने से उपकार होता है । इसको जैतून के तेल में पकाकर (मिलाकर) लेप करने से मस्तिष्क और आमाशय की सरदी दूर होकर उन्हें उष्णता प्राप्त होती है । इसका वृत्तिधारण (हमूल) करने से गर्भपात होता है । इसके लेप से सूजन उतरती है और सद्यःक्षत आराम होते हैं । इसी प्रकार बिही के साथ इसका क्वाथ करके लगाने से कृच्छ्रसाध्य सूजन भी उतर जाती है । इसका चूर्ण बुरकने अथवा जलाकर लेप लगाने से अखिलांगों से रक्तस्रुति बंद करता और खल्वाट (दाउस्सअलब) रोग का नाश करता है । इसे रेंडी वा मूली के तेल में मिलाकर लगाने से दाढ़ी के बाल शीघ्र निकल आते हैं । इसके लिये बहुत गुणकारी है । इसको (गृह में रखने) बिछाने और उसी प्रकार धूनी देने से विलेशय कीट-पतंग (हवाम्म) प्रभृति दूर होते हैं । (मख्जून) ।

कैसूर—[यू०] दे० 'कैशूर' ।

कैसूरी—[यू०] हज्जलकैशूर । दे० 'कैशूर' ।

कैसूरी—[अ०] एक प्रकार का कपूर ।

कैसूस, कैसूसी—[यू०] लादन ।

कैसूसाशया, कैस—[यू०] लादन ।

कैसूसी—[यू०] कैसूस ।

कैस्करीला बार्क—संज्ञा पुं० [अं० Cascarilla bark]

कैस्करीली कॉर्टेक्स (Cascarillae cortex) कैसकारा सेगरेडा के नाम हैं । कैस्करीला या कैस्करीला (Cascarilla) स्पेन की भाषा के क(क)स्कारह संज्ञा का, जिसका अर्थ छाल है, अल्पार्थक रूप (तत्सारी) है । अस्तु, कस्करीला का अर्थ छोटी छाल हुआ । सुतरां कैसकारा जिसका उच्चारण अब कैसकारा किया जाता है और जिसका अर्थ छाल है तथा कैस्करीला अर्थात् छोटी छाल दोनों ही स्पेन की भाषा के शब्द हैं । अब मिस्रवासियों ने

इसकी पारिभाषित संज्ञा कश्शुलअंबर और कीनाइतरिया रखी है । वि० दे० 'कैसकारा सेगरेडा' या 'कैस्केरिल्ला' । कैसकारा (कैसकरा) सेगरेडा—संज्ञा पुं० [ले० Cascara sagrada] यह रूहेमनस् पुशियानस् (Rhamnus purshianus Dc.) अर्थात् कैलिफोर्निया बकथान (California buckthorn) नामक वृक्ष की सुखाई हुई छाल है जो औषध के काम में ली जाती हैं ।

बदरादि कुल—(Family: Rhamnaceae) ।

नाम—(ले०) कैसकरा (कैस्केरा या कैसकारा) सेगरेडा (Cascara sagrada), रूहेमनियाई पुशियानी कॉर्टेक्स (Rhamnii-purshiani cortex); (अं०) सैकरेड बार्क (Sacred bark), चिट्टम बार्क (Chittam bark) ।

वक्तव्य—'कैसकारा' शब्द स्पेन की भाषा के 'कस्कारह' शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ छाल है । सेगरेडा या सैकरेड का अर्थ पवित्र है । रूहेमनस् शब्द बकथान (Buck-thorn) का प्राचीन पर्याय है । दक्षिण भारत में इसी जाति के रूहेमनस् वाइटियाई (Rhamnus wightii) नामक वृक्ष की रक्तत्वचा 'रक्तरोहण' के नाम से विकती है ।

उत्पत्तिस्थान—उत्तरी अमरीका का कैलिफोर्निया प्रान्त ।

वर्णन—कस्करा की छाल कलम की तरह के खोखले या चपटे या परिखोदर टुकड़ों के रूप में प्राप्त होता है । इसका बाहरी धरातल चिकना, कालाई लिये गाढ़े भूरे रंग का होता है, जिस पर जहाँ-तहाँ सफेद रंग के चिह्न होते हैं । भीतरी धरातल साधारणतः पीले से लेकर पिलाई लिये भूरे रंग का होता है । लापरवाही से सुखाई हुई छालों में कभी-कभी वह काले रंग का हो जाता है । छाल में एक हलकी किन्तु विशिष्ट गंध और स्थायी उत्कलेशकारक तत्त्व स्वाद होता है ।

रासायनिक संगठन—(१) इमोडीन (Emodin), (२) इसीसे मिलता-जुलता एक दूसरा तत्व फ्रैंगुला-इमोडीन (Frangula emodin) तथा (३) बसा २%, ग्लूकोज, उत्पत्त तेल आदि भी इसमें पाये जाते हैं ।

कल्पतथा योग—अधिकृत (ऑफिशल)—कैस्करी सेगरेडी पल्विस (Cascarae Sagradae Pulvis) अर्थात् कस्कारा चूर्ण; एक्स्ट्रैक्टम कैस्करी सॅगरेडी सिक्कम् (Extractum cascarae sagradae siccum) अर्थात् कस्कारा घनसत्व (रसक्रिया); टैब्लेट्स ऑफ कैस्करी सॅगरेडा (Tablets of cascara sagrada) अर्थात् कस्काराचक्रिका; एक्स्ट्रैक्टम कैस्करी सॅगरेडी लिक्विडम् (Extractum cascarae sagradae liquidum) अर्थात् कैस्करी प्रवाही रसक्रिया और एलिक्जिर कैस्करी सॅगरेडी (Elixir cascarae sagradae) अर्थात् अक्सीर कस्कारा आदि ।

गुणकर्म तथा उपयोग—तित्त होने के कारण अल्पमात्रा

में (लिक्विड एक्सट्रैक्ट की ५ से १० बूँदे) देने से यह दीपन, पाचन और क्षुधावर्धक है। अधिक मात्रा ($\frac{1}{2}$ से १ ड्राम) में यह सारक होता है। यह सारक क्रिया बृहदन्त्र पर कस्कारा के प्रभाव के कारण होती है जिसके ८ से १२ घण्टे के पश्चात् पीले रंग का मल आता है। यह एन्थ्रासीन समुदाय की सबसे मृदुरेचन औषधि है। आदती कज्ज एवं स्त्रियों तथा कोमल प्रकृतिवालों के लिये यह एक उत्तम औषधि है। डॉक्टरों में इस रूप में इसका पुष्कल व्यवहार किया जाता है। इसके लिये प्रायः एलिक्जिर का व्यवहार किया जाता है। रात्रि में सोते समय इसकी एक मात्रा ले ली जाती है, जिससे प्रातःकाल साफ दस्त आ जाता है। सेवन-विधि—गुष्क सत्व का व्यवहार प्रायः गुटिका के रूप में किया जाता है। इसके लिए इसे अकेले भी दे सकते हैं अथवा कुचिला एवं मुसब्बर के साथ योग बनाकर देना अधिक अच्छा होता है। लिक्विड एक्सट्रैक्ट (प्रवाही घनसत्व) उत्त्वलेशकारक होता है। अतएव इसे घचिकारक एवं सुस्वादु बनाकर देना चाहिये। इस हेतु इसमें ग्लिसरीन, क्लोरोफॉर्म या अन्य उपयुक्त सुगंध-द्रव्य मिला सकते हैं।

कैस्केरिल्ला—संज्ञा पुं० [ले० Cascarilla] एक वृक्ष जिसकी छाल से टिंचर प्रस्तुत किया जाता है। एलौपैथी के अनुसार इसका उपयोग अजीर्ण, अतिसार, कोष्ठवद्धता तथा ज्वर रोकने में होता है। मात्रा $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम तक। होमियोपैथिक चिकित्सकों के अनुसार इसकी प्रधान क्रिया पाचक-यंत्र पर होती है। चरित्रगत लक्षण—इससे निरन्तर वमन करने की इच्छा बनी रहती है।

उपयोग—कोष्ठ-वद्ध में जब मल कठोर ग्रन्थितुल्य हो, उसमें आँव लिपटा हो तो इसके सेवन से उपकार होता है। अथवा पेट में ऐंठन, वेदना, रक्तमिश्रित मल, कटिशूल, पतला दस्त और उपर्युक्त प्रकार का कोष्ठवद्ध हो तो इसका प्रयोग करें। मात्रा—१-३ शक्ति। फार्मूला—४।

कैस्केरीन—संज्ञा पुं० [अं० Cascarine] कैस्केरा सत्व। जीहर कैस्कारा।

कैस्तवा—[?] कुट। कुष्ठ।

कैह—[अ०] पूय। पीप। शुद्ध पीव। (अं०) पस (Pus)।

कैहरा—[सुर०] कच्चा माजू।

कैहरीन—[?] एक प्रकार की जंगली तरकारी।

कैडल—संज्ञा पुं० [हि० कैडा वा देश०] एक प्रकार का पक्षी। बनतीतर।

कैवा—संज्ञा पुं० दे० 'कैमा'।

कौई, कौईबेरा—संज्ञा पुं० दे० 'कूई'।

कौचफली—संज्ञा स्त्री० दे० 'केवाँच' या 'कौँछ'।

कौचा—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] एक प्रकार का जलपक्षी।

कौडई—संज्ञा पुं० [देश०] एक कटीला झाड़ या पेड़।

कोपर—संज्ञा पुं० [हि० कोंपल] छोटा अधपका या डाल का पका आम।

कौहडा—संज्ञा पुं० दे० 'कुम्हड़ा'।

कौहडौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कौहड़ा + बरी] कौहड़े या पेठे की बनाई हुई बरी।

को—[पं०] जैतून

कोअट कोमल—[ता०] वस्त्रा। सन्दरी। (वँ०) ईस्वर, मेरास, टाण्डी। (डी० भ० ३, पृ० ६०)।

कोअम—संज्ञा पुं० [का०] तेल।

संज्ञा पुं० [पं०] रतनजोत। लाल जड़ी।

संज्ञा पुं० [म०] करवटी।

कोआ—संज्ञा पुं० [सं० कोश वा हि० कोसा] (१) रेशम के कीड़े का घर। कुसियारी। (२) टसर नामक रेशम का कीड़ा। (३) महुए का पका फल। कोलैंदा। गोलेँदा। (४) कटहल के पके हुए बीजकोश। (५) दे० 'कोया'।

संज्ञा पुं० [पं०] काक। काऊ। कौआ।

कोआपा—[ता०]

कोआर—संज्ञा पुं० [देश०] कोरा नाम का वृक्ष।

कोईदा—संज्ञा पुं० दे० 'कोइना'।

कोईदी—संज्ञा स्त्री० [हि० कोईदा] महुए का बीज।

कोइ—संज्ञा स्त्री० [हि० कुई] कूई।

कोइक्स लेक्रिमल—संज्ञा पुं० [ले० Coix lachrymal] गवेधुक। (डी० भ० ३, पृ० ७३)।

कोइग्नेसियर—[ले० Coignassier]

कोइना—संज्ञा पुं० [हि० कोआ + इना (प्रत्य०)] महुए का पका फल। गोलेँदा।

कोइनार—[देश०] लाल कचनार।

कोइमूरा—[वं०] लीची। (वं०) लीचू।

कोइराल—[पं०]

कोइरालि—[वं०] } लाल कचनार।

कोइल—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] (१) दे० 'कोइलारी'। (२) दे० 'कोयल'।

कोइलौस—संज्ञा पुं० दे० 'कोइली'।

कोइला—संज्ञा पुं० दे० 'कोयला'।

कोइलार, कोइलारि—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हि०; मीरजापुर पर्वत] कचनार भेद। कोविदार। कोइनार।

कोइलिया—संज्ञा स्त्री० दे० 'कोयल'।

कोइली—संज्ञा स्त्री० [हि० कोयल] (१) वह कच्चा आम जिसमें किसी प्रकार का आघात लगने से एक काला सा दाग पड़ जाता है। ऐसा आम कुछ सुगंधित और स्वादिष्ट होता है। कोइलपड़ा। (२) आम की गुठली। कोसिली। (३) दे० 'कोयल'।

कोइवेल—[म०] छोटी अरुनी । क्षुद्र अग्निमन्थ । संगकुप्पी ।
(डी० भ० ३, पृ० ७६) ।

कोएग्युलेटिव एन्जाइम—संज्ञा पुं० [अ० Coagulative enzyme] एक प्रकार का एन्जाइम जो विलेय प्रोटीनों को अविलेय प्रोटीनों में परिणत करता है ।

कोएन्जाइम—संज्ञा पुं० [अ० Coenzyme] एन्जाइम का सहकारी द्रव्य जिसके बिना एन्जाइम अकिंचित्कर होता है ।

कोएस्तम— [?] चोगद पक्षी ।

कोओमिल—[पं०] मोवा । बकलवा । (मेमो०) ।

कोकंब—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसके सब अंग खट्टे होते हैं । विसाविल ।

कोक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कोकी] (१) खजूर । खजूर वृक्ष । (२) छिपकली । विसतुड्या । टिकटिक । गृहगोधिका । (मे०; के०) । (३) कोग । ईहामृग । (रा० नि० व० १६) । दे० 'कोकवाचः' । (४) चकवा । चक्रवाक । सुरखाव । (त्रिका०) । (५) । चोगद पक्षी । (६) मेंढक ।

कोक कर्कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालाजीरा । स्याहजीरा । दीप्या । (ध० नि०) ।

कोकगी—संज्ञा पुं० [देश०] एक जानवर ।

कोकङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (ध० नि०) ।

कोकज—संज्ञा पुं० फलभेद ।

कोकड़—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चमरी मृग । चोरी गाय । (२) विलेशय मृग । दे० 'कोकवाच' ।

कोकड़छाता—[वं०] भुइफोड़ । कुकुरमुत्ता ।

कोकदन्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मेंहदी । नखरञ्जनी ।

कोकदेव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कबूतर । कपोत ।

(२) जंगलीकबूतर । वनकपोत । (रा० नि० व० १९) ।

कोकन—संज्ञा पुं० [देश०] (१) चोगद पक्षी । (२)

कोकनक— " " " "] एक ऊँचा पेड़ जो आसाम और पूरबी बंगाल में होता है । इसकी पत्तियाँ शिशिर में झड़ जाती हैं ।

कोकनद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) लाल कमल । रक्त पद्म । (ध० नि०; रा० नि० व० १०) । दे० 'कमल' ।

(२) लाल कुमुद ।

कोकनबेर—संज्ञा पुं० [रा०] झड़बेरी । जंगली बेर ।

कोकनस—[तु०] दीपकलता पक्षी । कूकनस ।

कोकनार—[फा०] पोस्ता । लाल पोस्ता ।

कोकनार सहराई—[फा०] जंगली पोस्ता ।

कोकनी—संज्ञा पुं० [सं० कोक=चकवा] एक प्रकार का तीतर ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का संतरा जो सहारनपुर और दिल्ली में होता है ।

संज्ञा स्त्री० [?] बुस्तान-अफरोज ।

वि० [देश०] छोटा, नन्हा; जैसे, कोकनी बेर, कोकनी केला ।

कोकफरी—[सुर०] आखु । चूहा ।

कोकबन्धु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चकवा । चक्रवाक । (२) सूर्य ।

कोकबुरदी—[वं०]

कोकब—[अ०] अन्नक । अबरख ।

[समरकंद] काहू ।

कोकब-कीमूलिया—[अ०] गिलेशामूस । गिलेकीमूलिया ।

कोकब-शामूस—[अ०] गिलेकीमूलिया । गिले शामूस या इसका भेद है ।

कोकबुलअजं—[अ०] अन्नक । (१) अबरख । (२) गिल कीमूलिया । (३) सिराजुलकुतुब ।

कोकभ—संज्ञा पुं० राग भेद ।

कोकम—संज्ञा पुं० [हि०, म०, गु०] एक छोटा सदाबहार पेड़ जो केवल दक्षिणभारत में होता है । पर्याय—(सं०) वृक्षाम्ल, तित्तिडीक, चुक्र, अम्लवृक्षक, अम्लशाक, चुक्राम्ल, तित्तिडीफल, शाकाम्ल, अम्लपूर, पूराम्ल, रक्तपूरक, चूडाम्ल, बीजाम्ल, फलाम्लक, अम्लवृक्ष, अम्लफल, रसाम्ल, श्रेष्ठाम्ल, अत्यम्ल, अम्लबीज, चुक्रफल; (हि०) विषाविल, अममूल; (रा०) डाँसरा; (वं०) महादा; (म०) रतम्बा, बिरण्डेल, कोकम-बेल; (कों०) बिरण्डा; (कना०) तित्तिडीक; (मल०) पनमपुल्लि; (ता०) मरगलमर; (कना०) मरगिना-हुली-मर; (गोत्रा) ब्रिण्डाओ, छाल—अम्लेल; (अं०) कोकम-बटर ट्री; (Kokam-Butter tree), रेड मैङ्गो (Red-mango), मैङ्गोस्टीन (mango-steen); (ले०) गार्सीनिया-प्युरिआ (Garcinia-Purpurea) ।

गुण—अपक्व (कच्चा) विषाविल—अम्ल, उष्ण, वातघ्न तथा कफ-पित्तकारक है । पक्वफल गुरुपाकी, संग्राही, कटु (चरपरा), कषाय, लघुपाकी, अम्ल, उष्ण, रुक्ष, रचि-कारक, अग्निप्रदीपक, कफ-वातनाशक तथा तृषा, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, शूल, हृदयरोग और कुमि-नाशक है ।

उद्भवस्थान—कोंकण, गोवा, कर्नाटक देश, मलाबार और पश्चिम भारत प्रदेश ।

परिचय—इसके वृक्ष देखने में अत्यन्त सुन्दर, झाड़दार होते हैं । पत्र चिकण आभ्रतुल्य लम्बे होते हैं । शीत ऋतु में आभ्रतुल्य बौर लगते हैं और वसन्तऋतु में फल लगते हैं । फल नारंगीतुल्य और इसका सर्वाङ्ग अम्ल होता है ।

उपयोगी अवयव—तैल, बीज, फल, छाल तथा नूतन पत्र ।

रासायनिक संगठन—इसके बीज में ३० प्रतिशत वसा होती है । तैल में काँष्ठिक सोडा मिश्रितकर पकाने से साबुनतुल्य हो जाता है और इसमें गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) मिलाने से स्टेरिकएसिडतुल्य हो जाता है । इसके द्वारा अफगान-स्तो इत्यादि प्रस्तुत किया जाता है । इसके फल में एक प्रकार सत्व (Cellulose) होता है, जो जल में न घुलकर तलस्थायी हो जाता है ।

उपयोग—इसके सुपक फल द्वारा शर्वत प्रस्तुत किया जाता है । **निर्माण-विधि**—कोकम के फल का रस १ भाग और शर्करा ५ भाग मिश्रितकर यथाविधि चाशनी करें ।

मात्रा—३० से ६० बूँद । **गुण**—यह ज्वर तथा आमातिसार-नाशक है । **तैल**—यह घृत का प्रतिनिधि है । इसके उपयोग से आमातिसार तथा प्रवाहिका शान्त होती है ।

मात्रा तथा अनुपान—१ तो० १ पाव गोदुग्ध में । दिन में प्रातः, दोपहर और सायंकाल, जब तक पूर्ण लाभ न हो देते रहें । इसके अतिरिक्त काँडलिहूर ऑइल की भाँति इसे यक्ष्मा में देने से उपकार होता है । बाह्य उपयोग से विवाई तथा चर्म की रूक्षता दूर होती है ।

फल की चटनी लवण, पुदीना, जीरा मिश्रितकर भोजन के साथ सेवन करने से भोजन शीघ्र पचता है और वमन तथा विसूचिका में तृषा की अधिकता दूर करने के निमित्त अवलेहन कराया जाता है ।

त्वचाकृत क्वाथ—छाल १ भाग, जल १० भाग मिश्रितकर क्वाथ करें । **गुण**—वमन तथा ज्वर की उग्रता में देने से लाभ होता है । **मात्रा**—४ से ६ ड्राम ।

नूतन पत्र—यह प्रवाहिकानाशक है । **उपयोग विधि**—कदली पत्र में बाँधकर उष्ण भस्म (राख) में दवाकर गुष्क करें । पुनः निकालकर शीतल दुग्ध में मलकर दिया जाता है ।

कोकमच तेल—[म०] विषाविल तैल । दे० 'कोकम' ।

कोकम फ्रूट—संज्ञा पुं० [अं० Kokam-fruit] विषाविल फल । दे० 'कोकम' ।

कोकम-बटर—संज्ञा पुं० [अं० Kokam-butter] कोकम-बीजतैल द्वारा प्रस्तुत मक्खन । यह यक्ष्मा में उपयोगी है । दे० 'कोकम' ।

कोकम-बेल—[म०] कोकम । विषाविल ।

कोकमा (ञ्च)—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० स्त्री०, पुं०] काकमाची । मकोय । (२० का० धे० १३ प०) ।

क्रोक्मालस—[यू०] साही । शल्यकी ।

कोकम्ब—[यू०] कोकम । विषाविल ।

कोकम्बाहि चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक चूर्णयोग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कोकमवृक्ष का मूल-पत्र २ पल, भिलावें की गिरी और कालीमिचं प्रत्येक १-१ पल, इनका चूर्णकर कर्पप्रमाण की मात्रा में सेवन करने से बाह्याभ्यन्तरगत अर्श का अवश्य नाश होता है । (वृ० नि० २० संग्रहणी-चि०) ।

कोकला—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] [स्त्री० कोकली] कोयल पक्षी ।

कोकलामस—[यू०] } हत्थाजोडी ।

कोकलामीस—[यू०] } वखुरमरियम् ।

कोकलूस—[फिर०] लोफ ।

कोकवा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का बाँस जो ब्रह्मा और आसाम में बहुतायत से होता है ।

कोकवाच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चमरपुच्छ । (२) विलेशय मृग । (हिं०) कहुण्डार । भेड़िया । (सं०) कविन, विलेशय, चमरपुच्छ, लोमश, धूम्र-वर्णक । दे० 'कोक' ।

कोकवाच मांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चमरी गाय का मांस । **गुण**—कास, श्वास और वातनाशक है तथा पित्त-दाहकारक है । (रा० नि० व० १९) ।

कोका—संज्ञा पुं० [अं० Coca] दक्षिण अमरीका का एक वृक्ष जिसकी सुखाई हुई पत्तियाँ चाय या कहवे की भाँति शक्तिवर्धक समझी जाती हैं । कोकेन नामक औषधि इसी से निकलती है । **नाम**—(हिं०) कोका; (ले०) एरिथ्रो-क्सिलम् कोका (Erythroxylum Coca Lamarck); (अं०) बोलिवियन कोका (Bolivian Coca), कोका बुश (Coca bush), कोकेन प्लांट (Cocaine plant), स्पेडिक बुश (Spadic bush) ।

कोका कुल—(Family : Erythroxylaceae).

उत्पत्तिस्थान—दक्षिण अमरीका के पेरू तथा बोलिविया नामक प्रांतों में इसके स्वयंजात गुल्म मिलते हैं । जावा, लंका तथा अन्य देशों में इसकी खेती भी की जाती है ।

वर्णन—इसके डेढ़-दो गज ऊँचे गुल्म होते हैं; शाखाएँ कोमल तथा मण्डूरवर्ण की; पत्तियाँ शाखाओं पर निकलती हैं । शाखाओं पर पत्तियों से नीचे के भागों पर पाँच खण्डोंयुक्त पीले रंग के फूल लगते हैं, जो ३-५ पुष्पों के गुच्छकों में निकलते हैं । पत्तियाँ अंडाकार अथवा अभिलट्वाकार तथा सवा से अढ़ाई इंच लंबी होती हैं । पत्तियों के अधस्तलपर मध्यनाडी के दोनों ओर पत्रफलक के आधार से अग्र तक एक-एक नाड़ी सम दिशा में फैली हुई होती है । पेरू प्रान्त की पत्तियों में उक्त दोनों नाड़ियाँ अस्पष्ट होती हैं । विशेषकर पत्तियों को मलने पर चाय की-सी हलकी गंध मालूम होती है । स्वाद किंचित् तिक्त एवं मुरभिपूर्ण । पर्वतों पर चढ़ते-चढ़ते जब कोई अधिक थक जाता है, उसका कलेजा धड़कने लगता है, तब वह इस वृक्ष के पत्तों को चबा लेता है, जिससे अल्पकाल

में ही उसके श्रमजन्य कष्ट दूर हो जाते हैं और पूर्ववत् शक्ति लौट आती है; अतः इसका नाम माउण्टेनियर्स रिमेडी (Mountaineer's remedy)—पर्वत-यात्रियों की औषध—है। आजकल हमारे देश के दुश्चरित्र व्यक्ति नशा करने के लिए जो कोकेन (Cocaine) खाया करते हैं, वह इसी वृक्ष के पत्तों का ही सत्व है।

रासायनिक संगठन—इसमें कोकेन (Cocaine) नामक क्षाराभ सत्व ४०% या ५०% पाया जाता है। इसके विवरण के लिए देखें 'कोकेन'।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कोका के पत्र एक उत्तम उत्तेजक औषधद्रव्य हैं। ये सार्वदैहिक दीर्घत्व तथा रोगोत्तर-दीर्घत्वनिवारण के लिये बहुत गुणकारी होते हैं। मद्य-पान और अफीमखाने की आदत छुड़ाने के लिये इसका उपयोग करते हैं। ये संशमन और स्वापजनन भी हैं। कोका के पत्तों से बनी रसक्रिया का प्रवाही आतों के रक्त-स्राव को बंद कर देती है। ताजी सुखाई हुई पत्तियों को इसके अन्य योगों की अपेक्षा श्रेष्ठतर समझा जाता है। दक्षिण अमरीका में क्षुधा एवं तृषा शमन करने तथा थकाहट दूर करने के लिये पान की तरह इसे चबाते हैं। चाय की भाँति भी इसका उपयोग करते हैं।

होमियोपैथी के अनुसार 'कोका'—शक्तिवृद्ध औषध के रूप में सेवन करने से हृदय की निर्वलता दूर होती है, अत्यधिक हृदय का धड़कन और श्वासकण्ठ घटता है, पाचनशक्ति की वृद्धि होती है, आध्मान बन्द होता है, आक्षेपिक श्वास (दमा) और रक्तोत्काश (हिमॉप्टीसिस) रोग में अत्यधिक श्वासकण्ठ हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है। एक प्रकार का अनिद्रा रोग—जिसमें रोगी को नींद नहीं आती, बिछौने पर लेटता है; किन्तु स्थिर नहीं रह सकता, उसमें भी इसके उपयोग से लाभ होता है। जो व्यक्ति अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम करते हैं, जिनका मस्तिष्क दुर्बल है, जिन्हें स्नायविक सुस्ती रहती है, उनकी बीमारी में 'कोका' अधिक फलप्रद होता है।

उपशम वा ह्रास—मद्यपान से, खुली हवा में तथा अधिक चलने-फिरने पर।

वृद्धि—ऊपर चढ़ने पर।

प्रतिनिधि—आसंनिक।

क्रियानाशक—जेलसिमिअम्।

क्रम—३ से ३० शक्ति।

फार्मूला—४।

संज्ञा पुं०, स्त्री० [तु०] धाय की संतान। दूधपिलाने-वाली की संतति। दूधभाई या दूधबहिन।

संज्ञा पुं० [हि० कोक] एक प्रकार का कबूतर।

संज्ञा स्त्री० [?] नीली कुमुदिनी।

वि० दे० 'कोकावेरी'।

कोकाई—संज्ञा स्त्री० [ले० Cocci] किर्मिज। बीरबहूटी भेद।

कोकाग्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समष्ठील क्षुप। (रा०)।

कोकाद—[?] लोमड़ी।

कोका प्लांट—संज्ञा पुं० [अं० Coca plant] कोका।

कोका फैल्यूस—[सुर०] आलूबोखारा।

कोकावेरी (ली)—संज्ञा स्त्री० [सं० कोका + वेरी] नीली कुमुदिनी जो पुरानी झीलों और तालाबों में होती है। नीली कुई।

कोका ब्रजेलिया—संज्ञा पुं० [अं० Coca braziliuan]

ब्रेजील में उत्पन्न होनेवाला कोका।

क्रोकामन्दी—[हि०] सालबमिश्री।

क्रोक्रामालस, क्रोक्रामालीन—[यू०] आलूबोखारा।

क्रोक्रा मूलूस—[सूर०] आलूबोखारा।

कोकाया—[?] रासन।

क्रोक्रार—[?] कर्साननः।

क्रोक्रारियूस—[यू०] चिरायता।

क्रोक्रालस—[यू०] आलूबोखारा।

क्रोक्रालीस—[यू०] सतावरी। शकाकुल।

कोका वाइन—संज्ञा पुं० [अं० Coca-wine] कोकाद्वारा निर्मित मद्य।

कोकाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद रंग का घोड़ा। पाण्डुवर्ण का घोड़ा। (ज० द० ३ अ०)।

क्रोक्रिया—[सुर०] एक प्रकार का जलजन्तु।

क्रोक्रियून—[यू०] सूकरान।

कोकिल—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) कोइल पक्षी।

कोकिला। कोयल। (ले०) ग्युक्गुलस इण्डिकस (Guculus Indicus)। पर्याय—(सं०) वनप्रिय, परभृत, पिक,

काकपुच्छ, कलघोष, अलिम्बक, कामजाल, पञ्चमास्य,

मधुस्वर, मदान्ध, कालकण्ठ, रक्ताक्ष, कुहूकण्ठ, घोषयिबु,

कलध्वनि, गातु अलिमक, अलिपक, अन्यभृत, अचलत्विट,

मधुवन, कामताल, कुहूमुख, कुहूरव मधुकण्ठ, काकपुष्ट,

ध्वाडपुष्ट, मधुघोष, वसन्तघोषी, परपुष्ट, काल,

वसन्तदूत, ताम्राक्ष, गन्धर्व, मधुगायन, वासन्त, कलकण्ठ,

कालान्ध, काकलीरव, कुहूरव, अन्यपुष्ट, मत्त, मदन-

पाठक, कलरव, कालिक। (२) नीलम की एक

छाया। (३) एक प्रकार का चूहा जिसके काठने से

ज्वर हो आता और बहुत जलन होता है। (४) सविष

सौम्य कीठभेद। इसके दंशन से कफजन्यरोग उत्पन्न

होते हैं। (सु० कल्य० ८ अ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] बेर का फल। बदरीफल।

(जटा०)।

कोकिल-मांस—संज्ञा पुं० [सं० क्लो] गुण—श्लेष्मल,

पित्तशामक। (अत्रि० २१ अ०)।

कोकिल नयन--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तालमखाना । कोकिल-
लाक्ष । वं०--कूलियाखाड़ा । (अ० टी० २०) ।

कोकिला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकोली । (२)
स्त्रीकोकिल । मादा कोयलपक्षी । (वै० निघ०) ।
(३) कोकिला । वासन्ती । (ध० नि०) ।

कोकिलानन्द--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राजाभ्र वृक्ष । मालदह
आम । (रा० नि० व० ११) ।

कोकिलार्वात्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } नेत्ररोग में
कोकिला-वर्त्ती--संज्ञा स्त्री० ["] } प्रयुक्त योग--
निर्माण-विधि--सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, रसौत--
इन्हें समान भाग में ग्रहणकर जल में पीसकर गुटिका
बनाएँ । गुण--जल में घिसकर नेत्रों में अंजन करने से
तिमिर का नाश होता है । (च० द०) ।

कोकिलावास--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम्रवृक्ष । आम
का पेड़ ।

कोकिलाक्ष--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तालमखाना । (Hygro-
phila spinosa) । दे० 'तालमखाना' ।

कोकिलाक्षक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तालमखाना ।

कोकिलाक्षादि--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का योग ।
द्रव्य तथा निर्माण-विधि--तालमखाना और गिलोय
समान भाग में ग्रहणकर यथाविधि काथकर पथ्यपूर्वक
सेवन करने से वातरक्त का नाश होता है । (यो० २०
वातरक्तचि०) ।

कोकिलाक्षी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तालमखाना के
बीज । कोकिलाक्ष बीज । (श० २०) ।

कोकिलेष्टा--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] फरेँदा जामुन । महा-
जम्बू वृक्ष । बड़ा जामुन । रा० नि० व० ११ ।

कोकिलेक्षु--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कजली ऊख । कृष्ण
कोकिलेक्षुक--संज्ञा पुं० ["] इक्षु । (२) ताल-
मखाना । कोकिलाक्ष क्षुप । (रा० नि० व० ५, १४) ।

कोकिलोत्सव--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम । आम्रवृक्ष ।
(रा० नि० व० ११) ।

कोकी--[यू०] (१) बड़ा सनोवर । (२) ऊदबिलाव
जिससे जुंदवेदस्तर प्राप्त किया जाता है ।

कोकीन--संज्ञा स्त्री० [अ० Cocain] कोकासत्व । दे०
'कोका' और 'कोकेन' ।

कोकीनूस--[यू०] ककनस । दीपकलातपक्षी ।

कोकीफोलिया--संज्ञा पुं० [ले० Cocae folia] कोका ।

कोकीलूस--[यू०] (१) जंगली जीरा । (२) पित्तपापड़ा ।
(३) बिच्छू । वृश्चिक ।

कोकुआ--संज्ञा पुं० [सं० कोकाग्र] समण्डील नाम का
पौधा ।

कोकुन--[यू०] दे० 'कोकून' ।

कोकुम--[सि०] केसर । कुंकुम ।

कोकुराट्ट--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकाह । सुखपुण्ड्रकयुक्त
श्वेताश्व । श्वेतवर्ण का घोड़ा । (ज० द० ३ अ०) ।

कोकू--[ता०] पीलू वृक्ष । झाल ।

कोकूकस, कोकून--[यू०] (१) नख । अजफारुत्तीव ।
(२) सरो का वृक्ष । (३) सरो का फल । (४) कोकन
(Kokoona zeylanica) ।

कोकूना जिलानिका--[ले० Kokoona zeylanica] कोकून ।
कोकून । एक ऊँचा पेड़ ।

कोकूमरमा--[?] केसर के तेल को तलछट । रोगन जाफरान
की तलछट ।

कोकूमाकुस--[यू०] किर्मिज ।

कोकूल--[?] (१) सीप का खोल । सुवितकावरण । (२)
नख । अजफारुत्तीव ।

कोकूव--[यू०] किर्मिज ।

कोकूसमाकुस--[यू०] किर्मिज ।

कोकू सलासिफेर--[ले०] लाख । लाक्षा ।

कोकूसीदू--[] जोअद ।

कोकेन--संज्ञा स्त्री० [अ० Cocain] कोकानामक वृक्ष या
उसकी अन्य उपजातियों के वृक्ष की पत्तियों से प्राप्त की
हुई एक प्रकार की औषधि जो उसका क्षाराभ सत्व
(अल्कलायड) है । यह सत्व उसके अतिरिक्त एकगोनीन
(Ecgonine) के संश्लेषण (Synthesis) द्वारा कृत्रिम
रूप से भी प्राप्त किया जाता है । दे० 'कोका' ।

नाम--(हि०) कोकीन; (ले०) कोकेना (Cocaina);
(अ०) कोकेन (Cocain); (रासायनिक) मेथिल बेंजोइल
एकगोनीन (Methy benzoyl ecgonine) ।

वर्णन--रंगहीन मणिभ जो गंधरहित और स्वाद में
तिक्त होते हैं तथा मुखमें लगाने से चुनचुनाहट एवं सुन्नता
उत्पन्न करते हैं । विलेयता--जल में तो प्रायः अविलेय
होता है, किन्तु १० भाग अल्कोहल (६०%), ४ भाग
सॉल्वेन्ट ईथर, २४ भाग जैतून के तेल तथा १२० भाग
लिक्विड पैराफिन में विलेय होता है । दे० 'कोका' ।

कोकेन ऑइन्टमेण्ट--संज्ञा पुं० [अ० Cocain ointment]
कोकेनकृत मलहर ।

कोकेन कम्पाउंड आइन्टमेण्ट--संज्ञा पुं० [अ० Cocain
co. ointment] कोकेन का यौगिक मलहर ।

कोकेनी हाइड्रोक्लोराइडम्--[ले० Cocainae Hy-
drochloridum (Cocain Hydrochlor)] रासाय-
निक संकेत $C_{17}H_{21}NO_7 \cdot HCL$ ।

नाम--(अ०) कोकेन हाइड्रोक्लोराइड (Cocaine
hydrochloride), हाइड्रोक्लोराइड ऑव कोकेन
(Hydrochloride of cocaine) ।

निर्माण-विधि--इसे हाइड्रोक्लोरिक एसिड अर्थात्
नमक के तेजाब से उदासीन (न क्षारीय न अम्ल) करके

मणिभ बाँध लेते हैं। इसलिये हाइड्रोक्लोरेट ऑव कोकेन के नाम से इस योगिक को स्मरण करते हैं। कोका के अन्य क्षाराओं की अपेक्षा संसार में इसी क्षाराभ का अधिक व्यय होता है। यह कोकेन नामक क्षाराभ का हाइड्रोक्लोराइड लवण है।

वर्णन—यह रंगहीन पारदर्शक मणिभ के रूप में होते हैं जो गंधहीन तथा स्वाद में तिक्त होते हैं और चखने के बाद चुनचुनाहट एवं सुन्नता की अनुभूति होती है।

विलेयता—०.५ भाग जल में १ भाग तथा ३ भाग अलकोहल (९०%) में १ भाग; जैतून के तेल में अविलेय होता है। मात्रा— $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ ग्रेन या ८ से १६ मि० ग्रा०।

अधिकृत (ऑफिशियल) योग—१—(ले०) ऑक्युलेंटम् कोकेनी—(Oculentum cocainae); (अ०) कोकेन ऑयन्टमेंट (Cocaine ointment); (हि०) कोकेनका नेत्रांजन। २—(ले०) लेमिली कोकेनी (Lamellae cocainae); (अ०) डिस्कस ऑव कोकेन (Discs of cocaine); (हि०) कोकेन की पत्र-चक्रिका। ३—(ले०) ट्रॉकिस्काइ क्रमेरिड एट कोकेनी (Trochisci Krameriae et cocainae); (अ०) क्रमेरिया एण्ड कोकेन लॉजेंज (Krameria and Cocaine Lozenge)।

४—(ले०) सपॉजिटोरिया कोकेनी—(Suppositoria Cocainae); (अ०) कोकेन सपॉजिटरीज (Cocaine suppositories); (हि०) कोकेन गुदवर्ति।

इसके अन्य योग निम्न हैं—बेंजोकेना (Benzocaina), ऑर्थोकेना (Orthocaina), प्रोकेनी हाइड्रोक्लोराइडम् (Procainae Hydrochloridum), एमिथोकेनी हाइड्रोक्लोराइडम् (Amethocainae Hydrochloridum) प्रभृति। विशेष ज्ञान के लिये श्री डॉ० रामसुशील सिंह जी शास्त्री लिखित 'पाश्चात्य द्रव्य-गुण-विज्ञान' ग्रन्थ को अवलोकन करें।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कोकेन को पानी में घोलकर आँख में डालने से पुतली फैल जाती है, नेत्र के पर्दे सुख हो जाते हैं और सुन्न हो जाने के उपरान्त आँख के ऊपर शल्यकर्म किया जाता है। यह दन्तशूल में भी लाभकारी है। निम्न योग बनाकर लगाने से तुरत दर्द दूर हो जाता है। कपूर ५ भाग, क्लोरल जिसको क्लोरल हाइड्रास एवं क्लोरल हाइड्रेट भी कहते हैं ५ भाग और कोकेन १ भाग मिलाकर रखें। मसूढ़ों में दाँत की जड़ के समीप कोकेन के द्रव की पिचकारी लगाकर दाँत बिना पीड़ा के उखाड़ा जा सकता है। परन्तु उक्त क्रिया भयपूर्ण है। कोकेन को केवल मसूढ़ों पर मल देने से भी मसूढ़े इतना सुन्न हो जाते हैं कि दन्तोत्पादनयन्त्र (जंबूर) में दाँत को पकड़ने से वेदना की प्रतीति नहीं होती। कर्णशूल, सूजाक की पीड़ा और वृश्चिकदंश में विभिन्न

प्रकार से इसका उपयोग करते हैं, जिससे एक या आध मिनट में लाभ हो जाता है। विविध प्रकार के वातिक या अन्य प्रकार की वेदनाओं में इससे अधिक शीघ्र लाभ हो जाता है।

स्वस्थ त्वचा पर तो कोकेन का कुछ प्रभाव नहीं होता। किंतु व्रणित त्वचा या श्लेष्मल कला पर लगाने से यह उक्त स्थान के संज्ञावाही वातनाडियों के अन्तिम छोरों को वातग्रस्त करके वहाँ की संवेदना को नष्ट कर देती है। इसके पाँच से दस प्रतिशतवाले घोल की अधस्त्वग् पिचकारी लगाने से वहाँ की संवेदना नष्ट हो जाती है, किंतु इसका उक्त प्रभाव चिरस्थायी नहीं रहता। चेष्टा-वह वातनाडियों को वातग्रस्त करने के लिए घोल की शक्ति अत्यधिक होनी चाहिये। मुख में लगाने से यह जिह्वा के स्वाद के संवेदन को नष्टकर देती है तथा मूर्द्धा एवं कण्ठ की संवेदना भी बुझ हो जाती है और मुखलाला की उत्पत्ति कम हो जाती है। इसका पचास प्रतिशत का घोल मसूढ़ों की संवेदना नष्ट कर देता है। कोमल तालु और कंठ में बीस प्रतिशतवाला कोकेन का घोल लगाने से वहाँ इतनी सुन्नता उत्पन्न हो जाती है कि बड़ी हुई उपजिह्विकाएँ या कण्ठगत छोटे-छोटे अर्बुदों को बिना पीड़ा अनुभव किये छेदन कर सकते हैं। कण्ठशोथ में कोकेन और रटानीरूट की चक्रिका मुख में रखकर चूसने से बड़ा लाभ होता है। कभी एक ग्रेन कोकेन १५ बूँद टिंकचर वेलाडोना में मिलाकर एक ही बार देने से लाभ होता है। बहुत थोड़ी मात्रा में देने से यह आमाशय की शक्ति को बढ़ाती (दीपन) है। मध्यम मात्रा में देने से यह आमाशयिक रस का उद्रेक कम कर देती है। इसे अधिक मात्रा में देने से या तो दस्त आने लग जाते हैं अथवा अन्न के कृमिवत् आकुंचन के शिथिल हो जाने से कब्ज हो जाता है। मध्यम सेवनीय मात्रा में देने से हृदय की गति तीव्र हो जाती है तथा रक्त का दबाव बढ़ जाता है। परन्तु अधिक मात्रा में देने से यह दोनों को घटाती है। नाक में लगाने से यह उसकी श्लेष्मल कला की संवेदन-शक्ति को नष्ट कर देती है। आंतरिक रूप में देने से यह प्रथम तो श्वासोच्छ्वास केन्द्र को उत्तेजितकर श्वासोच्छ्वास की गति को बढ़ा देती है। किंतु शीघ्र ही उस पर दीर्घत्व-कारक 'अवसादक' प्रभाव करके यह उसे इतना अवसित (मुस्त) कर देती है कि श्वास अवरुद्ध होकर मृत्यु हो जाती है।

अल्पमात्रा में देने से मस्तिष्क पर इसका कहवा के सत्व (काफीन) की तरह उत्तेजक प्रभाव होता है जिससे शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ तीव्र हो जाती हैं। चित्त को आनन्द एवं शान्ति प्राप्त होती है। शारीरिक एवं मानसिक कार्य की क्षमता बढ़ जाती है। सुतरां पेरू-

देशवासी परिश्रम एवं आयास के समय थकावट दूर करने के लिये कोका की पत्ती खाते हैं। किन्तु स्मरण रहे कि इसका केवल उत्तेजक प्रभाव होता है। यह आहार का काम नहीं दे सकती है। कभी-कभी इससे अनिद्रादोष उत्पन्न हो जाता है। परन्तु वह अधिक कष्टदायक नहीं होती। बड़ी मात्रा में देने से यह मस्तिष्क पर अवसादक प्रभाव करती है। उक्त अवस्था में यह सौषुम्निक संज्ञा-वहाओं के अन्तिम छोरों को वातग्रस्त कर देती है तथा सुषुम्ना पर भी इसका अवसादक प्रभाव पड़ता है। कई बार $\frac{3}{4}$ कोकेन की अधस्त्वगीय पिचकारी करने से विषलक्षण प्रगट हो गये हैं। भाँग के विषप्रभाव की भाँति इससे भी चित्र-विचित्र के काल्पनिक दृश्य दृग्गोचर होते हैं, शिरःशूल एवं शिरोभ्रमण होता है, त्वचा के नीचे च्यूटियाँ रेंगती हुई सी प्रतीत होती हैं। उक्त दशा में तुरत कोई वामक औषधि देकर वमन करावें या यदि आवश्यकता हो तो स्टमक-पम्प से आमाशय को धो डालें। नाइट्रो-ग्लिसरिन या अमोनिया सुँघायें। तेज कहवा पिलायें या उसकी बस्ति करें। कुपोलुसत्व (स्ट्रुक्तीन) और ईथर की त्वगीय पिचकारी करें। इस औषधि का एक बड़ा लाभ यह है कि क्लोरोफॉर्म सुँघाकर संज्ञाहीन करने के समय यदि इस औषधि की पिचकारी की जाय तो अधिक क्लोरोफॉर्म सुँघाने की आवश्यकता नहीं रहती जो कभी-कभी भयपूर्ण है। दूसरे यदि इस औषधि के सेवनोपरान्त अधिक क्लोरोफॉर्म सुँघा दिया जाय तो भी कुछ भय नहीं, क्योंकि इनकी क्रियाएँ एक दूसरे के विरुद्ध हैं। सुन्न करने के लिये प्रतिशत एक भाग से बीस भाग तक घोल बनाया जाता है तथा नेत्र पर क्रिया करने के लिये प्रतिशत चार भाग का घोल बनाते हैं। स्वरयन्त्र (नरखरे) के रोग में जब निगलने के समम खाँसी एवं तीव्र वेदना होती हो तब प्रतिशत एक या दो भाग का घोल शीकरयन्त्र (आवशार) के द्वारा पहुँचाते हैं। मुख, नासिका और स्वरयन्त्र (नरखरे) के भीतर शल्यकर्म करने के समय श्लेष्मलकला में प्रतिशत दस या बीस भाग का घोल पिचकारी के द्वारा लगाने से वेदना शमन हो जाती है।

विषलक्षण—अनेक रोगियों में इसके विषलक्षण देखे जाते हैं। इसका प्रधान कारण यद्यपि मात्राधिक्य है, तथापि कभी-कभी स्वभाववैशिष्ट्य के कारण अल्पमात्रा में विषप्रभाव प्रगट हो जाता है। साधारणतया घातक मात्रा १८ ग्रेन (९ रत्ती) है, किन्तु $\frac{1}{2}$ ग्रेन के अधस्त्वक् सूचिकाभरण में भी तीव्र विषप्रभाव देखा गया है। यहाँ तक कि $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा में भी मृत्यु तक हो सकती है। विषप्रभाव होने पर उन्माद, शिरोभ्रम, कण्ठशोष श्वास-कृच्छता तथा हाथ-पैर में ऐंठन आदि लक्षण प्रकट होते

हैं। रोगी चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है तथा त्वचा के नीचे क्रुमि रेंगने की अनुभूति करता है जो कोकेन—विषमयता का प्रधान एवं विशिष्ट लक्षण है। पुतलियाँ विस्फारित हो जाती हैं तथा प्रतिसंक्रमित क्रियायें उत्तेजित हो जाती हैं। मात्रा की अधिकता से होनेवाली विषमयता में अपस्मार की भाँति आक्षेप होने लगते हैं और श्वसन तथा रक्तसंवहन पर तीव्र अवसादक प्रभाव होता है। मृत्यु प्रायः श्वसनकेन्द्राघात होने से अथवा रक्तभार के अत्यधिक गिरने से निपात होने के कारण होती है।

चिकित्सा—स्थानिक संज्ञाहरण के लिये यदि कोकेन का प्रयोग करना है तो आध घंटे पूर्व संशामक औषधियों—यथा बारबिटुरेट्स आदि का मुख द्वारा सेवन करा देने से विषाक्तता होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। अन्तर्सौषुम्निक सूचिकाभरण द्वारा नाड्यवरोध करके यदि संज्ञाहरण करना है तो अनागतावाधप्रतिषेधार्थ एड्रिनेलीन या एफेड्रीन का अधस्त्वक् सूचीवेध करना चाहिये। विषमयता हो जाने पर आक्षेपनिवारण के लिये ल्युमिनल सोडियम्, एमाइटल—सोडिम् तथा पैरालिडहाइड आदि का प्रयोग करें अथवा यदि आवश्यक हो तो क्लोरोफॉर्म सुँघायें। निपात के प्रतिकार के लिये एड्रिनेलीन को नामल सेलाइन के साथ इन्जेक्ट करें। यदि आवश्यक हो तो कृत्रिमश्वसन द्वारा श्वसनावसाद का निवारण करें।

चिरकालज विषाक्तता या कोकेन विषमयता—अन्य मादक द्रव्यों की भाँति इसपर राजकीय निषेध है; किन्तु इसके सेवन करनेवाले विशेषतः बड़े नगरों में बहुत मिलते हैं। ये लोग प्रायः पानके साथ गुप्तरूप से इसका सेवन करते हैं और आदत हो जानेपर इसीके लिए पान-वालों को (जिनका यही गुप्त व्यवसाय होता है कि अपने निश्चित ग्राहकों को पान के बहाने से कोकेन देते हैं) अधिक मूल्य देकर भी इसके प्राप्त करने की प्रतीक्षा करते हैं। नशे के रूप में इसके सेवन से स्वास्थ्य-विकृति तीव्र होती है, साथ ही नैतिकपतन की भी आशंका बहुत रहती है; क्योंकि इसके सेवन से स्त्री-पुरुष दोनों में सहवास की भावना तीव्ररूपेण जाग्रत होती है। इसके कुपरिणाम-स्वरूप पाचनविकृति, दीर्बल्य, शिरोभ्रम, नाडीतीव्रता, अनिद्रा आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, पुतलियाँ विस्फारित हो जाती हैं तथा दृष्टिविकृति, स्मरणहीनता तथा नपुंसकता आदि लक्षण प्रधानतया प्रगट होते हैं।

चिकित्सा—आदत छोड़ना चाहिये तथा काफी, कुचिला तथा अन्य बल्य औषधियोंका सेवन करना चाहिये। कभी-कभी जलवायु-परिवर्तनसे भी लाभ होता है। (डॉ० श्रीरामसुशीलसिंह शास्त्री लिखित पाश्चात्य द्रव्यगुण—विज्ञान पृ० ५८४)।

कोकेरेवेल—

कोको (कूकू)--[फा०] फास्ता। पेड़की। खागीना।
 कोको--संज्ञा पुं० [अं० Cocco] थियोब्रोमा कोकाओ
 (Theobroma cacao)। काकाओ।
 कोकोआडू--[वं०] धिनानानी।
 कोकोकोरहू--संज्ञा पुं० अम्बाडा। अमडा। आम्रातक।
 कोकोनट ऑइल--संज्ञा पुं० [अं० Cocomanut oil]
 नारियल का तेल। गरी का तेल। खोपड़ा का तेल।
 कोकोनट ट्री--संज्ञा स्त्री० [अं० Cocomanut tree] नारि-
 यल का पेड़।
 कोकोनट पाम--संज्ञा पुं० [अं० Cocomanut palm] नारि-
 यलका पेड़।
 कोकोडीमेर--[अं० Cocodemer]
 कोकोरंज--संज्ञा पुं० पर्याय--(म०) बगली, उक्षी; (ते०)
 वण्डी मरुडु; (कना०) बगली, मसार्द; (ले०) कैलिकाप्टेरस-
 फ्लोरिबण्डा (Calycopteris-Floribanda)।
 हरीतक्यादि या कम्ब्रीटेसीई (Combretaceae)
 कुल।
 उद्भवस्थान--आसाम तथा पश्चिमी भारतवर्ष।
 उपयोग-अवयव--फल, फूल, मूल।
 रासायनिक संगठन--इसमें कषायीन (Tannin)
 ६८६ प्रतिशत होता है।
 गुण-कर्म--उत्तेजक और संग्राहक है। पत्र--तित्त तथा
 संग्राहक और फल आहारपाचक है।
 योग--हिम--पत्र १ भाग, जल २० भाग। मात्रा--२
 से ८ ड्राम तक। पत्रस्वरस, मूलपिष्टी। उपयोग--इसके
 पत्र का हिमपान करने से शूल और अम्लपित्त शमन
 होता है। पत्रस्वरस भी उक्त रोग में लाभप्रद है।
 इसका मूल और भूताङ्कुश (अर्जुन) एकत्र पीसकर
 पुरसासपदंशस्थान पर लेप करने से विषशमन होता है।
 फल--इसका फल, सोठ, मिचं, पीपर समान भाग में
 ग्रहणकर चूर्ण करें। मात्रा--३ माशा उष्णजल से
 सेवन करने से यकृतविकार नष्ट होता है। फल को
 पीसकर लेप करने से विद्रधि का नाश होता है।
 कोकोवाच--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकड। (ध० ति०)।
 विलेशय मृग। चमर पुच्छ।
 कोकोस-न्यूसिफेरा--संज्ञा पुं० [ले० Cocos-nucifera]
 नारियल। नारिकेल वृक्ष।
 कोकोस-मैल्डोवोक्स--संज्ञा पुं० [ले० Cocos-maldiv-
 icus]। (डी० भ० ३, पृ० ४२१)।
 कोकोह--[वर०] सिरिस।
 कोक्कस--संज्ञा पुं० [अं० Coccus] किर्मिज। बीरबहूटी।
 विलायती इन्द्रगोप।
 कोक्कस कैक्टाई--संज्ञा स्त्री० [ले० Coccus-cacti] जीवाणु
 जिसको 'कॉकिनिऐल' कहते हैं। यह आकृति में खटमल

कांसा होता है। होमियोपैथ इसको सुखाकर टिंचर
 प्रस्तुत करते हैं। इसके उपयोग से आक्षेपिक-कास (खांसी),
 कुरकुरकास (हर्पिगकफ) तथा कतिपय मूत्राशयिक रोग
 नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त केश्मरी तथा मूत्ररोग की
 ऐसी अवस्था में जबकि मूत्र में युरेट तथा यूरिक एसिड
 की मात्रा अधिक होती है और जब मूत्राशय में अश्मरी
 पड़ जाती है, इसके उपयोग से प्रायः लाभ होते देखा
 गया है। क्रम--३० शक्ति तथा न्यून शक्ति का विचूर्ण भी
 उपयोगी है। दे० 'बीरबहूटी'।
 कोक्कस इण्डिका--संज्ञा स्त्री० [ले० Coccus indica]
 बीरबहूटी।
 कोक्कस लक्का--संज्ञा पुं० [ले० Coccus lacca] लाख।
 लाक्षा।
 कोक्कस ओरिएन्टिस--[ले० Coccus orientis] कीट भेद।
 कोक्कित--[ति०] समुद्रशोष। (डाइमॉक भ० २, पृ० ५४१)।
 कोक्कित-यरलु--[ति०] कोलेजान।
 कोक्किनेल्ला--संज्ञा पुं० [ले० Coccinella] इन्द्रगोप।
 बीरबहूटी।
 कोक्कोलिल-डाइलिबैण्टी--संज्ञा स्त्री० [ले० Coccolle-Dile-
 vante] (डी० भ० १, पृ० ५०)।
 कोक्युलस-इण्डिकस--संज्ञा पुं० [ले० Coccus Indicus]
 काकमारी। काकफल। काकनासिका। (अं०) फिशबेरी
 (Fishberry)।
 कोक्युलस-लीबा--संज्ञा पुं० [ले० Coccus-leaba]
 बल्लूर। ब्रिहरी। (मेमो०)।
 कोक्युलस-विल्लोसस--संज्ञा पुं० [ले० Coccus-villo-
 sus] फरीद बूटी। गरुडवल्ली। जल-जमनी।
 कोक्युलस-स्युबिरोसस--संज्ञा पुं० [ले० Coccus-
 suberosus] काकफल। काकमारी।
 कोक्लोस्परमम्-गॉस्सिपियम्--संज्ञा पुं० [ले० Cochlos-
 permum-Gossypium] पीतकर्पास। पीली कपास।
 गलगल। इसके गोंद को कतीरा कहते हैं।
 कोखर--संज्ञा पुं० गदहा। गर्दभ। एकशफ। (लु०
 क०)।
 कोखलन--[?] सुरमा। (लु० क०)।
 कोखलीस--[सुर०] करमकल्ला। शाकभेद।
 कोखुरी--संज्ञा स्त्री० [पं०] पहाड़ी चाय। पपड़ा।
 (मेमो०)।
 कोग--संज्ञा पुं० [सं० कोकः] एक प्रकार का पर्वतीय जन्तु
 है जो कुत्तातुल्य होता है। यह शूकर तथा व्याघ्र को
 मार डालता है। दे० 'कोक'।
 कोगी--संज्ञा स्त्री० [का०] सरफोका। सर्पाक्षी। सरपुंखा।
 संज्ञा पुं० [देश०] लोमड़ी से मिलता-जुलता एक प्रकार
 का जानवर जो झुंड में रहता है।

कोङ्कण--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कोंकण देश में उत्पन्न अरब ।
कोङ्कण-- " " ["] } (घोड़ा) ।

कोङ्क--[सि०] कोसम । कोषात्र ।

कोङ्कलेस--[] } सिनेगल । गोरख । (डाइमॉक भ०

कोङ्कस--[] } १, पृ० २२८) ।

कोङ्गी--[लेपचा] पद्म । पद्मकाष्ठ । अमल गुच-पं० ।

कोङ्ग--[ता०] थम्बा । कमला । बम्बी । (मेमो०) ।

कोचई--

कोचरा--संज्ञा पुं० [देश०] बड़े पेड़ों पर चढ़नेवाली एक प्रकार की घनी लता जिसकी पत्तियाँ एक अंगुल लंबी तथा दोनों ओर नुकीली होती हैं । जेठ-आषाढ़ में इसमें पीले रंग के फूल गुच्छों में लगते हैं और दूसरे बैसाख तक फल लग जाते हैं । यह लता गोंडा, बहराइच तथा खसिया और भूटान में होती है । (ले०) हिप्पो-क्रेटिआ आर्बोरिया (Hippocratea arborea Roxb.) । बदरकुल (Rhamneae) ।

कोचरिक--

(डी० भ० १, पृ० ४६)

कोचरी--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

कोचलोरिआ आर्मोरिका--[ले० Cochleria armoreca] ।

कोचाले--[का०] कचनार ।

कोचिआ इण्डिका--[ले०] बुई, कनराडो (पं०) । (मेमो०) ।

कोचिंडा--संज्ञा पुं० [देश०] जंगली प्याज । यह दक्षिण हिमालय में होता है तथा खाने और दवा के काम में आता है । कौड़ा ।

कोचिन्दा--[म०] काँदा । कोलकन्द ।

कोचिलचि--[मल०] दादमारी । दाद-मर्दन । (मेमो०; डी० भ० ३, पृ० ५१०) ।

कोचिलची पुल्ल--[मल०] दे० 'कोचिलचि' ।

कोचिला--संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कुचला । (भैष० ज्व-चि० पानीयवटी) ।

कोचिलीत्ति पुल्लु--[ता०] दे० 'कोचिलचि' ।

कोची--संज्ञा पुं० [?] बबूल की किसिम का एक जंगली पेड़ जो पूरव और दक्षिण भारत के जंगलों में अधिकता से होता है । बनरीठा । सीकाकाई ।

संज्ञा स्त्री० [?] सातला ।

कोचीन काइनो--संज्ञा पुं० [अं० Cochin kino] ।

कोचीन टर्मेरिक--संज्ञा पुं० [अं० Cochin turmeric]

कोचीन की हलदी । (डी० भ० ३, पृ० ३६६) ।

कोचीनील--[अं० Cochineal] किमिजदाना । बीरबहूटी की तरह का एक प्रकार का विदेशी कीड़ा । इससे बने टिंचर से प्रवाही औषधियों को रंगीन किया जाता है । (डी० भ० २, पृ० ९९) ।

कोचुक--

कोचेलचिपुल्लु--[मल०] दादमारी । दादमर्दन । दाबी-दूबी (बं०) ।

कोचोल--[फा०] कुचला । कारस्कर ।

कोच्चि-तमरत्तै--[ता०] वेलम्बु ।

कोच्चि-लच्च-पुल्ल--[मल०] } (बं०) दाबी-दूबी ।

कोच्चिलित्तिप-पुल्ल--[ता०] } दादमारी । दादमर्दन ।

कोज--[फा०] [बहु वं० 'कोजहा'] गोंद । निर्यास ।

कोज--[फा०] मेढा । मेष ।

कोज--[फा०] कलौजी । कलिंग ।

कोज--[तुर०] (१) अखरोट । आशोट । (२) पुरानी रुई ।

[फा०] सुख जअरुर ।

कोजकून--[तुर०] डोमकौवा । द्रोणकाक । कालाकौवा ।

कोजतायून--[यू०] धनिया । धान्यक ।

कोजयह--[?] हलयून ।

कोजलयास--[यू०] जंगली बड़ा घोंघा ।

कोजाकानियून--[यू०] एक वनस्पति है । फ्रीलजहरज ।

कोजी--

कोझनील--[मल०] } सर्पाक्षी । सरपुंखा । सरफोंका ।

कोझिन्निल--["] } नारंगी । नागरंग ।

कोझुञ्जिप्पझम्--[ता०] वसा । चरबी ।

कोट--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुष्ठरोग । कोढ़ । (२) सोपारी । गुवाक । (त्रिका०) ।

[सि०] जंगली बादाम ।

कोट--अरलू--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

कोट-कप्पाल--[मल०] कुड़ा । कुटज ।

कोट-कप्पाल-वित्त--[मल०] मीठा इन्द्रयव । कुटजबीज ।

कोट-कोमल--[ता०] वस्तर ।

कोट-गन्धल--संज्ञा पुं० [देश०, वं०, हिं०] एक छोटा पेड़ जो बंगाल और मध्यप्रदेश में अधिकता से होता है ।

पर्याय--(सं०) ईश्वरा; (वं०) रंगना; (म०) कुराट, रायकुड़ा, लोकण्डी, गुवावी-लकड़ी; (कना०) गोरिवी, कोरगी; (ता०) शुलुन्दु-कोड़ा; (ते०) करिवी-पोल; (कों०) कुराटी; (अं०) टॉच ट्री (Torch-tree); (ले०) इक्सोरा पार्वीफ्लोरा (Ixora parviflora), इक्सोरा-ऐल्वा (Ixora Alba) ।

उद्भवस्थान--यह प्रायः पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत के मध्यप्रदेश में उत्पन्न होता है ।

रासायनिक संगठन--इसकी त्वचा में वसातुल्य पदार्थ होता है । इसके अतिरिक्त कषायसत्व, रंजक-द्रव्य और किंचित लोहांश (Ferric oxide) भी होता है ।

उपयोग--इसकी त्वचा १ भाग २० भाग जल में क्वाथकर सेवन करने से निर्बलता तथा रक्ताल्पता दूर

होती है। मात्रा— $\frac{1}{2}$ से २॥ तोला। इसके पुष्प को दुग्ध में घोंटकर सेवन करने से कुकुरकास का नाश होता है।

कोटज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा। कुटज। कोरैया।

कोटन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिशिर ऋतु। (ध० नि०)।

कोटपन—[मल०] गेहूँ। गोधूम।

कोटप्पन—[मल०] बजर-वट्टू।

कोट-बार्क—दे० 'कोटू'।

कोटमल्ले—[ता०] धनियाँ। धान्यक।

कोटम्ब—[सि०] जंगली बादाम।

कोटर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] वृक्ष का खोखला।

वृक्षगह्वर। पर्याय—(सं०) निष्कुह (अ०), निर्गूढ,

कोटर (शब्दर०), प्रान्तर, तरुविवर (ज०)। (ध० नि०)।

कोटरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विधारा, वीजतारक, वृद्धदारक।

कोटरवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद निशोथ। श्वेतत्रिवृत्। (वै० निघ०)।

कोटरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] राक्षसी विशेष। (भागवत ६ अ०)।

कोटराक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पारदमारण में प्रयुक्त औषधि। (रस० का० धे०)।

कोटरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नग्न स्त्री। वृद्धहीन स्त्री। नंगी स्त्री।

कोटवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपल। (डाइमॉक)।

कोटवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नग्न स्त्री। नन्दी स्त्री। (अम०)।

कोटाइन—[अ० Cotine] शाबु कुल। (डाइमॉक भ० १, पृ० ३३)।

कोटानीन—

कोटानीन क्लोराइड—संज्ञा पुं० [अ० Cotarnine chloride] स्टिप्टिसिन। (पा० द्र० गु० वि०, भ० १, पृ० ४५४)।

कोटारनीन हाइड्रोक्लोराइड—[अ०] दे० 'कोटानीन'।

कोटारनीनी हाइड्रोक्लोराइडम्—[ले०] क्लोराइड।

कोटि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असवरग। स्पृक्का। (बं०) पिण्डीर शाक। (रा० नि० वं० १२)।

कोटिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मण्डूक जातीय सविष कीट भेद। (सु० कल्प ८ अ०)। दे० 'मण्डूक'। (२) बीर-बहूटी। इन्द्रगोप कीट। (बं०) आषाढे-पोका।

कोटिक-बेविला—[सि०] अतिबला।

कोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असवरग। स्पृक्का। (बं०) पिण्डीर शाक। (ध० नि०)।

कोटिकाड-बीवल—[सि०] जंगली मेथी।

कोटिकार-बबीला—[कना०] बला। बरियारा।

कोटिङ्ग-पिल्स—संज्ञा पुं० [अ० Coating-pills] वह गोलियाँ जिनके ऊपर चीनी आदि का खोल चढ़ाया होता है। यह प्रायः उन गोलीयों पर किया जाता है जो अत्यन्त तिक्त एवं विस्वाद होती हैं।

कोटि बालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गिरगिट। सरट। (वै० निघ०)।

कोटि मिरि—[ते०] धनियाँ। धान्यक।

कोटियाली—संज्ञा स्त्री० [गढ़वाल] कोटयाली। ब्राह्मी।

कोटिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नेवला। नकुल। (२) वीरबहूटी। इन्द्रगोप कीट। (मे०)।

कोटि वर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिडिङ्गशाक। (वं०) पिडिरशाक। (श० र०; ध० नि०)।

कोटिवृक्षक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा। कुटज वृक्ष। (मद० व० १)।

कोटिश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोष्ट्रभेदन। ढेले का चोट। (भरत)।

कोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुड़ा। कुटजवृक्ष। कोरया। (वै० निघ०)। (२) पिण्डीरशाक। स्पृक्का।

(३) शस्त्राग्नभाग। (अ० टी०)।

कोटीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जटा। (२) किरोट।

कोठीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (हे०)।

कोटी वर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिडिङ्गशाक। कोटिवर्षा।

कोटू-बैलि—[मल०] चोता। चित्रक।

कोटू—संज्ञा पुं० दे० 'कूट'।

कोटू(टो)ईन—[अ०] कोटूसत्व। दे० 'कोटूकी छाल'।

कोटू(टो)कॉर्टेक्स—संज्ञा पुं० [ले० Coto cortex] कोटू की छाल। दे० 'कोटू की छाल'।

कोटू की छाल—संज्ञा स्त्री० [अ० कोटू, हि० छाल] यह एक सूखी छाल है जो दक्षिण अमेरिकास्थित बोलोविया से आती है। इसके चौड़े और वक्राकार टुकड़े होते हैं, जो $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इ० तक मोटे होते हैं। बाहरी धरातल दालचीनी के समान भूरा एवं स्वच्छ और भीतरी धरातल गहरा भूरा, तोड़ बाहरी भाग में दानेदार और भीतरी भाग में तंतुमय; गंध तिक्तता लिये रुचिपूर्ण दालचीनी जैसी और स्वाद चरपरा होता है। नाम—(ले०) कोटू कॉर्टेक्स (Cotu cortex); (अ०) कोटू बार्क (Cotu bark)।

रासायनिक संगठन—इसमें कठिन एवं मृदु राल, पिष्ट, नियसि और कोटूईन नामक सत्व जो एक हलके पीले रंग का चूर्ण है, पाया जाता है। यह सत्व पानी में तो कम विलीन होता है; किंतु विशुद्ध मद्य में सरलता से विलीन हो जाता है। शोरा के तेजाब में मिलने

से इसका रंग रुधिरवत् लाल हो जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह सुगन्धित उत्तेजक और अन्त्रसंग्राहक है तथा जीर्णअतिसार एवं जीर्णप्रवाहिका (पेचिस) में लाभकारी सिद्ध हुई है। अस्तु, इसका टिकचर पिच्छा (लोआव) के साथ जीर्णअतिसार में गुणकारक है। इसी प्रकार की एक छाल में से एक सत्व प्राप्त होता है जिसे पैराकोट्टईन कहते हैं। यह भी पानी में तो कम, किंतु मद्य में विलीन हो जाता है। उरः क्षतरोग में जो रात्रिस्वेद होता है उसे बंद करने के लिये इन उभय सत्वों का उपयोग करते हैं। कोट्टईन का एक संसृष्ट चूर्ण है जिसे कोरट्टईन कहते हैं। यह शिश्व-तिसार में लाभकारी है। मात्रा—(१) कोट्ट की छाल २॥ से ५ रत्ती तक; टिकचर १०—२० बूँद तक; कोट्टकृत रसक्रिया (सत्व) ५—१० बूँद तक; कोट्टईन सत्व ३ से १ रत्ती तक; पैराकोट्टईन १—१॥ रत्ती तक।

कोटू (टो) बार्क—संज्ञा पुं० [अं० Coto bark] कोट्ट की छाल।

कोटो डुम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यज्ञोदुम्बर। गूलर। (मैप० स्त्री—रो० चि०)।

कोटोनिआस्टर नुम्मुलरिया—संज्ञा पुं० [ले०] (cotoneaster nummularia)। दे० 'कोटो'।

कोट्ट—[सि०] (१) गुठली। (२) कुट। कुष्ठ।

कोट्टक—[मल०] मुन्डी। गोरखमुन्डी।

कोट्ट-कप्पाल—[मल०] कुड़ा। कुटज।

कोट्ट-कप्पाल-वित्त—[मल०] इन्द्रयव। कुटजबीज।

कोट्ट-कुरु—[मल०] वादाम।

कोट्टण्णा—[मल०] एरण्डतैल। अन्डी का तेल।

कोट्टवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नग्न स्त्री। कोटरी। नंगी औरत।

कोट्टा—[मल०] लघुश्लेष्मान्तक। छोटा लिसोड़ा।

कोट्टार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कूप। कूवा। (अं०) वेल (well)। (२) बावली। पुष्करिणी।

कोट्टे—[ता०] गुठली।

कोट्टे-पाकु—[ता०] } पूगफल। सोपारी।

कोट्टे-पाक्कु—[ता०] }

कोट्टे-प्पन्नै—[ता०] वजर-बट्टू।

कोट्टो मुण्डिर—[ता०] काजू। काजूतक।

कोट्टो नीयर—[फ्रांस] कपास। कार्पास।

कोट्टयाली—संज्ञा स्त्री० [गढ़वाल] ब्राह्मी। हाईड्रो कोटाइल-

एसियाटिका (Hydrocotyl asiatica)।

कोट्टक—[सिंध] गन्धो बूटी।

कोट्स-जिलेट्टि-पुल्लु—[मल०] चीनीघास। दाबोदूबी। दादमारी।

कोठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षुद्र रोगान्तर्गत चर्मरोग।

फोड़े अथवा शीतपित्त के समान मण्डल होना। पित्तकफज और दिन में होनेवाली पित्ती। (वा०; मा० नि०)।

पर्याय—(सं०) मण्डलक (अ०), दुश्चर्मा, त्वग्दोष, चर्मदूषिका; (Ringworm)। **लक्षण-निदान**—वमन-कारक औषध सेवन करनेपर भली-भाँति वमन न होने से, बड़े हुए पित्त वा कफ का अथवा वमन का वेग रोकने से, शरीर में लाल-लाल बहुत से चकत्ते पड़ जाते हैं। उनमें खुजली होती है। इस प्रकार के रोग को 'कोठ' कहते हैं। कोठ निरनुबन्ध होते हैं अर्थात् क्षणमात्र में उनकी उत्पत्ति तथा विनाश होता है। 'क्षणिकोत्पाद विनाशः कोठ इत्यभिधीयते तज्ज्ञैः'।

चिकित्सा—इस रोग में सर्वप्रथम स्नेहन तथा स्वेदन-कर्म कराकर विरेचनादि द्वारा शोधन करे। पुनः निम्बपत्र और आमला एकत्र पीसकर घृतमिश्रितकर नित्य सेवन करने से कोठ, उदरद, शीतपित्त, खुजली, कृमि तथा विस्फोटक का शीघ्र नाश होता है। (भा०)।

संज्ञा पुं० [गु०] कैथ।

कोठक—संज्ञा पुं० [म०] ओखराड, भिस्सटा।

[गु०] कैथ। कपित्थ। (डाइमॉक भ० १, पृ० २४)।

कोठगन्धल—[हिं०] रंगन। दे० 'कोटगन्धल'। (डाइमॉक। भ० २, पृ० २१४)।

कोठनाशन—

कोठर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ढेरा। अङ्गोल वृक्ष। (रा० नि० व० ६)।

कोठर-पुष्पो—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विधारा। वृद्धदारक। (रा०)।

कोठी—[गु०] } कैथ। कपित्थ।

कोठु—[गु०] }

कोठा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ] हृदय, वस्ति तथा उदरविभाग।

कोडगंगुर—[ने०] बलराज। (Hibiscus furcatus)।

कोडक पाल—[का०; ता०] कुड़ा। कुटजवृक्ष। (डाइमॉक)।

कोडक विरै—[ता०] इन्द्रयव। कुटजबीज।

कोडरसी—[म०] अनार। दाड़िम।

कोडसिगेय-मरणु—[का०] कुड़ा। कुटज वृक्ष।

कोड-सिगेय बीज—[का०] इन्द्रयव। कुटजबीज।

कोड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

कोडाइनम्-हाइड्रोक्लोराइड—संज्ञा पुं० [अं०] (Codeinum Hydrochloride) अहिफेनसत्वका एक यौगिक।

गुण—मधुमेह, क्षयकास में उपयोगी है। मात्रा ३ से २ ग्रेन तक।

कोडाइना—[ले० Codeina] पर्याय—(अं०) कोडीन, कोडी-आइना। कोडिया का अर्थ पोस्ता की छाल है। यह अहिफेन में प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का सत्व है।

इसकी कलमें पहलदार होती हैं। स्वाद अत्यन्त कटु होता है। यह क्षारीय जल तथा लाइकर एमोनिया में द्रवीभूत हो जाता है। सुरासारमिश्रित जल में भली भाँति घुल जाता है। यदि कोडाइना को फॉस्फोरिक-एसिड में मिश्रित कर लिया जाय तो उसको 'कोडीन-फॉस्फेट' वा 'कोडाइनी फॉस्फास' कहते हैं। यह निर्गन्ध कलमी चूर्ण है। स्वाद किञ्चित्तिक्त होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अत्यल्प अवसन्नताजनक (विसंज्ञताकारक) है। मस्तिष्कपर माँफिया की अपेक्षा इसका प्रभाव अत्यल्प होता है। इससे मस्तिष्क में उत्तेजना उत्पन्न होती है तथा उत्कलेश एवं वमन नहीं होता और कोष्ठवद्धता भी नहीं होती; किन्तु कतिपय रोगियों में इससे कोष्ठवद्ध हो जाता है और शरीर के आन्तरिक वाततन्तुओं में अवसन्नता उत्पन्न होती है। प्रायः देखा गया है कि इसके सेवन कराने के पश्चात् किसी क्षोभक द्रव्य, यथा-शंखविष (संखिया) इत्यादि के देने से न वमन होता है और न दस्त आते हैं। इसको सावधानतापूर्वक क्रमशः बढ़ाकर देने से मधुमेह में शर्करा का उत्सर्ग कम हो जाता है। उरःक्षत की ठसकादार खाँसी और शरीर की आन्तरिक वाततन्तुओं की वेदना में इससे लाभ होता है। इसके शर्बत से उरःक्षत का शुष्क कास शांत होता है।

शर्बतकोडाइना निर्माण-विधि—सादा शर्बत १९.५ औंस, कोडीन-फॉस्फेट ४० ग्रेन, परिस्तुत-जल ५ औंस 'प्रथम जल' में घोलकर शर्बत मिश्रित करें। गर्भाण्ड की वेदना में भी इससे लाभ होता है। किन्तु मधुमेह में शर्करा की मात्रा अल्प करने में इसका विशेष उपयोग होता है। उक्त कार्यसाधनार्थ इसका उपयोग गुटिकारूप में होता है। कोडीन की अपेक्षा 'फॉस्फेट ऑफ कोडीन' जल में सरलतापूर्वक घुलता है। अतः इसका मिक्चर निर्माणकर भी दिया जाता है। इससे सुखपूर्वक निद्रा आती है। इससे माँफिया की भाँति शरीर में आलस्य नहीं होता। मात्रा—उभयकी ५ से २ ग्रेन तक। त्वगन्तर अन्तःक्षेपार्थ—कोडीन ५ ग्रेन, और फॉस्फेट ऑफ कोडीन इसका ५ से १ ग्रेन तक परिस्तुत जल में द्रवीभूत कर दें। और शर्बत कोडीन—५ से २ ड्राम तक। दे० 'कोनि(ना)यम-मैक्युलेटम् (Conium maculatum)।

कोडाइ(डी) नी फॉस्फास—संज्ञा स्त्री० [ले० Codeini phosphos] फॉस्फोरस और कोडीन का एक यौगिक है। दे० 'कोडाइना'।

कोडाइना, कोडीआईना—संज्ञा पुं० [ले० Codeina] कोडीन। वि० दे० 'पोस्ता'।

कोडातुदाली—[वं०]

चो० २९५,

४०७।५३३

कोडि—[ता०] वल्लरी। लता। वेल। (Creeper)।

कोडीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Codein] एक डॉक्टर दवा।

कोडीन—[अं०] दे० 'कोडाइना'।

कोडीन-फॉस्फेट—[अं०] दे० 'कोडाइनी फॉस्फास'।

कोडीना—दे० 'कोडाइना'।

कोडिकक्कणम्—[ता०] विष्णुक्रान्ता।

कोडिकक्कणम्—विरै—[ता०] कालादाना। कृष्णबीज।

विष्णुक्रान्ता के बीज।

कोडिक-पलै—[मल०]

चो० ४८५.

कोडितनै—[ता०] नारकीय ऊद। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ३१६)।

कोडितानी—[मल०, तु०:] नारकीय-ऊद। (चो० पृ० ४६२)।

कोडिपलै—[मल०]

(डाइमॉक भ० २, पृ० ४४४)।

कोडिपलाशम्—[ता०] वेल पलाश। लतापलाश। परा-सिन।

कोडि मि (मु) ण्डरिप्पझम्—[ता०] अंगूर की लता।

कोडि मुक्कण—[ता०] लतापलाश। बेलपलाश। परासिन।

कोडिमुलि—[ता०] रक्तचित्रक। लाल चीता।

(चो० पृ० ३६४)।

कोडिश-वित्तुलु—[ते०] इन्द्रियव। कुटजबीज।

कोडीआ, कोडीईन, कोडीन—संज्ञा पुं० [अं० Codeine] दे० 'कोडाइना'। यह अफीम में पाया जानेवाला उसका मौलिक या प्राथमिक क्षारोद है। वि० दे० 'पोस्ता'।

कोडीन पैण्टिज—संज्ञा []

कोडीन-फॉस्फेट—संज्ञा पुं० [अं० Codeine phosphate] 'कोडाइना'।

कोडीनम् ऑलियम्—[ले० Codeinum oleum] कोडीन का एक यौगिक। दे० पोस्तान्तर्गत 'कोडीन'।

कोडीन-हाइड्रेट—संज्ञा पुं० [अं० Codeine hydrate] कोडाइना का जलविलेय योग।

कोडीना—संज्ञा पुं० [ले० Codeina] दे० 'कोडाइना'।

कोडीनी आयोडास—[ले० Codeine iodas] कोडीन और आयोडीन का एक योग।

कोडू—नि० आ० २/२१२

कोडेता—[हि०] शंखपुष्पी।

कोडेमाइन—

(पृ० ८८)

कोडोगम्—[मल०] ब्राह्मी।

कोडोनॉप्सिस ओवेटा—संज्ञा पुं० [ले० Codonopsis Ovata]

कोडोपाइरिन—संज्ञा पुं० [अं० Codopyrin] एक प्रकार

की टिकिया जिसमें एस्प्रिन, फेनासेटिन और कोडीन-फॉस्फेट होता है।

कोडयोलोबान--[गु०] कोडिया लोबान। उद। (Styrax Benzoin)। दे० 'कोडिया-लोबान'।

कोडकोवाच--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकड। ध० नि०।

कोढ़--संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ]। कुष्ठरोग। दे 'कुष्ठ'।

कोडिया--संज्ञा पुं० [हि० कोढ़] तमाकूपत्र का एक रोग।

कोडिया घास--संज्ञा स्त्री० [हि० कोडिया + घास] अकल कोहड़ी (Tridax procumbens)।

कोण--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अस्त्र इत्यादि का अग्र भाग। (अम०)। (२) विदिशा। दिशाओं का कोना। (ध० नि०)।

कोण-कण्टक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कोण कीकस--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अ० शा०

कोण कुण--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जूँ। केशकीट। उक्कुण। (हे० च०)।

कोणि--वि० [सं० त्रि०] कुनख। (अ० टी०)।

कोणित-पाशक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
अ० शा०

कोण्ड जौलगु--[ते०] सामू का पेड़। वन खजूर।

कोण्ड आमदम्--[ते०] दन्ती। जंगली जमालगोटा।

कोण्डइ--संज्ञा स्त्री० [देश०] (चो० पृ० ४६०)।

कोण्डइक-काय--[ता०] अमलतास। आरखवध वृक्ष का फल।

कोण्ड-कलवा--[ते०, म०] भुइचम्पा। (डाइमॉक)।

कोण्डक-शिन्दा--[ते०] काञ्चन। कंजा। (Toddalia Aculata)

कोण्डक-हिण्डा--[म०] (चो० पृ० ४०७)।

कोण्ड गुह वोत्तगे--[ते०] जंगली उशवा।

कोण्ड-गोङ्गुर--
(चो० पृ० ४०७)।

कोण्ड-जौगु--[ते०] पीली कपास। इसके गोंद को कतीरा कहते हैं।

कोण्ड-तंगेडु--[वर०] जामुन। जम्बु। जम्बा (म०)।

कोण्ड-तंटेपन चेट्टु--[मल०] (चो० पृ० ४७३)।

कोण्ड-तामर--[ते०] जंगली उशवा।

कोण्ड-पाल--[मल०] ४५९

कोण्ड-पुच्छ--[ते०] जंगली इन्द्रायण।

कोण्ड-वधि--[मल०] (चो० पृ० ४५९)।

कोण्ड-वेद--[ते०] बकाइन। (Milia Azadirachta)
(डाइमॉक भ० १, पृ० ३३०)।

कोण्डु-गोगेपिसुन--[ते०] पीली-कपास। गलगल। इसके गोंद को कतीरा कहते हैं। (Cochlospermum-Gossypium)।

कोण्डूस-क्रिस्पस--

कोतमोर--[राजपुताना] धनियाँ। धान्यक।

को (कू)तर--[अ०] वच। वच।

कोतरी--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कोतह बुरमा--संज्ञा पुं० एक प्रकार की लता है। इसके पत्र तरौई पत्रवत् होते हैं; किन्तु इनका आकार छोटा होता है। इसकी पत्तियाँ तथा शाखाएँ कठोर होती हैं। इसमें कचरोतुल्य फल लगते हैं, जो कचरी की अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं। इसमें बीज भरे होते हैं। श्वेत तथा कृष्ण भेद से यह दो प्रकार का होता है। श्वेत का स्वाद अनुरस तथा कृष्ण का कटु होता है। उभय प्रकार में खीरातुल्य सुगन्ध होती है। इसकी जड़ श्वेत तथा स्थूल होती है। इसमें भी उक्त प्रकार की गन्ध होती है।

गुण-कर्म तथा उपयोग--यह उष्ण है। इसके उपयोग से बस्तिगत अश्मरी का नाश होता है। यह वमन में उपयोगी है। इसको पीसकर लगाने से दद्रु, कण्डू और विद्रधिका नाश होता है।

कोतस--[यू०] (१) मटर भेद। (२) अंगूर का शिगूफा।

कोतून--["] } अंगूर का शिगूफा।

कोतूस--["] }

कोता कम्बा--संज्ञा पुं० [फिरंगी] } फरफ़ीरान।

कोता-कम्भा--संज्ञा पुं० ["] }

कोतिल्ल--[वं०] ऑलिवोर (Olivor)।

कोतिया--[?] पनीरमाया।

कोती--[सुर०] } गांखरू। गोक्षुर।

कोतीन--[सुर०] }

कोतीनूनस--[यू०] } (१) जैतुन हवश। (२) अनार।

कोतीनूस--[यू०] } दाड़िम।

कोतीमिरि--[ते०] धनियाँ। धान्यक।

कोतीरा--[रूमी] (१) खनूब। (२) शौक: मुन्तिन:। तवाक।
अवरून।

कोतुतुवेली--[मल०] चीता। चित्रक।

कोतुम्बरी--[कों, कना०] धनियाँ। धान्यक।

कोतूरा--[रूमी] खनूब।

कोतूलीदून--[यू०] (१) हैयुलआलम्। (२) अब्रून भेद।

(मख० अ०, मो० आ०)। दे० "कूतूलीदून"।

कोतंबरी--[कों] } धनियाँ। धान्यक।

कोतंपालरि--[मल०] } "

कोतंबरि--[तुर०] } "

कोतमरि बीजा--[कना०] } "

कोतमल्लि--[ता०] } "

कोतमीरि--[हि०] } "

कोतूरि--[कना०] } "

कोत्तिमिरि--[ते०] } "

कोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सड़ने की क्रिया। सड़ना-गलना। सड़ाई। पर्याय—(अ०) अफन, तअफून, नतानत; (अं०) प्यूट्रिफैक्शन (Putrification), प्यूट्रिसेन्स (Putriscence)। (२) अंग का मृत हो जाना, मरण, नाश। (अ०) गान्गराना (-या), उत्वा। (अं०) गैंग्रीन (Gangrene)। वक्तव्य—यूनानी मत से यह 'शफा-कलूस' का पूर्ववर्ती लक्षण (मुकद्दमा) है। इसमें कुछ स्पर्शज्ञान शेष रहता है। (३) अछम की गली हुई धातु। (अ०) वसख, ताक्कुल। (अं०) स्लफ (Slough), स्लफिंग (Sloughing)।

कोथ उत्पत्ति—आधुनिक विज्ञान के अनुसार कोथ उत्पन्न होने के मुख्य दो कारण हैं—(१) शरीरगत और बाह्य जीवाणु। (२) शरीरधातुगत स्वयं पाचक द्रव्य। आटोलाईटिक फर्मेंटस (Autolytic Ferments)। शरीरगत जीवाणुओं का मुख्य स्थान अन्न है। इसमें मल की उपस्थिति के कारण अनन्त जीवाणु भरे रहते हैं। मृत्यु के पश्चात् मल से अन्न की दीवार में, वहाँ से उदरग्रहा में और पुनः समस्त शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। शरीरबाह्य जीवाणु वातावरण में भी व्याप्त रहते हैं जो त्वचा में से शरीर में प्रवेश करते हैं। उक्त जीवाणु वातपी (ऐक्रोबी Acrobe) तथा वातमी (एनाक्रोबी Anacrobe) दो प्रकार के होते हैं और पाचक द्रव्यों को उत्पन्न कर शरीर का विद्रावण करते हैं।

शरीरगत जो पाचक-द्रव्य होते हैं, वे जीवाणुओं की सहायता न कर स्वयं कार्य करते हैं। अर्थात् यदि शरीरगत तथा शरीरबाह्य जीवाणुओं का सम्बन्ध अल्प कर दिया जाय तब भी शरीर में विद्रावण हो सकता है। इससे शरीर मृदु हो जाता है। यही 'कोथ' है।

कोथ में कतिपय प्रकार की वायु (Gases) उत्पन्न होती हैं। जब उभय कारण उपस्थित रहते हैं, तब कोथ शीघ्र उत्पन्न होता है। प्रथम कारण उपस्थित न होने पर देर में होता है तथा उतनी दुर्गन्ध नहीं उत्पन्न होती। खुली वायु में, अनावृत शरीर अधिक तापक्रम पर शीघ्र कुथित होता है। वायुरहित स्थान में आवृत शरीर अल्पतापक्रम पर विलम्ब से कुथित होता है।

शरीरगत समस्त धातुओं में कोथ उत्पन्न होने से कुष्ठादि विकार उत्पन्न होते हैं। मांस आदि भक्षण करनेवाले प्राणियों में फलाहार करनेवाले व्यक्तियों की अपेक्षा कोथोत्पादक जीवाणुओं की उत्पत्ति अल्प होती है। अधिक दुग्ध सेवन करनेवाले प्राणियों में जब उसकी पाचनक्रिया शुद्ध नहीं होती तो कोथ की अधिक शीघ्र उत्पत्ति होती है। दुग्ध में विशुद्धमधु मिश्रितकर सेवन करने से कोथ की उत्पत्ति में सहायता नहीं प्राप्त होती। मधु कोथप्रतिबन्धक है। आधुनिक विज्ञान में पेनिसिलीन

सर्वोत्कृष्ट कोथघ्न है। गन्धक, फार्मेलीन (Formalin) इत्यादि अन्य ओषधियों द्वारा भी कोथभवन का प्रतिबन्ध किया जाता है। आयुर्वेदीय रसशास्त्र में गन्धक प्राचीन काल से ही कोथघ्नरूप से व्यवहृत होता चला आ रहा है। पारद-गन्धक उभय प्रत्येक योग में मिश्रित रहते हैं। शरीरगत कीटाणुओं के नाश के निमित्त ही इनका मिश्रण किया जाता है।

गन्धक के असंख्य योगिक पाश्चात्य चिकित्सक निर्माण-कर अपने व्यवसाय की वृद्धि किए हैं। आयुर्वेदग्रन्थों में पारद-गन्धक की जो बन्दना की गई है उसका मुख्य कारण यही है।

कोथजनक व्रण—संज्ञा पुं० [सं०] मांस को दूषित करनेवाला व्रण, गलाने-सड़ानेवाला व्रण, खा जानेवाला ज्रूम। (अ०) तक्रह अक्काल, कर्हा आकिलः (अक्कालः)। (फ्रा०) गोश्तखोरः। (अं०) फैजीडीनिक अल्सर (Phagedenic ulcer), रुडेंट अल्सर (Rudent ulcer), कोरोडिंग अल्सर (Corroding ulcer)।

कोथप्रशमन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोथ को रोकनेवाली ओषधियाँ। कोथप्रतिबन्धक ओषधियाँ। ये द्रव्य सूक्ष्म-जंतुओं की वृद्धि का नाश करते हैं और इन जंतुओं से होनेवाली सड़ने की क्रिया (कोथ) को रोकते हैं। ये रोगजन्तु और दुर्गन्धनाशन वर्ग से भिन्न हैं। जैसे—लवङ्ग का तेल, सुहागा, पुदीना का सत्व, पारा, सर्व सुगन्धि तैल (डा० वा० दे०)।

कोथमीर—संज्ञा पुं० [द०, गु०] हरा धनिया।

कोथमील—संज्ञा पुं० [ते०] हरा धनिया।

कोथरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'कोतरी'।

कोथा वप्प—[कों०] हरा धनिया।

कोथिम्बरी, कोथिम्ब्या—[म०] हरा धनिया।

कोथुक—

कोथुम्बरी—[कना०] हरा धनिया।

कोदई—संज्ञा स्त्री० [सं० कोदव] कोदो।

कोदकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अस्वाकार मृग भेद।

कोदण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] भौंह, भ्रू। (मे०)।

कोदण्डास्थि—संज्ञा [सं० पुं०] (१) बहिप्रकोष्ठास्थि (Radius)। (२) भ्रूवस्थि। भौंकी हड्डी।

कोदमान—[?] नागरमोथा। सुअद।

कोदमानूस—[यू०] फॉफियून।

कोदमुश्क—[]

(डी० भ० २, पृ० ३६१)।

कोदया—[यू०] बिही। प्रसिद्ध फल।

कोदरा, कोदरो—संज्ञा पुं० [यू०] कोदो।

कोदल—[ता०] मुण्डी।

कोदव—संज्ञा पुं० [सं० कोदव] कोदो।

कोदव पोरश--[]

(डी० भ० १, पृ० ३३८)।

कोदवला--संज्ञा स्त्री० [हि० कोदो] कोदव के पेड़ के आकार की एक प्रकार की घास जिसके नरम पत्ते चौपाये शौक से खाते हैं।

कोदसीगा--[]

(डी० भ० २, पृ० ३९१)।

कोदसीगीमा--[कना०] नचुटा। ओदुवन। ऊदच (त०)।
(Cleistan thuscollinus)।

(डी० भ० ३, पृ० २६९)।

कोदा--[बं०] } कोदो। कोद्रव। कोदई।

कोदाआधान--['] }

कोदाब--[फा०] अंगूर का स्वरस।

कोदपिलै--[ता०] नकछिकनी। छिक्किका। (Hoya viridiflora)।

कोदिरम्--[का०] कोदो। कोद्रव धान्य।

कोदुगहा--[सि०] नागफणी। चप्पल सेंड।

कोदुमुक्कण वीजा--[]

(डाइमॉक भ० २, पृ० ३९२)।

कोदूवन--[यू०] वरल।

कोदूनिया--[यू०] विही।

कोदूरुइसियूस--[यू०] }

कोदूस--[यू०] } फफियून।

कोदूसन--[यू०] कोरदूसन। वरल। लु० क०।

कोदों--संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] एक प्रकारका कदन्न विशेष।

कोदो। पर्याय--(सं०) कोद्रव, कोदाल, कोदर, कोरदू-पक, कोरदुष्क, कोद्रव, कुदाल, उदाल (क), कोरदूष, वनकोद्रव, कुद्रव, कोदार, मदनाग्रक; (हि०) कोदरा, कोदई; (बं०) कोदोधान, कोद्रु, कोदरा; (म०) हरीक; (गु०) कोदरो; (क०) हारक; (ते०) आलुवालु; (ता०) केवरु; (अ०) कोदु; (अं०) पंकचर्ड पासपेलम् (Punctured Paspalum); (ले०) पासपेलम् स्क्रो-विक्युलेटम् (Paspalum-Scrobiculatum)।

धान्य कुल--

परिचय--देश भेद से अनेक प्रकार का होता है।

उद्भवस्थान--भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में इसकी कृषि की जाती है। सर्वप्रसिद्ध धान्य है।

गुण--कोदो--वातकारक, ग्राही, शीतल और पित्त तथा कफनाशक है। वन कोदो--उष्ण, ग्राही और अत्यन्त वातकारक है। (भा० पू० धान्य वर्ग)। अतिग्राही तथा वातकारक है। (राज०)। रुक्ष, ग्राही तथा रक्त-पित्तविशोधक, अति कफकारक नहीं, रुचिकारक तथा स्वादु है। (अत्रि० ५ अ०)। सन्निवन्ध-शैथिल्यकारक होने से विकाशी, ग्राही, स्पर्श-शीतल

तथा विषनाशक है। (वा० धान्यव०)। मधुर, तिक्त, व्रणरोगी को पथ्य, रुक्ष, वातकारक, गुष्पाकी, मोहकारक तथा वातपित्तहर है। (रा० नि० व० १६) ग्लानि, मूर्च्छाकारक तथा हितकर नहीं है ऐसी सम्मति है। (अत्रि० १२ अ०)। देशमें विख्यात है कि जंगली कोदों जिन क्षेत्रोंमें धामिनसर्प लेटते हैं, उनमें उत्पन्न कोदो अत्यन्त मदकारक होता है।

इसको भात और दही मिश्रितकर सेवन करने से पुरातन अतिसार शांत होता है।--भात--दे० 'कोद्रवभक्त'।

कोदो धान--संज्ञा पुं० [बं०] कोदो। कोद्रव। दे० 'कोदो'।

कोदालक--[सं० पुं०] } कोदो। दे० 'कोदो', 'कोद्रव'।

कोद्रव--[] }

कोद्रव-मण्ड--संज्ञा पुं० [अं० क्ली०] कोदोधान्य-कृतमण्ड।

कोदो का माँड़। गुण--यह मूर्च्छा तथा ग्लानिकारक है। (वै० निघ०)।

कोद्रविक--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोंचर सोन। सौवर्चल-लवण। (वै० निघ०)।

कोद्रवी शीतला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की शीतला जिसके दाने कोदों के दाने के बराबर होते हैं। पक्का।

ओ० सं० ७८२

कोद्रा--[पं०, बम्ब०] कोदो।

(चो०, पृ० ५१३)।

कोद्रु (द्रु)--[म०] कोदो धान्य। कोदई।

कोद्रु-भक्त--संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कोदो का भात।

कोद्रवान्न। (बं०) कदोर-भात। (म०) हरकाच भात।

गुण--प्रमेहनाशक, मूत्रदोष, तृषा, छर्दि, कफवात, आम-दोष तथा दाहनाशक है। (वै० निघ०)।

कोधव--संज्ञा पुं० [हि०, सिन्ध] बेलबि (Cadaba Indica)।

कोधा--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घोड़-फोड़। (लु० क०)।

कोन--[फा०] कतीरा। (हि०) गोकर्ण। रतालु।

(Dioscorea-alata)। [म०, फा०]।

कोनट्च--[नैपा०] केवाँच। कपिकच्छु।

कोनफल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रतालु। रक्तालु। (वै० निघ०)।

कोनम-- (चो पृ० ५४९)।

कोनया--[यू०] राख का पानी। (लु० क०)।

कोनया--[कोल०] अर्जुन। (बं०) बरगाछ। (डाइमॉक भ० ३, पृ० २८७)।

कोनयास--[यू०] अंगोजा भेद।

कोनशुक-काय--[ता०] अमलतास। आरग्वध।

कोनस--[अ०]--संगदान। कानसः। (लु० क०)।

कोनहाडीन--एक सत्व जो कोनायम् में पाया जाता है।

कोनाइ (ई) न--संज्ञा स्त्री० [अं० Coniine] शूकरान या कोनायम् में पाया जानेवाला एक सत्व ।

कोनाइ फोलियम्--संज्ञा स्त्री० [ले० Conii folium] शूकरान पत्र । (पा० द्र० गु० वि० भ०, १ पृ० ५७४) ।

कोनाइनी-आर्सेनास--संज्ञा स्त्री० [ले० Quinine arsenas] कुनैन मिला हुआ संख्या । क्विनीन आर्सेनेट ।

कोनाइनी-सैलोसिलास--[ले० Quinine salicylas] वेत-सोपक्षार मिला हुआ कुनैन ।

कोनाइनी-हाइड्रो-ब्रोमाइडम्--संज्ञा स्त्री० [ले० Conini-Hydro-bromidum] हाइड्रोब्रोमाइड और कोनाइन का योगिक । हेमलाक (Hemlock) ।

कोनाइम फोलिया--संज्ञा पुं० [ले० Conium folia] शूकरान पत्र । (अं०) हेमलाक लोह्वज (Hemlock leaves) ।

कोनाइम-ऑइण्टमेण्ट--संज्ञा पुं० [अं० Conium ointment] शूकरान का मरहम ।

कोनाइम-फ्रक्टस--संज्ञा पुं० [ले० Conium-fructus] ।

कोनाइम-फ्रूट--संज्ञा पुं० [अं० Conium-fruit] } शूकरान फल ।

कोनाइम-मैक्युलेटम्--संज्ञा पुं० [ले० Conium maculatum] शूकरान । हेमलाक

कोनाइम-लोह्वज--संज्ञा पुं० [अं० Conium-leaves] }

कोनाइम-फोलिया--संज्ञा पुं० [ले० Coniumfolia] } शूकरान पत्र ।

कोनाक्र--[तु०] बाजरा ।

कोनामा--[यू०, सुर०] दालचीनी ।

कोनायम्--संज्ञा पुं० [ले० Conium] कूनियून । शूकरान । (अं०) हेमलाक (Hemlock) ।

कोनायम् मैक्युलेटम्--दे० 'कोनायम् मैक्युलेटम्' ।

कोनायम्-मैक्युलेटम्--संज्ञा पुं० [ले० Conium-Maculatum] पर्याय--(यू०) कोनियून; (अं०) शूकरान; (फा०) दूदरस, तपत; (फ्रांस) शबकन; (अं०) हेमलाक (Hemlock); (यू०) । तपतीकून, तफूशीकून; (अं०) शूफुलजमल, हफूत, शूकुल-महीर ।

यह एक प्रकार का महाविष है । प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् सुकरात की मृत्यु इसके ही द्वारा हुई थी । इसी कारण इसका अरबी नाम शूकरान है ।

विषाक्तता--इसके विष के प्रभाव से अंग-प्रत्यंग की स्पर्शशक्ति लुप्तप्राय हो जाती है । अन्त में फुफ्फुस की क्रिया अवच्छेद होकर मृत्यु होती है ।

होमियोपैथिक चिकित्सा के अनुसार--क्रमशः ऊपर प्रसरणशील पक्षाघात, शिरोभ्रमण, कम्प, पादस्तम्भ, स्मरण-शक्ति की निर्बलता, क्लम, शुक का पतलापन, लसिकाग्रन्थिशोथ, गदोद्वेग (हृत्पिण्ड का धक्कना), आघात-

जन्य वेदना, स्त्री-पुरुष की वृद्धावस्था के रोग, मूत्र-सम्बन्धी रोग इत्यादि में इससे लाभ होता है ।

चरित्रगत लक्षण--(१) अकेला रहने पर भयभीत होना, किन्तु फिर भी किसी से मिलने-जुलने की इच्छा न होना; (२) शिर में चक्कर आना--सोने और इधर-उधर करवट बदलने से, यहाँ तक किंचित् शिर हिलाने और आँख फेरने से भी शिर में चक्कर आ जाता है, जिससे रोगी अपना मस्तक स्थिर रखता है; (३) कास--रात में सोने पर छाती और गले में कुटकुटाहट होकर खाँसी आना; (४) मूत्रोत्सर्गकाल में उग्र कष्ट, मूत्र एक बार होना और पुनः बन्द हो जाना, मूत्राशय-मुखशायी-ग्रन्थि का बढ़ जाना वा जरायु सम्बन्धी रोग होना; (५) मासिकधर्म बन्द होना, अति विलम्ब और अत्यल्प मात्रा में होना और थोड़े दिनों तक रहना; (६) ऋतुस्त्राव के १० दिन पश्चात् श्वेत-प्रदर का स्राव; (७) नेत्रों में किसी प्रकार का प्रदाह न होने पर भी प्रकाश सहन न कर सकना, नेत्रों से प्रायः पानी गिरा करना; (८) अण्ड-कोष तथा स्तन का प्रदाह, रोगस्थान का कठोर हो जाना; (९) हस्तमैथुन के दुष्परिणाम-स्वरूप ध्वज-भंग, किंचित् उत्तेजना प्राप्त होते ही शुकपात हो जाना; (१०) प्रेम को मन में गुप्त रखने के कारण उत्पन्न रोग; (११) दिन-रात स्वेदस्राव होना, सोते ही और नेत्र बंद करते ही पसीना आना इत्यादि शूकरान के लक्षण हैं । उक्त लक्षण यदि किसी रोगी में विद्यमान हो तो 'कोनियम्' से लाभ होता है ।

चरित्रगत अन्य लक्षण--चलने के समय पैर का ठीक स्थान पर न पड़ना, अन्य स्थान पर ठप से गिर पड़ना, शरीर में कम्प होना, पाद में शक्ति का अभाव होना, उक्त लक्षण शूकरान में होते हैं ।

उपयोग--उक्त लक्षण प्राप्त होने पर इसका उत्तम प्रभाव होता है । यदि कोई व्यक्ति भली-भाँति चलता-फिरता हो और अचानक उसकी स्वाभाविक शक्ति नष्ट हो जाए तो ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर कोनियम का उत्तम प्रभाव होता है ।

तालुमूल-प्रदाह (Tonsillitis)--तालुघण्टिका खूब बड़ी और कठोर हो गई हो, भीतर पूय हो जाने पर भी प्रवृद्ध घण्टिका यदि अच्छी तरह और शीघ्र न पके वा न फटे तो ऐसी अवस्था में 'कोनियम्' से लाभ होता है । यदि तालुमूल के शोथ के भीतर बीच-बीच में घावतुल्य छिद्र दीख पड़े तो इससे अधिक लाभ होता है ।

कंठरोग--कपोल और गले में शोथ हो और उसकी सूजन पाषाणवत् कठोर हो और उसमें सूचिवत् चुभन की-सी वेदना हो तो इससे लाभ होता है । यदि उक्त कष्ट आघात वा कुचल जाने से हो तो और भी शीघ्र लाभ होता है ।

पुरुषरोग—स्त्रियों के अधिक संभोग से अथवा ब्रह्मचर्य से मानसिक रोग हो, डिम्बकोष-प्रदाह हो, डिम्बकोष-वृद्धि, डिम्बकोष में कठोरता, वेदना हो; स्त्री-रोग—जरायुमुख (OS), जरायुग्रीवा (Cervix) कठोर हो जाना, वेदना, बाधकपीड़ा, अपूर्ण गर्भ इत्यादि रोग में भी इससे लाभ होता है। ऋतु ठीक समय पर न होकर देर से होना, परिमाण में अत्यधिक होना, २-१ दिन रहकर बंद हो जाना, स्तन-का सिकुड़ जाना, कठोर हो जाना, वेदना होना, जरायु में तन्तुमय अर्बुद (फाइब्राइड-ट्यूमर), जरायुग्रीवा (Cervix) कड़ी, डिम्बकोष में डंक मारने की-सी वेदना, कामप्रवृत्ति का लोप इत्यादि रोग में 'कोनियम्' से लाभ होता है। प्रदर—ऋतु के ठीक ८-१० दिन पश्चात् स्रावप्रारम्भ होना, अल्पस्राव, कभी रक्तमिश्रित और कभी दुग्धवत् श्वेत, गाढ़ा तथा बीच-बीच में अवरोध हो जाना और पुनः प्रारम्भ होने लगना; स्राव जहाँ लगे वहाँ की त्वचा गल जाना, ऋतुस्राव आरम्भ होने के पूर्व शरीर में एक प्रकार की वेदना होना इत्यादि में इससे लाभ होता है।

कास—(Hacking-Cough) जिसमें खाँसते-खाँसते स्वासावरोध हो जाता है, रात्रि में शयन करते ही खाँसी बढ़ जाती है, स्वरयंत्र में उत्तेजना (Irritation of Larynx), ऐसा प्रतीत होना जैसे स्वरयंत्र से खाँसी आ रही हो, गला शुष्क, कफ बाहर निकालने में असमर्थता होकर उसे निगल जाना, उक्त लक्षणों में इससे लाभ होता है।

मात्रा—३० शक्ति से २०० शक्ति। फार्मूला—२।
कोनाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्तिकाख्य जलपक्षी है। (वै० निघ०)

कोनालि—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कुण्ठविहित भक्ष्यद्रव्य। (सु० चि० १० अ०)।

कोनिआ दुम्बर—संज्ञा पुं०

(चो०, पृ० ४१०)।

कोनिफेरी—संज्ञा स्त्री० [अं०]

कोनियम् मैक्युलेटम्—संज्ञा पुं० [ले० Conium-Maculatum] हेमलॉक (Hemlock)। शूकरान। (डाइमॉक भ० २, पृ० ११०)। दे० 'कोनायम्'।

कोनियून—[यू०] (१) शूकरान। (२) धतूरा। (३) सहकूनिया। (४) खैरबवा। (५) समुद्रफेन। (लु० क०)।

क्रोनियाक—[अं०] मद्य। शराब। द्राक्षासव। नोट—फ्रांस में उक्त नाम का एक प्रदेश है। वहाँ अंपूर अधिक होता है। इसके द्वारा मद्य प्रस्तुत किया जाता है। (Congnae)

कोनीकीन (-सीन)—संज्ञा पुं० [अं० Conicine] शूकरान सत्व।

क्रोनीतर—[?] माजरियूनस्याह।

कोनीनी-हाइड्रो-ब्रोमास—संज्ञा स्त्री [ले०] दे० 'कुनैन'।

कोनील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वर्तिकाख्य जलपक्षी विशेष।

क्रोनूस—[यू०, सुर०] हब्बुल्सनोबर कबार। (लु० क०)।

कोनेमाकी-मायक्रोफाइला—(गरवरदेरा, हरको, सिलहट)।

कोनेसियाई-बार्क—[अं० Conessi bark] कुटजत्वक्।

कुड़ा की छाल

कोनेसीन—[अं० Conessine] कुर्ची या कुड़ा की छाल में पाया जानेवाला क्षाराभ सत्व। (डाइमॉक भ० २, पृ० ३६६)।

कोनोकार्पस लैटिफोलिअस—संज्ञा पुं० [ले० Conocarpus Latifolius] बौरा। (अं०) क्रेनट्री (Crane tree)।

कोन्द—[ता०] सफेद सिरिस।

कोन्द-वैप—[ते०] वकाइन। महानिम्ब।

कोन्हाइड्रीन—[अं०]

डी० भ० २, पृ० ११३)।

कोन्हान—[नव्ती] कनहान। लु० क०।

कोनियून—[यू०] (१) समुद्रफेन। (२) खैरबवा। (३) शूकरान। (४) मसहकूनिया।

क्रोनो-शबूशदानी—[रुमी:] जोंक। जलौका।।

कोन्नकाय—[मल०] अमलतास। आरग्वधफल।

कोन्नन—[मल०] आरग्वध वृक्ष। (डाइमॉक ५११)

कोन्नारि—[कना०] नागरमोथा।

कोन्नारि-गडे—[']

कोन्ने—[मल०] अमलतास। आरग्वध वृक्ष।

क्रोन्यून—

कोप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्रोध। गुस्सा। अम०।

कोपन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गठिवन। ग्रन्थिपर्णी। (बं०) गेंठेला।

वि० [सं० त्रि०] क्रुद्ध। (वै० निघ०)। (जटा०)।

कोपनक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्रन्थिपर्णी। गठिवन। चोरा। चौराख्य गन्ध-द्रव्य। (बं०) गेंठेला। (रा० नि० व० १२)।

कोपना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल कनेर। रक्त कर-वीर। (वै० निघ०)।

कोपर—संज्ञा पुं० [हिं० कोपल] डाल का पका हुआ आम। टपका। सीकर।

कोपरी—

कोपल—संज्ञा पुं० (१) सोपारी। गुवाक। (२) वृक्षों का शृंग (कली)।

कोपलता—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] कानफोड़ा। कर्णस्फोटा। (बं०) कानछिड़े। कानफोड़ा। (रा० नि० व० ३)।

कोपलगम—संज्ञा पुं० [अं० Copal gum] कोपल का गोंद। (डाइमॉक भ० १, पृ० ५१०)।

कोपाइ(ए)वा—संज्ञा पुं० [अं० Copaiva] दे० 'कोपेवा'।

कोपाइ (ए) वा पिल्स— संज्ञा पुं० [अं० Copaiva-pills]
कोपेवा-घटित गोली । दे० 'कोपेवा' ।

कोपाइ (ए) वा-मिक्षचर—संज्ञा पुं० [अं० Copaiva-mixture] कोपे वा मिश्रण । दे० 'कोपेवा' ।

कोपिलांस—दे० 'कोइली' ।

कोपिनः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } जलकपोत । (रा० नि०
(ध० नि०) ।

कोपी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } जलपारावत । कबूतर भेद ।
कोपीन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }

कोपेवा (वा), कोपयवा (वा)—संज्ञा पुं० [ले०, अं० Copaiba, Copaiva] एक प्रकार हलका पीला या भूरापन लिए हुए सुनहला पीला, गाढ़ा, चिपचिपा प्रवाही और साधारणतया पारदर्शक और कभी-कभी अपारदर्शक (अस्वच्छ) तैलोद्यास जो कई प्रकार के वृक्षों के तनों में गहरा चीरा देने या छेद करने से निकलता है । इसकी गंध विशिष्ट प्रकार की रुचिपूर्ण और स्वाद तिक्त एवं अरुचिकारक होता है । इसका उपयोग उस रोगनबलसाँ के बदले करते हैं जो फिलस्तीन और मिश्रदेश में होता है । उसे बालसम ऑफ कोपायवा और बलसाँकोबाई कहते हैं । प्राचीन योरोपीय वैद्य अपने ग्रन्थों में बालसम (बलसाँ) शब्द का अर्थ तैलोद्यास (रोगनदार राल—Oleoresin) या प्रवाहीउद्यास (रातीनज सय्याल) लिखते हैं, परन्तु उत्तरकालीन यूरोपीय चिकित्सक इस संज्ञा का व्यवहार उन सान्द्रीभूत या प्रवाही उद्यासमय (रालदार) सत्वों के लिए करते हैं जिनमें लोबान का सत्व या दालचीनी का सत्व या दोनों होते हैं । सुतरां उनके समीप लोबान, बालसम ऑफ पेरे, बालसम ऑफ टोल् और शोधित मोअःबलसानों में समाविष्ट हैं तथा कोपाइवा और कैनाडा बालसम यद्यपि बलसाँ ही कहलाते हैं, तथापि वे इस समुदाय के अन्तर्भूत नहीं हैं अर्थात् वास्तव में बालसम नहीं हैं । यह एक भाग मद्य में विलीन होकर लगभग स्वच्छ रहता है, किन्तु अधिक मद्य मिलाने से अस्वच्छ हो जाता है । इसमें तारपीन और गर्जन का तेल मिला दिया करते हैं । अस्तु इसको गरम करने पर तारपीन की मिलावट उसकी गंध के द्वारा जानी जा सकती है । इसको २७०° फारनहाइट के तापक्रम पर गरम करने से यदि इसमें गर्जन के तेल की मिलावट हो तो वह प्रगाढ़ीभूत हो (जम) जाता है । आधुनिक अरबी और मिश्री में इसको बलसमुल्कूबा और आधुनिक फारसी में कोपाहू कहते हैं । उत्पत्तिस्थान—इनके वृक्ष दक्षिण अमरीका के ब्राजील, पश्चिमी भारतीय द्वीप और औकियानूस सागर में उत्पन्न होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सूक्ष्म (उत्पत्) तेल ४८ से ८५ प्रतिशत और एक राल १५ से ५२ प्रतिशत

जोकि तेल में विलीन रहती है, यह वस्तुएँ होती हैं । इससे एक उत्पत् तेल निकाला जाता है जिसे 'ऑइल ऑफ कोपाइवा' या 'रोगन कोपाइवा' कहते हैं । यह रंगरहित या हलके पीले रंग का तेल होता है । गंध और स्वाद कोपाइवा के समान होता है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—त्वचा पर कोपायवाका उत्तेजक प्रभाव होता है । खाने में स्वाद उत्कलेशकारक होता है । इसके सेवनोपरांत अत्यंत खराब उद्गार आते हैं । थोड़ी मात्रा से आमाशय के स्थान पर उष्णता प्रतीत होती है । परन्तु अधिक मात्रा में अन्न और आमाशय पर इसका क्षोभक प्रभाव होता है । अतएव इससे वमन एवं विरेक् आने लग जाते हैं । इसके दीर्घकालिक उपयोग से पचनविकार हो जाता है तथा विरेक् आने लगते हैं । श्लेष्मलकला पर अन्यान्य सूक्ष्म तेलों की भाँति इसका प्रभाव होता है । अस्तु, इसका सूक्ष्म तेल और राल जिनसे कोपायवा संघटित है, सत्वर रक्त में अभिशोषित हो जाते हैं तथा शरीर की समस्त झिल्लियों के द्वारा इसका निर्हरण होता है और निर्हरणकाल में यह उनपर उत्तेजक प्रभाव डालता है तथा उनकी धमनियों को विस्फारित कर द्रव के स्राव का प्रमाण अधिक करता है । यदि वह कोथयुक्त न हों तो उनके कोथ का निवारण कर देता है । जननाङ्गों एवं मूत्रप्रणालीगत श्लेष्मलकलापर इसका उत्तेजक एवं कोथप्रतिबंधक प्रभाव पड़ता है । श्वासोच्छ्वास, मूत्र और कफ में इस औषधि की गंध व्यापमान हो जाती है । इसका निर्हरण स्वेदग्रन्थियों के द्वारा भी होता है । अतएव त्वचा पर इसका क्षोभक प्रभाव होता है जिससे कभी-कभी उसपर लाल ददोड़े पड़ जाते हैं । यह औषधि किसी भाँति स्तन्य के द्वारा भी उत्सर्गित होती है । अतएव दूध में भी इसकी उत्कलेशकारक गंध आ जाती है । वृक्कों पर इसका अत्यंत प्रबलोत्तेजक प्रभाव होता है । संभवतः और कोई ऐसी औषधि नहीं जिसमें राल या सूक्ष्म तेल विद्यमान हो तथा वह वृक्कों पर इतना उत्तेजक प्रभाव करती हो जितना कि यह औषधि करती है । अतएव यह प्रबल मूत्रल है तथा इसका यह प्रभाव अधिकतया इसमें स्थित राल के कारण होती है जो निर्हरणकाल में वृक्क की रचना पर स्थानिक उत्तेजक प्रभाव करती है । इसको अधिक मात्रा में देने से वृक्कों में क्षोभ होता है तथा रक्तसंचय हो जाता है । कुक्षि में दर्द होने लगता है । मूत्र अल्परशि में तथा रक्त एवं रक्तद्रव (जुलाल) मिश्र आने लगता है । कोपाइवा की राल तथा इसका सूक्ष्म तेल मूत्र में उत्सर्गित होते हैं । अतएव वह कोथप्रतिबंधक प्रभाव करता है । यह जनन एवं मूत्रावयव के द्रवों के कोथ का निवारण करता है तथा मूत्र पर भी

कोथ-प्रतिबंधक प्रभाव करता है। अतएव सूजाक में यह एक लाभकारक औषध है। यह वस्तिशोथ, वृक्कशोथ (सोजिश हीजकुलिया), योनिशोथ, स्त्री की योनि से श्वेतद्रव आने तथा जीर्णकास में परम गुणकारी है। पुरानो खाँसी में जब दुर्गंधित कफ अधिक राशि में उत्सर्गित होता है तब कभी-कभी इस औषधि से बड़ा लाभ होता है।

सूजाक में जब कि लक्षण तीव्र हों तब इस औषधि को नहीं देना चाहिये। अपितु शोथ एवं दाह के लक्षण दूर हो जायँ तब इसका उपयोग करना चाहिये। चिरकारी सूजाक में कभी-कभी तो इससे मृत्रगत दाह एवं पृथ-निर्हरण में अति शीघ्र कमी हो जाती है। किंतु इसका उपयोग कुछ काल तक चालू रखना चाहिये। कभी-कभी इससे बहुत स्पष्ट लाभ प्रतीत नहीं होता। प्रबल मृत्रजनन होने के कारण हृदय या यकृत के विकास से होनेवाले जलोदर में अत्यंत लाभकारी है। परन्तु वृक्कों में इससे क्षोभ होता है; अतएव वृक्कशोथ में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। अत्यन्त कुस्वादु होने के कारण तथा इसके उपयोग से पचनविकार हो जाता है, अतएव सूजाक के सिवाय अन्य रोगों में कोपाइवा का कम उपयोग करते हैं। मात्रा—३० से ६० बूँद और उत्पत् तेल ५ से २० बूँद।

अहितकर—अजीर्णकारक एवं वृक्कप्रदाहकारक है।

निवारण—धनियाँ, चन्दन, शीतलचोनी। प्रतिनिधि—गन्धाविरोजा, लोबान। मात्रा—कोपाइवा—३० से ६० बूँद और परिस्त्रुत तैल—५ से २० बूँद।

होमियोपैथी के अनुसार प्रतिनिधि—कैथर, केनाबिस, वूच, एपिस, इरिजिन इत्यादि। क्रियाशक्त—बेला-डोना, मक-सॉल। क्रम—१, ३, ६ शक्ति; फार्मूला—६-बी०।

कोपेवामिक्श्चर—ऑइल-कोपेवा—१० बूँद।

ऑइल-सेंटल—१० बूँद।

ऑइल-क्युबेब—१० बूँद।

गोंद बबूल—१५ ग्रेन।

एक्वा एनिसी—१ औंस।

यथाविधि खरल करें। गुण—यह पूयमेह में अत्यन्त शीघ्र लाभकारक है।

कोपोक—[मल०] सफेद सेमल। श्वेत शाल्मली।

कोप्पट—[वं०] (चो० पृ० ४६९)।

कोप्पुला-एन्थेमाइडिस—

क्रोफ़—[?] उल्लू पक्षी। उल्लूक।

[अ] (१) मृदु अंग की अस्थि। (२) गोवा की त्वचा।

कोफकल—[?] सुरमा।

कोफला—संज्ञा पुं० वृक्ष भेद।

क्रोफ़ा—[यू०] (१) सनोबर। (२) सनोबरगोंदभेद।

क्रोफ़ारनमीस—[यू०] } अरअर। हाऊवेर।

क्रोफ़ारीसासोस—['] }
क्रोफ़ुलुज्ज—[अ०] कान के ऊपर की ओर। कान का ऊपरी सिरा छिद्र के घेरा समेत।

क्रोफ़ूस—[यू०] खुन्सा। (लु० क०)।

क्रोफ़ः—

क्रोब—[अ०] जलकुक्कुरवत्स। आवी कुत्ते का वच्चा।

क्रोबडी—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जो ब्रह्मा और नेपाल में अधिकता से होता है।

क्रोबतोस—[यू०] } कमाफ्रीतूस।

क्रोबतूस—['] }

क्रोबर—संज्ञा पुं० महाद्रोणा भेद। इसका क्षुप ३-४ फुट ऊँचा होता है। यह कोष्ठबद्ध में उपयोगी है। चतुष्पदों की कोष्ठबद्धता में विशेष उपयुक्त है।

क्रोबरा वेनम्—संज्ञा पुं० [अ० Cobra venom] कृष्ण-सर्प-विष। दर्वीकरसर्प का विष।

क्रोबरक्त—[ले०] गन्दना।

क्रोबरि—[कना०] नारियल। खोपरा।

क्रोबरूस—[यू०] खुन्सा। (लु० क०)।

क्रोबल—[?] बाबूना भेद।

क्रोबल ककड़ी—संज्ञा स्त्री० निलूफर। नीलोत्पल।

क्रोबला—[सुर०] बाबूना।

क्रोबा—[?] जुपत।

क्रोबा अरगा—[सुर०] } अभ्रक। अबरख।

क्रोबा अरगाना—['] }

क्रोबानियून—[यू०] समुद्रफेन। समुद्रझाग।

क्रोबारिसयूस—[यू०] } हाऊवेर।

क्रोबारोसाईस—['] }

क्रोबाल्ट—संज्ञा पुं० [अ० Cobalt] } नत्रित।

क्रोबाल्टम्—संज्ञा पुं० [ले० Cobaltum] }

परिचय—एक प्रकार का खनिजद्रव्य है। होमियोपैथी के अनुसार-कटिश्चूल—स्त्री-संभोग वा स्वप्न-दोषों के पश्चात् कटिवेदना होने पर अथवा अन्य प्रकार की वेदना में और वह वेदना जो बैठने पर बढ़े और खड़ा होने पर, चलने वा सोने पर घटे तो कोबैल्टम् अधिक लाभप्रद होता है।

मात्रा—३ × से६ × शक्ति तक। फार्मूला-७

कोबिदार—दे० 'कोविदार'।

कोबिया—[?] राख का पानी। क्षारजल।

कोबी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोभी; म०] पर्याय—फूलकोबी, फूलगोभी; (ते०, कना) कोमु गड्डे; (ता०) कोविपु; (अ०) कैबज (Cabbage), कॉलिफ्लावर (Cauliflower); (ले०) ब्रेसिका ऑल्लिरेसिआ (Brassica-

Olerecea), ब्रेसिका सेटाइवा (B. Sativa), ब्रेसिका वोट्राइटिस (B. Botrytis), ब्रेसिका फ्लोराइडा (B. Florida) ।

राजिकादि-कुल--(Cruciferae) ।

परिचय--कोबी के कतिपय प्रकार हैं। यह जंगली पौधा है; किन्तु अब समस्त भारतवर्ष में इसकी कृषि की जाती है ।

रासायनिक संगठन--इसमें गन्धक का अंश अधिक होता है । अतः पाकवस्था में इसमें से गन्ध आती है ।

उपयोग--यह प्रायः पकाकर शाक की भाँति प्रयुक्त होती है । कंठप्रदाह में इसके पत्र किंचित् उष्णकर कंठ में बाँधने से लाभ होता है । श्वेत कोबी के उपयोग से विवाई (विदारिका) तथा घट्टा (Warts) में लाभ होता है ।

लाल कोबी (Brassica cumana; B. Rubbra)--इसका शर्वत निर्माणकर सेवन करने से जीर्णकास तथा श्वास का नाश होता है ।

कोबीज--[यु०] गोभी । कोबी । (Cabbage) ।

कोबीतस--[यु०] } कमाफ्रीतस ।

कोबीतस--['] }

कोबीर-सिरभाजी--[कों०] कंधी । बला ।

कोबुसी--[नैपाल] कायफल ।

कोबूतर--संज्ञा पुं० [] (चो० पृ० ५४६) ।

कोबूती--[?] जंगली सातर ।

कोबू सवातस--[यु०] } ऊसज ।

कोबू-साफलस--['] }

कोबैल्टम्--संज्ञा पुं० [ले० Cobaltum] दे० 'कोवाल्ड' ।

कोब्ब--[कना०] वसा । चरबी ।

कोब्ब-रैतटङ्काय--[ता०] } खोपरा । नारियल

कोब्बोर-टङ्काय--[ते०] } (गिरी) का गोला ।

कोब्रा--संज्ञा पुं० [अं० Cobra] दर्वीकर सर्प ।

कोम--[अ०] मल । बिष्टा । पाखाना ।

कोम--[फा०] अञ्जुदान । हींग ।

कोमकुलूस--[यु०] तृतिया । तुल्य ।

कोमटोमोथा--[वं०] केवटीमोथा ।

कोमट्टिविरं--[ता०] जंगली ककड़ी के बीज ।

कोमता--संज्ञा पुं० [देश०] कुम्पता वृक्ष ।

कोमती--[कों०] कबीला । कमीला ।

कोमन--[यु०] मूँगा । प्रवाल । बुसुद ।

कोमनी--[?] सातर बुस्तानी । सातर बासी ।

कोमस्--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पिपासास्थान । (अ० टी०) ।

कोमर--[जन्द] नाशपाती । अमृतफल ।

कोमरदु--[सि०] तरबूज । कलिंग ।

कोमरुन--[यु०] (१) कुचला । क्रातिलुक्कल । (२) भेडिया । वृक्ष । (३) चीता । चित्तल व्याघ्र ।

कोमल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जल । पानी । (मे०) । (२) अविप्रिया । श्यामालता ।

वि० [सं० त्रि०] मृदु । अकिठन । पर्याय--सुकुमार । मृदुल । मृदु । (अ०) ।

संज्ञा पुं० [देश०] बादियान-कोही । फितरसालियून । (ले०) पेवुलेरिया ।

कोमल--[यु०] मूँगा । प्रवाल ।

कोमल-अम्लिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लवली । हरफारेवड़ी ।

कोमलक--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमल-दण्ड । मृणाल । (श० र०) । (२) पद्मकाष्ठ । (वे० निघ०) ।

कोमल-कदल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोमल कदली-फल । बाल-कदली फल । केले का कोमल फल । (वं०) कचि-कला । (म०) कोंबले केले । गुण--शीतल मधुर, कषाय, रुचिकारक तथा अम्ल-पित्तनाशक है । (वे० निघ०) ।

कोमल तालु--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नरम तालू । तालू का एक भेद ।

कोमल-दल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल । पद्म । (वे० निघ०) ।

कोमल नारिकेल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बाल नारिकेल फल । नारियल का कोमल फल ।

कोमल पत्रक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सहिजन । शिग्रु । (रा० नि० व० ७) ।

कोमल पाशक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृदु बन्ध । कोमल-बन्ध ।

कोमल-प्रसव--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद कटसरेया । श्वेत झिटी । (वे० निघ०) ।

कोमल बल्कला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हरफारेवड़ी ।

कोमल बल्कली " " ["] लवली वृक्ष । (भा०) ।

कोमला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खिरनी । क्षीरिणी । क्षीरिका । (२) खजूर । खजूरिका । (वे० निघ०) ।

कोमलाबुद--संज्ञा पुं० [सं०] नरम रसौली । (अ०) सल्आ लय्यिना, असलिमा । (अं०) फाइब्रोसेल्युलर ट्यूमर (Fibrocellular tumour), सॉफ्ट फाइब्रोमा (Soft fibroma) ।

कोमलेशु--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईखविशेष । गन्ना भेद । कुशियार । पौड़ा । गुण--कोमल ईख--भेद, कफ और प्रमेहकारक है । तरुण गन्ना--मधुर, किंचित् कटु तथा

वातपित्ताशक है। वृद्ध इक्षु—वीर्यवर्धक, रक्तपित्ताशक, बलवर्धक तथा क्षतनाशक है। (वै० निघ०)।
को (कू) मा—[अ०] गम्भीर निद्रा। सवात। दे० 'कोमा' (Coma)।

कोमतार बरुस—[?] कीकर। ववूल।

कोमानस—[यू०] बिच्छू। वृश्चिक।

कोमानोतस—[यू०] केचुआ। भूताग। तीन किरम।

कोमामून—[यू०] गोंद। निर्यास।

कोमार सून—[?] जंगली सौंफ। वन मधूलिका।

को (कु) मारिक—[सि०] घृतकुमारी ग्वारपाठा।

को (कु) भारी—[गु०, बं०] घृतकुमारी। ग्वारपाठा।

कोमारीस—[यू०] कुतलव। एक वनस्पति है।

कोमारुस—[यू०] (१) कुतलव। (२) प्याज। प्लाण्डु। (३)

कातिलअव्यः।

कोमालस—[यू०] आलू।

कोमालियून—[यू०] कोतुलीदून।

कोमासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जालिका। जाली।

फलों की जाली। (हारा०)।

कोमियाक्यास—[यू०, सुर०] गोंदववूल। ववूरनिर्यास।

कोमिया-हिन्दवा—[यू०, सुर०] बेल। बिल्व। श्रीफल।

कोमियून—[यू०] (१) बादाम का गोंद। (२) रक्त।

कोमियूस—["] खून।

कोमी—[?] ववूल का गोंद।

कोमीजदून—[?] } ववूल का गोंद।

कोमीदर—[?] }

कोमीन—[तुर०] भेंड़। मेष।

कोमूर—[?] गोंद। निर्यास। (Gum)।

कोमूश—[तुर०] रजत। चाँदी। रौप्य।

कोमूसुन—[?] तुमुंस।

कोमोक्लैडिआ-डेण्टेटा—संज्ञा पुं० [ले० Commo-cladia Dentata] एक डड्डिज्ज।

कोम्बी सीड्स—दे० 'कोम्बे सीड्स'।

कोम्बु-पुडलै—[ता०] } पटोल। परोरा।

कोम्बु-पोटल—[ते०] }

कोम्बेसीड्स—संज्ञा पुं० [अ० Kombe seeds] स्ट्रोफेन्थस के बीज।

कोम्ब्रेटम्, राउण्ड लीहवड—[अ० Combretum, Round leaved] कुलता।

कोम्ब्रेटम्-रोटेण्डो-फोलिआ—[ले० Combretum Rotandi folia] कुलता।

कोम्मिफोरा-अफ्रिकेना—[ले० Commifora-Africana] गुगुलु। गुग्गुलु।

कोम्मिफोरा-मिर्ह—[ले० Commifora-Myrrha] बोल। रसगन्ध।

कोम्मिफोरा-मुकुल—[ले० Commifora-Mukul] गुगुलु। गुग्गुलु।

कोम्मिफोरा-मैडा-गैस करोसिस—[ले० Commifora -madagas-careasis] गुगुलु।

कोम्मिलीना-कामन—[अं० Commilina, common] जूता कन्शीना।

कोम्मिलीना-कॉम्युनिस—[ले० Commelina comunis] जूता कन्शीना। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ५१०)।

कोम्मिलीना-नेकेड-पलावर्ड—[अं० Commelina, naked-flowered] कान्दूली।

कोम्मिलीना-बेंगाल—[अं० Commelina, Bengal]

कोम्मिलीना बेंगलेन्सिस—[ले० Commelina-Bengal-ensis] जूता कान्शीना।

कान्शीरा, कानो राका। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ५०६)। (इ० हैं गा०)।

कोम्मिलीना, वीलो-लीहवड—[अं० Commelina willow leaved] कान्शीरा। लाङ्गली।

कोम्मिलीना-सैलीसिफोलिआ—[ले० Commelina-Salicifolia]

कोम्मिलीना-स्कैपपलावरिङ्ग—[अं० Commelina-scap-flowering] कोरली।

कोम्मिलीना स्कैपिलोरा—[ले० Commelina Scapiflora] कोरली।

कं म्मु—[ते०] गन्जनी। गन्धवेल। गुच्छ।

कोम्मु-पोटल—[ते०] पटोल। परोरा।

कोम्मोक्लैडिआ-डेण्टेटा—संज्ञा पुं० [ले० Commocladia Dentata] एक अड्डिज्ज है।

क्रिया—इसकी साधारणतः क्रिया दाहिने आँख और त्वचा पर होती है। उपयोग—चर्मरोग में—जब त्वचा का वर्ण लाल 'आरक्तज्वर (स्कारलेटीना)' तुल्य हो गया हो, त्वचा पर लाल रंग की रेखाएँ उद्भूत हो गई हों और कण्डू हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है। कुण्टरोग में भी इसका उत्तम प्रभाव होता है।

अर्धवभेदक—स्नायूल (न्युरॉल्लिआ) जन्य नेत्रविकार, दक्षिण नेत्र के भीतर वेदना, अन्धकार दिखाई देना, धुन्धदृष्टि (ग्लॉकोमा), दक्षिण नेत्र से केवल इतना दिखाई देना कि एक प्रकार का प्रकाश विदित हो रहा है इत्यादि लक्षणों में इससे लाभ होता है।

वक्षरोग—वामस्तन, ग्रन्थिशोथ, वेदना, खाँसते समय वामवक्ष के निम्न भाग में वेदना प्रतीत होना और वेदना का वाम स्कन्धतक प्राप्त होना, दक्षिणवक्षशूल जो हाथ और उसके निम्न भाग पर्यन्त प्राप्त होता है, उसमें उपयोगी है।

कोयः, कोयज

४१७

कोयला

कोयः, कोयज--[फा०] लालरंग का उद्यानज जअरूर, सुखं
बुस्तानी जअरूर ।

कोयअलस, कोयअलीस--[यू०] लिसानुलकत्व ।

कोयट (कवित)--संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ] कैथ । कपित्थ ।

कोयनक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चोरक ।

कोयनहल--[छ०] स्याह माजरियून ।

कोयपिप्पली--[ते०] जौदु पलंग (बं०) ।

कोयरी--संज्ञा स्त्री० [] परिचय--सेमतुल्य एक फली
है । इसके ऊपर श्वेत चिकने रोम होते हैं । इसके भीतर
बीज-कोष होते हैं । प्रत्येक कोष में बाकलतुल्य बीज
होते हैं । इसकी लता छतों वा वृक्षों पर चढ़ती है ।
इसके पत्र तथा पुष्प की आकृति कुछ-कुछ खड्डुमुल-
तुल्य होती है । किन्तु खड्डुमुल की फलियाँ इसकी अपेक्षा
छोटी एवं पतली होती हैं । स्वाद--मिष्ट । इसकी फली
मांस के साथ पकाने से वह स्वादिष्ट हो जाता है ।

प्रकृति--शीतल एवं तर है । गुण-कर्म तथा उपयोग--
संग्राहक तथा चित्तप्रसन्नकारक है, स्वरशोधक,
वक्तृत्वशक्तिवर्धक तथा वाजीकर है, शरीर को पुष्ट
करती है और कोष्ठवद्धकारक है । इसके सेवन से
अतिसार नष्ट होता है । अधिक सेवन से उदरशूल
उत्पन्न होता है और पित्त की वृद्धि होती है ।

अहितकर--मस्तिष्क को ।

निवारण--गरम मसाला ।

प्रतिनिधि--केवाँच ।

कोयल--संज्ञा पुं० [देश०] अपराजिता लताविशेष ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिलः] प्रसिद्ध पक्षी । कोकिला ।
कोइल ।

कोयलता--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्फोटालता ।

कोयला--संज्ञा पुं० [सं० कोकिल=जलता हुआ अंगारा]

(१) एक खनिज पदार्थ । पत्थर का कोयला । (२) किसी
पदार्थ का जला हुआ अंश । (अं०) कार्बन (Carbon) ।

पर्याय--(सं०) काष्ठ अंगार; (बं०) काष्ठ कोयला;
(मं०) लकड़ाचकोल्सा; (गु०) लकड़ु कोयलो; (पं०)
कोइल; (काश०) टिंवग; (ता०) अडुपु-कड़ी; (ते०)
कट्ट-बोगु; (मल०) मुत्ति कड़ी; (कना०) कट्टिगे-इदल्लु;
(वर०) थेन-मुसवे; (सिं०) अङ्गु; (मल०) अह-
रंग; (द०) लकड़ी का कोयला; (हिं०) लकड़ी का
कोयला; (अं०) वूड चारकोल (Wood-charcoal);
(ले०) कार्बोलिग्नाई (Carbo-Ligni); (अं०) कार्बो
नेगिटिबिलिस (Carbo Negitabilis) । (अं०) फस;
(फा०) अंकुशत; ।

भेद--वानस्पतिक तथा जान्तव (Carbo animalis)
भेद से कोयला दो प्रकार का होता है । निर्माण-विधि--
हड्डियों को तीव्र आँच देने से कोयले की प्राप्ति होती है ।

औषधार्थ इसका उपयोग होता है । कार्बन और फॉस्फेट
ऑफ कैल्सियम और कार्बोनेट ऑफ कैल्सियम (चाक,
खटिका) तथा अस्थि-अङ्गार से जब लवणीय अंश पृथक्
कर दिया जाता है तब विशुद्ध कोयले की प्राप्ति होती
है । इस प्रकार करने से १० प्रतिशत विशुद्ध कोयला रह
जाता है । इसका वर्ण काला होता है । इसमें किसी
प्रकार की गन्ध तथा स्वाद नहीं होता ।

लकड़ी का कोयला--निर्माण विधि--यह लकड़ियों को
दग्ध करने से प्राप्त होता है । इनकी कृष्णवर्ण की
डलियाँ होती हैं, जो तोड़ने से सरलतापूर्वक टूट जाती हैं ।
इसमें भी किसी प्रकार की गन्ध वा स्वाद नहीं होता ।
इसमें वही गुण होते हैं जो गुण लकड़ियों में होते हैं ।
विधिपूर्वक दग्ध करने से २ प्रतिशत कोयला प्राप्त होता
है, शेष भाग दग्ध होकर भस्म बन जाता है ।

गुण-कर्म--वायु-शोधक, कोथम्ल, जलस्वच्छकारक,
आमाशयदोषनाशक तथा अम्लतानाशक है ।

उपयोग--इसका चूर्ण निर्माणकर सेवन करने से उदर-
शूल तथा अम्ल-पित्त का नाश होता है । इसका पुट्टिश
बनाकर कोथयुक्तव्रण पर बाँधने से व्रण विशुद्ध होकर
शीघ्र भर जाता है । इसके चूर्ण से दन्तमंजन करने से दाँत
स्वच्छ होते हैं । मुख का दुर्गन्ध नष्ट होता है । वायु
विशोधनार्थ रोगियों के गृह तथा जहाँ अधिक रोगियों के
रहनेसे वायुदूषित होने का भय होता है, इसका उपयोग
किया जाता है ।

कोयले के प्रत्येक भागमें स्पन्जवत् सूक्ष्म छिद्र होते हैं ।
अतः इसके उपयोग से प्रत्येक प्रकार के विषाक्त वायु (गैस)
अभिषोषित हो जाते हैं और उनका दुर्गुण स्वयं ग्रहण
कर लेती है । इसी प्रकार कोयला ऑक्सीजन के अधिक
भाग को भी सरलतापूर्वक अभिषोषित करने की शक्ति
रखता है । अतः जब उक्त प्रकार के कोयले का जान्तव
तथा वानस्पतिक पदार्थों के साथ मिश्रण किया जाता है
तो वह ऑक्सीजन का त्याग कर देता है जो उक्त पदार्थों
में मिश्रित होकर इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गी में परिवर्तन
उपस्थित करते हैं । अतः कोयला श्रेष्ठ कोथम्ल तथा
दुर्गन्धनाशक पदार्थ है । इसी प्रकार यह मूरचा लगे हुए
लोहादि पदार्थों को शीघ्र स्वच्छ करने की शक्ति रखता
है । इसके उपयोग से आमाशय-आन्त्रगत वायु तथा उनमें
क्षोभोत्पादक तरलता अभिषोषित हो जाती हैं और
उनमें प्राप्त हुई दुर्गन्ध, कोथादि नष्टप्रायः हो जाते हैं ।

अत्यधिक मात्रा में सेवन करनेसे विरेचन होता है और
मलमें खिजला उत्सर्गित होता है । कोयला रक्त में अभि-
षोषित नहीं होता है । अजीर्ण, अम्लता, आन्त्रकुंचन,
उदरशूलादि में ५ रत्ती कोयला चूर्ण और ५ रत्ती बिस्मथ-
कार्ब मिश्रितकर भोजनोपरान्त सेवन करने से लाभ होता

है। यूनानी चिकित्सकों का कथन है कि कोयले को क्षत स्थान में भरने से वह अभिशोषित हो जाता है। यह लवण-शोषक है। जब सालन में लवण की मात्रा अधिक होती है तब उसमें कोयले के टुकड़ों को डाल देने से वह उसमें अभिशोषित होकर ठीक दशा में आ जाता है। इसके उपयोग से रक्तातिसार, पर्यायज्वर तथा सान्निपातिक ज्वर, नष्ट होता है। इसको जल में पीसकर वृश्चिकदंश पर लेप करने से लाभ होता है। सोपारी का कोयला चूर्णकर मञ्जन करने से दाँत दृढ़ तथा स्वच्छ रहते हैं। यदि दुर्गन्धपूर्ण अतिसार हो तो इसका चूर्ण लाभप्रद है। इसका चूर्ण अलसी के तेल में मिश्रितकर क्षतपर लगाने से लाभ होता है; रक्तस्राव बन्द होता है और रक्तशुद्धि होती है।

मात्रा—आन्तर उपयोग में—५ से १० रत्ती तक।

हानिकारक—अधिक दिनों तक मंजन करने से दाँत निर्बल होते हैं। जल में भिगाया कोयला शक्तिहीन हो जाता है।

बाह्य उपयोगार्थ पुलिटिश—निर्माण-विधि—तण्डुल-पिण्टी १ छटाँक, अलसी १ छटाँक एकत्र पीसकर पका लें। पुनः इसमें ६ माशा लकड़ी का कोयला मिश्रितकर दूषित व्रणपर लगाने से व्रण विषुद्ध होकर शीघ्र भरने लगता है।

दन्तमंजन—कोयला १० तोला, सोपारी दग्ध किया हुआ १० तोला, संगजराहत ५ तोला, कर्पूर १ तोला एकत्र चूर्णकर सुरक्षित रखें। इसका प्रतिदिन दन्त-मंजन करने से दाँत मौक्तिकतुल्य चमकदार होकर दृढ़ रहते हैं और रक्तस्रावादि दोष, पायरिया (पूय-दन्त) इत्यादि दन्तरोग नहीं होते। दे० 'कार्वो वेजिटैबिलिस' तथा 'कार्वो एनिमलिस'।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़। यह आसाम में होता है। इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खिलाई जाती हैं। इसे 'सोम' भी कहते हैं।

कोयलास—संज्ञा पुं० दे० 'कोयला'।

कोयली—[यू०] सातर का एक भेद। इसके पत्र जूफापत्रवत् होते हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] आम की गुठली।

कोयलु—[ते०] क्योइलु। (Salicornia brachilata)। (मेमो०)।

कोयष्टि, कोयष्टिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०], (१) जलकु-क्कुभ। पनियारी। पनहुब्बी। (वं०) कोंडा पाखी। गुण—इसके मांस में प्रतुदतुल्य गुण हैं। (सु० सू० ४६० अ०; च० सू० २७ अ०)। (२) पेचक पक्षी। उल्लू। (ध० नि०)।

कोयसर—[फा०] जुअरूर।

कोयसौल—[का०] ककड़ी।

कोया—संज्ञा पुं० [सं०] कोश। कटहल का बीजकोष।

कोयाबुल—[यू०] कुतुलव।

कोयी—[तु०] भेंड़। मेप।

कोयून—[यू०] शुकरान। कोनायम।

कोर—संज्ञा पुं० [कश्मीर] कुडा। कुरैया। कुटज।

[फा०] शामी खर्नूब।

कोरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो हिमालय में कश्मीर से ब्रह्मा तक, ६००० फुट ऊँची पहाड़ियों और तराइयों में पैदा होती है। इसे कहीं-कहीं सुदरकटी भी कहते हैं। (हि० श० सा०; डी० भ० ३, पृ० ५५२)।

कोरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काँकल (वं०)। काकोली। (ध० नि०)। (२) शीतलचीनी। (३) भसिंड। कमलकंद। (४) चोरकनामक गंधद्रव्य। (जटा०)। (५) चकोरपक्षी। (वै० निघ०)। (६) कमल की नाल या डंडी। मृणाल।

संज्ञा पुं० [सं०] कोरक=मृणाल। एक प्रकार का मोटा और मजबूत वेंत जो आसाम और बरमा में होता है। कोरकण्डल—संज्ञा पुं० [पं०] देवकांडर। जलधनिया। कवीकज।

कोरक पुलि—[म०] } (डाइमाँक भ० १, पृ० १६८)।

कोरक पुलिल—[म०] }

कोरक वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिगुआ। इंगुदी वृक्ष। (वै० निघ०)।

कोर कलेरू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नागरमोथा। भद्रमुस्तक।

कोर काँटा—[म०] } घृतकुमारी। ग्वारपाठा।

कोर काण्ड—[द०, म०] }

कोरक्रीस—[यू०] मत्स्य-पित्त। मछली का पित्त।

कोरकून—[यू०] काक। कौवा।

कोरक्रीकूस—[यू०] रिज्जुलगुराव। काकजंघा।

कोर कोर—[शीरा०] चील।

कोरकोट—[सन्ताल] चालता। भव्य (सं०)।

कोरगान—[?] कौवा। काक। वायस।

कोरङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटी इलायची। सूक्ष्म एला। (रा० नि० व० २३)। (२) पीपर। पिप्पली। (ध० नि०; रा० नि० व० ६)।

कोरची—[गोंडा] अनार। दाडिम।

कोरची-झाड़—संज्ञा पुं० भद्रमुस्तक नागरमोथा।

कोरजा—[फा०] शामीखर्नूब।

कोरञ्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोरठीमिट्टी। सौराष्ट्रिका। काँचड़ा दाम (वं०)।

कोरहुँ(ट्टै)—[ता०] महाकाल। लाल इन्द्रायण। (डाइमाँक भ० २, पृ० ७०)।

कोरुण्टा—संज्ञा पुं० कटसरेया। सैरेयक। पीयाबाँसा।

कोरण्टी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वेर । बदरीवृक्ष ।
(मद० व० ६)

कोरत--[तुर०] भेडिया । वृक । (लु० क०) ।

कोरतायून--[यू०] धनिया । धान्यक ।

कोरद--[तुर०] भेडिया । वृक ।

कोरदियूस--[यू०] (१) काकजंघा । मसी । (१) शज्रम-
रियम । मरियमवृक्ष ।

कोरदोवकूस--[यू०] रिजलुलगुराव । (लु० क०) ।

कोरदुष्क--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोदो । कोदव धान्य ।
(शब्द० र०) ।

कोर दूष--संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

कोर दूषक--संज्ञा पुं० [,, ,,] } कोद्रव । दे० 'कोदो' ।

कोरदूष्य--संज्ञा पुं० [,, ,,] }

कोरदूस--संज्ञा पुं० [लु०] मेढक । मण्डूक ।

कोरदूसन--संज्ञा पुं० [यू०] वरल । कोदूसन ।

कोरन तुत्ति--संज्ञा स्त्री० [ता०] काली कंधी । (डी० भ० १,
पृ० २०८) ।

कोरफड--संज्ञा पुं० [कों०, म०, सिधे] ग्वारपाठा ।
घीकुआर ।

कोरघट्टी--संज्ञा स्त्री० [ते०] खाजा ।

लमकना । खरका । (B. retusa) । (मेमो०) ।

कोरघासून--[यू०] धनिया ।

कोरघा--संज्ञा पुं० [देश०] कुड़ा । कोरैया । कुटज ।

कोरल दूरी--संज्ञा स्त्री० [अं० Coral-tree] मूंगा की झाड़ी ।
मूंगा का क्षुप । (डी० भ० १, पृ० ४५१; भ० ३
पृ० २७७) ।

कोरलट्टी, इन्डियन--संज्ञा स्त्री० [अं० Coral tree,
Indian] पञ्जीर ।

कोरलट्टी, ओवल-लीह्वड--संज्ञा स्त्री० [अं० Coral tree,
oval-leaved] हरिया कीकर ।

कोरलियून--[यू०] मूंगा । प्रवाल ।

कोरवा--संज्ञा पुं० [देश०] पान की खेती का दूसरा
वर्ष ।

कोरसन--[?] सोसन बुस्तानी (उद्यानज) ।

कोरसन्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] गर्ताकार सन्धि । गर्त ।
(अं०) हिज ज्वायण्ट (Hinge joint), गिंग्लिमस
(Ginglymus) ।

किवाड या संदूक में जड़े जानेवाले कब्जा के सदृश
इसकी रचना होती है । (सु० शा ५ अ०) ।

कोरसामा--[यू०] ऊदवलसाँ ।

कोरहन--संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का धान ।

कोरा--[यू०, तु०] ऊँट ।

कोरा--[ब०] (१) काँक । कङ्गु धान्य । कंगुनी । (२) कोदो ।
कोद्रव धान्य ।

संज्ञा पुं० [सं० करक] एक चिड़िया जो नालों के किनारे
रहती है ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो गढ़वाल, मध्यप्रदेश और
आसाम में बहुतायत से होता है ।

कोराई--[म०]

कोराईफा अब्रैक्युलिफेरा--संज्ञा पुं० [ले० Corypha
ambraculifera] बजरबट्ट । अल्पायुषी ।

कोरामिन--संज्ञा पुं० [अं० (Coramine) पाश्चात्य वैद्यक
में प्रयुक्त एक औषधि जो रंगहीन अथवा पीताभ तैलीय
द्रव अथवा मणिभोय घन (Solid) रूप में होती है ;
गन्धहीन स्वाद में किञ्चित् तिक्त होती है । इसे
आस्वादन करने से किञ्चित् उष्णता का अनुभव होता है ।
यह जल में सुविलेय तथा अल्कोहल, ईथर एवं क्लोरो-
फॉर्म और एसीटोन में भी विलेय होता है । मात्रा--
५ से १५ ग्रेन या ०.३ से १ ग्राम । अवस्त्वग्, पेश्यन्तर
एवं शिरागतसूचिकाभरण द्वारा ४ से १५ ग्रेन या
०.२५ से १ ग्राम ।

पर्याय--एनाकार्डोन, कार्वोदोन, कारडियामिड, निकेया-
माइड । (पा० द्र० गु० वि०, भ० १, पृ० ५१९) ।

कोरालन--[यू०] मूंगा । प्रवालमूल । वुस्सद ।

कोरालसाल--संज्ञा पुं० [अं० Corasal] दे० 'लेप्ताजोल' ।
(पा० द्र० गु० वि० भ० १, पृ० ५१९) ।

कोराँटा--संज्ञा पुं० [म०] कटसरेया ।

कोराँटी--संज्ञा स्त्री० [म०] सैरेयक ।

कोरिएण्डर फ्रूट--संज्ञा पुं० [अं० Coriander fruit]
धनिया ।

कोरिएण्ड्रम् सॅटाइवम्--संज्ञा पुं० [ले० Coriandrum
sativum] धनिया ।

कोरिएण्ड्राइ फ्रक्टस--संज्ञा पुं० [ले० Coriandri fructus]
धनिया । धान्यक ।

कोरिएण्ड्री--[अं० Coraindre] (डी० भ० २, पृ० १२६) ।

कोरिएण्ड्रोल--[अं० Coriandrol] धान्यक तैल । धनिया
का तैल ।

कोरिकोट्ट--[तु०] केउआँ । केमुक ।

कोरिण्डा--[कना०] करौदा । करमहूक ।

कोरिजूला--[बरब०] लाल साग । लाल चौराई ।

कोरिटि--[ते०] मैना कटलरा । (नैपा०) ।

कोरिथियन-ग्रेप्स--संज्ञा पुं० [अं० Corinthian grapes]
द्राक्षालता । अंगूर की बेल ।

कोरिभद--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसौंदो । कासमई ।
(प० मु०) ।

कोरिचिथाल--[ते०] रंगन । दे० 'कोटगन्धल' ।

कोरियाण्डर--संज्ञा पुं० [अं० Coriander] धनिया ।
धान्यक ।

कोरियाण्ड्रम् सेटाइवम्--संज्ञा पुं० [ले०] (*Coriandrum sativum*) धनिया । धान्यक ।

कोरियून--[यू०] (१) धनियाँ । धान्यक । (डाइमॉक भ० २, पृ० १३०) । (२) पोस्ता । (३) अकरकरा । (४) मूंगा । प्रवाल । बुसुद । (५) ऊदभेद । (लु० क०) ।

कोरिल-किरय--[ता०] कुलफा ।

कोरिलिगेना--[कना०] कुड़ा । कोरिया । कुटज ।

कोरिवास--संज्ञा पुं० [सं पुं०] महुआ । मधुक वृक्ष ।

कोरी--[वं०] (चौ०, पृ० १५६) ।

कोरी गलागी--[तुर०] कुलफा ।

कोरीजूल--[वरव०] लाल साग ।

कोरीण्डा-जस्मिन पलावर्ड--[अ०] करौंदा ।

कोरीडेलस गोवाविण्डा--[ले०] *Corydalis-Govaniana* भूतकेश । श्वेतदूर्वा ।

कोरीडालीस--[यू०] फर्षयून । (लु० क०) ।

कोरोला--[वं०] करैला । कावैल्ल ।

कोरुनिया-सीला--[यू०] विही ।

कोरुनहल--[अ०] शहद की मक्खी । मधुमक्षिका ।

कोरुयलोकूस--[यू०] रिज्जुल-गुराव । काकजंघा । मसी ।

कोरे की जड़--[द०] नागरमोथा । भद्रमुस्तक ।

कोरेटा--[वं०] बला । बरियारा । (डा० भ० १, पृ० २०६) ।

कोरेटी ट्रीलोक्युलेरी--[ले०]

(डाइमॉक भ० १, पृ० २३६) ।

कोरेसा कोरण्डास--संज्ञा पुं० [ले०] करौंदा । कर्मदूक ।

कोरैक-किन्नरु--[ता०] } नागरमोथा । (चौ० पृ० ४८१) ।

कोरैक-किलंगु--[ता०] } कटसरैया । सैरेयक ।

[वं०] बला । बरियारा । (*Sida acuta*) ।

कोरैया--संज्ञा पुं० कुड़ा । कुटज ।

कोरैलियम्-रुब्रम्--संज्ञा पुं० [ले०] *Corallium Rubrum* लाल-मूंगा । प्रवाल ।

कोरैलिया-रुब्रा--[ले०] *Corallia Rubra* मूंगा । प्रवाल । (यू०) कोरालन । कोरलियून । कोरियून ।

कोरैल्यो कार्पस-इपिगिआ--संज्ञा पुं० [ले०] *Corallio-carpus epigaea* पतालगच्छ । महामूल । गच्छवल्ली । (हिं०) गरजफल । अकासगड्ढा । जलजमनी । (डाइमॉक भ० २, पृ० ८०) ।

कोरो--संज्ञा पुं० [हिं० कोर] रेंड का सूखा पेड़ ।

कोरोई--[वं०, आसाम] सफेद सिरिस ।

कोरोला--संज्ञा पुं० [अ०] *Corola* पुष्प-कोष ।

कोरोनेलिआ ग्रान्डी-पलोरा--संज्ञा पुं० [ले०] *Coronelia-Grandiflora* अगस्त । वक्पुष्पी ।

कोरोह--[अवध] साल । साबू ।

कोरंगी--दे० 'कोरङ्गी' ।

कोरंती--का० ४९ ।

कोर्गु--[तु०] करंज ।

कोर्टी-डी पाल--[फा०] } (डाइमॉक भ० २, पृ० ३९३)

कोर्टी-डीवेला--[,] }

कोर्टिन--[अ०] *Cortin* उपवृक्ष के वहिःस्तर का सत्व ।

कोरोसिव सबिलिमेट--संज्ञा पुं० [अ०] *Corrosive sublimate* रसकपूर ।

कोर्द--[तुर०] भेड़िया । वृक्ष ।

कोर्दव--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोदो ! कोदव धान्य ।

कोर्रोसोल--संज्ञा पुं० [अ०] *Corrosol*

(डी० भ० २, पृ० ४५) ।

कोल--संज्ञा पुं० [फा०] साही । शल्लकी जन्तु ।

कोल (क)--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक मान जो एक तोला के बराबर होता है । (२) मिर्च, कालीमिर्च । (३) चव्य । (रा० नि० व० ६) । (४) बेर । बदरीफल । (रत्ना०) । (५) उठा हुआ । उत्सङ्ग । क्रोड़ । (६) भिलावाँ । भेलक । (७) चीता । चित्रक । (८) कंकोल । कक्कोल । शीतलचीनी । (मे०; रा० नि० व० १२, १९; वै० निघ० २ भ० पाण्डु-चि० लोहादिचूर्ण) । (९) ढेरा । अङ्गोल । (१०) गजपीपल । बड़ा पीपल । (११) पीपल पिप्पली । (१२) बड़ा बेर । राजवदर । (१३) नख । (१४) मत्स्य । (ध० नि०) ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बेर । बदरी वृक्ष । (वं०) कूल गाछ । (२० मा०; वा० चि० १ अ०) । (२) २ टंक १८ मासा । (३) सूअर । शूकर । बराह । (रत्ना०) । (४) कुलथी । कुलथ । (सा० कौ० गुदभ्रंश-चि० चाङ्गे-रीघृत) । (५) ढेरा । अङ्गोल वृक्ष । (६) लिसोड़ा, बहुआर वृक्ष । (७) वन पलाण्डु । काँदा । जंगली प्याज ।

संज्ञा पुं० [सं० कवल] चब्रेना । दाना । चरबन ।

कोलक--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अखरोट का पेड़ । (२) काली मिर्च । (३) शीतलचीनी । दे० 'कोल' ।

कोलकन्द--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का कन्द जिसे कश्मीर में 'पुटालू' कहते हैं । इस कन्द के ऊपर सूअर के-से रोएँ होते हैं, इसलिये इसे 'वाराहीकन्द' भी कहते हैं । (वं०) गुयारआलू; (म०) पुटगेड्डु; (सं०) कुमिघ्न, पञ्चल, वल्लपञ्चल, पुटालु, सुपुट, पुटकन्द ।

गुण--उष्ण, कटु, कृमिनाशक, वमन-नाशक तथा त्रिदोषघ्न है । (रा० नि० व० ७) । (२) काँदा । वनपलाण्डु ।

कोल कर्कटिका (कर्कटी)--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोठा खजूर । मधुरखजूरिका । छोहाड़ा । (रा० नि० व० ११) ।

कोलकाकुल--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुरदासंग ।

कोलकाँदा--संज्ञा पुं० [सं० कोलकन्द] जंगली प्याज । काँदा ।

कोल का फूल--संज्ञा पुं० [वं०] पीली कनेर । पीतकरवीर । (डी० भ० २, पृ० ४० ६) ।

कोलकु पीला--संज्ञा पुं० [ते०] शालपर्णी । सरिवन ।
कोलकैषिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काला निसोथ । श्यामा ।
कोलगाजिनी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ा पीपल । गज-
पीपल । (वै० निघ०) ।

कोलङ्कु--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आंवला । आमलक वृक्ष ।
कोलचिकम् ऑटमनेली--संज्ञा स्त्री० [ले० Colchicum
autumnali] सुरंजान । हरनतूतिया ।

कोलचिकम् इलिरिकम्--[ले० Colchicum] कडुआ
सुरंजान । (मेमो०) ।

कोलचिकम् ल्युटियम्--[ले० Colchicum luteum]
सुरंजान । हरनतूतिया । (डी०) ।

कोलचिकम् वॅरिगेटम्--[ले० Colchicum variegatum]
कडुआ सुरंजान । सुरंजान तल्ल ।

को(कु)लञ्ज--संज्ञा पुं० [अ०] शूल । अन्नशूल । मरस ।
(अं०) कॉलिक (Colic) । यह एक प्रकार का कठिन एवं
तीव्र व्याधि है जो स्थूलान्त्र (वृहदन्त्र) विशेषकर कोलून-
नामक अन्न में अवरोध उत्पन्न होने या उसमें सान्द्र वायु
के आवृत होने से उत्पन्न होता है । इस रोग में रोगी
को पायखाना नहीं होता तथा वेदना की तीव्रता से
तड़पता और वेचैन होता है और कभी तीव्रशूल के
कारण स्वर्ग सिधारता है ।

वक्तव्य--(१) कोलञ्ज वस्तुतः कोलून (= रज्ज, शोक)
था जो प्रयोगवाहुल्य के कारण कोलञ्ज रह गया ।

(२) यद्यपि पुराण चिकित्सक कोलञ्ज और मरस में भेद
करते हुए दोनों का विवरण पृथक् अध्याय में करते
रहे हैं, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से दोनों के
पारस्परिक भेद प्रगट हैं । पर आधुनिक मिश्रदेशीय
चिकित्सक यूरोपीय डॉक्टरों के अनुकरण में दोनों को
समानार्थी एवं पर्याय मानते हैं ।

जब क्षुद्रान्त्र में अवरोध उत्पन्न होता है, तब इस प्रकार
की वेदना लग जाती है और रोग की तीव्रता में षिष्ठामय
वमन होने लगते हैं । इसको प्राचीन तिबकी परिभाषा
में 'एलाऊस' कहते हैं और आधुनिक मिश्रदेशीय चिकित्सक
इसको मरस, रब्बइरहम या कोलञ्ज इतिहाई कहते हैं ।

विभिन्न कारणों से कोलञ्ज भिन्न-भिन्न प्रकार का होता
है । अतः प्रत्येक का वर्णन यथास्थान किया गया है ।

विशेष वक्तव्य--आधुनिक डॉक्टरी ग्रन्थों में कॉलिक
(कोलञ्ज) का वर्णन आन्त्र-शूल के अर्थ में न होकर उदर,
वस्ति अन्यान्य आन्तरीय-आमाशय, यकृत, गर्भाशय
शूलादि के लिए भी होता है ।

कोलञ्ज और मरस का अन्तर--यद्यपि आधुनिक मिश्री
चिकित्सकों के अनुसार उभय शूल समान हैं; किन्तु पुरातन
यूनान के चिकित्सकों के अनुसार इस प्रकार अन्तर
है--'मरस' उस आन्त्रशूल वा मरोड़ को कहते हैं

जो कोलञ्ज से अल्पतर होता है । इसके विरुद्ध 'कोलञ्ज'
क्षुद्रान्त्रगत होता है और यह शूल अत्यधिक कष्टप्रद
होता है । इसमें उग्र मलावरोध होता है । मरस में
अतिसार होता है । इसके अतिरिक्त मरस साधारण
शूल को और कोलञ्ज प्रमुख शूल को कहते हैं ।
मरस को मरोड़ (प्रवाहिका) समझना उचित है ।

कोलञ्ज-असबी--[अ०] दे० 'कोलञ्ज-तशनुजी' ।

कोलञ्ज-इल्लिवाई--[अ०] पर्याय--वातज-शूल । बलदार
कोलञ्ज । आन्न ग्रन्थिजन्य शूल । (अं०)--इण्टस्सेप्शन ।
(Intussusception), वॉल्व्युलस (Volvulus) इलियस
(Ileus) । वह कोलञ्ज (शूल) जो आंत के बल खाजाने
वा निज स्थानभ्रंश हो जाने वा उसमें ग्रन्थि पड़ जाने
के कारण उत्पन्न होता है । यूनान के पुरातन चिकित्सक
चतुर्थान्त्र (कानीआंत)गत शूल को कोलञ्ज इल्लिवाई कहते हैं ।
किन्तु आधुनिक डॉक्टर कानी आंत और क्षुद्रान्त्र तथा
स्थूलान्त्रगत शूल को भी कोलञ्ज इल्लिवाई स्वीकार करते हैं ।

स्पष्टीकरण--इण्टस्सेप्शन और वॉल्व्युलस एक
साधारण परिभाषा के अनुसार है जो छोटी तथा
बड़ी उभय आंतों (क्षुद्रान्त्र-स्थूलान्त्र) के अर्थ में प्रयुक्त
है और इलियस (Ileus) इसकी अपेक्षा प्रमुख है जो
केवल ऊर्ध्वगत क्षुद्रान्त्र के अर्थ में प्रयुक्त है । इण्टस्सेप्शन
(Intussusception) निम्नलिखित ४ स्वरूपों में स्थित है--

(१) वह जिसमें स्थूलान्त्र स्वयं निज मध्यकपाट के
(जो इसके और चतुर्थान्त्रके बीचमें स्थित है) द्वारा
चतुर्थान्त्र (कानी आंत) में प्रविष्ट हो जाती है ।

(२) वह जिसमें स्थूलान्त्र बिना अपने मध्यकपाट के
कोलून (पञ्चमान्त्र) में चली जाती है ।

(३) वह जिसमें पञ्चमान्त्र बल खा जाती है और इसका
कोई भाग इसके अन्य भाग में उत्सर्गित हो जाता है ।

(४) वह जिसमें तृतीयान्त्र (Eleum) अर्थात् पेंचदार
आंत बल खा-खा जाती है और इसका कोई भाग अपने
नीचे की आंत में उतर जाता है । आधुनिक पाश्चात्य
डॉक्टर इसको 'एलाऊस' कहते हैं ।

कोलञ्ज-कविदी--[अ०] पर्याय--यकृतशूल, पित्तज शूल,
कोलञ्ज सफरावी, जिगर का कोलञ्ज, सफरावी कोलञ्ज,
ददं जिगर; (अं०) हिपैटिक-कॉलिक (Hepatic Colic) ।
वह यकृतशूल जो पित्ताशयगत नलिका में पित्ताश्मरी
उत्पन्न होने के कारण उत्पन्न होता है । यह वास्तव में
शूल नहीं है, किन्तु इसमें भी शूलतुल्य उक्त नाली में
उद्वेष्टन होकर शूल उत्पन्न होता है । अतः इसको शूल
का रोग कहा जाता है ।

कोलञ्ज-कविदी--[अ०] पर्याय--वृक्क-शूल, ददं गुर्दा,
गुर्दे का कोलञ्ज; (अं०) रिनाल कॉलिक (Renal-Colic) ।
जब वृक्क से कोई अश्मरी के कण उत्सर्गित होकर

वृक्क व बस्तिप्रणाली से बस्ति में प्राप्त होता है तब उस समय उक्त प्रणाली में उद्वेष्टन उत्पन्न होकर शूल उत्पन्न होता है। इस समानता के कारण इसको वृक्क-शूल कहा जाता है।

कोलज्ज-जाइदीयः—[अ०] पर्याय—कृमि-आकुंचनवत्शूल।

कोलज्ज जाइदतुल्ल द्वादियः, कानी आंत जाइदः का कोलज्ज। पञ्चमान्नगत-शूल। (अ०) वर्मिक्युलर-कॉलिक (Vermicular-Colic)। वह शूल जो पञ्चमान्न में ग्रन्थि फँसने और इसके प्रदाह (शोथ) के कारण उत्पन्न होता है।

कोलज्ज-जाइदतुल्ल द्वादियः—[अ०] दे० 'कोलज्ज जाइदीयः'।

कोलज्ज-तशन्नूजी—[अ०] पर्याय—वातजशूल। तशन्नूजी-कोलज्ज, असवी कोलज्ज; (अ०) नर्वस कॉलिक (Nervous Colic), स्पैज्मोडिक-कॉलिक (Spasmodic-Colic)।

निदानः—इस प्रकार का शूल शीत लगने, भयभीत होने, बरफ खाने, बरफ का पानी पीने तथा वर्षाकाल में भीगने से उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी सन्धिवातजन्य विष शरीर में व्याप्त होने से भी उत्पन्न होता है और कभी गुल्म (योपापस्मार) का परिणाम होता है। इस प्रकार के शूल में आटोप (नफख) अत्यल्प होता है और इसकी वेदना कभी एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक, कभी पृष्ठ की ओर और कभी वक्ष की ओर इस प्रकार परिवर्तित होती रहती है।

कोलज्ज-दोदानी—[अ०] पर्याय—कृमिज शूल। कृमिजात शूल। कीड़ों का कुलज्ज। (अ०) वर्म कॉलिक (Worm-Colic), वर्मिनस-कॉलिक, (Worminus Colic)। वह शूल जो आंतों में कृमि (कद्दूदाना), उत्पन्न हो जाने से उत्पन्न होता है।

कोलज्ज-नुहासी—[अ०] पर्याय—ताम्रशूल, कोलज्ज मिस्सी, मगस नुहासी, तँवे का कोलज्ज। इस प्रकार का शूल ताम्र-पात्र में भोजन करने या भोजन बनाने वा बिना कलाई किए ताम्रपात्र में भोजन करने से ताम्र-कण शरीर में प्राप्त होने से उत्पन्न होता है। इस शूल में उदर में उग्र वेदना उत्पन्न होती है, उक्लेश होता है और वमन होता है। इसमें कोष्ठवद्धता नहीं होती। श्वास ग्रहण में कष्ट होता है। शरीर का वर्ण पीताम्ब हो जाता है। चेहरा नीलाभ, उदास प्रतीत होता है और दाँतों के किनारों पर बैंगनी रंग की रेखाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। (अ०) कॉपर-कॉलिक (Copper-Colic)।

कोलज्ज-बलगामी—[अ०] पर्याय—श्लेष्मजशूल, कफज शूल। बलगामी-कोलज्ज। (अ०) म्युकस कॉलिक (Mucous Colic), मिक्सिव कॉलिक (Mixive Colic)। वह शूल जो आंतों में दूषित श्लेष्मा के लिपट जाने से उत्पन्न होता है वा पञ्चमान्न में दूषित श्लेष्मा के लिपट जाने से होता है।

कोलज्ज-मिअदी—[अ०] पर्याय—मगस मिअदी, आमा-शयिक-शूल, दर्द मिअदः, मेदे का दर्द। यह वास्तव में वातज शूल है जो आंतों में उद्वेष्टन होने से उत्पन्न होता है। अतः आमाशय में होने के कारण इसका उक्त नामकरण किया गया है। (अ०) गैस्ट्रिक कॉलिक (Gastric Colic), गैस्ट्रलिया (Gastralgia)।

कोलज्ज-रीही—[अ०] पर्याय—वातज शूल, रीही कोलज्ज। (अ०) विण्ड कॉलिक (Wind-Colic), फ्लैट्युलेन्ट-कॉलिक (Flatulent-Colic)। वह शूल जो स्थूलान्न में दूषित वायु के रूक जाने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार के शूल में दूषित वायु के अवरोध होने से उदर में किञ्चित् आध्मान होता है और नाभि के निकट स्थान में इधर-उधर उग्र वेदना उत्पन्न होती है। कभी-कभी वेदना शांत होकर पुनः होने लगती है। हाथ से दबाने पर सुख का अनुभव होता है। अधोवायु उत्सर्गित होने से सुख की प्राप्ति होती है। यह शूल कभी बंद हो जाता है और कभी कुछ दिनों के अन्तर से उठा करता है।

कोलज्ज-रसासी—[अ०] पर्याय—सीसधातुजन्य शूल, सीसे का कुलज्ज। कोलज्ज-उसरवी, मग्गुल काशीन। (अ०) लेड कॉलिक (Lead Colic)।

इस प्रकार का शूल सीसे का व्यापार करनेवालों को वा सीसधातुनिर्मित पात्र में रखा हुआ जलपान करनेवालों को नागविष (जहर सीसा) उत्पन्न होता है। इस प्रकार के शूल में साधारण लक्षण शूल के साथ उदा में खिचावट होती है। पृष्ठ तथा हस्तपाद में वेदना होती है। मसूदा पर एक नीली रेखा पाई जाती है कलाई की पेशियों में सुन्नता होती है और रोगी निर्वल हो जाता है।

कोलज्ज-इवाई—[अ०] पर्याय—जनपदोद्धवसकशूल। संक्रामकशूल। इवाई कोलज्ज। एण्डेमिक कॉलिक (Endemic-Colic)। इस प्रकार का शूल कभी-कभी उष्ण प्रदेशों में संक्रामक रूप से उत्पन्न होता है।

कोलज्ज-वरसी—[अ०] पर्याय—प्रादाहिक-शूल। शोथ शूल। वरम का कोलज्ज। वह शूल जो आन्नप्रदाह के कारण उत्पन्न होता है। (अ०) इन्फ्लामेंटरी कॉलिक (Inflammatory-Colic)। इस प्रकार का शूल आंतों के शोथ से उत्पन्न होता है और आंतों में प्रदाहक वस्तुओं के प्रविष्ट होने से उनमें प्रदाह उत्पन्न होकर शूल उत्पन्न होता है। यह प्रदाह कभी रक्त से और कभी पित्त व कफ की उत्पन्नता तथा प्रादाहिक वस्तुओं के सेवन से होता है।

कोलज्ज-सफरावी—[अ०] दे० 'कोलज्ज कविदी'।

पर्याय—पित्तज शूल, सफरावी कुलज्ज। (अ०) बिलियस कॉलिक (Bilious-Colic)। इस प्रकार का शूल आंतों पर पित्त के प्रपात होने से आंतों के ऐंठने से उत्पन्न होता है। इसमें पित्तज लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं, वृष्णा की

अधिकता होती है, पित्तमिश्रित वमन होता है और मुख का स्वाद कड़ुआ होता है।

नोट---डॉक्टरों में विलिअस कॉलिक का आरोप कोलञ्ज-सफ़रावी (पित्तज-शूल और प्रवाहिका—मगस, मरोड़) दोनों पर होता है।

कोलञ्ज-सफ़ली--[अ०] पर्याय--मलावरोधज शूल। बराजी कोलञ्ज। (अं०) स्टर्कोरल कॉलिक (Stercoral-Colic)। वह शूल जो आँतों में मल के रुक जाने वा शुष्क हो जाने से उत्पन्न होता है। इस शूल में मलावरोध के कारण आँतों में कटने की-सी पीड़ा होती है और अत्यन्त निर्वलता होती है।

कोलञ्जन--[कना०] कुलञ्जन। (वृ० नि० २०)।

कोलटार--संज्ञा पुं० [अं० Coal-tar] कोलटार। अलकतरा।

कोलटार, प्रिपेयर्ड--संज्ञा पुं० [Coaltar, prepared] शुद्ध अलकतरा।

कोलटार--संज्ञा पुं० [अं० कोलटार] अलकतरा।

कोलजुझनुस्ते--[ते०] नागरमोथा। (डी० भ० ३, पृ० ५५४)।

कोल तैल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बेर के बीजों का तेल। बदरबीजतैल।

गुण--बहेडाबीजतैलवत्। दे० 'बहेडा'।

कोलदल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नख। नखी नामक गंधद्रव्य। (अम०)।

कोलद्वय--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्ष वा दो तोला। किसी के अनुसार १० मासे प्रमाण का मान।

कोलन--संज्ञा पुं० [अं० Colon] पञ्चमान्न। पाँचवीं आँत। कोलून

कोलनका, कोलका--[सुर०] आस। विलायती मेंहदी।

कोलनाभा--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपल। पिप्पली।

कोलनासिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वङ्किनी वृक्ष। (हारा०)।

कोलन्सोनिया--संज्ञा पुं० [ले० Colansonia] दे० 'कॉलन्सोनिया कैनेडेन्सिस (Colansonia canadensis)'।

कोलवर--[?] अञ्जुदान के बीज। तुल्लम अञ्जुदान।

कोलपला--संज्ञा पुं० दे० 'कोलपाला'।

कोलपाना--[ते०] दे० 'कोलपोता'।

कोलपार--संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक प्रकार का वृक्ष। खैरवाल। सोना। इनकी कलियों का मुरब्बा बनता है। (Bauhinia sp.)।

कोलपाला--संज्ञा पुं० [देश०]।

पर्याय--शृंगीर्ठा?, कोलफल, स्फोटकल, पीसज, अर्कपुष्पिका (मुहीत)--सं०।

वर्गन--एक वनस्पति जो कांडशून्य और शाखाबहुल होती है। पत्र आकृति में ताम्बूलपत्रवत्, किंतु उनसे मोटे और अत्यन्त हरे होते हैं। पुष्प अर्कपुष्प के समान और गुच्छों में लगते हैं। हिंदुस्तानवासी इसके फूल को 'पालाफूल' कहते हैं। फल धुंडी की तरह होता है और सूखकर फट जाता है और उससे धुनी हुई रुई की भाँति एक दस्तु उड़ती है। प्रकृति--प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। इसमें मलभूत द्रव वर्तमान होता है। गुण धर्म-तथा प्रयोग--कफ तथा प्रमेहनाशक और वाजीकरण है। (मुहीत)। दे० 'उतरन' और 'कोलपाला'।

कोलपालिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दधिपुष्पी (ध० नि०)।

कोलपुच्छ--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काँक। कंक। सफेद चील। (हारा०)।

कोलपाना--[ते०] शालपर्णी। सरिवन।

कोलपोता--[ते०] (Hedysarum-Gangeticum)।

कोल-फल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बेर। बदरफल।

(२) कंकडपिण्डी का फल। (बु० क०)।

कोल बालुक--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कङ्कूठ। (वै० निघ०)।

कोलबकाप--[ते०] कोलम्ब काय।

कोलबूकिआ-अपोजिटिफॉलिआ--[ले०]।

कोल भण्डिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मजीठ। मञ्जिष्ठा। (ध० नि०)।

कोलमञ्ज--संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] बेर की गूदी।

बदरास्थिसस्य। (बं०) कूलेर आँटिर शॉस। गुण--

मधुर, पित्त, तृषा तथा वमननाशक है। (राज०)।

कषाय, मधुर तथा पित्तनाशक है तथा तृष्णा, छर्दि

और वातघ्न है। (सु० सू० ४६ अ०)।

कोलमञ्जमेह--संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह विशेष।

कोलमञ्ज योग--संज्ञा पुं० [सं०] योग विशेष।

कोलमवु--[ता०] सामपर्णी। कोल्ला। शुराली (मल०)।

कोलमाऊ--दे० 'कोल्ला'।

कोलमीर--[] जड़ी लाइस्मलह। बे नामकी जड़ी।

कोल मूल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपलामूल। पिप्पली-

मूल। (रा० नि० ६६)।

कोल-मूला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपलामूल। (रा०)।

कोलम्ब-काय--[ते०] कोलंबा की जड़। दे० 'कलंबा'।

कोलम्बा डोमास्टिका--संज्ञा पुं० [ले० Columba-Domastica] कलंबा। कोलम्बा जो डोमास्क में होता है। दे० 'कलम्बा'।

कोलया--[सुर०] जुअदः। बु० क०।

कोल लाकड़ा--[सि०] डोकांमाली।

कोलवलिका--[कना०] तालमखाना।

(डाइमाँक भ० ३, पृ० ३६)।

कोलवल्लिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गजपिप्पली।

(प० मु०)। (२) चाव। चव्य। (रा० नि० व० ६)।

कोलवल्लिके--[कना०] तालमखाना। (डाइमाँक भ० ३, पृ० ३६)।

कोलवल्ले--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गजपीपल। (२) चव्य। चाव।

कोलवी--संज्ञा स्त्री० अलसी बीज।

कोलशिम्वी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) शिवी भेद।
कोलशिम्वि--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } सुअरासेम। केवाँच।
कोलशिम्वि--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कपिकच्छुभेद।
(व०) कटोरा

शिम, शुइयारे शिम। (सं०) कृतफला, खट्वा, शूकरा पादिका, काकाण्डोला, दधिपुष्पी, काकाण्डा, पर्यङ्कपादिका। गुण--वातघ्न, गुल्फाकी, उष्ण, वात-कफ, शुक्र, और अग्निमान्यकारक तथा बलवर्धक और रुचिकारक है। (चर०)। (रा० नि० व० ३)। (२) सेम की फली।

कोलशे--[को] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

कोलसः--[?] तालमखाना।

कोलसा--संज्ञा पुं० [द०] कोयला। काष्ठ अङ्गार। पुं० दे० 'छँगनी'।

कोलसी--[हि०, व०] बयाकूर।

कोलसुन्दा--[म०] } तालमखाना। (डाइमाँक

कोलसेका झाड़ू--[द०] } भ० ३, पृ० ३६)

कोलहाल--[वम्ब०] कुलाहल। भूकदम्ब। कोलाहल। कुक्शिमा-व०।

कोला--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बैर का पेड़। बैर। बदरी वृक्ष। (श० र०)। (२) छोटी पीपर। पिप्पली। (रा० नि० व० ६)। (३) गोरखमुण्डी। महाश्रावणी। (रा० नि० व० ५)। (४) चव्य। चाव। (भा० पू० १ भ०)।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) गीदड़। (२) विलायती पेठा।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) साही। शल्लकी जंतु। (२) गरीयुलजलीदा।

संज्ञा पुं० [अ० Kola] अफ्रिका के गर्म प्रदेशों में होने-वाला एक पेड़ जिसके फल अखरोट की तरह होते हैं। इन फलों के बीजों में थकावट दूर करने और नशे का चस्का छुड़ाने का गुण होता है। बीज निर्मली के समान जल साफ करने के काम में भी आते हैं। (ले०) स्टेरक्युलिआ एक्युमिनेटा (Sterculia-Acuminata), कोला एक्युमिनेटा (Cola Acuminata); (अ०) कोलानट (Kola nut)।

उद्भवस्थान--यह पश्चिमी अफ्रीका में अधिक होता

है। किन्तु अब भारतवर्ष में विशेषकर कलकत्ता के वानस्पतिक उद्यान में भी रोपण किया गया है।

रासायनिक-संगठन--इसमें २.५ प्रतिशत कैफीन (Caffeine), ०.२ प्रतिशत थियोब्रोमीन (Theobromine) और ग्लूकोसाइड का अंश होता है।

गुण-कर्म--पत्र-स्वरस लगाने से अत्यन्त शीघ्र क्षत का नाश होता है। यह अत्यन्त पौष्टिक है। इसके विभिन्न प्रस्तुत योग कोला टानिक, कोलावाइन, कोला चांकोलेट इत्यादि नाम से विकते हैं।

कोलाइडमर्करी--संज्ञा स्त्री० [अ० Colloid mercury] इसके काले रंग के भारी कण होते हैं जिनमें धातुवत् चमक होती है।

कोलाइ(य) ड सिल्वर--संज्ञा पुं० [अ० Colloid silver] कोलारगल। श्लेष्माभीय रजत। (पा० द्र० गु० वि०, पृ० ३७२)

कोलाइडल-सिल्वर--संज्ञा पुं० [अ० Colloidal silver] दे० 'कोलाइड-सिल्वर'।

कोला-एक्स्ट्रैक्ट--[अ० Kola Extract] कोलासत्व। यह अत्यन्त बलवर्धक है। दे० 'कोला'।

कोलाइटिस--संज्ञा पुं० [अ० Colitis] कोलन का शोथ। पञ्चमात्रप्रदाह, वरम कोलून।

कोला-एलिक्सीर--संज्ञा पुं० [अ० Kola-elixir] कोला द्वारा निर्मित एक प्रकार का सुरासव (टिंचर) है। गुण--यह निर्वलतानाशक है। मात्रा-- $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम।

कोलाकासाग--संज्ञा पुं० विलायती पेठा।

कोलाकुयन्ना--[ते०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

कोला-चाकोलेट--संज्ञा पुं० [अ० Kola-chacolet] कोला द्वारा निर्मित चाकोलेट (मिठाई)।

कोलात्मज--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बदरफल। बैर। बदरी-फल। (वै० निघ०)।

कोलादि सण्डूर--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] परिणामशूल में प्रयुक्त एक योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि--चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पीपल तथा जवाखार समान भाग (२-२ तोला) ग्रहण-कर चूर्ण करें। इसमें शुद्धमण्डूर १० तोला मिश्रितकर सुरक्षित रखें। गुण तथा सेवन-विधि--भोजन के आदि, मध्य तथा अन्त में सेवन करने से परिणामशूल, समस्त शूल तथा वात-कफरोग का नाश होता है। अनुपान--गोदुग्ध। (च० द० परिणा० शूल० चि०)।

कोलाद्य घृत--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक घृतयोग।

कोलाद्यवलेह--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का अवलेह।

कोला नट--संज्ञा पुं० [अ० Kola-nut] कोलाफल। दे० 'कोला'।

कोलापर--[?] अञ्जुदान के बीज । तुल्य अञ्जुदान ।
 कोलाफल--संज्ञा पुं० [] कोला नट । दे० 'कोला' ।
 कोलापलुइड-एक्स्ट्रेक्ट--[अ० Kola fluid-Extract] कोला
 का तरल सत्व । दे० 'कोला' ।
 कोला फल--संज्ञा पुं० [अ० Kola-fruit] कोला फल । दे०
 'कोला' ।
 कोलाब--
 कोलायड द्रव्य--संज्ञा पुं० [अ० कोलायड Colloid+हि०
 द्रव्य] विलयन के दो भेदों में से एक । जिन द्रव्यों के
 स्फटिक नहीं बन सकते अथवा बनते हैं तो बहुत कठिनाई
 से, उन्हें 'कोलायड' नाम दिया गया है । प्रोटीन, प्रमुण
 शर्करा आदि द्रव्य--तथा सुविदित द्रव्यों में गोंद, रबर,
 जेली आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं ।
 कोलायड सिल्वर--दे० 'कोलाइड सिल्वर' ।
 कोलागर्ल, कोलागर्ल--संज्ञा पुं० [अ० Collargol]
 श्लेष्माभीय रजत । (पा० द्र० गु० वि०, भ० १, पृ०
 ३७२) । दे० 'अर्जेंटाइ नाइट्रास' ।
 कोलावर वल्ली--
 कोलावाइन--संज्ञा पुं० [अ० Kola wine] कोला द्वारा
 प्रस्तुत-मद्य ।
 कोलाबु--[देश०] (मल०) कोल । डी० भ० १, पृ० ५०९ ।
 [टिब्रेवेली, ता०] सामपर्णी-कोल्ला । गुराली--मल० ।
 (Hard-wickia-Pinnata) । (डाइमॉक भ० १, पृ०
 ५०६) ।
 कोला वेपर्ज--संज्ञा पुं० [अ० Kola-Vepours] कोला-
 वाष्प ।
 कोलास्थि--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वेर की गुठली । बदरा-
 स्थि । (बं०) कूलर आँटि ।
 कोलास्थि-योग--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक योग जिसमें
 वेरकी गुठली पड़ी है ।
 कोलाहल--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भुँइकदम्ब । (बं०) कूक्षिमा ।
 दे० 'कुलाहल' ।
 कोलि--संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] वेर । बदरी । (बं०) ।
 कूलगाछ । (त्रिका०; अ० टी० भ०) ।
 कोलिअस-एरोमेटिकस-- (Coleus-Aromaticus) }
 कोलिअस-अम्बोइनिकस--[ले० C. Amboinicus] }
 कोलिअस-कानोसिस--[ले० C. carnosus] }
 पथरचूर ।
 कोलिअस-स्पाइकेटस--[ले० Coleus-spicatus] पाषाण-
 भेद । हत्थाजोरी । करज्योड़ी । (हि०) सीता की
 पञ्चोरी । पथर-चूर । अजवायन की पत्ती । (Anisoc-
 hilus carnosus) ।
 कोलिआर--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झाड़ीदार पेड़ ।
 कोलिका--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वेरभेद । घण्टा-

वदरी । (बं०) शेयाकूल । (२) सफेद केंवाँच । (वै० निघ०) ।
 (बं०) सफेद आलाकुशी ।
 कोलिकेकुतार--
 कोलिञ्जन--[म०] कुलंजन । (वृ० नि० २०) ।
 कोलिपत्र--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वेर की पत्ती ।
 वदरीपत्र । (२) नख । नखी नाम का गन्धद्रव्य ।
 कोलियार--[पं०] सफेद कचनार । कोइलार ।
 कोलिरा--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकड़ासिगी ।
 कोलिस्ता--[कों०] तालमखाना ।
 कोलिस्था--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तालमखाना । कोकिलाक्ष ।
 कोली--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वेर । बदरी । बदरवृक्ष ।
 कोली--[?] समुद्रफेन ।
 कोलीकून--[यू०] खरउलकत्व ।
 कोली-च-चूटर-- [म०]
 (डी० भ० ३, पृ० ९५) ।
 कोलीन--संज्ञा पुं० [अ० Choline] एसिटिल-कोलीन का
 एक उपादान ।
 संज्ञा पुं० [अ० Kolin] कोला सत्व । दे० 'कोला' ।
 कोलीन ईस्टरेज--संज्ञा पुं० [अ० Choline esterase]
 ईस्टरेजों में प्रमुख ईस्टरेज जो एसिटिल-कोलीन का
 विघटन करता है ।
 कोलीनर्जिक-नाडीसूत्र--संज्ञा पुं० [अ० Cholinergic+]
 (सं०) नाडीसूत्र (Nerve) एसिटिलकोलीन की सहायी नाड़ी ।
 कोलीनेस्टरेज--संज्ञा पुं० [अ० Cholinesterase] एक
 एन्जाइम विशेष ।
 कोलु--[गु०] कोला । अलसी ।
 कोलुई--संज्ञा स्त्री० [] अलसी के बीज ।
 कोलुऊसातूस--[यू०] गुकाई ।
 कोलुलो--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटा रास्ता । माईमूल ।
 (वृ० नि० २०) ।
 कोलूकती, कोलूकुमती, कोलूकूमा--[यू०] कद्दू । अलावु ।
 कोलूकंदून--[सुर०] बिस्फायज ।
 कोलूगोरस--[रू०] काँजी ।
 [यू०] गुकाई ।
 कोलून--संज्ञा पुं० [अ०] पञ्चमान्न । वक्राकार अन्न ।
 यह स्थूलान्न में से एक है जो कानी आँत (अंत्र) के अंतिम
 भाग से प्रारंभ होकर सरलान्न में समाप्त होती है । यह
 पेड़ के दाहिने ओर कानी आँत से प्रारंभ होकर प्रथम
 ऊपर को जाती है और यकृत के नीचे पहुँचकर बल
 (खम) खाती है । फिर आड़ी होकर नाभि से बाईं ओर
 को जाती है और तली के नीचे खम खाकर नीचे को
 जाती है और सरलान्न से जा मिलती है । (अ०) कोलन
 (Colon) ।
 कोलून नाजिल--संज्ञा पुं० [अ०] कोलूनका तीसरा हिस्सा

जो तली से नीचे की ओर जाकर बाईं ओर से कूल्हे के गड्ढे में पहुँचता है। (अं०) डिसेन्डिंग कोलन (Descending colon)।

कोलून मुस्तअरिज—संज्ञा पुं० [अं०] आड़ा कोलून। कोलून का दूसरा हिस्सा जो आड़े यकृत से प्लीहा की ओर जाता है। (अं०) ट्रान्सवर्स कोलन (Transverse colon)।

कोलून साइड—संज्ञा पुं० [अं०] चढ़नेवाला कोलून। कोलून का प्रथम हिस्सा जो दाईं ओर के कूल्हे के गड्ढे से ऊपर को यकृत तक चढ़ता है। (अं०) एसेन्डिंग कोलन (Ascending colon)।

कोलून हाबित—[अं०] दे० 'कोलून नाज़िल'।

कोलूस—[सुर०] विस्फाड़।

कोलोकेसिया-इण्डिका—[ले० Colocasia indica] मानकन्द। मानकच्छू।

कोलोकेसिया एण्टिकोरम्—[ले० Colocasia antiquorum] अरुई। घुइयाँ।

कोलेगाँग—वि० [अं० Cholagogue] पित्तविरेचक।

कोलेगाँग पुर्गेटिव—संज्ञा पुं० [अं० Cholagogue purgative] पित्तविरेचक द्रव्य। वह द्रव्य जो पित्त का उत्सर्ग करता है।

कोलेजा (झ) न—[मं०] जंगली अंगूर। बड़ा अमलोल। (मं०) नादन। (अं०) वाइटिस इंडिका (Vitis indica)।

कोलेटा बोटला—[] (डी० भ० ३, पृ० ४४)।

कोलेब्रूकिया ऑयष्टिकोलिया—[ले०] (पं०) शकरदाना। (मेमो०)।

कोलेरिया क्रिस्टेटा—[ले० Colaria cristata] (मेमो०)।

कोलेस्टेरीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Cholesterin]

कोलेस्टेरोल—संज्ञा पुं० [अं० Cholesterol] रोचन। गोरोचना। गोलोचन। वक्तव्य—गोरोचना गौंके पित्ताशय से प्राप्त पित्ताश्मरी ही है। पित्ताश्मरी कोलेस्टेरोल का ही ग्रथितरूप है। इसलिये कोलेस्टेरोल को रोचना नाम दिया है।

कोलेप्स—संज्ञा पुं० [अं० Collapse] हृदय की गति बंद होकर शरीर का शीतल पड़ जाना। निपात।

कोलेदा—संज्ञा पुं० [सं० कोल=बैर+अंड] महुए का पका फल। गोलैदा। कोइना।

कोलो—संज्ञा पुं० [राजपुताना] (१) पेठा। कुष्माण्ड। (२) अलसी।

कोलोकिन्थिस—दे० 'कोलोसिन्थिस'।

कोलोकेसिया इण्डिका—संज्ञा पुं० [ले० Colocasia

Indica] अरुई। घुइयाँ। कसालु।

कोलोकेसिया-एण्टिकोरम्—संज्ञा पुं० [ले० Colocasia Antiquorum] मानकन्द। मानकच्छू।

कोलोगोरस—[रुमी] काँजी। काझिक।

कोलोजन—संज्ञा पुं० [बम्ब०] एक लता है जिसका फूल हरा-पीला, फल अण्डाकार, बीज १, पक्व काला होता है। कोलेजन। कोलेजन। (मं०) नदेन। (नैपा०) चर्चर। (ले०) (Vitis adnata Wall)।

कोलोडिअन—[अं० Collodion]।

कोलोडिअन ऑव सेलिसिलिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Collodion of salicylic Acid] कॉर्नपेंट। (पा० द्र० गुं वि० भ० १, पृ० २८०)।

कोलोडियम् एसिडाई सेलिसिलिसाई—संज्ञा पुं० [ले० Collodium Acidi Salicylici] कॉर्नपेंट।

कोलोडियम् वेलाडोनी—संज्ञा पुं० [ले० Collodium Belladonna] इम्प्लास्ट्रम् वेलाडोनी फ्लुइडम्। (पा० द्र० गुं वि० भ० १, पृ० ५४८)।

कोलोफूनी—

कोलोबोमा—[अं० Coloboma] किसी अंग की सहजविकृति।

कोलोबोमा इराडिस—[अं० Coloboma-Iridis] नेत्रार्म। ऐन अरबियः।

कोलोस्ट्रम—संज्ञा पुं० [ले० Colostrum] यह नवप्रसूता के दुग्ध द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। जब शिशु को पतला, हरा-पीला पित्त-श्लेष्मायुक्त विविध वर्ण का दस्त होता है और मल की गन्ध में अधिक अम्लतायुक्त गन्ध आती है और शरीर से भी उक्त प्रकार की गन्ध आती हो तब इसके उपयोग से लाभ होता है। मात्रा—६ से ३० शक्ति।

कोलोसिन्थ—संज्ञा पुं० [अं० Colocynth] इन्द्रायन।

कोलोसिन्थिस—संज्ञा पुं० [ले० Colocynthes] इन्द्रायन।

कोल्डस—संज्ञा पुं० [अं०] कूट। (डाइमॉक भ० २, पृ० २९४)।

कोल्ड—संज्ञा पुं० [अं० Cold] शरदी। शीत। (अं०) चिल (Chill)।

कोल्ड-इन्फ्यूजन—[अं० Cold Infusion] हिमकषाय। (पा० द्र० गुं वि० भ० १, पृ० १४१)।

कोल्डकॉटरी—संज्ञा स्त्री० [अं० Cold cautery] हिम-दग्ध। बर्फ द्वारा दग्ध।

कोल्ड-क्रीम—[अं० Cold cream] (पा० द्र० गुं वि०)।

कोल्ड एफ्यूजन—[अं० Cold affusion] शीत आनेक।

कोल्ड डूश—संज्ञा पुं० [अं० Cold douche] शीतल परिषेक। ठंडे पानी से धारना।

कोल्ड-पल्स--संज्ञा पुं० [अं० Cold-Pulse] शीतल नाड़ी ।
नवज बारिद ।

कोल्ड फूट-बाथ--सं० पुं० [अं० Cold foot-bath]
शीतपाद-स्नान ।

कोल्ड-बाथ--संज्ञा पुं० [अं० Cold-bath] शीतावगाह ।
शीतलवारिस्नान । शीतल-जलावगाहन । (अ०) हमाम
बारिद, हमाम रतव, सर्द गुसल ।

कोल्ड-वेट-शीट-पैकिंग--संज्ञा पुं० [अं० Cold-wet-sheet-
packing] शीतलावेष्टन या शीतल जल से भीजे हुए
चादर से लपेटना । (पा० द्र० गु० वि० भ० १, पृ०
१४२) ।

कोल्ड-शावर-बाथ--[अं० Cold-shower-bath] शीत-
धारास्नान । शीतल-फुवार-स्नान । हमाम बारिद
फौहारः । हमाम रतव फौवारः । सर्द गुसल
फौवारः ।

कोल्ड-सिटज-बाथ--[Cold-Sitz-bath] आवजन-वारिद ।
कोल्ड-स्पंजिङ्ग--[अं० Cold-Sponging] ज्वर की
अत्यन्त उष्णता में सिरका आदि से वस्त्र भिगाकर
शरीर को पोंछना । शीतप्रोच्छन । (पा० द्र० गु० वि०,
भ० १, पृ० १४३) ।

कोल्ड-हिप-बाथ--[अं० Cold-Hip-bath] शीतकटिस्नान ।
अवगाह ।

कोल्डीनिआ-प्रोकम्बेन्स--[ले०]
(डाइमाँक भ० २, पृ० ५२७) ।

कोल्या--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपल । पिप्पली ।

कोल्युटी-नैपालेन्सिस--[ले०]
(डाइमाँक भ० १, पृ० ५३२) ।

कोल्युनी बाल्सेमिआ--[ले० Colunicea-Balsamea,
Roxb.] । पर्याय--(सं०) आम्रगन्धक । अम्बुजा ।
(हिं०) कुत्तरा । (बं०) कर्पूर । कर्पूरहरिद्रा । (बं०)
आमआद्दा । (हिं०) अम्बाहल्दी । (डाइमाँक भ० ३,
पृ० ७) ।

कोल्ल--[मल०] कोलावु । (डाइमाँक भ० १, पृ० ५०९) ।

कोल्लक-काय-विल्लै--[ता०] सरपुंखा । सर्पाक्षी । सरफोंका ।

कोल्लम-काय किञ्जङ्ग--[मल०] राकसगुडा ।

कोल्लय-कोट्टय-नेल्लय--[ता०; ते०] मागाचेट्टु । (Premna-
tomentosa, Willd)

(डाइमाँक भ० ३, पृ० ७०)

कोल्ला--[मल०] पर्याय--(मल०) सामपरनी । मतायन ।
गेन्ने, शुराली; (ता०) कोलावु; (कना०) पेण्णे; (ले०)
हार्डविकिआ-पिन्नेटा (Hard-wi kkcia-Pinnata) ।

बर्बैर कुल [Leguminosae] ।

उद्भवस्थान--कनाडा, कर्नाटक तथा ट्रावङ्कोर ।

परिचय--यह एक प्रकार का तैलीय निर्यास (Oleo-

Resin) है । इसमें स्वाद तथा गन्ध कोपेबा (Copaiba) तुल्य होता है ।

रासायनिक संगठन--इसमें एक प्रकार का उत्पत्-तैल
२५ से ४० प्रतिशत होता है । इसके अतिरिक्त इसमें गोंद
और अम्ल पदार्थ भी होता है ।

गुण तथा उपयोग--इसका तेल १५-२० बूँद की मात्रा
में बतासा में रखकर सेवन करने से पूयमेह (सूजाक)
निश्चय नष्ट होता है । अन्य गुण--कोपाइवातुल्य है ।

कोल्ला-बार्क--दे० 'क्विल्लाजा बार्क' ।

कोल्लिडीन--[अं० Collidin] ।

(डाइमाँक भ० २, पृ० ६४१) ।

कोल्लि-वित्तलु--[ते०] काला दाना ।

कोल्लिसोनिआ केनाडेन्सिस--[ले० Collisonia canad-
ensis] ।

कोल्लिसोनीन--[अं० Collisonin] (वे० मी० २१२) ।

कोल्ला बार्क--[अं० Colla bark] पर्याय--(ले०)

कोल्लाई कॉर्टेक्स (Collai Cortex) ।

उद्भवस्थान--अमरीका के पश्चिमीय प्रदेश में एक
कोचिल्ली नामक स्थान है, वहाँ यह उत्पन्न होता है ।
चिल्ली भाषा में इसको 'कोल्ला' कहते हैं । कोल्ला का
अर्थ घोंघा होता है । वहाँ के व्यक्ति इसके द्वारा साबुन
प्रस्तुत करते हैं । इसमें से रीठा की भाँति झाग निकलता
है और वस्त्र धोने के कार्य में आता है । इसको पनामा
बार्क वा सोपबार्क भी कहते हैं । इसमें से एक प्रकार का
सत्व निकाला जाता है । पानी में घोलने से इसमें से
झाग उत्पन्न होता है । अंग्रेजी में इसको सेपोनिस कहते
हैं । इसमें ग्लुकोसाइड और कोल्लाटिक एसिड के
अतिरिक्त सेपोटाक्सीन भी होता है । उक्त सत्व अरिष्टक
(रीठा) में प्राप्त होते हैं ।

परिचय--इसकी छाल के बड़े-बड़े खण्ड होते हैं जो
प्रायः २ फुट लम्बे, ४ इंच चौड़े, ३ इंच स्थूल होते हैं ।
इसका बाह्य वर्ण धूसर, श्वेत, रक्ताभ और आन्तरीय
भाग श्वेत, चिक्कण, गन्धहीन होता है । इसके चूर्ण को
आघ्राण करने से छींकें आती हैं ।

गुण-कर्म--छिक्काकारक, श्लेष्मनिस्सारक तथा पुरातन
नासाप्रदाहनाशक है । उपयोग--इसका मरहम जीर्ण
क्षत में उपयोगी है । इसको पीसकर उपटन करने
से दुर्गन्धयुक्त स्वेदस्त्राव में लाभ होता है । इसके
अतिरिक्त इसके उपयोग से छींप और शिर में होनेवाली
फुंसियाँ नष्ट होती हैं । इसके आन्तर उपयोग से शुष्क
श्लेष्मा का उत्सर्ग होता है । यह जीर्ण कास तथा कृच्छ्र
श्वास में उपयोगी है । इसके अतिरिक्त यह गर्भस्त्रावक है ।

हानिकारक--रक्तस्त्रावक एवं गर्भघातक है । स्वरयंत्र-
शोथ में इसका कदापि उपयोग नहीं करना चाहिए ।

इसमें विष का प्रभाव होने से आन्तर उपयोग बहुत समझकर किया जाता है।

कोल्लु—[ता०, मल, सि०] कुलथी।

कोल्लुक—[ता०] सरफोंका। सरपुंखा।

कोल्लुक-काय विलै—[ता०] सरफोंका के बीज।

कोल्लोट्युरीन—[अ० Colloturine] तिल्वक सत्व। रोध्रीन। लोध्र सत्व। दे० 'लोध्र पठानी'।

कोल्हना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाब में होता है।

कोवई—संज्ञा स्त्री० [ता०] कुंदरू। बिम्बी। कंदूरी। कुनरू। (डाइमॉक भ० २, पृ० ४७।)

कोवटी—संज्ञा स्त्री० [म०] कुष्ठवैरी। चावलमूगरा। तुवरक।

कोवड्या—[गु०, द०, वस्व०] चकवड। पमाण। चक्रमर्द।

कोवडिया—[गु०] पमाड। चकवड। चक्रमर्द। (डाइमॉक भ० १, पृ० ५१५)।

कोवज्ञा-मिलपोड़ी—संज्ञा स्त्री० [ता०] पर्याय—(हिं०) छोटा चाँद। (बं०) चन्द्रा।

कोवरी बूटी—[पं० कौड़ी बूटी] छोटी नोनिया। छोटा कुलफा।

कोवल—[लेपचा] पर्याय—(कुमार्यु) उदेश।

कोवा—संज्ञा पुं० कोशा। रेशम का कोशा। कोया। [मल०] कुनरू। बिम्बाफल।

कोवादोड़ी—संज्ञा स्त्री० कोवाठोठी। काकतुण्डी। (Asclepias Curassavica)।

कोवानियून—[यू०] समुद्रफेन। समुद्रझाग।

कोवा पारस—[यू०] वाकला।

कोवातूरा—संज्ञा पुं० कैलिकार्पा-लैन्सियोलेरिया (Calli-carpa-Lancyolaria)।

कोवार—संज्ञा पुं० (१) ग्वारपाठा। घृतकुमारी। (२) गन्दना।

कोवारकण्डल—संज्ञा पुं० देवकांडर। जलधनियाँ। कवीकज।

कोवार चिकना—संज्ञा पुं० पमाण के बीज। हव्व-कुलकुल।

कोवरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोवाल—(?) सूकार। (बु० क०)।

कोवित—संज्ञा पुं० हिं० कवोट [त] कैथ। कपित्थ। कठवेल। (डाइमॉक भ० १, पृ० २८१)।

कोविद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तिलक वृक्ष। (वै० निघ०)। (२) पण्डित। (घ० नि०)।

कोविदार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोइलार। जंगली कचनार। दे० 'कचनार'। (घ० नि०)। (२) इसका फूल।

कोविदारक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोइलार। जंगली कचनार। (अ०) बौहिनया वैरिगेटा (Bauhinia-Var-igata)। दे० 'कचनार'।

कोविष्णु—[ता०] कोबी। गोभी।

कोवु—[ते०] वसा। चरबी।

कोश, कोशक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चर्मकोश। (भा० म० ४ भ०)। (२) व्रणबन्धनविशेष। (सु० सू० १८ अ०)। (३) जावित्री। जातिकोष। (वै० निघ० २ भ०)। (४) सोना। स्वर्ण। (५) चाँदी। रौप्य। (अम०)। (६) पात्र। वरतन। (७) कोष। मुकुल (कली)। (८) ईख। गन्ना। कुशियार। (९) रेशम का कोया। कुसयारी।

कोशकाम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नद्याम्र। समष्टील। (घ० नि०)।

कोश(ष)कार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पौंढा। कुशियार नाम की ईख। कोषकृत्। कुसियार। गुण—गुरुपाकी शीतल, क्षय और रक्तपित्तनाशक है। (भा० पू० भ० १ इक्षुवर्ग)। (२) रेशम का कीड़ा। (३) कृष्णक्षु। कोषकृत्। करिया कुसियार।

कोशकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का जलचर पक्षी। (वै० निघ०)।

कोशकोट—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा।

कोशकृत्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोशकार। कुशियार। कृष्णक्षु। (वै० निघ०; भा०)।

कोशगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकजंघा। मसी।

कोशचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

कोशज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेशम। (२) सीप, शंख, घोंघे आदि में रहनेवाले जीव। (३) मोती। मुक्ता।

कोशधान्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोशान्न। (घ० नि०)।

कोशपातुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कोशप्राप्त वृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वृद्धि जिसमें भ्रन्त्र बहिर्वर्द्धणी छिद्र में से होकर अण्डग्रन्थि के ऊपर तक पहुँच जाय। कोशयुक्त वृद्धि। (सु०)। आधुनिक परिभाषा में इसको 'पूर्ण (वर्द्धणी) आन्त्रवृद्धि' कहते हैं। (अ०) फ्रक कीसी, फ्रतकुल् उरबियः कामिल। (अ०) एन्सिस्टेड हर्निया (Encysted hernia), कम्प्लीट हर्निया (Complete hernia)।

कोशफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बंदाल। देवदाली। (२) तरोई (कोशातकी), घिया, तरोई, कद्दू, कुम्हड़ा, ककड़ी, तरबूज इत्यादि फल। (३) बेर। (बं०) शेयाकूल। (रा० नि० व० २३)। (४) कंकोल। (अम०)। (५) जायफल।

कोशफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) घीया, तरोई,

लीकी इत्यादि की बेल । कोषफल, (२) नेनुआ । महा-
कोशातकी । बड़ी तरौई । (बं०) धुन्धुल । (३) बंदाल ।
देवदाली । (रा० नि० व० ३) । (४) पीला नेनुआ ।
पीतघोषा । (रत्ना०) । (५) सफेद निसोथ । श्वेत
त्रिवृत् । (६) काली निसोथ । कृष्णत्रिवृत् । (७)
ककड़ी भेद । त्रपुषी । (बं०) शशागाछ । (रा० नि० व० ७) ।
कोशबन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक बन्ध जो तलवार के
म्यान के सदृश लंबा होता है । (अं०) शीथ बॅण्डेज
(Sheath bandage) । (सु० सू० १८ अ०) ।
कोशम—संज्ञा पुं० [सं० कोशम] दे० 'कोसम' ।
कोशम्ब (म्भ)—संज्ञा पुं० दे० 'कोसम' ।
कोशवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घोषा । नेनुआ । (सु०
चि० १८ अ०) ।
कोशवासी (—वासीन)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१)
घोंघा । शम्बूक । (२) तन्तुकीट । (३) स्फटिक
विशेष । (के०) ।
कोशस्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाँच प्रकार के कोश में रहने-
वाले जीवों में से एक । जैसे—शंख, शुक्तिका (सुतही),
घोंघा, भल्लूक इत्यादि । (सु० सू० ४६ अ०) । शंख, नख,
सीप, शम्बूक कर्कट (केकड़ा) तथा इस प्रकार के अन्य
जीव जो कोश (ढक्कन) में रहते हैं । (वै० निघ०; सु०
सू० ४६ अ०) ।
कोशस्थमांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोशस्थ जीवों का
मांस । गुण—मधुर, स्निग्ध, शीतल, बृंहण, बहुवर्च (मल)
वर्धक है । (भा० पू० मांसवर्ग) । दे० 'कोशस्थ' ।
कोशस्थ वर्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीवों का एक वर्ग
जिसमें शंख, शंखनख, शुक्ति, शम्बूक, भल्लूक (कवरी)
प्रभृति जीवों का समावेश होता है । (सु० सू० ४६ अ० १११) ।
कोशा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मद्य । शराब । (वै०
निघ०) ।
कोशाङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] इत्कट । बहुमूल ।
खरच्छद । वाटी । (बं०) ईत्कड़ । उकड़ा ।
कोशातक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेनुआ । कोषालता ।
(मे०) ।
कोशातकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरौई । तुरई ।
कोशातकी तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तरौई के बीज का
तेल । निर्माण-विधि—कड़वी तरौई और कड़वी तुम्बी
इनके बीज और सोंठ का कल्क बनाकर, तेल के साथ
पकाकर तेल प्रस्तुत करें । गुण—इसके उपयोग से
विविध प्रकार के दुष्टव्रण, उपदंश जिसमें लिंग का मांस
गलकर केवल अण्डकोष मात्र शेष रह गया हो, इस तेल
के उपयोग से आराम हो जाता है । (भा० म० उपदंश
चि०) ।
कोशाद—[फा०] जित्तियाना ।

कोशान्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोशगत अन्न । वह अन्न
जो कोशस्थ (ढक्कन में) होते हैं । (ध० नि०) ।
कोशाब—[फा०] अंगूर का स्वरस ।
कोशाम—संज्ञा पुं० पहाड़ी आम । दे० 'कोसम' ।
कोशाम्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोसम नामक वृक्ष या
उसका फल । (ध० नि०) । दे० 'कोसम' ।
कोशाम्न तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोसम के बीज का
तेल । गुण—सारक, तिक्त, अम्ल, मधुर, पथ्यकर रोचन
पाचक तथा कृमि, कुष्ठ और व्रणनाशक है । (रा० नि०
व० १५) ।
कोशिआ—संज्ञा पुं० दे० 'क्वसिआ एक्सेल्सा' ।
कोशिम्व—संज्ञा पुं० [पं०] कोकम । रतम्बा । (अं०)
रेड मैंगो (Red mango) ।
कोशिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वनमूँग । मुद्गपर्णी ।
मुगवन । (बं०) मूगानी । (रा० नि० व० ३) ।
कोशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नखी । व्याघ्र नख ।
(रा० नि० व० १२) । (२) जूता । उपानह ।
(हारा०) । (३) धान्य इत्यादि के शुङ्ग (शिगूफा) । (हे०
च०) ।
संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] नखी नाम का गंध-
द्रव्य । (रा०) ।
कोशु—संज्ञा पुं० [पं०, हिं०] बबुरी, पुदना, कुस्मा,
विन्युरा । (मिमो०) ।
कोशुस—संज्ञा पुं० [म०] कोसम ।
कोशतः—संज्ञा पुं० [फा०] कुट । कुष्ठ ।
कोशतक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पलाशबीज, पलासपापड़ा,
पसदामा ।
कोशनः—[फा०] कुट । कुष्ठ ।
कोष (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जात्रित्री । जाति-
कोष । (२) शरीर की चरम इकाई । शरीर के चरम
अवयव । कोश । शरीर परमाणु । (अं०) सेल (Cell) ।
कोषकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ईख । गन्ना ।
कुशियार । (सु० सू० ४५ अ०) । दे० 'कोशकार' ।
(२) कीटभेद ।
कोषकारज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेशम का कीड़ा ।
कौषेय । रेशम । (रत्ना०) ।
कोषकाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेनुआ । कोषा लता ।
कोषचञ्चु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सारस पक्षी ।
(श० मा०) ।
कोषफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नेनुआ । घोषा-
लता । (२) कर्पूरगन्धी कक्कोल । शीतलचीनी ।
(भा० पू० १ अ०) ।
कोषफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीला देवताड़
वृक्ष । बंदाल । (रा० नि० व० ३) । (२) पीला नेनुआ ।

पीत घोषा । (प० मु०) । (३) लिम्पाक फल । नीबूभेद ।
(ब०) पातिलेबु ।
कोषला, कोषलाह्व—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जीवशाक ।
(प० मु०) ।
कोषवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरौई । कोशातकी ।
इसके यह दो प्रकार हैं—(१) धामार्गव और (२)
राजकोशातकी । (वा० सू० १५ अ०) ।
कोषवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अण्डवृद्धि, कुरण्ड ।
दे० 'वृद्धि' ।
कोषस्थ—वि० [सं० त्रि०] कोषवासी जीवमात्र । (सु० सू०
४६ अ०) । दे० 'कोषस्थ' ।
कोषा (कोषिन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चरण-
पादुका । खड़ाऊँ । (श० र०) । (२) वृक्ष का गोफा ।
शुङ्ग । (हे० च०) । (३) आम । आम्र वृक्ष । (श०
मा०) । (४) पीला नेनुआ । पीतघोषालता ।
कोषातकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरौई । तुरई ।
कोषातक्यादि तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपदंश रोग में
प्रयुक्त तैलयोग । दे० 'कोशातकी तैल' ।
कोषाधु—संज्ञा पुं० [सं०] (अ०) सेल्युलोज (Cellulose) ।
कोषाम्बी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ी तुरई । महा-
कोशातकी । (प० मु०) ।
कोषाम्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोशम । दे० 'कोसम' ।
कोषाम्र तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'कोशाम्र तैल' ।
कोषी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आम । आम्र ।
कोषीफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीला नेनुआ । पीत
घोषा लता ।
कोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुट । कुष्ठ औषधि ।
दे० 'कुट' और 'कूट' । (२) कुशूल रोग । (३) आमा-
शय, अग्न्याशय (अग्निरूप पाचक पित्त की क्रिया का
स्थान होने से पच्यमानाशय या क्षुद्रांत्र), पक्वाशय
(स्थूलान्त्र, उत्तरगुद, अधरगुद), मूत्रस्थान (वृक्क,
गवीनीद्वय तथा मूत्राशय), रक्ताशय (रक्त की उत्पत्ति
तथा संग्रह का स्थान होने से यकृत और प्लीहा), हृदय,
उण्डुक (बृहदन्त्रों का प्रारम्भिक भाग, चरक का पुरीषा-
धार) और फुफ्फुस ये सब मिलकर 'कोष्ठ' कहाते हैं ।
संक्षेप में आधुनिकों की उरोगुहा (थॉरेक्स Thorex),
उदरगुहा (एण्डॉमिन—Abdomen) तथा श्रोणीगुहा
(पेल्विस—Pelvis) ये तीन गुहायें या अवकाश (केविटीज
Cavities) मिलकर कोष्ठ कहाते हैं । चरकने पन्द्रह
कोष्ठाङ्ग नाम से कोष्ठ का यही अर्थ बताया है । (च०
शा० ७।१०) (४) शरीरमध्य । षड् (के अन्तर्गत
अवकाश) । (५) महास्रोतस् । (च० सू० ११।४८) यथा
आमाशय-पक्वाशय । (६) मृदु, मध्य और क्रूर भेद से
कोष्ठ इत्यादि । (सु० चि० ३३ अ०) ।

कोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धातुसत्वपातनार्थं कुठारी ।
इसका आयतन १ हस्त प्रमाण तथा विस्तार १६ अंगुल
प्रमाण होना चाहिये । (रसार्णव) ।
कोष्ठकान्तर रन्ध्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोष्ठगत छिद्र ।
कोष्ठकुलिजन—संज्ञा पुं० [म०] } कुलञ्जन ।
कोष्ठकोलंजन—संज्ञा पुं० [म०] }
कोष्ठगतवात (वायु)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोष्ठ
(उदरगुहा तथा उरोगुहा) में दूषित वायु मलमूत्र का
अवरोध; ब्रध्न (अन्त्रवृद्धि), हृद्दोग, गुल्म, अर्श और
पार्श्वशूल इन रोगों को उत्पन्न करता है । (च० चि०
२८।२४) ।
कोष्ठगतशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठ में शल्य होने
से आटोप, आनाह तथा व्रण के मुख से मूत्र, पुरीष और
आहार का दर्शन होता है । (सु० सू० २६ अ०
११ श्लो०) ।
कोष्ठपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षीरमूर्वा । एक प्रकार की
मुरहरी ।
कोष्ठभेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक रोग ।
(वै० निघ०) ।
कोष्ठवात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोष्ठगतवात ।
कोष्ठवात प्रशमन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वे द्रव्य
जो आँतों को उत्तेजित करते हैं, जिनसे आँतों की शक्ति
बढ़ती है, अधोवायु सरता है, डकार आती है और पेट
का दर्द कम होता है । उदाहरणतः सर्वसुगन्धिद्रव्य,
सोंठ, त्रिकटु, तगर, हींग, कस्तूरी । इनको अँगरेजी में
कार्मिनेटिव्स (Carminatives) और अरोमेटिक्स
(Aromatics) कहते हैं । (सं०) दीपनपाचन । (अ०)
कासिररियाह ।
कोष्ठस—संज्ञा पुं० [अ० Costus] कुट । कुष्ठीषध । दे०
'कुट' और 'कूट' ।
कोष्ठस अरेबिकस—संज्ञा पुं० [ले० Costus Arabicus]
कुस्त अरबी । अरबदेशीय कुट ।
कोष्ठस अरेबियन—संज्ञा पुं० [अ० Costus arabian]
कुस्त अरबी । अरबदेशीय कुट ।
कोष्ठस एलिजेन्ट—संज्ञा पुं० [फ्रां० Costus elegant]
केउआँ, केमुक ।
कोष्ठसंताप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोष्ठस्थ दाह । अन्तर्दाह ।
कोष्ठस रूट—संज्ञा पुं० [अ० Costusroot] कुट । कुष्ठ ।
कोष्ठस स्पेसिओसम् (स)—संज्ञा पुं० [ले० Costus
pseciosum (s)] केमुक । केउआ । दे० 'केमुक' ।
कोष्ठसमूह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोष्ठों का समाहार ।
कोष्ठसमुच्चय । दे० 'कोष्ठ' ।
कोष्ठागारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बिसुनरी नाम का
कीट जो लाखरस द्वारा गृहनिर्माण कर उसमें अण्डा

देता है और उसमें रहता है। शकरीगाल। (वं०) कुमीरेमाटी। गुण—यह परमरक्तरोधक है। (सु० प्रदर-चि०; वै० निघ०)।

कोष्ठागारी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्राणघातक कीट विशेष। इसके दंशन से सान्निपातिक रोग उत्पन्न होते हैं। (सु० कल्प० = अ०)।

कोष्ठाग्नि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह अग्नि जो जठर में रहकर अन्न को पचाता है। जठराग्नि। पाचकाग्नि। (निदान)। धात्वग्नि इसका अंशभूत है।

कोष्ठाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठमय अंग (दे० 'कोष्ठ')। ये कोष्ठाङ्ग पंद्रह हैं—नाभि, हृदय, क्लोम (अवतक सन्दिग्ध है), यकृत, प्लीहा, दो वृक्क, वस्ति, पुरीषाधार (उण्डुक), आमाशय, पक्वाशय, उत्तरगुद (रेक्टम—Rectum), अधरगुद (एनस—Anus), क्षुद्रान्न, स्थूलान्न और वपावहन—तैलवर्तिका, (Peritoneum, पेरीटोनियम्)—‘पञ्चदश कोष्ठाङ्गानि तद्यथा—नाभिश्च हृदयं च, क्लोम च, यकृच्च, प्लीहा च, वृक्कां च, वस्तिश्च, पुरीषाधारश्च आमाशयश्च, पक्वाशयश्च, उत्तरगुदं च, अधरगुदं च, क्षुद्रान्नं च स्थूलान्नं च, वपावहनं चेति (च० शा० ७।१०) ॥—क्लोम पिपासास्थानम्। वस्तिर्मूत्राशयः। उत्तरगुदो यत्र पुरीषमवतिष्ठते, येन तु पुरीषं निष्क्रमति तदधरगुदम्। वपावहने मेदस्थानम् तैलवर्तिकेति ख्यातम् ॥ चक्रपाणि ॥—कोष्ठशाखाश्रित कामला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामला का एक भेद जिसमें पाण्डुरोगी के पित्तप्रकोपक आहार-विहार का सेवन करने से उसके सारे शरीर में पित्तकी अत्यन्त वृद्धि होकर मूत्र, त्वचा आदि के साथ पुरीष भी पीत हो जाता है। देखिये—च० चि० १६।३४-३६। इस भेद में पाण्डु की ही चिकित्सा की जाती है।

कोष्ठाश्रय कामला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामला भेद। कोष्ठिकयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भाथी जिससे लोहार लोह रश्मि करता है। भ्राष्ट्री। धमनयन्त्र। धौकनी। भाषा में ‘भाथी’ वा ‘कुठारी’ भी कहते हैं। दे० ‘कोष्ठक’। कोष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूषा। कुठारी। धातुविद्रावणपात्र विशेष।

कोष्ठीयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भाथी। भ्राष्ट्री। धमनयन्त्र। दे० ‘कोष्ठक’।

कोष्ठेशु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद ईख, स्वेत इक्षु। कोष्ठो—[गोवा] कटुकपित्त, कुष्ठवैरी। चावलमूगरा। (Hydnocarpus wightiana)।

कोष्ण—वि० [सं० त्रि०] किंचिद् उष्ण। अल्प उष्ण। ईषदुष्ण। सुहाता गरम। नीम गरम। (रत्ना०)।

कोष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुनरू। कंदूरी।

कोसंब—[को०] खरपत। घोगरं।

कोसिब—[म०] कोसम।

कोसिब वृक्ष—संज्ञा पुं० [] कोशाम्। कोसम।

को (को)सज—[?] एक प्रकार का सामुद्रजंतु जो मनुष्य के ऊपर सवार हो जाता है।

कोसभ—संज्ञा पुं० दे० ‘कोसम’।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० कोशाम्] एक प्रकारका बड़ा पेड़ जो पंजाब, मध्य भारत और मदरास में अधिकता से होता है और जिसका पतझड़ प्रतिवर्ष होता है। इसमें लाख बहुत लगती और बहुत अच्छी होती है। इसका फल कुछ खट्टापन लिये हुए मीठा होता है। पर्या०—(हिं०) कोशम, कोशंभ, छोटा आम; (वं०) केओड़ा, जलपाई; (म०) झाड़ी आम्वा, कोशि (सिं) ब, कोसुम; (गु०) हलकी जातनु आम्बो; (बम्ब०) कोसम; (कना०) चुरि-माचु; (सं०) कोशा(पा)म, सुरक्तक, लाक्षावृक्ष, रक्ताम्र क्षुद्राम्र, जन्तुपादय, वनाम्र, घनस्कन्ध; सुकोशक, कृमि-वृक्ष; (ल०) श्लीचेरा ट्रिजुगा (Schleichera trijuga); (अं०) सीलोन ओक (Ceylon oak)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कुष्ठ, शोथ, रक्तपित्त, व्रण तथा कफनाशक है। इसका फल ग्राही, वातनाशक, अम्ल, उष्ण, भारी तथा पित्तकारक है। इसका पक्वफल अग्नि-दीपक, रुचिकारक, लघु, उष्ण, कफ तथा वायुनाशक है। (भा० पू० १ भ०)। फल—अम्ल, वातहर, कफपित्तकारक, गुरु, विदाह तथा शोफनाशक है। (रा० नि० व० १६)। यह विरेचक है। (सु० चि० ३१ अ०)। अम्ल, गुरु, विदाही, पित्तकारक, कोषशोधक, कफकारक, फलग्राही, उष्ण, पित्तकारक, गुरु, अम्ल तथा वातघ्न है। किंचित्पक्वफल—अम्ल, रुचिकारक, दीपन। पक्वफल—रस स्निग्ध तथा रुचिकारक है। (वै० निघ०)। मज्जा (गूदा)—स्वादुपाकी, स्निग्ध, पित्त-वातनाशक, बलकारक तथा अग्निकारक है। (सु० सू० ४६ अ०)।

कोसली—संज्ञा स्त्री० [] कोइली। आम्रास्थि।

कोसा—संज्ञा पुं० [हिं० कोश] एक प्रकारका रेशम जो मध्य भारत में अधिक होता है।

कोसीनियम्—संज्ञा पुं० [ले० Coccinimum] लतादार्वी। दे० ‘कलम्बक’।

कोसीनियम् फेनेस्ट्रेटम्—संज्ञा पुं० [ले० Coccinimum fenestratum] लतादार्वी। दे० ‘कलम्बक’।

कोसुन्द्रा—[प०] कसौदी।

कोसुंबुल—संज्ञा पुं० []

वर्णनादि—बगदादी ने कोमसल नाम से इसका उल्लेख किया है। उसके मत से यह एक प्रकार का सेब है। परन्तु तुहफा के रचयिता के मत से यह सेब नहीं है। देलम में इसके पत्र खाद्य के काम आते हैं। इसके पत्ते करना

नीबू (नारंज) के पत्तों की तरह होते हैं। तना दो गज (जरअ) से अधिक आलूबालू के बराबर ऊँचा होता है। बीज काला होता है। जड़ ऊपर से काली और भीतर से सफ़ेद निकलती है। माजुन्दरान और दामगाँ में इसको 'गोजनग्याह' कहते हैं। इन्ततल्मीजके अनुसार तवरिस्तान में इसे देवार (मख़्जन) वा देवदार (मुहीत) कहते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षांत में उष्ण और रुक्ष है। मात्रा—खाद्य के साथ पत्र ३ तो० तक और जड़ १।।। मा० तक। इसका अतिसेवन उन्मादकारक एवं घातक है।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—(जड़) मदकारक, अनिद्राकारक, मूर्च्छाकारक और हस्तिमूत्र (सलसुल्वौल), शय्यामूत्र (बौल दर फ़राश), आमवात एवं स्निग्ध शीतल व्याधियों को नष्ट करनेवाली है। इसकी जड़ में एक विशेष प्रभाव यह है कि इसे उखाड़नेवाला जो बात मुँह से कहता है और वह जिस दशा में होता है, इसके खाने और पीनेवाले पर भी वही दशा आविर्भूत होती है और वही वाक्य मुख से उच्चारित करता है। परीक्षित है। (मख़्जन)।

कोसुंबा—[गु०] कोसम।

कोसोटॉक्सिन—

कोस्त—[फा०] कुट। कुण्डौषधि।

कोस्तस—[यू०] कुट। कुस्त।

कोहँडौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कुम्हड़ा + वरी] कुँहड़ीरी

कोह—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] कौह, अर्जुन वृक्ष।

कोहकोक—[फा०] कवकदरी।

कोहगलतान—[फा०] खुनफ़शा।

कोहज्ज—[हि०] ऊसज।

कोहड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० कोहड़ा का अल्पार्थक] छोटा कुम्हड़ा। कुम्माण्ड।

कोहण्डा—[विहार] कोहड़ी।

कोहतोर—[बलूची]

कोहनज—[फा०] जुअरुर।

संज्ञा पुं० [हि०] ऊसज का वृक्ष।

कोहबर—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँटकारे की जाति (तुलसी कुल—Labiatae.) का एक पौधा जिसका फूल पिलाई लिये गुलाबी होता है। (बं०, हि०) हजुरचई; (गु०, बम्ब०) मातीमूल; (म०) दीपमल; (ले०) लिओनाइटिस नेपेटिफोलिया (Leonitis nepatifolia Br.)।

गुण-प्रयोग—यह पशुओं के खूभरोग में प्रयुक्त होता है। इसे बैलों के घाव में भरते हैं।

कोहल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जी का बनाया हुआ मद्य। यवमद्य। (बं०) यवेर मद्य। गुण—त्रिदोषनाशक, वृष्य और वदनप्रिय है। (सु०)। (२) कुम्हड़े की शराब।

दक्षव्य—ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनों के 'कोहल' नामक संधान (देखिये शाङ्गधरसंहिता पूर्वखण्ड) के वाचक द्रव्य कोहल में ही अरबी उपसर्ग 'अल' लगकर अलकोहल शब्द बना है। अतः भारतीय भाषाओं में भी अपनी पुरानी संज्ञा 'कोहल' अपना लेनी चाहिये।

कोहल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सुरमा। अञ्जन। (२) अञ्जकृत।

कोहल अस्फ़हानी—संज्ञा पुं० [अ०] सुरमा।

कोहल किरमानी, कोहलफारसी—संज्ञा पुं० [अ०] अञ्जकृत। (डी० १ भ०, पृ० ४७७)।

कोहल खूलान—संज्ञा पुं० [अ०] रसवत।

कोहल जिला, कोहल सुलेमानी—संज्ञा पुं० [अ०] सुरमा।

कोहला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुनरु। कंदूरी। (ध० नि०)।

संज्ञा पुं० [म०, द०] पेठा। कुम्माण्ड।

कोहला खुर्द—संज्ञा पुं० [उर्दू] कोहड़ी। कुम्माण्ड।

कोहली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्माण्डकृत सुरा।

कुम्माण्ड द्वारा निर्मित मद्य। गुण—वृंहण एवं गुरुपाकी है। (वै० निघ०)।

कोहलु—[गु०] पेठा। कुम्हड़ा।

कोहलुस्सदान—[अ०] चाकसू।

कोहान—[नन्ती] एक वनस्पति।

कोहॉस ब्लैक—[अ० Cohos black]

कोहिल—संज्ञा पुं० [देश०] नरशाहीं। वाज।

कोही—संज्ञा स्त्री० [देश०] शाही नामक वाज की मादा।

संज्ञा स्त्री० [पं०, कुमाऊँ] उदेश।

[फा०] जुअरुर। हलबी।

कोहीज—[फा०] जुअरुर।

कोहीबंग—संज्ञा पुं० [पं०, अफ्०, बलूचि०] कोही भाँग।

कोही भाँग—संज्ञा स्त्री [फा० कोह—पहाड़ + ई (प्रत्य०) + हि० भाँग] एक प्रकार की भाँग जो सिंध में होती है। और जिससे गाँजा व चरस नहीं निकलता। (ले० हायोसायमस् म्युटिकस् (Hyoscyamus muticus), हायोसायमस् इन्सानस् (H. insanus)।

कुल वृन्ताकादि—(Family: Solanaceae)।

उत्पत्तिस्थान—सिंध, पश्चिमी पंजाब, अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान आदि।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षारोद होता है जो वास्तव में हायोसायमीन (Hyoscyamin) नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार का कनीनिकाविस्तारक सत्व भी होता है।

गुण तथा उपयोग—मादक, कनीनिकाविस्तारक तथा घातक विष है। इसको थोड़ी मात्रा में लेकर धूम्रपान करने से गाँजा के समान नशा होती है।

विबाधकता—गले में अत्यन्त रुक्षता उत्पन्न होकर

उन्मत्तता और अन्त में वाचाशक्ति का ह्रास होता है तथा मृत्यु होती है। उपाय—बी-दूध मिलाकर देने से उपकार होता है।

कोहेज—संज्ञा पुं० [अ० Cowhage] केवाँच। काउ-हेज।

कोहोद्राज—[म० प्र०]

कोहोला—[म०] पेठा। कुष्माण्ड।

कौघस—[सि०] कोशाम्र। कोसम।

कौच—[म०] केवाँच। काँच।

कौचः—[?] देवकाँडर।

कौड कलव—[ते०] भुईंचपा।

कौडक शिन्दा—[ते०] दहन। काञ्चन। (ते०) जंगली कालोमिचं। (वम्ब०) लिमडी। (ले०) टोडेलिया एक्युलिफटा (Toddalia aculeata)।

कौडगंगुर—[ते०] वलराज। (Hibiscus furcatus)।

कौडापारखी—[व०] जलकुक्कुभ। कोयण्डि। मुरगावी।

कौदे—[तु०] अमलतास।

कौदो—संज्ञा पुं० [] कोदो।

कौअ—[अ०] कलाई की हड्डी। मणिवन्धास्थि।

कौआ—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० काओ] [स्त्री० कौई (कौदी)। व०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध पक्षी जो संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। डोमकौआ इसका ही एक भेद है। कौआ। पर्या०—(सं०) करट, अरिष्ट, बलिपुष्ट, सकृत्प्रज, आत्मघोष, ध्वाङ्ग, परभूत, बलिभुक्, वायस, बल, वातजव, दीर्घायु, सूचक, ग्रामीन, कृष्ण, पिशुन, कटखादक, काग, द्विक्, गृह—बलिभुक्, एकटक्, अन्यभूत, घृकारि, एकाक्ष, काणूक, कारव, नगरीक, परमृत्यु, शक्रज, सत्यवाक्, काण, धूलिजङ्घ, निमित्तकृत, कौशिकार, कौशिकाराति, चिरायु, मुखर, खर, महालोल, चिरञ्जीवी, चलाचल, करकट, नागवीरक, गूढमैथून, लुण्टाक, श्वर, श्रावक, शक्रजात, यमदूतक, मलभुक्, द्विक-कार, अप्रकृष्ट, वातज्वर, कटखदिर; (ले०) कौवस स्प्लेन्डेन्स-स्प्लेन्डेन्स (Corvus splendens-Splendens); (अ०) क्रो (Crow); (अ०) जाग, कुलाग। काक-मांस-गुण—क्षयनाशक, नेत्रों को हितकर, लघुपाकी, बृंहण तथा दीपन है। (रा० नि० व० ७)। (सु० सू० ४६ अ० प्रसह वर्ग) के अनुसार शोष रोग में हितकर, रसवीर्य तथा विपाक में सिंहमांसतुल्य है।

अन्य पर्याय—(अ०) गुराबुल् जरुअ (खेत का कौआ, द्रोण काक), गुराबुस्सौद, जाग। मांस—(फा०) शोश्त जाग; (अ०) लहमुल् गुराबुल् अस्वद। परिचय—स्वरूप-काला। स्वाद—दुर्गन्धयुक्त। प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। गुणकर्म तथा उपयोग—अत्यन्त लघु तथा अभक्ष्य है। इसके यूप में अवगाहन करने से वायु का

नाश होता है। इसका यूपपान करने से गुल्म और पिच्छल वायु का नाश होता है।

विण्टा—इसके बीट का लेप करने से झाई का नाश होता है तथा पीसकर अंजन करने से दृष्टि-शक्ति की वृद्धि होती है।

केशरञ्जन—काले कौए को एक वृत्तन में रखें और ऊपर से लोहचूर्ण और नीबू का रस वा तीक्ष्ण सिरका डालकर और मुख बंदकर ४० दिन तक घोड़े की लीद में दवा देने से तैलतुल्य हो जाता है। इसको शिर में लगाने से श्वेत बाल काले होते हैं।

अहितकर—दीर्घपाकी और फुफ्फुस को हानिप्रद है।

निवारण—गरम मसाला।

प्रतिनिधि—चील पक्षी।

दे० 'कौवा'। (२) एक प्रसिद्ध वनस्पति। बाघनखी (ब०)। दे० 'काला बिछुआ'।

कौआठोँठी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी] एक तरह की लता जिसके फूल सफेद और नीले रंग के होते हैं। फली भालाकार सिर की ओर गावदुमी चंचु में अंत होती है (आकार में कौवे की नाक के समान होती है)। बीज सोए के समान होते हैं।

पर्या०—(सं०) काकतुण्डफल, वायसी, सुनासिका, ध्वांक्ष-नासा, ध्वांक्षतुण्ड, काकाक्षी, काकनासा, सुरंगी, शिरो-वाला आदि; (हि०) कौआठोडी, कौवाठोँठी; (ब०) काकटुटी, केउयाठूटी; (गु०) काकनासा; (म०) थोर-कावली, श्वेतकावली; (कना०) हिरियकागे दोठे; (ते०) वेलुम-सन्दि चेदु; (ले०) पेन्टाट्रापिस माइक्रो-फाइला (Pentatropis microphylla); (अ०) बकलतुलगुराब। अर्क कुल (Asclepiadeae)।

गुण-प्रयोग—अर्श दूर करने तथा बालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग औषध की भाँति होता है।

कौआठोडी, कौआ डोरो— } संज्ञा स्त्री० [हि० कौआ
कौआ (वा) दोडो (रोडो)— }
ठोँठी] कागनासा। दे० 'कौआठोँठी'।

कौआ साग—संज्ञा पुं० [हि० कौआ + साग] (सं०) काल शाक।

पर्या०—चेंच, कौआ साग—हि०। बकूलतुल गुराब—अ०।

टिप्पणी—मुहीव में कौआसाग शब्द में उपरिलिखित पर्यायों के अतिरिक्त कतिपय अन्य संस्कृत पर्याय ऐसे अस्पष्ट अक्षरों में लिखे हैं जिनका ठीक-ठीक पढ़ सकना सहज नहीं है।

वर्णन—एक वनस्पति जिसकी शाखाएँ तुणवत् ग्रन्थिल होती हैं। यह जब से आध गज तक ऊँची होती है। इसकी गिरहों से जड़ें निकलती हैं। यह प्रायः बगीचों और आर्द्र भूमि में उत्पन्न होती है। पत्ती बारतंग की

पत्ती की तरह, किंतु उससे छोटी, कोमल, समतल और किसी-किसी भेद में रोंगटेदार होती है। इसका फूल टोपी की आकृति के एक परदे से निकलता है। यह लाजवर्दी रंग का एवं प्रियदर्शन तथा क्षुद्र एवं दो पंखड़ी-युक्त होता है। इसके भीतर बीजकोष होता है। इसके एक भेद की पत्ती बिल्कुल काकतुंडवत् और किंचित् रक्त-वर्ण की और किसी-किसी की हरी होती है। इसका फूल भी लाल होता है। देहाती लोग इसे खाने के साथ पकाकर खाते हैं। मुहीत में यह भी लिखा है कि रोगाक्रांत होने पर कौआ इसे खाकर रोगमुक्त हो जाता है। इसलिये अथवा अन्य मत से क्योंकि इसकी पत्ती काकतुंडोपम होती है। इसलिये इसे अरबी में बकलतुल्-गुराब (काकशाक) कहते हैं।

गुण-कर्म तथा प्रयोगादि—प्रकृति कुछ-कुछ उष्ण होती है। भारतनिवासी लिखते हैं कि यह सुस्वादु, पिच्छिल श्लेष्मोत्पादक, पित्तनाशक मनोहर्षणकारी (वृष्य), वाजीकरण और शीतजनक है तथा नेत्ररोग और विविध प्रकार के मूत्ररोगों में लाभकारी है। इसके पत्तों को कूटकर थोड़ा नमक मिलाकर (दाखस) पर बाँधने से शीघ्र लाभ होता है। उक्त रोग में इसे बढ़कर अन्य औषध नहीं है। (मुहीत)।

कौएलो—[यु०] कोयला। लकड़ी का कोयला।

कौकः—[अ०] काकलीया (Cochlea)। कान के भीतर शम्बूकावर्ततुल्य एक भाग है। इसमें २॥ बलियाँ (आवर्तें) होती हैं। इसमें शब्दवाहक तन्तुओं का जाल फैला होता है।

कौकन—[चीन] पर्याय—(दक्षिण भारत) कटमपम; (चीन) हे कि ऐन; (ले०) सीगेसबेकिया-ऑरिएण्टेलिस (Siegesbeckia Orientalis), सीगेसबेकिया ब्रैकिएटा (S. brachiata)।

उद्भवस्थान—चीन, दक्षिण भारतवर्ष। मुण्डी कुल (Compositae)। रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का स्फटिकीय सत्व होता है, जिसको डेरुटीन (Darutine) कहते हैं।

कल्प—इससे एक प्रकार का सुरासव प्रस्तुत किया जाता है। मात्रा—१ से २ इम तक। उपयोग—इसके सेवन से गण्डमाला और फिरंगजन्य दोषशांत होता है। इसके टिंचर में ग्लिसरीन मिश्रितकर दद्रु पर लगाने से निश्चय लाभ होता है। इसका स्वरस दुष्टव्रण पर लगाने से लाभ होता है। पूय-मेह में यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त यह फिरंगदोष-नाशक, रसायन, स्वेदजनक तथा अत्यन्त रक्तशोधक है। प्रतिनिधि—कृष्ण सारिवा (श्यामलता) और सार-सापरीला।

कौकनत—[अ०]

कौकब—[अ०] अभ्रक। अबरख। (Mica)।

कौकब-कौमूलिया—[अ०] गिले कीमूलिया।

कौकबशामूस—[अ०] गिलेशामूस या उसकी किस्म है।

कौकबुलजर्ज—[अ०] (१) अभ्रक। अबरख। (Mica)।

(२) गिलकीमूलिया। (३) सिराजुलकुतरब।

कौकमारूस—[यू०] साही। शल्लकी जन्तु।

कौकलस—[यू०] बिच्छू। वृश्चिक।

कौकलामस—[यू०] } बखुरमरियम।

कौकलामीस—[यू०] }

कौकलूस—[फ्रें०] लूफा।

कौकलहान—[यू०]

कौकमालस—[यू०] }

कौकमालीन—[यू०] } आलूबोखारा।

कौकालस—[यू०] }

कौकार—[?] कसअनः भेद।

कौकिभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का राग।

कौकिल्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

(वै० निघ०)।

कौकीनस—[तुर०] ककनस। दीपकलात पक्षी।

कौकीला—[यू०] (१) बिच्छू। वृश्चिक। (२) आलूबोखारा।

कौकीलूस—[यू०] (१) जंगली जीरा। अरण्जीरक। (२)

शाहतरा। पित्तपापडा।

कौकुट—वि० [सं० त्रि०] कुक्कुट सम्बन्धी। (वा० चि० ३ अ०)।

कौकून—[यू०] शूकरान। (Hemlock)।

कौकूस—[यू०] (१) काई। (२) किर्मिजदाना। (३) खुत्सा।

कौकूस-माकूस—[यू०] किर्मिजदाना।

कौकूसीदू—[?] जुअद।

कौकृत्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अनुताप। गरसी। (त्रिका०)।

कौकुकुट-पुट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'कुक्कुट-पुट'। (भा०)।

कौकुकुटिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निकटदृष्टि। अदूरप्रेरित नेत्र। (मे०)। पक्षी विशेष। (बं०) होला पक्षी। (वै० निघ०)।

कौकुकुटि कन्दल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (बं०) बोड़ा साँप। पर्याय—भाण्ड-पुष्प। (त्रि०)।

कौगएरडु—[का०] मालकांगनी। ज्योतिष्मती।

कौङ्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कोंकण देश। (श० र०)।

कौङ्कण—संज्ञा पुं० [" "] }

कौच घास—[अं० Gouch grass] घास विशेष।

कौच बिग्रह—

कौचां—[यु०] केवाँच।

कौचिला—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचला । कारस्कर ।

कौची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (म०) मजीठ । घाटी पित्तपापडा ।

कौचुक—संज्ञा पुं० [ले० Coutchouc] रबर ।

कौज—[फा०] गोंद, निर्यास ।

कौज—[फा०, तुर०] (१) अखरोट । (२) पुरानी रुई । (३) ग्लास । प्याला । कूजः ।

कौजकुनाए सियाह—[फा०] कृष्ण धतूर । काला धतूर ।

कौजकुनाए सुफेद—[फा०] श्वेत धतूर । सफेद धतूर ।

कौजग्याह—[फा०] कबर का वृक्ष । करीर भेद ।

कौजमासिले सियाह—[फा०] कृष्ण धतूर । काला धतूर ।

कौजमासिले सुफेद—[फा०] श्वेत धतूर । सफेद धतूर ।

कौजहा—[फा०] [एक व० कौज] गोंद । निर्यासादि ।

कौट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुड़ा । कुटज । भा० पू० १ भ० ।

कौट किक—वि० [सं० त्रि०] मांस विक्रेता । गोश्त बेचने वाला । कसाई । (श० र०) ।

कौटज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्रयव । कुड़ाबीज । (प० मु०) । (२) कुड़ा का पेड़ । कुटज वृक्ष । कूड़चि गाछ । (अ० टी० रा०) ।

कौटजलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्शाधिकारोक्त अवलेह । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कुड़ा की छाल १०० पल, पाकार्थ जल ६४ श०, शेष ८ श०, पुरातन गुड़ ३० पल, गोघृत ८ पल; प्रक्षेपार्थ—वचादिचूर्ण प्रत्येक १-१ पल; विशुद्ध मधु ८ पल । अनुपान—घृत, मधु, तक्र, जल, दुग्ध ।

वचादिचूर्ण—वच, त्रिकुटा, विडंग, इन्द्रयव, त्रिफला, भिलावाँ, रसवत, चित्रक, अतीस, वेलगिरी ।

गुण—इसके सेवन से रक्ताशंशमन होता है । (सा० कौ०) ।

कौटज बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इन्द्रयव । कुड़ा के बीज ।

कौटा शक्कुमर—[ता०] झाऊ । झावुक ।

कौटिक—संज्ञा पुं० [सं० त्रि०] कसाई । मांसविक्रेता ।

(अम०)

कौटिलीय अर्थशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य का लिखा हुआ अर्थशास्त्र ।

कौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चणक मूली । चाणक्यमूल । (रा० नि० व० ७) ।

कौटिल्य तन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कामशास्त्र जिसकी रचना आचार्य कौटिल्यमुनि ने की है ।

कौटिल्यक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्निकीट । इसके दर्शन से वातज रोग उत्पन्न होते हैं । (सु० कल्प० ८ अ०) ।

कौटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुड़ा । कुटज वृक्ष । (२) (कौ०) कटुकपित्त । (Hydnocarpus wightiana) ।

कौटुक-करण्डे—[ता०] मुण्डी ।

कौठ—संज्ञा पुं० कुट । कूठ । कुण्ठीषध ।

कौड़तुंबा—[पं०] ।

कौड़याला—संज्ञा पुं० कौडेनी । शंखपुष्पी । दे० “कौड़याला ।”

कौड़याली—संज्ञा स्त्री० संखाहुली । कौडेना ।

कौडल—संज्ञा पुं० [हिं०] महाकाल । लाल इन्द्रायन ।

कौडवा—संज्ञा पुं० [हिं०] कौड़याला ।

कौड़विक—वि० [सं० त्रि०] एक प्रकार का मान जो ४ पल (कुडव) सम होता है ।

कौड़विन—[पं०] पीलू ।

कौडा—संज्ञा पुं० [देश०] बूई नामक पौधा ।

कौडारू—[पं०] बूई । (मेमो०) ।

कौड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कौडिल्ला] किलकिला नामक पक्षी ।

कौड़ियाला—संज्ञा पुं० [] (१) एक प्रकार का पौधा जो ऊसर भूमि में होता है । इसमें कीप या छुच्छी के आकार के छोटे-छोटे फूल लगते हैं । इसकी पत्तियाँ छोट-छोटी और मटमैले रंग की होती हैं । फूल के विचार से यह तीन प्रकार का होता है—(१) सफेद, (२) लाल और (३) नीला ।

पर्या०—कौड़ियाही, कौड़ियाली, कौडेना । दे० ‘शङ्ख-पुष्पी’ । (२) एक प्रकार का विषैला साँप जिस पर कौडी के रंग और आकार की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं ।

कौड़िया लोबान—संज्ञा पुं० [हिं०] लोबान सादा ।

पर्याय—(गु०) कौड़ियो लोबान; (म०) ऊद; (हिं०) लोबान, लोहवान; (अ०) अल्जावी, जिर्व, जावी, हसीलु (लो) वान; (फा०) जब, कमकाम, दरखशरक, हस्तलुब; (द०) ऊद; (ब०) लोबान; (म०, क०) ऊद; (ता०) साम्राणी; (ब्रम्हा) लोबाँ; (अं०) बेन्जोइन (Benzoin); गम बेन्जामीन (Gum Benjanmin); वृक्ष—स्टाइरेक्स बेन्जोइन (Styrax-Bezoin); गोंद-बेन्जोइनम् (Benzoinum) ।

लोघ्रादि कुल (Family: Styraceae) ।

उद्भवस्थान—मलाया, सुमात्रा, स्यामप्रदेश, पेनांग से इसका आयात भारतवर्ष में होता है ।

परिचय—भूरा रक्ताभ चिह्नयुक्त, चितकबरा, सफेद होता है । इसके अन्य प्रकार भी हैं जो वृक्षों की त्वचा में चीरा लगाने से दुग्ध निकलकर जम जाता है । इसके अश्रुवत् कण होते हैं और वर्ण रक्ताभ होता है । बाह्य भाग धूसर तथा आन्तरिक भाग श्वेत होता है । शुष्कावस्था में शीघ्र टूट कर विचूर्णित हो जाते हैं । अग्नि पर रखने से प्रथम मृदु होकर सुगन्धमय वास आने लगती है ।

रासायनिक संगठन—इसमें मुख्य ३ प्रकार के पदार्थ होते

कौड़िया लोह

हैं—(१) लोबानाम्ल (Benzoic acid) १२ से २० प्रतिशत, (२) गुडत्वगम्ल (Cinnamic acid) अत्यल्प और (३) वैनिल्लिन (Vanillin)। इसके अतिरिक्त इसमें उत्पत्त तैलादि भी होते हैं।

गुण-कर्म—क्षुधावर्धक, वायुनाशक, मेहघ्न, मूत्रल, अश्मरीघ्न, कोथप्रतिबन्धक, लेखन, यकृतदुत्तेजक, कफघ्न, कफनिस्सारक, वाजीकर, ज्वरघ्न, शोथघ्न तथा अग्निदीपन है। **उपयोग**—इसका धूपन कीटाणुनाशक है। इसका मरहम व्रणपूरक है। शरीर की त्वचा को स्वच्छ एवं सुगन्धित करने के निमित्त अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसे पीसकर उपटन किया जाता है। इसका प्रलेप तथा इसे पेय द्रव्यों के साथ सेवन करने से कफज व्याधि, वातव्याधि, आमवात, वातरक्त, पक्षवध, अर्दित इत्यादि का नाश होता है।

लोबान सत्व—इसको मधु के साथ सेवन करने से कफकास, उरोव्याधि, कृच्छ्र-श्वास तथा रक्तष्ठीवन का नाश होता है।

तेल—बतासा में वा मधुमिश्रितकर सेवन करने से निमोनिया (सांनिपातिक ज्वर) तथा कफज्वर, शुष्क-कासादि का नाश होता है। इसके चूर्ण सेवन से कफज्वर दूर होता है। किसी तेल में मिश्रितकर कर्णपूरण करने से शीतजन्य कर्णशूल नष्ट होता है। वाजीकरणार्थ पेय तथा प्रलेपरूप से इसका व्यवहार किया जाता है। इसका गण्डूष तथा दन्तमञ्जन करने से दन्तशूल नष्ट होता है। इसके काष्ठ का चूर्णकर अवचूर्णन करने से रक्तस्त्राव नष्ट होता है। इसका तैल स्नायुबलप्रद है। इसका धूपन कटिशूल तथा सन्धिशूल में उपयोगी है। इसे पीसकर दद्रुपर प्रलेप करने से लाभ होता है।

अहितकर—उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को।

निवारण—काहू, वनप्रशा। **प्रतिनिधि**—मस्तगी, हम्बुल वुल्म और लादन। मात्रा—१ से ६ माशा।

डाक्टरी योग—(१) एमोनिया वेञ्जोनेट, पोटाश वेञ्जोनेट, सोडा वेञ्जोनेट, टिचर वेञ्जोनेट, टिरोचिसाई वेञ्जोनेट, एसिड वेञ्जोआस। इनका गुण तथा उपयोग यथास्थान देखें।

कौड़िया लोह—संज्ञा पुं० [राजपुं०]

कौड़िया लोहवान—संज्ञा पुं० [] } दे० कौड़िया लोवान।

कौड़ियो—[पञ्चमहल] पिण्डालु।

कौड़िल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी] (१) मछली पकड़कर खानेवाली एक जिड़िया। किलकिला। (२) कसी नाम का पीधा जिसे संस्कृत में 'कशुक' और 'गवेधुक' कहते हैं। दे० 'कसी'।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कपर्दिका, प्रा० कवडिआ] समुद्र

का एक कीड़ा, जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोश के भीतर रहता है। इसके निम्न भेद हैं—(१) सिही (सुनहले रंग की), (२) व्याघ्री (चित्तीदार धूमले रंग की), (३) मृगी (जिसकी पीठ पीली और पेट सफेद होता है, कबरी), (४) हंसी (बिल्कुल सफेद) और (५) विदन्ता (बहुत बड़ी नहीं होती), (६) सुवर्णवर्णा (पीली कौड़ी), (७) धूम्रवर्णा (खाकी कौड़ी), (८) पीतपृष्ठा (पीली पीठवाली), (९) सितोदरा (सफेद पेटवाली), (१०) श्वेतवर्णा (सफेद कौड़ी) और (११) नातिदीर्घा (मध्यमाकार की)।

पर्या०—(सं०) वराट, वराटकः, वराटिका, कपर्द, कपर्दकः, चर, चराचर, बालक्रीडक, वज्र्य, उद्वासी; (हिं०) कौड़ी; (अ०) वदअ, वदअयः; (फा०); कजक, कचक, खरमुहरः, कुसगुर्वः; (देलम, तिनकावन) कलाचक; (ले०) सायप्रिया मोनेटा (Cyproea moneta, Linn.); (अं०) शेल (Shell), कौरी (cowry); (वं०) वेयर; (गु०) कोड़ी; (म०, कों०, कना०) कवड़ी; (ते०) गवुल; (सि०) पिगो।

वस्तव्य—अंजुमन आदि में सफेदमुहरा को शंख लिखा है। परंतु कामूस में उसे बड़ी कौड़ी भी लिखा है। कौड़ी को शृंगारार्थ गदहों के कंठ में बाँधते हैं। इसलिये इसे खरमुहरा संज्ञा से अभिधानित किया गया। शैख के मत से वदअ सीप को कहते हैं। परंतु गाज़रूनी के मत से वह सीप का एक भेद है। यह सीप जातीय कौड़ी, शंख और घोंघा प्रभृति जीवों की एक सामान्य संज्ञा है और केवल कौड़ी के अर्थ में भी उक्त संज्ञा का व्यवहार होता है। मख्जन और मुहीत में उक्त शब्द में ही इसका वर्णन हुआ है।

वर्णन—प्रसिद्ध वस्तु है। सीप और घोंघे की भाँति एक दरियाई जंतु की अस्थि है। साहबसैदनः कहता है कि इसको परमेश्वर ने उस जंतु के रक्षार्थ ढाढ़ की तरह पैदा किया है जो इसके भीतर रहता है। किसी-किसी के मत से वह एक नादेय जीव है। पानी के बाहर सूखी जगह में रखने से वह तुरंत मर जाता है। औषधि के लिये कौड़ी और समुद्री कौड़ी श्रेष्ठ समझी जाती है। सफेद, लाल और पीली भेद से कौड़ियाँ तीन प्रकार की होती हैं। वह पीली कौड़ी जो तैल में छः माशे भर, पीठपर कुछ दानेदार हो, औषधि के काम में लेना चाहिये। ऐसा वैद्यों का कथन है।

इसके बड़े भेद को फ़ारसी में सफ़ेद मुहरा और बाद मुहरा तथा हिंदी में शंख और छोटे भेद को शोराजी में गोशमाही और हिंदी में घोंघा कहते हैं।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष, मतांतर से

शीतल और रुक्ष है। हर प्रकार के सीप से इसकी रुक्षता बढ़ी हुई है। स्वाद—फीकी और विस्वाद। अहितकर—फुफ्फुस को। निवारण—शुद्ध मधु, सिरका और तेल। प्रतिनिधि—सीप वा घोंघी। ग्रह—बुध।

प्रधान कर्म—नेत्र को निर्मल करती, क्षतों को सुखाती और शीतलव्याधियों को नष्ट करती। मात्रा—१॥ मा०।

गुणकर्म तथा उपयोग—कौड़ी (वदअ) द्रवों का उत्सर्ग करती, मूत्रकृच्छ्र को दूर करती और अश्मरी में लाभकारी है। इसके मांस का लेप तीर और काँटे का आकर्षण करनेवाली और अंगजात द्रवों को खींचकर बाहर लानेवाली (नाशिफ) है। पीली कौड़ी को पीसकर पेड़ पर लेप करने से मूत्ररोध मिटकर मूत्र का प्रवर्तन होता है। भस्म की हुई कौड़ी सभी गुणों में शीह के समान एवं स्वच्छताप्रद (जाली) तथा प्रत्याद्वर्तनकारी (रादेअ) है और उसमें उष्णता और रुक्षता अधिक है। नेत्र में इसका सुरमा लगाने से नेत्रगत फूला नष्ट होता (जाली व्याजएन) है और दृष्टि तीव्र हो जाती है। दद्रु, किलास और नीलिका (वहक) में इसका लेप गुणकारी है तथा यह अंगों के द्रवों को बाहर की ओर आकृष्ट करता है। इसके लेप से ढीले शोथ विलीन होते हैं और यह बच्चेवाली के लिये लाभकारी है! सूखी भस्म की हुई कौड़ी का चूर्ण मर्दन करने से शीत-जन्य व्याधियाँ शमन होती हैं और कफज मूजन उतर जाती है। इसके विलयन में नीबू का रस मिलाकर लेप करने से भी मूजन उतरती है। थोड़े नीसादर के साथ शरीर की त्वचा पर लगाने से धब्बे (आसार) दूर होते हैं! पीली कौड़ी को भस्म करके और पीसकर आध माशा कान में डालकर ऊपर से नीबू का रस निचोड़ दें। इससे उसमें उफान आता है। दो-तीन बार में कर्णशूल और कर्ण की गुरुता जाती रहती है। बिना भस्म की हुई कौड़ी को पीसकर लगभग एक माशा की मात्रा में सिरके वा सफ़ेद शराब के साथ पीने से आन्त्रव्रण आराम होता है। (मख्जन)।

मुहीत में यह अधिक लिखा है—इसका मांस अत्यंत दुष्याच्य, रद्दी और प्रकृतिमार्दवकर है। इसको सिरके में पीसकर लेप करने से वातरक्त (निक्रिस) आराम होता है और उसकी राख के लेप से तज्जात विस्फोटक सूख जाते हैं।

मख्जन मुफ़रदात के अनुसार यह रुक्षता उत्पन्न करती, शरीर की त्वचा को स्वच्छ करती और त्वग्रोगों में लाभकारी है। भस्म की हुई कौड़ी प्लीहा तथा मूत्र-मार्गस्थ क्षतों को लाभकारी और शोणितस्थापक है।

आयुर्वेद के मत से—उपर्युक्त सभी प्रकार की कौड़ियाँ गुण में समान हैं। यह कटु, तिक्त, उष्ण,

व्रण-कर्णशूल-नाशक, गुल्मनाशक, शूलघ्न और नेत्रदोष-नाशक है। रा० नि० व० १३। वातकफनाशक, शूल, परिणामशूल, क्षय, ग्रहणी, गुल्म, नेत्ररोग, कर्णशूल, तथा व्रणनाशक और रस में तिक्त एवं शीत है। (वै० निघ)।

वैद्यों के मत से—कौड़ी मधुर, चरपरी और आध्मान-जनक है, पित्त एवं संताप का निवारण करती है तथा नेत्ररोग और शरीरगत विस्फोटों को भी मिटाती है। इसको जला-पीसकर कान में फूँकने (डालने) से कर्णव्रण सूख जाते हैं। यह परीक्षित है। फिरंगजन्य शिश्नस्थ क्षतों पर इसमें अन्य उपयोगी औषधियाँ मिलाकर जिसका योग इलाजुल्अम्राज नामक ग्रंथ में वर्णित हुआ है, अवचूर्णन करने से वे सूख जाते हैं। कौड़ी को मिट्टी के बरतन में रखकर उसका मुँह कपरीटी द्वारा दृढ़तापूर्वक बंद करके उसे गरम तनूर (वा अग्नि) में रखें। शीतल होने पर निकालने से वह सफ़ेद हुई दीख पड़ेगी। उसमें से ३॥ मा० वा ७ मा० भस्म शहद में फेंटकर और थोड़ा सेंधानमक मिलाकर खिलावेँ और ऊपर से साठी चावल का खसका दही से खायेँ तो अतिसार और संग्रहणी नष्ट हो। नीबू के रस में भिगोकर लिखित रीति के अनुसार भस्म करके खिलाने से प्लीहा में भी उपकार होता है और यह परीक्षित है। मेरे समीप इसकी प्रकृति शीतल और रुक्ष है। (ता० श०)। किसी-किसी ने लिखा है कि इसकी भस्म शूल, कफ, मेह, ग्रहणी और क्षयरोग इनको नष्ट करनेवाली, उष्ण, चरपरी, क्षुधाजनक, मनोहर्षणकारी वा वृष्य, नेत्र और कफ रोगनाशक है। (मुहीत)। कर्णस्राव, अजीर्ण, संग्रहणी और कफ में वायु के कारण उत्पन्न विकारों से होनेवाले रोगों में कौड़ी गुणकारी है। कौड़ी को मिट्टी के बरतन में रखकर कपरीटी करके आँच में रखें। शीतल होने पर निकालने से वह सफ़ेद हुई मिलेगी। इसकी यह भस्म कान में डालने से कर्णस्राव बंद होकर कर्णगत क्षत भर जाता है। इसको पान में रखकर खिलाने से शुष्क कास मिटता है। उपयुक्त भेषज में इसकी भस्म मिलाकर घी के साथ लेप करने से फोड़े आराम होते हैं। इसको मक्खन में मिलाकर चटाने से उरःक्षत रोग आराम होता है। इसे पीपरामूल के साथ चटाने से पाचनशक्ति बढ़ती है। कालीमिर्च और इसकी भस्म को पीसकर नीबू की फाँक में भरकर आग-

*कपदः कटुतिक्तोष्णः कर्णशूल व्रणापहः।

गुल्मशूलामयघ्नश्च नेत्रदोष निकृन्तनः ॥

ग्रन्थान्तरे—परिणामादि शूलघ्नी ग्रहणी क्षयनाशनी।

कटूणा दीपनी दृष्या नेत्र्या वातकफापहा ॥

(धन्वत्तरिः राजनिघण्टुश्च)।

पर गरम करके चूसने से उदरशूल आराम होता है। सोंठ के साथ इसको पीसकर देने से संग्रहणी दूर होती है। इसकी तीन मांशे भस्म सात मांशे शहद और नमक मिलाकर चटाने से भी संग्रहणी नष्ट होती है। परंतु इसके सेवनकाल में चावल और दूध खाते रहना चाहिये। पीली कौड़ी पीसकर नीबू के रस में भिगा दें। जब रस सूख जाय, तब खरल करके दोनों काल मुँह पर मलने से मुँहासे मिटते हैं। इसकी भस्म हाथ-पाँव पर मलने से स्वेद आना रुक जाता है। (खजाइन)।

कौड़ी ध्वंसनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमृतक्षत्रिका।

कौड़ी प्रदेश—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी + प्रदेश]।

कौड़ी बूटी—संज्ञा स्त्री० [पं०, झेलम] एक वनस्पति।

पर्याय—(पं०) छोटा कुलफा, रतंबडु, दुआ, कंडियारी; (सं०) अम्बुसिरीषिका, दुर्बला, झिझिनी, झिझी; (सिंध) गावजबां, अन्धाहुली।

कौडेना (नी)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं० कौड़ियाला] कौड़ियाला नाम की जड़ी। एक प्रसिद्ध लता जिसके तने पर मुलायम काँटे की तरह उभार होते हैं। रक्ती। (इटावा) खुटला। काला व सफेद बीजभेद से यह दो प्रकार की होती है। (*Ipomoea Sp.*)।

संज्ञा स्त्री० दे० 'कौड़ियाही'।

कौणप—वि० [सं० त्रि०] कुणपगन्ध। शवगन्ध। मृत्श-रोरजगन्ध। (च० १२ अ०)।

कौणा—[पं०] बुई। (मेमो०)।

कौणिक चलन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]—(अ० शा०)

कौणित् केन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]—(अ० शा०)।

कौण्टी—[म०] कामिनी। (हिं०) वीवजर (—सर)। (अं०)

कौन्ती—[] काँस्मेटिक बॉक्स (*Cosmetic Box*)।

(ले०) चिसिया पेनिक्युलेटा (*Chesia paniculata*)।

उद्भवस्थान—बंगाल, लंका, चीन, हिमालय इत्यादि।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्प में ग्लुकोसाइड (*Glucose*) जिसको मुरयिन (*murrayin*) कहते हैं, प्राप्त होता है।

उपयोगी अययव—पुष्प, पत्र।

परिचय—इसका वृक्ष भारतवर्ष में कतिपय उद्यानों में भी रोपण किया जाता है। वृक्ष की ऊँचाई ५-८ फुट तक होती है। पत्र—इसकी पत्तियों का अग्र भाग अण्डाकार और आरम्भिक भाग पतला होता है। ये देखने में रीठा के पत्र सदृश होती हैं। इसमें गुच्छों में श्वेतवर्ण के छोटे-छोटे सुगन्धपूर्ण पुष्प लगते हैं। इसमें फल नहीं लगते। इसके मूल से छोटे-छोटे पौधे निकलते हैं। उन्हीं को उठाकर अन्य स्थानों में रोपण किया जाता है, जो २-३ फुट बढ़कर पुनः पुष्पित होने लगता है।

गुण-कर्म—बलवर्धक, आमाशयबलप्रद, वायुनाशक,

चित्तप्रसन्नकर, पाचक, कफघ्न तथा तृषानाशक है।

उपयोग—त्वग्प्रदाह, कास, आमवातिक ज्वर, शिरोभ्रम, तृष्णा और योषापस्मार में उपयोगी है। दे० 'कामिनी'।

कौण्डर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चिरायता। किराततित्त। (ध० नि०)।

कौण्डल—

५३४-चो०

कौण्डलकसन्धि—

कौण्डिन्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम के एक ऋषि। (चरक सू० १)।

कौडिन्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मांसरोहिणी। (वै० निघ०)।

कौण्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुणित्व। वैकल्य। विकलता। (वं०) कूडि। (सू० नि० ५ अ०, सू० १८)।

कौ (को) त—[?] चन्दन। लु० क०।

कौ (कू) तर—[?] वच। वच वृक्ष।

कौ (कू) तस—[यू०] (१) अंगूर का शिगूफा (शुंग)। (२) मटर भेद।

कौ (कू) ता—[यू०] शाहबलूत।

कौ (कू) तासा—[यू०] जंगली आजरियून।

कौ (कू) तिया—[यू०] पनीरमाया।

कौ (कू) ती—[सुर०] गोखरू। गोक्षुर।

कौ (कू) तीन—[सुर०]

कौ (कू) तीनस—[यू०] जैतनुल् हवश।

कौ (कू) तीनस—[यू०] (१) अनार। जैतनुल् हवश।

कौ (कू) तीरा—[रूमी] (१) खनूब। (२) तबक्षाक। (३) शौकः मुन्तिवः।

कौतुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भोजनकाल। (हे० च०)। (२) आनन्द। हर्ष। प्रसन्नता। (३) विवाहसूत्र। (मे०)।

कौतुकज-फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेणुका।

कौतुक संज्ञक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनज्ञास। (नि० र०)। नि० आ० २।४६५

कौ (को) तून—[यू०] अंगूर का शिगूफा।

कौ (को) तूरा—[रूमी] खनूब।

कौ (को) तूस—[यू०] अंगूर का शिगूफा।

कौथिम्बल—

कौद—संज्ञा पुं० []

(ई० हैं० गा० पृ० १११)।

कौद काचूल—संज्ञा पुं० []

(ई० हैं० गा० पृ० १११)।

कौदीर—[] जंगली केला। रान केला। अरण्य कदली। (डाइमॉक)।

कौद्रविक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौचरन्तोन। काला

नमक । सौवर्चल लवण । वं०—सचल लवन । (रा० नि० व० ६) ।

कौटिलिक शीतला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की शीतला जिसके दाने कोदो के दाने के समान छोटे होते हैं ।

कौटवीण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूमि भेद । (व० नि०) ।

कौनः—संज्ञा पुं० कहू । अर्जुन वृक्ष ।

कौनख्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुनख रोग ।

कौ(क्रो)नस—[अ०] पक्षियों की पथरी (चीनः) जिसमें उनका आहार पचता है । कानिसः (संगदान) ।

[सुर०, यू०] हव्वुस्सोनवर कुवार ।

कौनियाक—[अ०] द्राक्षाकृतमद्य । कोनियाक ।

कौनी—संज्ञा स्त्री० एक वनस्पति है ।

(इ० हैं० गा० पृ० ७६) ।

कौनीम-पुलिमाऽ—[ते०] गोधापदी ।

कौनुई—संज्ञा स्त्री० [उ० प० प्र०, भा०] भलियून । (मेमो०) ।

कौन्ती—संज्ञा स्त्री० [वं०] (१) कामिनी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेणुका । रेणुक । (भा० म० १ भ० उ० चि० लाक्षादि तैले) ।

कौन्तेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्जुन वृक्ष । (रा० नि० व० ९) ।

कौप—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूपाँ । कूप । (अ०) वेल (Well) ।

कौपजल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूपाँ का पानी । दे० 'कूप जल' ।

कौपल सेंड—संज्ञा पुं० सेहुँड भेद ।

कौपीन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जननेन्द्रिय, उपस्थ, लिङ्ग, गुह्यदेश । (अम०) । (२) वस्त्र द्वारा निर्मित कोपीन । वं०—कप्नि ।

कौपीनबन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बन्धन (Bandage) । यह बंध अंग्रेजी के (T) अक्षर तुल्य होता है । अतः इसको कौपीनबंध वा 'टी बण्डेज' कहते हैं । इसका विशेष उपयोग गुद और वृषण प्रदेश के निमित्त होता है । यह दो पट्टियों का बना होता है । दोनों पट्टियाँ प्रायः ४ इंच चौड़ी होती हैं । उनमें से एक पट्टी को दूसरी पट्टी के बीच में लम्बाई की ओर सी दिया जाता है ।

बन्ध बाँधते समय आड़ी पट्टी रोगी के कटि में बाँधी जाती है और दूसरी पट्टी लँगोटी की भाँति नितम्बों के मध्य से होती हुई अण्डकोष के ऊपर से सामने की ओर पहली पट्टी में बाँधी जाती है । कभी-कभी इसका सिरा दो भागों में चीरकर दो सिरे शिश्न के दोनों ओर बाँधे जाते हैं । अण्डकोष को यदि बाहर रखना हो तो पट्टी के मध्य में छिद्र कर उसमें से अण्डकोष को बाहर

किया जा सकता है । यदि दो पट्टियों का निर्मित बन्ध न प्राप्त हो तो एक लम्बी पट्टी से भी यह बन्ध लगाया जा सकता है । प्रथम कटि में पट्टी बाँधकर उसकी ग्रन्थि सामने पेड़ के समीप लानी उचित है । वहाँ से पट्टी नितम्बों के मध्य से होती हुई पीछे कटि की पट्टी में लगाकर पुनः नितम्बों के मध्य में से पेड़ पर लेकर दूसरी ओर बाँध देना उचित है ।

क्रोऽकुल-उज्ज-[अ०] दे० 'कोऽकुल उज्ज' ।

कोबारा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूँइआँवला । भूम्या-मलकी ।

कौबेर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कुट, कुण्ठाषधि । (वं०) कूड़ । (मद० व० १)

कौबेर काय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } पुरुष भेद । लक्षण—
कौबेर सत्व—संज्ञा पुं० [" "] } कौबेरसत्त्वपुरुष
स्थान (भूमि गृहादि), मान-उपभोग (luxury) तथा परिवार (पुत्र-पौत्रादि) से सम्पन्न तथा जो सुखपूर्वक विहार करता हो, नित्य अर्थ-धर्म-काम में तत्पर, पवित्र, जिसका कोप-प्रसन्नता स्पष्ट हो—छिपी न हो, उसे कौबेर-सत्त्वप्रधान पुरुष समझना चाहिए । (च० शा० ४ अ०) ।
अथवा—मध्यस्थता (प्रत्येक कार्य में पक्षविरहित Impartial) होकर भाषण करना वा कार्य करना—किंवा प्रत्येक बात में मध्यममार्ग (Golden mean) का अवलम्बन करने की प्रकृति, किंवा जहाँ पर आवश्यक हो, वहाँ पर मध्यस्थ (Arbitrator) का कार्य करने का स्वभाव, किंवा सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से पृथक् (Indifferent) रहने का स्वभाव, सहिष्णुता, धनोपार्जन और संचय करने की प्रकृति, महाप्रसवशक्तिसंपन्नता (किसी कार्य के आने पर उसमें बिना सफलता प्राप्त किए न छोड़ना, किंवा—अधिक प्रजोत्पत्ति की शक्ति होना) उक्त लक्षण कौबेरकायपुरुष में होते हैं । (सु० शा० ४ अ०) ।

कौबेर-ग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अश्वजात दुष्टग्रह विशेष ।
लक्षण—वह घोड़ा जो खिन्नाङ्ग हो गया हो, जानु के बल बैठता हो, उसके शरीर में कम्प हो, तो उसको कौबेर-ग्रहजुष्ट समझना चाहिए । ऐसा घोड़ा कण्ठजीवी होता है । (ज० द० २७ अ०) ।

कौबेर सत्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कौबेर-काय' ।

कौबेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्तर दिशा । उत्तरा । (ध० नि०) ।

कौब्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुबड़ा । (सु० शा० १० अ०) । उन्नत पृष्ठता । (वं०) कूँजो । दे० 'कुब्ज' ।

कौब्ज्य—संज्ञा पुं० [सं० कुब्ज] कुब्जता । कुबड़ापन । वक्रता । टेढ़ापन ।

कौमल केन्द्रक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

कौ (कू) मा

कौ(कू)मा--[अ०] गम्भीर निद्रा । सवात । (अ०) कोमा (Coma) ।

कौमार--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ५ वर्ष की अवस्था । पञ्चमाब्द काल । (रा० नि० व० १८) ।

कौमार तन्त्र--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिशुचिकित्सा । कौमारभृत्य ।

कौमार भृत्य--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बाल-चिकित्सा । शिशु चिकित्सा । बालतन्त्र । साइन्स-ऑफ पेडीआट्रिक्स (Science of Paediatrics) । शिशु चिकित्सा-विज्ञान । इल्मअम्नाजुल अत्फाल । वच्चों का इलाज । इलाजुल-अत्फाल ।

वह चिकित्सा जो बालकों के पोषणार्थ, धात्री के दुग्ध-शोधनार्थ, दूषितदुग्ध विकारजन्य तथा बालग्रहों से उत्पन्न बालरोगों की शांति के निमित्त जो आयुर्वेद का एक अंग है, उसको 'कौमारभृत्य' कहते हैं । इसके अतिरिक्त इसमें धोनिव्यापचिकित्सा का भी समावेश है । किसी के अनुसार इसमें प्रसूतितन्त्र (Midwifery) का भी समावेश होता है ।

कौमाराद्यवस्थावधि--संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] जन्म से ५ वर्ष पर्यन्त अवस्था को बाला वा कौमारावस्था कहते हैं । इस अवस्था में लालन-पालन की व्यवस्था की जाती है । इसके पश्चात् १० वर्ष की अवस्था को 'पौगण्ड' कहते हैं । ५ वर्ष के पश्चात् इस अवस्था तक ताड़नादि द्वारा उसको अच्छे-अच्छे ढंग की शिक्षा देनी चाहिए । इसके पश्चात् १५ वर्ष तक किशोरावस्था रहती है । इस अवस्था में शिक्षादि की उत्तम व्यवस्था रखनी चाहिए । इस के पश्चात् यौवन अवस्था प्राप्त होती है । इसमें विवाहादि की व्यवस्था करनी चाहिए ।

कौमारी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गेंठी । गृष्टि । वाराही कन्द । (रा० नि० मूलकादि व० ७) । (२) वंशलोचन भेद । (३) म्बारपाठा । घृतकुमारी । (वै० निघ०) ।

कौ(कू)मिस--[अ० Koumiss] दे० 'कूमिस' ।

कौमुद--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कार्तिक मास । कार्तिक का महीना । (त्रिका०) ।

कौमुदी--संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रात । रात्रि । (ध० नि०) । (२) अर्ध रात्रि । आधी रात । (ध० नि०) । ज्योत्स्ना । चांदनी । (अ०) । (ध० नि०) ।

कौमुदीजीवन--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चकोर पक्षी । (वै० निघ०) ।

कौमुदीवृक्ष--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दीप वृक्ष । (वं० दिलपज । (हारा०) ।

कौम्भ--

कौम्भ घृत--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौवर्ष का पुरातन कौम्भसर्पि--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धी जो वैद्यक में बहुत गुणकारी समझा जाता है । (वै० निघ०) । 'स्थित वर्ष शतं श्रेष्ठं कौम्भसर्पिस्तदुच्यते' । (चक्र द०) ।

कौयाम--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुन्दर । अच्छा । उत्तम ।

कौर--[फा०] कर्नव ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा फैलनेवाला झाड़ । (Reinwardtia trigyna) ।

कौर कूरह--[शीराज] चील पक्षी ।

कौर वै-पुगै-इलै--[ता०] तमाकू भेद ।

कौरसन--[सिध] बाय सुरही । (Pulchea lanceolata) ।

कौरा--संज्ञा पुं० दे० 'कोडा' ।

[पं०] करनतूत । कीमु । हीमु । (मेमो०) ।

कौरारा--[पं०]

कौरी--संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वालिन की फली । गुवार ।

कौरीडुल्लेस--[यू०] फपर्यून ।

कौरैया--संज्ञा पुं० कुड़ा । कुटज । कूर्ची ।

कौर्म--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विष भेद । यह कूर्म्म (कच्छप) तुल्य होता है ।

कौल--संज्ञा पुं० [सं० कमल] (१) पद्म । कमल । (२)

निलूफर । नीलोत्पल । (३) पाण्डुरोग ।

कौल--[?] निलूफर । नीलोत्पल ।

कौलकलिल--[मल०] सेहूँड़ । स्नुही । कोपल सेंड ।

कौल गट्टा--संज्ञा पुं० [हि० कौल=कमल + गट्टा=कमल का बीज] कमल ककड़ी । कमलगट्टा ।

कौलत्थ--वि० [सं० त्रि०] कुलथी सम्बन्धी । वह वस्तु जिससे कुलथी का सम्बन्ध हो । (वा० चि० ७ अ०) ।

कौलत्थीन--वि० [सं० त्रि०] कुलत्थ उत्पादक क्षेत्रादि । वह क्षेत्र जिसमें कुलथी बोई जाती है ।

कौलदूना--[?] समुद्रफेन । समुद्रझाग । कफेदरिया ।

कौलदुमा--संज्ञा पुं० [हि० कौल=कमल + दुमा=दुमदार] कवूतर की एक जाति ।

कौलानामा--संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] पीपल । पिप्पली ।

कौलपाड़ा--संज्ञा पुं० { एक प्रकार की वनस्पति है । दे०

कौलपाला--संज्ञा पुं० { 'कोलपाला' ।

कौलमका--[सुर०] आस । विलायती मेंहदी ।

कौलमूल--संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपलामूल । पिप्पली-मूल । (ध० नि०) ।

कौलस--[?] राँग का मेल । कथीलकिट्ट । कलई का मेल ।

कौलसिम्ब--संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोलशिम्बी । सेम भेद ।

कौलसे--[म०] कोयला । काष्ठ अङ्गार ।

कौलसी--[गु०] कोयला । काष्ठ अङ्गार ।

कौला--संज्ञा पुं० [सं० कमला] (१) एक प्रकार का संगतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है । कमला । (२) नारंगी । मुसब्बी ।

कौला--[?] गरीयुल-जलीद । (लु० क०) ।

कौलाञ्जी नारकम्--[मल०] नारंगी । नागरङ्ग ।

कौलान—[अ०] नरसल भेद । (बु० क०) ।

(Papyrus-Paper) ।

कौलामीस—[यू०] शत्रुमरियम ।

कौलामूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपलामूल ।

कौलालक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मिट्टी का पात्र । मृत-पात्र विशेष ।

कौलिया—संज्ञा पुं० [देश०] वेरार में होनेवाला एक प्रकार का छोटा वृक्ष ।

कौली-काँदा—संज्ञा पुं० [सं० कोलकंद] जंगली प्याज । वन पलाण्डु ।

कौलीन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लिंग । जननेन्द्रिय । उपस्थ । गुह्याङ्ग । (मे०) ।

कौलीन—[यू०] कर्नव ।

कौली बैंगन—संज्ञा पुं० भाँटा । वार्ताकु ।

कौलीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकड़ासिंगी । कर्कट-शृङ्गी । (रा० नि० व० ६) ।

कौलु—[गु०] कुम्हडा । कुम्माण्ड ।

कौलु सिरयाच फल—[म०] बयाकूर (बं०) ।

कौलियक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुर । श्वान । (हला०) ।

कौलोफाइल्लम्—संज्ञा पुं० [ले० Caulophyllum] यह एक वनस्पति है । औषधार्थ इसके मूल द्वारा सुरासव (टिचर) प्रस्तुत किया जाता है । इसकी प्रधान क्रिया साधारणतः जरायु पर होती है । प्रसवकाल तथा प्रसवपश्चात् जब तक सन्तान को स्तन्यदान करना अनिवार्य होता है, तब तक प्रसूति को किसी-न-किसी प्रकार की शारीरिक विकृति बनी रहती है । ऐसी अवस्था में प्रसव के कुछ पूर्व ही यदि इसका उपयोग किया जाय तो कष्टरहित सन्तानोत्पत्ति होती है ।

प्रसवपश्चात् के रोग—यदि प्रसव होने के पश्चात् जरायु निज स्वाभाविक आकार में न प्राप्त हो अर्थात् उसकी वृद्धि में किंचित् भी कमी न हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है । अथवा यदि रोगिणी अत्यन्त निर्बलता के कारण शक्तिविहीन हो चुकी हो तो भी इसके उपयोग से लाभ होता है ।

गर्भस्राव—जरायु की निर्बलता के कारण जिन स्त्रियों को प्रायः गर्भस्राव हो जाया करता है वा गर्भस्राव की सम्भावना प्राप्त हो और जरायु तथा उदरतल में वेदना के कारण कुछ रक्तस्राव होता हो तो इससे अवश्य लाभ होता है ।

प्रसववेदना—प्रसवकाल प्राप्त होने पर व प्रसवपूर्व मिथ्याप्रसववेदना प्राप्त होनेपर जरायुमुख संकोचजन्य वेदना, कठोरता, क्षीणता, आक्षेपिक कण्ठ, रक्त-रक्त कर उठनेवाली वेदना, स्थानान्तरिक वेदना अर्थात् कभी उदर, कभी वक्षपृष्ठ में उत्पन्न होनेवाली वेदना में;

अथवा प्रसवा की अत्यन्त निर्बलता व प्रसवजन्य शूल में इसकी १-२ मात्रा दी जाय तो पर्याप्त लाभ होता है । आक्षेपिक वेदना में इसकी '१' -१-१ घंटा के अन्तर से प्रदान करने से पूर्णतः लाभ होता है ।

जरायुज रोग—जरायुपरिवर्तन अर्थात् जरायु का पीछे की ओर घूम जाना (Retroversion) तथा जरायुपेशी की निर्बलता के कारण जरायुभ्रंश (Prolapsus uteri) और बीच-बीच में जरायुगत उद्वेगजन्य शूल में इससे लाभ होता है ।

असृग्दर (प्रदर)—इसके उपयोग से श्वेत तथा रक्त-प्रदर में; बालिकाओं के श्वेत प्रदर में; निर्बलतायुक्तस्राव में भी इससे उपकार होता है । रक्तप्रदर में—अत्यन्त निर्बलता और वेदनायुक्त रक्त-रक्त कर रक्तस्राव की अवस्था में, जरायु की निर्बलता के कारण वा जरायु के पूर्णतः संकुचित न होने के कारण रक्तस्राव में जब रुधिर का वर्ण कृष्ण वा पतला हो जाय तो इसके उपयोग से लाभ होता है । प्रसव तथा गर्भस्राव के पश्चात् यदि जरायु का पूर्णतः संकोच न होने के कारण अत्यधिक रक्तस्राव की अवस्था में; कटिप्रदेश में, उदर के निम्न भाग में वेदना प्राप्त होने पर भी इसके उपयोग से लाभ होता है । यदि श्वेत प्रदर के कारण गर्भस्थापन न होता हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है ।

बाधकजन्य शूल—ऋतुस्रावकाल में कटि से उदर के निम्न अंश की अस्थि (Pubis) पर्यन्त पहुँचनेवाली वेदना और सविराम वेदना में चाहे वह रजःशूल हो वा रक्तप्रदर, इसके उपयोग से अवश्य लाभ होता है । इसके अतिरिक्त इसमें जरायु-संकोच नष्ट करने की प्रबल शक्ति है । ऋतुस्राव का परिमाण अल्प वा अत्यधिक हो तत्सम्बन्धी विविध प्रकार की वेदना में इसकी ४, '१' शक्ति की १-२ बूँद जल में मिश्रित कर १ घंटा के अन्तर से ५-६ बार सेवन करने से शीघ्र वेदना शान्त होती है । (परीक्षित) ।

अनियमित प्रसव—रक्त-रक्त कर उत्पन्न होनेवाला आक्षेपिक प्रसवशूल, बहुकाल पर्यन्त रहनेवाला अनियमित प्रसवशूल, प्रसव में विलम्ब होना, जरायुमुख में कड़ापन होना और उसके कारण बहुकाल पर्यन्त शूल होने पर भी प्रसव न होने पर अल्पकाल तक वेदना होने के पश्चात् ही प्रसव हो जाना; अत्यधिक रक्त-स्राव होना; प्रसवपश्चात् जरायु का स्वाभाविक रीति से संकुचित न होना, प्रसवपश्चात् जरायु में शिथिलता प्राप्त होने से बहुकाल पर्यन्त प्रसवान्तिक स्राव होता रहना; जरायु की निर्बलता के कारण प्रत्येक बार गर्भस्राव; रक्तप्रदर और साथ ही उदर में शूल प्राप्त होने पर इसका उपयोग शान्तिप्रद है ।

वात-रोग—अंगुली के वातरोग में चाहे वह हस्त वा पादांगुली में हो इसके उपयोग से शान्त होता है। रक्त-साव के कारण यदि अंगुठा वा कलाई में वातज वेदना हो तो इससे उपकार होता है।

क्रम—१×शक्ति। फार्मूला—३।

प्रतिनिधि—बेल, सिंकोना, वाइबर्नम, प्रूनि-वाइबर्नम, ओपु, लिलियम, पल्सेटिल्ला, ऐक्टिया रेसिमोसा इत्यादि।

क्रियास्थिति-काल—१ दिन।

कौलमाषीज—वि० [सं० त्रि०] कुल्माष-उत्पादक क्षेत्र। (अ० टी० रा०)।

कौब—[काश०] कश्मीर में होनेवाला एक वृक्ष है।

कौबड़—[ता०, मल०] कंदूरी। कुनरू।

कौबल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बेर, बदरीफल।

कौबा—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० काओ] दे० 'कौआ'।

कौबा का निशास्ता—[उर्दू] तीखुर। तवाखीर।

कौबाठोठी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी]। (१) काकनासा।

दे० 'कौआठोठी'। (२) अपराजिता।

कौबाडोडी—संज्ञा स्त्री० [] (१) कालादाना। (२) अपराजिता।

[गु०] काकनासा। कौआठोठी।

कौबाडोडी—संज्ञा स्त्री० काकमारी।

कौबारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक चिड़िया। (२)

कचूर के आकार का एक वृक्ष जिसमें बहुत से लाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। (३) कौबा-ठोठी।

कौबासाग—संज्ञा दे० 'कौआसाग'।

कौबीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूईं आंवला। भूम्या-मलकी।

कौबेर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुठ। कूठ। कुण्ठोषधी। (शब्दर०)।

कौश—[?] देवनल। नरकट।

कौ (क्रो)श ऊद्री—[तुर०] मकोय। काकमाची।

कौ (क्रो)शाना—[?] कुठ। कूठ। कुण्ठोषधी।

कौ (क्रो)श वीली—[तुर०] इन्द्रयव। कुटजबीज।

कौ (क्रो)शाद—[फा०] पाषाणभेद। जित्तियाना।

कौशिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गुग्गुलु। (५० मु०)।

(२) लताशाल। अश्वकर्णशाल (रा० नि० व० ६)।

(३) उल्लू। पेचक पक्षी। (४) साँप। सर्प। व्याल।

(५) मगर। ग्राह। (६) नेवला। नकुल। (मे०)। (७)

कोशकार। रेशम का कीड़ा। (श० र०)। (८) मज्जा।

(अ०) मैरो बोन (Marrow-bone)। (हि० च०)।

कौशिक फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नारियल। नारिकेल वृक्ष। (श० र०)।

कौशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोंठीला। गठिवन।

ग्रन्थिपर्णी। (२) मुरा। वै० निघ०। (३) ग्लास। पानपात्र। हे० च०।

कौशिकादि गुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुगल का एक योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—गुग्गुलु शुद्ध ४ मा०, पोस्ते का बीज ६ मा०, अफीम ३ मा०, शिंगरफ शुद्ध १॥ मा०—सबका बारीक चूर्णकर पान के रस में मर्दनकर मटरप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। इन्हें चावल के धोवन के साथ खाने से आमशूल, अतिसार, रक्तातिसार और दुस्तर संग्रहणी दूर होती है। रसायन सं०। र० यो० सा०।

कौशिकारति—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौआ। काक।

कौशिकारि—संज्ञा पुं० [] (रा० नि० व० १६)।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदी। हिमवती पर्वत से बहनेवाली 'कोशी' नदी। (मे०)।

कौशिक्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } सिहोरा। शाखोट

कौशिक्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वृक्ष। भूतवृक्ष।

कौशिक्योज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गवाक्षी।

दे० 'सिहोर'।

कौशी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] उल्लू। उलूक। पेचक पक्षी। (ध० नि०)।

कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अनाज जो कोश में उत्पन्न होते हैं; जैसे—तिल आदि।

कौशीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] नख। नखी नाम का गन्धद्रव्य।

कौशीरा—[?] (१) तवाक। (२) नैवृत। (लु० क०)।

कौशु तैलम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] माचिपत्री।

कौशूय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलतास। आरग्वध।

कौशिय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रेशमी वस्त्र। (२) कासा। काशवृण। (वै० निघ०)।

कौष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल। पद्म। (वै० निघ०)।

कौषिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कौशिक। गुग्गुलु। (२) आहितुण्डी। (रत्ना०)।

कौषिक पत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गुग्गुलु।

कौषेय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेशमी वस्त्र। रेशमी कपड़ा। (सु० ऋतुचर्या अ० ६४)।

कौ (क्रो)स—[?] एक प्रकार की मछली है।

कौ (क्रो)स(अज्म)—[?] वच का वृक्ष।

कौसक—[फा०] (१) बाकला। (२) जिर्जीर। (३) कस्तूरी। मुस्क।

कौसज—[अ०] एक सामुद्री जन्तु है जो मनुष्य पर आक्रमण करता है।

कौ (क्रो)स दरः—[यू०] अकरकरा। आकरकरभ।

कौ (क्रो)सिया—[?] सामुद्री कुष्ठ। कुस्तबहरी।

कौसीद्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आलस्य । तन्द्रा ।
(हे० न०) ।

कौसुम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] 'पुष्पाञ्जन' । कृत्रि-
माञ्जन । (रा० नि० व० २२) ।

कौसुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) वनकुसुम ।
जंगली वरें । (रा० नि० व० ४) । (२) पुष्पाञ्जन ।
(३) एक प्रकार का आम जो बहुत कोमल होता
है ।

कौसुम्भ तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुम के बीजों का
तेल । गुण—वातघ्न, क्षारयुक्त, कटु तथा कफ-पित्तनाशक
है । दे० 'कुसुम' ।

कौसुम्भशाक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुसुमशाक ।

गुण—उष्ण, रुक्ष, कफघ्न, मधुर । दे० 'कुसुम' ।

कौसुम्भ शुण्डिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केसरधान । गुण—
लघुपाकी तथा वात-पित्तघ्न है । (रा० नि० व० १६) ।

कौसुम्भी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केसर धान । ब्रीहि
धान्य । (ध० नि०) ।

कौसुम्भी (म्भ) शालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केसर
धान । (रा० नि० व० १६)

कौसू—संज्ञा पुं० [ले० Kossu] कोसू । पर्याय—(अ०)
कस्सू (Kassu) । (ले०) बरीरा ऐन्थलमेण्टिका ।

उद्भवस्थान—अफ्रीका, हवश ।

परिचय—यह बरीरा ऐन्थलमेण्टिका के गुणक किए हुए
पुष्प हैं । इस वृक्ष के पत्ते आड़ू के पत्तों के-मे होते हैं ।
पत्तियों पर रेखाएँ दृष्टिगोचर होती हैं । इनका अग्र
भाग पतला और ऊपर का भाग चौड़ा होता है । पुष्प
रक्ताभ लोमश होते हैं । इनमें स्त्री-पुष्पकेशर पृथक्-
पृथक् होते हैं । पुष्पकेशर का वर्ण भूरा और स्त्रीकेशर
का वर्ण लाल होता है । फूलों की पंखड़ियाँ नुकीली
लम्बी होती हैं और इन पर रेखाएँ होती हैं । गन्ध-
हरायंध, जायतुल्य होता है । स्वाद-अप्रिय तीक्ष्ण होता
है ।

रासायनिक संगठन—इसमें कौसीन नाम का सत्व होता
है । इसके अतिरिक्त इसमें—निर्यास (गोंद), तैल,
राल और कषायाम्ल (Tannic acid) होता
है ।

नामकरण—हबशी भाषा में कोसू का अर्थ उदर-कृमि
है और उदराद (उदरीयकृमि) नाशक होने से इसका
उक्त नामकरण हुआ है । यह यूनानी 'कौसूलून' का
जिसे दारचीनी कहते हैं, एक भेद है ।

इतिहास—बरीरा वास्तव में कुस्तुनुनिया का एक प्रसिद्ध
फ्रांसीसी चिकित्सक था । इसने उक्त औषध के कृमिघ्न-
गुण पर एक पुस्तक प्रकाशित किया था । हबश, अफ्रीका
में इसका विशेष उपयोग कद्दूदानों के उत्सर्गार्थ किया

जाता था; किन्तु योरोप में सन् १७७३ में डॉ० ब्रूस को
इसका विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ था ।

गुण-कर्म—कृमिघ्न, विरेचक, वामक तथा उत्कलेशक है ।

उपयोग—इसको $\frac{1}{2}$ सेर जल में भिगाकर १५ मिनट के
पश्चात् बिना छाने हुए अनाहारमुख सेवन कराने और
३-४ घण्टा के पश्चात् वा दूसरे दिन रोगी को विरेचन
देने से उदरीय कृमियों का उत्सर्ग होता है । औषध सेवनो-
परान्त जब तक कृमियों का उत्सर्ग न हो जाय भोजन
वर्जित रखें । यदि औषधसेवन के पश्चात् वमन वा
उत्कलेश हो तो नीबू का मीठा पानी दें ।

मात्रा— $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{2}$ औंस ।

कौसूईन—[ले०] कौसू में पाया जानेवाला एक प्रकार का
सत्व है । दे० 'कौसू' ।

कौ (को) सूलून—[यू०] दालचीनी । गुडत्वक् ।

कौसेन्दुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ब्रीहिधान्य विशेष ।
(ध० नि०) ।

कौ (को) स्कुन्दून—[यू०] जंगली लहसुन । सीर सहराई ।
वन रसोन ।

कौस्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दस वर्ष का पुराना घी ।
दशान्दिक घृत । (रत्ना०) ।

कौ (को) स्त—[?] दाख । द्राक्षा । मुनक्का ।

कौस्तल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] माचीपत्री ।

कौ (को) स्तस—[यू०] कुट । कूठ । कुण्ड ।

कौह—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ] साजड़ा । वनज वृक्ष ।
अर्जुन वृक्ष ।

कौहर—संज्ञा पुं० [देश०] इन्द्रायन लाल । महाकाल । महर ।

कौहा—संज्ञा पुं० [देश०] अर्जुन वृक्ष ।

कौही-बङ्ग—संज्ञा पुं० [हिं०, उर्दू, फा०] पहाड़ी भङ्ग ।
पहाड़ी गाँजा । कोही बंग ।

कौहेज—संज्ञा पुं० [अ० Cowhage] किवाँच । कौंच ।
कपिकच्छु ।

कौक्षेयक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तलवार । खड्ग । (अ०) ।

कौंच—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] केवाँच । कपिकच्छु ।

कौंच पाक—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पाक जिसमें कपि-
कच्छु का योग है । (यो० चिन्तामणि) ।

कौंच फली—संज्ञा स्त्री० केवाँच की फली । दे० 'केवाँच' ।

कौंच बीज—संज्ञा पुं० केवाँच के बीज ।

कौचा—[यू०] केवाँच ।

[?] ऊख का अगौरा ।

कौछ—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] केवाँच । कौंच ।

कौडल—ओ सं० ३४७

कौभ—दे० 'कौम्भ' ।

कौभ सर्पि—दे० 'कौम्भ सर्पि' ।

कौ (को) र—का० ४७ पृ०

कौहान--[नक्ती] कन्हान । (बु० क०) ।
 कडो--[गु०] कुटज ।
 क्यइनि--[बर०] समुद्रफल ।
 क्यइबेङ्ग--[बर०] समुद्रफल का बीज ।
 क्यइय--[बर०] समुद्रफल ।
 क्यकट्वा--[बर०] बाँस । वंश ।
 क्यट प्रौङ्ग--[बर०] असियोला-एलाष्टिका । (मेमो०) ।
 क्यन्सा--[बर०] तुमडी (कुमार्यु) । (मेमो०) ।
 क्यबइङ्ग--[बर०] घोरान-गरान (वं०) । (मेमो०) ।
 क्यम् पेरङ्गायम्--[ता०] हींग । हिङ्गु ।
 क्यलोबा--[बर०] ओड़ (उत्तर बंगाल) । (मेमो०) ।
 क्यि--[बर०]

चो० ४६९

क्यिङ्गी--[लेपचा] } पोय । पोई । उपोदकी । छोटा
 क्यिङ्गवी--[लेपचा] } कुएल ।
 क्यी क्यु ईनो--[] सिकोना ।

क्यि--[बर०] हरड़ । हरीतकी ।

क्युइल--[इराण] कील । कीर ।

क्युएन--[] आखी ।

क्युका--

क्युकुमिस ट्रिगोनस--संज्ञा पुं० [ले० Cucumis trigonus]
 जंगली इन्द्रायण । विशाला ।

क्युकुमिस--संज्ञा पुं० [ले०] दे० 'कुकुमिस' ।

क्युचुक--दे०

गि० १०२२

क्युटोल--

क्युन--[बर०] शाक वृक्ष । सागवान ।

क्युप्र-अर्गोल--संज्ञा पुं० [अं० Cuprargol] एक सफेदी
 लिए भूरा चूर्ण जो जल में विलीन हो जाता है । इसका
 १ से ५% का घोल नेत्राभिष्यंद में गुणकारी है । दे०
 'ताँवा' ।

क्युप्रम्--संज्ञा पुं० [ले० Cuprum] ताम्र । ताँवा ।

क्युप्रम् अल्युमिनेटम्--संज्ञा पुं० [ले० Cuprum alum-
 inatum] लेपिस डिवीनस (Lapis divinus) ।
 (फा०) संगे खुदा; (अ०) हजूरहमान ।क्युप्रम्-सल्फास--संज्ञा पुं० [ले० Cuprum-Sulphas]
 तुल्य या तूतिया । ताम्र और गन्धक का एक यौगिक है ।
 दे० 'ताँवा' ।क्युप्राइ आर्सेनियस--संज्ञा स्त्री० [ले० Cuprii Arse-
 nius] (अं०) कॉपर आर्सेनाइट (Copper Arsenite) ।
 यह ताम्र और शंखविष (संखिया) का एक यौगिक है ।
 दे० 'ताँवा' ।

क्युप्राई गेली--संज्ञा स्त्री० [ले० Cuprii galae]

क्युप्राई-न्युक्लीनास--संज्ञा स्त्री० [ले० Cuprii nucl-
 enas]क्युप्राई-सबएसिट्टास--संज्ञा स्त्री० [ले० Cupri-
 Subacitas] जंगार । दे० 'ताँवा' ।क्युप्राई-सल्फास--संज्ञा स्त्री० [ले० Cupri-Sulphas]
 तुल्य, तूतिया । (अं०) कॉपर सल्फेट । दे० 'ताँवा' ।
 (पा० द्र० गु० वि०, पृ० ३६८) ।क्युप्राई-सल्फो-कार्बोनास--[ले० Cupri- Sulpho-
 carbonas] दे० 'ताँवा' ।क्युप्रोन--संज्ञा पुं० [ले० Cuprine] एक प्रकार का लवण
 जो ताम्र में प्राप्त होता है ।

क्युफिया-बिस्कोसिमा--संज्ञा स्त्री० [ले०]

होमियोपैथी-चिकित्सा में प्रयुक्त एक द्रव्य जिसके
 ताजे वृक्ष द्वारा इसका मूल अर्क प्रस्तुत किया जाता है ।
 मेटिरिया मेडिका में इसका गुण इस प्रकार वर्णित है--बाल-
 विसूचिका, विनापची चीजों की कै (वमन), अम्लपित्त,
 बार-बार हरे और पानी जैसे खट्टेदस्तों का आना,
 शरीर में उद्वेष्टन, उग्र वेदना, जोर का बुखार, वेचैनी
 और अनिद्रा की अवस्था में इसका उपयोग हितकर होता है ।

चरित्रगत लक्षण--बच्चों का हैजा, आमरक्त, अम्ल,
 दही की तरह का वमन, दूध वा खायी हुई चीज का
 अम्ल में परिणत हो जाना, खायी हुई चीज विनापची
 अवस्था में या दूध-दही के रूप में कै हो जाना; बच्चे
 को बार-बार हरे रंग के पानी की तरह अम्लदस्तों का
 आना, बहुत वेचैन हो जाना, पेट में कुछ शेष न रह जाना,
 कुछ पीते ही दस्त हो जाना, मानो मुख से पेट में जाते
 ही मलद्वार से बाहर निकल जाना, आमाशय का मल
 थोड़ा, बार-बार किञ्चित् रक्तमिश्रित मल, बहुत कूथन
 और कष्ट के साथ मलका उत्सर्ग, प्रबल ज्वर इत्यादि
 इसके चरित्रगत लक्षण हैं ।

यह एक आधुनिक अन्वेषण से ज्ञात नवीन औषध है ।
 डॉ० मुसलर कहते हैं कि कैलि-फॉसतुल्य यह विसूचिका की
 सभी अवस्थाओं में उपयोगी है । यह भी उसी प्रकार बाल-
 विसूचिका की प्रायः सभी अवस्थाओं में व्यवहृत होती है
 और इससे पर्याप्त लाभ भी होता है । इसके अतिरिक्त
 बच्चों के उग्र ज्वर, वेचैनी, अनिद्रा इत्यादि लक्षण रहने
 पर--इससे और भी अधिक लाभ होता है ।

प्रतिनिधि--इथ्यूजा, आसैनिक, सिकेलि, युफाविंआ,
 इपिकाकुआन्हा ।

शक्ति--०; फार्मूला--३ ।

क्युबीन--दे० 'कबावचीनी'

क्युबेब--संज्ञा पुं० [अं० Cubeb] शीतलचीनी । कबावचीनी ।

क्युबेब केम्फर--संज्ञा पुं० [अं० Cubeb-camphor] ।

क्युबेबा--संज्ञा पुं० [ले० Cubeba] दे० 'क्युबेब' ।

क्युबेबा ऑफिशिनैलिस--संज्ञा पुं० [ले० Cubeba offi-
 cinalis] शीतलचीनी । कबावचीनी की लता ।

क्युबेबिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Cubebic Acid]

क्युबेबिकाम्ल। शीतलचीनी में प्राप्त होनेवाला अम्लद्रव्य।

क्युबेबीन संज्ञा स्त्री० [अं० Cubebin] शीतलचीनी सत्व।

क्युबेबी फ्रक्टस—संज्ञा पुं० [ले० Cubebae-Fructus]

कवावचीनी। शीतलचीनी।

क्युबेब्स-ऑइल—संज्ञा पुं० [अं० Cubebs-oil] शीतलचीनी का तेल।

क्युमिन—संज्ञा पुं० [अं० Cumin] जीरा। जीरक।

क्युमिन ऐलडिहाइड—[अं० Cumin aldehyde] जीरा में प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का तैलीयसत्व। दे० 'जीरा'। (डाइमॉक भ० २, पृ० ११५)।

क्युमिन-कान्यु—संज्ञा पुं० [Cumin carnu]।

(डाइमॉक भ० १, पृ० १७७)।

क्युमिन-ब्लैक—संज्ञा पुं० [अं० Cumin black] काला जीरा। स्याह जीरा।

क्युमिनम्—[ले० Cuminum] जीरा।

क्युमिनम्-साइमिनम्—संज्ञा पुं० [Cuminum-Cyminum]। सफेद जीरा। शुक्लजीरक। श्वेत जीरक।

क्युमिन वाटर—संज्ञा पुं० [ले० Cumin water] जीर-कारक।

क्युमिन-सीड्स—संज्ञा पुं० [अं० Cumin-seeds] जीरा। जीरक।

क्युमिनोल—[अं० Cuminol] दे० 'जीरा'।

क्युमिस—दे० 'कूमिस'।

क्युमिस-हार्डविकिआई—[ले० Cumis hardwickii]।

क्युमोल-क्युमीन—संज्ञा पुं० [अं० Cumol-cumine]।

क्युरारा—संज्ञा पुं० [ले० Curara] यह कालाई लिये भूरी एवं शुष्क एक तिक्त रसक्रिया है जो विभिन्न प्रकार के विषैले वृक्षों विशेषकर स्ट्रिक्नोस टॉक्सिफेरा (Strychnos toxifera) नामक वृक्षकी छाल एवं काष्ठसार तथा फलों से प्राप्त होता है। इसका उत्पत्तिस्थान दक्षिणी अमेरिका स्थित ब्राजील और गाइना है। वहाँ के आदिवासी इसके विष से वाण को जहरीला करते हैं। इसमें यद्यपि थोड़ी सी राल होती है, फिर भी पानी में यह लगभग निःशेष विलीन हो जाता है। इसमें **क्युरारीन** (Curarine) नामक एक सक्रिय सत्व होता है जो अत्यंत सबल विष है। यह एक भूरे रंग का चूर्ण है जिसका स्वाद अत्यंत तिक्त होता है। यह पानी और विद्युद्ध मद्य (सुरासार) में विलीन हो जाता है। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय नहीं होती। इसका प्रधान सक्रिय सत्व ट्यूबो-क्युरारीन (Tubo-Curarin) है।

नाम—(ले०) क्युरारा (Curara), वूरारा (Woorara), वूरारी (Woorari) तथा यूरारी (Urari)।

अनधिकृत—(Not—official)

गुण-कर्म तथा उपयोग—क्युरारा चेष्टावहा नाडियों के अंतिम छोरों को वातग्रस्त करता है। किंतु संज्ञावहा नाडियों पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। यह अश्रु, मुखगत लाला और मूत्र के प्रस्राव को अधिक करता है। इसकी अल्पमात्रा से तो रक्तानुधावन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। किन्तु अधिक मात्रा से नाड़ी दुर्बल एवं तीव्र चलने लगती है तथा शरीरगत धमनीविस्फार के कारण रक्त का दबाव घट जाता है। श्वासोच्छ्वास पेशियों के वातग्रस्त हो जाने से श्वासक्रिया में अन्तर आ जाता है तथा शारीरिक तापक्रम में भी प्रकटतः कमी हो जाती है। जिन पशुओं को क्युराराविष दिया जाता है उनके मूत्र में शर्करा पाई जाती है।

वक्तव्य—एक बात यहाँ विशेष ध्यान रखने योग्य है कि क्युराराका उपर्युक्त प्रभाव तभी लक्षित होता है, जब यह त्वग्धः सूचिकाभरण द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। जब भोजनोत्तर मुख द्वारा इसका प्रयोग करते हैं तब उक्त लक्षण नहीं प्रगट होते। इसका कारण यह है कि एक तो आमाशय से शोषण की अपेक्षा इसका उत्सर्ग (वृक्को-से) शीघ्रगति से होता है, दूसरे शोषणोपरान्त यकृत तथा धातुओं में अंशतः इसका निर्विषीकरण भी हो जाता है। अतएव यदि औषधि सेवन के पूर्व आमाशय खाली हो तथा गवीनीद्वय को बाँध दिया जाय तो इसका विष-प्रभाव पूर्णतया लक्षित होता है। उस व्यक्ति के मूत्र का सेवन करनेवाले पर भी विषप्रभाव प्रगट हो सकते हैं।

क्युरारीन—[अं० Curarine] क्युरारा में होनेवाला एक प्रकार का क्षारसत्व।

होमियोपैथी के अनुसार—

यह एक प्रकार का घातक विष है। अमेरिका के शिकारी व्यक्ति शिकार करने के निमित्त तीर के आगे जिस विष का प्रयोग करते हैं, 'क्युरारी' उसी विष द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

प्रकोप—इसके उपयोग से गत्युत्पादक पेशी में पक्षाघात उत्पन्न होता है और संचालक शक्ति का अभाव हो जाता है। शरीर में प्रत्येक अंग की शक्ति नष्ट हो जाती है, किन्तु संज्ञा (Sensation) का अभाव नहीं होता—उसमें अवसन्नता नहीं होती।

प्रधान लक्षण—सर्वप्रथम शरोभ्रमण होता है; पैर की शक्ति का अभाव होकर पक्षाघात होता है। इसके अतिरिक्त—पादकम्प, ठीक स्थान पर पैर न पड़ना, हस्तकम्प व उसमें स्तब्धता, निर्बलता, अंगुलियों में कम्प, जिह्वास्तम्भ, मुख तथा जिह्वा में द्रवता इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—वातनाशक, कफघ्न तथा बलप्रद है। पूतिनस्य (ओजीना)—नासिका के भीतर दुर्गन्ध,

सरदी, पीव के थक्के, स्नायविक दुर्बलता, स्नायविक पक्षाघात, हनुस्तम्भ, धनुष्टङ्कार तथा चर्मविकार (कुष्ठादि) में इससे लाभ होता है।

होमियोपैथिक—का मूलटिचर। मात्रा—६ से ३० तथा २०० शक्ति! फार्मूला—विचूर्ण—७। प्रतिनिधि—नक्स, क्रोटेलस।

प्रतिविष—स्ट्रिकनीन।

क्यूबिक एपीथीलियम—

क्युरेकाव एलोजा—

क्युरेज़ा अमारा—

क्येटमौक—[वर०] आशफल (वं०)।

क्येटयो—[वर०]

क्येट-सु—[वर०] एरण्ड। रंड़।

क्यो ओडारगज—[को०] केवड़ा।

क्योक्वान—[वर०] जलनिर्गुण्डी। पानी का सम्हाल।

क्योङ्गशा—[वर०] (चो० पृ० ४७१)।

क्योलारी—संज्ञा स्त्री० दे० 'कोइलारी'।

क्योइलु—[ति०] कोयालु (ते०)।

क्योङ्गवान—[वर०] पानी का सम्हाल। जलनिर्गुण्डी।

क्योङ्ग बेन—[वर०] सौना। सोनापाठा। श्योनाक। अरलु।

क्योटी—[खरवार] पर्याय—(कोल) वेङ्गसरगजन। (वं०) रक्तपित्त। (मेमो०)।

क्रकच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सरीता। करपत्र। करीत। एक प्रकार का शस्त्र। (२) केतकी। (३) गठोना। ग्रन्थिपर्णी। गठिवन। (मे०)। (४) एक प्रकार का सान्निपातिक ज्वर। लक्षण—इसमें-प्रलाप, आयास (थकावट), सम्मोह, मूच्छा, कम्प, भ्रम, अरति (वेचैनी) और मन्यास्तम्भ होकर मृत्यु होती है। (भा० म० १ भ०)। (५) करील का पेड़।

क्रकच्छद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) केतकी (२) केवड़ा। (ध० नि०)।

क्रकच पत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सागवान। शक वृक्ष। (वं०) सेगुनगाछ। (रा० नि० व० ६)।

क्रकचपात्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिरगिट। सरट।

क्रकच पाद—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कृकलास। (Chameleon)।

क्रकच-पृष्ठी—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कवई मछली। सेकुची। कवयीमत्स्य। (वं०)। कैमाछ। (Coius-ubojinus)।

क्रकचा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केतकी। (२) केवड़ा। (ध० नि०)। (रा० नि० व० १०)। (३) होगल वृण। होगला।

क्रकण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तीतर। तित्तिर पक्षी।

क्रकरपक्षी। (वं०) कयार पाखी। (अम०)।

क्रकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) क्रकच। करपत्र (२)

बाँस का करील। वंशकरीर। (वं०) बाँसेर कोड़।

(प० मु०)। (३) किलकिला नामक पक्षी। केकड़ा।

कवा(या)र पक्षी। (Perdix sylvatica)। (वं०)

कर्कटिया पाखी। (म०) करढोंक। (सं०) कृकण,

क्रकण, कृकर। मांस—गुण—लघुपाकी, हृद्य, अग्निवर्धक,

वृष्य, मेध्य वात-पित्तनाशक (सु० सू० ४६ अ०)।

लघु, हृद्य है। (रा० नि० व० १९)। रक्त में हितकर

है (सि० यो० रक्त-पि० चि०)। खण्डखाद्य लौह में।

(४) तित्तिर। तीतर। (५) करील। करीरक्षुप।

क्रकराट्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भरद्वाज पक्षी। (वै० निघ०)।

क्रकौञ्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कटिया पक्षी। क्रौञ्चपक्षी।

(वै० निघ०)

क्रतु पशु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़ा। अश्व। घोटक।

(हारा०)।

क्रथन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मारण। मृत्यु। (अम०)।

(२) सहसा श्वासावरोध (नि०)।

क्रथनक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सफेद अगर। श्वेत अगुरु

काष्ठ। (श० च०)।

क्रन्दन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बिल्ली। विडाल। (श०

मा०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रुदन। रोना। (श० र०)।

क्रन्दित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रोदन। रुदन। रोना।

(अ०)।

क्रपेही—[मेची] पर्याय—(मग०) डेरी।

क्रम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाद। पैर। (रा० नि०

व० १८)। (२) अनुक्रम। श्रेणी। (३) शक्ति। बल। (४)

कल्प। (५) आक्रमण (मे०)। (६) एड़ी। पार्ष्णि।

(ध० नि०)। (७) होमियोपैथी के अनुसार मूल औषध

वा मूलारिष्ट (टिचर) (Mother Tiny)। दूध की चीनी

वा सुरासार के साथ भली भाँति मिश्रित कर मर्दन करने

वा पीसने से छोटे-छोटे अंश में विभाजित हो जाने को

क्रम (Attenuation) कहते हैं।

क्रमण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चरण। पाद। पैर।

क्रमपरिणाम पक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धातुओं को क्रमो-

त्पत्ति विषयक तीन मतों (पक्षों) में से एक। इसे 'क्षीर-

दधिन्याय' भी कहते हैं। यह पक्ष चरकसंमत है। इस

पक्ष का विशेष विवरण ग्रहणी चिकित्साध्याय में पन्द्रह

श्लोकों में किया गया है। इस न्याय के अनुसार जो शरीर

के पोषण का क्रम मानते हैं, उनका यह कहना है कि

यथा दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और

घी से घृतमण्ड बनता है तथा सम्पूर्ण आहाररस से रक्त,

रक्त से मांस इत्यादि धातु एक के पश्चात् एक क्रम से

उत्पन्न होते हैं। इसलिए इसको 'क्रमणपरिणाम पक्ष' कहते हैं।

क्रमपुरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अगस्त। वक्रवृक्ष। वुक। (ध० नि०)। (रा० नि० व० १०)।

क्रमि—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्रिमि। क्रुमिरोग।

क्रमि कण्टक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वायविडंग। विडङ्ग। (२) गूलर। उदुम्बर। (मे०)।

क्रमिक दृष्टिह्रास—संज्ञा पुं० [सं०] धीरे-धीरे दृष्टि कम होना। आंध्य। (अ०) कुम्भः जुजूइया। (अ०) अम्बली-ओपिआ (Amblyopia)।

क्रमिफन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायविडंग। विडङ्ग। (र० मा०)।

क्रमिज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अगर। अगुरु काष्ठ।

क्रमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख। लाक्षा। (Lacca) (र० मा०)।

क्रमिरिपु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायविडंग। विडंग।

क्रमिशत्रु—संज्ञा पुं० ["] (र० मा०)। (२) मूँगा का वृक्ष। प्रवाल तृक्ष। (वै० निघ०)।

क्रमिहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख। लाक्षा। (Lacca)।

क्रमीलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वन मूँगा। मूगानि-बं०।

क्रमु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुपारी। गुवाक। क्रुमुक।

क्रमुक—संज्ञा पुं० ["] (भा०)। (रा० नि० व० ११) (२) नागरमोथा। भद्रमुस्तक। (३) कार्पासी फल।

(४) पठानी लोध। पट्टिकालोध। (५) देवदारु। (मे०)

(६) लाल लोध। रक्तरोध। (७) पारसपीपल।

पारिषाश्वत्थ। (बं०) गया अश्वत्थ। (अम०)। (८)

सहतूत। तूत। (भा०; रा० नि० व० ९)। (९) तृण

वृक्ष। (ध० निघ०)।

क्रमुक प्रसून—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धाराकदम्ब। धूलि-कदम्ब। (रा० नि० व० ९)।

क्रमुक फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुपारी। गुवाक।

क्रमुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (रा० नि० व० ११) (श० र०)।

क्रमेरिई—संज्ञा स्त्री० [ले० Krameriae]

क्रमेरिई रडिक्स—[ले० Krameriae radix] क्रमेरिया की जड़।

क्रमेरिया—संज्ञा पुं० [ले० Krameria] इसके लगभग ३-३॥

फुट ऊँचे गुल्म होते हैं, जिसकी शाखायें काण्ड के अध.

भाग से ही निकलकर ऊपर न जाकर भूमि की ओर

फैलती हैं। पहाड़ियों के बाबुकामय ढालों पर ३०००-

९००० फुट की ऊँचाई पर इसके जंगल पाये जाते हैं।

जड़ का ऊपरी सिरा ग्रन्थिल होता है जिससे अनेक मूल-

शाखायें निकली होती हैं। इनमें कोई-कोई शाखा दो

फुट तक लम्बी होती है। बाजार में क्रमेरिया की जड़

के टुकड़े मिलते हैं, जिनकी मोटाई का अधिकतम व्यास १५ मि० मिटर होता है। अधिक मोटी शाखाओं में टैनिन की मात्रा कम होने से अग्राह्य होती हैं। उक्त जड़ प्रायः रम्भाकार होती हैं और इनकी बाह्य त्वचा लाली लिये भूरे रंग की होती है।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष में यह औषधि नहीं पाई जाती। इसका मुख्य उत्पत्तिस्थान अमेरिका के पेरू तथा बोलिविया प्रान्त हैं।

रासायनिक संगठन—क्रमेरिया-टैनिन एसिड (Krameria tannic-Acid) इसका प्रधान घटक है जो लगभग ८% की मात्रा में पाया जाता है।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—तीव्र शीतसंग्राही होने से इसकी जड़ का चूर्ण दन्तमंजनों में डालने के लिए एक उत्तम उपादान है। गलत्रणता, मसूढ़े में व्रण अथवा खून आने पर अथवा पारद के कारण उत्पन्न मुखपाक से इसकी जड़ का फांट उत्तम गण्ण होता है। क्रमेरिया एण्ड कोकेनलॉजेंज गलत्रणता के लिये एक उत्तम योग है। (पा० द्र० गु० वि० २ भ०, पृ० १५२-१५४)।

क्रमेरिया अर्जेन्टीआ—संज्ञा पुं० [ले० Krameria argentea Marl.] क्रमेरिया की एक दूसरी प्रजाति।

क्रमेरिया एण्ड कोकीनी लॉजेंज—संज्ञा पुं० [अं० Krameria & cocaine-lozenge] क्रमेरिया और कोकेन की बनी मुखचक्रिका।

क्रमेरिया ट्राइएण्ड्रा—संज्ञा पुं० [ले० Krameria triandra, Ruis.] क्रमेरिया वृक्ष।

क्रमेरिया रूट—संज्ञा पुं० [अं० Krameria root] क्रमेरिया की जड़।

क्रमेरियार्जिराई—[ले०

क्रमेल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट। उष्ट्र। (ध० नि०)।

क्रमेलक—संज्ञा पुं० ["] (अं०) केमेल (Camel)।

क्रमोद्वेग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैल। वृष। (वै० नि०)।

क्रम-शीर्ष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कपिशोर्ष। सिंगरफ। हिङ्गुल। (त्रिका०)।

क्रमसद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बकरी। छाग। (शब्द र०)।

क्रमारोह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाजार। हाट। हट्ट। (त्रिका०)।

क्रमिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खरीददार। क्रेतार।

क्रमी—संज्ञा पुं० ["] (अम०)।

क्रमु—[पं०] बालछद्द (मेमो०)।

क्रमेही—[मेथी] देती। (मेमो०)।

क्रम्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मांस। गोश्त। (रा० नि० व० ७)।

क्रम्यघातन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिरन। मृगा। (श० च०)।

कव्यात्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) राक्षस। मांस खाने
कव्याद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाले। (मे०)। (२)
सिंह। (३) बाज। श्वेत पक्षी। (रा० नि० व० १८;
ध० नि०)।

कव्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जटामांसी। (रा० नि०
कव्यादी—संज्ञा स्त्री० ["] व० १२)। वल्गुली।
(घ० नि०)।

कव्यादि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अजीर्ण रोग में प्रयुक्त
एक रसयोग। कव्याद रस।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध
गन्धक २ पल, ताम्रभस्म ४ तोला, लौहभस्म ४
तोला, एकत्र चूर्णकर किसी लोहपात्र में स्थापनकर मृदु
अग्नि से विद्रावण करें। पुनः एरण्ड-पत्र पर निम्न भाग
में गोमय रख ढाल दें। पुनः १०० पल जम्बीरी नीबू
का स्वरस ग्रहणकर लोहपात्र में शनैः शनैः पचावे। जब
शुष्क हो जाय तब इसमें पञ्चकोलकवाथ की ७५ और
अम्लवेतस (शंखद्रावरस की) ७५ भावना दें। पुनः
इसमें भुना सोहागा चूर्ण ४ पल, ३ पल विडनोन, सर्वसम
मरिच चूर्ण (१० पल) मिश्रित करें। पुनः इसमें
चणकक्षार-जल की ७ भावना दें। (सा० कौ०)।
मात्रा—२ माश। भोजनान्त में सेवन करने से अजीर्ण
तथा समस्त उदररोग का नाश होता है।

इस रस मन्थानक के निर्माता श्रीभैरव जी हैं। अनु-
पान—तक्र में सेंधानमक मिश्रितकर पान करने से
गुरुपाकी मांस, गुरुपाकी दुग्ध, पिष्टी के पदार्थ, दोर्घ-
पाकी फलादि पदार्थ २ प्रहर में भस्म हो जाता है तथा
काश्यं, स्थूल्य, विष, आमातिसार, गुल्म, प्लीहरोग,
जलोदर, शूल, वात-कफ, संग्रहणी, अतिसार वातज
ग्रन्थि और उदररोग मात्र में उपयोगी है।
(घ० नि०)।

कशिसा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] काश्यं। कृशता। दुबलापन।

कशियान—वि० [सं० त्रि०] अति कृश। अत्यन्त दुर्बल।

क्रश्लिनसिड—संज्ञा पुं० [अ० Crushed-Linseed]
कुचली हुई अलसी (तीसी)।

क्राइनिस—[अ० Crinis] शिर के केश। शिर के
बाल।

क्राइसारोबिन—[अ० Chrysarobin] दे० 'क्राइसारो-
बिनम्'।

क्राइसारोबिनम्—[ले० Chrysarobinum] अरारोवा में
पायाजनेवाला एक पीलेरंग का सत्व। दे० 'अरारोवा'।

क्राइसारोबिनम् एसिटेट—संज्ञा पुं० [ले० Chrysarobin-
um acetate] दे० 'अरारोवा'।

क्राइसारोबिनम् कूड—संज्ञा पुं० [अ० Chrysarobinum,
crude] दे० 'अरारोवा'।

क्राइसिक हेडके—संज्ञा पुं० [अ० Crisic Headache]
सुदाअ बुहरानी। दर्दसर बुहरानी।

क्राइसिस—संज्ञा पुं० [अ० Crisis] मोक्ष। बुहरान। यह
रोग की अन्तिम अवस्था में होता है।

क्राइसेरोबिन (स)—दे० 'क्राइसारोबिन (म)'।

क्राइसैन्थमम् इण्डिकम्—[ले० Chrysanthemum-Indi-
cum] गुलदाउदी। शतपत्री। गुलचीनी। सेवती।

क्राइसैन्थमम् कॉरोनैरियम्—संज्ञा पुं० [ले० Chrysanthem-
um Coronareum]—विदेशी गुलदाउदी। विला-
यती गुलदाउदी। गुलचीनी।

क्राइसैन्थमम् सिनेरैरिडिकोलियम्—संज्ञा पुं० [ले० C. cine-
rariaefolium Vis] अकरकरा'।

क्राइसोफाइलस रॉयजबर्गियाई—

क्राइसोफैन्टिक एसिड—संज्ञा पुं० [अ० Chrysophanic
acid] दे० 'अरारोवा'। गुण—इसे दद्रु वा खुजली पर
लगाने से शीघ्र लाभ होता है। विधि-१० ग्रेन १ औंस
वेसलीन में मिश्रितकर उपयोग करना उचित है। दे०
'अरारोवा'।

क्राइसोमेला—संज्ञा पुं० [ले०

क्राटीवा नर्वेला—संज्ञा पुं० [ले० Crataeva nurvala]
वरुण वृक्ष। वरना।

क्राटीवा रेलिजीओसा—[ले० Crataeva Religiosa]
वरुण वृक्ष। वरना।

क्रान्त—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] महारस।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वैक्रान्त मणि। (२) घोड़ा।
घोटक। (त्रिका०)।

क्रान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ी कटेरी। बन
भाँटा। बृहती। (२) बड़ी इलायची। स्थूल एला। (रा०
नि० व० ४; ध० निघ०)।

क्रान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सूर्य। (२) सूर्य-
गत्यर्थ खगोलमध्यस्थ तिर्यग् गोल रेखा।

क्रान्तु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी। (उणा०)।

क्रामक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्रमुक-मूल। सोपारी मूल।
(रसा० सं० लौह पुट पाके)।

क्रामण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सोहागा। टङ्कणक्षार।
(२) धातु वेधनार्थ विद्रावण की विधि। गलाना।

क्रामणगण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रससारोक्त द्रव्य—मधूच्छिष्ट
(मोम), मधु (शहद), मधूक (महुआ), सिता (मिश्री),
टङ्कण (सोहागा), गुंजा (घुँघची), अश्वकर्ण (पलाश
लता), केश (शिर के बाल), छुल्लुन्दरीवसा, स्त्रीरज,
स्त्रीदुग्ध, शुक्र, इन्द्रगोप (वीरबहूटी), भूलता (केचुआ),
वसा, वैल, शिला (मैनशिल), गन्ध (गन्धक), सारिवा,
क्षीरिणी, विष, हयारि (करवीर), नाभि (वत्सनाभ),
कर्पूर, स्नुहीक्षीर (सेहूँड का दूध), अर्कक्षीर (आक का दूध)।

सिवथ (मोम), सर्ज (राल), मृतनाग (सीसभस्म), गुड़, गुग्गुलु, और तुत्थ (तूतिया) ।

रसार्णवोक्त द्रव्य—(१) माक्षिक, विष, गुंजा, टङ्कण, स्त्रीरज, स्त्री दुग्ध; (२) सर्पविष, अश्रक द्रुति, जीवा, क्रोष्टुजिह्वा, सर्व धातुओं की द्रुति, भूलता, रक्त, शिला, विष, टङ्कण, और पारद; (३) ताप्य (धातुमाक्षिक), स्त्री-दुग्ध; (४) इन्द्रगोप, विष, कान्तलोह, दरद, रुधिर, रसक, तिलतैल, स्नुहिपय (सेहूँड का दुग्ध); (५) भूलता, स्वर्णमाक्षिक, मैन्शिल, टङ्कण, विष, रुधिर, काकविष्ठा, स्त्रीदुग्ध महिषीकर्णमल, रामठ (हींग) और महेशधूप; (६) भूलता, लाङ्गली शृङ्गी, काकविष्ठा, शैलज, शिलाजतु विष्णुकान्ता, मधुच्छिष्ट (मोम), रुधिर, द्विपदीरज (स्त्रीरज), सुरसा (तुलसी), ब्रम्ह, सोम, गृध्रचर्म, लक्ष्मण और महिषीकर्णमल; (७) गण्डोल (?), विष, भेक, महिषाक्षिमल और रुधिर; (८) विष, इन्द्रगोप, रोचना, गुग्गुलु और स्त्रीदुग्ध; (९) अरिवर्ग (खदिरवर्ग) द्वारा मृतपारद, नाग और वज्र; (१०) मात्रिवाह (कीट भेद), कुलीर (केकड़ा), शंखकीट, कपित्थनिर्यास, उपयुक्त द्रव्यों द्वारा पारद का संक्रामण अर्थात् पारद में धातुवेधन की शक्ति उत्पन्न होती है। इसका उपयोग रसवेधकाल में किया जाता है। जो व्यक्ति इस क्रिया को नहीं जानते उनका रसवेधजन्य श्रम व्यर्थ होता है।

रसहृदयोक्त क्रामणद्रव्य—(१) कान्तलोह की द्रुति, विष, हिगुल, रुधिर, रसक, फिटकिरी, तिलतैल—इनका लेप तथा प्रक्षेप देने से पारद संक्रामण योग्य होता है। (२) कुन्टी (मैन्शिल), माक्षिक और विष तथा नररुधिर, शशकरुधिर—इन से भी संक्रामण होता है। अथवा (३) मैन्शिल द्वारा मारित नाग, वंग वा तालशुद्ध, इनके द्वारा भी क्रमशः स्वर्ण व रजतनिर्माण में संक्रामणार्थ उपयोग किया जाता है।

क्रामण प्रयोजन—संज्ञा पुं० दे० 'क्रामण विधान' ।

क्रामण विधान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विद्रावणविधि। गलाना ।

क्रामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रसायनओषधिभेद । (र० का० धे) ।

क्रामेरिया—संज्ञा पुं० [ले० Krameria] दे० 'क्रमेरिया' ।

क्रामेरिया-ट्राइएण्ड्रा—संज्ञा पुं० [ले० Krameria triantra] दे० 'क्रमेरिया' ।

क्रायोजेनीन—संज्ञा पुं० [अं० Cryogenin] फेनिकारबे-जाइड। दे० 'लोवान' ।

क्रायोफीन—संज्ञा पुं० [अं० Kryofin] एक अंगरेजी औषध ।

क्रायोसल्फोन—संज्ञा पुं० [Cryosulfon] दे० पा० द्र०

गु० वि० भ० २, पृ० ७७२) ।

क्रिज्मा—[अं० Chisma] पवित्र स्नेह । दे० 'पाराफीन' ।

क्रिज्मेलीन—[अं० Chresmaline] प्रवाही पारा-फिन ।

क्रिटिकल—वि० [अं० Critical] बुहरानी ।

क्रिटिकल एज—संज्ञा पुं० [अं० Critical-Age] रज-निवृत्तिकाल । वह अवस्था जब मासिकधर्म का स्राव बंद होता है ।

क्रिटिकल डायरिया—संज्ञा पुं० [अं० Critical Diarrhaea] बुहरानी दस्त । दे० 'इस्हाल-बुहरानी' ।

क्रिटिकल-डिजीन—संज्ञा पुं० [अं० Critical Disease] बुहरानी बीमारी । दे० 'अम्राज बुहरानी' ।

क्रिटिकल-हेडेक—संज्ञा पुं० [अं० Critical Headache] दर्दसर बुहरानी । सुदाअ बुहरानी ।

क्रिटिनिज्म—संज्ञा पुं० [अं० Cretinism] उन्माद । जुन्न ।

क्रिनम्-एसियाटिकम्—[ले० Crinum-Asiaticum]

क्रिनम् एमाराथेलिस [Crinum-Amaryllis]

क्रिनम् टॉक्सिकेरियम् [Crinum Toxiarium]

क्रिनम् जीलानिकम् [Crinum Zeylanicum]

क्रिनम् ब्रैक्टिएटम् [Crinum-Bracteatum]

[ले०] सुर्दशन । चिण्डार । दे० 'नागिनका पत्ता' ।

क्रिप्टोकोरिन स्पाइरैलिस—[ले० Cryptochorin]

(डाइमॉक भ० १, पृ० १८१; भ० ३, पृ० ५४८) ।

क्रिप्टोपीन—[अं० Cryptopin]

(डाइमॉक भ० १, पृ० ८८) ।

क्रिप्टोप्टेजिआ ग्राण्डिफ्लोरा—संज्ञा पुं० [ले० Cryptostajia grandiflora] पर्याय—(म०) वाखण्डी ।

(डाइमॉक भ० २, पृ० ४२५) ।

क्रिमि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घृत । घुण । (रत्ना०) ।

(२) लाख । लाक्षा । (३) कीट । (अ० टी० भ०) ।

(४) शरीर में उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के रोग-

जनक बाह्य और आभ्यन्तर सूक्ष्म जीव (क्रिमि) । कृमि ।

पर्या०—(फा०) किर्म; (अ०) दूद, दुदः (बहुव० दीदान); (अं०) वर्म Worm ।

भेद—बाह्य और आभ्यन्तर (देश)भेद से क्रिमि दो प्रकार के होते हैं । वहिर्मलज, कफज, रक्तज और बिडज ये जन्मभेद (कारण) से चार प्रकार के होते हैं और नाम भेद से ये क्रिमि बीस प्रकार के होते हैं । इनमें बाह्यकृमि स्वेदादिरूप मल से होते हैं और आभ्यन्तर कृमि आमाशय आदि में होते हैं ।

बाह्यमलज कृमिभेद—(१) यूका (जूँ) और (२) लिक्षा (लीख) ।

आभ्यन्तर कृमिभेद—(१) कफज कृमि—(आकृति एवं

वर्ण भेद से) — (१) पृथुव्रधननिभा (व्रधनाकार क्रिमि), (२) गण्डूपदोपम (गण्डूपद क्रिमि), (३) रूद्धधान्याङ्कुराकार (अङ्कुशमुख-क्रिमि), (४) छोटे (लम्बाई में), (५) ह्रस्व और अतीव सूक्ष्म, (६) श्वेत और (७) ताम्रवर्ण (वाग्भट)।

सुश्रुतोक्त कफज क्रिमिभेद—(१) दर्भपुष्पा, (२) महापुष्पा, (३) प्रलून, (४) चिपिट, (५) पिपीलिका और (६) दारुण। नामभेद से—(१) अन्त्राद, (२) उदरवेष्ट, (३) हृदयाद (४) महागुद, (५) चुरव, (६) दर्भकुसुम और (७) सुगंध (वाग्भट)।

रक्तज क्रिमि—(१) केशाद, (२) रोमविध्वंस, (३) रोमद्वीप, (४) उदुम्बर, (५) सौरस और (६) (जन्तु) मातर (वाग्भट)। सुश्रुतोक्त रक्तज क्रिमि—“केशरोमनखादाश्च दन्तादाः किमिवशास्तथा। कुष्ठजा सपरिसर्पा ज्ञेयाः शोणितसम्भवाः।” ये रक्तवाहिनी सिराओं में होते हैं। (३) पुरीषज क्रिमि—(१) ककेरुक, (२) मकेरुक, (३) सौमुराद, (४) सशूल और (५) लेलिह (वाग्भट)। सुश्रुतोक्त पुरीषज क्रिमि—(१) अजवा (अयवा), (२) विजवा (वियवा), (३) क्रिप्या, (४) चिप्या, (५) गण्डूपद, (६) चुरव और द्विमुख ये पक्षाशय में होते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्राणहर कीटभेद। (सु० कल्प ८ अ०)।

कृमिकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्राणहार कीटभेद। (सु० कल्प ८ अ०)।

क्रिमिकर्ण (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णस्रोतगत रोग। कान के कीड़े।

पर्याय—(सं०) कर्णकृमि; (बं०) कान कोटारि; (फा०) दीदान गोश; (अ०) दीदानुल् उज्ज; (अं०) वर्म्स इन दी इअर (Worms in the ear)। कान के भीतर मांस, शोणित के पचने से कान में कृमि उत्पन्न होते हैं अथवा कान में मक्खियों के अण्डा देने से भी कान में कृमि उत्पन्न होते हैं। (मा० नि०)।

चिकित्सा—ममरी का रस कान में डालने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। अथवा सुरसादिगणोक्त द्रव्यों को तेल में पका कर कान में डालने से कर्णगत कृमि नष्ट होते हैं।

क्रिमिग्रन्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] नेत्रसन्निगत रोग। पलक (वर्त्म) तथा शुक्लभाग की संधि में होनेवाला नेत्ररोग। ‘क्रिमिग्रन्थि’।

क्रिमिघातिनी गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृमिरोग में प्रयुक्त योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, अजमोद ३ भाग, वायविडंग ४ भाग तथा ब्रह्मवीज (पलाशपापड़ा) ५ भाग, तिन्दुक बीज ६ भाग—सबको यथाविधि एकत्र चूर्णकर वायविडंग के काथ से मर्दनकर ४ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

अनुपान—आखुपर्णी वा मोथा के काथ से सेवन करने से कृमिरोग नष्ट होता है।

क्रिमिघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोलकन्द। (रा० नि० व० ७)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायविडंग, विडङ्ग। (अ० टी०)। दे० ‘कृमिघ्न’।

क्रिमिघ्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वायविडंग।

क्रिमिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [] (२) हल्दी। हरिद्रा। (३) लाख। लाक्षा। (वै० निघ०)। (४) तमाकू। धूम्रपत्र। (रा० नि० व० ५)। (५) वकुची। सोमराजी। (श० च०)।

क्रिमिज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अगर। अगुरु। (अ०)।

क्रिमिज अतिसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमियों से होनेवाला अतिसार। (फा०) किरमी दस्त। (अ०) इस्हाल दूदी। (अं०) डायरिया वर्मिनोसा (Diarrhoea Verminosa)।

क्रिमिजग्ध—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अगर। अगुरु काष्ठ। (रा०)।

क्रिमिजन्य छर्दि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृमियों से होनेवाला वमन। दे० ‘छर्दि’।

क्रिमिजन्य मूर्च्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूर्च्छारोग का कृमिजन्य भेद। दे० ‘मूर्च्छा’।

क्रिमिजन्य यकृच्छूल—संज्ञा पुं० [सं०] कृमियों से होनेवाला यकृतशूल। दे० ‘यकृच्छूल’।

क्रिमिजन्य शिरोरोग—संज्ञा पुं० [सं०] कृमियों के सिर में बैठकर अन्दर की ओर सिर को खाते रहने से होनेवाला शिरोरोग। क्रिमिज शिरोशूल। (फा०) दर्दसर किरमी। (अ०) सुदाअ दूदी।

क्रिमिजन्य शूल—संज्ञा पुं० [सं०] कीड़ों का शूल। (अ०) कुलंज दूदी। (अं०) वर्मिनस या वर्म कॉलिक (Worminosis or Worm colic)।

क्रिमिजन्य हृदयशूल—संज्ञा पुं० [सं०] कृमियों से होनेवाला हृच्छूल।

क्रिमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख। लाही। लाक्षा। (रा०)।

क्रिमिजित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायविडंग। विडङ्ग। (चक्र०)।

क्रिमिदन्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिजन्य दन्तरोगविशेष।

लक्षण—दाँतों में कृष्णवर्ण का छिद्र हो जाता है। दन्तमूल में शोथ होता है तथा वेदना होती है एवं लाला-स्राव होता है तथा अकस्मात् दाँतों में पीड़ा होने लगती है। ‘कृमिदन्त’। (मा० नि०)।

क्रिमिदन्त चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दन्तगत कृमिरोग की चिकित्सा (उपाय)। दे० ‘कृमिदन्त’।

क्रिमिमुद्गर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कृमिमुद्गर रस' ।

क्रिमिरिपु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायविडंग । विडङ्ग ।

क्रिमिरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'कृमिरोग' ।

क्रिमिशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायविडंग । विडङ्ग ।

क्रिमिशार्दूल चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक कृमिघ्न चूर्णयोग विशेष ।

क्रिमि शात्रव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रीवाँ । विट्खदिर । गृह बटूल ।

क्रिमिशिरोरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृमिजन्य शिरोरोग । कृमिज शिरोरोग । लक्षण—इस रोग में मस्तक में अत्यन्त तोड़ने की-सी पीड़ा होती है, कृमि के भक्षण करने के कारण भीतर से फटता हो ऐसा प्रतीत होता है और नासिका में से पूयमिश्रित रुधिर का स्राव होता है । यह भयङ्कर शिरोऽभिताप मस्तिष्क में कृमि उत्पन्न होने से उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—कृमिजन्य शिरोरोग में कृमिनाशक द्रव्यों के साथ तेल पकाकर नस्य देने से लाभ होता है ।

चूर्ण—मरिच, पीपल, सहिजन के बीज, करंज के बीज और सोंठ एकत्र चूर्णकर नस्य लेने से लाभ होता है । अथवा सुरसादिगणोक्त औषधियों के साथ तेल पका कर नस्य दें ।

क्रिमि शैल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दीमक । बल्मीक । (त्रिका०) ।

क्रिमिहर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) विडङ्ग । बायविडंग । (२) कालानमक । कृष्ण लवण । (वि० निघ०) । (३) कृमिघ्न । कृमिनाशक । कातिलदीदान । (अं०) ऐन्थल मेण्टिक ।

क्रिमिहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख । लाक्षा । Lacca ।

क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चिकित्सा । उपाय । प्रतिषेध । (रा० नि० व० २०) । (२) चेष्टा, आरम्भ, सम्प्रधारणकर्म । (मे०) ।

क्रिया-काल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिकित्सा आरम्भ करने का काल (समय) । आयुर्वेद में चिकित्सा सम्बन्धी ६ काल हैं—(१) रोग सञ्चयकाल, (२) रोगप्रकोप काल, (३) रोगप्रसर-काल, (४) रोग का स्थान-संचय-काल, (५) व्यक्ति-काल और (६) भेद उपर्युक्त कालों का ज्ञान सम्यक् रूप से जो चिकित्सक जानता है, उसको ही चिकित्सक (भिषक) समझना चाहिए—

संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम् ।

व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक ।

(सु०) ।

रोगसंचय के स्थान—(१) वातस्थान-समासरूप से वायु का स्थान-श्रोणि और गुदा, पित्त का पक्वाशय तथा

आमाशय के मध्य में और कफ का स्थान आमाशय है । उक्त दोष सर्वव्यापी हैं तथापि उक्त स्थानों में विशेषरूप से रहते हैं । इसके अतिरिक्त पित्त के स्थान-यकृत, प्लीहा, हृदय, दृष्टि, त्वचा और क्षुद्रान्न हैं । कफ के स्थान—वक्ष, शिर, कण्ठ, सन्धि और उपर्युक्त आमाशय है । वायु का स्थान वातरोग में देखिए । उक्त दोष अविकृतावस्था में उपर्युक्त वर्णित स्थानों में व्यापक होने पर भी विशेष रूप से रहते हैं । चरक में पित्त के स्थान—स्वेद, रस, लसिका, रुधिर और आमाशय हैं । उर, शिर ग्रीवा, पर्वणी, आमाशय और मेद कफ के स्थान हैं और वात के स्थान—वस्ति, कटि, पुरीषाधान, पाद, अस्थि और सक्थि हैं । (सू० अ० २०) । दोषप्रकोपकाल तथा कारण के निमित्त दे० 'दोषप्रकोपकाल' ।

संचित दोषों के लक्षण—कोष्ठ में भारीपन, पूर्णता, पीला दिखाई देना, त्वचा का वर्ण किंचित् पीतवर्ण होना, शरीर में किंचित् उष्णता की वृद्धि प्रतीत होना, अंगों में भारीपन, आलस्य की वृद्धि होना और संचय के कारणों से द्वेष उत्पन्न होना इत्यादि लक्षण होते हैं । यह चिकित्सा का प्रथम-काल है ।

वात के संचय में रूक्षादि वातसामान्य अर्थात् संचय-कारक पदार्थों से द्वेष उत्पन्न होना और स्निग्ध आदि वातविपरीत पदार्थों की अभिलाषा उत्पन्न होना, उक्त उभय प्रकार के लक्षण जब उत्पन्न हों तो वात का संचय-काल समझना उचित है । इसी प्रकार शरीरगत उष्णता स्वाभाविक उष्णता से कुछ अधिक हो जाती है । इससे पित्त का संचयकाल समझना चाहिए । कफ—इसी प्रकार कफसंचय होने पर अंगों में भारीपन और आलस्य होता है ।

चिकित्सा—प्रथम क्रिया-काल में चिकित्सा करने से दोषों का प्रशमन शीघ्र हो जाता है । शरीरगत धातुओं को क्षति नहीं होती और रोगी को विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ता । संचय के अनन्तर आने वाली अवस्था में दोष बलवत्तर हो जाते हैं और चिकित्सा में विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है । अतः संचय अवस्था में ही दोषों की चिकित्सा प्रारम्भ करना चिकित्सार्थ सर्वोत्तम काल है । 'संचयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरागतिः (ते तूतरासु गतिथु भवन्ति बलवत्तरा' (वाग्भट) । चरक ने भी कहा है—

अर्णहि प्रथमं भूत्वा रोगः पश्चात् विवर्धते ।

सजात भूलो मुष्णाति बलमायुश्च दुर्यते ॥

तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषुषा ।

भेषजैः प्रतिकुर्वीत य इच्छेत् सुखात्मनः ॥

रक्त प्रकोप—जिन आहार-विहार से पित्त का प्रकोप होता है उनका सेवन, पुनः पुनः द्रव, स्निग्ध, गरिष्ठ पदार्थों का सेवन, दिन का शयन, क्रोध, अग्निसंताप, सूर्य-

संताप, आघात, अजीर्ण, विरुद्धाशन, अध्यशन, अत्यधिक उष्ण पदार्थों का सेवन इत्यादि कारणों से रक्त का प्रकोप बढ़ता है। यद्यपि रक्तवातादि दोषों के बिना कदापि प्रकुपित नहीं होता, अतः उसके कोप का काल दोषों के अनुसार समझना उचित है।

लक्षण—उक्त दोषों के प्रकोप से उदर में व्यथा, वायु का संचार, अम्लोद्गार, प्यास, दाह, अन्नद्वेष, उत्क्लेश, इत्यादि लक्षण होते हैं।

स्पष्टीकरण—प्रकोप—संचय और प्रकोप उभय अवस्थाएँ दोषों की वृद्धि के भेद हैं। चय वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था है, जिसमें दोषों का केवल संचय होता है और प्रकोप द्वितीय अवस्था है, जिसमें दोषों का विलयन होकर स्थानान्तर करने की स्थिति उत्पन्न होती है। चयावस्था में रोग के प्रमुख लक्षण नहीं दृष्टिगोचर होते, किन्तु प्रकोपावस्था में वातादि दोषों के स्पष्ट लक्षण प्रकट होते हैं। यह प्रकोप का काल चिकित्सा करने के लिए द्वितीय काल है। अर्थात् चयावस्था में दोषों का प्रशमन नहीं किया गया तो प्रकोपावस्था में अवश्य करना उचित है।

दोनों का प्रसार—उदाहरण—जिस प्रकार सुरावीज (Yeast), जल और पिष्ट पदार्थ मिलकर रात्रि भर में उनमें उद्रेक (उफान) उत्पन्न होता है और उच्छलित होकर पात्र के बाहर आ जाते हैं। उसी प्रकार बलवद्विग्रहादि विशेष कारणों से प्रकुपित दोषों में कालान्तरमें उद्रेकपूर्वक प्रसारित होता है। यद्यपि दोष अचैतन्य हैं तथापि वायु गतिसम्पन्न होने से उनके प्रसरण का कारण होता है। रजोगुण सर्वभावों का प्रवर्तक है और वायु रजोगुण प्रधान है। यथा—जल का महद् संचय और अधिक वृद्धि सेतु को भंगकर अन्य जलों से मिश्रित होकर सर्वत्र फैल जाता है, तद्वत् दोष भी अधिक वृद्धि के कारण अपने स्थान की मर्यादा को उल्लंघन कर कभी स्वयं, कभी दो मिलकर, कभी तीनों मिलकर, कभी रक्त को भी ग्रहण कर अनेक प्रकार से प्रसारित होते हैं; यथा—(१) वात, (२) पित्त, (३) कफ, (४) शोणित, (५) वात-पित्त, (६) वात-कफ (७) पित्त-कफ, (८) वातशोणित, (९) पित्तशोणित, (१०) कफ-शोणित, (११) वात-पित्त-शोणित, (१२) वात-कफ-शोणित, (१३) पित्त-कफ-शोणित, (१४) वात-पित्त-कफ, (१५) वात-पित्त-कफ-शोणित इस प्रकार १५ प्रकार से प्रसारित होते हैं।

जिस प्रकार आकाश में जहाँ मेघ होते हैं वहाँ ही वर्षा होती है, तद्वत्—शरीराङ्ग के सम्पूर्ण, अर्ध वा एक भाग में जहाँ कुपित दोष अधिक फैलते हैं, वहाँ ही रोग उत्पन्न करते हैं, परन्तु जो दोष अधिक कुपित नहीं हैं, यदि उनकी चिकित्सा न की जाय तो शरीर के स्रोतस्थ होकर

छिपे रहते हैं और कालान्तर में बिना प्रकोपक कारण को प्राप्त कर पुनः प्रकुपित हो जाते हैं।

चिकित्सा विधि—उनमें से पित्त के स्थान में प्राप्त वायु की चिकित्सा पित्त की भाँति; कफ के स्थान में प्राप्त हुए पित्त की चिकित्सा कफ तुल्य; और वायु के स्थान में प्राप्त कफ की चिकित्सा वायु की भाँति करनी चाहिए। इस क्रम से अन्य स्थानान्तर दोषों की चिकित्सा की जाती है। (सु०)।

स्पष्टीकरण—अन्य स्थानगत दोषों की चिकित्सा तीन प्रकार से होती है। इनमें से प्रथम प्रकार की चिकित्सा यहाँ वर्णित है। इस चिकित्सा का तत्व यह है कि जब एक दोष आगन्तुक दोष दूसरे के स्थान में प्राप्त होता है, तब उस स्थान के दोष (स्थानि दोष) की चिकित्सा करनी उचित है। वाग्भट का आदेश है कि यदि आगन्तु दोष निर्वल हो तो स्थानिक दोष की चिकित्सा करनी उचित है 'तत्राज्य स्थान संस्थेषु तदीयामवलेषु च। कुर्याच्चिकित्साम्'।

द्वितीय पद्धति यह है कि यदि आगन्तु दोष बलवान् हो तो प्रथम उसकी ही चिकित्सा करनी उचित है। 'कुर्याच्चिकित्सां स्वामेव वले नान्याभिर्भविषु।'

तृतीय पद्धति यह है कि सर्वप्रथम स्थानिदोष की चिकित्सा समाप्त कर, पुनः आगन्तु दोष की भी चिकित्सा करनी उचित है। 'स्थानं जयेद्भिर्पूर्वतु स्थानस्थस्य विरुद्धतः।' आगन्तु समयेदोषं स्थानिनं प्रतिकृत्यवा (वाग्भट)। चरक ने स्थानान्तरगत दोषों की स्वेदनचिकित्सा के निमित्त तृतीय पद्धति को स्वीकार किया है। 'आमाशय गते वाते कफे पक्वाशयाश्रिते। रूक्षपूर्वोहितः स्वेदे स्नेह पूर्वस्तथैव च'।

प्रकुपित और प्रसारित दोषों के लक्षण—इस प्रकार प्रकुपित और फैलनेवाले दोषों में—विमार्ग गमन और और आध्मान वायु के लक्षण हैं; उष्णता, चूसने की सी पीड़ा, दाह, और घूम-की-सी उद्गार पित्त के लक्षण हैं; और अरुचि, अजीर्ण, वमन तथा क्लम (थकावट) कफ के लक्षण हैं। यह चिकित्सा का तृतीय-काल है।

स्थानसंश्रित दोष—प्रकुपित हुए दोष शरीर के विभिन्न स्थानों में प्रवेश कर विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं—जब उक्त दोष उदर विभाग में स्थित होते हैं तब गुल्म, विद्रधि, उदररोग, जठराग्नि की मन्दता, आनाह, विसूचिका, अतिसार इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं। **बस्तिविभाग में स्थित दोष**—प्रमेह, अश्मरी, मूत्राघात, अन्य प्रकार के मूत्रदोष इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं। **वृषणगत दोष** सप्तविध वृद्धिरोग उत्पन्न करते हैं। **शिशनगत दोष**—निरुद्धप्रकश, उपदंश, शूकदोष इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं। **गुदागत दोष**—भगन्दर, अर्श इत्यादि

रोग उत्पन्न करते हैं। जन्तुगत दोष— ऊर्ध्वज रोग उत्पन्न करते हैं। त्वचा-मांस तथा शोणितगत दोष—विसर्प, क्षुद्ररोग, कुष्ठ इत्यादि उत्पन्न करते हैं। मेदगत दोष—ग्रन्थि, अर्बुद, अपची, गलगण्ड, अलजी इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं। अस्थिगत दोष—विद्रधि, अनुशयी इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं। पादगत दोष—श्लीपद, वातरक्त, वातकण्ठ इत्यादि रोग उत्पन्न करते हैं। सर्वाङ्गगत दोष—ज्वर, तथा सर्वाङ्ग में होनेवाले रोगों को उत्पन्न करते हैं उक्त रोगों के पूर्वरूप में चतुर्थ-चिकित्सा-काल होता है।

व्याधिदर्शन—शोफ, अर्बुद, ग्रन्थि, विद्रधि, विसर्प, इत्यादि तथा ज्वर, अतिसार, इत्यादि रोगों के लक्षण स्पष्टरूप से प्रकट होने को व्याधिदर्शन वा व्यक्ति कहते हैं। यह व्यक्तावस्था का पञ्चम-काल है। इसी को भेदावस्था, व्यक्तावस्था, व्यक्ति इत्यादि कह सकते हैं।

क्रिया-क्रम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]—चिकित्सोपक्रम।

क्रियाजू (जो)ट—संज्ञा पुं० [अं० Creosote] यह एक प्रकार का तेल है जो काष्ठों के धूम्र में विद्यमान होता है। सनो-वर के वृक्ष के काष्ठों को बरतन में बन्द करके तीव्र अग्नि देने से 'कतरान' परिश्रुत हो आता है। इसको पुनः परिश्रुत एवं शुद्ध करने से 'क्रियाजूट' प्राप्त होता है। यह ग्वायकोल, क्रियोसोल और अन्य फेनोल के यौगिकों का एक यौगिक है जो रंग-रहित या किंचित् पिलाई लिए प्रवाही वस्तु है जिसकी गंध विशिष्ट प्रकार की (तीव्र जली हुई वस्तु के समान) होती है। स्वाद तीक्ष्ण (चरपरा) जिससे मुख जलने लगता है। प्रतिक्रिया उदासीन (न अम्ल न क्षारीय) या अत्यन्त हल्की अम्लता लिए। विलेयता—यह एक भाग १५ भाग शीतल जल में और गरम जल में अधिकतर तथा, परिश्रुत मद्य (९०%), ईथर, क्लोरोफॉर्म, बेंजोल और गाढ़े शुक्ताम्ल (ग्लेशियल एसिटिक एसिड) में सुविलेय होती है। यह ग्लिसरीन में भी विलेय होता है और १ से ३ भाग ग्लिसरीन तक तो ठीक रहता है, पर यदि इस अनुपात से अधिक ग्लिसरीन मिलाई जाय तो फिर मिश्रण गदला हो जाता है। चाँदी के लवण क्रियाजूट के साथ मिलकर एक ऐसा यौगिक बनाते हैं जो गरम होने पर बारूद की भाँति भक से उड़ जाता है। नाम—(ले०) क्रियाजूटम् (Creosotum); (अं०) क्रिया (यो) जूट (Creosote); वक्तव्य—क्रियाजूट के दो प्रधान उपादान-ग्वायकोल और क्रियोसोल हैं। अस्तु, किसी-किसी प्रकार के क्रियाजूट में ग्वायकोल अधिक होता है और किसी-किसी प्रकार में क्रियोसोल। परन्तु पीचबुड-क्रियाजूट में ग्वायकोल अधिक होता है। प्रथम तो इसमें ६० प्रतिशत ग्वायकोल होता

था। किन्तु अब वह ५० प्रतिशत से अधिक नहीं होता। क्रियाजूट ब्रिटिश फार्माकोपिया में अधिकृत है।

लक्षण या पहिचान—यद्यपि इसकी विशिष्ट गंध इसके पहिचान में सहायक होती है, तथापि कार्बोलिक एसिड से इसके पहिचानने में धोखा हो जाया करता है। क्योंकि इसका रंग विश्वासयोग्य नहीं होता। जो साधारणतः तो हल्का पीला, परन्तु कभी स्याहीमायल सुर्ख होता है।

संयोग-विरुद्ध—चाँदी के लवण (सिल्वर साल्ट्स) विशेषकर ऑक्साइड ऑफ सिल्वर या नाइट्रेट ऑफ सिल्वर।

गुण-कर्म—कोथप्रतिबंधक (डिसइन्फेक्टेंट) और दुर्गन्धहर।

मात्रा—२ से १० मिनिम् (बूँद) अर्थात् १२ से ६० सेन्टिलीटर।

अनधिकृत (नॉट-ऑफिशियल) योग—१—(ले०) अंग्वेन्टम् क्रियाजूटाई—(Unguentum Creosoti); (अं०) क्रियाजूट ऑइन्टमेन्ट (Creosote ointment); (सं०) क्रियाजूट मलहर; (अं०) मरहम क्रियाजूट; (उ०) मरहम क्रियाजूट। २—क्रियाजूटाई कार्बोनास (Creosoti Carbonas) या क्रियोजोटोल (Creosotol); ३—क्रियोजूटाई फॉस्फॉस (Creosoti Phosphos) या फॉस्फोट (Phosphote); ४—क्रियोजूटाई टैनास या टैनोसाल (Creosoti tannas or Tannosal) प्रभृति।

ग्वायकोल (Guaiacol)

यह दो प्रकार का होता है—(१) औषधीय (मेडिसिनल) ग्वायकोल और (२) संश्लिष्ट (सिन्थेटिक) ग्वायकोल।

(१) मेडिसिनल ग्वायकोल—एक रंगरहित प्रवाही है जो पीच-बुड क्रियाजूट से या ग्वायकम-रेजिन से भागीय परिस्त्रावणविधि (फ्रैक्शनल डिस्टिलेशन) से प्राप्त किया जाता है। इसमें प्रायः क्रियाजूट या क्रीसोल का योग होता है। इसमें विशेष प्रकार की गंध होती है।

(२) सिन्थेटिक ग्वायकोल—यह पैरो-कैटीकीन से कृत्रिमरूप से बनाया जाता है। इसके नियताकृति के मणिभ होते हैं जिनसे एक प्रकार की सुगन्ध आती है। इसमें किसी अन्य द्रव्य का मिश्रण नहीं होता। यह शुद्ध होता है।

विलेयता—ग्वायकोल जल में तो विलीन नहीं होता, किन्तु अलकोहल (मद्यसार ६०%), ईथर, ग्लिसरीन और स्थिर तेल (बादाम और जैतून के तेल) में सरलता से विलीन हो जाता है। कृत्रिम ग्वायकोल एक भाग ५० भाग पानी में भी विलीन हो जाता है।

मात्रा—प्रवाही १ से ५ बूँद; शुष्क १ से ५ ग्रेन।

नोट—ग्वायकोल को गहरे अंबरी रंग की मजबूत डाट-

वाली शीशी में डालकर प्रकाश से सुरक्षित रखना चाहिये।

व्यवस्थापत्र-लेखन संबंधी संकेत—प्रवाही ग्वायकोल को बादाम के तेल में या काँडलिवर ऑयल या शेरी मद्य में विलीनकर और फिर कैपसूल में डालकर देते हैं। पर कभी इसको ग्लिसरीन और पानी के साथ प्रवाही मिश्रण (मिक्चर) के रूप में देते हैं। कभी बादाम या जैतून के तेल में विलीनकर त्वगीय पिचकारी भी कर देते हैं। शुष्क ग्वायकोल को चक्रिका (टिकिया) के रूप में या कीचट में डालकर देते हैं।

गुण-कर्म तथा उपयोग—ग्वायकोल यक्ष्मकीट (ट्यूबर-कुल बेसिलाई) के ऊपर घातक प्रभाव करता है। अतएव उरःक्षत यक्ष्मारोग में इसके उपयोग से खाँसी और कफ कम हो जाता है तथा कफ में यक्ष्मा के जीवाणुओं की संख्या घट जाती है। रात्रि में अतिस्वेद का होना कम हो जाता है या बंद हो जाता है। इससे ज्वर भी आराम होता है। किन्तु इसका उपयोग किंचित् देर तक चालू रखना चाहिये। कभी-कभी इससे हृदय दुर्बल हो जाता है।

ग्वायकोल के योग और ऐसे पेटेण्ट औषध जिनमें ग्वायकोल पड़ा होता है।

(१) ग्वायकोल बेञ्जोआस (Guaiacol Benzoas) या बेञ्जोसोल (Benzosol); (२) ग्वायकोल कार्बोनास (Guaiacol Carbonas) या ड्युओटाल (Duotal); (३) ग्वायकोल कैम्फोरास (Guaiacol Camphoras) या ग्वायकैम्फोल (Guaiacamphol) इत्यादि।

क्रियाजूट के गुण-कर्म (फार्माकालॉजी):

बाह्य—क्रियाजूट के गुण-कर्म कार्बोलिक एसिड की भाँति कोथप्रतिबंधक, (डिस्इन्फेक्टेण्ट) और दुर्गन्धहर है। पर क्योंकि यह एक जटिल योग है। अस्तु इसकी क्रिया सदा एक-सी नहीं होती।

आभ्यन्तरीय—मुख, आमाशय और अन्त्र—क्रियाजूट को मुख में लगाने से मुख में उष्णता का अनुभव होता है तथा मुखलाला का साव प्रचुरता से होता है। मुख की झिल्ली (एपिथेलियम) नष्ट हो जाती है। यह अनुमान किया जाता है कि क्रियाजूट आमाशय की श्लेष्मल कला के सांवेदनिक वातसूत्रों के अंतिम छोरों को शिथिल करता है तथा पेपसिन (पाचकरस) पर बिना किसी प्रकार के प्रभाव के यह निम्नकोटि के तृणाणुओं को मारकर अभिषवावस्था एवं प्रकोथ विकार को रोकता है। इसे अधिक मात्रा में देने से जी मिचलाता, वमन होता, उदर में तीव्र वेदना होती, विरेक् होते हैं, नाडी की गति तीव्र हो जाती है और श्वासोच्छ्वास मंद और खिचकर आता है, परन्तु आक्षेप आदि नहीं होता।

उत्त्रेक (Secretions)—यह तुरत रक्त में अभिशोषित,

हो जाता है तथा इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। शरीर से इसका उत्सर्ग वायुप्रणाणीस्थित श्लेष्मल कला और मूत्रपिंडों के द्वारा होता है। अस्तु, उत्सर्गकाल में यह वायुप्रणालियों एवं वृक्कों को उत्तेजना प्रदान करता है तथा श्लेष्मा और मूत्र के प्रस्राव को बढ़ाता है। यदि वह कोथयुक्त हों तो उनके प्रकोथ का निवारण करता है।

सूक्ष्म जीवाणुओं (माइक्रोऑर्गेनिज्म)—ऐसा प्रतीत होता है कि यह अणुवीक्ष्य जीवाणुओं (Microbes) विशेषकर यक्ष्म-जीवाणुओं पर घातक प्रभाव करता है तथा इसका उक्त प्रभाव इसके निर्हरण काल में होता है या जब आघ्राणन द्वारा इसको आघ्राण कराया (सुँघाया) जाता है तब यह यक्ष्माकीटों को लग कर उन्हें मार डालता है।

क्रियाजूट के आमयिक प्रयोग (थेराप्यूटिक्स):

बाह्य उपयोग—इसका संगठन अनिश्चित हाने से कार्बोलिक एसिड के समान साधारणतया कोथप्रतिबंधक की भाँति इसका उपयोग नहीं कर सकते। व्रण, किटिभ कुष्ठ जैसे त्वचा के छिलकेदार रोगों तथा कतिपय प्रकार की पामा आदि में इसका अधिकृत (ऑफिशियल) मलहर लाभकारी है।

क्रियाजूट-वाष्प (क्रियाजूट वेपर) या क्रियाजूटीय शीकर (क्रियाजूटस्-प्रे) सुँघाने से जीर्णकास में विशेषकर जब कफ प्रचुरता से एवं अत्यंत दुर्गन्धयुक्त निकलता हो, उरः क्षत और फुफुसगत गैड्ग्रोन अर्थात् फेफड़े का मुर्दार पड़ जाना आदि रोगों में उपकारी है।

आभ्यन्तरीय उपयोग—

मुख, आमाशय और अन्त्र—जरासी रूई क्रियाजूट में तर करके सड़े-गले एवं पीडायुक्त दाँत में सावधानीपूर्वक रखने से तुरत पीड़ा दूर हो जाती है। अत्यल्प मात्रा उदाहरणतः १ से ३ बूँद की मात्रा में देने से यह उत्क्लेश, वमन, आध्मान और उदरशूल में गुणकारी है। जब इसको विज्मथ एवं अल्कलीज (क्षार) के साथ दिया जाता है तब यह अभिषवजन्य कुपचन (फर्मेन्टेड डिस्पेप्सिया) और अतिसार को रोकता है।

फुफुस—यक्ष्मारोग के जीवाणुओं पर इसका घातक प्रभाव होने से उरःक्षत रोग में क्रियाजूट और ग्वायकोल उभय विशिष्ट गुणकारी औषध माने जाते थे, परन्तु इसके गुण सन्दिग्ध होने के कारण उरःक्षत एवं तत्संबंधी रोगों में इसका उपयोग वर्जित हो गया है। निःसंदेह कोथप्रतिबंधक होने के कारण कोथयुक्त कफ को कम करता है। रोगियों को क्रियाजूट की अपेक्षया ग्वायकोल कार्बोनेट और थियो-कोल के प्रति बेहतर सहनशीलता होती है तथा इनको कोकेन के साथ भी मिलाकर भलीभाँति दे सकते हैं।

व्यवस्थापत्र-लेखन-विषयक उपदेश—मुख या गुदा-मार्ग से बादाम के तेल में मिलाकर त्वगीय पिचकारी द्वारा, त्वचापर पतला लेप लगाकर या मर्दनकर और सुँघाकर क्रियाजूट का उपयोग कराते हैं। मुखद्वारा देना हो तो इसको गोली या कैपशूलज या पर्लीज (मौक्तिक वटिका), धौत (इमल्शन) के रूप में या दूध अथवा काँडलिवर ऑयल (मत्स्ययकृतैल) मिलाकर देना चाहिये। कभी-कभी उरःक्षत में क्रियाजूट शीकर (स्प्रे) से कफोत्सर्ग में किंचित् उपकार होता है। किंतु रक्तष्ठीवन में क्रियाजूट का उपयोग बंद करा देना चाहिये। क्योंकि यदि इसका सेवन अत्यधिक काल तक चालू रखा जाय, तो कभी-कभी इसके सेवन काल में श्लेष्मा का उत्सर्ग और हलका रक्तष्ठीवन जारी रहता है!

होमियोपैथी के अनुसार—

गुण-कर्म तथा उपयोग—संशमन (मुसक्किन) तथा संग्राहक एवं कोथघ्न है। वमन व उत्क्लेश में उपयोगी है। वातज वेदना, हिक्कानाशनार्थ इसका विशेष उपयोग होता है। इसका सर्वाधिक प्रभाव श्लैष्मिक-कला पर होता है। लम्बी दुर्बल वनिताओं पर इसकी और भी अधिक अच्छी क्रिया होती है। सगर्भावस्था में वमन, उत्क्लेश, ऋतु-काल और उसके पूर्व शिरोवेदना, पुष्पसमागम के पश्चात् रक्तस्राव, शीघ्र-शीघ्र ऋतुस्राव होना, परिमाण में अत्यधिक होना, शयन करते ही स्राव होना, बैठने तथा खड़ा होने पर स्राव बंद हो जाना, ऋतुस्राव कभी पूर्णतः अवरुद्ध हो जाना और पुनः आरम्भ हो जाना, पीतवर्ण का दुर्गन्धयुक्त श्वेत प्रदर का स्राव—जहाँ लगे वहाँ दाग पड़ जाना और प्रदाह होना, दुर्गन्धयुक्त प्रसवश्चात् का स्राव (लोखिया lochia)—एक बार अवरुद्ध होकर पुनः होना, योनिकण्डू, योनिक्षत, ऋतु-काल तथै उस के पूर्व कर्णनाद—कान में गुन-गुन, सों-सों, झिन-झिन शब्द होना, वाधीर्य होना, कण्टपूर्वक दाँत निकलना, दाँत निकलते ही उसका क्षयारम्भ होना, मसूढ़े नीलापन लिए, मृदु, क्षतयुक्त, प्रदाहयुक्त, उनसे रक्तस्राव होना, कर्ण के चतुर्दिग् रसभरे दाने निकलना इत्यादि में इससे लाभ होता है।

मुखमण्डल कृष्णाभ, शरीर दुर्बल-पतला असम तथा अतिवर्धनशील; ऐसी स्त्रियाँ जो अपनी अवस्था की अपेक्षा अत्यधिक लम्बी हो गई हों और जिनकी त्वचा में वलियाँ (सिकुडन) हों, जो देखने में वृद्धा-की-सी प्रतीत होती हों, जिनकी ग्रन्थियों में शोथ हो गया हो वा हो जाया करता हो, स्त्रियों के ऋतु बन्द होने की अवस्था में कोई-न-कोई रोग हो जाना इत्यादि लक्षणों में इसकी उत्तम क्रिया होती है।

श्वेत प्रदर (Leucorrhoea)—स्राव का वर्ण पीत, जिससे वस्त्र में पीत दाग पड़ जाना, अत्यन्त दुर्गन्ध आना, स्राव शरीर में लगने से कन्डू तथा प्रदाह होने लगना, खुजाने पर खुजली न घटकर सूज जाना तथा अत्यधिक काल पर्यन्त स्राव में भी इससे अधिक लाभ होता है। प्रदर के साथ रक्तस्राव हो वा ऋतुस्राव के साथ अत्यधिक रक्तस्राव हो तथा एक बार बन्द हो कर पुनः दिखाई दे तो क्रियाजूट से लाभ होता है।

जरायुक्षत तथा कैन्सर के अतिरिक्त अन्यान्य घावों में भी—घाव गैंग्रीन वा कोथ में परिणत हो जाने की सम्भावना होने पर वा बृद्धों के कोथयुक्त प्रदाहिक क्षत में क्रियाजूट लाभप्रद है।

यक्ष्मा (Phthisis)—क्रियाजूट से यक्ष्मारोग के कोशा-णुओं का नाश नहीं होता, किन्तु फिर भी इसके सेवन से कफ का परिमाण अल्प हो जाता है, श्लेष्म-स्राव कम होता है, स्वेदस्राव रुक जाता है और शरीर में धीरे-धीरे बल की वृद्धि होने लगती है।

बालातिसार एवं विसूचिका—कष्टतर दाँत निकलने के साथ बालकों को यदि यह रोग हाँतो और मल में दुर्गन्ध हो तो क्रियाजूट से लाभ होता है।

सान्निपातिक ज्वर (टाइफॉयड फीवर) की अन्तिम अवस्था में जब अत्यन्त निर्बलता और दुर्गन्धयुक्त मल में रक्त मिश्रित हो तो इससे लाभ होता है।

बहुमूत्र—रात्रि में पुनः पुनः मूत्रोत्सर्ग होना, प्रत्येक बार अत्यधिक परिमाण में मूत्र होना, शीघ्र-शीघ्र मूत्रोत्सर्ग होना, अचानक इतना मूत्र होना कि उठने तक की देर सहन न कर सकना, बालक वा युवकों का बिछौने पर मूत्रत्याग कर देना और उनका ऐसा समझना कि ठीक मूत्रस्थान पर ही मूत्रत्याग कर रहे हैं; किन्तु निद्रा भंग होने पर प्रतीत होना कि यह सब स्वप्न था, ऐसी अवस्था में क्रियाजूट उपयोगी है। पूयमेह (सूजाक) तथा कुरं: में उपयोगी है।

दन्तरोग—अत्यन्त कष्टपूर्वक बालकों का दाँत निकलना, दाँत काले और मसूढ़ों का अस्वस्थ रहना, मसूढ़ों में वेदना होना, मसूढ़े फूल जाना, दाँतों में कुमिविकार होना, मसूढ़ों का रंग घोर लाल वा नीला पड़ जाना, बालकों का अत्यन्त बेचैन होकर रुदन करना, उपसर्ग आदि का प्रातःकाल ६ बजे से सन्ध्याकाल पर्यन्त बढ़ते जाना, दन्तोद्भेदकाल में प्रथम दाँत के ऊपर एक कृष्ण वर्ण का चिह्न पड़ना, पुनः समस्त दाँतों का काला पड़ जाना और खण्ड-खण्ड होकर टूटते रहना तथा क्रमशः समस्त दाँतों का नष्ट हो जाना, मसूढ़े-स्पञ्जवत् फूल जाना, किंचित् स्पर्श मात्र से निकल जाना इत्यादि में इसके बाह्य उपयोग से कष्ट दूर होता है।

वमन—भोज्य पदार्थों का जीर्णन होना, वमन हो जाना, अजीर्णविस्था में खाद्यवस्तुओं का वमन हो जाना, भोजनोपरान्त देर में वमन होना, अथवा गर्भावस्था के वमन में भी क्रियाजूट के उपयोग से लाभ होता है।

अतिसार—ऐसे अतिसार में जब श्लेष्मामिश्रित अधिक दस्त आते हैं तो इससे लाभ होता है। इसके उपयोग से जब कि रक्त आता हो तो लाभ होता है। क्षत और जलोका (जोंक) के दंशस्थान से रक्तस्राव होने पर बाह्योपयोग से लाभ होता है। घाव से जब दुर्गन्धयुक्त राव निकलता हो तो ऐसी अवस्था में लगाने से लाभ होता है। जब दुर्गन्धपूर्ण उद्गार होता हो तो ३ बूंद क्रियाजूट किसी शर्बत वा अर्क में मिश्रितकर पानार्थ देने से वा गुटिकारूप से भोजन के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। उदर में आटोप (नफख) होने पर इसके उपयोग से लाभ होता है। मधुमेह में भी कभी-कभी इससे लाभ होता है। जीर्णकास में जब अत्यधिक कफ आता हो और उसमें दुर्गन्ध हो तो क्रियाजूट का आघ्राण कराने से लाभ होता है। चर्मरोग में इसका मरहम उपयोगी है। क्रियाजूट को मुख में लगाने से मुख में प्रदाह प्रतीत होता है और लाला की अधिक उत्पत्ति होने लगती है तथा मुख की झिल्ली नष्टप्राय हो जाती है। इसके आन्तरिक उपयोग से आन्वस्थ श्लैष्मिक कलाओं में अवसन्नता उत्पन्न होती है और आन्वगत प्रकोथ का अवरोधक है। अधिक मात्रा में उपयोग करने से उत्क्लेश वा वमन होता है; उदर में शूल होता है और दस्त आते हैं; नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है; स्वासावरोध होता है; किन्तु उद्वेगन आदि नहीं होता। यह अतिशीघ्र रक्त में अवशोषित होता है और रक्त में किसी प्रकार परिवर्तन नहीं होता। शरीर से इस का उत्सर्ग वायुप्रणालियों की श्लैष्मिक कला और वृक्कों द्वारा होता है। मूत्रोत्सर्गकाल में इसकी क्रिया वायु-प्रणालियों और वृक्कों पर होती है जिससे उनपर गति उत्पन्न होती है, और श्लेष्मा तथा मूत्र के उद्रेक को अधिक करता है। यह कोथयुक्त श्लेष्मा तथा अन्य आन्वगत कोथ को नष्ट करता है, गठिया, गुल्म तथा सन्धिवात (गठिया) में उपयोगी है, प्रारम्भिक क्षय में इसका उपयोग लाभदायक है। ४ से १० बूंद की मात्रा से आरम्भ कर ३० वा ६० बूंद प्रतिदिन देने से क्षय में लाभ होते देखा गया है। किन्तु जब क्षय में रक्त का दर्शन हो तो इसका उपयोग स्थगित कर देना चाहिए। इसको अधिक दिनों तक देने से कभी-कभी इसके सेवन-काल में कफ का उत्सर्ग अल्प होकर थूक में रक्त आने लगता है। जब क्रियाजूट को आघ्राण कराना (सुंधाना) हो तो इसको अकेला वा फिनोल के साथ औषध आघ्राण

करानेवाले यंत्र पर डाल कर सुँवाएँ। उक्त यंत्र को अंग्रेजी में रिस्पाइरेटर करते हैं। एलोपैथिक मात्रा— १ से ४ बूंद तक है।

होमियोपैथिक मात्रा—क्षयरोग में १ × शक्ति की ५, १०, १५, वा २० से ३० बूंद तक प्रतिदिन ३ बार वा ६ × से १००० शक्ति। फार्मूला—६-बी०।

क्रियाजूट-आइण्टमेण्ट—संज्ञा पुं० [अं Creosote ointment] एक प्रकार का मरहम जिसमें क्रियाजूट का मिश्रण किया गया है। गुण—इसके बाह्योपयोग से रुधिरस्राव, शुष्क कण्डू, गंज, दद्रू और झाई का नाश होता है। अग्निदग्ध पर लगाने से लाभ होता है।

क्रियाजू(जो)ट ऑलियास—संज्ञा पुं० [ले० Creosote-oleas] दे० 'क्रियाजूट'।

क्रियाजू(जो)ट-मिक्सचर—संज्ञा ० [अं० Creosote-mixture] क्रियाजूट मिश्रण।

क्रियाजू(जो)ट-साल्ट्स—संज्ञा पुं० [अं० Creosote salts] (अं०) क्रियाजूट लवण।

क्रियाजू(जो)ट-सैलिसिलिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Creosote-Salisyllic-acid] यह क्रियाजूट और एसिड सैलिसिलिक (वेतसाम्ल) का एक यौगिक है।

क्रियाजू(जो)टाई-कार्बोनास—संज्ञा पुं० [अं० ले० Creosotii carbonas] दे० 'क्रियाजूट'।

क्रियाजूटाई टैनास—संज्ञा पुं० ले० [Creosoti tannas] दे० 'क्रियाजूट'।

क्रियाजूटाई फॉस्फोस—संज्ञा पुं० [ले० Creosotii Phosphos] यह क्रियाजूट और फास्फोरस का एक यौगिक है। दे० 'क्रियाजूट'।

क्रियाजूटाई-वैलिरिनास—संज्ञा पुं० [ले० Creosotii Valerianos] यह क्रियाजूट और वैलेरियन का एक यौगिक है। दे० 'क्रियाजूट'।

क्रियाशारीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर की क्रिया का प्रतिपादक शास्त्र—'क्रियाप्रतिपादक शारीरक्रिया-शारीरम्।' क्रियाशारीर में रोग के अधिष्ठानभूत शरीर और मन की प्राकृत क्रियाओं का विचार किया जाता है। (अं०) ह्यूमैन फिजियोलॉजी (Human Physiology); (अं०) मनाफेउल् आजा। अफआबुल् आजा।

क्रियासंकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक ही काल में दो विरोधी क्रियाओं का मिश्रण। (सु० सू० ३६ अं० ५६ श्लो०)।

क्रियेट—सं० पुं० [अं० Creat] कालमेघ।

क्रियेन्द्रिय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्मेन्द्रिय। वाक, पाणी (हाथ) इत्यादि। (हे० च०)।

क्रियोजूटाल—संज्ञा पुं० [अं० Creosotal] दे० 'क्रियाजूट'।

क्रियो-फार्म—संज्ञा पुं० [अं० Creofarm]
 क्रियोलीन—संज्ञा पुं० [अं० Creoline]
 क्रियोसोल—[अं० Creosol] क्रियाजूट में पाया जानेवाला एक तत्व ।

क्रिबि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूआँ । कूप । (अं०) वेल (Well)
 क्रिसैन्थेमम् इण्डिकम्—संज्ञा पुं० [ले० Chrysanthemum Indicum] गुलदाउदी ।

क्रिसैन्थेमम्-केरोनेरियम्—[ले० Chrysanthemum Caronereum] गुलचीनी ।

क्रिसोपोगन-ऐसिक्युलेरिस—

पर्याय—संखिनी । (बं०) चोर कण्ट । (मैमो०) ।

क्रिसोपोगन-ग्रीलस—

क्रिसोल—संज्ञा पुं० [अं० Cresol] कोलतार से प्राप्त एक वर्ण-हीन या हलका पिलाइ लिये द्रव्य है । पर्याय—(अं०) क्रिसैलिक एसिड (Cresylic acid); (ले०) एसिडम् क्रिसैलिकम् (Acidum Cresylicum) । इससे कोलतार की-सी गंध आती है ।

क्रिस्टल—संज्ञा पुं० [अं० Crystal] (१) स्फटिक । विल्लोर । (२) शोरे आदि का जमा हुआ रवादार टुकड़ा । कलम । रवा ।

क्रिस्टल वायोलेट—संज्ञा पुं० [अं० Crystal violet] क्रिस्टल ग्रीन । दे० पा० द्र० गु० वि० २ भ० पृ० ८१ ।

क्रिस्टलाइजेशन—संज्ञा पुं० [अं० Crystallisation] वह प्रक्रिया जिसके द्वारा कोई-कोई द्रव्य मणिभ (Crystal) या कलम (रवा) के रूप में परिणत हो जाते हैं । दे० 'मणिभीकरण' ।

क्रिस्टलॉयड द्रव्य—संज्ञा पुं० [अं० क्रिस्टलॉयड Crystalloid + हि० द्रव्य] विलयन के दो भेदों में से एक जिसमें द्रव्यों के अणु जल में पूर्णतया घुलकर एक रस हो जाते हैं । इनका यह विलयन पूर्ण कहा जाता है । ऐसे विलेय द्रव्यों को 'क्रिस्टलॉयड' कहा जाता है । जैसे—शर्करा लवण ।

क्रिस्टॉयड—संज्ञा पुं० [अं० Crystoid] एक कृमिघ्न द्रव्य । (पा० द्र० गु० वि०, २ भ०, पृ० १४४-५) ।

क्रिस्मस रोज—[अं० Crismus-Rose] खर्बक अस्वद ।

क्रीटा—संज्ञा पुं० [अं० Creta] खड़ियामिट्टी । चाक । गिल कीमूलिया । (पा० द्र० गु० वि० १ भ०, पृ० ३२९) ।

क्रीटिन—संज्ञा पुं० [अं० Cretin] (१) क्रीटिनिज्म से छग्न बच्चे । (२) जन्मबलप्रवृत्तरोगों में परिगणित मूक । (क्रि० शा०) ।

क्रीटिनिज्म—संज्ञा [अं० Cretinism] बच्चों की चुल्लिकाग्रन्थि-रोगाक्रान्त होकर मन्दस्त्राव और कर्मवाली होने से प्रकट होनेवाले लक्षण । (क्रि० शा०) ।

क्रीडनक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बालकों का खिलौना । 'क्रीडनकानिखलु कुमारस्य विचित्राणि' (च०, शा० अ० ८) ।

क्रीडाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खेलने का स्थान । वह भूमि जहाँ बालक खेला करते हैं । इस भूमि में कंकड़ पत्थर इत्यादि न होनी चाहिए; क्योंकि इससे चोटादि लगने का भय होता है । 'क्रीडाभूमि समाकार्या निश्शस्त्रो-पल शर्करा' (अष्टाङ्गसंग्रह) ।

क्रीडारत्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मैथुन । स्त्रीसंभोग ।

क्रीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(नि० आ० भ० १, पृ० ३२१) ।

क्रीनम्-अमारेलिस—संज्ञा पुं० [ले० Crinum-Amaryllis]

क्रीनम्-एसियाटिकम्—संज्ञा पुं० [ले० Crinum-Asiaticum] सुदर्शन । चिण्डार । विषमण्डल ।

क्रीनम्-जीलानिकम्—संज्ञा पुं० [ले० Crinum-Zeylanicum]

क्रीनम्-टॉक्सिकेरियम्—[ले० C. Toxicarium]

क्रीनम्-डिफ्लेक्सम्—[ले० C. Deflexum]

क्रीनम्-ब्रैक्टीएटम्—[ले० C. Bracteatum]

सुदर्शन । चिण्डार । विषमण्डल ।

क्रीनम्-लैटिफोलियम्—[ले० Crinum-latifolium]

क्रीनम्-लैटिफोलिया—[ले० C. Latifolia]

(ले०) केशल ।

क्रीनम्-सिंगालीज—[अं० Crinum-Cingalis] सुदर्शन ।

(मैमो०) ।

क्रीपिंग ह्युकलबेरी—[अं० Creeping Huclebere]

क्रीपिंग साइनोडॉन—संज्ञा पुं० [अं० Creeping Cynodon] हरित दुर्वा ।

क्रीम—संज्ञा पुं० [अं० Cream] (१) मलाई । सन्तानिका । (२) क्षीरोत्थ नवनीत । (३) पाश्चात्य वैद्यकोक्त कल्प-विशेष । यथा—क्रीम ऑव एन्टेजोलिन, क्रीम ऑव एमिनाक्रीन, क्रीम ऑव पेनिसिलिन इत्यादि । दे० 'क्रीमोर' ।

क्रीमोर—संज्ञा पुं० [अं० Cremor] मृदु एवं अर्धघन स्वरूप की औषधियाँ जो बाह्य प्रयोग में आती हैं । इसमें मधुरी (ग्लिसरिन) या मृद्वस (पाराफिन) या इसी प्रकार का अन्य कोई द्रव मूलघटक (Basis) होता है । क्रीम । ब्रिटिश फार्माकोपिआमें इस प्रकार के निम्न योग हैं—क्रीमोर पेनिसिलिनाइ और क्रीमोर पेनिसिलिनाइ स्टेरिलिटस । इनके अतिरिक्त क्रीमोर एन्टेजोलिनी, एमिनाक्रिनी आदि अन्य योग भी हैं ।

क्रियाजूट—दे० 'क्रियाजूट' ।

क्रियाजूटिनेट ऑफ सोडियम्—[अं० Creosotinate of sodium] सोडियम् क्रियाजूट ।

क्रीयाजूटेड कॉडलीह्वर ऑइल—[अं० Creosoted Codliver oil] कॉडलीह्वर ऑइल और क्रीयाजूट का एक मिश्रण है। यह यक्ष्मा में उपयोगी है।

क्रूर मस्तक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चव्य, चविका, चाब। ध० नि०।

क्रुड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बगला। वक पक्षी। (रत्ना०)।

क्रुञ्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } क्रौञ्च। काला बगला।

क्रुडक्रौञ्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (ध० नि०)

क्रुन्—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } क्रोध, गुस्सा। (बं०)

क्रुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } राग। (अम०)।

क्रुद्ध—वि० [सं० त्रि०] प्रकुपित, रुष्ट, क्रोधित।

क्रुम्बल—संज्ञा पुं० [पं०]

चो० ५७८

क्रुश्वा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सियार, गीदड़, शृगाल। (उणा०)।

क्रुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रुदन, रोदन। (अ०)।

क्रुसिफेरो—संज्ञा पुं० [ले० Cruciferae] राजिका कुल। सर्प कुल।

क्रून्स-फेब्रिफ्यूज-स्पिरिट—

(डाइमाँक १ भ० पृ० १३३)।

क्रूड ऑइल—संज्ञा पुं० [अं० Crude oil] अस्वच्छ तैल। गदला तैल। वह तैल जो स्वच्छ न किया गया हो।

क्रूड नैपथेलीन—संज्ञा पुं० [अं० Crude naphthelin] अस्वच्छ नैपथेलीन।

क्रूर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नकछिकनी, क्षवक। (२) कनेर। करवीर। (३) काँक पक्षी। सफेद चील। कङ्क पक्षी। (रा० नि० व० ९, १०, १६)। (४) कालाधतूर, कृष्ण धुस्तूर। (५) सफेद गदपुरना। श्वेत पुनर्नवा। (६) पका हुआ चावल। भात। भक्त। (त्रिका०)। (७) भूताङ्कुश।

क्रूरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल गदहपुरना। रक्तपुनर्नवा। (रा० नि० व० ९)।

क्रूरकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) कुटुम्बिनी नाम का महाक्षुप। (रा० नि० व० ५)। (२) अर्कपुष्पी। (भा० पू० १ भ०; त्रि०)। (३) नृशंसाचारिणी, सूरज-मुखी। (४) तितलीकी की वेल।

क्रूरगन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धक (रा० नि० व० १३; ध० नि०)।

क्रूरगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्थारी वृक्ष। काथरा। (रा० नि० व० ८)।

क्रूरघोषक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू। उलूक। पेचक। (ध० नि०)।

क्रूर दर्शना—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] सफेद मकोय, श्वेत काक-माची। (वै० निघ०)।

क्रूर धूर्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला धतूर, कृष्ण धुस्तूर। (रा० नि० व० १०)।

क्रूररव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) कौआ। काक।

क्रूररावी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (२) कर्करटे पक्षी। (वै० निघ०)। (३) डोम काक, द्रोणकाक। (रा० नि० व० १९)।

क्रूर लोचन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शनीचर, शनैश्चर। (शरा०)।

क्रूरव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्यार, गीदड़, शृगाल। (वै० निघ०)।

क्रूरा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] लाल फूल की गदहपुरना। रक्त पुनर्नवा। (रा० नि० व० ५)।

क्रूरालारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] डोम कौआ, द्रोण-काक। (वै० निघ०)।

क्रूर्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] भौंह। श्मश्रु। (बं०) दाढ़ि।

क्रिकॉइड-कार्टिलेज—संज्ञा पुं० [अं० Cricoid-Cartilage] यह मुद्रिकाकार एक कुरी है जो स्वरयंत्र में होती है। तरुण मुद्रिकास्थि, गजरूप-खातिम।

क्रैनियम—संज्ञा पुं० [अं० Cranium] कपाल। खोपड़ी।

क्रैनियल-नर्व्स—संज्ञा पुं० [अं० Cranial nerves] कपालगत वाततन्तुएँ।

क्रैनियल-बोन्स—संज्ञा पुं० [अं० Cranial-bones] कपाल-स्थि, खोपड़ी की हड्डी।

क्रैनियल साइनस—संज्ञा पुं० [अं० Cranial-Sinus] मेजराबुल् जम्जमः, कपालगत नाडीव्रण।

क्रेस्ट—संज्ञा पुं० [अं० Crest] हड्डी का उभड़ा हुआ चिह्न (खत)। अर्क।

क्रेस—संज्ञा पुं० [अं० Cress] चन्द्रसुर, हालिम।

क्रेस-कॉमन—संज्ञा पुं० [अं० Cress, Common] हालिम।

क्रेस, चाइनीज—संज्ञा पुं० [अं० Cress, Chinese] चन्द्रसुर। हुर्फ।

क्रेस-क्रेटिका—संज्ञा पुं० [ले० Cressa-Cretica Linn] छदवन्ती।

क्रेसेण्टिक एसिड—[अं०]

कलवशाम्ल। क्रेसेशिया में प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का अम्लद्रव्य। (डाइमाँक ३ भ० पृ० २५)।

क्रेसेशिया कुजेटी—संज्ञा स्त्री० [Crescentia Kujeti] कलवश (अफरिका)। (डाइमाँक ३ भ० पृ० २४)।

क्रेसोटिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Cresotic acid]

क्रेसोन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] चन्द्रसुर। हालिम। हुर्फ।

क्रेसोन-डी-पारा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] पिपूलक। वनमुगली। (डाइमाँक २ भ०, पृ० २८३)

क्रेसोन-डी-सेवनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०]

(डाइमॉक १ भ०, पृ० ११६)।

क्रेसोफाइलम् राजबर्गिआइ—[ले० *Cresophyllum Roxburghii*] पित्तकारा। (मेमो०)।

क्रेसोल—संज्ञा पुं० [अं० *Cresol*] दे० 'एसिडम् क्रिसोलिकम्'।

क्रेसोल आयोडाइड—संज्ञा पुं० [अं० *Cresol Iodide*] यह क्रेसोल और आयोडाइड का एक यौगिक है। इसका विशेष उपयोग क्षयरोग में होता है।

क्रेसोलिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० *Cresolic acid*] दे० 'एसिडम् क्रिसोलिकम्'।

क्रैटीगस ऑक्सिकैन्था—संज्ञा पुं० [ले० *Crataegus oxycantha*]

क्रैटीयस ऑक्सिकैन्था—संज्ञा पुं० [ले० *Cratius oxicantha*]

यह एक प्रकार का वृक्ष है। इस के नव्यफल द्वारा सुरासव प्रस्तुत किया जाता है। शिकागो के सुप्रसिद्ध डॉ० कौपर थोएट के आदेशानुसार सन् १९०० ई० में १४ परीक्षकों ने इसके मूलटिचर को सेवन किया था। उनमें से एक ने ५ से १७५ बूँद तक इसका सेवन किया। आश्चर्य का विषय है कि उन सबों ने एक ही प्रकार की बात बताई अर्थात् विरेचन क्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का शारीरिक वा मानसिक परिवर्तन का अनुभव नहीं किए। इसके पश्चात् एक चिकित्सक ने इसकी स्वयं परीक्षा की और उससे उसके हृत्पिण्ड पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। कहने की आवश्यकता नहीं, उसी समय से हृत्पिण्ड के प्रायः समस्त रोगों में क्रैटीगस एक निर्दोष हृद्य-बल-प्रदरूप से व्यवहृत होने लगा। अत्यधिक रक्तचाप (ब्लडप्रेसर) में इससे लाभ होता है। हृच्छूल (एन्जाइना पेक्टोरिस) की यह प्रमुख औषध है।

प्रतिनिधि—'डिजिटैलिस'। क्रम—० से १० बूँद।

फार्मूला—३।

क्रैम्प—संज्ञा पुं० [अं० *Cramp*] ऐंठन। उद्वेगन।

क्रो—संज्ञा पुं० [अं० *Crow*, एव व०] कौआ।

क्रोकस इण्डिकस—संज्ञा पुं० [ले० *Crocus Indicus*] कुसुम।

क्रोकस—[अं० *Crocus*, (यू०) *Krokos*]

क्रोकस-सेटाइवस—संज्ञा पुं० [ले० *Crocus-Sativus*]

क्रोकस-सैफ्रन—[ले० *Crocus-Saffron*]

केसर। जाफरान। कुङ्कुम।

क्रोकोन—संज्ञा पुं० [अं० *Crocine*] केसरसत्व।

क्रोकू(को)स—संज्ञा पुं० [यू० *Krokos*] केसर। जाफरान। (Saffron)।

क्रोकोडिलस-वल्गैरिस—संज्ञा पुं० [ले० *Crocodilus Vulgaris*]।

क्रोचवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्रौञ्च पक्षी। (ध० नि०)।

क्रोज—संज्ञा पुं० [अं० *Crows*] काक। कौआ

क्रोज बीक—संज्ञा पुं० [अं० *Crow's beek*]। (१) अपरा-जिता। (Winged-vaved clitoria)। (२) काकनासा।

क्रोजोफोरा टिक्टोरिया—संज्ञा पुं० [ले०]

क्रोजोफोरा प्लिकेटा—संज्ञा पुं० [ले०]

क्रोञ्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्रौञ्च पक्षी। काला बगला।

क्रोटन—संज्ञा पुं० [अं० *Croton*] जमालगोटा। जयपाल।

क्रोटन ऑइल—संज्ञा पुं० [अं० *Croton-oil*] जमालगोटे का तेल।

क्रोटन ऑइल-सीड—संज्ञा पुं० [अं० *Croton-oil-Seed*] जमालगोटे का बीज। जैपालबीज।

क्रोटन-ऑलिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० *Croton oleic acid*] दे० 'जमालगोटा'।

क्रोटन-ऑब्लॉङ्गिफोलियस—संज्ञा पुं० [ले० *Croton-oblongifolius*] पर्याय—(हिं०) अर्जुन।

(ब०) बुक, बरगाछ। (गोण्डा) गोनसुरंग। (डाइमॉक ३ भ०, पृ० २४७),

क्रोटन एल्यूटेरियम—संज्ञा पुं० [ले० *Croton Aluterium*]।

क्रोटन-एरोमेटिकस—संज्ञा पुं० [ले० *Croton Aromaticus*] सुगन्धमय किया हुआ जैपालतैल। इससे वायुविकार नष्ट होता है और वमनकारक दोष शान्त होता है।

क्रोटन कैथार्टिक्यू—संज्ञा पुं० [(फ्राँस) *Croton Catharticu*] जैपाल। जमालगोटा।

क्रोटन-क्लोरोल-हाइड्रेट—संज्ञा पुं० [अं० *Croton chloralhydrate*]।

क्रोटन-जॉफ्री—संज्ञा स्त्री० [अं० *Croton jofre*]।

क्रोटन-टिग्लियम—संज्ञा पुं० [ले० *Croton Tiglium*] जयपाल वृक्ष। जमालगोटा का पेड़।

क्रोटन-पुर्गेटिव—संज्ञा पुं० [अं० *Croton purgative*] जमालगोटा। जयपाल।

क्रोटन-पुर्जिङ्ग—संज्ञा पुं० [अं० *Croton purging*] जयपाल। जमालगोटा।

क्रोटन-पॉलिण्डस—संज्ञा पुं० [ले० *Croton Poliandus*]। दंती।

क्रोटन-पॉलिण्ड्रा—संज्ञा पुं० [ले० *Croton Poliandra*]। दन्ती। द्रवन्ती।

क्रोटन-प्लेटेड—संज्ञा पुं० [अं० *Croton plated*]

क्रोटन-फ्लेकैटम—संज्ञा पुं० [ले० *Croton-Flecatum*] सम्बाली। (ब०) खुदी ओका। (इ० हैं० गा०)।

क्रोटन-मालाबारिकस—संज्ञा पुं० [ले० *Croton mala-baricus*] मालाबारी जमालगोटा।

क्रोटन रेटिक्युलेटस—संज्ञा पुं० [ले० *Croton Reticulatus*]

क्रोटन-सीड—संज्ञा पुं० [अं० Croton-Seed] जमालगोटा के बीज। जयपाल बीज।

क्रोटन-सेटाइवस—संज्ञा पुं० [ले० Croton Sativus] जमालगोटा। जयपालवृक्ष।

क्रोटनिस ऑलियम्—संज्ञा पुं० [ले० Crotonis oleum] जमालगोटे का तेल। जयपालबीजतैल। यह तीव्र विरेचक है।

क्रोटोपिप्ती—संज्ञा स्त्री० [मध्य-भारत—सी० पी०] रक्त-वल्ली। रक्तपित्त। (मेमो०)। केवटी।

क्रोटेलीन—संज्ञा पुं० [अं० Crotaline] जैपालसत्व। जैपालबीज में प्राप्त होनेवाला एक सत्व है।

क्रोटेलेरिया-अल्बिडा—संज्ञा पुं० [ले० Crotalaria Albida] वनमेथी।

क्रोटेलेरिया-एङ्गुलोसा—संज्ञा पुं० [ले० Crotalaria Angulosa]। **पर्याय**—सोणपुष्पी। धावनी। वृहत्पुष्पी। (इं० मे० मे०)।

क्रोटेलेरिया-जुन्सिया—[ले० Crotalaria-Juncea] मसीना। (अं०) बेंगाल हेम्प (Bengal-hemp)।

क्रोटेलेरिया फेनिस्ट्रेटा—[ले० Crotalaria Fenestrata]।

क्रोटेलेरिया फेनिफोलिया—[ले० C. Fennifolia]।

क्रोटेलेरिया-बेङ्गालेंसिस—[ले० C. Bengalensis] मसीना। (Bengal hemp)।

क्रोटेलेरिया-ब्रुइआह—[ले० Crotalaria Bruiah] (पं०) खिप्पी, खरसन, ससी, सीस। (यु०) घंगारो। (म०) घागटी। (कों०) घागडी।

क्रोटेलेरिया-बूइश—[ले० Crotalaria Buish]

क्रोटेलेरिया-क्रिस्मा—संज्ञा पुं० [ले० Crotalaria-Crisma] मसीना।

क्रोटेलेरिया-माँण्टेना—संज्ञा पुं० [ले० Crotalaria montana] वनमेथी। (इं० मे० मे०)।

क्रोटेलेरिया लेबज-फोलिया—[ले०] मसीना। (Bengal hemp)।

क्रोटेलेरिया-वेरुकोसा—संज्ञा पुं० [ले० Crotalaria Verrucosa] सोनपुष्पी। धावनी। वृहत्पुष्पी। (इं० मे० मे०)।

क्रोटेलेरिया-सिरीसिया—[ले०] सणपुष्पी। झुंझुनियाँ। **क्रोटेलेरिया सिल्की**—[अं०] झंझन। पिडली। (इं० हैं० गा०)।

क्रोटेलरी-जोन्सीफॉर्मी—संज्ञा स्त्री० [फ्रां० Crotalaire jonciforme] मसीना। सन। (Bengal hemp)।

क्रोटेलस-हॉरिडस—[ले० Crotalus-Horridus]

परिचय—एक प्रकार का विषैला साँप है जो अमेरिका में होता है। इसके विष से होमियोपैथीचिकित्सा में व्यवहृत होनेवाली औषधि प्रस्तुत की जाती है। इसकी परीक्षा

सर्वप्रथम डॉ० हेरिङ्ग ने की थी। सर्पविष का वर्णन सर्वप्रथम आयुर्वेदीय ग्रन्थ चरकसंहिता में जलोदर चिकित्सा में हुआ है। आधुनिक काल में चिकित्सकों ने सर्पविष द्वारा निर्मित विविध प्रकार की औषधियाँ प्रस्तुत की हैं। होमियोपैथी में भी लैकेसिस, कोब्रा, इलेप्स इत्यादि विष द्वारा निर्मित औषधियाँ अत्यन्त आदर-पूर्वक व्यवहार की जाती हैं। क्रोटेलस की क्रिया अन्यान्य शारीरिक यन्त्रों की अपेक्षा यकृत पर अधिक होती है।

मद्यप, जिनकी ग्रन्थियाँ फूल जाया करती हैं, जिनको पृष्ठव्रण (अदीठ-कार्बङ्कुल) इत्यादि निकला करते हैं तथा जिनकी धातु रक्तसावी है, उनके लिये यह अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

प्रत्येक रोग की क्षय-अवस्था (Adiyamie) मुख्यतः रक्तस्रावजन्यक्षय, कोथजन्य सान्निपातिक ज्वर (टाय-फॉयड), मैलेरिया तथा रक्तविकार होने से क्रमशः पूर्णतः निस्तेज हो जाना; बहुकालपर्यन्त मद्यपान के कारण किसी घातक रोग का आक्रमण होना, **पीतज्वर**—जिसमें समस्त शरीर पीतवर्ण का हो जाता है, घातक कृष्णकामला, घातक यकृत-रोग, कृष्णवर्ण का वमन और अतिसार, जरायु द्वारा बहुकालपर्यन्त रक्तस्राव होना, गलरोहिणी (डिप्थीरिया), प्लेग इत्यादि विविध प्रकार के घातक रोगों में यह लाभप्रद है।

ज्वर—एक प्रकार का सांघातिक मोहज्वर (टायफस), सान्निपातिक-ज्वर (टाइफॉयड), सन्ततज्वर (रेमिटेण्ट फीवर) तथा पीतज्वर (यलोफीवर) इत्यादि किसी भी प्रकार का ज्वर क्यों न हो, जब उसके अन्यान्य दुष्ट लक्षणों के साथ—पकाशय, मूत्रद्वार, मुख, नासिका द्वारा रक्तस्राव होता हो तो इसके उपयोग से लाभ होता है।

मस्तिष्क-मेरुमज्जागत प्रदाह (सेरिब्रो-स्पाइनल-मेनिङ्गा-इटिस)—जब इस व्याधि के साथ विकार नासारन्ध्र द्वारा कृष्णवर्ण का रक्त स्राव होना, जिह्वा लाल और फूली हुई, श्वास-प्रश्वास में दुर्गन्ध और दुर्गन्धयुक्त रक्त-स्राव इत्यादि लक्षण हों तो इससे लाभ होता है।

वमन—पीतज्वर में काले रंग का वमन होने पर, पाकस्थली में क्षत होने से वमन तथा पित्तज वमन जिसमें रोगी दाहिनी करवट होकर सोता है तो निरन्तर झटके के साथ हड़हड़ाकर वमन होता है, ऐसी अवस्था में क्रोटेलस से उपकार होता है।

रक्तस्राव—प्रायः शरीर के समस्त स्थानों के रक्त स्राव में; यथा—नेत्र, नासिका, दन्त, त्वचा, कर्ण, मूत्र प्रणाली, नख का निम्नभाग इत्यादि कहीं से भी रक्तस्राव होता हो तो इससे लाभ होता है।

कोथ (ग्रेग्रीन—Gangrene)—व्रण, विद्रधि, कार्बङ्कुल वा किसी अन्य प्रकार का घाव जब सड़ने लगता है वा

उसके किनारे कठोर और काले वा नीलवर्ण के हो जाते हैं, उनमें कोथ उत्पन्न हो जाता है, रोगी निरन्तर निस्तेज और दुर्बल हो जाता है, ऐसी अवस्था में क्रोटेलस से लाभ होते देखा गया है। मात्रा—६ से ३० शक्ति तक १, २, ३ दिन के अन्तर से एक-एक मात्रा सेवन कराएँ।

चेचक (शीतला) व खसरा—इस रोग के साथ यदि शरीर के किसी भी मार्ग से वा शीतला की गोठियों से रक्तस्राव होने लगे तो उस समय इससे उपकार होता है। उपर्युक्त वर्णित रोगों के अतिरिक्त जब रोग के साथ रक्तस्राव होकर रोगी की अवस्था अत्यंत दयनीय हो जाए तो ऐसी अवस्था में इसका अवश्य स्मरण करना उचित है।

क्रिया-स्थिति-काल—३० दिन। क्रम-३ से ६ शक्ति।

फार्मूला—८।

क्रोटोनिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० (Crotonic acid)] जमालगोटा के बीज में प्राप्त होनेवाला एक अम्लद्रव्य। दे० 'जमालगोटा'।

क्रोटोनिस ऑलियम्—संज्ञा पुं० [ले० Crotonis oleum] जमालगोटे का तेल। दे० 'जमालगोटा'।

क्रोटोनिस टिग्लियम्—संज्ञा पुं० [ले० Crtonis Tiglium] जयपाल वृक्ष।

क्रोटोनिस सेमीन—संज्ञा पुं० [ले० Crotonis Semen] जयपाल बीज।

क्रोटोनोल—संज्ञा पुं० [अं० Crotonol] जमालगोटा में प्राप्त होनेवाला एक सत्व है। यह विरेचनीय नहीं होता।

क्रोटोनॉलेइक-एसिड—संज्ञा पुं० [अं० Crotonoleic-acid] जमालगोटागत उग्र प्रभावात्मक एक प्रकार का सत्व है। दे० "जमालगोटा"।

क्रोड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्सङ्ग। कायपूर्वभाग। शरीर का भागभाग। (रा० नि० व० १८)

क्रोड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वाराहीकन्द। कोलकन्द। (रा० नि० व० ७)। (२) जंगली सूअर। वन शूकर। वन वराह। (रत्ना०)। (३) गेंठी। गृष्टि। गाँठ आलु। (४) वक्ष। छाती। (ध० नि०)।

क्रोडकन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वाराहीकंद। गेंठी। वै० निघ०)।

क्रोड कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वाराहकंद। गेंठी। गाँठ आलु। (रा० नि० व० ७; वै० निघ०)।

क्रोडकेशरू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
क्रोड कसेरू—संज्ञा पुं० [,] } नागरमोथा। भद्रमुस्तक
क्रोड कसेरूक—संज्ञा पुं० [,] } (वै० निघ०)।

क्रोड केशरूक—संज्ञा पुं० [,] }
क्रोडकान्ता—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] अवनी। पृथ्वी। (ध० नि०)।

क्रोडचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मण्डूकपर्णी। (बं०) बड़ थूलकूडि। (रा० नि० व० ५)। (२) बड़ी गोरखमुण्डी। कदम्बपुष्पी। महाश्रावणिका। (रा० नि० व० ५)

क्रोडपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटेरी। कण्टकारी। भटकटैया। (श० च०)।

क्रोडपाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कछुआ। कच्छप। कूर्म। (हे० च०)।

क्रोडपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिठवन। पृश्निपर्णी। (वै० निघ०)।

क्रोडा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शकरकन्द। वाराहीकन्द।

क्रोडी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गेंठी। गाँठ आलु। (रा० नि० व० ७)।

क्रोडाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कछुआ। कच्छप। कूर्म।

क्रोडाङ्घ्रि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (शब्द र०; त्रिका०)।

क्रोडि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वाराही कंद। गेंठी।

क्रोडी—संज्ञा स्त्री० [,] } गाँठ आलु।

क्रोडी कन्या—संज्ञा स्त्री० [,] }

क्रोडीमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गेंडा। गण्ड। (बं०)

गण्डार। (रा० नि० व० १६)।

क्रोड्रेटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोथा। मुस्तक। (रा० नि० व० ६)।

क्रोतिपित्ती—संज्ञा स्त्री० [म० प्र०] केवटी।

क्रोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मारना। हनन। (हे० च०)।

क्रोध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोप। दोषों का कोप। "क्रोध-शोकी। स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपनौ।" (विदेह)।

क्रोधज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वर। मोह। दे० 'ज्वर'।

क्रोधज ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्रोधजनित ज्वर।

क्रोध ज्वर—संज्ञा पुं० [,] }

क्रोधन—वि [सं० त्रि०] क्रोधयुक्त। गुस्सा से भरा हुआ।

क्रोधता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गठिवन। ग्रन्थिपर्णी। (वै० निघ०)।

क्रोध मूर्च्छित—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चोरा नाम का गन्ध-द्रव्य।

वि० [सं० त्रि०] अति क्रुद्ध।

क्रोधी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भैंस। महिष। (रा० नि० व० १९)।

वि० [सं० त्रि०] क्रुद्ध। कोपयुक्त। कोप से भरा हुआ।

क्रोन—संज्ञा पुं० [?] रजतकट्ट। चाँदी का मेल।

क्रोनस—[यु०] केसर। कुंकुम। जाफरान।

क्रुनुलु बहर—[अ०] (१) प्रवाल। मूंगा। मरजा।

(२) कहरूबा।

क्रुनुसुंबुल—[अ०] सफेद सुंबुल की जड़ वा किसी अन्य प्रकार की जड़।

क्रोफल—[यू०] कटू । अलबु । कटुआ ।
 क्रोफस—[सुर०] दहनज अकरवी ।
 क्रोफस—[यू०] अखरोट । आक्षोट ।
 क्रोम—[अ०] एक प्रकार का पाषाण जिसमें ७ रंग होते हैं ।
 क्रोमकरून—[रुमी] मल्लिया । (लु० क) ।
 क्रोमनियान—[सुर०] प्याज । पलाण्डु । म्लेक्षभक्षा ।
 क्रोमेटीन—संज्ञा [अ० Chromatin] सेलकेन्द्रगत रंग-द्रव्य । दे० 'सेल' वा शुक्राणु और बीज ।
 क्रोमेटीन बाँडी—संज्ञा स्त्री० [अ० Chromatin-body] रंगवस्तु, रंगसूत्र । दे० 'सेल', शुक्राणु और बीज ।
 क्रोमिक ऑइडमेण्ट—
 क्रोमिक एन हाइड्राइट—[अ० Chromic anhydrite] पा० द्र० गु० वि० पृ० ३६१ ।
 क्रोमियम—संज्ञा पुं० [ले० Chromium] एक रासायनिक उपधातुद्रव्य जो पोटैसियम डाइक्रोमेट (Potassium dichromate) पर गन्धकाम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है। इसके कृष्ण-रक्त (Dark-red) वर्ण के सूचीवत् मणिभ या गाढ़े भूरे रंग के टुकड़े होते हैं जो वायु में रहने से पिघल जाते हैं। यह गंधहीन तथा किंचित क्षतकारक होता है। क्रोमियम ट्राइ-ऑक्साइड Chromium trioxide); क्रोमिक एनहाइड्राइट (Chromic anhydrite) ।
 क्रोमिक एसिड—संज्ञा पुं० [अ० Chromic acid] क्रोमिकाम्ल । दे० 'एसिडम क्रोमिकम्' ।
 क्रोमियाइ-ट्राइ-ऑक्साइडम्—संज्ञा पुं० [ले० Chromiitrioxidum] । (पा० द्र० गु० वि० पृ० ३९१) ।
 क्रोमोजन—संज्ञा [अ० Chromogen] कपास की छाल में प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का सत्व है। दे० 'कपास' ।
 क्रोमोसोम—संज्ञा पुं० [अ० Chromosome] बीजभागावयव । रंगसूत्र । रंगवस्तु । दे० 'शुक्राणु' और 'बीज' ।
 क्रोलियून—[यू०] मूंगा । प्रवाल । (अ०) कोरल (Coral) ।
 क्रोश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मान । तौल । वजन । प्रमाण । (ध० नि०) । (२) कोश । क्रोश-वं० । यह ४००० हस्त का होता है ।
 क्रोशताल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ढक्का । करतलध्वनि ।
 क्रोश ध्वनि—संज्ञा स्त्री० [,] ताली पीटने का शब्द ।
 क्रोशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, पुं०] नख । (अ०) नेल (Nail) ।
 क्रोष्ट पुच्छिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिठवन । पृश्निपर्णी । (वै० निघ०) ।
 क्रोष्टा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्यार । गीदड़ । शृगाल ।
 क्रोष्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शृगालकोली । (बं०) शेयाकूल । छोटी बेर । झाड़वेर । (प० मु०) ।
 क्रोष्टुक पुच्छिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिठवन ।
 क्रोष्टुक पुच्छिका—संज्ञा स्त्री० [,] पृश्निपर्णी ।

क्रोष्टुकपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (बं०) राम
 क्रोष्टुक मूलिका—संज्ञा स्त्री० [,] वासक । चाकु लिया ।
 क्रोष्टुक मेखला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिठवन । पृश्निपर्णी । (रा० नि० व० ४) । (२) गोलोमी । (हि०) पाथरी, गोधूमी । (रा० नि० व० ५) । (ध० नि०) ।
 क्रोष्टुकशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वातव्याधि जिसमें क्रोष्टुशीर्ष—संज्ञा पुं० [,] वात और रक्तदोष से उत्पन्न, अत्यन्त पीड़ा देनेवाला, शृगालमस्तक के सदृश स्थूल शोथ जानुसन्धि में उत्पन्न होता है । (सु० नि०; मा० नि० वा० व्या०) ।
 पर्याय—(अ०) वरम स्कबः, इत्तिहाबुर्कबः; (अ०) इन्फ्लेमेट-नी (Inflamed knee), आर्थ्राइटिस ऑफ दी नी-जॉइंट (Arthritis of the knee-joint) ।
 चिकित्सा—आक की पत्ती लवणयुक्त पीसकर किंचित उष्ण कर कतिपय दिवस बाँधने से अवश्य लाभ होता है । अथवा भट्ठातक की स्याही का गोदना देने से फोस्का उत्पन्न होकर दूषित जल जो सन्धियों में भरा रहता है, निकलकर आराम हो जाता है । जबतक पूर्णतः शुष्क न हो जाय, तब तक इस पर जल का स्पर्श वर्जित है । (परीक्षित) ।
 गुगुल, गुड़ची, त्रिफला का पानी, दुग्ध और इसमें एरण्डतैल मिश्रित कर यथाविधि पान करने से लाभ होता है । (वै० निघ०) ।
 क्रोष्टुछण्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हड्जोर । हड्-संकरी । अस्थिसंहार । (म० द० व० १) ।
 क्रोष्टुफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिंगुआ । इङ्गुदी वृक्ष । (रा० नि० व० २) ।
 क्रोष्टुविज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिठवन । पृश्निपर्णी । (२) वृक्ष विशेष । (बं०) राम वासक । विडाल छञ्जी । विडाल हाँची । (अ० टो० भ०) ।
 क्रोष्टु-शीर्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'क्रोष्टुकशीर्ष' ।
 क्रोष्टु-हित—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चोरा नाम का गन्ध-द्रव्य । (बं०) गोंठेला ।
 क्रोष्टु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बिछाती । बिछुआ । वृश्चिकाली । (प० मु०) ।
 क्रोष्टुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्यार । शृगाल । गीदड़ । (ध० नि०) ।
 क्रोष्टेक्षु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पौंढा । पुण्ड्रक इक्षु । (२) श्वेत इक्षु । सफेद गन्ना । (रा० नि० व० १४) ।
 क्रोष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पतालकुम्हड़ा । शुक्ल भूमिकुष्माण्ड । (अम०) । (२) कलिहारी । लाङ्गली । (३) पीपल । पिप्पली । (मे०) (४) गेंठी । गाँठआलु ।

वाराहीकंद । (रा० नि० व० ७) । (५) विछाती विछुआ । वृश्चिकाली । (रत्ना०) ।

कौञ्च—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्लवजातीय वकपक्षी । काला कौञ्चक—संज्ञा पुं० [„] बगला । पर्याय—कुरचा । कर्राकुल । A kind of heron (Ardea jaculator) । (बं०) कौंचक; (सं०) कृड, कृञ्च, कृञ्चा, कौञ्चा, (अ०), कालिक, कलविक, कल्क (शब्द०) ।

गुण—ज्वर में उपकारक है । (च० द०) । वृष्य, अतिरुचिकारक तथा नित्य सेवन करने से अश्मरी (पथरी) का नाश होता है । शोष, मूर्च्छानाशक, बलवर्धक, अरोचक तथा कासनाशक है । (अत्रि० २१ अ०) । (२) कमलगट्टा । पद्मबीज । (वै० निघ०) । (३) कुरर पक्षी । (रा० नि० व० ९) । दे० 'कर्राकुल' और 'कुरर' ।

कौञ्चनायक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमलगट्टा । पद्मबीज । (वै० निघ०) ।

कौञ्चलोहित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सिंगरफ । हिङ्गल । (वै० निघ०) ।

कौञ्चा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कौञ्च (अ०) । (Ardeola Gorayii Heron) । (२) कमलगट्टा । पद्मबीज । (रा० नि० व० १०) । (३) कौञ्चस्त्री । मादा कौञ्च । काली बगली । (अत्रि० २१ अ०) ।

कौञ्चादन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) कमल । मृणाल । (हारा०) । (२) पीपल । पिप्पली । (श० र०) । (३) चैचू-वं० । चैचुलुक । (च० चि० ३ अ०) । (४) चैच । चिचोटक । चैचको (बं०) । (म०) ।

मात्रा—२। से १० रत्ती अथवा ०.३ से १.२ ग्राम । (पा० द्र० गु० वि० १ भ०, पृ० ४९०) ।

कौञ्चादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कमलगट्टा । पद्म बीज । (रा० नि० व० २०)

कौडी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गेंठी । गाँठआलु । वराह-कन्द । (ध० नि०) ।

कौण्टी—संज्ञा स्त्री० [पं०] पर्याय—जरलंगी, फूट, बकरू, खुम, डण्डा—पं० । तीत बटेरी—(काश०) । (मेमो०) ।

क्लब्ज—संज्ञा पुं० [अं० Cloves] लवङ्ग । लौंग ।

क्लबफूट—संज्ञा पुं० [अं० Club-foot] पादवक्रता । पाँव का टेढ़ापन ।

क्लब मॉस—संज्ञा पुं० [अं० Club-moss] पर्याय—(कों०) वैडारसी । (ले०) लाइकोपोडियम क्लेवेटम (Lycopodium clavatum) ।

क्लम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] थकावट । क्लान्ति । श्रमाशक्त । (सु०) । अनायास थकाहट । (फा०) नाताकती । (अ०) जोफ । (अं०) अस्थीनिय (Asthenia) ।

क्लमथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयास । थकावट ।

क्लवस्टाक—संज्ञा पुं० [अं०] (डाइमॉक भ० २, पृ० २२) ।

क्लस्टर-फिग—संज्ञा पुं० [अं० Cluster-fig] गूलर । औदुम्बर ।

क्लाइटोरिस—संज्ञा पुं० [अं० Clitoris] कामच्छत्र । स्मरातपत्र । मदनातपत्र । मन्मथच्छत्र ।

क्लाइमेट—संज्ञा पुं० [अं० Climate] जल-वायु । आव-व-हवा ।

क्लाइमेटिक डायरिया—संज्ञा पुं० [अं० Climatic Diarrhoea] ऋतुज अतिसार । मौसमी दस्त ।

क्लाइमेटिक-फीवर—संज्ञा पुं० [अं० Climatic-fever] ऋतुज ज्वर । मौसमी बोखार ।

क्लॉक्स सर-ए पिल—[अं०] तृणज्वर में प्रयुक्त औषध ।

क्लॉट—संज्ञा पुं० [अं० clot] स्कन्दित रक्त । जमा खून ।

क्लॉटेड-ब्लड—संज्ञा पुं० [अं० Clotted-blood] स्कन्दित रूधिर । जमा हुआ खून ।

क्लान्त—वि० [सं० त्रि०] श्रान्त । आयासयुक्त ।

क्लान्ति—वि० [सं० त्रि०] क्लम । थकावट । अयास ।

क्लॉर ब्युटॉल—संज्ञा पुं० [अं० Chlorbutol] एक रासायनिक द्रव्य जो रंगहीन मणिभ के रूप में होता है । इसमें विशिष्ट प्रकार का (Musty) गन्ध एवं स्वाद होता है तथा गंध किंचित कर्पूरवत् भी होता है । यह साधारण तापक्रम पर भी उड़नशील होता है । (अं०) क्लोरेटोन (Chloretone) । मात्रा—२। से १० रत्ती अथवा ०.३ से १.२ ग्राम । (पा० द्र० गु० वि० ७ भ०, पृ० ४९०) ।

क्लारेट—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की विलायती शराब ।

क्लिऑरिंग नट—[अं०] तृण ज्वर में प्रयुक्त औषधि । हेफीवर-रिमेडी (Hayfever-Remedy)

क्लिओम इकोसैण्ड्रा—संज्ञा पुं० [ले० Cleome Icosandra] जंगली }
हुरहुर ।

क्लिओम विस्कोसा—संज्ञा पुं० [ले० Cleome Viscosa] (अ०) }
बज्जुल ।

बंज । (सं०) कर्णस्फोटा ।

क्लिटोराइटिस—संज्ञा पुं० [अं० Clitoritis] कामाङ्कुश प्रदाह । (फा०) सोजिश-बज्जर । (अ०) इल्लिहाबुलबज्जर । (उर्दू) वरम-बज्जर ।

क्लिटोरिया-टर्नेशिया—[ले० Clitoria-Ternatia] विष्णु-क्रान्ता । नीली कोयल । कौआठेंठी । कृष्णक्रान्ता ।

क्लिटोरिया-टर्नेनस—[ले० Clitoria-Ternanus] विष्णु-क्रान्ता । नीली कोयल । कृष्णक्रान्ता ।

क्लिटोरिया-डी-टर्नेटी—[फ्रांस Clitoria-de-terneti] विष्णुक्रान्ता । नीली कोयली । कृष्णक्रान्ता ।

क्लिटोरिया-मैरीना—[ले० Clitoria-marina] श्वेतविष्णु-क्रान्ता । श्वेत अपराजिता ।

क्लिटोरिया-स्पेक्टैबिलिस

क्लिटोरिया-स्पेक्टैबिलिस—[ले० Clitoria Spectabilis]
कृष्णक्रान्ता । नील अपराजिता । नीली कोयल । कौआ
ठेंठी ।

क्लिटोरिस—संज्ञा पुं० [अं० Clitoris] पर्याय—(हिं०)
टिंगा । टिन्ना । (सं०) कामाङ्कुश । गुङ्ग । (अं०)
बजारह । (फा०) मिङ्गारकुस । फोफ ।

क्लिटोरोटॉमी—संज्ञा स्त्री [अं० Clitorotomy] कामाङ्कुश-
छेदन । (अं०) शक्कुल वज्र । (उर्दू) टिन्ने का खतना करना ।
वज्र में शिगाफ देना । यह क्रिया प्रायः इटली प्रदेश में
होता है । वहाँ की स्त्रियों का कामाङ्कुश अधिक लम्बा
होने के कारण उसको काटकर निकाल दिया जाता है ।

क्लिन्न—वि० [सं० त्रि०] आर्द्र । गीला । वीभत्स ।
(अम०)

क्लिन्न-वर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्लिष्टवर्त्म रोग । नेत्र-
वर्त्मगत वह रोग जो गलकर वीभत्स हो जाता है ।
(सु०)

क्लिन्ना—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] सफेद भटकटाई । श्वेत
कण्टकारी । (रा० नि० व० ४) ।

क्लिन्नाक्ष—वि० [सं० त्रि०] वीभत्स नेत्र । वह नेत्ररोग
जो गलकर वीभत्स हो गया हो वा जिसमें कीचड़
श्लेष्मा इत्यादि की अधिक उत्पत्ति होकर निरन्तर गीला
रहता है । क्लिन्न चक्षु । (अं०) ब्रिलयर आईड (Blear-
eyed) । (बं०) पिच्छूटिचको ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्लिन्न नेत्र । वीभत्स नेत्र । (अम०) ।

क्लिमेटिस इरेक्टा—संज्ञा पुं० [ले० Clematis Erecta]
परिचय—यूरोप में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की
वनस्पति है । इसके द्वारा प्रस्तुत किया गया सुरासव
(टिचर) होमियोपैथी चिकित्सा में प्रयुक्त होती है ।

क्रिया—उपदंश, पूयमेह (सूजाक) और कंठमाला धातु-
वाले व्यक्तियों पर इसका प्रभाव होता है । सर्वप्रधान
क्रिया—चर्म, लसिका-ग्रन्थियाँ तथा मूत्रयंत्र (वस्ति)
पर होती है ।

उपयोग—इसका विशेष उपयोग—अतिनिद्रा, पूयमेह
द्वारा उत्पन्न अण्डकोशप्रदाह, मूत्रप्रणालीगत रोग, श्वेत
प्रदर, अर्बुद, स्तन-ग्रन्थि-प्रदाह, बद (बाघी) इत्यादि
रोगों में विशेषरूप से होता है ।

सूजाक—(पूयमेह) में—जब मूत्र में श्लेष्मातुल्य पदार्थ
(mucous) हो और मूत्र रुक-रुककर उत्सर्गित हो वा
बहुकालपर्यन्त बिना बैठे मूत्र न हो, इस प्रकार के लक्षण
रहने पर इससे विशेष लाभ होता है । पूयमेह की प्रथम
अवस्था में इससे विशेष लाभ होता है । किन्तु जब मूत्र-
प्रणाली में अधिक संकोच होकर मूत्रमार्ग अवरुद्ध हो
जाता है तब इससे कोई लाभ नहीं होता ।

अण्डकोश में शोथ वा कठोरता होने पर इससे लाभ

होता है, प्रायः उस अवस्था में जब दक्षिण अण्डकोश में
रोग का प्रकोप हो ।

नेत्र रोग—चक्षुप्रदाह—सरदी व गरमी के कारण
चक्षुतारा का प्रदाह होने पर इससे विशेष लाभ होता
है ।

उकवत (एकजिमा)—हाथ का एकजिमा तथा प्रमेह-
स्राव बंद होकर लिंग और अण्डकोश में यदि उकवत का
दोष हो तो क्लिमेटिस से विशेष उपकार होता है । प्रायः
वह उकवत जो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त
बढ़ता है, उससे रसस्राव होता है और कृष्णपक्ष आते ही
कम होने लगता है और शुष्क हो जाता है । इसके अति-
रिक्त कोई भी पुरातन चर्मरोग जो प्रत्येक मास के शुक्ल
पक्ष में बढ़ता हो तो इससे विशेष उपकार होता
है ।

स्थितिक्रियाकाल—१४ से २० दिन । क्रम—३×से
२०० शक्ति । फार्मूला—१

क्लिमेटिस गोरिअल—संज्ञा पुं० [ले० Climatis Go.]
गररगराड़ी । (मेमो०) ।

क्लिमेटिस-ट्रिलोबा—संज्ञा पुं० [ले० Climatis Triloba]
पर्याय—(हिं०) मोरवेल; (मं०, गु०) रान जाई;
(सं०) लघुकर्णी । (इं० मे०मे०) ।

क्लिमेटिस-नेपालेंसिस—संज्ञा पुं० [ले० Climatis
napalensis] पर्याय—वन्दक । पावत्री । विरी ।
(मे०मो०) ।

क्लिशित—वि० [सं० त्रि०] दुःखपूर्ण । क्लेशयुक्त ।

क्लिष्ट—वि० ["] (अम०) ।

क्लिष्ट-वर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का श्लेष्म-
रक्तप्रकोप से उत्पन्न नेत्रवर्त्मगत रोग । लक्षण—जिस
का नेत्रवर्त्म (कोया) अकस्मात् अल्पवेदनायुक्त, मृदु
ताम्रवर्ण अर्थात् लाल हो जाय और समान अर्थात् उसमें
शोथादि न हो तो उसको 'क्लिष्टवर्त्म' कहते हैं । (सु०
उ० ३ अ०) । (मा० नि०) । श्लेष्म रक्तेन्दुष्टेन क्लिष्टं
मांसमिवोन्नतं । बन्धुजीव निभं वर्त्म क्लिष्टवर्त्म तदुच्यते ।'
(विदेह) ।

चिकित्सा—इसमें लेखनक्रिया की जाती है अर्थात्
खुरच कर इस पर तुल्याञ्जन लगाने से लाभ होता है ।

क्लिटर—संज्ञा पुं० [अं० Clyster] उत्तरवस्ति । गुदा में
पिचकारी देना । हुकना । एनिमा ।

क्लीओमी पेण्टाफाइला—संज्ञा पुं० [ले० Cleome-Penta-
phylla] जंगली हुरहुर ।

क्लीओमी फेलना—[ले० Cleome felena] ।
क्लीओमी विस्कोसा—[ले० Cleome Viscosa] } जंगली
हुरहुर ।

क्लीतक—नि० आ० १। ३४४

क्लीत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) नील। नीलीक्षुप।
 क्लीतनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (Indigo)। (रा०
 क्लीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } नि० व० ४। (२)
 पिठवन। पृश्निपर्णी। (वै० निघ०)। (ध० नि०)।
 क्लीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 क्लीतन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } जलज यष्टिमधु
 क्लीतनक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (मुलहठी) भेद। लता
 क्लीतनीय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } यष्टिमधु। यह स्थलज
 और जलज भेद से दो प्रकार का है। गुण—मधुर, वृष्य,
 बलवर्धक, व्रणघ्न, शीतल, गुरुपाकी, रक्तपित्ताशक,
 रुचिवर्धक, मधुर तथा नेत्रों को हितकर है।
 क्लीनसिंग—संज्ञा पुं० [अं० Cleansing] प्रसवा स्त्री का
 मैला। नफास।
 क्लीब(व)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह मनुष्य जो मैथुन
 करने में असमर्थ हो। (सु०)। नपुंसक। षण्ड। पर्याय—
 (फा०) नामर्द; (अ०) इन्तून, मानून, मुखन्नस, लली;
 (अं०) इम्पोटेन्ट (Impotent)। भेद—बीजोपघातज,
 ध्वजभङ्ग (वातिक, पैतिक, श्लैष्मिक, रक्तज, सान्नि-
 पातिक), जरासंभव (जराज), शुक्रक्षयज, लिङ्गछेदनज
 (वृषणोत्पादनज), बीजदोषाद्गर्भज, आसेक्य, सौगंधिक
 कुंभीक, ईर्ष्यक, षण्ड (जनाना, नरचेष्टिता), द्विरेत
 (स्त्री-पुंसलिङ्गी), पवनेन्द्रिय, संस्कारवाही, मंदबीज
 (अल्प बीजवाले), अबल (अहर्षवाले), वक्रो, ईर्ष्यारति
 और वातिक षण्ड इत्यादि।
 क्लीवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] क्लीव का भाव। क्लैव्य।
 निदान—क्लैव्यता (षण्डता), अप्रहर्षण, शुक्राश्मरी,
 शुक्रमेह और अन्य शुक्रदोष ये शुक्रस्थित दोषों से उत्पन्न
 होते हैं। (सु० सू० २४ अ०)। दे० 'क्लैव्य'।
 क्लुपिआ-इलीशा—संज्ञा पुं० [ले० Clupea Ilisha] हेलेशा
 मछली। हेलसा।
 क्ले, चाइना—संज्ञा पुं० [अं० Clay-china] चीनीमिट्टी।
 केओलीन।
 क्ले—संज्ञा पुं० [अं० Clay] कालीमिट्टी। कृष्णमृत्तिका।
 पा० द्र० गु० ३८७।
 क्लेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) शरीर की आद्रता।
 क्लेदक—,, ,, [सं० पुं०] } मलिनता। गन्दगी।
 (२) कफ। (३) द्रवत्व।
 वि० [सं० त्रि०] आद्र। गीला। (सु० सू० २१ अ० सू० १२)।
 क्लेदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चतुरंशावशिष्ट कषाय।
 (क्वाथ)। (रा० नि० व० २०)।
 (२) कफ भेद। इसका स्थान—आमाशय है। इसके
 द्वारा अन्नपाक होता है और श्लेष्मस्थानों का उदक-
 कर्म होता है। (भा०)।
 वि० [सं० त्रि०] क्लेदजनन। आद्रता उत्पादन। द्रवीकरण।

क्लेदा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) चन्द्र। चन्द्रमा। (२)
 क्लेदु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } सन्निपात (उणा०)।
 क्लेरिफिकेशन—संज्ञा पुं० [अं० Clarification] स्वच्छ
 करना, धोना, साफ करना, तसफ़ियः।
 क्लेरीफाइड-हनी—संज्ञा स्त्री० [अं० Clarified-honey]
 विशुद्ध मधु, स्वच्छ किया गया शहद।
 क्लेरोडेण्ड्रोन इन्फॉर्च्युनेटम्—संज्ञा पुं० [ले० Clero-
 dendron Infortunatum] पर्याय—(सं०) भण्डीर।
 (हि०) भाँट। (म०, बम्ब०, क०) कारी।
 क्लेरोडेण्ड्रोन-इनर्मी—संज्ञा स्त्री० [ले० Clerodendron-
 Inerme] छोटी अरनी। क्षुद्र अग्निमन्थ। दे० 'अरनी'।
 क्लेरोडेण्ड्रोन-इनिडाइन—संज्ञा पुं० [ले० Clerodendron
 Inidine] संगकुष्पी। लंगई। (मेमो०)।
 क्लेरोडेण्ड्रोन-कोलेब्रूकीएनम्—संज्ञा पुं० [ले० Cleroden-
 dron colebrookianum] पर्याय—(लेपचा) कडझबी।
 (मेमो०)।
 क्लेरोडेण्ड्रोन फ्लोमॉइडिस—संज्ञा पुं० [ले० Clerodendron
 Phlomoides] अग्निमन्थ। पर्याय—(हि०) अरणी,
 अगेथ, विरूम, दरीना। (बम्ब०) अइरन। (मेमो०)।
 क्लेरोडेण्ड्रोन नेरिआइफोलिअम्—संज्ञा पुं० [ले० Clerode-
 ndron Neriifolium] छोटी अरनी। क्षुद्र अग्निमन्थ।
 कुण्डली। (अं०) गार्डन क्विनीन (Garden Quinine)।
 क्लेरोडेण्ड्रोन-साइफोनैन्थस—संज्ञा पुं० [Clerodendron-
 Siphonanthus] भारंगी। (बं०) बामनहाटी। (मेमो०);
 डाइमॉक भ० ३, पृ० ८१)।
 क्लेरोडेण्ड्रोन सिरेटिफोलिअम्—संज्ञा पुं० [Clerod-
 endron-Serratifolium] }
 क्लेरोडेण्ड्रोन सिरेटम्—संज्ञा पुं० [ले० C. Serratum] }
 भारंगी। (बं०) बामनहाटी। (मल०, ता०) चेस्टेकु;
 (नैपा०) चूआ।
 क्लेवीसेन्टस परप्युरिअम्—संज्ञा पुं० [Clevesentus
 Purpurium] }
 क्लेवीसेप्स परप्युरिआ—संज्ञा पुं० [ले० Claviceps
 Purpuria] अर्गट। दे० 'अर्गोटा'।
 क्लैरेट—संज्ञा पुं० [अं० Claret] सुराभेद। (पा० द्र० गु०
 वि० पृ० ४०१)।
 क्लेश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शारीरिक, वाचिक,
 मानसिक श्रम अथवा रोगादिका प्रहार। दुःख।
 कष्ट। वेदना। (Trouble)। (२) क्रोध। गुस्सा (३)
 व्यवसाय। व्यापार। (मे०)।
 क्लैततिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मद्य विशेष। (श० च०)।
 क्लैव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) क्लीब का भाव।
 क्लीबता। क्लीवत्व। पर्याय—(सं०) नपुंसकता, नपुं-
 सकत्व, अप्रहर्षण, म्लानशिशुता; (सं०) पुरुषकारहीनत्व,

स्त्री-पुं भिन्नत्व, ओज प्रभृति धातुक्षयरूपाद्यैः । (फा०) नामर्दी; (अ०) इतानत, इतत; (अं०) इम्पोटेन्स (Impotence), इम्पोटेन्सी (Impotency), अन्अफ्रोडिजिआ (Anaphrodisia), ऐबेन्स ऑफ विरिलिटी (Absence of virility) । (२) मैथुनासामर्थ्य, मैथुनशक्ति की कमजोरी, कामावसाय; (अं०) जोफबाह; (अं०) सेक्सुअल डेबिलिटी (Sexual debility) । (३) बीज (शुक्राणु Sperm या आर्तव Ovum) का अभाव होना । षण्डता । क्लैव्य स्त्री और पुरुष दोनों में भी होता है । इसको चरक में 'नरनारिषण्ड' (शा० अ० २) कहा है । इसकी टीका में चक्रपाणिदत्त लिखते हैं :

एतौः त्वबीजावेव ज्ञेयौ । यदुक्तं सुश्रुते—'अशुक्रस्त्वेव षण्डकः' (शा० अ० २) । अंगरेजी में इसको स्टेरिलिटी (Sterility) कहते हैं । इसमें ध्वजोच्छ्राय हो सकता है, मैथुन भी होता है; परन्तु संतान नहीं होती है । दे० 'बन्ध्य (२)।'

क्लैव्य भेद—(१) मानसज, (२) धातुक्षयज, (३) शुक्रक्षयज, (४) उपघातज, (५) सहज, (६) स्थिर शुक्रज (शुक्रस्तम्भज—भा०) और (७) रोगजन्य क्लैव्य ।

निदान-लक्षण—(१) मैथुन करनेवाले पुरुष का मन भय, शोक तथा क्रोधादि दुःखप्रद विकारों द्वारा अस्वस्थ होकर अथवा जिस स्त्री पर संभोग की इच्छा न हो ऐसी स्त्री के साथ मैथुन होने से जिसका शिश्नोत्थान न हो उसको मानसज वा मानसिक क्लैव्य कहते हैं ।

चिकित्सा—(१) मनचाही स्त्री के साथ संभोग करने का उपाय करें ।

(२) **धातुक्षयज (पित्तनिमित्तज)—**कटु, अम्ल, लवणीय पदार्थ के सेवन से सौम्य धातु का क्षय होता है अतः इसको धातुक्षयज (पित्तज क्लैव्य-भा०) कहते हैं ।

चिकित्सा—इसमें कारणानुसार विदाही पदार्थों का सेवन वर्जित करें । इसमें शुक्रवर्धक सौम्य ओषधियों का सेवन करने से लाभ होता है ।

(३) **शुक्रक्षयज क्लैव्य—**वह व्यक्ति जो बिना शुक्रवर्धक ओषधियों का सेवन किए ही अधिक स्त्रीप्रसंग करते हैं । उनको 'शुक्रक्षयज क्लैव्य' कहते हैं ।

चिकित्सा—इसमें बाजीकरण ओषधियों का सेवन कराने से लाभ होता है ।

(४) **उपघातज (शिराच्छेदजन्य) क्लैव्य—**वीर्यवाहिनी शिराओं के कट जाने से जो नपुंसकता होती है उसको 'उपघातज क्लैव्य' कहते हैं । इसमें शिश्न मैथुन-कर्म के अयोग्य होता है, उसमें उत्थान नहीं होता ।

चिकित्सा—यह असाध्य है ।

(५) **सहज क्लैव्य—**(जन्मजात क्लैव्य) यह माता-पिता के रजवीर्यदोष से उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—यह असाध्य है ।

(६) **स्थिरशुक्रज (शुक्रस्तम्भज) क्लैव्य—**शरीर पुष्ट होने पर भी जिस पुरुष का मन कामदेव से शोभित होकर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता है वा किसी अन्य विचार से स्त्रीप्रसंग का त्याग करता है उसका शुक्र ऊर्ध्वगत होकर उसमें स्त्रीसहवास की इच्छा नहीं होती । इस प्रकार की नपुंसकता को 'स्थिरशुक्रज क्लैव्य' कहते हैं ।

चिकित्सा—तृष्णीसेवन का अभ्यास करने पर पुनः उसमें मैथुन का सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

(७) **रोगजन्य क्लैव्य—**शिश्न में किसी प्रकार का भयंकर रोग होने से जो क्लीवता होती है उसको 'रोगजन्य नपुंसकता' कहते हैं ।

चिकित्सा—जो रोग हो उसकी चिकित्सा करने के पश्चात् वीर्यवर्धक औषधियों के सेवन से लाभ होता है ।

सुश्रुत के अनुसार अन्य क्लैव्य इस प्रकार हैं—(१) आसेक्य, (२) सौगन्धिक, (३) कुम्भीक, (४) ईर्ष्यक, (५) नरषण्ड और (६) नारीषण्ड । इनके लक्षणादि :

(१) **आसेक्य—**माता-पिता के निर्बल रज-वीर्य से 'आसेक्य' पुरुष की उत्पत्ति होती है (सु०) । अष्टाङ्ग-संग्रह में केवल पिता वा केवल माता के क्षीणबलबीज से 'आसेक्य' की उत्पत्ति कही गई है । जब दोनों अल्प-बलवीर्ययुक्त होते हैं तब 'वक्रध्वज' नाम का षण्ड उत्पन्न होता है । चरक में 'आसेक्य' को वक्री कहा गया है ।

चिकित्सा—आसेक्यपुरुष में शुक्रपान से ध्वजोच्छ्राय (उत्थान) होता है (स शुक्रं प्रास्य लभते ध्वजोच्छ्राय-मसंशयम्' (सु०) ।

(२) **सौगन्धिक—**जो दुर्गन्धित योनि से उत्पन्न होता है, उसको 'सौगन्धिक' नाम का क्लीव कहते हैं ।

चिकित्सा—इसमें योनि और मेढू (लिङ्ग) की गन्ध लेने पर स्त्री के साथ मैथुन करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है । (सु०) ।

(३) **कुम्भीक—**ब्रह्मचर्य के कारण जो पुरुष स्त्रियों में उनकी गुदा में पुरुष की भाँति प्रवृत्त होता है, उसको 'कुम्भीक' नाम का क्लीव कहते हैं । काश्यप के अनुसार जब अरजस्का स्त्री ऋतुकाल में श्लेष्मरेता होकर किसी अन्य पुरुष में आसक्त होती है तब कुम्भीक की उत्पत्ति होती है—'अरजस्कां यदा नारी श्लेष्मरेता ब्रजेद्भृता । अन्य-सक्ता भवेत् प्रीतिर्जायते कुम्भिलस्तदा' ।

(४) **ईर्ष्यक—**वह व्यक्ति जो अन्य प्राणियों का मैथुन-कर्म देखकर उसमें मैथुन की इच्छा होती है उसको 'ईर्ष्यक' कहते हैं । इसकी उत्पत्ति ईर्ष्यावित होकर स्त्री-सहवास करने से जिस पुरुष की उत्पत्ति होती है उसमें

ईर्ष्यक का दोष उत्पन्न होता है 'ईर्ष्याभिभूतावपि मन्द हर्षावीर्ष्याह्वयस्यापि वदन्ति हेतुम् । (चरक) ।

(५) नरषण्ड—जो पुरुष स्वपत्नी में ऋतुकाल में मोहवश स्त्री की भाँति प्रवृत्त होता है, तब स्त्रीतुल्य हाव-भाव करनेवाला और स्त्री के आकार का षण्ड नाम का (पुत्र) उत्पन्न होता है । अर्थात् मैथुनकाल में स्त्री के नीचे उत्तान होकर जो पुरुष स्त्रीरमण करता है उसमें उक्त प्रकार का षण्ड उत्पन्न होता है । पुरुष को स्त्री के नीचे होकर मैथुनकर्म करने का आयुर्वेद में निषेध किया गया है 'न चासावधस्तिष्ठेत् । तथाहि स्त्रीचेष्टः पुमान् जायते पुंवेष्टास्त्री' । (अष्टाङ्गसंग्रह) ।

(६) नारीषण्ड—यदि स्त्री भी ऋतुकाल में मोहवश पुरुष की भाँति प्रवृत्त हो तो यदि कन्या उत्पन्न हो तो वह पुरुषतुल्य चेष्टा करनेवाली होगी । अर्थात् स्वपुरुष को नीचे शयन कराकर स्वयं पुरुष तुल्य ऊपर होकर मैथुन में प्रवृत्त हो तो उक्त प्रकार की नारीषण्ड होती है । (स्त्री रूपाऽपि पुंवत् स्त्रियमारुह्य तद्योनौ स्वयोनिघर्षणं करोति (डह्लण) ।

सशुक्रज तथा अशुक्रज नपुंसक—उपर्युक्त आसेक्य, सौगन्धिक, कुम्भीक तथा ईर्ष्यक इन चार नपुंसकों में शुक्र रहता है, शेष षण्ड में वीर्य का अभाव होता है । स्त्री में शुक्र नहीं होता अतः उसका वर्णन होगा ।

क्लोम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पिपासास्थान । (२) फुफ्फुस । (सु० शा० ४ अ०) । इसका स्थान—दाहिने ओर होता है । (सु०) । इसके सम्बन्ध में मतभेद है । किसी के अनुसार अग्न्याशय (Pancreas), किसी के मत से कण्ठनाड़ी अर्थात् ट्रेकिया (Trachea), और किसी के मत से यह पित्ताशय (Gall bladder) है । प्रत्येक अर्थ के लिए प्रमाण प्राप्त है । एक अर्थ के लिए कोई मुख्य साधन नहीं है । क्लोम का अर्थ—पित्ताशय उचित प्रतीत होता है । उत्पत्ति—इसकी उत्पत्ति रक्तकिट्ट द्वारा होती है—'यस्तुशोणितजः किट्टस्तस्मात्क्लोमं च जायते ।' (२) यकृत और क्लोम उभय का उल्लेख सुश्रुत में एक साथ किया गया है—'दक्षिणतो यकृतक्लोम च' । विद्रधि के लक्षणों में भी दोनों की समानता कही गई है—'श्वासो यकृति तृष्ण च पिपासा क्लोमजोऽधिका' । (३) उल्हण ने इसका स्थान यकृत के नीचे कहा है—'क्लोम कालखण्डा (यकृता) दधस्ताव स्थितं दक्षिणपार्श्वस्थ तिलकमिति प्रसिद्धम्' । शार्ङ्गधर-दीपिका आढमल्ल के अनुसार 'तिल' की उत्पत्ति शोणित-किट्ट से है—'तिलंतु शोणितकिट्ट प्रभवं दक्षिणाश्रितं यकृते समीपे क्लोम संज्ञकं भवति ।' (४) क्लोम दक्षिण-पार्श्व में है—'अवस्तु दक्षिणेभागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति' । क्लोम-कण्ठनाड़ीमध्य में है और अग्न्याशयमध्य में होकर

उभय पार्श्व में फैलता है । (५) क्लोम के निमित्त 'तिलक' पर्याय रूप में आता है । यदि यकृत का निम्नस्थ पृष्ठ भाग अवलोकन किया जाय तो पित्ताशय की ठीक आकृति कृष्णतिलतुल्य यकृत पर प्रतीत होती है । तिल का अभिप्राय तिलकाकार, कृष्णवर्ण तथा लघुता से है । (६) क्लोम एक ऐसा अंग है जो उदराध्मान होने पर हृदय, यकृत, प्लीहा तथा फुफ्फुस के साथ स्वस्थान किंचित् परिवर्तित कर सकता है । मूढ-गर्भ-निदान में उल्हण टीका में लिखा है—'यदासोऽन्तरमृतोगर्भो शूनो वस्तिरिवाततः । तेनावृताया नाभीस्तु कुक्षिरानर्धत भृशम् । उल्क्षिप्यन्त इवांगानि मूत्रवस्तिश्च भिद्यते । क्लोम प्लीहा यकृच्चैव फुफ्फुसं हृदयं तथा । गर्भेण पीडितं ह्येतदध्वं प्रक्रामति स्त्रियाः ॥' तात्पर्य यह है कि 'क्लोम' का अर्थ (३) पित्ताशय अधिक समुचित प्रतीत होता है । (४) मस्तिष्क । (रा० नि० व० १८; ध० नि०) ।

क्लोम-रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्लोम के रोग । भैषज्य-रत्नावली के अनुसार क्लोम का स्थान तथा कार्य—

प्लीहा और क्षुद्रान्त्र के मध्य में अन्नपाकादि का कार्य सम्पादन करनेवाला क्लोम नाम का यंत्र है, उसको 'तिल' भी कहते हैं—'प्लीहा क्षुद्रान्त्रयोर्मध्यमन्नपक्वादि कर्मणि । सहायभूत मध्यास्ते क्लोम तच्च तिलाभिधम्' ।

इसमें रोग उत्पन्न होने के निम्न कारण हैं—

गुरुपाकी, अतिस्निग्ध आहारों तथा अभिघातादि से इसमें वृद्धि तथा मृदुता प्राप्त होकर उस स्थान में रक्त-संचय भी होता है । इससे उस स्थान में विद्रधि तथा अन्य घोर दारुण व्याधि उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार की विकृति प्राप्त होने पर तिलक (क्लोम) में मन्दाग्नि, उत्कलेश, वमन, दुर्बलता, भ्रम, पाण्डुरोग, उदर के ऊर्ध्व भाग में घोर पीड़ा, कठोरता, उष्णता, शूल, उदराध्मान, प्रसेक, विद्रधि तथा घोर तृष्णा, अश्मरीतुल्य शिला (कठोरता) तथा उग्र कष्ट उत्पन्न होता है ।

चिकित्सा—क्लोमरोग में वातानुलोमक, अग्निदीपक अन्नपान सेवन कराएँ । अथवा निम्न योग निर्माणकर देवें—(१) अभयादि क्वाथ—हरीतकी, आमला, धनियाँ, देवदारु, मुनक्का, सोंठ और अनन्तमूल समान-भाग में ग्रहणकर यथाविधि क्वाथकर पानार्थ देवें । इसके अतिरिक्त सुरेन्द्रमोदक, शशिशेखर रस, सुरेन्द्राभ्र-वटी निर्माणकर देवें । (भै० क्ली० चि०) ।

क्लोम ग्रन्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्लोम नामक ग्रन्थि । दे० 'क्लोम' ।

क्लोमेलाल—[अ० Clomalas]

क्लोमविद्रधि—संज्ञा पुं० [सं०] क्लोम नामक अंग में होनेवाला विद्रधि । क्लोम एक कोष्ठस्थ अंग है । अतः क्लोमविद्रधि अन्तर्विद्रधि का एक उदाहरण है ।

क्लोरो-एण्टिपाइरीन कैम्फर—संज्ञा पुं० [अं० Chlor-anti-pyrin camphor]

क्लोरोरम्—संज्ञा पुं० [ले० Chlorum] पर्याय—(अं०) क्लोरिन (Chlorin)। यह एक प्रकार का गैस है। क्लोरिन-टिचर में १०० भाग जल में १ भाग क्लोरिनगैस रहता है। रोग नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम इसकी परीक्षा डॉ० हेरिंग ने की थी। उनका कथन है कि श्वासपथ से वायु जाती तो सरलतापूर्वक है, किन्तु बाहर नहीं निकल सकती। युद्धादि में इस गैस का जर्मन आदि देशों में उपयोग किया गया था जिससे लाखों व्यक्तियों में श्वासावरोध हो गया था। औषधीय उपयोग सम्बन्धी ज्ञान प्रथम उक्त डॉक्टर महोदय को ही हुआ था।

विषाक्तता—इसमें सरलतापूर्वक श्वास ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु सरलतापूर्वक छोड़ने में भीषण कष्ट होता है। यहाँ तक कि श्वास छोड़ना असम्भव-सा हो जाता है। श्वासत्यागकाल में एक प्रकार का कों-कों, साँय-साँय और फड़-फड़ शब्द होता है। उक्त लक्षणों का कारण श्वासप्रणालीगत आक्षेप है।

उपयोग—स्वरयन्त्रोद्घेष्ठन (लैरिज्जसमसष्ट्रियुलस) तथा श्वास (दमा) में इससे लाभ होता है। इसके अतिरिक्त कोथ-युक्त व्रण (गैंग्रीन) में इसका बाफ तथा आभ्यन्तर उपयोग करने से लाभ होता है। सान्निपातिक ज्वर (टायफॉयड-फीवर) वा किसी अन्य निर्बलता-कारक रोग में जब जिह्वा में अत्यधिक रुक्षता प्रतीत हो तो सर्वप्रथम इसका उपयोग करना उचित है। इसमें शरीर की चरम सीमा पर पहुँची हुई निर्बलता भी दूर होती है। स्मरणशक्ति के अभाव में यहाँ तक कि अपना नामतक विस्मृत हो जाने पर इसका उपयोग लाभप्रद है।

क्रम—३ से ६ शक्ति तक। फार्मूला—५बी।

क्लोरो व्युटोल—संज्ञा पुं० [अं० Chlorbutol] दे० 'क्लॉर व्युटॉल'।

क्लोरोल-एमाइड—संज्ञा पुं० [अं० Chloral amide]

परिचय—इसकी छोटी-छोटी रंगहीन कलमें होती हैं। इसका १ भाग ९ भाग जल में विलीन होता है। इसके अतिरिक्त इसका १ भाग १½ भाग सुरासार में भी घुल जाता है।

स्वाद—किंचित् तिक्त होता है। **गुण-कर्म**—निद्राकारक है। निद्राभाव में इसके उपयोग से लाभ होता है। हृदय पर इसकी क्रिया नहीं होती।

मात्रा—२० से ५० ग्रेन।

क्लोरोल-कैम्फोरेटम्—संज्ञा पुं० [ले० Chloral-camphoratum] क्लोरल काफूरी। कर्पूरघटित क्लोरल।

क्लोरोल-कैम्फोरेटम्-कम-कोकीनी—संज्ञा पुं० [ले० Chloral camphoratum cum-cocaine] कोकीनघटित कर्पूरीय क्लोरल।

क्लोरोल-कम-कैम्फोरा—संज्ञा पुं० [ले० Chloral cum camphora] कर्पूर-कोकेनघटित क्लोरल।

क्लोरोल-टैन्निन—संज्ञा पुं० [अं० Chloral-Tannin] कषायिनघटित क्लोरल।

क्लोरोल फॉर्मैमाइड—संज्ञा पुं० [अं० (Chloral Formamide)] क्लोरल और फॉर्मैमाइड के रासायनिक संयोग से प्राप्त होनेवाला एक रासायनिक द्रव्य, जिसके रंगरहित, निर्गन्ध और स्वाद में किंचिद् अम्ल मणिभ होते हैं। यह एक भाग २१ भाग जल में और सुरासार (अलकोहल) में सरलता से विलीन हो जाता है। **मात्रा**—१५ से ४५ ग्रेन (१ से ३ ग्राम्ज)। **नाम**—(ले०) क्लोरल फॉर्मैमाइड (Chloral Formamidum); (अं०) क्लोरल फॉर्मैमाइड (Chloral Formamide), क्लोरल एमाइड (Chloral amide)।

अनधिकृत (नॉट ऑफिशियल) योग

क्लोरो ब्रोम—(Chloro-Brom) इसके १ औंस में (जिसे मुलेठी से सुस्वादु बनाया जाता है) २० ग्रेन क्लोरल एमाइड और २० ग्रेन पोटैसियमब्रोमाइड होता है। **मात्रा**—½ १ औंस=(१५ से ३० मिल्लज)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसकी क्रिया क्लोरलहाइड्रेट के समान होती है; किन्तु क्लोरलहाइड्रेट की अपेक्षा यह देर से अभिशोषित होता है। रक्त में शोषित होकर यह क्लोरलहाइड्रेट में परिणत हो जाता है। इसका कुछ भाग युरोक्लोरेलिक एसिड के रूप में मूत्र में उत्सर्जित होता है। अतएव नाडीसंशामकगुण के लिये जहाँ क्लोरलहाइड्रेट अपेक्षित हो वहाँ इसका उपयोग कर सकते हैं। इसके उपयोग से आधे से पौन घंटा में नींद आ जाती है। कतिपय डॉक्टरों का मत है कि निद्रल होने के अतिरिक्त यह वेदनाहर भी है। अतएव यह वातवेदना में गुणकारी है। ब्रोमाइड के साथ मिलाकर यह औषधि (क्लोरोब्रोम) सामुद्रिक उत्क्लेश (सी-सिकनेस) में अत्यंत गुणकारी सिद्ध हुई है।

क्लोरोल-मेन्थोल—संज्ञा पुं० [अं० Chloral menthol] यह क्लोरल और मेन्थोल (पीपरमिट) का एक योगिक है।

क्लोरोल हाइड्रास—संज्ञा पुं० [ले० Chloral-Hydras]

क्लोरेलम—संज्ञा पुं० [ले० Chloralum]

पर्याय—क्लोरोल, क्लोराल। **परिचय**—शुष्क क्लोरिन ग्रहण कर सुरासार में इस प्रकार मिश्रित करने से कि इसमें से अधिक न हो सके। इस-प्रकार करने से नमक का तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) का स्वरूप ग्रहण

कर इसमें से अधिक भाग गैस रूप से निकल जाता है और क्लोरल का घोल शेष रह जाता है। पुनः इसको गन्धकाम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड) और सुधाजल (चूने का पानी) द्वारा साफ कर लिया जाता है। इसमें जल मिश्रित करने से अत्यन्त उग्र ऊष्मा उत्पन्न होती है और जलांश नष्ट होकर केवल सुन्दर कलमें शेष रह जाती हैं। इसको ही 'क्लोरोल हाइड्रेट' कहते हैं। इसका स्वरूप श्वेत किंचित पीताभ होता है और वायु में रखने से पिघल जाता है। इसमें एक विशेष प्रकार की उग्र गंध होती है। स्वाद क्षारीय किंचित मिष्ट होता है। इस पर तेजाबों का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु क्षारीय वस्तुओं के मिश्रण से इसके अंश नष्ट प्रायः हो जाते हैं और क्लोरोफॉर्म का स्वरूप ग्रहण कर पृथक् हो जाता है अतः ऐसी वस्तुओं का मिश्रण इसमें न होना चाहिए। इस पर वायु का प्रभाव न होकर उष्णता का प्रभाव होता है। उष्णता प्राप्त होने पर जलवत् हो जाता है। और शीतलता प्राप्त होने पर पुनः ठोस हो जाता है। इसका स्पर्श अत्यन्त शीतल होता है। प्रथम अन्वेषक डॉ० नीब्रीक है।

विद्रावण—यह ४ भाग एक भाग जल में तथा ५ भाग एक भाग सुरासार में और २ भाग एक भाग ईथर में वा २ भाग एक भाग ग्लोसरीन में और १ भाग १ भाग जैतून के तेल में और १ भाग ३ भाग क्लोरोफॉर्म में और १ भाग १० भाग तारपीन के तेल में भली-भाँति मिश्रित हो जाता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अवसादक, कोथघ्न, आक्षेप हर, शामक, क्षोभोत्पादक (खरास पैदा करनेवाला), फोस्काकारक तथा निद्राकारक है। इसके उपयोग से शरीर की ऊष्मा घट जाती है और प्राकृतिक निद्रा की भाँति सुखपूर्वक निद्रा आती है। अधिक मात्रा में देने से वमन होने का भय होता है। उग्र रोगों के कारण जब निद्रा नहीं आती तो इसके उपयोगी से शीघ्र नींद आती है। उन्माद, प्रलाप, शिरोवेदना, उत्क्लेश, शिरोभ्रमण इत्यादि में देने से नींद आकर रोग शांत होता है। कम्पवात में उपयोगी है। क्षयरोग में इससे उपकार होता है, प्रायः उस अवस्था में जबकि निद्राकाल में अधिक स्वेदागमन होता है। इसको पीसकर किंचित उष्णकर राल के पलाष्टर पर घिसकर लगाते हैं।

क्लोरोल हाइड्रेट—संज्ञा पुं० [अं० Chloral-hydrate]।

परिचय—यह यसद (जस्ता) लवणाम्ल और क्लोरिन का यौगिक है। इसकी कलमें वा डलियाँ श्वेत अस्वच्छ वर्ण की होती हैं। यह उष्णजल, सुरासार तथा ईथर में घुल जाती है। जिकक्लोराइड के नाम से प्रसिद्ध लवण है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अत्यन्त दाहक है। जिस स्थान पर लगाया जाता है वहाँ की त्वचा शीघ्र मुरदार हो जाती है। उस स्थान में ५-६ घंटा तक उग्र दाह व वेदना होती रहती है। क्षत दग्ध करने के निमित्त कौष्ठिक की भाँति इसका उपयोग होता है। **विधि**—३० से १२० ग्रेन प्रति औंस परिमृत् जल मिश्रित कर गला लेवे।

मात्रा—**क्रम**—१ से ३० शक्ति। **फार्मूला**—३। इससे सुखपूर्वक फोस्का उत्पन्न होता है। १ औंस जल में ८ ग्रेन क्लोरल हाइड्रेट घोलकर दुष्टव्रण पर लगाने से उसकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और कोथ उत्पन्न होने का भय नहीं होता। अथवा क्लोरल हाइड्रेट और कर्पूर समान भाग में ग्रहणकर यहाँ तक खरल करें कि पूर्णतः जलवत् हो जाए। पुनः इसका वातज शूल और कोथयुक्त दन्तशूल में उपयोग करने से विशेष उपकार होता है। और यदि उभय द्रव्यों में कोकीन और मार्फिया का मिश्रण कर दिया जाय तो अत्यधिक प्रभावात्मक हो जाता है। अनिद्रा में इसका बहुकाल पर्यन्त सेवन कराने से क्लोरल सेवन करने की प्रकृति बन जाती है।

प्रत्येक प्रकार के ज्वरों में जब निद्रा का अभाव होता है तब इसके सेवन कराने से सुखपूर्वक निद्रा आती है और किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता। किन्तु यदि अत्यन्त अवसन्नता, निर्बलता, तथा हृद्दौर्बल्य हो तो इसमें टिचरमस्क वा कोई अन्य बलवद्धक औषध का मिश्रणकर सेवन कराना उचित है, अन्यथा अच्छा परिणाम नहीं होता। हृदय पर अत्यधिक अवसन्नताजन्य प्रभाव होकर उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। उत्तम यह है कि ऐसी अवस्था में इसका सेवन वर्जित किया जाय।

१०-१५ ग्रेन की मात्रा में प्रदान करने से ३-१५ मिनट में भलीभाँति निद्रा आती है। किन्तु जब वेदना के कारण निद्राभंग हो तो इससे लाभ की आशा नहीं करना चाहिए। मद्यजन्य प्रलाप, उत्क्लेश, वमन, समुद्रयात्रा में जहाजों व झूला पर बैठने से वमन, शिरोभ्रम, उत्क्लेश निवृत्त्यर्थ इसका उपयोग लाभप्रद है। कुक्कुरोन्माद तथा कुचलाविषजन्यविकार में जो अपस्मारतुल्य आक्षेप होता है, इसके उपयोग से लाभ होता है। धनुस्तम्भ (कुजाज—टिटनस) में क्लोरल-हाइड्रेट और टिचर केनाबिस इण्डिका (विजयासुरासव) मिश्रितकर देने से उपकार होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के वातज रोग जिनमें आक्षेप होता हो इसके देने से उपकार होता है। इसके अतिरिक्त अर्धावभेदक, यकृतशूल, वृक्कशूल, उदरशूल तथा आमाशयिकशूल में भी इससे उपकार होता है।

कुक्कुरकास, कम्पवात, लकवा, आक्षेपजन्यशूल इत्यादि में भी इससे उपकार होता है। प्रसव पश्चात् होनेवाली

योनि की कठोरता (इनकुर्रहम) को नष्ट करने के निमित्त भी इसका उपयोग कराया जाता है और इससे उत्तम लाभ होता है।

चर्मरोग—क्लोरेल हाइड्रेट ५ से ३० ग्रेन १ औंस जल में घोलकर लगाने से केशपात तथा छीप का नाश होता है।

दोष (विषाक्तता)—इसका तीक्ष्ण घोल त्वचा पर लगाने से त्वचा में रुक्षता उत्पन्न होती है तथा फोस्का उत्पन्न होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से आमाशय और आन्त्रप्रदेश में क्षोभ उत्पन्न होता है और वमन व अतिसार उत्पन्न होता है। अधिक मात्रा में देने से हृदय में अवसन्नता होती है जिससे हृदयगत वाततन्तु एवं पेशियाँ निर्बल पड़ जाती हैं और हृदय की गति अवरुद्ध होकर मृत्यु प्राप्त होती है। नाड़ी की गति प्रथम तीव्र होकर पुनः गतिविहीन हो जाती है तथा अनियमित रूप से गति होने लगती है। उनमें निर्बलता प्राप्त होती है। शिराकेन्द्र के निर्बल पड़ जाने से शिराएँ विस्तृत हो जाती हैं। इससे रक्तचाप घट जाता है। अल्पमात्रा में प्रदान करने से खास केन्द्र पर इसका कुछ प्रभाव नहीं होता वा अत्यल्प होता है। अधिक मात्रा में देने से विपरीत प्रभाव व परिणाम बुरा होकर श्वासावरोध होता है और शरीर की आभा को कम करता है। घातक व विषोत्पादक मात्रा में देने से शरीर की उष्णता घटकर शीताङ्ग हो जाता है। उक्त लक्षण शिराओं के विस्तृत हो जाने से वा पेशियों में उष्णता की कमी के कारण होते हैं।

इसके आविष्कारक डॉ० नीष्पीकफ को धारणा थी कि इसके सेवन करने से वही मूर्च्छाकारक प्रभाव जो क्लोरोफार्म में होते हैं, होंगे; क्योंकि शरीरगत रक्त में से क्षार के साथ मिश्रित होकर उसके परमाणु छिन्न-भिन्न होकर क्लोरोफार्म पृथक् हो जायगा। किन्तु अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ कि इस प्रकार से क्लोरेलहाइड्रेट की परीक्षा जो प्रयोग द्वारा किया गया था निष्फल प्रतीत हुआ। उनके कतिपय बार परीक्षण से यह सिद्ध हुआ कि क्लोरेल एक श्रेष्ठ निद्राप्रद औषध है।

क्लोरेलहाइड्रेट और मॉर्फिया (अहिफेन सत्व) का अन्तर
(१) क्लोरेलहाइड्रेट—(१) इससे अतिशीघ्र निश्चय उत्तम निद्रा आती है।

(२) निद्राभंग होने पर मस्तिष्क में किसी प्रकार की विकृति नहीं होती। चेतनाशक्ति ठीक रहती है। शिरोवेदना इत्यादि नहीं होती, किंचित् निर्बलता प्रतीत होती है।

(३) रोगग्र मात्रा में देने से इससे कोष्ठवद्ध नहीं होता, आमाशय व अन्त्र में किसी प्रकार की विकृति नहीं होती।

(४) इससे उग्र वेदना का नाश नहीं होता और उस वेदनाकाल में नींद नहीं आती।

(५) कास (सुआल सिकी) में इससे कुछ भी लाभ नहीं होता; किन्तु आक्षेपयुक्त रोग में अत्यधिक उपयोगी है।

मॉर्फिया (अहिफेन सत्व)—

(१) इससे विलम्ब में अनिश्चित रूप से नींद आती है जो अच्छी नहीं होती।

(२) निद्राभंग होने पर सदैव शिरोवेदना तथा चित्त में उद्वेग रहता है।

(३) इसमें सदैव कोष्ठवद्ध होता है और कभी-कभी उत्क्लेश (मितली) होता है।

(४) यह वेदना को और वेदनाजन्य अनिद्रा को भी नष्ट करती है।

(५) कफज-कास (सुआल सिरकी) में तो इससे अवश्य लाभ होता है, किन्तु आक्षेपजन्य रोग में इससे कुछ भी लाभ नहीं होता।

सावधानता—निम्न व्यक्तियों में इसका उपयोग बहुत सावधानतापूर्वक करना उचित है—

(१) यह हृदय-अवसादक है। अतः वृद्धावस्था, निर्बलता, शीतजन्यरोग, आमवात (गठिया), गुल्मरोग, निकरिस इत्यादि में अत्यन्त सावधानतापूर्वक उपयोग करना उचित है।

(२) जो मद्यपान के अभ्यासी हैं, उनको इसका उपयोग वर्जित है। इन्हें अत्यन्त आवश्यक हो तभी देना उचित है।

(३) हृदय रोग, शिरागत रोग, फुफ्फुस रोग, वृक्-प्रदाह में इसका उपयोग वर्जित है।

(४) वह व्यक्ति जो इसके उपभोग से भयभीत होता हो उसको कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर १०-१५ ग्रेन की लघु मात्रा में देने से नेत्रों में लाली उत्पन्न होती है।

(५) इसका उपयोग वस्ति द्वारा (एनिमा) वा पिचकारी द्वारा शिरा में भी दिया जा सकता है। किन्तु त्वगन्तर देने से प्रदाह होकर व्रण हो जाता है।

मात्रा—३ से २० ग्रेन तक शर्बत संतरा इत्यादि में दिया जाता है।

प्रभाव—इसके दग्ध का प्रभाव त्वचा की गहराई तक पहुँच जाता है और पोटाश काष्ठिक तथा सोडा काष्ठिक की भाँति चतुर्दिक् नहीं फैल जाता, किन्तु दग्धस्थान ही तक सीमित रहता है। जिस स्थान पर इसका उपयोग होता है वहाँ वेदना नहीं होती। इसका प्रलेप ककंट (सरतान), कोथाभिभूत व्रण, अस्वस्थ क्षत तथा तिल-कालक (मस्सा), लाञ्छन इत्यादि पर किया जाता है। इसके प्रयोग से प्रथम रुग्ण स्थान के आस-पास की स्वस्थ

त्वचा पर पेरिस प्लास्टर छिड़कर सुरक्षित कर लेना उचित है। कृमिदन्त में जब दाँत में पूय की उत्पत्ति देखें तो इसके द्वारा दग्ध करने से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग व्रणचिकित्सा में भी होता है। विधि—जिङ्क क्लोराइड ५ भाग, जिङ्क आक्साइड ५ भाग और परिमृत्त जल ५ भाग मिश्रितकर घोल बना लें। पुनः इसमें लिट वा मल-मल इत्यादि भिगाकर व्रण-स्थान पर लगाने से व्रण में कीटाणुओं की उत्पत्ति नहीं होने पाती और व्रण शीघ्र पूरित होता है। अथवा जिङ्कक्लोराइड एक भाग ११ भाग जल में घोलकर व्रण-शोधपाकार्थ किया जाता है अथवा जिह्वाछेदन वा जबड़ा निकालने या गुदा के निकटवाले नाड़ीव्रणस्थानादि नष्ट करने के निमित्त भी इसका उपयोग होता है। इससे पूय की उत्पत्ति का अवरोध होता है। क्लेदित स्थान इससे स्वच्छ हो जाते हैं। अथवा ८ भाग जिङ्कक्लोराइड, सौ भाग जल, कार्बोलिक एसिड ५ भाग, जल १०० भाग का घोल भी उक्त कार्य के लिये उपयोगी है। इसके अतिरिक्त चौर-फाड़ के पश्चात् रक्तस्राव में भी जिङ्कक्लोराइड का उपयोग लाभप्रद है। अथवा १०० भाग जल और १ भाग जिङ्कक्लोराइड का घोल प्रस्तुतकर पिचकारी करने से दन्तनैर्बल्य नष्ट होकर उनमें दृढ़ता आ जाती है और दन्तशूल नष्ट हो जाता है। अथवा आध सेर जल में १ वा २ ग्रेन जिङ्कक्लोराइड मिश्रितकर लिङ्गेन्द्रिय में पिचकारी करने से पूयमेह (सूजाक) एक वा दो दिन में अच्छा हो जाता है। इसके अन्य गुण वही हैं जो अन्य प्रकार के क्षार में प्राप्त हैं।

क्लोरेल हाइड्रेट—संज्ञा पुं० [अं० Chloral Hydrate] एक रासायनिक द्रव्य। इथीलिक अँलकोहल में इतना शुष्क क्लोरीन गैस (गुजारने) से, जिससे अधिक उसमें शोषित न हो सके, क्लोरेल बन जाता है। पुनः उसमें पानी मिलाने से क्लोरेलहाइड्रेट बन जाता है। इसके रंगरहित किंचित् चपटे मणिभ होते हैं जो उत्ताप देने से सरलता से पिघल जाते हैं। इसकी गंध विशिष्ट प्रकार की तीक्ष्ण और स्वाद तिक्त होता है। इसके साथ क्षार (अलकली) मिलाने से इसका संगठन परिवर्तित हो जाता है और क्लोरोफॉर्म उत्पन्न होता है। **नाम**—(ले०) क्लोरेल हाइड्रास (Chloral Hydras); (अं०) क्लोरेल (Chloral), क्लोरेल हाइड्रेट (Chloral hydrate), (रासायनिक) ट्राइक्लोरोथाइलिडेन ग्लाइकाल (Trichlorethyliden Glycol)।

विलेयता—यह जल, सुरासार (अल्कोहल) और सॉल्वेन्ट ईथर में विलेय होता है। **संयोग विरोधी**—क्षारीय पदार्थ जिनके संसर्ग से क्लोरोफॉर्म का उत्सर्ग

होता है। **मात्रा**—५ से ३० ग्रेन या ०.३ से २ ग्राम। **मिश्रण**—फेरीक्लोराइडस, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, क्लोरेल अँलकोहालेट और तैलीय पदार्थ।

गुण-कर्म—निद्रल।

अनधिकृत योग (Non-official Preparations)

१—**ब्युटिल क्लोरेल हाइड्रास** (Butyl Chloral Hydras) और २—**ग्लुकोक्लोरेल** (Glucochloral, B. P. C.) या क्लोरेलोस (Chloralose)।

गुण-कर्म (फार्माकॉलॉजी)

बाह्य—क्लोरेल हाइड्रेट प्रबल कोथप्रतिबंधक है। इसका तीव्र विलयन त्वचा पर लगाने से क्षोभजनक (इरिटेण्ट) एवं विस्फोटकारक कार्य करता है।

आभ्यन्तरीय—अन्नव्रणाली—अधिक प्रमाण में देने से क्लोरेल हाइड्रेट का अन्न और आमाशय पर संक्षोभक क्रिया होती है जिससे वमन और विरेक् आने लग जाते हैं; परंतु औषधीय प्रमाण में भली भाँति डायल्यूट करके देने से उसकी उक्त क्रिया नहीं रहती।

रुधिर—रक्त में यह सरलता से शोषित हो जाता है और अपरिवर्तित दशा में उसमें भ्रमण करता रहता है। प्रथम यह विचार किया जाता था कि क्षारीय द्रव्य इसको क्लोरोफॉर्म एवं फॉर्मिक एसिड में परिवर्तित कर देते हैं। अतएव रक्त में पहुँच कर भी इसमें यही परिवर्तन हो जाता है। परन्तु उक्त विचार अब असत्य सिद्ध हुआ है। क्योंकि पशुओं में प्रयोग करके देखा गया है कि जब उनको खूब क्लोरेल खिला दिया जाता है तब उनके रक्त में कोई क्लोरोफॉर्म नहीं पाया जाता और न उनके श्वासोच्छ्वास से क्लोरोफॉर्म की गंध आती है तथा न उनके मूत्र में क्लोरोफॉर्म पाया जाता है, सिवाय इसके कि यदि मूत्र क्षारीय हो तो उसमें क्लोरेल के उपादान परिवर्तित हो जाते हैं।

हृदय और रक्तानुधावन—हृदय पर क्लोरेल हाइड्रेट की क्रिया विशेषकर बड़े प्रमाण में देने से प्रबल हृदयदौर्बल्यकारक होती है। यह हृत्पेशी एवं वातनाडी को घातित (सुस्त) करता है। अंततः हृदय विस्फारित दशा में गति करने से रह जाता है। नाडी जो प्रथम किंचित् तीव्र होती है, शीघ्र मंद, दुर्बल एवं अनियमित चलने लगती है। वाहिन्युत्प्रेरक केन्द्र (Vaso-motor centre) के शिथिल हो जाने से धमनियाँ विस्फारित हो जाती हैं जिससे रक्त के दबाव में कमी आ जाती है।

श्वासोच्छ्वास—अल्पमात्रा में देने से तो श्वासोच्छ्वास-केन्द्र पर इसका कुछ प्रभाव प्रतीत नहीं होता, किन्तु अधिक या विषैली मात्रा में देने से यह श्वासोच्छ्वास केन्द्र पर भी दौर्बल्यकारक प्रभाव करता है। फलतः

श्वासोच्छ्वासकेन्द्र शिथिल और अन्ततः निष्क्रिय हो जाता है।

देहोष्मा—क्लोरलहाइड्रेट देहोष्मा को कम करने की ओर प्रवृत्त करता है और विषमात्रा में देने से तो शरीरोष्मा में स्पष्टतया कमी प्रतीत होती है जिसका हेतु कुछ तो धमनी-विस्फार होता है तथा कुछ पेशियों में ऊष्मोत्पत्ति की न्यूनता होती है।

मस्तिष्क—मस्तिष्क के ऊपर क्लोरल हाइड्रेट की प्रबल निद्रा क्रिया होती है। इसके सेवनोपरांत गंभीर निद्रा आ जाती है जो कई घण्टे बनी रहती है तथा स्वाभाविक निद्रा के समान होती है। जागृत होने पर न तो सेवन करनेवाले की संज्ञा विकृत होती है और न उसको शिरःशूल आदि की शिकायत होती है। पर यदि अत्यधिक प्रमाण में इसको दिया जाय तो रोगी गंभीर निद्रा (कूमा)ग्रस्त हो जाता है। उसकी हृदय एवं श्वास की गति मंद हो जाती है तथा रक्त के पूर्णतया शुद्ध (ऑक्सिडाइज) न होने से शरीर नीलवर्ण का हो जाता है, प्रतिसंक्रमित चेष्टा नष्ट हो जाती है और अन्ततः हृदय एवं श्वासोच्छ्वास के मस्तिष्कगत केन्द्र के वातग्रस्त हो जाने से मृत्यु उपस्थित हो जाती है।

नोट—इसके अल्पप्रमाण से तो नेत्रकनीनिका संकुचित, किन्तु अधिक प्रमाण से वह विस्फारित हो जाती है।

सुषुम्ना—सुषुम्ना के ऊपर भी क्लोरलहाइड्रेट का दौर्बल्यकारक प्रभाव होता है और वातग्रस्त हो जाने से प्रतिसंक्रमित चेष्टा नष्ट हो जाती है और कभी-कभी विभिन्न अंग-प्रत्यंग वातग्रस्त हो जाते हैं। किन्तु मांस-पेशियों और चेष्टावहाओं पर इसका कुछ प्रभाव नहीं होता। हाँ अधिक प्रमाण में देने से सांवेदनिक वात-नाडियों की क्रिया में किसी भाँति कमी हो जाती है।

उपयुक्त विवरण से यह प्रगत है कि क्लोरल हाइड्रेट वृहत् मस्तिष्क (सेरीब्रम), श्वासोच्छ्वास केन्द्र, वाहिन्युत्प्रेरक केन्द्र (Vaso-motor centre), हृदय और संभवतः उष्णतोत्पादक केन्द्र पर प्रबल दौर्बल्यकारक प्रभाव करता है।

वृक्क—यह किसी प्रकार तो बिना परिवर्तन के ही, किन्तु अधिकतर युरोक्लोरेलिक एसिड के रूप में वृक्कों के द्वारा उत्सर्गित होता है। इसे अधिक प्रमाण में देने से वृक्कों में शोथ हो जाता है तथा मूत्र में रक्त आने लगता है और कभी-कभी मूत्र में शर्करा (चीनी) भी आने लगती है।

उत्सर्ग—अधिकतया इसका निर्हरण तो वृक्कों के द्वारा ही होता है। परन्तु किसीकदर फुफ्फुस और त्वचा के द्वारा भी यह उत्सर्गित हो जाता है।

क्लोरल हाइड्रेट के विषप्रभाव (टॉक्सिकॉलोजी) उग्र विष-प्रभाव

नोट—यद्यपि इसके विषैली मात्रा में खाने-खिलाने की घटना क्वचित् ही होती है। किन्तु एक अभ्यस्त क्लोरल-सेवनकरनेवाले का विवरण लिखा है जो एक बार ८० ग्रेन क्लोरलहाइड्रेट खाने से मर गया। इसके उग्र विष-लक्षण निम्नलिखित होते हैं—

रोगी गहरी नींद सोया रहता है। चेहरे का रंग नीला या पोला होता है। सिर और मस्तक पर ठंडा पसीना होता है। श्वासोच्छ्वास पहिले मंद और फिर अनियमित हो जाता है। नाड़ी भी दुर्बल एवं अनियमित चलती है। देहोष्मा में स्पष्टतया कमी हो जाती है, जो कभी-कभी इतना अधिक हो जाती है कि केवल इसी से मृत्यु उपस्थित हो सकती है। नेत्रकनीनिकाएँ पहिले संकुचित होती और तत्पश्चात् विस्फारित हो जाती हैं तथा मांसपेशियाँ सर्वथा घातित होती हैं और हृदय या श्वासोच्छ्वास केन्द्र के वातग्रस्त हो जाने से मृत्यु उपस्थित होती है।

प्रतिविष—वमनद्रव्य द्वारा वमन करायेँ या स्टमक-पम्प से आमाशय को धो डालें। शरीर पर मालिश करायेँ। बाह्य उष्णता पहुँचायेँ अर्थात् गरम पानी की बोतल बगल (कक्षा), जाँघ और तलवों पर लगायेँ। अमोनिया और ईथर आदि जैसे उत्तेजक द्रव्य सेवन करायेँ। छाती और गुद्दी पर राई का पलस्तर लगायेँ। विजली का प्रयोग करें। एमाइल नाइट्रेट सुंघायेँ। एट्रोपीन, स्ट्रिकनीन और केफीन की त्वगीय पिचकारी करें। यदि रोगी को नींद से जगाया जा सके तो उसे जगाकर सोने न दें। एक पाइंट तेज कहवा की पिचकारी उसकी गुदा में करें।

चिरकारी विष-प्रभाव या क्लोरललिज्म—क्लोरल के कुछ कालीन उपयोग से रोगी को इसकी चाह बढ़ जाती है। अस्तु अफीम आदि की भाँति कुछ लोग इसके सेवन के भी आदी हो जाते हैं। उक्त दशा में निम्न लक्षण पाये जाते हैं—

अन्न-आमाशय की क्रिया विकृत हो जाती है, त्वचा के ऊपर ददोड़े या छोटी-छोटी फुंसियाँ या विस्फोट आदि उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर एवं शरीरबल दुर्बल हो जाते हैं। श्वासकृच्छ्रा और हृत्स्फुरण इसके विशिष्ट लक्षण हैं। ऐसे अभ्यासिक क्लोरल सेवियों में मृत्यु प्रायः अधिक प्रमाण में औषधि सेवन कर लेने से उपस्थित होती है।

चिकित्सा—धीरे-धीरे औषध की मात्रा घटाकर इस आदत का त्याग करायेँ, उत्तम पौष्टिक आहार दें, रोगी को खुली वायु में रखें, अजवायन खुरासानी (हायो-सायमस) प्रभृति जैसे वल्य एवं वातनाडी-संशामक औषध दें। **क्रियाशारीरिक प्रतिविष**—एट्रोपीन, स्ट्रिकनीन, फाइसास्टिग्मीन और पिक्टोटावसीन।

क्लोरलहाइड्रेट के आमयिक प्रयोग

(थेराप्युटिक्स)

वाह्य—विस्फोटजनक (वेसिकेंट) की भाँति क्लोरल हाइड्रेट के चूर्ण को किंचित गरम किये हुए रेजिन प्लास्टर पर छिड़ककर लगाना चाहिये। इससे बिना पीड़ा के आबला (विस्फोट) पड़ जाता है। नाडीशूल एवं सड़े दाँत का दर्द दूर करने के लिये क्लोरल केम्फर या क्लोरल मेंथाल का स्थानिक प्रयोग अत्यंत गुणकारी है और यदि उनमें मॉर्फिन या कोकेन का योगकर दिया जाय तो वह और प्रभावकारी हो जाते हैं। प्रति औंस जल में ८ ग्रेन क्लोरलहाइड्रेट वाला विलयन कोथप्रतिबन्धक, वेदनाहर और उत्तेजक औषधि की भाँति अस्वस्थ एवं मलिन त्रणों के ऊपर लगाते हैं। पामा में भी उक्त प्रकार के द्रव से लाभ होता है।

आभ्यन्तरीय—क्लान्ति या चिंता एवं तरदुदजन्य अनिद्रा दूर करने के लिये तो क्लोरल हाइड्रेट एक अनुपम औषधि है। किंतु वेदनाजन्य अनिद्रा में इससे कुछ लाभ नहीं होता। १० से १५ ग्रेन की मात्रा में देने से सुख की नींद आ जाती है। परंतु इस प्रकार इसका बारम्बार प्रयोग करने से रोगी इसका अभ्यासी हो जाता है अर्थात् क्लोरल सेवन का अभ्यास हो जाता है।

हर एक प्रकार के ज्वर के आरम्भ में अनिद्रा-निवारण के लिये यह एक परम गुणकारी एवं अत्युपयोगी औषधि है। परन्तु रोगांत में जब कि दुर्बलता अधिक हो तब हृदय के ऊपर इसका दीर्घत्वजनक प्रभाव पड़कर हृदय की गति बन्द हो जाने के भय से इसका उपयोग नहीं करते। सकम्प प्रलाप (Delirium tremens) के लिये भी यह एक परमोत्तम औषधि है। अस्तु, इसे पोटैसियम ब्रोमाइड के साथ देने से रोग के आरम्भ में बड़ा लाभ होता है। उक्त अवस्था में इसकी सेवन विधि यह है कि दिन के समय १० ग्रेन सल्फोनल एक ग्लास गरम दूध या मांस-रस में घोलकर ऐसी एक-एक मात्रा औषधि दिन में दो तीन बार पिलायें। पुनः रात में ८ बजे २० ग्रेन क्लोरल और २० ग्रेन पोटैसियम ब्रोमाइड मिलाकर देवें और दो-दो घंटे पश्चात् एक-दो मात्रा और देवें, यहाँ तक कि रोगी को नींद आ जावे जिससे रोगी जागने पर सर्वथा स्वस्थ हो जाता है।

सावधानी—परन्तु इस प्रकार दीर्घकाल तक इसका सेवन न करते रहें। ऐसा न हो कि इससे हृदय की गति बंद हो जाने से रोगी यमलोक सिधार जाय।

इसी विधि से उक्त औषधि को उन्माद (मेनिया) और सूतिकोन्माद (प्योरपेरल मेनिया) में भी दे सकते हैं। सामुद्रिक वमन (सी-सिकनेस) और गर्भकालिक वमन में भी इस औषधि के गुणकारी होने की बड़ी प्रशंसा करते हैं।

सौषुम्निक चेष्टावहाधिष्ठान पर इसका अवसादक प्रभाव होता है तथा प्रतिसंक्रामित चेष्टायें इससे नष्ट हो जाती हैं। अतएव गर्भापस्मार (प्योरपेरल एक्लैम्सिया), अपतानक, नवजात अपतानक, जलसंत्रास, बालापस्मार और स्ट्रिकनीनजन्य विषमयता (जिसमें मृगी जैसा तीव्र उद्वेष्टन हुआ करता है) आदि आक्षेपकर व्याधियों में यह एक परम गुणकारी औषधि है।

अपतानक रोग में क्लोरल और ब्रोमाइड के प्रवाही मिश्रण में कुछ विंदु टिक्चर ऑफ इण्डियन हेम्प (भंग) के मिलाकर देना अधिक गुणकारी है। बहुत से अन्य आक्षेपकर व्याधियों, जैसे—कम्प (कोरिया), श्वास, कुकुरकास, पक्षवधमय कम्प, पैरलिसिस एजिटन्स (Paralysis agitans) और आक्षेपकर शूल (स्पैज्मोडिक कॉलिक) में भी इससे लाभ होता है। प्रसवकालीन गर्भाशयग्रीवा की कठोरता को कम करने के लिये भी यह एक परम गुणकारी औषधि है। क्योंकि गर्भाशय संकोच में तो यह विल्कुल बाधक नहीं होती, केवल गर्भाशयग्रीवा की कठिनता ही को कम करती है।

सार्वदैहिक वेदनाहर के रूप में क्लोरल हाइड्रेट मॉर्फिन की अपेक्षा अघम है। यद्यपि हलके प्रकार की वातवेदनाओं को (सिवाय मस्तिष्क की पाँचवीं नाड़ी के शूल के जिसको टिकडोलरो अर्थात् अनन्तवात कहते हैं और जिसमें व्युटल-क्लोरलहाइड्रेट एक परम गुणकारी औषधि है) इससे लाभ हो जाता है तथा इससे पैत्तिक शूल (यकृच्छूल), मूत्रजनित शूल (युरिनरी कॉलिक), आन्त्रिक शूल (इन्टेस्टाइनल कॉलिक) और आमाशय-शूल (गैस्ट्रोडीनिया) में भी कमी हो जाती है।

क्लोरल हाइड्रेट और मॉर्फिन (अहिफेन सत्व) के गुण-कर्म तथा उपयोग में जो अन्तर है, वह नीचे दी हुई तुलनात्मक तालिका से भली भाँति ज्ञात हो जायगा—

क्लोरल हाइड्रेट

(१) इससे शीघ्रतर निश्चित रूप से उत्तम नींद आ जाती है।

(२) जगाने पर न तो सिरदर्द होता है और न हवास परागंदा होते हैं। कभी-कभी शिरःगौरव होता है।

(३) औषधीय मात्रा में इससे न कब्ज होता है और न अन्त्राशय की क्रिया में कोई विकार होता है।

(४) न तो उग्र वेदना को यह शमन कर सकता है और न तो तीव्र वेदना के कारण होनेवाली अनिद्रा को ही यह दूर कर सकता है।

(५) प्रतिसंक्रामित खाँसी या (सुआल शिकी) में तो इससे कुछ लाभ नहीं होता। किंतु आक्षेपकर व्याधियों में यह परम गुणकारी है।

मॉर्फोन (अहिफेन सत्व)

(१) इससे देर में अनिश्चित रूप से नींद नहीं आती है जो उत्तम नहीं होती।

(२) नींद से जगाने पर सदैव शिरः शूल एवं विचार वैकल्य (परेशानी ख्यालात) को शिकायत होती है।

(३) सदैव कब्ज की शिकायत होती है और कभी-कभी जी मिचलता है।

(४) यह वेदना और उससे होनेवाली अनिद्रा दोनों को दूर करता है।

(५) प्रतिसंक्रमित कास या (सुआल शिकी) में तो इससे लाभ होता है; किंतु आक्षेपकर व्याधियों में इससे कुछ लाभ नहीं होता।

प्रयोग-विधि—(१) यह एक प्रबल हृदयावसादक औषधि है। इसलिये अधिक वयवाले, दुर्बल व्यक्तियों को तथा वातरक्त, आमवात और अपतन्त्रक इन रोगियों को बड़ी ही सावधानीपूर्वक इसका उपयोग कराना चाहिये। (२) अभ्यासी मद्यपियों को सिवाय अनिवार्य आवश्यकता के अर्थात् सकम्पप्रलाप के भी यह औषधि नहीं देनी चाहिये। (३) हृद्रोग, रक्तवाहिनी के रोग, फुफ्फुस के रोग और वृक्शोथ प्रभृति रोगों में इसका उपयोग वर्जित है। (४) ऐसा वह एक व्यक्ति जो इसके प्रभाव से खूब प्रभावित होता हो उसमें कभी-कभी इसकी १० या १५ ग्रेन की छोटी मात्रा ही नेत्र में रक्तिमा उत्पन्न कर देती है तथा नेत्राभिष्यन्द (कन्जंक्टिवाइटिस) का कारणभूत होती है।

व्यवस्थापत्रलेखनविषयकसंकेत—एरोमैटिक सिरप या जिजर सिरप इसके तीक्ष्ण आस्वाद का सुधार कर देता है। इसे बस्ति (एनीमा) द्वारा भी दे सकते हैं।

होमियोपैथी के मत से—

होमियोपैथी के अनुसार—साधारणतया इसकी क्रिया हृत्पिण्ड, मस्तिष्क और त्वचा पर होती है। इसके उपयोग से हृदय की क्रिया कम होती है और उसमें अवसन्नता प्राप्त होती है। मस्तिष्क पर विशेष क्रिया होने से प्रगाढ़ निद्रा उत्पन्न होती है। त्वचा पर प्रभाव होने से शरीर में रक्तवर्ण की फुंसियाँ उत्पन्न होती हैं। सर्वप्रथम इसकी परीक्षा डॉ० डब्ल्यू इलार्ट के द्वारा हुई थी।

उपयोग—भय—जो बालक शयनकाल में अचानक जाग उठते हैं जोर से चिल्ला उठते हैं, माता-पिता को रोग का कोई कारण प्राप्त होता है, ऐसी अवस्था में क्लोरल अधिक उपयोगी है।

शीतला—बच्चों की छोटी माता (Chickenpox) में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त—मूर्च्छा, शिरोवेदना, श्वास-यंत्र के रोग तथा आमवात में भी इससे लाभ होता है।

प्रतिनिधि—एसिड हाइड्रोसी, कैन्थर, बेल, एपिस, साइक्यु।

क्रियानाशक—मस्क, डिजिटेलिस, एमोनिया।

फार्मूला—६—ए।

क्लोराइड—संज्ञा पुं० [अं० Chloride] दो मूलद्रव्यों के वे समास जिनमें एक 'क्लोरीन' (chlorine) नामक प्रसिद्ध वायु होता है।

क्लोराइड ऑफ अमोनिया—संज्ञा पुं० [अं० Chloride of ammonia] नौसादर, नृसार, निशादल।

क्लोराइड-ऑफ-कैल्सियम्—संज्ञा पुं० [अं० Chloride of Calcium] **पर्याय**—(ले०) कैल्सियाई क्लोराइडम् (Calcii chloridum)।

परिचय—इसकी डलियाँ श्वेतवर्ण की होती हैं। यह खड़ियामिट्टी और नमक के तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह बहुत घुलने-वाला नमक है। जल और सुरासार में भली-भाँति द्रवीभूत होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रक्तस्तम्भक, रक्तप्रकोप-शामक, रक्तस्कन्दनकारक, कफनाशक, शोथघ्न तथा ग्रन्थिनाशक है। इसके उपयोग से गण्डमाला, ग्रन्थिवृद्धि, चर्मरोगादि का बाह्य उपयोग से नाश होता है। इसका घोल निर्माणकर प्रक्षालन करने से कण्डू (खारिश) का नाश होता है। अजीर्ण, गण्डमाला, अस्थिवृद्धि, अतिसारादि में इसका प्रचुर उपयोग होता है। अन्य प्रकार के कैल्सियम् की अपेक्षा रक्तप्रकोप में यह अत्यधिक उपयोगी है। जब रक्त में स्कन्दनशक्ति का अभाव होता है तब इसका उपयोग अत्यधिक लाभप्रद होता है। शरीर के किसी आन्तरिक भाग के रक्तस्राव में इसका सर्वोत्तम प्रभाव होता है। आगन्तुक क्षतादि में जब किसी प्रकार से रक्तस्राव बंद न हो तो इसके उपयोग से अवश्य बंद होता है। सिराग्रन्थि में भी इससे उपकार होता है। कासजन्य उरःक्षत में भी इसका उत्तम प्रभाव होता है। डॉक्टर कश्नी के अनुसार रक्तस्कन्दन शक्तिवर्धन के विषय में संदेह है।

मात्रा—५ से १५ ग्रेन।

क्लोराइड ऑफ कैल्सियम्—संज्ञा पुं० [अं० Chloride of Calcium] एक रासायनिक औषधद्रव्य जो सफेद रंग की डलियों के रूप में होता है। यह पानी और मद्य में सुविलेय होता है। इसे नमक के तेजाब और खड़िया (कबोनेट ऑफ कैल्सियम्) के योग से प्रस्तुत करते हैं। **नाम**—(ले०) कैल्सियाई क्लोराइडम् (Calcii chloridum)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कण्डमाला और ग्रन्थिवृद्धि एवं त्वचा के रोगों में इसे बहुत उपकारक समझते हैं। यद्यपि इसके विलयन से कभी-कभी कण्डू कम हो जाता है,

तथापि कैल्सियम् क्लोराइड का बाह्य प्रयोग क्वचित् ही होता है। यह उत्तम रसायन है। कण्ठमाला, अस्थियों के बेडौल हो जाने तथा चिरज अतिसार या पचन-विकार में इसका पुष्कल उपयोग किया करते हैं। इसकी परमावश्यक क्रिया यह मानी जाती है कि चूना के अन्य लवणों की अपेक्षा यह रुधिर की स्पन्दनशक्ति को तीव्रता से बढ़ाता है। अतएव यह आभ्यन्तरीय रक्त-स्राव में चाहे वह फुफ्फुस से हो अथवा अन्न, आमाशय तथा अन्य अंग-प्रत्यङ्ग से हो, दस से १५ ग्रेन की मात्रा में बड़ा गुणकारी समझा गया है। ऐसी प्रकृति में कि मामूली चोट लगने पर तुरत रक्त जारी हो पड़े और बंद होने में न आये तो रक्तस्राव बंद करने के लिये यह एक परम गुणकारी औषधि ख्याल की जाती है तथा कोई-कोई इसको धमन्युबंद में भी लाभकारी बतलाते हैं। कोई-कोई डॉक्टर फुफ्फुसशोथ में भी इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और ५ से १५ ग्रेन की मात्रा में इसको प्रति चौथे घंटे देना लाभकारी बतलाते हैं। डॉक्टर कुस्नी फार्माकालॉजी एण्ड थेराप्युटिक्स नामक अपने प्रामाणिक ग्रन्थ में लिखते हैं कि विस्तृत प्रयोगों एवं अधिकाधिक अन्वेषणों से यह सिद्ध हुआ है कि आन्तरिक रक्तस्राव में ऐसी प्रकृति में कि जरी सी चोट से रक्त जारी हो जाय चूने की कमी नहीं होती और मुख द्वारा चूने के लवण देने से वह रक्त की स्कन्दनीय शक्तिपर कुछ प्रभाव नहीं करते। इसलिये कैल्सियम् क्लोराइड के उपरिलिखित गुणकर्म संदेहास्पद हैं। मात्रा—५ से १५ ग्रेन तक।

होमियोपैथी के अनुसार

क्लोराइड ऑफ गोल्ड—संज्ञा पुं० [अं० Chloride of Gold] यह क्लोरीन और सुवर्ण का यौगिक है जो चार प्रकार का होता है। मात्रा— $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन तक।

गुण-कर्म तथा उपयोग—रुद्धांतव और फिरंग की द्वितीय कक्षा में तथा जीर्णफिरंग, अपतन्त्रक, श्वास, मूर्च्छा और सुषुम्ना के कठोर हो जाने तथा गर्भाशय के रोगों में भी इसका उपयोग करते हैं।

क्लोराइड ऑफ जिंक—संज्ञा पुं० [अं० Chloride of Zinc] एक रासायनिक द्रव्य जिसकी सफेद रंग की अस्वच्छ चपटी डलियाँ या बत्तियाँ होती हैं। यह यशद के योग, क्लोरीन और नमक के तेजाब से बनाया जाता है। जिंक क्लोराइड के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। नाम—(ले०) जिन्साई क्लोराइडम् (Zinci chloridum); (अं०) क्लोराइड ऑफ जिंक (Chloride of Zinc), जिंक क्लोराइड (Zinc chloride)।

विलेयता—पानी, परिश्रुत मदिरा और ईथर में सुविलेय है। **गुण-कर्म**—दाहक।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह अत्यन्त दाहक है। जहाँ

लगाया जाय वह स्थान शीघ्र निर्जीव हो जाता है। पाँच या छः घंटे तक तीव्र दाह एवं वेदना होती है। इससे सड़े हुए घाव को जलाते हैं जिसकी विधि यह है कि ३० ग्रेन से १२० ग्रेन तक प्रति औंस परिश्रुत जल में लगायें। इसका जलानेवाला प्रभाव गंभीर रचनाओं तक जा पहुँचता है तथा कौष्ठिक पोटाश एवं कौष्ठिक सोडा की भाँति चारों ओर नहीं फैलता अपितु केवल उसी स्थान में सीमित रहता है, जहाँ पर इसे लगाया जाय तथा इससे वेदना नहीं होती। कर्कटाबुंद (कैंसर), दूषित व्रण, अस्वस्थ व्रण और मस्सा (मशक) एवं लहसुन आदि को जलाने के लिये इसका उपयोग करें। इसको लगाने से पूर्व विकारी धरातल चारों ओर की अदूषित त्वचा को उस पर प्लास्टर ऑफ पेरिस छिड़ककर सुरक्षित कर लेते हैं। कृमिभक्षित दाँत में जब (पल्प) खुला होकर वेदना का हेतुभूत हो तो उसको जलाने के लिये तथा मस्से एवं चट्टे आदि को जलाने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। अधुना तो व्रणशोधन के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। अस्तु, जिंक क्लोराइड ५ भाग, जिंक ऑक्साइड ५० भाग और परिश्रुत जल ५० भाग इनको परस्पर मिलाकर उसमें लिट या मलमल आदि तर करके उससे घावों को ढाँप देते हैं। इससे उनमें बिना पूयोत्पत्ति के ही वे भर एवं सूख जाते हैं। इसी प्रकार कतिपय शल्य-क्रियाओं, जैसे जिह्वा में चीरा देने या हनु उत्पाटन करने या गुदा के आस-पास शल्यकर्म करने या नाड़ीव्रण में छेदन एवं भेदन क्रिया करने के उपरांत उनके लेखनार्थ जिंक क्लोराइड १ भाग, ११ भाग पानी मिलाकर प्रयुक्त करते हैं। उपर्युक्त दशाओं में इसके उपयोग से व्रण के भीतर दो-तीन दिन तक पूय उत्पन्न होते नहीं पाता। जिंक क्लोराइड दूषित एवं मलिन को दोष-रहित तथा शुद्ध एवं स्वच्छ कर देता है। इसके लिये इसका ८ प्रतिशत शक्ति का घोल ५ प्रतिशतवाले कार्बोलिक एसिड के घोल से अधिक कार्यकारी होता है। छेदन और भेदन के उपरांत खून रिसना बंद करने के लिये भी यह लाभकारी है। सौ भाग पानी में १ भाग जिंक क्लोराइड विलीन करके उपजिह्विकारोग में पिचकारी करने से वह कठिनीभूत हो जाता है तथा दर्द नहीं करता। डॉक्टर रिंगर के कथनानुसार १ पाइंट पानी में १ या २ ग्रेन जिंक क्लोराइड विलीन करके यदि सूजाक के प्रारम्भ में पिचकारी कर दी जाय तो एक दो दिन में रोग आराम हो जाता है। इसकी विषमयता, विष के लक्षण और उनकी चिकित्सा वही है जो इतर जलानेवाले (दाहक) अम्लों की है।

क्लोराइड ऑफ लाइम्—संज्ञा पुं० [अं० Chloride of lime] चूर्ण। सुधा। चूना। दे० क्लोरिनेटेड लाइम्।

क्लोराइड ऑफ सोडियम

क्लोराइड ऑफ सोडियम—संज्ञा पुं० [अं० (Chloride of sodium)] सैधानमक । सैधव ।

क्लोरोक्जिलीन स्वीटेनिया—संज्ञा पुं० [ले० Chloroxyline swietenia] बहेड़ा । (म० प्र०) गिरिआ । (मेमो०) ।

क्लोरिक ईथर—संज्ञा पुं० [अं० Chloric aether] क्लोरिन और ईथर का एक योगिक ।

क्लोरामिना—संज्ञा पुं० [ले० Chloramina]

क्लोरामीन—संज्ञा पुं० [अं० Chloramine]

एक रासायनिक द्रव्य जिसके सफेद रवे या रवादार चूर्ण होते हैं। इसमें से क्लोरीन की गंध आती है। यह स्वाद में तिक्त एक अरुचिकारक होता है। (पा० द्र० गु० वि० २ भ०, पृ० ७९९-८००) ।

क्लोरीन—संज्ञा पुं० दे० "क्लोरीन ।"

क्लोरीनेटेड लाइम—संज्ञा पुं० [अं० (Chlorinated Lime)] एक हल्के सफेद रंग का रासायनिक चूर्ण जिससे क्लोरीन की हल्की गंध आती है। इसमें बुझा हुआ चूना और क्लोरीन पाया जाता है। यह जल में पूर्णतया विलेय नहीं होता। इसमें रंग एवं मरकटविष निवारण का गुण पाया जाता है।

नाम—(ले०) केलक्स क्लोरिनेटा (Calax chlorinata); (अं०) क्लोरीनेटेड लाइम (Chlorinated lime), क्लोराइड ऑफ लाइम (Chloride of Lime), ब्लिचिंग पाउडर (Bleaching Powder) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसमें औद्धिद एवं प्राणिज द्रव्य रखने से वे सड़ने-गलने नहीं पाते, विष एवं कृमियों की उत्पत्ति, जिनसे महामारी उत्पन्न होती है, रोकती है। यह कोथ एवं कोथजनित रोगों की उत्पत्ति नहीं होने देती तथा उत्तेजक एवं संग्राही है। उत्तम कृमिघ्न एवं मरकटविषनिवारक होने के कारण आतुरालय, जेलखाना, शवच्छेदगृह तथा स्नानागार आदि में इसका प्रवाही-भूमि और दीवारों पर छिड़कते हैं या प्रवाही या द्रव में वस्त्र तर करके लटकाते हैं। धीरे-धीरे क्लोरीन निकलता रहता है। मुखपाक में मुखगत व्रणों में इसके प्रवाही का गण्डूष कराते हैं। दो या चार ड्राम औषधि को बीस औंस पानी में विलीन करके और छानकर उसमें एक-औंस शहद मिला लें। जरायु, योनि और सरलान्त्र के ऐसे रोगों में जब सड़ा हुआ द्रव निकलता हो तब इसके प्रवाही की पिचकारी दें तथा इस प्रयोजन के लिये एक दो ड्राम औषधि को एक पाइंट जल में विलीन करके छान लें। नाक और कान से दूषित द्रव निकलता हो तो उसमें भी इसी प्रवाही की पिचकारी करते हैं। खुजली में भी बहुत गुणकारक है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इसके प्रवाही को सदा फिल्टर पेपर से छान लेते हैं।

जिस कमरे को शुद्ध करना हो उसमें से समस्त धातु की बनी वस्तुएँ, रंगीन कपड़े और पर्दे आदि बाहर निकाल लेने चाहिये या उनको किसी सफेद कपड़े आदि से भली-भाँति ढँक देना चाहिये, वरन् उनके खराब होने का भय होता है। पुनः उक्त कमरे की खिड़की और चिमनी आदि को बन्द कर देना चाहिये तथा कमरे के द्वार एवं दीवाल में यदि कोई छिद्र हो तो उसपर भी कागज आदि चिपकाकर उसे बन्द कर देना चाहिये। पुनः कमरे में क्लोरीन गैस उत्पन्न करके स्वयं तुरत बाहर आ जाना चाहिये तथा उसके द्वार भली-भाँति बन्द कर देना चाहिये। तदुपरांत उसके द्वार एवं खिड़कियों को खोल कर उसमें ताजा वायु जाने दें तथा पुनः उसमें रहने लगे।

क्लोरेट ऑफ सोडियम—संज्ञा पुं० [अं० Chlorate of Sodium] एक रासायनिक द्रव्य। क्लोरीन को बुझाए हुए चूने या मैग्नेशिया मिले हुए पानी में डालकर खाने का नमक मिलाने से इसके बड़े-बड़े अनियमित मणिभ (रवे) बँध जाते हैं।

नाम—(ले०) सोडियाइ क्लोरास (Sodii chloras), (अं०) क्लोरेट ऑफ सोडियम (Chlorate of Sodium), सोडियम क्लोरेट (Sodium Chlorate) ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पोटासियमक्लोरेट की अपेक्षया सोडियमक्लोरेट को कई एक प्रयोजन के लिये श्रेष्ठता देते हैं। विशेषकर मुखव्रण में जबकि व्रण मसूहों के किनारों के समानान्तर हों। आमाशयगत कर्कटाबुद (कैंसर) में इसको २ ड्राम प्रति दिन के प्रमाण से देने से रोग के लक्षणों में बहुत कमी हो जाती है।

क्लोरीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Chlorine] एक गैस (वायु रूप तत्व) जो साधारणतया केलक्स क्लोरिनेटा और लाइकर सोडियाइ क्लोरीनेटी से प्राप्त की जाती है। क्लोरिन। **गुण-कर्म**—इसमें हाइड्रोजन के शोषण का बड़ा आकर्षण होता है। अतएव जिन रासायनिक, जाङ्गम या औद्धिद योगों में हाइड्रोजन विद्यमान होता है और बहुत से जाङ्गम या औद्धिद द्रव्य क्लोरीन उनके साथ मिलकर उनको विकृत (दूषित) कर देती है तथा यह अभिषव एवं कोथकारक जीवाणुओं को भी नष्ट कर देती है। अस्तु, यह एक प्रबल कोथप्रतिबन्धक एवं सुगन्धहर द्रव्य है। त्वचा पर अधिक कालतक लगाने से यह उस पर कण्डू, रक्तिमा एवं शोथ उत्पन्न कर देती है, अपितु विस्फोट उत्पन्न कर देती है तथा वहाँ की रचना को जलाकर निर्जीव कर देती है। यदि इस तीक्ष्ण गैस को सूँघा जाय तो श्वासपथ में तीव्र क्षोभ उत्पन्न कर देती है तथा वायु प्रणालीगत शोथ या आक्षेप के कारण

मृत्यु का कारण हो सकती है। पर यदि अधिक वायु के साथ इसको विलीन करके सुंघाया जाय तो उत्तेजनापूर्वक अधिक कफ निकालती है।

क्लोरेटोन—संज्ञा पुं० [अं० (Chloretone) एक पाश्चात्य औषध द्रव्य जिसके सफेद सूचिकाकार रवे होते हैं। इसका स्वाद कपूर की तरह होता है। इसका रासायनिक नाम ट्राइक्लोर-टरशियरी-व्युटल-एल्कोहल (Trichlor-tertiary-bntyl-chloral) है।

क्लोरेम्फेनिकॉल—संज्ञा पुं० [ले० Chloramphenicol] क्लोरोमाइसेटिन।

क्लोरेसियम्—संज्ञा पुं० [ले० Chloresium] रासायनिक दृष्टि से क्लोरोफिल का यौगिक, तो नीली स्याही के रंग का चमकदार चूर्ण होता है। यह पानी एवं अल्कोहल में घुल जाता है। (पा० द्र० गु० वि० २ भ०, पृ० ८२२)।

क्लोरोक्रेसोल—संज्ञा पुं० [अं० Chlorocresol] बेरंग मणिभीय औषध जिसकी गंध विशेष प्रकार की होती है। पैराक्लोरोमेटाक्रेसोल (Parachlorometacresol)। दे० 'क्रेसोल'।

क्लोरोक्विन—संज्ञा पुं० [अं० (Chloroquin)] दे० पा० द्र० गु० वि० २ भ०, पृ० ६२५-६२८।

क्लोरोडाइन—संज्ञा पुं० [अं० Chlorodyne] दे० 'कैम्फो रोडाइन'।

क्लोरोफॉर्म—संज्ञा पुं० [अं० Chloroform] यह एक रंगहीन उत्पन्न द्रव है जिसकी गंध विशेष प्रकार की और स्वाद मधुर एवं जलन का अनुभव होता है। यह ईथर और अल्कोहल के साथ प्रत्येक (Volume) में विलीन हो जाता है और २०० भाग जल में (Volume) के विचार से केवल एक भाग जितना विशुद्ध क्लोरोफॉर्म को उत्पाद देवे तो उड़ जाने के उपरांत कोई वस्तु बच नहीं रहती और न किसी प्रकार की दुर्गन्धि।

वर्तव्य—२००० वर्ष पूर्व भारतवर्ष में क्लोरोफार्म के स्थान में भारतीय शल्यचिकित्सक शल्यचिकित्सा में मोह-चूर्ण तथा सज्जीवनी का उपयोग किया करते थे। भोज-प्रबन्ध के रचयिता श्री श्रीबल्लाल जी पण्डित लिखते हैं—'ततस्तावपिराजानं मोहचूर्णेन मोहयित्वा शिरः कपालमादाय तत्करोटिका पुटेस्थितं शफरकुलं गृहीत्वा कस्मिंश्चिद्भाजने निक्षिप्य संधानकरण्या कपालं यथा-वदारयंच सज्जीविन्या च तं जीवयित्वा तस्मै तद्दर्शयताम्।'।

तात्पर्य यह है कि राजा के शल्यचिकित्सक 'मोहन चूर्ण' द्वारा राजा को मूर्च्छितकर और उनके कपाल को काटकर, उसके हड्डियों के मध्य में स्थित मृतमत्स्य को निकालकर किसी पात्र में स्थापन कर दिये, तदनन्तर उस मृत मछली को राजा को दिखा दिया।

सज्जीवनी, विशल्यकर्णी तथा सन्धानकर्णी का स्पष्ट उल्लेख श्री वाल्मीकजी ने स्वरचित रामायण में किया है। राम और रावण के युद्ध के अवसर पर इनका उपयोग शल्यचिकित्सा में होता था और यह भी स्पष्ट किया है कि उक्त वनस्पतियाँ 'ऋषभ' नाम की पर्वत-मालाओं में होती हैं। आयुर्वेद के अवन्तिकाल से बहु-संख्य द्रव्यों का सम्यक् ज्ञान, उनका वानस्पतिक विवरण न होने से गतःप्राय हो गया और अब भी जैसा चाहिए, यथोचित अन्वेषण नहीं हो रहा है। भारत स्वतंत्र होने पर भी जो शेष प्राचीन इने-गिने आचार्य हैं उनकी सहायता नहीं ली जा रही है।

रासायनिक संकेत CHCl₃

नाम—(ले०) क्लोरोफॉर्म (Chloroformum); (अं०) क्लोरोफॉर्म (Chloroform-chlorof.); (रासायनिक) ट्राइक्लोरोमिथेन (Trichloromethane), मेथेनिल ट्राइक्लोराइड (Methanyl Trichloride)।

निर्माण-विधि—ट्राइक्लोरोमिथेन क्षार की उपस्थिति में एथिल अल्कोहल या एसिटोन पर क्लोरीन की क्रिया से प्राप्त किया जाता है। इसमें १ से २ प्रतिशत एथिल अल्कोहल मिला दिया जाता है।

अधिकृत (ऑफिशियल) योग—

एक्वा क्लोरोफॉर्मि—(Aqua chloroformi) अर्थात् क्लोरोफॉर्म वाटर या जल; **स्परिटस क्लोरोफॉर्मि** (Spiritus chloroformi) या स्परिट ऑव क्लोरोफॉर्म (Spirit of chloroform) और **इमल्सियो क्लोरोफॉर्मि** (Emulsio Chloroformi) या क्लोरोफॉर्म इमल्सन (दुधिया घोल) (Chloroform Emulsion)।

नान्-ऑफिशियल (अनधिकृत) योग

१—**टिक्चुरा क्लोरोफॉर्मि एट मॉर्फिनी को०** (कम्पो-जिटस) (Tinctura chloroformi et Morphinae Co.) या कम्पाउंड टिक्चर ऑफ क्लोरोफॉर्म एंड मॉर्फिन (Compound Tincture of Chloroform and Morphine) जो क्लोरोडाइन (Chlorodyne) की स्थानापन्न औषधि है। २—**क्लोरोफॉर्मम् कम्फोरेटम्** (Chloroformum Camphoratum B. P. C.); ३—**टिक्चुरा क्लोरोफॉर्मि को०** (Tinctura Chloroformi Co. B. P. C.) और ४—**लिनिमेंटम् क्लोरोफॉर्मि** (Linimentum Chloroformi, B. P. C.)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—शुद्ध क्लोरोफॉर्म को मुख में रखने से क्षोभ एवं दाह होता है। किन्तु यदि इसको खूब पानी में मिलाकर सेवन किया जाय तो उष्ण मधुर स्वाद की अनुभूति होती है तथा इससे मुखलालाका उद्रेक अधिक हो जाता है। खिलाने से यह उत्तम शामक है। श्वास, आक्षेपयुक्त खाँसी, कर्कटावृंद (कैंसर) तथा उन रोगों

में जिनमें अत्यधिक वेदना होती हो, उसे शमन करने के गुण के लिये ही इसका उपयोग करते हैं। यह तीव्र वमन, शूल (कुंज), अपतन्त्रक, अपतानक और विसूचिका में लाभकारी है। आमाशयपर इसका प्रभाव शुद्ध मद्य और ईश्वर के समान होता है। अस्तु, थोड़ी मात्रा में आमाशयिकद्वार पर उष्णताका अनुभव होता है; आमाशय की धमनियाँ विस्फारित हो जाती हैं; आमाशयिक रस की राशि बढ़ जाती है तथा आमाशय एवं अन्न की परिसरण गति तीव्र हो जाती है। अस्तु, यह दीपन और वातानुलोमन है। अन्न के ऊपर इसकी किंचित् शामक एवं संग्राही क्रिया भी होती है। परन्तु अधिक प्रमाण में देने से आमाशय एवं अन्न में क्षोभ उत्पन्न करता है जिससे वमन एवं विरेक् होने लगते हैं तथा पश्चात् को मूर्च्छा हो जाती है एवं प्रतिसंक्रमित गतियाँ नष्ट हो जाती हैं। स्वासपथ या आमाशय से अथवा छिले हुए धरातल या अधस्त्वगीय सूचिकाभरण से क्लोरोफॉर्म रक्त में अतिशीघ्र अभिशोषित हो जाता है तथा रक्त में पहुँचकर उसमें क्या परिवर्तन होते हैं यह अभी तक भली-भाँति ज्ञात नहीं हो सका है। संभवतः उसका कुछ भाग रक्त में पहुँचकर अपना संघटन परिवर्तित कर देता है। इसे अल्पप्रमाण में मुख द्वारा देने से यह हृदय के आकुंचन को अवश्यमेव बना देता है। किन्तु इसका वह प्रभाव यद्यपि विशुद्ध मद्य की अपेक्षया तीव्र होता है, तथापि यह शीघ्र जाता रहता है। इसके चिरकालिक उपयोग से हृदय दुर्बल हो जाता है। परन्तु नाडी की गति में कोई अन्तर नहीं होता सिवाय अंतिम कक्षा के जब कि हृदय विस्फारित हो जाता है तथा उसकी गति अनियन्त्रित हो जाती है। विषैली मात्रा में इसका सेवन करने से हृदय इतना दुर्बल हो जाता है तथा इतना फैल जाता है कि पुनः उसके ऊपर किसी प्रकार के उत्प्रेरण का सर्वथा कुछ प्रभाव नहीं पड़ता और पूर्ण निःसंज्ञता के उपरांत वाहिन्युत्तेजक केन्द्र के वातग्रस्त हो जाने के कारण धमनियाँ एवं रक्तकेशिकाएँ विस्फारित हो जाती हैं। थोड़ी सी रूई क्लोरोफॉर्म में भिगोकर सड़े-गले दाँत के छिद्र में रखने से दाँत का दर्द जाता रहता है। बहुसंख्यक कुस्वादु औषधियों के स्वाद-सुधार के लिये क्लोरोफॉर्म देने से उत्कलेश, वमन, सामुद्रिक उत्कलेश और उदराध्मान में लाभ होता है। अतिसार या विसूचिका के आरंभ में अफीम या अन्य संग्राही द्रव्यों के साथ स्पिरिट ऑव क्लोरोफॉर्म मिलाकर देना उपकारक होता है। क्लोरोफॉर्म का टिक्चर मॉर्फिया के साथ उदरशूल एवं अतिसार में उत्तम संग्राही एवं शामक क्रिया करता है या इसे अल्पमात्रा में देने से वातनादियों (पुट्टों) को लाभ होता है। अफीम या अफीम के

सत्व के साथ क्लोरोफॉर्म मिलाकर देने से कई प्रकार की खाँसी एवं तीव्र खाँसी मिट जाती है। प्रसूति काल में वेदनाशमन के लिये या गर्भाशयमुख को ढीला करने के लिये मध्यम मात्रा में क्लोरोफॉर्म सुँधाना लाभकारी होता है। किन्तु इसको प्रसवपीडा के मध्य (दरविजा के दरम्यान) में केवल उसी समय सुँधाना चाहिये जबकि गर्भाशय मुख पूर्णतया खुल चुका हो।

बाहर लगाने से यह दर्द बंद करता है। अस्तु विभिन्न प्रकार के अभ्यंगीय तेलों एवं मलहरों के साथ मिलाकर वातिक वेदनाओं, पेशियों की वायुजन्य वेदना तथा त्वचा के उन रोगों में जिनमें खुजली एवं दर्द हों, इसे लगाते हैं। अधुना सामान्यकायिक संज्ञाहरण के लिये इसका आघ्राणन के रूप में बहुत उपयोग होता है। जब इसे थोड़ा सुँघाया जाय तब किंचित् मादकता (नशा) होती है, सुखर मालूम होता है, इच्छा (इच्छित्यार) और संवेदन में अन्तर पड़ता है। किन्तु मनुष्य अचेत नहीं होता। वातव्याधियों और आक्षेपिक रोगों में इसका इतना आघ्राणन (सुँधाना) लाभ करता है। पर यदि इससे अधिक सुँघाया जाय तो स्वप्न की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। चेतना सर्वथा लुप्त हो जाती है। किन्तु अचेतनावस्था के होने पर भी मानसिक विचारों को बड़ी प्रेरणा मिलती है। रोगी जोर करता और अँट-सँट बकता है। कोई-कोई रोगी अपनी प्रकृति के अनुसार हँसने लगते हैं; कोई रोते-चिल्लाते हैं, कोई गाते और कोई हाथ पैर मारते हैं। परन्तु चेतनावस्था में आने पर उनको अपने इन कृत्यों का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता। इसे अधिक देर तक सुँधाने से समस्त पेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। अचेतना के अतिरिक्त मानसिक विचारों की कल्पना सर्वथा नष्ट हो जाती है। साँस में किंचित् खरटे की आवाज आती है। नेत्र ऊपर को चढ़ जाते हैं। उक्त अवस्था में शल्यकर्म किया जाता है तथा विशिष्ट संधियाँ यथास्थान स्थापित की जाती हैं और वृषणकोष में उतरकर फँसा हुआ अन्न ऊपर चढ़ाया जाता है। यदि इसे उक्त अवस्था के उपरांत भी सुँघाया जाय तो साँस में अत्यंत खरटा (घुर्घुराहट) हो जाता है। इसके उपरांत भी जारी रखने से हृदय की गति बंद हो जाती है, रक्त शुद्ध नहीं होता, मस्तिष्क एवं सुषुम्नागत स्रोत परिपूर्ण हो जाते हैं तथा मनुष्य यमलोक सिधारता है। अपतानक, वातसंस्थान के तीव्र उत्तेजित हो जाने तथा इस हेतु कण्ठ में क्षोभ होकर निगलने-वाली पेशियों में उद्वेष्टन होने, शूल और वृक्क से अश्मरि के अवतरित होने में भी क्लोरोफॉर्म सुँघाते हैं। अर्ध से एक पलुइड ड्राम तक क्लोरोफॉर्म सुँघाया जाता है तथा अचेतनावस्था स्थिर बनाये रखने के लिये कुछ मिनट पश्चात् थोड़ा-थोड़ा लेते जायें। यदि बहुत सुँघा दिया

जाय तो प्रभाव कम करने के लिये अमोनिया सुंघाते हैं। चेहरे पर बहुत ठंडा पानी के छींटे देते हैं और साँस लिवाते हैं। पिचकारी से त्वचा के नीचे एट्रोपीन पहुँचाते हैं जिसका ऊपर विशद विवरण किया गया है। क्लोरोफॉर्म के आघ्राणन (सुंघाने) में कई प्रकार की सावधानी बरती जाती है—प्रथम वह शुद्ध हो, उसमें नमक का तेजाब या तेल की वस्तु या क्लोरीन न हो; द्वितीय जिन लोगों को हृदय या मस्तिष्क का रोग हो उनको कभी न सुंघाये।

हैदराबाद में जो क्लोरोफॉर्म परिषद् हुई थी, उसने यह निर्णय किया है कि क्लोरोफॉर्म का साँस पर प्रभाव होकर रोकने से मनुष्य मर जाता है। पिचकारी के द्वारा एक मात्रा मौँफिया लगाने या क्लोरोफॉर्म सुंघाने से पूर्व थोड़ी मात्रा में अल्लूकोहल देने से बिना भय के क्लोरोफॉर्म सुंघा सकते हैं।

किन्तु हैदराबाद कमिशन के उक्त निर्णय की स्वस्थता—सत्यता पर कि क्लोरोफॉर्म का साँस पर प्रभाव होकर रोकने से मनुष्य मर जाता है, कतिपय अन्य अन्वेषकों ने आपत्ति की है। अस्तु, डॉक्टर हंटर महोदय जो द्रव्यगुण के अन्यतम विद्वान् लेखक हैं, लिखते हैं, कि मृत्यु रक्तचाप के बन्द हो जाने से उपस्थित होती है। क्योंकि रक्तचाप के अभाव से विस्फारित रक्तकेशिकाओं में अधिक राशि में रक्त संचित हो जाता है तथा हृदय गति करने से रुक जाता है; क्योंकि उसमें रक्त का अभाव होता है जिसके सिकुड़कर ढकेले बिना हृदय का गति करना असंभव है। अस्तु, मृत्यु इससे (१) साँस रुक जाने से होती है जिसका हेतु श्वासकेन्द्र का वातग्रस्त हो जाना या अन्य यान्त्रिक कारण होता है। (२) अभिघात के कारण सीधे हृदय का क्रियाशून्य हो जाना होता है। सुतरां इस प्रकार का आघात क्लोरोफॉर्म प्रयोग की प्रत्येक अवस्था में न्यूनाधिक हो सकता है। (३) किसी अवस्था में हृदय एवं श्वास दोनों का सहसा बन्द हो जाना मृत्यु का कारण हुआ करता है।

फिरंगीय चिकित्सकों ने इस विषय का अन्वेषण किया है कि क्लोरोफॉर्म देने के समय कोकेन की पिचकारी उस स्थान के आस-पास जहाँ शल्यकर्म करना हो, लगाने से निम्न लाभ होते हैं: (१) क्लोरोफॉर्म और कोकेन परस्पर विरुद्ध हैं। इसलिये प्रमाण से अधिक हो जाने का भय नहीं रहता। (२) कोकेन की पिचकारी के पश्चात् और अधिक क्लोरोफॉर्म सुंघाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। साधारण शल्यकर्म में एक बार क्लोरोफॉर्म से अचेत करके कोकेन की एक बार पिचकारी लगाना पर्याप्त है। पर यदि देर तक शल्यक्रिया करनी हो तो किसी भाँति अधिक क्लोरोफॉर्म की अपेक्षा होती है। एक जाँघ पृथक्

करने के प्रारंभ में दो ड्राम क्लोरोफॉर्म सुंघाया गया था और एक ग्रेन कोकेन की पिचकारी लगाई गई थी। अंत में दो ड्राम क्लोरोफॉर्म और सुंघाने की आवश्यकता पड़ी थी। (३) क्लोरोफॉर्म के बाद प्रायः रोगियों को वमन से बहुत कष्ट भोगना पड़ता है। इस विधि से वमन एकदम नहीं होता तथा चेतना भी अतिशीघ्र हो जाती है।

यदि अचेतावस्था में रोगी वमन करने लगे तो उसके सिर को तुरत एक ओर झुका देवे तथा उसके निम्न हनुको थोड़ा नीचे को खींचे और यदि आवश्यक हो तो जिह्वा को आगे खींचे जिसमें वमनद्रव्य स्वरयन्त्र (हजरे) में प्रविष्ट होकर और श्वास को अवरुद्ध करके मृत्यु का कारण न बने। यदि दुर्भाग्यवश कभी ऐसा हो भी जाय तो अवि-लम्ब स्वरयन्त्र (नखरे) में छिद्र कर देवे। जब मुख पर शल्यक्रिया (ऑपरेशन) करनी हो तो इस बात की बड़ी सावधानी रखनी चाहिये कि धीरबह कर स्वरयन्त्र (हजरे) में न चला जाय वरन् श्वास रुककर रोगी के मर जाने का भय होता है। जब अचेत रोगी का चेहरा पीला पड़ जाता है तब उसका सिर किंचित नीचे लटका देने से तथा नाइट्रेट ऑफ एमाइल सुंघाने से वह असली हालत पर आ जाता है। यदि अचेतावस्था में चेहरे का रंग नीला पड़ जाय और साँस खरटि से आने लगे तो दोनों कंधों को ऊपर उठाने, मुख खोलने और जिह्वा को बाहर खींचने से उक्त अवस्था दूर हो जाती है। पर यदि श्वास बन्द होने लगे या बन्द हो जाय या चेहरे का रंग पीला पड़कर नाड़ी दुर्बल और उसकी गति अनियमित हो जाय तो क्लोरोफॉर्म सुंघाना तुरत बन्द कर देना चाहिये; जिह्वा को चिमटी से पकड़कर बाहर खींचे, उर एवं उदरपर शीतल जल के छींटे देवे या जल में भीगा हुआ तौलिया मारे और असफलता की दशा में कृत्रिम श्वासोच्छ्वास जारी करे और न्यूनातिन्यून उसे एक घंटे तक जारी रखे। चाहे प्रगटतः रोगी के बचने का कोई लक्षण विद्यमान न हो और यदि जीवनपुनरागमन का कोई भी लक्षण विद्यमान हो, उदाहरणतः हृदय की गति कुछ भी शेष हो तो ऐसी दशा में कृत्रिम श्वासोच्छ्वास निरंतर कई घंटे तक जारी रखना चाहिये। हृदयदीर्बल्यनिवारण के लिये एमाइलनाइट्रेट और कुपीलुसत्व या ईथर और ब्रांडी की अधस्तवगीय पिचकारी बहुत लाभकारी होती है। प्रत्येक दशा में जब नेत्र गतिहीन हो जाय या साँस खरटि से आने लगे तब क्लोरोफॉर्म सुंघाना बंद कर देना चाहिये। ऐसी दशा में जब कि श्वास खरटि से आने लगे, किन्तु नेत्र की संवेदनशक्ति अभी शेष हो तब भी क्लोरोफॉर्म सुंघाना बंद कर देना चाहिये। क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है कि जब साँस खरटि से आने लगती है तब आँख का संवेदन नष्ट होता है। क्लोरो-

क्लोरोफॉर्म एकोनाइटाइड

फॉर्म सुंधाने के उपरांत दो घंटे तक किसी प्रकार का आहार नहीं देना चाहिये और आगामी बारह घंटों में बर्फ से ठंडा किया हुआ मांसरस (शूरवा) या सोडावाटर मिला हुआ दूध थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें। यदि वमन हों तो बर्फ का टुकड़ा चुसाये। मात्रा १ से ५ बूँद तक। विशेष विवरण के लिये पाश्चात्य द्रव्य-गुण-विज्ञान भाग १ पृ० ४१६ से पृ० ४३७ तक देखें।

प्रतिनिधि—ईथर तथा सामान्य शस्त्रकर्म में लॉफिंग गैस का उपयोग किया जाता है।

क्लोरोफॉर्म एकोनाइटाइड—संज्ञा पुं० [ले० Chloroform-Aconitii] यह क्लोरोफॉर्म (समोहिनी) और एकोनाइट (बच्छनाग) का यौगिक है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—हृत्पिण्ड वा फुफ्फुस रोग में जब रोगी को श्वास-कष्ट, शोथ-शीघ्र श्वासोच्छ्वास, अनिद्रा तथा श्वासावरोध हो तो देने से उपकार होता है।

क्लोरोफॉर्म-एनस्थेटिक—संज्ञा पुं० [अं० Chloroform-Anaesthetic] एनस्थेटिक क्लोरोफॉर्म।

क्लोरोफॉर्म-एमोनिएटा—संज्ञा पुं० [ले० Chloroform-Amoniat] एमोनिएटेड क्लोरोफॉर्म।

क्लोरोफॉर्म-कैम्फोरेटम्—संज्ञा पुं० [ले० Chloroform-camphoratum] यह क्लोरोफॉर्म और कर्पूर का एक यौगिक है। कैम्फोरेटेड क्लोरोफॉर्म।

क्लोरोफॉर्म-टिचर—संज्ञा पुं० [अं० Chloroform-Tincture] टिचर क्लोरोफॉर्म।

क्लोरोफॉर्म-बेल्लाडोनी—संज्ञा पुं० [ले० Chloroform-Belladonea] यह बेल्लाडोना और क्लोरोफॉर्म का यौगिक है। **गुण-कर्म तथा उपयोग**—इसके उपयोग से अनिद्रा, वेदना, तालुमूलगत प्रदाह, (टॉन्सिलाइटिस), कैषिक-कलाप्रदाह (सेल्युलाइटिस), ग्रन्थिशोथ, स्पर्शसहिष्णुता-जन्य प्रदाह, अरति (वेचैनी) इत्यादि में देने से लाभ होता है।

क्लोरोफॉर्म वाटर—संज्ञा पुं० [अं० Chloroform-water] क्लोरोफॉर्म जल। जलमिश्रित क्लोरोफॉर्म। **उपयोग**—कटु द्रव्यों द्वारा निर्मित योगों की तिक्तता निवृत्त्यर्थ इसका उपयोग होता है। (ले०) 'एक्वा क्लोरोफॉर्मम्'।

क्लोरोफॉर्मिक डिजिटेलीन—संज्ञा पुं० [अं० Chloroformic-Digitaline] यह क्लोरोफॉर्म और डिजिटेलिस का एक यौगिक है।

क्रिया—इसकी प्रधान क्रिया हृत्पिण्ड, वस्ति, वृक्क (गुर्दा), जननेन्द्रिय तथा मस्तिष्क पर होती है।

उपयोग—हृदयदौर्बल्य, अनियमित नाडी तथा श्वास-कष्ट, फुफ्फुस रोगादि में होता है।

क्लोरोफोल—[अं० Chlorophyll] उद्भिदों के पत्तों के

हरित वर्ण का कारण उनमें विद्यमान एक रज्जक द्रव्य। प्राचीनों ने इसे 'अविदेवता' कहा है। देखिये—

अविर्वेनाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता, तस्या रूपेणे मे वृक्षा हरिता हगितस्रजः ॥ (अथर्व० का० १०, सू० ८, मं० ३१)।

क्लोरोफेनोल—संज्ञा पुं० [अं० Chlorophenol] एक औषध जिसके सूचिकाकार रवे होते हैं। दे० 'फेनोल'।

क्लोरोब्रोम—संज्ञा पुं० [ले० Chlorobrom] यह क्लोरोफॉर्म और ब्रोमाइड का एक यौगिक है। यह अनिद्रानाशक है। दे० 'क्लोरोल फॉर्मोमाइड'।

क्लोरोमिअम् [ले० Chloromium]

क्लोरोमाइसेटिन—संज्ञा पुं० [ले० Chloromycetin] एण्टिबायोटिक समुदाय की एक प्रसिद्ध औषधि है। इसके सफेद या खाकस्तरी सफेद या पीलापन लिये सफेद रंग के क्रिस्टल्स या सुइयाँ (Needles) या लम्बे-लम्बे पत्राकार टुकड़े होते हैं। स्वाद में यह तिक्त होता है। यह नैसर्गिक रूप से स्ट्रेप्टोमाइसीज वेनेजुली का संवर्धन करके अथवा रासायनिक संश्लेषण पद्धति द्वारा कृत्रिम रूप से प्राप्त किया जाता है। **क्लोरेम्फेनिकॉल** (Chloramphenicol)। (पा० द्र० गु० वि० भ० २, पृ० ७३१—७३४)।

क्लोव—संज्ञा पुं० [अं० Clove] लौंग। लवङ्ग। दे० 'लौंग'।

क्लोव ऑयल—संज्ञा पुं० [अं० Clove oil] लवंगतैल। दे० 'लौंग'।

क्वङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ककुनी। काँक। कङ्गुधान्य। (हे० च०)

क्वणन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटी हाँडी। जलधारपात्र विशेष। (त्रिका०)।

क्वणितेक्षण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिट्ट। गृध्र। (वै० निघ०)।

क्वथन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काथकरण। पकाना। जुसाँदा बनाना। काढ़ा बनाना।

क्वथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काढ़ा। काथ। जोसाँदा। डिकॉक्शन।

क्वथित—वि० [सं० त्रि०] (१) पकाया हुआ। जोसाँदा किया हुआ। (२) सूत। पाचनादि। (प० प्र०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) माधवी मद्य। मधुनिर्मित मद्य। शहद की शराब। (२) काढ़ा। काथ। कषाय।

क्वथित जल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्णोदक। पकाया हुआ जल। भेद—(१) पादावशेष (१/४), (२) अर्धावशेष (१/२), (३) त्रिपादावशेष (३/४ भाग)। **गुण**—पादावशेष जल—कफनाशक, लघुपाकी, अग्निवर्धक, पित्तघ्न; अर्धावशेष जल—त्रिभागावशेष जल—वातघ्न है। **उपयोग काल**—

वसन्त ऋतु में पादावशेष—शरद ऋतु में और ग्रीष्म

ऋतु में अर्वावशेष और त्रिपादावशेष जल हेमन्त और शिशिर ऋतु में करना उचित है। इसके अतिरिक्त अष्टभागावशिष्ट जल का उपयोग वर्षाऋतु में प्रशस्त होता है।

क्वथित द्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अरिष्ट । (वै० निघ०) ।

क्वथिता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कढ़ी । (भा०) ।

क्वर्कस इन्फेक्टोरिया—संज्ञा पुं० [ले० Quercus infecto-ria] मातृवृक्ष ।

क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दुःख । (२) व्यसन । (३) किसी द्रव्य को जल के साथ अग्नि पर उबालकर जो कल्प प्रस्तुत किया जाता है उसे चिकित्सक 'शृत' या 'काथ' कहते हैं। (चरक सू० ४ अ० श्लो० १-१२) । किसी भी वानस्पतिक या प्राणिज द्रव्य को छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर उन्हें लोहे या मिट्टी के पात्र में चारगुना पानी के साथ मृदु अग्नि पर रखकर उबाला जाय और चतुर्याश जल शेष रहने पर उसे छान लिया जाय तो इस कल्पना को 'काथ-कल्पना' कहते हैं। (सु० चि० अ० ११; अ० सं० क० अ० ८) । "क्वथितं काथः" काथ शब्द की निष्पत्ति "क्वथ निष्पाके" धातु से "अण" प्रत्यय लगकर होती है। किसी द्रव्य का निःशेष पाक हो जाना ही काथ कहलाता है। यूनानी और पाश्चात्य वैद्यक में इस प्रकार की कल्पना को क्रमशः 'जोशाँदा' या 'मत्वूख' और 'डिक्कॉक्शन' कहते हैं।

पर्याय—(सं०) काथ, शृत, नियूह, निष्पक्व (अम०), कषाय (वै०); (हिं०, पं०) काढ़ा; (अ०) तबीख, मत्वूख (बहु व० मत्वूखात), मुगला; (फा०) जोशाँदा (बहु व० जोशाँदहा); (ले०) डिक्कॉटम (Decoctum); (अं०) डिक्कॉक्शन (Decoction), टिजन (Ptisan) ।

वक्तव्य—काथ प्रस्तुत होने के उपरान्त कभी उसमें ऊपर से भिसे हुए या बिना पिसे हुए शुष्क औषधद्रव्य का प्रक्षेप देते हैं। इनको यूनानी वैद्यक में सरदारू (सरदारूज) कहते हैं। सरदारूज फारसी सरदारू (सर=सिर वा शीर्ष, दारू=औषध अर्थात् औषध का सिर या औषध का ऊपरी भाग) का अरबीकृत है। आयुर्वेद की परिभाषा में इसे 'प्रक्षेप' द्रव्य कहते हैं।

भेद (१) पाचन, (२) शोधन, (३) क्लेदन, (४) संशमन, (५) दीपन, (६) तर्पण और (७) शोषण। उपर्युक्त काथों में पाचन काथ अर्वावशेष, शोधन द्वादशांश, क्लेदन चतुरंशक, संशमन अष्टांशक, दीपन षडंशक, तर्पण पञ्चमांशक तथा शोषण काथ षोडशांशक रखकर उपयोग में लाया जाता है। (रा० नि० व० २०) ।

गुण—पाचनकाथ से दोषों का पाचन होता है, शोधन-काथ से मल की शुद्धि होती है, संशमनकाथ से रोग

प्रशान्त होते हैं, क्लेदनकाथ से क्लेदनक वस्तुओं का क्लेदन होता है, दीपनकाथ से जठराग्नि संदीप्त होती है, तर्पणकाथ से शरीरगत सप्तधातुओं की तृप्ति होती है तथा शोषणकाथ से शरीर शुष्क होता है। अतः काथों का उपयोग नियमानुसार बनाकर देना उचित है।

मतान्तर से पाचनकाथ अर्वावशेष, शोधनकाथ अर्धावशेष, क्लेदनकाथ चतुरंशक, शमनकाथ अष्टावशेष, दीपनकाथ दशांश, तर्पणकाथ षडंशक तथा विशोधन काथ षोडशांशक होना चाहिए। इस प्रकार काथ के भेदों की कल्पना करना उचित है और रोग को निरामावस्था प्राप्त होने पर ही काथ का उपयोग शास्त्रविहित है—

पाचयेदातुरं सायं पाचनं सप्तमेऽहनि ।

शमनेनाथवा दृष्य यथादोष बलाबलम् ।

तत्सन्नवज्ज्वरे पीतः दोषकृन्नाच्च दोषहृत् ।

काथपाने क्लमो मूर्च्छा वै हूल्यं वा शिरो व्यथा ॥

यदा सञ्जायते चाशु वामयेद् रोगिणं तथा ।

मात्रा—सुश्रुत के अनुसार १ मुष्ट प्रमाण ।

साधारण मात्रा—विधिपूर्वक कुट्टित द्रव्यों में १६ गुना जल डालकर पवित्र मृत्तिका के पात्र में पकाकर जब ८वाँ भाग जल शेष रह जाय, तब उसको मल-छानकर उपयोग में लानेवाली क्रिया को काथ कहते हैं। अथवा १ से ४ तोला पर्यन्त कुट्टित औषधद्रव्य में १६ गुना जल और इससे अधिक १६ तोला तक औषधि में ८ गुना और इससे भी अधिक ६४ तोला तक कुट्टित औषधि द्रव्य में ४ गुना जल डालकर मन्दाग्नि से पकाकर और अष्टमांश शेष रख मल-छानकर किञ्चित् उष्णावस्था में पान करने का नियम है।

'पातीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्य पले क्षिपेत् । मृत्पात्रे काथ येदार्धमष्टमांशावशेषितम्' । (शाङ्ग०) ।

वृद्ध वैद्यों के मत से आहारकृत रससुपक्वावस्था में हो जावे, तब २ पल (८ तोला) प्रमाण काथ पीना उचित है।

जब व्याधि, अग्नि और पुष्प का बल मध्यम हो तो काथ की मात्रा अञ्जली (४ पल=१६ तोला) । (सु० सू० ४० अ०) ।

मतान्तर से क्वाथपान की मात्रा—काथ, स्नेह (घृत-तैल) की उत्तम मात्रा १ पल की, ३ तोला मध्यम तथा २ तो० की अधम मात्रा है। अन्य ग्रन्थों के अनुसार काथ-करणार्थ १ तोला कुट्टित औषधद्रव्य में १६ गुना जल डालकर पकाएँ और जब ३ भाग शेष रह जावे, तब पान करने की आज्ञा है। यदि रोगी की अग्नि प्रदीप्त हो और वह वृहत् काय हो तो उसको १६ तो० काथ पान करना उचित है। अन्य पुरातन वैद्यों का मत है कि उक्त १६ तो० काथ में से अर्धभाग त्यक्त कर प्रदीप्त अग्निवाले

व्यक्ति तथा वृहत्काय रोगी को २ पल (८ तो०) क्वाथ पान करना उचित है। किन्तु वृद्ध वैद्य कहते हैं कि जो व्यक्ति त्याग करना न चाहें, उन्हें परम्परा की पद्धति का ही अनुसरण करना उचित है। तात्पर्य यह है कि ८ वाँ भाग शेष रख कर प्रदीप्त अग्नि और वृहत्काय के रोगियों को पान करना उचित है।

चतुर्थ भाग अत्रशिष्ट काथ अष्टभाग अत्रशिष्ट काथ की अपेक्षया दीर्घपाकी होता है। अतः प्रदीप्त अग्नि एवं वृहत्काय के रोगियों को उतना ही काथ पान करना उचित है; किन्तु मध्यमअग्नि तथा मध्यमकाय के रोगियों को १ पल (४ तो०) की ही उत्तम मात्रा है। इस नियम के अनुसार ४ तोला काथ पीना योग्य है।

क्वाथ में प्रक्षेप देने का प्रमाण—यदि क्वाथ में मिश्री डालना हो तो वातरोग में $\frac{1}{4}$ भाग, पित्त रोग में $\frac{1}{4}$ भाग और कफ जनित रोग में $\frac{1}{4}$ भाग डालना उचित है। इसी प्रकार मधु वायु में $\frac{1}{4}$ पित्त में $\frac{1}{4}$ और कफ में $\frac{1}{4}$ भाग डालें। यदि जीरा, हींग, क्षार, लवण, शिलाजीत अथवा शुष्ठीचूर्ण, कालीमिर्च का चूर्ण, गुग्गुल, पीपरादि का चूर्ण मिश्रित करना हो, तो ४-४ माशा से अधिक नहीं डालना चाहिए। यदि कोई अन्य द्रवपदार्थ—घृत तैल, दुग्ध, गोमूत्र, कल्क वा चूर्ण इत्यादि डालना हो तो केवल कर्ष प्रमाण (१० माशा) से अधिक न डालें। इस प्रकार प्रथम मुखनेत्रादि जल द्वारा प्रक्षालनकर शांतिपूर्वक—रजत, स्वर्ण वा मृत्तिका के पात्र में काथ डालकर पीना उचित है और पानोपरान्त मुखविशोधनार्थ—पान, लवंग, इलायची खाना चाहिए। (शाङ्ग० मध्य खं० २ अ०)। एक बार का पकाया हुआ काथ शीतल हो जाने के पश्चात् जो पुनः पकाया जाता है वह विष के समान हो जाता है—

प्रकाथ्य शीतोनिर्ग्रहः पुनस्तप्तोभवेद्यपि।

पानीयं वा पुनस्तप्त विषवदन्ति मानवम्॥

प्रमाण की अज्ञातावस्था में नियम—यदि जल, स्नेह (घृत-तैलादि) इत्यादि द्रव्यों का निर्धारित प्रमाण न हो तो ऐसी अवस्था में—औषध से स्नेह तथा स्नेह से पानी चौगुना डालना उचित है, अन्य द्रव्य स्नेह से चौगुना डाले—

“जल स्नेहौषधीनाञ्च प्रमाणं यत्र नोदितम्।

तत्रस्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्॥

स्नेहा चतुर्गुणं द्रव्यमादाय स्नेहः सम्बन्धी॥

चतुर्गुणं जलं दत्त्वा काथः काथ्यसमीयतः॥

स्नेहाच्चतुर्गुणं काथ्यं क्वाथात्तोयं चतुर्गुणम्।

काथः काथ्य सयः काथ्यः कल्कश्चस्नेहपादिकः।

इत्येषा स्नेह पाकार्थम्प्रोक्ता काथस्य कल्पना। (चरक)।

क्वाथ के भेदों के अनुसार सेवन काल—

पूर्वाह्ने शमनोदेयोऽपराह्णे दीपनस्तथा।

तर्पणश्चोत्क्लेदनश्च कल्पे पानाय दापयेत्॥

निशीथे शोषणोदेयः श्लैष्मिके प्रथमेऽह्नि।

दद्यात्सूर्योदयात् पूर्वं शोधनीयं भिषक्तमः॥

वरमाशीविषं नैव कथितं ताम्र भाजने।

पीतमत्यन्तज्ज्वरं सन्तप्ता भक्षिता वा पयोगुडाः॥

(सुश्रुत)।

अर्थात्—दिन के पूर्वकाल में शमनक्वाथ, दिन के पिछले भाग में दीपनक्वाथ, तर्पण, क्लेदनक्वाथ की कल्पना कर दें, रात्रि में शोषणक्वाथ, दिन के प्रथम भाग में कफज रोगों में तथा सूर्योदय के पहले शोधनक्वाथ वैद्य को देना उचित है और काथपान से संतप्त होने पर दुग्ध व गुड़ सेवन कराएँ; किन्तु ताम्रकृत पात्रों में कदापि काथपान न कराएँ। यदि स्वर्ण वा रजतनिर्मित पात्र न प्राप्त हों तो मृत्तिकापात्र में ही पान कराएँ। देखो ज्वर के अन्तर्गत ‘क्वाथ’।

क्वाथ का निषेध—जल वा क्वाथ एक बार का तप्त किया गया पुनः तप्त कर प्रदान कदापि न करें क्योंकि वह विषतुल्य होकर मृत्युकारक होता है—‘पानीयं वा पुनस्तप्तं विषवदन्ति मानवम्’। इसी प्रकार क्वाथ नूतनज्वर में भी वर्जित है, नवज्वर में क्वाथ देने से मृत्यु का भय होता है। जो वैद्य तरुणज्वर में रोगी को पानार्थ क्वाथ का उपयोग करता है वह सोते हुए सर्प को जगाता है। अतः इसका उपयोग कदापि नवज्वर में न करें—‘कषायं यः प्रयुञ्जीत नराणान्तरुणज्वरे। सुसुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृशेत्।’ क्वाथ द्वारा आकुलीभूत दोषों पर चिकित्सक नहीं विजय प्राप्त कर सकता।

मात्रा का निर्देश—यदि वमनार्थ क्वाथ प्रस्तुत करना हो तो ताम्रपात्र ग्रहण करें और यदि दोष पाचनार्थ पात्र की आवश्यकता हो तो मृत्तिकापात्र में काथनिर्माणकर उपयोग करना उचित है। ‘वमनार्थं ताम्रपात्रं प्रसिद्धं’। तिब्ब के अनुसार—

क्वाथसंरक्षण तथा निर्माण-विधि—एक वा अनेक द्रव्यों को कुचलकर स्वच्छ जल वा किसी आवश्यकीय अर्क में न्यूनाधिक पाचन कर छान लें। इसका बाह्य वा आन्तर उभयविध उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त काथद्रव्यों को कभी कुछ घंटा पूर्व वा रात्रिभर भिगोकर पुनः काथ करें।

आवश्यक नियम—काथ वा फाण्ट देर तक रखा रहने से उनमें शनैः शनैः परिवर्तन होते रहते हैं, चाहे वे प्रकट-रूप में प्रकाश में न आएँ। **संरक्षण**—यदि एक दिन का निर्माण किया हुआ काथ वा फाण्ट अधिक कालपर्यन्त सुरक्षित रखना अभीष्ट हो तो इसको भली-भाँति उष्ण-

स्वच्छ, जलरहित शीशी में मुखपर्यन्त भरकर दृढ़तापूर्वक इस प्रकार डाट लगावें कि उसके भीतर वायु शेष न रह जाय और बाहर की वायु का प्रवेश न हो सके। यदि डाट लगाने के उपरान्त बाहर से ग्रीवापर्यन्त रबड़ वा जस्तापत्र की टोपी चढ़ा दें तो अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार का संचित क्वाथ वा फाण्ट २-३ सप्ताह पर्यन्त सुरक्षित रह सकता है।

कभी-कभी अल्पजल में अधिक परिमाण में औषधद्रव्य मिश्रितकर रसक्रिया वा घनरूप अत्यधिक प्रगाढ़ी-भूत क्वाथ या फाण्ट प्रस्तुत कर रखा जा सकता है और आवश्यकतानुसार प्रतिदिन जल वा अर्क में उपयुक्त मात्रा में मिश्रितकर उपयोग किया जा सकता है। इस क्रिया का अवलम्बन उस समय किया जाता है, जब प्रतिदिन प्रस्तुत करने में किसी प्रकार की बाधा होती है। स्मरण रहे कि नूतनप्रस्तुत क्वाथतुल्य गुण इसमें कदापि नहीं रह सकता।

क्वाथ में मिश्री आदि का संमिश्रण—क्वाथ हो जाने पर वस्त्र द्वारा छानकर पुनः इसमें शर्वत, खमीरा वा मिश्री मिश्रितकर उपयोग में लावें। यदि गुलकंद मिश्रित करना हो तो उसको पीस कर मिलावें और पुनः छानकर पानार्थ देवें। यदि क्वाथ में तुल्य कसूस और अपतीमून-तुल्य द्रव्यों का मिश्रण अभीष्ट हो तो उन्हें स्वच्छ-बारीक वस्त्र की पोट्टीमें बाँधकर अन्य द्रव्यों के साथ डालना उचित है। इस विषय में किसी का विचार है कि इसे उस समय डालना चाहिए कि जब अग्नि पर से उतारा जाता है; इसके प्रश्नात् २-३ जोश से अधिक न दें।

यदि क्वाथ में मूल, काण्ट वा स्थूल त्वचावाले बीजादि हों तो उनको अर्धकुट्टितकर डालना उचित है। यदि इनके अतिरिक्त पत्र-पुष्प मृदु एवं सूक्ष्म उपादान हों तो सर्वप्रथम कठोर द्रव्यों को कुट्टितकर पकाएँ और जब वे अर्धपक हो जाँय तब पत्र-पुष्पादि मिश्रितकर पाक करें। यदि क्वाथ विरेचनीय हो और उसमें अमलतास का गूदा हो तो क्वाथ छानने के उपरान्त गूदा घोलकर पुनः छान लेना उचित है। क्वाथ करने से अमलतास वीर्य-विहीन हो जाता है। इसी प्रकार तुरंजबीन और शीरखिस्त भी क्वाथ छानने के पश्चात् मिश्रित करना उचित है।

क्वथन पात्र—वह पात्र जिसमें काढ़ा करना हो कलई किया हुआ ताम्रपात्र होना चाहिए। क्वाथ-काल में पात्र को ढाँक कर क्वाथ करना उत्तम होता है। यदि अम्ल वा कषाय द्रव्यों का क्वाथ बनाना हो तो धातुपात्र न होना चाहिए। इससे उनमें विकृति होकर उसका गुण विनष्ट हो जाता है। पात्र का मुख खुला रखकर क्वाथ करने से द्रव्यों के सूक्ष्म घटक वाष्प रूप से वहिर्गत हो

जाते हैं। क्वाथ को सदैव मंदान्नि द्वारा पाचन करना उचित है; तीव्र आँच लगने से उनके वीर्यवान् अंश वायु में विघटित होकर अत्यल्प शेष रह जाते हैं। क्वाथ प्रस्तुत हो जाने के पश्चात् छानकर उसकी सीठी अतिशीघ्र पृथक् कर देना उचित है। कथन-काल में औषध के सार-भाग जल में मिश्रित हो जाते हैं; किन्तु जब उसकी उष्णता नष्ट हो जाती है तब सीठी अपने कतिपय वीर्यों को पुनः ग्रहण कर लेती है और इस कारण से क्वाथ बलहीन हो जाता है।

उपयोग—क्षीण, दुर्बल, प्रदाहयुक्त व्यक्तियों को क्वाथ से उत्तम लाभ होता है। औषधों का क्वाथ उन औषधीय उपादानों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं शीतल होता है, फाण्ट इससे भी शीतल होता है। चूर्ण, गुटिकादि की अपेक्षा क्वाथ अत्यधिक श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। औषधियों के विकारोत्पाद स्थूल घटक विनष्ट हो कर क्वाथ में केवल उनके गुण और वीर्य शेष रह जाते हैं। अतः क्वाथ सर्वोत्तम रोगनाशक उपादान है।

क्वाथकरीआण्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्वाथ बनाने की भट्टी।

क्वाथोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खपरिया, कर्परी तुल्य। (२) कृत्रिम रसांजन। रसौत। (३) चाकसू। कुलत्थाञ्जन। (अम०)।

क्वामोक्लिट—संज्ञा पुं० [ले० (Quamoclit)] (१) इस्क-पेचा। कामलता। (म०) सीता-च-केस। (२) विष्णु-कान्ता। अपराजिता। (मल०) तसजुरिआ क्रान्ति। (मेमो०)।

क्वामोक्लिट वल्गेरिस—संज्ञा पुं० [ले० Quamoclit vulgaris] इस्कपेचा। कामलता। (म०) सीता-च-केस। (ले०) (Ipomoea quamoclit)। दे० 'इस्कपेचा'।

क्वायरन एङ्ग—[बर०] दक्षिणी बबूल।

क्वार—[?] गंदना।

क्वारचिकना—संज्ञा पुं० [?] (१) पमाइ के बीज। चकवँड के बीज। हम्बुलकुलकुल। (२) कौआ ठोंठी।

क्वासिआ-अमारा—संज्ञा पुं० [ले० Quassia Amara]

क्वासिआ एक्सेल्सा—संज्ञा पुं० [ले० Q. Excelsa]

पर्याय—(हि०) कोशिया; (अं०) क्वासिया।

क्वाशि(सि)या—संज्ञा पुं० [अं० (Quassia)] यह एक्सेल्सा (Excelsa) वृक्ष की लकड़ी (काष्ठ) है। इसके विभिन्न आकार-प्रकार के टुकड़े होते हैं। प्रायः मोटाई में ये जानु के बराबर होते हैं जिसके ऊपर मैली खाकी छाल लगी रहती है। लकड़ी या काष्ठ वजनदार, मजबूत और पिलाई लिये सफेद; स्वाद तिक्त; निर्गंध; इस काष्ठ की छपटियाँ या बुरादा बनाकर रखते हैं। इसकी

उत्पत्ति जमेइकाद्वीप में होती है। क्वाशी वस्तुतः एक हबशी गुलाम का नाम था जिसके कारण सर्वप्रथम उक्त औषधि के बल्य एवं ज्वरघ्न प्रभाव ज्ञात हुए थे। इसलिये उसी के नाम पर इस औषधि का क्वाशिया नाम प्रसिद्ध हो गया। इसका स्वाद अत्यंत तिक्त होता है। इसलिये मिश्रदेशीय चिकित्सकों ने इसका नाम खशबुलमुरं (अ०) अर्थात् कड़वी लकड़ी (तिक्त काष्ठ) रख दिया। नाम—काष्ठ (ले०) काशी लिग्नम् (*Quassae lignum*), काशिई लिग्नम् (*Quassiae lignum*); (अ०) काशिया बुड (*Quassia wood*)। वक्तव्य—बंगाल में इसी कुल के पिक्रोना काशिभायडिस (*Picraena quassioidis Benth.*) की छाल भारंगी के नाम से विकती है और उपर्युक्त विलायती क्वाशिया के स्थान में प्रतिनिधि स्वरूप प्रयुक्त होती है।

इङ्गुआदि कुल (Family: Simarubaceae)।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह उष्ण (उत्तेजक) एवं बल्य है तथा किंचित् कृमिघ्न प्रभाव भी इसमें पाया जाता है। यह पाचनदौर्बल्य एवं पाचनविकार की उत्तम औषधि है। आवेगी ज्वरों को रोकने के लिये तथा गुदस्थ सूत्र-कृमियों को नष्ट करने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। इस हेतु इसकी वस्ति भी देते हैं। अम्लपित्त में क्षार औषधियों के साथ उपयोग करते हैं। पाचक, बलप्रद, क्रिमिघ्न, तिक्त-बलप्रद तथा ज्वरघ्न होते हुए अम्लपित्त नाशक है। इसे काथ वा हिम रूप से उपयोग करने से अम्लपित्त, मूत्रातिसार, अरोचक, अजीर्ण और ज्वर नष्ट होता है। इसके काथ का गुदा में पिचकारी देने से सूत्रकृमियों का नाश होता है। लोह के योगों के लिये यह उत्तम अनुपान है। मात्रा—१ फ्लुइड औंस (२॥ तो०) से २ फ्लुइड औंस (5- तक)।

उत्पत्तिस्थान—जमेकाद्वीप में इसके बहुशाखी वृक्ष होते हैं। इसके काष्ठ को कास, कासी या कायसी कहते हैं। सर्वप्रथम इसका औषधात्मक ज्ञान सुरिनाम के नेग्रो कासी को प्राप्त हुआ था। बलवर्धक वा ज्वरघ्न रूप से इसका व्यवहार किया जाता था।

रासायनिक संगठन—इसमें २ प्रकार के क्षारीय सत्व होते हैं। (१) कासीन (*Quassin*)—इसमें भी २ प्रकार के सत्व—(अ) पिक्रास्मीन (*Picrasmin*) और (ब) तिक्त पिक्रास्मीन होता है। (२) इसमें उत्पत्त वैल भी होता है। अग्नि का ताप प्राप्त होने पर कासीन गोंदतुल्य पिघल जाती है। उभय क्षार तथा अम्लद्रव्यों की घुलनशीलता जल में अधिक हो जाती है।

मात्र—हिम—१ भाग २४० भाग उष्ण जल में निर्माण कर प्रदान करने से ज्वरपश्चात् होनेवाली निर्वलता नष्ट होती है। शीतकषाय—१ भाग, जल १२० भाग।

मात्रा—उभय की ३ से १ औंस। टिचर-क्वाशिया—१ भाग १० भाग सुरासार। मात्रा—३ से १ ड्राम। क्वाशिया योग—(१) काशिया चूर्ण १ भाग, सोंठ २ भाग, सेंबालवण ३ भाग। इस प्रकार ग्रहणकर यथा-विधि काथकर सेवन कराने से—अजीर्ण, अरोचक, अम्ल-पित्त तथा अग्निमान्द्य का नाश होता है।

(२) काशिया चूर्ण १ भाग, जटामांसी २ भाग काथ-कर कर्पूरयुक्त सेवन कराने से अपतन्त्रक का नाश होता है।

निर्माण-विधि—शुद्ध मैन्सिल, सेंधानमक, त्रिकुटा, आमला, बायविडंग, (अडूसा और हींग के चूर्ण और मधु में मिश्रितकर चाटने से कास, श्वास तथा हिक्का का शीघ्र नाश होता है)। (ब० से० सं० कासचि०)।

क्वाशिया—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'क्वाशिया'।

क्वाशिया अमारा—संज्ञा पुं० [अं०]

क्वाशिया एक्सेल्सा—संज्ञा पुं० [अं०]

दे० 'क्वाशिया'।

क्वाशिया (ई) लिग्नम्—संज्ञा पुं० [ले०] दे० 'क्वाशिया'।

क्वाशिया बुड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'क्वाशिया'।

क्वासीन—संज्ञा पुं० [अं० (*Quassine*)] क्वाशियासत्व। दे० 'क्वाशिया'।

क्विक लाइम्—संज्ञा पुं० [अं० (*Quick lime*)] चूना। सुधा।

क्विक सिल्वर—संज्ञा पुं० [अं० (*Quick silver*)] पारा। पारद।

क्विनाइन—संज्ञा पुं० [अं० *Quinine*] कुनैन। कुनीन।

क्विनिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० *Quinic acid*] सिकोना में पाया जानेवाला एक अम्ल जो वेंजोइक एसिड के समान होता है।

क्विनिडीन—संज्ञा [अं० *Quinidine*] एक प्रकार का क्षारोद जो सिकोनाकी छाल में पाया जाता है। दे० 'सिकोना'।

क्विनीन—संज्ञा [अं० *Quinine*] कुनैन। दे० 'सिकोना'।

क्विनोफन—संज्ञा पुं० [अं० *Quinophun*] सिकोफेन।

क्विनोलीन—संज्ञा [ले० (*Quinoline*)] दे० 'क्विनीन'।

क्विल्लाजा बार्क—संज्ञा पुं० [अं० *Quillaja bark*] यह किल्लाजा सेपोनेरिया (*Quillaja saponaria Mol*) नामक एक विदेशी उद्भिज्ज की छाल का भोतरी भाग है। तरुणी कुल (Family: Rosaceae)।

नाम—(हि०) विदेशी साबुनी की छाल; (ले०) किल्लाइ कॉर्टेक्स (*Quilli Cortex*); (अं०) किल्लाया (*Quillaia*) या क्विल्लाया बार्क (*Quillaia bark*), सोप या पनामा बार्क (*Soap or Panama bark*), कुल्ले (*Cullay*)।

वक्तव्य—क्विल्ला चिली भाषा का शब्द है जिसका अर्थ

धोना है। चिलीनिवासी इसकी छाल से साबुन या रीठे की तरह कपड़े धोते हैं, इसलिये इसका उक्त नाम रखा गया।

उत्पत्तिस्थान—दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट पर स्थित चिली और पेरू प्रदेश।

रासायनिक संगठन—इसमें सेपोनीन नामक (Saponin) एक सत्व होता है जिसे पानी में मिलाकर हिलाने से झाग उत्पन्न होता है। यह सेपोनीन नामक सत्व किल्लाटिक एसिड और क्विल्लाया सेपोटाँक्सीन इन दो ग्ल्युकोसाइड्स का यौगिक है। यह सत्व रीठे में भी विद्यमान होता है।

वर्णन—इसकी छाल के बड़े-बड़े टुकड़े होते हैं जो दो फुट लम्बे, १४ इंच चौड़े और लगभग १ इंच मोटे होते हैं। रंगत बाहर से भूरी सफेद या ललाई लिए सफेद और भीतर से उज्ज्वल एवं सफेद होती है। यद्यपि यह निर्गन्ध होती है, तथापि इसका चूर्ण सूँघने से छींक आने लगती है। वि० दे० 'साबुनी'।

गुण-कर्म तथा उपयोग—यह रसायन एवं लेखन (Detergent) है तथा प्रायः कण्ठमाला और त्वग्रोगों में सामान्यतया प्रयुक्त सार्सापिल्ला से यह श्रेष्ठ बतलाया जाता है। इसके सूँघने से अत्यन्त क्षोभक प्रभाव होता है जिससे छींकें आतीं और नाक से पानी जारी हो जाता है तथा कभी-कभी खाँसी आने लगती है। नाक की भीतरी झिल्ली के पुराने शोथ में इसका बाष्प सुँघाना और सुड़कना (इस्तिश्नाक करना) लाभकारी होता है।

जीर्णव्रण पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है तथा इसके स्थानिक प्रयोग से दुर्गन्धित स्वेद आना बंद हो जाता है। अस्तु, डॉक्टर शीमेकर के प्रयोगों से इसके फाण्ट में पट्टी भिगोकर चिरज व्रणों पर या जहाँ से दुर्गन्धित या अति स्वेदस्राव होता हो वहाँ पर लगाने से यह परम गुणकारी सिद्ध हुआ है तथा छीप एवं सिर की भूसी में भी इस उपाय से लाभ हो जाता है। इसके आन्तरिक प्रयोग से बलपूर्वक श्लेष्मा का निर्हरण होता है। जीर्णकास और वाताध्मान (नफ़ुरियः) में जब कि श्लेष्मा उसके भीतर विद्यमान हो और कठिनातापूर्वक निकलती हो तब उसके निर्हरण के लिये इसका उपयोग करना चाहिये। रक्तष्ठीवन या तीव्र शोथ में या जबकि कण्ठ या अन्नप्रणाली में क्षत हो, उस समय क्षोभक होने के कारण इसका उपयोग वर्जित है। इसके प्रभाव से पानी साबुन की तरह चिकना हो जाता है। अतएव प्रायः तेलों या न घुलनेवाले द्रव्यों के शोरा बनाने में इसका उपयोग करते हैं। किंतु सेपोटाँक्सीन जो कि सेपोनीन का एक घटक है, एक भयावह रक्तविष है जिससे रक्तकण टूट जाते हैं। अतएव इसका सामान्यरूप से प्रयोग नहीं कर सकते हैं। इससे आर्तव का प्रवर्तन भी होता है।

क्वीनीडोन—दे० 'क्विनीडोन'।

क्वीनीनी—दे० 'क्विनीनी'।

क्वेलारी—संज्ञा स्त्री० दे० 'कोइलारी'।

ख

ख—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अवरख। अभ्रक। (रा० नि० व० १३)। (२) इन्द्रिय। (मे०)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य। सूरज। (हे०)।

खखट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खड़ियासिट्टी। (अ० टी० रा०)।

खखस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पोस्ता।

खखसरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] } अफीम। अहिफेन।

खखस-सार—संज्ञा पुं० [„ „ „] } दे० 'पोस्ता'।

खखस-क्षीर—संज्ञा पुं० [„ „ „] }

खख्खा—संज्ञा पुं० [देश०, अमु०] बड़ा हाथी।

खखसा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खेखसा'।

खखास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पोस्ता का क्षुप। (उ० मा० चि० मदन रसे)।

खखोलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरज। सूर्य। (वै० निघ०)।

खग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सोनामाखी। स्वर्णमाक्षिक उपधातु। (२) पक्षी। चिड़िया। (मे०)। (३) पारा।

पारद धातु। (वै० निघ०)। (४) पतंग। शलभ पक्षी। (अ० टी० भ०)। (५) सूरज। सूर्य। (६) वाण। धनुष। (७) हवा। वायु। (रा० नि०)। (८) चकवा। चक्रवाक पक्षी।

खगखान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वृक्षों का खोखल। वृक्ष—कोटर जिसमें पक्षी निवास करते हैं। (श०)।

खगट्टा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) खाँग। निकला हुआ पैना दाँत। (२) गैडा। गण्डक जन्तु।

खगम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिड़िया। पक्षी।

खग वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लकुच। लकुचवृक्ष। (श० च०)।

खगवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जमीन। पृथ्वी। (ज०)।

खगशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिठवन। दे० 'पृष्ठपर्णी'। (श० च०)।

खगस्थान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खगखान। वृक्षकोटर जिसमें पक्षी निवास करते हैं।

खगाह—संज्ञा पुं० [?] जंगली सरसों। खदिल बरीं।
(लु० क०)।

खगान्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाज। सेन पक्षी। धुम्याट पक्षी। (बं०) किड़े पाखी। (वै० निघ०)। (रा० नि० व० १९)।

खगाश—संज्ञा पुं० [अ०] निशाचरी। दे० 'चमगादड़'।

खगेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिद्ध। गृध्र। (वै० निघ०)।

खगेश्वरी गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'खेचरी गुटिका'।

खगोड़—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तृण विशेष। खागड़ घास।
खगड़। खाड़। (वं०) केशे। (र० मा०)।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं० खगोलक] आकाशमण्डल।

खगट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'खगोड़'। (वै० निघ०)।

खगड़—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकिलाक्ष क्षुप। दे० 'ताल-मखाना'।

खङ्गाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वेत-पीतवर्ण का घोड़ा।

'खङ्गाहः श्वेतपीतकः'। (ज० द० ३ अ०)।

खचमस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रमा। (त्रिका०)।

खचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पक्षी। (२) वायु।

(३) सूर्य। (वै० निघ०)। (४) मेघ। बादल।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काशीश उपधातु। कौसीस।

(हे०)।

खच्चड़ (२)—संज्ञा पुं० [हि०] चतुष्पदजन्तु विशेष।

पर्याय—(सं०) खेसर, खरखतर, एकशफ, गोकर्ण।

(अ०) अबूअशजः। अस्तर। खच्चर। बगल।

परिचय—गर्दभी और घोटक (घोड़ा) के संयोग द्वारा उत्पन्न चतुष्पदजन्तु (पशु) जो गदहा से बड़ा तथा घोड़ा से किञ्चित् छोटा होता है और अत्यन्त बलवान् होता है।

मांसपर्याय—(सं०) अश्वतरमांस। एकशफमांस।

(अ०) लहमुल्-बगल। (फा०) गोश्तअस्तर। गोश्त खिच्चर।

दुग्ध (एकशफाक्षीर)—गुण—लघुपाकी, उष्ण, शाखा-गत रोगनाशक, किञ्चित् अम्ललवणीय तथा जड़ता-कारक है। (वा० टी० हेमा०)। चरक के अनुसार एकशफाक्षीर बलप्रद है।

एकशफापयः—“उष्णं चैकशफं बल्यं शाखावातहरं पयः। मधुराम्लरसंरुक्षं लवणानुरसं लघुः।” (रा० नि०; ध० निघ०)।

खच्चड़ीघृत (एकशफाघृत)—गुण—अग्निदीपन, निवन्धजनक तथा मलमूत्रावरोधक है—“दीपनं वद्धविण्मूत्रं विद्यादेकशफाघृतम्।” (रा० नि०; ध० निघ० व० १९)।

मृतान्तर से—मूत्र तथा यकृत के रस में वस्त्र भिगाकर गर्भाशय में प्रविष्ट करने से गर्भपात होता है। वसा

(चरबी)—गर्भशातन, कीटघ्न तथा गृध्रसी नामक वात-रोगनाशक है।

तिब्ब के अनुसार मांस—प्रकृति-तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। स्वाद—किञ्चित् लवणीय तथा आमवात-नाशक है।

वैद्यक के अनुसार—इसका मांस बल्य, वाजीकर और कफपित्तकारक है। (ता० श०)। इसका भेजा जैतून के तेल के साथ प्रत्येक सूजनों को उतारता है। “तन्मांसं बल्यं बृहणं कफपित्तकरं च।” (मद० व० १२)।

लीद—इसकी लीद (विष्टा) की धूनी देने से प्रतिश्याय आराम होता है। इसी प्रकार लीद की राख (भस्म) सूँघने से जुकाम आराम होता है। इसकी लीद के रस और प्याज के रस में थोड़ा केशर पीसकर कर्णशूल-युक्त कान में कई बार भरने से कर्णशूल शमन होता है। किन्तु इसको गरम करके काम में लाना चाहिए। इसकी लीद को सुखाकर यदि स्त्री खा ले, तो कदापि गर्भ की धारणा नहीं होती। इसी प्रकार इसका कर्णगूथ खा लेने या उसकी वृत्ति योनि में धारण करने से भी गर्भधारणा नहीं होती। इसी प्रकार इसकी खाल (चर्म) लटकाने (तुलसी) से भी उक्त प्रभाव होता है।

खुर (सूम)—इसका एक विशेष प्रभाव यह है कि काले खच्चर का सुम दरवाजों की चौखट के नीचे गाड़ देने से उस घर के भीतर चूहे नहीं आते। घर के भीतर नर खच्चर के सुम की धूनी देने से चूहे और विषैले कीड़े मकोड़े (हवाम्म) उस घर से भाग जाते हैं। (मुहीत आजम)।

मरुजनमुफरदात में यह विशेष है—इसकी चरबी की धूनी से गर्भस्थ शिशु जरायुसहित गिर पड़ता है और इससे कीड़े-मकोड़े भी भाग जाते हैं।

इसके मूत्र और कलेजे के रस से कपड़ा तर करके योनि में रखने से गर्भधारणा नहीं होती। (पूर्वोक्त वैद्यक के अनुकूल है)।

खजाइन में यह अधिक है—इसकी कान की मैल, इसकी खाल में रख कर अपस्मार (मिरगी) के रोगी की बाँधने से रोग का नाश होता है।

यदि कोई पुरुष स्त्री पर मोहित हो गया हो, तो जहाँ मादा खच्चर (अश्वतरा) लोटी हो वहाँ उसे लोटना और वहाँ की धूल एवं मिट्टी शरीर पर मलना चाहिए। इससे प्रेम भंग हो जाता है। यदि स्त्री पुरुष पर मोहित हुई हो, तो जहाँ नर खच्चर लोटा हो वहाँ उसे लोटना चाहिए और वहाँ की धूल अपने शरीर पर मलना चाहिए। इससे मोह जाता रहता है। (तलखीस नासरी)।

वस्तव्य—उक्त प्रभाव गर्दभ एवं गर्दभी के लोटने-

वाली भूमि की धूलि में होते हैं, ऐसा मैंने स्वयम् प्राचीन भारतीय तन्त्रकारों के मुख से श्रवण किया है। (रामजीत सिंह)।

खज (खज्ज)—संज्ञा पुं० [अ० कज्ज] (१) प्राचीन तिब्बो परिभाषा के अनुसार एक ऐसे वस्त्र का नाम, जो रेशम, ऊन और 'कज' (अल्प मूल्य) के रेशम अर्थात् ऐसा रेशम जिसका कोआ बेकार हो जाता है, के द्वारा निर्माण करते हैं और शुद्ध खज्ज ऐसा वस्त्र है जो बारीक बालों से, जिसे रोआँ (कर्क) कहते हैं, तैयार करते हैं। किन्तु अर्वाचीन परिभाषा में एक ऐसे प्राणी का पोस्तीन है जो समूर से अत्यन्त क्षुद्र होता है। मतान्तर से यह बिल्ली की तरह, पर पुच्छहीन (बाँड़ा) होता है। मतान्तर से उसी प्राणी का पोस्तीन है, जिसके वृषण को जुन्दवेदस्तर (खट्टास) कहते हैं। उसका नाम 'बीवर' है। इसका पोस्तीन (अंगरखा) बहुत मूल्यवान् होता है। यह जानवर गिलहरी की भाँति मुँह से कुतरता है।

वक्तव्य—कज का अर्थ अल्पमूल्य का रेशम होता है। फरहंगरशीदी, सिराजुल्लुगात (कोश) और कश्फुल्लुगात के अनुसार 'कज' वा कज वा गज (मख्जन) फारसी 'कज' से अरबीकृत है। बुरहान के अनुसार 'कज' कच्चे और खराब (निकृष्ट) रेशम का नाम है। नफासुल्लुगात में हिन्दी टसर लिखी है। मुहीत के अनुसार इसको कौशेयवस्त्र समझनेवाले का प्रमाद है। मख्जन में वस्त्र के अर्थ में 'कजा' शब्द व्यवहार किया गया है, न कि कज्ज।

(२) ऊन। ऊर्ण। (३) रेशम। (४) चमड़ा। चर्म।

खज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) दूब। दुर्वाघास।
खजक—,, ,, [,, ,,] }

(बं०) हाता। (अ० टी० भ०)। (२) मथानी का दण्ड। मन्थनदण्ड। छोड़ा की डाँड। (बं०) मडीन। (हे० च०; सि० यो०, यक्ष्म चि०)।

खजखालस—संज्ञा पुं० [फा०] शुद्ध रेशम। असली रेशम। दे० 'खज'।

खजज—संज्ञा पुं० [अ०] गलाबूँद। गलशोध। वरम गलू। गले की रसीली।

खजन—संज्ञा पुं० [अ०] उत्कुथित मांस। सड़ा हुआ मांस। दुर्गन्धपूर्ण मांस।

खजप—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घी। घृत। (उणा०)। (२) मन्थान दण्ड। मथानी की डाँड। (हे० च०)।

खजफ—संज्ञा पुं० [?] ठिकरा। ठिकरी। (सं०) कापाल। (फा०) सिकाल।

खजफ—संज्ञा पुं० [?] कच्चा खबूँजा। (लु० क०)।

खजफरमीसा—संज्ञा पुं० [सुर०] बबूँर भेद। बबूल का एक प्रकार। (लु० क०)।

खजब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भुरभुराहट। मृदुता।

मुलायमियत। (२) शोथ। सूजन। वरम। आमास।

खजबाज—संज्ञा पुं० [अ०] कण्ठ की पीड़ा (वेदना)। कण्ठशूल। गले का दर्द।

संज्ञा पुं० [फा०] मक्खी। मक्षिका।

खजम—संज्ञा पुं० [फा०] खट्टास। जुन्दवेदस्तर। बीवर।

खजमिआन—संज्ञा पुं० [फा०] जुन्दवेदस्तर। खट्टास। बीवर। (लु० क०)।

खजर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सहज तीर्थक दृष्टि। दूर के वस्तुओं का दृष्टिगोचर न होना।

खजरान—संज्ञा पुं० [?] खेजरान। बेंत (लु० क०)।

खजरल् ऐन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खजर'।

खजल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुहिरा। तुषार। (बं०) शिशिर। (त्रिका०)। (२) आकाशजल। बरसात का पानी जो स्वयं शुद्ध रूप में नहीं होता है। अतः इसका सेवन वर्जित है। यथा—वर्षासु चरन्ति घनैः सहोरगाः पियाति कीट लूताश्च। तद्विजुष्टमपेयं जलमगस्तोदयात् पूर्वम्। (राज०)।

खजला—संज्ञा स्त्री० [दिलमी] (१) पक्षी विशेष। अबाबील। (२) मृत्तिका भेद। एक प्रकार की मिट्टी।

खज(झ)ला—संज्ञा स्त्री० [उर्दू] एक प्रकार की उत्तम मिठाई जो गोघूमचूर्ण, घृत एवं चीनी के द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

खजलाक—संज्ञा पुं० [अ०] मुरमक्की। मक्की बोल।

खजलिया—संज्ञा स्त्री० [दे०] अंगूर के पौधे का एक रोग।

खजश—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खजज'।

खजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) दूब। दुर्वाघास।
खजाका—" " [" "] }

(बं०) हाता। (अम०)। (२) मन्थ। पेय पदार्थ। (हे० च०)। (३) मारण। (श० र०)।

खजाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिड़िया। पक्षी। पात्नी। (उणा०)।

खजाका—संज्ञा स्त्री० दे० 'खजा'।

खजाजुल्मास—संज्ञा पुं० [अ०] सेवार। दे० 'काई'।

खजाजुस्सखर—संज्ञा पुं० [अ०] शैलज। छड़ीला।

खजाम—संज्ञा पुं० [अ०] पुष्प विशेष।

खजामा—संज्ञा पुं० [अ०] गुले मरियम। मरियम का फूल। संज्ञा पुं० [अ०, फा०] रजनीगन्धा, शबेबू, शबेअबूय। इसके कतिपय भेद हैं—(१) खजामा मुत्तआरफी—लेवेण्ड्युला वेरा (Lavendula-vera); (२) खजाउस्सुबुल् लेवेण्ड्युला स्पाइका (Lavendula spica); (३) उस्त-खुद्दूस—लेवेण्ड्युला स्टीकास (L. stoechas) और (४) जंगली लेवेण्डर—लेवेण्ड्युला बर्मेनियाई (L. burmanii)।

स्मरण रहे कि खजामा जिसे भारत में 'गुलशब्बू' कहते हैं, उससे यह भिन्न है।

परिचय—इसका क्षुप प्रायः १ गज तक ऊँचा होता है। इसका तना चौकोर पतला होता है। पत्र रेखावृत्त श्वेत और पुष्प छोटे-छोटे आकाशवर्ण के होते हैं। पुष्पों से कर्पूरतुल्य सुगन्ध आता है। औषधार्थ इसके केवल पुष्प ग्रहण किये जाते हैं।

यह रुमसागर के कूलों तथा इङ्गलेण्ड के उद्यानों में प्रायः होता है। इसके द्वारा प्राप्त तेल को अरबी में रोगान सुंबुल खजामी, रोगान खजामुल कबीर, रोगानखजाम-उस्सुंबुल और अंग्रेजी में स्पाइक लेवण्डर कहते हैं।

गुण-कर्म—हृदय-मस्तिष्क-उल्लासक, कोथघ्न, शोथघ्न एवं बलप्रद है। इसके अतिरिक्त आन्त्रामाशय-वात-तन्तुशक्तिवर्धक, वातानुलोमक, गर्भधारक, गर्भाशयगत द्रव-मलशोषक तथा संशोधक है।

उपयोग—इसके पुष्पों के धूपन से वायु शुद्ध होती है और मषक भाग जाते हैं। इसे व्रणशोथ में प्रलेप करने से लाभ होता है। हृदय-मस्तिष्क, वाततन्तु एवं यकृतदौर्बल्य-नाशनार्थ इसका प्रचुर उपयोग होता है। इसका टिंचर शूल एवं उदराध्मान में उपयोगी है। इसकी फल-वर्त्ती निर्माणकर योनि में स्थापन करने से गर्भाशयद्रव का शोषण एवं शोषन होता है और गर्भस्थापन में सहायता प्राप्त होती है। लेवण्डर ऑइल के उपयोग से शूल, उदराध्मान, उन्माद, अपतन्त्रक तथा वाततन्तुओं की दुर्बलता नष्ट होती है। मात्रा—पुष्प—५ से ७ माशा। रोगान खजामा ३ से ३ बूँद।

खजामी—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुगन्धवृत्त वा गुलेमरियम। (मो० आ; म० अ०)।

खज्जीमः—संज्ञा पुं० [अ०] पकाहुआ गेहूँ। पक्वगोधूम।

खज्जीरह्—संज्ञा पुं० [अ०] मांसरसभेद। शूरवा का एक प्रकार।

खज्जील—संज्ञा पुं० [अ०] गोधाशिशु। गोह का बच्चा।

खजुआ(षा)—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य, पा० खज्ज] भटवास नाम का एक अन्न। भटनास।

खजुरहट—संज्ञा पुं० [देश०, पं०] वह स्थान जहाँ खजूर अधिक होते हैं।

खजुरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] [सं० खज्जूर] खजूर। खजूरिका।

खजुली—संज्ञा स्त्री० [सं० खज्जु] एक प्रकार की काई जिसके स्पर्श से कण्डू उत्पन्न होता है।

खजुहट—संज्ञा पुं० [देश०] कण्डूरोग। खारिश।

खजूमः—संज्ञा पुं० [अ०] गाय। गयी।

खजूर—संज्ञा पुं० [सं० खज्जूर] स्वनाम से प्रसिद्ध वृक्ष।

पर्याय—(सं०) खजु, खजू, खजूरी, खरस्कन्धा, हरि-

प्रिया, कषायी, विश्रेणी, दुरारुहा, दुस्पर्शा, स्वादुमस्तका, स्वाद्वी, दुरारोहा, भूमिखजूरिका, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काक-कर्कटी, निश्रेणी, यवनेष्टा; (म०) सिन्दी, खजूरी; (गु०) छुवारी खरिक, खजूरी; (कना०) इञ्चिलु, सिंह इञ्चिलु, करिइञ्चिलु; (ते०) इण्टाचेट्ट, खजूर पण्डु; (ले०) फोनिक्स मॉण्टेना (Phoenix-montana), फोनिक्स-सिल्वेस्ट्रिस (Phoenix sylvestris); (अं०) दी वाइल्ड डेट-पाम (The wild date-palm), दी डेट-सूगर-पाम (The Date sugar-palm); (हिं०) थलमा, सेंधी; (बं०) खेजूर; (ते०) इन्दु, इशनचेडि; (ता०) पैरिच्छु; (कना०) इञ्चामरम; (मल०) कटेन्थ।

खजूर्रादिकुल (Palmae)। उद्भवस्थान—भारतवर्ष में उत्तरप्रदेश, बंगाल, मदरास, पंजाब, सिंध इत्यादि।

उपयोगी अंग—फल, पुष्प, स्वरस, पत्र।

गुण—शीतल, रस तथा पाक में मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदय को प्रिय, क्षत तथा क्षयनाशक, गुरुपाकी, तृप्तिकारक, रक्तपित्तनाशक, पुष्टिकारक, विष्टम्भी, शुक्रल, कोष्ठगतवायु, वमन, कफ, ज्वर, अतिसार, क्षुधा, तृषा, कास, श्वास, मद, मूर्च्छा, वात, पित्त तथा मद्यजनित रोगों को नष्ट करता है। छोटे खजूर में बड़े खजूर की अपेक्षा अल्पगुण हैं।

ताड़ी (खजूर स्वरस) मद तथा पित्त को उत्पन्न करने-वाला, वात-कफकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा बलवीर्यवर्धक है। (भा० पू० आम्नादि वर्ग)।

खजूरमस्तिष्क—स्वादु, तिक्त, कषाय, मूत्ररोगनाशक तथा बल, प्राण एवं शुक्रवृद्धिकारक है। (राज०)।

अपक्व खजूरफल—त्रिदोषनाशक तथा कषाय है।

खजूर का रस—परम पित्तजनक, मदकारी, वात-श्लेष्महर, रुचिप्रद, दीपन, बलवर्धक तथा शुक्रल है—“खजूरिका वृक्षतोयं मदपित्तकरं परमं। वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत्।” (कै० निघ०)।

पक्वखजूर—हितकर, श्रेष्ठ और त्रिदोषनाशक है। (अत्रि० १ अ०)। मधुर, शीतल, गुरुपाकी, क्षयरोग, अभिघात, दाह, वात, पित्त में हितकर, बृंहण तथा शुक्रल है। (च० सू० २७ अ०)। कषाय, मधुर, कफकारक, कृमि-जनक, वृष्य, बृंहण तथा पित्तनाशक है। (रा० नि० व० ११)। रस तथा पाक में मधुर, गुरु, शीतल, तृप्तिकर, क्षत, क्षय तथा रक्तपित्तनाशक है। (सु० सू० ४६ अ०)। (२) सुलेमानी खजूर (पिण्डखजूरभेद)।

गुण—परिश्रम, दाह, मूर्च्छा, भ्रान्ति, रुधिरविकार तथा पित्तनाशक है। (भा० पू० आम्नादि व०)।

खजूर-मद्य (छुहारा की शराब)—

गुण—यह द्राक्षाकृत मद्य की अपेक्षया किञ्चित् गुण में अल्प, वातप्रकोपकारक, विशद (स्वच्छ), रुचिकारक,

कफनाशक, कृशताजनक, लघुपाकी, कषाय, सुगन्धित, मधुररसयुक्त, हृदय तथा इन्द्रियबोधन (ज्ञानेन्द्रियों में स्फूर्तिजनक) है। (सु० सू० ४५ अ० मद्य व०)।

खजूर का गाभा—

पर्याय—(हि०) खजूर का गाभा (मखन और मुहीत); (अ०) कलबुन्नखल, शहमुन्नखल, लवबुन्नखल, जुम्मार, जुम्माज; (फा०) दिलेखुर्मा, मग्जखुर्मा, पनीर खुर्मा, पियःखुर्मा, पनीरनखल।

वक्तव्य—जुम्मार का उच्चारण जम्मार भी आया है। मखन और मुहीत में 'जुम्मार' शब्द में इसका वर्णन आया है। खजूर शब्द से मखन के रचयिता का अभिप्राय छुहारा है। प्राचीन यूनानी निघंटुओं में खजूर का वर्णन न होने से यह ज्ञात होता है कि जुम्मार शब्द से उन्हें 'छुहारे के वृक्ष का गाभा' ही अभिप्रेत है। मखन के लेखक खजूर और छुहारा शब्द को समानार्थी स्वीकार करते हैं। अस्तु, जो उन्होंने जुम्मार शब्द के लिये 'खजूर का गाभा' वाक्यांश का प्रयोग किया है, वह उचित ही है। परन्तु इसे छुहारे का गाभा कहना अधिक प्रशस्त जान पड़ता है। अस्तु, मान्य हकीम कबीरुद्दीन महोदय अपने वृहत् अभिधान-ग्रंथ में जुम्मार शब्द में लिखते हैं, "यह दरख्त छुहारे का आला जुज्ज है जो छुहारे के दरख्त की चोटी पर मुकाम-तल्ह पर होता है..." (लुगानुल् कबीर हिस्सा २, लुगानुल् अदविया)। परन्तु मुहीत के लेखक यद्यपि खजूर और छुहारे को परस्पर भिन्न द्रव्य स्वीकार करते हैं, तथापि उन्होंने इसके लिये "खजूर का गाभा" नाम देने में प्राचीनों का ही अनुसरण किया है और खजाइनुल्अदविया के रचयिता ने तो इसका वर्णन भी खजूर के वर्णन के साथ किया है, जो उचित नहीं है। पूर्वापर संदर्भों का विचार करने से यह उचित प्रतीत होता है कि इसका उपयोग "छुहारे का गाभा" के अर्थ में ही करना चाहिये।

वर्णन—एक सफेद रंग का मधुर पदार्थ जो स्वाद में दूध वा बादाम की गिरी जैसा होता है। छुहारे के पेड़ के सिर में फूल लगने की जगह उत्पन्न होता है। इसको काट डालने पर फल का आना बन्द हो जाता है। इसको चीनी वा शहद के साथ खाते हैं। ताजा, मधुर और सफेद रंग का उत्तम होता है। कैयदेवनिघंटु में लिखा है—'मज्जातु मूर्द्धजः स्वादुर्गुण्यो वातकफापहः।' अर्थात् खजूरवृक्ष के मूर्द्धा (शिर) की मज्जा (आभ्यन्तरिक मृदुभाग) मीठी, वृष्य और वातकफ-नाशक है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा के मध्य में रूक्ष है। शैख के मत से द्वितीय कक्षा में शीतल

और प्रथम कक्षा में रूक्ष है। इसके खाने से फुफ्फुस को हानि पहुँचती है, (उदर में) वायु उत्पन्न होता है, तरल दोष भी प्रकट होता है और यह आमाशय से देर में नीचे उतरता है। निवारण—मधु, सिकंजीवीन, छोहारा और अदरक का मुरब्बा (जज्जबील परबर्दः)।

प्रतिनिधि—हुम्माज (चूका)।

गुण-कर्म तथा प्रयोग—इसके खाने से मलावरोध उत्पन्न होता है, आमाशयान्न को शक्ति प्राप्त होती है तथा अतिसार और रक्तातिसार रुक जाते हैं। यह रक्तजीवन और उरोशूल में लाभकारी है। इसके सेवन से कण्ठ और उरोगत कर्कशता दूर होती है, स्वर उत्तम और स्वच्छ हो जाता है और कास का नाश होता है। यह रक्त और पित्त के प्रकोप को शमन करता है। इसके सेवन से रूहों (ओजों) की रक्षा होती है, विशेषतः ओजविशेष (रूह तवीई) इसके सेवन से कभी नष्ट (तहलील) होता और शरीर की अप्रकृतोष्मा (हरारत गरीबः) शोषित हो जाती है। पित्तज वमन, मद (खुमार) और मद्यपानजन्य दोष दूर होते हैं। इसके सेवन से वृक्क-दौर्बल्य (लागरी गुर्दः) मिट जाता है। विशेषतः शर्करा के साथ इसका क्वाथ उपकारी है। ततैया-दंश में इसका लेप लाभकारी है। (मखन; मुहीत)।

(३) बड़ा खजूर—पर्याय—(सं०) राजखजूर, राजपिण्डी, चपप्रिया, पिण्ड खजूर। गुण—मधुर, शीतल एवं गुष्पाकी है तथा पित्त, दाह, स्वास, भ्रमनाशक और वीर्यकारक है। (रा० नि० व० ११)

(४) भूमिखजूर—पर्याय—स्वाद्दी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, काककंटी, स्वादुमस्तका, स्कन्धफला। गुण—इसमें वही गुणादि हैं जो पिण्डखजूर में हैं।

(५) खजूर का भेद छुआरा वा छोहाड़ा है। दे० 'छोहाड़ा'।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान में खजूर का उल्लेख नहीं किया गया है; किन्तु मखननुल्अदविया में खजूर का पर्याय—तन्न वा खुर्मा अर्थात् छुहारे का हिंदी पर्याय लिखा है। परन्तु तालीफ शरीफी में उसे ताजे छुहारे (स्तव) और पिण्डखजूर का पर्याय स्वीकार किया गया है और यह भी लिखा है कि यह गुण में प्रायः छुहारे के समान है तथा इसे खजूर भी कहते हैं। इसके पूर्व के तिब्बी ग्रंथों में खजूर का कहीं उल्लेख नहीं मिलता; किन्तु मुफरदातहिन्दी नामक ग्रंथ के अध्ययन से प्रतीत होता है कि खजूर खुर्माजातीय, पर उससे भिन्न एक हिन्दी वृक्ष का नाम है। अस्तु, मुहीत आजम के रचयिता ने इसका उल्लेख, मखन की भाँति खुर्मा शब्द में, उसका हिन्दी पर्याय खजूर न देकर और खजूर का उससे पृथक् वर्णनकर उससे इसका पार्थक्य

प्रदर्शन में सुविचार व्यक्त किया है। मुहीत के रचयिता ने पिण्ड-खजूर को इसका सर्वोत्कृष्ट भेद लिखा है। उनके कथनानुसार इसका आयात गुजरात से होता है और इसका द्वितीय भेद खजूर भारतवर्ष में सर्वत्र होता है।

मुहीत में खजूरी को कालीमुसली का हिन्दी नाम लिखा है; किन्तु अनुभूतचिकित्सा-सागर में इसको पिण्डखजूर का गुजराती नाम और साधारण खजूर का मराठी नाम लिखा है और उसमें कालीमुसली के लिए खजूरी शब्द का प्रयोग किया गया है। निघण्टु-प्रकाश में भी ऐसा ही लिखा है। अस्तु, कालीमुसली के लिए मुहीतलिखित खजूरी संज्ञा का प्रामादिक समझना उचित है। तद्वत् बुस्तानुलमुफरदात के रचयिता का बुलूनी को खजूर लिखना भी कम प्रामादिक नहीं कहा जा सकता।

(६) पिण्ड खजूर—खजूरभेद। पर्याय—(हि०) पिण्ड-खजूर तथा संस्कृत में पिण्डखजूरिका (-री) है। राज-जम्बू भी इसका अन्य पर्याय है। पिण्डी और राजपिण्डी के भेद से यह दो प्रकार का है।

तालादि कुल (Family: Palmae)।

उद्भवस्थान—पिण्डखजूर उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया, तथा अरबादि देशों में होता है और यूनान, इटली एवं सिसली में इसके वृक्ष लगाए भी जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भारतवर्ष के सिन्ध, पंजाब इत्यादि में भी होता है। मुलतान में इसकी कृषि की जाती है। अस्तु, नुसखा-सईदी तथा मुहीत में पिण्डखजूर को खजूर का उत्कृष्टतर भेद लिखा है। स्तव में इसकी हिन्दी संज्ञा पिण्डखजूर और पिण्डखजूर में खुर्माएतर अर्थात् इनके मत से पिण्ड, खजूर और खुर्माएतर (स्तव) एक ही वस्तु के दो नाम हैं। तालीफशरीफी में लिखा है कि यह प्रायः मुलतान और ठठ को ओर से किसी-किसी प्रति के अनुसार मुलतान, अजमेर, सूरत और बम्बई की ओर से आता है। मुहीत के अनुसार इसका आयात गुजरात से होता है। अरबी पर्याय इसका स्तव है और स्तव का आयात मक्का से होता है। पिण्डखजूर प्रायः स्तव के समान होता है। उक्त दोनों में केवल इतना ही अन्तर है कि पिण्डखजूर भारतीय वृक्ष का फल है और स्तव विदेशीय है। शुष्क पिण्डखजूर वा स्तव को ही भाषा में छुहारा कहते हैं अर्थात् छुहारे के साथ इसका वही सम्बन्ध है जो ताजा मेवे को शुष्क मेवे के साथ होता है। इसके अतिरिक्त सईदी और प्लेफेयरकृत तालीफशरीफी के आंग्लानुवाद में इसका नाम भूमिखजूर भी लिखा है; परन्तु शरीफी के पर्यालोचन से यह ज्ञात होता है कि उभय एकजातीय वृक्ष के दो भेद हैं और प्रथम भेद द्वितीय भेद से श्रेष्ठतर है।

परिचय—इसका वृक्ष प्रायः पादल (पाटला) के वृक्ष के बराबर ऊँचा होता है। तालीफशरीफी के आंग्लानुवादक प्लेफेयर के अनुसार इसका वृक्ष ताडवत् उच्च तथा खजाइतल्अद्विया के अनुसार १२० फुट ऊँचा होता है। इसकी पेड़ी (स्कन्ध) तन्तुर एवं खुरदरी होती है, जिसका हाथ से स्पर्श नहीं किया जा सकता। वृक्ष के सिरे से हौ लम्बी और कड़ी पत्तियाँ निकलती हैं, जिनसे चटाइयाँ बनाई जाती हैं। (ता० श०)।

इसका फल सपक्कावस्था में प्रायः १ से ३ इंच लम्बा किञ्चित् भूरापन लिए रक्तवर्ण होता है। गोंद (निर्यास) का स्वाद मधुर होता है। इसके वृक्षों में फाल्गुन-चैत्र मास में पुष्प लगते हैं और फल भाद्रपद (क्वार) में पकने लगते हैं। स्त्रीवृक्षों की अपेक्षया इसके नरवृक्ष अत्यल्प होते हैं। इसके वृक्षों से एक प्रकार का निर्यास (गोंद) निकलता है, जिसका उपयोग औषधार्थ होता है। (ख० अ०)।

प्रकृति—विदेशीय पिण्डखजूर द्वितीय कक्षा के मध्य में उष्ण एवं प्रथम कक्षा में स्निग्ध, मतान्तर से द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं तर है (इसहाक); मतान्तर से द्वितीय कक्षा की प्रथमावस्था में उष्ण है तथा इसमें तरीकी अपेक्षया उष्णता स्वल्पतर है।

अहितकर—दन्त, नेत्र, स्वर एवं स्वरयंत्र को, अधिक सेवन से शिरोशूल उत्पन्न होता है। (म० अ०)। मसूढ़ों के लिए अहितकर है। (मु० आ०)।

निवारण—काहू, सिरका, खीरा और सिकंजबीन।

गुण-कर्म तथा उपयोग—बादाम की गिरी के साथ सेवन करने से शरीर मेदावी तथा स्थूल हो जाता है। यह मृदुसारक तथा कामोद्दीपक है, कटि एवं वृक को शक्ति प्रदान करता है। (म० अ०)। आयुर्वेद के अनुसार भी इसके अन्यान्य भेदोपभेद हैं। मरुजन में पिण्डखजूर का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

आयुर्वेद के अनुसार पिण्डखजूर के पर्याय आदि—फल मुद्गरिका, दीप्या, सुपिण्डा, मधुरस्त्रवा, फलपुष्पा, स्वादु पिण्डा, हयभक्ष्या। (मे०)। साद्विधा पिण्डा राजपिण्डी चेति। दोनों के गुण-कर्म—फल गौल्य, हिम, स्वादु, गुरु, दाहपित्त-श्वासघ्न, वीर्यवृद्धिकर, अग्निमान्द्यकर और विषघ्न है। (रा० नि० व० ११)। मतान्तर से शीतल, स्निग्ध, मधुर तथा अभिघात एवं सन्यास (जर्वः व सक्तः) जन्य वेदनापहारक, रक्तविकारनाशक वा रक्तप्रसादक, वात-पित्तनाशक तथा जराजन्य दीर्घ्य-नाशक है। (ता० श०)। यह तृष्णाहर तथा पाण्डुरोग, आमाशायरोग, क्षयरोग और ज्वरघ्न है। (मुहीत)।

यूनानी वैद्यक के मतानुसार स्तव जिसका आयात मक्का से होता है—वाजीकर, पृष्ठ एवं वृक्क को

बलप्रद, रक्तवर्धक, आमाशयबलप्रद तथा कफजन्य प्रकृति के शीत को नष्ट करनेवाला है। यह अनुभूत है। प्रकृति-उष्ण एवं तर है। (मुहीत)।

उपयोग—बादाम की मींगी के साथ सेवन करने से शरीर पुष्ट होता है। पिण्डखजूर के सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है तथा वृक्क एवं कटि सशक्त होती है, सरलता-पूर्वक मलोत्सर्ग होता है और वायुविकार, मूर्च्छा एवं रक्तविकार में उपयोगी तथा शोणितवर्धक एवं वृष्य है। इसके अतिरिक्त अर्दित एवं पक्षाघातनाशक तथा पुष्पसंवर्धक को सात्त्विक है। इसके सेवन से कफज्वर का नाश होता है। यह वातजन्य शोथविलयन है।

अहितकर—अतिशय सेवन से अनभ्यासी व्यक्तियों के रक्त में प्रदाह उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार यह मलवर्धक है। अतः इसकी गोंद का चूर्ण सेवन करने से दस्त बन्द होता है। इसके बीजों को जल में घिस कर नेत्रों के पलकों पर लेप करने से नेत्रों की मलिनता एवं गंदलापन दूर होता है। इसका ताजा रस शीतल एवं मृदुसारक है। इक्षुशर्करा की अपेक्षया एतद्रसजात शर्करा स्वास्थ्य को अधिक स्थिरता-कारक एवं हृदय है। इसके बीजों को जल में पीसकर नेत्रों के पश्मोपरि लेप करने से नेत्रपिण्ड एवं नेत्रशुक्ल-मण्डलगत पित्तजन्य शोथ विलीन होता है। इसकी गोंद का उपयोग मूत्र एवं शुक्र-सम्बन्धी रोगों में ब्रह्मास्त्र का कार्य करता है। पिण्डखजूर के नूतन रस में मिश्री मिश्रितकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है। इसके फलों के सेवन करने से शरीर बलवान् होता है एवं अधिक गुणप्रद है। पिण्डखजूर के सेवन से स्वास-जनित दुर्गन्ध दूर होता है। इसका हलुआ बलवर्धक है।

अहितकर—पिण्डखजूरों के निरन्तर सेवन से मसूढ़ों में व्रण उत्पन्न होता है।

विदेशीय पिण्डखजूर वा खतब

खजूर का भेद छुहारा (द्वीपखजूर)

छुहारा—शुष्कफलविशेष। पर्याय—(सं०) पालेवत; (हि०) छुआरा, छुवारा, छुहारा, छोहारा (बा), खारक, खारिक, खुरमा; (बं०) खजूर, खुर्मा; (अ०) तमर, खुर्मायाबिस; (फा०) खुर्मा, खुर्माएखुस्क; (उ०) खुर्मा; (तु०) कर्मर; (पश्तो) कजूर; (मरा०, कना०) खजूर; (गु०) खजूर, खारिक; (ता०) पेरिचड्काय; (ते०) कजुंस्काय; (म०) तेनिच्चन् काय; (सिंध) कुर्मा, जरिख; (पं०) पिंड; (बलु०) खुर्मा; (ब्रह्मा०) सोम्ब्लोज्जि; (यू०) फराफोमीन; (रूमी) फसाफिनीन, फिस्तीन; (अं०) डेट (Date); (ले०) फिनिक्स डैक्टिलिफेरा (Phoenix dactylifera)।

तालादि कुल (Family: Palmae)।

उद्भवस्थान—अरब, इराक, इटली (रूम), उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया, इत्यादि में प्रायः होता है। भारतवर्ष के सिंध, पञ्जाब आदि प्रदेशों तथा मुलतान में इसकी कृषि की जाती है।

वक्तव्य—मख्जन तथा मुफरदातनासिरी में तमर, मुहीत में खुर्मा और तालीफशरीफी तथा खजाइनल्-अद्विया में छुहारा शब्द में इसका वर्णन किया गया है। मख्जन और मुफरदातनासिरी में इसकी हिन्दी संज्ञाएं खजूर और छुआरा वा छुवारा, किन्तु मुहीत में छुवारा एवं खारक के नाम से उद्धृत हैं। बुरहान के अनुसार खारक एक प्रकार का छुवारा है। रशीदी ने फरहंगफारसी में लिखा है कि यह एक प्रकार का छुवारा है जो प्रायः खारक नामक द्वीप और उसके निकटवर्ती स्थानों में होता है। वास्तव में यह खुर्माए खारक है, जिसको प्रायः प्रयोग-बाहुल्य से खारक के नाम से प्रसिद्ध किया गया है।

अन्य ग्रंथों से यह प्रतीत होता है कि यह पकने से पूर्व शुष्कीभूत छुवारा है, जिसको बरश्म एवं कस्ब और खुर्माएसंगशिकन भी कहते हैं। उदयपुर में इसको खारिक कहते हैं जो प्रागुक्त खारक का ही अपभ्रंश है। इसको खुर्माएखरक भी कहते हैं। खरक, खारक का संक्षिप्त रूप है। किसी-किसी के अनुसार अपक छुवारा ही खरक है।

स्पष्टीकरण—यह विदेशीय पिण्डखजूरवृक्ष का शुष्क पक्वफल अर्थात् मेवा है जो अँगूठा के बराबर लम्बा, बेलनाकार तथा गावदुमी होता है। यह एक अत्यन्त बारीक एवं स्वच्छ और रक्त वा पीताभ छिलके से आवरित होता है। यही छुहारा वा छोहारा के नाम से भारतीय बाजारों में प्रसिद्ध है। यह अत्यन्त सुस्वादु एवं किञ्चित् कषायरसयुक्त होता है। नर तथा मादा भेद से इसके वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। नर में केवल पुष्प ही लगता है और फल का अभाव होता है। मादा में फल-पुष्प दोनों लगते हैं। उभय प्रकार के वृक्षों में धूलि की भाँति एक प्रकार के सूक्ष्म अवयव होते हैं, जिन्हें फारसी में 'कुश्न खुर्मा' कहते हैं। जब मादा वृक्ष में फल लगना प्रारम्भ होता है, तब उसकी अपरिपक्वावस्था में ही नर वृक्ष की धूलि ग्रहण कर मादा वृक्ष के अपक्व फलों पर छिड़क देते हैं। इस प्रक्रिया से फल बृहत्तर, मधुर एवं परिपुष्ट हो जाता है और उसकी गुठली भी छोटी हो जाती है। इसको जनसाधारण में 'शादी' कहा जाता है। बिना उक्त प्रक्रिया के उत्तम फल की प्राप्ति नहीं होती।

इसके वृक्ष प्रायः ४०-५० फुट की ऊँचाई में होते हैं। इसकी डालियाँ (शाखाएँ) प्रायः १ से ६ फुट लम्बी होती हैं। इसका सर्वाङ्ग कषायरस विशिष्ट होता है। अरब देश के

निवासी फल के उत्तरोत्तर वृद्धिक्रमानुसार उत्पत्ति के प्रारम्भ से अंत तक इसकी सात अवस्थाओं की सात कक्षाएँ निर्धारितकर उनके पृथक्-पृथक् नामकरण स्व-भाषा में किए हैं। यथा—

(१) तलअ—यह वह अवस्था है, जब फल में छुहारे जी के दानों से भी छोटे होते हैं। इसलिए इसको छुवारे का फूल भी कहते हैं। इसको अरबी तथा फारसी में क्रमशः लीग और बहारखुर्मा भी कहते हैं।

(२) बलह—इस अवस्था में छुवारा अधिक अपक्व-वस्था में होता है। फारसी में इसको 'गोरहे खुर्मा' कहते हैं।

(३) खिलाल—इस अवस्था में छुवारा यद्यपि हरा होता है, तथापि बड़ा हो जाता है और किञ्चित् मधुर (मीठा) हो जाता है। अस्तु, यह किञ्चित् अपक्व छुवारा है। मतान्तर से इसका उच्चारण खलाल भी किया जाता है।

(४) बुख—इस अवस्था में छुवारा गदरा जाता है।

(५) कस्ब—यह छुवारे की वह अवस्था है, जबकि छुवारा पकने से पूर्व शुष्क हो जाता है।

(६) रुतब—इस अवस्था में तरोताजा होता है। (पकने पर जबतक तरोताजा होता है)। इसके उक्त गुण पिण्डखजूर से मिलते-जुलते हैं।

(७) तमर—छुवारे की वस्तुतः यह वह अवस्था है जब इसको शुष्क हो जाने के उपरान्त छुहारा कहते हैं। अर्थात् यह रतब वा पिण्डखजूर की पक्वशुष्कावस्था है। 'रतब' अरबी भाषा का शब्द है। इसको फारसी में 'खुर्मा' तथा हिन्दी में 'छुवारा' वा 'खारक' कहते हैं। कतिपय विद्वान् उक्त कक्षाओं का क्रम परिवर्तित कर रखे हैं। अर्थात् उनके क्रमानुसार प्रथम कक्षा में तलअ, पुनः 'बुख' तदुपरान्त 'बलह' का उल्लेख किया गया है।

फारस के देश में एक स्थान 'जहरम' है, वहाँ का छुवारा उत्तम होता है। इसके अतिरिक्त अमान नामक स्थान (देश) का उत्तम होता है। 'जहरम' के अतिरिक्त छुवारे के अन्यान्य भेदों में से आजाद, मकतूस और खस्तावी (खतावी) यथापूर्व उल्लेख माने गये हैं। कारण यह है कि वे स्थूल, बारीक छिलके के तथा अधिक गुदार होते हैं और गुठली छोटी होती है। वे अत्यन्त मधुर एवं रेशारहित होते हैं और उनका बाह्यवर्ण पीत होता है।

छुहारे का प्राचीन आयुर्वेद के ग्रंथों में भी विशद वर्णन—पालेवत, रैवतक, आरेवत, महापालेवत, रक्त पालेवत, भेद—माणवक, महापालेवत (रा० नि० आम्नादि व० ११), स्वर्ण पारेवत, साम्राणिज, खारिक, रक्तरैवतक, वृहत् पारेवत, द्वीपज, द्वीपखजुरी इत्यादि नामों से किया गया है। चरकसंहिता में भी इसके गुणों का सुन्दर वर्णन पालेवत शब्द में किया गया है।

गुण-कर्म—पालेवत, मधुर, स्निग्ध, हृदय को हितकर तथा वातनाशक है। (रा० नि० व० ११ आम्नादि वर्ग)।

पर्या०—मधुफल, अमृतफलाख्य, पारेवत, रैवत, आरेवत, आरेवतक, रैवतक। (ध० निघ०)।

गुण—मधुर, कृमि, वात, तृषा, विदाहहर, हृद्य, मूर्च्छा-भ्रम-श्रमनाशक, रुचिप्रद, बहुवीर्यदायक तथा स्निग्ध है।

(२) महापारेवत—गौल्य (मधुर), बलवर्धक, वृष्य, पुष्टिवर्धक, मूर्च्छा तथा ज्वर नाशक है—

“महापारेवतं गौल्यं बलकृत्पुष्टिवर्धनम्। वृष्यंमूर्च्छां ज्वरघ्नं च पूर्वोक्तादधिकं गुणैः॥ (ध० निघ०)।

पालेवतं तु मधुरं स्निग्धं द्वयं समीरजितम्। (रा० नि० व० ११)।

“पारेवतं तु मधुरं कृमिवातहारि वृष्यं तृषाज्वरविदाह-हरं च हृद्यम्। मूर्च्छाभ्रमश्रमविशेषविनाशकारि स्निग्धं च रुच्यमुदितं बहुवीर्यदायि॥८९॥” (ध० निघ०)। दे० 'पालेवत'।

तिब्ब के अनुसार—उपयोगी अंग—छुहारे की कली, पुष्प, अधिक अपक्वफल, शुष्कफल, गदराया फल, अल्प अपक्व फल तथा गुठली।

वृक्ष की कली—छोहारे के वृक्ष में फल लगने के पूर्व एक कोष (खोल) उत्पन्न होता है। जब परिमाण में एक बित्ता का लंबा वा छोटा रहता है, तब शिर-पुच्छहीन मछली का-सा प्रतीत होता है। इसके बीच का भाग चौड़ा होता है। फारसी भाषा में इसको 'गुञ्जए खुर्मा' और अरबी भाषा में 'कफरे वज्म' कहते हैं और भीतर के सम्पूर्ण भाग को 'गरोज्' कहते हैं। जब यह कोष विकसित हो जाता है तब पुष्प प्रकट—प्रत्यक्षरूप से दृष्टिगोचर होता है। स्त्रीजाति के वृक्ष की कलिका को अरबी में 'कुफरः' वा 'कुफरी' तथा पुष्पजाति के वृक्ष की कली को अरबी में 'काफः' कहते हैं। पुरुषजातीय की कली में सुगन्ध होती है और स्वाद कषाय होता है। इसके भीतर का भाग चिकना होता है। इसकी नवोत्पन्न कली उत्तम होती है। पुरातन अवस्था में वह रक्तवर्ण की हो जाती है और सुगन्ध जाती रहती तथा निर्वीर्य हो जाती है। औषधीय उपयोग में नवीन कली का उपयोग होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा के अन्त में उष्ण एवं रुक्ष है। किसी के अनुसार किञ्चित् शीतोष्ण है। गुण-कर्म—उल्लासजनक, संग्राही, हृदय-मस्तिष्क-यकृतबलप्रद तथा शक्तिवर्धक है।

उपयोग—इसको चर्वण करने से दाँत तथा मसूढ़े दृढ़ होते हैं और यह मर्जआकिलः (तीक्ष्णाग्नि) को शान्त

करता है। इसका चूर्ण कर सेवन करने से व्रण-विद्रधिओंका नाश होता है। यह अतिसार में उपयोगी है।

शर्करोदक (शर्बत) निर्माण-विधि—छोहाड़े की बिना कुचली कली १४ तोला ग्रहण कर ४२ तोला जल में काथ करें। जब अर्धभाग शेष रह जाय तब इसमें १४ तोला मिश्री मिलाकर खाँड़ की चाशनीकर रख लें। इसके अवलेहन से आमाशय बलवान् होता है और पट्टों की वेदना नष्ट होती है; आँतों में धारक शक्ति की वृद्धि होती है और आमाशय का परिसर्पण आन्त्र तथा गर्भाशय की ओर नहीं होने पाता; वृक्क-वस्तिगतशूल का नाश होता है और विमूचिका में भी लाभप्रद है। इसके काथ से प्रतिदिन शिरप्रक्षालन करने से बाल नहीं गिरते और उनमें श्वेतता नहीं उत्पन्न होती और वे दृढ़ होकर घुँघ-राले हो जाते हैं। इसकी कलियों में एक प्रकार की अत्यन्त मृदु धूल होती है जो पुष्प के रेणु से पृथक् वस्तु है और उसकी अपेक्षा यह अत्यधिक शक्तिवर्धक होती है।

इसके उपयोग से आमाशय अत्यधिक बलवान् होता है। यह रुधिरस्राव को रोकती है। यह प्रवाहिका में उपयोगी है तथा बाह्य व्रणों को लाभ पहुँचाती है और अतिसार को शान्त करती है। मात्रा—६ माशा।

अर्क—इसकी कलियों से गुलाब की भाँति अर्कपरिष्कृत किया जाता है जो सुगन्धपूर्ण होता है। प्रकृति—यह शीतल एवं रूक्ष है। किसी के अनुसार किञ्चित् उष्ण है। इसकी उष्णता तथा रूक्षता प्रथम कक्षा के अन्तावस्था पर्यन्त स्थिर, रहती है। **गुण-कर्म**—संग्राही, हृदय-आमाशयबलप्रद, हृदयोद्वेग (खफ़कान)नाशक, प्रवाहिकाहर तथा चित्त प्रसन्नकारक है। **तेल**—प्रकृति—शीतल एवं रूक्ष है। **उपयोग**—यदि कली के विकसित होने से पूर्व इसको कुचलकर समभाग जैतून का तेल मिलाकर ३-४ दिन रखें तथा आलोड़ित करते रहें और छानकर शीशी में सुरक्षित रखें तो इसके उपयोग से आँतों के बल की वृद्धि होती है; अतिसार शान्त होता है; शिरोवेदना नष्ट होती है; वमन तथा उष्णताजन्य व्याकुलता शान्त होती है। इसके अभ्यङ्ग से स्वेद का अवरोध होता है। इसे शिर में लगाने से केश दृढ़ रहते हैं—गिरते नहीं।

पुष्प—पर्याय—छोहारे के वृक्ष का फूल। (अ०) तलअ; (फा०) बहार खुर्मा।

परिचय—कली के विकसित होने के पश्चात् श्वेतवर्ण का पुष्प प्रकट होता है। इसमें जौ से भी छोटे-छोटे दाने होते हैं, जो अन्त में वर्धित होकर छोहाड़े के स्वरूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इन दानों के ऊपर एक प्रकार की धूल होती है। अरबी में इसको गर्द, गुब्बार, काफ़ूलनखल, दक्कीकुलनखल तथा कश्नुलबजम कहते हैं।

उक्त दाने क्रमशः वृद्धिप्राप्तकर अगुँठे के बराबर हो जाते हैं। इनके ऊपर का कोष जिसको 'कली' कहते हैं, शुष्क होकर गिर जाती है। उक्त दानों को अपक्ववस्था में अरबी में 'शौरहे खुर्मा' कहते हैं। पुष्पजाति के छोहाड़े के पुष्प खाये जाते हैं और औषधीय योगों में भी प्रयुक्त होते हैं। दोनों का वर्ण ह्रस्ववस्था में ऊपर श्वेत तथा स्नाद कसैला होता है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल एवं द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। **गुण-कर्म**—संग्राही, आमाशयबलप्रद, रक्त को उष्णता एवं तीक्ष्णतानाशक, उष्णता-जन्य ज्वरहर, तृषाशामक, रक्तष्ठीवननाशक तथा रक्तातिसारघ्न है। **अहितकर**—दीर्घपाकी, आमाशय में आटोपोत्पादक, अधिक खाने से उदर में शूल उत्पन्न करता, मूत्र विन्दु-विन्दु रुक-रुक कर आता है और वक्ष में वेदना उत्पन्न होती है। **निवारण**—वसा और स्निग्ध पक्वमांस, खीर, घृत, पाचकचूर्ण, जवारिश; यथा—जवारिश कम्पूनी इत्यादि, आर्द्रकावलेह तथा मधु, मरिच, राई भी काथ कर दें।

पकने के पूर्व शुष्क छोहाड़ा—पर्याय—(फा०) खुर्माए संगशिकन; (अ०) क़स्ब।

परिचय—वह छोहाड़ा जो पककर वृक्ष में देर तक रहकर स्वयं शुष्क हो गया हो। यह कतिपय प्रकार का होता है। जिसको बुलबुलें खा लेती हैं और वृक्ष पर ही शुष्क हो जाता है वह अधिक मधुर होता है। इसी को क्वथित-कर शुष्क कर लेते हैं और खण्ड-खण्ड कर रखते हैं। प्रथमोक्त को बुलबुलखोर और द्वितीय को शिकम-दरीदः कहते हैं। लघु, स्थूल-शुष्क छोहाड़ा श्रेयस्कर होता है। किसी के अनुसार—खुर्माए हीच्छी, यही है।

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष है। किसी के अनुसार समशीतोष्ण और किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। आर्द्र छोहाड़ा तर है—रूक्ष नहीं है। इसको 'अमरशी' भी कहते हैं। वह छोहाड़ा जो पूर्णतः कच्चा रहता है और गुठली पड़ने से पूर्व शुष्क हो जाता है, वह अधिक निकृष्ट होता है।

गुण-कर्म—आमाशयबलप्रद, शोषक, रक्तकणदृढकारक, श्लैष्मिक अतिसार-अवरोधक, आध्मानकारक, वक्षपे-शियों का शोथनाशक; अर्धशुष्क छोहाड़ा आध्मान-कारक, दीर्घपाकी; गुठलीहीन शुष्क छोहाड़ा—उदर में अधिक आटोपोत्पादक, वातकारक, आन्त्र-आमाशय-विस्फारक और अभक्ष्य है। **अहितकर**—दाँतों तथा मसूढ़ों को तथा आध्मानकारक है। **निवारण**—यदि किसी को आध्मानादि हों तो सिरका में भिगाया हुआ जीरा दें। उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को सिकंजबीन, अम्लपदार्थ, शर्बतअनार तथा शीतल प्रकृति के व्यक्तियों को सिरका में भिगाया जीरा दें।

गदराया हुआ छोहारा (लीसर)---परिचय---वह जो पकने के समय पीला होकर किञ्चिन् मधुर और खट-मीठा हो जाता है, उत्तम होता है और औषधीय उपयोग योग्य होता है। यह लघु, मृदु तथा स्वाद में मधुर होता है।

प्रकृति---शैख के अनुसार---द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष है। गाजरूनी के अनुसार शीतल नहीं है। इब्न मासूयः के अनुसार यह प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। **गुण-कर्म**---संग्राही, आमाशयबलप्रद, दन्त-दृढकारक, प्राकृत ऊष्मा का संरक्षक, रक्तप्लीवननाशक, रक्ताशंहर, दीर्घपाकी, कुष्ठघ्न, अपक्वदोषोत्पादक, कोष्ठवद्धकारक, और रजःरोधकारक है।

सत्व (रुक्व)---प्रकृति---इसमें भी उपयुक्त गुण हैं। किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। **गुण-कर्म**---कोष्ठ-वद्धकर, वमन-अतिसारघ्न और आमाशयबलप्रद है।

उपयोग---गदराए छुहरों से मद्य निर्माण किया जाता है जो अत्यन्त सुगन्धपूर्ण होता है और अधिक भद-कारक होता है। इसके सेवन से आमाशयान्त्र में शक्ति उत्पन्न होती है।

अहितकर---इसके सेवन से यकृत में अवरोध उत्पन्न होता है। अपक्व दोषों की उत्पत्ति होती है। उदर में आटोप, आध्मान तथा आँतों में गुड़-गुड़ शब्द उत्पन्न होता है, मूत्रावरोध होता है और शरीर में रोमाञ्च उत्पन्न होता है। निरन्तर सेवन से ही उक्त दुर्गुण उत्पन्न होता है। आन्त्र तथा मुख को हानि पहुँचाता है। आँतों में अवरोध उत्पन्न होता है। रुक्षता के कारण फुफ्फुस तथा वक्ष को हानि करता है। **निवारण**---खमीरावनफशा सेवन कराने से मूत्रावरोध, रोमाञ्च तथा दूषित दोषों के उत्पत्तिजन्य विकार शान्त होते हैं। इसके अतिरिक्त विशुद्ध मधु और उक्त खमीरा मधुकृत होना उचित है। आध्मान, दाँतों और मसूढ़ों के लिए सिकञ्जबीन सादा, खटमिठा तथा मधुर अनारस्वरस, फुफ्फुस तथा वक्ष के रुक्षता-जन्य विकारों के शान्त्यर्थ पोस्ता के बीज।

अल्प-अपक्व छोहाड़ा---पर्याय---खलाल; (अ०) खिलाल। **परिचय**---इस अवस्था में जब अल्प अपक्व होता है तब हरा होता है और क्रमशः स्थूल होता जाता है तथा बड़ा होने पर इसमें किञ्चिन् मधुरता उत्पन्न हो जाती है।

प्रकृति---शीतल एवं तर है। **गुण-कर्म**---संग्राही (संकोचक), विलयन (मुहल्लिल), आमाशयमुखबलप्रद, आमाशय-शक्ति उत्पादक, आहारपाचक, क्षुधावर्धक, विरेचक, शीत-ज्वर उत्पादक तथा विन्दुमूत्रनाशक है।

अहितकर---उदरशूल में इसका सेवन वर्जित है। इसको खाकर जलपान भी वर्जित है। अधिक सेवन से अजीर्ण की उत्पत्ति होती है। **निवारण**---वमन कराएँ और अजीर्णनाशक वस्तु दें।

अधिक कच्चा छोहाड़ा---पर्याय---(अ०) बलअ; (फा०) शोरहे खुर्मा। **परिचय**---अधिक अपक्व अवस्था में हरा होता है। इसमें मधुरता का पूर्णतः अभाव होता है। यह कसेला होता है।

प्रकृति---द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष है। किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा के पूर्व में शीतल एवं द्वितीय कक्षा के अन्त में रुक्ष है।

गुण-कर्म---संग्राही, यकृतबलप्रद, पित्तज वमननाशक, व्रणपूरक, सुगन्धवर्धक, स्वेदावरोधक, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, अश्रुस्रावावरोधक, दन्त तथा मसूढ़ों को दृढकारक, आमाशयप्रदाहघ्न, आमाशयबलप्रद, स्तन्यवर्धक, मूत्राव-रोधक, रक्त-श्वेतप्रदरहर और रक्ताशंनाशक।

उपयोग---इसके द्वारा मद्य प्रस्तुत किया जाता है। सुगन्धवर्धनार्थ इसको मिश्रित किया जाता है। इसके अभ्यङ्ग से पसीना में सुगन्ध आती है तथा उसकी अधिकता रुक जाती है। नित्य सेवन करने से कुष्ठ नहीं होता। यदि इसके पानी को कच्चे अपूरों के पानी के साथ मिश्रितकर क्वाथ करें और गाढ़ा हो जाने पर नेत्रों में लगाएँ तो अश्रुस्राव तथा नेत्रकण्डू का नाश होता है। इसको चर्बण करने तथा इसके क्वाथ से गण्डूष करने से मसूढ़े दृढ होते हैं। इसको क्वाथकर सेवन करने से आमाशय का प्रदाह शान्त होता है और उसके बल की वृद्धि होती है। इसके सेवन से स्त्रियों का दूध बढ़ता है। रक्त तथा श्वेतप्रदर में जब किसी अन्य उपाय से लाभ न हो तो इसके उपयोग से अवश्य लाभ होता है। यह रक्तज अर्श में उपयोगी है। **अहितकर**---यह वक्ष तथा फुफ्फुस को हानि पहुँचाता है और दूषित दोष, आध्मान तथा वायु उत्पन्न करता है। **निवारण**---फुफ्फुस तथा वक्षविकार में खमीरावनफशा दें तथा अन्य विकारों में मधु का उपयोग कराएँ।

छोहाड़े की गुठली---प्रकृति उष्ण है। किसी के अनुसार मिश्रगुणयुक्त है, जिसमें शीतलता अधिक और उष्णता अल्प है। यह संग्राही, अश्मरीघ्न, चक्षुष्य, लोमो-त्पादक, व्रणघ्न तथा निर्बलतानाशक है। **उपयोग**---इसका क्वाथनिर्माणकर सेवन करने से अश्मरी खण्डित होकर निकल जाती है। इसे घिसकर अवलेहन करने से अतिसार शान्त होता है। इसको दग्धकर व्रणों पर अवचूर्णन करने से तथा दग्ध गुठली धोने के पश्चात् सद्योव्रण पर अवचूर्णन करने से शीघ्र लाभ होता है। इसका नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्रगत स्राव बंद होता है और दृष्टि की वृद्धि होती है। आँखों की पुतली की कृष्णता में शक्ति आती है। दग्धगुठली को अञ्जन (सुरमा) में मिश्रित करने से खपरिया की प्रतिनिधि हो जाती है। इसके उपयोग से पश्मशात के लोम पुनः

उत्पन्न हो जाते हैं और उसके वर्तमान बाल ठीक रहते हैं। इसको घिसकर लगाने से नेत्रगत व्रण-विद्रवियों का नाश होता है। बिना दग्ध गुठली उपयोगी नहीं होती। इसकी गुठली का चूर्ण आमाशयबल-प्रद है।

सुपक्व शुष्क छुहारा—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण, प्रथम कक्षा में तर, मतान्तर से प्रथम कक्षा में उष्ण; किन्तु तरी की अपेक्षा इसमें उष्णता अधिक होती है।

गुण-कर्म—यह जीवनीशक्तिवर्धक, वृंहण, शुक्ल, उष्णताजनक, वाजीकर, सान्द्रसोत्पादक तथा वात-नाड़ी-बलदायक है।

उपयोग—छुहारे का बारीक चूर्णकर पुष्टिकर योगों में मिश्रण किया जाता है। माजूनखुर्मा इसका सुप्रसिद्ध योग है जिसका उपयोग नपुंसकतानिवारणार्थ किया जाता है। वात-नाड़ीबलप्रद तथा उष्णवीर्य होने से इसका उपयोग कटिशूल-नितम्बशूलादि में होता है। वातजन्य एवं कफज रोगों में भी इसका उपयोग होता है। शीतल व्यक्तियों को परमसात्म्य किन्तु उष्ण प्रकृति वा व्यक्तियों को इसका सेवन हानिकर होता है। **अहितकर—**कोष्ठवद्धता उत्पन्न करता है। **निवारण—**शुक्त (सिरका), काहू। **प्रतिनिधि—**देशी खजूर। **मात्रा—औषधीय—**५ से ७ की संख्या में।

पका हुआ आर्द्र छुहारा—उष्णवीर्य एवं मदकारक होता है। गत वर्षों में इसका आयात भारतवर्ष में भारतीय सरकार की सहायतार्थ इराक से अधिक हुआ था, जिसका उपयोग भुखमरोनिवारणार्थ किया गया था।

छोहाड़े की रसक्रिया (दोशाब छुहारा, सैलान छुहारा)—
निर्माण-विधि—छोहाड़ों को ग्रहणकर जल में क्वाथ करें। पुनः सौरा निकाल इतना क्वथित करें कि जमने योग्य हो जाए। अथवा नूतन छोहाड़ों को ग्रहणकर किसी वस्त्र की थैली में रखकर ऊपर कोई भारी वस्तु रख दें, जिसमें उसका सौरा टपककर पृथक् हो जाए। पुनः इसको इतना पकाएँ कि जमने योग्य हो जाए। अथवा धूप में भी स्थापित कर गाढ़ा कर लें। फारस देश के छुहारों की रसक्रिया उत्तम होती है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं प्रथम कक्षा में रुक्ष है। इसी प्रकार सैलान द्वितीय कक्षा में उष्ण है। फारस देश के छोहाड़े की रसक्रिया उष्ण एवं तर है।

गुण-कर्म—अति भोज्य तथा शीतल एवं कफज प्रकृति के व्यक्तियों को कोष्ठमृदुकर वा मृदुभेदक (तलेयन), पक्षाघात (फालिज) और आमवात (गठिया) में उपयोगी है। शीतल प्रकृति के व्यक्तियों की मैथुनशक्ति की वृद्धि करता है। कफज कास को नष्ट करता है। केवल धूप में शुष्क किया हुआ छोहाड़ा प्रवेशकारक (मुनफिज),

विलयन तथा श्लेष्मा को आमाशय तथा आन्त्र द्वारा विशुद्ध करता है। शीतल प्रकृति के व्यक्ति के यकृत को सबल करता है और जीवनीशक्ति की वृद्धि करता है। कथित छोहाड़ा दीर्घपाकी होता है। कोष्ठवद्ध उत्पन्न करता है। नवीन छोहाड़ों में उक्त दोष नहीं है। कुटकी और नमक के साथ लेप करने से झाड़ू को नष्ट करता है। कलौजी के साथ लेप करने से हस्तपादगत शीतको दूर करता है। अहितकर—रक्त को दग्ध करता है। वर्ण को दूषित करता है। सौदा उत्पन्न करता है। उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को हानि पहुँचाता है। शिराओं को दूषित करता है। निवारण—सिरका, बादाम, पोस्ता के बीज, सिकंजीबन, स्निग्ध द्रव्य तथा अन्य शीतल द्रव्य।

छुहारे का दोशाब—पर्याय—(अ०) दिव्स; (फा०) दोशाब-अुर्मा।

वक्तव्य—अरबी शब्द दिव्स का उच्चारण दिविस भी होता है और दोशाब (रसक्रिया) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। दोशाब संज्ञा का प्रयोग द्राक्षा तथा छुहारा उभय के अर्थ में होता है। इसके अतिरिक्त शहतूतादि के दोशाब के अर्थ में भी प्रयुक्त है। किन्तु केवल दोशाब शब्द से अंगूर और छुहारा दोनों का दोशाब ग्रहण किया जाता है। कतिपय विद्वान् इससे मैफुस्तज का भी अर्थ ग्रहण करते हैं। मतान्तर से अंगूरों का रस (शीरा) एक-दो दिन रखने से उसमें अभिषेज होने से अम्लता आ जाती है। उक्त कारण से इसको दोशाब, जो 'दो' और 'शब' (रात्रि) से बना है, कहते हैं। मरुजन में दिव्स और मुहीत में दोशाब शब्द में इसका वर्णन किया गया है।

मधु में पाला गया ताजा छुहारा (रुतब मअसल)—
निर्माण-विधि—उचित प्रमाण में ताजा छुहारा ग्रहण-कर धूप में स्थापनकर उसकी आर्द्रता दूर करें। पुनः उनकी पेंदी में छिद्र कर भीतर की गुठलियाँ निकालकर पृथक् कर दें और बादाम की गिरी भी उचित प्रमाण में ग्रहणकर दोनों को एक साथ शीशा वा चीनी के पात्र में स्थापन कर इतना विशुद्ध मधु डालें कि उसके ऊपर तक मधु रहे। पुनः उचित प्रमाण में केशर गुलाबजल में घिसकर डाल दें। इसके पश्चात् जब मधु नीचे बैठ जावे तब पुनः ३-३ दिन के अन्तर से उक्त पात्र में मधु डाल दिया करें कि छुहारे भीतर ही डूबे पड़े रहें। इस प्रकार करने से छुहारों का द्रवांश पूर्णतः शुष्क हो जाता है और दीर्घकाल तक सुरक्षित रहता है—विकृत नहीं होता। इस प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत खण्ड को अरबी में 'रुतब मअसल' कहते हैं।

गुण तथा उपयोग—यह शीतल एवं तर प्रकृति के व्यक्तियों को परम सात्म्य है। इसके सेवन से आमाशयिक

निर्वलता दूर होती है, शुक्र की वृद्धि होती है, अवरोधों का उद्घाटन होता है और अति कामोद्दीपन होता है।

अहितकर—अतिशय सेवन से शिरोवेदना उत्पन्न होती है। **निवारण**—गुलाब, खस (पोस्ता) के बीज, काहू, सिरका, बादाम की गिरी।

खजूरा—संज्ञा पुं० [अ०] शुक, तोता, सुगा।

खजूक—संज्ञा पुं० [अ०] तीर तथा खड्ग इत्यादि। शल्य का शरीर में प्रविष्ट हो जाना।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] जलक। अप्राकृत रीति से शुकपात करना। हस्तमैथुन करना। (अं०) मास्टरवेशन (Masterbation)।

खज्ज—[?] (१) खज्जखालिस। एक प्रकार का वस्त्र जो रेशम वा ऊन इत्यादि से प्रस्तुत किया जाता है अथवा अन्य प्रकार का ऊर्णवस्त्र जो रोएँ से प्रस्तुत किया जाता है। यह अत्यन्त बारीक होता है। आधुनिक तिब्बती परिभाषा के अनुसार एक जानवर की खाल जो सम्भूर से चौड़ा होता है। (२) रेशमी कपड़ा। (३) एक प्रकार का जन्तु है जिसके अण्डकोष को जुन्दवेदस्तर कहते हैं। भाषा में इसको ऊदविलाव कहते हैं। (४) एक प्रकार का दाना है। (मु० आ०; म० अ०)। खाद्य अन्न। भटवास।

खज्जखालिस—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खज्ज'।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शीतल वस्तु चर्वण करना। (२) काटना। (३) शुकना। (४) दोहरा करना।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] कच्चा खरबूजा।

खज्जरुमीसा—संज्ञा पुं० [सुर०] बबूल भेद।

खज्जफ्री—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जवुलऐन'।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] मृदुता। भुरभुराहट।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] सन। सण।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] चवाना। चर्वण करना। काटना। छेदन करना।

खज्ज—संज्ञा पुं० [अ०] (१) काटना। छेदन करना।

(२) पृथक् करना। (३) शीघ्रता करना। (४) दौड़ना। (५) मस्त होना।

खज्जमयान—संज्ञा पुं० [फा०] जुन्दवेदस्तर।

खज्ज्योति—संज्ञा स्त्री [सं० पुं०] जुगनु। खद्योत।

खज्ज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वायुरोगभेद।

खज्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लक्षण—कटिप्रदेश में।

आश्रित वायु जब जाँघ की स्थूल नसों में रुक जाता है तब मनुष्य लँगड़ाने लगता है। इसको 'खज्ज' कहते हैं। और जब दोनों जाँघों में ऐसा ही हो जाता है तो उसको 'पंगु' कहते हैं। (मा० नि०)। **चिकित्सा**—खज्जता अथवा पंगुता अल्प दिनों का उत्पन्न हो तो विरेचन,

निरुहवस्ति, स्वेदनकर्म द्वारा संशोधन के पश्चात् गुग्गुलु सेवन करने से लाभ होता है। अथवा एरण्डतैल की वस्ति प्रदान करने से भी शीघ्र लाभ होता है। (२) गोखरु।

वि० [सं० त्रि०] पर्याय—(सं०) खोड़, विकल गति, खोल (शब्द र०), खोर, खज्जक (हे०) खोट।

खज्जकारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केसारी। खेसारी। सुत्ता। (रा० नि० व० १६)।

खज्जकारि वटी—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] दे० 'खज्जनकारि रस'।

खज्जखेट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खज्जन पक्षी। खिड़हिच।

खज्जखेल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ममोलापक्षी। (श० मा०; त्रिका०)।

खज्जन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्षी विशेष।

खज्जनक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

परिचय—मुप्रसिद्ध छोटा पक्षी है जो प्रायः शरत्काल में आता है। अत्यन्त चञ्चलता के कारण इसकी पूँछ निरन्तर हिला करती है। इसकी चोंच पतली होती है और टाँगें भी अत्यन्त पतली होती हैं। शिर तथा शिर से नीचे का उभय पार्श्व काला होता है और शरीर का अन्य भाग श्वेत होता है।

पर्याय—(सं०) खज्जरीट, खज्जनक, किकी, दिवि, चापक, सारङ्ग, मेघजीवन, भरद्वाज, कुकराट, व्याघ्राट, पुण्यदर्शन, कृष्ण, स्वल्पकृष्ण, सुभद्रक, द्वीपवासी, मुनि, चातुर्मासनिर्देशन, नीलाङ्ग (रा० नि० व० १९; ध० निघ०)। स्वल्पान्तर से अन्य पर्याय—(सं०) कणाटीन, काकच्छदि, काकच्छद, कन्याटीर, कन्याटीरक, खज्जखेल, खज्जखेट, गूढनीड़, तण्डक, चर, तातन, नीलकण्ठ, भद्रनामा, भण्डुक, नर्तक, नर्तक, सदानर्तक, मुनिपुच्छक, रत्ननिधि; (हि०) खिड़हिच। खंजन। ममोला।

मांसगुण—लघुपाकी, रुक्ष, कफ, पित्त तथा निबन्धनाशक है। (राज०)।

खज्जननेत्र—प्रभाव—

खज्जनपक्षी के नेत्र का कल्कनिर्माणकर ललाट-पट्ट पर लेपन करने से स्त्रियों का प्रदररोग प्रशान्त होता है। इस द्रव्य में विचित्र शक्ति विद्यमान है—

'लिप्ते ललाटपट्टे बलतर खज्जननेत्र कल्केन, प्रदरः शाम्यति नित्यं विचित्रिता द्रव्यशक्तिरियम्'। (२) दे० 'खज्जना'।

खज्जनदर्शन के फल—

दिशापरत्व से हस्तार्क में खज्जनदर्शन के फल—

पूर्व दिशा में दर्शन से वित्तलाभ, अग्निकोण में अग्नि से भय, दक्षिण दिशा में भी अग्नि का भय, नैऋत्य में कलह, पच्छिम दिशा में लाभ, वायव्य में उत्तम वस्त्र

धान्य और विभव, उत्तर में दिव्य स्त्रियों की प्राप्ति और ईशानकोण में दर्शन से निश्चित मृत्यु होती है।
वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्ते हुताशे भयं।
याभ्यां बलिभयं सुरारि कलहो लाभः समुद्रालये ॥
वायव्यां वरमन्न वस्त्र विभवो दिव्याङ्गना चोत्तरे।
एशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने ॥

स्थानभेद से दर्शन के फल—

अब्जेषु गोषु गज वाजि महोरगेषु राज्यः प्रदः कुशलदः
शुभिशालद्वेषु, भस्मास्थि केसतुष लोम नलेषु दष्टं दुखं
ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः ॥

अपां समीपे गज मस्तके वा सूर्योदये ब्राह्मण सन्निधेवा।
आकाशमार्गे ग्रहणे फलेवा धन्योनरः पश्यति खञ्जरीटः ॥
(ज्योतिष)।

खञ्जनकारि रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

खञ्जना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } खंजनपक्षी का भुद्र
खञ्जनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } भेद। हापुपुत्रिका।
(वं०) कादा-खोंचा। (मे०)।

खञ्जनाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] खंजनतुल्य पीतवर्ण
का पक्षी। खंजन भेद। (श० च०)।

खञ्जनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खंजन पक्षी का द्वितीय
भेद।

पर्याय—(सं०) हापुपुत्रिका, तुलिका, स्फोटिका,
सर्षपी, खञ्जनाकृति, राजभट्टिका, गोभण्डीर, पङ्कटकीर।

गुण—इसके मांस में वही गुण हैं जो खञ्जन के मांस
में हैं। दे० 'खञ्जन'।

खञ्जर—संज्ञा पुं० [अफरीका] लालसाग। लाल मरसा।
रक्तमारिषशाक।

खञ्जरह—[?] गिंगिट। सरट। कृकलास।

खञ्जरान—[अ०] नासूर।

खञ्जरी—[अ] खड्गाकार तरुणास्थि। गजरूपखञ्जरी।

खञ्जरीट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खञ्जन पक्षी। दे० 'खञ्जन'।

खञ्जाब—संज्ञा पुं० [अ०] शहमखतल।

खञ्जरीर—संज्ञा पुं० [अ०] खूक। सुरदह। शूकर। सूअर।

खञ्जूश—संज्ञा पुं० [फा०] रतनजोत। अबुखलसा।

खट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कफ। (२) कत्तूण,
तृण। (हे० च०)। (३) अन्धकूप। (४) श्लेष्म।
(५) टङ्क। (मे०)।

खटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लूला, कुब्ज पाणि। (रा० मा०)।

खटकीड़ा—संज्ञा पुं० } खटमल। पर्या०—(सं०) मत्कुण;

खटकोरा—संज्ञा पुं० }
(फा०) सरखक, सास। दे० 'खटमल'।

खटके—संज्ञा पुं० [अफ०] खरबूजा। षड्भुजा।

खटखटी—संज्ञा स्त्री० [म०] वनस्पति विशेष। ग्रेविया
स्केब्रोफाइल्ला (Grevia scabrophylla Rox.)।

खटखादक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काक।

कौआ। (२) काँचनिमित्त पात्र। (३) शृगाल।

स्यार। (श० मा०)। दे० "गौदड़"।

खटपद—संज्ञा पुं० [सं० षट्पद] दे० 'खटपदी'।

खटपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० षट्पदी]। दे० 'षट्पदी'।

खटपापड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०; देश०] अमली। करामई
वृक्ष।

खटभिलावाँ—संज्ञा पुं० [पं०, देश०] प्रियाल वृक्ष। चिरौजी
का पेड़।

खटमेमल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झाड़दार वृक्ष
है जो हिमालय की तराई, आसाम तथा बंगाल में होता
है। इसमें छोटे-छोटे पत्र होते हैं और मटरप्रमाण के
छोटे-छोटे फल लगते हैं।

खटमल—संज्ञा पुं० [हि० खाट + सं० मल = मैल]।

कीटविशेष।

पर्याय—(हि०) उड्डस। (अ०) फुसाफिस, फुसरा; (यू०,
सुर०) फुसाफिस (म० अ०); (अं०) बग्स (Bugs);
(ले०) साइमेक्स (Cimex)।

परिचय—एक प्रकार का स्वेदज भुद्रकीट जो मनुष्यों
का रक्तपान करता है। यह मसूर के बराबर होता है।
इसको मसल देने पर अत्यन्त दुर्गन्ध प्रतीत होती है।
आयुर्वेदीय रसग्रन्थों में लिखा है कि इसके रक्त द्वारा हीरा
भस्म किया जाता है।

उद्भवस्थान—तालवृक्ष, चारपाई, मेज, कुर्सी इत्यादि।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—इसको मसलकर सूँघने तथा
जल में पकाकर, उक्त जल का गण्डूष धारण करने से गले
में लिपटी हुई जोंक (जलायुका) शीघ्र छूट जाती है।
खटमल को कपड़ा में मसलकर दग्ध करें और उसकी
भस्म अपस्मार के आक्रमणकाल में रोगी की नासिका
में डालने से मृगी का बार-बार आक्षेपण बन्द होता है।
मूत्रावरोध में रोगी की मूत्रप्रणाली में खटमल प्रवेश
करने से मूत्र का शीघ्र उत्सर्ग होता है। जिसे साँप
काटा हो उसे एक की संख्या में भक्षण कराने से विष का
नाश होता है। आहवा ज्वर (कालाआजार) में जो
प्रायः बंगालादि में होता है, खटमल पीसकर रोगी को
सुँघाने से लाभ होता है। जिस स्थान के बाल गिर गए
हों, उस स्थान पर खटमल मलने से पुनः बाल जम
जाते हैं।

शीतज्वर (मलेरिया) जो दो दिन के अन्तर से आता
है, उसमें जिस दिन पारी न हो २-३ खटमल पकड़
कर पक्व केला के फल में रख कर ५-६ घंटा के
अन्तर से ३ बार भक्षण कराने से ज्वर का पुनः आक्रमण
नहीं होता।

यदि खटमल चारपाई आदि में पड़ गए हो, तो उसके चूरो में छाँछ, कनेर के पत्तों का क्वाथ वा बनतुलसी (ममरी) का क्वाथ डालने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जंगली तुलसी (ममरी) भी खटमल की घातक है।

अहितकर—उत्क्लेशजनक है।

निवारण—वमन कराकर घृतपान कराएँ।

खटमल के रक्त में हीरा, मर्दनकर गजपुट की आँच देने से उत्तम भस्म तैयार होती है।

प्रतिनिधि—जूँ।

खटरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीट है।

खटरस—संज्ञा पुं० [सं० षड्रस] छः प्रकार के रस—मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय।

खटाई—संज्ञा स्त्री० [देश० खट्टा+ई] अम्लद्रव्य द्वारा बनाया अचार-चटनी इत्यादि।

खटाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चौलाई। तण्डुलीयशाक। (बं०) कांटा नटे। (वै० निघ०)।

खटास—संज्ञा पुं० [सं० खट्टास] गन्धमार्जार। मुस्कबिलाव।

खटिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खडियामिट्टी। दे० 'खटी'।

खटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) खडिया मिट्टी। खड़ी।

खटिनी—संज्ञा स्त्री० ["] } कठिनी। (२) कान के छिद्र। कर्णरन्ध्र। (३) खस। उशीर। गन्धवीरण तृण। (विश्व०; रा० नि० व० १३)। (४) खड़ी तृण। (वै० निघ०)।

खटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खट्वा] चारपाई। पर्यङ्क। खट्वा।

खटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्याय—(हिं०) खडियामिट्टी, गौरखड़ी, दुधिया मिट्टी, खड़ी, खरिया; (बं०) खडि, चाखडि; (सं०) खटिनी, खटिका, धवल मृत्तिका, श्वेत धातु, पाण्डुमृत्तिका, सितधातु, पाण्डुमृत्, कक्खटी, वर्णलेखा, वर्णरेखा, पाकशुक्ला, अनिलाधातु, खड़ी, कठिनी, वर्णलेखिका, शुक्लधातु, धातूपल, कठिनिका, मेल वर्णिका; (अं०) चॉक (Chalk.); (म०) चाक। (ले०) क्रीटा (Creta)

गुण—मधुर, तिक्त, शीतल, व्रणदोषघ्न, पित्तदाहशामक, कफ, रक्त तथा नेत्ररोगहरणकारक है। (रा० नि० व० १३)। भावप्रकाश के अनुसार—खटी और गौर-खड़ी दोनों समान गुण युक्त, शीतल, दाहनाशक, मधुर, विषघ्न तथा शोषघ्न हैं। भक्षण करने से मृत्तिकानुल्य गुण होता है। लेप करने से भी उक्त गुण प्राप्त होते हैं। (भा० पू० १ भ०)।

खट्ट—संज्ञा पुं० पीतवर्ण का संगमरमर पत्थर।

खट्टन—वि० [सं० त्रि०] खर्व। (हे० च०)।

खट्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खटिया। चारपाई।

खाट। खट्वा। पर्यङ्क। (श० श०)।

संज्ञा पुं० गलगल नाम का नीबू।

खट्टाङ्गनामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वटपत्री।

खट्टाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } सुगन्धमाज्जार।

खट्टाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } गन्धबिलाव। मुस्कबिलाव।

खट्टास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गन्धमार्जार। (बं०) गन्ध-

गोकुल, खट्टाश; (सं०) गन्धोतु, गन्धमाज्जार, वन-

वासन, खट्टाशी, वनाखु, खट्टास, शालि, वनश्वा, पुष्पलक,

मृगचेतक; (अं०) दो सिवेट कैट (The civet cat); ज़िवेट

कैट (Zebet cat); (ले०) वाइवेरा ज़िवेथा (Viverra

zibetha)। इसके वीर्य को गन्धमार्जारवीर्य कहते

हैं। परिचय—दे० "जवाद।"

खट्टिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेलिया। शाकुनिक। पक्षि-मार। (बं०) पाखीमारा। (अम०)।

खट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी खटिया। क्षुद्रखट्टा। (त्रिका०)।

खट्टी—संज्ञा स्त्री० [?] खटमिठा नारंगी।

खट्टेरक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] [सं० त्रि०] खर्व। कुञ्जक पुष्प। सेवती।

खट्वा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] चारपाई। खटिया। पर्यङ्क।

खट्वाङ्गनामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वटपत्री। पाषाण

खट्वाङ्गनामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } भेद। पखान-

भेद। (बं०) वड़ पाथर कूचा। (रा० नि० व० ५)।

खट्वाङ्गपादी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोलशिम्बी। केवाँच। (बं०) आलाकुशी। (वै० निघ०)।

खट्वाबन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] सुश्रुतोक्त एक प्रकार का व्रणबन्धन। यह चार पट्टों का बना हुआ एक बंध है। 'खट्वा चतुर्बाहु पट्टकम्' (इन्दु)। इसको अँग्रेजी में फोर-टेल्ड-बाण्डेज (Four-tailed bandage) कहा जा सकता है और इसका उपयोग भी उसी बाण्डेज के स्थान पर होता है। (सु० सू० १८ अ०)।

खट्वाशयन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चारपाई पर सोना। गुण—रूक्ष-वातकर है। (सु०)।

खठपापड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] करमई नाम का प्रसिद्ध वृक्ष जिसको भाषा में अमली भी कहते हैं।

खड़—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (१) एकप्रकार का लघुतृण।

खड़क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (२) खड्यूष।

खड्यवागू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } हरीरा भेद।

खड्यूष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } यूष विशेष। धोई मूँग की दाल का रस।

निर्माण-विधि—(१) तक्र ८ तोला, शुद्ध जल २४ तोला, कपित्थमज्जा, चांगेरी, मरिच, जीरा, चित्रकमूल प्रत्येक २-२ तोला। (२) तक्र, धनियाँ, जीरा, सेंधालवण यथोचित प्रमाण में ग्रहणकर यथाविधि साधन करें। (भा०; च० द० अ० सा० चि०)।

गुण—लघुपाकी और हितकर है। (सु० सू० ४६ अ०)।
 खड़गी—संज्ञा पुं० [सं० खड़] गैडा। द्वीपि।
 खड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० खी०] खटी। खड़ियामिट्टी।
 दुधिया। सेतखड़ी।
 खड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० खटी] खड़िया मिट्टी। दे० 'खटी'।
 खड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खी०] } खटी। खड़ियामिट्टी।
 खड़ी माटी—संज्ञा स्त्री० [सं० खी०] } दे० 'खटी'।
 खड़ु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृत्शय्या। चिता। (उणा०)।
 खड़ग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोहा, लोह।
 खड़ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) गैडा। गण्ड। (२) गैडे का
 खड़गक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } सींग। गण्डशृङ्ग। (बं)
 खाग। (मे०)। (३) भटेउर। चोरक नाम का गन्धद्रव्य।
 (४) बड़ा काँसा। वृहत्काश। (५) तलवार। (रा० नि०
 व० १२, १३)।
 खड़गकोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } खड़गलता। (Scirpus
 खड़गपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] } maximus)। (श०
 च०)। पर्याय—खड़गपत्र, खड़गमार, अश्वपुच्छक।
 (श०)। खड़गाधार। (के०)।
 खड़गट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ा काँसा। वृहत्काश। तृण।
 (हारा०)।
 खड़गधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्त्रीगण्ड। गण्डकी।
 मादा गैडा। (२) छुरिका। (मे०)।
 खड़गपत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खड़ग लता। दे० 'खड़ग-
 कोष'।
 खड़गपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छुरिका।
 खड़गमांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गण्डमांस। दे० 'गैडा'।
 खड़गमृग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गैडा। गण्डक। (रा० नि०)।
 खड़गरीट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ढाल। फलक। (मे०)।
 खड़गलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'खड़गकोष'।
 खड़गशिम्बी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ससिशिम्बी।
 (रा० नि० व० ७)। (२) सोनापाठा। पृथुशिम्बी।
 खड़गक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटोरी पात्र। काटोरी।
 खड़गाधार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'खड़गकोष'।
 खड़गामिष—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गण्डमांस। गैडे का
 गोश्त। (२) महिष मांस।
 खड़गक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महिषीक्षोरफेन। भैंस
 के दुध का फेन। (मे०)।
 खड़गमार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'खड़गकोष'।
 खड़गी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गैडा। गण्ड।
 खड़गी-मांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गैडे का मांस। गुण—
 कफघ्न, कषाय, वातनाशक, पवित्र, आयुर्वर्धक, बद्धमूत्र-
 निवारक (सु०), पितृतरपक, मूत्रवन्धकारक, रूक्ष, बल-
 वर्धक, बृंहण और गुरुपाकी है। (राज०; रा० नि०, व०
 १७)। दे० 'गैडा'।

खड़गीक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दात्र। तलवार तुल्य एक
 प्रकार का अस्त्र है।

खड़डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देवताङ्ग वृक्ष। (प० मु०)।

खड़सुबुल—संज्ञा पुं० [देश०] वनस्पति विशेष। पर्याय—
 (सं०) सिम्बी; (हिं०) चम्मा, खरसुबुल, खड़ (र)
 संवल (मुहीत)। परिचय—एक भारतीय वनस्पति,
 जिसकी बेल वृक्षों पर बहुत दूर तक चढ़ती है। इसमें
 बहुत सी शाखाएँ होती हैं। प्रत्येक पतली शाखा पर
 लम्बाई लिये गोल-गोल ३-३ हरी पत्तियाँ होती हैं।
 पतली शाखाओं का रंग किञ्चित् ललाई लिए काला
 होता है। फूल का रंग अब्बासी के समान श्यामता लिए
 होता है। फली मोटी, चौड़ी और एक बिता तक लम्बी
 होती है, जिसके भीतर केवाँच के समान बीज होते हैं।
 उद्यानज तथा वनज भेद से यह दो प्रकार की होती है। दोनों
 में से किसी के बीज लाल और किसी के सफेद होते हैं।
 इसमें सेमतुल्य श्वेतवर्ण के पुष्प लगते हैं। स्वाद
 किञ्चिन् मधुर होता है। कलियों को उबाल कर बीज
 निकाल कर खाया जाता है। बीजों का स्वाद बाकला
 (कलाय) के बीजों की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होता
 है। जो सेहूँड़ के वृक्षों पर चढ़ती हैं उनका उपयोग
 अच्छा नहीं होता। इसकी पत्तियाँ शाकरूप से खायी
 जाती हैं। (मुहीत आजम)।

वक्तव्य—यह जंगली सेम का ही भेद है जो बागों में
 भी पाई जाती है। प्रकृति—शीतल, रूक्ष; मतान्तर से
 उष्ण एवं रूक्ष है। स्वाद—तिक्त, कषाय और मधुर
 होता है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—दीर्घपाकी, वाचाशक्तिवर्धक,
 नेत्रज्योतिवर्धक, बलकारक, वात-पित्तनाशक, वक्ष को
 हितकर, व्रण तथा मूत्राशयिकप्रदाहनाशक है।
 उपयोग—पत्रस्वरस प्रायः ६ तोला की मात्रा में ग्रहण-
 कर, इसमें कालीमिर्च ३ की संख्या में और ३ जवा
 लहसुन एकत्र पीसकर पान करने से तीन दिन के
 उपयोग से कण्ठमाला निश्चय नष्ट होता है। (अनुभूत)।

अहितकर—तृष्णाजनक तथा ज्वरोत्पदाक है। (मुहीत
 आजम)।

वक्तव्य—किसी के अनुसार यह आयुर्वेदीय-अपराजिता
 है। अपराजिता उष्णवीर्य, बुद्धिवर्धक तथा परम
 विषघ्न है।

खणक—संज्ञा पुं० [सं० खनक] चूहा। मूसा। मूषिका।
 आखु।

खण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) विडलवण। (२) ईख
 भेद। (३) विरिया लवण। (४) खाँड़। राब।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इक्षु विकार। खाँड़। गुण—वृष्य,
 नेत्रों को हितकर, वात-पित्तनाशक (राज०); शीतल,

बलवर्धक, मुखप्रिय, वात-पित्तहर, चक्षुओं को हितकर, श्लेष्मकारक तथा अत्यन्त वृष्य है (अत्रि० १० अ०); वान्तिहर, बलकारक, स्निग्ध, वात-पित्तहर, शीतल, नेत्रों को हितकर, बृंहण, वृष्य और मधुर है। (भा०)। 'ईख' भी देखो। (५) षण्डव । जवारिस ।

खण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] दे० 'खण्ड' ।

खण्डकन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) आलू। (Sweet-

खण्डकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } potato)। सकर-

कन्द आलू। कन्दा। (सं०) वज्रकन्द। गुण—कटु-

पाकी, कफ-पित्तनाशक। (राज० ३ प०)। (२) शाक

विशेष। (बं०) घेंटे कोल शाक। (च० द०)।

खण्डका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] यवासशर्करा।

खण्डकाद्यलौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } रक्तपित्त में

खण्डखाद्यलौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } प्रयुक्त एकयोग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—क्वाथार्थ—शतावरी, गुडूचि, अहसा की छाल; मुण्डी, बहेड़ा, तालमूली (मुसली), खदिर काष्ठ, त्रिफला, बला, भारंगी, पुष्करमूल, प्रत्येक पूषल; पाकार्थ जल ६४ शराव, शेष ४ श०; मैन-शिल, स्वर्णमाक्षिक, लौहभस्म १२ पल, शर्करा १६ पल, घृत १६ पल, एकत्र पाक करें। जब घनरूप में हो जाए तो इसमें शुद्ध शिलाजीत, दालचीनी, काकडासिंगी, विडंग, पीपल, सोंठ, जायफल प्रत्येक का चूर्ण १ पल, त्रिफला, धनियाँ, तेजपत्र इनका चूर्ण २ तो० यथाविधि मिश्रित-करें। पुनः विशुद्ध मधु २ सेर मिश्रितकर सुरक्षित रखें। अनुपात-गोदुग्ध। पथ्य-मांस-रस। (भै० र० रक्तपित्त चि०)।

खण्डकालु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } शकरकंद। खण्डकर्ण

खण्डकालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } आलुक। (श० च०)।

खण्डकूष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } रक्तपित्तमें प्रयुक्त

खण्डकूष्माण्डक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } उक्त नाम का

खण्डकूष्माण्डावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } एक योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—सुषक पुरातन पेठा ग्रहण-कर छील, बीजका घर पृथक् कर, टुकड़े-टुकड़े कर १०० पल ग्रहण करें और इसे २०० पल जल में क्वाथ करें। जब १०० पल शेष रह जाय तब वस्त्र में निचोड़ सिलपर पीसकर, उसको एक प्रस्थ घृत के साथ ताम्रपात्र में भोजित करें। जब पेठे का वर्ण मधुतुल्य हो जावे, तब उसमें १०० पल मिश्री तथा जल जो पेठा सिद्ध करने में निचोड़ कर शेष रह गया हो, मिलाकर यथाविधि पाक करें। जब पाक गाढ़ा हो जाय तो उसमें पीपल, सोंठ, जीरा दो-दो पल, तज, इलायची, तेजपत्र, मरिच, धनियाँ अर्ध-अर्ध पल चूर्णकर उसमें मिश्रितकर उतार लें। पुनः शीतल होने के पश्चात् इसमें घृत का अर्ध भाग मधु मिश्रित करें और घृताक्त पात्र में सुरक्षित रखें। गुण

तथा उपयोग—इसमें से यथाग्निबलमानानुसार सेवन करने से रक्तपित्त, क्षत, क्षयरोग नष्ट होते हैं। (र० सा० सं०)।

खण्ड खजूर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खजूरपाक तथा स्वनाम से प्रसिद्ध पक्वान्न विशेष।

खण्डखाद्य रसायन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] क्षयरोग में प्रयुक्त एक योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—अहसा की जड़ की छाल, भारंगी, गुडूची, सतावर, वच, खदिरसार, पुष्करमूल, मुषली, मुण्डी, कटसरैया की जड़ की छाल, प्रत्येक १-१ पल, २ द्रोण (३२ सेर) जल में क्वाथ करें। जब ८ वाँ भाग शेष रह जावे तब मल-छानकर, उसमें १-१ प्रस्थ घृत और मिश्री एवं रौप्यमाक्षिक के योग से भस्म किया हुआ स्वमलौह की भस्म ३ कुड़व (१२ पल) डालकर ताँवा की कड़ाही में यथाविधि पाक प्रस्तुत करें। पुनः पाकसिद्ध हो जाने पर उसमें शुद्ध शिलाजीत और धनियाँ, काकडासिंगी, वायविडंग, त्रिकुटा, त्रिफला, जायफल तथा चातुर्जात का सूक्ष्म चूर्ण, प्रत्येक २-२ कर्ष तथा विशुद्ध मधु १ प्रस्थ (३२ तोला) मिश्रितकर सुरक्षित रखें।

गुण तथा सेवन-विधि—१० माशा की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा, कास, श्वास, अर्चि, अम्लपित्त, वातरक्त, रक्तपित्त, कामला, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहुरोग, आध्मान, पक्तिशूल, कामला, कृशता एवं क्लान्ति का नाश होता है। (रस र० स० २८ अ०)।

खण्डखाद्य लेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खण्डखाद्य रसायन में वर्णित द्रव्यों के अतिरिक्त इस योग में दाल-चीनी, वंशलोचन, जीरा तथा तेजपात की अधिक योजना की गई है। शेष गुणादि सर्व समान हैं। (वृ० यो० त० ७५ त०)।

खण्डखाद्यलौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खण्डकाद्य लौह।

खण्डज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) खाँड़। खण्ड। गुड़।

खण्डजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (२) शीरखिस्त। यवास शर्करा। (रा० नि० व० १४)।

खण्डजोद्भवज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यवासशर्कराजन्य-खण्ड। तवराजोद्भव खण्ड। (रा० नि० व० १४)।

खण्डधारा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कैची। कर्तरी। (श० मा०)।

खण्डन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (२) काटना, छेदन, भेदन। (२) स्त्रीरज(बीज)स्खलन। (कामशास्त्र)।

खण्डनील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शकरकंद। कंदा। खण्ड-कर्णालुक। (र० मा०)।

खण्डपरशु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } खण्डामलक।

खण्डपशु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }

खण्डपाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लड्डू। मोदक। लेड्डूआ।
(बं०) मयरा। (हारा०)।

खण्डपाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धौ के फूल और शर्करा द्वारा निर्मित मद्य। धातकीपुष्पशर्कराजात मद्य। (वै० निघ०)।

खण्डपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्लपित्त में प्रयुक्त उक्त नाम का एक प्रसिद्ध योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पीपल चूर्ण ३२ तोला, गो घृत ४८ तोला, शतावरी रस ६४ श० (५१२ तोला) और खाँड़ १२८ तोला—सबको एकत्रकर यथाविधि पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर इसमें इलायचीदाना, दालचीनी, तेजपत्र, नागर-मोथा, धनियाँ, सोंठ, वंशलोचन, सफेदजीरा, स्याह जीरा, हरड़, आँवला प्रत्येक १-१ तोला और इनका अर्धभाग मिर्च एकत्र चूर्णकर तथा इतना ही खदिर-सार को चूर्ण कर मिश्रित करें। जब शीतल हो जाय तब इसमें विशुद्ध मधु १२ तोला मिश्रित करें। गुण तथा उपयोग-विधि—इसमें से ६ माशा वा यथोचित मात्रा में ग्रहण कर सेवन करने से अम्ल-पित्त, शूल, अरोचक, छर्दि, हृल्लास का नाश होता है और अग्नि की वृद्धि होती है। (भै० र०; रस र० अम्ल पित्त चि०)।

खण्डपिप्पल्यवलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इस योग में आँवले का रस १६ पल तथा वंशलोचन १ कर्ष की अधिक योजना की गई है। शेष द्रव्य वही हैं, जो खण्ड-पिप्पली में दिए गये हैं। (वृ० यो० त० १२२ त०)।

खण्डफण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोह्वन साँप। दर्दीकर सर्प। (सु० कल्प ४ अ०)। दे० 'सर्प'।

खण्डमोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शीरखिश्त। यवासशर्करा। तवराज। (रा० नि० व० १४)।

खण्डर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शीरखिश्त। यवासशर्करा।

खण्डराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बकुची। सोमराजी। (वै० निघ०)।

खण्डलवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बिड़लवण। (रा० नि० व० ६)।

खण्डवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हड़जोर। काण्ड-वल्ली। (२) करेला। (बं०) करला।

खण्डविकार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शर्करा। चीनी। (वै० निघ०)।

खण्डविन्दु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मण्डली सर्प का एक भेद। सर्प की एक जाति। (अत्रि० ५६ अ० ३ स्थान)।

खण्डशर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शीरखिश्त। यवास-शर्करा।

खण्डशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीनी। शर्करा। (वै० निघ०)।

खण्डशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भैंसा वेल। महिषवल्ली। (रा० नि० व० ३)।

खण्डशालुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इक्षुविकार। मिश्री।

खण्डशुण्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शुण्ठीखण्ड। अम्ल-पित्त में प्रयुक्त उक्त नाम का एक प्रसिद्ध योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुण्ठी चूर्ण ३२ तोला, शर्करा १२८ तोला, गो घृत ६४ तोला, गो दुग्ध ८ श० (५१२ तो०)। प्रक्षेपाथ पीपल चूर्ण, आमलक चूर्ण, दालचीनी, इलायची-दाना, तेजपत्र, वंशलोचन, जीरा, कृष्ण जीरा, हरीतकी, मोथा, धनिया प्रत्येक १२ माशा, मिर्च ६ माशा, नागकेशर ६ माशा सबका एकत्र चूर्णकर मिश्रित करें। पुनः इसमें विशुद्ध मधु ३ पल या २४ तो० मिश्रितकरें। गुण तथा उपयोग—६ माशा अथवा बलानुसार सेवन करने से अम्लपित्त, शूल, छर्दि, आमवात तथा हृद्रोग का नाश होता है। (रस० र०; भै० र०)।

खण्डसमचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उदररोगनाशक योगविशेष। निर्माणविधि—त्रिफला, त्रिकुटा, वेलगिरी, नागरमोथा, पीपलामूल, चित्रकमूल, दालचीनी, छोटी इलायची दाना, तेजपात, चव्य, इमली का गुदा, अम्ल-वेत, प्रत्येक १-१ भाग। सर्वसम स्वर्णमाक्षिकभस्म। पुनः सर्वसमप्रमाण मिश्री मिलाकर चूर्ण प्रस्तुत करें। सेवन-विधि तथा गुण—यथोचित मात्रा में तथा यथो-चित अनुपानयोग से मधुमिश्रितकर वा मधु में बटक निर्माणकर सेवन करने से उदररोग, ग्रहणीविकार कामला, कुष्ठ, हलीमक, पाण्डुरोग, शिरोवेदना, प्रसेक, अर्घचि, उत्क्लेश, अग्निमान्द्य, रक्तपित्त, मूच्छा, शोथ, विसर्प, आलस्य तथा संताप का नाश होता है, वलवर्ण की वृद्धि होकर स्थिरांगता प्राप्त होती है। (गदनिग्रह)।

नोट—यदि इस योग में स्वर्णमाक्षिक तक समस्त वस्तुओं के बराबर लोहभस्म और पुनः सब के बराबर मिश्री का योग किया जावे तो गदनिग्रह के पण्डवा-धिकारोक्त—'खण्डसमकम् चूर्ण' नाम का योग हो जाता है। गुण भी उसके समान ही हैं।

खण्डसूरणावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्शरोगनाशक योग। निर्माण-विधि—कूष्माण्डावलेह के समान सूरन (जिमि-कन्द) का अवलेह प्रस्तुत कर सेवन करने से बवासीर, अग्निमान्द्य तथा मूढ़वात का नाश होता है। (गदनिग्रह लेहाधिकार)।

खण्डहरीतकी—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] } रक्त पित्त नाशक

खण्डामलक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } उक्त नाम का एक योग। निर्माण-विधि—सुपक आँवलों को ग्रहणकर कपास के पत्तों के ऊपर स्थापनकर यथाविधि जल में पकाएँ। पुनः अन्य जल से प्रच्छालनकर बाँस की

सीक द्वारा छेदनकर किञ्चित् शुष्क कर लें। पुनः मिश्री की चाशनी में मिलाकर मन्दाग्नि से पकाकर मुरब्बा बना लें। गुण—इसके उपयोग से रक्तपित्त का शीघ्र नाश होता है। (वृ० योग त० ७६तरंग)।

खण्डसर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०], शीरखिशत। यवासशर्करा।

खण्डसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (रा० नि० व० १४)

खण्डसिता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मधुशर्करा।

मधुजात शर्करा। (२) मिश्री। चीनी। (वै० निघ०)।

खण्डाद्रकावलेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कासश्वासनाशक योग। निर्माण-विधि—सुकव पुरातन छिले हुए तथा उबाले हुए अदरक के छोटे-छोटे १०० पल टुकड़ों को १ प्रस्थ (६४ तोला) घृत में भर्जित करें। पुनः १०० पल मिश्री की चाशनी में मिलाकर पकाएँ। जब सिद्धपाक हो जावे तो उसमें कस्तूरी, लौंग, मुलेठी, तेजपात, पीपल, नागकेशर, दालचीनी, मोथा, सफेद जीरा, कालीमिर्च और वंशलोचन, प्रत्येक २॥-२॥ कर्ष (१०-१० माशा) चूर्णकर और मिश्रितकर पुनः पकाएँ। जब पाक सिद्ध हो जाय, तब शीतल होने के पश्चात् उसमें कस्तूरी और कर्पूर एकत्र चूर्णकर मिश्रित करें। पुनः विशुद्ध मधु २॥ कुडव प्रमाण मिश्रित कर घृतपात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा—३ से ९ माशा। गुण—इसके उपयोग से कास, श्वास, यक्ष्मा तथा जीर्णज्वर का नाश होता। (गद निग्रह ५ अवलेहाधिकार)।

खण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खाँड़। राव। खण्ड। (वै० निघ० रक्तपि० चि० कूष्माण्डावलेह)।

खण्डाभ्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

खण्डाभ्रक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वाजीकरणोक्त

उक्त नाम का एक योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—सुपक्व-मिष्ठ आमों का रस १०२४ तोला, खाँड़ २५६ तोला, गोघृत १२८ तोला, सोंठ ६४ तोला, कालीमिर्च और पीपरचूर्ण प्रत्येक १६-१६ तोला, जल २५६ तोला सबको एकत्र मिट्टी के पात्र में यथाविधि पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय तब इसमें तेजपात्र, पीपलामूल, चित्रकमूल, नागर-मोथा, धनियाँ, सफेद जीरा, स्याहजीरा, सोंठ, मिर्च, पीपर, जायफल, तालीशपत्र, दालचीनी, इलायची-दाना और केशर प्रत्येक ४-४ तोला एकत्र चूर्णकर मिश्रित करें। जब शीतल हो जाय, तब इसमें विशुद्ध मधु ६४ तोला मिश्रितकर सुरक्षित रखें।

गुण तथा उपयोग—इसमें से ४ तोला ग्रहणकर भोजन के आदि में सेवन करने से अत्यन्त शुक्र की उत्पत्ति होती है और ५०-१०० स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति प्राप्त होती है और वन्ध्यत्व का नाश हो कर वीर-पुत्र की उत्पत्ति होती है। जिसका गर्भ नष्ट होता हो,

उसको सेवन कराने से गर्भ का स्थापन होता है इत्यादि। (भैष० र०)

खण्डाभ्रक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दशन (दाँत)। छेदय के ८ प्रकारों में से एक जो प्रचण्ड वेग से रागावस्था प्राप्त होती है, तब नायक-नायिका इसका उपयोग करते हैं। इसका मुख्य स्थान स्त्री का स्तनमण्डल तथा पुरुष का वक्षस्थान है। (वा० कामसू०)।

खण्डाम्लक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

खण्डामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

खण्डामलकी रसायनम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

शूलरोग-
धिकारोक्त
उक्त

नामका एक योग। आँवले का मुरब्बा। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—सुपक्व फाल्गुन मास का आँवला ५० पल ग्रहण-कर किञ्चित् जल के साथ स्वेदन कर रेशों और बीजों को पृथक् करें और सुपक्व पेठा का गूदा ५० पल, गोघृत १६ पल, एकत्र ताम्रपात्र में भर्जित करें। पुनः इसमें शर्करा ५० पल, आमलक स्वरस ३२ पल, जल १६ शराव मिश्रित कर पाक करें। जब ४ शराव शेष रह जाय तब इसमें कूष्माण्डस्वरस ३२ पल मिश्रित कर पाक करें। जब अवलेहतुल्य हो जाय तब इसमें प्रक्षेपार्थ पीपर और जीरा ८-८ तोला, सोंठ, मिर्च ४-४ तोला, तालीशपत्र, धनियाँ और इलायचीदाना, दालचीनी, तमालपत्र, नाग-केशर, नागरमोथा प्रत्येक का चूर्ण-२-२ तोला मिश्रित करें।

गुण तथा उपयोग—१-२ तोला वा बलानुसार सेवन करने से पक्तिशूल, त्रिदोषज शूल, अम्लपित्त, छर्दि, श्वास, मूच्छा, कास, अरोचक, हृच्छूल, पृष्ठशूल, रक्तपित्त इत्यादि रोगों का नाश होता है। यह उत्तम रसायन है। (भै०; सा० को०; गदनिग्रह शूल-चि०)।

खण्डाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तेल नापने का पात्र। तैलमानपात्र (वै० निघ०)।

खण्डिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काँख। कक्ष। (हे० च०)।

(२) केसारी। केराव। खेसारी। कलाय। (भा० पू० १ भ०)। गुण—लघुपाकी, शीतल, मधुर, रुक्ष, कषाय तथा कफ-पित्तनाशक है। इसका दाल व लेपनादि में उपयोग होता है। (च० सू० २७ अ०)।

खण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खण्डशर्करा। (वै० निघ०)।

खण्डितकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शकरकंद (खण्डकर्णालु)। खार्कोण नाम से प्रसिद्ध शाक (रसेन्द्रशुद्धी)। (२० सा० सं० गिरि शान्तके)।

खण्डा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बन मूंग। वनमुद्ग।

खण्डीन्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (हे० च०)।

खण्डीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीली मूंग। पीत मुद्ग। सोना मूंग। (हे० च०)।

खण्डोपला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खड़ीशंकरा ।
 खण्डौष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ओष्ठरोगभेद । लक्षण—
 वात के प्रकोप से ओष्ठ दो भागों में विभक्त हो जाता
 है । (वा० उ० २१ अ०) ।
 खतजरह—संज्ञा पुं० [अ०] कुलफा । खुर्फा । बड़ी
 नोनियाँ ।
 खतफ़—संज्ञा पुं० [अ०] विद्युत् आदि द्वारा नेत्रों का
 चकाचौंध हो जाना ।
 खतमाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धूवाँ । धूम । (२)
 बादल । मेघ ।
 खतमी—संज्ञा स्त्री० [फा०] खत्मी । गुल खैरू ।
 खतमुलमलिक—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की मिट्टी ।
 गिले मखतूम ।
 खतर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भय, डर, आतंक । (२) किसी
 वस्तु का हृदय में स्मरण आना । दिल में खयाल गुजरना ।
 खताऽ—संज्ञा पुं० [अ०] विस्मृति । भूल । चूक ।
 खतातिमून—संज्ञा पुं० [यू०] शाहबाज ।
 खतान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शिशनाच्छादन चर्म का छेदन
 करना । खतना करना । (२) खतना करनेवाला व्यक्ति ।
 अरबी में उसको 'असीर' कहते हैं । (३) खतना करने
 का स्थान जहाँ स्त्री एवं बालकों का खतना किया
 जाता है ।
 खतानत—संज्ञा पुं० [अ०] खतना करने का व्यवसाय ।
 खतानी ।
 ख (खु) ताफ़—संज्ञा पुं० [अ०] अबाबील । परोया ।
 आफरस्तग ।
 खतालिफ़—संज्ञा पुं० [अ०] भेड़िया । गुर्ग । वृक ।
 खतीफ़—संज्ञा पुं० [अ०] यवागू । हरीरा ।
 खतू—संज्ञा पुं० [तुर्की] खू नाम का पक्षी ।
 खतूर—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खतर' ।
 खतूरफ़—संज्ञा पुं० [अ०] खतूरफ़ । अफसन्तीन ।
 खतंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कपूर ।
 खतत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) पत्रलेखन । लिखना । अंकित
 करना । लकीर खींचना । (२) सीमित करना । घेरना,
 हृदबन्दी करना ।
 खतान—संज्ञा पुं० [अ०] खतना करना । शिशनाच्छद-
 छेदन । दे० 'खतान' ।
 खतानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] खतानत । खतना करने का
 व्यवसाय ।
 खतुल् कन्न—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जौरजन्दुम' ।
 खत्ते अबय—संज्ञा पुं० [अ०] नाभिरेखा । उदर का कौड़ी
 से लेकर नाभि-पर्यन्त का श्वेत माध्यमिक चिह्न
 (खत) ।
 खत्ते इस्तवा—संज्ञा पुं० [अ०] पृथ्वी का वह आनुमानिक

माध्यमिक चिह्न जो नर्वे आकाश के बिचले चिह्न (निहारिका)
 के सदृश होता है । यह चिह्न पृथ्वी को दक्षिणी और
 उत्तरी दो भागों में विभक्त करता है । (अ०) इक्वेटर
 (Equator) । पृथ्वी की मध्य रेखा । भूमध्य रेखा ।
 नोट—पृथ्वी के उक्त चिह्न के निकट दिन-रात समान होते
 हैं । अतः इसको उक्त नाम से अभिहित करते हैं ।
 खत्ते मुतवस्सित—संज्ञा पुं० [अ०] बीच की रेखा । मध्य
 रेखा । वह रेखा जो शरीर को दक्षिण व वाम दो समान
 भागों में विभाजित करे । (अ०) मेडियन लाइन
 (Median Line), मेज़ियल लाइन (Mesial Line) ।
 खत्ते मुस्तक्रीम—संज्ञा पुं० [अ०] सीधी रेखा । सीधा चिह्न ।
 सीधा खत । (अ०) स्ट्रेट लाइन (Straight Line) ।
 खत्त—संज्ञा पुं० [अ०] शिशनाच्छेदन । खतना करना ।
 अर्थात् पुरुषों में मणिबन्धच्छेद और स्त्रियों में योनिच्छेद
 वा शुङ्ग छेदन करना । (अ०) सर्कमसीजन (Cir-
 cumcision) ।
 खत्म—संज्ञा पुं० [अ०] (१) पक्षियों की चोंच । (२) चतुष्पदों
 की धूथन । (३) नासिका की अगली नोक ।
 खत्म—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बन्ध लगाना । पट्टी बाँधना ।
 (२) ब्रण पर खुरण्ड बँध जाना । (३) मद्य भेद ।
 खत्मी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'खतमी' या 'खितमी' ।
 खतूरफ़—संज्ञा पुं० [अ०] खतूरफ़ । अफसन्तीन ।
 खदन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आहार । भोजन । खाना ।
 (रा० नि० व० २०) ।
 खदर—संज्ञा पुं० [अ०] विसंज्ञता । स्वाप । स्पर्शाभाव ।
 स्पर्शलोप । सुन्नता । किसी अंग का सुन पड़ जाना ।
 ठिठरजाना । झुंझुनाना । अंग का सो जाना । भेद—
 विसंज्ञता दो प्रकार की होती है—स्थायी और अस्थायी ।
 यदि शारीरिक शक्ति का सम्पूर्ण रूप से ह्रास हो तो स्थायी
 और वह शक्ति पूर्णरूप से क्षय को न प्राप्त हो तो उसको
 अस्थायी विसंज्ञता (खदर) कहते हैं । (अ०) एनिस्थीसिया
 (Anaesthesia), नार्कोटिज़्म (Narcotism) नम्बनेस
 (Numbness) ।
 नोट—नार्कोटिज़्म विसंज्ञता (खदर) की उस बाह्य
 दशा को कहते हैं जो किसी स्वापजनक औषध के
 उपयोग द्वारा बाह्यरूप से उत्पन्न की जाय । यथा—
 कोकीन, नोवोकेन, अहिफेन इत्यादि ।
 खदर—संज्ञा पुं० [अ०] } साधारण अर्थ निर्बलता, बल
 खदरान— " ['] } हीनता, दौर्बल्य । (अ०) टॉर्पर
 खदल— " ["] } (Torpar), टॉपिडिटी (To-
 खदलान— " ["] } rpidity), स्लगिशनेस (Slu-
 gishness) ।
 खदलाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] स्थूलबाहु तथा स्थूल पुट्टियों-
 वाली स्त्री ।

खदश—संज्ञा पुं० [अ०] त्वचा की रगड़ वा खराश। त्वचा का छिल जाना। रगड़ खाजाना। (अ०) एक्सकोरिएशन (Excoriation)।

नोट—अरबी खदश और सज का अन्तर—त्वचा के धरातल की उस अन्तरविकृति (इतसाल) को जो नवीन हो 'खदश' और जो पुरातन हो, उसे अरबी तिब्ब में 'सज' कहते हैं।

खदाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] भंगबीज। विजयाबीज। भाँग की बीजी।

खदालुजरा—संज्ञा पुं० [अ०] लाल पोस्ता। गुल्लाला।

खदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खैर। (बं०) खै। (त्रिका०)।

खदिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खैर। (Acacia Catcehu)।

खदिर—संज्ञा पुं० [अ०] स्वापकारक। विसंज्ञक। वह द्रव्य जो स्वाप (सुन्नता) उत्पन्न करे। यथा—कोकीन, नोबो-केन, अहिफेनादि।

खदिरगुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कासादि रोगनाशक योग विशेष। **निर्माण विधि**—अगर, काकड़ासिंगी, पद्म-काष्ठ, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर शिल पर पीस लें। पुनः सर्वतुल्य कत्था तथा १-१ भाग रससिन्दूर, अन्नकभस्म और स्वर्णभस्म मिश्रित करें तथा कस्तूरी और कर्पूर से सुवासित कर १-१ बल (२-३ रत्ती) प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण**—इसके उपयोग से—कफज रोग, प्रमेह, अग्निमान्द्य, अरुचि, पीनस, हिक्का इत्यादि रोगों का शीघ्र नाश होता है। (गदनिग्रह गुटि० अ०)।

खदिर गुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुखरोग नाशकयोग। **निर्माण-विधि**—जायफल, इलायचोदाना, तेजपात, केशर, लौंग, कंकोल, पुष्करमूल, दालचीनी, कच्चूर, प्रत्येक १-१ भाग, कर्पूर २ भाग, कस्तूरी, खट्टासी (जुन्दवेदस्तर) ३ भाग, खदिरसार (कत्था) ६० भाग, तथा दालचीनी ३ भाग। सबका एकत्र चूर्णकर चन्दनकाष्ठनिर्मित दण्ड से मर्दनकर सुगन्धित इत्रादि से सुवासित कर गोलियाँ बनाएँ। इसको मुख में धारण करने से मुख सुगन्धपूर्ण होता है समस्त मुखगत रोगों का नाश होता है; स्त्रीप्रसंग में आनन्द उत्पन्न होता है; मनुष्य अत्यन्त वीर्यवान् होकर कामिनियों की प्रिय होता है और सुस्वर की प्राप्ति होती है। (गदनिग्रह गु० अ०)।

खदिर-पत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अरिखदिर।

खदिर-पत्री— " " [" "] (रा० नि० व० ८)

(२) लजालू। लज्जालुका। (रा० नि० व० ५)।

(३) त्रिवली। तूलमाता। इसमें से हरिद्रावर्ण का पीतरक्त दुग्ध निकलता है 'त्रिवली तूलमाता च ताम्ना-खदिरपत्रिका, पीता हरिद्रा संकाशा रसं रक्तं

विमुञ्चति।" (२० का० धे०)। किसी-किसी स्थान में तूलमाता के स्थान में (रक्तमाला) भी पाठ है।

खदिर वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुखरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का खदिर योग। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—खदिर की छाल १०० पल, पाकार्थ जल ६४ शराव, शेष ८ शराव, यथाविधि पाक करें। जब घनीभूत हो जाय तब इसमें प्रक्षेपार्थ—जाद्वित्री, कर्पूर, सुपारी, जायफल और काकोली प्रत्येक ८ तोला एकत्र चूर्णकर मिश्रित करें और मटरप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। **गुण तथा उपयोग**—इसको मुख में धारण करने से मुखपाक तथा कास का नाश होता है। (सा० कौ०)।

खदिर वल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अरिखदिर। (हिं०) महिक फल।

खदिरवल्ली—संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] द्रुमोत्पल। (वै० निध०)।

खदिर विधान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खैर का रसायन-योगकल्प। **निर्माण-विधि**—खैर का वृक्ष जो उत्तम देश तथा भूमि में उत्पन्न हुआ हो और जो कीटादि की कृपा से सुरक्षित हो, न वृद्ध हो तथा न बहुत छोटा ही हो, ऐसे मध्य वयस्क खदिर के वृक्ष के चारों ओर की मिट्टी खोदकर पृथक् कर लें। पुनः उसकी जड़ को काटकर उसका सिरा किसी लोहनिर्मित घड़ा में डालकर इस प्रकार से रखें कि उसका रस टपककर घड़ा में एकत्र होता रहे। पुनः उस वृक्ष की जड़ के चारों ओर गोमय मिश्रित मृत्तिका से लेप कर दें। पुनः उसके चारों ओर शुष्क जंगली गाय का गोबर (कंडा) स्थापन कर अग्नि लगा दें। इस प्रकार से अग्नि के ताप से वृक्ष का रस टपक-टपक कर घड़ा में आ जाता है। जब लोह का घड़ा रस से परिपूर्ण हो जावे, तब उसको निकालकर किसी अन्य पात्र में भर कर सुरक्षित रखें।

सेवन विधि—पञ्चकर्मों से शरीर की शुद्धि करने के उपरांत इसे उचित मात्रा में घृत-मधुयुक्त सेवन कर और भल्लातकरसायन के समान आहार-विहार की व्यवस्था करें। इस नियम से १ प्रस्थ रस सेवन करने से १०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है। (सु० चि० १० अ०)।

उपर्युक्त विधान के अभाव में १ तुला खदिरसार ग्रहण-कर १ द्रोण जल में क्वाथ करें। जब १६ वाँ भाग शेष रहे, शीतल कर उसमें आँवलों का रस और मधु मिश्रितकर उचित मात्रा में सेवन करें। १ तुला पर्यन्त खदिरसार का चूर्ण वा क्वाथ यथोचित मात्रा में प्रातः काल सेवन करें। खदिरसार के क्वाथ से भेड़ का

घृत सिद्धकर सेवन करने से समस्त प्रकार के कुष्ठों का नाश होता है।

खदिरसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कत्था । खदिरनिर्यास ।

खदिर सारोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० “खैर” ।

खदिरा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] लजालू । लज्जालुका । (रा० नि० व० ५) ।

खदिराङ्गार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खदिरकाष्ठाङ्गार । खैर का कोयला ।

गुण—इसके चूर्ण से मज्जन करने से दाँत दृढ़ और स्वच्छ होते हैं ।

खदिरादि कषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेहनाशक योग ।

यथा—खदिर और सोपारी का क्वाथ सेवन करने से क्षौद्र (मधुमेह) का नाश होता है । (गद नि० प्रमेह चि०) ।

खदिरादि गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुखरोगनाशक योग । यथा—(१) जायफल, कंकोल, कपूर और सोपारी का चूर्ण प्रत्येक १-१ भाग और सर्वसम खदिरसार (कत्था) जलयुक्त खरलकर गोलियाँ बनाएँ । गुण—मुख में धारण करने से मुख रोगों का शीघ्र नाश होता है । (यो० र० मु० रो० चि०) ।

(२) कासरोगनाशक योग—यथा—खदिरसार, पुष्कर, मूल, काकडासिंगी, कायफल, भारंगी, हरीतकी, लौंग, त्रिकुटा, अतीस, धमासा, गिलोय, कंटकारी, बड़ी कटेरी, कलौजी और बहेड़ा प्रत्येक वस्तु २-२ कर्ष एकत्र चूर्ण कर, सर्वसम खदिरसार (कत्था) मिश्रित करें । पुनः अनार की छाल, कटेरी, खैर की छाल, बबूल की छाल, बबूल की पत्तियाँ, अदरक और अड़सा की जड़ के क्वाथ को ७ भावनाएँ देकर मटरप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण—इसके उपयोग से पुरातन कण्टसाध्य कासरोग (खाँसी) का नाश होता है । (यो० र० कास-चि०) ।

(३) मुखरोगनाशक योग । (खदिर बटी) निर्माण-विधि—खदिरसार १ तुला प्रमाण ग्रहणकर १ द्रोण (१६ सेर) जल में क्वाथ करें । जब केवल ८वाँ भाग शेष रहे, छानकर पुनः पकाएँ । जब गाढ़ा पाक हो जाए तब इसमें—जावित्री, कपूर, सोपारी, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, छोटी इलायची और कस्तूरी प्रत्येक १०-१० माशा (१-१ कर्ष) मिलाकर मर्दन करें । और चणक प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । गुण—इसे मुख में धारण करने से जिह्वा, ओष्ठ, शूल तथा गले की समस्त व्याधियाँ नष्ट होती हैं । (वृ० यो० त० १२८ त०) ।

खदिरादि पञ्चतिलक घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का खदिरयोग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—गोधृत ४ शराब; क्वाथार्थ—निम्बछाल, पटोलपत्र, कटेरी, गिलोय, अड़सा की छाल प्रत्येक १० पल, जल ६४ श० यथाविधि क्वाथ करें और पकाकर

८ श० शेष रखें । कल्कार्थ—खदिरकाष्ठ, अमलतास, सोंठ, पीपल, मरिच, निशोथ, चित्रकमूल, पटोलपत्र, आमला, हरीतकी, बहेड़ा, निम्बबीज, हल्दी, बकुची, कुटकी, अतीस, पाठा, त्रायमाण (अभाव में ग्वालिलता), दुरालभा, कुड़ा की छाल, करंजबीज, श्यामालता, अनन्त-मूल, इन्द्रयव, भल्लातक, विडंग तथा शुद्ध गुग्गुलु प्रत्येक २ तोला कल्ककर मिश्रित करें । यथाविधि पकाकर छानकर सुरक्षित रखें । मात्रा—२-४ तोला, १ गुण—विरेचनान्त में सेवन करने से कुष्ठ तथा विविध प्रकार का चर्मरोग और रक्तविकार शान्त होता है । (रस० र०) ।

खदिरादि पुष्प योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खदिर, प्रियङ्गु, कचनार और सेमल के पुष्पों का समान भाग चूर्ण ग्रहण-कर मधुयुक्त सेवन करने से रक्तपित्त का नाश होता है । (गद नि० रक्त पि० चि०) ।

खदिरादि योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमेहनाशक योग ।

निर्माण-विधि—खदिर, मिश्री, दारुहल्दी, मोथा, पाठा, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर चूर्ण करें । इसे गुड़ के साथ सेवन करने से प्रमेह का नाश होता है । (गद नि० प्रमेह चि०) ।

खदिरादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खदिर, निम्ब, जामुन, कुड़ा प्रत्येक की छाल का चूर्ण और सेंधानमक गोमूत्र-युक्त पीसकर लेप करने से शिर की अहंषिका शीघ्र नष्ट होती है । (वृ० नि० र० क्षुद्र रो० चि०) ।

खदिरादि वटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुष्ठनाशक योग; यथा—खदिरसार, विजयसार, निम्ब, कुटज, साल वृक्ष का सार, प्रत्येक ५० पल, २ आढ़क गोमूत्र और २ द्रोण जल में डालकर १० दिन तक बंदकर रखें । पुनः १॥ आढ़क शेष रहने पर्यन्त क्वाथ करें । फिर छान कर इसमें भिलावा, त्रिफला, विडंग, वच, चित्रक और बकुची का चूर्ण १०-१० पल, मकोय की जड़ २५ पल मिश्रितकर गाढ़ा करें और मटरप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । इसे पथ्यपूर्वक सेवन करने से कुष्ठों का नाश होता है । (गद नि० गु० अ०) ।

खदिराद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वातरोग में प्रयुक्त योग । निर्माण-विधि—खदिर, अजुन, तालीशपत्र, कुष्ठ और तिन्दुक वृक्ष की छालों के क्वाथ के साथ दुग्धयुक्त घृत सिद्धकर सेवन करने से शोथ का शीघ्र नाश होता है । (वंगसेन सं० वा० रोग-चि०) ।

खदिराष्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मसूरिकाधिकारोक्त कषाय । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—खदिर की छाल, त्रिफला, निम्बछाल, पटोलपत्र, गुड़ची और अड़सा की छाल समान भाग में यथाविधि क्वाथकर सेवन करने से मसूरिका तथा रोमान्तिकाविकार शान्त होता है । (च० द०; वृ० यो० त० १२६ त०) ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रक्तशोधक योग ।

निर्माण-विधि—खदिर, त्रिफला, नीम की छाल, पटोलपत्र तथा अड़सा समान भाग में ग्रहणकर उचित प्रमाण में क्वाथकर पान करने से रोमान्तिका, मसूरिका विस्फोटक, त्रिसर्प, कण्डू तथा कुष्ठ का नाश होता है । (वृ० यो० त० १२६ त०) ।

खदिरारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का अरिष्टकल्प । द्रव्य तथा **निर्माण-विधि**—क्वाथार्थ—खदिर की छाल ३ तुला, देवदारु ३ तुला, बकुचीबीज १२ पल, दाहहृत्दी और त्रिफला प्रत्येक ८०—८० तोला और जल ८ द्रोण में यथाविधि क्वाथ करें । जब १ द्रोण जल शेष रह जाय, तब शीतल होने पर इसमें विशुद्ध मधु २ तुला, शर्करा १ तुला (४०० तोला), घातकी पुष्प ८० तोला, कंकोल, नागकेशर, जायफल, लौंग, इलायची दालचीनी और पत्रज प्रत्येक ४-४ तोला, पीपल १६ तोला चूर्णकर एकत्र मिश्रितकर यथाविधि संधानकर किसी घृत के पात्र में स्थापनकर १ मास पर्यन्त संधानितकर रख छोड़ें । जब निर्मल रस उत्पन्न हो जाय, छानकर बोटलों में स्थापन करें । मात्रा—१-४ तोला ।

गुण—इसके उपयोग से महाकुष्ठ, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म, ग्रन्थि, कृमिविकार, प्लीहरोग, कास तथा विविध प्रकार के कुष्ठ शान्त होते हैं । (भै० कुष्ठ० चि०) ।

खदिरासव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आसव योगविशेष । **निर्माण-विधि**—खदिरसार, देवदारु प्रत्येक ५० पल, त्रिफला २ पल, दाहहृदिद्रा २५ प० और बकुची १२ प० ग्रहणकर ८ द्रोण (१२८ सेर) जल में क्वाथ करें । जब १ द्रोण (१६ सेर) शेष रहे छानकर शीतल हो जाने पर घृत के पात्र में रख उसमें पुनः निम्न द्रव्यों का चूर्ण डालकर संधान करें—

धौके फूल २० पल, विशुद्ध मधु २०० पल, मिश्री १०० पल तथा कंकोल, लौंग, इलायचीदाना, जायफल, दालचीनी, कालीमिर्च, केसर और तेजपत्र प्रत्येक का चूर्ण १-१ पल एवं पिप्पलीचूर्ण १ कुडव ।

जब संधानित होकर उत्तम निर्मल रस उत्पन्न हो जाए छानकर काँच के बोटलों में स्थापनकर डाट लगा दें ।

गुण—इसको उचित मात्रानुसार तथा अग्निबलानुसार सेवन करने से प्रत्येक कुष्ठ, हृदयरोग, पाण्डुरोग, कास, कृमिरोग, ग्रन्थि, अर्बुद, गुल्म, प्लीहरोग तथा उदर की समस्त विकृतियाँ प्रशान्त होती हैं । (गदरि० आसवा०) ।

खदिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लाही । लाख । लाक्षा । (रा० नि० व० ६) । (२) लज्जालु । लज्जालुका । (वै० निघ०) ।

खदिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बराहक्रान्ता । (प०

मु०) । (२) लज्जालु । लज्जालुका । (रा० नि० व० ५) ।

खदिरीबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अशोकबीज । (च० द०) । 'जलेन खदिरी बीजम्' ।

खदिरोदिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठरोगनाशक योग । **निर्माण-विधि**—खदिरोदक—लेप, अभ्यङ्ग, स्नान, पान तथा भोजनादि कर्मों में खैर का पानी (क्वाथ) का प्रयोग करने से समस्त त्वण्विकारों का नाश होता है । (यो० र० कुष्ठ चि०) ।

खदिरोपम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बबूल वृक्ष । वर्बूर वृक्ष । (Acacia Arabica) । (वै० निघ०) ।

(२) श्वेतकत्था । श्वेत खदिर । कदर । (र० मा०) ।

खदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] तृणभेद ।

खदुर—संज्ञा पुं० [?] गुवाक । सुपारी । पूगफल ।

खदूरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बीना । वामन ।

खद्—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० 'खुद्द'] कपोल । गाल । ह्रस्वसार । (अं०) (चीक Cheek) ।

खद्दड़—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का बिना खरदरा कपड़ा ।

खद्योत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पटबीजना । सनकीरा । जुगनू । ज्योतिरिङ्गण । (वं०) जनाकि पोका । (अम०) ।

खद्योतक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का फलविष । (मु० कल्प० २ अ०) । दे० 'फलविष' ।

खद्योतन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पटबीजना । जुगनू । (२) सूर्य । (ज०) ।

खनक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूहा । मूसा । आखु । (त्रिका०) । (२) जंगली चूहा । वन मूषिक । (वै० निघ०) ।

खनक—संज्ञा पुं० [फा०] बारतंग ।

खनकातमज्जदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] मद्यभेद । एक प्रकार की शराब ।

खनन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] फोड़ना । फाड़ना विदारण ।

खनफ—संज्ञा पुं० [यू०] गुबरीला । गोबर का काला कीड़ा ।

खनब—संज्ञा पुं० [अ०] घुटने का भीतरी भाग । जानु वा रान का भीतरी भाग ।

खनयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] फरसा । मिट्टी खोदने का फावड़ा । खन्ती ।

खनाजीर—संज्ञा पुं० [अ०] कंठमाला । गिल्लड़ । रीशखूक । (अं०) स्कॉफ्युला (Scrofula) । यह रोग प्रायः

खज्जीर (शूकर) को होता है । अतः इसरोग को 'खनाजीर' कहते हैं । यह अर्बुदतुल्य एक प्रकार का गुल्म है जो गलप्रदेश में होता है । दे० "गण्डमाला" ।

खनात दहक्रादन—संज्ञा पुं० [अ०] केशर ।

खनादिकुर् अन्फ—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का बेडौल गड्ढा जो नासिका के द्विगुण प्रमाण का होता है । यह बाह्य नासा से कंठ पर्यन्त होता है ।

खनाफस—संज्ञा पुं० [अ०] दे० "खुनफसा" ।

खनाबसः—संज्ञा पुं० [अ०] ऊँटनी । उष्ट्री ।

खनि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्वर्ण आकर । सोने की खान । पर्याय—आकर, खान, खनी, खानि । (अ०) ।
(२) गाँजा । गञ्जा । (हे०) ।

खनिक—संज्ञा पुं० [अ०] कण्ठावरोध । मुखतूक । गला घुटा हुआ ।

खनिज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खान से उत्पन्न द्रव्य ।

खनिजौषध—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } खनिजद्रव्य । रस,
खनिज द्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } उपरस, धातु,
लवण, रत्न इत्यादि । (अ०) इन्ऑर्गेनिक मेडिसिन
(Inorganic medicine) ।

खनित्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुदारी । कुदाल । पृथ्वी खोदने का अस्त्र ।

खनिसम्भव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोना । स्वर्ण । (वै० निघ०) ।

खनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'खनि' ।

खनीज—संज्ञा पुं० [अ०] मांसरस में भिगाकर नरम की हुई रोटी । दे० 'खुहम' ।

खनीफ़—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद कपड़ा । श्वेत वस्त्र ।

खनीस—संज्ञा पुं० [अ०] हशीशतुल्य अलक ।

खन्क—संज्ञा पुं० [अ०] गला घोटना । कण्ठावरोध होना । दे० 'इखितनाक' ।

खन्क-बिल वहक—संज्ञा पुं० [अ०] पासबद्ध होना । फाँसी लगाना । गले में फन्दा लगाना । (अ०) हैङ्गिंग (Hanging) ।

खन्दब्—संज्ञा पुं० [अ०] चमगादड़ । चामचिड़ी ।

खन्दकूकी—संज्ञा स्त्री० [अ०] बिसखपड़ा । पुनर्नवा ।

खन्दरीक—संज्ञा पुं० [अ०] मकड़ी । लूता ।

खन्दरीकून—संज्ञा पुं० [यू०] दे० 'खन्दीकून' ।

खन्दरील—संज्ञा पुं० [यू०; नब्ती] } जंगली कासनी का
खन्दरीली—संज्ञा स्त्री० [यू०; नब्ती] } एक प्रकार ।
(म० अ०; मो० आ०)

पर्याय—(यू०) खादरीलीइलस । परिचय—किसी के अनुसार यह जंगली कासनी का एक भेद है । इसकी पत्तियाँ हरितवर्ण की होती हैं और शाखाएँ तथा इसकी डंडी कासनी के सदृश होती हैं । किन्तु इसकी डण्डी और पेड़ बहुत छोटा होता है और फूल पीला तथा रक्ताभ होता है । इसके सर्वांग का स्वाद कटु होता है; किन्तु इसका गोंद अधिक कटु होता है ।

मतान्तर से इसके पत्ते छोटे और फूल सफेद तथा स्वाद अनुरस और किञ्चित् तिक्त भी होता है । यह काहूँ की-सी होती है । जंगली कासनी की अपेक्षा इसका स्वाद अधिक तिक्त होता है ।

किसी के अनुसार यह अज्जवान का ही एक भेद है ।

इसकी पत्तियाँ भूलुठित होती हैं और जोड़ा-जोड़ा करके डंडियों में संलग्न रहती हैं तथा उसकी अपेक्षया अधिक लम्बी होती हैं । इसकी डंडी और जड़ में अधिक लसयुक्त दूध भरा होता है । तात्पर्य यह है कि यह जंगली कासनी से एक पृथक् वनस्पति है ।

प्रकृति—प्रथम प्रकार; प्रथम कक्षा के प्रारम्भ में शीतल एवं रूक्ष भी है । गुण कासनी के समान है । इसका गोंद तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—प्रथमोक्त के गुण कासनी के समान हैं । किन्तु तिक्त स्वाद होने के कारण यह जंगली कासनी की अपेक्षया अधिक बलवर्धक है और उसकी अपेक्षया रूक्षता भी अधिक उत्पन्न करती है ।

गोंद इसका अवरोधोद्घाटक और अश्मरीभञ्जक है । यह वायु को अनुलोम करता है ।

द्वितीय प्रकार दोष (मवाद) में नफ़ज पैदा करती है तथा विलयन है । इसके दूध के उपयोग से तथा लगाने से शरीर में क्षत उत्पन्न हो जाता है । यदि इसका पञ्चांग कूटकर मधुमिश्रितकर टिकिया बनालें और पुनः पानी में पीसकर शिवत्र (वहक) के दागों पर लेप करें तो शीघ्र नष्टप्राय हो जाता है । यदि नेत्रों में परवाल उत्पन्न हो जाय तो उनको लेखनकर इसकी जड़ वा गोंद में सूई का सिरा गड़ाकर उक्त विलेखित स्थान पर लगा दिया जाए तो उसकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती ।

इसका गोंद ग्रहणकर उद्यानज कासनी के रस में घोंटकर नेत्रों में अंजन करें तो सबल (जाला) रोग का नाश होता है । इसके गोंद को ब्रणपर लगाने से दुष्टमांस कटकर स्वच्छ हो जाता है । इसके गोंद को मद्य में पकाकर सेवन करने से अतिसार का नाश होता है ।

यदि इसके गोंद को मुरझकी (बोल) के साथ पीसकर पोटली बनाकर स्त्री अपनी योनि में स्थापन करे तो रक्तस्राव होकर गर्भपात हो जाता है । इसके पत्तों के रस को अर्शाङ्कर पर लगाने से वे नष्टप्राय हो जाते हैं ।

इसकी पत्तियाँ ९ माशा खायी जावें तथा देश स्थान पर पीसकर लगा दी जाएँ तो अफई साँप का विष नष्ट हो जाता है । इसकी ७ माशा जड़ पीसकर खाने से वृश्चिकविष का नाश होता है ।

अहितकर—आँतों में क्षोभ उत्पन्न करता है । निवारण निशास्ता । मात्रा—६ से १ रत्ती तक ।

प्रतिनिधि—उद्यानज कासनी ।

खन्दरीस—संज्ञा पुं० [यू०] मद्य । शराब । (अ०) वाइन (Wine) ।

खन्दरूस—संज्ञा पुं० [अ०] मकाई, मक्का, बड़ी ज्वार । (अ०) जी मेज (Zea mays) ।

खन्दीकून—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार का मद्य जो

सुगन्धित फलों वा मधु द्वारा और पुरानी शराब से प्रस्तुत किया जाता है।

संज्ञा पुं० [फा०] मद्य विशेष । पर्याय—

(फा०) खन्दीकून । परिचय—एक प्रकार का शर्वत है जो मद्य और सुगन्धित द्रव्यों के संयोग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है अथवा मुसल्लस मधु और कस्तूरी वा मद्य के सहयोग से भी तैयार किया जाता है। कहा जाता है कि इसका आदि निर्माता फारस के ही तबीब थे। यूनानियों को इसका ज्ञान नहीं था। अतः यूनानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा के अन्त में रुक्ष है। गुण-कर्म—इसके सेवन से विशुद्ध रक्त की उत्पत्ति होती है। यह आमाशयिक शीत को दूर करता तथा पाचन शक्ति को वृद्धि करता है। शीत की अधिकता से यकृत में निर्वलता प्राप्त हो जाए तो इसके उपयोग से लाभ होता है। यह आमाशय की शीतलता को नष्ट करता है और प्लीहयकृतमाशय में रोध उत्पन्न हो जाए तो उसका उद्घाटन करता है। इसके प्रतिदिन सेवन करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। वृद्धावस्था के व्यक्तियों को इसका सेवन लाभदायक होता है। इसके निर्माण की प्रक्रिया करावादीन में वर्णन की गई है। इसके प्रस्तुत हो जाने के पश्चात् इसके दुर्गुणों को दूर करने के निमित्त फादज़हर और पानी का संयोग किया जाता है। इसके सेवन से चार्तुथिक ज्वर शान्त होता है।

खपड़ा—संज्ञा० पुं० [दिश०] गेहूँ में होनेवाला एक प्रकार का कोड़ा।

खपरिया—संज्ञा स्त्री० [?] ठिकरा, ठिकरी, कापाल।

संज्ञा स्त्री० [सं० खर्परम्] स्वनाम से प्रसिद्ध उपधातु विशेष। पर्याय—(सं०) रसक, खर्पर, दर्विका, चक्षुष्य; (म०) कलखापरी; (गु०) खापरियुं; (ब०) खापर; (फा०) संगेवसरी, संगेसुरमा, तूतियाए किरमानी, तूतियाए सोफालक; (अ०) हज़ल कुहल, तूतिया; (अं०) कार्बोनेट ऑफ जिङ्क (Carbonate of Zinc), कैलेमाइन (Calamine); (ले०) जिन्साइ कार्बोनास (Zinci carbonas); (बम्ब०) संगे-वसरी।

परिचय—नाग (सीसा) तथा स्वर्ण की खान की मिट्टी एवं प्रस्तरों (Galena or Gray antimony) से सीसा और ताँबा निकालते समय भट्टी के धुवाँकस में धुएँ के जम जाने से यह बन जाती है। इसी प्रकार राँगे और जस्ते से भी संगवसरी प्रस्तुत की जाती है। उत्तम खपरिया वह है जिसके टुकड़े और नलकियाँ सख्त हों और उनमें मिट्टी का अभाव हो। इसका औषधार्थ उपयोग शोधन के पश्चात् किया जाता है।

रासायनिक संगठन—नाग, स्वर्ण, अञ्जन तथा रजत का अवशेष जो गन्धक का यौगिक बनता है।

शोधन—(१) खपरिया ग्रहणकर मनुष्य के मूत्र वा गो-मूत्र में दोलायंत्र द्वारा ७ दिन तक पाचन करने से शुद्ध होती है। सर्वकार्यों में इसकी योजना की जाती है।

(२) कड़वी तुम्बी के स्वरस में खपरिया को ओटाने से दोषरहित शुद्ध पीतवर्ण की हो जाती है।

(३) खपरिया को तपा-तपा कर विजारे के रस में ७ बार बुझाने से शुद्ध हो जाती है।

(४) खपरिया को मनुष्य वा घोड़े के मूत्र में अथवा छाँछ तथा काँजी में पीसकर गोला बनाएँ और वैगन के आकारवाले मूसा में स्थापनकर कपडमिट्टी करें और अग्नि में फूँक दें। पुनः निकालकर पत्थर पर ढालकर पुनः तपाकर मूत्रादि में बुझाने से खपरिया को शुद्धि होती है।

शुद्ध खपरिया के गुण—इसके उपयोग से त्रिदोष, कफज-पित्तज्वर, अतिसार, क्षयरोग, नेत्रविकार तथा कामला का नाश होता है। इसके अतिरिक्त यह अत्यन्त रुक्ष है और सुन्दरवर्णकारक भी है।

अशुद्ध खपरिया के दोष—अशुद्ध खपरिया सेवन कराने से मिचली और भ्रान्ति उत्पन्न होती है। अतः अशुद्ध खर्पर का उपयोग वर्जित है।

खर्परदोषशान्ति—यदि खपरिया के उपयोग से शरीर में विकार उत्पन्न हो तो सात दिन पर्यन्त गोमूत्र पान करने से लाभ होता है।

खपरिया के भेद—ददूर और कारवेल्लक भेद से खपरिया दो प्रकार की होती है। इनमें से ददूर दलदार और कारवेल्लक दलरहित होती है। इनमें से सत्वपात-नार्थ ददूर और औषधार्थ कारवेल्लक ग्रहण करना उचित है।

नागार्जुनाचार्य के अनुसार—रसक और कलंबुक दो भेद हैं।

रसदर्पणके अनुसार—मिट्टी पत्थर और गुड़ के सदृश होने से खपरिया तीन प्रकार की होती है। इनमें—मिट्टी की आकारवाली पीली और पत्रवाली श्रेष्ठ है। गुड़तुल्यवाली मध्यम और पत्थरसदृश स्थूल खपरिया अधम है।

रसपद्धति के अनुसार—रसक तुल्य का ही एक भेद है। इसे खर्पर भी कहते हैं। जो गुण तुल्य में हैं वही गुण रसक में भी हैं—‘रसकं तुल्य भेदः स्यात् खर्परं चापितत्स्मृतम्। ये गुणास्तुल्यके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः’।

खपरिया का अग्निस्थायीकरण—जिस व्यक्ति ने खपरिया तथा पारद को अग्निस्थायी कर लिया वह

धन्य है। अग्निस्थायी पारद तथा खपरिया के सेवन से देह लोहतुल्य दृढ़ होता है।

अग्नि में स्थिर न रहना, क्षणमात्र में दह्यमान हो जाना ये खपरिया के धर्म हैं—'अस्थिरोग्निगतो त्यर्थ-दह्यते क्षणमात्रतः। तस्यस्थैर्यकरं द्रव्यं नान्यदस्तीति भूतले'।

धातुरञ्जन—खपरिया को एक मासपर्यन्त मनुष्य के मूत्र में रखने से शुद्ध ताम्र, पारद और रूपे को सुवर्ण तुल्य, रंजन करती है। 'नरमूत्रेस्थितो मांस रस को रञ्जयेद्द्रुवम्। शुद्धताम्रं रसं तारं शुद्ध स्वर्णप्रभं तथा।'।

अग्निस्थायीकरण—भूनाग (केचुँए) के ताम्र के बुरादे को केचुँएके रस में घोटकर इसके साथ खपरिया को अग्नि में रखने से खपरिया अग्निसहन योग्य होती है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय से यह अग्नि-स्थायी नहीं होती, ऐसा टोडरानन्द का कथन है।

सत्वपातन-विधि—(१) हल्दी, त्रिफला, राल, गृध्रधूम, सेंधालवण, मैन्सिल, सोहागा और भिलावाँ इनको खपरिया का १/२ भाग ग्रहणकर नीबू के रस में मर्दन कर पिण्डी बनाएँ। पुनः वृन्ताकमूषा (वैगनाकृति की घरिया) में स्थापनकर मूषा को शुष्ककर बंद करें और अग्नि में रख बंकनाल से धौंके। जब खपरिया में से श्वेत-नीलवर्ण का ज्वाला निकले तब मूषा को सड़सी से पकड़कर पृथ्वी पर इस प्रकार उढ़ेलें, कि सत्व की नाली न टूटने पावे। इस प्रकार करने से वंगतुल्य सत्व प्राप्त होता है। इस प्रकार ३-४ बार में सर्वसत्व निकल पड़ता है।

(२) लाख, गुड़, राई, हरीतकी, हल्दी, सुहागा, राल, एकत्र पीसकर इसमें खपरिया मिश्रित करें और गोदुग्ध और गोघृत का सम्पुट देकर अग्नि में रख बंकनाल से फूंकने से वंगतुल्य सत्व निकलता है।

भस्म-निर्माण-विधि—(१) खपरिया का सत्व ग्रहणकर उसमें हरिताल मिश्रितकर कहाड़ी में रख नीचे से अग्नि देवें और लोहे के मुसले से घोटते रहें। इस प्रकार करने से उत्तम भस्म प्रस्तुत होती है।

(२) खपरियासत्व ग्रहणकर उसमें पारद समानभाग में मिश्रितकर मर्दन करें और बालुकायंत्र में यथा-विधि स्थापनकर अग्नि देने से सुन्दर भस्म होती है।

(३) खपरियासत्व ग्रहणकर पत्र बनाएँ और लवण के मध्य में रख यथाविधि अग्नि देने से भस्म होती है।

गुण तथा सेवन-विधि—खपरिया की भस्म जितनी हो उतना कान्तलोह की भस्म मिश्रित करें। इसमें से ८ गुंजाप्रमाण ग्रहणकर त्रिफला के क्वाथ और तिलतैल में मिश्रितकर रात्रि भर कान्तलोह के पात्र में रख छोड़ें। इसके पश्चात् मधु से युक्त सेवन करने से मधुमेह, क्षय,

प्लीहुरोग, शोथ, गुल्म, रक्तगुल्म, प्रदर, सोम-रोग, सम्पूर्ण योनिरोग, विषमज्वर, रजःकण्ट, स्वास, हिक्का इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

वसन्तमालती इत्यादि योगों में उपर्युक्त प्रकार से शोधित खपरिया की योजना करना उचित है, अन्यथा उसके गुण की प्राप्ति दुर्लभ है।

तिब्ब के अनुसार—

प्रकृति—शुद्ध संगवसरी प्रथम कक्षा में शीतल एवं द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। **गुण-कर्म**—व्रणलेखन, संग्राही, दृष्टि-वर्धक, अग्निदीपन, नेत्रस्वस्थकारक तथा रक्षक, विकृत मल को नेत्रों में नहीं गिरने देती; नेत्र, नासिका उपस्थ, वस्ति और गुदा के व्रण को लाभप्रद और समस्त अवयवों के व्रण की पूरक है। **उपयोग**—इसका अञ्जन करने से दृष्टि की शक्ति की वृद्धि होती है और नेत्रगत व्रण शुष्क होते हैं। इसके अवचूर्णन से तथा मरहमों में मिश्रितकर लगाने से व्रण शुद्ध होकर शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। संग्राही होने के कारण संग्रहणी एवं पुरातन आन्त्रक्षत में लाभ-प्रद है।

अहितकर—अशुद्ध उष्ण एवं रुक्ष है। इसके सेवन से मलावरोध उत्पन्न होता है।

निवारण—मधु

प्रतिनिधि—तुवालखास। मात्रा—४ रत्ती से २ माशा तक। (निर्विषैल है)।

खपली—संज्ञा स्त्री० [देश खपड़ा] कफली। गोधी। एक प्रकार का कीड़ा है।

खपुट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख। नखी। व्याघ्रनख। (वै० निघ०)।

खपुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुपारी। गुवाक वृक्ष (Arecha catechu)। (२० मा०)। (२) गन्धा-विरोजा। शल्लकी निर्यास, (वा० टी० हेमा०)। (३) नागरमोथा। भद्रमुस्तक। (४) अलसक नामका रोग। (भ०)। (५) नेत्रबाला। बालक। (६) लहसुन। रसोन। (वै० निघ०)।

खपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंटहल। पनस वृक्ष। (वै० निघ०)।

खपूट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'खपुट'।

खफ़्फ़ान—संज्ञा पुं० [अ०] गदोद्वेग। हृदयोद्वेग। दिल की धड़कन। (अ०) इस्तिलाजुल्लव। (अं०) पॅल्पीटेशन (Palpitation)।

खफ़्फ़ान—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'खफ़्फ़ान'। नोट—खफ़्फ़ान और मालीखोलिया का अन्तर—खफ़्फ़ान हृदय सम्बन्धी और मालीखोलिया मस्तिष्कविकारजन्य रोग है।

खफ़्फ़—संज्ञा पु० [अ०] जंगली सरसों। खदिल बरीं।

खफरुज—संज्ञा पुं० [अ०] कुलफा। खुर्फा।
 खफाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] गुप्त करना। छिपाना। ढाँकना।
 पोशीदा करना।
 खफ्रियः—संज्ञा पुं० [अ०] उन्माद। दिवानापन।
 पागलपन।
 खफ्रीफ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) लघु। हलका। (२) वह
 औषध वा भोजन जो आमाशय में अधिक काल-पर्यन्त न
 ठहरे और क्लमोत्पन्न न करे।
 खफुल्लगुराब—संज्ञा पुं० [अ०] सद्फुल्ल ववासीर। (लु०)।
 खफूत—संज्ञा पुं० [अ०] दुर्बलकायस्त्री। पतली दुबली
 स्त्री। क्षीणवदना स्त्री।
 खफकतुल्कविद—संज्ञा पुं० [अ०] यकृतोद्वेग। यकृत का
 फड़कना। एक प्रकार का यकृत सम्बन्धी रोग है जिसमें
 यकृत में उद्वेग होता है और हृदयोद्वेग की दशा प्राप्त
 होती है।
 ख (खि, खु) फफाश—संज्ञा पुं० [फा०] चमगादड़।
 खप्रश—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ नेत्र का छोटा हो जाना।
 तिब्बी परिभाषा के अनुसार नेत्र का सहजरोग जिसमें
 कनीनिकापटल (तबक. करनियः) और नेत्र के अंगूरी
 परदा के छोटा हो जाने के कारण प्रकाशसहनशक्ति
 का ह्रास होता है। अतः इसके रोगी को रात्रि की अपेक्षा
 दिन में और मेघाच्छन्न की अपेक्षा स्वच्छ आकाश होने
 पर भी अल्प दीख पड़ता है और रोगी प्रत्येक वस्तु को
 चौंधियाकर और पलकों को संकुचित कर देखता
 है।
 खवक्र—संज्ञा पुं० [अ०] अधोवायु छोड़ना। पादना। गूज
 करना। (Frat)।
 खवचः—संज्ञा पुं० [फा०] इमली। अम्लिका।
 खब—(वि) ल—संज्ञा पुं० [अ०] उन्मत्त। पागल। दीवाना।
 मजन्नून।
 खवाल—संज्ञा पुं० [अ०] उन्मत्तता। जनूनियत। दीवानगी।
 पागलपन। उन्मत्तहोना। (अं०) आलाईनेशन (Allai-
 nation)।
 खवासत—संज्ञा पुं० [अ०] अपवित्रता। गन्दगी।
 अपवित्र होता।
 खबिल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खवल'।
 खबीज—संज्ञा पुं० [अ०] शुष्क रोटी। नानखुश्क। सूखीरोटी।
 शुष्क आपूप।
 खबीनह—संज्ञा पुं० [अ०] वाष्पीभूत मांसरस। मांस की
 यखनी (मांसरस)।
 खबीस—संज्ञा पुं० [अ०] दुष्ट, बुरा, रद्दी। (अं०) मैलिग-
 नेण्ट (Malignant)।
 खबीस्—संज्ञा पुं० [अ०] मांसरस। यखनी। शूरबा।
 खबीस्—संज्ञा पुं० [अ०] यवाग (हलुवा) भेद।

खबीस—संज्ञा पुं० [अ०] (१) खागीनह। (२) इन्द्रायण-
 लता।
 खबीसुलबैज—संज्ञा पुं० [अ०] कुक्कुटाण्ड-हलुवा। मुरगी के
 अण्डे का हलुआ। हलुवाएतुखममुरग। अण्डे का
 हलुवा।
 खब्वः—संज्ञा पुं० [अ०] खुब्बाजी।
 खब्व—संज्ञा पुं० [अ०] भुचक्कापन। खब्तीला। परेशान-
 हाली।
 खब्वर—संज्ञा पुं० [देश०] दूब। दूबर्वा।
 खभ्रान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] चील। चिल्ल पक्षी।
 खभार—संज्ञा पुं० [देश०] खँभार। गमहार। गम्भारी।
 खमखन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खिमखिम'। तरौई का
 क्षुप।
 खबणि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य। आफताब।
 खमर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) धात्वर्थ गुप्त करना वा
 छिपाना। ढाँपना। तिब्बी परिभाषा के अनुसार मद्य।
 वाइन (Wine), स्पिरिट (Spirit)।
 नोट—मद्य निजप्रभाव द्वारा बुद्धि को लुप्त करता है।
 इसी कारण इसके लिये खमर की संज्ञा दी गई है। (२)
 अंगूरी शरावकृत मद्य।
 खमरीमूजा—संज्ञा पुं० [सुर०] काकनज। (लु० क०)।
 खमरुल्हिन्द—संज्ञा पुं० [फा०] देशी शराब (मद्य)।
 खमल—संज्ञा पुं० [अ०] मद्य भेद।
 खमस्तल औराक—[अ०] मेउड़ी। निर्गुण्डो। सम्हालू।
 खमस्तुल् अगसान—[अ०] बुकमून।
 खमान—संज्ञा पुं० [नव्ती]।

एक उद्भिद जिसके यह दो भेद होते हैं—

(१) वृहत्—इसके वृक्ष दूसरे भेद की अपेक्षया वृहत्तर
 होते हैं। इसकी शाखाएँ सफेदीमायल और नरकट (नै)
 की भाँति गोल होती हैं। पत्र अखरोट के पत्र की
 तरह, पर उनसे क्षुद्रतर होते हैं और उनसे दुर्गंध
 (मुहीत और मखजन के मतसे) वा तीक्ष्णगन्ध आती
 (सकीलुल् राइहः) है। प्रत्येक शाखा में पाँच तक पत्र
 होते हैं और हर शाखा की छोर पर घुंडी (कुब्बः)
 होती है। फूल का रंग सफेद सुर्खीमायल होता है।
 फल हव्वतुल्खजरा की तरह तथा श्यामता लिये नील-
 वर्ण का और आकृति में बाल (खुशे) के सदृश होता है
 और उससे मदिरा के समान गन्ध आती है। किसी-किसी
 ने प्रमादवश इसे विल्ववृक्ष (विल, फल) समझा है।
 (मखजन; मुहीत)।

पर्या०—(अ०) खमान कबीर; (यू०) आकती;
 (ले०) सम्बुकस नाइया (Sambucus nigra, Linn)
 (अं०) कॉमन एल्डर; (Common elder)। (इट०)
 सम्बुको (Sambuco)। (सू०) सबुको (Sabuco)।

(फ्रा०) (Sureau ordinaire); (जर०) (Flieder blumen)

टिप्पणी—किसी-किसी यूनानी-अरबी-चिकित्साग्रन्थ में इसकी यूनानी संज्ञा 'अकृती' लिखी है। बुरहान में जो अकृती और खामाअकृती के विषय में लिखा है कि यूनानी भाषा में यह विल्ववृक्ष की अन्यतम संज्ञाएँ हैं, उसे प्रामादिक समझना चाहिए। इनमें से अकृती और खामा अकृती का व्यवहार क्रमशः खमान कबीर और खमान सगीर के लिये होता है। मख्जनुल् अदविया डॉक्टरों में खमान का उच्चारण खम्मान भी लिखा है। मुहीत में इसकी लेटिन संज्ञा सूकः और खजाइन में शुबूकः लिखी है। बुरहान में लिखा है कि शुबूकः विल्ववृक्ष का नाम है जिसके फल को 'बलागुंड' भी कहते हैं। परन्तु निश्चित मत वही है जिसका पूर्व में उल्लेख किया गया है।

डॉक्टरों मतानुसार वर्णन—ब्रिटेन, युरोप के बहुशः भाग, उत्तरी अमरीका और जापान में भी इसके पौधे स्वयंभू होते हैं। छोटे-छोटे फूलों के गुच्छे परस्पर मिलकर एक फूल में परिणत हो जाते हैं। फूल की ऊपरी पंखड़ियाँ दंतित होती हैं। पुष्पमध्य में ५ नरतंतु (Stamens) वा बाल होते हैं और केसर पीले रंग की होती है। स्वाद तिक्त और गंध अप्रिय होता है। (म० अ० डॉ०) ऐन्सली कहते हैं—

“The elder tree is very bushy, with numerous branches, seldom rising higher than sixteen feet, with opposite leaves, unequally pinnate, and cream-coloured, sweet scented flowers.” (M. Ind. p. 1. p. 119)

खमान कुल (Family : Dumosae.)

रासायनिक संगठन—जटामांस्यम्ल (वैलेरिएनिक एसिड), राल (Resin) और उड़नशील तैल।

इतिहास—ऐन्सली लिखते हैं कि यद्यपि मैंने सन् १८१५ ई० में इसके वृक्ष कलकत्ता के वनस्पत्युद्यान में देखा था, तथापि भारतवासियों को यह अज्ञात है। किन्तु यह ज्ञात होता है कि सीरिया और अरबनिवासी इससे भली भाँति परिचित थे और वे इसके तने की भीतरी हरी छाल को विरेचक और अवरोधोद्घाटक समझते थे। अस्तु, मख्जन और मुहीत में खमान शब्द में इसका वर्णन मिलता है। सिडेनहैन (Sydenhan) के समय में यूरोपीय चिकित्सक दस ग्रैन से ३ ड्राम की मात्रा में मद्य के साथ उक्त छाल का व्यवहार उन अवस्थाओं में जिनमें तीव्र रेचन—(Hydragogue purges) की आवश्यकता हो, करते थे। एलोपैथीय चिकित्सा में इसके फूल (Sambuci flores) और अर्क (Aqua Sambuci) का व्यवहार

होता है और यह दोनों अधिकृत वा सम्मत—ऑफिशियल हैं।

(२) क्षुद्र—एक तृणजातीय पौधा (घास) जिसका तना चौकोर और ग्रंथिल होता है। इसके पत्ते बादाम के पत्तों की तरह होते हैं। पत्र-प्रांत कटवाँ होते हैं। इसकी प्रत्येक गाँठ पर फल लगता है। इसकी गंध गंभीर (सकीलुल्राइहः) होती है। शाखांत पर घुंडियाँ भी प्रथम भेदवाले की तरह होती हैं। बीज राई के दाने के बराबर होते हैं। इसकी जड़ लंबी और उँगली के बराबर मोटी, काले और रक्त वर्ण की होती है। यूनानी चिकित्सा में उक्त जड़ ही का अधिकाधिक व्यवहार होता है। मात्र खमान शब्द से यह क्षुद्र भेद अभिप्रेत होता है। (मख्जन; मुहीत)।

पर्या०—खमान, खम्मान—नव्ती। रक्खा बसरा, खमानुल् अर्ज, खमान सगीर - अ०। खामा अकृती—यू०। बदक़ः (मुहीत), यजूकः (खजाइन)—ले०।

टिप्पणी—(१) बुरहान क्रातिअ में खामाअकृती के संबंध में जो यह लिखा है कि यह विल्ववृक्ष (विल) का नाम है, वह प्रामादिक है। खजाइन (भ० ८, पृ०, ४१७) में यजूकः को नव्ती और यूनानी भाषा का भी शब्द स्वीकार किया है और लिखा है कि यह खामाअकृती का क्षुद्र भेद है। मख्जन के रचयिता ने इसे विल्ववृक्ष लिखा है। उक्त सभी कथन प्रामादिक हैं।

(२) डॉक्टर ऐन्सली लिखते हैं कि डॉक्टर होर्सफील्ड (Horsfield) अपने जाना मेडिसिनल प्लांट्स के विवरण में हमें सूचित करते हैं कि उक्त द्वीप में सम्बूकस जाति का एक अन्य जाति का पौधा उत्पन्न होता है जिसे वहाँ 'पत्रीबुलान' कहते हैं और वहाँ के निवासी इसका 'मूत्रल' रूपेण व्यवहार करते हैं। इसके सिवाय डॉक्टर ऐन्सली इसकी एक अन्य जाति (Sambucus ebulus) का भी उल्लेख करते हैं जिसमें खमान कबीर (S. nigra) के समान गुण—धर्म होने का अनुमान किया जाता है और प्रायः जलोदर रोग में विशेषतया इसके उपयोग का निर्देश किया जाता है। अस्तु, बहुत संभव है कि यह खमान कबीर का यूनानी ग्रंथोक्त क्षुद्र भेद—खमान सगीर हो।

इतिहास—बुकरात जलोदररोग में प्रायः खमान का प्रयोग कराता था। रोगी के विरेचनार्थ वह खमान के पत्तों को पानी और दूध में उबालकर पिलाया करता था।

प्रकृति—उभय भेद रुक्ष हैं। क्योंकि लिखा है कि ये रुक्षता उत्पन्न करती हैं। प्रथम भेद उष्ण प्रतीत होता है। क्योंकि दोनों को क्लेदादि शोषणकर्त्ता (मुजप्फ़िफ़) लिखने के उपरांत इसके दूसरे अर्थात् क्षुद्र भेद को अपवादरूप से

शीतल लिखा है। अस्तु, उक्त विभेददर्शन से यह प्रतीत होता है कि प्रथम अर्थात् वृहद् भेद उष्ण होगा। एतदतिरिक्त इसके द्वितीय भेद को स्पष्टतया द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष बतलाया है जिसमें स्वल्प परिमाण में उष्णाता भी है। किंतु यह पराभूत है और शीतलता (अभिभूत) है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम भेद में उष्णता (अभिभूत) है। अहितकर—फुफ्फुस को। निवारण—मधु। ग्रह—

गुणकर्म तथा प्रयोग—वृहत्—फूल—स्वेदल, मूत्रल, ज्वररोगों में प्रयुक्त, फिरंग एवं आमवात में रसायन रूपेण प्रयुक्त और फल-छाल-मूल मृदुसारक हैं। क्षुद्र भेद—जड़ और फल विरेचन होने से शोथ में प्रयुक्त; पत्र-श्लेष्म निःसारक मूत्रल, स्वेदल, विरेचन और शोथोपयोगी होते हैं।

मात्रा—७ मा० तक।

उभय भेद शोथादि विलीनकर्ता (मुहल्लिल) हैं। इनमें वृहत्-भेद के पत्तों को पीसकर प्रलेप करने से व्रणपूरण होता है। क्षुद्र भेद दोषादि विलोमकर्ता (रादेय) है। यह पिच्छिल दोषों का मलमार्ग द्वारा उत्सर्ग करता है। श्लेष्मातिसार और तरलश्लेष्मामिश्रित पित्तविकार (मिरंहे सफ़रा) में इसके कांड और पत्र का काथ पीना चाहिये। अस्थिभ्रंश एवं अस्थिभग्न में अस्थिसंधानार्थ और उग्र कंडरावितान अर्थात् मोच आने पर इसकी जड़ का स्वरस और काथ तथा इसी प्रकार ९ मा० इसकी जड़ का चूर्ण उपयोग करने से लाभ होता है। जलोदर, कृष्णसर्प-दंश और संधिशूल में इसकी जड़ का काढ़ा मद्य के साथ सेवन करने से उपकार होता है और इससे अवरोधों का उद्घाटन होता है। *ऐन्सलीलिखित मेटेरिया इंडिका (भ० १, पृ० ११८) की पादटिप्पणी में खमानकबीर के गुणधर्म इस प्रकार लिखे हैं :—

The berries were in former times given in fevers, also in gout and rheumatism. The flowers, which have peculiarly faint and sickly odour, are chiefly used in fomentations and cooling ointments. Alibert recommends them in infusion at the commencement of inflammation of the throat. (Elemens de Therapeutic, vol. ii p. 213.)

(रस) गणहृष (मज्जमज्) करने से दंतकृमि नष्ट होते हैं। तीन दिन तक इसे (स्वरस) नाक में टपकाने (सकृत) से नेत्र की लालिमा दूर होती है। इसके काढ़े में बैठने (जुलूस) से जरायु-काठिन्य वा शोथ दूर होता, गर्भाशय कोमल हो जाता, गर्भाशय का मुंह खुल जाता और

अन्यान्य गर्भाशयिक विकारों का सुधार होता है। इसका फल-स्वरस मद्य के साथ पीने से भी उक्त लाभ होता है। इसका फलस्वरस पान करने से अथवा पक्व फलों को बालों पर मलने से बाल काले होते हैं और उनका झड़ना बंद हो जाता है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर जी के आटे में मिलाकर लेप करने से उष्ण शोथ, अग्निदग्ध (तज्जन्य वेदना अथवा) जलसंत्रास और भगंदर (नवासीर) आराम होते हैं। वकरी की चरबी के साथ इसका उपयोग करने से वातरक्त (नकरस) आराम होता है। इसकी जड़ को स्थापन (हुमूल) करने से गर्भाशयिक शूल, गुद-रोग और नाड़ीव्रण (नवासीर) आराम होते हैं। (मख्जन)। मुहीत में यह विशेष लिखा है—

“९ मा० इसकी जड़ को पीसकर संधिच्युत (जवर) स्थान एवं अस्थिभग्नस्थान पर लगाने, मोच पर बाँधने और उग्र चोट (सकृत) पर प्रलेप करने से बहुत उपकार होता है। यह आमाशय को असात्म्य है। इसके तने और पत्तों का काढ़ा पीने से श्लेष्मा और कफमिश्र अस्वाभाविक पित्त (मिरंहे सफ़रा) मलमार्ग द्वारा उत्सर्गित हो जाते हैं। इसी तरह इसके स्वरस और मूल-व्याध के उपयोग से भी होता है। इसकी जड़ और पत्तों को मद्य में पकाकर खाने से जलोदर आराम होता है। इसके सेवन से उदर से पीले रंग का द्रव खूब उत्सर्गित होता है और अवरोधों का उद्घाटन होता है।

सख्जनुल् अदविया डॉक्टरों में लिखा है—गुल खम्मान में कोई विशेष गुण नहीं होता। केवल इसका अर्क सुगंध के लिये लोशनों में पड़ता है। यह छाई (Freckles) को दूर करता है। इसके फूलों का मरहम भी बनाते हैं और वह ठंडा मुलायम करनेवाला है। आध सेर इन फूलों को आध सेर चर्बी में उवालकर छान लेते हैं।

खमानुल् अर्ज—संज्ञा पुं० [अ०] खमान का छोटा भेद।

खमाफ़ीतूस—संज्ञा पुं० [यू०] कुकरौंधा। कमाफ़ीतूस।

खमाल—संज्ञा पुं० [देश०] खजूर के फल।

खमालियून—संज्ञा पुं० [यू०] माजरियून स्याह।

खमाहन—संज्ञा पुं० [फा०] ।

खमाहान—संज्ञा पुं० [फा०] । एक प्रकार का पत्थर है। दे० 'खुमाहन'।

खमीत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) गरम रोटी। (२) भजित मांस। भूता गोश्त।

खमीर—संज्ञा पुं० [अ०] किण्व। सुराबीज। गेहूँ का चूरा गूँधकर उसमें लवण और दही मिलाने से उसमें अम्लता प्राप्त होकर सुराबीज की उत्पत्ति हो जाती है। अभिषव। पर्याय—अमीर। (फा०) खमीर तुर्श, खमीर मायः; (अ०) अजीन; (हिं०; उर्दू) खमीरा; (सं०) अभिषव; (अं०) फर्मेंटेशन (Fermentation), ईष्ट (yeast)।

निर्माण-विधि—गोधूमचूर्ण में धृत वा तिलतैल वा रोगन-जैतून और दूध वा पानी डालकर स्थापन करने से वह अम्लीभूत होकर दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। यही खमीर वा खमीरा के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रक्रिया से उसमें छोड़े-छोटे जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं और इन्हीं जीवाणुओं के कारण खमीर का निर्माण होता है।

सिरका, तेजाब और दही में अम्लता की उत्पत्ति उक्त प्रक्रिया द्वारा हुआ करती है। यदि खमीर उत्पादक वायु को रोक दिया जाए तो किसी भी मधुर पदार्थ में खमीरण की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कारण यह है कि रसायनिक प्रक्रिया द्वारा ही मधुर पदार्थ परिवर्तित होकर खमीर में परिवर्तित हो जाते हैं। यदि जबतक दुग्धादि मधुर पदार्थों में खमीरी मादा का मिश्रण न हो तब तक उनकी मधुरता पूर्ववत् बनी रहती है। उक्त नियम को आयुर्वेद में संधान तथा डॉक्टरों में फर्मेंटेशन कहते हैं। उक्त प्रकार से निर्मित खमीर को जब किसी गूँथे हुए आटे में मिला दिया जाता है तो वह घुलकर मृदु हो जाता है और पुनः उसके द्वारा जो रोटी बनाई जाती है उसको देश में खमीरी रोटी कहते हैं। खमीर के मिश्रण से रोटी फूलकर खस्तादार हो जाती है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उन उत्पादक जीवाणुओं को किण्व तथा डॉक्टर में 'रेनेट' कहते हैं।

प्रकृति—खमीर संमिश्रवीर्ययुक्त तथा द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। मतान्तर से नूतन निर्मित खमीर द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में रूक्ष है। शेखुरईस के अनुसार इसमें उष्णता, शैत्य तथा रूक्षता लवण की कमी तथा अधिकता पर निर्भर है। गोलानी के अनुसार इसमें उष्णता अभिभूत है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—कफनाशक, वाजीकर, श्वयधु-विलयन है तथा आमाशय में विकृत दोषों की उत्पत्ति नहीं होने देती। खमीर को पानी में घोलकर उसमें चतुर्थांश रोगन बनफशा मिश्रितकर गण्डूषधारण करने से गले का शोथ विलीन होता है। यदि इसमें तेल और नमक मिश्रितकर कठोर शोथपर लेप किया जावे तो लाभ होता है। इसमें मेंहदी, तेल और नमक एकत्र मिश्रितकर लेप करने से असाध्य शोथ भी विलीन हो जाता है और शोथजन्य वेदना भी शान्त हो जाती है। व्रणशोथपर खमीर पीसकर किञ्चित् उष्ण लेप करने से शीघ्र पाक उत्पन्न होकर वह फूट जाता है।

मदात्यय—यदि १॥ तोला खमीर को ७ तोला पानी में दो घड़ी तक भिगा रखें, पुनः मलछान कर इसमें ६ रत्ती से ९ माशा तक बंशलोचन का चूर्ण मिश्रित करें और ४ जौ की मात्रा से ६ रत्ती की मात्रा तक केशर पीस-

कर बढ़ा दिया करें, तो इसे पान करने से मद्य जनित खुमार उतर जाता है और तृष्णा एवं ज्वर की अधिकता इत्यादि उपद्रव शान्त हो जाते हैं। यदि खमीर में ९ माशा सिरका भी मिश्रितकर सेवन कराएँ तो पित्तज तथा प्रादाहिक अतिसार शान्त होता है अथवा खमीरयुक्त निर्मित हरीरा में थोड़ा सिरका मिश्रितकर सेवन कराएँ तो अतिसार, जो पित्त के प्रकोप से होता है, शीघ्र बन्द हो जाता है।

खमीर योग—पुदीना का ताजा स्वरस १ भाग, राई १ भाग वा १½ भाग, दोनों का तिगुना खमीर, इनको एकत्र १० गुना जल के साथ क्वाथ करें। जब अर्ध भाग शेष रह जाए, शीतलकर मल छानकर उसमें अर्ध भाग विशुद्ध मधु मिश्रितकर चाशनीकर सुरक्षित रखें।
गुण—इसके उपयोग से अजीर्ण, अग्निमान्द्य, आमाशयिक विकृति तथा कफजन्य विकार एवं आमदोष का निवारण होता है यह वाजीकर भी है।

मद्य निर्माण—यदि मीठा अनार वा अंगूर के रस में खमीर मिश्रित कर २४ घंटा रखा रहने दें तो वह मद्य में परिवर्तित हो जाता है।

अहितकर—वक्ष को। **निवारण**—कतीरा।

मात्रा—१ से ६ तोला तक।

खमीरतुल फुक्काअ—संज्ञा पुं० [अ०] खमीर: शराब जी। खमीर। यवमद्यफेण। (अ०) वीयर ईष्ट (Beer yeast)।
खमीरमायः—संज्ञा पुं० [फा०] खमीर। सुराबीज। किण्व। अभिषव।

खमीरा—संज्ञा पुं० [फा०] अल्लेह का एक प्रकार जो खण्ड वा माजूनतुल्य होता है। वह कल्प जिसमें प्रथमतः कतिपय औषधीय द्रव्यों का क्वाथ किया जाता है। पुनः उसको मलछानकर उसमें शर्करा मिश्रितकरने योग्य पाक (चाशनी) किया जाता है। इसके पश्चात् अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिश्रित किया जाता है और अन्त में उसको चूल्हा पर से उतार कर काष्ठ की दर्वी से मर्दन किया जाता है। इसका वर्ण पाकतुल्य श्वेताभ हो जाता है।

खमीरए-खशखाश—संज्ञा पुं० [फा०] पोस्ताघटित एक प्रकार का अवलेह। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—पोस्ता की शुष्क डोंड़ी १०० की संख्या में ग्रहणकर २ सेर जल में भिगा दें। प्रातःकाल १२ घंटा के पश्चात् क्वाथ करें। जब चतुर्थांश जल अवशिष्ट रह जाय तब छानकर उसमें १ सेर चीनी मिश्रितकर खमीरा की चाशनी करें। **गुण तथा उपयोग**—इसके उपयोग से उष्ण प्रतिश्याय, फुफुसगत रक्तस्राव तथा संताप शमन होता है। यह अतिरजसाव और शिरोवेदना में लाभप्रद है। पुरातन कास में भी इसके उपयोग से लाभ होता है।

मात्रा तथा अनुपान—खमीरा ७ माशा अर्कगावजवान १२ तोला वा अन्य उपयुक्त अनुपान द्वारा सेवन करें।

खमीरए-आबरेशम—संज्ञा पुं० [फा०] आबरेशमघटित एक प्रकार का अवलेह। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—कैची से कतरा हुआ आबरेशम ८४ तोला ग्रहण कर तथा काली अगर (ऊद गरक्री) ८ माशा, बालहृद्, मस्तगी, विजौराफलत्वक् (पोस्त तुरंज), लौंग, इलायची दाना, तमालपत्र (साजिजेहिन्दी), प्रत्येक १० माशा, श्वेत चन्दन १ तोला, एकत्र यवकुट्टितकर कपड़े में बाँधकर पोटली बनाएँ और अर्क गावजवान, अर्क गुल, मीठे सेव का रस, मीठे अनार का रस, मीठे विही का रस प्रत्येक २८ तोला और मघा नक्षत्र का जल ४ सेर में यथाविधि क्वाथ करें। जब $\frac{3}{4}$ भाग शेष रह जाय तब इसमें १ पाव विशुद्ध मधु मिश्रितकर खमीरा की चाशनी कर रख लें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से गदोद्वेग, हृदयदौर्बल्य, मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद तथा दिल की खव्ती दूर होती है।

मात्रा तथा अनुपान—खमीरा १॥ माशा १२ तोला अर्कगावजवान के साथ वा अन्य उपयुक्त अनुपान द्वारा सेवन कराएँ।

खमीरए गावजवान—संज्ञा पुं० [फा०] गावजवानघटित एक प्रकार का अवलेह। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—पत्र गावजवान ३॥ तोला, पुष्पगावजवान, कुट्टित शुष्क धनियाँ, श्वेत बहमन, रक्त बहमन, श्वेत चन्दन, कतरा हुआ आबरेशम, बालगू बीज, फिरंजमुखक बीज (राम तुलसी के बीज) तथा बिल्लीलोटन (बादरंजबूया) प्रत्येक १-१ तोला कुट्टितकर १२ घंटा पर्यन्त जल में भिगा कर क्वाथ करें। जब $\frac{3}{4}$ भाग शेष रह जाय मल-छान कर इसमें १ सेर चीनी मिश्रितकर खमीरा की चाशनी करें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से उन्मत्तता, मस्तिष्क की निर्बलता, दृष्टिदौर्बल्य तथा तृष्णा शान्त होती है।

मात्रा तथा अनुपान—खमीरा १ तोला, रजतपत्र (वर्क-चाँदी) में आवृतकर १२ तोला अर्कगावजवान तथा शीतल जल के साथ सेवन करें।

खमीरए गावजवान अम्बरी—संज्ञा पुं० [फा०] अम्बर तथा गावजवान घटित एक प्रकार का अवलेह। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—पत्रगावजवान ३ तोला, पुष्पगावजवान, कतरा हुआ आबरेशम, शुष्क धनियाँ, श्वेतचन्दन, श्वेत-बहमन, रक्त बहमन, बिल्लीलोटन, उस्तूखूदूस, बालगू, बीज, फिरंजमुखबीज, श्वेत तोदरी रक्त तोदरी, प्रत्येक १-१ तोला कुट्टितकर १२ घंटा पर्यन्त जल में भिगाकर क्वाथ करें। जब $\frac{3}{4}$ भाग शेष रह जाय तब इसमें १ सेर चीनी, १ पाव विशुद्ध मधु मिश्रितकर खमीरा

की चाशनी करें। पुनः इसमें अम्बर १॥ तोला, रजतपत्र ६ माशा मिश्रितकर यथाविधि मर्दन कर सुरक्षित रखें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से हृदय तथा मस्तिष्क की निर्बलता, दृष्टि की निर्बलता, गदोद्वेग, तथा उन्माद शान्त होता है। मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करनेवाले व्यक्तियों को इसका सेवन विशेष लाभप्रद है।

खमीरए जमुरंद—संज्ञा पुं० [फा०] जमुरंदघटित एक प्रकार का योग। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—श्वेत बहमन, कतरा हुआ आबरेशम, पुष्पगावजवान, प्रत्येक ३॥ माशा, अर्क गुलाब, अर्क वेदमुखक, मीठे अनार का रस प्रत्येक २॥-२॥ तोला, श्वेत विशुद्ध मधु ७ तोला, शर्वत सेव ८ तोला, मिश्री १॥ पाव यथाविधि खमीरा की चाशनी करें। पुनः शीतल हो जाने पर इसमें पन्नापिण्डी (चूर्णित जमुरंद) २ तोला, अम्बर अशहब ४॥ माशा, रजतपत्र, स्वर्णदल प्रत्येक ५॥ माशा और विचूर्णित लाजवर्द ३॥ माशा मिश्रितकर मर्दनकर सुरक्षित रखें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से गदोद्वेग, दिल की धड़कन, विस्मृति तथा हृदयदौर्बल्य का नाश होता है।

मात्रा तथा अनुपान—इसको शर्वत गावजवान वा अन्य अनुपान से सेवन कराएँ। मात्रा—७-९ माशा।

खमीरए तिला—संज्ञा पुं० [फा०] स्वर्णपत्रघटित एक प्रकार का अवलेह। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—स्वर्ण पत्र १७॥ माशा, छिद्रवर्जित मुक्ता ८॥ माशा, अम्बरअशहब १०॥ माशा, माणिक (याकूत रुमानी), लाल बदखशाँ, हरित वर्ण का पन्ना (जमुरंद), प्रत्येक ३॥ माशा, सेवका सत्व (रुब सेव), विही सत्व (रुब विही), नाशपाती, सत्व गर्जर सत्व (रुब गाजर), अनार सत्व (रुब अनार), प्रत्येक १० तोला, विशुद्ध मधु २० तोला, एकत्र मिश्रितकर मर्दन करें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से हृदयरोग और मस्तिष्कविकार शान्त होता है, हृदय तथा मस्तिष्क में पुष्टता प्राप्त होती है।

मात्रा तथा अनुपान—३-७ माशा तक अर्क माडल्लहम अम्बरी के साथ सेवन कराएँ।

खमीरए-बनफशा—संज्ञा पुं० [फा०] प्रतिश्याय में प्रयुक्त बनफशाघटित एक प्रकार का अवलेह। **द्रव्य तथा निर्माण-विधि**—गुलबनफशा १० तोला ग्रहण कर १२ घंटा पर्यन्त चतुर्गुण जल में भिगा कर क्वाथ करें। जब $\frac{3}{4}$ भाग जल शेष रह जाय मल-छान कर उसमें १ सेर चीनी मिश्रितकर चाशनी करें। **गुण तथा उपयोग**—४ तोला खमीरा १२ तोला अर्क गावजवान के साथ सेवन करने से कास, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल तथा उरोशूल नष्ट होता है और मस्तिष्क में स्निग्धता उत्पन्न होती है।

पित्तज श्वसनक सन्निपात (न्युमोनिया) में देने से लाभ होता है।

खमीरए मरवारीद—संज्ञा पुं० [फा०] मुक्ताघटित एक प्रकार का अवलेहयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—छिद्रवर्जित मोती, श्वेत वहमन, रक्त वहमन, श्वेत तोदरी, रक्त तोदरी, विल्लीलोटन बीज (तुख्म वादरंजवृमा), केशर, अम्बर अशहव, विशुद्ध कस्तूरी-प्रत्येक १ तोला, जहर-मुहरा खताई, विल्लीलोटन प्रत्येक २ तोला, गावजवान पुष्प, कुलफा बीज प्रत्येक १० तोला। प्रथम इनका बारीकचूर्ण करें। पुनः इसको अर्क गुलाब और अर्क वेदमुष्क प्रत्येक १ सेर में २ सेर चीनी मिश्रितकर यथाविधि की हुई चाशनी में मिश्रितकर खमीरा बनाएँ।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से मोतीझरा, दिल की धड़कन, गदोद्वेग, विद्वेष (वहशत) और मस्तिष्क की निर्बलता दूर होती है। अत्यन्त शामक योग है।

खमीरए मरवारीद (जदीद)—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का मस्तिष्कवलप्रद मौक्तिक योग। द्रव्य तथा निर्माण, विधि—छिद्रवर्जित मोती, श्वेत वहमन, रक्त वहमन, श्वेत तोदरी, रक्त तोदरी, विल्लीलोटन बीज, केशर, अम्बर अशहव, विशुद्ध कस्तूरी प्रत्येक २ तोला, गावजवान पुष्प, कुलफा, गुले वनफशा, प्रत्येक २० तोला, जहर-मुहरा खताई, विल्लीलोटन बीज प्रत्येक ४ तोला ग्रहण-कर बारीक चूर्ण करें। पुनः अर्कवेदमुष्क, अर्कगुलाब प्रत्येक २ सेर, चीनी १ सेर में मिश्रित कर यथाविधि चाशनी करें। फिर उक्त द्रव्यों का चूर्ण इसमें मिश्रितकर खमीरा बनायें।

गुण तथा उपयोग—इसके उपयोग से गदोद्वेग, दिल की धड़कन, मस्तिष्क की निर्बलता, आन्त्रिक-ज्वर (मोती-झरा) तथा वहशत (उन्माद) का नाश होता है।

अनुपान और मात्रा—१२ तोला अर्क वेदमुष्क एवं अर्क गावजवान के साथ १॥ मा० की मात्रा में दें।

खमीरए मरवारीद अनुसखाकल्ला—संज्ञा पुं० [फा०] मुक्ताघटित एक प्रकार का कल्प। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—मुक्ता पिण्डी १ तोला, तृणकान्त (कहूबा) पिण्डी, व्योमाश्म (संगेय शब) पिण्डी, श्वेतचन्दन चूर्ण, वंशलोचन-प्रत्येक ६ माशा, अनारसत्व (ख्वअनार), बिहीसत्व (ख्वबिही) प्रत्येक ५ तोला—प्रथम अर्क केवड़ा २० तोला, चीनी १ पाव, शुद्ध मधु ५ तोला की चाशनी करें। पुनः रजत पत्र (वर्क चाँदी) ६ माशा, स्वर्ण पत्र (वर्कसीना) १॥ माशा उपर्युक्त चूर्ण में मर्दन कर उक्त चाशनी में भली भाँति मिश्रितकर खमीरा प्रस्तुत करें।

गुण तथा उपयोग—इसके सेवन से मस्तिष्क की निर्बलता, हृदयदौर्बल्य, अतिसार की अधिकता, अत्यधिक रक्तस्रावजन्य दुर्बलता तथा सावर्देहिक दुर्बलता का निवारण

होता है। आन्त्रिक ज्वर (टायफाइड) और मसूरिका के लिए विशेष उपकारी है।

खमीलन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तन्त्रा। झपकी।

खमूर—संज्ञा पुं० [अ०] मद्य। शराब।

खम्मुल औराक—संज्ञा पुं० [अ०] निर्गुण्डी। सम्हालू। मेउड़ी।

खम्मुल अगसाने—संज्ञा पुं० [अ०] बुक्मन।

खमूलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जलकुम्भी। कुम्भिका।

खमूलिको—संज्ञा स्त्री० सं० (ले०) पिष्टिआ स्ट्रेटि ओटिस (Pistia statiotes)।

खमूलु वस्त्र—संज्ञा पुं० [अ०] दृष्टिदौर्बल्य। बीनाई की कमजोरी। नजर की कमजोरी। (अ०) सअफवस्त।

खमो—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सदावहार वृक्ष।

खम्त—संज्ञा ली० [अ०] भजित मांस। भूना हुआ गोश्त। भूना मांस।

खम्द—संज्ञा पुं० [अ०] (१) ऊष्मा की अल्पता। ज्वर का हलका पड़ जाना। बोखार का हलका पड़ जाना। (२) मूर्च्छित होना। विसंज्ञ होना। बेहोश हो जाना।

खम्मार—संज्ञा पुं० [अ०] मद्यविक्रेता। कलाल। मय-फरोश।

खम्माल—संज्ञा पुं० [अ०] भाव। अताएँ। गैशम। इस शब्द का उपयोग मिस्र में जहालमदस्पान की चिकित्सा में प्रयुक्त होता है।

खम्र—संज्ञा पुं० [अ०] दे० “खमर”।

खम्स—संज्ञा पुं० [अ०] (१) क्षुधा की अल्पता। भूख की कमी। (२) शोथ (सूजन) का कम हो जाना।

खयर—संज्ञा पुं० [देश०] कल्था। खदिर।

खयर जल—संज्ञा पुं० [अ०] बाघी। वद। (अ०) व्युबो

खयर जील—संज्ञा पुं० [,,] (bubo)।

नोट—उक्त शब्द का उपयोग वंक्षण के शोषक ग्रन्थियों के शोथ के निमित्त होता है। भाषा में इसे बाघी कहते हैं।

खयरम—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो प्रायः १॥ तोला के बराबर होता है। एक मिस्काल।

खयरमूनिय्य—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का दृष्टव्रण जो कठिनतापूर्वक शमन होता है।

खयातत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सूत से टाँका लगाना। सीना। पिरोना। (२) सीवन। टाँका। (अ०) सुच्युरेशन (Suturation)।

खयाततुल-जर्ह—संज्ञा पुं० [अ०] व्रणसीवन। जरूम में टाँका लगाना। (अ०) सुचर (Suture)।

खयार—संज्ञा पुं० [फा०] ककड़ी। कर्कटी।

खयार-चम्बर—संज्ञा पुं० [फा०] अमलतास। आरग्वध।

खयार-दस्ती—संज्ञा पुं० [फा०] जंगली ककड़ी। जंगली खीरा।

खयार-शम्बर—संज्ञा पुं० [फा०] अमलतास। आरम्बध।

खयारैन—संज्ञा पुं० [फा०, द्वि० वच०; एक व० खयार] खीरा-ककड़ी दोनों।

खयाल—संज्ञा पुं० [अ०] ध्यान करनेवाली शक्ति। यह एक मस्तिष्कीय शक्ति है जो यौगिक शक्ति (हिरस मुश्तरका) के ध्यान किये गए स्वरूपों को अभिभूत होने के पश्चात् स्मृति में सुरक्षित रखती है और यही ज्ञान-कोष है। इसका स्थान मस्तिष्क का पिछला भाग है। (अ०) थिंकिङ्ग (Thinking)।

खयाल(ध्यान)और मुतखय्यला (ध्यान करनेवाली शक्ति) का अन्तर—ध्यानावस्थित मस्तिष्क में विभिन्न स्वरूपों को ध्यानस्थ और सुरक्षित रखनेवाली शक्ति को ध्यान (खयाल) कहते हैं और उन स्वरूपों से सम्बन्ध रखनेवाले असंपूर्ण अर्थ (मानेजुज्यः) में भिन्नता दर्शानेवाली शक्ति को ध्यानकारिजी शक्ति (कुवत मुतखय्यलः) कहते हैं।

खयालात—संज्ञा पुं० [अ०, बहुव०] नेत्रों के सामने विभिन्न प्रकारक छोटे-छोटे विंदु (नुकता), छोटी वस्तुएँ—मशक, मक्षिका इत्यादि का दर्शन होना। पर्याय—(अ०) अखीतः, जौबः; (फा०) चश्म खयालात; (हिं०)। आँख के तिर-मिले। विभिन्न दृष्टि; (अ०) मस्सी वॉलिटैण्टोज (Musce Volitantes)।

नोट—खयालात (विभिन्न दृष्टि) के २ प्रकार हैं—(१) जो काँच (मुंजिरह) अर्थात् मोतियाविन्दु (नजूलु-ल्माड) उत्पन्न करने का भय उत्पन्न करते हैं। (२) वह जो मोतियाविन्दु उत्पन्न होने का भय नहीं उत्पन्न करते, इसके विरुद्ध किसी अन्य दशा से सम्बन्ध रखते हैं। इसी प्रकार की विभिन्न दृष्टि को डॉक्टरों में 'कसरुल् वस्त' निकट दृष्टि (Myopia) का लक्षण समझा जाता है।

खयालात मुंजिरह और गैर मुंजिरह का अन्तर—विद्वद्गुरु अर्जानी का कथन है कि खयालात मुंजिरह प्रायः एक ही नेत्र में होते हैं; जबकि अन्य पटलों तथा नेत्रजली-यांश में कोई अन्य प्रकार की विकृति वा रोग का अभाव हो। यदि उभय नेत्रों में भी हो तो एक के पश्चात् अर्थात् आगे-पीछे होते हैं। इसके विरुद्ध जिन 'खयालात' को ६ मास व्यतीत हो चुके हों और मोतियाविन्दु की उत्पत्ति न हो तो प्रायः गैर मुंजिरह होते हैं। खयेत-मुल्मलिक। दे० "खवातिमुल्मलिक"।

खर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) यवास। दुरालभा। (रा० नि० व० ४)। (२) नख नाम का गन्धद्रव्य। (वै० निघ०)। (३) काँक पक्षी। कङ्क पक्षी। (४) कुरर पक्षी। (५) कौवा। काक। (रा० नि० व० १९)। (६) खच्चर। अश्वत्तर। (७) गदहा। गर्दभ।

वि० [सं० त्रि०] तेज। तीक्ष्ण। (अम०)।

खर—संज्ञा पुं० [फा०; सं० खर] गदहा। गर्दभ।

खरअ—संज्ञा पुं० [अ०] मल। विष्टा।

खरउज्जफादअ—संज्ञा पुं० [अ०] काई। शैवल।

खरउल् असाफ़ीर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) चटक बीट। चिड़ा का विष्टा। (२) उश्नान।

खरउल् हसाम—संज्ञा पुं० [अ०] जौरजन्दुम।

खरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खेतपापड़ा। धमगजरा। क्षेत्रपर्पटक। (रा० नि० व० ४)। (२) छोहारा। पालेवत।

खरक—संज्ञा पुं० [फा०] आक। मदार। अर्क। दरखत दरनाक।

खरकतान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बाँदा। वृन्दाक। (२) आकाशवेल।

खरकत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] लहरे की जाति का एक पक्षी।

खरकाष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बरियारा। खिरेटी। बला।

खरक्री—संज्ञा स्त्री० [अ०] काबुली मटर। काबुली कलाय।

खरकुटि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाउबाड़ा। नापित-

खरकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शाला। नापित बाड़ी। वह स्थान जहाँ नाई बाल मूड़ते हैं। (त्रिका०)।

खरकुशत—संज्ञा पुं० [फा०] (१) खारकुशत (ब्लूचिस्तान)। (२) इन्द्रायण।

खरकोण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तीतर। तित्तिर पक्षी। (हे० च०)।

खरकोर—संज्ञा पुं० [फा०] गोरखर।

खरक्काण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'खरकोण'।

खरखुदा—संज्ञा पुं० [फा०] गिंजाई। ग्वालिन। गिंजई नाम का बरसाती कीड़ा।

खरगद्वि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देवताङ्ग वृक्ष।

खरगन्धनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुलसकरी।

खरगन्धनिभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गेजेरन। नागबला।

खरगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (रा० नि० व० ४)। (२) वनतुलसी। (वै० निघ०)।

खरगोश—संज्ञा पुं० [फा० खर=गर्दभ+गोश=कर्ण]

विलेशयमृगविशेष। पर्याय—(सं०) शश, शशक,

लम्बकर्ण, वनाखु, लोमकर्ण, शूली; [हिं०] शशा,

लकहा, खरहा; खरगोश; (ता०) चेबुल पिल्लि; (फा०)

खरगोश; (अ०) कुवाम, गौज, अनंन, अनंन-बरी, नमूर;

(सुर०) अनंन (य), लाउसी (मखजन), लागोरस

(मुहीत); (तुर०) दशशान (मखजन), दोशान (मुहीत);

(यू०) अगुस, गरसावस, (मखजन), गुरुसावस (मुहीत);

(बरबरी) बाबरस्त (मुहीत); (इब्रानी) अरः

(मुहीत); (द०) खरगोश; (ता०) मोंसेल; (अ०) हेयर (Hare), रैबिट (Rabbit); (फ्रांस) लीव्रे (Lievre); (ले०) लीपस रुफिकाउडेटस (Lepus ruficaudatus, Geoff) मूषिकादि कुल।

तिब्ब के ग्रंथों में इसके निम्न पर्याय भी आए हैं; यथा—खुज्ज, कामूस, अर्नब, खुज्जज, खुज्जरान इत्यादि।

टिप्पणी—मतान्तर से मादा को अर्नब और नर को खुज्ज कहते हैं और जंगली चूहे को भी कहते हैं। अर्नब का बहुवचन 'खुज्जरान' है। मुहीत में खुज्ज का अर्थ खरगोश लिखा है। कामूस में खुज्ज का बहुवचन-खज्जान और अखज्ज; लिखा है। मुहीत में खरगोश की तुर्की संज्ञा दोशान और मख्जन में दरशान लिखी है; परन्तु कञ्जुल्लुगात तुर्की में उसकी जगह नावशान लिखा है। तालीफशरीफी में इसकी हिन्दी संज्ञा ससा और मुहीत एवं खजाइन के मत से अनुभूत-चिकित्सासागर में भी सस्सा और मख्जन में ससा, ससः और खरहा लिखी है। कुवाअ खरगोश के लिए और खरगोशी वा खरही के लिए कुग-अनतः अरबी संज्ञा आती है। कुवाअ का अर्थ शब्द करता हुआ भेड़िया है। मुहीत में इसकी लेटिन संज्ञा लाबरः लिखी है जो शुद्ध 'लीव्रे' है। मख्जन और मुहीत में इसकी अरबी क्रमशः नमूर व नमूज लिखी है। स्यात् यह खुज्ज का अपभ्रंश है। मख्जन और मुफरदातनासिरी में अर्नबबरी और मुहीत एवं खजाइन में खरगोश और मुहीत एवं तालीफशरीफी में शशा शब्द से इसका वर्णन आया है।

परिचय—एक प्रसिद्ध जानवर है जिसकी कान गदहे की कानके तुल्य लम्बी होती है और पिछले पाँव की अपेक्षा अगले पाँव छोटे होते हैं। मतान्तर से इसकी मादा स्त्रियों की भाँति मासिकधर्म होती है और मादा एक वर्ष के पश्चात् पुनः नर हो जाती है और पुनः नर रहकर दूसरे वर्ष में मादा हो जाती है जो अंशतः मिथ्या है। सत्य यह है कि इसका नर एक वर्ष तक मस्त रहता है और दूसरे वर्ष मादा मस्त रहती है। तात्पर्य यह है कि इसके सम्बन्ध में कतिपय कल्पनाएँ की गई हैं। खरगोश को हरी दूब अत्यन्त प्रिय है। यह गन्ना की पत्तियों को भी बड़ी रुचि के साथ खाता है। कहते हैं कि इसकी बीमारी बाँस के पत्तों के खाने से दूर हो जाती है। यह इतना भीरु होता है कि मनुष्यों के दर्शन मात्र से भयभीत होकर भाग जाता है।

मांस-गुण—दीपन, त्रिदोषनाशक तथा कास-श्वास नाशक है। (रा० नि० ब० १७)। शीतल, लघुपाकी, धारक, रुक्ष, स्वादिष्ट, वातपित्तघ्न, वातरोग तथा

उज्जरातिसार में सदैव हितकर है। (भा० पू० १६)। जंगली खरहा का मांस श्रेष्ठ, दीपन, लघुपाकी, तर्पक, वृष्य, बलवर्धक, त्रिदोषनाशक, रुचिप्रद, उवर, पाण्डुरोग, गुदरोग, राजयक्ष्मा कास तथा अतिसार रोग में हितकर है। (अत्रि २० अ०)। मतान्तर से इसका रुधिर श्वास (दमा) का अमोघ औषध है। इसका अण्डकोष शुष्क-कर कटिप्रदेश में बांधकर मैथुन करने से शुक्रस्तम्भन होता है। कृष्ण शशक की अपेक्षा श्वेत शशा का मांस श्रेष्ठ होता है।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—तृतीय कक्षा के प्रथमांश में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में स्निग्ध; कृष्ण शशक का मांस रुक्ष है। (अन्ताकी)। मतान्तर से द्वितीय कक्षा के प्रथम में उष्ण एवं तृतीय कक्षा में स्निग्ध है। श्वेत तुर्की का मांस अत्यन्त उष्ण एवं अल्प रुक्ष और शीतल है, ऐसा प्रसिद्ध है। यूनानी चिकित्सकों के अनुसार इसका मांस अंगवध (मफ़लूज) एवं शीतल प्रकृति के व्यक्तियों को तथा शीतजन्य रोगों में लाभप्रद है।

अहितकर—मांस—वायुकारक और उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को अहितकर एवं शिरःशूल उत्पादक है। इसका भेजा (मस्तुलुंग) आमाशय के लिए अधिक अनुपयुक्त है—कफ एवं सान्द्रदोष उत्पन्न करता है। इससे अरुचि उत्पन्न होती है और क्षुधा कम हो जाती है। इसके मांस का निरन्तर सेवन अहितकर है। निर्वल आमाशय के व्यक्तियों को अपथ्यकर एवं दीर्घपाकी है; किन्तु बलवान् आमाशय के व्यक्तियों को इसका सेवन उचित हो सकता है। इसका भोजित मांस (कबाब) दीर्घकाल पर्यन्त अपक्वावस्था में आमाशय में पड़ा रहता है। अतः कभी उदराघ्मान, उत्क्लेश तथा वमन उत्पन्न करता है। सम्भवतः, विशेषतः भोजनोत्तर सेवन करने से उक्त विकारों के प्रकट होने की अधिकाधिक संभावना रहती है।

इसके सेवन से प्रायः शीतल प्रकृति के व्यक्तियों में विस्मृतिरोग उत्पन्न हो जाता है।

निवारण—सिरका, कासनी, सोआ, घी, खटमीठा अनार, दधिमस्तु, छाँछ, पुदीना, राई, लवण, गरम मसाला इत्यादि से इसके दोषों का निवारण होता है। भोजनोपरांत मद्यपान भी हितकर है। जलपिप्पली भी इसका निवारण है।

मात्रा—बलानुसार।

गुण-कर्म तथा उपयोग—मांस—इसका मांस कलिया की भाँति पकाकर तथा कबाब बनाकर और गरम मसाला तथा अन्यान्य उष्ण, सुगन्धित एवं बलप्रद औषधियाँ मिश्रितकर खाने से—पक्षवध (फालिज), अर्दित, अंगसाद, शून्यता (खद्व), कम्पवात तथा अन्यान्य शीत-जन्य रोगों तथा वातव्याधियों एवं वातरक्त, आमवात

प्रभृति रोगों का नाश होता है। इसका भोजित मांस खाने से आन्त्रगत व्रण का नाश होता है। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र तथा शय्यामूत्र रोग का निवारण होता है। इसके खाने से मल और रक्त की उत्पत्ति अल्प होती है।

अहितकर—इसके खाने से जो रक्त बनता है, वह वृष (बैल) एवं महिष (भैस) के रक्त की अपेक्षा सान्द्र होता है। इसे अधिक दिनों पर्यन्त खाने से चातुर्थिक ज्वर का प्रकोप होने लगता है।

निवारण—उक्त दोष निवारणार्थ—घृत, नवनीत तथा जैतून के तेल के साथ भली भाँति पकाकर और पाक काल में सोडा डाल दिया करें। सिरका तथा काँजी भी इसके साथ मिलाने से उसके दोषों का निवारण होता है। कासरोगियों को इसका सेवन अहितकर है।

शशाण्ड—नर खरहा के अण्डकोषों को नमक लगाकर शुष्क करे और बारीक चूर्णकर नस्य ग्रहण करने से अर्दित रोग का नाश होता है। मात्रा—१२ रत्ती। यदि स्त्री के गर्भाशय में अमरा (खेड़ी) शेष रह गई हो तो इसे रोगन सुदावके साथ खिलाने से वह पतनाभि-मुखी हो जाती है।

योनि—मादा खरगोश की योनि पकाकर खाने से वन्ध्या गर्भधारण के योग्य हो जाती है।

विष्टा—मादा की विष्टा (मैगनी) स्त्री की योनि में स्थापन करने से गर्भस्थापन होता है। विष्टा तथा मांस १॥॥ माशा से ३॥ माशा तक प्रतिदिन मद्य के साथ सेवन करने से निरन्तर मूत्रस्राव (सलसुलबौल) तथा शय्या-मूत्र दोष का निवारण होता है। इसकी विष्टा योनि में स्थापन करने से स्त्री वन्ध्या हो जाती है। इसकी धुनी रक्तांश में उपयोगी है।

मस्तुलुङ्ग (भेजा)—यदि किसी रोगोपरान्त किसी व्यक्ति को कम्पवात हो तो इसका भेजा भोजितकर सेवन करने से उपकार होता है। बालकों के मसूढ़ों पर इसका भेजा मलते रहने से सुखपूर्वक दाँत निकल आते हैं और किसी प्रकार का दन्तोद्भेदकालीन कष्ट नहीं होता, यह इसका विशेष प्रभाव है। इसके भेजा को जतून के तेल में पकाकर शरीर में अभ्यङ्ग करने से कीट पतंगादि पास नहीं आते।

इसका भेजा २ रत्ती प्रमाण में ताजा दूध के साथ निरन्तर सप्ताह पर्यन्त सेवन करने से बाल सफेद नहीं होते।

नेत्र—शशा के दोनों नेत्रों को पास रखने से उसके प्रभाव से अन्य व्यक्तियों में प्रतिष्ठा स्थापित रहती है।

वसा—शशा की चरबी लगाने से बालों का गिरना तथा मुँह का फटना बंद होता है।

शशास्थि—खरगोश की हड्डियों की भस्म निर्माणकर लेप करने से कण्ठमाला तथा अञ्जीरनियों का नाश होता है। वातरक्त के रोगी की वेदना जो पैरों में होती है, इसके सेवन से निवृत्त होती है। (मु० ना०)।

शशक मूत्र—खरगोश का मूत्र नेत्रों में डालने से नेत्रों की ज्योति तीव्र होती है। इसके टखने की हड्डी पास रखने से दृष्टिदोष का भय नहीं होता।

शशकरुधिर—खरगोश का ताजा रक्त मलने से शिवत्र, झाँई, ठयङ्ग तथा शिर की फुंसियाँ, जिनसे सफेद पानी बहा करता है, आराम होती हैं। इसका रक्त किञ्चित् गरमकर पान करने से प्रवाहिका, आन्त्रव्रण तथा जोर्णातिसार का नाश होता है।

इसके बच्चे को जन्मतेही बधकर उसके रुधिर में वस्त्र भिगाकर शुष्क करें। इसे माता के दूध में घोलकर पिलाने से बाल अपस्मार (बच्चों की मृगी) का नाश होता है। इसका रक्तपान करने तथा शरीर पर लगाने और मांसरस का सेवन कराने से मोतीझरा का नाश होता है। (ख० अ०)।

✓ **शशकशिशु भस्म**—खरगोश के बच्चे को समूचा घड़ा में रखकर अन्तर्धूम भस्म करें। इसे उचित मात्रा में सेवन करने से वृक्षाश्मरी (गुरदों की पथरी) भग्न होकर मूत्रमार्ग से उत्सर्गित होती है।

इसके बच्चे का उदरविदारण कर उसके आँतों की आलाइश निकालें और यथाविधि भस्म करें। इसे गुल रोगन में मिश्रितकर खल्वाट पर (ललाट) लगाने से पुनः बाल जम जाते हैं। (मखजन, मुहीतू, खजाइन)।

व्वाय—इसके काढ़े में बैठाने से आमवात तथा वातरक्त में उपकार होता है।

शशक केश—खरगोश के बालों को जलाकर जैतून के तेल में मिश्रितकर अभ्यङ्ग करने से शीतजन्य हस्त-पाद की शीतलता दूर होती है। इसके बालों को अंडे की सफेदी के साथ लगाने से रक्तस्तम्भन होता है।

✓ **शशकपाद**—खरगोश की टांग कटिप्रदेश में बाँधकर स्त्री मैथुन कराए तो जब तक इसका पैर स्त्री से बाँधा रहता है, वह गर्भवती नहीं होती, यह इसका विशेष प्रभाव है।

पनीरमाया—इसके उपयोग से बालापस्मार अर्थात् उम्मुस्सिव्यान का नाश होता है। इसको ऐसी स्थिति में शिशु को देवे जब उसके पेट में दूध न हो, तो बालकों की मृगी (अपस्मार) तथा स्वप्न में भयभीत होने का दोष निवारण होता है।

इसे ऋतुस्नानोत्तरकाल में ३ दिन पर्यन्त निरन्तर योनि में स्थापन करने से तथा २॥ माशा केवल नित्य सेवन करने से स्त्री गर्भ-धारण के अयोग्य होती है।

मद्य के साथ पान करने से चातुर्थिक ज्वर का नाश होता है तथा ३॥ माशा चना के पानी के साथ सेवन करने से बस्तिगत सान्दीभूत रक्त द्रवीभूत होकर मूत्रावरोध मिट जाता है ।

(१ कोरात) से २॥ माशा तक अंगूरी सिरका के साथ सेवन करने से अपस्मार का नाश होता है और आमाशयगत सान्दीभूत दुग्ध द्रवीभूत हो जाता है ।

यह सर्पविष तथा मादक विषौषधों का निवारक तथा समस्त प्रकार के विषों का अगद है ।

शशक चर्म—खरगोश की खाल शरीर पर मृगशाला की भाँति धारण करने से शरीर की उष्मा स्थिर रहती है और शीतजन्य दोषों का निवारण होता है ।

शशक पित्त—खरगोश के पिराशय को जैतून के तेल में मिश्रित कर उपयोग करने से ऊर्ध्वश्वास, दमा, तथा कृच्छ्रश्वासजनित कष्ट दूर होता है । इसके पीने से शीघ्र ही निद्रा आती है और जब तक नहीं पिलाया जावे वा नाक में नहीं टपकाया जावे तब तक निद्रा भंग नहीं होती ।

इसके पित्त को कुन्दुर और सुदाव के चूर्ण में मिश्रितकर गोलियाँ बनाएँ और मद्य के साथ सेवन कराएँ तो तत्क्षण निद्रा आती है । मद्य के साथ पान करने से भी उक्त लाभ होता है । इसका निवारण सिरका है ।

इसके पित्त का अंजन करने से नेत्रकण्डू तथा चक्षुस्त्राव बंद होता है ।

इसके पित्ता को मक्खन के साथ मिश्रित कर योनि में स्थापन करने से गर्भ की स्थापना होती है और योनिगत विविध स्त्रावादिजनित दोषों का निवारण होता है ।

शशक यकृत—खरगोश की कलेजी भोजितकर उसका रस पान करने से शिशुओं का पार्श्व-शूल एवं श्वास कष्ट (डब्बा) का नाश होता है ।

प्राचीन वैद्यों के अनुसार शशकमाँस—शीतल, लघुपाकी, विष्टम्भे, कृच्छ्रश्वास, कास एवं रक्तविकारनाशक है । इसका प्रत्येक अंग औषध में प्रयुक्त है । यह चित्त-प्रसन्नकारक, शुक्रल, वाजीकर, कामोद्दीपक, ज्वरोत्तर-कालीननिर्बलतानिवारक, जीर्णप्रमेहनाशक, ज्वर, तृष्णा, सन्निपात ज्वर, तथा रक्तातिसारनाशक एवं वक्तृत्वशक्ति-प्रदानकारक है ।

विष्ठा—खरगोश की मैगनी की जो छोटी टिकिया के आकार की होती है, धूनी देने से वातजार्शजन्य वेदना शांत होती है । इसका धूम्र पान करने से उदराध्मान एवं उदरशूल का शीघ्र नाश होता है तथा पुनः पुनः अपान वायु का उत्सर्ग होता है । शूल का यह अमोघ परीक्षित उपाय है ।

खरगोश दरियाई—संज्ञा पुं० [फा०] अर्नबहरी । जलशशक । (दे० 'खरहा दरियाई' लेखक) ।

खरगशनः—संज्ञा पुं० [फा०] बारतंग ।

खर गृह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) गर्दभशाला ।

खर ग्रह—संज्ञा पुं० ["] (१) गर्दभ गृह । (२) घर । गेह । (श० र०) ।

खरघातन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नागकेशर वृक्ष । (श० च०) ।

खरचलू—संज्ञा पुं० [फा०] वनस्पति मूल ।

खरचंग—संज्ञा पुं० [फा०] केकड़ा । कर्कट ।

खरच्छद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उलूक नाम का वृण ।

उलूखड़ । (२) इत्कट नामका क्षुप । उकड़ा । ईकड़ ।

(२० मा०) । (३) कुन्दुरु वृण । (रा० गि० व० ८) ।

(४) भूमिसह वृक्ष । (भा०) । (५) सागवन ।

शाक वृक्ष । (बै०) शेगुन गाड़ । (६) सिंहोर । शाखोट

वृक्ष । (वं०) श्याउड़ागाछ । (७) लाल लटजीरा । लाल

अपामार्ग । रक्तापामार्ग । (वै० निघ०) ।

खरच्छदा—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) त्रिपुरमल्लिका ।

वृत्तमल्लिका (५० मु०) । (२) चिल्ला । चिल्लीशाक ।

चिविल्लिका । (रा० नि० व० ५) ।

खरजहरः—संज्ञा पुं० [फा०] (१) कनेर । करवीर ।

कनइल । (२) बिच्छू । अकरव । (३) जनव ।

खरजहरएकिरमानी—संज्ञा पुं० [फा०] इन्द्रायण भेद ।

(बु० क०) ।

खरजाल—संज्ञा पुं० [फा०] कलुआ । कच्छप ।

खरजूर—संज्ञा पुं० [सं० खज्जूर] खजूर ।

खरटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] राँगा । वंग । रङ्गधातु ।

(वै० निघ०) ।

खरताल—संज्ञा पुं० [फा०] (१) हरताल । (२) अन्न ।

(गल्ला) भेद ।

खरतिक—संज्ञा पुं० [अ०] खर्वक ।

खरतुआ—संज्ञा पुं० [देश० खरं+बथुआ] बथुए का बड़ा भेद ।

खरतुव्वक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लजालू । लज्जावन्ती । (भा०) ।

खरतू—संज्ञा पुं० [अ०] कालो कुटकी ।

खरतूनी—संज्ञा स्त्री० [योरप] हाथीसुंड़ी । हस्तिशुण्डी ।

खरत्वक्—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] पानी का लजालू ।

अलम्बुषा । लजालुका भेद । (भा०) ।

खरदण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमल । पद्म ।

(२) पृथ्वी । धरणी ।

ख (खि) रदल—संज्ञा स्त्री०, पुं० [अ०] राई । छोटा सरसों ।

खरदला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्यामलता । काली-सर । (२) कठुमर । काष्ठोदुम्बर । (श० च०) ।

खरदा—संज्ञा पुं० [देश०] अंगुर का एक रोग है ।

खरदूषण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धतूर। धुस्तूर।
(२) फल। (श० च०)।

खरधन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुलसकरी।
गंगेरन। नागवला।

खरधन्विका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरख चौलाई।
गोरक्षतण्डुली। (वं०) गोरक्षचाकुले। (प० मु०)।

खरनाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आत्रेयसंप्रदाय के एक
अत्यन्त प्राचीन कायचिकित्सक। उनकी लिखी खरनाद
संहिता है।

खरनाद संहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खरनाद द्वारा
निर्मित संहिता जो अब उपलब्ध नहीं है।

खरनादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेणुक। रेणुका।
(श० च०)।

खरपत—संज्ञा पुं० [देश० नीलगिरि] घोगर। (मेमो०)।

खरपत्र—संज्ञा पुं० [वं० पुं०] (१) छोटे पत्तेवाली तुलसी।

(२) शाकतृ। सागवन। (वं०) शेगुनगाछ। (र० मा०)।

(३) ताम्र तुलसी। श्यामदलतुलसी। गन्ध तुलसी।

(४) भोजपत्र। भूजपत्र वृक्ष। (वै० निघ०)। (५)

यवनाल। रामवाण भेद। (रा० नि० व० ८)।

(६) मरुवा। मरुवक। रामतुलसी। गन्धतुलसी। (रा०

नि० व० १०)।

खरपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिल। तिलक्षुप। (श० च०)।

खरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गावजवान।

खरपणिनी— " " [" "] गोजिहा। गोजिया।

खरपर्णी— " " [" "] (रा० नि० व० ४)।

(२) काकंडुमुर। काकोदुम्बरिका। (रा० नि० व० ११)।

खरपल्लव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंहोर। शाखोट वृक्ष।

(वं०) श्याउड़ा गाछ। (प० मु०)।

खरपाच्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ। कपित्थ।

खरपात्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कड़ाही। लौहपात्र।

(त्रिका०)।

खरपादाढ्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ। कपित्थ वृक्ष।

(श० च०)।

खरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरुवा। मरुवकक्षुप।

(र० मा०)।

खरपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बबुई तुलसी।

खरपुष्पी— " " [" "] बबुई। (भा० म०

४ भ०)। (२) वनतुलसी। ममरी। वनबबुई तुलसी।

(मु० सू० ३७ अ०)।

खरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कबूतर। पारावत।

(श० मा०)।

खरफक—संज्ञा पुं० [अ०] श्वेतसर्पप। सफेद सरसों। हुर्क

अव्यज।

खरब—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूव नन्ती।

खरबक—दे० “खर्वक”

खरबिरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] जड़ी-बूटी।

खरबूजा—संज्ञा पुं० [सं० खर्वूज] बल्लीफलविशेष।

पर्याय—(सं०) अमृताह्व, खर्वूज, षड्भुजा, षण्मुखा,

मधुपाका, षड्रेखा, तित्ता, तित्तफला, फलराज, मधुफला,

दशाङ्गल, वृत्तकर्कटी, वृत्तेर्वारु; (हि०) डंगरा, खरबूजा;

(वं०) खर्मुज; (म०) खरमुज; (गु०) खरबूज, खर्वूज,

सक्कर टेरी; (फा) खर्वूज; खर्वूज; (अ०, र०)

बित्तीख; (अ०) स्वीट मेलन (Sweet-melon); (ले०)

कुकुमिस-मेलो (Cucumis melo)।

बीज—(फा०) तुखम खर्वू (पू) जः; (अ०) बज्जुल

बित्तीख; (हि०) खरबूजे का बीज।

कुष्माण्डादिकुल (Family Cucurbi tacea)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष में इसकी कृषि की जाती है।

लखनऊ और, जौनपुर के खरबूजे अधिक मधुर होते हैं।

परिचय—ग्रीष्म ऋतु में होनेवाला सुप्रसिद्ध फल है।

अपक फल तित्त तथा सुपक फल मीठा होता है।

फल की आकृति गोल तथा उसके ऊपर ६ धारियाँ होती हैं।

गुण-कर्म—मूत्रल, बलवर्धक, कोष्ठशुद्धिकर, स्निग्ध—

स्वादुतर, शीतल, वृष्य, वातपित्तनाशक है तथा स्वाद

में अम्ल एवं मीठा तथा क्षारीय रसयुक्त होता है। यह

रक्तपित्त तथा अत्यन्त मूत्रकृच्छ्रजनक होता है। (भा०

पू० आम्रादिव०)।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—अपक्व एवं फीका खरबूजा

प्रथम कक्षा में शीतल एवं द्वितीय कक्षा में तर है। सुपक

एवं मीठा खरबूजा प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा

में तर है।

गुण-कर्म—बृंहण, रोधोद्धाटक, मूत्रल, दुग्धवर्धक,

अश्मरीघ्न, कान्तिप्रद, स्निग्धताजनक, नसों में शीघ्र

प्रविष्ट होनेवाला तथा बिना भोजन किए हुए खाने से

पित्तज्वरजनक होता है।

छिलका—व्रमनप्रद है। पीसकर लेप करने से व्यङ्ग

(झाँई) का नाश होता है। अहितकर—कुपित दोषों

का वर्धक है। निवारण—मधु और सिकंजबीन।

प्रतिनिधि—फूट।

बीज—प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा

में तर है। गुण-कर्म—मूत्रल, आर्तवजनन, लेखन, अश्म-

रीघ्न, अवरोधोद्धाटक है तथा वृक्क-बस्ति-अन्त्रविशोधक,

प्रकृतिमृदुकर, मूत्रप्रदाहनाशक, दुग्ध एवं-शुक्र उत्पादक,

ओजवर्धक है। इसे पीसकर लेप करने से मुख की

श्यामता दूर होती है।

अहितकर—प्लीहा तथा उदर के अवयवों को।

निवारण—मधु, बनफशा, ककड़ी के बीज। प्रतिनिधि—

चिलगोज़ा। मात्रा—छीला बीज—५ से ९ माशा तक।

खरम—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुर्गी के अण्डे का छिलका । कुक्कुटाण्डत्वक् । (ख० अ०) । (२) अतरातीकूस । (३) शाकभेद । (४) सिराजुलकुतुरब । (५) इतकवानूस (तून) । मरीह । (६) एक प्रकार की वनस्पति ।
 खरमञ्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चिरचिटा । लटजोरा चिचिडी । अपामार्ग । (रा० नि० व० ४; रस चि०, क्षुधावती गुड़ी में) । (२) सफेद चिरचिटा । सफेद चिचिडी । श्वेत अपामार्ग । (वै० निघ०) ।
 खरमञ्जरीदि लेपः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चिचिटे और पुननंदा की जड़ को पीसकर योनि में लेप करने से नव-प्रसूता स्त्री का योनिशूल नष्ट होता है । (वै० म० १३ पट०) ।
 खरमुख—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बबुई तुलसी । बबरी ।
 खरमुहरा—संज्ञा पुं० [फा०] कौड़ी । कपड़ । वराटिका ।
 खरमूत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गदहे का मूत्र । गर्दभ मूत्र । (बं०) गाधार मूत्र । गुण—कटु, उष्ण, तिक्त, कफघ्न, महा-वातघ्न, कम्प, उन्मादनाशक (रा० नि० व० १५); क्षार-युक्त, तिक्त, कटु, कुष्ठ, उन्मादनाशक तथा उष्ट्र (करभ) व गदहे के मूत्र में तैलयुक्त नस्य लेने से उन्माद दूर होता है । (अत्रि०) ।
 खरमूत्र—संज्ञा पुं० [फा०] घुइस । घूस । बड़ा जंगली चूहा ।
 खरघण्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीतपुष्प का छोटी बला । लघु वाट्यालक ।
 खरराह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खज्जाह नाम का घोड़ा । (जद० व० ३) ।
 खररोमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] नागविशेष ।
 खरवल्लरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथी । गोरख ।
 खरवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीलाई । गोरक्ष तण्डुली । (बं०) गोरक्ष चाकुलिया ।
 खरबुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मन्ना । रामतुलसी । 'खरबुस' खरबुस— " " " "] वृषकर्णी कटफल' । (वा० सू० १५ अ० हेमा टी०) ।
 खरशब्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करकटिया पक्षी । कुरर पक्षी । (रा० नि० व० १९) ।
 खरशक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भारंगी । भार्गी । (भा०) ।
 खरशूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीतशाल । विजयशाल । (वै० निघ०) ।
 खरश्रुवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वनमालती । अरण्य-मल्लिका (२) त्रिपुरमल्लिका ।
 खरस—संज्ञा पुं० [फा० खिस] भाजू । रीछ । भल्लुक ।
 खरसत्वास्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'स्त्री' ।
 खरसा—संज्ञा स्त्री० [देश] एक प्रकार की मछली ।
 खरसिंगो (गा)—संज्ञा स्त्री० [म०] सोनापाठा ।
 खरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'खरसीलता' ।

खरसीलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] खरसी । "खरसीपत्र-वत्पत्र फला सक्षीर कन्द युक् । वल्लरी ख्याता गिरिजा रसबन्धिनी ।" (र० का० ३ क० पा०) ।
 खरसोन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कड़ाही । लौहपात्र । (त्रिका०) ।
 खरस्कन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चार । प्रियाल ।
 खरस्कन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष । (२) खजूर । खजूर वृक्ष ।
 खरस्पर्श—वि० [सं० त्रि०] गावजवांन (गोजिहा) तुल्य खुरखुरा । (मा० नि०) ।
 खरस्पर्शा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीत देवदाली । पीतबंदाल । पीले फूल की घघरवेल । (भा०) । दे० "अर्गरा" ।
 खरस्पर्शादन्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकृत दाँत । (वा० का० सू०) ।
 खरस्वरा—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] वनमालती । वनमल्लिका ।
 खरहटा—संज्ञा स्त्री० [देश०] बला । बरियारा ।
 खरहर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फल ।
 खरहर—संज्ञा पुं० [देश०] बलूत की जाति का एक वृक्ष है । (ले०) गार्डेनिया टर्जिडा (Gardenia turgida), गार्डेनिया मॉन्टेना (G. montana, Roxb).
 परिचय—एक प्रकार का वृक्ष है जो प्रायः पुरातन अवस्था में २०—२५ फुट तक ऊँचा हो जाता है । इसका तना और शाखायें श्वेतवर्ण की होती हैं । पत्तियों का आकार अंडाकार कपित्थपत्रवत् होता है । पत्तियाँ १-१। इंच तक लम्बी और घन दारे, होती हैं और तोड़ते शीघ्र चटक जाती हैं । इसमें ग्रीष्म ऋतु में अर्थात् चैत वा बैसाख मास में बेला के फूल की तरह श्वेतवर्ण के पुष्प लगते हैं । फूलों में बेला के फूलों की-सी प्रिय गन्ध होती है । इसमें बेल के फल के समान जंगली फल लगते हैं । इन्हें तोड़कर पानी के साथ कुचल मसलने से साबुन के समान फेन उत्पन्न होता है । इसमें सज्जी का अधिक अंश होता है । इससे वस्त्र की मलिनता उसी प्रकार दूर होती है जिस प्रकार साबुन से होती है ।
 खरहा—संज्ञा पुं० [देश०] लम्बकर्ण । खरगोश । शशा । लमहा । चौगुड़ा । दे० "खरगोश" ।
 खरहा दरियाई—संज्ञा पुं० [] पर्याय—(सं०) जल शशक; (अ०) अनंभुल्मास, अनंभेआवी, अनंभवहरी; (हिं०) कासा; (यू०) अराकस, सलासियूस, मला बूस, लागोरस ।
 परिचय—यह एक प्रकार का जलीय जन्तु है । इसका स्वरूप रक्ताभ तथा मोती के सीप सदृश होता है । इसके शरीर में एक हरितवर्ण का पदार्थ होता है जो उसनान पत्रवत् होता है । इसके शिर में पाषाणवत् एक कठोर पदार्थ होता है । इसके शिर का स्वरूप खरहातुल्य

होता है और अन्य शरीर का भाग मत्स्य (मछली) तुल्य होता है।

प्रकृति—अत्यन्त उष्ण एवं रूक्ष है। गुण—कर्म—वर्णकारक, उष्णताजनक; मांस—लोमशातक; उपयोग—इसका मांस भोजितकर सेवन करने से रक्त की उष्णता बढ़ जाती है। इसके मांस को दग्धकर नेत्रों में अञ्जन करने से तथा दाँतों पर मञ्जन करने से दाँत चमकीले हो जाते हैं। इसको केवल वा अञ्जुरह के बीज के साथ पीसकर सेवन करने से बाल गिर जाते हैं। इसके कथनकाल में जल के ऊपर जो चरबी जम जाती है, उसको ग्रहणकर बालों पर मलने से भी बाल गिर जाते हैं। इसका सद्यः गृहीत रुधिर प्रलेप करने से मूखदूषिका (झाँई) नष्ट होती है। इसका शिर दग्धकर उसकी भस्म में रीछ की चरबी मिश्रितकर वा केवल लगाने से इन्द्रिय (दाउस्सालब) नष्ट होता है। जिस स्थान पर भिड़ (भ्रमर) ने दंशन किया हो उस स्थान पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। यह भिड़ के विष का अगद है। विषाक्तता—मांस का सेवन वर्जित है। इसके खाने से मृत्यु होती है। इसके सेवन के अल्पकाल के पश्चात् ही बेचैनी और बुद्धि में विकृति उपस्थित होती है। उदर में शूल होता है। मूत्रावरोध होता है। द्वांस में कृच्छ्रा उपस्थित होती है। शुष्ककास प्रारम्भ होता है। थूक में रक्त का दर्शन होता है। पित्तमिश्रित वमन होता है और उसके साथ अल्पमात्रा में रक्त मिश्रित रहता है। कामला की उत्पत्ति होती है। मूत्र अल्प रक्तवर्ण का उत्सर्गित होता है जिसका गन्ध वसैंधा होता है। स्वेद में दुर्गन्ध होता है। फुफ्फुस में क्षत उत्पन्न हो जाता है, नेत्रों का वर्ण लाल हो जाता है। आमाशय, यकृत तथा वृककों में शूल होता है। कभी-कभी मूत्र में नासा-मलतुल्य रेंट का उत्सर्ग होता है। मत्स्यदर्शन तथा उसके स्मरणमात्र से उत्क्लेश उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—वमन कराकर गर्दभीपय पान कराएँ। उत्तम पुरातन मद्यपान कराएँ। खुब्बाजी वा खित्मी के पत्तों को वा खित्मीमूल का क्वाथ निर्माणकर पानार्थ दें। यवमण्ड, अम्लफल, मधुवारि (माउलअस्ल) सेवन कराएँ। नहरी केकड़ा का अर्क (यखनी) दें। यदि रक्तमोक्षण आवश्यक हो तो रुधिरस्त्राव कराएँ। विरेचन कराएँ। मोठे बदाम का तेल एवं अंडे की सफेदी सेवन कराएँ। स्वास्थ्यलाभ की परीक्षा—निद्रा आने लगती है। पूर्ण स्वस्थ होने पर मत्स्यदर्शन व स्मरण से उत्क्लेश का अभाव हो जाता है तथा मछली खाने से भी कोई विकृति नहीं होती। स्वास्थ्यलाभ हो जाने पर भी कभी-कभी उरःक्षत का प्रारम्भ हो जाता है।

खरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीत देवताइ वृक्ष। (भा०)।

खरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीतदेवताइ वृक्ष। (अ० टी० रा०)।

खराग्नि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्क निष्काशनार्थ तीक्ष्णाग्नि विशेष। तीव्र आँच। तेज आँच। (रावण)।

खरातीन—संज्ञा पुं० [अ०] किञ्चुलक। केचुआ। भूनाग।
खरातीन-मुसफ़ा—संज्ञा पुं० [फा०] शोधित भूनाग। शुद्ध केचुआ। दे० 'केचुआ'।

खरामकान—संज्ञा पुं० [अ०] बालछड़तुल्य एक वनस्पति है। (म० अ०; मो० आ०)। दे० 'खरामकान'।

खराब्दांकुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] वैदूर्यमणि। लहसुनिया नाम का रत्न।

खरामकान—संज्ञा पुं० [अ०]

वर्णन—एक प्रकार की घास जिसकी आकृति और गंध बालछड़ की तरह होती है; किन्तु इसका रंग सब्जीमायल होता है। जड़ भी इसकी बालछड़ की तरह होती है। स्वाद में यह किंचित मधुर होता है। **प्रकृति**—सहाहुल् अदविद्या के अनुसार इसकी प्रकृति लगभग बालछड़ के है। **गोलानी** के अनुसार यह प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। **गुणधर्म**—यह शोथादि विलीनकर्ता (मुहल्लिल) और क्लेदादिशोषणकर्ता (मुजफ़िफ़) और समस्त गुणों में लगभग बालछड़ के समान है; परन्तु उससे किसी भीति निर्वलतर है। (मख्जन; मूहीत)।

खरायशातीन—संज्ञा पुं० [अ०] आतरीलाल। किसी के अनुसार काकजंघा।

खराशीद—संज्ञा पुं० [अ०] छिला हुआ।

खराश्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रुद्रजटा। (अ० टी० भ०)। (२) अजमोदा। क्षेत्रयमानी १ (भा० पू० १ भ०)।

खराहीन—संज्ञा पुं० [?] जोंक। जलौका।

खराह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजमोद। वन यमानी। (रा० नि० व० ६)।

खरिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पालेवत। (रा० नि० व० ११)।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) ईख जो खरीफ की फसल के बाद बोई जाती है। (२) पालेवत। दे० 'खजूर'।

खरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नेपाली कस्तूरी। (रा० नि० व० १२)। दे० 'कस्तूरी'।

खरियामिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० खरिया=खरी + मिट्टी] खड़िया। चाक। दे० 'खटी'।

खरी—[देश०]

संज्ञा स्त्री० वह शुष्क उच्छिष्ट भाग जो चक्रयंत्र में तेल पेरने के पश्चात् शेष रह जाता है। खली।

गुण—इसमें वही गुण अल्परूप में होते हैं, जिस द्रव्य की वह होती है। पिटयाक। (हि०) पीना।

खरीअ—संज्ञा पुं० [अ०] हर्शफ ।
 खरीक—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अञ्जुरः । (२) फावानिया ।
 खरीतह—संज्ञा पुं० [अ०] कोष । थैली । गिलाफ ।
 खरीद—संज्ञा पुं० [फा०] गाढी छाँछ । गाढा मठा ।
 प्रगाढीभूत तक्र ।
 खरीदह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अनविध मोती । छिद्रवर्जित मुक्ता । मरवारीद नासुप्तः । (२) कुमारी स्त्री ।
 खरीफ—संज्ञा पुं० [अ] वसंत ऋतु । मौसिम खेजाँ । पतझड़ का महीना ।
 खरीफा—संज्ञा स्त्री० [फा०] लोबिया । रतरा । राजमाष ।
 खरीफे हिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] अखरोट । आक्षोट फल ।
 खरीर—संज्ञा पुं० [अ०] फुफ्फुस-शब्द । लगत । एक प्रकार का शब्द जो हृदयस्थान पर कान लगाकर सुनाई देता है । हृदय की आवाज । (अं०) मर्मर (Murmur) ।
 खरीह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हरशफ । (२) अस्फर । (बु० क०) ।
 खरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दाँत । दन्त । (२) घोड़ा । घोटक ।
 वि० [सं० त्रि०] सफेद । श्वेत । (अं०) ह्वाइट (white) । (त्रिका०) ।
 खरुवक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद मरुआ । श्वेतमरुवक क्षुप ।
 खरुअ, खरुअ—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] एरण्ड । रेंड ।
 खरु—संज्ञा पुं० [अ०] खरुज । खुरज ।
 खरुअ चीनी—संज्ञा पुं० [अ०] जमालगोटा । जैपाल ।
 खरुक—संज्ञा पुं० [फा०] मूँगा । प्रवाल ।
 खरुक हमाम—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूबमिस्री दराज । दरदन ।
 खरुज—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] दे० 'खुरज' ।
 खरुदक—संज्ञा पुं० [फा०] गोबर का कीड़ा । गुबरीला ।
 खरुप—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद रेंड । श्वेत एरण्ड ।
 खरुफ—संज्ञा पुं० [अ०] एणशिशु । भेड़ का नर बच्चा ।
 खरुब—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूब ।
 खरुमक—संज्ञा पुं० [फा०] मूँगा । प्रवाल ।
 खरुस—संज्ञा पुं० [फा०] (पं०) कोकड़ । (अं०) दीक ।
 खरोज—संज्ञा पुं० [फा०] दे० "खुब्बाजी ।"
 खरोन्यः—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुशा । दर्भ । डाभ । हराकुशा । (ध० नि०) ।
 खरोली (करोली)—संज्ञा स्त्री० [देश०] ।
 पर्या०—खेरावल, खिलीरी—हि० ।
 वर्णन, निर्माण और गुण-प्रयोगादि—एक भारतीय वटी-योग जिसे कथे आदि से कालीमिर्च के दानों के बराबर या उनसे बड़ी बनाकर और ऊपर चाँदी के वर्क चढ़ाकर विक्रय करते हैं । इसके भक्षण से मुख सुवासित हो जाता है ।

यह हृद्य और आमाशयबलप्रद अर्थात् दीपन-पाचन है । इसके निर्माण की रीति यह है—प्रथम कथे को पानी में खूब घोलकर रख छोड़ते हैं, जिसमें स्वच्छ अंश तल-स्थित हो जाय । फिर उसे अकेले या गोदुग्ध के साथ पकाते हैं और थोड़ा-थोड़ा अंबर, कस्तूरी व गुलाब-अर्क मिलाकर गोलियाँ बना लेते हैं । जैपुर में गुलाब के स्थान में केवड़े का अर्क मिलाने हैं । कोई-कोई इसमें जायफल, चंदन, इलायची, लौंग, वंशलोचन और खस (बाला) भी मिलाने हैं और कहते हैं कि इनके खाने से दुर्बलता (लागरी), व्रण (कुरुह) और वायु का नाश होता और क्षुधा की वृद्धि होती है । (मुहीत) ।
 नोट—तालीफ शरीफी (प्रथम संस्करण की और प्लेफेयर कृत आंगलानुवाद) में खिलौरी शब्द में और नवीन संस्करण में 'खलकवरी' शब्द में इसका उपर्युक्त वर्णन आया है ।
 खरोस—संज्ञा पुं० [फा०] कुक्कुट-मांस । मुरगे का मांस ।
 खरोसान—संज्ञा पुं० [अ०; इबराती] बिच्छू । वृश्चिक ।
 खर्क—संज्ञा पुं० [अ०] खण्डशः करना । टुकड़ा-टुकड़ा काटना । फाड़ना ।
 खर्कतान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बाँदा । वृंदाक । (२) आकाशवेल ।
 खर्खरह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शयनकालीन खरटे का शब्द । (२) गला घोटने का शब्द ।
 खर्चलो—संज्ञा पुं० [फा०] (१) खुरफः । (२) केवाँच । (३) एक भारतीय बूटी का बीज ।
 खर्ज—संज्ञा पुं० [अ०] [हु० वच०] 'खराजत' तथा 'खुर्ज' । कशेरुका । मोहरा । गुरिया । वटेंबरा ।
 खर्जुल् सिप्रली—संज्ञा पुं० [अ०] नाड़ी (आसाब) । वह दोष जो गुदा की ओर प्रवृत्त हो ।
 खर्जु—संज्ञा पुं० [सं० खर्जु] कण्डू । खुजली । सूखी खुजली ।
 खज्जुरादि कषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रमेह में प्रयुक्त उक्त-नाम का खज्जुरयोग । निर्माण-विधि—खज्जुर (छोहाड़ा), काश्मरी (मुनक्का वा गम्भारी) फल और तिन्दुक इनके बीजों का क्वाथ निर्माण कर पान करने से रक्तज मेह का नाश होता है । (गद नि० प्रमेह चि०) ।
 खज्जुरादि गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तृष्णानाशक उक्त नाम की एक गुटिका । निर्माण-विधि—खज्जूर, द्राक्षा, मुलेठी तथा मिश्री, प्रत्येक १-१ पल प्रमाण और पीपर, त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात), प्रत्येक अर्ध पल प्रमाण में ग्रहणकर सूक्ष्म चूर्ण करे । पुनः मधु मिश्रित कर मटर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।
 गुण—इसके सेवन से तृष्णा, मोह तथा रक्तपित्त का नाश होता है । (वृ० नि० र० तृष्णा चि०) ।

खजूररिद घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] राजयक्ष्मनाशक योग । निर्माण-विधि—खजूर, द्राक्षा, मुलेठी, और फालसा के कल्क तथा पीपर के प्रक्षेप द्वारा प्रस्तुत घृत सेवन करने से वैस्वर (स्वरभ्रंश), कास, श्वास, ज्वर तथा क्षयरोग का नाश होता है । (गद नि० राजय० चि०) ।

खजूररिद चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दाहचिकित्सा में प्रयुक्त उक्त नाम का योग । निर्माण-विधि—खजूर, आंवला के बीज, पीपर, छोटी इलायचीदाना, मुलेठी, पाषाणभेदी, श्वेतचन्दन, धनियाँ, खीरा के बीज, शिला-जीत, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर चूर्ण करें । पुनः छान कर सर्वसम मिश्री मिश्रित कर सुरक्षित रखें ।

गुण—जेष्ठाम्बु, चावल के पानी के साथ सेवन करने से अंग दाह, लिंगदाह, गुदा तथा वंक्षणगत दाह, भूतशर्करा, अश्मरी (पथरी), भूतविकार तथा वीर्य सम्बन्धी व्याधियों का नाश होता है तथा बलवीर्य की वृद्धि होती है । (यो० र० दाह चि०) ।

खजूररिद मथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खजूरकृत पानक (लस्सी) । निर्माण-विधि—खजूर, अनार, द्राक्षा, तिल्लीक, इमली, आंवला और फालसा द्वारा प्रपानक प्रस्तुत कर पान करने से समस्त मद्यजन्य विकारों का नाश होता है । (शाङ्गध० सं० २ ख० ३ अ०) ।

खजूररिद योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिरोरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग । निर्माण-विधि—खजूर, द्राक्षा, मुलेठी, काकजंघा, खस और मिश्री के कल्क में मक्खन पकाकर मधुमिश्रित कर सेवन करने से शङ्खशूल, शिरो-शूलादि का नाश होता है । (गद नि० शिरो-रो० चि०) ।

खजूररिद लेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिकानाशक योग । (१) निर्माण-विधि—खजूर, पीपर, द्राक्षा, मिश्री, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर पीस लें । पुनः घृत और मधुयुक्त चाटने से हिचकी और श्वास का शीघ्र नाश होता है । (गद नि० हिक्का चि०) ।

(२) उक्त नाम का कासनाशक योग । यथा—पीपर, खजूर, मुनक्का और घान की खील, प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर पीस लें । इसे मधु-घृत युक्त सेवन करने से पित्तज कास का नाश होता है । (च० चि० २२ अ०; गद नि० कास चि०) ।

खजूररिद लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का योग । निर्माण-विधि—खजूर के फल, सरसों और बांवी की मिट्टी एकत्र पीसकर मधु मिश्रितकर लेप करने से उरुस्तम्भ रोग का नाश होता है । (गद नि० वा० रो० चि० २१ अ०) ।

खजूरासव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षयचिकित्सा में प्रयुक्त योग । (१) निर्माण-विधि—खजूर के फल ५ प्रस्थ ग्रहण कर १ द्रोण (१६ सेर) जल में पकाकर छान लें । पुनः उसमें हाऊवेर, धवई के फूल मिश्रितकर किसी उत्तम धूपित घृतपात्र में स्थापनकर सन्धान करें और पात्र का मुख बन्दकर ३ सप्ताह पर्यन्त पृथ्वी में गाड़ कर रखें । पुनः छानकर सुरक्षित रखें । मात्रा १-४ तो० । **गुण**—इसके सेवन से राजयक्ष्मा, शोथ, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामला, ग्रहणी, ५ प्रकार के गुल्म और अर्श का नाश होता है । (यो० र० क्षय चि०) ।

(२) खजूर, मोथा, आंवला, कायफल, द्राक्षा, हरीतकी, सोपारी, पाठा, भारंगी, कपूरकचरी, कूठ, सुगन्धवाला, अजमोद, गुगुल, पीपलामूल, कायफल, पुनर्नवा, फूल-प्रियङ्गु, कचूर, कालीमिर्च, जीरा, चाणक मूली, निशोध, हरीतकी, धमासा, लजालू, रोहितक की छाल, कुड़ा की छाल और सोंठ, प्रत्येक ४-४ पल प्रमाण लें । तथा जटामांसी, चातुर्जात, पीपल, लौंग, जायफल, श्वेतचन्दन और लोह चूर्ण, प्रत्येक २-२ पल तथा धवई के फूल ७ मन और गुड़ २१ मन लेकर यथाविधि चूर्णकर ११० सेर पानी में मिश्रित कर मिट्टी के पात्र में बंदकर भूमि में गाड़ दें । पुनः छठे दिन उसमें ३०० संख्या में उत्तम पान और २००० कमल के फूल डालकर ताम्र के पात्र में स्थापन कर यथाविधि अर्क खींच लें ।

यह उत्तम पेय है । मात्रा—१-५ तो० । गुण प्रथम योग में वर्णित हैं ।

खजूर्क—संज्ञा पुं० [फा०] गोभी । भतालु । भत्तल । इसके सेवन से गोस्तनों में दुग्ध की वृद्धि होती है ।

खज्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चाट । अवदंश । (श० च०) ।

खज्जु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पिण्डखजूर । (२)

खज्जु—संज्ञा पुं० ["] कण्डू । खुजली ।

खज्जुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) हरताल ।

खज्जुर— " " [" "] हरिताल । (२)

विच्छू । वृश्चिक । (३) रूपा । रोप्य । (मे०) । (४)

खजूर वृक्ष । खजूर फल । पिण्डखजूर । (च० द०, र० पि० चि०) ।

खज्जूर्धन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पमाड़ । चकवड़ ।

चक्रमर्द । (रा० नि० व० ४) । (२) आक । अर्क ।

(३) धतूरा । धुस्तूरक्षुप । सफेद धतूरा । (रा० नि० व० १०) ।

खज्जूर पत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खजूरपत्रवत् व्रण-

खज्जूर-पत्रक— " " [" "] च्छेद विशेष । (सु० चि० ८ अ०)

खज्जूर-फल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्रसिद्ध खजूर का फल ।

इसके सेवन से रक्तपित्त का नाश होता है। (सि० यो० रक्तपि० चि०)।

खजूरफलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गेहूँ। गोधूम विशेष। (वै० निघ०)। (२) खजूर का फल।

खजूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } खजूर वृक्ष। (प०
खजूरि— " " [" "] } मु०)। दे० "खजूर"

खजूर—संज्ञा पुं० [देश०] प्रतिश्याय। जुकाम।

खर्दल—संज्ञा पुं० [अ०] सरसों। सर्पप। राजिका। राई।

खर्दलः—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो सर्पप प्रमाण होता है। वह तौल जो राई के बराबर होता है।

खर्दल-अब्धज—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद सरसों। गौर-

खर्दल-अस्फर— " " [" "] सर्पप। हुफ् अब्धज।

खर्दल-फार्सी—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद सरसों। गौर सर्पप।

खर्दल-बर्नी—संज्ञा पुं० [अ०] जंगली सरसों। अरण्य सर्पप।

खर्नबास—संज्ञा पुं० [अ०] (१) पहाड़ी पुदीना।

मिशकेतरामशी। (२) मुरमाहूज। (बु०क०)।

खनूब—संज्ञा पुं० [अ०, फा०, पं०] पर्याय—(अ) खनूब-सैदलानी, खनूब शामी; (अं०) सेंटजोन्स बीन ब्रेड (Saint Johns, bean or bread), फ्रूट ऑफ दी करोबट्री (Fruit of the Carob-tree); (ले०) सिरेटोनिआ-सिलिक्वा (Ceratonia-siliqua)।

बर्बूरादि कुल (Family: Lomentaceae)।

उद्भवस्थान—श्यामदेश, फिलिस्तीन, पुतंगाल, अफ्रीका इत्यादि।

परिचय—उद्यानज तथा अरण्यज भेद से खनूब के दो प्रकार हैं। (१) जंगली नब्ती खनूब कंटकयुक्त होता है। देखने में अंडाकार प्रतीत होता है। इसके वृक्ष छोटे-छोटे होते हैं। (२) खनूब शामी को फारसी में कस गाजरुनी कहते हैं। यह उद्यानज तथा अरण्यज भेद से दो प्रकार का होता है।

पत्र—शाखाओं पर लगे होते हैं और संमुखवर्त्ती होते हैं। पत्रान्त अखण्डित, अधिक हरित, वतुलाकार, कठोर तथा स्थूल होते हैं। देखने में संयुक्त पक्षाकार (Pinnate) प्रतीत होते हैं।

पुष्प—इसके वृक्षों में पीतवर्ण के फूल लगते हैं।

फल—१ से ४ इंच लम्बे, चपटे, पतले और शुष्कावस्था में कृष्ण-रक्ताभ तथा गोधूम वर्ण के चतुष्कोणीय हो जाते हैं। तरुणावस्था में कोमल, गुदार, बहुकोषयुक्त एवं कपाटरहित होते हैं।

स्वाद—सुस्वादयुक्त मधुर होता है। बीज—फल में मटरतुल्य बीज होते हैं। इसकी मींगी किंचित मधुर होती है। चक्रयंत्र में पीसने पर मधुवत् गाढ़ा तेल निकलता है। मिस्र तथा श्यामदेश के चिकित्सक फलों

का सत्वनिर्माणकर औषधार्थ व्यवहार करते हैं। श्याम-देश में उत्पन्न खनूब को शामी कहते हैं। औषध में प्रायः इसी का उपयोग होता है। अरण्यज खनूब को तिब्बी चिकित्सक 'खनूब-बर्नी' कहते हैं। यही खनूब नब्ती भी है। खनूब हिन्दी को भाषा में अमलतास (आरग्वध) कहते हैं।

उपयोगी अवयव—फल, बीज तथा तैल।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—शुक्रल, मूत्रल, शुक्रसान्द्रकारक, आमाशय-बलप्रद, संग्राही, रुक्षण; बीज—संग्राही, रक्तस्तम्भक; फल में हारत्व गुण है।

उपयोग—वक्षवेदना और जीर्णकास में हितकर है। आमाशयस्थ धातुओं को पुष्ट करता है और अग्नि-संदीपक है। रक्तस्राव को बंद करता है। अधिक सेवन से कोष्ठबद्ध होता है। बीजों को चूर्णकर सेवन कराने से रक्तस्राव बंद होता है। पत्तों को पीसकर लगाने से आघातजन्य वेदना शांत होती है। बीजों के चूर्ण से अवचूर्णन करने से गुदभ्रंश में उपकार होता है।

अहितकर—मलसंग्राही। निवारण—मिश्री, बिही-दाना। मात्रा—४ माशा से १ तोला तक।

खनूब कब्ती—संज्ञा पुं० [अ०] बबूल की फली।

खनूब नब्ती—संज्ञा पुं० [अ०] पर्याय—खनूब बर्नी, खनूब-मगरबी, खनूबुशौक; (फा०) जीलाक, गुर्दः; (श्याम) यंबूत।

उद्भवस्थान—पूर्वी भूमध्यसागर।

बर्बूरादि कुल।

परिचय—इसका क्षुप प्रायः १ गज तक ऊंचा होता है। इसकी शाखाएँ इतस्ततः फैली हुई होती हैं। इनके ऊपर छोटे-छोटे तीक्ष्ण कण्टक होते हैं। पुष्प पीतवर्ण के चिह्नयुक्त होते हैं।

फल—रक्तकृष्णाभ छागवृक्षवत् होते हैं। फलों के भीतर बीज होते हैं। इसका आयात पूर्वीभूमध्यसागर के प्रान्तों से भारतवर्ष में होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—आमाशयबलप्रद, संग्राही, रक्तावरोधक, मधुर, अतिसारघ्न, रजःस्राववरोधक, वेदनाहर, दन्तदृढ-कारक और दन्तशूलघ्न।

उपयोग—पत्तों को पीसकर बाह्यत्वचा पर प्रलेप करने से संग्राही कर्म होता है। अतः इससे कफ का नाश होता है। पत्ती को मेंहदी की पत्ती के साथ प्रलेप करने से केश-रंजन होता है और केश श्वेत नहीं होने पाते। इसके सेवन से अतिसार नष्ट होता है और अग्निमान्द्य का

नाश होता है। पत्तों का क्वाथ कर गण्डूष धारण करने से दन्त दृढ़ होते हैं और शूल का नाश होता है। हिलते हुए दाँत दृढ़ हो जाते हैं। खर्बूत भी देखो।

मात्रा—५ माशा से १ तोला तक।

खर्बूत-धरी—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूत-नन्ती।

खर्बूत-बिन्ती—संज्ञा पुं० [अ०] खर्ब। खर्बूत-बिन्ती।

खर्बूत-मगरबी—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूत-नन्ती।

खर्बूत-मिली—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूत-नन्ती।

खर्बूत-लफ्फी—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूत-बिन्ती। खर्ब।

खर्बूत-शामी—संज्ञा पुं० [फा०] (१) शामदेशज खर्बूत।

दे० 'खर्बूत'। (२) केशर। (३) केशर गाजरूनी।

कस्त गाजरूनी।

खर्बूत-समरी—संज्ञा पुं० [अ०] बबूल की फली। कर्ज-फल।

खर्बूत-संदलानी—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूत-शामी। दे०

'खर्बूत'।

खर्बूत-हिन्दी—संज्ञा पुं० [अ०] अमलतस। आरग्वध।

खर्बूत-खज्जीर—संज्ञा पुं० [अ०] (यू०) आकाशोरस।

खर्बूत-शौक—संज्ञा पुं० [अ०] खर्बूत-नन्ती।

खर्बूत-जहू—संज्ञा पुं० [फा०] खर्बूत-जहू। षड्भुजा। दे०

'खर्बूत'।

खर्बूत-तुल्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खर्बूत-तुल्य। (वै०

निघ०)।

खर्बूत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खर्बूत-तुल्य देखो।

खर्बूत-वटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

खर्बूत-वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

खर्बूत-वटिका—,, ,, [सं० स्त्री०]

} ग्रहणी अधि-
कारोक्त उक्त
नाम का योग।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—सुपक्व शतवर्षीय ईंट, हल्दी, दारुहल्दी और गृहधूम द्वारा शोधित पारद ६ माशा, भृंगराजस्वरस में शोधित गन्धक ६ माशा—दोनों की उत्तम कज्जली निर्माणकर इसमें निर्गुण्डी, मण्डूकपर्णी, काला भांगरा, विष्णुक्रान्ता, वकुची, रक्तचित्रक, गुमा के ६-६ माशा स्वरस की भावना देवें और छाया में शुष्ककर सर्षपतुल्य गोलियाँ बनाएँ। गुण तथा उपयोग—इसमें से ७ गोलियों को ग्रहणकर दधि वा दधि के पानी के साथ सेवन करने से कोष्ठरोग, अतिसार, ज्वरदोष, अग्निमांश तथा ग्रहणी का नाश होता है। (भैष० ग्रहणी० चि०; रस० कौ०)।

खर्बूत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (म०) लाखी पिपरी।

पीपलवृक्षभेद। अश्वत्थ भेद।

खर्बूत-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

खर्बूत-संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

खर्बूत-तुल्यक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

क्ली०)

} तुल्यज्जन, कृत्रिम
रसाज्जन, अमृतो-
त्पन्न। दे० 'खप-
रिया' (रा० नि०

खर्बूत-यक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } खर्बूत। खर्बूत।
खर्बूत-रसक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } तुल्य। दे० 'खप-
रिया'।

खर्बूत—संज्ञा पुं० [अ०] वृद्धावस्था में बुद्धि का भ्रष्ट हो जाना।

खर्बूत—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद सरसों। गौरसर्षप।

खर्बूत—[सं०]

खर्बूत—संज्ञा पुं० [अ०] } (१) खर्बूत बिन्ती। (२) चूतड़।

खर्बूत—,, ,, [अ०] } का गड्ढा। सुरीन का गड्ढा।

खर्बूत—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) भेड़िए का बच्चा। (२)।

एक वानस्पतिक ओषधि जिसके अनेक भेद होते हैं।

उनमें से 'खर्बक सफेद' और 'खर्बक स्याह' इन दो भेदों

का उल्लेख यूनानी ग्रंथों में मिलता है। मुहीत में इसकी

रूमी संज्ञा 'कऊसा' लिखी है। नीचे इनमें से प्रत्येक का

सविस्तर वर्णन किया गया है। (अ०) खर्बक। (ले०)

हेलेबोरस (Helleborus)।

(१) खर्बक सफेद

पर्या०—खर्बक, खर्बक सफेद—फा०; अल्बर्बकुल् अभ्यज,

खर्बक अवैज, कातिलुल् कल्ब (श्वघातक)—अ०; एल्लेबो-

रोस ल्युखोस (Elleboros leukhos), फेरी एल्लेबोरो

ल्युको (Feri elleborou leukow)—यू०; वेरेट्रम

एल्बम् (Veratrum album)—ले०; हाइट हेलेबोर

(White Hellebore)—अं०।

टिप्पणी—मरुजन में खर्बक शब्द में इसका वर्णन

आया है। परंतु वहाँ इसके सिवाय किसी अन्य संज्ञा का

उल्लेख नहीं मिलता है। मुहीत और खजाइन तथा अन्य

यूनानी निघंटुग्रंथों में 'खर्बक सफेद' शब्द में इसका वर्णन

मिलता है। मुहीत में इसकी यूनानी संज्ञा अंबूरसीमा

और खजाइन में अंबूरस्मा लिखी है। ऊपर मैं ने इसकी

दीसकूरीदूक्त शुद्ध यूनानी संज्ञा दी है। मुहीत में लिखित

इसकी आंग्ल संज्ञाएँ 'रूटहेलपिअर' वा 'रूट फलपिअर'

वस्तुतः 'रूट हेलेबोर' के अशुद्ध रूप हैं। मुहीत में इसकी

हिंदी संज्ञा 'बिस' लिखी है। मरुजन मुफरदात और

वुस्तानुल् मुफरदात प्रभृति लिखित इसकी हिंदी संज्ञा

'कुटकी सफेद' भ्रामक है। क्योंकि यह कुटकीसे सर्वथा

भिन्न द्रव्य है। विशेष वर्णन के लिये 'कुटकी' शब्द में

देखें।

खर्बककुल (Family : Coronariae)।

वर्णन—एक वृणजातीय पौधे की जड़ है। उक्त पौधे

के पत्ते बारतंग के पत्तों की तरह और उनसे कुछ चौड़े

होते हैं। फूल रक्तवर्ण का होता है। पौधे का तना चार

अंगुल का और भीतर से पोला और श्वेतवर्ण का होता

है। सूखने पर इसकी छाल उतरने लगती है। इसकी जड़

खर्बक सफेद कहलाती है। यह छोटी सी लंबोतरे प्याज की

तरह होती है। कोई-कोई खतमी वा कबर की जड़ की

तरह भी होती है। यह जड़ पीताभ श्वेतवर्ण की होती है जिसमें बहुशः बारीक तंतु लगे होते हैं। स्वाद में यह जड़ इसके काले भेद की अपेक्षा बहुत कड़ई होती है। तोड़ने से इसमें से धूल-सा दृगोचर होता है। इसके भीतर से मर्कट-जाल की तरह एक वस्तु निकलती है। यह पर्वतों पर उत्पन्न होती है। जीलान और मावरुन्नहर के देशों में बहुत होती है। जब यह जड़ तर होती है तब उखाड़ कर संग्रह करते हैं और सुखा लेते हैं। सूखने के उपरांत इसके ऊपर का छिलका स्वयमेव उतर जाता है। इसका उक्त छिलका ही औषध के काम आता है। इसी का एक अन्य भेद है, जो तन्तुरहित और बहुत कड़ा होता है। सफेद, कोमल, शीघ्र भंगुर, बहुत गुदार और पिच्छिल जड़ अपेक्षाकृत उत्तम होती है। इसे जिह्वा पर रखने से प्रथमतः किंचित् दाह प्रतीत होता है और थोड़ी देर के पश्चात् अत्यधिक दाह होने लगता है। जिससे तत्क्षण बहुत दाह होने लगे और जो गोल और स्वल्प गुदार हो वह अधम है। क्योंकि इससे कंठ में कण्ठशोथ (खुनाक) पैदा हो जाता है। अस्तु, खर्बक सफेद का भी अकेले व्यवहार न करना ही श्रेयस्कर है। यदि खिलाना ही हो तो अयारिजों में मिलाकर खिलायें। क्योंकि यह घातक विष है। (मरुजन और मुहीत)।

डॉक्टरों ग्रंथों में लिखा है कि इस प्रकार की खर्बक मध्य और दक्षिण यूरोप के पर्वतीय साद्र स्थानों और—(सब्जाजारों) में उत्पन्न होती है। रासायनिक संगठन और गुणधर्म में यह खर्बक सब्ज अमरीकी (*Veratrum Viride*) के बहुत समान होती है। अर्थात् इसमें भी अमलग वे हो उपादान होते हैं जो कि खर्बक सब्ज अमरीकी में। सुतरां इसके गुणधर्म भी उसी के सदृश होते हैं। भेड़ियों, कुत्तों और सूअरों के लिये भी यह सांघातिक विष है। इसलिये अरबी में इसे क्रातिलुल् कल्ब और खानिकुज्जीब भी कहते हैं। इसके खाने-पीने-वाले की विषा खाने से भुरगी मृतप्राय हो जाती है। इसे आटे में मिलाकर चूहों को डालने से वे मर जाते हैं। त्वचा पर लगाने से यह दाहक है। किसी-किसी का यह विश्वास है कि प्राचीन स्पेननिवासी अपने वाण इसके स्वरस में बुझाकर विषाप्पुत करते थे। यह वाण जिसको लगता था वह विषपीडित होकर मर जाता था। डॉक्टर मेनोल के कथनानुसार इसके रस में बुझाये हुए यंत्र का साधारण क्षत भी घातक होता है। कुलटा वा दुश्चरित्र नारियाँ गर्भपातनार्थ इसकी वर्ति योनि में धारण करती थीं। यद्यपि प्राचीन चिकित्साविदों ने भी इसको बहुत चतुरतापूर्वक उपयोग करने का आदेश किया है। पर अर्वाचीन यूरोपीय चिकित्सकों ने तो इसका उपयोग सर्वथैव वर्जित कर दिया है। क्योंकि इसके

उपयोग से कई व्यक्तियों के प्राणपत्थरु चल बसे।

इतिहास—दीसकूरीदूस ने एल्लेबोरोस ल्युखोस नाम के इसका उल्लेख किया है। सावफरिस्तुस और प्लाईनी ने भी इसका उल्लेख किया है। परन्तु इनके अस्पष्ट वर्णन से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इनमें से किसी ने खर्बक सफेद को अपनी आँखों से नहीं देखा था। प्लाईनी कहते हैं कि मुझे बतलाया गया कि यह अमुक प्रकार की होती है। प्राचीन-अर्वाचीन वनस्पतिशास्त्रज्ञों ने साधारणतः वेरेट्रम ऐल्बम (*Veratrum album*) को खर्बक सफेद माना है जिसका चित्र भी ह्वैट हेलेबोर (*White hellebore*) नाम से Gerard's "Herbal" में अंकित किया गया है। परन्तु जब सन् १८७९ ई० में 'The Flora of Greece' के प्रणेता हेलद्रीख (*Heldreich*) ने ईटा पर्वत का पता लगाया और वहाँ (*V. album*) को प्रचुर मात्रा में उगा हुआ पाया, तब उनके इस विचार की पुष्टि हो गई, कि यह सावफरिस्तुस लिखित खर्बक सफेद (*White hellebore*) है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा के मध्य (वा तृतीय कक्षांत) में उष्ण और रूक्ष है। अहितकर—आमाशय को हानिकर है तथा कण्ठशोथ (खुनाक), आक्षेप और वमन पैदा करती है। निवारण—आमाशय के लिये मस्तगी और अन्यान्य उपद्रवों के लिये ताजा छाछ, बादाम का तेल, गोघृत, यवाम्बु (आश जी) या थोड़ा सा हाशा और कतीरा ये निवारण हैं। सेवन से पूर्व इसे गुंधे हुए आटे में रखकर पका लेना चाहिए। नीहार और कलेवा के रूप में कदापि सेवन न करें। प्रत्युत कुछ खाने के पश्चात् इसे सेवन करें। प्रतिनिधि—समभाग निसोथ, अर्धभाग शारीकून, मैनफल या माहीजहरा (माहीजहरा के अभाव में हिगोट वृक्ष की छाल) समस्त गुणों में खर्बकस्याह इससे तीव्रतर और प्रबलतर है। ग्रह-मंगल। प्रधान कर्म—शीतजन्य मस्तिष्क रोगों को लाभकारी और वामक है। मात्रा १।।। मा० से ४।। मा० तक। इन्न जहर के ग्रंथ में ३।। मा० से ७ मा० तक इसकी मात्रा लिखी है। उचित यह है कि ४।। मा० से अधिक कभी सेवन न करें और निवारण के बिना और बिना शुद्ध किये तो कदापि सेवन न करें। क्योंकि मात्रा से अधिक इसका सेवन घातक है।

गुण कर्म तथा प्रयोग—शैख के कथनानुसार इसे मांस के साथ पकाने से यह मांस को गलाती है और यह वात-व्याधियों में लाभकारी है। यह प्रबल वामक और आतंककारी है। क्योंकि गला घुटने का रोग (इस्तिनाक) प्रगट करती है। कभी इसे—(हैज) में प्रविष्ट करते हैं जिसमें वमन करावे। जिसे गलाघुटने (इस्तिनाक) का

भय हो, उसे तथा मन्दाग्निवालों को इसका उपयोग नहीं कराना चाहिए और उस दशा में भी जब कि आमाशय रिक्त हो, इसका प्रयोग वर्जित है। शैख के मत से इसका अति सेवन मनुष्य के लिये घातक है और सूअर तथा कुत्ता के लिये विष का काम करती है। खर्वक सेवन करने-वाले की विष्टा खाने से मुरगियाँ मर जाती हैं। गीलाबी कहते हैं कि कभी इसकी वर्ति बनाकर योनि में स्थापित (हुमूल) करते हैं। यह प्रबल वामक है। वे और कहते हैं कि इसको पीसकर पानो मिलाकर घर में छिड़क देने से उस पर जो मक्खियाँ बैठती हैं, वे मर जाती है। मख्ज-नुल अद्विया के रचयिता मीरमुहम्मद हुसेन कहते हैं कि खर्वक तीव्र विरेचन है। यह प्रगाढीभूत पित्त, पिच्छिल और श्लेष्मिक दोष और पीत श्लेष्मा के विरेक लाती है, अवरोधोद्घाटन करती है और आमाशय को दूषित दोषों से शुद्ध करती है, पथरी का नाश करती और आर्तव का प्रवर्तन करती, गर्भस्थ शिशु को नष्ट करती और प्रसव कराती है। इसकी पिचुवर्ति (फर्जजः) भी आर्तवप्रवर्तक और भ्रूणनाशक है। यह पक्षवध (फ़ालिज), कफज अपस्मार, कफज मस्तिष्कावरण प्रदाह अर्थात् सरसाम (लीसुर्गुस) और शेष शीतजन्य मस्तिष्क रोग, गठिया और संधिशूल में लाभकारी है। इसको पीसकर नस्य (सऊत) करने से छींक बहुत आती है। इसे नेत्रांजन की वर्तिकाओं में डालने से नेत्रांध्य दूर होकर नेत्र निर्मल हो जाते हैं और दृष्टि तीव्र हो जाती है। कृमिदंत पर इसे सिरके में मिलाकर लगाने से दांत उत्पाटित हो जाते हैं। दद्रु, तर खजू (जरब), श्वित्र और व्यंग (वहक) में इसे अकेला या ईरसा के साथ उपयोग करने से उपकार होता है। शहद और सत्तू के साथ घोलकर खिलाने से चूहे मर जाते हैं। इसे अधिक परिमाण में सेवन करने से मनुष्य मर जाता है। इससे प्रथम आक्षेप पैदा होता है, अत्यंत वमन होता है। और अंत में कण्ठशोथ (खुनाक) हो जाता है। उक्त अवस्था में शीतल और ऊष्माहारक पदार्थ सेवन कराएँ और मलावरोध होने पर विरेचन दें, गरम पानी में बिठाएँ, स्नेहाक्त (मुरगावी प्रभृति का) मांसरस पान कराएँ, गाय का मक्खन शरीर पर मर्दन कराएँ और सुगन्ध-द्रव्य सुंघाएँ (मुहीतमतेन इसे शर्वत जूफा, पुदीना, मुदाब और मसूर के साथ दें), पैरों पर सुगन्धित तैल का अभ्यंग करें, रोगी के पास तेज सिरका सेव, बिहो, गरम रोटी और शराब रहानी रखें या क्षुत्कारक ओषध सुंघाएँ। अधिक विरेक आने पर शीतल जल पिलाएँ, सुगन्धद्रव्य सुंघाएँ और पुष्टिदायक आहार (जय्यदुल-कैमूस) दें। कहते हैं कि इसकी पीसकर खाने से आक्षेप उत्पन्न हो जाता है और वमन होने लगता है। अस्तु, उचित

यह है कि १ तोला १०॥ मा० खर्वक को एक पाव अढ़ाई तो० वर्षा-जल में अर्हनिशि भिगोकर छान लें और पी जायें अथवा इसका शर्वत इस प्रकार बनाकर पिएँ। विधि— ३३ तो० ९ मा० (१ रतल) खर्वक को टुकड़े-टुकड़े करके ३ सेर ६ छं० (२ क्विस्त) वर्षा जल में तीन रात-दिन भिगोकर इतना पकायें कि तृतीयांश शेष रह जाय। फिर इसे छानकर १३॥ छं० उत्तम मधु मिलाकर चाशनी करें और उसका झाग दूर करते रहें। तैयार हो जाने पर इसमें से १॥ तो० (१ मिल्अका) अकेले वा गरम पानी के साथ सेवन करें। यह बलपूर्वक वमन से श्लेष्मा का उत्सर्ग करता है। जिसे कठिनाई से वमन होता हो और वमन का अभ्यासी नहीं है, उसे वमनार्थ खर्वक का सेवन वर्जित है। उसे सर्वप्रथम वमन का अभ्यास करना चाहिये। पुनः क्रमशः इसका व्यवहार करना चाहिये। वमन के लिये इसके उपयोग की सर्वोत्तम विधि यह है कि प्रथम मूली में छेद करके उसके भीतर खर्वकसफेद के बारीक तंतु भर दें और रात भर पड़ा रहने दें। प्रातःकाल मूली से उक्त तंतु निकाल कर फेंक दें। रोगी को प्रथम कोई तरल आहार जैसे यवाम्बु (आश जौ) या मूंग की पतली खिचड़ी खिलाएँ। तदुपरांत उस मूली का रस निकाल कर सिकंजीवीन मिलाकर पिला दें और दो घड़ों के पश्चात् वमन करावें।

मुहीत में यह विशेष लिखा है—किसी किसी व्यक्ति में ऐसा देखा गया कि इससे न उनको विरेक हुए और न वमन हुआ। उष्ण प्रकृति और निर्बल को इसका सेवन कदापि हितकर नहीं है। इसे ऐसे न सेवन कर शर्वत बनाकर सेवन करें। यदि इसे इसी प्रकार सेवन करता आवश्यक हो, तो बहुत बारीक न करें, अघकुटा करके यवमंड (आश जौ) के साथ खा लें। मुहीत के अनुसार यदि पीनेवाले को निर्बलता प्रतीत हो और आक्षेप हो जाय तो किसी उत्तम मदिरा में रोटी चूर कर खिला दें या मधुवारि (माउल्अस्ल) में रोटी चूर कर दें।—यदि दोबारा आक्षेप का आक्रमण हो तो शीतल पानी में रोटी भिगोकर दें।

यदि वमनकाल में हिक्का का वेग हो तो मधुवारि (माउल्अस्ल) में मूली उबालकर पिलावें। यदि दीर्घ-काल तक इसका प्रभाव प्रगट न हो और वमन न हो तो घूंट-घूंट मधुवारि पिला दें या किसी वामक तैल के साथ गरम पानी दें या मुर्गी का पर रोगनसोसन या सुअद (नागरमोथा) में आप्लुतकर कंठ के भीतर फिरावें और झूले में झुला दें। यदि पीनेवाले को (इस्तिनाक) पैदा होने लगे तो खर्वक का काढ़ा पीने सात तोले की मात्रा में पिला दें। इससे वमन होगा और गला

घुटना (इस्तिनाक) दूर हो जायगा। यदि इतने पर भी अभीष्ट फल होता न दीखे तो तीक्ष्ण औषधि युक्त वस्ति देवें और उसमें से ३८ जी भर के लगभग पिला भी देवें। पिलने का उक्त कार्य वमनार्थ नहीं, प्रत्युत गला घुटना (इस्तिनाक) निवारण के अभिप्राय से समझना चाहिये और ऐसी दवाएँ सुंघाएँ जिनसे छींक आने लगे। यदि वमन से हिक्का बन्द न हो तो पृष्ठ की कशेरुकाओं पर भारी सींगियाँ खिचवाएँ और जो अंग आक्षेपग्रस्त हो जायँ उन पर तैलाभ्यंग करें और उष्ण जल से धरवाएँ। इसे वारीक करके खाने में भय है; क्योंकि इसका महीन चूर्ण कभी आमाशय में जम जाता है और इसे आहारपथ में रह जाने के कारण मनुष्य मर जाता है। इसे सेवन करनेवाले को इसके साथ अत्यंत मृदुल द्रव्य और आक्षेपप्रतिबंधक औषधि सेवन करना चाहिये।

शर्वत तैयार करना हो तो प्रथम तीन दिन पानी में तर रखकर धीमी आँच पर पकायें, तृतीयांश जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे और उसमें शहद मिलाकर चाशनी करें। पीने दो तोले खर्वक सफेद के साथ २१ तोले के लगभग जल और पीने सत्तावन तोले शहद रहना चाहिये। शर्वत की मात्रा पीने दो तोले है। इतना चाटकर ऊपर गरम पानी पी लेवें या गरम पानी में घोलकर पिएँ। प्राचीन चिकित्सक वायु के उत्सर्ग के निमित्त कतिपय निवारण औषध के साथ इसका उपयोग करते थे, परन्तु उत्तरकालीन चिकित्सकों ने इसे त्याज्य कर दिया है और इसकी जगह वे हज्र अरमनी या लाजवर्द व्यवहार करते हैं। इसको पीसकर आटे में मिलाकर चूहों को खिलाने से वे मर जाते हैं। उक्त कार्य के लिये कभी इसमें शहद भी मिलाया जाता है। इसको जल में क्वथितकर यह काढ़ा जानवर को खिलाने से वह मूर्च्छित हो जाता है। इसे सिरके में पीसकर लगाने से दद्रु, व्यंग (बहक), झाई (कलफ), खजू (खारिश्त) और किलास आराम होते हैं। मांस में मिलाकर यदि बिल्ली को खिलाया जाय तो वह मृतप्राय हो जायगी। इसको पीसकर सिरके में मिलाकर गण्डूष करने से दंतशूल आराम होता है।

नव्यमत—

ऐन्सली कहते हैं:—“White hellebore (Veratrum album); it is now seldom prescribed owing to the violence of its operation, being at once a most drastic cathartic, emetic and sternutatory, often even in the smallest doses exciting tremors, vertigo and syncope, and if the dose is large, death. Orfila

places both the hellebores amongst his poisons, (Vol. ii, Part 1. p. 6. 11.) Celsus gave the white in that species of derangement attended with peculiar hilarity of spirits, a practice which has been resorted to with varying advantage in these our days. The white hellebore which they (Arabians) call خربق سنياد they place amongst their emetics; dose half a direm corrected by mastich; as a succedaneum, they use the nux vomica. (Materia Indica pt. 1. p. 166.)

खर्वक के अन्यान्य भेद

(१) खर्वक सब्ज (हरित खर्वक)

पर्या०—खर्वक सब्ज—फा०। अलखर्वकुल अखजर-अ०। ग्रीन हेल्लेबोर Green Hellebore—अ०। हेल्लेबोरस विराइडिस Helleborus Viridis—ले०।

वर्णन—इस प्रकार की खर्वक के फूल हरे रंग के होते हैं। यह फ्रांस के समीपवर्ती वनों में उत्पन्न होती है, इसकी जड़ भी खर्वक स्याह की जड़ के सदृश होती है। पर उससे किंचित् क्षुद्र होती है। खर्वक स्याह की अपेक्षा इसमें हेल्लेबोरीन नामक सत्व अधिक परिमाण में होता है। कतिपय त्वग्रोगों में भी इसका व्यवहार करते हैं।

(२) खर्वक बदबू (दुर्गन्धित खर्वक)

पर्या०—खर्वक बदबू—फा०। अलखर्वकुल मुन्तिन, रिज्जुदब (ऋक्षजंघा), रिज्जुल् उकाव (गृध्रजंघा)—अ०। ष्टिङ्किङ्ग Stinking, बीयर्स फुट Bear's foot—अ०। हेल्लेबोरस फेटीडस Helleborus Foetidus—ले०।

वर्णन आदि—इस जाति की खर्वक में भी वे ही सत्व होते हैं जो कि खर्वक स्याह या सब्ज में। इसके पत्तों का चूर्ण या क्वाथ औदरीय कृमिनाशक रूप से व्यवहार किया जाता है। किंतु अधिकतया पशुचिकित्सा में इसका उपयोग होता है। मात्रा—५ से २० ग्रेन।

(३) खर्वक मशरिकी

पर्या०—खर्वक मशरिकी, खर्वक कुदमाS, खर्वक तिब्बी, अलखर्वकुल मशरिकी-अ०। ईस्टर्न हेल्लेबोर Eastern Hellebore—अ०। हेल्लेबोरस ओरिएण्टलिस Helleborus orientalis—ले०।

यह वही खर्वक है जिसका पुराकालीन यूनानी चिकित्सक उन्माद रोग में व्यवहार किया करते थे। यह खर्वक स्याह और सब्ज की मध्यवर्ती होती है। इस प्रकार की खर्वक ईजियन (यूनान) सागरस्थ टापू ऐण्टीसीरा तथा कृष्ण सागर के कूलों पर और कुस्तुनुनिया के

समीप उत्पन्न होती थी। आरव्य वा मुसलमान चिकित्सकों ने दीसकूरीदूस से नकल करते हुए इसके वानस्पतिक लक्षण खर्वक स्याहवत् लिखे हैं।

खर्वक स्याह के सहित उपर्युक्त खर्वकत्रय काकपदीय कुल (Ranunculaceae) की वनस्पति हैं। इनमें से खर्वक स्याह प्रभाव में सब से निर्बल और खर्वके मशरिकी सर्वाधिक प्रभावकारी है। खर्वक के उपर्युक्त भेदों के सिवाय इसके दो भेद और भी हैं जो खर्वक स्याह की जाति वा कुल में से नहीं, अपितु उससे भिन्न कुल—कलिशीकियः (कालिबुलकल्ब) में से हैं अर्थात् ताइफः सूरजानियः में से हैं। उनके नाम और वर्णन आदि नीचे दिये जाते हैं।

(१) खर्वक सफेद—इसका वर्णन प्रथम किया जा चुका है।

(२) खर्वक सब्ज अमरीकी—

पर्या०—अखर्वकुल् अरुजर अमरीकी—अ०। ग्रीन हेलेबोर Green Hellebore—अ०। वेरेट्रम विरीडी Veratrum Viride—ले०।

वर्णन—यह संयुक्तराज्य अमरीका और कनाडा में उत्पन्न होती है। इसका वानस्पतिक वर्णन और गुणधर्म खर्वक सब्ज से भिन्न है। इसकी तंतुयुक्त जड़ औषध के काम में आती है। अल्प मात्रा में यह वामक, स्वेदक, अत्रसादक और अधिक मात्रा में प्रबल विष है।

नोट—हेलेबोरस विराइडिस (Helleborus Viridis) और वेरेट्रम विरीडी (Veratrum Viride) दोनों को अंगरेजी में ग्रीन हेलेबोर (Green Hellebore) कहते हैं। किंतु इन दोनों को कदापि अभिन्न न समझना चाहिए और न वेरेट्रम एल्बम (खर्वक सफेद) को खर्वक स्याह की जाति की वनस्पति समझना चाहिये।

खर्वक स्याह

पर्या०—खर्वक स्याह, खालजंगी (मुहीत)—फ्रा०; अखर्वकुल् अस्वद, खर्वक अस्वद (मखजन), रिज्जुराई (मुहीत)—अ०; फेरी एल्लेबोरो मेलानोस Feri elleborou melanos—यू०; वेराट्रम नाइग्रम Veratrum Nigrum—रू०; हेलेबोरस नाइगर Helleborus Nigra—ले०; ब्लैक हेलेबोर Black Hellebore, क्रिस्मस रोज Christmas rose—अ०; हेलेबोरो Helleboro—पुर्त०; हेलेबोर Hellebore—फ्रा०; Schwarty Niess Wurzel—जर०।

टिप्पणी—मखजन और मुफरदातनासरी में 'खर्वक अस्वद' शब्द में इसका वर्णन आया है और उनमें जो इसकी हिंदी संज्ञा कुटकी लिखी है, उसे प्रामादिक समझना चाहिये। इनसे बढ़कर प्रमाद तो मखजन मुफरदात और बुस्तानमुफरदात के रचयिताओं का है,

जिन्होंने इसका वर्णन ही 'कुटकी स्याह' शब्द में किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि इन्होंने खर्वक सफेद और स्याह की भाँति कुटकी सफेद और स्याह करके कुटकी के भी केवल ये दो भेद ही स्वीकार नहीं किये हैं, प्रत्युत उन्होंने खर्वक और कुटकी को अभिन्न मान लिया है। फिर भी गुणधर्म आदि खर्वक के ही दिये हैं। मुहीत में इसकी यूनानी संज्ञाएं मालीनूदलून और जूयूद-बहून और खजाइन में मलीनूस, जो शुद्ध मेलानोस है, लिखी हैं। मुहीत के अनुसार इसकी दीसकूरीदूसोक्त संज्ञा अंबुस-मारस है, परन्तु यह अशुद्ध प्रतीत होता है। इसका शुद्ध रूप ऊपर दिया गया है। मुहीत के अनुसार इसकी रूमी संज्ञा फारुनीसून और खजाइन के अनुसार फारुनून है। मुहीत के अनुसार इसकी आंग्ल संज्ञा ब्लैक हिल पिअर (शुद्ध ब्लैक हेलेबोर) और हिंदी कालाकुचला है। परन्तु इस अंतिम संज्ञा का उल्लेख किसी वैद्यक-ग्रंथ में देखने में नहीं आया। इसकी लेटिन संज्ञा हेलेबोरस यूनानी 'एल्लेबोरोस' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ विषाक्त औषधि (अल्फे मुहलिक) है; क्योंकि इसके कतिपय भेद घातक विष हैं। यह क्रिस्मस काल में फूलता है और फूल रक्त वर्ण के आते हैं। इसलिये इसे क्रिस्मस रोज कहते हैं जिसका समीचीन आरव्य भाषान्तर वर्दुल् मेल्लाद और वर्दुंशता है। खजाइन में इसकी अंगरेजी संज्ञा ब्लैक वर्स लिखी है जो शुद्ध ब्लैक हेलेबोर है।

वत्सनाभकुल (Family : Ranunculaceae)।

वर्णन—एक तृणजातीय वनस्पति की जड़ है। प्रसिद्ध तो यह है कि यह कुटकी है। कोई-कोई कहते हैं कि खर्वक और कुटकी में केवल विलायती और भारतीय होने का अंतर है। खर्वक रोम देश के शुष्क स्थानों, टीलों, और पर्वतों पर उत्पन्न होती है और कुटकी हिमालय में कश्मीर से सिक्किम पर्यंत उत्पन्न होती है। कोई-कोई दोनों को सर्वथा भिन्न समझते हैं और उनके जातीय भेद के भी समर्थक नहीं हैं और यही यथार्थ भी है। अस्तु, खर्वक के पत्ते चनार के पत्ते की तरह, पर उनसे अधिक क्षुद्र एवं खुरदरे होते हैं। पत्रप्रान्तस्थ प्रवर्द्धन अंगुल्याकार और वह भी चनार के पत्तों की अपेक्षा बड़े-बड़े होते हैं। तना खर्वाकार और पतला होता है। फूल सफेद होता है जिसमें ललाई और नीलेपन की झलक होती है। पुष्प प्रियदर्शन और गुच्छाकार होता है। फल कुसुंभ (कड) बीजवत् होता है और विरेचनीय गुण में जड़ की अपेक्षा अधिक निरापद होता है। जड़ प्रायः उँगली के बराबर मोटी, काले रंग की ग्रंथिल, भीतर से पोली और आकृति में प्रायः कुछ गोल होती है। इसमें से काले बारीक तंतु इस प्रकार निकलते हैं जिस प्रकार प्याज की पेंदी में बारीक-बारीक तंतु निकलते हैं। इसके

उक्त तंतु ही औषध के काम आते हैं। मात्र खर्बक स्याह संज्ञा से इसके उक्त तंतु ही अभिप्रेत होते हैं। खर्बक स्याह की कड़ुआहट सफेद की अपेक्षया कम होती है। किंतु शक्ति और तीव्रता उससे बढ़ी हुई होती है और उससे आतंककारी एवं सापद है। जो न बहुत पुरानी हो, न बहुत नई, न बहुत मोटी हो और न बहुत पतली, खाकी रंग की और शीघ्र भंगुर हो, जिसके भीतर मकड़ी के जाले की तरह कुछ हो, स्वाद में तिक्त, तीक्ष्ण एवं चरपरी हो और चाबने से जिह्वा में दाह उत्पन्न करे, वह उत्तम है। डॉक्टरों ग्रंथों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि इसका फूल लाल और आरसी की तरह चौड़ा फैला हुआ होता है जिसमें आस-पास पाँच चौड़ी-चौड़ी पंखड़ियाँ होती हैं। बीच में गोलाई में बारीक पत्तियाँ और तंतु होते हैं। पत्ते कटवाँ किनारों के नोकीले और किंचित तिष्ठे होते हैं और बकायन के पत्तों की तरह मालूम होते हैं। फूल की छड़ी अलग निकलती है। जड़ ग्रंथिल, तंतुल, अनियमित मुड़ी हुई एक वा अधिक इंच लंबी, चौथाई से आध इंच मोटी होती है जिस पर लंबाई और आड़े रख चिह्न पड़े होते हैं। यह बाहर से काली और भीतर से श्वेताभ होती है। गंध अत्यंत सूक्ष्म, किंतु स्वाद तिक्त होता है। यह यूरोप और फ्रांस के पर्वतों पर होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें हेल्लेबोरीन (खर्बकीन) और हेल्लेबोरीईन (खर्बकीईन) ये दो विषाक्त ग्ल्युकोसाइड (सत्व) होते हैं। इनमें प्रथम जलमें अविलेय होता है; किंतु द्वितीय शीतल जलमें विलेय होता है। इनके सिवाय इसमें राल, वसा और श्वेतसार प्रभृति तत्व भी विद्यमान होते हैं। परंतु इसमें कषायिन (टेनीन) नहीं होती।

इतिहास—खर्बक सफेद और स्याह दोनों ही यूनान आदि पाश्चात्य देशों में होती हैं, भारतवर्ष में नहीं होतीं। अस्तु, सावफरिस्तुस, दीसकूरीदूस और प्लाइनी प्रभृति ने इनका उल्लेख किया है। कहते हैं कि ब्लैक हेल्लेबोरी (खर्बक स्याह) यूनान देश में ईसवी सन् से १४०० वर्ष पूर्व विरेचन रूप से प्रयुक्त होती थी। परंतु जब यूनानी हकीम मेलम्पोस ने राजा परीतुस की पुत्रियों को उक्त औषध के उपयोग द्वारा उन्माद रोग से मुक्त किया, तब से इसकी अश्रुतपूर्व ख्याति हो गई। यूनान के प्राचीन चिकित्सक अन्यान्य रोगों के अतिरिक्त उन्माद रोग में उक्त औषध का विशेष रूप से उपयोग किया करते थे। इसलिये प्राचीन समय में जब किसी व्यक्ति को कहा जाता था कि 'पिथ एलेबोरस' अर्थात् महाशय आप खर्बक लिए अथवा 'You should go to Anticyra'. तो उसका यह तात्पर्य होता था कि तुम पागल हो, जैसा कि उक्त अर्थ में देहली निवासी कहा करते हैं 'मियाँ

होश की लो।' इससे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनानी इसको उन्माद की अव्यर्थ औषध समझते थे। इसके सिवा यह बुद्धिबध्नक और अपस्मरनाशक भी मानी जाती थी।

यद्यपि खर्बक की किसी जाति की जड़ भारतीय बाजारों में विक्रयार्थ नहीं आती और जहाँ तक ज्ञात होता है इसकी कोई जाति भारतवर्ष में कहीं उत्पन्न नहीं होती, फिर भी यूनानी द्रव्यगुण पर भारतीय मुसलमानों द्वारा रचित समस्त ग्रंथों में यूनानियों द्वारा वर्णित खर्बक (हेलेबोर) का वर्णन उपलब्ध होता है जो आरव्य चिकित्सकों द्वारा लिखित ग्रंथों की प्रतिलिपि मात्र है। और आरव्य चिकित्सकों ने भी उक्त वर्णन दीसकूरीस प्रभृति यूनानियों और रोमनों के ग्रंथों से उल्था कर लिया है। अरबनिवासी इन्हें खर्बक अव्यज और खर्बक स्याह कहते हैं। भारतीय चिकित्साग्रंथों में खर्बक का हिंदी पर्याय 'कुटकी' लिखा मिलता है और उक्त ओषधि इसकी प्रतिनिधि स्वरूप विक्रय होती है। परंतु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि कुटकी और खर्बक सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। इनका कुल और जाति सभी भिन्न है। इनमें खर्बक* तो भारतवर्ष में होती भी नहीं और यह अत्यंत सांघातिक विष है; परंतु कुटकी सर्वथा निरापद है। अस्तु, इनमें से प्रत्येक का परस्पर एक दूसरे के लिये प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार निरापद नहीं कहा जा सकता।

प्रकृति—तृतीय कक्षांत में उष्ण और रुक्ष है। मतांतर से द्वितीय कक्षा में और किसी-किसी के मत से चतुर्थ कक्षांत में उष्ण और रुक्ष है। क्योंकि यह अत्यंत तिक्त एवं चरपरी है। अस्तु, दाहक भौमत्व से युक्त आग्नेय तत्व की विद्यमानता अनिवार्य होती है। इसलिये यह उष्ण और रुक्ष है। **अहितकर**—उष्ण प्रकृति और वृक्क को हानिकर है तथा कण्ठशोथ (खुनाक) पैदा करती है। **निवारण**—कतौरा, सातर, दुकू, फितरासालीयून, पुदीना, मस्तगी और गोघृत। **प्रतिनिधि**—अर्धभाग कुन्दुश (मतांतर से समभाग), अर्धभाग माहीजहरा, दोतिहाई शारीकून, अर्धभाग माजरियून, समभाग खर्बक सफेद, सिकंजबीन, समभाग कबरमूल या कबीकज और चित्रक या चीता। **ग्रह**—मंगल। **प्रधान कर्म**—वायु और कफ विरेचनकर्त्ता और शीतजन्य व्याधिनाशक है। **मात्रा**—१॥ मा० से २। मा० तक। ६ मा० मारक

*डोमक कहते हैं—

"We have never met with any kind of hellebore root in the Indian Bazars, nor are any of the genus known to grow in India."
(Ph. Ind pt. iii Appendix p. 97.)

है। डॉक्टर लोग ५ रत्ती से १० रत्ती तक चूर्ण रूप में देते हैं। इसके टिक्चर की मात्रा २० से ६० बूँद है।

गुण कर्म तथा प्रयोग—यह विकारी वात, कफ और श्लेष्मामिश्रित पित्त का मलमार्ग द्वारा उत्सर्ग करती अर्थात् इनके विरेक लाती है और दोषों (मवाद) को शरीर के गंभीर भागों से आकर्षित करती (जज्ञाव) है। शीतजन्य रोगों में यह सफेद खर्वक की अपेक्षा या अधिक प्रभावकारी है। जिन व्याधियों में खर्वक सफेद गुणकारी है, उनमें यह उसकी अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होती है। यह अर्द्धविभेदक, शिरोशूल, चिरकारी नजला और मोतियाबिंदु (नुजूलुमास) में लाभकारी है तथा वक्ष, आमाशयान्न प्रभृति आशयों (अहशास), वस्ति और गर्भाशय को दोषों से शोधन करती है। यदि इसको कुछ दिन शर्करा आदि मधुर पदार्थों में भीगा रखें या निष्ठुषीकृत जौ या मसूर के साथ उबालें और फिर छानकर काढ़ा पिएँ, तो अधिक हानि न हो। इससे इसके दोष का निवारण हो जाता है। इसमें यह विशेष प्रभाव है कि इसके द्वारा शोधन करने से प्रकृति परिवर्तित होकर लगभग यौवनकालीन प्रकृति के समान हो जाती है। जिसकी प्रकृति स्तिग्धताशून्य हो अथवा जिसकी प्रकृति में स्तिग्धता का प्राबल्य न हो (गैर मतुबुल् मिजाज) उसके लिये यह अतीव हानिप्रद है। मटर के साथ पकाकर गण्डूप करने से दंतशूल आराम होता है। इसकी धूनी (बखुर) से भी उक्त लाभ होता है। तारल्यजनक (मुलत्तिफ) भेषज द्रव्यों के साथ पीने से उदरकृमि नष्ट होते हैं। कोई-कोई इसे सिकंजीन या मीठे मद्य में भिगो देते हैं और फिर पका-छानकर अकेला या मुँग के शोरवे के साथ पिलाते हैं। इससे विरेक द्वारा श्लेष्मा और पित्त भली भाँति उत्सर्गित हो जाते हैं। कहते हैं कि यह सम्पूर्ण शरीर से वायु का उत्सर्ग करती है और सांद्रीभूत पित्त का शोधन सक्रमूनिया से बढ़कर और निरापद्रूप से करती है। दिवत्र (वसं) और व्यंग (वहक) में इसका लेप लाभकारी है। इससे मस्से (सालील) नष्ट होते हैं और व्रणों का दूषित और अधिमांस अवसादित वा नष्ट होता है तथा इससे दुर्निवार्य नाडीव्रण आराम होता है। इसके आश्च्योतन (कतुर), वर्ति (फतीला) और पिचुवर्ति (फर्जजः) सफेद खर्वकवत् हैं। इसका काढ़ा करके घरमें छिड़कने से विपैले कीड़े-मकोड़े पलायन होते हैं। गेहूँ प्रभृति को इसके काढ़े में क्लेदित करके पक्षियों को खिलाने से वे मर जाते हैं। मोम, कुन्दुर और जिप्स के साथ या जल और स्नेह (रोगन) के साथ पिलाने और मर्दन करने से तरखजू (जरब) दूर होता है। इसके समीप डूँगी हुई अंगूर की वेल से प्राप्त

अंगूरों से मदिरा निर्माण कर पीने से विरेक आते हैं। (मखजन)।

मुफरदात नासरी में इसे शोधादि विलीनकर्ता (मुहल्लिल) और ओजोवर्द्धक (मुलत्तिफ) एवं संधिशूल निवारक भी लिखा है।

सख्जन मुफरदात में यह विशेष लिखा है कि यह शरीर के सफेद दाग (किलास) और स्याह दाग (वहक), उर्कता और अन्यान्य त्वग्रोगों में लाभकारी है।

सुहीत में यह अधिक लिखा है—यह प्रबल नैर्मल्यकारी (कवीयुल् जिला), तीक्ष्ण और दाहक है। इसमें यह विशेष प्रभाव है कि वृद्धजरा-जरठ पुरुषों में यौवनकालीन प्रकृति का आविर्भाव कर देता है। बलवान् प्रकृतिवालों को, युवा और स्थूलकाय पुरुषों को और जिनके शरीर में रक्त अधिक हो उनकी यह ओषधि सात्त्य है। किंतु स्त्रियों, निर्बल पुरुषों और शिथिल शरीरवालों को यह बिल्कुल असात्त्य है। यदि इसके खाने का विचार हो तो तीन दिन पूर्व से ही कड़ी (गलीज) चीजों के खान-पान से परहेज करें और विलासिता एवं आनंद का जीवन व्यतीत करें। इसके पश्चात् इसे सेवन करें। यद्यपि यह अपना प्रभाव अत्यंत बलपूर्वक प्रकाशित करती है, तथापि स्वयं विलंब से उत्सर्गित होती है। इसलिये इससे कण्ठशोथ (खुनाक) और आक्षेप और अन्याय रोगों के प्रकट होने का भय बना रहता है। अस्तु, इसमें कोई ऐसा द्रव्य सम्मिलित कर लें, जिससे इसका प्रभाव तीव्रतर हो जाय और शीघ्र विरेक आकर शरीर से उत्सर्गित हो जाय। यदि इसके आमाशय में देर तक न ठहरने से शुद्धदोषों (मवाद् सालेह) को गति न मिले, तो सक्रमूनिया प्रभृति इसमें योजित कर लें। कोई-कोई कहते हैं कि सक्रमूनिया से निरापद्रूप से अधिक सांद्रीभूत पित्त उत्सर्गित करती है। अस्तु, सांद्र पित्त के उत्सर्गार्थ इसके साथ सक्रमूनिया या तुखम करफ़स अवश्य सम्मिलित कर लें। यह खर्वक सफेद से अधिक अहितकारक या घातक है। इसलिये खाने और लगाने से किलास (वसं) आराम होता है। क्योंकि उसके उत्पादक दोष को निःसरित कर देती है। नाडीव्रण में दूषित द्रव (मादा) भरा हो और फूट जाय तो इसको पीसकर वर्तिका बनाकर उसके भीतर रख दें और कुछ दिन तक रहने दें। जब निकालेंगे तो वह बिल्कुल विकारशून्य मिलेगा। यदि शुष्क वा आर्द्र खजू या दद्रु पर लगाना हो तो सिरका या मोम या जिप्स के पानी के साथ लगाएँ। यदि झाई (कलफ़),—(नमश) और चेहरे के अन्यान्य दागों के लिये काम में लाएँ, तो इसमें तुमुस सम्मिलित कर लें। सिरके में पीसकर कान में टपकाने से कर्णशूल आराम

होता है। उच्च श्रवण (सिकल समञ्ज) और कर्णध्वेद आदि कर्णव्याधियाँ शमन होती हैं। इसकी पिचुर्वाति योनि में धारण (हुमूल) करने से मूत्र और आर्तव का प्रवर्तन होता है और गर्भपात हो जाता है; प्रत्युत शिशु मर भी जाता है। यदि कोई विषैला कीड़ा या कुत्ता काट खाय तो इसका लेप लाभकारी होता है। इसके उपयोग की सर्वोत्तम विधि यह है कि जड़ में जो पतली-पतली लकड़ियाँ लगी होती हैं उनको लेकर थोड़े से पानी में भिगो दें। जब वह फूल जायँ तब उनका छिलका उतार कर छाँह में सुखा लें और उनको कूटकर उपयोग में लें। बहुत सतर्कतापूर्वक इसका उपयोग करें और बिना निवारण और नियम के कदापि व्यवहार में न लें। इसे पानी में भिगोकर वह पानी घर में छिड़कने से चूहे पलायन होते हैं और मच्छर मर जाते हैं। खर्वक स्याह, पपड़ी नमक और सुदाव के बीज प्रत्येक ६ मा० सब को पीसकर शहद मिलाकर नेत्र में अंजन करने से दृष्टि तीव्र होती है। इसके पीने और लगाने से पक्षवध (फ़ालिज), अर्दित (लक़्वा), शिरोशूल, चिरज अर्द्धा-वभेदक, वसवास सौदावी (मालीखोलिया), उन्माद (जुन्नन) और अपस्मार एवं अन्यान्य वाततंतु के रोग और शिरोरोग आराम होते हैं। इसे अधिक मात्रा में खाने से प्रथम कंठ के भीतर कफ संचित हो जाता है और कण्ठशोथ (खुनाक) निकल आता है और कभी खुनाक तो नहीं निकलता। हाँ! शोथ होकर अत्यंत विरेक आने से रोगी यमलोक सिधारता है। कभी-कभी ऐसे रोगी रुदन करने लगते हैं। इसीलिये इसका उपयोग प्रायः वर्जित है। उक्त अवस्था में चिकित्सा का उपक्रम यह है कि उसे शीतल वस्तु अत्यधिक सेवन कराएँ, शीतल जल सिर और शरीर पर डालें और शीतल जल में बिठाएँ। उक्त उपक्रम आक्षेप-रहित अवस्था में किया जाता है। आक्षेप रहने पर उसका उपाय करें।

डॉक्टर लोग उन्माद और जलोदर में इसे तीव्र विरेचन (हाइड्रेगिंग केथार्टिक) रूप से व्यवहार करते हैं और रजोरोध (Amenorrhoea) में रजःप्रवर्तक रूप से देते हैं। किंतु अधुना यूरूप में इसका व्यवहार कम होता जाता है। (म० अ० डॉ० १ म सं० भ० २, पृ० १४६१)

तद्व्यसृत

ऐन्सली लिखते हैं:—

“It is much used by farriers as a purge for horses, and also cautiously among the hakeems as a drastic cathartic in maniacal cases, and may be purchased in every druggist's shop in Lower India.”

Celsus prescribed black hellebore as a purge in mania, it is now seldom used in substance; the root has a nauseous, acrid taste (benumbing the tongue) which is however lessened by keeping. The decoction, Dr. Pearson thinks, may be given with advantage in cases of insanity, and in certain dropsical affections, in doses of about; zi that of the extract from five to ten grains.

The Arabians class black hellebore amongst their cathartics, giving it to the quantity of half a direm, and corrected by means of oil of almonds or tragacanth. Alibert speaks highly of the virtue of black hellebore in dropsical cases, in the form of the pilules toniques de Bacher. (Materia India Pt. 1. pp. 165-166.)

The different effects of the two kinds of hellebore taken medicinally, as recorded by ancient authorities, correspond with modern experience, the black is a powerful cathartic and the white a strong emetic. This is a summary of all that is known or likely ever to be known of the famous hellebores of the ancients. (C. Wolley-Dod, Pharm-Journ. Jan. 30, 1892.)

खर्वक अश्वद—संज्ञा स्त्री० [अ०] खर्वक स्याह।

खर्वक सब्ज—संज्ञा स्त्री० [फा०] हरित खर्वक।

खर्वक सब्ज अमरीकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] हरित अमरीकी खर्वक।

खर्वकमुफेद—संज्ञा स्त्री० [फा०] सफेद खर्वक।

खर्वकस्याह—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्याह खर्वक।

खर्वकहिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] काली कुटकी।

खर्वत—संज्ञा स्त्री० [फा०] बड़ा वृत्त। राजहंस।

खर्वज—संज्ञा पुं० [फा०] चमगादड़।

खर्वजः—संज्ञा पुं० [फा०, सं० षड्भुजा] दे० ‘खर्वजा’।

खर्वजहेतल्ल—संज्ञा पुं० [फा०] इन्द्रायण। इतारन। इन्द्रवारुणी।

खर्वजहेरूबाह—संज्ञा पुं० [फा०] लालइन्द्रायण। महा-काल।

खर्वजा—संज्ञा पुं० [सं० खर्वजः] दे० ‘खर्वजा’।

खर्व (खर्व)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सेवती। कुब्जक पुष्प। (रा० नि० व० १०)।

वि० [सं० त्रि०] छोटा। ह्रस्व। (अम०)।

खर्व पत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गूम । द्रोणपुष्पी ।
 खर्वपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } गुमा । द्रोणपुष्पी ।
 खर्वपत्री—संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] }
 खर्वशाख—वि [सं० त्रि०] बीना । वामन । (हे० च०) ।
 खर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गंगेरन । नागबला । गुलसकरी । (रा० नि० व० ४) ।
 खर्वु—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] तरदी वृक्ष । (रा० नि० व० ८) ।
 खर्वुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } 'नदीनिष्पाव' । शिम्बी
 खर्वूर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } धान्य विशेष । (रा० नि० व० १६) ।
 खर्वूज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खरबूजा ।
 खर्वूरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरदी वृक्ष । (रा० नि० व० ८) ।
 खर्म—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नासिकाग्रहेदन । नाक की फुनगी कटवा डालना । (२) एक प्रकार का मान जो १॥ तोला वा ४ मिस्काल के बराबर होता है ।
 खर्म—[अ०]
 खर्मडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जलीदर । कसकुसरी । (*Grevia villosa*) ।
 खर्मिनान—संज्ञा पुं० [अ०] उदबिलाव । खट्टास । सगे-आबी ।
 खर्मूश—संज्ञा पुं० [फा०] जंगली चूहा । घूस । घूइस ।
 खर्म—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पट्ट वस्त्र । (२) पौष । (मे०)
 खल—संज्ञा पुं० [पं० क्ली०] (१) चटनी । कल्क । (मे०) । (२) सस्यस्थान । खलिहान । (त्रिका०) ।
 संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूर्य । (२) धतूर । धुस्तूर । (रा० नि० व० १०) (३) व्यञ्जन विशेष । (४) तिलकल्क सदृश पदार्थ । गुण-दधि के साथ सेवन करने से प्रवाहिका का नाश होता है । (वा० चि० १२ अ०) । (५) हरिणी । मृगी । (६) तमाल वृक्ष । (श० च०) ।
 संज्ञा पुं० [देश०] तज्किरतुल्हिद में लिखा है कि इसको संस्कृत और हिंदी में पाषाणभेदी और श्वेतपिंडी भी कहते हैं । यह एक उद्भिद् है जो भूमि पर परिविस्तृत होता है । यह बगोचों में और जलासन्न साद्र भूमि में उत्पन्न होता है । इसके पत्ते (रीहाँ) पत्रवत् पर उनसे क्षुद्रतर होते हैं और उन पर कंगूरा नहीं होता । पुष्प-स्तवक (खुशे) श्वेत होते हैं जिनमें पोस्ता के दाने की तरह बीज होते हैं । किसी-किसी के मत से यह पत्थर-फोड़ी की किस्म से है । भेद दोनों में केवल यह है कि पत्थरफोड़ी के पत्ते गोल और चिपचिपे (लज्जिज) होते हैं, किंतु खल के पत्ते थोड़े लम्बे, तित्तास्कादयुक्त और

दुर्गन्धित होते हैं । हाँ ! पुष्पस्तवक दोनों के एक से होते हैं । खल की जड़ सफेद होती है । इसके कोमल पत्तों की तरकारी पकाते हैं । ऐसा ही मुहीत में भी लिखा है और उसमें अश्मभेदक इत्यादि इसकी अन्य बहुशः संस्कृत और हिंदी संज्ञाएँ दी हैं । उपर्युक्त वर्णन के देखने से यह 'गोरखगाँजा' प्रतीत होता है ।

प्रकृति—उष्ण एवं हृक्ष । मतांतर से शीतल है ।

गुण कर्म तथा प्रयोग—यह मूत्रल है । अतएव मूत्ररोध में इसका उपयोग लाभकारी होता है । यह मूत्रदाह और प्रमेहनाशक है । शिश्वतिसार और जलोदर में इसकी जड़ गुणकारी है । वैद्य कहते हैं कि खल तीक्ष्ण एवं तिक्त है तथा बृंह-वृंह मूत्र आने (तकतीरुल बौल), मूत्रदाह और हाथ-पैर की जलन में लाभकारी है ।

संज्ञा पुं० (सं० खल्व-खल) (१) वह पात्र जो लोह वा पाषाण द्वारा औषध निर्माण में व्यवहरित है । औषधपेषण यन्त्र । खरल यह दो प्रकारका होता है—(१) गोल खरल जो १२ अंगुल गहरा बीच में अत्यन्त चिकना; और जिसका मुसला नीचे से चपटा तथा ऊपर से जो भले प्रकार पकड़ने में आवे ऐसा हो । यह वरुल (गोल) खल मर्दन संस्कार के लिए अत्यन्त सुवप्रद होता है ।

(२) अर्धचन्द्रखरल—इसकी ऊँचाई १० अंगुल और लम्बाई १६ अंगुल और विस्तार (चौड़ाई) १० अंगुल तथा गहराई १० अंगुल की और उसकी पाली २ अंगुल चौड़ी तथा आकार अर्धचन्द्रवत् तथा उसका मुसला १२ अंगुल लम्बा होता है । ऐसे खल में ५ पल पारद का मर्दन संस्कार किया जाता है । इसके अतिरिक्त जैसी आवश्यकता हो, तदनुसार पाषाण व लोह धातु के खरल वैद्य को बनवाना उचित है । (वृ० रस रा० सु०) ।

श्री कुक्कुट अपराजितश्च नाम परौ खलपर्याय । वि० [सं० त्रि०] नीच । अधम । (मे०) ।

खलअ—संज्ञा पुं० [अ] विश्लेष । हटजाना । उखड़ जाना । सन्धिविश्लेषण । (अं०) डिस्लोकेशन ।

खलउत्तर्कूह—संज्ञा पुं० [अ०] ग्रीव-पर्शुकाविश्लेष । हँसली का उतर जाना । ग्रीवपर्शुकाभ्रंश ।

खलउत्तरक्रवः—संज्ञा पुं० [अं०] जनुविश्लेषण । घुटना उतर जाना ।

खलउल्लम्बक—संज्ञा पुं० [अ०] हनुविश्लेष जबड़ा उतर जाना । यह अवस्था प्रायः जन्माग्रहण काल में होती है । इसमें मुख खुल जाता है और दाँत स्थानान्तरित हो जाते हैं ।

खलउल्लम्बिक—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बस्तिविश्लेष । बस्तिभ्रंश । मसानेवा उतर जाना । (२) अंसविश्लेष । मोटा उतर जाना ।

खलउल्मसानः—संज्ञा पुं० [अ०] वस्ति-भ्रंश। वस्तिविश्लेषण।
वस्ति का स्वस्थान से अन्य स्थान पर चला जाना।

खलउल्मर्फक—संज्ञा पुं० [अ०] बाहुविश्लेष। केहुनीका
उतर जाना। केहुनी से हाथ उतर जाना।

खलउल्वरिक—संज्ञा पुं० [अ०] नितम्बास्थिविश्लेषण।
कूल्हा उतर जाना।

खलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धतूर। धुस्तूर। (२)
सूर्य। (रा० नि० व० १०)। दे० 'खल'।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] गुगुल। गुग्गुल।
(म०)।

खलकाम्बलिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिलकल्क। तिल की
खली। (वै० निघ०)।

खलज—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कर्पन। खींचना। बाहर निका-
लना। (२) आदेश करना। निर्देश करना। (३) स्पर्श
करना। छूना। (४) शिशु का स्तन्यपान वर्जित
करना। दूध छोड़ना। (५) क्लम (थकावट) के कारण
अस्थिर्योमें वेदना होना। (६) हिलाना। (६) भूँकना।

खलजान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) धात्वर्थं प्रविष्ट होना। प्रवेश
करना। गड़ना। चुभना। (२) शोक। सोच। फिक्र।
परेशानी इत्यादि।

खलज्ज—संज्ञा पुं० [अ०]

पर्या०—मुन्तखिबुलुगात में इसे खदंग से अरबीकृत
लिखा है। मुहीत में इसकी यूनानी संज्ञा अर्नकी और
खजाइन में इसके सिवाय अर्नकी भी लिखी है।

वर्णन—मुन्तखिबुलुगात में इसे खदंग का नाम लिखा
है और खदंग गज वृक्ष का नाम है। किंतु इसमें आपत्ति
यह है कि गज शब्द का व्यवहार झाऊ और फ़र्राश उभय
वस्तुओं के लिये होता है और खदंग एक वृक्ष है जिसकी
लकड़ी बहुत कड़ी होती है और उससे तीर की नै (२)
और घोड़े की जीन तैयार करते हैं। मख्जन और मुहीत-
मतेन-खलज झाऊ की तरह एक पहाड़ी वृक्ष है। इसके
वृक्ष बहुत विशाल होते हैं और पत्ते आकृति में गज
(फ़र्राश) अर्थात् झाऊ के पत्तों की तरह होते हैं। इसके
वृक्ष चीन, रूम और भारतवर्ष में होते हैं। फूल शुद्ध पीत
वा रक्तवर्ण के होते हैं। एक किस्म के फूल सफ़ेद भी
होते हैं। फल (दाना) राई के फल (दाना) की तरह
और नीला (बनफशई वा कबूद) होता है। फूल
(शिगूफ़ा) शेष समस्त अवयव की अपेक्षा तीक्ष्णतर और
अधिक प्रभावशाली होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष।

गुणकर्म तथा प्रयोग—सरीसृपादि विलेशायी विषैले
जंतुओं (हवाम्म) के दंश पर इसके फूल (शिगूफ़ा) और
पत्तों का लेप उपकारी होता है। रोगनबाबूना और गुल-
रोगन की भाँति इसके तेल तैयार करने की विधि यह है

कि इसके फूलों को तिल-तैल में डालकर तीन सप्ताह तक
धूप में रखकर सुखा लेते हैं। यह तेल (अभ्यंग द्वारा)
अङ्गमर्द (अञ्जना) और संधिशूल में (और शीतल वातरक्त)
में असीम गुणकारी है। इसकी लकड़ी के बुरादे के उपयोग
(लेप) से उक्त लाभ होता है (परन्तु यह गुण में उससे
हीन है)। ४॥ मा० इसके बीज मधु के साथ चाटने से
विषभक्षणजन्य विकार (वा विषैले जंतुओं के विष) वा
आघात से हृदय सुरक्षित रहता है। इसकी लकड़ी के बने
बरतन में भोजन करने वा पानी पीने से (खफ़क़ान) दूर
होता है। (मख्जन)।

मुहीत—में यह विशेष लिखा है—इसका फूल संग्राही
(क्राविज) और शोथादि विलीनकर्त्ता (मुहल्लिल) है।
मधुमक्खी जब इसके फूलों का रस चूसकर मधु बनाती है,
तब वह मधु दुर्गन्धित होता है।

खलति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] इन्द्रलुप्त (गंजरोग)।
(ब०) टेको। (हे० च०; त्रिका०)।

खलद—संज्ञा पुं० [अ०] हृदय। हार्दि। दिल। क्लव।
नप्स। जी।

खलब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नोचना। (२) नखदान।
नखद्वारा कुरेदना। नाखून से छीलना। चिटकी लेना।
विदारण। फाड़ना। चीरा देना। पृथक् करना। काट
डालना। किता करना।

खलब—संज्ञा पुं० [अ०] अंगूर की लता। द्राक्षालता।

खलबा—संज्ञा पुं० [अ०] मेथी। मेथिका।

खलबान—संज्ञा पुं० [यू०] विरोजा। बारजद।

खलबानी—संज्ञा स्त्री० [यू०]

खलबानीस—संज्ञा पुं० [यू०] जावशीर। गावशीर।

खलमीन—संज्ञा पुं० [अ०] (यू०) अतरीया।

खलमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारा। पारद।
(श० च०)।

खलयूष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'खड्गयूष'।

खलल—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु० व० 'खिलाल'] धात्वर्थं फ़त्तर,
रखना, झरी, अदकाश। तिब्बी परिभाषा में (१) अंगों के
बीच की दूरी। (२) छिद्र। सुराख छेद। (अ०)
इन्ट्रास्टिसीज (Intrastices)।

खललुलनजर—संज्ञा पुं० [अ०] दृष्टि दोष। दृष्टि विकार।

खललुल अक्ल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बुद्धिभ्रष्टता।
अक्लकी खराबी। (२) मस्तिष्कदोष। (अ०) एल्लिनेशन
(Allenetion)।

खललुल-आजा—संज्ञा पुं० [अ०] अंगविकार। अंगों की
विकृति। (२) अंगमध्यवर्ती कोष।

खललुल-बख—संज्ञा पुं० [अ०] दृष्टिदोष। दृष्टिविकार
नजर की खराबी। यह एक प्रकार का दोषमिश्रित
दृष्टिदोष है। इसमें नेत्रों की एक ओर की ज्योति ठीक

रहती है और दूसरी ओर के नेत्र में निकटदर्शन का दोष रहता है। (अं०) स्टिग्माटिज्म (Stigmatism) ।
खलस—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अपहरण करना । छोनना । उचक लेना । (२) श्वेतकृष्णमिश्रित केश । स्याह-सफेद मिले-जुले वाल । (अं०) ऐडमिक्श्चर (Admixtue) ।
खलसा—संज्ञा स्त्री० [सं० खालिश] एक प्रकार की बड़ी मछली जो समस्त उत्तरभारत, आसाम तथा चीन आदि में होती है। (बं०) खलसिया माछ ।
खलसिया माछ—संज्ञा स्त्री० [बं०] दे० 'खलसा' ।
खला—संज्ञा पुं० [अ०] सिरका । शुक्त ।
खलाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] शून्यस्थान । रिक्तस्थान । खाली जगह । पाउच (Pouch) ।
खलाउद्दिकलुस—संज्ञा पुं० [अ०] गुदा और गर्भाशय के मध्य का रिक्त स्थान । गर्भाशय और सीधी आँत के बीच की खाली जगह ।
खलाक—संज्ञा पुं० [अ०] (१) केशर । (१) वेदमुश्क ।
खलाक-बलखी—संज्ञा पुं० [अ०] बलख प्रदेश में होनेवाला वेदमुश्क ।
खलाल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मध्य । केन्द्र । बीच । (२) फासला । दूरी । दो स्थानों के बीच की दूरी ।
खलास—संज्ञा पुं० [अ०] आँवल । नार । अपरा । अमरा । नाल । हमरा । शिश्वावरक कला । वह वस्तु जो बालोत्पत्ति के पश्चात् योनिद्वार से बहिर्गत होती है । प्लेसेन्टा (placenta), स्कण्डीनेज (Scundines), आपटर वर्थ (After birth) ।
खलि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] खली । खरी । तिलकित । (रा० नि० व० १६) । खल । दे० 'खरी' वा 'खली' ।
खलिद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरल । देवदारु । (वै० निघ०) ।
खलिन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] खलीन । (बं०) । लागाम । (अ० टी० रा०) ।
खलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काली मुसली । कृष्ण तालमुली । (वै० निघ०) । (२) खल समूह । (अम०) ।
खलिध्यः—संज्ञा [अ०] परमाणु । क्षुद्र बीज । कण । (अं०) सेल (Cell) ।
खलिश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खलसा नाम की मछली ।
खली—संज्ञा स्त्री० [सं० खलि] पीना । खल । खरी ।
पर्याय—(सं०) खलिः, पिण्याक । (हिं०) खली, खल; (मख्जन); (अ०) कुस्बुज (मुहीत) अलतुख, कुस्ब; (फ्रा०) कुंजार; कन्नू (मख्जन); कुस्ब: (अंजुमन अराए नासिरी), कंजार: (मुहीत); (शीराजी) खर: (मख्जन, मुहीत); (अं०) मोल; (ले०) फानिया । (meal)
टिप्पणी—कुस्बुज फ़ारसी कुस्ब: से अरबीकृत है । मुहीत

में लिखा है कि कंजार व कंजाल: फ़ारसी में कुंजद वा तिल का नाम है । परंतु यह ठीक नहीं है । वस्तुतः वह कुंजार, कुंजार: अथवा कुंजाल और कुंजाल: है जिसका अर्थ खली है । तिल वा सरसों वा राई वा एरंड इत्यादि सभी तिलहनों की खली के लिये उक्त शब्दों का व्यवहार होता है ।

वर्णन—तिलहनों से तेल निकालने के बाद बची हुई सीठी (सुफल) को अरबी में कुस्ब वा खली कहते हैं । मात्र खली शब्द से यूनानी ग्रंथकारों को तिल की खली अभिप्रेत होती है । परंतु डॉक्टरों में खली शब्द से अलसी की खली अभिप्रेत होती है जिसको लिनसीड-मोल कहते हैं ।

प्रकृति और गुण-प्रयोग—यह भारी और अपोषक (रदियुल् गिजा) है तथा वायु, आध्मान और अवरोध उत्पन्न करती है । रेंडी की खली खाने से हैजा हो जाता है और उसका उपक्रम त्रिवृत् भक्षण करनेवाले के समान है । (मख्जन) ।

तालीफ़-शरीफ़ी के मत से खल (कुस्ब सिमसिम वा कुंजार : कुंजद) रुक्ष, भारी, आध्मानकारक और दृष्टि-मांद्यकर है । पत्थर पर पीसा हुआ तिल का आटा शीतल है । यह भारी वाजीकरण और कफपित्तवर्द्धक है । शाहजहानाबाद में इसे खली कहते हैं । प्लेफेरकृत आंग्लानुवाद में यह विशेष लिखा है—हाथ की चिकनाई दूर करने के लिये इसको साबुन की भांति उपयोग करते हैं । खजाइन में यह अधिक लिखा है—यह स्वास्थ्य को बिगाड़ती है । दोषों को सुखाकर धीरे-धीरे शरीर से उत्सर्जित करके शरीर को कृश करती है । यह (विष्टम्भ-कारक) काविज और उदरावष्टम्भक (हाविस बत्न) है ।
वधत्व—खली में द्रव्यों के अनुसार गुण होते हैं जिसमें तिल की खली सर्वश्रेष्ठ होती है । इसकी सुवासित खली से बाल धोए जाते हैं ।

खलीअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भेड़िया । वृक । (२) गोह । गोधा । नर गोह ।

खलीत—संज्ञा पुं० [फ्रा० खलित] मिश्रित । मिला हुआ ।

खलीफ़—संज्ञा पुं० [अ०] (१) निश्चितस्थान । कायम मुकाम । (२) प्रतिनिधि । बदल ।

खलीफ़तुद्दिमाग—संज्ञा पुं० [अ०] मस्तुलुज्ज । हराम मरज । नुखाअ । भेजा ।

खलीह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नरगोह । (२) भेड़िया । वृक ।

खलुरेष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिरन । मृग विशेष । (श० च०)

खलूक—संज्ञा पुं० [अ०] अरगजावत् एक सुगंधद्रव्य । किसी-किसी के मत से अरगजा यही है । अन्यमत से यह चोआ है । कोई-कोई कहते हैं कि केसरनिर्मित कोई द्रव्य है । इसकी मालिश से कठिनीभूत वातनादियाँ नरम

हो जाती हैं। इससे हृदय को शक्ति प्राप्त होती है। इसे योनि में स्थापन (हुमूल) करने से विविध गर्भाशयिक व्याधियाँ; जैसे—गर्भाशयशोथ और गर्भाशयशूल इत्यादि निवृत्त होती हैं। (मुहीत)।

खलेधानी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीना। खल। खली। (२) पशुबन्धन। पगहा। (जटा०)।

खलेबाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खूँटा। गोबन्धन काष्ठ। (हे० च०)।

खलेशय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खलिश। खलसा नाम की मछली।

खल्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] दे० 'खल'।

खल्—संज्ञा पुं० [अ०] सिरका। शुक्त। मधुर द्रव्यों का अम्लता में परिवर्तित हुआ पदार्थ।

ख(खि)ल्लत—संज्ञा पुं० [अ०] मिश्रित करना। मिश्रण बनाना। मिलाना आमिश्रण करना। खिल्लत। (अं०) ऐडमिक्चर (Admixture)।

खल्फ—संज्ञा पुं० [अ०] व्याधि के कारण ष्ठीवन (शुक) का अभाव हो जाना।

खल्ब, खल्बः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मेथी। मेथिका। (२) नखदान। नाखून से कुरेदना। (३) नोचना। लुंचन करना। (४) चिटकी लेना। (५) पृथक् करना। किता करना। (६) अंगूर के पत्ते।

खल्ल—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० 'खिलाल']। धातुयुक्त दोष, फतूर, रखना, झिरी। तिब्बी परिभाषा में अंग की बनावट (अवयव रचना) की मध्यवर्ती दूरी। आजाड की साख्त का दरम्यानी फासला वा छिद्र।

खल्ल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पपीहा। चातक पक्षी। (मे०)। (२) चाम। चर्म। खाल। (त्रिका०)। (३) खल। औषधमर्द्दनपात्र।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घोड़ों के अग्रदन्त की कृष्णता। (ज० दे० व० ४)।

खल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीनी। शर्करा। (वै० निघ०)।

खल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़ाही। पिण्डिकादि भर्जनपात्र। (श० च०)।

खल्लिट—वि० [सं० त्रि०] खलन। (स० र०; त्रिका०)।

खल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथ आदि की सिराओं का ठिठुर जाना। (सि० यो० विसूची-चि०)। "खल्ली तु पाद जङ्घोरु कर भूलावमोटनी"। (२) सरल। देवदारु। (वै० निघ० वात व्याधि चि०)।

खल्लीट—वि० [सं० त्रि०] खल्लिट। खलन।

खल्लीबद्धन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दन्तवैद्यज्वर रोग विशेष।

लक्षण—वायु की अधिकता से दाँतों में तीव्र वेदना

होती है। दाँत के ऊपर अधिक दन्त उत्पन्न होने से उनकी उत्पत्ति काल में दाँतों में तीव्र वेदना होती है और उत्पत्ति के पश्चात् वेदना स्वयं शांत हो जाती है। (भा०)।

चिकित्सा—सरसों के उष्ण तैल से मंजन करने से लाभ होता है। (मा० नि०)। अधिक दन्त।

खल्लीवात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वातज रोग।

लक्षण—इस रोग में पाद, जंघा, ऊरु (सांथल) और हाथ की जड़ ठिठुर जाती है।

चिकित्सा—कूठ, सेंधालोन, चूका इनका कल्क बनाकर तेल में पाक कर तैल सिद्ध करें। इस तेल के मर्द्दन से लाभ होता है। अथवा स्निग्ध, अम्ल और लवणीय रसों के सेवन से अथवा स्वेदन, मर्द्दन तथा उपनाहन करने से लाभ होता है। (भा०; मैष०)।

खल्लीश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खलसा नाम की मछली।

खलिशमत्स्य। दे० 'खलसा'।

खल्लुक्कीस—संज्ञा पुं० [यू०] (१) कौसीस। (२) केश। बाल। (यु० क०)।

खल्लुल्-इनब—संज्ञा पुं० [अ०] अंगूरी सिरका। द्राक्षा-शुक्त।

खल्लुल्-उन्सुल—संज्ञा पुं० [अ०] प्याज का सिरका। प्लाण्डुशुक्त। प्याजी सिरका।

खल्लुल् खमर—संज्ञा पुं० [अ०] अंगूरी-सिरका। द्राक्षाकृत शुक्त।

खल्लुज्जैत—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की काँजी जो जैतूनतैल, कच्चे अंगूर का पानी वा बादामतैल और सिरका मिश्रितकर प्रस्तुत किया जाता है।

खल्लुल् मुसब्द—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सिरका के ऊपर-वाली खमीर। (२) परिशुत-शुक्त। टपकाया हुआ सिरका। अर्क सिरका।

खल्लुल् हिम्मस—संज्ञा पुं० [अ०] चने का सिरका। चणक-शुक्त।

खल्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धान्य। अन्न। गल्ला।

खल्बट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खाँसी। कासरोग। (म०) खोकला। (वै० निघ०)।

खल्बाट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खल्लीट। (हे० च०)।

खल्लुका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] शंख-नाभि। (र० सा० सं०)।

खल्ली—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] आकाशवली। अमरखेल। (रा० नि० व० ३)।

खवस्त—संज्ञा पुं० [अ०] कलिद। तरबूज। हिंदमाना।

खवातिमुल्-मलिक—संज्ञा पुं० [अ०] गिलेमखतूम। खयेत-मुल् मलिक।

खवारि—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आन्तरिक्षजल। आकाश-जल। (रा० नि० व० १४)।

खवालिक—संज्ञा पुं० [अ०] प्रसवपश्चात् वेदना । आलाम बाद विलादत । वजा हमल । जच्चा का दर्द । आफ्टर-पेन (After pain) ।

खवास—संज्ञा पुं० [अ०] द्रव्यों के गुण-दोष । प्रकृति ।

खवास्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बर्फ । हिम । (हारा०) ।

खवी—संज्ञा स्त्री० सं० स्त्री० (फा०) 'खवीद' । हरी घास व फसल ।

खवूसत—संज्ञा पुं० [?] तरबूज । कल्लिद । हिन्दुमाना ।

खश—संज्ञा पुं० [फा०] उशीर । खस ।

खशखक—संज्ञा पुं० [फा०] लोबान । गंधधूप ।

खश(शि)फ़—संज्ञा पुं० [अ०] हिरन का बच्चा जो सर्व-प्रथम उत्पन्न हुआ हो ।

खशब—संज्ञा पुं० [अ०] काष्ठ । लकड़ी । (wood) ।

खशब्दाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] लहसुनिया । वैद्युर्मणि ।

खशबुलनील—संज्ञा पुं० [अ०]

खशबुल करूज—संज्ञा पुं० [अ०] करंज का वृक्ष ।

खशबुल हयात—संज्ञा पुं० [अ०] चोबचीनी । चोबहयात ।

खशबुल-हय्य—संज्ञा पुं० [अ०] हलयून ।

खशबुलकदर—संज्ञा पुं० [अ०] मजरए स्याह । लालचंदन-तुल्य काष्ठ है ।

खशबुदशोनीज—संज्ञा पुं० [अ०] सोसारियून । (बु० क०) ।

खशबुस्तीनी—संज्ञा पुं० [अ०] चोबचीनी ।

खशम—संज्ञा पुं० [अ०] नाकड़ा । नाक सड़जाना । आघ्राण शक्ति का अभाव ।

खशम-कसूस—संज्ञा पुं० [अ०] चोबचीनी । (अं०) चाइना रूट (China Root) । (ले०) स्माइलेक्स चीना (Smilax china) ।

खशरक—संज्ञा पुं० [?] पहाड़ी अजमोद । दिरमिना ।

खशल—संज्ञा पुं० [अ०] गूगुल । गुग्गुलु ।

खशलः—संज्ञा पुं० [अ०] पेड़ और नाभि का मध्य स्थान । हाइपोगैस्ट्रियम (Hypogastrium) । (अ० शा०) ।

खशा—संज्ञा पुं०

खशाफ़—संज्ञा पुं० [अ०] चमगादड़ । चामचिड़ी ।

खशिन—संज्ञा पुं० [अ०] रूखा । रूखा । खुरखुरा । खर ।

खशिक—संज्ञा पुं० [अ०] मृगवत्स । हिरन का बच्चा ।

खशिली—संज्ञा पुं० [अ०] पेड़ और नाभि के मध्य स्थान की वस्तु । (Hypogastric)

खशीफ—संज्ञा पुं० [अ०] अखरोट । आक्षोट ।

खशीफ हिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] जंगली अखरोट ।

खशूनतुस्सौत—संज्ञा पुं० [अ०] बुहुतुस्सौत । आवाज की भराहट ।

खशूरिया—संज्ञा पुं० [फा०] भांगरा । भृंगराज । (बु० क०) ।

खशोट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खलिश मत्स्य ।

खशंग—संज्ञा पुं० [फा०] गंजा । जिसके शिर में बाल न हो ।

खशफल—संज्ञा पुं० [अ०] स्त्री का गुह्यांग । गुप्तांग । अंदामनिहानी ।

खशंसार—संज्ञा पुं० [?] मटमैले रंग की मुरगाबी ।

खशकरीशः रतबः—संज्ञा पुं० [अ०] ब्रण के छिछड़े जो मुरदार हो जाते हैं । यह प्रायः कारबंकल के फोड़े में हो जाते हैं । (अ०) । स्लफ (Slough)

खशकार—संज्ञा पुं० [फा०] भूसी सहित आटा ।

खशखाश—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] (१) खसतिल । पोस्ता के बीज । (२) पोस्ता ।

खशखाशे जुब्दी—संज्ञा पुं० [अ०] पोस्तातुल्य एक वनस्पति जो प्रायः १ गज लम्बी होती है । इसके बीज पोस्ता के दाना के सदृश छोटे-छोटे होते हैं । (मो० आ०; म० अ०) ।

खशखाश बर्री—संज्ञा पुं० [अ०] जंगली पोस्ता । पुष्प रक्तनीलाभ होता है । बीज काले होते हैं ।

खशखाशे-बहरी—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की घास है जो नदियों के किनारों पर तथा कठोर भूमि में उत्पन्न होती है । इसके पत्ते सफेद और फूल रक्त-पीतवर्ण के होते हैं । (म० अ०; मो० आ०) ।

खशखाशे-बुस्तानी—संज्ञा पुं० [फा०] उद्यानज खशखाश (पोस्ता) । यह खशखाश के नाम से प्रसिद्ध है । इसका फूल सफेद और बीज भी प्रायः श्वेतवर्ण के छोटे-छोटे गोल होते हैं ।

खशखाशे मन्सूरी—संज्ञा पुं० [अ०] यह जंगली पोस्ते का एक भेद है । इसके पुष्प शीघ्र गिर जाते हैं । (मो० आ०; म० अ०) ।

खशखाशे-मुकरन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खशखाशे बहरी' ।

खशखाशे मुनव्विम—संज्ञा पुं० [अ०] पोस्ता भेद ।

खशनीरक—संज्ञा पुं० [फा०] दिरमिनः खुरासानी ।

खश्रम—संज्ञा पुं० [अ०] मोम का छत्ता ।

खश्वास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायु । वात । (त्रिका०) ।

खश्शाफ़—संज्ञा पुं० [अ०] चमगादड़ ।

खश्शाम—संज्ञा पुं० [अ०] मोटी तथा बड़ी-सी नासिका-वाला व्यक्ति ।

खस—संज्ञा पुं० [सं०] तृणमूल विशेष । पर्याय—(सं०)-अभृणाल, अभय, अवदाह, अवदात, अवदाहेष्टकापत्र, दृष्टिकापत्र, उशीर, इन्द्रगुप्त, उशीरक, गन्धाढ्य, जलवास, नलद, दाहहरण, जलामोद, वीर, वीरण-वीर तरु, बहुमूलक, लघुलय, लघुभय, मृणाल, रणप्रिय, हरि-प्रिय, वितानमूलक, समगन्धिक, सुगन्धिक, सुगन्धिमूलक,

सेव्य, लामज्जक, शिशिर, शीतमूलक, सुगन्धिमूल, वीर-
भद्र, कटायन, कम्बु, वीरतर;

(हि०) गाँडर, गाडरा, गाँडर की जड़, खस; (बं०)
खस-खस, बेनार मूल, वीरन मूल; (गु०) कालो वाला नु
मूल, कालावालों, कालावालो झाड़नु मूल; (म०)
कालावाला; (कना०) वालद वेस; (मिर्जापुर) सीक की
जड़; (द०) वाला; (कना०) लावञ्ची, मुदि वाला;
(कों०) भानवालो; (पं०) पन्नी, वाला; (ते०) कुरु
वैरु, अवरु-गड्डि, बट्टिवेल्लु नल; (ता०) वेट्टिवैरु;
(मल०) रामच्छम (फा०) खस; (अं०) कस-कस (Cus-
Cus); (ले०) एण्ड्रोपोगनम्युरिकेटस (Andropogon
muricatus)।

वंशादि कुल (Family : Gramineae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के जलप्रायः प्रदेश, बंगाल,
मायसूर, राजपुताना, छोटा नागपुर, कारोमण्डलकोष्ट
इत्यादि।

परिचय—सीक तथा काँडर नामक तृण की सुप्रसिद्ध
सुगन्धित जड़ है जिससे ग्रीष्मऋतु में खस की टट्टियाँ
तथा हुकों के नैचे इत्यादि बनाए जाते हैं।

उपयोगी अंग—मूल, इत्र, आदि।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का उत्पत्
तैल, रज्जक द्रव्य, स्वतन्त्र अम्ल, चूने के लवण, बोलगंधो
चरपरा तथा गम्भीर रक्तधूसर निर्यासयुक्त पदार्थ,
लोहभस्म और कार्बोय पदार्थ इत्यादि पाए जाते
हैं।

गुण-कर्म—आहारपाचन, शीतजनक, लघुपाकी, तिक्त,
स्तम्भन, मधुर, ज्वर, वमन, मद, कफ, पित्त, पिपासा,
रक्तविकार, विष, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र तथा व्रण-
विनाशक है। (भा० पू० कपूरालादि व०; च० सू० ४ अ०;
स्तन्यजनने; रा० नि० व० १२; च० द० रक्तपि० चि०
दूर्वाद्य तैले)।

तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल
एवं रूक्ष है।

गुण-कर्म—दीपन, पाचन एवं, रक्तो द्वेगनाशक, ग्राही,
पित्तघ्न, हृदय-मस्तिष्क-आमाशयबलप्रद, आह्लादजनन,
शुक्रसांद्रकर, रक्तज एवं पित्तज ज्वरनाशक है।

उपयोग—इसका अर्क, हिम तथा फाण्ट के रूप में सेवन
हृदय की धड़कन, गदोद्वेग, मूच्छा, मरक तथा रक्त-पित्त-
जन्य ज्वर का नाश होता है तथा तृष्णा दूर होती है।
इसका अर्क वस्त्र में भिगाकर शिरपर रखने से मूच्छा,
चित्तभ्रम और उन्माद का नाश होता है। ग्रीष्म ऋतु
में खस जल में भिगा कर पान किया जाता है। खस दग्ध-
कर उसकी राख जल शोधनार्थ प्रायः प्रयोग में आती
है। अहितकर—शीतल प्रकृति के व्यक्तियों को।

निवारण—उष्ण ओषध। प्रतिनिधि—चन्दन। मात्रा—
६ से ७ माशा तक।

खस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पामा रोग। (२) वीरण
मूल। उशीर। दे० 'गाँडर'। (वै० निघ० वा० व्या०
चि०)। (३) खसतिल। पोस्ता का दाना।

संज्ञा पुं० [अ०] काहू।

खसक—संज्ञा पुं० [फा०] गोखरू। गोधुर।

खसकदान—संज्ञा पुं० [फा०] कड़। कुसुम बीज।

खसकन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वाराहीकन्द। (वै०
निघ०)। (२) क्षीरी वृक्ष। क्षीरीश गाछ। (प० मु०)
(३) क्षीरकञ्चुकी वृक्ष। (र० मा०)।

खसकलाँ—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ा गोखरू। फरीद बूटी।

खसकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] कटहल। फणस।

खसकेकबीर—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ा गोखरू। फरीद बूटी।

खसकेकलाँ—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ा गोखरू। फरीद बूटी।

खसखस—संज्ञा स्त्री० [सं० खस्खस] पोस्ता के बीज।
खसतिल।

खसगन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षीर कंचुकी। (बं०)
क्षीरकडार।

खसतः—संज्ञा पुं० [फा०] गुठली।

खसतहा—संज्ञा पुं० [फा०, बहु० व०] [एक व० खसतः]
गुठलियाँ।

खसतिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पोस्ता। खखस।
(भा०)। दे० 'पोस्ता'।

खसफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पोस्ते की डोंडी।

खसफेनक्षीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अफीम। अहिफेन।
(भा०)।

खसम्भवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आकाशमांसी। सूक्ष्म
जटामांसी। (रा० नि० व० १२)।

खसर—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'खिसारह'।

खसरान—संज्ञा पुं० [फा०, बहु० व०], [एक व० 'खसर']
दे० 'खिसारह'।

खसरून—संज्ञा पुं० [?] केशर।

खसर्पण-वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'खर्पणवटी'।

खसलान—संज्ञा पुं० [अ०] गुग्गुलुवृक्ष।

खसलाक—संज्ञा पुं० [अ०]

खसवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लकुचफल। बबहर का
फल।

खसबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पोस्ता के दाने। खखस।
खाखसदाना। गुण—वृष्य, बलवर्धक, कफकारक,
वातनाशक तथा गुष्पाकी है। (भा०)।

खसाअ—संज्ञा पुं० [अ०] गोबर। गोमय।

खस्खस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खसतिल। पोस्ता के दाने।

खस्खस-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अफीम। अहिफेन।

खसाफतुलभ्रल—संज्ञा पुं० [अ०] निर्बुद्धिता । मूढ़ता । (Idiocy) ।

खसास—संज्ञा पुं० [अ०; फा०] छेद । छिद्र । सुराख ।

खसिफ—संज्ञा पुं० [अ०] अखरोट । आशोट ।

खसियात—संज्ञा पुं० [अ०] बाहु और वंक्षण का मांस । बाजू और रान का गोश्त । मांस का वह खण्ड जिसपर यह स्थिर रहता है ।

खसिर—संज्ञा पुं० [अ०] शीतलता । ठंडक । जाड़ा । सरदी से हानि पहुँचना ।

खसी—संज्ञा पुं० [अ०] अण्डकोष का रोगी । वह व्यक्ति जिसके अण्डकोश में व्यथा हो ।

खसीउड़ीक—संज्ञा पुं० [अ०] (१) हव्वुलवान । (२) एक प्रकार की वनस्पति है जो बटेरतुल्य होती है । इसके दाने गोल आलूबालतुल्य होते हैं । (ख० अ०) ।

खसीतहुल् साअलब—संज्ञा पुं० [अ०] सालबमिसी ।

खसीलियर-आशसीनी—संज्ञा पुं० [यू०] चोबचीनी ।

खसीस—संज्ञा पुं० [अ०] अण्ड । अण्डकोष । (ख० अ०) ।

खस—संज्ञा पुं० [तुर०] खतू । खपरिन्दा ।

खसूबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सन्तानोत्पत्ति की योग्यता । (२) वनस्पतिशास्त्रज्ञ । वनस्पतिशास्त्र में प्रवीण । माली । (३) फलोत्पन्न करने की योग्यता । (अ०) फिक्रिडिटी (Fecundity) ।

खस्त—संज्ञा पुं० [फा०] [बहु० व०—खस्तहा] गुठली ।

खस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पृथ्वी ।

खस्ता—संज्ञा पुं० [फा०] जामुन । जम्बु ।

खस्र—संज्ञा पुं० [अ०] कोख । कुक्षि । आफ्रिका ।

नोट—खस्र शब्द का उपयोग तिब्ब में मनुष्य की कटि के लिए भी होता है ।

खस्लत—संज्ञा पुं० [अ०] स्वभाव । प्रकृति । खासियत । (अ०) हैबिट (Habit) ।

खस्स—संज्ञा पुं० [देश०] उशीर । दे० 'खस' ।

खस्सी—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बंद । बाधी । (२) वह व्यक्ति जिसका अण्डकोश निकाल लिया गया हो ।

खस्मुल्-कल्ब—संज्ञा पुं० [अ०] मस्तुराई । अत्सान ।

खस्मुल्-हिमार—संज्ञा पुं० [अ०] रतनजोत ।

खाइज—संज्ञा पुं० [अ०] कच्चा खजूर । अपक खजूर फल ।

खाइन—संज्ञा पुं० [तुर०] काहू ।

खाक—संज्ञा पुं० [फा०] मिट्टी । मृत्तिका ।

खाकचहार—संज्ञा पुं० [फा०] चौराहे की मिट्टी ।

खाकची—संज्ञा स्त्री० [फा०] खाकसी । खूबकलाँ ।

खाकरस्त—संज्ञा पुं० [फा०] विशुद्ध मृत्तिका । शुद्ध मिट्टी ।

खाकशी—संज्ञा पुं० [शीराज] खाकसी । खूबकलाँ ।

खाकसी—संज्ञा पुं० [फा०] पर्याय—(हि०) खाकसीर, खूबकलाँ; (फा०) खूबकलाँ, खाकची, शिबः, तुलमशहह, शफ़तरक; (अ०) खुब्बा; (अ०) हेजमस्टर्ड (Hegde mustard); (ले०) सिसिमिनियम-इरियो (Sisymbrium irio) । सर्षपादिकुल ।

उद्भवस्थान—उत्तरीय भारत, फारस, यूरोपादि ।

परिचय—सिकता वा छोटी राई तुल्य एक बीज है । ग्रीष्म ऋतु में खेतों में सरसों की भाँति उत्पन्न होती है ।

स्वाद—अनुरस ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं शीतल है ।

गुण-कर्म—कफनिःसारक, जीर्णज्वरघ्न, बृंहण, ओज-वर्धक, आमाशय-बलप्रद, शरीरपुष्टिकर तथा विसूचिकानाशक है ।

उपयोग—इसको भर्जितकर सेवन करने से जीर्ण-ज्वर का नाश होता है । इसको काथकर सेवन करने से शीतला तथा खसरा में लाभ होता है । इसके उपयोग से शीतला के दाने शीघ्र प्रकट होते हैं । शीतला के रोगी की शय्या पर भी उक्त लाभ हेतु बिखेरी जाती है । वंशलोचन के साथ चूर्णकर सेवन कराने से उरःक्षत, जीर्णकास तथा बालशोष का नाश होता है । स्वरयंत्र-प्रदाह, स्वरभंग, कंठदोषादि में भी उपयोगी है । शुष्क कास में सेवन कराने से सरलतापूर्वक कफ का उत्सर्ग होता है । इसको गुलाबजल में भिगाकर सेवन कराने से विसूचिका में लाभ होता है । कासनी के फाड़े हुए स्वरस में देने से पित्तज विसूचिका में लाभ होता है । इसे चूर्णकर सेवन करने से अग्निमान्द्य, आध्मान, शोथ तथा वातविकार शांत होता है । यह परम रोधो-द्धाटक है ।

अहितकर—शिरोवेदना उत्पादक है ।

निवारण—कतीरा ।

प्रतिनिधि—तोदरी । मात्रा—५ से ७ माशा ।

खाकसीर—संज्ञा स्त्री० दे० "खाकसी" ।

खाकस्तर—संज्ञा पुं० [फा०] भस्म । राख । रमाद ।

खाक्रिबाक—संज्ञा स्त्री० [अ०] योनि । स्त्री का गुप्त स्थान ।

खाकीअंडा—संज्ञा पुं० [बैजुरीह] वा वह अंडा जो बिना जोड़ खाए हुए मुरगियाँ देती हैं । इस अंडा से बच्चे नहीं उत्पन्न होते ।

खाखर-बेल—संज्ञा स्त्री० [गु०] विदारीकंद । विलाई कंद ।

खाखस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पोस्ता के बीज । खसतिल ।

खाखरा—संज्ञा पुं० [गु०] पलाश । किशुक । ढाक ।

खाखस-तिल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पोस्ता के बीज । खसतिल ।

खाखसतिलोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पोस्ता ।
(२) खसतिल तैल । (वै० निघ०) ।

खागड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) खगड़ा । तालमखाना ।
(२) बेर । बदरी ।

खागीनः—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का भोजन जो यवमण्ड द्वारा प्रस्तुत किया जाता है ।

पर्यायः—खागीना (हिं०, फा०); खबीमुल्बैज (अ०);
खायः रेज (फा०) ।

टिप्पणी—खागीनः शब्द खाग से जिसका अर्थ अंडा है, व्युत्पन्न है । रशीदी नामक अभिधानग्रन्थ में लिखा है कि किसी-किसी ने खागीनः को खायःगीनः का संक्षिप्त रूप बताया है । इनमें प्रथमोक्त यथार्थ है । खबीस एक प्रकार का हलवा है जिसे खुमें और घी से बनाते हैं । कामूस में लिखा है—“अल्मअमूल मनुत्तमर वस्समन ।” वहल्ल जवाहर में लिखा है कि एक प्रकार का हलुआ है जिसे तिलतैल में गेहूँ के मैदे को भूनकर खाँड़ या मधु या अंगूर का शीरा (रस) डालकर मन्दाग्नि से इतना पकाते हैं कि स्नेह छोड़ देता है । रियाजुल् अद्विया के मत से एक खाद्य है जो छुहारै (खुमें) और रोगन से तैयार होता है । मुहीत में खबीस का अर्थ खागीनः लिखा है जो ठीक नहीं है । खागीनः का ठीक पर्याय खबीमुल्बैज है और यही खजाइनुल्मुलूक के मत से भी ठीक है ।

वर्णन—एक प्रकार का सालन जिसे अंडे से बनाते हैं । जिसमें सब्जी भी डालते हैं, उसे ‘कूकू’ कहते हैं । (मखन; मुहीत) ।

गुण-प्रयोग—इससे रक्त अधिक बनता (कसीरुलशिजा) है और सांद्र दोष उत्पन्न होता है । यह दोषपाकी है । इसे दारचीनी और कुलंजन तथा अन्यान्य कामोद्दीपक औषधियों के साथ सेवन करने से यह परम वाजीकरण है । (मखन; मुहीत) ।

नोट—मखन में खबीमुल्बैज और मुहीत एवं खजा-इन में खागीनः शब्द में इसका वर्णन आया है ।

खाज—संज्ञा स्त्री० [सं० खजू] कण्डू । खुजली । खारिश ।

खाज—संज्ञा पुं० [फा०] (१) गर्भाशय । (२) शरीर की मेल । (३) झाँवा । (फा०) संग वासनः ।

खाजब—संज्ञा पुं० [?] (१) शतुर्मुख ।

खाजा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत बड़ा नहीं होता ।

खाजिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लावा । लाजा । खोई । खे । (हारा०) ।

खाजिबाज—संज्ञा पुं० [फा०] (१) मक्खियों की भनभनाहट का शब्द । (२) हरे पीधों पर रहनेवाली एक प्रकार की मक्खी । (३) कण्ठशूल ।

खाज्ञा—संज्ञा पुं० दे०] एक प्रकार की मिठाई जो मैदा-चीनी से प्रस्तुत की जाती है ।

खाटि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] किण । मांसग्रन्थि ।

खाडव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छोहाडा । खज्जूर ।

खाण्डव—,, ,, [,, ,,] (वै० निघ०) । (२) एक प्रकार का खाद्य वस्तु जो मधुर, अम्ल, लवण तथा विविध सुगन्धद्रव्यों के संयोग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है ।

खात—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } वावली । पुष्करणी ।

खात्र—,, ,, [,, ,,] }
खातक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] परिखा । चुइयाँ । चूवाँ ।

खातभू—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रतिकूप । परिखा । चुइयाँ । चूवाँ ।

खातिफ़—संज्ञा पुं० [ज़ूफ़] पक्षी भेद ।

खातिम—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० खवातिम] व्रणशोषक द्रव्य । मुजफ़िफ़ । वह औषध जो व्रण को शुष्क कर उस पर खुरंड उत्पन्न करे ।

यथा—कत्था, संगजराहत इत्यादि । (अ०) इयुपोलोटिक (Eupolotic) ।

खातिमुल्मलिक—संज्ञा पुं० [अ०] (फा०) साद औराम ।

खात्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० ‘खात’ ।

खादन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दाँत । दन्त । (Tooth) । (हे० च०) ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] आहार । भोजन ।

खादन कोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाद जिसमें घोड़ा को आहार दिया जाता है । (नकु० १८ अ०) ।

खादिम—संज्ञा पुं० [अ०] सेवक ।

खादिमह—संज्ञा पुं० [अ०] वह अँग जो उत्तमाङ्गों की सेवा करे । यथा—मस्तिष्कगत नाडियाँ ।

खादिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गूहबबूल । विट्खदिर । रीवाँ । (२) कत्था । खदिरसार । (रा० नि० व० १८) । दे० ‘खैर’ ।

खादिरसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कत्था । दे० ‘खैर’ ।

खाद्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अष्टविध आहारों में से एक प्रकार का आहार । (रा० नि० व० २०) ।

खाद्यपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खदिर वृक्ष । खैर का पेड़ । (रा० नि० व० ८) ।

खान—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि] } आकर । खानि ।

खान—[फा०] }

खानि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आकर । खान । (हे० च०) ।

खानिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रत्न । (वै० निघ०) ।

खानिक्र—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ अवरोधक, घुटनेवाला ।

श्वासावरोधक । तिब्बी परिभाषा में एक प्रकार का रोग जिसको काबूस कहते हैं ।

खानिक—संज्ञा पुं० [अ०] पाश्वंशूल, फुफुसप्रदाह, उभय फुफुसीय प्रदाह । जातुज्जम्ब मुजाइफ । (अ०) डबल-प्ल्यूरिसी (Double Pleurisy) । इस प्रकार के प्रदाह में फुफुस द्वय की आवरक कलाओं में शोथ होने के कारण श्वासावरोधजन्य वेदना होती है । श्वासग्रहण में तीव्र वेदना होती है । रोगी को करवट बदलने में कठिन कष्ट प्रतीत होता है ।

खानिकुज्जीब—संज्ञा पुं० [अ०]

पर्या० और टिप्पणी—मख्जन और मुहीत में इसकी एक अरबी संज्ञा क्वातिलुज्जीब भी लिखी है । यदि भेड़िया इसको खा ले तो खुनाकग्रस्त होकर मृतप्राय हो जाय । इसलिये इसे खानिकुज्जीब व क्वातिलुज्जीब (खानिक=खुनाक जनक वा क्वातिल=वध करनेवाला+जीब=भेड़िया) कहते हैं । मुहीत में इसकी यूनानी और फारसी संज्ञाएँ क्रमशः ओनक्रतूस और खालजंगी लिखी हैं । पर उनमें से प्रथम कुटकी और द्वितीय खर्बकस्याह के लिये व्यवहार में आती हैं । मुहीत के लेखक के मत से उपर्युक्त संज्ञा कुटकी-वाचक है । किंतु मतांतरसे यह खर्बकस्याह है । इन्मामसूयः के मत से यह प्याजदशती है । किंतु इखितयारात के निर्णीत मत से यह खर्बकस्याह है । दे० 'खर्बक स्याह' ।

वर्णन—तृणजातीय लगभग एक गज ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ चनारपत्रवत्, गहरे हरे अर्थात् काले रंग की, क्षुद्रतर और अपेक्षाकृत अधिक दंतित होती हैं । उससे पतली लंबी शाखायें निकलती हैं । फल एक लंबे कोष में होता है । जड़ (अरबयानवत्) होती है और यही भेड़िया के वध के लिये काम में ली जाती है । यह प्रायः अंताकिया प्रदेश में होता है ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षांत में उष्ण और रुक्ष । मतांतर से तृतीय कक्षांत में शीतल एवं रुक्ष । शक्ति एवं समस्त गुणों में यह खानिकुन्नमिर के समान है । **गुणप्रयोग**—यह अपने प्रभाव से भेड़िये के लिये घातक विष है । यदि इसको कच्चे मांस पर कूटकर छिड़क दें, तो भेड़िया, घोड़ा या कुत्ता इनमें से जो भी इस मांस को खाय तुरंत मर जाय । इसलिये यह उचित है कि इसे न तो आभ्यंतरिक और न बाह्य प्रयोग में ही लें । (मुहीत; मख्जन) ।

खानिकुन्नमिर—संज्ञा पुं० [अ०] एक ओषधि ।

टिप्पणी—मख्जन और मुहीत आदि में एक और अरबी संज्ञा 'क्वातिलुन्नमिर' भी लिखी है । मख्जन और मुहीत में इसकी यूनानी संज्ञाएँ क्रमशः अकूनीतून और अकूनीतुस लिखी हैं । मख्जनुलअदविया डॉक्टरी में अकूनीतून को अकूनीतून यूनानी संज्ञा से, जिसका अर्थ बच्छनाग है, अरबीकृत लिखा है ।

वर्णन—इसके परिचय के सम्बन्ध में बड़ी मतविभिन्नता पाई जाती है । अस्तु, कोई तो इसे माजरयून स्याह मानते हैं और कोई वनपलाण्डु (प्याज दशती) । अमोनुद्दौला के मत से यह वन्य लशुन-पुष्प है । माला-यसू के संकलयिता एवं तजकिरा के रचयिता लिखते हैं कि इसका तना एक बित्ता ऊँचाई का होता है । पत्र ककड़ी की तरह पर उनसे क्षुद्रतर होते हैं और खुरदरे होते हैं तथा संख्या में ३ वा ४ से अधिक नहीं होते । जड़ बिच्छू की दुम की तरह और चिकनी, चमकदार शीशे की तरह होती है ।

प्रकृति—चतुर्थ कक्षा में शीतल और रुक्ष ।

गुण-प्रयोग—इसके खाने से प्राणी तत्काल यमलोक सिधारते हैं, विशेषकर तेंदुआ तो बचता ही नहीं । इसीलिये खानिकुन्नमिर (खानिक=खुनाकजनक+नमिर=तेंदुआ) कहते हैं । यदि बिच्छू इसके पास पहुँच जाय अथवा इसे बिच्छू के पास लावे तो वह तुरंत मर जाय । इसे उष्ण सृजन पर लगाने से उपकार होता है । इससे नेत्रशूल शमन होता है । इसके उपयोग से अर्शाङ्कर झड़ जाते हैं । पौने दो मासे खा लेने से शिरोभ्रमण, कण्ठशोथ (खुनाक), हस्त-पाद में आक्षेप और मूकता एवं शरीर श्यावता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । उक्त अवसर पर उसका उपक्रम यह है कि उसे कमाफीतूस सेवन कराएँ; क्योंकि यह उसका अगद है । सातर, सुदाब, फ़रासियून, अफ़सन्तीन, जिर्जीर और कैसूम आदि का सेवन कराएँ, मद्य पान कराएँ, वमन और बस्ति का प्रयोग करें । इससे शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है और दोष विकृत हो जाते हैं । इसलिये मनुष्य को इसका सेवन उचित नहीं । शेष अन्यान्य अंगों से इसकी जड़ अधिक बलवत्तर है ।

खानिकुल कल्ब—संज्ञा पुं० [अ०]

टिप्पणी—खानिकुलकल्ब का योगार्थ कुत्ते का गला घोटनेवाला (खानिक=खुनाकजनक वा गला घोटने-वाला+कल्ब=कुत्ता) है । इसके खाने से कुत्ते को खुनाक होकर वह मर जाता है । इसलिये इसे उक्त संज्ञा द्वारा अभिहित किया गया । इसे अरबी में क्वातिलुल कल्ब भी कहने का यही कारण है ।

वर्णन—किसी-किसी के मत से यह कलिहारी* वा लांगली है और किसी के मत से कुचला (कुचूला) और बुरहान के मत से यह करमकल्ला है; क्योंकि इसको खाते ही कुत्ता मर जाता है । यूसुफ़ बग़दादी ने मालायसूअ में लिखा है कि यह उनसे भिन्न एक अन्य ओषधि है ।

*कलिहारी की जगह मख्जन और मुहीत में कलिहाड़ी और लांगली के स्थान में खजाइन में लांगी लिखा है ।

उनके मत से यह एक घास है जिसकी शाखाएँ पतली और लंबी तथा कड़ी होती है। तोड़ने से ढेर में टूटती है। इसके पत्ते लबलाब के पत्तों की तरह होते हैं और पत्र-प्रांत तीक्ष्ण होते हैं। उनसे अत्यन्त दुर्गन्ध आती है और एक प्रकार का पिच्छिल द्रव निकलता है। इसमें एक अंगुली के बराबर लम्बी बाकला की फलियों की तरह फलियाँ लगती हैं और फलियों के भीतर छोटे-छोटे काले रंग के कड़े बीज होते हैं।

प्रकृति—चतुर्थ कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। **गुण-कर्म तथा उपयोग**—यह अत्यन्त घातक विष है। इसके खाने से कुत्ता के गले में खुनाक (कण्ठशोथ) उत्पन्न होकर उसकी मृत्यु हो जाती है। कुत्ते ही नहीं प्रत्युत अन्य प्राणी भी इसके खाने से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। **उपयोग**—इसको पीसकर लेप करने से शीतजन्म शोथ विलीन होता है। इसके खाने से नासा तथा मुख से रक्तस्राव होने लगता है। **निवारण**—इसके विष की विषाक्तता नष्ट करने के लिए शीतल एवं स्निग्ध द्रव्यों का उपयोग हितकर है। यदि रोगी बलवान् हो तो रक्तमोक्षण कराकर शीतल एवं हृद्य औषधियों से हृदय की दुर्बलता दूर करें।

खानिकुल मल्लूक—संज्ञा पुं० [अ०] संख्या।

खानिष्क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अतिशुष्कमांस। अत्यन्त सूखा गोشت। (वै० निघ०)।

खानोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नारियल। नारिकेल। (त्रिका०)।

खायगा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आकाशगङ्गा। (हे० च०)।

खाफिज—संज्ञा स्त्री० [अ०] खसना करनेवाली स्त्री। पर्याय—पखान। आसियः।

खाफूर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की वनस्पति।

खा (खवा) ब—संज्ञा पुं० [अ०] स्वप्न। सपना। स्वप्नावस्था। दे० 'स्वप्न' व 'खवाब'।

खा (खवा) बबेदारी—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खवाब'।

खाम्—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कच्चा। अपक्व। (२) आमदोष। विकृत श्लेष्मा।

खामः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मलिन। मैला। (२) मांस। गोشت।

खामअ—संज्ञा पुं० [अ०] विकृत मांस। गोشت गन्दः।

खामत्—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बिना खाल की भेड़। (२) दुर्गन्धयुक्त मलगन्धि।

खामा अकूती—संज्ञा स्त्री० [यू०] खमान सगीर। दे० 'खमान'।

खामाउल्कबीर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो ३ मिस्काल अर्थात् १ तोला २ माशा के बराबर होता है।

खामा उस्सगीर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो २ मिस्काल अर्थात् ९ माशा के बराबर होता है।

खामाजरियून—संज्ञा पुं० [यू०] बलूतुलार्ज।

खामाजाकनी—संज्ञा पुं० [यू०] गार। दे० 'गार'।

खामानीतस—संज्ञा पुं० [यू०] सनोबरुल्ल अर्ज।

खामामालियून—संज्ञा पुं० [यू०] बाबूनः।

खामाला—संज्ञा स्त्री [यू०] माजरियून।

खामालानस—संज्ञा पुं० [यू०] अक्रियूस।

खामालावन—संज्ञा पुं० [यू०] (१) इस्खीस। (२) माजरियून स्याह। (३) गिरगिट। सरट। कृकलास।

खामासूकी—संज्ञा स्त्री० [यू०] पर्याय—हामासूकी।

नामकरण—यूनान में 'खामा' का अर्थ पृथ्वी और सूकी का अर्थ अंजीर होता है अर्थात् इससे जमीन का अंजीर (भुँइगूलर) अभिप्रेत है।

परिचय—यह एक प्रकार की वनस्पति है। इसमें तना और पुष्प नहीं होते हैं। इसके मूल से छोटी-छोटी प्रायः ४ अंगुल के बराबर शाखा निकलकर पृथ्वी पर फैल जाती हैं। शाखाओं में दुग्ध भरा होता है। **पत्र**—इसमें मसूरपत्रवत् पत्तियाँ लगती हैं, जो शाखाओं के निम्न भाग में होती हैं। **फल**—इसकी शाखाओं के नीचे फल लगते हैं। इनका स्वरूप गोल होता है। जब इसकी पतली-पतली होती हैं। इसकी उत्पत्ति प्रायः शुष्क-पथरीली भूमि में होती है। यह प्रायः मिस्र देश में होती है। मिस्र के ऐनुशमस नामक प्रदेश में यह अधिक होती है।

प्रकृति—तृतीय कक्षा के प्रारम्भ में उष्ण एवं रूक्ष है। **गुण-कर्म**—कटु, अत्यन्त वर्णकारक, शुक्लनाशक, व्रणचिह्ननाशक, प्रतिश्यायहर; नेत्रों को हितकर, अशोष्ण, गर्भाशयिक वेदनाहर, चर्मरोगघ्न, विषघ्न, श्लेष्मघ्न और शोथघ्न।

उपयोग—इसकी पत्तियों का स्वरस नेत्रों में लगाने से नेत्रगत शुक्ल (फूला) और शिराजाल का नाश होता है। इसके उपयोग से फुंसियों के चिह्न मिट जाते हैं। प्रारम्भिक प्रतिश्याय में सेवन करने से उपकार होता है और धुन्ध का नाश होता है। इसको अल्प मात्रा में ग्रहणकर रोटी के साथ सेवन करने से अशङ्कर कटकर गिर जाते हैं। इसकी पत्तियाँ इत्यादि मद्य के साथ पीसकर योनि में स्थापन करने से गर्भाशयिक वेदना शांत होती है। इसकी पत्ती और शाखाओं के दुग्ध को लगाने से प्रत्येक प्रकार के तिलकालक और मशक नष्ट हो जाते हैं। इसके उपयोग से वृश्चिकदंशज विष शमन होता है। इससे कफज शोथ में भी उपकार होता है। आघातजन्य व्रणचिह्नों पर पीसकर प्रलेप करने से चिह्न नष्ट हो जाते हैं। इसका वक्त्र भी पान करने से उपयुक्त विकारों में लाभ पहुँचता है।

अहितकर—व्रक्ष को।

निवारण—कतीरा ।

मात्रा—४ जी

खामिराक—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का भोजन जिसमें सिरका मिश्रितकर प्रस्तुत किया जाता है ।

खामिशः—संज्ञा पुं० [?] (१) चित्रक । (२) बड़ा ज्वार । (३) सोनीज । कलौजी ।

खामीज—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कच्चा मांस जो सिरका में डाला गया हो । (२) मृष्ट । भजित । भूना हुआ ।

खामून—संज्ञा पुं० [यू०] जीरा ।

खाम्बूर—संज्ञा पुं० [अफ०] खुम्बः ।

खायः—संज्ञा पुं० [फा०] (१) अण्ड । वृषण । (२) ऊदविलाव । खट्टास ।

खायए (हे) इल्लीस—संज्ञा पुं० [फा०] करंज । दे० 'करंज' ।

खायए (हे) सगे आबी—संज्ञा पुं० [फा०] ऊदविलाव का वृषण ।

खायः कजक—संज्ञा पुं० [फा०] स्तीला ।

खायः कीरक—संज्ञा पुं० [फा०] ।

खायः तन्दूरा—संज्ञा पुं० [फा०] खट्टाशका वृषण । जुन्द-वेदस्तर ।

खायन—संज्ञा पुं० [बरबरी] भाँटा । वृन्ताक । बैगन ।

खायः माकिया—संज्ञा पुं० [फा०] मुरगी के अंडे ।

खायः रुबाह—संज्ञा पुं० [फा०] । लोमड़ी का वृषण ।

खायः सग—संज्ञा पुं० [फा०] खुसी उल कल्व । खुसियुलकल्व । कुत्ते का वृषण

खायिज—संज्ञा पुं० [अ०] अपक्व वा अर्धपक्व खजूर ।

खार—संज्ञा पुं० [सं०] क्षार । क्षार ।

निरुक्ति—“क्षरणात् क्षणनाद्वा क्षारः” (सु० सू० ११ अ०) ।

“भित्वाभित्वाशयान् क्षारः क्षरत्वात् क्षारयत्यधः” (चरक) ।

अर्थात् यह धातुओं का क्षरण वा क्षणन करता है, अतः इस कल्प को क्षार (काँष्टिक) कहते हैं ।

गुण-कर्म—यह विविध द्रव्यों के संयोग से प्रस्तुत किया जाता है । अतः यह त्रिदोषघ्न है । श्वेत वर्ण का होने से सोम्य होता है । किन्तु सोम्य गुणयुक्त होने पर भी इसकी दहन, पाचन, दारणादि शक्ति अप्रतिहत होती है । वास्तव में क्षार अधिसंख्य तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा निर्मित होने से वह कटु उष्ण, तीक्ष्ण, पाचन, विलयन, रोपण, शोधन, शोषण, स्तंभन तथा लेखन होता है । कृमि, आमदोष, कफ, कुष्ठ, मेद और विष नाशक है तथा अधिक मात्रा एवं अधिक काल पर्यन्त सेवन करने से पुरुषत्व का नाश करता है ।

भेद—(१) प्रतिसारणीय और (२) पानीय । गुण-कर्म—इनमें से प्रतिसारणीय क्षार के उपयोग से अबुद, अर्श, किटिभ, किलास, कोल, कुष्ठ, चर्मकोल, तिलकालक, कृमि,

दद्रु, न्यच्छ, मण्डल कुष्ठ (दाद), मशक, नाडीव्रण, (sinus), दुष्टव्रण, भगन्दर, व्यंग, बाह्य विद्रधि, दंश विष तथा उप-जिह्वा, अधिजिह्वा, उपकुश, दन्त वेदभ, तीन प्रकार की रोहिणी (डिप्थीरिया), ऐसे मुखरोगों में लगाने से लाभ होता है ।

पानीय क्षार के उपयोग से विषविकार, गुल्मरोग, उदररोग, अग्निसङ्ग, अजीर्ण, अरोचक, आनाह, आम्यन्तर विद्रधि, कृमि, विष, अर्श, अश्मरी तथा शर्करा का नाश होता है । (सुश्रुत) ।

वक्तव्य—जो बाह्यभाग में लगाया जाता है, उसको आयुर्वेद की परिभाषा में प्रतिसारणीय कहते हैं और जो जल में मिश्रितकर मुखमार्ग से पानार्थ दिया जाय, उसको पानीय क्षार कहते हैं ।

निषेध—रक्तपित्त, उ्वर से पीडित, पित्त प्रकृति, बालक, वृद्ध, दुर्बल, भ्रम, मद, मूर्च्छा (Syncope), तिमिर तथा उक्त रोगों से पीडित व्यक्तियों को पानीयक्षार का उपयोग वर्जित है । पानीयक्षार प्रतिसारणीय क्षार की भाँति ओषधिभस्मकर जलयुक्त स्त्रावण करने से प्रस्तुत किया जाता है ।

प्रतिसारणीय क्षार के भेद—(१) मृदुक्षार, (२) मध्य क्षार और (३) तीक्ष्णक्षार । इनमें संव्यूहिम नामक क्षार को मृदुक्षार कहते हैं और जो सप्रतिवाप देकर पकाया जाता है, उसको पाक्व नामक तीक्ष्णक्षार कहते हैं और जिसमें कटशर्करा (चूना), भस्मशर्करा (शुक्ति भस्म, शंखनाभि भस्म), क्षीरपाक (पत्थर का चूना) इनको अग्निवर्णलाल करके प्रथम से ही लोहपात्र में रखे हुए क्षारोदक में बुझाकर तथा उसी जल से पीसकर दो द्रोण शेष क्षारोदक के लिए ८ पल शंखनाभि आदि का प्रमाण डालकर पुनः निरन्तर सावधानी से क्षारोदक को हिलाते रहें और ऐसा करें कि जिससे क्षार न अधिक गाढ़ा हो जावे और न बहुत पतलीही रहे । जब पाक ठीक हो जाए, तब अग्नि से उतारकर लोह के संकुचित मुखवाले घड़ा में भरकर बंदकर रख दें । इस प्रक्रिया से प्रस्तुत क्षार को मध्यपाकक्षार कहते हैं । उक्त क्षारोदक में शंखनाभि, भस्मशर्करा तथा क्षीरपाकहित प्रस्तुत किया जाए तो वही संव्यूह-हिम नामक मृदु क्षार हो जाता है । (सु० सू० ११ अ०) पाक्वक्षार—कटशर्करा (कंकड़ का चूना) इत्यादि चूर्ण के साथ दन्ती, द्रवन्ती, चित्रक लांगली, करञ्ज, प्रवाल, ताड़पत्री, विडलवण, सज्जीखार, कनकक्षीरी, हिङ्गु, वच और अतीस—इनमें से जो प्राप्त हों बारीक चूर्णकर शुक्तिप्रमाण डालकर जो क्षार पक होता है, उसको पाक्व नामक तीक्ष्णक्षार कहते हैं ।

उपर्युक्त मृदु, मध्य तथा तीक्ष्ण क्षारों में से जैसी आवश्यक

—यकता हो, तदनुसार उपयोग में लाएँ। यदि अधिक कालपर्यन्त रखने से क्षार क्षीणशक्ति का हो गया हो तो उसकी शक्ति-संवर्धनार्थ पुनः क्षारोदक डालकर उसकी शक्ति बढ़ा दी जाती है।

क्षार के ८ गुण—(१) वह जो न अधिक तीक्ष्ण हो, (२) वह जो न अधिक मृदु हो, (३) वह जो श्वेत वर्ण हो, (४) श्लक्ष्ण (मृदु) हो, (५) पिच्छिल, स्निग्ध, चिकना (Soapy) हो, (६) वह जो स्पर्शस्थान से अधिक न फैलता हो, (७) गुणकारक हो और (८) शीघ्र प्रभाव करनेवाला हो, यह आठ गुण क्षार में होते हैं—

सैवाति तीक्ष्णो न मृदु शुक्लः श्लक्ष्णोऽथ पिच्छिलः।

अविष्यन्दी शिवः शीघ्रः क्षारो ह्यष्टगुणः स्मृतः॥

क्षार के ८ दोष—(१) अति मृदु, (२) अति शुक्ल, (३) अति तीक्ष्ण, (४) अतिपिच्छिल, (५) अति सर्पण-शील, (६) अतिसान्द्र (अधिक गाढ़ा), (७) अपक्व (कच्चा) और (८) गुणहीन द्रव्यों द्वारा निर्मित, उक्त ८ दोष क्षार के हैं—

अतिमादवं श्वेत्यौष्ण्य तैक्ष्ण्य पैच्छिल्य सपितः।

सान्द्रताऽपक्वता हीनद्रव्यता दोष उच्यते॥

क्षारदग्ध के लक्षण तथा प्रतिकार—व्याधियुक्त स्थान में क्षार के स्पर्श से कृष्णता (कालापन) आ जाता है। अतः उस दग्धस्थान पर घृत और मुलेठीयुक्त अम्लवर्ग के लगाने से पीड़ा शान्त होती है।

तस्मिन्निपतिते व्याधौ कृष्णता दग्धलक्षणम्।

तत्राम्लवर्गः शमनः सर्पिर्मधुसंयुतः॥ (सुश्रुत)।

अथवा घृतमधूकयुक्त निर्वापण करने के पूर्व हई से लिपटी हुई शलाका द्वारा परिमार्जन करना उचित है और निर्वापण के पश्चात् शीतघृत का प्रलेप दग्धस्थान पर करना चाहिए और दग्धभाग शीघ्र विशीर्ण होने के निमित्त दधि, उड़दतुल्य अभिष्यन्दी पदार्थों का सेवन हितकर होता है।

क्षीरं प्रमाज्जेनेनानु परिमृज्यावगम्य च।

सुदग्धघृतमध्वक्तं तत्पयोमस्तु काञ्जिकैः॥

निर्वापयेत्ततः साज्जैः स्वादुशीतैः प्रदेहयेत्।

अभिष्यन्दीनि भोज्यानि भोज्यानि क्लेदनाय च॥

(अष्टांगहृ०)।

यदि दृढ़ मूलवृद्ध होने के कारण क्षार द्वारा दग्ध भाग शीघ्र विशीर्ण न होता हो तो उपर्युक्त वर्णित सब लेप करें। अथवा धान्याम्ल नामक काँजी की तलछट, तिल और मुलेठी समान भाग में एकत्र पीसकर क्षारदग्ध भाग पर लेप करें। अथवा व्रणरोपण के लिए तिलकल्क, मुलेठी और घृत एकत्र पीसकर लेप करें। (सु० सू० ११ अ०)।

सुश्रुतका प्रश्न—तीक्ष्ण ओर उष्णवीर्य अम्लरस जो

स्वयं अग्निरूप है, उससे दूसरे अग्नितुल्य क्षार की शान्ति किस प्रकार होती है? धन्वन्तरि का उत्तर— है वत्स क्षार में अम्लरस के अतिरिक्त शेष समस्त रस उपस्थित समझो। इनमें कटुरस प्रधान तथा अधिक और लवण अनुरस (अप्रधान) होता है। तीक्ष्ण लवणरस (क्षार) जब अम्लरस से संयुक्त होता है तब वह तीक्ष्ण भाप को त्यागकर मधुर भाप को प्राप्त हो जाता है और मधुर में परिणत हो जाने से शान्ति को प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार जल के छिड़कने से अग्नि शान्त हो जाती है।

वक्तव्य—रासायनिक प्रक्रिया से क्षार अम्लतानाशक (Antiacid) तथा अम्लरस क्षारनाशक (Antialkaline) है। आयुर्वेद में क्षारकर्म (पोटेशियल कॉटरी Potential cautery) के लिये जो क्षार (कॉस्टिक Caustic) प्रयुक्त होते हैं, उनके वनस्पतियों की भस्म तथा खनिज और प्राणिज पदार्थ उपयोग में आते हैं। वनस्पतियों की भस्म में अधिकांश सोडियम कार्बोनेट, पोटेशियम कार्बोनेट, कैल्शियम ऑक्साइड, मैग्नेशियम ऑक्साइड, सिलिका इत्यादि रासायनिक द्रव्य होते हैं। वनस्पतियों की भस्म जल में घोलकर, वस्त्र से छानकर और अग्नि से पकाकर क्षारोदक में प्रथम परिवर्तित किया जाता है। क्षारनिष्कर्ष की इस विधिविशेष को पाश्चात्य आयुर्वेद की परिभाषा में लिक्सीविकेशन (Lixivication) और क्षारोदक को 'लाय (Lye)' कहते हैं। क्षारोदकनिर्माणकाल में सिलिकेतुल्य कतिपय अनघुल पदार्थ होने के कारण फेंक दिये जाते हैं। सोडियम और पोटेशियम के लवण जल में विद्रुत होते हैं और कतिपय पदार्थ एक दूसरे के साथ परिवर्तित (Double decomposition) होने के कारण नवीन निर्मित होते हैं।

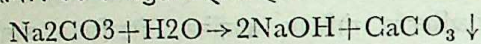
उक्त नूतन पदार्थ सोडियम और पोटेशियम के हाइड्रोक्साइड हैं। किन्तु इनकी राशि अल्प होती है। इनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है, इसका विचार आगे मध्यम क्षार के निर्माण में किया गया है।

क्षार की क्षणशक्ति (एस्कारोटिक—Escharotic), कार्बोनिक की अपेक्षा हाइड्रोक्साइड पर अधिक निर्भर होती है। क्षारोद में हाइड्रोक्साइड की राशि अल्प होने के कारण इसकी क्षणशक्ति भी अल्प होती है और उक्त कारण से क्षारोदक को आयुर्वेद में 'मृदुक्षार' कहते हैं। क्षारोदक की शक्तिवर्धनार्थ सुधा (चूना), पाषाण (Marble), क्षारपाक (चाक Chalk), शंख (Conch shell), शुक्ति (ऑइस्टर शेल Oyster shell) इत्यादि चूने के पदार्थ अग्नि में दग्ध कर प्रयुक्त होते हैं। अग्नि में दग्ध करने के पूर्व उक्त पदार्थ कैल्शियम कार्बोनेट (Calo) होते हैं। दग्ध करने से इनका परि-

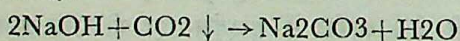
वर्तन केल्सियम ऑक्साइड (CAO) और कार्बन द्विओषित (डायोक्साइड—COX) में होता है। कज्जलन द्विओषित (कार्बन डायोक्साइड) वायुरूप होने के कारण वायु में चला जाता है। यह प्रक्रिया निम्न समीकरण से प्रदर्शित होती है।



इसी समीकरण के अनुसार वृक्षों (वनस्पतियों) में जो केल्सियम होता है तथा वृक्ष दग्ध करते समय जो चूना का प्रतिवाप दिया जाता है, उसका परिवर्तन केल्सियम ऑक्साइड में होता है। इस प्रकार चूने को दग्ध कर बनाए हुए केल्सियम ऑक्साइड को पानी में पिण्ठीकर क्षारोदक में प्रतिवाप देते हैं। इससे क्षारोदक के अधिकांश कार्बोनेट हाइड्रोक्साइड में परिवर्तित होकर, पुनः केल्सियम ऑक्साइड का कार्बोनेट बनता है, जो अनघुल होने के कारण अवस्थायी हो जाता है। यह प्रक्रिया अग्रिम समीकरण के अनुसार होती है।

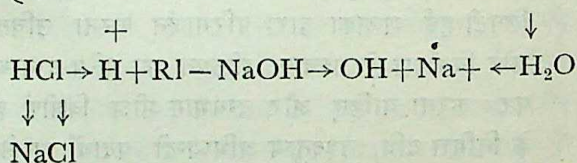


इस प्रकार मध्यम क्षार में हाइड्रोऑक्साइड की राशि अधिक होने के कारण उसकी क्षणन शक्ति भी बढ़ती है। तीक्ष्ण और मध्यम क्षार में हाइड्रोऑक्साइड की राशि में विशेष अन्तर नहीं हो सकता। क्योंकि मध्यम क्षार को तीक्ष्ण करने के लिए वनस्पतियों का ही चूर्ण अधिक प्रयुक्त होता है। अतः वनस्पतियों की भस्म की तीक्ष्णता उसमें आ सकती है। इस प्रकार निर्मित क्षार को लोह के पात्र (कुम्भ) में स्थापन कर उसका मुख बंद कर कुछ दिनों तक रखना उचित है। क्षार (अल्कली) निर्माण करने तथा स्थापन करने के लिए लोह का पात्र आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से भी उत्तम प्रमाणित हुआ है। मुख बंद कर रखने से बाह्य वायुमंडल के कार्बन डायोक्साइड का संबंध क्षार के साथ नहीं होने पाता। क्षार की शक्ति स्थिर रखने के लिए उक्त प्रकार से मुखाच्छादित कर रखना आवश्यक है। लोहकुम्भ का मुख खुला रखने से हाइड्रोक्साइड का परिवर्तन शनैः शनैः कार्बोनेट में होता है, जिससे क्षार की शक्ति कम हो जाती है।



क्षार प्रस्तुत होने के पश्चात् कतिपय दिनों पर्यन्त (तांश्र व्याधिबलतः सप्तरात्रादूर्ध्वं प्रयुज्जीत। अ० सं) रखने से केल्सियम कार्बोनेट का अवक्षेपण (Precipitation) उत्तम होकर क्षार की शक्ति अधिकाधिक बढ़ जाती है। (रसेनाम्लेन तीक्ष्णेन कथं क्षारः प्रशाम्यति) (प्रश्न सुश्रुत) — अम्ल और क्षार यद्यपि उभय उष्ण-वीर्य एवं तीक्ष्ण होते हैं, तथापि रासायनिक दृष्टि से वे अत्यन्त भिन्न प्रकार के पदार्थ होते हैं। क्षार बेसिक

(Basic) पदार्थ है जिसमें हाइड्रोक्सिल नामक ऋण भाग (OH as a Negative Radical) होता है। और अम्ल (Acid) पदार्थ है जिसमें उद्जन (हाइड्रोजन) नामक धन भाग (Has a Positive radical) होता है। संयोग होने से दोनों के धन और ऋण भागों में अदल-बदल होकर पानी तथा लवण (Salt) बन जाता है। उक्त दोनों पदार्थ क्षार और अम्ल से गुण-धर्म में अत्यन्त और प्रायः शीतवीर्य होते हैं। इस विधि को निर्वीर्यकरण (न्यूट्रलाइजेशन Neutralisation) कहते हैं। इस प्रकार स्थान पर अम्ल (Acid) लगाने से उसका वीर्य नष्ट होकर क्षरण की शक्ति शान्त हो जाती है और दोनों के संयोग से पानी और लवण बन जाता है। निर्वीर्यकरण के लिए अम्ल और क्षार समान राशि में आवश्यक है। यदि अम्ल की राशि कम हो तो क्षार का वीर्य पूर्णतया नष्ट न होगा और उसकी क्षणन शक्ति बनी रहेगी। यदि अम्ल की राशि अधिक हो तो क्षार पूर्णतः निर्वीर्य होकर अम्ल स्वप्रभाव प्रदर्शित कर शरीर को हानि करेगा। इस आपत्ति को निवारण करने के लिए आयुर्वेद में अत्यन्त सौम्य (Weak) स्वरूप के वानस्पतिक अम्ल क्षारप्रक्षालन के निमित्त प्रयुक्त किये गये हैं, जो क्षार का निर्वीर्यकरण भली भाँति करते हुए भी शरीर को किसी भी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाते। निर्वीर्यकरण के उदाहरण के लिए सोडियम हाइड्रोक्साइड (NaOH) और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) की प्रक्रिया आगे समीकरण से कही गई है, जिनके संयोग से भक्ष्य लवण (NaCl) और पानी बनता है।



पानीय क्षार—जो प्रतिसारणीय क्षार के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है, पानीय क्षार के लिए उतनी तीक्ष्णता की आवश्यकता नहीं होती, जितनी कि बाह्य प्रयोग के निमित्त होती है। रासायनिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि पानीयक्षार में हाइड्रोक्साइड की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए पीने के क्षार (Alkaline) चूने के प्रयोग के अतिरिक्त निर्माण किए जाते हैं। वनस्पतियों से निर्मित क्षार प्रायः सोडियम और पोटैशियम के कार्बोनेट होते हैं। जो खनिज होते हैं वे कार्बोनेट के अतिरिक्त क्लोराइड, नाइट्रेट इत्यादि हो सकते हैं। परन्तु पानीय क्षार में हाइड्रोक्साइड की राशि नगण्यसी होती है। पानीयक्षार का उपयोग चूर्ण के स्वरूप में होता है; परन्तु प्रतिसारणीय क्षार का उपयोग सदैव द्रवावस्था में ही किया जाता है।

क्षारों के कार्य करने का ढंग—

बाह्य-क्षार में जल का शोषण करने की (डिहायड्रेटिंग (Dehydrating) और मेद का साबुन बनाने की (सैपोनीफाइंग—(Saponifying) अल्युमिन का घोल करने की (डिजॉल्विंग (Dissolving) शक्ति होती है। इस त्रिगुणात्मक शक्ति के कारण शरीर के जिन घटकों (सेलों) के साथ क्षार का संयोग होता है, वे जल अल्युमिन इत्यादि पोषक द्रव्य नष्ट होने के कारण, नष्ट हो जाते हैं। शरीर में जब अनुपयोगी, यथा तिलकालक, मशक, अधिवृद्धि, (सौम्य अर्बुद), विकृत, यथा—दुष्ट-व्रण, नाडी (नासूर Sinus), चर्मकील, भगन्दर, अंश, और दुष्ट (दुष्ट अर्बुद), क्यान्सर, एपिथेलियोमा के घटक (सेल) होते हैं, तब उनका नाश करने के निमित्त क्षार का उपयोग होता है। कृमिदंशविष में क्षार द्वारा लाभ होने का कारण यह है कि कृमिदंश प्रायः अम्ल स्वरूप के होते हैं और क्षार का प्रयोग करने से वे निर्वीर्य हो जाते हैं।

पाश्चात्य वैद्यक में—लाइकर पोटाश (KOH), लाइकर सोडा (NOH), लाइकर ऑमोनिया (NaOH) रजत नत्रित (Silver nitrat) और यशद हरिद (Zinc Chloride) उक्त द्रव्य क्षारकर्म में प्रयुक्त किए जाते हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सापद्धति के अनुसार जो मध्यम निर्माण किया जाता है, उसका रासायनिक संगठन पाश्चात्य आयुर्वेद में प्रयुक्त होनेवाले 'वीएन्ना-पेस्ट' (Vienna Paste) के साथ प्रायः मिलता है। इस पेस्ट में पोटाश और चूना होता है।

आभ्यन्तरीय—क्षार का सेवन करने से शरीर के पचनसंस्थान, रक्तसंस्थान और मूत्रसंस्थान पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। पचनसंस्थान—आमाशय पर क्षार की क्रिया तीन प्रकार की होती है—(१) भोजन करने के पूर्व क्षार सेवन करने से आमाशयिक ग्रन्थियों (गैस्ट्रिक ग्लैंड्स—Gastric Glands) से पाचकरस का स्राव कुछ कालपर्यन्त रुका रहता है। इससे भोजन के पश्चात् पाचकरस अधिक मात्रा में और शक्ति में अधिक स्रुत होता है।

(२) भोजन के पश्चात् क्षार सेवन करने से पाचकरस का अम्लाधिक्य निर्वीर्य होता है

(३) आमाशयिक इलेष्मलकला पर इसका शामक (सिडेटिव Sedative) प्रभाव पड़ता है। अतः क्षारों का उपयोग अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अरोचक इत्यादि उदरीय रोगों में होता है।

आन्त्र पर क्षार का किञ्चित् विरेचक प्रभाव पड़ता है। अतः क्षार के उपयोग से आध्मान, आनाह, गुल्म इत्यादि रोग शान्त होते हैं।

रक्तसंस्थान—पचन होने के पश्चात् रक्त में मिश्रित होकर क्षार रक्त की क्षारीय प्रतिक्रिया (अल्केलाइन रिएक्शन Alkaline reaction) की वृद्धि करता है और वातरक्त, सन्धिवात (गठिया) इत्यादि रोगों में उपकारक है।

मूत्रसंस्थान—क्षार प्रायः कार्बोनेट के रूप में उत्सर्जित होते हैं। उत्सर्जनकाल में वृक्कों में उत्तेजना उत्पन्न कर मूत्र की राशि की वृद्धि करते हैं और मूत्र को क्षारीय करते हैं। मूत्र क्षारीय होने के कारण थ्रिस्ट (मूत्रपिण्ड) में यूरिक एसिड (Uric acid) का अवक्षेपण नहीं होता तथा अवक्षेपित यूरिक एसिड का विद्रावण होता है। अतः क्षार मूत्रल होते हैं और यूरिकाम्ल (Uric Acid) के अश्मरी, शर्करा में हितकर होते हैं।

पाश्चात्य आयुर्वेद में निम्न क्षारों का उपयोग किया जाता है; यथा—

पोटासियम साइट्रेट, पोटासियम एसिटेट, पोटासियम बाइ कार्बोनेट, पोटासियम कार्बोनेट, पोटासियम-नाइट्रेट (शोरक), लीथियम-साइट्रेट, लीथियम कार्बोनेट, सोडियम-बाइकार्बोनेट, सोडियम-कार्बोनेट इत्यादि। इसी प्रकार आयुर्वेद में यवक्षार (जवाखार), टंकण क्षार (सोहागा), पञ्च लवण, सज्जिका क्षार (सज्जीखार), रुसार (नौसादर) इत्यादि। पानार्थ—वानस्पतिक क्षार—तिलापामार्ग कदली पलाश शिशु मोचकः।

मूलार्द्रक चिन्वाश्वत्था वृक्षक्षाराः प्रकीर्तितः

(रसाणव)। दे० 'दग्ध'।

खार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मान जिसको 'खारी' कहते हैं।

खारकोण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खण्डित-कर्ण। (२) शकरकन्द।

खार—संज्ञा पुं० [फा०] काँटा। कण्टक।

खारऔरतम—संज्ञा पुं० [सिराज०] ऊँटकटेरा। उष्ट्र-कण्टक।

खारखसक—संज्ञा पुं० [फा०] गोखरू। त्रिकण्टक।

खार-पुस्त—संज्ञा पुं० [फा०] (१) साही। सेही। शल्यकी। कनफज।

खारपुस्त कोही—संज्ञा पुं० [फा०] पहाड़ी साही।

खारपुस्त-वरियाई—संज्ञा पुं० [फा०] सेकची। शंकमत्स्य।

खारयिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मत्स्य धान्य।

खालुई—ब०।

खारसहगोश—संज्ञा पुं० [फा०] गोखरू। त्रिकण्टक।

खारसीन—संज्ञा पुं० [फा०] जस्त। (उम्दतुल् मुहताज)।

खारमुहक—संज्ञा पुं० [सिराज०] बड़ा गोखरू। फरीद बूटी।

खारि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुश्रुतोक्त एक प्रकार

खारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] का मान जो ४ द्रोण के बराबर होता है। (वै० निघ०)।

खारिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] महाखजूर। पारेवत फल। बड़ा खजूर। छोहारा। दे० 'खजूर'।

खारेखुरफ (खसक)—संज्ञा पुं० [फा०] गोखरू।

खारेजा—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली कुसुम। बन कुसुम।

खारेबुज—संज्ञा पुं० [फा०] दुरालभा। जवासा भेद।

खारे सुशोलान—संज्ञा पुं० [फा०] बबूल के काँटे।

खारेवज्ज—संज्ञा पुं० [फा०] चिरचिटा। अपामार्ग।

खारे वा... गून्ह—संज्ञा पुं० [फा०] } चिरचिटा। अपामार्ग।

खारे वाजून—संज्ञा पुं० [फा०] }

खारेशुतुर—संज्ञा पुं० [फा०] } दुरालभा। जवासा भेद।

खारेशुत्र—संज्ञा पुं० [फा०] }

खार्जूरसुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार

का मद्य जो खजूर के रस और धातकी (धवई) पुष्प द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। खर्जूरमद्य। गुण—यह द्राक्षा-मद्य की अपेक्षा किंचित् वातप्रकोपकारक है। अतः यह विशद, रुचिकारक, कफघ्न, लघुपाकी, कर्षण, कषाय, मधुर, हृद्य, सुगन्धमय तथा इन्द्रियबोधक है। (सु० सू० ४६ अ०)। (२) वृद्ध शौनक के अनुसार—सेदी, ताल और खजूर का शिरोच्छेदन द्वारा प्राप्त रस। ताड़ी। तोड़।

खाल—संज्ञा [अ०, बहु व० 'खैलान'] तिल, मषक, माशा। (फा०) कुंजदक। (अ०) मोल (Mol)।

खाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] चर्म। चमड़ा। त्वचा। (अ०) स्किन (Skin)।

खालजंगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] कुटकी। कटुरोहिणी क्षुप।

खालबानस—संज्ञा पुं० [यू०] (१) बड़ी ज्वार। (२) गिरगिट। (३) जावशीर। जवासीर

खालवश—संज्ञा पुं० [यू०] (१) बड़ी ज्वार। (२) गिरगिट।

खालित्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कपाल रोग। उत्पत्ति खालित्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तथा लक्षण—वायु और पित्त के प्रकोप से केशभूमि विदग्ध होकर शीघ्र ही मनुष्य के शिर के बाल गिरने लगते हैं और यदि अल्प दग्ध हों तो पलित (श्वेतकेश) की उत्पत्ति होती है। इसमें केश नष्ट हो जाते हैं और उनका जमना भी बन्द हो जाता है। (च०)। पर्याय—(हिं) गंज, छाक; (सं०) इन्द्रलुप्त, खालित्य, रुज्या। (भा० म० क्षुद्र रो०)।

चिकित्सा—कड़वे पटोल के पत्तों का स्वरस निकाल कर उसका मर्दन करने से पुरातन पलित का नाश होता है। अथवा—गोखरू, तिलके फूल और इनमें समान भाग घृत तथा मधु मिश्रितकर शिरपर लेप करने से शिर के बाल परिपूर्ण हो जाते हैं। अथवा—हाथीदाँत की भस्म, रसौत, छागी दुग्ध एकत्र पीसकर लेप करने से केशों की

उत्पत्ति होती है। अथवा—नीलकमल, मुलहठी, दाख, तेल, घृत और छागीदुग्ध एकत्र पीसकर लेप करने से नष्टकेश पुनः उत्पन्न होते हैं। दे० 'पलित'।

खालियः—संज्ञा पुं० [अ०] तरशाख। एक प्रकार का कोमल वृक्ष।

खाली—[अ०, बहु व० 'अखिल्लाऽ'] स्त्रीविहीन पुष्प वा पुरुषविहीन स्त्री।

खालीदूनिया—संज्ञा पुं० [यू०] } हल्दी। हरिद्रा।

खालीदूनियन—संज्ञा पुं० [यू०] }

खालीदूनियून—संज्ञा पुं० [यू०] पर्याय—जालीदूनियून

खालीदूमियून—संज्ञा पुं० [यू०] (जम्बून), कालीदूनियून

(दीसकूरीदूस)। परिचय—किसी-किसी के अनुसार यह एक उद्भिद् (वनस्पति) मूल की गाँठें हैं जिनमें से छोटी गाँठों को ममीरा तथा बड़ी को हरिद्रा (हल्दी) कहते हैं। मतान्तर से यह केशर (कुकुंम) है। अतः यह अत्यन्त तीक्ष्ण द्रव्य है। तिब्बो विद्वानों का कथन है कि जब अबाबील पक्षी का बच्चा अन्धा हो जाता है तब उसकी माँ इसको अपने घोंसले में लेजाकर उसके नेत्र में मलती है। परिणाम यह होता है कि इससे उनकी दृष्टि पुनः ठीक हो जाती है। उक्त आधारपर इसका नाम दवाउल्लुत्ताफी अर्थात् अबाबील की औषध रखा गया है।

किसी-किसी की कल्पना है कि इसकी उत्पत्ति अबाबीलों के उत्पत्तिकाल में होती है। अतः इसको 'खुत्ताफी' कहते हैं। ममीरा इसकी जड़ है। बुरहान के कथनानुसार ममीरा स्वयं (मामीरान) का पर्याय—खालीदूनियून वा खालीदूमियून है और उनके अनुसार खुत्ताफ अबाबील का नाम है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। गुण-कर्म तथा उपयोग—तीक्ष्ण होने से क्षतोत्पादक है अर्थात् शरीर पर इसका लेप करने से क्षत (घाव) हो जाता है। मद्य के साथ पीसकर लेप करने से तिलकालक (नमलः) का नाश होता है और खज्जू (खारिशत) का उन्मूलन हो जाता है। इसका प्रगाढ़ीभूत स्वरस नेत्रों में लगाने से दृष्टि तीव्र होती है। इसकी जड़ चर्वण करने से दन्तशूल प्रशान्त होता है और दाँत कोट होना (जरस) नामक रोग का नाश होता है। (मुहीत)।

खालीदूस—[यू०] अबाबील पक्षी।

खावलेजान—[?] कुलंजन। खुलंजान।

खावानी—[?] एक प्रकार का तृण (घास) है।

खाशखश—[अ०] पोस्ता।

खाशखशुलहमर—[अ०] लाल पोस्ता।

खाश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्भेर। गम्भारी वृक्ष। (वै० निघ०)।

खास—संज्ञा पुं० [सुर०] गन्दना ।

खास—संज्ञा पुं० [खस का अपभ्रंश] काहू ।

खासखर—संज्ञा पुं० [?] गन्दना ।

खासतरह—[तिनकाबिन] काबुली राई । हुफं काबुली ।

खासियत—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुण । कर्म ।

खासिर—संज्ञा स्त्री० [अ०] सान्द्र । गाढ़ा । मुकदिर ।
मुंजमिद । गलीज । प्रगाढ़ ।

खासिरह—[अ०] [बहुव० खवासिर] कुक्षि, कोख,
आस्तः, खसिर, कूल्हा । (अ०) फ्लैङ्क (Flank) ।

खिखि—संज्ञा [सं० पुं०] शृगाल विशेष । ख्याक । शियाली ।
(म०) कोल्हा । उत्कामुखी । (मे०) ।

खिचड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खेचरान्तम्] (सं०) कुशरा ।

एक प्रसिद्ध खाद्य है जिसे चावल और दाल से पकाते हैं और जो यखनी में पकाते हैं उसको गुलः (खिचड़ी) कहते हैं । इसे शोलः बोलना अशुद्ध है और गुल उच्चारित करना तो और भी घृणास्पद है । क्योंकि इन शब्दद्वय (शोलः, गुल) का व्यवहार आतंव (हैज) के कपड़े के अर्थ में होता है । परन्तु लखनऊ के विद्वान् चिकित्सकों के मुख से मैंने गुल ही उच्चारण करते हुए सुना । (खजाइन) । मुहीत के मत से यह एक प्रसिद्ध भारतीय खाद्य है जिसे दो-तिहाई चावल और एक-तिहाई मूँग, या चना या अरहर या मसूर या उड़द की दाल से (इससे न्यूनाधिक मिलाकर भी) पका कर बनाते हैं । मूँग की दाल की खिचड़ी रोगियों के लिये और चने की दाल की स्वस्थ पुरुषों के लिये उत्तम आहार है । अखनी और मसाला के साथ पकी हुई गुलः खिचड़ी कहलाती है । खिचड़ी ताजा घी मिली हुई या दही, शलगम वा गाजर एवं अन्यान्य अचारों के साथ अत्यंत सुस्वादु होती है । खिचड़ी में जो द्रव्य पड़ते हैं, उन्हीं की प्रकृति पर इसकी प्रकृति निर्भर करती है । तिवर्गुर्बा में हकीम गुलामइमाम ने तुहफतुल्लुमोमिनीन के रचयिता का संदर्भ देते हुए लिखा है कि चावल स्वस्थ लोगों का आहार है तथा रोगियों को इसका सेवन हितकर नहीं है और माश याने मूँग को दीर्घपाकी लिखा है । यद्यपि अर्वाचीन चिकित्सक शोलः खिचड़ी, मूँग की दाल और खसका के सिवाय रोगियों को किसी अन्य खाद्य-द्रव्य सेवन की आज्ञा नहीं देते; क्योंकि अन्यान्य अनाजों की अपेक्षा यह अल्प आध्मानकारक और शीघ्रपाकी है ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—सुगंधित खिचड़ी मधुर, किंचिद् गुरु, बल्य, बृंहण, वायुनाशक, पिपासाहारक, पित्तनाशक और कफजनक है । जिस तरह विलायतवाले रोगी को लघुपथ्य देते हैं; उसी तरह भारतीय चिकित्सक रोगी को मूँग की खिचड़ी देते हैं । यह लघुपथ्य (Sick rejimen) की प्रतिनिधि है । मूँग की खिचड़ी शीघ्रपाकी

और कम आध्मानकारक है । तूअर वा अरहर की खिचड़ी चिरपाकी और आध्मानरहित है । इन दोनों के सिवाय अन्यान्य दालों की खिचड़ियाँ अत्यंत गुरु और आध्मानकारक होती हैं और हर तरह की खिचड़ी वाष्प उत्पन्न करती (मुवखर) है । (मुहीत) ।

खजाइन में यह विशेष लिखा है—जब मूँग की खिचड़ी के हिलके धो लिये जायें तब वह मंदाग्निवाले को सात्म्य नहीं होती । यदि शिशु को गरमी में तृष्णा का रोग हो जाय, तो उसे मूँग की खिचड़ी न दें; क्योंकि इससे तृष्णा शमन न होगी । यदि पकते समय थोड़ी आदी कतर के डाल दें, तो उड़द की खिचड़ी का दोष बहुतांश में मिट जाय । भुनी हुई खिचड़ी गुरु होती है । इसके पकाने की विधि यह है कि 'याज को कतर कर घी में लाल करके अखनी या पानी के साथ पकाते हैं और पकते समय गरम मसाला समूचा डाल देते हैं ।

भावप्रकाश में लिखा है कि खिचड़ी (कुशरा) बल्य, शुक्रल और भारी है तथा पित्त और कफजनक, दीर्घ-पाकी, बुद्धिवर्द्धक, विष्टंभताकारक (काबिज) एवं मल-मूत्रजनक है :—

कुशरा शुक्रला बल्य गुरुः पित्त कफप्रदा ।

दुर्जरा बुद्धि विष्टंभ मलमूत्रकरी स्मृता ॥

खिडिक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] । खिखि । ख्याक । शियाली ।

खिडिक्षर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] । शृगाली । उत्कामुखी ।

खिच्चा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खेचरी अन्न । (वै० निघ०) ।

खिजाजुल्मास—[अ०] काई ।

खिजाजुस्खर—[अ०] पत्थर का फूल । छड़ीला ।

खिजान—[अ०] (१) गोदाम । किसी वस्तु के सुरक्षित रखने का स्थान । (२) हृदय । क्लब । हार्ड । (अ०) हार्ट (Heart) ।

खिजाब—संज्ञा पुं० [अ०] केशरञ्जन । केशकल्प ।

खिजाज—संज्ञा पुं० [अ०] कंठशूल । दर्दगुलु । गले का दर्द ।

खिजक—संज्ञा पुं० [फा०, अफ०] मस्तगी काबुली । (डाइ-मॉक भ० १, पृ० ३७७) ।

खिज्जीर—संज्ञा पुं० [अ०] सूअर । शूकर ।

खितान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) खतना करना । (२) खतना करने का स्थान । दे० 'खतान' ।

खितानत—संज्ञा पुं० [अ०] खतानी । खतनागरी । खतना करने का व्यवसाय ।

खिताफ़—संज्ञा पुं० [अ०] अबाबिल पक्षी । आफरस्तग ।

खित्फत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह अंग जो जीवित चतुष्पदों के अंग से काटा जाता है । (२) वह अंग जिसको चतुष्पद काटकर ले जायें ।

खित्तर—संज्ञा पुं० [?] (१) मेंहदो। नखरञ्जनी। (२) नील। वस्मा।

खित्म—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मद्य भेद। (२) चोंच।

खित्मिए कोचक—संज्ञा पुं० [फा०, सिराजी] खुब्बाजी।

खित्मी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पर्याय—(हिं०, बम्ब०) खतमी, खैरू; (अ०) कसीरुलमुन्फेअत; (फा०) खित्मी, खतमी; (तु०) हत्मी; (अं०) मार्शमैलो (Marsh-mallow); (ले०) ऐलिया-ऑफिसिनैलिस (Althoea-officinalis)।

पुष्पपर्याय—(हिं०, बम्ब०) गुलखैरू, गुलेखेरी, खतमी का फूल; (अ०) वदुलखित्मी; (द०) गुलखैरू।

बीज-पर्याय—(हिं०) खित्मी के बीज; (अ०) हब्बुल खित्मी, बज्जुल खित्मी; (फा०) तुख्म-खित्मी।

पत्र—(फा०) बर्ग खित्मी; (हिं०) खतमी के पत्ते।

मूल—(हिं०) खित्मी की जड़; (अ०) अस्लुल-खित्मी; (फा०) रेशएखित्मी, बेखए खित्मी।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष, कश्मीर तथा अन्य स्थानों में इसकी कृषि की जाती है। यह उद्यानों में भी रोपण की जाती है।

कार्पासादि कुल (Family : Malvaceae)।

विवरण—इसके क्षुप २-३ फुट ऊँचे होते हैं। इसका सर्वाङ्ग लोमश होता है। पत्तियाँ खुब्बाजीतुल्य दन्तुर, खुरदरी, गोल-अंडाकार होती हैं। पुष्प निर्गन्ध, बैजनी, गोल, बड़े, पट्टावातुल्य तथा रक्तवर्ण होते हैं। पुष्प भेद से यह कतिपय प्रकार की होती है। इनमें से जो सोसन-पुष्पतुल्य होती है, उसको 'गुलखैरू' कहते हैं। किन्तु गुलखैरू के पुष्प खित्मी के पुष्पों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं। पुष्प-पात होने के पश्चात् इनमें डोडियाँ लगती हैं। इसके बीज चपटे और वृत्तुल कृष्णवर्ण के होते हैं।

मूल—जड़ गोल किञ्चित् शङ्कवाकार, तन्तुयुक्त, उपमूल-युक्त, ३-६ इंच लम्बी, भीतर श्वेत, बाह्यदृश्य श्वेतवर्ण का होता है। उन पर लम्बाई की ओर अधिक लम्बी झुरियाँ दिखाई देती हैं। इनमें किञ्चित् मनोरम गन्ध होती है। **स्वाद**—किञ्चित् मधुर श्लक्ष्ण होता है।

ग्रहण-काल—१-२ वर्ष के पश्चात् इसकी जड़ औषधोपयोगी हो जाती है। ग्रीष्म-ऋतु में इनमें से एक प्रकार का निर्यास परिस्त्रावित होता है।

रासायनिक संगठन—इसके सुपक्व मूल में—शर्करा, पिष्टमय पदार्थ, स्थिर तैल, लबाव तथा १-२ प्रतिशत खित्मी सत्व—एस्पेरागिन (Asparagin) जो देखने में एस्पेरीनतुल्य होता है, प्राप्त होता है।

उपयोगी अंग—पुष्प, पत्र, मूल, बीज, तना तथा निर्यास।

पत्र-बीज—प्रकृति—समशीतोष्ण; गुण-कर्म—इसके पत्र

तथा बीज शोथघ्न, दोषपाचक, दोषविलोमकारक, वेदना-हर, प्रकृतिमृदुकारक, संशमन, पार्श्वशूलहर, फुफ्फु-सोत्पन्नकासघ्न तथा कफोत्सारक है। पुष्प तथा बीजों का क्वाथ निर्माणकर सेवन करने से कफ का पाचन होता है और फुफ्फुसांग में मृदुता उत्पन्न होती है।

मूल—प्रकृतिमृदुकर, आमातिसारघ्न, पित्तज अतिसार, मूत्रवाह और मूत्रकृच्छ्र में उपकारक तथा उष्ण कासघ्न है। आंत्रप्रदेश में इसका संशमनकार्य होता है तथा यह तदाश्रित दोषों को पृथक् कर उत्सर्गित करती है। इसका सर्वप्रधान कर्म दोषविलयन तथा कासघ्न है।

पत्र-उपयोग—पत्रों को जल में पीसकर प्रलेप करने से अथवा क्वाथकर उससे परिवेक करने से विद्रव्धिशोथ, स्तनकोप, गृध्रसी, आमवात, उष्णप्रदाह (शोथ) विलीन वा परिपक्व हो जाते हैं। बीजों को पीसकर तेल में पाचनकर अभ्यङ्ग करने से पार्श्व-शूल, फुफ्फु-सीय शोथ नष्ट होता है। इसे क्वाथकर मधुयुक्त सेवन करने से प्रसेक, प्रतिश्याय तथा पित्तज कास का नाश होता है। यह मूत्रप्रदाह, आन्त्रशोथ, अन्त्रावरोध, पित्तज अतिसार तथा प्रवाहिका में हितकर है। **अहितकर**—आमाशय में आध्मानकारक है।

निवारण—अजवाइन, सौंफ क्वाथकर मधुयुक्त देवें।

प्रतिनिधि—खाकसी। मात्रा—३-१ माशा।

खिदिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रमा। (वै० निघ०)।

खिदमत—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ—सेवा करना। तिब्बी परिभाषा में सहायक अंग (आजाए खादिमः); यथा—नाडियाँ, शिराएँ जो उत्तमाङ्गों की सहायता वा सेवा करती हैं।

खिद्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोग। (उणा०)।

खिन्क—संज्ञा पुं० [अ०] अखनूक। गला घुटा हुआ।

खिन्ना—संज्ञा स्त्री० [देश०] खिरनी। क्षीरिणी। खीरखजूर।

खिन्नाबतान—संज्ञा पुं० [अ०] नासिका का उभय पार्श्व। नाक का दक्षिण व वाम भाग।

खिन्फीर—संज्ञा पुं० [अ०] वृद्धा स्त्री जिसके कपोल का मांस तथा नेत्रों के पपोटे लटक गए हों।

खिन्ब—संज्ञा पुं० [अ०] घुटने का भीतरी भाग। जानु वा रान का अन्तरीय हिस्सा जिस ओर घुटना मुड़ता है।

खिन्सिर—संज्ञा पुं० [अ०] कनिष्ठिका। कानी अंगुली। कानूज। (अं०) लिटिल फिंगर (Little finger)।

खिप्पी—संज्ञा स्त्री० [पं०] पर्याय—(पं०) सीस, सस्सी, खरसन; (सिन्ध) द्रकों; (गु०) घांगरो; (म०) घाटी; (कों०) घाघ्री; (ले०) क्रोटेलेरिआ-बरीआह (Crota-laria-Bariah)।

उद्भवस्थान—पंजाब, पश्चिमी राजपुताना, गुजरात

तथा सिन्ध के रेतीले मैदान। गुण—इसकी पत्तियाँ तथा शाखाओं को ठंडाई की भाँति देते हैं।

खिफास—संज्ञा पुं० [अ०] छिपाना। गुप्त रखना।

खिफफत—[अ०] लघुता। हलकापन।

खिफफास—संज्ञा पुं० [अ०] चम्मकी। दे० 'चमगादड़'।

खिमखिम—संज्ञा पुं० [अ०] वह व्यक्ति जो सदैव मद्यपान करने का अभ्यासी हो। मद्यप। दायमुल्लखमर।

खिमियर—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'खम-खम'।

खियार—संज्ञा पुं० [फा०] (१) खीरा। (२) नेनुआँ। घुन्धुल।

खियार-कहू—संज्ञा पुं० [फा०] लम्बा कहू। लीआ।

खियार कबर—संज्ञा पुं० [फा०] करील का फल। टेंटी।

खियार-चम्बर—संज्ञा पुं० [फा०] अमलतास का फल।

खियारखर—संज्ञा पुं० [फा०] किसानलहिमार।

खियार-दराज—संज्ञा पुं० [फा०] लम्बी ककड़ी।

खियार शम्बर—संज्ञा पुं० [फा०] अमलतास का फल।

खियारेखर—संज्ञा पुं० [फा०] काँटेरी इन्द्रायण। किसानल-हिमार। (डाइमॉक)।

खि यार्ज—संज्ञा पुं० [फा०] ककड़ी। ककंटी।

खियार्जःगाजरूनी—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ी ककड़ी। वृहत् ककंटी।

खियार्जः निशापुरी—संज्ञा पुं० [फा०] छोटी ककड़ी।

खियाशीम—संज्ञा पुं० [अ०] दोनों नथुनों का अन्तर्भाग। (अ०) गिलज (Gills)।

खिरना—संज्ञा पुं० [हि०, पं०] (१) खिरनी। क्षीरिणी। (२) मीठा कुड़ा।

खिरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरिणी] संस्कृत पर्याय—क्षीरिका, राजादन, राजादनी, राजफल, राजवल्लभ, कपीष्ट, क्षीरवृक्ष, क्षीरी, नृपद्रुम, निम्बबीज, मधुफल, माधवोद्भव, गुच्छफल, भूपेष्ट, श्री फल, दृढस्कन्द, क्षीर शुक्ल; अन्य पर्याय—(बं०) खीरखजूर; (म०) राजण, केरनी; (गु०) रायण, अहमदाबादी मेवा; (ता०, ते०) पाल्ल; (बम्ब०) खेनी; (ले०) मिम्युसॉप्स हेक्सेण्ड्रा (Mimusops-Hexandra)।

उद्भवस्थान—समस्त भारतवर्ष।

मधुकादि कुल (Family)।

परिचय—इसका वृक्ष मौलसरीतुल्य होता है। इसमें निम्बफलतुल्य फल लगते हैं। अपक्वावस्था में हरित और सुपक्वावस्था में ये पीत वर्ण के हो जाते हैं।

स्वाद—मधुर लसदार होता है। बीज कृष्णवर्ण के मधुकबीजवत् चमकीले और लम्बे होते हैं। इसकी मींगी से तेल निकाला जाता है।

उपयोगी अंग—फल, बीज, और वृक्ष की छाल।

रासायनिक संगठन—वृक्ष की छाल में कषाय सत्व (Tannin), निर्यास, सिन्ध, स्टार्च, रज्जक पदार्थ तथा

खनिज पदार्थ होते हैं। फल में शर्करा, कषायिन (Tannin), पेक्टिन (Pectin), रज्जक पदार्थ तथा काउचोक (Cautchouc) और बीज में स्थिर तेल होता है।

गुण—मधुर पित्तघ्न, गुरुपाकी, तर्पक, वृष्य, स्थौल्यकारक, स्निग्ध और मेहघ्न है। (रा० नि० व० ११)। फल गुरुपाकी, स्निग्ध, स्वादु तथा कषाय है। (सु० सु० ४६ अ०)। मधुर एवं स्वादु है। (अत्रि० १७ अ०)।

फल—वृष्य, बलवर्धक, स्निग्ध, हिम, गुरु, तृष्णा, मूर्च्छा, मद, श्रान्ति, क्षय, त्रिदोष तथा रक्तपित्तनाशक है। (भा०)।

खिरनी—तिब्ब के अनुसार—प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में तर है।

गुण-कर्म—दोषप्रकोपशान्तिकर, बाजीकर, बलवर्धक, सौमनस्यजनक, पिपासानाशक, हृदयबलदायक, त्रिदोषनाशक, वान्तिहर, क्षुधाउत्पादक, ओजप्रद, शुक्रसान्द्रकारक, गुरुपाकी और प्रमेहनाशक है। उपयोग—

छाल—खिरनी की जड़ की छाल का बारीक चूर्ण निर्माणकर सेवन करने से वीर्य की तरलता दूर होती है। उपयुक्त द्रव्यों के संयोग से अञ्जन करने से दृष्टि की ज्योति तीव्र होती है। मिर्ची के साथ इस का चूर्ण सेवन करने से शुक्रमेह का नाश होता है।

बीज—खिरनी के बीज की गिरी पीसकर बालों में लगाने से लीक्षा तथा यूकाएँ नष्ट हो जाती हैं। इसके बीजों को घिसकर नेत्रों में लगाने से नेत्रगत पुष्प (फूला) का नाश होता है और नेत्रों की खुजली जाती रहती है। अहितकर—इसका पक्कफल दीर्घपाकी, आध्मानजनक तथा गुल्म उत्पादक है।

निवारण—तक्रपान, गुलकन्द। प्रतिनिधि—मौलसरी।

मात्रा—छाल की ५ से ७ माशा तक।

खिरस—संज्ञा पुं० [फा०] रीछ, भालू। दे० 'खिरस'।

खिरहिट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] महासमझा नाम का क्षुप। वाट्यालक भेद। कंधी। कगहिया।

खिरैटी—संज्ञा स्त्री० [सं० खिरहिट्टी] बीजबंद। बरियारा। बला। वाट्यालक।

खिर्विल—संज्ञा पुं० [अ०] राई। सरसों। राजिका।

खिर्वअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) आक की डोंडी। (२) धुनी हुई रुई।

खिर्वान—संज्ञा पुं० [अ०] मेमना। एणवत्स। भेंड़ का छोटा बच्चा।

खिर्वीर बतान—संज्ञा पुं० [अ०] खिन्नाबतान। नासिका के दोनों पार्श्व। नाक के दोनों ओर के भाग।

खिर्वअ—संज्ञा पुं० [अ०] रेंड। एरण्ड। बेद अँजीर।

खिर्वअ कबीर—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ा एरण्ड।

खिर्वउस्सगीर—संज्ञा पुं० [अ०] छोटा एरण्ड। भतरेंडिया।

खिशिअ—[अ०] (१) अंडे का छिलका । कुक्कुटाण्डत्वक् ।

(२) सर्पकञ्चुकी । साँप की काँचली ।

खिस—संज्ञा पुं० [अ०] रीछ । भालू । भल्लूक ।

खिसगियाह—[फा०] सतावरी । सतमूली । सतावर ।

खिल—वि० [सं० स्त्री०] अप्रहत । मालवभूमि । केदार क्षेत्र । (रा० नि० व० २) ।

खिलाफ—[अ०] वेदसादः ।

खिलाफ-बलखो—[अ०] वेदमुश्क । बलख में (वाह्लीक) में होनेवाला वेदमुश्क ।

खिलाल—संज्ञा पुं० [अ०] दाँत स्वच्छ करने का तिनका । वह यंत्र जिसके द्वारा दन्त खुरचे जाते हैं । (अं०) दूथपिक (Tooth Pick) ।

खिलालुलमामून—[अ०] इजखिर । (डाँइमाक) ।

खिलाले आवरेशम—[अ०] खैरीबरी ।

खिलाले खलील—[अ०] } आतरीलाल का एक भेद है ।

खिलाले दान—[अ०] } विस्तिपाज ।

खिलाले मायून—[अ०] इजखिर ।

खिलाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कपिलवर्ण का घोड़ा जिसका पुच्छ पाण्डुकेसर वर्ण का होता है । (ज० द० ३ अ०) ।
खिलकत—[अ०] (१) उत्पत्ति । पैदाइश । (२) वास्तविकता । हकीकत ।

खिलत—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० अखलात] (१) मिश्रित । मिला-जुला । (२) तिब्बकी परिभाषा के अनुसार वह तर (आद्र) एवं प्रवाही द्रव्य जो भुक्त द्रव्य या आहार की प्रथम सम्यक् परिणति वा परिवर्तन—पाक (इस्तेहाला) के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है । ये शरीर में प्रवाहित रूप में रहते हैं । तिब्बी कल्पना के अनुसार इनकी संख्या चार है । चतुर्दोष । दे० 'दोष' ।

खिलतखून—[फा०] दे० दोषगत 'रक्त' ।

खिलत-गौर तबई—[अ०] विकृत दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत-तबई—[अ०] प्राकृत दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत-फासिद—[अ०] अशुद्ध दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत फुजली—[अ०] मलभूत दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत-बलगम—[अ०] कफदोष । दे० 'दोष' ।

खिलत मायतन—[अ०] दे० 'दोष' ।

खिलत-रही—[अ०] अशुद्ध दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत-सालेह—[अ०] शुद्ध दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत-सफरा—[अ०] पित्त दोष । दे० 'दोष' ।

खिलत-सौदा—[अ०] रक्तकिट्ट । दे० 'दोष' ।

खिल्फ—[अ०] धात्वर्थ विरोध करना, खिलाफ होना ।

खिल्फः—[अ०] } तिब्ब की परिभाषा के अनुसार एक प्रकार की विकृति जिसमें स्वभावतः आहार आमाशय में नहीं रुकता । कभी शीघ्रही अपक्वावस्था में अतिसारवत् मलद्वारा

से बहिर्गत हो जाता है और कभी विलम्ब में कतिपय बार में अल्प परिमाण में निकलता है और कभी पचकर और कभी अपक्वावस्था में ही निकल जाता है । संग्रहणी ।
खिल्फः और विमूचिका के अन्तर के लिये दे० 'जब' ।

खिल्फियः—[अ०] } पीछे का । पश्चात् का । पीछेवाला ।
खिल्फी—[अ०] } पिछला ।

खिल्ब—[अ०] (१) यकृतावरण । मांस की पतली झिल्ली जो यकृत तथा हृदयपिण्ड में लिपटी रहती है । गिलाफ जिगर । (२) हृदयावरण । गिलाफ दिल ।

खिल्य—[अ०] नासावंश । नाक की रीढ़ ।

खिल्बः—[अ०] परमाणु । (अ०) नुस्सीस । (अं०) अकीनस (Acinus) । शरीर के छोटे-से छोटे अंश जिनके मिश्रण से शरीर के अंगों का निर्माण होता है ।

खिवाही—संज्ञा स्त्री० [देश०] केवाही नाम की ईख ।

खिशफ—[अ०] हिरन का बच्चा ।

खिशत—[अ०] उदरविदारणकर निकाला गया गर्भ-गत शिशु ।

खिशत—संज्ञा स्त्री० [फा०] ईंट । खर्पण । इष्टिका । (अं०) ब्रिक (Brick) ।

खिसाअ—[अ०] बधिया करना । आरुता करना । अण्डकोश निकाल देना । खसो करना ।

खिसारह—[अ०] पर्याय—(अ०) खसरान । खसर । जमाना । स्कन्दित करना । स्थिर करना । बस्तः होना । सान्द्रीभूत होना । गलीज होना । मुकद्दिर होना । मुंजमिद होना । गदला होना । गाढ़ा होना ।

खिसारी—संज्ञा स्त्री [देश०] केसारी ।

खिसांदा—संज्ञा पुं० [फा०] हिम, शीत कषाय, फाण्ट, चूर्णद्रव । (अं०) कोल्ड इन्फ्यूजन (Cold Infusion) ।

खिसांदा-खमरी—संज्ञा पुं० [फा०] मद्यघटित-फाण्ट । मद्य में भिगाकर प्रस्तुत किया हुआ कल्प ।

खिस्व—[अ०] मेदवृद्धि । मोटापा । स्थूलता ।

खिस्विक—[अ०] मअस्फर ।

खीक—[फा०] कस्तूरी । मृगनाभि ।

खीखर—संज्ञा पुं० [देश०] खट्टास । बनबिलाव । गन्धमार्जार ।

खीज—[अ०] साहो । सेही । शल्यकी ।

खीजिरान—[फा०] बेंत । खिजरान ।

खीजिरान-बहदी—[अन्वलस] आस बरी ।

खीत—[अ०] }

खीती—[अ०] } शुतुरमुर्ग ।

खीप—संज्ञा पुं० [देश०] (१) गन्धप्रसारणी । (२) एक लता जो पत्रविहीन होती है । यह प्रायः दिल्लीप्रान्त में होती है ।

खीर—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर] क्षीरान्न । एक प्रकार का खाद्य जो चावल और चीनी मिश्रितकर प्रस्तुत किया जाता है । यह दीर्घपाकी होता है । पायस । दे० 'पायस' ।

पर्याप्त—क्षीरिका, परमान्न, पायस (भा० प्र०)—सं० ।
 खीर—हिं० । बहत्, लब्धियः—अ० । शीरविरंज—फा० ।

टिप्पणी—मुहीत में खीर शब्द में इसकी संस्कृत संज्ञाएँ परमान्न (खजाइन में परमाह?) और परमान्नम् लिखी हैं । उक्त ग्रंथ में खीर और बहत् शब्दों में इसका वर्णन आया है । बहत् हिंदी भत्ता (संस्कृत भक्तम्) से अर्बोक्त संज्ञा है । मुन्तहियुल् अरब में ऐसा ही उल्लेख है । संस्कृत भक्त शब्द से ही हिन्दी भात और भत्ता व्युत्पन्न हैं, जिनका उसी प्रकार फ़ारसी रूपान्तर होकर 'बहत्' हुआ और इससे अरबी में रूपान्तर होकर 'बहत्' हो गया, जिस प्रकार पंजाबी खंड शब्द समीप होने के कारण ईरान में पहुँच कर 'कंद' हो गया और वही अरब में पहुँच कर 'कंद' बन गया ।

वर्णन—एक प्रसिद्ध खाद्य जिसे चावल, दूध और घी से बनाते हैं । शैख ने कानून के हाशिये (मर्म) पर लिखा है कि यह एक खाद्य है जिसे चावल और दूध से बनाते हैं । सदीद गाज़रूनी के कथनानुसार बहत् वह है जिसे चावल, दूध और छोहारे का शीरा वा दोशाब जैसे किसी मधुर द्रव्य के साथ पकाकर बनाते हैं । शैख नजीबुद्दीन समरकंदी के मत से चावलों और आटे से बनाये हुये हलुए का नाम है । मौलाना नफ़ीस के कथनानुसार बहत् एक प्रकार का खाद्य है जिसे मांस, चावल और दूध से बनाते हैं । जब यह पकने के समीप आता है तो इसमें खांड या मिश्री पीसकर मिलाते हैं । नफ़ाइ-मुल्लुगात के मत से यह भात है । किंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि भारतवर्ष में केवल उबाले हुए चावलों को भात कहते हैं और भत्ता इसी का अपभ्रंश है । मुन्तहियुल् अरब ने जो यह वर्णन किया है कि इससे खीर या फिरनी मालूम होती है किंतु घी इनमें नहीं डालते । शैख ने जो व्याख्या की है कि इससे खीर और भात दोनों का बोध होता है अर्थात् यदि चावलों को दूध के साथ पकाया जाय तो यह खीर या फिरनी है । यदि उसे केवल पानी में पकाकर दूध के साथ या बिना दूध के खाया जाय तो यह भात है और सदीद का कथन भी इसके समीप है । नजीबुद्दीन की व्याख्या से खीर जिसे शीरविरंज कहते हैं या फिरनी सिद्ध होती है । मुल्लानफ़ीस ने यह विलक्षण बात वर्णन की है कि वह पुलाव और खीर से संयुक्त है । उपर्युक्त समस्त विद्वानों ने केवल सुनी सुनाई बातें लिखी हैं । भात वस्तुतः हिंदी शब्द है जिससे बहत् अरबी संज्ञा व्युत्पन्न है और वह एक प्रसिद्ध कृतान्न है जिसे समूचे चावलों को दूध में पकाकर बनाते हैं । यदि चावलों को पीसकर दूध में पकाकर गाढ़ा कर लें तो वह फिरनी है । यही खीर और फिरनी में भेद है । इनमें से किसी में हिंदुस्तान

में घी नहीं डालते पर हिंदु डालते हैं । अस्तु, भावप्रकाश में लिखा है—'शुद्धेऽर्द्धपके दुग्धे तु घृताक्तांस्तण्डुलान्पचेत् । ते सिद्धाः क्षीरिका ख्याता ॥' हिंदु संस्कृति से प्रभावित मुसलमान भी घी डालते हैं ।

गुणधर्म तथा प्रयोग—बहत् अधिक रक्त उत्पन्न करता (कसीरुल् गिज़ा), बल्य, रक्तवर्द्धक, शुक्रल और उरो-मार्दवकर (बिना आध्मान, सांद्रत्व व गुष्ठत्व के) है । परंतु शीघ्र नोचे अवतरित हो जाता (बतीयुल् इन्हेदार) है । अतएव इसके भक्षणोत्तर गंभीर निद्रा लेनी चाहिये और इसके सेवनोपरांत सांद्र अम्ल आहार न करना चाहिये । (मुहीत) ।

वैद्य कहते हैं कि खीर बल्य, स्वर्य, स्वरयंत्र को स्वास्थ्यप्रद, वाजीकरण, शुक्रल, वायुकारक, पित्तनाशक, शरीरलाघवकर और हृद्य है तथा अंगग्लानि को दूर करती है, परंतु कफ और स्त्रियों में रजोरोग उत्पन्न करती है । (मुहीत) ।

खजाइन में यह अधिक लिखा है कि खीर (क्षीरिका) दुर्जर, बल्य, वाजीकरण, विष्टम्भताकारक (काबिज़) है तथा पित्त, रक्तपित्त और वायु का नाश करती है । इससे पाचनशक्ति और पाचकग्नि पर बुरा प्रभाव पड़ता है । खोपरे को बारीक कूटकर गोदुग्ध में डालकर खांड (चीनी) और गोघृत के साथ धीमी आँचपर पकावें । यह खोपरे की खीर स्निग्ध होती है । यह मधुर, वाजीकरण, गुरुपाकी और परम बृंहण है । यह पित्तोन्माद और वायु को नष्ट करती है । (ख० अ० भ० ५ पृ० ५७१) । भावप्रकाश में लिखा है :—

क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्द्धिनी ।

विष्टम्भनी हरेत् पित्तं रक्तपित्ताग्निं मास्तान् ॥

(भावप्रकाश) ।

खीरखेप—संज्ञा पुं० [देश०] यह एक बेलदार वृक्ष है जिसकी एक जड़ से थूहड़ वा सेहुड़ की भाँति बहुसंख्यक शाखाएँ निकलती हैं । शाखाएँ सीधी होती हैं जिनमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर गिरहें होती हैं । यह किंचित सफेदी लिये हरे रंग का होता है । प्रत्येक गिरह वा गाँठ में छोटा सा सफेद फूल लगता है । यह पत्रविहीन होता है और इसमें फल भी नहीं आते । इसके समस्त अंगों में किंचित तीक्ष्ण और तिक्तास्वादयुक्त दूध भरा होता है । यह वृक्ष पहाड़ों पर होता है । तैलंगी में इसे 'तेगचमडू' कहते हैं ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष ।

गुणधर्म तथा प्रयोग—इसको कुचलकर स्वरस निकालें । इसमें से ४ तो० से पाव भर तक स्वरस सप्ताह पर्यंत या इससे भी अधिक समय तक पिलाने से आमवात और विवृद्धप्लीहायुक्त जलोदर बिल्कुल आराम होते हैं । किंतु लवण, स्नेह और अम्ल पदार्थों से रोगी को भली भाँति

परहेज कराया जाय; क्योंकि उक्त द्रव्यों का सेवन कर लेने से असीम हानि उठानी पड़ती है। (मुहीत)।

खीरखजूर—संज्ञा पुं० [बं०] खिरनी। राजादन।

खीरदारु—संज्ञा पुं० [फा०] कुलंजन।

खीरा—संज्ञा पुं० [देश०] पर्याय—(सं०) त्रपुस, त्रपुसी, पीतपुष्पा, काण्डालु, काण्टालु, त्रपु-ककंदी, बहुफला, कण्टकिलता, कोषफला, तुन्दिलफला, सुधावासा; (बं०) शशा गाछ; (हिं०) खीरा, बालमखीरा; (मं०) तिवरसी, तौसी ककंदी; (कना०) तसैय काय; (ते०) दोज कइअ; (उत्कल) कण्ट आरि काकुड़ि; (ता०) महेवेद्वीर, कोङ्कणे; (अ०) कसद; (फा०) खियार, वारंग, बालंग, वादरंग; (अं०) कुकम्बर (Cucumber); (ले०) कुकुमिस सेटाइवस (Cucumis Sativus), कुकुमिस हार्डविकिआई (C. Hard-wickii)।
उद्भवस्थान—भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में इसकी कृषि की जाती है।

कूष्माण्डादि कुल (Family: Cucurbaitceae.)।

परिचय—कूष्माण्ड जाति की सर्वप्रसिद्ध लता है जिसमें वर्षाकृत में ककंदीतुल्य फल लगते हैं। इसके पुष्प पीत वर्ण के होते हैं। बीज—इसके फल में ककड़ीबीज से प्रायः द्विगुण लम्बे बीज पंक्तियों में होते हैं। फल—कच्चा फल किंचित् अनुरस और सुपक्वफल किंचित् अम्लतायुक्त होता है।

गुण—फल—रुचिकारक, मधुर, शीतल, गुरुपाकी और भ्रम, पित्त, विदाह, वान्ति (वमन)नाशक तथा बहुमूत्रकारक है। (रा० नि० व०७)।

छोटा, नीला तथा नवीन खीरा—मधुर, शीतल तथा तृषा, ग्लानि, दाह, पित्त एवं अत्यन्त रक्तपित्तरोग नाशक है। सुपक्व खीरा—खट्टा, उष्ण, पित्तकारक तथा कफवातनाशक है। बीज—मूत्रल, शीतल, रुक्ष तथा पित्त, रक्तविकार और मूत्रकृच्छ्रनाशक है। (भा० पू० आम्नादिवर्ग)।

तिब्ब के अनुसार खीरा—प्रकृति-द्वितीय कक्षा में शीतल एवं तर है।

गुण-कर्म—रक्त और पित्त की उष्णता तथा आन्त्रप्रदाह-नाशक, पित्तज्वरहर, अनिद्रानाशक तथा मष्तिष्क सम्बन्धी रोग में उपयोगी है। **उपयोग**—फलस्वरस किंचित् गरमकर पान करने से कफ-पित्तज्वर का नाश होता है। रक्तज तथा पित्तज शिरोवेदना में इसे काटकर आघ्राण कराने से लाभ होता है।

बीज (तुल्यखियार)—किंचित् अनुरस (फीका) होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं तर है। **गुण-कर्म**—मूत्रल, मूत्रप्रदाह-मूत्रकृच्छ्र-कामलानाशक, यकृत-शोथप्र,

तृष्णाहर तथा विदग्धपित्त का मूत्र-मार्ग द्वारा विरेचक है।

अहितकर—शीतल प्रकृति के व्यक्तियों को।

निवारण—अर्कसौफ तथा सौफ का चूर्ण देवे।

खीरे के बीजों का तेल

पर्याय—त्रपुस बीजोत्थ तैल—सं०। खीरे का तेल—हिं०। रोगन तुल्य खियार—फा०। दुहन बञ्जुल कसद, दुहनल खियार—अ०। ककड़ी और खीरा इन दोनों के बीजों से प्राप्त तेल को फारसी में 'रोगन तुल्य खियारैन' कहते हैं।

निर्माण-विधि—एक पीले खीरे का स्वरस निकाल कर उसमें तिल वा जैतून का तैल मिलाकर यहाँ तक पकाये कि तैलमात्र शेष रह जाय।

प्रकृति—शीतल और स्निग्ध। रंग—सफेद हलका पीत। स्वाद—मधुर वा किंचित् सुस्वादु।

अहितकर—शीतल प्रकृति वा वातनाडियों को।

निवारण—बादाम का तेल। ग्रह—शुक्र। प्रतिनिधि—

कद्दू का तेल वा पेटे का तेल। प्रधान-कर्म—मस्तिष्क को स्निग्धता प्रदान करता और संतापहारक है। मात्रा—६ मा० से १ तो० या कम।

गुणधर्म तथा प्रयोग—समस्त गुणों में रोगनकद्दू से निबलतर है। (मखजन। मुहीत)।

यह उल्लासप्रद है। शरीर को परिवृंहित करता है। उष्ण शोथों को विलीन करता है। प्रायः उष्ण व्याधियों को लाभकर है। मस्तिष्कावयवों को बहुत ही सात्व्य है; किंतु श्लेष्मावर्द्धक है। (मं० मु०)।

मात्रा और प्रतिनिधि—३ से ९ माशा; ककड़ी के बीज और ककड़ी-फल।

खीरखजूर—संज्ञा पुं० [फा०] खुब्बाजी।

खीरदवा—संज्ञा पुं० [?] कामदवा।

खील—संज्ञा पुं० [अ०] (१) घोड़ा। अश्व। (२) वृक्क।

खीलाफ़—संज्ञा पुं० [अ०] वेदमुक्क।

खीशउर—संज्ञा पुं० [?] भेड़िया। वृक।

खीशकूज—संज्ञा पुं० [?] बिनीला। कार्पा बीज।

खीस—संज्ञा स्त्री० [देश०] पेउंछ। पियूष।

खुङ्गाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वेत-पीत वर्ण का घोड़ा। श्वेतपीतवर्णश्व। (ज० द० ३ अ०)।

खुजअबात—संज्ञा पुं० [अ०] अचम्भा। विस्मय। तअज्जुब।

खुजअबिलत—संज्ञा पुं० [अ०] विस्मयता। वह बात जिससे हास्य उत्पन्न हो।

खुजरत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) धात्वर्थ हरित, हरा, सब्जी।

तिब्ब की परिभाषा में त्वचा का हरितवर्ण में परिवर्तित हो जाना, मूत्र का हरितवर्ण में परिवर्तित हो जाना। कीमोसिस। पीत, नीलादि वर्ण के अनुसार इसके ५ भेद

हैं—(१) आकाशवर्णीय, (आस्मांजूनी) (२) नील-वर्णता (नीलंजी), (३) हरितवर्ण (कुरासी), (४) जंगाल वर्णीय (जंजारी) और (५) पिस्तावर्णीय (फुस्तकी)। उक्त विवर्णता आघात पहुँचने से त्वचा के नीचे रक्तावरोध होने के कारण उत्पन्न होती है। (अं) एकीमोसिस (Ecchymosis)। (२) पृष्ठवेदना, दर्द पुस्त, पीठ का दर्द।

खुजरा—संज्ञा पुं० [अ०] सुक। तोता। सूगा।

खुजली—संज्ञा स्त्री० [सं० खज्जु] कण्ठरोग। खारिश।

खुजाअ—संज्ञा पुं० [अ०] मृत्यु, मौत, मर्ग। (अं) डेथ (Death)।

खुजालिक—संज्ञा पुं० [अ०] मुरमक्की। रक्त बोल।

खुजीमह—संज्ञा पुं० [अ०] सुपक्वगोधूम। पका गेहूँ।

खुजीरम—संज्ञा पुं० [अ०] गोह का बच्चा। गोधावत्स।

खुजूमह—संज्ञा पुं० [अ०] गाय। गवी।

खुज्जक—संज्ञा पुं० [सं०] देवताइ वृक्ष। (२० मा०)।

खुज्जर—संज्ञा पुं० [अ०] खरहा। खरगोश। शशा।

खुज्जरान—[अ०]

खुज्जल—संज्ञा पुं० [अ०] पृष्ठस्त्राप। पीठ का सुन्न हो जाना। पीठ का सकृत् होना।

खुटला—संज्ञा पुं० [देश०] कंडेना। एक प्रकार की बरसाती लता है।

खुड़—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वातरक्त रोग। (वै० निघ०)।

खुड़क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुल्फ। एड़ी। पाष्णी। (सु० नि० १ अ०)।

खुड़वात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वातरोगभेद। (वै० निघ०)।

खुड़डाक—वि० [सं० त्रि०] छोटा। क्षुद्र। ह्रस्व। कनिष्ठ। (च०)।

खुड़डाकपत्र तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वातरक्त में प्रयुक्त उक्त नाम का तैलयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कमल, खस, मुलहठी, हल्दी—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर बवाथ करें। पुनः इसमें शिलारस, मजीठ, चन्दन, काकोली और पृश्निपर्णी को समान भाग में ग्रहण कर कंक निर्माण करें और तिलतैल में पाक करें। गुण—इसके उपयोग से वातरक्त और दाह का नाश होता है। (च० चि० २९ अ०; रस २०)।

खुतफ़—संज्ञा पुं० [अ०] (१) रोगमुक्त होना। रोग से छुटकारा पाना। (२) ज्वरमुक्त होना। ज्वर छूट जाना। ज्वर उतर जाना।

खुताइफ़—संज्ञा पुं० [अ०] भेड़िया। वृक।

खुतीफ़ह—संज्ञा पुं० [अ०] यवागू। हरीरा।

खुत्ताफ़—संज्ञा पुं० [अ०] अबाबील। परस्तूक। (फा०)।

(मु० आ०; म० अ०)।

खुदारिय—[अ०] गिद्ध। गीध। गुध्र। उकाब।

खुदूअ—संज्ञा पुं० [अ०] नमाम। (बु० क०)।

खुदंग—संज्ञा पुं० [फा०] खुलंज। माज। गज। (ख० अ०)।

खुनक—संज्ञा पुं० [फा०] वारतंग।

खुनफ़सा—संज्ञा पुं० [अ०] गुबरीला। गोबर का काला कीड़ा। (अ०) कॉक्सीनेला।

खुनाक—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ दम घुटना, गला घुटना, श्वासावरोध होना। तिब्बी परिभाषा के अनुसार एक प्रकार का गलशोथ जो स्वरयंत्र के बाह्य पेशियों वा आहारपथ के ऊपरी पेशियों वा कंठ के भीतरी भागों में उत्पन्न होता है। इस रोग में अन्न-पान में तथा श्वासग्रहण में कष्ट होता है। पर्याय—कंठशोथ। गलरोहिणी। (अं०) अञ्जाइना (Angina), सोरश्रोत (Sorethroat)। (ले०) सीनानकी (Cynanche)। (सं०) कण्ठरोहिणी। तिब्बी नोट—स्थान, शोथ तथा कण्ठभेद से खुनाक के ३ प्रकार हैं—(१) खुनाक मुतलक, (२) खुनाक जुबह और (३) खुनाक कलबी।

डाक्टरों नोट—(१) सिनानकी—यह वास्तव में यूनानी शब्द है। इसका धात्वर्थ श्वासावरोध वा दम घुटना होता है। इस रोग का रोगी श्वानवत् श्वासग्रहण करता है। अतः उक्त नामकरण इसी अर्थ के अनुसार किया गया है।

अञ्जाइना—आधुनिक काल में इस शब्द का उपयोग उस व्याधि के लिए होता है, जिसमें श्वासावरोध होने की दशा प्राप्त हो, अथवा गले का वह रोग, जिसमें श्वास अवरुद्ध होने की दशा प्राप्त हो।

खुनाक मुतलक—इस रोग में गलप्रदेश तथा घण्टिका (लौजतैन) की बाह्य पेशियाँ जो मुख तथा जिह्वा के निकट हैं, शोथयुक्त हो जाती हैं। जिह्वा बाहर निकालकर देखने से उक्त शोथ का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। अंग्रेजी में इसको किन्सी (Quinsy) और टॉन्सलाइटिस (Tonsillitis) कहते हैं।

जब शोथयुक्त घण्टिका में पृथोत्पत्ति होती है तब उसके लिये किन्सी शब्द का उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद में इस प्रकार के शोथ को गलशुण्डी और मिस्र के आधुनिक चिकित्सक इल्लिहाबलौजतैन वा वर्मुल्लौजतैन और डॉक्टरों में टॉन्सलाइटिस कहते हैं।

(२) जुबः—यह खुनाक का वृहत् भेद है। इस रोग में गलवर्ती उभय पाश्वर् की पेशियाँ तथा कभी-कभी आहारनलिका (मरी) की ऊर्ध्व पेशियों में शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस शोथ के कारण गले के उभय कोण के मध्य में एक प्रकार का परत दृष्टिगोचर होता है। इसको डॉक्टरों में क्रूप (Group) वा सिनानकी (Cynanche) कहते हैं। इसमें श्वासावरोध, कास इत्यादि लक्षण होते हैं।

नोट—जुबः का स्थान मिस्र के आधुनिक चिकित्सकों के अनुसार निश्चित किया गया है, किन्तु शैख के अनुसार जुबः खुनाक का एक भेद है और यही अधिक ठीक प्रतीत होता है। अन्य भेदों के लिये दे० 'जुबः'। पुरातन तिब्बी चिकित्सकों के अनुसार जुबः का प्रमुख लक्षण इस प्रकार है—

जुबः में रोगी का स्वर अधिक वा स्वल्प बैठ जाता है। जलपान तथा आहारग्रहण में कष्ट प्रतीत होता है। यदि रोगी कभी भोजन को निगलना चाहे तो वह नासा-द्वार से वहिर्गत हो जाता है। मुख से लालास्राव होता है और नेत्र बाहर को उभर आते हैं।

(३) **खुनाक कलबी**—यह खुनाक का उग्र एवं असाध्य भेद है। इस रोग में स्वरयंत्र तथा गले की पेशियाँ शोथयुक्त हो जाती हैं। शोथ की अधिकता तथा रोग की भीषणता के कारण रोगी की जिह्वा श्वानजिह्वा-तुल्य बाहर निकल आती है। उक्त कारण से इस का नामकरण खुनाककलबी के नाम से किया गया है। अरबी भाषा में 'कल्ब' कुत्ता को कहते हैं। इस रोग में खुनाकजुबह की अपेक्षा अत्यधिक उग्रता तथा व्यथा इत्यादि होते हैं। इस रोग में औषध, जल तथा आहार निगलने में असमर्थता होती है। डॉक्टरों में इसको सिनानकी मैलिग्ना (Cynanche Maligna) और ओडेमा ग्लोटीडिस (Oedema Glottidis) कहते हैं।

खुनाक तबई—संज्ञा पुं० [अ०] स्वाभाविक खुनाक।

खुनाक मुतलक—संज्ञा पुं० [अ०] देखो खुनाक का प्रथम भेद।

खुनाक ववाई—संज्ञा पुं० [अ०] जनपदोद्ध्वंसक गल-रोहिणी। यह खुनाक का असाध्य तथा अत्युग्र संक्रामक भेद है। इस रोग में स्वरयंत्र में शोथ तथा गलतालु प्रदेश में भी भीषण शोथ उत्पन्न हो जाता है और इस रोग का रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है। इस रोग का मूल कारण एक प्रकार का अणुवीक्षणीय जीवाणु है। इसको तिब्ब में जरसूमा खुनाक और डॉक्टरों में डिफ्थीरिया बेसिलस कहते हैं।

चिकित्सा—आधुनिक चिकित्सा में पेनिसिलीन का सूचीवेध तथा डिफ्थेरिअम् का उपयोग लाभदायक होता है।

खु (खि) नान—संज्ञा पुं० [अ०] नासिका के रोग। नाक की बीमारी। अम्नाज अन्क।

खुनूज—संज्ञा पुं० [अ०] दूषित मांस। गोश्त का सड़ जाना। मांस का दूषित हो जाना।

खुन्न—संज्ञा पुं० [अ०] कोष। गिलाफ। खोल। आवरण।

खुन्बअ—संज्ञा पुं० [अ०] दोनों मोठों के मध्य का चिह्न (शिगाफ)।

खुन्सा—संज्ञा पुं० [अ०] एक उद्भिद् है।

मख्जन में लिखा है कि पश्चिम में बज्वाक (मुहीत-मतेन बरवाक) कहते हैं। कञ्जुलुगात तुर्की में बरवाक को तुर्की भाषा का शब्द और उसका अर्थ असरास लिखा है। मुहीत में इसकी यूनानी संज्ञाएँ इस प्रकार लिखी हैं। यथा—तेगलैलिस (खजाइन में तीकलस), फोरासिया (खजाइन में फ्रासिया), कूवरूस, कूफूस। मुहीत में इसकी सुरयानी और यूनानी संज्ञा अस्कूलूस लिखी है। खजाइन में इसके सिवाय अस्कूलूसा भी लिखा है। गोलानी के अनुसार उस्कूलूस या उस्कूलूसा खुन्सा की जड़ को कहते हैं। बुरहान कातिअ, अल्फाजुलू अद्विया और बहर्लू जवाहिर से यह सिद्ध होता है कि एक खुरदरी जड़ है जिसको पीस-पकाकर मोची और जिल्द-साज काम में लाते हैं। फ़ारसी असराश और सरेश और गयाह सरेशम और हिन्दी में सरस कहते हैं। अस्कूलूदास यूनानी में बरवाक को कहते हैं और वह खुन्सा सदृश एक घास है। श्यामनिवासी सनोबर कहते हैं। स्पेन में बरवाकी प्रसिद्ध है और वह सनोबर नहीं है। मुहीत में इसकी अरबी कुरासुल् हिमार और अरबी लिखी हैं। कामूस आदि में अरबी को अरबी या सुरयानी शब्द लिखा है। उनके मत से यह खुन्सा है, जिसकी जड़ असराश है।

वर्णन—असराश के सदृश एक घास है। कोई-कोई कहते हैं कि यह असराश ही का एक भेद है। बृअलीसीना ने इसकी जड़ को असराश लिखा है। गाजरूनी ने भी उन्हीं का अनुसरण किया है। परन्तु यूसुफगदादी ने उनका खंडन किया है। इनके मत से यह उससे सर्वथा भिन्न औषधि है। इनके मत से इसके पत्ते शामोगंदना के पत्तों की तरह पर उनसे कोमल होते हैं। तना चिकना, नरम और लगभग एक हाथ (यक जराअ) उच्च होता है और उसके छोर पर बलूत के सदृश सफेद फूल होता है। जड़ गोलू मसृण और लंबोतरी होती है। चौड़ाई (अर्ज) सोसन आजादवत् कम होती है, किन्तु यह उससे बड़ी होती है। स्वाद तीक्ष्ण होता है। बीज घुंड़ी में होता है और आकृति में प्याज के बीज के सदृश होता है। इसमें चार वर्ष तक शक्ति बनी रहती है।

डीमक महोदय लिखते हैं कि अरबी और पारस्य द्रव्य-गुण के लेखक खुन्सा नामसे एक प्रकार के सफेद फूल के ऐस्फोडेल (Asphodel) का वर्णन करते हैं और इसे ही अथवा इससे बहुत मिलते-जुलते पौधे को फारसी में असराश वा सरेश कहते हैं। विशेष दे० 'असराश'। अस्तु, डीमक ऐस्फोडेल विशेष अर्थात् ऐस्फोडेलस फिस्च्युलोसस (Asphodelus Fistulosus,

Linn.) के अधोलिखित वानस्पतिक वर्णन से यूनानी निषंदूत खुन्सा के वर्णन का मिलान कर देखने से यह ज्ञात होता है कि खुन्सा यही है। यथा—

“Annual, stem naked, ramous; leaves erect, linear, cylindric, fistulous, tapering to a point; scape erect, branched; flowers small, white with a brownish line running along the centre; filaments ciliate, contracted; corolla 6-partite; stigma capitate; ovary 3-celled,” (Ph. Ind. pt. iii., p. 480)

गोनी या प्याजी

गोनी या प्याजी का वर्णन—यह एक प्रसिद्ध घास है जिसके पत्ते प्याज की तरह होते हैं। जड़ तंतुबहुल या झकरा होती है। प्रत्येक कांड से डंठल निकलता है जो प्याज के पत्ते की तरह नालीदार और खोखला होता है। पत्तों के पुष्ट हो जाने पर एक या अधिक कड़ी शाखाएँ निकलती हैं जो ठोस होती हैं। उन पर बहुतायत से फूल और फल आते हैं। फूल छोटे-छोटे ललाई लिये सफेद रंग के होते हैं। फल गोल होते हैं। हर फल में श्यामता लिये तिकोने तीन बीज होते हैं। यह आध गज ऊँची होती है और हरी-भरी होती है। स्वाद खारापन लिये कषाय होता है। यह प्रायः अनाज के खेतमें अनाज के साथ उगती है। जेठ-बैसाख में सूख जाती है

पर्याय—प्याजी, गोनी, मुनमुना, बोकाट—हि०। पियाजी, बोखाट, पोगाट, भूकली, बिंघर (वृं) बीज—पं०, सिंध। डुग्रो, डुंग्रु—गु०। खुन्सा—अ०। ऐस्फोडेलस फिस्च्युलोसस (Asphodelus Fistulosus, Linn.)—ले०। गंदुम दानः—फ्रा०।

पलाण्डु कुल (Family : Liliaceae)।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष के खेतों में विशेषतया उत्तर हिंदुस्तान में होती है। अफगानिस्तान में भी होती है। पंजाब और सिंध में इसके बीज बाजारों में बिकते हैं। दक्षिण अफगानिस्तान में और झेलम के समीपवर्ती जोते-बोये हुए खेतों में यह बहुतायत से होती है। (मुरें)। सिब्थॉर्फ के अनुसार यह एथेन्स के समीप साधारण रूप से होती है।

प्रयोगांश—पञ्चाङ्ग वा बीज।

इतिहास—हीसियड (Hesiod) ने ईसवी सन् से आठ शताब्दी पूर्व ऐस्फोडेल का उल्लेख किया है। सावफरिस्तुस हिस्ट्री ऑफ प्लांट्स नामक स्वरचित ग्रंथ में लिखता है कि यूनाननिवासी ऐस्फोडेल की जड़ को खाते थे। दीसकुरीदूस ने ऐस्फोडेल को एक प्रकार का ओषधीय पौधा वर्णन किया है। उनके मत से जब इसका आभ्यंतरिक

प्रयोग करते हैं तब इसका मूत्रल एवं अवरोधोद्घाटक प्रभाव प्रकाश में आता है और ऋण एवं शोथ (प्रदाह) युक्त भाग आदि पर इसे लगाने से उपकार होता है। उक्त पौधा को, रोमनिवासी ‘Hastula regia’, or ‘king’s spear’ कहते थे और morbus regia or ikteros (cf. Hipp. de Morbia, ii., 35) व्याधि में इसका भेषज्य रूपेण व्यवहार करते थे। अरबी और पारस्य द्रव्य-गुण के रचयिताओं ने एक प्रकार के सफेद फूल के ऐस्फोडेल का खुन्सा नाम से उल्लेख किया है। इब्नसीना प्रभृति एवं अन्यान्य यूनानी अरबी चिकित्सकों ने खुन्सा के वे ही गुणधर्म लिखे हैं जो दीसकुरीदूस ने ऐस्फोडेल के लिखे हैं।

मुहीत में पियाजी शब्द में लिखा है कि यह गेहूँ के खेत में उगती है और आकृति में फ़रासियून की तरह होती है। अस्तु, इसे फ़रासियून हिन्दी कहते हैं। गुण में तरसियून के समान है। परन्तु उक्त ग्रंथ में तरसियून का वर्णन देखने से यह ज्ञात होता है कि वह विषाक्त औषधि है। खजाइन में मुनमुना शब्द में लिखा है कि छोटा, गोल, राई और सरसों के दाने के बराबर काले रंग का बीज है। गेहूँ के खेतों में उत्पन्न होता है और गेहूँ के साथ रहता है। किसी-किसी ने प्याजी को गंदना वा कुरास भी लिखा है। वि० दे० “गंदना”।

प्रतिनिधि—शुष्क बिसखपरा।

गुण—प्रयोग—प्याजी बूटी को पीसकर किंचित् अंडे की सफेदी व लस्सी अर्थात् छाछ मिलाकर लेप करने से सूजन उतर जाती है और तीर एवं काँटे लगे हुए भीतर से निकल आते हैं। इसके पत्तों को कूटकर टिकिया बनाकर तिल के तेल में जलाकर लगाने से दद्रु और खज्जू आराम होते हैं। संक्रामक खज्जू के लिये परीक्षित है। कपोतविष्टा मिला कर लेप करने से फोड़े-फुन्सी दूर करती है। एक व्यक्ति का यह कथन है कि मैं ने अल्प मूल्य में गेहूँ खरीद की जिसमें अन्यान्य अनाज के दाने बहुतायत से मिले थे और गेहूँ के दाने नाम मात्र के थे। इसके आटे की रोटी पकाकर रात्रि में केवल इसे ही खाया गया। इसके आध घंटा बाद मादकता की सी दशा प्रगट होकर वह अचेत हो गया। कुछ घंटों के बाद जब होश आया तब मालूम होता था कि आपादमस्तक शरीर की समस्त वातनाडियाँ (पुट्टे) अवसन्न और निश्चेष्ट एवं निःसंज्ञ हो गई हैं। निरंतर कई दिवस तक उक्त दशा बनी रही और अब तक सिर भारी मालूम हुआ करता है। इससे यह ज्ञात होता है कि अधिक परिमाण में इसके बीज गेहूँ में मिले हुए थे और उनका स्पर्शजितजनक प्रभाव पड़ा। इसके बीजों से पातालयन्त्र के द्वारा निकाला हुआ तेल

परम अवसन्नताकारक है। संधिवात में इसका अभ्यंग गुणकारी है। त्वचा के रोगों में इसकी मालिश से खज्जू और दद्रु प्रभृति दूर हो जाते हैं। कनपुटियों पर इसे मालिश करने से नींद आ जाती है। इसके पत्र-स्वरस में समभाग तिलतैल मिलाकर तैलमात्र शेष रहने तक पकाकर छान कर रखें। संधिवात और अन्य प्रत्येक प्रकार की वेदना निवारण करने के लिये उक्त तेल की मालिश लाभकारी है। इसे कूटकर शराब में भिगोकर प्रलेप करने से तुरंत गुध्रसीशूल (इकुन्नासा) आराम हो जाता है। शहद के साथ वातरक्तनाशक है। इसके बीजों को जंगली कबूतर की बीट के साथ पीसकर लेप करने से फोड़े पककर विदीर्ण हो जाते हैं। मद्य में इसके बीज डालने से वह अधिक मदकारी हो जाता है। (ज० बू०)।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह उष्णता एवं रूक्षताकारक है। भग्नास्थि पर बाँधने से उसका संधान करती है। वृषण-शोथ और वायु को विलीन करती है। वृक्क एवं वस्तिस्थ अश्मरी का लेदन करती है। इसकी जड़ अन्यान्य अंगों की अपेक्षया अधिक वीर्यवान् होती है। इसकी जड़ को जलाकर किसी तेल में मिलाकर खालित्य आदि (दाउस्स-अलव और दाउल्हय्यः) पर लगाने से बाल उत्पन्न हो जाते हैं। श्वेतव्यंग (बहक सफेद) पर इसकी राख मलकर घूप में बैठने से उपकार होता है। अग्नि-दग्ध पर इसे मुर्गी के अंडे की सफेदी में मिलाकर लगाने से लाभ होता है और गंधक के साथ लगाने से दद्रु नष्ट होता है। इसका रस (उसारा) कान में टपकाने से कर्णपूय आराम होता है। दाँत पर लगाने से दंतशूल आराम होता है। इसमें यह एक विशेष प्रभाव है कि यदि दाँत कुंद हो और उसमें पीड़ा होती हो तो इसको सिरके में पीसकर उस तरफ के अँगूठे पर लगावें तो पीड़ा दूर हो जाय। इसके फल और फूल मलावरोधनाशक हैं। उनको थोड़ा सा खा लिया जाय तो कै आने से आसानी होती है और मद्य के साथ खाने से विरेक आते हैं तथा विच्छू एवं कनखजूरे का विष उतर जाता है। इनके सिवाय अन्यान्य कीटदंशज विष दूर हो जाते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। यही दशा इसकी जड़ की है। जला लेने से यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय कक्षा में रूक्ष हो जाती है। इसकी जड़ में मलभूत द्रव वर्तमान होता है। अहितकर—प्लीहा एवं वृक्क को हानि पहुँचाती है और इसका अतिसेवन पित्त-वर्द्धक है। निवारण—प्लीहा के लिये स्नेहाक्त शोरबा, वृक्क के लिये मस्तगी और पित्त के लिये इमली। प्रतिनिधि—मगास, मजीठ, वाजीकरणार्थ शकाकुल और विष के लिये वनपलाण्डु। मात्रा—१०॥ मा० तक।

नव्यमत

The plant has a reputation in Sindh and the Punjab as a diuretic. (Murray)

In Northern India and Afghanistan it is eaten as a vegetable. (Ph. In. Pt. iii, p. 479)

इन्डियन मेडिसिनल प्लांट्स के संकल्यितागण लिखते हैं कि यूनानी चिकित्सक इसके बीजों को मूत्रल स्थाल करते हैं और सूजन तथा जख्म पर लगाते हैं।

खजाइन में मुनमुना—शोधविलयन और मार्दवकर है। इसको पीसकर सिरके में मिलाकर घूप में पाँच घड़ी रखकर सूजन पर लगाएँ। कैसी ही कठिन सूजन हो दूर हो जाती है और वेदना निवृत्त होती है। अहितकर—(रहीयुल गिजा) है। खाने से आध्मान और वातज उदर-शूल प्रगट होता है। निवारण—सिरका। जड़ीबूटी में खवास में लिखा है कि प्रकृति उष्ण एवं रूक्ष है। अहितकर—आवाज और (हंजरा) को। निवारण—घृत एवं दुग्ध।

गंधक और सिरके के साथ यह त्वग्रोगों में लाभकारी है। कपोतविष्टा के साथ इसे लेप करने से फोड़े, ग्रंथियाँ और सूजन विदीर्ण होकर बह जाते हैं। राल, मुरमकी (बोल) और केसर और इस बूटी का पंचांग समभाग मिलाकर बंध्या स्त्री को ऋतुस्नानोत्तर एक रंग गाय के कच्चे दूध के साथ गर्भस्थापनार्थ पुराकालीन चिकित्सक उपयोग करते थे। यह आक्षेपनिवारक है। इसके पत्तों को दूध में उबालकर पिलाने से बालरोग विशेष (बालापस्मार-उम्मुस्सिव्यान) आराम होता है। (ज० बू०)।

खुन्सी—संज्ञा स्त्री० [अ०] [बहु व० 'खुनासी'] नपुंसक। हिजड़ा। खोजा। वह व्यक्ति जिसमें स्त्री-पुरुष उभय के चिह्न हों अथवा न भी हों।

खुफूत—संज्ञा पुं० [अ०] मूक। गुँगा। बुतलानुस्तीत। वाचा शक्ति का नष्ट हो जाना। गुँगा हो जाना।

खुफफ—संज्ञा पुं० [अ०] पादतल (तरवा) का वह भाग जो पृथ्वी से लगता है। मोजह हिजाब।

खुफास—संज्ञा पुं० [अ०] चमगादड़। चर्मकी।

खुबाज—संज्ञा पुं० [फा०] मलफक। (इं० हैं गा०)।

खुबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'खुब्बाजी'।

खुबात—संज्ञा पुं० [अ०] सिड़ीपन। खप्तीपन। भवचक्का-पन।

खुबानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पर्याय—(हि०) गौरीफल, चूल्, चील्, कुलु; (पं०) गदोल्, गुर्दोल्, शिरनो; (पश्तो) जरदालु; (कुमायूँ) चुआड़ू, चूल्; (यू०) अरमीनाफन; (अं०) एप्रिकाट (Apricot); (ले०)-

वृक्ष—प्रुनस-आर्मिनिएका (Prunus Arminiaca, Linn.)।

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वत, गढ़वाल, दक्षिण भारत, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान इत्यादि।

परिचय—एक वृहत् वृक्ष का फल है जो अपक्व अवस्था में अत्यम्ल होता है और सुपक्व अवस्था में यह पीतवर्ण का हो जाता है। फलों का स्वरूप आड़ू के सदृश होता है। गढ़वाल में इसको 'छलू' या 'गौरीफल' के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। इसके शुष्क फलों का स्वाद ताजे फलों की अपेक्षा उत्तम होता है। सुपक्व फल किंचित् मिष्ट तथा अम्ल होता है। स्वादभेद से यह तीन प्रकार का होता है—(१) अम्ल, (२) मधुर और (३) मधुराम्ल। बीज—फलों में बादामतुल्य बीज होते हैं। बीजों से जो मींगी निकाली जाती है वह बादामबीजतुल्य श्वेतवर्ण की होती है। बीजों में से बादाम तैलवत् तैल की मात्रा अधिक होती है। फारसी में बीजों को 'शकर बादाम' कहते हैं। यह बादामतुल्य स्वादिष्ट होता है। स्वादभेद से इसके बीज कटु और मिष्ट दो प्रकार के होते हैं।

प्रकृति—फल—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—पित्तविरेचक, सर, संशमन, जीवनीय, रक्त तथा पित्तप्रकोपशामक, तृषाशांतिकारक, मलसंपक्व-कारक, कोष्ठ तथा प्रकृतिमृदुकर, अवरोधोद्धाटक, अशंघ्र, उदरादकमिह्र, पित्तज्वरघ्न तथा शरीरबलप्रद है।

पत्र—कृमिघ्न तथा कृमिनिस्सारक और शोथघ्न है एवं दोष तारक्यकारक, बीज-शुक्रोत्पादक तथा दीर्घपाकी है।

तेल—अवरोधोद्धाटक, वातानुलोमक, शोथघ्न, कृमिदोष-हर, आमनिस्सारक तथा विरेचक है।

फाण्ट तथा हिम—इसके उपयोग से आमाशयस्थशोथ, तथा पित्तज्वर का नाश होता है। यह पित्तशांतकर है।

खुबोनह—संज्ञा पुं० [अ०] मांसार्क। यखनी।

खुबीस—संज्ञा पुं० [अ०] रदी। खानीह। निकृष्ट।

खुबीसह—संज्ञा पुं० [अ०] इन्द्रायणलता।

खुब्ज—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० 'खुब्ज'] रोटी।

आपूप। नान काक।

खुब्ज-इक़ख़र्जा—संज्ञा पुं० [अ०] पावरोटी। नानपाव। डबल रोटी।

खुब्ज-खुवारी—संज्ञा पुं० [अ०] गेहूँ की शुष्क रोटी। नान काक।

खुब्ज-खुश्कार-(गुश्कार)—संज्ञा पुं० [अ०] मोटे आटा की रोटी। मोटे पिसान की रोटी। (म० अ०)।

खुब्ज-फ़तीर—संज्ञा पुं० [अ०] चौपाती। फतीरीरोटी।

खुब्ज-बलदी—संज्ञा पुं० [अ०] देशी रोटी।

खुब्ज-रुमी—संज्ञा पुं० [अ०] मैदे की रोटी। रुक्ष रोटी। काक।

खुब्ज-समीद—संज्ञा पुं० [अ०] मैदे की रोटी। साधारण रोटी जो भारतवर्ष में बनाई जाती है।

खुब्जताबक—संज्ञा पुं० [अ०] तवापर पकाई गई रोटी।

खुब्जुलउर्ज (उरुज्ज)—संज्ञा पुं० [अ०] चावल की रोटी।

खुब्जुल् करुद—संज्ञा पुं० [अ०, अन्दलुस] लोफकवीर।

खुब्जुल्-कुरानी—संज्ञा पुं० [अ०] कुरनी रोटी।

खुब्जुल्-गुराब—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बावून। (२) उकहवान।

खुब्जुल्ताबक—संज्ञा पुं० [अ०] तवे की रोटी। (लु० क०)। (मख०)।

खुब्जुल्बहर्—संज्ञा पुं० [अ०] सगुद्रशाग। समुद्रफेन।

खुब्जुल् बाकिला—संज्ञा पुं० [अ०] बाकले की रोटी।

खुब्जुल् समीज—संज्ञा पुं० [अ०] मैदे की रोटी।

खुब्जुल् हमस—संज्ञा पुं० [अ०] चने की रोटी।

खुब्जुल्-हुवीरा—संज्ञा पुं० [अ०] सफेद रोटी। नान हुबारी। (म० अ०)।

खुब्जुल्तावन—संज्ञा पुं० [अ०] मैदे की रोटी।

खुब्जुल्शईर—संज्ञा पुं० [अ०] जौ की रोटी।

खुब्जुल्शायख—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बखुरमरियम। हल्था जोड़ी। (२) उश्नान।

खुब्जुल्सखर—संज्ञा पुं० [अ०] —

खुब्जुल्समीज—संज्ञा पुं० [अ०] मैदे की रोटी।

खुब्ब—संज्ञा पुं० [फा०] अम्लिका। इमली।

संज्ञा पुं० [अ०] खाकसी। खाकसीर।

खुब्बाजी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पर्याय—(हि०) चंगेल, तिलबुनी, पापड़ा, चंगेर। फल—कुंझी, खुबाजी; (अ०)

खुव (ब्बा) जी; (फा०) नानकुलास (काकापूप), पीजक;

(सिंध) खुबाजी; (हि०) विलायती कंधी; (बम्ब०)

खुबाजी; (कों०) पटारी; (यू०) मलाखी; (शिराज)

खित्मि ए कूचक; (अं०) दी कामन मेलो (The

Common mallow); (ले०) मालवा सिल्वेस्ट्रिस

(Malwa sylvestris), मालवा वल्गैरिस (Malwa

vulgaris); (यू०) मलूखिया, मलूकिया; भेद—मलू-

खियाए-सजरी; खित्मी।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष, पंजाब, कश्मीर, कुमायूँ, हिमवती पर्वत इत्यादि।

परिचय—यह एक प्रकार का छोटा क्षुप है। इसकी पत्तियाँ खित्मीपत्रवत् और इसके क्षुप खित्मी की अपेक्षा छोटे होते हैं। इसमें श्वेतवर्ण के पुष्प लगते हैं। बीज किंचित् भूरा और जड़ पीतवर्ण की होती है। इसके फलों का आयात प्रायः फारस से भारतवर्ष में होता है। शेख का कथन है कि यह मलूखिया का एक प्रकार है। इसका दूसरा पर्याय मलूकिया भी है। किसी के अनुसार खुब्बाजी अरण्यज है और मलूखिया उद्यानज। मलूखिया के एक प्रकार को मलूखियाए शजरी कहते

हैं, जिसको खिन्मी कहते हैं। किसी का मत है कि खुब्बाजी खिन्मी का ही एक भेद है। मुल्लानफीस के अनुसार खुब्बाजी के दो प्रकार हैं—(१) मलूखिया (उद्यानज) और (२) अरण्यज (जंगली)। इसके भी २ प्रकार हैं—(अ) बड़ी—इसको खिन्मी और खुब्बाजी शजरी कहते हैं। (आ) छोटा भेद। इसको ही खुब्बाजी के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। इस को फारसी में 'खैरु' कहते हैं। जहाँ खुब्बाजी शब्द आता है वहाँ उक्त अरण्यज लघु भेद का ग्रहण किया जाता है।

यूनानी वैद्यक में मलूखियः वा जोंक दोनों पृथक् वस्तु हैं। खुब्बाजी के पत्ते गोल, किंचित् खुरदरे होते हैं और पत्र का पश्चात् भाग अधिक खुरदरा होता है। इसमें खिन्मी की अपेक्षा इलक्ष्णता अत्यल्प होती है। इसके हर क्षुप में नूतनावस्था में अल्प लबाब निकलता है। शुष्कावस्था में इसमें लबाब की मात्रा विशेष हो जाती है। स्वाद—इसका सर्वाङ्ग अनुरस (फीका) होता है।

इसके क्षुप प्रायः ग्रीष्मऋतु में शीतल स्थानों में स्वयं उत्पन्न होते हैं। कतिपय देशों में वसंतऋतु के प्रारम्भ में उत्पन्न होते हैं। इसके क्षुप प्रायः वसंतऋतु तक ठहरते हैं और प्रायः ग्रीष्मऋतु तक वर्तमान रहते हैं।

खुब्बाजी का एक अन्य भेद भी है जिसकी पत्तियाँ छोटी और मृदु होती हैं। फल भी इसमें छोटे-छोटे लगते हैं। यह प्रायः वसंतऋतु में उत्पन्न होती है और ग्रीष्मऋतु पर्यन्त रहती है। इसका क्षुप अधिक ऊँचा न होकर पृथ्वी से लगा रहता है। प्रत्येक प्रकार की खुब्बाजी के पुष्पों का वर्ण नीलाभरक्त होता है। पुष्पों का आकार ग्रामोफोन के टोपकासा होता है और पुष्पों की पंखड़ियाँ खड़ी रहती हैं। पुष्प छोटे-बड़े कतिपय प्रकार के लगते हैं। खिन्मी के पुष्प अधिक बड़े और गोल होते हैं तथा श्वेत रक्त कतिपय प्रकार के भी होते हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल एवं तर, किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में शीतल एवं तर है; किसी के अनुसार समशीतोष्ण है। बीज कटु स्वादवाली की द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष और मधुर बीज की प्रथम कक्षा में उष्ण एवं तर है।

गुण-कर्म—प्रकृतिमादर्वकर, दोषसंपककारक, यकृत-रोधोद्धाटक, फुफुसगतविकारनाशक, दोष, अन्त्रदाह, व्रण, वृक्कवस्तिप्रदाहनाशक, दोषविलोमकारक, उर तथा फुफुस की रुक्षतानाशक, उष्णकास, स्वरभंगनाशक, सारक, मूत्रल, पिच्छिल, स्नेहकर और दुग्धोत्पादक, शोथ, पाण्डु, रुक्ष पामा, आमातिसारनाशक तथा पशुओं के विष में उपयोगी है।

उपयोग—इसका काथ निर्माणकर सेवन करने से वातज

कास और श्वास का नाश होता है। इसके काथ में मिश्री मिश्रितकर सेवन करने से प्लीहवेदना, कामला, शुष्ककण्डू, आन्त्रक्षत, मूत्रप्रदाह, प्रवाहिका, वस्तिप्रदाह इत्यादि नष्ट होते हैं। इसके पत्तों का शाकरूप से उपयोग होता है। उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को इसका शाक गरम मसाले के साथ पकाकर खाना वर्जित है और यदि इसका सेवन आवश्यक हो तो खटाई और सिरकाका भी सेवन करें। यदि इसके उपयोग से उदराध्मान एवं पेट में उद्वेष्टन प्रतीत हो तो वमन करना और अल्प प्रमाण में पुरातन मद्य सेवन करना उचित है। इसके कोमल पत्तियों का चर्वण करने से मुखपाक में लाभ होता है। इसके पत्तों को मूत्र में पीसकर प्रलेप करने से इन्द्रियुत्त का नाश होता है। इसके पत्तों को चर्वण कर उसमें लवण मिश्रितकर नेत्र के कोवों के नाडीव्रण में भरने से उसका पूयस्त्राव बंद होकर व्रण शुद्ध हो जाता है और लवणरहित भरने से व्रण में लाभ होता है। इसके पुष्पों का हिम वा काथ निर्माणकर सेवन करने से वस्तिवृक्कगत क्षत शीघ्र नष्ट होते हैं। रतीलादंश में इसके पत्ते की जड़ तथा क्वाथ पान कर वमन करने से विषविकार शान्त होता है। इसके क्वाथ में अवगाहन करने से गुदा और गर्भाशय का शोथ शमन होता है। यदि किसी को भिड़ (अमर) या मधु-मक्षिकाएँ दंशन करें तो इसका प्रलेप लाभप्रद है। पत्तों की पुलटिश व्रणशोथ पर बाँधने से फूट कर पूयस्त्रावित होता है। इसके व्रतन पत्र पीसकर उसमें गोनवनीत मिश्रितकर शरीर पर अभ्यङ्ग करने से मच्छिद इत्यादि विषैले कीटों का दंशन नहीं होता। पत्तियों को पीसकर लेप करने से उष्ण शोथ शमन होता है अथवा शीतला-जन्य विकार में भी उपयोगी है। इसकी लुगदी में रोगन-गुल मिश्रित कर लगाने से अग्निदग्ध में उपकार होता है। इसके पंचांग का क्वाथ पान करने से पित्तज हृदय-शूल शान्त होता है। यह सर्पविष, अर्श, और विद्रधि में उपयोगी है।

अहितकर—शीत प्रकृति के व्यक्तियों को तथा निर्बल आमाशय को शिथिल करती है।

निवारण—मिश्री, दालचीनी, तज, स्याह जीरा, मूली, अत्यम्ल पदार्थ।

प्रतिनिधि—खिनक।

मात्रा—पंचाङ्ग का क्वाथ व हिम—१४ तोला।

बीज—५-९ माशा तक।

खुब्बाजी, उद्यानज (बुस्तानी)—संज्ञा स्त्री० [फा०]

परिचय—इसके क्षुप प्रायः बागों में उत्पन्न होते हैं। किसी के अनुसार यह और मलूखिया दोनों एक ही द्रव्य हैं। किसी का कथन है कि मलूखिया और जोंक एक

द्रव्य है। अतः उद्यानज खुब्बाजी नहीं हो सकती। इसकी पत्तियाँ किंचित् लम्बी होती हैं और इसमें पोतवर्ण के पुष्प लगते हैं। इसके पुष्प खुब्बाजी की अपेक्षा बड़े न होकर छोटे होते हैं। किसी का कथन है कि इसके क्षुप कपास के खेतों में उत्पन्न होते हैं। इसकी ऊँचाई भी कपास के बराबर होती है। बीज—कृष्णवर्ण का किंचित् लम्बा होता है। किसी का कथन है कि इसके बीज कलौजीबीज के सदृश होते हैं। जोंक के बीजों से इसके बीज भिन्न आकार के होते हैं। जोंक के बीज राईतुल्य गोल होते हैं। जोंक और मलूखिया दोनों भिन्न न होकर एक द्रव्य हैं। अतः खुब्बाजी बुस्तानी मलूखिया से भिन्न द्रव्य है। इसके बीजों का स्वाद अत्यन्त कड़ुवा होता है। मख्जनुल् अदविया के अनुसार इसकी कली करमतुल्य होती है। रंग इसका रक्ताभ होता है। मुहीत में इसका वर्णन नहीं मिलता। करम शब्द से कोई बात निश्चित नहीं होती। वह क्या है पता नहीं। करम के पौधे तो मूली व सर्पप के पौधों के सदृश होते हैं। खुब्बाजी की समता उससे नहीं हो सकती। गीलानी का कथन है कि बुस्तानी खुब्बाजीकी गुण-कर्म-अधिकता उसकी शक्ति को घटा देती है।

स्पष्टीकरण—उद्यानज खुब्बाजी के क्षुप प्रायः बागों में लगाये जाते हैं। इसमें पटुआ के सदृश विभिन्न प्रकार के श्वेत, रक्ताभ, रक्त तथा बैजनी रंग के पुष्प लगते हैं। सपक्वतावस्था में बीज कृष्णवर्ण के किंचित् गोल होते हैं। शरदऋतु से ग्रीष्मारम्भ तक पुष्प इसमें लगते जाते हैं। इसके क्षुप २ से ५ फुट तक ऊँचाई में होते हैं। इसका एक भेद जिसमें बैजनी रंग के पुष्प लगते हैं खड़ा न रहकर उसकी शाखायें पृथ्वी को स्पर्श करती रहती हैं। सजावट के निमित्त इसकी प्रायः उद्यानों में रोपण किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक प्रकार की खुब्बाजी जो उद्यानों में होती है, उसमें नीलवर्ण के पुष्प लगते हैं, जो कीसनी के पुष्पों के स्थान में अत्तार लोग विक्रय करते हैं।

प्रकृति—शैख के अनुसार यह प्रथम कक्षा में शीतल एवं तर है। किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण तथा समशीतोष्ण है। किसी के अनुसार यह अत्यल्प उष्णता उत्पन्न करती है।

गुण-कर्म—स्निग्ध, श्लक्ष्ण, तारल्यकारक, पित्तघ्न, वस्ति-आन्त्रबलप्रद, बीज-सान्द्रदोषरेचक, रोध उद्धाटक, वातघ्न, विदग्धदोषनाशक, शोथघ्न, विषघ्न, उष्णकासघ्न तथा शीघ्र प्रतिश्यायनाशक है।

उपयोग—निज श्लक्ष्णता के कारण अतिशीघ्र आमाशय से आँतों में उतर जाती है। यह साधारण खुब्बाजी की अपेक्षा अधिक शीतल तथा सान्द्र रसोत्पादक है। इसके

पत्र तथा बीजों का काथ मिश्रीयुक्त सेवन करने से वक्ष की रुक्षता तथा खरता नष्ट होती है, उष्ण एवं रुक्ष कास का नाश होता है, स्वरभ्रश में उपकार होता है, प्रतिश्याय शान्त होता है और पित्तज ज्वर शान्त होता है। इसकी शाखाओं का काथ निर्माण कर सेवन करने से आन्त्र प्रदाह तथा वस्तिप्रदाह शान्त होता है। इसके बीजों का क्वाथ वा हिम निर्माणकर सेवन करने से सान्द्रीभूत दोषों का विरेचन होता है और मलग्रन्थियाँ टूट जाती हैं तथा गृध्रसी नष्ट होती है। इसके पत्र-स्वरस में मिश्री मिश्रितकर सेवन करने से विदग्ध दोष शांत होते हैं। पत्तों को पीसकर वा चर्वणकर प्रलेप करने से उष्णशोथ विलीन होता है। इसे पीसकर-वृश्चिकदंशस्थानपर लेप करने से विषविकार शान्त होता है।

अहितकर—अपक्वदोषोत्पादक तथा शीतल प्रकृति के व्यक्तियों को वा आमाशय को। **निवारण—**दालचीनी, जायफल तथा अन्य उष्णवीर्य द्रव्य। **प्रतिनिधि—**साधारण खुब्बाजी।

मुहीतोक्त पापिरा वा (खुब्बाजी)—पापड़ा के गुण-प्रयोगादि—**प्रकृति—**उष्ण प्रथम कक्षा में और रुक्ष है। यह लघु (सुबुक) है तथा पित्तज शूल, अर्श, सर्पविष, कुष्ठ और विस्फोट (दुम्मल) आदि नाशक हैं।

खुब्बाजी के बीज

बज्रुल् खुब्बाजी, तुख्म खुब्बाजी—अ०।

प्रकृति—शीतल और स्निग्ध, मतांतर से समस्निग्धशीतल एवं शुक्रल है। **अहितकर—**निर्बल आमाशय को। **निवारण—**मेवों का गाढ़ा रस (स्वब फुवाकः)। **प्रतिनिधि—**समभाग खतमी के बीज। **ग्रह—**चन्द्र। **प्रधान कर्म—**कास, प्रवाहिका और सूजन को लाभकारी है। **मात्रा—**९ मा० से १७। मा० तक और विष-निवारण के लिए वमनार्थ इससे भी अधिक।

मिस्बाहुल् अदविया में इसके बदल के सम्बन्ध में लिखा है—बीजखित्मी “

”।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह पिच्छिलताबाहुल्य, पिच्छिल और कोष्ठमृदुकर अर्थात् मलावरोधनिवारक है। यह आँतों में फिसलन पैदा करती है तथा उष्ण एवं शुष्क कास, आवाज बैठना (गिरफ्तगी आवाज) और नजला इनको दूर करती और आँतों को बल प्रदान करती है। आन्त्रशोथ (सहज) तथा वृक्क एवं वस्तिस्थ क्षत को आराम देती और उष्ण एवं उग्र औषधों की तीक्ष्णता एवं दाह को मिटाती है। भिड़ और खैला अर्थात् मकड़े के जहर को दूर करती है। वस्तिशूल में इसे समभाग वन्यविसखपराबीज के साथ उपयोगित करने से लाभ होता है। इसकी वस्ति देने से गुदा, आन्त्र

और गर्भाशय का दाह (सोजिश) शमन होता है। शहद के साथ उपयोग करने से यकृतशूल आराम होता है। अकेले या जौ के आटे के साथ प्रलेप करने से उष्ण शोथ, कठिन शोथ और वेदना शमन होती है। यदि बरें काट ले तो इसके पत्र और बीज पीसकर लेप करने से उपकार होता है। (मस्जून)।

शैख के मत से खुब्बाजी का बीज उरोफुफुस की कर्कशता निवारण करने में उसके शेष समस्त अंगों से श्रेष्ठ और सभी गुणों में बलवत्तर है। यह तुल्य खतमी से भी श्रेष्ठतर है। यह वक्ष और प्रकृति को मृदु करता, मूत्रल, दोषादि परिपाककर्ता (मुज्जिज) और दोषादि विलोमकर्ता (रादेअ) है तथा उष्ण एवं शुष्क कास और गला बैठना (गिरपतगी आवाज) को लाभ पहुँचाता, नजला को दूर करता, आन्त्र को बल प्रदान करता और ऐसे उग्र अतिसारों में जिनके मलों (मवाद) में दाह और तीक्ष्णता हो, असीम गुणकारी है। मरोड़ (सहज), आन्त्रव्रण और वृक्क एवं वस्तिस्थ व्रणों में लाभकारी है। यह उष्ण एवं तीक्ष्ण औषधियों का दाह (लज्ज) शमन करता है। शैख के मत से इसके बीज, पत्र और पत्र-स्वरस आन्त्र रोगों तथा उष्णता एवं तीक्ष्ण दोषजन्य मरोड़ (सहज) में उपकारी हैं। वस्ति की औषधों में इसे समाविष्ट करने से यह तीक्ष्ण औषध-प्रयोग-जन्य विकारों को शमन करता है। इसी तरह विरेचनीय क्वाथौषध आदि में इसे योजित करने से औषधियों की तीक्ष्णता निवृत्त हो जाती है। यह आँतों के घरातल को सम (मुमल्लिस अमआस) और तीक्ष्ण औषधियों को सत्वर फिसलाकर उदर से बाहर उत्सर्जित कर देता है। इसकी उक्त क्रिया तत्काल दृष्टिगत होती है। यह तज्जन्य दाह शमन करता है। (आँतों में कर्कशता उत्पन्न नहीं होने देता, प्रत्युत उनमें चिकनापन पैदा कर देता है।) विरेचन होता है। यदि विषभक्षित व्यक्ति को इन बीजों का क्वाथ मिलाया जाय तो बराबर के जारौ रहेगी और जब तक रस्ती-रस्ती जहर न निकल जायगा, कै आती रहेगी। फलतः इससे सम्पूर्ण विष उत्सर्जित होकर शरीर शुद्ध विषरहित हो जायगा। (मुहीत)।

यह स्तन्यजनक, पित्तज शिरोशूलनिवारक, वृक्कस्थ दाह शमन करता, प्रवाहिका और मूत्रदाह मिटाता है। (खजाइन)।

नव्य मत

डोमक—

All parts of this plant are recommended in Mahomedan works on account of their mucilaginous and cooling properties, but the fruit is considered to be most efficient. (Ph. Ind. pt. I., p. 205.)

मात्रा—३ से ७ माशा तक।

खुब्बाजी-शजरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] खित्मी।

खुब्बस—संज्ञा पुं० [अ०] किट्ट। मैल। धातुओं का मैल जो धातु पिघलाने के समय निकलता है। चर्क।

खुब्बुज्जहब—संज्ञा पुं० [अ०] स्वर्णकिट्ट। सोने का मैल।

खुब्बुन्नफस—संज्ञा पुं० [अ०] बुद्धिविकार जो प्रायः उन्माद (मालीखोलिया) में होता है। खयाली मलाल व हजन।

खुब्बुनुहास—संज्ञा पुं० [अ०] ताम्रकिट्ट। ताँवे का मैल।

खुब्बुसंसास—संज्ञा पुं० [अ०] कथीलकिट्ट, राँग की मैल।

खुब्बुल्फिज्जह—संज्ञा पुं० [अ०] रजतकिट्ट। चाँदी का मैल।

खुब्बुल्हदीद—संज्ञा पुं० [अ०] लौहकिट्ट। मण्डूर। लोहे का मैल।

खुमा—संज्ञा पुं० [अ०] खुमी। दे० 'कुरमुत्ता'।

खुमान—संज्ञा पुं० [नब्ती] बरुजन-कुमान। (बसरा) रुकआ (छोटा खुमान)। (ले०) शबूकः, वजकः। (यू०) अकती। खामा आकती।

पर्याय—(अ०) खमान कबीर; (यू०) आकती; (ले०) सम्बुकस नाइग्रा (*Sambucus nigra*, Linn.); (अ०) कॉमन एल्डर (*Common elder*); (इट०) सम्बुको (*Sambuco*); (स्पेन) सबूको (*Sabuco*); (फ्रांस) सर्काउ ऑर्डिनरी (*Surcau ordinaire*); (जर०) प्लीडर ब्लूमेन (*Plieder blumen*)।

टिप्पणी—किसी किसी यूनानी अरबी चिकित्साग्रंथ में इसकी यूनानी संज्ञा 'अकती' लिखी है। बुरहान में अकती और खामा अकती के विषय में लिखा है कि यूनानी भाषा में यह बिल्ववृक्ष की अन्यतम संज्ञाएँ हैं। दे० 'खमान'।

परिचय—एक प्रकार की वनस्पति है। यह दो प्रकार का होता है—(?) बड़ा खुमान—इसकी शाखाएँ खेताभ और नल की भाँति गोली होती हैं। इसकी पत्तियाँ अखरोटपत्रवत्, किन्तु उनसे छोटी होती हैं। पत्तियों में एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध होती है। प्रत्येक शाखा के शिर पर घुंडी होती है। इसमें खेताभ पुष्प लगते हैं; किन्तु अधिक रक्तवर्ण के होते हैं। फल का स्वरूप बुटमफलतुल्य होता है और वर्ण कृष्णाभ होता है। देखने में खुशातुल्य होता है। इसमें एक प्रकार का मद्यतुल्य गंध होता है।

छोटा खुमान—यह देखने में घासतुल्य होता है। इसका तना गिरहदार होता है। इसकी पत्तियाँ बादाम पत्रवत् होती हैं और इनके किनारे कटे हुए होते हैं। प्रत्येक गिरह पर फल लगता है। इसकी शाखा के सिरे पर भी घुंडियाँ होती हैं। इसके बीज राईतुल्य होते हैं। जब प्रायः अंगुलीतुल्य मोटी होती है। रंग लाल

होता है। बसरा के लोग इसको 'रुकआ' कहते हैं। और लातिनी भाषा में प्रथम भेद का नाम—'शबूकः' द्वितीय भेद का नाम—'बजक' और यूनानी में 'आकती' है। और द्वितीय भेद को 'खामा अकती' कहते हैं। द्वितीय भेद के सम्बन्ध में—बुरहान कातेअ में उल्लेख है कि यह वेल के वृक्ष का नाम है, किन्तु प्रथम भेद को जिन लोगों ने वेल का वृक्ष लिखा है वह भी मिथ्या है, किन्तु द्वितीय भेद का मूल अवश्य है। इसका उपयोग तिब्ब में अधिक होता है और खुमान से इसका द्वितीय भेद ग्रहण किया जाता है और इसका यूनानी नाम आकती है। किसी-किसी तिब्बी पुस्तक में अकती शब्द का भी उपयोग मिलता है।

बुकरात महाशय ने खुमान का जलोदर में उपयोग किया है—खुमान की पत्तियों को दुग्ध में पकाकर विरेचनार्थ रोगी को देते रहे।

वक्तव्य—आधुनिक युरोपीय डाक्टरों के अनुसार खुमान ब्रिटेन, युरोप और दक्षिणी अमरीका में उत्पन्न होता है। इसमें श्वेतवर्ण के छोटे-छोटे पुष्प लगते हैं जो एक दूसरे से मिलकर एक बड़ा गुच्छा हो जाता है। इसके पुष्पों की पंखड़ियों के किनारे दन्तुर होते हैं। पुष्प के भीतर ५ बाल होते हैं और इसके जीरे पीतवर्ण के होते हैं। स्वाद—तिक्त होता है और गन्ध अप्रिय होता है। अंगरेजी में पुष्पों का नाम एल्डर फ्लॉवर है।

प्रकृति—उभय भेदों की—रूक्ष है। प्रथम भेद—उष्ण है। द्वितीय भेद—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। किसी के अनुसार प्रथम भेद उष्ण है।

गुण-कर्म—द्वितीय भेद—विलयन (मुहल्लिल); प्रथम भेद का प्रलेप व्रणपूरक और द्वितीय भेद—दोष (माद्दे) को लौटानेवाला (रादेअ) और पिच्छिल दोषों का विरेचक है। इसका सुपक फल ग्रहणकर केशों पर मलने से केश श्वेत नहीं होते तथा गिरने से रुक जाते हैं। इसके नूतन पत्र ग्रहणकर यवचूर्ण के साथ पीसकर किचित् उष्णकर लेप करने से शोथ और अग्निदग्ध में उपकार होता है। इसकी जड़ ९ माशा की मात्रा में पीसकर लगाने से अस्थिभंग, आघात तथा मोच की व्यथा नष्ट होती है। इसके पत्तों और जड़ का स्वरस पान करने से पित्त और कफ का विरेचन होता है। इसकी जड़ मद्य के साथ पकाकर सेवन करने से जलोदर नष्ट होता है, पीतवर्ण का जल उदर से उत्सर्जित होता है तथा मलगन्धि भङ्ग होकर निकल जाती है। इसके क्वाथ से गण्डूष धारण करने से दन्तकृमि नष्ट होते हैं। इसके स्वरस का नस्य तीनदिनपर्यन्त ग्रहण करने से नेत्रों की लाली जाती रहती है। इसके क्वाथ में अवगाहन करने से गर्भमुखसंकोच और वेदना शान्त होती है। इसकी

जड़ की फलवर्ति निर्माणकर गुदरोग और गर्भाशयिक शोथ निवृत्त्यर्थ गुदा तथा नर्भाशय में रखी जाती है। इसी प्रकार उपयोग करने से नाडीव्रण में भी लाभ होता है। अथवा बकरी की चर्वी के साथ पादसन्धिवेदना (निक-रिस) स्थल पर लेप करने से लाभ होता है। इसकी जड़ का क्वाथ सेवन करने से सन्धिवात में उपकार होता है। इसके उपयोग से कीटों का विष शान्त होता है। जड़ को जीचूर्ण के साथ पीसकर लेप करने से इवान-विष नष्ट होता है। इसका अर्क लगाने से मुखदूषिका (झाई) नष्ट होती है।

इसका अर्क गन्धरहित द्रव्यों का प्रतिनिधि है। इसके पुष्पों द्वारा मरहम प्रस्तुत किया जाता है जो शीत उत्पन्न करनेवाला माना जाता है। एक पाँड पुष्पों को एक पाँड बकरी की चरबी के साथ पकाने से उत्तम मरहम प्रस्तुत होता है।

अहितकर—आमाशय और फुफ्फुस को।

निवारण—मधु। मात्रा—७ माशा तक।

नोट—डॉक्टरों के अनुसार खुमान में कोई प्रमुख गुण नहीं पाया जाता।

खुमार—संज्ञा पुं० [अ०] (१) मद। मस्ती। मदोन्मत्तता। (२) मद्य के पूर्णरूप से जीर्ण न होने से मद्य का उच्छिष्ट भाग आमाशय में शेष रह जाता है।

खुमाल—संज्ञा पुं० [अ०] लँगड़ा हो जाना। लुझ होना। कुञ्ज होना।

खुमाहन—संज्ञा पुं० [फा०] पाषाण (पत्थर) के प्रकारों में से है।

खुमाहान—संज्ञा पुं० [फा०] (फा०) सुलतान मुहर।

खुमाहान-सादा—संज्ञा पुं० [फा०] पर्याय—(अ०) संग-

खुमार, हजरूलखुमार, हजरूलसरत, हज्रतुलखुमार।

परिचय—एक प्रकार का पाषाण है जिसको ताम्र के पात्र में पीसने से उसका चूर्ण रक्तवर्ण का हो जाता है। यही सर्वोत्तम माना गया है। इसमें एक विशेष गुण यह है कि यदि हाथ में ग्रहणकर संक्रुद्ध राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ जाय तो उसका क्रोध शान्त होकर वह दयाभाव में परिणत हो जाता है। उक्त आधार पर ही इसकी संज्ञा 'सुलेमान मुहरा' रखी गई है।

खुमाहीन—संज्ञा पुं० [अ०] संहल हदीदी। हदीदी सीनी। हज्रसीनी।

परिचय—यह एक प्रकार का पत्थर है जो स्त्री-पुरुष भेद से दो प्रकार का होता है। फारसी के ग्रन्थ अञ्जुमन आरा नासिरी और जहाँगीरी के अनुसार यह पत्थर लालिमायुक्त तथा कृष्ण भेद से दो प्रकार का होता है। पुरुष भेद का अत्यन्त कठोर और इसमें १३ प्रकार का रंग होता है। जब उसको जल में पीसा जाता है तो

जल का वर्ण हरतालवत् पीतवर्ण का हो जाता है। स्त्री जाति का अधिक कठोर नहीं होता। इसका वर्ण श्वेत होता है। इसको पानी में घिसने से जल का रंग लाल हो जाता है। मुजर्रबात तिव्व के ग्रन्थों के अनुसार इसका पुरुष भेद हदीदसीनी है और इसको 'हजुल् खुमार' कहते हैं। इसको स्त्री जाति का माना है जिसका वर्णन हजुलखुमार में हो चुका है। किसी के अनुसार यह पत्थर न होकर लोहा है। इसके कतिपय भेद होते हैं। इसकी अँगुठियों पर चढ़ाये जानेवाले नग प्रस्तुत किए जाते हैं। इसको सादनज की भाँति शोधन किया जाता है। इसको भक्षण करने से कोष्ठवद्ध होता है और जिह्वा पर शुष्कता प्रतीत होती है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल तथा द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। किसी के अनुसार पुरुष भेद में अधिक शीतलता होती है और स्त्री जाति में अल्पशीतलता है। किसी के अनुसार इसकी प्रकृति शादनजतुल्य है। मात्रा—साधारणतः ६ रत्ती। दे० 'संगखुमार'।

गुण कर्म—इसको पीसकर अंगों पर लगाने से निर्वलता नष्ट होती है और वह अंग, दोष को जो उसकी ओर आवे स्वीकार नहीं करता। यदि इसको जल में पीसकर पक्षियों के पर द्वारा उठाकर उष्णशोथ पर लगाया जाए तो शोथ विलीन होता है और टोस बंद हो जाती है अथवा इसको जल में घिसकर पान करने से गदोद्वेग, पित्तज हृद्प्रदाह एवं हृत्स्पंदन (खफ्कान) और उन्माद शांत होता है। उक्त गुण के लिए प्रथम भेद द्वितीय भेद की अपेक्षा अधिक उपादेय है। इस को जल में घिसकर लगाने से पित्तज वा उष्णज चक्षुवेदना, चक्षुकण्डू वा पश्मशोथ का नाश होता है। इसके प्रथम भेद का नित्य दर्शन स्वास्थ्यकर माना जाता है। अतः इस की नग अँगुठी में जड़वाकर धारण करना अधिक उचित है। इसके धारण करने से भय दूर होता है। इसको चूर्ण कर ६॥॥ माश सेवन करने से मद्यविकार शांत होता है और मद्य की खुमार दूर होती है। इस कार्य की सिद्धि के निमित्त इसका द्वितीय भेद ग्रहण किया जाता है। इससे मदात्यय में शीत उत्पन्न होता है और स्वेद आता है। यदि वायु सम्बन्धी व तीव्र औषध के सेवन से उदर में वेदना व मरोड़ हो तो इसको ७ माशा की मात्रा में सेवन करने से अधिक लाभ होता है।

हानिकारक—मलग्रन्थि (सुदा) उत्पन्नकारक है।

प्रतिनिधि—संग एशब।

खुमी—संज्ञा स्त्री० [अ० खुमा]

पर्याय—भूच्छत्र, सर्पच्छत्र, भूमिस्फोटः, भूमिकंदः, वर्षकः (मुहीत), छत्राक, कवक, शिलीन्ध्र, उच्छिलीन्ध्र, वर्षारोह, पृथिवीकंद—सं०। खुमी, खुबी, छत्री, गगनधूल (मुहीत),

फेनछत्र (मखजन), कुरुरमुत्ता, कूकरमुत्ता, रामछाता, सांप की छतरी—हि०। समारोग, खरबार, कुलाहे बाराँ, कुलाहे जमीं, चत्तरमार, कुलाहेमार, शमार (मखजन), शमा, समालू (मुहीत)—फा०। कमात, नवातुरंश्द, अस्कूल, अस्कूल—(अ०)। फित्रियासा-सिरि०। फसूतुस्सबाग, फसूतुस्सबग (मुहीत), फस्वातुज्जबाअ, (कामूस) फसूतुज्जबग (खजाइन), मोकूतीस—रु०। ओन्नरीसा (मखजन) तुफाशि (मुहीत)—यू०। मोकूतीस—इव०। कन्तस, मोकूतीस (दीसकूरीदूस)—यू०। कटफूल—आसा०। मसखेल—काश०। भुई छती, छाता—(वं०) अलोम्बे, खुम्ब—(बम्ब०); खुम्ब—सिंध। अलम्बी, भुईफोड़—मरा०। कॉमन मशरूम Common Mushroom—अं०। अंगारिकस कम्पेष्टस Agaricus Campestrus, Linn. (ले०); Agarico Campesino.—स्पे०।

वक्तव्य—समारोग को समारोख भी कहते हैं और यह खुमी के सभी भेदों के लिये व्यवहार किया जाता है। यह एक प्रकार की खुमी है जो क्षारीय, सान्द्र भूमि में स्नानागार के नीचे या कुएँ के समीप टोपी की तरह उग आती है। सर्वसाधारण इसे खाते हैं। गुणधर्म आदि खुमीवत् और भक्ष्य है। कामूस के अनुसार कुञ्जबूल भी एक प्रकार की खुमी का नाम है।

छत्राक कुल (Family : Fungi)।

वर्णन—पत्र-पुष्परहित क्षुद्र उद्भिद् की एक जाति, जिसके अन्तर्गत भूफोड़, ढिगरी, गगनधूल आदि हैं। पराश्रयी और मृताश्रयी भेद से ये दो प्रकार की होती हैं। इनमें पराश्रयी (जीवित), जैसे गेरूई आदि और मृताश्रयी जैसे कुरुरमुत्ता, कठफूल और भुई (भू) फोड़ आदि हैं। भक्ष्या-भक्ष्य भेद से भी ये द्विविध होती हैं। इनमें भक्ष्य—भूफोड़ ढिगरी आदि और अभक्ष्य अर्थात् दुर्गन्धयुक्त और विषैले—कुरुरमुत्ता, कठफूल आदि हैं।

यूनानी निघंटु-ग्रन्थों में फित्तर शब्द में लिखा है कि यह एक उद्भिद् है जो बारिश के बाद पृथ्वी का उद्भेदनकर सान्द्र भूमि में उत्पन्न हो जाता है और कहीं पृथ्वी का उद्भेदन किये बिना भी उत्पन्न होता है। आकृति में यह ऐसा होता है, मानो मुर्गी के अण्डे का अर्ध भाग अधोमुख करके रखा गया है। छतरी से भी इसकी उपमा दी जाती है। मानो एक छोटे से तने पर एक छतरी होती है। किसी-किसी में तना भी नहीं होता। इसका नतोदर भाग परतों से भरा होता है। श्वेत, रक्त और कृष्ण प्रभृति वर्ण भेद से यह अनेक प्रकार का होता है। भक्ष्याभक्ष्य के विचार से यह द्विविध होता है। रेतीली भूमि में और पर्वताञ्जल में उत्पन्न हुआ उत्तम अर्थात् भक्ष्य और जो दुर्गन्धयुक्त भूमि में और अधम प्रकार के पेड़ों जैसे जैतून,

अंजीर तथा अखरोट और विपाक्त एवं क्षीरी वृक्षों के नीचे या गोबर और मुरदारों में तथा विपैले जानवरों के बिलों के समीप उगें, वह घातक हैं। इसके सिवाय जो पिच्छिलतारहित, निर्गन्ध, क्षुद्र, श्यामता लिये सफेद और प्रशस्त भूमि में उत्पन्न हो वह उत्तम और जो काला एवं लाल और वह सफेद जो अत्यन्त पिच्छिल और कपाय हो और उसमें मकड़ी के जाले की भांति कोई चीज हो वह परम विपाक्त और अभक्ष्य है। भक्ष्य श्वेत वर्ण की खुमी अभक्ष्य रक्तवर्णीय खुमी की अगद है। इसके भक्ष्याभक्ष्य भेद में यह अन्तर है कि इसके अभक्ष्य भेद को काटकर रख देने से वह शीघ्र दूषित और कोथयुक्त हो जाता है। इसके साथ उबाली हुई वस्तु भी दूषित हो जाती है, ऐसा मख्जन के संकलयिता का मत है। कोई-कोई कहते हैं कि स्याहीमायल किस्म अधम है और सुखीमायल उत्तम। किसी-किसी के अनुसार सफेद उत्तम है और स्याहीमायल अधम है और सम्यक् कृष्ण वर्ण तो घातक और विपाक्त है। इसलिये यह अभक्ष्य है। कलाई लिए लाल (सुखे तेरह) भी विपाक्तता शून्य नहीं है। अभक्ष्य को अरबी में फ़ि(फ़)त्तर और भक्ष्य को कमात कहते हैं। किसी-किसी के मत से उक्त शब्दद्वय का व्यवहार साधारणतया भक्ष्याभक्ष्य उभय भेदों के लिये होता है। मख्जन में इसके भक्ष्य भेद को फारसी में क़ारज और शीराजी में महुमअवामहैकल (मुहीत में हकलू भी) और तुर्की में कीलक लिखा है। कोई-कोई कहते हैं कि इसके भक्ष्य भेद को हिंदी में खुंबी और अभक्ष्य को पदीहीरा (मख्जन) वा पद-भीरा (मुहीत) कहते हैं। गगनधूल और छत्र वा फेनछत्र आदि इसके भेद हैं। इनमें से खुंबी सर्वश्रेष्ठ होती है। इसका एक भेद कश्मीर की ओर से आता है जिसे वहाँ के लोग कनखञ्जू (मख्जन) वा कानाकच्छू (मुहीत) वा कानाकच्छू (खजाइन) कहते हैं और कहते हैं कि यह भक्ष्य है। इनके सिवाय मख्जन में फ़ितर वा खुमी के और तीन भेद इस प्रकार लिखे हैं—

(१) फ़क़अ वा फ़िक्अ (अ०); हैकल, कश्नज—फ़ा०। दुंवलान—तु०। इसके परिचय के विषय में बड़ा मतभेद है। अस्तु, कोई-कोई तो इसे फ़ितर वा कमातभेद बतलाते हैं, पर कोई इसके विरुद्ध बतलाते हैं। किसी किसी के अनुसार यथार्थतः यह खुमीभेद नहीं है। किन्तु मख्जन में आया हुआ इसका निम्न वर्णन देखने से यह खुमी ही प्रतीत होता है। इसीलिये इसको खुमीभेदों में वर्णित किया गया है।

१. बुरहान के अनुसार फ़ितर शब्द का व्यवहार इसके निकृष्टतर भेद के लिये होता है। इसका छिलका घातक विष है। इसे अल्पमात्रा में खाने से मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है।

वर्णन—यह नारंगी के बराबर गोल और उससे छोटा कुछ लंबोतरा जलप्लावित और सार्द्र स्थानों में नहरों के समीप पृथ्वी के नीचे पैदा होता है। यह वर्षा के बाद रेतीली भूमि और पर्वताञ्चल में बहुत होता है। जहाँ पर यह उत्पन्न होता है वहाँ की भूमि कुछ उभरी हुई और कहीं-कहीं फटी होती है। जो लोग यह जानते हैं वे उस जगह को खोद कर इसे निकालते हैं। किसी जगह एक और किसी जगह बहुत निकलता है। जिस वर्ष विद्युत की कड़क और चमक अधिक होती है। उस वर्ष यह बहुत पैदा होता है। यह सफेद, नरम, मधुर और अत्यन्त सुस्वादु होता है। इसे पकाकर या भूनकर खाते हैं। यह भक्ष्य खुमी (फ़ितर) का उत्कृष्ट भेद है। (मख्जन)।

मुहीत में कश्नज के स्थान में संभवतः प्रकाशकीय प्रमाद से इसकी फारसी तश्नज लिखी है। उक्त ग्रन्थ में फ़क़अ शब्द में उक्त वर्णनादि देने के अतिरिक्त कश्नज में इसका पृथक् वर्णन भी मिलता है। कश्नज के विषय में लिखा है—यह खुमी (फ़ितर) का एक भेद है और अत्यन्त स्पशज्ञताजनक है। यह रेगिस्तान में उत्पन्न होती है और अत्यन्त सुस्वादु होती है। ख़रासान और नहरसमीपवर्ती (मावरुन्नहर) देशों में बहुत होती है। फ़ितर की तरह हानिकर नहीं है और किञ्चित् मधुर होती है। मासरजोया के अनुसार इसमें बकलएयमानीवत् शक्ति होती है। किन्तु बसरी के अनुसार शक्ति में यह उश्नः (छड़ीला) के सदृश होती है। इसे कलीकान भी कहते हैं। (मुहीत)।

(२) फ़ोश्नः वा गोशिनः—एक प्रकार की खुमी पुष्टि के लिये स्त्रियाँ जिसका हलुआ बनाकर खाती हैं। (३) फ़कील।

उक्त भेद-त्रय कमात की जाति से हैं। इसके अन्यान्य भेद यह हैं—

२. सहाहुल अद्विया के अनुसार कमात शब्द का व्यवहार हर प्रकार की खुमी के लिये होता है, चाहे वह भक्ष्याभक्ष्य में से हो या वन्य हो, चाहे वह घुरों पर उगी हुई हो या स्नानागार की दीवारों से या शराब के मटकों के नीचे से उगी हुई हो। इनमें सभी के लिये उक्त शब्द का व्यवहार होता है। कोई-कोई कहते हैं कि इसके भक्ष्य भेद विशेष का यह नाम है। कामूस में लिखा है कि कमा खुमी का नाम है। किसी-किसी के अनुसार यह तुरंजबीन भेद है।

३. निघंटुप्रकाश के अनुसार कानाकच्छू कुष्ठभेद है और पातालकमलिनी की जड़ है जिसे पुष्करमूल कहते हैं।

४. खजाइनुलअद्विया के अनुसार कश्नज फारसी कश्नः से अरबीकृत संज्ञा है। दोनों शब्दों का अर्थ एक प्रकार की खुंबी है।

(१) कमात (मखन, मुहीत) — अ० । कारज — तु० । समालू, समारोग, हरः (मखन) — फा० । अरजी-सिरि० । ओजूना (मखन), वादीदोली — यू० । हूदिया — रू० । नबातुरअद (मखनुलजवाहर) — अ० । हकलू (शीराजी) । खुबी — हि० । वदीन (दीसकूरीदूस) — यू० ।

वर्णन—कमात फितर, कश्नज और कइल एवं समारोग की जाति का नाम है। यह खुमी का भक्ष्य भेद है। कोई इसे फितर का भेद और कोई स्वयं फितर ही को समझते हैं। कोई समारोग और कोई उसका एक भेद जिसे शोशिनः कहते हैं। यह टोपी की आकृति की गोल और पत्रबीज-प्रकांडविहीन उद्भिद् की जड़ है। यह पृथिवी की दुर्गंध वा सड़ांध के कारण रबी की फसल में रेतीली भूमि या पर्वताञ्चल में प्रचुरता से होती है। यह रक्तवर्ण की होती है। सुखीमायल रंग की उत्तम होती है। इसे कच्चा ही वा पकाकर खाते हैं। इसमें कोई प्रधान गंध वा स्वाद नहीं होता। ऊँची, रेतीली और पवित्र भूमि में उत्पन्न हुई, मध्यमाकार की अर्थात् बहुत बड़ी और न बहुत छोटी, मृण, ताजी गंधवाली और कोई प्रधान गंध वा स्वाद न रखनेवाली उत्तम है। किसी-किसी के मत से उक्त गुणों से युक्त सफेद रंग की उत्तम होती है और जो उक्त गुणों से शून्य हों और अनुत्कृष्ट भूमि में और जैतून, अखरोट जैसे अधम और क्षीरी वृक्षों के नीचे उत्पन्न हों और सफेद, रक्त एवं कृष्ण वर्ण की और शुष्क हों वह अधम और विपाक्त हैं। जो भीतर और बाहर से काली हो वह घातक है। शैख के मत से यह फितर का निकृष्टतर भेद है विशेषकर वह जो अनुत्कृष्ट भूमि में और वृक्षों के नीचे उत्पन्न हो। (मखन, मुहीत)।

तालीफशरीफी में गगनधूल शब्द में लिखा है कि यह खुबी का नाम है और इसके गुणधर्म 'कमात' में दूँगे। इससे ज्ञात होता है कि इनके मत से गगनधूल और कमात पर्याय हैं। गुंभी शब्द में उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि अरबी में इसे कमात और समारोग कहते हैं। और जो यह लिखा है कि इसकी लता होती है और पत्र एवं फल बेर की तरह होते हैं, वह प्रत्यक्षविरोधी और भ्रामक है। मुहीत में गगनधूल शब्द में लिखा है कि भूच्छत्र का नाम है।

फितर वा खुमी

प्रकृति—खुमी का भक्ष्य भेद तृतीय कक्षा में शीतल एवं स्निग्ध है। मतांतर से द्वितीय कक्षा में शीतल है। शैख के अनुसार तृतीय कक्षांत में शीतल और उसी के लगभग स्निग्ध है और कमात द्वितीय कक्षांत में शीतल एवं स्निग्ध है। इससे यह ज्ञात होता है कि इसके अधम भेद

अर्थात् फितर की वह प्रकृति है और उत्तम भेद की यह। गीलानी ने कानून के भाष्य में फितर की प्रकृति के विषय में लिखा है कि इसकी प्रकृति निस्संदेह शीतल है और उष्णतोत्पादक अंशों से शून्य है। यह बात इसके जलवत् फीके स्वाद से भी प्रगट होती है। शैत्य इसके जलीयांश के कारण है। इसीलिये यह परम शीतल व्याधियाँ उत्पन्न करती है। इसमें स्निग्धता अधिक नहीं है; क्योंकि जिस तरह इसके घटकों (जीहर) में जलीयता अत्यधिक है उसी तरह पार्थिवांश भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक है। उक्त कारणों से इसमें जितनी शीतलता होगी, उतनी स्निग्धता न होगी।

अहितकर—अतिसेवन से अवरोध, उदरशूल, संन्यास, पक्षवध, स्पर्शहानि (खदर) और वाकग्रह उत्पन्न करती है; मूत्रावरोध उत्पन्न करती और कुक्षि को विस्फारित करती अर्थात् आध्मान उत्पन्न करती है; छीप (बहक) उत्पन्न करती है; श्वासकृच्छ्र प्रगट करती और मस्तिष्क तथा आमाशय को हानिकर है; दीर्घपाकी है; आशु प्रकोथशील और सांद्र दूषित दोष उत्पन्न करती है। अतिसेवन विसूचिकाकारक है। यह आमाशयशूलकारक है। निरंतर सेवन संतानघातक वा बन्धत्वकारक है।

निवारण—सातर, सोआ, नमक, पुदीना, घी और गरम मसाला डालकर पकाने से इसके अवगुण का निवारण होता है। इसी तरह काँजी और सिरका तथा राई, तिल या जैतून का तेल इसके निवारण हैं। इसके भक्षणोत्तर सिकंजवीन चाटने, आसव (नबीज) पीने, अदरक का मुरब्बा, जवारिश कम्पूनी और माजून फलासफा इत्यादि खाने से भी इसके अवगुण का नाश होता है। शैख के अनुसार उबालने, इसके साथ ताजा और सूखी नासपाती समाविष्ट करने से भी खुमी के अवगुण का निवारण हो जाता है। भाष्यकार गीलानी कहते हैं कि नासपाती का निवारण होना स्यात् इसका प्रभावज धर्म होगा। इसका श्रेष्ठतर निवारण यह है कि इसे राई और काँजी (मुरिय) के साथ खायें। प्रतिनिधि—नेत्र को शक्ति और नैर्मल्य प्रदान करने अर्थात् नेत्र्य गुण के लिये आस के पत्तों का रस। एक भेद दूसरे भेद का प्रतिनिधि है। ग्रह—शुक्र। प्रधान कर्म—नेत्र्य और वृद्धि (फतक)-नाशक है। मात्रा—आवश्यकतानुसार औषध में दें। यदि बहिर प्रयोग में लें तो श्रेष्ठ हो।

गुणधर्म तथा प्रयोग—सूखी हुई खुमी को कूटकर मछली का सरेस मिलाकर प्रलेप करने से वृद्धि (फतक), वृषण वृद्धि (क्लीलः) और नाभ्यन्त्रवृद्धि आराम होती है। इसका ताजा रस (विशेषकर वह जो भूतने में टपके) लगाने से नेत्रशुक्ल (व्याज) आराम होता है।

सुरमे को इसके रसमें घोंटकर लगाने से दृष्टि, नेत्र के ओज (रूह) और पलकों को शक्ति प्राप्त होती है, मोतिया-विंदु (नुजूलुमास) आराम होता है, पलक और नेत्र की तर खुजली (जर्व) दूर होती है। खुमी को सुखा-पीसकर खाने से हर प्रकार के अतिसार, ग्रहणी (जर्व) और संग्रहणी (जल्कुल्-अम्आस) आराम होती है। इसके भक्षणोत्तर शीतलजल पीना, इसे (मुर्गी के) अंडे की सफेदी या मांस के साथ खाना हानिकर है। इसमें यह एक विशेष प्रभाव है कि जिसने खुमी खाई हो यदि उसे कोई विषैला जानवर काट खाय तो जब तक उसके पेट में खुमी वर्तमान रहेगी, उस समय तक अन्य किसी भेषज से उसे उपकार न होगा। इसके अभक्ष्य या विपाक्त भेद के खाने से निम्न लक्षण उपस्थित होते हैं—शीतल स्वेद आता है, मूर्च्छा, कृच्छ्रश्वास, आमाशय में गुद्व, उदरशूल, कण्ठशोथ (खुनाक), खुनाक भेद (जुबहः) और शीत (कश्शरीरः) ये—उपद्रव उठ खड़े होते हैं। इनके निवारण के लिये निम्न उपाय करें। मूली, पुदीना, काँजी (मुरिय), पपड़ी नमक (बोरः) तथा नमक और सिकंजवीन प्रभृति छेदन औषध (मुकत्तेआत) सेवन करें या पहाड़ी पुदीना (फूदनज जवली), मुर्गी के बच्चे, विण्टा, वनपलाण्डुकृत सिकंजवीन, (या मुर्गी के बच्चे की विण्टा सिकंजवीन या सिरके के साथ या अंजीर की लकड़ी की राख), थोड़ा सिरका और लवण मिश्रित उष्णजल, मुर्गी का बच्चा सिरके के साथ या बहुत सा मधु इत्यादि सेवन करें। तीक्ष्ण बस्ति का प्रयोग करें। उदर के ऊपर छेदन (मुकत्तेअ) और तारल्यजनक (मुलत्तिफ) औषधों का प्रलेप करें। शराब के मटके के नीचे उत्पन्न खुमी का छिलका सांघातिक विष है। इसके भीतर का सुखाया हुआ हिस्सा जरा सा भी खाने से मूर्च्छा पैदा हो जाती है। बंगाल में होनेवाला इसका भक्ष्य भेद भी विपरहित नहीं होता। (मख्जन)।

खुमी (कमात) को सुखा-पीसकर सिरका और सरेशम-माही (मछली के सरस) के साथ लगाने से शिशुओं की नाभि फूल जाने में उपकार होता है। बालकों की वृद्धि पर भी इसका प्रलेप गुणकारी है। खुमी श्लेष्मावृत्त रक्त और श्लेष्मा उत्पन्न करती है। व्रण पर लगाने से यह उसका शोषण करती है। किसी-किसी ग्रन्थ में लिखा है कि नमकीन भेद से, जिसे प्रथम कक्षा में शीतल एवं रूक्ष या शीतल एवं स्निग्ध बतलाते हैं, जो रक्त उत्पन्न होता है; वह अन्य भेदोत्पन्न रक्त की तरह खराब नहीं होता। यह संग्राही (काबिज) है। इसलिये अधिक सेवन न करना चाहिये। यदि अधिक खाये, तो ऊपर से मदिरा पान कर लें। मधुर भेद आध्मान-कारक है; दीर्घपाकी और गुरु (गलीज) है; अतिसेवन से

उदरशूल उत्पन्न करती है। इसके निवारण भी वही हैं जो दूसरे भेद के हैं। खुमी (कमात) को सुखाकर पानी में पीसकर सिरके अगले भाग पर लगाने से बाल उतर जाने का रोग जिसे सलज् (खालित्य) कहते हैं, दूर होता है। फित्तर शब्द में यूनानी चिकित्सक लिखते हैं कि इसे सुखाकर खाना निरापद है। किन्तु सूखी हुई कमात का खाना वर्ज्य है। यदि खाना ही हो तो तीन दिन मिट्टी मिले हुए पानी में धोलकर रखने के उपरांत छानकर काम में लें। इसे मुर्गी के अंडे और मुर्गी के मांस के साथ खाना और ऊपर से शीतल जल पीना अहितकारक है।

वैद्य कहते हैं—खुमी द्वितीय कक्षा में शीतल एवं स्निग्ध और मतांतर से तृतीय कक्षा में शीतल एवं स्निग्ध है। इतना लिखने के पश्चात् इसके दोष गुण-प्रयोग आदि जो तालीफशरीफी में लिखे हैं, वह मख्जन में लिखित फित्तर के समान हैं। तालीफशरीफी में गगनधूल शब्द में इसके निम्न गुण-प्रयोग लिखे हैं—(प्लेफेयर के आंग्लानुवाद में इसका सर्वोत्तम भेद 'कुंबी' को लिखा है) इसमें मसाला और नमक लगाकर घी में भूनकर खाते हैं। इसे पानी में पीसकर कान में डालने से पृतिकर्ण वा पूयकर्ण आराम होता है।

भूच्छत्र शीतल, भारी, सारक (मुल्यिन), बल्य और त्रिदोषकारक है। यदि सुखाकर और जलाकर सिर के वालों अर्थात् केशों पर मर्दन करे, तो बाल उग आँवें और बढ़ जावें। (मुहीत)।

फ़क़अ—यह आध्मानकारक, दीर्घपाकी और गुरु (गलीज) है। अतिसेवन उदरशूलोत्पादक है। निवारण फित्तरवत्। (मख्जन)। मुहीत में इसे द्वितीय कक्षा में शीतल एवं स्निग्ध लिखा है और यह निरापद भक्ष्य है।

कश्नज—यह संतापहारक है। इससे सांद्र दोष उत्पन्न होता है; किन्तु अत्यल्प। स्त्रियाँ इसे पुष्टिकारक हलुओं में डालती हैं। यह मदकारी, दीर्घपाकी और (आसो बर मिअदः) है। इसे जैतून के तेल या काँजी या नमक या गरम मसाला या सातर के साथ खाने से इसका दोषनिवारण होता है। (मुहीत)।

कानाकच्चू—नमकीन या चाशनीदार मांस के साथ पकाते हैं। कहते हैं कि यह अत्यन्त सुस्वादु और बल्य है।

खुमी—संज्ञा स्त्री० [हि०, अ० खुमा] कुरकुरमुत्ता भेद। एक प्रकार का उद्भिद् द्रव्य जिसके अन्तर्गत भुईंफोड़, ठिंगरी, गगनधूल, कुरकुरमुत्ता इत्यादि अन्य प्रकार के भी उद्भिद् द्रव्य हैं; यथा—(१) गेरूई, (२) भुईंफोड़, (३) कुरकुरमुत्ता, (४) कठफूल इत्यादि। इनमें से कतिपय भक्ष्य और अन्य अभक्ष्य हैं। भक्ष्य—भुईंफोड़। (ठिंगरी-पुं)।

(२) अभक्ष्य—कठपूल, कुरुरमुत्ता जो दुर्गन्धयुक्त होते हैं, उनका उपयोग खाने में नहीं होता। दे० 'छत्रिका' भी।

संस्कृत पर्यायः—छत्राक, शिलीन्ध, उच्छिलीन्ध, कवक, सर्पच्छत्र; (हि०) साँप की छतरी, राम छाता, गगन धूल। कुरुरमुत्ता। (ले०) अगेरिकस-अँस्टीकेटस (Agaricus-obsticatus); (अँ०) दी ट्री फंगस (The tree fungus) (गु०); झाड़ू नु मल, फणस-अलोवें; (म०) फणसोंवा, गामठी।

खुमूल—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ सुस्ती, क्लम। तिब्बो परिभाषा में ऊँघ, गन्तुदगी। (अँ०) ड्रोजीनेस (Drowsiness)।

खुमूल-बल—संज्ञा पुं० [अ०] दृष्टिदौर्बल्य। दृष्टि की निर्वलता, नजर की कमजोरी। बिनाई की कमजोरी।

खुम्बह—[अफ०] पका हुआ छोहाड़ा। सुपक्व खजूर।

खुन्नियः—[अ०] बाष्पग्राहकयंत्र। मद्याकर्षक यंत्र। शराब-कशी का आला। करंबीक।

खुर—संज्ञा पुं० [अ०] मल। विष्टा।

खुर—संज्ञा पुं० [सं० क्षुर] (१) सूम। कफेसंग। चतुष्पदों का नख। (अ०) जलफ। (सं०) शफ। (हि०) खूर। (बं०) खूर। (२) (सं०) श्मश्रुच्छेदनास्त्र। क्षूर। (श० र०)। (३) बेर की पत्ती। (सं०) कोलदल। (बं०) कूलपाता। (४) नखी नाम का गन्धद्रव्य। नख। (मे०)। (५) खटिया के पाए। चारपाई का पाया। (बं०) खूरो। (६) भूमि, पृथ्वी। धरणी।

पर्यायः—ज़िल्फ (अ०); जङ्गलः, कफ़शाक (फ़ा०); अकीदून (रु०); खुर (हि०)।

वक्तव्य—ज़िल्फ फटे हुए खुर को कहते हैं; जैसे गाय, बकरी, भेड़ और हिरन इत्यादि के ओर घोड़े, गदहे और खच्चर आदि के सुम को जो फटे नहीं होते हाफिर वा हाफिरः कहते हैं। हवाफिर हाफिर का बहुवचन और जुलूफ और अज़लाफ जिल्फ के बहुवचन हैं। अस्तु, जिल्फ का अर्थ खुर और हाफिर का अर्थ सुम है। सुम बिना फटे खुर को कहते हैं; जैसे घोड़े और खच्चर आदि का। जिकर का व्यवहार काटे हुए नख (नाखूनबरोदा) के अर्थ में होता है। किंतु कामूस में जिकीर का व्यवहार नख का तराश (तराशाए नाखून) के अर्थ में हुआ है। तुर्की भाषा में नाखून को दिर्नाक कहते हैं। परन्तु मुल्लाफौकी की कविता के अनुसार बहारअजम में उल्लिखित है। मुहीत आदि में जो दिर्नाक को जिल्फ के पर्यायों में दिया है वह यथार्थ नहीं कहा जा सकता। इस्तियारातबदीई में जिल्फ को फ़ारसी में बशक लिखा है।

वर्णन—तक्षणास्थि निर्मित एक कठोर अंग जो गाय, बकरी, हिरन और ऊँट प्रभृति पशुओं के हस्त-पादतल

पर जुड़ा (प्ररोहित) और चिरा हुआ होता है। प्रकृति शीतल एवं रूक्ष है। गुणधर्म तथा प्रयोग—समस्त जानवरों का जलाया हुआ खुर पीत जलीयविरेक लानेवाला है। मद्य में मिलाकर लगाने से (हवाम) के दंश में लाभकारी है। शहद के साथ आमवात और वातरक्त में उपकारी है। बकरी का खुर जलाकर सिरके में मिला कर लगाने से खालित्य (दाउस्सअलब) में उपकार होता है। शेष पशुओं के खुरों का वर्णन उन-उन पशुओं के वर्णन के समय किया गया है। (मरूजन। मुहीत)।

मुहीत के अनुसार गदहे तथा अन्यान्य समस्त पशुओं के खुर शीतल और रूक्ष हैं।

रंग—लाल, काला और सफेद। स्वाद—कठोर दुर्गन्धित और कुस्वाद। अहितकर—रौक्ष्यजनक। **निवारण**—शहद, सिरका और घी। प्रतिनिधि—शृंग। ग्रह—शनि। प्रधान कर्म—संधिवातहर। मात्रा—बहिर प्रयोग होता है।

खु(क्षु)रक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तिल का क्षुप। (श० च०)। (२) तालमखाना। कोकिलाक्षुप। (बं०) कूल खाड़ा।

संज्ञा पुं० [सं० बली०] खुरासानी राँगा। उत्तम बंग। (वै० निघ० २ भ० जिब्जवर० चि०)।

खुरणस—वि० [सं० त्रि०] चिपटी नाक का व्यक्ति। चिपिट नासिका। (बं०) चेपटो नाक युक्त। (अम०)।

खुरप्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खुरपा। (बं०) खूरपा। (२) वाण विशेष।

खुरतूम—[अ०] मद्य। शराब।

खुरद—[तुर०] भेड़िया। वृक।

खुरपजहेतलख—संज्ञा पुं० [फा०] इन्द्रायण। इन्द्रवारुणी।

खुरपजहे रुवाह—संज्ञा पुं० [फा०] लाल इन्द्रायण। रक्त इन्द्रवारुणी। काँवर। महाकाल।

खुरपजहेहिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] तरबूज। कलिदा। हिन्दमाना।

खुरमा—संज्ञा पुं० [अ० खुर्मा] छोहाड़ा।

खुरसाना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजवाइन खुरासानी। (वै० निघ०)।

खुराक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ज्वार। जोन्हरी। यावनाल। (बं०) जनार। (२) पशु। (वै० निघ०)।

खुराज—संज्ञा पुं० [अ०]। (१) व्रणशोथ। वह शोथ जिसमें पूयोत्पत्ति हो, चाहे वह शोथ उष्ण हो वा शीतल। कतिपय चिकित्सक इसके साथ उष्ण शोथ का प्रतिबन्ध लगाते हैं। मुल्लानफीस के अनुसार वह एक वृहत् उष्ण-शोथ है जिसमें पूयोत्पत्ति हो गई हो। (२) विद्रधि। व्रण। (अँ०) ऐब्सेस (Abscess)।

खुराज-मसम्मियः—संज्ञा पुं० [अ०] विषाक्त व्रणशोथ।

खुरात्—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का पिच्छिल (लसदार)

द्रव जो शूलयुक्त आँतों से पृथक् होकर मल के साथ उत्सर्जित होता है।

खुरानक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोहमय वाण। (शब्द मा०)।

खुरालिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नाईबाड़ा। नापित-मण्डी। (२) उपधान। (मे०)।

खुरासानी अजवाइन—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरासानी+हि० अजवाइन] दे० 'अजवाइन खुरासानी'।

खुरासानी-इमली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरासानी+हि० इमली] गोरखइमली।

खुरासानी-यमानी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'खुरासानी अजवाइन'।

खुरासानी-रांगा—संज्ञा पुं० [फा० खुरासानी+हि० रांगा] खुराक वज्र। दे० 'रांगा'।

खुरासानी वच—संज्ञा पुं० [फा० खुरासानी+हि० वच] वचखुरासानी।

खुरासानी वचा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत वच। खुरासानदेशजवच। (म०) श्वेतवेखण्ड। (वै० निघ०)। द्वीपान्तरवचा।

खुरि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेत अपराजिता। सफेद कोयल।

खुरिकापत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केना। केनी नाम का शाक पत्र। (म०) केनी। (हि०) केना।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बन्ध्यागवी। बाँझ गाय। छुरिका।

खुरूक हमाम—संज्ञा पुं० [अ०] दरदान। (लु० क०)।

खुरूज—संज्ञा पुं० [अ०] (१) शयनकालीन तथा गला घोटने का शब्द। (२) धात्वर्थ खारिज होना। निकल जाना।

खुरूजुरिहा—संज्ञा पुं० [अ०] गर्भाशयभ्रंश। गर्भाशय का बाहर निकल आना। भण्डारा निकल आना। (अ०) प्रोलेप्सस युटेराई (Prolapsus Uteri)।

खुरूजुल् महबिल—संज्ञा पुं० [अ०] योनिभ्रंश। योनि का बाहर निकल आना। भण्डारा निकलना। (अ०) प्रोलेप्सस वेजाइनी (Prolapsus Vaginae)।

खुरूजुल्-मक्अद—संज्ञा पुं० [अ०] गुदभ्रंश। काँच निकलना। काँच (गुदा) का बाहर निकल आना। (अ०) प्रोलेप्सस एनाइ (Prolapsus Ani)।

खुरूवक—संज्ञा पुं० [फा०] गोबर का काला कीड़ा। गुवरीला। काकसीनेला।

खुरूफ—संज्ञा पुं० [फा०] भेड़ का नरबच्चा। मेपपुष्प शिशु।

खुरूमक—संज्ञा पुं० [फा०] प्रवाल। मूंगा। बसद। (अ०) कोरल (Coral)।

खुरूरु—संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल की गिरी।

खुरस—संज्ञा पुं० [फा०] कोकड़ (पं०)।

खुरूसान—संज्ञा पुं० [?] बिच्छू। वृश्चिक।

खुरक—[अ०] दे० 'खर्क'।

खुरूम—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नाक। नासिका। नाक की फुनगी। (अ०) नोझ (nose)। (२) मद्य। शराब। सुरा।

खुरूनफ—संज्ञा पुं० [अ०] स्त्री का गुह्यांग (गुप्त स्थान)। योनि। शरमगाह। अन्दामनिहानी।

खुरूनब—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'खर्नूब'।

खुरफ—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'कुलफा'।

खुरफः जंगली—संज्ञा पुं० [उर्दू] जंगली कुलफा। खुरफा।

खुरफः बरी—संज्ञा पुं० [फा०]

खुरफा—संज्ञा पुं० [उर्दू] कुलफा। खुरफः।

खुरमा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) इमली। (२) खजूर। छोहाड़ा। पालेवत।

खुरमाए-अबुजहल—संज्ञा पुं० [फा०] करंज, करञ्जुआ।

खुरमाए-खरक—संज्ञा पुं० [फा०] कसब। दे० 'खजूर'।

खुरमाए-खुश्क—संज्ञा पुं० [फा०] छोहाड़ा। पिण्डखजूर (शुष्क)।

खुरमाए-तर—संज्ञा पुं० [फा०] हरा खजूर। तरखजूर।

खुरमाए-याबिस—संज्ञा पुं० [फा०] खजूर। छोहाड़ा।

खुरमाए-शहरबर—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ाखजूर। सुखे वा जर्द खजूर वा खजूर का अन्य भेद।

खुरमाए-संगशिकन—संज्ञा पुं० [फा०] कसब। दे० 'खजूर'।

खुरमाए-हिन्दी—संज्ञा पुं० [फा०] देशी इमली। तमर-हिन्दी। इमली।

खुरमाए-होरूनी—संज्ञा पुं० [फा०] कसब वा हिरूनी इमली। तमर हिरूनी।

खुरम—संज्ञा पुं० [फा०] (१) पोस्त बैजः मुनक्का मसूल। (२) दवाउल् हाली। (३) शाक भेद। (४) यूनानी दवा।

ववतव्य—इसके परिचय के सम्बन्ध में मतभेद है। अस्तुः (१) किसी के मत से यह शोधित कुक्कुटाण्डवत् है। (२) मतांतर से यह हालबी का नाम है जिसको यूनानी में अतरातीकूस कहते हैं। दे० 'अतरातीकूस'। (३) अन्य मत से यह एक प्रकार का साग है। (४) किसी के मत से सिराजुलकुतब का नाम है। (५) कोई-कोई कहते हैं कि फारसी में मरीहः का नाम है और अनक्रवानकूस और अनक्रवानकून कहलाता है। यह दूक की तरह एक अन्न है। गीलानी ने इनमें प्रथम, चतुर्थ और पंचम अर्थों का प्रयोग उक्त शब्द के लिये किया है। (६) इब्न बहशियः के कथनानुसार एक उद्भिद् है जो बगीचों और सायादार कुवों में उत्पन्न होता है। पत्ते इसके लंबे, पतले और कम चौड़े होते हैं। फूल नीला,

प्रियदर्शन और लघु(लतीफ) होता है। पत्तियाँ इतस्ततः होती हैं और उनसे सुगंध आती है। फारस के प्रायः स्थानों में उत्पन्न होता है। फारसवासी इसका बड़ा आदर करते हैं। बुरहानकातिअ में लिखा है कि खुरमः लोबिया की तरह एक उद्भिद् है। खुरम उसका बहुवचन है। फारसी में इसका अर्थ उल्लास वा आह्लाद है।

प्रकृति—उष्णताभिमुखी।

गुण-प्रयोग—यह स्वच्छताप्रद (जाली) है, मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता (मेधाजनक), विवेक एवं बुद्धिवर्धक है। (इसके फूलों का सूँघना और) बार बार देखना आनन्द और उल्लासप्रद है। इसका फूल हस्ततल में (पास) रखने से लोग प्रेम करते हैं और इसका आस्तीन में रखना प्रीति का कारण होता है। इसके पुष्पों से तेल तैयार करते हैं जिसको सिर पर लगाने से गरमी का शिरोशूल आराम होता है, अनिद्रा दूर होती है, ज्ञानेन्द्रिय (बुद्धि) नष्ट होती है और हवास दुस्ती पर आते हैं। यह इसका प्रभाव है।

इससे मोमरोगन बनाकर रात को चेहरे पर मलने और प्रातःकाल धो डालने से मुखमंडल कांतिमान और दीप्त हो जाता और कपोल अरुण हो जाते हैं। लोग भी दया करने लगते हैं और उनके हृदय से कपट भाव दूर हो जाता है। (मखन; मुहीत)।

खुरस—संज्ञा पुं० [अ०] अडुवानी। एक प्रकार का भोजन जो प्रसवपश्चात् प्रसवी को दिया जाता है। उल्लवानी।

खुलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पादजङ्घासन्धि। (मु० चि० १८ अ०)

खुलका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शंखनाभि। (र० सा० सं०)।

खुलज्जान—संज्ञा पुं० [अ०] (१) कुलंजन। (२) पानतुल्य एक जंगली लता की जड़ है।

खुलज्जान-अकरबी—संज्ञा पुं० [अ०] छोटा कुलंजन।

खुलज्जान-अक्रारबी—संज्ञा पुं० [अ०] } छोटा कुलंजन।

खुलज्जान-अकाबीर—संज्ञा पुं० [अ०] }

खुलज्जाने कबीर—संज्ञा पुं० [अ०] बड़ा कुलंजन।

खुलज्जाने कस्बी—संज्ञा पुं० [अ०]

खुलज्जाने सगीर—संज्ञा पुं० [अ०] छोटा कुलंजन।

खुलफा—संज्ञा पुं० [अ० खुरफः] खुरफा। कुलफा।

खुलव्व—संज्ञा पुं० [अ०] खाली जगह। रिक्त स्थान।

खुलुबुरुज—संज्ञा पुं० [अ०] नील-रक्ताल्पता। (मिस) मर्जअखजर; (अं०) ग्रीन सिक्नेस (Green sickness) क्लोरोसिस (Chlorosis); (उर्दू) सब्ज मूस।

एक प्रकार का रक्तविकार जिसमें रक्ताल्पता होती है। इस रोग में रक्तकणों का परिमाण घट जाता है। रोगी का वर्ण पीताम्बनील हो जाता है।

खुलूक—[अ०] (१) अरगजा। एक प्रकार का सुगन्ध। चोवा। (२) केसर।

गुण—इसके अभ्यङ्ग से पट्ठों की कठोरता दूर होती है। हृदय की दुर्बलता नष्ट होती है। गर्भाशय में स्थापित करने से गर्भाशयिकविकार शांत होता है अथवा उसकी वेदना और शोथ शमन होता है।

खुलोल—[अ०] बलहीन होना। दुर्बल होना।

खुलंज—संज्ञा पुं० [?] पर्याय—(हिं०)—(१) झाऊ।

(२) फराश। (अ०, फा०) गजङ्ग, गज, मात्र। एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी अत्यन्त कठोर वा दृढ़ होती है। इससे तोर की नय और घोड़े का जीन प्रस्तुत किया जाता है।

परिचय—खुलंज एक पर्वतीय वृक्ष है जो बहुत बड़ा होता है। इसमें फराशतुल्य पत्तियाँ होती हैं। यह चीन, भारतवर्ष तथा रूस में उत्पन्न होता है। इसमें लाल-पीतवर्ण के छोटे-छोटे फल लगते हैं। इसके द्वितीय भेद के पुष्प श्वेत होते हैं और बीज राईतुल्य होते हैं और रंग नीला होता है। इसका पुष्प इस के अन्य अंगों से बलप्रद तथा उग्रवीर्य होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—इसके पुष्पों का तेल अभ्यङ्ग करने से सन्धिवातजन्य वेदना शांत होती है और थकावट दूर होती है। इसके काष्ठ को पीसकर लेप करने से उक्त लाभ होते हैं। इसके पुष्पों तथा पत्तियों का लेप करने से कीटों का विष शांत होता है। इसके बीजों का ४। माशा चूर्ण सेवन करने से कीटों के विषों का प्रभाव हृदय पर नहीं होता। इसके काष्ठ द्वारा निर्मित पात्र में भोजन व जल पान करने से गदोद्वेग तथा उन्माद में फल प्राप्त होता है। इसका पुष्प संग्राही तथा दोषविलीनकारक है। इसके पुष्पों का रस ग्रहणकर मधुमक्षिकाएँ मधुनिर्माण करती हैं। वह मधु दुर्गन्धपूर्ण होता है।

तैल निर्माणविधि—पुष्पों को ग्रहण कर तिल-तैल में रखकर ३ सप्ताह के पश्चात् छान लेते हैं।

खुलक—[अ०] (१) प्रकृति। स्वभाव। आदत। (२) कृपा, दया, मुरव्वत।

खुलज—[अ०] काबुलीमटर। कलाय काबुली।

खुलद—[अ०] छुछुन्दर। मूशमार।

खुलफ—संज्ञा पुं० [हिं०, उर्दू] कुलफा। खुरफः।

खुल्ल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नख। नखी नाम का गन्ध-द्रव्य। (श० च०)।

खुल्लक—वि० [सं० त्रि०] स्वल्प। कम। न्यून। (अटी०)।

खुल्लर—[?] काबुली मटर।

खुल्वक—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शंखनाभि। (र० सा० सं०)।

खुवी—संज्ञा स्त्री० [फा०] अर्क । पसीना । स्वेद । (लु० क०) ।

खुवैतिमुल्मलिक—[अ०] एक प्रकार की मिट्टी । गिले मल्लूम । (अं०) माल (Marl) ।

खुशनजर—संज्ञा पुं० [फा०] सुखमरुआ । मरुदक भेद ।

खुशफ—[अ०] हरितवर्ण की एक प्रकार की मक्षिका । सब्ज मक्खी का एक भेद । हरे रंग की मक्खी ।

खुशहेमवकी—संज्ञा पुं० [फा०] मक्के की खुशा ।

खुशाअ—संज्ञा पुं० [अ०] कान के पीछे की उभड़ी हुई हड्डी ।

खुशाफ—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'खुशाब' ।

खुशाब—संज्ञा पुं० [फा०] फल-व्याध । फलों की गाढ़ी चाशनी । पथ्यां—खुशाब, खोशाब (फा०); खुशाफ (अरबीकृत) ।

वर्णन और गुणप्रयोग—आलूबालू, जरदालू, सेव, विही, नासपाती, मवेज (मुनक्का) और जामुन इत्यादि फलों को खांड वा चीनी के साथ पानी में पकाते हैं और जब चाशनी तैयार हो जाती है तब काम में लाते हैं । यही खुशाब है । मानो यह उन मेवों का शर्वत है । प्रत्येक मेवा से उसका खुशाब स्वादिष्ट (लतीफ) होता है । किन्तु गुण में ये सब समान नहीं होते । प्रत्येक खुशाब का गुण उस मेवा के गुण पर निर्भर करता है जिससे वह बना होता है । अस्तु, जो भेद परस्पर उक्त मेवों में है वही तन्निर्मित खुशाबों में भी होना निश्चित है । उदाहरणतः आलूबालू का खुशाब तृष्णा शमन करता है, प्रदग्ध दोषों को दोषमुक्त करता और प्लीहाशूल निवारण करता है । विही का खुशाब उत्तमांगों और औज (अरवाह) को शक्ति प्रदान करता, पाचन शक्ति को उद्दीप्त करता और दुर्गंधि नष्ट करता है । सेव का खुशाब हृत्स्पंदन (स्फूर्कान), उत्कलेश और (पित्तज) वमन, शोथ (इत्तिहाव), यकृदुष्मा, पीत कामला और उष्ण जलोदर, इनको लाभ पहुँचाता है । मवेज का खुशाब स्वर्य है और अवरोधोद्धाटन करता एवं कामला रोग को दूर करता है । जामुन का खुशाब आमाशय को बल प्रदान करता (दीपन-पाचन) है और यकृत की उष्णता को शमन करता है, पित्तजाश को लाभ पहुँचाता और पित्तातिसार को मिटाता है । सबसे अघम जरदालू का खुशाब है । (मुहीत) ।

अहितकर—प्रत्येक खुशाब वायु उत्पन्न करता है ।

निवारण—अनीसून और मस्तगी है ।

खुशारिम—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नाक के नथुने की हड्डी का वह भाग जो मृदु होता है । (२) लम्बी तथा स्थूल नासिका का व्यक्ति ।

खुशनत—संज्ञा पुं० [अ०] खरत्व, खुरखुरापन, रुक्षत्व, खुरदरापन । (अं०) रफनेस (Roughness) ।

खुशनतुज्जिलद—संज्ञा पुं० [अ०] चमड़े का खरत्व, त्वचा की रुक्षता तथा खुरखुरापन । जफाफतुज्जिलद ।

खुशनतुस्सौत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) स्वरभंग । स्वर की भरभराहट । (२) स्वर का ठीक न होना । स्वर का भारीपन । आवाज का भारी हो जाना । आवाज की भर्राहट ।

खुशक—संज्ञा पुं० [अ०; फा०] शुष्क होना, रुक्ष होना, खुरखुरा हो जाना ।

खुशक-जबीन—संज्ञा पुं० [फा०] खुशक = शुष्क + फा० अंगवीन = मधु । यह खुशकगवीन की अरबीकृत संज्ञा है जो मधु के अर्थ में प्रयुक्त है । दे० 'मधु' वा 'शहद' ।

खुशकदानः मुदब्बिर—संज्ञा पुं० [फा०] सूखा शोधा हुआ दाना ।

खुशकनान—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की रोटी जो गेहूँ के आटे के साथ तिलतैल मिश्रित कर प्रस्तुत की जाती है । (मु० आ०; म० अ०) ।

खुशकरीशः—संज्ञा पुं० [अ०] घाव का खुरण्ड । व्रण पर खुरंड पड़ जाना । खुशक जखम ।

खुशकरीशः रतब—संज्ञा पुं० [अ०] व्रण के छिछड़े जो मांस के मुरदार पड़ जाने से निकलते हैं । प्रायः इस प्रकार के छिछड़े कारवंकल (शबचिराग—मधुमेह पिड़का) में पाए जाते हैं । (अं०) स्लफ (Slough) ।

खुशमत—संज्ञा पुं० [अ०] मद्यजनित गन्ध जो जीर्ण होने के पश्चात् नाक में प्रतीत होती है ।

खुशफ—संज्ञा पुं० [अ०] चमगादड़ । चर्मकी ।

खुसरवेदार—संज्ञा पुं० [अ०] कुलंजन ।

खुसरवेदारुखुर्द—संज्ञा पुं० [फा०] छोटा कुलंजन ।

खुसरवेदारुएकल—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ा कुलंजन ।

खुसरोदार—संज्ञा पुं० [फा०] कुलंजन ।

खुसियः—संज्ञा पुं० [फा०] (१) अण्डकोष । (फा०) खायः । अण्ड । (म० अ०) । (२) तुमंस । हलबूब ।

खुसियुलकत्व—संज्ञा पुं० [अ०] (फा०) खायः सग । एक प्रकार का कन्द जो सालबमिस्रीतुल्य होता है; किन्तु इसका रंग पृथक् होता है । छोटा और बड़ा भेद से यह दो प्रकार का होता है । (अ०) अखस (म० अ०) । (यू०) अकियास ।

परिचय—कन्दजातीय एक वनस्पति का कन्द है । इसके पौधे की शाखायें प्रायः एक बिन्ता लम्बी होती हैं और इसकी पत्तियाँ पृथ्वी पर बिछी हुई होती हैं अथवा पृथ्वी के निकट होती हैं । पत्तियों का स्वरूप जैतून के पत्तों का-सा होता है; किन्तु उनसे मृदु, छोटी और लम्बी होती हैं ।

पुष्प—इसके फूल छोटे-छोटे एक दूसरे से मिले हुए सरो के पत्तों के से होते हैं । इनका वर्ण नीला होता है ।

कन्द—इसमें काँदा अर्थात् जंगलीप्याजतुल्य पड़ते हैं। किन्तु काँदा से अधिक मृदु होते हैं और उनसे पतले भी होते हैं। वर्ण श्वेत होता है। इसकी जड़ में ग्रन्थियाँ होती हैं, जो नीचे-ऊपर जैतून के फलसदृश यथा—तरे-ऊपर रखकर मिला दिया गया हो। इसकी ग्रन्थि में एक प्रकार का द्रवपदार्थ (रतूबत) भरा होता है। यह स्त्री जाति का है। दूसरा मृदु होता है। जिसके ऊपर चरस पड़े होते हैं, वह पुरुषजातीय है। यह प्रायः पथरीली पृथ्वी में उत्पन्न होता है। इसका दण्ड (तना) प्रायः १ वित्ता तक लम्बा होता है। इसमें पत्तियाँ नहीं होतीं। इसके कन्द को उबालकर खाते हैं। यह वन उद्यानों में भी उत्पन्न होता है। (२) इस प्रकार की वनस्पति की पत्तियाँ गन्दे की पत्तियों की-सी होती हैं; किन्तु इनका आकार उनसे बड़ा और चौड़ा होता है और उनमें एक प्रकार का पिच्छिल द्रव भरा रहता है। इसका दण्ड प्रायः १ वित्ता तक लम्बा होता है। इसका कन्द सालवमिस्त्री का-सा होता है। किन्तु वर्ण में अन्तर होता है। इसके अन्य अंग-प्रत्यङ्ग प्रथम भेद-तुल्य होते हैं। इसका कन्द प्रथम भेद की अपेक्षा बड़ा होता है। इसके कन्द का आकारप्रकार दो छोटे अण्डकोषों की भाँति, नीचे-ऊपर दो ग्रन्थियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं। इसके कन्द प्रथम भेद की अपेक्षा बड़े होते हैं। वन तथा उद्यानों में होने के कारण दोनों के गुण-कर्म में भिन्नता होती है।

प्रकृति—उद्यानज की तृतीय कक्षा में उष्ण और अरण्यज की अधिक वीर्यवान् होती है और यह उद्यानज की अपेक्षा अधिक उष्ण है। तथा इसकी विषाक्तता उष्णाधिक्य के कारण अत्यधिक होती है। इसके द्वितीय भेद की प्रकृति प्रथम भेद की अपेक्षा प्रथम भेद की समानता के निकट समझना चाहिए। किसी के अनुसार यह द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—उभयप्रकार श्लेष्मजशोथघ्न, मैथुनशक्तिवर्धक, किसी के अनुसार इसका वृहत् भेद अत्यन्त मैथुनशक्तिवर्धक और इसका छोटा भेद कामशक्तिनाशक है। किसी के अनुसार स्त्रीजातीय नूतनावस्था में मैथुनशक्तिवर्धक होती है। उक्त गुण के निमित्त बकरी के दुग्ध के साथ पाचनकर सेवन करना उचित है। गुण्कावस्था में यह मैथुनशक्तिनाशक स्वीकार की गई है। किसी का कथन है कि जब एक का सेवन किया जाय तो दूसरे का सेवन वर्जित रखना उचित है। अन्यथा दोनों के गुण विनष्टप्राय हो जाते हैं। अन्तः-किया प्रदेश में प्रसिद्ध है कि इसके वृहद् भेद के सेवन से पुत्र की उत्पत्ति होती है और यदि इसके छोटे भेद का सेवन कर स्त्री अपने पुरुष के साथ प्रसंग करती है

तो कन्या की उत्पत्ति होती है। इसके वृहद्भेद सेवन से अतिसार नष्ट होता है और इसके अधिक सेवन से नपुंसकता प्राप्त होती है। इसके सेवन से दुष्टव्रणों का नाश होता है। यह कोथघ्न है। इससे व्रणजन्य दुर्गन्ध नष्ट होती है और व्रण का विस्तार रुक जाता है। इसको अर्शाङ्कुर पर लगाने से रक्तस्राव होता है और पीसकर प्रलेप करने से त्वचागत व्रणचिह्न नष्टप्राय हो जाते हैं। इसका चूर्ण निर्माणकर अवचूर्णन करनेसे मुखक्षत नष्ट होता है।

अहितकर—फुफुस को। अधिक सेवन से फुफुस में उष्णता प्राप्त होती है।

निवारण—पोस्ता के बीज और मूल का गोदें।

प्रतिनिधि—शतावरी और बूजींदान। सकङ्कूर, चन्द्रसुर, गाजर के बीज, तुलूम इस्फिस्त, तुलूम जिरजीर।

मात्रा—४ से ९ माशा।

स्पष्टीकरण—खुसियुलकत्व का शाब्दिक अर्थ अण्डकोष और श्वान होता है। अरबी में अण्डकोष को खुसियः और कत्व को कुता कहते हैं। अतः दोनों की सन्धिकर उक्त शब्द का नामकरण किया गया है।

यह एक प्रकार का कन्दजातीय द्रव्य है। यह प्रायः हिमवती पर्वतों के विभिन्न स्थानों में उत्पन्न होता है। गढ़वाल तथा टेहरी प्रान्त के लोग उससे देशी सालवमिस्त्री के नाम से परिचित हैं। वहाँ इसको भजितकर खाया जाता है और विक्रयार्थ भी खोदकर यात्रियों को देते हैं। खायः रूबाह, खुसियुस्सालव, खुसियुत्सालव इत्यादि इसके अन्य पर्याय हैं।

खुसियुहीक—[अ०] एक प्रकार का वृक्ष है जिसके विषय में मतभिन्नता है। तोहफतुलमोमिनीन के अनुसार यह हव्वुलवान् है और तजकिरह के लेखक के अनुसार यह एक प्रकार की वनस्पति है जिसका वृक्ष मकोयतुल्य होता है और उसकी अपेक्षा यह लम्बा होता है। इसका दाना गोल होता है, वर्ण श्वेत और आकार-आलूबालूतुल्य होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुणकर्म तथा उपयोग—वर्णकारक, सान्द्रीभूतवायु-विलायक, श्लेष्मविरेचक, वातघ्न, सौदावीशोथघ्न तथा सन्धिवात में उपयोगी है। इसको पीसकर लेप करने से उग्र सौदाजन्य शोथ का नाश होता है।

अहितकर—शिरोवेदनाकारक तथा शोकोत्पादक है।

निवारण—वनफशा।

प्रतिनिधि—जीरा। **मात्रा**—१० से ३० माशा।

स्पष्टीकरण—एक प्रकार का फल है जो बान नामक

वृक्ष का फल है। वान एक अरब देशीय वृक्ष है जो भारतीय महानिम्ब (वकाइन) के सदृश होता है। कुछ आचार्य इसको वकाइन समझते हैं और यही अधिक उचित प्रतीत होता है। वकाइन के गुण-धर्म से इसकी समानता है।

खुसियुल्वहर—संज्ञा पुं० [अ०] जुन्दवेदस्तर। खटांस।

खुसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] वरदी।

खुससियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] खासियत। स्वभाव। प्रकृति। तबीअत। मिजाज। (अं) नेचर (Nature)।

खुससियत-मिजाजियः—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रकृतिसम्बन्धी गुण।

खुस्यतान—संज्ञा पुं० [अ० द्विव०] [एक व० 'खुसियः'] अण्ड-कोषद्वय। दोनों अण्डकोष। दोनों वंजे। पुरुष के अण्डद्वय। (अं०) टेस्टिकील्ज (Testicles)। ये शुक्र उत्पादक ग्रन्थि हैं। इनमें शुक्र की उत्पत्ति होती है।

खुस्युत्थालव—संज्ञा पुं० [अ०] } खुसियुल्कव। खायः खाह।
खुस्युत्सालव—संज्ञा पुं० [अ०] } पंजहेसालव। (डाइमक)।
खुस्युत्सालव—संज्ञा पुं० [अ०] }

खुस्युल्वहर—संज्ञा पुं० [अ०] ऊदविलाव का अण्डकोष। अण्डकोष जिसमें से जुन्दवेदस्तर प्राप्त होता है।

खूई—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्वेद। अर्क। पसीना।

खूक—संज्ञा पुं० [फा०] सूअर। शूकर। खिजीर।

खूकअ—संज्ञा पुं० [अ०] जवाबुल्कव का एक प्रकार।

खूकमाही—संज्ञा स्त्री० [अ०] दिलफीन। (लु० क०)।

खूकरह—संज्ञा पुं० [फा०] जबजब।

खूख—संज्ञा पुं० [अ०] आड़। सफतालू।

खूखअफ़रअ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) आड़ का एक बड़ा भेद। (२) साज़िज-हिन्दी।

खूफ़लीक—संज्ञा पुं० [अ०] (१) इलायची। (२) उन्नः।

खूखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेरुई। कुमिभेद।

खूखू—संज्ञा [यू०, फा०] हरितवर्ण की एक प्रकार की मक्खी है।

खून—संज्ञा पुं० [फा०]

पट्टा—रक्त, शोणित, यिखं, अमृक्, लोहित (ध० नि०), अम्र, दधिर (रा० नि०)—सं०। लहू, लोहू—हि०। दम्—अ०। खून—फा०। कान—तु०। कूमियून (मुहीत)—यू०। ब्लड (Blood)—अं०।

तिब्बी परिभाषा के अनुसार प्रथम दोष या धातु (खिलत)। दे० 'दोष'।

वर्णन—सम्पूर्ण शरीर के धातुओं (अस्लात) में रक्त सर्वश्रेष्ठ है। इससे शरीर का पोषण और सुधार होता है। प्राणियों की प्रकृति के विविधत्व के कारण प्रत्येक प्राणी का रक्त विविध वा विभिन्न होता है। रक्त

की प्रकृति उष्ण एवं स्निग्ध है। चिकित्साकर्म में युवा और स्वस्थ प्राणी का रक्त ग्रहण करना चाहिये और उसमें भी वह जिसमें दूषित वा विकृतदोषप्रधान न हो। उत्तम खून स्वाद में मधुर होता है। ग्रह—वृहस्पति। प्रधान कर्म—शोथविलयन। बाह्य प्रयोग में आता है। आंतरिक प्रयोग विहित नहीं (हराम) है।

प्रकृति—उष्ण एवं स्निग्ध है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—प्रत्येक जानवर के रक्त का वर्णन उस जानवर के साथ किया गया है। सभी जानवरों का रक्त सामान्यतः नेत्रशुक्ल (व्याजचक्ष्म) नाशक और शोथविलयन है। भर्जितरक्त अतिसार और विषनाशक है। कबूतर का पर उखाड़ने से जो रक्त निकले उसे तुरत आँख में लगाने से रात्र्याध्यारोग आराम होता है। यह परीक्षित है। इसका वर्णन कबूतर (हमाम) शब्द में किया जा चुका है। उदर, उरः, अन्त्र और वस्ति में संचित हुआ रक्त विषतुल्य हो जाता है। इससे अनिष्टकारक उपद्रव, जैसे, नाड़ी क्षीण होना, निर्वलता, सार्वदिक वा अक्षुण्ण मूर्च्छा, हस्त-पाद की शीतलता और कण्ठावरोध (इस्तिनाक) प्रभृति उठ खड़े होते हैं। इसका उपक्रम वही है जो आमाशय में जमे हुए दूध का है। इसके साथ-साथ खरगोश का पनीरमाया ९ मा० अढ़ाई तोले तेज सिरके में मिलाकर पिलाये या एक बाक़ला के बराबर (२४ जव भर) हींग या सूखे अंजीर का शीरा या अम्ल सिकंजबीन के साथ ही पुदीने का रस या मधुवारि (माउलअस्ल) के साथ अजमोदे का काढ़ा इनमें से कोई एक पिलाएँ और वमन कराएँ। पाश्चात्य चिकित्सक (अतिब्बास फिरंग) कहते हैं कि जब मनुष्य वा पशु के शरीर का रक्त बिगड़ जाता है और रक्तशुद्धि कठिन होती है, तब उसे निकाल डालना ही एक उपाय होता है और स्वस्थ, बलवान् और सम प्रकृतिस्थ मानव वा पशु के शरीर का रक्त लेकर उसके स्थान में प्रविष्ट कर देते हैं। इससे दुष्टरक्तवाला वह मानव या पशु पुनः स्वस्थ और आरोग्य हो जाता है। इससे पूर्व कुछ वर्षों तक इस उपाय का अवलंबन किया जाता रहा। परंतु जब उन्होंने यह देखा कि इससे कोई लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानि ही होती है, तब उन्होंने इसका त्याग कर दिया। रक्तप्रवेशन की रीति यह है कि उदाहरणतः रोगी का हाथ कसकर बांध देते हैं और बंध से नीचे से योग्य सीमा तक रक्त निकालते हैं और उसकी नाड़ी (नब्ज) बंद कर देते हैं और स्वस्थ व्यक्ति का हाथ बंध के नीचे से और इष्ट रोगी का हाथ बंध से ऊपर युगपत् अतिशीघ्र सम्पूर्ण वाहिनी खोल देते हैं और एक अत्यंत पतली नली दोनों के मध्य स्थापित करते हैं। इस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति के शरीर

*'आग्नेयमामिषकरं प्राणदं रससंभवम्।' (ध० नि०)।

का रक्त रोगी व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करता है। उचित मात्रा में रक्त प्रविष्ट हो जाने पर नलियों को उठाकर दोनों हाथों की वाहिनियों को बंद कर देते हैं। इसी तरह युवा, बलवान् और स्वस्थ प्राणी का रक्त निर्वल क्षीण प्राणी के शरीर में उसे बलवान् बनाने के हेतु प्रवेशित करते हैं। कबूतर या दरशान पक्षी अर्थात् नीलकंठ या बगुले का रक्त गुलरोगन में मिलाकर शिरोजात आघात पर टपकाने से सूजन नहीं होने पाती। इसी प्रकार नेत्र में जब लाल नुक्ता (लहमः) उत्पन्न हो जाता है, तब इसको या विशेषकर पक्षी के पर की डंडी और जड़ का रक्त टपकाने से चमत्कारी लाभ होता है। रक्त दीर्घपाकी होता है। उसमें भी गाढ़ा रक्त तो बहुत ही गुरु होता है। भेड़, बकरी और ऊँट का रक्त भून कर खाने से अतिसार बंद हो जाता है। (मुहीत)।

खूनखराबः—संज्ञा पुं० [फा०] हीरादोखी। दम्मुलखवैन।

खूनजहरः—संज्ञा पुं० [फा०] कनेर। करवीर।

खूनेसियावसाँ—संज्ञा पुं० [फा०] हीरादोखी। दम्मुलखवैन।

खूबकलाँ—संज्ञा पुं० [फा, हि०] खाकसी। खाकसीर।

खूबदान—संज्ञा पुं० [फा०] खाकसी। खाकसीर।

खूबः—संज्ञा पुं० [अ०] खाकसी।

खूबविरस्त—संज्ञा पुं० [फा०] खुब्बाजी।

खूबानी—संज्ञा स्त्री० [पं०, फा०]

पर्याय—खूबानी, कीसी (मख्जन), कीसी—फा०।
एप्रिकॉट (Apricot)—अं०। सूखे हुए जरदालू को खूबानी कहते हैं। इसकी गुठली निकालकर उसकी गिरी को छीलकर उसके स्थान में रख देते हैं और कभी बादाम की गिरी धर देते हैं। इसे 'शकरवादाम' कहते हैं। सूखा हुआ फल ताजे की अपेक्षा उत्तम होता है। शीतप्रधान देशों में उत्पन्न होता है। मधुर और अम्ल भेद से जरदालू दो प्रकार का होता है। अस्तु, खूबानी भी दो प्रकार की होगी। गुठली की गिरी भी किसी की मीठी और किसी की तिक्त होती है। वि० दे० 'जरदालू'।

• **प्रकृति**—अम्ल शीतल और स्निग्ध और मधुर उष्ण एवं स्निग्ध है। अहितकर और निवारण—शीघ्र सड़ जाती है, आध्मान उत्पन्न करती है, अम्लोद्गार लाती है, तपेअफनी पैदा करती है। वृद्धों, शीतलप्रकृतिवालों और बालीवालों (साहवान रियाह) को आक्षेप (तमद्द) और मंदाग्निवाले को अम्लोद्गार अर्थात् अम्लपित्त को यह हानिकारक है। अजवायन, मस्तगी, अनीसून, मिश्री (शकर सफेद) और जवारिश कम्पूनी इसके निवारण हैं। इस पर शीतल जल पीना या इसे अजीर्ण की दशा में खाना और गुरु (गलीज) भोजनोत्तर खाना या इसको खाकर

अम्ल पदार्थ खा लेना भी हानिकर है। मस्तगी, अनीसून और शर्करा तथा सिकंजवीन इसके निवारण हैं अथवा वमन करें या हड़ और सौंफ से शरीर का शोधन करें। इसको निहार और निरंतर खाने से पेचिस पैदा होती है। मिश्री (शकर सफेद) और अनीसून से उनका निवारण होता है। प्रतिनिधि—आड़ू या शफताबू। ग्रह—चंद्र। प्रधान कर्म—रक्तप्रकोपशामक, पित्तप्रकोपहारक, तृष्णानाशक और सारक है। मात्रा—आवश्यकतानुसार।

गुणधर्म तथा प्रयोग—उष्ण प्रकृति को सात्त्विक है, मुख-दीर्घान्धनाशक और पित्तविरेचनकर्ता है। यह तृष्णा को और खून के और पित्त के जोश को शमन करती है। यह दोषों को प्रकृतिस्थ (मुअतदिलुल क्लियाम) करती है। इससे खुलकर मलोत्सर्ग होता है। इसके लेप से कठिनाता (मुलाबत) दूर हो जाती है। यह अवरोधोद्घाटन करती रक्तज्वर और पित्तज्वर को लाभ पहुँचाती है। पित्तज उष्ण ज्वर में इसे खिलाकर गरम पानी और मधु पिलाने से वमन होकर ज्वर शमन हो जाता है। आमाशय का दाह और दग्धोद्गार को दूर करती है। विशेषकर खटमिट्टी खूबानी की गिरी अर्श में लाभकारी है, अंगों को शक्ति प्रदान करती और उदरकृमियों को नष्ट करती है। इसके बीज बाजीकरण और दीर्घपाकी हैं।

खूय—[फा०] स्वेद, अर्क, पसीना।

खूरद—[तु०] बहेड़ा। विभीतक।

खूसट—संज्ञा पुं० [हि०] उल्लू। उलूक पक्षी। घुग्घू।

खेकसा—संज्ञा पुं० [देश०] (?) पर्याय—(सं०) कर्कोटक, कुष्माण्डी, कर्कोटी, कर्कोटिका, पीतपुष्पा, महाजाली, महाजालिनिका, अवन्ध्या, मनोज्ञ, मनस्विनी, बोधनाजालि; (हि०) ककोड़ा, ककरोल; (वं०) काँकरोल; (गु०) कडवी घीसोड़ी; (म०) काँटाली; (ते०) आगारकर; (ले०) 'म्युरिसिया कोचोन'—चाइनेन्सिस (Muricia Cochin Chinensis)।

कूष्माण्डादि कुल (Family : Cucurbitaceae)

उद्भवस्थान—भारतवर्ष, बंगाल, कनाड़ा, दक्कन।

परिचय—एक कन्दजातीय लता है। इसके कन्द शकर-कंदतुल्य होते हैं। वर्षारम्भ में कंद से उत्पन्न शाखाएँ कँटीले वृक्षों तथा अन्य झाड़ियों पर फैलती हैं। इसकी पत्तियाँ बन्दाल की पत्तियों की सी होती हैं। वन्ध्या-ककोड़ा और सामान्य ककोड़ा जिसमें फल लगते हैं, भेद से यह दो प्रकार का होता है। वन्ध्याककोड़ा में पुष्प लगते हैं; किन्तु इसमें फल नहीं लगते। स्वादभेद से ककोड़ा दो प्रकार का होता है। फल बन्दालके फलसदृश कँटीले होते हैं। फल का शाक निर्माणकर खाया जाता है। इसका तृतीय भेद 'भूँइ खखसा' है। दे० 'मार्कण्डिका'

रासायनिक संगठन—इसके बीजों से हरिताभ स्थिर तैल ४३.७ प्रतिशत और एक प्रकार का कटु ग्लुको-साइड प्राप्त होता है।

गुण—इसका शाक कटुपाको, अग्निदीपक, अरुचि-नाशक, श्वास-कास-मलदोषनाशक तथा कुष्ठघ्न है। (भा० पू० शाकवर्ग)। वनककोटक—सर्पविषनाशक है (भैष० विषाधिकार)। (२) वन्ध्याककोटक (बाँझ लेकसा)—इसका कंद सर्पविष नाशक है।

पर्याय—(सं०) वन्ध्याककोटकी, देवी, कन्या, योगीश्वरी, नागारि, नक्रदमनी, विषकण्टकिनी, वन्ध्या, नागाराति, नागयन्त्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिनचा, पुत्रदा, सकन्दा, कन्द-वल्ली, ईश्वरी, श्री कन्दा, सुगन्धा, सर्पदमनी, विष-कन्दकिनी, वरा, कन्दशालिनी, भूतापहा, सर्वौषधी, विषमोह प्रशमनी, महायोगेश्वरी; (हि०) बाँझ ककोड़ा, वन ककोड़ा, बाँझ खखसा; (बं०) तित काँकरोल; (म०) बाँझ कटोली; (गु०) बाँझकटोली; (कना०) बजे मडवागलु; (ले०) मोमोडिका-डायोडिकामेल (momordica-dioica-mall); (कना०) करीच बल्लि; (ता०) ऐगर वल्ली; (ते०) करकोटकी। (भा० पू० १)।

(३) **भूँइखखसा**—पर्याय (सं०) मार्कण्डिका, भूमि-वल्ली, मार्कण्डी, मृदुरेचनी, भूमिचरी, भूम्याहुल्य; (बं०) काँकरोल भेद, पीतपुष्पी, पीतपुष्पा, जालतिका, महौषधी; (बम्ब०) भूँइतरवड़; (गु०) घोली मोढी आवर; (कना०) तलाइ वल्ली; (ते०) नेलतावेड़ी।

खेई—संज्ञा स्त्री० [देश०] झाड़वेर की शुष्क शाखा।

खेऊ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो ब्रह्मा में प्रायः होता है।

खेखोरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शब्दकारी लाठी। शब्दकारिणी यष्टि। वह लाठी जिसमें झुझनी लगी होती है। इसको धारण करने से रात्रि में सर्पादि निकट नहीं आते, शब्द सुनकर भाग जाते हैं।

खेगमन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालकण्ठ नाम का पक्षी। (श० मा०)।

खेचड़ीमन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]।

खेचर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पारा। पारद। (२) पक्षी। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खेचराक्ष। (वै० निघ०)। (२) हीराकसीस। कासीस। (र० सा० सं०)। (३) पारद विशेष।

खेचरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमरवेल। आकाशवल्ली। (वै० निघ०)।

खेचराञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हीराकसीस। काशीस। (वै० निघ०)।

खेचरान्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खिचड़ी। खेचरिका। पाकराज।

खेचरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खिचड़ी। पाक राज।

खेचरी गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खगेश्वरी-गुटिका। राक्षसी गुटिका।

निर्माण-विधि—नीलाथोथा और विशुद्ध पारद ग्रहणकर लौह की कड़ाही में प्रथम नीलाथोथा जो परिमाण में १ सेर हो चूर्णकर स्थापन करें और उसमें गड़ढा बनाकर मध्य में पारद रखें और पुनः उतना ही चूर्ण से बंद कर दें तथा आक, धतूरा, थूहर का रस वा दुग्ध ४-४ सेर ग्रहण कर कड़ाही में डालें और चूल्हा पर स्थापन कर नीचे तीव्र अग्नि दें। जब उक्त रस गाढ़ा हो जाय तब कड़ाही को चूल्हा से उतारकर जल से भली-भाँति प्रच्छालन करें। इस प्रकार करने से पारद की लुगदी बन जाती है। इस घनीभूत पारद को खरल में डालकर सिंहेनेत्री (श्वेत कटेरी), घनप्रिया (वनजम्बु) और कागजी नींबू के रस में ७-७ दिन पर्यन्त मर्दन करें और बच्छनाग के स्थूलकंद में गड़ढा खोदकर उक्त मर्दित पारद को स्थापनकर उक्त विष के खंड से भली-भाँति बन्दकर ऊपर सूत से बाँधकर दोला-यंत्र में स्थापनकर उसमें धतूरतैल भरकर ६४ दिन पर्यन्त मन्दाग्नि द्वारा पाचन करें। जब तेल की मात्रा दग्ध होकर अल्प हो जाय तब पुनः तेल डाल दिया करें। इसी प्रकार मालकांगनी, लांगली, घुंघची, अंकोल और भल्लातक के पृथक्-पृथक् ६४-६४ दिन पाचन करें। इस प्रकार करने से पारद बुभुक्षित हो जाता है और इसमें स्वर्णादि धातुओं को ग्रसने की शक्ति आ जाती है।

गुण—इसको चाँदी में पिघलाकर तथा राँगा में पिघलाकर डालने से स्वर्ण तथा रजत हो जाता है। मुख में धारण करने से मनुष्य अदृश्य होता है तथा आकाश में विचरने की शक्ति प्राप्त होती है। जरा तथा वृद्धावस्था का नाश होता है। क्षणमात्र में १००० क्रोश यात्रा करने की शक्ति प्राप्त होती है।

खेजड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शमी। ठोकरा।

खेट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कफ। श्लेष्म। (२) घोड़ा। अश्व।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खड़। तृण। (श० र०)। (२) कनेर। करवीर वृक्ष। लघुड़। (३) चमड़ा। खाल। चर्म। (बं०) टाल।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] अपरा। अमरा। (अं०) प्लेसेंटा (Placenta)।

खेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शोक। गम। रंज। (२) अवसन्नता। अवसाद। (ज०)।

खेदज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शोकज ज्वर। आगन्तुज-ज्वरभेद।

खेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अपराजिता । असनपर्णी ।
(श० च०) ।

खेय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] परिखा । (अ०) ।

खेय—संज्ञा पुं० [अ०] प्रकृति । स्वभाव । आदत ।

खेमतुलमुखीख—संज्ञा पुं० [अ०] उम्मगलीज । मस्तिष्क के ऊपरी पटल का वह भाग जो लघु वा वृहन्मस्तिष्क के मध्य में उठा होता है ।

खेरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ । दे 'खैरी' ।

खेरनिट्यः—संज्ञा पुं० [अ०] वह दुष्टव्रण जो क्लिष्टतापूर्वक शमन हो ।

खेलन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खेल । क्रीड़ा । क्रोडन ।
(ह०) ।

खेलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीफा । शारिफल । आत । (हे०) ।

खेला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्वनाम से प्रसिद्ध क्षुध । केना । गुण—मधुर, शीतल, दुग्धवर्धक तथा रुचिकारक है । (रा० नि० व० ५) । (२) खेल । क्रीड़ा ।

खेलान—[अ०, बहु० व०] [एक व० 'खाल'] तिल । शरीर पर सहज उत्पन्न एक प्रकार का कृष्णवर्ण का चिह्न जो शरीर के अन्यान्य स्थानों तथा प्रायः कपोलों पर होता है । (अं०) फुरीकिल्ज ।

खेलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सूर्य । (२) वाण । (३) पक्षी । (४) जन्तु । (अज०) ।

खेव—संज्ञा पुं० [देश०] ऊसरभूमि में उत्पन्न तृण ।

खेवनाव—संज्ञा पुं० [देश०] ।

खेसर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खच्चड़ । अश्वतर । (रा० नि० व० १९) ।

खेसारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी । केराव । लतरी ।
(सं०) कसर । दे० 'केराव' ।

खेसाँदा—संज्ञा पुं० [फा०] हिम । फाण्ट । खिसाँदा ।

खैक—संज्ञा पुं० [अन्दलुस] आस । विलायती मेंहदी ।

खैगल—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भेड़िया । वृक । (२) गोल ।

खैज—संज्ञा पुं० [अ०] साही । सेही । शल्यकी ।

खै(खे)जरान—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] बैत । (म० अ०); मु० आ०) । चौब बैत ।

खैजरान बलदी—संज्ञा पुं० [अन्दलुस] आस-बरी । जंगली मेंहदी ।

खैत—संज्ञा पुं० [अ०] शुतुरमुर्ग ।

खैतअ—संज्ञा पुं० [अ०] सूत्र । सूत । डोरा । धागा । (अं०) थ्रेड (Thread) ।

खैतल—संज्ञा पुं० [अ०] बिल्ली । विडाल । माज्जर ।

खैती—संज्ञा पुं० [अ०] शुतुरमुर्ग ।

खैतुरक्यः—संज्ञा पुं० [अ०] श्रीवाकसेष्का में स्थित मस्तुलुङ्ग ।

गरदन का हरागमज्ज । वह मस्तुलुङ्ग जो गरदन के मोहरों में होता है ।

खैर—संज्ञा पुं० [देश०] खदिर । पर्याय—(सं०) गायत्री, बालतनय, दन्तधावन (अ०), पथि-द्रुम (मे०), तित्तसार, कण्टकीद्रुम (र०), प्रसख (श०), भूपद्रु (त्रि०), बालपुत्र, रक्तसार, कर्कटी, जिह्मशल्य (ज०), कुण्डहत, बालपत्रक, भूपद्रुम (शब्दर०), बालपत्र, खद्यपत्री, क्षिति-क्षम, सुशल्य, वक्रकण्टक, यज्ञाङ्ग, जिह्मशल्य, कण्टी, सारद्रुम, कुण्डारि, बहुसार, मेध्य, क्षितिक्षय; (वं०) खयेर गाछ: (म०) खैर; (ले०) अकेशिया । केटेच्यू (Accacia Catechu); (गु०) खैर; (ते०) चण्ड चेट्ट; (अं०) अकेशिया ।

कत्या—पर्याय—(सं०) खदिरसार, खदिर निर्यास; (वं०) खयेर; (म०) काती, खदिर; (गु०, द०) खैर, काथ, खर; (ते०) पोडेलीमणु, पूगभु; (ता०) वोआडलम्, फरंगल्लि, कसकुक्त; (मल) खदिरम्; (को०) कायु; (अं०) ब्लैक कैटेच्यू (Black Catechu)

पपड़िया-कत्या—पर्याय—(सं०) खदिर, श्वेतसार, कदर, सोमवल्क, सोमवल्कल, ब्रह्मशल्य, खदिरोपम, कामुंक, कुजकण्टक, सोमसार, सोमवृक्ष, पथिद्रुम, श्याम-सार, नेप्रिवृक्ष, कण्ठाढ्य, महावृक्ष, द्विजप्रिय; (हिं०) सफेद खैर ।

(३) दुर्गन्ध खैर—पर्याय—अरिमेद, इरिमेद, विट्खदिर, कालस्कन्ध, विट्, क्रिमिशान्न, गिरिभेद, मरुद्रुम, गोधास्कन्ध, अहिमार, पूतिभेद, अहिमेदक, अतिमेदक; (हिं०) रोवाँ, गन्धाबबुल, दुर्गन्ध खैर; (वं०) गुये बाबला, विटखैर; (म०) शेण्या, खैर, गन्धियाहिंवर; (गु०) गन्धिलोखैर; (अं०) स्पञ्जट्री (Sponge-tree), दी केसिया फलावर (The cassia-flower); (ले०) अकेशिया फार्नेसिएना (Accasia Farnesiana); (ते०) नगंतुम्म; (ता०) पिक्कश्चिल; (कना०) कारिजली; (मल०) कारिधीलम्, पतीतुम्म; (को०) कुली झाड़; (सिन्ध) कूएबावल ।

बव्वरादि कुल (Family : Leguminaceae)

परिचय—(१) इसके वृक्ष सामान्य बबूल के वृक्षों से छोटे होते हैं । पत्तियाँ बबूलपत्रवत् होती हैं । इसकी शाखाओं में वेर के सदृश छोटे-छोटे काँटे होते हैं । इसमें श्वेताभ पुष्प लगते हैं । (२) श्वेत खदिर के वृक्ष भी प्रायः प्रथमभेदतुल्य होते हैं; किन्तु इसका तना श्वेताभ होता है । (३) **विट्खदिर**—इसके वृक्ष भी उक्त प्रथम भेद की भाँति होते हैं । इसमें धूसरवर्ण के पुष्प लगते हैं । इसकी फलियाँ पतली-पतली किंचित् ताम्रवर्ण की होती हैं । इसके नूतन मूल की त्वचा में दुःसह दुर्गन्ध मलवत् होती है ।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के वनोपवन में इसके वृक्ष होते हैं। विन्ध्यपर्वत, बर्मा इत्यादि।

उपयोगी अंग—त्वचा, सत्व, निर्यास, पुष्प, पत्र।

रासायनिक संगठन—इसकी त्वचा में ३५ प्रतिशत खदिरसार (Tannic acid), निर्यास (गोंद), रज्जकसार तथा भस्म इत्यादि।

गुण-कर्म तथा उपयोग—अत्यन्त संग्राही, कासघ्न, अरुचिनाशक, दन्तकण्डूरोगनाशक, विसर्पनाशक, शीतल, क्षतपूरक, व्रणलेखन, कुष्ठघ्न, रक्तावरोधक, तिक्त, कषाय, मेहघ्न, मेदघ्न, कृमिघ्न, शोथघ्न, ज्वरघ्न, रक्तपित्ताशक, श्वित्रघ्न, पाण्डु तथा कफघ्न है।

(२) **श्वेत खदिर**—विशद, वर्ण को उत्तम करनेवाला, मुखरोगनाशक तथा रक्तविकारनाशक है।

(३) **अरिमेद**—कषाय, उष्ण, दन्तरोग, मुखरोग, रक्तविकार, विषविकार, कृमि, कुष्ठ तथा विषजन्यव्रण नाशक है।

तिब्ब के अनुसार—कथा—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष है। इसके अन्य गुणकर्म उपर्युक्त आयुर्वेदीय गुण-कर्म तुल्य ही हैं। मुखरोग तथा दन्तवेदना में अथवा गलशुण्डीविकार में गण्डूष वा मञ्जन के उपयोग में आता है। अतिसार में इसका चूर्ण सेवन करने से लाभ होता है। शरीरगत व्रणों पर इसका अवचूर्णन करने से विशेष उपकार होता है। मरहम में मिश्रितकर वा मक्खन के साथ उपयोग करने से व्रण शीघ्र भर जाता है। इसका चूर्ण सद्यः क्षत पर लगाने से रक्तस्राव बंद होकर शीघ्र ही त्वचा जुट जाती है। इसको पान पर रखकर भक्षण किया जाता है। कथा १ भाग, २ भाग फिटिकरी का चूर्ण सेवन करने से रक्तप्रदर अतिशीघ्र नष्ट होता है। आन्त्रक्षतनाशनार्थ इसका विशेष उपयोग होता है। रक्तातिसार में जब किसी प्रकार लाभ नहीं होता तब इसके मिश्री के साथ ३-४ भाग की मात्रा में देने से शीघ्र लाभ प्रदर्शित होता है।

अहितकर—अश्मरी उत्पादक तथा पुरुषत्वनाशक है।

निवारण—कस्तूरी, अम्बर, जुन्दवेदस्तर।

प्रतिनिधि—गेरू, वंशलोचन, फिटिकरी मांशफल।

मात्रा—१-३ माशा तक। खैरका द्वितीय भेद विट्खदिर है। इसका वर्णन निम्न है।—

पर्याय—(शं०) कालस्कन्ध, काम्भोजी, क्रिमिशान्नेध, मरुद्रुम, अरिमेद, आसमद, हरिमेद, परिमेद, विट् खदिर, पत्रतरु, बहुसार, दुर्गन्धखदिर, खदिरपत्रिका, अरिसंदातिका, दाला; (हिं०) दुर्गन्ध खैर, गूह बबूल; (द०) गूह कीकर, गू बाबूल; (बं०) गूबाबूल; (गु०)

गू बाबूल; (ले०) अकेसिया फार्नेसियाना (Acacia Farnesiana)

बर्बूरादि (शिम्वी) कुल (Family: Leguminosae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष में मध्यभूमि में प्रायः स्वयं उत्पन्न होता है। परिचय—एक प्रकार का झाड़दार वृक्ष है। इसमें सरल कंटक होते हैं। एक सीक में प्रायः १० से २० जोड़ी छोटी-छोटी बबूल की भाँति पत्तियाँ होती हैं। इसकी जड़ के रस में विष्ठा के समान दुर्गन्ध होती है। माघ-फागुन के महीनों में पीतरक्ताभ पुष्प गुच्छे में लगते हैं। मिर्जापुर में रीवाँ के नाम से प्रसिद्ध है।

गुण-कर्म—कटु, उष्ण, रक्त, व्रणदोषनाशक, कण्डू, विष, विसर्पघ्न तथा ज्वर, कुष्ठ और उन्मादनाशक है। (रा० नि० व० ८)। अरिमेद कषाय, उष्ण, रक्त-विकारनाशक तथा मुखदन्तरोगघ्न है। (भावप्रकाश)। अरिमेदः कषायोष्ण मुखदन्त गदासजित। हन्ति कण्डूविष श्लेष्म-कृमिकुष्ठ विष व्रणान्। पुनः—अरिः कषाय कटुका तिक्ता रक्ताति पित्तनुत्। (ध० नि०)। सुश्रुत में कालस्कन्ध के नाम से इसका उल्लेख सालसारादि गण में ३८वें अध्याय सूत्र स्थान में किया गया है।

उपयोग—इसकी छाल का काढ़ा पान करने से रक्ता-तिसार का शीघ्र नाश होता है। इसकी छाल को दशगुना पानी में उबाल कर गण्डूष धारण करने से मुखपाक तथा दन्तरोगों का नाश होता है। इसकी छाल के क्वाथ में मधुमिश्रितकर पान करने से खाँसी जाती रहती है। पत्रस्वरस में मिश्री मिश्रितकर सेवन करने से रक्त-पित्त का शीघ्र नाश होता है। इसके ७॥ मा० पत्तों को पीसकर गोली बनाकर सेवन करने से सपूयमेह (सूजाक) आराम होता है। इसका गोंद वीर्यपुष्टिकर एवं वाजी-कर है। इसके गोंद को मिश्रीयुक्त सेवन करने से श्वेत प्रदर शांत होता है। इसके पुष्पों का परिप्लुत अर्क रक्त-विकारनाशक है। इसकी दुर्गन्ध से सर्प तथा चूहा आदि भाग जाते हैं। अंतरा तथा तिजारी ज्वरों के आने से पूर्व इसकी जड़ सूँघते रहने से ज्वर का आक्रमण नहीं होता। अन्य गुण इसमें वही हैं जो बबूल में पाए जाते हैं। अतः यह उसका उत्तम प्रतिनिधि है।

खैरजल—संज्ञा पुं० [अ०] } बाघी। बद। (अं०) व्युबो
खैरजील—संज्ञा पुं० [अ०] }
(Bubo)।

खैरबवा—संज्ञा पुं० [फा०] छोटी इलायची। ह्रस्व एला।

खैरमः—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो १॥ तोला अर्थात् १ मिस्काल के बराबर होता है।

खैरा—संज्ञा पुं० [देश०] बाजरा के पौधों में लगनेवाला एक रोग।

खैरी—संज्ञा स्त्री० [अ०, यू०, नन्ती], रजनीगन्धा । (फा०) शबबू । शब्बो ।

परिचय—एक प्रकार का छोटा-सा क्षुप है। इसमें पुष्प लगते हैं। यह भारतीय शबबू (रजनीगन्धा), जो उद्यानों में लहसुनतुल्य होता है, नहीं है। यह एक प्रकार का तनावाला क्षुप वा वृक्ष है। इसके तना के ऊपर बहुत-सी शाखाएँ होती हैं। इसकी त्वचा श्वेताभ होती है। इसका पत्र किंचित् लोमश होता है। तना के ऊपरी भाग में पुष्प लगता है। यह पुष्प के वर्णभेद से कतिपय प्रकार का होता है। किसी का पुष्प—पीत, श्वेत, रक्त तथा नीलवर्ण का होता है। औषधीय उपयोगार्थ केवल पीत और रक्तपुष्पवाला व्यवहृत होता है। रक्तपुष्पवाले को फारसी में 'खिलाल-इन्नाहिम' कहते हैं। उद्यानज और अरण्यज भेद से यह भी दो प्रकार का होता है। अरण्यज भेदवाले को फारसी में 'अर्दानः' कहते हैं। खैरी को अरब तथा इराक में 'मंसूर' कहते हैं। इब्नजहर के अनुसार मंसूरसुख ही खैरी है। इसके पुष्प सुगन्धपूर्ण होते हैं।

उपयोगी अंग—पुष्प, बीज, मूल, पत्र। पुष्पों का गंध रात्रि में फैलता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। किसी के अनुसार प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

पीत पुष्प की खैरी—प्रकृति तथा गुण-कर्म और उपयोग—वातघ्न एवं उष्ण है। इसका पुष्प सूँघने से मस्तिष्कगत वायु और कफ का नाश होता है। इसके क्वाथ में अवगाहन करने से मूत्र-रज का प्रवर्तन होता है। गर्भगत मृतशिशु और अमरा निकल जाती है। इसकी फलवर्त्ती भी गर्भाशय में धारण करने से उत्तम गुण प्राप्त होते हैं। इसके पुष्पों के उपयोग से-आमाशयान्त्रगत वायु शांत होती है। ह्रिक्का रुक जाती है। शक्तिवर्धक तथा वर्णप्रद है। इसको जल में घिसकर नेत्रांजन करने से जाला कट जाता है। १० माशा पीसकर सेवन करने से रजोरोध जाता रहता है।

रोगनगुलखैरी—इसके पुष्पों से गुलरोगन की भाँति तैल प्रस्तुत किया जाता है। गुण—शोथदिलयन है। इसका नस्य ग्रहण करने से सुदा विलीन होता है। खीरा, ककड़ी, खर्बूजा, कद्दू के बीजों के साथ वा शर्वत बजूरी के साथ सेवन करने से बस्तिवृक्कगत अश्मरी नष्ट होती है। इसके तेल में रूई भिगाकर गर्भाशय में स्थापन करने से मूदगर्भ का नाश होता है। अंजुरह के बीजों के साथ अभ्यङ्ग करने से मैथुनशक्ति की वृद्धि होती है।

बीज—इसके बीजों को मधु के साथ पीसकर फलवर्त्ति निर्माणकर योनि में स्थापन करने से गर्भपात होता है। बीजों को पीसकर प्रलेप करने से सन्धिवेदना शान्त

होती है। इसका मूल तथा पत्र पीसकर प्लीहास्थल पर लेप करने से प्लीह-शोथ विलीन होता है। अरण्यज खैरी का गुण-धर्म इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट है।

अहितकर—शिरोवेदनाकारक और गर्भपातक है।

निवारण—सिरका, और रोगन गुल।

प्रतिनिधि—

मात्रा—९ से १४ माशा तक।

खैरु—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'खित्मी'।

खैरुनिय्य—संज्ञा पुं० [अ०] वह दुष्टव्रण जो विलप्टतापूर्वक साध्य हो।

खैशअऊर—संज्ञा पुं० [?] (१) भेड़िया, वृक। (२) गोल। (३) किसी के अनुसार एक प्रकार का कीट जो जल के धरातल पर नित्य चलता फिरता रहता है। कुतरव। जलभ्रमर। पौड़किया।

खैशकज—संज्ञा पुं० [अ०] बिनौला। कार्पास बीज। पुंवः दाना।

खैतूस—संज्ञा पुं० [अ० बहुव०; एक व० 'खयाशीम']। नासिका के नथूनों का ऊपरी भाग। (अ०) गिल्ल (Gill), ब्राँझी (Bronchi)।

खोआ—संज्ञा पुं० [देश०] दुग्धविकार। मावा।

खोइया—संज्ञा स्त्री० [हि०] लाजा। खील। लावा।

खोई—संज्ञा पुं० [वं०] लाजा। लावा। खील।

खो (खू) क—संज्ञा पुं० [फा०] शूकर। सूअर। बनैला सूअर।

खो (खू) कमाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) दिलफोन। सूईस। (२) गाजर।

खोट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

खोटक—संज्ञा पुं० [सं० वली०] } पुट। यमक।

खोटवद्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारदजारणद्रव्य। लक्षण—गन्धक और पारद को पपंटी को पोटवद्ध और पिष्ठबंध को 'खोटक' कहते। किसी के अनुसार—खोट, पोट, जलौका और भस्म इस प्रकार वद्ध पारद के ४ भेद हैं। अथवा जो वद्ध पारद चलने-फिरने से रहित हो और अग्नि में धमाने से क्षय को प्राप्त हो, उसको 'खोट वद्ध' कहते हैं। यह शीघ्र रोगनाशक है। पारदवद्ध, के कतिपय प्रकार हैं:—(१) पिष्टी वद्ध, (२) क्षारवद्ध, (३) खोटवद्ध, (४) पोटवद्ध, (५) कल्क वद्ध (६) कज्जली वद्ध, (७) सजीववद्ध, (८) निर्जीववद्ध, (९) सबीजवद्ध, (१०) शृंखलावद्ध, (११) द्रुतिवद्ध, (१२) बालवद्ध, (१३) कुमारवद्ध, (१४) तरुणवद्ध, (१५) वृद्धवद्ध, (१६) जलवद्ध। (१७) अग्निवद्ध और (१८) वद्धाभिधान। रसभेद से वद्धपारद के उक्त १८ भेद हैं।

खोटि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

खोटौ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) कन्दुखोटौ

(च० द० वा० व्याधि चि०)। कौडियालोवान । (२)
पालङ्की क्षुप । (श० च०) ।

खोटी-पाटला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कठपाटल ।
काष्ठपाटला ।

खोड—वि० [सं० त्रि०]
खोडर—वि० [सं० त्रि०] } लंगड़ा । खञ्ज । (अम०) ।
खोडल—वि० [सं० त्रि०]

खोडक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिगरफ । हिङ्गुल ।

खोड-शीर्षक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिगरफ । हिङ्गुल ।

खोया—संज्ञा पुं० [देश०] दुग्धविकार । क्षीरकुचिका ।
मावा ।

खोई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष ।

खोपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] नारियल की गिरी । नारिकेल
मञ्जा । गरी का गोला ।

खोर—संज्ञा पुं० [देश०] वनरीष ।

खोरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्दभज्वर । (गजवै०) ।

खोल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) कोष । (२) दोहरदुपट्टा ।
दुपलिया ।

खोलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दीमक । वल्मीक । (२)
पगड़ी । शिरस्त्राण । (त्रिका०) । (३) सोपारी का
खोल । पूगकोष । (बं०) सूपारिखोला । (मे०) ।

खोलि—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] तून । तूण । (श० मा०) ।

खोषाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शाक भेद । जीवशाक ।
(बं०) खोसना । 'खोषाहः शाकवरिश्च जीवशाकः
प्रबालकः ।' (द्रव्याभि०) ।

खोसना—संज्ञा पुं० [बं०] जीवशाक । खोषाह ।

खौकअ—संज्ञा पुं० [अ०] हिजाबुल्कल्व का एक प्रकार ।

खौकरह—संज्ञा पुं० [फा०] जर्नव ।

खौख—संज्ञा पुं० [अ०] आड़ू । आलूचा । सल्फतालू ।

खौखअकरअ—संज्ञा पुं० [अ०] सपतालू नाम की एक
वनस्पति है ।

खौज—संज्ञा पुं० [अ०] विचार करना । सोचना ।

खौजह—संज्ञा पुं० [अ०] शिरोशूल का एक भेद जो समस्त

खौदः—संज्ञा पुं० [अ०] शिर में होता है । यह एक

खौदियः—संज्ञा पुं० [अ०] प्रकार की असाध्य वा उग्र

खौदित्य—संज्ञा पुं० [अ०] वेदना है । इसमें रोगी को
शब्द व प्रकाश असह्य होता है । रोगी अन्धकार में रहना
पसंद करता है और इसमें हथौड़े से कूटने की सी वेदना
होती है । पर्याय—(अ०) सुदाअ वैजः ; (अ०) मिग्रेन
(Migraine) । खौजह और वैजः के अन्तर के लिए
दे० 'वैजः' ।

खौफ—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] आतंक । भय । डर ।

खौफनूर—संज्ञा पुं० [अ०] प्रकाश से भय प्रतीत होना ।
रोशनी से डरना । चौधियाना । प्रकाश के कारण नेत्रों

का चकाचौंध हो जाना । पर्याय (अ०) बुगनुलऐन ;
(अ०) फोटोफोबिया (Photophobia), गिल्ज (Gils) ।

खौफुल्मकान—संज्ञा पुं० [अ०] किसी उजाड़ तथा अनदेख
गृह में जाने से भयभीत होना अथवा उसका स्मरण
होने से भय उत्पन्न होना ।

खौफुल्मज—संज्ञा पुं० [अ०] रोग से भय उत्पन्न होना अथवा
वहम से निज को रोगी समझना ।

खौफुल्मौत—संज्ञा पुं० [अ०] मृत्यु वा मृतक से भयभीत
खौफुल्मौते—संज्ञा पुं० [अ०] होना । यह एक प्रकार का
उन्माद अर्थात् मालीखोलिया है ।

खौर्म—संज्ञा पुं० [अ०] नासावंश । नाक की रीढ़ । नाक
का बाँसा ।

खौर्या—संज्ञा पुं० [अ०] यह कोर्या का अपभ्रंश है । कम्प ।
राअशः ।

खौल—संज्ञा पुं० [अ०] चकोर पक्षी ।

खौलान—संज्ञा पुं० [मिस्र०] रसाञ्जन । रसोत ।

खौलिञ्जान—[अ०] कुलंजन । कुलीजन ।

खौशान—संज्ञा पुं० [अ०] कुक्षिद्वय । दोनों कोख ।

खौस—संज्ञा पुं० [अ०] नेत्रों का भीतर बैठ जाना । आँखोंका
नीचे दब जाना ।

ख्वाजा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) अइसा । वासक । आटछष ।
(२) पियाबाँसा । (ख० अ०) ।

ख्वाब बेवारी—संज्ञा पुं० [फा०] शयन व जागरण । सोना-
जागना ।

ग

गअआनफीन—संज्ञा पुं० [चीन] कमल । पद्म ।

गइ—संज्ञा स्त्री० [बं०] पीपर । पिप्पल । अश्वत्थ वृक्ष ।

गइर—संज्ञा पुं० [कुमार्युं, पं०] खमसीर, गुलौली, गच्छ,
गलबु । (मेमो०) ।

गऊ—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गाय । गौ । गवी ।

गगन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अभ्रक । अबरख ।
अभ्र । (२) आकाश ।

गगनगर्भिका-वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वातव्याधि में
प्रयुक्त उक्त नाम का योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध
पारद, शुद्ध गन्धक समान भाग की कज्जली, अभ्रकभस्म;
लोह भस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल और सोंठ, भारंगी,
बच, धनियाँ, कबीला, हरीतकी और शुद्ध बछनाग
तुल्यभाग में ग्रहणकर एकत्र चूर्ण करें और पित्त-
पापड़ा के काथमें मर्दनकर निष्क प्रमाण की गोलियाँ
बनाएँ । इसे यथोचित अनुपात से सेवन करने से वात
तथा कफजन्य रोगों का शीघ्र नाश होता है ।
(वृ० र० रा० सु०) ।

गगनचर—वि० [सं० त्रि०] आकाशचारी (पक्षी) ।

गगन धप—संज्ञा पुं० [?] केकड़ा । कर्कट । खरचंग ।

गगनधूल—संज्ञा पुं० [देश०] कुरमुत्ता । खुमी । छत्रिका ।
गगनध्वज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मेघ । बादल ।
(२) सूर्य । (हे०) ।

गगनभेड—संज्ञा पुं० [] कराङ्कुल । गंगा पालक । कुज नाम का पक्षी । दे० 'कराङ्कुल' ।

गगनमारकगण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अभ्रकमारकद्रव्य गण ।

गगनवाण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अभ्रक । अवरख ।

गगन सुन्दर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ग्रहणी अधिकारीत उक्त नाम का रसयोग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—भूना सुहागा, शुद्ध हिङ्गुल, शुद्धगन्धक, अभ्रक भस्म सर्वतुल्य भाग में ग्रहणकर दुद्धी के रस में मर्दन करें । इसी प्रकार उक्त रस में ३ दिन पर्यन्त मर्दनकर २-२ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गुण तथा सेवन-विधि—१-१ गोली मधु और २ रत्ती राल के चूर्ण के साथ सेवन करने से ज्वरातिसार, रुधिरविकार तथा आमशूल में तक्र वा बकरी के दुग्ध के साथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है । (भैष०) ।

(२) शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, अभ्रक भस्म ८ तोला जल से मर्दन कर २-४ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ ।

गगनस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायु । (वै० निघ०) ।

गगनादिलौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोमरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक की कज्जली, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, भूना सुहागा, शुद्ध वच्छनाग, त्रिफला, त्रिकुटा, कूड़ा की छाल, सज्जी, तेजपत्र, दालचीनी, दोनों जीरा, और बंगभस्म । सबका ३ भाग चित्रकमूलचूर्ण मिश्रितकर चूर्ण करें ।

मात्रा—३ से १० माशा तक । मधु के साथ सेवन करने से मूत्रातिसार और सोमरोग का नाश होता है ।

गगनादिवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वातरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—

शुद्ध अभ्रकभस्म, शुद्धगन्धक, शुद्धपारद, ताम्रभस्म, मुण्डलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म सर्वतुल्यभाग में ग्रहणकर इसमें मुलहठी, कमल, अबूसा, द्राक्षा, और विदारिकन्द के रस वा क्वाथ के साथ मर्दन करें और घृत और मधु मिश्रितकर निष्क प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । गुण तथा सेवन-विधि—चन्दन और कर्पूर के साथ सेवन करने से घोर वातज रोग, पित्तज रोग, क्षय, भ्रम, मद, कफ, दाह, शोष तथा वृष्णा का शीघ्र नाश होता है । (वृ० र० रा० सु०; र०सा० सं०) ।

गगनाध्वग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूयं । (हे०) ।

गगनाम्बु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आकाशजल । आकाश-वारि । गुण—दे० 'जल' ।

गगनेचर—वि० [सं० त्रि०] आकाशचारी (पक्षी इत्यादि) ।

गगनोदक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आकाशजल । गगनाम्बु । दे० 'जल' ।

गगरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तुलसी ।

गगापाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुकरीधा । कुकुरद्रु ।

गगेरु—संज्ञा पुं० [सं०] खिरैटी । बला । बरियरा ।

गगोरी—संज्ञा पुं० [सं० गर्ग] एक प्रकार का कीट है ।

गगोरी—संज्ञा पुं० [काश०] चीमुल । पर्याय—(हिमालय) सुरंगार, शिवला; (नैपाल) चिरिआलु; (ले०) होडोडेण्ड्रोन कॅम्पन्युलेटम् ।

तालिसफर (कुल) ।

उद्भवस्थान—हिमवती पर्वत तथा कश्मीर से भूतान पर्यन्त ।

परिचय—तालिसफरतुल्य एक वृक्ष है ।

गुण तथा उपयोग—इसकी पत्तियों को खाने से बकरियों की मृत्यु होती है । इसकी पत्तियाँ तमाकू की पत्तियों के साथ पीसकर प्रलेप करने से अर्द्धाविमेदक तथा अन्य शीतजन्म रोगों में उपकार होता है । फिरंग रोग, गृध्रसी और सन्धिवात में उपयोगी हैं । यक्ष्मा और जीर्णज्वर में नैपाल के व्यक्ति इसके काष्ठ और शुष्क त्वचा का उपयोग करते हैं । (वैट) ।

गगेरु चेदु—संज्ञा पुं० [ते०] तुलसी ।

गगेरु—संज्ञा पुं० [ते०] डीकामाली ।

गगूर—[काश०] (कुमार्यु) ।

गङ्ग—संज्ञा पुं० [मग०] रञ्जन-वं० ।

गङ्गई—संज्ञा स्त्री० [आसाम] कमीला । (मेमो०) ।

गङ्गका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वनाम से प्रसिद्ध गंगा नदी ।

गङ्गगरया—संज्ञा पुं० [ते०] पारसपीपर । (मेमो०) ।

गङ्गटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उतरन । इन्ध्वरी । मेघशृङ्गी ।

गङ्गतरेया—संज्ञा स्त्री ["] } गंगा की तराई में होने-
गङ्गतिरिया—संज्ञा स्त्री ["] }

वाली प्रसिद्ध ओषधि । जलपीपर । जलपिप्पली ।

गङ्गर—संज्ञा पुं० [पं०, हि०] कङ्गु, कुङ्गु (पं०) । मेमो० ।

गङ्गरावी चेदु—संज्ञा पुं० [ते०] बकाइन । महानिम्ब भेद ।

गङ्गरेणु पण्डु—संज्ञा पुं० [ते०] वेर । बदरी ।

गङ्गवा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, बं०] तेजबल, गेरिया, गेओर । (मेमो०) । (Exicaria Agalocha)

गङ्गा—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] स्वनाम से प्रसिद्ध भारतवर्ष की परम पवित्र जलवाली नदी । भागीरथी ।

गङ्गा चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुक्कुटी । मुर्गावी ।
गङ्गाजल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गंगा नदी का पानी ।
दे० 'जल' ।

गङ्गाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वनस्पति विशेष ।
(२) झींगा मछली । गङ्गाट्टेयमत्स्य । (वृ० नि० २०
पृ० २३१) ।

गङ्गाट्टेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] झींगा । झिगवा । चिङ्गट
मत्स्य । चिङ्गिमाळ—वं० । दे० 'झिगा' ।

गङ्गाधर क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिसाररोग में प्रयुक्त
उक्त नाम का कषाय । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—
कञ्चट (काँचड़ा), अनार, जामुन की छाल, सिवाड़ा की
पत्ती, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ प्रत्येक २२।।
रत्ती ग्रहणकर यथाविधि क्वाथ कर पानार्थ देने से गंगा के
वेग सहित अतिसार का नाश होता है । (भा०) ।

गङ्गाधर चूर्ण (वृहत्)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अतिसार
में प्रयुक्त उक्त नाम का चूर्णयोग । (१) द्रव्य तथा निर्माण
विधि—मोथा, सोनापाठा, सोंठ, धौ का फूल, लोध, सुगन्ध-
वाला, वेल की गिरी, शलाट्ट (वेल), मोचरस, पाठा,
इन्द्रयव, कुड़ा की छाल, दालचीनी, आम की गुठली,
लजालू, अतीस—प्रत्येक समान भाग में ग्रहणकर चूर्णकर
उपयोग करने से गंगा के वेग तुल्य अतिसार का नाश
होता है । अनुपान—दधि, तक्र ।

(२) मोथा—इन्द्रयव, मोचरस, वेलगिरी, धव पुष्प,
लोध, वेल—इन्हें समानभाग में ग्रहणकर चूर्ण करें ।
अनुपान—गुड़ ।

(३) मोथा—इन्द्रयव, मोचरस, वेलगिरी, सोंठ,
धवपुष्प, लोध, प्रत्येक समानभाग में ग्रहणकर चूर्ण
करें ।

(४) मोचरस, मोथा, सोंठ, पाठा, सोनापाठा, धवपुष्प
प्रत्येक समभाग में ग्रहणकर यथाविधि चूर्ण कर उपयोग
करने से अतिसार नष्ट होता है । (भा० म० १ भ०) ।

गङ्गाधर रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अतिसारचिकित्सा
में प्रयुक्त उक्त नाम का रसयोग । द्रव्य तथा निर्माण-
विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक समानभाग की
कज्जली निर्माणकर इसमें—नागरमोथा, मोचरस,
लोध, कुड़ा की छाल, वेलगिरी, धवपुष्प और शुद्ध
अफीम समानभाग में चूर्ण कर एकत्र मिश्रित करें ।

गुण तथा सेवन-विधि—गुड़छाँह के साथ ३ रत्ती की
मात्रा में प्रातः सायं सेवन करने से अतिसार और संग्रहणी
का शीघ्र नाश होता है । पथ्य—दधि-भात । (लक्ष्मणो-
त्सव ग्रन्थ से) ।

गङ्गापत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्वनाम से
प्रसिद्ध पत्रशाक विशेष । पर्याय—(कना०) मट्ट
गान्धारी; (सं०) पत्री, सुगन्धा, गन्धपत्रिका । गुण—कटु,

उष्ण, वातघ्न, तथा व्रणरोपण है । (रा० नि० व० १०) ।
(२० सा० सं० अभ्रमारण) । (२) लजालू ।
लज्जालुका । (वै० निघ०) ।

गङ्गापालक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगली पालक । वन
पालक । वनपालङ्कुशाक ।

गङ्गावती—संज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'गङ्गापत्री'

गङ्गाका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गङ्गा नदी ।

गङ्गिवा—संज्ञा स्त्री० [देश०] तेजवल । (Execaria
Agallocha) ।

गङ्गीचु—संज्ञा पुं० [पं०] सेंहुड़ । थूहर । सेंड ।

गङ्गुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बोरो धान जो गङ्गातट
पर बोया जाता है । (सुश्रुत) ।

गङ्गुरेणिचेट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] पारसपीपर ।

गङ्गुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गङ्गुटी । दे० 'उतरन' ।

गङ्गेर—संज्ञा पुं० [पं०] गुलशकरी । बला भेद ।

गङ्गेरक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] फल विशेष ।

गङ्गेरन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुलशकरी । बला भेद ।
'गंगेरन' ।

गङ्गेरुआ—संज्ञा पुं० [] काठआमला । कर्कट
गङ्गेरुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } फल । (वृ० नि०
गङ्गेरुवा—संज्ञा पुं० [] } २०) ।

गङ्गो—संज्ञा पुं० [सिन्ध] गङ्गेरन । गुलशकरी ।

गङ्गोदक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गङ्गाजल । गंगा नदी का
पानी । दे० 'जल' ।

गङ्गोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोमेद नाम की मणि ।

गच—संज्ञा पुं० [] चूना जो संगजराहत, सेल-
खड़ी, कंकड़ इत्यादि को भस्मकर प्रस्तुत किया जाता है ।
(अं०) प्लाष्टर ऑफ पेरिस ।

गचकरन—संज्ञा पुं० [बम्ब०; गु०] पालकगुही ।

गचकाय—संज्ञा पुं० [ते०] करंज । कठकरंज ।

गच्छ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष । पेड़ । दरख्त ।

(हे० च०) ।

गच्छकाय—संज्ञा पुं० [ते०] कठकरंज । करंज ।

गज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी । हस्ति । (२)
नागकेसर वृक्ष । (वै० निघ०) । (३) गजपीपर । गज-
पिप्पली । (४) गजपुट ।

संज्ञा पुं० [पुं०] करगस ।

गज—संज्ञा पुं० [फा०] } झाऊ । झावुक ।

गज—संज्ञा पुं० [सिन्ध] }

गजअंगबीन—संज्ञा पुं० [अ०, फा०, बम्ब०] झाऊ ।
झावुक ।

गजअञ्जबीन—संज्ञा पुं० [फा०] झाऊ । झावुक ।

गजकणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर, करिकणा, गज-
पिप्पली । (२० मा०) । (सा० कौ० बाहुशालशुद्ध) ।

गजकन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हथिकन । हस्तिकन्द ।
 रीवाँ के जंगलों में प्रायः होता है । (रा० नि० व० ७) ।
 गजकरन—संज्ञा पुं० [सं० गजकर्ण] फीलगोश । हथिकन ।
 हस्तिकन्द ।
 संज्ञा पुं० [बम्ब०] पालकजूही ।
 गजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हथिकन । हस्तिकर्ण ।
 हस्तिकन्द । (२) अरुई । घुइया ।
 गजकर्णआलू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घुइयाँ । अरुई ।
 गजकर्णखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विदारीकन्द ।
 गजकर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हथिकन । हस्तिकन्द ।
 दे० 'हस्तिकन्द' ।
 गजकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ग्रीष्म ऋतु में होने-
 वाली ककड़ी । जेठई ककड़ी । (वै० निघ०) । (२)
 इन्द्रायण । राखालशशा । (रा० नि० व० ३) ।
 गजकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हथिकन । हस्तिकन्द ।
 गजका—संज्ञा पुं० [म०] करंज । करंजुवा । कंजा । दे०
 'करञ्ज' ।
 गजकाय—संज्ञा पुं० [कना०] } करंज । दे० 'करञ्ज' ।
 गजकायी—संज्ञा स्त्री० [] }
 गजकार—संज्ञा पुं० [] जन्तु विशेष ।
 गजकीवा—संज्ञा पुं० [?] पमाड़ । चक्रमहं ।
 गजकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] नागकेसर वृक्ष ।
 (वं०) नागेश्वर गाछ । (भैष० मुखरो०चि० अरिमेदा०
 गुड) ।
 गजकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गजपीपर । गजपिप्पली ।
 गजकृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
 गजकेशर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नागकेसर । नागेश्वर—
 वं० । सि० यो० छदि चि०—एलादि गुड । 'लवङ्ग
 गजकेशर कोल मज्जा ।'
 गजकेसरीरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमज्वर में प्रयुक्त
 योग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्धपारद, शु० गन्धक,
 शु० विष, त्रिकुटा, त्रिफला और शुद्ध जमालगोटा सम
 भाग में ग्रहणकर एकत्र भाँगरा के रस में मर्दनकर
 १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ । (रस-कौ०) ।
 गजगा—संज्ञा पुं० [गु०, म०, द०] कठकरंज ।
 गजगाकायी—संज्ञा स्त्री० [कना०] कठकरंज । (डाइमाँक
 १ भ०, पृ० ४७७) । दे० 'करञ्ज' ।
 गजगो—संज्ञा पुं० [म०, गु०] कठकरंज । (इं० मे० मे०) ।
 गजङ्गवीन—संज्ञा पुं० [फा०, अ०] झाऊ, झावुक, झावुक
 शर्करा ।
 गजगौहर—संज्ञा पुं० [सं० गज+फा० गौहर] गजमुक्ता ।
 गजमणी ।
 गजङ्गी—संज्ञा स्त्री० [ति०] केवड़ा । केवा । केतकी भेद ।
 गजचर्म—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का क्षुद्र कुष्ठ ।

(भा०) । लक्षण—इस क्षुद्र कुष्ठ में पसीना का अभाव
 होता है । यह अधिक दूर तक व्याप्त होता है, चक्राकार,
 मछली की त्वचासदृश तथा अभ्रकपत्रवत् होता है और
 जो कुष्ठ गाढ़ा हस्तचर्मवत् कृष्णवर्ण का और रूक्ष होता
 है उस को 'गजचर्म' कहते हैं ।
 गजचक्षु—वि० [सं० त्रि०] विकृत नेत्र । डेढर । टेरा ।
 गजचित्री—संज्ञा स्त्री० [मध्य प्रदेश] शेरवानी बूटी ।
 (ट्रांसडेंडस) ।
 गजचिभेंट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } महा इन्द्रवारुणी ।
 गजचिभिट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } बड़ा इन्द्रायण । वं०-
 गजचिभिट—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } बड़ राखालशशा ।
 गोरक्ष लाड़ । (प० मु०; रा० नि० व० ३; च० द०
 गुल्म चि०) ।
 गजजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हस्ति जाति । हाथी
 के प्रकार । यथा—(१) भद्र, (२) मन्द्र, (३) भृग ।
 (रा० नि० व० १९) ।
 गज्ज—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का रोग । इसमें शिर
 के केश नष्ट हो जाते हैं । इन्द्रलुप्त भेद ।
 गजज्जवीन—संज्ञा पुं० [फा० गज+अ० अज्जवीन]
 गजज्जवीन । झाऊ । झावुक ।
 गजदधन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गजपरिमाण । (मुग्ध-
 वा० प०) ।
 गजदण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारसपीपर । (वृ० नि०
 र०) ।
 गजदन्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथीदाँत । हस्तिकन्द ।
 (वै० निघ०) । इसकी मसी निर्माणकर लगाने से श्वित्र
 का नाश होता है और लोम उत्पन्न होते हैं । (२)
 नेवार मूली । बड़ी मूली ।
 गजदन्त-फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] डङ्गरी नामक
 फल-शाकलता । जेठई ककड़ी ।
 गजदन्तवत्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नेवारमूली । बड़ी
 मूली । वृहद् मूलक । (वै० निघ०) ।
 गजदन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथीदाँत । हस्ति-
 दन्त । (वा० उ० ३६ अ०) ।
 गजदान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हाथी का मद । हस्तिमद ।
 गजद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नन्दी वृक्ष । वेलिया पीपर ।
 (वं०) गया अश्वत्थ ।
 गजनिस्स—संज्ञा पुं० [ति०] नारंगी । नागरङ्ग । (अ०) ।
 वली । चमड़ों की झुरी ।
 गजपर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] साँवा । श्यामाक ।
 गजपाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } नन्दी वृक्ष । वेलिया पीपर ।
 गजपादप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गया अश्वत्थ । (भा०) ।
 गजपाँव—संज्ञा पुं० [सं० गज+उ० पाँव] (१) जल में
 रहनेवाला पक्षी भेद । (२) फीलपाँव । श्लिपद रोग ।

गजपिपली—संज्ञा स्त्री० [गु०] } दे० 'गजपिपली' ।
 गजपिपुल—संज्ञा पुं० [वं०] }
 गजपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } दे० 'गजपीपर' ।
 गजपिप्पलु—संज्ञा पुं० [ते०] }

गजपीपर—संज्ञा पुं० [सं० गज + पिप्पली] बड़ीपीपर ।

पर्याय—(सं०) करिपिप्पली, इभकणा, इभीषणा, करिकणा, कपिवल्ली, कपिल्लिका, कपिवल्लिका, कोलवल्ली, कुञ्जर पिप्पली, गजाह्व, वशिर, गजोषणा चव्य फल, चव्यजा, छिद्रवैदेही, दीर्घ ग्रन्थि, तैजसी, वत्तुली, स्थूलकणा, स्थूलवैदेही; (हिं०) गजपीपल, गजपिप्पली; (वं०) गजपिपुल; (ते०) गजपिप्पलु; (म०, बम्ब०) थोर पिपली; (गु०) मोटो पीपर; (ते०) एनुग पिप्पलु; (ता०) अत्तिपिप्पेलि; (मल०) एनैतिपिपली; (अ०) फिल्लिकुलुफील; (फा०) फिल्लिकुलुफील; (ले०) पाइपर चबा (Piper chaba); (कना०) गजहिप्पली; (ते०) पेदपिप्पलु ।

चव्यादि कुल (Family: Piperacrae) ।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के आसाम इत्यादि उष्ण प्रदेश ।

परिचय—चव्य का फल है ।

फल पिप्पली से बृहत्तर लालमिर्च तुल्य होता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का क्षार, गोंद तथा भस्म होता है ।

गुण—कटु, उष्ण, अग्निवर्धक, वात-श्लेष्मकारक, कण्ठरोग, अतिसार तथा श्वास नाशक है । (भा०) । दीपन, उष्ण होने से रसशोधक, ग्राही, उष्ण, कटु, रुक्ष तथा स्तन्य (दुग्ध) वर्धक है । (रा० नि० व० ६) । चव्यफल-विष्टम्भ-कारक, रुक्ष, शीतल, वातकोपन, विपाक में मधुर तथा रक्तपित्तनाशक है । (सु० सू० ४६ अ०) ।

गजपीपल—संज्ञा पुं० [सं० गजपिप्पली] गजपीपर । गजपिप्पली । चव्य फल ।

गजपीपुल—संज्ञा पुं० [वं०] दे० 'गजपीपर' ।

गजपुट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] औषधपुटनार्थ एक प्रकार का खात (गड्ढा) । निर्माणविधि—१॥ हाथ लम्बा और १॥ हाथ चौड़ा और १॥ हाथ गहरा गड्ढा बनाकर उसको अर्धभाग उपलों से भरकर उसपर औषध का संपुटस्थापन कर शेष भाग को उपलों से भरकर अग्नि देने की 'गजपुट' वा 'महिषपुट' कहते हैं । किसी के अनुसार १। हाथ के उर्ध्व भाग और १। हाथ के आयतवाले गड्ढे को 'गजपुट' कहते हैं—'सपाद हस्त परिमित निम्नायत बृत्त खाते' । किसी के अनुसार—गड्ढे का परिमाण-गजप्रमाण गम्भीर (गहरा), २ बित्ता परिमाण गति-मुख और ३ बित्ता प्रमाण का तलभाग रख उपर्युक्त विधि से वन उपला अर्थात् जंगली कंडा के मध्य में संपुट

रखने का विधान है । (अत्रि०) । किसी के अनुसार १ हाथ प्रमाण का गर्त निर्माणकर उसमें उपर्युक्त विधि से संपुट स्थापनकर आँच देने का विधान है । 'हस्त-प्रमाण गर्तयः पुटः सतु गजाह्वयः ।'

गजपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नागकेसर । गजकेसर । (इं० मे० मे०)

गजप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सलई । शल्लकी वृक्ष । सजीवन का वृक्ष । (हे० च०) ।

गजफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गजपीपर । चव्य फल ।

गजब—संज्ञा पुं० [अ०] क्रोध । गुस्सा ।

गजबर—संज्ञा पुं० [फा०] छोटी माई । लघुमायाफल । (डॉइमॉक, १-भ०, पृ० १६०) । दे० 'माई' ।

गजबला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरक्षी । (वं०) गोरक्षचाकुलिया । कासरोग में प्रयुक्त है—'नयति गजबलामूल' । (च० द० कास चि०) ।

गजवान—संज्ञा पुं० [?] गोरह । (लु० क०) ।

गजवावची—संज्ञा स्त्री० [सं० गजवाकुची] बकुची । सोमराजी ।

गजबेल—संज्ञा पुं० [म०] लोह भेद । दे० 'लोहा' ।

गजभक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) तालवृक्ष । (२) पीपल

गजभक्षक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } वृक्ष । (रा० नि० व० ९, ११) ।

गजभक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सलई । शल्लकी वृक्ष ।

गजभक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'गजभक्ष'

गजभक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजभक्षा । शलई । शल्लकी वृक्ष ।

गजभुज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़े इन्द्रगु का वृक्ष । (लु० क०) ।

गजमद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी का मद । हस्तिमद । (वै० निघ०) ।

गजमदहरणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिवलिलीलता । (वै० निघ०) ।

गजमाजक—संज्ञा पुं० [फा०] } वृहत् मायाफल । बड़ी

गजमाजज—संज्ञा पुं० [, ,] } माई ।

गजमाजज खुद—संज्ञा पुं० [फा०] छोटी माई । लघु माया-

फल ।

गजमाज—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ी माई । वृहत् मायाफल ।

गजमादन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सलई । शल्लकी वृक्ष ।

गजमुक्ता—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गजमणी । करिमणि ।

गजर मुशान—संज्ञा पुं० [फा०] जमजम नाम का द्रव्य ।

गजमोदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंह । (हारा०) ।

गजमोती—संज्ञा स्त्री [सं० गज + हिं० मोती] गजमुक्ता ।

गजमौक्तिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] गजमोती । गजमुक्ता ।

गजर—संज्ञा पुं० [फा०; अ०, सं० गर्जर] गजर ।
गर्जर ।

गजरदन्ती—संज्ञा पुं० [फा०] जंगली गजर । अरण्य
गजरबरी—संज्ञा पुं० [फा०] गर्जर ।

गजरीटे—संज्ञा पुं० [?] गजर का पत्ता ।

ग (गु) जरूफ—संज्ञा पुं० [अ०] तरुणास्थि । कुरी ।
(Cartilage) ।

गजराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ा हाथी । वृहद् हस्ति ।

गजलण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी का विष्टा ।

गजलेण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्तिविष्टा । (भैष०

गजलेण्डज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठ चि०) । (सु०
चि० ९ अ०) ।

गजवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पर्वतीय केला ।
गिरिकदलीवृक्ष । पहाड़ी केला । (बं०) वृताकला ।

(२) सलई । शल्लकी वृक्ष । (रा० नि० व० ११) ।

गजवाजिप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूईं कुम्हड़ा । पताल
कोहड़ा । भूमिकुष्माण्ड । भूईं कुमड़ा । (वै० निघ०)

गजवास्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विदारीकन्द ।

गजवैद्यक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पालकाप्य(व्य)कृत
गजचिकित्साशास्त्र । (च०) ।

गजशुण्डी—संज्ञा स्त्री० [बं०] पारसपीपल ।

गजशनान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीपल वृक्ष । अश्वत्थ

गजस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृक्ष ।

गजमुख—संज्ञा पुं० [फा०] लाल झाऊ । रक्तझावुक ।

गजहण्ड(न्द)—संज्ञा पुं० [,] गर्दभाण्ड । पारस

गजहण्डु(न्द)—संज्ञा पुं० [,] पीपल ।

गजहिप्पली—संज्ञा स्त्री० [कना०] गजपीपल । गजपिप्पली ।
दे० 'गजपीपर' ।

गजहण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारसपीपर । (वृ० नि०
र०) ।

गजाख्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पमाड । चकवड । चक्रमर्दा
चाकन्दा गाछ । (रा० नि० व० ४) ।

गजाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पिण्डी मूली । पिण्ड
मूलक । गोल मूली । (रा० नि० व० ७) ।

गजादन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीपल वृक्ष । अश्वत्थ वृक्ष ।
(र० मा०) ।

गजादिनामा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर । गज-
पिप्पली । 'गजादिनामा करहाट कुष्ठेः' । (सु० चि०
१८ अ०) ।

गजाब—संज्ञा पुं० [अ०] वृण आदि जो प्रायः नेत्रों में पड़
जाते हैं ।

गजारत—वि० [अ०] (१) अधिकता । ज्यादाती । (२)
दुग्ध वा वर्षा की अधिकता ।

गजारतुत्तम्स—संज्ञा पुं० [अ०] रजसावाधिक्य । मासिक

धर्म की अधिकता । अत्यात्तव । (अं०) मेनोरेजिआ
(Menorrhagia) । दे० 'गुह्यरोग' ।

गजारतुल्लर्क—संज्ञा पुं० [अ०] स्वेदाधिक्य । पसीना की
अधिकता । अधिक पसीना आना । (अं०) हाइपेरिड्रोसिस
(Hyparidrosis) ।

गजारतुल्लबौल—संज्ञा पुं० [अ०] मूत्रसावाधिक्य । मूत्राति-
सार । बहुमूत्र । पेशाब की अधिकता । सोमरोग । दे०
'गुह्यरोग' ।

गजारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गजमादन । सलई ।
शल्लकी वृक्ष । (२) साल वृक्ष जो प्रायः आसाम में उत्पन्न
होता है—'गजारिस्तक सिंहयोः' । (हड्डचन्द्र) ।

गजारीफ—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व०; एक व० गजरूफ] ।
तरुणास्थि । मृदास्थि । नरम हड्डी । कुरियाँ । (अं०)
कार्टिलेज (Cartilages) ।

गजारीफ अन्फ—संज्ञा पुं० [अ०] नासागत तरुणास्थियाँ ।
नाक की कोमल हड्डियाँ । नाककी कुरियाँ । (अं०) नेजल
कार्टिलेज (Nazal Cartilage) । नासागत तरुणास्थियाँ
५ होती हैं ।

गजारीफ-आजालाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] पशुकागत तरुण
अस्थियाँ । पसलियों की कुरियाँ । (अं०) काष्टल-कार्टिलेज
(Castal cartilages) ।

गजारीफ-मफसलियः—संज्ञा पुं० [अ०] सन्धिगत तरुणा-
स्थियाँ । जोड़ों की कुरियाँ । (अं०) ज्वाएण्ट कार्टिलेज
(Joint Cartilages) ।

गजारीफ-हज्जरह—संज्ञा पुं० [अ०] (१) श्वास-पथगत तरुणा-
स्थियाँ । नरखरे की कुरियाँ । (अं०) थाइराइड कार्टिलेज
(Thyroid Cartilages) । तरमसी वर्की, गुजरूफ वर्की ।
(२) गुजरूफ खातिमः । गुजरूफ लाइस्मलः ।

गजारूसीनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] चीनीमृत्तिका । चीनी मिट्टी ।
(अं०) चाइना क्ले (China clay) ।

गजाल—संज्ञा पुं० [अ०] हिरन । मृगा ।

गजालुल्माऽ—संज्ञा पुं० [अ०] शैवल । काई । सेवस् ।

गजाशन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भिसण्ड । कमलकन्द ।
(वै० निघ०) । (२) पीपल । अश्वत्थवृक्ष । (मद०
व० ५) । (३) साखू । सिखुआ । शालवृक्ष । (र० मा०) ।

गजाशना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भाँग । भङ्ग ।
सिद्धि । विजया । (श० च०) । (२) सलई । शल्लकी
वृक्ष । (३) भसींड । पद्म-मूल । कमल कन्द । (र०
मा०) । (४) सन । शण वृक्ष । (वै० निघ०) ।

गजाह्वया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जूही । यूथिका । सफेद
जूही । (रा० नि० व० १०) (२) गजपीपर,
गजपिप्पली । (भा० पू० १ भ०) ।

गजाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर । गजपिप्पली ।
'गजाह्वा व्याधिघातका' । (भा० पू० १ भ०) ।

गङ्गाजिह—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पूय। पीप। (अं०) पस (Pus)। (२) व्रण का मुरदार मांस। (३) जरदाव। (अं०) स्लफ (Slough)। सिरपस (Syrupus)।
 गजिके-काय(यी)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [कना०] कठकरंज। सागरगोटा। (इं० मे० मे०)।
 गजिर—संज्ञा पुं० [देश०] गेंठी। विदारीकंद।
 गजीड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सलगम। पिण्डमूली। पिण्ड-मूलक।
 गजेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भुंडकुम्हड़ा। पताल कोंहड़ा। भूमिकुष्माण्ड। (रा० नि० व० ७)।
 गजोपकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर। गजपिप्पली। (वै० निघ० २ भ० ग्रहणी चि०; भैष० कुष्ठ चि०)।
 गजोपम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ग्वारपाठा। धीकुआर। धीकुवार। (वै० निघ०)। दे० 'धृतकुमारी'।
 गजोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर। गजपिप्पली। (रा० नि० व० ५)।
 गज्जर—संज्ञा पुं० [ता०] गाजर। गर्जर।
 गज्जर किलंगु—संज्ञा पुं० [ता०] गाजर।
 गज्जर गड्ड—संज्ञा पुं० [ते०] गाजर।
 गज्जरी—संज्ञा स्त्री० [कना०] गाजर।
 गज्जत—[अ०] अण्डकोष और गुदा का मध्य भाग।
 गज्ज—संज्ञा पुं० [देश०] इन्द्रलुप्त रोगी।
 गज्जई—संज्ञा पुं० [ते०] गाँजा।
 गज्जनकिरै—संज्ञा पुं० [ता०] रामतुलसी। बबुई तुलसी। फिरज्जमुश्क।
 गज्जनिम्म—संज्ञा पुं० [ते०] संतरा। नारंगी। नागरङ्ग।
 गज्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धवेल। (सं०) गुच्छ रोहिष तृण। दे० 'गन्धखेड़ (क)'।
 गज्जनी का अतर—संज्ञा पुं० [द०] गन्धवेल तैल। (बं०) कामाखर तइल। (मो० श०)।
 गज्जल—संज्ञा पुं० [बर०] नागकेसर। नागेश्वर।
 गज्जली—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] अखरोट। आक्षोट।
 गज्जा—संज्ञा पुं० [सं०, म०, गु०, ता०, ते०] दे० 'गाँजा'।
 गज्जाअट्ट—संज्ञा पुं० [सि०] गाँजे का बीज।
 गज्जाआकु—संज्ञा पुं० [ते०] भाँग। भङ्ग। विजया।
 गज्जाइलै—संज्ञा पुं० [ता०] } भाँग। भङ्ग। विजया।
 गज्जाकोल—संज्ञा पुं० [सि०] }
 गज्जागहा—संज्ञा पुं० [सि०] } गाँजे का क्षुप।
 गज्जाचेडी—संज्ञा स्त्री० [ता०] }
 गज्जानुबी—संज्ञा पुं० [गु०] गाँजे का बीज।
 गज्जापाल—संज्ञा पुं० [ता०] } चरस। दे० 'गाँजा'।
 गज्जापालु—संज्ञा पुं० [ते०] }
 गज्जायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भसीण्ड। कमल-कन्द। (२) भाँग। भङ्ग। विजया। (३) गाँजा।

गज्जायी—संज्ञा स्त्री० [ते०] भाँग। भङ्ग। सिद्धि।
 गज्जारशम—संज्ञा पुं० [ता०] } चरस। दे० 'गाँजा'।
 गज्जारसम्—संज्ञा पुं० [ते०] }
 गज्जालातु—संज्ञा पुं० [सि०] भाँग। भङ्ग। सिद्धि। विजया।
 गज्जा-विचेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] गाँजे का वृक्ष। गज्जा-यिका।
 गज्जावितुलु—संज्ञा पुं० [ते०] भाँग के बीज। भङ्गबीज।
 गज्जाविरै—संज्ञा पुं० [ता०] गाँजे का वृक्ष। गज्जायिका।
 गज्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गाँजा। गज्जायिका।
 गज्जीरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेंठी। वाराहीकन्द।
 गज्जेरा—संज्ञा पुं० [] गाँजा। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ३१८)।
 गट-च-काय—संज्ञा पुं० [ते०] कठकरंज। करंज।
 गटा—संज्ञा पुं० [] गट्टा।
 गटापारचा—संज्ञा पुं० [अं० (Gutta Parcha)] परिचय—
 यह एक वृक्ष का शुष्क किया हुआ रस है। इसके चम-चूड़ और मुलायम टुकड़े होते हैं। रंग भूरा और ललाई लिए होता है। घुलनशीलता—क्लोरोफार्म में प्रायः घुलकर गदला घोल बन जाता है; किन्तु तारपीन के तेल में पूर्णतः विलीन हो जाता है।
 उपयोग—गटापारचा की बारीक-बारीक चादरें बनाई जाती हैं और इसके बड़े-बड़े थान होते हैं। जखमों पर लगाने के लिए इसका घोल बरता जाता है। इसके अतिरिक्त अस्थिभंगसंधान के निमित्त भी इसका उपयोग होता है। जब नीचे के जबड़े की हड्डी टूट जाती है तब इसको जिस तरह चाहें मोड़कर लगाया जा सकता है।
 गटि—संज्ञा स्त्री० [] (ले०) लीकास जीलातिका (Loecas zelanica)। एक प्रकार का वृक्ष है। यह प्रायः लंका में होता है। इसकी जड़ कटु-चरपरी होती है। इसकी पत्तियों और पुष्प का उपयोग चर्मरोग अर्थात् आद्र कंड़ (Scabies) में होता है। (चक्रवर्ती)।
 गट्टीडिमेट—संज्ञा पुं० [सि०] बिहारी। (अं०) मेलीना एसिआटिका (Gmelina Asiatica)। (इं० मे० मे०)।
 गट्टा तुम्बा—संज्ञा पुं० [सि०] इन्द्रायन। इन्द्रवाष्णीन।
 गट्टीलीर इन्साइज—[फ्रांस (Gatillier-Insise)] निर्गुण्डो। सेफालिका। मेउड़ी। नेगड़। (अं०) वाइटक्स नेगुण्डो। (Vitex negundo)।
 गठिवन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्णी] } ग्रन्थिपर्णी। गठोना।
 गठीवनामूल—संज्ञा पुं० ["] }
 गठैला—संज्ञा पुं० [बं०] दे० 'गठोना'।
 गठोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सामहरलवण। सामरलवन। सामहरनमक। (रा० नि० व० ६)।
 गठोना—संज्ञा पुं० [म०] गठिवन। ग्रन्थिपर्णी।

गठोना-च-झाड़—संज्ञा पुं० [म०] गठिवन । ग्रन्थिपर्णी ।
 गड़—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) गड़ई मछली । (मे०) ।
 गड़क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गुण—मधुर, रुक्ष, लघुपाकी
 एवं शीतल । (राज० ३ व०) । (२) साम्भर लवण ।
 गड़ई—संज्ञा स्त्री० [सं० गड़ (क)] पर्याय—(ब०) गड़ुई
 माछ । दे० 'गड़ (क)' ।
 गड़गड़—संज्ञा पुं० [ब०] गवेडु धान्य । देवधान ।
 गड़गवेल—[?] । (डाइमॉक भ० ३, पृ० १४)
 गड़तुम्बा—संज्ञा पुं० [म०; राजपुताना] इन्द्रायण ।
 गड़देशज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साम्भरलवण ।
 गड़पंख—संज्ञा पुं० [] पक्षी भेद ।
 गड़पाल—संज्ञा पुं० [] एक वनस्पति है ।
 गड़वतल—[पं०] करकुन । वाल वसन्त ।
 गड़मालो—[गु०] अमलतास । आरग्वध ।
 गड़म्बीकन्द—[म०]
 गड़लवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साम्भरनमक । साम्भर
 नोन । गर्त लवण ।
 गड़ लोण—संज्ञा पुं० [सं० गड़लवण] दे० 'गड़ लवण' ।
 गड़लोत—संज्ञा पुं० [सं० गड़लवण] दे० 'गड़लवण' ।
 गड़क—संज्ञा स्त्री० [सं० गड़क] मत्स्य भेद । एक प्रकार की
 मछली ।
 गड़ाख्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } साम्भर लवण ।
 गड़ादिलवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } साम्भर लोत ।
 गड़ावन—संज्ञा पुं० [सं० गड़लवण] साम्भरलवण ।
 गड़ि—संज्ञा पुं० [सं०] तरुणवृष । युवा सौँद । (रा० नि०
 व० १९) ।
 गड़िडे—[ते०] गंधाटी । धूम्रपत्र । पत्र बंग । (इ० मे० मे०) ।
 गड़िश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गड़ई मछली । गुण—मधुर,
 ग्राही, बलवर्धक अग्निप्रद एवं गुरुपाकी है । (राज०
 ३ प०) ।
 गड़िसुगन्धि—[ते०] हिन्दी सालसा । सारिवा ।
 गड़ु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पृष्ठग्रन्थि । कंज । (रा०
 नि० व० २०) । (२) गलगण्ड । (३) पृष्ठगुड़ (ग्रन्थि) ।
 एक प्रकार की मांसवृद्धि । 'सच घटामस्तकयोर्मध्ये
 मांसवृद्धिः' (अ० म०) । (४) शल्यास्त्र । (श० र०) ।
 (५) केचुआ । किञ्चुलुक । (त्रिका०) । (६) मन्यास्त-
 म्भरोग । (वै० निघ०) । (७) कुबड़ा । कुब्ज । मे० ।
 गड़ुआ—संज्ञा पुं० [सं० गड़ुक] } गड़ुआ । जलपात्र विशेष ।
 गड़ुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] }
 गड़ुचि—[ते०] गिलोय । गुडूची ।
 गड़ुम्बल—[पं०] अरखर । अफोरिया—पं० (२० प० भा०) ।
 गड़ुर—संज्ञा पुं० [सं० गड़ड] गरुड पक्षी ।
 वि० [सं० त्रि०] कुबड़ा । कुब्ज । कूजो-ब० । (श० र०) ।
 गड़ुरवेल—संज्ञा स्त्री० [देश०] पानी जमा । गरुड वल्ली ।

गड़ुल—वि० [सं० त्रि०] दे० 'गड़ुर' ।
 गड़ु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलपात्र । गड़ुआ । (२)
 'दे० 'कड़ु' ।
 गड़ुपद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केचुआ । किञ्चुलुक । गड़ुपद ।
 गड़ुल—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] गरुड पक्षी ।
 गड़ु—संज्ञा पुं० [द०, कना०] कन्द । (Tubers) ।
 गड़ुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } मेघ । बादल । (Cloud) ।
 गड़ेल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (त्रि०) ।
 गड़ो—संज्ञा पुं० [म०] गिलोय । गुडूची ।
 गड़ोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साम्भरलवण । गड़लवण ।
 (रा०) ।
 गड़ोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गुड । (उणा०) । (२)
 कवल । ग्रास । (हे० च०) ।
 गड़ौना—संज्ञा पुं० [देश०] पानभेद । ताम्बूल का एक
 प्रकार ।
 गड़ड—संज्ञा पुं० [ते०] } कन्द । मूल । (Tuber) ।
 गड़डः—संज्ञा पुं० [द०] }
 गड़डर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०; स्त्री० गड़ुरी, पि० गड़ुरिक]
 भेंड़ । मेघ ।
 गड़डरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भेंड़ । मेघ ।
 गड़डा—संज्ञा पुं० [गु०, म०] कन्द ।
 गड़िड—संज्ञा स्त्री० [ते०] तृण । घास ।
 गड़िडथैगड़ पाड़ा—संज्ञा पुं० [ते०] धूम्र पत्र । गंधाटी । पत्र
 बंग । (Aristolochia Bracteata) ।
 गड़डुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोने का गड़ुआ । सौवर्ण
 भूङ्गार । (ब०) सोनार गाड़ू । (श० र०) ।
 गड़घाणक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गद्याणक । एक
 प्रकार का मान जो ४८ वा ६४ रत्ती के बराबर होता
 है । (लीलावती) । (२) दो तोला या ६ माषा 'त्रिभिशाणे
 भवेत्तोला षड्भिर्गद्याणकं विदुः' (तोडरानन्द) ।
 गण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अजमोद । (२) किरमानी
 अजवाइन । (ब०) रान्धुनी । (म०) किरमाणी औम्बा ।
 (वै० निघ०) । (३) चोरक नाम का गन्धद्रव्य । (मे०) ।
 (४) वर्ग । समुदाय ।
 गण कर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रायण । इन्द्र-
 वारुणी लता ।
 गणद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] द्रव्यसमूह । साधारण द्रव्य ।
 गणपति—संज्ञा पुं० [मल०] नारंगी । तुरंज ।
 गणपर्वत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैलास पर्वत ।
 गणपीठक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छाती । वक्ष । सीना ।
 गणरूप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } मदार । आक । अकं ।
 गणरूपक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } श्वेत मदार ।
 गणरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
 गणरूपी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वेत मदार । सफेद आक ।

गणहास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) चोरा। चोरक नाम
 गणहासक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } का गंध द्रव्य। (बं०)
 गेठेला। (नैपा०) भटेउर। (म०) गठोला। (रा० नि०
 व० १२)। (२) चण्डालकंद। (३) अजमोद। रान्धूनी।
 (वै० निघ०)।
 गणाधूप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वेतमदार। श्वेताकं।
 सफेद आक।
 गणिआरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गणिकारी] अरनी। अग्निमन्थ।
 अगेथ। टेकार।
 गणिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) जूही। यूथिका पुष्प।
 (२) श्वेत यूथिका। सफेद जूही। (रा० नि० व० १०)।
 गणिकारिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] छोटी अरनी। क्षुद्र
 अग्निमन्थ। (अं०) गार्डेन किनीन। (ले०) प्रेम्ना सिरैटी-
 फोलिया (*Premna serratifolia*)। दे० 'अरनी'।
 गणिकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मदनमादनी। वासन्ती-
 पुष्पवृक्ष। (बं०) वासन्ती फूलेर गाछ। (म०) गणरी।
 (सं०) काञ्चनपुष्पी, काञ्चनिका, गन्धकुसुमा, अलिमोदा,
 वसन्तदूती, वासन्ती, मदनमादिनी।
 गुण—त्रिदोषघ्न, अतिमुरभियुक्त, दाहशोषहर तथा
 कामोद्दीपक है। (रा० नि० व० १०)।
 गणिर—संज्ञा पुं० [बं०] छोटी अरनी। क्षुद्र अग्निमन्थ।
 अरणि क्षुद्र।
 गणेर चेद्रु—संज्ञा पुं० [ते०] चंपा। चम्पक वृक्ष।
 गणरी—संज्ञा स्त्री० [म०] गणिकारी। मदनमादिनी।
 गणेरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कनेर। करवीर।
 गणेरु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गणिकारी। मदन-
 गणेरु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } मादिनी।
 गणेश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } लाल कनेर। रक्त
 गणेश-कुसुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] }
 करवीर। (रा० नि० व० १०)।
 गणेशप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लालकनेर। लाल कनइल।
 रक्तकरवीर। 'गणेशप्रिय मूलानि' (अकंप्रकाश)।
 गणेश भूषण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सिन्दूर। (रा० नि०
 व० १३)।
 गणोत्साह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गेंडा। गण्डक। खड्ग।
 (त्रिका०)।
 गण्टकमीनम्—संज्ञा पुं० [ते०] नकचुनी (बं०)।
 गण्टकलगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भांगरा। भृङ्गराज।
 गण्टकिंगीति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खैर। खदिर।
 गण्टभारङ्गी—संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] बबरी। सम्भार-
 रंगमूल।
 गण्टीलू—संज्ञा पुं० [ते०] बाजरा। वज्रधान्य।
 गण्टेलु-सज्जलु—संज्ञा पुं० [ते०] बाजरा। वज्रधान्य।
 गण्टेवी—संज्ञा स्त्री० [?] सिरहटी। सर्पाक्षी। सरफोंका।

गण्टा—संज्ञा पुं० [हरिद्वार] }
 गण्टे—संज्ञा पुं० [,] } प्याज। पलाण्डु।
 गण्टोडा—संज्ञा पुं० [गु०] पीपलामूल।
 गण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गेंडा। खड्ग। (बं०)
 गण्डार। (मे०)। (२) गाल। कपोल देश। (रा०
 नि० व० १८)। (३) गाल में होनेवाला एक
 प्रकार का रोग—'गलगण्ड'। लक्षण— जिसके गले में
 मर्यादित भूरा शोथ वृषण की भांति लटकता है। उस
 शोथ को, बढ़ा हो वा छोटा, 'गलगण्ड' कहते हैं।
 निबद्धः स्वयधुर्यस्य मुष्कवत् लम्बते गले (सु० नि०
 ११ अ०)। (४) हाथी का गलप्रदेश। करिकपोल।
 (अम०)। (५) ग्रन्थि। (६) चिह्न। (७) पिटिका।
 फोड़ा। (मे०)।
 गण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (अं०) लिटिल गैङ्गलिओन
 (Little ganglion)। दे० 'गण्ड'।
 गण्डकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णसंधान में प्रयुक्त एक
 प्रकार का बन्ध। इस बंध में कपोल से मांस का भाग ग्रहण-
 कर कान की बाह्य पाली के साथ जोड़ा जाता है अर्थात् कपोल
 से मांस ग्रहणकाल में उसका किञ्चित् सम्बन्ध कपोल के
 साथ रक्त प्रचारार्थ रख लिया जाता है। (सु० सू० १६
 अ०)।
 गण्डकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वाराहक्रान्ता !
 वराक्रान्ता। दे० 'वाराहक्रान्ता'। (२) सफेद लजालू।
 श्वेत लज्जालुका। लज्जावती। (र० मा०)। (३) खैर।
 खदिरवृक्ष। (अम०; शा० च०)।
 गण्डकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लजालू।
 खदिर। (अम०)। (२) काकजंघा। (बं०) केयोठेउ।
 (३) सलई। शल्लकीवृक्ष। (वै० निघ०)।
 गण्डकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ईख। ऊख। गन्ना।
 (नकुल १२ अ०)। (२) स्वनामसे प्रसिद्ध नदी।
 (मे०)।
 गण्डकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हाथीमद। हस्तिमद।
 गजमद। (हारा०)।
 गण्डकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०]
 (१) जूगलर प्वाइन्ट (Jugular Point)। (२) नोड
 (Node)। (३) ट्युबरेली (Tubrale)। (अ० शा०)।
 गण्डगात्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शरीफा। सीता-
 फल। आत। आता। नोना। (ले०) अनोना स्क्वामोसा
 (*Annona squamosa*)। (२) अपची। गण्डमाला।
 कंठमाला। (च०)।
 गण्डगुयारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीटभेद। गण्डगोपालिका।
 एक प्रकार का कीड़ा।
 गण्डगोपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]। गण्डगुयारी।
 (बं०) आमपोका। (भा०)।

गण्डदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गाँडरदूब। गाँडरी।
पर्याय—(वं०) गेंटे दुर्वा; (हिं०) दुबिपाच, गाँडर
 दूब, सीक; (म०) गाढ़ी हरियाली, गण्डर दुर्वा;
 (कना०) मीनगत; (सं०) गण्डाली, अतितीव्रा,
 मत्स्याक्षी, ग्रन्थिला, ग्रन्थिपर्णी, वारुणी, मीननेत्रा,
 श्यामग्रन्थि, सूचिपत्रा, श्यामकान्ता, जलस्था, शकुलाक्षी,
 चित्रा, कलाया।

स्पष्टीकरण—गण्डदूर्वा जलप्रायपृथ्वी वा जलाशय की
 भूमि में स्वयं उत्पन्न होती है; पत्र अत्यन्त छोटा प्रायः ३
 इंच लम्बा; पुष्प गुलाबी रंग अत्यन्त छोटा होता है।
 भाषा में इसको मछेछी कहते हैं।

गुण—शीतल, वात, पित्त, ज्वरघ्न, द्रवदोषघ्न, भ्रम,
 तृष्णा, श्रमनाशक है (रा० नि० व० ८); शीतल, कषाय,
 मधुर, कटुपाकी, दाह, तृष्णा, वलास (कफ), रक्तपित्त,
 कुष्ठ और पित्तज्वर नाशक तथा वातकारक है। (भा०)।
 अहिफेनविष का उत्तम अगद है। (लेखक)।

गण्डनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सरपुंखा। सरफोका।
 सर्पाक्षी।

गण्डपोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गण्डरा। कीटभेद।
 गंडगोपालिका नामका कीट।

गण्डप्रपाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कीट।

गण्डप्ररोह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक प्रकार का
 शरीरगत प्ररोह। (अ०) जाइगोमेटिक प्रोसेस
 (Zygomatic Process)।

गण्डफलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रशस्त गण्डस्थल,
 प्रशस्त कपोल (गाल)।

गण्डवेल—संज्ञा स्त्री० [द०] गञ्जनी। रोहासा। रोहिष
 तृण। तिखाड़ी। मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध है।

गण्डभारङ्गी—संज्ञा स्त्री० [द०] भारंगी। वर्वरी।
 गण्टभारों।

गण्डमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का प्रसिद्ध
 रोग। **पर्याय**—(हिं०) कण्ठमाला; (पं०) गिल्लड़;
 (अ०) खनाजीर, खनाजीर जिल्दी, अम्राज खनाजीरी,
 तकीतुल खनाजीरी; (अं०) स्क्राफ्युला (Scrofula);
 (वं०) गण्डमाला; (सं०) गण्डमालिका, गण्डरोग।

लक्षण—काँख, कन्धा अथवा वंक्षण (खवा) में मन्था
 (नाड़ी) के पीछे, गले में, कफ के प्रकोप से छोटे बेर के
 सदृश अथवा बड़ेबेरतुल्य, आमले के सदृश कतिपय गण्ड
 उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग को 'गण्डमाला' कहते
 हैं। यह दीर्घकाल में पकते हैं।

चिकित्सा—कचनार की त्वचा लेकर यथाविधि क्वाथ-
 निर्माणकर शूंठी चूर्णयुक्त सेवन करने से अथवा बरुण
 मूल (बरना की जड़ की छाल) लेकर क्वाथ बनाकर
 मधुयुक्त पान करने से पुरातन गण्डमाला भी शीघ्र

नष्ट होती है। अथवा काश्चनारगुग्गुलु, गुञ्जातैल वा
 चक्रमर्दतैल के उपयोग से महादारुण गण्डमाला भी
 नष्ट हो जाती है। (भा० म० गलगण्ड-चि०)।

गण्डमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गण्डमाला।
 (२) लजालू। लज्जालुका। (रा० नि० व० ५)।

गण्डरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गण्डमाला। (२)
 घोड़ों का एक रोग जो उनके मुखप्रदेश में होता है।
 'गण्डाभ्यन्तरगो गण्डः गण्डरोग इति स्मृतः'। (जद०
 २९ अ०)।

गण्डल—संज्ञा पुं० [देश०] कुलजद नाम का द्रव्य।

गण्डलियम—संज्ञा पुं० ["] } खटकली।

गण्डलिया—संज्ञा स्त्री० ["] }

गण्डलूरा—संज्ञा पुं० [वं०] एक प्रकार का कीट। गण्डपो-
 लिका।

गण्डविक—संज्ञा पुं० [कना०] 'एकवीर' नाम का द्रव्य।
 (Briodelia Montana)। (वृ० नि० र०)।

गण्डशैल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ललाट। मस्तक।
 (हे० च०)।

गण्डस्थल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गाल। कपोल देश।
 (वै० निघ०)।

गण्ड-हृज्जि-खड्गि-पण्णी—संज्ञा स्त्री० [कना०] गञ्जनी
 का तेल। तिखाड़ी का तेल। रोहिषतैल। (मो० श०)।

गण्डाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गेंड़ा। गण्डार। खड्गि।
 (श० च०) दे० 'गेंड़ा'।

गण्डामरुगम—संज्ञा पुं० [ते०] हीरादोखी। दम्मुलअखवैन।

गण्डार—संज्ञा पुं० [वं०] गेंड़ा। गण्ड। खड्गि। दे० 'गेंड़ा'।

गण्डारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचनार। लाल कचनार।
 कोविदार वृक्ष। कोइलार।

गण्डारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मजीठ। मञ्जिष्ठा।
 (२) कोविदार। कोइलार।

गण्डालजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का गण्डज
 रोग। लक्षण—इसमें गण्डस्थल में स्थिर शोफ, दाह
 और ज्वर होता है।

गण्डालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मछेछी।

गण्डाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } गण्डदूर्वा।

(रा० नि० व० ८)। (२) सफेद दूब। श्वेत दूर्वा॥

(अ०)। (३) सरपुंखा। सरफोका। सर्पाक्षी।

गण्डास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] गाल की दो हड्डियाँ॥

कपोलास्थिद्वय। (च० शा० ७ अ०; सु० शा० ५

अ०)। (अ०) चीक बोन (Cheek bone)।

गण्ड—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) खीरा। त्रपुष। (२)

कण्ठमणि। (३) वृक्षों की शाखा। तृक्षाखा। (वै०

निघ०)। (४) वृक्षों का काण्ड। तृक्षाण्ड। (हे० च०)।

गण्डनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, वं०] गण्डीर।

गण्डपाल—संज्ञा पुं० [पं०] ककुआ (पं०) । (मेमो०) ।
 गण्डरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सेहूँड़ । स्नुही वृक्ष । (चक्र०) ।
 गण्डीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) (वं) शुण्डिया शाक । शालिञ्च । गण्डिनी । रामठ शाक । (अ० टी० भ०; च० सू० ४ अ०) । (२) मजीठ । मञ्जिष्ठा । (३) सेहूँड़ । स्नुही वृक्ष । (रा० नि० व० ८) । (४) कटुशूरण । जंगली सूरन । (वै० निघ०) ।
 गण्डीरा—संज्ञा पुं० [पं०] सनवार, सीवर, सेहर (सिन्ध) । (मेमो०) ।
 गण्डीराद्यतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मण्डल किटिभा-
 दिकुष्ठ रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का तैलयोग । द्रव्य तथा निर्माणविधि—सेहूँड़ का दुग्ध, चित्रक, आक का दुग्ध, भांगरा, कुष्ठ, कुड़ा की छाल, सेंधालवण, इन्हें समान भाग में ग्रहणकर कल्कनिर्माणकर तेल में गोमूत्रयुक्त यथाविधि पाक करें । (च० द०) ।
 गण्डीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] । (१) सेहूँड़ । स्नुही
 गण्डीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] । वृक्ष । (वं०) मनसा सिजू, तेकाटो सिजू । (रा० नि० व० ८) । (च० द० गण्डीराद्य तेल) । (२) मजीठ । मञ्जिष्ठा । (प० मु०) । (३) शाक विशेष । शालिञ्च शाक । गण्डिनी । (भा० म० प्रमेह चि०) । (४) ईख । गन्ता । (५) लाल कचनार । रक्तकाञ्चन वृक्ष । (वै० निघ०, संग्रहणी चि०) । (६) चांगेरी । आमरूल शाक ।
 गण्डु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) गाँठ । ग्रन्थि । (वै० निघ०) । ग्रन्थि । (अं०) गैंग्लिऑन (Ganglion) । (२) उपधान । (जटा०) ।
 गण्डुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लघुग्रन्थि । (अं०) लिटिल गैंग्लिऑन (Little Ganglion) ।
 गण्डुपटल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ग्रन्थि पटल । (अं०) गैंग्लिऑनिक लेयर (Ganglionic layer) ।
 गण्डुपदचातस्थित—वि० [सं० त्रि०]
 पोस्ट गैंग्लिऑनिक (Post Panglionic) ।
 गण्डुपुरस्थित—वि० [सं० त्रि०]
 प्रीगैंग्लिऑनिक (Preganglionic) ।
 गण्डुभारंगी—संज्ञा स्त्री० [] भारंगी । वर्वरी । (डाइमाँक ३ भ०, पृ० ६८) ।
 गण्डुशालक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कोषविशेष । गैंग्लिऑनिक सेल (Ganglionic Cell) ।
 गण्डूपद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केचुआ । भूनाग । किञ्चु-
 लिक । (वं०) केंचो । (अम०; सु०) ।
 गण्डूपद कृमि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केचुआ । किञ्चुलक ।
 गण्डूपदभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाग । सीसा धातु ।
 गण्डूपदभव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाग । सीसा धातु ।

गण्डूपदमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शिराविशेष ।
 गण्डूपदाद्यतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] व्रणरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का तैलयोग । द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कटुतैल ४ भाग, पाकार्थ जल—१६ भाग, कल्कार्थ गण्डूपद (केचुआ) १ भाग । अथवा—कटुतैल १ भाग, कल्कार्थ गण्डूपद संख्या में १०, एकत्र यथाविधि पकाकर छान लें । (च० द०) ।
 गण्डूपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जलपीपर । जल पिप्पली । (वै० निघ०) । (२) छोटा केचुआ । क्षुद्र किञ्चुलुका । (अम०) । पर्याय—शिली (अ०), सिली (अ० टी० भ०) । (३) शिरा भेद । (Lumbricales) । (अ० शा०) ।
 गण्डूपदोपमकृमि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गण्डूपदतुल्य कृमि । (अ०) दीदान तवील ।
 गण्डूबा—संज्ञा पुं० [म०] इन्द्रायण ।
 गण्डूली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मछेड़ी । गण्डदूर्वा । (वै० निघ०) ।
 गण्डूष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] पर्याय—(हि०) कुल्ली, कुल्ला; (फा०) गर्गरा; (अं०) गार्गिल (Gargle) । आयुर्वेद मतानुसार भेद—(१) स्नेहन, (२) शमन, (३) शोधन, (४) रोपण । लक्षण—(१) वाताधिक्य में स्निग्ध, उष्णद्रव्य निर्मित, (२) पित्त की अधिकता में मधुर, शीतलद्रव्य द्वारा निर्मित गण्डूष धारण कराएँ । इसको 'शमन गण्डूष' कहते हैं । ३—कफ की अधिकता में मधुर, तिक्त, कषाय, अम्ल तथा खारी और उष्ण द्रव्यों द्वारा निर्मित गण्डूष उपयोगी होता है । इसको 'शोधन गण्डूष' कहते हैं । ४—मुखगत व्रण वा क्षतमें किञ्चिदुष्ण, कषाय, कटु और मधुर पदार्थों द्वारा निर्मित गण्डूष उपयोगी होता है । इसको 'रोपण गण्डूष' कहते हैं ।
 मात्रा—गण्डूषद्रव में ओषधीय द्रव्यों का चूर्ण १ कर्ष (१०) माशा होना चाहिए और द्रव की मात्रा १ पल (४-८) तोला होनी चाहिए ।
 कालमर्यादा—जब तक पूर्णरूप से दोष नष्ट होकर मुख, नेत्र, घ्राण के स्रोतों की शुद्धि न हो जाय तब तक गण्डूष धारण कराना उचित है ।
 अवस्था—५ वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर गण्डूष धारण करने से रोगों का नाश, संतोष की प्राप्ति, स्वच्छता, मुख में लघुता तथा इन्द्रियों में प्रसन्नता उत्पन्न होती है तथा इसके उपयोग से मुख की विरसता, मुखशोष, मुखपाक, मुखगत व्रण, तृषा और दन्तचाल नष्ट होता है, स्वच्छता की प्राप्ति होती है ।
 गण्डूष धारण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कवलधारण । कुल्ली । मुख में रोगग्र द्रव्यों को धारण करने को 'गण्डूष धारण'

कहते हैं। स्नेह, दुग्ध, क्वाथ, सित कषाय इत्यादि द्वारा गण्डूष धारण करने से दोषजन्य मुखगत रोग नष्ट होते हैं। दे० 'गण्डूष'।

गण्डूषा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गण्डूष। कुल्ला। कुल्ली। गर्गरा। (अं०) गार्गल (Gargle)।

गण्डेरम्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छोटा रास्ता।

गण्डेरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तिधारा सेहूँड़।

गण्डेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मजीठ। मज्जिष्ठा।

गण्डोल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) गुड़। (२) चीनी। शर्करा। (३) घास। कवल। (त्रिका०; वै० निघ०)।

गत आयुष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयु शेष। आयुनिवृत्ति।

गतगतः—संज्ञा पुं० [अ०] (१) निद्रावस्थागत खरटि का शब्द। (२) जलक्रीड़ा। जल का आनन्द। नदी का मौज। (३) पाकावस्था में प्राप्त भाण्ड का शब्द। हड़ियाँ की गुड़गुड़ाहट। हँडिया का शब्द।

गतरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्फटिका। फिटकिरी।

गतशोक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक वृक्ष। (वा० सू० १५ अ० रोध्रादिगण)।

गत सन्नक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्मद हस्ति। मदवर्जित हाथी। (श०)।

गतानक—संज्ञा पुं० [?] गुवरैला। गोमय कीट। गोवर का काला कीड़ा। (अ०) जअल।

गतायुष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विगतायुष। आयु की शेषावस्था।

गतार्तव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयुर्वेद के अनुसार आर्तव की परम मर्यादा ५० वर्ष की होती है; किन्तु कतिपय स्त्रियाँ ३५, ३८, ४० वर्ष की अवस्था में भी निवृत्तार्तव हो जाती हैं।

गतार्तवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नष्टार्तवा। निवृत्तरजस्का स्त्री। वह स्त्री जिसका मासिकधर्म निवृत्त हो गया हो।

गतासू—वि० [सं० त्रि०] मृतक। मुरदा। (Dead)।

गति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नाडीव्रण। नाड़ी।

गतिक—संज्ञा पुं० ["] नासूर। (२) गर्भसंग।

• मूढगर्भ। (३) चाल। नाड़ी की गति। (४) घोड़े की चाल। अश्वगति विशेष। कदम। यथा—सङ्कीर्ण, विकट, भ्रष्टा, वक्रा, वलिता, अत्यूर्ध्व इत्यादि (ज० द० ७ अ०); धारा, स्कन्दित, रेचित, प्लुत, धौरित, वलित (हे० च०); प्लुता, चतुष्का, मध्या, जवा, पूर्णवेगा, धारा—'गतिरेका प्लुता चास्य चातुरीया द्वितीया। वेग सन्धि स्तृतीया च धारा वेगवती तुरी। धारा तु पञ्चमी प्रोक्ता न शृणोति न पश्यति। सर्वं कर्म कृतो वाजी तस्मात्तां परिवर्जयेत्'। (नकुल)।

गतिदातृकशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीरगत

स्वाभाविक रूप से गति प्रदान करनेवाली शक्ति। मोटर-सिष्टम। जीवनीय शक्ति जो स्वतः स्वभावजन्य होती है।

गतिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नदी विशेष। (उ०)।

गतिशीलवृक्क—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चलवृक्क'।

गतीत—संज्ञा पुं० [अ०] खरटि की आवाज जो गम्भीर निद्रा में होती है। दे० 'गतगतः'।

गत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) निद्रावस्था में प्राप्त खरटि का शब्द। (२) गन्धमाज्जरी। ऊदविलाव। (इ० मे० मे०)।

गत्तम्—संज्ञा पुं० [अ०] अत्यधिक उष्णताप्रद गरमी जिससे श्वासावरोध की दशा प्राप्त होती है। उमस।

गत्त—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा होना। (२) दृष्टि की दुर्बलता।

गत्स—[अ०] जल निमग्न होना, डुबाना, गोता देना, डुबकी मारना, गोता मारना।

गद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) रोग। (२) विष। (३) कूट। कुष्ठ। कुट। (रा० नि० व० ६, १२; वै० निघ०; रा० नि० व० २०)।

गदकलहा—संज्ञा पुं० [सं०] हहआ। पाकर। प्लक्ष वृक्ष।

गदघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लताकरंज। (२) नन्दी वृक्ष। घृतकरंज। डिठोहरी। (द्रव्य र०)।

गदनिकंद—संज्ञा पुं० [म०] सुदर्शन। नागिन का पत्ता।

गदनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का आयुर्वेदीय ग्रन्थ।

गदनिश्चय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] माधवीय रोगनिश्चय-कारक ग्रन्थ।

गदपुरना—संज्ञा पुं० [देश०] गदहपुरना। पुनर्नवा।

गदप्रसारणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] राजबला।

गदबुर्ना—संज्ञा स्त्री० [वं०] पुनर्नवा। विसखपरा—द०। (मेमो०)।

गदभ—संज्ञा पुं० [गु०] मेथी। मेथिका।

गदमुरारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रौढ आमज्वर में प्रयुक्त उक्त नाम का रसयोग। द्रव्य तथा निर्माणविधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, मैतशिल, लौह भस्म, त्रिकुटा, ताम्र भस्म, शुद्ध सिंगरफ, नागभस्म, प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा—१-२ रस्ती।

गदम्भीकंद—संज्ञा पुं० [म०] सुदर्शन। (डाइर्माक ३३०, पृ० ४६६)।

गदविनोदनिघण्टु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयुर्वेदीय ओधियों का प्रसिद्ध ग्रन्थ। द्रव्यगुणशास्त्र विषयक आयुर्वेद का ग्रन्थ।

गदहपुरणा—संज्ञा पुं० [देश०]

गदहपुरना—संज्ञा पुं० [देश०]

गदहपुरन—संज्ञा पुं० [पुं०]

पुनर्नवा। विसखपरा।

गवहर—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] } वैद्य । चिकित्सक । अगद-
गवहरी—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] } झ्कार ।

गवहा—संज्ञा पुं० [सं० गदंभ] पशु विशेष । **पर्याय—**
(सं०) खर, ग्राम्याश्व, चक्रीवान, चारट, चेरपुङ्ख, चिर-
मेही, भारग, भारवाह, भूरिगम, घूसर, घूसराह्वय,
पशुचारि, राशभ, रासभ, वालेय, वेशर, शङ्कुकर्ण,
शुद्धजङ्घ, स्मर, स्मर्य; (फा०) खर, उलाग; (तुर्की)
उलाक (खजाइन), एशक (मुहीत); (अ०)
अबुजयाद, हिमार, हिमार अहली (खजाइन), जबाद
(मुहीत); (अं०) आस (Ass), डकी (Donkey);
(ले०) अकुअस असाइनस (Aguus Asinus) ।

गदही—गदहा की मादा । (सं०) गर्दभी । गर्दभी ।
रासभी । (फा०) खरेमादा, मादए खर । (अ०) अतान ।
अश्वादि कुल—

उद्भवस्थान—भारतवर्ष, अरब, अफगानिस्थान, काबुल
इत्यादि ।

नोट—मरुजन में हिमार अहली और मुहीत में खर
एवं गदहा शब्द में इसका वर्णन किया गया है । मुहीत
और मरुजन में गदही की अरबी संज्ञा उतान लिखी है;
परन्तु शरहनसाब, कञ्जुलुगात, मुन्तखिबुलुगात,
सराह, और बुरहानकातिअ प्रभृति से वह 'अतान'
ही सिद्ध होता है ।

परिचय—एक सुप्रसिद्ध चतुष्पद जन्तु है जो नर और
मादा होता है । इसका उपयोग प्रायः भारवाहनार्थ
होता है । अरबदेशीय गदहा अधिक बलवान् होता
है । वहाँ के लोग इस पर सवार भी होते हैं ।

आयुर्वेद के अनुसार गुण-धर्म—इसका मांस किञ्चित् गुरु-
पाकी, बलप्रद तथा वन्यगर्दभ का मांस रुचिप्रद, शीतजनक,
बहुबलवीर्यकारक है ।

तिब्ब के अनुसार—रंग तथा गंध—यह सफेद, काला
और सुर्खीमायल होता है और इसका मांस कालापन लिए
लाल होता है । स्वाद—कुस्वाद तथा किञ्चित् लवणीय
होता है ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा के प्रारम्भ में उष्ण और तृतीय
कक्षा के प्रारम्भ में रुक्ष है । किसी के अनुसार द्वितीय
कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है । गोरखर की अपेक्षा इसका
मांस अधिक गुरु (गलीज) एवं दीर्घपाकी है । इसके उपयोग
से अपस्मार (मृगी), तृतीयक और चातुर्थक ज्वर का
नाश होता है ।

मूत्र—आयुर्वेद के अनुसार—विकारनाशक, तीक्ष्ण,
ग्रहणी-रोगनाशक, अग्निदीपक, कृमिरोग तथा वातकफ-
नाशक है । (सुश्रुत सू० ४५ अ०) । कटु, तिक्त, उष्ण,
क्षारीय, कफ, महावात, भूतवाधा, कम्प तथा उन्माद-
नाशक है । (रा० नि० व० १७) ।

विष्ठा तिब्ब के अनुसार—गदहा की लीद—प्लीहशोथ,
वस्तिशोथ तथा वृक्कस्थअश्मरीनाशक है । गदहा के
लीद की फलवर्त्ती निर्माणकर गर्भाशय में स्थापन करने
से अमरा सहित गर्भ का उत्सर्ग होता है ।

खुर (सूम)—गदहे के सूम की धूनी देने से प्रसवकण्ट
नष्ट होता है । खुर की भस्म निर्माणकर उपयोग करने
से गुदचोर तथा कण्ठमाला का नाश होता है ।

वसा (चर्बी)—गदहे की चर्बी का अभ्यङ्ग करने से व्रण-
चिह्न का नाश होता है और इसके आन्तर उपयोग से
आन्त्रक्षत का नाश होता है ।

अहितकारक—वायु और वातजन्य रोगों की वृद्धि
करता है । निवारण—तैल, पिच्छिल पदार्थ और
जवारिश सकृन्निया के सट्टश विरेचक जवारिशों ।

प्रतिनिधि—खुर की प्रतिनिधि खचर का खुर, किन्तु
मांस की कुछ भी प्रतिनिधि नहीं है ।

ग्रह—प्रकृति के विचार से मङ्गल । **प्रधान-कर्म**—यह
चातुर्थक ज्वर, कामला, अपस्मार, नासास्र (नकसीर)
तथा वृक्कशूल में उपयोगी है । **मात्रा**—अभक्ष्य (हराम)
है । अस्तु, केवल इसका बाह्योपयोग होता है ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—जालीनूस ने किताबुल् अजिया में
लिखा है कि इसका मांस अत्यन्त गर्हित (रद्वी) होता है
और देर में हजम होता है । इसके सेवन से दूषित रक्त की
उत्पत्ति होती है । यह आमाशय के लिए अत्यन्त असात्म्य
होता है । इसके सेवन से प्रायः गर्दभतुल्य प्रकृति हो
जाती है ।

गीलानी के अनुसार अधिक आयासशील तथा शिथिल
शरीर के व्यक्तियों को इसका मांस अल्पहानिकारक
होता है । ऊँट और अन्यान्य चतुष्पदों के मांस की अपेक्षा
इसका मांस (गलीज-दोषोत्पादक) और अत्यन्त निकृष्ट
होता है । इसके सेवन से वायु और वायुजन्य व्याधियाँ
उत्पन्न होती हैं । इसके नित्य सेवन करनेवाले व्यक्तियों
को सदैव शरीर से वायु का शोधन करते रहना चाहिए
तथा तैलीय वा स्निग्ध और पिच्छिल पदार्थ सेवन करते
रहना उचित है । यदि इसके सेवनोत्तर शरीर में
गौरव (भारीपन) और उद्वेग प्रतीत हो तथा यह
आमाशय से शीघ्र नीचे अवतरित न हो तो विरेचनीय
वर्तिकाओं और जवारिशों का उपयोग कर शरीर से
बाहर उत्सर्गित करना उचित है ।

इसके मांस को नमक, दारचीनी और सोंठ के साथ
पकाकर खाने और शोरबा पी लेने से गठिया में असीम
उपकार होता है । इसकी चर्बी खाने से भी उक्त लाभ
होता है । इसका कलेजा भूनकर नीहार खाने से अप-
स्मार और चातुर्थक ज्वर आराम हो जाता है । इसकी
चर्बी के लेप से व्रणवस्तु दूर होते हैं । आन्त्रस्थ व्रण

पूरणार्थ भी यह चर्बी लाभकारी है। इसके सुम को जलाकर प्रतिदिन साढ़े चार माशा खाने से धनुस्तंभ(कुजाज) और अपस्मार रोग दूर होते हैं। इसकी लीद मस्तक पर लगाने से नकसीर का खून बंद हो जाता है। ताजी लीद का रस कान में टपकाने से मृगी का रोग आराम हो जाता है। इससे कामला रोग दूर होता है तथा वृक्क और वस्तिगत अश्मरि खंड-खंड होकर निस्सरित हो जाती हैं। इसे सुखाकर कपड़े में बांधकर योनि में धारण करने से गर्भस्थ शिशु और अमरा दोनों ही निकल पड़ते हैं। गर्दभसूत्र पान करने से वृक्कशूल निवृत्त हो जाता है। कष्टप्रसव में इसके सुम की धूनी लाभकारी होती है। इसके सुम को जलाकर जैतून के तेल में मिलाकर लगाने से कंठमाला, संधिवात (ददं मफासिल) और नाडीव्रण आराम होता है। यदि बालक अधिक रोता हो तो इसके कान की मैल ३॥ रत्ती खिलाने से उपकार होता है। इब्न जहर कहते हैं कि इसके कान की मैल मद्य प्रभृति में मिलाकर पीने से निद्रारोग (मरजुन्नौम) उत्पन्न हो जाता है और वृद्धि नष्ट हो जाती है। गर्दभ के शिश्न को कोरी मिट्टी की कुल्हिया में रखकर आग में रखें। जब जलने के करीब हो तब उसे पीसकर जैतून के तेल में मिलाकर और छानकर लेप करें। इससे बाल जम आते हैं। गदहे का ताजा शिश्न उष्ण औषधियों के साथ पकाकर खाने से जननेन्द्रिय विवर्धित हो जाती है। एक वित्ता भर गदहे के मस्तक की खाल लेकर मृगी के रोगी को बांध दे और उसी तरह वर्षभर बंधा रखें। इससे मृगी का रोग आराम हो जाता है। इसकी ताजी लीद निचोड़कर वह पानी सिरके में मिलाकर उपयोग करने से प्रवृत्त रक्तस्राव अवरुद्ध हो जाता है। इसके सीधे पैर का सुम लेकर छल्ला बनाकर पहनने से अपस्मार-रोग आराम हो जाता है। इसकी खाल बालक को बांधने से वह सुखपूर्वक रहता है। इब्न जहर का यह कथन अनुभवशून्य प्रतीत होता है कि गदहे के बोलने से कुत्ते को क्लेश होता है। यही नहीं अपितु कभी-कभी तो क्लेशाधिक्य के कारण वह चिल्लाने लगता है। पर अनुभव की बात यह है कि वह क्लेश से नहीं चिल्लाने लगता प्रत्युत यह तो उसका स्वभाव ही है। अस्तु, मंदिर में शंख और बाजा बजने से भी चिल्लाने लगता है।

खजाइनुल अदविया के संकलयिता लिखते हैं कि लॉरेनसीड नाम्नी एक आंग्ल महिला वा मेम ने एक आंग्ल पत्रिका में लिखा था कि विविध प्राणियों पर संगीत का प्रभाव पड़ता है। अस्तु, मेरे पिता का घोड़ा अपने स्थान से चलकर खिक्की के पास आ जाता था और जब तक गाना बजाना बंद न होता तब तक वहाँ से न जाता था।

इसी तरह जब मैं संगीत की शिक्षा देती थी, तब एक काला कुत्ता बराबर के मकान में संतोषपूर्वक बैठा रहता था। परंतु जब मैं प्यानी बजाती थी, तब वह मेरे कमरे में आकर चिल्लाने लगता था। यदि उसे बैठने दिया जाता, तो वह प्यानी के पास खड़ा रहता था। मेरे पास एक खरहा था, जो संगीत का अतीव प्रेमी था। जिस समय गाना बजाना प्रारंभ होता वह इधर-उधर चक्कर काटता रहता और भीतर प्रवेश करने की आज्ञा पाने पर फुर्सी पर बैठकर गाना सुनने लगता था। ऐसा प्रतीत होता मानो उससे उसको आनंद प्राप्त हो रहा है। अंताकी लिखते हैं कि जिसको विच्छू काट ले, यदि वह गदहे पर उसकी पूँछ की ओर मुँह करके बैठे, तो दर्द दूर हो जाय।

गदहा का लिंग—इसके लिंग से जोंक लगाकर रक्त निकलवाएँ और निचोड़कर, रक्त के साथ तिल का तेल पकाकर छान लें।

उपयोग—इसे जननेन्द्रिय पर मर्दनकर पान वाँधें। इस प्रकार १०-१५ दिन के उपयोग से इन्द्रिय की शिथिलता दूर होती है और स्त्री से भोग में विशेष आनन्द आता है। अन्य तिलाओं में भी इसका उपयोग हितकर है। नपुंसकों को इसका उपयोग हितकर सिद्ध हुआ है।

***वैद्य कहते हैं**—गर्दभमांस स्वाद में मधुर, विपाक में तिक्त, लघु, बल्य और कफपित्तवर्द्धक है। गोरखर (खरेवहशी) का मांस गदहे के मांस की अपेक्षा गुण में श्रेष्ठतर होता है। (ता० श०)।

यह विवेक-बुद्धि को मलिन (दूषित) करता है। इसके कान का रक्त वालापस्मार (उम्मुस्सिव्यान) में लाभकारी है। (मुहीत)।

गदही का दूध

पर्या०—गर्दभीपयः, गर्दभीक्षीर, खरक्षीर—सं०। लब्धुल अतान (मखजन)—अ०। शीरेखर (मुहीत), शीरेखरेमादः, शीरे उलाग—फ्रा०। गदही का दूध—हि०। गदहे का दूध—द०। कजुदइप्पाल—ता०। गाडिदेपालु—ते०। कजुतप्पाल—मल०। कत्ते हालु—कना०। गाधर च दूद—म०। गध-नु-दूध—गु०। बुरो-किरी—सिंह। लँक असाइनी (Lac Asinae)—ले०। आसेज मिल्क (Asses' milk)—अं०।

*गर्दभं पित्तलं बल्यं बृंहणं कफपित्तकृद॥

कटु पाके लघु श्रेष्ठं तस्माद्वन्य खरोद्धवम् ॥

(धन्वन्तरीय निघंटुः)

गर्दभ प्रभवं मांसं किचिद्गुरु बलप्रदम्।

रुच्यं तु वन्यजं शैत्यं बहुवीर्यं बलप्रदम् ॥

(राजनिघंटुः)

वर्णन—गदही का दूध जल-प्रधान होता है और इसमें पनीर (जुन्न) और स्नेह स्वल्प होते हैं। जामेउस्सनाएज़ में लिखा है कि इसी कारण यह आमाशय से शीघ्र नीचे अवतरित हो जाता है और अन्यान्य दूधों की अपेक्षा इससे स्वल्प पोषण प्राप्त होता है। युवती, परिपुष्ट और स्वस्थ प्रकृति गदही का दूध उत्कृष्टतर होता है तथा नव-प्रसूता गदही का और जिसने मादा शिशु प्रसव किया हो उसका क्षीर प्रशस्ततर होता है। इसका धारोष्ण दूध पीना चाहिये और जो दुहने के पश्चात् शीतल हो गया हो उसे नहीं पीना चाहिये।

प्रकृति—इसमें अन्य समस्त क्षीरों की अपेक्षा शीत और तरी (स्निग्धता) अधिक है। यह द्वितीय कक्षा पर्यंत शीतल और तृतीय कक्षा में तर है।* वैद्य उष्ण और रुक्ष वतलाते हैं। स्वाद—फ्रीका विस्वाद और स्वच्छ होता है। **अहितकर और निवारण**—यह शीतल और कफज प्रकृतिवालों को सात्म्य नहीं है और तर वा स्निग्ध प्रकृतिवालों को भी हानिकर है। (१) जिनको शीतजन्य कर्णश्वेद (तिन्नीन), शिरोभ्रमण और शीतजन्य शिरोशूल हो, उनको भी यह अहितकर है। इसे पीकर सो जाना तो बहुत ही हानिकारक है। इससे नेत्र की रोशनी कम हो जाती है और जाला उत्पन्न हो जाता है। (२) यह मसूहों और वातनाडियों को शिथिल करता है। परंतु इसे पीते ही सिरके और गुलाब जल से कुल्ली (मज्जमा) कर डालने से उक्त दोष का निवारण हो जाता है।

(३) इसके पीने से कभी उत्क्लेश और उबकाई पैदा हो जाती है और धूम्रोद्गार आने लगते हैं। इसका निवारण गुलकंद है।

प्रतिनिधि—छागी दुग्ध या स्त्रीदुग्ध (मरूजन) या भेड़ का दूध (मुहीत)। **मात्रा**—४॥ तो० १॥ मा० से १४ तो० २॥ मा० तक शर्करा, कतीरा, कद्दू के बीजों के तेल, बबूल निर्यास और सतमुलेठी इत्यादि और तट्टश द्रव्यों के साथ। **ग्रह**—शुक वा चन्द्र। **प्रधान कर्म**—मस्तिष्क की रुक्षता, अनिद्रा, उरःक्षत राजयक्ष्मा और पित्तिक ज्वरों में लाभकारी है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—गदही का दूध बकरी और भेड़ी के दूध से पतला होता है। यह तरी और सर्दी पैदा करता है; उत्कासप्रद (मुफर्रह) और लेखन (जाली) है; अवरोधोद्धाटित करता है; शरीर के छिद्रों वा स्रोतों को उद्धाटित करता है; उष्ण हृदय को बल-प्रदान करता है; प्रबल दोषों में इसकी परिणति अत्यल्प होती है; पित्त से रिक्तामाशय होने पर यह उष्ण एवं रुक्ष प्रकृतिवाले को सात्म्य है; शिश्न पर मर्दन करने से कामेच्छा की अभिवृद्धि करता है। **गीलानी** के लिखितानुसार कर्णश्वेद (तिन्नीन), शिरोभ्रमण और शिरोशूलरोगी को यह

सात्म्य है। परंतु अन्यान्य हकीमगण उक्त रोगों में इसे हानिकर लिखते हैं। अस्तु, गीलानी के उक्त कथन से संभवतः उष्ण प्रकृतिवालों के कर्णश्वेद और शिरोशूल प्रभृति रोगों में इसका उपकारी होना अभिप्रेत है तथा अन्यान्य हकीमों के उक्त कथन से शीतजन्य कर्णश्वेद प्रभृति रोगों में इसका हानिप्रद होना विवक्षित है। यह **गरमी** के ज्वर और गरमी की खाँसी, मुँह से खून आने, साँस चलने और हृत्स्पंदन (खफकान) को लाभकारी है तथा जलोदर एवं कृशता को दूर करता है। आवश्यकतानुसार साठी के चावल लेकर श्यामवर्ण की गदही के दूध में तर करें। दो घड़ी के पश्चात् उसे इसी दूध में पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बनाएँ। प्रातः सायंकाल तीन गोलियाँ यक्ष्मा रोगी को खिलाएँ। **गदही का दूध** उरःक्षत, राजयक्ष्मा और फुफ्फुसगत क्षत में अतीव गुणकारी है। उक्त रोगियों को इसे पिलाते हैं, जिसमें उनके शरीर की रुक्षता दूर होकर तरावट आ जाय। इसका उपयोग उस समय कराना चाहिये, जबकि गदही को बच्चा जने चार मास व्यतीत हो गये हों और उसको वारतंग, ओले (वेदसादा के पत्ते), सेब, नास-पाती, लिटोरा, काहू, खुरफा, पालक का साग, जौ का दाना, खीरा और ककड़ी खिलाते रहें। यदि इसके सेवन से फुफ्फुसीय व्रण का शोधन इष्ट हो तो हाशा, जंगली कासनी, सौंफ के पत्ते और जौ की भूसी खिलायें। चीनी का प्याला या चांदी का प्याला लेकर और पानी से धोकर गरम पानी के पात्र में दूध दुहने के समय रख दें। गदही को रोगी के पास लाकर उस प्याले में दूध दुहकर प्रथम दिवस ४ तो० ४॥ मा० गरम-गरम दूध पिला दें। द्वितीय दिवस पीने नौ तोले पिलाएँ। इसी प्रकार सप्ताह पर्यंत चार तोले साढेचार मासे दैनिक बढ़ा-बढ़ा कर पिलायें। इसके पश्चात् ४ तो० ४॥ मा० प्रतिदिन कम करें। दुग्ध-पान से एक घड़ी पश्चात् प्रतिदिन नाड़ी-परीक्षा किया करें। यदि नाड़ी बलवान् और स्थूल (भारी) हो तो समझ लें कि दूध भली-भाँति पच गया है। यदि वह क्षीण एवं निर्बल हो, तो दूध देने से परहेज करें। जिस दिन दूध दें, उस दिन मछली और अम्ल-सेवन वर्ज्य कर दें। यदि दुग्धसेवन-काल में ज्वर आ जाय, तो दूध न दें। यदि दूध के कारण आमाशय में विकार वा कोथ उत्पन्न हो जाय, तो ऐसी तरल (लतीफ) वस्तु सेवन करायें, जिससे खुलकर मलोत्सर्ग होता रहे। उदाहरणतः आलूबुखारे का शर्बत, बनफसे का शर्बत और फलों का स्वरस। दूध देने में इस बात का ध्यान रखें कि उसे अन्तर देकर दें और उसमें थोड़ा लवण बिही, शहद या शर्करा के साथ मिलाकर दिया करें, जिसमें दूध आमाशय में न जमने पाये। यदि साफ और खुलकर

मलोत्सर्ग होता है, तो लवण न डालें और शर्करा बहुत कम कर दें। यदि विरेक् आने लगे तो उसके साथ तरासीस दें। यदि कास अधिक हो तो कतीरा मिलाकर दें। यदि आमाशय निर्बल हो तो जीरा और कुह्या प्रभृति समाविष्ट करें। (खजाइन)।

गदही का दूध नासिका, कर्ण और मूर्द्धा में टपकाने (सकृत व कतूर) से मस्तिष्क को तरावट प्राप्त होती है, मस्तिष्क की रूक्षता दूर होती है और अनिद्रा, उष्णता एवं रूक्षताजन्य शिरोशूल, उष्ण और रूक्ष मास्तिष्क रोग, नकसीर (रूआक), उष्णताजन्य कर्णशूल एवं नेत्राभिष्यंद, नेत्रदाह, अश्रुस्राव (दमः), बाह्यनी (मुलाक) और अर्जुन (तरफा) इत्यादि व्याधियाँ प्रशमित होती हैं। विशेषकर अंडे की सफेदी और गुलरोगान के साथ इसका उपयोग अर्जुन (तरफा) के लिये विशेष लाभकारी होता है। सूती कपड़े का एक साफ़ टुकड़ा लेकर गदही के दूध में भिगोकर सिर के अग्र भाग, कान और नेत्र पर रखने से और गरम होने या सूख जाने पर बदलते रहने से भी उक्त व्याधियाँ शमन हो जाती हैं। कंठक्षत और कंठक्षतभेद (खवानीक व जुवहः) तथा दन्तवेष्ट, गलगुण्डिका और गलान्तर्ग्रन्थिशोथ में तथा मसूढ़ों की शक्ति प्रदान करने और दन्तशूलनिवारण करने के लिये अकेला वा अमलतास के गूदे के साथ इसका गण्डूष (गरसारा व मजमजा) लाभकारी है। इसमें कहूँवा या संद्रूस बारीक पीसकर नाक में टपकाने से (सकृत करने से) नकसीर का खून बंद हो जाता है। उरःक्षत, राजयक्ष्मा, फुफ्फुसीयव्रण, उग्र पैत्तिक व्याधियाँ और ज्वर, रूक्षता और उष्णताजन्य दौर्बल्य (हुजाल), (उरोगत वा प्रातिश्यायिक) कास, कृच्छ्रवास, दाह, तीव्र प्रसेक (नजला) और रक्तप्लीवन—इन रोगों में गदही का दुग्धपान गुणकारी और वक्ष के अनुकूल है, विशेषतया कहूँवा, कतीरा, गिल मस्तूम (व गिल अरमनी), अज्वार की जड़ की छाल और बबूल का गोंद और तद्वत् अन्यान्य भेषजों के साथ इसका उपयोग उक्त रोगों तथा रक्तसृति में लाभकारी है। यह मृदुसारक है तथा उष्ण जलोदर, प्लीहाकाठिन्य, रक्त और पित्त के दाह अर्थात् इल्लिहाब (तथा प्रवाहिका, जूसंतारिया और आन्त्रव्रण) में लाभकारी है। रक्तातिसार, जिसे जूसंतारिया कहते हैं तथा जरायु और आन्त्रस्थ क्षत (जराहत) में विशेषकर शीतल संग्राही भेषजों के साथ इसकी वस्ति लाभकारी है। कपड़े वा रुई की वर्ति गदही के दूध में भिगोकर शिश्न के छिद्र में धारण करने (कतूर) से मूत्रदाह (हुकंतुल वील) मिटता है और दम्मुलखवैन, गिल अरमनी और कटू के तेल के साथ इसकी वर्ति औपसर्गिक मेह (कहूँ मजरियुलबील) में उपकारी है। इसी प्रकार अकेले या उक्त भेषजों के साथ उक्त

रोगों में इसकी उत्तरवस्ति (जरार्कः) लाभकारी है। विषाक्त भेषजों के दुग्धनिवारण के लिये इसका दुग्धपान गुणकारी है। बहिराभ्यंतरिक शोथों पर विशेषकर केसर के साथ इसका लेप लाभकारक है। प्रत्येक रोग में तद्रोगनिवारक अथवा तद्रोगोपयोगी भेषज के साथ इसका उपयोग करना उचित है। उदाहरणतः रक्तप्लीवन, उरःक्षत और राजयक्ष्मा में हरे धनिया, चूके (हुम्माज) और खार खनूब की पत्ती, अतराफ़ ऊसज, बारतंग और काहूपत्र तथा भिगोया हुआ जौ और अन्यान्य तदृश भेषजद्रव्य और अवरोधों के उद्धाटन, विलीनी एवं निर्मलीकरण के लिये अजमोदा (करफस), सौंफ, शोह, कैसूम, भिगोया हुआ जौ, अजमोदे के बीज (तुहम करफस) और तद्वत् अन्यान्य भेषजद्रव्य मिला-भिगोकर उपयोग करना चाहिये। (मख्जन)।

मुहीत में यह विशेष लिखा है—इसके गण्डूष से दाँत और मसूड़े टढ़ हो जाते हैं। शैख के अनुसार गदही और बकरी इन दोनों का दूध रक्तप्लीवन, उरःक्षत और कास के लिये उत्कृष्ट है। वस्तिगत व्रण और मूत्रमार्गस्थ व्रण में ३० दिरम वा इससे न्यूनाधिक गदही का दूध पीने से उपकार होता है।

रासायनिक संगठन—गर्दभी पय में प्रोटीन १.६ से २.०; वसा—१.३ से १.५; शर्करा—६.२७ से ६.८; क्षार—०.४ से ०.४८; गुस्ता—१.०२३ से १.०३५ तथा कुल ठोस पदार्थ—९.१६ से ९.५३ हैं। आयुर्वेद में एकशफ प्राणियों का दूध अपेय माना गया है। किन्तु आजकल गदही का दूध, बालकों को पीने के लिए अधिक उपयोगी बताया गया है। कारण यह है कि रासायनिक विश्लेषण से उसका संगठन स्त्री के दूध के समान सिद्ध हुआ है। बालशोष में भी इसका दूध अधिक हितकर सिद्ध हुआ है।

*वैद्य कहते हैं कि गदही का दूध शक्ति प्रदान करता है। तथा सूजन, वायु और दाह को प्रशमित करता है। यह मधुर, अम्ल और लघु है। मूत्रनलिका में खर्जु और दाह हो तो गदही का दूध पिलाने से उपकार होता है। सेर भर गर्दभीक्षीर में एक माशा हींग मिलाकर पिलाने से मूत्रावरोध दूर होता है। (खजाइन)।

नव्यमत

ऐन्सली—(भा० १, पृ० २२३)

Asses' milk, which has a very strong re-

*कासश्वासहरं क्षीरं गर्दभं बालरोगनुत् ।

मधुराम्लरसं रूक्षं लवणानुरसं गुरु ॥

(धन्वन्तरीय निघंटुः),

बलकृद्गर्दभी क्षीरं वातश्वासहरं परम् ।

मधुराम्लरसं रूक्षं दीपनं पथ्यदं स्मृतम् ॥

(राजनिघंटुः)

semblance to human milk in colour and consistence, is recommended by the native practitioners in maniacal cases; they also suppose it to possess virtues in leprous affections, particularly in what the Tamools call coostum (lepra arabum); in the carin kirandie (or black carpang or milk-rash of children), they order a certain quantity of it to be taken two or three times in the day. Asses' milk differs from cow's milk in its cream, being less abundant and more insipid, in its containing less curd, but a greater proportion of sugar; its virtue as affording a light nutriment to the delicate is well known. Avicenna prescribed it in hectic fever. (Vide Canon. Med., lib. ii tract ii. p. 185.)

गदहिला—संज्ञा पुं० [] (१) एक प्रकार का फनगा जो प्रायः खेत में होता है। यह कृषि का नाशक है।

गदही—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्दभी] गदहा की मादा। दे० 'गदहा'।

गदा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पादल। अधकपारी। पाटला।

गदा—संज्ञा पुं० [अ०] आनेवाला कल का दिन। कल का रोज। (अ०) टुमारो (Tomorrow)।

गदाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] (१) जलपान। नाश्ता। (२) प्रातः काल का जलपान। प्रातःकालीन भोजन। (३) रात्रि-कालीन भोजन।

गदाख्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुट, कूठ, कुष्ठ। (र० म०)।

गदागदौ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, द्विव०] अश्विनिकुमारद्वय। (त्रिका०)।

गदाग्रणी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षयरोग। राजयक्ष्मा।

गदाधाडू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किरमानी अजवाइन। (डाइमॉक २ भ०, पृ० २८८)

गदाबुर्ना—संज्ञा स्त्री० [द०] बिसखपरा। ट्रिऐन्थेमा अकेन्द्रा (Trjanthema accandra)। (इ० है० गा०)। पुनर्नवा ठीकरी बूटी। (ले०)

गदाम्बर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बादल। मेघ।

गदायुध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाठी। लगुड़। डंडा। लठिया।

गदारति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] दवा। ओषध। (अ०) मैडिसिन (Medicine)। (रा० नि० व० २०)।

गदात्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोभी। (२) गावजबाँ। गोजिह्वा। (ब०) पाथरचूर। (वि० निध०)।

गदाह्व—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुट, कूठ, कुष्ठ। (श०)

गदाह्वय—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] र०)।

गदिदेग अदपर आकु—संज्ञा पुं० [ते०] कोड़ामारी।

गदी (इन्)—वि० [सं० त्रि०] रोगिणी। रोगग्रस्त स्त्री। (वै० निध०)।

गदीरह—संज्ञा पुं० [अ०] स्त्रियों के सिर के बाल (केश)।

गद्गद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वातव्याधिविशेष। मिन्मिनत्व। तोतलापन। (सु० सू० १ अ०)। दे० 'मिन्मिनः'।

गद्गदवाक्वता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शब्द उच्चारण में रुकावट। मिन्मिनत्व। हकलापन। (अ०) स्टैमरिंग (Stammering), हॉरीनेस ऑफ दी टंग (Hoariness of the tongue), डिफिकल्टी ऑफ स्पीच (Difficulty of speech)।

गदोद्वेग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महागद। एक प्रकार का हृदयरोग। विक्षिप्तता। अतत्वाभिनिवेश। अपदार्थगद। (अ०) जोफ अअसाव। (उर्दू) अअसाव की कमजोरी। (हि०) बिना किसी रोग के व्याधि का वहम। भ्रम। मालीखोलिया मिराकी। (अ०) पॅल्पीटेशन ऑफ दी हार्ट (Palpitation of the heart)। इसका वर्णन तिब्ब में मालीखोलिया के अन्तर्गत किया गया है।

गद्दा—संज्ञा पुं० [देश०] गदहिला। खच्चर।

गद्याण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मान जो ६ माशा के बराबर होता है। षटमाषक। (कालिङ्गमान)।

गद्याणक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } एक प्रकार का मान
गद्यानलक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } जो ४८ गुञ्जा (रत्ती)
गद्यालक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } के बराबर होता है (के०)।

गद्धा—संज्ञा पुं० [द०] गदहा। गर्दभ।

गद्धा का दूध—संज्ञा पुं० [द०] गदही का दूध। गधी का दूध। दे० 'गर्दभी (क्षीर)'।

गध—संज्ञा पुं० [म०, गु०] गदहा। गर्दभ। खर।

गध नु दूध—संज्ञा पुं० [गु०] गदही का दूध। गर्दभी क्षीर। दे० 'गर्दभी'।

गधपूरन—संज्ञा पुं० [ब०] गदहपूरन। पुनर्नवा। साँठ।

गधर च दूध—संज्ञा पुं० [म०] गदही का दूध। दे० 'गर्दभी' तथा 'गदही'।

गधा—संज्ञा पुं० [] गर्दभ। दे० 'गदहा'।

गधी का दूध—संज्ञा पुं० [] गर्दभी क्षीर। दे० 'गर्दभी' तथा 'गदही'।

गधलू—संज्ञा पुं० [] पुष्पभेद।

गधे का दूध—संज्ञा पुं० [द०] गदही का दूध। गर्दभी क्षीर। दे० 'गर्दभी' तथा 'गदही'।

गधैड़ा—संज्ञा पुं० [राजपुताना] गदहा। गर्दभ।

गनका—संज्ञा पुं० [] स्वर्णयुधिका। पीलीजूही।

गनःगनः—संज्ञा पुं० [फा०] कुनः कुनः। सिकोना।

गन काटन—संज्ञा पुं० [अ० Gun cotton] (Pyroxylin)

गन् की लकड़ी—संज्ञा स्त्री० [द०] वच ।
 गन्चआम—संज्ञा पुं० [पं०] नाड़ी शाक । करेमू । (मेमो०) ।
 गन्दिआम—संज्ञा पुं० [पं०] नाड़ी शाक । करेमू । (मेमो०) ।
 गन्पलोस—संज्ञा पुं० [पं०] चीटन । दोड़ महोल—पं० ।
 (मेमो०) ।
 गन्बा—संज्ञा स्त्री० [सिंह०] राई । क. लो छोटी राई । कृष्ण राजिका ।
 गन्म—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भेंड़ । मेप । (२) पिरसू ।
 गन्यारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गणिकारी] अरनी । अग्निमन्थ ।
 गन्रड़—संज्ञा पुं० [देश] खश । उशीर ।
 गन्साम—संज्ञा पुं० [हि०, पं०] कोसम । कोसाम्र ।
 गन्सुरंग—संज्ञा पुं० [कों०] भूताङ्कुश । (हि०) अर्जुन ।
 गन्मुरा—संज्ञा स्त्री० [मं०] (वं०) बरगाछी । चुका ।
 गन्सुरी-गहा—संज्ञा स्त्री० [सिं०] दे० 'पारस पोपल' ।
 गन्हगन्ह—संज्ञा पुं० [अ०, फा०] कुनः कुनः । सिकोनाकी छाल । (अं०) सिकोना बार्क (Cinchona bark) ।
 दे० 'सिनकोना' ।
 गन्हर—संज्ञा पुं० [] बाथू । मरसा । चूआ ।
 गन्हरपारा—संज्ञा पुं० [हि० पुं०] ।
 गन्नीरक—संज्ञा पुं० [] करवीर पुष्प ।
 गन्नेर—संज्ञा पुं० [द०] कनेर । करवीर ।
 गन्ता—वि० [सं० त्रि०] संवरणशील । (सु० शा० ३ अ०) ।
 गन्तार्क स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पसीना निकालने की एक विधि । जेन्तार्क-स्वेद । दे० 'स्वेद' ।
 गन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की गाड़ी ।
 वैलगाड़ी । रथ जिसमें वैल जोते जाते हैं । गोशकट ।
 (अ०) । (वं०) गरुर गाड़ी ।
 गन्ना—संज्ञा पुं० [हि०] ईख । ऊख । इक्षु । दे० 'ईख' ।
 गन्तियः—संज्ञा पुं० [?] विदारीकंद ।
 गन्नेरु—संज्ञा पुं० [ते०] कनेर । करवीर ।
 गन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीफा । सीताफल । (इं० से० मे०) ।
 गन्दक—संज्ञा पुं० [द०, पु०] गन्धक ।
 गन्दगजकरन—संज्ञा पुं० [?] अजकर्णशाल ।
 गन्दक का तेजाब—संज्ञा पुं० [द०] गन्धकाम्ल । (अं०) सल्फ्युरिक एसिड (Sulphuric Acid) ।
 गन्दकनु तेजाब—संज्ञा पुं० [पु०] गन्धकाम्ल । गंधक का तेजाब ।
 गन्धकम्—संज्ञा पुं० [ता०, ते०, सिं०, मल०] गन्धक ।
 गन्धकी लकड़ी—संज्ञा स्त्री० [द०] वच ।
 गन्धना—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक पौधा है । पर्याय—(हि०) दन्धना, गन्धना, गोनी, पोगाट, प्याजी बूटी; (अ०) करास, कुरास, कुरासि; (फा०) काजूख, गन्धना, गन्धुम दीवान; जलोक, करास; (ले०) एलियम-एम्पेलो

प्रासम् (Allium-Ampeloprasam), एलियम् पोरम् (A. Porrum); (अं०) लीक (Leek) ।

प्लाण्डवादि कुल (Family: Liliaceae) ।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष, ईरान इत्यादि ।

परिचय—यह एक प्रकार का प्लाण्डुवर्गीय गुल्म जाति का पौधा है । यह प्रायः प्याजतुल्य गेहूँ तथा जी-चना के खेतों में ग्रीष्मकाल में स्वयं उत्पन्न होता है । इसकी पत्तियाँ लम्बी, गोल, पतली, मांसल तथा पोली होती हैं । इसका स्वाद किंचित् दुर्गन्धमय होता है । पत्तियों के छोर पर छोटे-छोटे श्वेतवर्ण के पुष्प लगते हैं । फल का आकार प्रथम पतला होकर पुनः गोल हो जाते हैं जो देखने में घुण्डी के-से होते हैं । इसके सुपक्व फल में प्लाण्डुबीज वा मंगरैले के-से कृष्ण वर्ण के बीज होते हैं । स्वाद—कटु, दुर्गन्धमय एवं कुस्वादु होता है । इसके मूल में अत्यन्त छोटी गाँठ होती है । अरबी में इसे 'कुरास शामी' वा 'गन्धनाए शामी' कहते हैं ।

उपयोगी अवयव—पञ्चाङ्ग ।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है ।

गुण-कर्म—श्लेष्मनिःसारक, शोथघ्न, शुक्रल, मूत्रार्तव-संजनक, संशमन, लेखन तथा बाष्पोत्पादक है । उपयोग—इसका शाक अत्यन्त बाष्पवर्धक, शिरोवेदना उत्पादक, ज्ञानेन्द्रियों में भ्रमोत्पादक तथा दोष उत्पादक है ।

बीज—पर्याय—(हि०) गोनी के बीज । (फा०) तुल्ह गन्धना । (अ०) वज्रुल कुरास । गुण—बीजों की धूनी देने से क्रिमिदन्त, वाताश तथा रक्ताश में लाभ होता है । इसके बीजों को लेकर इसके पत्र स्वरस में मर्दनकर गुटिका निर्माणकर सेवन करने से अश में लाभ होता है । अथवा बीजों का चूर्ण सेवन करने से मूत्र तथा आर्तवका अवरोध नष्ट होता है । अथवा बीजों को दही में पीसकर उबटन करने से चर्मरोग नष्ट होता है ।

अहितकर—शिरोवेदनाकारक है एवं उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों को हानिप्रद है ।

निःसारण—धनियाँ । कासनी ।

प्रतिनिधि—लहसुन (रसोन), पलाण्डु । मात्रा—१ से २ माशा पर्यन्त ।

गन्धना कोही—संज्ञा पुं० [फा०] पहाड़ी गन्धना ।

गन्धना-दशती—संज्ञा पुं० [फा०] जंगली गन्धना ।

गन्धनिम्ब—संज्ञा पुं० [पं०] कही नीम । सीठी नीम ।

गन्धनीम—संज्ञा पुं० [पं०] सुरभिनिम्ब ।

(डाइमॉक १ भ०, पृ० १७२) ।

गन्धपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] अशोक । (ले०)

सरेका इण्डिका (Saraca Indica) ।

गन्धपूर (रो)—संज्ञा पुं० []

पर्याय—(हि०) गन्धपुरी। (अ०) इण्डियन विन्टरग्रीन (Indian wintergreen)। दे० 'गन्ध-पूर'। (डाइमॉक भ० २, पृ० ३२५)।

गन्धब—संज्ञा पुं० [अ०] मकड़ी। लूता।

गन्धबबुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबबूर] विट्खदिर। रीवां। अरिमेद।

गन्धबूटी—संज्ञा स्त्री० [पं०] महवी। हिंसीह। (मेमो०)।

गन्धबेल—संज्ञा स्त्री० [द०] गज्जनी। गन्धवेना। इज्जिर। इस्खिर। (इ० है० गा०)।

गन्धभूति—संज्ञा स्त्री० [पं०] महवी। हिंसीह। (मेमो०)।

गन्धमगुण्डु—संज्ञा पुं० जलनीम। जलब्राम्ही।

गन्धमस्ति—संज्ञा स्त्री० कचूर। कचूर। (इ० मे० मे०)।

गन्धमार—संज्ञा पुं० विरंजासिफ।

गन्धरस्स—संज्ञा पुं० [सि०] बोल। मुर।

गन्धरूसा—संज्ञा [मल०] नीलनिगुण्डी। काला सप्हालू। (मेमो०)।

गन्धल—संज्ञा पुं० [पं०] कड़ी नीम। सुरभिनिम्ब।

गन्धलूण—संज्ञा पुं० [पं०] लघुनी (अफ०)। (मेमो०)।

गन्धः बहरीज—संज्ञा पुं० [द०] गन्धाविरोजा।

गन्धः बहरीजे का तेल—संज्ञा पुं० [द०] गन्धाविरोजे का तेल। टपेंटाइन।

गन्धः विरोजा—संज्ञा पुं० गन्धाविरोजा।

गन्धाटी—संज्ञा स्त्री० [द०] गन्धानी। कीडामार। नाडी हींग। (डाइमॉक ३ भ०, पृ० १६३)।

गन्धान—संज्ञा पुं० [हि०, द, अफ०] कीडामार। गन्धानी।

गन्दी—संज्ञा स्त्री० [हि०] (१) गावड़। कोरदपुल्ल (द० भारत)। (२) (पं०) कड़ीनीम। सुरभिनिम्ब।

गन्दीबूटी—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (डीमक २ भ०, पृ० १०४)।

गन्धुस—संज्ञा पुं० [फा०] गेहूँ। गोधूम।

गन्धुस दीवान—संज्ञा पुं० [फा०] गन्धता। पोगाट। पियाजी। दे० 'गन्धता'।

गन्धुमेमका—संज्ञा पुं० [फा०] मकाई। लाल मकाई। बड़ी ज्वार। (डाइमॉक पृ० ५५०)।

गन्धुश्रुगम नेतरा—संज्ञा स्त्री० [ते०] विजयसाल।

गन्धु—संज्ञा पुं० [-] (डाइमॉक १ भ०, पृ० १५०)।

गन्धोक—संज्ञा पुं० [बं०] गन्धक।

गन्धोस—संज्ञा पुं० [बं०] बोल। मुर। गन्धरस।

गन्ध—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अगर। अयुग। (२) काली अगर। कृष्ण अयुग। (रा० नि० व १२)। (३) महक। वू। (४) काकडुमुर। उम्बर। काकोदुम्बर। (ले०) फाइकस हिस्पिडा (Ficus hispida)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गन्धक। (२) सहिजन। शिग्रु।

गन्धओलकोड—संज्ञा पुं० [म०] सफेद चन्दन। श्वेत चन्दन।

गन्धक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वताम से प्रसिद्ध एक प्रकार का खनिज द्रव्य। पर्याय—(हि०, गु०, पं०) गन्धक; (बं०) गन्धोक; (यू०) थीओन (Theion); (फा०) गोगिदं; (अ०) किब्रीत; (अ०) सल्फर (Sulphur); (ले०) सल्फ्युरेटम् (Sulphuratum), (द, हि०, कश०, पं०, गु०, म०, कौ०, कना०, सि०) गन्धक; (ते०, ता०, मल०) गेन्दगम्; (बर०) फाड़; (मल०) बलिरङ्ग; (ते०) गन्दकमु; (सं०) गन्धक, गन्धिक, गन्धपाषाण, गन्धी, गन्धमोदन, गन्ध, सौगन्धिक, सुगन्धिक, पामारि, पामाम्र, शुल्वारि, पूतिगन्ध, वर, सुगन्ध, दिव्यगन्ध, कुष्ठारि, रसगन्धक, क्रूरगन्ध, कोटघ्न, शर भूमिज, नवनीतक, शुक्र पुच्छ, गौरीज, गौरीरज, गौरीबीज, बलि, बलरस, वरपूति, शरभूमिज।

उत्पत्ति—प्राचीनकाल में जब श्रीमती जगन्माता पार्वती श्वेतदीप में क्रीड़ा करती थीं तब उनके रजोदर्शन से उनका वस्त्र भीग गया और उन्होंने निजवस्त्रयुक्त क्षीरसागर में स्नान किया। उस समय उस वस्त्र से रज के फैल जाने से गन्धक उत्पन्न हुआ। (भा०)। पुनः वही रज जब देव और दैत्यों ने समुद्रमन्थन किया तब अमृत के साथ गन्धकरूप से प्रकट हुआ और निज गन्ध के प्रभाव से समस्त देव-दानवों को प्रसन्न किया, तब देवताओं ने कहा कि यह गन्धक पारद के बन्धन तथा जारण के निमित्त प्रगट हुआ है। जो गुण पारद में हैं, वही इस गन्धक में भी हैं। रज के गन्ध के कारण ही इसको गन्धक की संज्ञा प्रदान की गई और तभी से उक्त नाम से पृथ्वीतल में प्रसिद्ध है।

जाति—श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण भेद से गन्धक ४ प्रकार का होता है। औषधार्थ पीत चर्मरोग में, श्वेत बाह्य प्रयोगार्थ ग्रहण करना उचित है। (२० सा० सं०)। किसी के अनुसार रक्त गन्धक का उपयोग स्वर्णनिर्मण में तथा श्वेत और पीत गन्धक का उपयोग रसायनकर्म में किया जाता है। व्रणादि के लेपन में श्वेत ग्रहण किया जाता है। कृष्णवर्ण का गन्धक दुर्लभ है और वही श्रेष्ठ है।

चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः। रक्तो हेम क्रिया सूक्तः पीत श्वेतौ रसायने। व्रणादि लेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः॥ किसी के अनुसार गन्धक केवल ३ प्रकार का है—तोता की चोंचतुल्य लाल उत्तम, पीत मध्यम तथा श्वेत गन्धक अधम है—सचापि त्रिविधो देवि शुक्रचञ्चुतिभोवरः। मध्यमः पीत वर्णः स्याच्छुक्ल वर्णोऽधमः प्रिये॥ किसी के अनुसार गन्धक के २ प्रकार हैं—(१) लोणीय

एवं (२) आमलासार । इनमें से पारदकर्म में आमलासार गन्धक प्रशस्त है । यथा—

गन्धकं द्विविधं प्रोक्तं लोणीयं चाम्लसारकम् ।

योग्यं चैवाम्लसारं हि रसमार्गे गुणात्मकम् ॥

गन्धक-शोधन—एक मृत्तिकापात्र लेकर उसमें १ सेर गोदुग्ध भरकर एक स्वच्छ वस्त्र से पात्रमुख बांध देवें और १६ तोला आमलासार गन्धक चूर्णकर घृत में गला लेंवें । जब गलकर रक्तवर्ण का हो जाय तब उस वस्त्र पर उड़ेल देंवें । इस प्रकार करने से वस्त्र में से गन्धक टपककर दुग्ध में जम जाता है । इसको दुग्ध से निकाल कर जल द्वारा प्रक्षालनकर शुष्ककर लेंवें और इसको योगों में ग्रहण करें ।

शोधित गन्धक के गुण—शुद्ध गन्धक के उपयोग से कुष्ठ, मृत्यु तथा ज्वरादि रोग नष्ट होते हैं तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है । यह अत्यन्त उष्ण और वीर्यवृद्धिकारक है ।

गुणान्तर—यह अत्यन्त रसायन, मधुर, पाक में कटु, उष्ण, कण्डू, कुष्ठ, विसर्पनाशक, अग्निदीपक, पाचक, विषनाशक, पारदवीर्यवर्धक, कृमिरोगनाशक तथा स्वर्ण से भी अधिक गुणप्रद है ।

भावमिश्र के अनुसार—गन्धक, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कषाय, विरेचक, पित्तकारक, पाकमें चरपरा, रसायन तथा खुजली, विसर्प कृमिरोग, कुष्ठ, क्षय, प्लीहरोग, कफरोग तथा वातरोगनाशक है ।

गन्धकतुल्य कोयलद्रव्य अबतक अज्ञात हैं । प्राचीन आयुर्वेदीय रसयोग कोई भी ऐसा न होगा कि जिसमें गन्धक का योग न किया गया हो । अतिशीघ्र कीटाणुओं द्वारा व्याप्त हो जानेवाला दुग्ध इसके निर्मित पात्र में वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है । शरीरगत समस्त धातुएँ रसादि के दूषित हो जाने से दूषित होती हैं और उनमें कोय उत्पन्न होकर कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है, ऐसी दशा में उनको नष्ट करने के निमित्त ही प्राचीन आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्रों में इस अमूल्य सद्यःफलप्रद द्रव्य का ग्रहण पूर्व महर्षियों ने किया था और अब तक आधुनिक (अर्वाचीन) आयुर्वेद (एलोपैथिक) में भी इसको ग्रहणकर भारतवर्ष से भन की मात्रा जितनी आयुर्वेदीय चिकित्सकों को नहीं प्राप्त होती, कहीं उससे अधिक, गन्धक के योगिकों (सल्फाइड्स) द्वारा विदेश में जा रही है ।

अशुद्ध गन्धक के दोष—इसके सेवन से कुष्ठ, विषमज्वर, रक्तविकार तथा शोथ की उत्पत्ति होती है और रूप-बल-वीर्य तथा ओज का नाश होता है । (भा०) ।

गन्धक दुर्गन्धहरण—गन्धक का चूर्ण ग्रहणकर गोदुग्ध में पचाकर गाढ़ाकर लेंवें । पुनः काले भाँगरा के रस में मृन्दाग्नि से पचावें । इसके पश्चात् त्रिफला के क्वाथ में

पचावें । इस प्रकार करने से गन्धक का दुर्गन्ध निश्चय नष्ट हो जाता है ।

गन्धक का अनुपान—चर्मरोग में मोचाफल के साथ, बल वर्धनार्थ त्रिफला के साथ, कासरोगनाशनार्थ अड़सा के साथ अथवा अग्निमान्द्य तथा उर्ध्वभाग के रोगों में त्रिफला के क्वाथ के साथ शुद्ध गन्धक का सेवन करना हितकर है ।

गन्धक कल्क—५ पल शुद्ध गन्धक ग्रहणकर भाँगरे के स्वरस में पीसकर छाया में शुष्ककर लेंवें और सम भाग में छोटी हरड़ का चूर्ण मिश्रितकर दो-दो तोला की मात्रा में तथा अग्निबल, वीर्यबल के अनुसार मधु और गोघृत के साथ नित्य मासपर्यन्त सेवन करने से व्रण, कुष्ठादि समस्त पाप रोगों का नाश होता है; वृद्धता नष्ट होकर युवा अवस्था प्राप्त होती है । (वृ० र० रा० सं०) । मात्रा—१० माशा । पथ्य—उष्ण जल से स्नान करें, और लवण, अम्ल पदार्थ, गुड़, तैल इनको वर्जित करें ।

गन्धकचूर्ण, और पीपल समान भाग में ग्रहणकर हरीतकी चूर्ण के साथ मिश्रितकर सेवन करने से क्षुधा, पुष्टि तथा कान्ति की वृद्धि होती है और नेत्ररोगों का नाश होता है ।

गन्धक रसायन—शुद्ध आमलासार गन्धक ग्रहणकर इसमें गोदुग्ध, चातुर्जात, गिलोय, हरड़, बहेवा, आमला, सोंठ और भाँगरा के रस को ८-८ भावना देंवें । इसी प्रकार ८ भावना अदरख के रस की देंवें । पुनः गन्धकतुल्य भाग में मिश्री मिश्रित करें । मात्रा—४-९ माशा । गुण—इसके सेवन से धातुक्षय, संपूर्ण प्रमेह, अग्निमान्द्य, शूल, उदरविकार और समस्त कुष्ठों का नाश होता है, शरीर पुष्ट होता है और बलवीर्य की वृद्धि होती है । **सेवन-विधि**—सर्वप्रथम वमन-विरेचनादि कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि करने के पश्चात् इसका सेवन करना चाहिए । अन्यथा वांछित फल की प्राप्ति नहीं होती । पथ्य—जंगली जीवों का मांसरस अथवा बकरे का मांस देंवें ।

गन्धकतैल-विधि—शुद्ध गन्धक १ भाग त्रिकुटा १६ भाग, एकत्र मर्दन करें और १ हाथ का कपड़ा ग्रहणकर उस पर फैलाकर बत्ती बनाएँ और उसको डोरा से लपेटकर तिलतेल में १ प्रहर भिगा रखें । पुनः बीच में चिमटी से पकड़कर दोनों सिरों में आग से दीपकतुल्य प्रज्वलित करें और बत्ती के नीचे काँच का कटोरा रखकर उसमें तेल टपका लेंवें । इस द्रुति को सुरक्षित रखें । यही गंधक का तैल है । इस द्रुति में ३ बूंद पान का रस, द्रुति समान शुद्ध पारद मिश्रितकर मर्दन कर लेंवें । यह कज्जली १-३ रत्ती की मात्रा में पानपर रखकर सेवन करने से कास, खास, पाण्डु, क्षय, असाध्य शूल, आमरोग,

अग्निमान्द्य तथा कुष्ठ का नाश होता है। इसको वातारि तैल भी कहते हैं। ग्रन्थान्तर से गुण—

यह गन्धकद्रुति त्रिफला और शुद्ध गूगुल के साथ सेवन करने से जराव्याधि का नाश होता है। एक मास के प्रयोग से अर्श, भगन्दर और कफोत्थ रोग नष्ट होते हैं और ६ मास पर्यन्त सेवन करने से देवतुल्य शरीर हो जाता है तथा श्वेतकेश, बलि, चलदन्त एवं मन्ददृष्टि दूर होकर बल की प्राप्ति होती है और शुक्लक्षय का नाश होता है; यौवनत्व प्राप्त होता है; शिर के श्वेत बाल काले भ्रमरतुल्य कृष्णवर्ण के हो जाते हैं; गरुड़ की-सी दृष्टि होती है; दन्त दृढ़ होते हैं; बराहतुल्य श्रवणशक्ति होती है; शंकर के समान वृद्धकाय होता है और उसके मल-मूत्र के योग से ताम्र स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है—“दृढदन्तो वृद्धकायो द्वितीय इव शंकरः। तस्य मूत्र-पुरीषेण शुक्लंभवति काञ्चनः।”

धातुवेधक भस्म—गन्धक द्वारा मृतताम्र ग्रहणकर उसके समान हिंगुल मिश्रितकर विजौरे के रस से खरल करें। पुनः सीसे के पत्रों पर लेपकर पुट दें। इस प्रकार ३ पुट देने से सिन्दूरतुल्य भस्म होता है। इसको दक्षिणावर्त ताम्रद्रुति में मिश्रित करने से स्वर्ण बन जाता है।

गन्धकसेवन में त्याज्य वस्तु—लवणीय, अम्लपदार्थ, शाक, द्विदल अन्न अरहर इत्यादि, स्त्री-गमन, पादपर्यटन, पित्तकारक द्रव्य तथा घोड़े की सवारी वर्जित है।

गन्धक-विकारशांति—गोधुध में गोघृत मिश्रितकर पान करने से गन्धकोत्थ दोष शांत होता।

गन्धक का तेजाब—पर्याय—(सं०) गन्धकाम्ल; (अं०) सल्फ्युरिक एसिड (Sulphuric Acid); (ले०) एसिडम् स्फुरिकम् (Acidum-Sulphuricum); (फा०) तेजाब गोगिर्द; (अ०) अर्क किब्रीत।

परिचय—यह एक प्रकार का वर्णहीन लौहद्रावक जलवत् द्रव है। स्वाद—अत्यन्त अम्ल होता है। विशुद्ध गन्धकाम्ल में जल का मिश्रण करने से इसमें अत्यधिक उष्णता प्राप्त होती है। इसके द्वारा प्रस्तुत औषधीय सत्वों को सल्फेट की संज्ञा दी जाती है अर्थात् उसमें सल्फेट का शब्द योजित रहता है; यथा—सल्फेट ऑफ किनीन इत्यादि। जलमिश्रित द्रव को अंग्रेजी में ‘डॉयलूट सल्फ्युरिक एसिड’ कहते हैं। यह एक भाग और १२ भाग जल मिश्रितकर प्रस्तुत किया जाता है। एलोपैथिक के अनुसार इसका आदि निर्माता अबुबकर-मुहम्मदबिनजकरियाराजी है। गन्धकाम्ल में ९८ प्रतिशत हाइड्रोजन सल्फेट होता है। अथवा इसमें २ भाग हाइड्रोजन और गन्धक और १ भाग ऑक्सीजन (ऊष्मजन) होता है। गन्धक के तेजाब का लकड़ी के कोयले वा पारा के साथ पाक करने से जो वाष्प उत्पन्न

होते हैं, उनको जल में अभिशोषित करने से ‘सल्फ्युरस एसिड’ प्रस्तुत होता है। सल्फ्युरिक एसिड द्वारा जो लवणीय पदार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं उनको ‘सल्फेट’ कहते हैं और जो सल्फ्युरस एसिड द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं उनको ‘सल्फाइड्स’ कहते हैं।

विशुद्ध—गुण-कर्म—तीव्रदाहक, क्षारघ्न, उग्रजलशोषक, और कृष्णकारक है। **उपयोग**—इसमें समान भाग कोयले का चूर्ण मिश्रितकर कर्कटार्बुद (सरतान) पर लगाने से लाभ होता है। विषैले जन्तुओं के दंशस्थान पर लगाने से विष का प्रभाव नष्ट होता है।

जलमिश्रित गन्धकाम्ल—संग्राहक, शक्तिवर्धक, क्षारघ्न, अजीर्णनाशक, शूलघ्न और आमाशयबलप्रद है।

उपयोग—क्षयजन्य स्वेदाधिक्य में उपयोग करने से लाभ होता है। जलोदर, गुल्म, अतिसार, रक्तष्ठीवन, रक्तवमन वा आन्त्रस्थ रक्तस्राव में उपयोगी है। क्षारमेह में देने से उपकार होता है। प्लीहवृद्धि में अत्यन्त उपयोगी है।

अहितकर—विशुद्ध गन्धकाम्ल विष है। इसको बिना जल के मिश्रण के कदापि उपयोग में न लाएँ।

गन्धकाम्ल के उपयोग से मुख में अत्यधिक लाला की उत्पत्ति होती है, तृष्णा का नाश होता है, दाँतों की जड़ निबल होती है और दाँत कुंद हो जाते हैं।

निवारण—उपयोग के पूर्व दाँतों पर मक्खन लगा लिया करें। अथवा चूने का पानी पीने के पश्चात् सेवन करें वा चूने के पानी से कुल्ली करें।

मात्रा—जलमिश्रित की ५ से ३० बूँद।

तिब्ब के अनुसार गन्धक—उत्पत्ति—एक सुप्रसिद्ध प्रकार का खनिज द्रव्य है। मृत्तिका के शुष्क वाष्प-कण व तरल-जलकण आपस में मिश्रित होकर सूर्य की उष्णता द्वारा परिपक्व होकर उनमें स्निग्धता, उष्णता, तरलत्व और हृदकापन उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् गन्धक का स्वरूप धारण हो जाता है।

डॉक्टरों मतानुसार—पाश्चात्य चिकित्सकों का कथन है कि यह एक खनिज विशुद्ध तत्व है जो प्राकृतिक अवस्था में मिश्रणों का स्वरूप अधिक ग्रहण कर लेता है। कुल ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ विशुद्ध गन्धक प्राप्त होता है; यथा—ज्वालामुखी पर्वत—सिसली, इटली इत्यादि इसके अतिरिक्त यह ताम्र, लोहादि धातुओं के साथ भी मिश्रित अवस्था में प्राप्त होता है। इन मिश्रणों को अंग्रेजी में सल्काइड कहते हैं; यथा—नाग मिश्रित होने से नाग-गन्ध (लेड सल्काइड), यशद-मिश्रित होने से यशदगन्ध (जिङ्कसल्काइड), लोह मिश्रित होने से गन्ध लौह (आयर्न सल्काइड), ताम्र मिश्रित होने से ताम्रगन्ध (कॉपर सल्काइड) इत्यादि। उक्त धातुओं

को गलाकर शुद्ध गन्धक पृथक् कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह कैल्सियम्, मैग्नीसियम् और सोडियम् के साथ भी मिश्रितरूप में रहता है। किसी-किसी स्थान के जल में भी मिश्रितरूप में गन्धक होता है। इसके अतिरिक्त यह वनस्पतियों में भी होता है; यथा—गन्धप्रसारणी, मूली, गन्वाली इत्यादि। भारत-वर्ष में आमलासार और नैनुआ गन्धक प्रायः प्राप्त होते हैं। औषधार्थ प्रायः आमलासार और विस्फोटार्थ एवं त्वचा के रोगों में बाह्य प्रयोग हेतु नैनुआ गन्धक ग्रहण किया जाता है।

घुलनशीलता—यह जल एवं मद्य में नहीं घुलता। घृत, तेल और कली के चूना के साथ जलयुक्त पकाने से घुलकर रक्तपीताभ घोल प्रस्तुत होता है।

भेद—वर्णभेद से यह ५ प्रकार का होता है—रक्त, पीत, हरित, श्वेताभ, किंचित् नीलाभ और कृष्ण।

परीक्षा—ध्रेष्ठ गन्धक वह है जो भारी, अत्यन्त रक्त-वर्ण स्वच्छ होता है। किसी के अनुसार दुर्गन्धयुक्त पीत वर्णका उत्तम होता है।

गन्धक सत्व—पर्याय—(फा०) गुलेगोर्गिर्द; (हि०) गन्धक के फूल; (अ०) सल्फर सब्लीमेट, सब्वाइम्ड सल्फर।

गन्धक कज्जली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ज्वर में प्रयुक्त गन्धक की कज्जली। **निर्माण-विधि**—छोटी कटेरी श्वेत-निगुण्डी और घृतकरंज (पुतिकरंज-डिठोहरी) का स्वरस ग्रहणकर एक कुठारी में डालकर इसमें शुद्ध गन्धक डालें। पुनः इसको अग्नि देकर पिघलाएँ और इसमें गन्धक-तुल्य शुद्ध पारद मिश्रितकर द्रावण करें। पुनः अग्नि से उतार कर शीतल हो जाने पर खरलकर कज्जलतुल्य पीसकर रख लें। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान तथा सेवन विधि—जीरक चूर्ण १ माशा, लवण १ माशा, नागर-पान पर रख सेवन करने से ज्वर, घोर त्रिदोषज ज्वर उष्ण-युक्त देने से, मिश्री के साथ देने से छर्दि (वमन), गुड़ के साथ देने से आमविकार, बकरी के दुग्ध के साथ देने से क्षयरोग, कुड़ा की जड़ व छाल के साथ देने से रक्तातिसार, सपक गूलर के स्वरस के साथ देने से रक्तज वमन, रक्तपित्त तथा अन्य उचित अनुपान के साथ देने से समस्त व्याधियों का नाश होता है, आयुष की वृद्धि होती है और मृत्यु का भय दूर होता है। (भेष०)।

गन्धक जारण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पारदमूर्च्छा जो गन्धक के योग द्वारा किया जाय। भारतीय रसायनशास्त्र का आदेश है कि जो व्यक्ति बिना गन्धकजारण के पारद का मारण करता है, उसको श्री शिवजी का शाप पड़ता है। गन्धक जारण के दो भेद हैं—(१) बहिर्धूम और (२) अन्तर धूम। दे० 'पारा'।

गन्धक तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्धक का तैल अथवा कर्णनाद में प्रयुक्त उक्त नाम का तैलयोग।

द्रव्य तथा निर्माण विधि—कल्कार्थ—हरिद्रा १ पल, गन्धक १ पल, कटुतैल ८ पल और धुस्तूरपत्रस्वरस ८ पल—सबका एकत्र मन्दाग्नि से तैलपाक करें। सिद्ध हो जाने पर तेल छानकर सुरक्षित रखें। गुण—इसको कान में डालने से कर्णनाद, कर्णशूलादि नष्ट होते हैं। (रस० र०)। दे० 'गन्धक'।

गन्धक द्रावक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अर्कीकृत गन्धक विशेष। (आ०)। दे० 'गन्ध द्रावक'।

गन्ध कन्दक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसेरू। कशेरूका। (रा० नि० व० ८)।

गन्धक पिण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धकपिण्डिका। गन्धकजारणमारणार्थ सगन्धक पिण्डी। **निर्माण-विधि**—शुद्धगन्धक १ कर्ष और शुद्ध पारद १ पल ग्रहणकर संतप्त खल में देवदाली के स्वरस में डालकर अङ्गुली द्वारा मर्दन करने से गन्धक की पिण्डी बन जाती है। (र० चि० ५ अ०)।

गन्धक रसायन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० 'गन्धक'।

गन्धकली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोदनी। प्रियङ्गु। (च० द० विष० चि०)। (२) चम्पे की कली। चम्पक कलिका।

गन्धकवटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अजीर्ण रोग अधिकारोक्त उक्त नाम का गन्धक योग। **द्रव्य तथा निर्माणविधि**—शुद्ध गन्धक २ तोला, चित्रकमूलचूर्ण, मिर्च, पीपल, प्रत्येक ४-४ तोला, सोंठ २ तोला, जवाखार, तीनों लवण प्रत्येक ६-६ माशा, एकत्र चूर्णकर नीबू के रस में खरलकर छोटे वेर प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके उपयोग से शूल, संग्रहणी दोष, आमदोष, गुल्म, विसूचिका, उदावर्त तथा उदर रोगों का नाश होता है।

(२) शुद्ध गन्धक २ तोला, शुद्ध पारद ४ तोला, सोंठ चूर्ण २ तोला, लौंग ४ तोला, मरिच ४ तोला, सेंधा-लवण १२ तोला, सोंचरलवण १२ तोला, चनाखार ८ तोला, मूलीखार ८ तोला—सबका एकत्र चूर्णकर यथा-विधि धूप में नीबू के रस में ७ दिन खरल करें और झाड़वेरप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके सेवन से उदररोग तथा अजीर्ण का शीघ्र नाश होता है। (३) शुद्ध गन्धक, त्रिफला, सेंधालवण समान भाग में ग्रहणकर एकत्र चूर्ण कर नीबू के रस में खरलकर गोलियाँ बनाएँ। मात्रा—झाड़वेर प्रमाण। गुण—उदरशूल-अजीर्ण तथा विसूचिका का नाश होता है।

गन्धकस्तूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वनाम से प्रसिद्ध गन्धद्रव्य विशेष।

गन्धकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सफेद लजालू। श्वेत लज्जालुका। (२) सलई। शल्लकी वृक्ष। (वै० निघ०)।

गन्धकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अगर। अगुरु काष्ठ। (त्रिका०)। (२) किंचित् पीत वर्ण का चन्दन। शवर चन्दन। (रा० नि० व० १२)। (३) काली अगर। कृष्णागुरु। (वै० निघ०)।

गन्धकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सलई। शल्लकी। (वं०) शालुई। (च० द० वा० व्या० एकादश शती प्र० तैले)।

गन्धकी तेजाब—संज्ञा पुं० [हिं०] गन्धक का तेजाब। दे० 'गन्धक'।

गन्धकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुरामांसी। (रा० नि० व० १२)।

गन्ध कुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोकणदेश में प्रसिद्ध गणिकारीपुष्पवृक्ष। (रा० नि० व० १०)। दे० 'गणिकारी'।

गन्ध केलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कस्तूरी। (रा० नि० व० १२)। (१) गन्धमालती। (वै० निघ०)।

गन्धकोकिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धमालतीतुल्य एक प्रकार का गन्धद्रव्यविशेष। गुण—स्निग्ध, उष्ण, कफघ्न। (भा० क० व०)।

गन्धखेड़ (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तृणविशेष। पर्याय—(सं०) गन्धवीरण, भूतृण, रोहिष, गोमय प्रिय (र०), गन्धतृण, सुगन्धभूत तृण, सुरस, सुरभि, सुगन्धि, मुखवास; (हिं०) गैजनी, रोहासा, तिखाड़ी। (रा० नि० व० ८)। गुण—किंचित् तिक्त, रसायन, स्निग्ध, मधुर, शीतल, कफ, पित्त एवं श्रमनाशक है। यह मध्यप्रदेश के जंगलों में प्रायः होती है वहाँ इसको तिखाड़ी वा रोहासा कहते हैं। इस पर भारतीयराज्य द्वारा ठीका होता है। भारत से इसका निर्यात विदेशों में होता है। दे० 'रोहिष'।

गन्धगर्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वेल। विल्व वृक्ष। (वै० निघ०)।

गन्धगात—संज्ञा पुं० [सं० गन्धगात्र] चन्दन।

गन्धगात्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चन्दन।

गन्धगिरि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] मलयागिरि चन्दन। (Erythroxylon monogynum)।

गन्धगूहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुरामांसी। (वै० निघ०)।

गन्धगोकुल—संज्ञा पुं० [वं०] गन्धमाज्जरी। मुश्क बिलाव।

गन्धग्राही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाक। नासिका। (वै० निघ०)।

गन्धचन्दन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सफेद चन्दन। श्वेत चन्दन। सम्बर चन्दन।

गन्धचेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मुखदाना।

गन्धचेली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लताकस्तूरी। मुष्कभिण्डी। (प० मु०)। (२) कस्तूरी। मृगनाभि। (त्रिका०)। (३) जुन्दवेदस्तर। खट्टासी। जवादि कस्तूरी। (वै० निघ०)। दे० 'जवाद'।

गन्धजनपदध्वंसनज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्फ्लुएन्जा।

गन्धजात—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तेजपात। तेजपत्र। (श० र०)।

गन्धतण्डुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुगन्धशाली। एक प्रकार का धान जो अत्यन्त सुगन्धपूर्ण होता है। (रा० नि० व० १६)

गन्धतिरिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बोरो धान

गन्धतिरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धतिरिय] जो गंगा के तटों में होता है। शालिधान्य विशेष।

गन्धतुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुगन्धतुलसी। गुलाब तुलसी। (वं०) दुलल तुलसी, गोलाप तुलसी। (प० मु०)।

गन्धतूर्य्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का बाजा। वीगुल। रणतूर्य्य। महाश्वन। (शब्द र०)।

गन्धतृण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रोहिष तृण। तिखाड़ी। (२) सुगन्धबाला, बालक। रोहासा। (Andropogon schoenanthus)। (वै० निघ०)। दे० 'गन्धखेड़ (क)'।

गन्धतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊरुस्तम्भ में प्रयुक्त उक्त नामका तैलयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—कृष्णतिल ग्रहणकर धाराजल में वस्त्र में बांधकर भिगों दें। पुनः शुष्ककर इसमें गोदुग्ध की भावना देकर शुष्क करें। इसी प्रकार २१ दिन तक मधुक वृक्ष की छाल के स्वरस की भावना देकर शुष्क करें और पुनः चक्रयंत्र (कोलू) में पेरकर तेल निकलवाएँ।

कल्कार्थ—काकोली, मुलहठी, मजीठ, अनन्तमूल, कूट, सर्जरस, जटामांसी, देवदारु, चन्दन, सौंफ, तिलचूर्ण आवश्यकतानुसार ग्रहणकर उक्त तैल में सुवासित करें अथवा चक्रतैल में पेरने के पूर्व ही इन द्रव्यों का चूर्ण मिश्रित किए उक्त तिलचूर्ण के साथ चक्रयंत्र में पीड़ितकर तेल निकलवाएँ। पुनः इस तैल में, उक्त द्रव्यों का कल्क और सबका चौगुना गोदुग्धयुक्त यथाविधि तैल पाक करें। पाककाल में इसमें छोटी इलायची, शालपर्णी, जीरा, तगर, लोध, पौड़ा, काली निशोथ, अनन्तमूल, शिलाजीत, क्षीर काकोली (अभाव में शतावरी), धमासा, मूर्वा, सिंघाड़ा, इनका कल्क निर्माणकर मन्दाग्नि से पाक करें।

गुण—इसके पान, अभ्यङ्ग, नस्य, वस्तिर्कर्म तथा भोजनादि द्वारा सेवन करने से भग्नरोग, पक्षाघात,

आक्षेपक, तालुशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्ण-शूल, हनुग्रह, वाधिर्य, तिमिर, अधिक स्त्रीप्रसंगजन्य श्वरोग इत्यादि का नाश होता है। इसके प्रभाव से—ग्रीवा, कन्धा तथा वक्षादि की वृद्धि होती है। कमलतुल्य सुगन्धपूर्ण मुख हो जाता है। यह राजाओं के सेवन योग्य उत्तम तेल है।

पथ्य—लवण, क्षारीय, कटु पदार्थ, अम्लरस, स्त्री-प्रसंग, व्यायाम, रूक्ष अन्न तथा सूर्यतापसेवन वर्जित है। (भैष०; च० द०)।

गन्धत्रिसी—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] (ब०) ओला चाहा। तिखाड़ी। गन्धेल।

गन्धत्वक्—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) एलवालुक। (रा० नि० व० ४)। (२) कपित्थ कैथ।

गन्धद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चन्दन।

गन्धदला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अजमोद। वनयमानी। (रा० नि० व० ६)।

गन्धदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धेल।

गन्धद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पक्वतैल-सुवासन-द्रव्य। तेल का मसाला। यथा—इलायची, चन्दन, केशर अगर, मुरामांसी, जटामांसी, शीतलचीनी, कचूर, कपूर-कचरी, श्रीवास धूप, ग्रन्थिपर्णी, कर्पूर, उशीर, क्षौणीध्वज, कस्तूरी, नख, पूतिगन्ध, कमल, मेथी, लौंग इत्यादि (भैष०), कुष्ठ नालिका, पूतिगन्ध, उशीर, श्वेतचन्दन, जटामांसी, तेजपत्र, नखी, कस्तूरी, जावित्री, शीतलचीनी, केशर, चोंच, लताकस्तूरी, वच, छोटी इलायची, अगर, मोथा, कर्पूर, ग्रन्थिपर्ण, श्रीवास, कुन्दुरु (लोवान), नाग-केशर, गन्धमात्रिका, सिल्हक, मिषिका, मेथी, नागर-मोथा, शटी, जातिकोप (जावित्री), शैल (छड़ीला), देव-दारु, जीवक। गुण—रुचिकारक, दीपन, पाचन, मुखदुर्गन्धहर, मेदघ्न तथा श्रमघ्न है। (रा० नि०)।

गन्धद्रावक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्धकारक। गन्धक-का मिश्र अर्क। गन्धकादि तेजाव। निर्माण-विधि—गन्धक, काशीश, शोरा—वकयंत्र द्वारा शीशपात्र में यथा-विधि अर्क परिस्तुत करें। यह जलवत् अत्यन्त अम्ल एवं दाहक होता है। इसमें १४ गुना जल मिश्रितकर सेवन करने से अजीर्ण, गुल्म, प्लीहरोग इत्यादि का नाश होता है। मात्रा—१ बूँद। (अत्रि०)।

गन्धधूमज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अगरसार। स्वच्छ अगर का इत्र। (रा० नि० व० १२)।

गन्धधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कस्तूरी। (हे० च०)।

गन्धधूली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }

गन्धन—संज्ञा पुं० गन्धना।

गन्धनकुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छुछूंदर। छूँचो। (अं०) मस्करैट (Musk Rat)। (हारा०)।

गन्ध-नाकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रास्ना। (२) नकुल कन्द। नाकुलीकन्द। गन्धरास्ना। सुगन्धनाकुली। (हि०) नाई, नाही, मिर्चिया कंद; (सं०) महासुगन्धा, सुवहा, सर्पाक्षी, फणिहन्त्री, नकुलाढ्या, अहिभुक्, विष मर्दनीका, अहिमर्दनी, विषमर्दनी, महाहिगन्धा, अहिलता; (ले०) कोरेल्लोकार्पस इपीजिआ (Corallocarpus Epigaea); (पु०) नाहीकंद, नाही (शोडल); (बं०, हिं०) राकस गड्डा, आकाशगड्डा।

परिचय—एक प्रकार की प्रसिद्ध लता है। वर्षाऋतु में करीलादि के वृक्षों पर चढ़ती है।

गन्धपलाशजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वंसलोचनभेद।

गन्धपलाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (वै० निघ०)

गन्धपलाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बाहल्दी।

गन्धपलाशी (सी)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Curcuma Amhaldi Zerumbet)। दे० 'हल्दी'।

गन्धपल्लवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बाहल्दी। गन्ध-पलासी। कपूरकचरी भेद। (वै० निघ०)।

गन्ध पसार—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप्रसारणी] गन्ध—

गन्ध-पसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धप्रसारणी] प्रसारणी।

गन्ध-पाषाण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धक। (२० मा०; भैष० कुष्ठ चि०)।

गन्धपिटका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धनामा। क्षुद्र

गन्धपिडका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रोगगत एक प्रकार की फुंसी।

गन्ध पिण्ड—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्पृक्का। असवरग।

गन्धपिण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धक जारणमार-णार्थसगन्धक पिण्डी। दे० 'गन्धकपिण्डी'।

गन्धपिण्डीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला मैतफल। कृष्ण मदनवृक्ष। (बं०) काल मयनागाछ। (म०) कालेगेल। (वै० निघ०)।

गन्धपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) धूप।

राल। (हे० च०)। (२) छुछूंदर। छुछुन्दरी। (अं०)

मस्करैट (Musk Rat)। (वै० निघ०)। दे० 'छुछूंदर'।

गन्ध-पिण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गन्धकपिण्डी। (२) सरो का वृक्ष।

गन्धपीता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धपत्री। पलाश-नाश (द०)।

गन्धपुचेवक—संज्ञा पुं० [ते०] सफेद चन्दन। श्वेत चन्दन।

गन्धपुष्प (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वेतस वृक्ष। बेदमुस्क।

(रा० नि० व० ९, ११)। (२) अङ्गोल। डेरा।

(बं०) आँकोड गाछ। (जटा०)। (३) अशोक वृक्ष।

(४) नील। नीली क्षुप। (वै० निघ०)।

गन्ध-पुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गणिकारिका-

पुष्पवृक्ष । (२) केतकी । केवड़ा भेद । (रा० नि० व० १०) । (३) नील । नीलनी । (रा० नि० व० ४) ।

गन्धनामा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] } क्षुद्रोगान्तरगत एक
गन्धनाम्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] } प्रकार की पिटिका ।
गन्धनाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] }

लक्षण—धान की खील सदृश कठोर पिटिका को 'गन्धनामा' कहते हैं । (वा० उ० ३१ अ०) । यह पित्त के प्रकोप से उत्पन्न होती है और त्वचा के आश्रित होती है । (भा० म० ४ भ०; मा० नि०) ।

गन्धनासिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } नाक । नासिका ।
गन्धनाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (No c) ।

गन्धनिलया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वटमोंगरा ।
वृषमल्लिका । (श० च०) ।

गन्धनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कर्पूरहरिद्रा । कपूर
कचरी । जंगली कचूर ।

गन्धनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } रेवतचीनी । पीत मूली ।
गन्धपत्र (क)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } (१) तेज पत्र ।
तेजपात । (वै० निघ० अर्श चि० कनकार्णव रस) ।
(रा० नि० व० १०) । (२) प्रसारणीपत्र । खीप की
पत्ती । (बं०) गन्धभादुलेर पाता । (सुदर्शन चूर्ण, ज्वर
चि०) ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) सफेद तुलसी । श्वेत तुलसी ।
(२) मरुता । मरुवक क्षुप । गन्ध तुलसी । नागदौन ।
(३) बबूँर । काली तुलसी । बबुई तुलसी । (रा० नि०
व० १०) । (४) नारंगी । नागरङ्ग । (५) वेल । बिल्व
वृक्ष । (रा० नि० व० ११) ।

गन्धपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) पर्याय—
गन्धपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (द०) पलाशनाश ।
गन्धपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (मालवा) गन्ध
पलाशी; (हि०) कपूरकचरी; (बं०) गन्धशटी ।
(२) अम्बाहल्दी । (बं०) आम आदा । आम्र हरिद्रा ।
(३) अजमोद । वनयमानी । (रा० नि० व० १०) ।
(४) गङ्गापत्री । पत्रशाक विशेष । (रा० नि० व० १०) ।
(५) असगंध । अश्वगन्धा । (६) पाठा । निविषा ।
अम्बष्ठा । (बं०) आकनादि । (रा० नि० व० ४) ।

गन्धपनिराजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } रामतुलसी ।

गन्धपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } काकपुष्प ।

गन्धपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } पाठा । निविषी ।
अम्बष्ठा ।

गन्धपलाश—संज्ञा पुं० [] } कपूरकचरी ।

गन्धपूतना—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } पूतना भेद । बालग्रह-
भेद ।

गन्धपूतनाग्रहजुष्ट—वि० [सं० त्रि०] } गन्धपूतनाग्रह द्वारा
पीडित बालक । लक्षण—इस ग्रह पीडित बालक के अंग

शिथिल हो जाते हैं, रात्रि तथा दिन में किसी काल में
भी सुखपूर्वक निद्रा नहीं आती, दस्त पतला होता है,
शरीर से काकपक्षीतुल्य गन्ध आती है, उमन होता है,
शरीर में रोमांच होता है और पुनः पुनः तृषा लगती है ।

चिकित्सा—नीम, परवल, कटेरी, गिलोय और अहसा
इन तित्त गणों को ग्रहणकर अथवा-पीपल, पीपलामूल,
चित्रक, मुलहठी, मधु, शालपर्णी, बड़ी कटेरी—इन्हें
समान भाग में ग्रहणकर कल्क बनाएँ और गोघृत में
पकाकर छान लेवें । मात्रा—१०-१५ बूँद । गुण—इसके
पान से पूतनाग्रहपीडित बालक की पीड़ा शान्त होती है ।

प्रलेप—केशर, कस्तूरी, लाल चन्दन, कपूर और अगर
इन्हें पीसकर उबटन करने से लाभ होता है अथवा नेत्रों
के ऊपर चन्दन तथा कपूर को पीसकर लेप करें । अथवा
केशर, कस्तूरी और अगर पीसकर शरीर में अभ्यङ्ग
करें ।

धूपन—मुरगे की विष्ठा, केश, साँप की काँचली और
बालक के बिछौने का वस्त्र ग्रहणकर पुनः पुनः धूनी दें ।

बलि—सेमल, करंज, कुनरू तथा जवासा इनमें से
किसी को सूत में बाँधकर गले में धारण कराएँ और
चौराह में अपक्व वा पक्व मांस रुधिर का बलिदान करें ।

गन्ध पूर (रो)—संज्ञा पुं० [हि०, म०] पर्याय—(सं०) तैलपत्र,
श्वेत-पुष्प, गन्धपूर्ण, हेमन्तहरितपत्र; (ले०) गॉल्थेरिया
फ्रैग्रेण्टिसिमा (Gaultheria Fragrantissima),
गॉल्थेरिया प्रोकम्बेंस (G. Procumbens), गॉल्थेरिया
लेस्केनल्टिल (G. Leschanultil), ऐण्ड्रोमा लेस्केनल्टिल
(Androma Lheschanultil); (अं०) इण्डियन
विन्टरग्रीन (Indian Wintergreen); (हि०, बं०, म०,
जावा) गन्धपूरो ।

गन्धपूर कुल (Family : Ericaceae) ।

उद्भवस्थान—नीलगिरि, बरमा पर्वत, लंका, नेपाल,
भूटान इत्यादि ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का उबनशील
तैल, आर्ब्युटीन (Arbutin), एरिकोलीन (Ericolin),
अर्सोन (Ursone), गोद और ६ प्रतिशत कषायीन
(Tannin) और ५ प्रतिशत भस्म होता है । गन्धपूर्ण
तैल (Oleum Gaultheria) में लौहांश होता है ।

घुलनशीलता—सुरासार में अतिशीघ्र विलीन होता है ।
यह कोलतार द्वारा प्राप्त कार्बोलिकाम्ल द्वारा शुद्ध
होता है । इसमें १० प्रतिशत जलाङ्गार (Hydro-
carbon) और मीथिल सैलिसिलेट (Methyl sali-
cylate) जो प्राकृतिक वेतसाम्ल (Salicylic acid) में
प्राप्त होता है, वर्तमान रहता है ।

गुण-कर्म—उत्तेजक, सुगन्धप्रद, वायुनाशक तथा
कोथप्र है । उपयोग—१० बूँद की मात्रा में वृद्धिक्रम

से प्रदान करने से गृध्रसी और उग्र आमवातजन्य पीडा शान्त होती है। इसको मरहमों में मिश्रितकर उक्त रोग में अभ्यङ्ग करने से लाभ होता है। इसे अत्यल्प मात्रा में वनस्पतिकोथप्रशमनार्थ उपयोग में लाते हैं। सुगन्ध-वर्धनार्थ तैल वा मरहमों में मिश्रित किया जाता है। दन्त-शूल वा कर्णशूल में किसी उपयुक्त तेलमें मिश्रितकर उपयोग किया जाता है।

गन्धपूर्णसुरा (Spiritus-Gaultheria)—२० भाग सुरासार में १ भाग गन्धपूर्णतैल मिश्रितकर प्रस्तुत किया जाता है। उपयोग—सुगन्धवर्धनार्थ—मात्रा— $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम।

प्रतिनिधि—विदेशी विण्टरग्रीनतैल।

गन्ध प्रसार (रि) णी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्याय—(हिं०) खीप, गन्धाली; पसारि, प्रसार (रि) णी, गन्ध-पसार, पसरन; (सं०) गन्धाली गन्धालि, गन्धालिका, गन्धाढ्य, प्रसारणी, भद्रपर्णी, कटंभरा, शरणा, शरणी गन्धाढ्या, गन्धभद्रा, सरणा, राजवला, भद्रवला, गन्धोली, सारणी, सरणी, प्रतापनी, भद्रा, वला, सरणि, सुप्रसरा, प्रसरा, चारुपर्णी, प्रतानिका, प्रवला, राजपर्णी, चन्द्रपर्णी, चन्द्रवल्ली, प्रभद्रा; (बं०) गन्धभाद्रुलिया, गन्धभाद्रुली, गन्धभादली, गन्धपादुली, गन्धपादुल्या; (म०) हिरण्वेल; चाँदवेल; (गु०) नारी, गन्धप्रसारणी, गन्धान; (आसाम) विदोली सुत्ता; (सिक्किम) पादेवीरा; (कना०) हेसरणे; (ते०) साविरेला; (ते०) गोन्तेम गोष्ट चेदु; (ले०) पोडेरिया फीटीडा (Peaderia foetida), कॉन्वाल्वुलस फीटीडस (Convolvulus Foetidus), एपोसाइनम् फीटीडियम् (Apocynum Foetidum)। मञ्जिष्ठा कुल (Family : Rubiaceae)।

उद्भवस्थान—भारतवर्ष के पूर्वीय बंगाल, पश्चिमी बंगाल, आसाम, पूर्वीय हिमवती, मध्यवर्तीय हिमवती पर्वत इत्यादि।

परिचय—यह प्रसर जाति की लता है। इसकी शाखाएँ बहुत दूर तक फैलती हैं। इसमें विसनोटिया वा गुडमार-तुल्य पत्तियाँ लगती हैं। पत्तियों के मर्दन करने से मूली की सी गन्ध आती है। स्वाद किंचित कटु होता है। बंगाल में इसके पत्र द्वारा छोल निर्माणकर चावल के साथ खाया जाता है। उड़द के वेसन में पत्तियों का बटक (बड़ा) बनाकर भक्षण कराते हैं।

गुण—गुष्पाकी, वीर्यवर्धक, बलप्रद, अस्थिसन्धानकारक उष्णवीर्य, दस्तावर, कटु, वातघ्न, कफघ्न तथा रुधिर-विकारनाशक है (भा०)।

गन्धप्रियंगु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] पर्याय—(हिं०) गोंदनी, फूल-प्रियङ्गु; (म०) गहुला, गह्वला; (ले०) (Aglaia Roxburghiana), (Calicarpa Lanata, Linn.)।

गन्धफणिज्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामतुलसी। रक्ततुलसी-क्षुप। (२० मा०)। फिरंजमिस्क।

गन्धफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कैथ। कपित्थ वृक्ष। (२) वेल। दिल्व वृक्ष। (३) तेजफलवृक्ष। (रा० नि० व० ११)।

गन्धफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोंदनी। प्रियङ्गु वृक्ष। (Aglaia Roxburghiana)। (श० र०)। (२) मेथी। मेथिका। (३) सलई। शल्लकी वृक्ष। (रा० नि० व० ६, ११)। (४) जटामांसी। मुरामांसी। (वै० निघ०)।

गन्ध फलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ी इलायची। स्थूल एला। (रा० नि० व० ६)।

गन्धफली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोंदनी। प्रियङ्गु (वै० निघ०)। (२) चम्पा की कली। (बं०) चाँपार कलि। चम्पककलिका। (रा० नि० व० १०)।

गन्धवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कपूरकचरी। शटी। (२) चीड़। चिड़ा नाम क धद्रव्य। देवदारु भेद। (रा० नि० व० १२)।

गन्धबन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाक। नासिका। (अं०) नोज (nose)।

गन्धबन्धु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम। आम्रवृक्ष। (रा० नि० व० २३)।

गन्धबबुला (बबुल)—संज्ञा पुं० रीवाँ। अरिमेद। विट् खदिर।

गन्धबहल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छोटी तुलसी। श्वेत

गन्धबहुल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पत्र की क्षुद्र तुलसी। सिताज्जक क्षुप। (रा० नि० व० १०)।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुगन्धशालिधान्य। लवङ्गचूर। एक प्रकार का सुगन्धपूर्ण धान्य है।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बबुई तुलसी। श्वेतार्जक। (म०) श्वेत आजवला। (२) गोरख इमली। गोक्ष चिञ्च। (रा० नि० व० ५)।

गन्धबहुला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्वेतवर्ण की छोटी तुलसी।

गन्धवेणु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रोहासा। तिखाड़ी।

गन्धवेन्त—संज्ञा पुं० [] } रोहिषतृण। (२) अगिया

गन्धबेल—संज्ञा स्त्री० [] } घास। ज्वरसङ्कुश।

भूस्तृण। (इं० है० गा०)। (डी० ३ भ०, पृ० ५५७)।

गन्धभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धप्रसारणी।

गन्धभाद्रुलिया। गन्धालीलता। (श० च०)।

गन्धभाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गदंभाण्ड। (श०

र०)। (२) अम्बाड़ा। आमड़ा। अम्रातक। (च० सू० ४

अ०)।

गन्धभाद्रु (द्रु) लिया—संज्ञा स्त्री० [बं०] } दे० "गन्ध-

गन्ध भाद्रुली—संज्ञा स्त्री० [बं०] } प्रसारणी"।

गन्धभाद्रुल्या—संज्ञा स्त्री० [बं०] }

गन्धभेदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लोहा । (२) काँच ।
(३) कटक । (रा० नि० व० २३)

गन्धमातृ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } उक्त नाम से
गन्धमातृ(त्रि)का—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } प्रसिद्ध एक
वणिक् द्रव्य । (भैष० स्त्रीरोग उत्पलादि) ।

गन्धमादन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गन्धक । (२) भौरा ।
भ्रमर । (३) वानर विशेष । (मे०) । (४) एक प्रकार का
विष अगद, जो लूतादि कीटविष में प्रयुक्त है ।
“नतरोध्रवचा कट्वी पाठैलापत्र कुङ्कुमैः” । (वा० उ०
३७ अ०) । (५) उक्त नाम का पर्वत जो हिमालय में है ।

गन्धमादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) देवदारु भेद ।

गन्धमादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
चीड़ । (२) आम । आम्रवृक्ष । (रा० नि० व० १२,
२३) । (३) लाख । लाक्षा । (रा० नि० व० ६) ।
(४) बाँदा । वन्दाक । (५) मुरामांसी । (रा० नि० व०
१२) । (६) मुरा विशेष । (त्रिका०) ।

गन्धमाद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } दे० ‘गन्धमातृ’ ।

गन्धमाद्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
गन्धमाज्जरी—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुश्क बिलाव । खटास ।
खट्टास । लोमश माज्जरी । (The civet cat); (बं०)
दे० “गन्ध गोकुल” ।

गन्धमाज्जरीवीर्य—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] खट्टासी ।
गौरा—साखभेद । गुण—वीर्यकारक, कफवातनाशक,
कण्डूकुष्ठहर, नेत्रों को हितकर, सुगन्धप्रद तथा स्वेद-
गन्धनाशक है । (भा०) । दे० “जवाद” ।

गन्धमाज्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) स्त्री खट्टास ।
(२) विल्लीलौटन । वादरंजबूया ।

गन्धमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुगन्धजटामांसी ।
पर्याय—(म०, कना०) बहुलगन्धजटामांसी । (सं०)
केशी, भूतजटा, पिशाची, पिशाचिका, भूतना, भूत केशी,
लोमशा, जटाला, लघुमांसी । गुण—तिक्त, कफघ्न, कण्ठ-
रोध्न, रक्तपित्तनाशक, भूतज्वरनाशक तथा शीतल
है । (रा० नि० व० १२) ।

गन्धमालती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धकोकिला नामक
गन्धद्रव्य । (भा०) । ‘गन्धकोकिलया तुल्या विज्ञेया गन्ध
मालती’ ।

गन्धमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का क्षुद्र-
रोगान्तरगत पिडिका । दे० ‘गन्धनामा’ ।

गन्धमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] । (१) मुरामांसी ।

गन्धमाल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] । (जटा०) । (२)
एक प्रकार का सुगन्धपूर्ण घान्य । सुगन्धशालीधान ।
(रा० नि० व० १६) ।

गन्धमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

गन्धमी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विदारीकन्द ।

गन्धमुण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारसपीपल ।

गन्धमूल (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुलञ्जनलता ।
(रा० नि० व० ६) । (२) नेत्रवाला । बालक । बाला ।
(वै० निघ०) । (३) कचूर । शटी । (श० र०) ।

गन्धमूला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कपूरकचरी ।
कचूर । शटी । (२) सलई । शल्लकी वृक्षमूल । (रा०
नि० व० ११) । (३) स्थलकमलिनी । (४) रास्ना ।
(वै० निघ०) ।

गन्धमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपूरकचरी । गन्ध
गन्धमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शटी । माकन्द ।
(रा० नि० व० ६, ७) । (अम०) ।

गन्धमूषिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } लुलुन्दर । (हे०
गन्धमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } च०) ।

गन्धमूषी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] }
गन्धमृग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खट्टास । गन्धमाज्जरी ।
गन्धगोकुल । जवाद । मुश्कबिलाव । (Civet Cat) ।
दे० ‘खट्टास’ वा ‘जुन्दवेस्तर’ ।

गन्धमृपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम । कदम्ब वृक्ष ।
(वै० निघ०) ।

गन्धमेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चम्पेकी कली ।
चम्पककलिका । (२) बाँदा । वन्दाक । (बं०) वान्दरा ।
(रा० नि० व० १०) ।

गन्धमैथुन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) साँड़ । वृषभ ।
(त्रिका०) । (२) ईर्ष्यक नामका नपुंसक ।

गन्धमोदन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धक । (रा० नि० व०
१३) ।

गन्धमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चम्पाकी
गन्धमोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कली । चम्पक
कलिका । (वै० निघ०) । (२) बाँदा । वन्दा । (रा०
नि० व० १२) ।

गन्धरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) गन्धबोल ।
(२) हीरादोखी । खूनखराबा । दम्मुलअखवैन ।
पर्याय—बोल, प्राण, पिण्ड, पिण्डल, गोप, रस, रस-
गन्ध, गोस, पिण्डगोस, शश, गोसशश, गान्धार, मसि-
वर्द्धन, गोपरस, बोलज, गोपज, गोपक । (३) जुन्द-
वेदस्तर, खट्टासी । (च० द० वा० व्या० एलादि तैले) ।
संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुरामांसी । (वै० निघ०) ।

गन्धरसमु—संज्ञा पुं० [ते०] नीलनिगुण्डी । काला
सम्हालू ।

गन्धरसाङ्गक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्रीवेष्ट नामका गन्ध-
द्रव्य । (रा०) ।

गन्धराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] गन्धराज पुष्प ।

गन्धराजक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुद्गर पुष्प ।

परिचय—इसका वृक्ष गुलआचीनतुल्य होता है । इसमें

श्वेतवर्ण के अत्यन्त सुगन्धपूर्ण पुष्प होते हैं। प्रायः श्रावण वा भादों के महीना में पुष्पित होता है। इसकी पत्तियाँ गुलआचीन की पत्तियों की अपेक्षा छोटी होती हैं। (रा० नि० व० १०) (२) खट्टासी। गन्धराज। जवादि कस्तूरी। जुन्दवेदस्तर। (३) कणगुग्गुलु। (४) श्रीखण्डचन्दन। श्वेत चन्दन। (५) काली अगर। कृष्णअगुरु। (रा० नि० व० १२)। (६) नखी। नख नाम का गन्धद्रव्य। (वै० निघ०)।

गन्धराजगुग्गुलु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कण गुग्गुलु। गुग्गुलु भेद।

गन्धराजतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वातव्याधि अधिकारोक्त एक प्रकार का तैलयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—तिलतैल १६ श०, तक्र १६ श० कांजी ६० श०; कल्कार्थ—यथाविधि—वच ४ पल, त्रिफला, मजीठ, अर्धभृष्ट मजीठ—प्रत्येक ८ पल, सुपारी, पुष्पत्वक्, तेजपत्र, कचूर, सरलकाष्ट, मोथा, देवदारु मिलित ८ पल, कौड़िया लोबान, खट्टासी २-२ पल—इन्हें जल में पीसकर प्रथम सुगन्धवर्धनार्थ तैलपाक करें। पुनः इसमें स्पृक्का, जटामांसी, सुगन्धवाला, मदनफल, तेजपत्र, मरुवा, दालचीनी, दौना, शिलारस, इलायची, गठिवन, खस, मेढासिंगो, नागकेशर प्रत्येक ८ पल, पूर्ववत् कल्क प्रस्तुतकर यथाविधि तैल में मिश्रितकर मन्दाग्नि द्वारा पाक करें। पुनः इसमें सुगन्धवर्धनार्थ तृतीयवार पाक करें। पुनः इसमें सुगन्ध पिण्डीतगर, जटामांसी, मुरामांसी, सुगन्धवाला, लवङ्ग, सुपारीपुष्प, भुईआमला, अगर, कौड़िया लोबान, चम्पकपुष्प, कुन्दपुष्प, प्रियङ्गु, जुन्दवेदस्तर, प्रत्येक २ पल, श्वेत चन्दन, लवङ्गलता, कस्तूरी, कंकोल, जायफल, इलायची, अगर, शिलारस, दालचीनी, जावित्री, लोबान, प्रत्येक २ पल ग्रहणकर चतुर्थवार गन्धवर्धनार्थ पाक करें। सिद्ध हो जाने पर छानकर इसमें कर्पूर १६ तोला, कस्तूरी ६४ तोला पीसकर मिश्रित करें। (रस० र०)। (२) चमेली, मल्लिका, जाती, केतकी, जूही, शमी, कदम्ब, आम्र, चम्पा, अशोक, पाटला, इनका पुष्प जितना प्राप्त हो ग्रहणकर १६ सेर जल में क्वाथ करें। जब चतुर्थांश शेष रह जाय मलकर छान लेवें और कमल का स्वरस, समान भाग ग्रहणकर १ प्रस्थ तिलतैल में मन्दाग्नि द्वारा पाक करें। कल्कार्थ—वच, शिलाजीत, कुट, इलायची, मुरामांसी, शतावरी, देवदारु, खिरेटी, रास्ना, शतावरी, दोनों चन्दन, केशर, अगर, कचूर, खस, कंकोल, अनन्तमूल, गठिवन, नागरमोथा, श्वेत निशोथ, चम्पा, इन्हें समान भाग में २-२ पल ग्रहणकर तैलयुक्त पाक करें। पुनः छानकर इसमें शीतशिल्हक और कमीदनी को डालें। उपयोग—इसके अभ्यङ्ग से घोर वातव्याधि, दुर्बलता, मन्दाग्नि, नपुंसकता, शुक्रक्षय,

स्नायुरोग का नाश होता है। बालकों को पुष्टता और स्त्रियों को गर्भस्थापनकारक है। (भैष० परि०)। (३) डीकामाली। नाड़ी हिङ्गु। (इ० मे० मे०)।

गन्धराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नखी। नख। (श० च०)।

गन्धराट् (ज)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राल। धूतक। धूता।

गन्धरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वनमालती। वनमल्लिका।

गन्धर्व्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफेद कनेर। श्वेत करवीर। (२) सफेद रेंड। श्वेत एरंड। (च० द० वातरक्त चि० अमृताद्यष्टे)। (३) कस्तूरीमृग। (अं०) मस्कडिअर (Musk Deer)। (४) घोड़ा। अश्व। (अम०)। (५) कोइल। कोकिला। (रा० नि० व० २३)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुई। बेरा। कुमुदिनी। निलोफर।

गन्धर्व्वगन्ध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) असगन्ध।

गन्धर्व्वगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगन्ध। (भा० म० ४ भ० स्नायुरोग)। (२) घोड़ा। वाजी। (उ० ख०)।

गन्धर्व्वग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्माद विशेष। लक्षण—गन्धर्व्वग्रह द्वारा पीडित व्यक्ति प्रसन्न अन्तःकरणयुक्त रहता है। जलाशयतट और वन-उपवनों में निवास करता है। उसका आचरण उत्तम होता है। संगीत का प्रेमी होता है। सुगन्ध तथा पुष्पों से प्रेम रखता है। मन्द मुस्कानपूर्वक नृत्य करता है। दे० 'उन्माद'। (भा० म० उन्माद० चि०; मा० नि०)।

गन्धर्व्वविष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धर्व्वग्रह द्वारा पीडित। दे० 'गन्धर्व्वग्रह'।

गन्धर्व्वतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एरंडतैल। रेंडी का तैल। (Castor oil)।

गन्धर्व्वभूषण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सिन्दूर। (वै० निघ०)।

गन्धर्व्ववधु—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीड़ का वृक्ष। देवदारु भेद।

गन्धर्व्वशाका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भारंगी। भार्गी। (वं०) दामनहाटी। (र० मा०)।

गन्धर्व्वसत्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्रीजाति का एक भेद। दे० 'स्त्री'।

गन्धर्व्वहस्त (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रेंड। एरंड वृक्ष। (हारा०)।

गन्धर्व्वहस्तक तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ब्रध्न अधिकारोक्त एरंड तैलयोग। निर्माण विधि—१०० पल एरंडमूल, १ आढ़क (४ सेर) सोंठ, जो १६ सेर ग्रहणकर एक द्रोण (१६ सेर) जलमें क्वाथ करें। जब ३ भाग

शेष रह जाय तब इसमें उसी प्रमाण में गोदुग्ध और १ प्रस्थ एरण्डतैल और एरण्डमूल ४ पल मिश्रितकर यथाविधि पाक करें। (रस० र०; भैष०)। इसके सेवन से आन्त्रवृद्धि का नाश होता है।

गन्धर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोइल। कोकिला। (वै० निघ०)।

गन्धर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रस (पारद) वन्धन-कारक। द्रव्यविशेष—“एरण्ड पत्रवत्पत्रा सक्षीरानाति विस्तृता। गन्धर्वी त्युदितासाहि तथा वद्धो रसो भवेत्।” (रसका० धे०)। द्रवन्ती। वन एरण्ड।

गन्धर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] द्रवन्ती। दे० ‘गन्धर्वी’। गन्धल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुगन्ध व्रीही। एक प्रकार का व्रीही धान्य जो सुगन्धपूर्ण होता है। (२) रंगन। गन्धलता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोंदनी। प्रियङ्गु। (भा० म० १ भ० रक्तप्री० चि०)।

गन्धला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोंदनी। फूल प्रियङ्गु। गन्धलोलुपा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भ्रमर। भौरा। मक्षिका। मक्खी। (श० र०)।

गन्धवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) त्रिपुरमल्लिका। वृत्तमल्लिका। (रा० नि० व० १०)। व्लेषमघ्नी। (प० मु०)। (२) वनमल्लिका। वनमालती। सेवती। (र० मा०)। (३) मुरामाँसी। (रा० नि० व० १२)। (४) तालीशपत्र। (५) अजमोद। वनयमानी। (वै० निघ०)। (६) मुरा। (मे०)।

गन्धवधु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चीड़। देवदारु भेद। गन्धपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाबला। कंधी। (वै० निघ०)।

गन्धवत्कल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दालचीनी। गुडत्वक्। (रा० नि० व० ६)।

गन्धवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महबला। कंधी। गन्धवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (प० मु०)। पीत-पुष्प षण्डोत्पल। (बं०) डानिपोला। (र० मा०)।

गन्धवह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कस्तूरी मृग। गन्धवहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाक। नासिका। गन्ध-वाफुची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कस्तूरीलता। मुस्कदाना। कर्पूरभिण्डा।

गन्धवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुरा-माँसी। (वै० निघ०)।

गन्ध-वाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कस्तूरी मृग। गन्धवाहक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } गन्धवाहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाक। नासिका। (रा० नि० व० १८; हे० च०)।

गन्धवाही (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायु। हवा। (रा० नि० व० २१)।

गन्धविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लता कस्तूरी। मुस्क-दाना।

गन्धविह्वल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गेहूँ। गोधूम। (वै० निघ०)।

गन्धविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्ध द्वारा विकृति का ज्ञान।

गन्धबीज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुलिञ्जन लता। (वै० निघ०)।

गन्धबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मेथी। मेथिका। (रा० नि० व० ६)।

गन्धवीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सलई। शल्लकी वृक्ष। (हिं०) सजीवन। (वै० निघ०)।

गन्धवृक्ष (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) साखू। शाल वृक्ष। (२) सर्ज वृक्ष। आसन। (रा० नि० व० ६)। (३) शाक तरु। शाक वृक्ष। सागवन। (४) वरना। वरुण वृक्ष। (वै० निघ०)।

गन्धवेधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कस्तूरी। (वै० निघ०)।

गन्धवेना—संज्ञा स्त्री० [बं०] लामज्जक वृण।

गन्धवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घूप। धूनक। धूना।

गन्धवोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कस्तूरी।

गन्धव्याकुल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंकोल। कक्कोल। (श० च०)।

गन्धशटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धपलाशी। कपूर-कचरी भेद। अम्बाहृदी। दे० ‘कपूरकचरी’।

गन्धशाक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की सोन भाजी। गौरसुवर्णशाक। (रा० नि० व० ७)। चौलाई।

गन्धशालि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलमीधान। सुगन्धशालि। रोपहन धान। (बं०) सुगन्ध धान। कलमशालि। (प० मु०)।

पर्याय—(सं०) कल्माष, गन्धालु, कलमोत्तम, सुगन्धि, गन्धबहुल, गन्धतण्डुल, सुगन्धिशालि। गुण—अति वृष्य, अरुचि, पित्त, दाह, श्रम तथा रक्तप्रकोपशान्तिकारक, दुग्धवर्धक, गर्भस्थापक, पुष्टिकर, बलदायक तथा किंचित् वातकफकारक है। (रा० नि० व० १६)।

गन्ध शुण्डिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छुछुंदर। (रा० नि० व० १६)।

गन्धशेखर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कस्तूरी। भृगनाभि। (हारा०)।

गन्धसमेरवो—संज्ञा पुं० [गु०] पृश्निपर्णी। पिठवन।

गन्धसम्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धशालि, रोपहन धान, कलमी धान। (रा० नि० व० १६)।

गन्धसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सामान्य चन्दन। (२) इत्र। पुष्पसार। (प० मु०)। (३) श्रीखण्ड चन्दन। सफेद चन्दन। श्वेत चन्दन। (रा० नि० व० १२)। “गन्धसारो

घनसारः”। (सा० कौ०)। (४) कपूरकचरीभेद। अम्बा-
हल्दी। गन्धशटी। (रा० नि० व० ६)। (५) गन्धराजपुष्प,
मुद्गरपुष्पवृक्ष। (रा० नि० व० १०)। (६) गन्धक।
(वै० निघ०)।
गन्धसारण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ा नख। वृहन्नखी। (रा०
मा०)।
गन्धसूची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अमड़ा, अम्रातक।
अम्बाड़ा। (वै० निघ०)।
गन्धसूयी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटा छुछून्दर। क्षुद्र
छुछुन्दरी। (वै० निघ०)।
गन्धसेवि—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रामकपूर। रोहासा।
तिखाड़ी। रोहिपतृण। (वै० निघ०)।
गन्धसोम—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुमुद। श्वेत कमल। (वं०
नाल फूल। (त्रिका०)।
गन्धसोमज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लाल कमलिनी। रक्त
कैरवी। लाल कमल।
गन्धहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लहसुन। रसोन।
गन्धहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तुलसी। (म०)।
गन्धज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाक। नासिका।
(हे० च०)।
गन्धज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] महक। गन्धसम्बन्धी
ज्ञान।
गन्धाखु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छुछून्दर। छुछून्दरी। (वं०)
छूँचा। दे० ‘छुछूँदर’।
गन्धागुरु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अगर भेद। मङ्गल्यागुरु।
(वै० निघ०)।
गन्धागोराना—संज्ञा पुं० [हिं०, वं०] द्रव्य विशेष।
गन्धाच कौड़—संज्ञा पुं० [म०] चन्दन।
गन्धाजीव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धवणिज। वनियाँ।
(जटा०)।
गन्धाढ्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) चन्दन। श्रीखण्ड चन्दन।
सफेद चन्दन। श्वेत चन्दन। (२) गन्धराज पुष्प। (३)
जुन्दवेदस्तर। खट्वास। (रा० नि० व० १२)। (४)
मौलसरी। वकुल पुष्प। (वै० निघ०)। (५) नारंगी।
नागरज्ज। (रा० नि० व० ११)।
गन्धाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीली जूही।
स्वर्गयूथिका। (२) तरणी। छोटी दन्ती। तरणी पुष्प
क्षुप। (३) आरामशीतला। पत्रशाकविशेष। (रा०
नि० व० १०)। (४) जंगली नीबू। वन बीजपूर।
(वं०) बूनोलेवू। (५) मुरामांसी। (रा० नि० व० ११,
१२)। (६) गन्धशालि। सुगन्धशालि। कलमी धान।
(रा० नि० व० १६)। (७) गन्धप्रसारणी। (८)
गन्धाली। गांधाली। (श० च०)। (९) कस्तूरी।
मृगनाभि। (१०) जुन्दवेदस्तर। जवादि कस्तूरी।

खट्वासी। (११) वन सेवती। अरण्य सेवती पुष्प। (१२)
जावित्री। जातीपत्री। (वै० निघ०)। (१३) गन्ध
पत्री। कपूरकचरी।
गन्धादि—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तृण केशर। (वै० निघ०)।
गन्धाधिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तृणकेशर। तृण कुङ्कुम।
(रा० नि० व० १२)।
गन्धाधिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] बड़ी सौंफ। शुल्फा।
महा शताह्वा। (रा० नि० व० ४)।
गन्धान—संज्ञा पुं० [गु०] प्रसारणी। गन्धप्रसारणी।
(डाइमॉक भ० २, पृ० २८)।
संज्ञा पुं० [पं०] गन्धान (अफ०)।
गन्धानगवत—संज्ञा पुं० [म०] कीड़ामारी। (डाइमाक ३
भ०, पृ० १६३)।
गन्धानी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गन्धशालि।
कलमी धान। रोपहन धान (२) धूम्रपत्रा। (रा०
नि० व० १६, २३)।
गन्धानु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धशालि। कलमीधान।
(रा० नि० व० १६)। (२) दण्डाली। (द्रव्याभि०)।
गन्धानुवासन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] किसी परिष्कृत
अर्कादि को सुवासित करना।
गन्धान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असगन्ध। अश्वगन्धा।
गन्धान्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धशालि। कलमीधान।
(प० मु०)।
गन्धा विरोजा—संज्ञा पुं० [हिं०, पं०] सरलनिर्यास।
चोढका गोंद। दे० ‘चीड़’।
गन्धामृतरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाजीकरणोक्त रसयोग।
द्रव्य तथा निर्माण-विधि—पारद भस्म १ भाग, शुद्ध
गन्धक २ भाग ग्रहण कर ग्वारपाठा के रस में मर्दन कर
गोला बनाएँ। पुनः सकोरा में स्थापनकर कपड़मिट्टी
करें और शुष्ककर लघुपुट द्वारा पाक करें। गुण तथा
सेवन-विधि—घृत और मधुयुक्त सेवन करने से वृद्धा-
वस्था का नाश होता है और मृत्यु का नाश होता है।
(रस० र०। भैष०)। मात्रा—१ क्लृप्त प्रमाण। अथवा
इसमें छाया में शुष्क भाँगरा का चूर्ण और समान भाग
में त्रिफला चूर्ण और सर्वतुल्य मिश्री मिश्रितकर १ पल
की मात्रा में सेवन करने से वृद्धावस्था का नाश
होता है।
गन्धाम्बु—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्धोदक। गन्धकार्क।
(चक्र०)।
गन्धाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्धक का तेजाब।
गन्धार—संज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘गान्धार’।
गन्धारि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दुरालभा। जवासा
भेद। (२) रक्त दुरालभा। (३) कपूरहरिद्रा। कपूर-
कचरी। गन्धपलाशी।

गन्धारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपूरकचरी । शटी भेद ।

गन्धारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धारि । (वै० निघ०) । दे० 'गन्धारि' ।

गन्धाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धाली । (रा० नि० व० १६) । दण्डालक ।

गन्धाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] टेकार । अरनी । अग्नि-मन्थ क्षुप । (वै० निघ०) ।

गन्धालि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) गन्धशटी ।

गन्धालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कपूरकचरी । (२)

गन्धाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } गन्धाली । प्रसारणी ।

गन्धालीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ी इलायची । स्थूल एला ।

गन्धारमा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] गन्धक । (रा० नि० व० १२ ग्रहणीकपाटरसे; च० द० रसमण्डूरे) ।

गन्धालु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गन्धशालि । (रा० नि० व० १६) । (२) दण्डालक ।

गन्धाश्व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] असगन्ध । अश्वगन्धा । (भैष० कुष्ठ चि०) ।

गन्धाष्टक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुगन्धाष्टकगण—(१) जावित्री, लवङ्ग, दालचीनी, नागकेशर, मरिच और कस्तूरी । (रावण) । यह एक प्रकार का गरम मसाला है । इसका उपयोग शाक तथा मांसयूषादि में सुगन्ध-वर्धनार्थ होता है । (२) देवतादितुष्ट्यर्द्रव्य—चन्दन, कर्पूर, नागकेशर, सुगन्धवाला, नागरमोथा, देवदार, गोरोचन और कुसुम । इसे 'अष्टगन्ध' भी कहते हैं । (३) देवप्रीत्यर्थ—चन्दन, अगर, कर्पूर, गोरोचन, केशर, कस्तूरी, लालचन्दन और सुगन्धवाला । (४) शिवप्रीत्यर्थ द्रव्य—चन्दन, अगर, कर्पूर, चोरक, केशर, चन्दन, जटामांसी और शिलारस । (५) विष्णु-प्रीत्यर्थ द्रव्य—चन्दन, अगर, उशीर, कुष्ठ, केशर, मुरांसी, जटामांसी और ह्रीवैर (सुगन्धवाला) ।

गन्धाटन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचूर । शटी ।

गन्धाहा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रियङ्गु । फूलप्रियङ्गु । गोंदनी पुष्प । (सु० चि० ९ अ०) ।

गन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] तृणकेशर । कुङ्कुम । (रा० नि० व० १२) ।

गन्धिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धक । (अ०) सल्फर (Sulphur) । (भा०) ।

गन्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अजमोद । वनयवानी । (२) वनमुद्गपर्णी ।

गन्धित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह द्रव्य जिसमें गन्धक का योग हो । (अ०) सल्फेट (Sulphate) ।

गन्धितृण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तृणकेशर । मुरांसी ।

फा०—७७

गन्धिद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्धक का यौगिक । (अ०) सल्फाइड (Sulphide) ।

गन्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मुरांसी । (अम०) । (२) रेवतचीनी । पीतमूली । (३) रूमी मस्तगी । (४) कपूरकचरी ।

गन्धिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सप्तपर्ण । छतिवन । छातिम । (रा० नि० व० १२) ।

गन्धिरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नृसार । गोपक । नौसादर ।

गन्धिला—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] मोथा । मुस्तक । (रा० नि० व० ६)

गन्धिवस्तु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गन्धद्रव्य । (अ०) ओडोरस मैटर (Odorous matter) ।

गन्धी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कस्तूरीमृग ।

गन्धीवूटी—संज्ञा स्त्री० [पं०] गन्दी वूटी । पोपरंग-पं० । (मेमो०) ।

गन्धेज—संज्ञा पुं० [दि०] इजखिर भेद । शीतरपाड़ी । रोहासा । रोहिष तृण ।

गन्धेजबास—संज्ञा पुं० []

गन्धेल—संज्ञा स्त्री० [दि०] इजखिरभेद ।

वर्णनादि—कहते हैं कि यह हिंदुस्तानी इजखिर है और इसे गन्धराज तथा गन्धेल भी कहते हैं । पर वस्तुतः गन्धेल का पेड़ सरकंडे की तरह और उससे छोटा, गज-भर तक लंबा और गज से बड़ा भी होता है । इसकी जड़ और फूलों में से अलबत्ता इजखिर की-सी सुगंध निकलती है । नुसखासईदी के संकलयिता ने यह भेद किया है; क्योंकि उन्होंने इसे गंगा और यमुना के मध्यवर्ती भूभाग अर्थात् दोआब में स्वयं निरीक्षण किया था, इस बात का स्पष्टोल्लेख कर दिया है । मुहीत में भी उक्त कथन को अक्षरशः उद्धृत कर दिया है; परन्तु ग्रन्थ-प्रमाण का निर्देश नहीं किया । तालीफी में भी इस प्रकार का भेद नहीं हो सका ।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

यह कषाय, कटुपाकी एवं उष्ण है तथा कंठ और हृदय के रोगों को लाभ पहुँचाती है, रक्त, पित्त और कफ के विकार को शमन करती है एवं कृच्छ्रश्वास, ज्वर और कास को लाभकारी है । (ता० श०) ।

वक्तव्य—भारतवर्ष में गन्धेल नाम से कतिपय प्रकार के तृणों का बोध होता है; यथा— (१) दुर्वातुल्य घास जिसमें उग्र गन्ध होता है । (२) तिसाड़ी (रोहिषतृण) जो बिन्ध्यपर्वतों में तथा मध्यप्रदेश में पाई जाती है । (३) पोपरंग जिसको गन्दी वा गन्धीवूटी कहते हैं । (४) गन्धैला (भृगु लिंगी) जिसके पत्रादि में हिगुतुल्य गन्ध होता है ।

गन्धैला (ली)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० गन्ध+एला] कपूर-कचरी ।
 गन्धोग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वच । (च० द० वा० व्या० चि०) ।
 गन्धोतु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुगन्धमाज्जार । गन्धमाज्जार । खट्वास । मुश्कविलाव । (त्रिका०) ।
 गन्धोत्कट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } (१) दवना । दमनक ।
 गन्धोत्कटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } राम-तुलसी—(वं०) ।
 (रा० नि० व० १०) । (२) मुरामांसी । (वै० निघ०) ।
 गन्धोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मद्य । मदिरा । शराव । (अम०) ।
 गन्धोदक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] गन्धक का तेजाव । दे० “गन्धक” ।
 गन्धोपला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्धक । (वै० निघ०) ।
 गन्धोलि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) छोटा कचूर ।
 गन्धोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } शटी । (श० र०) ।
 (२) भिड़ । बरें । दे० ‘वरट’ । (अम०) । (३) मक्षिका विशेष । कुमारी मक्खी । (४) केकड़ा । ककंट भेद । (वै० निघ०) ।
 गन्धोलिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मसूर ।
 गन्धौरा (री)—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० ‘भगलिगी’ ।
 गन्धौषध(धि)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, क्ली०] गन्धद्रव्यादि । दे० ‘गन्धद्रव्य’ ।
 गन्ना—संज्ञा पुं० [देश०] ईख ।
 गन्ने की शक्कर—संज्ञा स्त्री० [हिं०, उर्दू] गन्ने की चीनी । इक्षुशर्करा । दे० ‘ईख’ ।
 गन्हेर—संज्ञा स्त्री० [पं०] कनेर । करवीर ।
 गफर—संज्ञा पुं० [अ०] दे० ‘गुफार’ ।
 गफ्रीर—संज्ञा पुं० [अ०] कान के वाल । कर्णकेश । मूएगोश ।
 गफ्रलत—संज्ञा पुं० [अ०] विस्मृति । भूल ।
 गबदी—संज्ञा स्त्री० [?] कुम्बी ।
 गबन—संज्ञा पुं० [अ०] (१) संर्मात तथा विचारसम्बन्धी हानि । (२) छिपा रखना । गुम कर देना ।
 गबब—संज्ञा पुं० [अ०] हनुप्रदेश (ठुड़ी) के निम्न भाग का लटका हुआ मांस जो प्रायः स्थूलकाय स्त्री-पुरुषों को होता है । इसको उर्दू में ‘तौकगुलू’ भी कहते हैं । इसकी गणना सुन्दरता में होती है ।
 गबस—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नेत्रों का भीतर को दब जाना । (२) नेत्रों में अधिक चिपचिपाहट उत्पन्न होना ।
 गबावत—संज्ञा स्त्री० [अ०] निर्बुद्धिता । बुद्धि की हीनता । मन्दबुद्धि । (अ०) इडिओसी (Idiocy) ।
 गबुई—संज्ञा स्त्री० [नैपाल] पर्याय—(गोवा)—गीनो (Gino); (ले०) लीआ रोबुटा (Leea-Robusta) ।
 परिचय—यह द्राक्षाकुल की एक वनस्पति है ।

उद्भवस्थान—सिक्किम, पश्चिमीय हिमवती पर्वत इत्यादि ।
 उपयोग—इसका सचिवकण तथा मांसल मूल वेदना-प्रशमनार्थ बाह्यरूप से और पशुओं के अतिसार में भी आन्तर रूप से दिया जाता है ।
 गन्नाब—संज्ञा पुं० [अ०] हनुके के निम्न भाग में लटका हुआ मांस जिसके मध्य में खात-सा होता है । हनुकूप । चाहगबगब ।
 गभास्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) किरण । रश्मि । (२) सूर्य । (मे०) ।
 गभोलिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मसूर । (हार०) ।
 गम—संज्ञा पुं० [वं०] गेहूँ । गोधूम । (Wheat) ।
 संज्ञा पुं० [अ० (Gum)] गोंद । निर्यास ।
 गम अकेशिया—संज्ञा पुं० [अ० (Gum Acacia)] } बबूल
 गम अरबिक—संज्ञा पुं० [अ० (Gum Arabic)] } का
 गम इण्डियन—संज्ञा पुं० [अ० (Gum Indian)] } गोंद ।
 बबूर निर्यास । (डाइमॉक) ।
 गमगडु—संज्ञा पुं० [ते०] भेरी ।
 गमथी बुदिना—संज्ञा स्त्री० [पीपरमिण्ट] ।
 गम नायकम्—संज्ञा पुं० [ता०] लिमानी ।
 गमनीरेवनचीनी—संज्ञा स्त्री० [यु०] हिन्दी रेवतचीनी । पीतमूली ।
 गमरेजिन्स—संज्ञा पुं० [अ० (Gum Resins)] निर्यास ।
 गमबेन्जामिन—संज्ञा पुं० [अ० (Gum Benzamin)] }
 गमबेन्जोइन—संज्ञा पुं० [अ० (Gum Benzoin)] }
 लोबान का गोंद । (अ०) स्टाइरक्स बेन्जोइन, (Styrax Benzoin) । (डी० भ० १, पृ० ५६५) ।
 गमम्—संज्ञा पुं० [अ०] मस्तक (पेशानी) की गद्दी के बाल (रोम) ।
 गमल्—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बन्धनजनित विकृति जो प्रायः अधिक कसकर बन्धन लगाने से उत्पन्न होती है । (२) स्वेदसंजननार्थ वस्त्र से आच्छादित करना ।
 गमलूल—संज्ञा पुं० [अ०] कनावरी ।
 गमस—संज्ञा पुं० [अ०] जल से भिजाना । भिगोना । गोता देना । डुबाना ।
 गमस्—संज्ञा पुं० [अ०] चक्षुमल । कीचड़ । दे० ‘रमस्’ ।
 गमसिरिस—संज्ञा स्त्री० [सि०] कालीसिर्च । मरिच ।
 गमहार—संज्ञा पुं० [सं० गम्भार] कुम्भेर । काइमरी । गम्भारी । खुमेर ।
 गमाइ इण्डिकम्—संज्ञा पुं० [ले०] निर्यासभेद । बबूल का गोंद ।
 ग (शि)माम—संज्ञा पुं० [अ०] (१) धात्वर्थ प्रतिनिधि । यूनानी वैद्यक की परिभाषा में वह अत्यल्प श्वेतता जो नेत्र के कृष्णमण्डल में उत्पन्न हो जाती है । इसे भाषा में

‘फूली’, ‘फूला’ और संस्कृत में ‘शुक्ल’ कहते हैं। (२)
 सूत्र की सफेदी जो उसके ऊपर आच्छादित हो जाती है।
 गमामा—संज्ञा पुं० [अ०] अस्फंज। मुआवादल। अन्न मुद।
 गमार—संज्ञा पुं० [सं० गंभार] कुम्भेर। काश्मरी। गम्भारी।
 गमीलीना (मेलिना) अबॉरिआ—संज्ञा स्त्री० [ले०
 Gmelina Arborea] कुम्भेर। गम्भार। काश्मरी।
 गमीलीना (मेलिना) एशियाटिका—संज्ञा स्त्री० [ले०
 (Gmelina Asiatica)]
 गमीलीना (मेलिना) पार्वीपलोरा—संज्ञा स्त्री० [ले०
 (Gmelina Parviflora)]
 (सं०) विदारी। (ता०) मिलक किम्नीज।
 गमी—संज्ञा स्त्री० [अ०] मूच्छा। विसंज्ञता। वेहोशी।
 गमूद—संज्ञा पुं० [अ०] दे० ‘गम्द’।
 गमूच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मरुआ नाम से प्रसिद्ध
 क्षुप।
 गमोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जरडी।
 गमौ—संज्ञा पुं० [बर०] चन्द्रमूल।
 गम्द—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० अरमाद व गमूद] कोष।
 म्यान। खोल। गिलाफ़। पटल। परदा।
 गम्बारी—संज्ञा स्त्री० [नेपा०] कुम्भेर। गाम्भार। गम-
 हार। काश्मरी।
 गम्बिअर—संज्ञा पुं० [अं० (Gambier)]
 (डी० भ० २, पृ० १७२)।
 गम्बीर—संज्ञा पुं० [मल०] पपड़ी खैर। (ते०) अङ्कुर-
 कुडा।
 गम्बीर क्युबिक्यु—संज्ञा पुं० [(Gumbir Cubicu)]
 (डी० भ० २, पृ० १७२)।
 गम्बोज—संज्ञा पुं० [मिसूर] रेवतचीनी। पीतमूली।
 गम्बोज-थिसिल—संज्ञा पुं० [अं० (Gamboge-Thistle)]
 भड़भाड़। सत्यानासी। (डी० भ० १, पृ० १०९)।
 गम्भार—संज्ञा पुं० [] कुम्भेर। खुमेर।
 काश्मरी।
 गम्भारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुम्भेर। काश्मरी।
 गम्भारी—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] गमहार।
 गम्भीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जम्भीरी नीबू।
 (उणा०)। (२) शाकुरुण्ड वृक्ष। (३) मातुलुङ्ग।
 संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रामतुलसी। (२) बछ-
 नाग। वत्सनाभ विष। (३) कमल। पङ्कज।
 गम्भीरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामतुलसी। फणिज्जक।
 (वै० निघ०)।
 गम्भीर-ज्वर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आन्तरदाहयुक्त अन्तर्वेगी
 ज्वर। लक्षण—तृष्णा की अधिकता होती है, कास-श्वास-
 मूच्छा (मोह) इत्यादि आमदोष के कारण होते हैं।
 (निदान)।

गम्भीर दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] नेत्ररोग विशेष।
 (वै० निघ०)। दे० ‘गम्भीरिका’।
 गम्भीरपाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अन्तःपाक। (वै० निघ०)।
 गम्भीरवेदी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दुर्दन्त हस्ति। वह
 हाथी जिसके दाँत भयंकर हों। (त्रि०)।
 गम्भीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की हिचकी।
 लक्षण—इसमें गंभीर शब्द होता है और तृष्णा ज्वर
 इत्यादि उपद्रव होते हैं। यह नाभि से उत्पन्न होकर
 भयंकर हो जाती है। (भा० म० हिक्का-चि०)।
 गम्भीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का
 वातजन्य नेत्ररोग। लक्षण—वात के प्रकोप से दृष्टि में
 विकृति होती है, संकोच होता है, नेत्र भीतर को दब
 जाते हैं और गम्भीर वेदना होती है।
 चिकित्सा—हरिद्रा, रसवत, चमेली के पत्र, इन सबको
 एकत्र पीसकर घी मिलाकर नेत्रपद्मों पर लेप करें।
 गम्मालु—संज्ञा पुं० [सि०] विजयसाल। पीतसाल वृक्ष।
 गम्य—संज्ञा पुं० [अ०] अस्फंज।
 गन्न—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अवगाहन। (२) जल में
 भिगोना। (३) किसी वस्तु को जल में गुप्त करना।
 गयसचेदु—संज्ञा पुं० [ते०] गुमा। द्रोणपुष्पी।
 गयाकू—संज्ञा पुं० [स्पेन] एक अफरीकीय ओषधि। (म०
 अ०; मु० आ०)।
 गयाल—संज्ञा पुं० [?] जम्बक।
 ग (गि) याह क़ैसर—संज्ञा स्त्री० [फा०] इकलीलुलमलिक।
 नाखूना।
 ग (गि) याह हूरा—संज्ञा स्त्री० [सुर०] बादावदं।
 गयीम—संज्ञा पुं० [अ०] इस्फंज।
 गर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उपविष। (२) बच्छ-
 नाग। वत्सनाभ विष। (३) रोग। व्याधि। (हे०
 च०)। (४) अगद। विषघ्न औषध। (५) निविष
 द्रव्ययोग द्वारा प्रस्तुत कृत्रिमविष। इसके उपयोग से
 पाण्डु कुशता, अल्पाग्नि, कास, श्वास तथा ज्वर आदि
 उत्पन्न होते हैं। (वा० उ० ३५ अ०)। यथा—‘संयोग
 जन्तु द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते। गरः स्याद विषस्तत्र
 सविषकृत्रिमं यतः’। (वृद्ध काश्यप)। ‘दंष्ट्राविषे मूलविषे
 सगरे कृत्रिमे विषे’। (च०)। लक्षण—विविध प्रकार
 के जीवों के अंग तथा पुरीष, विरुद्ध औषधियों की भस्म
 और अल्पवीर्य विषके योग को ‘गर’ वा ‘संयोगज विष’
 कहते हैं।
 गरविष द्वारा पीडित व्यक्ति के उपर्युक्त लक्षण हैं अथवा
 इसमें वायु की प्रतिलोमता, निद्रालुता, चिंतापरायणता,
 महोदर, यकृतप्लीहा में विकृति, वचन में दोनता, दुर्बलता,
 आलस्य, शोथ, निरन्तर उदराध्मान, हस्त-पाद में शुष्कता,
 क्षय, स्वप्न में पीदङ्ग, बिलाव, नकुल तथा बन्दरों का

दर्शन वा शुष्क वनस्पति और जलाशयों का दर्शन इत्यादि लक्षण होते हैं। रोगी का वर्ण गौर हो तो उसे कृष्णवर्ण, कृष्णवर्ण हो तो उसे गौरवर्ण का स्वीकार करता है। गरविष के कारण हतेन्द्रिय होकर अपने को नाक, कान और नेत्रों से हीन समझता है। उक्त लक्षणों के अतिरिक्त इसमें अन्य उपद्रव भी होते हैं। यदि इसका उचित प्रतीकार न किया जाय तो शीघ्र मृत्यु होती है।

चिकित्सा—इसमें उचित अनुपान एवं मात्रा से स्वर्ण-भस्म देने से लाभ होता है। अथवा स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्णभस्म १-१ रत्ती की मात्रा में लेकर मधु-मिश्री के साथ अवलेहन करने से लाभ होता है। अथवा गरोप-ताग्नि में मूर्वा, गुरुच, तगर, पीपल, चव्य, चित्रक, वच, नागरमोथा और वायविडंग इनको समभाग में लेकर चूर्ण करें और तक्र, किंचित् उष्ण जल, दही का पानी वा अम्लरस द्वारा सेवन कराएँ।

गरविषजन्य तृष्णा में—कवूतर का मांस, कछूर, पुष्करमूल इनसे तैयार किया यूप सेवन करने से तृष्णा, वेदना, श्वास, हिक्का और ज्वर का नाश होता है।

गरविषजन्य विषसंकट—इसके द्वारा पीड़ित रोगी में यदि रोगी की प्रकृति पैत्तिक हो, विषार्त होने का काल वर्षा हो, भोजन में सर्पपादि हों, पित्त का प्रकोप हो, रक्त दूषित हो गया हो तो उक्त अवस्था में प्रायः मृत्यु का दर्शन होता है।

विष के सहायक कार्य—क्षुधा, तृषा, स्वेद, दुर्बलता, क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, अजीर्ण, मलद्रवता, वातपित्त की वृद्धि, तिल के पुष्प-फलों का सूँघना, भूवाष्प, मेघ-ध्वनि, हाथी तथा चूहे की खाल से मढ़े वाद्यों के शब्द, विषसंकट, पुरोवात, उत्पल, आमोद और मदनप्रावत्य द्वारा विष की वृद्धि होती है। अतः गरविषपीड़ित व्यक्ति को इनसे रक्षा करनी चाहिए।

गरविष में जिस दोष की वृद्धि हो उसके अनुसार चिकित्सा की जाती है। यथा—**कफज दोष** में उष्ण, रुक्ष, तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा वमन तथा इन्हीं के द्वारा लेप एवं कषाय, कटु और तिक्त द्रव्यों का आहार दें। **पैत्तिक दोष** में—विरेचन, अत्यन्त शीतल परिषेक, लेप, कषाय, तिक्त और मधुर घृतयुक्त का आहार दें। **वात की वृद्धि** में—मधुर, अम्ल, लवणरसयुक्त घृतयुक्त भोजन दें। वातघ्न प्रलेप, तिक्त, कषाय, मधुररसान्वित सघृत मांस का आहार दें। विषरोग में घृतरहित विरेचन, प्रलेप, भोजन वा अन्य प्रयोग कदापि न करें।

घृत की उत्तमता—समस्त विषविकारों में तथा उसकी अवस्थाओं में घृत के सदृश अन्य औषध नहीं है। विशेषतः जब वाताधिक्य हो तो घृत का उपयोग अत्यन्त फलप्रद होता है।

साध्यासाध्य—कफगत विष अल्प-चिकित्सा से ही साध्य होता है, पित्ताशयगत विष यत्नपूर्वक शांत होता है और वाताशयाश्रित विष असाध्य वा दुःसाध्य होता है।

गरई—संज्ञा स्त्री० [सं० गरघ्नी] एक प्रकार की मछली। गरघ्नी (भा०)।

गरउस्समक—संज्ञा पुं० [अ०] मछली का सरेस। दे० 'मछली'।

गरकनी—संज्ञा स्त्री० [] विष्णुकान्ता। अपराजिता। गरघ्नी।

गरकुम—संज्ञा पुं० [उ० प० भा०] कढ़ई। तिलपत्र।

गरकूतिय—संज्ञा पुं० [रुमी] अभ्रक। अवरख।

गरगद सम्य—संज्ञा पुं० [कना०] भृङ्गराज। भाँगरा।

गरगरा—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० गराशिर] गण्डूष। कुल्ली।

गरगवा—संज्ञा पुं० [देश०] (१) चटक। चिड़ा। (२) एक प्रकार की घास जो धान के खेतों में होती है।

गरघ्न—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) काली तुलसी। श्यामा। कृष्णार्जक। (रा० नि० व० १०)। (२) सोहागा। टङ्कणक्षार। (३) वैजयन्ती तुलसी। (वै० निघ०)।

गरघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गरई मछली। गुण—त्रिदोषघ्न, मधुर, कषाय, लघुपाकी तथा रुचिबल-वीर्यवर्द्धक है। (भा०)।

गरचेटी—संज्ञा स्त्री० [ते०] हिङ्गुआ। हिङ्गोट। इंगुदी।

गरजध्वज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अभ्रक। अवरख।

गरजफल—संज्ञा पुं० [] राकसगट्टा।

गरटी—संज्ञा स्त्री० [वं०] छोटी इलायची। क्षुद्रैला।

गरडुम्बा—संज्ञा पुं० [] इन्द्रायण। इतारुन। इन्द्रवारुणी।

गरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कै। वमन। निगरण।

गरणी—संज्ञा स्त्री० [गु०] अपराजिता। विष्णुकान्ता।

गरणीकुड़ा—संज्ञा पुं० [] पटसन। पटुआ। पटुशाक।

गरद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विष। गरल।

वि० [सं० त्रि०] विषदेनेवाला (व्यक्ति)।

गरदल—संज्ञा पुं० [बम्ब०] गिल्ला।

गरदिग्ध—वि० [सं० त्रि०] कृत्रिम विषलिप्त। (च० सि० २ अ०)।

गरदुड़ी—संज्ञा स्त्री० [मल०] गेरुड़ी (उड़ि०)। (डीमक भा० २, पृ० ६९)।

गरदुण्डी—संज्ञा स्त्री० [कना०] नागकेसर। पुन्नाग।

गरद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचला। कारस्कर। (रा० नि० व० ९)।

गरध्वज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अभ्रक। अवरख।

गरनक कायल—संज्ञा पुं० [] एक विशाल वृक्ष का फल जो आमला के तुल्य होता है। स्वाद मधुर-कषाय होता है। इसे चबाने के बाद मुख का स्वाद मीठा हो जाता

है। इसमें किंचित् अम्लता भी होती है। इसके कच्चा फलों का अचार बनता है।

गरना—संज्ञा पुं० [पं०] करौंदा। करमर्दक।

गरनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देवदाली। बंदाल।

(म०) देवडांगरी। (वै० निघ०)।

गरनिवास—संज्ञा पुं० [] (१) लवङ्ग। (२) किरमिज दाना।

गरनी—संज्ञा स्त्री० [गु०] अपराजिता। विष्णुकान्ता।

गरपशोला—संज्ञा स्त्री० [?] खिन्ना। अनमलाइस।

गरपीपल—संज्ञा पुं० [कुमा०] पहाड़ी पीपल। गिरि-पिप्पल।

गरपुवादास—संज्ञा पुं० [ते०] जंगली वादाम।

गरफद—संज्ञा पुं० [अ०] उसजका बड़ा और सफेद भेद।

गरव—संज्ञा पुं० [अ०] वेद (खिलाफ़ या सफ़साफ़) जातीय एक अत्यन्त विशालकाय वृक्ष जिसके पत्ते एवं वल्कल श्वेत होते हैं। इसी हेतु इसको सपेद दरख्त (श्वेत वृक्ष), सपेदार अथवा इस्फेदार कहते हैं। इसमें फल अथवा मेवा नहीं आता जैसा कि बुरहानकातेअ में पदह संज्ञा में लिखा है। इसके पत्ते सन (कत्फ) के पत्ते के बराबर होते हैं। इसमें से गोंद प्राप्ति की विधि यह है कि कल्ला फूटने के समय उसके तले में तेज धारदार उपकरण (मखन के अनुसार तेग अर्थात् तलवार) से क्षत करने (अथवा पछना देने) से जो गोंद स्रावित होता है उसे सूखने पर एकत्र कर लेते हैं। यह हलका पीले रंग का होता है। इसके तने पर एक प्रकार का श्वेत मृदु लवण (वा बोरक) भी जमता है, जो इतर लवणों की भाँति उपयोग में आता है। इसके पत्र, वल्कल और निर्यास प्रायः वैद्यकीय उपयोग में आते हैं। इसके पत्र, पुष्प, स्वरस (उसारा) और वल्कल कषाय होते हैं। (मखन; मुहीत; खजाइन)।

पर्या०—(यू०) अना (मखन), अतातास, एतामास (मुहीत); (फा०) वज़क, इस्फेदार, पदह, दरख्ते नारवन, नारवन (वां)। वक्तव्य—इस्फेदार फारसी का शब्द है। मुहीत में भूल से उसे अरबी का शब्द लिखा है। इस्फेदा उसका संक्षिप्त रूप है। नारवाँ और नारवन गरव नामक वृक्ष को कहते हैं। इसका वृक्ष परम सुहावना, सुसंगठित एवं सुन्दर आकृति के कारण कवि लोग प्रेयसी के कद से इसकी उपमा देते हैं।

प्रकृति—प्रथम, द्वितीय वा तृतीय कक्षा पर्यन्त शीतल एवं रुक्ष है। अहितकर—वृक्क। निवारण—उचित मात्रा में बबूल का गोंद (और कतीरा)। प्रतिनिधि—इससे आधा प्रमाण अकाकिया। ग्रह—प्रकृति के विचार से शनि। प्रधानकर्म—कर्णशूलनाशक, चक्षुष्य, व्रणरोपण और मस्सों को नष्ट करनेवाला है। मात्रा—२ से ३। माशा तक।

गुण, कर्म, तथा प्रयोग—इसके पत्र पुष्प और इनसे प्राप्त स्वरस (उसारा) शीतल एवं संक्षोभरहित रुक्षण तथा कषाय होते हैं। इसकी छाल लगभग इनके समान तथा इनसे अधिक रुक्षण होती है। इसकी जलाई हुई छाल को राख मस्सों (सालील) पर लगाने से वे कट जाते हैं, इसी प्रकार इसके पेड़ की छाल पर क्षत करने से जो द्रव प्राप्त होता है, उसके प्रयोग से भी मस्से दूर हो जाते हैं। इसकी जड़ की छाल केशरञ्जन योगों (खिजाबों) में इस कारण पड़ती है जिसमें बाल खूब काले हो जायें। इसके काष्ठ की धुली हुई राख तृत्तिया की प्रतिनिधि है। फोड़ों (कुरुह) पर इसकी छाल और गोंद का लेप (जिमाद) लाभकारी है। इसकी ताजी छाल और पत्रों को पीसकर छिन्न और क्षतयुक्त अवयव पर लगाने से उपकार होता है। कैसा ही खराब क्षत हो, इससे उपकार होता है। इसके सूखे हुए पत्ते पीसकर व्रण पर अवचूर्णन करने से वे भर जाते हैं। उपशोषण मरहमों में इसके फूल योजित किये जाते हैं।

गरवरदेरो—संज्ञा पुं० [?] हरकी (सिलहट)।

गरबिजौर—संज्ञा पुं० [?] मैदा लकड़ी।

गरबी—संज्ञा स्त्री० [?] पारिभद्र। फरहद।

गरबीब—संज्ञा पुं० [अ०] कृष्णद्राक्षाभेद। अंगूर का काला भेद।

गरभ—संज्ञा पुं० [सं० गर्भ] हमल। (हे० च०)।

गरम—संज्ञा पुं० [] पहाड़ी भेद।

गरम गिखई—संज्ञा स्त्री० [पं०] गमूर। घमूर। (उ० प० भा०)।

गरमज—संज्ञा पुं० [फा०] कलौजी। मगरैल। उप-कुञ्चिका।

गरममसाला—संज्ञा पुं० [गरम+मसाला] व्यञ्जन विशेष।

गरम मसाला का योग यह है—जीरा, स्याहजीरा, लौंग, बड़ी इलायची, दालचीनी, कालोमिर्च, धनियाँ, जावित्री, तेजपात, हलदी, जायफल और केसर। आयुर्वेदका 'गंधाष्टक' एक प्रकार गरममसाला ही है।

गुण कर्म—उच्चिकारक, क्षुधावधक, अग्निदीपक, वातकफनाशक तथा मांसयूषादि का दुर्गंध नाश करने-वाला है।

गरमर—संज्ञा पुं० [गु०] माकन्दी। बहुमूला। (हि०) माईमूल। (Coleus Barbutus)। (वृ० नि० २०)।

गरमाल (लो)—संज्ञा पुं० [गु०; सं० गिरिमाल] अमलतास। आरग्वध।

गरमाल-बबा—संज्ञा पुं० [बम्ब०] अमलतास।

गरमोटिका तृण—संज्ञा पुं० [बं०] उखल तृण।

गरम्बी—संज्ञा स्त्री० [म०] (गु०) पीलपापडा। (बं०) गीला गाछ। (डी० भा० १, पृ० ५३९)।

गररा—संज्ञा पुं० [देश० गरी] एक प्रकार का अश्व (घोड़ा)
 गररी—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिरोही पक्षी। किलहँटी।
 गरल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अहिफेन। अफीम।
 (वै० निघ०)। (२) विष। (अम०)। (३) सर्पविष। (४)
 जङ्गम विष। (त्रिका०)। (५) घास की आँटी। तृणपुलक
 (घास का बोझ)।
 गरलपात—संज्ञा पुं० [कुमा०] नेह। नेहड़। (कुमा०)।
 (मेमो०)।
 गरलमदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बैगन। (लु० क०)।
 गरला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मधुमक्खी। (वै०
 निघ०)।
 गरलारि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरकतमणि। (रा० नि०
 व० १३)।
 गरविन्दा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चकरन।
 गरवीचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बाडी।
 गरव्रत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोर। मयूर। (श० र०)।
 गरस—संज्ञा पुं० [अ०] भूख। क्षुधा।
 गरासान—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० गरसी वा गरास]
 बुभुक्षित। भूखा।
 गरसों—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद सिरिस। श्वेत शिरीष
 वृक्ष।
 गरहन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कालीतुलसी। (२) एक
 प्रकार की मछली।
 गरहा—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करेमू। नाडीशाक। यह अहि-
 फेनविषनाशक है। दे० 'करेमू'।
 गरहेडुआ—संज्ञा पुं० [सं० गवेधुका] एक प्रसिद्ध घास जो
 प्रायः धान के खेत में स्वयं उत्पन्न होता है। कसी।
 गरा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जीमूत। बंदाल।
 घघरबेल। (२) देवताड वृक्ष। (३) पृथ्वी। धरणी।
 (४) विगरण।
 गराऊ—संज्ञा पुं० [सं० गरुअ] पुराना भेड़ा। वृद्ध मेष।
 गरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बंदाल। घघर-
 बेल। जीमूत। (२) लाख। लाक्षा। (श०)।
 गराजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गरजिता।
 तुलसी (२) गराधिका।
 गराण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 गरात्मक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] सहिजन। शोभा-
 ज्ञन।
 गराधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख। लाक्षा। (र०
 मा०)।
 गरान—संज्ञा पुं० [बं०] घोरान।
 गरारि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालशाक। कलमी शाक।
 गरारिवटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कास में प्रयुक्त
 इस नाम का एक योग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—त्रिफला

चूर्ण १ भाग, त्रिकुटा चूर्ण २ भाग, तालीशपत्र ३ भाग,
 हरीतक्री चूर्ण ४ भाग—इनको सब चूर्णों के बराबर गुड़
 में मर्दन कर मधुमिलाकर गोलियाँ बनावें। गुणकर्म तथा
 उपयोग—इन्हें मुख में धारण करने से कास का नाश
 होता है। मात्रा—छोटेवेरप्रमाण।
 गराषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख। लाक्षा। (र०
 मा०)।
 गरिजर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गाजर। गृञ्जन।
 गरिया—संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] बारीक भौरी। (इं०
 मे० मे०)।
 गरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बंदाल। घघर बेल। देव-
 ताड। (श०)।
 संज्ञा स्त्री० [देश०] नारिकेलमज्जा। खोपड़ा।
 संज्ञा पुं० []
 (डी० भा ३, पृ० २१७)।
 गरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] सरेस।
 गरीउज्जलूद—संज्ञा पुं० [अ०] चमेली।
 गरीउज्जीन—संज्ञा पुं० [अ०] कलौजी।
 गरीउस्समक—संज्ञा पुं० [अ०] मछली का सरेस।
 गरीक—क्रि० वि० [अ०] जलमग्न। डूबा हुआ। वह व्यक्ति
 जो जल में डूब गया हो।
 गरीक कसुबु—संज्ञा पुं० [ते०] दूब। दूर्वा।
 गरीकलाय—संज्ञा पुं० [बं०] भाट। छोटी अरन्ती।
 गरीकाय (यी)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [कना०] दूब। दूर्वा।
 (इं० मे० मे०)।
 गरीकुलज—संज्ञा पुं० [बं०] भूत। भतवान (कुमा०)।
 (मेमो०)।
 गरीज—संज्ञा पुं० [फा०] जीमूत। बंदाल।
 गरुगमुह—संज्ञा पुं० [का०] मृङ्गराज। भाँगरा।
 गरुगा—संज्ञा पुं० [ते०] खरपत। घोगर। (मेमो०)।
 गरुगाचेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] (डी० भा० १, पृ० ३१९)।
 गरुगा पाइनेटा—संज्ञा पुं० [ले० Garuga pinnata]
 घोगर। खरपत।
 गरुङ्गा—संज्ञा पुं० [कना०] भाँगरा। मृङ्गराज।
 गरुड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रसिद्ध पक्षी। (२)
 सोनामाखी। स्वर्णमाक्षिक। (र० सा० सं०)। (३)
 एक प्रकार का धान्य। गरुडशाली।
 संज्ञा पुं० [कुमा०] खनसीर (पं०)। (मेमो०)।
 गरुडलता—संज्ञा स्त्री० [सं० गरुड+लता] गरुडवल्ली।
 गरुडवलि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का वलि-
 दान जो बालग्रह शान्त्यर्थ दिया जाता है। इस बलि का
 प्रयोग इस मन्त्र द्वारा किया जाता है 'ओं नमो भगवते
 गरुडायव्ययम्बकाय स्वाहा'। (च० द० बाल-चि०)।
 रुडग वल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार

की लता जो अतिशीघ्र पारद को बाँधती है। इसमें दुग्धस्राव होता है। इसके पुष्प रक्तवर्ण के होते हैं। इसकी पत्तियाँ वेर की पत्तियों की-सी होती हैं; कहा है 'सक्षीरा रक्तपुष्पाच बदरी दलवद्दला। उक्ता गरुडवल्लोति शीघ्रं वन्धोति पारदम्'। (२० का० धे० ७० पा०)। गरुडलता। गरुडवेल। (२) जलजमनी। पतालगरुडी। पानीजमा। फरीदवृटी।

गरुडवेगा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्षविशेष।

गरुडवेल—संज्ञा स्त्री० [म०] गरुडवल्लि।

गरुडशालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] पंखी धान। पक्षिराज धान। गन्धकारी। गुण—लघुपाकी, कफपित्तहर, मधुर, गुल्म-शोधन, शूल, स्वास, कुष्ठ, गुल्म तथा ग्रहणोनाशक है। (रा० नि० व० १६)। वातनाशक, पित्त, मद तथा भूतदोषनाशक है। (अत्रि० ८५ अ०)।

गरुडांकित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मरकतमणि। (रा० नि० व० १३)।

गरुडान्न—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गरुडशालि। (अत्रि० १५ अ०)।

गरुडाश्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] मरकतमणि। (जटा०)।

गरुडाहत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोमलता भेद। (सु० चि० २९ अ०)।

गरुडी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गिलोय। गुरुच। (२) गरुडवल्लि। गरुडवेल। (रस० २० विष-चि०)।

गरुडोत्तीर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मरकतमणि। (रा०

गरुडोद्गीर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नि० व० २३)।

गरुत्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्ष्म। नेत्रपक्ष्म। पलक।

गरुत्प्ररोह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पक्ष्मप्ररोह। (Pterygoid Process)। (अ० शा०)।

गरुत्मान—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्वर्णमाक्षिक। सोना-माखी। (रस० कौ०; भेष० वातरक्त-चि०)। (२)

गरुडपक्षी। (मे०)। (३) गिद्धपक्षी। (वै० निघ०)।

गरुद्योधी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गरुड पक्षी। भारती पक्षी। (बं०) भारुई। (त्रिका०)। (२) लावा। लावपक्षी। (वै० निघ०)।

गरेटी—संज्ञा स्त्री० [बं०] छोटी इलायची।

गरेड—संज्ञा पुं० [] गरारी वृटी।

गरेडुआ—संज्ञा पुं० [देश०] गवेधुका। कसी।

गरेह—संज्ञा पुं० [गोंडा] हिंगुआ। हिंगोट। इङ्गुदी।

गर्क—क्रि० वि० [अ०] जलमग्न। पानी में डूबा हुआ।

गर्कम्—संज्ञा पुं० [अ०] शिशनमणि। सुपारी। हर्फः।

गर्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बैल। वृषभ। (२) बलि-वर्द। साँड़। (३) गगोरी नाम का कीड़ा (कीट) जो पृथ्वी में घुसा रहता है। (४) उक्त नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि हैं। प्राचीन काल में हिमवती प्रान्त में, जो ऋषियों

की आयुर्वेदसंभाषापरिषद् हुई थी, उसमें गर्गमहर्षि भी उपस्थित थे। गर्गसंहिता इन्हीं की कृति है। यह शाला-क्यतन्त्रों में से एक है।

गर्गर (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गगरा मछली। (बं०) गागर माछ। यह पीतवर्ण पिच्छिलाङ्ग होती है एवं इसकी पीठ पर बड़ी रेखा होती है। गुण—शीतल, कफवात-कारक है। (रा० वि० व० १७)। मधुर, स्निग्ध, वात-पित्तनाशक है। (राज० ३ प०)। पित्तकारक, किंचित् वातनाशक तथा कफप्रकोपक है। (भा०)।

गर्गरक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का स्थावर-विषान्तर्गत मूलविष। (सु० कल्प० २ अ०)।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मथानी। मथनी। दधिमन्थनयन्त्र। मन्थानी। (अम०)। (२) कलसा।

गर्गरः—संज्ञा पुं० [अ०] गगरः। गण्डूष। कुल्ली।

गर्गाट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गेगरा। गर्गर मत्स्य। दे० 'गर्गर'। (२) योगनाविक। (हारा०)।

गर्ज—संज्ञा पुं० [अ०] गुजारत।

गर्ज इस्मी—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ सूचीभेदन। सुई चुभानी। परिभाषा में किसी अवयव में परिज्ञावार्थ सूचीभेद करने का कार्य।

गर्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गाजर। गज्जक। गर्जर।

गर्जन—संज्ञा पुं० [बं०; देश०] एक पेड़ जो भारतवर्ष के वृक्षों में सबसे बड़ा होता है। इसकी ऊँचाई प्रायः २०० फुट तक होती है। इसके तने की गोलाई १५ से २५ फुट तक होती है। वसंत ऋतु में इसकी पत्तियाँ नहीं गिरती हैं अर्थात् यह सदाहरित रहती हैं। इसमें फल भी लगते हैं। इसके गोंदको 'गर्जन बालसम' कहते हैं।

पर्या०—(हिं०) तिलया (तेली) गर्जन; (सि०) होरा तेल; (बर०) कन्येनूसी; (अ०) दुहनुल् गर्जन; (ता०) एण्णार; (अ०) गर्जन-ऑइल ट्री (Gurjan-oil tree), वुड-ऑइल ट्री (Wood-oil tree); (ले०) डिप्टेरोकार्पस इन्केनस (Dipterocarpus incanus), डि० टर्बिनेटस (D. turbinatus), डि० लीविस D. Laevis), डि० अलेटस (D. alatus)।

कर्पूरादि कुल (Family: Dipteraecae)।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्त-बंगाल, ब्रह्मा, सिमापुर इत्यादि।

रासायनिक संगठन—इसके गोंद में एक प्रकार का उड़नशील तेल होता है। इसके अतिरिक्त इसके शुष्क अर्द्धपारदर्शक गोंद में एक मणिभीय अम्लपदार्थ तथा गर्जनाम्ल और उत्पत् तेल होता है।

उपयुक्त अंग—तैलीय गोंद जिसको 'गर्जन बालसम' कहते हैं। भारतीय बाजारों में मुख्यतः इसका गोंद तीन प्रकार का प्राप्त होता है—(१) पीला, (२) रक्त वा

रक्ताभधूसर-वर्ण और (३) कृष्ण वा कृष्णधूसरवर्ण का ।

गुण-कर्म और उपयोग—उत्तेजक, मूत्रल, श्लक्ष्ण, रसायन (परिवर्तक) और कोथघ्न है। इसके पत्तों का क्वाथ निर्माणकर गण्डूष धारण करने से दन्तवेदना शांत होती है। इसके फलों के उपयोग से उग्र कास, यकृत रोग, मूत्रावरोध और विषाक्त व्रणशोथ का नाश होता है। फलों को कालीमिर्च के साथ सेवन करने से कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है।

त्वचा—इसकी छाल का क्वाथ निर्माणकर देने से मूढ-गर्भ और अमरा का उत्सर्ग होता है।

बीज—इसका बीज १० माशा की मात्रा में सेवन करने से दरियाईखरगोशविष का नाश होता है। इसके पत्तों और शाखों का क्वाथ निर्माणकर सेवन करने से क्लम, व्रण, विद्रधि, आमाशयदौर्बल्य, यकृतदौर्बल्य तथा संधि-वात का नाश होता है। इसके क्वाथ से शिर-प्रक्षालन करने से यूका नष्ट होती हैं तथा केशपात होना बंद हो जाता है। इसके फलों के उपयोग से मूत्रविदु का नाश होता है। इसका पंचाङ्ग पीसकर प्रलेप करने से शोथ और गलौघ (खुनाक) का नाश होता है। इसके क्वाथ से वस्तिग्रहण करने से आन्त्रज कृमियों का नाश होता है।

गोंद—घुलनशीलता—यह जल, वेञ्जोल, क्लोरोफॉर्म और उत्पत्त तैलों में द्रवीभूत होता है।

गुण तथा उपयोग—३० रत्ती की मात्रा में चीनी के साथ सेवन करने से कास का नाश होता है।

अहितकर—फल—आमाशय को हानि पहुँचाता है, शिरो-वेदना उत्पन्न करता है और शरीर को दुर्बल करता है।

निवारण—वारतंग का स्वरस, अम्लफल, और धनियाँ।

गर्जन का तेल—संज्ञा पुं० [] पर्याय—(अ०) दुहनुल् गर्जन; (अं०) गर्जन ऑइल (Gurjun oil); (फा०) रोगन चोब गर्जन; (ले०) ऑलियम् गर्जन (Oleum Gurjun)।

परिचय—यह गर्जन के गोंद द्वारा परिष्कृत किया हुआ तेल है। इसके गोंद को भाषा में 'तेलिया गर्जन' भी कहते हैं। गर्जन के तने में, जो मोटा होता है, पृथ्वी में गड़ढा खोदकर आग जलाते हैं। इससे उष्णता के कारण निर्यास युक्त तैल परिस्त्रावित होता है। यह मधुतुल्य सांद्र होता है। इसका वर्ण पीताभ होता है। इसके निर्यास को पुनः परिष्कृत करने से तारपीनतुल्य तैल प्राप्त होता है। यह किंचित् रक्ताभ भूरा होता है। स्वाद—वलसाँ-तैल तुल्य होता है। उत्तम तेल किंचित् रक्ताभ भूरा होता है। इस तेल का विशेष गुणधर्म सन् १८७४ ई० में ज्ञात हुआ।

गुण-कर्म—कुष्ठघ्न, श्वासनाशक, व्रणघ्न, कोथ एवं पूयमेहनाशक, प्रदरहर तथा चर्मरोगनाशक है।

उपयोग—इसके अभ्यङ्ग तथा मौखिक उपयोग से महाकुष्ठ, त्वक्स्वाप, दुष्टव्रण, सूजाक (पूयमेह), शोथ, प्रदर, योनिरोग, दद्रु इत्यादि का नाश होता है।

मात्रा—१५ से ३० बूँद,

उपयोग-विधि—सर्वप्रथम चर्मरोगी की शोधन-प्रक्षालनादि द्वारा भली-भाँति शुद्ध करें। पुनः १ भाग चूने का पानी और इतना ही गर्जन का तेल एकत्र मिश्रित करें। जब जलांश दृष्टिगोचर न हो तो इसमें से १। तोला प्रातः और १। तोला सायंकाल पानार्थ दें। अभ्यङ्गार्थ चूने का जल ३ भाग और गर्जन का तेल १ भाग भली-भाँति एकत्र मिश्रित करें। इसमें से आवश्यकतानुसार सायं-प्रातःकाल प्रायः २ घंटापर्यंत अभ्यङ्ग कराएँ और व्रणों पर भी इसी को लगाएँ। इस प्रकार उपयोग करने से कुष्ठ शमन होता है।

कुष्ठ में गर्जन तेल का सूचीवेध—विशुद्ध गर्जन ऑइल (Gurjan oil) ४ भाग और चॉलमोगरा ऑइल १ भाग—इन्हें भली-भाँति मिश्रित करें। इसमें से १० से ६० बूँद तक क्रमशः वृद्धिक्रम से मांस में सूचीवेध करने से समस्त कुष्ठों का नाश होता है।

पूयमेह (सूजाक) में गर्जन का तेल—पुराने चावल का गोदुग्ध से निर्मित खीर, जिसमें शर्करा का मेल न हो, उसमें १० से ३० बूँद तक गर्जन का तेल मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन करने से अथवा इसी प्रकार किसी दूसरे लबावदार वस्तु में सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

चर्मरोग में अभ्यङ्ग—प्रातःकाल उठकर शरीर पर जहाँ कुष्ठादि के चिह्न हों उनको शुष्क मृत्तिका द्वारा भली-भाँति रगड़ें। पुनः ७ बजे दिन में गर्जन तेल का दूधिया पानी (Emulsion) पानार्थ देने के पश्चात् २ घंटा तक गर्जन तेल का अभ्यङ्ग कराएँ। यदि इसके पान से अधिक दस्त आने लगे तो इसकी मात्रा कम कर दें।

दूधिया पानी-निर्माण विधि—

गर्जन का तेल	६० बूँद
गोंद बबूल	१॥ तो०
अर्क सौफ	२॥ तो०

एकत्र खरल करें। जब दुग्धवत् द्रव हो जाय तब उपयोग में लायें।

पानार्थ मात्रा—१ चम्मच दिन में ३ बार।

विशुद्ध तेल की मात्रा—॥ फ्लुइड ड्राम से १ ड्राम तक।

गर्जफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] विकण्टक वृक्ष। कटार। दे० 'विकङ्कत'।

गर्जर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गाजर।

गर्जर-बीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गाजर का बीज ।
 गर्जाबरी—संज्ञा पुं० [अ०] धातुवर्ध सूचीवेध करना या सूई चुभाना । यूनानी वैद्यक की परिभाषा में पूयादि परिस्त्रावार्थ किसी अंग में सूचीवेध करना । यथा—कतिपय मस्तिष्क रोगों में वृक्क में सूचीवेधन कर क्षत को जारी रखते हैं । (अं०) एकयुपंकचर (Acupuncture) ।
 गर्ज्जक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली ।
 पर्ज्यां—(हिं०) गाजर; (बं०) गजाब, शाल माछ; (सं०) शाल, शालक । (श० र०) ।
 गर्ज्जर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गाजर ।
 गर्ज्जरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल लहसुन । रक्त लघुन । (वै० निघ०) ।
 गर्ज्जफल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकण्टक वृक्ष । (रा० नि० व० ११) ।
 गर्ज्जित—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मस्त हाथी । मत्त हस्ति । मदैला हाथी ।
 गर्तशियार—संज्ञा पुं० [कुमा०] किरम । (नेपा०) ।
 गर्त—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गड्ढा । भूगर्त । श्वभ्र । सुराख । छिद्र । पर्ज्यां—(सं०) अवट, अवट्ट, आवटि, भूरन्ध्र, दर, श्वभ्र; (बं०) गाढ़ा । (२) कुकरौंदा । कुकुन्दर । (मे०) । (३) रोग विशेष । (श० र०) ।
 गर्तकलम्बुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गाँडर दूब । गण्डदूर्वा । मत्स्याक्षी । (हिं०) मछेछी । (वै० निघ०) ।
 गर्तटिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगली चूहा । वन मूषिक । (वै० निघ०) ।
 गर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ताँतघर । तन्तुशाला । (वै० निघ०) ।
 गर्द—संज्ञा पुं० [फा०] घूल । घूलि ।
 गर्दआसिया—संज्ञा पुं० [फा० गर्द+आसियः-चक्की] चक्की की झाड़न । गर्द चक्की । यह चक्की वा जाँत की सुप्रसिद्ध घूल है । पर्ज्यां—(हिं०) चक्की की झाड़न (घूल); (अ०) गुबाहल खारिही ।
 प्रकृति (मिजाज)—शीतल एवं रुक्ष ।
 गुणकर्म तथा उपयोग—नकसीर को रोकनेवाली और रुक्षत्वप्रद है । जल में पीसकर मस्तक पर लेप करने से नेत्रों पर मल गिरना रुक जाता है । यह स्थूल पट्टों को दृढ़ करती है । इसे कर्णपूरण करने से रक्तज तथा पित्तज कर्णशूलका नाश होता है । निर्विषैल है ।
 मात्रा—खाई नहीं जाती ।
 गर्दपताली—संज्ञा स्त्री० [को०] वनस्पति विशेष ।
 गर्दफल—संज्ञा पुं० [को०] काकमारी । नेत्रमाल (पं०) ।
 दे० 'काकनासा' ।
 गर्दभाञ्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बंदा। देवडांगरी का फल ।

फा०—७८

गर्दभाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जूही । यूथिका । (२) पारसपीपल ।
 गर्दली—संज्ञा स्त्री० [पं०] चूल् । गोराफल ।
 गर्द सावस—संज्ञा पुं० [यू०] खरगोश । बाशा ।
 गर्दभ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गदहा । गधा ।
 गर्दभक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सफेद कमल । श्वेतपद्म । (हे०) ।
 गर्दभगद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वालागर्दभ ।
 गर्दभगन्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भार्गी । भारंगी । (बं०) वामन हाटी । (वै० निघ०) ।
 गर्दभमांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गदहे का मांस ।
 गर्दभमूत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गदहे का मूत्र ।
 गर्दभशाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
 गर्दभशाका (शाखा, शाखी)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
 भारंगी । भार्गी । (बं०) वामनहाटी । (जटा०; रा० नि० व० ६) ।
 गर्दभा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद कटेरी । श्वेतकण्टकारी ।
 गर्दभाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पारस-पीपल । (बं०) गया अश्वत्थ, पलाश पिपुल । (२) प्लक्ष वृक्ष । पाकर । (रा० नि० व० ११)
 गर्दभाह्वय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुमुद । (२) षण्ड । (हे० च०) ।
 गर्दभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का वात-पित्तजन्य क्षुद्र रोग । लक्षण—इसमें त्वचा पर गोल, ऊँचा, अत्यन्त लाल फुंसियों से व्याप्त, वेदनायुक्त मण्डल (गोल चकत्ता) होता है ।
 चिकित्सा—इसमें संपूर्ण चिकित्सा विसर्पवत् की जाती है । पक जाने पर जीवनीयगणोक्त मधुर द्रव्यों द्वारा पकाए हुए घृत से रोपण करें । (भा०) ।
 गर्दभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गदही । (२) कटभी । (रा० नि० व० २३) । (३) श्वेत अपराजिता । (४) श्वेत कण्टकारी । (रा० नि० व० ३, ४) ।
 गर्दभी-पय—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गदही का दूध । गघी का दूध । गर्दभी क्षीर ।
 गुण—रूक्ष, वातघ्न, बलवर्धक, स्वासहर, मधुर, अम्लरसयुक्त तथा दीपन है ।
 यूनानी वैद्यक के मतानुसार—
 पर्ज्यां—(अ०) लन्तुलअतान; (फा०) शीरखर; (अं०) आसेजमित्क (Ass's milk) । प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल और तृतीय में तर (स्निग्ध) है । गुण-कर्म—शैत्यकारक, मनःप्रसादकर, उरःक्षतनाशक, यक्ष्माहर तथा कुक्कुरकासनाशक और अवरोधोद्धाटक है । दे० 'गदहा' ।

प्रतिनिधि—स्त्रीदुग्ध, गोदुग्ध, छागीक्षीर । अहित-
कर—कफप्रकृति व्यक्तियों के लिए तथा शीतजन्य
शिरोवेदनावाले व्यक्तियों, तथा शिरोभ्रमणरोग के रोगियों
को हानिकर है और यह शीतल है । इसको पीकर सोना
मना है इससे नेत्रों में जाला उत्पन्न होता है । यह
मसूढ़ों और पट्ठों को ढीला करता है । कभी-कभी इसके
पीने के पश्चात् उत्कलेश होता और वमन हो जाता है
तथा धूमोद्गार होता है ।

निवारण—पीने के बाद सिरका और गुलाबजल से
कुल्ली करें । कर्णनाद हो जाय तो गाफिस दें । **मात्रा**—
२ से १० माशा तक अथवा ४ तोला से १४ तोला तक ।
योग—मिश्री, कतीरा, कद्दू के बीजों का तेल, बबूल का
गोंद और मुलेठी का सत इत्यादि के साथ सेवन कराएँ ।

आयुर्वेद मतानुसार—

गर्हभीदधि—गुण—रूक्ष, उष्ण और वातघ्न है ।

गर्हभीनवनतीत (सक्वन) गुण—कषाय, वात-कफ-
नाशक, बलकारक, दीपन, लघुपाकी, मूत्रदोषकारक तथा
उष्ण है । **गर्हभीघृत**—बलवर्धक, दीपन, मूत्रदोषनाशक,
लघुपाकी, कषाय, कफघ्न तथा उष्णवीर्य है । (रा० नि०
व० १५) ।

गर्हभी-क्षीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गदही का दूध ।

गर्दली—संज्ञा स्त्री० [पं०] जरदालू । चूल् का फल । गौरी-
फल ।

गर्दसुमाक—संज्ञा पुं० [अ०] सुमाक ।

गर्दाली—संज्ञा स्त्री० [पं०] जरदालू ।

गर्दुण्डी—संज्ञा स्त्री० [कना०] पुत्राग । नागकेसर ।

गर्दुल—संज्ञा पुं० [द०; म०; बम्ब०] फरहद । पारिभद्र ।
पांगरा ।

गर्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारसपीपर । **गर्दभाण्ड** वृक्ष ।
(श० च०) ।

गर्दभाण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारसपीपर ।

गर्नकः—संज्ञा पुं० [अ०] नेत्रस्थ रेखा । नेत्रसूत्र । नेत्र का
डोरा ।

गर्नीक, गर्नूक—संज्ञा पुं० [अ०] युवा पुरुष । जवान
आदमी ।

गर्ब—संज्ञा पुं० [अ०] नेत्र के भीतरी कोया का नाडीव्रण
(नासूर) ।

गर्बल—संज्ञा पुं० [अ०] चलनी । छलनी ।

गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पिण्ड जो
गर्भाशय में प्राप्त शुक्र, आर्तव, जीव, आठ प्रकृति और
षोडश (१६) विकारों से उत्पन्न होता है । (भा०) ।
सुश्रुत के अनुसार गर्भाशय में स्थित आत्मा, प्रकृति और
विकारों से युक्त शुक्र-शोणितसंयोग को 'गर्भ' कहते हैं—
शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्म, प्रकृति विकारं संसृच्छतं

'गर्भ' इत्युच्यते । 'शुक्रशोणित जीव संयोगे तु खलु कुक्षिगते
गर्भ संज्ञा भवति' । (चरक) ।

पर्याय—(सं०) भ्रूण; (अ०) फोटस, एम्ब्रायो (Foetus,
Embryo); (उर्दू) हमल ।

गर्भ का गर्भाशय में आश्रयग्रहण—स्त्री० पुरुष के
समागम के समय तेज (शुक्र-शोणित) वायु द्वारा
उदीर्ण होता है । पुनः वह तेज और वायु के सहयोग
से क्षरित शुक्र (पुरुष वीर्य) स्त्री की योनि की ओर
धावमान होता है और आर्तव के साथ वहीं मिलीभूत
होकर आर्तविरूप अग्नि और शुक्ररूप सोम के संयोग से
उत्पन्न गर्भ स्त्री के गर्भाशय में आश्रयग्रहण करता है ।
यथा—

"स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद्यायुद्धीर्यति, ततस्ते-
जोऽनिल सन्निपाताच्छुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते
संसृज्यते चार्तवेन, ततोऽग्निः सोमसंयोगात् संसृज्यमानो
गर्भो गर्भाशयामनुप्रतिपद्यते" (सु० शा० ३ अ०) तथा
ऋतौ स्त्री पुंसयोर्योगे मकरध्वज वेगतः । मेढू योन्यभि
संघच्छरीरोष्मानिलाहतः ॥ पुंसः सर्वशरीस्थं रेतो द्राव-
यतेऽथ तत् । वायुर्मेहन मार्गेण पातयत्यङ्गनाभेन ॥ तत्सं-
सृत्य व्यात्तमुखं पाति गर्भाशयं प्रति । तत्र शुक्र वदायाते
नार्तवेन युतं भवेत् ॥" (भा० प्र० ख०) । (गर्भावक्रान्ति,
सु० शा० ३ अ०) ।

पाश्चात्य-आयुर्वेद के अनुसार मैथुनान्त में स्वस्थ पुरुष
के शुक्रस्खलन में प्रायः २० करोड़ शुक्रमण्डूक (शुक्राणु)
होते हैं । यद्यपि गर्भाधान के निमित्त केवल १ ही शुक्र-
कीट की आवश्यकता होती है तथापि उनमें जो सबसे
अधिक चपल एवं बलवान् होता है वही, यौवत् (स्त्री-
बीज) के साथ मिलकर सफल गर्भ का कारण होता है ।
यदि दैवयोग से स्त्री के २ बीज हों तो ऐसी स्थिति में
२ शुक्राणुओं से २ गर्भों का अवधान होकर युग्म संतान
की तथा इसी प्रकार स्त्री ३ बीजों से और पुरुषों के ३
शुक्राणुओं के संयोग से ३ संतान की उत्पत्ति हो सकती
है । मैंने स्वयं देखा है कि एक ग्रामीण मछुआ की स्त्री के
गर्भ से ७ संतानें उत्पन्न हुई थीं और वे अल्पकालही में
निर्जीव हो गई थीं ।

पाश्चात्यशारीरशास्त्रज्ञों के अन्वेषण से यह सिद्ध
हुआ है कि शुक्राणु (पुंबीज) और स्त्रीबीज (यौवत्) का संयोग
बीजवाहिनी (Fallopian-Tube) में उसके उदरस्थ मुख
के निकट होता है, ऐसा अनुमान होता है । आयुर्वेद में
दोनों के संयोग का स्थान गर्भाशय स्वीकार किया गया
है । भावप्रकाश के उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट होता है कि नीचे
की ओर से पुरुष का शुक्र गर्भाशय के ऊर्ध्वभाग में प्रविष्ट
होता है और ऊपर की ओर से आर्तव (स्त्रीबीज) शुक्र
के समान नीचे आ जाता है और पुनः दोनों का संयोग

गर्भाशय में होता है 'तत्र (गर्भाशये) शुक्रवदायातेन - त्वेन युतं भवेत्' इसी प्रकार चरक में भी उल्लेख है कि 'शुक्र शोणित संसर्गमन्तर्गर्भाशयगत जीवोऽवक्रामति' (शा० ३ अ०)। यद्यपि आयुर्वेद का उपर्युक्त कथन पूर्णरूप से पाश्चात्यायुर्वेदज्ञों के अनुसार मेल नहीं खाता तथापि दोनों मतों से दोनों का संयोगस्थान प्रायः बीजवाहिनी में होता है और तथापि गर्भाशय में भी दोनों का संयोग होकर गर्भविधान होता है।

The possibility of fertilization in the uterus cannot be denied. (Embryology by Frazer)।

स्त्रीबीज स्वयं गतिविहीन होता है, किन्तु कोष से उदर-गुहा में आने पर बीजवाहिनीद्वारपरिवर्त्ती अञ्चलों (Fimbria) द्वारा उत्पन्न तरंगों में फँसकर उनकी ओर चला जाता है और पुनः बीजवाहिनी में प्रविष्ट हो जाता है। बीजवाहिनी का अन्तरीय भाग लोमश (ciliated) होता है और लोमों की दिशा तथा गति गर्भाशय की ओर होती है। इसके अतिरिक्त बीजवाहिनी में भी एक प्रकार की पुरःसारणगति (Peristaltic wave) होती है। पुरःसारण गति तथा लोम की सहायता से बीज क्रमशः गर्भाशय की ओर चला जाता है; किन्तु यदि उस का संयोग शुक्रमण्डूक (स्पर्मटोजूआ) से न हुआ तो स्त्री के मासिकस्राव के साथ भगद्वार से प्रवाहित होकर बाहर चला जाता है। प्रायः शुक्रमण्डूक से उसका संयोग स्त्रीबीजवाहिन के मुख के निकट होता है, कारण यह है कि शुक्राणु गतियुक्त होता है।

शुक्रमण्डूकों की गति के सम्बन्ध में यद्यपि मतभिन्नता है; परन्तु साधारण मत यह है कि १ इंच का अन्तर पार करने के लिए ५ से १० मिनट का समय लगता है और गर्भाशयमुख से स्त्रीबीजवाहिनीद्वार पर्यन्त पहुँचने में प्रायः १॥ घंटा का समय पर्याप्त होता है। तात्पर्य यह है कि मैथुनकर्म के थोड़े घंटे के पश्चात् शुक्रमण्डूक स्त्री-बीजवाहिनी में पहुँच सकते हैं। और पुनः उक्त स्थान में स्त्रीबीज से संयोग होने पर गर्भधारण होता है। यदि संयोग प्राप्त न हुआ तो शुक्रमण्डूक उदरगुहा में प्रवेश पाकर यदि वहाँ बीज का संयोग प्राप्त हो जावे तो वहीं गर्भ की धारणा हो जाती है। इस अवस्था में औदर्य्य गर्भावस्था (Abdominal Pregnancy) कहते हैं।

बीजकोषस्थ-गर्भावस्था—कभी-कभी स्त्री-बीज के पीछे लगा हुआ शुक्रमण्डूक (शुक्राणु) इधर-उधर बीज न प्राप्त होने पर सीधा बीजकोष पर चला जाता है और यदि वहाँ सुपक बीज प्राप्त हो जाय तो उससे संयुक्त होकर गर्भधारण करता है। इस अवस्था को बीजकोषस्थ-

गर्भावस्था (ओवरिअन प्रेग्नेन्सी-Ovarian pregnancy) कहते हैं। उक्त उभय अवस्थाएँ भयानक होती हैं। कारण यह है कि उक्त स्थान गर्भवृद्धि के लिए उपयुक्त न होने के कारण अकाल में ही विदीर्ण होकर रक्त-स्राव हो जाता है और उक्त हेतु से स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

शुक्रमण्डूक और स्त्रीबीज का संयोग—शरीर के प्रत्येक घटक (सेल) में केन्द्र होता है और उस केन्द्र में कुछ रज्जक द्रव्य का भाग होता है, जिसको अंग्रेजी में क्रोमाटोन (Chromatin) कहते हैं। सेलविभाजन काल में यह रज्जक पदार्थ कतिपय सूत्रों में विभक्त हो जाता है। इनको रंगसूत्र तथा अंग्रेजी में क्रोमोसोम (Chromosomes) वा रंगवस्तु—क्रोमाटोन बॉडी (Cromatin body) कहते हैं। प्रत्येक जाति के प्राणियों में इन रंग-सूत्रों की संख्या निश्चित होती है; मनुष्य जाति में इनकी संख्या ४८ होती है। किन्तु स्त्रीबीज पक होने के समय उसमें कतिपय बार विभजन होकर केन्द्रगत रंगसूत्रों की संख्या २४ हो जाती है और शेष केन्द्र का भाग उसके ऊपर के आवरण में (जोना पेल्लुसीडा Zona pellucida) मिश्रीभूत होकर नष्ट हो जाता है। शुक्राणु-पक होने के समय भी उक्त प्रकार का विभजन होकर उसके केन्द्र में भी २४ रंग सूत्र रह जाते हैं और यह केन्द्र शुक्राणु के सिर और ग्रीवा में ही रह जाता है, पुच्छ में नहीं होता। उक्त रंगसूत्रों वा क्रोमोसोमों के द्वारा माता-पिता के गुण-दोष सन्तति में आ जाते हैं। प्राचीन परिभाषा के अनुसार इन रंगसूत्रों को बीज का बीज-भाग कह सकते हैं; जिसमें व्यक्ति के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का सूक्ष्म चित्र निहित होता है।

'यस्य यस्य ह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजभागउपतप्तो भवति, तस्य तस्याङ्गावयवस्य विकृतिरूपजायते, तोप-जायते चानुपतापात्' (चरक, शा० ३ अ०)। 'मनुष्य बीजं हि प्रत्यंग बीजभागसमुदायात्मकं स्वसदृश प्रत्यंग समुदायरूपं पुंष्व जनकम्।' (चक्रपाणिदत्त)।

Each chromosome contains a certain number of genes. They occur in pairs a set for black eyes, some for fair skin and a number of them for crooked nose.

(Riddle of sex).

आदिबलप्रवृत्त वा आनुवंशिक—कुलज (Hereditary) रोगों में शुक्र-शोणित में जो दोष होता है, वह इन क्रोमोसोम में ही विद्यमान होता है और इन्हीं के द्वारा संतति में भी प्रवेश करता है। दोषों के अनुसार व्यक्ति के गुण भी इन्हीं के द्वारा संतति में प्राप्त होते हैं। अर्थात् मनुष्यों की उत्पत्ति का आदिकारण पुरुष के बीज का जीवाणु

(शुक्रमण्डूक—Spermatozoa) और स्त्री का बीज (Ova) के दोषों के बल से उत्पन्न रोग है। इस प्रकार विभजन के द्वारा पक्क हुए बीज के निकट कतिपय शुक्रमण्डूक (शुक्राणु) पहुँच सकते हैं, किन्तु उनमें से एक जो सबसे प्रबल होता है, भीतर प्रवेश कर सकता है। उसका सिर ऊपर के आवरण में से भीतर प्रविष्ट हो जाता है और बीज के केन्द्र के साथ मिल जाता है और उसका पुच्छ सिर से पृथक् होकर बाह्यकण में विलीन हो जाता है। इस प्रकार २४ शुक्रमण्डूक के और २४ स्त्रीबीज के क्रोमोसोम संयुक्त होकर पूर्ववत् ४८ क्रोमोसोम का एक जीव निर्मित होता है जिसमें माता-पिता के सम्पूर्ण गुणदोष आ जाते हैं; और इसी को 'गर्भ' कहते हैं। संक्षेप में यहाँ शुक्र-शोणित संयोग से उभय केन्द्रों का संयोग अभिप्रेत है। क्रोमोसोम की संख्या में कदापि वृद्धि नहीं होती।

गर्भाशयमनुप्रपद्यते—इस प्रकार दोनों का संयोग उपस्थित होने पर गर्भ का प्रारम्भिक घटक (सेल) स्वतः विभक्त होने लगता है और एक से दो, २ से ४, ४ से ८, ८ से १६ इस प्रकार से वृद्धि आरम्भ होती है। इस वृद्धि के साथ-साथ क्रमशः गर्भाशय की ओर प्रस्थान करता है और प्रायः ५ से १० दिवस में गर्भाशय में आश्रय ग्रहण करता है।

हाराणचन्द्र 'अनु' का गर्भाशय के एक विशिष्ट भाग के साथसम्बन्ध समझते हैं—

गर्भाशयमन्वित्यनुभिगैर्ज्यै कर्म प्रवचनीयः।

गर्भाशयस्यांश विशेषं योन्यास्तृतीयमावर्तमित्येतत्, वक्ष्यतिहि 'तस्यातृतीयेत्वावर्ते गर्भाशया प्रतिष्ठिता' इति। प्रपद्यते प्राप्नोति ॥ यह कथन भी सत्य है, कारण यह है कि स्त्रीबीजवाहिनी से आया हुआ गर्भ गर्भाशय के शिखर अर्थात् उसके तृतीय आवर्त में (Fundus of the uterus) में चिपक जाता है।

नलिका गर्भाविस्था—कभी-कभी गर्भ बीजवाहिनी में अधिक दिनों पर्यन्त टिका रहता है। इसका ठीक कारण अभी तक अज्ञात है। अधिक दिनों तक रहने पर उसमें चिपकने का अंग अर्थात् ट्रोफोब्लास्ट (Trophoblast) उत्पन्न होता है और वह वहीं चिपककर वर्धित होता है। इस अवस्था को नलिकागर्भाविस्था अर्थात् ट्यूबल प्रेग्नेन्सी (Tubal Pregnancy) कहते हैं। औदरिक और बीज-कोषस्थ गर्भाविस्थाओं के अनुसार यह अवस्था भी भयावह होती है।

गर्भ में जीव का अवतरण तथा उसका पर्याय—क्षेत्रज्ञ वेदयिता, स्पष्टा, धाता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुष, स्रष्टा, गन्ता, साक्षी, धाता, वक्ता इत्यादि नामों से जो प्रकारा जाता है वह (क्षेत्रज्ञ स्वयं) अक्षय, अचिन्त्य तथा

अव्यय (होते हुए भी) वह दैव के संग से (सूक्ष्म) भूत, सत्त्व-रज-तम, दैव, आसुर वा अन्य भाव इनसे युक्त वायु द्वारा प्रेरित होकर गर्भाशय में प्रविष्ट होकर (शुक्र) आर्तव का संयोग होते ही तत्काल (उस संयोग में) अवस्थान करता है। (सु० शा० ३ अ० सू० ॥४॥)।

वक्तव्य—गत सूत्र में गर्भ की उत्पत्ति वा विचार भौतिक अर्थात् आधुनिक विज्ञान (Modern Science) की दृष्टिकोण से किया गया है; किन्तु भारतीय दर्शन-शास्त्र की दृष्टि से शुक्र-शोणित (आर्तव) महाभूतात्मक होने से अचेतन हैं। उनमें चैतन्य प्राप्त होने के लिए सचेतन आत्मा वा पुरुष का उनके साथ संयोग होना अनिवार्य है। अतः गर्भ की व्याख्या में शुक्र शोणित आत्मा तीनों का निर्देश निरपवाद किया जाता है—शुक्रशोणित जीव संयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति। यथा सतामेव शुक्रशोणित जीवानां प्राक्संयोगाद्गर्भत्वं न भवति, तच्च संयोगाद्भवति ॥ (चरक०)। अतः प्रथम गुणवर्णनात्मक आत्मा के पर्यायनाम दिए हैं।

क्षेत्रज्ञः—शरीर रूपी क्षेत्र का ज्ञाता—'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ (भगवद्गीता १३।१)। अथवा शरीर रूप क्षेत्र में बद्धीभूत आत्मा—आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः। तैरेवतु विनिर्भुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ (महाभारत)।

वेदयिता—सुख दुःखादि का अनुभव करनेवाला होने से उसको 'वेदयिता' कहते हैं—पुरुषः सुख दुःखानां भोक्तृत्वे हेतु रच्यते। पुरुषः प्रकृति स्थोहि भुङ्क्ते प्रकृति जान् गुणान् ॥ (भगवद्गीता १३।२१)। तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुष ॥ (सांख्यकारिका ५५)।

जीव—'जीव संज्ञो जन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदहिनाम्' येन वेदयते सर्वं सुख दुःखं च जन्ममु ॥ (मनुस्मृति १२।१३)। मनसो ज्ञापयिता ॥ (डल्हण)।

स्पष्टा, धाता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता—पञ्च-ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले ज्ञान का ज्ञाता। यद्यपि नेत्रद्वय रूप को देखते हैं, तथापि रूप का ज्ञान आत्मा ही को होता है, न कि नेत्रों को—आत्माज्ञः करणैर्योगा ज्ञानं तस्य प्रवर्तते। (चरक)। किंवा इन्द्रियों के द्वारा कार्य सम्पादन करनेवाला अर्थात् कर्त्ता, ज्ञापक—कर्त्ताहि करणैर्युक्तः कारणं सर्वकर्मणाम् ॥ (चरक)।

पुरुषः—पुरिलिङ्गज्ञेय इति पुरुषः। अर्थात् जो लिङ्गशरीर में निवास करता है, उसको पुरुष कहते हैं।

स्रष्टा—शरीर में चैतन्यता की सृष्टि करनेवाला—'चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्त्ता निरुच्यते। शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम् ॥ (चरक)।

गन्ता—एक शरीर से अन्य शरीर में गमन करनेवाले

को 'गन्ता' कहते हैं—देहादेहान्तरं याति किमिच्छाश्वतोऽव्ययः ॥ साक्षी—ज्ञानवान् होने से आत्मा को साक्षी कहते हैं ।—ज्ञः साक्षीत्युच्यते नाज्ञः, साक्षीत्वात्मा यतः स्मृतः । (चरक) । अथवा ज्ञानवान् होने के कारण तटस्थ के समान सुखदुःखादि से विचलित न होने वाला—निर्विकारः परस्त्वात्मा, द्रष्टा पश्यति हि क्रिया- (चरक) । द्रष्टा साक्षी, तेन पतिर्यथा परम शान्तः साक्षी सन् जगतः क्रियाः सर्वाः पश्यन् न राग द्वेषादिना युज्यते, तथाऽऽत्मापि सुखदुःखाद्युप तमम मानोपि न रागादिना युज्यते । (चक्रपाणिदत्त) ।

धाता—पञ्चमहाभूतात्मक शरीर को धारण करता है; अतः इसको 'धाता' कहते हैं । वक्ता—बोलनेवाला । यह उपलक्षण है । इसमें पञ्चकर्मन्द्रियों का कर्त्ता आत्मा ही है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए—'एतेन कर्मन्द्रियाणामपि वचनादान विहरणोत्सर्गा देश्याप्यमेव हेतुः, (डल्हण) ।

देवसंगात्—प्रारब्धकर्म का फल भोगने के अतिरिक्त जीव का छुटकारा नहीं होता, ऐसा वेदान्त का मत है—'शरीराम्भकं योगिनोऽपिचा विना फलोपभोगेन नैव नश्यत्यसंशयम् । वर्तमान शरीरेण संपन्नं कर्म देहिनः । इहवासुत्र वाऽज्ञस्य ददातिस्व फलंशुक् ॥ प्रारब्धशेषं विच्छिन्नं पुनर्देहान्तरेणतु । भुङ्क्ते देहीततो भुङ्क्ते तल्लङ्घयतिकः पुमान् ? ॥ (पराशर) । भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते । (वेदान्तसूत्र) ।

कभी यह फल एक जन्म में समाप्त हो जाता है और कभी उसको समाप्त करने की अनेक जन्मग्रहण की आवश्यकता होती है—अवश्य मनु भोक्तव्यं प्रारब्धस्य फलं जनैः । देहेनैकेन वाऽन्येन युगवद्धा क्रमेणवा ॥ (पराशर) ।

देव से एक वा अनेक पूर्वजन्म के प्रारब्ध कर्मों का बोध होता है, जिसके फल को वर्तमान जन्म में भोगने पड़ते हैं—दैवंपुरा यत् कृतमुच्यते तु । दैवमात्मकृतं विद्यात् कर्मयत्पौर्वं दैहिकम् ॥ (चरक) । उक्त पौर्वदैहिक कर्मों के फलरूप संग वा बन्धन के कारण, आत्मा उपर्युक्त गुणों से युक्त होकर भी स्वपूर्व कृतकर्मों के जाल में फँस कर एक शरीर से अन्य शरीर में गमन करता है ।

क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनि मानुष देवेषु संचरन्ति धर्माधर्म निमित्तम् ॥ (सु० शा० १ अ० १७ वाँ सू०) । तात्पर्य यह है कि आयुर्वेदशास्त्र के सिद्धान्त से अणुरूप और नित्य पुरुष धर्माधर्म के कारण तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि और दैवयोनि में अनुभवग्राह्य, अत्यन्त सूक्ष्म, सचेतन और नित्य पुरुष शुक्र-शोणित (जीव) के संयोग से उत्पन्न होता है । पञ्चमहाभूत और आत्मा (जीव) के संयोग को ही पुरुष कहते हैं ऐसा ही सुश्रुत में पूर्वसेही कथन किया गया है—

न चायुर्वेद शास्त्रेषु पदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च; असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्य पुरुषख्यापकान् हेतुमुदाहरन्ति ॥ (सु० शा० १ अ० १६ सू०)

पूर्वकृत कर्मों की कल्पना आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं :—

The individual never being other than what he has made himself in the course of his evolution by the immense series of representations he has gone through it follows that every thing that is within his field of consciousness is his own doing the fruit of his own efforts, his own sufferings and his own joys. Every act, even every desire and inclinations, has an inevitable reaction in one or other of his existences. (Gustave Geley From the unconscious to the conscious).

अचिन्त्य—वह क्षेत्रज्ञ जो मन और बुद्धि की चिन्तन शक्ति के परे होता है—'मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः' (भगवद्गीता) । यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥

भूतात्मनासह—भूतात्मा के साथ । वेदान्त के अनुसार पञ्चतन्मात्रा वा देहबीजभूत सूक्ष्म पदार्थ को भूतात्मा कहते हैं । 'योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते यः करोतितु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः । (मनुस्मृति) । यः पुनरेष व्यापारान्करोति शरीराख्यः स पृथिव्यादि भूतारब्धत्वाद् भूतात्मैवेति पण्डिते रुच्यते । (कुल्लूक भट्ट) । तदन्तर प्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः । (वेदान्त सूत्र ३।१।१) । तदन्तर प्रतिपत्तौ देहान्तर प्रतिपत्तौ देहबीजभूत सूक्ष्मः संपरिष्वक्तोरंहति गच्छतीत्यवगन्तव्यम् ॥ (शांकर भाष्य०) ।

सांख्यशास्त्रानुसार 'भूतात्मा' से लिंगशरीर का ग्रहण होता है । यह लिंगशरीर १८ तत्त्वों द्वारा बनता है—महदादि सूक्ष्मपर्यन्तम् । (सांख्यकारिका) । महद-हङ्कारे कादशेन्द्रिय पञ्चतन्मात्रपर्यन्तम् । एषां समुदायः सूक्ष्म शरीरम् ॥ (सांख्यतत्त्वकोमुदी) । भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मेमनो जवो देहमुपैति देहात् ॥ (च० शा० २ अ०) । इस सूक्ष्म शरीर का आकार व्यवहारिक दृष्टि से ८ अंगुल मात्र स्वीकार किया गया है । ततः सत्यवतः कायात्पाशबद्धं वशङ्गतम् । अङ्गुष्ठ मात्र पुरुषं निश्चकषं बलाद्यमः । (महाभारत) । (अङ्गुष्ठ मात्रः पुरुषोन्तरात्मा सदा जनानां हृदयेसंनिविष्टः) ।

अन्वेक्षम्—(१) तत्काल, अल्पकाल में ही । तत्क्षण मेव न क्षणान्तरे ॥ (डल्हण) ।

इसका सम्बन्ध गर्भोत्पत्ति के समय भूतग्रहण के साथ चरक के निम्न वचनानुसार हो सकता है—

तत्रपूर्वं चेतनाधातुः सत्त्व करणे गुण ग्रहणाय प्रवर्तते । यथा—प्रत्ययात्यये सिमृशुभ्रतान्यक्षर भूतात्मा सत्त्वो वादानः पूर्वतरमाकाशं सृजति, ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातुन् वाधादि कांश्चतुरः, तथा देहग्रहणेपि प्रवर्तमानः पूर्वतर माकाश मेवोपादत्ते, ततः क्रमेण व्यक्ततर गुणान् धातुन् वाव्यादि कांश्चतुरः सर्वमपि तु खल्वे तद्गुणो पादानमणुना कालेन भवति । (चरक शा० ४ अ०) ।

(२) हाराणचन्द्र षष्ठसे इन्द्रिय ग्रहण करते हैं—अन्वक्ष मित्यतनुः सहार्थे कर्मप्रवचनीयः, अक्षैरिन्द्रियैः सहेत्यर्थः ॥ भावः—सांख्यशास्त्रानुसार सत्त्व, रज, तम गुणों के कारण बुद्धि में जो विविध स्थित्यन्तर होते हैं, उनको भाव कहते हैं और सत्त्वादि के न्यूनाधिक प्रमाणानुसार इन भावों की संख्या भी अनेक होती है ।

उक्त भाव पुष्प में सुवास तथा वस्त्र में लगे रंग के समान लिङ्गशरीर में रहते हैं और इन भावों के अनुसार—देव मनुष्य वा तिर्यग् (पशु योनि) योनि में जीव भ्रमण करता है—संसरति निरूपयोगं भावैरधिवासितलिङ्गम् । (सांख्य कारिका) । इस कारिका के वचन पर वाचस्पति मिश्र का लेख है—धर्माधर्मज्ञान वैराग्या वैराग्यैश्चर्यानैरवर्थाणि भावाः, तदन्विता वृद्धिः, तदन्वितं च सूक्ष्मं शरीरमिति तदपि भावैरधिवासितम् । यथा सुरभि चम्पक कुसुम सम्पर्काद्वस्त्रं तदामोहवासितं भवति । तस्माद्भावैरधिवासितत्वात्संसरति ॥ (सांख्यतत्त्वकौमुदी) ।

इसके अतिरिक्त—कलस, बुद्बुदादि गर्भकी अवस्था जो बाल्य यौवनादि स्थिति के अन्तर उपस्थित होते हैं, वे भी 'भाव' ही कहे जाते हैं; परन्तु वे शारीरिक हैं । इस प्रकार शारीरिक और बौद्धिक दो प्रकार के भाव होते हैं—दृष्टाः करणाश्रयिणः, कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः ॥ (सांख्य कारिका) । इस प्रसंग पर बौद्धिक भावों से सम्बन्ध है । कारण यह है कि वे नित्य हैं और आत्मा के साथ एक देह से अन्य देह में जाते हैं और इन्हीं कारणों से जीव उच्च-नीच योनि में जन्म ग्रहण करता है । शारीरिक भाव प्रत्येक जन्म के विभिन्न होते हैं और मृत्यु के साथ नष्ट हो जाते हैं । 'सत्त्वरजस्तमोभिर्देवा सुरैरपरैश्च भावैः'—सत्त्व के कारण देवासुर भाव—४ प्रकार के उत्पन्न होते हैं—(१) धर्म, (२) ज्ञान, (३) वैराग्य, और (४) ऐश्वर्य । उक्त भावों के कारण जीव-ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस तथा पैशाच आसुर योनि में जन्म ग्रहण करता है । तमोगुण के कारण जीव अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य उक्त ४ तैर्यग्भाव के योनि में जन्म ग्रहण करता है । अर्थात् पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप एवं स्थावर तैर्यग्योनियों

में जन्म लेता है । और रजो-तमोगुण के मिश्रण से धर्माधर्मादि अष्टविध दैवासुर और पाशव (अपर भाव) उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण जीव मनुष्ययोनि में जन्म ग्रहण करता है—बुद्धिधर्मो ज्ञानं विरागमैश्वर्यम् । सात्त्विक मेतद्रूपं तामस मस्माद्विपर्यस्तम् । अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योन्यश्च पञ्चधा भवति । मानुषकश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः । ऊर्ध्वं सत्त्वं विशालस्तमो विशालश्च मूलतः सर्गः । मध्यैरजो विशालो ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्तः ॥ (सांख्यकारिका) ।

मनुष्य योनि में सत्त्व-रज-तम तीनों गुण उपस्थित रहते हैं । प्रायः मनुष्ययोनि में रजोगुण की प्रधानता होती तथा दैविक तथा पाशविक भाव भी होते हैं और सुख तथा दुःख भी रहता है । यह कार्य धर्माधर्मादि अष्टविध भावों से होता है । अतः अष्टविध भावों को प्रदर्शित करने के लिए—'सत्त्वरजस्तमोभिर्देवासुरैरपरैश्च' यह शब्द प्रयोग किया गया है ।

सांख्यशास्त्रानुसार जीव उक्त भावों से अधिवासित होने के कारण बार-बार जन्म ग्रहण करता है । वेदान्तशास्त्रानुसार जीव प्राप्त कर्मों (दैवसंग) से अधिवासित होने के कारण बार-बार जन्म लेता है अर्थात् 'भाव' और 'कर्म' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । सुश्रुतसंहिता में सांख्य और वेदान्त दोनों का पर्याप्त परिचय प्राप्त है । अतः जीव के जन्मग्रहण के कारणप्रदर्शनार्थ यहाँ उभयशास्त्रों के शब्द (दैवसंग और भाव) प्रयुक्त किए गए हैं ।

डल्हणाचार्य भाव से मन समझते हैं और देवासुरादि भावों का सम्बन्ध सुश्रुत के चतुर्थ अध्याय में सात्त्विक, राजस और तामस-काय के जो भेद वर्णन किए हैं, उन्हीं के साथ करते हैं—पुनः किंविशिष्टः ।

देवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुना प्रेर्यमाणः भावःसत्त्वंमन इत्यर्थः, तेन देवादीनां सप्तानांसप्तभिः, सात्त्विकैर्भावैः असुरादीनां षण्णामषडभिः राजसैर्भावैः, पश्वादीनां अपरैश्च त्रिभिस्तामसैर्भावैः । सत्त्वस्यचमनः पर्यायस्य प्रेरकत्वं तन्त्रान्तरे प्रतिपादितम् तदुक्तं चरके 'अस्तिखलु सत्त्वमुपपादिकं यज्जीवस्पृक्शरीरेणाभि संबध्नाति' इति । इस प्रकार से यदि भाव का अर्थ मन समझा जाय तो ये मन के भेद दैवसंग (पूर्वकर्मकृत) करण ही होते हैं—मनसो मनस्त इति ।

पूर्वजन्म व्यवहिते यादृङ्मनः इह जन्मन्यपि तादृगेव मनो भवति । उक्तं चान्यत्र—

'जन्म जन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।

तेनैवाभ्यास योगेन तदेवाभ्यस्ते पुनः ॥' इति ॥

अत्रापिच मनोउत्पत्तौकर्माम्भोजानामिति बोध्यम् ।

तेन कर्म वशादेव मनो भेदो भवति ॥ (चक्रपाणिदत्त, चरक शा० २।३६) । वायुना—मैथुन के समय प्रहर्षण

से उद्दीप्त वायु पुरुष के शुक्र को फेंकती है, उसी वायु से प्रेरित हुआ—गर्भाशय मनु प्रविश्याव तिष्ठते—गर्भाशयमनु प्रविश्य लोहितरेतसो सन्निपातेष्ववतिष्ठते ॥ सु० सू० १७ अ० १। शा० स्थान ॥

जीव किसके द्वारा गर्भाशय में प्रवेश करता है? यद्यपि गर्मात्पत्ति के लिए आत्मा की आवश्यकता होती है, तथापि केवल आत्मा स्वयं—शुद्ध, बुद्ध, निष्क्रिय, ज्ञानी होने के कारण उसको जन्म ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं होती; किन्तु जब वह वासनाधिष्ठित होता है तब उसको जन्म-मरण के चक्कर में आना पड़ता है। और यह आत्मा—बुद्धि, अहंकार, मन, १० इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रा के साथ भ्रमण करता है—अतीन्द्रियैस्तेरति सूक्ष्मरूपैरात्मा कदाचिन्न वियुक्त रूपः। न कर्मणा नैगमनो-सतिभ्यां न चाप्यहङ्कार दोषैः” ॥ (चरक)। इस समूह को 'लिङ्ग शरीर', 'अतिवाहिक शरीर', वा संक्षेप में 'जीव' कहते हैं। स्त्री-पुरुष के संयोग काल में शुक्रशोणित के संयोग में मिलनेवाली यही तृतीय वस्तु है जिसके संयोग न होने से गर्भ की उत्पत्ति नहीं होती।

यद्यपि शुक्ररजसी कारणे, तथापि यदैवातिवाहिकं सूक्ष्मभूतरूप शरीरं प्रप्नुतः, तदैव ते शरीरं जनयतः, नान्यथा। यदि शुक्रशोणितमातिवाहिक शरीर निरपेक्ष-गर्भं जनयेत्, तदाऽस्त्यपि जीवाधिष्ठाने जनयेत्, न तु जनयति, तस्मादात्मस्थ सूक्ष्म भूतादेव बीजरूपाच्छुक्र-शोणित युक्ताद्गर्भं जन्मेति। (चक्रपाणिदत्त मिश्र)। 'शुक्रशोणित गर्भाशयस्थमात्म प्रकृति विकार संमूर्च्छितं—'गर्भ' इत्युच्यते'। (सुश्रुत)। यह जीव अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण गर्भाशय में प्रविष्ट होते समय दिखाई नहीं देता—तेजो यथाकर्कशीनां स्फटिकेन तिरस्कृतम् नेन्धनं दृश्यते गच्छत्सत्त्वो गर्भाशयं तथा ॥ (अष्टांग हृदय)। किन्तु दिव्यदृष्टि से इसका भी दर्शन हो सकता है।—'कर्मात्मकत्वाच्चतु तस्य दृश्यं दिव्यं विना। दर्शन मन्तिरूपम्'। (चरक)। यह जीव शुक्र के समान प्रहर्ष-णोदीरित वायु द्वारा प्रेरित होकर स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट होता है और इसी जीव से युक्त शुक्र-शोणित भौतिक दृष्टि से भी अपत्यजनक होता है और उक्त हेतु से 'आत्मापुत्रः, आत्मजः, 'अङ्गादङ्गावसंभवति, हृदयाभिजायसे। आत्मावै पुत्रनामासि सजीव शरदा-शतम् ॥' इत्यादि वाक्य कहे जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि जीव पुरुष के बीर्य में अणुरूप से अधिष्ठित होकर उसी के साथ गर्भाशय में प्रवेश पाता है। चरक संहिता में भी पुरुष के बीर्य का वर्णन भी इसी प्रकार से प्राप्त है—'तथा सहृदया भूतया यदापुमान व्यापन्न बीजो मिश्रीभावं गच्छति, तदातस्य हर्षोदीरितः परः शरीरधा-त्वात्माशुक्र भोतोऽङ्गादङ्गाव संभवति, स तथा हर्षभूते-नात्म-

नोदीरित इवाधिष्ठितश्च बीज रूपो धातुः पुरुष शरीरा दभिनिष्पत्योचितेन यथा गर्भाशयमनु प्रविश्यातवेनाभि-संसर्गमेलि। (च. शा. ४ अ०)। इस स्थल पर 'अधिष्ठितश्च' से 'जीवाधिष्ठितश्च' ऐसा भाव समझना उचित है।

योगवाशिष्ठ (३।५५) में भी जीव रेत (वीर्य) में अधिष्ठित होकर एक देह से अन्य देह में प्रवेश करता है, ऐसा स्पष्ट है—

तस्मिन् देहेश्वीभूते वाते चानिलतांगते।

चेतनं वासनायुक्तं स्वात्मतत्त्वेऽवतिष्ठति ॥

'जीव' इत्युच्यते तस्य नामाणोवांसनावतः।

इतोऽयमहमादिष्ठः स्व कर्म कल भोजने ॥

गच्छाम्याशु शुभं स्वर्गमितो नरकमेव च।

तत्र चारु फलं भुक्त्वा प्रविश्य हृदयं नृणाम्।

रेतसामधिष्ठन्ति गर्भं जातिक्रमोचिते ॥

उक्त वाक्य से स्पष्ट होता है कि जीव शुक्र में उपस्थित रहता है और शुक्र के साथ पुरुष के शरीर से वायु द्वारा बहिर्गत होता है और पुनः शुक्र के साथ गर्भाशय में प्रवेश करता है।

जीव क्या है? वेदान्तशास्त्रानुसार जीव की कल्पना अति उच्च प्रकार की है; परन्तु इतनी उच्च कल्पना की आवश्यकता आयुर्वेदशास्त्र में वाञ्छित नहीं। वैद्यकशास्त्र में 'जीव' से किसी सिद्ध अर्थ का अत्यावश्यक विषय प्रतीत नहीं होता, जिसकी व्याख्या यहाँ की जाय। यद्यपि यहाँ उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है और इसी दृष्टि से इस अर्थ की ओर देखना उचित है। जीव अत्यन्त सूक्ष्म अणु स्वरूप, चर्मचक्षु द्वारा अदृश्य है; किन्तु दिव्यचक्षु द्वारा दृश्य वीर्य में प्राप्त, वीर्य के साथ बहिर्गत होनेवाला पदार्थ है, जिसकी उपस्थिति से गर्भ स्थिर होकर वधित होता है और उसके अभाव से गर्भ स्थिर नहीं होता। संक्षेप में यह वीर्य का बीज है। योगवाशिष्ठ, ३।५५ में जीव को ही मनुष्य का बीज स्वीकार किया गया है—

संयुप्त करुणस्त्वेवं बीजतां पात्यसौ (जीवः) नरे।

तद्वीजं योनि गलितं गर्भोभवति मातरि ॥

आशपाश शतावद्धा वासना भाव धारिणः।

कायात्कायमुपायान्ति वक्षादवृक्षमिवाण्डजा ॥

उक्त प्रमाण से यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेदशास्त्र में शुक्रगत गर्भोत्पादक बीज को—'जीव' कह सकते हैं। आधुनिक शारीरकार्यविज्ञान के अनुसार शुक्रगत गर्भोत्पादक बीजाणु को शुक्रमण्डूक अर्थात् स्पर्मेटोझुआ (Spermatozoa) कहते हैं। इसी का निर्देश शुक्राणु करके पीछे किया गया है। यह शुक्राणु जीव के समान अतिसूक्ष्म, अणुस्वरूप, चञ्चल, चर्मचक्षु

से अदृश्य, परन्तु दिव्यचक्षु अर्थात् सूक्ष्मदर्शकयंत्र (Microscope) द्वारा दृश्य, वीर्य में मिलनेवाला, वीर्य के साथ वायु के वेग से बाहर आनेवाला, जिसकी उपस्थिति पर शुक्र की गर्भोत्पादक शक्ति होती है, तथा जिसकी अन उपस्थिति से वीर्य की गर्भोत्पादक शक्ति जाती रहती है; ऐसा पदार्थ है। दे० 'प्रथम मास में गर्भ का स्वरूप'।

रज (आर्तव)—यह एक प्रकार का गर्भाशयिक रक्तस्राव है जो प्रत्येक मास में स्त्री की १२ वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर प्रकृतिरूप से होता रहता है। यह स्राव जब तक प्रजोत्पत्ति करने की शक्ति स्त्री में उपस्थित रहती है, तब तक नियत समय पर होता रहता है। आयुर्वेद के अनुसार यह आर्तव धमनियों के द्वारा प्रतिमास में इकट्ठा होकर अपानवायु के वेग से योनिमार्ग के मुख की ओर जाकर उत्सर्जित होता है और वह किञ्चित् कृष्ण-वर्ण का तथा विगन्धी होता है—

मासे नोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम् ।

ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायु योनिमुखं नयेत् ॥

(सु० शा० ३ अ०, श्लो० १०) ।

वक्तव्य—

शीत प्रधान देशों की स्त्रियाँ प्रायः १४ वर्ष की अवस्था में ऋतुमती होती हैं।

१ रजोदर्शन

शुद्ध आर्तव के लक्षण—विशुद्ध आर्तव का रक्त रक्तगुंजा तथा रक्तपद्मपुष्प, अलक्त (महावर) तथा इन्द्रगोप (बीरबहूटी) के रंग के समान होता है और प्रत्येक मास में नियत समय पर स्त्री ऋतुमती होती है और ऋतुकाल में दाह तथा पीड़ा का अभाव होता है और अधिक भी नहीं होता और पाँच-रात्रिपर्यन्त होकर पुनः बंद हो जाता है—

मासान्निष्पन्न दाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धी च ।

नैवाति बहुनह्यल्प मार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥

गुञ्जाफल समानं च पद्मालवतसन्निभम् ।

इन्द्रगोपशङ्काश मार्तवं शुद्धमेव तत् ॥

(चरक) ।

ऋतुमती स्त्री के चिह्न—जब स्त्री की अवस्था गर्भधारण के योग्य हो जाती है अर्थात् उसकी बाला अवस्था समाप्त होकर १६ वर्ष की अवस्था हो जाती है, तब ऐसी ऋतुमती स्त्री का मुख पुष्ट और प्रसन्न प्रतीत होता है; शरीर, मुख तथा दाँत क्लेदयुक्त हो जाते हैं; उसको पुरुषसमागम की स्वतः इच्छा उत्पन्न होती है; प्रिय कथाओं के सुनने में अभिरुचि होती है। उसकी कुक्षि, नेत्र तथा केशों में शिथिलता होती है। स्त्री की भुजाएँ, स्तन, श्रोणि, नाभि, ऊरु (जंघा)

तथा नितम्बों में स्फुरण होता है और पुरुषसमागम में हर्ष तथा उत्सुकता होती है। यथा—

पीन प्रसन्न वदनां प्रक्लिन्नात्म मुखद्विजाम् ।

नरकामां प्रिय कथा त्वस्त कुक्ष्यक्षिर्धृजोऽम् ॥

स्फुरद्भुज कुच श्रोणि नाभ्यूरुजवनस्फिचम् ।

हर्षोत्सुक्यपरां चापि विद्यादृतुमतीमिति ॥

(सु० शा० ३ अ०, श्लो० ७, ८) ।

ऋतुकाल की मर्यादा—आयुर्वेद के अनुसार जिसमें दृष्ट आर्तव (आर्तव दर्शन) होता है, ऐसा ऋतुकाल १२ दिनों का होता है। कतिपय आचार्य कहते हैं कि आर्तवस्राव न होनेवाली भी ऋतुमती है—

'ऋतुस्तुद्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तवः, अदृष्टार्तवाऽप्यस्तीत्येके भाषन्ते' । (सु० शा० ३ अ०, सू० ६) ।

वक्तव्य—ऋतु—ऋतुकाल। (रजोदर्शन) का वह समय जिसमें गर्भाशय का मुख विस्तृत रहता है और गर्भधारण के योग्य होता है। यद्यपि गर्भ की धारणा स्त्री में बीजोत्सर्ग के ऊपर निर्भर होती है न कि केवल आर्तवस्राव पर। ऋतुकाल में बीज-कोष के द्वारा पक्वबीज का उत्सर्ग होता है। अतः ऋतुकाल गर्भधारण के निमित्त उपयुक्त काल होता है। ऋतुकाल को डॉक्टरों में ऑव्यूलूशन टाइम (Ovulation time) कहते हैं। आयुर्वेद में गर्भोत्पत्ति की तुलना अङ्कुरोत्पत्ति के साथ की गई है। अतः अङ्कुरोत्पत्ति के निमित्त अनुकूल काल की आवश्यकता होती है, वैसे गर्भोत्पत्ति के निमित्त भी अनुकूल काल की आवश्यकता होती है।

ध्रुवं चतुर्णां सानिध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ।

ऋतुक्षेत्राम्बुज बीजानां सामग्र्यादङ्कुरो यथा ॥

(सु० शा० २ अ०, श्लो० ३४) । ११ दिन ऋतुकाल की अवधि के स्थान में स्मृतिग्रन्थ में ऋतुकाल की अवधि १६ दिन की कथित है—

ऋतु कालं तु षोडशरात्रं यावत्, यदुक्तं हारीते—'षोडश दिवसा ऋतुकालः' इति (चक्रपाणिदत्त, शरीर २) । तदुक्तं हारीते—'षोडश दिवसा नमृतुकालः' इति । विदेहेऽप्युक्तम्—'स्त्रीणामृतुर्भवति षोडशवासराणि' इति । (प्रदर निदान, मधुकोष व्याख्या) ।

'अतिस्राव दिवसादृतु षोडशरात्रयः ।

गर्भं ग्रहण योग्यस्तु स एव समयः स्मृतः' ॥

(भावप्रकाश) ।

'ऋतु स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृता' ।

(मनुस्मृति ३। ४६) ।

'षोडशतुंनिशाः स्त्रीणां' । (याज्ञवल्क्यस्मृति, १। ७९) ।

ऋतुकाल के पश्चात् गर्भाधान की संभावना—यद्यपि ऋतुकाल में समागम करने से गर्भाधान की अधिक से अधिक सम्भावना होती है, तथापि ऋतुकाल के पूर्व वा

पुरुषसमागम के पश्चात् भी स्वभावतः रज की निवृत्ति हो जाती है।

गर्भधारण से रजस्राव बंद होने तथा अवस्थाजन्य रजोनिवृत्ति के अन्तर—

गर्भाधान होने से जो रजोदर्शन बंद हो तो गर्भ रहने के जो चिह्न होते हैं, वे क्रमशः प्रकट होने लगते हैं, जिनका कथन आगे किया गया है। और जो आयु के आधीन प्रकृतिरूप से स्वतः बंद हो तो उसमें गर्भ स्थिर होने के पश्चात् जो-जो चिह्न होते हैं, वे एक भी नहीं होते। प्रकृति के नियमानुसार जब बंद होता है तब नियत समय को त्यक्तकर अनियत समय पर रजोदर्शन होने लगता है और एक-दो मास वा वर्ष पर्यन्त ऐसी स्थिति ग्रहण कर लेता है कि किसी समय के रजोदर्शन में अधिक प्रमाण में रक्त प्रवाह होता है और ८, ९, १० दिवसपर्यन्त ठहरता है तथा अत्यार्तव के चिह्न प्रतीत होते हैं। इसके विरुद्ध किसी समय अत्यल्प रक्तस्राव होता है और नियतकाल की अवधि को उलंघन कर अनियत काल में आता है। जब पूर्णतः बंद होनेके समीप आ जाता है तब दर्शनमात्र ही रक्त का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी किसी-किसी स्त्री को २-३ मास चढ़कर आने लगता है। जिन स्त्रियों को बंद होने की अवधि के समीप अधिक रक्तस्राव होता है, उनको अधिक कष्ट सहन करना पड़ता है। अधिक रक्त-प्रवाह होने से मूर्ख स्त्रियाँ, धानियाँ कहती हैं कि इसकी शरीर की उष्मा अधिक हो गई है। कभी मूर्खचिकित्सक भी इसी पक्ष का अनुमोदन करने लगते हैं और शीतोपचार से शांत करने का मिथ्या प्रयत्न करने लगते हैं। इस व्यतिक्रम से स्त्री की कटिप्रदेश में पीड़ा होने लगती है। इस दशा में कतिपय स्त्रियों की नासिका तथा गुदद्वार समीप से रक्तस्राव होते देखा गया है। स्त्री के शरीर पर रक्तवर्ण के चकते भी दिखाई देते हैं। कतिपय स्त्रियों के उदर में वसा की वृद्धि भी हो जाती है जिससे उदर की त्वचा नीचे लटक जाती है और दबाने से स्थूल प्रतीत होती है। कतिपय स्त्रियों का पेट ३६-४० वर्ष की स्त्रियों के समान बड़ौल होकर नीचे लटक जाता है और ऋतुधर्म बंद हो जाता है। कदाचित् इस नियतकाल से पूर्व स्त्री का रजोदर्शन बंद हो जावे तो ऐसी दशा में समझना उचित है कि कोई अन्य ग्रन्थ रोगों की उत्पत्ति से ही बंद हुआ है। इस ग्रन्थ में अनातर्वक के प्रकरण में देखना उचित है।

ऋतु के पश्चात् गर्भाशय की स्थिति—

उदाहरण—जैसे दिन के समाप्त होने पर कमल स्वभावतः निश्चितरूप से संकुचित हो जाता है, वैसे ऋतु के समाप्त होने पर स्त्री की योनि (गर्भाशयमुख) भी निश्चितरूप से संकुचित हो जाती है—

फा—८०

नियतं दिवसेऽतीते सङ्कुच्यत्यम्बुजं यथा ।

ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनि संन्रियते ॥

(सु० शा० ३ अ० श्लो० ९) ।

वक्तव्य—तात्पर्य यह है कि ऋतुकाल में गर्भाशय का मुख प्रफुल्लित रहता है, जिससे उस काल में योनि में गिरा हुआ शुक्र गर्भाशय में जाकर गर्भधारणा होती है। ऋतुकाल के पश्चात् गर्भाशयमुख स्वभावतः संकुचित हो जाता है, जिससे उस समय योनि में गिरा हुआ शुक्र कठिना से भीतर जा सकता है और अतः प्रायः ऋतुकाल समाप्त होने पर संभवतः गर्भ की धारणा नहीं होती—

पद्मं संकोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा ।

ऋतावतीते योनिः सा शुक्रं नातः प्रतीच्छति ॥

(अष्टांगहृदय) ।

आयुर्वेद के अनुसार यह नियम सर्वकाल के लिए निरपवाद नहीं है; क्योंकि 'शुद्ध योनि गर्भाशया तवाया मासमपि केचित्' इस प्रमाण से मास भर भी गर्भ धारणा हो सकती है—'मासेनोपचितं रक्तम्'। (अष्टांग हृदय टी० अरुणदत्त । (शा० १ । २३) । इस श्लोक की टीका लिखते हैं कि—

'विवृता विवृत मुखत्वं हि योनि गर्भं ग्रहणाग्रहणहेतु स्तच्च वायोः क्रियावतः कालसहायस्यायतम्। मासेनोप चितं रक्तमृतौ वायुर्योनिमुखाद्भुदेव प्रेरयेत। तदा योनि मुखं विवृतं संपद्यते ।'

आशय यह है कि आर्तवस्राव के दिनों में गर्भाशय का मुख विवृत (प्रफुल्लित) हो जाता है जिससे सफलता पूर्वक गर्भाशय में शुक्र का प्रवेश होता है और संभवतः गर्भ की स्थापना होती है। पाश्चात्य चिकित्सक भी इसका अनुमोदन करते हैं—

During menstruation there is a slight spontaneous dilatation of the cervical canal, attaining its maximum on the third and fourth days. (Human quoted in Bland sutton and Giles. Diseases of Women).

यह विवृति क्रमशः न्यून होती जाती है और दूसरे आर्तव-स्राव के पूर्व गर्भाशय का मार्ग संकोच के कारण संकीर्ण हो जाता है। पाश्चात्य डॉक्टर भी इस बात से सहमत हैं कि मास के अन्तिम दिनों में गर्भाशय का मार्ग शुक्रप्रवेश में विघ्न उपस्थित करता है—

In cases where very great obstacles have to be overcome that is, in connection, near the time of menstruation. (Ideal Birth)

स्त्री की कुक्षि में पुत्र तथा कन्या का परिज्ञान—पुत्र-गर्भवती स्त्री के द्वितीय मास में पिण्डवत् (गोल)

प्रतीत होता है और उसका दक्षिण नेत्र किञ्चित् बड़ा प्रतीत होता है। सर्वप्रथम उसके दक्षिण स्तन में दुग्ध का आगमन होता है। वाम जंघा की अपेक्षया दक्षिण जांघ पुष्ट होती है। स्त्री का मुख प्रसन्न प्रतीत होता है और वर्ण भी श्रेष्ठ होती है। स्वप्न में पुरुषसंज्ञक द्रव्यों की इच्छा होती है तथा आम्रादि फलों की तथा कमलादि पुष्पों का दर्शन एवं प्राप्ति होती है।

कन्यागर्भवती स्त्री के गर्भ में द्वितीय मास में मांस की पेशी (लम्बी दीर्घाकार मांस की बोटी) प्रतीत होती है और अन्य लक्षण पुत्रगर्भवती स्त्री से विपरोत लक्षण प्रतीत होते हैं।

पुत्र गर्भ युतायास्तु नाय्या मासि द्वितीयके।

गर्भो गर्भाशये लब्धः पिण्डाकारो अपरंशुः॥

दक्षिणाक्षि महत्वं स्यात्प्राक्सीरं दक्षिणेस्तने।

दक्षिणोष्ठः सुपुष्टः स्यात्प्रसन्न मुख वर्णता॥

पुत्रास्य धेयद्रव्येषु स्वप्ने प्वपि मनोऽर्थः।

आम्रादि फलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च।

कन्या गर्भवती गर्भे पेशी मासि द्वितीयके।

पुत्रगर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चक्षते॥

(भा० पू० गर्भ० प्र०)।

गर्भिणी के लक्षण—

पाश्चात्य मतानुसार गर्भधारण के चिन्ह—(१) रजो-दर्शन का बंद होना, (२) उत्क्लेश तथा वमन होना, (३) मुख से थूक वा लाला का निकलना, (४) स्तनों की वृद्धि होना और स्पर्श करने से पीड़ा प्रतीत होना, (५) स्तनाग्र भागों पर श्यामता आना, (६) स्तनों में दुग्ध की उत्पत्ति, (७) भावाभाव, (८) उदर में बालक का फड़कना, (९) कुक्षि की वृद्धि होना, (१०) नाभि के गड्ढे का ऊपर को उठना, (११) उदर के ऊपर सिराओं का उठ जाना, (१२) हित भोजन से भी अरुचि, (१३) मूत्र का बार-बार उत्सर्ग होना; (१४) किसी समय शरीर का रूप प्रफुल्लित दिखाई देना, किसी समय शरीर दुर्बल होना और मुखमण्डल कुम्हलाया होना, उक्त लक्षण साधारणतः समस्त स्त्रियों में उपस्थित होते हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय स्त्रियों में उनकी प्रकृति के अनुरूप चिह्न होते हैं; यथा—किसी के दाढ़ में पीड़ा होती है, किसी की आखें उठ आती हैं, किसी के पाद तथा सांथलों में शोथ उत्पन्न हो जाता है, किसी के शिर के केश गिरने लगते हैं, किसी के शरीर का कोई भाग वायु से पीड़ित हो जाता है, किसी के शरीर में खुजली होती है; किसी को सुगन्ध से द्वेष होता है, किसी को ताम्बूल खाने की इच्छा में भी अरुचि हो जाती है, इत्यादिलक्षण प्रत्येक स्त्री की प्रकृति के अनुसार अपवाद रूपसे प्रदर्शित होते हैं।

वमन (उल्टी) तथा उत्क्लेश (मिचली) दोनों गर्भाधान के एक सामान्य चिह्न हैं।

गर्भाधानयुक्त स्त्री का प्रातःकाल उठते ही जी मिचलाता है, और मुख से थूक व लार बहती हुई उल्टी आने लगती है। किसी को गर्भधारण करने के १ मास के भीतर और किसी को द्वितीय व तृतीय मास में उल्टी होने लगती है। विशेषतः अधिक स्त्रियों को गर्भस्थिर होने के ४-६ सप्ताह के पश्चात् ही इस प्रकार का उपद्रव होने लगता है और चौथे व पाँचवें मास पर्यन्त रहता है। कतिपय स्त्रियों को शीघ्र आराम होकर अधिक समय पर्यन्त रहता है। किसी-किसी स्त्री को विशेष उग्र रूप से उल्टी होती है। कितने ही दिवस पर्यन्त पेट में आहार पूर्णतः स्थिर नहीं रहता और ऐसी दशा में कभी गर्भ-पात भी हो जाता है। क्षुधा किसी समय अधिक लगती है और किसी समय भोजन से घृणा होती है। कितने समय अभक्ष पदार्थों को खाने की इच्छा होती है। ऐसे समय के स्वभाविक वमन को चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती, कारण यह है कि २, ३, ४ मास पर्यन्त यह दशा रह कर स्वतः स्वभावतः बंद हो जाता है। यदि स्त्री अधिक वमन होने से क्लेशान्वित हो तो ऐसी अवस्था में कुछ मृदु उपाय से शांत करने का प्रयत्न किया जाता है। कभी ऐसी दशा भी उपस्थित होती है कि किसी उपाय से भी वमन बंद नहीं होता। गर्भिणी स्त्री के समान यदि अन्य व्याधिन्य वमन हो तो रोगी मरणासन्न हो जाता है वा वमन होने के पश्चात् रोग का वेग शान्त हो जाता है; किन्तु गर्भिणी को वमन का क्लेश सह्य हो जाता है। जिन स्त्रियों को गर्भवती होने पर उल्टी अधिक क्लेशप्रद होती है, उनको प्रसवकाल में अल्पव्यथा होती है। स्मरण रहे कि वमन होने ही से गर्भ स्थिर होने का निश्चय नहीं होता। कारण यह कि उपर्युक्त कथित अन्य रोगजन्य भी वमन होता है। किन्तु उल्टी के साथ अन्य उपर्युक्त चिह्न हों तो गर्भ की स्थिरता समझना उचित है। तात्पर्य यह है कि रजोदर्शन बंद होने के साथ अन्य लक्षण भी उपस्थित हों तो उस समय निश्चय गर्भाधान हुआ समझा जाता है। जिन स्त्रियों को एक बार गर्भ रहा हो और गर्भ सम्बन्धी जो-जो उपद्रव हुए हों उनको वह पूर्णतः दूसरे बार के गर्भ-स्थापना का निर्णय कर सकती है कि उक्त उपद्रव प्रथम के गर्भस्थापना के समय हो चुके हैं। किसी-किसी स्त्री को गर्भ रहने के पश्चात् उष्ण जल के समान अनेक बार मूत्रोत्सर्ग की इच्छा होती है किसी को अतिसारवत् कति-पय बार मलत्याग करना पड़ता है। परन्तु इस दशा में प्रायः कोष्ठबद्धता अधिकाधिक देखने में आती है। कतिपय स्त्रियों की प्रकृति में प्रायः परिवर्तन हो जाता

है—किसी का चिह्नचिह्न स्वभाव हो जाता है, हित की बात भी बुरी प्रतीत होती है, किसी का स्वभाव चिन्ता, उदासीनतायुक्त हो जाता है, किसी का स्वभाव योगी के समान शान्त हो जाता है।

निश्चित परीक्षा—कितने ही समय के निश्चित परीक्षा से यह ज्ञात हुआ है कि गर्भाधानवाली स्त्री का मूत्र यदि किसी काँच के पात्र में २-३ दिन पर्यन्त रख लिया जाय तो चौथे दिन देखने पर उसमें कीस्टीन नाम का एक जाति का पदार्थ क्षारतुल्य बंध जाता है। इसको शरीरविज्ञान के विद्वान् गर्भाधान का पूर्णरूप से भ्रम विरहित चिह्न समझते हैं। क्षारतुल्य यह पदार्थ चरबी के समान होता है। गर्भ रहने के पश्चात् यह चिह्न प्रदर्शित होता है कि स्त्री के मुख से लालास्राव होने लगता है, जिस प्रकार फिरंगरोग से पीड़ित व्यक्ति के मुख से पारद-भिलावा के उपयोग से लालास्राव होता है। यह चिह्न कतिपय स्त्रियों को कुछ दिनों तक रहकर स्वतः बंद हो जाता है और कतिपय स्त्रियों को अधिक समय तक रहता है। किसी स्त्री को ऐसा होता है कि ५-७ दिवस पर्यन्त मिचली होती है और प्रतिदिन वमन होता है और पुनः स्वतः बंद हो जाता है। बंद होने से मुख में थूक अधिक आने लगता है और जब थूक का आना बंद हो जाता है तो पुनः उत्कलेश और वमन होने लगता है। वमन बंद होने पर लालास्राव होने लगता है। दिन भर स्त्री थूका करती है और थूक से परेशान रहती है। उपर्युक्त चिह्नों की दशा में मुख की परीक्षा की जाय तो मुख में किसी प्रकार का शोथ, छाला इत्यादि नहीं होता। मसूढ़ों में भी कोई विकृति नहीं पायी जाती, आरोग्यावस्था के समान ही दीख पड़ते हैं। जिह्वा तथा तालु में भी किसी प्रकार की विकृति नहीं होती। यह भी गर्भ स्थिर होने का निश्चित चिह्न है।

सद्योग्रहीतगर्भा स्त्री के लक्षण—श्रम, ग्लानि, पिपासा, सांथलों में थकावट, शुक्र और आर्तव का निरोध तथा योनि में स्फुरण होता है—श्रमोग्लानिः पिपासा सक्थि-सदनं शुक्रशोणित योरवबन्धः स्फुरणं च योनेः ॥ (सु० शा० ३ अ०, सू० १३)।

वक्तव्य—उपर्युक्त लक्षणों का ज्ञान अनुभवी स्त्रियों को ही हो सकता है, अन्य परीक्षकों को उन्हीं के वक्तव्यों पर विश्वास करना पड़ता है। इस प्रकार के लक्षणों को परिभाषा में आत्मप्रत्यय (Subjective) कहते हैं। उक्त लक्षणों का ज्ञान प्रथमगर्भास्त्री को होना असम्भव है; किन्तु वह यदि अनेक बार सूक्ष्म विचार से अनुभव करे तो उसको गर्भावस्था की निश्चित सूचना मिल सकती है। वैद्य के लिए उक्त लक्षण निरर्थक हैं। परन्तु जब

अन्य लक्षणों के साथ मिलते हैं तब समर्थन की दृष्टि से इनका उपयोग होता है।

सद्योग्रहीत गर्भा—इसकी अवधि निश्चित करना यद्यपि कठिन है तथापि समागम के पश्चात् २-४ दिन से उसके पश्चात् का मासिकधर्म टलने के समय तक (शोणितयो-रवबन्धः) अर्थात् कम से कम ४ और अधिक से अधिक ६ सप्ताह की अवधि सद्यः से समझनी चाहिए।

अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदय में सुश्रुत के अनुसार गर्भिणी लक्षणों के २ विभाग किए हैं—‘अथ नार्याः सद्योग्रहीत गर्भायाश्च लिङ्गं क्रमेण तु व्यक्त गर्भायाः।’ इससे स्पष्ट है कि प्रथमसमूह अव्यक्तगर्भास्त्री के लक्षणों का है अर्थात् गर्भ के आधान से जब तक गर्भ स्त्री वा पुरुष की दृष्टि से अव्यक्त (अप्रत्यक्ष) रहता है, तब तक का लक्षण है। यह अव्यक्त गर्भावस्था की अवधि ६ सप्ताह की होती है। आयुर्वेद में अव्यक्त और व्यक्तावस्था की काल मर्यादा इस प्रकार वर्णित है—‘व्यक्तिस्तु द्वितीये मासे भवति। यदुक्तम्—‘द्वितीये मासे घनः सम्पद्यते इत्यादि। किंवा तृतीये मासे अंग प्रत्यंगाभि व्यक्तेर्व्यक्ती भावो ज्ञेयः; द्वितीये तु मासे ग्रन्थ्यादिरूपे गर्भं प्रत्यंग व्यक्ती भावो न व्यक्तः। (चक्रपाणिदत्त)। अव्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात् कलली भवेत्। गर्भः, पुंसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्ते प्रयोजयेत्। (अष्टांगहृदय)। सप्ताहादनन्तरं यावकासस्तावद व्यक्ताकृतिः कलली भवेत्। अत्र कलली भूते यावत् स्त्री-पुरुषा द्युत्पत्तिलक्षणं व्यक्तं न भवति तावद् व्यक्तेः प्राक् प्रथमे मासि पुंसवनादि प्रयोजयेत्। (अरुणदत्त)। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह आयुर्वेदोक्त अव्यक्तावस्था की कालमर्यादा पाश्चात्य कालमर्यादा के साथ ठीक मिलती है। तात्पर्य यह है कि ६ सप्ताह पर्यन्त गर्भ की अव्यक्तावस्था रहती है। उक्त प्रारम्भिक है और आर्तव के अतिरिक्त शेष सब अस्थायी स्वरूप के होते हैं। क्वचित् हृदयस्पर्शन अन्त तक होता है।

श्रमोग्लानिः सक्थिसदनम्—शुक्रशोणित का संयोग होने पर स्त्री के शरीर में विद्युत्संयोगजन्य स्तब्धता (shock) के सदृश कुछ स्तब्धता (भारीपन) होती है। इसके अतिरिक्त उस नूतन जीव के पोषण के निमित्त शरीर की कुछ शक्ति व्यय होने लगती है, जिसका परिणाम यह होता है कि आरम्भ में स्त्री के सांथलों में थकावट प्रतीत होती है। इस स्थिति को व्यक्त करने के निमित्त उपर्युक्त ३ शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त चरक तथा अष्टांगसंग्रह के अनुसार—गौरवम्, गरिमा, तन्द्रा, अंग-साद शब्द भी उक्त थकावट को दर्शाने के निमित्त प्रयुक्त हुए हैं।

शुक्रशोणितोरवबन्धः—शुक्र चालं च शुक्लान्ते, तयोरव-

बन्धः अप्रवृत्तिः। शुक्रशोणितयो योनिरस्त्रावोऽयं श्रमोद्भवः। (भाव प्रकाश)।

शुक्रावबन्ध—स्त्री के गर्भाशय से जो एक प्रकार का श्लेष्म (चिपचिपा स्राव) होता है वह स्राव भी गर्भधारणा होने के कारण अवरोध हो जाता है। यहाँ तक कि उसकी अप्रवृत्ति से स्त्री को गर्भाशयमुख में एक प्रकार की रुक्षता प्रतीत होती है।

शोणितावबन्ध—मासिकधर्म का अवरोध (Amenorrhoea) गर्भधारण हो जाने पर होता है। गर्भाधान होने पर बीजकिणपुट (कॉर्पस ल्यूटियम Corpus luteum) का क्षय नहीं होता, वह क्रमशः वर्धित होता है। अतः आर्तव का स्राव बंद हो जाता है। जिन स्त्रियों में मासिकस्राव नियमित रूप से होता है, उनमें यह लक्षण विशेष महत्व का होता है। जिनमें मासिकस्राव वैसे ही अनियमित रहता है तथा जिनमें पाण्डुरोग, हृदयरोग, क्लोरोसिस (chlorosis), कामला, क्षयादि मासिकस्राव में विघ्न उत्पन्न करनेवाले रोग उपस्थित होते हैं, उन स्त्रियों में इस लक्षण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकता।

स्त्री में मासिकस्राव सर्वप्रथम आरम्भ होने के पश्चात् कुछ मास के लिए स्राव अनियमित रूप से होता है और बंद भी हो जाता है। अविवाहित स्त्रियों में समागम के पश्चात् गर्भस्थिति के भय से कभी-कभी मासिकस्राव बंद भी हो जाता है। कतिपय स्त्रियों में रजोनिवृत्ति अल्पायु में ही हो जाती है। अतः शोणितावबन्ध में गर्भस्थिति का निदान करने के समय उक्त समस्त गूढ़ विषयों पर पूर्णतया ध्यान देना चाहिए।

कभी-कभी शोणितावबन्ध नष्टातं दोष से भी हो जाता है। गर्भ की स्थिति हो जाने पर भी कचित् शोणितस्राव की प्रवृत्ति प्रथम ३ मासों में उपस्थित रहती है। अतः इस विषय के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना उचित है। यद्यपि गर्भस्थिति हो जाने पर प्रारम्भिक मासों में मासिकधर्म संभवतः हो भी सकता है; तथापि प्रायः नहीं होता। कभी-कभी जो रक्तस्राव होता है, वह मासिकधर्म का रक्तस्राव नहीं होता। कारण यह है कि वह उसके समय पर नहीं होता तथा उसकी राशि, आवधि और संगठन मासिकस्राव से भिन्न होता है। अतः गर्भधारण के लक्षण प्राप्त होने पर भी यदि गर्भाशय से रक्तस्राव होता हो तो उसको ऋतुस्राव न समझ कर भावी गर्भपात का पूर्व रूप समझना चाहिए और इसी दृष्टि से रोगिणी की परीक्षा कर गर्भाधान से रक्षा करने का प्रयत्न करना उचित है।

स्फुरणच योनिः—जिस प्रकार अकस्मात्—नेत्र, बाहु इत्यादि अंगों में अनैच्छिक स्फुरण कभी-कभी होता है,

उसी प्रकार की गति स्त्री की योनि में पुरुष के शुक्र प्रवेश करने से गर्भस्थापित होने पर भी होती है। इस प्रकार की गति को पाश्चात्य परिभाषा में थ्रोबिंग (Throbbing) और आयुर्वेद में 'स्फुरण' वा 'स्फूर्ति' कहते हैं। 'स्फूर्तिभगेभवेत्'। (भावप्रकाश)। जिस प्रकार शरीर के अन्य स्थानों का स्फुरण किसी आकस्मिक घटना विशेष का सूचक होता है—शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुकुतः फलमिहास्य। अथवा भावितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ (शाकुन्तल)। तद्वत् योनि का स्फुरण भी गर्भाधान रूप घटना का सूचक चिह्न है। कतिपय विद्वान् इस स्फुरण को योनिगत स्पन्दन समझते हैं; परन्तु यह अर्थ मिथ्या है। कारण यह है कि जो स्फुरण वातजन्य अर्थात् वेजाइनल नर्वस पल्सेशन (Vaginal nervous pulsation) जो गर्भाधान के पूर्व वा उस काल में सम्भवतः हो सकता है; किन्तु योनिस्पन्दन योनि की योनि में रक्ताधिक्य के कारण होता है। स्पन्दन अवस्था चतुर्थ मास में होती है और उसी समय यह स्पन्दन योनि में प्रवेश कराने से प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त स्फुरण स्वप्रत्यय है और स्पन्दन परप्रत्यय।

उक्त लक्षणों के अतिरिक्त चरक तथा वाग्भट्टस्वनिर्मित ग्रन्थों में निम्न लक्षण अधिक दिए हैं—

हृदयस्पन्दन—हृदय में धड़कन (पल्पिटेशन—Pulpitations) इसी लक्षण का निर्देश अष्टाङ्गहृदय में—'हृदयव्यथा' के नाम से उल्लिखित है। यह लक्षण प्रारम्भ से अन्त पर्यन्त संभवतः होता है। परन्तु इससे भय की आशंका नहीं होती। कारण यह है कि हृदय की वास्तविक विकृति न होकर प्रारम्भ में हृल्लास-वमनादि पचनसंस्थान की विकृति के कारण मध्य में हृदयवृद्धि और उसकी शीघ्रगति के कारण और अन्त में परिवर्धित गर्भाशय के दबाव के कारण होता है।

सर्गर्भाविस्था में—गर्भाशय, गर्भ, स्तन इत्यादि अंगों की भी वृद्धि होती है। अतः वृद्धि का भार पड़ने से—रक्तभार (Blood Pressure) अर्थात् सिरापूर्णता होने से रक्त का प्रमाण अधिक होने से हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे इसकी गति तीव्र होती है और उसकी आकृति भी बढ़ जाती है। जब हृदय विकार-विरहित होता है तब वह गर्भाविस्था के कार्य को सफलतापूर्वक सहन करता है; किन्तु जब वह पूर्व से ही विकारी होता है वा उसके कपाटों में विकृति (Valvular disease) होती है, तब परिणाम विकृति के न्यूनाधिकता के अनुसार गर्भाविस्था में, प्रसवकाल में वा प्रसवान्त के पश्चात् निष्क्रिय हो जाता है और ऐसी विकृतिका दुष्परिणाम माता की मृत्यु होती है।

तृप्ति प्रहर्ष—गर्भ स्थापित हो जाने पर कामवासना शान्त हो जाती है, तृप्ति तथा मन में संतोष की प्राप्ति होती है—‘प्राप्तगर्भापेक्षया रतानभिलाषता शरीर प्रीणनं वा’। (इन्दु)। गर्भ स्थापना हो जाने पर स्त्री की कामवासना स्वभावतः अत्यल्प हो जाती है—

Sudden waning of the sex urge has been suggested as an early sign of pregnancy. (Riddle of sex).

तात्पर्य यह है कि जो स्त्रियाँ अपत्यार्थी हैं, उनमें उक्त लक्षण घटित होते हैं। इसके विपरीत जो केवल विलासिता के रंग में रंगी होती हैं, उनमें न कभी तृप्ति होती है और न मन में प्रसन्नता ही होती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी उनका मन विगड़ भी जाता है, चिड़चिड़ी, तेजमिजाजी भी हो जाती है। चरक के अनुसार—अरुचि, धुक्धुकी, उत्क्लेश, छर्दि, लालास्राव, अन्न से द्वेष, अम्ल पदार्थ खाने की इच्छा इत्यादि लक्षण होते हैं—

‘निष्ठीविका, हृल्लासः, आस्य संस्त्रवणम्, अनन्नाभिलाषसा, छर्दि, अरोचकः, अम्लकामिता च विशेषेण’। तात्पर्य यह है कि गर्भस्थापित होने पर पचनसंस्थान में उथल-पुथल होने से लालास्राव, मिचली, वमन, क्षुधानाश, अभक्ष्यपदार्थों—मिट्टी इत्यादि खाने की उत्कट इच्छा, सुगंध से घृणा इत्यादि लक्षण होते हैं। आस्यस्रवण (मुख-स्राव), छर्दि, हृल्लास इनको डॉक्टरों में मॉर्निंगसिकनेस (Morning sickness) कहते हैं। यह अवस्था प्रातःकाल उठने पर प्रतीत होती है।

अरोचक, अम्लकामिता—स्वभाविक खाद्य द्रव्यों से अरुचि और मिट्टी, राख, चूना, खटाई, इत्यादि अस्वभाविक पदार्थों के खाने की इच्छा। इस प्रकार के लक्षणों को डॉक्टरों में पाइका (Pica) वा लॉगिंग (Longing) कहते हैं। उक्त लक्षण द्वितीय मास में उत्पन्न होते हैं। कभी शीघ्र तथा कभी २-३ मास पर्यन्त रहते हैं। उक्त लक्षण व्यक्तगर्भा स्त्री में भी होते हैं। उपर्युक्त आयुर्वेद के सूत्र का उल्टा निम्न लेख प्रतीत होता है :

There are two sets of symptoms or signs of pregnancy. One is subjective and the other is of more tangible character. To the first category belongs a certain feeling of tiredness, dizziness, heart palpitation, nausea, and vomiting (Morning Sickness) a Sickening dislike of ordinary foods, and a longing for spices and indigestible ingredients. These symptoms may appear quite early in pregnancy. As a matter of fact they, may

from the first suspicion of having been caught.’ (Riddle of sex).

व्यक्तगर्भा स्त्री के लक्षण—जब गर्भ के व्यक्तलिंग प्रकट होते हैं, तब स्त्री के स्तनों पर श्यामता, शरीर पर रोम राजियों की उत्पत्ति, नेत्रों के पलकों का बन्द होना, अकस्मात् बिना कारण वमन, प्रिय गन्धों से उद्वेग, मुख में लालास्राव तथा थकावट (सदन) प्रतीत होता है; यथा—

स्तनयोः कृष्णमुखता रोम राज्यदगमस्तथा ।

अक्षिपश्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्तेविशेषतः ॥१४॥

अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात् ।

प्रसेकः सदनंचापि गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥१५॥

(सु० शा० ३ अ० श्लो० १४, १५) ।

वक्तव्य—उपर्युक्त श्लोकों में व्यक्तगर्भा स्त्री के अर्थात् द्वितीय मास के अन्त में होनेवाले जैसा प्रथमोक्त १३वें सूत्र के वक्तव्य का प्रारम्भिक में वर्णन किए हैं ।

स्तनयोः कृष्णमुखता—गर्भाधान होने से छठे सप्ताह के पश्चात् स्तनों की ओर अधिक रक्त का संचार होने लगता है और यह रक्त की अधिकता सम्पूर्ण गर्भावस्था में तथा प्रसवपश्चात् शिशु को दुग्धपान के कालपर्यन्त बराबर जारी रहती है—

धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानांस्तन संश्रित ।

तासामेव प्रजातानां गर्भिणीणां च तापुनः ॥

स्वभावादेव विवृता जायन्ते ॥

(निदान, १० अ०) ।

इस रक्ताधिक्य का परिणाम स्तनगत दुग्धग्रन्थियों और नालियों की वृद्धि अर्थात् पर्याय से स्तनों की पुष्टता में होता है—**स्तनौपीनौ**। (अष्टांगहृदय)। **तस्माद्गर्भिण्याः पीनोन्नत पशोधरा भवन्ति** ॥ (शारीर, ४।२३) । रक्त की अधिकता से स्तनाग्र में श्यामता उत्पन्न होती है। प्रसूति के पश्चात् इसी रक्ताधिक्य का परिणाम स्तन्योत्पत्ति में होता है अर्थात् हृदयप्रदेश में स्थित धमनियों के विस्फोट होने से प्रसूति के पश्चात् तीसरे वा चौथे दिन से ही स्त्रियों के स्तन में दुग्ध की उत्पत्ति आरम्भ होती है ।

‘धमनी नां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम्’ ।

चतुरात्रात्रिनात्राद्वा स्त्रीणांस्तन्यं प्रवर्तते ॥

(सु० शा० १० अ०, श्लो० १३) ।

रक्त की वृद्धि तथा पुष्टता के कारण स्तनों में गुदगुदी के समान कुछ प्रमुख संवेदना प्रतीत होती है तथा स्तनों पर सिराओं का जाल स्पष्टरूप से प्रदर्शित होता है। तृतीय मास के अन्त से स्तनों को पीड़न करने से एक प्रकार का सान्द्र द्रव निकलने लगता है और यही द्रव उत्तरोत्तर अधिकाधिक होता है। इसको ‘स्तन्य’ कहते हैं—

स्तनौ सस्तन्यौ । (अष्टांगहृदय) । वास्तव में इस सान्द्र द्रव को पीयूष (पेउछ), खीस, और अंग्रेजी में कोलोस्ट्रम (Colostrum) कहते हैं । कृष्णमुखता—तृतीय मास के प्रारम्भ से चूचुक स्थूल होने लगते हैं, उनके चतुर्दिग् का मण्डल (Areola) उठ जाता है और रक्त की अधिकता के कारण काला पड़ जाता है—‘स्तनमण्डलयोश्च काष्ण्यम्’ (चरक) । स्तनमण्डल कृष्णत्वम् । (काश्यपसंहिता) । चूचुक और मण्डल दोनों मिलकर कपिमुखतुल्य स्तनाग्र श्यामवर्ण के हो जाते हैं, कृष्णमुखता का निर्देश इसीलिए किया गया है । स्तनों के अतिरिक्त स्त्री के शरीर के अन्य अंगों पर भी किञ्चित् श्यामता उत्पन्न हो जाती है । इस श्यामता को आधुनिक परिभाषा में पिग्मेंटेशन (Pigmentation) कहते हैं । यह श्यामता—मुखमण्डल, नेत्रों के नीचे, नासापालि के निकट तथा ओष्ठों पर उत्पन्न हो जाती है—‘ओष्ठयोः स्तनमण्डलयोश्च काष्ण्यम्’ (चरक) । बगल के आस-पास भी किञ्चित् श्यामता उत्पन्न हो जाती है । उदर पर भगास्थि से नाभि तक, क्वचित् कौडीप्रदेश पर्यन्त एक प्रकार की कृष्ण रेखा (Linea nigra) उत्पन्न हो जाती है । स्त्री के जंघाओं में भी कभी-कभी श्यामता आ जाती है । यह श्यामता प्रत्येक स्त्री में एक सा नहीं होती । किसी में अल्प, किसी में अधिक होती है । उदर तथा स्तनों की श्यामता प्रसवपश्चात् पर्यन्त बनी रहती है । इस श्यामता के अतिरिक्त स्तनमण्डल में जो क्षुद्रग्रन्थियाँ होती हैं जिनको पाश्चात्य परिभाषा में माँण्टगोमरीज (montgomery's follicles) कहते हैं, वे भी उभड़ आती हैं । प्रथम गर्भावस्था में स्थूल होने पर सदैव एकसी ही रहती हैं । चूचुकमण्डल की श्यामता गर्भ-वृद्धि के साथ अधिकाधिक हो जाती है और उसमें किञ्चित् चमक भी आ जाता है—‘दिनेषु गच्छत्सु नितान्त पीवरं तदीयमानील मुखंस्तनद्वयम् ॥ (रघुवंश, ३।८) । ५, ६ मास में कभी-कभी स्तनमण्डल के बाहर भी किञ्चित् श्यामता उत्पन्न हो जाती है । यह श्यामता एक-सी नहीं होती, कहीं अधिक, कहीं अल्प होने से छत्राकार (mottled or honeycomb) प्रदर्शित होती है । मण्डल की इस अवस्था को द्वितीयक (Secondary) और चूचुकमण्डल को प्राथमिक अवस्था । (Primary) कहते हैं ।

उपर्युक्त लक्षण गौरवर्ण की स्त्रियों में स्पष्ट प्रतीत होता है; किन्तु कृष्णा स्त्रियों के स्तनमण्डलादि अंग की श्यामता का ज्ञान संभवतः कठिन होता है ।

स्तन और गर्भाशय में घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसमें संदेह नहीं । गर्भाशय में गर्भाधान होने पर स्तनों में उपर्युक्त परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं । उक्त परिवर्तन किस प्रकार

होते हैं, इनके सम्बन्ध में यद्यपि निश्चित ज्ञान नहीं है, तथापि यह स्वीकार किया जा सकता है कि गर्भ की अपरा और बीजकोष (Ovary) के अन्तःस्राव से प्रोजेस्टिन (Progesterin) और ईष्ट्रिन (Oestrin) नामक पदार्थ बनते हैं जो रक्त के द्वारा स्तनों में प्राप्त होकर उपर्युक्त परिवर्तन कराते हैं । अष्टांगसंग्रह के निम्न वचन में तथा सुश्रुत के अध्याय के २३ सूत्र में यही सम्बन्ध पर्याय से कथन किया गया है—‘जरायुशेषं चोर्ध्वमसृक् प्रतिपद्यते । तस्मात्पीन कपोल पयोधरता कृष्णौष्ठ चूचुकत्वंच । उक्त स्तनगत-परिवर्तन गर्भावस्था के निश्चयात्मक लक्षण नहीं हैं; क्योंकि बीजकोष के अर्बुद (ओवरियन ट्यूमर, Ovarian Tumour) रक्तगुल्म (यूटरिन फाइब्रोइड, Uterine fibroids) और मिथ्या गर्भावस्था (स्युडोसाइसिस, Pseudocyesis) में भी पाए जाते हैं—

स्तन मण्डल कृष्णत्वं रोमराजिः सदोहृदा ।

गर्भिणी रूपमव्यक्तं भजते सर्वं भेबतु ॥

विपाक पाण्डु काश्यानि भवन्त्यभ्यधिकानितु ।

इत्येवं लक्षणं स्त्रीणां रक्तगुल्मं प्रचक्षते ॥

(काश्यपसंहिता गुल्म चिकित्सा अ०) ।

तथापि इन रोगों में स्तनगत सिराजाल का प्रायः अभाव होता है । अतः कतिपय चिकित्सक स्तनगत सिराजाल को अन्य परिवर्तनों की अपेक्षया गर्भावस्था का सूचक स्वीकार करते हैं ।

रोमराजिउद्गम—‘स्त्रिया नामेरधोरोमराजिः प्रादुर्भवति’ । (इन्दु) । गर्भावस्था में केशों की वृद्धि होती है, जिससे गुह्यांग के केश अधिक लम्बे और कुटिल हो जाते हैं—‘योनि रोम्णां सं लुलम्’ । (अष्टांगसंग्रह) ।

Changes in the skin are seen during pregnancy in several directions. Increased growth of hair. (Ten Teacher's Midwifery).

अकामतश्छर्दयति इत्यादि—इसके अतिरिक्त ‘श्रद्धाप्रणयन मुञ्चावचेषु भावेषु’ । उक्त लक्षण द्वितीय मास में प्रारम्भ होते हैं और चतुर्थ तथा पञ्चम मास पर्यन्त जारी रहते हैं । अतः इनका निर्देश यहाँ किया गया है । उक्त समस्त लक्षण गर्भस्थापना के कारण मस्तिष्क संस्थान में उत्पन्न हुई खलबली के ही परिणाम हैं ।

गन्धादुद्विजते शुभाम—यह केवल उपलक्षण मात्र है, कारण यह है कि गर्भधारणा के कारण गर्भिणी की इन्द्रियार्थ अभिलाषा में कुछ असाधारण परिवर्तन हो जाने से सुगन्ध से उद्विग्नता उत्पन्न होती है, ताम्बूलादि खाने की रुचि भी नष्टप्राय हो जाती है तथा रूप, रस, शब्द, स्पर्श में भी वैपरीत्य आ जाता है । इसी लक्षण का सामान्य निर्देश चरक तथा अष्टांगसंग्रह में

भी किया गया है—‘श्रद्धाप्रणयन मुच्चावचेषु भावेषु’ इत्यादि शब्दों में किया गया है। ‘उच्चावचेषु इति उच्च नीचेषु भक्षणीयत्वेन कृतेषु चाकृतेषु चेत्यर्थः (चक्रपाणि-दत्त)। तेषु तेष्वनुक्तेष्वपि स्वकल्पितेषु नाना विधेषु च्चावचेष्वनितेषु भावेष्वाहार विहाराद्युपयोगिष्व-भिलाष इति। (इन्दु)॥

The above symptoms may be associated with disturbances of sense organs, affecting taste, smell and sight

(Riddle of sex).

गर्भावस्था में स्त्री के मस्तिष्कसंस्थान में, मन तथा स्वभाव में अन्तर हो जाता है, जिससे अकामतः वमन, उद्विग्नता, उत्कलेश, शीघ्रकोपिता, चिड़चिड़ापन, मानसिक दीर्घत्व, इन्द्रियायों की स्वभाविक अभिरुचि में वैपरीत्य, निद्रानाश, स्वप्नदर्शन प्रभृति विविध लक्षण उत्पन्न होते हैं।

गर्भस्पन्दन प्रतीति—स्पन्दन को फड़कन तथा अँग्रेजी में क्विकेनिंग (Quickening) कहते हैं। यह लक्षण सर्व-प्रथम चतुर्थ मास के अन्त से पाँचवें मास के मध्य पर्यन्त होता है। साधारणतः गर्भस्पन्दन की प्रथम प्रतीति का काल १८ वाँ सप्ताह माना जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि गर्भ में प्रथम स्पन्दन इस समय होता है। स्पन्दन इससे अधिक पूर्व में ही आरम्भ होता है—‘तस्मात्तदा (चतुर्थमासारम्भात्) प्रभृति गर्भः स्पन्दते। (चरक)। स्पन्दते चलति। (चक्रपाणिदत्त)। तस्माच्चतुर्थे मासि चलना दावभिप्राय करोति। (मिताक्षरा)।’ तात्पर्य यह है कि गर्भ में हलचल चतुर्थ मास से आरम्भ होती है; किन्तु उस समय गर्भाशय, उदर प्राचीर से स्पर्श न होने से तथा गर्भ के स्पन्दन अधिक सूक्ष्म होने से गर्भवती को उसका ठीक ज्ञान नहीं होता। पाश्चात्य विद्वानों का भी ऐसा ही कथन है कि गर्भस्पन्दन की प्रथम प्रतीति से यह न समझना चाहिए कि उसी समय गर्भ में प्रथम स्पन्दन आरम्भ होता है—

This means the first time that the mother is able to appreciate foetal movements.

(Ten Teacher's Midwifery).

अनुभवविहीन गर्भवतीस्त्री (Primipara) गर्भस्पन्दन का ठीक अनुभव करने में असमर्थ होती है। परन्तु अनेक प्रसवास्त्री (Maltipara) को ठीक अनुभव हो सकता है। आन्त्र की गति तथा आन्त्रगत वायु द्वारा भी गर्भगति के तुल्य संवेदना सम्भवतः होती है। इसका भी ध्यान रखना उचित है। जब आर्तवदर्शन के काल का ठीक स्मरण नहीं होता तथा जब आर्तवदर्शन के अतिरिक्त गर्भधारणा होती है, जैसे—प्रायः प्रसूति के

पश्चात् हुआ करती है, तब गर्भस्पन्दनप्रतीतिकाल का उपयोग प्रसवकालनिर्णय के निमित्त किया जाता है। जिस सप्ताह में गर्भस्पन्दन प्रथम प्रतीत हो, ४२ वें सप्ताह के पश्चात् प्रसवकाल होता है, यह प्राकृतिक नियम है।

गर्भ में लिंगभेद के कारण—आयुर्वेद के अनुसार पुरुष के शुक्र की बाहुल्यता से पुमान् (पुरुष) की तथा आर्तव की बाहुल्यता से स्त्री की और उभय के साम्य से नपुंसक संतान की उत्पत्ति होती है। (सु० शा० ३ अ०, सूत्र ५)।

तात्पर्य यह है कि शुक्र-आर्तव के संयोगकाल में शुक्र और आर्तव की स्थिति के अनुसार गर्भ का लिंग निश्चित होता है। चरक में भी लिखा है—‘एवमभिनिर्वर्तमानस्य गर्भस्य स्त्री पुरुषत्वे हेतुः पूर्वमुक्तः। यथा हि बीज मनुपतप्तं स्वां स्वां प्रकृति मनुविधीयते व्रीहिर्वा व्रीहित्वं यवो वा यवत्वं तथा स्त्री पुरुषा वपि यथोक्तं हेतु विभाग मनुविधीयते।’

पाश्चात्य आयुर्वेद में भी स्त्री-पुरुष की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसा ही मत है—

The theory which is supported by an enormous amount of evidence postulates that sex is definitely determined at fertilization. (Halliburton's Physiology.) The sex of the future embryo is determined at the time of fertilization. (Manual of Embryology by Frazer)

शाङ्गधरसंहिता में लिखा है कि—‘आधिक्ये रजसः कन्या, पुत्रः शुक्राधिके भवेत्। नपुंसकं समत्वेन, यथेच्छां पारमेश्वरी ॥

पाश्चात्य आयुर्वेदविद् भी स्त्री-पुरुष की उत्पत्ति में देवयोग की प्रधानता स्वीकार करते हैं—

Sex is inherited. The germcells transmit sex according to the mendelian laws. (But) it is a matter of chance which sex is favoured by nature. (Riddle of sex).

इस सूत्र में पुत्र वा कन्या की उत्पत्ति में जो कारण कथन किए हैं, वह सर्वमान्य हैं—‘रक्तेन कन्या अधिकेन, पुत्रं शुक्रेण (अधिकेन)। (चरक)। पुनः (पितुरेतोऽतिरेकात् पुरुषो, मातुरेतोऽतिरेकात् स्त्री, उभयोर्बीजतुल्यत्वात् नपुंसको भवति’ (गर्भोपनिषद्)। पुनः मनुस्मृति—‘पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे भवत्यधिके स्त्रियाः।

समेः पुमान्पुं स्त्रियो वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥

पुनः अष्टांगसंग्रहे—‘कार्याणां च कारणानुविधा यित्वात्तत्स भागतां प्रतिपद्यते। तत एव च शुक्रस्य बाहुल्यात्पु माना त्वस्य बाहुल्यात्स्त्री तयो साम्येन

नपुंसकम् ॥ पुनः इन्द्रु—‘कार्यं हि कारणस्य स्वरूप मनु-
गच्छति, तथा च तिलेभ्यस्तिला एव जायते न माषाः ।
अतएव च कारणानुविधा यित्वादेव पुंस्कारणस्य शुक्रस्य
बाहुल्यात्पुमान् जायते ।

वाग्भट और इन्द्रु के कथन का यह स्पष्ट आशय है कि
शुक्र में पुंस्कारक तथा आर्तव में स्त्रीजनक शक्ति
विद्यमान होती है । यह कथन भी आधुनिक वैज्ञानिकों
के V chromosome or X chromosome के
तत्व के साथ अनुमोदित है ।

शुक्र बाहुल्य—इसके कतिपय अर्थ हो सकते हैं—

(१) राशि की अधिकता—‘ननु, शुक्रबाहुल्यात्पुमान्,
इति कस्मादुक्तम् ? यत आर्तवस्यैव बाहुल्यं सुवृत्तम्,
‘आर्तवं चतुरञ्जलि प्रमाणम्, शुक्रं तु प्रसूतिमात्रम्’—
इति, नैवं, यावन्मात्र, आर्तं गर्भाशयावस्थितं मलरहितं
गर्भं जननं ताव देवा ग्राह्यम्, अथवा स्वमानापेक्षया शुक्र
शोणितयोर्बाहुल्यं मल्पत्वं चाभिप्रेतम् । (डल्हणाचार्य) ।

कार्यकर शक्ति की अधिकता—कार्यकर शक्ति यहाँ
शुक्र वा आर्तव की गर्भजनक शक्ति अभिप्रेत नहीं है ।
पुंस्त्व वा स्त्रीत्वकारक शक्ति अभिप्रेत है । कारण यह है
कि गर्भधारण होने के पश्चात् का यह प्रश्न है—

अन्येत्वाचार्या एवं ब्रुवन्ति शुक्रार्तवयोर्न्यूनाधिक
समत्वं वीर्येण भवति । (डल्हणाचार्य) । शुक्रस्य
बाहुल्याद्बहुत्वात्वात्सासर्थ्यं लभ्यत्वाच्च । पुंरतो हि
बलवदल्पं स्त्री रजोऽभिभूय पुंगर्भस्य कारणतां याति ।
(अरुणदत्त) ।

इस प्रकार की अल्पता से राशि की अल्पता, कार्यकर शक्ति
की अल्पता वा अभाव का बोध होता है—‘तथाविधस्य
कारणस्याऽभावात् । (अतणदत्त) । इनमें से राशि की
अधिकता की अप्रयोजकता स्वयं डल्हण को भी अज्ञात है
और गर्भजनन तथा स्त्री-पुरुष भेदजनन की दृष्टि से
भी राशि का कुछ भी महत्व नहीं है । अतः बाहुल्य से
शुक्रबीज की पुंस्त्वकारक शक्ति की अल्पता वा अभाव
अभिप्रेत है । इस अर्थ के अनुसार आधुनिक उत्पत्ति
का विचार करने पर दोनों के तत्व में संभवतः मेल हो
जाता है । जब शुक्राणु वायुक्रोमोसोमयुक्त होता है
अर्थात् शुक्र की बाहुल्यता होती है, तब पुत्र की उत्पत्ति
होती है और जब शुक्राणु वायु क्रोमोसोम विरहित
होता है अर्थात् शुक्राल्पता और पर्याय से आर्तव की
अधिकता होती है, तब कन्या की उत्पत्ति होती है ।

आर्तवबाहुल्य—शुक्रबाहुल्य के समान ही स्त्री-बीज
की गर्भ में स्त्रीत्वजनकशक्ति समझनी चाहिए । यह
शुक्राणु में पुंस्त्वजनक शक्ति के अभाव में हो सकता है ।
कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि स्त्री-बीजों में भी
स्त्रीत्वजनक और पुंस्त्वजनक या दो प्रकार के बीज

स्वभावतः होते हैं । यदि स्त्रीत्वजनक (फीमेलडिटर्मिनेंट
Female determinant) बीज से गर्भ उत्पन्न हो तो
कन्या की उत्पत्ति होगी, तथा यदि पुंस्त्वजनक
(मेल डिटर्मिनेंट, Male determinant) बीज द्वारा गर्भ
की उत्पत्ति होगी, तो पुत्र की उत्पत्ति होगी ।
मनुष्येतर प्राणियों के बीज की परीक्षा से यह सिद्ध किया
गया है कि उभय प्रकार के बीजों के रासायनिक संगठन
में अन्तर होता है । मनुष्यों में इस प्रकार की परीक्षा
असम्भव है; किन्तु उसके साथ-साथ यह ज्ञात हुआ है
कि दक्षिण बीज-कोष द्वारा उत्पन्न होनेवाले बीज पुत्र-
जनक और वाम बीज-कोष से उत्पन्न होनेवाले कन्या-
जनक होते हैं अर्थात् वामकोष के बीज प्रबल और दक्षिण
बीजकोष के बीज अल्पबल होते हैं ।

यदि देवयोग से वामकोष के बीज से शुक्राणु का संयोग
हो तो कन्या की उत्पत्ति होगी । पुत्र और कन्या की
उत्पत्ति की विचारसरणि को पाश्चात्यवैज्ञानिक श्री
ओटोशोनर महाशय के नाम से ओटोशोनर का सिद्धान्त
(Otto schoners theory) कहते हैं ।

कन्या वा पुत्र की उत्पत्ति के लिए निम्न मत से सम्भवतः
लाभ हो सकता है—

यदि स्त्री प्रसूत होकर पुत्र भया हो तो वह दक्षिण बीज-
कोष के बीज से भया है । प्रसवकाल के पश्चात् जब पुनः
आर्तवदर्शन होगा, तब उस समय बीज का उत्सर्ग वाम-
कोष से होगा । उसके पश्चात् दक्षिण बीजकोष से, पुनः
वामबीज कोष से । इस प्रकार स्त्रियों का बीज पर्यायक्रम
से उत्सर्गित होता है । इस नियम के अनुसार प्रसव-
काल के समय से मासिकधर्म की तिथि भी लिखकर
रखने से प्रत्येक मासिक धर्म का सम्बन्ध कन्या वा पुत्र
के साथ है, इसका निर्णय किया जाता है और तदनुसार
स्त्री-पुरुष का समागम किया जा सकता है । उक्त मतों के
अतिरिक्त कतिपय मत कन्या और पुत्र की उत्पत्ति के
सम्बन्ध में प्राचीन काल में प्रचलित रहे; उनका उल्लेख
संक्षेप में इस प्रकार है :—

शरीर स्वास्थ्य तथा आहार—शुक्राधिक्य एवं आर्तवा-
ल्पता इत्यादि से प्राचीन आचार्य शुक्राधार पुरुष और
आर्तवाधार स्त्री की पुष्टता और कृशता समझते रहे । अतः
पुत्रोत्पादन के लिए पुरुष को पौष्टिक आहार-विहार की
और स्त्री को लघुपाकी आहार-विहार की व्यवस्था करते
रहे—स्त्रियाः शुक्रेऽधिके स्त्रीस्यात् पुमान् पुंसोऽधिके
भवेत् । तस्माच्छुक्रं विवृयद्धं वृष्यं स्निग्धं च सेवयेत् ॥
बाजीकरण के सम्बन्ध में पुरुषों को अर्थात् पर्याय से शुक्र
को पुष्ट करके पुत्रोत्पादन का भी हेतु समझते रहे । अतः
चरक में इस प्रकार की व्यवस्था का उल्लेख किया
गया है—

बाजीकरण मन्विच्छेत् पुरुषो नित्यमात्मवान् ।

तदायत्तो हि धर्माथी प्रीतिश्च यश एव च ॥

पुत्रस्यायतनं ह्येतद् गुणाश्चैते सुताश्रयाः ।

वृष्य प्रयोगजनितः पुत्रो धर्मादीन पितुः संपादयतीत्यर्थः ।

(चक्रपाणि) । ततः पुष्प दर्शने प्रथमदिवसात् प्रभृति

ब्रह्मचारिणी अल्पं कर्शनायम् इनीयात् । (अष्टांगसंग्रह) ।

एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मद्यामूलं च बर्जयेत् । सुस्थ

इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥

(याज्ञवल्क्य स्मृति) ।

इसकी टीका में विज्ञानेश्वर लिखते हैं—एवमुक्तेन प्रकारेण स्त्रियं गच्छन् क्षामां गच्छेत् । क्षामता च तस्मिन् काले रजस्वला व्रतेनैव भवति । अथ चेन्न भवति तदा कर्तव्या क्षामता पुत्रोत्पत्त्यर्थमल्पाऽस्निग्ध भोजनादिना । (मिताक्षरा) ।

पुत्रोत्पादन के निमित्त पुरुष का पीण्डिक आहार अधिक सहायक होता है वा नहीं, इस पक्ष का परिपोषक पाश्चात्य वैज्ञानिकों का कोई निश्चित विचार नहीं है । किन्तु गर्भोत्पादन के समय स्त्री की क्षामता पुत्रोत्पत्ति की सहायक है, यह उनका भी मत है—

The measures which aim at altering the momentary condition are more important in practice. In the case it is thus a question of physical condition shortly before and during the sexual union which is to lead to the desired child. For this purpose, the woman who hopes to give birth to a son can have short measure in food. (Ideal Birth).

शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य तथा अपत्योत्पादन की इच्छा इत्यादि में यदि पुरुष स्त्री की अपेक्षया प्रबल हो तो पुत्र की उत्पत्ति होगी, इसके विपरीत यदि स्त्री प्रबल हो तो कन्या की उत्पत्ति होगी—

The sex of the child is determined by the relative vigour of the parents. The father, from maturity, force of will, or superior strength of the procreative function may give the masculine development or the mother, from similar causes, may give the feminine. (Esoteric Anthropology by Dr. Nicholas)

साम्यादुभयो न पुंसकम्—न पुंसक के कतिपय अर्थ होते हैं—(१) षंड (क्लीब)—‘तत्र सम्पूर्ण सर्वाङ्ग स भवत्य पुमान् पुमान् ॥ (चरक) । स पुमान् स्त्रीषु पुरुष व्यापार-करणा समर्थत्वात् अपुमान् भवति । (चक्रपाणिदत्त) । इसको अंग्रेजी में इम्पोटेन्ट (Impotent) कहते हैं ।

यो भार्याया मृतौ मोहावज्ञं नेव प्रवर्तते ।

पा०—८१

ततः स्त्रीचेष्टिता कारो जायते षण्ड संज्ञिकः । (सु० शा०

२ अ०, श्लो० ४४) । नर षंड तथा षंड स्त्री—दोनों भी

कामुक विप्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं । षंड पुरुष देखने

में स्त्री के समान होता है; किन्तु उसकी मानसिक स्थिति

भी स्त्री के समान होती है । स्त्रीतुल्य चेष्टा करने की

उसकी प्रकृति (इच्छा) होती है और स्त्री के समान पुरुष

के साथ प्रेम करता है और उसी से मैथुन भी करवाता

है । नारीषंड की इससे विपरीत स्थिति होती है । स्त्री होने

पर भी उसके समस्त व्यापार पुरुषतुल्य होते हैं । शारी-

रिक अन्य वैपरीत्य न होकर स्त्री में पुरुष के और पुरुष

में स्त्री के गुणधर्म उपस्थित होते हैं । अतः इस कामुक

वैपरीत्यको ‘नरनारीषंड’ कहते हैं ।

इसके अतिरिक्त नपुंसकता कभी-कभी वृषणों का अभाव,

वृषणों की पूर्णतः वृद्धि न होना वा उदरगुहा में दोनों

की स्थिति इत्यादि सहज (आनुवंशिक) कारणों से

होती है । वातिक षंड—अनाकिज्म (Anarchism)

इस प्रकार का विकार—‘वाय्वाग्नि दोषाद् वृषणौ तु

यस्य नाशं गतौ वातिक षण्डकः सः’ । (चरक) ।

(२) हिजड़ा, यूनक (Eunuch), कास्ट्रेट (Castrate)

—इनके वृषण बालावस्था में ही निकाल दिए जाते

हैं, जिससे इनका पुरुषत्व नष्ट हो जाता है । कभी-

कभी यौवन प्राप्त होने के पूर्व वृषण का अन्तःस्त्राव नष्ट

हो जाता है, इससे नपुंसक राक्षस—युनकाइड जायगेण्टि-

ज्म (Eunuchoid gigantism) उत्पन्न होता है ।

उभय प्रकारों में पुरुषत्व की अल्पता होती है । किन्तु

उसमें स्त्रीत्व का अंश नहीं होता ।

कुछ वैज्ञानिक शुक्राणुओं में क्रोमोसोम की संख्या ४७

स्वीकार करते हैं और विभाजन के द्वारा परिपक्व होकर

जब उनका प्रवेश वीर्य में होता है, तब आधे २४ क्रोमो-

सोमयुक्त और आधे २३ क्रोमोसोम युक्त होते हैं । जिनमें

२३ क्रोमोसोम युक्त शुक्राणु निर्बल होते हैं, जो स्त्रीबीज

के साथ मिलने पर स्वपुंसत्व प्रकट करने में असमर्थ होते

हैं । इसके विरुद्ध २४ क्रोमोसोमयुक्त शुक्राणु सबल होते

हैं, जो स्त्री बीज के साथ मिलने पर स्वपुंसत्व प्रकट कर

सकते हैं । इस उपपत्ति के अनुसार गर्भ में स्त्रीत्व वा पुंसत्व

उत्पन्न होना शुक्राणुओं के प्रकार के ऊपर निर्भर होता

है ।

(३) द्विलिङ्गी—स्त्रीपुंसलिङ्गी—वह सन्तान जिसमें

स्त्री-पुरुष के मिश्रित चिह्न होते हैं, ऐसे व्यक्ति । कुछ

टीकाकार नपुंसक से (न पुमान् न स्त्री) जिसमें दोनों के

लिङ्ग नहीं मिलते ऐसे, व्यक्ति समझते हैं—‘यदा तु

शुक्रार्तवयोः साम्यं तुल्यत्वं भवति तदा न स्त्री पुमान्

जायते अपितु लिङ्गद्वया लिङ्गितः त्वलेबो षंडो जायते ।

(अरुणदत्त) ।

स्त्रीपुंसलिङ्गीति स्त्रीपुरुषसाधारण नासिका चशुरादि लिंगयुक्तः। यानि तु स्त्रीपुंसयोरसाधारणान्युपस्थ ध्वज स्तन श्मश्रुप्रभृतीनि तानि चास्य न संभवन्ति। असाधारणानि लिंगानि वृद्धेन शुक्रेण रक्तेन वा जन्यानि, इह समरक्त शुक्रारब्धेन नास्तन्यतर वृद्धिरिति नोपस्थ-ध्वजादि विक्षेप लिंग भवनम्। (चक्रपाणिदत्त)।

उपर्युक्त युक्ति सत्य नहीं प्रतीत होती। कारण यह है कि—‘कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्स्वरूपता’ इस न्यायानुसार जब शुक्र और आतर्व उभय कारण सम्पन्न होते हैं, तब दोनों के लक्षण गर्भ में न होना असम्भव है। इसके अतिरिक्त जिसमें स्त्री-पुरुष के कुछ भी लक्षण न मिलें और आकृति मनुष्य-की-सी हो, ऐसे व्यक्ति नहीं पाए जाते। जिसमें दोनों के व्यामिश्र लक्षण हों, ऐसा व्यक्ति कभी-कभी दृष्टिगोचर होते हैं, जिसको अंग्रेजी में हर्माफ्रोडाइट (Hermaphrodite) और व्यामिश्रावस्था को हर्माफ्रोडिज्म (Hermaphroditism) कहते हैं।

नपुंसक से यहाँ व्यामिश्रलिङ्गी व्यक्ति अभिप्रेत है। जिस व्यक्ति में वृषण तथा बीजकोष और दोनों के बाह्य व्यंजन मिलते हैं, उसको यथार्थ नपुंसक कहते हैं। आयुर्वेद के अनुसार शुक्र-शोणित के बल की ठीक साम्यावस्था से ऐसी तृतीया प्रकृति संभवतः उत्पन्न हो सकती है। किन्तु संभाव्यता (Probablity) की दृष्टि से दोनों की ठीक साम्यावस्था होना अधिक कठिन वा दैवयोग है। अतः यथार्थ नपुंसक उत्पन्न होना भी बहुत कठिन है। पाश्चात्य वैद्यों का कथन है कि संसार के साहित्य में अब तक ऐसे यथार्थ नपुंसक केवल १२ प्रकार के पाए जाते हैं—

In the world's literature there are on record but twelve true hermaphrodites. (Medical Annual 1935). Upto 1914 only five cases of unmistakable hermaphroditism have been reported. Since then a few more have been added. Altogether, there are about twelve hermaphrodites. (Medical Annual 1935). Upto 1914 only five cases of unmistakable hermaphroditism have been reported. Since then a few more have been added. Altogether, there are about twelve such cases on record. (Riddle of sex).

साम्यावस्था निश्चित न होने से एक लिंग की अधिकता और द्वितीय लिंग की कुछ कमी हो, ऐसे व्यक्ति अधिक दृष्टिगोचर होते हैं और इस प्रकार को अयथार्थ—स्युडो, स्प्युरिअस (Pseudo, spurious) नपुंसक कहते हैं। लिंगाधिकता के अनुसार अयथार्थ नपुंसकता के २ भेद किए जाते हैं—

(१) जिसमें वृषण होता है, किन्तु जिसके बाह्य व्यंजन में दोनों का मिश्रण होता है, उसे अंग्रेजी में ऐण्ड्रोगाय-नाइड (Androgynoid) और उस अवस्था को ऐण्ड्रो गायनी (Androgyne) कहते हैं। चरक में तृणपुत्रिका वा तृणपूलिका नामक एक सहज पुरुषव्यापत्तिका वर्णन प्राप्त है—यदात्वस्य बीजे बीजभागावयवः पुरुषकराणां च शरीर बीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यते तदा पुरुषाकृति भूयिष्ठम् पुरुषं तृणपुत्रिकं नाम जनयति, तां पुरुषव्यापदमाचक्षते॥ (शा० अ० ४)।

यह व्यापत्ति ऐण्ड्रोगनी प्रतीत होती है।

(२) जिसमें बीजकोष की उपस्थिति होती है और मुख्यतः स्त्री है, किन्तु जिसमें पुरुष के भी बाह्य व्यंजन चिह्न मिलते हैं, उसको अंग्रेजी में—गैनन्ड्राइड (Gynandroid) और उस अवस्था को गायनैण्ड्री (Gynandry) कहते हैं। चरक में ‘रान्ता’ वा ‘वार्ता’ नामक एक स्त्री-व्यापत्ति का वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार की प्रतीत होती है—

यदात्वस्याः शोणिते गर्भाशये बीजभागानामेकदेशः प्रदोषमापद्यते, तथा स्त्रियाकृति भूयिष्ठामस्त्रियं ‘वार्ता’ नाम जनयति, तां स्त्रीव्यापदमाचक्षते॥ (चरक शा० ४ अ०)।

वार्ता तृणपुत्रिकायो व्यवायेच्छा परंभवति, नतु व्यवाय सामर्थ्यमिति ब्रुवते। (चक्रपाणिदत्त)। इसका कारण यह है कि दोनों के शरीर में लिंगानुसार लैंगिक ग्रन्थि उपस्थित रहने से ‘व्यवायेच्छा परंभवति’ किन्तु बाह्य जननेन्द्रिय गत विकृति होने से उन में व्यवाय की शक्ति नहीं होती। संक्षेप में स्त्री और पुरुष दोनों के मिश्रित लक्षण उपस्थित होने से जिसको न पुरुष और न स्त्री ही (न पुमान् न स्त्री) कहा जा सकता है। ऐसा व्यक्ति, यह ‘नपुंसक’ का अर्थ है।

नपुंसक उत्पत्ति सम्बन्धी प्रश्न ?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व गर्भ की वृद्धि गर्भाशय में किस प्रकार से होती है, इस विषय का विचार आवश्यक प्रतीत होता है।

एक साधारणावस्था अर्थात् स्त्रीत्व वा पुरुषत्व, व्यक्ति में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के समूह विशेष से उत्पन्न होती है। वृषणाधिष्ठित अन्तःस्त्रावी ग्रन्थिसमूह जिसमें प्रबल होता है, वह पुरुष और बीजकोषाधिष्ठित अन्तःस्त्रावी ग्रन्थिसमूह जिसमें प्रबल होता है, वह स्त्री होती है। अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों में पूर्वस्तन्यग्रन्थि (पिच्युटरी) मुख्य-तया तथा थायमस, गलग्रन्थि (थायराइड); अधिवृक्क इत्यादि कतिपय ग्रन्थियों का लिंगोत्पत्ति में सम्बन्ध होता है। इन ग्रन्थियों के अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग से गर्भ में शारीरिक, मानसिक तथा लैङ्गिक वैपरीत्य होता

है : आहार, विहार, मानसिक स्थिति, जलवायु इत्यादि का भी परिणाम उक्त ग्रन्थियों के ऊपर होता है। इस प्रकार प्रथम उभयसाधारणावस्था, बीच में उभयसाधारण-लिंगग्रन्थियुक्तावस्था और अन्त में अन्य अन्तःत्वावी ग्रन्थियों की सहायता से एक प्रकार की लिङ्गग्रन्थि की वृद्धि और अन्य प्रकार की लिङ्गग्रन्थि का नाश इस क्रम से गर्भावस्था में पुरुष वा स्त्री की उत्पत्ति होती है। यदि तृतीय अवस्था के प्रारम्भ से ही उभय प्रकार की लिङ्ग ग्रन्थियों का कार्य प्रतिक्षण जारी रहे तो यथार्थ नपुंसक उत्पन्न हो सकता है और यदि एक प्रकार की ग्रन्थि का कुछ नाश होने के पश्चात् दोनों का कार्य जारी रहे तो अयथार्थ नपुंसक संभवतः उत्पन्न होता है। इस प्रकार का अस्वाभाविक क्रम क्यों उत्पन्न होता है इस प्रश्न के उत्तर में आधुनिक विज्ञान सहायक है—

We are still in the dark concerning the inner mechanism of those malformations. We are at a loss to account for the underlying condition which is responsible for the sudden shift from predestined direction into a series of developemental adventures. (Riddle of Sex).

गर्भ की वृद्धि—पाश्चात्य आयुर्वेद के अनुसार शुक्र-शोणित का संयोग होने पर जो जीव उत्पन्न होता है, उसकी वृद्धि तत्क्षण आरम्भ होती है; किन्तु छठवें सप्ताह पर्यन्त उसमें न स्त्री के चिह्न मिलते हैं और न पुरुष के अर्थात् वह स्त्रीत्व-पुरुषत्व से विरहित (neuter) होता है। इस अवस्था को अव्यक्तावस्था कहते हैं। इसका परि-लेख पूर्व में किया गया है। इस अवस्था के पश्चात् जननेन्द्रिय के स्थान में दोनों के लिए साधारण वूल्फीअन बॉडी (Wolffian body) नाम का एक उत्पन्न होता है। उसके साथ-साथ वा कुछ पीछे उभय लिंगों की ग्रन्थियाँ (सूक्ष्म रूप में वृषण और बीजकोष) भी उत्पन्न होती हैं। पुनः क्रमशः शुक्रातंत्र के प्राबल्यके अनुसार—‘भूयसाल्पंहि-जीयते,’ इस न्याय के अनुसार एक ग्रन्थि का नाश होकर दूसरी ग्रन्थि उत्पन्न होती है और गर्भ स्त्री वा पुरुष का रूप धारण करता है। संक्षेप में प्रथम उभयसाधारणावस्था, पुनः पश्चात् एकसाधारणावस्था उत्पन्न होकर स्त्री वा पुरुष उत्पन्न होता है। कतिपय गर्भवैज्ञानिकों को उभय साधारणावस्था अमान्य है। उनका कथन है—आरम्भ से गर्भ में स्त्री वा पुरुष के सूक्ष्म चिह्न उपस्थित रहते हैं—

It must be recognized that there is in this no idea of there being a ‘neuter’ or general basis on which the characters of men and women are grafted, nor is there any reason

for looking on women as a modified man, or vice versa. So far as cellular structure is concerned, the individual must be, from inception, either male or female.

(Manual of Embryology by Frazer.)

आयुर्वेद के अनुसार बीजों की समबलता, उपतप्तता और माता के आहार-विहारादि के दोष इस अवस्था के कारण होते हैं—‘बीजात्मसमांशा दुपतप्तबीजास्त्रीपुंसलिंगी भवति द्विरेताः बीजात्म कर्माशय काल दोषैः सन्तिस्तथा हार विहार दोषैः’ ॥ (चरक शा० २ अ०)।

गर्भ में लिंगपरिवर्तन तथा इच्छानुसार लिंगस्थापन—के निमित्त आयुर्वेद के अनुसार पुंसवन का उपदेश किया गया है। अतः उसकी विधि इस प्रकार कही गई है—प्रशस्त दिनों में पुरुषसमागम करने पर लब्धगर्भा स्त्री को उचित है कि पुत्र की कामना हो तो गोदुग्ध के साथ लक्ष्मणा की जड़ पीसकर उसका रस निचोड़ लेवे। पुनः दाहिने नथुने में उसके ३-४ बूंद स्त्री स्वयं नस्य लेकर थूके नहीं। और यदि कन्या की उत्पत्ति की कामना हो तो वटवृक्ष के नवीन अङ्कुर, सहदेवा (पीतबला), विश्वदेवा (श्वेतबला) तथा लक्ष्मणा की जड़, जो भी प्राप्त हो, उक्त विधि से बायें नथुने में नस्य ग्रहणकर थूके नहीं। इस प्रक्रिया से इच्छितलिंग की सन्तान उत्पन्न होती है। (सु० शा० २ अ० सूत्र ३३)।

लिंगपरिवर्तन के सम्बन्ध में पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कथन है कि उभयसाधारण अवस्था (Bisexual Phase) के पश्चात् गर्भ में अल्पकाल के लिए पुरुषावस्था प्राप्त होती है, जिसमें उसमें वृषणग्रन्थि उत्पन्न होती हैं और यदि पुरुष ही उत्पन्न होने को हो तो यही अवस्था आगे चलकर जननेन्द्रियके पिण्ड (Genital ridge) बढ़कर वहाँ शिश्नादि वर्धित होते हैं; यदि स्त्री उत्पन्न होनेवाली हो तो वृषण के स्थान में बीज-कोष बनता है, और जननेन्द्रिय के पिण्ड शोषित होकर भग, योनि, गर्भाशयादि अंग वर्धित होते हैं। अतः लिंग-परिवर्तन स्त्री में ही हो सकता है अर्थात् गर्भ को पुरुष में परिवर्तित किया जा सकता है।

Therefore, sex reversal can only occur in the female a deduction with which all experience concurs. (Medical Annual, Page 130, 1935)

तात्पर्य यह है कि लिंगपरिवर्तन के लिए केवल ‘पुंसवनविधि’ ही सम्भवनीय है।

पुंसवन विधि का समर्थन—शुक्रातंत्र के बलाबल पर गर्भ के आधान काल में उसके लिंग का भी आधान होता है, यह आयुर्वेद का मत आधुनिक विज्ञान से भी सिद्ध

किया गया है, इसका पूर्व कथित है। ऐसी अवस्था में जब गर्भ के लिंग का निर्णय किया गया है, लिंगपरिवर्तन का प्रयत्न अस्वभाविक अयुक्तियुक्त, निरर्थक प्रतीत होता है। यह शंका प्राचीन ऋषियों के सामने थी और उसका उत्तर भी आचार्यों ने उत्तम रीति से दिया, जो पुंसवन-विधि का औचित्य सिद्ध कर प्रत्येक कार्य के निमित्त भूत-भविष्य-वर्तमान काल में मार्गप्रदर्शक होता है—‘तत्र यदि प्राक्कृतेन कर्मणा स्त्रीगर्भः कर्तुं माक्षिप्तस्तदा पुरुष प्रयत्ने सत्यपि पुं गर्भः कर्तुं न शक्यते। तस्मात्पुंसवन मनर्थक मैवत्याशंक्याह ॥ (अरुणदत्त)। इस आशङ्का की निवृत्ति में वाग्भटाचार्य का उत्तर है—‘बली पुरुषाकारो हि देवमप्यति वर्तते’। (अष्टाङ्ग हृदय)। तात्पर्य यह है कि यदि पुरुष बलवान् प्रयत्न करे तो देवदत्त लिंग में भी परिवर्तन कर सकता है। आधुनिक विज्ञान ने भी इसका अनुमोदन किया है—

We may not know exactly what sex is, but we do know that it is mutable, with the possibility of one sex being changed into another sex. (Psychology of sex).

In man and all classes of animals with separate sexes it is true that sex appears to be fixed... nevertheless... there is the possibility of an artificial change of sex which can be effected even in individuals fairly far or already completely in the direction of one sex. (Ideal Birth).

निम्न श्रेणी के प्राणियों में लिंगपरिवर्तन के प्रयोगों में आज भी सफलता प्राप्त है और मनुष्यों में यद्यपि आज पूर्णतः सफलता प्राप्त नहीं है, तथापि भविष्य में शीघ्र ही सफलता की पूर्ण आशा है। परिवर्तन का विचार नपुंसक के प्रकरण में किया गया है।

सम तथा विषम तिथियों में स्त्रीसमागम का फल—

ऋतुकाल के विषम दिनों में समागम करने से कन्या की उत्पत्ति होती है और समदिनों में समागम करने से पुत्र की उत्पत्ति होती है। अतः आचार्यों का कथन है कि पवित्र होकर अपत्य की इच्छा करनेवाला पुरुष पुत्र तथा पुत्री की इच्छा के अनुसार ऋतुकाल के सम तथा विषम दिनों में स्त्री से समागम करे।

युग्मेषु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला ।

पुष्पकाले शुचिस्तस्मा दपत्यार्थी स्त्रियं ब्रजेत् ॥

(सु० शा० ३ अ० श्लो० १२) ।

वक्तव्य—पुत्र तथा कन्या की उत्पत्ति का वर्णन सुश्रुता-नुसार उनके २८, २९ सूत्र में कथन किए अनुसार पूर्व लेख में वर्णित है। पुत्र और पुत्री की उत्पत्ति के सम्बन्ध का

यह मत—शुक्रबाहुल्यात्पुमान्, आर्तवबाहुल्यात्स्त्री के विरुद्ध नहीं है। कारण यह है कि इस सम्बन्ध में विदेह का भी मत है कि सम दिनों में स्त्रीबीजबलवत्तर होने से पुत्र की उत्पत्ति तथा विषम दिनों में स्त्री बीज निर्वल होने से पुत्री की उत्पत्ति होती है—

श्लोक—

युग्मेषु तु दिनेष्वासां भवत्याल्पतरं रजः ।

संयोगतत्र या गच्छेत् सा पुमांसं प्रसूयते ॥

अयुग्मेषु दिवेष्वासां भवेद्बहुतरं रजः ।

संयोगं तत्र या गच्छेत् सा तु कन्यां प्रसूयते ॥

पुत्र तथा कन्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विदेह के अनुसार ही कतिपय पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार भी स्त्री-बीज कारण मानते हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त आहार विहार के द्वारा शुक्र की बाहुल्यता होने पर समागम से पुत्र की उत्पत्ति होती है चाहे वह दिन सम हो वा विषम हो। इसका उल्लेख सुश्रुत शा० ३ अ० के पाँचवें सूत्र में किया गया है—‘तत्र शुक्रबाहुल्यात्पुमान्, आर्तवबाहुल्यात्स्त्री, साम्यादु भ यो नपुंसक मिति’ ।

मैथुनकाल में शुक्र का आगमन—

पुरुष जब मैथुन करने लगता है, तब उसके मूत्रद्वार से स्वच्छ लसदार तरल पदार्थ की कुछ बूँदें निकला करती है। यह तरल पदार्थ अण्डोला (Prostate gland) और कौपर की ग्रन्थियों का स्राव होता है, जो मैथुन के संघर्ष को कम करने के लिए स्नेह की भाँति कार्य में आता है। इसमें शुक्राणु नहीं होते। थोड़ी देर पश्चात् मैथुन के अन्त में दूसरा अत्यन्त चिपचिपा और लसदार तरल परमाणु अत्यन्त वेग के साथ आता है। इस तरल पदार्थ को ‘शुक्र’ कहते हैं। इसमें शुक्राणु भरे होते हैं। मैथुन के समय स्त्री की योनि में से भी कुछ पतला स्राव स्रावित होता है। यह तरल पदार्थ योनि की श्लेष्मल त्वचा से तथा योनिद्वारसमीपवर्ती ग्रन्थियों (Bartholian Glands) द्वारा स्रावित होता है और योनि को स्निग्ध रख कर शिशन के संघर्षण से उसकी रक्षा करता है। थोड़ी देर पश्चात् जब मैथुनजन्य आनन्द परमोच्च कोटि तक पहुँचता है, तब पुरुषों के समान गर्भाशय से दूसरा क्षारीय चिपचिपा पदार्थ रेचन होता है। इस तरल पदार्थ का गर्भोत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं होता—

गर्भ अनस्थि—संज्ञा पुं० [सं०,] अस्थिरहित गर्भः ।

जब दो कामोन्मत्त स्त्रियाँ रति की इच्छा से प्रवृत्त होकर पस्पर समागम करती हैं और किसी प्रकार से एक दूसरे में शुक्र का उत्सर्ग करती हैं, तब अस्थिरहित गर्भ की उत्पत्ति होती है—

यदा नार्या व्रुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चनः ।

मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्य मनस्थिस्तत्र जायते ॥

(सु० शा० २ अ० श्लोक ४९)

वक्तव्य— वृषस्यन्ती—वृषभ की इच्छा करनेवाली गवी (गाय), यह इसका योगार्थ है। स्त्री की दृष्टि से वृष (बैल) के समान मैथुन कर्म में बलवान् पुरुष के साथ समागम की इच्छा करनेवाली अर्थात् अत्यन्त कामोन्मत्त—‘वृषं पुरुषमात्मार्थमिच्छन्ती’ इति वृषस्यन्ती।

शुक्र—स्त्री धातु, जो एक प्रकार का चिपचिपा योनि तथा गर्भाशय से उत्सर्गित स्राव होता है, मैथुनकाल में पुरुष के शुक्रके सदृश क्षरित होता है। परन्तु वह पुरुष-शुक्रवत् गर्भजनक नहीं होता, इसका निर्देश अन्यत्र किया गया है—

श्लोक—

योषितोऽपि स्रवन्त्येव शुक्रं पुंसां समागमे।

गर्भस्य तन्न किञ्चित् कुरोतीति न चिन्त्यते।

(अष्टांगसंग्रह)।

पुनः अष्टांग हृदय की टीका में अरुणदत्त का परिलेख है—

तदेवं तच्छोनां कुसुमशराक्रान्तमानसानां तथाविधेन पुरुषसंयोगेन विनाऽपि केवलात् स्मृतिसंस्पर्शदर्शनाच्चलित प्रसृत रेतसा किमिति गर्भो न जायते ? ‘शुक्रार्तवंहि गर्भकारणम्।’ तच्च सन्निहितमेवेतिकेचित्। तान् ब्रूमहे। पुंशुक्राभावात्। पुंशुक्रं हि स्त्रीरेतोरक्तयुक्तगर्भकारणम्। नच तदत्रास्ति। तद्भावादगर्भस्याऽनुत्पत्तिः। तथा च संग्रहेऽप्यध्यगष्टि—।

यूरोप में १७वीं शताब्दी पर्यन्त मैथुन के समय के इस योनिगर्भाशयगत धातु स्रावन को स्त्रीशुक्र ही कहते थे और गर्भधारणा के लिये उसे आवश्यक मानते थे—

This mucous ejaculation was in former days regarded as analogous to the seminal ejaculation in men and hence essential to conception. The belief that mucous poured out in women during sexual excitement is feminine semen and therefore essential to conception had many remarkable conjectures and was wide spread until the seventeenth century. (Studies in the Psychology of sex).

आयुर्वेद में इस प्रकार की अज्ञानता स्त्रीशुक्र के सम्बन्ध में कभी न रही, यह उपर्युक्त अरुणदत्त और वाग्भट के वचनोंसे स्पष्ट है। अनस्थि शब्द से अस्थिविरहित, कोमलास्थियुक्त वा विकृतास्थियुक्त तथा ‘अ’ से अभाव, अल्पता और अप्राशस्त्य तीनों का बोध हो सकता है। कारण यह कि सुश्रुत शारीरस्थान के द्वितीय अध्याय में इस प्रकार का प्रसंग विकृत संतान की उत्पत्ति में कथन किया गया है।

इसके अतिरिक्त इस श्लोक का अभिप्राय—(१) स्त्री

शुक्र से गर्भस्थिति का विचार किया जाय तो इस कथन को प्रत्यक्षविरोधी, आयुर्वेदविरोधी तथा अनाथ मानकर इस श्लोक को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है। (२) इससे अनस्थि अर्थात् कोमलास्थि एवं विकृतास्थियुक्त विकारों का भी बोध हो सकता है।

गर्भ-उपशुष्कक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उपशुष्कक गर्भ। उपशुष्क गर्भ। गर्भका शुष्क होना। गर्भ का सूख जाना। नागोदर। (अं०) कानियस मोल (Carneous mole)। **गर्भ उत्पादन—**संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ की उत्पत्ति का कार्य।

गर्भक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रजनी द्वय। (हे० च०)। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केशमध्यस्थित माल्य।

गर्भ-कण्टक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटहल। पनस वृक्ष। (वै० तिघ०)।

गर्भकर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापोता। पुत्रजीव वृक्ष। (भा०)।

गर्भ कोश (ष)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय।

गर्भकोश परासंग—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भाशय संग। गर्भ की अत्यन्त संकोचावस्था। (सु०)।

गर्भकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय। (च० नि० ३-१९)।

गर्भगृह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अन्तर्गृह। भीतरी घर।

गर्भघातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलहारी। लाङ्गली। (बं०) ईश लाङ्गली। (रा० नि० व० ४)।

गर्भ चिन्तामणि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] गर्भाधिकारोक्त रसयोग।

द्रव्य तथा निर्माणविधि—(१) सूतिका रोगोक्त—जायफल, भृष्ट सुहागा, सोंठ, कालीमिर्च, पोपर, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिङ्गुल प्रत्येक समभाग में ग्रहण करें। पुनः इसमें दोपहर तक जंभीरी नीबू की भावना देकर मर्दन करें और रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण-प्रयोग तथा अनुपान—आदी के रस के साथ खाकर ऊपर से किंचित् उष्ण जल पियें तो जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होता है, उसी प्रकार समस्त रोग नष्ट होते हैं।

(२) पारद भस्म (सिन्दूर), रजत भस्म, लोह भस्म प्रत्येक १ कर्ष, अभ्रक भस्म ३ कर्ष, कपूर, वंगभस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जात्रित्री, गोखरू, सतावर, बला की जड़ और अतिबला की जड़ प्रत्येक १ तोला ग्रहण कर जल से मर्दन कर रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण तथा उपयोग—इसका उचित अनुपान द्वारा सेवन करने से सन्निपात ज्वर, सूतिका ज्वर, गर्भिणी ज्वर, दाह, प्रदर तथा सूतिकारोग का नाश होता है।

गर्भ चिन्तामणि (वृहद्)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, रोप्य भस्म, वज्र भस्म, अभ्रक भस्म,

शुद्ध हस्ताल और स्वर्णमाक्षिक भस्म—इनको समभाग में ग्रहणकर एकत्र चूर्णकर यथाविधि ब्राह्मी, अड़सा, भांगरा, खेतपापड़ा, दशमूल इनमें से प्रत्येक के यथासम्भव रस व क्याथ की पृथक्-पृथक् सात-सात भावना दें। पुनः १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनावें। गुण तथा उपयोग—पूर्व कथित रस के अनुसार। (२० सा० सं०)।

गर्भचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भोपचार संबंधी कर्म। गर्भावस्था में किये जानेवाले उपचार। दे० 'गर्भिणी के उपचार'।

गर्भचलित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चलित गर्भ। अस्थिर गर्भ। स्वस्थानभ्रष्ट गर्भ।

गर्भच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भस्त्राव। गर्भप्रपात। गर्भ का गिर जाना। दे० 'गर्भविच्युति'।

गर्भच्छिद्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशयमुख। (सु० शा० ५-३९)।

गर्भजरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्त्री के गर्भवती होने पर उत्पन्न होनेवाले रोग। (त्रिका०)।

गर्भजात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जात गर्भ। विप्रसव। ७, ९, १० वें मास में गर्भ का आना।

गर्भण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नाभिगुडक। गुडकवत् ग्रन्थि। (बं०) नाइयेरगोड। (त्रिका०)। (२) गर्भाण्ड। (अं०) ओवरी (ovary)। दे० 'गर्भ'।

गर्भद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जियापोता। पुत्रजीव

गर्भदा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृक्ष। (रा० नि० व० ९)। (२) सफेद कटेरी। श्वेतकण्टकारी। (भा०)।

गर्भदात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जियापोता। पुत्र-

गर्भदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जीव वृक्ष। (रा० नि० व० ४)।

गर्भद्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अग्निताप के बिना पारद-मुखकरणार्थ लोहादि का द्रवत्व। ग्रासानन्तर पारद सहित स्वर्णादिका द्रवत्व। दे० 'पारा'।

गर्भधारण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाधान सम्बन्धी कार्य। गर्भधारण करना।

गर्भधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] माता।

गर्भधृक्—वि० [सं० त्रि०] गर्भधारिणी। माता। (वै० निघ०)।

गर्भनाभिनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भ का नाभिनाल। (सु० शा० ३-३१)

गर्भनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाल। वह नाड़ी जिसका सम्बन्ध स्त्री की नाभि और बालक की नाभि से होता है। गर्भप्रणाली। (अं०) अम्बिलिकल कार्ड (Umbilical cord)। (वै० निघ०)।

गर्भनाश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भपात। गर्भच्युति।

गर्भनाशनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रीठा। रीठीका

वृक्ष। अरिष्ठक वृक्ष। (बं०) रीठा गाछ। (वै० निघ०)।

गर्भनिरोध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृत्रिम विधि द्वारा गर्भ का निरोध।

गर्भनुत्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलिहारी। लाङ्गुली। (बं०) विषलाङ्गुली। (मं०) कललावी।

गर्भपरिस्त्रव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भपुष्प। गर्भ वेष्टन। (वै० निघ०)।

गर्भपरिस्त्राव—सं० पुं० [सं० पुं०] गर्भ स्त्राव। गर्भप्रपात।

गर्भपरिस्त्रावक—वि० [सं० त्रि०] गर्भपातक। गर्भगिराने वाला।

गर्भपात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भजरोग विशेष। गर्भविच्युति। गर्भस्त्राव। (अं०) इस्कात-हमलजनीनी। ५-६ मास में गर्भ का स्त्रावित होना। (सु० नि० २७ अं०)। भेद—(१) उपविष्टक (सुश्रुत)। (अं०) कसरत इस्कात हमल। (अं०) फ्रिक्वेण्ट अबॉर्शन (Frequent Abortion), थ्रेटेण्ड अबॉर्शन (Threatened Abortion)। (२) अपरिहार्य-गर्भपात—प्रसंसमान-गर्भ। (अं०) इनएविटेबल अबॉर्शन (Inevitable Abortion)। (३) पूर्ण गर्भपात—निःशेष गर्भपात। (अं०) कम्प्लीट अबॉर्शन (Complete Abortion)। (४) अपूर्णगर्भपात—शेष गर्भपात। (अं०) इन्कम्प्लीट अबॉर्शन (Incomplete Abortion)। (५) बहिर्गर्भाशयिक गर्भपात—(अं०) रपचर्ड इण्ट्रायूटरिन प्रेनैन्सी (Ruptured extra Uterin Pregnancy) दे० 'गर्भस्त्राव'।

गर्भपातक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल सहिजन। रक्तशोभाजन वृक्ष। (जटा०)।

गर्भपातन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रीठी। रीठाकरञ्ज। (भा०)।

गर्भपातन प्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भ गिराने

गर्भपातन विधि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] की विधि। यह प्रायः उस अवस्था में की जाती है, जब गर्भिणी निर्बलता के कारण प्रसव करने में असमर्थ होती है अथवा विधवा वा अविवाहित अवस्था में कुललज्जार्थ वा समाज की लज्जा निर्वाहार्थ जिस कुल में इस कार्य का निषेध होता है। यद्यपि यह कार्य धर्म वा राज्य-न्याय के अनुसार अत्यन्त अधर्म कार्य है; फिर भी उपयुक्त लक्ष्यग्रहण कर गुप्तविधि से इस दुष्कृत कार्य को देश के विभिन्न कुलीन जातियों में किया जाता है।

गर्भपात निमित्तज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भपात के कारण दे० 'गर्भविच्युति'।

गर्भपात (ति)नी—सं० स्त्री० [सं० स्त्री०] कलिहारी। कलिकारी। लाङ्गुली। (रा० नि० व० ४)।

गर्भपातापतानाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'गर्भा-
पतानक' ।

गर्भं पिपूषवल्लीरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्त्री रोगाधि-
कारोत्तरसयोग ।

द्रव्य तथा निर्माण-विधि—इस योगको रसेन्द्रसार-
संग्रह में वृहद्गर्भचिन्तामणि के नाम से उल्लेख किया
है । देखो गर्भचिन्तामणि का नृतीय योग । (भैष०
स्त्री—चि०) ।

गर्भपोषण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भगत शिशु का पोषण
जो माता के आहाररस द्वारा होता है ।

गर्भप्रसव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भ का प्रसव । बच्चा
जनना । पैदाइश । (अ०) तल्क, विलादत । (अ०)
लेबर (Labor) ।

गर्भफूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कफेमरियम । फफे
आयशा ।

गर्भभाण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाकर । पकरी । प्लक्ष-
वृक्ष । (मद० व० ५) ।

गर्भमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] योनि । (च०सि० १-६९) ।

गर्भ, मिथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झूठा गर्भ । (अ)
हमल काजिबा । (अ०) फाल्स-प्रेग्नेन्सी (False
Pregnancy) ।

गर्भभाण्डक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाकर । पकरी । प्लक्ष-
(मद० व० ५) ।

गर्भमोचक मंत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मंत्रविशेष । पर्याय—

च्यवन्तमंत्र । यथा—ॐ क्षिपनिक्षिप उत्तमथ-प्रमथ मुञ्च-

मुञ्च स्वाहा । विधि—इस मंत्र से ७ बार अभिमंत्रित कर

जलपान कराने तथा उभय पञ्चदशक, उभयत्रिंशक

यंत्र का दर्शन कराने से सुखपूर्वक प्रसव होता है । यंत्र-

उपर्युक्त उभय यंत्रों को ठिकरी पर लिखकर यमुनातट

पर निवास करनेवाली राक्षसी का स्मरण कराने से शीघ्र

प्रसव होता है । अथवा निम्नलिखित मंत्र के द्वारा, ७ बार

अभिमंत्रित जल का पान कराएं—इहामृतञ्च सोमञ्च

चित्रमानुश्च भामिनी । उच्चैः श्रवाश्च तुर्गो मन्दिरे

उभय पञ्चदशक यंत्र

बसु ८	गुण ३	वेद ४
इन्दु १	बाण ५	९
ऋतु ६	७	पक्ष २

नाडी १६	ऋतु ६	वसु ८
पक्ष २	दिग १०	अर्क १८
अर्क १२	चुवन १४	अग्नि ४

निवसन्तुते । इदम मृतपांस समुद्रतं भैरव लघु गर्भमिमं
विमुञ्चतु स्त्री । तदतल यत्रनार्क वासरास्ते सलवणाम्बु
धरोदिशन्तु शान्तिम् । मुक्ताः पाशविपाशाश्च मुक्ता सूर्येन्दु
रश्मयः ॥ मुक्तः सर्व भयाद् गर्भ एहेहिहमाचरं स्वाहा ।

गर्भमोचक योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुखपूर्वकप्रसवकारक

योग । यथा—पाठा, कलिहारी, कटेरी, सफेद चिरचिरा

(अपामार्ग) तथा जटामांसी । इन्हें समान भाग में ग्रहण

कर स्त्री की नाभि, वस्ति तथा भग में लेप करने से

सुखपूर्वक प्रसव होता है । अथवा—विजोरा की जड़,

मुलहठी और मधु इन्हें त्रैशय कर घृतयुक्त पान करने से

सुखपूर्वक सन्तान की उत्पत्ति होती ।

गर्भरूप—वि० [सं० त्रि०] तरुण । युवा ।

गर्भलीन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लीन गर्भ । सुप्त गर्भ ।

गर्भवती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ससत्वा स्त्री । पर्याय—

(सं०) गर्भिणी, गुर्विणी, अन्तर्वन्ती, ससत्वा, आपन्न

सत्वा, दोहदवती, दोहदान्विता; (अ०) हामिला; (अ०)

प्रेग्नेन्ट (Pregnant) । गर्भवती स्त्री तीन प्रकार की

होती है—(१) पुत्र गर्भवती, (२) कन्या गर्भवती, और

(३) नपुंसक गर्भवती । (सु०) ।

गर्भविच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भ स्नादि जो रोग

के कारण अकाल में गिर जाता है । जिस प्रकार कृमि,

गर्भविमोद-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुतिकाधिकारोक्त उक्त नाम का एक रसयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—त्रिकुटा ३ कर्ष, शुद्ध हिङ्गुल ४ कर्ष, जावित्री और लवङ्ग, प्रत्येक ३ कर्ष, स्वर्णमाक्षिकभस्म ॥ पल—एकत्र जल द्वारा पोसकर चणकप्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके उपयोग से जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होता है उसी प्रकार यह गर्भिणी रोग को नष्ट करता है। (२० सा० सं०)।

गर्भविलासतैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाधिकारोक्त गर्भस्थापक एक तैलयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—मूच्छिततिलवैल १ श०। कल्कार्थ—भूकुष्माण्ड, दाडिम पत्र, आम्रहरिद्रा, ऋंगाटक पत्र, त्रिफला, जातीपुष्प, शतावरी, नीलोत्पल, पद्मपुष्प प्रत्येक १४० तोला। वा मिलित १६ तोला। पार्कार्थ—जल ८ श० यथाविधि पाक करें। गुण—इसके उपयोग से गर्भस्थापन होता है; गर्भशूल गर्भाशयगत रक्तस्राव बंद होता है और यह परम वृष्यतर योग है। इसके निर्माता काशीराज हैं। (मैष०)।

गर्भविलास-रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भिणीज्वर में प्रयुक्त एक रसयोग। द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक, तुथ भस्म, प्रत्येक समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण करें। पुनः इसमें जम्भीरी नीबू तथा त्रिकुटा के क्वाथ से ३-३ दिन मईनकर १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ। गुण—इसके उपयोग से गर्भिणी का ज्वर नष्ट होता है। (२० चि०)

गर्भ विश्रावणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इलायची। (वै० निघ०)।

गर्भबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पुष्ट स्त्री बीज (Fertilized ovum)। (अ० शा०)।

गर्भशङ्कु (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृतगर्भ निःसारणास्त्र व मूढगर्भ हरणार्थ इसका उपयोग होता है। (अ०) फॉर्सेप (Forcep)।

लक्षण—इसकी आकृति शङ्कुतुल्य होती है। इसका आयत ८ अंगुल प्रमाण होता है—‘अष्टाङ्गुलायतस्तेन मूढगर्भं हरेत् स्त्रियाम्!’ (वै० निघ०)।

गर्भशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पक्षाशयमध्यवर्ति गर्भोत्पत्ति का स्थान। (अ०) यूटरस (Uterus)। (सु० शा० ५, ३९—४४)। यह शंखनाभि सदृश, आवर्तवाली तथा ३ चक्रवाली योनि के तृतीय आवर्त, (चक्र) में स्थित है—शङ्ख नाभ्याकृतियोनि स्त्रया वर्ती साच्च कीर्तिता, सस्या स्तृतीयत्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता (भा० पू० ख० गर्भ० प्र०)।

गर्भशय्यान्तः शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भशय्यान्तरगत शोथ। (अ०) इण्डोमेट्राइटिस (Indometritis)। (अ०) वर्म बातिनुरिहा। इल्लिहावबातिनुरिहा।

गर्भशय्यान्तर्गत शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० गर्भशय्यान्तः शोथ।

गर्भशल्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भशूल। गर्भवेदना। (च० शा० ८ अ०)। ‘दे० गर्भिणी चिकित्सा।’

गर्भशाक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भारंगी। ब्रह्मयष्टि।

गर्भशातन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] औषध द्वारा गर्भपातन वा पेटगिराना। यह क्रिया प्रायः औषधपान वा गर्भाशय में फलवर्ति इत्यादि स्थापनकर किया जाता है। शातन प्रभृतिभिः विशेषैः बन्धनानुमुच्यते गर्भः। (सु० नि० ८ अ०)।

गर्भशातन विधि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भपात कराने की क्रिया। दे० ‘गर्भपातन’।

गर्भशूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भशल्य। गर्भ वेदना। दर्द हमल। (अ०) यूटरालजिया (Uteralgia)। दे० ‘गर्भिणी चिकित्सा’।

गर्भशोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भ का शुष्क हो जाना। दे० ‘उपशुष्क’ तथा ‘गर्भिणी चिकित्सा’।

गर्भसम्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ी इलायची। स्थूलएला। (वै० निघ०)।

गर्भसंकोच—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ का संकुचित होना। (अ०) तकलसुरिहा, कब्जुरिहा। (अ०) कंट्रेक्शन ऑफ दी यूटरस (Contraction of the Uterus), यूटरिन एस्ट्रिक्शन (Uterin Astriktion)।

गर्भसंकोचक—वि० [सं० पुं०] गर्भसंकोचकारक। (अ०) तकलसुरिहियः, कब्जुरिहियः। (अ०) कंट्रेक्टर ऑफ दी यूटरस (Contractor of the Uterus)।

गर्भसंग—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ का बाहर न निकलना। गर्भावरोध। गति। मूढगर्भता। (अ०) इन्सिदाद जनीन, मुन्फिजुज्जनीन। (अ०) ऑब्स्ट्रक्शन ऑफ दी फीटस (Obstraction of the foetus)। दे० ‘मूढगर्भ’।

गर्भ स्थानान्तर (ण)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ का स्वस्थान से हट जाना। (अ०) प्रोलैप्सस यूटराई (Prolapsus Uteri)।

गर्भस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय। गर्भशय्या।

गर्भस्थान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ ठहरने की जगह।

गर्भाशय। अन्तःपुर (वै० निघ०)। दे० ‘गर्भ’।

गर्भस्थापन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गर्भस्थिरकरण। (२) गर्भरक्षण योग। (च० शा० ८ अ०)।

गर्भस्फुरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ में स्फूर्ति स्पन्दन होना। गर्भस्पन्दन। (सु० शा० १० आ०)।

गर्भस्त्राव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भविच्युति। हमल का गिर जाना। (अ०) इस्कात हमल। (अ०) अबॉर्शन (Abortion)।

गर्भस्त्राविणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह स्त्री जिसका गर्भस्त्राव हो जाता हो। वन्ध्या भेद।

गर्भस्त्राविणीवन्ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भस्त्राव होकर वन्ध्यात्व प्राप्त होना। दे० 'वन्ध्या'।

गर्भस्त्रावी(इन)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिन्ताल वृक्ष। ताल वृक्ष भेद। (वं) हाताल गाछ। (रा० नि० व-९)।

गर्भस्त्रावी वन्ध्या—संज्ञा स्त्री [सं० पुं०] गर्भस्त्रावजन्य-वन्ध्या। गर्भस्त्राविणी वन्ध्या। दे० 'वन्ध्या'।

गर्भागार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शयन गृह। अन्तर-गृह। (२) गर्भाशय। (रा० नि० व० १८)।

गर्भाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मींगी। न्युक्लिअस (Nucleus)।

गर्भाधान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गर्भधारणा। (२) दशसंस्कारों में से प्रथम संस्कार जो ऋतुस्तान के पश्चात् किया जाता है। (३) प्रथम गर्भाधानकाल। सुश्रुत के अनुसार १६ वर्ष से अल्प अवस्था की स्त्री में २५ वर्ष से अल्प अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करे तो वह गर्भ कुक्षि में ही नष्ट हो जाता है। यदि संयोगवश जन्म भी ग्रहण करे तो देर तक नहीं जीवित रहता। यदि जीवित भी रहे तो दुर्बल इन्द्रिययुक्त होकर जीवित रहता है। अतः अत्यन्त बाला स्त्री में गर्भ का आधान करने का निषेध है। (सु० शा० इलो० ५७, ५८)। काश्यपसंहिता के अनुसार १६ वर्ष की अवस्था के पूर्व यदि स्त्री-पुरुष गर्भ का आधान करें तो दीर्घायु सन्तान की उत्पत्ति नहीं होती। उक्त अवस्था में शुक्रशोणित स्वस्थ प्रजोत्पादन के अयोग्य होते हैं। यथा—'षोडश वर्षयोर्हि शोणित शुक्र मध्ये प्रभवतः। (जातिसूत्रीय शारीराध्याय)। कारण यह है कि उक्त अवस्था में शुक्रशोणित अपरिपक्व होने के कारण स्वस्थ एवं दीर्घायु प्रजोत्पत्ति के अयोग्य होते हैं। १६ वर्ष की स्त्री की बाला संज्ञा है और १६ वर्ष से न्यून आयु की स्त्री को अत्यन्त बाला कहते हैं; अतः ऐसी स्त्री गर्भाधान के अयोग्य होती है।

गर्भापतानक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भक्षेपक। गर्भपात-निमित्तज अपतानक। गर्भापस्मार। (अं०) एकलाम्पसिया (Eclampsia)। **निदान**—इस रोग का वास्तविक कारण अज्ञात है; किन्तु इसका सहायक कारण गर्भसंग है। यह रोग प्रायः सगर्भावस्था में ६ मास के पश्चात् प्रसवकाल तथा प्रसवपश्चात् ५ दिन तक होता है। **लक्षण**—इसमें धनुस्तम्भतुल्य आक्षेप के दौरे होते हैं। प्रत्येक आक्रमण का काल प्रायः १ से १॥ मिनट तक होता है। प्रारम्भिक अवस्था में सिर और मुख की पेशियाँ झटके के साथ सिकुड़ती हैं, नेत्रों में कम्प होता है और आँखें इधर-उधर फिरा करती हैं। इसके पश्चात् शरीर कड़ा हो जाता है, सिर पीछे झुक जाता है, धनुस्तम्भ के बाह्यायाम—
फा०—८२

तुल्य शरीर टेढ़ा हो जाता है, दाँती लग जाती है, प्रारम्भिक अवस्था में यदि जिह्वा दाँतों के मध्य में हो तो कट जाती है और श्वास में रुकावट होती है। इसके पश्चात् क्रमशः कठोरता दूर हो जाती है, श्वास की रुकावट कम हो जाती है, अन्त में रोगिणी मूर्च्छित हो जाती है। मूर्च्छा का काल दोरों की संख्या पर निर्भर होता है। सर्वप्रथम स्वल्पकाल पर्यन्त ही मूर्च्छा रहती है; किन्तु पुनः पुनः आक्रमण की संख्या प्रायः १०० से भी अधिक देखी गई है और १० से अधिक आक्रमण के पश्चात् रोग प्रायः कृच्छ्रसाध्य होता है। मृत्यु-रोगिणी की मृत्यु हृदयावसाद, फुफ्फुसशोथ और मस्तिष्कगत रक्तस्कन्दन द्वारा होती है।

चिकित्सा—पेन्सिलीन का सूचीवेध प्रतिदिन आरोग्यता प्राप्त होने तक करना उचित है।

गर्भापस्मार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'गर्भापतानक'।

गर्भाम्भ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भोदक। गर्भस्थ जल। (वा० उ० १ अ०)।

गर्भारि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) छोटी इलायची। क्षुद्र एला। (रा० नि० व० ६)। (२) लांगलीक्षुप।

गर्भावक्रान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भावतरण। जीव का गर्भ में आने की क्रिया। (सु० शा० ३ अ०)। दे० 'गर्भ'।

गर्भावस्था—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भिणी में गर्भ की अवस्था। दे० 'गर्भिणी'।

गर्भावस्था के रोग—संज्ञा पुं० [सं० गर्भावस्था + के + रोग] प्रसवपूर्वकालिक रोग।

गर्भाशय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जरायु। गर्भाशया। (सु० शा० ५-८)। (अ०) रिह्वा। (अं०) यूटरस (Uterus)। दे० 'युत्तरोग'।

गर्भाशय अपसरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] 'गर्भाशय-विश्लेष', गर्भाशयस्थानापवृत्ति, गर्भाशयअपसर्पण। (अं०) प्रोलेप्सस यूटराई (Prolapsus Uteri), डिस्प्लेस्मेंट ऑफ दी यूटरस (Displacement of the Uterus)।

गर्भाशय अपसंवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भ निकल जाने के पश्चात् गर्भाशय में गर्भ वा अपरा का किंचित अंश शेष रह जाय तो उसकी संवृत्ति उचित प्रकार से न रह कर, वह किंचित स्थूल और पिलपिला सा रह जाता है और रक्ताधिक्य के कारण उसमें अधिक रक्तस्राव होता है। इस अवस्था को अपसंवृत्ति (Subinvolution) कहते हैं।

गर्भाशयगत कण्डू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय की खाज। गर्भाशय की खुजली। (अ.) हिक्कतुरिह्वा। (अं०)

प्रुराइटिज यूटराई (Pruritis Uterii), ईचिंग ऑफ दी यूटरस (Itching of the Uterus) ।

गर्भाशयगत पुरातन शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय का जीर्णशोथ ।

गर्भाशयगत शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जरायुगत शोथ । गर्भाशय में प्राप्त शोथ । (अ०) इल्टिहाब-मुजादितुरिहा । (अं०) पेरामेट्राईटिज (Para-metritis) । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशयग्रीवा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय की गर्दन । कमल । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशयग्रीवान्तःशोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय-ग्रीवा में होनेवाली सूजन । (अ०) बर्मवतन इनक-लार्वाहा । (अं०) मेट्राइटिज (Metritis) ।

गर्भाशयग्रीवाविस्तृति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय की गर्दन का फैल जाना । गर्भाशयग्रीवाविस्तार । (अ०) इन्विंसात अनुर्किरहा । (अं०) डाइलेटेशन ऑफ दी सर्विक्स (Dilatation of the Cervix) । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशयग्रीवाशोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय की गर्दन की सूजन । गर्दन रिहा का वरम । (अं०) सरवाइकल-मेट्राइटिज (Cervical metritis) । (अ०) वरम अनर्किरहा, इल्टिहाब अनर्किरहा ।

गर्भाशयघात—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] प्रसुप्त गर्भाशय । (अ०) इस्तरखाज्जिहा ।

गर्भाशय जीर्णशोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय का पुरातन शोथ । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशयभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय का फैलकर नीचे की ओर लटक जाना । (अ०) बरुज्जूरिहा । इजलाकुरिहा । (अं०) प्रोलैप्सस यूटराई (Prolapsus Uteri) । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशयमुख—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशय का मुँह ।

गर्भाशयमुखविस्तार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय के

गर्भाशयमुखविस्तृति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुख का फैल जाना । (अ०) इन्विंसातुरिहा । (अं०) डायलेटेशन ऑफ दी सर्विक्स यूटराई (Dilatation of the Cervix Uteri) ।

गर्भाशयमुखशोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय के मुख की सूजन । कमल शोथ । (अ०) इल्टिहाब अनर्किरहा, वर्म अनर्किरहा । (अं०) इन्फ्लेमेशन ऑफ दी सर्विक्स यूटराई (Inflammation of the Cervix uteri) । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशयमुखवक्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय के मुँह का टेढ़ा हो जाना । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशय-विच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय का स्वस्थान से आगे व पीछे की ओर गिर जाना वा झुक जाना । गर्भाशय भ्रंश । (अ०) मेलानुरिहा, तलादुरिहा ।

(अं०) डिस्प्लेसमेंट ऑफ दी यूटरस (Displacement of th Uterus) । दे० 'गुह्यरोग' ।

गर्भाशय विव्रधि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय में होने वाली फोड़िया (पिटिका) । गर्भाशय का फोड़ा । (अ०) खुराज्जूरिहा, दुबीलतुरिहा । (अं०) ऐब्सेसयूटराई (Abscess Uteri) ।

गर्भाशय विश्लेष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'गर्भाशय विच्युति' ।

गर्भाशय वृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय की रसोली या अर्बुद । गर्भाशय में होनेवाली एक प्रकार की रक्तज ग्रन्थि । गर्भाशयपश्चात्तरक्तग्रन्थि । (अ०) सलअः अकबूरिहा । (अं०) रेट्रो यूटरिन हेमाटोसील (Retro Uterine Haematocele) ।

गर्भाशय-शूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशयिक वेदना । जरायुज शूल । (अ०) वजज्जूरिहा, दर्दरिहा । (अं०) मेट्रालजिआ (Metralgia) ।

गर्भाशय-शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जरायुज शोथ । गर्भाशय की सूजन । (अ०) वर्मरिहाखास, रिहा का वर्म या सूजन । (अं०) मेट्राइटिज (Metritis) । भेद—(१) रक्तजशोथ—(अ०) वर्मदमवी; (२) पित्तज-शोथ—(अ०) वर्म सफरावी, वर्म हाद्; (अं०) एक्यूट इन्फ्लेमेशन ऑफ दी यूटरस (Acute inflammation of the Uterus); (३) कफजशोथ—(अ०) वर्म बलगमी, वर्म बारिद; (४) वातजशोथ—(अ०) वर्म सौदावी ।

गर्भाशय संकोच—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भ का सिकुड़ जाना । (अं०) कंट्रैक्शन ऑफ दी यूटरस (Contraction of the Uterus) ।

गर्भाशय संकोचक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह द्रव्य जो गर्भाशय को संकुचित करते हैं; यथा—अर्गट इत्यादि । (अ०) मुसक्किक्त, मुसक्किक्त जनीन; (उर्दू) हमल गिरा देने वाले; (अं०) एक्बोलिक (Ecbolic) । भेद—आक्सी टॉकिक (Oxytotic); (अं०) मुहज्जिलविलादत; (उर्दू) जल्द जनानेवाली; (सं०) शीघ्रगर्भपातक, गर्भपातक, गर्भपाति, गर्भशातक; (अं०) अबॉर्टिफिशिएण्ट्स (Abortifacients) । द्रव्य—लाङ्गली, उपकुञ्चिका, इन्द्रायण, चित्रक, वंशशुङ्ग, कण्टकारी, हिङ्गु, बन्दाल (जीमूत), गोपित्त, गन्धाबिरोजा, अञ्जूरुत, कपास, सूरज-मुखी, बूजीदान, मेंहदी के बीज, बखुरमरियम इत्यादि ।

गर्भाशय स्फटन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] गर्भाशय का फट जाना, विदीर्ण हो जाना; (अ०) शिक्काकुरिहा; (उर्दू) रिहा का फट जाना; (अं०) रप्चर ऑफ दी यूटरस (Rupture of the Uterus) ।

गर्भाशय स्थानापसरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशयविश्लेष । गर्भाशय विच्युति । गर्भाशय का स्वस्थान से भ्रष्ट हो

जाना (हट जाना)। गर्भाशयभ्रंश। (Displacement of the Uterus)। दे० 'गर्भाशय विच्युति'।

गर्भाशयस्वसंवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशय की वह अवस्था जिसमें गर्भाशय पूर्णतः स्वस्थान से बाहर चला जाय और भीतर अपरा वा अन्य वस्तु कुछ भी शेष न रह जाय। इस अवस्था में गर्भाशय शनैः शनैः निजपूर्व अवस्था को प्राप्त होने लगता है। इस अवस्था को अँग्रेजी में इन्वॉल्यूशन ऑफ दी यूटरस (Involution of the Uterus) कहते हैं।

गर्भाशयाघात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय का प्रभुस हो जाना। यह एक प्रकार की वातव्याधि है। (अ०) इस्टर-खाउरिह्म।

गर्भाशयाध्मान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशय का अफारा। (अ०) नफ़ुरिह्म। (अं०) फ्लैच्युलेन्स ऑफ दी यूटरस (Flatulence of the Uterus)।

गर्भाशयान्तः शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशयगत अन्तः-शोथ। गर्भाशय के भीतर की सूजन। (अ०) इल्टिहाब बतनुरिह्म। (अं०) इण्डोमेट्राइटिस (Endometritis)। (उर्दू) रिह्म के अन्दरूनी तबके का वरम। (हि०) गर्भाशय के अन्तःपुर का विकार (शोथ)।

गर्भाशयार्बुद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशय की रसौली। (अ०) सलत्रः रिह्मियः। (अं०) यूटरिन ट्यूमर (Uterine Tumour)। (उर्दू) रिह्म की रसौली।

गर्भाशयासंग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशयनिरोध। गर्भाशय अपवृत्ति। गर्भकोषपरासंग। गर्भाशयावसाद। गर्भाशय की सुस्ती। (अं०) यूटरिन इनशिया (Uterine Inertia)। इसमें गर्भाशय गर्भ को बाहर निकालने में असमर्थ होता है। इसका मुख्य कारण गर्भाशय की निर्बलता है।

गर्भाशयाक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भपित्तानक। गर्भा-शयपित्तानक। गर्भपातनिमित्तज अपतानक। दे० 'गर्भा-पित्तानक'।

गर्भाशयेक अर्श—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशयस्थ अर्श (मस्सा)।

गर्भाशय की बवासीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] बवासीररिह्म। (अं०) पॉलीपस यूटराई (Polypus Uteri)।

गर्भाशयिक प्रतिश्याय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशयका प्रतिश्याय। (अ०) नज़लः रिह्म। (अं०) यूटरिन केटार (Uterine Catarrh)।

गर्भाशयिक-रक्त स्राव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय द्वारा रक्तस्राव होना। यह प्रायः गर्भस्राव वा असृग्दर (प्रदर) में होता है। (अ०) दमुरिह्म। (अ०) यूटरिन हेमोरेज (Uterine Haemorrhage)।

गर्भाशयिक रोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशय के रोग।
गर्भाशयिक-विद्रधि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भाशयविद्रधि।

(अ०) सखूरिह्म, दुबैलतुरिह्म; (अं०)—'यूटरिन ऐम्बेस (Uterine Abscess)।

गर्भाशयिक व्रेण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भाशय का फोड़ा जो फूट गया हो। इसमें पूयस्रावादि लक्षण होते हैं।

(अ०) कुरुहुलरिह्म।

गर्भाशयिक शूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गर्भाशय शूल (२) प्रसववेदनाकालिक शूल। आदो। (अ०) खवालिफ़, आलाम बादुल्विलादत। (अं०) आफटरपेन (After Pain)।

गर्भाशयिक-शोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] गर्भाशयिक दुर्बलता।

गर्भाशयिक-क्षय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भाशयकी क्षीणता (उर्दू) रिह्म की लागरी (अं०) ऐट्रोफी ऑफ दी यूटरस (Atrophy of the Uterus)।

गर्भाष्टम्—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भजनन अष्टम मास। (त्रिका०)।

गर्भक्षेपक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भपात निमित्तज अपतानक। 'गर्भापित्तानक'। दे० एक्लम्प्सिया (Eclampsia)।

गर्भिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गर्भवती स्त्री। वह स्त्री जिसको गर्भाधान हो गया हो। लक्षण—सद्यः गृहीत गर्भिणीस्त्री के इस प्रकार लक्षण होते हैं—श्रम प्रतीत होता है, ग्लानि होती है, तृष्णा लगती है, रानों में थकावट होती है, शुक्र और आर्तव का अवरोध होता है और योनि में स्फुरण प्रतीत होता है। इसका अनुभव चतुर रमणियों को ही होता है। चिकित्सक को इसका ज्ञान प्रश्न द्वारा प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं। सद्योगृहीतगर्भा को निश्चित अवधि का ज्ञान प्राप्त करना कठिन है, तथापि पुष्पसमागम के दो चार दिन पश्चात् पुनः मासिकधर्म न होने पर्यन्त कम-से-कम ४ और अधिक से अधिक ६ सप्ताह की अवधि 'सद्यः' शब्द के उपयोग से समझना उचित है।

अष्टांगहृदय या अष्टाङ्गसंग्रह में उक्त लक्षण के दो विभाग किये हैं—सद्योगृहीतगर्भा और दूसरा व्यक्त गर्भा। उपर्युक्त लक्षण अव्यक्तगर्भा स्त्री के हैं अव्यक्त-गर्भावस्था ६ सप्ताह की होती है और व्यक्तगर्भ की अवधि द्वितीय मास में होती है—'द्वितीये मासे सम्पद्यते' इत्यादि। तृतीय मास में अंग-प्रत्यंग अभिव्यक्त रूप से रहते हैं। द्वितीय मास में ग्रन्थि के रूप में भ्रूण रहता है, उसके अंग-प्रत्यंग उसमें ही लीन रहते हैं। अष्टाङ्ग हृदय के अनुसार प्रथम मास में गर्भ अव्यक्त रूप से रह कर एक सप्ताह पर्यन्त कलल रूप में रहता है। कललावस्था में स्त्री-पुष्प को व्यक्त गर्भ के लक्षण अज्ञात रहते हैं। उक्त अवस्था में पुंसवनादि संस्कार किये जाते हैं।

व्यक्तगर्भा के लक्षण—गर्भिणी के उभय स्तनों पर

कालापन आ जाता है। शरीर पर रोमराजियाँ उत्पन्न होती हैं। नेत्रों के पलकों का बंद होना, अकारण वमन, सुगन्धी से उद्वेग, मुख में लालास्राव तथा थकावट प्रतीत होती है। (सु० शा० ३ अ०)।

गर्भिणी के कृत्य—गर्भिणी प्रथम दिन से लेकर प्रतिदिन प्रसन्न चित्त, पवित्र, सुन्दर अलंकारों द्वारा विभूषित, श्वेत-वस्त्र धारणकर, शान्तिहोम, मंगलकर्म, देवता, ब्राह्मण तथा गुरु की पूजा करती रहें; मलिन रोगी और हीन जाति के शरीरों को स्पर्श न करें; दुर्गन्धयुक्त पदार्थों, दुर्दर्शनीय दृश्यों और उद्वेगोत्पादक कथाओं को श्रवण न करें; शुष्क पर्युषित (बासी); कुपित (सड़ा-गला), क्लिन्न अन्नो का सेवन न करें; बाहरनिकलना, शून्यगृह चैत्य (प्रेत स्थाना), श्मशान, वृक्षाश्रय, क्रोध तथा भययुक्त भाव, उच्चभाषण तथा गर्भघातक अन्य भावों का परित्याग करे, तैलाभ्यङ्ग तथा उबटन आदि का सेवन बार-बार न करे, अधिक श्रम न करे, लेटने और बैठने का स्थान गद्दी-चकिया इत्यादि मृदुवस्त्रों से युक्त, न बहुत ऊँचा, अपाश्रययुक्त और वाधाविरहित निर्माण करे, हृद्य, तरल, मधुरप्राय, स्निग्ध, अग्निदीपक द्रव्यों से सुसंस्कृत भोजन करे, इस प्रकार का आचरण प्रसूतिकाल पर्यन्त करती रहे।

गर्भिणी का मासानुमासिक आहार-क्रम—विशेषकर गर्भिणी को चाहिये कि प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय मास में मधुर, शीतवीर्य, तरलभूयिष्ठ आहार का सेवन करे। विशेषतः तृतीय मास में साठी चावलों का भात गोदुग्धयुक्त सेवन करे। चतुर्थ मास में दधियुक्त, पञ्चम मास में पुनः दुग्धयुक्त, षष्ठम मास में घृतयुक्त इस प्रकार आहार का सेवन करे।

चतुर्थ मास में दुग्ध और नवनीत (मक्खन) के साथ मांसाहारी हो तो जांगल प्राणियों के मांसरसयुक्त हृद्य आहार का सेवन करे। पाँचवें मास में दुग्ध-घृतयुक्त आहार करे। छठे मास में गोखरू द्वारा सिद्धघृत वा यवागू मात्रानुसार सेवन करे। सातवें मास में विदारिगन्धादिगणादि द्वारा साधित घृत का सेवन करे। इस प्रकार आहार करने से गर्भ परिवर्धित होता है। आठवें मास में बला, अति बला, शतपुष्पा, पलस (), दुग्ध, दही का पानी, तैल, लवण, मैनफल, मधु, और घृत से मिश्रित वेर के क्वाथ से पुरातनमलविशोधनार्थ तथा अपान वायु के अनुलोमनार्थ निरूहवस्ति ग्रहण करे। इसके पश्चात् दुग्ध और मधुरागण की औषधियों के क्वाथ द्वारा सिद्ध तैल से अनुवासन कराये। वायु का अनुलोम होने पर सुखपूर्वक प्रसव होता है, किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता। इसके पश्चात् प्रसवकालपर्यन्त स्निग्ध यवागू और मांसाहारी हो तो जांगलप्राणियों के

मांसरसों द्वारा उसकी चिकित्सा करे। इस प्रकार प्रथम मास से प्रसवकाल पर्यन्त गर्भिणी स्निग्ध और बलवान् होकर उपद्रवरहित सुखपूर्वक प्रसव करती है। (सु० शा० १० अ०)।

गर्भिणी-चिकित्सा-मासानुक्रम से—

प्रथम मास में यदि गर्भिणी को गर्भशूल हो तो ऐसी अवस्था में श्वेतचन्दन, सतावरी, मिश्री, शतपुष्पा (सौंफ)—समान भाग में ग्रहणकर जल से पीसकर गोदुग्ध के साथ पानार्थ प्रदान करें। अथवा काला तिल, पद्मकाष्ठ, कमल-कन्द और साँठी चावल, को समान भाग में ग्रहण कर गोदुग्ध, मिश्री और मधु युक्त पीसकर पानार्थ देवें और भोजनार्थ केवल गोदुग्ध देवें।

द्वितीय मास में यदि गर्भशूल हो तो कमलकंद, सिंघाड़ा, कसेरू—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर चावलों के जल के साथ पानार्थ देने से शूल नष्ट होकर गर्भ स्थिर होता।

यदि तृतीय मास में गर्भिणी को गर्भशूल हो तो (१) आँवला, क्षीरकाकोली और काकोली—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर किञ्चित् उष्णजल के साथ पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है। भोजनार्थ केवल दुग्ध-भात देवें। अथवा (२) पद्मकाष्ठ, कमलकंद, कमलपुष्प और कुट समान भाग में ग्रहणकर जल में पीसकर गोदुग्ध और मिश्रीयुक्त देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि चतुर्थ मास में गर्भवती को शूल उत्पन्न हो तो (१) कमल, कमलकंद, गोखरू और छोटी कटेरी समान भाग में ग्रहण कर जठराग्नि के अनुसार गोदुग्ध के साथ पानार्थ देवें। अथवा (२) गोखरू, छोटी कटेरी, सुगन्ध-वाला, निलोत्पल—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर गोदुग्ध के साथ पीसकर पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि ५वें मास में गर्भवती शूल से पीड़ित हो तो (१) नील-कमल, क्षीरकाकोली समान भाग में ग्रहण कर जल के साथ पीस कर गोदुग्ध, घृत और मधु मिश्रित कर पानार्थ देवें। अथवा

(२) नीलकमल और काकोली समान भाग में ग्रहण कर शीतल जल में पीस कर गोदुग्ध में पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि ६वें मास में पीड़ा हो तो (१) बिजौरा के बीज, गोंदनी (प्रियङ्गु) पुष्प, कमलपुष्प और चन्दन—इनको गोदुग्ध के साथ समान भाग में ग्रहण कर पीसकर पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है। (२) चिरौजी (प्रियालबीज), मुनक्का, धान के खील—इन्हें समान भाग में ग्रहणकर शीतलजल में पीस कर सेवन करने और शीतल वस्तुओं का आहार करने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि ७ वें मास में गर्भशूल हो तो (१) शतपुत्री (शतावरी) और कमलकन्द समानभाग में जल से पीसकर गोदुग्ध के साथ देने से गर्भिणी का गर्भशूल नष्ट होता है। (२) कैथा, सुपारीकी जड़, धान की खोल और मिश्री समानभाग में ग्रहणकर शीतल जल में पीस कर गोदुग्ध के साथ पानार्थ देने से शीघ्र गर्भशूल का नाश होता है।

यदि ८ वें मास में गर्भवती गर्भशूल द्वारा पीड़ित हो तो (१) धनियाँ चावलों के जल से पीस कर पान करने से लाभ होता है और गर्भ स्थिर होता है। (२) पलाश के कोमल पत्र ग्रहणकर शीतलजल से पीसकर पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि ९ वें मास में गर्भशूल उत्पन्न हो (१) तो एरंडमूल और काकोली समानभाग में ग्रहणकर शीतलजल से पीसकर पानार्थ देने से गर्भशूल निश्चय नष्ट होता है। (२) पलाशबीज, काकोली, कटसरैया—इन्हें समान भाग में ग्रहणकर उचित मात्रा में चावलों के जल के साथ पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि १० वें मास में गर्भशूल हो तो नीलकमल, मुलहठी और मूंग—इन्हे समानभाग में जल के साथ पीसकर गोदुग्ध और मिश्री के साथ पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि ११ वें मास में गर्भशूल हो तो (२) मुलहठी, कमलकन्द, नीलकमल—इन्हें समान भाग में ग्रहणकर शीतलजल में पीसकर गोदुग्ध के साथ पानार्थ देने से लाभ होता है।

(२) दुद्धी, कमलपुष्प, कुट और मजीठ की जड़ इनको समान भाग में ग्रहण कर शीतलजल के साथ पीसकर मिश्री युक्त पानार्थ देने से गर्भशूल नष्ट होता है।

यदि १२ वें मास में गर्भशूल होता है तो मिश्री, विदारिकंद, काकोली, दुधवनिया (क्षीरविदारी)—इन्हें समान भाग में ग्रहणकर शीतलजल में पीसकर उक्त विधि से पानार्थ दें।

गर्भिणी रक्तस्राव—(१) कमलकंद, कसेरू सिंघाड़ा, निलोत्पल, श्वेत चन्दन—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर मिश्री के साथ गोदुग्ध युक्त पीसकर पान करने से गर्भिणी का रक्तस्राव शान्त होता है। (२) कमल का पञ्चाङ्ग चावलों के जल के साथ पानार्थ देने से रक्तस्राव शांत होता है।

चलित गर्भ में—कुश, काश, गोखरू, कशेरू, सिंघाड़ा, जीवनीय गण की ओषधियाँ, कमल, निलोत्पल, एरण्डमूल, शतावरी—इन्में से किसी एक या समस्त द्रव्यों को समान भाग में ग्रहण कर चूर्ण कर उचित मात्रा में गोदुग्ध में सिद्ध कर मिश्रीयुक्त पानार्थ देने से चलित गर्भ

स्थिर होता है। अथवा—कुम्हार की मिट्टी में मधु मिश्रित कर बकरी के दुध के साथ पानार्थ देने से निश्चय चलित गर्भ स्थिर होता है।

गर्भशोथ—शुष्कगर्भचिकित्सा—वातविकार से यदि गर्भ सूखता हो तो ऐसी अवस्था में मिश्री, मुलहठी, काश्मरी इन्हें समान भाग में ग्रहण कर गोदुग्ध में पीस कर उचित मात्रा में देने से लाभ होता है।

गर्भिणी ज्वर चिकित्सा—(१) लाल चन्द, अनन्तमूल, लोध और मुनक्का—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर मिश्रीयुक्त पानार्थ देने से गर्भवती का ज्वर नष्ट होता है। (२) श्वेत एरण्डमूल, गिलोय, मजीठ, लालचन्दन, देवदारु, पद्मकाष्ठ—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर क्वाथ कर मिश्री युक्त देने से गर्भिणीज्वर का नाश होता है। (३) छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गिलोय अथवा (४) लघुपंचमूल—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू—इन्हें समान भाग में ग्रहण कर मधु युक्त उचित मात्रा में देने से शीघ्र गर्भिणीज्वर का नाश होता है।

गर्भिणी की ग्रहणी में—यदि गर्भिणी को ग्रहणी विकार हो तो आम और जामुन की छाल का काथ निर्माण कर धान के खोलों के सत्तू के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। निम्न योग भी उक्त रोग में उपकारक हैं—(१) ह्रीबेरादि काथ, (२) लवङ्गादि चूर्ण, (३) गर्भ चिन्तामणि रस, (४) गर्भविलासरस, (५) गर्भविलास तैल, इन्दुशेखर रस आदि।

गर्भिणी का वमन—गर्भ के प्रकरण में। देखें।

गर्भिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षीरापी वृक्ष। यथा—वट, पीपल, उदुम्बर और प्लक्ष इत्यादि क्षीरी वृक्ष।

गर्भिणी परिचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] दे० 'गर्भिणी'।

गर्भिण्यवेक्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुमारभृत्य। बालचिकित्साशास्त्र। गर्भिणीपरिचर्या। (Midwifery)। (त्रिका०)।

गर्भी (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जियापोता। पुत्रजीव वृक्ष। (वै० निघ०)।

गर्भोपाकणिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं] साँठी। षष्ठिक धान्य। वह धान जो ६० दिनों में पक जाता है। (रा० नि० व० १६)।

गर्भोदक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आवी। गर्भरक्षार्थ जल जो गर्भकोष में रहता है। (अं०) अम्नियोटिक फ्लुइड (Amniotic Fluid)

गर्भोत्पादक योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गर्भोत्पत्ति में सहायक योग। यथा—(१) लक्ष्मणा और चक्राङ्गा (सुदर्शन या नागरमोथा)—इन्हें पुष्पनक्षत्र में उखाड़कर इनकी जड़ कन्या के हाथ से पीसकर गोदुग्ध के साथ ऋतुकाल में पान करने से पुत्रकी उत्पत्ति होती है। (२) स्वर्ण, रजत और ताम्रचूर्ण उचित मात्रा में घृतयुक्त पान करने से

गर्भस्थापन होता है। (३) स्वर्ण, रजत और लोह—इन्हें अग्नि में तपाकर ८ तोला गो दुग्ध वा दही अथवा जल में पुष्यनक्षत्र में पान करने से पुत्र उत्पन्न होता है। (४) यदि गर्भिणी स्त्री सगर्भावस्था में पलाशपत्र गोदुग्ध में प्रतिदिन पान करती रहे तो सुन्दर स्वरूपवान् पुत्र की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त फलकल्याणघृत, सोमघृत, कुमारकल्पद्रुमघृत पान करने से सुन्दर दीर्घायुपुत्र उत्पन्न होते हैं। इन्हें यथास्थान देखो।

गर्भोत्पादक यज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० 'पुत्रेष्ठि-यज्ञ'।

गर्भोत्पादन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्भ उत्पन्नकारक कर्म।

गर्भोत्पाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रसवकालीन उन्माद।

गर्भ—संज्ञा पुं० [फा०] पहाड़ी भेड़। वनमेष।

गर्भज—संज्ञा पुं० [फा०] कलौजी। उपकुञ्चिका। मगरैला। (मु० आ०)।

गर्भाजदह—संज्ञा पुं० [फा०] आतपदग्ध। लू का मारा हुआ व्यक्ति। गरमी का मारा हुआ।

गर्मा—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मान जो ३ दिरम गर्मना—, [,,] वा १ माशा के बराबर होता है।

गर्माबः—संज्ञा पुं० [फा०] किंचिदुष्णस्तानजल। गरम हम्माम। गरम गुसल।

गर्मीदानः—संज्ञा पुं० [फा०] ग्रीष्मकालीन क्षुद्रपिटिका। अम्होरी। जावरसिन्धुः। हसफः। बसुर सूकी। अम्हो-रियाँ। (अं०) प्रिकलीहीट (Prickly-heat)।

गम्मुच्छद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लवणतृण।

गम्मुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मडुआ। (हिं०)

गम्मोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जरड़ि। (मं०)

गम्मोटि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोड़ा लवण तृण। (सं०)

गम्मुच्छद। गुण—मधुर, शीतल, दाहनाशक, रक्त दोषघ्न, रुचिकारक गाय, ह्यागी इत्यादि का दुग्ध-वर्धक तथा सारक है। (रा० नि० व० ८; र० मा०)।

गम्मुत—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) तृणधान्य विशेष। (वं०) गड़गड़, मयना। (२) नल। नरकट। (३) सोना। स्वर्ण (मे०; अम०)।

गर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) बली। सिकुड़न। भुर्री। चुर्स। शिकन। (अं०) रिङ्किल (Wrinkle)।

(२) अबुंद। रसीली।

गरबाली—संज्ञा स्त्री० [अ०] चलनीतुल्य छिद्रयुक्त।

गर्वर—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० 'गर्वरात'] गण्डूष द्रव्य। कुल्ली की दवा।

गर्वालुक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पतालतुम्बी। जो दीमकों के बिल में होती है।

गर्वालावू—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गरुड़वल्ली। पताल गह्वी। फरीद बूटी। पानी जमा।

गल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कंठ। गला। (रा० नि० व० १८)। गले का मुखकुहर। श्रीवा के सामने का भाग। (च० अनंगरंग)। (२) गन्धाविरोजा। सज्ज-रस। (वं०) छूतो। (मे०)। (३) गड़क। मछली। (श० र०)।

संज्ञा पुं० [फा०] काँक। कङ्गु धान्य। कँगुनी।

गलक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गड़क मत्स्य। मछली भेद। (श० र०)।

गलक—संज्ञा पुं० [अ०] अलका जिसका पौधा कबर के पौधे के समान तथा शाखा एवं पत्तियाँ गोल होती हैं। दे० 'अलका'।

गलकम्बल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रास्ना। (२) गोगलस्थित कम्बलाकृति मांसवृद्धि। (अम०)।

गलका—संज्ञा स्त्री० [दे०] अपची। अपचा। व्रण भेद।

गलका—संज्ञा पुं० [अ०] (१) करील। दे० 'अलका'।

गलक्री—संज्ञा स्त्री० [अ०] (२) तरखशकून। (मं० अ०, मो० आ०)।

गलकील—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलगुण्डी नाम का गल-रोग। (वै० निघ०)।

गलकुल—संज्ञा पुं० [अ०] महाशैबी।

गलकोण्डा—संज्ञा पुं० [ते०] लाल मिर्च। मिरचा।

गलकोषप्रदाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वरयन्त्रशोथ। (अं०) ले रिङ्गाइटिस (Laryngitis)।

गलगड़—संज्ञा पुं० [ते०] भाँगारा, (डाइमांक भ० २, पृ० २६६)।

गलगड़चेट्टु—संज्ञा पुं० [ते०] दे० 'गलगड़'।

गलगोजा—संज्ञा पुं० [मं०] चिलगोजा।

गलगसिया—संज्ञा स्त्री० [वं०] गुमा, द्रोणपुष्पी।

गलगण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वह मर्यादित श्लोथ जो वृषणतुल्य गले में लटकता है, चाहे वह बड़ा हो या छोटा 'गलगण्ड' कहलाता है। (सुश्रुत)। पर्याय—(वं०) गरगण्ड; (हिं०) घेघा; (पं०) गिल्लड़, गिलहड़; (अं०) ग्वाइटर (Goiter); (अ०) गरं, गोतर; (अं०) ब्रांक्कोसील (Bronchocele)।

भेद—(१) वातज, (२) कफज और (३) मेदोज।

आधुनिक भेद—(१) पैरच्छीमेटस ग्वाइटर (Parachymatous Goiter), (२) कोल्लाइड ग्वाइटर (Colloid Goiter) (३) सिस्टिक ग्वाइटर (Cystic Goiter), (४) हीमोरेजिक ग्वाइटर (Haemorrhagic Goiter), (५) फाइब्रस ग्वाइटर (Fibrous Goiter)। निदान—

प्रवृद्ध वात और कफ तथा भेद मन्था का आश्रय ग्रहण-

कर गले में क्रमशः निज लक्षणों से युक्त वातज, कफज तथा मेदोज गण्ड उत्पन्न करते हैं, इसको 'गलगण्ड' कहते हैं। (मुश्रुत नि० ११ अ०)।

आधुनिक चिकित्सकों के अनुसार इस रोग का वास्तविक कारण अभी तक अज्ञात है। कुछ शास्त्रज्ञों के विचार से यह दूषित खाद्यपेय पदार्थों के सेवन से जिनमें आयोडीन की कमी होती है अथवा जिनमें जीवनीय द्रव्य ए० बी० वा फास्फेट का अभाव होता है, इनके सेवन से अथवा दूषित वनस्पतियाँ जिनमें गलगण्डोत्पादक जीवाणु वर्तमान रहते हैं, उनके सेवन से यह रोग उत्पन्न होता है।

इस रोग में थायरॉइड (Thyroid) ग्रन्थि की स्थायी अतिवृद्धि होती है। यह ग्रन्थि ग्रीवा में टेंटुवे के सामने तथा उभय पार्श्व में होती है। यह ग्रन्थि आयोडीन को ग्रहण कर उससे थायरॉक्सिन (Thyroixne) नामक द्रव निर्माण करती है। यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, बाल्यावस्था में शरीर की वृद्धि तथा साधारणतः आहारपरिवर्तन का नियन्त्रण करती है। दूध, अण्डा, पलाण्डु, मूली इत्यादि खाद्यपेय द्रव्यों में जिसमें नैलिन (Iodine) नामक रासायनिक पदार्थ होता है उससे इस ग्रन्थि का अधिक सम्बन्ध है।

नैलिका के अभाव से शरीर में स्थूलता की वृद्धि होती है और इसकी अधिकता से शरीर में दुर्बलता उत्पन्न होती है। शरीर के अन्य अंगों की अपेक्षया यह ग्रन्थि स्वयं निज द्रव्य की न्यूनाधिकता से अधिक प्रभावित होती है। जब खाद्यपेय द्रव्यों में सदैव नैलिका (Indine) की अल्पता होती है अथवा मेद (चर्बी) की अधिकता, खटिका की अधिकता, जीवद्रव्यों की अल्पता, आन्त्र-प्रदेश में जीवाणुओं की उपस्थिति से द्रव्यों में उचित मात्रा में नैलिका उपस्थित होने पर भी उसका उचित शोषण नहीं होता। ऐसी अवस्था में इस ग्रन्थि में थायो-रॉक्सिन नामक पदार्थ का यथोचित मात्रा में निर्माण नहीं होता। इसका सर्वप्रथम प्रभाव स्वयं ग्रन्थि के ऊपर प्राप्त होकर वह स्थायी रूप से बढ़ जाती है।

भेदों के लक्षण—

(१) वातजगलगण्ड के लक्षण—यह गलगण्ड पीड़ा-युक्त, कृष्णसिराओं से व्याप्त, कृष्ण वा किञ्चित् रक्तवर्ण, कुछ काल के पश्चात् बढ़ने पर मेदयुक्त होने से अति स्निग्ध और वेदनारहित, स्पर्श में कर्कश, देर में वर्धनशील, पाकविरहित और कभी-कभी आगन्तु कारणों से इसमें पाक होता है। इससे पीडित व्यक्ति के मुख में अरुचि होती है तथा तालु और गले में शुष्कता होती है।

चिकित्सा—सहिजन के बीज, काली सरसों, सन के बीज, अलसी और मूली के बीज समान भाग में ग्रहण कर तक्र में पीसकर गलगण्ड पर लेप करने से गलगण्ड,

गण्डमाला और दारुणग्रन्थि तत्काल नष्ट होती है और गल जाती है।

(२) कफज गलगण्ड के लक्षण—कफात्मक गलगण्ड निश्चल, त्वचा के वर्ण का, अल्पपीड़ायुक्त, अधिक कण्डू-युक्त, स्पर्श में शीतल, एवं स्थूल होता है और दीर्घकाल में बढ़ता है। पकजाने पर अल्प पीड़ा होती है, रोगी के मुँह में मीठापन होता है तथा गला और तालु कफ से लिप्त रहते हैं। (मुश्रुत; भा०)।

नोट—यह कदाचित् पकता है और पाककाल में मन्द पीड़ा होती है और पाककाल में पीड़ा नहीं होती। (आतङ्कदर्पण)

चिकित्सा—इसमें कफनाशक द्रव्यों का लेप तथा पान करना उचित है। कड़वी तुम्बी के सुपक फल जल भर कर ७ दिन तक रख छोड़ें। पुनः इसमें से १ तोला पानार्थ देवें तो तत्काल लाभ होता है। इस पर कफघ्न पथ्य ग्रहण करना उचित है।

प्रेलेप—केला की जड़, हँसा की जड़ की छाल और सठों जल में पीसकर उष्ण लेप करने से लाभ होता है।

(३) मेदोजगलगण्ड के लक्षण—मेदोजगलगण्ड स्निग्ध, मृदु, पाण्डुवर्ण का, अनिष्ठगन्धयुक्त, पीडारहित, अत्यन्त कण्डूयुक्त, तुम्बी के समान लटकनेवाला, मूल में पतला और शरीर के सदृश घटने-बढ़नेवाला होता है। इससे पीडित व्यक्ति का मुख चिकना होता है और सदैव अस्पष्ट शब्द करता है।

चिकित्सा—इसमें समस्त उपाय मोदोघ्न किया जाता है। इनमें पछना लगाकर उस पर गण्डगोपाल नामक कीड़े का पानी निकाल कर लेप करें। यह अनुभूत है। (भा०)। पानार्थ कालीमधुमक्खी का मधु देवें।

डॉक्टर की चिकित्सा—आयोडीन का सिरान्तर अन्तःश्लेप करने से प्रत्येक प्रकार का गलगण्ड, गण्डमाला तथा ग्रन्थि का नाश होता है।

असाध्यता—अत्यन्त कठिनतापूर्वक स्वासग्रहण करने-वाले, दुर्बल, १ वर्ष से अधिक पुरातन, अरुचि से पीडित, क्षीणकाय और स्वरभेद से पीडित व्यक्ति का गलगण्ड असाध्य होता है। (२) पक्षी विशेष। (बं) हाड़गिल।

गलगण्डविनाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गिल्लड़ पत्ता। गिल्हड़पात। गलहर का पत्ता।

गलगल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का खट्टा नीबू। (२) एक प्रकार का पक्षी। (३) पीली कपास (मोरजापुर)। (ले०) कौक्लोस्परमम् गासिपियम्।

गलगला—संज्ञा स्त्री० [उ० प० भा, झूँसी] फुलरवा।

गलगार चेदु—संज्ञा पुं० [ते०] भाँगरा। (डाइमक भ० २ पृ० २६६)।

गलगोजा—संज्ञा पुं० [म०] चिलगोजा।

गल गोडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } एक प्रकार का
 गलगोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } सविष कीट जिस-
 गलगोली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } के दंशन से दाह,
 शोफ, स्वेद होता है। (च०; सु० कल्प ४ अ०)।
 गलगन्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कौआ। गलगुण्डी।
 (अ०) टांसिल (Tonsil)।
 गलगन्थि-शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौआ की सूजन। घाँटी
 का बढ़ना। गलान्तरगन्थिशोथ। (अ०) टांसिलायटिस
 (Tonsillitis)।
 गलग्रह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गलरोगविशेष। गल-
 धरा। यह कफ के प्रकोप से उत्पन्न होता है। गलान्तर
 में स्थिरशोफ होता है। यह शोफ शीघ्र उत्पन्न होता है।
 (च० सू० १८ अ०)। (२) घोंघों के गले में उत्पन्न होने-
 वाला गलरोग। (ज० द० २९ अ०)। (३) मत्स्य
 घण्ट। साछेर घण्ट (वं०)।
 गलग्राह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मगर। मकर नाम का
 जलजन्तु। (वै० निघ०)।
 गलग्रसिया—संज्ञा स्त्री० [वं०] गूम। द्रोणपुष्पी।
 गलग्रीभा—संज्ञा स्त्री० [गु०]। गोभी। गोजिह्वा।
 गलङ्गतोडी—संज्ञा स्त्री० [पं०] चिचिण्डा। (इं० मे० मे०)।
 गलकुण्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुण्ठ का निकृष्ट भेद।
 महाकुण्ठ।
 गलकुण्ठारिरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलकुण्ठ में प्रयुक्त
 रसयोग।
 द्रव्य तथा निर्माण-विधि—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र
 भस्म, लोह भस्म, शुद्ध गूगुल, चित्रकमूल, शुद्ध शिलाजीत,
 कुचला, वच (पाठान्तर से वच के स्थान में त्रिफला),
 प्रत्येक समान भाग और अभ्रक भस्म ४ भाग, करंज बीज
 ४ भाग यथाविधि चूर्णकर घृत और मधु द्वारा मर्दनकर
 १-१ माशा की गोलियाँ बनाएँ गुण तथा सेवन-विधि—
 इसको नित्य १ तोला सेवन करें। लाल चावलों का भात,
 गोदुग्ध और मधु पथ्यरूप से सेवन करने से जिसके कान,
 अंगुली तथा नाक गल गई हों वह व्यक्ति भी इसके
 प्रभाव से कामदेवतुल्य कान्तिवान् हो जाता है।
 त्याज्यवस्तु—इसके सेवन करनेवाले व्यक्ति को स्त्री-
 समागम कदापि न करना चाहिए। यदि कुण्ठ दृढमूल
 का हो तो इसके ऊपर जल तथा भात का पथ्य दें।
 (भा० म० कुण्ठ० चि०)। (र० सा० सं०)।
 गलनलक—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] स्वरयन्त्र वा श्वासनल।
 (सु० शा० ५-२६ डल्लण)।
 गलनलकास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कण्ठ की हड्डी और
 तरुणास्थियाँ। (सु० शा० ५-२६ डल्लण)।
 गलन्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्करी, आलु,
 आरू। (२) झारी, वसुधारा, गडुआ।

गलकुल—संज्ञा पुं० [अ०] महाशैबी।
 गलबाह्य—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] ग्रीवा (गरदन) के सामने
 का भाग। (च० सू० १८, २१)।
 गलभंग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वरभङ्ग। स्वरग्रह।
 गलमणि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गले का कौआ। (सु० शा०
 ५-२६ डल्लण)।
 गलमार्क—संज्ञा पुं० [गोआ (Galmark)] जंगली एरण्ड।
 वन एरण्ड।
 गलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलविवर। (वा० ७-११-
 ४८)।
 गलमेखला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गलसूत्र। सूत्राली।
 गले में धारण करने का धागा। (हारा०)।
 गलमेण्डोरा—संज्ञा स्त्री० [सि०] शिगार।
 गलयः—संज्ञा पुं० [अ०] पक्षी भेद। सबजक (फा०)।
 गलरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्ठगत १८ प्रकार
 गलरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] के रोग जिनमें ९
 रोग तालुप्रदेश में होते हैं। यथा—(१) गल गुण्डी,
 (२) तुण्डिकेरी, (३) अभ्रूष, (४) कच्छप, (५)
 ताल्वर्बुद, (६) मांस संघात, (७) तालुपुप्पुट, (८)
 तालुशोष और (९) तालुपाक।
 गलगतरोग—५ प्रकार की रोहिणी, (६) कण्ठशालूक,
 (७) अधिजिह्व, (८) वलय, (९) बलास, (१०) एक
 वृन्द, (११) वृन्द, (१२) शतघ्नी, (१३) गिलायु,
 (१४) कण्ठविद्रधि, (१५) गलीघ, (१६) स्वरघ्न,
 (१७) मांसतान और (१८) विदारो। इनके लक्षणादि
 यथा स्थान देखें।
 गलरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कण्ठगत रोग
 विशेष। पर्याय—(सं०) रोहिणी; (अ०) डिफ्थीरिक
 इन्फ्लेमेशन ऑफ दी थ्रोट (Diphtheric inflammation
 of the throat); (अ०) खुनाक। भेद—(१) वातज
 रोहिणी, (२) पित्तज रोहिणी, (३) कफज रोहिणी,
 (४) त्रिदोषज रोहिणी और (५) रक्तज रोहिणी।
 लक्षण—(१) वातज रोहिणी—जिह्वा के चारों ओर
 अत्यन्त वेदना से युक्त गले को रोकनेवाले मांस के अंकुर
 होते हैं और इनमें वातसम्बन्धी स्तब्धता इत्यादि लक्षण
 भी होते हैं।
 चिकित्सा—वातजरोहिणी में रक्तमोक्षण के पश्चात्
 सेंधालवण आदि का प्रतिसारण करें और सुखोष्ण स्नेह
 का गण्डूष धारण कराएँ। इस प्रकार पुनः पुनः कुल्ली
 करने से उपकार होता है।
 (२) पित्तज रोहिणी के लक्षण—गले में मांसाकुर शीघ्र
 उत्पन्न होते हैं और तत्काल ही दाह उत्पन्न होता है
 तथा ज्वर का अत्यन्त तीव्र वेग होता है। यह शीघ्र-
 पाकी होती है।

चिकित्सा—इसमें शीघ्र ही रक्तमोक्षण के पश्चात् फूल-प्रियङ्गु के क्वाथ में मधु व मिश्री मिलाकर प्रतिसारण करे और मुनक्का तथा फालसा के शीतकषाय से गण्डूष कराएँ।

(३) कफज रोहिणी के लक्षण—यह गले की शिराओं को अवरोधित करती है। गले में मांस के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं। यह मन्दपाकी होती है। अंकुरों में स्थिरता तथा भारीपन होता है।

चिकित्सा—इसमें त्रिकुटा और गृहधूम के चूर्ण से प्रतिसारण करें और श्वेत अपराजिता, वायविडंग, जमालगोटा—इनके कल्क द्वारा तैल में संधालवण मिश्रित कर नस्य देवें और उक्त द्रव्यों के क्वाथ से कुल्ली कराएँ।

(४) त्रिदोषज के लक्षण—त्रिदोषोत्थ रोहिणी में गले में उपर्युक्त तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं। इसमें गम्भीर पाक होता है और कठिनापूर्वक इसके अंकुर उत्पन्न होते हैं तथा कठिनापूर्वक शान्त भी होते हैं।

चिकित्सा—इसमें उपर्युक्त मिश्रित द्रव्यों से चिकित्सा करें। यह प्रायः साध्य नहीं होती।

रक्तज रोहिणी के लक्षण—इसमें गले में स्फोट उत्पन्न होते हैं और समस्त लक्षण पित्तज रोहिणीतुल्य होते हैं। यह साध्य है।

चिकित्सा—पित्तज रोहिणीतुल्य करें।

वक्तव्य—आधुनिक चिकित्साविज्ञान के अनुसार इस रोग को उत्पन्न करनेवाला एक जीवाणु है जिसको अंग्रेजी में बैसीलस डिफ्थीरिया (B. diphtheria) कहते हैं। इसमें गलप्रदेश में एक दूषित झिल्ली उत्पन्न हो जाती है जो स्वरयंत्र और नासा में व्याप्त होकर श्वासावरोध उत्पन्न करती है। इस रोग के रोगियों की प्रायः मृत्यु होती है। इसमें ज्वरतापक्रम १०४ तक होता है। नाड़ी तीव्रगामी होती है। हृदय निर्वल हो जाता है। यदि रोगारम्भ में चिकित्सा न की जाय तो श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है। इसमें पिया हुआ जल मुख वा नासिका द्वारा प्रायः बहिर्गत हो जाता है। रोगनिर्मुक्त हो जाने पर भी अनेक प्रकार के उपद्रवों से रोगी दुःखित रहता है। इसके सर्वप्रधान उपद्रव—हृदयदौर्बल्य और पेशीघात होते हैं और वातज उपद्रव भी होते हैं। तालु और ग्रसनिका की पेशियों का घात होने के कारण स्वर अनुनासिक होता है। जलादि के निगलने में कठिना होता है। नेत्रों की पेशियों का घात होने से द्विधादृष्टि हो जाती है। प्रायः पक्षाघात (Hemiplegia) और पङ्गुता (Paraplegia) भी हो जाती है। रोगी के गले की झिल्ली में रोगोत्पादक जीवाणु विद्यमान रहते हैं। यह प्रायः खांसने, बोलने, छींकने के समय थूक और दूषित झिल्ली में सूक्ष्मकणों से युक्त बहिर्गत होते हैं।

फा०—८३

रोगी के निकटवर्ती व्यक्तियों के गले में वायु के साथ मिलकर प्रवेश करते हैं और रोगोत्पन्न करते हैं। इस रोग के रोगी प्रायः बालक होते हैं। यह संक्रामक रोग है। रोग का संक्रमण प्रायः—पेन्सिल, रूमाल, तौलिया, ग्लास इत्यादि के द्वारा होता है। जिससे मुख का सम्बन्ध होता है।

डॉक्टरों की चिकित्सा—पेन्सिलीन, ऐन्टिडिफ्थीरिआसिरम इत्यादि का सूचीवेध है।

होमियोपैथी चिकित्सा—एलान्थस (Ailanthus) ३-६ शक्ति।

नोट—गलरोहिणी (खुनाक) को अन्य भेद के लिये, दे० 'जुबहा'।

गल विद्रधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] गलरोगभेद। कण्ठ-विद्रधि।

लक्षण—त्रिदोषजन्य एक प्रकार का शोथ उत्पन्न होकर समग्र गले में व्याप्त हो जाता है और पीड़ा होती है। यह त्रिदोषजन्यविद्रधितुल्य होता है। (सु० नि० १६ अ०; भा० मु० रो० अधि०)।

चिकित्सा—हल्दी, दारुहल्दी, लोध समान भाग में ग्रहणकर मधु द्वारा गोलियाँ बनाएँ। इनको मुख में धारणकर शनैः शनैः चूसने से उपकार होता है।

गलव्रत—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मोर। मयूर पक्षी। (त्रिका०)।

गलशालूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े का एक प्रकार का मुखरोग। (ज० द० व० २९)।

गलशुण्डिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) गलमणि।

गलशुण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (२) गलमणि।
कोआ। (Uvula)। (च० शा० ७-११; सु० नि० १६-४०)। (२) तालुगत एक प्रकार का रोग।

लक्षण—कफ और रुधिर के प्रकोप से तालु की जड़ में बड़ी हुई लम्बी, वायु से भरी हुई मशक तुल्य और तृषा, कास तथा श्वास उत्पन्न करनेवाली सूजन को 'गलशुण्डी' कहते। युह्युला। -४० (Elongated uvula)। (सु० नि० १६)। (अ०) इलांगेटेड

चिकित्सा—दारुहल्दी, तज, कुड़ा की छाल, अमल-तास की छाल—इनके काथ से गण्डूष धारण करने से उपकार होता है।

(३) अलिजिहिका, गलशुण्डी; (ब०) गलार शुङ्घि; (अ०) दी युह्युला (The uvula)। (रा० नि० व० १८, च० शा० ७ अ०)। **पर्याय**—(सं०) सुधास्रवा, घण्टिका, लम्बिका, (हे०), प्रतिजिहिका, माध्वी, अलिजिहिका, रसनाकाकु। (शब्द २०)।

गलशोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलप्रदाह। एक प्रकार की सूजन जो गले में उत्पन्न होती है। **पर्याय**—(ब०)

गलाफोला; (सं०) गलश्वयथु। (भैष०)। चिकित्सा—
देवदारु, सोंठ, चव्य, चित्रक—इन्हें पीसकर प्रलेप करने
से लाभ होता है। (भैष० ज्वर० चि०)।
गलसन्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] गलमार्ग और मुख-
कुहर की द्वाराक्ष नि। (च० चि० २१-४८)।
गलस्तन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गलगण्ड रोग। (रा०
नि० व० २०)। (२) बकरी की ललरी। छाग
गलस्तन। (वै० निष०)।
गलस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बकरी। छाग।
(हे० च०)।
गलहर—संज्ञा पुं० [सं०] गलहर का पत्ता। (अं०)
स्वीटटैंगल (Sweet-Tangle)। (ले०) पारफाइरा
वलैरिस (ParphyraVulgaris), लेमिनेरिआसैकिरीना
(Laminaria-Sacecharina)।
गलहर का पत्ता—संज्ञा पुं० [सं० गलहर+ हिं० का
+पत्ता=पत्र] दे० 'गलहर'।
गलडू—संज्ञा पुं० [कुमायूँ] (पं०) बनसीर।
गला—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] पानी का लजालू। अलम्बुषा।
(भा० पू०)। (वं०) फूलशोला।
संज्ञा पुं० [सं० गल] कंठ।
गलाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का गलरोग।
दे० 'गलरोहिणी'।
गलानिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गङ्गाटी मत्स्य। झिंगा
मछली। (वं०) गल्लाचिगदी माछ।
गलान्तरग्रन्थिद्रण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गले में होनेवाली
ग्रन्थि जो फटकर व्रणरूप में परिणत हो जाती है।
(अं०) किन्सो (Quincy)।
गलान्तर ग्रन्थि शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्ठशालूक।
टान्सोलायटिज (Tonsillitis)।
गलायु (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलरोगभेद।
लक्षण—कफ-रक्त के प्रकोप से गले में आमले की गुठली
तुल्य स्थिर, अल्पवेदनायुक्त ग्रन्थि होती है। इसके
अवरोध से खाया हुआ भोजन गले के नीचे नहीं
उतरता। (गले में मांसकील उत्पन्न होता है)।
(अष्टाङ्गहृदय उ० २१ अ०)।
चिकित्सा—यह शलक्रिया द्वारा शान्त होता है।
(भा०)। सुश्रुत में इसको गिलायु नाम से उल्लेख किया
गया है। (नि० १६ अ०)।
गलार—संज्ञा पुं० [देश०] (१) वृक्ष भेद। (२) मैना पक्षी।
शारिका।
गलारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गलगलिया पक्षी।
गलाबुंद—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का गलरोग।
लक्षण—वातादि दोष द्वारा जिह्वा के अन्तिम भाग में
कंठप्रदेश में पाकरहित, कठोर, वेदनारहित रक्त—

वर्ण की सृजन उत्पन्न होती है, इसको गलाबुंद कहते हैं।
(वा० उ० २१ अ०)।
चिकित्सा—यह कण्ठसाध्य है। दारुहल्दी, रसौत,
चव्य, सोंठ, पीपर और मरिच इनको। समान भाग में
ग्रहण कर क्वाथ करें और इसका पुनः-पुनः गण्डूष
धारण करें।
गलाविल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलानिक मत्स्य। गंगाटी।
झिंगा। (वं०) गल्लाचिगदी।
गलाश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गले में उत्पन्न होने
वाली पथरी। (अ०) हिसातुल बलऊम। (अं०)
फेरिञ्जोलिथ ((Pharyngolith))।
गलाक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गल्लोद्वेष्टन। गले में खिंचाव
होना। पर्याय—(अ०) तशानुजुल बलऊम, इस्तिनाकुल्
बलऊम; (अं०) फेरिञ्जोस्पैज्म (Pharyngo-spasm)
गलत्कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह कुष्ठ जिसमें हाथ-
पाँव की अंगुलियाँ, नासिका इत्यादि गल जाती हैं। महा-
कुष्ठ।
गलत्कुष्ठारिरस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलितकुष्ठ में
प्रयुक्त रसयोग। दे० 'गलत्कुष्ठारिरस'। (भा०
कुष्ठ चि०)।
गलित-दन्त—वि० [सं० स्त्री०] दन्तहीन। वह रोग जिसमें
दन्ताच्छादक झिल्लियाँ तथा दन्तस्थ मांस गल गये हों।
गलिमूल—संज्ञा पुं० [] अरुई। घुँइया।
गलियून—संज्ञा पुं० [अ०] मोरफल। मौली।
गली—संज्ञा स्त्री० [गु०] नील। (डाइमाँक भ० १, पृ०
४०६)।
गलीजन—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली पुदिना। अरण्य रोचनी।
फूदनज।
गलीजन-अगरिया—संज्ञा पुं० [यू०, सु०] गलीज=रेहा+
अगरिया=पर्वत, कोह। मिशकतरामशी। पहाड़ी पुदिना।
गलीबाज (ज)—संज्ञा पुं० [फा०] हृदाक। चीलपक्षी।
गलु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मणि विशेष। (महाभारत)।
गलू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पाषाणभेद। एक प्रकार का
मूल्यवान् पत्थर। मणि विशेष।
गलूफन—संज्ञा पुं० [यू०] मामीशा। (लु० क०)।
गलूफरिया—संज्ञा पुं० [यू०] अस्तुस्सूस। मुलेठी।
गलूफस—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार का पक्षी।
गलेण्ड—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मर्कटपक्षी। (त्रिका०)।
(२) गलगण्ड रोग। (रा० नि० व० २०)।
गलेस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्रीछाग। बकरी
जिसके गले में ललरी होती है। (रा०)।
गलेसर—संज्ञा स्त्री० [?] कृष्णसारिवा। कालीसर। श्याम
लता।
गलेडु—संज्ञा पुं० [गु०] कुनरु। कन्दूरी। बिम्बा।

गलो—संज्ञा पुं० [गु०] गिलोय । गुडूची । अमृता ।

गलोठ—संज्ञा पुं० [पं०] (अ०) खप्पर कड़ु, गायला;

पर्याय—(ता०) बच्छा-लिमण्डा; (ते०) भाँचिमण्डा;
(ले०) सेरोपीजिआ बलबोसा (Ceropegia-Bulbosa)
सेरापीजिआ एक्युमिनेटा (C. Acuminata), सेरोपी-
जिआ टुबेरोसा (C. Tuberosa) ।

अर्वादि कुल (Family: Asclepiadeae) ।

भेद—इसके तीन भेद हैं—(१) प्रमुख गलट (Bulbo-
sa proper); (२) (C. Esculenta); (३) (C.
Lushii) ।

उद्भवस्थान—पश्चिमी भारत, पंजाब, प्रयाग, ट्रावङ्कोर
इत्यादि ।

उपयोगी अंग—कंद ।

रासायनिक-संगठन—इसके कंद में शर्करा, गोधूम सत्व
(Starch), निर्यास, वसा, सौत्रिक भाग, अंडलाल और
भस्म तथा ९.४ प्रतिशत कान्तपाषाण (Manganese) ।
इसका तिक्तशार सुरासार, जल तथा ईथर में द्रवीभूत
होता है ।

गुण-कर्म—इसका कंद तथा इसके अन्य भेद पाचक, बल-
प्रद, अत्यन्त पुष्टिवर्धक हैं । उपयोग—इसके उपयोग से शुक्र
दोष, प्रदर आदि का नाश होता है । इसका खण्ड निर्माण-
कर सेवन करने से शुक्र की वृद्धि होती है ।

गलोना—संज्ञा पुं० [देश०] सुरमा का एक प्रकार है ।

गलोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रोचमान अश्व । एक
प्रकार का घोड़ा । (त्रिका०) ।

गलौध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का गलरोग ।
किङ्की (Oiousy) (अं०) ।

लक्षण—इसमें तीव्रज्वर होता है । अन्न-जल गले के
नीचे नहीं उतरता, कफ तथा रक्तजन्य गले में शोथ
होता है, उदान वायु का अवरोध होता है और श्वास
ग्रहण में कष्ट होता है । (सु० नि० १६ अ०) । कण्ठप्रदेश
के भीतर और बाहर तथा कण्ठमार्ग का अर्गलातुल्य जो
अत्यन्त भयानक शोथ होता है, उसको 'गलौध' कहते हैं ।
इस रोग में मस्तक में भारीपन, तन्द्रा, लालास्राव और
ज्वर उपस्थित होते हैं । (वा० उ० २१ अ०) ।

चिकित्सा—खदिर, दाहहल्दी, लोघ, मुलहठी, हल्दी,
त्रिफला, मजीठ, जटामांसी, लौंग, खस, नेत्रबाला, पतंग,
गेरू, रक्तचन्दन, सफेदचन्दन, लाख, रसौत, कायफल,
चातुर्जात, अगर, मोथा, बटाङ्कुर, धातक पुष्प, अगर,
कपूर, जावित्री, जायफल, लौंग और कंकोल । प्रत्येक १-१
पल ग्रहण कर सूक्ष्मचूर्ण करें और देशी कपूर १ कुडव मिश्रित
कर खदिर के काथ से मर्दन कर मटरप्रमाण की गोलियाँ
बनाएँ । इसके उपयोग से मुखगत रोग का नाश होता है ।

गलक्ता (गलक्ती)—संज्ञा स्त्री० [अ० अल्कः] एक प्रकार

की वनस्पति है । इसका क्षुप कवरतुल्य और शाख
तथा पत्र गोल होते हैं । (म० अ०; मो० आ०) ।

गलबः—संज्ञा पुं० [अ०] बलात्कार । शक्ति । जोर । प्रकोप ।

गल्यः—संज्ञा पुं० [अ०] (फा०) सबजक । एक प्रकार का
पक्षी है ।

गल्लयान—संज्ञा पुं० [अ०] } आसवन, जोश, उबाल, उफान ।

गल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] } (अं०) फर्मेंटेशन (Ferm-
entation) ।

गल्ल (क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गण्ड । गाल । कपोल ।
(हे० च०) । (सु० चि० १५-१२; शा० ५-४) ।

गल्ल—संज्ञा पुं० [जानसा] परमियोक । म्युसाप । (मुटिया) ।
(ले०) टैक्सस बक्केटा (T. Baccata) ।

गल्ल चातुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उपधान विशेष ।
(बं०) गालबालिश । (जटा०) ।

गल्ला—संज्ञा पुं० (१) अनाज । अन्न । (२) वेतस भेद ।

गल्लिर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उन्मन्थ नामक कर्णपालीगत
रोग । दे० 'उन्मन्थ' ।

गल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'गल्लयान' ।

गल्लु—संज्ञा पुं० [उ० प० भा०] धुनेर ।

गल्वर्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इन्द्रनील मणी ।
वैद्यमणी । (त्रिका०) (२) सुरापानपात्र । चषक ।
शराब पीने की प्याली ।

गल्लसमः—संज्ञा पुं० [अ०] घण्टिका, गलघण्टिका, गल-
शुण्डिका, अलिजिह्विका, गलस्तम्भ । (अं०) यूहचुला
(Uvula), ऐण्टोरियर, एण्ड पोण्टोरियर पिलस ऑफ दी
पैलेट ((Anterior and Posterior Pillors of the
Paltate) ।

गवत—संज्ञा पुं० [म०] तृण । घास ।

गवतर (गोतर)—संज्ञा पुं० [अ०] गलगण्ड । दे० 'गूतर' ।

गवद—संज्ञा पुं० [द०] जबाद । गन्धमाज्जोर वीर्य । जुन्द-
वेदस्तर ।

गवय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलकम्बलशून्य गोसदृश कुलेचर
(कूलचर) पशु । पर्याय—(सं०) गोसदृश, गवालूक, वन-गौ,
बलभद्र, महागन्ध; (हि०) नीलगाय, वनरोझ ।

मांसगुण—बृंहण, बलवर्धक, वृष्य तथा रुचिकारक है ।
(रा० नि० व० १७) । स्निग्ध, मधुर, कासघ्न, विपाक में
मधुर तथा व्यवायवर्धक है । (सु० सू० ४६ अ०) ।

गवयी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोपत्नी । गाय । (बं०)
बूनोगाई । (रा० नि० व० १९) । पर्याय—(सं०) वन धेनु,
भिल्ल गधी; (हि०) वन रोझ, नील गाय भेद ।

गवयोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तवाखीर । तवक्षीर ।
(वै० निघ०) ।

गवराज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ा बैल । महावृष । (श०
च०) ।

गवरैया—संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक, चिड़ा। दे० 'गौरैया'।
गवल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) भैंस की सींघ। महिष-
शृङ्ग। (अम०)। (२) विष। (अ०)। (३) अरना
भैंसा। जंगली भैंसा। (हे० च०)।

गवा—संज्ञा पुं० [म०] रोझ। नीलगाय। वन गाय। (वृ०
नि० २०)

गवाची—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } एक प्रकार की
गवाछी—संज्ञा स्त्री० [गवाची] पापड़ा। } मछली है।
गवाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } पर्याय—(सं०)
पङ्कालमत्स्य। (ब०) पाँकाल माछ। (ले०) मैक्राग-
नैथस पैकेलस (Macroganthus Pancalus)। मांस
गुण—गुष्पाकी, अजीर्णकारक, श्लेष्मप्रकोपक है। (राज०
३ प०)।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'गवाची'।

गवातिचट्टु—संज्ञा पुं० [म०] गन्धतृण। गन्धेल।

गवात्यत्रिशिर मन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारदकर्म में
प्रयुक्त उक्त नाम का मन्त्र; यथा—'ॐ हसलक्षमल्ल वंस'।

गवादन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तृण। घास। (श० च०)।

गवादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इन्द्रायण। इन्द्र-
वाष्णीलता। (ब०) राखालशशा। (वै० निघ० अपस्मार
चि०)। (२) श्वेत अपराजिता। विष्णुक्रान्ता। (३)
अखरोट। आक्षोट वृक्ष। (वै० निघ०)। (४) नील
अपराजिता। कोयल। कृष्ण क्रान्ता। (रा० नि० व० ३)।

गवाधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] फोकी। (लु० क०)।

गवार—संज्ञा पुं० [राजपुताना] } धृत कुमारी। ग्वार।

गवारपाठा—संज्ञा पुं० [मेवाड़] } धीकुआर।

गवार पाठो—संज्ञा पुं० [गु०] }

गवारएलताई—संज्ञा पुं० [अफ०] आड़ू।

गवारिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] जवारिश। माजून भेद।

गवाल—संज्ञा पुं० [म०] धूम्रपत्र।

गवालु—संज्ञा पुं० [ते०] कौड़ी। कपदं।

गवालूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नील गाय। दे० 'गवय'।

गवाशाक—संज्ञा पुं० [?] स्वर्णशाक।

गवाषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाख। लाक्षा। (२०
मा०)।

गदाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गोखरू। गोक्षुरक।
(वै० निघ०)। (२) वातायन। (अम०)।

गवाक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अपराजिता। गवाक्षी।
(२० मा०)।

गवाक्षित—वि० [सं० त्रि०] निर्मित। विरचित। बनाया
गया। 'यैर्गवाक्षितमिदं शरीरम्' (भा०)।

गवाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शाखोट वृक्ष।
सिहोर। (ब०) श्याउड़ा गाछ। (रा० नि० व०
८)। (२) महाबला। (रा० नि० व० २३)। (३)

इन्द्रायण। इन्द्रवाष्णीलता। (ब०) राखाल शशा। (सु०
कल्प०, अ०)। (भा० म० १ भ० तन्द्रिकज्वर चि०)।
(४) बड़ा इन्द्रायण। गोडुम्बा। (ब०) राज गोमूक।
(च० सू० २ अ०)। (५) गोरख ककड़ी। गोरक्ष ककटी।
(सि० यो० कास चि०)। (६) अपराजिता। (प०
मु०। सु० सू० ३६ अ०)। (७) सफेद फूल का इन्द्रा-
यण। श्वेतपुष्प इन्द्रवाष्णी लता। (सु० सू० ३९ अ०
अधः संशमने)।

गविन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चविन। कोकड़ नामक विले-
शय मृग विशेष। (रा० नि० व० १९)।

गवी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गाय।

गवीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूत्रनलिकाद्वय जो वृक्क
से वस्ति पर्यंत जाती है। (अथर्व) मूत्रवहनाडी। (अ०)
हालिबैन; (अ०) यूरेटर (Ureter)।

गवीनीगत अश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मूत्रवहनाडीगत
अश्मरी (पथरी)। गवीनीस्थित शर्करा। मूत्रवहनाडी में
उत्पन्न शर्करा (पथरी)। (अ०) सैंड इन यूरेटर
(Sand in Ureter)। (अ०) हसातुलू हालिबैन।

गवीनीद्वार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मूत्रवहनाडी का द्वार।
(अ०) अरिफिस ऑफ दी यूरेटर (Orifice of the
Ureter)।

गवीनीमुखशोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मूत्रवहनाडी
के मुख की सूजन।

पर्याय—(अ०) इल्टिहाबुल् हौजुल्कुलियः। (अ०)
पायलायटिज (Pyelitis)। (२) वृक्कमुखशोथ। (अ०)
इल्टिहाबुल् कुलियः।

गवीनीशूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मूत्रप्रणालीगत वेदना।
मूत्रवहनाडी का शूल। पर्याय—(उर्दू) दर्द-हालिब।
(अ०) अल्मुल् हालिब। (अ०) यूरेटरॉल्लिआ।
(Ureteralgia)।

गवीनी-शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूत्रवहनाडीगत शोथ।
मूत्रप्रणाली में उत्पन्न शोथ (सूजन)। पर्याय—
(फा०, उर्दू) वर्म हालिब। (अ०) इल्टिहाबुल्हालिब।

गवीनी-शोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] गवीनीक्षय। मूत्र-
वहनाडी की शुष्कता। पित्तज गवीनीशोष।

गवीनीक्षय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गवीनी-शोष।

गवूर—संज्ञा पुं० [अ०]

गवूस—संज्ञा पुं० [अ०]

गवेड़ो—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गवेधुका। गरेडुआ। देव
धान्य।

गवेडु—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] धान्य विशेष। देवधान।
गवेधुक। (अम०)। (ब०) गडगड।

गवेडुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गवेधुका।

गवेधु(क)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गवेडु धान्य।

देवधान्य । (२) धुलुञ्च वृक्ष । (च० सू० २ अ०) ।
(३) गोरखधान । गोरक्षतण्डुल । (बं०) गोरक्ष
चाकुलिया । (च० द०; सि० यो० छद्दि चि० विष्णुतैल) ।
संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गेरू । गैरिक । (बं०) गिरि-
माटी । (रा० नि० व० १३) ।

गवेषुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गरेडुआ । गवेषुक ।
गवेडी । पर्याय—(हि०) गरेडुआ, गरहेडुआ, कौड-
याला, कसी, (सं०) गवेडु, गवेधु, कुण्ड (मे०); क्षुद्रा,
गोजिह्वा, गुन्द्र, गुल्म । (प०) । (च० सू० २ अ०) ।
(ले०) कोइक्स बार्बेटा (Coix barbata) ।

परिचय—बरसात में धान के खेतों में स्वयं उत्पन्न होने-
वाला एक प्रसिद्ध पौधा है । इसके पुष्प किंचित् रक्ताभ
होते हैं । बीज अत्यन्त चिकना कौडीतुल्य आकाशवर्ण के
होते हैं ।

गुण—किंचित् कटु, स्वादु, काश्यकारक तथा कफघ्न है ।
(भा० पू० १ भ०) ।

(२) नागवला । गंगेरन । गुलशकरी । (बं०)
गोरक्षचाकुल । (रा० नि० व० ४ । भेष० वा० व्या०
चि० स्वल्प विष्णु तैले) । (३) काशमूल । (वा० व्या०
शता० नारायण तेल) ।

गवेरिक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गेरू । गैरिक । (बं०)
गवेरुक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गिरिमाटी । (त्रिका०) ।

गवेशक—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गोरक्षीवृक्षा (श० च०) ।
गवेशिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०]

गव्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गाय का घी । गोघृत ।
(२) गोरोचन । (३) गाय का दही । गव्य दधि ।
(४) गाय का दूध । गो दुग्ध । (त्रिका०) ।

वि० [सं० त्रि०] गो सम्बन्धी ।

गव्य घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गव्यनवनीतोत्पन्न घृत ।
गाय का घी । (बं०) गाउया घी । दे० 'गाय' ।

गव्य-तक्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोदधि द्वारा प्रस्तुत तक्र
(छाँछ) । दे० 'गाय' ।

गव्यदधि—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोदुग्धजात दधि ।
गाय का दही । दे० 'गाय' ।

गव्य नवनीत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोदुग्धज नवनीत ।
गाय का मक्खन । दे० 'गाय' ।

गव्यमांस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोमांस । दे० 'गाय' ।
(सु० सू० ४६ अ०) ।

गव्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरोचन । (रा० नि० व०
१२) ।

गव्यूति—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) क्रोशद्वय ।
८००० हाथ । (१ क्रोश का परिमाण) ।

गशगशा—संज्ञा स्त्री० [ता०] अहिफेन । अफीम । आफूक ।
(Opium)

गशगशाल-चेट्ट—संज्ञा पुं० [ते०] पोस्ते का क्षुप ।

गशगशाल-त्तोलु—संज्ञा पुं० [ते०] पोस्ते की ढोंड़ ।

गशगशाल-पालु—संज्ञा पुं० [ते०] पोस्ता का दूध । अहिफेन ।
अफीम ।

गशयान—संज्ञा पुं० [अ०] गुप्त रखना, छिपा लेना । तिव
गशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] की परिभाषा में मूर्च्छित होना, बेहोश हो जाना । लक्षण-
मूर्च्छा—इसमें हृदय की गति निष्क्रिय हो जाती है । रोगी
का मुखमण्डल पीतवर्ण हो जाता है । नाड़ी शिथिलप्राय
हो जाती है । पर्याय—(हि०, सं०) मूर्च्छा; (अ०)
फेण्टिङ्ग (Fainting), सिङ्कोपी (syncope) । दे०
'गसयान' और 'ग्रसी' ।

गसक—संज्ञा पुं० [अ०] रात्रि । अन्धकार । रात । अँधेरा ।
गसा—[?] गौरह खुर्मा ।

गसान—संज्ञा पुं० [अ०] खिन्मी ।

गसयान—संज्ञा पुं० [अ०] पर्याय—उत्क्लेश, मिचली,
गसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] मतली, जी मचलाना, जी
मितलाना, विवमिषा, कै की इच्छा होना, वमन करने
की इच्छा । (अ०) नॉशिया (Nausia) । दे० 'उत्क्लेश' ।

गसी—संज्ञा स्त्री [अ०] उत्क्लेश । मिचली । विवमिषा ।

गसीनस—संज्ञा पुं० [यू०] गाराबुस ।

गसीस—संज्ञा पुं० [अ०] पूयमिश्रित रक्त । पीप मिला हुआ
खून । घाव का कच लइ । मुर्दार गोश्त ।

गसूल—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० 'गसूलात'] (१) उस्तान ।
(२) इज्जिर । (म० अ०) पर्याय—अवगाहन क्वाथ
वा कषाय जिससे ब्रणादि प्रक्षालन किए जाते हैं । (अ०)
लोशन (Lotion) ।

गसन—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० 'असान' गसनः वा
'गसून'] शाखा । टहनी । (अ०) ब्राञ्च (Branch) ।

गसरल—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ (१) धोना । किसी वस्तु को
धोना । (२) ओषधि को किसी विशेष विधि से धोना
और उसका शोधन करना । शुद्ध करना । इस क्रिया
द्वारा विषयुक्त द्रव्यों की विषाक्तता एवं तीक्ष्णता
अत्यल्प हो जाती है अथवा द्रव्याश्रित स्थूल अंश तल-
स्थायी होकर सूक्ष्मअंश जल में मिश्रित होकर पृथक्
हो जाते हैं । इस क्रिया को तिब्ब में 'तरवील' और भाषा
में 'निथारकर पृथक् करना' कहते हैं ।

गस्स—संज्ञा पुं० [अ०] फाँसी लगाना । गले में फन्दा डालना ।

गस्स—संज्ञा पुं० [अ०] (१) क्षोण । दुर्बल । दुर्बला-पतला ।
लागर । (२) दूषित । फासिद । खराब । (३) प्रकृति ।
स्वभाव । मिजाज । (४) उपलक्षणार्थ सड़ा हुआ मांस
और पीव । दूषित मांस । पूय ।

गस्साल—वि० [अ०] धात्वर्थ—प्रक्षालन करनेवाला ।
धोनेवाला । तिवकी परिभाषा में वह द्रव्य जो

निज आर्द्रता, प्रवाहित्व तथा लेखनीय शक्ति द्वारा अवयवों के धरातल पर चिपटनेवाले द्रव्यों को विलीन कर प्रक्षालन करता है। गस्साल और जाली गुण में समान हैं। प्रक्षालन द्रव्य—यथा किञ्चिदुष्ण जल, मधुवारि (माउलअस्ल), यवमण्ड (आश जौ) -पनीर का पानी (माउज्जुन्न) इत्यादि।

गस्साल—संज्ञा पुं० [अ०] वह यंत्र वा पिचकारी जिसके द्वारा ब्रणादि द्रव द्रव्यों से प्रक्षालन किये जायँ। **पर्याय**—वस्ति, पिचकारी; (फा०) हुकना; (अं०) डूश (Douche), इरिगेटर (Irrigator)।

गस्सालतुरिह—संज्ञा पुं० [अ०] गर्भाशयप्रक्षालन करने की पिचकारी। **पर्याय**—(सं०) उत्तरवस्ति। (अं०) यूटराइनडूश (Uterine douche)।

गस्सालतुल महबिल—संज्ञा पुं० [अ०] योनिप्रक्षालक वस्ति। स्त्री के गुह्यदेश (योनि) धोने की पिचकारी। (अं०) वेजाइनल डूश (Vaginal Douche)।

गहन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वन। जंगल। अरण्य। (२) व्यथा। दुःख। बाधा। पीड़ा। (वै० निघ०)।

गहा—संज्ञा पुं० [उ० प० भा०]। हस्तज (पं०)। संज्ञा पुं० [सि०] वृक्ष।

गहुङ्ग—संज्ञा पुं० [म०] गोधूम। गेहूँ। (Wheat)।

गहुला—संज्ञा पुं० [म०] गोदनी। प्रियङ्गु।

गहूँ—संज्ञा पुं० [म०] गोधूम। गेहूँ। (Wheat)।

गह्वर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, स्त्री०] (१) वायविडंग। विडङ्ग। (प० मु०)। (२) खोह। गुहा। खात। खौद। गुफा। (अ०)। (३) वन। जंगल। अरण्य। (मे०)। (४) रोना। रोदन। (हे०)। संज्ञा पुं० निकुञ्ज। कुंज। [सं० पुं०] (मे०)।

गह्वला—संज्ञा पुं० [म०] गोदनी। प्रियंगु।

गाइ—संज्ञा स्त्री० [द०, गु०, बं०] गाय। गो। गवी। (Cow)। संज्ञा स्त्री० [बं०] पकरी। प्लक्षवृक्ष। (डाइमॉक भ० ३ पृ० ३४५)।

गाइ का दूध—संज्ञा पुं० [देश०] गो दुग्ध। दे० 'गाय'।

गाइत—संज्ञा पुं० [अ०] (१) अधिकता। (२) अभिप्राय। (३) अन्त। (४) कर्तव्य। फर्ज।

गाइत—संज्ञा पुं० [अ०] [बहुव० गयात] मल। विष्टा। गूह। (अं०) फीसेज (Faeces)। एक्सक्रीमेंट (Excrement)।

गाइत-मुज्जमिद—संज्ञा पुं० [अ०] मलग्नन्थि। कठोर मल। सख्त पाखाना। वह मलग्नन्थि जो सुदः के रूप में परिवर्तित होता है। (अं०) सिबाला (Scybala), सिबेलम् (Scybalum)।

गाइनू-दूध—संज्ञा पुं० [गु०] गाय का दूध। गोदुग्ध। दे० 'गाय'।

गाइनेमा-आरेण्टिकम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gymnema-Aurantiacum)] 'मेदा'।

गाइनेमाबाल्सेमिकम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gymnema-Balsamicum)] क्षीरकाकोली।

गाइनेमा-लैक्टिफेरम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gymnema-Lactiferum)] क्षीरकाकोली।

गाइनान्ड्रॉप्सिस-पेण्टा फाइलम—संज्ञा पुं० [ले० (Gynandropsis Penta-phyllum)] हुरहुर।

गाइनेमा-सिल्वेस्ट्रिस—संज्ञा पुं० [ले० (Gymnema-Sylvestris)] गुडमार। मेघशङ्खी। छोटी दुधियालता। मेढासिंगी।

गाइनेमा-स्पारेटम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gymnema-Sparatum)] महामेदा।

गाइनेमिक एसिड—[ले० (Gymnemic Acid)]। मेघशृङ्गिकाल।

गाइनाकार्ड आलियम्—[अं० (Gynocard-Oleum)] चावलमोगरे का तेल। दे० 'चॉलमोगरा'।

गाइनोकार्डिआ—[ले० (Gynocard-ia)]

गाइनोकार्डिक एसिड—संज्ञा पुं० [अं० (Gynocardic-Acid)] कुष्ठवैरिकाम्ल, तेजावचालमोगरा। दे० 'चावलमोगरा'।

गाइर—वि० [अ०] गंभीर। गहरा। कोक जो शरीर के धरातल से दूर हो। (अं०) डीप (Deep)।

गाइनोकार्डिआ ओडोरेटा—संज्ञा पुं० [ले० (Gynocardia-Odorata)]

गाइनोकार्डिआ-हाइडनोकार्पस—संज्ञा पुं० [ले० (G. Hydnocarpus)] चावलमोगरा। कुष्ठवैरी।

गाइरोत—संज्ञा पुं० [द०, गु०] गोरोचन। गोलोचन।

गाई—संज्ञा स्त्री० [पं०] बसौटा। बकराच। (मेमो०)।

गाऊ—संज्ञा पुं० [देश०] फरास।

गाएर होनार पाता—संज्ञा पुं० [बं०] सुदशन। (ले०) क्रीनम एसिआटिकम् (Crinum Asiaticum)। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ४६४)।

गाएरुन—संज्ञा पुं० [बं०] गोरोचन।

गाग—संज्ञा पुं० [अमानी] } पुदीना। रोचनी।

गागा—संज्ञा पुं० [अमानी] }

गागाती—संज्ञा स्त्री० [यू०] जहर गागीतूस।

शागालुस—संज्ञा पुं० [यू०] जंगली स्थान तथा उद्यानों के निकट उत्पन्न होनेवाली एक वनस्पति है। इसकी पत्तियाँ स्वच्छ तथा मृदु होती हैं। इनको मलने से दुर्गन्ध आती है। स्वाद तीक्ष्ण प्रदाहयुक्त होता है।

पुष्प—नीलवर्ण के छोटे-छोटे होते हैं। तोहफतुल मोमिनीन के अनुसार इसका क्षुप अंजुरह के वृक्ष के

बराबर होता है। पत्तियाँ स्वच्छ होती हैं और उनसे दुर्गन्ध आती है। इसके पुष्प छत्राकार श्वेतवर्ण के होते हैं। इनका आकार सोआ वा सौंफुल्य होता है। इसमें फल मकोयतुल्य लगते हैं। सुपकावस्था में कृष्णवर्ण के हो जाते हैं। फलों में रस भरा होता है। जड़ श्वेत पीली होती है। इसमें ग्रीष्मऋतु में पुष्प लगते हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। किसी के अनुसार तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है।

गुण-कर्म—शोथघ्न, आतंजउत्पादक, वातघ्न, कण्डूनाशक, कासनाशक, वक्षवेदनाहर, अश्मरीघ्न तथा मलग्नथि (सुदा)नाशक है। **उपयोग**—इसकी पत्तियाँ पीसकर लेप करने से शोथ नष्ट होता है। कर्णमूल में लाभ होता है। शाखाओं को चर्बण करने से खाँसी दूर होती है। इससे स्वास नष्ट होता है; वक्षवेदना शान्त होती है। इसके सेवन से विवन्ध नष्ट होता है और अश्मरी दूट कर मूत्रमार्ग द्वारा प्रवाहित होती है, मूत्रात्तंज का अवरोध दूर होता है और वायुविलीन होती है। गुष्क एवं आर्द्र कण्डू में उपयोगी है। पत्तियों को पीस कर लेप करने से कंठमाला विलीन होती है। यह ककंठ (सरतान) तथा अन्य प्रकार की विद्रवियों का नाशक है। अण्डकोष के शोथ पर लेप करने से लाभ होता है। पित्तज रोग में भी यह फलप्रद है। २-३ तोला जड़ काथकर सेवन करने से कफ का उत्सर्ग होता है। **मात्रा**—१७ माशा तक।

गाजर—वि० [सं० त्रि०] गंगा सम्बन्धी।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हेलसा मछली। (२) सोता। स्वर्ण। (३) धतूर। (४) गंगाजल। गंगोदक।

गाजरट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हेलसा मछली।
गाजरटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (२) झिगा मछली। चिंगडी। (श० २०)।

गाजरटेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हेलसामछली। गांगट मत्स्य। (२) चिंगडी। झिगामछली। (श० २०)।

गाजरेय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नागरमोथा। भद्रमुस्तक। (२) सोता। स्वर्ण। (रा० नि० व० १३) २० चि० ६ अ०। (३) धतूर। धुस्तूर। (४) कसेरू। (अम०)। (५) हेलसा मछली। इल्लीश मत्स्य। (त्रिका०)।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गांगेयी। मोथा। मुस्तक। 'अथवा वृष गाज्रेयी'। (वा० चि० १ अ०)।

गाजरेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागवला। गंगेरन। गुलशकरी। (बं०) गोरक्ष चाउली। (वे० निघ०)।

गाजरेरू—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केवाँच। काकाण्डी।

गाजरेरूक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आलाकुशी (बं०)। (वे० निघ०)।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोरक्षतण्डुली बीज। नागवला। गुलशकरी।

गाजरेरूकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागवला। गंगेरन। गुलशकरी। गोरक्षतण्डुला।

गाजरेरूही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुलशकरी। नागवला। (रा०)

गाजरेष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटशकंरा लता। (बं०) नटा। (हारा०)।

गाजरीघ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गंगा का सोता। गंगा स्रोतस।

गाच मिर्च—संज्ञा पुं० [बं०, हिं०] लाल मिर्च। मरचा।

गाचमिर्ची—संज्ञा स्त्री० [हिं० बं०] सुखे मिर्च।

गाछ—संज्ञा पुं० [बं०] वृक्ष। (अं०) ट्री (Tree)।

गाछनी—संज्ञा स्त्री० [बं०] मुलतानी मिट्टी।

गाँज—संज्ञा पुं० [अं० Gauze] पतला जालीदार वस्त्र जो फोड़ा आदि चिकित्सा में उपयुक्त है।

गाज (काज)—संज्ञा पुं० [अ०] मुर्गावी तुल्य एक पक्षी है। (म० अ०)।

गाज—संज्ञा पुं० [फा०] कैची। कर्तरी। मिक्कराज।

गाज इस्कन्दरानी—संज्ञा स्त्री० [?] जाकनी इस्कन्दरानी।

गाजगार—संज्ञा पुं० [द०] गाजर। गर्जरकन्द। दे० 'गाजर'।

गाजगार के बीज—संज्ञा पुं० [द०] गाजर के बीज। गर्जर बीज। दे० 'गाजर'।

गाजन—संज्ञा पुं० [देश०] पीपल।

गाजनी—संज्ञा स्त्री० [पुं०] मुलतानी मिट्टी।

गाजर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गृञ्जन। (भा० पू० १ भ० शाक वर्ग)।

संज्ञा पुं० [सं० गाजर, गर्जर] गाजर।

पर्याय—(सं०) गर्जर, गृञ्जर, पिङ्गल, पिगमूल; पिण्डमूल, पीतकन्द, सुमूलक, स्वादुमूल, सुपीत, पीतमूलक, नागर, नारङ्ग; नारंग वर्णक; (बं०) गाजरमूल; (मं०; कना०) वाटुलामूल, वट्ट-मूलङ्गि; (अं०) कैरॉट (Carrot); (अ०) जजर; (फा०) गजर, जर्दक; (का०) मारेमूज; (ले०) डॉक्स केरोटा (Daucus carota)।

गर्जरादि कुल (Family: Umbelliferac)

उद्भवस्थान—इसकी कृषि भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में की जाती है।

गुण-कर्म—मधुर, रुचिप्रद, किञ्चित् कटु, कफ, आध्मान, कृमि, शूल, दाह, पित्त तथा ज्वर नाशक है। इसके अतिरिक्त तृष्णानाशक भी है। (ध० नि०)।

गर्जरं मधुरं रुच्यं किञ्चित्कटु कफापहम्।

आध्मान कृमि शूलघ्नं दाहं पित्तं ज्वरापहम्॥

(रा० नि० व० ७)।

भावप्रकाश के अनुसार—गाजर मधुर, तीक्ष्ण, तिक्त,

उष्ण, दीपन, लघु, संग्राही, रक्तपित्त, अर्श, ग्रहणी तथा कफवातनाशक है। यथा—

गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारंङ्गवर्णकम् ।

गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ।

संग्राहि रक्तपित्ताशौग्रहणी कफवातजित् ॥

उपयुक्त अंग—मूल, बीज तथा पञ्चांग ।

रासायनिक संगठन—गाजर के कन्द में केराटीन, शर्करा, श्वेतसार, सेवाम्ल, लवण, उत्पत् तैल इत्यादि उपादान होते हैं और लोहांश भी पर्याप्तपरिमाण में होता है। इसके फल-बीजों में एक प्रकार का पीताभ गाजर के समान वर्णवाला एवं प्रियगन्धयुक्त किञ्चित् कटु उद्गनशील तैल होता है।

तिब्ब के अनुसार गुणकर्म तथा उपयोग—गाजर प्रथम कक्षा में उष्ण एवं तर (स्निग्ध) है। गुण-कर्म—सूत्रल, श्लेष्मनिस्सारक, उत्तमांगों को बलदायक, वीर्यवर्धक तथा चित्तप्रसन्नकारक है। उपयोग—गाजर को कच्चा तथा उबालकर सेवन करने से शरीर पुष्ट होता है तथा रक्त की वृद्धि होती है। भर्जित गाजर के रस में गुलाबजल, मिश्री वा अर्ककेवड़ा मिलाकर सेवन करने से हृदय की दुर्बलता दूर होती है। इसके अतिरिक्त इसका स्वरस सेवन करने से कास, श्वास, मूत्रदाह तथा अश्मरी का नाश होता है। गाजर का हलुआ तथा मुरब्बा सेवन करने से शरीर पुष्ट होता है।

अहितकर—आध्मानकारक, दीर्घपाकी है। निवारण—उष्ण पदार्थ तथा मांस के साथ पकाना। प्रतिनिधि—शलगम। मात्रा—स्वरस १ से ५ तोला।

बीज—प्रथम कक्षा में रुक्ष तथा तृतीय कक्षा में उष्ण है। गुण-कर्म—पृष्ठशूल, अश्मरीनाशक, मूत्रार्तवजनक, गर्भाशयविशोधन तथा अधिक शुक्रल है।

उपयोग—इसके उपयोग से उदराध्मान, मूत्रावरोध, आर्तवातिरोध तथा जलोदर का नाश होता है। इसका भस्म व्रणशोधक है। १ भाग गाजर के बीज और उतना ही शलगम एकत्र पीसकर मूली के गर्भ में स्थापन कर और संपुटकर निर्धूम अंगारों से भर्जित कर सेवन करने से वृक्कवस्तिगत अश्मरी भग्न होकर उत्सर्गित होती है और मूत्र का उत्सर्ग होता है। नेत्रपथ्य तथा पादशोथ में भी उपयोगी है। अहितकर—कण्ठ, आमाशय, वात-नाडियों तथा गर्भ को। निवारण—अनोसूँ। प्रतिनिधि—दूकू, अनोसूँ। मात्रा—३ से ७ माशा। जंगली गाजर—पर्याय—(अ०) वरवूरुल वेपारिया। (सं०) वन गृञ्जन, अरण्य गर्जर।

गाजर के बीज—संज्ञा पुं० [] गर्जरबीज। तुख्म जर्दक। दे० 'गाजर'।

गाजर, जंगली—संज्ञा पुं० [] जंगली गाजर। गाजर

अरण्यज। दे० 'गाजर का द्वितीय भेद'।

गाजरनुबीज—संज्ञा पुं० [म०] गाजर के बीज।

गाजर दशती—संज्ञा पुं० [फा० गजर दशती] पहांडी गाजर। कामराज।

गाजर पहाड़ी—संज्ञा पुं० [] कामराज।

गाजर बरीं—संज्ञा पुं० [फा० गजर बरीं] दुधाली। सका-कुल।

गाजर बीची—संज्ञा स्त्री० [बं०] गाजर के बीज।

गाजराचबी—संज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'जंगली गाजर' व 'गाजर'।

गाजाबागी—संज्ञा पुं० [तुर०] अत्रीलाल। आतरीलाल।

गाजियः—संज्ञा पुं० [अ०] पोषक। शरीरपोषक। शूरीर को पोषणकारक। (अ०) कुव्वत गाजियः। (अं०) न्यूट्रिटिव (Nutritive)।

गाज्ज—[अ०] अश्रुवाहिनीसिरा। नेत्र की सिरा जिससे अश्रुस्राव होता है।

गाजी—कि० वि० [अ०] पोषक। पोषण करनेवाला। (मुगज्जी)।

गाजुरान—संज्ञा पुं० [फा०] उस्नान। सज्जी बूटी।

गाजुमा नीमेण्टोसा—संज्ञा पुं० [ले० Gauzuma Tome ntosa] पर्याय—बन्दूक के झाड़ (कना०)। रूद्राक्षी।

गाज्जिकाय—संज्ञा पुं० [] तीतर पक्षी। बर्तिक पक्षी।

गाज्जा—संज्ञा पुं० [गुं०, बं०, बम्ब०], गाँजा।

गाज्जा-आकु—संज्ञा पुं० [ते०] चरस। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ३१९)।

गाज्जानुझाड़—संज्ञा पुं० [गुं०] गाँज का क्षुप।

गाज्जानुबी—संज्ञा पुं० [गुं०] गाँज का बीज।

गाज्जार गाछ—संज्ञा पुं० [बं०] गाँज का क्षुप।

गाज्जार बीज—संज्ञा पुं० [बं०] गाँज का बीज।

गाज्जारसम्—संज्ञा पुं० [ते०] चरस। (डाइमॉक भ० ३, पृ० ३१९)।

गाटि (ठि) वनामूल—संज्ञा पुं० [मेवाड़] गठिवन। ग्रन्थि-पर्णी।

गाडर—संज्ञा पुं० [राजपुताना, म०] मेढी। भेंड़। मेघ। मेड़ा।

गाडर दूब—संज्ञा स्त्री० [] (१) गण्डूर्वा। नील दुर्वा। (२) थनैला। स्यार बैठक।

गाडरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गड्डरिका, गड्डरी] भेंड़। मेघ।

गाडरू—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] (१) गरुडी। (२) गाँडर।

गाड़व—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेघ। बादल।

गाड़ो—संज्ञा पुं० [गुं०] गिलोय। गुडूची। अमृता।

गाडिदे गडयर आकु—संज्ञा पुं० [ते०] कीड़ामार।

गाडिदे-पालु—संज्ञा पुं० [ति०] गदही का दूध । गर्दभीपय ।
 गाढ़—वि० [सं० त्रि०] (१) पुरातन । बहुकाल जात ।
 बद्ध-मूल । (२) गाढ़ा । सान्द्र । (सु० नि० ६ अ०) ।
 गाढ़ सुष्ठि—संज्ञा स्त्री०, [सं० पुं०] तलवार । खड्ग ।
 (मे०) ।
 गाढ़लवण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साम्भरलवण । (रा०
 नि० व० ६) ।
 गाढ्यातगर—संज्ञा पुं० [म०] तगर ।
 गाण्डर—संज्ञा पुं० [देश०, स्त्री०] गाँडर । सीक । उशीर ।
 वीरण । दे० 'गाँडर' ।
 गाण्डा—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड] गण्डा गन्ना । ईख ।
 गाण्डीर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शाकविशेष । (बं०)
 शमठ साक । (सु० सू० ४६ अ०)
 गाण्डीवी (इन्)—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] अज्जुन वृक्ष ।
 कहू का वृक्ष ।
 गाण्डो—संज्ञा पुं० [गु०] गन्ना । ईख । ऊख ।
 गात—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर । वपु ।
 गातमात्र—संज्ञा पुं० [?] गोभी ।
 गातु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोइल । कोकिला ।
 (२) भौरा । भ्रमर । (मे०) । (३) गन्धर्व । (के०) ।
 गात्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) देह । शरीर । (२) शरीर
 का कोई अन्य भाग । शरीरावयव । (रा० नि० व० १८) ।
 (३) करिण । पूर्वजन्मादि प्रदेश । अप्रपादादि सम्मुख
 भाग । (मे०) । (४) रोम । बाल ।
 गात्रकण्डू—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] खुजली । कण्डूरोग विशेष ।
 गात्रघर्षण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीरमार्जन । अंग-
 मर्दन ।
 गात्रभङ्गा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शूकशिवी ।
 केवाँच । (श० च०) । (२) कचूर । गन्धशटी ।
 कपूरकचरी ।
 गात्रपञ्चक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दो-दो हाथ-पैर और
 पाँचवा शिरोघ्रीव । (वा० शा० १-५४) ।
 गात्रमाज्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गमछा । तौलिया ।
 अंग मार्जनी । (बं०) गामछा ।
 गात्रविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंगविक्षेप । अंगचालन ।
 अङ्गविक्षेपण । (वै० निघ०)
 गात्र-शोथ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पूतना नामका बाल-
 रोग विशेष । (२) सुखण्डी । (वै० निघ०) ।
 मुखमण्डिका । बालशोथ । फक्क (काश्यप०) ।
 (Hyperasthenia) ।
 गात्रसंकोची (इन्)—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जाहक
 जन्तु । (२) काला गिरगिट । कृष्ण कुकलास । (बं०)
 काँकलास । बहुरूपी । (रा० नि० व० १९) । (३)
 गोनस सर्प । (वै० निघ०) ।

गात्रसम्प्लव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्लवजाति के पक्षी—
 बत्तख, हंस इत्यादि । (हे० च०) ।
 गात्रसाद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शरीरावसाद । शरीर
 को अवसन्नता । (२) पित्तरोग । (वै० निघ०) ।
 गात्रानुलेपन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उबटन इत्यादि जो
 शरीर में लगाया जाता है ।
 गात्रानुलेपनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शरीर अनु-
 लेपनयोग्य पिष्टपदार्थ । सुगन्ध लेप । (अम०) ।
 गात्रावयव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर के भिन्न-भिन्न
 भाग । (च० सि० ३-२८) ।
 गात्रोत्सादन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गात्रानुलेपन । उबटन ।
 गाद—संज्ञा पुं० [?] गोद ।
 गादकानी—संज्ञा स्त्री० [बं०] बिसखपरा (द०) ।
 पुनर्नवा ।
 गादड़—संज्ञा पुं० [देश०] गीदड़ । शृगाल । स्यार ।
 गादनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बिसखपरा बूटी ।
 पुनर्नवा । (२) सुदर्शन । नागिन का पत्ता ।
 गादनी काण्ड—संज्ञा पुं० [म०] सुदर्शन ।
 गादम्भीकाण्ड—संज्ञा पुं० [म०] सुदर्शन ।
 गादा—संज्ञा पुं० [सं० गाधा = दलदल] अर्धपक्व अन्न ।
 गाध—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्थान । (२) लाभ की
 की इच्छा । (हे० च०) ।
 गाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अर्धपक्व अन्न ।
 गाध्यण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भुईआँवला । भूम्या-
 मलक । (के०) ।
 गानशाराया—संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी अवयव का निर्जीव
 अथवा मुरदार हो जाना अथवा वह दुष्ट शोथ जिससे
 अंग दूषित हो जाय । इस प्रकार के शोथ में स्पर्शशक्ति
 वर्तमान रहती है ।
 (२) मस्तिष्क का वह शोथ जो मस्तिष्कसिरा में
 व्याप्त होकर विकृत वा कोष्ठयुक्त रक्त से युक्त हो ।
 इससे उसकी रचना में विकृति उत्पन्न होकर उसे निश्चेष्ट
 कर देता है । (अं०) गैङ्ग्रीन (Gangreen) । गानशाराया
 ओर सकाकलुस के अन्तर के लिए 'सकाकलुस' देखो ।
 गानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वच । (वै० निघ०) ।
 गानिली—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] }
 गान्तिआला—संज्ञा स्त्री० द्रव्य विशेष ।
 गान्धार—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गन्धरस । गन्धबोल ।
 संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सिन्दूर । (मे०) । (२) देश
 विशेष । गान्धार देश ।
 गान्धारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) कटेरी ।
 गान्धारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कण्टकारी । (वै०
 निघ०) । (२) दुरालभा । (भा०; रा० नि० व० ४) । (३)
 गन्धिका ।

गान्धारी गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दोर्घायुकारक एक प्रकार का रसयोग। **निर्माणविधि**—किसी दृढ़लोहपात्र में १ भाग शुद्ध गन्धक और १ भाग शुद्ध पारद मिश्रितकर किसी काष्ठ के मुशल से मर्दनकर मुहूर्त के पश्चात् उतार लेवें। पुनः इसमें शतावरी, क्षीरकंद, वज्रवल्ली, इन्द्रवारुणी, पाठा, पुनर्नवा, चिन्ना, लाङ्गली और मुरदालिका (देवदाली) के स्वरस से ३ दिन पर्यन्त मर्दनकर वस्त्र से छान लेवें और उक्त लोहपात्र में मर्दनकर बटो निर्माण करें। पुनः इसको लोहसंपुट में रखकर यथाविधि लवणादि से दृढ़ कपरौटी करें और निर्धूम खदिरअंगार में रखकर धौकनी से आंच देवें। जब लाल हो जाय, निकालकर पुनः उक्त द्रव्यों के स्वरस में मर्दनकर गोला बनाएँ और काँच-सोहागा के विड से दृढ़तापूर्वक सन्धिरोधनकर पुनः उक्त अंगार में धमन करें। इस प्रकार से गान्धारी-गुटिका सिद्ध होती है। इसमें से उचित मात्रा में ग्रहणकर १ कर्ष काकतुण्डीबीजतैल नस्य लेने से अथवा उचित अनुपात से सेवन करने से ३०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है। (२० का० धे०)।

गान्धक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गाँधिपोका। एक प्रकार का कीट जो धानों को नष्ट करता है।

गान्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गङ्गा। (शब्द २०)।

गान्धी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोशकट। (अ० टी० रा०)।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा जो धानों में लगता है।

गाफिज—संज्ञा पुं० [पं०] त्रायमाण। (डाइमॉक भ० १, पृ० २३)।

गाफिस—संज्ञा पुं० [अ०] पर्याय—(हि०) त्रायमाणा, अस्परग, अस्फरक; (अ०) शज्जतुल् बरमीनस; हशोशतुल् गाफिस; (फा०) पुष्प—गुलकल्ली, गुल-खाना, जरीर, जलील; (सं०) गिरजा अर्जक, वार्षिक (क) त्रायमाण, सुकामी अनुजा संभद्रानों, भद्रनामिका, देववलद त्रायमाणिका, बहाभद्रिका, त्रायन्तो स्पृक्का, बलभद्र, माङ्गल्य, बलदेवा, (पं) अस्वरज, पीली, त्राणा, क्षणी, अवनी, भयनाशिनी।

(ले०) जेन्शियाना डहुरिका (Gentiana- Dahurica), जेन्शियाना-कुरु (Centianta Curru); (अ०) ऐग्रिमोनी (Agrimony)। (ले०) अग्रिमोनिआ युपेटोरियम (Agrimonia Eupatorium)।

त्रायमाणादि कुल (Family)।

उद्भवस्थान—पंजाब, फारस, रूम, कश्मीर, भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेश इत्यादि।

परिचय-स्वरूप—कृष्णाम, कंटकयुक्त एक वनस्पति है, पत्र लामश, लम्बा तथा चौड़ा होता है। और भङ्ग-

पत्र-तुल्य आकार की पत्तियाँ होती हैं। इनके बीच एक शाखा खुरदरी और खोखली फूटती है। पुष्प उत्पल (निलोफर) तुल्य नीलवर्ण के होते हैं। स्वाद—इसका सम्पूर्ण अंग अत्यन्त तिक्त होता है। फारस तथा रूम में होनेवाली सर्वश्रेष्ठ है।

उपयोगी अंग—पुष्प, पत्रस्वरस (रसक्रिया)।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का स्फटिकवत् श्वेतवर्ण का अत्यन्त तिक्त सत्व होता है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण; किसीके अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है और किसी के अनुसार प्रथम कक्षा में रूक्ष है।

गुण-कर्ष—पित्तज्वरघ्न, मधुरपाकी एवं शीतल है तथा गुल्म, ज्वर, कफ, रक्तघ्न, भ्रम, तृष्णा, क्षय, छर्दिनाशक तथा विषघ्न है। (रा० नि० व० ५)। विरेचक (वा०)।

तिब्ब के अनुसार—दोष तथा प्रकृति मृदुकारक, मल-शोधक, कान्तिवर्धक, स्निग्धता का आकर्षक, प्लीह-यकृत-रोधोद्घाटक, दोषतारक्यकारक, छेदन, लेखन, स्रोतो-विशोधक, मूत्रल, आर्तव उत्पादक, परिदग्धदोषविरेचक, दुग्धउत्पादक, दीपन, स्वेदन तथा रक्तप्रसादक है। आमाशय, प्लीह यकृतशोथकाठिन्य, पाण्डु तथा सर्वाङ्ग-शोथनाशक है; मिश्रदोषोत्पन्न ज्वरों में उपयोगी है। इन्द्रलुप्त, कच्छू, कण्डू इत्यादि चर्मरोगों में उपयोगी है। (मु० आ०; म० अ०)।

रसक्रिया (उसारः) एवं चक्रिका (टिकिया) निर्माणकर आर्द्र कण्डू, इन्द्रलुप्त, कच्छू इत्यादि चर्मरोगों में देने से लाभ होता है अथवा इसके उपयोग से जीर्णज्वर का नाश होता है। पित्तपापडा के क्वाथ व सिकंजबीन के साथ सेवन करने से यकृतशूल का नाश होता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग प्रायः खण्डादि (माजूनो) में होता है।

अहितकर—प्लीहा को। **निवारण**—गुलाब, अनीसून, असारून, अफसन्तीन। **प्रतिनिधि**—आफसन्तीन, उसारः रेवन्द, अनीसून। मात्रा—५ से ७ माशा तक।

गाब—संज्ञा पुं० [म० प्र०] एरण्डवृक्ष। रेंड।

संज्ञा पुं० [बं०] तेन। तिन्दुक।

गाबानक—संज्ञा पुं० [फा०] शाबानक।

गाबिन—संज्ञा स्त्री० [फा०] कतीरा।

गाबिस—संज्ञा पुं० [?] इनबुदुब।

गाब्ब—वि० [अ०] परियुषित। बासी। इस शब्द का उपयोग प्रायः रोटी वा माँस के अर्थ में होता है। यथा—बासी रोटी, बासी माँस इत्यादि।

गाभेरण्ड—संज्ञा पुं० [बं०] जंगली एरण्ड। वनभेरण्ड।

गाम—संज्ञा पुं० [फा०] पाद। पाँव। चलते समय में पादद्वय मध्य का अन्तर। फासिला।

गाम्भी अकरोट—संज्ञा पुं० [यु०] भारतीय आक्षोट ।
अखरोटे हिन्दी ।

गाम्भी-चीनी—संज्ञा स्त्री० [यु०] } देशीचीनी । लालशकर ।
गाम्भी बूरो—संज्ञा पुं० [यु०] }

गाम्भी-रैवत चीनी—संज्ञा पुं० [यु०] भारतीय रैवतचीनी ।
रैवन्देहिन्दी । (पीतमूली) । दे० 'रैवन्दचीनी' ।

गाम्भी सक्कर—संज्ञा स्त्री० [यु०] लालशकर । देशीशकर ।

गाम्भी शाछ—संज्ञा पुं० [बं०] } कुम्भेर । गम्भार ।

गाम्भी शरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाम्भीरी] } काश्मिरी वृक्ष । ग
(क) महार ।

गाम्भी लून—संज्ञा पुं० [यु०] दे० 'गालियान' ।

गाम्भी शरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कुम्भेर । काश्मिरी

गाम्भी शरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वृक्ष । दे० 'खुमेर' ।

गाम्भीर्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भारीपन । गुह्यता ।
गम्भीरता ।

गाय—संज्ञा स्त्री० [सं० गवी, गो] वृष पत्नी ।

पर्याय—(हिं०) गाय; (गु०, म०, कौ०) गाइ; (बं०)

गो; (अ०) बकर; (फ०) गाव, मादा गरु; (बर०) प्यौङ्ग;

(ता०) मादा; (कना०) एत्थ; (सं०) गवी; गौ, सुरभी;

(अं०) काउ (Cow); (ले०) बॉसटारस (Bos taurus) ।

परिचय—सर्वप्रसिद्ध तथा भूमण्डल के सम्पूर्ण विभागों
में रहनेवाला चतुष्पद जन्तु है । भेद—वर्णभेदसे
श्वेत (कपिला), काली (कृष्णा), लाल (रक्त)
तथा चितकबरी (चित्रित) वर्ण की होती है ।

गाय का महत्व—प्राचीन ग्रन्थों में वेद माननीय एवं
सबसे पुरातन प्रमाणित हुए हैं । ऋग्वेद का कथन है
कि गाय (अदिति) ही शुलोक है, अदिति ही
माता है, अदिति ही पिता है, अदिति ही पुत्र है, अदिति
ही समस्त देवता है और भविष्य में होनेवाली समस्त
वस्तुएँ भी अदिति ही हैं—

इन्द्रमित्र वरुणामग्निभूतये मास्तं शधौ आदिति हवामहे ।
रक्षन्तं दुर्गाद् सुदावन्नो विश्वस्पान्नो अहंसो निश्चियपतनं ॥
अदिति द्या रदितिरक्षमदितिर्मातासपिता सपुत्रः ।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जन्तमा दितिर्जगित्वम्
॥११२९११०॥

पुराणों में भी गाय का महत्व जैसा चाहिए वैसा ही
वर्णित है—प्रतिपदा से लेकर सप्तमी पर्यन्त गोपी और
गोधन की रक्षा के निमित्त ही, जब देवराज इन्द्र
मदान्ध होकर अपने बल को भगवान् से भी आजमाने
लगे तब इन्द्र ने प्रार्थना की—'वत्सपालो बभूवतुः
(श्रीमद्भागवत, १०।११।३७) । प्रतिपदा से सप्तमी
पर्यन्त गोपी और गोधन की रक्षा के निमित्त ही श्रीकृष्ण-
चन्द्र गोवर्धनपर्वत को धारण किए थे । भगवान् के
पराक्रम को देखकर इन्द्र के ज्ञानचक्षु उद्घाटित हो गए,

उनका मद चूर-चूर हो गया । छवें दिन इन्द्रने भगवान् से
क्षमा माँगी । कामधेनु ने गोलोक से प्रकट होकर स्वदुग्ध
से श्रीकृष्णभगवान् का अभिषेक किया । उस दिन से ही
श्रीकृष्णजी को गोविन्द की उपाधि प्राप्त हुई और
उसी समय से कार्तिक शुक्ल अष्टमी को गोपाष्टमी
पर्व मनाया जाने लगा । गोविन्द, गाय और गोप
के साथ साथ गोवर्धनपर्वत तथा ब्रजभूमि को भी
महानता प्राप्त हुई । इतना ही नहीं ब्रजभूमि तथा गायों
पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अटूट श्रद्धा थी । गोपा-
ष्टमी में गोजाति को जो महत्ता प्राप्त है, वह भारत-
प्रसिद्ध बात है ।

आयुर्वेद, यूनानी तथा एलोपैथी चिकित्साशास्त्र में
इसका दुग्ध, दधि, नवनीत, तक्र, मूत्र, मांस, अस्थि
इत्यादि सभी कार्य में उपयोगी हैं ।

सुश्रुत के अनुसार—(गुण)—जीवनीय, मधुरपाकी,
शीतल, रसायन, गुरुपाकी, स्निग्ध, रक्तपित्तनाशक,
वात-पित्तघ्न तथा अल्पाभिष्यन्दि है—

अल्पाभिष्यन्दि गोक्षीरं स्निग्धं गुरु रसायनम् ।

रक्तपित्त हरं शीतं मधुरं रस पाकयोः ।

जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परम स्मृतम् (सू० अ० ४५) ।

चरक के अनुसार गोदुग्ध में ये १० गुण हैं—(१)
मधुर, (२) शीतल, (३) मृदु, (४) स्निग्ध, (५) घना
(६) श्लक्ष्ण (चिकना), (७) पिच्छिल (चिपचिपा),
(८) भारी, (९) मन्द और (१०) प्रसन्न (निर्मल)
इन दस गुणों से युक्त है तथा ओजवर्धक है । यथा—
गुरुशीतं मृदुस्निग्धं बहलं मधुरं स्थिरम् ।

प्रसन्नं पिच्छिलं श्लक्ष्णमोजो दशगुणं स्मृतम् ।
(चि० १४ अ०) ।

भावप्रकाश के अनुसार—गाय का दूध विशेषकर रस
तथा पाक में मधुर, शीतल, दुग्धवर्धक, स्निग्ध, वातपित्त
तथा रक्तविकारनाशक है; किञ्चित् दोष, धातु, मल
तथा नाडियों को आर्द्र करता है; भारी और सर्वदा
सेवन करने से सम्पूर्ण रोग तथा वार्धक्य दोष का
नाशक है ।

कृष्णा गाय का दूध—वातनाशक तथा अधिक गुण
विशिष्ट है । पीतगो (पीलीगाय) का दुग्ध पित्त तथा
वातनाशक है । शुक्ल गाय का दुग्ध—कफवर्धक तथा
दीर्घपाकी है । लाल तथा चितकबरी गाय का दुग्ध
वातनाशक है । यथा—कृष्णा या गोर्भवेद दुग्धं वातहारि
गुणाधिकम् । पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् ।
श्लेष्मलं दुग्धं शुक्लायां रक्तचित्रा च वातहृत् । (भा० प्र०
दुग्धवर्ग) ।

सद्यः प्रसवा गोदुग्ध—तुरत व्याई गाय के दूध सेवन
करने से त्रिदोष का प्रकोप होता है । यथा—'बालवत्स

विवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोषकृत् । बकेनी गाय (वष्क-यिणी) के दुध सेवन से त्रिदोष शान्त होता है तथा यह तृप्तिकारक और बलदायक है । यथा—वष्कयिण्या त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः ।

देशभेद तथा आहारभेद से गोदुग्ध के गुण—जांगल देश, अनूपदेश तथा पर्वतों में चरनेवाली गायों का दुग्ध एक से एक भारी तथा जिस प्रकार का आहार करती है उसी आहारगुणतुल्य उनके दुग्ध में होता है । जो गायें अल्प अन्न खाती हैं उनसे उनका दुग्ध भारी, कफ-वर्धक, बलवर्धक, अत्यन्त दृढ्य और स्वस्थ व्यक्तियों के निमित्त फलप्रद है और जो पलाल, चरी (करबो), घास, विनीला इत्यादि खाती हैं उनका दुग्ध अत्यन्त हितकर होता है ।

अष्टांगहृदय के अनुसार—गोदुग्ध जीवनदाता, रसायन, मेधावर्धक, बलकारक, दुग्धोत्पादक, रेचक, श्रम, भ्रम, मत्तता, अलक्ष्मी, श्वास, अत्यन्त तृष्णा, शुधा, जीर्णज्वर, मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्तनाशक है तथा उरःक्षत से पीडित रोगी के लिए अत्यन्त हितकर है ।

यथा—अत्र गव्यंतु जीवनीयं रसायनम् ।

क्षतक्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यकरंशरम् ।

श्रम भ्रम महालक्ष्मी श्वास कासातिवृत्तं क्षुधः ।

जीर्णं ज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

(सूत्र ५ अ०) ।

त्याज्य दुग्ध—वह दुग्ध जिसमें बुरी गन्ध आती हो, जो खट्टा हो गया हो, जिसका वर्ण तथा स्वाद बदल गया हो, जो खारा हो गया हो, तथा स्वतः फट गया हो, वह पीने के अयोग्य होता है । यथा—

अनिष्ट गन्धमलं च विवर्णं विरसं च यत् ।

वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्च विप्रथितं भवेत् ॥

(सु० सू० ४५ अ०) ।

रासायनिक संगठन—गोदुग्ध में कुल ठोस पदार्थ १ भाग में १२.९-१४.५, प्रोटीन-३.४-४.०, वसा-३.०-३.८५, शर्करा-४.५-५.२, क्षार-०.४५-०.६५ और गुल्ता-१.०२६-१.०३५ होता है ।

प्रोटीनों से रसरक्तादि समस्त धातुओं की वृद्धि और शक्ति की पूर्ति होती है । दुग्ध में वसा सूक्ष्म कणों के रूप में फैली रहती है । एक बूँद दुग्ध में १५ लक्ष के लगभग कण होते हैं । दुग्ध की वसा पचने में लघु होती है । दुग्धमें दुग्धशर्करा (Lactose) होती है । गोदुग्ध में—चूना, सोडियम, पोटेशियम, म्याग्नेसियम, लोह, गन्धक, स्फुरक (phosphorus), आयोडीन तथा अन्य प्रकार के शरीर-पोषक खनिजद्रव्य भी होते हैं । इसके अतिरिक्त जीवनीय शक्ति रक्षार्थ इसमें जीवद्रव्य विशेषतः विटामिन ए०, डी०, ई० भी उपस्थित रहते हैं । जो गाय हरित तृणादि

खाती है और सूर्यप्रकाश में चलती-फिरती रहती हैं, उनके दुग्ध में जीवद्रव्य की मात्रा अधिक होती है ।

अपक्व गोदुग्ध (क्वचा दूध)—गुण—प्रायः अभिष्यन्दकारक तथा भारी होता है और औटा दूध हल्का और अनभिष्यन्दकारक होता है । (सु० सू० ४५ अ०) ।

राजनिघण्टु के अनुसार—गोदुग्ध पथ्य, रसायन बलवर्धक, हृदय को हितकर, मेधाकारक, आयुष्यवर्धक, पुंसत्वदायक, वातरक्त और पित्तविकारनाशक है । श्वेत गो का दुग्ध वातघ्न, कृष्णा का दूध पित्तनाशक, रक्तवर्ण गो का दूध कफघ्न है । अथवा गाय का दूध अनभिष्यन्दि, स्निग्ध, गुरुपाकी, रसायन, रक्तपित्तहर, शीतल, रस पाक में मधुर है तथा जीवनीय एवं वात-पित्तघ्न है । (क्षीरादि १५ वर्ग) ।

धन्वन्तरिनिघण्टु के अनुसार—गोदुग्ध, पथ्य, अत्यन्त रुचिकारक, स्वादु, स्निग्ध, वातपित्तजन्यरोगनाशक, कान्तिवर्धक, प्रज्ञा-बुद्धि-मेधावर्धक और अंगों को पुष्टिकारक तथा वीर्यवृद्धिकारक है । यथा—

गव्यं क्षीरं पथ्य मत्यन्तरुच्यं स्वादुस्निग्धं वातपित्तामयघ्नम् । कान्तिप्रज्ञाबुद्धिमेधांगपुष्टिं धत्ते स्पष्टं वीर्यं वृद्धिविधत्ते ॥

गोदुग्ध तथा घृत की उत्कृष्टता—गोघृत और गोदुग्ध श्रेष्ठ एवं भेड़ का दूध-घृत निन्दित है । यथा—

गव्ये क्षीरं घृते श्रेष्ठे निन्दिते चापि संभवे (वा० सू० ५ अ०)

धारोण गोदुग्ध के गुण—धारोण दूध अमृत तुल्य है ।

यथा—धारोणोऽमृतोपमम् । (वा० सू० ५ अ०) ।

तिब्ब के अनुसार गाय का दूध—प्रकृति—समशीतोष्ण है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—पोषक, शुक्रउत्पादक, हृदय-मस्तिष्कबलवर्धक, वातानुलोमक, सर, शरीरपुष्टिकारक, रोधोद्धाटक, पुंन्द्रियदृढकारक, शोकहर, उन्माद-भ्रमनाशक, गदोद्वेगहर, उरःक्षत, जीर्णज्वर, फुफ्फुसव्रण में उपयोगी, तथा वर्णकारक, तथा नासारोग में उपयोगी है । इसका खीर निर्माणकर सेवन करने से कोष्ठवद्ध नष्ट होता है और मैथुनशक्ति की वृद्धि होती है । गोदुग्ध में सफेदा घिसकर लेप करने से सन्धिपात तथा उष्णशोथ नष्ट होता है ।

अहितकर—त्रिदोषज्वर में वर्जित है ।

निवारण—मधु, मिश्री ।

प्रतिनिधि—बकरी का दूध । मात्रा—१४ तोला २ माशा से २८ तोला ४ माशा तक ।

गाय का दही—स्निग्ध, विपाक में मधुर, दीपन, बलवर्धक, वातनाशक, पवित्र और रुधिर वर्धक है । यथा—स्निग्धविपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम् ।

वातापहं पवित्रं च दधिगव्यं रुचिप्रदम् ॥ (सु० सू० ४५ अ०) । मधुर रुचिप्रद, पवित्र (रा० नि० व० १५; ध०

नि०); दीपन, हृद्य, पुष्टिकर, वातनाशक तथा अन्य दधियों से श्रेष्ठ हैं। (भा०)

गोधृत-गुण—गाय का घी विपाक में मधुर, शीतल, वातपित्त और विषविकारनाशक, नेत्र के लिए हितकर, वस्तुओं में श्रेष्ठ, बलवर्धक तथा सर्पप्रकार के घृत्तों में श्रेष्ठ है। यथा—

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।

चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिगुणोत्तरम्।

(सु० सू० ४५ ज०)।

नेत्रों को हितकर, बल, आयु, मेधा, अग्नि और स्मृतिवर्धक, श्रेष्ठ, सुकुमारतारक्षक, कान्तिवर्धक, बाल-वृद्ध तथा अन्य प्रजावर्गों को हितकर, विपाक में मधुर, शीतल, वात, पित्त और विषविकारनाशक, नेत्रों के लिए अन्य पदार्थों से श्रेष्ठ, बलवर्धक तथा अन्य घृत्तों में प्रशस्त है।

(रा० नि० क्षीरादि १५ वर्ग)।

गाय का घी विशेषकर नेत्रों को हितकर, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाक में मधुर, शीतल, वात, पित्त तथा कफ नाशक, बुद्धि, लावण्य कान्ति, ओज तथा तेजवर्धक, अलक्ष्मी, पाप तथा राक्षसनाशक, आयुस्थापक, भारी, बलवर्धक, पवित्र, आयुवर्धक, मंगलरूप, रसायन, सुगन्धपूर्ण, रुचिउत्पन्नकारक, सुन्दर और सम्पूर्ण घृत्तों से श्रेष्ठ है। (भा० पू० घृत वर्ग)।

घृत का निषेध—बालक, वृद्ध, राजयक्ष्मा, कफरोग, आमदोष, विषूचिका, मलबद्ध, मदात्यय, ज्वर तथा मन्दाग्नि में घृतसेवन वर्जित है। (भा० पू० घृत वर्ग)।

गाय के दूध का मक्खन—(गव्यनवनीत)—गुण—सर्वदोषशामक, बलकारक तथा पुष्टिवर्धक है। (रा० नि० वृ० १५)।

गाय के दूध का मठा (गव्यतक्र)—गुण—गोदुग्धभव-धोल त्रिदोषनाशक, पथ्य, दीपन, रुचिकारक, अर्श तथा उदरविकारनाशक, मेधावर्धक और सर्वतक्रों में श्रेष्ठ है। (अत्रि० ८ अ०)।

गोरोचन (गोपित्तजा)—गुण तथा पर्याय—(सं०)—वन्दनीय, वन्द्या, रोचना, रुचि, शोभा, रुचिरा, शोभना, शुभा, गौरी, रोचना, पिङ्गा, मङ्गल्या, मङ्गला, शिवा, पीता, गोमती, गव्या, चन्दनीया, काञ्चनी, मेध्या, मनोरमा, श्यामा, रामा।

उत्पत्ति—यह पित्ताशय में किसी के अनुसार हृदय-धरा नाड़ी में उत्पन्न होती है 'सा च गोसाधारण हृदय धारा गो विशेषु कदाचित् लभ्यते (प० मु०)। गुण—शीतल, विषदोषघ्न, पाचक, रुचिकारक, कृमि-कुष्ठघ्न, भूतग्रहशान्तिकारक, शृङ्गार-मङ्गलकारक, और जन-मोहक (रा० नि० व० १२) तथा शीतल, तिक्त, वश्यकारक, मङ्गलकान्तिदायक, अलक्ष्मी, विष, ग्रह, उन्माद, गर्भ-

स्राव, क्षत तथा रक्तदोषनाशक है। (भा०; वै० निघ० २ भ०)। सर्वज्वः चि० गोरोचनादि चूर्ण)।

गाय का मूत्र (गोमूत्र, गव्यमूत्र) पर्याय—(सं०) गोजल, गोम्भ, गोनिष्यन्द, गोद्रव; (हि०) गाय का पेशाब, गाय का मूत; (अ०) बोलुल बकर; (फा०) बौल गाव; (अं०)—काउ यूरिन (Cowurine)

गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कफवातहर, लघु, पित्तकर, दीपन, त्वग्दोषहर और मेध्य है। (रा० नि० व० १५)। चरपरा, तीक्ष्ण, गरम, खारा, कसैला, हलका, अग्निप्रदीपक, मेधा को हितकर, पित्तकारक और कफ, वात, शूल, गुल्म, उदर, आध्मान, खुजली, किलासकुष्ठ, मुखरोग, नेत्ररोग, अतिसार, वात सम्बन्धी रोग, मूत्ररोग, खाँसी, कुष्ठ, उदररोग, कृमिरोग, और पाण्डुरोग-नाशक है। श्वास, प्लीहरोग, शोथ, मलरोग, ग्रह-बाधा, तथा कामला नाशक है। कान में डालने से कर्णशूल का नाश होता है। (भा० मूत्र वर्ग)।

गोमूत्र कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षारयुक्त होने से वात का प्रकोप न करनेवाला, लघु, अग्निदीपक, मेधाजनक, पवित्र, पित्तकारक और वात-कफहर है। शूल, गुल्म, उदर, आनाहरोग में विरेचन और आस्थापन बस्ति में तथा मूत्रप्रयोग से समस्त रोग नष्ट होते हैं। यथा—

गोमूत्रं कटुतीक्ष्णोष्णं सक्षारत्वान्न वातलम्।

लघ्वाग्निदीपनं मेध्यं पित्तलं कफवातजित्।

शूलगुल्मोदरानाह विरेका स्थापनादिषु।

मूत्रप्रयोग साध्येषुगव्यं मूत्रं प्रयोजयेत् (सु०)

गोबर (गोमय)—पर्याय—(सं०) गोविट्, गोक्रुत्, भूमिलेपन, जगल, गोहन्त, गोशक्रुत्, गोपुरीष, गोविष्ठा, गोमल (रा०); (बं०) गोवर; (अं०) काउडंग (Cow dung)। गुण—पवित्रकारक, कृमिघ्न, वात-विकार नाशक, चर्मरोगनाशक है।

गोमयोपल (उपला, उपरी, करसी)—(बं०) वन-घूँटे, विनघूँटे। गुण—सम्पूर्ण गुण गोबरतुल्य है।

गोबर का उपयोग—नेत्ररोग में तिमिरनाशनार्थ किया गया है; यथा—तिल तैल १ श०, गोमयरस १ श० 'गवां शकृत्कवाथ विपक्वमुत्तमं हितंच तैल तिमिरेषु नस्ततः'। (भैष०)। दे० 'गोमयाद्यघृत, मरिचाद्य तैल और गोमय-चूर्ण'। तिब्ब के अनुसार श्रेष्ठ गोबर रक्तगाय का होता है। गाय का गोबर का पानी नाक में टपकाने से टीस जाती रहती है। इसको मसूढ़ों पर लगाने से दन्तशूल नष्ट होता है। यदि गोबर में गन्धक का चूर्ण मिश्रितकर कपास के वस्त्रपर लगाकर समस्त शरीर पर लेप किया जाय तो शरीर का पीत जल शोषित हो जाता है। यदि प्रसववेदना के समय इसके गोबर की धूनी योनि में दी जाय तो सरलतापूर्वक

प्रसव होता है और यदि पेट में बच्चा मर गया हो तो निकल जाता है और अमरा पात होता है ।

गाय का मांस (गोमांस)—पर्याय—(ब०) गोधरमांस; (सं०) गव्यमांस; (अ०) लहसुल बकर; (फा०) गोश्त गाव ।

गुण—गौ का मांस श्वास, कास, प्रतिश्याय (जुकाम) तथा विषमज्वरनाशक, श्रमावस्था में और भस्मकरोरोग में हितकर, पवित्र और वायुनाशक है । यथा—

श्वास कास प्रतिश्याय विषमज्वरनाशनम् ।

श्रमात्यग्निहितं गव्यं पवित्रं मनिला पटम् ॥

(सु० सू० ग्राम्य वर्ग ४६ अ०) । गोमांस—केवल वातरोगों में तथा प्रतिश्याय, विषमज्वर, शुष्ककास, (सूखी खाँसी), श्रम, अतिवीक्षण अग्नि (भस्माग्नि) तथा मांसक्षय में हितकर है । यथा—

गव्यं केवल वातेषु पीनसे विषमज्वरे ।

शुष्क कास श्रमात्यग्नि मांस क्षय हितं च तत् ॥

(च० सू० मांसवर्ग २७ अ०) ।

तिव्व के अनुसार गोमांस—प्रकृति—उष्ण एवं रुक्ष है । **गुण-कर्ष—**दीर्घपाकी, पिच्छिल रस को असंपक्व-कारक, रुधिर में कोथ उत्पादक, वातज रोगजनक तथा आमवात और गुदरसी में उपयोगी है; कुष्ठ, कर्कट (सरतान), प्लीहशोथ, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, गंजसर, शिरोभ्रमण, कण्डू इनमें गोमांसभक्षण हानिकारक है ।

जो व्यक्ति मद्यपान न करते हों उनको गोमांसभक्षण निषिद्ध है । गोमांस मद्यपान से शीघ्र जीर्ण होता है । मांस-भक्षण करनेवाले व्यक्ति को उचित है कि वह पित्त विरेचक वस्तु का सेवन करता रहे । गोमांससेवन का उत्तम काल आश्विन (रबी) मास है । गोमांस को पकाकर उसकी वसा पृथक्कर, रस को कान में डालने से कर्ण-कृमि का नाश होता है और अग्निदग्धस्थान पर उक्त रस को लगाने से फोस्का नहीं पड़ता । गाय का मस्तु-बुद्धि सेवन करने से मैथुनशक्ति की वृद्धि होती है । यदि इसको सूर्यास्त के पूर्व शिवत्रकुष्ठ पर मर्दून किया जाय तो लाभ होता है । गाय के सिर का मांस भक्षण करना उचित नहीं । ऐसे व्यक्तियों को यदि खाने की इच्छा हो तो इस को भली भाँति गलाकर पकाएँ और इसमें राई, तेजपात, मधु और गुड़ वा छोहाड़ा युक्त पकाएँ वा इसके सेवन के पश्चात् गुड़ वा कोई अन्य मधुर वस्तु का सेवन करे । इसके खाने के पश्चात् जलपान वर्जित करें । यदि शुष्कता की वृद्धि हो तो जलपान करें । इसके साथ सिरका खाना वर्जित है; क्योंकि रक्तदोष (सौदा) अधिक उत्पन्न होता है । अन्त्रवृद्धि के रोगी को इसका सेवन किसी के अनुसार लाभप्रद है । अधिक श्रम करनेवाले व्यक्तियों को इसका सेवन उत्तम है । इसके सेवन से शरीर

पुष्ट होता है । इसके सेवन से रक्त में कोथ उत्पन्न होता है ।

वसा (चरबी)—गाय की चरबी में वही गुण हैं जो शूकरवसा में हैं; किन्तु यह उससे किंचित उत्तम है । यदि इसकी वसा को किसी पात्र में लगाकर रख दिया जाय तो उसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं ।

यदि गोमांस कच्चा वा पका हुआ ग्रहणकर उसमें गोरक्त डुबाकर किसी शीशे के पात्र में भरकर और दृढ़तापूर्वक मुखाच्छादित कर ४० दिन तक रखा रहने दें तो उसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं । उसमें से कृमियों को छाँटकर किसी अन्य शीशे के पात्र में रखें । जब एक दूसरे को खाकर केवल एक कृमि शेष रह जाय तो वह कृमि अत्यन्त विषैला हो जाता है । इसको १ माशा की मात्रा में सेवन करने से मृत्यु उपस्थित होती है । इसको ग्रहणकर खुरासानी अजवाइन के साथ चूर्ण कर नस्य देने से मूर्च्छा उत्पन्न होती है ।

करेकभूत गोमूर्धा—गाय का मांसरहित मस्तक जो अस्थिमात्र रह गया हो, सूतिका भवन के छत पर स्थापन करने से तत्काल सुखपूर्वक प्रसव होता है ।

(भावप्रकाश) ।

गाय का पित्त—(गोपित्त)

(१) यदि कनीनिका संकोच (जैक) के रोगी को गोपित्त पान कराकर, भर्जित गोमांस (कबाब) सेवन कराएँ तो उसी दिन उस रोग से रोगी मुक्त हो जाता है । (२) गोपित्त ग्रहणकर शरीर के कृष्ण चिह्न पर लगाने से स्याह दाग नष्ट होता है । (३) इसको गन्दना के स्वरस के साथ मिश्रित कर प्रलेप करने से अर्शकुर नष्ट हो जाते हैं । (४) गोपित्त में कुटकी का चूर्ण मिश्रित-कर फलवर्त्ती निर्माणकर गर्भाशय में स्थापन करने से गर्भपात होता है ।

निवारण—कतीरा, मधु उभय ६ रत्ती ।

हानिकारक—

गोवत्स-मांस—यह प्लीहरोग में वर्जित है ।

निवारण—गोमांसजन्य दोष में—दालचीनी, काली मरिच, सोंठ मिश्रितकर पकाएँ और भली भाँति गलाएँ । यदि खरबूजा वा एरण्डखरबूजे का छिलका वा जंगली अंजीर वा कचरी पाककाल में डालें तो भली-भाँति गल जाता है और शीघ्र आमाशय से उत्सर्गित होता है ।

गोवत्समांस में—निवारण—भली-भाँति प्रक्षालन कर पकाएँ ।

गोबर का दोष—यह कास उत्पन्न करता है ।

निवारण—बकरी का दूध ।

मात्रा—गोबर—९ माशा ।

आयुर्वेद के अनुसार—गोमांस दोष—दीर्घपाकी, अति-स्निग्ध, कफोत्पादक, अर्शोत्पादक तथा तृष्णाकारक है।

गाय की सोंग तथा बाल—गौ के सींग वा गौ के गले का बाल ग्रहण कर धूम्रपान करने से हिचकी और श्वास का नाश होता है। (वा० श्वास-हिककाचि० श्लो० १३)।

गायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) खैर का पेड़। खदिर वृक्ष। (भा०; च० द०; अम०; सि० यो० रक्तपित्त चि० खण्डखाद्य लौहे। (बालमूली च गायत्री) (२) खैरसार। खदिरकाष्ठसार। कत्था। (च० द० यक्ष्म-चि० एलादिमन्थे) ॥

गायत्रीसार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कत्था। खदिरसार। (च० द०)।

गायत्रय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोमलताभेद 'गायत्र्य-स्त्वैष्णुभः'। (सु० चि० २९ अ०)।

गार—संज्ञा पुं० [अ०] पर्याय—फल—(अ०) हव्वुल गार; (यू०) दाफनी (Daphne), जाकनी, दकनी; (अं०) लॉरेलवे (Laurel-bay), स्वीट बे (Sweet-bay), चेरी लारल (Chery laural); (ले०) लारस् नोबिलिस (Laurus-nobilis), प्रूनस-लारोसिरेसी (Prunus Laurocerasi)।

कर्पूरादि कुल (Family : Lauriaceae)।

उद्भवस्थान—दक्षिण युरोप, एशिया माइनर इत्यादि।

परिचय—एक प्रकार की यूनानी वनस्पति है। इस का रोपण प्रायः ब्रिटेन में नहीं होता है। यूनान के सुप्रसिद्ध हकीम दीसकूरीदूस ने 'दफनी' नाम से इस वनस्पति का वर्णन किया है। मुहीतआजम यूनानी ग्रन्थ के अनुसार इसका यूनानी नाम जाकनी है। किन्तु इसका शुद्ध नाम 'दफनी' है। यूनान देश में प्राचीन काल में गारवृक्ष को अत्यन्त प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते थे। इसके विषय में एक आख्यायिका इस प्रकार है। दफनी नाम की एक कुमारी कन्या थी, जिसके ऊपर यूनान के एक व्यक्ति अबुलूद ने प्रेमासक्त होकर जा पकड़ा और उसे अपनी प्रेमिका बनाने की प्रार्थना की। उक्त कन्या ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। और वह कन्या स्वयं गारवृक्ष में परिणत हो गई। इस वृक्ष को यूनान में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त है और इसकी शाखाओं की टोपी बनाकर वहाँ के लोग अपने सिर पर धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त रूम के लोग भी इसको प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। इसकी पत्तियों की सुन्दरता और इसके चिकित्सोपयोगी होने के कारण यूरोप के उद्यानों में इसे लगाया जाता है। भारतवर्ष में इसका फल हव्वुलगार के नाम से विक्रय होता है। इसके वृक्ष की आयु १००० वर्ष की होती है। फल का स्वरूप किञ्चित् गोल अण्डाकार प्रायः $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{3}$ इंच तक लम्बा होता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में एक पीतपाण्डु वर्ण का उड़नशील तेल होता है। बीजों में वसा, उत्पत् तेल और निर्यास होता है।

उपयोगी अवयव—फल।

प्रकृति—द्वितीय वा तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। पत्र व छाल इसके बीज की गिरी की अपेक्षया अधिक उष्ण वा रुक्ष हैं। बीज का तेल आक्षोटवैल की अपेक्षया अधिक उष्ण है।

गुण-कर्म—स्मृति एवं बुद्धिवर्धक, अपस्मारहर तथा वातरोग, स्वाप एवं पक्षवध तथा शिरःशूल नाशक है।

उपयोग—मद्य, सिरका वा गुलरोगन में मिश्रितकर कर्णपूरण करने से शिरःशूल, वाधिर्य, कर्णनाद इत्यादि का नाश होता है। इसकी छाल का चूर्ण मधु में मिश्रितकर अवलेहन करने से श्वासकष्ट नष्ट होता है। मद्य के साथ सेवन करने से सर्प-वृश्चिक तथा अन्य कीटों का विष नष्ट होता है। जल वा दूध में पीस कर प्रलेप करने से मधुमक्षिका एवं भ्रमरदंश का नाश होता है। मधुयुक्त सेवन करने से उरक्षत एवं कृच्छ्रश्वास का कष्ट दूर होता है और वक्षवेदना शान्त होती है। सिकंजबोन के साथ मिश्रितकर अवलेहन करने से पित्तजन्य रोग नष्ट होते हैं और उरःफुफुस की ओर दोषों का गिरना रुक जाता है तथा जीर्णकास का क्षय होता है। इसके पत्र को ग्रहणकर जल में क्वाथनिर्माणकर गण्डूष धारण करने से दन्तशूल शमन होता है और पान करने से वमन होता है। यह बस्तिरोग एवं गर्भाशयिक रोग में उपयोगी है। इसके क्वाथ से अवगाहन व नस्य ग्रहण करने से वृक्करो, गर्भाशयिक रोग और वस्तिरोग का नाश होता है। इसकी छाल ३० माशा प्रतिदिन जल में पीसकर सेवन करने से अश्मरी भंग होकर उत्सर्गित होती है। इसका लबाब अत्यधिक तिक्त होने के कारण गर्भवती को देना वर्जित है। कारण यह है कि इसके सेवन से उदरगत गर्भ नष्ट हो जाता है। इसका चूर्ण ९ माशा की मात्रा में इसबगोल के लबाब के साथ सेवन करने से अन्त्रगत आकुंचन नष्ट होता है और हस्तिमेह, बिन्दुमूत्र, अश्मरी तथा अन्यान्य विषविकार नष्ट होते हैं। इसके सेवन से आमघात शमन होता है।

इसके पत्तों की गन्ध से मषकादि कीट भागते हैं। इसकी लकड़ी शय्यापर रखकर उसपर बालकों को शयन कराने से निद्राकाल में उत्पन्न होनेवाला भय नहीं उत्पन्न होता। जहाँ अधिक मच्छड़ लगते हों, वहाँ इसके पत्रों को बिछा देने से वा इसका क्वाथ बनाकर छिड़क देने से वे भाग जाते हैं।

अहितकर—वमन लाता है और यकृत व आमाशय को

शिथिल करता है। निवारण—जरिस्क, प्रतिनिधि—
हबुलमहालिब, कडुआ वादाम की गिरी।

सात्रा—विरेचनार्थ—२ से ९ माशा तक।

गार का तेल (रोगन-हबुलगार)—

निर्म्माणविधि—गार के सुपक्व फलों को ग्रहणकर भली-भाँति जल में पीस कर क्वाथ करें। जब तैलांश जल के ऊपर आ जाय थोड़ी देर तक रख छोड़ें। जब शीतल हो जाय तब पानी के ऊपर का तेल काछ कर पृथक् रख लें और पुनः पकाकर तेल निकाल कर छान लें अथवा गार के पत्र व फलों को ग्रहणकर जल में क्वाथ कर जब $\frac{1}{4}$ भाग शेष रह जाय तब उसमें जैतून का तेल मिश्रितकर तेल सिद्ध करें। जब तेलमात्र शेष रह जाय छानकर सुरक्षित रखें।

प्रकृति—गार के अन्य अवयवों की अपेक्षा यह अधिक उष्ण है। इसके अन्वेषक यूनान के सुप्रसिद्ध हकीम श्रोमान् दीसकूरीदूस हैं।

गुण-कर्म—वातनाडीउत्तेजक, यकृतशूलहर, संशोधक, सन्निवूलहर, वातघ्न, दद्रुनाशक, शोथघ्न, चर्मरोगघ्न, और शीतजन्य वेदनाशामक है। उपयोग—इसको द्राक्षासव के साथ पान करने से तथा अभ्यङ्ग करने से यकृच्छूल नष्ट होता है। इसके अधिक सेवन से उत्क्लेश उत्पन्न होता है, आमाशय में शिथिलता उत्पन्न होती है और वमन होता है। इसके उपयोग से जीर्णसन्निवूल नष्ट होता है और वायु विलीन होती है। इसको शिर में लगाने से इन्द्रियुत्त तथा दद्रु का नाश होता है। यह लेखनीय और शोथघ्न है। इसके अभ्यङ्ग से मषक, तिलकालक तथा व्रणचिह्न का नाश होता है, वातनादियों में मृदुता प्राप्त होती है और कण्डू दूर होता है। इसके मर्दन से वातरोग तथा त्वक्स्वाप का नाश होता है। शैत्यजन्य वेदना, प्रसेक, श्लेष्मविकार, मस्तिष्कगत शीतादि में प्रशस्त है। इसका नस्य ग्रहण करने से शीतजन्य अर्थावभेदक दूर होता है।

अहितकर—उष्ण प्रकृति के व्यक्तियों तथा वक्ष व आमाशय को। निवारण—आमाशयिक विकार में अनीसून, और वक्षविकार में कतीरा। प्रतिनिधि—जिफ्रततर।

सात्रा—अभक्ष्य है।

गार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गारवृक्ष। इंडुदी हिङ्गोट। (के०)।

गार—संज्ञा पुं० [अ०] खाता। गड्ढा। गह्वर।

गार आला व अस्फुल—संज्ञा पुं० [अ०] तालुगत खात। तालुकूप। तालवुदुखल।

गार करजी—[अ०]

गार चेइदु—संज्ञा पुं० [ति०] गार वृक्ष। हिङ्गोट। हिगुआ। इङ्गुदी।

गारज—संज्ञा पुं० [अ०] प्रातःकाल पी जानेवाला मद्य।

गारवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिङ्गुआ। हिङ्गोट। इङ्गुदी। (के०)।

गारा—संज्ञा पुं० [?] (१) कर्दम। कीच कीचड़। (२) बैगन। वृन्ताक। हिगुआ। इङ्गुदी। संज्ञा पुं० [ते०] गारवृक्ष। (के०)।

गारा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) प्रकृति। स्वभाव। मिजाज। (२) ओष्ठ। दहन। (३) उदर। शिकम। (४) योनि। फर्ज। (५) नेत्रमोलक। नेत्रगुहा। नेत्रकूप। खानएचश्म।

गारित्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धान्य विशेष। (वै० निघ०)। (२) भात। ओदन। (उणा०)।

गारीकून—संज्ञा पुं० [अ०] पर्याय—(यू०) गारीकून, अगारीकून; (अ०) अगारीकून, गारीकून अव्यञ्ज, गारीकून तिब्बी; (फा०) गारीकून (मुसहिल, सनोबर); (हिं०) छत्री; (सं०) छत्रिका, शिलिन्ध्रक, वृक्षारोह, दिलीर, उध्यङ्ग, उच्छिलीन्ध्र; (पं०) किआईन; (का०) जंगली बुलगर; (अ) अगैरिकस एल्बस (Agaricus albus), पॉलिपोरस ऑफिसिनेलिस (Polyporus officinalis); (अं०) लार्च अगैरिक (Larch-Agaric), पर्जिङ्ग अगैरिक (Purging Agaric)।

छत्रकादि कुल (Family : Fungi)।

उद्भवस्थान—पंजाब, एशियामाइनर इत्यादि।

परिचय—यह एक प्रकार का पराश्रयी उद्भिद है जो चीड़ के पुरातन वृक्षों पर स्वतः उत्पन्न होता है। अत्तारों के यहाँ यह श्वेत, विषम खण्डों में प्राप्त होता है जो परिमाण में लघु, उपरित्वक्वर्जित, किञ्चित्तन्तुयुक्त और स्पंजवत् होते हैं। इसमें अत्यल्प गन्ध होती है। स्वाद प्रथम मधुर पुनः अम्ल प्रतीत होता है। चलनी में चाले हुए चूर्ण को गारीकून मुगर्बल कहते हैं। औषधार्थ इसी का उपयोग होता है। शुद्ध गारीकून की परीक्षा—

यह श्वेत एवं लघु होता है। यदि इसमें उक्त लक्षण न हों तो मिश्रित तथा नकली समझना उचित है। शुद्ध वास्तविक गारीकून स्वाद में किञ्चित् मधुरता युक्त होता है। जल में डुबाने से न डूबे तो शुद्ध तथा तलस्थायी हो जाय तो नकली समझना उचित है।

रासायनिक संगठन—इसमें गोंद, सिक्थ, उदयास (Resin), तिक्त सत्व, छत्रिकाम्ल (Agaric acid), क्षार (Potash), स्फुरकाम्ल (Phosphoric acid), चूर्ण (Lime), नुसार (Ammonia), गन्धकांश, अण्डलाल (Albumen), अगैरिकाम्ल (Agaric acid) इत्यादि सत्व होते हैं। इसके सत्व (Agaricin) में ९७ प्रतिशत अगैरिकाम्ल (Agaric acid) और ३ प्रतिशत अगैरिकोल (Agaricol) होता है। छत्रिका सत्व (Agaric acid) अत्यन्त सूक्ष्म, श्वेतस्फटिकवत् कणों से युक्त होता है। यह सुरासार, क्लोरोफार्म और ईथर में तथा जल में विलयित करने से घुल जाता है।

सत्व की मात्रा— $\frac{1}{4}$ ग्रेन से १ ग्रेन तक रात्रि स्वेदावरोधार्थ दिया जाता है।

गुण-कर्म—प्रकृति—यह प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रुक्ष है। किसी के अनुसार तर है। यह सान्द्रदोष-विरेचक, अवरोधोद्धाटक, दोषतारल्यकारक, रक्तस्तम्भक, वामक, मूत्रजनक, आर्तवउत्पादक और कफ तथा सौदा का विरेचक है।

उपयोग—इसके उपयोग से अतिसार, कास, श्वास, वात-रक्त, अपस्मार, गुध्रसी, जलोदर, शूल, कफज्वर, रक्तष्ठीवन, राजयक्ष्मा तथा आमवात का नाश होता है। प्लीहशोथ प्रशमनार्थ मधुमिश्रित कर दिया जाता है अथवा सिकञ्जबीन के साथ प्रदान करने से उक्त लाभ होता है। इसके उपयोग से यकृत-वृक्कावरोध नष्ट होता है। इसे मूत्र-आर्तव अवरोध में देने से लाभ होता है। यह प्रायः विषों का अगद है। ४ जौ की मात्रा में सिरका के साथ घोंटकर देने से विषविकार नष्ट होता है। मधु और मस्तगी के साथ सेवन करने से श्वास नष्ट होता है और वक्षवेदना शांत होती है। जल के साथ सेवन करने से रक्तवमन शांत होता है। ऊदसलीव के साथ देने से अपस्मार नष्ट होता है। यकृतरोग और आमाशयिक रोग में उपकारी है। अर्कसौंफ के साथ सेवन करने से वृक्क-वस्तिगत अश्मरी नष्ट होती है। कीटपतंग आदि के विषों को शांत करता है। सिकञ्जबीन के साथ देने से कामला और प्लीहविकार का नाश होता है। असारून के साथ देने से जलोदर नष्ट होता है। मधु मिश्रित कर देने से शूल और प्रत्येक प्रकार का वातज विकार शांत होता है। एलुआ के साथ देने से आमवात और गुध्रसी नष्ट होती है और दोषज ज्वर, वात-ग्रह नाडीगत रोग तथा अपतन्त्रक के लिए उपयोगी है। इसे जुन्दबेदस्तर के साथ देने से प्रत्येक शूलों का नाश होता है। इसको धारण करने से वृश्चिकदंशन का भय दूर होता है। इसका बिना किसी मिश्रण के उपयोग करना वर्जित है। अतः इसको किसी उचित निवारण के साथ सेवन कराना उचित है।

विषाक्तता—यदि इसके पीत, रक्त व कृष्ण भेदों में से किसी के सेवन से विष के लक्षण उपस्थित हों, तो उष्ण जल से वमन कराकर ताजा दुध दें और जुन्दबेदस्तर का उपयोग करें।

अहितकर—कंठ एवं शोथ को और आकुलताकारक है।

निवारण—जुन्दबेदस्तर और ताजा गोदुध।

प्रतिनिधि—इन्द्रायण और अपतीमून द्विगुण तथा उस्तुखुदूस।

मात्रा—४ रत्ती से २ माशा तक। डॉक्टरों की मात्रा—१५ से ३० ग्रेन तक।

डॉक्टरों के उपयोग—मधु के साथ ज्वर में देने से शीतला के दाने शीघ्र निकल आते हैं। अल्पमात्रा में देने से अतिसार का अवरोध होता है। रक्तष्ठीवन और कफज कास में तथा रात्रिस्वेद में यह अत्यन्त उपयोगी है। जलौका-दंशज रक्तस्राव में उत्तम लाभप्रद है। दुग्धस्राव-निरोधार्थ इसको वक्ष पर लगाते हैं।

होमियोपैथिक के अनुसार—अगैरिकस फेल्लोइडिस (Agaricus Phalloides)—यह छत्रिका जाति के फंगस का मूल अरिष्ट है।

चरित्रगत लक्षण—निरन्तर अतिसार व वमन की चेष्टा बनी रहती है। दस्त का वर्ण चावल के धोवन वा बासी भात के पानी का-सा होता है। शीतल जल पीने की अदम्य इच्छा बनी रहती है। नाड़ी की गति शिथिलप्राय होती है, वह टक-टक कर चलती है और अत्यन्त क्षीणावस्था में होती है तथा कभी-कभी लुप्त हो जाती है। पक्वाशय में उद्वेष्टन (Cramp) होता है। श्वास कभी तीव्र कभी मन्द हो जाता है। मूत्रावरोध होता है वा मूत्राशय में उसका एकत्र होना प्रायः बंद हो जाता है। विसूचिका के प्रायः लक्षण उपस्थित होते हैं।

चिकित्सा—उपयुक्त लक्षण प्राप्त होने पर अगैरिकस का क्रम—७, १×, ३-३० शक्तिप्रदान करें। फार्मूला—३।

आयुर्वेद के अनुसार—(संस्कृत) पर्या०—गोमयछत्रिका, दिलीर, वसारोह, गोलास, उध्यंग (हा०), उच्छिलीन्द्र। स्थानभेद से यह कतिपय प्रकार की होती है। गुण—शीतल, कषाय, स्वादु, पिच्छिल, वमन, अतिसार, ज्वर और कफरोग उत्पादक और पलालज छत्रिका स्वादुपाकी एवं रुक्ष है (च०)।

रेणुज, गोष्ठज, शुचिस्थानज, काष्ठज, श्वेतछत्रिका दोषकारक और निन्दित है। (राज०)।

गारीकून शुद्ध—संज्ञा पुं० [फा०] शुद्ध गारीकून का चूर्ण। शुद्ध छत्रिकाचूर्ण। (ले०) अगैरिकस ऐल्बस (Agaricus Albus)। (अं०) मशरूम (Mushroom)। **गारुड**—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना। स्वर्ण। (मे०)। (२) मरकतमणी। (रा० नि० व० १३)। (३) उक्त नाम का विष। (जटा०)।

गारुडिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विषचिकित्सक। विष वैद्य। (श० र०)।

गारुडी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गारुडवल्ली। पतालगाड़ी लता। पानी जमा। जलजमनी। (रा० नि० व० ३)।

गारुत्मक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मरकतमणी। (रा० गारुत्मत्—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नि० व० १३);

(वै० निघ० क्षय-चि० त्वरन् राजमृगाङ्गुमें)।

गारुत्मन् पत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गङ्गपत्री । पाची-
लता । (रा० नि० व० १०) ।
गारुस आकुइलेस कार्डिफर्मेस-संज्ञा पुं० [फ्रांस] मञ्जिष्ठा ।
मजोठ । (डाइमॉक भ० २, पृ० २३१) ।
गार्ग्यतन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गर्ग ऋषिप्रणीत उक्त
नाम का शालाक्य तन्त्र का ग्रन्थ । अब यह उपलब्ध
नहीं है ।
गार्गल-संज्ञा पुं० [अं० (Gargle)] गण्डूष । कुल्ली । गरारा ।
गरगरा । अनौषधीय जल से कुल्ला करना ।
गार्गेरिज्मा-संज्ञा पुं० [अं० (Gargerism)] गण्डूषधारण ।
जल से कुल्ली करना । गर्गरः । दवा के पानी से कुल्ली
करना ।
गार्ज्जर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गाजर । गर्जरमूल ।
(रा० नि० व० ७) ।
गार्डेन क्विनीन-संज्ञा पुं० [अं० (Garden Quinine)]
छोटी अरनी । क्षुद्र अग्निमन्थ ।
गार्डेनिया आर्बोरिका-संज्ञा स्त्री० [ले०] (Gardenia-Arbo-
rica) पिण्डीतगर ।
गार्डेनिया कैम्पेन्युलेटा-संज्ञा पुं० [ले०] (G. Campa-
nulata) पिण्डीतगर ।
गार्डेनिया फ्लोरिडा-संज्ञा पुं० [ले०] (G. Florida) ।
गार्डेनिया फ्लोरिबुन्डा-संज्ञा पुं० [ले०] (Gardenia Flo-
ribunda) पिण्डीतगर ।
गार्डेनिया रेजिनिफेरा-संज्ञा स्त्री० [ले०] (G. Resi-
niferae) ।
गार्डेनिया गुम्मिफेरा-संज्ञा पुं० [ले०] (G. Gummifera) ।
गार्डेनिया ल्यूसिडा-संज्ञा पुं० [ले०] (G. Lucida)
डीकामाली । गन्धराज । नाडीहिङ्गु । (इं०
मे० मे०) ।
गार्दल-संज्ञा पुं० [वम्ब०] गिल्ला (वं०) ।
गर्द्ध-वि० [सं० त्रि०] आद्यून । संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]
आद्यूनता । उदर सम्बन्धी ।
गार्भ-वि० [सं० त्रि०] } गर्भ सम्बन्धी ।
गार्भिक-वि० [सं० त्रि०] }
गार्सिनिया इण्डिका-संज्ञा स्त्री० [ले०] (Garcinia Indica)
कोकम ।
गार्सिनिया जेन्थोकाइमस-संज्ञा पुं० [ले०] (G. xantho-
chymus) दम्पल । तमाल (वं०) । (इं०
मे० मे०) ।
गार्सिनिया पिक्टोरिया-संज्ञा स्त्री० [ले०] (G. Pictoria)
तमाल (वं०) । उसार ए रेवन्द । गोतागम्बा ।
गार्सिनिया पर्प्यूरिया-संज्ञा स्त्री० [ले०] (G. Purpurea)
कोकम ।
गार्सिनिया मोरेल्ला-संज्ञा स्त्री० [ले०] (G. morella)
तमाल । गोतागम्बा । स्वर्णक्षीरी ।

गार्सिनिया मैङ्गोस्टेना-संज्ञा पुं० [ले०] (G. Mangostana)
मङ्गुस्तीन । रतम्बा ।
गार्सिनिया हंजुराई-संज्ञा पुं० [ले०] (G. Hunburi)]
तमाल । उसार ए रेवन्द । स्वर्णक्षीरी ।
गाल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मैनफल । मदनवृक्ष । (प० मु०) ।
(वा० ज्व० चि० १ अ०; 'पिप्पली भिर्युतान्गालाद्' ।
संज्ञा पुं० [देश०] तमाकू भेद ।
गाल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वस्त्र से किसी चूर्णादि को
छानना । वस्त्रपूतकरण । (वं०) छाँका ।
गालफल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मैनफल । मदनफल ।
(वै० निघ०) ।
गालव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लोथ । लोथ्रवृक्ष ।
(मे०) । (२) सफेद लोथ । श्वेत लोथ । (अ० टी०
भ०) । (३) तेन । केन्दुक वृक्ष । केंद गाछ । (श० च०) ।
(४) मैनफल । मदनफल । (धन्व० निघ०) । (५)
उक्त नाम के एक ऋषि जो प्राचीन काल में हिमवती
प्रान्त में हुए सम्मेलन में उपस्थित रहे । (भा०; च०
सू० १३।७) ।
गालवन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का गालव-
कृत तन्त्र विशेष, यह शालाक्यचिकित्साप्रधान तन्त्र था
जो अधुना अप्राप्य है ।
गालालूती-संज्ञा स्त्री० [यू०] तुरमुस ।
गालित-वि० [सं० त्रि०] गारने का कार्य । द्रवीकृत ।
गालियः-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का मिश्रित सुगन्ध-
पूर्ण योग । (म० अ०) ।
निर्माण विधि-अम्बर और लोवान ग्रहणकर रोगनवान
और सुगन्धित अर्कों के साथ भिगाया जाता है और
आवश्यकतानुसार इसमें शमक तथा लादन भी मिश्रित
कर दिया जाता है । प्रकृति-उष्ण एवं रुक्ष है । गुण-
समस्त अवयवों को शक्ति प्रदान करता है । इसके प्रलेप से
शोथ शमन होता है और नस्य ग्रहण करने से शीतजन्य
शिरोवेदना शान्त होती है । अपस्मार और सन्यास में
उपयोगी है । मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता है ।
हृदय को प्रिय तथा शक्तिप्रद है । मद्य में मिश्रित करने
से उसकी मादकता अधिक हो जाती है । रोगन बलसां में
मिश्रितकर कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है ।
शीतजन्य उन्माद में उपयोगी है । योनि में घूनी देने से
शीतजन्य गर्भाशयिक रोग शान्त होते हैं । अपतन्त्रक,
गर्भाशयशूल व शोथ में हितकर है । यह रुद्ध आर्तव को
चालित करता है तथा गर्भाशयग्रीवावक्रता में लाभप्रद है ।
इसको जननेन्द्रिय पर लेप कर मैथुन करने से स्त्री को
आनन्द प्राप्त होता है । अहितकर-उष्ण प्रकृति के
व्यक्तियों को शिर में पीड़ाप्रद है । निवारण-कपूर
सुघाएँ । प्रतिनिधि-लादन ।

गालियान—संज्ञा पुं० [यू०] } एक उद्भिज्ज है।
गालियून—संज्ञा पुं० [यू०]

उद्भवस्थान—यह सरोवर के कूलों पर उत्पन्न होता।

परिचय—जामः महाशय के अनुसार यह एक वनस्पति है। इसका क्षुप खड़ा होता है; पत्ते लम्बे होते हैं; पुष्प पीत वर्ण के छोटे-छोटे होते हैं जो अधिक फूलता है। इसमें अल्प सुगन्ध और अप्रियता होती है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं द्वितीय कक्षा में रुक्ष है। इसकी जड़ प्रथम कक्षा के अन्त में और द्वितीय कक्षा में तर है।

गुण-कर्म—रक्तसावावरोधक, पनीरमाया की भांति दग्धसान्द्रकारक। पुष्प—इसको पीसकर लेप करने से अग्निदग्ध का कण्ट दूर होता है और रक्त तथा पूयसाव बंद होता है। रोगान्शुल व मोम के तेल में मिश्रित कर लगाने से अंगों की वेदना शान्त होती है। मूल—इसकी जड़ मैथुनशक्ति को अत्यन्त प्रबल करती है।

अहितकर—प्लीह और यकृत को। निवारण—अनीसून। प्रतिनिधि—गाफिस (त्रायमाण) और कुन्दुश।

गाली—संज्ञा स्त्री० [यू०] दूध। दुग्ध। क्षीर।

गालीबूँस—संज्ञा पुं० [यू०] गागालुस।

गालूता—संज्ञा पुं० [यू०] नब्ती वाकला।

गालेगा पर्णुरिया—संज्ञा पुं० [ले० Galega purpurea] सरफोंका। शरपुंखा।

गालोडन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उन्माद रोग।

गालोडित—वि० [सं० त्रि०] (१) रोगी। रुग्ण। (के०)। (२) पागल। उन्मत्त।

गालोड्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमलगट्टा। पद्म बीज। (रा० नि० व० १०)।

गाल्थीरिआई ऑलियम्—संज्ञा स्त्री० [ले० (Gaultherii oleum)] भोजपत्रतुल्य एक वृक्ष से प्राप्त तेल। गन्धपूर तैल। शीतहरित तैल। वर्गन—इसके वृक्ष प्रायः कनाडा और अमरीका में उत्पन्न होते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का तेल प्रस्तुत करते हैं जिसे भाषा में 'हरीभरी का तेल' कहते हैं। यह तेल रंगहीन वा किंचित पीले रंग का और अत्यन्त सुगंधपूर्ण होता है। प्रकृति—उष्ण है। स्वाद-मधुर होता है। संरक्षण—इसके तेल को शीतल स्थान में अंबरी रंग की शीशी में रखने से इसमें विवर्णता नहीं उत्पन्न होती; किन्तु प्रकाश में रखने से इसमें विवर्णता उत्पन्न हो जाती है।

गुणकर्म तथा उपयोग—संधिवातजन्य वेदनाप्रशमनार्थ वेदनायुक्त स्थान पर इसका उपयोग (अभ्यङ्ग) करने से लाभ होता है। इसकी मालिशकर रेशमीवस्त्र का बंधन लगाने से वेदना शीघ्र शान्त होती है। इसे उचित मात्रा में सेवन करने से वेदना दूर होती है। सुगंधवर्द्ध-

नार्थ इसके तेल को मरहमों में भी मिश्रित किया जाता है। यह कोथन्ध भी है। मात्रा—३ से १० बूँद तक।

गाल्थीरिई—संज्ञा स्त्री० [ले० (Gaultheriae)] गन्धपूर। हेमन्तपुष्प। (अ०) विटरग्रीन (Wintergreen)।

गाव—संज्ञा स्त्री०, पुं० [फा०, सं० गो] (१) गाय। गवी। (२) बैल वृष।

गावक—संज्ञा [?] किलनी जो कुत्तों का रक्त पीती है।

गावकश—संज्ञा पुं० [फा०] सन्नम। इसे खाने से गाय मर जाती है।

गावकोही—संज्ञा स्त्री० [फा०] सावरशृङ्ग। बारह-सिंगा।

गावचश्म—संज्ञा पुं० [फा०] उक्हवान।

गावजबां—संज्ञा पुं० [फा० गाव+जबां=जोभ] एक सुप्रसिद्ध क्षुप जो ग्रीष्मऋतु में उत्पन्न होता है। यह प्रायः एक गज ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ पृथ्वी पर फैली रहती हैं। इसकी पत्तियाँ गोजिह्वासदृश खुरदरी होती हैं। पत्तों पर छोटे-छोटे सफेद उभार होते हैं। इसकी डालियाँ पतली, हरी; पत्तियाँ किंचित पीताभ और पुरातन होने पर कृष्णाभ हो जाती है। अधिक पुरातन होने पर इसकी कृष्णता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। पर्याय—(सं०) गोजिह्वा; (हिं०) काठमांड; (अ०) लिसानुस्सीर; (ले०) कैक्सीनिया ग्लांका (Caccinia-Glauca), ओनोज्मा ब्रेक्टिएटम् (Onosma Bracteatum)।

इलेष्मातकादि कुल (Family: Boraginaceae)।

उत्पत्ति स्थान—भारतवर्ष में अजीमाबाद तथा गीलान में अधिक उत्पन्न होता है।

उपयुक्त अंग—पत्र, पुष्प, बीज तथा पञ्चांग। औषधार्थ नूतन स्थूल पत्रवाला एवं पीताभ रंग का उत्तम होता है। जिन पर सूखने पर झुरियाँ पड़ गई हों वह विशेष उपयोगी नहीं होता। इसमें ७ वर्ष तक वीर्य विद्यमान रहता है। मरुजनुल् अदविया के लेखक ने इसका भारतीय नाम 'संखाहुली' लिखा है जो ठीक नहीं है। संखाहुली वास्तव में इससे एक सर्वथा भिन्न द्रव्य है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्र में अधिक प्रमाण में एक पिच्छिल द्रव तथा एक प्रकार का नाइट्रोजीनस अर्थात् भूयात्य पदार्थ प्राप्त होता है। स्वाद किंचित क्षारयुक्त होता है। इसके क्षुपकी भस्म में यवक्षार, सज्जिकाक्षार, सुधा, लोहांश तथा लघुमृत्तिका (magneia) होती है।

गावजबान—संज्ञा पुं० [सिंध] छोटा कुलफा। काठमांड। (मेमो०)।

गावजबां शीरी—संज्ञा पुं० [फा०] गावजबां तुल्य एक क्षुप

जिसकी ऊँचाई प्रायः १ गज होती है। इसके मध्य से प्रायः १ गज ऊँचा एक दण्ड निकलता है। इसमें सुरमई रंग का फूल लगता है। इसकी पत्तियाँ खुरदरी होती हैं और पृथ्वी पर बिछी रहती हैं। इसके पुष्प प्रायः गावजबाँ तुल्य होते हैं। कुछ लोग भ्रमवश इसे गावजबाँ कहते हैं। पर यह उससे भिन्न द्रव्य है। इसको अरबी में 'आजानु-स्तोर' कहते हैं। इसके पुष्प को 'कहल' कहते हैं। इसमें और गावजबाँ में यह अन्तर है—इसका पत्र चौड़ा और गोल होता है। शुष्कावस्था में इसमें खिचावट आ जाती है और यह अधिक पतला हो जाता है। गावजबाँ में उक्त बातें नहीं होतीं। इसके ताजे पत्तों में खीरे की पत्तियों की सी सुगंध आती है। इनको पकाकर और बिना पकाये भी खाया जाता है। गावजबाँ की अपेक्षा इसकी पत्तियों में अधिक पिच्छिलता होती है। अफ्रीका की भाषा में इसे 'वूसना' कहते हैं। इसका उल्लेख केवल 'सिसान' नाम से भी किया जाता है। प्राचीन काल में जब गावजबाँ का ज्ञान नहीं था, तब इसका उपयोग गावजबाँ के स्थान में होता था। इस प्रकार का उल्लेख शरह कातून में सैय्यद गाजरुनी ने किया है। इसके पूर्व गावजबाँ के स्थान में 'खस्सुल हिमार' का उपयोग होता था। आजरवैजान में इसको 'गावजवान शीरी' कहते हैं। इसे उक्त नाम से अभिधानित करने का कारण यह है कि गावजबाँ से इसकी भिन्नता प्रकट रहे। प्रचलित गावजबाँ पुरुष जाति का और यह स्त्री जाति का है। गावजबाँ की अपेक्षा यह गुण तथा वीर्य में हीन है।

प्रकृति—शीतल एवं स्निग्ध (तर), मत्तान्तर से द्वितीय कक्षा में शीतल एवं तर।

गुण कर्म तथा उपयोग—पिच्छिल, शुष्क, कासघ्न और मनःप्रसादकर है। इसके फूलों से गुलकंद बनाया जाता है जिसे 'गुलशकर गावजवानी' भी कहते हैं। यह उरो-हृदय को बल प्रदान करता है। इसकी पत्तियों के क्वाथ से गण्डूष करने से मुखक्षत का नाश होता है। यह उन्माद एवं आमाशयगत उष्णता में उपयोगी है। मुख-रोगनाशनार्थ इसका विशेष उपयोग होता है। शुष्ककास-नाशनार्थ इसका अधिक उपयोग होता है। उक्त रोगों में इसका काढ़ा देने से लाभ होता है।

गावजहरा—संज्ञा पुं० [फा०] गोरोचन । गोलोचन ।

गावदारू—संज्ञा पुं० [फा०] हज्जुल्वकर । दे० 'गाय' ।

गावपलंग—संज्ञा पुं० [फा०] उकहवान ।

गावमुशंग—संज्ञा पुं० [फा०] पामुख । (डी० भ० ३, पृ० १६०) ।

गावमुशनक—संज्ञा पुं० [फा०] रायुलहमाम ।

गावमेश—संज्ञा [फा०] भैंस । महिष ।

गावर—संज्ञा पुं० [फा०] जवाशीर । जावशीर ।

गावरधन—

गावरस—संज्ञा पुं० [फा०] बाजरा । बजड़ी । (अ०) जावरस ।

गावरोहन—संज्ञा पुं० [फा०] गोरोचन । गोलोचन ।

गावला—संज्ञा पुं० [] महलिब । प्रियंगु ।

(Prunus mahalib) ।

गाव बहशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] नीलगाय ।

गावशीर—संज्ञा पुं० [फा०] जवाशीर । जावशीर ।

गावीजन—संज्ञा पुं० [फा०] गोरोचन । गोलोचन ।

गास—संज्ञा पुं० [अ०] वह व्यक्ति जिसके गाल में कुछ लग गया हो ।

गासुम्मा—संज्ञा पुं० [फा० गाव + सुम] वह घोड़ा जिसका सुम गायके सुमके समान हो ।

गासूल—संज्ञा पुं० [अ०] उश्नान । सज्जी बूटी ।

गासूल रुनी—संज्ञा पुं० [अ०] सज्जीबूटी वा उश्नान का वह भेद जो रोम में होता है। अबुक्कानस ।

गास्नीस—संज्ञा पुं० [यू०] गागालुस ।

गाँजा—संज्ञा पुं० [सं० गञ्जा] भाँग के क्षुप की तरह के एक क्षुप की कलियाँ। इसके पत्र आदि समस्त अंग भाँग के सदृश होते हैं। इसकी कलियों में सफेद बीज निकलते हैं। इसमें तेल की मात्रा अधिक होती है। भारतवर्ष में इसका धूम्रपान किया जाता है। यह अति शीघ्र मादकता उत्पन्न करता है। इसमें अन्य समस्त गुण भाँग के समान होते हैं। दे० 'भाँग' ।

पर्याय—(सं०) गञ्जा, गञ्जाहा, गञ्जिका, गञ्जा-यिका, संविदामञ्जरी; (सिंध) गञ्जालातु; वृक्ष (ते०) गञ्जाविचेट्टु; (ता०) गञ्जा विरै; (अ०) कन्नब, गिञ्जोरा । (ले०) कान्नाबिस संटाइवा (Cannabis sativa); (अ०) इंडियन हेम्प (Indian hemp) ।

गाँडवाली ध्रौ—संज्ञा स्त्री० [गु०] (सं०) गण्डदूर्वा । गाँडर दूब ।

गाँडर—संज्ञा पुं० [देश०] तृण विशेष । खस । विशेष दे० 'खस' ।

गाँडर दूब, गाँडरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डदूर्वा] एक प्रकार का गुल्मजातीय तृणविशेष । दे० 'दूब' ।

गाँस्सिपियम्—संज्ञा पुं० [ले० Gossypium] कपास ।

गाँस्सिपियम् आर्बोरियम्—संज्ञा पुं० [ले० Gossypium Arboreum] सेमर (ल) । बाल्मली वृक्ष । दे० 'सेमल' ।

गाँस्सिपियम्-इण्डिकम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gossypium Indicum)] कपास ।

गाँस्सिपियम्-रेलिजिओसम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gossypium Religiosum)] देवकपास । दे० 'कपास' ।

गाँस्सिपियम्-हर्बेसियम्—संज्ञा पुं० [ले० (Gossypium Herbaceum)] कपास ।

गाहित—वि० [सं० त्रि०] (१) कम्पित । (२) स्नात । नहाया हुआ । (वै० निघ०) ।

गाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षीरशुक्ला । (प० मु०) । (२) क्षीरकाकोली । (रा० नि० व० ३) ।

गिजाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा । ग्वालिन । किसी के अनुसार यह कोई अन्य कीट है ।

वर्णन—यह एक प्रकार का रक्ताभ बरसाती कीड़ा है जो प्रायः सार्व भूमि में उत्पन्न होता है । इसके पैर गोजर के समान किन्तु अपेक्षाकृत उससे अधिक छोटे और संख्या में अत्यधिक होते हैं । इसके ऊपर बहुत छोटे-छोटे रोयें होते हैं तथा इसकी पीठ पर सफेद आड़ी लकीरें पड़ी होती हैं । यह अकेला वा एक दूसरे पर चढ़कर रेंगते हैं ।

प्रकृति—तीसरे दर्जमें गरम एवं खुश्क, मतांतर से दूसरे दर्ज में शीतल एवं तर ।

गुणकर्म तथा उपयोग—अंडकोष में इसकी धूनी देने से नपुंसकता प्राप्त होती है । दुष्ट वा कामोन्मत्ता घोड़ों को इसकी धूनी देने से उनकी मैथुनशक्ति जाती रहती है । इसके अतिरिक्त बनों में एक बड़ी गिजाई पाई जाती है जिसकी लम्बाई प्रायः एक वित्त की होती है । इसको सुखाकर घोड़ों के अण्डकोषों में धूनी देने से वे नपुंसक हो जाते हैं । नुस्खासईदी में लिखा है कि मनुष्य पर इसकी परीक्षा नहीं की गई है ।

गिजर—संज्ञा पुं० [कश्मीर] कतीरा । (पं०) बड़बीस ।

गिजाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] भोजन । आहार । खाद्यपदार्थ । (अं०) फूड (Food), डाइट (Diet) ।

गिजाऽकलीलु गिजाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] अत्यल्प पोषणांश युक्त आहार । वह भोजन जिसमें पोषक अंश अत्यल्प हो और मल भाग अधिक हो । इस प्रकार के आहार-द्रव्य से रक्त आदि की उत्पत्ति अल्प होती है ।

गिजाऽकलीलु गिजाऽ—संज्ञा पुं० [अ०] अतिपोषक आहार । वह आहार जिसमें पोषक अंश (आहारत्व) अधिक हो और किट्टांश अपेक्षाकृत अत्यल्प हो । इसमें रक्त आदि धातु (अस्लात) की उत्पत्ति प्रभूत होती है और किट्टांश अत्यल्प रह जाता है । यथा—अंडे की जर्दी ।

गिजाऽखालिस्—संज्ञा पुं० [अ०] विशुद्ध आहार ।

गिजाऽखालिज्—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जिसके सेवन से अत्यधिक दूषित रक्त आदि की उत्पत्ति हो और वह कठिनता से अंग का भाग बने; यथा—शूकर मांस, महिष-मांस इत्यादि । सान्द्र आहार ।

गिजाऽजुल्लसिद्यत्—संज्ञा पुं० [अ०] अचिन्त्य गुण-सम्पन्न खाद्यद्रव्य । अचिन्त्यवीर्यहार ।

गिजाऽदवाई—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जिसमें पोषण के गुण कम और औषधीय गुण अपेक्षाकृत अधिक हों ।

यथा—पुदीना, कासनीपत्र, मकोय, पलाण्डु, रसोन इत्यादि । आहारीषध ।

गिजाऽदवाई जुल्लसिद्यत्—संज्ञा पुं० [अ०] वह औषधीय आहार जिसका प्रभाव रस (माद्दा), गुण (कैफियत) और जातिस्वरूप (सूरत) के द्वारा निष्पन्न हो । यथा—मद्य, सेव इत्यादि । अचिन्त्यवीर्य आहारीषध ।

गिजाऽफादजहरी—संज्ञा पुं० [अ०] विषघ्न आहार ।

गिजाऽदवाई फादजहरी—संज्ञा पुं० [अ०] अचिन्त्य-वीर्य आहारीषध ।

गिजाऽफासिदुर् कैमूस—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जिसमें सालिहुल्कैमूस के विपरीत अर्थात् अशुद्ध एवं दूषित (अप्रकृत) रक्त वा दोष उत्पन्न हों । गिजाऽरहि-गुल् कैमूस ।

गिजाऽबिल्कुव—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जो धातु में परिणत होने की योग्यता रखते हों, परन्तु धातु का रूप ग्रहण न कर पाए हों ।

गिजाऽबिल्केल—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जो अपना जातिस्वरूप (सूरत) त्याग कर शारीर धातु में परिणत हो गया हो । यथा—रक्तवारि आदि ।

गिजाऽमुत्लक—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जिसका कर्म केवल रस (माद्दा) द्वारा निष्पन्न होता है । इसमें रस प्रधान होता है ।

गिजाऽमुत्वस्ति—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जो न अधिक सान्द्र हो और न अधिक प्रवाही । समाहार । इस प्रकार के आहार से दोषों की समता होती है ।

गिजाऽरहिदुर् कैमूस—संज्ञा पुं० [अ०] गिजाऽफासिदुल् कैमूस ।

गिजाऽलतीक—संज्ञा पुं० [अ०] लघु आहार । इस प्रकार के आहार शीघ्रपाकी होते हैं ।

गिजाऽरहिदुर् कैमूस—संज्ञा पुं० [अ०] वह आहार जिसके द्वारा शुद्ध रक्तादि दोषों की उत्पत्ति हो और अन्यान्य दोष सम मात्रा वा उचित प्रमाण में रहें—न मात्रा में न्यून हो न अधिक । उचित पोषक रसयुक्त आहार । प्रमाणोचित आहार ।

गिजाज्—संज्ञा पुं० [अ०] (१) नासिकाग्र । नाक की फुनगी । (२) नासिका । (३) मस्तक । (४) नेत्र बंद करना । आंख मूदना । (५) निम्नस्वर से भाषण करना । धीमी आवाज से बोलना । (६) सहिष्णुता । सहनशक्ति ।

गिजाब—संज्ञा पुं० [अ०] नेत्र में पड़जानेवाले तृण आदि ।

गि (ग) जाल—संज्ञा पुं० [फा०] हिरन । हरिन ।

गि (ग) जालुर्मा—संज्ञा पुं० [अ०] सेवार । शैवाल । दे० 'काई' ।

गिज्जर-हण्णु—संज्ञा पुं० [कता०]

गिञ्ज—संज्ञा पुं० [ते०] बीज ।

गिञ्जाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक क्षुद्र बरसाती कीड़ा । गिजाई ।

गटोरन—संज्ञा पुं० [] करेखा ।

गिडा—संज्ञा पुं० [कना०] वृक्ष । पेड़ ।

गिता—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु व० आगतः] परदा । पटल ।

गिदड़ तमाकु (तम्बाकु)—संज्ञा पुं० [पं०, देश०] एक उद्भिज्ज जिसकी पत्तियाँ कुकरौंधा की पत्तियों के समान, सम्मुखवर्ती होती हैं । फूल पिलाई लिए बैजनी रंग के होते हैं ।
पर्याय—(पं०) भूम के घूम, वलड़ के फूल ; (हिं०) जंगली तमाकु, गिदड़ तमाकु ; (ले०) वर्बेस्कम् थैप्सस (Verbascum Thapsus); (अ०) ग्रेट मुलीन (Great mullein) ।

घुण्डो कुल (Family : Scrofulariaceae) ।

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों के नदीकुलों पर आर्द्र भूमि में यथा—कश्मीर, हिमालय और भूटान इत्यादि में इसके क्षुप होते हैं ।

रासायनिक संगठन (पुष्प)—इसमें किंचित् पीला एक उत्पत् तेल, वसाम्ल, स्वतन्त्र स्फुरकाम्ल, सेवाम्ल, क्षार (एसीटेट ऑफ पोटाश, फास्फेट आफ लाइम्), गोंद, अस्वच्छ शर्करा, क्लोरोफिल और एक प्रकार का कुल-कुल पीला गोंद होता है ।

(पत्र) इसमें ८ स्फटिवत् सिक्थ, किंचिन्मात्र उत्पत् तेल, अल्प प्रमाण में कषायिन, शर्करा, तिक्त सत्व, निर्यास, ७८ ईश्वर में घुलनशील गोंद, ५.९% आर्द्रता, १२.६% भस्म तथा निर्यास आदि भी होते हैं । किसी के अनुसार इसमें गोंद, कर्बोज, द्राक्षोज (ग्लूकोज), शर्करोज (सैकरोज), आर्द्र पदार्थ, भस्म और ३२.७% काष्ठोज (सेल्यूलोज) और (लिग्निन) होता है ।

गुण-कर्म तथा उपयोग—सविष, ज्वरघ्न और श्वासघ्न, (बीज) वातक विष एवं वाजीकर है । (पत्र) इसके उपयोग से श्वास (दमा) का नाश होता है । पत्तियों को पीसकर किंचित् उष्णकर घृत मिलाकर प्रलेप करने से शोथ नष्ट होता है । इन्हें गाय के दूध में पकाकर मिश्री मिला यथोचित मात्रा में सेवन करने से श्वास-कास और वेदना शांत होती ।

गिदड़द्राक—संज्ञा पुं० [पं०] (१) गिदड़द्राक । अमलोलवा । (२) जामुन ।

गिदड़द्राक—संज्ञा पुं० [पं०] गिदड़द्राक । दे० 'अन्धुक' ।

गिदड़द्राक्ष—संज्ञा पुं० [] अमलोल । अमलोलवा । रामचना । दे० 'अमलोलवा' ।

गिदड़—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र] एक प्रकार का सुप्रसिद्ध प्रसह जातीय मांसाहारी पक्षी जो आकाश में उड़ा करता है और भृतक पशु आदि देखकर भूमि पर उतरता है ।

इसकी दृष्टि अपार होती है । इसकी ग्रीवा सफेद और सिर बड़ा होता है । इसके पर काले रंग के और पंजों के नख अत्यन्त तीक्ष्ण होते हैं । यह चोंच से मांस पकड़कर नखों से नोच कर खाता है । यह ताड़ तथा पुराने पीपल के वृक्षों पर प्रायः बैठता है और अपना घर बनाकर अंडा देता है । यह बत्तीस दिनों तक अंडा सेता है । •

पर्याय—(सं०) गृध्र; (वं०) शकुनी, गृधिनी; (अ०) नसर; (फा०) करगस, (अं०) वॉल्चर (Vulture) ।

गुणकर्म तथा उपयोग—(मांस) आयुर्वेद के अनुसार—इसके मांस में कौए के मांसवत् गुण हैं । (सु० सू० ४६ अ०; रा० नि० व० १९) ।

यूनानी वैद्यक के अनुसार यह दूसरे दर्जे में (मतांतर से पहले दर्जे में) गरम एवं खुश्क है । यह अशुद्ध रक्तोत्पादक (रदियुलकैमूस), शीतल एवं वातघ्न है । (पित्त) इसके उपयोग से नेत्राभिष्यद एवं शुक्ल (फूला) का नाश होता है । यह नेत्रगत सिराजाल (जाला) में उपयोगी है । स्त्री के थनैल (स्तनविद्रधि) पर इसे लेप करने से आराम होता है और स्तन्य की अतिवृद्धि होती है । (रुधिर) इसका रक्त लगाने से सूजन उतरती है । (विषदा वा री०) इसे लगाने से झाई मिटती है और धूनी से गर्भाशयिक शोथका नाश होता है । (मस्तुलंग) मधु और एलुआ के साथ इसका भेजा व्रणपर लगाने से व्रण का शीघ्र पूरण होता है । (अन्त्र) इसकी ताजी आंत अण्डवृद्धि पर लगाने से वृद्धि का नाश होता है ।

गिजाई—संज्ञा स्त्री० दे० 'गिजाई' ।

गि(ग)म—संज्ञा पुं० [अ०] (१) भेंड । मेष । (२) एक प्रकार का कतरान ।

संज्ञा पुं० [पश्तो] गेहूँ ।

गिनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] राग । संगीत ।

गिनी पिग—संज्ञा पुं० [अं० Guinea pig] सफेद चूहा । विलायती मूस ।

गिब्व—संज्ञा पुं० [अ०] (१) पित्त । सफरा । (२) पित्तज ज्वर । तृतीयक ज्वर । (अं०) टर्शियन फीवर (Tertian Fever) । भेद—(१) गिब्व दायरः (तृतीयक ज्वर) । और (२) गिब्व लाजिमः । पुनः यह विशुद्ध और अविशुद्ध भेद से दो प्रकार का है—(क) गिब्व खालिस (शुद्ध पित्तज ज्वर) और (ख) गिब्व गैर खालिस (अविशुद्ध पित्तज्वर) । गिब्व का धात्वर्थ एक दिन के अन्तर से आनेवाला अर्थात् एकाहिक ।

गिब्व दाइमः खालिस—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'गिब्व लाजिमः खालिसः' ।

गिब्व दाइरः—संज्ञा पुं० [अ०] तृतीयक ज्वर । तिजारी । तीयाज्वर । तीसरे दिन आनेवाला ज्वर । यह एक प्रकार का पित्तज ज्वर है । इस ज्वर में सिराभ्यन्तर

पित्तका कोथ होकर फिर ज्वर की उत्पत्ति होती है। (फा०) रोजफ्यान; (अ०) टर्शियन फीवर (Tertian Fever)।

गिब्व दाइर: गैर खालिस:—संज्ञा पुं० [अ०] साधारण तृतीयक ज्वर। यह एक प्रकार का साधारण तिजारी ज्वर है। इस ज्वर में विशुद्ध पित्तका अभाव होता है, पित्त कफ से मिला होता है। इस ज्वर का हेतु सिरावाह्य-गत पित्त-कफका कोथ है। यद्यपि यह ज्वर प्रति तीसरे दिन आक्रमण करता है, तथापि इन दिनों के बीच भी ज्वरांश अवश्य रहता है, इसमें शीत-कंपादि लक्षण विशुद्ध पित्तज्वर की अपेक्षा न्यून होते हैं। **चिकित्सा**—इसमें कफ-पित्त मिश्रित दोषों के अनुसार पित्त-कफ ज्वरहर द्रव्यों का उपयोग कराने से लाभ होता है।

गिब्व लाजिम:—संज्ञा पुं० [अ०] तृतीयक ज्वर। तिजारी बुखार। यह एक प्रकार का पित्तज्वर है। इसमें सिरा के भीतर पित्तका कोथ होकर पुनः ज्वर की उत्पत्ति होती है। यद्यपि इसमें शरीर के भीतर निरन्तर ज्वरांश बना रहता है, तथापि इसका आक्रमण प्रति तीसरे दिन होता है। इस ज्वर का कारण यदि विशुद्ध पित्त हो तो शुद्ध पित्त ज्वर (गिब्व लाजिम:) की उत्पत्ति होती है और यदि इसके विपरीत हो तो अविशुद्ध पित्तज्वर (लाजिम: गैर खालिस) की उत्पत्ति होती है। (सं०) सतत ज्वर; (अ०) रेमिटेंट फीवर (Remittent fever)।

गिब्व लाजिम: खालिस:—संज्ञा पुं० [अ०] पित्तज्वर। विशुद्ध पित्तज्वर। (अ०) गिब्व दाइम: खालिस:। (उ०) सफरावी बुखार। यह ज्वर विशुद्ध पित्त से उत्पन्न होता है। सिरा के आन्तरिक पित्त के कुपित होने से पित्तज्वर लक्षणों से युक्त इस ज्वर का प्रादुर्भाव होता है।

गिब्व लाजिम: गैर खालिस:—संज्ञा पुं० [अ०] यह एक प्रकार का कफपित्तज्वर (लाजमी) ज्वर है। इस ज्वर का हेतु दूषित पित्तकफ है। इसमें पित्तकफ युगपत् सिरा के भीतर दूषित होकर ज्वर की उत्पत्ति करते हैं। यह ज्वर निरन्तर शरीर में लगा रहता है। इसमें पित्त कफ दोनों के लक्षण प्रकट होते हैं।

चिकित्सा—इसमें सर्वप्रथम आहार इत्यादि न देकर दोष को पचाएँ। पुनः जब ज्वर का वेग शान्त हो जाय तब पित्तकफशोधक द्रव्यों का सेवन कराएँ।

गिब्वन—संज्ञा पुं० [अ०] वानर भेद।

गिमाभ—संज्ञा पुं० [अ०] धात्वर्थ अभ्र वा बादल। यूनानी वैद्यक की परिभाषा में वह सूक्ष्म श्वेतता जो नेत्र के कृष्णमण्डल पर व्यापमान हो जाती है। **पर्याय**—शुक्ल, फूली। **लक्षण**—इसमें अभ्र तुल्य दिखाई देता है।

गिम्ब—संज्ञा पुं० [अ०] [बहु० व० अरमाद, गमूद] कोष। खोल। आवरण। परदा।

(अ०) कवर (Cover)

गियात—संज्ञा पुं० [फा०] लक्ष्मणा। यवहज।

गियातुरई—संज्ञा स्त्री० []

घियातरोई। राजकोषातकी।

गियार कुश्त—संज्ञा पुं० [फा०] गावशीर। जवाशीर।

गियाह—संज्ञा पुं० [सं० हय] अश्वभेद। घोड़ा।

संज्ञा पुं० [फा०] तृण। घास।

गियाह क्रेसर—संज्ञा पुं० [फा०] वनमेथी। जंगली मेथी।

गियैन—संज्ञा पुं० [अ०] पूय। पीप। सड़ा खून।

गियोन सबा—संज्ञा पुं० [बर०] गेहूँ। गोधूम।

गिरई—संज्ञा स्त्री० [] सीरी मछली।

गिरगिट, गिरगिटान गिरगिटान—संज्ञा पुं० []

[छिपकली से बड़ा एक पुच्छयुक्त जन्तु।

इसकी ग्रीवा के बाल खड़े होते हैं। इसकी दृष्टि निरन्तर सूर्य की ओर रहती है। इसीलिए संस्कृत में इसे 'प्रतिसूर्य' कहते हैं। ग्रीष्मऋतु में वर्षा से पूर्व इसका सिर रक्तवर्ण हो जाता है और पुच्छ खड़ी हो जाती है। सूर्य के प्रकाश में इसका रंग चित्र-विचित्र रंगों में परिवर्तित होता रहता है। यह च्यूटा, मक्खी, मच्छड़ और गोजर आदि का आहार करता है। सर्प इसको प्रायः पकड़कर खा जाते हैं। यह अंडों से उत्पन्न होता है। इसकी मादा ग्रीष्मऋतु के अन्त में अंडा देती है। अंडे छिपकली के अंडों के सदृश सफेद रंग के होते हैं।

पर्याय—(सं०) सरट, कुकलास, गृध्रगोधा, वेदार, क्रकचपात, तृणाञ्जन, प्रतिसूर्य (क), वृत्तिस्थ, कण्टकागार, दुरारोह, द्रुमाश्रय, अण्डज, कुकलाशा, सरट; (अ०) हर्बास, जमखुल्यहूद; (फा०) बूकलूमन, आफताब परस्त; (अ०) चमेलियन (Chamelion)।

प्रकृति—चौथे दर्जे में गरम व खुश्क है।

गुण-कर्म तथा उपयोग—(वधिर) नेत्र के परबाल उखाड़कर उसपर इसका रक्त लगाने से वे पुनः नहीं जमते। (पित्त) नेत्र में अञ्जन करने से नेत्र का जाला एवं फूली दूर होती है। (वसा) इसकी चर्बी लेकर आग पर पिघलाएँ और रक्तादि जो कुछ शेष रह जाय उसके साथ इसे शिर के गंज पर लगाएँ तो एक ही बार के लगाने से केश उत्पन्न हो जाते हैं। (मांस) इसका मांस जलमें पकाकर मांसरस ले जल में मिलाकर स्नान करने से कई दिन तक शरीर हरा (रंग) रहता। इसका मांस विष है। इसके खाने से मृत्यु होती है। इसके सेवन से वमन होता है और हृदय में वेदना होती है। **चिकित्सा**—तेलनीमक्खी (जरारीह) वत्। (अंडा) इसका अंडा भी विषैला होता है। इसके खाने

से विषलक्षण प्रकट हों तो निम्न उपाय करें—बाजपक्षी का उदर ले अंगूरीशराब में मिलाकर पिलावे और वमन कराएँ; गाय के घी का शरीर पर मालिश करावे अथवा सूखा अंजीर मक्खन और पाषाणादि समभाग में लेकर सेवन करावे।

कुकुलासाद्य तैल—द्रव्य तथा निर्माण-विधि—धतूरे का ४ फल, सोंठ २ माशा, छिपकली तीन की संख्या में लेकर, सबको दो छटाँक सरसों के तेल में यथाविधि पकाकर छान लें। गुण-धर्म तथा उपयोग—इस तेल के लगाने से आमवात (गठिया) में बड़ा लाभ होता है।

मैथुनशक्तिवर्धनार्थ—गिरगिट को पकड़कर उसके गले में दृढ़तापूर्वक डोरा बाँधकर शिर-सहित गले से मुँह तक चाकू से चीर डालें और पीले रंग का जो द्रव एवं रक्तादि निकले उसे लेकर कस्तूरी एवं आमलासार गंधक में महीन पीसकर तत्काल पान पर लगाकर सुपारी और सीधन वचाकर जननेन्द्रिय के ऊपर बाँधने से नपुंसकता नष्ट होती है।

गिरगिट दंश—यह प्रायः काटता नहीं। परन्तु संयोगवश यदि काट लेवे तो काटा हुआ स्थान निर्जीव हो जाता है और दण्ट स्थानमें दाँत रह जानेसे तीव्र वेदना होती है। उक्त अवस्था में दंशस्थान को चीरकर दाँत निकालकर उक्त स्थल कार्बोलिक एसिड से जला देवे। इससे लाभ होता है।

गिरगिट्टी—संज्ञा स्त्री० [] जंगली नीबू। वन निम्बू। (ले०) पिलकोमिस पेण्टाफाइला।

गिरजा—संज्ञा पुं० [] पक्षीभेद।

गिरण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भोजन। आहार। (वै० निघ०)।

गिरथन—संज्ञा पुं० [पं०] गिड़ड ब्राक (क्ष)। (कुमा०) अगलेया।

गिरदान—संज्ञा पुं० [] गिरगिट।

गिरस्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] बंद होना। जकड़ जाना। अवरुद्ध होना।

गिरपतंगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] स्वरभंग। आवाज बैठ जाना। (अ) बुहहत्तुस्सौत।

गिरस्तगी-शिकम—संज्ञा स्त्री० [फा०] उदरावष्टम। कोष्ठ-वद्धता। कब्ज।

गिरस्तः खातिर—संज्ञा पुं० [फा०] हृत्संकोच। दिलगीर। मलूल।

गिरस्तः जबान—संज्ञा पुं० [फा०] तुतला। तुतराकर बोलने-वाला। हकला। जो एक-एक बात रुक-रुककर करे।

गिरस्तः दम—संज्ञा पुं० [फा०] श्वासरोग। दमा का रोग।

गिरस्तः लव—संज्ञा पुं० [फा०] मूक। गुंगा। जो भाषण नहीं कर सके।

गिरमाल (-ला)—संज्ञा पुं० [] अमलतास।

गिरवारा—संज्ञा पुं० [] आरग्वध।

गिरवारो (-मालो) संज्ञा पुं० [गु०]

गिरह—संज्ञा [फा०] ग्रन्थि। गाँठ।

गिरहगोस्त—संज्ञा पुं० [फा०] अबुंद। रसौली। ग्रन्थि। मांसग्रन्थि।

गिरह जबान—संज्ञा पुं० [फा०] मूकत्व। गुंगापन।

गिराँ खातिर—संज्ञा पुं० [फा०] हृत्संकोच। संकुचित हृदय। दिलगीर। दिलतंग।

गिराँखाव—संज्ञा पुं० [फा०] (१) अधिक सोना। अतिनिद्रा- (२) अधिक सोनेवाला।

गिराँखार—संज्ञा पुं० [फा०] अधिक भोजन करनेवाला। अति भुक।

गिराँगोश—संज्ञा पुं० [फा०] वधिर। ऊँचा सुननेवाला।

गिराँगोशी, गिरानीगोश—संज्ञा स्त्री० [फा०] वाधिर्य। वधिरता। ऊँचा सुनाई देना। सिकल समाप्त।

गिरि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) चक्षुरोग विशेष (हे०) (२) पहाड़। पर्वत। (रा० नि० व० २)।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) निगलना। गिलन।

गला के नीचे उतारना। गिरण। (अम०)। (२)

चुहिया। बालमूषिका। मुसटी। (अ० टी० र०)।

(३) पारददोषविशेष। (रत्ना०)।

गिरि अतिसार—संज्ञा पुं० [सं० गिरि=पहाड़+अतिसार-पार्वतीय अतिसार] (अ०) हिल डायरिया।

गिरिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गिरिनिम्ब। महानिम्ब। बकाइन। (वै० निघ०)।

गिरिकदम्ब—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंगली कदम्ब। धारा कदम्ब। कैमा। (रा० नि० व० १९; वा० उ० २ अ०)।

गिरिकदली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पहाड़ी केला। दे० 'कदली'।

गिरिकर्ण गिरिकर्णिका, गिरिकर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) इन्द्रायन। इन्द्रवाष्णी। (रा० नि० व० २३)। (२) श्वेतापराजिता। (रा० नि० व० ३)।

दे० 'अपराजिता श्वेत'। (३) कृष्ण अपराजिता।

कृष्णक्रान्ता। कोयल। (बं०) काल अपराजिता, श्याम-

पर्णी। दे० 'अपराजिता'। (सु० सू० ३९ अ०)। (४)

श्वेत कटभी वृक्ष। (रा० नि० व० ९)। (५) श्वेत

किणिही। श्वेतापामर्ग। (६) अमलतास। आरग्वध वृक्ष।

(रा० नि० व० २३)।

संज्ञा स्त्री० [ते०] जवासा।

गिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चुहिया। मुसटी। बाल

मूषिका। (बं०) घूँचो। (वृज०) चोखरिया। (अम०)।

गिरिकाण—वि० [सं० त्रि०] काना। एक नेत्र का अंधा।

(उणा०)।

गिरकण

अमलतास ।
आरम्भ ।

ली । ग्रन्थ ।

पत्त ।
कुचित हृदय

। अतिनिद्रा-

करनेवाला ।

मुत्तनेवाला ।

] बाधिर्य ।

त ।

वशेष (हे०) ।

।

। गिलन ।

०) । (२)

० २०) ।

+ अतिसार-

महानिम्ब ।

ब । धारा

२ अ०) ।

केला । दे०

०) [सं०

नि० व०

व० ३) ।

राजिता ।

, श्याम-

। (४)

) श्वेत

वध वृक्ष ।

। बाल

म०) ।

अंघा ।

